ब्रजभाषा सूर-कोश

द्वितीय खण्ड

[न (निवही) से ह (ह्वै हौं) तक]

निर्देशक

डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम० ए०, एल०-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

डॉ० प्रेमनारायण टंडन, पी०-एच० डी०
हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक
लखनऊ विश्वविद्यालय

निबही—क्रि. अ. [हिं. निबाहना] (१) **निभी है, बीती है।** उ.—सुमिरन, ध्यान, कथा हरिजू की, यह एकौ न रही। लोभी, लंपट, बिषयिनि सौं हित, यौं तेरी निबही—१-३२४। (२) **निर्वाह किया, पालन किया, रक्षा की।** उ.—रही ठगी चेटक सौ लाग्यौ, परि गई प्रीति सही।......। सूर स्याम पै ग्वालि सयानी सरबस दै निबही—१०-२८१।

निबहैगी—क्रि. अ. [हिं. निबहना] **निर्वाह हो जायगा।** उ.—हम जान्यौ ऐसेहिं निबहैगी उन कछु औरै ठानी – ३३५६।

निबहौं—क्रि. अ. [हिं. निबाहना, निबहना] **पार पाऊँगा, मुक्ति या छुटकारा पाऊँगा।** उ.—माधौ जू, सो अपराधी हौं। जनम पाइ कछु भलौ न कीन्हौ, कहौ सु क्यों निबहौं – १-१५१।

निबहौगे—क्रि. अ. [हिं. निबहना] **पार पाओगे, बचोगे, छुट्टी पाओगे, छुटकारा मिलेगा।** उ.—लरिकनि कौं तुम सब दिन झुठवत मोसौं कहा कहौगे। मैया मैं माटी नहिं खाई, मुख देखौं, निबहौगे—१०-२५३।

निबह्यौ—क्रि. अ. [हिं. निबाहना] **निर्वाह किया, पूरा किया, पाला।** उ.—सूरदास धनि धनि वह प्रानी, जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ— २-८।

निबारयौ—क्रि. स. [हिं. निवारना] **रोका, दूर किया, हटाया।** उ.—दुर्बासा कौ साप निवारयौ, अंबरीष-पति राखी—१-१०।

निबाह—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] (१) **निबाहने की क्रिया या भाव।** (२) **संबंध, क्रम या परंपरा का निर्वाह।** उ.—कीन्हे नेह-निबाह जीव जड़ ते इत उत नहिं चाहत—१-२१०। (३) **(वचन आदि का) पालन या पूर्ति।** (४) **छुटकारे या बचाव का ढंग।**

निबाहक—वि. [सं. निर्वाहक] **निबाह करनेवाला।** उ.—स्याम गरीबनि हूँ के गाहक। दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक—१-१९।

निबाहन—संज्ञा पुं. [हिं. निबाहना] (१) **निबाहने की क्रिया या भाव।** (२) **संबंध या परंपरा का निर्वाह।**

निबाहना—क्रि. स. [सं. निर्वाहन] (१) **किसी बात, क्रम या संबंध को बनाये रखना।** (२) **(बात या वचन) पूरा या पालन करना।** (३) **(कार्य) करते रहना।**

निबाहि—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **निभा देना।** उ०—करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कैं पुर लै जाहि। घाट-बाट कहूँ अटक होइ नहिं, सब कोउ देहि निबाहि—१-३१०।

निबाहु—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] **छुटकारे का ढंग, बचाव या रास्ता।** उ.—कोउ कहति अहि काम पठयौ, डसै जिनि यह काहु। स्याम-रोमावली की छबि, सूर नाहिं निबाहु—६३६।

निबाहे—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **व्यतीत किये, निभा दिये।** उ.—तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे, इहै स्वाँग कौं काछे—१-१३६।

निबाहो—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **निर्वाह करो, संबंध की रक्षा करो।** उ.—निबाहौ बाँह गहे की लाज-१-२५५।

निबाहौं—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **निर्वाह करूँ, पालन करूँ।** उ.—यह परतिज्ञा जौ न निबाहौं तौ तनु अपनौ पावक दाहौं।

निबाह्यौ—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **निर्वाह किया, पाला, चरितार्थ किया।** उ.—तीनौं पन भरि ओर निबाह्यौ तऊ न आयौ बाज—१-९६।

निबिड़—वि. [सं. निविड़] **घना, घनघोर।** उ.—बहुत निबिड़ तम देखि चक्र धरि धरेउ हाथ समुहायौ—सारा. ८५५।

निबुकना—क्रि. अ. [सं. निर्मुक्त, प्रा. निम्मुत्त] (१) **बंधन से मुक्ति पाना।** (२) **बंधन का ढीला होकर खिसकना।**

निबृत्त—वि. [सं. निवृत्त] **जिसे छुटकारा मिल चुका हो।**
क्रि. प्र.—निवृत्त कियौ—**छुटकारा दिलाया।** उ.—दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के नारद-साप निबृत्त कियौ—१-२६।

निबेड़ना, निबेरना—क्रि. स. [सं. निवृत्त, प्रा. निविड्ड] (१) **(बंधन आदि से) छुड़ाना।** (२) **मिली-जुली वस्तुओं को अलग करना।** (३) **सुलझाना।** (४) **निर्णय करना।** (५) **दूर करना।** (६) **पूरा करना।**

निबेरहु—क्रि. स. [हिं. निबेरना] **निर्णय करो।** उ.—सूरदास वह न्याउ निबेरहु हम तुम दोऊ साहु—३३६८।

निबेड़ा, निबेरा—संज्ञा पुं. [हिं. निबेड़ना] (१) **मुक्ति,**

छुटकारा। (२) बचाव, उद्धार। (३) अलगाव। (४) सुलझाव। (५) भुगतान, समाप्ति। (६) निर्णय।

निबेरि—क्रि. स. [हिं. निबेरना] **अलग करके, छाँटकर, चुनकर।** उ.—बड़ौ भयौ अब दुहत रहौंगो, अपनी धेनु निबेरि—४००।

निबेरी—क्रि. स. [हिं. निबेरना] **मिली हुई वस्तुओं को अलग करना, छांटना, चुनना।**

प्र. - सकै निबेरी—**छांट या अलग कर सकता है।** उ.—ग्वालिनि घर गए जानि साँझ की अँधेरी। मंदिर मैं गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ, देह गेह रूप, कहौ को सकै निबेरी—१०-२७५।

निबेरे—क्रि. स. [सं. निबेरना] **मिली-जुली वस्तुओं को अलग करने या छांटने से।** उ.—नैना भए पराये चेरे।"""। तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निबरत नाहिं निबेरे।

निबेरो, निबेरौ—क्रि. स. [हिं. निबेरना] **छांट कर अलग करो, चुन लो, बिलगा लो।** उ.—न्यारौ जूथ हाँकि लै अपनौ न्यारी गाई निबेरौ—१०-२१६।

संज्ञा पुं.—(१) **छुटकारा, मुक्ति, उद्धार, बचाव।** उ.—व्याकुल अति भवजाल बीच परि प्रभु के हाथ निबेरो। (२) **निर्णय, फैसला, निबटेरा।** उ.—जैसे बरत भवन तजि भजिए तैसहि गए फेरि नहिं हेरयौ। सूर स्याम रस रसे रसीले अब को करै निबेरो ?

निबैहै—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **निबाह करेगा, छाँटेगा, चुनेगा।** उ.—गुननिधान तजि सूर साँवरे को गुनहीन निबैहै—३१०५।

निबौरी, निबौली—संज्ञा स्त्री. [हिं. निबकौरी] **नीम का फल या बीज।** उ.—दाख दाड़िम छाँड़ि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै—३१०५।

निभ—संज्ञा पुं. [सं०] **प्रभा, प्रकाश।**

वि.—**तुल्य, समान।**

निभना—क्रि. अ. [हिं. निबहना] (१) **बच निकलना, छुटकारा पाना।** (२) **निर्वाह होना।** (३) **गुजारा या निर्वाह होना।** (४) **चलना या पूरा होना।** (५) **क्रम, संबंध या परंपरा का पालन होना।**

निभरम—वि. [सं. निर्भ्रम] **भ्रम या शंकारहित।**

क्रि. वि.—**निःशंक, बेधड़क, बेखटके।**

निभरमा—वि. [सं. निर्भ्रम] **जिसकी मर्यादा या लज्जा न रह गयी हो, अविश्वस्त।**

निभरोस—वि. [हिं. नि+भरोसा] **हताश, निराश।**

निभरोसी—वि. [हिं. नि+भरोसा] (१) **हताश, निराश।** (२) **निराश्रित, निराधार।**

निभाउँ—वि. [सं. निः+भाव] **भावहीन, भावनाहीन।** उ.—काकैं द्वार जाइ होउँ ठाढ़ौ, देखत काहि सुहाउँ। असरन-सरन नाम तुम्हरौ, हौं कामी, कुटिल, निभाउँ—१-१२८।

निभागा—वि. [हिं. नि + भाग्य] **अभागा।**

निभाना—क्रि. स. [हिं. निबाहना] (१) **संबंध, परंपरा या क्रम बनाये रखना।** (२) **(काम या प्रयत्न) करते चलना।** (३) **बात या वचन का पालन करना।**

निभाव—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] **निर्वाह, निबाह।**

निभूत—वि. [सं.] **बीता हुआ, व्यतीत।**

निभृत—वि. [सं.] (१) **रखा या धरा हुआ।** (२) **अटल, निश्चल।** (३) **छिपा हुआ।** (४) **बंद किया हुआ।** (५) **विनीत, नम्र।** (६) **शांत, धीर।** (७) **निर्जन, एकांत।** (८) **पूर्ण, युक्त।**

निभ्रांत—वि. [सं. निर्भ्रांत] **भ्रमरहित।**

निमंत्रण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बुलावा, आह्वान।** (२) **भोजन का बुलावा, न्योता।**

निमंत्रना—क्रि. स. [सं. निमंत्रण] **न्योता देना।**

निमंत्रित—वि. [सं.] **जिसे बुलाया गया हो।**

निम—संज्ञा पुं. [सं.] **शलाका, शंकु।**

संज्ञा पुं. [सं. निमि] **राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र जिनसे मिथिला का विदेह वंश चला माना गया है। इनका स्थान मनुष्य की पलकों पर माना गया है।** उ.—मैं बिधना सों कहौं कछू नहिं नितप्रति निम को कोसौं—१४०७।

निमकौरी - संज्ञा स्त्री. [हिं. नीम+कौड़ी] **निबौली।**

निमग्न—वि. [सं.] (१) **डूबा हुआ।** (२) **तन्मय।**

निमज्जक—संज्ञा पुं. [सं.] **समुद्री गोताखोर।**

निमज्जन—संज्ञा पुं. [सं.] **गोता लगाकर या डुबकी मार कर किया जानेवाला स्नान, अवगाहन।**

निमज्जना—क्रि. अ. [सं. निमज्जन] **गोता लगाना।**

निमज्जित—वि. [सं.] (१) **डूबा हुआ।** (२) **नहाया हुआ।**

निमता—वि. [हिं. नि+मत्त] **जो उन्मत्त न हो।**

निमान—संज्ञा पुं. [सं. निम्न] (१) **गड्ढा।** (२) **जलाशय।**

निमाना—वि. [सं. निम्न] (१) **ढलुवाँ, ढाल।** (२) **सीधा-सादा, सरल, विनीत।** (३) **दब्बू।**

निमि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दत्तात्रेय के पुत्र, एक ऋषि।** (२) **राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र जिनसे मिथिला का राजवंश चला माना गया है। इनका स्थान मनुष्य की पलकों पर कहा जाता है।** उ.—पलक वोट निमि पर अनखाती यह दुख कहा समाइ—३४४४। (३) **आँख का झपकना, निमेष।**

निमित—संज्ञा पुं. [सं. निमित्त] **के लिए, हेतु, कारण।** उ.—अस्व-निमित उत्तर दिसि कैं पथ गमन धनंजय कीन्हौं—१-२९।

निमित्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हेतु, लिए, वास्ते, कारण।** उ.—(क) मेरौ बचन मानि तुम लेहु। सिव-निमित्त आहुति जनि देहु—४-५। (ख) वाहि निमित्त सकल तीर्थ स्नान करि पाप जो भयो सो सब नसाई—१० उ०-५८।

निमित्तक—वि. [सं.] **जनित, सहेतुक।**

निमिराज—संज्ञा पुं. [सं.] **निमिवंशी राजा जनक।**

निमिष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आँख मिचना या झपकना, निमेष।** (२) **क्षण भर का समय, पलक मारने भर का समय।** उ.—(क) सूरदास प्रभु आपु बाहुबल कियौ निमिष मैं कीर—९-१५८। (ख) सूर हरि की निरखि सोभा, निमिख तजत न मात—१०-१००।

निमिषहूँ—संज्ञा पुं. [सं. निमिष+हूँ (प्रत्य.)] **पल भर भी, क्षण मात्र को भी।** उ.—बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिर चितयौ तौ तैसैं—१-८।

निमिषित—वि. [सं.] **मिचा या मुँदा हुआ।**

निमिषौ—संज्ञा पुं. [सं. निमिष] **पल भर को भी।** उ.—स्वाद पर्यो निमिषौ नाहिं त्यागत ताही माँझ समाने—पृ० ३२८ (७२)।

निमीलन—संज्ञा पुं. [सं.] **पलक मारना, निमेष।**

निमीलिका—संज्ञा स्त्री. [सं०] **आँख की झपक।**

निमीलित—वि. [सं.] (१) **ढका हुआ।** (२) **मृत।**

निमुहाँ—वि. [हिं. नि+मुँह] **कम बोलनेवाला।**

निमेक, निमेख, निमेष—संज्ञा पुं. [सं. निमेष] (१) **पलक का गिरना, आँख का झपकना।** उ.—(क) सूर प्रभु की निरखि सोभा तजे नैन निमेष—६३५। (ख) सूर निरखि नारायन इकटक भूले नैन निमेक—पृ० ३४७ (५१)। (ग) मनहुँ तुम्हारे दरसन कारन भूले नैन निमेष—२५६१। (२) **पलक झपकने भर का समय।**

निमेषक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पलक।** (२) **जुगनूँ।**

निमेषण—संज्ञा पुं. [सं.] **पलक गिरना, आँख मुँदना।**

निमेषै—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पलक झपकना भी, पलक गिरना तक।** उ.—अब इहिं बिरह अगर जो करी हम बिसरी नैन निमेषै—३१९०।

निमोना—संज्ञा पुं. [सं. नवान्न] **चने या मटर के पिसे हुए हरे दानों को हल्दी-मसाले के साथ घी में भूनकर बनाया हुआ रसदार व्यंजन।** उ.—बहुत मिरच दैं किए निमोना। बेसन के दस-बीसक दोना—१०-३९६।

निमौनी—संज्ञा स्त्री. [सं. नवान्न] **वह दिन जब पहली बार ईख काटी जाती है।**

निम्न—वि. [सं.] (१) **नीचा।** (२) **तुच्छ।**

निम्नग—वि. [सं.] **नीचे जाने या बहनेवाला।**

निम्नगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नदी।**

वि.—**नीचे की ओर जाने या बहनेवाली।**

निम्लोचनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **वरुण की नगरी का नाम।**

निम्नोक्त—वि. [सं.] **नीचे कहा हुआ।**

नियंतव्य—वि. [सं.] **नियंत्रित होने योग्य।**

नियंता—संज्ञा पुं. [सं. नियंतृ] (१) **नियामक, व्यवस्थापक।** (२) **कार्य-विधायक।** (३) **नियमानुसार चलानेवाला।** (४) **ईश्वर, परमात्मा।**

नियंत्रण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नियमित या व्यवस्थित करना।** (२) **देख-रेख में कार्य चलाना।**

नियंत्रित—वि. [सं.] (१) **जिस पर नियंत्रण हो।** (२) **जो नियमानुकूल हो, व्यवस्थित।**

नियत—वि. [सं.] (१) **नियमबद्ध।** (२) **स्थिर, निश्चित।** (३) **स्थापित, नियोजित।**

संज्ञा स्त्री. [अ. नीयत] **भाव, उद्देश्य इच्छा।**

नियतात्मा—वि. [सं. नियतात्मन्] **संयमी, जितेंद्रिय।**

नियताप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नाटक में सबको छोड़कर केवल एक ही उपाय से फल प्राप्ति का निश्चय।**

नियति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **निश्चित या बद्ध होने का भाव।** (२) **ठहराव, स्थिरता।** (३) **भाग्य, अदृष्ट।** (४) **अवश्य होनेवाली बात।**

नियतिवाद—संज्ञा पुं. [सं.] **एक सिद्धांत जिसके अनुसार विश्वास किया जाता है कि जो कुछ संसार में घटित होता है, वह पूर्व निश्चित और अटल है।**

नियम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रतिबंध, नियत्रण।** (२) **दबाव, शासन।** (३) **बँधा हुआ क्रम या विधान, परंपरा।** (४) **निश्चित रीति या व्यवस्था।** (५) **शर्त, प्रतिबंध।** (६) **एक अर्थालंकार।** (७) **योग के आठ नियमों में एक-शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—इनका निर्वाह या पालन 'नियम' कहा जाता है।** उ.—अनुसूया के गर्भ प्रगट ह्वै कियौ योग आराधि। यम अरु नियम प्रान प्रत्याहार धारन ध्यान समाधि—सारा० ६०।

नियमतः—क्रि. वि. [सं.] **नियम के अनुसार।**

नियमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **क्रम, विधान या व्यवस्था बाँधना!** (२) **शासन, नियंत्रण।**

नियमबद्ध—वि. [सं.] **नियमों से बँधा हुआ।**

नियमित—वि. [सं.] (१) **क्रम, विधान या नियम से बद्ध।** (२) **नियम के अनुसार।**

नियमी—वि. [सं.] **नियम का निर्वाह करनेवाला।**

नियर—अव्य. [सं. निकट, प्रा. निअड] **पास, समीप।**

नियराई—क्रि. अ. [हिं. नियरआना] **निकट पहुँची, पास आई।** उ.—(क) मरन-अवस्था जब नियराई—४-१२। (ख) प्रगट भई तहँ आइ पूतना, प्रेरित काल-अवधि नियराई—**१०-५०।**

नियराना—क्रि. अ. [हिं. नियर+आना (प्रत्य.)] **निकट, पास या समीप आना-पहुँचना।**

नियरानी—क्रि.अ. [हिं.नियराना] **निकट आ गयी, पास आ पहुँची।** उ.—अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्‌यौ न कछुवै कान—**१-५७।**

नियरान्यो—क्रि. अ. [हिं. नियराना] **निकट आ गया।** उ.—मधुबन ते चल्यो तबहिं गोकुल नियरान्यो—**२६४६।**

नियरे, नियरैं—अव्य. [हिं. नियर] **समीप, पास।** उ.—(क) भक्ति पंथ मेरे अति नियरैं जब तब कीरति गाई—१-६३। (ख) भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ।""। अतिगंभीर, तीर नहिं नियरैं, किहिं विधि उतर्‌यौ जात—१-१७५।

नियाई—वि. [सं. न्यायी] **न्याय करनेवाला।**

नियाज—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **इच्छा।** (२) **दीनता।** (३) **बड़ों का प्रसाद।** (४) **बड़ों से भेंट।**

नियान—संज्ञा पुं. [सं. निदान] **अंत, परिणाम।**
अव्य.— **अंत में, आखिर।**

नियाम—संज्ञा पुं. [सं.] **नियम।**

नियामक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नियम निश्चित करनेवाला।** (२) **विधान या व्यवस्था करनेवाला।**

नियामत—संज्ञा स्त्री. [अ. नेअमत] (१) **अलभ्य या दुर्लभ वस्तु।** (२) **उत्तम भोजन।** (३) **धन-संपत्ति।**

नियामिका—वि. स्त्री. [सं.] **नियम, विधान या व्यवस्था बाँधनेवाली।**

नियारा—वि. [सं. निर्निकट, प्रा. निन्निअड़] **अलग, भिन्न।**

नियारिया—संज्ञा पुं. [हिं. नियारा] (१) **मिली-जुली वस्तुओं को अलग करनेवाला।** (२) **चतुर व्यक्ति।**

नियारे—[हिं. न्यारा] (१) **जो निकट या समीप न हो, दूर।** उ.—इन अँखियनि आगैं तैं मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे—**१०-२६६।** (२) **अलग, पृथक्, साथ न रहना।** उ.—पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे। सुनी तगीरो, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे—**१-१४३।**

नियाव—संज्ञा पुं. [सं. न्याय] **न्याय।**

नियुक्त—वि. [सं.] (१) **किसी काम में लगाया हुआ।** (२) **तत्पर किया हुआ, प्रेरित।** (३) **निश्चित या स्थिर किया हुआ।**

नियुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नियुक्त होना, तैनाती।**

नियोक्ता—संज्ञा पुं. [सं. नियोक्त] (१) **कार्य में लगाने या नियोजित करनेवाला।** (२) **नियोग करनेवाला।**

नियोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **किसी काम में लगाना।** (२) **एक प्राचीन प्रथा जिसके अनुसार निसंतान स्त्री, देवर या पति के अन्य गोत्रज से संतान उत्पन्न करा लेती थी।** (३) **आज्ञा।** (४) **निश्चय।**

नियोगी—वि. [सं.] **नियोग करनेवाला ।**
नियोजक—वि. [सं.] **काम में लगानेवाला ।**
नियोजन—संज्ञा पुं. [सं.] **काम में लगाना ।**
नियोजित—वि. [सं.] **नियुक्त किया हुआ ।**
निरंकार—संज्ञा पुं. [सं. निराकार](१) **ब्रह्म ।**(२)**आकाश ।**
निरंकुश, निरंकुस—वि. [सं. निरंकुश] **जिस पर किसी का अंकुश, प्रतिबंध या दबाव न हो, स्वेच्छाचारी ।** उ—माधौ जू, मन सबही विधि पोच । अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चिंतारहित, असोच—१-१०२ ।
निरंग—वि. [सं.] (१) **अंगरहित ।** (२) **खाली, निरा, केवल ।** (३) **रूपक अलंकार का भेद ।**
वि.—[हिं. नि+रंग] (१) **बदरंग ।** (२) **फीका ।**
निरंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **परमात्मा, ईश्वर ।** उ.-(क) आदि निरंजन, निराकार, कोउ हुतौ न दूसर—२-३६ । (ख) अलख निरंजन ही को लेखो-३४०८। (२) **शिव जी ।**
वि.—(१) **बिना अंजन या काजल का ।** (२) **दोष या कल्मष रहित ।** (२) **माया से निर्लिप्त ।**
निरंजनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **साधुओं का एक संप्रदाय ।**
संज्ञा स्त्री. [सं. नीरांजनी] **आरती ।**
निरंतर—क्रि. वि. [सं.] **लगातार, सदा, बराबर ।**
वि.—(१) **अंतररहित ।** (२) **निबिड़, घना ।** (३) **अविचल, स्थायी ।** (४) **प्रत्यक्ष, प्रकट, जो अंतर्धान न हो ।** उ.—निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ— १-३८ ।
संज्ञा पुं.- (१) **ब्रह्म, ईश्वर ।** (२) **विष्णु ।**
निरंध—वि. [सं.] (१) **बिलकुल अंधा ।** उ.—करि निरंध निबहै दै माई आँखिनि रथ-पद धूरि—२६६३ । (२) **महामूर्ख ।** (३) **घनघोर अंधकार ।**
वि. [सं. निरंधस्] **बिना अन्न का ।**
निरंबु—वि. [सं.] (१) **बिना पानी का, निर्जल ।** (२) **बिना पानी या जल पिये ।**
निरंभ—वि. [सं. निरंभस्] (१) **निर्जल ।** (२) **जिस (व्रत, साधना) में बिना पानी पिये रहा जाय ।**
निरंश, निरंस—वि. [सं.] **जिसे अपना प्राप्य भाग न मिला हो ।** उ.-सेष सहसफन नाथिज्यों सुरपतिकरे निरंस१११२।

निरअंतर—क्रि. वि. [सं. निरंतर] **लगातार, सदा ।** उ.—उरझ्यौ बिबस कर्म निरअंतर, स्रमि सुख-सरनि चह्यौ—१-१६२ ।
निरउत्तर—वि. [सं. निरुत्तर] **जो उत्तर न दे सके । मौन, चुप ।** उ.—निरउत्तर भई ग्वालि बहुरि कह कछू न आयो—१०७२ ।
निरक्षर—वि. [सं.] (१) **अशिक्षित ।** (२) **मूर्ख ।**
निरखत—क्रि. स. [हिं. निरखना] **ताकते या देखते हैं ।** उ.—(क) जद्यपि विद्यमान सब निरखत, दुःख सरीर भर्‌यौ—१-१०० । (ख) दुष्ट-सभा पिसाच दुरजोधन, चाहत नगन करी । भीषम, द्रोन, करन, सब निरखत, इनतैं कछु न सरी—१-२५४ ।
निरखना—क्रि. स. [सं. निरीक्षण] **देखना, ताकना ।**
निरखनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. निरखना] **देखने की क्रिया या भाव ।** उ.—सुंदर बदन तडाग रूपजल निरखनि पुट भरि पीवत—पृ. ३३५ (४६) ।
निरखि—क्रि. स. [हिं. निरखना] **देखकर, देखदेख ।** उ.— (क) इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरषत लोचन नीर । ...... । त्यागति प्रान निरखि सायक धनु, गति-मति-बिकल-सरीर—१-२६ । (ख) सुंदर बदन री सुख सदन स्याम के निरखि नैन-मन थाक्यो—२५४६ ।
निरखो, निरखौ—क्रि. स. [हिं. निरखना] (१) **देखो, निहारो ।** उ.—बिछुरन भेंट देहु ठाढ़े ह्वै निरखो घोष जन्म को खेरो-२५३२ । (२) **सोचो, समझो, विचारो ।** उ.—यह भावी कछु और काज है, को जो याकौ मेटनहारौ । याकौ कहा परेखौ-निरखौ, मधु-छीलर, सरितापति खारौ—६-३६ ।
निरग—संज्ञा पुं. [सं. नृग] **राजा नृग ।**
निरगुन—वि. पुं [सं. निर्गुण] **सत्व, रज और तम-निश्चय रूप से जो इन तीनों गुणों से परे हो ।** उ.—बेद-उपनिषद जासु कौं निरगुनहिं बतावै । सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै—१-४ ।
निरगुनिया, निरगुनी—वि. [सं. निर्गुण] **जिसमें गुण न हो, जो गुणी न हो, अनाड़ी ।**
निरघात—संज्ञा पुं.[सं. निर्घात] (१) **नाश ।** (२) **आघात ।**
निरचू—वि. [सं. निश्चित] **जिसे छुट्टी मिल गयी हो ।**

निरच्छ—वि. [सं. निरक्षि] **बिना आँख का, अंधा।**
निरच्छर—वि. [सं. निरक्षर] **अपढ़, मूर्ख।**
निरजल—वि. [सं. निर्जल] (१) **जिसमें जल न हो।** (२) **जिस (व्रत आदि) में जल न ग्रहण किया जाय।**
निरजीव—वि. [सं. निर्जीव] (१) **जीवरहित, मृतक, प्राणहीन।** उ.—(क) कंस, केसि, चानूर, महाबल करि निरजीव जमुन-जल बोयौ—१-५४। (ख) पटक्यो सिला खरिक के आगे छिन निरजीव करायो–सारा. ४२६। (२) **अशक्त, उत्साहहीन।**
निरझर—संज्ञा पुं. [सं. निर्झर] **झरना।**
निरझरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. निर्झरिणी] **नदी।**
निरझरी—संज्ञा स्त्री. [सं. निर्झरी] **पहाड़ी नदी।**
निरत—वि. [सं.] **किसी काम में लीन।**
संज्ञा पुं. [सं. नृत्य] **नाच, नृत्य।**
निरतत—क्रि. अ. [सं. नर्त्तन] **नाचता है, नृत्य करते हैं।** उ.—(क) कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज-बालक-सेनु—४४८। (ख) सूर स्याम काली पर निरतत, आवत हैं ब्रज ओक—५६५।
निरतना—क्रि. स. [सं. नर्त्तन] **नाचना, नृत्य करना।**
निरति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बहुत अधिक प्रीति या रति।** (२) **लीनता, लिप्तता।**
निरदइ, निरदई—वि. [सं. निर्दय] **दयाहीन, निष्ठुर।** उ.—(क) उलटे भुज बाँधि तिन्हैं लकुट लिए डाँटै। नैंकहुँ न थकत पानि, निरदई अहीरी—३४८। (ख) है निरदई, दया कछु नाहीं—३६१। (ग) को निरदई रहै तेरैं घर—३६८।
निरदय, निरदै—वि. [सं. निर्दय] **दयारहित, निष्ठुर।** उ.—(क) लघु अपराध देखि बहु सोचति, निरदय हृदय बज्र सम तोर—३५७। (ख) सब निरदै सुर असुर सैल सखि सायर सर्प समेत—२८५६।
निरदोष, निरदोषी—वि. [सं. निर्दोष] **जो दोषी न हो।**
निरधन—वि. [सं. निर्धन] **धनहीन, दरिद्र।** उ.—सोइ निरधन, सोइ कृपन दीन हैं, जिन मम चरन बिसारे—१-२४२।
निरधातु—वि. [सं. निर्धातु] **शक्तिहीन, निर्बल।**
निरधार—संज्ञा पुं. [सं. निर्धारण] (१) **निश्चय करने का कार्य।** (२) **निश्चित करने का भाव।**
वि.—(१) **निश्चित, जो टल न सके।** उ.—सप्तम दिन मरिबौ निरधार—१-२९०। (२) **निश्चय ही।** उ.—कह्यौ, आइहैं हरि निरधार—१० उ.-३७।
निरधारना—क्रि. स. [सं. निर्धारण] (१) **निश्चय या स्थिर करना।** (२)**मन में समझना या धारण करना।**
निरनउ—संज्ञा पुं. [सं. निर्णय] **निर्णय।**
निरनुनासिक—वि. [सं.] **जिस वर्ण में अनुस्वार न हो।**
निरनै—संज्ञा पुं. [सं निर्णय] **फैसला, निर्णय।**
निरन्न—वि. [सं.] (१) **अन्नरहित।** (२) **निराहार।**
निरन्ना—वि. [सं. निरन्न] **जो अन्न न खाये हो।**
निरपना—वि. [हिं. निर+अपना] **जो अपना न हो।**
निरपराध—वि. [सं.] **जो अपराधी न हो।**
क्रि. वि.—**बिना अपराध के।**
निरपवाद—वि. [सं.] **जिसकी बुराई न हो।**
निरपेक्ष—वि. [सं.] (१) **जिसे किसी बात की इच्छा न हो।** (२) **जो किसी पर निर्भर न हो।** (३) **तटस्थ।**
निरपेक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **इच्छा न होना।** (२) **तटस्थता।** (३) **अवज्ञा।** (४) **निराशा।**
निरपेक्षित—वि. [सं.] (१) **जिसकी इच्छा न की जाय।** (२) **जिससे संबंध न रखा जाय।**
निरपेक्षी—वि. [सं. निरपेक्षिन्] (१) **इच्छा न रखने वाला।** (२) **लगाव या संबंध न रखनेवाला।**
निरबंस—वि. [सं. निर्वंश] **जिसके आगे वंश चलाने वाला कोई न हो।** उ.—मरौ वह कंस, निरबंस वाकौ होइ, कर्यौ यह गंस तोकौं पठायौ—५५१।
निरबंसी—वि. [सं. निर्वंश] **जिसके संतान न हो।**
निरबर्ती—वि. [सं. निवृत्त] **त्यागी, विरागी।**
निरबल—वि. [सं. निर्बल] **कमजोर, शक्तिहीन।**
निरबहना—क्रि. अ. [हिं. निभना] **निभ जाना।**
निरबहिऐ—क्रि. स. [हिं. निबाहना] **निर्वाह कीजिए, निभाइए, बचाइए।** उ.—ऐसैं कहौं कहाँ लगि गुन-गन लिखत अंत नहिं लहिऐ। कृपासिंधु उनहीं के लेखैं मम लज्जा निरबहिऐ—१-११२।
निरबान—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाण] **मोक्ष, मुक्ति।**
निरबाहत—क्रि. स. [सं. निर्वहना, हिं. निबाहना] **निबाह**

करते हैं, निभा लेते हैं, रक्षा कर लेते हैं । उ.—सूरदास हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ—६-१६ ।

निरबाहु—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] **पालन, निर्वाह** । उ.—(क) हौं पुनि मानि कर्म कृत रेखा, करिहौं तात-बचन निरबाहु—६-३४ । (ख) सूर सब दिन चोर को कहुँ होत है निरबाहु—१२८० ।

निरबिकार—वि. [सं. निर्विकार] **दोष-रहित** ।

निरबेद—संज्ञा पुं. [सं. निर्वेद] (१) **दुख** । (२) **वैराग्य** ।

निरबेरा—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह](१)**मुक्ति** । (२) **उद्धार** ।

निरभय—वि. [सं. निर्भय] **निर्भय, निडर** । उ.—बिबिध आयुध धरे, सुभट सेवत खरे, छत्र की छाहँ निरभय जनायौ—६-१२६ ।

निरभर—वि. [सं. निर्भर] **अवलंबित, आश्रित** ।

निरभिमान—वि. [सं.] **अभिमान रहित** ।

निरभिलाष—वि. [सं.] **अभिलाषा रहित** ।

निरभैं—वि. [सं. निर्भय] **निर्भय, निडर** । उ.—होउँ बेगि मैं सबल सबनि मैं, सदा रहौं निरभैं री—१७६ ।

निरभ्र—वि. [सं.] **मेघशून्य, निर्मल** ।

निरमना—क्रि. स. [सं. निर्माण] **निर्माण करना** ।

निरमर, निरमल—वि. [सं. निर्मल] **स्वच्छ, निर्मल** । उ.—पूँगीफल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की—६-२५ ।

निरमान—संज्ञा पुं. [सं. निर्माण] **रचना, निर्माण** । उ.—नख, अँगुरी, पग, जानु, जंघ, कटि, रचि कीन्हौ निरमान—६४३ ।

निरमाना—क्रि. स. [सं. निर्माण] **निर्माण करना** ।

निरमायल—संज्ञा पुं. [सं. निर्माल्य] **देवार्पित वस्तु जो विसर्जन के पूर्व 'नैवेद्य' और पश्चात 'निर्माल्य' कहलाती है । शिव जी के अतिरिक्त सब देवताओं के निर्माल्य—पुष्प और मिष्ठान्न—ग्रहण किये जाते हैं** । उ.—(क) अब तौ सूर यहै बनि आई, हर कौ निज पद पाऊँ । ये दससीस ईस निरमायल, कैसैं चरन छुवाऊँ—६-१३२ । (ख) हरि के चलत भईं हम ऐसी मनहु कुसुम निरमायल दाम—२५३० ।

निरमूल—वि. [सं. निर्मूल] **जड़रहित, मूलरहित** ।

निरमूलना—क्रि. स. [सं.निर्मूलन] (१) **जड़ से उखाड़ना** । (२) **नष्ट कर देना** ।

निरमोल—वि. [सं. उप. निस्, निर+हिं. मोल] (१) **अनमोल, अमूल्य** । (२) **बहुत बढ़िया** । उ.—ताहि कैं हाथ निरमोल नग दीजियै, जोइ नीकैं परखि ताहि जानै—१-२२३ ।

निरमोलक—वि. [हिं. निरमोल] (१) **अमूल्य, अनमोल** । उ.—तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार । जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार—१-४१ ।

निरमोही—वि. [हिं. निर्मोही] **जिसमें मोह-ममता न हो, निर्दय, कठोर-हृदय** । उ.—ऐसी निरमोही माई महरि जसोदा भई बाँध्यौ है गोपाल लाल बाँहनि पसारि—३६२ ।

निरर्थ, निरर्थक—वि. [सं.] (१) **अर्थहीन** । (२) **व्यर्थ** । (३) **निष्फल** ।

निरलज्ज—वि. [सं. निर्लज्ज] **लज्जाहीन, बेशर्म** । उ.—तृष्ना बहिनि, दीनता सहचरि, अधिक प्रीतिबिस्तारी । अति निसंक, निरलज्ज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी—१-१७३ ।

निरवद्य—वि. [सं.] **जिसे कोई बुरा न कहे** ।

निरवधि—वि. [सं.] (१) **असीम** । (२) **निरंतर** ।

निरवयव—वि. [सं.] **अंगरहित, निराकार** ।

निरावलंब—वि. [सं.] **आधार या आश्रय-रहित** ।

निरवाना—क्रि.स.[हिं. निराना] **निराने को प्रेरित करना** ।

निरवार—संज्ञा पुं. [हिं. निरवारना] (१) **मुक्ति, छुटकारा, बचाव** । उ.—यही सोच सब पगि रहे कहूँ नहीं निरवार । (२) **अलग करने, छुड़ाने या सुलझाने का काम** । (३) **निबटारा फैसला** ।

निरवारना—संज्ञा पुं. [सं. निवारण] (१) **अलग-अलग करते हैं** । उ.—ए दोउ नीर खीर निरवारत इनहिं बधायौ कंस—३०४६ । (२) **उलझी चीज को सुलझाते है** । उ.—कबहूँ कान्ह आपने कर सों केस-पास निरवारत । (३) **टालना, रोकना** । (४) **बंधन से मुक्त करना** । (५) **त्यागना** । (६) **निर्णय या फैसला करना** ।

निरवारि—क्रि. स. [हिं. निरवारना] **बंधन खोलना, छुड़ाना, मुक्त करना** । उ.—कोउ कहति मैं बाँधि

राखौं, को सकैं निरवारि—१०-२७३ ।

निरवारिहौं—क्रि. स. [हिं. निरवारना] **मुक्त करूँगा। छुड़ाऊँगा।** उ.—कंस कौं मारिहौं, धरनि निरवारिहौं, अमर उद्धारिहौं, उरग-धरनी—५५१ ।

निरवारैं—क्रि. स. [हिं. निरवारना] **गाँठ आदि छुड़ाते हैं, सुलझाते हैं।** उ.—चोली छोरैं हार उतारैं। कर सौं सिथिल केस निरवारैं—७६६ ।

निरवारौ—संज्ञा पुं. [हिं. निरवारना] **फैसला, निबटेरा, निर्णय।** उ.—कै हौं पतित रहौं पावन ह्वै, कै तुम बिरद छुड़ाऊँ। द्वै मैं एक करौं निरवारौ, पतितनि-राव कहाऊँ—१-१७६ ।

निरवाहु—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] **निबाह, पालन।**

निरवाहना—क्रि. अ. [सं. निर्वाह] **निभाना।**

निरशन—संज्ञा पुं. [सं.] **लंघन, उपवास।**

वि.—**जिसने खाया न हो, जिसमें खाया न जाय।**

निरसंक—वि. [सं. निःशंक] **भय, संकोच-रहित।**

निरस—वि. [सं.] (१) **जिसमें रस न हो।** (२) **जिसमें स्वाद न हो।** (३) **सारहीन।** (४) **जिसमें आनंद न हो, शुष्क।** स.—ऊधौ प्रेमरहित जोग निरस काहे को गायो—३०५७ । (५) **दया-ममता-स्नेह-रहित।** उ.—संकित नंद निरस बानी सुनि बिलम करत कहा क्यों न चलैं—२६४७ । (६) **रूखा-सूखा, जिसमें जल या तरी न हो।** (७) **विरक्त।**

निरसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूर करना, हटाना।** (२) **रद या अस्वीकार कर देना।** (३) **निराकरण।**

निरस्त—वि. [सं.] (१) **फेंका या छोड़ा हुआ (तीर आदि)।** (१) **त्यागा या अलग किया हुआ।** (३) **रद या अस्वीकार किया हुआ।** (४) **अस्पष्ट रूप से उच्चरित।**

निरस्त्र—वि. [सं.] **अस्त्रहीन, निहत्था।**

निरहार—वि. [सं. निराहार] **आहार रहित, जिसने भोजन न किया हो।** उ.—एकादसी करैं निरहार—६-४ ।

निरा—वि. [सं. निरालय, पू. हिं. निराल] (१) **खालिस, शुद्ध।** (२) **केवल, एकमात्र।** (३) **निपट, बिलकुल।**

निराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. निराना] **निराने का काम या दाम।**

निराकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **छाँटकर अलग करना।** (२) **हटाकर दूर करना।** (३) **मिटाना, रद करना।** (४) **दोष का शमन या निवारण** (५) **युक्ति या तर्क का खंडन।**

निराकांक्ष, निराकांक्षी—वि. [सं.] **जिसे आकांक्षा न हो।**

निराकांक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **इच्छा का अभाव।**

निराकार—संज्ञा पुं. [सं.] **ब्रह्म या ईश्वर जो आकार-रहित है।** उ.—आदि निरंजन, निराकार, कोउ हुतौ न दूसर—२-३६ ।

वि.—**जिसका कोई आकार न हो।**

निराकुल—वि. [सं.] (१) **जो आकुल या घबराया हुआ न हो।** (२) **बहुत आकुल या घबराया हुआ।**

निराकृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आकृति रहित।**

निराक्रंद—वि. [सं.] **जो रक्षा या सहायता न करे।**

निराखर—वि. [सं. निरक्षर] (१) **बिना अक्षर का।** (२) **मौन।** (३) **अपढ़, अशिक्षित।**

निराट—वि. [हिं. निरा] **अकेला, एकमात्र।**

निरातंक—वि. [सं.] (१) **निर्भय।** (२) **नीरोग।**

निरातपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **रात, रात्रि।**

निरादर—संज्ञा पुं. [सं.] **अपमान, बेइज्जती।** उ.—यहै कहत ब्रज कौन उबारै सुरपति किए निरादर—६४६ ।

निराधार—वि. [सं.] (१) **आश्रय या आधार-रहित।** (२) **बेजड़-बुनियाद का।** (३) **बिना अन्न-जल के।**

निरानंद—वि. [सं.] **आनंदरहित।**

संज्ञा पुं.—(१) **आनंद का अभाव।** (२) **दुख।**

निराना—क्रि. स. [सं. निराकरण] **खेत से घास-फूस खोदकर दूर करना या निकालना।**

निरापद—वि. [सं.] (१) **हानि या आपदा से सुरक्षित।** (२) **जहाँ हानि या विपत्ति का भय न हो, सुरक्षित।**

निरापन—वि. [हिं. नि + अपना] **पराया, बेगाना।**

निरामय—वि. [सं.] **जिसे कोई रोग न हो, नीरोग।**

निरामिष—वि. [सं.] (१) **जिसमें मांस न मिला हो।** (२) **जो मांस न खाय।**

निरार, निरारा—वि. [हिं. निराला] **निराला।**

निरालंब—वि. [सं.] (१) **बिना किसी आधार के, निराधार।** (२) **बिना ठौर-ठिकाने के, निराश्रय।**

निरालस, निरालस्य—वि. [हिं. नि + आलस्य] **फुर्तीला।**

संज्ञा पुं.—आलस्य का अभाव।
निराला—संज्ञा पुं. [सं. निरालय] एकांत या निर्जन स्थान। वि.—(१) निर्जन। (२) अद्भुत। (३) अनोखा।
निरावलंब—वि. [सं.] बिना आश्रय या आधार का।
निराश—वि. [हिं. नि+आशा] जिसे आशा न हो।
निराशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आशा का अभाव।
निराशी—वि. [सं. निराशा] (१) जिसे आशा न हो। (२) विरह, उदासीन।
निराश्रय—वि. [सं.] (१) आश्रय या आधार-रहित। (२) जिसे ठौर-ठिकाना न हो, अशरण।
निरास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंडन। (२) दूर करना। वि. [हिं. निराश] निराश। उ.—(क) ताकत नहीं तरनिजा के तट तरुवर महा निरास—सा. २६। तिपीपी पल माँझ कीनो निपट जीव निरास—सा. ३८। (ग) सात दिवस जल बरषि सिराने ताते भए निरास—६७४।
निरासन—वि. [सं.] आसनरहित। संज्ञा पुं.—(१) दूर करना, निराकरण। (२) खंडन।
निरासा—संज्ञा स्त्री. [सं. निराशा] नाउम्मेदी, निराशा।
निरासी—वि. [सं. निराशा] (१) हताश, नाउम्मेद। (२) उदासीन, विरक्त। उ.—आप काज कौन हमको तजि तब ते भए निरासी—पृ. ३२५ (४२)। (३) जहाँ या जिसमें चित्त को आनंद न मिले, बेरौनक। उ. —सूर स्याम बिनु यह बन सूने ससि बिनु रैनि निरासी—३४२२।
निराहार—वि. [सं.] (१) जो बिना भोजन किये हो। (२) जिस (व्रत आदि) में भोजन किया ही न जाय।
निरिच्छ—वि. [सं.] जिसे कोई इच्छा न हो।
निरिच्छना—क्रि. स. [सं. निरीक्षण] देखना।
निरी—वि. स्त्री. [हिं. निरा] (१) विशुद्ध। (२) केवल।
निरीक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] देखरेख करनेवाला।
निरीक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देखरेख, निगरानी। (२) देखने की मुद्रा या रीति, चितवन।
निरीक्षित—वि. [सं.] निरीक्षण किया हुआ।
निरीश—वि. [सं.] (१) अनाथ। (२) नास्तिक।
निरीश्वरवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह सिद्धांत जिसमें ईश्वर का अस्तित्व न माना जाय।
निरीश्वरवादी—संज्ञा पुं. [सं.] ईश्वर का अस्तित्व न माननेवाला, नास्तिक।
निरीह—वि. [सं.] (१) जो इच्छा या चेष्टा न करे, (२) विरल। (३) तटस्थ। (४) शांतिप्रिय।
निरुआर—संज्ञा पुं. [हिं. निरुवार] निर्णय, फैसला। उ.—साँच-झूठ होइहै निरुवार—१० उ०-४४।
निरुआरना—क्रि. स. [हिं. निरुवारना] (१) निर्णय करना। (२) सुलझाना, (३) मुक्त करना, छुड़ाना।
निरुक्त—वि. [सं.] (१) व्याख्या किया हुआ। (२) नियुक्त, स्थापित, प्रतिष्ठित। संज्ञा पुं.—छह वेदांगों में चौथा अंग। संज्ञा स्त्री.—[सं. निरुक्ति] एक काव्यालंकार। उ.—यह निरुक्त की अवध वाम तू भइ 'सूर' हत सखी नवीन—सा. ६६।
निरुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] शब्द की व्युत्पत्ति।
निरुच्छ्वास—वि. [सं.] सँकरा, संकीर्ण (स्थान)।
निरुज—वि. [हिं. नीरुज] नीरोग।
निरुत्तर—वि. [सं.] (१) जिसका कुछ उत्तर न दिया जा सके, लाजवाब। (२) जो उत्तर न दे सके।
निरुत्साह—वि. [सं.] जिसमें उत्साह न हो।
निरुत्सुक—वि. [सं.] जो उत्सुक न हो।
निरुद्ध—वि. [सं.] रुका या बँधा हुआ। संज्ञा पुं [सं.] योग की पाँच मनोवृत्तियों क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध—में एक जिसमें चित्त अपनी प्रकृति में ही स्थिर हो जाता है।
निरुद्देश्य—वि. [सं.] उद्देश्यहीन। क्रि. वि.—बिना किसी उद्देश्य के।
निरुद्यम—वि. [सं.] जिसके पास काम न हो।
निरुद्यमी—वि. [हिं. निरुद्यम] जो काम न करता हो।
निरुद्योग—वि. [सं.] जिसके पास उद्योग न हो।
निरुद्योगी—वि. [हिं. निरुद्योग] जो उद्योग न करे।
निरुपम—वि. [सं.] अनुपम, बेजोड़।
निरुपयोगी—वि. [सं.] जो उपयोग में न आ सके।
निरुपाधि—वि. [सं.] (१) बाधारहित। (२) मायारहित। संज्ञा पुं—ब्रह्म, ईश्वर।

निरुपाय—वि. [सं.] (१) जिसका कोई उपाय न हो। (२) जो उपाय कर ही न सके।
निरुवरना—क्रि. अ. [सं. निवारण] बाधा दूर होना।
निरुवार—संज्ञा पुं. [सं. निवारण] (१) छुड़ाना या मुक्त करना। (२) बचाव, छुटकारा। (३) बाधा या झंझट दूर करना। (४) निबटाना। (५) निर्णय।
निरुवारत—क्रि. स. [हिं. निरुवारना] सुलझाकर अलग करना या हटाना। उ. दीरघ लता अपने कर निरुवारत—२०६८।
निरुवारना—क्रि. स. [हिं. निरुवार] (१) बंधन आदि से मुक्त करना। (२) फँसी या उलझी वस्तुओं का सुलझाना। (३) निबटाना, निर्णय करना।
निरुवारति—क्रि. स. [हिं. निरुवारना] सुलझाती है, (फँसी या उलझी लटों को) अलग करती है। उ.—जसुमति राधा कुंवर सँवारति। बड़े बार सीमंत सीस के, प्रेम सहित निरुवारति —७०४।
निरूढ़—वि. [सं.] (१) उत्पन्न। (२) प्रसिद्ध, विख्यात। (३) कुंआरा, अविवाहित।
निरूढ़ा—वि. [सं] अविवाहिता, कुँआरी।
निरूढ़ि—संज्ञा स्त्री. [सं.] ख्याति, प्रसिद्ध, कीर्ति।
निरूप—वि. [हिं. नि+रूप] (१) रूप। उ.—मोहन माँग्यो अपनो रूप। यहि ब्रज बसत अँचै तुम बैठी ता बिन उहाँ निरूप—३१८२। (२) कुरूप।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) वायु। (२) आकाश।
निरूपक—वि. [सं.] विषय की विवेचना करनेवाला।
निरूपण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) विवेचन।
निरूपना—क्रि. अ. [सं. निरूपण] निश्चित करना।
निरूपम—वि. [सं. निरुपम] अनुपम, बेजोड़।
निरूपि—क्रि. अ. [हिं. निरूपना] निर्णय करके, ठहराकर, विचार करके, निश्चित करके। उ.—गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अविगत हैं अविनासी—१०-८७।
निरूपित—वि. [सं.] जिसकी विवेचना हो चुकी हो।
निरूप्य—वि. [सं.] जो विवेचन के योग्य हो।
निरेखना—क्रि. स. [सं. निरीक्षण] देखना, निरखना।
निरै—संज्ञा पुं. [सं. निरय] नरक। उ.—औरौ सकल सुकृत श्रीपति हित, प्रति-फल-हित सुप्रीति। नाक निरै, सुख-दुख, सूर नहिं, जेहि की भजन प्रतीति—२-१२।
निरैठा—वि. [सं. निर्+ईहा या इष्ट] मस्त, मनमौजी।
निरोग, निरोगी—वि. [सं. नीरोग] रोगरहित।
निरोठा—वि. [देश०] कुरूप, बदसूरत।
निरोध—संज्ञा पुं [सं.] (१) रोक, रुकावट। (२) घेरा। (३) नाश। (४) चित्त-वृत्ति का निग्रह।
निरोधक—वि. [सं.] रोकनेवाला।
निरोधन—संज्ञा पुं. [सं.] रोक, बंधन, अवरोध।
निरोधी—वि. [सं. निरोधन] रुकावट डालनेवाला।
निर्ख—संज्ञा पुं. [फ़ा.] भाव, दर।
निर्खन—क्रि. स. [हिं. निरखना] देखना। उ.—लटकि निर्खन लग्यो, मटक सब भूलि गयो—२६०६।
निर्गंध—वि. [सं.] जिसमें गंध न हो।
निर्गत—वि. [सं.] निकला या बाहर आया हुआ।
निर्गम—संज्ञा पुं. [सं.] निकास।
निर्गमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निकलना। (२) द्वार।
निर्गमना—क्रि. अ. [सं. निर्गमन] बाहर निकलना।
निर्गर्व—वि. [सं.] जिसे गर्व न हो।
निर्गुण, निर्गुन—संज्ञा पुं. [सं. निर्गुण] सत्व, रज, तम—इन तीनों गुणों से परे, परमेश्वर।
वि.—(१) जो सत्व, रज और तम नामक गुणों से परे हो। (२) जिसमें कोई गुण ही न हो।
निर्गुणता, निर्गुनता—संज्ञा स्त्री. [सं. निर्गुणता] निर्गुण होने की क्रिया या भाव।
निर्गुणिया, निर्गुनिया—वि. [सं. निर्गुण+इया (प्रत्य.)] वह जो निर्गुण ब्रह्म का उपासक हो।
निर्गुणी, निर्गुनी—वि. [सं. निर्गुण] गुणरहित।
निर्गूढ़—वि. [सं.] जो बहुत ही गूढ़ हो, अगम।
निर्ग्रंथ—वि. [सं.] (१) निर्धन। (२) असहाय।
निर्घंट—संज्ञा पुं. [सं.] शब्द या ग्रंथ-सूची।
निर्घात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विनाश। (२) आघात।
निर्घिन—वि. [सं. निर्घृण] जिसे गंदी वस्तुओं और बुरे कामों से घृणा न हो। उ.—निर्घिन, नीच, कुलज, दुर्बुद्धी, भौंदू, नित कौ रोऊ—१-१२६।
निर्घृण—वि. [सं.] (१) जिसे घृणा न हो। (२) जिसे लज्जा न हो। (३) अयोग्य। (४) निर्दय।

निर्घोष—संज्ञा पुं. [सं.] शब्द, आवाज।
वि.—जिसमें शब्द या आवाज न हो।
निश्छल—वि. [सं. निश्छल] छल-कपट-रहित।
निर्जन—वि. [सं.] जहां कोई न हो, सूनसान।
निर्जर—वि. [सं.] जो कभी बुड्ढा न हो।
संज्ञा पुं.—(१) देवता। (२) अमृत।
निर्जल—वि. [सं.] (१) जिसमें जल न हो। (२) (व्रत आदि) जिसमें जल भी न ग्रहण किया जाय।
निर्जित—वि. [सं.] पूरी तरह जीता हुआ।
निर्जीव—वि. [सं.] (१) प्राणहीन। (२) उत्साहहीन।
निर्ज्वाला—वि. [हिं. नि + ज्वाला] ज्वालारहित। उ.—मानहु काम अग्नि निर्ज्वाला भई—२३०८।
निर्झर—संज्ञा पुं. [सं.] झरना, सोता।
निर्झरिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नदी। (२) झरना।
निर्णय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उचित-अनुचित का निश्चय। (२) फैसला, निबटारा। (३) सिद्धांत से परिणाम निकालना।
निर्णायक—संज्ञा पुं. [सं.] निर्णय करनेवाला।
निर्णीत—वि. [सं.] जिसका निर्णय हो चुका हो।
निर्त—संज्ञा पुं. [सं. नृत्य] नाच, नृत्य।
निर्तक—संज्ञा पुं. [सं. नर्त्तक] नाचनेवाला, नट।
निर्तत—क्रि. अ. [हिं. निर्तना] नाचता है, नृत्य करता है। उ.—चलित कुंडल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन—१-३०७।
निर्तना—क्रि. अ. [सं. नृत्य] नाचना, नृत्य करना।
निर्दंभ—वि. [सं.] जिसे दंभ या गर्व न हो।
निर्दई, निर्दय, निर्दयी—वि. [सं. निर्दय] निष्ठुर।
निर्दयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निष्ठुरता, कठोरता।
निर्दयपन—संज्ञा पुं. [हिं. निर्दय+पन] कठोरता।
निर्दहना—क्रि. स. [सं. दहन] जला देना।
निर्दिष्ट—वि. [सं.] (१) जो बताया जा चुका हो। (२) जो नियत या ठहराया जा चुका हो।
निर्देश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आज्ञा। (२) कथन। (३) वर्णन। (४) निश्चित करना।
निर्देशक—संज्ञा पुं. [सं.] निर्देश करनेवाला।
निर्देशन—संज्ञा पुं. [सं.] निर्देश करने का भाव।
निर्दोष, निर्दोषी—वि. [सं. निर्दोष] (१) जिसमें कोई दोष न हो। (२) जो अपराधी न हो।
निर्दोषता—संज्ञा स्त्री. [सं. निर्दोष+ता (प्रत्य.)] दोष या दोषी न होने का भाव।
निर्द्वंद, निर्द्वंद्व—वि. [सं.] (१) जिसकी रोक-टोक करनेवाला न हो। (२) राग-द्वेष आदि से परे।
निर्धंधा—वि. [सं.] बेरोजगार।
निर्धन—वि. [सं.] धनहीन, कंगाल, दरिद्र।
निर्धनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] धनहीनता, दरिद्रता।
निर्धर्म—वि. [सं.] जो धर्म से रहित हो।
निर्धार, निर्धारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निश्चित या स्थिर करना। (२) निश्चय, निर्णय। (३) गुण कर्म आदि के विचार से छांटना या अलग करना।
निर्धारक—संज्ञा पुं. [सं.] निश्चय करनेवाला।
निर्धारना—क्रि. स. [सं. निर्धारण] निश्चित करना।
निर्धारित—वि. [सं.] स्थिर या निश्चित किया हुआ।
निर्धूत—वि. [सं.] (१) धोया हुआ। (२) खंडित। (३) त्यक्त।
निर्धूम—वि. [हिं. निः+धूम] आग जिसमें धुआँ न हो। उ.—(क) नई दोहनी पोंछि पखारी धरि निर्धूम खीरनि पर तायो—११७६। (ख) मनहुँ धुई निर्धूम अग्नि पर तप बैठे त्रिपुरारी—१६८६।
निर्निमेष—क्रि. वि. [सं.] बिना पलक झपकाये।
वि.—जो पलक न गिराये, जिसमें पलक न गिरे।
निर्पक्ष—वि. [सं. निष्पक्ष] पक्षपात-रहित।
निर्फल—वि. [सं. निष्फल] व्यर्थ, फलरहित।
निर्बंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रुकावट (२) हठ, आग्रह।
निर्बल—वि. [सं.] बलहीन, कमजोर।
निर्बलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमजोरी, शक्तिहीनता।
निर्बहना—क्रि. अ. [सं. निर्बहन] (१) पार या दूर होना। (२) क्रम निभना या उसका पालन होना।
निर्बाण, निर्बान—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाण] मुक्ति, मोक्ष। उ.—सोइ तुम उपदेशहू जा लहैं पद निर्बान—२९२४।
निर्बाध, निर्बाधित—वि. [सं.] बाधारहित।
निर्बाह—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] निश्चय के अनुसार किसी बात का पालन। उ.—भक्ति-भाव की जो तोहिं

चाह । तोसौं नहिं ह्वैहै निर्बाह—४-८ ।

निर्विष—वि. [सं. निर्विष] **विषरहित** । उ.—अति बल करि करि काली हार्यौ । लपटि गयौ सब अंग-अंग प्रति, निर्विष कियौ सकल बल झार्यौ —५७४ ।

निर्बीर—वि. [सं. निर्वीर्य] **वीर्यहीन, निस्तेज** । उ.—जे जे जात, परत ते भूतल, ज्यौं ज्वाला-गत चीर । कौन सहाइ, जानियत नाहीं, होत बीर निर्बीर— १-२६६ ।

निर्बुद्धि—वि. [सं.] **बुद्धिहीन, मूर्ख** ।

निर्बेद—संज्ञा पुं [सं. निर्वेद] **विरक्ति या वैराग्य नामक एक संचारी भाव** । उ.—सूरज प्रभु ते कियो चाहियत हैं निर्बेद बिसेषी—उा. ४६ ।

निर्बोध—वि. [सं.] **अनजान, अज्ञान** ।

निर्भय—वि. [सं.] **जिसे कोई डर न हो, निडर** ।

निर्भयता—संज्ञा स्त्री. [सं] **निडरता** ।

निर्भर—वि. [सं.] (१) **भरा-पुरा, पूर्ण** । (२) **मिला हुआ** । (३) **अवलंबित, आश्रित** ।

निर्भीक—वि. [सं.] **निडर** ।

निर्भीकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **निडरता, निर्भरता** ।

निर्भीत—वि. [सं.] **निडर, निर्भय** ।

निभ्रम—वि. [सं.] **भ्रम या शंकारहित** ।

क्रि. वि.—**बेखटके, निसंकोच** । उ.—स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निर्भ्रम करत बिहार ।

निर्भ्रांत—वि. [सं.] **भ्रम या संदेहरहित** ।

निर्मना—क्रि. स. [सं. निर्माण] **रचना, बनाना** ।

निर्मम—वि. [सं.] **जिसे दया-ममता न हो** ।

निर्मल—वि. [सं.] (१) **स्वच्छ** । (२) **शुद्ध, पवित्र** । (३) **निर्दोष, दोषरहित** । उ.—भक्तनि-हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि—१-३१० ।

निर्मलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **सफाई** । (२) **शुद्धता, पवित्रता** । (३) **निष्कलंकता** ।

निर्माण—संज्ञा पुं. [सं.] **रचना, बनावट** ।

निर्माता—संज्ञा पुं. [सं.] **रचने या बनानेवाला** ।

निर्मान—संज्ञा पुं. [सं. निर्माण] **रचने या बनाने की क्रिया** । उ.—संकर प्रगट भए भृकुटी ते करी सृष्टि निर्मान—सारा. ६५ ।

निर्माना—क्रि. स. [सं. निर्माण] **रचना, बनाना** ।

निर्मायक—संज्ञा पुं. [सं.] **निर्माण करनेवाला** ।

निर्माल्ल, निर्माल्य—संज्ञा पुं. [सं. निर्माल्य] **देवता पर चढ़ायी गयी वस्तु देवार्पित वस्तु; अर्पण के पूर्व 'नैवेद्य' और पश्चात् 'निर्माल्य' कही जाती है । शिव के अतिरिक्त सभी देवताओं का 'निर्माल्य' प्रसाद-रूप में ग्रहण किया जाता है** ।

निर्मायौ—क्रि. स. [हिं. निर्माना] **रचा, बनाया, उत्पन्न किया** । उ.—ब्रह्म रिषि मरीचि निर्मायौ । रिषि मरीचि कस्यप उपजायौ—३-६ ।

निर्मित—वि. [सं.] **बनाया या रचा हुआ** ।

निर्मुक्त—वि. [सं.] **जो मुक्त हो, स्वच्छंद** ।

निर्मुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **छुटकारा** । (२) **मोक्ष** ।

निर्मूल—वि. [सं.] (१) **जिसमें जड़ न हो** । (२) **जिसकी जड़ तक न रह गयी हो** ।(३) **जिसका आधार न हो** । (४) **जो सर्वथा नष्ट हो गया हो** ।

निर्मूलन—संज्ञा पुं. [सं.] **निर्मूल होना या करना** ।

निर्मूल्यो— वि. [सं.] **निर्मूल, नष्ट** । उ.—मरै वह कंस निर्बंस बिधना करै, सूर क्योंहूँ, होइ निर्मूल्यो——२६२५ ।

निर्मोल, निर्मोलि—वि. [हिं. निः+मोल] **बहुत अधिक मूल्य का** । उ.—नैना लोभहिं लोभ भरे····· । जोइ देखैं सोइ सोइ निर्मोलैं कर लै तहीं धरैं ।

निर्मोह, निर्मोहिया, निर्मोही—वि. [सं. निर्मोह] **जिसके मन में मोह-ममता न हो** । उ.— हरि निर्मोहिया सों प्रीति कीनी काहे न दुख होइ—२४०६ ।

निर्मोहिनी—वि. स्त्री. [हिं. निर्मोही + इनी (प्रत्य.)] **जिस (स्त्री) में मोह-ममता न हो, निर्दय** ।

निर्यात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वह जो कहीं से बाहर जाय** । (२) **देश से माल के बाहर जाने की क्रिया** ।

निर्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वृक्षों से बहनेवाला रस** । (२) **बहना, झरना, क्षरण** ।

निर्युक्तिक—वि. [सं.] **युक्तिरहित** ।

निर्लज्ज—वि. [सं.] **जिसको लाज-शर्म न हो** ।

निर्लज्जता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **बेशर्मी, बेहयाई** ।

निर्लिप्त—वि. [सं.] (१) **राग-द्वेष से मुक्त** । (२) **जो किसी से संबंध न रखता हो** ।

निर्लेप—वि. [सं.] **संबंध न रखनेवाला, निर्लिप्त ।**

निर्लोभि, निर्लोभी—वि [सं.] **लोभ-लालच नकरनेवाला ।**

निर्वंश, निर्बंस—वि. [सं. निर्वंश] **जिसके वंश में कोई न हो ।** उ.—(क) करत है गंग निर्वंश जाहीं—२५५६ । (ख) इनको कपट करै मथुरापति तौ ह्वै है निर्बंस—२५६७ ।

निर्वचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **निश्चित रूप से बात कहना ।** (२) **शब्द की रचना या व्युत्पत्ति-विवेचन ।**

निर्वसन—वि. [सं.] **नंगा, वस्त्रहीन ।**

निर्वहण, निर्वहन—संज्ञा पुं. [सं. निर्वाह] **निर्वाह ।**

निर्वहन—क्रि. अ. [सं. निर्वहन] **निभना, पालन होना ।**

निर्वाक् वि. [सं.] **जो मौन या चुप हो ।**

निर्वाक्य—वि. [सं.] **जो बोल न सके, गूँगा ।**

निर्वाण, निर्वान—वि. [सं. निर्वाण] (१) **बुझा हुआ ।** (२) **अस्त, डूबा हुआ ।** (३) **धीमा पड़ा हुआ ।** (४) **मरा हुआ ।**

संज्ञा पुं. [सं. निर्वाण] (१) **बुझना ।** (२) **समाप्ति ।** (३) **अस्त, डूबना ।** (४) **शांति,** (५) **मुक्ति, मोक्ष ।** उ.—(क) यह सुनि कै तिहिं उपज्यौ ज्ञान । पायौ पुनि तिहिं पद-निर्वान—४-१२ । (ख) सूर प्रभु परस लहि लह्यौ निर्वान तेहि सुरन आकास जै जैत यह धुनि सुनाई—२६०८ ।

निर्वासक संज्ञा पुं. [सं.] **देशनिकाला देनेवाला ।**

निर्वासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वध ।** (२) **देशनिकाला ।**

निर्वाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **क्रम या परंपरा का पालन ।** (२) **(वचन आदि का) निर्वाह ।** (३) **समाप्ति ।**

निर्वाहक—वि. [सं.] **निर्वाह करने या निभानेवाला ।**

निर्वाहना—क्रि. अ. [सं. निर्वाह] **निभाना ।**

निर्विकल्प—वि. [सं.] **स्थिर, निश्चित ।**

निर्विकार—वि. [सं.] **जिसमें दोष या परिवर्तन न हो ।**

निर्विघ्न—वि. [सं.] **जिसमें विघ्न न हो ।**

क्रि. वि.—**बिना किसी विघ्न या बाधा के ।**

निर्विचार—वि. [सं.] **विचाररहित ।**

निर्विवाद—वि. [सं.] **बिना विवाद या झगड़े का ।**

निर्विष—वि. [सं.] **जिसमें विष न हो ।**

निर्वीर्य—वि. [सं.] **जिसमें बल और तेज न हो ।**

निर्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अपमान ।** (२) **वैराग्य ।** (३) **दुख, विषाद ।**

निर्वेदी—संज्ञा पुं. [सं. निः+वेद] **वह (ब्रह्म) जो वेदों से भी परे है ।**

निर्व्यलीक—वि. [सं.] **छल-कपट-रहित ।**

निर्व्याज—वि. [सं.] (१) **निष्कपट ।** (२) **बाधारहित ।**

निर्व्याधि—वि. [सं.] **रोग या व्याधि से मुक्त ।**

निर्हरण—संज्ञा पुं. [सं.] **शव जलाना ।**

निर्हेतु—वि. [सं.] **जिसमें हेतु या कारण न हो ।**

निलज—वि. [सं. निर्लज्ज] **लज्जाहीन, बेशर्म ।** उ.—हौं तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज,खिसिआनौ—१-१६६ ।

निलजइ, निलजई—संज्ञा स्त्री. [सं. निर्लज्ज+ई(प्रत्य.)] **निर्लज्जता, बेशर्मी, बेहयाई ।**

निलजता, निलजताई—संज्ञा स्त्री. [सं. निर्लज्जता] **बेशर्मी, बेहयाई, निर्लज्जता ।**

निलजी—वि. स्त्री [हिं. निर्लज्ज] **लाजहीन (स्त्री) ।**

निलज्ज—वि. [सं. निर्लज्ज] **लज्जाहीन, बेशर्म ।** उ.—इनकैं गृह रहि तुम सुख मानत । अति निलज्ज, कछु लाज न आनत—१-२८४ ।

निलय, निलै—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घर ।** उ.—नील निलै मिलि घंटा बिबिधि दामिन मनो षोडस सिंगार सोभित हरि हीन - सा. उ. ३८ । (२) **स्थान ।**

निवछरा, निवछरो, निवछरौ—वि.[सं. निवृत्त](**ऐसासमय) जब बहुत काम-काज न हो, फुर्सत का या खाली (समय)** । उ.—अबहिं निवछरौ समय, सुचित ह्वै, हम तौ निधरक कीजै—१-१९१ ।

निवरा—वि. स्त्री. [सं.] **जिसके वर न हो, कुमारी ।**

निवसथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **गाँव ।** (२) **सीमा ।**

निवसन—संज्ञा पुं. [सं. निस्+वसन](१) **घर ।**(२)**वस्त्र ।**

निवसना—क्रि. अ. [हिं. निवास] **रहना, निवास करना ।**

निवह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **समूह ।** (२) **एक वायु-रूप ।**

निवाई—वि. [सं. नव] (१) **नया, नवीन ।** (२) **अनोखा, अद्भुत ।** उ.—पुनि लक्ष्मी यों विनय सुनाई । डरौं रूप यह देखि निवाई ।

निवाज—वि. [फ़ा. निवाज़] **अनुग्रह करनेवाला, कृपालु ।**

उ.— खंभ फारि हरनाकुस मारयौ, जन प्रहलाद निवाज —१-२५५।

निवाजना—क्रि. स. [हिं. निवाज] **कृपा करना।**

निवाजिश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **कृपा, दया।**

निवाजैं—वि. [हिं. निवाजना] **अनुग्रह करें, कृपा करके अपना लें।** उ.—जाकौं दीनानाथ निवाजैं। भव-सागर मैं कबहूं न झूकै, अभय निसाने बाजैं—१-३६।

निवाज्यो, निवाज्यौ—क्रि. स. [हिं. निवाजना] **कृपा करके अपना लिया।** उ.—सकटा तृना इनहीं संहारयौ काली इनहिं निवाज्यो—२५८१।

निवाड़—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. नवार] **मोटे सूत की बिनी पट्टी।**

निवान—संज्ञा पुं. [सं. निम्न] **झुकाना, नीचे करना।**

निवार—संज्ञा पुं. [सं. नीवार] **तिन्नी का धान, पसही।**

निवारक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **रोकनेवाला।** (२) **मिटाने या नष्ट करनेवाला।**

निवारति—क्रि. स. [हिं. निवारना] **दूर करती है, मिटाती है।** उ.—झझकि उठयौ सोवत हरि अबहीं, (जसुमति) कछु पढ़ि पढ़ि तन-दोष निवारति—१०-२००।

निवारण, निवारन—संज्ञा पुं. [सं. निवारण] (१) **रोकने की क्रिया।** (२) **मिटाने, हटाने या दूर करने की क्रिया।** (३) **छुटकारा, निवृत्ति।** (४) **निवृत्ति या छुटकारा दिलानेवाला।** उ.—तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक सुखकारी—१-३०। (५) **हटाने, दूर करने या मिटाने के उद्देश्य से।** उ.—अजिर चली पछितातिं छींक कौ दोष निवारन—५८६।

निवारना—क्रि. स. [सं. निवारण] (१) **रोकना, हटाना।** (२) **बचाना।** (३) **निषेध या मना करना।**

निवारहु—क्रि. स. [हिं. निवारना] **रोको, दूर करो, हटाओ, छोड़ो।** उ.—लेहु मातु, सहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ। सावधान ह्वै सोक निवारहु, ओड़हु दच्छिन हाथ—६-८३।

निवारि—क्रि. स. [हिं. निवारना] **छोड़कर, रोककर, त्यागकर।** उ.—अपनी रिस निवारि प्रभु, पितु मम अपराधी, सो परम गति पाई—७-४।

निवारी—क्रि. स. [हिं. निवारना] (१) **हटायी, दूर की, नष्ट की।** उ.—(क) लाखा-गृह तैं, सत्रु-सैन तैं, पांडव-बिपति निवारी—१-१७। (ख) सरनागत की ताप निवारी—१-२८। (२) **त्याग दी, छोड़ दी।** उ.—रावन हरन सिया कौ कीन्हो, सुनि नँदनंदन नींद निवारी—१०-१६८।

प्र.—सकै निवारी—**हटा सकता है, रोक सकता है।** उ.—कबहूँ जुवाँ देहिं दुख भारी। तिनकौं सो नहिं सकै निवारी—३-१३।

संज्ञा स्त्री. [सं. नेपाली] **जूही की जाति का एक पौधा या उसका फूल जो सफेद होता है।**

निवारे—क्रि. स. [हिं. निवारना] (१) **दूर किये, नष्ट किये, हटाये।** उ.—सूरदास प्रभु अपने जन के नाना त्रास निवारे—१-१०। (२) **रोक दिये, काट दिये।** उ.—रुक्मिनी भय कियो स्याम धीरज दियो, बान से बान तिनके निवारे—१० उ०-२१।

निवारैं—क्रि. स. [हिं. निवारना] **रोकें, मना करें।** उ.—पुनि जब षष्ट बरष कौ होइ। इत-उत खेल्यौ चाहै सोइ। माता-पिता निवारैं जबहीं। मन मैं दुख पावै सो तबहीं—३-१३।

निवारै—क्रि. स. [हिं. निवारना] **छोड़ती या त्यागती है।** उ.—जब तैं गंग परी हरि-पग ते बहिबो नहीं निवारै—३१८६।

निवारौं—क्रि. स. [हिं. निवारना] **दूर करूँ, हटाऊँ, नाश करूँ।** उ.—करौं तपस्या, पाप निवारौं—१-२६१।

निवारौ—क्रि. स. [हिं. निवारना] (१) **दूर करो।** उ.—प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न बिचारौ। कीजै लाज सरन आए की, रवि-सुत त्रास निवारौ—१-१११। (२) **मिटाया, हटाया, दूर किया।** उ.—(क) कियौ न कबहूँ बिलंब कृपानिधि, सादर सोच निवारौ—१-१५७। (ख) अंबरीष कौ साप निवारौ—१-१७२।

निवार्यौ—क्रि. स. [हिं. निवारना] **मिटाया, हटाया, दूर किया।** उ.—भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुरबासा कौ क्रोध निवार्यौ—१-१४। (२) **दूर किया, हटाया।** उ.—सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवार्यौ—१-३३६। (३) **बचाया, रक्षा की।** उ.—मेघ बारि तैं हमैं निवारयौ—३४०६।

निवाला—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **कौर, ग्रास।**

निवास—संज्ञा पुं. [सं.] **रहने की क्रिया या भाव।** (२) **वास-स्थान, गृह, घर।** उ.—सूरदास के प्रभु बहुरि, गए बैकुंठ-निवास—३-११। (३)**वस्त्र, कपड़ा।**

निवासित—वि. [सं. निवास] **बसा या बसाया हुआ।**

निवासी—संज्ञा पुं. [सं. निवासिन] **रहने-बसनेवाला।**

निवास्य—वि. [सं.] **रहने-बसने योग्य।**

निबिड़—वि. [सं.] (१) **घना।** (२) **गहरा।**

निविष्ट—वि. [सं.] (१) **एकाग्र।** (२) **एकाग्र चित्त-वाला।** (३) **घुसा हुआ।** (४) **स्थित।**

निवृत्त—वि. [सं.] **छूटा हुआ या अलग।** (२) **विरक्त।** (३) **जो छुट्टी पा चुका हो।**

निवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **मुक्ति, छुटकारा।** (२) **विरक्ति, 'प्रवृत्ति' का विपरीतार्थक।**

निवेद—संज्ञा पुं. [सं. नैवेद्य] **देवता का भोग।**

निवेदक—संज्ञा पुं. [सं.] **निवेदन करनेवाला, प्रार्थी।**

निवेदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रार्थना।** (२) **समर्पण।**

निवेदना—क्रि. स. [हिं. निवेदन] (१) **बिनती या प्रार्थना करना।** (२) **समर्पण करना, नैवेद्य चढ़ाना।**

निवेदित—वि. [सं.] (१) **निवेदन किया हुआ।** (२) **चढ़ाया या अर्पित किया हुआ।**

निवेरत—क्रि. स. [हिं. निवेरना] **वसूल करना, लेना, संग्रह करना।** उ.—सूर मूर अक्रूर गयौ लै ब्याज निवेरत ऊधौ—३२७८।

निवेरना—क्रि. स. [हिं. निवेड़ना] (१) **लेना, वसूलना।** (२) **निबटाना।** (३) **खत्म करना।** (४) **चुनना, छाँटना।** (५) **हटाना, दूर करना।**

निवेरा—वि. [हिं. निवेड़ना] (१) **चुना या छाँटा हुआ।** (२) **नया, अनोखा।**

निवेरि—क्रि. स. [हिं. निवेड़ना] **खत्म करके।**

प्र.—आए निवेरि— **खत्म कर आये।** उ.— सूरदास सब नातो ब्रज को आए नंद निवेरि—२८७५।

निवेरी—वि. [हिं. निवेरा] (१) **चुनी-छँटी हुई।** उ.—आजु भई कैसी गति तेरी ब्रज में चतुर निवेरी। (२) **नयी, अनोखी।** उ.—मैं कह आजु निवेरी आई? बहुतै आदर करति सबै मिलि पहुने की कीजै पहुनाई।

निवेश— संज्ञा पुं. [सं.] (१) **विवाह।** (२) **घर, गृह।**

निशंक—वि. [सं. निःशंक] **निडर, निर्भय।** उ.—परम निशंक समर सरिता तट क्रीड़त यादववीर—१०३.-१०२।

निश, निशा—संज्ञा स्त्री. [सं. निशा] (१) **रात्रि, रात।** (२) **मेष, वृष, मिथुन आदि छह राशियाँ।**

निशांत—संज्ञा पुं. [सं. निशा + अंत] **प्रभात।**

निशाकर—संज्ञा पुं. [सं.] **चंद्रमा।**

निशाचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **राक्षस।** (२) **उल्लू।** (३) **चोर।**

वि.—**जो रात में चले या विचरण करे।**

निशाचरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **राक्षसी।** (२) **कुलटा।**

निशाचारी—संज्ञा पुं. [सं. निशाचारिन] (१) **शिव, महादेव।** (२) **राक्षस।** (३ **उल्लू।** (४) **चोर।**

निशान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **चिह्न।** (२) **किसी पदार्थ से अंकित चिह्न।** (३) **प्राकृतिक चिह्न या दाग।** (४) **विगत घटना या वस्तु सूचक चिह्न।**

यौ.—नाम-निशान— (१) **शेष चिह्न।** (२) **शेषांश।**

(५) **पता-ठिकाना।** (६) **लक्ष्य, निशाना।** उ.—तीर चलावत शिष्य सिखावत धर निशान देखरावत—सारा. १६०। (७) **ध्वजा, पताका, झंडा।**

निशापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चंद्र।** (२) **कपूर।**

निशाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **लक्ष्य।** (२) **वह जिसे लक्ष्य करके कोई व्यंग्य या आक्षेप किया जाय।**

निशानाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चंद्र।** (२) **कपूर।**

निशानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **चिह्न, निशान।** उ.—आपुहिं हार तोरि चोली बँद उर नख घात बनाइ निशानी—१०५७। (२) **स्मृति-चिह्न, यादगार।** (३) **निशान, पहचान।**

निशापति—संज्ञा पुं. [सं.] **चंद्रमा।**

निशामुख—संज्ञा पुं. [सं.] **संध्या का समय।**

निशावसान—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रभात, तड़का।**

निशास्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **भीगे गेहूँ का सत।**

निशि – संज्ञा स्त्री. [सं.] **रात, रात्रि।** उ.—निशि दिन रहत सूर के प्रभु बिनु मरिबो तऊ न जात जियो—२५४५।

निशिकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।
निशिचर, निशिचारी—संज्ञा पुं. [सं. निशाचर] (१) राक्षस । (२) उल्लू । (३) चोर ।
निशित—वि. [सं.] सान पर चढ़ाया हुआ, तेज ।
निशिदिन—क्रि. वि. [सं.] (१) रातदिन । (२) सदा ।
निशिनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।
निशिपाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्र । (२) एक छंद ।
निशिवासर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रातदिन । (२) सदा ।
निशीथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रात । (२) आधी रात ।
निशीथिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात, रात्रि ।
निशुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वध, हिंसा । (२) एक असुर जो कश्यप की स्त्री दनु के गर्भ से जन्मा था । इसने इंद्र तक को जीत लिया था; पर दुर्गा के हाथ से मारा गया था ।
निशुंभन—संज्ञा पुं. [सं.] वध, मारना ।
निशुंभमर्दिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा ।
निश्चय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संदेहरहित धारणा । (२) विश्वास । (३) निर्णय । (४) दृढ़ विचार ।
निश्चयात्मक—वि. [सं.] जो बिलकुल निश्चित हो ।
निश्चल—वि. [सं.] (१) अचल । (२) स्थिर ।
निश्चलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्थिरता, दृढ़ता ।
निश्चिंत—वि. [सं.] चितारहित, बेफिक्र ।
निश्चिंतई, निश्चिंतता—संज्ञा स्त्री. [सं. निश्चिंतता] निश्चिंत होने का भाव, बेफिक्री ।
निश्चित—वि. [सं.] (१) तै किया हुआ । (२) दृढ़ ।
निश्चेष्ट—वि. [सं.] (१) अचेत । (२) अचल ।
निश्चै—संज्ञा पुं. [सं. निश्चय] (१) निश्चित धारणा । (२) विश्वास, यकीन । (३) निर्णय ।
निश्छल—वि. [सं.] छल-कपट-रहित ।
निश्रेयस—संज्ञा पुं. [सं. निःश्रेयस] (१) मोक्ष । (२) कष्ट अथवा दुख का पूर्ण अभाव । (३) व्यापार ।
निश्वास—संज्ञा पुं. [सं.] नाक या मुँह से बाहर निकलने वाली श्वास या इसके बाहर निकलने का व्यापार ।
निश्शंक—वि. [सं.] (१) निडर । (२) शंकारहित ।
निश्शक्त—वि. [सं.] शक्तिहीन, निर्बल ।
निश्शेष—वि. [सं.] जिसमें कुछ बाकी न हो ।
निषंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तरकश, तूणीर । (२) खड्ग ।(३) एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता था ।
निषंगी—वि. [सं. निषंगिनि] तीर या खड्गधारी ।
निषद्—संज्ञा पुं. [सं.] निषाद स्वर (संगीत) ।
निषध—संज्ञा पुं. [सं.] संगीत का सातवाँ स्वर ।
निषाद्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन अनार्य जाति । (२) संगीत का सातवाँ स्वर जिसका संक्षिप्त रूप 'नि' है ।
निषादी—संज्ञा पुं. [सं. निषादिन्] हाथीवान, महावत ।
निषिद्ध—वि. [सं.] (१) जिसके लिए निषेध या मना किया जाय । (२) बुरा, दूषित ।
निषेक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छिड़कना । (२) डुबाना । (३) अरक उतारना । (४) गर्भ धारण कराना ।
निषेध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मनाही । (२) बाधा ।
निषेधक—संज्ञा पुं. [सं.] मना करनेवाला ।
निषेधात्मक—वि. [सं.] नकारात्मक ।
निष्कंटक—वि. [सं.] जिसमें बाधा-झंझट न हो ।
निष्कंप—वि. [सं.] जिसमें कंप न हो, स्थिर ।
निष्कपट—वि. [सं.] छल-कपट-रहित, सीधा ।
निष्कपटता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निश्छलता, सरलता ।
निष्कर्म, निष्कर्मा—वि. [सं. निष्कर्मन्] (१) जो काम में लीन न हो । (२) निकम्मा ।
निष्कर्मण्य—वि. [सं.] अयोग्य, निकम्मा ।
निष्कर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] तत्व, सार, सारांश ।
निष्कलंक, निष्कलंकित निष्कलंकी—वि. [सं. निष्कलंक] कलंक या दोषरहित ।
निष्कल—वि. [सं.] (१) कलाहीन । (२) अंगहीन । (३) वीर्यहीन, वृद्ध (४) सारा, समूचा ।
निष्काम—वि. [सं.] (१) कामनारहित, आसक्तिरहित, निस्वार्थ । उ.—यम, नियमासन, प्रानायाम । करि अभ्यास होइ निष्काम—२-२१ । (२) (काम) जो निस्वार्थ भाव से किया जाय ।
निष्कामता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निष्काम होने का भाव ।
निष्कामी—वि. [सं. निष्कामिन्] व्यक्ति जो कामना या आसक्तिरहित हो । उ.–निष्कामी बैकुंठ सिधावै । जनम-मरन तिहिं बहुरि न आवै—३-१३ ।

निष्काशन, निष्कासन—संज्ञा पुं. [सं.] बहिष्कार।
निष्काशित, निष्कासित—वि. [सं.](१) बाहर निकाला हुआ, बहिष्कृत। (२) जिसकी निंदा हो, निंदित।
निष्क्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाहर निकालना। (२) हिंदू-बच्चे का वह संस्कार जिसमें चार महीने का होने पर उसे घर से बाहर लाकर सूर्य दर्शन कराया जाता है।
निष्क्रय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेतन। (२) बिक्री।
निष्क्रिय—वि. [सं.] क्रिया या चेष्टा रहित।
निष्क्रियता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निष्क्रिय होने का भाव।
निष्ठ—वि. [सं.] (१) स्थित। (२) तत्पर, संलग्न।
निष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्थिति, ठहराव। (२) चित्त जमना। (३) विश्वास। (४) श्रद्धा-भाव, पूज्य बुद्धि। (५) ज्ञान की अंतिम अवस्था जब ब्रह्म और आत्मा की एकता हो जाती है।
निष्ठावान—वि. [सं. निष्ठा] जिसमें श्रद्धा-भाव हो।
निष्ठुर—वि. [सं.] (१) कड़ा। (२) कठोर, निर्दयी।
निष्ठुरता—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) कड़ापन। (२) निर्दयता।
निष्ण, निष्णात्—वि. [सं.] कुशल, दक्ष, चतुर।
निष्पंद—वि. [सं.] जिसमें कंप या धड़कन न हो।
निष्पक्ष—वि. [सं.] जो किसी के पक्ष में न हो।
निष्पक्षता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निष्पक्ष होने का भाव।
निष्पत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अंत, समाप्ति। (२) हठ योग में नाद की अंतिम अवस्था। (३) निश्चय।
निष्पन्न—वि. [सं.] जो पूरा या समाप्त हो चुका हो।
निष्प्रभ—वि. [सं.] तेज या प्रभा से रहित।
निष्प्रयोजन—वि. [सं.] (१) उद्देश्य या स्वार्थरहित। (२) व्यर्थ, निरर्थक। (२) जिससे कुछ लाभ न हो।
निष्प्राण—वि. [सं.] (१) निर्जीव। (२) हताश।
निष्प्रेही—वि. [सं. निस्पृह] इच्छा न रखनेवाला।
निष्फल—वि. [सं.] व्यर्थ, निरर्थक।
निसंक- वि. [सं. निःशंक, हिं. निशंक] निर्भय, निडर। उ.—(क) अति निसंक, निरलज्ज, अभागिनि घर-घर फिरति बही—१-१७३। (ख) निपट निसंक बिवादति सम्मुख, सुनि सुनि नंद रिसात—१०-३२६।
निसंस—वि. [सं. नृशंस] क्रूर, निर्दय।
निसंसना—क्रि. अ. [सं. निःश्वास] हाँफना।
निस—संज्ञा स्त्री. [सं. निशि] रात।
निसक—वि. [सं. निःशक्त] निर्बल, शक्तिहीन।
निसकर—संज्ञा पुं. [सं. निशाकर] चंद्रमा।
निसचय—संज्ञा पुं. [सं.निश्चय] दृढ़ विचार या धारणा।
निसत—वि. [सं. निसत्य] असत्य, मिथ्या।
निसतरना—क्रि. अ. [सं. निस्तार] छुट्टी या मुक्ति पाना।
निसतार—संज्ञा पुं. [सं. निस्तार] मुक्ति, छुटकारा।
निसद्योस—क्रि. वि. [सं. निशि + दिवस] सदा, नित्य।
निसरौगो—क्रि. अ. [हिं. निसरना] निकलोगी, बाहर आओगी। उ.—गहि गहि बाँह सबनि करि ठाढ़ी कैसेहूँ घर ते निसरौगी—१८८६।
निसनेह, निसनेहा—वि. [हिं. नि + स्नेह] निर्मोही।
निसबत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) संबंध। (२) तुलना।
निसमानी—वि. [हिं. निस = नहीं + मन] जिसके होश-हवास ठिकाने न हों, विकल।
निसरना—क्रि. अ. [सं. निःस्रवण] बाहर निकलना।
निसर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वभाव। (२) आकृति, रूप। (३) प्रकृति। (४) सृष्टि।
निसवादिल—वि. [सं. निःस्वाद] जिसमें स्वाद न हो।
निसवासर—क्रि. वि. [सं. निशि + वासर] सदा, नित्य।
निसस—वि. [सं. निःश्वास] अचेत, बेहोश।
निसहाय—वि. [सं. निस्सहाय] असहाय।
निसाँक—वि. [सं. निःशंक] बेखटके, बेफिक्र।
निसाँस, निसाँसा—संज्ञा पुं. [सं. निःश्वास] ठंढी या लंबी साँस।
वि.—बेदम, मृतकप्राय, मरण-तुल्य।
निसा—संज्ञा स्त्री. [सं. निशा] रात, रात्रि।
निसाकर—संज्ञा पुं. [सं. निशाकर] चंद्रमा।
निसाचर—संज्ञा पुं. [सं. निशाचर] निशाचर।
निसाचरि - संज्ञा स्त्री.[सं.निशाचरी] राक्षसी, निशाचरी। उ.—रखवारी कौं बहुत निसाचरि, दीन्हीं तुरत पठाइ—६-६१।
निसाथा—वि. [हिं. नि + साथ] अकेला।
निसान—संज्ञा पुं. [फा. निशान] नगाड़ा, धौंसा। उ.—(क) हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा। निंदा पर-मुख

पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा—१-१४४। (ख) धुरवा धुंधि बढ़ी दसहूँ दिसि गर्जि निसान बजायो—२८१६।

निसानन—संज्ञा पुं. [सं. निशानन] **संध्या, प्रदोष काल।**

निसाना—संज्ञा पुं. [फ़ा. निशाना] **लक्ष्य, निशाना।**

निसानाथ—संज्ञा पुं. [सं. निशानाथ] **चंद्रमा।**

निसानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. निशानी] (१) **निशान।** (२) **स्मृतिचिह्न।**

निसाने—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **नगाड़े, धौंसे।** उ.—जाकौ दीनानाथ निवाजैं। भव-सागर मैं कबहुँ न भूकै, अभय निसाने बाजैं—१-३६।

निसापति—संज्ञा पुं. [सं. निशापति] **चंद्रमा।**

निसाफ—संज्ञा पुं. [अ. इंसाफ] **न्याय।**

निसार—संज्ञा पुं. [अ.] **निछावर, उतारा।**

संज्ञा पुं. [सं.] (१) **समूह।** (२) **एक वृक्ष।**

वि. [सं. निस्सार] **तत्व या साररहित।**

निसारना—क्रि. स. [सं. निःसरण] **निकालना।**

निसास—संज्ञा पुं. [सं. निःश्वास] **ठंडी या लंबी साँस।**

वि.—**अचेत, बेदम।** उ.—परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढ़त अकास। तहँ चढ़ि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास—१-३२५।

निसासी—वि. [सं. निःश्वास] **बेदम, अचेत।**

निसि—संज्ञा स्त्री. [सं. निशि] **रात।** उ.—राका निसि केते अंतर ससि निमिष चकोर न लावत—१-२१०।

निसिअर—संज्ञा पुं. [सं. निशाकर] **चंद्रमा।**

निसिचर—संज्ञा पुं. [सं. निशाचर] **राक्षस।** उ.—जब देख्यौ दिव्यबान निसिचर कर तान्यौ। छाँड़्यौ तब सूर हनू ब्रम्ह-तेज मान्यौ—९-९६।

निसिचरी—संज्ञा स्त्री. [सं. निशाचरी] **राक्षसी, निशाचरी।** उ.—तहँ इक अद्भुत देखि निसिचरी सुरसा-मुख-बिस्तार—९-७४।

निसिचारी—संज्ञा पुं. [सं. निशाचारी] **राक्षस।**

निसिदिन—क्रि. वि. [सं. निशिदिन] (१) **रात दिन, आठो पहर।** (२) **सदा-सर्वदा, नित्य।**

निसिनाथ, निसिनाह—संज्ञा पुं. [सं. निशानाथ] **चंद्र।**

निसि निसि—संज्ञा स्त्री. [सं. निशि-निशि] **आधी रात।**

निसिपति—संज्ञा पुं. [सं. निशिपति] **चंद्रमा।** उ.—बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं—१०-८६।

निसिपाल—संज्ञा पुं. [सं. निशिपाल] **चंद्रमा।**

निसिमनि—संज्ञा पुं. [निशामणि] **चंद्रमा।**

निसिमुख—संज्ञा पुं. [सं. निशामुख] **संध्याकाल।**

निसियर—संज्ञा पुं. [सं. निशाकर] **चंद्रमा।**

निसिवासर—क्रि. वि. [सं. निशि+वासर] (१) **रात दिन, आठो पहर,** (२) **सदा, सर्वदा, नित्य।**

निसीठा—वि. [सं. निः+हिं. सीठा] **सारहीन, थोथा।**

निसीथ—संज्ञा पुं. [सं. निशीथ] **आधी रात।**

निसुंभ—संज्ञा पुं. [सं. निशुंभ] **'निशुंभ' नामक दैत्य।**

निसु—संज्ञा स्त्री. [सं. निशि] **रात, रात्रि।**

निसुका—वि. [सं. निस्वक्] **निर्धन, गरीब।**

निसूदक—वि. [सं.] **हिंसा करनेवाला।**

निसूदन—संज्ञा पुं. [सं.] **वध या हिंसा करना।**

निसृत—वि. [सं. निःसृत] **निकला हुआ।**

निसृष्ट—वि. [सं.] (१) **जो छोड़ दिया गया हो।** (२) **मध्यस्थ।** (३) **भेजा हुआ।** (४) **दिया हुआ।**

निसेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. निःश्रेणी] **सीढ़ी, जीना।**

निसेष—वि. [सं. निःशेष] **जिसमें कुछ शेष न हो।**

निसेस—संज्ञा पुं. [सं. निशेश] **चंद्रमा।**

निसैनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. निसेनी] **सीढ़ी, जीना।**

निसोग—वि. [सं. निःशोक] **शोक-चिंता-रहित।**

निसोच—वि. [सं. निःशोच] **चिंतारहित, बेफिक्र।**

निसोत, निसोता—वि. [सं. निसंयुक्त] (१) **जिसमें किसी चीज का मेल न हो, विशुद्ध।** (२) **असली, सच्चा।**

निसोध, निसोधु—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुध] **खबर, संदेश।**

निस्चय—संज्ञा पुं. [सं. निश्चय] (१) **दृढ़ विचार, अटल संकल्प।** (२) **पूर्ण विश्वास।** उ.—तब लगि सेवा करि निस्चय सौं, जब लगि हरियर खेत—१-३२२।

प्र.—निस्चय करि—**अवश्य ही।** उ.—ज्यौं-त्यौं कोउ हरि-नाम उच्चरै। निस्चय करि सो तरै पै तरै—६-४।

निस्चै—संज्ञा पुं. [सं. निश्चय] (१) **पक्का विचार, दृढ़ संकल्प।** (२) **पूर्ण विश्वास, अटल विश्वास।** उ.—

जो जो जन निस्चै करि सेवै, हरि निज बिरद सँभारै। सूरदास प्रभु अपने जन कौं, उर तैं नैंकु न टारै— १-२५७।

निस्तंतु—वि. [सं.] **जिसके कोई संतान न हो।**

निस्तंद्र— वि. [सं.] **जिसमें आलस्य न हो।**

निस्तत्व वि. [सं.] **तत्व या सार-रहित।**

निस्तब्ध—वि. [सं.] (१) **जिसमें गति या हलचल न हो।** (२) **जड़वत्।** (३) **शांत।**

निस्तब्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **स्तब्ध होने का भाव।** (२) **सन्नाटा, पूर्ण शांति।**

निस्तरंग—वि. [सं.] **जिसमें तरंग न हो, शांत।**

निस्तर, निस्तरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **छुटकारा, उद्धार, मुक्ति।** (२) **पार जाने या होने की क्रिया या भाव।**

निस्तरतौ—क्रि. अ. [हिं. निस्तरना] **निस्तार पाता, मुक्त होता, छूट जाता।** उ.—मोतैं कछू न उबरी हरि जू, आयौ चढ़त-उतरतौ। अजहूँ सूर पतित-पद तजतौ, जौ औरहु निस्तरतौ—१-२०३।

निस्तरना—क्रि. अ. [सं. निस्तार] **छुटकारा पाना।**

निस्तरिहैं—क्रि. अ. [हिं. निस्तरना] **छुटकारा पायँगे, मुक्त होंगे, छूट जायँगे।** उ.—जो कहौ, कर्मयोग जब करिहैं। तब ये जीव सकल निस्तरिहैं—७-२।

निस्तरिहौं—क्रि. अ. [हिं. निस्तरना] **पार जाऊँगा, मुक्त होऊँगा।** उ.—हौं तौ पतित सात पीढ़िन कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं—१-१३४।

निस्तल—वि. [सं.] (१) **जिसका तल न हो।** (२) **जिसके तल की थाह न हो, अथाह, गहरा।**

निस्तार—संज्ञा पुं. [सं.] **छुटकारा, बचाव, मोक्ष, उद्धार।** उ.—(क) बिन हरि भजन नाहिं निस्तार—४-१२। (ख) बिना कृपा निस्तार न होइ—७-२।

निस्तारक—संज्ञा पुं. [सं.] **बचाने या छुड़ानेवाला।**

निस्तारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बचाना, छुड़ाना, उद्धार करना।** (२) **पार करना।** (३) **जीतना।**

निस्तारत —क्रि. स. [सं. निस्तर+ना (प्रत्यय)] **छुड़ाते हो, मुक्त करते हो, उद्धारते हो।** उ.—मोसौ कोउ पतित नहिं अनाथ-हीन-दीन। काहे न निस्तारत प्रभु, गुननि अंगनि-हीन—१-१८२।

निस्तारन—संज्ञा पुं. [सं. निस्तारण] (१) **निस्तार करने का भाव।** (२) **निस्तार करने या मुक्ति दिलाने वाला।**

उ.—बरुन बिषाद नंद-निस्तारन—६८२।

निस्तारना—क्रि. स. [हिं. निस्तरना] **मुक्त करना।** (२) **पार करना।**

निस्तारा—क्रि. स. [हिं. निस्तारना] **उद्धार किया, मुक्त किया।** उ.—अंध कूप तैं काढ़ि बहुरि तेहि दरसन दै निस्तारा—१० उ.-८०।

निस्तारो, निस्तारौ—क्रि. स. [हिं. निस्तारना] **उद्धार करो, मुक्ति प्रदान करो, छुड़ाओ।** उ.—कै प्रभु हार मानि कै बैठौ, कै अबहीं निस्तारौ—१-१३६।

निस्तीर्ण—वि. [सं.] **जिसका निस्तार हो चुका हो।**

निस्तेज—वि. [सं. निस्तेजस्] **तेजहीन, मलिन।**

निस्नेह—वि. [सं.] **जिसमें प्रेम न हो।**

निस्पंद—वि. [सं.] **जिसमें कंप या धड़कन न हो।**

निस्पृह—वि. [सं.] **लोभ या इच्छारहित।**

निस्पृहता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **कामनारहित होने का भाव।**

निस्पृही—वि. [सं. निस्पृह] **लोभ-लालसारहित।**

निस्राव—संज्ञा पुं. [सं.] **वह जो बहकर निकले।**

निस्वन, निस्वान—संज्ञा पुं. [सं.] **शब्द, रव, नाद।**

निस्वास—संज्ञा पुं. [सं. निःश्वास] **नाक या मुँह से बाहर आनेवाली साँस।**

निस्संकोच—वि. [सं.] **लज्जा या संकोचरहित।**

निस्संतान—वि. [सं.] **जिसके संतान न हो।**

निस्संदेह—क्रि. वि. [सं.] **अवश्य, बेशक।**

वि.—**जिसमें शक-संदेह न हो।**

निस्संबल—वि. [सं.] **जिसके ठौर-ठिकाना न हो।**

निस्सरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **निकलने का मार्ग।** (२) **निकलने का भाव या कार्य।**

निस्सहाय—वि. [सं.] **असहाय, निरवलंब।**

निस्सरै—क्रि. अ. [हिं. निसरना] **निकलता है, बाहर आता है।** उ.—जा बन की नृप इच्छा करै। ताही द्वार होइ निस्सरै—४-१२।

निस्सार—वि. [सं.] (१) **गूदा या साररहित।** (२) **तत्व या साररहित।**

निस्सीम—वि. [सं.] बहुत अधिक, असीम।

निस्सृत—संज्ञा पुं. [सं.] तलवार का एक हाथ।

निस्वादु—वि. [सं.] जिसमें स्वाद न हो।

निस्वार्थ—वि. [सं.] जिसमें स्वार्थ का भाव न हो।

निहंग, निहंगम—संज्ञा पुं. [सं. निःसंग] साधु।
 वि.— अकेला, एकाकी रहने-विचरनेवाला।

निहंग-लाड़ला—वि. [हिं. निहंग+लाड़ला] जो दुलार के कारण बहुत ढीठ हो गया हो।

निहंता— वि. [सं. निहंतृ] मारनेवाला, विनाशक।

निहकरमा, निहकरमी, निहकर्मा, निहकर्मी—वि. [सं. निष्कर्मा] (१) निकम्मा। (२) जो काम में लिप्त न हो।

निहकलंक—वि. [सं. निष्कलंक] निर्दोष, निष्कलंक। उ.—लै उछंग उपसंग हुतासन, निहकलंक रघुराई—९-१६२।

निहकाम—वि. [सं. निष्कामी] (१) जिसमें कामना न हो। (२) जो काम कामना से न किया जाय।

निहकामी—वि. [सं. निष्कामी] जिसमें कामना या आसक्ति न हो। उ.—प्रभु हैं निरलोभी निहकामी—१००५।

निहचय—संज्ञा पुं. [सं. निश्चय] दृढ़ धारणा।

निहचल—वि. [सं. निश्चल] स्थिर, अचल।

निहचिंत—वि. [सं. निश्चिंत] निश्चिंत, चितारहित, बेफिक्र। उ.—जदुपति कह्यौ घेरि हौं आनौं, तुम जेंवहु निहचिंत भए—४३८।

निहचीत—वि. [सं. निश्चिंत] चिंतारहित, चिंता से मुक्त। उ.—गोबिंद गाढ़े दिन के मीत। गज अरु ब्रज प्रहलाद द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत—१-३१।

निहचै—संज्ञा पुं. [सं. निश्चय] दृढ़ विश्वास। उ.—निहचै एक असल पै राखें, टरै न कबहूँ टारें—१-१४२।

निहत—वि. [सं.] (१) फेंका हुआ। (२) हत, नष्ट।

निहत्था—वि. [हिं. नि+हाथ] (१) जिसके हाथ में अस्त्र-शस्त्र न हो। (२) जिसका हाथ खाली हो।

निहनना—क्रि. स. [हिं. हनना] मार डालना।

निहपाप—वि. [सं. निष्पाप] जो पापी न हो।

निहफल—वि. [सं. निष्फल] व्यर्थ, निरर्थक।

निहाई—संज्ञा स्त्री. [सं. निघाति] लोहे का एक औजार जिस पर रखकर कोई धातु कूटी पीटी जाती है।

निहाउ—संज्ञा पुं. [सं. निघाति] लोहे का घन।

निहायत—वि. [अ.] बहुत अधिक।

निहार—क्रि. स. [हिं. निहारना] (१) देखकर, अवलोक कर। उ.—तबहूँ गयौ न क्रोध-बिकार। महादेव हू फिरे निहार—७-२। (२) बचाकर, सावधानी से बचकर। उ.—भरत चलै पथ जीव निहार। चलै नहीं ज्यौं चलैं कहार—५-४।
 संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाला। (२) ओस। (३) हिम।

निहारत—क्रि. स. [हिं. निहारना] देखती है, ताकती है। उ.—झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठनि के बदन निहारत मारग फिरत लटी—१-९८।

निहारति—क्रि. स. [हिं. निहारना] देखती-ताकती है। उ.—नावसत साजि सिंगार बनी सुंदरि आतुर पंथ निहारति—२५६२।

निहारना—क्रि. स. [सं. निभालन=देखना] देखना।

निहारनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. निहारना] निहारने की क्रिया या भाव, चितवनि।

निहारि—क्रि. स. [हिं. निहारना] देखकर, देखदेख, ताककर। उ.—काकौ बदन निहारि द्रौपदी दीन दुखी संभरिहै ?—१-२९।

निहारिका—संज्ञा स्त्री. [सं. नीहारिका] आकाश में कुहरे-सी फैली हुई प्रकाश-रेखा।

निहारी—क्रि. स. [हिं. निहारना] देखा, निहारा, ताका। उ.—अँधियारी आई तहँ भारी। दनुजसुता तिहिंतैं न निहारी—९-१७४।

निहारे—क्रि. स. [हिं. निहारना] ध्यानपूर्वक देखा, दृष्टि डाली। उ.—आइ निकट श्रीनाथ निहारे, परी तिलक पर दीठि—१-२७४।

निहारैं—क्रि. स. [हिं. निहारना] देखते हैं, ताकते हैं। उ.—दोऊ ताकी ओर निहारैं—६-४।

निहारै—क्रि. स. [हिं. निहारना] निहारता है, ताकता है। उ.—षोड़स जुक्ति, जुवति चित षोडस, षोड़स बरस निहारै—१-६०।

निहारौ—क्रि. स. [हिं. निहारना] देखो, अवलोको।

उ.—याकौ सुंदर रूप निहारौ—७-७।

निहारयौ—क्रि. स. [हिं. निहारना] (१) **देखा**। उ.—तोरि कोदंड मारि सब जोधा तब बल-भुजा निहारयौ—२५८६। (२) **देख-समझ सका**। उ.—घँसि कै गरल लगाय उरोजन कपट न कोउ निहारयौ।

निहाल, निहाला—वि. [फ़ा] **पूर्ण संतुष्ट और प्रसन्न**। उ.—(क) जैसैं रंक तनक धन पाए ताहि महा वह होत निहाल—१३२३। (ख) जन्म मरन तैं रहि गयौ वह कियौ निहाला—२५७७।

निहाली—संज्ञा स्त्री. [फा.] **गद्दा, तोशक**।

निहाव—संज्ञा पुं. [सं. निघाति] **लोहे का घन**।

निहिचय—संज्ञा पुं. [सं. निश्चय] **दृढ़ धारणा**।

निहिचिंत—वि. [सं. निश्चिंत] **चिंतारहित**।

निहित—वि. [सं.] **रखा, पड़ा या छिपा हुआ**।

निहितार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] **वाक्य का अर्थ जो महत्वपूर्ण तो हो, पर जल्दी न खुले**।

निहुँकना—क्रि. अ. [हिं. नि + झुकना] **झुकना**।

निहुड़ना, निहुरना—क्रि. अ. [हिं. नि+होड़न] **झुकना**।

निहुड़ाना, निहुराना—क्रि. स. [हिं. निहुरना] **झुकाना, नवाना, नीचे या नम्र करना**।

निहोर—संज्ञा पुं. [हिं. निहोरा] (१) **अनुग्रह, कृतज्ञता**। (२) **विनती, प्रार्थना**। उ.—(क) प्रभु, मोहिं राखियै इहिं ठौर। केस गहत कलेस पाऊँ, करि दुसासन जोर। करन, भीषम, द्रोन मानत नाहिं कोउ निहोर—१-२५३। (ख) चितै रघुनाथ बदन की ओर। रघुपति सौं अब नेम हमारौ बिधि सौं करति निहोर—९-२३। (ग) लाइ उरहिं, बहाइ रिस जिय, तजहु प्रकृति कठोर। कछुक करुना करि जसोदा करतिं निपट निहोर—१०-३६४। (घ) माखन हेरि देतिं अपनैं कर, कछु कहि बिधि सौं करतिं निहोर—१०-३६८। (३) **भरोसा, आसरा**।

क्रि. वि.—(१) **द्वारा, बदौलत**। (२) **वास्ते**।

निहोरना—क्रि. स. [हिं. मनुहार] (१) **विनय या प्रार्थना करना**। (२)**मनौती करना, मनाना**। (३)**कृतज्ञ होना**।

निहोरा—संज्ञा पुं. [हिं. मनुहार] (१) **कृतज्ञता, उपकार**। (२) **बिनती, प्रार्थना**। (३) **भरोसा, आसरा**।

निहोरि—क्रि. स. [हिं. निहोरना] **मनौती मानकर**। उ.—ग्वालिन चली जमुना बहोरि। वाहि सब मिलि कहत आवहु कछू कहति निहोरि।

निहोरी—क्रि. स. [हिं. निहोरना] **प्रार्थना की, विनय की, खुशामद की**। उ.—मोहिं भयौ माखन पछितावौ रीनी देखि कमोरी। जब गहि बाँह कुलाहल कीनी, तब गहि चरन निहोरी—१०-२८६।

संज्ञा पुं.—**प्रशंसा, कृतज्ञता-प्रदर्शन**। उ.—दै मैया भौंरा चक डोरी।……। मैया बिना और को राखै, बार-बार हरि करत निहोरी—१०-६६६।

निहोरे—संज्ञा पुं. [हिं. निहोरा] **मनाने या बहलाने के लिए कहे गये वचन या किये गये कार्य**। उ.—बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।……। सूर स्याम कौं मधुर कौर दै कीन्हें तात निहोरे—१०-२२४।

निहोरौ, निहारौ—संज्ञा पुं. [हिं. निहोरा] **अनुग्रह, कृतज्ञता, एहसान, उपकार**। उ.—(क) गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय, उनकौ कौन निहोरौ। गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ—१-१३२। (ख) विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि। सूरदास सौं कहा निहोरौ, नैननि हूँ की हानि—१०-१३५। (ग) कह दाता जो द्रवै न दीनहिं देखि दुखित ततकाल। सूर स्याम कौ कहा निहोरौ चलत बेद की चाल—१-१५६।

नींद—संज्ञा स्त्री. [सं निद्रा] **सोने की अवस्था, निद्रा**। उ.—गोबिंद गुन चित बिसारि, कौन नींद सोयौ—१-३३०।

मुहा.—नींद उचटना—**फिर नींद न आना**। नींद उचाटना—**नींद न आने देना**। नींद उचाट होना—**नींद टूटने पर फिर न आना**। नींद जाना—**नींद न आना**। नींद गई—**नींद आती ही नहीं**। उ.—कहा करौं चलत स्याम के पहिलेहि नींद गई दिन चार—२७९५। नींद पड़ना—**नींद आना**। नींद भरना—**पूरी नींद सोना**। नींद भर सोना—**जी भरकर सोना**। नींद लेना—**सो जाना**। नींद लीन्हीं—**सोयी**। उ.—जब तें प्रीति स्याम सों कीन्हीं।

ता दिन तें मेरे इन नैननि नैंकहुँ नींद न लीन्हीं। नींद संचारना—**नींद आना**। नींद हराम करना—**सोने न देना**। नींद हराम होना—**सो न सकना**।

नींदड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नींद] **नींद, निद्रा**।

नींदति—क्रि. स. [हिं. निंदना] **निंदा करती है**। उ.—नींदति सैल उदधि पन्नग को श्रीपति कमठ कठोरहिं—२८६२।

नींदना—क्रि. अ. [हिं. नींद] **नींद लेना, सोना**।

क्रि. स.—[हिं. निंदना] **निंदा करना**।

नींदरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नींद] **निंद, नींद्रा**।

नींदौ—संवि. स्त्री. सवि. [हिं. नींद] **नींद भी**। उ.—ता दिन ते नींदौ पुनि नासी चौंकि परति अधिकारे—३०४५।

नींब—संज्ञा पुं. [सं. निंब] **नीम का पेड़**। उ.-(क) नींब लगाइ अंब क्यौं खावैं—१०४२। (ख) ता ऊपर लिखि जोग पठावत खाहु नींब तजि दाख-३३२१।

नींव—संज्ञा स्त्री. [हिं. नीव] (१) **मकान आदि की नीव** (२) **कार्य का प्रारंभिक भाग**।

नीक—वि. [सं. निक्त=स्वच्छ, साफ; फा. नेक] (१) **ठीक, स्वस्थ**। उ.—घायल सबै नीक ह्वै गए—४-५। (२) **भला, सुंदर**।

संज्ञा पुं.—**अच्छापन, उत्तमता**।

नीकन—संज्ञा पुं. **नेत्र**। उ.—(क) सारँग सुत नीकन ते बिछुरत सर्प बेलि रस जाई—सा. १६। (ख) नीकन अधिक दिपत हुत तातें अंतरिच्छ छबि भारी—सा० ५१।

नीका—वि. [हिं. नीक] **अच्छा, भला, उत्तम**।

नीकी—वि. स्त्री. [हिं. नीका] **अच्छी, भली**। उ.—(क) होरी खेलन की बिधि नीकी। (ख) माखन खाइ, निदरि नीकी बिधि यह तेरे सुत की घात—१०-३०६।

नीके—वि. [हिं. नीक] (१) **ठीक, स्वस्थ, सुचित्त**। उ.—लोग सकल नीके जब भए। नृप कन्या दै, गृह कौं गए—६-२। (२) **भले, अच्छे**। उ.—इतने काज किये हरि नीके—२६४३।

क्रि. वि.—**अच्छी तरह, भली भाँति**। उ.—हरि की भक्ति करो सुत नीके जो चाहो सुख पायो।

नीकैं—क्रि. वि. [हिं. नीक] **अच्छी तरह, भली भाँति**। उ.—नीकैं गाइ गुपालहिं मन रे। जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे—१-६६।

नीकौ—वि. [हिं. नीका] (१) **भला, अच्छा, श्रेष्ठ**। उ.—(क) कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ। मरियत लाज सूर पतननि मैं, मोहूँ तैं को नीकौ—१-१३८। (ख) हम तैं बिदुर कहा है नीकौ—१-२४३। (२) **अनुकूल, उत्तम**। उ.—यक ऐसेहि झकझोरति मोको पायो नीको दाउँ—१६१३।

मुहा.—दोष देन कौं नीकौ—**दोष देने को सदा तैयार, दूसरों के दोष निकालने में तेज**। उ.—महा कठोर, सुन्न हिरदै कौ, दोष देन कौं नीकौ—१-१८६।

नीच—वि. [सं.] (१) **जाति, गुण, कर्म आदि में घट कर होना, क्षुद्र तुच्छ**। (२) **निम्न श्रेणी का, बुरा**।

संज्ञा पुं.—**नीच मनुष्य, क्षुद्र व्यक्ति**।

नीचता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **नीचपन**। (२) **ओछापन**।

नीचा—वि. [सं. नीच] (१) **ऊँचे का उलटा। गहरा**। (२) **जो कम ऊँचा हो**। (३) **बहुत लटकता हुआ**। (४) **झुका हुआ, नत**। (५) **जो जोर का न हो, धीमा**। (६) **जो जाति, पद आदि में घटकर हो**।

मुहा.—नीचा-ऊँचा—(१) **भला-बुरा**। (२) **हानि-लाभ**। (३) **सुख-दुख**। नीचा खाना—(१) **अपमानित होना**। (२) **पराजित होना**। (३) **लज्जित होना**। नीचा दिखाना—(१) **अपमानित करना**। (२) **पराजित करना**। (३) **लज्जित करना**। (४) **घमंड चूर करना**। नीचा देखना—(१) **अपमानित होना**। (२) **लज्जित होना**। (३) **घमंड चूर होना**। नीची दृष्टि करना—(**लज्जा-संकोच से**) **सिर झुकाना**। नीची दृष्टि से देखना—**तुच्छ या छोटा समझना**।

नीचाशय—वि. [सं.] **ओछे या क्षुद्र विचार का**।

नीचि—क्रि. वि. [हिं. नीचा] **नीचे की ओर**। उ.—समुझि निज अपराध करनी नारि नावति नीचि-३४७५।

नीचू—क्रि. वि. [हिं. नीचा] **नीचे की ओर**।

नीचे ,नीचैं—क्रि. वि. [हिं. नीचा] **नीचे की ओर।** उ.—(क) (वह्यौ) उहाँ अब गयौ न जाइ । बैठि गई सिर नीचैं नाइ—४-५ । (ख) सुरपति-कर तब नीचैं आयौ—६-३ । (ग) सुनि ऊधौ के बचन नीचे कै तारे—३४४३ ।

मुहा.—नीचे-ऊपर-(१) **एक पर एक, तले ऊपर।** (२) **उलट-पलट अस्त-व्यस्त।** नीचे गिरना—(१) **मान-मर्यादा खोना।** (२) **पतित होना।** (२) **कुश्ती में हारना।** नीचे डालना—(१) **फेंकना।** (२) **पराजित करना।** नीचे लाना—**कुश्ती में हराना।** ऊपर से नीचे तक—(१) **सब भागों में।** (२) **सिर से पैर तक।**

(२) **घटकर, कम।** (३) **अधीनता में, मातहत।**

नीच्यो—क्रि. वि. [हिं. नीचा] **नीचे की ओर।** उ.—सूर सीस नीच्यो क्यों नावत अब काहे नहिं बोलत—३१२१ ।

नीजन—वि. [सं. निर्जन] **निर्जन, जनशून्य।**

संज्ञा पुं.—**वह स्थान जहाँ कोई न हो।**

नीझर—संज्ञा पुं. [सं. निर्झर] **झरना, सोता।**

नीठ, नीटि—क्रि. वि. [हिं. नीठि] **ज्यों-त्यों करके।** उ.—तेई कमल सूर नित चितवत नीठ निरंतर संग—सा. ३-४४ । (२) **बड़ी कठिनता से।**

नीठि—संज्ञा स्त्री. [सं. अनिष्टि, प्रा. अनिट्ठि] **अनिच्छा।**

क्रि. वि.—(१) **जैसे-तैसे।** (२) **कठिनता से।**

नीठो—वि. [हिं. नीठि] **न सुहाने या भानेवाला।** उ.—छेक उक्त जहँ दुमिल समझ केका समुझावत नीठो। मिसिरी सूर न भावत घर की चोरी को गुड़ मीठो—सा० ६० ।

नीड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बैठने या ठहरने का स्थान।** (२) **चिड़ियों के रहने का घोंसला।** उ.- नूपुर कलरव मनु हंसनि सुत रचे नीड़, दै बाहँ बसाए—१०-१०४ ।

नीड़क, नीड़ज—संज्ञा पुं. [सं.] **पक्षी, चिड़िया।**

नीत—वि. [सं.] (१) **लाया या पहुँचाया हुआ।** (२) **स्थापित।** (३) **प्राप्त।** (४) **ग्रहण किया हुआ।** उ.—किधौं मंद गरजनि जलधर की पग नूपुर रव नीत।

नीतन—संज्ञा पुं. [हिं. नीति=नीत=नय+न=नयन] **नेत्र, नयन।** उ.—लगे फरकन अंतरिछ अनूप नीतन रंग—सा. ७५ ।

नीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **व्यवहार की सामाजिक रीति।** उ.—गुरु-पितु-ग्रह बिनु बोलेहु जैऐ। है यह नीति नाहिं सकुचैऐ—४-५ । (२) **ले जाने-चलने की क्रिया या भाव।** (३) **व्यवहार की रीति।** (४) **आचार-व्यवहार, सदाचार।** (५) **राज-रक्षा की विधि।** (६) **युक्ति उपाय।**

नीतिज्ञ—वि. [सं.] **नीति-कुशल, नीति-चतुर।**

नीत्यो—संज्ञा स्त्री. [सं. नीति] **नीति-व्यवहार-पद्धति।** उ.—द्वै नृप लरत जाइ इन्द्रीगत कहा सूर को नीत्यो - २८६८ ।

नीदना—क्रि. स. [सं निंदन] **निंदा करना।**

नीधन, नीधना - वि. [सं. निर्धन] **दरिद्र, धनहीन।**

नीप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कदंब।** उ.—एक घरी धीरज धरौं, बैठौ सब तर नीप—५८६ । (२) **अशोक।**

नीबर—वि. [सं. निर्बल] **दुर्बल, शक्तिहीन।**

नीबी—संज्ञा स्त्री. [सं. नीवि] **कटि-बंध, फुफुंदी, नारा।** उ.—नीबी ललित गही जदुराइ—६८२ ।

नीबू—संज्ञा पुं. [सं. निंबुक] **एक खट्टा फल।**

नीम—संज्ञा पुं. [सं. निम्ब] **एक प्रसिद्ध पेड़।**

नीमन—वि. [सं. निर्मल] (१) **नीरोग, स्वस्थ, भला-चंगा।** उ.—जानि लेहु हारि इतने ही में कहा करै नीमन को बैद। (२) **अच्छा, सुंदर।**

नीमर—वि. [हिं. निर्बल] **दुर्बल, शक्तिहीन।**

नीमषार, नीमषारण्य, नीमषारन— संज्ञा पुं. [सं. नैमिषारण्य] **अवध के सीतापुर जिले में स्थित एक प्राचीन वन जो हिंदुओं का एक तीर्थस्थान माना जाता है।**

नीमा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **जामे के नीचे का एक पहनावा।**

नीमावत— संज्ञा पुं. [सं. निंब] **निबंकाचार्य का अनुयायी।**

नीयत— संज्ञा स्त्री. [अ.] **भाव, आशय, मंशा।**

मुहा.—नीयत डिगना— **मन में दोष या स्वार्थ आ जाना।** नीयत बद होना— **मन में बुराई आना।** नीयत बदल जाना—(१) **इच्छा या विचार कुछ का कुछ हो जाना।** (२) **भले से बुरा विचार हो जाना।**

नीयत बाँधना—**इरादा करना**। नीयत बिगड़ना—(१) **इच्छा या विचार कुछ का कुछ हो जाना**। (२) **भले से बुरा विचार हो जाना**। नीयत भरना—**इच्छा पूरी होना, जी भरना**। नीयत में फर्क आना—**भला विचार बुरे में बदल जाना**। नीयत लगी रहना—**जी ललचाता रहना**।

नीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पानी, जल**।

मुहा.—नीर ढलना—**मरते समय आंसू बहना**।

(२) **आत्माभिमान की भावना**। उ.—कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा कहँ रँग-रूप दिखैहै—१-८६।

मुहा.—किसी का नीर ढल जाना—**आत्माभिमान की भावना का न रह जाना, निर्लज्ज या बेहया हो जाना**।

(३)**द्रव पदार्थ या रस**। (४)**फोड़े-फफोले का चेप**।

नीरज—संज्ञा पुं. [सं. नीर+ज] (१) **जल में उत्पन्न वस्तु**। (२) **कमल**। (३) **मोती, मुक्ता**।

नीरद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जलदाता**। (२) **बादल**।

वि. [सं. निः+रद] **जिसके दांत न हों**।

नीरधर—संज्ञा पुं. [सं.] **बादल, मेघ**।

नीरधि—संज्ञा पुं. [सं.] **समुद्र**। उ.—पसुपति मंडल मध्य मनो मनि छीरधि नीरधि नीर के—२५९६।

नीरना—क्रि. स. [देश.] **बिखेरना, छिटकाना**।

नीरनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] **समुद्र**।

नीरपति—संज्ञा पुं. [सं.] **वरुण देवता**।

नीरव—वि. [सं.] (१) **जिसमें शब्द न हो, निःशब्द**। (२) **जो बोलता न हो, चुप**।

नीरस—वि. [सं.] (१) **रसहीन**। (२) **शुष्क**। (३) **आनंदरहित**। उ.—(क) पिउ पद-कमल कौ मकरंद। मलिन मति मन मधुप, परिहरि, विषय नीरस मंद—६-१०। (ख) जीवै तो राजसुख भोग पावै जगत मुए निर्बान नीरस तुम्हारो—१०. उ०-५७। (४) **जल-रहित**। उ.—सूरदास क्यों नीर चुवत है नीरस वचन निचोयो—३४८२।

नीरांजन—संज्ञा पुं. [सं.] **आरती, दीपदान**।

नीरांजना—क्रि. अ. [सं. नीरांजन] **आरती करना**।

नीरांजनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आरती**।

नीरा—क्रि. वि. [हिं. नियर] **पास, समीप**।

संज्ञा स्त्री. [सं. नीर] **ताड़ के वृक्ष का बहुत स्वादिष्ट, गुणकारी और मस्त कर देनेवाला रस**।

नीराजन—संज्ञा पुं. [सं. नीरांजन] **देवता की आरती**।

नीराजना—क्रि. अ. [हिं नीराजना] **आरती करना**।

नीरे—क्रि. वि. [हिं. नियरे] **पास, समीप**। उ.—तुम इक कहत सकल घट व्यापक अरु सबही ते नीरे—३१६८।

नीरोग—वि. [सं.] **जो रोगी न हो, स्वस्थ**।

नीलंगु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **भौंरा**। (२) **फल**।

नील—वि. [सं.] **नीले या गहरे आसमानी रंग का**।

संज्ञा पुं.—(१) **नीला या गहरा आसमानी रंग**। (२) **एक पौधा जिससे यह रंग निकाला जाता है**।

मुहा.—नील का टीका लगना—**कलंक लगना**। नील का टीका लगाना—**कलंकी सिद्ध कर देना**। नील कौ खेत—**कलंक का स्थान**। उ.—सेवा नहिं भगवंत चरन की, भवन नील कौ खेत—२-१५। नील की सलाई फिरवाना—**आँखें फुड़वा देना**। नील घोटना—**किसी बात को लेकर बहुत देर तक उलझना**। नील जलाना—**पानी बरसाने के लिए नील जलाने का टोटका करना**। नील बिगड़ना—(१) **चरित्र बिगड़ना**। (२) **चेहरे की आकृति बिगड़ना**। (३) **कलंक की बात फैलना**। (४) **बुद्धि ठिकाने न रहना**। (५) **दुर्दशा होना**। (६)**दिवाला निकलना**।

(३) **शरीर पर पड़नेवाला चोट का नीला निशान**।

मुहा.—नील डालना—**इतना मारना कि शरीर पर मार के नीले काले निशान बन जायँ**।

(४) **कलंक, लांछन**। (५) **राम की सेना का एक बंदर**। उ.—सीय-सुधि सुनत रघुबीर धाए। चले तब लखन, सुग्रीव, अंगद, हनू, जामवँत, नील, नल, सबै आए-६-१०६। (६)**नव निधियों में एक**। (७)**नीलम**। (८) **विष**। (९) **माहिष्मती का एक राजा**। (१०) **एक संख्या जो दस हजार अरब की होती है**। उ.—सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी। राजपाट सिंहासन बैठे, नील पदुम हूँ सौं कहै थोरी १-३०३।

नीलकंठ—वि. [सं.] **जिसका कंठ नीला हो।**

संज्ञा—पुं—(१) **मयूर, मोर।** (२) **एक पक्षी।** (३) **शिव जी।**

नीलकांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **विष्णु।** (२) **नीलम।**

नीलगाय—संज्ञा स्त्री. [हिं. नील+गाय] **एक बड़ा हिरन।**

नीलगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] **दक्षिण का एक पर्वत।**

नीलग्रीव—संज्ञा पुं. [सं.] **शिव जी, महादेव।**

नीलम—संज्ञा पुं. [फा., सं. नीलमणि] **नीले रंग का रत्न, नीलमणि, इंद्रनील नामक मणि।**

नीलमणि—संज्ञा पुं. [सं.] **नीलम, इंद्रनील।**

नीलवसन—संज्ञा पुं. [सं.] **नीला या काला वस्त्र।**

वि.—**नीला या काला वस्त्र धारण करनेवाला।**

संज्ञा पुं.—(१) **शनि देव।** (२) **बलराम।**

नीलांबर—संज्ञा पुं. [सं. नील+अंबर=वस्त्र] **नीले रंग का (प्रायः रेशमी) वस्त्र।** उ.—दाऊ जू, कहि स्याम पुकार्यौ। नीलांबर कर ऐंचि लियौ हरि, मनु बादर तैं चंद उजार्यौ—४०७।

वि.—**नीले या काले वस्त्र धारण करनेवाला।**

संज्ञा पुं.—(१) **बलराम।** (२) **शनि देव।**

नीलांबरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक रागिनी।**

नीलांबुज—संज्ञा पुं. [सं.] **नील कमल।**

नीला—वि. [सं. नील] **नील के रंग का।**

मुहा.—नीला करना—**इतना मारना कि शरीर पर नीले दाग पड़ जायँ।** नीला-पीला होना—**क्रोध दिखाना।** नीले हाथ-पाँव हों—**मर जाय।** चेहरा नीला पड़ जाना—(१) **लज्जा, संकोच या भय से चेहरे का रंग फीका पड़ना।** (२) **मृत्यु के पश्चात् आकृति बिगड़ जाना।**

संज्ञा स्त्री.—**राधा की एक सखी का नाम।** उ.—अमला अबला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८०।

नीलाक्ष—वि. [सं.] **नीली आँखवाला।**

नीलाचल—संज्ञा पुं. [सं.] **नीलगिरि पर्वत।**

नीलाब्ज—संज्ञा पुं. [सं.] **नीला कमल।**

नीलाम—संज्ञा पुं. [पुर्त० लीलाम] **बोली बोलकर बेचना।**

नीलावती—संज्ञा स्त्री. [सं. नीलवती] **एक प्रकार का चावल।** उ.—नीलावती चावल दिव-दुर्लभ। भात परोस्यौ माता सुरलभ—३९६।

नीलिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. नीलिमन्] (१) **नीलापन, श्यामता।** (२) **स्याही, मसि।**

नीली—वि. स्त्री. [हिं. नीला] **नीले-काले रंग की।**

नीलोत्पल—संज्ञा पुं. [सं.] **नील कमल।**

नीव—संज्ञा स्त्री. [सं. नेमि, प्रा. नेंइ] (१) **घर की दीवार उठाने के लिए गहरा किया हुआ स्थान।**

मुहा.—नीव देना—**घर उठाना प्रारंभ करना।**

(२) **दीवार की जड़ या आधार।**

मुहा.—नींव का पत्थर—**मकान बनाने के लिए रखा जानेवाला पहला पत्थर।** नीव जमाना (डालना, देना)—**दीवार की जड़ जमाना।** नीव पड़ना—**घर बनना आरंभ होना।**

(३) **जड़, मूल, आधार।**

मुहा.—नीव देना—**कार्यारंभ करना।** नीव का पत्थर—**कार्यारंभ का प्रथम चरण।** नीव जमाना—**जड़ या स्थिति मजबूत कर लेना।** नीव डालना—**कार्यारंभ करना।** नीव पड़ना—**कार्यारंभ होना।**

नीवि, नीवी—संज्ञा स्त्री. [सं. नीवि] **नारा, इजारबंद।**

नीसक—वि. [सं. निःशक्त] **निर्बल, कमजोर।**

नीसान—संज्ञा पुं. [फ़ा. निशान] **नगाड़ा, धौंसा।** उ.—(क) है हरि-भजन कौ परमान। नीच पावैं ऊँच पदवी, बाजते नीसान—१-२३५। (ख) देवलोक नीसान बजाये बरषत सुमन सुधारे—पृ० ३४४ (३१)।

नीहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कुहरा।** (२) **पाला, तुषार।**

नीहारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आकाश में कुहरे-सा फैला प्रकाश-पुंज जो रात में एक धुँधली सफेद धारी-सा दिखायी पड़ता है।**

नुकता—संज्ञा पुं. [अ. नुक़तः] (१) **बिंदी।** (२) **चुभती हुई उक्ति, फबती।** (३) **ऐब, दोष।**

नुकताचीनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **दोष निकालना।**

नुकसान—संज्ञा पुं. [अ.] (१) **कमी, घटी।** (२) **हानि, घाटा।** (३) **खराबी, दोष, अवगुण।**

नुकीला—वि. [हिं. नोक+ईला] **नोकदार।**

नुक्कड़—संज्ञा पुं. [हिं. नोक] (१) **नोक।** (२) **सिरा, छोर, अंत।** (३) **निकला हुआ कोना।**

नुक्स—संज्ञा पुं. [अ.] (१) दोष। (२) त्रुटि, कसर।

नुचना—क्रि. अ. [सं. लुंचन] (१) झटके से या खिंचकर उखड़ना। (२) नाखून आदि से छिलना या खरुचना।

नुचवाना—क्रि. स. [हिं. नोचना]नोचने को प्रवृत्त करना।

नुनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोनाई] सलोनापन, सुंदरता।

नुमाइंदा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] प्रतिनिधि।

नुमाइश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) दिखावट। (२) तड़क-भड़क, सजधज। (३) अद्भुत वस्तुओं का संग्रह-स्थान या प्रदर्शनी।

नुमाइशी—वि. [हिं. नुमाइश] (१) दिखाऊ, दिखौआ। (२)ऊपरी तड़क-भड़कवाला, वास्तव में (निस्सार)।

नुसखा—संज्ञा पुं. [अ.] औषधि-पत्र।

नूत, नूतन—वि. [सं.] (१) नया, नवीन। उ.—(क) गौरि-कंत पूजत जहँ नूतन जल आनी—६-६६। (ख) अरुन नूत पल्लव धरे रँगभीजी ग्वालिनी। (२) अनूठा, अनोखा। उ.—किसलै कुसुम नव नूत दसहु दिसि मधुकर मदन दोहाई—२७८४। (३) ताजा।

नूतनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नयापन, नवीनता।

नूतनत्व—संज्ञा पुं. [सं.] नयापन, नवीनता।

नून—संज्ञा पुं. [सं. लवण, हिं. लोन] नमक।
वि. [सं. न्यून] कम, न्यून।

नूनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. न्यूनता] कमी, न्यूनता।

नूना—वि. [सं. न्यून] (१) कम। (२) घटकर।

नूपुर—संज्ञा पुं. [सं.] पैर में पहनने का बच्चों और स्त्रियों का एक गहना, घुंघरू, पैंजनी। उ.—रुनुक-झुनुक चलत पाइ नूपुर-धुनि बाजै—१०-१४६।

नूर—संज्ञा पुं. [अ.] (१)ज्योति, प्रकाश। (२) श्री, कांति, शोभा। (३) ईश्वर का एक नाम (सूफी)।

नूरा—वि. [हिं. नूर] नूरवाला, तेजस्वी।

नृ—संज्ञा पुं. [सं.] नर, मनुष्य।

नृ-केशरी—संज्ञा पुं. [सं. नृकेशरिन्] नृसिंहावतार।

नृग—संज्ञा पुं. [सं.] एक दानी राजा जिन्होंने अनजाने ही एक ब्राह्मण की गाय अपनी सहस्र गौओं के साथ दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दी। गाय हरण के पाप का फल भोगने के लिए राजा नृग को सहस्र वर्ष के लिए गिरगिट होकर कुएँ में रहना पड़ा। इस योनि से श्रीकृष्ण ने उनका उद्धार किया।

नृघ्न—वि. [सं.] नरघातक।

नृतक—संज्ञा पुं. [सं. नर्तक] नाचनेवाला।

नृतकारी—संज्ञा स्त्री. [सं. नृत्य + हिं. कारी = कला] नृत्य-कला, नृत्यकौशल। उ.—इंद्रसभा थकित भई, लगी जब करारी। रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृतकारी—६४६।

नृतत—क्रि. अ. [हिं. नृतना] नृत्य करता है। उ.—कटि पितंबर वेष नटवर नृतत फन प्रति डोल—५६३।

नृतना—क्रि. अ. [सं. नृत्य] नृत्य करना, नाचना।

नृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाच, नृत्य।

नृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] सुसंस्कृत अभिनय।

नृत्तना—क्रि. अ. [स. नृत] नृत्य करना, नाचना।

नृत्य—संज्ञा पुं. [सं.] नाच, नर्त्तन। उ.—जब अप्सरा नृत्य करि रही। तब राजा ब्रह्मा सौं कही—६-४।

नृत्यक—संज्ञा पुं. [सं. नर्तक] नाचनेवाला, नर्तक। उ.—मानहु नृत्यक भाव दिखावत गति लिय नायक मैन—२३२४।

नृत्यकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नर्तकी] नाचनेवाली, नर्तकी।

नृत्यत—क्रि. अ. [हिं. नृत्यना] नृत्य करता है, नाचता है। उ.—(क) नृत्यत मदन फूले, फूली रति अँग-अँग, मन के मनोज फूले हलधर वर के—१०-३४। (ख) कुंडल लोल तिलक मृगमद रचि गावत नृत्यत नटवर वेस—३२२५।

नृत्यना—क्रि. अ. [सं नृत्य] नाचना, नृत्य करना।

नृत्यशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाचघर।

नृदेव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा। (२) ब्राह्मण।

नृप—संज्ञा पुं. [सं.] राजा, नरपति।

नृप-कुल—संज्ञा पुं. [सं. नृप + कुल] राजाओं का समूह। उ.—जरासंध बंदी कटै, नृप-कुल जस गावै—१-४।

नृपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजापन।

नृपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा, नरपति।

नृप-रिषि—संज्ञा पुं. [सं. नृप + ऋषि] राजर्षि।

नृपराई, नृपराउ, नृपराय, नृपराव—संज्ञा पुं. [सं. नृपराज] सम्राट, राजाओं में श्रेष्ठ।

नृपाल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा, नरपति।

नृलोक—संज्ञा पुं. [सं.] **नरलोक, मर्त्यलोक।**
नृशंश—वि. [सं.] (१) **निर्दय** (२) **अत्याचारी।**
नृशंशता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **निर्दयता, क्रूरता।**
नृसिंह—संज्ञा पुं. [सं.] **भगवान विष्णु का चौथा अवतार जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का था। हिरण्यकशिपु को मारने के लिए यह अवतार धारण किया गया था।**
नृसिंह चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **वैशाख शुक्ल चतुर्दशी जब नृसिंहावतार हुआ था।**
नृहरि—संज्ञा पुं. [सं.] **नृसिंह।**
ने—प्रत्य. [सं .प्रत्य टा—एण] **भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता की विभक्ति।**
नेउछाउरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. न्योछावर] **निछावर।**
नेउतना—क्रि. स. [हि. न्योतना] **न्योता देना।**
नेउता—संज्ञा पुं. [हिं. न्योता] **न्योता, निमंत्रण।**
नेक—वि. [फ़ा.] (१) **भला, अच्छा।** (२) **सज्जन।**

क्रि. वि. [हिं. न+एक] **थोड़ा, तनिक, कुछ, किंचित।** उ.—(क) नरक कूपनि जाइ जमपुर परथौ बार अनेक। थके किंकर-जूथ जमके, टरत टारैं न नेक १-१०६। (ख) ढाकति कहा प्रेमहित सुंदरि सारँग नेक उघारि—२२२०।

वि.—**थोड़ा, तनिक, कुछ भी, किंचित।** उ.—सात दिन भरि ब्रज पर गई नेक न झार—९७३।
नेकी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **भलाई।** (२) **सज्जनता।** (३) **उपकार।**

मुहा.—नेकी और पूछ पूछ—**किसी का उपकार करने में पूछने की जरूरत क्या है ?**
नेकु, नेको, नेकौ—वि. [हिं. नेक] **जरा भी।** उ.—तुम बिनु नँदनंदन ब्रजभूषन होत न नेको चैन—सा. ८।

क्रि. वि.—**तनिक, कुछ, थोड़ा।**
नेग—संज्ञा पुं. [सं. नैयमिक, हिं. नेवग] (१) **शुभ अथवा प्रसन्नता के अवसरों पर संबंधियों, आश्रितों आदि को कुछ देने का नियम।** (२) **वह धन, वस्तु आदि जो शुभ अवसरों पर संबंधियों, आश्रितों आदि को दिया जाता है, बँधा हुआ पुरस्कार।** उ.—लाख टका अरु झूमका (देहु) सारी दाइ कौं नेग—१०-४०।

मुहा.—नेग लगना—(१) **पुरस्कार आदि देना आवश्यक होना।** (२) **सार्थक या सफल होना।**
नेगचार, नेगजोग—संज्ञा पुं. [हिं. नेग+आचार, जोग] (१) **शुभ अवसर पर संबंधियों, आश्रितों आदि को भेंट, उपहार आदि देने की रीति।** (२) **वह वस्तु, उपहार या धन जो ऐसे अवसर पर दिया जाय।**
नेगटी—संज्ञा पुं. [हिं. नेग+टा (प्रत्य.)] **नेग की रीति या दस्तूर का निर्वाह करनेवाला।**
नेगी—संज्ञा पुं. [हिं. नेग] **नेग का अधिकारी।**
नेगीजोगी—संज्ञा पुं. [हिं. नेगजोग] **नेग का हकदार।**
नेछावर—संज्ञा स्त्री. [हिं. निछावर] **निछावर।**
नेजा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **भाला, बरछा।** उ.—हँसनि दुज चमक करिवर निलैहैन झलक नखन छत घात नेजा सँभारैं—१७००।
नेजाबरदार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **भाला लेकर चलनेवाला।**
नेजाल—संज्ञा पुं. [फ़ा. नेजा] **भाला, बरछा।**
नेड़े—क्रि. वि. [सं. निकट, प्रा. निअड़] **पास, निकट।**
नेत—संज्ञा पुं. [सं. नियति=ठहराव] (१) **किसी बात की स्थिरता या ठहराव।** (२) **निश्चय, संकल्प।** उ.—आजु न जान देहुँ री ग्वालिनि बहुत दिननि को नेत—१०३५। (३) **प्रबंध, व्यवस्था।**

संज्ञा पुं. [सं. नेत्र] **मथानी की रस्सी।** उ.—को उठि प्रात होत लै माखन को कर नेत गहै—२७११।

संज्ञा पुं. [देश.] **एक गहना।** उ.—कहुँ कंकन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ ताटंक कहूँ नेत—३४५६।
नेतक—संज्ञा स्त्री. [देश.] **चूनर, चुँदरी।**
नेता—संज्ञा पुं. [सं. नेतृ] (१) **अगुआ, नायक।** (२) **प्रभु, स्वामी।** (३) **प्रवर्तक, निर्वाहक, संचालक।**

संज्ञा पुं. [सं. नेत्र] **मथानी की रस्सी।**
नेति—वाक्य [सं. न इति] **'इति (अंत) नहीं है'। यह वाक्य ब्रह्म की अनंतता सूचित करने के लिए लिखा जाता है।** उ.—सोई जस सनकादिक गावत नेति नेति कहि मानि—२-३७।

संज्ञा स्त्री—[सं. नेत्र] **वह रस्सी जिसे मथानी में लपेट कर दूध-दही मथा जाता है।** उ.—कह्यौ

भगवान अब बासुकी ल्याइयै, जाइ तिन बासुकी सौं सुनायौ। मानि भगवंत-आज्ञा सो आयौ तहाँ, नेति करि अचल कौं सिंधु नायौ—८-८।

नेती—संज्ञा स्त्री. [सं. नेत्र, हिं. नेता] **मथानी की रस्सी।**

नेती धोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. नेती+धोती] **हठयोग की क्रिया जिसमें कपड़े की धज्जी पेट में पहुँचाकर आंते साफ करते हैं।**

नेतृत्व—संज्ञा पुं. [सं.] **नेता होने का भाव, कार्य या पद, सरदारी, नेतागीरी।**

नेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आंख।** (२) **मथानी की रस्सी।** (३) **दो की संख्या सूचक शब्द।**

नेत्रकनीनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आंख का तारा।**

नेत्रज, नेत्रजल—संज्ञा पुं. [सं.] **आंसू।**

नेत्रपिंड—संज्ञा पुं. [सं.] **आंख का ढेला।**

नेत्रबंध—संज्ञा पुं. [सं.] **आंखमिचौनी का खेल।**

नेत्ररंजन—संज्ञा पुं. [सं.] **काजल, कज्जल।**

नेत्ररोम—संज्ञा पुं. [सं. नेत्ररोमन्] **आंख की बरौनी।**

नेत्रस्तंभ—संज्ञा पुं. [सं.] **पलकों का स्थिर हो जाना।**

नेत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **अनुगामिनी नारी।** (२) **मार्ग-प्रदर्शिका।** (३) **स्वामिनी।** (४) **लक्ष्मी।**

नेनुआ, नेनुवा—संज्ञा पुं. [सं.] **एक तरकारी।**

नेपथ्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **साज सज्जा, सजावट।** (२) **नृत्य, अभिनय या नाटक में नर-नारी या अभिनेताओं के सजने का स्थान।** (३) **नाच-रंग का स्थान।**

नेब—संज्ञा पुं. [फ़ा. नायब] **मंत्री, दीवान, सहायक।** उ.—आए नँदनंदन के नेब। गोकुल माँझ जोग बिस्तारयौ भली तुम्हरी जेब।

नेम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **समय।** (२) **खंड।** (३) **दीवार।** (४) **छल।** (५) **आधार** (६) **गड्ढा।**

संज्ञा पुं. [सं. नियम] (१) **नियम।** (२) **अटल या निश्चित बात।** (३) **रीति।** (४) **धर्म या पुण्य की दृष्टि से व्रत, उपवास आदि का पालन।** उ.—(क) नौमी-नेम भली बिधि करै - ९-५। (ख) जा सुख कौ सिव-गौरि मनाई, तिय व्रत-नेम अनेक करी—१०-८०। (ग) नेम-धर्म-तप-साधन कीजै।······। बर्ष-दिवस कौ नेम लेइ सब—७९९।

यौ०—नेम-धरम—**पूजा-पाठ, व्रत-उपवास आदि।**

नेमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **घेरा।** (२) **कुएँ की जगत।**

नेमी—वि. [हिं. नेम] (१) **नियमों का पालन करने वाला।** (२) **पूजा पाठ, व्रत-उपवास करनेवाला।**

यौ०—नेमी-धरमी—**पूजा-पाठ में लगा रहनेवाला।**

नेरा—क्रि. वि. [हिं. नियर] **कुछ भी, जरा भी।**

वि.—**जो निकट हो, समीप का।**

नेर, नेरे—क्रि. वि. [हिं. नियर] **निकट, पास, समीप।** उ.-(क) बिपति परी तब सब सँग छाँड़े, कोउ न आवै नेरे—१-७९। (ख) सूरस्याम बिन अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे—१-८५।

नेरैं—क्रि. वि. [हिं. नियर, नेरे] **निकट, पास।** उ.—तुम तौ दोष लगावन कौं सिर, बैठे देखत नेरैं—१-२०६।

नेवछावर, नेवछावरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. निछावर] **निछावर।** उ.—हरकर पाट बंध नेवछावरि करत रतन पट सारी—२६३०।

नेवज—संज्ञा पुं. [सं. नैवेद्य] **देवता को अर्पित करने की वस्तु, भोग।** उ.—(क) बरस दिवस को दिवस हमारो घर घर नेवज करौ चँड़ाई—९१०। (ख) बहुत भाँति सब करे पकवान। नेवज करि धरि साँझ बिहाने—१००८।

नेवत—संज्ञा पुं. [हिं. न्योता] **न्योता, निमंत्रण।**

नेवतना—क्रि. स. [सं. निमंत्रण] **नेवता भेजना।**

नेवतहरी—संज्ञा पुं. [हिं. न्योतहरी] **निमंत्रित व्यक्ति।**

नेवता—संज्ञा पुं. [हिं. न्योता] **निमंत्रण।**

नेवति—क्रि. स. [हिं. नेवतना] **निमंत्रण देकर, नेवता भेजकर।** उ.—सुर-गंधर्व जे नेवति बुलाए। ते सब बधुनि सहित तहँ आए—४-५।

नेवना—क्रि. अ. [सं. नमन] **झुकना।**

नेवर—संज्ञा पुं. [सं. नूपुर] **पैर का एक गहना, नूपुर।**

वि. [सं. न+वर=अच्छा] **बुरा, खराब।**

नेवला—संज्ञा पुं. [सं. नकुल, प्रा. नाल] **नकुल नामक जंतु।**

नेवाज—वि. [हिं. निवाज] **कृपा करनेवाला।**

नेवाजना—क्रि. स. [हिं. निवाज़ना] **कृपा करना।**

नेवाजी—क्रि. स. [हिं. निवाजना] **कृपा की।** उ.—कहियत कुबिजा कृष्न नेवाजी—३०६४।

नेवाना—क्रि. स. [सं. नमन] **भुकाना।**

नेवारी—संज्ञा स्त्री. [सं. नेपाली] **जूही या चमेली की जाति का, सफेद फूलवाला एक पौधा।**

नेसुक—वि. [हिं. नेकु] **जरा सा, तनक, थोड़ा सा।**

क्रि. वि.—**थोड़ा, जरा, तनक, किंचित।**

नेस्त—वि. [फा.] (१) **जो न हो।** (२) **नष्ट।**

नेस्ती—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **न होना।** २) **नाश।**

नेह, नेहरा—संज्ञा स्त्री. [सं. स्नेह] (१) **स्नेह।** (२) **तेल, घी।**

नेही—वि. [हिं. नेह] **स्नेह करनेवाला, प्रेमी।**

नैंकु—वि. [हिं. न + एक = नेक] **थोड़ा, तनिक, किंचित।**

क्रि. वि.—**थोड़ा, जरा, तनिक।** उ.—कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पांडु की बधू जस नैंकु गायौ। लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ़यौ तन-चीर नहिं अंत पायौ—१-५।

नैंकहु—क्रि. वि. [हिं, न+एक+हु (प्रत्य.) **जरा भी, थोड़ी भी।** उ.—हरि, हौं महापतित, अभिमानी। परमारथ सौं बिरत, विषय-रत, भाव-भगति नहिं नैंकहु जानी—१-१४६।

नैंसुक—वि. [हिं. नेकु] (१) **छोटी, जरा सी।** उ.—स्याम, तुम्हरी मदन-मुरलिका नैंसुक-सी जग मोहयौ—६५६। (२) **तनक, थोड़ा।**

क्रि. वि.—**थोड़ा, जरा, तनक।**

नै—संज्ञा स्त्री. [सं. नय] **नीति।**

संज्ञा स्त्री. [सं. नदी प्रा. णई] **नदी, सरिता।**

प्रत्य. [हिं. ने] **भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्त्ता की विभक्ति।** उ.—दियौ सिरपाव नृपराव नै महर कौं आपु पहिरावने सब दिखाए—५८७।

नैक, नैकु—वि. [हिं. न+एक] **थोड़ा, कुछ।**

नैकट्य—संज्ञा पुं. [सं.] **निकट होने का भाव।**

नैको, नैकौ—वि. [हिं. नैक] **जरा भी, थोड़ा, कुछ।** उ.—कहा मल्ल चाणूर कुबलिया अब जिय त्रास नहीं तिन नैको—२५५८।

नैतिक—वि. [सं.] (१) **नीति-संबंधी, नीतियुक्त।** (२) **आचरण-संबंधी, चारित्रिक।**

नैत्यिक—वि. [सं.] **नित्य का।**

नैत्रिक—वि. [सं.] **नेत्रों का, नेत्र-संबंधी।**

नैन—संज्ञा पुं. [सं. नयन] **नेत्र।** उ.—सवनि मूँदे नैन, ताहि चितये सैन, तृषा ज्यौं नीर दव अँचै लीन्हौ—५६७।

यौ.—मतवाले नैन—**मद भरे नैन।** रस भरे या रसीले नैन—**नैन जिनमें रसिकता का भाव हो।**

मुहा.—नैन उठाना-(१) **निगाह सामने करना।** (२) **बुरा व्यवहार करना।** नैन न उघारना—**लज्जा या संकोच से आँख न खोलना।** नैन न जात उघारे—**लज्जा या संकोच के कारण आंख खोलकर सामने न कर पाना।** उ.—दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ सो अपराध हमारे। सूरदास स्वामी करुनामय नैन न जात उघारे—६-५२। नैन चढ़ाना—**झुँझलाहट, अनख या क्रोध से देखना।** नैन चढ़ाए डोलत—**अनख या क्रोध से देखती घूमती है।** उ.—कापर नैन चढ़ाए डोलत व्रज में तिनुका तोर—१०-३१०। नैन चलाना—(१) **आंख मटकाकर संकेत करना।** (२) **अनख या क्रोध से देखना।** नैन चलावै—**आंख चमकाकर या मटकाकर संकेत करती है।** उ.—सखियनि बीच भरयौ घट सिर पर तापर नैन चलावै—८७५। नैन चलावति—**अनख या क्रोध से देखती हुई।** उ.—का पर नैन चलावति आवति जाति न तिनका तोर—१०-३२०। नैन जुड़ाना—**आँखें शीतल होना, तृप्ति होना।** नैन जुड़ाने—**नेत्र शीतल हुए, तृप्ति हुई।** उ.—अँचवत तब नैन जुड़ाने—१०-१८३। नैन भर आना—**आंख में आँसू आना।** नैन भरि आए—**नेत्रों में आंसू आ गये।** उ.—देखत गमन नैन भरि आए गात गह्यौ ज्यौं केत—६-३६। नैन भरि जोवना—**खूब अच्छी तरह तृप्त होकर देखना।** नैन भरि जोवै—**खूब अच्छी तरह देख ले।** उ.—चाहति नैंकु नैन भरि जोवै—१०-३। नैन लगाना—**टकटकी बांधकर देखना।** नैन रहे लगाइ—**टकटकी बांधकर देखते रह गये।** उ.—मथति ग्वालि

हरि देखी जाइ । गए हुते माखन की चोरी, देखत छबि रहे नैन लगाइ—१०-२६८ । नैन सिराना—**नेत्रों को परम तृप्ति मिलना ।** नैन सिराए—**आँखें ठंढी हुईं, बहुत सुख मिला ।** उ.—सिया-राम-लछिमन मुख निरखत सूरदास के नैन सिराए—६-१६८ ।

संज्ञा पुं. [सं. नय+न] **अनीति, अन्याय ।**

संज्ञा पुं. [सं. नवनीत] **माखन ।**

नैन-अमीन—संज्ञा पुं. [सं. नयन+अ. अमीन] **नेत्र रूपी अदालती या राजकीय कर्मचारी ।** उ.—नैन अमीन, अधर्मिनि कैं बस, जहँ कौ तहाँ छयौ—१-६४ ।

नैननि—संज्ञा पु. [सं. नयन + नि (प्रत्य.)] **नेत्रों में, आँखों में ।** उ.—सुत कुबेर के मत्त-मगन भए बिषै-रस नैननि छाए (हो)—१-७ ।

नैन-पटी—संज्ञा स्त्री. [सं. नयन+हिं. पट्टी] **आँख पर बाँधने की कपड़े की पट्टी ।** उ.—अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इन्द्रिय-कर्म-गटी । हौं तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी —१-६८ ।

नैनसुख—संज्ञा पुं. [हिं. नैन+सुख] **एक सूती कपड़ा ।**

नैना—संज्ञा पुं. [सं. नयन] **नेत्र, आँखें ।** उ.—(क) सूरदास उमँगे दोउ नैना, सिंधु-प्रवाह बह्यौ—१-२४७ । (ख) नैना तेरे जलज जीत हैं, खंजन तैं अति नाचैं—१०-७१८ ।

संज्ञा स्त्री.—**राधा की एक सखी का नाम ।** उ.—दर्वा, रंभा, कृष्ना, ध्याना मैना नैना रूप—१५८० ।

क्रि. अ. [हिं. नवना] **झुकना ।**

क्रि. स. [हिं. नवाना] **झुकाना ।**

नैनी—वि. [हिं. नैन] **नयनवाली ।** उ.—जा जल-युद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुन्दर सरसिज नैनी—६-११ ।

नैनूँ, नैनू—संज्ञा पुं. [सं. नवनीत] **मक्खन ।**

नैपुण्य—संज्ञा पुं. [सं.] **दक्षता, निपुणता ।**

नैमित्तिक—वि. [सं.] **जो निमित्तवश किया जाय ।**

नैमिष—संज्ञा पुं. [सं.] **नैमिषारण्य तीर्थ ।**

नैमिषारण्य—संज्ञा पुं. [सं.] **सीतापुर का एक तीर्थ ।**

नैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. नाव] **नाव, नौका ।**

नैर—संज्ञा पुं. [सं. नगर] (१) **नगर ।** (२) **जनपद ।**

नैरी—संज्ञा पुं. [सं. नगर, हिं. नैर] **नगरी, देश, जनपद ।** उ.—जाके घर की हानि होति नित, सो नहिं आनि कहै री । जाति-पाँति के लोग न देखति, और बसैहै नैरी—१०-३२४ ।

नैराश्य—संज्ञा पुं. [सं.] **निराशा का भाव ।**

नैऋ त—वि. [सं.] **नैऋति संबंधी ।**

संज्ञा पुं.—**पश्चिम-दक्षिण-कोण का स्वामी ।**

नैऋ ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पश्चिम और दक्षिण दिशाओं के बीच का कोण ।**

नैवेद्य—संज्ञा पुं. [सं.] **देव-अर्पित भोग ।** उ.- धूप-दीप-नैवेद्य साजि कै मंगल करै बिचारी—२५८७ ।

नैष्ठिक—वि. [सं.] **निष्ठावान ।**

नैसर्गिक—वि. [सं.] **प्राकृतिक, स्वाभाविक ।**

नैसा—वि. [सं. अनिष्ट] **बुरा, खराब ।**

नैसिक, नैसुक—वि. [हिं नेक] **थोड़ा, जरा सा ।**

नैसे—वि. [सं. अनिष्ट] **अनैसा, बुरा, खराब ।** उ.—(क) जो जिहिं भाव भजै, प्रभु तैसे । प्रेम बस्य दुष्टनि कौं नैसे—१०-३६१ । (ख) कहु राधा हरि कैसे हैं ? तेरे मन भाए की नाहीं, की सुंदर की नैसे हैं—१३०७

नैहर—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञाति, प्रा. णाति णाई=पिता+घर] **माता-पिता का घर, मायका, पीहर ।**

नैहौं—क्रि. स. [हिं. नाना] (१) **डालना, छोड़ना ।** (२) **पहनाना ।** उ.—और हार चौकी हमेल अब तेरे कंठ न नैहौं—१५५० ।

नोआ—संज्ञा पुं. [हिं. नोवना] **दुहते समय गाय के पिछले पैर बाँधने की रस्सी, बंधी ।**

नोइनी, नोई—संज्ञा स्त्री. [हिं. नोवना] **दुहते समय गाय के पैर में बाँधने की रस्सी, बंधी ।**

नोक—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **बहुत पतला छोर ।**

नोक-झोंक—संज्ञा स्त्री. [हिं. नोक+झोंक] (१) **ठाट-बाट ।** (२) **दर्प, आतंक ।** (३) **व्यंग्य, ताना ।** (४) **छेड़छाड़, झपट ।**

नोकत—क्रि. स. [हिं. नोकना] **लुब्धते हैं ।** उ.—रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोउ नोकत हैं ।

नोकना—क्रि. स.– **ललचना, गीधना, लुब्धना।**

नोखा—वि. [हिं. अनोखा] **अनूठा, विचित्र।**

नोखी—वि. स्त्री. [हिं. नोखी] **अनूठी, विचित्र।** उ.—कैसी बुद्धि रची है नोखी देखी सुनी न होइ—पृ० ३१३ (३०)।

नोखे—वि. [हिं. अनोखा] **अनोखे, अद्भुत, विचित्र।** उ.—तब वृषभानु-सुता हँसि बोली, हम पै नाहिं कन्हाइ। काहे कौं भकभोरत नोखे, चलहु न देउँ बताइ—६८२।

नोच—संज्ञा स्त्री. [हिं. नोचना] **लूट, खसोट।**

नोचना—क्रि. स. [सं. लुंचन] (१) **उखाड़ना।** (२) **नाखून से खरोंचना।** (३) **तंग करके ले लेना।**

नोचै—क्रि. स. [हिं. नोचना] **नोचता खरोंचता है।** उ.—सत्य जानि जिय, चित चेत आनि, तू अब नख क्यौं तन नोचै—१०३०-१०२।

नोचू—वि. [हिं. नोचना] (१) **नोचने-खसोटनेवाला।** (२) **माँग माँग कर या लेकर तंग करनेवाला।**

नोदन—संज्ञा पुं [सं.] (१) **प्रेरणा।** (२) **बैलों को हाँकने की छड़ी, औगी।** (३) **खंडन।**

नोन—संज्ञा पुं. [सं. लवण, हिं. लोन] **नमक।**

नोनचा—संज्ञा पुं. [हिं. नोन+छार] **लोनी जमीन।**

नोनहरामी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोन=नोन (फा. नमक) +अ. हराम+ई (प्रत्य.)] **नमक हरामपन, कृतघ्नता।**

वि.—**नमकहराम कृतघ्न।** उ.—जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोनहरामी—१-१४८।

नोना, नोनो—संज्ञा पुं. [सं. लवण, हिं. नोन] **लोना।**

वि.—(१) **नमकीन, खारा।** (२) **सलोना, सुंदर।**

नोनिया—वि. [हिं. नोन] **नमक बनानेवाला।**

नोनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नोना] **लोनी मिट्टी।**

वि. स्त्री.— (१) **नमकीन, खारी।** (२) **सलोनी।**

नोर, नोल—वि. [सं. नवल] **नया, नवीन।**

नोवत—क्रि. स. [हिं. नोवना] **दुहते समय रस्सी से गाय का पैर बाँधते हैं।** उ.—बछरा छोरि खरिक कौं दीन्हौं, आपु कान्ह तन-सुधि बिसराई। नोवत बृषभ निकसि गैयाँ गईं, हँसतसखाकहदुहत कन्हाई—७२०।

नोवना—क्रि. स. [सं. नद्ध, हिं. नहना] **दुहते समय रस्सी से गाय का पैर बाँधना।**

नोवै—क्रि. स, [हिं. नोवना] **दुहते समय रस्सी से गाय का पैर बाँधता है, नोवता है।** उ.—ग्वाल कहैं धनि जननि हमारी, सुकर सुरभि नित नोवै—३४७।

नोहर, नोहरा—वि. [हिं. मनोहर] **अनोखा, अद्भुत।**

नौंधराई, नौंधसाई, नौंधरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नामधराई] **बदनामी, निंदा, अपकीर्ति, बुराई।**

नौ—वि. [सं. नव] **जो दस से एक कम हो।**

मुहा.—नौ दो ग्यारह होना—**देखते-देखते भाग जाना।** नौ तेरह बताना—**टालटूल करना।**

वि.—**नया, नवीन।** उ.—जब लगि नहि बरषत व्रज ऊपर नौ घन स्याम सरीर—२७७१।

नौआ—संज्ञा पुं. [हिं नाऊ] **नाऊ, नाई, नापित।** उ.—रोवत देखि जननि अकुलानी दियौ तुरत नौआ कौं घुरकी—१०-१८०।

नौकर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **चाकर, दास, टहलुआ।** (२) **वैतनिक कर्मचारी।**

नौकरनी, नौकरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नौकर] **दासी।**

नौकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. नौकर] **चाकरी, सेवा।**

नौका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नाव।** उ.- मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवनपति राई—९-४२।

नौग्रही—संज्ञा स्त्री. [सं. नवग्रह] **हाथ का एक गहना जिसमें नौ रत्न जड़े रहते हैं।**

नौज—अव्य. [सं. नवद्य, प्रा. नवज्ज] (१) **ईश्वर न करे, ऐसा न हो।** (२) **न सही।**

नौजवान—वि. [फ़ा.] **नवयुवक।**

नौजवानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **युवावस्था।**

नौजा—संज्ञा पुं.[फा.लौज़](१) **बादाम।** (२) **चिलगोजा।**

नौटंकी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **नगाड़े के साथ चौबोले गाकर होनेवाला अभिनय।**

नौतन—वि. [सं. नूतन] **नया, नवीन।** उ.—नए गोपाल नई कुबिजा बनी नौतन नेह ठयौ—३३४७।

नौतम—वि. [सं. नवतम] (१) **बिलकुल नया।** (२) **ताजा।**

संज्ञा पं. [सं. नम्रता] **विनय, नम्रता।**

नौध—संज्ञा पुं. [सं. नव+हिं. पौधा] **नया पौधा।**

नौधा—वि. [सं नवधा] **नौ प्रकार की।** उ.—नौधा भक्ति दास रति मानै—३४४२।

नौनगा—संज्ञा पुं. [हिं. नौ+नग] **बाहु का एक गहना जिसमें नौ तरह के नग जड़े होते हैं।**

नौना—क्रि. श्र. [हिं. नवना] **झुकना, नवना।**

नौबढ़, नौबढ़िया, नौबढ़ुवा—वि. [सं. नव+हिं. बढ़ना] **जिसने हाल ही में उन्नति की हो।**

नौबत—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **बारी, पारी।** (२) **गति, दशा।** (३) **संयोग।** (४) **वैभव, उत्सव या मंगल-सूचक वाद्य (शहनाई और नगाड़े) जो पहर-पहर भर बजते हैं, समय-समय पर बजनेवाले बाजे।**

मुहा.—नौबत झड़ना (बजना)—(१) **आनंदोत्सव होना।** (२) **प्रताप की घोषणा होना।** नौबत बजावत—(१) **खुशी मनाता है।** उ.—निंदा जग उपहास करत, मग बंदीजन जस गावत। हठ, अन्याय अधर्म, सूर नित नौबत द्वार बजावत—१-१४१। (२) **प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा करता है।** नौबत बजा-कर (की टकोर)—**डंके की चोट पर, खुल्लमखुल्ला।**

नौबती—संज्ञा पुं. [हिं. नौबत] **नौबत बजानेवाला।**

नौमासा—संज्ञा पुं. [सं. नवमास] **गर्भ का नवाँ महीना।**

नौमि—पद [सं. नमामि] **मैं नमस्कार करता हूँ।**

नौमी—संज्ञा स्त्री. [सं. नवमी] **दोनों पक्षों की नवीं तिथि।** उ.—(क) नौमी-नेम भली विधि करै—६-५। (ख) नौमी नवसत साजिकै हरि होरी है—२४११।

नौरंग—संज्ञा पुं.—[हिं. औरंग](**औरंगजेब) का रूपांतर।**

नौरतन—संज्ञा पुं. [सं. नवरत्न] **'नौनगा' नामक गहना।**

संज्ञा स्त्री.—**नौ मसालों की चटनी।**

नौरोज—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **पारसियों के नव वर्ष का नया दिन।** (२) **त्योहार या उत्सव का दिन।**

नौल—वि. [सं. नवल] **नया, नूतन।**

नौलक्खा, नौलखा—वि. [हिं. नौ+लाख] **नौलाख का।**

नौलासी—वि. [देश.] **कोमल, मुलायम।**

नौशा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **दूल्हा, वर।**

नौशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **दुलहिन, नववधू।**

नौसत—संज्ञा पुं. [हिं. नौ+सात] **सोलह श्रृंगार।** उ.—नौसत साजे चली गोपिका गिरिवर पूजन हेत।

नौसर, नौसरा—संज्ञा पुं. [हिं. नौ+सर] **नौलड़ा हार।**

नौसिख, नौसिखिया, नौसिखुवा—वि. [सं. नवशिक्षित] **जिसने नया-नया ही कोई काम सीखा हो।**

नौहड़—संज्ञा पुं. [सं. नव+हिं. हाँड़ी] **नयी हाड़ी।**

न्यवछावार, न्यवछावरि, न्यवछावरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. निछावर] (१) **निछावर, वारा फेरा।**

मुहा.—न्यवछावर करति—**उत्सर्ग करती हैं, वारती हैं।** उ.—सूरदास प्रभु की छबि ब्रज ललना निरखि थकित तन-मन न्यवछावरि करति आनंद बर ते—२३५३। (२) **निछावर या वाराफेरा की वस्तु।** उ.—मुक्ति-मुक्ति न्यवछावरी पाई सूर सुजान—१० उ० ८। (३) **इनाम, नेग।**

न्यस्त—वि. [सं.] (१) **रखा हुआ।** (२) **छोड़ा-त्यागा हुआ।**

संज्ञा पुं.—**धरोहर या अमानत रूप में रखा हुआ।**

न्याइ, न्याउ—संज्ञा पु. [सं. न्याय] (१) **उचित या नियमानुकूल बात, नीति।** उ.—सूरदास वह न्याउ निबेरहु हम तुम दोऊ साहु—३३६८। (२) **दो पक्षों के बीच निर्णय, निष्पक्ष निश्चय।** उ.—कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि। न्याय कै नहिं खुनुस कीजै, चूक पल्लै बाँधि—१-१६६।

न्याति—संज्ञा स्त्री. [सं. ज्ञाति, प्रा. णाति] (१) **रीति, प्रणाली, ढंग।** उ.—बैठे नंद करत हरि पूजा, बिधिवत् औ बहु भाँति। सूर स्याम खेलत तैं आए, देखत पूजा न्याति—१०-२६०। (२) **जाति।** उ०—मधुकर कहा कारे की न्याति। ज्यौं जलमीन कमल मधुपन कौ छिन नहिं प्रीति खटाति—३१६८।

न्यान, न्याना—वि. [सं. अज्ञान] **नासमझ।**

न्याय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नीतियुक्त या उचित बात।** (२) **सत्-असत् का ज्ञान।** (३) **प्रमाण या तर्कयुक्त वाक्य।**

वि.—**न्यायी, नीतियुक्त व्यवहार करनेवाला।** उ.—तुम न्याय कहावत कमलनैन—१६७७।

न्यायकर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं.] **न्याय करनेवाला।**

न्यायतः—क्रि. वि. [सं.] (१) **न्यायानुसार**। (२) **ठीक-ठीक**।

न्याय-परता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **न्यायी होने का भाव**।

न्यायसंगत—वि. [सं.] **उचित, ठीक**।

न्यायाधीश—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रधान न्यायकर्त्ता**।

न्यायालय—संज्ञा पुं. [सं.] **अदालत, कचहरी**।

न्यायी—संज्ञा पुं. [सं. न्यायिन्] **न्याय शील**।

न्यायोचित—वि. [सं.] **उचित, ठीक**।

न्यार, न्यारा—वि. [सं. निर्निकट, प्रा. निन्निअड़, निन्नियर, पू. हिं. निन्यार, हिं. न्यारा] (१) **अलग, पृथक्, जो साथ न हो**। उ.—·········नाम सर्मिष्ठा तासु कुमारी। तासु देवयानी सौं प्यार। रहै न तासौं पल भर न्यार—६-१७४। (२) **जो पास न हो**। (३) **भिन्न, अन्य**। (४) **निराला, अनोखा**।

न्यारी—वि. [हिं. न्यारा] (१) **निराली, विलक्षण, अनोखी**। उ.—परम रुचिर मनि-कंठ किरनि-गन, कुंडल-मुकुट प्रभा न्यारी—१-६६। (२) **और ही, भिन्न, अन्य**। उ.—दूध बरा उत्तम दधिबाटी, गाल-मसूरी की रुचि न्यारी—१०-२२७। (३) **अलग, पृथक**। उ.—एक ही संग हम तुम सदा रहति, आजु ही चटकि तू भई न्यारी—१२००।

न्यारे—क्रि. वि. [हिं. न्यारा] (१) **दूर, अलग**। उ.—क्यौं दासी सुत कैं पग धारे ?·······। सुनियत हीन, दीन, बृषली-सुत, जाति-पाँति तैं न्यारे—१-२४२। (२) **और ही, अलग-अलग, भिन्न-भिन्न**। उ.—(क) बहुत भाँति मेवा सब मेरे षटरस ब्यंजन न्यारे—४६४। (ख) मथुरा के द्रुम देखियत न्यारे—२७८१।

न्यारो, न्यारौ—क्रि. वि. [हिं. न्यारा] (१) **दूर, पास नहीं**। उ.—न्यारो करि गयंद तू अजहूँ—२५८६। (२) **अलग, पृथक्**। उ.—पतित-समूह सबै तुम तारे, हुतौ जु लोक भरयौ। हौं उनतैं न्यारौ करि डारयौ, इहिं दुख जात मरयौ—१-१५। (३) **साथ में नहीं**। उ.—जाति-पाँति कुलहू तैं न्यारौ, है दासी कौ जायौ—२१-२४४। (४) **निराला, अनोखा**। उ.—कमल नैन काँधे पर न्यारो पीत बसन फहरात—२५३६।

न्याव—संज्ञा पुं. [सं. न्याय] (१) **आचरण नीति**। उ.—ऊधो, ताको न्याव है जाहि न सूझै नैन। (२) **उचित बात**। (३) **सत्-असत्-बुद्धि**। (४) **विवाद का निर्णय**।

न्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **रखना, स्थापना**। (२) **यथाक्रम लगाना, सजाना या प्रस्तुत करना**। (३) **धरोहर, थाती**। (४) **त्याग**। (५) **संन्यास**। (६) **देव-अंगों पर विशेष वर्णों का स्थापन**। उ.—मुद्रा न्यास अंग अँग भूषन पति-व्रत ते न टरौं—३०२७। (७) **रोग-बाधा-शान्ति के लिए अंगों पर हाथ रख कर मंत्र पढ़ना**।

न्यून—वि. [सं.] (१) **कम**। (२) **घट कर**। (३) **नीच**।

न्यूनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **कमी**। (२) **हीनता**।

न्योछावर—संज्ञा स्त्री. [हिं. निछावर] **निछावर**।

न्योतना—क्रि. स. [हिं. न्योता] **निमन्त्रित करना**।

न्योतनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. न्योतना] **खाना-पीना, दावत**।

न्योतहरी—संज्ञा पुं. [हिं. न्योता] **निमंत्रित व्यक्ति**।

न्योता—संज्ञा पुं. [सं. निमंत्रण] (१) **बुलावा**। (२) **भोजन का निमंत्रण**, (३) **दावत**। (४) **न्योते में दिया जाने वाला धन**।

न्योली—संज्ञा स्त्री. [सं. नली] **पेट के नलों को पानी से साफ करने की हठयोगियों की क्रिया**।

न्यौछावर—संज्ञा स्त्री. [हिं. निछावर] **निछावर, उत्सर्ग, वारा-फेरा, उतारा**। उ.—सूर कहा न्यौछावर करियै अपनैं लाल ललित लरखर पर—१०-६३।

न्यौति—क्रि. स. [हिं. न्योतना] **निमंत्रण देकर, बुलाकर**। उ.—जग्य-पुरुष गए बैकुंठ धामहिं जबै, न्यौति नृप प्रजा कौ तब हँकारयौ—४-११।

न्यौत्यौ—क्रि. स. [हिं. न्योतना] **न्योता दिया, निमंत्रित किया**। उ.—इच्छा करि मैं बाम्हन न्यौत्यौ, ताकौं स्याम खिझावै—१०-२४६।

न्हवाइ—क्रि. स. [हिं. नहलाना] **नहलाकर, स्नान करा कर**। उ.—जननी उबटि न्हवाइ (सिसु) क्रम सौं लीन्हें गोद—१०-४२।

न्हवायौ—क्रि. स. [हिं. नहलाना] **नहलाया, स्नान कराया**। उ.—जज्ञ कराइ प्रयाग न्हवायौ—६-८।

न्हवावत—क्रि. वि. [हिं. नहाना] **नहाते समय।** उ.—मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी। ....। काढ़त-गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुई लोटी—१०-१७५।

न्हाइ—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **नहा कर, स्नान करके।** उ.—रिषि कह्यौ, आवत हौं मैं न्हाइ—६-५।

न्हाउ—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **नहाओ, स्नान करो।** उ.—ग्रीषम कमल-बदन कुम्हिलैहैं, तजि सर निकट दूरि कित न्हाउ—६-३४।

न्हाएँ—क्रि. अ. सवि. [हिं. नहाना] **नहाने से, स्नान करने से।** उ.—जो सुख होत गुपालहिं गाएँ। सो सुख होत न जप तप कीन्हैं, कोटिक तीरथ न्हाएँ—२-६।

न्हात—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **स्नान करते-करते, नहाते नहाते।** उ.—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पांडव-अहित बिचारी। साकपत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी—१-१२२।

न्हान—संज्ञा पुं. [हिं. नहाना] **स्नान, नहान।** उ.—गौतम लख्यौ, प्रात है भयौ। न्हान काज सो सरिता गयौ—६-८।

न्हाना—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **स्नान करना।**

न्हावन—संज्ञा पुं. [हिं. नहाना] **स्नान, नहाना।** उ.—एक बार ताके मन आई। न्हावन काज तड़ाग सिधाई—६-१७४।

न्हावै—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **नहाता है।** उ.—मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै—२-१३।

न्हाहिं—क्रि. अ. [हिं. न्हाना] **नहाते हैं।** उ.—हंस उजल पंख निर्मल अंग मलि-मलि न्हाहिं—१-३३८।

न्हैये—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **नहाइए।** उ.—चलौ सबै कुरुच्छेत्र तहाँ मिलि न्हैये जाई—१० उ.—१०५।

प

प—**पवर्ग का पहला और हिंदी का इक्कीसवाँ व्यंजन; वह स्पर्श ओष्ठ्य वर्ण है।**

पंक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कीच, कीचड़।** उ.—कुंभकरन-तन पंक लगाई, लंक बिभीषन पाइ—६-८३। (२) **सुगंधित लेप।** उ.—स्याम अंग चंदन की आभा नागरि केसरि अंग। मलयज पंक कुमकुमा मिलि कै जल-जमुना इक रंग।

पंकज—संज्ञा पुं. [सं.] **कमल।**

वि.—**कीचड़ से उत्पन्न होनेवाला।**

पंकजराग—संज्ञा पुं. [सं.] **पद्मराग मणि।**

पंकजासन—संज्ञा पुं. [सं.] **ब्रह्मा।**

पंकजिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **कमलिनी।**

पंकरुह, पंकेरुह—संज्ञा पुं. [सं.] **कमल।** उ.—मनो मुख मृदुल पानि पंकेरुह गुरुगति मनहुँ मराल बिहंगा—१६०५।

पंकिल—वि. [सं.] **जिसमें कीचड़ हो।**

पंक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **पाँती, कतार।** (२) **भोज में साथ-साथ खानेवालों की पाँती।**

पंक्तिच्युत—वि. [सं.] **बिरादरी से निकाला हुआ।**

पंख—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष, प्रा. पक्ख] **पर, डैना, पक्ष।** उ.—हंस उज्जल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं—१-३३८।

मुहा.—पंख जमना—(१) **भाग जाने के लक्षण दीख पड़ना।** (२) **बुरे रास्ते पर जाने के रंग-ढंग दीख पड़ना।** (३) **अंत समय आया जान पड़ना।** पंख लगना—**बहुत वेगवान होना।**

पंखड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. पद्म] **फूल का दल।**

पंखा—संज्ञा पुं. [हिं. पंख] **बेना, बिजना।**

पँखिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंख] **फूल का दल, पंखुड़ी।**

पंखि, पंखी—संज्ञा पुं. [सं. पक्षी, पा. पक्खी, हिं. पंखी]

(१) **पक्षी, चिड़िया।** उ.—(क) हौं तौ मोहन के

बिरह जरी रे तू कत जारत रे पापी, तू पंखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत—२८४६। (ख) पंखी पति सबही सकुचाने चातक अनँग भरयो—२८६५। (२) **पतिंगा**। (३) **पंखुड़ी**

संज्ञा स्त्री. [हिं. पंखा] **छोटा पंखा**।

पंखुड़ा—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] **कंधे और बाँह का जोड़**।

पँखुड़ी, पंखुड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंख] **फूल का दल**।

पंग—वि. [सं. पंगु] (१) **लँगड़ा**। उ.—(क) पंछी एक सुहृद जानत हौं, करयौ निसाचर भंग। तातैं बिरमि रहे रघुनंदन, करि मनसा-गति पंग—६-८३। (ख) छोभित सिंधु, सेष सिर कंपित पवन भयौ गति पंग—६-१५८। (ग) सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग—६२७। (घ) भई गिरा-गति पंग—६४०। (२) **स्तब्ध, बेकाम**। उ०—नखसिख रूप देखि हरि जू के होत नयन-गति पंग—३०७६।

पंगत, पंगति—संज्ञा स्त्री. [सं. पंक्ति] **श्रेणी, पाँती, पंक्ति, कतार**। उ.—(क) कनक मनि मेखला राजत, सुभग स्यामल अंग। मनौ हंस अकास-पंगति, नारि-बालक-संग—६३३। (ख) कोउ कहति अलि-बाल-पंगति जुरी एक सँजोग—६३६। (ग) मनौ इंद्रबधून पंगति सोभा लागति भारि—६२१। (घ) चपला चमचमाति आयुध बग-पंगति ध्वजा अकार—२८२६। (२) (२) **साथ भोजन करनेवालों की पंक्ति**। (३) **भोज**। (४) **सभा, समाज**।

पंगल, पँगला—वि. [हिं. पंग] **लूला-लँगड़ा**।

पंगा—वि. [हिं. पंग] (१) **लंगड़ा**। (२) **बेकाम**।

पंगु, पंगुल— वि. [सं.] **जो पैर से चल न सकता हो, लँगड़ा**। उ.—जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै—१-१।

संज्ञा पुं. [सं.] **शनिदेव**।

पंच—वि. [सं.] **पाँच, चार और एक**।

संज्ञा पुं—(१) **पाँच या अधिक व्यक्तियों का समाज, जनता**।

मुहा.—पंच की भीख—**सर्वसाधारण का आशीर्वाद, जनता की कृपा**। उ.—(क) मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातौ—१-३०२। (ख) राज करैं वे धेनु तुम्हारी, नंदहिं कहति सुनाई। पंच की भीख सूर बलि मोहन कहति जसोदा माई—४५५। पंच की दुहाई—**समाज से धर्म या न्याय करने की पुकार**। पंच-परमेश्वर—**समाज का मत ईश्वर का वाक्य है**।

(२) **किसी बात का न्याय करने के लिए चुने गये पाँच या अधिक आदमी**।

पंचक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पाँच का समूह**। (२) **पाँच नक्षत्र जिनमें नये कार्य का करना मना है**।

पंचकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पाँच नारियाँ जो विवाहादि होने पर भी कन्यावत् मान्य हैं—अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी**।

पंचकवल—संज्ञा पुं. [सं.] **पाँच ग्रास जो भोजन के पूर्व निकाल दिये जाते हैं**।

पंचकाम—संज्ञा पुं. [सं.] **कामदेव के पाँच रूप—काम, मन्मथ, कंदर्प, मकरध्वज और मीनकेतु**।

पंचकोण—वि. [सं.] **जिसमें पाँच कोने हों, पँचकोना**।

पंचकोस, पंचकोश—संज्ञा पुं. [सं.] **काशी जो पाँच कोस लंबी-चौड़ी भूमि में बसी है**।

पंचकोसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंचकोस] **काशी की परिक्रमा**।

पंचगव्य—संज्ञा पुं. [सं.] **गाय से प्राप्त पाँच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोबर, और गोमूत्र**।

पंचगीत—संज्ञा पुं. [सं.] **श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के पाँच प्रकरण - वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषी गीत**।

पंचजन—संज्ञा पुं. [सं.] **एक असुर जो श्रीकृष्ण के गुरु संदीपन का पुत्र चुरा ले गया था। श्रीकृष्ण ने इसे मारा था और इसी की हड्डियों से उनका 'पांचजन्य' शंख बना था**।

पंचतत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पाँच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश**। (२) **मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन (वाम मार्ग)**।

पंचतपा वि. [सं. पंचतपस्] **पंचाग्नि तापनेवाला**।

पंचतरु—संज्ञा पुं. [सं.] **मंदार, परिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन**।

पंचता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **मृत्यु**।

पँचतोलिया—संज्ञा पुं. [हिं. पाँच+तोला] एक तरह का बहुत महीन या भीना कपड़ा।

पंचत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाँच का भाव। (२) मृत्यु।
मुहा.—पंचत्व (को) प्राप्त होना—मृत्यु होना।

पंचदश—वि. [सं.] दस और पँच, पंद्रह।

पंचदेव—संज्ञा पुं. [सं.] पाँच प्रधान देवता—आदित्य, रुद्र, विष्णु, गणेश और देवी।

पंचन—संज्ञा पुं. बहु [सं. पंच+हिं. न, नि] पंचों में।
उ.—साँची की झूठी करि डारैं, पंचन मैं मर्यादा जाइ —१३१६।

पंचनद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पंजाब की पाँच प्रधान नदियाँ—सतजल, व्यास, रावी, चनाब और झेलम। (२) उक्त नदियों का प्रदेश। (३) काशी का 'पंचगंगा' नामक तीर्थ।

पंचनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] बदरीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथ, रंगनाथ और श्रीनाथ।

पंचनामा—संज्ञा पुं. [हिं. पंच+नाम] पंचों का निर्णय।

पंचपात्र—संज्ञा पुं. [सं.] पूजा का एक पात्र।

पंचप्राण—संज्ञा पुं. [सं.] पाँच प्राण या वायु—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान।

पंचबटी—संज्ञा स्त्री. [सं. पंचवटी] दंडकारण्य का वह स्थान जहाँ सीता-हरण हुआ था।

पंचबाण, पंचबान—संज्ञा पुं. [सं. पंचबाण] कामदेव के पाँच बाण।

पंचभूत—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच प्रधान तत्व जिनसे सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

पंचम—वि. [सं.] (१) पाँचवाँ। (२) सुंदर। (३) निपुण।
संज्ञा पुं. (१) संगीत के सात स्वरों में पाँचवाँ। (२) एक राग।

पंच मकार—संज्ञा पुं. [सं.] मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन (वाम-मार्ग)।

पंचमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) किसी पक्ष की पाँचवीं तिथि। (२) एक रागिनी। (३) अपादान कारक।

पंचमुख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) सिंह।

पंचमुखी—वि. [सं. पंचमुखिन्] पाँच मुखवाला।

पँचमेल—वि. [हिं. पाँच+मेल] (१) पाँच या अधिक तरह की। (२) मिली-जुली। (३) साधारण।

पँचरंग, पंचरंगा—वि. [हिं. पाँच+रंग] (१) पाँच रंग का।
उ.—(क) पँचरंग सारी मँगाइ, बधू जननि पैहराइ—१०-९५। (ख) पगनि जेहरि लाल लहँगा अंग पँचरंग सारि—पृ. ३४४ (२६)। (२) रंग-बिरंगा।

पंच रत्न—संज्ञा पुं [सं.] पाँच रत्न—सोना, हीरा, नीलम, लाल और मोती।

पंचलड़ा—वि. [हिं. पाँच+लड़] पाँच लड़ों का।

पँचलड़ी, पंचलरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँच+लड़ी] पाँच लड़ों की माला।

पंचवटी—संज्ञा पुं. [सं.] दंडकारण्य का वह स्थान जहाँ श्रीराम वनवास-काल में रहे थे और जहाँ से सीता-हरण हुआ था।

पंचवाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम के पाँच बाण—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्माद। (२) काम के पाँच पुष्पबाण—कमल, अशोक, आम्र, नव-मल्लिका और नीलोत्पल। (३) कामदेव।

पंचशब्द—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंगलोत्सव में बजनेवाले पाँच बाजे—तंत्री, ताल, झाँझ नगारा और तुरही। (२) पाँच प्रकार की ध्वनि—वेदध्वनि, बंदीध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और निशानध्वनि।

पंचशर—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

पंचांग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाँच अंग। (२) तिथिपत्र।

पंचाक्षर—वि. [सं.] जिसमें पाँच अक्षर हों।
संज्ञा पुं.— एक शिव-मंत्र—ॐ नमः शिवाय।

पंचाग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तप जिसमें चारों ओर आग जलाकर धूप में बैठा जाता है।

पंचानन—वि. [सं.] जिसके पाँच मुख हों।
संज्ञा पुं.—(१) शिव जी। (२) सिंह।

पंचामृत—संज्ञा पुं. [सं.] दूध, दही, घी, चीनी और मधु मिलाकर बनाया गया पेय जिससे देवता को स्नान कराया जाता है।

पंचायत—संज्ञा स्त्री. [सं. पंचायतन] (१) पंचों की सभा। (२) पंचों का वाद-विवाद। (३) लोगों की बकवाद।

पंचायतन—संज्ञा पुं. [सं.] पाँच देव-मूर्तियों का समूह।

पंचायती—वि. [हिं. पंचायत] (१) **पंचायत का, पंचायत संबंधी** (२) **साझे का।** (३) **सब लोगों का।**

पंचाल—संज्ञा पुं. [सं.] **एक प्राचीन देश, द्रौपदी यहीं के राजा की पुत्री थी।**

पंचाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पांचाली, द्रौपदी।**

पंचाशिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पचास छंदवाला ग्रंथ।**

पंचौवर—वि. [हिं. पाँच + सं. आवर्त] **पांच तहवाला।**

पंछाला—संज्ञा पुं. [हिं. पानी + छाला] (१) **छाला, फफोला।** (२) **छाले या फफोले का पानी।**

पंछी—संज्ञा पुं. [सं. पक्षी] **पक्षी, चिड़िया, खग।** उ.—जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै। ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं—१-८६।

पंज—वि. [हिं. पाँच] **पाँच।**

पंछिनिपति—संज्ञा पुं. [सं. पक्षीपति] **पक्षियों का राजा, गरुड़।** उ.—सोई हरि काँधे कामरि, काछ किए नाँगे पाइनि गाइनि टहल करैं। त्रिभुवनपति दिसिपति नर-नारी-पति पंछिनिपति, रबि ससि जाहि डरैं—४५३।

पंजर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शरीर की हड्डियों का ढाँचा, ठठरी, कंकाल।** (२) **शरीर।** (३) **पिंजड़ा।** (४) **घेरा।** उ.—जब सुत भयो कहेउ ब्राह्मन ते अर्जुन गये गृह ताइ। सर-रोप्यो चहुँ दिसि ते जहाँ पवन नहिं जाइ—सारा. ८५१।

पँजरना—क्रि. अ. [हिं. पजरना] **जलना-बलना।**

पँजरी—संज्ञा स्त्री. [सं. पंजर] **अर्थी, टिकठी।**

पंजा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) **पांच का समूह।** (२) **हाथ की पांचों उँगलियों का समूह।**

मुहा—पंजा फैलाना (बढ़ाना)—**लेने का डौल लगाना।** पंजा मारना—**झपट्टा मारना।** पंजे झाड़कर चिपटना या पीछे पड़ना—**जी-जान से जुट जाना।**

(३) **हथेली का संपुट, चंगुल।** (४) **जूते का अगला भाग।** (५) **जुए का एक दाँव।**

मुहा.—छक्का-पंजा—**दांव-पेच, चालाकी।**

पंजीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँच+जीरा] **भुने आटे की मिठाई जो प्रसाद-रूप में बांटी जाती है।**

पंडर, पंडल—वि. [सं. पांडुर] **पीला, पांडु वर्ण का।** संज्ञा पुं. [सं. पिंड] **पिंड, शरीर।**

पंडा—संज्ञा पुं. [सं. पंडित] (१) **तीर्थ या मंदिर का पुजारी।** (२) **घाटिया।** (३) **रोटी बनानेवाला।**

पंडाल—संज्ञा पुं. [?] **सभा-मंडप।**

पंडित—वि. [सं.] (१) **विद्वान।** (२) **कुशल, चतुर।**

पंडिता—वि. स्त्री. [सं.] **विदुषी।**

पंडिताइन—संज्ञा स्त्री. [सं. पंडित] **पंडितानी।**

पंडिताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंडित + आई] (१) **विद्वता, पांडित्य।** (२) **चालाकी, कुशलता (व्यंग्य)।**

पंडिताऊ वि. [हिं. पंडित] **पंडितों के ढंग का।**

पंडितानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंडित] **पंडित की स्त्री।**

पंडु—वि. [सं.] (१) **पीला।** (२) **सफेद।**

पंडुक—संज्ञा. स्त्री. [सं. पांडु] **पिड़की, फाख्ता।**

पंडौ—संज्ञा पुं. [सं. पांडव] **पाँचों पांडव।**

पंथ—संज्ञा पुं. [सं. पथ] (१) **मार्ग, रास्ता, राह।** उ.—(क) मोंकौं पंथ बतायौ सोई नरक कि सरग लहौं—१-१५१। (ख) चलत पंथ कोउ था क्यो होई—३-१३। (२) **आचार-व्यवहार की रीति।** उ.—नहिं रुचि पंथ पयादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै—१-६०।

मुहा—पंथ गहना—(१) **चलने के लिए राह पर होना।** (२) **विशेष प्रकार का आचरण करना।** पंथ गहौ—**चलो, जाओ।** उ.—बिछुरत प्रान पयान करेंगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ—६-३३। पंथ दिखाना—(१) **मार्ग बताना।** (२) **धर्माचरण की रीति बताना या तत्संबंधी उपदेश देना।** पंथ देखना (निहारना)—**बाट जोहना, प्रतीक्षा करना।** पंथ निहारौं—**प्रतीक्षा करता हूँ, बाट जोहतो हूँ।** उ.—(क) तुमरो पंथ निहारौं स्वामी। कबहिं मिलौगे अंतर्यामी। (ख) मैं बैठी तुम पंथ निहारौं। आवौ तुम पै तन मन वारौं। पंथ में (पर) पाँव देना—(१) **चलना।** (२) **विशेष आचरण करना।** पंथ पर लगना—**रास्ते पर होना, चाल चलना।** किसी के पंथ लगना—(१) **किसी का अनुयायी होना।** (२) **किसी को तंग करना।** पंथ पर लाना (लगाना)—(१) **ठीक मार्ग पर लाना।** (२) **अच्छी चाल सिखाना।** (३) **अनुयायी बनाना।** पंथ सेना—

बाट जोहना, आसरा देखना। एक पंथ द्वै काज—एक कार्य करके अथवा एक रीति-नीति का निर्वाह करने से दोहरा लाभ होना। उ.—ज्ञान बुझाइ खबरि दै आवहु एक पंथ द्वै काज—२६२५।

(३) धर्म-मार्ग, संप्रदाय।

मुहा.—पंथ लेना—अनुयायी बनना। पंथ पर लाना (लगाना)—अनुयायी बनाना।

संज्ञा पुं. [सं. पथ्य] रोगी का हल्का भोजन।

पंथकि, पंथकी, पंथि,पंथिक, पंथी—संज्ञा पुं. [सं. पथिक] राही, पथिक। उ.—बीर बटाऊ पंथी हो तुम कौन देश तें आए—२६८३।

पंथान, पंथाना—संज्ञा पुं. [सं. पंथ] मार्ग।

पंथी—संज्ञा पुं. [सं. पंथिन्] किसी मत का अनुयायी।

पंद—संज्ञा स्त्री. [फा.] सीख, उपदेश

पँधलाना—क्रि. स. [देश.] बहलाना, फुसलाना।

पंपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दक्षिण की एक नदी और उसका निकटवर्ती ताल।

पंपासर—संज्ञा पुं. [सं.] दक्षिण की पंपानदी का निकटवर्ती ताल।

पँवर—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँव] खड़ाऊँ, पांवरी।

पँवरना—क्रि. अ. [सं. प्लव] (१) तैरना, पैरना (२) थाह लेना।

पँवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] प्रवेशद्वार, ड्योढ़ी। उ.—आतुर जाइ पँवरि भयो ठाढ़ो—२४६५।

पँवरिआ, पँवरिया—संज्ञा पुं. [हिं. पौरी] द्वारपाल, दरबान। उ.—(क) आतुर जाइ पँवरि भयौ ठाढ़ो कहो पँवरिआ जाइ—२४६५। (ख) सकल खग गन पैक पायक पँवरिया प्रतिहार—२७५५।(२) याचक।

पँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] द्वार, ड्योढ़ी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँव] खड़ाऊँ, पांवरी।

पँवाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. प्रवर] खूबबढ़ा-चढ़ाकर कही हुई कहानी। या बात।

पँवारना—क्रि. स. [सं. पवारण] हटाना, फेंकना।

पँवारे—क्रि. स. [हिं. पँवारना] हटाये, दूर किये। उ.—(क) बिंब पँवारे लाजही दामिनि द्युति थोरी–१८२१। (ख) बिंब पँवारे लाजहीं हरषत बरसत फूल—२०६५।

पंसारी—संज्ञा पुं. [सं. पण्यशाली] मसाला बेचनेवाला।

पंसासार—संज्ञा पुं [सं. पाशक+सारि] पासे का खेल।

पइअत—क्रि. स. [हिं. पाना] पाता हैं। उ.—जाको कहूँ थाह नहिं पइअत अगम अपार अगाधै—३२८४।

पइग—संज्ञा पुं. [हिं. पग] डग, कदम।

पइज—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैज] (१) प्रतिज्ञा (२) हठ।

पइठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैठ] (१) प्रवेश। (२) गति, पहुँच।

पइठना—क्रि. अ. [हिं. पैठना] प्रवेश करना, घुसना।

पइयै—क्रि. स. [हिं. पाना] पाइए, प्राप्त कीजिए। उ.–ऊधौ, चलौ बिदुर कैं जइयै। दुरजोधन के कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै—१-२३६।

पइसना—क्रि. अ. [हिं. पैठना] प्रवेश करना, घुसना।

पइसार—संज्ञा पुं. [हिं. पइसना] प्रवेश, पैठ।

पईठि—क्रि. अ. [हिं. पैठना] पैठकर। उ.—हारेहू नहिं हरत अमित बल बदन पयोठि पईठि—पृ. ३३४ (३६)।

पउँरि, पउँरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] ड्योढ़ी, द्वार।

पकड़—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रकृष्ट, प्रा. पक्कड़] (१) धरने, पकड़ने या ग्रहण करने का काम। (२) पकड़ने का ढंग। (३) हाथापाई। (४) दोष, भूल आदि निकालने की क्रिया।

पकड़ना—क्रि. स. [हिं. पकड़] (१) किसी चीज को धरना, थामना या ग्रहण करना। (२) बंदी बनाना। (३) कुछ करने न देना। (४) पता लगाना। (५) टोंकना, रोकना। (६) आगे बढ़े हुए के बराबर हो जाना। (७) लगकर फैलना। (८) धारण करना। (९) घेरना, छोपना, ग्रसना।

पकड़वाना—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] ग्रहण कराना।

पकड़ाना—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] थमाना, ग्रहण कराना।

पकना—क्रि. अ. [सं. पक्व, हिं. पक्का+ना] (१) कच्चा न रह जाना। (२) आँच से सीझना या चरना। (३) फोड़े-फुंसी का मवाद से भरना। (४)चौसर की गोटी का सब घर पार कर लेना। (५) सौदा पटना।

पकरन—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] पकड़ना, थामना, रोकना, छूना। उ.—कबहूँ निरखि हरि आपु छाहँ कौं, कर सौं पकरन चाहत—१०-११०।

पकरना—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़ना ।**

पकराए—क्रि. स. [हिं. पकड़ाना] **पकड़ने को प्रेरित किया, पकड़ाया ।** उ.—मोहन प्यारी सैन दे हलधर पकराए —२४४६ ।

पकरावै—क्रि. स. [हिं. पकड़वाना (प्रे.)] **पकड़वाता है, (दूसरे से) बंदी बनवाता है ।** उ.—द्रुपद-सुताहिं दुष्ट दुरजोधन सभा माहिं पकरावै—१-१२२ ।

पकरि—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़कर, थामकर, हाथ में लेकर ।** उ.—मिथ्याबाद आप-जस सुनि-सुनि, मूछहिं पकरि अकरतौ—१-८०३ ।

पकरिबे—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़ने (के लिए) गहने या ग्रहण करने (के उद्देश्य से) ।** उ.—मुख प्रतिबिंब पकरिबे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत—१०-१०२ ।

पकरिबैं—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़ने को ।** उ.—मनिमय कनक नंद कैं आँगन बिंब पकरिबैं धावत—१०-११० ।

पकरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाकर] **'पाकर' नामक वृक्ष ।**

पकरी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. पकड़ना] (१) **धारण की, अपनायी, पकड़ी ।** उ.—अधम समूह-उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी—१-१३० । (२) **इस तरह पकड़ी कि छूट न सके ।** उ.—(क) दुस्सासन अति दारुन रिस करि, केसनि करि पकरी—१-२५४ । (ख) मन-क्रम बचन नंदनंदन उर यह दृढ़ करि पकरी—३३६० ।

पकरै—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़ता है, (हाथ में) लेता है, ग्रहण करता है ।** उ.—जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै । तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै—१-११७ ।

पकरैगौ—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़ेगा, थामेगा, गहेगा ।** उ.—जो हरि-ब्रत निज उर न धरैगौ । तो को अस माता जु अपुन करि करे कुठाँव पकरैगौ—१-७५ ।

पकरयौ—क्रि. स. [हिं. पकड़ना] **पकड़ लिया, अधिकार में किया, बंदी बनाया ।** उ.—रिस भरि गए परम किंकर तब, पकरयौ छूटि न सकौं—१-१५१ ।

पकवान—संज्ञा पुं. [सं. पक्कान्न] **घी में तलकर बनाये गये खाद्य पदार्थ जो कई दिन तक खाये जा सकते हैं ।**

पकवाना—क्रि. स. [हिं. पकाना] **पकाने का काम कराना, पकाने को प्रवृत्त करना ।**

पकवान्ह—संज्ञा पुं. [हिं. पकवान] **पकवान ।** उ.—अन्न-कूट विधि करत लोग सब नेम सहित करि पकवान्ह—९१० ।

पकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पकाना] **पकाने की क्रिया, भाव या वेतन ।**

पकाए—क्रि. स. [हिं. पकाना] **आँच से तपा कर पका दिये ।** उ.—बिधि-कुलाल कीने काचे घट ते तुम आनि पकाए—३१९१

पकाना—क्रि. स. [हिं. पकाना] (१) **कच्चे फल आदि को पुष्ट या तैयार करना ।** (२) **आँच या गरमी से सिझाना या पक्का करना ।**

मुहा.—कलेजा पकाना—**जी जलाना ।**

(३) **फोड़े-फुंसी आदि को तैयार करना ।** (४) **सौदा कराना ।**

पकाव—संज्ञा पुं. [हिं. पकना] **पकने का भाव ।**

पकौड़ा, पकौरा, पकौड़ा,—संज्ञा पुं [हिं. पकौड़ा=पका +बरी, बड़ी] **घी या तेल में तली बेसन या पीठी की बड़ी ।** उ.—मूँग पकौरा पनौ पतबरा । इक कोरे इक भिजे गुरबरा—३९६ ।

पकौड़ी, पकौरी, पक्कौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पकौड़ा] **छोटा पकौड़ा ।** उ.—दधि, दूध, बरा, दहिरौरी । सो खात अमृत पक्कौरी—१०-१८३ ।

पक्का—वि. [सं. पक्क] (१) **पका हुआ ।** (२) **पूरा, पूर्णता को प्राप्त ।** (३) **पुष्ट, प्रौढ़ ।** (४) **साफ और ठीक ।** (५) **कड़ा और मजबूत ।** (६) **मंजा हुआ, अभ्यस्त ।** (७) **अनुभव प्राप्त, दक्ष ।** (८) **आँच पर पका हुआ ।** (९) **टिकाऊ, दृढ़ ।** (१०) **निश्चित, अटल ।** (११) **प्रमाणों से पुष्ट ।** (१२) **टकसाली, प्रामाणिक मानवाला ।**

पक्खर—वि. [सं. पक्क] **पक्का, पुख्ता ।**

पक्व—वि. [सं.] **पका हुआ, पक्का ।**

पक्वान्न—संज्ञा पुं. [सं.] **पकवान ।**

पक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **ओर, तरफ ।** (२) **भिन्न अंग, पहलू ।** (३) **भिन्न मत या विचार ।** (४) **अनुकूल**

प्रवृत्ति या स्थिति। (५) लगाव, संबंध। (६) सेना, फौज। (७) साथ का समूह। (८) सहायक, साथी (९) विवादियों का समूह। (१०) पक्षी का पंख। (११) तीर में लगा पंख। (१२) चांद मास के दो अर्द्ध विभाग। (१३) घर, गृह।

पक्षपात—संज्ञा पुं. [सं.] तरफदारी।

पक्षपाती—संज्ञा पुं. [सं.] तरफदार।

पक्षिराज—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़।

पक्षी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चिड़िया। (२) तरफदार।

पक्ष्म—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष्मन्] बरौनी।

पखंड—संज्ञा पुं. [सं. पाखंड] आडंबर, ढकोसला।

पखंडी—वि. [हिं. पखंड] आडंबर रचनेवाला।

पख—संज्ञा स्त्री. [सं. पक्ष, प्रा. पक्खु] (१) व्यर्थ की बढ़ाई हुई बात। (२) बाधक शर्त या नियम। (३) झगड़ा-बखेड़ा। (४) दोष, त्रुटि।

पखड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. पद्म] फूलों की पंखुड़ी।

पखराइ—क्रि. स. [हिं पखराना] घुलवाकर। उ.—चरन पखराइ कै सुभग आसन दियौ—२४६३।

पखराना—क्रि. स. [हिं. पखारना] धुलवाना।

पखरायौ—क्रि. स. [हिं. पखराना] धुलवाया। उ०—उत्तम विधि सौं मुख पखरायौ—६०६।

पखरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंखुड़ी] फूलों की पंखुड़ी।

पखवाड़ा, पखवारा—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष+वार, हिं. पखवारा] (१) चाँद-मास के दो विभागों में एक। (२) पंद्रह दिन का समय।

पखा—संज्ञा पुं. [हिं. पंखा] पक्ष, पंख पर।

पखाउज—संज्ञा पुं. हिं. पखावज] पखावज नामक बाजा। उ.—बीना झाँझ-पखाउज-आउज और राजसी भोग—६-७५।

पखान—संज्ञा पुं. [सं. पाषाण] पत्थर।

पखना, पखानो—संज्ञा पुं. [सं. उपाख्यान] कहावत, कहनावत। उ.—बालापन तै निकट रहत ही सुन्यौ न एक पखानो—३३६३।

पखारत—क्रि. स. [हिं. पखारना] धोते हैं, (जल से) स्वच्छ करते हैं। उ.—अपनौ मुख मसि-मलिन मंद मति, देखत दर्पन माहीं। ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाहीं—२-२५।

पखारना—क्रि. स. [सं. प्रक्षालन, प्रा. पक्खाड़न] धोना।

पखारि—क्रि. स. [हिं. पखारना] जल से धोकर। उ.—चरन पखारि लियो चरनोदक धनि-धान कहि दैत्यारी—२५८७।

पखारी—क्रि. स. [हिं. पखारना] जल से धोयी। उ.—(क) अरु अँचयो जल बदन पखारी—१०-२४१। (ख) नई दोहनी पोंछि-पखारी—११७६।

पखारे—क्रि. स. [हिं. पखारना] जल से धोये। उ.—स्यामहिं ल्याई महरि जसोदा तुरतहिं पाइँ पखारे—१०-२३७।

पखावज—संज्ञा स्त्री. [सं. पक्ष+वाद्य] एक बाजा।

पखावजी—संज्ञा पुं. [हिं. पखावज] पखावज बजानेवाला।

पखिया—वि. [हिं. पख] झगड़ालू, बखेड़िया।

पखी, पखीरी—संज्ञा पुं. [सं. पक्षी] पक्षी। उ.—की सुक सीपज की बग पंगति की मयूर की पीड पखीरी—१६२७।

पखुड़ी, पखुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पखड़ी] फूल की पंखुड़ी।

पखेरुआ, पकेरुवा, पखेरू—संज्ञा पुं. [सं. पक्षालु, प्रा० पक्खाडु, हिं. पखेरू] पक्षी, चिड़िया। उ.—ससा सियार अरु बन के पखेरू धृग धृग सबन करी—२७४१।

पखौआ, पखौवा, पखौटा—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] पंख। उ.—(क) मुख मुरली सिर मोर पखौआ बन-बन धेनु चराई—२६८४। (ख) मुख मुरली सिर मोर पखौआ गर घुँघुचीन को हार—१० उ०-११६।

पखौड़ा, पखौरा—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] कंधे की हड्डी।

पग—संज्ञा पुं. [सं. पदक, प्रा. पअक, पक] पैर, पाँव, डग।

मुहा—पग धारे—आये। उ. (क) गरुड़ छाँड़ि प्रभु पाँय पियादे गज-कारन पग धारे—१-२५। (ख) ध्रुव निज पुर को पुनि पग धारे—४-६। (ग) सूर तुरत मधुवन पग धारे धरनी के हितकारी—२५३३। पग पग पर—जरा-जरा सी दूर पर, हर स्थान पर, जहाँ जाय वहीं। उ.—दीन जन क्यौं करि आवै सरनु !······। पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै—१-४८। फूँकि पग धारौ—बहुत समझ-

बूझकर और सतर्कता से आओ । उ.—फूँकि फूँकि धरनी पग धारौ अब लागीं तुम करन अयोग—१४६७ ।

पगडंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पग+डंडी] **मदान में लोगों के चलने से बन जानेवाला पतला मार्ग** ।

पगडोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पग+डोरी] **पैर का बंधन** । उ.—जनु उड़ि चले विहंगम को गन कटी कठिन पग डोरी—१० उ०-५२ ।

पगड़ी—संज्ञा स्त्री.[सं. पटक, हिं. पाग+ड़ी] **सिर में बाँधने की पाग, साफा** ।

मुहा.—पगड़ी अटकना—**मुकाबला होना** । पगड़ी उछलना—**दुर्गति होना** । पगड़ी उछालना—(१) **दुर्गति बनाना** । (२) **हँसी उड़ाना** । पगड़ी उतरना—**अपमान होना** । पगड़ी उतारना—**अपमान करना** । पगड़ी बँधना—(१) **उत्तराधिकार मिलना** । (२) **अधिकार मिलना** । (३) **आदर मिलना** । पगड़ी बदलना—**मित्रता या नाता करना** । (किसी की) पगड़ी रखना—**इज्जत बचाना** । (किसी के आगे या सामने) पगड़ी रखना—**बहुत गिड़गिड़ाना** ।

पगतरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पग+तल] **जूता** ।

पगदासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पग+दासी] **जूता, खड़ाऊँ** ।

पगन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. पग] **पैर** । उ.—नगन पगन ता पाछै गयौ—६-२ ।

पगना—क्रि. अ. [सं. पाक] (१) **रस या चासनी लिपटना या सनना** । (२) **किसी के प्रेम में डूबना** ।

पगनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं.पग] **जूती** ।

पगरा—संज्ञा पुं. [हिं. पग+रा] **डग, कदम** ।

संज्ञा पुं. [फ़ा. पगाह=सबेरा] **प्रभात, सबेरा** ।

पगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पगड़ी] **पाग, पगड़ी** ।

पगरो—संज्ञा पुं. [हिं. पगरा], **पग, डग, कदम** । उ.—सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँड़हु दिए परत नहिं पगरो —१०३१ ।

पगला—वि. पुं. [हिं. पागल] **पागल** ।

पगहा—संज्ञा पुं. [सं. प्रग्रह, पा. पग्गह] **पघा, गिराँव** ।

पगा—संज्ञा पुं. [हिं. पाग] **पटका, दुपट्टा** । उ.—भँगा, पगा अरु पाग पिछौरी दाढ़िन को पहिराए ।

संज्ञा पुं. [सं. प्रग्रह, हिं. पघा] (१) **चौपायों के बाँधने का रस्सा, मोटी रस्सी** (२) । **अधीनता-सूचक बंधन** । उ.—तृन दसननि लै मिलु दसकंधर कंठहि मेलि पगा—६-११४ ।

संज्ञा पुं. [हिं. पगरा] **डग, कदम** ।

पगाना—क्रि. स. [सं. पक्व या हिं. पाक] (१) **पागने का काम कराना** । (२) **प्रेम म मग्न कराना** ।

पगार, पगारु—संज्ञा पुं. [सं. प्रकार] **गढ़, प्रासाद आदि के रक्षार्थ बनी चहारदीवारी** ।

संज्ञा पुं. [हिं. पग+गारना] (१) **वस्तु जो पैरों से कुचली जाय** । (२) **पैरों से कुचली मिट्टी या गारा** (३) **वह पानी या छिछली नदी जिसे पैदल ही चलकर पार किया जा सके** ।

पगाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **प्रभात, तड़का** ।

पगि—क्रि. अ. [हिं. पगना] (१) **अनुरक्त हुआ, प्रेम में डूबा, मग्न हुआ** । उ.—विषय-भोग ही मैं पगि रह्यौ । जान्यौ मोहिं और कहुँ गयौ—४-१२ । (२) **लीन हुए** । उ.—इहीं सोच सब पगि रहे, कहूँ नहीं निरबार—५८६ ।

पगिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पगड़ी] **पगड़ी** । उ.—(क) एते पर अँखियाँ रससानी अरु पगिया लपटानी—१६६७ । (ख) सिर पगिया बीरा मुख सोहै सरस रसीले बोल —२४१४ ।

पगु—संज्ञा पुं. [हिं. पग] **डग, कदम** ।

पगुराना—क्रि. अ. [हिं. पागुर] **पागुर करना** ।

पगे—क्रि. अ. [हिं. पगना] **अनुरक्त हुए** । उ.—अंग अंग अवलोकन कीन्हों कौन अंग पर रहे पगे—१३१८ ।

पघा—संज्ञा पुं. [सं. प्रग्रह] **पशु बाँधने की रस्सी** ।

पघिलना—क्रि. अ. [हिं. पिघलना] **पिघलना** ।

पघिलाना—क्रि. स. [हिं. पिघलना] **पिघलाना** ।

पघिलि—क्रि. अ. [हिं. पिघलना] **पिघलकर** । उ.—धोए छूटत नहीं यह कैसेहु मिलैं पघिलि है मैन—पृ. ३२३ (११) ।

पचएँ—वि. [हिं. पाँचवाँ] **पाँचवें, पाँचवें स्थान पर** । उ.—पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ै हैं —१०-८६ ।

पचगुना—वि. [सं. पंचगुण] **पाँच बार अधिक** या

पचड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. प्रपंच+ड़ा] (१) **झंझट, बखेड़ा, प्रपंच** । (२) **एक तरह का गीत** ।

पचत—क्रि. अ. [हिं. पचना] **दुखी होता है, हैरान होता है** । उ.—अपनौ मुख मसि-मलिन मंदमति, देखत दर्पन माहीं । ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाहीं—२-२५ ।

पचतूरा—संज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह का बाजा** ।

पचतोलिया—वि. [हिं. पाँच+तोला] **पाँच तोले का** ।

पचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पकने या पकाने की क्रिया या भाव** । (२) **अग्नि** ।

पचना—क्रि. अ. [सं. पचन] (१) **हजम होना** । (२) **नष्ट होना** । (३) **हैरान होना** । (४) **लीन होना** ।

पचपचाना—क्रि. अ. [अनु. पच] **पचपच करना** ।

पचमेल—वि. [हिं. पाँच+मेल] **कई तरह के मेल का** ।

पचरंग—संज्ञा पुं. [हिं. पाँच+रंग] **चौक पूरने की सामग्री—अबीर, हल्दी, बुक्का आदि** ।

पचरंग, पचरंगा—वि. [हिं. पाँच+रंग] (१) **कई रंगों का** । (२) **कई रंग के सूतों का** । (३) **कई रंगों से रँगा हुआ** ।

पचलड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँच+लड़ी] **पाँच लड़ियों की माला** ।

पचहरा—वि. [हिं. पाँच+हरा] (१) **पंचगुना** । (२) **पाँच तह का** ।

पचाना—क्रि. स. [हिं. पचना] (१) **आँच पर गलाना** । (२) **हजम करना** । (३) **नष्ट करना** । (४) **अवैध उपाय से ली वस्तु काम में लाना** । (५) **एक चीज को दूसरी में खपाना** ।

पचारना—क्रि. स. [सं. प्रचारण] **ललकारना** ।

पचास—वि. [सं. पंचाशत, प्रा. पंचासा] **चालीस और दस** । उ.—सहज पचास पुत्र उपजाएँ—६-८ ।

पचासक—वि. [हिं. पचास+एक] **लगभग पचास, पचासों** । उ.—कोई कहै बात बनाई पचासक, उनकी बात, जु एक—३४६४ ।

पचासा—संज्ञा पुं. [हिं. पचास] **पचास का समूह** ।

पचासों—वि. [हिं. पचास] (१) **कई पचास** । (२) **पचास से ज्यादा** ।

पचि—क्रि. अ. [हिं. पचना] **हैरान होकर, दुख सहकर** ।

मुहा.—रचि-पचि—**बड़ी कठिनाई से, हैरान होकर** । उ.—एक अधार साधु-संगति कौ, रचि पचि गति सचरी । याहू सौंज संचि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी—१-१३० ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **पाचन** । (२) **अग्नि** ।

पचित—वि. [सं.] **जड़ा हुआ, पच्ची किया हुआ** । उ.—हीरा लाल प्रबाल पिरोजा पंगति बहु मणि पचित पचावनो—२२८० ।

पचिबौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पचना] **सूखना या क्षीण होना, दुखी होना, हैरान होना** । उ.—रे मन छाँड़ि बिषय कौ रँचिबो । कत तू सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ । अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिबौ—१-५६ ।

पचिहौ—क्रि. अ. [हिं. पचना] **हैरान होगे, कष्ट सहोगे, परेशानी होगी** । उ.—मोकौं मुक्ति बिचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर-घरी । स्रम तैं तुम्हैं पसीना ऐहै, कत यह टेक करी ?—१-१३० ।

पची—क्रि. अ. [हिं. पचना] **हैरान हो गयी, दुखी हुई** । उ.—बाँधि पची डोरी नहिं पूरै । बार-बार खीझै, रिस झूरै—३९१ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पच्ची] **जड़ाव, जमावट, पच्ची** । उ.—(क) बिद्रुम फटिक पची परदा छबि लाल रंध्र की रेख—२५६१ । (ख) बिद्रुम स्फटिक पची कंचन खचि मनिमय मंदिर बने बनावत—१० उ.-५ ।

पचीसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पचीस] (१) **पचीस का समूह** । (२) **चौसर का एक खेल** । (३) **चौसर की बिसात** ।

पचौनी—संज्ञा स्त्री. [सं. पाचन] **पाचक, पाचन** ।

पचौर, पचौली—संज्ञा पुं. [हिं. पंच] **मुखिया, सरदार** ।

पच्चड़, पच्चर—संज्ञा पुं. [हिं. पच्ची] **काठ का पेबँद** ।

मुहा—पच्चर अड़ाना—**बाधा डालना** । पच्चर ठोंकना—**खूब तंग करना** । पच्चर मारना—**बनती बात पर भाँजी मारना** ।

पच्ची—संज्ञा स्त्री. [सं. पचित] (१) **ऐसी जड़ावट कि जड़ी गयी चीज तल से बिलकुल मिल जाय** । (२) **धातु के पदार्थ पर अन्य धातु के पत्तर की जड़ावट** ।

मुहा.—पच्ची हो जाना—**लीन हो जाना** ।

पच्चीकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पच्ची+फ़ा. कारी] **जड़ने या जमावट करने की क्रिया या भाव** ।

पच्छ—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] (१) **चिड़ियों या पक्षियों का डैना, पंख या पर** । उ.—(क) अद्भुत राम-नाम के अंक।·····। मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात—१-६० । (ख) मानौ पच्छ सुमेरहिं लागे उड़यौ अकासहिं जात—६-७४ । (२) **पक्ष, पखवारा** । उ.— (क) आठैं कृष्न पच्छ भादौं, महर के दधिकाँदौं —१०-३१ । (ख) कृष्न पच्छ रोहिनी अर्द्ध निसि हर्षन जोग उदार—१०-८६ ।

पच्छता, पच्छताई—संज्ञा स्त्री. [सं. पक्षपात] **तरफदारी** ।

पच्छि, पच्छी—संज्ञा पुं. [सं. पक्षी] **चिड़िया, पक्षी** । उ.—मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै । जैसैं उड़ि जहाज कौ पच्छी फिरि जहाज पर आवै—१-१६८ ।

पच्छिराज—संज्ञा पुं. [सं. पक्षी + राजा] **गरुड़** ।

पच्यौ—क्रि. अ. [हिं. पचना] **कष्ट सहा, हैरान हुआ** । उ.—मोसौं पतित न और गुसाईं । अवगुन मोपैं अजहुँ न छूटत, बहुत पच्यौ अब ताईं —१-१४७ ।

मुहा.—मरत पच्यौ—**हैरान होता है, जी तोड़ मेहनत करता है** । उ.—जौ रीझत नहिं नाथ गुसाईं तौ कत जात जँच्यौ । इतनी कहौ, सूर पूरौ दै, काहैं मरत पच्यौ—१-१७४ ।

पछ—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] **पंख** । उ.—सिखी वह नहिं, सिर मुकुट श्रीखंड पछ तड़ित नहिं पीत पट छवि रसाला —१६३१ ।

पछटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **तलवार** ।

पछड़ना—क्रि. अ. [हिं. पाछा] (१) **पछाड़ा जाना, हार जाना** । (२) **पिछड़ जाना, पीछे रह जाना** ।

पछताती—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछतावा करती** । उ.—जो तब साधि दीजतो कोऊ तो अब कत पछताती—३४१८ ।

पछताना—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछतावा करना** ।

पछतानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पछताना] **पछतावा** ।

पछताव—संज्ञा पुं. [हिं. पछतावा] **पछतावा** ।

पछतावना—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछतावा करना** ।

पछतावा—संज्ञा पुं. [सं. पश्चाताप, पा. पच्छाताव] **कोई बुरा या अनुचित काम करने के बाद होनेवाला दुख, अनुताप** ।

पछमन, पछमनौ—क्रि. वि. [हिं. पीछे] **पीछे की ओर** । उ.—धरि न सकत पग पछमनौ, सर सनमुख उर लाग —१-३२५ ।

पछरिहौं—क्रि. स. [हिं. पछाड़ना] **पछाड़ दूँगा, हराऊँगा** । उ.—केस गहे अरि कंस पछरिहौं—१०६१ ।

पछवाँ—वि. [सं. पश्चिम] **पश्चिम का** ।

पछाँह—संज्ञा पुं. [सं. पश्चिम] **पश्चिम का देश** ।

पछाड़, पछार—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाछा, पछाड़] **मूर्छित होकर गिरना** ।

मुहा.—परयौ खाइ पछार—**अचानक गिर पड़ना, बेसुध होकर खड़े से गिरना** । उ.—(क) अर्जुन स्रवत नैन जल धार । परयो धरनि पर खाइ पछार—१-२८६ । (ख) परति पछार खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन—३४२१ ।

पछाड़ना, पछारना—क्रि. स. [सं. प्रक्षालन, प्रा. पच्छाड़न] **साफ करने के लिए कपड़े को पटकना** ।

क्रि. स. [हिं. पाछा] **कुश्ती में पछाड़ना** ।

पछारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पछाड़] **मूर्छित होकर गिरना** ।

मुहा.—परी खाइ पछारि—**बेसुध होकर गिर पड़ना** । उ.—दासी बालक मृतक निहारि । परी धरनि पर खाइ पछारि—६-५ ।

पछारी—क्रि. स. [हिं. पछाड़ना] (१) **पटक-पटक कर** । उ.—सूरदास प्रभु सूर सुखदायक मारयौ नाग पछारी—२५६४ । (२) **मार दिया, वध किया** । उ.—सूरस्याम पूतना पछारी, यह सुनि जिय डरप्यौ नृपराई— १०-५१ ।

वि. [सं. प्रक्षालन, प्रा. पच्छाड़ना, हिं. पछोरना, पछोड़ना] **सूप आदि में रखकर और फटककर साफ की हुई, फटकी हुई** । उ.—मूँग, मसूर, उरद, चनदारी । कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३९६ ।

पछारै—क्रि. स. [हिं. पछाड़ना] **मार दे, वध करे** । उ.— खड़ग धरे आवै तुव देखत, अपनैं कर छिन माँह पछारै—१०-१० ।

पछारौं—क्रि. स. [हिं. पछाड़ना] **मार डालूं**। उ.—(क) कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि एकहिं एक पछारौं—६-१०८। (ख) रंगभूमि मैं कंस पछारौं, घीसि बहाऊँ बैरी—१०-१७६।

पछार्‌यौ—क्रि. स. [हिं. पछाड़ना] (१) **पटक दिया, गिराया**। उ.—हिरनाकुस प्रहलाद भक्त कौं बहुत सासना जार्‌यौ। रहि न सके, नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछार्‌यौ—१-१०६। (२) **मारा, वध किया**। उ.—(क) जोधा सुभट सँहारि मल्ल कुवलया पछार्‌यो—२६२५। (ख) भ्रम अरु केसी इहाँ पछार्‌यौ—३४०६।

पछावर, पछावरि—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) **एक तरह का पकवान**। (२) **छाछ का बना एक पेय**।

पछाहीं—वि. [हिं. पछाह] **पश्चिम देश का**।

पछिआना—क्रि. स. [हिं. पीछे+आना] **पीछा करना**।

पछिताइ—क्रि. अ. [हिं. पछतावा] **पश्चाताप करके, पछता कर**। उ.—सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ, नयन जल ढारौ—१-८०।

पछिताएँ—क्रि. अ. [हिं. पछताना।] **पछताने से, पश्चाताप करने से**। उ.—होत कहा अबके पछिताएँ, बहुत बेर बितई—१-२६६।

पछितात—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताती है**। उ.—चलत न फेंट गही मोहन की अब ठाढी पछितात—२५४१।

पछितान—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताना, पश्चाताप करना**।

प्र.—लाग्यौ पछितान—(क) **पछताने लगा, पश्चाताप करने लगा**। उ.—अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई को मार्‌यौ—१-१०१। (ख) सुरपति अब लाग्यौ पछितान—६-५। लागीं पछितान—**पछताने लगीं**। उ.—रिस ही मैं मोकौं गहि दीन्हौ, अब लागीं पछितान—३५५।

पछिताना—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछतावा करना**।

पछितानी—क्रि. अ. [हिं. पछिताना] **पछताने लगीं**। उ.—(क) तेहिनि चितै रही जसुमति तन, सिर धुनि धुनि पछतानी—३६५। (ख)मधुकर प्रीति किए पछतानी—३३५६।

पछितानैं—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताने से, पश्चाताप करने से**। उ.- स्रंगी यह कीन्हौ बिनु जानैं। होत कहा अब के पछितानैं—१-२६०।

पछितानौ, पछितान्यौ—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताया, पश्चाताप किया**। उ.—(क) बिरध भएँ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितान्यौ। १-३२६। (ख) मथुरापति जिय अतिहिं डरान्यौ। सभा माँझ असुरनि के आगैं, सिर धुनि धुनि पछितान्यौ—१०-६०।

पछितायौ—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताया, पश्चाताप किया**। उ.— रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ—१-५८।

संज्ञा पुं.—**पश्चाताप, पछतावा**। उ.—रह्यौ मन सुमिरन कौ पछितायौ—१-६७।

पछिताव—संज्ञा पुं. [हिं. पछितावा] **पश्चाताप**।

पछितावहि—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताती है**। उ.—पावति नहीं स्याम बलरामहिं, ब्याकुल ह्वै पछतावति—४५६।

पछितावन—संज्ञा पुं. [हिं. पछतावा] **पछतावा**।

प्र०—लागी पछितावन—**पछताने लगीं, पश्चाताप करने लगी**। उ.— पिछली चूक समुझि उर अंतर अब लागी पछितावन—३१०१।

पछितावा—संज्ञा पुं. [हिं. पछितावा] **पछतावा, पश्चाताप**। उ.—मोहिं भयौ माखन पछितावौ, रीती देखि कमोरि—१०-२८६।

पछितैए—क्रि अ. [हिं. पछिताना] **पश्चाताप कीजिए**। उ.—कीजै कहा कहत नहिं आवै सोचि हृदय पछितैए—३२६८।

पछितैया—क्रि. अ. [हिं. पछिताना] **पछताते हैं**। उ.—सूरदास प्रभु की यह लीला हम कत जिय पछितैया—४२८।

पछितैहौ—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पछताओगे, पश्चाताप करोगे**। उ.—सूरदास अवसर के चूकैं, फिरि पछितैहौ देखि उघारी—१-२४८।

पछियाव—संज्ञा पुं. [सं. पश्चिम+हिं. आना] **पश्चिम से आनेवाली हवा, पछुआ हवा।**

पछिला—वि. [हिं. पिछला] **पीछे का, पिछला।**

पछिले—वि. [हिं. पिछला] **पिछले, पहले के, विगत, पूर्व के।** उ.—पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे—१-६१।

पछेलना—क्रि. स. [हिं. पीछे] **पीछे छोड़ देना।**

पछेला – संज्ञा पुं. [हिं. पाछ+एला] **हाथ का एक गहना।**

पछेलिया, पछेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पछेला] **हाथ का एक गहना।**

पछोड़ना, पछोरना क्रि. स. [सं. प्रक्षालन, प्रा. पच्छाड़न, हिं. पछोड़ना] **सूप आदि से फटककर अनाज इत्यादि साफ करना।**

मुहा.—फटकना-पछोड़ना – **अच्छी तरह परीक्षा करना।**

पछोड़ी, पछोरी—क्रि. स. [हिं. पछोड़ना] **सूप में रखकर और फटककर साफ की।**

मुहा.—फटकि पछोरी—**अच्छी तरह परीक्षा की।** उ.—सूर जहाँ लौं स्याम गात हैं, देखे फटकि पछोरी।

पछोड़े, पछोरे—क्रि. स. [हिं. पछोड़ना] **सूप में फटककर साफ किये।** उ.—कहौ कौन पै कढ़ै कनूका भुस की रास पछोरे।

मुहा.—फटकि पछोरे—**अच्छी तरह परीक्षा की।** उ.—तुम मधुकर निर्गुन निज नीके देखे फटकि पछोरे—३१००।

पछयावर – संज्ञा स्त्री. [देश.] **एक तरह की शिखरन।**

पजर—संज्ञा पुं. [सं. प्रक्षरण] **चूने-टपकने की क्रिया।**

पजरत—क्रि. अ. [हिं. पजरना] **जलता है, दहकता है, सुलगता है।** उ. – भयौ पलायमान दानवकुल, ब्याकुल, सायक-त्रास। पजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास—६-८३।

पजरना—क्रि. स. [सं. प्रज्वलन] **दहकना, सुलगना।**

पजरि—क्रि. अ. [हिं. पजरना] **दहक या सुलग कर।** उ.—पजरि पजरि तनु अधिक दहत है सुनत तिहारे बैन।

पजरे—क्रि. अ. [हिं. पजरना] **जले, दहके, सुलगे।**

वि.—**जले हुए।** उ.—बचन दुसह लागत अति तेरे ज्यों पजरे पर लौन—३१२२।

पजारना—क्रि. स. [हिं. पजरना] **दहकाना, सुलगाना।**

पजारे—क्रि. स. [हिं. पजारना] **जलाया, फूँक दिया।** उ.—बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहै लोइ —६-६६।

पटंबर—संज्ञा पुं. [सं. पाटंबर] **रेशमी वस्त्र।** उ.—किंकिन नूपुर पाट पटंबर, मनौ लिये फिरै घर-बार—१-४१।

पट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वस्त्र, कपड़ा।** उ.—(क) हम तन हेरि चितै अपनौ पट देखि पसारहिं लात—३२८३। (ख) भरि भरि नैन ढारति है सजल करति अति कंचुकि के पट—३४६२। (२) **परदा।** (३) **कागज, लकड़ी या धातु का टुकड़ा।**

संज्ञा पुं. [सं. पट्ट] (१) **द्वार का किवाड़।** (२) **सिंहासन।**

संज्ञा पुं. [देश.] **टाँग।**

वि.—**चित का उल्टा, औंधा।**

क्रि. वि.—**तुरंत, फौरन।**

[अनु.] **टप-टप की ध्वनि।**

पटक—संज्ञा स्त्री. [हिं. पटकना] (१) **पटकने की क्रिया या भाव।** (२) **डंडी, छड़ी।**

पटकत—क्रि. अ. [हिं. पटकना] **'पट' शब्द के साथ चटकता है।** उ.—(क) पटकत बाँस, काँस, कुस ताल—५६४। (ख) पटकत बाँस, काँस कुस चटकत ६१५।

क्रि. वि.—**पटकते ही**—पटकत सिला गई आकासहिं—१०-४।

पटकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. पटकना] (१) **पटकने की क्रिया या भाव।** (२) **छड़ी।** (३) **चपत, तमाचा।**

पटकना—क्रि. स. [सं. पतन+करण] (१) **जोर से गिराना।** (२) **दे मारना।**

क्रि. अ.—(१) **सूजन कम होना।** (२) **गेहूँ, चने आदि का भीगने के बाद सूखकर सिकुड़ना।** (३) **'पट' शब्द के साथ फटना या दरकना।**

पटकनिया, पटकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पटकना] (१) **पट-**

कने या पटके जाने की क्रिया या भाव। (२) पछाड़।

पटका—संज्ञा पुं. [सं. पट्टक] **दुपट्टा, कमरबंद**।

पटकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जुलाहा**। (२) **चित्रकार**।

पटकि—क्रि. स. [हिं. पटकना] (१) **पटककर, जोर से गिराकर**। उ.—भई पैज अब हीन हमारी, जिय मैं कहै बिचारि। पटकि पूँछ, माथौ धुनि लोटै, लखी न राघव-नारि—६-७५। (२) **झुकाकर**। उ.—ज्यों कुजुवारि रस बींधि हारि गथु सोचतु पटकि चिती—१० उ.—१०३।

पटके—क्रि. स. [हिं. पटकना] **झटका देकर गिराये, पटक-पटक कर मारे**। उ.—कंस सौंह दै पूछिये जिन पटके सात—११३७।

पटक्यो—क्रि. स. [हिं. पटकना] **दे मारा, जोर से गिराया**। उ.—पटक्यो भूमि फेरि नहिं मटक्यो लीन्हें दंत उपारी—२५६४।

पटच्चर—संज्ञा पुं. [सं.] **पुराना वस्त्र या कपड़ा**।

पटड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. पटरा] **पटरा**।

पटड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पटरा] **पटरी**।

पटतर—संज्ञा पुं. [सं. पट्ट=पटरी+तल=पटरी के समान चौरस=बराबर] (१) **समता, तुलना, बराबरी, समानता**। उ.—केसर-तिलक-रेख अति सोहै। ताकी पटतर कौं जग को है—३-१३। (२) **उपमा, सादृश्य**। उ.—ग्रीवकर परसि पग पीठि तापर दियो उर्बसी रूप पटतरहिं दीन्ही—२५८८।

वि.—(१) **तुल्य, सदृश, बराबर**। उ.—खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन—१३४६। (२) **चौरस, समतल**।

पटतरना—क्रि. अ. [हिं. पटतर] **उपमा देना**।

पटतारना—क्रि. स. [हिं. पटा+तारना] **वार करने के लिए भाले आदि को सँभालना**।

क्रि. स. [हिं. पटतर] **जमीन चौरस करना**।

पटतारा—क्रि. स. [हिं. पटतारना] **वार करने को हथियार सँभाला**। उ.—रथ तैं उतरि, केस गहि राजा, कियौ खड्ग पटतारा—१०-४।

पटताल—संज्ञा पुं. [सं. पट्ट+ताल] **मृदंग का एक ताल**।

पटधारी—[illegible]। [सं.] **जो कपड़ा पहने हो**।

संज्ञा पुं.—**तोशाखाने का अधिकारी**।

पटना—क्रि. अ. [हिं. पट] (१) **गड्ढे आदि का भरना**। (२) **खूब भर जाना**। (३) **खुली जगह पर छत बनना**। (४) **विचार या मन मिलना**। (५) **सौदा तय हो जाना**। (६) **(ऋण) चुकता होना**।

पटपट—संज्ञा स्त्री. [अनु. पट] **'पट' शब्द होना**।

क्रि. वि.—**'पट' ध्वनि करता हुआ**।

पटपटात—क्रि. अ. [हिं. पटपटाना (अनु.)] **पटपटाकर, 'पटपट' की ध्वनि करके**। उ.—जबहिं स्याम तन अति बिस्तार्‌यौ। पटपटात टूटत अँग जान्यौ, सरन-सरन सु पुकार्‌यौ—५५६।

पटपटाना—क्रि. अ. [हिं. पटकना] (१) **बुरा हाल होना**। (२) **'पटपट' ध्वनि होना**। (३) **शोक करना**।

क्रि. स.—**'पटपट' शब्द उत्पन्न करना**।

पटपर—वि. [हिं. पट+पर] **चौरस, समतल**।

पटबीजना—संज्ञा पुं. [हिं. पट+बिज्जु] **जुगनू, खद्योत**।

पटरा—संज्ञा पुं. [सं. पटल] **काठ का सलोतर तख्ता**।

मुहा.—पटरा कर देना—(१) **मार-काटकर बिछा देना**। (२) **चौपट या तबाह कर देना**। पटरा होना—**नष्ट हो जाना**।

पटरानि, पटरानी—संज्ञा स्त्री. [सं. पट्ट+रानी] **मुख्य रानी जो सिंहासन पर बैठने की अधिकारिणी हो**। उ.—जा रानी कौं तू यह दैहै। ता रानी सेंती सुत ह्वैहै। पटरानी कौं सो नृप दियौ—६-५।

पटरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पटरा] (१) **काठ का छोटा सलोतर टुकड़ा**।

मुहा.—पटरी बैठना—(१) **मन मिलना, मित्रता होना**।

(२) **लिखने की पाटी**। (३) **सुनहरे-रुपहले तारों का फीता**। (४) **चौड़ी चूड़ी**। (५) **चौकी, ताबीज**।

पटल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **छान, छप्पर**। (२) **पर्दा**। (३) **तह, परत**। (४) **लकड़ी का चौरस टुकड़ा**। (५) **टीका**। (६) **समूह, ढेर**।

पटली—संज्ञा स्त्री. [हिं. पटरी] **पटरी**। उ.—पटली बिच बिद्रुम लगे हीरा लाल खचावनो—२२८०।

पटका—संज्ञा पुं. [सं. पाट] रेशम या सूत के फुँदने आदि गूँथने वाला, पटहार।

पटवाद्य—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का बाजा।

पटवाना—क्रि. स. [हिं. पटना] (१) पाटने को प्रवृत्त करना। (२) सिंचवाना। (३) चुकता करा देना।

क्रि. स.—पीड़ा या कष्ट मिटाना।

पटवारी—संज्ञा पुं. [सं. पट्ट+हिं. वार] जमीन के लगान का हिसाब रखनेवाला कर्मचारी।

संज्ञा स्त्री. [सं. पट+वारी] कपड़े पहनानेवाली दासी।

पटवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तंबू खेमा। (२) वस्त्र को सुगंधित करनेवाली वस्तु। (३) लहँगा।

पटह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नगाड़ा। उ.—डिमडिमी पटह ढोल डफ बीना मृदंग उपंग चंग तार—२४४६। (२) बड़ा ढोल।

पटा—संज्ञा पुं. [सं. पट] लोहे की लंबी पट्टी जिससे तलवार के वार की काट सीखी जाती है।

संज्ञा पुं. [सं. पट्ट] (१) पीढ़ा, पटरा।

मुहा—पटाफेर—विवाह की एक रीति जिसमें वर-वधू के आसन बदल दिये जाते हैं। पटा बँधाना—पटरानी बनाना। उ.—चौदह सहस तिया मैं तोकौं पटा बँधाऊँ आजु—६-७६।

(२) सनद, अधिकारपत्र, पट्टा।

संज्ञा पुं. [हिं. पटना] लेन-देन, सौदा।

पटाक—[अनु.] छोटी चीज के गिरने का शब्द।

पटाका, पटाखा—संज्ञा पुं. [हिं. पट] (१) पट या पटाक शब्द। (२) एक तरह की आतिशबाजी।

पटाक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाटक में दृश्य की समाप्ति पर गिरनेवाला परदा। (२) घटना की समाप्ति।

पटाना—क्रि. स. [हिं. पट] (१) पाटने का काम कराना। (२) छत आदि बनवाना। (३) ऋण अदा करना। (४) मूल्य तय करना।

क्रि. अ.—शांत होकर बैठ रहना।

पटापट—क्रि. वि. [अनु.] 'पटपट' ध्वनि के साथ।

पटापटी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चित्र-विचित्र वस्तु।

पटाव—संज्ञा पुं. [हिं. पाटना] (१) पाटने की क्रिया या भाव। (२) पटा हुआ स्थान।

पटिआ, पटिया—संज्ञा स्त्री. [सं. पट्टिका] (१) चपटा और चौरस पत्थर। (२) खाट या पलँग की पाटी। (३) माँग-पट्टी। उ.—(क) मुंडली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि—३०२६। (ख) वे मोरे सिर पटिया पारैं कंथा काहि उढ़ाऊँ—३४६६। (४) लिखने की पट्टी, तख्ती।

पटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पट्टी] (१) पट्टी, कपड़े की धज्जी जो घाव या अन्य किसी स्थान पर बाँधी जाय। उ.—अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इंद्रिय-कर्म-गटी। हौं तित ही उठि चलति कपटि लगि बाँधे नैन-पटी—१-६८। (२) पटका, कमरबंद। (३) परदा। (४) नाटक का परदा। (५) लिखने की पट्टी, तख्ती। उ.—यह चतुराई अधिकाई कहाँ पाई स्याम वाके प्रेम की गढ़ि पढ़े हौ पटी—२००८।

पटीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंदन। (२) बटवृक्ष।

पटीलना—क्रि. अ. [हिं. पटाना] (१) समझा-बुझाकर अपने ढंग पर लाना। (२) प्राप्त करना। (३) ठगना। (४) मारना-पीटना। (५) नीचा दिखाना। (६) पूर्ण या समाप्त करना।

पटु—वि. [सं.] (१) चतुर। (२) कुशल। (३) छली-फरेबी। (४) निष्ठुर। (५) सुंदर।

पटुआ—संज्ञा पुं. [सं. पाट] (१) पटसन। (२) पटुहार।

पटुका—संज्ञा पुं. [सं. पटिका] (१) कमरबंद। (२) चादर।

पटुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दक्षता। (२) चालाकी।

पटुली—संज्ञा स्त्री. [सं. पट्ट] (१) झूला झूलने की पटरी। उ.—पटुली लगे नग नाग बहुरंग बनी डांडी चारि—२२७८। (२) चौकी।

पटूका—संज्ञा पुं. [हिं. पटका] दुपट्टा, कमरबंद।

पटेबाज—संज्ञा पुं. [हिं. पटा+फ़ा. बाज] पटा खेलनेवाला।

पटेल—संज्ञा पुं. [हिं. पट्टा+वाला] चौधरी, मुखिया।

पटेलना—क्रि. स. [हिं. पटीलना] पटीलना।

पटोर—संज्ञा पुं. [सं. पटोल] रेशमी वस्त्र।

पटोरी—संज्ञा स्त्री. [सं. पाट+ओरी (प्रत्य.)] रेशमी साड़ी। उ.—(क) अंग मरगजी पटोरी राजति छबि

निरखत रीझत ठाढ़े हरि—१२३२ । (ख) जाइ श्रीदामा लै आवत तब दै मानिनि बहु भाँति पटोरी—२४४५ ।

पटोल—संज्ञा पुं. [सं.] **रेशमी कपड़ा ।**

पटोलक—संज्ञा पुं. [सं.] **सीपी, सुक्ति ।**

पटोलै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. पटोल] **रेशमी वस्त्र से ।** उ.—जाकैं मीत नंदनंदन से, ढकि लइ पीत पटोलै । सूरदास ताकौ डर काकौ, हरि गिरिधर के ओलै—१-२५६ ।

पटौनी—संज्ञा पुं. [देश.] **मल्लाह, माँझी ।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. पटना] **पटने का भाव या कार्य ।**

पट्ट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पटरा, पाटा ।** (२) **पट्टी, तख्ती** (३) **किसी वस्तु या धातु की चिपटी पट्टी ।** (४) **कपड़े की धज्जी ।**

वि. [सं.] **मुख्य, प्रधान ।**

पट्टदेवी—संज्ञा पुं. [सं.] **पटरानी ।**

पट्टन—संज्ञा पुं. [सं.] **बड़ा नगर ।**

पट्टमहिषी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पटरानी ।**

पट्टराज्ञी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पटरानी ।**

पट्टा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अधिकार पत्र ।** (२) **चमड़े की धज्जी या पट्टी** (३) **हाथ का एक गहना ।**

पट्टी—संज्ञा स्त्री. [सं. पट्टिका] (१) **तख्ती, पटिया ।** (२) **उपदेश ।** (३) **भुलावा,** (४) **धातु, कागज या कपड़े की धज्जी ।** (५) **एक मिठाई ।** (६) **पंक्ति, कतार ।** (७) **माँग के दोनों ओर की पटियाँ ।** (८) **भाग, हिस्सा ।**

पट्टू—संज्ञा पुं. [हिं. पट्टी] **एक मोटा ऊनी कपड़ा ।**

पट्ठमान—वि. [सं. पठ्यमान] **पढ़ने योग्य ।**

पट्ठा—संज्ञा पुं. [सं. पुष्ट, प्रा. पुट्ठ] (१) **जवान, तरुण ।** (२) **सिखाया हुआ नया कुश्तीबाज ।** (३) **सुनहरा-रुपहला गोटा ।**

पठई—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजी, पठाई ।** उ.—(क) घर पठई प्यारी अंकम भरि—१२३२ । (ख) अतिहिं निठुर पतियाँ नहिं पठई काहू हाथ सँदेस - २७५३ ।

पठए—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजे ।** उ.- मेरी देह छुटत जम पठए जितक दूत घर मौं—१-१५१ ।

पठक—संज्ञा पुं. [सं.] **पढ़नेवाला ।**

पठन—संज्ञा पुं. [सं.] **पढ़ना, पढ़ने की क्रिया ।**

पठनीय—वि. [सं.] **पढ़ने योग्य ।**

पठनेटा—संज्ञा पुं. [हि. पठान+एटा] **पठान का बेटा ।**

पठयौ—क्रि. स. [हिं. पठाना] **पठाया, भेजा ।** उ.—(क) परतिज्ञा राखी मन-मोहन, फिरि तापैं पठयौ—१-३८ । (ख) दुरबासा दुरजोधन पठयौ पांडव-अहित बिचारी —१-१२२ ।

पठवत—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजते हैं ।** उ.—काहे को लिखि पठवत कागर—२६८० ।

पठवन—क्रि. स.[हिं. पठाना] **भेजना, पठावा ।** उ.—कहत पठवन बदरिका मोहिं, गूढ़ ज्ञान सिखाइ—३-३

पठवना—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजना, पठाना ।**

पठवहु—क्रि. स. [हिं.पठाना] **भेजो, प्रस्थान कराओ, पठाओ ।** उ.—मेरी बेर क्यों रहे सोचि ? काटि कै अघ-फाँस पठवहु, ज्यौं दियौ गज मोचि—१-१९९ ।

पठवाना - क्रि. स. [हिं. पठाना] **भिजवाना ।**

पठवै—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजेगा, पठावेगा ।** उ.—कंसहिं कमल पठाइहै, काली पठवै दीप—५८६ ।

पठाइहै—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजेगा, पठावेगा ।** उ.—कंसहिं कमल पठाइहै, काली पठवै दीप—५८६ ।

पठाईं—क्रि. स. स्त्री. [हिं. पठाना] **भेजीं, भेज दीं ।** उ.—मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्यौसार पठाईं—९-१२४ ।

पठाई—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजी, पहुँचा दी ।** उ.—बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई —१-३ ।

पठाए—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजे ।** उ.—सहस सकट भरि ब्याल पठाए—५८६ ।

पठान—संज्ञा पुं. [पश्तो पुख्ताना] **एक मुसलमान जाति ।**

पठाना –क्रि. स. [सं. प्रस्थान, प्रा. पट्ठान] **भेजना ।**

पठानिन, पठानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पठान] **पठान स्त्री ।**

पठायौ—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजा, प्रस्थान कराया ।** उ.—सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि धर्मा—१-१०४ ।

पठावत—क्रि. स. [हिं. पठाना] **भेजते हो ।** उ.—काके पति-सुत-मोह कौन को घर है, कहाँ पठावत—पृ.३४१ (७) ।

पठावन, पठावनो—संज्ञा पुं [हिं. पठाना] **दूत, संदेश-वाहक।** उ.—मनौ सुरपुर तेहि सुरपति पठइ दियौ पठावनो—२२८०।

पठावनि, पठावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं, पठाना] (१) **कोई वस्तु या संदेश भेजने का भाव।** (२) **वह वस्तु जो भेजी जाय।**

पठित—वि. [सं.] (१) **पढ़ा हुआ (ग्रंथ)।** (२)**शिक्षित।**

पठै—क्रि. स. [हिं पठाना] **भेजकर।** उ.—कान्हहिं पठै, महरि कौं कहति है पाइनि परि—७५२।

पठौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पठाना] (१) **कोई वस्तु या संदेश भेजना।** (२) **किसी के भेजने से जाना।**

पड़ता—संज्ञा पुं. [हिं. पड़ना] **लागत, कीमत।**

पड़ताल—संज्ञा स्त्री. [सं. परितोलन] **देख-भाल, जाँच।**

पड़तालना—क्रि. स [हिं. पड़ताल] **छानबीन करना।**

पड़ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. पड़ना] **बिना जुती भूमि।**

पड़ना—क्रि. अ. [सं. पतन, प्रा. पडन] (१) **गिरकर या उछलकर पहुँचना।** (२) **(घटना) घटित होना।** (३) **बिछाया या फैलाया जाना।** (४) **छोड़ा या डाला जाना।** (५) **बीच में दखल देना।** (६) **ठहरना, टिकना।** (७) **आराम करना।** (८) **बीमार होना।** (९) **प्राप्त होना।** (१०) **आमदनी होना।** (११) **मार्ग म मिलना।** (१२) **पैदा होना।** (१३) **स्थित होना।** (१४) **प्रसंग में आना।** (१५) **जाँच में ठहरना** (१६) **बदल जाना।** (१७) **होना।**

पड़पड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **'पड़' का शब्द होना।**

पड़पड़ाना—क्रि. अ. [अनु]. **'पड़-पड़' होना।**

पड़वा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिपदा, प्रा. पड़िवआ] **चाँद मास के प्रत्येक पक्ष की पहली तिथि।**

पड़ाना—क्रि स. [हिं. पड़ना] **गिराना, झुकाना।**

पड़ाव—संज्ञा पुं. [हिं. पड़ना+आव] (१) **यात्री के ठहरने का भाव।** (२) **वह स्थान जहाँ यात्री ठहरते हों, चट्टी टिकान।**

पड़ोस—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिवेश या प्रतिवास, प्रा. पड़िबेस, पड़िवास] **आसपास का घर या स्थान।**

पड़ोसी—संज्ञा पुं. [हिं. पड़ोस] **जो पड़ोस में रहता हो।**

पढ़ंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. पढ़ना] **पढ़ने का भाव।**

पढ़ना—क्रि. स. [सं. पठन] (१) **लिखा हुआ बाँचना।** (२) **उच्चारण करना।** (३) **रटना।** (४) **मंत्र फूँकना।** (५) **नया सबक लेना।**

पढ़वाना—क्रि. स. [हिं. पढ़ना] (१) **बँचवाना।** (२) **शिक्षा दिलाना।**

पढ़वैया—वि. [हिं. पढ़ना] **पढ़नेवाला, शिक्षार्थी।**

पढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पढ़ना+आई] (१) **पठन, अध्ययन।** (२) **पढ़ने का भाव।** (३) **धन जो पढ़ने के बदले में दिया जाय।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. पढ़ाना+आई] (१) **अध्यापन।** (२) **पढ़ने का भाव।** (३) **पढ़ान की रीति।** (४) **धन जो पढ़ाने के बदले में दिया जाय।**

पढ़ाऊँ—क्रि. स. [हिं. पढ़ाना] **सिखाता हूँ, शिक्षा देता हूँ।** उ.—सूर सकल षट दरसन वे, हौं बारहखरी पढ़ाऊँ—३४६६।

पढ़ाना—क्रि. स. [हिं. पढ़ना] (१) **शिक्षा देना, अध्यापन करना।** (२) **कोई कला या गुन सिखाना।** (३) **पक्षियों को मनुष्य की भाषा सिखाना।** (४) **समझाना।**

पढ़ायो, पढ़ायौ—क्रि. स. [हिं. पढ़ाना] **गुन सिखाया।** उ.—(क) नंद घरनि सुत भलौ पढ़ायौ—१०-३४०। (ख) भलौ काम हैं सुतहिं पढ़ायौ—३६१। (ग) बारे ते जेहि यहै पढ़ायो बुधि-बल-कल बिधि चोरी।

पढ़ावत—क्रि. स. [हिं. पढ़ाना] **पढ़ाती है, पढ़ाती हुई।** उ.- (क) कीर पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध परम पद पायौ—१-६७। (ख) सुवा पढ़ावत, जीभ लड़ावति, ताहि बिमान पठायौ—१-१८८। (ग) चातक मोर चकोर बदत पिक मनहुँ मदन चटसार पढ़ावत—१०-३०५।

पढ़ावै—क्रि. स. [हिं. पढ़ाना (प्रे.)] (१) **शिक्षा देती है, अध्यापन करती है।** (२) **पक्षियों को बोलना सिखाती हैं।** उ.—(क) गनिका किए कौन ब्रत-संजम, सुक-हित नाम पढ़ावै—१-१२२। (ख) आपन ही रँग रगी साँवरी सुक ज्यौं बैठि पढ़ावै—३०८८।

पढ़ि—क्रि. स. [हिं. पढ़ना] (१) **सीख समझ कर।** उ.—मोहन-मुर्छन-बसीकरन पढ़ि अगमति देह बढ़ाऊँ—१०-४६। (२) **मंत्रादि उच्चारण करके या फूँककर।**

उ.—जसुमति मन-मन यहै बिचारति । झझकि उठयौ सोवत हरि अबहीं कछु पढ़ि-पढ़ि तन-दोष निवारति—१०-२०० । (३) **पढ़कर, शिक्षा ग्रहण करके** । उ.—कुबिजा सौं पढ़ि तुमहिं पठाए नागर नवल हरी—३३७० ।

पढ़िबे—संज्ञा पुं. [हिं. पढ़ना] (१) **पढ़ना** (२) **उच्चारण करने की क्रिया. कहना** । उ.—जब तैं रसना राम कह्यौ । मानौ धर्म साधि सब बैठयौ, पढ़िबे मैं धौं कहा रह्यौ—२-८ ।

पढ़ीं—क्रि. स. [हिं. पढ़ना] **उच्चारित कीं** । उ.—(द्विजनि अनेक) हरषि असीस पढ़ीं—१०-१४ ।

पढ़ी—क्रि. स. [हिं. पढ़ना] **सीखी, समझी** । उ.—(क) जेहि गोपाल मेरे बस होते सो विद्या न पढ़ी—२७६४ । (ख) तैं अलि कहा पढ़ी यह नीति—३२७० ।

पढ़ेलना—क्रि. स. [हिं. धकेलना] **धकेलता, ठुकराना** ।

पढ़ैया—वि. [हिं. पढ़ना] **पढ़नेवाला पाठक** ।

पढ़ैला, पढ़ैलौ—वि. [हिं. पढ़ेलना] **ठुकराया हुआ** । चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटौ-खूटा । लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, बड़ौ पढ़ैलौ, लूटा—१-१८५ ।

पढ़ौ—क्रि. स. [हिं. पढ़ना] **पढ़ो, रटो** । उ.—पढ़ौ भाई राम-मुकुंद-मुरारि—७-३ ।

पण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जूआ, द्यूत** । (२) **प्रतिज्ञा, शर्त** । (३) **मोल, कीमत** । (४) **शुल्क** । (५) **धन-संपत्ति** । (६) **व्यापार** । (७) **स्तुति, प्रशंसा** ।

पणबंध—संज्ञा पुं. [सं.] **शर्त या बाजी लगाना** ।

पणव—संज्ञा पुं. [सं.] **छोटा ढोल या नगाड़ा** । उ.—गर्जनि पणव निसान संख रव हय गय हींस चिकार—१० उ.—२ ।

पणी—संज्ञा पुं. [सं. पणिन्] **क्रय-विक्रय करनेवाला** ।

पण्य—वि. [सं] **खरीदने-बेचने योग्य** ।

संज्ञा पुं.—(१) **सौदा** । (२) **व्यापार** । (३) **बाजार** । (४) **दूकान** ।

पतंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पक्षी** । (२) **शलभ** । उ.—दीपक पीर न जानई (रे) पावक परत पतंग—१-३२५ । (३) **सूर्य** । (४) **चिनगारी**।(५) **कंग, गुड्डी** ।

पतंगा—संज्ञा पुं [सं. पतंग] (१) **शलभ** । (२) **चिनगारी** ।

पतंगेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] **पक्षिराज गरुड़** ।

पतंजलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **'योगशास्त्र' के रचयिता एक ऋषि** । (२) **'महाभाष्य' के रचयिता एक मुनि** ।

पत—संज्ञा पुं [सं. पति] (१) **पति** । (२) **स्वामी** ।

संज्ञा स्त्री. [सं.प्रतिष्ठा](१) **लज्जा** । (२) **प्रतिष्ठा** ।

मुहा.—पत उतारना (लेना)—**बेइज्जती करना** । पत रखना—**इज्जत बचाना** ।

पतखोवन—वि. [हिं. पत+खोना] **मान की रक्षा न कर सकनेवाला** ।

पतझड़, पतझर, पतझल, पतझाड़, पतझार—संज्ञा पुं. [हिं. पत=पत्ता+झड़ना] (१) **वह ऋतु जिसमें वृक्षों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं** । (२) **अवनतिकाल** ।

पतझड़ना, पतझरना—क्रि. अ. [हिं. पत्ता+झड़ना] **वृक्षों के पत्ते झड़ना** ।

पतझरै—क्रि. अ. [हिं. पतझड़] **पत्ते गिरते हैं, पतझड़ होता है** । उ.—तरुवर फूलैं, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ—१-२६५ ।

पतन—संज्ञा पुं [सं.] (१) **गिरने का भाव** । (२) **बैठना, डूबना** । (३) **अवनति** । (४) **नाश** । (५) **पाप** ।

पतना—क्रि. अ. [सं. पतन] **गिरना** ।

पतनोन्मुख—वि. [सं.] **जो पतन की ओर बढ़ रहा हो** ।

पतबरा—संज्ञा पुं [हिं. पतला+बड़ा] **पतले-पतले 'बड़े' (एक व्यंजन या खाद्य)** । उ.—मूँग-पकौरा, पनौ पतबरा । इक कोरे, इक भिजे गुरबरा—१०-३६६ ।

पतर, पतरा—वि. [सं. पत्र] (१) **पत्ता** । (२) **पत्तल** ।

पतर, पतरा, पतला—वि. [हिं. पतला] (१) **जो कम मोटा हो** । (२) **दुबला, पतला, कृश** । (३) **झीना** । (४) **जो गाढ़ा न हो** । (५) **निर्बल** ।

पतवर—क्रि. वि. [हिं. पाँती+वार] **पंक्तिक्रम से** ।

पतवार, पतवारी, पतवाल—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्रबाल, पात्रपाल, प्रा. पात्तवाड़] **नाव का 'कर्ण' जिससे उसे मोड़ते और घुमाते हैं** ।

पता—संज्ञा पुं. [सं. प्रत्यय, प्रा. पत्तय] (१) **स्थान-परिचय** । (२) **खोज, सुराग, टोह** । (३) **जानकारी, खबर** । (४) **रहस्य, भेद** ।

पताक, पताका—संज्ञा स्त्री. [सं. पताका] (१) **झंडा।** उ.—(क) पजरत, धुज, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास—९-८३। (ख) स्वेत छत्र फहरात सीस पर ध्वज पताक बहुबान—२३७७। (ग) पवन न पताका अंबर भई न रथ के अंग—२५४०। (२) **डंडा जिसमें पताका पहनायी जाती है।** (३) **नाटक का वह स्थल जहाँ पात्र की चिंता आदि का समर्थन आगंतुक भाव से हो।**

पताकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सेना।**

पताकी—संज्ञा पुं. [सं. पताकिन्] **पताकाधारी।**

पतार—संज्ञा पुं. [सं. पाताल] (१) **पाताल।** (२) **जंगल।**

पतारी—संज्ञा. पुं. [सं. पाताल] **पाताल लोक।** उ.—सूरदास बलि सरबस दीन्हौ, पायौ राज पतारी- ८-१४

पतारौ संज्ञा पुं. [सं. पाताल] **पाताल लोक।** उ.—कहौ तौ सैना चारु रचौं कपि, धरनी-व्योम पतारौ—९-१०८।

पताल—संज्ञा पुं. [सं. पाताल] **पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में से अंतिम जहाँ बलि को विष्णु ने भेजा था।** उ.—सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपा-विधि, धर्म—१-१०४।

पतावर—संज्ञा पुं. [हिं. पत्ता] **सूखे हुए पत्ते।**

पति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **किसी वस्तु का मालिक, स्वामी, अधिपति।** (२) **किसी स्त्री का विवाहित पुरुष, भर्ता, कांत।** उ.—देखहु हरि जैसे पति आगम सजति सिंगार धनी।—३४६१। (३) **मर्यादा, प्रतिष्ठा, लज्जा, साख,** उ.—(क) रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन-सरन कहि भाषी। बढ़े दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा-माँझ पति राखी—१-२७। (ख) सभा-माँझ द्रौपदि पति राख, पति पानिप कुल ताकौ—१-११३। (ग) हमहिं खिझाइ आपु पति खोवत यामैं कहा तुम पावहु—३२६६। (घ) ज्यों क्योंहूँ पति जात बड़े की मुख न देखावत लाजत—३९९।

पतिआँ—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्र] **चिट्ठी, पत्र।** उ.—जो पतिआँ हो तुम पठवत लिखि बीच समुझि सब पाउ—३४७२।

पतिआइ—क्रि. स. [हिं. पतियाना] **विश्वास करो, सत्य मानो।** उ.—सूरदास संपदा-आपदा जिनि कोऊ पतिआइ—१-२६५।

पतिआना—क्रि. स. [सं. प्रत्यय, प्रा. पत्तय+आना] **विश्वास करना।**

पतिआर, पतिआरो, पतिआरौ—संज्ञा पुं. [हिं. पतिआना] **विश्वास, साख।** उ.—कहा परदेसी को पतिआरो—२७३२।

पतिघातिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **पति की हत्या करने वाली।** (२) **वैधव्य योगवाली स्त्री।**

पतित—वि. [सं.] (१) **समाज से बहिष्कृत, जातिच्युत।** उ.—जन्म-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिपिरति पतित बिचारे—१-२५। (२) **महापापी अतिपातकी।** उ.—(क) नंद-बरुन-बंधन-भय-मोचन सूर पतित सरनाई—१-२७। (ख) सूर पतित तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज—१-१०२। (३) **गिरा हुआ।** (४) **आचार या नीतिभ्रष्ट।** (५ **अधम, नीच।**

पतित-उधारन—वि. [सं. पतित+उधारना] **पतितों का उद्धार करनेवाला।**

संज्ञा पुं.—(१) **ईश्वर।** (२) **ब्रह्म का अवतार।**

पतितता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **पतित होने का भाव।** (२) **नीचता, अधमता।** (३) **अपवित्रता।**

पतितपावन—वि. [सं.] **पतित को शुद्ध करनेवाला।**

संज्ञा पुं.- (१) **ईश्वर** (२) **ब्रह्म का अवतार।**

पतितेस—वि. [सं. पतित+ईश] **बड़ा पतित, पतितों में सबसे बढ़कर।** उ.—हरिहौं सब पतितनि-पतितेस—१-१४०।

पतितै—वि. सवि. [सं. पतित] **पापी ही रहकर, पातकी ही रहकर।** उ.—हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं—१-१३४।

पतिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्नी] **विवाहिता स्त्री, पत्नी।** उ.—(क) गौतम की पतिनी तुम तारी, देव, दवानल कौं अँचयौ—१-२६। (ख) चरन-कमल परसत रिषि पतिनी, तजि पषान, पद पायौ—१-१८८।

पतिबरत—संज्ञा पुं. [सं. पतिव्रत] **पति में स्त्री की पूर्ण**

प्रीति और भक्ति। उ.—सूर स्याम सों साँच पारिहौं यह पतिब्रत सुनहु नँदनंदन—१२२०।

पतिया—संती स्त्री. [हिं. पत्र] **चिट्ठी**। उ.—इतनी बिनती सुनहु हमारी बारक हूँ पतिया लिखि दीजै—२७२७।

पतियाई—क्रि. स. [हिं. पतियाना] **विश्वास किया**। उ.—यह बानी बृषभानु-घरनि कही तब जसुमति पतियाई—७५६।

पतियाति—क्रि. स. [हिं. पतियाना] **विश्वास करती है**। उ.—सूर मिली ढरि नंदनँदन को अनत नहीं पतियाति—पृ० ३३७ (६५)।

पतियाना—क्रि. स. [सं. प्रत्यय+हिं. आना] **विश्वास करना**।

पतियानी—क्रि. स. [हिं. पतियाना] **विश्वास किया**। उ.—कौन भाँति हरि को पतियानी—१० उ०-३७।

पतियार, पतियारा, पतियारो—संज्ञा पुं. [हिं. पतियाना] **विश्वास, यकीन**। उ.—(क) कहा परदेसी को पतियारो—२७३१। (ख) कुँवरि पतियारो तब कियो जब रथ देख्यो नैन—१० उ.-८।

पतिव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] **पति में अनन्य प्रीति**।

पतिव्रता—वि. [सं.] **पति में अनन्य प्रीति रखनेवाली**।

पती—संज्ञा पुं. [सं. पति] (१) **पति**। (२) **स्वामी**।

पतीजत—क्रि. अ. [हिं. पतीजना] **विश्वास करता है**। उ.—ओढ़ियत है की डसिअत है कीधौं कहिअत कीधौं जु पतीजत—३३४१।

पतीजना—क्रि. अ. [हिं. प्रतीत+ना] **विश्वास करना, पतियाना**।

पतीजै—क्रि. अ. [हिं. पतीजना] **विश्वास करे, भरोसा करो**। उ.—(क) आवत देखि बान रघुपति के, तेरौ मन न पतीजै—९-१२६। (ख) तब देवकी दीन ह्वै भाष्यौ, नृप कौ नाहिं पतीजै। (ग) मनसा, बाचा, कहत कर्मना नृप कबहूँ न पतीजै—१०-९। (घ) तिनहिं न पतीजै री जे कृतहिं न मानैं—२६८६।

पतीजौ—क्रि अ. [हिं. पतीजना] **विश्वास करो, पतियाओ**। उ.—जसुमति कह्यौ अकेली हौं मैं तुमहुँ संग मोहिं दीजौ। सूर हँसतिं ब्रजनारि महरि सौं, ऐहैं साँच पतीजौ—८१३।

पतीनना—क्रि. स. [हिं. प्रतीत+ना] **विश्वास करना**।

पतीनी—क्रि. स. [हिं. पतीनना] **विश्वास किया**। उ.—देवकी-गर्भ भई है कन्या, राइ न बात पतीनी—१०-४।

पतीर—संज्ञा स्त्री. [सं. पंक्ति] **कतार, पाँती**।

पतीली—संज्ञा स्त्री. [सं. पातिली] **देगची**।

पतुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. पातिली] **हाँड़ी**।

पतुरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. पातिली] **वेश्या**।

पतुली—संज्ञा स्त्री. [देश.] **कलाई का एक गहना**।

पतैहैं—क्रि. स. [हिं. पतियाना] **विश्वास करेंगे**। उ.—दरसन ते धीरज जब रैहै तब हम तोहिं पतैहैं—१२७७।

पतूख, पतूखी, पतोखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पतोखा] **पत्ते का दोना**। उ.—(क) बारक वह मुख आनि देखावहु दुहि पै पिवत पतूखी—३०२९। (ख) एक बेर बहुरौ ब्रज आवहु दूध पतूखी खाहु—३४३७।

पतोखा—संज्ञा पुं. [हिं. पत्ता] **पत्ते का दोना**।

पतोह, पतोहू—संज्ञा स्त्री. [सं. पुत्रवधू, प्रा. पुत्रवहू] **बेटे की बहू, पुत्रवधू**।

पतौआ—संज्ञा पुं. [हिं. पत्ता] **पत्ता, पर्ण**।

पतौषी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पतोखा] **पत्तों की दुनिया, छोटा दोना**। उ.—छीर समुद्र सयन संतत जिहिं, माँगत दूध पतौषी दै भरि—३९२।

पत्त—संज्ञा पुं. [सं. पत्र] **पत्र, चिठ्ठी**। उ.—अब हम लिखि पठयो चाहति हैं, उहाँ पत्र नहिं पैहैं—३४६०।

पत्तन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नगर**। (२) **मृदंग**।

पत्तर—संज्ञा पुं. [सं. पत्र] **धातु का चौरस टुकड़ा**।

पत्तल—संज्ञा स्त्री. [हिं. पत्ता] (१) **पत्तों का बना पात्र जिसमें भोजन परसा जाता है**।

मुहा.—एक पत्तल के खानेवाले—(१) **संबंधी**। (२) **घनिष्ठ मित्र**। जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना—**जिससे लाभ उठाना या जिसका अन्न खाना उसी को हानि पहुँचाना**।

(२) **पत्तल में परसा हुआ भोजन**।

पत्ता—संज्ञा पुं. [सं. पत्र] (१, **पत्र, पत्रक, पर्ण**। उ.—धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागै डार—१-८८।

मुहा.— पत्ता खड़कना— (१) **खटका या आहट होना**। (२) **आशंका होना**। पत्ता तोड़कर भागना— **तेजी से भागना**। पत्ता न हिलना—**जरा भी हवा न चलना**। पत्ता हो जाना— **तेजी से दौड़कर अदृश्य हो जाना**।

(१) **कान का एक गहना**। (२) **धातु का पत्तर**।

पत्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पैदल सिपाही**। (२) **योद्धा**।

पत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. पत्ता] (१) **छोटा पत्ता**। (२) **साझे का भाग**। (३) **फूल की पंखुड़ी**।

पत्थर—संज्ञा पुं. [सं. प्रस्तर, प्रा. पत्थर] (१) **पाषाण**।

मुहा.—पत्थर का कलेजा (दिल, हृदय)—**जिसमें दया-ममता न हो**। पत्थर की छाती— **हिम्मती और मजबूत दिल वाला**। पत्थर की लकीर—**सदा बनी रहने वाली चीज**। पत्थर को (में) जोंक लगना—**असंभव बात होना**। पत्थर चटाना— **पत्थर पर रगड़ कर तेज करना**। पत्थर निचोड़ना—**कंजूस से दान ले लेना**। पत्थर पर दूब जमना— **असंभव और अनहोनी बात होना**। पत्थर पसीजना (पिघलना)—**कठोर दिल वाले में दया-ममता आना**। पत्थर सा खींच (फेंक) मारना— **बहुत कड़ी बात कहना**। पत्थर से सिर फोड़ना (मारना) —**असभव बात की सफलता का प्रयत्न करना**।

(२) **ओला, इद्रोपल**।

पत्थर पड़ना— **चौपट हो जाना**। पत्थर पड़ जाय (पड़े)— **चौपट हो जाय**। पत्थर-पानी का समय— **आँधी पानी का समय**।

(३) (**हीरा, जवाहर आदि**) **रत्न**। (४) **कुछ भी नहीं, व्यर्थ की चीज**।

पत्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **विवाहिता स्त्री**।

पत्नीव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] **पत्नी के प्रति पूर्ण प्रीति**।

पत्य—संज्ञा पुं. [सं.] **पति होने का भाव**।

पत्याउ—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करो, प्रतीति हो**। उ.— चारि भुज जिहिं चारि आयुध निरखि कै न पत्याउ—१०-५।

पत्याऊँ—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करूँ, सच मानूँ**। उ.—मोहिं अपनैं बाबा की सौहैं, कान्हहिं, अब न पत्याऊँ—३४५।

पत्याति—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करती हूँ**। उ.— (क) अब तुमको पिय मैं पत्याति हौं—१८७०। (ख) कहा कहत री मैं पत्याति नहिं—३००७।

पत्याना—क्रि. स. [हिं. पतियाना] **विश्वास करना**।

पत्यानी—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास हुआ, प्रतीति की**। उ.—सूरस्याम संगति की महिमा काहू को नैंकहु न पत्यानी—१२८४।

पत्याने, पत्यान्यो, पत्यान्यौ—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास किया**। उ.—(क) तुम देखत भोजन सब कीनो अब तुम मोहिं पत्याने—६१६ (ख) सूरदास प्रभु इनहिं पत्याने आखिर बड़े निकामी री—पृ० ३२३ (१६)। (ग) सूरदास तहाँ नैन बसाए और न कहूँ पत्यान्यो—१८४७।

पत्याहि—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करो**। उ.— जौन पत्याहि पूछि बलदाउहि—५१०।

पत्याहु—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करो**। उ.— जौ न पत्याहु चलौ सँग जसुमति, देखौ नैन निहारि— १०-२६२।

पत्यारी—संज्ञा पुं. [हिं. पतियारा] **विश्वास, प्रतीति**।

पत्यारी—संज्ञा स्त्री. [सं. पंक्ति] **कतार, पाँती**।

पत्यैए—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास कीजिए**। उ.— राँचेहु विरचे सुख नाहीं भूलि न कबहुँ पत्यैए— २२७५।

पत्यैहै—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करेगा**। उ.— सूरस्याम को कौन पत्यैहै कुटिल गात तनु कारे— ३१६७।

पत्यैहौं—क्रि. स. [हिं. पत्याना] **विश्वास करूँगी**। उ.— सुनि राधा, अब तोहिं न पत्यैहौं—१५५०।

पत्र संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वृक्ष या बेल का पत्ता, पत्ती, दल, पर्ण**। उ.—(क) लाखागृह पांडवनि उबारे, साकपत्र मुख नाए—१-३१। (ख) साकपत्र लै सबै अघाए न्हात भजे कुस डारी—१-१२२। (ग) हरि कह्यौ, साग पत्र मोहिं अति प्रिय, अम्रित ता सम नाहीं —१-२४१। (२) **वह वस्तु जिस पर कुछ लिखा जाय**। उ.—पुहुमि पत्र करि सिंधु मसानी गिरि मसि कौं लै डारैं—१-१८३। (३) **वह कागज जिस पर**

बान प्रतिज्ञा आदि की बात लिखी हो। (४) वह लेख जिस पर किसी व्यवहार, घटना आदि का प्रामाणिक विवरण दिया हो। (५) चिट्ठी, पत्र। (६) समाचारपत्र। (७) पृष्ठ, सफा। (८) धातु का पत्तर। (९) तीर या पक्षी का पंख।

पत्र-पुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] **साधारण भेंट।**

पत्र-वाहक—संज्ञा पुं. [सं.] **पत्र ले जानेवाला।**

पत्रा—संज्ञा पुं. [सं. पत्र] **पंचांग, जंत्री, तिथिपत्र।**

पत्रावलि, पत्र वली—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्र+अवली] (१) **पत्ते।** (२) **पत्तों की बनी पत्तल।** उ.—मिलि बैठे सब जेंवन लागे, बहुत बने कहि पाक। अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ तहँ फेनि पिराक—४६४ (३) **वे बेल-बूटे या रेखाएँ जो सजावट या शोभा-वृद्धि के लिए स्त्रियाँ माथे पर बना लेती हैं।**

पत्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **चिट्ठी, पत्र।** (२) **छोटा लेख।** (३) **सामयिक पत्र या पुस्तक।**

पत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **चिट्ठी, पत्र।** उ.—स्याम कर पत्री लिखी बनाइ—२६२६। (२) **जन्मपत्री।**

पथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मार्ग रास्ता।** (२) **रीति।**

पथगामी—संज्ञा पुं. [सं. पथगामिन्] **पथिक।**

पथचारी—संज्ञा पुं. [सं. पथचारिन्] **पथिक।**

पथदर्शक, पदप्रदर्शक—संज्ञा पुं. [सं.] **मार्ग बतानेवाला।**

पथरना—क्रि. स. [हिं. पत्थर] **पत्थर पर रगड़कर तेज या पैना करना।**

पथराना—क्रि. अ. [हिं. पत्थर] (१) **पत्थर की तरह नीरस और कठोर होना।** (२) **स्तब्ध या जड़ हो जाना।**

पथरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पत्थर] **पत्थर का छोटा पात्र।**

पथरीला—वि. [हिं. पत्थर] **जिसमें बहुत पत्थर हों**

पथरौटा—संज्ञा स्त्री. [हिं. पत्थर] **पत्थर का पात्र, कूँड़ी।**

पथिक—संज्ञा पुं. [सं.] **यात्री, राहगीर।**

पथी—संज्ञा पुं. [सं. पथिन्] **यात्री, पथिक।**

पथु—संज्ञा पुं. [सं.] **पथ, मार्ग।**

पथ्य—संज्ञा पुं. [सं.] **रोगी का हलका आहार।**

पद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **काम।** (२) **स्थान, दर्जा।** उ.—ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी—१-२८। (३) **चिन्ह।** (४) **पैर।** (५) **शब्द।** (६) **छंद का चतुर्थांश।** (७) **उपाधि।** (८) **मोक्ष** (९) **गीत, भजन।** उ.—सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ—१-२२५।

पदक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **एक गहना।** (२) **किसी धातु का गोल टुकड़ा जो विशेष कार्य करने पर पुरस्कार-स्वरूप दिया जाता है।**

पदचर—संज्ञा पुं. [सं.] **पैदल, प्यादा।**

पदचारी—वि. [सं.] **पैदल चलनेवाला।**

पदचिन्ह—संज्ञा पुं. [सं.] **चरणचिन्ह।**

पदच्युत—वि. [सं.] **पद से हटा या गिरा हुआ।**

पदज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शूद्र।** (२) **पैर की उँगली।**

वि०—**जो पैर से उत्पन्न हो।**

पदतल—संज्ञा पुं. [सं.] **पैर का तलवा।**

पदत्राण, पदत्रान—संज्ञा पुं. [सं. पदत्राण] **पैरों की रक्षा करनेवाला, जूता।** उ.—जहँ जहँ जात तहीं तहिं त्रासत, अस्म, लकुट, पदत्रान—१-१०३।

पददलित—वि. [सं.] (१) **पैरों से कुचला हुआ।** (२) **बहुत दबाया या सताया हुआ।**

पदन्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चलना, पैर रखना।** उ.—मृदु पदन्यास मंद मलयानिल बिगलत सीस निचोल। (२) **चलने की रीति।** (३) **चलन, रीति।** (४) **पद-रचना।**

पदम—संज्ञा पुं. [सं. पद्म] **कमल।**

पदमनाभ—संज्ञा पुं. [सं. पद्मनाभ] **विष्णु।**

पदमाकर—संज्ञा पुं. [सं. पद्माकर] **तालाब।**

पदमासन—संज्ञा पुं. [सं. पद्मासन] **ब्रह्मा।** उ.—नाभि-सरोज पगट पदमासन उतरि नाल पछितावै—१०-६५।

पदमूल—संज्ञा पुं. [सं.] **पैर का तलवा।**

पदमैत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] **अनुप्रास, वर्ण-मैत्री।**

पदयोजना—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पद बनाने को शब्द जोड़ना।**

पदरिपु—संज्ञा पुं. [सं. पद+रिपु] **काँटा, कंटक।** उ.—पद-रिपु पद अटक्यौ न सम्हारति, उलट न पलट खरी—६५६।

पदवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **स्थान, पद, ओहदा, दर्जा।** उ.—(क) अंबरीष, प्रहलाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई—१-२४। (ख) कहा भयो जु भय

नँद-नंदन अब इह पदवी पाई—३२८८। (२) पंथ। (३) परिपाटी। (४) उपाधि, खिताब।

पदांक—संज्ञा पुं. [सं.] चरण-चिह्न।

पदात, पदाति, पदातिक—संज्ञा पुं. [सं. पदाति, पदातिक] (१) पैदल सिपाही। (२) प्यादा। (३) नौकर।

पदादिका—संज्ञा पुं. [सं. पदातिक] पैदल सेना।

पदाधिकारी—संज्ञा पुं. [सं.] ओहदेदार, अफसर।

पदानुग—संज्ञा पुं. [सं.] अनुयायी।

पदार—संज्ञा पुं. [सं.] पैरों की धूल, पद रज।

पदारथ—संज्ञा पुं. [सं. पदार्थ] (१) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उ.—अर्थ, धर्म अरु काम, मोच्छ फल, चारि पदारथ देत गनी—१-३९। (२) मूल्यवान वस्तु। उ.—जनम तौ ऐसेहिं बीति गयौ। जैसे रंक पदारथ पाए, लोभ बिसाहि लियौ—१-७८।

पदार्घ्य—संज्ञा पुं. [सं.] जल जो पूज्य या अतिथि के चरण धोने को दिया जाय।

पदार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पद का अर्थ या विषय। (२) दर्शन का विषय-विशेष। (३) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। (४) चीज, वस्तु।

पदार्थवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह सिद्धांत जिसमें भौतिक पदार्थों का ही विशेष मान हो, आत्मा या ईश्वर का अस्तित्व तक न माना जाय।

पदार्थवादी—वि. [सं.] पदार्थवाद का समर्थक।

पदार्पण—संज्ञा पुं. [सं.] जाने की क्रिया या भाव।

पदानवत—वि. [सं.] नम्र, विनीत।

पदावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] पद-संग्रह।

पदिक—संज्ञा पुं. [सं. पदक] (१) गले में पहनने का एक गहना जिस पर प्राय: किसी देवता का चरण अंकित रहता है। उ.—(क) पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ मंजु गजमनियाँ—१०-१०६। (ख) उर पर पदिक कुसुम बनमाला, अंगद खरे बिराजैं—४५१। (२) रत्न, (३) पदक।

संज्ञा पुं.—पैदल सेना, पदाति।

पदी—संज्ञा पुं. [सं. पद] पैदल, प्यादा।

पदु—संज्ञा पुं. [सं. पद] चरण पैर।

पदुम—संज्ञा पु. [सं. पद्म] (१) कमल। उ.—उरग-इन्द्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं—१-६९। (२) सौ नील की संख्या जो १ के बाद पंद्रह शून्य देकर लिखी जाती है। उ.—राजपाट सिंहासन बैठो, नील पदुम हूँ सौं कहै थोरी—१-३०३।

पदुमनी—संज्ञा स्त्री. [सं. पद्मिनी] कमलिनी।

पदोदक—संज्ञा पुं. [सं.] चरणामृत।

पद्धटिका—संज्ञा पुं. [सं.] एक छंद।

पद्धति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रीति, परिपाटी, चाल। उ.—सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति पर-तच्छ दिखैहौं—९-१५७। (२) कार्यप्रणाली, विधि-विधान। उ.—यकटक रहैं पलक नाहिं लागैं पद्धति नई चलाऊँ—१४८५। (३) पथ, मार्ग। (४) पंक्ति, कतार। (५) पुस्तक जिसमें कोई विधि लिखी हो।

पद्धरि, पद्धरी—संज्ञा पुं. [सं. पद्धटिका] एक छंद।

पद्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल। (२) विष्णु का एक आयुध। (३) नौ निधियों में एक। (४) गले का एक गहना (५) सौ नील की संख्या जो १ के साथ १५ शून्य देकर लिखी जाती है।

पद्मकोश—संज्ञा पुं. [सं.] कमल का छत्ता या संपुट।

पद्मनाभ, पद्मनाभि—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

पद्मनाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमल की कोमल नाल। उ.—किहिं गयंद बाँध्यो, सुन मधुकर, पद्मनाल के काँचे सूते—३३०५।

पद्मनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] नौ निधियों में एक।

पद्मराग—संज्ञा पुं. [सं.] 'माणिक' वा 'लाल' रत्न।

पद्मा—संज्ञा स्त्री. [सं] लक्ष्मी।

पद्माकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तालाब जिसमें कमल हों। (२) हिन्दी के रीतिकालीन एक प्रसिद्ध कवि।

पद्माक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमलगट्टा। (२) विष्णु।

पद्मालय—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

पद्मासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योग का एक आसन। (२) ब्रह्मा।

पद्मिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमलिनी। (२) चित्तौर की एक रानी जो अपने जौहर के कारण अमर है।

पद्य—संज्ञा पुं. [सं.] छंदबद्ध कविता।

पद्यात्मक—वि. [सं.] जो छंदबद्ध हो।

पधरना—क्रि. अ. [हिं. पधारना] **मान्य व्यक्ति का आना।**

पधराना—क्रि. [सं. प्र+धारण] (१) **सम्मान से ले जाना या बैठाना।** (२) **प्रतिष्ठा या स्थापित करना।**

पधारना—क्रि. अ. [हिं. पग+धारना] (१) **जाना, गमन करना।** (२) **आना या पहुँचना।** (३) **चलना।**

क्रि. स.—**सम्मान से बैठाना, प्रतिष्ठित करना।**

पधारे—क्रि. अ. [हिं. पधारना] **चले गये, गमन किया।** उ.—गो कह्यौ, हरि बैकुंठ सिधारे। सम-दम उनहीं संग पधारे—१-२६० ।

पन—संज्ञा पुं. [सं. प्रण] **प्रतिज्ञा, संकल्प, निश्चय।** उ.—(क) धर्मपुत्र जब जज्ञ उपायौ द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौं—१-२६ । (ख) गाए सूर कौन नहिं उबरयौ, हरि परिपालन पन रे—१-६६ ।

संज्ञा पुं. [सं. पर्वन्=विशेष अवस्था] **आयु के चार भागों (बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था) में से एक।** उ.—(क) तीनौ पन ऐसैं हीं खोए, समय गए पर जाग्यौ। (ख) तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे इहै स्वाँग कौं काछे—१-१३६ (ग) तीनौं पन ऐसैं ही खोए, केस भए सिर सेत—१-२८६ । (घ) तीनौंपन ऐसैं ही जाइ—७-२ ।

पनघट—संज्ञा पुं. [हिं. पानी+घाट] **वह घाट जहाँ पानी भरा जाता हो।**

पनच—संज्ञा स्त्री. [सं. पतंचिका] **धनुष की डोरी।** उ.—उतरी पनच अब काम के कमान की—पृ. ३०० (६)।

पनपना—क्रि. अ. [सं. पर्णय=हरा होना] (१) **पानी पाकर फिर हरा भरा हो जाना।** (२) **पुनः स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट होना।**

पनव—संज्ञा पुं. [सं. प्रणव] **ॐकार मंत्र।**

पनवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. पान+वाँ] **हमेल आदि में लगी पान के आकार की चौकी, टिकड़ा।**

पनवाड़ी, पनवारी—संज्ञा स्त्री [हिं. पान+वाड़ी] **पान का खेत।**

संज्ञा पुं. [हिं. पान+वार] **पान बेचनेवाला, तम्बोली।**

पनवारा—संज्ञा पुं. [हिं. पान+वार] (१) **पत्तल।** (२) **पत्तल भर भोजन।**

पनवारे—संज्ञा पुं. [हिं. पनवारा] (१) **पत्तों की बनी हुई पत्तल।** उ.—महर गोप सबही मिलि बैठे, पनवारे परसाए—१०-८६ । (२) **परसी या भोजन से सजी पत्तल।** उ.—(क) ग्वारनि के पनवारे चुनिचुनि उदर भरीजै सीथिनि—४६० । (ख) कर कौ कौर डारि पनवारे नागर सूर आपु चले अति चाँड़े—१५५७ ।

पनवारौ—संज्ञा पुं. [हिं. पनवारा] (१) **पत्तों की बनी पत्तल।** उ.—पहिले पनवारौ परसायौ—२३२१ । (२) **पत्तल भर भोजन।** उ.—तब तमोल रचि तुमहिं खवावौं। सूरदास पनवारौ पावौं—१०-२११ ।

पनसूर—संज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह का बाजा।**

पनहा—संज्ञा पुं. [सं. परिणाह=चौड़ाई] (१) **दीवार आदि की चौड़ाई।** (२) **गूढ़ाशय, तात्पर्य।**

संज्ञा पुं.—(१) **चोरी का पता लगानेवाला।** (२) **ऐसे व्यक्ति को दिया जानेवाला पुरस्कार।**

पनहारा—संज्ञा पुं. [हिं. पानी+हारा] **पानी भरनेवाला।**

पनहियाँ, पनहिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पनही] **छोटा जूता, जूती, पनही।** उ.—खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ—६-१६ ।

पनही—संज्ञा स्त्री. [सं. उपानह] **जूता।**

पना—संज्ञा पुं. [सं. पानीय] **आम आदि का पन्ना।**

पनार, पनारा, पनाला—संज्ञा पुं. [हिं. परनाला] **गंदे जल का प्रवाह, परनाला।** उ.—(क) जैसे अंधौ अंध कूप मैं गनत न खाला-पनार। तैसेहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि-सुनि गे कै बार—१८४। (ख) तेरौ नीर सुची जो अब लौ, खार पनार कहावै—५६१ ।

पनारी, पनाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. परनाली] (१) **गंदे जल की धारा, परनाली।** (२) **धार, धारा।** उ.—(क) रुदन जल नदी सम बहि चल्यो उरज बीच मनोगिरी फोरि सरिता पनारी—पृ. ३४१ (५)। (ख) मानो दामिनि धरनि परी कौ सुधर पनारी—१८२३ । (ग) तट बारू उपचार चूर जल परी प्रस्वेद पनारी—२७२८

पनारे, पनाले—संज्ञा पुं. बहु [हिं. परनाले] **अनेक प्रवाह।** उ.—(क) कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ उर बिच बहत पनारे—२७६३ । (ख) चहुँ दिसि कान्ह कान्ह करि टेरत अँसुवनि बहत पनारे—३४४६ ।

पनासना—क्रि. स. [सं. पानाशन] पालना-पोसना।
पनाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) त्राण, बचाव।
मुहा.—पनाह माँगना—बचने की इच्छा करना।
(२) रक्षा का स्थान, शरण, आड़।
पनिघट—संज्ञा पुं. [हिं. पनघट] घाट जहाँ पानी भरा जाता हो। उ.—जब तें पनिघट जाऊँ सखी री वा यमुना के तीर—२७६८।
पनियाँ, पनिया—वि. [हिं. पानी] पानी में रहनेवाला।
पनियाना—क्रि. अ. [हिं. पानी + आना] पानी बहना, पसीजना, प्रवाहित होना।
क्रि. स—(१) सींचना, तर करना। (२) तंग या परेशान करना।
पनिहा—वि. [हिं. पानी] पानी में रहनेवाला।
पनिहार, पनिहारा—संज्ञा पुं. [हिं. पनहरा] पानी भरने वाला।
पनिहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पनहार] पानी भरने वाली। उ.—हौं गोधन लै गयौ जमुन-तट, तहाँ हुती पनिहारी—६६३।
पनी—वि. [सं. प्रण] प्रण करनेवाला।
पनीर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] छेना।
पनीला—वि. [हिं. पानी + इला] पानी मिला हुआ।
पनेथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पानी + पोथी] मोटी रोटी।
पनौ—वि. [हिं. पन्ना] इमली आदि के पने में भीगे हुए। उ.—मूँग पकौरा पनौ पतबरा। इक कोरे इक भिजे गुरबरा—३९६।
पनौआ—संज्ञा पुं. [हिं. पान + औआ] एक पकवान।
पनौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पान + औटी] पान की डिबिया।
पन्न—वि. [सं.] (१) गिरा-पड़ा। (२) नष्ट।
संज्ञा पुं.—रेंग या सरककर चलने की क्रिया।
पन्नई—वि. [हिं. पन्ना] पन्ने की तरह हलके हरे रंग का।
पन्नग—संज्ञा पुं. [सं.] साँप, सर्प। उ.—पन्नग-रूप गिले सिसु गो-सुत, इहिं सब साथ उबारयौ—४३३।
संज्ञा पुं. [हिं. पन्ना] पन्ना, मरकत।
पन्नगारि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़। (२) मयूर।
पन्नगिनि, पन्नगी—संज्ञा स्त्री. [सं. पन्नगी] नागिनि, सर्पिणी। उ.—(क) मनहुँ पन्नगिनि उतरि गगन ते दल पर फल परसावत—१३४५। (ख) मनो पन्नगी निकसि ता बिच रही हाटक गिरि लपटाई—पृ. ३१८ (७१)। (ग) खंजरीट मनो ग्रसित पन्नगी यह उपमा कछु आवै—२०९७।
पन्ना—संज्ञा पुं. [सं. पर्ण ?] मरकत रत्न। उ.—पन्ना पिरोजा लागे बिच-बिच १० उ०-२४।
संज्ञा पुं. [हिं. पात्र] पुस्तक का पृष्ठ।
संज्ञा पुं. [हिं. पना] आम, इमली आदि का पानी मिला पतला रस।
पन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पन्ना = पृष्ठ] रुपहला, सुनहरा, रंगीन या चमकदार कागज।
संज्ञा स्त्री. [हिं. पना] एक भोज्य पदार्थ।
संज्ञा स्त्री. [देश.] बारूद की एक तौल।
पन्हाना—क्रि. अ. [हिं. पहनाना] पहनाना।
पन्हैयाँ, पन्हैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पनही] जूता।
पपड़ा, पपरा—संज्ञा पुं. [सं. पर्पट] (१) लकड़ी, चूनें आदि का पतला छिलका, चिप्पड़। (२) रोटी का बक्कल।
पपड़िआना, पपरिआना—क्रि. अ. [हिं. पपड़ी + आना] (१) सूखकर सिकुड़ना। (२) इतना सूखना कि पपड़ी पड़ जाय।
पपड़ी, पपरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पपड़ा] (१) सूखी और सिकुड़ी हुई छाल या परत। (२) घाव की खुरंड, छोटा पापड़। (३) सोहन पपड़ी नामक मिठाई। (४) छोटा पापड़।
पपिहा, पपीहरा, पपीहा—संज्ञा पुं. [देश. पपीहा] (१) चातक नामक पक्षी जो वसंत और वर्षा में बहुत सुरीली ध्वनि से बोलता है। (२) सितार के छः तारों में एक जो लोहे का होता है।
पपीता—संज्ञा पुं. [देश.] एक वृक्ष।
पपीलि—संज्ञा स्त्री. [सं. पिपीलिका] चींटी।
पपोटा—संज्ञा पुं. [सं. प्र + पट] पलक, दृगंचल।
पपोरना—क्रि. स. [देश.] (बल के गर्व से) बाहें ऐंठना।
पपोलना—क्रि. अ. [हिं. पोपला] पोपला मुँह चलाना।
पबारना—क्रि. स. [हिं. फेंकना] फेंकना।
पबि—संज्ञा पुं [सं. पवि] वज्र।
पब्बय—संज्ञा पु. [सं. पर्वत] पहाड़, पर्वत।

पब्बि—संज्ञा पुं. [सं. पवि] **वज्र** ।

पमाना—क्रि. अ. [?] **डींग हाँकना** ।

पय—संज्ञा पुं [सं. पयस्] (१) **दूध** । उ.—जिनि पहले पलना पौढ़े पय पीवत पूतना घाली—२५६७ । (२) **जल, पानी** । (३) **अन्न** ।

पयज—संज्ञा स्त्री. [सं. पैज] **प्रण, प्रतिज्ञा** ।

पयद—संज्ञा पुं [सं. पयोद] **बादल, मेघ** ।

पयधि—संज्ञा पुं. [सं. पयोधि] **सागर, समुद्र** ।

पयनिधि—संज्ञा पुं. [सं. पयोनिधि] **सागर, समुद्र** । उ.—(क) मनु पयनिधि सुर मथत फेन फटि, दयौ दिखाई चंद—१०-२०३ । (ख) मानहुँ पयनिधि मथत, फेन फटि चंद उजारयौ—४३१ ।

पयस्वती—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नदी, सरिता** ।

पयस्विनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **गाय** । (२) **नदी** ।

पयहारी—वि. [हिं. पय+आहारी] **सिर्फ दूध पीकर ही रहनेवाला** ।

पयादि—संज्ञा पुं. [हिं. प्यादा] **पैदल, प्यादा** ।

पयान, पयानो—संज्ञा पुं [सं. प्रयाण] **गमन, प्रस्थान, जाना, यात्रा** । उ.—(क) बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ (हो)—९-३३ । (ख) आजु रघुनाथ पयानो देत । बिह्वल भए स्रवन सुनि पुरजन, पुत्र-पिता कौ हेतु—९-३९ ।

पयार, पयाल—संज्ञा पुं. [सं. पलाल, हिं. पयाल] **धान, कोदों आदि के सूखे डंठल** । उ.—(क) धान को गाँव पयार ते जानौ ज्ञान विषय रस भोरे । (ख) उनके गुन कैसे कहि आवै सूर पयारहिं झारत—पृ. ३२७ (६८) ।

मुहा.—पयार गाहना—**व्यर्थ का श्रम करना** । उ.—(क) फिरि-फिरि कहा पयारहिं गाहे । (ख) झारि झूरि मन तो तू लै गयो, बहुरि पयारहिं गाहत—३०६५ ।

पयोघन—संज्ञा पुं. [सं.] **ओला** ।

पयोद—संज्ञा पु. [सं.] **बादल, मेघ** ।

पयोदन—संज्ञा पुं. [सं. पयस्+ओदन] **दूध-भात** ।

पयोधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **थन** । उ.—मनौ धेनु तृन छाँड़ि बच्छ हित, प्रेम-द्रवित चित स्रवत पयोधर—१०-१२४ । (२) **स्त्री के स्तन** । उ.—पीन पयोधर सघन उन्नत अति तापर रोमावली लसी री—२३८४ । (३) **बादल** । (४) **तालाब** ।

पयोधि, पयोनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] **समुद्र** ।

पयोमुख—वि. [सं.] **दुधमुहाँ या दूधपीता** ।

पयोवाह—संज्ञा पुं. [सं.] **मेघ, बादल** ।

पयोव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **एक व्रत जिसमें केवल जल पीकर रहा जाता है** । (२) **श्रीकृष्ण का एक व्रत जिसमें बारह दिन तक केवल दूध पीकर उनका ध्यान किया जाता है** ।

पयौ—संज्ञा पुं. [हिं. पय] **दूध** । उ.—पसु-पंछी तृन-कन त्याग्यौ, अरु बालक पियौ न पयौ—९-४६ ।

पयौसार—संज्ञा पुं. [सं. पितृशाला] **स्त्री के पिता का घर, मायका, पीहर, नैहर** । उ.—परत फिराइ पयोनिधि भीतर, सरिता उलटि बहाई । मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्यौसार पठाई—९-१२४ ।

परंच—अव्य. [सं.] (१) **और भी** । (२) **तो भी** ।

परंजय—संज्ञा पुं. [सं.] **शत्रु को जीतनेवाला** ।

परंतप—वि. [सं.] (१) **शत्रु को चैन न लेने देनेवाला** । (२) **जितेंद्रिय** ।

परंतु—अव्य. [सं. परं+तु] **पर, तोभी, किन्तु** ।

परंपरा—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) **क्रम, पूर्वापर क्रम** । उ.—यह तो परंपरा चलि आई सुख दुख लाभ अरु हानि—२६५८ । (२) **वंश या संतति-क्रम** । (३) **रीति** ।

परंपरागत—वि. [सं.] **परम्परा से होता आनेवाला** ।

पर—वि. [सं.] (१) **दूसरा, अन्य** । (२) **पराया, दूसरे का** । (३) **भिन्न, पृथक्** । (४) **बाद का** । (५) **दूर, सीमा के बाहर** । (६) **सबसे ऊपर, श्रेष्ठ** । (७) **लीन** ।

प्रत्य. [सं. उपरि] **अधिकरण की विभक्ति** । उ.—(क) कर-नख पर गोबर्धन धारी—१-२२ । (ख) ऐकै चीर हुतौ मेरे पर—१-२४७ ।

संज्ञा पुं.— (१) **शत्रु** । (२) **शिव** । (३) **मोक्ष** ।

अव्य. [सं. परम्] (१) **पीछे, पश्चात्** । (२) **किन्तु, परन्तु** ।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] **पक्षी के पंख, पक्ष** ।

मुहा.—पर कट जाना—**बल या शक्ति का आधार न रह जाना** । पर काट देना—**बल या शक्ति का**

आधार नष्ट कर देना। पर जमाना—**सीधे-सादे व्यक्ति में भी चालाकी या धूर्तता आना।** पर न मारना (मार सकना)—**पास न फटक सकना।**

परई—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] (१) **पड़ता है, पतित होता है, गिरता है।** उ.—डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई—६-७८। (२) (नींद) **पड़ती है।** उ.—बिधु बैरी सिर पर बसै निसि नींद न परई—२८६१।

संज्ञा स्त्री. [सं. पार] **मिट्टी का बड़ा कटोरा।**

परक—संज्ञा स्त्री. [हिं. परकना] **परकने की क्रिया।**

परकट—वि. [सं. प्रकट] **उत्पन्न।** उ.—मच्छ के उदर ते बाल परकट भयो—१० उ.-२५।

परकटा—[हिं. पर+कटना] **जिसके पंख कटे हों।**

परकना—क्रि. अ. [हिं. परचना] (१) **हिल-मिल जाना।** (२) **धड़क खुलना, चस्का पड़ना।**

परकसना—क्रि. अ. [हिं. परकासना] (१) **प्रकट या उत्पन्न होना।** (२) **प्रकाशित होना, जगमगाना।**

परकाजी—वि. [हिं. पर+काज] **परोपकारी।**

परकाना—क्रि. स. [हिं. परकना] (१) **हिलाना-मिलाना।** (२) **धड़क खोलना, चस्का डालना।**

परकार—संज्ञा पुं. [सं. प्रकार] (१) **भेद, किस्म।** (२) **रीति, ढंग, प्रकार।** उ.—(क) भयौ भागवत जा परकार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार—१-२३०। (ख) चारिहूँ जुग करी कृपा परकार जेहि सूरहू पर करौ तेहि सुभाई—८-६।

परकारी—संज्ञा स्त्री [सं. प्रकार] **रीति, ढंग।** उ.—बूझत हैं पूजा परकारी—१०२१।

परकाला—संज्ञा पुं. [फ़ा. परगाल] (१) **सीढ़ी।** (२) **दहलीज।** (३) **टुकड़ा।** (४) **चिनगारी।**

मुहा.—आफत का परकाला—**बहुत उपद्रवी।**

परकाश, परकास—संज्ञा पुं. [सं. प्रकाश] **प्रकाश।**

परकाशत, परकासत—क्रि. स. [हिं. प्रकाशना] **प्रकट करता है, उच्चरित करता है।** उ.—गदगद मुख बानी परकासत देह दसा बिसरी—१४७८।

परकाशना, परकासना—क्रि. स. [सं. प्रकाशन] (१) **प्रकाशित करना।** (२) **प्रकट करना।**

परकाशित, परकासित—वि. [हिं. प्रकाशना] **चमकता हुआ, प्रकाशयुक्त, कांतियुक्त।** उ.—कोटि किरनि-मनि मुख प्रकासित, उडुपति कोटि लजावत—४७६।

परकाशी, परकासी—क्रि. स. [हिं. प्रकाशना] **प्रकट की, उच्चरित की।** उ.—सिंधु मध्य बाणी परकाशी—२४५९।

परकिति—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रकृति] **प्रकृति।**

परकीय—वि. [सं.] **पराया, दूसरे का।**

परकीया—संज्ञा स्त्री [सं.] **उपपति से प्रेम करनेवाली।**

परकीरति—संज्ञा स्त्री [सं. प्रकृति] **प्रकृति।**

परकृत—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रकृति] **स्वभाव, प्रकृति।** उ.—परकृत एक नाम हैं दोऊ किधौं पुरुष, किधौं नारि—२२२०।

परकृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **दूसरे की कृति या रचना।**

परकोटा—संज्ञा पुं. [सं. परिकोट] (१) **चहारदीवारी।** (२) **पानी आदि को रोकने का धुस या बाँध।**

परख—संज्ञा स्त्री. [सं. परीक्षा, प्रा. परिक्ख] (१) **जाँच, परीक्षा।** (२) **गुण-दोष-विवेचक वृत्ति।**

परखना—क्रि. स. [सं. परीक्षण, प्रा. परीक्खण] (१) **जाँच या परीक्षा करना।** (२) **भला-बुरा जाँचना।**

क्रि. स. [हिं. परेखना] **प्रतीक्षा या इन्तजार करना।**

परखाइ—क्रि. स. [हिं. परखना] **जाँचकर।** उ.—हम सौं लीजै दान के दाम सबै परखाइ—१०१७।

परखाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. परख] **परखने की क्रिया, भाव या मजदूरी।**

परखाना—क्रि. स. [हिं. परखना] (१) **जँचवाना।** (२) **सौंपाना।**

परखि—क्रि. स. [हिं. परखना] (१) **परखकर, जाँच करके, गुण-दोष की परीक्षा करके।** उ.—ताहि कैं हाथ निरमोल नग दीजिए, जोइ नीकैं परखि ताहि जानै—१-२२३। (२) **देख लिया, निगाह डाल ली।** उ.—परखि लिए पाछेन को तेऊ सब आए—२५७५।

परखी—क्रि. स. [हिं. परखना] **जाँची, देखी-भाली।**

संज्ञा पुं. [हिं. पारखी] **परखनेवाला।**

परखैया—संज्ञा पुं. [सं.] **परखनेवाला।**

परग—संज्ञा पुं. [सं. पदक] **डग, कदम**। उ.—बामन रूप धरयौ बलि छलि कै, तीनि परग बसुधाऊ—१०-२२१।

परगट—वि. [सं. प्रकट] (१) **अंकित, चिन्हित**। उ.—अंकुस-कुलिस-बज्र ध्वज परगट तरुनी-मन भरमाए—६३१। (२) **उत्पन्न**।

प्रा०—कियौ परगट—**प्रकट किया, बताया**। उ.—सुपनौ परगट कियौ कन्हाई—५४४।

परगटना—क्रि. अ. [हिं. प्रगट] **प्रगट होना, खुलना**।

क्रि. स.—**प्रकट करना, खोलना**।

परगन, परगना—संज्ञा पुं. [फ़ा. परगना] **भू-भाग जिसमें कई ग्राम हों**। उ.—ब्रज-परगन-सिकदार महर, तू ताकी करत नन्हाई—१०-३२६।

परगसना—क्रि. अ. [सं. प्रकाशन] **प्रकाशित होना**।

परगाढ़—वि. [सं. प्रगाढ़] **बहुत गाढ़ा, गहरा**।

परगास—संज्ञा पुं. [सं. प्रकाश] **प्रकाश**। उ.—अबिनाशी बिनसै नहीं सहज ज्योति परगास—३४४३।

वि०—**प्रकट**। उ.—उदधि मथि नग प्रगट कीन्हो श्री सुधा परगास—१३५६।

परगासना—क्रि. अ. [सं. प्रकाशन] **प्रकाशित होना**।

क्रि. स.—**प्रकाशित करना**।

परगासा—वि. [सं. प्रकाश] **प्रकाशित**। उ.—बिनु पर-पानि करै परगासा—१०-३।

क्रि. स.—**प्रकट या उत्पन्न किया**। उ.—सूरज चंद्र धरनि परगासा—२६४३।

परघट—वि. [सं. प्रकट] **उत्पन्न, प्रकट**।

परचंड—वि. [सं. प्रचंड] **भयंकर, प्रचंड**।

परचत—संज्ञा स्त्री. [सं. परिचित] **जान-पहचान, जानकारी**। उ.—सुरति-सरित भ्रम भँवर तन मन परचत न लह्यौ।

परचना—क्रि. अ. [सं. परिचयन] (१) **हिलना-मिलना**। (२) **धड़क खुलना, चस्का लगना**।

परचा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **कागज की चिट**। (२) **चिट्ठी**।

संज्ञा पुं. [सं. परिचय] (१) **परख**। (२) **परिचय**।

परचाना—क्रि. स. [हिं. परचना] (१) **हिलाना-मिलाना**। (२) **धड़क खोलना, चस्का लगाना**।

परचून—संज्ञा पुं. [सं. पर+चूर्ण] **दाल-चावल आदि**।

परचै—संज्ञा पुं. [सं. परिचय] **जान-पहचान**।

परचो, परचौ—संज्ञा पुं. [हिं. परचा] **परिचय, परख, परीक्षा**। उ.—काहू लियो प्रेम परचो, वह चतुर नारि है सोई—२२७५।

परच्यौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. परचो] **सीमा, अंत**। उ.—चंदन अंग सखनि कै चरच्यौ। जसुमति के सुख कौ नहिं परच्यौ—३६६।

परछत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. पर+छत] **हलका छाजन**।

परछन—संज्ञा स्त्री. [सं. परि+अर्चन] **विवाह की एक रीति**।

परछना—क्रि. स. [हिं. परछन] **विवाह में वर के आने पर आरती आदि करना**।

परछा—संज्ञा पुं. [सं. परिच्छेद] (१) **भीड़ की कमी**। (२) **समाप्ति**।

परछाईं—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिच्छाया] (१) **प्रतिबिंब**। (२) **छायाकृति**।

परछाया—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिच्छाया] **परिछाईं, छाया**। उ.—मंदिर की परछाया बैठ्यौ, कर मींजै पछिताइ—६-७५।

परछहिआँ, परछाँह—संज्ञा स्त्री. [हिं. परछाईं] **छाया, प्रतिबिम्ब**। उ.—(क) निरखि अपनो रूप आपुही बिबस भई सूर परछाँह को नैन जोरैं—पृ. ३१६ (५८)। (ख) मनो मोर नाचत सँग डोलत मुकुट की परिछहिआँ—३४५।

परजंत—अव्य. [सं. पर्यंत] **तक, लौं**।

परजन—संज्ञा पुं. [सं. परिजन] **सेवक, अनुचर**।

परजरना—क्रि. अ. [सं. प्रज्वलन] (१) **जलना, सुलगना**। (२) **कुढ़ना, क्रुद्ध होना**। (३) **ईर्ष्या या डाह करना**।

परजन्य—संज्ञा पुं. [सं. पर्जन्य] (१) **बादल**। (२) **इंद्र**।

परजरना, परजलना—क्रि. अ. [सं. प्रज्वलन] **सुलगना**।

परजर—वि. [सं. प्रज्वलित] **जलता हुआ**।

परजरयौ—क्रि. अ. [हिं. परजरना] **क्रुद्ध हुआ, कुढ़ गया**। उ.—सुनि अरे अंध दसकंध, लै सीय मिलि, सेतु करि बंध रघुबीर आयौ। यह सुनत परजरयौ, बचन नहिं मन धरयौ, कहाँ तैं राम सौं मोहिं डरायौ—६-१२८।

परजा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रजा] (१) **राज्य-निवासी, प्रजा**। उ.—(क) परजा सकल धर्म-रत देखी—१-२९०।

(ख) रिषभराज परजा सुख पायौ—५-२ । (२) **आश्रितजन** ।

परजारना, परजालना—क्रि. स. [हिं. परजरना] **जलाना** ।

परण—संज्ञा पुं. [सं. प्रण] **प्रण, प्रतिज्ञा** । उ.—तातो पिता परण यह कीन्हो—१० उ.—२८ ।

परणना—क्रि. स. [सं. परिणयन्] **विवाह करना** ।

परणाम—संज्ञा पुं. [सं. प्रणाम] **प्रणाम, नमस्कार** । उ.—तब परिणाम कियौ अति रुचि सों अरु सबही कर जोरे—२६७१ ।

परतंचा—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्रत्यंचा] **धनुष की डोरी** ।

परतंत्र—वि. [सं.] **परवश, पराधीन** ।

परतः—अव्य. [सं. परतस्] (१) **पीछे** । (२) **आगे** ।

परत—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] (१) **पड़ता है, गिरता है, जाता है** । उ.—पग-पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै—१-४८ । (२) **स्थित है, उपस्थित होता है, स्थान पाता है** । उ.—सूरदास कौं यहै बड़ौ दुख, परत सबनि के पाछे—१-१३६ । (३) (**युद्ध क्षेत्र**) **में मरकर गिरता है**। उ.—इत भगदत्त, द्रोन, भूरिश्रव, तुम सेनापति धीर । जे जे जात, परत ते भूतल, ज्यौं ज्वाला-गत चीर—१-२६६ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पत्तर] (१) **तह, स्तर** । (२) **तह, मोड़**।

परतक्ष, परतच्छ—वि. [सं. प्रत्यक्ष] **प्रकट, प्रत्यक्ष**। उ.—(क) सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं—६-१५७ । (ख) कनक तुम परतच्छ देखहु सजे नवसत अंग—११३२ ।

परतर—वि. [सं.] **बाद या पीछे का** ।

परताप—संज्ञा पुं. [सं. प्रताप] (१) **पौरुष, वीरता** । उ.—यह अपनो परताप नंद जसुमतिहिं सुनैहौ—११४० । (२) **तेज** । (३) **महिमा, महत्व, प्रताप** । उ.—भजन कौ परताप ऐसौ जल तरै पाषान—१-२३५

परताल—संज्ञा स्त्री. [हिं. पड़ताल] **जाँच, खोज-खबर** ।

परतिंचा—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्रत्यंचा] **धनुष की डोरी** ।

परति—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] (१) **पड़ता है, गिरता है** । (२) **मिलता है, प्राप्त होता है** । उ.—पलित केस, कफ कंठ बिरुंध्यौ, कल न परति दिन-राती—१-११८ । (३) **फाँसती है, बाँधती है** । उ.—मैं-मेरी करि जन्म गँवावत, जब लगि नाहिं परति जम डोरी—१-३०३ ।

परतिग्या, परतिज्ञा—संज्ञा स्त्री [सं. प्रतिज्ञा] **प्रतिज्ञा, व्रत, संकल्प** । उ.—ऐसे जन परतिज्ञा राखत जुद्ध प्रगट करि जोरे—१-३१ ।

परती—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **गिरती** । उ.—सुत सनेह समुझति सु सूर प्रभु फिरि फिरि जसुमति परती धरनी—३३३० ।

संज्ञा स्त्री—**जमीन जो जोती-बोई न जाय** ।

परतीत, परतीति—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतीति] **विश्वास** । उ.—(क) कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा—१-१३४ । (ख) बिछुरे श्रीव्रजराज आजु तौ नैननि ते परतीति गई—२५३७ ।

परतेजना—क्रि. स. [सं. परित्यजन] **छोड़ना, त्यागना** ।

परतेजी—क्रि. स. [हिं. परतेजना] **छोड़ा, त्यागा** । उ.—जैसे उन मोकों परतेजी कबहूँ फिरि न निहारत हैं ।

परतौ—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **प्रसिद्ध होता, ख्यात होता,** (**नाम**) **पड़ता या होता** । उ.—जौ तू राम-नाम-धन धरतौ....... । जम कौ त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरौ परतौ—१-२६७ ।

परत्व—संज्ञा पुं. [सं.] **पहले या पूर्व होने का भाव** ।

परदच्छिणा, परदच्छिना—संज्ञा स्त्री. [सं प्रदक्षिणा] **परिक्रमा, प्रदक्षिणा** । उ.—बहुरि बलभद्र परनाम करि रिषिन्ह को पृथ्वी परदच्छिणा को सिधाये—१० उ०-५८ ।

परदा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आड़ करने का कपड़ा** ।

मुहा.—परदा खोलना—**छिपी बात प्रकट करना** । परदा डालना—**बात छिपाना** । आँख पर परदा पड़ना—**दिखायी न देना** । बुद्धि पर परदा पड़ना—**समझ में न आना** । परदा रखना—**प्रतिष्ठा बनी रहने देना** । राखत परदा तेरो—**तेरी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहती हैं** । उ.—मधुकर, जाहि कहौ सुनि मेरौ । पीत बसन तन स्याम जानि कै राखत परदा तेरौ—३२७१ ।

(२) **आड़ करने की चीज** । (३) **आड़, ओट, ओझल** । (४) **ओट, छिपाव** ।

मुहा.—परदा रखना—(१)**सामने न आना**। (२) **छिपाव रखना**। परदा होना—**दुराव-छिपाव होना**। उ.—सुनहु सूर हमसौं कहा परदा हम कर दीन्हीं साट सई—१२६७।

(५) **स्त्रियों को ओट में रखना**। (६) **तह, परत**। (७) **चमड़े की झिल्ली**।

परदेश, परदेस—वि. [सं. परदेश] **दूसरा देश, विदेश**। उ.—तिनको कठिन करेजो सखी री, जिनको पिय परदेश—२७५३।

परदेशिनि, परदेसिनि—वि. स्त्री. [सं. पुं. परदेशी] **विदेश की रहनेवाली, अन्य देशवासिनी**। उ.—मैं परदेसिनि नारि अकेली—६-६४।

परदेशी, परदेसी—वि. [सं. परदेशी] **विदेशी**।

संज्ञा पुं.—**विदेश में रहनेवाला व्यक्ति**। उ.—कहा परदेशी को पतियारो—२७३१।

परदोष—संज्ञा पुं. [सं. प्रदोष] (१) **संध्याकाल**। (२) **त्रयोदशी को शिवजी का व्रत**।

परधान—वि. [सं. प्रधान] **मुख्य, प्रधान**।

संज्ञा पुं. [सं. परिधान] **वस्त्र**। उ.—दान-मान-परधान पूरन काम किए।

परधान्यौ—क्रि. स. [सं. प्रधान] **प्रधान समझा, सबसे आवश्यक माना**। उ.—यहै मंत्र सबहीं परधान्यौ, सेतु बंध प्रभु कीजै। सब दल उतरि होई पारंगत, ज्यौं न कोउ इक छीजै—६-१२१।

परधाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **परलोक**। (२) **ईश्वर**।

परन—संज्ञा पुं. [सं. प्रण] **टेक, प्रतिज्ञा**।

संज्ञा स्त्री [हिं. पड़ना] **बान, आदत**। उ.—राखौ हटकि उतै को धावै उनकी वैसिय परन परी री—१६६४।

क्रि. अ.—**पड़ना, पड़ जाना**।

प्र०—परन न दीनौ— **पड़ने नहीं दिया**। उ.—सभा माँझ द्रौपदि-पति राखी, पति पानिप कुल ताकौ। बसन ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हौ झाँकौ—१-११३।

परनकुटी—संज्ञा स्त्री [सं. पर्ण+कुटी] **पत्तों से बनी कुटी, पर्णकुटी, पर्णशाला**। उ.—तीनि पैंड़ बसुधा हौं चाहौं, परकुटी कौं छावन—८-१३।

परन-पुटी—संज्ञा स्त्री [सं. पर्ण+पुट] **पत्तों का दोना**।

परना—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **पड़ना**।

परनाम—संज्ञा पुं. [हिं. प्रणाम] **नमस्कार, प्रणाम**।

परनाला—संज्ञा पुं. [सं. प्रणाली] **पनाला, मोहरी**।

परनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पड़ना] **चढ़ाई, धावा**।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पड़ना] (१) **बान, आदत, बेव, टेक, दृढ़ता**। उ.—(क) परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढ़त अकास। तहँ चढ़ि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास—१-३२५। (ख) सूरदास तैसहि ये लोचन का धौं परनि परी। (ग) ऐसी परनि परी, री! जाको लाज कहा ह्वै है तिनको। (घ) राखौ हटकि उतै को धावै उनकी वैसिय परनि परी री—१६६४। (ङ) मनहुँ प्रेम की परनि परेवा याही से पढ़ि लीनी—२६०६। (२) **रट, रटना**।

परनौत—संज्ञा स्त्री. [हिं. पर+नवना] **प्रणाम, नमस्कार**। उ.—ताते तुमको करैं दँडौत। अरु सब नरहूँ को परनौत—५-४।

परपंच—संज्ञा पुं. [सं. प्रपंच] (१) **दुनिया का जंजाल**। (२) **झगड़ा-बखेड़ा**। (३) **ढोंग, आडंबर**। (४) **छल-कपट**। उ.—सोई परपंच करै सखि, अबला ज्यों बरई—२८६१।

परपंचक—वि. [सं. प्रपंचक] **बखेड़िया, झगड़ालू**।

परपंची—वि. [सं. प्रपंची] (१) **बखेड़िया, झगड़ालू**। (२) **धूर्त, काँइयाँ**। उ.—सब दल होहु हुस्यार चलहु अब घेरहिं जाई। परपंची है कान्ह कछू मति करै ढिठाई—१० उ.-८।

परपराना—क्रि. अ.[देश.] **मिर्च आदि का तीक्ष्ण लगना**।

परपार—संज्ञा पुं. [हिं. पर+पार] **दूसरी ओर का तट**।

परपीड़क, परपीरक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूसरे को कष्ट देनेवाला**। (२) **दूसरे के कष्ट को समझने और उससे मुक्त करानेवाला**। उ.—मागध हति राजा सब छोरे ऐसे प्रभु पर-पीरक।

परपूठा—वि. [सं. परिपुष्ट, प्रा. परिपुट्ठ] **पक्का**।

परफुल्ल, परफुल्लित—वि. [सं. प्रफुल्ल, हिं. प्रफुल्लित]

प्रफुल्लित, आनंदित। उ.—धन्य पिता जापर परफुल्लित राघव-भुजा अनूप। वा प्रतापि की मधुर बिलोकनि पर वारौं सब भूप—६-१३४।

परबंध—संज्ञा पुं. [सं. प्रबंध] **व्यवस्था, प्रबंध।**

परब—संज्ञा पुं. [सं. पर्व] **त्योहार, उत्सव।** उ.—आजु परब हँसि खेलो हो मिलि सँग नंदकुमार—२४८२।

परबत—संज्ञा पुं. [सं. पर्वत] (१) **पहाड़, पर्वत।** (२) **बड़ा ढेर।** उ.—अति आनंद नंद रस भीने। परबत सात रतन के दीने—१०-३२।

परबल—वि. [सं. प्रबल] **सशक्त, बली।**

परबस—वि. [सं. पर=दूसरा+वश] **जो स्वतंत्र न हो, पराधीन।** उ.—परबस भयौ प्रभू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ—१-४७।

परबसता, परबसताई—संज्ञा स्त्री. [सं. परवश्यता] **पराधीनता, परतंत्रता।**

परबाल—संज्ञा पुं. [सं. प्रवाल] (१) **मूँगा।** (२) **कोंपल।**

परबाह—संज्ञा पुं. [सं. प्रवाह] **धारा, प्रवाह।** उ.—उर-कलिंद तैं धँसि जल-धारा उदर-धरनि परबाह—६३७।

परबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. परब] **पर्व या उत्सव का दिन।**

परबीन, परबीने, परबीनो—वि.[सं. प्रवीण] **दक्ष, कुशल।** उ.—बिबिध बिलास-कला-रस की बिधि उभै अंग परबीनो—२२७५।

परबेश, परबेशा—संज्ञा पुं. [सं. प्रवेश] **पैठ, प्रवेश।** उ.—धरत नलिनी बूँद ज्यौं जल बचन नहिं परबेश—३४७६।

परबो—संज्ञा पुं. [हिं. पड़ना] **पड़ने की क्रिया या भाव।** उ.—जामें बीती सोई जानै कठिन सुप्रेम पाश को परबो—२८६०।

परबोध—संज्ञा पुं. [सं. प्रबोध] **बोध, ज्ञान।** उ.—होइ ज्यों परबोध उनको मेरी पति जिन जाइ—१६१४।

परबोधत—क्रि. स. [हिं. परबोधना] **समझता या दिलासा देता है।** उ.—पुनि यह कहा मोहिं परबोधत धरनि गिरी मुरझैया।

परबोधन—संज्ञा पुं. [हिं. परबोधना] **समझाने या दिलासा देने की क्रिया, भाव या उद्देश्य।** उ.—(क) गोपिनि को परबोधन कारन जैहै सुनत तुरंत—२६१३। (ख) हमको परबोधन हरि तौ नहिं पठए—३२६७।

परबोधना—क्रि. स. [सं. प्रबोधना] (१) **जगाना।** (२) **ज्ञान का उपदेश करना।** (३) **सांत्वना देना, दिलासा देना।**

परबोधि—क्रि. स. [हिं. परबोधना] **समझा-बुझाकर, दिलासा देकर।** उ.—(क) रानिनि परबोधि स्याम महल द्वारे आए—२६१६। (ख) सूर नन्द परबोधि पठावत निठुर ठगोरी लाई—२६५४।

परबोधो,परबोधौ—क्रि. स. [हिं. परबोधना] **ज्ञान का उपदेश दो।** उ.—जो तुम कोटि भाँति परबोधौ जोग-ज्ञान की रीति—३२११।

परब्रह्म—संज्ञा पुं. [सं.] **ब्रह्म जो जगत से परे है।**

परभव—संज्ञा पुं. [सं.] **दूसरा जन्म।**

परभा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रभा] **प्रकाश, आभा, कांति।**

परभाई, परभाउ, परभाऊ—संज्ञा पुं. [सं. प्रभाव] **फल, परिणाम, असर।** उ.—यह सब कलयुग कौ परभाउ। जो नृप कैं मन भयउ कुभाउ—१-२६०।

परभात—संज्ञा पुं. [सं. प्रभात] **प्रातःकाल, प्रभात, सबेरा।** उ.—(क) सुनि सीता, सपने की बात। रामचन्द्र लछिमन मैं देखे, ऐसी बिधि परभात—६-८२। (ख) रथ आरूढ़ होत परभात—६-८२। (ख) रथ-आरूढ़ होत बलि गई होइ आयो परभात—२५३१।

परभाती—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रभाती] **प्रातःकालीन गीत।**

परम—वि. [सं.] (१) **सबसे बढ़ा-चढ़ा।** (२) **उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, महान्।** उ.—परम गंग कौं छाँड़ि महातम और देव कौं ध्यावैं—१-१५८। (३) **प्रधान।**

परमगति—संज्ञा स्त्री [सं.] **मोक्ष, मुक्ति।**

परमतत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मूल तत्व या सत्ता जिससे सारी सृष्टि का विकास माना जाता है।** (२) **ब्रह्म।**

परमधाम—संज्ञा पुं. [सं.] **बैकुंठ।**

परमपद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **श्रेष्ठ पद।** (२) **मुक्ति।**

परमपिता, परमपुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] **परमेश्वर।**

परमफल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **श्रेष्ठ फल।** (२) **मुक्ति।**

परम भट्टारक—संज्ञा पुं.[सं.] **एकछत्र राजा की उपाधि।**

परमहंस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **ज्ञान की चरमावस्था को**

पहुँचा हुआ संन्यासी। (२) परमात्मा। उ.—परमहंस तब बचन उचारे—१० उ.-१०६।

परमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **छवि, सुंदरता।**

परमाणु—संज्ञा पुं. [सं.] **अत्यंत सूक्ष्म अणु।**

परमाणुवाद—संज्ञा पुं. [सं.] **परमाणुओं से सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धांत।**

परमाणुवादी—वि. [सं.] **परमाणवाद का पोषक।**

परमातम—संज्ञा पुं. [हिं. परमात्मा] **परब्रह्म, ईश्वर।** उ.—तन स्थूल अरु दूबर होइ। परमातम कौं ये नहि दोइ—५-४।

वि.—**अत्यंत घनिष्ठ।** उ.—ता नृप कौ परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र—४-१२।

परमातमा, परमात्मा—संज्ञा पुं. [सं. परमात्मन्, हिं. परमात्मा] **परब्रह्म, ईश्वर।**

परमानंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अत्यंत सुख।** (२) **ब्रह्म के साक्षात् का सुख, ब्रह्मानंद।** (३) **आनंदस्वरूप ब्रह्म।**

वि.—[सं. परम+आनन्द] **जो आनंदस्वरूप हो।** उ.—तुम अनादि, अविगत, अनंतगुन पूरन परमानंद—१-१६३।

परमान—संज्ञा पुं. [सं. प्रमाण] (१) **प्रमाण, सबूत।** (२) **सत्य बात।** (३) **सीमा, फैलाव, हद।** उ.—द्वादश कोश रास परमान—१८१६।

वि.—(१) **सत्य, प्रमाणित।** उ.—ऊधौ, बेद बचन परमान—३३६६। (२) **पूर्ण।** उ.—(क) रिषि कह्यौ ताहि दान-रति देहि। मैं बर देहुँ तोहिं सो लेहि। सत्यवती सराप भय मान। रिषि कौ बचन कियौ परमान—१-२२६। (ख) सिव कौ बचन कियौ परमान—४-५। (३) **स्वीकार, मान्य।** उ.—कह्यौ, जो कहौ सो हमैं परमान है—८-८।

परमानना—क्रि. स. [सं. प्रमाण] (१) **सत्य या प्रमाण समझना** (२) **स्वीकारना, सकारना।**

परमाने—संज्ञा पुं. [सं. प्रमाण] **प्रमाण।** उ.—अब तुम प्रगट भए बसुदेव सुन गर्ग बचन परमाने—२६५०।

परमान्न—संज्ञा पुं. [सं.] **खीर, पायस।**

परमारथ—संज्ञा पुं. [सं. परमार्थ] **सारवस्तु, वास्तव सत्ता, यथार्थ तत्व।** उ.—हरि, हौं महापतित अभिमानी। परमारथ सौं बिरत, बिषय रत, भाव-भगति नहिं नैंकहुँ जानी—१-१४६।

परमार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **श्रेष्ठ वस्तु।** (२) **यथार्थ तत्व या सत्ता।** (३) **मोक्ष।** (४) **पूर्ण सुख।**

परमार्थवादी—वि. [सं. परमार्थवादिन्] **ज्ञानी।**

परमार्थी—वि. [सं. परमार्थिन्] (१) **यथार्थ तत्व का अन्वेषक या जिज्ञासु।** (२) **मुक्ति चाहनेवाला, मुमुक्षु।**

परमिति—संज्ञा स्त्री. [सं. परिमिति] (१) **नाप, तौल, सीमा।** उ.—सुनि परमिति पिय प्रेम की (रे) चातक चितवन पारि। घन-आसा सब दुख सहै, (पै) अनत न जाँचै बारि—१-३२५। (२) **मर्यादा।** उ.—(क) पाँचै परमिति परिहरै हरि होरी है—२४५५। (ख) जुरयौ सनेह नँदनंदन सों तजि परमिति कुलकानि—३२१४। (ग) परमिति गए लाज तुम्हीं को हंसिनि ब्याहि काग लै जाहि—१० उ.-१०। (३) **परिधि, घेरा, सीमा, विस्तार।** उ.—(क) कोश द्वादश राज परमिति रच्यो नंदकुमार—१८३७। (ख) उमँग्यौ प्रेम समुद्र दशहूँ दिशि परमिति कही न जाय—१० उ.-११२।

परमुख—वि. [सं. पराङ्मुख] **विमुख, विरुद्ध।**

परमेश, परमेश्वर, परमेसर, परमेसुर, परमेस्वर—संज्ञा पुं. [सं.] **सगुण ब्रह्म।**

परमेश्वरी, परमेसरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **दुर्गा, देवी।**

परमोद—संज्ञा पुं. [सं. प्रमोद] **आनंद, प्रमोद।**

परमोदना—क्रि. स. [सं. प्रमोद] **बहलाना, फुसलाना।**

परमोधत—क्रि. स. [हिं. प्रबोधना] **धीरज देता है, प्रबोधता है, ढाढ़स बँधाता है।** उ.—धीरज धरहु, नैंकु तुम देखहु, यह सुनि लेति बलैया। पुनि यह कहति मोहिं परमोधति, धरनि गिरी मुरझैया—५६०।

परमोधना—क्रि. स. [हिं. प्रबोधना] **धीरज देना।**

परमोधि—क्रि. स. [हिं. प्रबोधना] **समझा-बुझाकर।** उ.—माता कौं परमोधि दुहुँनि धीरज धरवायौ—५८६।

परयंक—संज्ञा पुं. [सं. पर्यंक] **पलँग।**

परयौं—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **पड़ा हुआ हूँ, ठहरा हूँ, स्थित हूँ।** उ.—किए प्रन हौं परयौं द्वारैं, लाज प्रन की तोहिं—१-१०६।

परयौ—क्रि. अ. [हिं. पड़ना](१) **पड़ा, गया, पहुँचा, डाला गया** । उ.—नरक कूपन जाइ जमपुर परयौ बार अनेक —१-१०६ । (२) **इच्छा हुई, (हठ) ठाना, धुन लगी** । उ.—माधौ जू, मन हठ कठिन परयौ । जद्यपि विद्यमान सब निरखत, दुःख सरीर भरयौ—१-१०० । (३) **मूर्छित होकर या मरकर गिरा, पतित हुआ** । उ.—भीषम सर-सज्या पर परयौ—१-२७६ ।

परलउ, परलय—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रलय] **सृष्टि का नाश** । उ.—(क) रात होइ तब परलय होइ ।

परला—वि. [हिं. पर+ला] **दूसरी ओर का** ।

परली—वि. स्त्री. [हिं. परला] **उस ओर की, दूसरी तरफ की** । उ.—जुव प्रताप परली दिसि पहुँच्यौ, कौन बड़ावै बात—६-१०४ ।

परलै—संज्ञा पुं. [सं. प्रलय] **प्रलय, सृष्टि-नाश** । उ.—चतुरमुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयौ, सत्यव्रत कह्यौ, परलै दिखायौ—८-१६ ।

परलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूसरा लोक जैसे स्वर्ग, बैकुंठ** । उ.—राजा कौ परलोक सँवारौ, जुग-जुग यह चलि आयौ—६-५० । (२) **मृत आत्मा की अन्य स्थिति प्राप्ति** ।

परवर—संज्ञा पुं. [सं. पटोल] **परवल (तरकारी)** । उ.—पोई परवल फाँग फरी चुनि—२३२१ ।

वि.—**श्रेष्ठ, मुख्य, प्रधान** ।

परवरदिगार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **पालक** । (२) **ईश्वर** ।

परवरिश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **पालन-पोषण** ।

परवर्त—संज्ञा पुं. [सं. प्रवर्त] **आरंभ, प्रचार** । उ.—विष्नु की भक्ति परवर्त जग मैं करी, प्रजा कौं सुख सकल भाँति दीन्हौ—४-११ ।

परवल—संज्ञा पुं. [सं. पटोल] **एक साग या तरकारी** ।

परवश, परवश्य—वि. [सं.] **पराधीन** ।

परवा, परवाई—संज्ञा पुं. [हिं. पुर, पुरवा] **मिट्टी का कटोरे की तरह का एक पात्र** ।

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिपदा, प्रा. पड़िवा] **प्रत्येक पक्ष की पहली तिथि, पड़वा, पड़िवा** ।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **चिंता, ख्याल** । (२) **भरोसा** ।

परवान—संज्ञा पुं. [सं. प्रमाण] (१) **प्रमाण** । (२) **सत्य या यथार्थ बात** । उ.—ऐसे होहु जु रावरे हम जानति परवान—१०१६ । (३) **सीमा, अवधि** ।

मुहा.—परवान चढ़ना—**सब सुख भोगना** ।

परवानगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **आज्ञा, अनुमति** ।

परवाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **आज्ञापत्र** । (२) **पतिंगा** ।

परवाल—संज्ञा पुं. [सं. प्रवाल] (१) **मूँगा** । (२) **कोंपल** ।

परवास—संज्ञा पुं. [सं. प्रवास] **प्रवास, यात्रा** ।

परवाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. परवा] (१) **चिंता, आशंका** । (२) **ध्यान, ख्याल** । उ.—नहिं परवाह नंद के ढोंटहिं पूरत बेनु धरे—६६८ । (ख) प्रिया मन परवाह नाहीं कोटि आवै जाहिं—२०२१ । (३) **आसरा, भरोसा** ।

संज्ञा पुं. [सं. प्रवाह] **बहने का भाव** ।

परवीन—वि. [सं. प्रवीण] **चतुर, कुशल** । उ.—(क) तुम परवीन सबै जानत हौ ताते इह कहि आई—३०१९ । (ख) हम जानी जु बिचार पठाए सखा अंग परवीन—३२१७ ।

परवेख—संज्ञा पुं. [सं. परिवेष] **वर्षा में चंद्रमा के चारों ओर दिखायी पड़नेवाला घेरा, चंद्रमंडल** ।

परशंसा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रशंसा] **बड़ाई** । उ.—सूर करत परशंसा अपनी हारेउ जीति कहावत—३००८

परशा—संज्ञा पुं. [सं. स्पर्श] **छूना, स्पर्श** ।

परशु—संज्ञा पुं. [सं.] **अस्त्र जिसके सिरे पर लोहे का अर्द्धचंद्राकार मूल लगता है** ।

परशुधर—संज्ञा पुं. [सं.] **परशुधारी, परशुराम** ।

परशुराम—संज्ञा पुं [सं] **जमदग्नि के पुत्र जो ईश्वर के छठे अवतार माने जाते हैं । परशु इनका अस्त्र था** ।

परसंग—संज्ञा पुं. [सं. प्रसंग] (१) **बात, वार्ता, विषय** । उ.—तहाँ हुतौ इक सुक कौ अंग । तिहिं यह सुन्यौ सकल परसंग—१-२२६ ।

परसंसा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रशंसा] **बड़ाई** ।

परस—संज्ञा पुं. [सं. स्पर्श] **छूना, छूने की क्रिया या भाव, स्पर्श** । उ.—(क) झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ परस प्रिया कै भीनौ—१-६५ । (ख) जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे—१-६४ ।

संज्ञा पुं. [सं. परश] **पारस पत्थर** ।

परसत—क्रि. स. [हिं. परसना] **स्पर्श करना, छूते ही,**

परसकर। उ.—परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कैं कूप—१-१०२।

परसति—क्रि. स. [हिं. परसना] **परोसती है।** उ.—जसुमति हरष भरी लै परसति। जेंवत हैं अपनी रुचि सौं अति—३६६।

परसन—संज्ञा पुं. [हिं. स्पर्श] **स्पर्श करने का भाव।**

मुहा.—मुँह परसन आना—**लल्लो-चप्पो की बातें करने आना।** उ.—(क) काहे को मुँह परसन आए जानति हौं चतुराई—१६५७। (ख) ह्याँ आए मुख परसन मेरो हृदय रहति नहि प्यारी—१६६८।

वि. [सं. प्रसन्न] **आनन्दित, खुश।** उ.—(क) गुरु प्रसन्न, हरि परसन होई—६-५। (ख) तबहिं अशीश दई परसन है सफल होउ तुम कामा—१० उ.-६६।

परसना—क्रि. स. [सं. स्पर्श] (१) **छूना।** (२) **छुआना।**

क्रि. स. [सं. परिवेषण] **(भोजन) परोसना।**

परसन्न—वि. [हिं. प्रसन्न] **हर्षित, आनन्दित।**

परसन्नता—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्रसन्नता] **हर्ष, आनन्द।**

परसपर—क्रि. वि. [सं. परस्पर] **आपस में।** उ.—मार परसपर करत आपु मैं, अति आनन्द भए मन माहिं—५३३।

परसहु—क्रि. स. [हिं. परसना] **भोजन परोसो।** उ.—परसहु वेगि, बेर कत लावति, भूखे सारँगपानी—३६५।

परसा—संज्ञा पुं. [सं. परशु] **फरसा, परशु।**

परसाइ—क्रि. स. [हिं. परसना] **स्पर्श करके, स्पर्श करने से।** उ.—जो मम भक्त के मग मैं जाइ। होइ पवित्र ताहि परसाइ—७-२।

परसाऊँगो—क्रि. स. [हिं. परसाना] **स्पर्श कराऊँगा।** उ.—तुव मिलिबे की साध भुजा भरि उर सौं कुच परसाऊँगो—१६४४।

परसाऊ—क्रि. स. [हिं. परसना] **स्पर्श कराया, छुआया।** उ.—बामन रूप धरयौ बलि छलि कै, तीनि परग बसुधाऊ। स्रमजल ब्रह्म-कमंडल राख्यौ दरसि चरन परसाऊ—१०-२२१।

परसाए—क्रि. स. [हिं. परसना] **(भोजन) परसवाया, (भोजन) सामने रखवाया।** उ.—(क) महर गोप सब ही मिलि बैठे, पनवारे परसाए—१०-८६। (ख) भाँति-भाँति व्यंजन परसाए—६२४।

परसाद—संज्ञा पुं. [सं. प्रसाद] **देवता का भोग, प्रसाद।** उ.—दियो तब परसाद सबको भयो सबन हुलास—पृ० ३४८ (५७)।

परसादी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रसाद] **देवता का भोग।**

परसाना—क्रि. स. [हिं. परसना] **स्पर्श कराना।**

क्रि. स. [हिं. परसना] **भोजन सामने रखवाना।**

परसायो—क्रि स. [हिं. परसाना] **(भोजन) सामने रखवाया।** उ.—पहिले पनवारौ परसायो—२३२१।

परसावत—क्रि. स. [हिं. परसाना] **छुआता है।** उ.—नासा सों नासा लै जोरत नैन नैन परसावत—१८६३।

परसावति—क्रि. स. [हिं. परसाना] **छुआती है।** उ.—(क) मनहु पन्नगिनि उतरि गगन ते दल पर फन परसावति—१३४५।

परसावै—क्रि. स. [हिं. परसाना] **स्पर्श करावे।** उ.—सुरसरि जब भुव ऊपर आवै। उनकौं अपनौं जल परसावै—६-६।

परसाल—अव्य. [सं. पर+फ़ा. साल] (१) **पिछले साल।** (२) **अगले साल।**

परसि—क्रि. स. [हिं. परसना] (१) **स्पर्श करके, छूकर।** उ.—जे पद-पदुम परसि ब्रजभामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे—१-६४। (२) **(शरीर में) मलकर या चुपड़कर।** उ.—धूरि झारि तातौ जल ल्याई, तेल परसि अन्हवाइ—१०-२२६।

क्रि. स.—**(भोजन) परोसकर या सामने रखकर।** उ.—अरु खुरमा सरस सँवारे। ते परसि धरे हैं न्यारे—१०-१८३।

परसिद्ध—वि. [सं. प्रसिद्ध] **विख्यात, प्रसिद्ध।**

परसु—संज्ञा पुं. [सं. परशु] **फरसा, परशु।**

परसुराम—संज्ञा पुं. [सं. परशुराम] **जमदग्नि ऋषि के पुत्र जो ईश्वर के छठे अवतार माने जाते हैं। 'परशु' इनका मुख्य शस्त्र था।**

परसैं—क्रि. स. [हिं. परसना] **छूते हैं, स्पर्श करते है।** उ.—कपट-हेत परसैं बकी जननी-गति पावै—१-४।

परसै—क्रि. स. [हिं. परसना] **स्पर्श करता है।** उ.—

करत फन-घात विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिं गात परसै—५५२ ।

परसों—अव्य. [सं. परश्वः] (१) **बीते हुए 'कल' से एक दिन पहले।** (२) **आनेवाले 'कल' से एक दिन बाद।**

परसोतम—संज्ञा पुं. [सं. पुरुषोत्तम] (१) **श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति।** (२) **परमेश्वर।**

परसौ—क्रि. स. [हिं. परसना] (१) **छुओ, स्पर्श करो।** (२) **निमग्न हो, स्नान करो।** उ.—सहस बार जौ बेनी परसौ, चंद्रायन कीजै सौ बार। सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम के दूत खरे हैं द्वार—२-३।

परसौहाँ—वि. [सं. स्पर्श] **छूनेवाला।**

परस्पर—क्रि. वि. [सं.] **आपस में, एक दूसरे के साथ।** उ.–मोहिं देखि सब हँसत परस्पर, दै दै तारी तार–१-१७५

परस्यो, परस्यौ—क्रि. स. [हिं. परसना] **स्पर्श किया, छुआ।** उ.—दूरि देखि सुदामा आवत, धाइ परस्यौ चरन—१-२०२।

क्रि. स.—(**भोजन**) **सामने रखा।** उ.—नाना बिधि जेंवन करि परस्यौ—पृ. ३३६ (८५)।

परहस्त—संज्ञा पुं.—**एक राक्षस।** उ.—दुर्धर परहस्त-संग आइ सैन भारी। पवन-पूत दानव-दल ताड़े दिसिचारी —६-६६।

परहार—संज्ञा पुं. [सं. प्रहार] **आघात, वार, चोट, मार।** उ.—(क) हिरनकसिपु-परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै—१-३७। (ख) अस्त्र-सस्त्र-परहार न डरौं —७-२।

परहारि—क्रि. अ. [हिं. प्रहारना] (१) **मारो, आघात करो।** (२) **मारने के लिए चलाओ, फेंको।** उ.—कह्यौ असुर, सुरपति संभारि। लै करि बज्र मोहिं परहारि—५-६।

परहेज—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **बचना, दूर रहना।**

परहेलना—क्रि. स. [सं. प्रहेलना] **तिरस्कार करना।**

परा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **चार प्रकार की वाणियों में पहली।** (२) **ब्रह्मविद्या।**

वि. स्त्री.—(१) **श्रेष्ठ।** (२) **जो सबसे परे हो।**

संज्ञा पुं. [?] **पंक्ति, कतार।**

पराइ—क्रि. अ. [हिं. पराना] **भागना।** उ.—कोउ कहति, मोहिं देखि द्वारै, उतहिं गए पराइ—१०-२७३।

पराई—वि. स्त्री [हिं. पुं. पराया] **दूसरे की, अन्य व्यक्ति की।** उ.—(क) तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि पावै पीर पराई—१-१६५। (ख) सोवत मुदित भयौ सपने मैं, पाई निधि जो पराई—१-१४७।

क्रि. अ. [हिं. पराना] **भाग गये।** उ.—(क) सुरनि की जीत, असुर मारे बहुत, जहाँ तहँ गए सबही पराई—८-८। (ख) सकुच न आवत घोष बसत की तजि ब्रज गए पराई—३२०८।

पराए—क्रि. अ. [हिं. पराना] **भागे।** उ.—अंबरीष-हित साप निवारे, ब्याकुल चले पराए—१-३१।

पराकाष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **चरम सीमा, हद।**

पराकृत—वि. [सं. प्राकृत] **सहज सामान्य (रूप)।** उ.—सूरदास प्रभु होहु पराकृत अस कहि भुज के चिह्न दुरावति—१०-७।

पराक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] **बल-पौरुष।**

पराक्रमी—वि. [पराक्रमिन्] **बली, पुरुषार्थी।**

पराग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **फूलों के बीच लंबे केसरों पर जमी रज जिसके फूलों के बीच के गर्भ-कोशों में पड़ने से गर्भाधान होता है; पुष्परज।** (२) **एक सुगंधित चूर्ण।** (३) **चंदन।**

परागकेसर—संज्ञा पुं. [सं.] **फूलों के पतले सूत्र जिनकी नोक पर पराग लगा रहता है।**

परागना—क्रि. अ. [सं. उपराग] **अनुरक्त होना।**

परागी—क्रि. अ. [हिं. परागना] **अनुरक्त हुई।** उ.—प्रीति नदी महँ पाँव न बोरयौ दृष्टि न रूप परागी —३३३५।

पराङ्मुख—वि. [सं.] **विमुख, विरुद्ध।**

पराजय—संज्ञा स्त्री. [सं.] **हार।**

पराजित—वि. [सं.] **हारा हुआ, परास्त।**

परात—संज्ञा स्त्री. [सं. पात्र] **ऊँचे किनारे या कंडल की काफी बड़ी थाली।**

क्रि. अ. [हिं. पराना] **भागता है।** उ.—बेद-बिरुद्ध होत कुंदनपुर हंस को अंश काग लै परात-१०-उ.-११।

पराधीन—वि. [सं. पर+आधीन] **परवश, दूसरे के**

अधीन । उ.—पराधीन पर-बदन निहारत मानत मूढ़ बड़ाई—**१-१६५** ।

परा**धीनता**—संज्ञा स्त्री. [सं.] **दूसरे की अधीनता** ।

परान—संज्ञा पुं. [सं. प्राण] **प्राण** । उ.—(क) भीषम धरि हरि कौ उर ध्यान । हरि के देखत तजे परान १-२८० । (ख) कै वह भाजि सिंधु मैं डूबी, कै उहिं तज्यौ परान—६-७५ ।

पराना—क्रि. अ. [सं. पलायन] **भागना** ।

परानी—क्रि. अ.स्त्री. [हिं. पराना] **भागी, गयी, लुप्त हुई** । उ.—चिरई चुह-चुहानी चंद की ज्योति परानी रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवान की—१६०६ ।

प्र.—जाति परानी—**भागी जाती हूँ** । उ.—करत कहा पिय अति उताइली मैं कहुँ जात परानी—१६०१ ।

पराने—क्रि. अ. [हिं. पराना] **भाग गये** । उ.—(क) हरि सब भाजन फोरि पराने—१०-३२८ । (ख) कोउ डर डर दिसि-बिदिसि पराने—१० उ.-३१ ।

परान्न—संज्ञा पुं. [सं.] **दूसरे का दिया भोजन** ।

परान्यौ—क्रि. अ. [हिं. पराना] **भागा, भाग गया** । उ.—कागासुर आवत नहिं जान्यौ । सुनि कहत ज्यौ लेइ परान्यौ—३६१ ।

पराभव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हार, पराजय** । (२) **तिरस्कार** । (३) **नाश, विनाश** ।

पराभूत—वि. [सं.] (१) **पराजित** । (२) **नष्ट** ।

परामर्श—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **खींचना** । (२) **विवेचन** । (३) **निर्णय** । (४) **स्मृति** । (५) **सलाह, मंत्रणा** ।

परायण, परायन—वि. [सं. परायण] (१) **निरत, प्रवृत्त, लीन, तत्पर** । उ.—बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर स्वान भयौ—१-७८ । (२) **गया हुआ** ।

संज्ञा पुं.—**शरण का स्थान, आश्रय** ।

परायत्त—वि. [सं.] **परवश, पराधीन** ।

पराया, परार, परारा—वि. [हिं. पर] **दूसरे का बिराना** ।

परारी—वि. स्त्री. [हिं. परार] **परायी, दूसरे की** । उ.—सूरदास धृग धृग तिनको है जिनके नहिं पीर परारी—पृ. ३३२ (१०) ।

परार्थ—वि. [सं.] **जो दूसरे के लिए हो** ।

संज्ञा पुं. —**दूसरे का काम या लाभ** ।

परालब्ध—संज्ञा पुं. [सं. प्रारब्ध] **प्रारब्ध, भाग्य** । उ.—अरु जो परालब्ध सौं आवै । ताही कौ सुख सौं बरतावै —३-१३ ।

पराव—संज्ञा पुं. [हिं. पराना] **भागने की क्रिया या भाव** ।

संज्ञा पुं. [हिं. पराया] **दुराव-छिपाव** ।

परावन—संज्ञा पुं. [हिं. पराना] **भगदड़, भागड़** । उ.—ग्वाल गए जे धेनु चरावन । तिन्हैं पर्‌यौ बन माँझ परावन—१०५० ।

परावर्तन—संज्ञा पुं. [सं.] **लौटना, पलटना** ।

परावा—वि. [हिं. पराया] **दूसरे का, पराया** ।

पराशर, परासर—संज्ञा पुं. [सं. पराशर] **मुनिवर वशिष्ठ और शक्ति के पुत्र । सत्यवती पर मुग्ध होकर इन्होंने उसका कुमारीत्व भंग किया जिससे व्यास कृष्ण द्वैपायन का जन्म हुआ** ।

पराश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूसरे का सहारा, भरोसा या अवलंब** । (२) **परवशता** ।

पराश्रित—वि. [सं.] (१) **दूसरे के सहारे या भरोसे पर** । (२) **दूसरे के वश में या अधीन** ।

परास—संज्ञा पुं. [सं. पलाश] **ढाक, टेसू** ।

परासी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक रागिनी** ।

परास्त—वि. [सं.] (१) **पराजित** । (२) **दबा हुआ** ।

पराहिं—क्रि. अ. [हिं. पलाना] **भाग जाते हैं, भागते हैं** । उ.—नाम सुनत त्यौं पाप पराहिं । पापी हू बैकुंठ सिधाहिं—६-४ ।

पराह्न—वि. [सं.] **दोपहर के बाद का समय** ।

परि—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] (१) **छाकर, आच्छादित करके** । उ.—अति बिपरीत तृनावर्त आयौ । बात-चक्र मिस ब्रज ऊपर परि, नंद पौरि कै भीतर धायौ—१०-७७ । (२) **गिरकर, लेटकर** । उ. (क) मारग रोकि रह्यौ द्वारैं परि पतित-सिरोमनि सूर—४८७ । (३) **निश्चित होकर** । उ.—सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए—१-५२ ।

प्र.—परि आई—**पड़ गई है, आदत हो गई है** । उ.—ज्यौ दिनकरहिं उलूक न मानत, परि आई यह टेव—१-१०० ।

उप. [सं.] 'चारो-ओर', 'अतिशय', क्रम', पूर्णता' आदि अर्थों की वृद्धि करनेवाला एक उपसर्ग।
परिकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पलँग। (२) परिवार। (३) समूह। (४) कमरबंद। (५) एक अर्थालंकार।
परिकरमा—संज्ञा स्त्री. [सं. परिक्रमा] प्रदक्षिणा।
परिकरांकुर—संज्ञा पुं. [सं.] एक अर्थालंकार।
परिकीर्ण—वि. [सं.] (१) विस्तृत। (२) समर्पित।
परिक्रमा—संज्ञा स्त्री. [सं. परिक्रम] मंदिर की फेरी।
परिखना—क्रि. स. [हिं. परखना] जांचना-परखना।
क्रि. सं. [सं. प्रतीक्षा] बाट जोहना, राह देखना।
परिगणन—संज्ञा पुं. [सं.] भली भाँति गणना करना।
परिगणित—वि. [सं.] जो गिना जा चुका हो।
परिगह—संज्ञा पुं. [सं. परिग्रह] कुटुम्बी, बाल-बच्चे।
परिग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रहण। (२) संग्रह। (३) स्वीकार। (४) विवाह। (५) परिवार। (६) अनुग्रह।
परिचय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जानकारी, ज्ञान। (२) लक्षण। (३) व्यक्ति सम्बन्धी जानकारी। (४) जान-पहचान।
परिचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेवक। (२) सेनापति।
परिचरजा, परिचर्जा, परिचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं. परिचर्या] (१) सेवा-शुश्रूषा। (२) रोगी की सेवा-टहल।
परिचायक—संज्ञा पुं. [सं.] परिचय देनेवाला।
परिचार—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा-शुश्रूषा, टहल।
परिचारक—संज्ञा पुं. [सं.] सेवक, नौकर।
परिचारना—क्रि. स. [सं. परिचारण] सेवा करना।
परिचारक—संज्ञा पुं. [सं.] सेवक, टहलुआ।
परिचारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] सेविका, टहलनी।
परिचारी—वि. [सं. परिचारिन्] सेवक, चाकर।
परिचालक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलाने या गति देने वाला। (२) संचालक।
परिचालन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संचालन। (२) कार्य-निर्वाह।
परिचालित—वि. [सं.] संचालित।
परिचित—वि. [सं.] (१) ज्ञात, जाना-बूझा। (२) जिसको जानकारी हो, अभिज्ञ। (३) मुलाकाती।
परिचो—संज्ञा स्त्री. [सं. परिचय] ज्ञान, परिचय।
परिच्छद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खोल, गिलाफ आदि ढकनेवाली वस्तु। (२) वस्त्र, पोशाक। (३) राजचिन्ह।
परिच्छन्न—वि. [सं.] (१) ढका हुआ। (२) वस्त्र-सज्जित।
परिच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं. परीक्षा] परीक्षा
परिच्छिन्न—वि. [सं.] (१) मर्यादित। (२) विभाजित।
परिच्छेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रंथ का एक स्वतंत्र भाग। (२) सीमा, हद। (३) विभाग। (४) निश्चय।
परिछन—संज्ञा पुं. [हिं. परछन] विवाह की एक रीति जिसमें वर के द्वार पर आते ही आरती करते हैं।
परिछाहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. परछाईं] छाया, परछाईं।
परिजंक—संज्ञा पुं. [सं. पर्यंक] पलँग।
परिजटन—संज्ञा पुं. [सं. पर्यटन] टहलना, घूमना।
परिजन—संज्ञा पुं. बहु. [सं.] (१) परिवार, भरण-पोषण के लिए आश्रित व्यक्ति। (२) सेवक, अनुचर।
परिजात—वि. [सं.] उत्पन्न, जन्मा हुआ।
परिज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] संशयरहित बुद्धि।
परिज्ञात—वि. [सं.] निश्चित रूप से ज्ञात।
परिज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] पूर्ण निश्चयात्मक ज्ञान।
परिणत—वि. [सं.] (१) नम्र, नत। (२) रूपांतरित, परिवर्तित। (३) पक्का हुआ (४) प्रौढ़, पुष्ट।
परिणति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) झुकाव। (२) रूपांतर होना। (३) परिपाक। (४) प्रौढ़ता। (५) अंत।
परिणय—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह।
परिणाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रूपांतर, विकृति। (२) विकास। (३) अवसान, अंत। (४) फल, नतीजा।
परिणामदर्शी—वि. [सं.] दूरदर्शी, सूक्ष्मदर्शी।
परिणीत—वि. [सं.] (१) विवाहित (२) समाप्त।
परिणेता—संज्ञा पुं. [सं. परिणेतृ] पति, स्वामी।
परितच्छ—वि. [सं. प्रत्यक्ष] जिसको स्पष्ट देखा जा सके।
परितप्त—वि. [सं.] (१) तपा हुआ।(२) दुखित।
परिताप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आँच, ताव। (२) दुख, क्लेश। (३) पछतावा। (४) भय। (५) कँपकपी।
परितापी—वि. [सं.] (१) दुखी। (२) सतानेवाला।
परितुष्ट—वि. [सं.] बहुत संतुष्ट और प्रसन्न।
परितुष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) संतोष। (२) प्रसन्नता।
परितोष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संतोष। उ.—सूरदास अब

क्यों बिसरत है, मधु-रिपु को परितोष—पृ० ३३२ (१८)। (२) **हर्ष।**

परितोषक—वि. [सं.] **परितोष देनेवाला।**

परितोषण, परितोषन—संज्ञा पुं. [सं. परितोषण] **संतोष।** उ.—मानापमान परम परितोषन सुस्थल थिति मन राख्यो—३०१४।

परितोषी—वि. [सं. परितोषिन्] **संतोषी।**

परितोस—संज्ञा पुं. [सं. परितोष] **संतोष।**

परित्यक्त—वि. [सं.] **त्यागा हुआ।**

परित्यक्ता—वि. [सं. परित्यक्त] **त्यागी हुई।**

परित्यजन—संज्ञा पुं. [सं.] **त्यागने की क्रिया।**

परित्याग—संज्ञा पुं. [सं.] **त्यागने का भाव।**

परित्राण—संज्ञा पुं. [सं.] **बचाव, रक्षा।**

परित्राता—संज्ञा पुं. [सं. परित्रातृ] **रक्षक।**

परिधन, परिधान—संज्ञा पुं. [सं. परिधान] (१) **धोती आदि नीचे पहनने का वस्त्र।** (२) **वस्त्र।** उ.—(क) खान पान परिधान राज सुख जो कोउ कोटि लड़ावै—२७१०। (ख) खान-पान-परिधान मैं (रे) जोबन गयौ सब बीति—१-३२५।

परिधि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घेरा।** (२) **दायरे की रेखा।** (३) **मंडल, परिवेश।** (४) **कक्षा।** (५) **वस्त्र।**

परिनय—संज्ञा पुं. [सं. परिणय] **विवाह।**

परिनिर्वाण—संज्ञा पुं. [सं.] **पूर्ण मोक्ष।**

परिनौत—संज्ञा स्त्री. [हिं. परनवना] **प्रणति, प्रणाम, नमस्कार।** उ.—तातैं तुमकौं करत दँडौत। अरु सब नरहूँ कौं परिनौत—५-४।

परिपक्व—वि. [सं.] (१) **खूब पका हुआ।** (२) **अच्छी तरह पचा हुआ।** (३) **पूर्ण विकसित, प्रौढ़।** (४) **पूर्ण अनुभवी।** (५) **निपुण, प्रवीण।**

परिपाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पकने का भाव।** (२) **पचने का भाव।** (३) **प्रौढ़ता, पूर्णता।** (४) **अनुभव।** (५) **निपुणता, प्रवीणता।** (६) **परिणाम, फल।**

परिपाटि, परिपाटी—संज्ञा स्त्री. [सं. परिपाटी] (१) **क्रम, सिलसिला।** (२) **प्रणाली, रीति, चाल, ढंग, नियम।** उ.—(क) बदन उघारि दिखायौ अपनौ नाटक की परिपाटी—१०-२५४। (ख) पहिली परिपाटी चलौ—१०१६। (ग) वै सुफलकसुत ए सखी ऊधौ मिली एक परिपाटी—३०५६।

परिपालन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **रक्षा करना, बचाना।** उ.—गाए सूर कौन नहिं उबरयौ, हरि परिपालन पन रे—१-६६। (२) **रक्षा, बचाव।**

परिपुष्ट—वि. [सं.] **बहुत हृष्ट पुष्ट।**

परिपूरक—वि. [सं.] (१) **लबालब भर देनेवाला।** (२) **धन-धान्य से पूर्ण करनेवाला।** (३) **संपूर्ण।**

परिपूरण, परिपूरन, परिपूर्ण—वि. [सं. परिपूर्ण] (१) **परिपूर्ण, खूब भरा हुआ, लबालब।** उ.—(क) ऐसे प्रभु अनाथ के स्वामी। दीन-दयाल, प्रेम-परिपूरन, सब घट अंतरजामी—१-१६०। (ख) अहि के गुन इनमें परिपूरण यामें कछू न पावत—३००६। (२) **पूर्ण तृप्त।** (३) **समाप्त या संपूर्ण किया हुआ।**

परिभव, परिभाव—संज्ञा पुं. [सं.] **अनादर, अपमान।**

परिभावक—संज्ञा पुं. [सं.] **निंदा करनेवाला।**

परिभाषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **निंदापूर्ण उपालंभ।** (२) **फटकार।** (३) **भाषण, बातचीत।** (४) **नियम।**

परिभाषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **स्पष्ट कथन या भाषण।** (२) **वस्तु या पदार्थ की व्याख्या-विशेषता-युक्त कथन।** (३) **निर्दिष्ट अर्थ सूचक विशिष्ट शब्द।** (४) **कथन जो पारिभाषिक शब्दों में हो।** (५) **निंदा।**

परिभाषी—संज्ञा पुं. [सं. परिभाषिन्] **भाषणकर्ता।**

परिभुक्त—वि. [सं.] **जो काम में आ चुका हो।**

परिभ्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घेरा।** (२) **घूमना-फिरना।**

परिमल—संज्ञा पुं. [सं.] **सुवास, सुगंध।** उ.—(क) बीना झाँझ-पखाउज-आउज, और राजसी भोग। पुहुप-प्रजंक परी नवजोबनि, सुख-परिमल-संजोग—६-७५। (ख) चोवा चंदन अगर कुमकुमा परिमल अंग चढ़ायो—१० उ.-६५।

परिमाण, परिमान—संज्ञा पुं. [सं. परिमाण] (१) **मान, विस्तार।** (२) **घेरा।**

परिमार्जन—संज्ञा पुं. [सं.] **अच्छी तरह धोना, मांजना।**

परिमार्जित—वि. [सं.] (१) **मांजा हुआ।** (२) **परिष्कृत।**

परिमित—वि. [सं.] (१) **नपा तुला हुआ।** (२) **उचित मात्रा या परिमाण में।** (३) **कम, थोड़ा, सीमित।**

परिमिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **नाप, तोल, सीमा।** (२) **मान-मर्यादा, इज्जत।** उ.—परिमिति गए लाज तुमही को हंसिनि ब्याहि काग लै जाइ—१० उ.-६५।

परिमुक्त—वि. [सं.] **पूर्ण स्वाधीन।**

परियंक—संज्ञा पुं. [सं. पर्यंक] **पलँग।**

परियंत—अव्य. [सं. पर्यंत] **लौं, तक।**

परिरंभ, परिरंभण, परिरंभन—संज्ञा पुं. [सं. परिरंभण] **गले या छाती से लगाना, आलिंगन।** उ.—(क) फूले फिरत अजोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर। परिरंभन हँसि देत परस्पर, आनन्द-नैननि नीर—६-१६। (ख) अनुनय करत बिबस बोलत हैं दै परिरंभण दान—२०३१।

परिरंभना—क्रि. स. [सं. परिरंभ+ना] **आलिंगन करना।**

परिलेखना—क्रि. स. [सं. परिलेख+ना] **समझना, मानना, ख्याल करना।**

परिवर्त-संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घुमाव, फेरा।** (२) **विनिमय।**

परिवर्तक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घूमने-फिरनेवाला।** (२) **घुमाने-फिरानेवाला।** (३) **विनिमय करनेवाला।**

परिवर्तन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घुमाव, फेरा।** (२) **विनिमय।** (३) **बदलने की क्रिया या भाव।** (४) **काल या युग की समाप्ति।**

परिवर्तनीय—वि. [सं.] **जो परिवर्तन-योग्य हो।**

परिवर्तित—वि. [सं.] **बदला हुआ, रूपांतरित।**

परिवर्ती—वि. [सं. परिवर्तिनी] (१) **परिवर्तनशील।** (२) **विनिमय करनेवाला।** (३) **घूमने-फिरने के स्वभाव वाला।**

परिवर्द्धन—संज्ञा पुं. [सं.] **बहुत वृद्धि।**

परिवा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिपदा, प्रा. पड़िवआ] **पक्ष की पहली तिथि।** उ.–परिवा सिमिटि सकल ब्रजवासी चले जमुन जलन्हान—२४४५।

परिवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आवरण।** (२) **तलवार की म्यान।** (३) **कुटुंब, परिवार।** (४) **समान वस्तुओं का समूह।**

परिवार, परिवारा—संज्ञा पुं. [सं. परिवार] **कुटुंब, परिवार।** उ.—और बहुत ताकौ परिवारा। हरि-हलधर मिलि सबकौं मारा—४६६।

परिवेश, परिवेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **घेरा, परिधि।** (२) **वर्षा में चंद्र या सूर्य के चारों ओर बननेवाला मंडल।** (३) **परकोटा।**

परिव्राज, परिव्राजक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सन्यासी।** (२) **सदा भ्रमण करनेवाला साधु।**

परिशिष्ट—वि. [सं.] **बचा या छूटा हुआ।**

संज्ञा पुं.—**पुस्तक का वह भाग जो विषय से संबद्ध होता हुआ भी, मुख्य भाग में न दिया जाकर, अंत में दिया जाय।**

परिशीलन—संज्ञा पुं. [सं.] **मननपूर्वक अध्ययन।**

परिश्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **श्रम, उद्यम।** (२) **थकावट।**

परिश्रमी—वि. [हिं. परिश्रम] **जो बहुत श्रम करे।**

परिश्रांत—वि. [सं.] **श्रमित, थका हुआ।**

परिषत्, परिषद्—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सभा, स[illegible]।**

परिषद्—संज्ञा पुं. [सं.] **सदस्य, सभासद।**

परिषेचन—संज्ञा पुं. [सं.] **सींचना।**

परिष्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **संस्कार।** (२) **स्वच्छता।** (३) **आभूषण।** (४) **शोभा।** (५) **सजावट।**

परिष्कृत—वि. [सं.] (१) **संस्कृत।** (२) **सजाया हुआ।**

परिसंख्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक अर्थालंकार।**

परिस्तान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (२) **परियों का लोक।** (२) **सुन्दर स्त्रियों का समाज या जमघटा।**

परिस्थिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **स्थिति, अवस्था।**

परिहँस—संज्ञा पुं. [सं. परिहास] (१) **ईर्ष्या।** (२)**उपहास।**

परिहरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **छीनना।** (२) **त्याग।**

परिहरना—क्रि. स. [सं. परिहरण] **त्यागना, छोड़ना।**

परिहरि—क्रि. स. [हिं. परिहरना] **त्यागकर, छोड़कर, तजकर।** उ.—सूर पतित-पावन पद-अंबुज, सो क्यों परिहरि जाउँ—१-१२८।

परिहरै—क्रि. स. [हिं. परिहरना] **छोड़ता है, त्यागता है।** उ.—(क) भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै। सुत-कलत्र सौं हित परिहरै—२-२०। (ख) काम-क्रोध-लोभहिं परिहरै—३-१३।

परिहरौ—क्रि. स. [हिं. परिहरना] **त्याग दो, छोड़ो, तजो।** उ.—तब हरि कह्यौ, टेक परिहरौ……। अहंकार चित तैं परिहरौ—१-२६१।

परिहस—संज्ञा पुं. [सं. परिहास] **दुख, खेद।** उ.—(क) परिहस सूल प्रबल निसि-बासर, तातैं यह कहि आवत। सूरदास गोपाल सरनगत भएँ न को गति पावत—**१-१८१।** (ख) कंठ बचन न बोलि आवै, हृदय परिहस भीन —३४५१।

संज्ञा पुं. [सं. परिहास] (१) **हँसी, दिल्लगी।** (२) **खिलवाड़।** उ.—रावन से गहि कोटिक मारौं। जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि तौ यह परिहस सारौं —९-१०८।

परिहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दोष, अनिष्ट आदि का निवारण।** (२) **उपचार।** (३) **त्याग।** (४) **अनुचित कर्म का प्रायश्चित (नाटक)।** (५) **तिरस्कार।**

संज्ञा पुं. [सं. प्रहार] **आघात, प्रहार।** उ.—चक्र परिहार हरि कियौ—१० उ.-३५।

परिहारक—वि. [सं.] **परिहार करनेवाला।**

परिहारा—संज्ञा पुं. [सं. प्रहार] **नाश, वध, आघात।** उ.—याकी कोख औतैरे जो सुत करै प्रान-परिहारा —१०-४।

परिहारी—वि. [सं.] **छीनने या त्यागनेवाला।**

परिहार्य—वि. [सं.] **जो परिहार-योग्य हो।**

परिहास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हँसी-दिल्लगी।** (२) **खेल।**

परिहै—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **पड़ेगा।**

मुहा.—फँग परिहै—**मेरे हाथ आयगा, मेरे चंगुल या फंदे में फँसेगा।** उ.—दूरि करौं लँगराई वाकी मेरे फँग जो परिहै— १२६४। शिर परिहै—**सिर पर पड़ेगी या बीतेगी।** उ.—सूर क्रोध भयो नृपति काके शिर परिहै—२४७४।

परीं—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **गिरीं।** उ.—(क) रोवति धरनि परीं अकुलाइ—५४७। (ख) पाइ परीं जुवती सब—७६८।

प्र.—मोहि परीं—**मोहित हो गयीं।** उ.—संग की सखी स्याम सन्मुख भईं, मोहि परीं पसु-पाल सों —८०४।

परी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **कल्पित सुन्दर स्त्री जो पंखों के सहारे उड़ती मानी गयी है।** (२) **परम सुन्दरी।**

क्रि. अ. [हिं. पड़ना] (१) **उपस्थित हुई, (दुखद घटना या अवस्था) घटित हुई, पड़ी।** उ.—(क) जे जन सरन भजे बनवारी। ते ते राखि लिए जग-जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी—१-२२। (ख) सूर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे —१-२५।

प्र.— समुझी न परी—**समझ में नहीं आई।** उ.—अपनैं जान मैं बहुत करी। कौन भाँति हरि-कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी—१-११५। गरे परी **अनचाही, अनिच्छित।** उ.—सूरदास गाहक नहिं कोऊ दिखियत गरे परी—३१०४।

परीक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] **परीक्षा करने या लेनेवाला।**

परीक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] **देख-भाल, जाँच-पड़ताल।**

परीक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **देखना-भालना, समीक्षा।** (२)**योग्यता आदि का इम्तहान।** (३) **अनुभव के लिए प्रयोग।** (४ **प्रमाण द्वारा निर्णय।**

परीक्षित—वि. [सं.] **जिसकी जाँच या परीक्षा हुई हो।**

संज्ञा पुं.—**अर्जुन का पौत्र और अभिमन्यु का पुत्र। इन्हीं के राज्य काल में द्वापर का अंत और कलियुग का आरंभ माना जाता है। तक्षक के डसने से परीक्षित की मृत्यु हुई थी। जनमेजय इसी का पुत्र था।**

परीख—संज्ञा स्त्री. [हिं. परख] **परख, जाँच।**

परीखना—क्रि. स. [सं. परीक्षण] **जाँचना-परखना।**

परीच्छित, परीछित—संज्ञा पुं. [सं. परीक्षित] **अभिमन्यु का पुत्र जिसकी रक्षा श्रीकृष्ण ने गर्भ में ही की थी।**

परीछम—संज्ञा पुं. [हिं. परी + छम] **पैर का एक गहना।**

परीछा—संज्ञा स्त्री. [सं. परीक्षा] **परीक्षा।**

परीजाद—वि. [फ़ा.] **बहुत सुन्दर।**

परीजो—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **पड़ना, गिरना।** उ.—सूरदास प्रभु हमरे कोते नँदनंदन के पाँइ परीजो—१० उ.-९५।

परुख, परुष—वि. [सं. परुष] (१) **कठोर, सख्त।** (२) **अप्रिय, कटु।** (३) **निष्ठुर, निर्दय।**

परुखाई, परुषाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. परुष] **कड़ापन।**

परुषता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **कठोरता, कड़ापन।** (२) **अप्रियता, कर्कशता, कटुता।** (३) **निर्दयता।**

परुषत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कठोरपन।** (२) **निर्दयपन।**

पह्तना—क्रि. स. [सं. प्रखेट, प्रा. पहेट] **पीछा करना।**

क्रि. स. [देश.] **धार को रगड़कर तेज करना।**

पह्न—संज्ञा पुं. [हिं. पाहन] **पत्थर, पाषाण।**

पहनना—क्रि. स. [सं. परिधान] **(वस्त्राभूषण) धारण करना।**

पहनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहनना] **पहनाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।**

पहरावन, पहरावनि, पहरावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहरना] **वे वस्त्र जो शुभ अवसर पर या प्रसन्न होकर छोटों को दिये जायँ।** उ.—नीलांबर पहरावन पाई सन्मुख क्यौं न चहौं—१६६६।

पहरावा—संज्ञा पुं. [हिं. पहनावा] (१) **पोशाक।** (२) **सिरोपाव।** (३) **विशेष उत्सव के वस्त्र।** (४) **वस्त्र पहनने का ढंग।**

पेज १०७४ के बाद १०७५ के बजाय भूल से १०७३ पृष्ठ संख्या पड़ गई है। इस प्रकार पेज १०६६ तक दो-दो पृष्ठ बढ़ाकर पढ़ें। १०६६ के बाद से पृष्ठ संख्या ठीक है।

शब्दों का क्रम सब पेजों में ठीक है।

—प्रकाशक

६०७। (२) **थोड़ी देर।** उ.—घरी-पहर सबको बिरमावत जेते आवत कारे।

(२) **जन्म, समय, युग।** उ.—अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के—१०-३४।

क्रि. स. [हिं. पहरना] **पहनकर।** उ.—नृपति के रजक सों भेंट मग में भई, कह्यौ, दै बसन हम पहर जाहीं—२५८४।

पहरक—संज्ञा पुं. [हिं. पहर+एक] **एक पहर।** उ.—हौं मरि एक कहौं पहरक में वै छिन माँझ अनेक—३४६६।

पहरना—क्रि. स. [हिं. पहनना) **(वस्त्रादि) पहनना।**

पहरा—संज्ञा पुं. [हिं. पहर] (१) **चौकसी का प्रबन्ध, चौकी।** (२) **रखवाली।** (३) **चौकीदार का कार्य-काल।** (४) **चौकीदार की गश्त।** (५) **हिरासत, हवालात।** (६) **समय, जमाना।**

संज्ञा पुं. [हिं. पाँव+र.=पौरा] **आगमन का शुभ-अशुभ फल या प्रभाव, पौर।**

पहराना—क्रि. स. [हिं. पहनाना] **पहनाना।**

पहलवानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **कुश्ती लड़ने या पहलवान होने का भाव या व्यवसाय।**

पहला—वि. [सं. प्रथम, प्रा. पहिलो] **प्रथम, अव्वल।**

पहलू—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **बगल, पार्श्व** (२)। **दाहिना या बाँया भाग।** (३) **करवट, दिशा।** (४) **आसपास, पड़ोस।** (५) **कटाव, पहल।** (६) **विषय या प्रसंग का कोई अंग।** (७) **संकेत, गूढ़ाशय, संकेतार्थ।**

पहले—अव्य. [हिं. पहला] (१) **आरंभ में।** (२) **स्थिति स्थान या कालक्रम में प्रथम।** (३) **पूर्व या विगत काल में।**

पहलेपहल—अव्य. [हिं. पहला] **सबसे पहले।**

पहलौठा—वि. [हिं. पहला+औठा] **पहला लड़का।**

पहलौठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहलौठा] **प्रथम प्रसव।**

पहाड़—संज्ञा पुं. [सं. पाषाण] (१) **पर्वत, गिरि।**

मुहा.—पहाड़ उठाना-(१) **भारी काम लेना।** (२) **भारी काम करना।** पहाड़ कटना—(१) **भारी काम हो जाना।** (२) **संकट कटना।** पहाड़ काटना-(१) **भारी काम कर लेना।** (२) **संकट से पीछा छुड़ाना।** पहाड़

परिहस—संज्ञा पुं. [सं. परिहास] **दुख, खेद**। उ.—(क) परिहस सूल प्रबल निसि-बासर, तातैं यह कहि आवत। सूरदास गोपाल सरनगत भएँ न को गति पावत—**१-१८१**। (ख) कंठ बचन न बोलि आवै, हृदय परिहस भीन —३४५१।

संज्ञा पुं. [सं. परिहास] (१) **हँसी, दिल्लगी**। (२) **खिलवाड़**। उ.—रावन से गहि कोटिक मारौं। जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि तौ यह परिहस सारौं

घटना या अवस्था) घटित हुई, पड़ी। उ.—(क) जे जन सरन भजे बनवारी। ते ते राखि लिए जग-जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी—१-२२। (ख) सूर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे —१-२५।

प्र०.—समुझी न परी—**समझ में नहीं आई**। उ.—अपनैं जान मैं बहुत करी। कौन भाँति हरि-कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी—१-११५। गरे

परिहार्य—वि. [सं.] **जो परिहार-योग्य हो**।

परिहास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हँसी-दिल्लगी**। (२) **खेल**।

परिहै—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **पड़ेगा**।

मुहा.—फँग परिहै—**मेरे हाथ आयगा, मेरे चंगुल या फंदे में फँसेगा**। उ.—दूरि करौं लँगराई वाकी मेरे फँग जो परिहै—१२६४। शिर परिहै—**सिर पर पड़ेगी या बीतेगी**। उ.—सूर क्रोध भयो नृपति काके शिर परिहै—२४७४।

परी—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **गिरीं**। उ.—(क) रोवति धरनि परीं अकुलाइ—५४७। (ख) पाइ परीं जुवती सब—७६८।

प्र.—मोहि परीं—**मोहित हो गयीं**। उ.—संग की सखी स्याम सन्मुख भईं, मोहि परीं पसु-पाल सों —८०४।

परी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **कल्पित सुन्दर स्त्री जो पंखों के सहारे उड़ती मानी गयी है**। (२) **परम सुन्दरी**।

क्रि. अ. [हिं. पड़ना] (१) **उपस्थित हुई, (दुखद**

क्षित की मृत्यु हुई थी। जनमेजय इसी का पुत्र था।

परीख—संज्ञा स्त्री. [हिं. परख] **परख, जाँच**।

परीखना—क्रि. स. [सं. परीक्षण] **जाँचना-परखना**।

परीच्छित, परीछित—संज्ञा पुं. [सं. परीक्षित] **अभिमन्यु का पुत्र जिसकी रक्षा श्रीकृष्ण ने गर्भ में ही की थी**।

परीछम—संज्ञा पुं. [हिं. परी + छम] **पैर का एक गहना**।

परीछा—संज्ञा स्त्री. [सं. परीक्षा] **परीक्षा**।

परीजाद—वि. [फ़ा.] **बहुत सुन्दर**।

परीजो—क्रि. अ. [हिं. पड़ना] **पड़ना, गिरना**। उ.—सूरदास प्रभु हमरे कोते नँदनंदन के पाँइ परीजो—१० उ.-९५।

परुख, परुष—वि. [सं. परुष] (१) **कठोर, सख्त**। (२) **अप्रिय, कटु**। (३) **निष्ठुर, निर्दय**।

परुखाई, परुषाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. परुष] **कड़ापन**।

परुषता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **कठोरता, कड़ापन**। (२) **अप्रियता, कर्कशता, कटुता**। (३) **निर्दयता**।

परुषत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कठोरपन**। (२) **निर्दयपन**।

पहतना—क्रि. स. [सं. प्रखेट, प्रा. पहेट] **पीछा करना।**
क्रि. स. [देश.] **धार को रगड़कर तेज करना।**

पहन—संज्ञा पुं. [हिं. पाहन] **पत्थर, पाषाण।**

पहनना—क्रि. स. [सं. परिधान] **(वस्त्राभूषण) धारण करना।**

पहनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहनना] **पहनाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।**

पहनाना—क्रि. स. [हिं. पहनना] **दूसरे को वस्त्राभूषण आदि धारण कराना।**

पहनावा—संज्ञा पुं. [हिं. पहनना] (१) **पहनने के वस्त्र, पोशाक।** (२) **सिर से पैर तक के कपड़े, सिरोपाव।** (३) **विशेष अवसर के वस्त्र**; (४) **पहनने का ढंग।**

पहपट—संज्ञा पुं. [देश.] (१) **एक तरह का गीत।** २) **कोलाहल, शोर।** (३) **बदनामी, निंदा।** (४) **छल-कपट।**

पहर—संज्ञा पुं. [हिं. पहर] (१) **तीन घंटे का समय।**
यौ.-घरी-पहर—(१) **हर समय, सदा।** उ.—नंद-घरनि कुल-देव मनावति, तुम ही रच्छक घरी-पहर के—६०७। (२) **थोड़ी देर।** उ.—घरी-पहर सबको बिरमावत जेते आवत कारे।
(२) **जन्म, समय, युग।** उ.—अंकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के—१०-३४।
क्रि. स. [हिं. पहरना] **पहनकर।** उ.—नृपति के रजक सों भेंट मग में भई, कह्यौ, दै बसन हम पहर जाहीं—२५८४।

पहरक—संज्ञा पुं. [हिं. पहर+एक] **एक पहर।** उ.—हौं मरि एक कहौं पहरक में वै छिन माँझ अनेक—३४६६।

पहरना—क्रि. स. [हिं. पहनना) **(वस्त्रादि) पहनना।**

पहरा—संज्ञा पुं. [हिं. पहर] (१) **चौकसी का प्रबन्ध, चौकी।** (२) **रखवाली।** (३) **चौकीदार का कार्य-काल।** (४) **चौकीदार की गश्त।** (५) **हिरासत, हवालात।** (६) **समय, जमाना।**
संज्ञा पुं. [हिं. पाँव+र.=रौरा] **आगमन का शुभ-अशुभ फल या प्रभाव, पौर।**

पहराना—क्रि. स. [हिं. पहनाना] **पहनाना।**

पहरावन, पहरावनि, पहरावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहरना] **वे वस्त्र जो शुभ अवसर पर या प्रसन्न होकर छोटों को दिये जायँ।** उ.—नीलांबर पहरावन पाई सन्मुख क्यौं न चहौं—१६६६।

पहरावा—संज्ञा पुं. [हिं. पहनावा] (१) **पोशाक।** (२) **सिरोपाव।** (३) **विशेष उत्सव के वस्त्र।** (४) **वस्त्र पहनने का ढंग।**

पहरावैनी—वि. [हिं. पहरावनी] **पहनने या पहनानेवाली।** उ.—जय, जय, जय, जय माधववेनी।......। जा जल-सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुंदरि सरसिज-नैनी। सूर परस्पर करत कुलाहल, गर-स्रग-पहरावैनी—९-११।

पहरी—संज्ञा पुं. [सं. प्रहरी] **पहरेदार।**

पहरुआ, पहरुवा, पहरू—संज्ञा पुं. [हिं. पहरा] **पहरा देनेवाला।** उ.—(क) स्वान, सूते पहरुवा सब, नींद उपजी गेह—१०-५। (ख) छोरे निगड़, सोआए पहरू द्वारे को कपाट उघरयौ—१०-८।

पहल—संज्ञा पुं. [फ़ा. पहलू] (१) **बगल।** (२) **तह।**

पहलवान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **कुश्ती लड़नेवाला, मल्ल।**

पहलवानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **कुश्ती लड़ने या पहलवान होने का भाव या व्यवसाय।**

पहला—वि. [सं. प्रथम, प्रा. पहिलो] **प्रथम, अव्वल।**

पहलू—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **बगल, पार्श्व** (२) **दाहिना या बाँया भाग।** (३) **करवट, दिशा।** (४) **आसपास, पड़ोस।** (५) **कटाव, पहल।** (६) **विषय या प्रसंग का कोई अंग।** (७) **संकेत, गूढ़ाशय, संकेतार्थ।**

पहले—अव्य. [हिं. पहला] (१) **आरंभ में।** (२) **स्थिति स्थान या कालक्रम में प्रथम।** (३) **पूर्व या विगत काल में।**

पहलेपहल—अव्य. [हिं. पहला] **सबसे पहले।**

पहलौठा—वि. [हिं. पहला + औठा] **पहला लड़का।**

पहलौठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहलौठा] **प्रथम प्रसव।**

पहाड़—संज्ञा पुं. [सं. पाषाण] (१) **पर्वत, गिरि।**
मुहा.—पहाड़ उठाना-(१) **भारी काम लेना।** (२) **भारी काम करना।** पहाड़ कटना—(१) **भारी काम हो जाना।** (२) **संकट कटना।** पहाड़ काटना-(१) **भारी काम कर लेना।** (२) **संकट से पीछा छुड़ाना।** पहाड़

टूटना (टूट पड़ना)—**अचानक महान संकट आ जाना।** पहाड़ से टक्कर लेना—**बहुत बड़े से बैर ठानना या मुकाबला करना।**

(२) **बड़ा ढेर या समूह।** (३) **बहुत भारी चीज।** (४) **वह जिसका काटना, बिताना या हल करना बहुत कठिन हो जाय।** (५) **बहुत कठिन काम।**

पहाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. प्रस्तार] **गुणनसूची।**

पहाड़िया, पहाड़ी—वि. [हिं. पहाड़] (१) **पहाड़ पर रहने या होनेवाला।** (२) **पहाड़-संबंधी।**

संज्ञा स्त्री.—(१) **छोटा पहाड़।** (२) **गाने की एक धुन।**

पहार—संज्ञा पुं. [हिं. पहाड़] **पहाड़, पर्वत।** उ.—मैं जु रह्यौ राजीव-नैन दुरि, पाप-पहार-दरी—१-१३०।

पहिचान—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहचान] **परिचय, पहचान।**

पहिचानत—क्रि. स. [हिं. पहचानना] (१) **किसी वस्तु या व्यक्ति का गुण-दोष, योग्यता-विशेषता आदि की जानकारी रखता है।** उ.—सब सुखनिधि हरिनाम महामनि, सो पाएहु नाहीं पहिचानत। परम कुबुद्धि, तुच्छ, रस-लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत—१-११४। (२) **परिचय मानता है, जान-पहचान दिखाता है।** उ.—चाड़ सरै पहिचानत नाहिंन प्रीतम करत नए—२६६३।

पहिचानना—क्रि. स. [हिं. पहचानना] **जानना, समझना, पहचानना।**

पहिचानि—क्रि. स. [हिं. पहचानना] (१) (**किसी वस्तु या व्यक्ति के) गुण-दोष की परीक्षा करके।** उ.—एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे। तब पहिचानि सबनि कौं छाँड़े, नखसिख लौं सब झूठे—१-१७७।

(२) **व्यक्ति अथवा वस्तु-विशेष का गुण-दोष जानो-पहचानो।** उ.—रे मन आपु को पहिचानि। सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु हानि—१-७०।

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रत्यभिज्ञान या परिचयन, हिं. पहचान] (१) **पहचानने की क्रिया, वृत्ति या भाव।** (२) **जान पहचान, परिचय।** उ.—जौपै राखत हौ पहिचानि—२७१०।

पहिचानी—क्रि. स. [हिं. पहचानना] **पहचान ली, जान लिया, चीन्ह लिया।** उ.—बैन सुनत माता पहिचानी, चले घुटुरुवनि पाइ—१०-१११।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पहचान] **जान-पहचान, परिचय।** उ.—बिमुखनि सौं रति जोरत दिन-प्रति, साधुनि सौं न कबहूँ पहिचानी—१-१४६।

पहिचानै—क्रि. स. [हिं. पहचाना] **समझ-बूझ सकता है जान सकता है।** उ.—सूरदास यह सकल समग्री प्रभु-प्रताप पहिचानै—१-४०।

पहिचान्यौ—क्रि. स. [हिं. पहचानना] **जाना-बूझा, पहचाना।** उ.—कौन भाँति तुमको पहिचान्यौ—१० उ. —२७।

पहित, पहिति, पहिती—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रहित = सालन] **पकी या चुरी हुई दाल।**

पहिआँ, पहियाँ—अव्य. [हिं. पहँ] **समीप, पास, पहँ।** उ.—परम चतुर चली हरि पहिआँ—२२४२। (२) **से, द्वारा।** उ.—यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ—६-१६।

पहिया—संज्ञा पुं. [सं. पथ्य, प्रा० पह्य, पहिय] (१) **चक्कर, चक्र, चाका।** (२) **चक्कर।**

पहिरना—क्रि. स. [हिं. पहनना] (**वस्त्रादि) पहनना।**

पहिराइ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहरावनी] **प्रसन्न होकर छोटों को दिये जानेवाले वस्त्रादि।** उ.—नंद कौं सिरपाव दीनौ गोप सब पहिराइ—५८६।

पहिराऊँ—क्रि. स. [हिं. पहराना] (**कपड़े अथवा गहने आदि) शरीर पर धारण करता हूँ, पहनता हूँ।** उ.—पाटंबर-अंबर तजि, गूदरि पहिराऊँ—१-१६६।

पहिराना—क्रि. स. [हिं. पहनाना] **वस्त्रादि धारण करना।**

पहिरावत—क्रि. स. [हिं. पहिरावना] (१) **वस्त्रादि दान देते हैं।** उ.—(क) नंद उदार भए पहिरावत—१०-३८—(२) **पहनाते हैं।** उ.—बनमाला पहिरावत स्यामहिं—४२६।

पहिरावन पहिरावनि, पहिरावनी, पहिरावने—संज्ञा पुं. [हिं. पहनावा] **प्रसन्न होकर अथवा विशेष अवसर पर दिये गये पाँचों कपड़े।** उ.—(क) दियौ सिरपाँव नृप-राव नैं महर कौं आप पहिरावने सब दिखाए—५८७।

(ख) देन उरहनौ तुमकौं आई। नीकी पहिरावनि हम पाई—७६६। (ग) रंग रंग पहिरावनि दई, अति बने कन्हाई—२४४१। (घ) पहिरावन जो पाइहैं सो तुमहू दैहैं—२५७५।

पहिरावौ—क्रि. स. [हिं. पहनाना] **पहनाओ, धारण कराओ**। उ.—मेरे कहैं विप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ—१-६५।

पहिरि—क्रि. स. [हिं. पहनना] **पहनकर, (कपड़ा, गहना आदि) शरीर पर धारण करके**। उ.—अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल। काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ बिषय की माल—१-१५३।

पहिरे—क्रि. स. [हिं. पहनना] **पहने हैं, धारण किये हैं**। उ.—पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)—१-४४।

पहिरै—क्रि. स. [हिं. पहनना] **पहने, धारण करे**। उ.—कंच खुवि आँधरि काजर कानी नकटी पहिरै बेसरि—३०२६।

पहिरौ—क्रि. स. [हिं. पहनना] **पहनो, धारण करो**। उ.—मेरे कहैं, आइ पहिरौ पट—७८७।

संज्ञा पुं. [हिं. पहरा] **पहरा**।

पहिल—वि. [हिं. पहला] **प्रथम, पहला**।

क्रि. वि. [हिं. पहले] **आरंभ में, पहले**।

पहिला—वि. [हिं. पहला] (१) **प्रथम**। (२) **पहली बार ब्याई हुई**।

पहिले, पहिलैं—क्रि. वि. [हिं. पहला] **आरंभ में, सर्व-प्रथम, शुरू में**। उ.—मन-ममता रुचि सौं रखवारी, पहिलैं लेहु निबेरि—१-५१।

पहिलो—वि. [हिं. पहला] **प्रथम, पहला**।

पहीति—संज्ञा स्त्री [हिं. पहिती] **पकी हुई दाल**।

पहीलि, पहीली—वि. [हिं. पहला] **पहली, प्रथम**।

पहुँच—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्रभूत, प्रा. पहूच] (१) **किसी स्थान तक जा पाने की शक्ति या क्रिया**। (२) **फैलाव, विस्तार**। (३) **पैठ, प्रवेश, रसाई**। (४) **प्राप्ति-सूचना**। (५) **समझने की शक्ति या योग्यता**। (६) **जानकारी या अभिज्ञता**।

पहुँचना—क्रि. अ. [हिं. पहुँच] (१) **किसी स्थान में जाना या जा पाना**।

मुहा.—पहुँचा हुआ—(१) **सिद्ध**। (२) **बड़ा जानकार**। (३) **बहुत चतुर और काइयाँ**।

(२) **फैलना, विस्तृत होना**। (३) **परिवर्तित स्थिति या दशा को प्राप्त होना**। (४) **घुसना, पैठना, समाना**। (५) **जानना, समझना**। (६) **जानकारी रखना**। (७) **मिलना, प्राप्त होना**। **अनुभव में आना**। (८) **समकक्ष या तुल्य होना**।

पहुँचा—संज्ञा पुं. [हिं. पहुँचना अथवा सं. प्रकोष्ठ] **कुहनी से नीचे की बाहु, कलाई**। उ.—पहुँचा कर सों गहि रहे जिय संकट मेल्यो—२५७७।

पहुँचाइ—क्रि. स. [हिं. पहुँचाना] **पहुँचा कर**।

प्र०—गयौ पहुँचाइ—**पहुँचा गया है**। उ.—काली आपु गयौ पहुँचाइ—५८२।

पहुँचाना—क्रि. स. [हिं. पहुँचना] (१) **एक स्थान से दूसरे को ले जाना**। (२) **किसी के साथ जाना**। (३) **विशेष स्थिति या अवस्था तक ले जाना**। (४) **घुसाना, पैठाना**। (५) **प्राप्त कराना**। (६) **अनुभव कराना**। (७) **समान या समकक्ष कर देना**।

पहुँचायौ—क्रि. स. [हिं. पहुँचाया] **पहुँचा दिया है**। उ.—कर गहि खड़ग कह्यौ देवकि सौं बालक कहँ पहुँचायौ—सारा. ३७६।

पहुँचावै—क्रि. स. [हिं. पहुँचाना] **दूसरे स्थान को ले जाय या पहुँचा दे**। उ.—(क) सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै—१-४। (ख) सूर आप गुजरान मुसाहिब, लै जवाब पहुँचावै—१-१४२।

पहुँचिया, पहुँची—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पहुँचा, स्त्री. पहुँची] **कलाई में पहनने का एक गहना जिसमें दाने गुंथे रहते हैं**। उ.—(क) पंकज पानि पहुँचिया राजै—१०-११७। (ख) पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ मंजु गजमनियाँ—१०-१०६।

पहुँचै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. पहुँचा] **पहुँचे में**। उ.—चित्रित बाँह पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै—४५१।

क्रि. अ. [हिं. पहुँचना] **आकर उपस्थित हो**।

पहुँच्यौ—क्रि. अ. [हिं. पहुँचना] **पहुँचा, उपस्थित हुआ, गया।** उ.—उड़त उड़त सुक पहुँच्यौ तहाँ। नारि ब्यास की बैठी जहाँ—१-२२६।

पहुनई—संज्ञा स्त्री. [हिं पहुनाई] **पाहुन होकर आने का भाव।** उ.—चारिहु दिवस आनि सुख दीजै सूर पहुनई सूतर—२७०८। (२) **अतिथि-सत्कार।**

पहुना—संज्ञा पुं. [हिं. पाहुन] **अतिथि, पाहुन।**

पहुनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहुना + ई प्रत्य०] (१) **आगत व्यक्ति का भोजन-पान से सत्कार, अतिथि-सत्कार।** उ.—(क) हम करिहैं उनकी पहुनाई—१०४७। (ख) बहुतै आदर करति सबै मिलि पहुने की करिये पहुनाई—१२८६।

मुहा.—करौं पहुनाई—**खबर लूंगी, अच्छी तरह पीटूंगी।** उ.—साँटिनि मारि करौं पहुनाई, चितवत कान्ह डरायौ—१०-३३०। (२) **अतिथि के आने-जाने का भाव।**

पहुनाय—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहुनाई] **अतिथि-सत्कार।** उ.—करत सबै रुचि की पहुनाय—२४०६।

पहुनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहुनाई] **अतिथि-सत्कार।**

पहुने—संज्ञा पुं. [हिं. पाहुन] **अतिथि।** उ.—बहुतै आदर करत सबै मिलि पहुने की करिये पहुनाई—१२८५।

पहुप—संज्ञा पुं. [सं. पुष्प] **फूल।**

पहुम, पहुमि, पहुमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुहुमी] **पृथ्वी।**

पहुला—संज्ञा पुं. [सं. प्रफुल्ल] **एक तरह का फूल।**

पहूँचै—क्रि. अ. [हिं. पहुँचना] (आ) **पहुँचे, (आ) जाय, (आकर) उपस्थित हो।** उ.—तौ लगि बेगि हरौ किन पीर? जौ लगि आन न आनि पहूँचे, फेरि परैगी भीर—१-१६१।

पहूँच्यो, पहूँच्यौ—क्रि.अ. [हिं. पहुँचना] **पहुँचा, आया।**
प्र.—आइ पहूँच्यौ—**आ पहुँचा।** उ.—दनुज एक तहँ आइ पहूँच्यौ—४१०।

पहेटना—क्रि. स. [अनु.] (१) **कठिन परिश्रम से काम पूरा करना।** (२) **खूब डटकर खाना।**

पहेरी, पहेली—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रहेलिकी, हिं. पहेली] (१) **बुझौवल, प्रहेलिका।** (२) **वह बात जिसका अर्थ न खुलता हो।**

पाँइ—संज्ञा पुं. [पाँव] **पैर, पाँव।** उ.—अपनी गरज को तुम एक पाँइ नाचे—१४०३।

पाँइता—संज्ञा पुं. [हिं. पाँयता] **पलँग का पैंताना।**

पाँइनि—संज्ञा पुं. बहु० [हिं. पाँव] **पैर, पाँव।**

मुहा.—पाइनि परि—**पैर पर गिरकर, बड़ी नम्रता और विनय से।** उ.—जेइ जेइ पथिक जात मधुबन तन तिनहूँ सों ब्यथा कहति पाँइनि परि—२८००।

पाँउ—संज्ञा पुं. [हिं. पाँव] **पैर, पाँव।**

मुहा.—पाँव पसार सोना—**बिलकुल निश्चिंत होकर सोना।**

पाँक, पाँका—संज्ञा पुं. [सं. पंक] **कीचड़।**

पाँख, पाँखड़ा—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] **पंख, डैना।** उ.—कीड़ी तनु ज्यों पाँख उपाई—१०४१।

पाँखड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंखुड़ी] **फूल की पंखुड़ी, पुष्पदल।**

पाँखनि—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. पंख] **अनेक पंख।** उ.—जिन पाँखनि कै मुकुट बनायौ, सिर धरि नंदकिसोर—४७७।

पाँखि, पाँखी—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] **पंख, पर, डैना।** उ.—सूरदास सोने के पानी, मढ़ौं चौंच अरु पाँखि—६-१६४।

संज्ञा स्त्री. [सं. पक्षी] (१) **पंखदार पतिंगा।** (२) **पक्षी।**

पाँखुड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंखुड़ी] **फूल की पंखुड़ी, पुष्पदल।**

पाँखें—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. पंख] **पंख, डैने।** उ.—मुरली अधर मोर के पाँखें जिन इह मूरति देखि—३२१७।

पाँगुर, पाँगुरी—वि. [हिं. पंगु] **लूली, पंगु।** उ.—सूर सो मनसा भई पाँगुरी निरखि डगमगे गोड़—१३५७।

पाँच—वि. [सं. पंच] **चार से एक अधिक।**

मुहा.—पाँच-सात न आना—**बहुत सीधे और सरल स्वभाव का होना।** उ.—चकृत भए नारि-नर ठाढ़े पाँच न आवै सात—२४६४। पाँच-सात भूलना—**चालाकी भूल जाना।** उ.—सूरदास प्रभु के वै बचन सुनहु मधुर मधुर अब मोहिं भूली पाँच और सात—पृ. ३१५ (४५)। पाँच की सात लगाना—

अनेक बातें गढ़कर दोषी बताना। उ.—पाँच की सात लगायो झूँठी-झूँठी कै बनायौ साँची जो तनक होइ तौलौ सब सहिए—१२७२।

संज्ञा पुं—(१) पाँच की संख्या। (२) कई लोग। (३) मुखिया लोग, पंच।

पाँचक—वि. पुं. [हिं. पाँच+एक] लगभग पाँच, पाँच-सात। उ.—दीपमालिका के दिन पाँचक गोपनि कहौ बुलाइ—८१२।

संज्ञा पुं. [सं. पंचक] (१) पाँच नक्षत्र जिनमें नया कार्य करना मना है। (२) पाँच का समूह। (३) शकुन शास्त्र।

पाँचजना—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण का शंख जो पंचजन नामक दैत्य से उन्हें मिला था। (२) विष्णु का शंख।

पाँचवाँ – वि. [हिं. पाँच] पाँच के स्थानवाला।

पांचाल—संज्ञा पुं. [सं.] 'पंचाल' नामक देश।

वि.—(१) पंचाल देशवाला। (२) पंचाल-संबंधी।

पांचाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वाक्य-रचना की वह रीति जिसमें बड़े बड़े समासों में कोमल कांत पदावली हो। (२) द्रौपदी जो पंचाल देश की राजकुमारी थी।

पाँचै—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंचमी] किसी पक्ष की पाँचवीं तिथि। उ.—पाँचै परिमति परिहरै हरि होरी है—२४५५।

पाँचौ—संज्ञा पुं. [हिं. पाँच] कुल पाँच। उ.—करि हरि सौं स्नेह मन साँचौ। निपट कपट की छाँड़ि अटपटी, इन्द्रिय बस राखहि किन पाँचौ—१-८३।

पाँजना—क्रि. स. [सं. प्रणद्ध, प्रा. पणज्झ, पँज्झ] धातु के टुकड़ों या टूटे पात्रों में टाँका लगाना।

पाँजर—संज्ञा पुं. [सं. पंजर] (१) पसली। (२) पार्श्व, बगल।

पाँजी, पाँझ—संज्ञा स्त्री. [देश.] नदी के पानी का इतना सूख जाना कि पैदल ही उसे पार किया जा सके।

पांडव—संज्ञा पुं. [सं.] कुन्ती और माद्री के गर्भ से उत्पन्न राजा पांडु के पाँच पुत्र—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव।

पांडित्य—संज्ञा पुं. [सं.] विद्वत्ता, पंडिताई।

पांडु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पांडव वंश के आदि पुरुष। ये विचित्रवीर्य की विधवा स्त्री अंबालिका के, व्यासदेव से उत्पन्न पुत्र थे। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन्हीं के पुत्र थे। (२) एक रोग जिसमें शरीर पीला पड़ जाता है। (३) सफेद रंग।

पांडुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पीलापन।

पांडु-बधू—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पांडु की पतोहू। (२) द्रौपदी। उ.—कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पांडु की बधू जस नैंकु गायौ—१-५।

पांडुर—वि. [सं.] (१) पीला। (२) सफेद।

पांडुलिपि—संज्ञा स्त्री. [सं.] लेख की मूल प्रति।

पाँडे, पाँड़ेय—संज्ञा पुं. [सं. पंडित] (१) ब्राह्मणों की एक शाखा। (२) पंडित। (३) अध्यापक। उ.—जब पाँड़े इत-उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए ७-२। (४) रसोइया। (५) वह ब्राह्मण जो श्रीकृष्ण का जन्म सुनकर महराने में आया था। उ.—महराने तैं पाँड़े आयौ। ब्रज घर घर बूझत नँद-राउर पुत्र भयौ, सुनि कै उठि धायौ—१०-२४८।

पाँति—संज्ञा स्त्री. [सं. पंक्ति] (१) कतार, पंक्ति। उ.—अब वैं लाज मरति मोहिं देखत बैठी मिलि हरि पाँति—पृ. ३३७ (६५)। (२) अवली, समूह। उ.—मानों निकसि बगपाँति दाँत उर अवधि सरोवर फोरे—२८१३ (३) बिरादरी, परिवार-समूह। उ.—जातिपाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति कैं दरबार—१-२३१।

पाँती—संज्ञा स्त्री [सं. पंक्ति] समूह, समाज। उ.—कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई। तदपि बिमुख पाँती सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई —१-६३।

पाँथ—संज्ञा पुं. [सं. पंथ] मार्ग।

वि. [सं.] (१) पथिक। (२) वियोगी।

पाँयँ, पाँय—संज्ञा पुं. [सं. पाद] पैर, चरण।

पाँयता—संज्ञा पुं. [हिं. पाँय + तल] पैताना।

पाँयन—संज्ञा पुं. [हिं. पाँव] पैरों में। उ.—सुनत सुखम घटियार घोर ध्वनि पाँयन नूपुर बाजत—२५६१।

पाँव—संज्ञा पुं. [सं. पद] पैर, पग।

पाँवड़ा, पाँवड़े—संज्ञा पुं. [हिं. पाँव+ड़ा (प्रत्य.)] **वस्त्र जो मार्ग में आदर के लिए बिछाया जाता है, पायंदाज।** उ.—(क) बरन बरन पट परत पाँवड़े, बीथिनि सकल सुगन्ध सिंचाई—६-१६६। (ख) पाटंबर पाँवड़े डसाये—२६४३।

पाँवड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँव] (१) **खड़ाऊँ।** (२) **जूता।**

पाँवर—वि. [सं. पामर] (१) **पापी, नीच।** (२) **ओछा, क्षुद्र।** उ.—थोरी कृपा बहुत करि मानी पाँवर बुधि ब्रजबाल—१८३०।

पाँवरि, पाँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँवरी] (१) **जूता, पनही।** उ.—(क) सूर स्वामि की पाँवरि सिर धरि, भरत चले बिलखाई—६-५३। (ख) सूरदास प्रभु पाँवरि मम सिर इहिं बल भरत कहाऊँ—९-१५५। (२) **सीढ़ी।** (३) **पैर रखने का स्थान।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरि, पौरी] (१) **ड्योढ़ी।** (२) **दालान।**

पांशु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **धूल, रज।** (२) **बालू।**

पाँस—स्त्री. [सं. पांशु] **खाद।**

पाँसना—क्रि. स. [हिं. पाँस] **खेत में खाद देना।**

पाँसा—संज्ञा पुं. [सं. पाशक] **चौसर खेलने की गोट।** उ.—कौरव पाँसा कपट बनाये।

मुहा.—पाँसा उलटना (पलटना)—**प्रयत्न या योजना का फल आशा के प्रतिकूल होना।**

पाँसुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पसली] **पसली।**

पाँसे—संज्ञा पुं. [हिं. पाँसा] **चौसर खेलने के छोटे टुकड़े जो संख्या में ३ होते हैं। ये प्रायः हाथी दाँत या किसी हड्डी के बनते हैं।** उ.—चौपरि जगत मड़े जुग बीते। गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते—१-६०।

पाँही—क्रि. वि. [हिं. पँह] **पास, निकट, समीप।**

पा, पाइँ, पाइ—संज्ञा पुं. [सं. पाद] **पैर, चरण।** उ.—(क) हा हा हो पिय पा लागति हौं जाइ सुनौ बन बेनु रसालहिं—८६८।

पाइक—संज्ञा पुं. [सं. पायक] (१) **दूत।** (२) **सेवक।**

पाइतरी—संज्ञा स्त्री. [सं. पादस्थली] **पलँग का पैर की ओर का भाग, पैताना।** उ.—कमलनैन पौढ़े सुख-सज्या, बैठे पारथ पाइतरी—१-२६८।

पाइयत—क्रि. स. [हिं. पाना] **पाता है।** उ.—आनन के बदले न पाइयत सेंति बिकाय सुजस की ढेरी—२८५२।

पाइल—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायल] **पैर का एक गहना।**

पाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँय] (१) **मंडल में नाचना।** (२) **एक सिक्का।** (३) **दीर्घता-सूचक मात्रा।** (४) **खड़ा विराम-चिह्न।**

क्रि. स. [हिं. पाना] **प्राप्त की, उपलब्ध की, लाभ करना।** उ.—(क) यह गति काहू देव न पाई—१-५। (ख) अंबरीष, प्रहलाद, नृपति बलि, महाँ ऊँच पदवी तिन पाई—१-२४। (२) **समझी, जानी-बूझी।** उ.—उनकी महिमा है नहिं पाई—४-५।

पाउक—संज्ञा पुं [सं. पावक] **आग, अग्नि।**

पाउँ—संज्ञा पुं [हिं. पाँव] **पैर।** उ.—भवन जाहु अपनैं अपनैं सब, लागति हौं मैं पाउँ—३४५।

पाऊँगो—क्रि. स. [हिं. पाना] **प्राप्त करूँगा।** उ.—मात-पिता जिय त्रास धरत हौं तऊ आइ सुख पाऊँगो—१६४४।

पाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. पाना] **पाने से, पाने पर भी, पाकर भी।** उ.—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ केहरि भूख मरै—१-२०५।

पाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पकाने की क्रिया, रसोई बनाना।** उ.—पाक पावक करै, बारि सुरपति भरै, पौन पावन करै द्वार मेरे—६-१२६। (२) **रसोई, तैयार भोजन।** उ.—देखौ आइ जसोदा सुत-कृति। सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायौ—१०-२४८। (३), **पकवान।** उ.—मिलि बैठे सब जेंवन लागे, बहुत बने कहि पाक—४६४। (४) **चाशनी में बनी औषध।**

वि. [फ़ा.] (१) **पवित्र।** (२) **निर्दोष।** (३) **समाप्त।**

पाकर—संज्ञा पुं. [सं. पर्कटी, प्रा. पक्कड़ी] **एक वृक्ष।** उ.—फूल करील कली पाकर नम—२३२१।

पाकशाला, पाकसाला—संज्ञा पुं. [सं. पाकशाला] **रसोई-घर।** उ.—तब उन कह्यौ पाकसाला में अबहीं यह पहुँचाओ—सारा० ६६४।

पाकशासन, पाकसासन—संज्ञा पुं. [सं. पाकशासन] **इंद्र।**

पाकस्थली—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पक्काशय।**

पाक्षिक—वि. [सं.] (१) **पक्ष या पखवाड़े का।** (२) **जो प्रतिपक्षी हो।** (३) **तरफदार।**

पाखंड—संज्ञा पुं. [सं. पाखंड] (१) **वेद-विरुद्ध आचरण।** (२) **आडंबर, ढोंग, ढकोसला।** उ.—दूरि कियौ पाखंड वाद, हरि भक्तिनि कौ अनुकूल—सारा० ३१६। (३) **छल-कपट।**

वि.—**पाखंड करनेवाला, ढोंगी, पाखंडी।**

पाखंडी—वि. [हिं. पाखंड] (१) **वैदिक आचार का खंडन या निंदा करनेवाला।** (२) **कपटाचारी, ढोंगी।** (३) **छली-कपटी।**

पाख, पाखा—संज्ञा पुं. [सं. पक्ष] (१) **पक्ष, पखवाड़ा, पंद्रह दिन।** उ.—एक पाख त्रय मास कौ, मेरौ भयौ कन्हाई—१०-६८। (२) **कोना, छोर।**

पाखान—संज्ञा पुं. [सं. पाषाण] **पत्थर।**

पाखाननि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. पाषाण] **पत्थरों से।** उ.—तब लौं तुरत एक तौ बाँधौ, द्रुम-पाखाननि छाई—६-११०।

पाखर—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रखर] **हाथी-घोड़े पर, युद्ध के अवसर पर, डाली जानेवाली लोहे की झूल।**

पाग—संज्ञा स्त्री. [हिं. पग=पैर] **पगड़ी।** उ.—(क) टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी, टेढ़ैं-टेढ़ैं धायौ—१-३०१। (ख) रोकि रहत गहि गली साँकरी टेढ़ी बाँधत पाग—१०-३२८। (ग) दधि-ओदन दोना भरि दैहौं अरु अंचल की पाग—२६४८।

संज्ञा पुं. [सं. पाक] (१) **रसोई।** (२) **चाशनी में पगी मिठाई।**

पागना—क्रि. स. [सं. पाक] **चाशनी में पकाना।**

पागल—वि. [देश.] (१) **बावला, सनकी, विक्षिप्त।** (२) **क्रोध, शोक आदि के कारण आपे से बाहर।** (३) **नासमझ, मूर्ख।**

पागलपन—संज्ञा पुं. [हिं. पागल] (१) **सनक।** (२) **मूर्खता।** (३) **उन्मत्तता।**

पागी—वि. [हिं. पगना] **रस या चाशनी में पगी हुई।** उ.—(क) भव-चिंता हिरदै नहिं एकौ स्याम रंग-रस पागी—१४८६। (ख) सूरदास अबला हम भोरी गुर चैंटी ज्यौं पागी—३३३५।

पागे—क्रि. अ. [हिं. पगना] (१) **अनुरक्त हुए, मग्न हुए, प्रेम में डूब गये।** उ.—नवल गुपाल, नवेली राधा नये प्रेम-रस पागे—६८६। (२) **ओतप्रोत हुए, मग्न हुए, भरे गये।** उ.—(क) तब बसुदेव देवकी निरखत परम प्रेम रस पागे—१०-४। (ख) सोभित सिथिल बसन मन मोहन, सुखवत स्रम के पागे...। नहिं छूटति रति रुचिर भामिनी, वा रस मैं दोउ पागे—६८६।

पाग्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. पगना] **बहुत अधिक लिप्त हुआ, ओतप्रोत हो गया।** उ.—जनम सिरानौई सौ लाग्यौ। रोम रोम, नख-सिख लौं मेरैं, महा अवनि बपु पाग्यौ—१-७३।

पाचक—वि. [सं.] **पचाने या पकानेवाला।**

पाचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पचाने या पकाने की क्रिया।** (२) **अन्न-पचाने की क्रिया।** (३) **प्रायश्चित।**

पाचना—क्रि. स. [सं. पाचन] **अच्छी तरह पकाना।**

पाचै—क्रि. स. [हिं. पाचना] **परिपक्व करती है।** उ.—निसि दिन स्याम सुमिरि जस गावै कलपन मेटि प्रेम-रस पाचै।

पाछ—संज्ञा पुं. [सं. पश्चात, प्रा. पच्छा] **पिछला भाग।**

क्रि. वि. [हिं. पीछा] **पीछे।**

पाछना—क्रि. स. [हिं. पंछा] **चीर-फाड़ देना।**

पाछल, पाछलु—वि. [हिं. पिछला] **पीछे का, पिछला।**

पाछिल, पाछिलो—वि. [हिं. पिछला] (१) **पिछला, पीछे का।** (२) **पूर्व जन्म का।** उ.—धन्य सुकृत पाछिलो—११८१।

पाछिली—वि. स्त्री. [हिं. पिछला] **पीछे की, पूर्व की।**

पाछिले—वि. [हिं. पीछा, पिछला] **पूर्व या पहले की, पिछली।** उ.—उन तौ करी पाछिले की गति, गुन तोरयौ बिच धार—१-१७५।

पाछी—क्रि. वि. [हिं. पाछ] **पीछे, पीछे की ओर।**

पाछू, पाछे, पाछैं—क्रि. वि. [हिं. पीछा, पीछे] (१) **भूतकाल में, पूर्व समय में, पहले।** उ.—तीनौं पन भरि ओर निबाह्यौ, तऊ न आयौ बाज। पाछैं भयौ

ने आगैं हैहै, सब पतितनि सिरताज—१-६६ । (२) **पीठ की ओर, पीछे की तरफ** । उ.—पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है सूर खाल किन पाटत—१-१०७ ।

पाछेन—वि. [हिं. पीछा] **पीछे आनेवाले** । उ.—पदखि लिए पाछेन को तेऊ सब आए—२५७५ ।

पाज—संज्ञा पुं. [हिं. पाँजर] **पाँजर** । उ.—निरखि छबि फूलत हैं ब्रजराज । उत जसुदा इत आपु परस्पर आड़े रहे कर पाज ।

पाजस्य—संज्ञा पुं. [सं.] **छाती और पेट की बगल का भाग, पार्श्व, पाँजर** ।

पाजी—संज्ञा पुं. [सं. पदाति] (१) **पैदल सिपाही** । (२) **रक्षक** ।

वि. [सं. पाठ्य] **दुष्ट, नीच, कमीना** ।

पाजीपन—संज्ञा पुं. [हिं. पाजी+पन] **दुष्टता, नीचता** ।

पाजेब—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **पैर का गहना, नूपुर, मंजीर** ।

पाटंबर—संज्ञा पुं. [सं.] **रेशमी वस्त्र** । उ.—हय गय हेम धेनु पाटंबर दीन्हें दान उदार—सारा. ३०७ ।

पाट—संज्ञा पुं. [सं. पट्ट, पाट] (१) **रेशम** । उ.—किंकिनि नूपुर पाट पाटंबर, मानौं लिये फिरैं घरबार—१-४१ । (२) **राजसिंहासन** । उ.—मोदी लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार । पाट बिरध ममता है मेरैं माया कौ अधिकार—१-१४१ । (३) **फैलाव, चौड़ाई** । (४) **पीढ़ा, पटरा** । (५) **धोबी का पाटा** । (६) **चक्की का एक भाग** । (७) **द्वार, कपाट** ।

पाटत—क्रि. स. [हिं. पाट, पाटना] **किसी गहरी जगह को भर देना, गढ़ा-जैसी जगह पाट देना** । उ.—पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत—१-१०७ ।

पाटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. पाटना] (१) **पटाव, छत** । (२) **साँप का विष उतारने का एक मंत्र** ।

पाटना—क्रि. स. [हिं. पाट] (१) **निचले स्थान को भरकर समतल करना** । (२) **ढेर लगाना** । (३) **पटाव या छत बनाना** । (४) **तृप्त करना** ।

पाटमहिषी—संज्ञा स्त्री. [सं. पट्ट+महिषी] **पटरानी** ।

पाटरानी—संज्ञा स्त्री. [सं. पट्ट+रानी] **प्रधान रानी जो राजा के साथ सिंहासन पर बैठे** । उ.—अब कहावत पाटरानी बड़े राजा स्याम—२६८१ ।

पाटल—संज्ञा पुं. [सं.] **पाढर नामक पेड़** । उ.—मिलत सम्मुख पाटल पटल भरत मान जुही—२३८१ । (१) **गुलाब** ।

वि.—(१) **गुलाब-संबंधी** । (२) **गुलाबी** ।

पाटव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कौशल** । (२) **पक्कापन** ।

पाटवी—वि. [हिं. पाट] (१) **पटरानी से उत्पन्न** । (२) **रेशमी** ।

पाटा—संज्ञा पुं. [हिं. पाट] **पीढ़ा, पटरा, तख्ता** ।

पाटी—संज्ञा स्त्री. [सं. पाट] (१) **पटिया, पट्टी, माँग के दोनों ओर के बैठे हुए बाल** । उ.—मुँड़ली पाटी पारन चाहै, नकटी पहिरे बेसरि (२) **पटरा, पीढ़ा** । (३) **सिंहासन** । उ.—नव ग्रह परे रहैं पाटी-तर, कूपहिं काल उसारौ—६-१५६ । (४) **शिला, चट्टान** । (५) **पलँग की एक लकड़ी** । उ.—घुनो बाँस बुन्यौ खटोला काहू को पलँग कनक पाटी—१० उ.-७१ ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **परिपाटी** । (२) **श्रेणी** । (३) **गणना-क्रम** ।

पाटौं—क्रि. स. [हिं. पाटना] (१) **पाट दूँ, दबाकर गाड़ दूँ** । उ.—कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै, खोदि पता. लहिं पाटौं—६-१४८ । (२) **लबालब भर दूँ, डुबा दूँ** । उ.—छिन में बरषि प्रलय जल पाटौं खोजु रहै नहिं चीनो—६४५ ।

पाटौ—संज्ञा पु. [सं. पट्टा] **पट्टा, अधिकार-पत्र, सनद** । उ.—जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊँ । तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ —१-१४६ ।

पाठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पढ़ाई, अध्ययन** । उ.—संदीपन सुत तुम प्रभु दीने, विद्या-पाठ करयौ—१-१२३ । (२) **नियम से पढ़ने की क्रिया या भाव** (३) **पढ़ने का विषय** । (४) **सबक** । (५) **पुस्तक का एक अंश** । (६) **वाक्य का शब्द-क्रम या शब्द-वर्तनी** ।

पाठक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पढ़नेवाला** । (२) **पढ़ानेवाला** ।

पाठन—संज्ञा पुं. [सं.] **पढ़ने की क्रिया या भाव** ।

पाठ-भेद—संज्ञा पुं. [सं.] **पाठ का अंतर** ।

पाठशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **विद्यालय, चटसाल** ।

पाठांतर—संज्ञा पुं. [सं.] **पाठ में अंतर** ।

पाठी—वि. [सं. पाठिन्] पढ़नेवाला, पढ़ैया।
पाठ्य—वि. [सं.] (१) पठनीय। (२) जो पढ़ाया जाय।
पाड़, पाढ़—संज्ञा पुं. [हिं. पाट] (१) धोती-साड़ी का किनारा। (२) बाँध, पुश्ता।
पाड़इ, पाढ़इ—संज्ञा स्त्री. [सं. पाटल] 'पाटल' वृक्ष। उ.—जहाँ निवारी सेवती मिलि झूमक हो। बहु पाड़इ बिपुल गँभीर मिलि झूमक हो—२४४५।
पाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. पट्टन] टोला, मुहल्ला, पुरवा।
पाढ़त—संज्ञा स्त्री. [हिं. पढ़ना] जादू-टोना, मंत्र।
पाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यापार। (२) हाथ, कर।
पाणि—संज्ञा पुं. [सं.] हाथ, कर।
पाणिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौदा। (२) हाथ।
पाणिगृहीता—वि. [सं.] विवाहिता (पत्नी)।
पाणिग्रह, पाणिग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह।
पाणिनि—संज्ञा पुं. [सं.] संस्कृत भाषा के 'अष्टाध्यायी' नामक प्रसिद्ध व्याकरण के रचयिता।
पाणिपल्लव—संज्ञा पुं. [सं.] उँगलियाँ।
पाणिमूल—संज्ञा पुं. [सं.] कलाई।
पातंजलि—संज्ञा पुं. [सं. पतंजलि] प्रसिद्ध प्राचीन विद्वान पतंजलि। उ.—पातंजलि-से मुनि पद सेवत करत सदा अज ध्यान—सारा. ६२।
पात—संज्ञा पुं. [सं. पत्र] (१) पत्ता, पत्र। उ.—जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै। ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं—१-८६। (२) कान का एक गहना, पत्ता।
संज्ञा पुं. [सं.] पतन। (२) गिरना। (३) टूट कर गिरना। (४) नाश। (५) पड़ना।
पातक—संज्ञा पुं. [सं.] पाप, अघ, अधर्म।
पातकी—वि. [सं. पातक] पापी, अधर्मी।
पातन—संज्ञा पुं. [सं.] गिराने की क्रिया।
संज्ञा पुं. बहु. [हिं. पात=पत्ता] पत्तों के। उ.—मूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै—३१०५।
पातर, पातरा—वि. [हिं. पतला] दुबला, पतला, क्षीण। उ.—मचला, अकलै-मूल, पातर खाउँ खाउँ करै भूखा—१-१८६। (२) क्षीण, बारीक। (३) जो जरा भी गाढ़ा न हो।
संज्ञा स्त्री. [सं. पत्र] पत्तल, पनवारा।
संज्ञा स्त्री. [सं. पातली] वेश्या।
पातरि, पातरी वि. [हिं. पतला] दुबली-पतली।
संज्ञा स्त्री. [सं. पातली] वेश्या।
पातशाह—संज्ञा पुं. [हिं. पादशाह] बादशाह।
पातशाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. पातशाह] बादशाही।
पाता—संज्ञा पुं. [सं. पत्र हिं., पत्ता] पत्ता, पत्र। उ.—सरबस प्रभु रीझि देत तुलसी कैं पाता—१-१२३।
वि. [सं. पातृ] (१) रक्षक। (२) पीनेवाला।
पातार, पाताल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में से सातवाँ। (२) पृथ्वी के नीचे का लोक। उ.—ग्रस्यौ गज ग्राह कौं लै चल्यौ पाताल कौं काल कैं त्रास मुख नाम आयौ—१-५। (३) गुफा।
पातालकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] पातालवासी एक दैत्य।
पाताखत—संज्ञा पुं. [हिं. पात+आखत] पत्र-अक्षत, पूजा या भेंट की सामान्य वस्तु।
पाति—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्र] (१) पत्ती। (२) चिट्ठी।
पातिव्रता, पातिव्रत—संज्ञा पुं. [सं. पातिव्रत्य] पतिव्रता होना। उ.—पातिव्रतहिं धर्म जब जान्यौ बहुरौ रुद्र बिहाई—सारा-५०।
पातिसाह—संज्ञा पुं. [हिं. पादशाह] बादशाह।
पाती—संज्ञा स्त्री. [सं. पत्री, प्रा. पत्ती] (१) चिट्ठी, पत्र। उ.—(क) पाती बाँचत नंद डराने—५२६। (ख) लोचन जल कागद मसि मिलि करि ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती—२६७७। (२) वृक्ष-लता की पत्ती।
संज्ञा स्त्री. [हिं. पति] लज्जा, प्रतिष्ठा। उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु सब पाती उघरी—३३४६।
पातुर, पातुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. पातली] वेश्या।
पाते, पातै—संज्ञा पुं. [हिं. पत्ता.] वृक्ष का पत्ता। उ.—(क) मलिन बसन हरि हित अंतर्गति तनु पीरो जनु पाते—३४६१। (ख) मारे कंस सुरन सुख दीनो असुर जरे पिर पाते—३३३८।
पात्त—संज्ञा पुं. [सं.] पापियों का उद्धारक।
पात्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह व्यक्ति जो किसी वस्तु अथवा विषय का अधिकारी हो। उ.—हरि जू हौं यातैं

दुख-पात्र—१-२१६ । (२) आधार, बरतन, भाजन । उ.—(क) हृदय कुचील काम-भू-तृष्ना-जल कलिम है पात्र—१-२१६ । (ख) पात्र-स्थान हाथ हरि दीन्हें—२-२० । (३) नदी का पाट । (४) नाटक के नायक-नायिका आदि । (५) नाटक के अभिनेता । (६) पत्ता ।

पात्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] योग्यता, अधिकार ।

पात्री—संज्ञा स्त्री. [सं. पात्र](१) छोटा बरतन । (२) नाटक के स्त्री-पात्र (३) अभिनय करनेवाली स्त्री ।

पाथ—संज्ञा पुं. [सं. पाथस्] (१) जल । (२) वायु ।
संज्ञा पुं. [सं. पथ] पंथ, मार्ग, राह । उ.—भ्रमित भयौ जैसैं मृग चितवत, देखि देखि भ्रम-पाथ—१-२०८ ।

पाथना—क्रि. स. [हिं. थापना का आद्यन्त विपर्यय] (१) ठोंक-पीट कर गढ़ना-बनाना । (२) थोप-थाप करना (३) मारना ।

पाथनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।

पाथनिधि—संज्ञा पुं. [सं. पाथोनिधि] समुद्र ।

पाथर—संज्ञा पुं. [हिं. पत्थर] पत्थर । उ.—उकठे तरु भये पात, पाथर पर कमल जात, आरज पथ तज्यै । नात, ब्याकुल नर-नारी ।

पाथा—संज्ञा पुं. [सं. पाथस्] (१) जल । (२) आकाश ।

पाथेय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यात्री के लिए मार्ग का भोजन । (२) पथिक का राह-खर्च, संबल ।

पाथोज—संज्ञा पुं. [सं.] कमल ।

पाथोर—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

पथोधार—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

पाथोधि—संज्ञा पुं. [सं.] सागर, समुद्र ।

पाथोनिधि—संज्ञा पं. [सं.] सागर, समुद्र ।

पाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पैर, चरण । (२) छंद का एक चरण । (३) चौथाई भाग । (४) पुस्तक का विशेष भाग । (५) निचला भाग, तल ।

पादत्र, पादत्राण, पादत्रान—वि. [सं.] जो नर-नारी के पैर की रक्षा करे ।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) खड़ाऊँ । (२) जूता, पनही ।

पादप—संज्ञा पुं. [सं.] वृक्ष, पेड़ ।

पादपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जूता । (२) खड़ाऊँ ।

पादपूरक—वि. [सं.] कविता में पद की पूर्ति के लिए प्रयुक्त होनेवाला शब्द ।

पादपूरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कविता में अधूरे पद को पूरा करना । (२) पद-पूर्ति के लिए भरती के शब्द रखना ।

पादशाह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बादशाह ।

पादाकुल, पादाकुलक—संज्ञा पुं. [सं.] चौपाई (छंद) ।

पादाक्रांत—वि. [सं.] पैर से कुचला हुआ ।

पादारघ—संज्ञा पुं. [सं. पाद्यार्घ] (१) हाथ-पैर धुलाने का जल । (२) पूजन-सामग्री । (३) भेंट, उपहार ।

पादुका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खड़ाऊँ । (२) जूता ।

पादोदक—संज्ञा पुं. [सं. पाद+उदक=जल] (१) वह जल जिसमें पैर धोया गया हो । (२) चरणामृत । उ.—गंग तरंग बिलोकत नैन । अतिहि पुनीत बिष्नु-पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुनि चैन—९-१२ ।

पाद्य—संज्ञा पुं. [सं.] चरण धोने का जल । उ.—चमर अंचल, कुच कलश मनो पाद्य पानि चढ़ाइ—३४८३ ।

पद्यार्घ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ-पैर धोने का जल । (२) पूजा या भेंट की सामग्री ।

पाधा, पाधे—संज्ञा पुं. [सं. उपाध्याय] (१) आचार्य । (२) पंडित । उ.—गिरिधरलाल छबीले को यह कहा पठायौ पाधे—३२८४ ।

पान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (किसी द्रव पदार्थ को) घूँटना, पीना ।
(२) शराब पीना ।
प्र०—पान करि—पीकर—उ.—रुधिर पान करि, आतमाल धरि, जयजय शब्द उचारी । करती पान—पीती । उ.—रास रसिक गुपाल मिलि मधु अधर करती पान—३०३२ ।
(३) पेय पदार्थ, पेय द्रव । उ.—चरनोदक कौं छाँड़ि सुधा-रस, सुरापान अँचयौ—१-६४ । (४) मद्य, शराब । (५) पानी । (६) आब, कांति । (७) पीने का पात्र । (८) प्याऊ ।
संज्ञा पुं. [सं. प्राण] प्राण । उ.—पान अपान ब्यान उदान और कहियत प्राण समान ।
संज्ञा पुं. [सं. पर्ण, प्रा. पण्ण] (१) एक प्रसिद्ध लता

जिसके पत्तों का बीड़ा बनाकर खाया जाता है, ताम्बूली उ.—दिन राती पोषत रह्यौ जैसे चोली पान—**१-३२५**। (२) **पान का बीड़ा।** उ.—(क) आदर सहित पान कर दीन्हों—१०४७। (ख) पान लै चल्यौ नृप-आन कीन्हौ—**१०-६२**।

मुहा०—पान उठाना—किसी काम के करने का जिम्मा लेना। पान खिलाना—**सगाई-संबंध पक्का कराना।** पान चीरना—**व्यर्थ का काम करना।** पान देना—**कोई काम करने का जिम्मा देना।** दै पान—**काम करने का जिम्मा देकर।** उ.—असुर कंस दै पान पठाई—**१०-५०**। पान-पत्ता या पान-फूल—**साधारण या तुच्छ भेंट।** पान लेना—किसी काम को करने का जिम्मा लेना। लै पान—**काम करने का जिम्मा लेकर।** उ.—नृपति के लै पान मन कियौ अभिमान करत अनुमान चँद्र पास धाऊँ।

(३) **पान के आकार की तावीज।**

संज्ञा पुं. [सं. पाणि] **हाथ।**

पानक—संज्ञा पुं. [सं.] **पना, पन्ना।**

पानय—संज्ञा पुं. [सं.] **शराबी, मद्यप।**

पानरा—संज्ञा पुं. [हिं. पनारा] **परनाला।**

पानही—संज्ञा स्त्री. [सं. उपानह, हिं. पनही] **जता।**

पाना—क्रि. स. [सं. प्रायण, प्रा. पावण] (१) **प्राप्त करना।** (२) **फल या परिणाम भुगतना।** (३) **खोई हुई चीज फिर पाना।** (४) **पता, भेद या खोज पाना।** (५) **कुछ सुन या जान लेना।** (६) **देखना-जानना।** (७) **भोगना।** (८) **समर्थ हो सकना।** (९) **समीप जा सकना।** (१०) **समान या बराबर होना।** (११) **भोजन करना।** (१२) **समझ सकना।**

वि.—**जिसे पाने का हक हो।**

पानि—संज्ञा पुं. [सं. पाणि] **हाथ।** उ.—(क) सक्र कौ दान-बलि-मान ग्वारनि लियौ, गह्यौ गिरि पानि, जस जगत छायौ—**१-५**। (ख)—उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं—**१-६६**।

संज्ञा पुं. [हिं. पानी] **पानी, जल।** उ.—पवन पानि घनसारि सुमन दै दधिसुत किरनि भानु भै भुजैं—**२७२१**।

पानिग्रहण, पानिग्रहन—संज्ञा पुं. [सं. पाणि+ग्रहण] **विवाह।**

पानिप—संज्ञा पुं. [हिं. पानी+प (प्रत्य॰)] (१) **ओप, द्युति, कांत।** (२) **पानी।**

वि.—**मर्यादायुक्त, इज्जतदार, सम्मानित, प्रतिष्ठित।** उ.—सभा माँझ द्रौपति-पति राखी, पति पानिप कुल ताकौ। बसन-ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हो झाँकौ—**१-११३**।

पानी—संज्ञा पुं. [सं. पानीय] (१) **जल, अंबु, नीर।** उ.—जिनकैं क्रोध पुहुमि-नभ पलटै, सूखै सकल सिंधु कर पानी—**९-११५**।

मुहा०—पानी उतरना—**पानी घटना।** (काम) पानी करना—**सरल या सहज कर डालना।** पानी का बतासा (बुलबुला)—**क्षणभंगुर चीज।** पानी की तरह बहाना—**खूब लुटाना या अँधाधुंध खर्च करना।** पानी के मोल—**बहुत सस्ता।** पानी चढ़ना—(१) **पानी का ऊँचाई की ओर जाना।** (२) **पानी बढ़ना।** पानी चलाना—**नष्ट या चौपट करना।** पानी टूटना—**बहुत ही कम पानी रह जाना।** पानी दिखाना—(पशु कों) **पानी पिलाना।** पानी देना—(१) **सींचना, तर करना।** (२) **पितरों के नाम तर्पण करना।** पितर दै पानी—**पितरों के नाम तर्पण कर।** उ.—ढोटा एक भयौ कैसैहुँ करि कौन कौन करबर बिधि मानी। क्रम क्रम करि अब लौं उबर्यौ है, ताकौं मारि पितर दै पानी—**३६८**। पानी भी न माँगना—**चटपट दम निकल जाना।** पानी पर नींव डालना (देना)—**ऐसा काम करना जो टिकाऊ न हो।** पानी पढ़ना—**मंत्र पढ़कर पानी फूंकना।** पानी पानी करना—**बहुत लज्जित करना।** पानी पानी होना—**बहुत लज्जित होना।** पानी पी पीकर—**हर समय, लगातार।** पानी फिर जाना (फेरना)—**नष्ट हो जाना।** पानी फूँकना—**मंत्र पढ़कर पानी फूंकना।** (किसी के सामने) पानी भरना—**तुलना में अत्यंत तुच्छ होना।** पानी भरी खाल—**क्षणभंगुर शरीर।** पानी मरना—**किसी स्थान पर पानी जमा होकर सूखना।** (किसी के सिर) पानी मरना—**किसी का दोषी साबित होना।** पानी में आग लगाना—(१) **असंभव को संभव कर देना।** (२) **शांतिप्रिय लोगों में झगड़ा करा देना।** पानी में फेंकना

(बहाना)—**नष्ट करना।** पानी लगना—**वातावरण और संगति के प्रभाव से बुरी बातें सीख जाना।** सूखे में पानी में डूबना—**धोखा खा जाना।** भारी पानी—**पानी जिसमें खनिज पदार्थ अधिक मिले हों।** हलका पानी—**पानी जिसमें खनिज पदार्थ कम हों।** (मुँह में) पानी भरना (भर जाना)—**सुन्दर या स्वादिष्ट वस्तु को देखकर उसे पाने या उसका स्वाद लेने का लोभ होना।** दूध का दूध, पानी का पानी उघरना—**सच्चाई और वास्तविकता प्रकट हो जाना।** उ.—हम जातहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी को पानी—१८६२।

(२) **शरीर के अंगों से निकलने वाला पसीना आदि (पानी-सा पदार्थ)।** (३) **वर्षा, मेंह।**

मुहा०—पानी आना—**वर्षा होना।** पानी उठना—**घटा घिरना।** पानी टूटना—**मेंह बंद होना।** पानी निकलना—**वर्षा बंद होना।** पानी पड़ना—**मेंह बरसना।**

(४) **पानी जैसा पतला द्रव पदार्थ जो चिकना न हो।** (५) **निचोड़ने से निकलनेवाला रस, अर्क आदि।** (६) **चमक, आब, कांति, छबि, सुन्दरता।** (७) **धारदार हथियारों की आब, जौहर।** (८) **मान।**

मुहा०—पानी उतारना—**अपमानित करना।** पानी जाना—**अपमान होना।** पानी बचाना (रखना)—**मान की रक्षा करना।** पानी (हर) लेना—**प्रतिष्ठा नष्ट करना।** उ.—सुंदर नैननि हरि लियो कमलनि कौ पानी—४७५। **बे पानी करना—प्रतिष्ठा नष्ट करना।**

(९) **वर्ष, साल।** (१०) **मुलम्मा।** (११) **जीवट, स्वाभिमान।** (१२) **पशु की वंशगत विशिष्टता।** (१३) **पानी-सी ठंढी चीज।**

मुहा०—पानी करना (कर देना)—**गुस्सा ठंढा कर देना।** (किसी का) पानी होना (हो जाना)—(१) **गुस्सा ठंढा हो जाना।** (२) **तेजी न रह जाना।**

(१४) **बहुत मुलायम चीज।** (१५) **फीकी चीज।** (१६) **कुश्ती, द्वंद्वयुद्ध।** (१७) **बार, दफा।** (१८) **शराब।** (१९) **अवसर, मौका।** (२०) **जलवायु।**

मुहा०—पानी लगना—**किसी स्थान की जलवायु स्वास्थ्य के अनुकूल न होने से रोगी हो जाना।**

(२१) **चाल-ढाल, रंग-ढंग, वातावरण।**

संज्ञा पुं.—[सं. पाणि] **हाथ।** उ.—सोइ दसरथ-कुलचंद अमित बल आए सारँग पानी—९-११५।

पानीदार—वि. [हिं. पानी+फ़ा. दार] (१) **चमक या आबदार।** (२) **प्रतिष्ठित, सम्मानित।** (३) **आत्माभिमानी।**

पानी देवा—वि. [हिं. पानी+देना] (१) **तर्पण या पिंडदान करनेवाला।** (२) **पुत्र।** (३) **अपने गोत्र या वंश का।**

पानीय—संज्ञा पुं. [सं.] **जल, पानी।**

वि.—(१) **पीने योग्य।** (२) **रक्षा करने योग्य।**

पानैं—संज्ञा पुं. [सं. पाणि] **पाणि, हाथ, कर।**

उ.—अजहूँ सिय सौंपि नतरु बीस भुजा भानैं। रघुपति यह पैज करी, भूतल धरि पानैं—९-९७।

संज्ञा पुं. [सं पानीय] **पानी, जल।** उ.—चातक सदा स्वाति को सेवक दुखित होत बिन पानैं—३४०४।

पानो, पानौ—संज्ञा पुं. [हिं. पानी] **पीना।**

यौ०—भोजन-पानो—**खाना पीना।** उ.—सूर आसा पुजै या मन की तब भावै भोजन पानो—८९२।

पानौरा—संज्ञा पुं. [हिं. पान+बड़ा] **पान के पत्ते की पकौड़ी, पतौड़, पतौर।** उ.—पानौरा रायता पकौरी १—२३२१।

पान्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. पानी] (१) **पानी।** उ.—(क) अब क्यों जाति निबेरि सखी री मिलो एक पय पान्यौ—१२०२। (ख) सूर सु ऊधो मिलत भए सुख ज्यों खग पायो पान्यो—२९७१। (२) **मेघ।** उ.—मानो दव द्रुम जरत अस भयो उनयो अंबर पान्यौ—२२७५।

पाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अधर्म, बुरा काम, अघ।**

मुहा०—पाप उदय होना—**पिछले पापों का बुरा फल भुगतना।** पाप कटना—**पिछले पापों का बुरा फल-भोग चुकना और सुख की आशा होना।** पाप कमाना (बटोरना) **बराबर पाप करना।** पाप काटना—**पाप का कुफल भुगता देना।** पाप की गठरी (मोट)—**अनेक पापों का संग्रह।** पाप पड़ना

(लगना)—दोष होना।

(२) अपराध, कसूर।

मुहा०—पाप लगाना—दोष लगाना, दोषी ठहराना। लावत पाप—दोष लगाता है। उ.—हारि-जीति कछु नेंकु न समझत, लरिकनि लावत पाप—१०-२१४।

(३) हत्या। (४) बुरी नीयत, बुराई। उ.—मथुरापति कै जिय कछु तुम पर उपज्यौ पाप—५८६। (५) अशुभ ग्रह (६) झंझट बखेड़ा।

मुहा०—पाप कटना—बाधा दूर होना। पाप काटना—बाधा दूर करना, झंझट मिटाना। पाप मोल लेना—जान-बूझकर झंझट में पड़ना। पाप गले (पीछे) लगना—झंझट में फँस जाना।

(७) कठिनाई, संकट मुसीबत। उ.—छींक सुनत कुसगुन कह्यौ, कहा भयौ यह पाप—५८६।

मुहा०—पाप पड़ना—कठिन या सामर्थ्य से बाहर होना।

वि.—(१) पापी। (२) नीच। (३) अशुभ।

पापकर्मा—वि. [सं. पापकर्मन्] पापी।

पापक्षय—संज्ञा पुं. [सं.] तीर्थ जहाँ पाप नष्ट हो जायँ।

पापग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] अशुभ ग्रह।

पापचारी—वि. [सं. पापचारिन्] पापी।

पापचेता—वि. [सं.] जिसके चित्त में पाप रहता हो।

पापड़—संज्ञा पुं. [सं. पर्पट, प्रा पप्पड़] उर्द. मूँग या आलू की बहुत पतली चपाती जो प्रायः सूखने पर तली जाती है।

मुहा०—पापड़ बेलना—(१) कठिन परिश्रम करना। (२) कठिनाई से दिन काटना। (३) बहुत भटकना।

वि.—(१) बहुत पतला। (२) सूखा, शुष्क।

पापदर्शी—वि. [सं.] बुरी नीयत से देखनेवाला।

पापदृष्टि—वि. [सं.] (१) बुरी नीयत से देखनेवाला। (२) अशुभ या अमंगलकारिणी दृष्टि।

पापनामा—वि. [सं.] बुरे नामवाला।

पापनाशन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप का नाश करने वाला। (२) प्रायश्चित। (३) विष्णु। (४) शिव।

पापमति—वि. [सं.] जिसकी मति सदा पाप में रहे।

पापमय—वि. [सं.] पाप युक्त, पाप से पूर्ण।

पापयोनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] निकृष्ट योनि।

पापर—संज्ञा पुं. [हिं पापड़] पापड़। उ.—पापर बरी मिथैरि फुलौरी। कूर बरी काचरी पिठौरी—३६६।

पापलोक—संज्ञा पुं. [सं. नरक।

पापहर—वि. [सं.] पाप का नाश करनेवाला।

पापाचार—संज्ञा पुं. [सं.] दुराचार, पापकर्म।

पापात्मा—वि. [सं. पापात्मन्] पापी, दुष्टात्मा।

पापाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूतककाल। (२) अशुभ काल।

पापिनी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. पापी] पाप करनेवाली, जिस स्त्री ने पाप किया हो। उ.—यह आसा पापिनी दहै—१-५३।

पापिष्ठ—वि. [सं. पापिन्] बहुत बड़ा पापी।

पापी—वि. [सं. पापिन्] (१) पापयुक्त, अघी, पातकी। (२) अनरीति करनेवाला, जो अनुचित व्यवहार करे। उ.—पिता-बचन खंडै सो पापी, सोई प्रह्लादहिं कीन्हौ—१-१०४। (३) कठोर, निर्दय। उ.—जगत के प्रभु बिनु कल न परै छिनु ऐसे पापी पिय तोहिं पीर न पराई है—२८२७।

पाबंद—वि. [फ़ा.] (१) बँधा हुआ। (२) नियमबद्ध।

पाबंदी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) विवशता। (२) नियम-बद्धता।

पाम—संज्ञा स्त्री. [देश.] लड़, रस्सी, डोरी।

संज्ञा पुं. [सं. पामन] (१) फुंसियाँ (२) खाज।

वि.—खाज आदि रोगों से युक्त।

पामड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. पावँड़ा] पायंदाज।

पामर—वि. [सं.] (१) दुष्ट, पापी। (२) नीच कुल-वाला, नीच कुल में उत्पन्न।

पामरी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रावार] दुपट्टा, उपरना। उ.—

उ.—ओढ़े पीरी पामरी पहिरे लाल निचोल—१४६३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पावँड़ी] (१) खड़ाऊँ। (२) जूता।

वि. [सं. पामर] दुष्टा, पापिनी।

पायँ—संज्ञा पुं. [हिं. पावँ] पैर।

पायँजेहरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पावँ + जेहरी] पायजेब।

पायँत, पायँती—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायँता] **पैताना।**

पायँता—संज्ञा पुं. [हिं. पायँ + थान] **पैताना।**

पायंदाज—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **पैर-पुछना।**

पाय—संज्ञा पुं. [हिं. पावँ] **पावँ, पैर।** उ.—होड़ाहोड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट। ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेंट—१-१४६।

पायक—संज्ञा पुं. [सं. पादातिक, पायिक] (१) **धावन, दूत, हरकारा।** उ.—अंजनि-कुँवर राम कौ पायक, ताकैं बल गर्जत—६-८३। (२) **दास, सेवक, अनुचर।** उ.—उमड़त चले इंद्र के पायक सूर गगन रहे छाइ—६४५। (३) **पैदल सिपाही।** उ.—पायक मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्ट मति दूत—१-१४१।

पायदार—वि. [फ़ा.] **दृढ़, टिकाऊ, मजबूत।**

पायदारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **दृढ़ता, मजबूती।**

पायमाल—वि. [फ़ा.] (१) **पददलित।** (२) **नष्ट-ध्वस्त।**

पायमाली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **दुर्गति।** (२) **नाश।**

पायल—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायँ+ल] **नूपुर, पाजेब।**

पायस—संज्ञा स्त्री. [सं.] **खीर।**

पायसा—संज्ञा पुं. [हिं. पास] **पास-पड़ोस।**

पाया—संज्ञा पुं. [हिं. पायँ] (१) **पलँग, कुर्सी आदि का पावा।** (२) **खंभा, स्तम्भ।** (३) **पद, ओहदा।** (४) **सीढ़ी, जीना।**

पायिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूत।** (२) **पैदल सिपाही।**

पायी—वि. [सं. पायिन्] **पीनेवाला।**

पायौ—क्रि. स. [हिं. पाना] **पाया; प्राप्त किया।**

पारंगत—वि. [सं.] (१) **नदी अथवा जलाशय के पार पहुँचा हुआ, जो पार जा चुका हो।** उ.—यहै मंत्र सबहीं परधान्यौ सेतु बंध प्रभु कीजै। सब दल उतरि होइ पारंगत, ज्यौं न कोउ इक छीजै—६-१२१। (२) **पार पहुँचा हुआ।** (३) **पूरा जानकार, पूर्ण पंडित।**

पार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **नदी, झील आदि के दूसरी ओर का किनारा।** उ.—भव-समुद्र हरि-पद नौका बिनु कोउ न उतारै पार—१-६८।

मुहा०—पार उतरना—(१) **पाट या फैलाव पार करके दूसरे किनारे पहुँचना।** (२) **काम से छुट्टी पा जाना।** (३) **सफलता प्राप्त करना।** पार उतारना—(१) **दूसरे किनारे पर पहुँचाना।** (२) **समाप्त कर देना।** (३)**सफलता प्राप्त करना।** (४) **उद्धार करना।** पार तरना—(१) **नदी, समुद्र आदि पार करना।** (२) **दुख, कष्ट आदि से छुटकारा पाना।** पार तरै—**उद्धार हो जाता है, दुख-कष्ट से मुक्ति या छुटकारा मिल जाता है।** उ.—सूरजदास स्याम सेए तैं दुस्तर पार तरै—१-८२। (किसी का) पार लगाना—**निर्वाह करना।** लड़की पार होना—**कन्या का विवाह होना।**

यौ०—आरपार—**इस किनारे से उस किनारे तक।** वार पार—**यह और वह किनारा।** उ.—सूर स्याम द्वै अँखियन देखति, जाको वार न पार—१३११।

(२) **दूसरी ओर या तरफ।**

यौ०—आर पार—**एक ओर से होकर दूसरी ओर निकलना।**

मुहा०—पार करना—(१) **एक ओर से करके दूसरी ओर पहुँचा देना।** (२) **उद्धार करना।** पार होना—**एक ओर से जाकर दूसरी ओर निकलना।**

(३) **ओर, तरफ।** (४) **छोर, अंत।** उ.—प्रभु तव माया अगम अमोघ है लहि न सकत कोउ पार—३४६४।

मुहा०—पार पाना—(१) **अंत तक पहुँचना।** (२) **सफलता पाना।**

अव्य.—**परे, आगे, दूर।**

पारख—संज्ञा स्त्री. [हिं. परख] **जाँच, परीक्षा।**

संज्ञा पुं. [हिं. पारखी] **परख या जाँच करनेवाला।**

पारखद—संज्ञा पुं. [सं. पार्षद] **सेवक, पार्षद।**

पारखि, पारखी—संज्ञा पुं. [हिं.परख] **परखने-जाँचनेवाला।** उ.—सूरदास गथ खोटो काहे पारखि दोष धरे—पृ० ३३१ (५)।

पारगत—वि. [सं.] (१) **पार जानेवाला** (२) **जानकार।**

पारचा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **टुकड़ा।** (२)**पोशाक।**

पारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **व्रत के दूसरे दिन का प्रथम भोजन तथा तत्संबंधी कृत्य।** (२) **तृप्त करने की क्रिया या भाव।** (३) **मेघ, बादल।**

पारत—क्रि. स. [हिं. पारना] **झपकाता, मिलाता या गिराता है।** उ.—निदरे बिरह समूह स्याम अँग पेखि

पलक नहिं पारत—पृ० ३३५ (४७)।

पारथ—संज्ञा पुं० [सं. पार्थ] **अर्जुन**। उ.—प्रभु-पारथ द्वै नाहीं।

पारथिव—वि. [सं. पार्थिव] (१) **पृथिवी-संबंधी**। (२) **पृथ्वी या मिट्टी से बना हुआ**। (३) **राजसी**।

पारद—संज्ञा पुं. [सं.] **पारा**।

पारदर्शक—वि. [सं.] **जिससे आरपार दिखायी दे**।

पारदर्शी—वि. [सं.] (१) **उस पार तक देखनेवाला**। (२) **दूर तक देखनेवाला, दूरदर्शी**। (३) **जिसने खूब देखा-सुना हो**।

पारधि, पारधी—संज्ञा पुं० [सं. परिधान=आच्छादन, हिं. पारधी] (१) **शिकारी**। उ.—हौं अनाथ बैठयौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान।.....। सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान—१-९७। (२) **बहेलिया**। (३) **बधिक**।

संज्ञा स्त्री.—**ओट, आड़**।

पारन—संज्ञा पुं. [सं. पारण] **व्रत के दूसरे दिन का प्रथम भोजन तथा तत्संबंधी कृत्य**। उ.—पारन की विधि करौ सवारै—१००१।

पारना—क्रि. स. [हिं. पारना] (१) **डालना, गिराना**। (२) **जमीन पर डालना**। (३) **लिटाना**। (४) **कुश्ती में गिराना**। (५) **एक वस्तु को दूसरी में डालना या रखना**। (६) **रखना**। (७) **शामिल करना**। (८) **पहनाना**। (९) **उत्पात मचाना**। (१०) **साँचे में डालकर तैयार करना**।

क्रि. अ. [हिं. पार] **समर्थ होना**।

क्रि. स. [हिं. पालना] **पालन-पोषण करना**।

पारबती—संज्ञा स्त्री. [सं. पार्वती] **हिमालय की कन्या, शिवजी की अर्द्धांगिनी**।

पारमार्थिक—वि. [सं.] **परमार्थ-संबंधी**।

पारलौकिक—वि. [सं.] **परलोक संबंधी**।

पारषद—संज्ञा पुं. [सं. पार्षद] **पार्षद, सेवक**। उ.—जय अरु बिजय पारषद दोई। बिप्र-सराप असुर भए सोई—९-१५।

पारस—संज्ञा पुं. [सं. स्पर्श, हिं. परस] (१) **एक पत्थर जिससे छूते ही लोहा सोना हो जाता है**। (२) **अत्यंत उपयोगी वस्तु**।

वि.—(१) **स्वच्छ, उत्तम**। (२) **स्वस्थ**।

संज्ञा पुं. [हिं. परसना] **परसा भोजन**।

संज्ञा पुं. [सं. पार्श्व] **पास, निकट, समीप**। उ.—(क) भृकुटी कुटिल निकट नैनन के चपल होत यहि भाँति। मनहुँ तामरस पारस खेलत बाल भृंग की पाँति—१३५७। (ख) उत स्यामा इत सखा मंडली, इत हरि उत ब्रज नारि। मनो तामरस पारस खेलत मिलि मधुकर गुंजारि।

संज्ञा पुं. [सं. पारस्य] **एक प्रसिद्ध देश**।

पारसी—वि. [फ़ा. पारस] **पारस देश का**।

संज्ञा पुं.—**पारस देश का निवासी**।

पारसीक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पारस देश**। (२) **पारस का वासी**।

पारस्परिक—वि. [सं.] **परस्पर होनेवाला, आपस का**।

पारा—संज्ञा पुं. [सं. पार] (१) **दूसरा तट, दूसरी ओर**। उ.—गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पारा—९-७६। (२) **छोर, अंत**।

पावहिं नहिं पारा—**अंत या छोर नहीं पाते**। उ.—सुर-सारद से करत बिचारा। नारद-से नहिं पावहिं पारा—१०-३।

संज्ञा पुं. [सं. पारद] **एक चमकीली धातु, पारद**।

संज्ञा पुं. [सं. पारि] **मिट्टी का बड़ा प्याला**।

पारायण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पूरा करने का कार्य**। (२) **नियत समय तक ग्रंथ का आद्योपांत पाठ**।

पारावत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पंडुक**। (२) **कबूतर**। उ.—बन उपवन फल-फूल सुभग सर सुक सारिका हंस पारावत—१० उ.-५। (३) **बंदर**। (४) **पर्वत**।

पारावार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आरपार, तट**। (२) **सीमा, अंत**। उ.—तिन कीन्हौ सब जग विस्तार। जाकौ नाहीं पारावार—४-९। (३) **समुद्र, सागर**।

पारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पार] (१) **हद, सीमा**। उ.—मानो बंदि इंदु मंडल में रूप सुधा की पारि—१६८४। (२) **ओर, दिशा**। (३) **जलाशय का तट**।

क्रि. स. [हिं. पारना] (१) **(उत्पात या शोर) करके**। उ.—सोर पारि हरि सुबलहिं धाए, गह्यौ श्रीदामा जाहि—१०-२४०। (२) **(माँग, चोटी)**

सँवारकर। उ.—(क) माँग पारि बेनी जु सँवारति गूँथी सुंदर भाँति—७०४। (ख) मुँडली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि—३०२६। (३) **बंधन में डालकर, बाँधकर**। उ.—तिनकी यह करि गए पलक में पारि बिरह दुख बेरी—२७१६।

पारिख—संज्ञा स्त्री. [हिं. परख] **जाँच, परीक्षा**।

पारिजात, पारिजातक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **देव-वृक्ष जो समुद्र-मंथन से निकला था और अब नंदनकानन में है**। (२) **हरसिंगार**। (३) **कचनार, कोविदार**।

पारित—वि. [सं.] (१) **जिसका पारण हो चुका हो**। (२) **जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका हो**।

पारितोषिक—वि. [सं.] **प्रीति या आनंदकर**।

संज्ञा पुं.—**पुरस्कार, इनाम**।

पारिभाषिक—वि. [सं.] **विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त**।

पारिश्रमिक—संज्ञा पुं. [सं.] **परिश्रम के बदले (लेखक या कार्यकर्ता को) दिया जानेवाला धन**।

पारिषद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सभासद**। (२) **गण**।

पारी—क्रि. स. [हिं. पालना] **पालन की, पूरी की, निभा दी**। उ.—जन प्रहलाद प्रतिज्ञा पारी। हिरनकसिपु की देह बिदारी—१-२८।

क्रि. स. [हिं. पारना] **(माँग) सँवारी या निकाली, (बाल काढ़कर माँग) बनाई**। उ.—बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी। किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी—७०८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बारी] **बारी, ओसरी**।

पारे—वि. [हिं. पारना] (१) **सजाये या काढ़े हुए**। उ.—वे मोरे सिर पटिया पारैं कंथा काहि उढ़ाऊँ—३४६६।

क्रि. स.— **उठाये, मिलाये, गिराये**। उ.—मानहु रति रस भए रँगमगे करत केलि पिय पलक न पारे—३१३२।

पारेउ—क्रि. स. [हिं. पारना] **गिराया, खोया**। उ.—बिकल मान खोयौ कौरव पति, पारेउ सिर कौ ताज —१-२५५।

पारौं—क्रि. स. [हिं. पारना] **गिराऊँ, गिरने को प्रवृत्त करूँ, डालूँ**। उ.—कहौ तौ ताकौं तृन गहाइ कैं, जीवित पाइनि पारौं—६-१०८।

क्रि. स. [हिं. पारना] **पूरी करूँ, पालन करूँ, निभाऊँ**। उ.—रघुपति, जौ न इंद्रजित मारौं। तौ न होउँ चरननि कौ चेरौ, जौ न प्रतिज्ञा पारौं—६-१३७।

पार्‍यौ—क्रि. स. [हिं पारना] (१) **गिराया, नष्ट किया**। उ.—द्रुपद-सुता की राखी लाज। कौरवपति कौ पार्‍यौ ताज—१-२४५। (२) **(शब्द) निकाला, (शोर) किया**। उ.—मरत असुर चिकार पार्‍यौ—४२७।

पार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पृथ्वीपति**। (२) **अर्जुन**।

पार्थक्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पृथकता, भेद**। **वियोग**।

पार्थव—संज्ञा पुं. [सं.] **स्थूलता, भारीपन**।

पार्थिव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पृथ्वी-संबंधी**। (२) **पृथ्वी या मिट्टी से उत्पन्न**। (३) **राजसी**।

पार्वती—संज्ञा स्त्री. [सं.] **हिमालय-पुत्री जो शिव की अर्द्धांगिनी देवी है, गौरी, शिवा, भवानी**।

पार्श्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बगल**। (२) **पसली**। (३) **अगल-बगल की जगह**। (४) **कुटिल उपाय**।

पार्श्वनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] **जैनियों के तेइसवें तीर्थंकर**।

पार्षद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सेवक, अनुचर**। उ.—अजामिल द्विज सौं अपराधी, अंतकाल बिडरै। सुत-सुमिरत नारायन-बानी, पार्षद धाइ परैं—१-८२। (२) **मंत्री**।

पाल—संज्ञा पुं. [सं.] **पालनकर्ता, पालक**। उ.—मन बिहँसत गोपाल, भक्त-पाल, दुष्ट-साल, जानै को सूरदास चरित कान्ह केरौ—१०-२७६।

संज्ञा—पुं. [हिं. पालना] **फलों को पकाने के लिए भूसे-पत्ते आदि में रखना**।

संज्ञा पु.—[सं. पट या पाट] (१) **मस्तूल से लगा लंबा चौड़ा परदा जिसमें हवा भरने से नाव चलती है**। (२) **तंबू, चँदोवा**। (३) **गाड़ी,पालकी आदि का ओहार**।

संज्ञा स्त्री. [सं. पालि] (१) **बाँध, मेड़**। (२) **ऊँचा किनारा**।

पालउ—संज्ञा पुं. [सं. पल्लव] **पल्लव, कोंपल**।

पालक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पालनकर्त्ता**। (२) **निर्वाह करने वाला**। उ.—तुम हो बड़े रोग के पालक संग लिए कुबिजा सी—३१३३।

संज्ञा पु.—एक तरह का साग। उ.—सरसों मेथी सोवा पालक—३९६।

पालकी—संज्ञा स्त्री. [सं. पल्यंक] बढ़िया 'डोली' की सवारी।

पालत—क्रि. स. [हिं. पालना] पालता है, पालन-पोषण करता है। उ.—पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत, अंड अनेक अवधि पल आधे—६-५८।

पालतू—वि. [हिं. पालना] पाला पोसा हुआ।

पालथी—संज्ञा स्त्री. [सं. पर्य्यस्त] बैठने की एक रीति।

पालन—संज्ञा पु. [सं.] (१) भरण-पोषण। (२) निर्वाह।

पालनहारैं—वि. [सं. पालन+हारैं (प्रत्य.)] पालनेवाले। उ.—सूर स्याम के पालनहारैं, आवति हौं नित गारि—१-१५०।

पालना—क्रि. स.[सं. पालन] (१) भरण-पोषण करना। (२) पशु पक्षी को खिलाना-पिलाना और हिलाना। (३) भंग न करना, न टालना।

संज्ञा पुं. [सं. पल्यंक] बच्चों का झूला, हिंडोला।

पालनैं—संज्ञा पुं. सवि [हिं. पालना] हिंडोले में। उ.—जसोदा हरि पालनैं झुलावै—१०-४२।

पालीं—वि. पुं. [हिं. पालना] जिन्हें पाला हो, पाली हुई। उ.—आई बेगि सूर के प्रभु पै, ते क्यौं भजैं जे पालीं—६१३।

पाली—क्रि. स. [हिं. पालना] पालन की, निर्वाह की, निभायी। उ.—जन प्रहलाद प्रतिज्ञा पाली, कियौ बिभीषन राजा भारी—१-३४।

संज्ञा स्त्री. [सं. पालि] बरतन का ढक्कन।

संज्ञा स्त्री.—एक प्रसिद्ध प्राचीन भाषा।

पालू—वि. [हिं. पालना] पाला हुआ, पालतू।

पालै—क्रि. स. [हिं. पालना] पालन करे। उ.—दया धर्म पालै जो कोइ—पृ. ६०० (२)।

पालो, पालौ—संज्ञा पुं. [सं. पल्लव] पत्ता, कोंपल।

पावँ—संज्ञा पुं. [सं. पाद, प्रा. पाय, पाव हिं.पाँव] पैर, पग।

मुहा०—पावँ अड़ाना—व्यर्थ ही बीच में पड़ना या दखल देना। पावँ उखड़ (उठ) जाना—सामने रुकने, ठहरने या लड़ने का साहस न रहना। पावँ काँपना—(१) भय, निर्बलता आदि से पैर काँपना। (२) ठहरने या आगे बढ़ने का साहस न रहना। पावँ की जूती—अत्यंत तुच्छ। पावँ की जूती सिर को लगाना—छोटे आदमी को बहुत महत्व दे देना। पावँ की बेड़ी—झंझट, जंजाल। पावँ को मेंहदी न छिसना (छूटना)—कहीं जाने में ज्यादा कष्ट या परेशानी नहीं होगी। पावँ खींचना—घूमना फिरना छोड़ देना। पावँ गाड़ना—(१) डटकर खड़े रहना या सामना करना। (२) दृढ़ रहना। पावँ जमना (टकना)—दृढ़ता से रहना। पावँ जमाना—(१) डटकर खड़े रहना या सामना करना। (२) दृढ़ रहना। (३) रहने-बसने का मजबूत प्रबंध कर लेना। पावँ टिकाना—(१) खड़ा होना। (२) विश्राम करना। पावँ ठहरना—(१) पैर जमना। (२) स्थिरता होना। पावँ डगमागना—(१) पैर स्थिर न रहना। (२) विचलित हो जाना। पावँ डालना—काम करने को तैयार होना। पावँ तले की चीटी—अत्यंत दीन-हीन प्राणी। पावँ तले की धरती सरकना—ऐसा दुख होना कि पृथ्वी भी काँप जाय। पावँ तले की मिट्टी निकल जाना—ऐसी अनहोनी या भयंकर बात कि सुनकर सन्नाटे में आ जाना। पावँ तोड़ना—बहुत चलकर पैर थकाना। पावँ तोड़कर बैठना—(१) अचल या स्थिर होना। (२) थक-हारकर बैठ जाना। पावँ थरथराना—(१) भय, आशंका आदि से पैर काँपना। (२) आगे बढ़ने का साहस न होना। पावँ दबाना (दाबना)—(१) थकावट दूर करने को पैर दबाना। (२) सेवा करना। पावँ धरना—कहीं जाना। काम में पावँ धरना—काम में लगना। (किसी का) पावँ धरना—(१) पैर छूकर प्रणाम करना। (२) दीनता दिखाना। (३) तेजी दिखाना, तर्क से निरुत्तर करना। पावँ धरना—कहीं जाना। बुरे पथ पर पाँव धरना—बुरे कामों में रुचि लेना। पावँ धोकर पीना—बड़ा आदर-भाव दिखाना। पावँ निकलना—(१) आजादी से घूमना-फिरना। (२) दुराचार के कारण बदनामी होना। पावँ निकालना—(१) इतराकर चलना, हैसियत से बाहर काम करना। (२) स्वेच्छाचारी होना। (३) दुराचरण करना। (४) चालाकी दिखाना। (काम से) पावँ निकालना—काम के झगड़े

से अलग हो जाना। पावँ पकड़ना—(१) जाने से रुकने की प्रार्थना करना। (२) बड़ी दीनता दिखाना। (३) बड़े भक्ति-भाव से नमस्कार करना। पावँ पकरना—विनयपूर्वक यात्रा से रोकना। पावँ पकरि—बड़ी विनय या नम्रता दिखाकर। उ.—जानति जो न स्याम ऐहैं पुनि पावँ पकरि घर राखती। पावँ पकरति—बड़ी दीनता या विनयपूर्वक प्रार्थना करती हूँ। उ.—अब यह बात कहौ जनि ऊधो, पकरति पावँ तिहारे। पावँ पखारना—पैर धोना। पावँ पड़ना—(पैर पर गिरना) (१) भक्ति-भाव से प्रणाम करना। (२) दीनता दिखाना। (३) जाने से रुकने को नम्रतापूर्वक कहना। पाँव पर पावँ रखकर बैठना (सेना)—(१) काम-धंधा छोड़ बैठना। (२) बेफिक्र या गाफिल रहना। (किसी के) पावँ पर पावँ रखना—किसी का अनुकरण करना। (किसी के) पावँ पर सिर रखना—(१) भक्ति-भाव से प्रणाम करना। (२) दीनता दिखाना। (३) जाने से रुकने को नम्रतापूर्वक कहना। पावँ पलोटना—सेवा करना। पाँव पसारना—(१) आराम से सोना। (२) मरना। (३) ठाट-बाट करना। पावँ-पावँ (चलना)—पैदल चलना। पावँ पीटना—(१) तड़पना, छटपटाना। (२) रोग या मृत्यु का कष्ट भोगना। (३) परेशान या हैरान होना। पावँ पूजना—(१) बड़ा आदर-सत्कार करना। (२) कन्यादान में योग देना। (३) खुशामद से पनाह माँगना। पावँ फिसलना—कुसंगत में पड़ना। पावँ फूँक-फूँककर रखना—बहुत बचा-बचाकर या सावधानी से चलना। पावँ फूलना—(१) पैर आगे न उठना। (२) थकावट से पैर दुखना। पावँ फेरने जाना—(१) विवाह के पश्चात् वधू का पहले पहल ससुराल जाना। (२) बच्चा होने के पश्चात् वधू का अपने माता-पिता या बड़े संबंधियों के यहाँ जाना। पावँ फैलाना—(१) अधिक की प्राप्ति के लिए लोभ दिखाना। (२) बच्चों की तरह मचलना। पावँ बढ़ाना—(१) जल्दी जल्दी चलना। (२) अधिकार बढ़ाना। पावँ बाहर निकलना—बदनामी फैलना। पावँ बाहर निकालना—(१) इतराकर चलना। (२) स्वेच्छाचारी होना। पावँ बिचलना (१) पैर रपट जाना। (२) स्थिर या दृढ़ न रहना। (३) नीयत डोल जाना। (४) कुसंगति में पड़ जाना। पावँ भर जाना—चलने की बहुत थकावट होना। पावँ भारी होना—गर्भ रहना। (किसी से) पावँ भी न धुलवाना (दबवाना)—(किसी को) बहुत ही तुच्छ समझना। पावँ में क्या मेंहदी लगी है—कहीं आने-जाने का आलस्य दिखाना (व्यंग्य)। पावँ में बेड़ी पड़ना—(गृहस्थी के) बंधन या जंजाल में पड़ना। पावँ में सिर देना—(१) प्रणाम करना। (२) दीनता दिखाना। (३) पनाह माँगना। पावँ रगड़ना—(१) छटपटाना। (२) दौड़-धूप करना। पावँ रह जाना—(१) चलने या दौड़ने-धूपने से पैरों में बहुत ही थकावट होना। (२) पैर अशक्त हो जाना। पावँ रोपना—प्रतिज्ञा करना। पावँ लगना—(१) पैर छूकर प्रणाम करना। (२) आदर करना। (३) विनती करना। पावँ लगा होना—खूब घूमा-फिरा और परिचित (स्थान) होना। पावँ समेटना सिकोड़ना, सुकेड़ना—(१) पैर ज्यादा न फैलाना। (२) लगाव या संबंध न रखना। (३) इधर-उधर न घूमना। पावँ से पावँ बाँधकर रखना—(१) बराबर अपने पास रखना। (२) पूरी चौकसी या निगरानी रखना। पावँ न होना—दृढ़ता या साहस न होना। धरती पर पावँ न रखना (रहना)—(१) बहुत घमंड होना। (२) अत्यानंद से फूले अंग न समाना।

पावँड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. पावँ+ड़ा.] पैरपुछना, पायंदाज।

पावँड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पावँ+ड़ी] (१) खड़ाऊँ। (२) जूता।

पावँर—वि. [सं. पामर] (१) दुष्ट, नीच। (२) मूर्ख। उ.—पाखँड धर्म करत हैं पावँर।

संज्ञा पुं. [हिं. पावँड़ा] पायंदाज।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पावँड़ी] (१) खड़ाऊँ। (२) जूता।

पावँरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पावँड़ी] (१) खड़ाऊँ। (२) जूता।

पावँ—संज्ञा पुं. [सं. पाद] (१) चौथाई भाग। (२) एक सेर का चौथाई भाग।

क्रि. स. [हिं. पाना] **पाते हैं**। उ.—जाकौ सिव-बिरंचि सनकादिक मुनिजन ध्यान न पावत—१०-७५।

पावक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अग्नि**। (२) **सदाचार**।

वि.—**पवित्र करनेवाला**।

पावत—क्रि. स. [हिं. पाना] **पाते हैं**। उ.—जन्मथान जिय जानि कै ताते सुख पावत—२५६०।

पावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं.पाना] **पाती है**। उ.—ढूँढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौं, कितहूँ भेद न पावति४-५६।

पावती—क्रि. स. स्त्री. [हिं. पाना] **पाती, पा सकती**।

प्र.—छबि पावती—**शोभा देखती**। उ.—स्यामा छबीली भावती, गौर स्याम छबि पावती—२०६५। जान पावती—(१) **जा सकती**। उ.—जौ हौं कैसेहु जान पावती तौं कत आवत छोड़ी—२७०१। (२) **समझ पाती**।

पावन—वि. [सं.] (१) **शुद्ध या पवित्र करनेवाला**। उ.—जौ तुम पतितनि के पावन हौ, हौं हूँ पतित न छोटौ—१-१७६। (२) **शुद्ध, पवित्र**।

संज्ञा पुं.—(१) **अग्नि, आग**। (२) **शुद्धि, प्रायश्चित**। (३) **जल**। (४) **गोबर**। (५) **चंदन**। (६) **विष्णु**।

पावनता, पावनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. पावनता] **पवित्रता**।

पावनध्वनि—संज्ञा पुं. [सं.] **शंख**।

पावना—क्रि. स. [हिं. पाना] (१) **पाना, प्राप्त करना**। (२) **जानना-समझना, अनुभव करना**। (३) **भोजन करना**।

पावनी—वि. स्त्री. [सं.] **पवित्र करनेवाली**।

संज्ञा स्त्री.—(१) **तुलसी**। (२) **गाय** (३) **गंगा**।

पावनी—वि. [हिं. पावना] **पानेवाला**।

संज्ञा पुं.—**पाने की क्रिया या भाव**।

पावस—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रावृष, प्रा. पाउस] **वर्षाकाल, बरसात, सावन-भादों के महीने**। उ.—चतुरानन बल सँभारि मेघनाद आयौ। मानौ घन पावस मैं नगपति है छायौ—९-९६।

पावहिंगे—क्रि. स. [हिं. पाना] **पायेंगे, प्राप्त करेंगे**। उ.—निरखि-निरखि वह मदन मनोहर नैन बहुत सुख पावहिंगे—२८८६।

पावा—संज्ञा पुं. [हिं. पावँ] **पलँग आदि का पाया**।

पावै—क्रि. स. [हिं. पावना] (१) **प्राप्त करता है**। (२) **फल भोगता है**। (३) **अनुभव करता है**। उ.—मन बानी कौं अगम अगोचर सो जानै जो पावै—१-२। (४) **जान या समझ सकता है**। उ.—तुम बिनु और न कोउ कृपा निधि पावै पीर पराई—१-१९५।

(५) **जानना, समझना**।

पाश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **फंदा, फाँस**। (२) **पशु-पक्षी को फँसाने का जाल**। (३) **बंधन**।

पाशक—संज्ञा पुं. [सं.] **जुए का एक खेल**।

पाशधर—संज्ञा पुं. [सं.] **वरुण जिनका अस्त्र पाश है**।

पाशव, पाशविक—वि. [सं.] (१) **पशु-संबंधी**। (२) **पशु-जैसा**। (३) **अत्यंत निर्दय और कठोर**।

पाशिक—वि. [सं.] **जाल में फँसानेवाला**।

पाशित—वि. [सं.] **जाल में फँसा हुआ, पाशबद्ध**।

पाशी—वि. [सं.] **पाश धारण करनेवाला**।

पाशुपतास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] **शिव का शूलास्त्र जिससे अर्जुन ने जयद्रथ को मारा था**।

पाश्चात्य—वि. [सं.] (१) **पिछला**। (२) **पश्चिम का**।

पाषंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वेद विरुद्ध आचरण करने वाला**। (२) **आडंबर, ढोंग**। (३) **ढोंगी या कपटी मनुष्य**। (४) **संप्रदाय**।

पाषंडी—वि. [सं. पाषंडिन्] **ढोंगी, धूर्त, ठग, आडम्बरी**।

पाषाण—संज्ञा पुं. [सं.] **पत्थर, प्रस्तर**।

पाषाणी—वि. [सं.] **कठोर हृदयवाली**।

पासंग—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **तराजू के पलड़े बराबर करने के लिए रखी जानेवाली वस्तु, पसंघा**।

मुहा.—पासंग (बराबर) भी न होना—**तुलना या मुकाबले में जरा भी न ठहरना, बहुत ही कम होना**।

(२) **तराजू की डंडी का किसी ओर झुकना**।

पासंगहु—संज्ञा पुं. [फ़ा. पासंग+हिं. हु (प्रत्य.)] **पसंघा भी, पसंघे के बराबर भी**।

मुहा.—पासंगहु नाहीं—**बहुत ही तुच्छ हैं, कुछ भी नहीं हैं, नगण्य हैं**। उ.—पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारौ। बड़े पतित पासंगहु नाहीं, अजमिल कौन बिचारौ—१-१३१।

पास—संज्ञा पुं. [सं. पार्श्व] (१) **बगल, ओर, तरफ।** (२) **सामीप्य, निकटता।**

यौ०—पास-परोसनि—**पास-पड़ोस में रहनेवाली स्त्रियाँ।** उ.—हरषीं पास-परोसिनैं (हो), हरष नगर के लोग—१०४०।

(३) **अधिकार, रक्षा, पल्ला।**

अव्य०—(१) **बगल में, निकट, समीप।** उ.—हम अजन वत डरत हैं, कान्ह हमारैं पास—४३१। (२) **निकट जाकर, संबोधन करके, किसी के प्रति।** उ.—माँगत है प्रभु पास दास यह बार बार कर जोरी। (३) **अधिकार में, रक्षा में, पल्ले।** उ. —ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताके पास—१-७०।

संज्ञा पुं.—[सं. पाश]—**पाश, फंदा।** उ.—बरुन-पास तैं व्रजपतिहिं छन माहिं छुड़ावै—१-४।

पासना—क्रि. अ. [हिं. पय] **थन में दूध उतरना।**

पासनी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्राशन] **अन्नप्राशन, बच्चे को पहले पहल अनाज चटाने की रीति।** उ.—कान्ह कुँवर की करहु पासनी कछु दिन घटि षट मास गए—१०-८८।

पासमान—संज्ञा पुं. [हिं पास+मान] (१) **पास ही में बना रहनेवाला, निकट रहनेवाला।** (२) **मंत्री।** (३) **सखा।**

पासा—संज्ञा पुं. [सं. पाशक, प्रा. पासा] (१) **चौसर खेलने के टुकड़े जिन्हें खिलाड़ी बारी-बारी फेंकते हैं।** उ.—छल कियौ पांडवनि कौरव कपट पासा ढरन—१-२०२।

मुहा०—पासा पड़ना—(१) **जीत का दाँव पड़ना।** (२) **भाग्य अनुकूल होना।** पासा पलटना—(१) **खेल में हारना।** (२) **भाग्य प्रतिकूल होना।** (३) **प्रयत्न करने पर भी उलटा फल होना।** पासा फेंकना—**भाग्य की परीक्षा करना।**

(२) **पासे का खेल, चौसर।** (३) **चौकोर टुकड़े।** उ.—महल-महल लागे मनि पासा—२६४३।

अव्य. [हिं. पास] (१) **निकट, समीप।** उ.—(क) अतहिं ए ग्वाल हैं, भोजन नवनीति के जानि तिन्हैं लीन्हें जात दनुज पासा—२५५२। (ख) आतुर गयो कुवलिया पासा—२६४३। (२) **अधिकार या कब्जे में।** उ. कोटि दनुज मो सरि मो पासा—२४५६।

पासासार, पासासारि—संज्ञा पुं. [हिं. पासा+सारि=गोटी] (१) **पासे का खेल।** (२) **पासे की गोटी।**

पासिक—संज्ञा पुं. [सं. पाश] **फंदा, जाल, बंधन।**

पासि, पासिका—संज्ञा स्त्री. [सं. पाश] **फंदा, जाल, बंधन।** उ.—(क) मोहन के मन बाँधिबे को मनो पूरी पासि मनोज—२०६४।

पासी—संज्ञा स्त्री. [सं. पाशी] (१) **फंदा डालकर फँसाने वाला।** (२) **एक नीची जाति।**

संज्ञा स्त्री. [सं पाश] **फंदा, बंधन।** उ.—सूरदास प्रभु दृढ़ करि बाँधे प्रेम-पुंजिका पासी—३०८६।

पासुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पसली] **पसली।**

पाहँ—अव्य. [सं. पार्श्व, प्रा. पास, पाह] (१) **निकट, समीप, पास।** (२) **किसी के प्रति, किसी को संबोधन करके।**

पाहन—संज्ञा पुं. [सं. पाषाण, प्रा. पाहाण] **पत्थर, प्रस्तर।** उ.—पाहन बीच कमल बिकसावै, जल में अगिनि जरै—१-१०५।

पाहरू—संज्ञा पुं. [हिं. पहरा] **पहरा देनेवाला।**

पाहा—संज्ञा पुं. [सं. पथ] **खेत की मेड़।**

पाहाँ, पाहिं—अव्य. [सं. पार्श्व, प्रा. पास, पाह] (१) **निकट, समीप।** (२) **किसी के प्रति, किसी को संबोधन करके।** (३) **(किस) से।** उ.—हमहिं छाप देखावहु दान चहत केहि पाहिं—११०६।

पाहि—पद [सं.] **बचाओ, रक्षा करो।**

पाहीं—अव्य. [हिं. पाहिं] (१) **समीप।** (२) **किसी के प्रति।**

पाहुँच—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहुँच] **पैठ, प्रवेश, पहुँच।**

पाहुन, पाहुना—संज्ञा, पुं. [सं. प्राघूर्ण] **अतिथि।**

पाहुनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पाहुना] **स्त्री अतिथि, अभ्यागत स्त्री।** उ.—पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ। हौं लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति बिनय कह्यौ—१०-१८२।

पाहुने—संज्ञा पुं. [हिं. पाहुना] **अतिथि, मेहमान, अभ्यागत।** उ.—(क) जा दिन संत पाहुने आवत—२-१७। (ख) सुंदर स्याम पाहुने के मिसि मिल न जाहु दिन चार—२७६६।

पाहुर—संज्ञा पुं. [सं. प्राभृत, प्रा. पाहुड़ = भेंट] भेंट, सौगात।

पाहैं— अव्य. [हिं पाहँ] (१) पास, निकट। (२) किसके प्रति। उ.—सूरदास प्रभु दूरि सिधारे दुख कहिए केहि पाहैं—२८०१।

पिंग, पिंगल—वि. [सं.] (१) पीला। (२) भूरापन लिये लाल। (३) भूरापन लिये पीला।

पिंगल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन आचार्य जिन्होंने छंद-शास्त्र रचा था। (२) उक्त आचार्य का बनाया छंदशास्त्र। (३) छंदशास्त्र।

पिंगला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हठयोग की तीन प्रधान नाड़ियों में एक। उ.—इंगला, पिंगला, सुषमना नारी—३३०८। (२) एक वेश्या जिसे वियोग में तड़पते तड़पते ज्ञान हुआ कि निकट के कांत को छोड़कर दूर के कांत के लिए भटकना अज्ञान है। उ.—सूरदास बरु भली पिंगला आशा तजि परतीति—२७३०।

पिंजड़ा, पिंजर, पिंजरा—संज्ञा पुं. [सं. पंजर] लोहे, बांस आदि की तीलियों से बना झाबा जिसमें पक्षियों को रखा जाता है। उ.—कंस के प्रान भयभीत पिंजरा जैसे नव विहंगम तैसे मरत फरफराने—२५६६।

पिंजर—संज्ञा पुं. [सं. पंजर] (१) पिंजड़ा। (२) शरीर की हड्डियों की ठठरी।

पिंजरन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. पिंजर] पिंजड़ों में। उ.—ज्यों उड़ि मेलि बधिक खग छिन में पलक पिंजरन तोरि—पृ. ३३३ (२०)।

पिंजरापोल—संज्ञा पुं. [हिं. पिंजरा+पोल] गोशाला।

पिंजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिंजड़ा] छोटा पिंजड़ा। उ.—बज्र पिंजरी रूँधि मानों राखे निकसन का अकुलात—२७०३।

पिंजरैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. पिंजरा, पिंजड़ा] पिंजड़े में। उ.—कीर पिंजरैं गहत अँगुरी, ललन लेत भँगाइ—४६८।

पिंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गोल-मटोल टुकड़ा, पिंडा, ढेर। उ.—दुहूँ करनि असुर हयौ, भयो मांस पिंड-६-६६। (२) लोंदा, लुगदा। उ.—माखन पिंड बिभागि दुहूँ कर, मेलत मुख मुसुकाइ—१०-१७६। (३) खीर का लोंदा जो श्राद्ध में पितरों को अर्पित किया जाता है। (४) भोजन, आहार। (५) शरीर, देह। उ.—अपनौ पिंड पोषिबे कारन, कोटि सहस जिय मारे—१-३३४।

मुहा.—पिंड छोड़ना—तंग न करना। पिंड पड़ना—तंग करना।

पिंडखजूर—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंडखर्जुर] खजूर।

पिंडज—संज्ञा पुं. [सं.] वह जीव जो गर्भ से बने-बनाये शरीर के रूप में जन्मे।

पिंडदान—संज्ञा पुं. [सं.] पितरों को पिंड देना।

पिंडली, पिंडरी—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंड, हिं. पिंडली] घुटने के कुछ नीचे का पिछला मांसल भाग।

पिंडवाही—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का कपड़ा।

पिंडा—संज्ञा पुं. [सं. पिंड] (१) गोल-मटोल टुकड़ा, ढेर। (२) लोंदा, लुगदा। (३) खीर का लोंदा जो श्राद्ध में पितरों को अर्पित किया जाता है। (४) शरीर, देह।

पिंडारू, पिंडालू—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिंड+हिं. आलू] एक प्रकार का मीठा सकरकंद। उ.—बनकौरा पिंडीक चिचिंडी। सीप पिंडारू कोमल भिंडी—३६६।

पिंडिया, पिंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंड] छोटा लंबा पिंड।

पिंडीक—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंडिका] इमली, श्वेतांलिका।

पिंडशूर—संज्ञा पुं.—[सं.] डींग हांकने वाला।

पिंडुरी, पिंडुरिया पिंडुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिंडली] पिंडली। उ.—पीन पिंडुरिया साँवल सीरी चरणांबुज नख लाल री—पृ. ४२०।

पिअ—वि. [सं. प्रिय] प्यारा, प्रिय।

संज्ञा पुं.—(१) प्रेमी। (२) प्रियतम, पति।

पिअर, पिअरवा—वि. [हिं. पीला] पीला।

पिअरवा—वि. [हिं. प्रिय] प्यारा, प्रिय।

संज्ञा पुं.—(१) प्यारा। (२) प्रियतम, पति।

पिअराई—संज्ञा स्त्री. [सं. पीत] पीलापन।

पिअरिया, पिअरी—वि. [हिं. पीला] पीली।

संज्ञा स्त्री.—हल्दी के रंग में रँगी पीली धोती।

पिआना—क्रि. स. [हिं. पिलाना] पान कराना।

पिआर—संज्ञा पुं. [हिं. प्यार] (१) प्रेम, प्रीति। (२) चुंबन।

पिआरा—वि. [हिं. प्यारा] प्रिय।

पिश्रावत—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पान कराते हैं।** उ.—आपुन पीवत सुधा रस सजनी बिरहिनि बोलि पिश्रावत—२८४५।

पिश्रावै—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पान करावे।** उ.—जेहि मुख अमृत पिउ रसना भरि तेहि क्यों बिषहिं पिश्रावै—३०६८।

पिश्रास—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्यास] **पीने की इच्छा, प्यास।**

पिश्रासा—वि. [हिं. प्यासा] **जिसे पीने की इच्छा हो, प्यासा।**

पिउ—संज्ञा पुं. [सं. प्रिय] (१) **प्रेमी।** (२) **पति।**

पिएउ—क्रि. स. [हिं. पीना] **पी थी, पान किया था।** उ.—आई छाक अबार भई है, नैंसुक धैया पिएउ सबेरे—४६३।

पिक—संज्ञा पुं. [सं.] **कोयल।**

पिकानंद—संज्ञा पुं. [सं.] **वसंत ऋतु।**

पिकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **कोयल।**

पिघलना—क्रि. अ. [सं. प्र+गलन] (१) **घन पदार्थ का गर्मी से द्रवित होना।** (२) **दया उपजना।**

पिघलाना—क्रि. स. [हिं. पिघलना] (१) **घन पदार्थ को गर्मी से द्रवित करना।** (२) **दया उपजाना।**

पिचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिचकारी] **पिचकारी।**

पिचकना—क्रि. अ. [सं. पिच्च] **फूली-उभरी चीज का दबना।**

पिचकाना—क्रि. स. [हिं. पिचकना] **फूली-उभरी चीज को दबवाना।**

पिचकारी, पिचकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिचकना] **होली जैसे अवसरों पर पानी या रंग चलाने का यंत्र।** उ.—रवावा साखि जवाए कुमकुमा छिरकत भरि केसरि पिचकारी—२३६१।

मुहा०—पिचकारी छूटना (निकलना)—**तरल पदार्थ का वेग से निकलना।** पिचकारी छोड़ना—**तरल पदार्थ को वेग से निकालना।**

पिछड़ना—क्रि. अ. [हिं. पिछाड़ी+ना] **पीछे रह जाना, साथ या बराबर न रह पाना।**

पिछताना—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पश्चाताप करना।**

पिछताने—क्रि. अ. [हिं. पछताना] **पश्चाताप करने (से)।** उ.—मंद हीन अति भयो नंद अति होत कहा पिछताने छिन छिन—२६७०।

पिछलगा, पिछलगू, पिछलग्गू—वि. [हिं. पीछे+लगना] (१) **जो सदा साथ लगा रहे।** (२) **जो स्वतंत्र विचार न रखता हो।** (३) **आश्रित।** (४) **शिष्य।** (५) **सेवक।**

पिछलना—क्रि. अ. [हिं पीछा] **पीछे हटना या मुड़ना।**

पिछला—वि. [हिं. पीछा] (१) **पीछे की ओर का।** (२) **बाद वाला, बाद का।** (३) **अंत की ओर का।** (४) **बीता हुआ, पुराना।** (५) **भूतकालीन।**

पिछवाड़ा, पिछवारा—संज्ञा पुं. [हिं पीछा + वाड़ा (प्रत्य.)] **पीछे की ओर का स्थान।**

पिछवार—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. पिछवाड़ा] **पीछे की ओर, मकान आदि के पीछे की दिशा में।** उ.—देखि फिरे हरि ग्वाल दुवारैं। तब इक बुद्धि रची अपनैं मन, गए नाँघि पिछवारैं—१०-२७७।

पिछाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं पीछा] (१) **पिछला भाग।** (२) **पिछले पैर।**

पिछान—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहचान] **जान-पहचान।**

पिछानना—क्रि. स. [हिं. पहचानना] **पहचान करना।**

पिछानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पहचान, पहचानना] पहचान। लै पिछानि—**पहचान ले, जाँच ले, चीन्ह लें।** उ.—जसुमति धौं देखि आनि आगैं ह्वै लै पिछानि, बहियाँ गहि ल्याई, कुँवर और कौ कि तेरौ—१०-२७६।

पिछोरि, पिछोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिछौरा] **बच्चों की चादर।** उ.—मनमथ कोटि-कोटि गहि वारौं ओढ़े पीत पिछोरी—८८३।

पिछोर्यो—क्रि. स. [हिं. पछोड़ना] **फटक कर साफ की।**

मुहा०—फटकि पछोर्यो—**फटक छानकर खो दी।** उ.—नाच कछ्यौ अब घूँघट छोर्यौ, लोक-लाज सब फटकि पछोर्यौ—१२०१।

पिछौंड़—वि. [हिं. पीछे] **जिसका मुंह पीछे हो।**

पिछौंड़ा, पिछौता—क्रि. वि. [हिं. पीछे] **पीछे की ओर।**

पिछौहै—क्रि. वि. [हिं. पीछा] **पीछे की ओर से।**

पिछौरा—संज्ञा पुं. [सं. पक्षपट, प्रा. पच्छवड़, हिं. पछेवड़ा] **पुरुषों की चादर या दुपट्टा।**

पिछौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. पिछौरा] (१) स्त्रियों के ओढ़ने की चादर, ओढ़नी। (२) बच्चों के ओढ़ने की छोटी चादर या छोटा दुपट्टा। उ.—कटि-तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस—६-२०।

पिटंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीटना + अंत] पीटने की क्रिया।

पिटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पिटारा। (२) ग्रंथ का भाग।

पिटना—क्रि. अ. [हिं. पीटना] (१) मार खाना। (२) बजना।

पिट पिट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] 'पिट' 'पिट' शब्द।

पिटरिया, पिटरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिटारा] छोटा पिटारा, झाँपी। उ.—परतिय-रति अभिलाष निसादिन, मन पिटरी लै भरतौ—१-२०३।

पिटवाना—क्रि. स. [हिं. पीटना] (१) मार खिलवाना। (२) बजवाना। (३) पीटने या बजवाने का काम कराना।

पिटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीटना] (१) पीटने का काम, भाव या वेतन। (२) मार, चोट।

पिटारा—संज्ञा पुं. [सं. पिटक] बेंत आदि का झाबा।

पिटारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिटारा] छोटा पिटारा।

पिटारें—संज्ञा पुं. [हिं. पिटारा] पिटारे में। उ.—भवन भुजंग पिटारे पाल्यौ ज्यों जननी जिय तात—३१७१।

पिट्टस—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिटना] छाती पीट कर रोना।

मुहा.—पिट्टस पड़ना (मचना)—छाती पीट कर रोना।

पिट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीठी] पिसी हुई भीगी दाल।

पिट्ठू—संज्ञा पुं. [हिं. पठ्ठा] (१) पीछे लगा रहने वाला। (२) हिमायती।

पिठौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिट्ठी + औरी (प्रत्य)] पीठी की बनी हुई खाने की चीज, जैसे बरी, मुँगौरी। उ.—पापर बरी मिथौरि फुलौरी। कूर बरी काचरी पिठौरी—३६६।

पितंबर—संज्ञा पुं. [सं. पीतांबर] पीताम्बर। उ.—कटि पितंबर बेष नटवर, नृतत फनं प्रति डोल—५६३।

पितज्वर—संज्ञा पुं. [हिं. पित्त + ज्वर] पित्त बिगड़ने से होनेवाला ज्वर। उ.—सूर सो औषध हमहिं बतावत ज्यों पितज्वर पर गुर सी—३१६८।

पितर—संज्ञा पुं. [सं. पितृ] पितृ, पुरखे, मृत पूर्व पुरुष। उ.—तिहिं घर देव पितर काहे कौं जा घर कान्हर आयौ—१०-३४६।

पिता—संज्ञा पुं. [सं. पितृ] बाप, जनक।

पितामह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दादा, बाबा। (२) भीष्म।

पितु—संज्ञा पुं. [हिं. पिता] पिता, जनक।

पितृ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पिता। (२) मृतक पिता, दादा आदि।

पितृऋण—संज्ञा पुं. [सं.] तीन ऋणों में एक मुक्ति, जो पुत्र उत्पन्न करने पर ही होती है।

पितृकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] श्राद्ध, तर्पण आदि कर्म।

पितृकुल—संज्ञा पुं. [सं.] पिता के वंश के लोग।

पितृतिथि—संज्ञा स्त्री. [सं.] अमावस्या।

पितृत्व—संज्ञा पुं. [सं.] पिता होने का भाव।

पितृदाय—संज्ञा पुं. [सं.] पिता से प्राप्त धन-धाम।

पितृपक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] कुआर का कृष्णपक्ष।

पितृ लोक—संज्ञा पुं [सं.] चंद्रमा के ऊपर का एक लोक जहाँ पितरगण रहते हैं।

पितृव्य—संज्ञा पुं. [सं.] पिता के भ्राता, चाचा।

पित्त—संज्ञा पु. [सं.] शरीर के भीतर यकृत में बननेवाला एक तरल पदार्थ।

पित्ता—संज्ञा पुं. [सं. पित्त] (१) पित्ताशय।

मुहा०—पित्ता उबलना (खौलना)—बहुत क्रोध आना। पित्ता (पानी) मारना—बहुत परिश्रम करना। पित्ता मरना-गुस्सा न रहना। पित्ता मारना—(१) बिना ऊबे कठिन काम करना। (२) क्रोध दबाना। पित्तामार (पित्ते मारी का) काम—अरुचिकर और कठिन काम।

(२) साहस, हिम्मत्त, हौसला।

पित्ताशय—संज्ञा पुं. [सं.] पित्त की थैली।

पित्र्य—वि. [सं.] जिसका श्राद्ध हो सके।

पिधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिलाफ, आवरण। (२) ढकना। (३) तलवार की म्यान। (४) किवाड़।

पिधानक—संज्ञा पुं. [सं.] म्यान, कोष।

पिनकना—क्रि. अ. [हिं. पीनक] नशे में ऊँघना।

पिनाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शिवजी का धनुष जिसे श्रीरामचन्द्र जी ने तोड़ा था ।** (२) **कोई धनुष ।**

मुहा०—पिनाक होना—**काम का बहुत कठिन होना ।**

पिनाकी—संज्ञा पुं. [सं. पिनाकिन्] **शिव, महादेव ।**

पिन्नी—संज्ञा स्त्री [देश.] **एक तरह की मिठाई ।**

पिपासा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **प्यास ।** (२) **लोभ ।**

पिपासित—वि. [सं.] **प्यासा, तृषित ।**

पिपासु—वि. [सं.] (१) **प्यासा ।** (२) **लालची ।**

पिपीलक—संज्ञा पुं. [सं.] **चींटा ।**

पिपीलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **चींटी ।**

पिय—संज्ञा पुं.[सं. प्रिय] (१) **पति,स्वामी ।** (२) **पपीहे का 'पिउ' शब्द ।** उ.—सावन मास पपीहा बोलत पिय पिय करि जो पुकारै—२८१० ।

पियतौ—क्रि. स. [हिं. पीना] **पीता, पान करता ।** उ.—काहे कौं जसोदा मैया, त्रास्यौ तैं बारौ कन्हैया, मोहन हमारौ भैया केतो दधि पियतौ—३७३ ।

पियर—वि. [हिं. पीला] **पीला ।**

पियरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीला] **पीलापन ।**

पियरवा—संज्ञा पुं. [हिं प्यारा] **प्रिय, पति ।**

वि.—**प्रिय, प्यारा ।**

वि.—[हिं. पीला] **जो पीला हो ।**

पियराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पियर] **पीला ।**

पियराना—क्रि. अ. [हिं. पियर+आना] **पीला पड़ना ।**

पियरी—वि. स्त्री. [हिं. पियर] **पीली ।** उ.—पियरी पिछौरी झीनी—१०-१५१ ।

संज्ञा स्त्री.—(१) **पीली रँगी धोती ।** (२) **पीलापन ।** (३) **पीले रंग की गाय ।** उ.—पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी, जेती—४४५ ।

पियरो, पियरौ—वि. [हिं. पीला] **पीला, पीले रंग का ।** उ.—सेत, हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई—१-६३ ।

पियल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. पीना] **दूधपीता बच्चा ।**

पिया—संज्ञा पुं. [सं. प्रिय] **प्रिय, प्रियतम ।**

पियाई—क्रि. स. [हिं. पिआना, पिलाना] **पिलाया ।**

प्र.—दीन्हौ पियाई—**पिला दिया, पान करा दिया ।** उ.—असुर-दिसि चितै, मुसुक्याइ मोहे सकल, सुरनि कौं अमृत दीन्हौ पियाई—८-८ ।

पियादा—वि. [फा. प्यादा] (१) **जो पैदल चलता हो ।** उ.—गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे—१-२५ । (२) **जो नंगे पैर हो ।**

पियादे—वि. [हिं. प्यादा] **बिना जूता पहने, नंगे पैर ।** उ.—(क) गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे—१-२५ । (ख) वह घर-द्वार छाँड़ि के सुन्दरि, चली पियादे पाउँ—६-४४ ।

पियाना—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पान कराना ।**

पियार—संज्ञा पुं. [हिं. प्यार] (१) **चुंबन ।** (२) **प्रेम ।**

वि.—**प्रिय, प्यारा ।**

पियारा—वि. [हिं. प्यारा] **प्रिय प्यारा ।**

पियारी—वि. [हिं. प्यारा] (१) **प्रिय, रुचिकर ।** उ.—सुजुई, लपसी, सद्य जलेबी, सोइ जेंवहु जो लगै पियारी—१०-२२७, (२) **प्यारी लगनेवाली ।**

संज्ञा. स्त्री.—**प्रिय, प्रेयसी ।**

पियारे—वि. [हिं. प्यारा] **प्रिय, प्यारा, प्रेमपात्र ।** उ.—बंदौं चरन-सरोज तिहारे । सुंदर-स्याम कमल-दल लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान पियारे—१-६४ ।

पियारो, पियायौ—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पिलाया, पान कराया ।** उ.—नृपति-कुँवर कौं जहर पियायौ—६-५ ।

पियारौ—वि. [हिं. प्यारा] **प्रिय, प्रीतिपात्र, प्रेमपात्र ।** उ.—(क) बिदुर हमारौ प्रान-पियारौ, तू बिषया अधिकारी—१-२४४ । (ख) असुर होइ, भावै सुर होइ । जो हरि भजै पियारौ सोइ—७-२ ।

पियावत—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पान कराता है ।** उ.—आपुन पियत पियावत दुहि दुहि इन धेनुन के छीर—२६८६ ।

पियावति—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पिलाती है, पान कराती है ।** उ.—अंचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति—१०-११० ।

पियावै—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पिलावै, पीने को प्रेरित करे ।** उ.—अति सुकुमार डोलत रस-भीनौ, सो रस जाहि पियावै (हो)—२-१० ।

पियास—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्यास] **तृष्णा, प्यास ।**

पियासा, पियासौ—वि. [हिं. प्यासा] **जिसे प्यास लगी हो, तृषित, पिपासा युक्त।** उ.—परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै—१-१६८।

पियूख, पियूष—संज्ञा पुं. [सं. पियूष] **पीयूष।**

पियैए—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पिलाइए, पान कराइए।** उ.—सूरदास प्रभु तृषा बढ़ी अति दरसन सुधा पियैए—३२००।

पियौ—क्रि. स. [हिं. पीना] **पी लिया, पान किया।** उ.—मृतक भए सब सखा जिवाए, बिष-जल जाइ पियौ—१-३८।

पिरथी—संज्ञा स्त्री. [सं. पृथ्वी] **पृथ्वी।**

पिराइँ—क्रि. स. बहु. [हिं. पिराना] **दुखाते हैं।** उ.—सिगरे ग्वाल घिरावत मेसौं, मेरे पाइ पिराइँ—५१०।

पिराइ—क्रि. अ. [हिं. पिराना] **पीड़ित होती है, दुखती है।** उ.—धरयौ गिरिवर, दोहनी कर धरत बाहँ पिराइ—४६८।

पिराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पियराई] **पीलापन।**

पिराक—संज्ञा पुं. [सं. पिष्टक, प्रा. पिट्ठक, पिड्क] **एक पकवान, गोझा, गोझिया।** उ.—रचि पिराक लाड़ू दधि आनौं—१०-२११।

पिराति—क्रि. अ. [हिं. पिराना] **दुखती हैं, पीड़ित होती हैं।** उ.—अधिक पिराति सिराति न कबहूं अनेक जतन करि हारी—३०३६।

पिराना—क्रि. अ. [सं. पीडन] (१) **दुखना, दर्द करना।** (२) **(दूसरे का) दुख-दर्द समझना।**

पिरानी—क्रि. अ. [हिं. पिराना] **दुखीं, दर्द करने लगीं।** उ.—स्याम कह्यौ, नहिं भुजा पिरानी ग्वालनि कियौ सहैया—१०७१।

पिराने—क्रि. अ. [हिं. पिराना] **दुखने लगे, दर्द करने लगे।** उ.—धरनी धरत बनै नाहीं पग अतिहिं पिराने—पृ. ३५३ (८६)।

पिरानो, पिरानौ—क्रि. अ. [हिं. पिराना] **दुखने लगे।** उ.—मारत मारत सात के दोऊ हाथ पिराने—पृ. ४६५।

पिरायौ—क्रि. अ. [हिं. पिराना] **दुख दिया, दर्द कर दिया।** उ.—तुमहीं मिलि रसबाद बढ़ायौ। उरहन दै दै मूँड़ पिरायौ—३६१।

पिरारा—संज्ञा पुं. [हिं. पिंडारा] **एक साग।**

पिरीतम—संज्ञा पुं. [सं. प्रियतम] **पति, प्रियतम।**

पिरीता, पिरीते—वि. [सं. प्रिय] **प्रिय, प्यारा।**

पिरीती—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रीति] **प्रेम, प्रीति।**

पिरोइ—क्रि. स. [हिं. पिरोना] **गूँथकर, पिरोकर, पोहकर।** उ.—नील पाट पिरोइ मनिगन फनिग धोखें जाइ—१०-१७०।

पिरोजन—संज्ञा पुं. [हिं. पिरोना] **कनछेदन।**

पिरोजा—संज्ञा पुं. [फा. फीरोजा] **हरापन लिए हुए एक नीला पत्थर।** उ.—रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा-लाल—१०-८४।

पिरोना, पिरोहना—क्रि. स. [सं. प्रोत, प्रा. पोइअ, पोंअ +ना, हिं. पिरोना] (१) **गूँथना, पोहना।** (२) **सूत-आदि छेद के आर पार निकालना।**

पिरोयौ—क्रि. स. [हिं. पिरोना] **गूँथा, पोहा, पिरो लिया।** उ.—सूरदास कंचन अरु काँचहिं, एकहिं धगा पिरोयौ—१-४३।

पिलकना—क्रि. स. [सं. पिल] **गिराना, ढकेलना।**

पिलना—क्रि. अ. [सं. पिल] (१) **झुक या धँस पड़ना।** (२) **एक बारगी जुट जाना।** (३) **तेल निकालने के लिए पेरा जाना।**

पिलपिला—वि. [अनु.] **बहुत मुलायम या नरम।**

पिलपिलाना—क्रि. स. [हिं. पिलपिला] **बहुत मुलायम या नरम हो जाना।**

पिलाना—क्रि. स. [हिं. पीना] (१) **पान कराना** (२) **पीने को देना।** (३) **भीतर भरना या डालना।**

पिल्ला—संज्ञा पुं. [देश.] **कुत्ते का बच्चा।**

पिव—संज्ञा पुं. [सं. प्रिय] **प्रियतम, पति।**

पिवन—संज्ञा पुं. [हिं. पीना] (१) **पीने की क्रिया या भाव।** (२) **पिलाने की क्रिया या भाव।** उ.—देवकि उर-अवतार लेन कह्यौ, दूध पिवन तुम माँगि लियौ—१०-८५।

पिवाना—क्रि. अ. [हिं. पिलाना] **पान कराना।**

पिवायो, पिवायौ—क्रि. अ. [हिं. पिलाना] **पान कराया।**

पिवावन—संज्ञा पुं. [हिं. पिलाना] पिलाने के लिए। उ. बकी पिवावन इनहीं आई—२३६५।
पिशाच—संज्ञा पुं. [सं.] एक हीन देवयोनि।
पिशाचिनी, पिशाची—संज्ञा स्त्री. [सं. पिशाच] (१) पिशाच स्त्री। (२) निर्दयी स्त्री।
पिशुन, पिसुन—संज्ञा पुं. [सं. पिशुन] (१) चुगलखोर, दुष्ट, दुर्जन। उ.—सूरदास प्रभु बेगि मिलहु अब पिशुन करत सब हाँसी—३४८६। (२) निंदक। (३) नारद। (४) कौआ।
पिशुना, पिसुना—संज्ञा स्त्री. [सं. पिशुना] चुगलखोरी।
पिष्ट—वि. [सं.] पिसा या चूर्ण किया हुआ।
पिष्टपेषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पिसे हुए को फिर पीसना। (२) कही बात को फिर कहना या लिखना।
पिसना—क्रि. अ. [हिं. पीसना] (१) बहुत महीन चूर्ण होना (२) दब या कुचल जाना। (३) घोर कष्ट या दुख उठाना। (४) थकावट से चूर हो जाना।
पिसवाना—क्रि. स. [हिं. पीसना] पीसने का काम कराना।
पिसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीसना] (१) पीसने की क्रिया, भाव, धंधा या मजदूरी। (२) कड़ी मेहनत।
पिसाच—संज्ञा पुं. [सं. पिशाच] (१) एक हीन देवयोनि, भूत। (२) वह व्यक्ति जो क्रूर और नीच प्रकृति का हो। उ.—दुष्ट सभा पिसाच दुरजोधन, चाहत नगन करी—१-२५४।
पिसाचिनी, पिसाची—संज्ञा स्त्री. [सं. पिशाच] (१) पिशाच की स्त्री। (२) क्रूर प्रकृति की दुष्टा स्त्री।
पिसान—संज्ञा पुं. [हिं. पिसा + अन्न] आटा।
पिसुन—संज्ञा पुं. [सं. पिशुन] चुगलखोर।
पिसुनता, पिसनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. पिशुन] चुगलखोरी।
पिसौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीसना] (१) पीसने का काम या धंधा। (२) कठिन परिश्रम।
पिस्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा. पिस्तः] एक छोटा फल जिसकी गिनती अच्छे मेवों में है। उ.—पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाफा गूँझा मठरी—८१०।
पिहकना—क्रि. अ. [अनु.] पक्षियों का कलरव करना।
पिहान—संज्ञा पुं. [सं. पिधान] ढाँकने की वस्तु।
पिहित—वि. [सं.] छिपा हुआ।

संज्ञा पुं.—एक अर्थालंकार।
पींजना—क्रि. स. [सं. पिंजन] धुनना, रुई धुनना।
पींजर—संज्ञा पुं. [सं. पंजर] ठठरी, कंकाल
पींजर, पींजरा—संज्ञा पुं. [हिं. पिंजड़ा] लोहे या बाँस की तीलियों का झाबा जिसमें पक्षी पाले जाते हैं। उ.—मन सुवा तन पींजरा, तिहिं माँहिं राखै चेत—१-३११।
पींड—संज्ञा पुं. [सं. पिंड] (१) शरीर, देह। (२) वृक्ष का तना, पेड़ी। (३) गोला, पिंडी। (४) सिर या बालों का एक आभूषण। उ.—(क) शिखा की भाँति सिर पींड डोलत सुभग, चाप ते अधिक नव माल सोभा। (ख) पींड श्रीखंड सिर भेष नटवर कसे अंग इक छटा में ही भुलाई। (५) पिंड खजूर नामक फल। उ.—पींड बदाम लेत बनवारी।
पी.—क्रि. स. [हिं० पीना] पीकर, पान किया। उ.—मनौ कमल कौ पी पराग, अलि-सावक सोइ न जाग्यौ री—१०-१३६।
संज्ञा पुं. [सं. प्रिय] प्रियतम, पति। उ.—सूरदास ए जाइ लुभाने मृदु मुसकनि हरि पी की—पृ. ३३१ (६)
संज्ञा पुं. (अनु.) पपीहे की बोली।
पीक—संज्ञा स्त्री. [सं. पिच्च] चबाये हुए पान के बीड़े का रस। उ.—कबहुँक बैठि अंस भुज धरिकैं, पीक कपोलनि पागें—६८६।
पीकना—क्रि. अ. [अनु. पी+करना] पपीहे या कोयल का मधुर कंठ से बोलना, पिहिकना।
पीका—संज्ञा पुं. [देश] कोंपल, नया पत्ता।
मुहा.—पीका फूटना— कोंपल निकलना, पनपना।
पीछा—संज्ञा पुं. [सं. पश्चात्, प्रा. पच्छा] (१) किसी व्यक्ति या वस्तु का पिछला या पीठ की ओर का भाग।
मुहा०—पीछा दिखाना—(१) हारकर या डर कर भागना। (२)भरोसा देकर फिर हट जाना।
(२) बाद का समय। (३) पीछे चलने का भाव।
मुहा०—पीछा करना—(१) चुपचाप पीछे पीछे जाना। (२) तंग करना। पीछा छुड़ाना—तंग करने वाले व्यक्ति, वस्तु या कार्य से बचना। पीछा छूटना—अप्रिय व्यक्ति, वस्तु या कार्य से छुटकारा मिलना। पीछा छोड़ना—(१) सहारा छोड़ना। (२) तंग

करना बंद करना। पीछा पकड़ना—सहारा या आश्रय बनाना।

पीछू, पीछे—अव्य. [हिं. पीछा] (१) पीठ की तरफ।

मुहा०—पीछे चलना—अनुकरण या नकल करना। पीछे छूटना—चुपचाप किसी के साथ लगाया जाना। (धन आदि) पीछे डालना—भविष्य के लिए धन संचय करना। (काम के) पीछे पड़ना—काम कर डालने को जुटना। (व्यक्ति के पीछे पड़ना)—(१) बार बार घेर कर तंग करना। (२) हानि पहुँचाने का अवसर ताकना। (वस्तु के) पीछे पड़ना—(१) हर समय उसी की प्राप्ति की चिंता में लगे रहना। पीछे लगना—(१) साथ साथ घूमना। (२) रोगादि का घेर लेना। पीछे लगाना—(१) आश्रय या आसरा देना। (२) अप्रिय वस्तु से सम्बन्ध कर लेना।

(२) पीठ की ओर की दिशा में कुछ दूर पर। पीछे छूटना (पड़ना, होना)—गुण, योग्यता आदि में कम हो जाना, पिछड़ जाना। (किसी को) पीछे छोड़ना—किसी से गुण,योग्यता आदि में बढ़ जाना।

(३) पश्चात्, उपरांत। (४) अंत में। (५) अनुपस्थिति में। (६) मर जाने पर। (७) वास्ते, लिए, कारण। (८) बदौलत।

पीछौ—संज्ञा पुं. [हिं. पीछा] किसी प्राणी के पीछे चलने का भाव।

मुहा०—पीछौ लियौ—कोई काम निकलने की आशा से हर समय साथ लगे रहना। उ.—प्रभु, मैं पीछौ लियौ तुम्हारौ। तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ—१-२१८।

पीजै—क्रि. स. [हिं. पीना] पीजिए, पान कीजिए। उ.—लीला-गुन अमृत-रस स्रवननि पुट पीजै—१-७२।

पीटना—क्रि. स. [सं. पीडन] (१) चोट मारना। (२) चोट मारकर चौड़ा-चिपटा करना। (३) प्रहार या आघात करना। (४) किसी न किसी तरह समाप्त कर देना। (५) किसी न किसी तरह प्राप्त कर लेना।

संज्ञा पुं.—(१) मातम, मृत्यु-शोक। (२) मुसीबत।

पीठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आसन, चौकी, पीढ़ा। (२) मूर्ति का आधार। (३) किसी वस्तु आदि के होने-बसने का स्थान। (४) सिंहासन। उ.—महल करती महल महलनि, अग्र संग बैठी पीठ—२६८०। (५) वेदी। (६) वह पवित्र स्थान जहाँ शिव-पत्नी सती का कोई गिरा अंग अथवा आभूषण विष्णु के चक्र से कटकर था। (७) प्रदेश, प्रांत।

संज्ञा स्त्री. [सं. पृष्ठ] पेट के दूसरी ओर का भाग।

मुहा०—पीठ का—सहोदर के जन्म के बाद का। पीठ का कच्चा(घोड़ा)-अच्छी चाल न चल सकनेवाला। पीठ का सच्चा (घोड़ा)—बढ़िया चाल वाला। पीठ की—सहोदरा के जन्म के बाद की। पीठ चारपाई से लग जाना—बीमारी में बहुत दुबला हो जाना। पीठ खाली होना—कोई सहायक न होना। पीठ ठोंकना—(१) शाबाशी देना। (२) उत्साहित करना। पीठ तोड़ना—(१) मारना-पीटना। (२) हताश करना। पीठ दिखाना—लड़ाई से डरकर या हारकर भागना। पीठ दिखाकर जाना—स्नेह या ममता तोड़ना। देति न पीठ—सामने ही डटी रहती हैं। उ.—तदपि निदरि पट जात पलक छिदि जूझत देति पीठ—पृ. ३३४। पीठ देना—(१) विदा होना (२) विमुख होना। (३) भाग जाना। (४) साथ न देना (५) लेटकर आराम करना। (किसी की ओर) पीठ देना—(१) मुँह फेर लेना। (२) उपेक्षा दिखाना। पीठ पर—जन्म के अनंतर। पीठ पर का—सहोदरा या सहोदर के बाद जन्मा पुत्र। पीठ पर की—सहोदर या सहोदरा के बाद जन्मी पुत्री। पीठ पर हाथ फेरना—(१) शाबाशी देना। (२) उत्साह बढ़ाना। पीठ पर होना—(१) सहायक होना। (२) जन्म ग्रहण करना। पीठ पीछे—अनुपस्थिति में। पीठ फेरना—(१) विदा होना। (२) भाग जाना। (३) मुँह फेर लेना। (४) उपेक्षा दिखाना।

पीठमर्द—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नायक के चार सखाओं में एक जो नायिका के मान-मोचन में समर्थ हो। (२) मानमोचन में समर्थ नायक।

पीठा—संज्ञा पुं. [हिं. पीढ़ा] **आसन, चौकी, पीढ़ा**। उ.—आवत पीठा बैठन दीन्हौ कुशल बूझि अति निकट बुलाई।

पीठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीठ] **पेट के पीछे का भाग, पीठ**।

मुहा.—पीठि-ओढिए—**पीठ कीजिए या दीजिए, (स्थिति के अनुकूल) व्यवहार कीजिए**। उ.—सूरदास के पिय प्यारी आपुहीं जाइ मनाय लीजै। जैसी बयारि बहै तैसी ओढ़िए जू पीठि—२०५। पीठि दई—**भाग गया, पीठ दिखा दी**। उ.—पाछैं भयौ न आगैं ह्वैहै, सब पतितनि सिरताज। नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ, पीठि दई जमराज—१-९६। पीठि दिखाऊं—(१) **पीठ फेरूं, रण से हार कर या डरकर विमुख हो जाऊं**। (२) **मुँह मोड़ूं, विरत होऊं**। उ.—सूरदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊं—१-२७०। पीठि दीजै—**मुंह सामने न कीजिए, मुंह मोड़ लीजिए, सामने तक न देखिए**। उ.—राखहु बैर हिए गहि मोसौं बैरिहिं पीठि न दीजै—२२७५। पीठि दीन्ही—(१) **मुंह मोड़ लिया, विमुख हो गये**। उ.—सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि हँसि दीन्ही पीठि—१-२७४। (२) **विरत हो बैठे, त्याग दिया**। उ.—जे तप-व्रत किए तरनि-सुता-तट, पन गहि पीठि न दीन्हीं—६५६। पीठि दै—(१) **सहारा या टिकासरा देकर**। उ.—ऊखल ऊपर-आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ—१०-२६२। (२) **मुंह मोड़ कर**। उ.—(क) चली पीठि दै दृष्टि फिरावति, अंग-अंग-आनंद रली—७३९। (ख) काँपति रिसनि, पीठि दैं बैठी, मनि-माला तन हेरयो—२२७५।

पीड़—संज्ञा स्त्री. [सं. आपीड़] **सिर या बालों का एक आभूषण**। उ.—कर धर कै धरमैर सखी री। कै सुक सीपज की बगपंगति, कै मयूर की पीड़ पखी री—१६२७।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पीड़ा] **दुख-दर्द**।

पीड़क—वि. [सं.] (१) **दुखदायी**। (२) **अत्याचारी**।

पीड़न—संज्ञा पं. [सं.] (१) **दबाना**। (२) **पेलना, पेरना**। (३) **दुख देना**। (४) **अत्याचार करना**। (५) **दबोचना**।

पीड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **व्यथा, वेदना**। (२) **रोग**।

पीड़ित—वि. [सं.] (१) **दुखी**। (२) **रोगी**।

पीढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. पीठ अथवा पीठक] **पाटा, पीठ, पटरा**। उ.—प्रगट भई तहँ आइ पूतना, प्रेरित काल-अवधि नियराई। आवत पीढ़ा बैठन दीनौ, कुसल बूझि अति निकट बुलाई—१०-५०।

पीढ़िनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीढ़ी] **पीढ़ियाँ, पुश्तें**। उ.—हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं—१-१३४।

पीढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. पीठिका] (१) **कुल-परंपरा, पुश्त**। (२) **कुल के सभी प्राणी**। (३) **काल-विशेष का समाज**।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पीढ़ा] **छोटा पीढ़ा**।

पीत—वि. [सं.] **पीला, पीत वर्ण का**।

पीतता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पीलापन**।

पीतधातु—संज्ञा पुं. [सं. पीत+धातु] **रामरज, गोपीचंदन**। उ.—पीतै पीत बसन भूषन सजि पीतधातु अँग लावै—२०३२।

पीतनि—क्रि. स. [हिं. पीना] **पीता, पान करता**। उ.—निसि दिन निरखि जसोदा-नंदन अरु जमुनाजल पीतनि—४९०।

पीतपराग—संज्ञा पुं. [सं.] **कमल का केसर**।

पीतम—वि. [सं. प्रियतम] **जो सबसे प्रिय हो**।

संज्ञा पुं.—**प्राणप्यारा पति**।

पीतमणि, पीतरत्न—संज्ञा पुं. [सं.] **पुखराज**।

पीतर, पीतरि, पीतल—संज्ञा पुं. [सं. पित्तल, हिं. पीतल] **'पीतल' नामक धातु**। उ.—कोटि बार पीतरि ज्यौं डाहौ कोटि बार जो कहा कसै—२६७८।

पीतवर्ण—वि. [सं.] **पीला, पीले रंग का**।

पीतांबर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पीला वस्त्र**। (२) **पुरुषों की रेशमी धोती**। (३) **श्रीकृष्ण**।

पीताम्बरधर—संज्ञा पुं. [सं.] **पीतांबर धारण करने वाले या पीतांबर प्रिय है जिनको वे श्रीकृष्ण**।

पीताब्धि—संज्ञा पुं. [सं.] **समुद्र पीनेवाला, अगस्त्य**।

पीताभ—वि. [सं.] **जिसमें पीली आभा हो।**

पीतै—वि. सवि. [सं. पीत+ही] **पीला ही।** उ.—पीतै पीत बसन भूषन सजि पीतधातु अँग लावै—२०३२।

पीन—वि. [सं.] (१) **स्थूल, मोटा।** (२) **पुष्ट, परिवर्धित।** उ.—पीन उरोज मुख नैन चखावति इह बिष मोदक जा तन झारि—११६४। (३) **भरा-पुरा, संपन्न।**

पीनक—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिन ना] **नशे में ऊँघना।**

पीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **मोटाई, स्थूलता।**

पीनस—संज्ञा पुं. [सं.] **नाक का एक रोग।**

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. फ़ीनस] **पालकी।**

पीना—क्रि. स. [सं. पान] (१) **पान करना, घूँटना।** (२) **(किसी बात या रहस्य को) दबा देना।** (३) **(गाली, अपमान आदि) सह जाना।** (४) **मनोभाव को दबा जाना।** (५) **मनोविकार का अनुभव ही न करना।** (६) **धूम्रपान करना।** (७) **सोख लेना।**

पीपर, पीपरि, पीपल—संज्ञा पुं. [सं. पिप्पल] **एक प्रसिद्ध वृक्ष।**

संज्ञा स्त्री. [सं. पिप्पली] **एक लता जिसकी कलियाँ प्रसिद्ध औषधि हैं।** उ.—हींग, मिरच पीपरि अजवाइनि ये सब बनिज कहावैं—११०८।

पीव—संज्ञा पुं. [सं. पूय] **मवाद।**

पीबे—संज्ञा पुं. [हिं. पीना] **पीने की क्रिया।**

यौ०—खबे-पीबे को—**खाने-पीने को।** उ.—वृद्ध बयस, पूरे पुन्यनि तैं, तैं बहुतैं निधि पाई। ताहू के खैबे-पीबे कौं, कहा करति चतुराई—१०-३२५।

पीय, पीया—संज्ञा पुं. [सं. प्रिय] **पति, प्रियतम।** उ.—ऐसे पापी पीय तोहिं पीर न पराई है—२८२७।

पीयर—वि. [हिं. पीला] **पीत वर्ण का, पीला।**

पीयूख, पीयूष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अमृत।** (२) **दूध।**

पीयौ—क्रि. स. [हिं. पीना] **पान किया, पिया।** उ.—भोजन बीच नीर लै पीयौ—३६६।

पीर—संज्ञा स्त्री. [सं. पीड़ा] (१) **पीड़ा, दुख, कष्ट।** उ.—(क) मेटी पीर परम पुरुषोत्तम, दुख मेट्यौ दुहु-घाँ कौ—१-११३। (ख) काज सरे दुख कहा कहौ धौं, का बायस की पीर—३१००। (२) **दया, सहानुभूति।** (३) **प्रसव-पीड़ा।**

वि. [फ़ा.] (१) **बुजुर्ग।** (२) **महात्मा, सिद्ध।**

संज्ञा पुं.—(१) **धर्मगुरु।** (२) **मुसलमानों के धर्म गुरु।**

संज्ञा पुं. [फ़ा. पीर] **सोमवार का दिन।**

पीरक—वि. [सं. पीड़ा, हिं. पीर+क (प्रत्य.)] **दुख दूर करनेवाले, दुख मिटानेवाले, दुखी के प्रति सहानुभूति रखनेवाले।** उ.—राजरवनि गाईं व्याकुल ह्वै, दै दै तिनकौ धीरक। मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर-पीरक—१-११२।

पीरा—वि. [हिं. पीला] **पीले रंग का।**

पीरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **बुढ़ापा।** (२) **चालाकी, धूर्तता।** (३) **ठेका, हुकूमत।** (४) **चमत्कार।**

वि. [हिं. पीला] **पीले रंग की।** उ.—ओढ़े पीरी पामरी पहिरे लाल निचोल—१४३६।

मुहा०—पीरी-कारी होना—**तेज होना, नाराज होना।** उ.—बहियाँ गहत सतराति कौन पर मग धरी उँगरी कौन पै होत पीरी-कारी—२०४७।

पीरे—वि. [हिं. पीला] **पीले रंग के।** उ.—(क) पीरे पान-बिरी मुख नावति—५१४। (ख) लै गागरि सिर मारग डगरी इन पहिरे पीरे पट—८६०।

पीरो—वि. [हिं. पीला] **पीले रंग का।** उ.—मलिन बसन हरि हित अंतर्गति तनु पीरो जनु पाते—३४६१।

पील—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **हाथी।** (२) **शतरंज का एक मोहरा।**

पीलपाल—संज्ञा पुं. [हिं. पील+पालक] **महावत।**

पीलपाँव—संज्ञा पुं. [फ़ा. पीलपा] **एक प्रसिद्ध रोग।**

पीलवान—संज्ञा पुं. [फ़ा. पीलवान] **महावत।**

पीला—वि. [सं. पीत] (१) **जिसका रंग पीला हो।** (२) **कांतिहीन, धुंधला सफेद।**

मुहा०—पीला पड़ना (होना)—(१) **रक्त के अभाव से तेज न रह जाना।** (२) **भय से चेहरा फीका पड़ जाना।**

संज्ञा पुं.—**हल्दी या सोने का सा रंग।**

मुहा०—पीली फटना—**तड़का होना।**

पीलापन—संज्ञा पुं. [हिं. पीला+पन] **पीतता।**

पीले—वि. [हिं. पीला] **पीत वर्ण के।**

मुहा०—पीले मुख—**निस्तेज, कांतिहीन**। उ.—लाली लै लालन गए आए मुख पीले—११६४।

पीव—संज्ञा पुं. [अनु.] **पपीहे का 'पी' शब्द**। उ.—रसना तारू सों नहिं लावत, पीवै पीव पुकारत—पृ. ३३० (९८)।

पीवन—संज्ञा पुं. [हिं. पीना] **पीना, पीने की क्रिया**। उ.—गर्भवती हिरनी तहँ आई। पानी सो पीवन नहिं पाई—५-३।

पीवर—वि. [सं.] (१) **मोटा**। (२) **भारी, गुरु**।

पीवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **जल, पानी**।

वि. [सं. पीवर] **स्थूल, पुष्ट**।

पीवै—क्रि. स. [हिं. पीना] **पीता है, पान करता है**।

संज्ञा पुं. सवि. [अनु. पीव+ही] **'चातक की 'पी' ध्वनि ही**। उ.—रसना तारू सों नहिं लावत पीवै पीव पुकारत—पृ. ३३० (९८)।

पीवौ—क्रि. स. [हिं. पीना] **पियो, पान करो**। उ.—पीवौ छाँछ अघाइ कै, कब के रयवारे—१-२३८।

पीसना—क्रि. स. [सं. पेषण] (१) **बहुत महीन चूरा करना**। (२) **कुचलना, दबाना**।

मुहा०—किसी को पीसना—**बहुत हानि पहुँचाना**।

(४) **कड़ी मेहनत करना, खूब जान लड़ाना**।

संज्ञा पुं.—**पीसी जानेवाली वस्तु**।

पीसि—क्रि. स. [हिं. पीसना] **पीसकर**।

मुहा.—दाँत-पीसि-**दाँत किटकिटाकर, बहुत क्रोध करके**। उ.—सूर केस नहिं टारि सकै कोउ, दाँत पीसि जौ जग मरै—१-२३४।

पीहर—संज्ञा पुं. [सं. पितृ+गृह] **(स्त्री के) माता-पिता का घर, मायका, नैहर**।

पुंगफल—संज्ञा पुं. [सं. पूगफल] **सुपारी**।

पुंगव—संज्ञा पुं. [सं.] **बैल, वृष**।

वि.—**श्रेष्ठ, उत्तम**।

पुंगवकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] **वृषभध्वज, शिवजी**।

पुंगीफल—संज्ञा पुं. [सं. पूगफल] **सुपारी**।

पुंछार—संज्ञा पुं. [हिं. पूँछ+आर] **मोर, मयूर**।

पुंज—संज्ञा पुं. [सं.] **समूह, ढेर**। उ.—(क) तड़ित-बसन घन-स्याम सदृश तन, तेज-पुंज तम कौं त्रासै—१-६६। (ख) अजिर पद-प्रतिबिंब राजत, चलत उपमा-पुंज—१०-२१८। (ग) सूर-स्याम मुख देखि अलप हँसि आनँद-पुंज बढ़ावो—१२२६।

पुंजा—संज्ञा पुं. [सं. पुंज] **गुच्छा, समूह, गट्ठा**।

पुंजै—संज्ञा स्त्री. [सं. पुंज] **समूह, राशि**। उ.—जे वै लता लगत तनु सीतल अब भई विषम अनल की पुंजैं—२७२१।

पुंड्र—संज्ञा पुं. [सं.] **तिलक, टीका**।

पुंडरीक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **श्वेत कमल**। (२) **रेशम का कीड़ा**। (३) **कमंडल**। (४) **तिलक**। (५) **काशी का एक राजा**। उ.—पुंडरीक काशी को राइ—१० उ.-४४।

पुंडरीकाक्ष—वि. [सं.] **कमल के समान नेत्रवाला**।

संज्ञा पुं.—**विष्णु, नारायण**।

पुंड्र—संज्ञा पुं. [सं.] **तिलक, टीका**।

पुंलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुरुष का चिन्ह**। (२) **(व्याकरण में) पुरुषवाचक शब्द**।

पुंश्चली—वि. स्त्री. [सं.] **व्यभिचारिणी**।

पुंस—संज्ञा पुं. [सं.] **पुरुष**।

पुंसवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दूध**। (२) **एक संस्कार जो गर्भाधान से तीसरे महीने पुत्र-जन्म की कामना से किया जाता है**। (३) **वैष्णवों का एक व्रत**।

वि.—**पुत्र को उत्पन्न करनेवाला**।

पुंसवान—वि. [सं. पुंसवत्] **जो पुत्रवाला हो**।

पुंस्चली—वि. स्त्री. [सं. पुंश्चली] **व्यभिचारिणी, कुलटा**। उ.—पतिव्रता जालंधर-जुवती, सो पति-व्रत तैं टारी। दुष्ट पुंस्चली अधम सो गनिका सुवा पढ़ावत तारी—१-१०४।

पुंस्त्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुरुषत्व**। (२) **वीर्य, शुक्र**।

पुआ—संज्ञा पुं. [सं. पूप] **मीठी रोटी या पूरी**।

पुआल—संज्ञा पुं. [हिं. पयाल] **सूखे डंठल, पयाल**।

पुकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुकारना] **रक्षा या सहायता के लिए की गयी चिल्लाहट, दुहाई**। उ.—(क) तुम हरि साँकरे के साथी। सुनत पुकार, परम आतुर ह्वै, दौरि छुड़ायौ हाथी—१-११२। (ख) असुर महा उत्पात कियौ तब देवन करी पुकार। (२) **किसी को पुकारने**

की क्रिया या भाव, हाँक, टेर ।(३) नालिश, फरियाद । (४) माँग की चिल्लाहट ।

क्रि. स.—(१) पुकारकर । (२) जोर देकर । उ.—तुम्हरौ नहीं तहाँ अधिकार । मैं तुमसौं यह कहौं पुकार—६-४ ।

पुकारत—क्रि. स. [हिं. पुकारना] (१) हाँक देता हूँ, टेरता हूँ, आवाज लगाता हूँ । (२)रक्षा के लिए चिल्लाता हूँ, गोहार लगाता हूँ, छुटकारे के लिए चिल्लाता हूँ । उ.—बालापन खेलत ही खोयौ, जुवा विषय-रस मातैं । वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोकौं, दुखित पुकारत तातैं—१-११८ । (३) घोषणा करते हैं, बताते हैं । उ.—दीनदयालु देवकी नंदन वेद पुकारत चारो—१० उ.—७७ ।

पुकारना—क्रि. स. [सं. प्रकुश = पुकारना]—(१) टेरना, आवाज देना । (२) रटना, धुन लगाना । (३) चिल्लाकर कहना । (४) माँगना । (५) रक्षा के लिए चिल्लाना । (६) फरियाद करना । (७) नामकरण करना ।

पुकारि—क्रि. स. [हिं. पुकारना] जोर देकर, घोषित करके, चिल्लाकर । उ.—सुनि मन, कहौं पुकारि तोसौं हौं, भजि गोपालहिं मेरें—१-८५ ।

पुकारी—क्रि. स. [हिं. पुकारना] पुकारा, हांक दी, टेरा, संबोधित किया । उ.—(क) द्रुपद-सुता जब प्रगट पुकारी । गहत चीर हरि-नाम उचारी—१-२८ । (ख) राखी लाज समाज माहिं जब, नाथ नाथ द्रौपदी पुकारी—१-३० ।

पुकारौं—क्रि. स. [हिं. पुकारना] रक्षा के लिए चिल्लाया, किया, गोहार लगाता रहा, छुटकारे के लिए आवाज देता रहा । उ.—हाय-हाय मैं परयौ पुकारौं, राम-नाम न कहौं—१-१५१ ।

पुकारयौ—क्रि. स. [हिं. पुकारना] (१) हाँक लगाई, टेरा पुकारा, आवाज दी । उ.—जब गज-चरन ग्राह गहि राख्यौ, तबहीं नाथ पुकारयौ—१-१०६ । (२) रक्षा के लिए चिल्लाया या गोहार मचायी । उ.—पाँव पयादे धाय गए गज जबै पुकारयौ ।

पुखराज—संज्ञा पुं. [सं. पुष्पराग] एक रत्न ।

पुगाना—क्रि. स. [हिं. पुजाना] पूरा करना, पुजाना ।

पुचकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुचकारना] चूमने की सी ध्वनि ।

पुचकारना—क्रि. स. [अनु० पुच+करना] चुमकारना ।

पुचकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुचकारना] चूमने की सी ध्वनि ।

पुचारना—क्रि. स. [हिं. पुचारा] (१) चापलूसी करना । (२) झूठी प्रशंसा करके चंग पर चढ़ाना ।

पुचारा—संज्ञा पुं. [अनु. पुच्पुच या पुतारा] (१) भीगे कपड़े से पोंछना । (२) पतली पुताई करना । (३) हलका लेप । (४) पोतने का कपड़ा । (५) मीठे और सुहाते वचन । (६) चापलूसी । (७) बढ़ावा ।

पुच्छ—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुम, पूँछ । उ.—स्वान, कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-विहीन—१-३२१ । (२) पिछला भाग ।

पुच्छल—वि. [हिं. पुच्छ] दुमदार ।

पुछल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. पूँछ+ला] (१) लंबी पूँछ या दुम । (२) पूँछ की तरह जुड़ी लंबी चीज । (३) साथ लगा रहनेवाला । (४) चापलूस ।

पुछातौ—क्रि. स. [हिं. पूछना] पूछता है, जिज्ञासा करता है ।

मुहा०—न बात पुछातौ—बात तक नहीं पूछता है, जरा भी ध्यान नहीं देता है । उ.—जग में जीवत ही कौ नातौ । मन बिछुरें तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ—१-३०२ ।

पुछार, पुछैया—वि. [हिं. पूछना] खोज-खबर लेनेवाला ।

पुजना—क्रि. अ. [हिं. पूजना] (१) पूजा जाना, पूजा होना । (२) आदर या सम्मान होना ।

पुजवना—क्रि. स. [हिं. पूजना] (१) पुजाना । (२) सफल करना ।

पुजवाना—क्रि. स. [हिं. पूजना] (१) पूजा में लगाना । (२) अपनी पूजा करना । (३) आदर-सम्मान कराना ।

पुजाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पूजना] (१) पूजने का भाव, क्रिया या वेतन । (२) पूजा । उ.—गोबर्धन की करी पुजाई मोहिं डारयौ बिसराई—६७५ । (३) पूरा या सफल करने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

पुजाए—क्रि. स. [हिं. पूजना] पूरा किया, पूर्ति की, कमी

दूर की। उ.—पांडु-बधू पटहीन सभा मैं, कोटिन बसन पुजाए—१-१५८।

पुजाना—क्रि. स. [हिं. पूजना] (१) **दूसरे से पूजा कराना।** (२) **अपनी पूजा-सेवा या आदर-सत्कार कराना।** (३) **धन वसूलना।** (४) **(खाली जगह) भरना।** (५) **कमी दूर करना।** (६) **सफल करना।**

पुजापा—संज्ञा पुं. [सं. पूजा+पात्र] (१) **पूजा की सामग्री, चढ़ावा।** (२) **चढ़ावा या पूजन-सामग्री रखने का पात्र।**

पुजायो, पुजायौ—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूरा किया, पूर्ण किया।** उ.—(क) दीन्हौ दान बहुत नाना विधि, इहि विधि कर्म पुजायौ—१०-५०। (ख) तासु मनोरथ सकल पुजायौ—१० उ०-२८।

पुजारी—संज्ञा पुं. [सं. पूजा+कारी] **पूजा करनेवाला।**

पुजावहु—क्रि. स. [हिं. पूजना] **परिपूर्ण करो, सफल करो, पूरा करो।** उ.—तुम काहूँ धन दै लै आवहु, मेरे मन की आस पुजावहु—५-३।

पुजाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. पूजा+आही] **पुजापा रखने की थैली या पात्र।**

पुजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पूँजी] **पूंजी।** उ.—समुझि सगुन लै चले न ऊधौ यह तुमपै सब पुजी अकेली—३१४४।

पुजेरी—संज्ञा पुं. [हिं. पुजारी] **पूजा करनेवाला।** उ.—आपुहिं देव आपुही पुजेरी—१०२६।

पुजैया—संज्ञा पुं. [हिं. पूजना] (१) **पूजा करनेवाला।** (२) **पूरा करने या भरनेवाला।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. पुजाई] **पुजाई।**

पुजौरा—संज्ञा पुं. [हिं. पूजा] (१) **पूजा।** (२) **पुजापा।**

पुट—संज्ञा पुं. (अनु. पुट-पुट छींटा गिरने का शब्द) (१) **हलका छिड़काव।** (२) **रंग या हलका मेल देने के लिए किसी पतली चीज का रंग में डुबोना।** उ.—ज्यौं बिन पुट पट गहत न रँग कौ, रंग न रसै परै—३३५८। (३) **हलका मेल।**

संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दोना, कटोरा, गोल गहरा पात्र।** उ.—जलपुट आनि धरी आँगन मैं मोहन नेक तौ लीजै। (२) **दोने या कटोरे के आकार की कोई वस्तु या पात्र।** उ.—(क) लीला-गुन अमृत-रस स्रवननि-पुट पीजै—१-७२। (ख) नाहिंन इतनौ भाग जो यह रस नित लोचन-पुट पीजै—१०-६। (३) **मुँह बँद बरतन।** (४) **डिबिया, संपुट।** उ.—नील पुट बिच मनौ मोती धरे बंदन बोरि—१०-२२५। (५) **अँतरौटा, अंतःपट।**

पुटकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुट] **पोटली, छोटी गठरी।**

पुटपाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मुँहबंद बरतन में रख कर औषध पकाने का विधान।** (२) **इस प्रकार पकायी गयी औषध का सिद्ध रस।**

पुटी—संज्ञा स्त्री. [सं. पुट] (१) **खाली स्थान जिसमें कोई चीज रक्खी जा सके।** उ.—मुक्ता मनौ चुगत खग खंजन, चोंच पुटी न समात—३६६। (२) **छोटा दोना या कटोरा।** (३) **पुड़िया।** (४) **लँगोटी, कौपीन।**

पुड़िया—संज्ञा स्त्री. [सं. पुटिका, प्रा. पुड़िया] (१) **कागज में लिपटी वस्तु।** (२) **खान, भंडार।**

पुण्य—वि. [सं.] **पवित्र, भला।**

संज्ञा पुं.—(१) **पवित्र या धर्म कार्य।** (२) **धर्म-कार्य का संचय।**

पुण्यक—संज्ञा पुं. [सं.] **व्रत, अनुष्ठान, धर्म-कार्य।**

पुण्यक्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] **तीर्थ स्थान।**

पुण्यदर्शन—वि. [सं.] **जिसका दर्शन शुभ हो।**

पुण्यवान्—वि. [सं. पुण्यवत] **पुण्य करनेवाला।**

पुण्यश्लोक—वि. [सं.] **जिसका चरित्र पवित्र हो।**

पुण्यस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] **पवित्र या तीर्थ स्थान।**

पुण्याई—संज्ञा स्त्री [सं. पुण्य] **पुण्य का प्रभाव।**

पुण्यात्मा—वि. [सं. पुण्यात्मन्] **पुण्य करनेवाला।**

पुण्याह—संज्ञा पुं. [सं.] **शुभ या मंगल दिवस।**

पुण्याहवाचन—संज्ञा पुं. [सं.] **अनुष्ठान के पूर्व कल्याण के लिए 'पुण्याह' शब्द की तीन बार आवृत्ति।**

पुतरा, पुतला—संज्ञा पुं. [सं. पुत्रक, प्रा. पुत्तल, हिं. पुतला] **लकड़ी, मिट्टी, कपड़े की पुरुष-मूर्ति, बड़ा गुड्डा।**

मुहा.—(किसी का) पुतला बाँधना—**निंदा करना।**

पुतरिका, पुतरिया, पुतरी, पुतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुतला, पुतली] (१) **लकड़ी, मिट्टी, कपड़े की स्त्री-मूर्ति,**

बड़ी गुड़िया। उ.—हमैं तुम्हैं पुतरी कैं भाइ। देखत कौतुक विविध नचाइ—६-५। (२) सुन्दर स्त्री। (३) आँख का काला भाग।

मुहा०—पुतली फिरना—(१) आँखें पथराना, मृत्यु होना। (२) घमंड होना।

पुताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोतना] पोतने की क्रिया या मजदूरी।

पुत्त—संज्ञा पुं. [सं. पुत्र] बेटा।

पुत्तल, पुत्तलक—संज्ञा पुं. [हिं. पुतला] पुतला।

पुत्तलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बड़ी गुड़िया, पुतली। (२) आँख की पुतली। (३) सुंदरी स्त्री।

पुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] बेटा, लड़का।

पुत्रवती—वि. [सं.] जिसके पुत्र हो।

पुत्रवधू—संज्ञा स्त्री. [सं.] पुत्र की स्त्री, पतोहू।

पुत्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पुत्री, बेटी। (२) पुत्र के स्थान पर मानी गयी कन्या। (३) पुतली, गुड़िया। (४) आँख की पुतली। (५) नारी का चित्र।

पुत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] बेटी, लड़की।

पुत्रेष्टि—संज्ञा पुं. [सं.] एक यज्ञ जो पुत्रेच्छा से होता है।

पुदीना—संज्ञा पुं. [फ़ा. पोदीनः] एक छोटा पौधा।

पुनः—अव्य. [सं. पुनर] (१) फिर। (२) उपरांत।

पुनः पुनः—क्रि. वि. [सं.] बार बार।

पुनरपि—क्रि. वि. [सं.] फिर भी।

पुनरबस, पुनरबसु—संज्ञा पुं. [सं. पुनर्वसु] एक नक्षत्र।

पुनरुक्त—वि. [सं.] फिर से कहा हुआ।

पुनरुक्तवदाभास—संज्ञा पुं. [सं.] एक शब्दालंकार।

पुनरुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] कही बात को फिर कहना।

पुनर्जन्म—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु के बाद फिर जन्मना।

पुनर्भव—संज्ञा पुं. [सं.] फिर जन्मना, पुनर्जन्म।

पुनर्भू—संज्ञा स्त्री. [सं.] विधवा जिसका पुनः विवाह हो।

पुनर्वसु—संज्ञा पुं. [सं.] सत्ताइस नक्षत्रों में सातवाँ।

पुनि—क्रि. वि. [सं. पुनः] फिर, पुनः, पश्चात, बार-बार, दोबारा, अनंतर। उ.—(क) पांडव कौ दूतत्व कियौ पुनि, उग्रसेन कौं राज दियौ—१-२६। (ख) गुरु-बांधव-हित मिले सुदामहिं, तंदुल पुनि-पुनि जाँचत—१-३१।

मुहा०—पुनि-पुनि—बार-बार। उ.—सूरदास प्रभु कहत हैं पुनि-पुनि तब अति ही सुख पैहैं—२५५३।

पुनी—संज्ञा पुं. [सं. पुण्य] पुण्य करनेवाला।

संज्ञा स्त्री. [सं. पूर्ण] पूर्णिमा, पूनो।

पुनीत—वि. [सं.] (१) पवित्र, शुद्ध। (२) निष्कलंक। (३) सती (नारी)। उ.—परम पुनीत जानकी सँग लै, कुल-कलंक किन टारौ—६-११५।

पुन्न—संज्ञा पुं. [सं. पुण्य] धर्मकार्य, पुण्य।

पुन्नाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक वृक्ष। (२) श्वेत कमल। (३) श्रेष्ठ मनुष्य।

पुन्य—संज्ञा पुं. [सं. पुण्य] धर्मकार्य, पुण्य।

पुन्यो—वि. [हिं. पूनो] पूर्णिमा का। उ.—सेज सँवारि पंथ निसि जोवत अस्त आनि भयो चंद पुन्यो—१६३१।

पुरंजन—संज्ञा पुं. [सं.] जीवात्मा। (भागवत के आधार पर शरीर रूपी पुर, उसके नवद्वार और पुरंजन नाम से जीवात्मा के निवास का सूरदास ने वर्णन किया है)। उ.—तन पुर जीव पुरंजन राव, कुमति तासु रानी कौ नाँव—४-१२।

पुरंदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुर, घर आदि को तोड़नेवाला। (२) इंद्र। (३) चोर। (४) विष्णु।

पुरः अव्य. [सं. पुरस्] (१) आगे। (२) पहले।

पुरःसर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्रगमन। (२) साथी।

पुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नगर, नगरी। उ.—उपवन बन्यो चहूँघा पुर के अति ही मोकौं भावत—२५५६। (२) घर। उ.—मन मैं यह बिचार करि सुंदरि, चली आपने पुर को—७३८। (३) कोठा, अटारी। (४) लोक-भुवन। (५) देह, शरीर। (६) गढ़, किला।

पुरइन, पुरइनि—संज्ञा स्त्री. [सं. पुटकिनी, प्रा. पुडइनी, हिं. पुरइनि] (१) कमल का पत्ता। उ.—पुरइन कपिश निचोल बिबिध रँग बिहँसत सचु उपजावै। (२) कमल। उ.—(क) नँदनंदन तो ऐसे लागे ज्यों जल पुरइन पात—२५१६। (ख) पुरइनपात रहत जल भीतर ता रस देह न दागी—३३३५।

पुरई—क्रि. स. [हिं. पूरना] (**मनोरथ, प्रतिज्ञा आदि) पूर्ण या सिद्ध की** । उ.—जन प्रहलाद-प्रतिज्ञा पुरई, सखा बिप्र-दारिद्र हर्यौ—१-२६ ।

पुरखा—संज्ञा पुं. [सं. पुरुष] (१) **पूर्व पुरुष, पूर्वज** । (२) **घर या परिवार का बड़ा-बूढ़ा** ।

पुरजा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **टुकड़ा, खंड** । (२) **कतरन, धज्जी** । (३) **अंग, भाग, अवयव** ।

मुहा.—चलता-पुरजा—**तेज या चालाक आदमी** ।

पुरट—संज्ञा पुं. [सं.] **सोना, सुवर्ण** ।

पुरतः—अव्य. [सं.] **आगे** ।

पुरत्राण—संज्ञा पुं. [सं.] **शहरपनाह, परकोटा** ।

पुरनियाँ—वि. [हिं. पुराना] **बड़ा, बूढ़ा, वृद्ध** ।

पुरबधू—संज्ञा स्त्री. [हिं.] **ग्रामवधू, ग्राम की स्त्रियाँ** । उ.—लज्जित होहिं पुरबधू पूछैं, अंग-अंग मुसकात—६-४३ ।

पुरबला, पुरबलौ—वि. [सं. पूर्व+ला] (१) **पूर्व जन्म का, पूर्वजन्म-संबंधी** । उ.—नहिं अस जनम बारंबार । पुरबलौ धौं पुन्य-प्रगट्यौ लह्यौ नर-अवतार—१-८८ । (१) **पूर्व या पहले का** ।

पुरवा—संज्ञा पुं. [सं. पुर] **छोटा गाँव, खेड़ा** ।

पुरबिया, पुरबिहा—वि. [हिं. पूरब] **पूरब का रहनेवाला** ।

पुरबुला—वि. [सं. पूर्व] (१) **पूर्व का** । (२) **पूर्व जन्म का** ।

पुरवइया—संज्ञा स्त्री. [सं.पूर्व] **पूर्व से आनेवाली हवा** ।

पुरवट—संज्ञा पुं. [सं. पूर] **चमड़े का मोट** ।

पुरवत—क्रि. स. [हिं. पूरना] **पूरा या पूर्ण करते हैं** । उ.—पर उपकाज हेतु तनु धार्यौ पुरवत सब मन साध—१६६० ।

पुरवना—क्रि. स. [हिं. पूरना] (१) **भरना, पुरना** । (२) (**मनोरथ आदि**) **पूरा या पूर्ण करना** ।

मुहा॰—साथ पुरवना—**साथ देना** ।

क्रि. अ. (१) **पूरा होना** । (२) **उपयोग के योग्य होना** ।

पुरवा—संज्ञा पुं. [सं. पुर] **छोटा गाँव, खेड़ा** ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पूरब] **पूरब से आनेवाली हवा** ।

संज्ञा पुं. [सं. पुटक] **मिट्टी की कुल्हिया** ।

पुरवाई—वि. [हिं. पूरब] **पूरब से आनेवाली** । उ.—उल्हरि आयो सीतल बूँद पवन पुरवाई—१५६५ ।

संज्ञा स्त्री.—**पूरब से आनेवाली हवा** ।

पुरवाना—क्रि. स. [हिं. पुरवना] **पूरा कराना** ।

पुरवै—क्रि. अ. [हिं. पूरना] (१) **भर दे, व्याप्त कर दे** । उ.—या रथ बैठि बंधु की गर्जहिं पुरवै को कुरुखेत—१-२६ । (**मनोरथ आदि**) **पूरा करो** । उ.—हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ—१-२८७ ।

पुरस्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आदर-पूजा** । (२) **प्रधानता** । (३) **पारितोषिक, उपहार, इनाम** । (४) **स्वीकार** ।

पुरस्कृत—वि. [सं.] (१) **आदृत** । (२) **स्वीकृत** । (३) **जिसे पारितोषिक या उपहार मिला हो** ।

पुरहूत—संज्ञा पुं. [सं. पुरुहूत] **इंद्र** ।

पुरा—अव्य. [सं.] (१) **प्राचीन काल में** । (२) **प्राचीन** ।

संज्ञा स्त्री.—(१) **पूर्व दिशा** । (२) **एक सुगंध द्रव्य** ।

संज्ञा पुं.—[सं. पुर] **गाँव खेड़ा** । उ.—(क) यह बृषभानु-पुरा, ये ब्रज मैं, कहाँ दुहावन आई—७२६ । (ख) ब्रज बृषभानु-पुरा जुवतिन को इक इक करि मैं जानौं पृ. ३१३ (२७) ।

पुराइ—क्रि. स. [हिं. पुरना] (१) **भरवाकर** । उ.—चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौकैं पुराइ—१०-६५ । (२) **पूरी करके** । उ.—अखिल भुवन जन कामना पुराइ कै—२६२८ ।

पुराई—क्रि. स. [हिं. पूरना] **पूरी की** । उ.—ताके मन की आस पुराई—१० उ.-२८ ।

पुराऊँ—क्रि. स. [हिं. पूरना] (१) **खाली स्थान भर लूँ, पूर्ति करूँ** । (२) (**पेट**) **भरूँ, भूख मिटाऊँ** । उ.—माँगत बारंबार सेष ग्वालनि कौ पाऊँ । आपु लियौ कछु जानि, भच्छ करि उदर पुराऊँ—४६२ ।

(२) **पूरी करूँ या करूँगा** । उ.—(क) सरद-रास तुम आस पुराऊँ । अंकम भरि सबकौं उर लाऊँ—७६७ । (ख) अपनी साध पुराऊँ—१४२५ ।

पुराए—क्रि. स. [हिं. पूरना] **पूरे किये** । उ.—अति अलसात जम्हात पियारी स्याम के काम पुराए—२११० ।

पुराण—वि. [सं.] **प्राचीन, पुराना** ।

संज्ञा पुं.—(१) **पुरानी कथा** । (२) **हिंदुओं के**

प्राचीन धर्माख्यानं ग्रंथ जिनकी संख्या १८ है— विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मांड, और भविष्य।

पुराणपुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

पुरातत्व—संज्ञा पुं. [सं.] प्राचीन काल संबंधी विद्या।

पुरातन—वि. [सं.] (१) पुराना, प्राचीन। उ.—विप्र सुदामा कियौ अजाँची, प्रीति पुरातन जानि—१-१३५। (२) पूर्व जन्म का, विगत जन्म का। उ.—अजामील तौ विप्र तिह रौ हुतौ पुरातन दास। नैंकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास—१-१३२।

पुरान—वि. [हिं. पुराना] पुराना, प्राचीन।

संज्ञा पुं. [सं. पुराण] पुराण।

पुरान पुरुष—संज्ञा पुं. [सं. पुराण पुरुष] विष्णु। उ.—पुरुष पुरान आनि कियो चतुरानन—४८४।

पुराना—वि. [सं. पुराण] (१) प्राचीन, पुरातन। (२) फटा, जीर्ण। (३) जिसका अनुभव बहुत दिनों का हो।

मुहा०—पुराना खुर्राट या घाघ— बहुत काइयाँ।

(४) बहुत पहले का, पर अब न हो। (५) बहुत समय का।

क्रि. स. [हिं. पूरना] (१) भराना। (२) पालन कराना। (३) पूरा कराना। (४) पालन कराना। (५) पूरा डालना।

पुरानी—वि. [हिं. पुरानी] बहुत वर्षों की, बड़ी आयु-वाली। उ.—डसि मानौं नागिनी पुरानी—२६४६।

पुरानो, पुरानौ—वि. [हिं. पुराना] बहुत दिनों का।

पुराय—क्रि. स. [हिं. पूरना] मंगल अवसरों पर देव-पूजन के लिए आटे, अबीर आदि से चौखूंटे बनाकर। उ.—गजमोतिनि के चौक पुराय बिच बिच लाल प्रवालिका—१०-८०८।

पुरायो, पुरायौ—क्रि. स. [हिं. पूरना] मंगल-चौक भरे। उ.—चौक मुक्ताहल पुरायो आइ हरि बैठे तहाँ——१० उ०-२४।

पुरारि—संज्ञा पुं. [सं.] शिव।

पुरावृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] पुराना इतिहास या वृत्तांत।

पुरावो—क्रि. स. [हिं. पुराना] मंगल चौक आदि भरो। उ.—ललिता बिसाखा आँगना लिपावो, चौक पुरावो तुम रोरी—२३६५।

पुरि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शरीर। (२) पुरी।

पुरिहै—क्रि. अ. [हिं. पुरना] पूरा होगा। उ.—सकल मनोरथ तेरौ पुरिहै—४-९।

पुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नगरी। (२) जगन्नाथपुरी।

पुरीष—संज्ञा पुं. [सं.] विष्टा, मल। उ.—बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ—१-७८।

पुरु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवलोक। (२) पराग। (३) शरीर। (४) ययाति का पुत्र जिसने पिता को यौवन दिया था।

पुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मनुष्य, नर। उ.—ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै लै पर-पुरुष दिखावै—१-४२। (२) आत्मा। (३) विष्णु। (४) सूर्य। (५) जीव। (६) शिव। (७) सर्वनाम और क्रिया-रूप जिससे सूचित हो कि वह कहने, सुनने अथवा अन्य व्यक्ति में से किसके लिए प्रयुक्त हुआ है (व्याकरण)। (८) आत्मा। (९) पूर्वज। उ.—जा कुल माहिं भक्त मम होई। सप्त पुरुष लैं उधरै सोई। (१०) यज्ञपुरुष। (११) पति, स्वामी।

पुरुषत्व—संज्ञा पुं. [सं.] पुरुष होने का भाव।

पुरुषारथ, पुरुषार्थ—संज्ञा पुं. [सं. पुरुषार्थ] (१) पुरुष के उद्योग का लक्ष्य या विषय। (२) उद्यम, पराक्रम, शक्ति। उ.—(क) करी गोपाल की सब होइ। जो अपनो पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोई—१-२६२। (ख) अतिहि पुरुषारथ कियौ उन, कमल दह के ल्याइ—५८६।

पुरुषार्थी—वि. [सं. पुरुषार्थिन्] (१) उद्योगी, परिश्रमी। (२) बली, शक्तिवान।

पुरुषोत्तम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रेष्ठ पुरुष। (२) विष्णु। (३) जगन्नाथ। (४) ईश्वर। (५) मलमास।

पुरुहूत—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

पुरुरवा—संज्ञा पुं. [सं. पुरूरवा] एक प्राचीन राजा जिसकी प्रतिष्ठानपुर नामक राजधानी प्रयाग में गंगा के किनारे थी। पुरुरवा इला के गर्भ से उत्पन्न बुध का पुत्र था। उर्वशी एक बार शापवश भूलोक में आ

पड़ी थी। तब पुरुरवा ने उससे विवाह किया था। शाप से मुक्त होकर जब वह स्वर्ग चली गयी तब राजा ने बहुत विलाप किया। पश्चात्, एकबार पुनः उर्वशी से उनकी भेंट हुई। उर्वशी से उत्पन्न उनके सात पुत्र थे—आयु, अमावसु, विश्वायु, श्रुतायु, दृढ़ायु, बनायु, और शतायु।

पुरेन, पुरेनि, पुरैन, पुरैनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुरइनि] (१) कमल। (२) कमल का पत्ता।

पुरोध, पुरोधा—संज्ञा पुं. [सं. पुरोधस] पुरोहित।

पुरोहित—संज्ञा पुं. [सं.] कर्मकांड करानेवाला। उ.—कह्यौ पुरोहित होत न भलौ। बिनसि जात तेज-तप सकलौ ६-५।

पुरोहिताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुरोहित] पुरोहित का काम।

पुल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] सेतु।

मुहा.—(किसी बात का) पुल बँधना—ढेर लगना। (किसी बात का) पुल बाँधना—ढेर लगाना।

पुलक—संज्ञा पुं. [सं.] रोमांच, प्रेम, हर्ष आदि के उद्वेग से पुलकित होना। उ.—गद्‌गद् सुर, पुलक रोम, अंग प्रेम भीजै—१-७२।

पुलकना—क्रि. अ. [सं. पुलक] गद्‌गद् होना।

पुलकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं पुलकना] गद्‌गद् होने का भाव।

पुलकालि, पुलकावलि, पुलकावली—संज्ञा स्त्री. [सं. पुलकावलि] हर्ष से रोमों का खड़ा होना।

पुलकि—क्रि. अ. [हिं. पुलकना] गद्‌गद् या पुलकित होकर। उ.—सूरदास प्रभु बोल न आयो प्रेम पुलकि सब गात—२५३१।

पुलकित—वि. [हिं. पुलकना] रोमांचयुक्त, गद्‌गद्, प्रेम या हर्ष से जिसके रोएँ उभर आये हों। उ.—लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, डगर अंचल, कर-माल—१-१८६।

पुलकी—वि. [सं. पुलकिन] गद्‌गद् होनेवाला।

पुलस्त, पुलस्त्य—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जिनकी गणना ब्रह्मा के मानस पुत्रों, प्रजापतियों और सप्तर्षियों में है। ये कुबेर और रावण के पितामह थे।

पुलह—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जिनकी गणना ब्रह्मा के मानस पुत्रों, प्रजापतियों और सप्तर्षियों में है।

पुलिंदा—संज्ञा पुं. [सं. पुल = ढेर] पूला, गड्ढा।

पुलिन—संज्ञा पुं. [सं.] नदी का तट। उ.—जैसोइ पुलिन पवित्र जमुन को तैसोइ मंद सुगंध—पृ. ३१५ (४५)।

पुलिहोरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक पकवान।

पुश्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) पीठ। (२) पीढ़ी।

पुश्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा. पुश्तः] ऊँची मेड़, बाँध।

पुश्ती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) सहारा। (२) सहायता।

पुश्तैनी—वि. [हिं. पुश्त] (१) जो कई पुश्तों से चला आता हो। (२) जो कई पुश्तों तक चले।

पुष्कर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल। (२) जलाशय। (३) कमल। उ.—पुष्कर माल उतार हृदय ते दीनी स्याम—सारा. ५५४। (४) सात द्वीपों में से एक। उ.—जंबु, प्लच्छ, क्रौंच, साक, साल्मलि, कुस, पुष्कर भरपूर—सारा. ३४। (५) एक तीर्थ। (६) विष्णु का एक रूप।

पुष्कल—वि. [सं.] (१) बहुत अधिक। (२) भरा-पुरा, परिपूर्ण। (३) श्रेष्ठ। (४) पवित्र।

पुष्ट—वि. [सं.] (१) पाला पोषा हुआ। (२) मोटा-ताजा। (३) बलवर्द्धक। (४) दृढ़, मजबूत।

पुष्टई—संज्ञा स्त्री. [सं. पुष्ट] बलवर्धक वस्तु।

पुष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दृढ़ता, मजबूती।

पुष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पोषण। (२) मोटाताजापन। (३) दृढ़ता। (४) बात का समर्थन। (५) वृद्धि।

पुष्टिकर—वि. [सं.] बल-वीर्य-वर्द्धक।

पुष्टिकारक—वि. [सं.] बल-वीर्य-वर्द्धक।

पुष्टिमार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] वल्लभाचार्य का वैष्णव भक्तिमार्ग।

पुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूल। (२) ऋतुमती स्त्री का रज। (३) कुबेर का 'पुष्पक' विमान।

पुष्पक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूल। (२) कुबेर का विमान।

पुष्पचाप—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

पुष्पधन्वा—संज्ञा पुं. [सं. पुष्पधन्वन्] कामदेव।

पुष्पध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

पुष्पवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] रजस्वला स्त्री।

पुष्पवाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **फुलवारी।**

पुष्पबाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **फूलों का बाण।** (२) **कामदेव जिसके बाण फूलों के हैं।**

पुष्पवृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **फूलों की वर्षा।**

पुष्पशर, पुष्पशरासन—संज्ञा पुं. [सं.] **कामदेव।**

पुष्पायुध—संज्ञा पुं. [सं.] **कामदेव।**

पुष्पित—वि. [सं.] **फूलों से युक्त।**

पुष्पोद्यान—संज्ञा पुं. [सं.] **फुलवारी।**

पुष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पोषण** । (२) **सारवस्तु।** (३) **२७ नक्षत्रों में आठवाँ।** (४) **पूसमास।**

पुसाना—क्रि. अ. [हिं. पोसना] (१) **पूरा पड़ना।** (२) **उचित लगना।**

पुस्तक—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पोथी, किताब, ग्रंथ।**

पुस्तकालय—संज्ञा पुं. [सं.] **पुस्तक-संग्रहालय।**

पुहकर, पुहुकर—संज्ञा पुं. [सं. पुष्कर] **कमल।** उ०—पुहुकर पुंडरीक पूरन मानो खंजन केलि खगे—पृ० ३५० (६४)।

पुहाना—क्रि. स. [हिं. पोहना] **गुथवाना, ग्रथित कराना।**

पुहुप—संज्ञा पुं. [सं. पुष्प] **फूल।** उ.—देखि यह सुरनि वर्षा करी पुहुप की—७-६।

पुहुपमाल पहुपमाला—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुहुप+माला] **फूलों की माला।** उ.—बीच माली मिल्यौ, दौरि चरननि पर्‌यौ, पुहुपमाला स्याम-कंठ धार्‌यौ-२५८८।

पुहुपावलि—संज्ञा स्त्री. [सं. पुष्पावली] **पुष्पों की राशि।** उ.—छाल सुगंध सेज पुहुपावलि हारु छुए ते हिय हारु जरैगौ—२८७०।

पुहुमि, पुहुमी—संज्ञा स्त्री. [सं. भूमि] **पृथ्वी।** उ.—(क) तब न कंस निग्रह्यौ पुहुमि को भार उतार्‌यौ—११३६। (ख) चोंच एक पुहुमी लगाई, इक अकास समाई—४२७।

पुहुरेनु—संज्ञा पुं. [सं. पुष्परेणु] **फूल का पराग।**

पूँछ—संज्ञा स्त्री [सं. पुच्छ] (१) **दुम, पुच्छ, लांगूल।** (२) **पिछला भाग।** (३) **पीछे लगा रहनेवाला, पिछलग्गा।**

पूँजी—संज्ञा स्त्री. [सं. पुंज] (१) **संचित धन संपत्ति।** (२) **मूलधन।** (३) **रुपया-पैसा।** (४) **विषय की जानकारी।** (५) **पुंज, समूह।**

पूँठ—संज्ञा स्त्री. [सं. पृष्ठ] **पीठ।**

पूआ—संज्ञा पुं. [सं. पूप] **मीठी पूरी, मालपुआ।** उ.—दोना मेलि धरे हैं पूआ। हौंस होइ तौ ल्याऊँ पूआ—३६६।

पूगफल, पूगीफल—संज्ञा पुं. [सं. पूगफल] **सुपारी।**

पूछ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पूछना] (१) **पूछने का भाव।** (२) **चाह, जरूरत।** (३) **आदर, आवभगत।**

पूछगाछ, पूछताछ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पूछना] **जाँच-पड़ताल।**

पूछत—क्रि. स. [हिं. पूछना] **पूछता है, जाँच-पड़ताल करता हूँ।** उ.—जाति-पाँति कोइ पूछत नाहीं श्रीपति कै दरबार—१-२३१।

पूछन—क्रि. स. [हिं. पूछना] **पूछना, जिज्ञासा करना।**

प्र.—पूछन लागे—**पूछने लगे।** उ.—बानी सुनि बलि पूछन लागे, इहाँ बिप्र कत आवन—८-१३।

पूछना—क्रि. स. [सं. पृच्छण] (१) **जिज्ञासा करना।** (२) **खोज-खबर लेना।** (३) **आदर-सत्कार करना।** (४) **आश्रय देना।** (५) **ध्यान देना।**

पूज—वि. [सं. पूज्य] **पूजने योग्य, पूजनीय।**

संज्ञा पुं.—**देवता।**

संज्ञा स्त्री. [सं. पूजन] **शुभ कर्म के पूर्व गणेश का पूजन।**

पूजक—वि. [सं.] **पूजा करनेवाला।**

पूजत—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूजा करता है, देवी देवता के प्रति श्रद्धा प्रकट करता है।** उ.—फल माँगत फिरि जात मुकर है, यह देवन की रीति। एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूठे—१-१७७।

क्रि. अ.—**बराबर होते हैं, समान है।** उ.—ये सब पतित न पूजत मों सम, जिते पतित तुम हारे—१-१७६।

पूजति—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूजा करती हैं।** उ.—गौरीपति पूजतिं ब्रजनारी—७६६।

पूजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **देवी-देवता की सेवा, वंदना या अर्चना।** (२) **आदर, सम्मान।**

पूजना—क्रि. स. [सं. पूजन] (१) **देवी-देवता की सेवा, वंदना या अर्चना करना।** (२) **आदर-सत्कार करना।**

क्रि. अ. [सं. पूर्यते, प्रा. पूज्जति] (१) **भरना, बराबर हो जाना ।** (२) **गहरे स्थान का भरकर समतल हो जाना ।** (३) **चुकता हो जाना ।** (४) **बीतना, समाप्त होना ।**

पूजनीय— वि. [सं.] (१) **पूजने-योग्य ।** (२) **आदरणीय ।**

पूजहु—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूजा करो ।** उ.—अब तुम भवन जाहु पति पूजहु परमेश्वर की नाईं—पृ. ३४१ (७०) ।

पूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **देवी-देवता की-वंदना अर्चना ।** उ.—जोग न जुक्ति, ध्यान नहिं पूजा, बिरध भएँ पछितात—२-२२ । (२) **देवी-देवता पर जल, फल-फूल आदि चढ़ाना ।** (३) **आदर-सत्कार, आवभगत ।** (४) **प्रसन्न करने का प्रयत्न करना ।** (५) **ताड़ना, दंड ।** उ.—(क) करन देहु इनकी मोहिं पूजा, चोरी प्रगटत नाम—३७६ । (ख) सूर सबै जुबतिन के देखत पूजा करौं बनाइ—११२५ ।

पूजि—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूरा करके, बहुत अधिक भरकर, बराबर करके ।** उ.—करत बिवस्त्र द्रुपद-तनया कौं सरन सब्द कहि आयौ । पूजि अनंत कोटि बसननि हरि, अरि कौ गर्ब गँवायौ—१-१६० ।

पूजित—वि. [सं.] **जिसकी पूजा की गयी हो ।**

पूजे—क्रि. स. [हिं. पूजना] **किसी देवी-देवता की वंदना के लिए कोई कार्य किया, अर्चना की ।** उ.—एकनि कौं जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैंकु न तूटे—१-१७७ ।

पूजै—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूजा करे ।** उ.—(क) जो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै—३४०६ । (ख) नँदनंदन व्रत छाँड़ि कै को लखि पूजै भीति—३४४३ ।

क्रि. अ.—**बराबरी, समता या तुलना कर सके, बराबर, समान या तुल्य हो सके ।** उ.—(क) राम-नाम-सरि तऊ न पूजै जौ तनु गारौ जाइ हिवार—२-३ । (ख) नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै—१०-१३४ ।

पूजौ—क्रि. अ. [हिं. पूजना] **समान, तुल्य या बराबर हो सका ।** उ.—हिरन्याच्छ इक भयौ, हिरनकस्यप भयौ दूजौ । तिन के बल कौं इंद्र, बरुन, कोऊ नाहिं पूजौ—३-११ ।

पूज्य—वि. [सं.] **पूजनीय, माननीय ।**

पूज्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पूज्य या मान्य होने का भाव ।**

पूज्यपाद—वि. [सं.] **बहुत पूज्य या मान्य ।**

पूज्यमान—वि. [सं.] **जो पूजा जा रहा हो ।**

पूज्यो, पूज्यौ—क्रि. स. [हिं. पूजना] **पूजा की ।** उ.—कालिहिं पूज्यौ फल्यौ बिहाने—१०५१ ।

पूठि—संज्ञा स्त्री. [सं. पृष्ठ] **पीठ ।**

पूत—वि. [सं.] **शुद्ध, पवित्र ।**

संज्ञा पुं. [सं. पुत्र, प्रा. पुत्त] **बेटा, पुत्र ।**

पूतना—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक दानवी जो कंस की आज्ञा से, स्तनों पर विष मलकर, बालकृष्ण को मारने आयी थी । श्रीकृष्ण ने इसका रक्त चूसकर इसी को मार डाला था ।**

पूतमति—वि. [सं.] **पवित्र या शुद्ध चित्तवाला ।**

पूतरा—संज्ञा—पुं. [हिं. पुतला] **पुतला ।**

संज्ञा पुं. [सं. पुत्र] **पुत्र, बाल, बच्चा ।**

पूतरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुतली] **पुतली, गुड़िया ।** उ.—(क) ऐपन की सी पूतरी (सब) सखियनि कियौ सिंगार—१०-४० । (ख) इक टक भईं चित्र पूतरि ज्यौं जीवनि की नहिं आश—२०५२ । (ग) ए सब भई चित्र की पुतरी सून सरीरहिं डाहत—३०६५ ।

पूतात्मा—संज्ञा पुं. [सं. पूतात्मन्] **जिसका अंतःकरण शुद्ध हो ।**

पूतैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. पूत] **पुत्र को, बेटे को ।** उ.—मै हूँ अपनैं औरस पूतैं बहुत दिननि मैं पायौ—१०-३३६ ।

पून—संज्ञा पुं. [सं. पुण्य] **धर्म-कार्य, पुण्य ।**

संज्ञा पुं. [सं. पूर्ण] **पूर्ण ।**

पूनव, पूनिउँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पूनो] **पूर्णिमा ।**

पूनी—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंजिका] **धुनकी हुई रुई की मोटी बत्ती ।**

पूनो, पून्यो, पून्यौ—संज्ञा स्त्री. [सं. पूर्णिमा] **पूर्णिमा ।** उ.—(क) चैत्र मास पूनो को सुभ दिन सुभ नक्षत्र सुभ बार—सारा. ६४१ । (ख) पून्यौ प्रगटी प्रानपति हरि होरी है—२४२२ ।

पूप—संज्ञा पुं. [सं.] **पूआ, मालपूआ ।**

पूपला, पपली—संज्ञा स्त्री. [देश.] **एक मीठा पकवान ।**

पूंपली—संज्ञा स्त्री. [देश.] **पोली नली ।**

पूय—संज्ञा पुं. [सं.] **पीप, मवाद ।** उ.—बिषयी भजे, बिरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे । ज्यों माखी, मृग मद-मंडित तन परिहरि पूय परै—१-१६८ ।

पूर—संज्ञा पुं. [सं.] **घाव भरना ।**

वि. [सं. पूर्ण] **पूर्ण, भरापूरा ।**

पूरक—वि. [सं.] **पूर्ति करनेवाला ।**

संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्राणायाम विधि के तीन भागों में पहला ।** उ.—सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ—३१३४ । (२) **मृतक के दसवें को दिये जानेवाले दस पिंड ।**

पूरण—संज्ञा पुं. [सं. पूर्ण] (१) **भरने या पूर्ण करने की क्रिया ।** (२) **समाप्त करने की क्रिया ।** (३) **सेतु ।**

वि.—**पूरा करनेवाला, पूरक ।**

वि. [सं. पूर्ण] **पूर्ण ।** उ.—सूर पूरण ब्रह्म निगम नाहीं गम्य तिनहिं अक्रूर मन यह बिचारै—२५५१ ।

पूरणकाम—वि. [सं. पूर्णकाम] (१) **जिसकी सब इच्छाएँ पूरी हो गयी हों ।** (२) **कामनारहित, निष्काम ।**

पूरणता—संज्ञा स्त्री. [सं. पूर्णता] **पूर्ण होने का भाव ।** उ.—पूरणता तो तबहीं बूड़ी संग गए लै चित को—३३३६ ।

पूरत—क्रि. स. [हिं. पूरना] **बजाते हैं ।** उ.—सूर स्याम बंशी ध्वनि पूरत श्रीराधा राधा लै नाम—१३२७ ।

पूरन—वि. [सं. पूरण] (१) **(इच्छा, मनोरथ, आदि) पूर्ण करनेवाले, पूरा करनेवाले ।** उ.—कहा कमी जाके राम धनी । मनसा नाथ, मनोरथ-पूरन, सुखनिधान जाकी मौज घनी—१-३६ । (२) **युक्त, सहित ।** उ.—गायौ स्वपच परम अघ पूरन, सुत पायौ बाम्हन रे—१-६६ । (३) **पूर्ण, जिसमें कोई कमी न हो ।** उ.—तुम सर्वज्ञ सबै बिधि पूरन अखिल भुवन निज नाथ—१-१०३ ।

संज्ञा पुं.—**एक प्रकार का मीठा या नमकीन चूर्ण जो गुझिया, समोसे आदि में भरा जाता है ।** उ.—गूझा बहु पूरन पूरे—१०-१८३ ।

पूरनकाम—वि. [सं. पूर्णकाम] **निष्काम ।**

पूरनता—संज्ञा स्त्री. [सं. पूर्णता] **पूर्ण होने का भाव ।**

पूरनपरब—संज्ञा पुं. [सं. पूर्ण+पर्व] **पूर्णिमा ।**

पूरना—क्रि. स. [सं. पूरण] (१) **खाली जगह भरना ।** (२) **ढाँकना ।** (३) **मनोरथ सफल या पूर्ण करना ।** (४) **मंगल अवसर पर देव-पूजन के लिए चौक आदि बनाना ।** (५) **बटकर तैयार करना ।** (६) **बजाना, फूँकना ।**

क्रि. अ.—**भर जाना, पूर्ण हो जाना ।**

पूरनाहुती—संज्ञा स्त्री [सं. पूर्ण+आहुति] **यज्ञ की अंतिम आहुति, जिसे देकर होम समाप्त करते हैं ।** उ.—नृप कह्यौ, इन्द्रपुर की न इच्छा हमैं, रिषिनि तब पूरनाहुती दीयौ ४-११ ।

पूरब—संज्ञा पुं. [सं. पूर्व] **पूर्व या प्राची दिशा ।**

वि.—**पहले का ।** उ.—जज्ञ करइ प्रयाग न्हवायौ तौहूँ पूरब तन नहिं पायौ—६-८ ।

क्रि. वि.—**पहले, पहले ही ।**

पूरबल—संज्ञा पुं. [हिं. पूरबला] (१) **पूर्वकाल ।** (२) **पूर्वजन्म ।**

पूरबला—वि. [सं. पूर्व+हिं. ला] (१) **पुराना ।** (२) **पूर्वजन्म का ।**

पूरबली—वि. [हिं. पूरबला] **पूर्वजन्म की ।** उ.—लंका दई बिभीषन जन कौं पूरबली पहिचानि—१-१३५ ।

पूरबिया, पूरबी—संज्ञा पुं. [हिं. पूरब] **एक प्रकार का दादरा ।**

संज्ञा स्त्री.—**'पूर्वी' नामक रागिनी ।** उ.—सारंग नट पूरबी मिलै कै राग अनूपम गाऊँ—पृ०३११(११) ।

वि.—**पूरब का, पूरब संबंधी ।**

पूरा—वि. [सं. पूर्ण] (१) **भरा हुआ ।** (२) **समूचा, सारा ।** (३) **जिसमें कोई कमी या कसर न हो ।** (४) **काफी ।**

मुहा०—पूरा पड़ना—(१) **काम पूरा हो जाना ।** (२) **सामग्री आदि न घटना, अँट जाना ।** (३) **जीवन निर्वाह होना ।**

(५) **संपादित, कृत, संपन्न ।** (६) **तुष्ट ।**

पूरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **कचौड़ी ।**

पूरित—वि. [सं.] (१) **भरा हुआ ।** (२) **तृप्त ।**

पूरी—वि. स्त्री. [हिं. पूरा] **भरी-पुरी, पूर्ण ।**

संज्ञा स्त्री—[सं. पूलिका] (१) **तली या घी में**

उतारी हुई रोटी । उ.—सद परसि धरी घृत-पूरी । (३) ढोल आदि पर मढ़ा हुआ चमड़ा ।

पूरे—क्रि. स. [हिं. पूरना] पूरा किया, भर दिया, बहुत अधिक एकत्र किया । उ.—(क) दुखित द्रौपदी जानि जगतपति, आए खगपति त्याज । पूरे चीर भीरु तन कृष्ना, ताके भरे जहाज—१-२५५ । (ख) पूरे चीर, अंत नहिं पायौ, दुरमति हारि लही—१-२५८ ।

वि.—भरे हुए । उ.—गूफा बहु पूरन पूरे—१०-१८३ ।

पूरैं—क्रि. स. [हिं. पूरना] बजाते हैं । उ.—कोउ मुरली कोउ बेनु सब्द सृंगी कोउ पूरैं—४३१ ।

पूरै—क्रि. अ. [हिं. पूरना] नाप में पूरी हुई । उ.—बाँधि पत्री डोरी नहिं पूरै—३६१ ।

पूरौ—वि. [हिं. पूरा] (१) पूरा, संपूर्ण, जिसमें कमी या कसर न हो । उ.—जौ रीझत नहिं नाथ गुसाईं, तौ कत जात जँच्यौ । इतनी कहौ, सूर पूरौ दै, काहैं मरत पच्यौ—१-१७४ । (२) संपन्न, संपादित, कृत ।

मुहा०—पूरौ पायौ—पूरी सफलता मिली, अच्छी तरह काम हुआ । उ.—सूर अनेक देह धरि भूतल, नाना भाव दिखायौ । नाच्यौ नाच लच्छ चौरासी, कबहूँ न पूरौ पायौ—१-२०५ ।

पूर्ण—वि. [सं.] (१) भरा हुआ, पूरित । (२) जिसकी कोई इच्छा या कमी न हो । (३) भरपूर । (४) समूचा, सारा । (५) सब का सब । (६) सिद्ध, सफल । (७) समाप्त ।

पूर्णकाम—वि. [सं.] जिसकी कोई कामना न हो ।

पूर्णतया—क्रि. वि. [सं.] पूरी तरह से ।

पूर्णतः—क्रि. वि. [सं.] पूरी तौर से ।

पूर्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्ण होने का भाव ।

पूर्णमासी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्णिमा ।

पूर्णावतार—संज्ञा पुं. [सं.] सोलह कलाओं के अवतार ।

पूर्णाहुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यज्ञ की अंतिम आहुति । (२) किसी कार्य की समाप्ति ।

पूर्णिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शुक्ल पक्ष का अंतिम दिन जब पूर्ण चंद्रोदय होता है ।

पूर्णेन्दु—संज्ञा पुं. [सं.] पूर्णिमा का पूर्ण चंद्र ।

पूर्णोपमा—संज्ञा पुं. [सं.] वह उपमा जिसमें उसके चारो अंग—उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म—हों ।

पूर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कार्य की समाप्ति । (२) पूर्णता । (३) कमी या अभाव को पूरा करने की क्रिया । (४) भरने का भाव ।

पूर्नता—संज्ञा स्त्री. [सं. पूर्णता] पूर्ण होना, पूर्णता । उ.—सेसनाग के ऊपर पौढ़त तेतिक नाहिं बड़ाई । जातुधानि-कुच-गर मर्षत तब, तहाँ पूर्नता पाई—१-२१५ ।

पूर्व—संज्ञा पुं. [सं.] पश्चिम के सामने की दिशा ।

वि.—(१) पहले का । (२) पुराना । (३) पिछला ।

क्रि. वि.—पहले ।

पूर्वक—क्रि. वि. [सं.] साथ, सहित ।

पूर्वकालिक—वि. [सं.] पूर्वकाल का, पूर्वकाल-संबंधी ।

पूर्वकालिक क्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह अपूर्ण क्रिया जिसका काल, दूसरी पूर्ण क्रिया के पहले पड़ता हो ।

पूर्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्रज । (२) पुरखा ।

वि.—पूर्वकाल में जन्मा हुआ ।

पूर्वराग—संज्ञा पुं. [सं.] नायक-नायिका में संयोग के पूर्व ही प्रेम होने की स्थिति ।

पूर्ववत्—क्रि. वि. [सं.] पहले की तरह ।

पूर्ववर्ती—वि. [सं. पूर्ववर्तिन्] जो पहले रहा हो ।

पूर्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पूर्व दिशा । (२) २७ नक्षत्रों में से ग्यारहवाँ ।

पूर्वानुराग—संज्ञा पुं. [सं.] नायक-नायिका के मिलने के पूर्व प्रेम होना ।

पूर्वापर—क्रि. वि. [सं.] आगे पीछे ।

वि—आगे और पीछे का ।

पूर्वाफाल्गुनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] ग्यारहवाँ नक्षत्र ।

पूर्वाभाद्रपद—संज्ञा पु. [स.] पचीसवाँ नक्षत्र ।

पूर्वार्द्ध—संज्ञा पुं. [सं.] आरंभ का आधा भाग ।

पूर्वाषाढ़—संज्ञा स्त्री. [सं.] बीसवाँ नक्षत्र ।

पूर्वाह्न—संज्ञा पुं. [सं.] सबेरे से दोपहर तक का काल ।

पूर्वी—वि. [सं. पूर्वीय] पूर्व दिशा-संबंधी ।

पूर्वोक्त—वि. [सं.] पहले कहा हुआ ।

पूला—संज्ञा पुं. [सं. पूलक] पूला, गट्ठा ।

पूषण—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

पूस—संज्ञा पुं. [सं. पौष, पूष] अगहन के बाद का मास।

पृथक्—वि. [सं.] भिन्न, अलग।

पृथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'कुन्ती' का दूसरा नाम।

पृथिवी—संज्ञा स्त्री. [सं. पृथ्वी] भू, भूमि।

पृथिवीपति, पृथिवीपाल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

पृथु—संज्ञा पुं. [सं.] वेणु के पुत्र जिनकी उत्पत्ति पिता के मृत शरीर को हिलाने से हुई थी।

वि.—(१) मोटा, चौड़ा, मांसल। उ.—पृथु नितंब कर भीर कमलपद नखमनि चंद्र अनूप–पृ० ३५० (६४)। (२) महान्। (३) असंख्य। (४) चतुर।

पृथी—संज्ञा स्त्री. [सं. पृथ्वी] पृथ्वी, धरणी, धरती। उ.—हिरन्याच्छ तब पृथी कौं लें राख्यौ पाताल।''''''। तब हरि धरि बाराह बपु, ल्याए पृथी उठाइ—३-११।

पृथ्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भूमि, धरती। (२) पंच भूतों या तत्वों में एक जिसका प्रधान गुण गन्ध है। (३) मिट्टी।

पृथ्वीतल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धरातल। (२) संसार।

पृथ्वीधर—संज्ञा पुं. [सं.] पर्वत, पहाड़।

पृथ्वीपति, पृथ्वीपाल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा। उ.—उतानपाद पृथ्वीपति भयौ—४-६।

पृश्नि—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक राजा की रानी का नाम जिसके गर्भ से श्रीकृष्ण जन्मे थे। उ.—पृस्नी गर्भ देव-ब्राह्मन जो कृष्ण रूप रंग भीन्हों—सारा० ३६७।

पृश्निगर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

पृष्ठ—वि. [सं.] जो पूछा गया हो।

पृष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीठ। (२) पीछे का भाग। (३) पुस्तक का पन्ना।

पृष्ठपोषक—संज्ञा पुं. [सं.] सहायक, समर्थक।

पृष्ठभाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीठ, पुश्त। (२) कंधा। उ.—पृष्ठभाग चढ़ि जनक-नंदिनी, पौरुष देखि हमार—६-८६।

पेंग—संज्ञा स्त्री. [हिं० पटेंग] (१) झूले को बढ़ाने के लिए दिया गया तेज झोंका। (२) झूले का एक ओर से दूसरी ओर को तेजी से जाना।

पेंच—संज्ञा पं. [हिं. पेच] पगड़ी का फेरा। उ.—लटपट पेंच सँवारति प्यारी अलक सँवारत नंदकुमार—१६०६।

पेंदा—संज्ञा पुं. [सं. पिंड] निचला भाग या तला।

पेखक—वि. [सं. प्रेक्षक, प्रा. प्रेक्खक] देखनेवाला।

पेखत—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखता है। उ.—मनौकमल-दल सावक पेखत, उड़त मधुप छवि न्यारी—१०-६१।

पेखन—संज्ञा स्त्री. [हिं. पेखना] देखने की क्रिया। उ.—मल्लजुद्ध नाना बिधि क्रीड़ा राजद्वार को पेखन—सारा. ५०८।

पेखना—क्रि. स. [सं. प्रेक्षण, प्रा. पेक्खण] देखना।

पेखा—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखा। उ.—बैठी सकुचि, निकट पति बोल्यौ, दुहुँनि पुत्र-मुख पेखा—१०-४।

पेखि—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखकर। उ.—प्राची दिखा पेखि पूरण ससि ह्वै आयौ तातो—१० उ०-१००।

पेखी—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखी। उ.—दधि बेचन जब जात मधुपुरी मैं नीके करि पेखी—२८७८।

पेखे—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखा। उ.—बलमोहन को तहाँ न पेखे—२६६०।

पेखै—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखता है। उ.—कहुँ कछु लीला करत कहूँ कछु लीला पेखै—१० उ० ४७।

पेखो—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखो। उ.—कहति रही तब राधिका जब हरि संग पेखो—१५२८।

पेखौं—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखती हूँ। उ.—ज्ञानियनि मैं न आचार पेखौं—८-८।

पेख्यो, पेख्यौ—क्रि. स. [हिं. पेखना] देखी। उ.—जैसोई स्याम बलराम श्री स्यंदन चढ़े वहै छवि कुंवर सर माँझ पेख्यौ—२५५४।

पेच—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) लपेट। (२) झंझट। (३) चालाकी। (४) पगड़ी की लपेट। उ.—छूटे बंदन अरु पाग की बाँधनि छुटी लटपटे पेच अटपटे दिए—२००६। (५) कुश्ती में पछाड़ने की युक्ति। (६) युक्ति। (७) एक आभूषण जो पगड़ी में खोंसा जाता है, सिरपेच। (८) कान का एक आभूषण।

पेचीला—वि. [फ़ा. पेच + ईला] (१) बहुत घुमाव-फिराव या पेच वाला। (२) बड़ी उलझन वाला।

पेट—संज्ञा पुं. [सं. पेटथैला] (१) उदर।

पेट का कुत्ता—भोजन के लिए सब कुछ करने

वाला। पेट काटना—**बचत के लिए कम खाना या खिलाना।** पेट का पानी न पचना—**रह न पाना, कल न पड़ना।** पेट का पानी न हिलना—**जरा भी मेहनत न पड़ना।** पेट का हलका—**जिसमें गंभीरता न हो।** पेट की आग—**भूख।** पेट की आग बुझाना—**भूख दूर करना।** पेट की बात—**गुप्त भेद।** पेट की मार देना (मारना)—(१) **भोजन न देना।** (२) **जीविका ले लेना।** पेट के लिए दौड़ना—**जीविका के लिये ही परिश्रम करना।** पेट को धोखा देना—**बचत के लिए कम खाना या खिलाना।** पेट दिखलाना—(१) **दीनता दिखाना।** (२) **भूखे होने का संकेत करना।** पेट को लगना—**भूख लगना।** पेट जलना—(१) **बहुत भूख लगना।** (२) **बहुत-असंतुष्ट होना।** पेट दिखाना—**भूखे होने का संकेत करना।** पेट देना—**मन की बात बताना।** पेट दियो—**मन का भेद बता दिया।** उ.—अपनो पेट दियौ तैं उनको नाक बुद्धि तिय सबै कहैं री—१६६०। पेट पाटना—**अच्छा-बुरा खाकर पेट भर लेना।** पेट पालना—**जीवन निर्वाह करना।** पेट पीठ एक हो (से लगना) जाना—(१) **बहुत दुबला होना।** (२) **बहुत भूखा होना।** पेट फूलना—**भेद बताने के लिए बहुत व्याकुल होना।** पेट मारना—**बचत के लिए कम खाना।** पेट मारकर मरना—**आत्म-घात करना।** पेट में आँत न मुँह में दाँत—**बहुत बूढ़ा।** पेट में खलबली पड़ना—**बहुत चिंता या घब-राहट होना।** पेट में चूहे कूदना (दौड़ना) या (चूहों का कलाबाजी खाना)—**बहुत भूख लगना।** पेट में दाढ़ी होना—**बचपन में ही बहुत चालाक होना।** पेट में डालना—**खा लेना।** पेट में दाँत या पाँव होना—**बहुत चालबाज होना।** पेट में होना—**गुप्त रूप से होना।** पेट मोटा हो जाना—**बहुत रिश्वत लेना।** पेट लगना (लग जाना)—**बहुत भूखा होना।** पेट से पाँव निका-लना—(१) **कुमार्ग में लगना।** (२) **बहुत इतराना।** एक ही पेट के होना—**समान प्रकृति या स्वभाव के होना।** उ.—ए सब दुष्ट हने हरि जेते भए एक ही पेट—२७०३। भरि पेट—**जी भर कर।** उ.—होड़ा-होड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट—१-१४६।

(२) **गर्भ।**

मुहा०—पेट की आग—**संतान की ममता।** पेट ठंढा होना—**संतान का जीवित और सुखी रहना।**

(३) **मन, अंतःकरण।**

मुहा०—पेट में घुसना—**भेद लेने के लिए मेल-जोल बढ़ाना।** पेट में डालना—**बात मन में रखना।** पेट में पैठना (बैठना)—**भेद लेने को मेल-जोल बढ़ाना।** पेट में होना—**मन में होना।**

(४) **वस्तु का भीतरी भाग।** (५) **गुंजाइश, समाई।** (६) **रोजी, जीविका।**

पेटागि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पेट+आग] **भूख।**

पेटार, पेटारा—संज्ञा पुं. [सं. पेटक] **पिटारा।**

पेटारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पिटारा] **छोटी पिटारी।**

पेटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **पिटारी।** (२) **संदूक।**

पेटी—संज्ञा स्त्री. [सं. पेटिका] (१) **छोटा संदूक।** (२) **पेट का वह स्थान जहाँ त्रिबली होती है।** (३) **कमरबंद।**

पेटू—वि. [हिं. पेट] **बहुत खानेवाला।**

पेठा—संज्ञा पुं. [देश.] **सफेद रंग का कुम्हड़ा जिसका प्रायः मुरब्बा बनता है।**

पेठापाक—संज्ञा पुं. [देश. पेठा+सं. पाक] **पेठे का मुरब्बा।** उ.—पेठापाक, जलेबी, कौरी, गोंदपाक, तिनगरी, गिंदौरी—१०-३९६।

पेड़—संज्ञा पुं. [सं.] **वृक्ष, दरख्त।**

पेड़ा—संज्ञा पुं. [सं. पिंड] **खोए की एक मिठाई।**

पेड़ि—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंड, हिं. पेड़ी] (१) **वृक्ष की पींड़, पेड़ का तना।** (२) **जड़।** उ.—कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तैं, दै सुमेरु सौं मारौं—९-१०७।

पेड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंड] (१) **वृक्ष का तना।** (२) **मनुष्य का धड़।** (३) **छोटा पेड़ा।**

पेड़ू—संज्ञा पुं. [सं. पेट] (१) **नाभि के कुछ नीचे का स्थान।** (२) **गर्भाशय।**

पेन्हाना—क्रि. स. [हिं. पहनाना] **वस्त्राभूषण पहनाना।**

क्रि. अ.—[सं. पयःस्रवन, प्रा. पहुण्वन] **पशु के थन में दूध उतरना।**

पेम—संज्ञा पुं. [सं. प्रेम] **प्रीति, प्रेम।**

पेय—वि. [सं.] **पीने योग्य, जो पिया जा सके।**

संज्ञा पुं.—(१) **पीने की वस्तु** । (२) **जल** । (३) **दूध** ।

पेयूष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **गाय के ब्याने के सात दिन बाद तक का दूध** । (२) **अमृत** । (३ **ताजा घी** ।

पेरना—क्रि. स. [सं. पीड़न] (१) **दबाकर रस निकालना** । (२) **कष्ट देना, सताना** । (३) **काम में बहुत देर लगाना** ।

क्रि. स. [सं. प्रेरण] (१) **प्रेरणा करना** । (२) **भेजना** ।

पेरवा, पेरवाइ—संज्ञा पुं. [हिं. पेरना] **पेरनेवाला** ।

पेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पीली] **पीली रँगी धोती** ।

पेल—संज्ञा पुं. [हिं. पेला] **बगड़ा, झगड़ा, तकरार** । उ.—सखा जीतत स्याम जाने तक करी कछु पेल—१०-२४४ ।

पेलना—क्रि. स. [सं. पीड़न] (१) **दबाकर धँसाना या ठेलना** । (२) **धक्का देना** । (३) **टाल देना** । (४) **फेंकना, त्यागना** । (५) **बल का प्रयोग करना** । (६) **प्रविष्ट करना, घुसेड़ना** ।

क्रि. स.—[सं. प्रेरण] **आक्रमण के लिए बढ़ाना** ।

पेला—संज्ञा पुं. [हिं. पेलना] (१) **झगड़ा, तकरार** । उ.—पेला करति देत नहिं नीके तुम हो बड़ी बँजारिनि । (२) **अपराध, कसूर** । (३) **धावा, आक्रमण** । (४) **पेलने की क्रिया या भाव** ।

पेलि—क्रि. स. [हिं. पेलना] (१) **आक्रमण के लिए बढ़ा दिया** । उ.—घात मन करन लै डारिहौं दुहुँनि पर दियो गज पेलि आपुन हँकारयों—२५६२ । (२) **जबरदस्ती** । उ.—एक दिवस हरि खेलत मो सँग झगरौ कीन्हौं पेलि—२६२७ । (३) **अवज्ञा करके** । उ.—इंद्रहिं पेलि करी गिरि पूजा सलिल बरषि ब्रज नाऊँ मिटावहिं—६४७ ।

पेली—संज्ञा पुं. [हिं. पेलना, पेला] **अवज्ञा करके लाँघी** । उ.—रावन भेष धर्यौ तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली । अति अज्ञान मूढ़-मति मेरी, राम-रेख पग पेली—६-६४ ।

पेलौ—क्रि० स. [हिं. पेलना] **टालो, अवज्ञा करो, अस्वीकार करो** । उ.—बोलि लेहु सब सखा संग के मेरौ कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ—३६६ ।

पेश—क्रि. वि. [फ़ा.] **सामने, आगे** ।

पेशकश—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **भेंट, सौगात, उपहार** ।

पेशगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **अग्रिम दिया गया धन** ।

पेशल—वि. [सं.] (१) **सुन्दर, कोमल** । (२) **चालाक** ।

पेशवा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **नेता, सरदार** ।

पेशवाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **स्वागत, अगवानी** ।

पेशवाज—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. पेशवाज़] **नर्तकी का घाँघरा** ।

पेशा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **उद्यम, व्यवसाय** ।

पेशानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **भाल, ललाट** । (२) **भाग्य** । (३) **किसी वस्तु का ऊपरी और आगे का भाग** ।

पेशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **मुकदमे की सुनवाई** ।

पेशीनगोई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **भविष्यवाणी** ।

पेश्तर—क्रि. वि. [फ़ा.] **पहले, पूर्व** ।

पेषना—क्रि. स. [हिं. पेखना] **देखना** ।

पेस—क्रि. वि. [फ़ा. पेश] **सामने, आगे** ।

पैं—प्रत्य. [हिं. ऊपर] **करणसूचक विभक्ति, से, द्वारा** । उ.—जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै ? जो जाँचै तौ रसना हारी—१-३४ ।

पैंकड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. पैर+कड़ा] (१) **पैर का कड़ा** । (२) **बेड़ी, बंधन** ।

पैंचा—संज्ञा पुं. [देश.] **हेर-फेर, पलटा** ।

पैंजना—संज्ञा पुं. [हिं. पैर+बजना] **पैर का एक गहना** ।

पैंजनि, पैंजनियाँ, पैजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैंजना] **पैर में पहनने का झांझ की तरह का एक गहना जो झुनझुन बोलता है** । उ.—कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजै—१०-११७ ।

पैंठ—संज्ञा स्त्री. [सं. पण्यस्थान, प्रा. पण्णट्ठा, अप. पइँट्ठा] (१) **हाट, बाजार** (२) **राजपथ, मार्ग** । उ.—होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ । सूरदास बैकुंठ-पैंठ मैं, कोउ न फैंट पकरतौ—१-२६७ । (३) **हट्टी, दूकान** । उ.—ऊधौ तुम ब्रज मैं पैंठ करी । लै आए हो नफा जानिकै सबै बस्तु अकरी—३१०४ । (४) **हाट का दिन** ।

पैठौर—संज्ञा पुं. [हिं. पैंठ+ठौर] **दूकान** ।

पैंड़—संज्ञा पुं. [हिं. पायँ+ड़ (प्रत्य.) अथवा सं. पाददंड, प्रा. पायदंड] (१) **डग, पग, कदम** । उ.—(क)

तीनि पैंड़ बसुधा हौ चाहौं, परनकुटी कौं छावन—८-१३। (ख) जै-जैकार भयौ भुव मापत, तीनि पैंड़ भई सारी। आध पैंड़ बसुधा दै राजा, ना तरु चलि सत हारी—८-१४। (२) **पथ, मार्ग।**

पैंड़ा, पड़े—संज्ञा पुं. [हिं. पैंड़] (१) **पथ, मार्ग**। उ.—पैंड़े चलत न पावै कोऊ रोकि रहत लरकन लै डगरी—८५४।

मुहा०—पैंड़े पड़ना (परना)-**बार बार तंग करना**। पैंड़े परे—**पीछे पड़े हैं, तंग करते हैं**। उ.—मानत नाहिं हटकि हारीं हम पैंड़े परे कन्हाई।

(२) **प्रणाली, रीति**। (३) **घुड़साल**।

पैंड़ौ—संज्ञा पुं. [हिं. पैंड़, पैंड़ा] **रास्ता पथ, मार्ग**।

मुहा०—दियौ उन पैंड़ौ—**उन्होंने जाने दिया, आगे बढ़ने का मार्ग दिया**। उ.—तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु पैठ्यौ उदर-मँझारि। खरभर परी, दियौ उन पैंड़ौ, जीती पहिली रारि—६-१०४।

पैंत—संज्ञा स्त्री. [सं. पणकृत, प्रा. पणइत] **बाजी**।

पैंती—संज्ञा स्त्री. [सं. पवित्र, प्रा० पवित्त, पइत्त] (१) **कुश का छल्ला, पवित्री**। (२) **ताँबे आदि की अँगूठी**।

पैंया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायँ] **पैर, पावँ**।

पै—अव्य. [सं. परं] (१) **पर, परंतु, लेकिन**। उ.—बरजत बार-बार हैं तुमकौं पै तुम नेक न मानौ। (२) **पीछे, बाद, अनंतर**। उ.—ऊधौ, स्याम कहा पावैंगे प्रान गए पै आए। (३) **अवश्य, जरूर**। उ.—निस्चय करि सो तरै पै तरै—६-४।

यौ०—जो पै—**यदि, अगर**। तो पै—**तो फिर, उस दशा में**।

अव्य [सं. प्रति, प्रा. पडि, पइ; हिं. पास, पहँ] (१) **पास, समीप, निकट**। उ.—(क) परतिज्ञा राखी मनमोहन फिर तापै पठयौ। (ख) वा पै कही बहुत बिधि-सौं हम नेकु न दीनों कान। (२) **प्रति, ओर**।

प्रत्य. [सं. उपरि, हिं. ऊपर] (१) **पर, ऊपर, अधिकरण-सूचक विभक्ति**। उ.—(क) षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै छ-दस अंक फिरि डारै—१-६०। (ख) निहचै एक असत पै राखै, टरै न कबहूँ टारै—१-१४२। (२) **करण-सूचक विभक्ति, से, द्वारा**।

उ.—दीन दयालु कृपालु कृपानिधि कापै कह्यौ परै।

संज्ञा पुं. [सं. पय] (१) **जल**। (२) **दूध**।

पैकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायँ+कड़ा] **पैर का गहना**।

पैगम्बर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **धर्मप्रवर्तक**।

पैग—संज्ञा पुं. [सं. पदक, प्रा. पअक] **डग, कदम, पग**। उ.—(क) तीन पैग बसुधा दै मोकौं। तहाँ रचौं ध्रमसारी। (ख) कबहुँक तीनि पैग भुव मापत, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी—१०-१४४।

पैगाम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **संदेश, सँदेसा**।

पैज—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिज्ञा, प्रा. प्रतिज्जा, अप. पइज्जाँ] (१) **प्रतिज्ञा, प्रण, टेक, हठ**। उ.—(क) राखी पैज भक्त भीषम की, पारथ कौ सारथी भयौ—१-२६। (ख) पैज करो हनुमान निसाचर मारि सीय सुधि ल्याऊँ। (ग) पैज करि कही हरि तोहि उबारौं। (२) **प्रतिद्वंद्विता, होड़, लागडाट**। उ.—सहस बरस गज जुद्ध करत भए, छिन इक ध्यान धरै। चक्र धरे बैकुंठ तैं धाए, वाकी पैज सरै—१-८२।

पैजनि, पैजनियाँ, पैजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैंजनी] **पैंजनी**। उ.—अरुन चरन नख-जोति, जगमगति, रुन-झुन करति पाइँ पैजनियाँ—१०-१०६।

पैठ—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रविष्ठ, प्रा. पइट्ठ] (१) **प्रवेश**। (२) **पहुँच, आना-जाना**।

पैठना—क्रि. अ. [हिं. पैठ] **प्रवेश करना**।

पैठाना—क्रि. स. [हिं. पैठना] **प्रवेश कराना**।

पैठार—संज्ञा पुं. [हिं. पैठ+आर] (१) **पैठ, प्रवेश**। (२) **प्रवेशद्वार, फाटक**। उ.—सूर प्रभु सहर पैठार पहुँचे आइ धनुष के पास जोधा रखाए—२५६३।

पैठारी—संज्ञा स्त्री [हिं. पैठार] **प्रवेश, गति**।

पैठि—क्रि. अ. [हिं. पैठना] **घुसकर, प्रविष्ट होकर, प्रवेश करके**। उ.—(क) सकल सभा मैं पैठि दुसासन अंबर आनि गह्यौ—१-२४७। (ख) अपने मरबे ते न डरत है पावक पैठि जरै—२८००।

पैठे—क्रि. अ. [हिं. पैठना] **घसे, प्रविष्ट हुए, प्रवेश किया**। उ.—सुन्दर गऊ रूप हरि कीन्हौ। बछरा करि ब्रह्मा सँग लीन्हौ। अमृत-कुंड मैं पैठे जाइ। कह्यौ असुरनि, मारौ इहिं गाइ—७-७।

पैठ्यो—क्रि. अ. [हिं. पैठना] **घुसा, प्रविष्ट हुआ, प्रवेश**

किया । उ.—(क) धर-अंबर लौं रूप निसाचरि, गरजी बदन पसारि । तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु, पैठयो उदर-मँझारि—६-१०४ । (ख) अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठयो—६-१६४।

पड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैर] **सीढ़ी, जीना** ।

पैड़े—संज्ञा पुं. [हिं. पैड़, पैंड़ा] **रास्ता, पथ, मार्ग** । उ.—सूर स्याम पाए पैड़े में, ज्यौं पावै निधि रंक परी—१०-८० ।

मुहा०—पैड़े परे—**पीछे पड़े हैं, बहुत तंग करते हैं** । उ.—मानत नाहिं हटकि हारी हम पैंड़े परे कन्हाई।

पैतरा—संज्ञा पुं. [सं. पदांतर, प्रा. पयांतर] (१) **वार करने या बचाने की मुद्रा** । (२) **पद-चिह्न** ।

पैतला—वि. [हिं. पायँ+थल] **उथला, छिछला** ।

पैता—संज्ञा पुं. [देश.] **कृष्ण का सखा एक गोप** । उ.—रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहिं रैहौं—४१२ ।

पैताना—संज्ञा पुं. [हिं. पायताना] **पायताना** ।

पैतृक—वि. [सं.] **पितृ-संबंधी, पुरखों की** ।

पैथला—वि. [हि. पायँ + थल] **उथला, छिछला** ।

पैदल—वि. [सं. पादतल, प्रा. पायतल] **बिना सवारी के, पैर-पैर ही चलनेवाला** ।

क्रि. वि.—**पैर-पैर ही** ।

संज्ञा पुं.—(१) **पैदल सिपाही** । (२) **शतरंज की एक गोटी** ।

पैदा—वि. [फ़ा.] (१) **जन्मा हुआ, उत्पन्न** । (२) **घटित, उपस्थित** । (३) **प्राप्त, अर्जित** ।

संज्ञा स्त्री.—**आमदनी, आय** ।

पैदाइश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **जन्म, उत्पत्ति** ।

पैदाइशी—वि. [फ़ा.] (१) **जन्म का** । (२) **स्वाभाविक** ।

पैदावार—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **उपज, फसल** ।

पैना—वि. [सं. पैण] **तेज, धारदार, तीक्ष्ण** ।

पैनी—वि. [हिं. पैना] **तेज, तीक्ष्ण** । उ.—सोभित अंग तरंग त्रिसंगम, धरी धार अति पैनी—६-११ ।

पैबौ—संज्ञा पुं. [हिं. पाना] (१) **(कर) पाना, (कर) सकना, संपादित करना** । उ.—चोली चीर हार लै भाजत, सों कैसैं करि पैबौं—७७६। (२) **प्राप्त करना, पा सकना** । उ.—गोवर्धन कहुँ गोप बृंद सबु कहा गोरस सबु पैबौ—३३७२ ।

पैमाइश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **माप, नाप** ।

पैमाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **मापने की वस्तु** ।

पैमाल—वि. [हिं. पामाल] **पददलित, नष्ट-भ्रष्ट** ।

पैयत—क्रि. स. [हिं. पाना] **पाता है, प्राप्त करता है, लाभ करता है** । उ.—अब कैसैं पैयत सुख माँगे—१-६१ ।

पैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायँ] **पावँ, पैर** ।

पैया—संज्ञा पुं. [हिं. पहिया] **पहिया, चक्का, चक्र** । उ.—मन-मंत्री सो रथ हँकवैया । रथ तन, पुन्य-पाप दोउ पैया—४-५२ ।

संज्ञा पुं. [सं. पाथ्य] **खोखला, खुक्ख** ।

संज्ञा. पुं. [हिं. पेर] **पैर, डग** । उ.—अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया—१०-११५ ।

क्रि. स. [हिं. पाना] **पाया** । उ.—सूर स्याम अतिहीं विरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री—१०-१८६ ।

पैर—संज्ञा पुं. [सं. पद+दंड, प्रा. पयदंड, अप. पयँड़] (१) **पावँ, चरण** । (२) **चरण चिन्ह** ।

पैरत—क्रि. अ. [हिं. पैरना] **तैरता है** । उ.—कहा जानै दादुर जल पैरत सागर औ' सम कूप—३३७६ ।

पैरना—क्रि. अ. [सं. प्लवन, प्रा. पवण] **तैरना** ।

पैरवी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **पक्ष के समर्थन की दौड़-धूप** ।

पैरा—संज्ञा पुं. [हिं. पैर] (१) **पड़े हुए चरण, पौरा** । (२) **पैर का कड़ा** । (३) **बल्लियों का सीढ़ीदार जीना** ।

पैराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैरना] **तैरने का भाव** ।

पैराना—क्रि. स. [हिं. पैरना] **तैराना** ।

पैरि—क्रि. अ. [हिं. पैरना] **तैरकर, पानी में हाथ-पैर चलाकर** । उ.—भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ—१-१७५ ।

पैरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पैर] (१) **पैर का एक चौड़ा गहना** । (२) **अनाज झाड़ने की क्रिया** । (३) **सीढ़ी** ।

पैर्‍यौ—क्रि. अ. [हिं. पैरना] **तैरता रहा, पानी में हाथ-पैर लगाकर चलता रहा** । उ.—जल औंड़े मैं चहुँ दिसि पैर्‍यौ, पाँउ कुल्हारौ मारौ—१-१५२ ।

पैलगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पायँ + लगना] **प्रणाम।**

पैला—संज्ञा पुं. [हिं. पैली] **नाँद की बनावट का बड़ा ढक्कन।**—उ. स्याम सब भाजन फोरि पराने। हाँकि देत पैठत हैं पैला नेकु न मनहिं डराने।

पैली—संज्ञा स्त्री. [सं. पातिली, प्रा. पाइली] **मिट्टी का नाँद की तरह का बड़ा पात्र जो ढकने के काम आता है।**

पैवंद—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **चकती, थिगली, जोड़।**

मुहा०—पैवंद लगाना—**अधूरी या अपूर्ण वस्तु या बात को वैसा ही मेल मिलाकर पूरा करना।**

पैशाच—वि. [सं.] **पिशाच का, पिशाच संबंधी।**

पैशाच विवाह—संज्ञा पुं. [सं.] **आठ प्रकार के विवाहों में एक जो सोती कन्या का हरण करके या छल से किया जाय।**

पैशाचिक—वि. [सं.] **घोर और बीभत्स, राक्षसी।**

पैशाची—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक प्राकृत भाषा।**

पैसना—क्रि. अ. [सं. प्रविश, प्रा. पइस+ना] **घुसना।**

पैसरा—संज्ञा पुं. [सं. परिश्रम] **जंजाल, झंझट।**

पैसा—संज्ञा पुं. [सं. पाद या पणांश] **ताँबे का सिक्का जो पहले रुपए का चौसठवाँ भाग था और अब सौवाँ है। (२) धन-दौलत।**

मुहा०—पैसा उठना—**धन खर्च होना।** पैसा उठाना—**फिजूल खर्ची करना।** पैसा कमाना—**रुपया पैदा करना।** पैसा डूबना—**घाटा होना।** पैसा ढो ले जाना—**दूसरे देश का धन अपने देश ले जाना।** पैसा धोकर रखना—**मनौती मानकर पैसा रख देना।**

पैसार—संज्ञा पुं. [हिं. पैसना] **प्रवेश, पैठ।**

पैसी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. पैसना] **घुसी, पैठी।** उ.—करि बरिआइ तहाँऊँ पैसी—२४३८।

पैसेवाला—वि. [हिं. पैसा+वाला] **धनी, मालदार।**

पैहराइ—क्रि. स. [हिं. पहनाना] **पहनाकर, धारण कराके।** उ.—पँचरँग सारी मँगाइ, बधू जननि पैहराइ, नाचैं सब उमँगि अंग, आनँद बढ़ावैं—**१०-६५।**

पैहारी—वि. [हिं. पय+आहारी] **दूध पर ही रहनेवाला।**

पैहैं—क्रि. स. [हिं. पाना] **(१) पायँगे, प्राप्त करेंगे। (२) भोगेंगे, सहेंगे।** उ.—सुख सौं बसत राज उनकैं सब। दुख पैहैं सो सकल प्रजा अब—१-२६०।

पैहै—क्रि. स. [हिं. पाना] **पायगा, लाभ करेगा, प्राप्त करेगा।** उ.—अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैं कछु पैहै—१-८६।

पैहौं—क्रि. स. [हिं. पाना] **पाऊँगा।** उ.—बंसी बट तट ग्वालनि कैं सँग खेलत अति सुख पैहौं—४१२।

प्र०—आवन पैहौं—**आने पाऊँगा।** उ.—कैसेहुँ आज जसोदा छाँड़्यो, काल्हि न आवन पैहौं—४१५।

पैहौ—क्रि. स. [हिं. पाना] **पाओगे, प्राप्त करोगे।** उ.—(क) हरि-संतनि कौ कह्यौ न मानत, क्यौ आपुनौ पैहौ—**१**-३३५। (ख) मुख माँगो पैहौ सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावहु—३३४०।

पोंकना—क्रि. अ. [अनु.] **बहुत डर जाना।**

पोंगा—संज्ञा पुं. [सं. पुटक] **खोखली नली। चोंगा।**

वि.—(१) **पोला, खोखला।** (२) **मूर्ख, बुद्धिहीन।**

पोंछति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. पोंछना] **काछती है, (गीला बदन) पोंछती है।** उ.—तनक बदन, दोउ तनक-तनक कर, तनक चरन, पोंछति पट झोल—१०-६४।

पोंछन—संज्ञा पुं. [हिं. पोंछना] **पोछने से छटनेवाला अंश।**

पोंछना—क्रि. स. [सं. प्रोञ्छन, प्रा. पोंछन] (१) **लगी या सनी चीज को हाथ, कपड़े आदि से हटाना।** (२) **गर्द आदि को हाथ, कपड़े आदि से रगड़कर साफ करना। गीली चीज को सूखी से रगड़कर सुखाना।**

संज्ञा पुं.—**पोंछने का कपड़ा, साफी।**

पोंछि—क्रि. स. [हिं. पोंछना] **पोंछकर।** उ.—आँसू पोंछि निकट बैठारी—**१०** उ.-३२।

पोंछियै—क्रि. स. [हिं. पोंछना] **गीली चीज को सूखी से रगड़कर सुखाना।** उ.—बदन पोंछियौ जल-जमुन सौं धाइकै—४४०।

पोंछै—क्रि. स. [हिं. पोंछना] (१) **गीली वस्तु को पोंछती है। (२) पड़ी हुई गर्द आदि को झाड़ती है, या दूर करती है।** उ.—लै उठाइ अंचल गहि पोंछै, धूरि भरो सब देह—१०-१११।

पोइ—क्रि. स. [हिं. पोना] **(१) पिरोकर, गूँथकर।**

उ.—ईषद हास, दंत-दुति विकसित, मानिक मोती धरे जनु पोइ—१०-२१० ।

प्र०—रह्यौ पोइ—**पिरोया हुआ है** । उ.—कंचन कौ कठुला मनि-मोतिनि, बिच बघनहँ रह्यौ पोइ—१०-१४८ ।

(२) **रत करके, एक ही ओर लगाकर** । उ.—सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम-चरन, मन पोइ—१-२६२ ।

पोइस, पोइसि—क्रि०वि० [हिं. पोइया] **दौड़कर, सरपट** । उ.—काल जमनि सौं आनि बनी है, देखि देखि मुख रोइसि । सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भाई पोइसि—१-३३३ ।

पोई—संज्ञा स्त्री. [सं. पोदकी] **एक साग** । उ.—(क) पोई परवर फाँग फरी चुनि—२३२१ । (ख) चौराई लाल्हा अरु पोई—३९६ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. पोत] (१) **अंकुर, पौधा** । (२) **ईख का कल्ला** ।

क्रि. स. [हिं. पोना] (१) **आटे की रोटी बनायी** । (२) **रोटी पकायी** । उ.—सरस कनिक बेसन मिलै रुचि रोटी पोई—१५५५ ।

क्रि. स. [हिं. पोय+ना] **पिरोयी** । उ.—कंचन को कँठुला मन मोहत तिन बघनहा बिच पोई ।

पोख—संज्ञा पुं. [सं. पोष] **पालन-पोषण** ।

पोखना—क्रि. स. [सं. पोषण] **पालना-पोसना** ।

पोखर, पोखरा—संज्ञा पुं. [सं. पुष्कर, प्रा. पुक्खर.] **तालाब** ।

पोखरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोखर] **छोटा तालाब, तलैया** ।

पोगंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पाँच से दस वर्ष की अवस्था का बालक** । (२) **छोटा, बड़ा या अधिक अंगवाला व्यक्ति** ।

पोच—वि. [फ़ा. पूच] (१) **तुच्छ, बुरा, क्षुद्र, निकृष्ट** । उ.—(क) माधौ जू, मन सबही बिधि पोच । अति उन्मत्त, निरंकुस, मैगल, चिंता-रहित, असोच—१-१०२ । (ख) कौन निडर कर आपको को उत्तम को पोच । (ग) जाहि बिन तन प्रान छाँड़े कौन बुधि यह पोच—८८६ । (२) **शक्तिहीन, क्षीण** ।

पोची—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोच] **बुराई, नीचता** ।

पोट—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **गठरी, पोटली** । (२) **ढेर** ।

पोटना—क्रि. स. [हिं. पुट] (१) **बटोरना** । (२) **फुसलाना** ।

पोटरी, पोटली—संज्ञा स्त्री. [सं. पोटलिका] **छोटी गठरी** ।

पोटा—संज्ञा. पुं. [सं. पुट = थैली] (१) **पेट की थैली** ।

मुहा०—पोटा तर होना—**धन से बेफिक्र होना** ।

(२) **साहस, सामर्थ्य** । (३) **समाई, बिसात, हैसियत** । (४) **आँख की पलक** । (५) **उँगली का छोर** ।

संज्ञा पुं. [सं. पोत] **चिड़िया का पंखहीन बच्चा** ।

पोढ़, पोढ़ा—वि. [सं. प्रौढ़, प्रा. पोढ] (१) **पुष्ट** । (२) **कड़ा** ।

मुहा०—जी पोढा करना—**दुख आदि से विचलित न होना** ।

पोढ़ाना—क्रि. अ. [हिं. पोढ़] **दृढ़ या पक्का होना** ।

क्रि. स.—**दृढ़ या पक्का करना** ।

पोत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चिड़िया या छोटा बच्चा** । (२) **पौधा** । (३) **कपड़ा** । (४) **नौका जहाज** ।

संज्ञा पुं. [सं. प्रवृत्ति, प्रा. पउत्ति] (१) **ढंग** । (२) **बारी** ।

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रोता, प्रा. पोता] (१) **माला का दाना** । (२) **काँच की गुरिया का दाना जो कई रंगों का होता है** । उ.—(क) झीनी कामरि काज कान्है ऐसी नहिं कीजै । काँच पोत गिर जाइ नंद घर गथौ न पूजै—१११७ । (ख) यह मत जाइ तिन्हैं तुम सिखवौ जिनहीं यह मत सोहत । सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत—३१२२ ।

संज्ञा पुं.[फ़ा. फोता] **जमीन का लगान, भू-कर** ।

पोतना—क्रि. स. [सं. प्लुत, प्रा. पुत+ना] (१) **गीली तह चढ़ाना, चुपड़ना, मिट्टी, गोबर आदि का घोल चढ़ाना** ।

संज्ञा पुं.—**पोतने का कपड़ा, पोता** ।

पोता—संज्ञा पुं. [सं. पौत्र, प्रा. पोत्त] **पुत्र का पुत्र** ।

संज्ञा पुं. [सं. पोतृ] (१) **वायु** । (२) **विष्णु** ।

संज्ञा पुं. [हिं. पोटा] **पेट की थैली, उदराशय** ।

संज्ञा पुं. [हि. पोतना] **पोतने का कपड़ा** ।

संज्ञा पुं. [फ़ा. फोता] **पोत, लगान, भूमिकर** । उ.—मन महतो करि कैद अपने मैं, ज्ञान-जहतिया

लावै। माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध कौ, पोता भजन भरावै—१—१४२।

पोति, पोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोत] **काँच की गुरिया का दाना।** उ.—कंचन काँच कपूर कपर खरी, हीरा सम कैसे पोति बिकात री—२५०९।

पोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोतना] **मिट्टी का लेप।** क्रि. स. **दीवार आदि पर घोल चढ़ाया।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. पोता] **पुत्र की पुत्री।**

पोते—क्रि. स. [हिं. पोतना] **(शरीर पर) मले हुए, लगाए हुए, लेसकर।** उ.—तब तू गयौ सून भवन, भस्म अंग पोते। करते बिन प्रान तोहिं, लछिमन जौ होते—६-६७।

पोथा—संज्ञा पुं. [हिं. पोथी] **बड़ी पुस्तक (व्यंग्य)।**

पोथी—संज्ञा स्त्री. [. पुस्तिका, प्रा. पोत्थिआ] **पुस्तक।**

पोदना—संज्ञा पुं. [अनु. फुदकना] **एक छोटी चिड़िया।**

पोना—क्रि. स. [सं. पूप, हिं. पूवा+ना] (१) **गीले आटे से रोटी बनाना।** (२) **(रोटी, चपाती) पकाना।**

क्रि. स. [सं. प्रोत, प्रा. पोइअ, पोय+ना] **पिरोना।**

पोपला—वि. [अनु० पुल] **जिसके दाँत न हों।**

पोपलाना—क्रि. अ. [हिं. पोपला] **पोपला होना।**

पोय—क्रि. स. [हिं. पोना] **(रोटी) पकाकर।** उ.—सूर आँखि मजीठ कीनी निपट काँचो पोय।

संज्ञा स्त्री [हिं. पोई] **एक साग।**

पोर—संज्ञा स्त्री. [सं. पर्व] (१) **उँगली की गाँठ या जोड़।** (२) **उँगली की गाँठों के बीच की जगह।** (३) **ईख आदि की गाँठों के बीच का भाग।** (४) **रीढ़, पीठ।** उ.—निकसे सबै कुँअर असवारी उच्चैः-स्रवा के पोर—१० उ०-६।

पौरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] **ड्योढ़ी, दहलीज, द्वार।** उ.—बोलि लिए सब सखा संग के, खेलत कान्ह नंद की पोरि—६६६।

पोरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोरि] **उँगली का एक गहना।**

पोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोल] **एक तरह की रोटी।** उ.—रोटी, बाटी, पोरी, झोरी। इक कोरी, इक घीव चभोरी—३९६।

पोल—संज्ञा पुं. [हिं. पोला] (१) **खाली जगह।** (२) **खोखलापन, सारहीनता।**

मुहा.—पोल खुलना—**दोष या बुराई प्रकट होना। दोष या बुराई प्रकट करना।**

संज्ञा पुं. [सं.] **एक तरह की रोटी।**

संज्ञा पुं. [सं. प्रतोली, प्रा. पओली] (१) **प्रवेश-द्वार।** (२) **आँगन, सहन।**

पोला—वि. [हिं. पोल] (१) **खोखला, खुक्ख।** (२) **सारहीन।** (३) **जो भीतर से पुलपुला हो।**

पोलिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. पोला] **पैर का एक गहना।**

पोली—वि. स्त्री. [हिं. पोला] **खोखली, खुक्ख।**

पोशाक—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. पोश] **वस्त्र, पहनावा।**

पोशीदा—वि. [फ़ा.] **गुप्त, छिपा हुआ**

पोष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पोषण।** (२) **उन्नति।** (३) **अधिकता, बढ़ती।** (४) **धन।** (५) **संतोष।**

पोषक—वि. [सं.] (१) **पालक।** (२) **सहायक, समर्थक।**

पोषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पालन।** (२) **बढ़ती।** (३) **पुष्टि, समर्थन।** (४) **सहायता।**

पोषन—संज्ञा पुं. [सं. पोषण] **पोषण, पालन।** उ.—प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ। पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ—१-३२।

पोषना—क्रि. स. [सं. पोषण] **पालन करना।**

पोषि—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पालन करके।** उ.—ऐसे मिल्यो जाइ मोको तजि मानहुँ इनहीं पोषि जयौ री—१४६६।

पोषित—वि. [सं.] **पाला-पोसा हुआ।**

पोषिबे—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पालने (के लिए) पालन-पोषण (के हेतु)।** उ.—अपनौ पिंड पोषिबै कारन, कोटि सहस जिय मारे—१-३३४।

पोषु—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पालन करके।** उ.—राजकाज तुमते न सरैगौ काया अपनी पोषु—३०२६।

पोषे—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पाले।** उ.—पोषे नाहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६।

वि.—**पाला-पोषा हुआ।** उ.—अधर सुधा मुरली की पोषे योग-जहर कत प्यावे रे—३०७०।

पोषैं—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पालन करते हैं** । उ.—पोषैं ताहि पुत्र की नाईं—५-३ ।

पोषै—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पालन करती है, पालती-पोषती है** । उ.—जैसैं जननि जठर अंतरगत सुत अपराध करै । तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै—१-११७ ।

पोष्य—वि. [सं.] **पालन के योग्य, पाला हुआ** ।

पोष्यपुत्र—संज्ञा पुं [सं.] (१) **पाला हुआ पुत्र** । (२) **दत्तक पुत्र** ।

पोष्यौ—क्रि. स. [हिं. पोषना] **पालन किया, पाला, पाला-पोषा** । उ.—वैसी आपदा तैं राख्यौ, तोष्यौ, पोष्यौ, जिय दयौ, मुख-नासिका-नयन-स्रौन-पद पानि—१-७७ ।

पोस—संज्ञा पुं. [सं. पोष] **पालक के प्रति प्रेम** ।

पोसन—संज्ञा पुं. [सं. पोषण] **पालन, रक्षा** । उ.—यह अचरज है अति मेरे जिय, वह छाँड़न वह पोसन ।

पोसना—क्रि. स. [सं. पोषण] (१) **रक्षा करना, पालना** । (२) **(पशु को) दाना-पानी देकर रखना** ।

पोस्त—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **छिलका** । (२) **चमड़ा** । (३) **अफीम के पौधे का डोंडा** । (४) **अफीम का पौधा** ।

पोस्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा. पोस्त] **अफ़ीम का पौधा** ।

पोस्ती—वि. [हिं. पोस्ता] (१) **अफीमची** । (२) **आलसी** ।

पोहत—क्रि. स. [हिं. पोहना] **पिरोता या गूँथता है** । उ.—सूर आजु लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत—३१२२ ।

पोहना—क्रि. स. [सं. प्रोत, प्रा. पोइअ, पोय+ना] (१) **पिरोना, गूँथना** । (२) **छेड़ना** । (३) **घुसाना, धँसाना** । (४) **जड़ना, जमाना** । (५) **पीसना, घिसना** । (६) **रोटी बनाना या पकाना** ।

वि.—**घुसनेवाला, भेदनेवाला** ।

पोहि—क्रि. स. [हिं. पोहना] (१) **पिरोकर, गूँथकर** । उ.—(क) सूर प्रभु उर लाइ लीन्हौं प्रेम-गुन करि पोहि—पृ. ३५२ (८०) । (ख) अपने हाथ पोहि पहिरावत कान्ह कनक के मनियाँ—२८७९ । (२) **मलकर, लगाकर, पोतकर** । उ.—पहिले पूतना कपट करि आई स्तननि बिष पोहि—२५१५ । (३) **घुसाकर धँसाकर** । उ.—सूरस्याम यह प्रान पियारी उर मैं राखी पोहि ।

पोहे—क्रि. स. [हिं. पोहना] **पिरोये हैं, गूँथे हैं** । उ.—लटकन लटकि रहे भ्रू-ऊपर, रँग-रँग मनि-गन पोहे री । मानहुँ गुरु-सनि-सुक्र एक ह्वै, लाल भाल पर सोहै री—१०-१३६ ।

पौंडा—संज्ञा पुं. [सं. पौंड्रक] **मोटा गन्ना** ।

पौंड्र—संज्ञा पुं. [सं.] **भीम के शंख का नाम** ।

पौंढ़ना—क्रि. स. [हिं. पौढ़ना] **लेटना** ।

पौंड्रक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुंड्र देश का राजा जो जरासंध का संबंधी था** । (२) **भीम के शंख का नाम** । उ.—तक्षक धनंजय देवदत्त अरु पौंड्रक शंख सुमान—सारा. ६ ।

पौंढ़ि—क्रि. अ. [हिं. पौढ़ना] **लेटकर** । उ.—मुरली तऊ गुपालहिं भावति ।······। आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर, कर-पल्लव पलुटावति—६५५ ।

पौंरना—क्रि. अ. [सं. प्लवन] **तैरना** ।

पौंरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] **द्वार, ड्योढ़ी** ।

पौंरिया—संज्ञा पुं. [हिं. पौरिया] **द्वारपाल** । उ.—निदरि पंरिया जाय नृप पैं पुकारे—२६११ ।

पौ—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रपा, प्रा. पवा] **प्याऊ, पौसाला** ।

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रभा, प्रा० पव, पउ] **किरण, ज्योति** ।

मुहा०—पौ फटना—**सबेरा या तड़का होना** ।

संज्ञा स्त्री. [सं. पद, प्रा. पव=कदम, डग] **पाँसे की एक चाल या दाँव । पाँसा फेंकने पर जब ताक या दस, पचीस, तीस आते हैं तब पौ होती है** । उ.—बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी । सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी—१-६० ।

मुहा.—पौ बारह पड़ना—**जीत का दाँव आना** । पौ बारह होना—**जीत का दाँव पड़ना, जीत होना** ।

संज्ञा पुं. [सं. पाद, प्रा. पाय, पाव] **पैर** ।

पौगंड—संज्ञा पुं. [सं.] **५ से १० वर्ष की आयु** ।

पौढ़त—क्रि. अ. [हिं. पौढ़ना] **लेटते हैं, सोते हैं** । उ.—

सेसनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिं बड़ाई—१०-२१५।
पौढ़ना—क्रि. अ. [सं. प्लवन, प्रा. पव्वलन] **झूलना**।
क्रि. अ. [सं. प्रलोठन] **लेटना, सोना**।
पौढ़ाई—क्रि. स. [हिं. पौढ़ाना] **लिटाकर**। उ.—सूर स्याम कछु करौ बियारी, पुनि राखौं पौढ़ाइ—१०-२२६।
पौढ़ाऊँ—क्रि. स. [हिं. पौढ़ाना] **लिटाकर सुलाऊँ**। उ.—उठहु लाल कहि मुख पखरायौ, तुमकौं लै पौढ़ाऊँ—१०-२३०।
पौढ़ाए—क्रि. स, [हिं. पौढ़ाना] **लिटाये, लिटा दिये**। उ.—पौढ़ाए हरि सुभग पालनैं—१०-५०।
पौढ़ाना—क्रि. स. [हिं. पौढ़ना] **लिटाना, सुलाना**।
पौढ़ायौ—क्रि. स. [हिं. पौढ़ाना] **लेटाया**। उ.—चंदन अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ। चले बिमान संग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढ़ायौ—६-५०।
पौढ़ी—क्रि. अ. [हिं. पौढ़ना] **लेटी**। उ.—मैं घर पौढ़ी आइ—१०-३२२।
पौढ़े—क्रि. अ. [हिं. पौढ़ना] (१) **लेटे, सोए**। उ.—(क) तुरत जाइ पौढ़े दोउ भैया—१०-२३०। (ख) पौढ़े हुते प्रयंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर—
(२) **मूर्छित हुए, मरकर गिर पड़े**। उ.—पौढ़े कहा समर सेज्या सुत, उठि किन उत्तर देत—१-२६।
पौत्र—संज्ञा पुं. [सं.] **लड़के का लड़का**।
पौद, पौधि—संज्ञा स्त्री. [सं. पोत] (१) **छोटा पौधा**। (२) **संतान**।
संज्ञा स्त्री. [हिं. पावँ+पट] **पाँवड़ा, पायंदाज**।
पौदा, पौधा—संज्ञा पुं. [सं. पोत) **नया पौधा**।
पौन, पौना—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. पवन] (१) **पवन, वायु**। उ.—(क) द्वार सिला पर पटकि तृना वौं है आयौ जो पैना—६०१। (ख) रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे—२८१८। (२) **प्राण, जीवात्मा**। उ.—सोइ कीजो जैसे ब्रजबाला साधन सीखें पौन—२६२५। (३) **भूत-प्रेत**।
वि. [सं. पाद+ऊन, प्रा. पाओन] **तीन चौथाई**।
पौनार, पौनारि—संज्ञा स्त्री. [सं. पद्मनाल] **कमल-नाल**।
पौनि, पौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पावना] (१) **गाँव के जिन्हें फसल पर अनाज मिलता है**। (२) **नाई, बारी, धोबी आदि जो उत्सवों या शुभ कार्यों में नेग पाते हैं**। उ.—काढौ कोरे कापर हो अरु काढ़ौ घी के मौन। जाति पाँति पहिराइ कै सब समदि छतीसौ पौनि।
पौने—वि. [हिं. पौन] **तीन चौथाई**।
मुहा०—पौने सोलह आना—**अधिकांश में**।
पौमान—संज्ञा पु. [सं. पवमान](१) **वायु**। (२) **जलाशय**।
पौर—वि. [सं.] **पुर या नगर-संबंधी**।
संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] **द्वार, ड्योढ़ी**। उ.—कनक कलस प्रति पौर बिराजत मंगलचार बध ई—सारा. ३९५।
पौरा—संज्ञा पुं. [हिं. पैर] **पड़े हुए चरण, आगमन**।
पौराणिक—वि. [सं] (१) **पुराण का पाठक या पंडित**। (२) **पुराण-संबंधी**। (३) **पूर्वकाल का**।
पौरि—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतोली, प्रा. पओली, हिं. पौरी] **ड्योढ़ी, द्वार**। उ.—(क) राजा, इक पंडित पौरि तुम्हारी-८-१३। (ख) पैठत पौरि छींक भइ बाएँ—५४१। (ग)।
पौरिआ, पौरिया—संज्ञा पुं. [हिं. पौरि] **द्वारपाल, ड्योढ़ीदार, दरबान**। उ.—अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारैं, धर्म मोच्छ सिर नावैं। बुद्धि विवेक, विचित्र पौरिया, समय न कबहूँ पावैं—१-४०।
पौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतोली, प्रा. पओली] **ड्योढ़ी**।
पौरुष संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुरुष का भाव, पुरुषत्व**। (२) **पुरुष का कर्म, पुरुषार्थ**। (३) **बलवीर्य, पराक्रम, साहस**। उ.—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै—**१-१०५**। (४) **उद्यम, साहस**।
पौलस्त्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुलस्त्य का वंशज**। (२ **कुबेर**। (३) **रावण, कुंभकर्ण, विभीषण**। (४) **चंद्र**।
पौला—संज्ञा पु. [हिं. पावँ+ला] **खड़ाऊँ जिसमें खूँटी के स्थान पर अँगूठा फंदे में फँसाया जाता है**।
पौलि, पौली—संज्ञा पुं. [.] **रोटी, फुलका**।
संज्ञा स्त्री. [हिं. पाँव+ली] (१) **पैर का उतना भाग जिसमें जूता या खड़ाऊँ पहनते हैं**। (२) **चरण-चिन्ह**।
संज्ञा स्त्री. [हिं. पौरी] **ड्योढ़ी, द्वार**।

पौवा—संज्ञा पुं. [सं. पाद, हिं. पाव] **चौथाई भाग।**

पौष—संज्ञा पुं. [सं.] **पूस का महीना।**

पौष्टिक—वि. [सं.] **बल-वीर्य-वर्द्धक, पुष्टिकारक।**

पौसेरा—संज्ञा पुं. [हिं. पाव+सेर] **पाव सेर की तौल।**

पौहारी—संज्ञा पुं. [हिं. पय+आहारी] **दूध पीकर रहनेवाला।**

प्याइ—क्रि. स. [हिं. प्याना] **पिलाकर।**

प्याई—क्रि. स. [हिं. प्याना] **पिलायी, पान करायी।**

प्याऊँ—क्रि. स. [हिं. प्याना] **पान कराऊँ।** उ.—असुर कौं सुरा, तुम्हैं अमृत प्याऊँ—८-८।

प्याऊ—संज्ञा पुं. [हिं. प्याना] **पौसरा, पौसाला।**

प्याए—क्रि. स. [हिं. प्याना] **पिलाने से, पिला देने के कारण।** उ.—ऐरावत अमृत कैं प्याए, भयौ सचेत, इन्द्र तब धाए—६-५।

प्याज—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **एक प्रसिद्ध कंद।**

प्याजी—वि. [फ़ा.] **प्याज के हलके गुलाबी रंग का।**

प्यादा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **पैदल, पैदल सिपाही** (२) **दूत, हरकारा।** (३) **शतरंज की एक गोट।**

प्याना—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पान कराना।**

प्यार—संज्ञा पुं. [सं. प्रीति] (१) **प्रेम, प्रीति।** उ.—नृप ऐसौ है पर-तिय प्यार। मूरख करै सो बिना बिचार—६-७। (२) **चुंबन।**

प्यारा—वि. [सं. प्रिय] (१) **प्रेम या प्रीति पात्र।** (२) **जो अच्छा लगे।** (३) **जो छोड़ा या त्यागा न जाय।**

प्यारि, प्यारी—वि. [हिं. पुं. प्यारा] (१) **प्यारी पुत्री या सखी।** उ.—मैं बरजी कहँ जाति री प्यारी, तब खीझी रिस-झरतैं—७४४। (२) **प्रेयसी।** (३) **जो भली लगे, जो अच्छी जान पड़े।** उ.—बिधु-मुख मृदु मुसक्यानि अमृत-सम, सकल लोक लोचन प्यारी—१-६६।

प्यारे—वि. बहु. [हिं. प्यारा] **भले, अच्छे, रुचिकर।** उ.—फेनी सेव अँदरसे प्यारे—३६६।

प्यारौ—वि. [हिं. प्यारा] (१) **प्रिय, प्रेमपात्र।** उ.—ब्राह्मन हरि हरि-भक्तनि प्यारौ—६-५। (२) **जिसे छोड़ा न जा सके, अत्यन्त प्रिय।** उ.—ठाढ़े बदत बात सब हलधर, माखन प्यारौ तोहि—१०-३७५।

प्याला—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **छोटा कटोरा।** (२) **भिक्षा-पात्र।**

प्यावत—क्रि. स. [हिं. प्यावना] **पान कराता है।** उ.—मधुपनि प्यावत परम चैन—१६७७।

प्यावन—संज्ञा पुं. [हिं. प्यावना] **पिलाना, पिलाने को।** उ.—(क) चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहू मैं। मनु मकरंद-बिंदु लै मधुकर, सुत-प्यावन-हित झूमै—१०-१७४। (ख) बकी कपट करि प्यावन आई—५३८।

प्यावना—क्रि. स. [हिं. पिलाना] **पान कराना।**

प्यास—संज्ञा स्त्री. [सं. पिपासा] (१) **जल पीने की इच्छा, तृष्णा, पिपासा।** (२) **प्रबल कामना।** उ.—कहै सूरदास, देखि नैनन की मिटी प्यास—८-५।

प्यासा—वि. [सं. पिपासित] (१) **जिसे प्यास लगी हो, तृषित।** (२) **तीव्र इच्छा रखनेवाला।**

प्यो—संज्ञा पुं. [हिं. पिय] (१) **पति।** (२) **प्रेमी।**

प्योसर, प्यौसर—संज्ञा पुं. [सं. पीयूष] **हाल की ब्याही गाय का दूध।** उ.—अति प्यौसर सरस बनाई। तिहिं सौंठ मिरिच रुचि नाई—१०-१८३।

प्योसार, प्योसारो, प्यौसार, प्यौसारौ—संज्ञा पुं. [सं. पितृशाला, हिं. प्योसार] **पिता-गृह, मायका, पीहर, नैहर।** उ. (क) परत फिराय पयोनिधि भीतर सरिता उलटि बहाई। मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्योसार पठाई—६-१२४। (ख) तजी लाज कुल-कानि लोक की, पति गुरुजन प्यौसारौ री। जिनकी सकुच देहरी दुर्लभ, तिनमैं मूड़ उघारौ री—१०-१३५।

प्रकंप, प्रकंपन—संज्ञा पुं. [सं.] **थरथराहट, कंपन।**

प्रकट—वि. [सं.] (१) **जो सामने आया या प्रत्यक्ष हुआ हो।** (२) **उत्पन्न।** (३) **स्पष्ट, व्यक्त।**

प्रकटित—वि. [सं.] **प्रकट किया हुआ।**

प्रकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **उत्पन्न करना** (२) **वाद-विवाद।** (३) **विषय, प्रसंग।** (४) **ग्रंथ का छोटा भाग।** (५) **रूपक के दस भेदों में एक।**

प्रकरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **एक तरह का गान** (२) **कार्य-सिद्धि के पाँच साधनों में एक (नाटक)।**

प्रकर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **उत्तमता।** (२) **अधिकता।**

प्रकांड—वि. [सं.] (१) बहुत बड़ा (२) बहुत विस्तृत ।

प्रकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भेद, किस्म । उ.—विस्वामित्र सिखाई बहु बिधि विद्या धनुष प्रकार—सारा. २०३ । (२) तरह, भाँति । (३) समानता, बराबरी ।
संज्ञा स्त्री. [सं. प्राकार] घेरा, परकोटा । उ.—जान्यौ नहीं निसाचर कौ छल, नाघ्यौ धनुष-प्रकार—९-८३ ।

प्रकारन—क्रि. वि. [हिं. प्रकार] अनेक प्रकार से । उ.—पेठा बहुत प्रकारन कीने—२३२१ ।

प्रकारौ—संज्ञा पुं. सवि. [सं. प्रकार](१) भेद से । (२) रीति से, भाँति से, तरह से । उ.—यह भव-जल कलि-मलहिं गहे है, बोरत सहस प्रकारौ—१-२०९ ।

प्रकाश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आलोक, ज्योति । (२) विकास, विस्तार । (३) प्रकट होना, दिखाई देना । (४) प्रसिद्धि । (५) स्पष्ट होना, समझ में आना । (६) हँसी-ठट्ठा । (७) ग्रंथ का छोटा भाग । (८) धप, घाम ।
वि.—(१) जगमगाता हुआ । (२) विकसित । (३) प्रकट । (४) प्रसिद्ध । (५) स्पष्ट ।

प्रकाशक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश करनेवाला । (२) प्रसिद्ध या प्रकट करनेवाला ।

प्रकाशन—संज्ञा पुं. [सं.] प्रकाशित करने का काम ।

प्रकाशित—वि. [सं.] (१) चमकता हुआ । (२) जो प्रकाश में आ चुका हो । (३) प्रकट, स्पष्ट ।

प्रकाश्य—क्रि. वि. [सं.] प्रकट रूप से, जो 'स्वगत' न हो ।

प्रकास—संज्ञा पुं. [सं. प्रकाश] (१) प्रकाश । (२) विस्तार, विकास । उ.—अबहीं हैं यह हाल करत है, दिन-दिन होत प्रकास—१०-६० ।

प्रकासत—क्रि. स. [सं. प्रकाश] (१) जलाता है । उ.—तेल-तूल-पावक-पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत । कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसें धौं तम नासत—२-२५ । (२) प्रकाश करता है, चमकता है । उ.—घन भीतर दामिनी प्रकासत, दामिनि घन चहुँ पास—१६३७ ।

प्रकासित—वि. [सं. प्रकाशित] (१) प्रकाशपूर्ण, चमकता हुआ । उ.—अंधकार अज्ञान हरन कौं, रवि-ससि जुगल-प्रकास । बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनायास—१-६० । (२) जिसमें से प्रकाश निकल रहा हो । (३) जिस पर प्रकाश पड़ रहा हो ।

प्रकासी—क्रि. स. [हिं. प्रकासना] प्रकट की, प्रकाशित की । उ.—हृदय कमल में ज्योति प्रकासी—३४०८ ।

प्रकास्यो—क्रि. स. [हिं. प्रकासना] प्रकट किया । उ.—जब हरि मुरली नाद प्रकास्यौ—पृ. ३४७ (५२) ।

प्रकीर्ण—वि. [सं.] (१) विस्तृत । (२) बिखरा हुआ । (३) मिश्रित, मिला हुआ । (४) अनेक प्रकार का ।

प्रकीर्णक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चँवर (२) अध्याय । (३) विस्तार । (४) स्फुट संग्रह ।

प्रकृत—वि. [सं.] (१) विशेष रूप से किया हुआ । (२) यथार्थ, सच्चा । (३) अविकृत । (४) स्वभाववाला ।

प्रकृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुण, स्वभाव । (२) प्राणी का स्वभाव । उ.—कोटि करौ तनु प्रकृति न जाइ—२६७६ । (३) आदत, बान । उ.—कहा गति प्रकृति परी हो कान्ह तुम्हारी बरत कहा कत राखत घेरे—१०३६ ।(४) जगत का उपादान कारण, कुदरत ।

प्रकृतिस्थ—वि. [सं.] जो स्वाभाविक स्थिति में हो ।

प्रकोट—संज्ञा पुं. [सं.] परकोटा, चहारदीवारी ।

प्रकोप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहुत क्रोध । (२) चंचलता ।

प्रकोपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तेजित करना । (२) क्षोभ ।

प्रकोष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोहनी के नीचे का भाग । (२) कोठा, कमरा । (३) बड़ा आँगन ।

प्रक्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] क्रिया, युक्ति ।

प्रक्षालन—संज्ञा पुं. [सं.] धोना ।

प्रक्षालित—वि. [सं.] धोया हुआ ।

प्रक्षिप्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फेंका हुआ । (२) पीछे या ऊपर से बढ़ाया या जोड़ा गया ।

प्रक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फेंकना । (२) मिलाना, बढ़ाना ।

प्रखर—वि. [सं.] (१) प्रचंड । (२) पैना, धारदार ।

प्रखरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रचंडता । (२) पैनापन ।

प्रख्यात—वि. [सं.] प्रसिद्धि, विख्याति ।

प्रख्याति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसिद्धि, विख्याति ।

प्रगट—वि. [सं. प्रकट] (१) जो सामने आया हो, जो प्रत्यक्ष हुआ हो । (२) उत्पन्न, आविर्भूत । उ.—भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खंभ तैं प्रगट ह्वै

जन छुड़ायौ—१-५। (३) **स्पष्ट या प्रत्यक्ष रूप से।** उ.—(क) हा जगदीस, राखि इहिं अवसर, प्रगट पुकारि कह्यौ—१-२४७। (ख) मोसौं कहि तू प्रगट बखान—१-२८६।

प्रगटन—संज्ञा पुं. [सं. प्रकटन] **प्रकट होने की क्रिया।**

प्रगटना—क्रि. अ. [सं. प्रकटन] **प्रकट होना।**

प्रगटाना—क्रि. स. [सं. प्रकटन] **प्रकट करना।**

प्रगटाने—क्रि. अ. [हिं. प्रगटना] **प्रकट या स्पष्ट हो गये।** उ.—सुनहु सूर लोचन बटमारी गुन जोइ सोइ प्रगटाने—पृ. ३२६ (५६)।

प्रगटान्यौ—क्रि. अ. [हिं. प्रगटना] **सामने आयी, व्यक्त हुई।** उ.—प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ। नैन-नैन कीन्हीं सब बातैं, गुप्त प्रीति प्रगटान्यौ।

प्रगटायो—क्रि. स. [हिं. प्रगटना] **प्रकट किया।** उ.—प्रेम प्रवाह प्रगट प्रगटायो होरी खेलन लागे—सारा. ३०६।

प्रगटावत—क्रि. स. [हिं. प्रगटाना] **प्रकट करते हैं।** उ.—बदन कमल उपमा यह साँची ता गुन को प्रगटावत—१६७६।

प्रगटि—क्रि. अ. [हिं. प्रगटना] **प्रत्यक्ष होकर।** उ.—माया प्रगटि सकल जग मोहै—१०-३।

प्रगटी—क्रि. अ. [हिं. प्रगटना] (१) **प्रसिद्ध हो गयी।** उ.—ब्रज घर घर प्रगटी यह बात—१०-२७२। (२) **उपजी, उत्पन्न हुई।** उ.—सूरदास कुंजनि तैं प्रगटी, चेरि सौत भई आइ—६५६।

प्रगटे—क्रि. अ. [हिं. प्रकटना] **प्रकट हुए, अवतरे।** उ.—संकट हरन-चरन हरि प्रगटे, बेद बिदित जस गावै—१-३१।

प्रगटैहै—क्रि. स. [हिं. प्रगटना] **प्रकट या जाहिर करेगी।** उ.—बिनु देखें तू कहा करैगी, सो कैसैं प्रगटैहै री—७११।

प्रगट्यौ—क्रि. अ. [हिं. प्रकटना] (१) **प्रकट हुआ, सामने आया, प्रत्यक्ष हुआ।** उ.—नहिं अस जनम बारंबार। पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर अवतार—१-८८। (२) **प्रसिद्ध हुआ, फैल गया।** उ.—सूरदास प्रभु कौ जस प्रगट्यौ, देवनि बंदि छुड़ाई—६-१४०।

प्रगल्भ—वि. [सं.] (१) **चतुर।** (२) **प्रतिभासंपन्न।** (३) **उत्साही।** (४) **निर्भय।** (५) **बकवादी, बातूनी।** (६) **धृष्ट, उद्धत।** (७) **अभिमानी।**

प्रगल्भता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **चतुरता।** (२) **प्रतिभा।** (३) **उत्साह।** (४) **निर्भयता।** (५) **बकवाद।** (६) **धृष्टता, उद्धतता।** (७) **अभिमान।**

प्रगसना—क्रि. अ. [सं. प्रकाश] **प्रकट होना।**

प्रगाढ़—वि. [सं.] (१) **बहुत अधिक।** (२) **बहुत गाढ़ा।**

प्रघटना—क्रि. अ. [हिं. प्रकटना] **प्रकट होना।**

प्रघट्टक—वि. [सं. प्रकट] **प्रकट या प्रकाशित करनेवाला।**

प्रचंड—वि. [सं.] (१) **बहुत तेज या तीखा।** (२) **बहुत वेगवान।** (३) **भयंकर।** (४) **कठोर** (५) **बलवान।**

प्रचंडता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **तेजी, तीखापन।** (२) **वेग।** (३) **भयंकरता** (४) **कठोरता।**

प्रचरना—क्रि. अ. [सं. प्रचार] **प्रचारित होना।**

प्रचलन—संज्ञा पुं. [सं.] **चलन, प्रचार।**

प्रचलित—वि. [सं.] **जिसका चलन हो।**

प्रचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चलन, रिवाज।** (२) **प्रसिद्ध।**

प्रचारक—वि. [सं.] **प्रचार करनेवाला।**

प्रचारना—क्रि. स. [सं. प्रचारण] (१) **प्रचार करना, फैलाना।** (२) **ललकारना, चुनौती देना।**

प्रचारि—क्रि. स. [हिं. प्रचारना] **ललकार कर, सामने बुला कर, चुनौती देकर।** उ.—(क) मारयौ ताहि प्रचारि हरि, सुर मन भयौ हुलास—१-११। (ख) एक समय सुर असुर प्रचारि। लरे, भई असुरनि की हारि—७-७।

प्रचारित—वि. [सं.] **जिसका प्रचार हुआ हो।**

प्रचारी—क्रि. अ. [हिं. प्रचारना] **ललकार कर।** उ.—उ.—प्रद्युम्न सकल विद्या समुझि नारि सों, असुर सों जुद्ध माँग्यौ प्रचारी—१० उ.—२५।

क्रि. स.—**प्रारम्भ किया।** उ.—वृच्छ पाषाण को जब वहाँ नाश भयो, मुष्टिका-युद्ध दोऊ प्रचारी—१० उ०-४५।

प्रचार्यौ—क्रि. स. [हिं. प्रचारना] **ललकारा, सामना करने के लिए बुलाया।** उ.—इंद्र आइ तब असुर प्रचार्यौ। कियौ जुद्ध पै असुर न हार्यौ।

प्रचालित—वि. [सं.] जिसका प्रचलन हुआ हो।
प्रचुर—वि. [सं.] बहुत, अधिक।
प्रचुरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अधिकता, विपुलता।
प्रचेता—वि. [सं.] चतुर, बुद्धिमान।
प्रच्छक—वि. [सं.] प्रश्न पूछनेवाला।
प्रच्छना—क्रि. स. [सं.] प्रश्न पूछना।
प्रच्छन्न—वि. [सं.] छिपा या ढका हुआ।
प्रच्छादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ढकने या छिपाने का भाव। (२) आँख का पलक। (३) ओढ़ने का वस्त्र।
प्रछालि—क्रि. वि. [सं. प्रक्षालन] प्रक्षालित करके, अच्छी तरह स्वच्छ करके। उ.—त्रियाचरित मतिमंत न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत—६-३१।
प्रजंक—संज्ञा पुं. [सं. प्रयंक] पलँग। उ.—षोड़स जुक्ति, जुवति चित षोड़स, षोड़स बरस निहारै। षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै छ-दस अंक फिरि डारै—१-६०।
प्रजंत—अव्य. [सं. पर्यंत] तक, लौं। उ.—(क) प्राचीन-बर्हि भूप इक भए। आयु प्रजंत जज्ञ तिन ठए—४-१२। (ख) नाभि प्रजंत नीर मैं ठाढ़ी, थर-थर अँग काँपति सुकुमारि—७८५।
प्रजनन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संतान उत्पन्न करना। (२) जन्म। (३) जन्म देनेवाला, जनक।
प्रजरना—क्रि. अ. [सं. प्र+हिं. जरना] जलना, दहकना।
प्रजरि—क्रि. अ. [हिं. प्रजरना] जलकर। उ.—बूड़ि न मुई नीर नैनन के, प्रेम न प्रजरि पची री—१० उ०—८६।
प्रजल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गप। (२) संलाप।
प्रजल्पन—संज्ञा पुं. [सं.] बातचीत।
प्रजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) संतान। (२) रियाया, रैयत। उ.—बसन ए नृपति के जासु के प्रजा तुम—२५८४। (३) छोटी जातियों के लोग जो वेतन न लेकर शुभ कार्यों में उपहार पाकर सेवा करते हैं।
प्रजापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सृष्टि का उत्पादक, सृष्टिकर्त्ता। पुराणों में इनकी संख्या कहीं दस और कहीं इक्कीस लिखी हुई है। (२) ब्रह्मा।
प्रजारन—संज्ञा पुं. [हिं. प्रजारना] अच्छी तरह जलाना, सुलगाना।
प्र०—प्रजारन लागे—जलाने लगे। उ.—सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे। मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे—६८६।
प्रजारना—क्रि. स. [सं. प्र+जारना] जलाना, सुलगाना।
प्रजुलित—वि. [सं. प्रज्वलित] जलता-दहकता हुआ।
प्रज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] ज्ञाता, विद्वान।
प्रज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] विद्वता, पांडित्य।
प्रज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बुद्धि। (२) सरस्वती।
प्रज्ञाचक्षु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञानी। (२) अंधा (व्यंग्य)।
प्रज्वलन—संज्ञा पुं. [सं.] जलना, सुलगना।
प्रज्वलित—वि. [सं.] (१) जलता हुआ। (२) स्पष्ट।
प्रण—संज्ञा पुं. [सं. पण] अटलनिश्चय, प्रतिज्ञा।
प्रणत—वि. [सं.] (१) बहुत झुका हुआ, नमित। (२) प्रणाम करता हुआ। (३) विनम्र, दीन।
संज्ञा पुं.—(१) सेवक। (२) भक्त, उपासक।
प्रणतपाल, प्रणतपालक—संज्ञा पुं. [सं.] दीनरक्षक। उ.—प्रणतपाल केशव करुणापति—६८२।
प्रणति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नम्रता। (२) विनती। (३) प्रणाम।
प्रणम्य—वि. [सं.] प्रणाम करने योग्य।
प्रणय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रेम। (२) विश्वास।
प्रणयन—संज्ञा पुं. [सं.] रचना, बनाना
प्रणयिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पत्नी। (२) प्रेमिका।
प्रणयी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रेमी। (२) पति।
प्रणव—संज्ञा पुं. [सं. प्रणय] (१) ओंकार मंत्र। (२) त्रिदेव।
प्रणवना—क्रि. स. [सं. प्रणमन] प्रणाम करना।
प्रणाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रीति, ढंग। (२) परंपरा।
प्रणिधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समाधि। (२) ध्यान।
प्रणिधि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुप्तचर। (२) निवेदन।
प्रणीत—वि. [सं.] (१) रचित। (२) संस्कृत।
प्रणेता—संज्ञा पुं. [सं. प्रणेतृ] रचयिता, कर्त्ता।
प्रतंचा—संज्ञा स्त्री. [हिं. प्रत्यंचा] धनुष की डोरी।
प्रतच्छ—वि. [सं. प्रत्यक्ष] प्रत्यक्ष या स्पष्ट। उ.—कौसिल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन-नीर ढरकाए।

विह्वल तन-मन, चकृत भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए—६-३१।

प्रताप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बल, साहस, पराक्रम, तेज**। उ.—जाकौं हरि अंगीकार कियौ। ताके कोटि विघन हरि हरि कै, अभै प्रताप दियौ—१-३८। (२) **महत्व, महिमा, महत्ता**। उ.—(क) सूरदास यह सकल समग्री प्रभु प्रताप पहिचानै—१-४०। (ख) सब हित-कारन देव, अभय-पद नाम प्रताप बढ़ायौ—१-१८८। (ग) छिनक भजन, संगति-प्रताप तैं, गज अरु ग्राह छुड़ायौ—१-१९०। (३) **पौरुष, वीरता**। उ.—तुम प्रताप-बल बदत न काहूँ, निडर भए घर-चेरे—१-१७०। (४) **ताप, तेज**। उ.—दिनकर महाप्रताप पुंज बर सबको तेज हरै—३३११।

प्रतापि, प्रतापी—वि. [हिं. प्रतापी] (१) **प्रतापवान, तेजस्वी**। उ.—धन्य पिता जापर परफुल्लित राघव भुजा अनूप। वा प्रतापि की मधुर बिलोकनि पर वारौं सब भूप—९-१३४। (२) **दुखदायी, सतानेवाला**।

प्रतारणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **ठगी, वंचकता**।

प्रतारित—वि. [सं.] **जो ठगा गया हो**।

प्रतिंचा—संज्ञा स्त्री. [सं. पतंच्चिका] **धनुष की डोरी**।

प्रति—अव्य. [सं.] (१) **हर एक, एक-एक, प्रत्येक**। उ.—अंग-अंग-प्रति छबि-तरंग-गति सूरदास क्यौं कहि आवै—१-६९। (२) **विरुद्ध, विपरीत**। (३) **सामने**। (४) **बदले में**। (५) **समान**। (६) **जोड़ी का**।

अव्य.—(१) **सामने**। (२) **ओर, तरफ**।

संज्ञा स्त्री.—(१) **नकल**। (२) **एक ही वस्तु का एक अदद**। (३) **प्रतिबिंब**। उ.—जैसे केहरि उझकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति १-३००।

प्रतिकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बदला**। (२) **चिकित्सा**।

प्रतिकूल—वि. [सं.] **विरुद्ध, विपरीत**।

प्रतिकूलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **विरोध, विपरीतता**।

प्रतिक्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बदला**। (२) **एक क्रिया के परिणाम या प्रत्युत्तर में होनेवाली क्रिया**।

प्रतिग्या—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिज्ञा] **प्रण, प्रतिज्ञा**।

प्रतिग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **स्वीकार, ग्रहण**। (२) **वह दान लेना जो विधिपूर्वक दिया जाय**। उ.—बहुत प्रतिग्रह लेत बिप्र जो जाय परत भव कूप—सारा. ३३८। (३) **अधिकार में लाना**। (४) **पाणि-ग्रहण**। (५) **ग्रहण**। (६) **स्वागत**। (७) **विरोध**।

प्रतिग्रही, प्रतिग्राही—वि. [सं. प्रतिग्रह] **दान लेनेवाला**।

प्रतिघात—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **आघात के बदले या उत्तर में किया गया आघात**। (२) **टक्कर**।

प्रतिघाती—वि. [सं. प्रतिघात] **प्रतिद्वंद्वी, शत्रु**।

प्रतिच्छा—संज्ञा [सं. प्रतीक्षा] **प्रतीक्षा**।

प्रतिच्छाया, प्रतिछाँईं, प्रतिछाँह, प्रतिछाया, प्रतिछाँही—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रतिच्छाया] (१) **चित्र**। (२) **प्रतिबिंब**।

प्रतिज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **प्रण**। उ.—जिन हरि शकट प्रलंब तृणावृत इन्द्र प्रतिज्ञा टाली—२५६७। (२) **शपथ**। (३) **अभियोग**। (४) **उस बात का कथन जिसे सिद्ध करना हो**।

प्रतिदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **लौटाना**। (२) **बदला**।

प्रतिदासी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **मूर्ति**। उ.—मानहु पाहन की प्रतिदासी नेक न इत उत डोलै—२२७५।

प्रतिद्वंद्व—संज्ञा पुं. [सं.] **बराबर वालों का झगड़ा**।

प्रतिद्वंद्वी—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिद्वंद्व] **शत्रु, विरोधी**।

प्रतिद्वंद्विता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **बराबर वालों की लड़ाई**।

प्रतिध्वनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **शब्द की गूँज**। (२) **दूसरों के भावों या विचारों की आवृत्ति**।

प्रतिनायक—संज्ञा. पुं. [सं.] **नायक का प्रतिद्वंद्वी पात्र**।

प्रतिनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रतिमा**। (२) **निर्वाचित व्यक्ति**।

प्रतिनिधित्व—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रतिनिधि होने का काम**।

प्रतिपक्ष, प्रतिपच्छ—संज्ञा पुं. [सं.] **शत्रु या विरोधी पक्ष**।

प्रतिपक्षी, प्रतिपच्छी—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिपक्ष] **शत्रु, विरोधी**।

प्रतिपदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पक्ष की पहली तिथि, परिवा**।

प्रतिपन्न—वि. [सं.] (१) **जाना हुआ**। (२) **स्वीकृत**। (३) **प्रमाणित, स्थापित**। (४) **सम्मानित**।

प्रतिपलिहौं—क्रि. स. [हि. प्रतिपालना] **पालन करूँगा,**

पालूँगा। उ.—तुम्हरैं चरन-कमल सुख-सागर, यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं—६-३५।

प्रतिपादक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कहने, समझाने या प्रतिपादन करनेवाला।** (२) **निर्वाह करनेवाला।** (३) **उत्पादक।**

प्रतिपादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **भलीभाँति समझाना।** (२) **प्रमाणपूर्वक कथन।** (३) **प्रमाण।** (४) **उत्पत्ति।**

प्रतिपादित—वि. [सं.] (१) **जिसे कहा-समझाया या प्रतिपादन किया गया हो।** (२) **प्रमाणित।** (३) **निरूपित।** (४) **प्रदत्त।**

प्रतिपाद्य—वि. [सं.] (१) **कहने, समझाने, या प्रतिपादन करने योग्य।** (२) **निरूपण के योग्य।** (३) **देने योग्य।**

प्रतिपार—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिपाल] **पालनकर्त्ता, रक्षक, पोषक।** उ.—यहै विचार करत निसि-बासर, येई हैं जन के प्रतिपार—४६७।

प्रतिपारी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. प्रतिपालना] **पालन की, पूर्ण की, (ठानी हुई बात या इच्छा) निभायी।** उ.—सदा सहाइ करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी—१-१६०।

प्रतिपारे—क्रि. स. [हिं. प्रतिपालना] (१) **पालन करके।** (२) **रक्षा करके, सुरक्षित रखकर।** उ.—बंधू करियौ राज सँभारे। राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे—६-५४।

प्रतिपार्‌यौ—क्रि. स. [हिं. प्रतिपालना] **रक्षा की, बचाया।** उ.—नृप-कन्या कौ व्रत प्रतिपार्‌यौ, कपट बेष इक धार्‌यौ—१-३१।

प्रतिपाल—संज्ञा पुं. [सं.] **रक्षक, पालक, पोषक।**

प्रतिपालक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पालन करनेवाले, पोषक।** (२) **रक्षक, संरक्षक।** उ.—गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत्र सौं, अतिहीं प्रेम बढ़ायौ। बालक प्रतिपालक तुम दोऊ, दसरथ लाड़ लड़ायौ—६-५५। (३) **राजा।**

प्रतिपालन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पालने की क्रिया या भाव, पालन-पोषण।** (२) **रक्षण।** (३) **निर्वाह।**

प्रतिपालना—क्रि. स. [सं. प्रतिपालना] **पालन-पोषण करना।** (२) **रक्षा करना।** (३) **निर्वाह करना।**

प्रतिपालित—वि. [सं.] (१) **पाला हुआ।** (२) **रक्षित।**

प्रतिपाली—क्रि. स. [हिं. प्रतिपालन] (१) **पालन-पोषण किया, रक्षा की।** उ.—तब ए बेली सींचि स्यामघन, अपनी करि प्रतिपाली—३२२८। (२) **निर्वाह किया।** उ.—धन्य सु गोकुल नारि सूर प्रभु प्रगट प्रीति प्रतिपाली—३५६७।

प्रतिपालैं—क्रि. स. [हिं. प्रतिपालना] **पालन करें, पालन-पोषण करें।** उ.—ताकी सवित पाइ हम करैं। प्रतिपालैं बहुरौ संहरैं—४-३।

प्रतिपाल्यौ—क्रि. स. [हिं. प्रतिपालना] **पालन किया, पाला-पोसा।** उ.—जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनै हैं। तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैं हैं—१-८६।

प्रतिफल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **परिणाम, नतीजा।** (२) **बदला, स्वार्थ।** उ.—औरौ सकल सुकृत श्रीपति-हित, प्रतिफल-रहित सुप्रीति—२-२-१२। (३) **प्रतिबिंब।**

प्रतिबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **रुकावट।** (२) **बाधा।**

प्रतिबंधक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **रुकावट डालनेवाला, बाधक।**

प्रतिबाद—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिवाद] (१) **विरोध, खंडन।** (२) **विवाद, विरोध, संघर्ष।** उ.—तुम्हें हमैं प्रतिबाद भए तैं गौरव काकौ गरतौ—१-२०३।

प्रतिबिंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **छाया, परछाईं।** उ.—किधौं यह प्रतिबिंब जल में देखत निज रूप दोउ हैं सुहाए—२५७०। (२) **प्रतिमा।** (३) **चित्र।** (४) **दर्पण।** (५) **झलक।**

प्रतिबिंबक—संज्ञा पुं. [सं.] **छायावत् पीछे चलनेवाला।**

प्रतिबिंबित—वि. [सं.] (१) **जिसकी छाया पड़ती हो।** (२) **जो छाया पड़ने से दिखायी देता हो।** (३) **जिसका आभास हो।**

प्रतिभट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **समान योद्धा।** (२) **शत्रु।**

प्रतिभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बुद्धि।** (२) **असाधारण बुद्धि-बल या योग्यता।** (३) **दीप्ति, चमक।**

प्रतिभावान्—वि. [सं.] (१) **प्रतिभाशाली।** (२) **चमकदार।**

प्रतिभासंपन्न—वि. [सं.] **प्रतिभा-शाली।**

प्रतिभास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आकृति।** (२) **भ्रम।**

प्रतिभू—संज्ञा पुं. [सं.] **जमानत में पड़नेवाला।**

प्रतिभौ—संज्ञा स्त्री. सवि. [सं. प्रतिभा] **कांति, दीप्ति, चमक या आभा भी।** उ.—सबनि सनेहौ छाँड़ि दयौ। हा जदुनाथ ! जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ—१-२६८।

प्रतिम—अव्य. [सं.] **समान, सदृश।**

प्रतिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **मूर्ति, चित्र, अनुकृति।** (२) **मिट्टी, धातु आदि की देवमूर्ति।** (३) **छाया।** (४) **चिन्ह, छाप।** उ.—यह सुनि धावत धरनि, चरन की प्रतिमा पथ मैं पाई। नैन-नीर रघुनाथ सानि सों, सिव ज्यौं गात चढ़ाई—९-६४।

प्रतिमान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रतिबिम्ब।** (२) **प्रतिनिधि।**

प्रतिमूर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रतिमा, मूर्ति, अनुकृति।**

प्रतियोगिता—संज्ञा स्त्री.[सं.](१)**प्रतिद्वंद्विता।** (२)**विरोध।**

प्रतियोगी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रतिद्वंद्वी।** (२) **शत्रु।**

प्रतिरूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चित्र।** (२) **प्रतिनिधि।**

प्रतिरोध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बाधा।** (२) **तिरस्कार।**

प्रतिलिपि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नकल, लेख की नकल।**

प्रतिलोम—वि. [सं.] (१) **प्रतिकूल।** (२) **उलटा।**

प्रतिलोम विवाह—संज्ञा पुं. [सं.] **विवाह जिसमें पुरुष नीच और स्त्री उच्च वर्ण की हो।**

प्रतिवस्तूपमा—संज्ञा पुं. [सं.] **एक काव्यालंकार।**

प्रतिवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **विरोध।** (२) **विवाद।**

प्रतिवादी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **विरोध या खंडन करने वाला।** (२) **तर्क या विवाद करनेवाला।** (३) **प्रतिपक्षी।**

प्रतिवेशी—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिवेशिन्] **पड़ोसी।**

प्रतिशोध—संज्ञा पुं. [सं. प्रति+शोध] **बदला।**

प्रतिश्रुत—वि. [सं.] **स्वीकार किया हुआ।**

प्रतिश्रुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **प्रतिज्ञा।** (२) **स्वीकृति।**

प्रतिषेध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मनाही।** (२) **खंडन।**

प्रतिष्ठ—वि. [सं.] (१) **प्रसिद्ध।** (२) **सम्मानित।**

प्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **स्थिति।** (२) **स्थापना, या प्रतिमा स्थापना।** (३) **मान-मर्यादा, गौरव।** (४) **प्रसिद्धि।** (५) **यश।** (६) **आदर-सत्कार।**

प्रतिष्ठान—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) **स्थापित करने की क्रिया।** (२) **देवमूर्ति-स्थापना।** (३) **स्थान।** (४) **पदवी।** (५) **व्रत आदि की समाप्ति पर किया गया कृत्य।**

प्रतिष्ठित—वि. [सं.] (१) **आदर-सम्मान-प्राप्त।** (२) **जिसकी प्रतिष्ठा या स्थापना की गयी हो।**

प्रतिस्पर्द्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **होड़, लागडांट, चढ़ा-ऊपरी।** (२) **झगड़ा।**

प्रतिस्पर्द्धी—वि. [सं. प्रतिस्पर्द्धा] (१) **होड़, लाग-डाँट रखनेवाला।** (२) **झगड़ालू, विद्रोही।**

प्रतिहंता—वि.[सं.प्रतिहंतृ](१) **बाधक।** (२) **मारनेवाला।**

प्रतिहत—वि. [सं.] (१) **रुका हुआ, अवरुद्ध।** (२) **हटाया हुआ।** (३) **फेंका या गिराया हुआ।** (४) **निराश।**

प्रतिहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **द्वारपाल, ड्योढ़ीदार।** उ.—(क) परम चतुर सुंदर सुजान सखि या तनु को प्रतिहार—२८८८। (ख) जुग जुग बिरद इहै चलि आयो भए बलि के द्वारे प्रतिहार—२६२०। (२) **द्वार, ड्योढ़ी।** (३) **एक राज कर्मचारी जो हर समय राजाओं के साथ रहकर उन्हें विभिन्न समाचार सुनाता था।** (४) **ऐंद्रजालिक, जादूगर।**

प्रतिहारी—संज्ञा पुं. [सं. प्रतिहारिन्] **द्वारपाल।**

प्रतिहिंसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **हिंसा के बदले की हिंसा।** (२) **बैर या बदला चुकाना।**

प्रतीक—वि. [सं.] (१) **विरुद्ध।** (२) **नीचे से ऊपर जानेवाला।**

संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चिन्ह।** (२) **अंग।** (३) **मुख।** (४) **आकृति, रूप।** (५) **वस्तु जिसमें दूसरी वस्तु का आरोप किया जाय।** (६) **प्रतिमा, मूर्ति।**

प्रतीकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बदला।** (२) **चिकित्सा।**

प्रतीकोपासना—संज्ञा स्त्री. [सं.] **विशेष पदार्थ, जैसे सूर्य, देवमूर्ति आदि में ब्रह्म का आरोप करके उसकी उपासना करना।**

प्रतीक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रतीक्षा करनेवाला।**

प्रतीक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आसरा, इंतजार।**

प्रतीचि, प्रतीची—संज्ञा स्त्री.[सं. प्रतीची] **पश्चिम दिशा।** उ.—प्राची और प्रतीचि उदीची और अवाची मान—सारा. ७७५।

प्रतीच्य—वि. [सं.] **पश्चिमी, पश्चिम-संबंधी।**

प्रतीत—वि. [सं.] (१) ज्ञात, विदित। (२) प्रसिद्ध।

प्रतीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ज्ञान, जानकारी। (२) दृढ़ निश्चय, विश्वास। उ.—नाम प्रतीति भई जा जन कौं, लै आनँद, दुख दूरि दह्यौ—२-८। (३) प्रसिद्धि, ख्याति।

प्रतीप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आशा के विरुद्ध फल या घटना। (२) एक अर्थालंकार।

वि.—विरुद्ध, विपरीत, उलटा।

प्रत्यंच, प्रत्यंचा—संज्ञा स्त्री. [सं. पतंचिका] धनुष की डोरी।

प्रत्यक्ष—वि. [सं.] (१) जो देखा जा सके। (२) जिसका ज्ञान इंद्रियों से हो सके। (३) प्रकट, स्पष्ट।

प्रत्यक्षता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रत्यक्ष होने का भाव।

प्रत्यक्षदर्शी—संज्ञा पुं. [सं. प्रत्यक्षदर्शिन्] साक्षी।

प्रत्यय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विश्वास। (२) प्रमाण। (३) विचार। (४) ज्ञान। (५) व्याख्या। (६) कारण। (७) लक्षण। (८) निर्णय। (९) सम्मति।

प्रत्याख्यान—संज्ञा पुं. [सं.] खंडन, निराकरण।

प्रत्यागत—संज्ञा पुं. [सं.] पैतरा, पेंच, दाँव।

वि.—जो लौट आया हो, वापस आया हुआ।

प्रत्यागमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वापसी। (२) पुनरागमन।

प्रत्याघात—संज्ञा पुं. [सं.] बदले का आघात या टक्कर।

प्रत्यावर्त्तन—संज्ञा पुं. [सं.] लौटना, वापस आना।

प्रत्याशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आशा, भरोसा।

प्रत्याहार—संज्ञा पुं. [सं.] योग के आठ अंगों में से एक जिसमें इंद्रियों को अन्य विषयों से हटाकर चित्त का अनुसरण किया जाता है। उ.—जम और नियम प्रान प्रत्याहार धारन ध्यान समाधि—सारा. ६०।

प्रत्युत—अव्य. [सं.] वरन्, इसके विरुद्ध, बल्कि।

प्रत्युत्तर—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तर का उत्तर।

प्रत्युत्पन्न—वि. [सं.] जो फिर से उत्पन्न हुआ हो।

प्रत्युत्पन्नमति—वि. [सं.] जो तुरंत उपयुक्त बात या काम करे।

संज्ञा स्त्री.—तुरंत उपयुक्त कार्य करने की बुद्धि।

प्रत्युपकार—संज्ञा पुं. [सं.] उपकार के बदले में उपकार।

प्रत्युष—संज्ञा पुं. [सं.] प्रभात, प्रातःकाल।

प्रत्यूह—संज्ञा पुं. [सं.] विघ्न-बाधा।

प्रत्येक—वि. [सं.] हर एक।

प्रथम—वि. [सं.] (१) पहला, जिसका स्थान पहले हो। उ.—जन के उपजत दुख किन काटत? जैसे प्रथम अषाढ़-आँजु-तृन, खेतिहर निरखि उपाटत—१-१०७। (२) सर्वश्रेष्ठ, सबसे उत्तम। उ.—मनसा करि सुमिर्यौ गज बपुरैं, ग्राह प्रथम गति पावै—१-१२२।

क्रि. वि. [सं.] सबसे पहले, आगे, आदि में। उ.—जिहिं सुत कैं हित बिमुख गोविंद तैं, प्रथम तिहीं मुख जार्यौ—१-३३६।

प्रथमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मदिरा। (२) कर्त्ताकारक।

प्रथमी—संज्ञा स्त्री. [सं. पृथ्वी] भू, भूमि।

प्रथमैं—क्रि. वि. [सं. प्रथम] सबसे पहले, सर्वप्रथम। उ.—प्रथमैं-चरन-कमल कौं ध्याव। तासु महातम मन मैं ल्यावै—१०-१८।

प्रथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रीति-रिवाज। (२) प्रसिद्धि।

प्रथित—वि. [सं.] विख्यात, प्रसिद्धि।

प्रथिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसिद्धि, ख्याति।

प्रथी—संज्ञा स्त्री. [सं. पृथ्वी] भू, भूमि।

प्रद—वि. [सं.] देनेवाला, दाता। उ.—कनक-बलय मुद्रिका मोदप्रद, सदा सुभग संतनि काजैं—१-६६।

प्रदच्छिण, प्रदच्छिन—संज्ञा पुं. [सं. प्रदक्षिणा] देवमूर्ति को दाहिनी ओर करके उसके चारों ओर घुमना, परिक्रमा, प्रदक्षिणा। उ.—हरि कह्यौ, राजहेत तप कियौ। ध्रुव, प्रसन्न ह्वै मैं तोंहिं दियौ। अरु तेरे हित कियौ अस्थान। देहिं प्रदच्छिन जहाँ ससि-भान—४-६।

प्रदच्छिणा, प्रदच्छिना—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रदक्षिणा] परिक्रमा।

प्रदच्छिनकारी—वि. [सं. प्रदक्षिण+हिं. कारी = करने वाला] प्रदक्षिणा करनेवाले, परिक्रमा करनेवाले। उ.—जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यौ, रबि-ससि किए प्रदच्छिनकारी—१-३४।

प्रदत्त—वि. [सं.] दिया हुआ, दिया गया।

प्रदर्शक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दिखलानेवाला। (२) देखने या दर्शन करने वाला, दर्शक। (२) गुरु।

प्रदर्शन—संज्ञा पुं. [सं.] दिखलाने का काम।

प्रदर्शनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नुमाइश।

प्रदर्शित—वि. [सं.] जो दिखलाया गया हो।

प्रदर्शी—संज्ञा पुं. [सं. प्रदर्शिन्] देखनेवाला, दर्शक।

प्रदाता—वि. [सं. प्रदातृ] देनेवाला, दाता।

प्रदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दान। (२) देने की क्रिया।

प्रदायक—वि. [सं.] देनेवाला, दाता।

प्रदायी—वि. [सं. प्रदायिन] देनेवाला, दाता।

प्रदीप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दीपक। (२) एक राग।

प्रदीपक—संज्ञा पुं. [सं.] प्रकाश में लानेवाला।

प्रदीपति—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रदीप्ति] (१) प्रकाश। (२) चमक।

प्रदीपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश करना। (१) चमकाना।

प्रदीप्त—वि. [सं.] (१) प्रकाशित। (२) चमकीला।

प्रदीप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रकाश। (२) चमक।

प्रदेश, प्रदेस—संज्ञा पुं. [सं. प्रदेश] (१) शरीर का अंग, अवयव। उ.—जानु सुजघन करभ-कर आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै—१-६६। (२) प्रांत, सूबा। (३) स्थान।

प्रदेशी, प्रदेशीय—वि. [सं. प्रदेशी] प्रदेश-संबंधी।

प्रदोष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संध्याकाल। (२) त्रयोदशी का व्रत जिसमें दिनभर व्रत करके शाम को शिव-पूजन के पश्चात् भोजन किया जाता है। (३) बड़ा दोष।

प्रद्युम्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामदेव। (२) श्रीकृष्ण का बड़ा पुत्र।

प्रद्योत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किरण। (२) चमक।

प्रधान—वि. [सं.] (१) मुख्य। उ.—तहाँ अवज्ञा नारि प्रधान—४-१२। (२) श्रेष्ठ।

संज्ञा पुं.—(१) नेता, मुखिया। (२) मंत्री।

प्रधानता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रधान होने का भाव।

प्रधानी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रधान] प्रधान का काम या पद।

प्रन—संज्ञा पुं. [सं. प्रण] दृढ़ निश्चय, प्रतिज्ञा।

प्रनत—वि. [सं. प्रणत] (१) नम्र, दीन। (२) झुका हुआ।

संज्ञा प्र.—(१) भक्त। (२) दास, सेवक।

प्रनति—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रणति] (१) नम्रता। (२) विनती।

प्रनमन—संज्ञा पुं. [सं. प्रणमन] झुकना, नमना।

प्रनमना—क्रि. स. [हिं. प्रणवना] प्रणाम करना।

प्रनय—संज्ञा पुं. [सं. प्रणय] प्रेम, प्रीति।

प्रनव—संज्ञा पुं. [सं. प्रणव] ओंकार मंत्र।

प्रनवना—क्रि. स. [हिं. प्रणवना] प्रमाण करना।

प्रनाम—संज्ञा पुं. [सं. प्रणाम] नमस्कार। उ.—सिव प्रनाम करि ढिग बैठाए—४-५।

प्रनामी—संज्ञा पुं. [सं. प्रणाम] प्रमाण करने वाला।

संज्ञा स्त्री.—गुरुदक्षिणा।

प्रनाली—संज्ञा स्त्री. [सं प्रणाली] रीति, प्रथा।

प्रनिपात—संज्ञा पुं. [सं. प्रणिपात] प्रणाम।

प्रपंच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाँच तत्वों का विस्तार, भवजाल। (२) विस्तार, फैलाव। (३) दुनिया का जंजाल (४) बखेड़ा, झंझट, झगड़ा। उ.—अति प्रपंच की मोट बाँधिकै अपनैं सीस धरी—१-१८४। (५) आडंबर, ढोंग, छल, धोखा। उ.—बहुत प्रपंच किये माया के, तऊ न अधम अघानौ—१-३२६।

प्रपंचन—संज्ञा पुं. [सं.] विस्तार करना।

प्रपंची—वि. [सं. प्रपंचिन्] छली, कपटी, ढोंगी।

प्रपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] अनन्य भक्ति।

प्रपन्न—वि. [सं.] शरणागत, आश्रित।

प्रपात—संज्ञा पुं. [सं.] झरना, निर्झर।

प्रपितामह—संज्ञा पुं. [सं.] परदादा।

प्रपुंज—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा समूह, भारी झुंड। उ.—बिकसत कमलावली, चले प्रपुंज-चंचरीक, गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज प्यारे—१०-२०५।

प्रपौत्र—संज्ञा पुं. [सं.] पुत्र का पौत्र।

प्रफुलना—क्रि. अ. [सं. प्रफुल्ल] फूलना।

प्रफुला—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रफुल्ल] (१) कुमुदिनी। (२) कमलिनी।

प्रफुलित—वि. [सं. प्रफुल्ल] (१) खिला हुआ, कुसुमित। उ.—तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान•••••• । जैसें कमल होत अति प्रफुलित, देखत दरसन भान—१-१६६। (२) प्रसन्न, प्रमुदित। उ.—गदगद बचन कहत मन प्रफु-लित बार-बार समुझैहौं—२६२३। (३) जो मुँदा न हो। (४) प्रसन्न, आनंदित।

प्रबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँधने की डोरी। (२) बाँधने

का क्रम या योजना। (३) **निबंध।** (४) **व्यवस्था।**

प्रबल—वि. [सं. (१) **बलवान, प्रचंड।** उ.—(क) कह करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ—१-४५। (ख) जीवन-श्रास प्रबल श्रुति देखी—१-२८४। (२) **तेज, उग्र।** उ.—परिहस सूल प्रबल निसि-बासर, तातैं यह कहि आवत। सूरदास गोपाल सरनगत भएँ न को गति पावत—१-१८१। (३) **घोर, महान्।**

प्रबाल—संज्ञा पुं. [सं. प्रवाल] (१) **मूँगा।** (२) **कोंपल।**

प्रबालिका—संज्ञा पुं. [सं. प्रवाल] **मूँगा, विद्रुम, प्रवाल।** उ.—गजमोतिन के चौक पुराए बिच-बिच लाल प्रबालिका—८०६।

प्रबास—संज्ञा पुं. [सं. प्रवास] **परदेस में रहना।**

प्रबाह—संज्ञा पुं. [सं. प्रवाह] **क्रम, तार, सिलसिला।** उ.—राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै। दुरजोधन कौ मान भंग करि बसन-प्रबाह भरै—१-३७।

प्रबिसना—क्रि. अ. [सं. प्रवेश] **प्रवेश करना, पैठना।**

प्रबीन—वि. [सं. प्रवीण] **चतुर।** उ.—चित दै सुनौ स्याम प्रबीन—३४५१।

प्रबीर—वि. [सं. प्रवीर] **भारी योद्धा।**

प्रबुद्ध—वि. [सं.] (१) **जागा हुआ।** (२) **सचेत।** (३) **सजग।** (४) **ज्ञानी।** (५) **विकसित।**

प्रबोध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जागना।** (२) **पूर्ण ज्ञान।** (३) **आश्वासन, ढाढ़स।** (४) **चेतावनी।** (५) **विकास।**

प्रबोधक—वि. [सं.] (१) **जगानेवाला।** (२) **चितावनी देनेवाला।** (३) **समझानेवाला।** (४) **सांत्वना देने वाला।**

प्रबोधत—क्रि. स. [हिं. प्रबोधना] (१) **समझाते-बुझाते हैं।** (२) **ढाढ़स बँधाते हैं, धीरज देते हैं।** उ.—जननी ब्याकुल देखि प्रबोधत, धीरज करि नीकैं जदुराई। सूर स्याम कौं नैंकु नहीं डर, जनि तू रोवै जसुमति माई—५४८।

प्रबोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जागरण।** (२) **बोध, चेत।** (३) **ज्ञान या बोध कराना।** (४) **विकास।** (५) **सांत्वना।**

प्रबोधना—क्रि. स. [सं. प्रबोधन] (१) **जगाना।** (२) **सजग या सचेत करना।** (३) **समझाना-बुझाना।** (४) **सिखाना-पढ़ाना।** (५) **धीरज देना।**

प्रबोधि—क्रि. स. [हिं. प्रबोधना] **समझा-बुझाकर।** उ.—ठानी कथा प्रबोधि तबहिं फिरि गोप समोधे—३४४३।

प्रबोधित—वि. [सं.] **जो प्रबोधा गया हो।**

प्रबोधे—क्रि. स. [हिं. प्रबोधे] **समझाया-बुझाया।** उ.—कै वह स्याम सिखाय प्रबोधे, कै वह बीच मरे—२६८२।

प्रभंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आँधी।** (२) **हवा।**

प्रभव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **जन्म।** (२) **सृष्टि।**

प्रभविष्णु—वि. [सं.] **प्रभावशील।**

प्रभा—संज्ञा स्त्री.[सं.] (१) **दीप्ति, आभा।** (२) **सूर्यबिंब।**

प्रभाउ—संज्ञा पुं. [सं. प्रभाव] (१) **सामर्थ्य, शक्ति।** उ.—जुद्ध न करौं, शस्त्र नहिं पकरौं, एक ओर सेना सिगरी। हरि-प्रभाउ राजा नहिं जान्यौ, कह्यौ सैन मोहिं देहु हरी—१-२६८। (२) **महत्व, माहात्म्य।**

प्रभाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सूर्य** (२) **चन्द्र।**

प्रभाकीट—संज्ञा पुं. [सं.] **जुगनू, खद्योत।**

प्रभात—संज्ञा पुं. [सं.] **सबेरा, प्रातःकाल।**

प्रभाती—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रातःकालीन एक गीत।**

प्रभाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सामर्थ्य, शक्ति।** उ.—भक्ति-प्रभाव सूर लखि पायौ, भजन-छाप नहिं पाई—१-६३। (२) **उद्भव, प्रादुर्भाव।** (३) **महिमा, माहात्म्य।** (४) **फल, परिणाम, असर।** (५) **साख, दबाव।** (६) **मन को किसी ओर प्रेरित कर देने का गुण।**

प्रभास—वि. [सं.] **प्रभापूर्ण।** उ.—अंग-अंग भूषन बिराजत कनक मुकुट प्रभास—१३५६।

संज्ञा पुं.–(१) **ज्योति।** (२)**गुजरात का एक तीर्थ।**

प्रभासन—संज्ञा पुं. [सं.] **ज्योति, आभा।**

प्रभासना—क्रि. अ. [सं. प्रभासिन] **दिखायी पड़ना।**

प्रभासु—संज्ञा पुं. [सं. प्रभास] **गुजरात का एक तीर्थ।** उ.—आय प्रभासु बिचु बहु जन को बहुतहिं दान देवाये—सारा. ८३६।

प्रभु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अधिपति।** (२) **स्वामी।** (३)

ईश्वर, भगवान । उ.—बिनु दीन्हैं ही देत सूर-प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं—१-३ । (४) **'महात्मा' के लिए संबोधन** ।

प्रभुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **महत्व, बड़ाई, महत्ता** । उ.—दूरि गयौ दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी—१-११५ । (२) **साहिबी, मालिकपन, प्रभुत्व** । उ.—प्रभु की प्रभुता यहै जु दीन सरन पावै—१-१२४ । (३) **शासनाधिकार** । (४) **वैभव** ।

प्रभुताई—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रभुता] (१) **बड़ाई, महत्व** । उ.—तौ क्यों तजै नाथ अपनौ प्रन ? है प्रभु की प्रभुताई—१-२०७ । (२) **वैभव** । उ.—सोवत मुदित भयौ सपने मैं, पाई निधि जो पराई । जागि परैं कछु हाथ न आयौ, यौं जग की प्रभुताई—१-१४७ ।

प्रभुत्व—संज्ञा पुं. [सं.] **अधिकार, वैभव, पद-मान** । उ.—जग-प्रभुत्व प्रभु ! देख्यौ जोइ । सपन-तुल्य छन-भंगुर सोइ—७-२ ।

प्रभुभक्त—वि. [सं.] **स्वामी का सच्चा सेवक** ।

प्रभू—संज्ञा पुं. [सं. प्रभु] (१) **स्वामी** (२) **ईश्वर** ।

प्रभूत—वि. [सं.] (१) **उत्पन्न** । (२) **बहुत अधिक** ।

प्रभूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **उत्पत्ति** । (२) **अधिकता** ।

प्रभृति—अव्य. [सं.] **आदि, इत्यादि** ।

प्रभेद—संज्ञा पुं. [सं.] **भेद, उपभेद** ।

प्रमत, प्रमत्त—वि. [सं. प्रमत्त] **उन्मत्त, प्रमत्त, मतवाला, मस्त** । उ.—तू कहाँ ढीठ, जोबन-प्रमत्त सुंदरी, फिरति इठलाति गोपाल आगैं—१०-३०७ ।

प्रमत्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] । (१) **मस्ती** । (२) **पागलपन** ।

प्रमदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सुंदरी, युवती** ।

प्रमाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सबूत** । (२) **एक अर्थालंकार** । (३) **सत्यता** । (४) **दृढ़ धारणा, निश्चय** । (५) **मान-आदर** । (६) **प्रामाणिक बात या वस्तु** । (७) **हद, सीमा, इयत्ता** । (८) **आदेशपत्र** ।

वि.—(१) **सत्य, प्रमाणित** । (२) **स्वीकार योग्य, मान्य** । (३) **परिमाण आदि में समान या बराबर** ।

अव्य.—**तक, पर्यन्त** ।

प्रमाणित—वि. [सं.] **प्रमाण से सिद्ध** ।

प्रमाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **भूल-चूक, भ्रम** । (२) **आलस्य** । (३) **अंतःकरण की दुर्बलता** ।

प्रमादी—वि. [सं. प्रमादिन्] **भूल-चूक करनेवाला** ।

प्रमान—संज्ञा पुं. [सं. प्रमाण] (१) **इयत्ता, हद, मान, सीमा** । उ.—हरि जू , मोसौ पतित न आन । मन-क्रम-वचन पाप जे कीन्हे, तिनकौ नाहिं प्रमान—१-१६७ । (२) **हद, मान, इयत्ता** । उ.—अतल, वितल अरु सुतल तलातल और महातल जान । पाताल और रसातल मिलि कै सातौ भुवन प्रमान—सारा. ३१ ।

वि.—**मानने योग्य, मान्य, स्वीकृत** । उ.—युग प्रमान कीन्हौं व्यवहार—१० उ.—१२६ ।

प्रमानना—क्रि. स. [सं. प्रमाण] (१) **सत्य या ठीक मानना** । (२) **सिद्ध या प्रमाणित करना** । (३) **निश्चित या स्थिर करना** ।

प्रमानी—वि. [सं. प्रामाणिक] **मान्य, मानने योग्य** ।

प्रमानो—क्रि. स. [हिं. प्रमानना] **सत्य मानो, ठीक समझो** । उ.—करो उपाय, बचो जो चाहो, मेरो बचन प्रमानो—सारा. ४८७ ।

प्रमान्यो, प्रमान्यौ—क्रि. स. [हिं. प्रमानना] **स्थिर या निश्चित किया, ठहराया** । उ.—जोगेस्वर बपु धारि हरि प्रगटे जोग समाधि प्रमान्यो—सारा. ३५१ ।

प्रमुख—क्रि. वि. [सं.] (१) **सामने, आगे** । (२) **तत्काल** ।

वि.—(१) **प्रथम** । (२) **मुख्य** । (३) **प्रतिष्ठित** ।

अव्य.—**और-और, इनके अतिरिक्त और, इत्यादि** । उ.—बंधुक सुमन अरुन पद पंकज, अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए—१०-१०४ ।

संज्ञा पुं.—(१) **आरंभ, आदि** । (२) **समूह** ।

प्रमुद—वि. [सं. प्रमुद्] **प्रसन्न, आनंदित** ।

प्रमुदा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रमदा] **राधा की एक सखी का नाम** । उ.—(क) स्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमना नारि—१५८० । (ख) सूर प्रभु स्याम सकुचि गए प्रमुदा धाम—२१५३ ।

प्रमुदित—वि. [सं.] **प्रसन्न, आनंदित** ।

प्रमोद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **हर्ष** । (२) **सुख** ।

प्रयंक—संज्ञा पुं. [सं. पर्यंक] **पलँग** ।

प्रयंत—अव्य.—[सं. पर्यंत] **तक, लौं** ।

प्रयत्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयास, चेष्टा। (२) वर्णोच्चारण में होने वाली क्रिया।

प्रयत्नवान—वि. [सं. प्रयत्नवान्] प्रयत्न में लगा हुआ।

प्रयाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनेक यज्ञों का स्थान। (२) एक प्रसिद्ध तीर्थ जो गंगा-यमुना के संगम पर है।

प्रयाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रस्थान। (२) चढ़ाई।

प्रयाणकाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यात्राकाल। (२) मृत्यु-काल।

प्रयान—संज्ञा पुं. [सं. प्रयाण] गमन, प्रस्थान, जाना।

प्रयास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयत्न, उद्योग। (२) श्रम, मेहनत। उ.—बिना प्रयास मारिहौं तोकौं आजु रैनिकै प्रात—६-७६। (३) इच्छा।

प्रयुक्त—वि. [सं.] (१) सम्मिलित। (२) जिसका खूब प्रयोग किया गया हो। (३) जो काम में लगाया गया हो।

प्रयोक्ता—संज्ञा पुं. [सं. प्रयोक्तृ] (१) प्रयोग या व्यवहार करनेवाला। (२) लगानेवाला। (३) सूत्रधार।

प्रयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी काम में लगना। (२) व्यवहार। (३) तांत्रिक साधन। (४) क्रिया का विधान। (५) अभिनय। (६) अनुष्ठान विधि।

प्रयोगी—संज्ञा पुं. [सं. प्रयोगिन्]प्रयोग करनेवाला।

प्रयोजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्य। (२) उद्देश्य, अभिप्राय। (३) उपयोग, व्यवहार।

प्ररोजना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रुचि बढ़ाना। (२) बढ़ावा।

प्रलंब—संज्ञा पुं. [सं.] प्रलंबासुर जो बलराम के हाथ से मारा गया था। गोपवेश में यह उनके साथ खेलने आया था। हारने पर बलराम को कंधे पर चढ़ा कर यह भागा। तभी उन्होंने इसे मार डाला। उ.—धेनुक और प्रलंब सँहारे संख-चूड बध कीन्हौं—सारा. ४७६।

वि.—(१) लटकता हुआ। (२) लंबा। (३) टँगा हुआ। (४) किसी ओर निकला हुआ। (५) शिथिल।

प्रलयंकर—वि. [सं.] प्रलयकारी।

प्रलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लय को प्राप्त होना, विलीन होना। उ.—सूरजदास अकाल प्रलय प्रभु मेटौ दास दिखाइ—६—११०। (२) संसार का तिरोभाव या नाश। (३) मूर्च्छा।

प्रलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बकना। (२) बकवाद। (३) बातचीत, वार्तालाप। उ.—विह्वल बिकल दीन दारिदबस करि प्रलाप रुक्मिनि समुझाये—१०-उ०—६२।

प्रलापी—वि. [सं. प्रलापिन्] व्यर्थ बकनेवाला।

प्रलोभन—संज्ञा पुं. [सं.] लोभ, लालच।

प्रलोभी—वि. [सं. प्रलोभिन्] लोभ में फँसनेवाला।

प्रवंचक—वि. [सं.] ठग, धूर्त, धोखेबाज।

प्रवंचना—संज्ञा स्त्री. [सं.] ठगी, धूर्तता।

प्रवक्ता—संज्ञा पुं. [सं. प्रवक्तृ] अच्छा वक्ता।

प्रवचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्याख्या। (२) उपदेश।

प्रवर—वि. [सं.] श्रेष्ठ, प्रधान।

प्रवर्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्यारंभ। (२) एक तरह के मेघ। उ.—अनिल वर्त, बज्रवर्त, प्रवर्त—१०-४४। (३) एक गोलाकार आभूषण।

प्रवर्तक—संज्ञा पुं. [सं. प्रवर्त्तक] (१) आरंभ करनेवाला (२) चलाने वाला, संचालक। (३) प्रेरित करनेवाला। (४) उसकानेवाला।

प्रवर्तन—संज्ञा पुं. [सं. प्रवर्त्तन] (१) कार्यारंभ। (२) संचालन। (३) उत्तेजना, प्रेरणा। (४) प्रवृत्ति।

प्रवर्तित—वि. [सं. प्रवर्तित] (१) आरंभ किया हुआ। (२) चलाया हुआ। (३) निकाला हुआ। (४) उत्पन्न। (५) प्रेरित, उत्तेजित।

प्रवर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वर्षा। (२) एक पर्वत।

प्रवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बातचीत, वार्तालाप। (२) जनश्रुति, जनरव। (३) झूठी बदनामी, अपवाद।

प्रवान—संज्ञा पुं. [सं. प्रमाण] प्रमाण।

प्रवाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूँगा। (२) कोंपल, किशलय। उ.—सिखि-सिखंड, बन-धातु बिराजत, सुमन सुगंध प्रवाल—४७८।

प्रवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विदेश। (२) विदेश-वास।

प्रवासन—संज्ञा पुं. [सं.] देश-निकाला।

प्रवासित—वि. [सं.] देश से निकाला हुआ।

प्रवासी—वि. [सं.] विदेश में रहनेवाला।

प्रवाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल की गति, बहाव। (२) धारा। (३) कार्य का चलते रहना। (४) झुकाव, प्रवृत्ति। (५) क्रम, तार, सिलसिला। उ.—(क) सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि बसन-प्रवाह बढ़ायौ—१-१०६। (ख) ऐसौ और कौन करुनामय बसन-प्रवाह बढ़ावै—१-१२२।

प्रवाहित—वि. [सं.] (१) बहाया हुआ। (२) ढोया हुआ।

प्रवाही—वि. [सं. प्रवाहिन्] बहने या बहानेवाला।

प्रविष्ट—वि. [सं.] घुसा या पैठा हुआ।

प्रविसना—क्रि. अ. [सं. प्रवेश] घुसना, पैठना।

प्रवीण, प्रवीन, प्रवीनै—वि. [सं.] निपुण, कुशल, दक्ष। उ.—अति है चतुर चातुरी जानत सकल कला जु प्रवीनै —पृ० ३३५ (४२)।

प्रवीणता, प्रवीनता—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रवीणता] चतुराई।

प्रवीर—वि. [सं.] भारी योद्धा, सुभट।

प्रवृत्त—वि. [सं.] (१) रत, तत्पर। (२) तैयार।

प्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बहाव, प्रवाह। (२) मन का झुकाव, रुचि, लगन। (३) वृत्तांत। (४) सांसारिक कार्यों या विषयों में लीनता।

प्रवेश, प्रवेशनि—संज्ञा पुं. [सं. प्रवेश] (१) घुसना, पैठना। उ.—सैसवता में ह्वै सखी जोबन कियो प्रवेश—२०६५। (२) गति, पहुँच। उ.—किधौं उहि देशन गवन मग छाँड़े, धरनि न बूँद प्रवेशनि—२८२४।

प्रवेशना, प्रवेसना—क्रि. अ. [सं. प्रवेश] प्रवेश करना।

प्रवेसि—क्रि. अ. [सं. प्रवेश] प्रविष्ट होकर। उ.—वृंदाबन प्रवेसि अघ मार्‌यौ, बालक जसुमति, तेरैं—४३२।

प्रवेशिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह पत्र, धन आदि जिसे दिखाकर या देकर प्रवेश किया जा सके।

प्रव्रज्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] संन्यास।

प्रव्राज—संज्ञा—पुं. [सं] संन्यास।

प्रशंस—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रशंसा] बड़ाई, प्रशंसा।

वि. [सं. प्रशंस्य] प्रशंसा के योग्य। उ.—एक मराल पीठि आरोहण विधि भयो प्रबल प्रशंस—२३४०।

प्रशंसक—वि. [सं.] (१) प्रशंसा करनेवाला। (२) खुशामदी।

प्रशंसन—संज्ञा पुं. [सं.] गुणकथन, बड़ाई, सराहना। (२) साधुवाद।

प्रशंसना—क्रि. स. [सं. प्रशंसन] तारीफ करना, सराहना।

प्रशंसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्तुति, बड़ाई, श्लाघा। उ.—उपजत छबि कर अधर शंख मिलि सुनियत शब्द प्रशंसा—२५६६।

प्रशंसित—वि. [सं.] सराहा हुआ। उ.—चहुँ दिसि चाँदनी चमू चली मनहु प्रशंसित पिक बर बानी—२३८३।

प्रशंसी—क्रि. स. [हिं. प्रशंसना] प्रशंसा की। उ.—(क) सूरदास प्रभु सब सुखदाता लै भुज बीच प्रशंसी—१६८५।

प्रशस्त—वि. [सं.] (१) प्रशंसनीय। (२) चौड़ा।

प्रशस्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रशंसा, स्तुति। (२) पत्र का सरनामा। (३) ताम्रपत्रादि जिन पर राजाओं की कीर्ति लिखी हो। (४) प्राचीन ग्रंथ के अंत का परिचायक विवरण।

प्रशांत—वि. [सं.] (१) स्थिर। (२) शांत।

प्रशाखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शाखा की शाखा।

प्रशासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्तव्य-शिक्षा। (२) शासन।

प्रश्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पूछताछ, सवाल। (२) पूछने की बात। (३) विचारणीय विषय।

प्रश्नोत्तर—संज्ञा पुं. [सं.] प्रश्न और उत्तर, संवाद।

प्रश्रय—संज्ञा पुं.—[सं.] (१) आश्रय स्थान। (२) सहारा, आधार। (३) विनय। (४) विशेष ध्यान।

प्रश्वास—संज्ञा पुं. [सं.] नथने से बाहर आनेवाली साँस।

प्रसंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संबंध, लगाव। (२) बात या विषय का संबंध। (३) स्त्री-पुरुष-संयोग। (४) अनुरक्ति। (५) बात, विषय। (६) उपयुक्त अवसर। उ.—तब तैं मैं सुधि कछू न पाई। बिनु प्रसंग तहँ गयौ न जाई—६-२१। (७) बात, वार्ता, विषय।

उ.—जौ अपनौ मन हरि सौं राँचै । आन उपाय-प्रसंग छाँड़ि कै, मन-बच-क्रम अनुसाँचै—१-८१ । (८) हेतु, कारण । (९) विस्तार, फैलाव ।

प्रसंसत—क्रि. स. [सं. प्रशंसना] प्रशंसा करते हैं । उ.—आपहुँ खात प्रसंसत आपुहिं, माखन रोटी बहुत पचौ—१०-१६८ ।

प्रसंसना—क्रि. स. [सं. प्रशंसन्] प्रशंसा करना ।

प्रसन्न—वि. [सं.] (१) संतुष्ट । (२) हर्षित, आनंदित । (३) अनुकूल (४) निर्मल, स्वच्छ ।
वि. [फ़ा. पसंद] पसंद, मनोनीत ।

प्रसन्नता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) संतोष । (२) हर्ष, आनंद । (३) कृपा, अनुग्रह । (४) निर्मलता, स्वच्छता ।

प्रसन्नमुख—वि. [सं.] जो सदा हँसता रहे ।

प्रसन्नात्मा—वि. [सं. प्रसन्नात्मन्] आनंदी, मनमौजी ।

प्रसन्नित—वि. [सं. प्रसन्न] हर्षित, आनंदित ।

प्रसरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ना, फैलना । (२) फैलाव, विस्तार । (३) काम में प्रवृत्त होना ।

प्रसरित—वि. [सं.] (१) फैला हुआ । (२) विस्तृत ।

प्रसव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बच्चा जनना । (२) जन्म, उत्पत्ति । (३) संतान । (४) वृद्धि । (५) विकास ।

प्रसविता—वि. [सं. प्रसवितृ] जन्म देनेवाला ।

प्रसविनी—वि. [सं.] जन्म देनेवाली, जननेवाली ।

प्रसाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रसन्नता । (२) कृपा, अनुग्रह । उ.—(क) मुक्ति मनोरथ मन मैं ल्यावै । मम प्रसाद तैं सो वह पावै—३-१३ । (ख) करहु मोहिं ब्रज रेनु देहु बृंदाबन बासा । माँगौं यहै प्रसाद और मेरैं नहिं आसा—४९२ । (३) निर्मलता । (४) वह वस्तु जो देवता पर चढ़ाई जाय । (५) वह पदार्थ जो आचार्य या गुरुजन, पूजन, यज्ञ आदि करके या प्रसन्न होकर भक्तों या सेवकों को दें । उ.—रिषि ता नृप सों जज्ञ करायो । दै प्रसाद यह बचन सुनायौ—६-५ । (६) देवता की जूठन जो भक्तों या सेवकों में बाँटी जाय । उ.—जूठन माँगि सूर जन लीन्हौ । बाँटि प्रसाद सबनि कौं दीन्हौ—३९६ । (७) भोजन (साधु) । (८) काव्य का एक गुण जिसमें भाषा प्रचलित, सरल और स्वच्छ रहती है । (९) कोमलावृत्ति । (१०) प्रासाद, महल ।

प्रसादना—क्रि. स. [सं. प्रसाद] प्रसन्न करना ।

प्रसादनीय—वि. [सं.] प्रसन्न करने योग्य ।

प्रसादी—वि. [सं. प्रसादिन्] (१) प्रसन्न करनेवाला । (२) प्रीति करनेवाला । (३) कृपालु । (४) शांत ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. प्रसाद] (१) देवी-देवता पर चढ़ाया गया पदार्थ । (२) नैवेद्य । (३) वह पदार्थ जो बड़े लोग छोटों को दें । (४) देवी-देवता की जूठन ।

प्रसाधक—वि. [सं.] वस्त्राभूषण पहनानेवाला ।

प्रसाधन—संज्ञा पुं. [सं.] शृंगार, सजावट ।

प्रसाधित—वि. [सं.] सजाया-सँवारा हुआ ।

प्रसार—संज्ञा पुं. [सं.] विस्तार, फैलाव, पसार ।

प्रसारित—वि. [सं.] पसारा या फैलाया हुआ ।

प्रसिद्ध—वि. [सं.] विख्यात, नामी ।

प्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] ख्याति, सुनाम ।

प्रसुप्त—वि. [सं.] (१) खूब सोया हुआ । (२) असावधान ।

प्रसू—संज्ञा स्त्री. [सं.] जननेवाली, जननी ।

प्रसूत—वि. [सं.] (१) उत्पन्न । (२) उत्पादक ।

प्रसूता—संज्ञा स्त्री. [सं.] जननेवाली, जच्चा, जननी ।

प्रसूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रसव (२) उत्पत्ति । (३) कारण । (४) संतति । (५) जच्चा । (६) उत्पत्ति स्थान ।

प्रसून—संज्ञा पुं. [सं.] फूल । उ.—सुनि सठनीति प्रसून-रस लंपट अबलनि को घाँचहि—३१४५ ।

प्रसृत—वि. [सं.] (१) फैला हुआ । (२) विकसित । (३) प्रेरित । (४) तत्पर । (५) प्रचलित ।

प्रसेद—संज्ञा पुं. [सं. प्रस्वेद] पसीना । उ.—तट बारू उपचार चूर जल पूर प्रसेद पनारी—२७२८ ।

प्रसेन, प्रसेनजित—संज्ञा पुं. [सं.] सत्राजित् का भाई जिसकी मणि के कारण श्रीकृष्ण को झूठा कलंक लगा था ।

प्रस्तर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पत्थर । (२) बिछावन ।

प्रस्ताव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रसंग, विषय, चर्चा । (२) (२) सभा में स्वीकृत मंतव्य । (३) भूमिका, पूर्व वक्तव्य ।

प्रस्तावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आरंभ। (२) पूर्व वक्तव्य, भूमिका। (३) नाटक के विषय आदि का परिचायक प्रसंग।

प्रस्तावित—वि. [सं.] जिसके लिए प्रस्ताव हुआ हो।

प्रस्तुत—वि. [सं.] (१) जिसकी चर्चा की गयी हो। (२) उपस्थित, जो सामने हो। (३) उद्यत, तैयार।

प्रस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] चौरस पहाड़ी भूमि।

प्रस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यात्रा, गमन, कूच। (२) ठीक मुहूर्त पर यात्रा न कर सकने पर वस्त्रादि यात्रा की दिशा में रखवा देने की क्रिया। (३) मार्ग।

प्रस्थानी—वि. [हिं. प्रस्थान] जानेवाला।

प्रस्न—संज्ञा पुं. [सं. प्रश्न] प्रश्न, सवाल।

प्रस्फुट—वि. [सं.] (१) खिला हुआ। (२) प्रकट।

प्रस्फुरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निकलना। (२) प्रकट या प्रकाशित होना।

प्रस्राव—संज्ञा पुं. [सं.] झरना, बहना, क्षरण।

प्रस्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] पसीना। उ.—नख छत सोनित प्रस्वेद गात तें चंदन गयो कछु छूटि—१६१२।

प्रहर—संज्ञा पुं. [सं.] पहर।

प्रहरखना—क्रि. अ. [सं. प्रहर्षण] आनंदित होना।

प्रहरी—संज्ञा पुं. [सं. प्रहरिन] (१) पहर-पहर पर घंटा बजानेवाला। (२) पहरा देनेवाला, पहरुआ।

प्रहलाद—संज्ञा पुं. [सं. प्रह्लाद] हिरण्यकशिपु का पुत्र।

प्रहर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनन्द। (२) एक अलंकार।

प्रहसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हास-परिहास। (२) हास्य-रस-प्रधान नाटक।

प्रहार—संज्ञा पुं. [सं.] वार, आघात, चोट।

प्रहारक—वि. [सं.] प्रहार करनेवाला।

प्रहारन—वि. [हिं. प्रहार] (१) प्रहार करनेवाला। (२) तोड़नेवाला। उ.—जानि लई मेरे जिय की उन गर्व-प्रहारन उनको नाऊँ—१६५४।

प्रहारना—क्रि. अ. [हिं. प्रहार] (१) मारना, आघात करना। (२) मारने को अस्त्रादि चलाना।

प्रहारित—वि. [सं. प्रहार] जिस पर प्रहार हो।

प्रहारि—क्रि. अ. [हिं. प्रहारना] मारकर। उ.—दैत्य प्रहारि पाप-फल प्रेरित, सिर-माला सिव-सीस चढ़ैहौं—६-१५७।

प्रहारी—वि. [सं. प्रहारिन्] (१) नष्ट करनेवाला, दूर करनेवाला, भंजन करनेवाला। उ.—(क) जाकौ बिरद है गर्व प्रहारी, सो कैसैं बिसरै—१-३७। (ख) सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मथुरा-गर्व-प्रहारी—१०-४। (२) मारनेवाला। (३) अस्त्र चलानेवाला।

प्रहारो—क्रि. अ. [हिं. प्रहारना] प्रहार करो। उ.—डारि-अगिन में शस्त्रनि मारो नाना भाँति प्रहारो—सारा. १२०।

प्रहारौं—क्रि. अ. [हिं. प्रहारना] मारूँ।

प्र०—प्रान प्रहारौं—प्राण दे दूँ। उ.—तब देवकी भई अति ब्याकुल कैसैं प्रान प्रहारौं—१०-४।

प्रहारौ—संज्ञा पुं. [सं. प्रहार] आघात, चोट। उ.—गोपाल सबनि प्यारौ, ताकौं तैं कीन्हौ प्रहारौ—३७३।

प्रहार्‌यौ—क्रि. अ. [हिं. प्रहारना] (१) नष्ट किया, (गर्व, मान आदि) तोड़ दिया। उ.—नृप-कन्या कौ ब्रत प्रतिधारयौ, कपट बेष इक धारयौ। तामैं प्रगट भए श्रीपति जू, अरिगन-गर्ब प्रहारयौ—१-३१। (२) मारा, आघात किया। उ.—डारि अगिनि मैं सस्त्रनि मारयौ, नाना भाँति प्रहारयौ। (३) मारने के लिए चलाया, फेंका। उ.—ऐरावत अमृत कैं प्याए। भयो सचेत इंद्र तब धाए। बृत्रासुर कौं बज्र प्रहारयौ। तिन त्रिसूल सुरपति कौं मारयौ—६-५।

प्रहास—संज्ञा पुं. [सं.] अट्टहास, ठहाका।

प्रहासी—वि. [सं. प्रहासिन्] खूब हँसने-हँसानेवाला।

प्रहेलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] पहेली, बुझौवल।

प्रह्लाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनंद। (२) हिरण्यकशिपु दैत्य का पुत्र जो विष्णु का भक्त था। पिता की विष्णु से शत्रुता थी; इसलिए पुत्र को उसने बहुत ताड़ना दी और उसके प्राण हरने के अनेक उपाय किये अंत में विष्णु ने नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को मार डाला और अपने भक्त की रक्षा की।

प्रांगण, प्रांगन—संज्ञा पुं. [सं. प्रांगण] आँगन, सहन।

प्रांजल—वि. [सं.] (१) सरल, सीधा। (२) सच्चा। (३) जो ऊँचा-नीचा न हो, समतल।

प्रांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अंत, सीमा** । (२) **किनारा, छोर** । (३) **ओर, तरफ** । (४) **प्रदेश, भू-भाग** ।
प्रांतिक, प्रांतीय—वि. [सं.] **प्रांत का, प्रांत संबंधी** ।
प्राकाम्य—संज्ञा स्त्री. [सं.] **आठ सिद्धियों में एक** ।
प्राकार—संज्ञा पुं. [सं.] **परकोटा, चहारदीवारी** ।
प्राकृत—वि. [सं.] (१) **प्रकृति-संबंधी** । (२) **स्वाभाविक, नैसर्गिक, सहज** । उ.—प्राकृत रूप धरयौ हरि छिन में सिसु ह्वै रोवन लागे—सारा. ३७० । (३) **साधारण** । (४) **लौकिक, भौतिक** ।
संज्ञा स्त्री.—(१) **बोलचाल की भाषा** । (२) **एक प्राचीन भाषा** ।
प्राकृतिक—वि. [सं.] (१) **प्रकृत से उत्पन्न** । (२) **प्रकृति-संबंधी** । (३) **सहज, स्वाभाविक, नैसर्गिक** । (४) **साधारण** । (५) **भौतिक, लौकिक** ।
प्राग—संज्ञा पुं. [सं. प्रयाग] **प्रयाग तीर्थ** । उ.—सुभ कुरुछेत्र, अजोध्या मिथिला प्राग त्रिबेनी न्हाये—सारा. ८२८ ।
प्राची—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पूर्व दिशा** । उ.—प्राची दिसा पेखि पूरन ससि ह्वै आयौ तन तातो—**१०उ०-१००** ।
प्राचीन—वि. [सं.] (१) **पूर्व देश का** । (२) **पुराना, पुरातन** । (३) **पहले का, पिछला** । उ.—ढूँढत फिरै न पूँछन पावै आपुन ग्रह प्राचीन—१० उ०-६६ । (४) **बूढ़ा** ।
प्राचीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पुरानापन** ।
प्राचीनबर्हि—संज्ञा पुं. [सं. प्राचीनबर्हिस] **एक प्राचीन राजा जो अग्निगोत्रीय थे और प्रजापति कहलाते थे** ।
प्राचीर—संज्ञा पुं. [सं.] **परकोटा, चहारदीवारी** ।
प्राचुर्य—संज्ञा पुं. [सं. प्राचुर्य्य] **अधिकता** ।
प्राच्य—वि. [सं.] (१) **पूर्व का, पूर्व-संबंधी, पूर्वीय** । (२) **पुराना, प्राचीन, पूर्वकालीन** ।
प्राज्ञ—वि. [सं.] (१) **बुद्धिमान** । (२) **पंडित, विज्ञ** ।
प्राण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वायु** । (२) **वायु जिससे मनुष्य जीवित रहता है** । (३) **साँस** । (४) **बल, शक्ति** । (५) **जीवन, जान** । उ.—प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्राण दह्यौ—२८०६ ।
मुहा०—प्राण उड़ जाना—(१) **होश-हवास न रहना** । (२) **डर जाना** । प्राण आना या प्राणों में प्राण आना—**चित्त कुछ ठिकाने होना, धीरज आना** । प्राण (प्राणों) का अधर या गले तक आना—**मरने पर होना** । उ.—प्रीतम प्यारे प्राण हमारे रहे अधर पर आइ—३०५६ । प्राण (प्राणों का) मुँह को आना—(१) **बहुत दुख होना** । (२) **मरने पर होना** । प्राण खाना—**बहुत तंग करना** । प्राण जाना (छूटना, निकलना)—**मरना** । प्राण डालना—**जीवन का संचार करना** । प्राण छोड़ना—(तजना, त्यागना, देना)—**मरना** । किसी के ऊपर प्राण देना—(१) **किसी के काम या व्यवहार से बहुत दुखी होकर मरना** । (२) **प्राणों से भी अधिक चाहना** । प्राण निकलना—(१) **मरना** । (२) **घबरा जाना** । प्राण पयान होना—**मरना** । प्राण पर आ पड़ना—**जीवन का संकट में पड़ जाना** । प्राण पर खेलना—**ऐसा काम करना जिसमें जान जाने का डर हो, पर इसकी परवाह न करना** । उ.—हमसों मिले बरस द्वादस दिन चारिक तुम सो तूठे । सूर आपने प्राणन खेलैं ऊधौ खेलैं रूठे । प्राण पर बीतना—(१) **जीवन संकट में पड़ना** । (२) **मर जाना** । प्राण बचाना—(१) **जान बचाना** । (२) **पीछा छुड़ाना** । प्राण मुट्ठी में (हथेली पर) लिये फिरना (रहना)—**जान की जरा भी परवाह न करना** । प्राण रखना—(१) **जिला देना** । (२) **जान बचाना** । प्राण हरना—(१) **मार डालना** । (२) **बहुत दुख देना** । प्राण हारना—(१) **मर जाना** । (२) **साहस न रहना** । प्राण हारति—**मर जाती है** । उ.—समुभत मीन नीर की बातैं, तऊ प्राण हठि हारति ।
(६) **परम प्रिय व्यक्ति** ।
प्राणअधार, प्राणअधारा—संज्ञा पुं. [सं. प्राण+आधार] (१) **परम प्रिय व्यक्ति** । उ.—(क) अब ही और की और होति कछु ...... तातें मैं पाती लिखी तुम प्राण अधारा । (ख) अपने ही गेह मधुपुरी आवन देवकी प्राण-अधारा हो । (२) **पति, स्वामी** ।
वि.—**प्रिय, प्यारा** ।
प्राणघात—संज्ञा पुं. [सं.] **हत्या, वध** ।

प्राणजीवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परम प्रिय व्यक्ति। (२) वह जो प्राण का आधार हो।

प्राणत्याग—संज्ञा पुं. [सं.] मर जाना।

प्राणदंड—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु का दंड।

प्राणदाता—संज्ञा पुं. [सं. प्राणदातृ] प्राण देनेवाला।

प्राणदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मरने या मारे जाने से बचाना। (२) प्राण देना।

प्राणधन, प्राणधनियाँ—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत प्रिय व्यक्ति। उ.—नेक रहौ माखन देउँ मेरे प्राणधनियाँ।

प्राणधारी—वि. [सं. प्राणधारिन्] (१) जीवित। (२) जो साँस लेता हो, चेतन।

प्राणनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रिय व्यक्ति, प्रियतम। (२) पति, स्वामी।

प्राणनाशक—वि. [सं.] प्राण लेनेवाला।

प्राणपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आत्मा। (२) हृदय। (३) पति, स्वामी। (४) प्रियतम। उ.—प्राणपति की निरखि सोभा पलक परन न देहिं।

प्राणप्यारा—संज्ञा पुं. [हिं. प्राण+प्यारा] (१) बहुत प्रिय व्यक्ति, प्रियतम। (२) पति, स्वामी।

प्राण-प्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्राण धारण कराना। (२) मंदिर में मंत्रोच्चार के साथ नयी मूर्ति की प्रतिष्ठा।

प्राणप्रद—वि. [सं.] (१) प्राणदायक। (२) स्वास्थ्यवर्द्धक।

प्राणप्रिय—वि. [सं.] परम प्रिय, प्रियतम।
संज्ञा पुं.—(१) बहुत प्यारा व्यक्ति। (२) पति।

प्राणबल्लभ—संज्ञा पुं. [सं. प्राणवल्लभ] प्रियतम, पति।

प्राणमय—वि. [सं.] जिसमें प्राण हों।

प्राणवल्लभ—संज्ञा पुं. [सं.] प्रियतम, पति।

प्राणवायु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्राण। उ.—प्राणवायु पुनि आइ समावै। ताकौं इत उत पवन चलावै। (२) जीव।

प्राणहंता—वि. [सं. प्राणहंतृ] प्राणघातक।

प्राणहारी—वि. [सं. प्राणहारिन्] प्राण हरनेवाला।

प्राणांत—संज्ञा पुं. [सं.] मरण, मृत्यु।

प्राणांतक—वि. [सं.] प्राण लेनेवाला।

प्राणात्मा—संज्ञा पुं. [सं. प्राणात्मन्] जीवात्मा, जीव।

प्राणाधार—वि. [सं.] अत्यंत प्रिय।
संज्ञा पुं.—(१) प्रियतम, प्रेमपात्र। (२) पति, स्वामी।

प्राणाधिक—वि. [सं.] प्राण से अधिक प्यारा।
संज्ञा पुं.—पति।

प्राणायाम—संज्ञा पुं. [सं.] योग के आठ अंगों में चौथा। इसमें श्वास-प्रश्वास की गतियों को धीरे-धीरे कम किया जाता है।

प्राणी—वि. [सं. प्राणिन्] जिसमें प्राण हों।
संज्ञा पुं.—(१) जीव। (२) मनुष्य। (३) व्यक्ति।

प्राणेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पति। (२) प्रिय।

प्राणेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पति। (२) प्रिय व्यक्ति।

प्रात—अव्य. [सं. प्रातः] सबेरे, तड़के। उ.—प्रात जो न्हात, अघ जात ताके सकल; ताहि जम दूत रहत हाथ जोरे—१-२२२।

प्रात, प्रातः—संज्ञा पुं. [सं. प्रातर्] प्रभात, तड़का।

प्रातःकालीन—वि. [सं.] प्रातःकाल-संबंधी।

प्रातःस्मरण, प्रातःस्मरणीय—वि. [सं.] प्रातःकाल स्मरण करने योग्य, पूज्य।

प्रातनाथ—संज्ञा पुं. [सं. प्रातः+नाथ] सूर्य।

प्राता—संज्ञा पुं. [सं. प्रातः] सबेरा, प्रभात। उ.—कहत आधे बचन भयौ प्राता—४४०।

प्राथमिक—वि. [सं.] (१) पहले का। (२) प्रारंभिक।

प्रादुर्भाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकट होना, अस्तित्व में आना। (२) उत्पत्ति। (३) विकास।

प्रादुर्भूत—वि. [सं.] (१) जो प्रकट हुआ हो, प्रकटित। (२) विकसित। (३) उत्पन्न।

प्रादेशिक—वि. [सं.] प्रदेश-संबंधी।

प्राधान्य—संज्ञा पुं. [सं.] प्रधानता, मुख्यता।

प्रान—संज्ञा पुं. [सं. प्राण] (१) प्राण। उ.—इनहीं मैं मेरे प्रान बसत हैं, तेरैं भाएँ नैंकु न माइ—७१०।
मुहा०—त्यागति प्रान—प्राण देने को तैयार है। उ.—त्यागति प्रान निरखि सायक धनु—१-२६।
(२) जीवन का आधार, जीने का सहारा। उ.—तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान—१-१६६।

प्रानजिवन—संज्ञा पुं. [सं. प्राणजीवन] (१) प्राणाधार।

(२) **परम प्रिय व्यक्ति**। उ.—(क) कहु री ! सुमति कहा तोहिं पलटी, प्रानजिवन कैसे बन जात—६-३८। (ख) आतुर ह्वै अब छाँड़ि कौसलपुर प्रान जीवन कित चलन चहत हैं।

प्रानपति—संज्ञा पुं. [सं. प्राणपति] (१) **पति, स्वामी**। (२) **प्रिय व्यक्ति, प्यारा, प्राणप्रिय**। उ.—(क) मम कुटुँब की कहा गति होइ। पुनि पुनि मूरख सोचै सोइ। काल तहीं तिहिं पकरि निकारयौ। सखा प्रानपति तउ न सँभारयौ—४-१२। (ख) सूर श्रीगोपाल की छबि दृष्टि भरि भरि लेहिं। प्रानपति की निरखि सोभा पलक परन न देहिं।

प्रानी—संज्ञा पुं. [हिं. प्राणी] (१) **जीव, जंतु**। (२) **मनुष्य**। उ.—सूरदास धनि धनि वह प्रानी, जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ—२-८।

प्रापति—संज्ञा स्त्री. [सं. प्राप्ति] (१) **उपलब्धि, प्राप्ति, मिलना**। उ.—(क) ताकौं हरि-पद-प्रापति होइ—१-२३०। (ख) त्रिबिधि भक्ति कहौं सुनि अब सोइ। जातैं हरि-पद प्रापति होइ—३-१३। (२) **पहुँच**।

प्रापना—क्रि. स. [सं. प्रापण] **मिलना, प्राप्त होना**।

प्राप्त—वि. [सं.] (१) **लब्ध**। (२) **उत्पन्न**। (३) **जो मिला हो**। (४) **समुपस्थित**।

प्राप्तयौवन—वि. [सं.] **युवक, जवान**।

प्राप्तव्य—वि. [सं.] **मिलनेवाला, प्राप्य**।

प्राप्ति, प्राप्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. प्राप्ति] (१) **उपलब्धि**। (२) **पहुँच** (३) **उदय**। (४) **भाग्य**। (५) **प्रवेश, प्रवृत्ति**। (६) **कंस की पत्नी का नाम जो जरासंध की पुत्री थी**। उ.—अस्ती अरु प्राप्ती दोउ पत्नी कंसराय की कहियत। जरासंध पै जाय पुकारी महाक्रोध मन दहियत—सारा. ५६६।

प्राप्य—वि. [सं.] (१) **पाने योग्य**। (२) **जो मिल सके**। (३) **जिस तक पहुँच हो सके**।

प्राबल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रबलता**। (२) **प्रधानता**।

प्रामाणिक—वि. [सं.] (१) **जो प्रमाण से सिद्ध हो**। (२) **माननीय**। (३) **सत्य**। (४) **शास्त्रसिद्ध**।

प्राय—वि. [सं.] (१) **समान**। (२) **लगभग**।

प्रायः—वि. [सं.] (१) **बहुधा**। (२) **लगभग**।

प्रायद्वीप—संज्ञा पुं. [सं. प्रायोद्वीप] **स्थल का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो**।

प्रायश्चित्त—संज्ञा पुं. [सं.] **वह कृत्य जिसके करने से पाप या दोष से मुक्ति मिल जाती है**।

प्रारंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **आरंभ**। (२) **आदि**।

प्रारंभिक—वि. [सं.] (१) **आरंभ का**। (२) **आदिम**।

प्रारब्ध—वि. [सं.] **आरंभ किया हुआ**।

संज्ञा पुं.—**भाग्य, किस्मत**।

प्रारब्धी—वि. [सं. प्रारब्धिन्] **भाग्यवान्**।

प्रार्थना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **याचना**। (२) **बिनती**।

क्रि. स.—**विनय या विनती करना**।

प्रार्थनीय—वि. [सं.] **प्रार्थना करने योग्य**।

प्रार्थी—वि. [सं. प्रार्थिन्] (१) **याचक**। **निवेदक**।

प्रालब्ध—संज्ञा पुं. [सं. प्रारब्ध] **भाग्य, किस्मत**।

प्रासंगिक—वि. [सं.] **प्रसंग का, प्रसंगागत**।

प्रासाद—संज्ञा पुं. [सं.] **बहुत बड़ा मकान, महल**।

प्रियंवद—वि. [सं.] **प्रिय बचन बोलनेवाला**।

प्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रेमी**। (२) **पति, स्वामी**।

वि.—(१) **प्यारा**। (२) **जो अच्छा लगे, मनोहर**।

प्रियतम—वि. [सं.] **प्राण से भी प्रिय, सबसे प्यारा**।

संज्ञा पुं.—(१) **प्रेमी**। (२) **पति, स्वामी**।

प्रियता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रिय होने का भाव**।

प्रियदर्शन—वि. [सं.] **देखने में सुन्दर, शुभदर्शन**।

प्रियदर्शी—वि. [सं.] **सबको प्रिय देखने-समझने वाला**।

प्रियपात्र—वि. [सं.] **जिससे प्रेम किया जाय**।

प्रियभाषी—वि. [सं. प्रियभाषिन्] **मीठी बात कहनेवाला**।

प्रियवक्ता—वि. [सं. प्रियवक्तृ] **मधुरभाषी**।

प्रियवर—वि. [सं.] **अति प्रिय**।

प्रियवादी—वि. [सं. प्रियवादिन्] **प्रिय बोलनेवाला**।

प्रियव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **स्वायंभुव मनु का एक पुत्र**। उ.—प्रियव्रत बंस धरेउ हरि निज बपु ऋषभदेव यह नाम—सारा. ८५। (२) **वह जिसे व्रत प्रिय हो**।

प्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **प्रेमिका**। (२) **पत्नी**।

प्रियौ—वि. [हिं. प्रिय] **प्रिय, प्यारी, रुचिकर**। उ.—आपुहिं खात प्रशंसत आपुहिं, माखन-रोटी बहुत प्रियौ—१०-१६८।

प्रीत—वि. [सं.] **प्रीतियुक्त, प्रेमपूर्ण ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रीति] **प्रेम, स्नेह ।**

प्रीतम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रेमी ।** (२) **पति ।**

प्रीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **तृप्ति ।** (२) **आनंद ।** (३) **प्रेम, स्नेह ।** उ.—तुम्हारी प्रीति हमारी सेवा गनियत नाहिंन कातें—२५२८ । (४) **कामदेव की एक पत्नी ।**

प्रीतिभोज—संज्ञा पुं. [सं.] **वह भोज जिसमें इष्टमित्र सप्रेम आमंत्रित हों ।**

प्रीतिरीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रेमपूर्ण व्यवहार ।**

प्रीती—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रीति] **प्रेम, प्रीति ।** उ.—सूरदास स्वामी सों छल सों, कही सकल व्रजप्रीती—२६४२ ।

प्रीते—वि. [सं. प्रीति] **प्यारे, प्रिय ।** उ.—सुफलकसुत लै गए दगा दै प्रानन ही के प्रीते—२४६३ ।

प्रीत्यो—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रीति] **प्रीति, प्रेम ।** उ.—बहुरि न जीवन-मरन सो साझो करी मधुप की प्रीत्यो—२८८४ ।

प्रेक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] **देखनेवाला, दर्शक ।**

प्रेक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] **देखने की क्रिया ।**

प्रेक्षणीय—वि. [सं.] **देखने के योग्य ।**

प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **देखना ।** (२) **विचार करना ।** (३) **नाच-तमाशा देखना ।** (४) **दृष्टि ।** (५) **बुद्धि ।**

प्रेक्षागार, प्रेक्षागृह—संज्ञा पुं. [सं.] **मंत्रणागृह ।**

प्रेत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मृतक प्राणी ।** (२) **एक कल्पित देवयोनि जिसका रंग काला और आकृति विकराल मानी जाती है ।** (३) **वह कल्पित शरीर जो मनुष्य को मरने के बाद मिलता है ।** उ.—घर की नारि बहुत हित जासौं रहति सदा सँग लागी । जा छन हंस तजी यह काया, प्रत प्रेत कहि भागी—१-७६ । (४) **नरक में रहनेवाला प्राणी ।** (५) **बहुत चालाक और कंजूस आदमी ।**

प्रेतगृह, प्रेतगेह—संज्ञा पुं. [सं. प्रेतगृह] **श्मशान ।**

प्रेतनी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रेत] **भूतनी, चुड़ैल ।**

प्रेतपावक—संज्ञा पुं. [सं.] **वह प्रकाश जो जंगलों-वनों में सहसा दिखायी देता और प्रेत-लीला समझा जाता है ।**

प्रेतिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रेत] **प्रेत की स्त्री ।**

प्रेती—संज्ञा पुं. [सं. प्रेत] **प्रेत-उपासक ।**

प्रेम—वि. [सं.] **प्रिय ।** उ.—मेरे लाल के प्रेम खिलौना ऐसौ को ले जैहै री—७११ ।

संज्ञा पुं.—(१) **प्रीति, अनुराग ।** उ.—सूरदास प्रभु बोलि न आयो प्रेम पुलकि सब गात—२५३१ । (२) **ममता ।** (३) **लोभ, माया ।**

प्रेमपात्र—संज्ञा पुं. [सं.] **वह जिससे प्रेम किया जाय ।**

प्रेमपुलक—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रेम-जनित रोमांच ।**

प्रेमा—संज्ञा पुं. [सं. प्रेमन्] (१) **स्नेह ।** (२) **स्नेही ।**

संज्ञा स्त्री.—**राधा की एक सखी का नाम ।** उ.—प्रेमा, दामा रूपा हंसा रंगा हरषा जाउ—१५८० ।

प्रेमातुर—वि. [प्रेम+आतुर] **प्रेम के कारण व्याकुल, प्रेम-पीड़ित ।** उ.—गोपीजन प्रेमातुर तिनकौं सुख दीन्हौं—८-३६४ ।

प्रेमालाप—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रेमपूर्ण संलाप ।**

प्रेमाश्रु—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रेम के आँसू ।**

प्रेमी—संज्ञा पुं. [सं. प्रेमिन्] (१) **अनुरागी** (२) **आसक्त।**

प्रेय—वि. [सं.] **प्रिय, प्यारा ।**

प्रेयस्—संज्ञा पुं. [सं.] **प्यारा व्यक्ति, प्रियतम ।**

प्रेयसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रेमिका ।**

प्रेरक—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रेरणा देनेवाला ।**

प्रेरणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रवृत्त या नियुक्त करने की क्रिया ।**

प्रेरना—क्रि. स. [सं. प्रेरणा] **प्रेरित करना ।**

प्रेरित—वि. [सं.] (१) **जो कोई कार्य करने को उत्साहित या प्रवृत्त किया गया हो ।** (२) **धकेला हुआ ।**

प्रेरै—क्रि. स. [सं. प्रेरणा] **प्रेरित करता है, प्रवृत्त करता है, कार्य-विशेष में लगाता है; उत्तेजना या उत्साह प्रदान करता है ।** उ.—मन बस होत नाहिंनै मेरैं । जिन बातनि तैं बह्यौ फिरत हौं, सोई लै लै प्रेरै—१-२०६ ।

प्रेर्यौ—क्रि. स. [सं. प्रेरणा] **प्रवृत्त किया, लगाया, बढ़ाया ।** उ.—भीषम ताहि देखि मुख फेर्यौ । पारथ जुद्ध-हेत रथ प्रेर्यौ—१-२७६ ।

प्रेषक—संज्ञा पुं. [सं.] **भेजनेवाला ।**

प्रेषण—संज्ञा पुं. [सं.] भेजना, रवाना करना।
प्रेषित—वि. [सं.] भेजा या रवाना किया हुआ।
प्रोक्त—वि. [सं.] कहा हुआ, दोहराया हुआ।
प्रोत—वि. [सं.] अच्छी तरह मिला या छिपा हुआ।
प्रोत्साह—संज्ञा पुं. [सं.] अधिक उत्साह या उमंग।
प्रोत्साहक—संज्ञा पुं. [सं.] उत्साह या उमंग बढ़ानेवाला।
प्रोत्साहन—संज्ञा पुं. [सं.] उत्साह या उमंग बढ़ाना।
प्रोत्साहित—वि. [सं.] जो उत्साह या उमंग से पूर्ण हो।
प्रोषित—वि. [सं.] विदेश गया हुआ, प्रवासी।
प्रोषितपतिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो पति के विदेश जाने से उसके विरह में दुखी हो।
प्रोषितभार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] वह नायक जो नायिका के विदेश जाने से उसके विरह में दुखी हो।
प्रौढ़—वि. [सं.] (१) खूब बढ़ा हुआ। (२) जिसकी युवावस्था समाप्ति पर हो। (३) पुष्ट, दृढ़। (४) गंभीर, गूढ़। (५) पुराना। (६) चतुर, निपुण।
प्रौढ़ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रौढ़ होने का भाव।
प्रौढ़त्व—संज्ञा पुं. [सं.] प्रौढ़ होने का भाव।
प्रौढ़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्त्री जिसकी युवावस्था समाप्ति पर हो। (२) काम-कला-निपुण नायिका।
प्रौढ़ोक्ति—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्यालंकार।
प्लक्ष, प्लच्छ—संज्ञा पुं. [सं. प्लक्ष] सात कल्पित द्वीपों में एक। उ.—जम्बू, प्लच्छ, क्रौंच, सराक साल्मलि, कुस, पुष्कर भरपूर—सारा. ३४।
प्लावन—संज्ञा पुं. [सं.] जल की बाढ़ या बहिया।
प्लीहा—संज्ञा स्त्री. [सं. प्लीहन्] पेट की तिल्ली।
प्लुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टेढ़ी चाल। (२) तीन मात्राओं का।

—फ—

फ—देवनागरी वर्णमाला का बाईसवाँ व्यंजन और पवर्ग का दूसरा वर्ण जिसका उच्चारण-स्थान ओष्ठ है।
फंका—संज्ञा पुं. [हिं. फाँकना] (१) कोई सूखा महीन चूर्ण लेकर फाँकने की क्रिया। (२) चूर्ण की एक बार में फाँकी जानेवाली मात्रा। (३) टुकड़ा, कतरा।
फंकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फंका] (१) फाँकने की क्रिया। (२) चूर्ण की मात्रा जो एक बार में फाँकी जाय।
फंग, फँग—संज्ञा पुं. [सं. बंध] (१) फंदा, बंधन। उ.—(क) सदा जाहु चोरटी भई, आजु परी फँग मोर—१०२३। (ख) दूरि करौं लँगराई वाकी, मेरे फंग जो परिहै—१२६४। (ग) अब तो स्याम परे फँग मेरे सूधे काहे न बोलत—१५१०। (घ) चतुर काम फँग परे कन्हाई अबधौं इनहिं बुझावै को री—१५६३। (ङ) मति कोई प्रीति के फंग परै—२८०८। (२) प्रीति या अनुराग का बंधन। उ.—(क) रैनि कहूँ फँग परे कन्हाई कहति सबै करि दौर—२०६०। (ख) कीधौं कतहूँ रमि रहे, फँग परे पराए—२१५६।
फंद—संज्ञा पुं. [सं. बंध, हिं. फंदा] (१) बंध, बंधन। उ.—(क) हमैं नन्दनन्दन मोल लिये। जम के फंद काटि मुकराये, अभय अजाद किये।—१-१७१। (ख) काटी न फंद मों अन्ध के अब विलंब कारन कवन—१-१५०। (ग) त्यागे भ्रम-फंद द्वंद निरखि के मुखारबिंद सूरदास अति अनंद मेटे दुख भारे। (२) रस्सी या बाल का फंदा, जाल, फाँस। उ.—(क) माधौ जी, मन सबही बिधि पोच।······लुबध्यौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौं, अवलोक्यौ नहिं फंद—१-१०२। (ख) हरि-पद-कमल को मकरन्द। मलिन मति मन मधुप परिहरि बिषय नीर-रस फंद। (ग) मनहुँ काम रचि फंद बनाए कारन नन्दकुमार—१०७६। (३) छल, धोखा। (४) भेद, रहस्य। (५) दुख, कष्ट। (६) नथ, बाली आदि की गूँज जिसमें काँटी फँसायी जाती है।
फंदत—क्रि. अ. [हिं. फंदना] फंदे में पड़ता है। उ.—चारौ कपट पांछ ज्यों फंदत—१०४२।
फंदन—संज्ञा पुं. बहु. सवि. [सं. बंध, हिं. फंदा] बंध, बंधन या फंदे में। उ.—(क) आरतिवंत सुनत गज-क्रंदन, फंदन काटि छुड़ायौ—१-१८८। (ख) कमल मध्य मनु द्वै खग खंजन बँधे आइ उड़ि फंदन—४७६।
फंदना—क्रि. अ. [हिं. फंदा] फंदे में पड़ना, फँसना। क्रि. स. [हिं. फाँदना] लाँघना, उल्लंघन करना।

फंदरा—संज्ञा पुं. [हिं. फंदा] **फंदा।**

फंदवार—वि. [हिं. फंदा] **फंदा लगानेवाला।**

फंदा—संज्ञा पुं. [सं. पाश या बंध] (१) **रस्सी, डोरी आदि का घेरा जो किसी को फँसाने के लिए बनाया गया हो, फनी, फाँद।** (२) **फाँस, जाल।** उ.—फंदा फाँसि कमान बान सों काहू देख्यो डारत मारी।

मुहा०—फंदा लगना—**धोखे में फँस जाना।** फंदा लगाना— (१) **फँसाने के लिए जाल फैलाना।** (२) **अपनी चाल में फँसाने का प्रयत्न करना।** फंदे में पड़ना। (१) **जाल में फँसना।** (२) **किसी के वश में होना।**

फँदाई—संज्ञा पुं. [हिं. फंदा] **पाश, फाँस, जाल।** उ.—मोह्यौ जाइ कनक-कामिनि-रस, ममता, मोह बढ़ाई। जिह्वा-स्वाद मीन ज्यों उरझ्यौ सूझी नहीं फँदाई—१-१४७।

फँदाना—क्रि. स. [हिं. फंदना] **जाल में फँसाना।**

क्रि. स. [हिं. फंदन] **कुदाना, उछालना।**

फँकाना—क्रि. अ. [अनु.] **हकलाना।**

फँसना—क्रि. स. [हिं. फाँस] (१) **बंधन या फंदे में पड़ना।** (२) **उलझना, अटकना।**

मुहा०—किसी से फँसना—**किसी से वासनायुक्त प्रेम होना।** बुरा फँसना।—**विपत्ति या झंझट में पड़ना।**

फँसरी—संज्ञा स्त्री. [सं. पाश, हिं. फँसना या फंदा] **फँदा, पाश, बंधन।** उ.—सूरदास तैं कछू सरी नहिं, परी काल-फँसरी—१-७१।

फँसाना—क्रि. स. [हिं. फँसाना] (१) **बंधन या फंदे में अटका लेना।** (२) **उलझाना, अटकाना।** (३) **अपने वश में करना।**

फँसिहारा—वि. [हिं. फाँस] **फँसा लेनेवाला।**

फँसिहारिनि—वि. स्त्री. [हिं. फँसिहारा] **फँसानेवाली।** उ.—फँसिहारिनि बटपारिनि हम भईं आपुन भये सुधर्मा भारी—११६०।

फक—वि. [सं. स्फटिक] (१) **सफेद।** (२) **बदरंग।**

मुहा०—चेहरा या रंग फक हो (पड़) जाना—**घबरा जाना।**

फकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फक] **दुर्दशा, दुर्गति।**

फकत—वि. [अ. फ़क़त] (१) **बस।** (२) **केवल।**

फकीर—संज्ञा [अ. फ़क़ीर] (१) **भिखमंगा, साधु।** (२) **साधु, संन्यासी।** (३) **ऐसा निर्धन जिसके पास कुछ न हो।**

फकीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फकीर] (१) **भिखमंगापन।** (२) **संन्यास, साधुता।** (३) **निर्धनता, गरीबी।**

फखर—संज्ञा पुं. [फ़ा. फ़ख] **गर्व, अभिमान।**

फग—संज्ञा पुं. [हिं. फंग] (१) **बंधन।** (२) **अनुराग।**

फगुआ—संज्ञा पुं. [हिं. फागुन] (१) **होली।** (२) **फागुन का आमोद-प्रमोद, रंग छिड़कना, गाली गाना आदि।** (३) **फागुन के अश्लील गीत।** (४) **फगुआ खेलने के उपलक्ष में दिया जानेवाला उपहार।** उ.—(क) अब काहे दुरि रहे साँवरे ढोटा फगुआ देहु हमार—२४०४। (ख) सूरदास प्रभु फगुआ दीजै चिरजीवौ राधा बर-जोरी—२८६४।

फगुआना—क्रि. अ. [हिं. फगुआ] **फागुन में रंग छिड़कना और अश्लील गीत गाकर आनंद मनाना।**

फगुनहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. फागुन] **फागुन की वर्षा।**

फगुहरा, फगुहारा—संज्ञा पुं. [हिं. फागुन+हारा] **फागुन का उत्सव मनाने, रंग खेलने और गीत गानेवाला।**

फजर—संज्ञा स्त्री. [अ.] **सबेरा, प्रातःकाल।**

फजल—संज्ञा स्त्री. [अ.] **कृपा, अनुग्रह।**

फजीहत—संज्ञा स्त्री. [अ.] **दुर्दशा, दुर्गति।**

फजूल—वि. [अ. फ़ुज़ूल] **व्यर्थ, बेकार।**

फट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **फैली और पतली चीज के हिलने, झटकने या गिरने का शब्द।**

मुहा०—फट से—**झट, तुरंत।**

फटक—संज्ञा पुं. [हिं. फटकना] **सूप जिसमें रखकर अनाज साफ किया जाय।** उ.—मूँग-मसूर उरद चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३९६।

संज्ञा पुं. [सं. स्फटिक, पा० फटिक] **स्फटिक।**

क्रि. वि.—**झट, तुरंत, तत्क्षण।**

फटकत—क्रि. स. [हिं. फटकना] (१) **फटफटाता है, 'फट-फट' शब्द करता है।** उ.—फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करत लराई। माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ,

कुसगुन बहुतक पाई—५४१। (२) **सूप से फटक कर अनाज साफ करता है**। उ.—झूठी बात तुसी सी बिन कन फटकत हाथ न आवै—३२८७।

फटकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. फटकना] **महीन या मिला हुआ अनाज और कूड़ा जो फटकने से बच जाय।**

क्रि. स.—**फेंकना, चलाना, मारना।**

प्र०—फटकन लग्यो—**मारने लगा**। उ.—बहुरि तरु लेहि पाषान फटकन लग्यौ हल मुसल करन परहार बाँके—१० उ०-४५।

फटकना—क्रि. स. [अनु. फट] (१) **फटफटाना, फटफट करना**। (२) **झटकना, पटकना, फेंकना**। (३) **फेंककर मारना**। (४) **सूप से फटककर साफ करना**।

मुहा०—फटकना-पछोरना—(१) **सूप से फटककर साफ करना**। (२) **जाँचना-परखना**।

(५) **रुई आदि को फटके से धुनना।**

क्रि. अ. [अनु.] (१) **जाना, पहुचाना**। (२) **दूर होना**। (३) **तड़फड़ाना**। (४) **हाथ-पैर मारना**।

फटका—संज्ञा पुं. [अनु.] **रुई धुनने की धुनकी**।

फटकाई—क्रि. स. [हिं. फटकाना] **फेंकी, दूर की**। उ.—मोकों जुरि मारन जब धाई तबहिं दीन्हीं गेंडुरि फटकाई।

फटकाना—क्रि. स. [हिं. फटकना] (१) **फटकने का काम कराना**। (२) **फेंक देना**।

फटकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. फटकारना] **झिड़की, दुतकार**।

फटकारना—क्रि. स. [अनु.] (१) **फेंक कर मारना**। (२) **झटका देकर हिलाना**। (३) **लेना, प्राप्त करना**। (४) **पटक-पटक कर धोना**। (५) **दूर फेंकना**। (६) **हटाना, अलग करना**। (७) **कड़ी और खरी बातें करना**।

फटकारी—क्रि. स. [हिं. फटकारना] **फेंक दी**। उ.—(क) खींच मरोरि दियौ कागासुर मेरैं ढिग फटकारी—१०-६०। (ख) जमुना दह गेंडुरि फटकारी फोरी सिर की गगरी।

फटकि—क्रि. स. [हिं. फटकना] (१) **सूप पर फटक कर साफ करके, कूड़ा कर्कट निकालकर**।

मुहा०—फटकि पछारी—**सूप पर फटक कर साफ की है**। उ.—मूँग, मसूर, उरद, चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३९६। फटकि पछोरे—**जाँच या परख कर**। उ.—तुम मधुकर निर्गुन निज नीके देखे फटकि पछोरे—३१७६। फटकि पिछोर्‌यौ—**छान-छूनकर या खोज-खाजकर गवाँ दी**। उ.—नाच कछ्यौ, अब घूँघट छोर्‌यौ, लोक-लाज सब फटकि पिछोर्‌यौ—१२०१।

(२) **फटफटाकर**। उ.—विषधर झटकी पूँछ, फटकि सहसौ फन काढ़ौ—५६।

(३) **फेंककर, चलाकर**। उ.—असुर गजरूढ़ है गदा मारे फटकि स्याम अंग लागि सो गिरे ऐसे—१० उ०-३१।

फटके—क्रि. अ. [हिं. फटकना] (१) **आये, लौटे**। उ.—मिले जाइ हरदी चूना त्यों फिरि न सूर फटके—पृ० ३३६ (५२)। (२) **दूर हुए, अलग हो गये**। उ.—ललित त्रिभंगी छबि पर अटके फटके मोसों तोरि—पृ० ३२२ (१४)।

फटकै—क्रि. स. [हिं. फटकना] **फटकता है**।

प्र०—भुस फटकै—**निरर्थक या मूर्खता का प्रयास करता है**। उ.—सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तुम्हारें हेति—३२५६।

फटक्यौ—क्रि. स. [हिं. फटकना] **फटका, झटका, फेंका**। उ.—(क) कंठ चाँपि बहु बार फिरायौ, गहि फटक्यौ, नृप पास पर्‌यौ—१०-५६। (ख) नेक फटक्यौ लात, सब्द भयौ आघात, गिर्‌यौ भहरात, सकटा सँहार्‌यौ।

फटत—क्रि. अ. [हिं. फटना] **फटता है, चिरता है, टूटता है**। उ.—चटचटात अँग फटत हैं, राखु राखु प्रभु मोहिं—५८६।

फटना—क्रि. अ. [हिं. फाड़ना] (१) **चिरना, खंडित होना, टूटना**।

मुहा०—छाती फटना—**बहुत दुख होना**। चित्त या मन फटना—**संबंध रखने को जी न चाहना**।

(२) **झटका लगने से अलग होना**। (३) **छिन्न-भिन्न हो जाना**। (४)। **अलग या पृथक् होना**, (५) **पानी और सार भाग अलग होना**। (६) **बहुत अधिक प्राप्त हो जाना**।

मुहा०—फट पड़ना—**अचानक आ जाना**।

(८) **बहुत अधिक पीड़ा होना**।

फटफट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) फटफट होना। (२) बकवाद।

फटफटाना—क्रि. स. [अनु.] (१) बकवाद करना। (२) फड़फड़ाना। (३) इधर-उधर घूमना। (४) हाथ-पैर मारना।

क्रि. अ.—फटफट शब्द होना।

फटा—संज्ञा पुं. [हिं. फटना] छेद, छिद्र।

फटि—क्रि. अ. [हिं. फटना] (१) फाड़कर, छिन्न-भिन्न, करके। उ.—मनहुँ मथत सुर सिंधु, फेन फटि, दयौ दिखाई पूरन चंद—१०-२०४। (२) चिरकर, फटकर। उ.—फटि तब खंभ भयौ द्वै फारि—७-२१।

फटिक—संज्ञा पुं. [सं. स्फटिक, पा. फटिक] एक प्रकार का पारदर्शक सफेद पत्थर, बिल्लौर। उ.—(क) ज्यौं गज फटिक सिला मैं देखत, दसननि डारत हति—१-२००। (ख) ऐसे कहत गए अ.ने पुर सबहिं बिलच्छण देख्यौ। मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यौ—(२) संगमरमर।

फटिकाई—क्रि. स. [हिं. फटकाना] फेंककर। उ.—मोक छुरि मारन जब आई तब दीनी गेंडुरि फटिकाई—८५६।

फट्यो—क्रि. अ. [हिं. फटना] टूक-टूक हुआ। उ.—यह सब दोष हमहिं लागत है बिछुरत फट्यौ न हियो—२६६२।

फड़—संज्ञा स्त्री. [सं. पण] (१) जुए का दाँव। (२) जुए का अड्डा। (३) माल खरीदने-बेचने का स्थान। (४) पक्ष, दल। (५) विवाह में वह अवसर जब लेन-देन चुकता हो।

फड़क—संज्ञा स्त्री. [अनु.] फड़कने की क्रिया या भाव।

मुहा०—फड़क उठना—उमंग में आना। फड़क उठना (जाना)—मुग्ध हो जाना।

फड़कन—संज्ञा स्त्री. [हिं. फड़कना] (१) फड़फड़ाहट। (२) धड़कन। (३) लालसा, उत्सुकता।

वि.—(१) तेज, चंचल। (२) भड़कनेवाला।

फड़कना—क्रि. अ. [अनु.] (१) फड़फड़ाना। (२) अंग या शरीर में गति या स्फुरण होना (३) हिलना-डोलना।

मुहा०—बोटी बोटी फड़कना—(१) बहुत चंचलता होना। (२) बड़ी उमंग होना।

(४) घबराना, व्याकुल होना। (५) पंख हिलना।

फड़काना—क्रि. स. [हिं. फड़कना] (१) हिलाना। (२) उमंग दिलाना।

फड़फड़ाना—क्रि. स. [अनु.] फड़फड़ करना।

क्रि. अ.—(१) फड़फड़ होना। (२) घबराना, तड़पना। (३) उमंग में होना, उत्सुक होना।

फड़ुआ, फड़ुहा—संज्ञा पुं. [हिं. फावड़ा] फावड़ा।

फड़ोलना—क्रि. स. [सं. स्फुरण] उलटना-पलटना।

फण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साँप का फन। (२) फंदा।

फणकर, फणधर—संज्ञा पुं. [सं.] साँप।

फणिक—संज्ञा पुं. [सं. फणी] साँप, नाग।

फणींद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शेषनाग। (२) वासुकि।

फणी—संज्ञा पुं. [सं. फणिन्] साँप।

फणीश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शेषनाग। (२) वासुकि।

फतवा—संज्ञा पुं. [अ. फ़तवा] आचार्य की धर्म-व्यवस्था।

फतह—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) विजय। (२) सफलता।

फतूह—संज्ञा स्त्री. [हिं. फतह का बहु.] (१) विजय। (२) लूट का माल।

फतूही—संज्ञा स्त्री. [अ.] एक तरह की सदरी।

फते, फतेह—संज्ञा स्त्री. [हिं. फतह] विजय, जीत।

फदकना—क्रि. अ. [अनु.] 'फदफद' करना।

फन—संज्ञा पुं. [सं. फण] साँप का फण। उ.—भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहस फन सेस कौ सीस काँप्यौ—९-१०६।

मुहा०—फन पीटना—बहुत हाथ-पैर मारना।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) गुण। (२) विद्या। (३) कला, दस्तकारी। (४) छलने का ढंग।

फनकना—क्रि. अ. [अनु.] 'फनफन' करना, फनफनाना।

फनकार—संज्ञा स्त्री. [अनु.] 'फनफन' होने की ध्वनि।

फनगना—क्रि. अ. [हिं. फुनगी] अंकुर निकलना, कल्ला फूटना।

फनना—क्रि. अ. [हिं. फानना] कार्यारंभ होना।

फनफनाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) 'फनफन' करना। (२) चंचलता से इधर-उधर हिलना-डोलना।

फनपति—संज्ञा पुं. [सं. फणि + पति = स्वामी] (१) **शेषनाग**। (२) **वासुकि**।

फनस—संज्ञा पुं. [सं. पनस, प्रा. फनस] **कटहल**।

फनिंग—संज्ञा पुं. [हिं. फणि + इंग] **साँप**।

फनिंगन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. फनिंग] **साँप**। उ.—कोकिल कीर कपोल किसलंता हाटक हंस फनिंगन की।

फनि—संज्ञा पुं. [सं. फणि] (१) **नाग**। (२) **कालियनाग**। उ.—सहसौ फन फनि फुंकरै, नैंकु न तिन्हैं बिकार—५८१।

फनिक, फनिग—संज्ञा पुं. [सं. फणिक] **साँप, सर्प**। उ.—नील पाट पिरोइ मनि-गन, फनिग धोखैं जाइ—१०-१७०।

फनिधर—संज्ञा पुं. [सं. फणिधर] **साँप**।

फनिपति—संज्ञा पुं. [सं. फणिपति] (१) **शेष**। (२) **वासुकि**।

फनियाला—संज्ञा पुं. [हिं. फणि + हिं. इयाला] **साँप**।

फनिराज—संज्ञा पुं. [सं. फणिराज] (१) **शेषनाग**। (२) **वासुकिनाग**।

फनींद्र—संज्ञा पुं. [सं. फणीन्द्र] (१) **शेषनाग**। उ.—जे नख-चन्द्र फनींद्र हृदय ते एकौ निमिष न टारत—१३४२। (२) **वासुकिनाग**।

फनी—संज्ञा पुं. [हिं. फणा] **शेषनाग**। उ.—कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी सहसफनी—२-२८।

फफदना—क्रि. अ. [अनु.] **बढ़ना, फैलना**।

फफसा—वि. [सं. फुप्फुस] (१) **पोला**। (२) **स्वादहीन**।

फफूँदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फुंदती] **साड़ी-बंधन, नीवी**।

संज्ञा स्त्री. [देश० भुकड़ी] **एक तरह की सफेद काई**।

फफोला—संज्ञा पुं. [सं. प्रस्फोट] **छाला, झलका**।

मुहा०—दिल का फफोला [के फफोले] फूटना—**जलन या क्रोध प्रकट होना**। दिल का फफोला [के फफोले] फोड़ना—**जलन या क्रोध प्रकट करना**।

फबकना—क्रि. अ. [अनु.] **फैलना, बढ़ना**।

फबति—क्रि. अ. [हिं. फबना] **भली लगती है**। उ.—फागुन में तो लखत न कोऊ फबति अचगरी भारी—२४२०।

फबती—संज्ञा स्त्री. [हिं. फबना] (१) **सारपूर्ण और समयानुकूल कथन**। (२) **व्यंग्य, चुटकी**।

मुहा०—फबती उड़ाना—**हँसी उड़ाना**। फबती कसना (कहना)—**हँसी उड़ाते हुए चुटकी लेना या व्यंग्य करना**।

क्रि. अ. [हिं. फबना] **शोभा देती है**। उ.—सदा चतुरई फबती नाहीं अति ही निफरि रही हौ—१५२७।

फबन—संज्ञा स्त्री. [हिं. फबना] **शोभा, छवि, सुंदरता**।

फबना—क्रि. अ. [सं. प्रभवन, प्रा. पभवन] **सुंदर या भला जान पड़ना, शोभा देना, सोहना**।

फबाना—क्रि. स. [हिं. फबना] **ऐसी जगह स्थापित करना या रखना कि सुंदर या भला जान पड़े**।

फबावत—क्रि. स. [हिं. फबाना] **भला जान पड़ता है**। उ.—कहाँ साँच मैं खोवत करते झूठे कहाँ फबावत।

फबि—संज्ञा स्त्री. [हिं. फबना] **छबि, शोभा, सुंदरता**।

क्रि. अ. [हिं. फबना] **शोभित है**। उ.—फबि रही मोर चन्द्रिका माथे छवि की उठत तरंग—१३५७।

फबी—क्रि. अ. [हिं. फबना] **भली लगी**। उ.—तब उलटी-पलटी फबी जब सिसु रहे कन्हाई—६१०।

फबीला—वि. [हिं. फबि + ईला] **सुंदर, शोभा देनेवाला**।

फर—संज्ञा पुं. [हिं. फल] (१) **वृक्ष का फल**। उ.—उचटत अति अंगार, फुटत फर, झटपट लपट कराल—६१५। (२) **डोंड़ी**। उ.—उड़िये उड़ी फिरति नैननि सँग, फर फूटे ज्यों आक रुई—१४३३। (३) **मुकाबला, सामना**। (४) **बिछौना**।

फरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. फड़क] (१) **फड़कने का भाव या क्रिया**। (२) **चपलता, चंचलता**।

क्रि. अ. [हिं. फड़कना] **फड़कती (है)**। उ.—धातन न घरति कान, तानति हैं भौंह-बान, तऊ न चलति बाम, अँखियाँ फरकि रही—२२३६।

संज्ञा पुं. [अ. फ़रक़] (१) **पृथकता**। (२) **दूरी**।

मुहा०—फरक फरक होना—**'हटो-बचो' होना**।

(३) **भेद, अंतर**। (४) **परायापन**। (५) **कमी**।

फरकत—क्रि. अ. [हिं. फड़कना] **फड़कता है**। उ.—कुच भुज अधर नयन फरकत हैं, बिनहिं बात अंचल ध्वज डोली।

फरकन—संज्ञा पुं. [हिं. फड़कना] (१) फड़कने की क्रिया या भाव, फड़क। (२) चपलता, चंचलता।

फरकना—क्रि. अ. [सं. स्फुरण] (१) अंग या शरीर फड़कना। (२) उमड़ना, स्फुरित होना। (३) उड़ना।

क्रि. अ. [हिं. फरक] अलग या पृथक् होना।

फरका—संज्ञा पुं. [सं. फलक] (१) छप्पर जो अलग छाकर बँडेर पर चढ़ाया जाय। (२) टट्टर जो द्वार पर लगाया जाता है।

फरकाइ—क्रि. स. [हिं. फड़काना] अंग या शरीर फड़काकर। उ.—अंग फरकाइ अलप मुसुकाने—१०-४६।

फरकाना—क्रि. स. [हिं. फड़काना] (१) अंग या शरीर हिलाना-डुलाना या संचालित करना। (२) बार-बार हिलाना, फड़फड़ाना।

क्रि. स. [हिं. फरक] अलग करना।

फरकावैं—क्रि. स. [हिं. फड़काना] फड़काते हैं, हिलाते हैं, संचालित करते हैं। उ.—कबहुं पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं—१०-४३।

फरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फरक] बाँस की तीली जिसमें लासा लगा कर पक्षी फँसाया जाता है।

फरके—क्रि. अ. [हिं. फड़कना] (शरीर के अवयव का सहसा) फड़कने लगे, उड़ने या फड़फड़ाने लगे। उ. —इतनौ कहत नैन उर फरके, सगुन जनायौ अंग—६-८३।

संज्ञा पुं. [हिं. फरका] द्वार का टट्टर। उ.— घर घर केरी फरके खोलें—२४३८।

फरकौ—संज्ञा पुं. [हिं. फरका] द्वार का टट्टर। उ.—नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति, बड़ो नाम है नन्द महर कौ। ताके पूत कहावत हौ तुम, चोरी करत उघारत फरकौ—१०-३३३।

फरचा—वि. [सं. स्पृश्य, प्रा. फरस्स] (१) जो जूठा न हो, शुद्ध। (२) साफ-सुथरा, स्वच्छ।

फरचाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. फरचा] (१) शुद्धता (२) स्वच्छता।

फरचाना—क्रि. स. [हिं. फरचा] शुद्ध या साफ करना।

फ़रजंद, फरजिंद—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पुत्र, बेटा।

फरजी—संज्ञा पुं. [फ़ा.] शतरंज का एक मोहरा।

वि.—नकली, बनावटी, जो असली न हो।

फरद—संज्ञा स्त्री. [अ. फ़र्द] (१) सूची, तालिका। उ. —माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध कौ, पोता-भजन भरावै। बट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तले लै डारै—१-१४२। (२) कपड़े का पल्ला। (३) रजाई आदि का पल्ला।

वि.—बेजोड़, अनुपम।

फरना—क्रि. अ. [सं. फल] फलना।

फरनि—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. फल] फलों से युक्त। उ.— जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी—१०-२४।

फरफंद—संज्ञा पुं. [अनु. फर + हिं. फंदा] (१) छल-कपट, दाँव-पेच। (२) नखरा, चोंचला।

फरफर—संज्ञा पुं. [अनु.] उड़ने-फड़कने का शब्द।

फरफराना—क्रि. अ. [अनु. फरफर] फड़फड़ाना।

क्रि. स.—(१) फड़फड़ करना। (२ फड़फड़ाना।

फरफराने—क्रि. अ. [हिं. फड़फड़ाना] तड़फड़ाये। उ.— कंस के प्रान भयभीत पिंजरा जैसे नव बिहंगम तैसे मरत फरफराने—२५६६।

फरफुन्दा—संज्ञा पुं. [अनु. फरफर] फतिंगा, कीड़ा।

फरमाँबरदार—वि. [फ़ा.] आज्ञाकारी।

फरमाइश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] आज्ञा, इच्छा।

फरमाइशी—वि. [फ़ा.] आज्ञा से तैयार।

फरमान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] राजकीय आज्ञापत्र।

फरमाना—क्रि. स. [फ़ा.] कहना, आज्ञा देना।

फरश—संज्ञा पुं. [अ.] (१) बिछाने का वस्त्र, बिछावन। (२) समतल भूमि। (३) गच।

फरशबंद—वि. [फ़ा.] जहाँ फरश बना हो।

फरशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] गुड़गुड़ी।

फरसा—संज्ञा पुं. [सं. परशु] एक तरह की कुल्हाड़ी।

फरहर—वि. [सं. स्फार, प्रा. फार] (१) अलग-अलग। (२) साफ, स्पष्ट। (३) निर्मल। (४) प्रसन्न।

फरहरना—क्रि. अ. [अनु. फरहर] (१) फरकना, फरफराना। (२) उड़ना, फहराना।

फरहरा—संज्ञा पुं. [हिं. फहराना] झंडा, पताका।

वि. [हिं. फरहर] (१) स्पष्ट। (२) शुद्ध। (३) प्रसन्न।

फरहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फल+हरा] फल।

फरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक प्रकार का व्यंजन।

फराए—क्र. स. [हि. फलना] फलाये, फल उत्पन्न किये, फल लगाये। उ.—सूर. स्याम जुवतिनि व्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराए—७८४।

फराक—संज्ञा पुं. [फ़ा फराख] मैदान।

वि.—लंबा चौड़ा, विस्तृत।

फराकत—वि. [फ़ा. फ़राख़] लंबा चौड़ा, विस्तृत।

संज्ञा स्त्री. [अ. फ़रागत] (१) छुट्टी। (२) निश्चितता।

फरामोश—वि. [फ़ा.] भूला हुआ, विस्मृत।

फरार—वि. [अ.] जो भाग गया हो।

फरिका—संज्ञा पुं. [हि. फरका] (१) अलग छाया गया छप्पर। (२) द्वार का टट्टर।

फरिकै—संज्ञा पुं. सवि. [हि. फरका] द्वार के टट्टर को। उ.—लरत निकसी सबै तोरि फरिकै—पृ. ३३६ (६०)।

फरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. फरना] एक प्रकार का लहँगा-नुमा कपड़ा जो सामने सिला नहीं रहता और जिसे स्त्रियाँ और लड़कियाँ कमर में बाँधती हैं। उ.—(क) सारी चीरि नई फरिया लै, अपने हाथ बनाइ। अंचल सौं मुख पोंछि अंग सब, आपुहि लै पहिराइ—७०४। (ख) नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठ रुचिर झकझोरी।

फरियाद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) शिकायत। (२) प्रार्थना।

फरियादी—वि. [फ़ा.] फरियाद करनेवाला।

फरियाना—क्रि. स. [सं. फलीकरण] (१) भूसी आदि साफ करना। (२) साफ करना। (३) निपटाना।

क्रि. अ.—(१) छँटकर अलग होना। (२) साफ होना (३) तय होना। (४) दिखायी पड़ना।

फरिश्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) देवदूत। (२) देवता।

फरी—क्रि. अ. [हिं. फलना] फल से युक्त हुई, फली। उ.—जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी—१०-२४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. फली] फली। उ.—पोई परवर फाँग फरी चुनि—२३२१।

फरीक—संज्ञा पुं. [अ.] (१) विपक्षी। (२) तरफदार।

फरुई, फरुही—संज्ञा स्त्री. [हिं. फावड़ा] छोटा फावड़ा।

फरुहरि, फरुहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फुरहरी] कँपकँपी, फुरेरी।

फरेंद, फरेंदा—संज्ञा पुं. [सं. फलेंद] बड़ी जामुन।

फरे—क्रि. अ. [हिं. फलना] फले, फलयुक्त हुए। उ.—फूले फरे तरुवर आनँद लहर के—१०-३४।

फरेब—संज्ञा पुं. [फ़ा.] छल-कपट।

फरेरा—संज्ञा पुं. [हिं. फरहरा] पताका, झंडा।

फरेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फल] जंगली फल।

फरै—क्रि. अ. [हिं. फलना] फलता है, फल लगते हैं। उ.—(क) तरुवर फूलैं, फरैं, पतझरैं, अपने कालहिं पाइ—१-२६५। (ख) जंबू बृच्छ कहो क्यों लंपट फल बर अंबु फरै—३३११।

फरोख्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] बिक्री, विक्रय।

फर्‍यौ—क्रि. स. [हिं. फलना] फला (है)। उ.—नैन भर व्रत फलहिं देखौ, फर्‍यौ है द्रुम डार—७८६।

फर्ज—संज्ञा पुं. [अ. फ़र्ज़] (१) धर्म-कर्म। (२) कर्तव्य। (३) उत्तरदायित्व। (४) मान लेना, कल्पना।

फर्जी—वि. [हिं. फर्ज] (१) माना हुआ। (२) नाम मात्र का।

फर्द—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. फ़र्द] (१) सूची। (२) रजाई का पल्ला।

फर्राटा—संज्ञा पुं. [अनु.] वेग, तेजी।

मुहा०—फर्राटा भरना (मारना)—तेजी से दौड़ना।

फर्राश—संज्ञा पुं. [अ.] नौकर, सेवक।

फर्राशी—वि. [फ़ा.] फर्राश से संबंधित।

यौ०—फर्राशी पंखा—हाथ का बहुत बड़ा पंखा।

फर्श—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) बिछावन। (२) गच।

फलक—संज्ञा पुं. [फ़ा. फ़लक] आकाश, अंतरिक्ष।

फल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लताओं और पेड़-पौधों में लगने वाला वह पोषक द्रव्य जिसमें गूदा, रस और बीज आदि रहते हैं और जो फूलों के बाद उत्पन्न होता है। उ.—भिल्लिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे—१-२५। (२) लाभ। (३) प्रयत्न या क्रिया का परिणाम, नतीजा।

मुहा०—फल चखाना—मजा चखाना, दंड देना। फल चखैहौं—दंड दूँगा, मजा चखाऊँगा। उ.—यह हित मनै कहत सूरज-प्रभु इहिं कृतिकौ फल तुरत चखैहौं—७-५। फल देना—मजा चखाना, दंड देना। फल देहिंगी—मजा चखाएँगी, दंड देंगी। उ.—लालन हमहिं करे जो हाल उहै फल देहिंगी हो—२४१६। फल पाना—दंड पाना, मजा चखना। फल पैहैं—दंड पायेंगे। उ.—कितक ब्रज के लोग, रिस करत निहिं जोग, गिरि लियो भोग, फल तुरत पैहैं—६४४।

(४) शुभ अशुभ कर्मों के सुखद-दुखद परिणाम। उ.—(क) बालक ध्रुव वन करत गहन तप ताहि तुरत फल देहौं। (ख) जा दिन संत पाहुने आवत। तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत—२-१७। (ग) सिव-संकर हमकौं फल दीन्हौं—७६८। (घ) मुँह माँगे फल जो तुम पावहु तौ तुम मानहु मोहिं—६१५। (५) गुण, प्रभाव। (६) शुभ कर्मों के चार परिणाम—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उ.—होइ अटल जगदीस भजन में सेवा तासु चारि फल पावै। (७) बदला, प्रतिफल। (८) बाण, छुरी आदि का अगला भाग। (९) हल का फाल। (१०) फलक। (११) उद्देश्य-सिद्धि। (१२) गणित की क्रिया का परिणाम।

फलक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पटल। (२) चादर।
संज्ञा पुं. [अ.] (१) आकाश। (२) स्वर्ग।

फलकना—क्रि. अ. [अनु.] छलकना, उमँगना।

फलका—संज्ञा पुं. [हिं. फोला] छाला, फफोला।

फलतः—अव्य. [सं.] फल या परिणामस्वरूप।

फलद—वि. [सं.] फल देनेवाला।

फलदान—संज्ञा पुं. [हिं. फल+दान] विवाह की रीति जिसमें धन, मिठाई आदि भेजकर वर को कन्या के लिए निश्चित किया जाता है।

फलना—क्रि. अ. [हिं. फल] (१) फल से युक्त होना। (२) लाभ-दायक होना।

मुहा०—फलना-फूलना—(१) मनोरथ पूर्ण होना। (२) सुखी होना। (३) धन-संतान से पूर्ण होना।

फलयोग—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक में नायक के उद्देश्य की सिद्धि या फल की प्राप्ति का स्थल।

फलहार—संज्ञा पुं. [सं. फलाहार] फलों का आहार।

फलहरी, फलहारी—वि. [सं. फलाहार] जिसमें अनाज न हो।

फलाँ—वि. [फ़ा. फ़लाँ] अमुक।

फलाँग—संज्ञा स्त्री. [सं. प्लवन या प्रलंघन] (१) कूद, कुदान, चौकड़ी। उ.—गर्भवती हिरनी तहँ आई। पानी सो पीवन नहिं पाई। सुनि कै सिंह भयान अवाज। मारि फलाँग चली सो भाग—५-३। (२) वह दूरी जो फलाँग से तै की जाय।

फलाँगना—क्रि. अ. [हिं. फलाँग] कूदना-फाँदना।

फलादेश—संज्ञा पुं. [सं.] (ग्रह आदि का) फल बताना।

फलाना—क्रि. स. [हिं. फलना] फलने को प्रवृत करना।
संज्ञा पुं. [हिं. फलाँ] अमुक।

फलार—संज्ञा पुं. [सं. फलाहार] फल का आहार।

फलार्थी—वि. [सं. फलर्थिन्] फल चाहनेवाला।

फलाहार—संज्ञा पुं. [सं.] फलों का ही आहार।

फलाहारी—वि. [सं. फलाहार] (१) फल ही खानेवाला। (२) जो (भोजन) फलों का हो, अनाज का न हो।

फलित—वि. [सं.] (१) फला हुआ। उ.—फल फलित होत फल-रूप जानैं—१-१०४२। (२) संपन्न, पूर्ण।

फलिहै—क्रि. स. [हिं. फलाना] फल देगा। उ.—विष के बृच्छ बिषहिं बिष फलिहै—१०४२।

फली—संज्ञा स्त्री. [हिं. फल] पौधों के वे लंबे चिपटे फल जिनमें गूदा-रस न होकर बीज होते हैं। उ.—फली अगस्त्य करी अमृत सम—२३२१।
क्रि. स. [हिं. फलना] फल निकले। उ.—वह रितु अमृत लता सुनि सूरज अब बिष फलनि फली—२७३४।

फलीता—संज्ञा पुं. [अ. फतीला] पलीता, बत्ती।

फलीभूत—वि. [सं.] फल या लाभदायक।

फलेंदा, फलेंद्र—संज्ञा पुं. [सं. फलेंद्र] बड़ा जामुन।

फले—क्रि. अ. [हिं. फलना] फलीभूत हुए। उ.—यहै कहत सब जात परस्पर, सुकृत हमारे प्रगट फले—६८३।

फल्यो, फल्यौ—क्रि. अ. [हिं. फलना] फला, फलीभूत हुआ।

प्र०—फल्यो बिहाने [प्रातःकाल]—कल ही पूजा की थी, प्रातः होते ही उसका फल मिल गया (व्यंग्य)। उ.—कालिहि पूज्यो फल्यो बिहाने—१०५१।

फसकड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. फँसना+कड़ी] पालथी।

फसकना—क्रि. अ. [अनु.] कुछ कुछ फटना, मसकना।

वि.—जो जल्दी फट या मसक जाय।

फसल—संज्ञा स्त्री. [अ. फ़स्ल] (१) मौसम, ऋतु। (२) समय। (३) खेत की उपज। (४) अन्न की उपज।

फसली—वि. [हिं. फसल] ऋतु-संबंधी।

फसाद—संज्ञा पुं. [अ.] (१) बलवा, विद्रोह। (२) ऊधम, उपद्रव। (३) झगड़ा, लड़ाई। (४) विवाद।

फसादी—वि. [फ़ा.] (१) उपद्रवी। (२) झगड़ालू।

फस्द—संज्ञा स्त्री. [अ. फ़स्द] नस काट कर, दूषित रक्त निकालने की क्रिया।

फहम—संज्ञा स्त्री. [अ.] समझ, विवेक।

फहरना—क्रि. अ. [सं. प्रसरण] उड़ना, फड़फड़ाना।

फहरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. फहरना] फहरने की क्रिया या भाव। उ.—न्यौछावर अंचल की फहरनि अर्ध नैन जलधार घनी—१४५६।

फहरात—क्रि. अ. [हिं. फहराना] फहराता है, उड़ता या हिलता है। उ.—(क) स्वेत छत्र फहरात सीस पर, मनौ लच्छि कौ बंध—६-७५। (ख) कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत बसन फहरात—२५३६।

फहरान—संज्ञा स्त्री. [हिं. फहराना] फहरने की क्रिया।

फहराना—क्रि. स. [सं. प्रसारण] उड़ाना, हवा में हिलाना।

क्रि. अ.—फहरना, हवा में हिलना।

फहरानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. फहरान] फहराने की क्रिया या भाव। उ.—(क) वा पट पीत की फहरानि। कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरत वह बानि—१-२७९। (ख) पीत पट फहरानि मानो लहरि उठत अपार—१३५६।

फहरावत—क्रि. स. [हिं. फहराना] वायु में फड़फड़ाता या उड़ता है। उ.—आजु हरि धेनु चराए आवत। मोर मुकुट बनमाल बिराजत, पीतांबर फहरावत—४६१।

फहरावै—क्रि. अ. [हिं. फहरना] उड़ता या फड़फड़ाता है। उ.—मोर मुकुट कुंडल बनमाला पीतांबर फहरावै—८४०।

फहरैहैं—क्रि. स. [हिं. फहराना] उड़ायेंगे। उ.—सूरदास प्रभु नवल कान्ह वर पीतांबर फहरैहैं—१२७७।

फहरैहै—क्रि. अ. [हिं. फहरना] फहरेगी, हवा में उड़े या हिलेगी। उ.—जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैं, बिमल ध्वजा रथ पर फहरैहै—९-८१।

फाँक—संज्ञा स्त्री. [सं. फलक] (१) कटा हुआ टुकड़ा, खंड। (२) टुकड़े में बाँटनेवाली लकीर।

फाँकड़ा—वि. [देश.] (१)बाँका-तिरछा। (२) मजबूत।

फाँकना—क्रि. स. [हिं. फाँका] फंकी मार कर खाना।

मुहा०—धूल फाँकना—मारे-मारे घूमना।

फाँका—संज्ञा पुं. [हिं. फेंकना] (१) फका। (२) एक फंके में आनेवाली वस्तु।

फाँकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फाँक] फाँक।

फाँकौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. फाँक] फाँक, टुकड़ा। उ.—जरासिंधु कौ जोर उधारयौ फारि कियौ द्वै फाँकौ—१-१३३।

फाँगी—संज्ञा स्त्री. [देश०] एक प्रकार का साग। उ.—(क) रुचिर लजालु लोनिका थांगी। कढ़ी कृपालु दूसरैं माँगी—३९६। (ख) पोई परवर फाँग फरी चुनि—२३२१।

फाँद—संज्ञा स्त्री. [हिं. फाँदना] उछाल, कुदान।

संज्ञा स्त्री., पुं. [हिं. फंदा] फंदा, जाल।

फाँदना—क्रि. अ. [सं. फणन] कूदना, उछलना।

क्रि. स.—लाँघना, डाँकना, नाँघना।

क्रि. स. [हिं. फंदा] फंदे में फँसाना।

क्रि. स. [हिं. फानना] रुई धुनना।

फाँदा—संज्ञा पुं. [हिं. फंदा] जाल, फंदा।

फाँदि—क्रि. स. [हिं. फंदा] फंदे में फँसाकर। उ.—मनो मन्मथ फाँदि फंदनि मीन बिवि तट ल्याइ—१४०५।

फाँदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फंदा] गट्ठा बाँधने की रस्सी।

फाँफी—संज्ञा स्त्री. [सं. पर्परी] बहुत महीन झिल्ली।

फाँस—संज्ञा स्त्री. [सं. पाश, प्रा. फाँस] (१) पाश, बंधन,

फंदा, बंध । उ.—(क) मेरी बेर क्यौं रहे सोचि ! काटिकै अघ-फाँस पठवहु, ज्यौं दियौ गज मोचि—१-१६६ । (ख) सूरदास भगवंत-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै—१-२६३ । (ग) ए सब त्रय गुन फाँस समान । (२) **किसी को बाँधने या फँसाने का फंदा या जाल** । उ.—(क) ब्रह्म-फाँस उन लई हाथ करि—६-१०४ । (ख) हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बंधन बंधु-समेत बँधायौ—६-१४१ । (ग) बरुन फाँस ब्रज-पतिहिं छिन माँहि छुड़ावै ।

संज्ञा स्त्री. [सं. पनस] (१) **बाँस या काठ का कड़ा महीन रेशा जो काँटे की तरह चुभ जाता है** ।

मुहा०—फाँस चुभना—**चित को खटकने या चुभनेवाली बात होना** । फाँस निकलना—**कष्ट देने वाली चीज का न रह जाना** । फाँस निकालना—**कष्ट देनेवाली चीज को दूर करना** ।

(२) **बाँस आदि की पतली तीली या कमानी** ।

फाँसना—क्रि. स. [हिं. फाँस] (१) **बंधन में डालना, जाल में फँसाना** । (२) **धोखे में डालना** (३) **वश में करना** ।

फाँसि—संज्ञा स्त्री. [सं. पाश] **पाश, बंधन, फंदा** । उ.—(क) भजन-प्रताप नाहिं मैं जान्यौ, पर्‍यौ मोह की फाँसि—१-१११ । (ख) माया मोह लोभ अरु मान । ए सब त्रयगुण फाँसि समान । (२) **रस्सी जिससे शिकारी फंदा डालते हैं** ।

क्रि. स.—[हिं. फाँसना] **फाँस कर, बंधन में डालकर** ।

फाँसी—संज्ञा स्त्री. [सं. पाशी] (१) **फाँसने का फंदा, पाश** । उ.—(क) चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा लिए मोह की फाँसी—१-१८६ । (ख) ताकौं देह-मोह बड़ फाँसी—४-५ । (ग) आए ऊधौ फिरि गए आँगन डारि गए गर फाँसी—३०३० । (घ) कीनी प्रीति हमारे ब्रज सों दई प्रेम की फाँसी—३१३३ । (२) **फंदा जो दम घोटकर मारने के लिए डाला जाता है** । (३) **प्राणदण्ड देने के लिए डाला जानेवाला फंदा** । (४) **प्राणदण्ड** ।

फाका—संज्ञा पुं. [अ. फ़ाक़ः] **उपवास** ।

फाखता—संज्ञा स्त्री. [अ. फ़ाख़ता] **पंडुक पक्षी** ।

फाग, फागु—संज्ञा पुं. [हिं. फागुन] **फागुन मास में मनाया जानेवाला उत्सव जिसमें लोग एक-दूसरे पर रंग छिड़कते हैं** । उ.—(१) सकुच न करत, फाग सी खेलत, तारी देत, हँसत मुख मोरि—१०-३२७ । (२) कुबिजा कमल नैन मिलि खेलत बारहमासी फाग—३०६५ ।

फागुन—संज्ञा पुं. [सं.] **फाल्गुन, माघ के बाद का महीना जिसकी पूर्णिमा को होली जलती है** ।

फागुनी—वि. [हिं. फागुन] **फागुन-संबंधी** ।

फाजिल—वि. [अ. फ़ाज़िल] (१) **बहुत अधिक** । (२) **विद्वान, पंडित** ।

फाटक—संज्ञा पुं. [सं. कपाट] **बड़ा द्वार या दरवाजा** ।

संज्ञा पुं. [हिं. फटकना] **भूसी या किनकी जो अनाज फटकने से बच जाय, फटकन, पछोड़न** । उ.—फाटक दै कै हाटक माँगत भोरो निपट सुधारो—३३४० ।

फाटत—क्रि. अ. [हिं. फटना] **फटता, टूटता या विदीर्ण होता है, भग्न होता है** । उ.—(क) टूटत फन, फाटत तन दुहुँ दिसि, स्याम निहोरौ कीजै—५७६ । (ख) निकसि न जात प्रान ए पापी फाटत नहीं ब्रज की छाती—२८८२ ।

फाटना—क्रि. अ. [हिं. फटना] **भग्न या विदीर्ण होना** ।

फाटि—क्रि. अ. [हिं. फटना] **फटकर** । उ.—दूध फाटि जैसे भयो काँजी कौन स्वाद करि खाइ—३३३४ ।

फाटी—क्रि. अ. [हिं. फटना] **फट गयी, विदीर्ण हुई** । उ.—(क) बड़ी बार भई, लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी—१०-२५४ । (ख) सरिता संयम स्वच्छ सलिल जनु फाटी काम कई—२८५३ ।

फाटे—वि. [हिं. फटना] **फटा हुआ, भग्न, विदीर्ण** । उ.—फूटी चुरी गोद भरि ल्यावैं, फाटे चीर दिखावैं गात—१०-३३२ ।

फाट्यो, फाटयौ—क्रि. अ. [हिं. फटना] **फटा, छिन्न-भिन्न हुआ, एकत्र न रहा** । उ.—(क) ज्यौं रवि-तेज पाइ दसहूँ दिसि, दोष-कुहर कौ फाटयौ—१-८७ । (ख) हरि बिछुरत फाटयो न हियो—२५४५ ।

फाड़खाऊ—वि. [हिं. फाड़ + खाना] (१) **फाड़कर खा जाने वाला** । (२) **क्रोधी, चिड़चिड़ा** । (३) **भयानक** ।

फाड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं फाड़ना] फाड़ा हुआ टुकड़ा।

फाड़ना—क्रि. स. [सं. स्फाटन] (१) चीरना, विदीर्ण करना। (२) धज्जियाँ उड़ाना। (३) संधि या जोड़ खोलना। (४) द्रव का पानी और सार अलग करना।

फातिहा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) प्रार्थना। (२) मृतक के लिए चढ़ावा।

फानना—क्रि. स. [हिं. फारण] रुई धुनना।

क्रि. स. [सं. उपायन] काम आरम्भ करना।

फानूस—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) बड़ा कंदील। (२) शीशे का कमल या गिलास जिसमें बत्ती जले।

फाब—संज्ञा स्त्री. [सं. प्रभा, प्रा. पभा] शोभा।

फाबना—क्रि. अ. [हिं. फबना] शोभा देना।

फायदा—संज्ञा पुं. [अ. फ़ायदा] (१) लाभ। (२) भला परिणाम (३) प्रयोजन सिद्ध होना।

फार—संज्ञा पुं. [हिं. फारना] खंड, फाल।

फारना—क्रि. स. [हिं. फाड़ना] चीरना-फाड़ना।

फारसी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] फारस देश की भाषा।

फारा—संज्ञा पुं. [सं. फाल] फाँक, फाल टुकड़ा।

फारि—क्रि. स. [फाड़ना] (१) फाड़कर, चीरकर, विदीर्ण करके। उ.—(क) खंभ फारि नरसिंह प्रगट ह्वै, असुर के प्रान हरे—१-८२। (ख) चीरि फारि करिहौं भगौहौं सिखनि सिखि लवलेस—३४१३।

(२) खंड खंड करके, धज्जियाँ उड़ाकर। उ.—फोरि-फारि, तोरि-तारि, गगन होत गाजैं—६-१३६।

संज्ञा पुं. [हिं. फाल] खंड, टुकड़ा। उ.—फटि तव खंभ भयौ है फारि—७-२।

फारी—क्रि. स. [हिं. फाड़ना] (१) चीरी, फाड़ी। उ.—(क) संकट तैं प्रहलाद उधारयौ, हिरनाकसिपु-उदर नख फारी—१-२२। (ख) कबहिं गुपाल कंचुकी फारी—७७४। (२) चीरकर। उ.—कहत प्रहलाद के धारि नरसिंह बपु निकसि आए तुरत खंभ फारी—७-६।

फारे—क्रि. स. [हिं. फाड़ना] फाड़े, चीरे। उ.—हिरन-कसिपु उर फारे हो—१०-१२८।

फारै—क्रि. स. [हिं. फाड़ना] फाड़ता-चीरता है। उ.—हार तोरै चीर फारै, नैन चलै चुराइ—७८०।

फार्‌यौ—क्रि. स. [हिं. फाड़ना] फाड़ दिया, चीरा, विदीर्ण किया। उ.—जिहिं बल हिरनकसिप उर फार्‌यौ, भए भगत कौं कृपानिधान—१०-१२७।

फाल—संज्ञा स्त्री. [सं. फलक] कटा हुआ, छोटा टुकड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. प्लव] (१) डग, फलाँग।

मुहा०—फाल भरना—डग भरना। फाल बाँधना – फलाँग या छलाँग मारना।

(२) डग भर का फासला, पैंड। उ.—तीन फाल वसुधा सब कीनो सोइ बामन भगवान।

संज्ञा स्त्री. [सं.] जमीन खोदने की छड़, कुसी।

फालतू—वि. [हिं. फाल+तू] (१) आवश्यकता या जरूरत से ज्यादा। (२) बेकार, निकम्मा।

फालसई—वि. [हिं. फालसा] फालसे के रंग का, ललाई लिये हल्के ऊदे रंग का।

फालसा—संज्ञा पुं. [फ़ा. फ़ालसा] एक छोटा पेड़ जिसमें मोती के दाने जैसे फल लगते हैं।

फालिज—संज्ञा पुं. [अ. फ़ालिज] पक्षाघात रोग।

फाल्गुन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) माघ के बाद का महीना जिसकी पूर्णिमा को होली जलायी जाती है। (२) अर्जुन का एक नाम।

फालगुनि—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन।

फावड़ा—संज्ञा. पुं. [सं. फाल, प्रा. फाड़] मिट्टी खोदने का एक औजार जो फरसे की तरह का होता है।

फाश—वि. [फ़ा. फाश] खुला, प्रकट।

फासला—संज्ञा पुं. [अ.] दूरी, अंतर।

फाहिशा—वि. [अ. फ़ाहिशा] व्यभिचारिणी।

फिकर, फिकिर, फिक्र—संज्ञा स्त्री. [अ. फ़िक्र] (१) चिंता। (२) ध्यान, विचार। (३) यत्न, उपाय।

फिचकुर—संज्ञा पुं. [सं. पिच्छ] मूर्च्छा या बेहोशी में मुँह से निकलनेवाला फेन।

फिट—अव्य. [अनु.] धिक्, छी।

फिटकार—संज्ञा पुं. [हिं. फिट+करना] (१) धिक्कार।

मुहा०—मुँह पर फिटकार बरसना– चेहरा बहुत फीका या उदास होना।

(२) कोसना, बद्दुआ। (३) हलकी मिलावट।

फिट्टा—वि. [हिं. फिट] फटकार खाया हुआ, मलिन।

फितना—संज्ञा पुं. [अ.] (१) उपद्रव। (२) उपद्रवी।

फितरती—वि. [अ. फ़ितरत] काँइयाँ, धूर्त।

फितूर—संज्ञा पुं. [अ. फ़ुतूर] (१) खराबी। (२) झगड़ा।

फिनिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] कान का एक गहना।

फिर—क्रि. वि. [हिं. फिरना] (१) दुबारा, पुनः।

यौ०—फिर-फिर—बार बार, पुनः पुनः।

(२) किसी और समय। (३) बाद में। (४) तब।

मुहा०—फिर क्या है—तब क्या पूछना है?

(५) आगे बढ़कर, दूरी पर। (६) इसके अतिरिक्त।

फिरकना—क्रि. अ. [हिं. फिरना] नाचना, चक्कर खाना।

फिरका—संज्ञा पुं. [अ. फ़िरक़ा] (१) जाति। (२) पंथ।

फिरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फिरकना] (१) वह गोल चीज जो कीली पर घूमती हो। (२) लड़कों की फिरहरी नामक खिलौना जो नचाया जाता है। (३) चकई नामक खिलौना।

फिरत—क्रि. अ. [हिं. फिरना] (१) डोलता या घूमता है। उ.—काल फिरत बिलार-तनु धरि, अब धरी तिहिं लेत—१-३११। (२) प्रचारित या घोषित होता है। उ.—बोलत बग निबेत गरजै अति मानो फिरत दोहाई—२८३६।

प्र०—करत फिरत—करता-फिरता है। उ.—कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी-अपनी—१-३९।

फिरता—संज्ञा पुं. [हिं. फिरना] (१) वापसी। (२) अस्वीकार।

वि.—(१) लौटाया हुआ। लौटनेवाला।

फिरति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. फिरना] फिरती है, घूमती है। उ.—माधौ जू, यह मेरी इक गाइ। ..... फिरति बेद-बन-ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति—१-५१।

फिरते—क्रि अ. [हिं. फिरना] इधर-उधर घूमते, चलते। उ.—अपने दीन दास कैं हित लगि, फिरते सँग-सँगही—१-२८३।

फिरतौ—क्रि. अ. [हिं. फिरना] घूमता, डोलता।

प्र०—दिखावत फिरतौ—दिखाता फिरता। उ.—धर्म-धुजा अन्तर कछु नाहीं, लोक दिखावत फिरतौ—१-२०३।

फिरना—क्रि. अ. [हिं. फेरना का अक०] (१) चलना, भ्रमण करना। (२) टहलना, सैर करना। (३) बार-बार चक्कर खाना। (४) ऐंठा मरोड़ा जाना। (५) वापस होना, लौटना। (६) बिकी चीज का वापस होना। (७) मुख या सामना दूसरी ओर घूम जाना, मुड़ना, रुख बदलना।

मुहा.—किसी ओर फिरना—झुकना, प्रवृत्त होना। जी फिरना—जी हट जाना, उदास या विरक्त होना।

(८) विरुद्ध या विपक्ष में हो जाना। (९) बदल जाना, परिवर्तित हो जाना। (१०) बात या वचन पर दृढ़ न रहना। (११) झुकना, टेढ़ा हो जाना। (१२) चारो ओर प्रचारित या घोषित होना। (१३) लीपा पोता जाना। (१४) स्पर्श किया जाना।

फिरवाना—क्रि. स. [हिं. फेरना] फेरने का काम कराना। क्रि. स. [हिं. फिराना] फिराने का काम कराना।

फिराइ—क्रि. स. [हिं. फिराना] (१) फिराकर, लौटाकर, अपने वचन को वापस लेकर। उ.—भक्तबछल श्री जादवराइ। भीषम की परतिज्ञा राखी, अपनो बचन फिराइ—१-२६७। (२) ऐंठ या मरोड़कर। उ.—बृषभ-गंजन मथन-केसी हने पूँछ फिराइ—४९८।

फिराई—क्रि. स. [हिं. फिराना] (१) घुमाकर, फेरकर। उ.—(क) भृकुटी कुटिल, अरुन अति लोचन, अगिनि-सिखा-मुख कह्यौ फिराई—९-५६। (ख) नगन त्रिय देखिबे जगत नाहिन कह्यो, जानि इह हरि रहे मुख फिराई—१०-उ०-३५। (२) दूसरी दिशा में चलने की प्रेरणा दी। उ.—उतही जातहि सखी सहेली मैं ही सबको इतहि फिराई—१०४९।

फिराक—संज्ञा पुं. [अ. फ़िराक़] (१) चिंता। (२) टोह।

मुहा.—फिराक में रहना—खोज में रहना।

फिराना—क्रि. स. [हिं. फिरना] (१) इधर से उधर ले जाना। (२) टहलाना, सैर कराना। (३) चक्कर या फेरा खिलाना। (४) ऐंठना, घुमाना, मरोड़ना। (५) लौटाना, पलटाना। (६) मुख या सामना दूसरी ओर करना। (७) एक ओर जाते हुए को दूसरी ओर

चलाना। (८) बदल देना। (९) बात या वचन पर दृढ़ न रहने देना।

फिरानो—क्रि. स. [हिं. फिरना] **घूमा, फिरा।** उ.—बहुत जतन करि हौं पचि हारी इतको नहीं फिरानो—पृ. ३२० (९०)।

फिराय—क्रि. स. [हिं. फिराना] **ऐंठ या मरोड़कर।** उ.—उन नहिं मारयौ सम्मुख आयो पकरयो पूँछ फिराय।

फिरायो, फिरायौ—क्रि. स. [हिं. फिराना] **घुमाया, चक्कर खिलाया।** उ.—(क) कंठ चाँपि बहु बार फिरायो, गहि पटक्यौ, नृप पास परयौ—१०-५९। (ख) यह ऐसो तुम अतिहि तनक से कैसे भुजन फिरायो—२३९९।

फिरावत—क्रि. स. [हिं. फिराना] (१) **लौटाता है, वापस करता है, विमुख करता है।** उ.—तुम नारायन भक्त कहावत। काहे को तुम मोहिं फिरावत।

फिरावति—क्रि. स. [हिं. फिराना] (१) **फिराती है।** (२) **घुमाती या नचाती हुई।** उ.—चली पीठि दै दृष्टि फिरावति, अंग-अंग आनन्द रली—७३९।

फिरावन—संज्ञा पुं. [हिं. फिराना] **फिराने या लौटाने की क्रिया।** उ.—मंत्री गयौ फिरावन रथ लै, रघुबर फेरि दियौ—९-४६।

फिरि—क्रि. वि. [हिं. फिर, फिरना] (१) **पुनः फिर, दोबारा।** उ.—(क) दुरबासा अँबरीष सतायौ, सो हरि-सरन गयौ। परतिज्ञा राखी मन-मोहन, फिरि तापैं पठयौ—१-३८। (ख) यह औसर कब ह्वैहै फिरिकै पायौ देव मनाई—१०-१८।

यौ०—फिरि फिरि—**पुनः पुनः, बार-बार।** उ.—(क) सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै—१-३५। (ख) फिरि फिरि ऐसोई है करत। जैसें प्रेम पतंग दीप सौं पावक हू न डरत—१-५५। (ग) दीन-दयाल सूर हरि भजि लै, यह औसर फिरि नाहीं—१-३१९।

(२) **इसके अनंतर, बाद में, पश्चात, उपरांत।** उ.—सूर पाइ यह समै लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार—१-६८। (३) **तब, इस पर।** उ.—फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै यह देवन की रीति—१-१७७। (४) **घूमकर, मुँह फेरकर, पलटकर।** उ.—फिरि देखैं तौ कुँवर कन्हाई मीजत रुचि सौं पीठि—७३८।

क्रि. अ. [हिं. फिरना] (१) **घूमकर, भ्रमण करके।** उ.—(क) कौन कौन तीरथ फिरि आए—१-१८४। (ख) नृप चौरासी लच्छ फिरि आनौ—४-१२। (२) **लौटकर।** उ.—इहिं अंतर अर्जुन फिरि आयौ—१-२८६। (३) **प्रचारित या घोषित होकर।** उ.—लंका फिरि गई राम दुहाई—९-१४०। (४) **पलटकर, मुँह फेरकर।** उ.—खेलन जाहु बाल सब टेरत। यह सुनि कान्ह भए अति आतुर, द्वारैं तन फिरि हेरत—१०-२४३।

फिरिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. फिरना] (१) **फिरना, घूमना।** (२) **आवागमन, बार-बार जन्म लेना और मरना।** उ.—जिय करि कर्म, जन्म बहु पावै। फिरत-फिरत बहुतै स्रम आवै। अरु अजहूँ न कर्म परिहरै। जातैं याकौ फिरिबौ टरै—५-४।

फिरियाद—संज्ञा स्त्री. [अ. फरियाद] **दुहाई, पुकार।**

फिरियादी—वि. [हिं. फिरियाद] **फरियाद करनेवाला।**

फिरिये—क्रि. अ. [हिं. फिरना] **लौटिए, वापस आइए।** उ.—बेगि ब्रज को फिरिए नंदराइ—२६५१।

फिरिहरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. फिरना+हारा] **नचाने का एक खिलौना।**

फिरिहौं—क्रि. अ. [हिं. फिरना] **फिरता रहूँगा, घूमता रहूँगा।** उ.—कब लग फिरिहौं दीन बह्यौ—१-१६२।

फिरी—क्रि. अ. [हिं. फिरना] (१) **चारों ओर प्रचारित हुई, घोषित हुई।** उ.—गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई—१-२४। (२) **घूमी, ढूँढ़ती रही।** उ.—बहुत फिरी तुम काज कन्हाई—४६२।

फिरे—क्रि. अ. [हिं. फिरना] (१) **लौटे, पलटे, वापस आये।** उ.—(क) देखि फिरे हरि ग्वाल दुवारैं—१०-२७७। (ख) अपने धाम फिरे तब दोऊ जानि भई कछु साँझ। (ग) नैन निरखि अजहूँ न फिरे री—पृ० ३२७। (९०)।

फिरैं—क्रि. अ. बहु. [हिं. फिरना] **फिरते हैं, घूमते हैं।**

उ.—किंकिन नूपुर पाट-पटंबर, मानौं लिये फिरैं घर-बार—१-४१।

फिरै—क्रि. अ. [हिं. फिरना] (१) **घूमता है, भ्रमण करता है**। उ.—कौन विरक्त अधिक नारद तैं, निसि दिन भ्रमत फिरै—१-३५। (२) **सैर करती है, विचरती है, टहलती है**। उ.—अकथ कथा याकी कछू, कहत नहीं कहि आई (हो)। छेलनि के सँग यौं फिरै, जैसैं तनु सँग छाईं (हो)—१-४४।

फिरैगौ—क्रि. अ. [हिं. फिरना] **फिरेगा, इधर-उधर डोलेगा, घूमेगा**। उ.—चौरासी लख जोनि जन्म जग, जल-थल भ्रमत फिरैगौ—१-७५।

फिर्‍यौ—क्रि. अ. [हिं. फिरना] **फिरा, घूमा, भ्रमण किया**। उ.—बहुतक दिवस भए या जग मैं, भ्रमत फिर्‍यौ मतिहीन—१-४६।

फिसड्डी—वि. [अनु. फिस] **जो काम में पीछे रहे**।

फिसफिसाना—क्रि. अ. [अनु. फिस] **शिथिल होना**।

फिसलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. फिसलना] **रपटन**।

फिसलना—क्रि. अ. [सं. प्र.+सरण] (१) **चिकनाई से पैर आदि रपटना**। (२) **झुकना, प्रवृत्त होना**।

मुहा.—जी फिसलना—(१) **मन ललचाना**। (२) **मोहित होना**।

फिसलाना—क्रि. स. [हिं. फिसलना] **रपटाना, खिसलाना**।

फींचना—क्रि. स. [अनु. फिच् फिच्] **पटककर धोना**।

फी—अव्य. [अ. फ़ी] **प्रति एक, हर एक**।

फीका—वि.—[सं. अपक्व, प्रा. अपिक्क] (१) **नीरस, स्वादहीन**। (२) **जो चटक रंग का न हो**। (३) **कांति या तेजहीन**। (४) **निष्फल, प्रभावहीन**।

फीकी—वि. स्त्री. [हिं. फीका] **व्यर्थ, निष्फल, सारहीन, प्रभावरहित**। उ.—जन यह कैसे कहै गुसाईं। तुम बिनु दीनबंधु, जादवपति, सब फीकी ठकुराई—१-१९५।

फीके—वि. बहु. [हिं. फीका] **नीरस, अरुचिकर, सारहीन**। उ.—बिनु रघुनाथ मोहिं सब फीके, आज्ञा मेटि न जाइ—९-१६१।

फीको, फीकौ—वि. [हिं. फीका] (१) **अरसिक, जो मिलनसार न हो**। उ.—महा कठोर, सुन्न हिरदै कौ, दोष देन कौ नीकौ—बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा, बेधन, राँकौ-फीकौ—१-१८६। (२) **स्वादहीन, नीरस, अरुचिकर, जो चखने में अच्छा न लगे**। उ.—(क) देह गेह सनेह अर्पन कमल लोचन ध्यान। सूर उनको भजन देखत फीकौ लागत ज्ञान। (ख) जो रस खाइ स्वाद करि छाँड़े सो रस लागत फीको—२९३८।

फीता—संज्ञा पुं. [पुर्त.] **पतली धज्जी या किनारा**।

फीरोजा—संज्ञा पुं. [फा. फ़ीरोज़ा] **एक नग**।

फीरोजी—वि. [हिं. फीरोजा] **हरापन लिये नीला**।

फील—संज्ञा पुं. [फा. फ़ील] **हाथी**।

फीलवान—संज्ञा पुं. [फा. फ़ील+वान] **महावत**।

फीली—संज्ञा स्त्री. [सं. पिंड] **पिंडली**।

फुँकना—क्रि. अ. [हिं. फूँकना] (१) **जलना**। (२) **नष्ट होना**। (३) **ईर्ष्या करना**।

संज्ञा पुं.—**हवा फूँकने की नली**।

फुँकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूँकना] (१) **हवा फूँकने की पतली नली**। (२) **भाथी**।

फुंकरना—क्रि. अ. [हिं. फुंकार] **फुंकार छोड़ना**।

फुंकरै—क्रि. अ. [हिं. फुँकरना] **फुंकार मारता है**। उ.—सहसौ फन फनि फुंकरै, नैंकु न तिन्हैं बिकार—५८९।

फुँकर्‍यौ—क्रि. अ. [हिं. फुंकारना] **फुंकार मारी, फूत्कार छोड़ी, फूँ फूँ शब्द किया**। उ.—पूँछ लीन्हीं झटकि धरनि सौं गहि पटकि फुंकर्‍यौ लटकि करि क्रोध फूले—५५२।

फुँकवाना, फुँकाना—क्रि. स. [हिं. फूँकना] (१) **फूँकने को प्रवृत्त करना**। (२) **मुख से हवा निकलवाना**। (३) **जलवाना**।

फुँकार—संज्ञा पुं. [अनु.] **मुख से हवा का झोंका निकलने का शब्द, फूत्कार**। उ.—(क) कंस कोटि जरि जाहिंगे, बिष की एक फुंकार—५८९। (ख) सहस फन फुंकार छाँड़े जाइ काली नाथियाँ।

फुँदना—संज्ञा पुं. [हिं. फूल+फंदा] **फुलरा, झब्बा**।

फुँदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फंदा] **गाँठ, फंदा**।

फुंसी—संज्ञा स्त्री. [सं. पनसिका, फा. फनस] **छोटी फुड़िया**।

फुट—वि. [सं. स्फुट] (१) **अकेला**। (२) **अलग**।

फुटकर—वि. [सं. स्फुट+कर] (१) **जिसका जोड़ा न हो।** (२) **कई प्रकार का।** (३) **अलग।** (४) **थोड़ा-थोड़ा।**

फुटका—संज्ञा पुं. [सं. स्फोटक] **छाला, फफोला।**

फुटकी—संज्ञा स्त्री. [सं. फुटक] **छोटे कण या लच्छे।**

फुटत—क्रि. अ. [हिं. फूटना] **फूटता है।** उ.—उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल—६१५।

फुटट—वि. [हिं. फुट] (१) **अकेला।** (२) **अलग।**

फुटटैल—वि. [हिं. फुट+ऐल] (१) **जिसका जोड़ा न हो।** (२) **अलग रहनेवाला।**

वि. [हिं. फूटना] **जिसका भाग्य फूटा हो।**

फुदकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) **उछलना-कूदना।** (२) **हर्ष या उमंग से फूल जाना।**

फुनंग, फुनँगी—संज्ञा स्त्री. [सं. फुलक] **वृक्ष का छोर।**

फुप्फुस—संज्ञा पुं. [सं.] **फेफड़ा।**

फुफँदी, फुफंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल+फंद] **नीबी, इजारबंद।**

फुफकाना—क्रि. अ. [अनु.] **फुफकारना।**

फुफुकार—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **साँप की फुंकार, फूत्कार।** उ.—सहस फन फुफुकार छाँड़े, जाइ काली नाथियाँ—४७७।

फुफकारना—क्रि. अ. [हिं. फुफकार] **साँप का फूत्कार करना।**

फुफेरा—वि. [हिं. फूफा] **फुफा से उत्पन्न।**

फुर—वि. [हिं. फुरना] **सत्य, सच्चा।**

संज्ञा स्त्री. [अनु.] **पंख फड़फड़ाने की ध्वनि।**

फुरई—क्रि. अ. [हिं. फुरना] **प्रभाव करता है, असर डालता है, लगता है।** उ.—पौढ़े कहा समर-सेज्या सुत, उठि किन उत्तर देत। थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत—१-२६।

फुरत—क्रि. अ. [हिं. फुरना] (१) **असर या प्रभाव करती है।** उ.—जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत प्रीति सिरानी जाति। (२) **स्फुटित हुआ, उच्चरित हुआ, मुँह से निकला।** उ.—(क) कोउ निरखति अधरन की सोभा, फुरति नहीं मुख बानी—६४४। (ख) फुरत न बचन कछू कहिबे को रहे बैन सो हारी—३३१३।

फुरति, फुरती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्फूर्ति] **शीघ्रता, तेजी।** उ.—द्विविद लै साल को वृक्ष सम्मुख भयो फुरति करि राम तनु फेंकि मारयो—१० उ०-४५।

क्रि. अ. [हिं. फुरना] **उच्चरित होता है।** उ.—सिथिल गात मुख बचन फुरति नहिं ह्वै जो गई मति भोरी।

फुरतीला—वि. [हिं. फुरती+ईला] **जो फुरती करे, तेज।**

फुरना—क्रि. अ. [सं. स्फुरण, प्रा. फुरण] (१) **प्रकट या उदय होना।** (२) **चमक उठना।** (३) **फड़कना, फड़फड़ाना।** (४) **उच्चरित होना।** (५) **सत्य या ठीक उतरना।** (६) **असर या प्रभाव करना।** (७) **सफल होना।**

फुरफुर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **पंख की फरफराहट।**

फुरफुराना—क्रि. अ. [अनु.] (१) **'फुरफुर' करना।** (२) **हलकी वस्तु का लहराना।**

क्रि. स.—**किसी वस्तु को हिलाना-डुलाना।**

फुरफुरी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **पंख फड़फड़ाने का भाव।**

फुरसत—संज्ञा स्त्री. [अ. फुरसत] **अवकाश, छुट्टी।**

फुरहरना—क्रि. अ. [सं. स्फुरण] **निकलना, उत्पन्न होना।**

फुरहरी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) **पंख फड़फड़ाने की क्रिया।** (२) **पंख, कपड़े आदि की फड़फड़ाहट।** (३) **कंप और रोमांच, कँपकँपी।**

फुराना—क्रि. स. [हिं. फुर.] (१) **सच्चा या ठीक उतारना।** (२) **प्रमाणित करना।** (३) **उच्चारित करना।**

फुरी—क्रि. अ. [हिं. फुरना] **सत्य या ठीक हुई, पूरी उतरी।** उ.—फुरी तुम्हारी बात कही जो मोसों रही कन्हाई।

फुरे—क्रि. अ. बहु. [हिं. फुरना] (१) **उच्चरित हुए।** उ.—उठि के मिले तंदुल हरि लीन्हें मोहन बचन फुरे। (२) **प्रभाव किया।** उ.—फुरे न जंत्र मंत्र नहिं लागे, चले गुनी गुन हारे—७४७।

फुरेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फुरफुराना] (१) **सींक जिसके सिरे पर दवा, इत्र आदि लगाने को रुई लिपटी हो।** (२) **कँपकपी।**

मुहा०—फुरेरी आना—**कँपकँपी होना।** फुरेरी

लेना—(१) कांपना । (२) फड़कना, फड़फड़ाना । (३) सजग या होशियार होना ।

फुरै—क्रि. अ. [हिं. फुरना] (१) उच्चरित होता है । उ.—फुरै न बचन बरजिवै कारन, रहीं विचारि विचारि—१०-२८३ । (२) प्रभाव या असर करता है । उ.—फुरै न मंत्र, जंत्र नहिं लागे, चले गुनी गुन हारे—७४७ ।

फुलका—संज्ञा पुं. [हिं. फूलना] हलकी पतली रोटी ।

फुलझड़ी, फुलझरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल+झड़ना] (१) ऐसी आतिशबाजी जिसमें फूल-सी चिनगारियां निकलें । (२) ऐसी बात जिससे परस्पर झगड़ा या विवाद हो जाय ।

फुलरा—संज्ञा पुं. [हिं. फूल] फुँदना ।

फुलवाई, फुलवाड़ी, फुलवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल+वारी, फुलवाड़ी] फुलवाटिका । उ.—(क) इक दिन सुक्रसुता मन आई । देखौ जाइ फूल फुलवाई—६-१७४ । (ख) रितु बसंत फूली फुलवाइ—११७-५

फुलहारा—संज्ञा पुं. [हिं. फूल+हारा] माली ।

फुलही—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की गाय । उ.—पियरी, भौरी, गोरी, गैनी, खेरी, कजरी, जेती । दुलही, फुलही, भौंरो, भूरी, हाँकि ठिकाई तेती—१०-४४५ ।

फुलाना—क्रि. स. [हिं. फूलना] (१) वस्तु के विस्तार या फैलाव के बाहर की ओर बढ़ाना ।

मुहा०—गाल (मुँह) फुलाना—रूठना, रिसाना । (२) पुलकित या आनंदित करना । (३) गर्व या घमंड बढ़ाना । (४) फूलों से युक्त करना ।

फुलाव—संज्ञा पुं. [हिं. फूलना] फूलने की स्थिति ।

फुलावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूलना] फूलने का भाव ।

फुलावा—संज्ञा पुं. [हिं. फूल] बाल गूँथने की डोरी या चोटी जिसमें फूल या फुँदना लगा हो ।

फुलिंग—संज्ञा स्त्री. [सं. स्फुलिंग, प्रा. फुलिंग] चिनगारी ।

फुलिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल] (१) कील, काँटे आदि का चिपटा सिरा । (२) कान या नाक की 'लौंग' नामक गहना ।

फुलेरा—संज्ञा पुं. [हिं. फूल] फूल की छतरी ।

फुलेल, फुलेलन—संज्ञा पुं. [हिं. फूल+तेल] सुगंधित तेल । उ.—उर धारी लटैं छूटी आनन पै, भीजी फुलेलन सों आली हरि संग केलि—१५८२ ।

फुलेहरा—संज्ञा पुं. [हिं. फूल+हार] सूत, रेशम आदि के फूलों से बना बंदनवार ।

फुलौड़ा, फुलौरा—संज्ञा पुं. [हिं. फूल] बड़ा पकौड़ा ।

फुलौड़ी, फुलौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल+बरी] बरी, पकौड़ी । उ.—पापर, बरी, मिथौरि फुलौरी । कूर बरी काचरी पिठौरी—३६६ ।

फुल्ल—वि. [सं.] फूला हुआ, विकसित ।

फुल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल] फूल की तरह का कोई आभूषण या उसका भाग ।

फुस—संज्ञा स्त्री. [अनु.] बहुत धीमी आवाज ।

फुसकारना—क्रि. अ. [अनु.] फूत्कार छोड़ना ।

फुसफुसा—वि. [हिं. फूस] (१) ढीला । (२) कमजोर ।

फुसफुसाना—क्रि. स. [अनु.] बहुत धीरे बोलना ।

फुसलाना—क्रि. स. [हिं. फिसलाना] (१) बहलाना, ध्यान बटाना । (२) चकमा देना, बहकाना । (३) मीठी बातों से अपने अनुकूल करना । (४) राजी करना ।

फुहार—संज्ञा स्त्री. [सं. फूत्कार] बहुत महीन बूँदों की वर्षा जो उड़ती जान पड़े ।

फुहारा—संज्ञा पुं. [हिं. फुहार] एक जलयंत्र ।

फुही—संज्ञा स्त्री. [हिं. फुहार] (१) महीन-महीन बूँदों की झड़ी, फुहार । उ.—सिर बरसत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही—१०-२४ । (२) महीन बूँद ।

फूँक—संज्ञा स्त्री. [हिं. फू फू (अनु.)] (१) ओठों से छोड़ी हुई सवेग वायु । (२) विषैली फूत्कार । उ.—(क) कहा कंस दिखरावत इनकौं, एक फूँक ही मैं जरि जाई—५५० । (ख) एक फूँक कौ नाहिं तू बिष-ज्वाला अति तात—५८६ । (३) साँस ।

मुहा०—फूँक निकल जाना (निकलना)—मरना । (४) मंत्र पढ़ कर मुँह से छोड़ी गयी वायु ।

यौ—झाड़-फूँक—तंत्र-मंत्र का उपचार ।

फूँकति—क्रि. स. [हिं. फूँकना] फूंक मारती है, फूंकती है । उ.—बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरै । तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर

दौरे । फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अँकोरे—१०-२२४।

फूँकना—क्रि. स. [हिं. फूँक] (१) **जोर से फूँक छोड़ना।**

मुहा०—फूँक फूँक कर चलना (पैर रखना)—**बहुत सावधानी से काम करना।**

(२) **मंत्र आदि पढ़कर फूँक मारना।** (३) **शंख आदि को फूँक मारकर बजाना।** (४) **जला देना, भस्म करना।** (५) **जलाकर भस्म बनाना।** (६) **नष्ट करना।** (७) **दुख देना।** (८) **फूँककर सुलगाना।**

फूँकि—क्रि. स. [हिं. फूँकना] (१) **जोर से फूँक मारकर।** उ.—फूँकि फूँकि जननी पय प्यावति, सुख पावति जो उर न समैया—१०-२२६।

मुहा०—फूँकि फूँकि पग धारौ-**बहुत बचाकर चलो, होशियारी से काम करो।** उ.—फूँकि फूँकि धरनी पग धारौ, अब लागीं तुम करन अयोग—१४६७।

(२) **फूँक से सुलगाकर।** उ.—(क) फूँकि फूँकि हियरौ सुलगावत उठि किन इहाँ ते जान—३०२३। (ख) सुलगि सुलगि हम जरत ही तुम आनि फूँकि दई। ३१३१।

फूँद, फूँदा—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूल+फंद] **फुँदना, झब्बा।** उ.—रत्न जटित गजरा बाजूबँद सोभा भुजन अपार। फूँदा सुभग फूल फूले मनो मदन विटप की डार—२०६२।

फुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. फुही] (१) **महीन बूँद।** (२) **फफूँदी।**

फूट—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूटना] (१) **फूटने का भाव।** (२) **वैर, विरोध।**

मुहा०—फूट डालना—**वैर या झगड़ा कराना।**

(३) **एक तरह की बड़ी ककड़ी, एक फल।**

मुहा०—फूट-सा खिलना—**पककर दरक जाना।**

फूटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. फूटना] **अंगों की पीड़ा।**

फूटना—क्रि. अ. [सं. स्फुटन, प्रा. फुटन] (१) **भग्न होना, दरकना।** (२) **फटना।** (३) **नष्ट होना, बिगड़ना।**

मुहा०—फूटी आँख का तारा—**कई बेटों के मरने पर बच जानेवाला बेटा।** फूटी आँखों न भाना—**बहुत ही बुरा लगना।** फूटी आँखों न देख सकना—**बहुत जलना, कुढ़ना।** फूटे मुँह से भी न बोलना—(१) **मुँह से एक शब्द भी न निकालना।** (२) **उपेक्षा करना।**

(४) **झोंक के साथ बाहर आना।** (५) **फोड़े फुंसी की तरह निकलना।** (६) **कली का खिलना।** (७) **अंकुर-शाखा आदि निकलना, अंकुरित होना।** (८) **मार्ग आदि का अलग होकर जाना।** (९) **बिखरना, फैलना।** (१०) **संग या साथ छोड़ना।** (११) **दूसरे पक्ष में हो जाना।** (१२) **मिलाप न बना रहना।** (१३ **शब्द का मुँह से निकलना, बोलना।**

मुहा०—फूट फूट कर रोना—**बहुत विलाप करना।**

(१४) **प्रकट या प्रकाशित होना।** (१५) **गुप्त बात का प्रकट होना।** (१६) **रोक, परदा. बाँध आदि का टूटना।** (१७) **द्रव का किसी चीज पर फैल जाना।** (१८) **शरीर के जोड़ों में दर्द होना।**

फूटा—वि. [हिं. फूटना] **भग्न, टूटा हुआ।**

फूटि—क्रि. अ. [हिं. फूटना] (१) **फूट गयी, भग्न हुई।** (२) **नष्ट हुई, विनष्ट हुई** उ.—निसि दिन बिषय-बिलासनि विलसत, फूटि गईं तव चारयौ—१-१०१।

फूटी—वि. स्त्री. [हिं. फूटना] (१) **भग्न, टूटी हुई, फटी हुई।** उ.—(क) टूटे कंध अरु फूटी नाकनि, कौलौं धौं भुस खैहो—१-३३१। (ख) फूटी चूरी गोद भरि ल्यावै—१०-३३२। (२) (आँख) **जिससे दिखायी न दे।** उ.—एक अँधेरौ, हिए की फूटी, दौरत पहिरि खराऊँ—३४६६।

फूटै—क्रि. अ. [हिं. फूटना] **भेदकर निकले, झोंके से बाहर आए, छटे, उदित हो।** उ.—सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै—२-१६।

फूत्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **फूँका।** (२) **सर्प की फुफकार।**

फूफा—संज्ञा पुं. [हिं. फूफी] **बाप का बहनोई।**

फूफी, फूफू—संज्ञा स्त्री. [अनु०] **बाप की बहन, बुआ।**

फूल—संज्ञा पुं. [सं. फुल्ल] (१) **पुष्प, सुमन, कुसुम।** उ.—ज्यौं सुक सेमर-फूल बिलोकत, जात नहीं बिनु खाए—१-१००।

मुहा०—फूल आना—फूल लगना। फूल उतारना (चुनना)—फूल तोड़ना। फूल झड़ना—प्रिय और मधुर शब्द कहना। फूल-सा—बहुत कोमल, हलका या सुन्दर। फूल सूँघकर रहना—बहुत कम खाना (व्यंग्य)। पान-फूल-सा—बहुत कोमल और सुकुमार।

(२) फूल की तरह के बेल-बूटे। (३) फूल की बनावट का गहना। (४) दीपक की बत्ती का गुल या उससे निकलने वाली चिनगारी। उ.—हरि जू की आरती बनी।'''''। उड़त फूल उड़गन नभ अंतर, अंजन घटा घनी—२-८८। (५) आग की चिनगारी। (६) सार, सत्त। (७) देशी शराब। (८) शव के जलने से बची हड्डियाँ। (९) एक मिश्र धातु।

संज्ञा स्त्री. [हिं. फूलना] (१) उमंग। (२) आनंद।

फूलडोल—संज्ञा पुं.—[हिं. फूल + डोल] (१) चैत्र शुक्ल एकादशी को मनाया जानेवाला उत्सव जिसमें श्रीकृष्ण का झूला फूलों से सजाया जाता है। (२) फूलों का झूला। उ.—माई फूले फूले ही फूलत श्री राधेकृष्ण झूलत सरस रस ही फूलडोल—२४०१।

फूलत—क्रि. अ. [हिं. फूलना] खिलता है। उ.—ज्यों जल-रुह ससि-रस्मि पाइ कै फूलत नाहिंन सर तैं—३५४।

फूलति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. फूलना] खिलती है। उ.—हरि-बिधु मुख नहिं नाहिंनै फूलति मनसा कुमुद कली—२७३४।

फूलदान—संज्ञा पुं. [हिं. फूल + दान] फूल सजाने का पात्र।

फूलदार—वि. [हिं. फूल + दार] जिसमें फूल बने हों।

फूलना—क्रि. अ. [हिं. फूल] (१) फूलों से युक्त होना।

मुहा०—फूलना-फलना—(१) धन-संतान से सुखी रहना। (२) सभी तरह से प्रसन्न और सुखी रहना।

(२) खिलना, विकसित होना। (३) हवा आदि से किसी चीज की गोलाई, या मोटाई बढ़ना। (४) सतह का उठना या उभरना। (५) सूज जाना। (६) मोटा या स्थूल होना। (७) गर्व-घमंड करना। (८) आनंदित या प्रसन्न होना। (९) रूठना, मान करना।

फूलमती—संज्ञा स्त्री. [हि. फूल + मत] एक देवी।

फूला—संज्ञा पुं. [हिं. फूलना] खील, लावा।

(१) मोटा, स्थूल। (२) गर्वीला।

फूलि—क्रि. अ. [हिं. फूलना] गर्व में भरकर, घमंड में होकर, इतराकर। उ.—कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ, मूँछनि ताव दिवायौ—१-३०१।

फूलीं—क्रि. अ. [हिं. फूलना] विकसित हुईं, खिल गईं। उ.—(क) मनु भोर भएँ रवि देखि, फूलीं कमल-कली—१०-२४। (ख) पूरन मुख-चंद देखि नैन-कोइ फूलीं—६४२।

फूली—क्रि. अ. [हिं. फूलना] (१) पुष्पित हुई, फूल लगे। उ.—रितु बसंत फूली फुलवाई—१० उ.—२०५। (२) प्रसन्न या आनंदित हुई। उ.—फूली फिरैं धेनु धाम, फूली गोपी अँग अँग—१०-३४।

मुहा०—फूले अंग न समाई—बहुत आनंदित हुई। उ.—भले ही मेरे लालन आये री आजु मैं फूली अंग न समाई—पृ. ३१६ (८१)।

फूले—क्रि. अ. [हिं. फूलना] बहुत प्रसन्न या आनंदित होकर। उ. (क) आजु दसरथ कैं आँगन भीर।''''''। फूले फिरत अजोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर—९-१६। (ख) फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठहर-ठहर वे—१०-३४। (ग) गावत गुन गोपाल फिरत कुंजन में फूले—३४४३।

मुहा०—फूले अंग न मात (समात)—बहुत अधिक प्रसन्न हुए। उ.—जानि चीन्हि पहिचानि कुँवर मन फूले अंग न मात—१० उ.-८।

(२) पुष्पित हुए, खिले। उ.—(क) मन के मनोज फूले हलधर बर के—१०-३४। (ख) व जो देखत राते राते फूलन फूले डार—२७९८।

मुहा०—फूले-फरे—फल और पुष्प से युक्त हो गये। उ.—फूले-फरे तरुवर आनंद लहर के—१०-३४।

(३) बहुत क्रुद्ध हुए। उ.—पूँछ लीन्ही झटकि, धरनि सौं गहि पटकि, फुंकरयौ लटकि करि क्रोध फूले—५५२।

फूलना—क्रि. अ. [हिं. फूलना] फूल लगते हैं, पुष्पित होता है। उ.—तरुवर फूलै, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ—१-२६५।

फूल्यौ—क्रि. अ. [हिं. फूलना] प्रफुल्ल या आनंदित हुआ। मुहा०—फूल्यौ न समाई—फूला न समाया, अत्यंत आनंदित हुआ। उ.—हनुमत बल प्रगट भयौ, आज्ञा जब पाई। जनक-सुता-चरन बंदि, फूल्यौ न समाई —६-६६।

फूस—संज्ञा पुं. [सं. तुष] सूखी घास और तिनके।

फूहड़, फूहर—वि. [अनु.] भद्दी चाल-ढाल वाला।

फूहा—संज्ञा पुं. [हिं. फुही] रुई का गाला।

फूही—संज्ञा स्त्री. [अनु.] बहुत हलकी वर्षा।

फेंक—संज्ञा स्त्री. [हिं. फेंकना] फेंकने की क्रिया या भाव।

फेंकना—क्रि. स. [सं. प्रेषण, प्रा. पेखण] (१) ऐसा झोंका देना कि दूर जाकर गिरे। (२) कुश्ती में गिराना। (३) एक स्थान से हटाकर दूसरे में डालना। (४) लापरवाही से रख छोड़ना। (५) अपना पीछा छुड़ाकर दूसरे पर बोझ डालना। (६) कौड़ी, पासा आदि डालना। (७) खोना, गँवाना। (८) अपमान से त्यागना। (९) बेकार खर्च करना। (१०) उछालना, झटकना-पटकना। (११) (पटा) घुमाना।

फेंकरना—क्रि. अ. [अनु.] (१) गीदड़ का रोना या बोलना। (२) चिल्ला-चिल्लाकर रोना।

फेंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. पेट या पेटी] (१) कमर का घेरा, कटि-मंडल। उ.—फेंट पीतपट, साँवरे कर पलास के पात। परस्पर ग्वाल सब बिमल-बिमल दधि खात। (२) कमर में बँधा कपड़ा, कमरबंद, पटुका। उ.—(क) खायवे को कछु भाभी दीनी श्रीपति मुख तैं बोले। फेंट उपरि तैं अंजुलि तंदुल बल करि हरि जू खोले। (ख) स्याम सखा कौं गेंद चलाई। श्रीदामा हरि अंग बचायौ, गेंद परयौ कालीदह जाई। धाय गह्यौ तब फेंट स्याम की, देहु न मेरी गेंद मँगाई।

मुहा०—फेंट कसना (बाँधना)—कमर कसकर हर बात के लिए तैयार होना। कसि फेंट—कटिबद्ध होकर, सन्नद्ध होकर, कमर कसकर सब कठिनाइयों को झेलने के लिए तैयार होकर। उ.—अब लोग प्रभु तुम बिरद बुलाए, भई न मोसों भेंट। तजौ बिरद कै मोहिं उधारौ, सूर कहै कसि फेंट—१-१४५। फेंट गहता, धरता (पकड़ता)—रोक लेता, जाने न देता। फेंट पकरतौ—रोकता, थामता, जाने न देता। उ.—सूरदास बैकुंठ पैठ मैं कोउ न फेंट पकरतौ—फेंट गही—जाने से रोका। उ.—हम अबला कछु मर्म न जान्यौ चलत न फेंट गही—२७६७।

(३) फेरा, लपेट, घुमाव।

संज्ञा स्त्री. [हिं. फेंटना] फेंटने की क्रिया या भाव।

फेंटना—क्रि. स. [सं. पृष्ठ, प्रा. पिट्ठ+ना] (१) गाढ़े लेप को खूब हिलाना या मथना। (२) उँगली से खूब मिलाना।

फेंटा—संज्ञा पुं. [हिं. फेंट] (१) कटि-मंडल। (२) कपड़ा जो कर में लपेटा हो, कमरबंद, पटुका। उ.—माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल—१-१५३। (३) धोती का घेरा जो कमर पर लिपटा हो।

फेकरना—क्रि. अ. [हिं. फेंकना] (सिर) नंगा होना।

फेण, फेन—संज्ञा पुं. [सं. फेन] झाग, फेना। उ.—मनहुँ मथत सुर सिंधु, फेन फटि, दयौ दिखाई पूरनचंद—१०-२०४।

फेनक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फेन, झाग। (२) एक मिठाई।

फेनना—क्रि. स. [हिं. फेन] किसी द्रव को इतना मथना कि झाग उठने लगे।

फेनिल—वि. [सं.] जिसमें फेन हो।

फेनि, फेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. फेनिका] मैदा के महीन लच्छे की एक मिठाई जो चाशनी में पागकर या दूध में भिगोकर खाई जाती है। उ.—(क) घेवर-फेनी और सुहारी। खोवा-सहित खाहु बलिहारी—१०-११४। (ख) अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ तहँ फेनि पिराक—४६४।

फेनु—संज्ञा पुं. [सं. फेन] झाग, फेन। उ.—आनंद मगन धेनु स्रवैं थन पय फेनु, उमँग्यौ, जमुन-जल उछलि लहर के—१०-३०।

फेफड़ा—संज्ञा पुं. [सं. फुप्फुस] साँस की थैली।

फेफड़ी, फेफरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पपड़ी] **पपड़ी** । उ.—पीरो भयो फेफरी अधरन हिरदय अतिहिं डरयौ—२५६४ ।

फेर—संज्ञा पुं. [हिं. फेरना] (१) **चक्कर, घुमाव** ।

मुहा०—फेर की बात—**घुमाववाली बात** ।

(२) **मोड़, झुकाव** । (३) **उलट-पलट, परिवर्तन** ।

मुहा०—दिनों का फेर—**दुर्दशा का समय** ।

(४) **अंतर, फर्क** । (५) **उलझन, दुवधा** ।

मुहा०—फेर में पड़ना—**उलझन में पड़ना** । फेर डालना—**अनिश्चय की स्थिति में डालना** ।

(६) **भ्रम, धोखा** । (७) **चाल-बाजी, धोखा** ।

मुहा०—फेर में आना (पड़ना)—**धोखा खाना** । फेर की बात—**छल-कपट या चालबाजी की बात** ।

(८) **बखेड़ा, झंझट, जंजाल** ।

मुहा०—निन्नानबे का फेर—**रुपया जमा करने का चक्कर** ।

(९) **युक्ति, उपाय** । (१०) **अदला-बदली** ।

मुहा०—हेर-फेर—**लेन-देन, अदला-बदली** ।

(११) **हानि** । (१२) **भूत-प्रेत का प्रभाव** । (१३) **ओर, दिशा** ।

अव्य.—**पुनः, फिर** ।

फेरत—संज्ञा पुं. [हिं. फेरना] (१) **स्पर्श करते हैं, छुआते या रखते हैं** ।

मुहा०—कर फेरत—**स्पर्श करते हैं, छूते हैं** । उ.—कृपाकटाच्छ कमल-कर-फेरत, सूर जननि सुख देत—१०-१५४ । (२) **उलटता-पुलटता है** । उ.—फेरत पलटत भोर भए कछु लई न छाँड़ि दई—१३२० । (३) **भूली या दबी बात पुनः उठाते हैं या उसका बदला लेते हैं** । उ.—सूनो जानि नंदनंदन बिनु बैर आपनो फेरत—३१६५ ।

फेरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. फेरना] **फेरने या फहराने की क्रिया या भाव** । उ.—बरनि न जाइ सुभग उर सोभा पीतांबर की फेरन—३२७७ ।

क्रि. स.—**लौटाना, वापस करना** । उ.—जे जे आए हुते जज्ञ में परिहै तिनकौ फेरन ।

फेरना—क्रि. स. [सं. प्रेषण, प्रा. पेरन] (१) **घुमा देना, मोड़ना** । (२) **आते हुए को लौटाना या वापस करना** । (३) **ली हुई वस्तु लौटाना या वापस करना** । (४) **दी हुई वस्तु वापस कर लेना** । (५) **चक्कर खिलाना, घुमाव देना** ।

मुहा०—माला फेरना—(१) **माला जपना** । (२) **नाम लेना** ।

(६) **ऐंठना, मरोड़ना** । (७) **स्पर्श करना** ।

मुहा०—हाथ फेरना—(१) **प्यार से सहलाना** । (२) **ले लेना** ।

(८) **पोतना, लेप करना** ।

मुहा०—पानी फेरना—**धो देना, नष्ट कर देना** ।

(९) **रुख या मुख दूसरी ओर करना** । (१०) **उलट-पलट करना** । (११) **विरुद्ध या विपरीत करना** । (१२) **बार-बार दोहराना** । (१३) **बारी बारी से सबके सामने उपस्थित करना** । (१४) **प्रचारित या घोषित करना** । (१५) **(घोड़े को) चाल चलाना** ।

फेरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. फेरना] **फेरने की क्रिया या भाव** । उ.—भौंह मोरनि नैन फेरनि तहाँ ते नहिं टरे—पृ० ३५१ (७७) ।

फेरनो, फेरनौ—संज्ञा पुं. [हिं. फेरना] **फेरने की क्रिया या भाव** । उ.—तब मधुमंगल कहि ग्वाल सों गैया हो भैया फेरनो—२२८० ।

फेर-पल्टा—संज्ञा पुं. [हिं. फेर+पलटा] **गौना** ।

फेरफार—संज्ञा पुं. [हिं. फेर] (१) **उलट-फेर** । (२) **अंतर, बीच** । (३) **टालटूल, बहाना** । (४) **घुमाव-फिराव** ।

फेरा—संज्ञा पुं. [हिं. फेरना] (१) **चक्कर, घूमना** । (२) **लपेट, घुमाव** । (३) **इधर से उधर घूमना** । (४) **घूमते-फिरते आना** । (५) **लौट-फिर कर वापस आना** । (६) **घेरा, मंडल** ।

फेरि—क्रि. वि. [हिं. फिर] (१) **फिर, पुनः, दोबारा** । उ.—(क) जैसो कियौ सो तेसौ पायौ । अब उहिं चहियै फेरि जिवायौ—४-५ (ख) हय गय खोलि भंडार दिए सब फेरि भरे ता भाँति—१०-३६ ।

मुहा०—फेरि फेरि—**बार-बार, पुनः पुनः** ।

(२) **इसके बाद, तत्पश्चात्** । उ.—तौ लगि बेगि

हरौ किन पीर। जौ लगि आन न आनि पहूँचै, फेरि परैगी भीर—१-१६१।

क्रि. स. [हिं. फेरना] (१) **लौटाकर।**

प्र०—फेरि दयौ—**लौटा दिया, वापस कर दिया।** उ.—मंत्री गयौ फिरावन रथ लै, रघुबर फेरि दयौ—६-४६।

फेरी—अव्य. [हिं. फिर] **पुनः, दोबारा।** उ.—जिहिं भुज परसुराम बल करष्यौ, ते भुज क्यों न सँभारत फेरी—६-६३।

मुहा०—फिरि फेरी—**बार बार, पुनः पुनः।** उ.—मैं जिनको सपनेहु न देखे, तिनकी बात कहत फिरि फेरी—१२७०।

फेरी—क्रि. स. [हिं. फेरना] **मेट दी, हटा दी, मिटायी, दूर की।** उ.—हा जदुनाथ, द्वारकावासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी—१-२५१। (२) **पलट दी, बदल दी, विपरीत की।** उ.—बसन प्रवाह बढ़्यौ जब जान्यौ, साधु-साधु सबहिनि मति फेरी—१-२५२।

संज्ञा स्त्री.—(१) **फेरा, जाकर लौटना।** उ.—जहाँ बसत जदुनाथ जगतमनि बारक तहाँ आउ दै फेरी—२८५१। (२) **घूमना, भ्रमण करना।** उ.—बाट-घाट बीथी ब्रज घर बन संग लगाए फेरी—२७१६। (३) **परिक्रमा, प्रदक्षिणा, भाँवर।**

फेरी पड़ना—**भाँवर होना, विवाह होना।**

(४) **योगी का भिक्षा माँगने का चक्कर।** (५) **वस्तु को बेचने के लिए इधर-उधर घूमना।**

फेरे—संज्ञा पुं. [हिं. फेर] (१) **ओर, दिशा।** उ.—सूरदास प्रभु बैठि सिला पर भोजन करैं ग्वाल चहुँ फेर—४६३। (२) (बहु०) **चक्कर, घुमाव।** उ.—तेरी सो बृषभानु नंदिनी एक गाँठि सौ फेरे—२२२०।

क्रि. स. [हिं. फेरना] **रुख बदल दिया।** उ.—कहा करौं सखि दोष न काहू हरि हित लोचन फेरे—२७२०।

फेरैं—क्रि. स. [हिं. फेरना] **प्रचारित या घोषित करें।** उ.—सूरदास प्रभु लंका तोरैं फेरैं राम दोहाई—६-११७।

फेरै—क्रि. स. [हिं. फेरना] **स्पर्श करता है।** उ.—सूरदास प्रभु सकल लोकपति पीतांबर कर फेरैं हो—४५२।

फेरो—संज्ञा पुं. [हिं. फेरी] **आगमन, जाकर आना।** उ.—(क) गयौ जु संग नंदनंदन के बहुरि न कीन्हौ फेरौ—३१४३। (ख) आपु नहीं या ब्रज के कारन करिहौ फिरि फिरि फेरो—१० उ.-१२४।

क्रि. स. [हिं. फेरना]। (१) **घुमा लिया, हार मान ली।** (२) उ.—सात दिवस जल बर्षि सिराने हारि मानि मुख फेरो—६५६। (२) **मुख घुमाते हो, सामना नहीं करते।** उ.—मेरी सौं हाहा करि पुनि-पुनि उत काहे मुख फेरो जू—१९३४।

फेरौं—क्रि. स. [हिं. फेरना] (१) **चक्कर दूँ, घुमाऊँ, चारों ओर चलाऊँ।** उ.—कहौ तौ लंक लकुट ज्यौं फेरौं, फेरि कहूँ लै डारौं—६-१०७। (२) **लौटाऊँ, विमुख करूँ, पराजित करूँ।** उ.—अब हौं कौन कौ मुख हेरौं। रिपु-सैना-समूह-जल उमड़्यौ, काहि संग लै फेरौं—६-१४६।

फेरौ—क्रि. स. [हिं. फेरना] **बदलो, पलटो, मिटाओ।** उ.—सूर हँसति ग्वालिनि दै तारी, चोर नाम कैसेहुँ सुन फेरौ—३६६।

फेर्‌यौ—क्रि. स. [हिं. फेरना] (१) **फेरा, मोड़ लिया, दूसरी ओर किया।** उ.—पारथ भीषम सौं मति पाइ। कियौ सारथी सिखंडी आइ। भीषम ताहि देखि मुख फेर्‌यौ—१-२७६। (२) **साथ छोड़ा।** उ.—सब दिन सुख-साथिनि आजु कैसे मुख फेरयौ—१०-८।

फैंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. पेट, फेंट] **कमरबंद, पटुका।**

मुहा०—फैंट पकरतौ—**रोकता, जाने न देता, थाम लेता, धर रखता।** उ.—होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ। सूरदास बैकुंठ-पैंठ मैं, कोउ न फैंट पकरतौ—१-२६७। कसि फेंट—**ललकार कर, चुनौती देकर।** उ.—तजौ बिरद कै मोहिं उधारौ, सूर कहै कसि फैंट—१-१४५।

फैनु—संज्ञा पुं. [सं. फेन] (१) **फेन, झाग, फेना।** (२) **सर्प के मुख का झाग, विष।** उ.—तुम हमकौं कहँ-कहँ न उबारयौ, पियौ काली मुँह फैनु—५०२।

फैल—संज्ञा पुं. [अ. फ़ेल] (१) **काम।** (२) **खेल।** (३) **नखरा।**

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रसृत] विस्तृत, फैला हुआ।

फैलना—क्रि. अ. [सं. प्रसरण] (१) विस्तार या फैलाव से स्थान घेरना। (२) इधर उधर बढ़ जाना। (३) मोटा या स्थूल होना। (४) भर जाना, व्यापना। (५) बढ़ती या वृद्धि होना। (६) बिखरना, छितराना। (७) ज्यादा खुलना। (८) तनाव के साथ बढ़ना। (९) प्रचार पाना या होना। (१०) दूर-दूर तक पहुँचना। (११) प्रसिद्ध होना। (१२) हठ या आग्रह करना।

फैलसूफी—संज्ञा स्त्री. [यू फिलसफ] फिजूल-खर्ची।

फैलाना—क्रि. स. [हिं. फैलना] (१) विस्तार या फैलाव से स्थान घिरवाना। (२) इधर-उधर बढ़ाना। (३) लपेटा या तहाया हुआ न रखना। (४) छा देना, भर देना। (५ बिखेरना, छितराना। (६) बढ़ती या वृद्धि करना। (७) तान कर बढ़ाना। (८) प्रचार करना। (९) दूर-दूर तक पहुँचाना। (१०) प्रसिद्ध करना। (११) आयोजन करना। (१२) लेखा-जोखा करना।

फैलाव—संज्ञा स्त्री. [हिं. फैलना] १) प्रसार। (२) प्रचार।

फैसला—संज्ञा पुं. [अ. फैसला] (१) निबटेरा। (२)न्याय।

फोंक—संज्ञा पुं. [सं. पुंख] तीर की पिछली नोक जिसके पास पर होते हैं और जिस पर डोरी बैठने की खड्डी बनी होती है। उ.—परिमल लुब्ध मधुप जहँ बैठत उड़ि न सकत तेहि ठाँते। मनहुँ मदन के है सर पाए फोंक बाहरी घाते—३१३४।

फोंदा—संज्ञा पुं. [हिं. फुँदना] फुलरा, झब्बा। उ.—पचरँग बरन-बरन पाटहि पवित्रा बिच बिच फोंदा गोहनो—२२८०।

फोक—संज्ञा पुं. [हिं. बोकला] (१) सारहीन वस्तु, सीठी। (२) भूसी। (३) स्वादहीन या नीरस वस्तु।

फोकट—वि. [हिं. फोक] निःसार, व्यर्थ, सारहीन, नीरस, मूल्यहीन। उ.—अलि चलि औरै ठौर देखावहु अपनो फोकट ज्ञान—३१२५।

फोकला—संज्ञा पुं. [हिं. बोकला] भूसी, छिलका।

फोड़ना—क्रि. स. [सं. स्फोटन, प्रा. फोडन] (१) खंड-खंड करना, दरकाना। (२) ऐसी चीज तोड़ना जो भीतर से पोली, मुलायम या रसभरी हो। (३ दबाव से, भेदकर निकल जाना। (४) शरीर में दोष हो जाना जिससे घाव या फोड़े हो जायँ। (५) अंकुर आदि निकलना। (६) शाखा के समान अलग होकर जाना। (७) विपक्ष में कर देना। (८) साथ न रहने देना। (९) फूट डाल देना। (१०) भेद प्रकट करना।

फोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. स्फोटक] शरीर पर उभार आनेवाला बड़ा दाना, बड़ी फुंसी।

फोता—संज्ञा पुं. [फ़ा. फ़ोता] (१) पटुका, कमरबंद। (२) पगड़ी (३) भूमि-कर, पोत। उ.—माँड़ि माँड़ि खलिहान क्रोध को फोता भजन भरावै। (४) थैली।

फोरत—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] तोड़ना, चूर-चूर करना। उ.—काहू की छीनत हौ गेंडुरि काहू की फोरत हौ गगरी—८५३।

फोरतिं—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] फोड़ती है।

मुहा॰ - सिर फोरतिं—सिर पटक-पटक कर विलाप करती हैं। उ.—सिर फोरति, गिरि जाति, अभूषन तोरतिं अँग को—५८९।

फोरतौ—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] फोड़ डालता, चूर-चूर कर देता, खंड-खंड कर डालता। उ.—हौ तो न भयौ री घर, देखत्यौ तेरी यौ अर, फोरतौ बासन सब, जानति बलैया—३७२।

फोरना—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] तोड़ना, फोड़ना।

फोरि—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] (१) खंड-खंड करके, भग्न करके। (२) ऐसी वस्तुओं को तोड़कर जिनके भीतर मुलायम या पतली चीज भरी हो। उ.—जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं। तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं—१-८६।

यौ॰—फोरि-फारि—तोड़-फोड़कर, तोड़-ताड़कर। खंड-खंड करके, नष्ट करके। उ.—फोरि फारि, तोरि तारि,गगन होत गाजैं—९-१३९।

फोरी—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] (१) खंड-खंड करके, भग्न करके। उ.—गुदी चाँपि लै जीभ मरोरी। दधि ढरकायौ भाजन फोरी—१०-५७। (२) तोड़-फोड़ डाली। उ.—कब दधि मटुकी फोरी—१०-२९३।

(३) **उल्लंघन की, भंग की** । उ.—पय पीवत जिन हती पूतना, स्रु ति मर्यादा फोरी—२८६३ ।

फोरै—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] **फोड़ता है, खंड खंड करता है, भग्न करता है** । उ.—अँग-आभूषन सब तोरै। लवनी-दधि-भाजन फोरै—१०-१८३ ।

फोर्यौ—क्रि. स. [हिं. फोड़ना] **ऐसी चीज भग्न की जो भीतर से पोली, कोमल या रसभरी हो** ।

मुहा०—फोर्यौ नयन—**आँख फोड़ दी, अंधा कर दिया**। उ.—फोर्यौ नयन, काग नहिं छाँड़्यौ, सुरपति के बिद्मान—६-८३ ।

फौकना—क्रि. अ. [अनु.] **डींग हाँकना** ।

फौज—संज्ञा स्त्री. [अ. फ़ौज] (१) **सेना, सैन्य** । उ.—(क) गज-अहँकार चढ़्यौ दिगविजयी, लोभ-छत्र करि सीस । फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मैं ईस—१-१४४ । (ख) मागध मगध देस तैं आयौ साजे फौज अपार । (ग) हो जानति हौं फौज मदन की लूटि लई सारी—२१०६ । (२) **झुंड, जत्था** ।

फौजदार—संज्ञा पुं. [हिं. फौज+दार] **सेनापति** ।

फौजदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. फौजदार] **मार-पीट** ।

फौजपति—संज्ञा पुं. [हिं. फौज+सं. पति] **सेनापति** । उ.—निधरक भयो चल्यो व्रज आवत आउ फौजपति मैन—२८१६ ।

फौजी—वि. [हिं. फौज] **सेना-संबंधी** ।

फौरन—क्रि. वि. [अ. फ़ौरन] **तुरंत, तत्काल** ।

फौलाद—संज्ञा पुं. [फ़ा पोलाद] **बहुत कड़ा लोहा** ।

ब

ब—**हिन्दी का तेईसवाँ व्यंजन और पवर्ग का तीसरा वर्ण । यह अल्पप्राण ओष्ठ्य वर्ण है** ।

बंक—वि. [सं. वक्र, वंक] (१) **टेढ़ा, तिरछा** । उ.—(क) कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भ्रुव नैन-बिलोकनि बंक—१०-१५४ । (ख) लोचन बंक बिसाल चितै कै रहत तब हो सबके मन—२५७३ । (ग) बंक बिलोकनि लगी लोभ सम सकति न पंख पसारि—२७१७ । (२) **विक्रमी** । (३) **दुर्गम** ।

बंकट—वि. [हिं. बक] (१) **टेढ़ा, तिरछा** । उ.—(क) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरै बंकट भौंह मरोरै । (ख) भृकुटि बंकट चारु लोचन रही जुवती देखि । (ग) गज उरोज वर बाजि बिलोचन बंकट बिसद बिसाल मनोहर —१६०६ । (२) **दुर्गम** । उ.—मनो कियो फिरि मान मवासौं मन्मथ बंकट कोट—२२१८ ।

बंकति—वि. [हिं. बंक+अति] **बहुत टेढ़ी** । उ.—बंकति भौंह चपल अति लोचन बेसरि रस मुकताहल छायो—२०६३ ।

बंका—वि. [हिं. बंक] (१) **टेढ़ा, तिरछा** । (२) **बाँका** । (३) **बली, पराक्रमी** । (४) **दुर्गम** ।

बंकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बंक] **टेढ़ा-तिरछापन** ।

बंकुर—वि. [हिं. बंक] (१) **टेढ़ा** । (२) **दुर्गम** ।

बंकुरता—संज्ञा स्त्री. [हिं. बंकुर] **टेढ़ा-तिरछापन** ।

बंग—संज्ञा पुं. [सं. वंग] **बंगाल देश** ।

बँगला—संज्ञा स्त्री. [हिं. बंगाल] **बंगाल की भाषा** ।

वि.—**बंगाल देश-संबंधी** ।

बँगली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बगल] **कलाई का एक भूषण** ।

बंगा—वि. [हिं. बंक] (१) **टेढ़ा** । (२) **मूर्ख, उजड्ड** ।

बंगाल—संज्ञा पुं. [सं. वंग] (१) **बंग देश** । (२) **एक राग** ।

बंगाली—संज्ञा पुं. [हिं. बंगाल] (१) **बंगाल देश-वासी** । (२) **एक राग** । उ.—मुरली माहिं बजावत गावत बंगाली अधर चुवत अमृत बनवारी—२३६७ ।

संज्ञा स्त्री.—**बंगाल देश की भाषा** ।

बंचक—संज्ञा पुं. [सं. वंचक] **धूर्त, ठग, पाखंडी** ।

बंचकता, बंचकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. वंचकता] **छल, ठगी** ।

बंचन—संज्ञा पुं. [सं. वंचन] **छल-कपट** ।

बंचनता, बंचनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. वंचनता] **ठगी** ।

बंचना—संज्ञा स्त्री. [सं. वंचना] **ठगी** ।

क्रि. स. [सं. वंचन] **ठगना, छलना** ।

बँचवाना—क्रि. स. [हिं. बाँचना] **पढ़वाना** ।

बंचित—वि. [सं. वंचित] (१) **जो ठगा गया हो** । (२) **अलग किया हुआ** । (२) **जिसे कोई वस्तु न मिले** । (४) **हीन, रहित** ।

वंछना—क्रि. स. [सं. वांछा] **इच्छा करना।**

वंछनीय—वि. [सं. वांछनीय] (१) **चाहने योग्य।** (२) **जिसे प्राप्त करने की इच्छा हो। जो प्रिय हो।**

वंछित—वि. [सं. वांछित] **चाहा हुआ।**

वंज—संज्ञा पुं. [हिं. बनिज] (१) **व्यापार,** (२) **सौदा।**

वंजर—संज्ञा पुं. [सं. बन+ऊजड़] **ऐसी भूमि जहाँ कुछ उत्पन्न न हो, ऊसर।**

वंजारनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनजारिन] **टाँड़ लादकर बेचने वाली।** उ.—पेला करति देति नहिं नीकैं तुम हो बड़ी वंजारिनि—१०४०।

वंजारा—संज्ञा पुं. [हिं. बनजारा] **बैल पर अनाज लादकर बेचने वाला, बनजारा।**

वंझा—वि. [सं. वंध्या] **जिसके संतान न हो, बाँझ।** उ.—ब्यावर बिथा न बंझा जानै—३४४१।

संज्ञा स्त्री.—**बाँझ स्त्री।**

वँटना—क्रि. अ. [हिं. बटन] (१) **भाग या हिस्सा होना** (२) **कई प्राणियों में बाँटा जाना।**

संज्ञा पुं. [हिं. बटना] **उबटन।**

वँटवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँटना] **बाँटने की मजदूरी।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँटना] **पिसाने की मजदूरी।**

वँटवाना—क्रि. स. [सं. वितरण] **दूसरे से वितरण कराना।**

क्रि. स. [सं. वर्तन] **दूसरे से पिसवाना।**

वँटा—संज्ञा पुं. [हिं. बटा] **गोल या चौकोर डिब्बा।**

वि.—**छोटे कद या आकारवाला।**

वँटाइ—क्रि. स. [हिं. बाँटना] **बाँटकर, वर्ग करके।**

प्र० – बँटाइ लीनें—**दलों में विभाजित कर लिये।** उ.—कान्ह, हलधर बीर दोऊ, भुजा बल अति जोर। सुबल, श्रीदामा, सुदामा वै भए इक ओर। और सखा बँटाइ लीन्हें, गोपबालक-बृन्द—१०-१४४।

वँटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँटना] **बाँटने का काम, भाव या मजदूरी।**

वँटाना—क्रि. स. [हिं. बाँटना] (१) **भाग या हिस्सा कराना।** (२) **बाँटने को साझीदार बनना।**

मुहा०—हाथ बटाना—**सहायता करना।**

वँटावन—वि. [हिं. बटाना] **बँटानेवाला, भाग लेनेवाला।** उ.—बारह बरष नींद है साधी, तातैं बिकल सरीर। बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन-बीर—९-१४५।

वंटी—संज्ञा स्त्री. [हिं.] **पशु फँसाने का जाल।**

संज्ञा स्त्री. [हि. बंटा] **छोटी डिबिया।**

वँटैया—संज्ञा पुं. [हिं. बाँटना+ऐया (प्रत्य) (१) **बाँटने वाला।** (२) **बँटा लेनेवाला।**

वंडा—संज्ञा पुं. [हिं. बंटा] **बड़ी अरुई या घुइयाँ।**

वंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँड़ा] **बिना बाँह की फतुही।**

वँडेरा—संज्ञा पुं. [हिं. बरेड़ा] **खपरैल की लंबी लकड़ी।**

वँडेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. वँडेरा] **खपरैल की लम्बी लकड़ी।**

वंद—संज्ञा पुं. [फा.] (१) **बाँधने की वस्तु।** (२) **पानी रोकने का पुश्ता, मेड़।** (३) **अंगों का जोड़।** (४) **अँगरखे, चोली आदि की तनी।** उ.—(क) सूर सुतहिं बरजौ नँदरानी, अब तोरत चोली-बँद डोर। (ख) चीर फटे कंचुकि-बंद छूटे—७६६। (ग) गए कंचुकि बँद टूटि—१०-३०-८। (५) **उर्दू काव्य का एक पद।** (६) **बंधन, कैद।**

वि. [फा.] (१) **जो किसी तरफ से खुला न हो।** (२) **जो सब तरफ से घिरा हो।** (३) **जिसका मुँह या मार्ग न खुला हो।** (४) **जो ढकना, दरवाजा आदि खुला न हो।** (४) **जिसका कार्य रुका या स्थगित हो।** (६) **जो चलता न हो।** (७) **जिसका प्रचार-प्रकाशन आदि न हो।** (८) **जो कैद में हो।**

वि. [सं. वंद्य] **बंदनीय।** उ.—जदुकुल-नभ तिथि द्वितीय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद—१३३१।

वंदगी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **आराधना।** (२) **प्रणाम।**

वंदत—क्रि. स. [हिं. बंदना] **प्रणाम करते हैं, नमस्कार करते हैं।** उ.—दसरथ चले अवध आनन्दत। जनक-राइ बहु दाइज दै करि, बार-बार पद बंदत—९-२७।

वंदन—संज्ञा पुं. [सं. वंदन] (१) **स्तुति।** (२) **प्रणाम।** उ.—सकुचासन कुल सील करषि करि जगत बंद्य कर बंदन—३०१४।

संज्ञा पुं. [सं. वंदनी=गोरोचन] (१) **रोली, रोचन।** (२) **सिंदूर, सेंदुर, ईंगुर।** उ.—(क) नील पुट बिच मनो मोती धरे बंदन बोरि—१०-२२५।

(ख) मुक्ता मनौ नील-मनि-मय-पुट, धरे मुरकि बर बंदन—४७६ ।

बंदनता—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदनता] **स्तुति, आदर या वंदना की जाने की योग्यता ।**

बंदनमाला—संज्ञा पुं. [सं.] **फूल-पत्तों की झालर जो मंगल कार्यों के शुभावसर पर खंभों-दीवारों पर बाँधी जाती है, तोरण ।** उ.—लछिमी सी जहँ मालिनि बोले। बंदनमाला बाँधत डोलै—१०-३२ ।

बंदनवार—संज्ञा पुं. [सं. वंदनमाला] **फूल-पत्तों की बनी हुई माला या झालर जो मंगल कार्यों के अवसर पर खंभों-दीवारों पर बाँधी जाती है ।** उ.—अच्छत दूब लिये रिषि ठाढ़े, बारिनि बंदनवार बँधाई—१०-१६ ।

बंदना—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदना] **स्तुति, प्रार्थना ।**

क्रि. स. [सं. वंदन] **प्रणाम या नमस्कार करने ।** उ.– सुर-नर-देव बंदना आए, सोवत तैं उठि जागी—१०-४ ।

बंदनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदनी] **एक भूषण जो माथे से ऊपर सिर पर रहता है, बंदी, सिरबंदी ।**

वि. [सं. वंदनीय] **स्तुति या वंदना योग्य ।**

बंदनीमाल—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदनमाल] **गले से पैर तक की माला ।**

बंदर, बँदरा—संज्ञा पुं. [सं. वानर] **बानर, मर्कट ।**

मुहा०—बंदर घुड़की या भबकी—**डराने धमकाने या धौंस जमाने के लिए की जानेवाली डाँट,फटकार या धमकी ।**

बँदवारे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. बंदन+वाला] **स्तुति, प्रार्थना या बंदना करनेवाले याचक आदि ।** उ.—फूले बंदीजन द्वारे, फूले-फूले बँदवारे, फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर के—१०-३४ ।

बंदहिं—वि. [फा. बंद+हिं, हिं (प्रत्य)] **बंद (रहकर) बंदी (होकर) ।** उ.—गूँगो बातनि यौं अनुरागति, भँवर गुंजरत कमल मों बंदहिं—१०-१०७ ।

बंदा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) **सेवक, दास ।** (२) **'वक्ता' का अपने लिए शिष्टता या नम्रतासूचक प्रयोग ।**

बंदारु—वि. [सं. वंदारु] **पूजनीय, वंदनीय ।**

बंदि—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदिन्] **कारावास, कैद ।** उ.—राज रवनि सुमिरे पति-कारन असुर-बंदि तैं दिए छुड़ाई—१-२४ ।

क्रि. स. [हिं. बंदना] **बंदना करके ।** उ.—यह कह्यौ नंद, नृप बंदि, अहिं इन्द्र पै गयौ मेरौ नंद, तुव नाम लीन्हौ—५८४ ।

बंदिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बंदनी] **'बंदी' नामक आभूषण ।**

बंदिश—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) **बाँधने की क्रिया या भाव ।** (२) **प्रबंध, योजना ।** (३) **कुचक, षड्यंत्र ।**

बंदियै—क्रि. स. [हिं. बंदना] **प्रशंसा कीजिए ।** उ.—जाको निंदि बंदियै, सो पुनि वह ताकौ निंदरै—११५५ ।

बंदी—संज्ञा पुं. [सं.] **भाट, चारण ।** उ.— मोह-मया बंदी गुन गावत, मागध दोष-अपार—१- १४४ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बंदनी] **सिर का एक भूषण ।**

संज्ञा पुं. [फा०] **कैदी ।** उ.—जरासंध बन्दी कटैं नृप-कुल जस गावै—१-४ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बंदा] (१) **दासी, सेविका ।** (२) **वक्ता नारी का अपने लिए शिष्टता अथवा नम्रता सूचक प्रयोग ।**

बंदीखाना—संज्ञा पुं. [हिं. बंदी+फा. खाना] **कैदखाना ।**

बंदीघर—संज्ञा पुं. [सं. बंदीगृह] **कैदखाना ।**

बंदीछोर—संज्ञा पुं. [फा. बंदी+हिं. छोर] (१) **बंधन से छुड़ानेवाला ।** (२) **बंदीगृह से छुड़ानेवाला ।**

बंदीजन—संज्ञा पुं. [सं. बन्दीजन] **राजा की गुणावली गाने वाले लोग, एक प्राचीन जाति के लोग, जो राजा-महाराजाओं का यश वर्णन करते थे ।** उ.—(क) निंदा जग उपहास करत, मग बंदीजन जस गावत—१-१४१ । (ख) बिप्र-सुजन-चारन-बंदीजन सकल नन्द-गृह आए—१०-८७ ।

बंदीवान—संज्ञा पुं. [सं. वंदिन्] **कैदी ।**

बदेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बंदा+एरी] **दासी, चेरी ।**

बंदोबस्त—संज्ञा पुं. [फा.] **प्रबंध ।**

बंद्य—वि. [सं. वंद्य] **बंदना या स्तुति के योग्य ।** उ.—सकुचासन कुल सील करषि करि जगत बंद्य करि बंदन—३०१४ ।

बंध—संज्ञा पुं. [सं. बंधन] (१) **बंधन ।** (२) **कैद ।** उ.—

कोटि छ्यानवै नृप सेना सब जरासंध बँध छोरे—**१-३१**। (३) **पानी रोकने का धुस्स, बांध**। उ.—जाकै संग सेत-बंध कीन्हौं, अरु जीत्यौ महभारथ। गोपी हरी सूर के प्रभु बिनु, रहत प्रान किंहिं स्वारथ—१-२८७। (४) **रति के सोलह आसनों में से एक**। उ.—परिरंभन सुख रास हास मृदु सुरति केलि सुख साजे। नाना बंध विविध रस क्रीड़ा खेलत स्याम अपार—(५) **गाँठ, गिरह**। (६) **योग की कोई मुद्रा**। (७) **निबंध-रचना**। (८) **चित्र काव्य-रचना**। (६) **डोरी**। (१०) **लगाव-फँसाव**। (११) **शरीर**।

बंधक—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **रेहन-रूप में रखी वस्तु**। (२) **बदला करनेवाला**। (३) **बाँधनेवाला**।

बंधन—संज्ञा पुं. [सं. बंधन] (१) **बाँधने की क्रिया**। (२) **बाँधने की वस्तु**। (३) **प्रतिबंध, फँसाने की चीज**। (४) **वध, हिंसा**। (५) **बंदीगृह**। (६) **फंदा, गाँठ**। उ.—हा करुनामय कुञ्जर टेर्यौ, रह्यौ नहीं बल थाकौ। लागि पुकार तुरत छुटकायौ, काट्यौ बंधन ताकौ—१-११३।

बंधना—क्रि. अ. [सं. बंधन] (१) **बंधन में आना या पड़ना**। (२) **रस्सी आदि से फँसाया जाना**। (३) **बंदी होना**। (४) **स्वतंत्र न रहना, अटकना**। (५) **ठीक या संगठित होना**। (६) **क्रम स्थिर होना**। (७) **वचन-बद्ध होना**। (८) **प्रेम में फँसना**।

संज्ञा पुं.—(१) **बाँधने का साधन**। (२) **थैली**।

बंधनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बँधना] **बाँधने का साधन**।

बंधन—संज्ञा पुं. [हिं. बाँधव] (१) **भाई**। (२) **संबंधी**।

बँधवाना—क्रि. स. [हिं. बाँधना] (१) **बाँधने का काम कराना**। (२) **नियत कराना**। (३) **बंदी कराना**। (४) **तैयार कराना**।

बँधाई—क्रि. स. [हिं. बँधाना] **बँधवायी या बंधन में करायी**। उ.—इनहीं के हित भुजा बँधाई, अब बिलंब नहिं लाऊँ—१०-३८२।

प्र०—लेहि बँधाइ— **बंदी करा लेगा**। उ.—मो समेत दोउ बंधु तुम, कालिहिहिं लेहि बँधाइ—५८६।

बँधाऊँ—क्रि. स. [हिं. बँधाना] **बाँधने के लिए प्रेरित करूँ, बँधवाऊँ**। उ.—कंचन-मनि खोलि डारि, काँच गर बंधाऊँ—१-१६६।

बँधाएँ—क्रि. स. [हिं. बँधाना] **बंदी कराया**। उ.—बाँधन गए बंधाएँ आपुन, कौन सयानप कीन्यौ—८-१५।

बंधान—संज्ञा पुं. [हिं. बंधना] (१) **निश्चित क्रम, नियत परिपाटी**। (२) **धन जो निश्चित क्रम के अनुसार दिया जाय**। (३) **पानी रोकने का बाँध**। (४) **ताल का सम (संगीत)**। उ.—(क) सुर स्रुति तान बंधान अमित अति, सप्त अतीत अनागत आवत—६४८। (ख) औघर तान बँधान सरस सुर अरु रस उमंगि भरी—२३३८।

बँधाना—क्रि. स. [हिं. बंधन] (१) **बाँधने का काम कराना**। (२) **धारण कराना**। (३) **बंदी बनवाया**।

बँधाने—क्रि. स. [हिं. बँधाना] **बँध रहा है, बाँधा गया है**। उ.—कदली कंटक, साधु असाधुहिं, केहरि के संग धेनु बँधाने—१-२१७।

बँधायो, बँधायौ—क्रि. स. [हिं. बँधाना] (१) **गुंथवाया**। उ.—मोतिनि बँधायौ बार महल में जाइकै—१०-३१। (२) **बंधन में डलवाया**। उ.—सूरदास ग्वालिनि अति झूठी बरबस कान्ह बँधायौ—१०-३३०।

बँधावत—क्रि. स. [सं. बंधन, हिं. बँधाना] (१) **(तालाब, कुआँ, पुल आदि) बनवाते या तैयार कराते हैं**। उ.—दस अरु आठ पदुम बनचर लै, लीला सिंधु बँधावत—६-१३३। (२) **बाँधने को प्रेरित करते हैं, बंधन में डलवाते हैं**। उ.—इहाँ हरि प्रगट प्रेम जसुमति के ऊखल आप बँधावत—३१३५।

बँधावै—क्रि. स. [हिं. बँधाना (प्रे०)] (१) **अपने को बाँधने के लिए दूसरे को प्रेरित करे**। उ.—दुखित जानि कै सुत कुबेर के तिन्ह लगि आपु बँधावै—१-१२२। (२) **अपने को बंदी कराता है**। उ.—भौंरा भोगी बन भ्रमै (रे) मोद न मानै ताप। सब कुसुमनि मिलि रस करै (पै) कमल बँधावै आप—१०-३२४।

बँधि—क्रि. अ. [हिं. बंधना] (१) **पुल आदि बाँधकर**। उ.—सिला तरी, जल माँहिं सेत बँधि—१-३४। (२) **वचनबद्ध होकर**। उ.—पति अति रोष मारि मन ही मन, भीषम दई बचन बँधि बेरी १-२५२।

बंधित—वि. [सं. बंध्या] **बाँझ (स्त्री)।**

बंधी—वि. [सं. बंधिन्] **जो बाँधा गया।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बँधना] **बँधा हुआ क्रम।**

बंधु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **भाई, भ्राता।** (२) **सहायक।** (३) **मित्र।** (४) **एक वर्णवृत्त।** (५) **बंधूक पुष्प।**

बँधुआ—संज्ञा पुं. [हिं. बंधना+उआ] **बंदी, कैदी।**

बंधुक—संज्ञा पुं. [सं.] **दुपहरिया का लाल फूल।** उ.—अधर दसन-छत बंदन राजत बंधुक पर अलि मानो—१६६१।

बंधुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **भाईचारा,** (२) **मित्रता।**

बंधुत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **भाईचारा।** (२) **मित्रता।**

बंधुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मुकुट।** (२) **दुपहरिया फूल।**

बंधुर, बंधुल—वि. [सं.] (१) **सुन्दर।** (२) **नम्र।**

बँधुवा—संज्ञा पुं. [हिं. बंधना+उआ] **कैदी।**

बंधूक—संज्ञा पुं. [सं. वंधुक] **दुपहरिया का फूल।**

बंधेज—संज्ञा पुं. [हिं. बंधना+एज] **रुकावट, प्रतिबंध।**

बंध्या—वि. स्त्री. [सं.] **बाँझ स्त्री।**

बंध्यापन—संज्ञा पुं. [हिं. बंध्या+पन] **बाँझपन।**

बँध्यौ—क्रि. अ. [हिं. बँधना] **बँधा, बँधन में पड़ा।** उ.—(क) ऊखल बँध्यो जु हेतु भगत के—३६१। (ख) सूरदास प्रभु को मन सजनी बँध्यौ राग की डोर—६५७।

बंब—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) **बं बं शब्द जो शैवगण करते हैं।** (२) **रण का कोलाहल।** (३) **नगाड़ा, डंका।**

बँबाना—क्रि. अ. [अनु.] **पशु का रँभाना।**

बँभनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. ब्राह्मण] (१) **ब्राह्मणपन।** (२) **हठ, दुराग्रह।**

बंस—संज्ञा पुं. [सं. वंश] **वंश, परिवार।** उ.—ये तुम्हरे कुल-बंस हैं—१-२३८।

बंसकार—संज्ञा पुं. [सं. वंश] **बाँसुरी।**

बंसरी—संज्ञा स्त्री.—[हिं. बंशी] **बाँसुरी।**

बंसा—संज्ञा पुं. [सं. वंश] **वंश, कुल।** उ.—ग्वाल परम सुख पाइ, कोटि मुख करत प्रसंसा। कहा बहुत जो भए, सपूतौ एकै बंसा—४३१।

बंसी—संज्ञा स्त्री. [सं. वंशी] **बाँसुरी, मुरली।**

बंसीधर—संज्ञा पुं. [सं. वंशीधर] **श्रीकृष्ण।**

बंसीबट—संज्ञा पुं. [सं. वंशीवट] **वृंदावन में एक बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते थे।**

बँहगी—संज्ञा स्त्री. [सं. वह] **भार ढोने का एक साधन।**

बई—क्रि. स. [हिं. बपना] **बोयी, बीज जमाया।** उ.—(क) इंद्रिय मूल किसान, महातृन-अग्रज-बीज बई—१-१८५। (ख) मनहुँ पीक दल सींचि स्वेद जल आल बाल रति-बेलि बई री—२११५। (ग) मेरे नयना बिरह की बेलि बई—२७७३।

क्रि. स. [हिं. बलना] **बली, जली, सुलगी, छितरी, बिखरी।** उ.—जोग की गति सुनत मेरे अंग-आगि बई—३१३१।

बउर—संज्ञा पुं. [हिं. बौर] **बौर।**

बउरा—वि. [हिं. बावला] **पागल, बावला।**

बउराना—क्रि. अ. [हिं. बौराना] **पागल होना।**

बए—क्रि. स. बहु. [हिं. बपना] **बोया, बीज जमाया या लगाया।** उ.—(क) गोकुलनाथ बए जसुमति के आँगन भीतर, भवन मँझार। साखा-पत्र भए जल मेलत, फूलत-फरत न लागी बार—१०-१७३। (ख) सूरदास प्रभु दूत धर्म ढिग दुख के बीज बए—२९९३। (ग) जनु तनुजा में सद्य अरुन दल काम के बीज बए—२०८४।

बक—संज्ञा पुं. [सं. वक] (१) **बगला।** (२) **बकासुर।** उ.—अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तें काढ्यो काली २५६७। (३) **एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था।**

वि.—**बगले सा सफेद।**

संज्ञा स्त्री.—[हिं. बकना] **बकवाद, प्रलाप।**

यौ०—बकझक या बकबक—**व्यर्थ की बकवाद।**

बकठाना—क्रि. स. [सं. विकुंठन] **बकठा हो जाना।**

बकत—क्रि. अ. [सं. वचन, हिं. बकना] (१) **बकती-झकती हूँ, बकते-बकते** उ.—कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हौं कृस, इहिं मिस सूर स्याम-बदन चहूँ—१०-२६५। (२) **डाँटते-डपटते।** उ.—बकत-बकत तोसौं पचिहारी, नैंकहुँ लाज न आई—१०-३२६।

बकतर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **एक तरह का कवच।**

बकता—वि. [सं. वक्ता] **व्याख्यान देनेवाला।**

बकति, बकती—क्रि. स. स्त्री. [सं. वचन, हिं. बकना] **प्रलापती है, बड़बड़ाती है, बुरा-भला कहती है।** उ.—करति कछू न कानि, बकति हैं कटु बानि, निपट निलज बैन बिलखि सहूँ—१०-२९५।

बकध्यान—संज्ञा पुं. [सं. बक+ध्यान] **बनावटी भलमनसाहत, भले बनने का आडंबर।**

बकध्यानी—वि. [सं. बकध्यानिन्] **जो दिखावटी भला हो, पर हृदय से कपटी और कुटिल हो।**

बकना—क्रि. स. [सं. वचन] (१) **व्यर्थ ही बहुत बोलना।** (२) **बड़बड़ाना, प्रलाप करना।**

मुहा०—बकना-झकना—**बड़बड़ाना।**

बकमौन—वि. [सं. बक+मौन] **चुपचाप मतलब साधनेवाला।**

बकरति—क्रि. स. [हिं. बकरना] **बकती है, बड़बड़ाती है।** उ.—जसोदा ऊखल बाँधे स्याम। ...। दह्यौ मथति, मुख तैं कछु बकरति गारी दै लै नाम। घर-घर डोलत माखन चोरत, षटरस मेरैं धाम—३७९।

बकरना—क्रि. स. [हिं. बकना] (१) **बड़बड़ाना।** (२) **अपना दोष स्वीकार करना या स्वगत-रूप से कहना।**

बकरा—संज्ञा पुं. [सं. वर्कर] **एक प्रसिद्ध पशु।**

बकराना—क्रि. स. [हिं. बकरना] **दोष कबूल कराना।**

बकला—संज्ञा पुं. [सं. वल्कल] (१) **छाल।** (२) **छिलका।**

बकवाद—संज्ञा स्त्री. [हिं. बक+वाद] **व्यर्थ की बात, बकवाद।** उ.—कहि कहि कपट सँदेसन मधुकर कृत बकवाद बढ़ावत। (ख) सूर बृथा बकवाद करत हो, इहिं ब्रज नंदकुमार—३२५३।

बकवादी—वि. [हिं. बकवाद] **बकवाद करनेवाला।**

बकवाना—क्रि. स. [हिं. बकना] **बकवाद कराना।**

बकवास—संज्ञा स्त्री. [हिं. बकना+वास] (१) **बकबक।** (२) **बकवाद करने की तलब या इच्छा।**

बकवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. बकवृत्ति] **कपटाचरण।**

बकव्रती—वि. [सं. बकव्रतिन्] **कपटी, आडंबरी।**

बकसना—क्रि. स. [फ़ा. बख्श+हिं. ना] (१) **कृपापूर्वक प्रदान करना।** (२) **क्षमा करना।**

बकसाऊँ—क्रि. स. [हिं. बकसाना] **क्षमा कराऊँ।** उ.—चूक परी मोतैं मैं जानी, मिलैं स्याम बकसाऊँ री—१६७३।

बकसाना—क्रि. स. [हिं. बकसना] **क्षमा करना।**

बकसियो—क्रि. स. [हिं. बकसना] **क्षमा करना।** उ.—पालागौं यह दोष बकसियो सन्मुख करत ढिठाई—३३४३।

बकसीस—संज्ञा स्त्री. [फ़ा बख़्शिश] (१) **इनाम, पारितोषिक।** उ.—(क) नाचैं फूल्यौ अँगनाइ, सूर बकसीस पाइ, माथे कै चढ़ाइ लीनौ लाल कौ झगा—१०-३९। (ख) कमल जब ते उरग पीठि ल्याए सुने वैहैं बकसीस अब उनहिं दैहैं—२४६७। (२) **दान।**

बकसो, बकसौ—क्रि. स. [हिं. बकसना] **क्षमा करो।** उ.—(क) ढीठो बहुत कियो हम तुमसों बकसो हरि चूक हमारी—११९१। (ख) यह अपराध मोहिं बकसौ री इहै कहति हौ मेरी माई—८९३।

बकस्यौ—क्रि. स. [हिं. बकसना] **क्षमा किया, कुछ न कहा।** उ.—पूत सपूत भयौ कुल मेरैं, अब मैं जानी बात। सूर स्याम अब लौं तुहिं बकस्यौ, तेरी जानी घात—१०-३२९।

बकाना—क्रि. स. [हिं. बकना] (१) **बकबक कराना।** (२) **रटाना।** (३) **बकने-झकने को विवश करना।**

बकाया—संज्ञा पुं. [अ.] (१) **बाकी, शेष।** (२) **बचत।**

बकारि—संज्ञा पुं. [सं. बक+अरि] **श्रीकृष्ण।**

बकावत—क्रि. स. [हिं. बकाना] **रटाता है।** उ.—बार बार बकि स्याम सों कछु बोल बकावत।

बकासुर—संज्ञा पुं. [सं. बकासुर] **बक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।**

बकिहै—क्रि. स. [हिं. बकना] **बक-झककर मना करेगा, डाँट-फटकार करेगा।** उ.—सूर आइ तू बरति अचगरी, को बकिहै निसि जामहिं—७२२।

बकी—संज्ञा स्त्री. [सं. बकी] **बकासुर की बहिन पूतना जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।**

बकुचा—संज्ञा पुं. [हिं. बकुचना] **गठरी, पोटली।**

बकुचाना—क्रि. स. [हिं. बकुचा] **पोटली में बाँधकर कंधे या पीठ पर लटकाना।**

बकुची—संज्ञा स्त्री. [हिं. बकुचा] **छोटी गठरी।**

बकुचौहाँ—वि. [हिं. बकुचा+औहाँ] **बकुचा-जैसा।**

बकुरना—क्रि. स. [हिं. बकुरना] **स्वीकार करना।**

बकुराना—क्रि. स. [हिं. बकुरना] **स्वीकार कराना।**

बकुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मौलसिरी।** उ.—नूतन कदम तमाल बकुल बट परसत जनम गए। (२) **शिव।**

बकै—क्रि. अ. [हिं. बकना] **बकता है।** उ.—कायर बकै, लोभ तैं भागै लरै सो सूर बखानै—३३३७।

बकोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. काटना] (१) **पंजे की स्थिति जो नोचते समय होती है।** (२) **नोचने की क्रिया या भाव।** (३) **चुटकी भर वस्तु।**

बकोटना—क्रि. स. [हिं. बकोट] **नोचना, पंजा मारना।**

बकोटनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बकोट] **बकोटने या नोचने की क्रिया।** उ.—चंचल अधर, चरन-कर चंचल, मंचल अंचल गहत बकोटनि—१०-१८७।

बक्कल—संज्ञा पुं. [सं. वल्कल, पा० बक्कल] (१) **फल का छिलका।** (२) **पेड़ की छाल।**

बक्काल—संज्ञा पुं. [अ.] **बनिया, वणिक।**

बक्की—वि. [हिं. बकना] **बहुत बोलनेवाला।**

बखतर—संज्ञा पुं. [हिं. बकतर] **एक तरह का कवच।**

बखरा—संज्ञा पुं. [फा. बख़रः] **भाग, हिस्सा।**

बखरैत—वि. [हिं. बखरा+ऐत] **साझीदार।**

बखसीस—संज्ञा स्त्री. [फा. बख़्शीश] **इनाम, पुरस्कार। नेग।** उ.—नाचै फूल्यौ अँगनाई सूर बखसीस (बकसीस) पाई माथे कै चढ़ाइ लीनो लाल को बगा—१०-३९।

बखसीसना—क्रि. स. [हिं. बखशीश] **इनाम देना।**

बखान—क्रि. स. [सं. व्याख्यान पा० बक्खान] **वर्णन करके, व्याख्या करके।** उ.—ये ब्रह्मा सौं कहे भगवान। ब्रह्मा मोसौं कहे बखान—१-२३०।

संज्ञा पुं. (१) **वर्णन, कथन।** उ.—गुन-रूप कछु अनुहार नाहीं, कर बखान बखानिए—१० उ-२४। (२) **प्रशंसा, बड़ाई।**

बखानत—क्रि. स. [हिं. बखानना] **वर्णन करता है, कहता है।** उ.—(क) सिव कौ धन, संतनि को सरवस, महिमा बेद-पुरान बखानत-१-११४। (ख) सुर-नर-मुनि सब सुजस बखानत—६-१३६। (ग) तुम्हैं वेद ब्रह्मण्य बखानत। ताते तुम्हरी अस्तुति ठानत—१० उ०-११५।

बखानना—क्रि. स. [हिं. बखान] (१) **कहना, वर्णन करना।** (२) **प्रशंसा या बड़ाई करना।** (३) **बुरा-भला कहना।**

बखानिए—क्रि. स. [हिं. बखानना] **वर्णन कीजिए।** उ.—गुन-रूप कछु अनुहारि नाहीं, का बखान बखानिए—१०उ.-११५।

बखानी—क्रि. स. [हिं. बखानना] **वर्णन किया, कहा, चर्चा की।** उ.—(क) तिहिं बिनु रहत नहीं निसि-बासर, जिहिं सब दिन रस-बिषय बखानी—१-१४६। (ख) उमा कही, मैं तौ नहिं जानी। अरु सिवहूँ मोसौं न बखानी—१-२२६।

बखानैं—क्रि. स. बहु. [हिं. बखानना] **वर्णन करते हैं, कहते हैं।** उ.—पूरन ब्रह्म पुरान बखानैं—१०-३।

बखानै—क्रि. स. [हिं. बखानना] **वर्णन करे।** उ.—सूर सुजस कहि कहा बखानै—१०-३।

बखानौं—क्रि. स. [हिं. बखानना] **वर्णन करता हूँ।** उ.—सो अब तुमसौं सकल बखानौं—१०-२।

बखार—संज्ञा पुं. [सं. प्राकार] **अनाज रखने का घेरा।**

बखारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बखार] **छोटा बखार।**

बखूबी—क्रि. वि. [फा. ब+ख़ूबी] **भली-भाँति, पूर्णतया।**

बखेड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बखेरना] (१) **झंझट।** (२) **विवाद, झगड़ा।** (३) **कठिनता।** (४) **व्यर्थ आडंबर।**

बखेड़िया—वि. [हिं. बखेड़ा] **झगड़ालू, झंझटी।**

बखेरना—क्रि. स. [सं. विकिरण] **फैलाना, छितराना।**

बख्त—संज्ञा पुं. [फा. बख़्त] **भाग्य, तकदीर।**

बख्तर—संज्ञा पुं. [फा. बक्तर] **लोहे का कवच।**

बख्शना—क्रि. स. [फा. बख़्श] (१) **देना।** (२) **क्षमा करना।**

बग—संज्ञा पुं. [सं. बक] **बगुला।**

बगछुट, बगटुट—क्रि. वि. [हिं. बाग+छूटना, टूटना] **बड़ी तेजी से, बेतहाशा।**

बगदई—वि. [हिं. बगदहा] **बिगड़ने या चौंकनेवाला।** उ.—(गैया) घेरे फिरत न तुम बिनु माधौ जू मिलत नहीं बगदई।

बगदना—क्रि. अ. [सं. विकृत, हिं. बिगड़ना] (१) **ख़राब**

होना। (२) भूलना, बहकना। (३) ठीक रास्ते से हट जाना।

बगदर—संज्ञा पुं. [देश.] मच्छड़।

बगदवाना—क्रि. स. [हिं. बगदना] (१) खराब कराना। (२) भुलवाना। (३) गिरा देना। (४) वचन से हटाना।

बगदहा—वि. [हिं. बगदना+हा] चौंकनेवाला।

बगदाना—क्रि. स. [हिं. बगदना] (१) खराब करना। (२) ठीक मार्ग से हटाना। (३) भुलाना, भटकाना।

बगना—क्रि. अ. [सं. वक (गति)] घूमना-फिरना।

बगनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की घास।

बगमेल—संज्ञा पुं. [हिं. बाग+मेल] (१) दूसरे के घोड़े के साथ या पाँति बाँधकर चलना। (२) समानता।

क्रि. वि.—पंक्तिबद्ध, साथ-साथ।

बगर—संज्ञा पुं. [सं. प्रघण, पा. पघण] (१) महल, प्रासाद। (२) बड़ा मकान, घर। (३) घर, कोठरी। (४) आँगन। (५) गाय बँधने का स्थान।

बगरना—क्रि. अ. [सं. विकिरण] बिखरना, छितरना।

बगराइ—क्रि. अ. [हिं. बगरना] बिखरी है, बिखराकर। उ.—गोरे बरन चूनरी सारी अलकैं मुख बगराइ—८८४।

बगराई—क्रि. अ. [हिं. बगरना] फैलकर, बिखरकर, छितराकर। उ.—अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई—१०-१०८।

बगराए—क्रि. स. [हिं. बगराना] फैलाये हुये, छिटकाए हुए, छितराये। उ.—ते दिन बिसरि गए इहाँ आए। अति उन्मत्त, मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१-३२०।

बगराना—क्रि. स. [हिं. बगरना] छितराना, छिटकाना।

क्रि. अ.—फैलना, बिखरना, छितरना।

बगरानी—क्रि. अ. [हिं. बगराना] बिखर गयीं। उ.—वेनी छूटि, लटैं बगरानी, मुकुट लटकि लटकानो—पृ. ३४६ (४७)।

बगरि—क्रि. अ. [हिं. बगरना] (१) फैल गयी, बिखर गयी। (२) इधर-उधर चली गयीं। उ.—बगरि गईं गैयाँ बन-बीथिन, देखीं अति अकुलाइ—५००।

बगरीं—क्रि. अ. [हिं. बगरना] बिखरीं, छिटकीं। उ.—तैसीयै लट बगरीं ऊपर स्रवत नीर अनूप—१८४६।

बगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बगर] बखरी, घर, मकान। उ.—(क) बड़े बाप के पूत कहावत, हम वै बास बसत इक बगरी। नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं, फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी—१०-३१६। (ख) घाट-बाट सब देखत आवत, युवती डरनि मरत हैं सिगरी। सूर स्याम तेहि गारी दीनो जो कोई आवै तुमरी बगरी—८५३।

बगरो—संज्ञा पुं. [हिं. बगर] (१) गैयाँ बँधने का स्थान। उ.—ग्वाल बाल सँग लिये सब घेरि रहे बगरो। (२) ठौर, स्थान, गाँव। उ.—और कहूँ जाइ रहे, छाँड़ि ब्रज बगरो—१०५६।

बगल—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) बाहुमूल के नीचे का गड्ढा, काँख। (२) छाती के दोनों किनारे के भाग, पार्श्व।

मुहा०—बगल में दबाना (धरना) छल से अधिकार में करना। बगल बजाना—खूब खुशी मनाना।

(३) किनारे या पार्श्व का भाग। (४) समीप का स्थान।

बगलन—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. बगल] छाती के दोनों किनारों के भाग। उ.—बगलन दाबे पिचकारी—२४४४।

बगला—संज्ञा पुं. [सं. वक+ला] एक प्रसिद्ध पक्षी।

मुहा०—बगला भगत—छली, कपटी, ढोंगी।

बगलामुखी—संज्ञा पुं. [देश.] एक देवी।

बगलियाना—क्रि. अ. [हिं. बगल+इयाना] राह काटकर या अलग हटकर जाना।

क्रि. स.—(१) अलग करना। (२) बगल में लाना।

बगली—वि. [हिं. बगल] बगल का।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बगला] बगुले की मादा।

बगलौहाँ—वि. [हिं. बगल+औहाँ] तिरछा, झुका हुआ।

बगसना—क्रि. स. [हिं. बख्शना] (१) देना। (२) क्षमा करना।

बगा—संज्ञा पुं. [हिं. बागा] जामा, बागा। उ.—नाचै फूल्यौ अँगनाइ, सूर बकसीस पाइ, माथै कै चढ़ाइ लीनौ लाल कौ बगा—१०-३६।

संज्ञा पुं. [सं. वक] बगला।

बगाना—क्रि. स. [हिं. बगना] **घुमाना-फिराना।**
क्रि. अ.—**जल्दी जाना, भागना।**

बगार—संज्ञा पुं. [देश.] **गाय बाँधने का स्थान।**

बगारना—क्रि. स. [हिं. बगरना] **छिटकाना, बिखेरना।**

बगावत—संज्ञा स्त्री. [अ. बग़ावत] **विद्रोह, राजद्रोह।**

बगिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाग] **छोटा बाग।**

बगीचा—संज्ञा पुं. [फ़ा. बागचा] **छोटा बाग।**

बगुला—संज्ञा पुं. [हिं. बगला] **बक, बगला।**

बगुली—संज्ञा स्त्री. [बगला] **बगला की मादा, स्त्री-बक।** उ.—बग-बगुली अरु गीध-गीधनी, आइ जनम लियौ तैंसौ—२-१४।

बगूला—संज्ञा पुं. [हिं. वायु + गोला] **वायु का भँवर, बवंडर।**

बगेड़ी, बगेरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **एक छोटी चिड़िया।**

बगैर—अव्य. [अ. बग़ैर] **बिना।**

बघंबर—संज्ञा पुं. [सं. व्याघ्रांबर] (१) **बाघ का चर्म जो आसन का काम देता है।** (२) **बाघ की खाल-सा कंबल।**

बघनहाँ, बघनहियाँ, बघना—संज्ञा पुं. [हिं. बाघ+नहँ = नाख़ून] (१) **एक आभूषण जिसमें सोने-चाँदी से मढ़े बाघ के नाख़ून रहते हैं।** उ.-(क) कठुला कंठ बघनहाँ नीके। नैन-सरोज मैन सरसी के—१०-११७। (ख) सूरदास प्रभु ब्रज-बधु निरखति, रुचिर हार हिय सोहत बघना—१०-११३। (ग) सीप जयमाल स्याम उर सोहै बिच बघना छबि पावै री। (२) **एक तरह का हथियार।**

बघनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाघ+नहँ = नाखून; पुं. बघनहाँ] **एक आभूषण जिसमें बाघ के नाखून चाँदी या सोने से मढ़े रहते हैं। यह गले में तागे में गूँथ कर पहना जाता है।** उ.—घर-घर हाथ दिवावति डोलति, बाँधति गरैं बघनियाँ—१०-८३।

बघरूरा—संज्ञा पुं. [हिं. वायु+गँड़ूरा] **बवंडर।**

बघार—संज्ञा पुं. [हिं. बघारना] **तड़का, छौंक।**

बघारना—क्रि. स. [सं. अवघारण] (१) **छौंकना, तड़का देना।** (२) **मौके-बेमौके योग्यता दिखाना।**
मुहा०—शेखी बघारना—**बढ़-बढ़कर बात करना।**

बच—संज्ञा पुं. [हिं. वचन] **वचन, वाक्य, बात।** उ.—अपनौ मन हरि सौं राँचै। आन उपाय प्रसंग छाँड़ि कै, मन-बच-क्रम अनुसाँचै—१-८१।

बचकाना—वि. [हिं. कच्चा + काना] **बच्चों का, बच्चों-सा।**

बचत—संज्ञा स्त्री. [हिं. बचना] (१) **रक्षा, बचाव।** (२) **व्यय होने से बचा भाग या अंश।** (३) **लाभ।**
क्रि. स. [सं. वचन] **कहता या बोलता है।** उ.—अबल प्रहलाद बल देत सुख ही बचत दास ध्रुव चरन चित सीस नायो।

बचन—संज्ञा पुं. [सं. वचन] (१) **वाणी, वाक्।** (२) **शब्द, वचन, बात।** उ.—भृगु को चरन राखि उर ऊपर बोले बचन सदा सुखदाई—१-३।
मुहा०—बचन खंडना—**बात न मानना, आज्ञा का पालन न करना।** बचन खंडै—**बात न मानें, आज्ञा का पालन न करे।** उ.—पिता-बचन खंडै सो पापी—१-१०४। बचन डालना—**याचना करना।** बचन छोड़ना (तोड़ना)—**कहकर हट जाना, बात का निर्वाह न करना।** बचन देना—**प्रतिज्ञा करना।** बचन निभाना (पालना)—**जो कहना, सो करना; कही हुई बात का निर्वाह करना।** बचन बाँधना—**प्रतिज्ञाबद्ध करना।** बचन बँधायो—**प्रतिज्ञा या बचनबद्ध किया।** उ.—नंद जसोदा बचन बँधायो। ता कारन देही धरि आयो—११६१। बचन बनाना—**बात बनाना, कुछ का कुछ समझाना।** बचन बनावत—**कुछ का कुछ अर्थ या उद्देश्य समझाते हैं।** उ.—सूरदास प्रभु बचन बनावत अब चोरत मन मोर—१९६५। बचन लेना—**प्रतिज्ञा कराना।** बचन हारना—**प्रतिज्ञा या बचनबद्ध होना।**

बचना—क्रि. अ. [सं. वचन = न पाना] (१) **कष्ट आदि से सुरक्षित रहना।** (२) **बुरी बात या आदत से दूर रहना।** (३) **छूट या रह जाना।** (४) **खरचने या काम में न आ पाना, बाकी रहना।** (५) **दूर या अलग रहना।** (६) **सामने से हटना।**
क्रि. स. [सं. वचन] **कहना, बोलना।**
संज्ञा स्त्री.—**बात, कथन, वचन।**

बचपन, बचपना—संज्ञा पुं. [हिं. बच्चा+पन] (१)

बाल्यावस्था । (२) बालक होने का भाव, अबोधता और सरलता ।

बचवैया—संज्ञा पुं. [हिं. बचाना+वैया] **बचानेवाला ।**

बचा—संज्ञा पुं. [हिं. बचा] (१) **बालक ।** (२) **पुत्र।**

बचाउ—संज्ञा पुं. [हिं. बचाना] **बचने का भाव, रक्षा, त्राण ।** उ.—महरि सबै ब्रजनारि सौं, पूछति कौन उपाउ । जनमहिं तैं करवर टरी, अबकैं नाहिं बचाउ—५८६ ।

बचाऊ—क्रि. स. [हिं. बचाना] **रक्षा की, कष्ट या विपत्ति में न पड़ने दिया ।** उ.—विकट रूप अवतार धरयौ जब, सो प्रहलाद बचाऊ—२२१ ।

बचाए—क्रि. स. [हिं. बचाना] **रक्षा की ।** उ.—जे पद-कमल-भजन महिमा तैं, जन प्रहलाद बचाए—५३८ ।

बचाना—क्रि. स. [हिं. बचना] (१) **रक्षा करना ।** (२) **अलग या अप्रभावित रखना ।** (३) **खर्चने के बाद भी रख छोड़ना ।** (४) **छिपाना, चुराना ।** (५) **दूर रखना ।** (६) **रोग आदि से अलग या मुक्त रखना ।** (७) **सामने से हटाना ।**

बचाव—संज्ञा पुं. [हिं. बचाना] **रक्षा, त्राण ।** उ.—ऐसो कैसे होय सखी री घर पुनि मेरो है बचाव री–१२३७ ।

बचावत—क्रि. स. [हिं. बचाना] **रक्षा करता है, आपत्ति या कष्ट से बचाता है ।** उ.—तोकौं कौन बचावत आइ—७-१ ।

बचावें—क्रि. स. [हिं. बचाना] **रक्षा करें ।** उ.—आउ हम नृपति, तुमकौं बचावैं—८-१६ ।

बचावै—क्रि. स. [हिं. बचाना] **बचावे, रक्षा करे, कष्ट में न पड़ने दे ।** उ.—पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै—१-४८ ।

बचि—क्रि. अ. [हिं. बचना] **कष्ट-विपत्ति में न पड़े, रक्षित रहे ।** उ.—मन सबकैं आनन्द, कान्ह जल तैं बचि आए—५८६ ।

बचिबो—क्रि. अ. [हिं. बचना] **बचेगा, रक्षा होगी ।** उ. रे मन, छाँड़ि बिषय कौ रचिबौ । कत तू सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ—१-५६ ।

बचुआ—संज्ञा पुं. [हिं. बचा] **'पुत्र' के लिए स्नेहपूर्ण या दुलार-भरा संबोधन ।**

बचे—क्रि. अ. [हिं. बचना] **रक्षा हुई ।** उ.—दुहूँ बृच्छ-बिच बचे कन्हाई—३६१ ।

बचैं—क्रि. अ. [हिं, बचना] **कष्ट या विपत्ति में न पड़ें, रक्षित रहें ।** उ.—(क) बरु हमकौं लै जाइ, स्याम-बलराम बचैं घर—५८६ । (ख) सूर कर जोरि अंचल छोरि बिनवैं, बचैं ए आजु बिधि इहै मागैं—२६०३ ।

बचै—क्रि. अ. [हिं. बचना] **रक्षित रहे ।** उ.—अब बालक क्यों बचै कन्हाई—१०-५१ ।

बचौगे—क्रि. अ. [हिं. बचना] **बच सकोगे, पकड़ में न आओगे ।** उ.—भागैं कहाँ बचौगे मोहन, पाछैं आइ गई तुव गोहन—७६६ ।

बच्चा—संज्ञा पुं. [सं. वत्स] (१ **नवजात प्राणी ।** (२) **लड़का, बालक ।** (३) **बेटा, पुत्र ।**

वि.—**अनजान, अबोध ।**

बच्ची—संज्ञा स्त्री. [हिं. बच्चा] (१) **बेटी ।** (२) **लड़की ।**

बच्छ—संज्ञा पुं. [सं. वत्स, प्रा. वच्छ] (१) **बच्चा, बेटा ।** (२) **गाय का बछड़ा ।** उ.—(क) जैसैं गैया बच्छ कैं सुमिरत उठि धावै । (ख) बच्छ पुच्छ लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवायो । जसुमति रानी कोख सिरानी मोहन गोद खेलायो । (३) **वत्सासुर ।** उ.—अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तें काढ़्यो काली—२५६७ ।

बच्यो, बच्यौ—क्रि. अ. [हिं. बचना] (१) **बचा, शेष रहा, बाकी रहा, बच सका ।** उ.—(क) पाप मारग जिते, सबै कीन्हें तिते, बच्यौ नहिं कोउ जहँ सुरति मेरी—१-११० । (ख कीन्हें स्वाँग जिते जानें मैं, एकौ तौ न बच्यौ—१-१७४ । (२) **कष्ट या विपत्ति से बचा, रक्षित रहा ।** उ.—कैसैं बच्यौ, जाउँ बलि तेरी, तृनावर्त कैं घात—१०-८१ ।

बच्छल—वि.—[सं. वत्सल, प्रा. बच्छल] **माता पिता के समान स्नेह या प्यार करनेवाला ।** उ.—भक्तबच्छल कृपाकरन, असरनसरन, पतित-उद्धरन कहैं बेद गाई—८-६ ।

बच्छस—संज्ञा पुं. [सं. वक्षस्] **छाती, वक्षस्थल ।**

बच्छा—संज्ञा पुं. [सं. वत्स, प्रा. बच्छ] **बच्चा, बछड़ा ।**

बछ—संज्ञा पुं. [सं. वत्स, प्रा. बच्छ] **बछड़ा, गाय का**

बच्चा । उ.—(क) आगैं बछ, पाछैं ब्रज-बालक, करत चले मधुरैं सुर गान—४३८ । (ख) बाल-बिलख मुख गौ न चरति तृन बछ पय पियन न धावैं—(ग) ब्रह्मलोक ब्रह्मा गए लै बालक बछ संग—४६२ ।

बछड़ा, बछरा, बछरु बछरुवा, बछरू—संज्ञा पुं. [हिं. बछड़ा, बछवा] **बछड़ा, गाय का बछेड़ा** । उ.—(क) ब्रह्मा बाल बछरुवा हरि गयौ, सो ततछन सारिखे सँवारी—१-३० । (ख) ब्यानी गाय बछरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया—१०-३१५ । (ग)—भोजन करत सखा इक बोल्यौ, बछरू कतहूँ दूरि गए—४३८ । (घ) राँभति गो खरिकनि मैं, बछरा हित धाई—१०-२०२ । (ङ) कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन, कोउ गए बछरु लिवाइ—५०० ।

बछल—वि. [सं. वत्सल] **छोटों से स्नेह करनेवाला** ।

बछलता—संज्ञा स्त्री. [सं. वत्सलता] **छोटों के प्रति स्नेह का भाव** । उ.—भक्तबछलता प्रगट करी—१-२६८ ।

बछवा, बछा—संज्ञा पुं. [हिं. बच्छ] **गाय का बछड़ा** । उ.—धेनु बिकल सो चरत नहीं तृन बछा न पीवन धावैं—३४२३ ।

बछिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बछवा] **बिन ब्याई गाय** ।

मुहा०—बछिया का ताऊ (बाबा)—**मूर्ख** ।

बछुरुवनि—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. बछवा] **गाय के बछड़े** । उ.—ता पर सूर बछुरुवनि ढीलत, बन-बन फिरतिं बही—१०-२६१ ।

बछेड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बछड़ा] **घोड़े का बच्चा** ।

बछेरू—संज्ञा पुं. [हिं. बछड़ा] **गाय का बछड़ा** ।

बजंत्री—संज्ञा पुं. [हिं. बछड़ा] **बाजा बजानेवाला** ।

बजना—क्रि. अ. [हिं. बाजा] (१) **बाजे में शब्द उत्पन्न होना** । (२) **आघात या प्रहार होना** । (३) **शस्त्रों का चलना** । (४) **हठ करना** । (५) **प्रसिद्ध या विख्यात होना** ।

संज्ञा पुं.—**बजनेवाला बाजा** ।

वि.—**जो बजता हो, जिसमें से ध्वनि निकले** ।

बजनियाँ, बजनिहाँ—संज्ञा पुं. [हिं. बजना+इयाँ, इहाँ] **बाजा बजानेवाला** ।

बजनी, बजनू—वि. [हिं. बजना] **जो बजता हो** ।

बजमारा—वि. [हिं. बज्र+मारा] **बज्र का मारा हुआ, खोटे भाग्यवाला, जिससे दैव रूठा हो** ।

बजमारी—वि. स्त्री. [हिं. बजमारा] **जिससे दैव रूठा हो** । उ.—जो कह्यौ करै दी हठ याही मारग आवै बजमारी ।

बजरंग—वि. [सं. वज्र+अंग] **बज्र के समान दृढ़ शरीर वाला** ।

संज्ञा पुं.—**हनुमान** ।

बजर—संज्ञा पुं. [सं. बज्र] **वज्र** ।

बजरा—संज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह की नाव** ।

बजरी—संज्ञा स्त्री. [सं. वज्र] (१) **कंकड़ी** । (२) **ओला** । (३) **किले के ऊपरी भाग के कंगूरे जिनकी बगल में गोलियां चलाने के लिए कुछ अवकाश रहता है** ।

बजवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बजवाना] **बाजा बजाने की मजदूरी** ।

बजवाना—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजाने में प्रवृत्त करना** ।

बजवैया—वि. [हिं. बजाना+वैया] **बजानेवाला** ।

बजा—वि. [फा.] **उचित ठीक** ।

क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजाना** ।

मुहा०—बजा लाना—**पालन करना** ।

बजाइ—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजा कर, घोषित करके, डंके की चोट पर** । उ.—नैना भए बजाइ गुलाम—पृ० ३२१ (६) ।

मुहा०—लीजै ठौंकि बजाइ—**अच्छी तरह देख-भालकर, खूब समझ-बूझकर** । उ.—नन्द ब्रज लीजै ठौंकि बजाइ—२७०० ।

बजाई—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बाजे से ध्वनि निकाली, बजायी** । उ.—सुरनि मिलि देव-दुंदुभि बजाई—८-८ ।

मुहा०—कीनै बजाई—**खुल्लमखुल्ला या डंके की चोट पर किया** । उ.—सूरदास प्रभु हम पर ताको कीनै सवति बजाई—२३२६ ।

बजाऊँ—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बाजे से ध्वनि निकालूँ** । उ.—गाऊँ बजाऊँ रस प्रेम भरि नाचौं—पृ० ३१६ (८१) ।

बजागि—संज्ञा स्त्री. [सं. वज्र + आगि] **बिजली ।**
बजाज—संज्ञा पुं. [अ. बज्जाज] **कपड़ा बेंचनेवाला ।**
बजाजा—संज्ञा पुं. [हिं. बजाज] **कपड़े का व्यापार ।**
बजाजिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बजाज] **कपड़ा बेचने वाली ।** उ.—बजाजिनि है जाउँ निरखि नैनन सुख देऊँ—पृ० ३४६ (६१) ।
बजाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बजाज) **बजाज का काम ।**
बजाना—क्रि. अ. [हिं. बाजा] (१) **बाजे आदि से शब्द उत्पन्न करना ।** (२) **आघात से शब्द उत्पन्न करना ।**
मुहा०—ठोकना-बजाना—**देखना-भालना, जाँच-कर परखना ।**
(३) **शस्त्र से मारना ।**
क्रि. स.—**पूरा या पालन करना ।**
बजाय—अव्य. [फा.] **स्थान पर, बदले में ।**
बजायो—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बाजे से शब्द निकाला, बजाया ।** उ.—(क) ताल, मृदंग, झाँझ, इन्द्रिन मिलि, बीना, बेनु बजायौ—१-२०५ । (ख) जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ, आनन्द-तूर बजायौ—१०-४ ।
बजार—संज्ञा पुं. [फा. बाजार] **हाट, पठ, बाजार ।**
बजारी—वि. [हिं. बाजारी] (१) **बजारू ।** (२) **साधारण ।**
बजारू—वि. [हिं. बाजारू] (१) **बाजार का ।** (२) **मामूली ।**
बजावत—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजाता है, बाजे से स्वर निकालता है ।** उ.—हठ, अन्याय, अधर्म सूर नित नौबत द्वार बजावत—१-१४१ ।
बजावते—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजाते हैं ।** उ.—दूरहिं ते वह बैन अधर धरि बारंबार बजावते—२०३५ ।
बजावहिंगे—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजायेंगे ।** उ.—तैसीए दमकति दामिनि अरु मुरली मलार बजावहिंगे—२८८६ ।
बजावहीं—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजाते हैं ।** उ.—दिवि दुंदुभी बजावहीं, फन-प्रति निरतत स्याम—५८६ ।
बजावै—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजाता है ।** उ.—मदन मोहन बेनु मृदु मृदुल बजावै री—६२६ ।
बजी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. बजना] **बजने लगी, (बाँसुरी आदि) से शब्द निकाला गया ।** उ.—(क) राजा के घर बजी बधाइ—५-२ । (ख) तैसे सूर सुने जदुनंदन बजी एक रस ताँति—३१६८ ।
बजुल्ला—संज्ञा पु. [हिं. बाजू] **बाँह का एक भूषण ।**
बजैहै—क्रि. स. [हिं. बजाना] **बजायगी ।**
मुहा०—गाल बजैहै—**बढ़-बढ़कर बात करेगी, डींग हाँकेगी ।** उ.—देखहु जाइ चरित तुम बाके जैसे गाल बजैहै—१२६३ ।
बज्जना—क्रि. अ. [हिं. बजना] **बजना ।**
बज्जर—संज्ञा पुं. [सं. वज्र] (१) **वज्र ।** (२) **बिजली ।**
बज्जात—वि. [फा. बदजात] **दुष्ट, पाजी ।**
बज्र—संज्ञा पुं. [सं. वज्र] **इंद्र का शस्त्र, कुलिश ।**
मुहा०—बज्र परै **नाश हो जाय ।** उ.—परै बज्र या नृपति-सभा पै, कहति प्रजा अकुलानी—१-२५० ।
वि.—**दृढ़, बहुत मजबूत ।** उ.—बंदि बेरी सबै छुटी, खुले बज्र कपाट—१०-५ ।
बज्री—संज्ञा पुं. [सं. वज्रिन्] **इंद्र ।**
बज्रनाभ—संज्ञा पुं. [सं. वज्रनाभ] **अनिरुद्ध का पुत्र जिसे युधिष्ठिर ने मथुरापति बनाया था ।** उ.—राज परीच्छित कौं नृप दीन्हौ । बज्रनाभ मथुरापति कीन्हौ—१-२८८ ।
बज्रवर्त—संज्ञा पुं. [सं. वज्रवर्त्त] **मेघों का एक भेद ।** उ.—जलवर्त, बारिवर्त, पवनवर्त्त, बज्रवर्त, अग्निवर्तक—६४४ ।
बझना—क्रि. अ. [सं. बद्ध, प्रा. बज्झ+ना] (१) **बंधन में पड़ना, बँध जाना ।** (२) **उलझना, अटकना ।** (३) **हठ करना ।**
बझवट—वि. [हिं. बाँझ+वट] **बाँझ (स्त्री या पशु) ।**
बझाना—क्रि. स. [हिं. बझना] (१) **बंधन में डालना ।** (२) **उलझाना, अटकाना, फँसाना ।**
बझाव—संज्ञा पुं. [हिं. बझना] (१) **फँसाव ।** (२) **उलझाव ।**
बझावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. बझना+आवट] (१) **फँसने का भाव ।** (२) **उलझाव, अटकाव ।**
बझावना—क्रि. स. [हिं. बझाना] (१) **बँधाना ।** (२) **फँसाना ।**

बझे—क्रि. अ. [हिं. बझना] **बँधन में पड़े, बँध गये।** उ.—(क) स्याम हृदय अति बिसाल, माखन दधि बिंदु-जाल, मोह्यौ मन नंदलाल, बाल हीं बझे री—१०-२७५। (ख) चली प्रात ही गोपिका मटुकिन लै गोरस।·····। जीव परयौ या ख्याल में अरु गए दसादस। बझे जाय खगवृंद ज्यौं प्रिय छबि लटकनि बस—१३७७।

बट—संज्ञा पुं. [सं. वट] (१) **बरगद का वृक्ष।** (२) **बड़ा (एक खाद्य)।** (३) **गोल वस्तु।** (४) **ऐंठन, बटाई।** (५) **पुराणानुसार वह वट-वृक्ष जो प्रलयकाल में सुरक्षित रहा था और जिस पर भगवान ने बाल-रूप में शयन किया था।** उ.—कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।····। बट बाढ्यौ सागर-जल झेलत—१०-६३।

संज्ञा पुं. [हिं. बाट] **मार्ग, रास्ता।**

बटई—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त्तक] **बटेर (पक्षी)।**

बटखर, बटखरा—संज्ञा पुं. [सं. वटक] **तौलने का बाट।**

बटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बटना] **बटने का भाव, ऐंठन।**

बटना—क्रि. स. [सं. वट = बटना] **ऐंठन देकर मिलाना।**

क्रि. अ. [हिं. बट्टा] **सिल पर पीसा जाना।**

संज्ञा पुं. [सं. उद्वर्त्तन, प्रा. उव्वट्टन] **उबटन।**

बटपरा, बटपार—संज्ञा पुं. [हिं. बाट + पड़ना, बटपार] **ठग, डाकू, लुटेरा।** उ.—चोर ढुंढ बटपार अन्याई अपमारगी कहावैं—पृ. ३२६ (५२)।

बटपारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बटपार] **डकैती, ठगी, लूट।**

संज्ञा पुं.—**डाकू, लुटेरा।** उ. (क) बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकटा, लठबासी—१-१८६। (ख) सुनहु सूर प्रभु नीके जान्यौं ब्रज जुवती तुम सन बटपारी—११६०।

बटपारे, बटपारो—संज्ञा पुं. [हिं. बटपार] **ठग, लुटेरा।** उ.—राधे तेरे नैन किधौं बटपारे—२१६२।

बटमार—संज्ञा पुं. [हिं. बाट + मारना] **ठग, लुटेरा।**

बटला—संज्ञा पुं. [सं. वर्तुल, प्रा. वट्टुल] **बड़ी बटलोई।**

बटली, बटलोई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बटला] **पतीली।**

बटवार—संज्ञा पुं. [हिं. बाट + वाला] (१) **राह-बाट का पहरेदार।** (२) **राह का कर वसूलनेवाला।**

बटा—संज्ञा पुं. [सं. वटक] (१) **गोल वस्तु।** (२) **गद।** उ.—(क) लै चौगान-बटा अपनैं कर, प्रभु आए घर बाहर—१०-२४३। (ख) बटा धरती डारि दीनौ,लै चले ढरकाइ—१०-२४४। (ग) देखत ही उड़ि गए हाथ ते भए बटा नट के—पृ.—३३६ (५२)। (३) **रोड़ा, ढेला।** (४) **पथिक, राही।**

बटाइ—क्रि. स. [हिं. बाँटना] **बाँट कर, हिस्से करके।**

प्र०—देहु बटाइ—**बाट दो, विभाग कर दो।** उ.—बिदुर कह्यौ मति करौ अन्याइ। देहु पांडवनि राज बटाइ—१-२८४।

बटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बटना] **बटने का काम या भाव।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बँटाई] **बाँटने का काम या भाव।**

क्रि. स. [हिं. बटाना] **विभाजित की।**

बटाऊ—संज्ञा पुं. [हिं. बाट = रास्ता + आऊ (प्रत्य.)] **बटोही, पथिक, राही।** उ.—किहिं घाँ के तुम बीर बटाऊ, कौन तुम्हारौ गाउँ—६-४४। (ख) कहि धौं सखी बटाऊ को हैं—६-४५। (ग) बीर बटाऊ पंथी हो तुम कौन देस तें आए—२८८३।

मुहा०—बटाऊ होना—**चल देना।**

बटाक—वि. [हिं. बड़ा] **ऊँचा, बड़ा।**

बटाना—क्रि. अ. [हि. बटाना] **(मेह) बंद हो जाना।**

बटान्यो—क्रि. अ. [हिं. बटाना] **(मेह) बंद हो गया।** उ.—सात दिवस जल बरषि बटान्यो आवत चल्यो ब्रजहिं अत्रावत।

बटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बटा] (१) **छोटा गोला।** (२) **लोढ़िया।**

बटी—संज्ञा स्त्री. [सं. वटी] (१) **गोली** (२) **बड़ी (खाद्य)।**

संज्ञा स्त्री. [सं. बाटी] **वाटिका, उपवन।**

बटु—संज्ञा पुं. [सं. वटु] **ब्रह्मचारी।** उ.—धरि बटु रूप चले बामन जू अंबुज नयन बिसाला—सारा. ३३३।

बटुआ—संज्ञा पुं. [हिं. बटुवा] (१) **एक तरह की छोटी थैली।** उ.—बटुआ झोरी दंड अधारा इतनेन को आराधै—३२८४। (२) **बड़ी बटलोई।**

बटेर—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त्तक, प्रा. बट्टा] **एक छोटी चिड़िया।**

बटोई—संज्ञा पुं. [हिं. बटोही] **यात्री, पथिक।**

बटोर—संज्ञा पुं. [हिं. बटोरना] (१) **जमाव।** (२) **ढेर।**

बटोरत—क्रि. स. [हिं. बटोरना] **समेटता है, बटोरकर उठाता है।** उ.—कबहूँ मग-मग धूरि बटोरत, भोजन कौं बिलखात—२-२२।

बटोरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बटोरना] (१) **बिखरी वस्तुओं को समेट कर लगाया गया ढेर।** (२) **खेतों में बिखरा हुआ दाना जो बटोरा जाय।** (२) **कूड़-कर-कट का ढेर।**

बटोरना—क्रि. स. [हिं. बटुरना] (१) **बिखरी चीज को एक स्थान पर एकत्र करना।** (२) **फैली चीज को समेटना।** (३) **इधर-उधर पड़ी चीजों को चुनना।** (४) **इकट्ठा या एकत्र करना।**

बटोहिया, बटोही—संज्ञा पुं. [हिं. बाट+वाह (प्रत्य.), बटोही] **यात्री, पथिक, राही।**

बट्ट—संज्ञा पुं. [हिं. बटा] (१) **गोला।** (२) **गेंद।** (३) **ऐंठन, मरोड़** (४) **तौल का बाट।**

बट्टा—संज्ञा पुं. [सं. वार्त्त, प्रा. वाट्ट=बनियाई] **दलाली, दस्तूरी।** उ.—बट्टा काटि कसूर भरम कौ, पोता-भजन भरावै—१-१४२।

मुहा०—बट्टा करना—**दस्तूरी ले लेना।**

(२) **सिक्के आभूषण आदि के बदलने, बेचने या तुड़ाने से कटने वाली कमी।** (३) **खोटे सिक्के के बदलने में बेचने से होनेवाली कमी।**

मुहा०—बट्टा लगना—**दाग या कलंक लगना।**
बट्टा लगाना—**दाग या कलंक लगाना।**

(४) **घाटा, हानि, टोटा।**

संज्ञा पुं. [हिं. बटा=गोला] (१) **सिल पीसने का लोढ़ा।** (२) **ईंट, पत्थर का गोल टुकड़ा।**

बट्टाखाता—संज्ञा पुं. [हिं. बट्टा+खाता] **वह बही या खाता जिसमें डूबी हुई रकम लिखी जाय।**

बट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बट्टा] (१) **छोटा बट्टा, लोढ़िया।** (२) **बड़ी टिकिया या टिक्की।**

बठपारिनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. बटपारी] **ठग, लुटेरी।** उ.—फंसिहारिनि बठपारिनि हम भईं, आपुन भए सुधर्मा—११६०।

बड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **बकवाद, प्रलाप।**

संज्ञा पुं. [सं. वट] **बरगद का पेड़।**

वि. स्त्री., पुं. [हिं. बड़ा] (१) **बड़ा, बड़ी।** उ.—(क) हौं बड़ हौं बड़ बहुत कहावत, सूधैं करत न बात—२-२२। (ख) दानव-सुर बड़ सूर—६-२६। (ग) जाति-पाँति हमहैं बड़ नाही—१०-२४५। (घ) खेलत मैं कह छोट-बड़—५८६। (२) **पद, शक्ति, अधिकार, मान-मर्यादा में अधिक, श्रेष्ठ।** उ.—हरि के जन सब तैं अधिकारी। ब्रह्मा महादेव तैं को बड़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी—१-३४।

बड़का—वि. [हिं. बड़ा] **बड़ा, बड़ावाला।**

बड़प्पन—संज्ञा पुं. [हिं. बड़ा+पन] **बड़ाई, श्रेष्ठता, महत्व, गौरव।** उ.—ताके झुगिया मैं तुम बैठे कौन बड़प्पन पायौ—१-२४४।

बड़बड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **बकवाद, प्रलाप।**

बड़बड़ाना—क्रि. अ. [अनु. बड़बड़] (१) **बकवाद करना।** (२) **झुंझलाहट की स्थिति में धीरे-धीरे बकना।**

बड़बड़िया—वि. [अनु. बड़बड़] **बकवादी।**

बड़बोल—वि. [हिं. बड़ा+बोल] (१) **बहुत बोलनेवाला, बकवादी।** (२) **बढ़-बढ़ कर बोलनेवाला, शेखीखोर।**

बड़बोला—वि. [हिं. बड़ा+बोल] **डींग हाँकनेवाला।**

बड़भाग, बड़भागि, बड़भागी—वि. [हिं. बड़ा+भागी] **भाग्यवान।** उ.—(क) भुजा छौरि उठाइ लीन्हें, महर हैं बड़भागि—३८७। (ख) बड़भागी के सब ब्रजबासी। जिनकैं संग खेलैं अबिनासी—१०-३। (ग) ऊधो, हम आजु भईं बड़भागी—३०१५।

बड़रा—वि. [हिं. बड़ा] **आकार में बड़ा।**

बड़राना—क्रि. अ. [हिं. बर्राना] **नींद में बकना।**

बड़री—वि. स्त्री. [हिं. बड़री] **आकार में बड़ी।**

बड़वा, बड़वागि, बड़वाग्नि—संज्ञा पुं. [सं. बड़वाग्नि] **समुद्र के भीतर की आग।**

बड़वानल—संज्ञा पुं. [सं.] **समुद्र की आग।**

बड़वार—वि. [हिं. बड़ा] **बड़ा, श्रेष्ठ।**

बड़वारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बड़वार] **बड़ाई, महत्व।**

बड़हर, बड़हल—संज्ञा पुं. [हिं. बड़ा+फल] **एक वृक्ष।**

बढ़हार—संज्ञा पुं. [हिं. वर+आहार] **विवाह के पश्चात् वर और बरातियों का भोज।**

बड़ा—वि. [सं. वर्द्धन] (१) **दीर्घ, विशाल।**

मुहा०—बड़ा घर—**बंदीगृह, कारागार।**

(२) **अवस्था में अधिक।** (३) **अवस्था, परिमाण या विस्तार का।** (४) **पद, मान आदि में अधिक।**

मुहा०—बड़ा घर—**धनी और प्रतिष्ठित घराना।**

(५) **गुण, प्रभाव आदि में अधिक।**

मुहा०—बड़ा आदमी—(१) **धनी।** (२) **ऊँचे पदवाला।**

(६) **किसी बात में बढ़कर।**

संज्ञा पुं. [हिं. बटा] **एक खाद्य पकवान।**

बड़ाइ, बड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बड़ा+ई] (१) **परिमाण या विस्तार में अधिक।** (२) **पद, मान, गौरव में अधिक, बड़प्पन।** उ.—(क) बासुदेव की बड़ी बड़ाई। जगतपति, जगदीस, जगतगुरु, निज भक्तन की सहत ढिठाई—१-३। (ख) राजा छोरि बंदि तैं ल्याए, तिहूँ लोक मैं बिदित बड़ाइ—४६७। (३) **प्रशंसा।**

(३) **महिमा, प्रशंसा, तारीफ।** उ.—(क) जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई मो समान नहिं आन – १-१४५। (ख) दिन दिन इनकी करौं बड़ाई अहिर गए इतराइ—२५७८।

मुहा०—बड़ाई देना—**आदर करना।** बड़ाई मारना—**शेखी हाँकना, डींग मारना।**

(४) **परिमाण, विस्तार या फैलाव।**

बड़ाबोल—संज्ञा पुं. [हिं. बड़ा+बोलना] **घमंड की बात।**

बड़िए—वि. [हिं. बड़ी] **बड़ी ही।** उ.—बड़ो दूत तू बड़ी उमर को बड़िए बुद्धि बड़ोई—३०२२।

बड़ियाईं—संज्ञा स्त्री. [हिं. बड़ाई] **बड़ाई, प्रशंसा।** उ.—प्रभु आज्ञा तैं घर कौं आईं। पुरुष करत तिनकी बड़ियाई—८००।

बड़ी—वि. स्त्री. [हिं. बड़ा] (१) **बड़े आकार या विस्तार की।** (२) **पद, मान आदि में अधिक।**

मुहा०—बड़ी बात—**बहुत संतोषजनक बात, गनीमत।** उ.—बड़ी बात भई कमल पठाए, मानहुँ आपुन जल तैं ल्याए—५८८।

बड़े—वि. [हिं. बड़ा] (१) **आदर, पद आदि में अधिक।** उ.—(क) बड़े बाप के पूत कहावत······नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं—१०-३१६। (ख) वहाँ जादव पाँत प्रभु कहियत हमैं न लगत बड़े—३१५१।

मुहा०—बड़े घर की—**प्रतिष्ठित और धनी घराने की।** उ.—बड़े घर की बहू-बेटी करति वृथा झवारि—११३५।

बड़ेरर—संज्ञा पुं. [देश.] **बवंडर, चक्रवात।**

बड़ेरा—वि. [हिं. बड़ा] (१) **बड़ा।** (२) **प्रधान।**

संज्ञा पुं.—**छाजन के बीच की लकड़ी जो लंबाई के बल होती है।**

बड़ेरे—वि. बहु. [हिं. बड़ेरा] **बड़े।** उ.—जे द्रुम सींचि सींचि अपने कर कियो बढ़ाय बड़ेरे—२७२०।

बड़ेरो—वि. [हिं. बड़ेरा] (१) **बड़ा।** उ.—बनि बनि आवत हैं लाल भाग बड़ेरो मेरे—पृ. ३१६ (८६)। (२) **आयु या पद में बड़ा।** उ.—मेरो सुत सरदार सबनि कौ बहुतै कान्ह बड़ेरौ—१०-२१५।

बड़ैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बड़ाई] **कीर्ति, मान।** उ.—इतने बड़े और नहिं कोऊ इहिं सब देत बड़ैया—२३७४।

बड़ोइ—वि. [हिं. बड़ा] (१) **खूब लंबा-चौड़ा, अधिक विस्तार का।** (२) **अधिक अवस्था का।** उ.—सुनि देवता बड़े, जग-पावन, तू पति या कुल कोइ। पद पूजिहौं, बेगि यह बालक करि दै मोहिं बड़ोइ—१०-५६।

बड़ौ—वि. [हिं. बड़ा] (१) **बढ़कर, श्रेष्ठ, अधिक, बढ़ा-चढ़ा।** उ.—व्याध, गीध अरु पतित पूतना, तिनतैं बड़ौ जु और—१-१४५। (२) **बड़े डील-डौल का, मोटा-ताजा।** उ.—मैया मोहिं बड़ौ करि लै री—१०-१७६।

बड़ौना—संज्ञा पुं. [हिं. बड़ापन] **बड़ाई, महिमा।**

बढ़—वि. [हिं. बढ़ना] **अधिक, बड़ा हुआ।**

संज्ञा—**बढ़ती, अधिकता।**

बढ़इयै—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **बढ़ाइए, वर्द्धित कीजिए।** उ.—सूरदास-प्रभु भक्तनि कैं बस, भक्तनि प्रेम बढ़इयै—१-२३६।

बढ़ई—संज्ञा पुं. [सं. वर्द्धकि, प्रा. बड्ढइ] **लकड़ी को छील और गढ़कर अनेक सामान बनानेवाला।**

बढ़त—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] **बढ़ता है।** उ.—पुनि पाछैं-अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत—१-१०७।

बढ़ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बढ़ना+ती] **वृद्धि, उन्नति।**

बढ़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. बढ़ना] **वृद्धि, बढ़ती।**

बढ़ना—क्रि. अ. [सं. वर्द्धन, प्रा. वड्ढन] (१) **डील-डौल या लंबाई-चौड़ाई में वृद्धि को प्राप्त होना।**

मुहा०—बात बढ़ना—**विवाद या झगड़ा होना।**

(२) **गिनती या नाप-तौल में ज्यादा होना।** (३) **बल, प्रभाव या गुण में अधिक होना।** (४) **पद, मर्यादा, अधिकार आदि में अधिक होना।** (५) **स्थान-विशेष से आगे जाना।** (६) **चलने-दौड़ने में आगे हो जाना।** (७) **किसी बात में आगे हो जाना।** (८) **भाव आदि का अधिक हो जाना।** (९) **लाभ होना।** (१०) **दूकान आदि बंद होना।** (११) **दीपक का बुझना।**

बढ़नी—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्द्धनी, प्रा. वड्ढनी] **झाड़ू।**

बढ़यौ—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] **बढ़ा, विस्तार में अधिक हुआ।** उ.—द्रौपदी कौ चीर बढ़यौ, दुस्सासन गारी—१-१७६।

बढ़वारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बढ़ना] **वृद्धि, बढ़ती।**

बढ़ाइ, बढ़ाई—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] (१) **बढ़ाकर, अधिक करके।** उ.—मोह्यौ जाइ कनक कामिनि-रस, ममता-मोह बढ़ाई—१-१४७। (२) **विस्तृत की (भूत०)।**

बढ़ाऊँ—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **विस्तृत करूँ, आकार में बढ़ाऊँ।** उ.—मोहन-मुर्छन-बसीकरन पढ़ि, अगमिति देह बढ़ाऊँ—१०-४९।

बढ़ाए—क्रि. स. बहु. [हिं. बढ़ाना] **बढ़ाया, वृद्धि की।** उ.—हरष नँदराइ कैं मन बढ़ाए—५८७।

बढ़ायौ—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **वृद्धि की।** उ.—गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं अति हीं प्रेम बढ़ायौ—९-५५।

बढ़ाना—क्रि. स. [हिं. बढ़ना] (१) **लम्बाई-चौड़ाई या डील-डौल में अधिक करना।**

मुहा०—बात बढ़ाना—(१) **अत्युक्तिपूर्वक कुछ कहना।** (२) **झगड़ा या विवाद करना।**

(२) **गिनती या नाप-तौल में अधिक करना।** (३) **बल, प्रभाव या गुण में अधिक करना।** (४) **पद, मर्यादा, अधिकार आदि में अधिक करना।** (५) **स्थान-विशेष से आगे कर देना।** (६) **चलने, दौड़ने में आगे कर देना।** (७) **किसी बात में आगे कर देना।** (८) **भाव आदि को बढ़ा देना।** (९) **फैलाना, विस्तार करना।** (१०) **दूकान आदि बंद करना।** (११) **फैलाना, लंबा करना।** (१२) **दीपक बुझाना।**

क्रि. अ.—**चुकना, समाप्त होना।**

बढ़ाने—क्रि. प्र. [हिं. बढ़ाना] **समाप्त हो गये, चुक गये।** उ.—मेघ सबै जल बरषि बढ़ाने, बिबि गुन गए सिराई—९६७।

बढ़ाली—संज्ञा स्त्री. [देश.] **कटार, कटारी।**

बढ़ाव—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **बढ़ाती है।** उ.—जाकौ सिव-बिरंचि सनकादिक मुनिजन ध्यान न पाव। सूरदास जसुमति ता सुत हित, मन अभिलाष बढ़ाव—१०-७५।

संज्ञा पुं. [हिं. बढ़ना+आव] (१) **बढ़ने की क्रिया या भाव।** (२) **विस्तार, फैलाव।** (३) **अधिकता।** (४) **उन्नति।**

बढ़ावत—क्रि. स. [हिं. बढ़ावना] **बढ़ाते हैं।** उ.—छज्जे महलन देखि कै मन हरष बढ़ावत—२५६०।

बढ़ावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. बढ़ावना] **बढ़ाती है।**

मुहा०—बढ़ावति रारि—**झगड़ा बढ़ाती है, विवाद करती है।** उ.—बादति है बिन काज हीं, बृथा बढ़ावति रारि—५८९।

बढ़ावना—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **वृद्धि करना, बढ़ाना।**

बढ़ावा—संज्ञा पुं. [हिं. बढ़ाव] **प्रोत्साहन।**

बढ़ावै—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **परिमाण या मात्रा में अधिक किया।** उ.—ऐसौ और कौन करुनामय, बसन-प्रवाह बढ़ावै—१-१२२।

बढ़ि—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] **वृद्धि पाकर।**

प्र०—बढ़ि गयौ—**डील-डौल में अधिक हो गया।** उ.—पुनि कमंडल धरयौ, तहाँ सो बढ़ि गयौ—८-१६।

मुहा०—कहन लगीं बढ़ि बढ़ि बात—**घमण्डभरी या इतरानेवाली बात कहने लगीं, छोटे मुँह बड़ी बात कहने लगीं।** उ.—कहन लगीं अब बढ़ि बढ़ि बात। ढोटा मेरौ तुमहिं बँधायौ, तनकहिं माखन खात—३५५।

बढ़िया—वि. [हिं. बढ़ना] **अच्छा, उत्तम।**

बढ़ी—क्रि. स. [हिं. बढ़ना] **परिमाण, विस्तार या फैलाव में अधिक हो गयी।** उ.—बीच बढ़ी जमुना जल-कारी—१०-११।

बढ़ै—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] **बढ़ जाय, वृद्धि को प्राप्त हो।** उ.—(क) अज्ञानी-सँग बढ़ै अज्ञान—५-२। (ख) कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै—१०-१७४।

बढ़ैया—संज्ञा पुं. [हिं. बढ़ई] **लकड़ी का काम करनेवाला, बढ़ई।** उ.—पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया—१०-४१।

वि. [हिं. बढ़ना, बनाना] (१) **बढ़नेवाला।** (२) **बढ़ानेवाला।**

बढ़ैहैं—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] **बढ़ायेंगे।** उ.—पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं—१०-८६।

बढ़ैहै—क्रि. स. [हिं. बढ़ना] **बढ़ायगी।** उ.—गुप्त प्रीति काहे न करी हरि सों प्रगट किंए कछु नफा बढ़ैहै—११६२।

बढ़ोतरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाढ़+उतर] **वृद्धि, उन्नति।**

बढ़्यौ—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] **अधिक प्रबल हो गया, बल और प्रभाव में अधिक हो गया।** उ.—हिरनकस्यप बढ़्यौ उदय अरु अस्त लौं—१-५।

बणिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **व्यापार करनेवाला, बनिया।** (२) **बेचनेवाला, विक्रेता।**

बत—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात] **बात (यौगिक शब्द प्रयोग)।**

बतकहाव—संज्ञा पुं. [हिं. बात+कहाव] (१) **बातचीत।** (२) **कहा-सुनी, तर्क-कुतर्क, विवाद।**

बतकही—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात+कहना] **बातचीत।**

बतख—संज्ञा स्त्री. [अ. बत] **एक बड़ी चिड़िया।**

बतचल—वि. [हिं. बात+चलना] **बकवादी, बकनेवाला, बक्की।** उ.—जानी जात सूर हम इनकी, बतचल चंचल लोल—३२६५।

बतबढ़ाव—संज्ञा पुं. [हिं. बात+बढ़ाव] **कहासुनी, विवाद।**

बतरस—संज्ञा पुं. [हिं. बात+रस] **बात करने का आनन्द।**

बतराति—क्रि. प्र. [हिं. बतराना] **बात करती है।** उ.—हम जानी अब बात तुम्हारी सूधे नहिं बतराति—१०८७।

बतरान—संज्ञा स्त्री. [हिं. बतराना] **बातचीत।**

बतराना—क्रि. प्र. [हिं. बात+आना] **बात करना।**

बतरौहाँ—वि. [हिं. बात] (१) **बात करने की चाह रखने वाला।** (२) **बात करता हुआ।**

बतलाना—क्रि. स. [हिं. बताना] **कहना, बताना।**

क्रि. अ. **बातचीत करना।**

बताइ—क्रि. स. [हिं. बताना] **कहना, सूचित करना।**

प्र०—देहु बताई—**बता दो, सूचित करो।** उ.—तुम बिनु साँकरैं को काकौ। तुम हीं देहु बताइ देव-मनि, नाम लेउँ धौं ताकौ—१-११३।

बताई—क्रि. स. [हिं. बताना] **सूचित किया, जताया, निर्देश दिया।** उ.—मन-बच-क्रम हरि-नाम हृदय धरि, ज्यौं गुरु वेद बताई—१-३१८।

बताउ—क्रि. स. [हिं. बताना] **बताओ, सूचित करो, जनाओ।** उ.—को करि सकै बराबरि मेरी, सो धौं मोहिं बताउ—१-१४५।

बताऊँ—क्रि. स. [हिं. बताना] **कहूँ, जानकारी कराऊँ, सूचित करूँ।** उ.—अंबर जहाँ बताऊँ तुमकौं, तौ तुम कहा देहुगी हमकौं—७६६।

बतात—क्रि. अ. [हिं. बताना] **बताते हो या बात करते हो।** उ.—टेढ़ै कहा बतात, कंस कौं देहु कमल अब। कालिहिं पठए माँगि पुहुप अब ल्याइ देहु जब—३८६।

बताना—क्रि. स. [हिं. बात+ना] (१) **कहना, कहकर सूचित करना।** (२) **समझाना-बुझाना।** (३) **दिखाना, निर्देश करना।** (४) **काम के लिए कहना।** (५) **नाचने-गाने में भाव प्रकट करना।** (६) **दण्ड देकर ठीक रास्ते पर लाना।**

क्रि. अ.—**बोलना।**

बतानी—क्रि. अ. [हिं. बताना] **बोली, आवाज दी।** उ.—नंद महर घर के पिछवारे राधा आइ बतानी हो—१५५६।

बतायौ—क्रि. स. [हिं. बताना] **दिखाया, प्रदर्शित या निर्देशित किया।** उ.—नंद घरनि तब मथि दह्यौ, इहि भाँति बतायौ—७१६।

बतावत—क्रि. स. [हिं. बताना] **संकेत करता है, संकेत से**

बात करता है। उ.—चितै रहे तब आपुन ससि-तन, अपने कर लै लै जु बतावत—१०-१८८।

बतावति—क्रि. स. [हिं. बताना] (१) **सूचित करती है, निर्देश देती है, जताती है, दिखाती है।** उ.—प्रात समय रवि-किरनि-कोंवरी, सो कहि, सुतहिं बतावति है—१०-७३। (२) **कहती या बताती है।** उ.—कबहुँ कहति बन गए, कबहुँ कहि घरहिं बतावति—५८६।

बतावै—क्रि. स. [हिं. बताना] (१) **बताता है, सूचित करता है, जताता है।** उ.—अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही। लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही—१-१८५। (२) **संगीत या नृत्य के भाव बताता है।** उ.—कबहुँक आगे कबहुँक पाछे नाना भाव बतावै—८७७।

बतावौ—क्रि. स. [हिं. बताना] **बताओ, कहो, सूचित करो।** उ.—कत ब्रीड़त कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहिये—१-१३६।

बतास—संज्ञा स्त्री. [सं. वातासह] (१) **वायु, हवा।** उ.—जबतैं जनम भयौ है तेरौ, तबहिं तैं यह भाँति लला रे। कोउ आवति जुवती मिस करिकै, कोउ लै जात बतास-कला रे—६०८। (२) **वात-रोग, गठिया।**

बतासा—संज्ञा पुं. [हिं. बतास=हवा] (१) **एक तरह की मिठाई।** (२) **बुलबुला, बुद्बुद।**

मुहा०—बतासा सा घुलना—(१) **शीघ्र नष्ट होना (कोसना, गाली)।** (२) **क्षीण होते जाना।**

बतासे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. बतासा] **बहुत से बतासे।** उ.—तिल चाँवरी बतासे, मेवा दियौ कुँवरि की गोद—७०४।

बतिअन, बतिअनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. बात] **केवल बातों से, कोरा उपदेश देकर।** उ.—बतिअन सब कोऊ समुझावै—३३८१।

बतियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात] **बात, बचन।** उ.—वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं जे नँदलाल कहीं—२८६६।

मुहा०—कहत बनाइ बतियाँ—**सिर्फ बात करने से, कोरी चर्चा से।** उ.—कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसैं धौं तम नासत—२-२५। झूँठी बतियाँ जोरि—**मनमानी बातें गढ़कर।** उ.—उरहन लै जुवती सब आवतिं झूँठी बतियाँ जोरि—८६८।

बतिया—संज्ञा पुं. [सं. वर्त्तिका, प्रा. वत्तिआ] **छोटा कच्चा फल।**

बतियाना—क्रि. अ. [हिं. बात] **बातचीत करना।**

बतियार—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात] **बातचीत।**

बतू—संज्ञा पुं. [हिं. कलाबतू] **रेशम पर बटा हुआ सोने-चाँदीका तार।**

बतीस—वि. [हिं. बत्तीस] **बत्तीस।** उ.—द्वै पिक बिंब बतीस बज्रकन एक जलज पर थात—१६८२।

बतैए—क्रि. स. [हिं. बताना] **बताइए, समझाइए।** उ.—जेहि उपदेश मिलैं हरि हमको सो ब्रत-नेम बतैए—३१२४।

बतैहैं—क्रि. स. [हिं. बताना] **बतायेंगे।**

मुहा०—कहा बतैहैं—**क्या उत्तर देंगे, कैसे अस्वीकार करेंगे।** उ.—खायो खेले संग हमारे याको कहा बतैहैं—३४३६।

बतौर—क्रि. वि. [अ.] (१) **रीति से।** (२) **समान।**

बत्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त्ति, प्रा. बत्ति] (१) **सूत, रुई, कपड़े आदि का बटा हुआ टुकड़ा जो दीपक में जलाया जाता है।** (२) **दीपक।** (३) **पलीता।** (४) **फूस का पूला।**

बत्तीसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बत्तीस] । (१) **बत्तीस का समूह।** (२) **मनुष्य के दाँत जो बत्तीस होते हैं।**

मुहा०—बत्तीसी झड़ जाना [पड़ना]—**सब दाँत गिर जाना।** बत्तीसी दिखाना—**हँसना।** बत्तीसी बजना—**दाँत किटकिटाना।**

बत्यावई—क्रि. अ. [हिं. बात, बतियाना] **बातचीत करती है, बतियाती है।** उ.—जसुमति भाग-सुहागिनी, हरि कौं सुत जानै। मुख-मुख जोरि बत्यावई, सिसुताई ठानै—१०-७२।

बत्स—संज्ञा पुं. [सं. वत्स] (१) **बछड़ा।** (२) **बालक।**

बत्सल—वि. [सं. वत्सल] **अत्यन्त स्नेहवान् या कृपालु।** उ.—भक्त-बत्सल कृपानाथ, असरन-सरन, भार-भूतल हरन जस सुहायौ—१-११६।

बत्सलता—संज्ञा पुं. [सं. वत्सल + हिं. ता] (१) **प्रेम, स्नेह**। (२) **दया, कृपा**। उ. –सूर भक्त-वत्सलता बरनौं, सर्व कथा कौ सार—१-२६७।

बत्सासुर—संज्ञा पुं. [सं. वत्सासुर] **कंस का अनुचर एक राक्षस जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था।**

बथान—संज्ञा पुं. [सं. वत्स+स्थान] **गो-गृह**।

बथुआ—संज्ञा पुं. [सं वास्तुक, पा० वात्थुअ] **एक साग**। उ.—बथुआ भली भाँति रचि राँध्यौ—२३२१।

बद—वि. [फ़ा.] (१) **बुरा**। (२) **दुष्ट, नीच**।

संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त] **बदला, एवज**।

मुहा०—बद में—**बदले में, स्थान पर**। उ.—गुरुगृह जब हम बन को जात। तुरत हमारे बद में लकरी लावत सहि दुख गात।

क्रि. स. [हिं. बदना] **ठहराकर, स्थिर करके**।

मुहा०—बद कर (काम करना) (१) **दृढ़ता या हठ के साथ**। (२) **ललकारकर, चुनौती देकर**। बदकर कहना—**पूरी दृढ़ता से कहना**।

बदत—क्रि. स. [हिं. बदना] **गिनती में लाता है, समझता है, मानता है, बड़ा या महत्व का ख्याल करता है**। उ.—(क) सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहे रे। तुम प्रताप बल बदत न काहूँ, निडर भए घर-चेरे—१-१७०। (ख) सब आनंद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं—१०-२४। (ग) बदत काहू नहीं निधरक निदरि मोहिं न गनत। (२) **कहते हैं, वर्णन करते हैं, गाते हैं**। उ.—मनौ बेद-बंदीजन सूत-बृंद मागध-गन, बिरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे—१०-२०५।

बदति—क्रि. स. [हिं. बदना] **समझती या मानती है**। उ.—जोबनदान लेउँ गो तुमसों। जाके बल तुम बदति न काहुहि कहा दुरावति मोसों।

बदन—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **शरीर, देह**।

संज्ञा पुं. [सं. बदन] **मुख**। उ.—गोपिनि के सों बदन निहारै—१०-३।

बदना—क्रि. स. [सं. वद=कहना] (१) **कहना, वर्णन करना**। (२) **स्वीकार करना**। (३) **स्थिर करना**।

मुहा०—भाग्य में बदना—**भाग्य में लिखा होना**। काम करने को बदना—**दृढ़ता के साथ काम करने को कहना**।

(४) **बाजी या शर्त लगाना**। (५) **कुछ समझना, महत्व का मानना**।

बदनाम—वि. [फ़ा.] **कलंकित, निंदित**।

बदनामी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **कलंक, निंदा**।

बदनियाँ—संज्ञा पुं. अल्प. [सं. वदन] **छोटा मुख**। उ. निरखति ब्रज-जुवती सब ठाढ़ीं, नंद-सुवन-छबि चंद-बदनियाँ—१०-१०६।

बदबू—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **दुर्गन्ध**।

बदमाश—वि. [फ़ा. बद + अ. मआश] **दुष्ट**।

बदमाशी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बदमाश] **दुष्टता, नीचता**।

बदरंग—वि. [फ़ा.] (१) **बुरे या भद्दे रंग का**। (२) **जिसका रंग बिगड़ गया हो**।

बदर—संज्ञा पुं. [सं.] **बेर का पेड़ या फल**।

बदरन, बदरनि—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. बादल] **मेघ, बादल**। उ.—देखौ माई, बदरनि की बरियाई—९८५।

बदरा—संज्ञा पुं. [हिं.] **बादल, मेघ**।

बदराह—वि. [फ़ा.] **दुष्ट, कुमार्गी**।

बदरि—संज्ञा पुं. [सं.] **बेर का पेड़ या फल**।

बदरिकाश्रम, बदरिकासरम—संज्ञा पुं. [सं. बदरिकाश्रम] **हिमालय पर स्थित वैष्णवों का एक श्रेष्ठ तीर्थ। यहाँ नर-नारायण और व्यास का आश्रम है। एक शृंग पर बदरी (बेर) वृक्ष होने के कारण इसका यह नाम पड़ा कहा जाता है**।

बदरिआ, बदरिया, बदरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बदली] **छाये हुए बादल, बादल**। उ.—(क) बदरिआ बधन बिरहिनी आई—२८२१। (ख) जोबन-धन है दिवस चारि को ज्यों बदरी की छाहीं—२१९४।

बदरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **बेर का पेड़ या फल**।

बदरीनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] **बदरिकाश्रम तीर्थ**।

बदरीनारायण—संज्ञा पुं. [सं.] **नारायण जिनकी मूर्ति बदरिकाश्रम में है**।

बदरौह—वि. [फ़ा. बद + रौ] **बदचलन, कुमार्गी**।

संज्ञा पुं. [हिं. बादर+औंह] **बदली का आभास**।

वदरौला—संज्ञा स्त्री. [देश.] **वृषभानु की एक दासी।** उ.—नारि बदरौला रही वृषभानु घर रखवारि—६७६।

वदल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) **हेर-फेर।** (२) **पलटा, एवज।**

वदलना—क्रि. अ. [अ. बदल+ना] (१) **हेर-फेर होना।** (२) **एक के स्थान पर दूसरा होना।** (३) **एक के स्थान पर दूसरा नियुक्त होना।**

क्रि. स.—(१) **हेर-फेर करना।** (२) **एक के स्थान पर दूसरा करना, कहना या रखना।** (३) **विनिमय करना।**

वदलवाना—क्रि. स. [हिं. बदलना] **बदलने का काम कराना।**

वदला—संज्ञा पुं. [हिं. बदलना] (१) **परस्पर लेना-देना, विनिमय।** (२) **हानि की पूर्ति-रूप में उपस्थित की गयी वस्तु।** (३) **पलटा, एवज।** (४) **प्रतीकार।** (५) **प्रतिफल, नतीजा।**

वदलाना—क्रि. स. [हिं. बदलना] **बदलने का काम कराना।**

वदलि—क्रि. अ. [हिं. बदलना] **एक वस्तु देकर दूसरी वस्तु लेकर, विनिमय करके, परिवर्तन करके।** उ.—इते मान यह सूर महा सठ, हरि-नग बदलि, विषय विष आनत—१-११४।

वदली—क्रि. अ. [हिं. बदलना] **बदल गयी, भिन्न हो गयी परिवर्तित हो गयी।** उ.—मदनगोपाल बिना या तन की सबै बात बदली—२७३४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बादल] **छाये हुए बादल।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बदलना] **तबदीली, तबादला।**

वदले—संज्ञा पुं. [हिं. बदला] **एक के स्थान पर दूसरे को रखना।** उ.—चढ़ि सुख-आसन नृपति सिधायौ। तहाँ कहार एक दुख पायौ। भरत पंथ पर देख्यौ खरौ। वाकें बदले ताकौं धरौ—५-४। (२) **विनिमय।** उ.—सूरा के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै—३१०५।

वदलैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. बदला] **बदले में, स्थान पर, स्थान की पूर्ति में।** उ.—(क) दच्छ-सीस जो कुंड मैं जरयौ। ताके बदलैं अज-सिर धरयौ—४-५। (ख) मम कृत इनके बदलैं लेहु। इनके कर्म सकल मोहिं देहु—७-२।

वदलो, वदलौ—संज्ञा पुं. [हिं. बदलना] **पलटा, एवज।** उ.—(क) ताहि सूल पर सूली दयौ। ताकौ बदलौ तुमसौ लयौ—३-५। (ख) जेते मान सेवा तुम कीन्ही, बदलो दयो न जात—२६५७। (ग) हमसों बदलो लेन उठि धाए मनो धारि कर सूप—३१८२।

क्रि. स. [हिं. बदलना] **परिवर्तन करो।** उ.—ते अब कहत जटा माथे पर बदलो नाम कन्हाई—३१०६।

वदलौवल—संज्ञा स्त्री. [हिं. बदलना] **हेर-फेर।**

वदसूरत—वि. [फ़ा. बद+सूरत] **कुरूप।**

वदावदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बदना] **लागडाँट, होड़।**

वदाम—संज्ञा पुं. [फ़ा. बादाम] **एक मेवा, बादाम।** उ.—खारिक, दाख, चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम—८१०।

वदामी—वि. [हिं. बदाम] **बादाम के रंग का।**

वदि—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त] **बदला, एवज, पलटा।**

अव्य.—(१) **बदले या पलटे में।** (२) **लिए।**

वदिहै—क्रि. स. [हिं. बदना] **मानेगी, स्वीकार करेगी।** उ.—मेरो प्रगट कह्यो बदिहै ब्रज ही देउँ पठाइ—२६१३।

वदिहौं—क्रि. स. [हिं. बदना] **मानूँगा, स्वीकार करूँगा, सकारूँगा।** उ.—जानिहौं अब बाने की बात। मोसौं पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ बदिहौं निज तात—१-१७६।

वदी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **कृष्ण पक्ष, अन्धेरा पाख।**

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **बुराई, अपकार।**

क्रि. स. [हिं. बनना] **निश्चित की, ठहराई, स्थिर करके।** उ.—(क) स्याम गए बदि अवधि सखी री। (ख) नैननि होड़ बदी बरसा सों—३४५७।

वदौलत—क्रि. वि. [फ़ा.] (१) **कृपा से।** (२) **कारण से।**

वद्दर, वद्दल—संज्ञा पुं. [हिं. बादल] **बादल।**

वद्ध—वि. [सं.] (१) **बँधा आ।** (२) **अज्ञान में फँसा हुआ।** (३) **जिस पर रोक या प्रतिबंध हो।** (४) **व्यवस्थित, परिमित।** (५) **निर्धारित।** (६) **बैठा या जमा हुआ।** (७) **सटा या जुड़ा हुआ।**

वद्धपरिकर—वि. [सं.] **कमर कसे, तैयार।**

वद्धमूल—वि. [सं.] **जमी जड़ का, दृढ़ ।**

वद्धी—संज्ञा स्त्री. [सं. बद्ध] **रस्सी, तसमा ।**

वध—संज्ञा पुं. [सं.] **हनन, हत्या ।**

बधक—वि. [सं.] **बध करनेवाला ।**

वधत—क्रि. स. [हिं. बधना] **मार डालता है, बधता है, हत्या करता है ।** उ.—जैसैं मगन नाद-रस सारँग, बधत बधिक बिन बान—१-१६६ ।

बधन—संज्ञा पुं. [सं. बध] **बध, हनन, हत्या ।** उ.—बालक करि इनकौं जनि जान्यौ, कंस बधन येई करिहैं —१०-८५ ।

वधना—क्रि. स. [सं. बध+ना] **हत्या करना ।**

संज्ञा पुं. [सं. वर्द्धन] **टोंटीदार लोटा ।**

वधाइ, वधाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बढ़ना, बढ़ाई] (१) **वृद्धि, बढ़ती ।** (२) **जन्म या मंगल अवसर का आनन्द या गाना बजाना ।** उ.—(क) रिषभदेव तब जनमें आइ । राजा कैं गृह बजी बधाइ—५-२ । (ख) महरि जसोदा ढोटा जायौ, घर घर होति बधाई—१०-२१ । (ग) आजु गृह नंद महर कैं बधाइ—१०-३३ । (३) **खुशी, चहल-पहल ।** (४) **पुत्र-जन्म पर माता-पिता को आनन्द-सूचक संदेश, मुबारकबाद ।** उ.—सुत के भएँ बधाई पाई—१०-३२३ । (५) **शुभ अवसर पर इष्ट-मित्र को दिया जानेवाला संदेश ।** उ.—एक परस्पर देत बधाई, एक उठत हँसि गाइ—१०-२० । (६) **शुभ या मंगल अवसर पर दिया जानेवाला उपहार ।**

बधाए—संज्ञा पुं. [हिं. बधाई] **मंगलाचार ।** उ.—घर घर होत अनंद बधाए, जहँ तहँ मगध-सूत—१०-३६ ।

बधाना—क्रि. स. [हिं. बध] **बध कराना ।**

बधाया, बधायो—संज्ञा पुं. [हिं. बधाई] **बधाई ।**

क्रि. स. [हिं. बधाना] **बध कराया ।** उ.—ए दोउ नीर खीर निरवारत इनहिं बधायो कंस—३०४६ ।

बधावन, बधावना, बधावा—संज्ञा पुं. [हिं. बधाई] (१) **आनन्द-मंगल, मंगलाचार ।** उ.—(क) बनि ब्रजसुंदरि चलीं, सु गाईं बधावन रे—१०-२८ । (ख) हरषि बधावा मन भयौ (हो) रानी जायौ पूत—१०-४० ।

(२) **मंगलोत्सव आदि का उपहार ।**

बधिक—संज्ञा पुं. [सं. बध] (१) **बध करनेवाला ।** (२) **प्राण लेनेवाला, जल्लाद ।** (३) **व्याध, बहेलिया ।**

बधिर—संज्ञा पुं. [सं.] **बहरा ।**

बधिरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **बहरापन ।**

बधी—क्रि. स. [हिं. बधना] **हत्या की ।**

बधू—संज्ञा स्त्री. [सं. वधू] (१) **नव विवाहिता स्त्री, दुलहन ।** (२) **पत्नी, भार्या ।** उ.—जितनी लाज गुपालहिं मेरी । तितनी नाहिं बधू हौं जिनकी, अंबर हरत सबनि तन हेरी—१-२५२ । (३) **स्त्री, नारी ।** उ.—(क) ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै—१-४२ । (ख) भोर होत उरहन लै आवतिं, ब्रज की बधूकने—३७७ । (४) **अवस्था और पद में छोटे पुरुष की पत्नी ।**

बधूटी—संज्ञा स्त्री. [सं. वधूटी] (१) **नव बधू ।** (२) **पुत्र की स्त्री, पतोहू ।** (३) **सौभाग्यवती स्त्री ।**

बधूरा—संज्ञा पुं. [हिं. बहुधूर] **अंधड़, बवंडर ।**

बधैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बधाई] (१) **पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर हर्ष-सूचक वचन या संदेश ।** उ.—सूरदास प्रभु की माइ जसुमति, पितु नँदराइ, जोइ जोइ माँगत सोइ देत हैं बधैया—१०-४१ । (२) **मंगलाचार ।** उ.—गोपी-ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया—१०-१५५ ।

बध्य—वि. [सं.] **मारने के योग्य ।**

बन—संज्ञा पुं. [सं. वन] (१) **कानन, जंगल ।**

मुहा०—होत जो बन को रोयो—**ऐसी बात या प्रकार जिस पर कोई ध्यान न दे ।** उ.—कत श्रम करत सुनत को इहाँ है, होत जो बन को रोयो—३०२१ । (२) **समूह ।** (३) **जल, पानी ।** (४) **बाग, बगीचा ।** (५) **कपास का पेड़ ।**

बनए—क्रि. स. [हिं. बनाना] **बनाये ।** उ.—मनौ । बिबि मरकत बीच महानग चतुर नारि बनए—६८४ ।

बनक—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनना] (१) **बनावट, सजधज ।** (२) **बाना, भेस, वेश ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. वन+क] **बन की उपज ।**

बनकोरा, बनकौरा—संज्ञा पुं. [देश.] **लोनिया का साग ।** उ.—बनकौरा पिंडीक चिचिंडी—३९६ ।

बनखंडी—पुं. [हिं. बन+खंड] **बनवासी ।**

बनचर—संज्ञा पुं. [सं. वनचर] (१) **जंगली पशु।** (२) **जंगली मनुष्य।** (३) **जल के जीव।**

बनचारी—संज्ञा पुं. [सं. वनचारिन्] (१) **बनवासी।** उ.—तात बचन लगि राज तज्यौ तिन अनुज घरनि सँग भए बनचारी—१०-१६८। (२) **बन के जीव।** (३) **जल के जीव।**

बनचौंर, बनचौंरी—संज्ञा स्त्री. [सं. वन+चमर, चमरी] **सुरागाय जिसकी पूँछ का चँवर बनता है।**

बनज—संज्ञा पुं. [सं. वाणिज्य] **व्यापार, व्यवसाय।**

संज्ञा पुं. [सं. वनज] (१) **कमल।** (२) **जल-जीव।** (३) **जल में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ।**

बनजात—संज्ञा पुं. [सं. वन+जात] **कमल।**

बनजारनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनजारा] **बनजारा वर्ग की नारी।** उ.—लीन्हें फिरति रूप त्रिभुवन को ऐ नोखी बनजारनि—१०४१।

बनजारा—संज्ञा पुं. [हिं. बनिज+हारा] (१) **बैलों पर अनाज लादकर बेचनेवाला, टाँड़ा लादनेवाला।** (२) **व्यापारी।**

बनजी—संज्ञा पुं. [सं. वाणिज्य] (१) **व्यापार।** (२) **व्यापारी।**

बनत—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनना] (१) **बनावट।** (२) **अनुकूलता।**

बनताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बन+ताई] (प्रत्य.)] **बन की सघनता या भयंकरता।**

बनद—संज्ञा पुं. [सं. वन+द] **बादल, जलद।**

बनदाम—संज्ञा स्त्री. [सं. वन+दाम] **वनमाला।**

बनदेवी—संज्ञा स्त्री. [सं. वनदेवी] **वन की अधिष्ठात्री देवी।**

बनधातु—संज्ञा स्त्री. [सं. वनधातु] **गेरू या वैसी ही रंगीन मिट्टी।** उ.—सखा संग आनंद करत सब अंग अंग बनधातु चित्र करि।

बनना—क्रि. अ. [सं. वर्णन] (१) **तैयार होना।** (२) **काम में आने योग्य होना।** (३) **ठीक रूप या स्थिति में आना।** (४) **एक पदार्थ से दूसरा तैयार होना।** (५) **संबंध हो जाना।** (६) **पद, अधिकार आदि प्राप्त करना।** (७) **उन्नत दशा में पहुँचना।** (८) **प्राप्त होना, मिलना।** (९) **पूरा या समाप्त होना।** (१०) **मरम्मत होना।** (११) **संभव होना।**

मुहा०—जान (प्राण) पर आ बनना—**प्राण संकट में पड़ जाना।**

(१२) **आविष्कार होना।** (१३) **आपस में निभना या पटना।** (१४) **सुन्दर लगना, स्वादिष्ट होना।** (१५) **सुयोग या सुअवसर मिलना।** (१६) **स्वरूप धारना, स्वाँग बनाना।** (१७) **मूर्ख सिद्ध होना।** (१८) **उच्च या बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न करना।** (१९) **खूब सजना, शृंगार करना।**

बननि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनना] (१) **बनाव-सिंगार, सजावट।** (२) **रचना, बनावट।**

बननिधि—संज्ञा पुं. [सं. वननिधि] **सागर, समुद्र।**

बनपट—संज्ञा पुं. [सं. वनपट] **छाल से बना कपड़ा।**

बनपथ—संज्ञा पुं. [सं. वनपथ] **जलमार्ग, सागर।**

बनपत्र—संज्ञा पु. [सं. वनपत्र] **एक बाजा।** उ.—किनहु सृंग कोउ बेनु किनहु बनपत्र बजाये—११०७।

बनपाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बन+पत्ती] **वनस्पति।**

बनबाहन—संज्ञा पुं. [सं. वन+वाहन] **जलयान, नौका।**

बनमाल, बनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं. वनमाला] **तुलसी, कुंद, मंदार, परजाता और कमल—इन पाँच पौधों की पत्तियों और फूलों की बनी हुई ऐसी माला जो प्रायः गले से पैर तक लम्बी होती थी।** उ.—मुकुट सिर धरैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं—४-१०।

बनमालाधर—संज्ञा पुं. [सं. वनमाला+हिं. धरना] **विष्णु और उनके राम-कृष्ण अवतार।** उ.—कंबु कंठधर, कौतुभ-मनिधर, बनमालाधर, मुक्त मालधर—५७२।

बनमाली—संज्ञा पुं. [सं. वनमाली] (१) **बनमाला धारण करनेवाला।** (२) **श्रीकृष्ण।** उ.—अब ए बेली सूखत हरि बिनु छाँड़ि गए बनमाली—३२२८। (३) **विष्णु।** (४) **मेघ, बादल।** (५) **घने वनवाला प्रदेश।**

बनरखा—संज्ञा पुं. [हिं. बन+रखना] **वनरक्षक।**

बनरा—संज्ञा पुं. [हिं. बंदर] **बानर, बंदर।**

संज्ञा पुं. [हिं. बनना] (१) **वर, दूलह।** (२) **विवाह का मंगलगीत।**

बनराई—संज्ञा पुं. [सं. वनराज] (१) **वन का राजा,**

सिंह । (२) **तोता** । उ.—सजल लोचन चारु नासा, परम रुचिर बनाइ । जुगल खंजन करत अविनति, बीच कियौ बनराइ—१०-२९५ ।

बनराज, बनराजा, बनराय, बनराया—संज्ञा पुं. [सं. बनराज] (१) **सिंह** । (२) **तोता** ।

बनरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनरा] **नवबधू, दुलहिन** ।

बनरुह—संज्ञा पुं. [सं. वनरुह] (१) **अपने आप उगनेवाले जंगली पेड़** । (२) **कमल** ।

बनवना—क्रि. स. [हिं. बनाना] **रचना, बनाना** ।

बनवसन—संज्ञा पुं. [सं. वनवसन] **छाल का कपड़ा** ।

बनवाना—क्रि. स. [हिं. बनाना] **दूसरे को बनाने के काम में प्रवृत्त करना** ।

बनवारी—संज्ञा पुं. [सं. वनमाली] **श्रीकृष्ण** ।

बनवासी—संज्ञा पुं. [सं. वनवासी] **वन का निवासी** ।

बनवैया—संज्ञा पुं. [हिं. बनाना+वैया] **बनानेवाला** ।

बना—संज्ञा पुं. [हिं. बनना] **वर, दूलह** ।

क्रि. स.—**रचा गया, तैयार हुआ** ।

मुहा०—बना रहना—(१) **जीवित रहना** । (२) **उपस्थित रहना** ।

बनाइ—क्रि. स. [हिं. बनाना] (१) **रचकर, तैयार करके** । उ.—व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कंध बनाइ—१-२२५ । (२) **तैयार करके, व्यवहार-योग्य रूप देकर** । उ.—षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचि-कै कंचन-थार—३९७ । (३) **साजकर** । उ.—तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै—१-५२ । (४) **गढ़ गढ़कर** । उ.—कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसैं धौं तम नासत—२-२५ ।

क्रि. वि.—(१) **निपट, नितांत** । उ.—यह बालक धौं कौन कौ, कीन्हौ सुद्ध बनाइ—५८९ । (२) **भली-भाँति, अच्छी तरह** । उ.—आपु अपनौ घात निरखत खेल जम्यौ बनाइ—१०-२४४ ।

बनाइए—क्रि. स. [हिं. बनाना] **शृंगार कीजिए, सजाइए** । उ.—छूटे चिहुर बदन कुँभिलानौ सुहथ सँवारि बनाइए—१९८८ ।

बनाई—क्रि. स. [हिं बनाना] (१) **रची, निर्मित की** । उ.—नाना भाँति पाँति सुंदर मनौ कंचन की है लता बनाई—९-५९ । (२) **व्यवहार-योग्य रूप दिया** । उ.—अति प्यौसर सरस बनाई—१०-१८३ । (३) **सजाया, शृंगार किया** । उ.—लोचन ललित, ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई—६१६ । (४) **रचकर, गढ़कर, गढ़ी, कल्पित की** । उ.—(क) हम जानी यह बात बनाई—७९९ । (ख) देखे तब बोल्यौ कान्ह, उतर यौं बनाई—१०-२८४ ।

क्रि. वि.—(१) **बिलकुल, अत्यन्त** । उ.—हरि तासौं कियौ सुद्ध बनाई—७-२ । (२) **भलीभाँति, अच्छी तरह** ।

बनाउ—क्रि. स. [हिं. बनाना] (१) **किसी पदार्थ को काट-छाँटकर और गढ़कर, सँवारकर, सुंदर रूप देकर** । उ.—सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया—१०-४१ । (२) **बनाओ, निर्मित करो** । उ.—रिषि दधीचि हाड़ लै दान । ताकौ तू निज बज्र बनाउ—६-५ ।

संज्ञा पुं. (१) **बनावट** । (२) **सजावट** । (३) **युक्ति** ।

बनाऊँ—क्रि. स. [हिं. बनाना] **सजाऊँ** । उ.—तुमरे भूषन मोकों दीजै अपने तुमहिं बनाऊँ—पृ. ३११ (११) ।

बनाए—क्रि. स. [हिं. बनाना] **रचे** । उ.—बालक बच्छ हरे चतुरानन, ब्रह्म-लोक पहुँचाए । सूरदास-प्रभु गर्व बिनासन, नव कृत फेरि बनाए—४३६ ।

बनागि, बनाग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं. वनाग्नि] **दावानल** ।

बनाना—क्रि. स. [हिं. बनना] (१) **रचना, तैयार करना** । (२) **गढ़कर, सँवारकर या पकाकर तैयार करना** । (३) **ठीक या उचित रूप देना** । (४) **एक पदार्थ से दूसरा तैयार करना** । (५) **नया भाव या संबंध प्रदान करना** । (६) **पद, मान, अधिकार-विशेष प्रदान करना** । (७) **उन्नत दशा में पहुँचाना** । (८) **प्राप्त करना** । (९) **समाप्त करना** । (१०) **आविष्कार करना** । (११) **मरम्मत करना** । (१२) **हँसी उड़ाना** ।

बनाबंत, बनावनत—संज्ञा पुं. [हिं. बनना+अबनना]

विवाह के लिए लड़के-लड़की की जन्मपत्री का मिलान।

बनाम—अव्य. [फ़ा.] **नाम पर, किसी के प्रति।**

बनाय—क्रि. वि. [हिं. बनाकर] (१) **नितांत।** (२) **भली-भाँति, अच्छी तरह।**

क्रि. स. [हिं. बनाना] **पकाकर, तैयार करके।** उ.—मधु-मेवा पकवान मिठाई व्यंजन बहुत बनाय—६१८।

बनायौ—क्रि. स. [हिं. बनाना] (१) **धारण किया, रखा।** उ.—नर-तन, सिंह-बदन बपु कीन्हौ, जन-लगि भेष बनायौ—१-१९०। (२) **रचौ, निर्मित की।** उ.—चंदन अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ—९-५०।

बनारसी—वि. [हिं. बनारस] **काशी का, काशी-वासी।**

बनाव—संज्ञा पुं. [हिं. बनना+आव] (१) **रचना, बनावट।** (२) **सजावट, शृंगार।** (३) **युक्ति, उपाय।**

बनावट—संज्ञा स्त्री. [हिं बनाना+वट] (१) **रचना, गढ़ंत।** (२) **आडंबर, ऊपरी दिखावा।**

बनावत—क्रि. स. [हिं. बनाना] (१) **(किसी पदार्थ का रूप परिवर्तित करके) नई वस्तु तैयार करता है, रूप परिवर्तित करता है।** उ.—मातु उदर मैं रस पहुँचावत। बहुरि रुधिर तैं छीर बनावत—२-२०। (२) **मनगढ़ंत करता है, उपहास करता है।** उ.—सूर सीस तृन दै बूझति हौ, साँच कहत की बनावत री—१५८५। (३) **(रूप) धरते हैं, (स्वाँग) बनाते हैं।** उ.—मनहीं मन बलबीर कहत हैं, ऐसे रंग बनावत। सूरदास-प्रभु-अगनित महिमा, भगतनि कैं मन भावत—१०-१२५।

बनावति—क्रि. स. [हिं. बनाना] **बनाती है।**

मुहा०—बुद्धि बनावति—**उपाय सोचती है, युक्ति निकालती है।** उ.—यह सुनिकै मन हर्ष बढ़ायौ, तब इक बुद्धि बनावति—११७४।

बनावन—संज्ञा पुं. [हिं. बनाना] **बनाने का भाव, रचना।**

मुहा०—बात बनावन—**बात गढ़ने में।** उ.—बात बनावन कौ है नीकौ, बचन-रचन समुझावै—१-१८६।

बनावनहारा—संज्ञा पुं. [हिं. बनाना+हारा] (१) **बनानेवाला, रचयिता।** (२) **सुधारनेवाला, सुधारक।**

बनावनो—संज्ञा पुं. [हिं. बनावना] **बनावट, रचना।** उ.—पँचरँग पाट कनक मिलि डोरी अतिही सुबर बनावनो—२२८०।

बनावै—क्रि. स. [हिं. बनाना] (१) **बनाता है, रचता है, तैयार करता है।** (२) **रूप धारण करता है, रूप धरता है।** उ.—दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै—१-४२। (३) **सुधारता है, पूर्णतः संपादन करता है, पूरा करता है।** उ.—मूकू निंद, निगोड़ा, भोंड़ा, कायर, काम बनावै—१-१८६।

बनासपति, बनासपती—संज्ञा स्त्री. [सं. बनस्पति] (१) **जड़ी, बूटी आदि।** (२) **साग-पात, फलफूल आदि।**

बनि—वि. [हिं. बनना] **पूर्ण, सब, समस्त।**

क्रि. अ.—(१) **बनकर, रचकर।**

प्र०—बनि जाइ—**काम बन जाय, इच्छा पूरी हो, दशा सुधर जाय।** उ.—उचित अपनी कृपा करिहौ, तबै तो बनि जाइ १-१२६। बनि आइहै—**करते-धरते बन पड़ेगा, कर सकोगे, सम्हाल सकोगे।** उ.—तब न कछू बनि आइहै, जब बिरुझैं सब नारि—११२५।

(२) **बन-ठनकर, सज-धजकर।** उ,—(क) बनि ब्रज सुंदरि चलीं—१०-२८। (ख) बन तैं बनि ब्रज आवत—४७६। (ग) जुवति बनि भई ठाढ़ी और पहिरे चीर—१८५२।

बनिक—संज्ञा पुं. [सं. बणिक] (१) **व्यापारी।** (२) **बनिया।**

बनिज—संज्ञा पुं. [सं. वाणिज्य] (१) **व्यापार, वस्तुओं का क्रय-विक्रय।** उ.—(क) प्रेम-बनिज कीन्हौं हुतो नेह नफा जिय जानि—३१४६। (ख) सूरदास तेहि बनिज कवन गुन भूलहु माँझ गवाँए—३२०१। (ग) और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि—१-३१०। (२) **व्यापार की वस्तु, सौदा।** (३) **धनी, मालदार।**

बनिजना—क्रि. स. [हिं. बनिज] (१) **व्यापार करना।** (२) **मोल लेना।**

बनिजति—क्रि. स. [हिं. बनिजना] **लेन-देन करती है।** उ.—यह बनिजति बृषभानु सुता तुम हम सों बैर बढ़ावति।

बनिजाहा—संज्ञा पुं. [हिं. बनजारा] **टाँड़ा लादनेवाला।**

बनिजारिन, बनिजारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनजारी] **बनजारा जाति की स्त्री।** उ.—लीन्हें फिरति रूप त्रिभुवन को ए नोखी बनिजारिनि।

बनित—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनना] **वेश, साजबाज।** उ.—चढ़ि जदुनन्दन बनित बनाय कै। साजि बरात चले जादव जाय कै।

बनिता—संज्ञा स्त्री. [सं. वनिता] (१) **स्त्री, नारी।।** उ.—सूर स्याम बनिता ज्यों चंचल पग-नूपुर झनकार (२) **पत्नी।**

बनियाँ—क्रि. स. [हिं. बनना] **बन पड़ता है।**

प्र०—गावत नहिं बनियाँ—**गाते नहीं बन पड़ता है, गा नहीं पाता है।** उ.—सेस सहस आनन गुन गावत नहिं बनियाँ—१०-१४४। कहति न बनियाँ—**कही नहीं जाती, वर्णन नहीं की जा सकती।** उ.—आपुन खात, नंद-मुख नावत, सो छबि कहत न बनियाँ—१०-२३८।

बनिया—संज्ञा पुं. [सं. वणिक] (१) **व्यापारी।** (२) **वैश्य।**

बनिस्बत—अव्य. [फा.] **अपेक्षा, तुलना में।**

बनिहै—क्रि. अ. [हिं. बनना] **बनेगा, अच्छा रहेगा।** उ.—गेंद खेलत बहुत बनिहै, आनौ कोऊ जाइ—५३२।

बनी—संज्ञा स्त्री [हिं. बन] **बाग, वाटिका, वनस्थली।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बना] (१) **दुलहिन।** (२) **नायिका।**

संज्ञा पुं. [सं. वणिक] **बनिया।**

क्रि. अ. [हिं. बनना] (१) **खूब पटती है, अच्छी तरह निभती है।** उ.—सूर कहत जे भजत राम कौं, तिनसौं हरि सौं सदा बनी—१-३६। (२) **शोभित है।** उ.—कंठ मुक्तामाल, मलयज, उर बनी बनमाल—१-३०७। (३) **योग्य या उचित थी, फबी, भली लगी।** उ.—ते दीनी बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी—१०-२४। (४) **फबती है, भली लगती है।** उ.—मुकुट कुण्डल जड़ित हीरा लाल सोभा अति बनी—१० उ०-२४। (५) **उपयुक्त है, योग्य है।** उ.—नन्द सुत बृषभानु-तनया रास में जोरी बनी—पृ० ३४५ (३)। (६) **प्रस्तुत हुई, तैयार हुई, निर्मित हुई।** उ.—हरि जू की आरती बनी—२-२८।

मुहा०—जिय आनि बनी—**जी में दृढ़ विश्वास हो गया है, धारणा बन गयी है।** उ.—मेरैं जिय ऐसी आन बनी—८९४। कठिन बनी है—**बड़ी विपत्ति आ पड़ी है।** उ.—निबाहौ बाँह गहे की लाज। द्रुपद-सुता भाषति नँदनंदन, कठिन बनी है आज—१-२५५।

बनीनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनी+ईनी] **वैश्य की स्त्री।**

बनीर—संज्ञा पुं. [सं. वानीर] **बेंत।**

बने—क्रि. अ. बहु. [हिं. बनना] **तैयार हुए, बनाये गये।**

मुहा०—बहुत बने हैं—**बहुत स्वादिष्ट हैं।** उ.—मिलि बैठे सब जेंवन लागे। बहुत बने कहि पाक—४६४।

बनै—क्रि. अ. [हिं. बनना] (१) **बनता है, काम देता है।** उ.—तेल-तूल-पावक-पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत—२-२५। (२) **बच सकोगे, रक्षा होगी।** उ.—(क) पहुप देहु तौ बनै तुम्हारी, ना तरु गये बिलाइ—५२६। (ख) गेंद दियैं ही पै बनै, छाँड़ि देहु मति-धूत—५८६।

मुहा०—खेलत बनै—**खेलते बनता है, ठीक तरह से खेला जाता है।** उ.—खेलत बनै घोष निकास—१०-२४४।

संज्ञा पुं. सवि. [हिं. बन+ऐ.] **बन में ही, बन ही को।** उ.—व्यंजन सहस प्रकार जसोदा बनै पठाए—४३७।

बनैया—संज्ञा पुं. [सं. बनाना+ऐया (प्रत्य.)] **बनानेवाला, गढ़नेवाला, निर्माण करनेवाला।** उ.—सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया—१०-४१।

बनैला—वि. [हिं. बन+ऐला] **जंगली, वन्य।**

बनोवास—संज्ञा पुं. [सं. वनवास] **बन में रहना।**

बनौटी—वि. [हिं. बन+औटी] **कपास के फूल जैसा, कपास का, कपासी ।**

बनौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. वन+ओला] **वर्षा का ओला ।**

बनौआ, बनौवा वि. [हिं. बनना+औवा] **बनावटी ।**

बन्यौ—क्रि. अ. [हिं. बनाना] (१) **शोभित हुआ, धारण किया ।** उ.—कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो) ?—१-४५ । (२) **बनता है, होता है, (काम) चला करता है ।** उ.—या विधि कौ ब्योपार बन्यौ जग, तासौं नेह लगायौ—१-७६ ।

मुहा॰—भलौ बन्यौ है संग—**अच्छा साथ हुआ है, खूब साथ बना है ।** उ.—प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग । आपु खात, प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग—१०-२६५ ।

बन्हि—संज्ञा स्त्री. [सं. वह्नि] **आग, अग्नि ।**

बपंस—संज्ञा पुं. [हिं. बाप+अंश] **बपौती, दाय ।**

बप—संज्ञा पुं. [हिं. बाप] **पिता ।**

बपन—संज्ञा पुं. [सं. वपन] (१) **केशमुंडन ।** (२) **बीज बोना ।**

बपना—क्रि. स. [सं. वपन] **बीज बोना ।**

बपु—संज्ञा पुं. [सं. वपु] (१) **शरीर ।** उ.—तात-मरन, सिय-हरन, राम बन-बपु धरि बिपति भरै—१-२६४ । (२) **अवतार ।** (३) **रूप ।**

बपुरा—वि. पुं. [हिं. बापुरा] **बेचारा, अनाथ, निरीह ।** उ.—बपुरा मोकौं कहति, तोहिं बपुरी करि डारौं—५८६ ।

बपुरी—वि. स्त्री. [हिं. बपुरा] **बेचारी, अनाथ, निरीह ।** उ.—हमतें भली जलचरी बपुरी अपनौ नेम निबाह्यौ—३१४६ ।

बपुरे—वि. [हिं. बापुरो] (१) **तुच्छ, नगण्य, जिसकी कोई गिनती न हो ।** उ.—इंद्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी—१-३६ । (२) **अनाथ, निरीह ।**

बपुरैं—वि. सवि [हिं. बपुरा] **बेचारे ने, गरीब ने, अनाथ ने ।** उ.—मनसाकरि सुमिर्यौ गज बपुरैं, ग्राह प्रथम गति पावै—१-१२२ ।

बपुरो, बपुरौ—वि. [हिं. बपुरा] (१) **बेचारा, अनाथ, अशक्त ।** उ.—(क) केतिक जीव कृपिन मम बपुरौ, तजै कालहू प्रान । सूर एकहीं बान बिदारैं, श्री गोपाल की आन—१-२७५ । (२) **तुच्छ, क्षुद्र ।** उ.—कहा बपुरो कंस मिट्यौ तब मन संस करत है जी को—२५५६ ।

बपौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाप+औती] **पिता से प्राप्त धन-संपति और जायदाद ।**

बप्पा—संज्ञा पुं. [हिं. बाप] **पिता, जनक ।**

बफारा—संज्ञा पुं [हिं भाप] **भाप से सेंकना ।**

बबकना—क्रि. अ. [अनु.] **चिल्लाना, बमकना ।**

बबा—संज्ञा पुं. [तु. बाबा] (१) **पिता ।** उ.—मन मैं माष करत, कछु बोलत, नंद बाबा पै आयौ—१०-१५६ । (ख) सिर कुलही, पग पहिरि पैजनी, तहाँ जाहु जहँ नंद बबा रे—१०-१६० । (२) **बाबा, दादा ।**

बबुआ—संज्ञा पुं. [हिं. बाबू] **बेटा (प्यार का संबोधन) ।**

बबुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाबू] (१) **बेटी ।** (२) **छोटी ननद ।**

बबुर, बबूल—संज्ञा पुं. [सं. कीकर, हिं. बबूल] **एक काँटे-दार पेड़, बबूल ।** उ.—बोवत बबुर दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे—१-६१ ।

बबूला—संज्ञा पुं. [हिं. बगूला] **बवंडर, अंधड़ ।**

संज्ञा पुं. [हिं. बुलबुला] **बुलबुला ।**

बमत—क्रि. स. [सं. वमन] **उगलता है, कै करता है ।** उ.—निरतत पद पटकत फन-फन प्रति, बमत रुधिर नहिं जात सम्हारयौ—५७४ ।

बमनहिं—संज्ञा पुं. सवि. [सं. वमन+हिं. हिं] **वमन किये हुए पदार्थ को ।** उ.—बमनहिं खाइ, खाइ सो डारै, भाषा कहि कहि टेरा—१-१८६ ।

बमनना—क्रि. स. [सं. वमन] **उगलना, कै करना ।**

बय—संज्ञा स्त्री. [सं. वय] **अवस्था, उम्र ।**

बयन—संज्ञा पुं. [सं. वचन] **वाणी, वचन ।** उ.—बरु ए प्रान जाहिं ऐसे ही बयन होय क्यों हीनों—३०३४ ।

बयना—क्रि. स. [सं. वयन, प्रा. बयन] **बीज बोना ।**

क्रि. स. [सं. वचन] **कहना, वर्णन करना ।**

संज्ञा पुं. [हिं. बैना] **उत्सव पर दी गयी मिठाई ।**

बयनी—वि. [हिं. बयन] **बोलनेवाली ।**

बय-प्रापत—वि. [सं. वय+प्राप्त] **युवावस्था को प्राप्त, युवक या युवती**। उ.— (क) पारबती बय-प्रापत भई—४-७। (ख) मम पुत्री बय-प्रापत आहि—४-६।

बयर—संज्ञा पुं. [हिं. बैर] **झगड़ा, शत्रुता**।

बयस—संज्ञा स्त्री. [सं. वयस] **अवस्था, आयु, वय**। उ.—मैं तौ बृद्ध भयौ, वह तरुनी, सदा बयस इकसारी—१-१७३।

बयसवाला—वि. [सं वयस+हिं. वाला] **युवक**।

बयस-सिरोमनि—संज्ञा पुं. [वयस्+शिरोमणि] **अवस्थाओं में श्रेष्ठ, युवावस्था**।

बया—संज्ञा पुं. [सं. वयन=बुनना] **एक पक्षी**।

संज्ञा पुं. [अ. बायः] **अनाज तौलनेवाला**।

बयाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बया+आई] **तौलने की मजदूरी**।

बयान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **वर्णन**। (२) **विवरण**।

बयाना—संज्ञा पुं. [अ. बै+फ़ा. आना] **पेशगी, अगाऊ**।

बयार, बयारि—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु] **हवा, पवन**। उ.—(क) विषय-विकार-दवानल उपजी, मोह-बयारि लई—१-२६६। (ख) बेगिहिं नारि छोरि बालक कौं, जाति बयारि भराई—१०-३६। (ग) (तरु) गिरे कैसें, बड़ौ अचरज, नैंकु नहीं बयार—३८७।

मुहा०—बयार करना—**पंखा हाँकना**। बयारि न लागी ताती—**गरम हवा नहीं लगी, जरा भी कष्ट नहीं हुआ**। उ.—गोकुल बसत नंदनंदन के कबहुँ बयारि न लागी ताती—२६७७। जैसी बयारि बहै तैसी ओढ़िए जू पीठि—**जैसी हवा चले वैसी ही पीठि दीजिए, जैसी स्थिति हो, वैसा ही काम कीजिए**। उ.—सूरदास के पिय, प्यारी आपुही जाइ मनाय लीजै, जैसी बयारि बहै तैसी ओढ़िए जू पीठि—२०२५।

बयारा—संज्ञा पुं. [हिं. बयार] **झोंका, अन्धड़, तूफान**।

बयारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बयार] (१) **हवा, हवा का झोंका**। उ.—असुर के तनहि को लग्यो कलपन तुरंग गज उड़ि चले लागी बयारी—१० उ.—३१। (२) **वायु नामक तत्व**। उ.-सप्त पताल अध ऊर्ध्व पृथ्वी तल जल नभ बरुन बयारी—३२६१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बियारी] **रात का भोजन**।

बयाला—संज्ञा पुं. [सं. वाह्य+आला] (१) **दीवार का गोखा**। (२) **ताख, आला**। (३) **दीवाल से तोप का गोला निकालने का छेद**।

बयों, बयौ—क्रि. स. [हिं. बयना] **बीज बोया**। उ.—(क) अब मेरी-मेरी करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ—१-७८। (ख) सूर सुरपति सुन्यौ, बयौ जैसो लुन्यौ प्रभु कह गुन्यौ गिरि सहित वैहै—६४४।

बरंग—संज्ञा पुं. [देश.] **कवच, बख्तर**।

बरंगा—संज्ञा पुं. [देश.] **छत पाटने की लकड़ी, झाँप**।

बर—संज्ञा पुं. [सं. वट] **बरगद का वृक्ष**।

संज्ञा पुं. [सं. वर] (१) **आशीर्वादात्मक वचन, बरदान, वर**। उ.—(क) व्यास पुत्र-हित बहु तप कियौ तब नारायन यह बर दियौ—१-२२५। (ख) हम तीनौं हैं जग करतार। माँगि लेहु हमसौं बर सार—४-३। (२) **दूल्हा**। उ.—बर अरु बधू आवत जब जाने रुक्मिनि करत बधाई।

वि.—(१) **अच्छा, उत्तम**। (२) **पूरा, पूर्ण**।

मुहा०—बर परना—**बढ़कर होना**।

संज्ञा पुं. [सं. बल] (१) **शक्ति**। (२) **इच्छाशक्ति, मन**। उ.—अतिहिं हठीली, कह्यौ न मानति, करति आपने बर तैं—७४४।

अव्य० [फ़ा.] **ऊपर**।

बरकत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) **बढ़ती, अधिकता**। (२) **लाभ**। (३) **समाप्ति**। (४) **धन-दौलत**। (५) **कृपा**।

बरकना—क्रि. अ. [हिं. बरकाना] (१) **बुरी बात न हो पाना**। (२) **दूर या अलग हटना**।

बरकाज—संज्ञा पुं. [स. वर+कार्य] **विवाह**।

बरकाना—क्रि. अ. [सं. वारण, वारक] (१) **बुरी बात न होने देना**। (२) **बहलाना, फुसलाना**।

बरख—संज्ञा पुं. [सं. वर्ष] **बरस, साल**।

बरखना—क्रि. अ. [सं. वर्षण] **पानी बरसना**।

बरखा—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्षा] (१) **वर्षा**। (२) **वर्षा होना**।

बरखाना—क्रि. स. [सं. वर्षा] (१) **पानी बरसना**। (२) **छितराकर गिराना**। (३) **अधिकता से देना**।

बरखास, बरखास्त—वि. [फा. बरख़ास्त] (१) **सभा आदि**

जो समाप्त हो गयी हो। (२) जो नौकरी से हटा दिया गया हो।

बरगद—संज्ञा पुं. [सं. वट, हिं. बड़] **बड़ का पेड़।**

बरछा—संज्ञा पुं. [सं. व्रश्चन] **भाला नामक हथियार।**

बरछैत—वि. [हिं. बरछा+ऐत] **बरछा मारनेवाला।**

बरजत—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना करता है, रोकता है।** उ.—लोक-वेद बरजत सबै (रे) देखत नैननि त्रास। चोर न चित चोरी तजै, (रे) सरबस सहै बिनास—१-३२५।

बरजना—क्रि. स. [सं. वर्जन] **मना करना।**

बरजनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बरजना] **रोक, मनाही।**

बरजि—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना करके, रोककर, निवारण करके।** उ.—इहिं लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारो (हो)। सूर स्याम इहिं बरजि कै, मेटौ अब कुल-गारी (हो)—१-४४।

बरजिबैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. बरजना] **रोकने या मना करने के लिए।** उ.—फुरैं न बचन बरजिबैं कारन, रहीं बिचारि-बिचारि—१०-२८३।

बरजी—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना किया, रोका।** उ.—हम बरजी, बरज्यौ नहिं मानत—३६६।

बरजे—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना किया, रोका।** उ.—मैं बरजे तुम करत अचगरी। उरहन कैं ठाढ़ी रहैं सिगरी—३६१।

बरजैं—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना करते हैं, रोकते हैं।** उ.—हाथ तारी देत भाजत, सबै करि करि होड़। बरजैं हलधर, स्याम, तुम जनि चोट लागै गोड़—१०-२१३।

बरजो—क्रि. स. [हिं. बरजना] **रोको, मना करो।** उ.—कोऊ खीझो कोऊ कितने बरजो जुवतिन के मन ध्यान—८७०।

बरजोर—वि. [हिं. बल+फा जोर] (१) **बली, बलवान।** (२) **बल का अनुचित प्रयोग करनेवाला।**

क्रि. वि.—(१) **जबरदस्ती।** (२) **बहुत जोर से।**

बरजोरन—संज्ञा पुं. [सं. वर+हिं. जोड़ना] **विवाह।**

बरजोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बरजोर] **बल प्रयोग, जबरदस्ती।** उ.—नंद बाबा की गऊ चरावो हमसों करो बरजोरी—२४०६।

क्रि. वि.—**बलपूर्वक, जबरदस्ती।**

बरजौं—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना करूँगी।** उ.—करत अन्याय न बरजौं कबहूं अरु माखन की चोरी—२७०८।

बरजौ—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना करो, रोको।** उ.—सूर सुतहिं बरजौ नँदरानी अब तोरत चोलीबँद-डोरि—१०-३२७।

बरज्यौ—क्रि. स. [हिं. बरजना] **मना किया, रोका निषेध किया, निवारण किया।** उ.—(क) ब्रह्म-पुत्र सनकादि गए बैकुण्ठ एक दिन। द्वारपाल जय-विजय हुते, बरज्यौ तिनकौं तिन—३-११। (ख) बार-बार बरज्यौ, नहिं मान्यौ, जनक-सुता तैं कत घर आनी—९-१६०।

बरत—संज्ञा पुं. [सं. व्रत] (१) **व्रत, उपवास।** उ.—दृढ़ बिस्वास बरत कौ कीन्हौ। गौरीपति-पूजन मन दीन्हौं—७९९। (२) **निष्ठापूर्ण और अनन्य प्रीति।** उ.—सूर प्रभु पति बरत राखै, मेटि कै कुलकानि—८६५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बरना] (१) **रस्सी।** (२) **नट की रस्सी।**

संज्ञा पुं. [सं. व्रण] **(छड़ी आदि से) मारे जाने का उभरा या सूजा हुआ चिह्न।**

वि. [हिं. बलना] **जलता-बलता हुआ।** उ.—दसहुँ दिसा तैं बरत दवानल आवत है ब्रज जन पर धायौ—५९१।

बरतत—क्रि. अ. [हिं. बरतना] **संबंध रखते हैं, व्यवहार करते हैं, साथ निभाते हैं।** उ.—प्रभु तैं जन, जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिऐं—१-८९।

बरतन—संज्ञा पुं. [सं. वर्तन] **पात्र, बर्तन।**

संज्ञा पुं. [हिं. बरतना] **बरताव, व्यवहार।**

बरतना—क्रि. अ. [सं. वर्तन] **बरताव करना।**

क्रि. स.—**काम या व्यवहार में लाना।**

बरताना—क्रि. स. [हिं. बरतना] **काम में लाना।**

क्रि. स. [सं. वितरण] **बाँटना, वितरण करना।**

बरताव—संज्ञा पुं. [हिं. बरतना] **व्यवहार, बर्ताव।**

बरतावै—क्रि. स. [हिं. बरताना] **भोग करे, व्यवहार में लावे।** उ.—अरु जो परालब्ध सौं आवै। ताहीं कौं सुख सौं बरतावै—३-१३।

बरति—क्रि. अ. [हिं. बलना] **बलती-जलती है।**

मुहा०—आँखि बरति है—**आँख जलती है, दुख और क्रोध होता है।** उ.—काहे को अब रोष दिवावत, देखि आँखि बरति है मेरी—३०१२।

क्रि. स. [हिं. बरना] **ब्याहती है।** उ.—मरे से अपसरा आइ ताकौ बरति भजिहैं देखि अब गेह नारी।

बरती—वि. [हिं. व्रती] **जिसने व्रत रखा हो।**

बरतोर—संज्ञा पुं. [हिं. बार+तोरना] **रोम या बाल उखड़ने से होनेवाला फोड़ा।**

बरदारि—वि. [फा.] (१) **ढोनेवाला।** (२) **माननेवाला।**

बरदौर—संज्ञा पुं. [सं. बरद+और] **गोशाला।**

बरध, बरधा—संज्ञा पुं. [सं. बलीवर्द] **बैल।**

बरन—वि. [सं. वर्ण] (१) **रंग, वर्ण।** उ.—ग्वालबाल सब बरन बरन के, कोटि मदन की छबि किए पाछे—५०७। (२) **भाँति-भाँति।** उ.—बरन बरन मंदिर बने लोचन नहिं ठहरात—२५६०।

बरनन—संज्ञा पुं. [सं. वर्णन] (१) **वर्णन।** (२) **विवरण।**

बरनना—क्रि. स. [सं. वर्णन] **वर्णन करना।**

बरना—क्रि. स. [हिं. बरनना] **वर्णन किया, कहा।** उ.—(क) काहूँ कह्यौ मंत्र-जप करना। काहूँ कछु, काहूँ कछु बरना—१,३४१। (ख) जड़ तन कौं है जनमऽरु मरना। चेतन पुरुष अमर-अज बरना—३-१३।

क्रि. स. [सं. वरण] (१) **ब्याहना, विवाह करना।** (२) **नियुक्त करना।** (३) **दान देना।**

क्रि. अ. [हिं. बलना] **जलना।**

बरनि—क्रि. स. [हिं. बरनना] **वर्णन करके।** उ.—मुण्ड माल सिव-ग्रीवा कैसी? मोसौं बरनि सुनावौ तैसी—१-२२६।

प्र०—बरनि सकौं—**वर्णन कर सकूं, बखान सकूं।** उ.—ता रिस मैं मोहिं बहुतक मार्‌यौ, कहुँ लगि बरनि सकौं—१-१५१।

बरनिऐ—क्रि. स. [हिं. बरनना] **वर्णन कीजिए, बखानिए, कहिए।** उ.—सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)। बहुत कहाँ लौं बरनिऐ, पुरुष न उबरन पावै (हो)—१-४४।

बरनी—क्रि. स. [हिं. बरनना] **वर्णन की।** उ.—(क) तुम हनुमंत पवित्र पवनसुत, कहियौ जाइ जोइ मैं बरनी—९-१०१। (ख) सुता लई उर लाइ, तनु निरखि पछिताइ, डरनि गई कुम्हिलाइ, सूर बरनी—६९८।

प्र०—बरनी जाइ—**वर्णन की जाय, कही जाय।** उ.—हृदय हरि-नख अति बिराजत, छबि न बरनी जाइ—१०-२३४।

बरने—क्रि. स. [हिं. बरनना] **वर्णन किये।**

प्र०—बरने जाइ—**वर्णन किये (जाते हैं), बरने (जाते हैं) कहते (हैं)।** उ.—बावर बरने नहिं जाई। जिहिं देखत अति सुख पाई—१०-१८३।

बरनेत—संज्ञा स्त्री. [हिं. बरना+ऐत] **विवाह की एक रीति।**

बरनौं—क्रि. स. [सं. वर्णन] **वर्णन करूँ, कहूँ।** उ.—कहा गुन बरनौं स्याम, तिहारे—१-२५।

बरन्यौ—क्रि. स. [हिं. बरनना] **वर्णन किया, कहा।**

प्र०—बरन्यौ जाइ (जाई)—**वर्णन किया जा सकता है।** उ.—(क) मुख देखत मोहिनि सी लागी, रूप न बरन्यौ जाई री—१०-१३६। (ख) बृन्दाबन ब्रज कौ महत कापै बरन्यौ जाइ—४६२।

बरफी—संज्ञा स्त्री. [फा. बरफ] **एक मिठाई।**

बरबंड—वि. [सं. बलवंत] (१) **बली।** (२) **प्रचंड।**

बरबर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **व्यर्थ की बात, बकवाद।**

बरबस—क्रि. वि. [सं. बल+वश] (१) **बलपूर्वक।** (२) **व्यर्थ, फिजूल।** उ.—खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ। हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ—१०-२४५।

बरबाद—वि. [फा.] (१) **नष्ट।** (२) **व्यर्थ खर्च हुआ।**

बरबादी—संज्ञा स्त्री. [फा.] **नाश, तबाही।**

बरम—संज्ञा पुं. [सं. वर्म] **कवच, जिरह बख्तर।**

बरम्हा—संज्ञा पुं. [सं. ब्रह्मा] **ब्रह्मा।**

बरम्हाना—क्रि. स. [सं. ब्राह्मण] **(ब्राह्मण का) आशीर्वाद देना।**

बरम्हाव—संज्ञा पुं. [सं. ब्रह्म+राव] (१) **ब्राह्मणत्व।** (२) **ब्राह्मण का आशीर्वाद।**

बरवा, बरवै—संज्ञा पुं. [देश.] **एक प्रसिद्ध छंद।**

बरष, बरस—संज्ञा पुं. [सं. वर्ष] **साल, वर्ष।** उ.—सहस बरस गज जुद्ध करत भए, दिन इक ध्यान धरे १-८२।

यौ० -बरष-बरषनि—**प्रति वर्ष, बहुत वर्षों तक।** उ.—कान्ह बरष-गाँठि उमँग, चहति बरष बरषनि—१०-९६।

बरषगाँठ, बरसगाँठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बरस+गाँठ] **जन्म-दिन, सालगिरह।** उ.—सूर स्याम ब्रज-जन-मन-मोहन-बरष-गाँठि कौ डोरा खोल—१०-९४।

बरषत, बरसत—क्रि. स. [हिं. बरसाना] (१) **बरसाती हुई, गिराती या बहाती है।** उ.—इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरषत लोचन नीर—१-२९। (२) **बरसाते या गिराते हैं।** उ.—स्रवत स्रोनकन, तन सोभा, छबि-घन बरसत मनु लाल—१-२७३।

बरषना, बरसना—क्रि. अ. [सं. वर्षण, हिं. बरसना] (१) **मेह पड़ना।** (२) **वर्षा-जल के समान ऊपर से गिरना।** (३) **अधिकता से प्राप्त होना।** (४) **अच्छी तरह झलकना।**

बरषा, बरसा—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्षा] (१) **पानी बरसने की क्रिया, वृष्टि, वर्षा।** उ.—कीजै कृपा-दृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई—१-१८५। (२) **वर्षा-काल, बरसात।**

बरषाइ, बरसाइ—क्रि. स. [हिं. बरसना] (१) **मेह गिराकर।** (२) **ऊपर से गिराकर।** उ.—जय जय धुनि नभ करत हैं हरषि पुहुप बरषाइ—४३१।

बरषाऊ, बरसाऊ—वि. [हिं. बरसना] **बरसनेवाला।**

बरषात, बरसात—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्षा] **वर्षाकाल।**

बरषाती, बरसाती—वि. [हिं. बरसात] **बरसात-संबंधी।**

बरषाना, बरसाना—क्रि. स. [हिं. बरसना] (१) **मेह गिराना।** (२) **ऊपर से मेह की तरह गिराना।** (३) **खूब प्राप्त करना।**

बरषावति, बरसावति—क्रि. स. [हिं. बरसाना] (१) **बरसाती है।** (२) **वर्षा के जल के समान (कोई वस्तु) गिराती है।** उ.—आनँद उर अंचल न सम्हारनि, सीस सुमन बरषावति—१०-२३।

बरषासन, बरसासन—संज्ञा पुं. [सं. वर्षासन] **एक मनुष्य या एक परिवार के लिए पर्याप्त एक वर्ष की भोजन-सामग्री।**

बरषी, बरसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बरस] **वार्षिक श्राद्ध।**

बरषावै, बरसावै—क्रि. स. [हिं. बरसाना] **वर्षा के जल की तरह ऊपर से गिराते हैं।** उ.—ब्योम-जान फूल अति गति बरसावै री—९९।

बरषै, बरसै—क्रि. स. [हिं. बरसना] **बरसता है, मेह पड़ता है।** उ.—निसि अँधेरी, बीजु चमकै सघन बरसै मेह—१०-५।

बरष्यौ, बरस्यौ—क्रि. स. [हिं. बरसना] **बरसा, जल गिरा (गिराया), मेह पड़ा।** उ.—देवराज मख-भंग जानि कै बरष्यौ ब्रज पर आई—१-१२२।

बरह—संज्ञा पुं. [हिं. बरही] **मोर, मयूर।** उ.—बरह-मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए—१०-४१७।

बरहहिं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. बरह+हि (प्रत्य.)] (१) **वृक्ष के पत्ते।** (२) **वृक्ष की पतली सींक या डाल को, तिनके को।** उ.—सोवत काग छुयौ तन मेरौ, बरहहिं कीनौ बान। फोरयौ नयन, काग नहिं छाँड्यौ सुरपति के बिदमान—९-८३।

बरहा—संज्ञा पुं. [हिं. बहना] **खेती की छोटी नाली।**

संज्ञा पुं. [हिं. बरही] **मोर, मयूर।** उ.—बरहा पिक चातक जै जै निसान बाजै—२८१९।

बरही—संज्ञा पुं. [सं. बर्हि] (१) **मोर, मयूर।** उ.—बरही-मुकुट इंद्रधनु मानहुँ तड़ित दसन-छबि लाजति—६३८। (२) **'साही' नामक जंतु।** (३) **मुरगा।** (४) **आग।**

संज्ञा स्त्री. [देश.] **मोटा रस्सा।**

संज्ञा पुं. [हिं. बारह] **जन्म का बारहवां दिन।**

बरहीपीड़—संज्ञा पुं. [सं. बर्हिपीड] **मोरमुकुट।** उ.—बरहीपीड़ दाम गुंजाननि अद्भुत बेष बनावत—सारा० ४७५।

बरहीमुख—संज्ञा पुं. [सं. बर्हिमुख] **देवता।**

बरहौं—संज्ञा पुं. [हिं. बरही] **जन्म का बारहवां दिन।**

बरा—संज्ञा पुं. [हि. बरा, बड़ा] **एक पकवान जो उर्द की मसालेदार पीठी की टिकियों को घी या तेल में तल कर बनता है, (दही) बड़ा।** उ.—दधि दूध बरा दहिरौरी। सो खात अमृत पक्कौरी—१०-१८३।

संज्ञा पुं. [सं. बट] **बरगद का पेड़।**

वि. [हिं. बड़ा] **बड़ा, जो छोटा न हो।** उ.—बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटोरै—१०-२२५।

संज्ञा पुं. [देश.] **भुजदंड का भूषण, टाँड़।**

बराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बड़ाई] **बड़ाई, प्रशंसा।**

बराक—संज्ञा पुं. [सं. वराक] (१) **शिव।** (२) **युद्ध।**

वि.—(१) **नीच, अधम।** (२) **बापुरा, बेचारा।**

बरात—संज्ञा स्त्री. [सं. बरयात्रा] (१) **बर का संबंधियों और इष्टमित्रों-सहित सजधजकर कन्या के यहाँ जाना, जनेव।** उ.-(क)जनकराज तब बिप्र पठाये बेग बरात बुलाई—सारा. २२६। (ख) सो बरात जोरि तहँ आयो—१० उ.-७। (२) **बहुत से लोगों का सजधज कर साथ जाना।** (३) **शव ले जाने वालों का समूह।**

बराती—संज्ञा पुं. [हिं. बरात+ई (प्रत्य.)] (१) **विवाह के अवसर पर वर-पक्ष की ओर से सम्मिलित होनेवाले।** उ.—(क) तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं। सूरदास है कुटल बराती, गीत सुमंगल गैहौं—१०-१६३। (ख) भए जो मन्मथ सैन्य बराती—पृ. ३४५ (५)। (२) **शव के साथ जानेवाला।**

बराना—क्रि. अ. [सं. वारण] (१) **बेमतलब की बात बचा जाना।** (२) **बहुत सी बातों या विचारों में कुछ को बचा जाना।** (३) **रक्षा करना।**

क्रि. स. [सं. वरण] **चुनना, छाँटना।**

क्रि. स. [हिं. बलाना] **जताना, बताना।**

बराबर—वि. [फ़ा. बर] (१) **समान, तुल्य, एक सा।** (२) **समान पद या मर्यादावाला।** (३) **समतल।**

मुहा०—बराबर करना—**समाप्त कर देना।**

क्रि. वि.—(१) **लगातार।** (२) **एक साथ, साथ।** (३) **सदा।**

बराबरि, बराबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बराबर] (१) **बराबर होने की क्रिया या भाव, समानता।** उ.—हरि, हौं सब पतितनि कौ राउ। को करि सकै बराबरि मेरी, सो धौं मोहिं बताउ—१-१४५। (२) **सादृश्य।** (३) **सामना, मुकाबला।**

वि.—(१) **सम, समान, तुल्य।** उ.—ज्वाला देखि अकास बराबरि, दसहुँ दिसा कहुँ पार न पाइ—५६४। (२) **समान रूप, गुण, मूल्यवाला।** उ.-सूरदास प्रभु पारस परस लोहौ कनक बराबरी—३३३१।

बरामद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **निकासी, आमदनी।** उ.—बढ़ौ तुम्हार बरामद हूँ कौ लिखि कीनौ है साफ—१-१४३।

वि.—(१) **सामने आया हुआ।** (२) **खोज निकाला हुआ।**

बराम्हण, बराम्हन—संज्ञा पुं. [सं. ब्राह्मण] **ब्राह्मण।**

बराय—अव्य. [फ़ा.] **लिए, वास्ते, निमित्त।**

बरायन—संज्ञा पुं. [सं. वर+आयन] **दूल्हे का लोहे का छल्ला जिसमें गुंजा लगे रहते हैं।**

बराव—संज्ञा पुं. [हिं. बराना+आव] **बचाव, निवारण।**

बराह—संज्ञा पुं. [सं. वराह] **सुअर (पशु)।**

बरि—क्रि. अ. [हिं. बलना] **जल-बलकर।** उ.—देती अबहिं जगाइ कै, जरि बरि होत्यौ छार—५८६।

बरिआई—क्रि. वि. [सं. बलात्] **जबरदस्ती, बलात्।** उ.—कृषि आइहैं सब लैहैं बरिआई—१२-३।

संज्ञा स्त्री.—**बल-प्रयोग, जबरदस्ती।** उ.—(क) अपनी ओर देखि धौं लीजै ता पाछे करियै बरिआई—११३४ (स) सूरस्याम जो देखिहैं करिहैं बरिआई—पृ. ३१७ (६१)।

बरिआत—संज्ञा पुं. [हिं. बरात] **बरात।**

बरिया—क्रि. वि. [हिं. बलात्] **जबरदस्ती।** उ.—हरि हौं महा अधम संसारी। आन समुझ मैं बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी—१-१७३।

बरियाईं—क्रि. वि. [हिं. बलात] **जबदस्ती, बल से।**

बरियाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बलात्] (१) **जबरदस्ती।** (२) **धृष्टता, अन्याय।** उ.—देखौ माई बदरनि की बरियाई—९८५।

बरियार—वि. [हिं. बल+आर] **बली, बलवान्।**

बरिल—संज्ञा पुं. [हिं. बड़ा] **'बड़े' जैसा एक पकवान।**

बरिबंड—वि. [सं. बलवंत] (१) **बलवान, बली प्राणी।** उ.—आगर इक लोह जटित लीन्ही बरिबंड। दुहूँ करनि असुर हयौ, भयौ मांस पिंड—९-९६ (२) **प्रचंड।**

बरिष, बरिस—संज्ञा पुं. [सं. वर्ष] **साल, वर्ष।**

बरिषा, बरिसा—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्षा] **वर्षा।**

बरिष्ठ—वि. [सं. वरिष्ठ] **बड़ा, श्रेष्ठ।**

बरी—संज्ञा स्त्री. [सं. वटी, बड़ी] (१) **टिकिया, बरी।** (२) **उर्द या मूंग की पीठी की सुखायी हुई छोटी पकौड़ियाँ।** उ.—(क) पापर बरी अचार परम सुचि। (२) कूटबरी काचरी मिठौरी—३९६। (३) **वह मेवा, मिठाई, आदि जो वर के यहाँ से कन्या के यहाँ जाय।**

क्रि. स. स्त्री. [हिं. बरना] **विवाही, ब्याह किया।** उ.—(क) बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ बरी—४-५। (ख) जद्यपि रानी बरी अनेक—९-५।

वि. [हिं. बली] **बलवान्, बली।**

वि. [फ़ा.] **जिसे मुक्त किया गया हो, मुक्त।**

बरीस—संज्ञा पुं. [हिं. बरस] **वर्ष, साल, बरस।** उ.—नंदराइ कौ लाड़िलौ, जीवै कोटि बरीस—१०-२७।

बरु—अव्य. [सं. वर=श्रेष्ठ, भला] (१) **भले ही, चाहे, कुछ हर्ज नहीं, ऐसा भले ही हो जाय।** उ.—(क) बरु मेरी परतिज्ञा जाय—१-२७३। (ख) सूरदास बरु उपहास सहौंई, सुर मेरे नंद-सुवन मिलैं तो पै कहा चाहियै। (ग) बरु मरि जाइ चरै नहिं तिनका सिंह को इहै सुभाइ रे—३०७०। (२) **प्रत्युत, बल्कि।** उ.—तब कत कंस रोकि राख्यौ पिय, बरु वाही दिन काहैं न मारी—१०-११। (३) **अब तो।** बरु ऐ बदरौ बरषन आए—३९२६।

बरुआ—संज्ञा पुं. [हिं. बटु] (१) **ब्रह्मचारी।** (२) **जनेऊ।**

बरुक—अव्य. [हिं. बरु] (१) **चाहे।** (२) **प्रत्युत।**

बरुन—संज्ञा पुं. [सं. वरुण] **वरुण देवता।**

बरुनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वरण=ढाँकना] **पलक के बाल।**

बरुवा—संज्ञा पुं. [हिं. बरुआ] (१) **ब्रह्मचारी।** (२) **जनेऊ।**

बरुथ—संज्ञा पुं. [सं. वरूथ] **सैन्य, सेना।** उ.—इतनी बिपति भरत सुनि पावैं आवैं साजि बरूथ—९-१४७।

बरुथी—संज्ञा स्त्री. [सं. वरूथ] **एक नदी।**

बरेंड़ा—संज्ञा पुं. [सं. वरंडक=गोल लकड़ी] (१) **खपरैल या छाजन की आधार गोल लकड़ी।** (२) **खपरैल या छाजन का बिचला ऊँचा भाग।**

बरे—क्रि. वि. [सं. बल] (१) **बलपूर्वक, जबरदस्ती से।** (२) **ऊँचे स्वर में।**

अव्य. [हिं. बद] (१) **बदले में।** (२) **निमित्त।**

क्रि. अ. [हिं. बलना] **जल-बल गये।** उ.—कै वह स्याम सिखाय प्रबोधे कै वह बीच बरे—२९८२।

बरेखी, बरेषी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँह+रखना] **बाँह का एक गहना।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बर+देखना] **विवाह के लिए वर या कन्या को देखना, ठहरौनी।**

बरैं—क्रि. अ. बहु. [हिं. बलना] **जल-बल जायँ।**

मुहा०—जरैं-बरैं वै आँखि—**आँखें नष्ट हो जायँ या फूट जायँ।** उ.—डीठि लगावति कान्ह को जरैं-बरैं वै आँखि—१०९९।

बरै—क्रि. अ. [हिं. बलना] **बल जाय, नष्ट हो जाय।** उ.—बरै जेंवरी जिहिं तुम बाँधे, परैं हाथ भहराइ—३८९।

क्रि. स. [हिं. बरना] **विवाह करे।** उ.—अंतःपुर भीतर तुम जाहु। बरै तुम्हैं, तिहिं करौं बिवाहु—९-८।

बरों—क्रि. स. [हिं. बरना] **वरण करूँ।**

बरो—क्रि. स. [हिं. बरना] **वरण करो।**

बरोक—संज्ञा पुं. [हिं. बर+रोक] **वह धन जो कन्या पक्ष वाले विवाह-संबंध को पक्का करने के लिए वर को उसी कन्या के लिए रोक रखने को देते हैं; बरच्छा, फलदान।**

संज्ञा पुं. [सं. वलौक] **सेना, दल।**

बरौं—क्रि. स. [हिं. बरना] **वरण करूँ, वर या वधू के रूप में स्वीकार करूँ।** उ.—(क) देखि सुर असुर सब दौरि लागे गहन, कह्यौ मैं बर बरौं आपु-भायौ—८-८। (ख) कन्या एक नृपति की बरौं—९-८।

बरौ—क्रि. स. [हिं. बरना] वरण करो, वर या वधू-रूप में स्वीकार करो। उ.—या कन्या कौं प्रभु तुम बरौ—९-३।

वि. [हिं. बड़ा] **बड़ा, श्रेष्ठ।**

बरोठा—संज्ञा पुं. [हिं. बार+कोठा] (१) द्वार। (२) बैठक।

मुहा०—बरोठा-चार—द्वार-पूजा।

बरोरु—वि. स्त्री. [सं बरोरु] सुडौल जाँघवाली।

बरोह—संज्ञा स्त्री. [हिं. वट+रोह] बरगद की जटा।

बरौनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वरण] पलक के बाल।

बरौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बरी] बड़ी या बरी (पकवान)।

बर्ज—वि. [सं. वर्य] वर, श्रेष्ठ।

बर्जना—क्रि. स. [हिं. बरजना] मना करना, रोकना।

बर्णना—क्रि. स. [हिं. वर्णन] वर्णन करना।

बर्त—संज्ञा पुं. [सं. व्रत] व्रत, उपवास।

बर्तना—क्रि. स. [सं. वर्तन] (१) व्यवहार करना। (२) काम, उपयोग या व्यवहार में लाना।

बर्ताव—संज्ञा पुं. [हिं. बरताव] (१) काम। (२) व्यवहार।

बर्द—संज्ञा पुं. [सं. बलद] बैल।

बर्नना—क्रि. स. [हिं. वर्णन] वर्णन करना।

बर्फ—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. बर्फ] (१) पाला, हिम, तुषार। (२) जमाया हुआ दूध आदि। (३) ओला।

बर्बर—वि. [सं.] असभ्य, उद्दंड।

संज्ञा पुं.—(१) घुँघराले बाल। (२) असभ्य मनुष्य।

बर्यौ—क्रि. स. [हिं. बरना] वर या वधू के रूप में स्वीकार किया, बरा, ब्याहा। उ.—(क) पारबती सिव-हित तप करयौ। तब सिव आइ तहाँ तिहिं बरयौ—४-७। (ख) हरि करि कृपा ताहि तब बरयौ—१० उ.-७।

बर्राना—क्रि. अ. [अनु.] (१) व्यर्थ बकना। (२) स्वप्न या अति ज्वर की अवस्था में बकना।

बर्रें—संज्ञा पुं. [सं. बरट] भिड़, ततैया (कीड़ा)।

बलंद—वि॰ [फ़ा.] ऊँचा।

बल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शक्ति, सामर्थ्य। उ.—अति बल करि करि काली हारयौ—५७४। (२) भार उठाने की शक्ति। (३) सहारा, आश्रय। उ.—मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात—१-६०। (४) आसरा, भरोसा। (५) सेना, दल। (६) बलराम। उ.—जबहिं मोहिं देखत लरिकनि सँग तबहिं खिझत बलभैया—१०-२१७। (७) बगल, पहलू, पार्श्व।

संज्ञा पुं. [सं. वलय] (१) ऐंठन, मरोड़। (२) फेरा, लपेट। (३) लहरदार घुमाव। (४) टेढ़ापन। (५) सिकुड़न। (६) लचक। (७) कमी, कसर।

बलकत—क्रि. अ. [हिं. बलकना] (१) उमंग, आवेश या जोश में आता है। उ.—पिये प्रेम बर बारुनी बलकति बल न सँभार। पग डगमग जित तित धरति मुकुलित अलक लिलार—११८२।

बलकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) उबलना, उफनना। (२) उमंग, आवेश या जोश में आना।

बलकर—वि. [सं.] बलकारक।

बलकल—संज्ञा पुं. [सं. वल्कल] वृक्ष की छाल।

बलकाना—क्रि. स. [हिं. बलकना] (१) उबालना, खौलाना। (२) उभारना, उत्तेजित करना।

बलकि—क्रि. अ. [हिं. बलकना] आवेश में आकर, जोश में आकर। उ.—सखा कहत हैं स्याम खिसाने। आपुहिं आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने—१०-२१४।

बलद—संज्ञा पुं. [सं.] बैल।

वि.—बल देनेवाला, बलकारी।

बलदाउ, बलदाऊ—संज्ञा पुं. [सं. बल+हिं. दाऊ=दादा=बड़ा भैया] बलदेव, बलराम, जो रोहिणी के पुत्र थे। उ.—कछु बलदाऊ कौं दीजै। अरु दूध अधावट पीजै—१-१८३।

बलदेव—संज्ञा पुं. [सं.] बलराम।

बलना—क्रि. अ. [सं० वहॅण] जलना, दहकना।

बलनिधि—वि. [सं.] बली, बलवान। उ.—इंद्रजीत बलनिधि जब आयौ, ब्रह्मअस्त्र उन डारे-सारा. २८४।

बलबलाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) ऊँट का बोलना। (२) व्यर्थ बकना। (३) निरर्थक शब्द बोलना।

बलबलाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. बलबलाना] (१) ऊँट की बोली। (२) बकवाद। (३) उमंग। (४) घमंड।

बलबीर, बलबीरा—संज्ञा पुं. [सं. बल=बलराम+हिं. बीर=भाई] बलराम के भाई, श्रीकृष्ण। उ.—है करयौ सिरावन सीरा। कछु हठ न करौ बलबीरा—

१०-१८३ । (ख) छहौ रागिनी गाय रिझावत अति नागर बलबीर ।

वि.—**बली, बलवान** । उ.—जनि पूछौ तुम कुसल नाथ की, सुनौ भरत बलबीर—६-१५१ ।

बलभद्र—संज्ञा. पुं. [सं.] **बलदेव** ।

बलभी—संज्ञा स्त्री. [सं वलभि] **मकान की ऊपरी कोठरी** ।

बलम—संज्ञा पुं. [सं. वल्लभ] (१) **पति** । (२) **प्रेमी** ।

बलय, बलया—संज्ञा पुं. [सं. वलय] **चूड़ी** । उ.—(क) कनक-वलय, मुद्रिका मोदप्रद, सदा सुमग संतनि काजैं —१-६६ । (ख) छूटी लट भुज फूटी बलया टूटी लर फटी कंचुकी झीनी—३४४६ ।

बलराम—संज्ञा पुं. [सं.] **रोहिणी-पुत्र बलराम** ।

बलवंड—वि. [सं. बल+वंतः] **बली** । उ.—आगर इक लोह जटित लीनी बरिवंड । दुहूँ करनि असुर हयो भयो मांस पिंड—६-६६ ।

बलवंत—वि. [सं. बलवंतः] (१) **प्रधान** । उ.—भरम ही बलवंत सबमैं, ईसहू कैं भाइ—१-७० । (२) **बली** । उ.—जो ऐसे बलवंत हौ मथुरा काहे न जात—११३६ ।

बलवा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) **दंगा** । (२) **विद्रोह** ।

बलवाई—वि. [हिं. बलवा] (१) **उपद्रवी** । (२) **विद्रोही** ।

बलवान—वि. [सं. बलवान्] (१) **बली, सशक्त** । (२) **दृढ़** ।

बलवीर—संज्ञा पुं. [हिं. बलबीर] **श्रीकृष्ण** ।

बलशाली, बलसार—वि. [हिं. बलशाली] **बली** । उ.—कुंभकरन पुनि इंद्रजित यह महाबली बलसार—सारा. २६२ ।

बलशील, बलसील—वि. [सं. बलशील] **बली, सशक्त** ।

बला—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) **विपत्ति** । (२) **दुख** । (३) **भूत-प्रेत** । (४) **रोग, व्याधि** ।

मुहा०—बला का—**गजब का** । बला से—**कुछ चिंता नहीं** ।

बलाइ—संज्ञा पुं. [अ. बला] (१) **आपत्ति, विपत्ति, बला** । उ.—बालगोपाल लगौ इन नैननि रोग-बलाइ तुम्हारी—१०-६१ । (२) **दुख, कष्ट** ।

मुहा०—लेत बलाइ—**दूसरे के दुख को अपने ऊपर लेती है, मंगल-कामना करते हुए प्यार करती है** । उ.—निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अंचर लेत बलाइ । चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ—६-८३ ।

(३) **दुखदायी वस्तु या प्राणी** । उ.—स्याम सौं वै कहन लागे, आगैं एक बलाइ—४२७ ।

बलाक—संज्ञा पुं. [सं.] **बक, बगुला** । उ.—(क) मुक्ता-दाम बिलोकि, बिलखि करि, अँवलि बलाक बनावत ६६५ । (ख) मनहु बलाक पाँति नव घन पर यह उपमा कछु भाजै री—१३४३ ।

बलाका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बगुली** । (२) **बगुलों की पंक्ति** । (३) **कामुकी नारी** ।

बलात्—क्रि. वि. [सं.] (१) **बलपूर्वक** । (२) **हठपूर्वक** ।

बलात्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बलपूर्वक काम करना** । (२)**अत्याचार** । (३) **स्त्री से बलपूर्वक संभोग** ।

बलाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] **सेनापति** ।

बलाय—संज्ञा पुं. [अ. बला] (१) **विपत्ति** । उ.—बाल गोपाल लगौ इन नैननि रोग-बलाय (बलाइ) तुम्हारी —१०-६१ । (२) **दुख, कष्ट** । (३) **भूत-प्रेत की बाधा** (४) **रोग, व्याधि** । (५) **शत्रु, दुखदायी प्राणी** ।

मुहा०—बलाय करे—**स्वयं नहीं कर सकता** । बलाय लेना—**किसी का रोग-दुख अपने ऊपर लेने को प्रस्तुत होकर उसकी मंगल-कामना करते हुए प्यार करना** । लेति बलाय—**मंगलकामना करके प्यार करती है** । उ.—(क) निकट बुलाय बिठाय निरखि मुख आँचर लेति बलाय । (ख) लेति बलाय रोहिनी नारि के सुंदर रूप निहारी—सारा. ४५७ ।

बलाहक—संज्ञा पुं. [सं.] **मेघ, बादल** । उ.—कहा कहौं वर्षा रवि-तमचुर-कमल-बलाहक कारे—२८६२ ।

बलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **राजकर** । (२) **उपहार, भेंट** । (३) **पूजा की सामग्री** । (४) **देवता को उत्सर्ग किया गया खाद्य पदार्थ** । (५) **भक्ष्य, अन्न** । उ.—हम सेवक वै त्रिभुवनपति, कत स्वान सिंह-बलि खाइ—६-४७ । (६) **चढ़ावा, नैवेद्य** । उ.—(क) सक्र कौ दान-बलि-मान ग्वारनि लियौ, गह्यौ गिरि पानि, जस जगत छायौ—१-५ । (ख) पर्वत सहित धोइ ब्रज डारौं देउँ समुद्र बहाई । मेरी बलि औरहिं लै अर्पत इनकी करौं सजाई । (७) **वह पशु जो किसी देवी-देवता पर भेंट**

चढ़ाने के लिए मारा जाय।

मुहा०—बलि चढ़ना—मारा जाना। बलि चढ़ाना—(१) मारना। (२) देवता के लिए मारना। बलि-बलि जाना—निछावर होना। बलि जाइ—निछावर होता है। उ.—यह सुख निरखि मुदित सुर-नर-मुनि, सूरदास बलि जाइ—९-२६।

(८) प्रहलाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र जिसे छलकर वामन भगवान ने पाताल भेजा था। उ.—जुग जुग बिरद इहै चलि आयो भए बलि के द्वारे प्रतिहार—२६२०।

संज्ञा स्त्री. [सं. बला=छोटी बहन] सखी।

बलिकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] बलिदान।

बलित—वि. [हिं. बलि] बलि चढ़ाया हुआ।

वि. [सं. वलित] घूमा या मुड़ा हुआ।

बलिदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवी-देवता को नैवेद्य चढ़ाना। (२) पशु को देवी-देवता के नाम पर मारना।

बलिनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] बाणासुर।

बलिपशु—संज्ञा पुं. [हिं. बलि+पशु] वह पशु जो देवी-देवता पर भेंट चढ़ाने के लिए मारा जाय।

बलिष्ठ—वि. [सं.] बहुत बली या सशक्त।

बलिहारना—क्रि. स. [हिं. बलि + हारना] निछावर करना।

बलिहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बलि + हारना] निछावर, अपने को उत्सर्ग कर देना। उ.—बेर मेरी क्यौं ढील दीन्ही, सूर बलिहारी—१-१७६।

मुहा०—बलिहारी जाना—निछावर होना, बलैया लेना। बलिहारी लेना—प्रेम दिखाना। लेन लगीं बलिहारी—बलैया लेने लगीं। उ.—दरसन करि जसुमति-सुत को सब लेन लगीं बलिहारी। बलिहारी है—(१) इतना सुंदर है कि मैं अपने को निछावर करने को प्रस्तुत हूँ (प्रशंसा)। (२) इतना बुरा या बेढंगा है कि धन्य है (व्यंग्य)।

बलिहि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. बलि+हिं. हि] भोजन से निकाला हुआ ग्रास। उ.—पिक चातक बन बसन न पावहिं बाइस बलिहिं न खात—३४६०।

बली—वि. [सं. बलिन्] बलवान, पराक्रमी। उ.—काल बली तैं सब जग काँप्यौ—१-५२।

बलीमुख—संज्ञा पुं. [सं. वलिमुख] बंदर।

बलुआ—वि. [हिं. बालू] रेतीला।

बलैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बलाय] बला, बलाय। उ.—(क) फोरतौ बासन सब, जानति बलैया—३७२। (ख) यह सुनिकै हरि हँसे, कालिह मेरी जाय बलैया—४३७।

मुहा०—बलैया लेना—मंगल-कामना करते हुए प्यार करना। लेति बलैया—मंगल-कामना करते हुए प्यार करती है। उ.—(क) सिखवति चलन जसोदा मैया। ....। कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति उर आनँद भरि लेते बलैया—१०-११५। (ख) सूर निरखि जननी हँसी, तब लेति बलैया—६६६।

बल्कल—संज्ञा पुं. [सं. वल्कल] वृक्ष की छाल के वस्त्र जिन्हें तपस्वी पहनते थे। उ.—पात्र स्थान हाथ हरि दीन्हे। बसन-काज बल्कल प्रभु कीन्हे—२-२०।

बल्कि—अव्य. [फ़ा.] (१) प्रत्युत। (२) अच्छा हो यदि।

बल्लभ—संज्ञा पुं. [सं. वल्लभ] (१) पति। (२) प्रेमी।

बल्लम—संज्ञा पुं. [हिं. बल्ला] (१) सोंटा। (२) भाला।

बल्लव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चरवाहा। (२) रसोइया।

बल्ला—संज्ञा पुं. [सं. बल=लट्ठा] (१) डंडा। (२) डाँड़ा।

बल्लिन, बल्लिनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. वल्ली] लताएँ, बेलें। उ.—पुहुप गए बहुरौ बल्लिन के नेक निकट नहिं जात—३३५४।

बल्ली—संज्ञा. स्त्री [हिं. बल्ला] (१) खंभा। (२) डाँड़।

संज्ञा स्त्री. [सं. वल्ली] लता, बेल।

बवँडत—क्रि. अ. [हिं. बवँडना] मारा-मारा फिरता है। उ.—इत उत है तुम बवँडत डोलत करत आपने जी की।

बवँडना—क्रि. अ. [सं. व्यावर्त्तन, प्रा. व्यावट्टन] घूमना।

बवंडर—संज्ञा पुं. [सं. वायु+मंडल] (१) बगूला, चक्रवात। (२) आँधी, तूफान।

बवघूरा—संज्ञा पुं. [हिं. वायु + घूर्णन] बगूला, बवंडर।

बवना—क्रि. स. [सं. वपन] (१) बोना। (२) बिखराना।

क्रि. अ.—छिटकना, बिखरना।

संज्ञा पुं. [सं. वामन] वामन अवतार।

बवरना—क्रि. अ. [हिं. बौरना] आम में बौर लगना।

बसंत—संज्ञा पुं. [सं. वसंत] **वसंत ऋतु।**

क्रि. अ. [हिं. बसना] **बसते हो।** उ.—ब्रज-बनिता के नयन प्रान बिच तुमही स्याम बसंत।

बसंती—वि. [हिं. बसंत] (१) **बसंत ऋतु संबंधी।** (२) **सरसों के रंग का, खुलते पीले रंग का।**

संज्ञा पुं. (१) **हलका पीला रंग।** (२) **पीलाकपड़ा।**

बसंदर—संज्ञा पुं. [सं. वैश्वानर] **आग।**

बस—संज्ञा पुं. [सं. वश] (१) **अधिकार, काबू।** (२) **वशीभूत, विवश, अधीन।** उ.—(क) जिहिं जिहिं जोनि फिर्यौ संकट-बस तिहिं-तिहिं यहै कमायौ—१-१११। (ख) सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ—१-१२१। (३) **किसी बात को अपने अनुकूल घटित करने की सामर्थ्य, शक्ति, काबू।** उ.—गर्भ परिच्छित रच्छा कीनी, हुतौ नहीं बस माँ कौ—१-११३।

वि. [फा.] **पर्याप्त, बहुत काफी।**

मुहा०—बस या बस करो—**इतना पर्याप्त है।**

अव्य.—(१) **पर्याप्त।** (२) **केवल, इतना मात्र।**

बसत—क्रि. अ. [हिं. बसना] (१) **बसा है, स्थिति है।** उ.—कालिंदी कैं कूल बसत इक मधुपुरि नगर रसाला—१०-४। (२) **बसते हैं, रहते हैं।** उ.—जाति-पाँति हमतैं बड़ नाहीं,नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ—१०-२४५।

मुहा०—प्रान बसत हैं—**इन्हीं को देखकर जीवित हूँ।** उ.—इनहीं में मेरे प्रान बसत हैं, तेरे भाएँ नैकु न माई—७१०।

बसति—क्रि. स. [हिं. बसना] **बसती है, वास करती है।** उ.—(क) परम कुबुद्धि, अजान ज्ञान तैं, हिय जु बसति जड़ताई—१-१८७। (ख) नाहिंन बसति लाल कछु तुम्हरैं—७३५।

बसतै—क्रि. अ. [हिं. बसना] **बसता, निवास करता।**

प्र०—बसतैं रहियै—**निवास कर सकूँ, बसूँ, बसा रहूँ।** उ.—सोइ करौ जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउँ—१-१८५।

बसन—संज्ञा पुं. [सं. वसन] **वस्त्र।** उ.—कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत बसन फहरात—२५३६।

बसना—क्रि. अ. [हिं. बसन] (१) **रहना, वास करना।** (२) **आबाद होना।**

घर बसना—**विवाह करके गृहस्थ बनना।** घर में बसना—**घर बनाकर सुख से रहना।**

(३) **टिकना, ठहरना, डेरा डालना।**

मुहा०—मन में बसना—**हर समय ध्यान रहना।**

क्रि. अ. [हिं. बास] **सुगंधित हो जाना।**

संज्ञा पुं. [सं. वसन] (१) **बेठन।** (२) **थैली।**

बसनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बसना] **बास, निवास।**

बसबास—संज्ञा पुं. [हिं. बसना + बास] (१) **निवास।** उ.—(क) मथुरा में बसबास तुम्हारौ। (ख) जौ तुम पुहुप पराग छाँड़ि कै करौ ग्राम बसबास। (२) **रहने का ढंग, स्थिति।** (३) **रहने का डौल या ठिकाना।** उ.—अब बसबास नहीं लखौं यहि तुव व्रज नगरी।

बसर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **गुजर, निर्वाह।**

बसह—संज्ञा पुं. [सं. वृषभ, प्रा. बसह] **बैल।** उ.—अमरा सिव रवि ससि चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत।

बसा—संज्ञा स्त्री. [देश.] **बर्र, भिड़, ततैया।**

बसाइ—क्रि. अ. [सं. वश] **वश, जोर या अधिकार चलता है।** उ.—(क) तौ हम कछु न बसाइ पार्थ जौ श्रीपति तोहिं जितावै—१-२७५। (ख) जहाँ तहाँ सोइ करत सहाइ। तासौं तेरौ कछु न बसाइ—७-२। (ग) यासौं हमरौ कछु न बसाइ—७-७।

बसाई—क्रि. स. [हिं. बसाना] **बसने या रहने को प्रवृत्त किया।** उ.—पृथी सम करि प्रजा सब बसाई—४-११।

क्रि. अ. [सं. वश] **वश, जोर या अधिकार चलता है।** उ.—चाहत बास कियो बृन्दाबन बिधि सौं कछु न बसाई—१० उ०-१०६।

बसाए—क्रि. स. [हिं. बसाना] **बस जाने दिया, रहने दिया, रहने को ठिकाना दिया।** उ.—नूपुर कलरव मनु हंसनि-सुत रचे नीड़, दै बाँह बसाए—१०-१०४।

बसात—क्रि. अ. [हिं. बस] **वश या जोर चलता है।** उ.—नाहिंन बसात लाल कछु तुमसौं सबै ग्वाल इकठैयाँ।

बसाना—क्रि. स. [हिं. बसना] (१) **रहने को स्थान देना।**

(२) **आबाद करना।**

मुहा०—घर बसाना—**विवाह करके गृहस्थ बनना।**

(३) **टिकने देना, ठहराना, स्थित करना।**

मुहा०—मन में बसाना—(१) **हर समय ध्यान बनाये रखना।** (२) **प्रेम करना।**

क्रि. अ.—**रहना, बसना, ठहरना।**

क्रि. स. [सं. वेशन] (१) **बैठाना।** (२) **रखना।**

क्रि. अ. [हिं. बस] **वश या जोर चलना।**

क्रि. अ. [हिं. बास] **महकना, सुगंध देना।**

बसायो, बसायौ—क्रि. स. [हिं. बसना] (१) **बसाया, टिकाया।**

मुहा—हृदय बसायौ—**चित्त में इस प्रकार जमाया कि सदैव ध्यान बना रहे, हृदय में (सदा के लिए) अंकित किया, हृदयंगम किया।** उ.—व्यासदेव जब सुकहिं पढ़ायौ। सुनि कै सुक सो हृदय बसायौ—१-२२७।

(२) **स्थित किया।** उ.—हरि जी कियौ बिचार, सिंधु-तट नगर बसायौ—१० उ०—३।

क्रि. अ. [हिं. बस] **वश, जोर या अधिकार चल सका।** उ.—उनसौं हमरौ कछु न बसायौ। तातैं तुम कौं आनि सुनायौ—६-४।

बसावै—क्रि. अ. [हिं. बस] **बस, जोर या अधिकार चलता (है)।** उ.—कह्यौ, इंद्रानी मोवै आवै। नृप सौं ताकौ कहा बसावै—६-७।

बसाहीं—क्रि. अ. [हिं. बसना] **बसते हैं।** उ.—सूरदास प्रभु टरत न टारे नैननि सदा बसाहीं—१४३६।

बसिऐ—क्रि. अ. [हिं. बसना] **रहिए, बास कीजिए।** उ.—गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ बृन्दावन में जाई—४०२।

बसियाना—क्रि. अ. [हिं. बासी] **बासी हो जाना।**

बसिबे, बसिबो, बसिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. बसना] **रहना, बास करना।** उ.—(क) नगर आहि नागर बिनु सूनो कौन काज बसिबे सौं—३३६५। (ख) वहाँ के बासी लोगन को क्यों ब्रज को बसिबो भावै री—१० उ०—८४। (ग) या ब्रज कौ बसिबौ हम छाँड़यौ—१०-३३७।

बसिये—क्रि. अ. [हिं. बसना] **बसते या रहते हैं, वास है, रहना है।** उ.—बसिये एकहिं गाँउ कानि राखत हैं ताते—११२५।

बसियै—क्रि. अ. [हिं. बसना] **बास कीजिए, रहिए।** उ.—सूर कहि कर तैं दूर बसियै सदा, जमुन कौ नाम लीजै जु छानैं—१-२२३।

बसिष्ठ—संज्ञा पुं. [सं. वसिष्ठ] **वसिष्ठ मुनि जो राजा दशरथ के कुल-गुरु थे।**

संज्ञा पुं. [हिं. बसीठ] **संदेशवाहक, दूत।** उ.—तुम सारिखे बसिष्ठ पठाए कहिए कहा बुद्धि उन केरी—३०१२।

बसी—क्रि. अ. [हिं. बसना] **(प्रजा) सुख से रहने लगी।** उ.—सुबस बसी मथुरा ता दिन ते उग्रसेन बैठायौ—सारा. ५३३।

बसीकर—वि. [सं. वशीकर] **वश में करनेवाला।**

बसीकरन—संज्ञा पुं. [सं. वशीकरण] **तंत्र के चार प्रकारों (मारण, मोहन, वशीकरण और उच्चाटन) में एक, मणि, मंत्र या औषध द्वारा किसी को वश में करने का प्रयोग।** उ.—मोहन, मुर्छन, बसीकरन पढ़ि अग मिति देह बढ़ाऊँ—१०-४६।

बसीठ—संज्ञा पुं. [सं अवसृष्ट, प्रा. अवसिट्ठ = भेजा हुआ] **दूत, संदेशवाहक।** उ.—(क) अति सठ ढीठ बसीठ स्याम को हमैं सुनावत गीत। (ख) मैं कुल-कानि किये राखति हौं, ये हठि होत बसीठ—पृ. ३३४ (३६)।

बसीठि, बसीठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बसीठ] **दूत-कर्म, संदेश देने का कार्य।** उ.—(क) नैननि निरखि बसीठी कीन्हीं मनु मिलियो पद पानी—११६७। (ख) हारि जोहारि जो करत बसीठी प्रथमहिं प्रथम चिन्हारि—१३५२।

बसीना, बसीनो—संज्ञा पुं. [हिं. बसना] **रहना, बसना।** उ.—इनही ते ब्रजवास बसीनो—१०८६।

बसु—संज्ञा पुं. [सं. वसु] (१) **आठ वैदिक देवताओं का एक गण।** (२) **आठ की संख्या।**

बसुदेव—संज्ञा पुं. [सं. वसुदेव] **श्रीकृष्ण के पिता।**

बसुधा, बसुधाऊ—संज्ञा स्त्री. [सं. वसुधा] **वसुधा, पृथ्वी।** उ.—बामन रूप धरयौ बलि छलि कै, तीनि परग बसुधाऊ—१०-२२१।

बसुला, बसूला—संज्ञा पुं. [सं. बासि+ला] लकड़ी छीलने, तोड़ने या गढ़ने का एक औजार।

बसूली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बसूला] छोटा बसूला।

बसेंड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बाँस+ड़ा] पतला बाँस।

बसे—क्रि. अ. [हिं. बसना] वास किया, रहे। उ.—इहिं बिधि बन बसे रघुराइ। डासि कै तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ—९-६०।

बसेरा—वि. [हिं बसना] बसने या रहनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) रात को यात्री के टिकने का स्थान। (२) रात को पक्षियों के रहने का स्थान।

मुहा०—बसेरा करना—(१) रहना, निवास करना। (२) घर बनाकर बसना। बसेरा लेना—रहना, वास करना। बसेरा देना—(१) ठहराना। (२) आश्रय देना।

(३) बसने या रहने का भाव, आबाद होना।

बसेरी—वि. [हिं. बसेरा] रहनेवाला, निवासी।

बसेरो, बसेरौ—संज्ञा पुं. [हिं. बसेरा] (१) वह स्थान जहाँ टिककर रात बितायी जाती है, बासा।

मुहा०—बसेरौ करै—डेरा डाले, निवास करे, ठहरे। उ.—बहुतै करौ उद्यम परिहरै। निर्भय ठौर बसेरौ करै—३-१३। कीन्हौ बसेरौ—घर बनाकर बस गये। उ.—कहा भयौ जो देश द्वारका कीन्हौ दूर बसेरौ। लियो बसेरो—वास किया, रहे। उ.—कब हरि बालक भए गर्भ कब लियो बसेरौ।

बसैं—क्रि. अ. [हिं. बसना] बसते हैं।

मुहा०—मन बसैं—ध्यान में बने रहते हैं। उ.—सूरदास मन बसैं तोतरे वचन बर—१०-१५१।

बसैंगे—क्रि. अ. [हिं. बसना] वास करेंगे, रहेंगे। उ.—आजु बसैंगे रैनि तुम्हारे प्रान पियारी हौ तुम बाम—१९२९।

बसैया—वि. [हिं. बसना] बसने या रहनेवाला। उ.—कबहुँ कहत हरि माखन खायो, कौन बसैया कहत गाँव री।

बसैहैं—क्रि. स. [हिं. बसाना] बसायेंगे, जन-पूर्ण करेंगे। उ.—नंदहुँ तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी—१०-३१९।

बसैहै—क्रि. स. [हिं० बसाना] बसायेगी। उ.—जाति। पाँति के लोग न देखति, और बसैहैं नैरी—१०-३२४।

बसोवास—संज्ञा पुं. [हिं. बास+आवास] निवास स्थान।

बसौं—क्रि. अ [हिं. बसना] वास करूं, रहूं। उ.—अपने नाम की बैरख बाँधौं, सुबस बसौं इहिं गाउँ—१-१८५।

बसौंधी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बास+औंधी] सुगन्धित रबड़ी।

बसौ—क्रि. अ. [हिं. बसना] रहो, निवास करो। उ.—पुहुप वेगि पठएँ बनै, जौ रे बसौ ब्रजपालि—५८९।

बस्तर—संज्ञा पुं. [सं. वस्त्र] वस्त्र, कपड़ा। उ.—तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए—१-५२।

बस्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. वसति] (१) आबादी। (२) जनपद।

बस्तु—संज्ञा स्त्री [सं. वस्तु] चीज, वस्तु।

बस्त्र—संज्ञा पुं. [सं. वस्त्र] कपड़ा।

बस्य—वि. [सं. वश्य] वश में, अधीन। उ.—(क) रीछ कीस बस्य करौं, रामहिं गहि ल्याऊँ—६-११८। (ख) जो जिहिं भाव भजै, प्रभु तैसे। प्रेम बस्य दुष्टनि कौं नसे—३९१। (ग) आइ पहूँच्यौ काल बस्य, पग इतहिं चलायौ—५८९।

बस्यौ—क्रि. अ. [हिं. बसना] बसा, रहा, निवास बनाया। उ.—जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ। हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ १-१५५। (२) सुख लूटा, आनंद मनाया, मौज उड़ायी। उ०—ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ, (रे) भोर भए भई भीति—१-३२५।

बहँगा—संज्ञा पुं. [सं. वहन+अंग] बड़ी बहँगी।

बहँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहँगा] बोझा ढोने की काँवर।

बहक—संज्ञा स्त्री [हिं. बहकना] (१) मद में चूर होकर की गयी बात। (२) आवेशपूर्ण बात।

बहकना—क्रि. अ. [हिं. बहना] (१) भटकना, मार्ग भ्रष्ट होना। (२) चूक जाना। (३) बात या भुलावे में आना। (४) बहल जाना। (५) मद से चूर हो आपे में न रहना।

बहकाइ, बहकाई—क्रि. स. [हिं. बहकाना] **भुलावे में डालकर।**

प्र०—बहकाइ दई (दियौ)—**भुलावे में डाल दिया है।** उ.—(क) कौन बहकाइ दई है तुमकौं, ताहि पकरि लै जाहि—१५३। (ख) नई रीति इन अबै चलाई। काहू इन्है दियौ बहकाई।

बहकाना—क्रि. स. [हिं. बहकना] **(१) गलत रास्ते पर भटकाना (२) लक्ष्यभ्रष्ट करना। (३) भुलावा देना, फुसलाना। (४) (बच्चे को) बहलाना।**

बहत—क्रि. अ. [हिं. बहना] (१) **धारण करते हो, रखते हो, वहन करते हो।** उ.—सूर पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहत बिरद कत भारौ—१-१३१। (२) **(वायु) संचालित होती है, (वायु) चलती है।** उ.—बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर, फनपति सीस न डुलावै—१-१६३। (२) **बहता है, प्रवाहित होता है।** उ.—चहुँ दिसि कान्ह कान्ह करि टेरत अँसुवन बहत पनारे—३४४६।

बहति—क्रि. अ. [हिं. बहना] **सत्पथ से भटकती है।** उ.—सूर प्रभु कौ ध्यान चित धरि अतिहि काहे बहति।

बहती—वि. [हिं. बहना] **प्रवाहित होती हुई।**

मुहा०—बहती गंगा में हाथ धोना (पाव पखारना)- **ऐसी चीज या अवसर से लाभ उठाना जिससे सब लाभ उठा रहे हों।**

बहतोल—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहता] **नाली।**

बहन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहिन] **भगिनी, सहोदरा।**

बहना—क्रि. अ. [सं. वहन] **(१) प्रवाहित होना। (२) धारा या प्रवाह में पड़कर उसी के साथ जाने लगना। (३) बूँद या धार के रूप में लगातार निकलना। (४) हवा का चलना। (५) लक्ष्य या स्थान से हट जाना। (६) मारे-मारे फिरना। (७) इधर उधर चला जाना। (८) चरित्र-भ्रष्ट होना। (९) अधम या बुरा होना। (१०) बहुत सस्ता होना। (११) (धन) डूब जाना। (१२) बोझा ढोना। (१३) (गाड़ी आदि) खींचकर ले चलना। (१४) धारण करना। (१५) (हाथ या वार) उठना या चलना।**

बहनापा—संज्ञा पुं. [हिं. बहिन+आपा] **बहिन का संबंध।**

बहनि, बहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. बह्नि] **आग, अग्नि।** उ.—(क) वै कहियत उडुराज अमृत मैं तजि स्वभाव मोंहि बहनि बहत—२८५८। (ख) तुम कहियत उडुराज अमृतमय तजि सुभाउ बर्षत कह बहनी—१० उ०-९३।

बहनु—संज्ञा पुं. [सं. वहन] **सवारी।**

बहनोई—संज्ञा पुं. [सं. भगिनी-पति] **बहन का पति।**

बहनौता—संज्ञा पुं. [सं. भगिनी-पुत्र] **बहन का पुत्र।**

बहनौरा—संज्ञा पुं. [हिं. बहन+औरा] **बहन की ससुराल।**

बहरत—क्रि. अ. [हिं. बहरना] **बहलता है।** उ.—छिन-छिन बिरस करति है सुंदरि क्यों बहरत मन मोर—२२१४।

बहरना—क्रि. अ. [हिं. बहलना] **(१) दुख की बात भूलकर चित दूसरी ओर लगना। (२) चित्त प्रसन्न होना।**

बहरा—वि. [सं. बधिर, प्रा. बहिर] **न सुननेवाला।**

बहराइ—क्रि. स. [हिं. बहलाना] **(१) बहलाकर, भुलावे में डालकर।** उ.—सबै सखा बैठे रहौ, मैं देखौं धौं जाइ। बच्छ-हरन जिय जानि प्रभु, आपु गए बहराइ—४९२। (२) **चित्त प्रसन्न करके।**

प्र.—आवै मन बहराइ—**मन बहला आवे, (घूम-घाम कर) चित्त प्रसन्न कर ले।** उ.—मैं पठवत अपने लरिका को आवै मन बहराइ—५१०।

बहराई—वि. [हिं. बहलाना] **बहलायी हुई, जिसे भुलावे में डाला गया हो।** उ.—जनु सुरभी बन बसति बच्छ बिनु, परबस पसुपति की बहराई—१०-१६९।

क्रि. स.—**बहकाया, फुसला दिया।** उ.—उरहन देन ग्वालि जे आईं। तिन्हैं जसोदा दियौ बहराई।

बहराना—क्रि. स. [हिं. बहलाना] **(१) ऊबी हुई बात से चित्त हटाकर दूसरी ओर लगाना। (२) फुसलाना।**

बहरावत—क्रि. स. [हिं. बहिरयाना] **(१) बाहर करते हैं, निकालते हैं। (२) अलग करते हैं, (समाज से) पृथक्**

करते हैं । उ.—कह्यो, हम जज्ञ-भाग नहिं पावत । वैद्य जानि हमकौं बहरावत—६-३ ।

क्रि. स. [हिं. बहलाना] बहलाता है ।

बहरावति—क्रि. स [हिं. बहलाना] बहलाती या भुलावे में डालती है । उ.—बातैं बूझति यौं बहरावति—३४८५ ।

बहरिया—वि. [हिं. बाहर+इया] बाहर का, बाहरी ।

संज्ञा पुं.—वल्लभसंप्रदायी मंदिरों के छोटे कर्मचारी जो मंदिर के बाहर रहते हैं ।

बहरियाना—क्रि. अ. [हिं. बाहर+इयाना] (१) बाहर या बाहर की ओर होना । (२) अलग होना ।

क्रि. स.—(१) बाहर करना ।(२) अलग करना ।

बहरी—संज्ञा स्त्री. [अ.] एक शिकारी चिड़िया ।

वि. स्त्री. [हिं. बहरा] जिसे सुनायी न दे ।

बहरो, बहरौ—वि. [हिं. बहरा] न सुननेवाला ।

बहल—संज्ञा स्त्री. [सं. वहन] रथ जैसी बैलगाड़ी ।

बहलना—क्रि. अ. [हिं बहलाना] (१) उबाने या दुख देने वाली बात से चित्त हटाकर दूसरी ओर लगाना। (२) चित्त प्रसन्न होना ।

बहलाना—क्रि. स. [फ़ा. बहाल](१) उबाने या दुख देने वाली बात से चित्त हटाकर दूसरी ओर ले जाना । (२) चित्त प्रसन्न करना । (३) भुलावा देना।

बहलाव—संज्ञा पुं. [हिं बहलना] चित्त का रुचिकर या मनोरंजक काम में लगाना ।

बहली—संज्ञा स्त्री. [सं. वहन] रथ-जैसी बैलगाड़ी ।

बहल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. बहलना] आनंद, प्रमोद ।

बहस—सज्ञा स्त्री. [अ.] (१ वाद, तर्क । (२) विवाद, झगड़ा, तर्क-वितर्क । (३) होड़, बाजी, स्पर्धा।

बहसना—क्रि. अ. [हिं. बहस] (१) वाद-विवाद या तर्क-वितर्क करना । (२) होड़ या शर्त लगाना ।

बहाइ—क्रि. अ. [हिं. बहना] (हवा) चलती है । उ.—मंद सुगंध बयार बहाइ—१० उ०-१४३ ।

क्रि. स. [हिं. बहाना] बहाकर ।

प्र०—देउ बहाइ—बहा दो, प्रवाहित कर दो । उ.—(क) प्रथमहि देउ गिरिहि बहाइ—९४३ । (ख) मारौ स्याम राम दोउभाइ गोकुल देउ बहाइ—२५७८ ।

बहाईं—क्रि. स. बहु. [हिं. बहाना] प्रवाहित कीं । उ.—परत फिराइ पयोनिधि भीतर, सरिता उलटि बहाईं ९-१२४ ।

बहाउ—संज्ञा पुं. [हिं. बहाव] बहा दे, नष्ट कर दे । उ.—काम-क्रोध-विषाद-तृष्ना सकल जारि बहाउ १-३१४ ।

बहाऊँ—क्रि. स. [हिं. बहाना] प्रवाहित करूँ, बहा दूँ। उ. —(क) पांडव-दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता-रुधिर बहाऊँ—१-२७० । (ख) होइ सनमुख भिरौं, संक नहिं मन धरौं, मारि सब कटक सागर बहाऊँ—९-१२४।

बहाऊ—क्रि. स. [हिं. बहाना] बहा दिया ।

प्र०—मारि बहाऊ—मारकर बहा दिया, नष्ट कर दिया, समाप्त कर दिया, मिटा दिया । उ०—भक्त हेत अवतार धरे,सब असुरनि मारि बहाऊ—१०-२२१।

बहादुर—वि. [फ़ा.] (१) साहसी । (२) पराक्रमी ।

बहादुरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) साहस । (२) पराक्रम।

बहाना—क्रि. स. [हिं. बहना] (१) प्रवाहित करना । (२) प्रवाह के साथ छोड़ देना । (३ बूंद या धार के रूप में छोड़ना। (४) हवा चलाना। (५) व्यर्थ और अँधाधुंध खर्च करना । ६) फेंक देना , पास न रखना । (७ बहुत सस्ता बेच देना ।

संज्ञा पुं. [फ़ा. बहानः] (१ झूठ बोलकर टालना, हीला । (२) झूठी बात । (३) निमित्त, कारण ।

बहानो, बहानौ—संज्ञा पुं. [हिं. बहाना] बहाना, हीला । उ.-इहै बहानो करि लियो हरि मन अनुराध्यो—१५४१ ।

बहायो, बहायौ—क्रि. स. [हिं. बहाना] प्रवाहित किया । उ.—सो (रस) यह परम उदार मधुप ब्रज बीथिनि माँझ बहायो—२९९८ ।

बहार संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) वसंत ऋतु । (२) आनंद, प्रफुल्लता ।(३) यौवन का विकास । (४) शोभा, सुंदरता ।

बहारना—क्रि. स. [हिं. बुहारना] झाड़ू देना ।

बहावत—क्रि. स. [हिं. बहाना] बहाता है, दूर करता है, अलग करता है। उ.—बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत—९-१७ ।

बहावहि—क्रि. स. [हिं. बहाना] धारा में प्रवाहित कर

दो ।उ.—प्रथम बहाइ देउ गोबर्धन ता पाछे ब्रज खोदि बहावहि - ९४७ ।

बहावहु—क्रि. स. [हिं. बहाना] धारा में प्रवाहित कर दो । उ.—(क) ब्रज के लोगन धोइ बहावहु—९७० । (ख) गाइ गोप ब्रज सबै बहावहु—१०४६ ।

बहावैं—क्रि. स. [हिं. बहाना] बहाती हैं, प्रवाहित करती हैं । उ.— जो रस ब्रह्मादिक नहिं पावैं । सो रस गोकुल गलिनि बहावैं — १०-३ ।

बहाल—वि. [फ़ा.] (१) जैसा था वैसा । (२) प्रसन्न ।

बहाव—संज्ञा पुं. [हिं. बहना] (१) बहने का भाव । (२) प्रवाह । (३) बहती हुई धारा ।

बहि:—अव्य. [सं. बहिस्] बाहर ।

बहि—क्रि. अ. [हिं. बहना] बह कर, नष्ट होकर ।

प्र०—बहि जाइ—दूर हो जाय, नष्ट हो जाय (स्त्रियों की गाली) । उ.—(क) छाँड़ि देहु बहि जाइ मथानी सौंहदिवावति छोरहु आनी—३९१ । (ख) हार बहि जाइ अति गई अकुलाइ कै सुत के नाउँ इक उहै मेरैं—१५८६ । बहि गयो—गया-बीता है, तुच्छ है । उ.—ऐसो को बहि गयो प्रजा ह्वै बसै तुम्हारैं— १०१४ ।

बहिअर—संज्ञा स्त्री. [सं. वधूवर] स्त्री ।

बहिए—क्रि. अ. [हिं. बहना] धारा में प्रवाहित होइए, डूब जाइए उ.—कबहुँक उपजै जिय में ऐसी जाइ जमुन बहिए—२८९२ ।

बहिकाई—कि. स. [हिं. बहकाना] भुलावे में डाली ।

प्र०—दियो बहिकाई—भुलावे में डाल दिया । उ.—काहू इन्हैं दियो बहकाई—१०४१ ।

बहिक्रम—संज्ञा पुं. [सं. वय:क्रम] अवस्था, उम्र ।

बहित्र—संज्ञा पुं. [सं. वहित्र] नाव, जहाज ।

बहिन—संज्ञा स्त्री. [सं. भगिनी, प्रा. बहिणी] भगिनी ।

बहिनापा—संज्ञा पुं. [हिं. बहनापा] बहन का संबन्ध ।

बहिनी—संज्ञा. स्त्री [हिं. बहन] भगिनी । उ.— सूर स्याम हमको बिरमावत खीझति बहिनी माई—११४४।

बहिबो, बहिबौ—संज्ञा (पुं.) [हिं. बहना] बहने का भाव या कार्य । उ.— (क) जब ते गंग परी हरि पग तें बहिबो नहीं निवारै—३१८९ । (ख) अब न देह जरि जाइ सूर इन नैनन को बहिबो—३४१४ । (ग) सूर स्याम हम कहैं कहाँ लगि बचन लाज बहिबो–३४१५ ।

बहियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँह] बाँह, हाथ, भुजा । उ.— (क) सूरदास हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ—९-१९ । (ख) बहियाँ पकरि सूर के प्रभु की नंद की सौंह दिवाइ—३१८६ ।

बहिरंग—वि. [सं.] (१) बाहरी । (२) 'अंतरंग' का विपरीतार्थक । (३) वर्ग या दल से बाहर ।

बहिर—वि. [हिं. बहरा] बहरा ।

बहिरत—अव्य. [सं. वहि:] बाहर ।

बहिराना—क्रि. स. [हिं. बाहर+ना] बाहर निकालना । क्रि. अ.—बाहर हो जाना ।

बहिरी—वि. स्त्री. [हिं. बहरा] बहरी (स्त्री) । उ.—बहिरी पति सों बात करै सो तैसोइ उत्तर पावै—३०२६ ।

बहिरो, बहिरौ—वि. [सं. वधिर, प्रा० बहिर, हिं. बहरा] जो कान से सुन न सके । उ.— बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै—१-१ । (ख) बहिरो तान स्वाद कहा जानै गूँगो खात मिठास - ३३३६ ।

बहिर्गत— वि. [सं.] (१) बाहर आया या निकला हुआ । (२) जो सम्मिलित न हो ।

बहिर्भूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] बस्ती से बाहर की भूमि जहाँ नित्यक्रिया के लिए लोग जाते हों ।

बहिर्मुख वि. [सं.] विमुख, विरुद्ध ।

बहिला—वि. [हिं. बाँझ+ला] बाँझ, बंध्या ।

बहिष्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाहर निकालना । (२) दूर या अलग करना, त्यागना ।

बहिष्कृत—वि. [सं.] (१) बाहर निकला हुआ । (२) अलग किया या त्यागा हुआ ।

बहिहौं—क्रि. अ. [हिं. बहना] बह जाऊँगी, धारा के साथ प्रवाहित हो जाऊँगी । उ.—अब हौं जाइ जमुन जल बहिहौं—२७०१ ।

बही—संज्ञा स्त्री. [सं. बद्ध] हिसाब-किताब लिखने की पुस्तक । उ. – (क) सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि बही—१-१३७ । (ख) अहंकार पटवारी कपटी झूठी लिखत बही—१-१८५ ।

मुहा०—बही में चढ़ना (टँकना) – हिसाब में

लिख लिया जाना। बही में चढ़ाना (टाँकना) – हिसाब में लिखना।

क्रि. अ. [हिं. बहना] (१) प्रवाहित हुई। उ.–(क) मनु बरषत भादौं मास नदी घृत-दूध बही—१०-२४। (२) मारी-मारी फिरी, भटकती घूमी। उ.—(क) घर तजिकै कोऊ रहत पराये मैं तबहीं ते फिरति बही री—१८६। (ख) सूरदास इन लोभिनि के संग बन-बन फिरति बही—पृ.३३२ (१५)।

बहीखाता – संज्ञा पुं. [हिं. बही + खाता] हिसाब-किताब लिखने की पुस्तक।

बहीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीड़] (१) जन-समूह, भीड़। (२) सेना के साथ सेवक-समूह। (३) सेना की सामग्री।

अव्य० [हिं. बाहर] बाहर।

बहु—वि. [सं.] (१) बहुत (संख्यावाचक), एक से अधिक, अनेक। (२) ज्यादा, अधिक। उ. – जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु विख्यात--१-९०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बहू] वधू, बहू।

बहुज्ञ—वि. [सं.] बहुत जानकारी रखनेवाला।

बहुटनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहूँटा] बाँह का एक गहना। उ.—बहु नग लगे जराव की अँगिया, भुजा बहुटनी बलय संग को।

बहुत—वि. [सं. बहुतर] (१) गिनती में अधिक, अनेक। (२) मात्रा में अधिक। (३) यथेष्ट, पर्याप्त।

मुहा० —बहुत अच्छा—(१) ऐसा ही किया जायगा (स्वीकृति-सूचक) (२) अच्छी बात है, समझ लेंगे (धमकाना)। बहुत करके—(१) प्रायः, बहुधा। (२) अधिक संभव तो यही है। बहुत-कुछ—(१) अधिकांश। (२) पर्याप्त, यथेष्ट। बहुत खूब—(१) बहुत बढ़िया (आश्चर्यसूचक)। (२) बहुत अच्छा (स्वीकृतिसूचक)। बहुत है—कुछ नहीं है (व्यंग्य)।

क्रि. वि.—अधिक, ज्यादा। उ.—(क) तुम प्रभु, मोसौं बहुत करी—१-११६। (ख) सूर रहे समुझाइ बहुत, पै कैकइ-हठ नहिं जाइ—९-३०१।

बहुतक—वि. [हिं. बहुत + एक] बहुत से, बहुतेरे। उ.—(क) बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ—१-७८। (ख) बहुतक तपसी पचि पचि मुए—४-९।

क्रि. वि.—अधिक परिमाण में, ज्यादा। उ.—ता रिस मैं मोहिं बहुतक मारयो—२१-१५१।

बहुता, बहुताइ, बहुताइ,– संज्ञा स्त्री. [हिं. बहु + ता] अधिकता।

बहुतेरा—वि. [हिं. बहुत] बहुत, अधिक।

क्रि. वि.—अधिक परिमाण में, ज्यादा।

बहुतेरे—वि. [हिं. बहुत] संख्या में अधिक, अनेक।

बहुतै—वि. [हिं. बहुत] (१) बहुत अधिक, अधिक मात्रा में। उ.—भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेव गई—१-२९९। (२) बहुत से, अनेक, अनगिनती। उ.—दाउँ-घात बहुतै कियौ, मरत नहीं जदुराइ—५८९।

क्रि. वि.—अधिक परिमाण में। उ. – कमलनयन के कारन सजनी अपनो सो जतन रही बहुतै करि—२८१३।

बहुनायक, बहुनायकी—वि. [हिं. बहु + नायक] अनेक स्त्रियों से प्रेम रखनेवाला। उ.—नंदसुवन बहु-नायकी अनतहिं रहे जाई—२१५९।

बहुत्व – वि. [सं.] आधिक्य, अधिकता।

बहुदर्शी—वि. [सं.] बहुत जानकार।

बहुधा—क्रि. वि. [सं.] (१) अनेक प्रकार से। (२) प्रायः, बहुत करके, अक्सर।

बहुबाहु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रावण (२) सहस्रार्जुन।

बहुभाषी—वि. [सं. बहुभाषिन्] (१) बहुत बकवादी। (२) अनेक भाषाएँ बोलने में समर्थ।

बहुभुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

बहुमत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनेक मत। (२) समूह में से अधिकांश का मत।

बहुमूल्य—वि. [सं.] अधिक मूल्य की, मूल्यवान।

बहुरंग, बहुरंगा – वि. [हिं. बहु + रंग] (१) अनेक रंगों का। (२) अनेक रूप धारण करनेवाला, बहुरूपिया। (३) मनमौजी।

बहुरंगी - वि. [हिं. पुं. बहुरंगा + ई [प्रत्य.]। (१) अनेक रूप धारण करने में समर्थ। उ.—नाथ अनाथनि ही के संगी। दीन दयाल परम करुनामय, जन-हित

हरि बहुरंगी—१-२१। (२) बहुरूपिया। (३) अनेक रंगों का।

बहुर—क्रि. वि. [हिं. बहुरना (बहुरि=फिरकर)] पुनः, फिर। उ.—अब कैं तौ आपुन लै आयौ, बेर बहुर की और—१-१४६।

बहुरना—क्रि. अ. [सं. व्याघुट, प्रा. बाहुड़+ना] (१) जाकर फिर वापस आना। (२ खोकर फिर मिलना।

बहुराई—क्रि. स. [हिं. बहुरना] लौटा देना, वापस कर देना। उ.—उरहन देत ग्वालि जे आई। तिन्हैं दियौ जसुदा बहुराई—३९१।

बहुरावहु—क्रि. स. [हिं. बहुराना] लौटाओ, वापस बुलाओ। उ.—भई अबार गाइ बहुरावहु, उलटावहु, दै हाँक—४६४।

बहुरि—क्रि. वि. [हिं. बहुरना] (१) पुनः, फिर, दोबारा। उ.—अंबरीष कौं साप देन गयौ, बहुरि पठायौ ताकौ—१-११३। (२) पश्चात्, उपरांत।

बहुरियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. बहुरिया] (१) नई बधुएँ। (२) नवयुवतियाँ। उ.—आइ गए तिहिं समय कन्हाई। बाहँ गही लै तुरत दिखाई। तनक-तनक कर, तनक अँगुरियाँ। तुम जोबन भरीं नवल बहुरियाँ—७९९।

बहुरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. बधूटी, बधूटिका, प्रा. बहूडिआ] नववधू।

बहुरी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. बहुरना] लौटी, वापस आयी, फिर कर आयी। उ.—आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ—५४०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भौरना=भूनना] चबेना।

बहुरूप—वि. [हिं.बहु+रूप] अनेक रूप धारण करने वाला, बहुतों के रूप धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१)विष्णु। (२)शिव। (३)गिरगिट।

बहुरूपा · संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

बहुरूपिया, बहुरूपी—वि. [हिं. बहु+रूप] (१) अनेक रूप धारण करनेवाला। (२) स्वाँग बनाने या नकल करनेवाला।

बहुरे—क्रि. अ. [हिं. बहुरना] (१) लौटे, वापस गये, फिरे। उ.—अस्तुति करत अमर-गन बहुरे, गए आपनैं लोक—५७९। (२) वापस आये, लौटे। उ.—गए सु गए फेरि नहिं बहुरे का धौं जियहि धरी—पृ० ३३२ (१४)।

बहुरौ—क्रि. वि. [हिं. बहुरना (बहुरि=फिरकर)] पुनः, फिर। उ.—(क) अब मेरी-मेरी करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ—१—७८। (ख) कब वह मुख बहुरौ देखौंगी कब वैसौ सचु पैहौं—२५५०।

बहुल—वि. [सं.] प्रचुर, अधिक।

बहुलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अधिकता, प्रचुरता।

बहुला—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाय। (२) एक देवी। (३) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा, किन हार चुरायो।···। सुमना बहुला चंपा जुहिला ज्ञाना भाना भाउ—१५८०। (४) एक गाय जिसने वृंदावन के बहुलाबन में व्याघ्र के साथ सत्य व्रत का निर्वाह किया था।

बहुलावन—संज्ञा पुं. [सं.] वृंदावन के ८४ बनों में एक जहाँ बहुला गाय ने व्याघ्र के साथ सत्य वचन का निर्वाह किया था।

बहुलि, बहुली—संज्ञा स्त्री. [सं. बहुला] इलायची। उ.—बकुल, बहुलि, बट कदम पै ठाढ़ीं ब्रजनारी—१८२२।

बहुवचन—संज्ञा पुं. [सं.] 'वचन' का एक भेद जो एक से अधिक वस्तुओं का बोधक होता है (व्याकरण)।

बहुव्रीहि—संज्ञा पुं. [सं.] समास का एक भेद।

बहुश्रुत—वि. [सं.] बहुत जानकार, बहुज्ञ।

बहूँटा—संज्ञा पुं. [हिं. बाहु] बाँह का एक गहना।

बहू—संज्ञा स्त्री. [सं. बधू] (१)नव विवाहिता। (२) पुत्र-वधू। (३) पत्नी।

बहूटनि—संज्ञा पुं. [हिं. बाहूँटा] बाँह का एक गहना। उ.—बहु नग लगे जराव की अंगिया भुजा बहूटनि बलय संग को—१०४२।

बहूदक—संज्ञा पुं. [सं.] एक वर्ग के संन्यासी।

बहेड़ा, बहेरा—संज्ञा पुं. [सं. विभीतक, प्रा. बहेड़अ, हिं. बहेड़ा] एक जंगली पेड़ जिसका फल वैद्यक के अनुसार बहुत गुणकारी होता है। उ.—बाइबिरंग बहेड़ा हर्रैं कहुँ बैल गोंद व्यापारी—११०८।

बहेतू – वि. [हिं. बहना] मारा-मारा फिरनेवाला।

बहेरी –संज्ञा स्त्री. [हिं. बहराना] हीला-बहाना।

बहेलिया—संज्ञा पुं. [सं. वध+हेला] शिकारी, व्याध।

बहै—क्रि. अ. [हिं. बहना] (१) प्रवाहित हो। (२) वायु चले। उ.—(क) सीतल मंद सुगंध पवन बहै रोम-रोम सुखदाई - १८६६। (ख) जैसी बयारि बहै तैसी ओढ़िए जू पीठि—२०२५। (३) मारी-मारी फिरे, खोजती फिरे। उ.—अपनो चाउ सारि उन लीन्हों तू काहै अब बृथा बहै री—१६६०।

बहैया—क्रि. स. [हिं. बहाना[बहायी, प्रवाहित की। उ. – जिनि चरननि छलियौ बलि राजा, नख गंगा जु बहैया—१०-१३१।

बहोर—संज्ञा पुं. [हिं. बहुरना] फेरा, वापसी।

क्रि. वि.—फिर, पुनः, दोबारा।

बहोरत—क्रि. स. [हिं. बहोरना] (पशुओं को चराने के पश्चात) घर की ओर हाँकता है। उ.—कबहुँक रहसि देत आलिंगन कबहुँक दौरि बहोरति गाई—१३००।

बहोरना—क्रि. स. [हिं. बहोरना] (१) लौटाना। (२) (पशुओं) को चराकर घर की ओर हाँकना।

बहोरि, बहोरी—क्रि. वि. [हिं. बहोर] पुनः, फिर। उ.—(क) जद्यपि हो त्रयलोक के ईश्वर परसि दृष्टि चितवति न बहोरी—२८९०। (ख) धोखे ही बिरवा लगाइ कै काटत नाहिं बहोरी—३३४८।

बहोरो, बहोरौ – क्रि. स. [हिं. बहोरना] लौटाओ, (पशु को) घर की ओर हाँको। उ.—घर को गाय बहोरो मोहन ग्वालनि टेर सुनाए—९५८।

बहौं—क्रि. अ. [सं. वहन] (भार) लाद कर ले चलता हूँ, भार ढोता हूँ, वहन करता हूँ। उ.—कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महागज, कबहुँक भार बहौं—१-१६१।

क्रि. अ. [हिं. बहना] बह जाऊँ, डूब मरूँ। उ.—मेरे जिय में ऐसी आवत जमुना जाइ बहौं-- २७७४।

बह्यो—क्रि. अ. [हिं. बहना] (१) बहा, प्रवाहित हुआ। उ.—सूरदास उमँगे दोउ नैना सिंधु-प्रवाह बह्यो—१-२४७। (२) भ्रम में पड़ा रहा, भटकता फिरा। उ.—धोखैं ही धोखैं बहुत बह्यो —१-३२७।

बाँ—संज्ञा पुं. [अनु.] गाय की बोली।

संज्ञा पुं. [हिं. बार] बार, दफा, मरतबा।

बाँक—संज्ञा पुं. [सं. वंक] (१) बच्चों की बाँह का एक चन्द्राकार आभूषण। (२) पैर का एक गहना। (३) एक तरह की चौड़ी चूड़ी। (४) धनुष। (५) टेढ़ापन। (६) टेढ़ी छुरी।

वि.—(१) टेढ़ा। (२) तिरछा, बाँका।

बाँकड़ा—वि. [हिं. बाँका] वीर, साहसी।

बाँकड़ी –संज्ञा स्त्री. [सं. बंक+ड़ी] बादले और कलाबत्तू का बना सुनहरा-रूपहला फीता जो साड़ियों में टाँका जाता है।

बाँकडोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँक] एक शस्त्र।

बाँकना—क्रि. स. [सं. बंक] टेढ़ा-तिरछा करना।

मुहा०— बाल बाँकना— हानि पहुँचाना, कष्ट देना।

क्रि. अ. – टेढ़ा-तिरछा होना।

बाँकपन—संज्ञा पुं. [हिं. बाँका+पन] (१) टेढ़े-तिरछे होने का भाव। (२) छैलापन। (३) सजावट।

बाँका—वि. [सं. बंक] (१) टेढ़ा, तिरछा। (२) वीर, साहसी। (३) छैला, बना-ठना।

संज्ञा पुं.—(१) लोहे का एक टेढ़ा हथियार। (२) एक कीड़ा। (३) सजाया-सँवारा युवक।

बाँकिया—संज्ञा पुं. [सं. बंक] नरसिंहा नामक बाजा।

बाँकी –संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँका] लोहे का एक औजार।

वि.– (१) टेढ़ी। (२) सजी-सजायी।

बाँकुर, बाँकुरा—वि. [हिं. बाँका] (१) टेढ़ा, तिरछा। (२) पैना, तेज धारवाला। (१) चतुर।

बाँके—वि. बहु. [सं. बंक] (१) टेढ़े, तिरछे, बाँकापन लिये हुए। उ.– ससि-गन गारि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै—१०-१५८। (१) वीर, साहसी। उ.– दुहूँ दिसि सुभट बाँके बिकट अति जुरे मनो दोउ दिसि घटा उमड़ि आई – १० उ०-५।

बाँकौ—वि. [सं. बंक] (१) अत्यन्त साहसी, वीर। (२) कठिन, कड़ा। उ.—नरहरि ह्वै हिरनाकुस मार्‌यौ, काम पर्‌यौ हो बाँकौ— १-५१३।

बाँग—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) आवाज। (२) पुकार। (३) नमाज की अजान। (४) मुर्गे का शब्द।

बाँगड़ू—वि. [हिं. बाँगर] **मूर्ख, दुर्बुद्धि ।**

बाँगर - संज्ञा पुं. [देश] **एक तरह का बैल ।**

बाँगुर—संज्ञा पुं. [देश] **जाल, फंदा ।**

बाँचत—क्रि. स. [हिं. बाँचना] **पढ़ता है ।** उ.—सोइ तिथि-बार-नछत्र-लगन-ग्रह सोइ जिहिं ठाट ठयौ । तिन अंकनि कोउ फिरि नहिं बाँचत गत स्वारथ समयौ—१-२६८ ।

बाँचना—क्रि. स. [सं. वाचन] **पढ़ना ।**

क्रि. स. [सं. बंचना] **शेष रहना, बच जाना ।**

क्रि. स. [हिं. बचाना] **छोड़ देना, बचा लेना ।**

बाँचि—क्रि. स. [हिं. बाँचना] **पढ़कर ।** उ.—(क) कर्म-कागद बाँचि देखौ, जौ न मन पतियाइ—१-२१६ । (ख, तब उन बाँचि सुनाई—२९७८ ।

क्रि. अ. [हिं. बचना] **बचकर, रक्षित रहकर ।** उ.—उरग तैं बाँचि फिरि ब्रजहिं आयौ—५९० ।

बाँचिहैं—क्रि. अ. [हिं. बचना] **बचेंगे, रक्षित रहेंगे ।** उ.—कोउ बरसत, कोउ अगिनि जरावत, दई पर्‌यौ है खोज हमारे । तब गिरधर कर धर्‌यौ कन्हैया, अब न बाचिहैं मारत जारे—५९५ ।

बाँची—क्रि. स. [हिं. बचाना] **बचायी, रक्षा की ।** उ.—(क) दुस्सासन करि बसन छुड़ावत सुमिरत नाम द्रौपदी बाँची—१-१८ । (ख) खरिक मिले की गोरस बेचत की बिषहर से बाँची—१४६८ ।

बाँचे - क्रि. स. [हिं. बचना] **बच गये, सुरक्षित रहे, चोट नहीं लगी ।** उ.—भली भई अबकैं हरि बाँचे, अब तौ सुरति सम्हारि—१०-७९ ।

बाँचौ—क्रि. स. [हिं बचना] **बचे रहे ।** उ.—(क) सुमिरन कथा सदा सुखदायक, बिषधर बिषम-बिषय-बिष बाँचौ—१-८३ । (ख) अब तुम नाम गहौ मन नागर । जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-सागर—१-९१ ।

बाँच्यौ—क्रि. अ. [हिं. बचना] **बच सका, छूट सका ।** उ.—कछु कुल-धर्म न जानई, रूप सकल जग राँच्यौ (हो) । बिनु देखैं, बिनु ही सुनैं, ठगत न कोऊ बाँच्यौ (हो)—१-४४ ।

क्रि. स. [सं. बंचना, हिं. बचना] **शेष रहा है, बाकी बचा है ।** उ.—इत-उत देखि द्रौपदी टेरी .... । सरबस दै अंबर तन बाँच्यौ, सोउ अब हरत, जाति पति मेरी—१-२५१ ।

बांछना—संज्ञा स्त्री. [सं. बाँछा] **इच्छा, अभिलाषा ।** उ.—यह बाँछना होइ क्यों पूरन दासी ह्वै बस ब्रज रहिए ।

क्रि. स.—(१) **इच्छा करना ।** (२) **छाँटना, चुनना ।**

बांछा - संज्ञा स्त्री [सं. बाँछा] **इच्छा, कामना ।**

बांछित - वि. [सं. वांछित] **अभिलषित ।**

बांछी—संज्ञा पुं. [सं. वांछिन्] **इच्छा करनेवाला ।**

बांछै—क्रि. स. [हिं. बाँछना] **चाहता है, इच्छा करता है ।** उ.—महामुक्ति कोऊ नहिं बाँछै जदपि पदारथ चारी —३३१६ ।

बांछो - क्रि. स. [हिं. बाँचना] (१) **इच्छा की, चाहा ।** उ.—निरखि लोचन प्रनत मोचन कुँवरि फल बांछो सो पायो—१० उ०,१८ ।

बाँझ—संज्ञा स्त्री. [सं. बंध्या] **वह स्त्री जिसके संतान न जन्मी हो ।** उ.—(क) बाँझ सुत जनै उकठे काठ पल्लवै बिफल तरु फलै बिनु मेघ पानी—२२७३ । (ख) जानै कहा बाँझ ब्यावर दुख—३३२९ ।

बाँझपन, बाँझपना—संज्ञा पुं. [हिं. बाँझ + पन] **बांझ होने का भाव ।**

बाँट—संज्ञा पुं. [हिं. बाँटना] (१) **बाँटने की क्रिया या भाव ।** (२) **भाग, हिस्सा ।** उ.—याहू मैं कछू बाँट तुम्हारी —११२१ ।

प्र०—बाँट लेहु—**भाग ले लो, हिस्सा कर लो ।** उ.—बाँट न लेहु सबै चाहत है, यहै बात है थोरी—१०-२६७ ।

मुहा.—बाँट पड़ना—(१) **भाग या हिस्से में आना ।** (२) **अधिक परिमाण में होना ।**

बाँटचूँट—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँट + अनु. चूँट] (१) **भाग, हिस्सा ।** (२) **लेनदेन ।**

बाँटत—क्रि. स. [हिं. बाँटना] **भाग या हिस्सा करके देते हैं ।** उ.—सूर स्याम अपने कर लीन्हे बाँटत जूठनि भोग—९३५ ।

बाँटना—क्रि. स. [सं. वितरण] (१) **भाग या हिस्सा करना ।** (२) **अलग-अलग रखना ।** (३) **थोड़ा-**

थोड़ा करके (सबको) देना।

बाँटा—संज्ञा पुं. [हिं. बाँटना] भाग, हिस्सा।

बाँटि—क्रि. स. [हिं. बट्टा या बाट, बाटना] पीसकर, चूर्ण करके, लेप बनाकर। उ.—(क) उरजनि कौं बिष बाँटि लगायौ, जसुमति की गति पाई—१-१५८। (ख) सुन री सखी स्यामसुंदर बिन बाँटि बिषम बिष पीजै—२८६४।

क्रि. स. [हिं. बाँटना] भाग या हिस्सा करके (दूसरों को) दिया। उ.—(क) थाती प्रान तुम्हारी मोपै जनमत ही जो दीन्ही। सो मैं बाँटि दई पाँचनि कौ—१-१६६। (ख) चारो अंस बाँटि पुनि दिये—९-५।

बाँटी—क्रि. स. [हिं. बाँटना] वितरण करके, (दूसरे को भाग या हिस्सा) देकर। उ.—सिगरोइ दूध पियौ मेरे मोहन, बलहिं न दैहौं बाँटी—१०-२५६।

बाँड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) पूँछहीन पशु। (२) संतानहीन पुरुष।

बाँड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँड़ा] पूछहीन (मादा) पशु।

बाँद—संज्ञा पुं. [फ़ा. बंदा] सेवक, दास।

बाँदर—संज्ञा पुं. [सं. वानर] बंदर।

बाँदी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. बंदा] दासी, सेविका, लौंडी।

बाँदू—संज्ञा पुं. [सं. बंदी] कैदी, बंदी।

बाँध—संज्ञा पुं. [हिं. बाँधना] पानी रोकने का धुस्स।

बाँधन—क्रि. स. [हिं. बाँधना] बंधन में डालना।

प्र०—बाँधन गये—बंदी बनाने गये। उ.—बाँधन गये बँधाये आपुन—८१५।

बाँधना—क्रि. स. [सं. बंधन] (१) रस्सी, डोरी आदि से कसकर बंदी बनाना। (२) रस्सी, डोरी आदि लपेटकर गाँठ लगाना। (३) गाँठ जोड़कर कसना। (४) बंधन में डालना, कैद करना। (५) नियम या अधिकार आदि से मर्यादित रखना। (६) तंत्र-मंत्र आदि से शक्ति या गति त करना। (७) प्रेम के बंधन में डालना। (८) निश्चित या नियत करना। (९) बाँध या धुस्स बनाना। (१०) चूर्ण आदि के पिंड बनाना। (११) रचना की सामग्री या विचार जोड़ना। (१२) क्रम या व्यवस्था बनाना (१३) सम में बैठाना। (१४) अस्त्र-शस्त्र साथ रखना।

बाँधनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँधना] बाँधने की रीति, बंधन, गाँठ। उ.—छूटे बंधन अरु पाग की बाँधनि छूटी, लटपटे पेच अटपटे दिये—२००९।

बाँधनीपौरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँधना+पौरि] पशुशाला।

बाँधनू—संज्ञा पुं. [हिं. बाँधना] (१) योजना, उपक्रम। (२) मनगढ़ंत। (३) मिथ्यारोप। (४) लहरियादार रँगाई के लिए वस्त्र में बाँधा जानेवाला बंधन। (५) बंधन बाँधकर रंगा जानेवाला वस्त्र।

बांधव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाई-बंधु। (२) संबंधी, आत्मीय। (३) मित्र, सखा।

बाँधि—क्रि. स. [हिं. बाँधना] नियत करके, स्थिर करके, ठहराकर। उ.—साँचौ सो लिखहार कहावै। कायाग्राम मसाहत करिकै, जमा बाँधि ठहरावै—१-१४२।

बाँधी—क्रि. स. [हिं. बाँधना] बांध ली, लपेटकर गाँठ दी। उ.—बाँधी मोट पसारि त्रिबिध गुन, नहिं कहुँ बीच उतारौ—१-१५२।

बाँधौंगी—क्रि. स. [हिं. बाँधना] बंधन में डालूँगी। उ.—अब मैं याहि जकरि बाँधौंगी—१०-३३०।

बाँध्यौ—क्रि. स. [हिं. बँधना] बंध गया, अटक गया, स्वच्छंद न रहा, प्रतिबंधित हुआ। उ.—माया सबल धाम-धन बनिता बाँध्यौ हौं इहिं साज—१-१०८।

बाँबी, बाँमी—संज्ञा स्त्री. [सं. वल्मीक, हिं. बाँबी] (१) दीमकों का भीटा। (२) साँप का बिल। उ.—बाँबी पर अहि करत लराई—३६१।

बाँभन—संज्ञा पुं. [सं. ब्राह्मण] ब्राह्मण। उ.—बाँभन मारैं नहीं भलाई—१०-५७।

बाँस—संज्ञा पुं. [सं. वंश] एक प्रसिद्ध गँठीली वनस्पति।

मुहा०—बाँसों उछलना—बहुत प्रसन्न होना।

बाँसपूर—संज्ञा पुं. [हिं. बाँस+पूरना] एक तरह का महीन कपड़ा।

बाँसली, बाँसुरी, बाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँस, बाँसुरी] मुरली, बाँसुरी।

बाँह—संज्ञा स्त्री. [सं. बाहु,] भुजा, बाहु। उ.—बाँह थको बायसहिं उड़ावत—२७६९।

मुहा०—बाँह गहना (पकड़ना)—(१) सहारा देना। (२) विवाह करना। बाँह की छाँह लेना—

शरण लेना। बाँह चढ़ाना—(१) किसी बात के लिए तैयार होना। (२) लड़ने को मुस्तैद हो जाना। बाँह देना—सहारा देना। देहु बाँह—सहारा, आश्रय और शरण दो। उ.—सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह—१-५१। दै बाँह—आश्रय देकर, छाया करके। उ.—बर्षत में गोपाल बुलाए अभय किये दै बाँह—९५७। बाँह बुलंद होना—(१) साहसी होना। (२) दानी और उदार होना।

यौ०—बाँह-बोल—सहायता का वचन।

(२) बल, शक्ति। (३) सहायक।

मुहा०—बाँह टूटना—सहायक न रह जाना।

(४) सहारा, भरोसा। (५) आस्तीन।

बाँहाजोरी—क्रि. वि. [हिं. बाँह+जोड़ना] गले में बाहें डाले हुए। उ.—(क) बाँहाजोरी निकसे कुंज तें—पृ. ३१५ (४८)। (ख) बाँहाजोरी कुसुम चुनत दोउ-२८७१।

बाँही—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँह] बाँह। उ.—ऊखल सों बाँध्यौ सुत बाँही—३९१।

बा—संज्ञा पुं. [सं. वा=जल] जल, पानी। उ. (क) बा-बा-पति-अग्रज-अंबा के भानुथान सुत हीन हियो री। (ख) बा-निवास-रिपुधर-रिपु लै सर सदा सूल सुख पेरै। बा-ज्वर नीतन ते सारंग अति बार-बार झर लखै।

संज्ञा पुं. [फ़ा. बार] दफा, मरतबा, बार।

बाइ—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु या वात] वायु, हवा। उ.—बारि मैं ज्यौं उठत बुदबुद लागि बाइ बिलाइ—१-३१६।

संज्ञा स्त्री. [सं. वापी] छोटा जलाशय, बावली। उ.—भानै मठ कूप बाइ सरवर कौ पानी—९-९६।

क्रि. स. [सं. व्यायन, हिं. बाना] (मुँह) बा कर, खोलकर, फैलाकर। उ.—मेरे कहैं नहीं तू मानति, दिखरावौं मुख बाइ—१०-२५५।

बाइगी—संज्ञा स्त्री. [सं. वार्त्ता या हिं. बाई ?] व्यर्थ की बकवाद।

बाइबिडंग—संज्ञा स्त्री. [सं. बिडंग] बिडंग नामक औषधि जो पंसारी के यहाँ मिलती है। उ.—बाइ-बिडंग बहेरा हरैं कहुँ बैल गोंद ब्यापारी—११०८।

बाई—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु] त्रिदोषों में वात दोष।

मुहा०—बाई चढ़ना—(१) वायु का प्रकोप होना। (२) घमंड की बातें करना। बाई पचना—(१) वायु का प्रकोप शांत होना। (२) घमंड टूटना। बाई पचाना—गर्व चूर करना।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाबा] (१) स्त्रियों के लिए आदरसूचक संबोधन। (२) वेश्या।

बाईस—संज्ञा पुं. [सं. द्वाविंशति. प्रा. बाईसा] बीस और दो की संख्या या अंक।

बाईसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाईस] (१) बाईस चीजों का समूह। (२) बाईस छंदों का संग्रह।

बाउ, बाऊ—संज्ञा पुं. [सं. वायु] हवा, पवन।

बाउर, बाऊर—वि. [सं. बातुल] (१) पागल। (२) भोला, सीधा। (३) मूर्ख। (४) गूँगा, मूक। (५) बुरा।

बाएँ—क्रि. वि. [हिं. बाँयाँ] बायीं ओर।

बाए—क्रि. स. [हिं. बाना] मुँह फैलाये या खोले हुए। उ.—निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि—१-३३३।

बाऐं—वि. [हिं. बायाँ] बायीं ओर का, दाहिने की विपरीत दिशावाला। उ.—बाऐं कर बाजि-बाग दाहिनैं हैं बैठे—१-२३।

बाक—संज्ञा पुं. [सं. वाक्य] बात, बचन।

बाकचाल—वि. [सं. वाक् + चल] बातूनी, बकवादी।

बाकना—क्रि. अ. [सं. वाक] बकवाद करना।

बाका—संज्ञा स्त्री. [सं. वाक] वाक्शक्ति, वाणी।

बाकी—वि. [अ. बाकी] जो बच गया हो, शेष।

अव्य.—लेकिन, मगर, परन्तु।

संज्ञा स्त्री.—अंतर निकालने की रीति।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का धान।

बाखर, बाखरि, बाखरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बखार] मकान, घेरा, स्थान, बखार। उ.—जानति हौं गोरस को लैबो याही बाखरि माँझ—१२१४।

बाग—संज्ञा पुं. [अ. बाग] उपवन, वाटिका, उद्यान। उ.—अद्भुत एक अनूपम बाग—१६६०।

संज्ञा स्त्री. [सं. वल्गा] लगाम। उ.—बाऐं कर

वाजि-बाग दाहिन ह्वै बैठे—१-२३।

मुहा०—बागा मोड़ना—किसी ओर जाने को होना।

बागडोर—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाग+डोर] लगाम।

बागना—क्रि. अ. [सं. बक=चलना] घूमना-फिरना।

क्रि. अ. [सं. वाक्] कहना, बोलना।

बागवान—संज्ञा पुं. [फा.] माली।

बागवानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बागबान] माली का काम।

बागा—संज्ञा पुं. [देश.] अंगे-जैसा एक पहनावा, जामा।

बागिया—क्रि. अ. [हिं. बागना] घूमें-फिरे।

बागर—संज्ञा पुं. [देश.] नदी किनारे की ऊँची भूमि जहाँ पानी कभी नहीं पहुँचता। उ.—अविगत-गति जानी न परै।..........। बागर तैं सागर करि डारै, चहुँ दिसि नीर भरै—१-१०५।

संज्ञा पुं. [हिं. बाँगर] एक तरह का बैल।

बागल—संज्ञा पुं. [सं. वक] बक, बगुला।

बागा—संज्ञा पुं. [हिं. बाग] 'जामा' नामक पहनावा।

बागी—वि. [फ़ा. बागी] विद्रोही, राजद्रोही।

बागुर, बागुरि, बागुरी—संज्ञा पुं. [देश.] पशु-पक्षी फँसाने का जाल।

बागे—संज्ञा पुं. [हिं. बागा] 'जामा' नामक पहिनावा। उ.—(क) सूरदास प्रभु प्यारी राजत आवत भ्राजत बने हैं मरगजे बागे—पृ. ३१५ (४६)। (ख) नाना रंग गए रँगि बागे—२४४४।

बागेसरी—संज्ञा स्त्री. [सं. वागीश्वरी] सरस्वती।

बाघंबर—संज्ञा पुं. [सं. व्याघ्रांबर] (१) बाघ की खाल। (२) बाघ की खाल-जैसा कम्बल।

बाघ—संज्ञा पुं. [सं. व्याघ्र] सिंह, शेर।

बाच—वि. [सं. वाच्य] अच्छा, सुन्दर, बढ़िया।

बाचना—क्रि. अ. [हिं. बचना] सुरक्षित रहना।

क्रि. स.—सुरक्षित रखना।

बाचा—संज्ञा स्त्री. [सं. वाचा] (१) बोलने की शक्ति, वाक्शक्ति। (२) वचन, बातचीत, वाक्य। उ.—मनसा-बाचा-कर्म अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी—१—११५। (३) प्रण, प्रतिज्ञा।

बाचाबंध, बाचाबद्ध—वि. [सं. वाचा+बद्ध] वचन या प्रतिज्ञा बद्ध।

बाची—क्रि. अ. [हिं. बचना] (१) बच गयी, सुरक्षित रही। (२) भेद न खुला। उ.—आजु बाची मौन धरि जो सदा होत बचाउ—१२८३।

बाचे—क्रि. प्र. [हिं. बचना] बच सकता है, बच पाता है। उ.—(माया) बिनु देखे समुझे सुने जग ठगत, न कोऊ बाचे हो—पृ. ३४९ (५९)।

बाछ, बाछड़ा, बाछा, बाछे—संज्ञा पुं. [सं. वत्स, प्रा. बच्छ, हिं. बाछा] (१) गाय का बछड़ा। (२) पुत्र, बेटा, लाल। उ.—(क) सूरदास प्रभु दोउ जननी मिलि, लेहिं बलाइ बोलि मुख बाछे—५०७। (ख) भवन जाहु तुम मेरे बाछे—१०१४।

बाज—संज्ञा पुं. [अ. बाज] (१) एक शिकारी पक्षी। उ.—बाज सों टूटि गजराज हाँकत परचौ मनो गिरि चरन धरि लपकि लीन्हे—२५९०। (२) एक तरह का बगला। (३) तीर में लगा हुआ पर।

वि. [फ़ा. बाज] वंचित, रहित।

मुहा०—बाज आना—(१) खो देना। (२) अलग रहना। न आयौ बाज—दूर न हटा, अलग न हुआ, आदत न छोड़ी, संबंध न तोड़ा। उ.—(क) और पतित आवत न आँखितर, देखत अपनौ साज। तीनौं पन भरि ओर निबाह्यौ, तऊ न आयौ बाज—१-९६। (ख) माया सबल धाम-धन-बनिता, बाँध्यौ हौं इहिं साज। देखत सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज १-१०७। बाज करना—रोकना, मना करना। बाज रखना—रोक लेना। बाज रहना—दूर रहना।

प्रत्य०—एक प्रत्यय जो 'रखने', 'खेलने', 'करने' आदि का अर्थ देता है।

वि. [अ. बअज़] कोई कोई या कुछ (लोग)।

क्रि. वि. बिना, बगैर।

संज्ञा पुं. [हिं. बाजी] घोड़ा, तुरंग।

संज्ञा पुं. [सं. वाद्य] (१) बाजा, वाद्य। (२) बाजे का शब्द। (३) बाजा बजाने की रीति। (४) सितार का पहला तार जो लोहे का होता है।

क्रि. अ. [हिं. बजना] बजते हैं। उ.—घर घर ते मिष्ठान्न चले लै भाँति-भाँति बहु बाजन बाज—९२०।

बाजई—क्रि. अ. [हिं. बजना] बजता है। उ.—पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै—१०-१३४।

बाजत—क्रि. अ. [हिं. बजना] बजता है, बाजे से शब्द निकलता है। उ.—महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल—१-१५३।

बाजते—क्रि. अ. [हिं. बजना] (बाजे) बजाकर। (बाजे-गाजे) बजा बजाकर।

मुहा॰ - बाजते नीसान—डंके की चोट पर। उ.—है हरि-भजन को परमान। नीच पावैं ऊँच पदवी, बाजते नीसान - १-२३५।

बाजन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. बाजा] बाजे, वाद्य। उ.—ज्यौं सहगमन सुंदरी कैं सँग, बहु बाजन हैं बाजत—९१३०।

क्रि. अ. [हिं. बजना] (१) बजना, शब्द करना। (२) गरजना।

प्र॰—लागे बाजन—गरजने लगा। उ.—चहुँ दिसि ते दल-बादल उमड़े, सूने लागे बाजन—१० उ०-९६।

बाजना—क्रि. अ. [हिं. बजना] (१) बाजा बजना। (२) लड़ना-झगड़ना। (३) प्रसिद्ध हो जाना। (४) आघात पहुंचना।

वि.—जो (बाजा) बजने में ठीक हो।

क्रि. अ. [सं. व्रज्] सामने उपस्थित हो जाना।

बाजने—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. बाजना] बाजे। उ.—बाजत नगर बाजने जहँ तहँ और बजत घरियार—२५६२।

बाजरा—संज्ञा पुं. [सं. वर्जरी] एक मोटा अनाज।

बाजा—संज्ञा पुं. [सं. वाद्य] वाद्य।

क्रि. अ. [हिं. बजना] बजता है, बाजे से शब्द निकलता है, बाजा बोलता है। उ.—हरि, हौं सब पति-तनि कौ राजा। निंदा पर-मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा—१-१४४।

बाजार—संज्ञा पुं. [फ़ा. बाज़ार] (१) वह स्थान जहाँ सभी चीजें बेचने की दूकानें हों।

मुहा॰—बाजार गर्म होना—खूब बिक्री या लेन-देन होना।

(२) निश्चित वार, तिथि आदि को लगने वाली हाट या पैंठ।

बाजारी, बाजारू—वि. [हिं. बाजार] (१) बाजार संबंधी। (२) मामूली। (३) अशिष्ट।

बाजि—संज्ञा पुं. [सं. वाजिन्] (१) घोड़ा। उ.—बाएँ कर बाजि-बाग दाहिन हैं बैठे—१-२३। (२) बाण। (३) पक्षी।

वि.—चलने वाला।

बाजिहै—क्रि. अ. [हिं. बजना] प्रहार होगा, आघात पड़ेगा, चोट लगेगी। उ.—लादत, जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूड़ दुरैहौ—१-३३१।

बाजी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. बाजी] (१) शर्त, दाँव।

मुहा॰—बाजी मारना—दाँव जीतना। बाजी ले जाना—किसी बात में आगे बढ़ जाना।

(२) खेल। उ.—सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि-फिरि बाजी हारी—१-६०। (३) खेल का दाँव।

संज्ञा पुं. [सं. वाजिन्] घोड़ा।

संज्ञा पुं. [हिं. बाजा] बाजा बजानेवाला।

बाजीगर—संज्ञा पुं. [फ़ा. बाजीगर] जादूगर, ऐंद्रजालिक। उ.—कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरता, नट-बाजीगर जैसे—१-२९३।

बाजीगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाजीगर] जादू का खेल।

बाजु—अव्य॰ [सं. वर्जन] (१) बिना, बगैर। उ.—सूरदास मन रहत कौन बिधि बदन बिलोकनि बाजु—३२३५। (२) सिवा, अतिरिक्त।

बाजू—संज्ञा पुं. [फ़ा. बाज़ू] (१) भुजा, बाँह। (२) 'बाजूबंद' नामक गहना। (३) सेना का कोई पार्श्व। (४) सहायक। (५) पक्षी का पंख।

बाजूबंद—संज्ञा पुं. [हिं. बाजू+फा. बंद] बाँह का एक गहना। उ.—बाहु टाड़ कर कंकन बाजूबँद एते पर तौकी—११२०।

बाजूबीर—संज्ञा पुं. [हिं. बाजू+बीर] बाजूबंद।

बाजैं—क्रि. अ. बहु. [हिं. बजना] बजते हैं। उ.—जाकौं दीनानाथ निवाजैं। भवसागर मैं कबहुँ न झूकै, अभय निसाने बाजैं—१-३६।

बाझन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बझना] (१) फँसने का भाव, फँसावट। (२) उलझन। (३) झंझट। (४) लड़ाई।

बाझना—क्रि. अ. [हिं. बझना] (१) बंधन में पड़ना। (२) फँसना-उलझना। (३) हठ करना।

बाझि—क्रि. अ. [हिं. बाझना] फँसकर, बंधन में पड़कर। उ.—नक बेसरि बंसी के संभ्रम भौंह मीन अकुलात। मनु ताटंक कमठ घूँघट उर जाल बाँझि अकुलात।

बाट—संज्ञा पुं. [सं. वाट=मार्ग] मार्ग, रास्ता। उ.—सीस धरि श्रीकृष्ण लीने चले गोकुल-बाट—१०-५।

मुहा०—बाट करना—मार्ग या रास्ता बनाना। बाट करि—मार्ग बनाकर, रास्ता खोलकर। जीत्यौ जरासंध बाँधि छोरी। जुगल कपाट बिदारि बाटि करि लतनि जही संधि जोरी—१० उ० ५२। बाट जोहना (देखना, निहारना)—प्रतीक्षा करना। बाट पड़ना—(१) मार्ग में तंग करना या पीछे पड़ना। (२) डाका पड़ना, हरण होना। बाट पारना—डाका डालना, हरण करना। बाट लगाना—(१) मार्ग दिखाना। (२) ढंग बताना। (३) मूर्ख बनाना।

यौ०—बाट-घाट—मार्ग और घाट का। उ.—बाहिर तरुन किसोर बयस बर, बाट-घाट का दानी—१०-३११।

संज्ञा पुं. [सं. वटक] तौलने का बटखरा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बटना] रस्सी की ऐंठन या बटन।

बाटिकी—संज्ञा स्त्री. [देश.] बटलोई।

बाटना—क्रि. स. [हिं. बट्टा] पीसना, चूर्ण करना।

क्रि. स. [हिं. बटना] (डोरी आदि) बटना।

बाटि—क्रि. स. [हिं. बाटना] घिसकर, पीसकर। उ.—कुच बिष बाटि लगाय कपट करि बालघातिनी परम सुहाई।

बाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाग, उद्यान।

बाटी—संज्ञा स्त्री. [सं. बटी] (१) अंगारों या उपलों पर सिकी मोटी छोटी रोटी, अंगाकड़ी, लिट्टी। उ.—दूध, बरा, उत्तम दधि बाटी, गाल मसूरी की रुचि न्यारी—१०-२२७। (२) गोली।

संज्ञा. स्त्री. [सं. वर्तुल] तसला।

बाटे—संज्ञा पुं. [हिं. बाँट] भाग, हिस्सा। उ.—गुरुजन तेउ इहाँ इनि त्यागी मेरे बाटे परयौ जँजाल—पृ. ३२९ (८४)।

बाड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाढ़] (१) वृद्धि, (२) जोर।

संज्ञा स्त्री. [देश.] 'टाड़' नामक गहना।

बाड़व—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र की आग।

बाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. वाट] (१) चारो ओर से घिरा स्थान। (२) पशुशाला।

बाड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. वारी] बाटिका, उपवन।

बाढ़—संज्ञा स्त्री. [हिं. बढ़ना] (१) वृद्धि, अधिकता। (२) अधिक वर्षा आदि से नदी का पानी बढ़ना। (३) लाभ। (४) बंदूक, तोप आदि छूटना।

बाढ़ई—संज्ञा पुं. [हिं. बढ़ई] लकड़ी का काम करनेवाला, बढ़ई। उ.—कन्हैया हालरु रे। गढ़ि-गुढ़ि ल्यायौ बाढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे। ....। इक लख माँगै बाढ़ई, दुइ लख नंद जु देहिं, बलि हालरु रे—१०-४७।

बाढ़ना—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] वृद्धि होना, बढ़ना।

बाढ़ाली—संज्ञा स्त्री. [हिं.] खड्ग, तलवार।

बाढ़ि, बाढ़ी—क्रि. [हिं. बढ़ना] बढ़ गयी, वृद्धि को प्राप्त हुई। उ.—(क) कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ—१-२६६। (ख) नैननि न बिचारि परत देखत रुचि बाढ़ी—१०-२०१।

वि०—बढ़ी-चढ़ी।

मुहा०—घर की बाढ़ी—घर ही में बढ़ चढ़ कर बातें करने वाली। उ.—ग्वालिनि है घर ही की बाढ़ी—७७४।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाढ़] (१) वृद्धि। (२) लाभ।

बाढ़ीवान—वि. [हिं बाढ़] शस्त्र पर शान रखनेवाला।

बाढ़े—वि. [हिं. बढ़ना] बढ़े-चढ़े।

मुहा०—घर के बाढ़े—घर ही में लंबी-चौड़ी हाँकने वाले। उ.—(क) घर के बाढ़े रावरे बातैं कहत बनाइ—११२९। (ख) अब जाने घर के बाढ़े हौ तुम ऐसे कहा रहे मुरझाई—२२६१।

बाढ़ै—क्रि. स. [हिं. बढ़ना] बढ़े, वृद्धि को प्राप्त हो। उ.—जाके पूजे बाढ़ै गोधन—१०१५।

बाढ़यौ—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] (१) बढ़ा, वृद्धि को प्राप्त हुआ। (२) फैल गया, व्यापक हुआ। उ.—गावत गुन सूरदास, बाढ़यौ जस भुव-अकास, नाचत त्रैलोक-

नाथ माखन के काजै—१०·१४६ ।

बाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीर, सायक । (२) गाय का थन । (३) लक्ष्य । (४) पाँच की संख्या । (५) राजा बलि का पुत्र जिसकी पुत्री अनिरुद्ध को ब्याही थी । (६) संस्कृत का एक प्रसिद्ध कवि ।

वाणिज्य—संज्ञा पुं. [सं.] व्यापार ।

बात—संज्ञा स्त्री, [सं. वार्ता] (१) बचन, कथन, बोल ।

मुहा०—बात को आँचल (गाँठ) में बाँधना सदैव ध्यान रखना । बात उठाना—(१) कड़ी बातें सह लेना । (२) वचन का निर्वाह करना । (३) वचन न मानना । बात उलटना—(१) बात का जवाब देना । (२) कहकर फिर बदल जाना । बात कहते—तुरंत, तत्काल । बात कह न पाना—(१) प्रभुता, महत्ता आदि से इतना अभिभूत होना कि कुछ कह न पाना । उ.—सूर देखि वा प्रभुता उनकी कहि न आवै बात—२७८० । (२) इतना सरल या भोला होना कि बात का जवाब भी न दे पाना । (३) इतना मूर्ख होना कि उत्तर भी न दे पाना । बात करना—(१) किसी के बोलते समय बीच ही में बोल उठना । (२) आरोप या कथन का खंडन करना । बात के टेकी—वचन का निर्वाह करनेवाला । उ.—एतो अलि उनहीं के संगी अपनि बात के टेकी—३२८८ । बात कान में पड़ना—सुनना । बात की बात में—तुरंत, तत्काल । बात खाली जाना—कथन का माना न जाना । बात गढ़ना—झूठी बात कहना । बात गढ़त—झूठी बात कहता है । उ.—झूठैं कहत स्याम अंग सुन्दर बात (बातैं) गढ़त बनावत । बात घूँटना या पीना (घूँट या पी जाना)—(१) बात सुनकर भी ध्यान न देना । (२) अनुचित बात सुनकर भी उत्तर न देना । बात चबा जाना—कहते-कहते रुक जाना या दूसरे ढंग से कहने लगना । (मन में) बात जमना (बैठना)—कथन सत्य जान पड़ना । (मन में) बात जमाना (बैठाना)—निश्चय कराना कि कथन सत्य ही है । बात टालना—(१) पूछी हुई बात का उत्तर न देकर और बातें करने लगना । (२) कही हुई बात के अनुसार कार्य न करना । बात टूटना—पूरा वाक्य न बोल पाना । उ.—सीत-बात कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात · १-३१३ । बातें दुहराना—बात का उलटकर जवाब देना । बात न पूछना—बहुत तुच्छ समझकर बात तक न करना । बात न करना—घमंड के मारे न बोलना । बात नीचे डालना—(१) अपनी बात का खंडन होने देना । (२) दूसरे की बात का खंडन करना । बात पकड़ना—(१) बात या कथन में दोष निकालकर कायल करना । (२) तर्क-कुतर्क करना । (किसी की बात पर जाना—(१) कथन का बुरा-भला मानना । (२) कथन के अनुसार चलना । बात पलटना (बदलना) - एक बात कहकर फिर कुछ और कहना । बात पूछना—(१) सुख-सुविधा का ध्यान रखना । (२) आदर-सत्कार करना । बात पुछातौ—ध्यान नहीं देता, परवाह नहीं करता । उ.—जग में जीवित ही को नातौ । मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ—१-३०२ । न पूछै बात—जरा भी ध्यान नहीं देता । उ.—मीन बियोग न सहि सकै, नीर न पूछै बात—१-३२५ । बात फूटना—बोलना, कहना । बात फेंकना—ताना मारना । बात फेरना—कही हुई बात को पूरा न करके कुछ और तात्पर्य समझना । बात बढ़ना—वाद-विवाद हो जाना । बात बढ़ाना—वाद-विवाद करना । बड़ी बात—अनुचित या अनुपयुक्त कथन । उ. छोटैं मुँह बड़ी बात कहत, अबहीं मरि जैहै—५८९ । बात बनाना—(१) झूठी-सच्ची बातें गढ़ना, हीला-हवाला करना । (२) व्यर्थ की बातें बकना । (३) चापलूसी या खुशामद करना । (४) डींग हाँकना । बात बनावन कौं है नीकौ खूब झूठी-सच्ची बातें गढ़ता है, झूठ बोलने में बहुत कुशल है । उ.—बात बनावन कौं है नीकौ, बचन-रचन समुझावै—१-१८६ । बात बनाइ—झूठ बोलकर । उ.—कोई कहै बात बनाई पचासक उनकी बात जो एक—३३६४ । बात बनाई—झूठ बोली । उ.—सूर स्याम मन हर्‌यौ तुम्हारौ हम जानी इह बात बनाई—११८६ । बहुत बनावत बात—खूब झूठ-सच बोलते हो । उ.—तुम जो राजनीति सब जानत बहुत बनावत बात । बात बात में—(१) प्रत्येक कथन में । (२) हर बार । बात

मारना— ताना मारना । बात में बात निकालना—व्यर्थ के दोष दिखाना । (किसी की) बात रखना —(१) कहा मान लेना । (२) इच्छा पूरी कर देना । (अपनी) बात रखना—(१) जैसा कहा हो, वैसा ही करना । (२) हठ पकड़ना । बात लगना—किसी की बात का बुरा मानना । बात लगाना —(१) निंदा करना । (२) अनुचित बात का बुरा मानकर चिंतित या दुखी रहना । बात (बातें) छाँटना (बघारना)—(१) बहुत बोलना । (२) बहुत बढ़-बढ़कर बोलना । (३) डींग हाँकना । बात (बातें) मिलाना— 'हाँ' में 'हाँ' मिलाना, समर्थन करना, चाटुकारी करना । सीधे बात न कहना— गर्व या अभिमान का व्यवहार करना । सूधैं कहत न बात – गर्व या अभिमान के कारण सज्जनता से बोलता भी नहीं । उ.– हौं बड़ हौं बड़ बहुत कहावत सूधैं कहत न बात— २-२२ । बात (बातें) सुनना— अनुचित कथन भी सहन करना । बातें सुनाना – भला-बुरा कहना । बात में आना—दूसरे के कथन पर विश्वास कर लेना । बात (बातों) की झड़ी बाँधना—बराबर बोलते जाना । बात (बातों) का धनी— जो केवल बातें बनाने में ही कुशल हो, करे-धरे कुछ नहीं । बात (बातों) पर जाना—(१) बात पर ध्यान देना । (२) कहने के अनुसार चलना । बात (बातों) में उड़ाना—(१) हँसी में ही टाल देना । (२) बहानेबाजी करना । बात (बातों) में फुसलाना (बहलाना, समझाना)—खाली बातों से ही संतुष्ट कर देना । बात (बातों) में लगाना – दूसरी ओर से ध्यान हटाने के लिए रुचिकर प्रसंग छेड़कर बातें करने लगना ।

(२) चर्चा, प्रसंग, विषय, जिक्र ।

मुहा०—बात आना (उठना, चलना छिड़ना)—चर्चा चलाना । बात उठाना (चलाना, छोड़ना)—चर्चा चलना । बात उठावति—चर्चा चलाती है । उ.—अब समझी मैं बात सबनि की झूठे ही यह बात उठावति—१२५० । बात चलावत – चर्चा करते हैं । उ.—फिरि फिरि नृपति चलावत बात । कहौ सुमंत कहाँ तैं पलटे प्रान जिवन कैसे बन जात—९-३८ । (किसी की) बात चलाना—(किसी का) दृष्टांत या उदाहरण देना । बात चालना — चर्चा चलाना । बातैं चाली—चर्चा छेड़ी । उ.—ऊधौ, कत ये बातैं चालीं । कछु मीठी कछु मधुरी हरि की, ते उर-अंतर साली—३८२३ । बात पड़ना—प्रसंग छिड़ जाना । बात फेरना - चालू विषय को किसी कारण से समाप्त करके नया प्रसंग छेड़ना । बात मुँह पर लाना—चर्चा या प्रसंग छेड़ बैठना ।

(३) प्रसिद्ध या प्रचलित प्रसंग, किंवदंती, प्रवाद ।

मुहा०—बात उड़ना—किसी बात का प्रसिद्ध हो जाना । बात उड़ी है—चर्चा फैल गयी है । उ.—झूठी ही यह बात उड़ी है, राधा कान्ह कहत नर-नारी । (किसी पर) बात आना—किसी को दोष या कलंक लगना । बात फैलना (बहना)—किसी विषय का प्रसिद्ध हो जाना । बात बहानी—चारों ओर चर्चा फैल गयी है । उ.—जो हम सुनति रहीं सो नाहीं । ऐसी ही यह बात बहानी । बात फैलाना (बहाना)—किसी विषय को सब पर प्रकट कर देना । (किसी पर) बात रखना (लगाना, लाना)—किसी पर दोष या कलंक लगाना ।

(४) मामला, हाल, वस्तुस्थिति ।

मुहा०—बात का बतंगड़ करना—(१) छोटी सी बात को खूब बढ़ा-चढ़ाकर कहना । (२) छोटी सी घटना को व्यर्थ ही बहुत पेचीदा बना देना । बात ठहरना— मामला तय हो जाना । बात पर धूल डालना— किसी घटना या झगड़े को भुलाने का यत्न करना । बात बढ़ना—जरा सी घटना या प्रसंग का झगड़े का रूप लेना । बात बढ़ाना—मामूली बात पर झगड़ा कर बैठना । बात बनना (सँवरना) (१) काम सिद्ध होना । (२) संयोग या घटना का अनुकूल होना । बात बनाना (सँवारना)—(१) काम सिद्ध करना । (२) संयोग या परिस्थिति को अनुकूल करना । बात-बात पर (में)—हर काम में । बात बिगड़ना—काम चौपट हो जाना, असफलता मिलना । बात बिगाड़ना—काम चौपट करना, असफल करना ।

(५) स्थिति, दशा, प्राप्त संयोग । (६) संदेश,

संदेशा। उ.—ऊधो, हरि सों कहियौ बात। (७) वार्तालाप, संलाप, कथोपकथन। (८) संबंध आदि निश्चित करने का वार्तालाप।

मुहा०—बात ठहरना—संबंध का निश्चित होना। बात लगाना—संबंध का प्रस्ताव करना। बात लाना—विवाह का प्रस्ताव लाना।

(९) छल-कपट का व्यवहार।

मुहा०—बात में आना—छल-कपट का व्यवहार न समझकर धोखा खा जाना।

(१०) झूठ या बनावटी वचन, बहाना। (११) बचन, निश्चय, प्रतिज्ञा, वादा।

मुहा०—बात का धनी (पक्का, पूरा)—दृढ़निश्चयी, दृढ़प्रतिज्ञ। बात का कच्चा (हेठा)—बात का निर्वाह न करनेवाला। बात पक्की करना—परस्पर दृढ़ निश्चय करना। बात पक्की होना—दृढ़ निश्चय होना। (अपनी) बात रखना—अपना निश्चय या वचन पूरा करना। बात हारना—वचन देना, प्रण करना।

(१२) वचन का विश्वास या उसकी प्रतीति।

मुहा०—बात जाना—विश्वास न रह जाना। बात खोना—विश्वास खोना। बात बनी रहना—विश्वास बना रहना। बात हेठी होना—विश्वास न रह जाना।

(१३) मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा।

मुहा०—बात खोना—मान-मर्यादा नष्ट कर देना। बात जाना—मान-मर्यादा नष्ट हो जाना। बात बनना—मान-मर्यादा बनी रहना। बात बना लेना—मान-मर्यादा प्रतिष्ठित कर लेना। बात बिगड़ना—मान-मर्यादा न रह जाना। बात बिगाड़ना—मान-मर्यादा नष्ट कर देना। बात रखना (रख लेना)—मान-मर्यादा की रक्षा कर लेना। बात रहना (रह जाना)—मान-मर्यादा बनी रह जाना।

(१४) गुण, योग्यता, स्थिति संबंधी कथन। (१५) उपदेश, शिक्षा, सीख। (१६) रहस्य, गुप्त भेद।

मुहा०—बात खुलना (फूटना)—भेद ज्ञात होना।

(१७) प्रशंसा-योग्य विषय। (१८) चमत्कार पूर्ण उक्ति। (१९) गूढ़ उद्देश्य या अर्थ। (२०) विशेषता, खूबी। (२१ ढंग। (२२) समस्या, प्रश्न। (२३) आशय, विचार। (२४) इच्छा कामना। (२५) कार्य, व्यवहार। (२६) संबंध। (२७) लक्षण, प्रकृति। (२८) पदार्थ, वस्तु। (२९) दाम, मोल। (३०) कर्तव्य, उपयुक्त उपाय।

बातचीत—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात + चिंतन] वार्तालाप।

बातनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. बात] अनेक बातें।

मुहा०—सौ बातनि की एक बात—सारे वाद-विवाद या वार्तालाप का सारांश या तात्पर्य केवल इतना ही है। उ.—(क) सौ बातनि की एकै बात। सूर सुमिरि हरि-हरि दिन रात—२-५। (ख) सौ बातनि की एकै बात। सब तजि भजौ जानकीनाथ—७-२। बातनि हीं—बातों-बातों में, अनायास। उ.—अजामील बातनि हीं तार्‍यौ हुतौ जु मोतैं आधौ—१-१३९।

बाता—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात] (१) समस्या। उ.—धाए गजराज-काज, केतिक यह बाता—१-१२३। (२) कथन। उ.—धृग तव जन्म जियन धृग तेरौ, कही कपट मुख बाता—९-४९।

बाती—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्ती] (१) बटी हुई रुई या कपड़ा। (२) कपड़े या रुई की बटी हुई सलाई के आकार की बत्ती जो दीपक में जलाने के काम आती है, बत्ती। उ.—हरि जू की आरती बनी।......। मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी—२-२८।

बातुल—वि. [सं. वातुल] पागल, सनकी, बौड़म।

बातूनिया, बातूनी—वि. [हिं. बात + ऊनी] बकवादी।

बातैं—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. बात] (१) कथन, बोल।

मुहा०—बातैं न पूछना—खोज-खबर न लेना। न पूछी बातैं—खोज-खबर तक न ली। उ.—ज्यों मधुकर अंबुज रस चाख्यो बहुरि न पूछी बातैं आइ—३०५३। बातैं बनाना—झूठी-सच्ची बातें करना। कहा बनावत बातैं—क्यों झूठी-सच्ची बातें करते हो। उ.—फिरि-फिरि कहा बनावत बातैं—३१२१। बातैं मिलाना—प्रसन्न करने के लिए सुहाती बातें करना। बातैं मिलवति जोरि—प्रसन्न करने के लिए सुहाती

बातें गढ़गढ़ कर कहता है। उ.—मैं जानति उनके ढँग नीके बातैं मिलवति जोरि—८६७।

(२) चर्चा, प्रसंग, जिक्र।

मुहा०—बात चलाना—नया प्रसंग या विषय छेड़ना, चर्चा चलाना। बातैं चालीं—चर्चा छेड़ी। उ.—ऊधौ, कत ये बात चालीं। कछु मीठी कछु करुई हरि की अन्तर में सब साली—३८२३।

बातौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बात] कथन, वचन। उ.—कहत अलि तेरे मुख बातौ—३३१९।

बाद—संज्ञा पुं. [सं. वाद] (१) तर्क, बहस। उ.—कहा एतौ बाद ठानै देखि गोपी भोग—३१२६। (२) हुज्जत, विवाद, तर्क-कुतर्क। उ.—बाद करति अबही रोवहुगी बार-बार कहि दई दई—१०४७।

(३) शर्त, बाजी।

यौ.—वाद-विवाद—तर्क-वितर्क। उ.—मिथ्या बाद-विवाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध-मद-लोभहिं परिहरि—१-३१२।

मुहा०—बाद मेलना—शर्त बदना।

अव्य.—व्यर्थ, बिना मतलब।

अव्य.—[अ.] पीछे, अनंतर, पश्चात्।

वि.—(१) छोड़ा या अलग किया हुआ। (२) छूट, कमीशन। (३) अतिरिक्त।

प्रत्य० [सं. वाद] तत्व या सिद्धांत। उ.—मिथ्यावाद उपाधि रहित ह्वै बिमल-बिमल जस गावत—१-३६०।

बादत—क्रि. अ. [हिं. बादना] ललकारता है। उ.—बादत बड़े सूर की नाईं अबहीं लेत हौं प्रान।

बादति—क्रि. अ. [हिं. बादना] बहस करती है। उ.—बादति है बिनु काज ही बृथा बढ़ावति रारि—५८९।

बादना—क्रि. अ. [सं. वाद] (१) बकवाद करना। (२) बहस या हुज्जत करना। (३) ललकारना।

बादबान—संज्ञा पुं [फा.] (जहाज का) पाल।

बादर—संज्ञा पुं. [सं. वारिद, विपर्यय से 'बादरि'] बादल, मेघ। उ.—(क) बादर-छाँह, धूम-धौराहर, जैसे थिर न रहाहीं—१-३१९। (ख) और सकल मैं देखे-ढूंढ़े, बादर की सी छाहीं—१-३२३।

वि. [देश.] प्रसन्न, हर्षित।

बादरायण—संज्ञा पुं. [सं.] वेदव्यास का एक नाम।

बादरिया, बादरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बदली] बदली।

बादल—संज्ञा पुं. [हिं. बादर] (१) मेघ, घन।

मुहा०—बादल उठना (घिरना, चढ़ना)—घटा घिरना। बादल गरजना—मेघों का शब्द होना। बादल छँटना (फटना)—घटा का घिरा न रह जाना, मेघों का छितर-बितर हो जाना। बादल (बादलों) से बात करना—बहुत ऊँचा होना।

बादला—संज्ञा पुं. [?] सोने-चाँदी का तार।

बादली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बदली] बदली।

बादशाह—संज्ञा पुं. [फा.] (१) शासक, राजा। (२) सरदार। (३) मनमौजी। (४) शतरंज का एक मोहरा। (५) ताश का एक पत्ता।

बादाम—संज्ञा पुं. [फा.] एक सूखा मेवा।

बादामी—वि. [हिं. बादाम] बादाम के रंग-रूप का।

संज्ञा पुं.—बादाम के रंग का घोड़ा।

बादि—अव्य. [सं. वादि, हिं. वादि = हठ करके] व्यर्थ, निष्फल, निष्प्रयोजन। उ.—(क) माया-मद मैं मत्त, कत जनम बादि ही हारै—१-६३। (ख) छिन न चितत चरन अंबुज, बादि जीवन जाइ—१-३१५। (ग) बादि अभिमान जनि करौ कोई—८-१०।

बादित—वि. [सं. वादन] बजाया हुआ।

बादिहिं—क्रि. वि. [सं. वाद = व्यर्थ] व्यर्थ, वृथा। उ.—जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ—१-१५५।

बादी—वि. [फ़ा.] (१) वायु-संबंधी। (२) वायु-विकार-संबंधी। (३) वायु को विवश करनेवाला।

संज्ञा स्त्री.—शरीर की वायु का विकार।

संज्ञा पुं. [सं. वादिन्, वादी] (१) अभियोग लगानेवाला। (२) शत्रु। (३) राग का प्रधान स्वर।

बादुर—संज्ञा पुं. [देश.] चमगादड़।

बाध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रुकावट, अड़चन। (२) कष्ट। (३) कठिनता। (४) अर्थ का ठीक न बैठना।

बाधक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाधा डालनेवाला। (२) हानिकारक।

बाधकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अड़चन। (२) कठिनता।

बाधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **विघ्न डालना । (२) कष्ट देना ।**

बाधना—क्रि. स. [सं. बाध] **विघ्न-बाधा डालना ।**

बाधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **रुकावट, अड़चन, विघ्न ।** उ.—चितैबौ छाँड़ि दै री राधा । हिलि-मिलि खेलि स्याम सुंदर सौं, करति काम कौ बाधा—७२१ । (२) **कष्ट, दुख ।** (३) **भय, आशंका ।** उ.—आजु ही प्रात इक चरित देख्यो नयो तबहिंतें मोहिं यह भई बाधा ।

बाधित—वि. [सं.] (१) **जिसके कार्य या साधन में बाधा पड़ी हो ।** (२) **असंगत ।** (३) **प्रभावहीन, ग्रस्त ।**

बाधी—वि. [सं. बाधिन्] **बाधा डालनेवाला ।**

बाधो—संज्ञा पुं. [हिं. बाधा] **अड़चन, रुकावट ।** उ.—मिलि ही में बिपरीत करी बिधि होत दरस को बाधो—२७५८ ।

बाध्य—वि. [सं.] **रोका या दबाया जानेवाला, विवश ।**

बान—संज्ञा पुं. [सं. बाण] (१) **बाण, तीर ।** उ.—अचरज कहा पार्थ जौ बेधैं, तीन लोक इक बान—१-२६९ । (२) **एक तरह की आतशबाजी ।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बनना] (१) **सजधज ।** (२) **टेव, आदत ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. वर्ण] **रंग, आब, कांति ।**

वि.—**कांतियुक्त, तेजपूर्ण ।**

संज्ञा पुं. [सं. बाण] **बाणासुर ।** उ.—रुद्र भगवान अरु बान सांबुक भिरे कुंभाउ माँड़ी लराई - १० उ० —३५ ।

बानइत—वि. [हिं. बानैत] **बाना चलानेवाला ।**

वि. [हिं. बाण] (१) **बाण चलानेवाला ।** (२) **वीर, योद्धा ।** (३) **पैदल सिपाही ।**

बानक—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनाना] **वेष, सजधज ।** उ.—(क) या छबि की पटतर दीबे कौं सुकबि कहा टकटोहै ? देखत अंग-अंग-प्रति बानक, कोटि मदन-मन छोहै —१०-१५८ । (ख) तुमहीं देखि लेहु अँग बानक एते पर क्यौं सही परै—२०१७ । (ग) एक बयक्रम एकहिं बानक रूप-गुन की सींव—२०७२ । (घ) आयु बिषमता तजि दोऊ सम भ बानक ललित त्रिभंग—३३२७ ।

बानगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बयाना] **माल का नमूना ।**

बानत—क्रि. स. [हिं. बाना] **किसी बात का निश्चय करता या ठानता है ।** उ.—मेरे हृदय नाहिं आवत हौ, हे गुपाल, हौं इतनी जानत । कपटी, कृपन, कुचील, कुदरसन, दिन उठि बिसय-बासना बानत—१-२१७ ।

बानना—क्रि. स. [हिं. बाना] (१) **किसी बात का बाना धारण करना ।** (२) **कोई बात ठानना ।**

बानर—संज्ञा पुं. [सं. वानर] **बंदर ।**

बाना—संज्ञा पुं. [हिं. बनाना] (१) **पोशाक, पहनावा, वेश ।** उ.—माला-तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै—६-६ । (२) **रीति, पद्धति, ढंग ।**

संज्ञा पुं. [सं. बाण] **एक हथियार ।**

संज्ञा पुं. [सं. वयन = बुनना] (१) **बुनावट ।** (२) (२) **बुनावट का तागा जो आड़े ताने में भरा जाता है, भरनी ।**

क्रि. [सं. व्यापन] **फैलाना, प्रसारित करना ।**

मुहा०—(किसी वस्तु के लिए) मुँह बाना—**उसे प्राप्त करने की इच्छा होना ।**

बानावरी—संज्ञा स्त्री, [हिं. बाण + फ़ा. प्रत्य. आवरी] **बाण चलाने की विद्या या रीति ।**

बानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बनना] (१) **टेव, आदत, स्वभाव ।** उ.—(क) निरखि पतंग बानि नहिं छाँड़त, जदपि जोति तनु तावत—१-२१० । (ख) सबै जोरि राखति हित तुम्हरैं मैं जानति तुम बानि—४९४ । (ग) इहै करिहौं और तजिहौं परी ऐसी बानि—८९५ । (घ) सूपनखा ताड़का सँहारी स्याम सहज यह बानि । (२) **बनावट, सजधज ।** उ.—वा पट पीत की फहरानि । कर धरि चक्र चरन की धावनि नहिं बिसरति वह बानि—१-२७६ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. वर्ण] **आभा, कांति, चमक ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. वाणी] **वचन, वाणी ।** उ.—करति कछू न कानि, बकति है कटु बानि निपट निलज बैन बिलख हूँ ।

बानिक—संज्ञा स्त्री. [हिं. बानक] **बनाव-सिंगार, सजधज ।**

बानिज—संज्ञा पुं. [सं. वाणिज्य] **व्यापार, व्यवसाय ।**

बानिया—संज्ञा स्त्री. [सं. वणिक्] **वैश्य, बनिया ।**

बानी—संज्ञा स्त्री. [सं. वाणी] (१) **वचन, शब्द।** उ.—(क) जित देखति तित कोऊ नाहीं, टेरि कहति मृदु बानी—१-२५०। (ख) गर्ग कही यह बानी—१०-२५६। (२) **मनौती, प्रतिज्ञा।** (३) **सरस्वती।** (४) **उपदेश, शिक्षा।**

संज्ञा पुं. [सं. वणिक्] **बनिया।**

संज्ञा स्त्री. [सं. वर्ण] **आभा, कांति, चमक।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बान, बानि] **स्वभाव, आदत, टेव।** उ.—(क) मथति नंद-गृह सहस मथानी। ताकैं सुत चोरी की बानी—३९। (ख) यह नहिं भली तुम्हारी बानी—१००१।

बाने—संज्ञा पुं. [हिं. बाना] (१) **अंगीकृत या ठानी हुई रीति या चाल।** उ.—(क) जानिहौं अब बाने की बात। मोसौं पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ बदिहौं निज तात—१-१७९। (ख) असुर-सँहारन, भक्तनि-तारन, पावन पतित कहावत बाने—३८०। (२) **बनाव-सिंगार, वेश, सजधज।** उ.—अंग-अंग सब सुभट सहायक बने बिबिध भूषन बाने बर—१९०६।

बानैं—संज्ञा पुं. [हिं. बाना] (१) **पहनावा, भेस।** (२) **रूप।** उ.—इनके गुन कैसैं कोउ जानैं। औरै करत और धरि बानैं—७९९।

बानैत—संज्ञा पुं. [हिं. बान + ऐत (प्रत्य.)] (१) **'बाना' नामक हथियार फेरनेवाला।** (२) **तीर चलानेवाला।** (३) **योद्धा, सैनिक, वीर।** उ.—(क) बाजि मनोरथ, गर्ब मत्त गज, असत-कुमत रथ-सूत। पायक मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्टमति दूत—१-१४१। (ख) जहाँ बरन बरन बादर बानैत अरु दामिनि करि करि बार—१० उ०-२।

संज्ञा पुं. [हिं. बाना] **वेश बनानेवाला।**

बानो, बानौ—संज्ञा पुं. [हिं. बाना] **अंगीकृत धर्म, रीति या स्वभाव।** उ.—(क) राम भक्त-बत्सल निज बानौ। जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं रंक होय कै रानौ—१-११। (ख) भक्तबछल बानौ है मेरौ, बिरुदहिं कहा लजाऊँ—१०-४।

बाप—संज्ञा पुं. [सं. वाप = बीज बोनेवाला] **पिता, जनक।** उ.—(क) बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माय न बाप—१०-२१४। (ख) बड़े बाप के पूत कहावत, हम वै बसत इक बगरी—१०-३१९।

मुहा० — बाप-दादा—**पूर्वज।** बाप तक जाना—**माँ-बाप को गाली देना।** बाप बनाना—(१) **आदर करना।** (१) **चापलूसी करना।** बाप-माँ—**पालक, रक्षक।**

बापिका—संज्ञा स्त्री. [सं. वापिका] **बड़ा चौड़ा कुआँ या जलाशय, बापी, बावली।** उ.—नैन कमल-दल बिसाल, प्रीति-बापिका-मराल, मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे—१०-२०५।

बापी—संज्ञा पुं. [सं. वापी] **छोटा जलाशय, बावली।** उ.—सागर-सूर बिकार भरयौ जल, बधिक अजामिल बापी—१-१४०।

बापु—संज्ञा पुं. [हिं. बाप] **पिता।**

बापुरा—वि. [सं. बर्बर] (१) **तुच्छ, नगण्य।** (२) **दीन, असहाय, बेचारा।**

बापुरी—वि. स्त्री. [हिं. बापुरा] **दीन, असहाय।** उ.—वै जलहर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे—१० उ०-८३।

बापुरे—वि पुं. [हिं. बापुरा] **दीन, असहाय।** उ.—देखौ प्रीति बापुरे पसु की आन जनम मानत नहिं हारि—१८८६।

बापू—संज्ञा पुं. [हिं. बाप] **पिता।**

बाफता—संज्ञा पुं. [फा. बाफ़ता] **एक रेशमी कपड़ा।**

बाबत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) **संबंध।** (२) **विषय।**

बाबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बबर = सिंह] **जुल्फ, पट्टा।**

बाबा—संज्ञा पुं. [तु.] (१) **पिता।** उ.—(क) कहन लागे मोहन मैया-मैया। नंद महर सौं बाबा बाबा, अरु हलधर सौं भैया—१०-१५५। (ख) मोसौं कहौ बात बाबा यह, बहुत करत तुम सोच-बिचार—५३०। (२) **दादा, पितामह।** (३) **साधु के लिए आदरसूचक संबोधन।** (४) **बूढ़ा व्यक्ति।** (५) **बच्चों के लिए प्यार का संबोधन या शब्द।**

बाबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाबा] **संन्यासिनी।**

बाबुल—संज्ञा पुं. [हिं. बाबा] (१) **बाबा।** (२) **बाबू।**

बाबू—संज्ञा पुं. [हिं. बापू] (१) **'पिता' के लिए संबोधन।**

(२) आदरसूचक संबोधन। (३) 'छैला' बने घूमने वाले लापरवाह व्यक्ति के लिए संबोधन (व्यंग्य)।

बाभन—संज्ञा पुं. [सं. ब्राह्मण] ब्राह्मण।

बाम—वि. [सं. वाम] बायाँ, दाहने का उलटा। उ.—बाम कर सौं पकरि, गरुड़ पर राखि हरि, छीर कैं जलधि तट धरयौ ल्याई—८-८।

संज्ञा स्त्री. [सं. वामा] (१) पत्नी, भार्या। उ.—गंगा तट आए श्री राम। तहाँ पषान रूप पग परसे, गौतम रिषि की बाम—६-२०। (२) स्त्री, नारी। उ.—तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सकल सुर-धाम। सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए, पंथ चलत नर-बाम—९-४४। (३) कान का एक गहना।

संज्ञा पुं. [फा.] (१) कोठा, अटारी। (२) ऊपरी छत। (३) साढ़े तीन हाथ का मान।

बामन—संज्ञा पुं. [सं. वामन] (१) विष्णु का पाँचवाँ अवतार जो उन्होंने राजा बलि को छलने के लिए लिया था। (२) ब्राह्मण।

वि.—बौना, नाटा, छोटा।

बामा—संज्ञा स्त्री. [सं. वामा] (१) पत्नी। (२) नारी।

बामी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँबी] दीमकों के रहने का मिट्टी का भीटा, बँबीठा। उ.—बामी ताकौं लियौ छिपाइ। तासौं रिषि नहिं देइ दिखाइ—९-३।

बाह्मन—संज्ञा पुं. [सं. ब्राह्मण] ब्राह्मण।

बायँ—वि. [सं. वाम] (१) बायाँ। (२) चूका हुआ।

मुहा०—बायँ देना—(१) बचा जाना। (२) ध्यान न देना। (३) चक्कर देना।

बाय—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु] (१) हवा, बायु। (२) वायु-विकार, बाई।

संज्ञा स्त्री. [सं. वापी] बावली, वापिका।

बायक—संज्ञा पुं. [सं.] कहने-बाँचनेवाला।

बायन—संज्ञा पुं. [सं. वायन] भेंट, उपहार।

संज्ञा पुं. [अ. बयाना] पेशगी, अगाऊ।

मुहा०—बायन देना—छेड़-कुछेड़ करना, छेड़ना।

बायबिडंग—संज्ञा पुं. [सं. बिडंग] एक औषध।

बायब—संज्ञा पुं. [सं. वायव्य] वायव्य (कोण)।

बायबी—वि. [सं. वायवीय] (१) अज्ञात। (२) नवागत।

बायस—संज्ञा पुं. [सं. वायस] काग, कौआ।

बायाँ—वि. [सं. वाम] (१) 'दाहना' का उलटा।

मुहा०—बायाँ देना—(१) बचा जाना। (२) छोड़ना, त्यागना। बायाँ पैर पूजना—बचने के लिए हार मान लेना।

(२) जो सीधा न हो, उलटा। (३) प्रतिकूल, विरुद्ध।

बायु—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु] पवन, हवा।

बायें—क्रि. वि. [हिं. बायाँ] (१) बायीं दिशा में। (२) विपरीत, विरुद्ध।

मुहा०—बायें होना—(१) रुष्ट होना। (२) विरुद्ध होना।

बायौ—क्रि. स. [हिं. बाना] बाया, फैलाया, विस्तृत किया। उ.—ब्यास-नारि तबहीं मुख बायौ। तब तनु तजि मुख माहिं समायौ—१-२२६।

बारंबार, बारंबारी—क्रि. वि. [सं. वारंवार, हिं. बारंबार] बार-बार, पुनः-पुनः। उ.—सती सदा मम आज्ञा-कारी। कहति जो या विधि बारंबारी। दीखति है कछु होवनहारी—४-५।

बार—संज्ञा स्त्री. [सं. वार] (१) काल, समय। (२) विलंब, देर। उ.—(क) घटै पल-पल, बढ़ै छिन-छिन, जात लागि न बार—१-८८। (ख) आवौ बेगि न लावौ बार-४-५। (ग) बान-बृष्टि-सोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार—९-१२४। (घ) भए भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट-चीर—९-१५८। (३) दफा, मरतबा। उ.—अबकी बार मनुष्य-देह धरि कियौ न कछू उपाइ—१-१५५।

मुहा०—बार-बार—फिर-फिर, पुनः-पुनः।

संज्ञा पुं. [सं. वार] (१) द्वार, दरवाजा। उ.—बंदी-सूत अति करत कुतूहल बार—१०-२७।

यौ.—गृह बार—घर-द्वार, बासस्थान, गृहस्थी। उ.—मिथ्या तनु कौ मोह बिसार। जाहु रही भावै गृह-बार—३-१३।

(२) आश्रम, ठिकाना। (३) दरबार।

संज्ञा पुं. [हिं. बाड़] (१) चारो ओर का घेरा। (२) किनारा, छोर। (३) धार, बाढ़।

संज्ञा पुं. [हिं. बाल] केश, बाल। उ.—(क) उर

बघनहाँ, कंठ कठुला, झंडूले बार—१०-१५१। (ख) बड़े बार सीमंत सीस के प्रेम सहित निरुवारति—७०४। (ग) सोहैं घूँघरवारे बार—पृ. ३१५ (५०)।

मुहा०—बार खसना—बाल बाँका होना, कष्ट मिलना, अनिष्ट होना। जिनि बार खसै या बार खसो मत—जरा भी कष्ट या अनिष्ट न हो। उ.—(क) सूर असीस जाइ देहौं जिनि न्हातहु बार खसैं—२७०२। (ख) हम दिन देति असीस प्रात उठि बार खसो मत न्हातैं—३०२४।

संज्ञा पुं. [फा.] भार, बोझ। उ.—जेहि जल तृन पशु बार बूड़ि अपने सँग बोरत। तेहि जल गाजत महाबीर सब तरत अंग नहिं डोलत।

संज्ञा पुं. [हिं. बाल] बालक, वत्स। उ.—मुख चूमति जसुमति कहि बार—४९७।

वि.—(१) जो छोटा हो। (२) जिसका उदय हाल ही में हुआ हो।

संज्ञा स्त्री. [सं. बाला] युवती, बाला।

बारक—क्रि. वि. [हिं. बार+एक] एक बार। उ.—(क) मृग-स्वरूप मारीच धरयौ तब, फेरि चल्यौ बारक जो दिखाई—९-५९। (ख) बारक जाइबो मिलि माधो—२७५८।

बारगह, बारगाह—संज्ञा स्त्री. [फा. बारगाह] (१) डेवढ़ी। (२) तंबू।

बारजा—संज्ञा पुं. [हिं. बार] कोठा, अटारी, दालान।

बारण—संज्ञा पुं. [सं. वारण] (१) मनाही। (२) रुकावट।

संज्ञा पुं. [सं. वारणः] हाथी।

बारता—संज्ञा स्त्री. [सं. वार्त्ता] (१) वृत्तांत। (२) विषय, प्रसंग, मामला। (३) बातचीत।

बारति—क्रि. स. [हिं. बालना] जलाती-बलाती है। उ.—नीराजन बहु बिधि बारति हैं ललितादि ब्रजनार।

बारन—संज्ञा पुं. [सं. वारणः] हाथी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. वारना] वारने की क्रिया या भाव।

बारना—क्रि. अ. [सं. वारण] रोकना, मना करना।

क्रि. स. [हिं. बालना] जलाना, बालना।

बारनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. बारी] 'बारी' जाति की स्त्री जो शुभ अवसरों पर बंदनवार आदि बाँधती है, मालिन। उ.—अच्छत दूब लिये रिषि ठाढ़े, बारनि बंदनवार बँधाई—१०-१९।

बारबधू, बारबधूटी—संज्ञा स्त्री. [सं. वारवधू] वेश्या। उ.—कहुँ नर्तत सब बारबधू और कहुँ गँधरब गुन-गान—सारा० ६६८।

बारबारैं—क्रि. वि. [हिं. बार] पुनः पुनः, फिर फिर। उ.—कबहुँ बैठत बारबारैं—१८७२।

बारमुखी—संज्ञा स्त्री. [सं. बारमुख्या] वेश्या।

बारह—संज्ञा पुं. [सं. द्वादश, प्रा. वारस, अप० बारह] दस और दो की संख्या।

मुहा०—बारह बाट करना (घालना)—तितर-बितर या छिन्न-भिन्न कर डालना। बारह बाट जाना (होना)—छिन्न-भिन्न या नष्ट-भ्रष्ट होना।

बारहखड़ी, बारहखरी—संज्ञा स्त्री. [सं. द्वादश+अक्षरी] (१) 'अ' से 'अः' तक के स्वरों की मात्राओं से युक्त व्यंजन रूप। (२) प्रारंभिक अक्षर-ज्ञान। उ.—सूर सकल षट दरसन वै हौं बारहखरी पढ़ाऊँ—३४६६।

बारहदरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बारह+फा० दर] बैठक जिसमें बारह द्वार हों।

बारहबान—संज्ञा पुं. [सं. द्वादशवर्ण] एक तरह का सोना (स्वर्ण) जो बहुत बढ़िया होता है।

बारहबाना—वि. [हिं. बारहबान] (१) सूर्य के समान चमक-दमक वाला। (२) खरा, चोखा।

बारहबानि, बारहबानी—वि. [हिं. बारहबान] (१) सूर्य-सी कांति वाला। (२) खरा-चोखा। उ.—सोहत लोह परसि पारस ज्यौं सुबरन बारहबानि। (३) दोष या कलंक रहित। (४) पूर्ण, पक्का (व्यंग्य)। उ.—हरि के चरित सबै उहि सीखे दोऊ हैं वे बारह-बानी—१२८४।

संज्ञा स्त्री.—सूर्य की कांति या चमक।

बारहबाने—वि. [हिं. बारहबाना] खरे, चोखे। उ.—सूरदास प्रभु हम हैं खोटी, तुम तौ बारहबाने हो—३००५।

बारहमासा—संज्ञा पुं. [हिं. बारह+मास] वह गीत जिसमें बारह महीनों की दशा, स्थिति आदि का वर्णन हो।

बारहमासी—वि. [हिं. बारह+मास] (१) जो बारहों महीनों फूलता-फलता हो। (२) बारहों महीने चलता रहने या होनेवाला। उ.—कुबिजा कमलनैन मिलि खेलत बारहमासी फाग—३०९५।

बारहवाँ—वि. [हिं. बारह] गिनती में ११ के बादवाला।

बारहसिंगा—संज्ञा पुं. [हिं. बारह+सींग] एक पशु।

बारहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. बारह] (१) जन्म से बारहवाँ दिन। (२) मृत्यु से बारहवाँ दिन।

बारहौं—वि. [देश.] वीर, बहादुर।

बारहा—क्रि. वि. [फा.] कई बार।

बारहों—संज्ञा पुं. [हिं. बारह] (१) जन्म से बारहवाँ दिन। (२) मृत्यु से बारहवाँ दिन।

बारा—वि. [सं. बाल] जो सयाना न हो, छोटा।

संज्ञा पुं.—बालक, लड़का।

संज्ञा स्त्री. [सं. बार] (१) काल, समय। (२) देर, विलंब। उ.—अबहीं और की और होत कछु लागै बारा। (३) बार, दफा, मरतबा। उ.—यहि ब्रज जन्म लियौ कै बारा—१०७०।

बारात—संज्ञा स्त्री. [सं. वरयात्रा, प्रा. बरयत्ता] (१) वरयात्रा। (२) सजे-धजे समाज की बाजे-गाजे के साथ यात्रा।

बारादरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बारहदरी] बैठक जिसमें बारह दर या खंभे हों।

बारानसि, बारानसी—संज्ञा स्त्री. [सं. वाराणसी] काशी का प्राचीन नाम जो वरुणा और असी नदियों के कारण अथवा 'पवित्र जल वाली' (वर+अनस् = जल) होने के कारण पड़ा था। 'उत्तम रथों वाली' होना भी इस नाम के पड़ने का कारण माना जाता है। 'बनारस' के स्थान पर 'काशी' का उक्त प्राचीन नाम पुनः प्रचलित हो गया है। उ.—बन बारानसि मुक्ति-छेत्र है, चलि तोकौं दिखराऊँ—१-३४०।

बाराह—संज्ञा पुं. [सं. वाराह] (१) सुअर (पशु)। (२) विष्णु का तीसरा अवतार। उ.—मच्छ, कच्छ, बाराह बहुरि नरसिंह रूप धरि—२-३६।

बारि—संज्ञा पुं. [सं. वारि] जल, पानी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बारी] अवसर, पारी, बारी। उ.—दीनानाथ अब बारि तुम्हारी—१-११८।

संज्ञा स्त्री. [सं. प्रखर] (१) बाग। उ.—हरि भजन की बारि कर लै उबरै तेरौ खेत—१-३११। (२ किनारा, तट। (३) पैनी चीज की धार।

संज्ञा स्त्री. [सं. वारी] (१) बाग। (२) क्यारी।

बारिगर—संज्ञा पुं. [हिं. बारी+गर] सान चढ़ानेवाला।

बारिज—संज्ञा पुं. [सं. वारिज] कमल। उ.—मनु सीपज घर कियौ बारिज पर—१०-९३।

बारिद—संज्ञा पुं. [सं. वारिद] मेघ, बादल।

बारिधर—संज्ञा पुं. [सं. वारिधर] बादल, मेघ। उ.—(क) बरषि छबि नव बारिधर तन, हरहु लोचन प्यास—१०-२१८। (ख) हृदय हरिनख अति बिराजत, छबि न बरनी जाइ। मनौ बालक बारिधर नव चंद दियौ दिखाइ—१०-२३४।

बारिधि—संज्ञा पुं. [सं. वारिधि] समुद्र।

बारिश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) वर्षा। (२) वर्षाऋतु।

बारिवाह—संज्ञा पुं. [सं. वारि+वाह] बादल।

बारी—संज्ञा स्त्री. [सं. वाटी, हि. बाटिका = बगीचा, घेरा, घर] (१) वह स्थान जहाँ पेड़ लगाये गये हों, बगीचा। उ.—जगत-जननी करी बारी, मृगा चरि चरि जाइ—९-६०। (२ क्यारी। (३) घर। (४) खिड़की।

संज्ञा स्त्री. [सं. अवार] (१) तट, किनारा, छोर। (२) घेरा, बाड़ा। (३) पैनी चीज की धार।

संज्ञा पुं.—एक जाति जो दोने-पत्तल बनाती है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बार] अवसर, पारी।

मुहा०—बारी बँधना—क्रम निश्चित होना। बारी बाँधना—क्रम निश्चित करना। बारी-बारी से—क्रमशः।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बारा = छोटा] (१) लड़की जो सयानी न हो। उ.—अबै तनक तू भई सयानी, हम आगे की बारी—१२४४। (२) बेटी, पुत्री। उ.—कुँवर-कर गह्यौ बृषभानु-बारी—६८४। (३) नवयौवना।

वि. स्त्री.—थोड़ी अवस्था की, छोटी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाली] कान की बाली।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाल] जौ-गेहूँ आदि की बाली।

संज्ञा पुं. [सं. वारि] जल, पानी।

बारीक—वि. [फ़ा.] (१) महीन, पतला। (२) छोटा, सूक्ष्म। (३) महीन कणवाला। (४) जिसमें बहुत सूक्ष्मता हो। (५) जिसमें बहुत गूढ़ता हो।

बारीकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बारीक] (१) महीन या सूक्ष्म होने का भाव। (२) सूक्ष्म गुण या विशेषता।

बारीस—संज्ञा पुं. [सं. वारीश] समुद्र।

बारुणी, बारुनी—संज्ञा स्त्री, [सं. वारुणी] मदिरा। उ.—प्रेम पिये वर बारुनी बलकत बल न सँभार—११८२।

बारू—संज्ञा पुं. [हिं. बालू] रेत, बालू।

बारूत, बारूद—संज्ञा स्त्री. [तु. बारूत] एक तरह का चूर्ण जिसकी गोली बंदूक से चलती है और जिसकी आतिशबाजी आदि बनती है।

बारे—संज्ञा पुं. [सं. बाल] (१) पुत्र, बेटा। उ.—(क) परम प्रान-जीवन-धन मेरे तुम बारे—१०-२०५। (ख) नंद जू के बारे कान्ह छाँड़ि दै मथनियाँ—१०-१४५। (२) बचपन। उ.—बारे तैं सुत ये ढँग लाए, मनहीं मनहिं सिहात—१०-३२८।

वि.—अबोध, अज्ञान। उ.—बारौं ऐसी रिस जो करति सिसु बारे पर—३६२।

क्रि. वि. [फ़ा.] अंत को।

बारेक—संज्ञा पुं. [हिं. बार+एक] एक बार। उ.—बारेक हमैं दिखावौ अपने बालापन की जोरी—१० उ.-११५।

बारे में—अव्य. [फ़ा. बारः+हिं. में] विषय में।

बारो, बारौ—संज्ञा पुं. [सं. बाल] बालक, बच्चा। उ.—भक्त परीच्छित हरि कौ प्यारौ। गर्भ-मँझार हुतौ जब बारौ—१-२९०।

क्रि. स. [हिं. बालना] जलाओ, प्रज्वलित करो।

वि. छोटा, अबोध। उ.—(क) सखियनि मंगन गवाइ, बहु बिधि बाजे बेजाइ, पौढ़ायौ महल जाइ, बारौ रे कन्हैया—१०-४१। (ख) बालक दामिनि मानौ ओढ़े बारौ बारिधर—१०-१५१।

बाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बालक, लड़का। (२) पशु का बच्चा। (३) अबोध व्यक्ति।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाला] (१) युवती। (२) नारी।

वि.—(१) जो छोटा हो। (२) जो हाल ही में उगा या उदित हुआ हो।

संज्ञा पुं. [सं] लोम, केश।

मुहा०—बाल बाँका न होना (न बाँकना)—कष्ट या हानि न होना। न्हात बाल न खसना (खिसना)—कष्ट या हानि न पहुँचना। बाल पकना—बूढ़ा या अनुभवी होना। (किसी काम में) बाल पकाना—काम करते-करते बूढ़ा या अनुभवी हो जाना। बाल बराबर—बहुत महीन। बाल बराबर न समझना—बहुत ही तुच्छ समझना। बाल-बाल बचना—कष्ट या विपत्ति आने में जरा सी ही कसर रह जाना।

संज्ञा स्त्री.—गेहूँ-जौ की बाली।

बालक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुत्र। (२) शिशु। (३) अबोध व्यक्ति। (४) (किसी) पशु का बच्चा।

बालकताइ, बालकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. बालकता] (१) बाल्यावस्था। (२) नासमझी, लड़कपन।

बालकपन—संज्ञा पुं. [हिं. बालक+पन] (१) बालक होने का भाव। (२) नासमझी, लड़कपन।

बालकाल—संज्ञा पुं. [सं.] बाल्यावस्था, बचपन।

बालकृमि—संज्ञा पुं. [सं.] जूँ।

बालकृष्ण—संज्ञा पुं. [सं.] बाल्यावस्था के कृष्ण।

बालकेलि, बालक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बच्चों का खेल (२) बहुत सरल और साधारण काम।

बालखिल्य—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा के रोएँ से उत्पन्न साठ हजार ऋषि जिनमें प्रत्येक एक अँगूठे के बराबर था।

बालगुपाल, बालगोपाल—संज्ञा पुं. [सं. बालगोपाल] (१) बाल्यावस्था के कृष्ण। (२) बाल-बच्चे।

बालगुविंद, बालगुबिंदा, बालगोबिंद बालगोबिंदा—संज्ञा पुं. [सं. बालगोबिंद] कृष्ण का बालक-स्वरूप, बाल कृष्ण। उ.—खेलन चली बालगोबिंद—१०-२१८।

बालग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] बालकों के प्राणघाती नौ ग्रह।

बालधि, बालधी—संज्ञा स्त्री. [सं. बालधि] पूँछ, दुम।

बालना - क्रि. स. [सं. ज्वलन] (१) जलाना, सुलगाना। (२) प्रज्वलित करना।

बालपन, बालपना, बालपनो, बालपनौ—संज्ञा पुं. [सं. बाल+हिं. पन] (१) बालक या अबोध होने का

भाव। (२) **बचपन, लड़कपन**। उ.—बालपनौ गए ज्वानी आवै—७-२।

बालब्रह्मचारी—संज्ञा पुं. [सं.] **बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला।**

बालभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रातःकाल का भोग।** (२) **जलपान, कलेवा।**

बालम—संज्ञा पुं. [सं. वल्लभ] (१) **पति**। (२) **प्रेमी**।

बालमुकुंद—संज्ञा पुं. [सं.] **बाल्यावस्था के श्रीकृष्ण, बालकृष्ण, घुटनों के बल चलती श्रीकृष्ण की मूर्ति**। उ.—सुभग बालमुकुंद की छबि बरनि कापै जाइ—१०-२२५।

बाललीला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **बालकों की क्रीड़ा।**

बालसँघाती—संज्ञा पुं. [हिं. बाल्य+साथी] **बचपन का साथी**। उ.—सुनहु सूर ए बालसँघाती प्रेम बिसारि मिले ढरि स्याम—१०६१।

बाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **सोलह-सत्रह वर्ष की युवती**। उ.—आदि ब्रह्म-जननी सुर-देवी, नाम देवकी बाला। दई बिवाहि कंस बसुदेवहि, दुख-भंजन, सुख-माला—१०-४। (२) **पत्नी, भार्या**। (३) **स्त्री, नारी**। (४) **पुत्री**।

वि. [फा.] **ऊँचा, ऊपर उठा आ**।

मुहा०—बाला-बाला—**अलग-अलग, चुपचाप**। बोल बाला होना—**आदर-सत्कार होना**।

वि. [हिं. बाल] **बहुत सीधा-सादा**।

बालापन, बालापनौ—संज्ञा पुं. [सं. बाल+हिं. पन] **लड़कपन, बचपन**। उ.—बालापन खेलत ही खोयौ, जुवा बिषय-रस मात—१-११८।

बालि—संज्ञा पुं. [सं.] **सुग्रीव का बड़ा भाई जो किष्किंधा का राजा था।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाली] **गेहूँ-जौ आदि की 'बाली'**। उ.—बालि छाँड़ि कै सूर हमारे अब नरवाई को लुनै—३१५८।

बालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **कन्या**। (२) **पुत्री**।

बालिकुमार—संज्ञा पुं. [सं.] **बालि-पुत्र अंगद**।

बालिग—संज्ञा पुं. [अ.] **वयस्क**।

बालिश—वि. [सं.] **अबोध, अज्ञान**।

बाली—संज्ञा स्त्री. [सं. बालिका] **कान का एक गहना**।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बाल] **जौ-गेहूं आदि की बाल**।

संज्ञा पुं. [सं. बालि] **बानरराज बालि**।

बालुका—संज्ञा पुं. [सं.] **रेत, बालू**।

बालू—संज्ञा स्त्री. [सं. बालुका] **रेत, रेणुका**।

मुहा०—बालू की दीवार (भीत)—**ऐसी चीज जो शीघ्र ही ढह जाय**।

बालूसाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. बालू+साही=अनुरूप] **एक मिठाई**।

बाल्य—वि. [सं.] (१) **बालक का**। (२) **बचपन का**।

बाल्यावस्था—संज्ञा स्त्री. [सं.] **लड़कपन**।

बाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **वायु**। (२) **बाई**।

बावड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बावली] **बावली**।

बावन—संज्ञा पुं. [सं. वामन] (१) **विष्णु**। (२) **विष्णु का पाँचवाँ अवतार जो राजा बलि को छलने के लिए अदिति के गर्भ से हुआ था**। (३) **विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण**। उ.—जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बामन रे—१०-२८।

संज्ञा पुं. [सं. द्विपंचाशत, या द्विपण्णासा, प्रा. बिवण्णा] **पचास और दो की संख्या**।

मुहा०—बावन तोले पाव रत्ती—**सभी तरह से ठीक**। बावन वीर—**बड़ा वीर**।

बावना—वि. [हिं. बौना] **बौना, ठिगना**।

बावभक—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाव+अनु. भक] **पागलपन**।

बावर, बावरा—वि. [हिं. बावला] (१) **पागल, सनकी**। (२) **मूर्ख, बुद्धिहीन**।

बावरि, बावरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बावली] (१) **बड़े चौड़े मुँह का कुआँ जिसमें सीढ़ियाँ बनी हों**। (२) **छोटा तालाब, जिसमें सीढ़ियाँ बनी हों**।

वि. [हिं. पुं. बावला] (१) **पगली, विक्षिप्त, सनकी**। उ.—(क) टेरि-टेरि मैं भई बावरी, दोउ भैया तुम रहे लुकाई—४६२। (ख) स्याम बिनु कछू न भावै रटत फिरत जैसे बकत बावरी—३४३२। (२) **मूर्ख, बुद्धिहीन**। उ.—कहा डर करौं इहिं फनिग की बावरी—५५१। (३) **मतवाली, उन्मत्त**। उ.—एक तौ लालन लाड़नि लड़ाइ दूजो यौवन बावरी—२७४९।

बावरे—वि. [हिं. बावरा] (१) पागल । (२) मूर्ख । उ.—बारन हीं करी बारन सहित फटकिहौं बावरे बात कहि मुख सँभारौ—२५९० ।

बावला—वि. [सं. वातुल, प्रा० बाउल] पागल, मूर्ख ।

बावली—संज्ञा स्त्री. [सं. वाय+ली] छोटा तालाब ।

वि. स्त्री. [हिं. बावला] पगली, मूर्ख ।

बावाँ—वि. [सं. वाम] (१) बायीं दिशा का । (२) विरुद्ध ।

बाष्प—संज्ञा पुं. [सं. वाष्प] (१) भाप । (२) आँसू ।

बासंतिक—वि. [सं.] (१) बसंत का, बसंत-संबंधी । (२) बसंत ऋतु में होनेवाला ।

बासंती—वि. स्त्री. [हिं. बसंत] (१) बसंत-संबंधी । (२) बसंत ऋतु में होनेवाली ।

बास—संज्ञा पुं. [सं. वास] (१) रहने-बसने की क्रिया या भाव । (२) रहने का स्थान । (३) गंध, महक । उ.—(क) ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास । भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास—१-७० । (ख) जोजन-गंधा काया करी । मच्छ-बास ताकी सब हरी—१-२२९ । (ग) पदुम-बास सुगंध सीतल लेत पाप नसाहिं—१-३३८ । (४) वस्त्र ।

संज्ञा स्त्री. [सं. वासना] इच्छा, कामना ।

संज्ञा स्त्री. [सं. वाशिः] (१) आग, अग्नि । (२) एक अस्त्र । (३) छुरी, चाकू ।

बासकसज्जा—संज्ञा स्त्री. [सं. वासकसज्जा] वह नायिका जो शृंगार करके शैया सजाकर नायक की प्रतीक्षा करती हो ।

बासन—संज्ञा पुं. [सं.] बरतन, पात्र । उ.—जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू (= चंद्र) तन धरि आवै—१०-१९१ ।

बासना—संज्ञा स्त्री. [सं. वासना] (१) इच्छा । (२) महक ।

क्रि. स. [सं. बास] सुगंधित करना ।

बासमती—संज्ञा पुं. [हिं. बास+मती] (२) एक बढ़िया चावल ।

बासर—संज्ञा पुं. [सं. वासर] दिन । उ.—(क) रजनीगत बासर मृगतृष्ना रस हरि कौ न चयौ—१-७८ । (ख) बासर संग सखा सब लीन्हें टेरि न धेनु चरैहौं—२६५० । (२) प्रातःकाल । (३) प्रातःकाल गाया जानेवाला राग ।

बासव—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र ।

बासवी दिशा—संज्ञा पुं. [सं.] पूर्व दिशा ।

बाससी—संज्ञा पुं. [सं.] कपड़ा, वस्त्र ।

बासा—संज्ञा पुं. [सं. वास, हिं. बास] (१) रहने की क्रिया या भाव, निवास । उ.—(क) देवहूति कह, भक्ति सो कहियै । जातैं हरि-पुर बासा लहियै—३-१३ । (ख) करहु मोहिं ब्रज रेनु देहु बृंदाबन बासा—४९२ । (२) स्थिति, उपस्थिति, विद्यमानता । उ.—सर्ब तीर्थ कौ बासा तहाँ, सूर हरि-कथा होवै जहाँ—१-२२४ ।

बासित—वि. [सं. वासित] सुगंधित किया हुआ ।

बासी—वि. [हिं. बासर या बास] (१) बहुत देर का पकाया हुआ । (२) बहुत समय का रखा हुआ । (३) बहुत पहले का तोड़ा हुआ । (४) जो हरा-भरा न हो ।

मुहा०—बासी कढ़ी में ज्यादा उबाल आता है—वृद्धावस्था में अधिक काम-वासना होती है (व्यंग्य) । बासी मुँह—प्रातःकाल बिना कुछ खाये-पिये ।

वि. [सं. वासिन्] रहने-बसनेवाला ।

बासु—संज्ञा पुं. [हिं. बास] (१) निवास । (२) निवास-स्थान ।

बासुकि, बासुकी—संज्ञा पुं. [सं. वासुकि] आठ नाग राजाओं में से दूसरा जिसको 'नेति' बनाकर समुद्र-मंथन किया गया था । उ.—कह्यौ भगवान, अब बासुकी ल्याइयै''''नेति करि अचल कौं सिंधु नायौ—८-८ ।

बासुदेव—संज्ञा पुं. [सं. वासुदेव] वासुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण ।

बासू—संज्ञा पुं. [सं. वासुकि] वासुकि नाग ।

संज्ञा पुं. [हिं. बास] (१) निवास (२) । निवास स्थान ।

बासौंधी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बास+औंधी] सुगंधित और लच्छेदार रबड़ी । उ.—बासौंधी सिखरनि अति सोंधी—२३२१ ।

बाहँ—संज्ञा स्त्री. [सं. बाहु] हाथ, बाहु, भुजा ।

मुहा०—बाहँ लै—सहारा देकर, हाथ पकड़कर, आश्रय में लेकर । उ.—(क) बचन बाँह लै चलौ गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी—१-१४६ । (ख) नूपुर-

कलरव मनु हंसनि-सुत रचे नीड़ दै बाँह बसाये—१० १०४।

बाहक—संज्ञा पुं. [हिं. बाहक] यान या सवारी हाँकने वाला, सारथी। उ.—कह पांडव कैं घर ठकुराई, अर्जुन के रथ-बाहक—१-१९।

बाहकी—संज्ञा स्त्री. [सं. बाहक+ई] पालकी ढोनेवाली।

बाहन—संज्ञा पुं. [सं. वाहन] (१) सवारी। (२) वह जिस पर कोई चीज चढ़ायी जाय।

बाहना—क्रि. स. [सं. वहन] (१) ढोना, लादना, चढ़ाना। (२) (शस्त्र) चलाना। (३) (वाहन) हाँकना। (४) पकड़ना। (५) बहाना, प्रवाहित करना। (६) हल चलाना।

बाहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वाहिनी] सेना।

बाहर—क्रि. वि. [सं. वाह्य] (१) 'भीतर' या 'अंदर' का उलटा। उ.—तू जिहिं हित नहिं बाहर आवै। सो हमसों कहि क्यों न सुनावै—१-२२६। (ख) नाहिंन मीन जियत जल बाहर जो घृत मैं सजियो—३१४७।

मुहा०—बाहर-बाहर—बिना किसी को सूचित किये। (२) अन्य स्थान पर। (३) प्रभाव, संबंध आदिसे परे।

बाहरजामी—संज्ञा पुं. [सं. वाह्ययामी] ब्रह्म का सगुणरूप, ब्रह्म के अवतार।

बाहरी—वि. [हिं. बाहर] (१) जो घर का न हो, पराया। (२) अपरिचित। (३) केवल बाहर का, ऊपरी।

बाहाँजोरी—क्रि. वि. [हिं. बाँह+जोड़ना] हाथ में हाथ डाल कर। उ.—(क) बाहाँजोरी निकसे कुंज तैं। (ख) राजत हैं दोउ बाहाँजोरी दंपति अरु ब्रज बाल।

बाहिज—संज्ञा पुं. [सं. वाह्य] ऊपर से, देखने में।

बाहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वाहिनी] (१) सेना। (२) सवारी, यान। (३) नदी।

बाहिर—क्रि. वि. [हिं. बाहर] (१) 'भीतर' या 'अंदर' का उलटा। (२) घर से दूर, अन्य किसी जगह पर। उ.—जाति-पाँति सबकी हौं जानौं, बाहिर छाक मँगाई। ग्वालनि कैं सँग भोजन कीन्हौं, कुल कौं लाज लगाई—१-२४४। (३) ऊपर से देखने में। उ.—तुम जो कहति हौ मेरो कन्हैया, गंगा कैसो पानी। बाहिर तरुन किसोर बयस वर, बाट घाट कौ दानी—१०-३११।

बाहिरी—वि. [हिं. बाहर] व्यक्त, अपरिचित जैसी। उ.—सुजन-बंधु ते भई बाहिरी अब कैसे वै करत बड़ाई—पृ. ३४२ (१०)।

बाहिरैं—क्रि. वि. [हिं. बाहर] बाहर की ओर। उ.—छरीदार बैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हें—१-४०।

बाहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँह] हाथ, बाँह, भुजा।

मुहा०—कहत पसारे बाहीं—हाथ उठाकर, दृढ़ता पूर्वक, पूर्ण विश्वास और निश्चय के साथ। उ.—अजहूँ चेति, कह्यौ करि मेरौ, कहत पसारे बाहीं। सूरदास सरबरि को करिहै, प्रभु-पारथ द्वै नाहीं—१-२६९।

बाहु—संज्ञा स्त्री. [सं.] भुजा, हाथ।

बाहुज—वि. [सं.] जो बाहु से उत्पन्न हो।

बाहुबल—संज्ञा पुं. [सं.] पराक्रम, वीरता। उ.—भए भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर। सूरदास प्रभु आपु बाहुबल कियौ निमिष मैं कीर—९-१५८।

बाहुमूल—संज्ञा पुं. [सं.] कंधे और बाँह का जोड़।

बाहुयुद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] कुश्ती।

बाहुल्य—संज्ञा पुं. [सं.] अधिकता।

बाहेर—क्रि. वि. [हिं. बाहर] (१) 'अंदर' या 'भीतर' का उलटा। उ.—बाहेर जिनि कबहूँ खैये सुत, डीठि लगैगी काहू—१००४। (२) पद संबंध आदि से च्युत।

बाह्मन—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण।

बाह्य—वि. [सं.] बाहर का, बाहरी।

बाह्याचरण—संज्ञा पुं. [सं.] दिखावा, आडंबर।

बिंग—संज्ञा पुं. [सं. व्यंग्य] (१) व्यंग्य। उ.—करत बिंग ते बिंग दूसरी जुक्त अलंकृत माहीं। (२) ताना।

बिंजन—संज्ञा पुं. [सं. व्यंजन] भोजन के पदार्थ।

बिंद—संज्ञा पुं. [सं. विंदु] (१) पानी की बूँद। (२) भंवों के बीच का स्थान। (३) वीर्य की बूँद। (४) बिंदी। उ.—(क) चिबुक मध्य मेचक रुचि राजत बिंद कुंद रदनी—पृ. ३१६ (५४)। (ख) कंठश्री दुलरी बिराजति चिबुक स्यामल बिंद—पृ. ३४४ (२९)। (५) माथे का गोल तिलक।

बिंदा—संज्ञा पुं. [सं. बिंदु] (१) गोल चिन्ह या बिंदु । (२) गोल बड़ा टीका, बड़ी बिंदी । उ.—(क) मृगमद-बिंदा तामैं राजै । निरखत ताहि काम सत लाजै—३-१३ । (ख) मसि-बिंदा दियौ भ्रू पर—१०-९२ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. वृन्दा] राधा की सखी एक गोपी का नाम । उ.—इंदा बिंदा राधिका स्यामा कामा नारि—११०२ ।

बिंदी—संज्ञा स्त्री. [सं. बिंदु] (१) शून्य, सिफर । (२) छोटा गोल टीका । (३) माथे पर लगाने का गोल छोटा टीका ।

बिंदु—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूँद] बूँद । उ.—स्याम हृदय अति बिसाल माखन-दधि बिंदु-जाल—१०-२७५ ।

संज्ञा पुं. [सं. बिंदु] गोल टीका, बिंदा । उ.—भाल तिलक मसि बिंदु बिराजत, सोभित सीस लाल चौतनियाँ—१०-१०६ ।

बिंदुलि, बिंदुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिंदी] बिंदी ।

बिंदुका—संज्ञा पुं. [सं. बिंदु] (१) बड़ी बिंदी, बिंदा, गोल टीका । उ.—(क) कठुला कंठ वज्र केहरि-नख, मसि बिंदुका सु मृग-मद भाल—१०-८४ । (ख) लट कनि मोहन मिस-बिंदुका तिलक भाल सुखकारी ! (ग) गोरोचन कौ तिलक निकटहीं काजर बिंदुका लाग्यौ री—१०-१३९ ।

बिंदुरी, बिंदुली—संज्ञा स्त्री. [सं. बिंदु] (१) बिंदी । (२) माथे का छोटा गोल टीका । उ.—बंदन बिंदुली भाल की भुज आप बनाए—३१३९ ।

बिंद्राबन—संज्ञा पुं. [सं. वृंदावन] मथुरा का निकटवर्ती एक उपनगर जो श्रीकृष्णचन्द्र का क्रीड़ास्थल होने के कारण उनके भक्तों के लिए एक तीर्थ है ।

बिंध, बिंध्य—संज्ञा पुं. [सं. विंध्याचल] विंध्य पर्वत ।

बिंधना—क्रि. अ. [सं. वेधन] (१) बींधा या छेदा जाना । (२) फँसना, उलझना ।

बिंधिया—संज्ञा पुं. [हिं. बींधना] मोती छेदनेवाला ।

बिंब, बिंबा—संज्ञा पुं. [सं. बिंब] (१) प्रतिबिंब, छाया । उ.—(कान्ह) मनिमय कनक नंद कैं आँगन बिंब पकरिबैं धावत—१०-११० । (२) प्रतिमूर्ति । (३) कुँदरू नामक लाल फल । उ.—(क) गति मराल अरु बिंब अधर-छबि, अहि अनूप कबरी—९-६३ । (ख) मनौ सुक फल बिंब कारन, लेन बैठ्यौ आइ—१०-२३४ । (४) चंद्र या सूर्य-मंडल । (५) झलक, आभास ।

संज्ञा पुं. [हिं. बाँबी] बाँबी ।

बिंबित—वि. [सं.] जिसकी छाया पड़ती हो ।

बि—वि. [सं. द्वि] दो ।

बिआज—संज्ञा पुं. [हिं. ब्याज] ब्याज ।

बिआधि—संज्ञा स्त्री. [सं. व्याधि] रोग, व्याधि ।

बिआधु—संज्ञा पुं. [सं. व्याध] बहेलिया, व्याध ।

बिआना—क्रि. स. [हिं. ब्याना] बच्चा जनना ।

बिआस—संज्ञा पुं. [सं. व्यास] (१) कथा कहनेवाला । (२) व्यास देव ।

बिआहना—क्रि. स. [हिं. ब्याहना] विवाह करना ।

बिओग—संज्ञा पुं. [सं. वियोग] बिछोह, वियोग ।

बिओगी—वि. [सं. वियोगी] जिसके प्रियजन का वियोग हुआ हो, वियोगी ।

बिकट—वि. [सं. विकट] (१) विकराल, भयंकर, डरावना । उ.—बिकट रूप अवतार धरयौ जब सो प्रहलाद बचाऊ—१०-२२१ । (२) वक्र, टेढ़ा । उ.—भृकुटी बिकट निकट नैनन के राजत अति बर नारि । (३) कठिन, मुश्किल । उ.—नित-प्रति सबै उरहने के मिस आवत हैं उठि प्रात । अनसमुझे अपराध लगावति बिकट बनावति बात—१०-३२६ ।

बिकना—क्रि. अ. [सं. विक्रय] बेचा जाना, बिक्री होना ।

मुहा०—किसी के हाथ बिकना—(१) दास होना । (२) आसक्त होना ।

बिकरम—संज्ञा पुं. [सं. विक्रम] (१) पराक्रम । (२) विक्रमादित्य ।

बिकरार—वि. [सं. विकराल] (१) भयानक, डरावना । उ.—चले सब मिलि जाइ देख्यौ अगम तन बिकरार-४२७ । (२) घोर, घमासान । उ.—कियौ जुद्ध अतिहीं बिकरार—१-२७६ ।

वि. [फा. बेकरार] व्याकुल, बेचैन, विकल । उ.—गोसुत-गाइ फिरत बिकरार—१०५५ ।

बिकराल—वि. [सं. विकराल] भयानक ।

बिकल—वि. [सं. विकल] व्याकुल, घबराया हुआ,

बेचैन। उ.—(क) बारह बरष नींद है साधी, तातैं बिकल सरीर—९-१४५। (ख) मीड़त हाथ सकल गोकुलजन बिरह बिकल बेहाल—२५३६।

बिकलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. विकल+आई] बेचैनी।

बिकलाना—क्रि. अ. [सं. विकल] घबराना।

क्रि. स.—व्याकुल या बेचैन करना।

बिकलानी—क्रि. स. [हिं. बिकलाना] व्याकुल हुई। उ.—(क) यह सुनि तरुनी बिकलानी ११६१। (ख) निठुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी—पृ. ३४१ (४)। (ग) धरनी परे अचेत नहीं सुधि सखी देखि बिकलानी—२२०८।

बिकलाने—क्रि. अ. [हिं. बिकलाने] व्याकुल होकर। उ.—फिरि सब चले अतिहिं बिकलाने—१०६०।

बिकली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिकल] व्याकुलता।

बिकवाना—क्रि. स. [हिं. बिकना] बेचने को प्रवृत्त करना।

बिकवाल—संज्ञा पुं. [हिं. बेचना] बेचनेवाला।

बिकसना—क्रि. स. [सं. विकसन] (१) फूलना, खिलना। (२) प्रसन्न या हर्षित होना।

बिकसाना—क्रि. अ. [हिं. बिकसना] (१) खिलना, फूलना। (२) प्रसन्न या प्रफुल्लित होना।

क्रि. स.—(१) खिलाना (२) प्रसन्न करना।

बिकसाने—क्रि. अ. [हिं. बिकसना] विकसित हुए, खिल गये, फूले। उ.—रबि-छबि कैंधौं निहारि, पंकज बिकसाने—६४२।

बिकसावै—क्रि. अ. [हिं. बिकसाना] खिला दे, प्रस्फुटित कर दे। उ.—पाहन-बीच कमल बिकसावै, जल मैं अगिनि जरै—१-१०५।

बिकसाहिं, बिकसाहीं—क्रि. अ. [हिं. बिकसना] खिलते हैं, विकसित होते हैं, फूलते हैं। उ.—(क) चलि सखि, तिहिं सरोवर जाहिं। जिहिं सरोवर कमल कमला, रवि बिना बिकसाहिं—१-३३८। (ख) पाहन बीच कमल बिकसाहीं जल मैं अगिनि जरै।

क्रि. स.—(१) खिलाते हैं। (२) प्रसन्न करते हैं।

बिकाउँ, बिकाऊँ—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिक जाऊँ, बिक्री हो जाय। उ.—कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंत-मेंत न बिकाउँ—१-१२८।

बिकाऊ—वि. [हिं. बिकना+आऊ] जो बिकने को हो।

बिकात—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिकता है। उ.—(क) सूरदास स्वामी के बिछुरे कौड़ी भरि न बिकात—२५४१। (ख) सुजस बिकात बचन के बदले क्यों न बिसाहत आजु—२८५१।

मुहा॰—चित्त बिकात—चित्त वशीभूत हो जाता है। उ.—इक सायक इक चाप चपल अति चिबुक मैं चित्त बिकात—१६८२।

बिकाना—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बेचा जाना।

बिकानीं—क्रि. अ. [हिं. बिकना] (१) बिक गयीं। (२) अति मुग्ध हो गयीं, वशीभूत हो गयीं। उ.—(क) स्याम अंग जुवती निरखि भुलानीं। कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिं माँझ बिकानी—६४४। (ख) उन मो तन मैं उन तन चितयो तब ही ते उन हाथ बिकानी—८५०। (ग) बिबस भइ तनु न सँभारै री गोरस सुधि बिसरि गई आपु बिकानी बिनु मोलै—११८४। (घ) बिकानी हरि-दुख की मुसकानी—११९७।

बिकाने—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिके, बिक गये। उ.—जो राजा-सुत होइ भिखारी, लाज परे ते जाइ बिकाने—१-२१७।

मुहा॰—जसुमति हाथ बिकाने—यशोदा के वश में हो गये, उसके अनुचर या सेवक हो गये। उ.—सूरदास प्रभु भाव-भक्ति के, अति हित जसुमति हाथ बिकाने—३८०।

बिकानौ—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिका हूँ, बिक गया हूँ।

मुहा॰—हाथ बिकानौ—दास हो गया हूँ, गुलाम हूँ। उ.—(क) अब हौं माया-हाथ बिकानौ। परबस भयौ, पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ—१-४७। (ख) नंद-नँदन-पद-कमल छाँड़ि कै माया-हाथ बिकानौ—१-६३। (ग) तदपि सूर मैं भक्तबछल हौं, भक्तनि हाथ बिकानौ—१-२४३।

बिकान्यौ—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिक गया।

मुहा॰—हाथ बिकान्यौ—वशीभूत हो गया, मुग्ध हो गया, दास हो गया। उ.—ठाढ़े स्याम रहे मेरे आँगन तब ते मन उन हाथ बिकान्यौ—१४६०।

बिकाय—क्रि. अ. [हिं. बिकाना.] बिकती है। उ.—प्रानन के बदले न पाइयत सेंति बिकाय सुजस की ढेरी—२८५२।

बिकायौ—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिका, बेचा गया।

मुहा०—हाथ बिकायौ—दास हो गया, वश में हो गया। उ.—द्विजकुल-पतित अजामिल विषयी, गनिका हाथ बिकायौ—१-१०४।

बिकार—संज्ञा पुं. [सं. विकार] (१) दोष, बुराई, अवगुण। उ.—सागर सूर भर्‌यौ बिकार-जल, बधिक-अजामिल बापी—१-१४०। (२) बिगड़ा हुआ रूप, विकृति। (३) रोग। (४) पाप। उ.—कमलनैन की लीला गावत कटत अनेक बिकार—२-२। (५) कुवासना। (६) हानि, कुप्रभाव। उ.—सहसौ फन फनि फुंकरै, नैंकु न तिन्हैं बिकार—५८९।

बिकारी—वि. [हिं. विकारी] (१) कामी, वासनावाला, दुष्ट मनोवृत्ति का। उ.—रे रे अंध बीसहू लोचन, पर-तिय-हरन बिकारी। सूनैं भवन गवन तैं कीन्हौ, सेष-रेख नहिं टारी—९-१३२। (२) बिगड़े हुए या विकृत रूपवाला। (३) बुरा, हानिकारक।

संज्ञा स्त्री. [सं. वंक] टेढ़ी पाई।

बिकारैं—संज्ञा पुं. [सं. विकार+ऐं (प्रत्य.)] दोष से, ऐब से, बुराई से, अवगुण से। उ.—जौ प्रभु मेरे दोष बिचारैं। करि अपराध अनेक जन्म लौं, नख-सिख भरौ बिकारैं—१-१८३।

बिकासना—क्रि. स. [सं. विकासन] (१) विकसित करना। (२) फूल खिलाना।

क्रि. अ.—(१) विकसित होना। (२) (फूल) खिलना।

बिकैहै—क्रि. अ. [हिं. बिकना] बिकेगी। उ.—ऊधौ, जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै—३१०५।

बिक्रम—संज्ञा पुं. [सं. विक्रम] (१) बल, शौर्य या शक्ति की अधिकता, पराक्रम। उ.—करि दंडवत बिनय उच्चारी। तुम अनंत बिक्रम बनवारी—७-२। (३) विक्रमादित्य।

बिक्रमी—संज्ञा पुं. [सं. वैक्रमीय] विक्रम-संबंधी।

बिक्री—संज्ञा स्त्री. [सं. विक्रय] (१) बेचे जाने की क्रिया या भाव। (२) धन जो बेचे जाने से मिले।

बिख—संज्ञा पुं. [सं. विष] जहर।

बिखम—वि. [सं. विषम] (१) जो सम न हो। (२) कठिन। (३) तीव्र, भयंकर। (४) जो दो से न विभाजित हो। (५) जिस (छंद) के चारों चरणों में समान क्षर या मात्राएं न हों।

बिखरना—क्रि. अ. [सं. विकीर्ण] फैलना, छितरना।

बिखराए—क्रि. स. [हिं. बिखराना] छितरा दिये, इधर-उधर फैला दिये। उ.—चोली, चीर, हार बिखराए। आपुन भागि इतहिं कौं आए—७६६।

बिखराना—क्रि. स. [हिं. बिखरना] फैलाना, छितराना।

बिखरैहैं—क्रि. स. [हिं. बिखराना] तोड़े-फोड़ेंगे, इधर-उधर फैलायँगे, तितर-बितर करेंगे, छितरायँगे। उ.—जिन पुत्रनिहि बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहै। तेई लै खोपरी बाँस दै सीस फोरि बिखरैहैं—१-८६।

बिखाद—संज्ञा पुं. [सं. विषाद] दुख, खेद।

बिखान—संज्ञा पुं. [सं. विषाण] पशु के सींग।

बिखेरना—क्रि. स. [हिं. बिखरना] फैलाना, छितराना।

बिख्यात—वि. [सं. विख्यात] जिसे सब जानते हों, प्रसिद्ध। उ.—(क) जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु बिख्यात—१-९०। (ख) तिनके काज अंस हरि प्रगटे ध्रुव जगत बिख्यात। (ग) दच्छ के उपजीं पुत्री सात। तिनमें सती नाम बिख्यात—४-४।

बिख्याता—वि. [सं. विख्यात] प्रसिद्ध, विख्यात। उ.—(क) सुमिरत तुम आए तहँ त्रिभुवन बिख्याता—१-१२३। (ख) रिष्यमूक परबत बिख्याता—९-६८।

बिगड़ना—क्रि. अ. [सं. विकृत] (१) खराब होना। (२) दोष आ जाना। (३) बुरी दशा होना। (४) आचरण खराब होना। (५) क्रुद्ध होना। (६) विद्रोह करना। (७) स्वामी या रक्षक की आज्ञा या अधिकार में न रह जाना। (८) लड़ाई-झगड़ा होना। (९) व्यर्थ खर्च होना। (१०) सतीत्व नष्ट होना।

बिगड़ैल—वि. [हिं. बिगड़ना] (१) बहुत जल्दी क्रुद्ध हो जानेवाला, जरा सी बात में बिगड़ जाने या लड़ पड़नेवाला। (२) हठी। (३) बुरे आचरणवाला।

बिगत—वि. [सं. विगत] (१) जो गत हो गया हो, जो बीत चुका हो। उ.—उगत अरुन बिगत सर्बरी, ससांक

किरन हीन—१०-२०५ । (२) रहित, विहीन । उ.—(क) करि बल-बिगत उबारि दुष्ट तैं, ग्राह ग्रसत बैकुंठ दियौ—१२६ । (ख) प्रमुदित जनक निरखि अंबुज-मुख बिगत नयन मन पीर ।

बिगर—क्रि. वि. [अ. बग़ैर] बिना, रहित ।

बिगरना—क्रि.अ. [हिं. बिगड़ना] बिगड़ना ।

बिगराइल, बिगरायल—वि. [हिं बिगड़ैल] (१) क्रोधी । (२) हठी । (३) बुरे आचरणवाला ।

बिगरि—क्रि. अ. [हिं. बिगड़ना] बिगड़ कर ।

प्र०—जैहैं बिगरि—खराब हो जायँगे, अच्छे नहीं रहेंगे । उ.—जैहैं बिगरि दाँत ये आछे—१०-२२२ । बिगरि परे-विद्रोही हो गये । उ.—(क) ए (नैन) मेरे होहिं नहीं सखि हरि-छवि बिगरि परे—पृ. ३३२ (१९) । (ख) मधुकर, ए मन बिगरि परे—३१५० ।

बिगरी—क्रि. अ. [हिं. बिगड़ना] बिगड़ गयी, नष्ट हो गयी । उ.—(क) कृपा-सिंधु, अपराध अपरिमित, छमौ, सूर तैं सब बिगरी—१-११५ । (ख) जग मैं जनमि, पाप बहु कीन्हें, आदि-अंत लौं सब बिगरी—१-११६ ।

संज्ञा स्त्री—वह बात जो बिगड़ गयी हो, बात जो नष्ट हो रही हो । उ.—दीनानाथ अब बारि तुम्हारि । पतित उधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सँवारि—१-११८ ।

बिगरै—क्रि. अ. [हिं. बिगड़ना] बिगड़ जाय, नष्ट हो जाय, खराब हो जाय । उ.—माधौ जू, जौ जन तैं बिगरै । तउ कृपाल, करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै—१-११७ ।

बिगरैगौ—क्रि. अ. [हिं. बिगड़ना] दुरवस्था को प्राप्त होगा, अच्छी दशा न रहेगी । उ.—सब वे दिवस चारि मन-रंजन अंतकाल बिगरैगौ—१-७५ ।

बिगरौ—क्रि. स. [हिं. बिगड़ना] बिगड़ गया, दुरवस्था को प्राप्त हुआ, बुरी दशा को पहुँच गया । उ.—तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ—१-२२० ।

बिगलना—क्रि. अ. [सं. विगलन] (१) सड़ना-गलना ।(२) सूखना । (३) शिथिल होना । (४) अलग होना ।

बिगलित—स्त्री. [हिं. बिगलना] रूखा-सूखा । उ.—बिगलित कच कुस काँस पुलिन पर पंक जु काजल सारी—२७२८ ।

बिगसति—क्रि. अ. [हिं. बिकसना] (१) खिलती है, प्रस्फुटित होती है । (२) चमकती है, प्रकाशित होती है । उ.—ईषद हास दंत-दुति बिगसति, मानिक-मोती धरे जनु पोइ—१०-२१० ।

बिगसना—क्रि. अ. [हिं. विकसना] (१) विकास को प्राप्त करना । (२) कली खिलना । (३) मन प्रसन्न होना ।

बिगसाऊँ—क्रि. स. [हिं. बिकसाना] प्रकाशित करूँ । उ.—सोरह कला को ससि कुहुँ बिगसाऊँ—२२५८ ।

बिगसाना—क्रि. अ. [हिं. बिकसना] (१) खिलना, फूलना । (२) प्रसन्न होना । (३) प्रकाशित होना ।

क्रि. स.—(१) खिलाना । (२) प्रकाशित करना ।

बिगसावहु—क्रि. स. [हिं. बिकसाना] खिलाओ, बिकसित करो । उ.—घोष-सरोज भए हैं संपुट, होइ दिनमनि बिगसावहु—३१८७ ।

बिगसित—वि. [हिं. बिकसना] प्रसन्न, खिली हुई । उ.—बिगसित गोपी मनहुँ कुमुद सर रूप-सुधा लोचन-पुट घटकनि—६१८ ।

बिगहा—संज्ञा पुं. [हिं. बीघा] नापने का एक मान जो बीस बिसवे का होता है ।

बिगाड़—संज्ञा पुं. [हिं. बिगड़ना] (१) बिगड़ने की क्रिया या भाव । (२) दोष, बुराई । (३) लड़ाई-झगड़ा ।

बिगाड़ना—क्रि. स. [सं. विकार] (१) रूप, गुण या उपयोगिता नष्ट करना । (२) दोष ला देना, दूषित कर देना । (३) बुरी दशा को पहुँचा देना । (४) कुमार्ग में लगा देना । (५) सतीत्व नष्ट करना । (६) स्वभाव खराब करना । (७) बहकाना । (८) व्यर्थ खर्च करना ।

बिगाना—वि. [फा. बेगाना] (१) पराया । (२) अनजान ।

बिगार—संज्ञा पुं. [हिं. बिगाड़] दोष, बुराई । उ.—कहा बिगार कियौ हम वाको ब्रज काहे अवतार दियो री—१४०६ ।

बिगारत—कि. स. [हिं. बिगाड़ना] नष्ट करती है । उ.—(क) सूर स्याम बिनु ब्रज पर बोलत हठि अगिलेउ जनम बिगारत—२८४९ । (ख) ज्ञानी लोभ करत

नहिं कबहूँ, लोभ बिगारत काजा—१० उ०-२७ ।

बिगार—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेगार] काम जो बिना मजदूरी दिये या पाये जबरदस्ती कराया या किया जाय ।

बिगारना—क्रि. स. [हिं. बिगड़ना] बिगाड़ना ।

बिगारि, बिगारी—क्रि. स. [हिं. बिगाड़ना] नष्ट कर दी । उ.—याकैं बस मैं बहु दुख पायौ, सोभा सवै बिगारी—१-१७३ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बेगार] वह काम जो बिना मजदूरी दिये या पाये जबरदस्ती किया या कराया जाय ।

बिगारे—क्रि. स. [हिं. बिगाड़ना] बिगाड़ दिये, नष्ट किये । उ.—पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे—१-१४३ ।

बिगारै—क्रि. स. [हिं. बिगाड़ना] भ्रष्ट करता है, कुमार्ग में लगाता है, बिगाड़ता है । उ.—तुव सुत कौं पढ़ाइ हम हारे । आपु पढ़ै नहिं, और बिगारै—७-२ ।

बिगार्यौ—क्रि. स. [हिं. बिगाड़ना] नष्ट कर दिया । उ.—मैं अपनौ सब काज बिगार्यौ—४-१२ ।

बिगास—संज्ञा पुं. [सं. विकास] (१) फैलाव, विस्तार । (२) (फूल का) खिलना । (३) उन्नत दशा को पहुँचना ।

बिगिर—क्रि. वि. [अ. बग़ैर] बिना, रहित ।

बिगुन—वि. [सं. विगुण] जिसमें गुण न हो ।

बिगुरचिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिगूचना] बाधा, कठिनाई ।

बिगुरदा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का हथियार ।

बिगुर्चन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिगूचन] बाधा, कठिनाई ।

बिगूचन, बिगूचनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिगूचन] (१) दुविधा, असमंजस । (२) कठिनाई, बाधा । उ.—सूरदास अब होत बिगूचन, भजि लै सारँगपानि—१-३०४ ।

बिगूचना, बिगूतना—क्रि. अ. [सं. विकुंचन] (१) दुबधा या असमंजस में पड़ना । (२) संकट या कठिनाई में पड़ना । (३) दबाया या पकड़ा जाना ।

क्रि. स.—दबोचना, धर दबाना ।

बिगोइ—क्रि. स. [हिं. बिगोना] नष्ट करता है, विनाशता है । उ.—कमल-नयन कौं कपट किए माई, इहिं ब्रज आवै जोइ । पालागौं बिधि ताहि बकी ज्यौं, तू तिहिं तुरत बिगोइ—१०-५६ ।

बिगोइसि—क्रि. स. [हिं. बिगोना] नष्ट किया, बिगाड़ा, विनाश किया । उ.—निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि—१-३३३ ।

बिगोउ, बिगोऊ—क्रि. स. [हिं. बिगोना] नष्ट करे, विनाश करे । उ.—सूर सनेह करै जो तुमसौं सो पुनि आप बिगोऊ—३३५३ ।

बिगोए—क्रि. स. [हिं. बिगोना] नष्ट किये, बिगाड़ दिये । उ.—किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए । पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए—१-५२ ।

बिगोना—क्रि. स. [सं. विगोपन] (१) नष्ट या विनाश करना । (२) छिपाना, दुराना । (३) तंग या दुखी करना । (४) भ्रम या बहकावे में डालना । (५) बिताना, व्यतीत करना ।

बिगोयो, बिगोयौ—क्रि. स. [हिं. बिगोना] (१) भ्रम में डाला, बहकाया । उ.—हरि, तुव माया को न बिगोयौ—१-४३ । (२) नष्ट किया, विनाश किया, बिगाड़ा । उ.—(क) इहिं राजस को-को न बिगोयौ । हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, कुंभकरन कुल खोयौ—१-५४ । (ख) रंचक सुख कारन तैं, अंत क्यौं बिगोयौ—१-३३० । (ग) सूर लोभ कीनो सो बिगोयौ—१०उ०-२७ । (३) तंग या दुखी किया । उ.—अबला कहा जोग मत जानै मनमथ व्यथा बिगोयो—२५८२ । (४) छिपाया, दुराया ।

बिगोवति—क्रि. स. [हिं. बिगोना] (१) तंग करती है, दुख देती है, पीड़ा पहुँचाती है । उ.—सील-सँतोष सखा दोउ मेरे, तिन्हैं बिगोवति भारी—१-१७३ । (२) बिताती है, व्यतीत करती है, काटती है । उ.—कबहुँ भवन कबहूँ आँगन ह्वै ऐसै रैनि बिगोवति—१९४९ ।

बिगोवै—क्रि. स. [हिं. बिगोना] नष्ट करती है, बिनाशती है, बिगाड़ती है । उ.—(क) एकनि लै मंदिर चढ़ै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)—१-४४ । (ख) राजहि जाहि सनक अरु संका बिरचै ताहि बिगोवै—२२७५ ।

बिग्रह संज्ञा पुं. [सं. विग्रह] (१) शरीर । (२) कलह, विरोध । (३) विभाग । (४) युद्ध । (५) देव-मूर्ति ।

बिघटना—क्रि. स. [सं. विघटन] तोड़ना-फोड़ना ।

बिघन, बिघिन—संज्ञा पुं. [सं. विघ्न] **विघ्न, बाधा, रुकावट, अड़चन, व्याघात।** उ.—(क) राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं कर नख पर गोबर्धन धारी—१-२२। (ख) पांडु-सुत के बिघन जेते गए टरि टरि टरि—१-३०९।

बिघनहरन, बिघिनहरन—वि. [सं. विघ्नहरण] **बाधा दूर करनेवाला।**

संज्ञा पुं.—**गणेश, गणपति।**

बिच—संज्ञा पुं. [हिं. बीच] (१) **मध्य भाग, बीच।** उ.—उन तौ करी पाछिले की गति गुन तोर्‌यौ बिच धार—१-१७५। (२) **अंतर, दूरी।** उ.—केतिक बिच मथुरा औ गोकुल आवत जो हरि नहीं—२७९७।

क्रि. वि.—**में, अंदर।** उ.—खेल मच्यौ ब्रज के बिच भारी—२४०८।

बिचकना—क्रि. अ. [अनु.] (१) **भड़कना, चौंकना।** (२) **(मुँह का) टेढ़ा होना।**

बिचकाना—क्रि. अ. [अनु.] **(मुँह) बिराना या चिढ़ाना।**

बिचच्छन—वि. [सं. विलक्षण] **निपुण, पंडित।**

बिचरतौ—क्रि. अ. [हिं. बिचरना] (१) **चलता-फिरता, घूमता।** उ.—इहिं बिधि उच्च-अनुच तन धरि-धरि देस-बिदेस बिचरतौ—१-२०३।

बिचरना—क्रि. अ. [सं. विचरण] (१) **घूमना-फिरना।** (२) **यात्रा करना।**

बिचलना—क्रि. अ. [सं. विचलन] (१) **चंचल होना, हिलना-डोलना।** (२) **साहस छोड़ना।** (३) **कहकर मुकरना।**

बिचला—वि. [हिं. बीच] **बीच का, बीचवाला।**

बिचलाना—क्रि. स. [सं. विचलन] (१) **हिलाना- ेलाना।** (२) **तितर-बितर करना।** (३) **चित्त डिगाना।**

बिचले—क्रि. अ. [हिं. बिचलना] **व्याकुल या विचलित हो गये।** उ.—आतुर ह्वै धाईं उत नागरि इत बिचले सब ग्वाल—२४२७।

बिचलै—क्रि. अ. [हिं. बिचलन] **विचलित हो, हट जाय।** उ.—जौ सीता सत तैं बिचलै तौ श्रीपति काहि सँभारै—९-७८।

बिचवई—संज्ञा पुं. [हिं. बीच] **झगड़नेवालों के बीच में पड़कर झगड़ा निबटानेवाला, मध्यस्थ।**

संज्ञा स्त्री.—**मध्यस्थता।**

बिचवान, बिचवाना—संज्ञा पुं. [हिं. बीच+वान] **बीच-बचाव करनेवाला, मध्यस्थ।**

बिचवानी—संज्ञा स्त्री. [हिं बिचवान] **मध्यस्थता करनेवाली।** उ.—राधा आधा देह स्याम की तू उनकी बिचवानी—१४८४।

बिचहुत—संज्ञा पुं. [हिं. बीच] (१) **अंतर।** (२) **संदेह।**

बिचार—संज्ञा पुं. [सं. विचार] **संकल्प, ध्यान, विचार।** उ.—जौ पै यहै बिचार परी। तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं, मेरी देह धरी—१-२११।

क्रि. अ. [हिं. बिचारना] **विचारकर।** उ.—को तू, को यह, देखि बिचार—६-५।

बिचारत—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] **सोचते हो, गौर करते हो, विचार रहे हो।** उ.—(क) मोकौं मुक्ति बिचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर-घरी—१-१३०। (ख) तुमहिं देखि मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत—१०-२६५।

बिचारना—क्रि. अ. [सं. विचार](१) **सोचना।** (२) **प्रश्न पूछना।**

बिचारा—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] **सोचा, ध्यान किया।**

प्र०—करत बिचार—**सोचते हैं, ध्यान करते हैं।** उ.—सुक-सारद से करत बिचारा। नारद से पावहिं नहिं पारा—१०-३। करति बिचारा—**विचार करती हैं।** उ.—नर-नारी घर घर सबै इह करति बिचारा—१० उ०-८१।

वि. [हिं. बेचारा] **निरीह, असहाय।**

संज्ञा पुं. [हिं. विचार] **ध्यान, संकल्प।**

बिचारि—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] **सोचकर।**

प्र.—रहीं बिचारि-बिचारि—**सोच-सोच कर रह गयीं।** उ.—हम नहीं घर गईं तबते रहीं बिचारि बिचारि—११६९।

बिचारी—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] (१) **विचार किया, सोचा।** उ.—(क) इन पतितनि मो अपति बिचारी—१-२४८। (ख) सुरपति तब यह देखि बिचारी—६-५। (२) **विचारकर, सोचकर, गौर करके।** उ.—

(क) दुरबासा दुरजोधन पठयौ पांडव-अहित बिचारी—१-१२२। (ख) अंतहु सिखवन सुनहु हमारी कहियत बात बिचारी—३३१३।

प्र.—जाति बिचारी—**सोचा-विचारा या समझा जा सकता है**। उ.—सूरदास स्वामी की महिमा कापै जाति बिचारी—३८६।

संज्ञा पुं.[सं. विचारिन्] **विचार करनेवाला**। उ—मारग छाँड़ि कुमारग सौं रत बुधि बिपरीति बिचारी।

वि. स्त्री. [हिं. बेचारा] **दीन, निरीह, असहाय**। उ.—बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी—१-१७३।

बिचारे—वि. [फा. बेचारा] (१) **दीन, गरीब, निस्सहाय**। (२) **तुच्छ, हीन**। उ.—गीध, व्याध, गनिकारु अजामिल, ये को आहिं बिचारे—१-१७९।

बिचारैं—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] (१) **विचार करें, ध्यान दें, सोचें**। उ.—जौ प्रभु, मेरे दोष बिचारैं—१-१८३। (२)**मानते या समझते हैं**। उ.—हाँसी मैं कोउ नाम उचारै। हरि जू ताकौं सत्य बिचारैं–६-४।

बिचारौं—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] **मानता-समझता हूँ**। उ.—जीतैं जीति भक्त अपनैं के, हारैं हारि बिचारौं—१-२७२।

बिचारौ—क्रि. अ. [हिं. बिचारना] **विचार करो, सोचो, ध्यान दो**। उ.—प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न बिचारौ—१-१११।

वि. [हिं. बेचारा] (१) **दीन, असहाय, अनाथ, बेचारा**। (२) **तुच्छ, हीन**। उ.—पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ। बड़े पतित पासंगहु नाहीं, अजामिल कौन बेचारौ—१-१३१।

बिचित्र—वि. [सं. विचित्र] (१) **आश्चर्यजनक, विस्मयकारी**। उ.—हरि जू की आरती बनी। अति बिचित्र रचना करि राखी, परति न गिरा गनी—२-२८। (२) **सुंदर**। उ.—उर मनि-माला पहिराई, बसन बिचित्र दिये—१०-२४।

बिचेत—वि. [सं. विचेतस्] (१) **अचेत**। (२) **अधीर**।

बिचौनी, बिचौहाँ—संज्ञा पुं. [हिं. बीच] **मध्यस्थ**।

बिच्छित्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **शृंगार का एक हाव जिसमें किंचित शृंगार से ही पुरुष का मुग्ध होना वर्णित हो**।

बिच्छी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिच्छू] **एक जहरीला कीड़ा**।

बिच्छू—संज्ञा पुं. [सं. वृश्चिक] **एक जहरीला कीड़ा**।

बिच्छेप—संज्ञा पुं. [सं. विक्षेप] (१) **चित्त शांत या संयत न रहना**। (२) **विघ्न-बाधा**।

बिछइयै—क्रि. स. [हिं. बिछाना] (१) **(बिस्तर या कपड़े को) जमीन पर फैलाता है**। (२) **(पलँग, खाट तखत आदि को) जमीन पर फैलाता है**। उ.—टूटी छानि, मेघ जल बरसै, टूटो पलँग बिछइयै—१-२३९।

बिछड़ना—क्रि. अ. [सं. विच्छेद] **अलग होना**।

बिछना—क्रि. अ. [सं. विस्तरण] (१) **बिछाया या फैलाया जाना**। (२) **बिखेरा या छितराया जाना**। (३) **(मारकर) गिराया जाना**।

बिछलना—क्रि. अ. [हिं. फिसलना] **फिसलना**।

बिछलाना—क्रि. स. [हिं. फिसलाना] **फिसलाना**।

बिछवाना—क्रि. स. [हिं. बिछाना से प्रे.] **बिछाने को प्रवृत्त करना या प्रेरणा देना**।

बिछाई—क्रि. स. [हिं. बिछाना] **(सेज पर बिस्तर) आदि बिछाया, (सेज) तैयार की**। उ.—पौढ़िये मैं रचि सेज बिछाई—१०-२४२।

बिछान—संज्ञा पुं. [हिं. बिछौना] **बिस्तर, बिछौना**।

बिछाना—क्रि. स. [सं. विस्तरण] (१) **(जमीन पर) फैलाना**। (२) **बिखराना**। (३) **(मारकर) लिटाना**।

बिछायत—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिछाना] **बिछौना**।

बिछावत—क्रि. स. [हिं. बिछाना] **बिखेरता या बिखराता है**। उ.—पीछे ललिता आगे स्यामा प्यारी ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात—२०६८।

बिछावन—संज्ञा पुं. [हिं. बिछौना] **बिस्तर, बिछौना**।

बिछावना—क्रि. स. [हिं. बिछाना] (१) **फैलाना**। (२) **बिखराना**। (३) **(मारकर) लिटाना**।

बिछावहीं—क्रि. स. [हिं. बिछाना] **बिखेरते या बिखराते हैं**। उ.—मारग सुमन बिछावहीं पग निरखि तिहारे—२०६७।

बिछावैं—क्रि. स. [हिं. बिछावन] **(जमीन पर बिस्तर आदि) फैलावें**। उ.—इह जोग कथा ओढ़ैं कि बिछावैं—३४४२।

बिछिअन—संज्ञा स्त्री॰ बहु॰ [हिं॰ बिछिआ] पैर की उँगलियों में पहनने के छल्ले। उ.—पग जेहरि बिछिअन की झमकनि चलत परस्पर बाजत—पृ॰ ३१३ (२६)।

बिछिआ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बिच्छू+इआ] पैर की उँगलियों में पहनने का छल्ला।

बिछिप्त—वि॰ [सं॰ विक्षिप्त] पागल।

बिछिया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बिछिआ] पैर की उँगलियों में पहनने का छल्ला। उ.—छुद्रघंटिका पग नूपुर जेहरि बिछिया सब लेखौ—११२०।

बिछुआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बिच्छू] (१) पैर का एक गहना। (२) छुरी की तरह का एक शस्त्र।

बिछुड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं॰ बिछुड़ना] (१) अलग होने का भाव। (२) विरह, वियोग।

बिछुड़ना—क्रि. अ. [सं॰ विच्छेद] (१) अलग होना। (२) वियोग होना।

बिछुरंता—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बिछड़ना+अंता] बिछुड़नेवाला।

बिछुरत—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] बिछुड़ते ही, अलग होते ही। उ.—(क) रघुनाथ पियारे, आजु रहौ (हो)।....। बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ (हो)—९-३३। (ख) हरि बिछुरत फाट्यौ न हियौ—२५४५।

बिछुरन, बिछुरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं॰ बिछुड़ना] (१) बिछुड़ने या अलग होने का भाव। उ.—(क) यह सुनि भूप तुरत तनु त्याग्यौ, बिछुरन ताप तयौ—९-४६। (ख) जुग-जुग जनम मरन अरु बिछुरनसब समुझत मत भेव—१-१००। (ग) बिछुरन-मिलन रच्यौ बिधि ऐसौ, यह संकोच निवारौ—२६५३। (घ) कहाँ वह प्रीति कहाँ वह बिछुरन कहाँ मधुबन की रीति—२७१६।

बिछुरना—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] (१) अलग होना। (२) वियोग होना।

बिछुरी—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] बिछुड़ गयी, अलग हुई। उ.—(क) बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी—९-७२। (ख) जौ पै पतिब्रता ब्रत तेरैं, जीवति बिछुरी काइ—६-७७।

बिछुरे—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] अलग होने या बिछुड़ने पर। उ.—(क) बिछुरे श्री बृजराज आजु इन नैननि की परतीति गई—२५३७। (ख) सूरदास स्वामी के बिछुरै लागे प्रेम झई—२७७३।

बिछुरैं—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] बिछुड़ जाने पर, अलग होने पर। उ.—(क) जग मैं जीवत ही कौ नातौ। मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ—१-३०२। (ख) सूरदास रघुपति के बिछुरैं मिथ्या जनम भयौ—९-४६।

बिछुरौं—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] अलग होऊँ। उ.—सूरदास याही ब्रत मेरे हरि मिलि नहिं बिछुरौं—३०२७।

बिछुवा—संज्ञा पुं. [हिं. बिछुआ] पैर का एक गहना।

बिछूना—वि. [हिं. बिछुड़ना] जो बिछुड़ गया हो।

बिछोई—वि. [हिं॰ बिछोह+ई] (१) जो बिछुड़ा हुआ हो। (२) जिसका प्रिय बिछुड़ गया हो, विरही।

बिछोड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बिछुड़ना] (१) बिछुड़ने की क्रिया या भाव। (२) विरह, वियोग।

बिछोय—संज्ञा पुं. [सं. विच्छेद] वियोग, विरह।

बिछोह—संज्ञा पुं. [हिं. बिछुड़ना] विरह, वियोग।

बिछोही—क्रि. अ. [हिं॰ बिछुड़ना] बिछुड़ गयी है, वियोग हुआ है। उ.—अहो विहंग, कहौ अपनौ दुख, पूछत ताहि खरारि। किहिं मति मूढ़ हत्यौ तनु तेरौ, किधौं बिछोही नारि—९-६५।

बिछौन, बिछौना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बिछाना] बिस्तरा।

बिजड़—संज्ञा स्त्री॰ [हिं.] तलवार।

बिजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यजन] पंखा, बेना।

वि॰ [सं॰ विजन] जनरहित या एकांत (स्थान)।

बिजय—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विजय] जीत, विजय।

संज्ञा पुं.—विष्णु के पार्षद जो ब्रह्मशाप से असुर हो गये थे। उ.—जय अरु बिजय पारषद दोइ। बिप्र-सराप असुर भए सोइ—१०-२।

बिजयठे—संज्ञा पुं॰ बहु॰ [हिं॰ बिजायठ] हाथ का एक आभूषण, अंगद, बाजूबंद। उ.—कुच कंचुकी हार मोतिनि अरु भुजन बिजयठे सोहत—१०७९।

बिजली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विद्युत] (१) विद्युत (शक्ति)। (२) (आकाश में चमकनेवाली) चपला। (३) आम

की गुठली। (४) गले का एक गहना। (५) कान का एक गहना।

वि.—(१) बहुत चंचल। (२) बहुत चमकीला।

बिजाती—वि. [सं. विजातीय] (१) दूसरी जाति का। (२) जाति से निकाला हुआ।

बिजान—संज्ञा पुं. [सं. वि+ज्ञान] अनजान, अज्ञान।

बिजायठ—संज्ञा पुं. [सं. विजय] बाजूबंद (गहना)।

बिजार—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बैल। (२) साँड़।

बिजुकानी—क्रि. अ. [हिं. बिझुकना] भड़क गयी, बिभुक गयी, डराने लगी, मारने दौड़ी। उ.—ब्यानी गाइ बछरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया। यहै देखि मोकौं बिजुकानी, भागि चल्यौ कहि दैया-दैया—१०-३३५।

बिजुरी, बिजुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] (१) विद्युत। (२) चपला। (३) गले का एक गहना। (४) कान का एक गहना।

बिजूका, बिजूखा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) (खेत का बनावटी) धोखा। (२) छल-कपट।

बिजै—संज्ञा पुं. [सं. विजय] विजय।

बिजोग—संज्ञा पुं. [सं. वियोग] विरह, वियोग।

बिजोना—क्रि. स. [हिं. जोवना] भली-भाँति देखना।

बिजोर—वि. [सं. वि+फा. जोर] निर्बल, अशक्त।

बिजौरा—संज्ञा पुं. [सं. बीजपूरक] एक वृक्ष।

बिजौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीज+औरी] उड़द की पीठी और पेठे की बड़ी, कुम्हड़ौरी।

बिज्जल, बिज्जु—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] बिजली, विद्युत। उ.—(क) इंद्रजीत लीन्ही तब सक्ती, देवनि हहा कर्‌यौ। छूटी बिज्जु-रासि वह मानौ, भूतल बंधु पर्‌यौ—९-१४४।

बिज्जुपात—संज्ञा पुं. [सं. विद्युत्पात] बिजली का गिरना।

बिज्जुल—संज्ञा पुं. [सं. विज्जुल] छिलका।

संज्ञा स्त्री. [सं. विद्युत] बिजली, दामिनि। उ.—हँसत दसननि चमक बिज्जुल लसति कठिन कठोर—पृ. ३१० (३)।

बिज्जुलता—संज्ञा स्त्री. [सं. विद्युल्लता] विद्युत, बिजली। उ.—गोद लिए जसुदा नंद-नंदहिं। पीत झँगुलिया की छबि छाजति, बिज्जुलता सोहति मनु कंदहिं—१०-१०७।

बिज्जू—संज्ञा पुं. [देश.] एक जंगली पशु।

बिझरा—संज्ञा पुं. [हिं. बेझर] मिला हुआ अन्न।

बिझुकना—क्रि. अ. [हिं. झोंका] (१) भड़कना। (२) डरना। (३) तनना, टेढ़ा होना।

बिझुकाना—क्रि. स. [हिं. बिझुकना का सक.] (१) भड़काना। (२) डराना। (३) टेढ़ा करना, तानना।

बिझुकि—क्रि. अ. [हिं. बिझुकना] भड़ककर। उ.—बिडुरत बिझुकि जानि रथ ते मृग जनु ससंकि ससि-लंगर सारे—१३३३।

बिट—संज्ञा पुं. [सं. विट्] (१) कामुक और लंपट। उ.—खान-पान-परिधान मैं (रे) जोवन गयौ सब बीति। ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ (रे) भोर भए भई भीति—१-३२५। (२) नायक का चतुर सखा। (३) वैश्य। (४) पक्षियों की बीट।

बिटप—संज्ञा पुं. [सं. विटप] पेड़, वृक्ष।

बिटनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेटी] (१) पुत्री। (२) लड़की। उ.—मो आगे की महरि बिटनियाँ कहा करै वह मान—१८७६।

बिटरना—क्रि. अ. [हिं. बिटारना] घँघोला जाना।

बिटारना—क्रि. स. [सं. बिलोडन] घँघोलकर गंदा करना।

बिटिनियाँ, बिटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेटी] (१) बेटी, पुत्री। (२) लड़की, बालिका। उ.—एक बिटिनियाँ संग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री—६९५।

बिट्ठल—संज्ञा पुं. [सं. विष्णु, महा० बिठोबा] (१) विष्णु का एक नाम। (२) पंढरपुर की प्रधान देवमूर्ति जिसे जैन तीर्थंकर की और हिन्दू विष्णु की मूर्ति मानते हैं।

बिठलाना—क्रि. स. [हिं. बैठाना] बैठने को प्रवृत्त करना।

बिठाइ—क्रि. स. [हिं. बैठाना] बैठाकर, स्थिर करके। उ.—निकट बुलाइ बिठाइ, निरखि मुख, अंचर लेत बलाइ—९-८३।

बिठाना—क्रि. स. [हिं. बैठाना] बैठाना।

बिडंब, बिडंबन—संज्ञा पुं. [सं. विडंब] आडंबर, दिखावा।

बिडंबना—संज्ञा स्त्री. [सं. बिडंबन] (१) नकल। (२) उपहास।

बिडर—वि.[हिं. बिडरना] छितरा हुआ।
वि. [हिं. बि+डर] (१) निर्भय। (२) ढीठ।
बिडरत—क्रि. अ. [हिं. बिडरना] भयभीत होकर बिचकता है। उ.—बिडरत बिझुकि जानि रथ ते मृग जनु ससंकि ससि लंगर सारे—१३३३।
बिडरना—क्रि. अ. [सं. विद्] (१) तितर-बितर होना। (२) भयभीत होकर (पशु का) बिचकना।
बिडराना—क्रि. स. [हिं. बिडरना] (१) तितर-बितर करना। (२) (पशु को) भयभीत करके बिचकाना।
बिडरि—क्रि. अ. [हिं. बिडरना] भयभीत होकर, बिचककर। उ.—बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत—१०-६३।
बिडरीं—क्रि. अ. [हिं. बिडरना] (१) भयभीत होकर बिचक गयीं। (२) तितर-बितर हो गयीं। उ.—भीर भई सुरभी सब बिडरीं मुरली भली सम्हारी—६९३।
बिडरे—क्रि. अ. [हिं. बिडरना] तितर-बितर हो गये। उ.—बिडरे गज-जूथ सील, सैन-लाज भाजी—६५०।
बिडरै—वि. [हिं. बि+डरना] निर्भय, निडर। उ.—वह निसंक अतिहिं ढीठ, बिडरै, नहिं भाजै—९-९६।
क्रि. अ. [बिडरना] भयभीत होता है, विचलित होता है। उ.—अजामिल द्विज सौं अपराधी, अंतकाल बिडरै। सुत सुमिरत नारायन-बानी, पार्षद धाइ परै—१-८२।
बिडवत—क्रि. स. [हिं. बिडवना] तोड़ता है। उ.—घूँघट पट बागर (बागुर) ज्यौं बिडवत जतन करत ससि हारे—२१९०।
बिडवना—क्रि. स. [सं. बिद्] तोड़ना-फोड़ना।
बिडारना—क्रि. स. [हिं. बिडरना] भयभीत करके भगाना।
बिडारी—क्रि. स. [हिं. बिडारना] भगाना, निकाल देना। उ.—धर्म-सत्त मेरे पितु-माता, ते दोउ दिये बिडारी—१-१७३।
बिड़ाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिलाव। (२) एक दैत्य।
बिड़ालक—संज्ञा पुं. [सं.] आँख का गोलक।
बिढ़तो—संज्ञा पुं. [हिं. बढ़ना] लाभ, नफा।
बिढ़वना, बिढ़ाना—क्रि. स. [हिं. बढ़ाना] (१) कमाना। (२) इकट्ठा करना।
बित—संज्ञा पु. [सं. वित्त] धन, द्रव्य। उ.—जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं। राज-काज सुत-बित की डोरी, बिनु बिबेक फिर्‌यौ भटकैं—१-२९२।
बितई—क्रि. स. [हिं. बिताना] बिता दी, व्यतीत की। उ.—होत कहा अबकैं पछिताऐं, बहुत बेर बितई—१-२९९।
बितत—वि. [सं. व्यतीत] समाप्त, व्यतीत, विगत। उ.—भारत जुद्ध बितत जब भयौ। दुरजोधन अकेल रहि गयौ—१-२८९।
बितताइ—क्रि. अ. [हिं. बितताना] व्याकुल होकर, बिलख कर। उ.—खेलत में तुम बिरह बढ़ायौ गई कहा बितताइ—पृ. ३१२ (२०)।
बितताति—क्रि. अ. [हिं. बितताना] व्याकुल होकर, घबराकर। उ.—मैं तौ चकित भई हौं सुनि कै, अति अचरज यह बात। सूर स्याम गारुड़ी कहाँ कौ, कहँ आई बितताति—७५३।
बितताना—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] व्याकुल, अधीर या संतप्त होना, बिलखना।
बिततानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. बितताना] बिलखने लगी, व्याकुल हुई, संतप्त हुई। उ.—(क) कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी—६४४। (ख) रोवति महरि फिरति बिततानी—७५९। (ग) घर-घर तरुनी सब बिततानी—पृ. ३३८ (७५)।
बितताने—वि. [हिं. बितताना] व्याकुल। उ.—फिरत लोग जहँ तहँ बितताने—१०५०।
बिततायें—क्रि. स. [हिं. बितताना] दुखी या संतप्त किये। उ.—अपने सुख ब्रज जन बितताये—१०५६।
बितना—संज्ञा पुं. [हिं. बित्ता] बित्ता, बालिश्त।
बितनु—वि. [सं. वितनु] (१) तन या शरीर रहित। (२) बहुत छोटा, सूक्ष्म।
संज्ञा पुं.—कामदेव।
बितपन्न—वि. [सं. व्युत्पन्न] ज्ञाता, पंडित। उ.—सूरज प्रभु बितपन्न कोकगुन ताते हरिहर ध्यावत-१५९४।
बितरना—क्रि. स. [सं. वितरण] बाँटना।
बितवत—क्रि. स. [हिं. बितवना] बिताते हैं, व्यतीत करते

हैं। उ. —(क) कल्प समान एक छिन राघव, क्रम-क्रम करि हैं बितवत—९-८७। (ख) जब तैं रूप ठगौरी लागी, जुग समान पल बितवत—७३०।

बितवति—क्रि. स. [हिं. बितवना] **बिताती है।** उ.—दिवस बितवति सकल जन मिलि कथति गुन बलबीर—३४७६।

बितवना—क्रि. स. [हिं. बिताना] **बिताना।**

बिता—संज्ञा पुं. [हिं. बित्ता] **बित्ता, बालिश्त।**

बिताई क्रि. स. स्त्री. [हिं. बिताना] **व्यतीत की, समय काटा।** उ.—(क) काहू सौं यह कहि न सुनाई। उहाँ जाइ सब रैनि बिताई। (ख) नृपति निज आयु इहिं बिधि बिताई- ८-१६।

बिताना—क्रि. स. [हिं. बीतना का सक०] **(समय) काटना।**

बितायो, बितायौ—क्रि. स. [हिं. बिताना] **(समय) काटा।** उ.—रिषि मग-जोवत वर्ष बितायौ—९-५।

बितावना—क्रि. स. [हिं. बिताना] **(समय) काटना।**

बिती—क्रि. अ. [हिं. बीतना] **घटित हुई, पड़ी।** उ.—अंतर्यामी यहौ न जानत जो मो उरहिं बिती—१० उ०-१०३।

बितीतना—क्रि. अ. [सं. व्यतीत] **बीतना, व्यतीत होना।**
क्रि. स.—**बिताना, व्यतीत करना।**

बितीतै—क्रि. अ. [हिं. बितीतना] **व्यतीत हो, बीते।** उ.—कछु बालापन ही मैं बीतै। कछु बिरधापन माहिं बितीतै—७-२।

बितु—संज्ञा पुं. [सं. बित्त] **धन, द्रव्य।**

बितैहै—क्रि. स. [हिं. बिताना] **व्यतीत करेगी।** उ.—मेरौ कह्यौ मानिहै नाहीं ऐसे हीं भ्रुमि भ्रुमि ग्वोस बितैहै—११९२।

बित्त—संज्ञा पुं. [सं. वित्त] (१) **धन, द्रव्य।** (२) **स्थिति, हैसियत।** (३) **शक्ति, सामर्थ्य।**

बित्ता—संज्ञा पुं. [देश.] **बालिश्त।**

बिथकना—क्रि. अ. [हिं. थकना] (१) **थक जाना।** (२) **चकित या स्तब्ध होना।** (३) **आसक्त होना।**

बिथकाना—क्रि. स. [हिं. बिथकना] (१) **थकाना।** (२) **चकित करना।**

बिथकित—क्रि. अ. [हिं. बिथकना] **चकित या स्तब्ध होकर।** उ.—गोपीजन बिथकित ह्वै चितवतिं सबै ठाढ़ी—४४१।

बिथकीं—क्रि. अ. [हिं. बिथकना] **मुग्ध या आसक्त हुईं।** उ.—सूर अमर ललनागन बिथकीं अमरलोक बिसारी।

बिथक्यो, बिथक्यौ—क्रि. अ. [हिं. बिथकना] **थक गया।** उ.—समुझाई समुझत नहीं सिख दै बिथक्यो गाउँ—११८२।

बिथरना—क्रि. अ. [सं. वितरण] (१) **बिखरना।** (२) **अलग होना।**

बिथराइ—क्रि. स. [हिं. बिथराना] **अलग-अलग करके।**
प्र० - बिथराइ दियौ—**अलग-अलग करके बिखरा दिया।** उ.—हार तोरि बिथराइ दियो—१०५१।

बिथराना—क्रि. स. [हिं. बिथरना] (१) **बिखेरना।** (२) **अलग करना।**

बिथरै—क्रि. अ. [हिं. बिथराना] **छितराकर, बिखेरकर।** उ.—धर बिधंसि नल करत किरषि हल, बारि, बीज बिथरै—१-११७।

बिथर्यौ—क्रि. स. [हिं. बिथारना] **छिटकाया, बिखेरा।** उ.—इहिं ढोटा लै ग्वाल भवन मैं कछु बिथरचौ कछु खायौ—१०-३३६।

बिथा—संज्ञा स्त्री. [सं. व्यथा] **दुख, पीड़ा, क्लेश, कष्ट।** उ.—(क) बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी—१-६८ (ख) ब्यावर बिथा न बंध्या जानै—३४४२।

बिथारना—क्रि. स. [हिं. बिथरना] **बिखेरना।**

बिथित—वि. [सं. व्यथित] **पीड़ित, दुखित।**

बिथुरना—क्रि. अ. [हिं. बिथरना] (१) **छितरना।** (२) **अलग होना।**

बिथुराइ, बिथुराई—क्रि. अ. [हिं. बिथरना] **फैलकर, छिटककर।** उ.—सोभित चिकुर ललाट बदन पर कुंचित कुटिल अलक बिथुराई—२११६।

बिथुराना—क्रि. अ. [हिं. बिथुरना] (१) **बिखरना।** (२) **अलग होना।**
क्रि. स.—(१) **बिखेरना।** (२) **अलग करना।**

बिथुरि—क्रि. अ. [हिं. बिथुरना] **छितराकर, बिखरकर।**

उ.—बिथुरि अलक रहीं मुख पर बिनहिं बपन सुभाइ —१०-२२५।

बिथोरना—क्रि. स. [हिं. बिथराना] (१) बिखराना। (२) अलग करना।

बिद—वि. [सं. विद्] जाननेवाला, ज्ञाता।

बिदकना—क्रि. अ [सं. विदारण] (१) फटना। (२) भड़कना। (३) घायल होना।

बिदकाना—क्रि. स. [हिं. बिदकना] (१) फाड़ना। (२) भड़काना। (३) घायल करना।

बिदमान—वि. [सं. विद्यमान] वर्तमान या उपस्थित (होने पर या होकर)। उ.—(क) फोर्‌यौ नयन, काग नहिं छाड़्यौ सुरपति के बिदमान—९-८३। (ख) जिहिं बल बिप्र तिलक दै माथ्यौ, रच्छा करी आप बिदमान—१०-१२७।

बिदर—संज्ञा पुं. [सं. विदर्भ] विदर्भ देश।

बिदरन—संज्ञा स्त्री. [सं. विदीर्ण] दरार, दरज।
वि.—फाड़ने या चीरनेवाला।

बिदरना—क्रि. अ. [सं. विदारण] फटना, चिरना।

बिदराना—क्रि. स. [हिं. बिदरना] फड़वाना, चिरवाना।

बिदरि—क्रि. अ. [हिं. बिदरना] फटकर। उ.—मेरी बज्र की छाती बिदरि करि नहिं जाति—२५४३।

बिदर्भ—संज्ञा पुं. [सं. विदर्भ] आधुनिक बरार प्रदेश का प्राचीन नाम। प्रसिद्धि है कि इस प्रदेश को यह संज्ञा इसी नाम के एक राजा के कारण मिली थी।

बिदलना—क्रि. स. [हिं. वि+दलना] (१) कुचलना। (२) कष्ट या पीड़ा देना।

बिदली—क्रि. स. [हिं. बिदलना] दलित की, कम कर दी। उ.—कीर-कपोत-मीन-पिक-सारँग-केहरि-कदली-छबि बिदली। सूरदास प्रभु पास दुहावति, धनि-धनि श्री बृषभानु-लली—१०-७३९।

बिदा, बिदाई, बिदायगी—संज्ञा स्त्री. [अ. विदाअ] (१) प्रस्थान, गमन। उ.—साधु-साधु कहि श्रीमुख बानी। बिदा भए इहिं भाँति बखानी—३९१। (२) जाने की आज्ञा। उ.—दीजै बिदा, जाउँ घर अपनैं, कालिह साँझ की आई—१०-१६। (३) गौना, द्विरागमन। (४) वह धन जो बिदा के समय मिले।

बिदारति—क्रि. स. [हिं. बिदारना] फाड़ती या कुरेदती है। उ.—सूरदास प्रभु मान धर्‌यो दृढ़, धरनी नखत बिदारति—पृ. ३१२ (१७)।

बिदारना—क्रि. स. [सं. विदारण] (१) चीरना, फाड़ना, कुरेदना। (२) बिगाड़ना, नष्ट करना।

बिदारी—क्रि. स. [हिं. बिदारना] चीर डाली, फाड़ दी। उ.—हिरनकसिपु की देह बिदारी—१-२८।

बिदारै—क्रि. स. [हिं. बिदारना] नष्ट करे, नाश करे। उ.—केतिक जीव कृपिन मम बपुरौ, तजै कालहू प्रान। सूर एक हीं बान बिदारैं, श्री गोपाल की आन—१-२७५।

बिदारौं—क्रि. स. [हिं. बिदारना] चीर दूँ, फाड़ डालूँ। उ.—कहौ तौ असुर लँगूर लपेटौं, कहौ तौ नखनि बिदारौं—९-१०७।

बिदार्‌यो, बिदारयौ—क्रि. स. [हिं. बिदारना] चीर-फाड़ डाला। उ.—हिरनकसिपु बपु नखनि बिदार्‌यौ—१०-२२१।

बिदित—वि. [सं. विदित] प्रसिद्ध, ज्ञात, अवगत, जानी हुई। उ.—(क) जीव न तजै स्वभाव जीव कौ लोक बिदित दृढ़ताई—१-२०७। (ख) जौ नाहीं अनुसरत नाम जग, बिदित बिरद कत कीन्हौं—१-२११।

बिदिसि—संज्ञा स्त्री. [सं. विदिश्] दो दिशाओं के बीच का कोना। उ.—रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत। हाथ धनुष लीन्हें, कटि भाथा, चकित भए दिसि-बिदिसि निहारत—९-६२।

बिदीरना—क्रि. स. [सं. विदीर्ण] फाड़ना।

बिदुराना—क्रि. अ. [सं. विदुर] मुसकराना।

बिदुरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिदुराना] मुसकराहट।
क्रि. अ.—मुसकरायी, हँसने लगी।

बिदूषना—क्रि. स. [हिं. दोष] (१) दोष या कलंक लगाना। (२) बिगाड़ना।

बिदेस—संज्ञा पुं. [सं. विदेश] दूसरा देश, परदेश। उ.—इहिं बिधि उच्च-अनुच तन धरि-धरि देस-बिदेस बिचरतौ—१-२०३।

बिदेह—वि. [सं. विदेह] (१) जिसे शरीर का ध्यान या उसकी चिंता हो। (२) देहरहित। (३) बेसुध।

संज्ञा पुं.—(१) राजा जनक। (२) मिथिला का प्राचीन नाम।

बिदोख, बिदोष—संज्ञा पुं. [सं. विद्वेष] बैर, झगड़ा।

बिदोरना—क्रि. स. [सं. विदारण](दाँत) खोलकर दिखाना।

बिद्यमान—वि. [सं. विद्यमान] उपस्थित, विद्यमान, वर्तमान। उ.—माधौ जू, मन हठ कठिन पर्‌यौ। जद्यपि बिद्यमान सब निरखत, दुःख सरीर भर्‌यौ—१-१००।

बिद्या—संज्ञा स्त्री. [सं. विद्या] विद्या, शिक्षा, जानकारी। उ.—संदीपन-सुत तुम प्रभु दीने, बिद्या-पाठ करचौ—१-१३३।

बिधँसना—क्रि. स. [हिं. विध्वंसन] नाश करना।

बिधंसि—क्रि. स. [हिं. बिधँसना] नष्ट करके, नाश करके, विध्वंस करके। उ.—धर बिधंसि नल करत किरषि हल, बारि, बीज बिथरै। सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करै—१-११७।

बिध—संज्ञा स्त्री. [सं. विधि] (१) भाँति। (२) रीति।

संज्ञा पुं.—ब्रह्मा, विधाता।

संज्ञा स्त्री. [सं. विधा = लाभ] आय-व्यय का लेखा।

बिधना—संज्ञा पुं. [सं. विधि+ना (प्रत्य.)] ब्रह्मा, विधि, विधाता। उ.—(क) कंसराइ जिय सोच परी। कहा करौं, काकौं ब्रज पठवौं, बिधना कहा करी—१०-४८। (ख) बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ। जब तैं आजु नंदनंदन छबि बार-बार करि देख्यौ—६४३। (२) ब्रह्म, ईश्वर। उ.—सूरजदास भरम जनि भूलौ करि बिधना सौं हेत—१-३२२।

संज्ञा स्त्री.—होनी, भवितव्यता।

क्रि. स. [हिं. बिंधना] (१) बींधा या छेदा जाना। (२) फँसना, उलझना।

बिधये—क्रि. अ. [हिं. बिधना] छिद गये, आहत हुए। उ.—थके चरन सुनि सूर मनो गुन मदन बान बिधये री—१३४८।

बिधवत—क्रि. अ.[हिं. बिधना] बेधता है। उ.—जैसेबधिक अधिक मृग बिधवत राग रागिनी ठानि—३२५०।

बिधवा—वि. [सं. विधवा] राँड़ (स्त्री)।

बिधवाना—क्रि. स. [हिं. बिंधवाना] (१) छिदवाना। (२) फँसवाना।

बिधाँसना—क्रि. स. [सं. विध्वंसन] नष्ट करना।

बिधाई—संज्ञा पुं. [सं. विधायक] विधान करनेवाला।

बिधाता—संज्ञा पुं. [हिं. विधाता] ब्रह्मा।

बिधातैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. बिधाता] ब्रह्मा ने। उ.—सूरदास बिपरीत बिधातैं यहि तनु फेरि ठटे—३०६९।

बिधान—संज्ञा पुं. [सं. विधान](१)आयोजन। (२)प्रबंध। (३) प्रणाली। (४) निर्माण। (५) नियम, आज्ञा।

बिधाना—क्रि. अ. [हिं. बिंधाना] छिदवाना, बिंधवाना।

बिधानी—संज्ञा पुं. [सं. विधान] विधान करनेवाला।

बिधि—संज्ञा पुं. [सं. विधि] (१) ब्रह्मा, विधाता। उ.—जोरि कर बिधि सौं मनावति आसीसैं दै नाम—२५५५।

संज्ञा स्त्री. (१) रीति, प्रणाली। (२) प्रकार, भाँति। उ.—(क) इहि बिधि इहिं डहके सबै, जल-थल-नभ जिय जेते (हो)—१-४४। (ख) अब भ्रम-भँवर पर्‌यौ ब्रजनायक निकसन की सब बिधि की—१-२१३। (ग) स्रवन सुजस सारंग-नाद बिधि, चातक-बिधि मुख नाम—२-१२२। (३) व्यवस्था। (४) शास्त्रीय विधान। (५) नियम, कानून।

बिधिना—संज्ञा पुं. [सं. विधि] बिधाता, ब्रह्मा। उ.—मनहीं मन अनुमान कियौ यह बिधिना जोरी भली बनाई—७६१।

बिधि-बाहन—संज्ञा पुं. [सं. विधि+हिं. बाहन] विधाता का वाहन, हंस।

बिधिवाहन-भच्छन—संज्ञा पुं. [सं. विधि+वाहन+भक्षण] ब्रह्मा की सवारी (हंस) का भोजन, मोती। उ.—बिधि-बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए—४१७।

बिधिवत—क्रि. वि. [सं. विधिवत्] विधि से, विधिपूर्वक, पद्धति के अनुसार। उ.—बैठे नंद करत हरि-पूजा बिधिवत और बहु भाँति—१०-२६०।

बिधुंसना—क्रि. स. [हिं. बिधंसना] नाश करना।

बिधु—संज्ञा पुं. [सं. विधु] (१) चन्द्रमा। उ.—बिकसति ज्योति अधर-बिच, मानौ बिधु मैं बिज्जु उज्यारी—१०-९१। (२) विधिना।

बिन—अव्य. [हिं. बिना] छोड़कर, बगैर, बिना। उ.—

जैसैं मगन नाद-रस सारँग, बधत बधिक बिन बान—१-१६६ ।

बिनई—संज्ञा पुं. [सं. विनयी] (१) नम्र, विनीत । (२) विनती या प्रार्थना करनेवाला ।

बिनउ—संज्ञा स्त्री. [सं. विनय] (१) प्रार्थना । (२) नम्रता ।

बिनति, बिनती—संज्ञा स्त्री. [सं. विनय] प्रार्थना, निवेदन । उ.—(क) सूरदास बिनती कह बिनवै, दोषनि दहे भरी—१-१३० । (ख) बिनती करत डरत करुनानिधि, नाहिँन परत रह्यौ—१-१६२ ।

बिनन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिनना = चुनना] (१) चुनने की क्रिया या भाव । (२) बीनने की क्रिया या भाव । (३) बीनने पर निकला हुआ कूड़ा-करकट । (४) बुनने की क्रिया या भाव ।

बिनना—क्रि. स. [सं. वीक्षण] (१) चुनना, छाँटना । (२) संग्रह करना ।

क्रि. स. [हिं. बींधना] डंक मारना ।

क्रि. स. [हिं. बुनना] बुनना ।

बिनय—संज्ञा स्त्री. [सं. विनय] बिनती, प्रार्थना । उ.—बिनय कहा करै सूर, कूर, कुटिल कामी—१-१२४ ।

बिनवति—क्रि. अ. [हिं. बिनवना] विनय करती है । उ.—उडुपति सौं बिनवति मृग नैनी—१०उ०-९३ ।

बिनवना—क्रि. अ. [सं. विनय] बिनती-प्रार्थना करना ।

बिनवहु—क्रि. अ. [हिं. बिनवना] विनय करो । उ.—कहत बचन बिचारि बिनवहु सोधि हो मन माँहि—३८७५ ।

बिनवै—क्रि. अ. [हिं. बिनवना] विनय करती है, प्रार्थना करे, विनती करे । उ.—(क) सूरदास बिनती कह बिनवै, दोषनि देह भरी—१-१३० । (ख) सूर कर जोरि अंचल छोरि बिनवै, बचै ए आजु विधि इहै माँगि—२५०३ ।

बिनशत, बिनसत—क्रि. अ. [सं. विनाश] नष्ट होता है, नाश या बरबाद होता है । उ.—पुनि कह्यौ, जीव दुखित संसार । उपजत-बिनसत बारंबार—७-२ ।

बिनशना, बिनसना—क्रि. अ. [सं. विनाश या विनष्ट] नष्ट या बरबाद होना ।

क्रि. स.—नाश होना, चौपट होना ।

बिनशाना, बिनसाना—क्रि. स. [सं. विनाश] नष्ट करना ।

क्रि. अ.—विनष्ट होना ।

बिनशै, बिनसै—क्रि. अ. [हिं. बिनसना] नष्ट हो । उ.—अबिनाशी बिनशै (बिनसै) नहीं, सहज जोति परगास—३४४३ ।

बिना—अव्य. [सं. विना] छोड़कर, बगैर ।

बिनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीनना] (१) बीनने की क्रिया, भाव या मजदूरी । (२) बुनने की क्रिया या भाव ।

बिनाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिनती] प्रार्थना, विनय ।

बिनाना—क्रि. स. [हिं. बुनवाना] बुनवाना ।

बिनानी—वि. [सं. विज्ञानी] अज्ञानी, अनजान । उ.—(क) रोवन लागे कृष्न बिनानी । जसुमति आइ गई लै पानी—१०-५७ । (ख) पाहन सिला निरखि हरि डार्‌यौ, ऊपर खेलत कृष्न बिनानी—१०-७८ । कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक भेष दिखाइ बिनानी । (ग) भवन-काज को गई नँदरानी । आँगन छाँड़े स्याम बिनानी—३९१ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. विज्ञान] विचार, गौर । उ.—चितै रहे तब नंद जुवति-मुख मन-मन करत बिनानी—१०-२५६ ।

बिनाश, बिनास—संज्ञा पुं. [सं. विनाश] नाश, ध्वंस, मिटना, बरबादी । उ.—चोर न चित चोरी तजै (रे) सरबस सहै बिनास—१-३२५ ।

बिनाशन, बिनासन—नष्ट करने, नाश करने, बिगाड़ने । उ.—काहे कौं छल करि-करि आवत, धर्म बिनासन मोर—९-८३ ।

संज्ञा पुं. [सं. विनाशन] विनाश करनेवाले । उ.—(क) सुनि देवकी को हितू हमारे । असुर कंस अपबंस बिनासन, सिर ऊपर बैठे रखवारे—१०-१० । (ख) सूरदास प्रभु दुष्ट बिनाशन गोकुल ते मथुरा आए—२५९८ ।

बिनाशना, बिनासना—क्रि. स. [सं. विनाश] नष्ट करना ।

बिन, बिनि, बिनु—अव्य. [हिं. बिना] छोड़कर, बगैर । उ.—बिनु बदलैं उपकार करत हैं स्वारथ बिना करत मित्राई—१-३ ।

बिनूठा—वि॰ [हिं॰ अनूठा] **अनोखा, विचित्र।**

बिनै—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विनय] **बिनती, प्रार्थना, विनय।** उ.—सरन आए की प्रभु, लाज धरिऐ। सध्यौ नाहिं धर्म सुचि, सील, तप, व्रत कछू, कहा मुख लै तुम्हैं बिनै करिऐ—१-११०।

बिनैका—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विनायक] **पकवान या भोजन का भाग जो गणेश जी के लिए निकाल दिया जाता है।**

बिनोद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विनोद] **प्रमोद, परिहास, हँसी, आनन्द।** उ.—सुत-तनया-बनिता-बिनोद-रस इहिं जुर-जरनि जरायौ—१-१५४।

बिनोदी—वि॰ [हिं॰ विनोदी] **आनंदी, जिसका स्वभाव आमोद-प्रमोद का हो।** उ.—छरीदार बैराग बिनोदी झिरकि बाहिर कीन्हें—१-४०।

बिनौला—संज्ञा पुं॰ [देश॰] **कपास का बीज।**

बिपच्छ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विपक्ष] **शत्रु, बैरी।**

वि.—(१) **अप्रसन्न।** (२) **बिमुख, विरुद्ध।**

बिपच्छी—संज्ञा पुं [सं॰ विपक्षिन्] (१) **विरोधी।** (२) **शत्रु।**

बिपता, बिपति, बिपत्त, बिपत्ति, बिपत्ती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विपत्ति] **संकट, मुसीबत।**

बिपद, बिपदा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विपद] **संकट, मुसीबत।**

बिपर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विप्र] **ब्राह्मण।**

बिपरीत, बिपरीति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विपरीत] (१) **विरोध-भावना, प्रतिकूलता की भावना।** उ.—मंत्री काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति। दुबिधा दुंद रहै निसिबासर, उपजावत बिपरीति—१-१४१। (२) **उलटी रीति-नीति या पद्धति।** उ.—तिनकी बड़ी बिपरीति। जिम्मे उनके, माँगैं मोतैं, यह तौ बड़ी अनीति—१-१४३। (३) **उलटी या विरोधी बात।** उ.—कहँ मेरौ कान्ह, कहाँ तुम ग्वारिनि, यह बिपरीत न जानी—१०-३११।

बिपाक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विपाक] (१) **पूर्णता को पहुँचना, चरम उत्कर्ष।** (२) **दुर्दशा, कष्ट, संकट।** उ.—प्रगट पाप-संताप सूर अब, कापर हठै गहौं? और इहाँउ बिवेक-अगिनि के बिरह-बिपाक दहौं—३-२।

बिपुल—वि॰ [सं॰ विपुल] **लम्बा, बड़ा** उ.—नव-धनु, नील सरोजबरन बपु, बिपुल बाहु, केहरि कल-काँधे-९-५८।

बिफर—वि॰ [सं॰ विफल] (१) **निष्फल।** (२) **फलरहित।**

बिफरना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ विप्लवन] (१) **विद्रोही होना।** (२) **अप्रसन्न या क्रुद्ध होना, बिगड़ना।**

बिफल—वि॰ [सं॰ विफल] (१) **निष्फल, मिथ्या, असत्य।** उ.—या सपने कौ भाव सिया सुनि, कबहुँ बिफल नहिं जाइ—९-८३। (२) **फलरहित, जिसमें फल न लगें।** उ.—मुरली सुनत अचल चले। द्रवित ह्वै जल झरत पाहन बिफल बृक्ष फले - पृ॰ ३४७ (५४)।

बिबछना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ विपक्ष] (१) **विरोधी होना।** (२) **फँसना, उलझना।**

बिबरन—वि॰ [सं॰ विवर्ण] (१) **खराब रंगवाला।** (२) **मलिन कांतिवाला।**

संज्ञा पुं॰ [सं॰ विवरण] **वृत्तांत, वर्णन।**

बिबरनि—संज्ञा पुं॰ सवि॰ [सं॰ विवर+हिं॰ नि॰ (प्रत्य.)] **बिलों में, छिद्रों में।** उ.—भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि। रहे बिबरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि—१०-१०९।

बिबस—वि॰ [सं॰ विवश] (१) **मजबूर, विवश।** (२) **पराधीन, लीन।** उ.—(क) कामी, बिबस कामिनी कैं रस, लोभ लालसा ब्यापी—१-१४०। (ख) तहाँ परासर रिषि चलि आए। बिबस होइ तिहिं कैं मद छाए—१-२२९।

क्रि॰ वि.—**विवश होकर, लाचारी से।**

बिबर्जित—वि॰ [हिं॰ विवर्जित] **मना है, निषेध है।** उ.—निराहार जलपान बिबर्जित—१००२।

बिबस्त्र—वि॰ [सं॰ वि=रहित+वस्त्र] **वस्त्ररहित, नग्न।** उ—करत बिबस्त्र द्रुपद-तनया कौं सरन सब्द कहि आयौ—१-१९०।

बिबहार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यवहार] **व्यवहार, बर्ताव।**

बिबाई—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ विपादिका] **एक रोग जिसमें तलुए का चमड़ा फटने से घाव हो जाते हैं।**

बिबाकी—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ बेबाकी] (१) **हिसाब की सफाई।** (२) **समाप्ति।**

बिबाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विवाद] **वितर्क।** उ.—अबिहित बाद-बिबाद सकल मत इन लगि भेष धरत—१-५५।

बिबि—वि॰ [सं॰ द्वि॰] **दो।**

बिबुध—संज्ञा पुं. [सं. विबुध] देवता।

बिबुधनि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. विबुध+नि] देवों का, देवताओं का। उ.—बिबुधनि मन तर मान रमत ब्रज, निरखत जसुमतिसुखछिन-पल-घरि—१०-१२०।

बिभंजन—संज्ञा पुं. [हिं. भंजन] तोड़ने या भंग करने का भाव या क्रिया।

बिभंजना—क्रि. स. [हिं. भंजन] तोड़ना, भंग करना।

बिभंज्यो, बिभंज्यौ—क्रि. स. [हिं. बिभंजना] तोड़ा। उ.—रजक मारि कै दंड बिभंज्यो खेल करत गज प्रान लियो—२६१६।

बिभचार—वि. [सं. व्यभिचार] उलटा, विपरीत।

संज्ञा पुं.—व्यभिचार।

बिभव—संज्ञा पुं. [सं. विभव] धन, संपत्ति, ऐश्वर्य। उ.—(क) रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ। जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इन्द्र के बिभव तैं अधिक बाढ़ौ—१-५। (ख) तीनि लोक बिभव दियौ तंदुल के खाता—१-१२३।

बिभाग—संज्ञा पुं. [सं. विभाग] भाग, खंड।

बिभागना—क्रि. स. [सं. विभाग] भाग करना।

बिभागि—क्रि. स. [हिं. विभागना] भाग करके। उ.—माखन पिंड बिभागि दुहुँ कर, मेलत मुख मुसुकाइ—१०-१७८।

बिभाना—क्रि. अ. [सं. विभा] चमकाना।

बिभावन—संज्ञा पुं. [सं. विभावन] धारणा, विचार।

वि.—रुचिकर, प्रिय लगनेवाला।

बिभिचारी—वि. [सं. व्यभिचारी] व्यभिचारी।

बिभीषन—संज्ञा पुं. [सं. विभीषण] रावण का भाई जिसने लंका की विजय में श्रीराम की सहायता की थी।

बिभूति—संज्ञा स्त्री. [सं. विभूति] (१) राख या भस्म। उ.—रावन तुरत बिभूति लगाए, कहत आइ, भिच्छा दै माई—९-५९। (२) वैभव। (३) धन-संपत्ति।

बिभूषन—संज्ञा पुं. [सं. विभूषण] (१) भूषण, अलंकार। उ.—हरिहर संकर नमो, नमो। अहिसायी, अहि-अंग-बिभूषन, अमित दान, बल-बिष-हारी—१०-१७१। (२) सजाने की क्रिया या भाव, अलंकरण।

बिभूषित—वि. [सं. विभूषित] अलंकृत। उ.—सुरभि-रेनु-तन, भस्म बिभूषित, बृष-बाहन, बन-बृषचारी—१०-१७१।

बिभोर—वि. [सं. विभोर] (१) मग्न, लीन। (२) मस्त।

बिभ्रम—संज्ञा पुं. [सं. विभ्रम] (१) भ्रम, भ्रांति, धोखा। उ.—कनक-कुंडल-स्रवन बिभ्रम कुमुद निसि सकुचाइ—१०-३५२। (२) संदेह, संशय।

बिमन—वि. [सं. विमनस्] दुखी, उदास, चिंतित।

क्रि. वि.—अनमना होकर, बेमन से।

बिमल—वि. [सं. विमल] (१) स्वच्छ, निर्मल, पावन। उ.—वेद बिमल नहिं भाख्यौ—१-१११। (२) निर्दोष, निष्कलंक। उ.—पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौं सीस-खिलौना दीनौ—१-२९।

बिमात, बिमाता—संज्ञा स्त्री. [हिं. विमाता] सौतेली माँ, बिमाता। उ.—सुर अरु असुर कस्यप के पुत्र। भ्रात-बिमात आपु मैं सत्रु—३-९।

बिमान—संज्ञा पुं. [सं. विमान] (१) देवताओं का यान जो आकाश में चलता है। (२) वायुयान। (३) मृत पुण्यात्माओं को स्वर्ग ले जाने के लिए आनेवाला कल्पित यान। उ.—सुवा पढ़ावत जीभ लड़ावति ताहि बिमान पठायौ—१-१८८। (४) रथ आदि यान। उ.—पाछे चढ़ो बिमान मनोहर बहुरो जदुपति होत अँधेरो—२५३२।

वि.—मान या प्रतिष्ठाहीन, गर्व-गौरवहीन। उ.—जिहिं बल कमठ-पीठि पर गिरिधरि सजल सिंधु मथि कियौ बिमान—१०-१२७।

बिमानी—वि. [सं. वि+मान] अभिमानरहित।

बिमुख, बिमुखा—वि. [सं. विमुख] (१) जो किसी के प्रतिकूल हो, विरोधी। उ.—(क) मानी हार बिमुख दुरजोधन, जाके जोधा हे सौ भाई—१-२४। (ख) दान-धर्म बहु कियौ भानु-सुत,सो तुव बिमुख कहायौ—१-१०४। (२) जो अनुरक्त न हो, जिसने मन न लगाया हो, उदासीन। उ.—(क) ऐसैंहिं जनम बहुत बौरायौ। बिमुख भयौ हरि-चरन-कमल तजि, मन संतोष न आयौ—१-२७। (ख) तुमहिं बिमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै—९-५३।

बिमुद—वि. [सं. वि+मोद] मोदरहित, खिन्न, चिंतित।

बिमोहन—वि. [हिं. बिमोहन] **मोहनेवाली, ध्यान आकृष्ट करनेवाली।** उ.—उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु-भँवरी भ्रम कौं नासै—१-६९।

बिमोहना—क्रि. स. [हिं. बिमोहना] **लुभाना, मुग्ध करना।**
क्रि. अ.—**मुग्ध या आसक्त होना।**

बिमोहीं—क्रि. अ. [हिं. बिमोहना] **मुग्ध, आकृष्ट या आसक्त हुईं।** उ.—नाद सुनि बनिता बिमोहीं बिसारे उर-चीर—६५८।

बिय—वि. [सं. द्वि] (१) **दो।** (२) **दूसरा।**
संज्ञा पुं. [हिं. बीज] **बीज।**

बियहुता—वि. [हिं. विवाहित] **जिसके साथ विवाह हो।**

बिया—संज्ञा पुं. [हिं. बीज] **बीज।**
वि. [सं. द्वि] **दूसरा, अन्य।**
संज्ञा पुं.—(१) **शत्रु।** (२) **विरोधी।**

बियाज—संज्ञा पुं. [सं. ब्याज] **ब्याज, सूद।**

बियाजू—वि. [सं. ब्याज+युक्त] (धन) **जो ब्याज पर लगा या लगाने को हो।**

बियाध—संज्ञा पुं. [सं. व्याध] **बहेलिया।**

ब्याधा—संज्ञा पुं. [सं. व्याध] **बहेलिया।**
संज्ञा स्त्री. [सं. व्याधि] (१) **रोग।** (२) **विपत्ति।**

बियान—संज्ञा पुं. [हिं. बियाना] **प्रसव, जनन।**

बियाना—क्रि. स. [सं. विजनन] **बच्चा जनना।**

बियापना—क्रि. स. [सं. व्यापना] **फैलना, व्याप्त होना।**

बियाबान—संज्ञा पुं. [फा.] **उजाड़ स्थान, जंगल।**

बियारी, बियारू—संज्ञा स्त्री. [सं. वि+अद] **रात का भोजन, ब्यालू।** उ.—साँझ भई घर आवहु प्यारे।....। सूर स्याम कछू करौ बियारी, पुनि राखौं पौढ़ाइ—१०-२२६।

बियाल—संज्ञा पुं. [सं. व्याल] **सर्प, भुजंग।**

बियालू—संज्ञा स्त्री. [सं. वि+अद] **रात का भोजन।**

बियावर—वि. स्त्री. [हिं. ब्याना] **ब्याने या बच्चा देनेवाली।**

बियाह—संज्ञा पुं. [सं. विवाह] **विवाह।**

बियाहता—वि. स्त्री. [सं. विवाहित] (१) **जिसके साथ विवाह हो।** (२) **जिसका विवाह हो चुका हो।**

बियाहन—क्रि. स. [हिं. ब्याहना] **विवाह करने, ब्याहने।** उ.—तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं—१०-१६३।

बियाहा—वि. पुं. [हिं. ब्याह] **विवाहित।**

बियो—संज्ञा पुं. [हिं.] **बेटे का बेटा, पोता।**

बियोग—संज्ञा पुं. [सं. वियोग] (१) **संयोग का अभाव, विच्छेद।** (२) **पृथकता, अलगाव।** उ.—नैंकु बियोग मीन नहिं मानत, प्रेम-काज बपु हारयौ—१-२१०।

बियौ—वि. [सं. द्वितीय, प्रा. वीय, हिं. वियौ] **दूसरा, अन्य।** उ.—(क) सूरदास प्रभु भक्त-बछल हैं, उपमा कौं न बियौ—१-३८। (ख) इनतैं नहिं प्रभु और बियौ—१-८५।

बिरंग, बिरंगा—वि. [हिं. बि+रंग] (१) **कई रंगों का।** (२) **बिना रंग का।**

बिरंचि—संज्ञा पुं. [सं. विरंचि] **सृष्टि रचनेवाला, ब्रह्मा, विधाता।** उ.—सिव-बिरंचि, सुर-असुर, नाग-मुनि, सुतौ जाँचि मन आयौ—१-२००।

बिरक्त—वि. [सं. विरक्त] **जो सांसारिकता में लीन न रहता हो, वैरागी, संसार से उदासीन।** उ.—(क) बिषयी भजे, बिरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे—१-१९८। (ख) कौरव-पति ज्यौं बन कौं गयौ। धर्मपुत्र बिरक्त पुनि भयौ—१-२८४।

बिरचना—क्रि. अ. [सं. वि+रुचि] (१) **विरक्त या उदासीन होना।** (२) **अप्रसन्न होना।**

बिरचि—क्रि. स. [हिं. बिरचना] **रचकर, बनाकर, निर्माण करके।** उ.—(क) एकनि लै मंदिर चढ़ै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)—१-४४। (ख) बर सिंगार बिरचि राधा जू चली सकल ब्रज-बालिका—८०९।

यौ०—रचि-बिरचि—**सजधजकर, बना-सँवारकर।** उ.—रचि-बिरचि मुख-भौंह-छबि लै चलति चित्त चुराइ—१-५६।

बिरच्यौ—क्रि. स. [हिं. बिरचना] (१) **रचा, बनाया।** (२) **अलंकृत किया, सजाया।** उ.—रह्यौ मन सुमिरन कौ पछितायौ। यह तन राँचि-राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनौ भायौ—१-६७।

बिरछ—संज्ञा पुं. [सं. वृक्ष] **पेड़, वृक्ष।**

बिरछिक, बिरछीक—संज्ञा स्त्री. [सं. वृश्चिक] बिच्छू।

बिरझना—क्रि. अ. [सं. विरुद्ध] उलझना, झगड़ना।

बिरतंत, बिरतांत—संज्ञा पुं. [सं. वृत्तांत]। विवरण, वर्णन।

बिरत—वि. [सं. विरत] जो सांसारिकता में लिप्त न हो, विरक्त, वैरागी। उ.-रे मन, गोबिंद के ह्वै रहिये। इहिं संसार अपार बिरत ह्वै, जम की त्रास न सहियै-१-६२।

बिरता—संज्ञा पुं. [सं. वृत्ति] शक्ति, सामर्थ्य।

बिरताना—क्रि. स. [सं. वर्त्तन] बाँटना, वितरण करना।

बिरति—संज्ञा स्त्री. [सं. विरति] सांसारिकता से जी हटना, विरक्ति, वैराग्य। उ.—(क) अजहूँ लौ मन मगन काम सौं बिरति नाहिं उपजाई—१-१८७। (ख) जौ तू सूर सुखहिं चाहत है, तौ करि विषय बिरति—१-३००। (ग) बाल दसा अवलोकि सकल मुनि, जोग-बिरति बिसरावैं—१०-९७।

बिरतिया—संज्ञा पुं. [सं. वृत्ति+इया] बरेखी करनेवाला।

बिरथा—क्रि. वि. [सं. व्यर्थ] निरर्थक, व्यर्थ, वृथा, बेकाम। उ.—(क) बिरथा जन्म लियौ संसार—१-२९४। (ख) बिरथा जनम गँवायौ—७६५।

वि. बेकाम, निरर्थक, व्यर्थ।

बिरद—संज्ञा पुं. [सं. विरुद] बड़ाई, यश, कीर्ति।

बिरदैत—संज्ञा पुं. [हिं. विरद+ऐत] नामी वीर।

वि.—नामी, प्रसिद्ध, विख्यात।

बिरध—वि. [सं. वृद्ध] बूढ़ा, वृद्ध। उ.—(क) बिरध भऍ कफ कंठ बिरोध्यौ—१-३२९। (ख) एक बिरध-किसोर-बालक एक जोबन जोग—१०-२६।

बिरधना—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] बढ़ना, वृद्धि होना।

बिरधाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिरध+आई] बुढ़ापा।

बिरधापन—संज्ञा पुं. [सं. वृद्ध+हिं. पन] बुढ़ापा, वृद्धावस्था। उ.—कछु वालापन ही मैं बीतै। कछु बिरधापन माँहि बितीतै—१-२।

बिरधै—क्रि. अ. [हिं. बढ़ना] बढ़ती है, वृद्धि को प्राप्त होती है। उ.—कह्यौ सुक श्रीभागवत बिचारि। हरि की भक्ति जुगै जुग बिरधै, आन धर्म दिन चारि—२-२।

बिरधौ—वि. [सं. वृद्ध] जो वृद्ध हो, जो बूढ़ा हो। उ.—सिसु, किसोर, बिरधौ तनु होइ। सदा एकरस आतम सोइ—७-२।

बिरमत—क्रि. अ. [हिं. बिरमना] ठहरता है, रुकता है। उ.—मैं तो अपनी कही बड़ाई। अपने कृत तैं हौं नहिं बिरमत, सुनि कृपालु जदुराई—१-२०७।

बिरमना—क्रि. अ. [सं. विलंबन] (१) रुकना। (२) सुस्ताना। (३) आसक्त होकर रम जाना।

बिरमहिं—क्रि. अ. [हिं. बिरमना] मुग्ध होकर रम गये हैं। उ.—हमहिं छाँड़ि बिरमहिं कुबजा सँग, आए न रिपु रन जीति—३०५४।

बिरमाइ—क्रि. अ. [हिं. बिरमना] ठहरे, रुके। उ.—कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन, कोउ गए बछरू लिवाइ।........। सूर स्याम तहँ बैठि बिचारत, सखा कहाँ बिरमाइ—५००।

बिरमाई—क्रि.अ.[हिं. बिरमाना] रोक कर, फँसाकर, बहलाकर। उ.-कहाँ लौं रखिए मन बिरमाई—२८०५।

बिरमाए—क्रि. स. [हिं. बिरमाना] मुग्ध करके फँसालिया। उ.—(क) अरुझि काम की वेलि सौं कौने बिरमाए—(ख) को जानै काहे ते सजनी कहुँ बिरहिनि बिरमाए—२८५४। (ग) सीतल पंथ जोवति हम निसिदिन कित बिरहिनि बिरमाए—३०८३।

बिरमाना—क्रि. स. [हिं. बिरमना] (१) रोकना। (२) व्यतीत करना। (३) मुग्ध करके फँसा रखना।

बिरमायो—क्रि. अ. [हिं. बिरमना] शांति पाते हैं, धीरज होता है। उ.—सूरस्याम पहिले गुन सुमिरिहि प्रान जात बिरमायो—२८४०।

बिरमावत—क्रि. स. [हिं. बिरमाना] (१) ठहर जाते हैं, रुक जाते हैं। उ.—भीतर तैं बाहर लौं आवत।....। अहुँठ पैग बसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत—१०-१२५। (२) मुग्ध होकर फँस जाता है। उ.—जेहि जु अंग अवलोकन कीन्हौ सो तन-मन तहँ ही बिरमावत—२३४७।

बिरमाँहिं—क्रि. अ. [हिं. बिरमना] (१) आराम करते हैं, विश्राम करते हैं, सुस्ताते हैं। उ.—पदुम-बास सुगंध-सीतल लेत पाप नसाहिं।........। सघन-गुंजत बैठि उन पर भौंरहूँ बिरमाहिं—१-३३८। (२) ठहरते हैं, रुकते हैं। उ.—सूरदास स्वामी सौं कहियौ, अब बिरमाहिं नहीं—९-९१।

बिरमि—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिरमना] ठहरकर, रुककर। उ॰—तातैं बिरमि रहे रघुनंदन, करि मनसा-गति पंग—९-२३।

बिरला—वि॰ [सं॰ विरल] कोई-कोई, इक्का-दुक्का, एक-आध। उ॰—(क) हरि, हरि-भक्त एक, नहिं दोइ। पै यह जानत बिरला कोइ—१-२९०। (ख) नटवत करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ—२-३६।

बिरवा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विरुह] (१) वृक्ष। (२) पौधा। उ॰—धोखे ही बिरवा लगाइ कै काटत नाहिं बहोरी—३३४८।

बिरवाहीं—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बिरवा+हीं] बाग-या स्थान, जहाँ छोटे पौधे लगे हों।

बिरषभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वृषभ] बैल।

बिरस—वि॰ [सं॰ विरस] रसरहित, रसहीन।

संज्ञा पुं॰—(१) प्रेम का अभाव। (२) अनबन।

बिरसन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] जहर, बिष।

बिरसना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ विलास] भोग-विलास करना।

बिरह, बिरहा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विरह] वियोग। उ॰—मीड़त हाथ सकल गोकुल जन बिरह विकल बेहाल—२५३६।

बिरहा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक तरह का लोक-गीत।

बिरहाना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिरह] बिरह से दुखी होना।

बिरहानी—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिरह] विरह से दुखी हुई।

बिरही—वि॰ [हिं॰ बिरह] वियोगी।

बिरहुला—संज्ञा पुं॰ [पा॰ विरूल्हक=नाग] साँप, सर्प।

बिरहुली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ बिरहुला] साँपिनि, नागिनि।

बिरहो, बिरहौ—संज्ञा पुं॰ सवि॰ [हिं॰ बिरह] विरह भी, विरह की स्थिति भी। उ॰—ऊधौ, बिरहौ प्रेम करै—३३५८।

बिराग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विराग] (१) इच्छा का प्रभाव। (२) विरक्ति, वैराग्य।

बिराज—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ विराजना] शोभित होकर, शोभा बढ़ाकर। उ॰—भीषम, द्रोन, करन दुरजोधन, बैठे सभा बिराज—१-२५५।

बिराजत—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिराजना] शोभित होता है। उ॰—(क) भाल-तिलक मसि-बिंदु बिराजत—१०-१०६। (ख) हृदय हरि-नख अति बिराजत—१०-२३४।

बिराजन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ बिराजना] शोभित होने की क्रिया या भाव। उ॰—यहै शब्द सुनियत गोकुल मैं मोहन-रूप बिराजत—६२२।

बिराजना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ वि+रंजन] (१) शोभित होना। (२) बैठना।

बिराजा—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिराजना] शोभित हुआ। उ॰—रविबंसी भयौ रैवत राजा। ता सम जग दुतिया न बिराजा—९-४।

बिराजैं—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ बिराजना] शोभित है, शोभा देते हैं, विराजते हैं। उ॰—(क) लंका राज विभीषन राजैं, ध्रुव आकास बिराजैं—१-३६। (ख) उर पर पदिक कसुम वनमाला, अंगद खरे बिराजैं—४५१।

बिराट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विराट्] (१) ब्रह्म का वह स्थूल स्वरूप जिसके अंदर संपूर्ण विश्व है। (२) विश्व।

वि॰—बहुत बड़ा या भारी। उ॰—इक इक रोम बिराट किए तन कोटि-कोटि ब्रह्मांड—४८७।

बिरादरी—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰] जातीय समाज।

बिरान, बिराना—वि॰ [फा॰ बेगाना] (१) जो अपने से अलग हो, पराया। उ॰—सूरदास गोपिनि परतिज्ञा छुवहिं न जोग बिरान—३३५७। (२) दूसरे का।

बिराना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] मुँह बनाना या चिढ़ाना।

बिरानी—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ बिराना (पुं॰)] (१) दूसरे की, अन्य की। (२) भिन्न, दूसरी, परिवर्तित, बदली हुई। उ॰—नाहिं रही कछू सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी—१-३०५।

बिराने—वि॰ [हिं॰ बिराना] (१) दूसरों के, अन्य व्यक्ति के। उ॰—भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ—१-३३१। (२) पराये। उ॰—को है अपने कौन बिराने—१०४१।

बिरानो—वि॰ [हिं॰ बिराना] पराया, अन्य। उ॰—बाप रिसाइ माइ घर मारै हँसै बिरानो लोग री—१२०३।

बिराम—संज्ञा पुं॰ [सं॰ विराम] आराम, विश्राम। उ॰—धेनु-काज नहिं विराम—६१९।

बिरावना—क्रि स॰ [सं॰ विरव] मुँह चिढ़ाना।

बिरासी—वि॰ [हिं॰ विलासी] विलास में लीन रहनेवाला।

बिरिख—संज्ञा पुं. [सं. वृक्ष] **वृक्ष।**
संज्ञा पुं. [सं. वृष] **बैल, साँड़।**

बिरिछ—संज्ञा पुं. [सं. वृक्ष] **वृक्ष।**

बिरिध—वि. [सं. वृद्ध] **बूढ़ा।**

बिरियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेला] **समय, वक्त, वेला।** उ.—साँझ की बिरियाँ बिरद भई सखी री—६०५।
संज्ञा स्त्री. [सं. वार, हिं. बाद] **बार, पारी, बेर।** उ.—(क) सूर कूर कहै मेरी बिरियाँ, बिरद कितै बिसरायौ—१-१८८। (ख) सूर की बिरियाँ निठुर भए प्रभु मोतैं कछु न सर्‌यौ—

बिरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाली] **कान का एक गहना।**

बिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीड़ा] **पान का बीड़ा।** उ.—पीरे पान-बिरी मुख नावति—५१४।

बिरुँधना—क्रि. अ. [हिं. रुँधना] **(१) मार्ग रुकना। (२) उलझना। (३) घेरा जाना।**
क्रि. स.—**मार्ग रोकना या अवरुद्ध करना।**

बिरुँध्यौ—क्रि. अ. [हिं. बिरुँधना] **रुँध गया।** उ.—पलित केस, कफ कंठ बिरुँध्यौ, कल न परति दिन-राती—१०-११८।

बिरुझना—क्रि. अ. [हिं. उलझना] **झगड़ना।**

बिरुझाई—क्रि. अ. [हिं. बिरुझना] **क्रुद्ध या अप्रसन्न होकर।** उ.—कब तुमकौं मैं बोलि बुलाई। केहि कारन तुम धाई आई। यह सुनि बहुरि चली बिरुझाई—३९१।

बिरुझाति—क्रि. अ. [हिं. बिरुझाना] **झगड़ती या अप्रसन्न होती हैं।** उ.—हठ करति बिरुझाति तब जिय जननि जानति बारि—७७७।

बिरुझाना—क्रि. अ. [हिं. उलझना] **अप्रसन्न होना।**

बिरुझानी—क्रि. अ. [हिं. बिरुझाना] **(१) क्रुद्ध होकर, बिगड़कर, झुँझलाकर।** उ.—को निरदई रहै तेरैं घर, को तेरैं सँग बैठै आनी। सुनहु सूर कहि-कहि पचि-हारीं, जुवती चलीं घरनि बिरुझानी—३६८। **(२) अप्रसन्न हुई।** उ.—बार बार सुत सौं बिरुझानी—१०१०।

बिरुझाने—क्रि. अ. [हिं. बिरुझाना] **(१) रूठ गये, खीझे, झगड़ने लगे, उलझने लगे।** उ.—बरजत-बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिं अकुलाने—१०-१८३। **(२) खीझकर, झगड़कर।** उ.—सूर स्याम बिरुझाने सोए—१-१९६।

बिरुझानौ—क्रि. अ. [हिं. बिरुझाना] **खीझा, अप्रसन्न हुआ।** उ.—(क) मेरौ आजु अतिहिं बिरुझानौ—१०-१९७। (ख) साँझहिं तैं अतिहीं बिरुझानौ—१०-२००।

बिरुझावत—क्रि. अ. [हिं. बिरुझावना] **खीझता-मचलता है।** उ.—लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि-देहि रिस करि बिरुझावत—१०-१८८।

बिरुझावना—क्रि. अ. [हिं. बिरुझाना] **खीझना, झुँझलाना, मचलना, झगड़ना, अप्रसन्न होना।**

बिरुझै—क्रि. अ. [हिं. बिरुझाना] **खीझता, मचलता या रूठता है।** उ.—जो बालक जननी से बिरुझै माता ताको लेइ मनाइ—९७९।

बिरुझैहै—क्रि. अ. [हिं. बिरुझना] **(१) झगड़ेगा, उलझेगा। (२) रूठ जायगा, बिगड़ जायगा, बिरुझावेगा।** उ.—मेरे लाल के प्रेम खिलौला, ऐसी को लै जैहै री।'''''''। आवतहीं लै जैहै राधा, पुनि पाछैं पछितैहै री। सूरदास तब कहति जसोदा, बहुरि स्याम बिरुझैहै री—७११।

बिरुद—संज्ञा पुं. [सं. विरुद] **यश, कीर्ति।**

बिरुदावलि—संज्ञा पुं. [सं. विरुद+अवली] **(१) सविस्तार गुण-कथन, यश-वर्णन, प्रशंसा। (२) यश, विरुद, प्रशस्ति।** उ.—दीन कौ दयाल सुन्यौ, अभय-दान-दाता। साँची बिरुदावली, तुम जग के पितु-माता—१-१२३।

बिरुदैत—संज्ञा पुं. [हिं. बिरदैत] **प्रसिद्ध वीर।**

बिरुद्ध—वि. [सं. विरुद्ध] **जो विरोधी है, प्रतिकूल, जो अनुकूल न हो।** उ.—बेद-बिरुद्ध सकल पांडव-कुल, सो तुम्हरैं मन भायौ—१-१०४।

बिरुधाई—संज्ञा स्त्री. [सं. वृद्ध] **बुढ़ापा।**

बिरूप—वि. [सं. विरूप] **रूपहीन, कुरूप।** उ.—रे रे चपल, बिरूप, ढीठ, तू बोलत बचन अनेरौ—९-१३२।

बिरोग—संज्ञा पुं. [सं. वियोग] **(१) बिछोह। (२) दुख।**

बिरोधना—क्रि. अ. [सं. विरोध] **विरोध करना।**

बिरोधी—वि. [सं. विरोधी] विरोध करनेवाला। उ.—सूरदास सुनि भक्त-बिरोधी चक्र सुदरसन जारौं—१-२७२।

बिरोधे—क्रि. अ. [हिं. विरोधना] विरोध किया, बैर ठाना, द्वेष रखा। उ.—ज्ञान-बिवेक बिरोधे दोऊ, हते बंधु हितकारी—१-१७३।

बिरोधैं—संज्ञा पुं. सवि. [सं. विरोध] विरोध के द्वारा। उ.—मुक्ति-हेत जोगी स्रम साधैं, असुर बिरोधैं पावैं—१-१०४।

बिरोधै—क्रि. अ. [हिं. रुँधना] रुँधता है। उ.—सीत-बात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात—१-३१३।

बिरोध्यौ—क्रि. अ. [हिं. रुँधना] रुँध गया। उ,—बिरध भऐं कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितान्यौ—१-३२६

बिलंगी—संज्ञा स्त्री. [देश०] अरगनी, अलगनी।

बिलंब—संज्ञा [सं. विलंब] देरी, बहुत समय। उ.—अब जौ तुम्हरी आज्ञा होइ। छाँड़ि बिलंब करौं मैं सोइ—४-५।

बिलंबना—क्रि. अ. [सं. विलंब] (१) देर करना। (२) रुकना।

बिल—संज्ञा पुं. [सं. विल] (१) छेद। (२) जमीन या दीवार में (चूहे आदि द्वारा) बनाया गया विवर या छेद।

बिलकुल—क्रि. वि. [अ.] (१) पूरा। (२) आदि से अन्त तक।

बिलख—संज्ञा पुं. [हिं. बिलखना] विलाप, दुख। उ.—मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत की—९-८४।

बिलखत—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] विलाप करते हैं, रोते हैं। उ.—हँसैं हँसत, बिलखैं बिलखत हैं, ज्यौं दरपन मैं झाईं—१-१९५।

बिलखति—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] दुखी होती हैं। उ.—अतिही सुन्दर कुमार जसुमति रोहिणि बार बिलखति यह कहति सबै लोचन जल ढोरैं—२६०४।

बिलखना—क्रि. अ. [सं. विलाप] (१) रोना, विलापना। (२) दुखी होना। (३) संकुचित होना।

बिलखात—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] (१) रोता है। उ.—देखि री देखि हरि बिलखात—३६०। (२) दुखी होता है। उ.—कबहूँ मग-मग धूरि बटोरत भोजन कौं बिलखात—२-२२।

बिलखाना—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] (१) दुखी या खिन्न होना। (२) रोना, विलाप करना।

क्रि. स.—(१) दुखी करना। (२) रुलाना।

बिलखानी—क्रि. अ. [हिं. बिलखाना] दुखी हुई। उ.—(क) यह सुनि कै जुवती बिलखानी—२६०६। (ख) दुसह सँदेस सुनत माधो को गोपीजन बिलखानी—२९८८।

बिलखाने—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] दुखी हुए। उ.—भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने—९-५२।

बिलखान्यौ—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] दुखी हुआ, चिंचित हुआ। उ.—इंद्र हँस्यौ, हर हिय बिलखान्यौ, जानि बचन कौ भंग—९-१५८।

बिलखावै—क्रि. अ. [हिं, बिलखाना] (१) विलाप करता है, रोता है। (२) दुखी होता है। उ.—उग्रसेन की आपदा सुनि-सुनि बिलखावै—१-४।

बिलखि—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] दुखी होकर। उ.—करति कछू न कानि, बकति है कटु बानि, निपट निलज बैन बिलखि सहूँ—१०-२९५।

बिलखैं—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] बिलखते देखकर, दुखी होने पर। उ.—हँसैं हँसत बिलखै बिलखत हैं ज्यौं दरपन मैं झाईं—१-२९५।

बिलख्यो, बिलख्यौ—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] दुखी हुए। उ.—देखि अक्रूर नर-नारि बिलखे—२५०३।

बिलग—वि. [हिं. वि+लगना] अलग, पृथक।

संज्ञा पुं.—(१) पृथकता। (२) बुरा (भाव), दुख। उ.—बिलग मति मानौ ऊधौ प्यारे—पृ. ३१७५।

बिलगाना—क्रि. अ. [हिं. बिलग+आना] अलग होना।

क्रि. स.—(१) अलग या दूर करना। (२) छाँटना।

बिलगानी—क्रि. अ. [हिं. बिलगाना] दूर हो गयी। उ.—अब ब्रज सूनो भयौ गिरिधर बिनु गोकुल-मति बिलगानी—२६९६।

वि.—अलग, पृथक। उ.—हम एक ही संग, एक ही मत सब कोउ, नहि बिलगानी—१८३०।

बिलगी—संज्ञा पुं. [देश.] एक संकर राग।

बिलगु—संज्ञा पुं. [हिं. बिलग] (१) पृथकता। (१) बुरा या अनुचित (भाव)।

—वि. [सं. विलक्षण] अनोखा, अद्भुत।

बिलछना—क्रि. अ. [सं. लक्ष] ताड़ जाना, लक्ष करना।

बिलना—क्रि. अ. [हिं. बेलना] बेला जाना।

बिलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिल] काली भ्रमरी।

संज्ञा स्त्री.—पलक पर होनवाली फुंसी।

बिलपति—क्रि. अ. [हिं. बिलपना] रोती है। उ.—कबहुँ बिहँसति,कबहुँ बिलपति,सकुचि रहति लजाइ—६७८।

वि.—रोती-बिलखती। उ.—त्रेता जुग एक पत्नी व्रत किए सोऊ बिलपति छोरी—२८६३।

बिलपना—क्रि. अ. [सं. विलाप] रोना-कलपना।

बिलबिलाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) (कीड़ों का) रेंगना। (२) बहुत व्याकुल और दुखी होना। (३) रोना-चिल्लाना। (४) भूख से बेचैन हो जाना।

बिलम—संज्ञा स्त्री. [सं. बिलंब,] बिलंब, देर। उ.—(क) हरषवंत ह्वै चले तहाँ तैं मग मैं बिलम न लाई —९-१०२। (ख) आवहु बेगि बिलम जनि लावहु, गैया दूरि गई—४४३।

बिलमना—क्रि. अ. [सं. विलंब] (१) विलंब करना। (२) रुकना। (३) मुग्ध होकर रम जाना।

बिलमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिलंब+आई] देर। उ.—नेक करहु अब जिनि बिलमाई—१००४।

बिलमाना—क्रि. स. [हिं. बिलमना का सक.] (१) रोकना, ठहरना। (२) मुग्ध करके रोक लेना।

बिलमि—क्रि. अ. [हिं. बिलमना] रुक या ठहर कर।

प्र०—बिलमि रहे—रुक गये, ठहरे, रम गये। उ.—(क) माधव बिलमि बिदेस रहे। (ख) कहाँ धौं बिलमि रहे, नैंन मरत दरसन की साधौ—१८०९।

बिललाइ—क्रि. अ. [हिं. बिललाना] दुखी होकर, बिलख कर। उ.—जहाँ जहाँ दुहि बन चराइ, मरत तहाँ बिललाइ—३४२४।

बिललाउ—क्रि. अ. [हिं. बिललाना] दुखी होता है। उ.—सूर स्याम हैं पलक धाम मैं लखि चित कत बिललाउ—३४७२।

बिललाति—क्रि. अ. [हिं. बिललाना] व्याकुल होकर असंबद्ध बातें कहती है, बिलखती है, दुखी होती है, रोती है। उ.—(क) पाँच बरष कौ मेरौ नन्हैया, अचरज तेरी बात। बिनहीं काज साँटि लै धावति, ता पाछैं बिललात—१०-२५७। (ख) धेनु फिरत बिललाति बच्छ थन कोउ न लगावै—५८९।

बिललाते—क्रि. अ. [हिं. बिललाना] दुखी होते हैं। उ.—भवन ते बिछुरे मीन मकर बिललाते —३४६१।

बिललाना—क्रि. अ. [हिं. बिलखना] (१) बिलखना, विलाप करना। (२) बहुत दुखी होकर असंबद्ध बातें करना या बकना।

बिललायो, बिललायौ—क्रि. प्र. [हिं. बिललाना] बिलखा, दुखी हुआ, विलाप किया।

बिलवाना—क्रि. स. [सं. वि+लय] (१) नष्ट करने को प्रवृत्त करना, (२) छिपवाना, लुप्त कराना।

क्रि. स. [हिं. बेलना] (१) बेलने में सहायता करना। (२) बेलने को प्रवृत्त करना।

बिलसत—क्रि. स. [हिं. बिलसना] भोग करते हैं, भोगते हैं। उ.—(क) निसि दिन बिषय-बिलासनि बिलसत फूटि गईं तब चारचौ—१-१०१। (ख) इंद्रासन बैठे सुख बिलसत दूर किये भुव-भार। (ग) जो रस नंद-जसोदा बिलसत, सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ—१०-२३८।

क्रि. अ.—विशेष रूप से शोभित होता है, बहुत भला जान पड़ता है। उ.—सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया—१०-११५।

बिलसना—क्रि. अ. [सं. विलसन] भला लगना, शोभित होना।

क्रि. अ. भोगना, सुख उठाना।

बिलसहु—क्रि. अ. [हिं. बिलसना] भोग करो, सुख उठाओ। उ.—राम रस रचौ मिलि संग बिलसहु सबै बिहँसि हरि कह्यौ यों निगम बानी—पृ. ३४३(२१)।

बिलसात—क्रि. अ. [हिं. बिलसना] सुखी होता है। उ.—लोचन सफल करौ प्रभु अपने हरि मुखकमल देखि बिलसात—१० उ०-५९।

बिलसाना—क्रि. स. [हिं. बिलसना] (१) भोग करना, काम में लाना। (२) भोगने को प्रवत्त करना।

बिलसि—क्रि. स. [हिं. बिलसना] भोग करो, काम में लाओ, उपभोग करो। उ.—विधि संजोग टरत नहिं टारैं, बन दुख देख्यौ आनि। अब रावन घर बिलसि सहज सुख, कह्यौ हमारौ मानि ९-७७।

बिलसैं—क्रि. स. [हिं. बिलसना] भोग करें, काम में लाएँ, बरतें। उ.—कै तन देउँ मध्य पावक के, कै बिलसैं रघुराइ—९-७७।

बिलसै—क्रि. स. [हिं. बिलसना] भोगे, (सुख) लूटे। उ.—जीवै तौ सुख बिलसै जग मैं कीरति लोकनि गावै—९-१५२।

बिलहरा—संज्ञा पुं. [हिं. बेल+हरा] पान का डिब्बा।

बिला—अव्य. [अ.] बिना, बगैर।

बिलाइ—क्रि. अ. [हिं. बिलाना] नष्ट होते हैं, रह नहीं जाते, विलीन होते हैं। उ.—बारि मैं ज्यौं उठत बुद-बुद लागि बाइ बिलाइ—१-३१६।

बिलाई - क्रि. अ. [हिं. बिलाना] नष्ट हो (गये)। उ.—पूर्व पाप सब गए बिलाई—४-१२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बिल्ली] (१) बिल्ली नामक पशु। (२) सिटकिनी।

बिलान—क्रि. अ. [हिं. बिलाना] लुप्त हुआ, अदृश्य हुआ। छिप गया। उ.—फोर्यौ नयन, काग नहिं छाड़्यौ सुरपति के बिदमान। अब वह कोप कहाँ रघुनन्दन, दससिर-बेर बिलान—९-८३।

बिलाना—क्रि. अ. [सं. विलयन] (१) नष्ट या विलीन होना। (१) छिपना, अदृश्य होना।

बिलाप—संज्ञा पुं. [सं. विलाप] बिलखकर रोना, क्रंदन, रुदन। उ.—घरी इक सजन-कुटुंब मिलि बैठें, रुदन-बिलाप कराहीं—१-३१९।

बिलापना—क्रि. अ. [हिं. बिलाप] बिलाप करना।

बिलार—संज्ञा पुं. [सं. बिडाल] बिल्ला, मार्जार। उ.—मन सुवा तन पींजरा, तिहिं माँझ राखै चेत। काल फिरत बिलार-तनु धरि, अब घरी तिहिं लेत—१-३११।

बिलारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिलार] बिल्ली, मंजारी।

बिलाव—संज्ञा पुं. [हिं. बिलार] बिल्ला, मार्जार। उ.—जैसैं घर बिलाव के मूसा, रहत बिषय-बस वैसी—२-१४।

बिलावल—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग। उ.—भरति रंग रति नागरि राजति मानहु उमँगि बिलावल फोरी—२४०६।

बिलास—संज्ञा पुं. [सं. विलास] (१) हर्ष, आनन्द, विनोद। उ.—(क) अपनैं-अपनैं रस-बिलास काहू नहिं चीन्हौ—३९४। (ख) सूरदास ग्वारिनि सँग मिलि हरि लागे करन बिलास—४१०। (२) सुख-भोग।

बिलासना—क्रि. स. [सं. विलसन] भोग करना।

बिलासी—वि. [सं. विलासी] सुख भोगनेवाला, विनोद प्रिय। उ.—सो प्रभु घर घर घोष-बिलासी—३९१।

बिलुठना—क्रि. अ. [सं. लुंठन] (दुख, पीड़ा आदि से व्याकुल होकर) जमीन पर लेटना।

बिलुप्तना—क्रि. अ. [सं. विलुप्त] नष्ट हो जाना।

बिलैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिल्ली] बिल्ली।

बिलोकना—क्रि. स. [सं. विलोकन] (१) देखना। (२) जाँचना, खोज करना।

बिलोकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिलोकना] (१) देखने की क्रिया, चितवन। (२) कटाक्ष।

बिलोचन—संज्ञा पुं. [सं. लोचन] आँख, नेत्र।

बिलोड़ना—क्रि. स. [सं. विलोड़न] (१) मथना। (२) अच्छी तरह मिलाना।

बिलोन—वि. [सं. वि=रहित+लावण्य] कुरूप, असुन्दर।

वि. [सं. वि+लवण] बिना नमक का, अलोना।

बिलोना—क्रि. स. [सं. विलोड़न] (१) मथना। (२) अच्छी तरह मिलाना।

बिलोरना—क्रि. स. [हिं. बिलोड़ना] (१) मथना। (२) अस्तव्यस्त करके मिलाना।

बिलोलना—क्रि. स. [सं. विलोलन] हिलना-डोलना।

बिलोवना—क्रि. स. [हिं. बिलोना] मथना।

बिलौटा—संज्ञा पुं. [हिं. बिल्ली+औटा] बिल्ली का बच्चा।

बिलौर—संज्ञा पुं. [हिं. बिल्लौर] स्फटिक पत्थर।

बिल्ला—संज्ञा पुं. [सं. बिडाल] नर बिल्ली, मार्जार।

बिल्लाना—क्रि. अ. [अनु.] विलाप करना।

बिल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिलार] मार्जार नामक पशु।

बिल्लूर, बिल्लौर—संज्ञा पुं. [सं. वैदूर्य, प्रा. वेलुरिय, हिं. बिल्लौर] (१) स्फटिक पत्थर। (२) स्वच्छ शीशा।

बिल्लौरी—वि. [हिं. बिल्लौर] (१) स्फटिक पत्थर का। (२) स्फटिक जैसा स्वच्छ।

बिवर—संज्ञा पुं. [सं. बिवर] (१) बिल। उ.—मानहुँ बिवर गए चलि कारे तजि केचरि भए निररे री—पृ. ३२७ (६०)। (२) गुफा।

बिवरना—क्रि. अ. [हिं. विवरना] (१) गुथी या उलझी वस्तु का सुलझना। (२) उलझे बालों का सुलझना।

बिवराना—क्रि. स. [हिं. बिवरना] उलझे बालों को सुलझाना या सुलझवाना।

बिवश—वि. [सं. विवश] (१) विवश। (२) विकल।

बिवशानी—क्रि. अ. [सं. विवश] विकल हो रही है। उ.—ह्यां तुम विवश भए हौ ऐसे ह्वां तौ वै बिवशानी—२२०८।

बिवसाइ—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसाय] व्यापार, व्यवसाय।

बिवाइ, बिवाई, बिवाय—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिबाई] 'बिबाई' नामक रोग।

बिवाह—संज्ञा पुं. [सं. विवाह] विवाह, शादी।

बिवाहना—क्रि. स. [हिं. विवाह] विवाह करना।

बिवाहि—क्रि. स. [हिं. बिवाहना] विवाह करके।

प्र.—देहु बिवाहि–विवाह कर दो। उ.—हलधर कौं तुम देहु बिवाहि—६-४।

बिष—संज्ञा पुं. [सं. विष] जहर, गरल। उ.—माया बिषम भुजंगिनि कौ बिष—२-३२।

बिषम—वि. [सं विषम] (१) भयंकर। उ.—जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम, सकल बिधि बिषम, खल-मल खानि—१-७७। (२) तेज, तीव्र। (३) भयंकर। उ.—माया बिषम भुजंगिनि कौ बिष उतर्यौ नाहिन तोहि–२-३२। (४) बहुत कठिन। (५) जो 'सम' न हो।

बिषय—संज्ञा पुं. [सं. विषय] (१) वर्णित या विवेचित प्रसंग। (२) भोग, संभोग, बिलास। (३) वह जिसे इंद्रियाँ ग्रहण करें।

बिषया—संज्ञा स्त्री. [सं. विषया] भोग की वासना। उ.—तू तौ बिषया-रंग रँग्यौ है—१-६३।

बिषहर—संज्ञा पुं. [सं. विषधर] साँप, भुजंग। उ.—खरिक मिले की गोरस बेंचत की बिषहर तें बाँची—१४३८।

बिषाद—संज्ञा पुं. [सं. विषाद] इच्छा पूरी न होने का खेद या दुख। उ.—(क) काम-क्रोध-बिषाद-तृष्ना, सकल जारि बहाउ—१-३१४। (ख) ताकौ बिषम बिषाद अहो मुनि मौपै सह्यौ न जाई—९-७। (२) निश्चेष्टता।

बिषान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पशुओं का सींग। (२) सींग का बाजा। उ.—कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत कोउ बिषान, कोउ वेनु—४४८।

बिषै—संज्ञा पुं. [सं. विषय] भोग, संभोग, विलास। उ.—बिषै-भोग सब तन मैं होइ—७-२।

बिष्णु, बिष्नु—संज्ञा पुं. [सं. विष्णु] परब्रह्म विष्णु।

बिसंच—संज्ञा पुं. [सं. वि+संचय] (१) असावधानी, लापरवाही। (२) कार्य की बाधा। (३) अमंगल का भय।

बिसंभर—संज्ञा पुं. [सं. विश्वंभर] परमेश्वर।

वि. [सं. वि+हिं. सँभार] (१) जो सँभल न सके। (२) असावधान।

बिसँभार—वि. [सं. वि+हिं. सँभार] बेखबर, असावधान।

बिस—संज्ञा पुं. [सं. विष] गरल, जहर।

बिसखपरा, बिसखापर, बिसखोपड़ा—संज्ञा पुं. [सं. विष+खर्पर] एक विषैला जंतु।

बिसतरना—क्रि. अ. [सं. विस्तरण] बढ़ना, विस्तार होना।

बिसतार—संज्ञा पुं. [सं. विस्तार] फैलाव, विस्तार।

बिसतारना—क्रि. स. [हिं बिस्तारना] बढ़ाना, विस्तार करना

बिसद—वि. [सं. विशद] (१) स्वच्छ, सुन्दर। उ.—भूषन बिबिध बिषद अंबर जुत सुंदर स्याम सरीर—९-२६। (२) विस्तृत। उ.—बृंदा बिपिन बिषद जमुना-तट, सुचि ज्यौनार बनाई—४१६।

बिसन—संज्ञा पुं. [सं. व्यसन] (१) भोग-विलास की वासना। (२) बुरी लत या आदत। (३) शौक।

बिसनी—वि. [हिं. व्यसनी] (१) भोग-विलास में रत रहनेवाला। (२) बुरी लतवाला। (३) शौकीन।

बिसमउ, बिसमय—संज्ञा पुं. [सं. विस्मय] अचरज।

बिसमरना—क्रि. स. [सं. विस्मरण] भूल जाना।

बिसमरै—क्रि. स. [हिं. बिसमरना] भूले, भूल जाय। उ.—सुत-तिय धन की सुधि बिसमरै—३-१३।

बिसमव, बिसमौ—संज्ञा पुं. [सं. विस्मय] आश्चर्य।

बिसयक—संज्ञा पुं. [सं. विषय] (१) देश। (२) राज्य।

बिसरत—क्रि. स. [हिं. बिसरना] भूलता है। उ.—गोबिंद गुन उर ते नहिं बिसरत—२७४१।

बिसरना—क्रि. अ. [सं. विस्मरण, प्रा. बिम्हरण, विस्सरण] भूलना, याद न रखना।

बिसराई—क्रि. स. [हिं. बिसराना] भुला दिया, ध्यान में रखा। उ.—(क) अपनी को चालै सुनि सूरज पिता-जननि बिसराई—३०१९। (ख) कबहुँक स्याम करत यहाँ को मन कैधौं चित्त सुध्यौ बिसराई—३११८।

बिसराए—क्रि. स. [हिं. बिसराना] भुला दिये। उ.—अहंकार तैं तुम बिसराए—१-२०८।

बिसराना—क्रि. स. [हिं. बिसरना] भुलाना, ध्यान में न रखना।

बिसरानी—क्रि. स. [हिं. बिसरानी] भुला दी, ध्यान में नहीं रखी बिस्मरण कर दी। उ.—देव-काज की सुधि बिसरानी—१००१।

बिसराम—संज्ञा पुं [सं. विश्राम] आराम, चैन, सुख।

बिसरामी—वि. [सं. विश्राम]। (१) जिसे सुख मिले। (२) किसी के साथ सुख भोगनेवाली।

बिसरावत - क्रि. स. [हिं बिसरावना] भुलाते या भुलवाते हैं। उ.—मुरली बजाय बिसरावत भौना—२४२१।

बिसरावति—क्रि. स. [हिं. बिसरावना] भुलाती है। उ.—सुंदर स्याम कृपालु दयानिधि कैसे हो बिसरावति—३१२८।

बिसरावन—वि. [हिं. बिसरावना] भुलाने वाले, ध्यान छुड़ानेवाले। उ.—(क) महा पतित कुल तारन, एक नाम अध:जरन, दारुन दुख बिसरावन—१०-२५१। (ख) बेगि सुबचन सुनाइ मधुप जी मोहिं ब्यथा बिसरावन—३१०१।

बिसरावना—क्रि. अ. [हिं. बिसरावना] भुलाना।

बिसरावहु—क्रि. स. [हिं. बिसरावना] भुलाओ, ध्यान से हटाओ। उ.—ग्वाल सखा कर जोरि कहत हैं, हमहिं स्याम तुम जनि बिसरावहु—४५०।

बिसरावहुगे—क्रि. स. [हिं. बिसरावना] भुला दोगे। उ.—सूर स्याम अति चतुर कहावत चतुराई बिसरावहुगे—१९७८।

बिसराहि—क्रि. स. [हिं. बिसराना] भुलाया जा सके। उ.—हरि सौं प्रीतम क्यों बिसराहि—२७५७।

बिसर्जन—संज्ञा पुं. [सं. विसर्जन] छोड़ना, परित्याग। उ.—ध्यान बिसर्जन कियौ नंद जब मूरति आगैं नाहीं—१०-२६३।

बिसवा—संज्ञा स्त्री. [सं. वेश्या] वेश्या।

संज्ञा पुं. [हिं. बिस्वा] एक बीघे का बीसवाँ भाग।

बिसवास—संज्ञा पुं. [सं. विश्वास] विश्वास, यकीन।

बिसवासिनी—वि. स्त्री. [हिं. विश्वासी] (१) विश्वास करनेवाली। (२) जिस पर विश्वास हो।

वि. स्त्री. [हिं. अविश्वासी] (१) जिस पर विश्वास न हो। (२) विश्वासघातिनी।

बिसवासी—वि. [हिं. विश्वासी] (१) जो विश्वास करे। (२) जिस पर विश्वास हो।

वि. [हिं. अविश्वासी] (१) जिस पर विश्वास न हो। (२) विश्वासघात करनेवाला। (३) जिसका ठीक न हो कि कब क्या करेगा या करायेगा।

बिससना—क्रि. स. [सं. विश्वसन्] विश्वास करना।

क्रि. स. [सं. विशसन] (१) मारना। (२) चीरना-फाड़ना।

बिसहना—क्रि. स. [हिं. बिसाह] (१) खरीदना, मोल लेना। (२) अपने साथ लेना या लगाना।

बिसहर—संज्ञा पुं. [सं. विषधर, प्रा. बिसहर] सर्प।

बिसहरू—वि. [हिं. बिसहना + रू] खरीदार।

बिसाँयँध—वि. [सं. वसा + गंध] सड़े मांस-सी गंध।

बिसात—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) हैसियत, औकात। (२) जमा, पूंजी। (३) सामर्थ्य। (४) शतरंज, चौपड़ आदि खेलने का खानेबना कपड़ा या पट्ठा।

बिसाती—संज्ञा पुं. [अ.] मामूली चीजें बेचनेवाला।

बिसाना—क्रि. अ. [सं. वश] वश चलना।

क्रि. अ. [हिं. बिस + ना] विष-सा प्रभाव करना।

बिसारत—क्रि. स. [हिं. बिसारना] भुलाते हैं, ध्यान से हटाते हैं। उ.—जे नख-चंद्र महामुनि नारद पलक न कबहुँक बिसारत—१३४२।

बिसारद—संज्ञा पुं. [सं. विशारद](१) पंडित। (२) कुशल।

बिसारना—क्रि. स. [हिं. बिसरना] भुला देना।

बिसारा—वि. [सं. विषालु] विषैला, विषभरा।

बिसारी—क्रि. स. [हिं. बिसारना] भुला दी, ध्यान से हटा दी। उ.—श्रीपति हूँ की सुधि बिसारी याही अनुराग—६५३।

बिसारे—क्रि. स. [हिं. बिसारना] भुला दिये, ध्यान से हटा दिये। उ.—(क) जे पद-पदुम परसि ब्रजभामिनि सरबस दै सुत-सदन बिसारे—१-६४। (ख) नाद सुनि वनिता बिमोहीं, बिसारे उर-चीर—६५८।

वि. [सं. विषालु] विषभरे, विषैले। उ.—लागे हैं बिसारे बान स्याम बिनु युग याम घायल ज्यौं घूमैं मनो बिषहर खाई है—२८२७।

बिसाल—वि. [सं. विशाल] बड़ा। उ.—भए अति अरुन बिसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर—६-१४५।

बिसास—संज्ञा पुं. [सं. विश्वास] यकीन, विश्वास।

बिसासिन, बिसासिनि, बिसासिनी—वि. [सं. अविश्वासिनी] जिस पर विश्वास न किया जा सके, विश्वासघातिनी।

बिसासी—वि. [सं. अविश्वासी] जिस पर विश्वास न किया जा सके, विश्वासघाती। उ.—तुम देखे बहु स्याम बिसासी—१८१२।

बिसाह—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसाय] खरीद, मोल लेने का कार्य।

बिसाहत—क्रि. स. [हिं. बिसाहना] खरीदता है, मोल लेता है। उ.—सुजस बिकात बचन के बदले क्यों न बिसाहत आजु—२८५१।

बिसाहन—संज्ञा पुं. [हिं. बिसाहना] (१) मोल लेने की वस्तु, सौदा। (२) मोल लेने की क्रिया, खरीद।

बिसाहना—क्रि. स. [हिं. बिसाह+ना] (१) खरीदना, मोल लेना। (२) साथ लगाना।

संज्ञा पुं.—(१) मोल लेने की वस्तु, सौदा। (२) मोल लेने की क्रिया, खरीद।

बिसाहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिसाहना] मोल लेने की वस्तु, सौदा।

बिसाहा—संज्ञा पुं. [हिं. बिसाहना] सौदा।

क्रि. स. भूत.—खरीदा, मोल लिया।

बिसाही—क्रि. स. [हिं. बिसाहना] खरीदी, मोल ली। उ.—लाज बेंचि कूबरी बिसाही सँग न छाँड़त एक घरी—२६७७।

बिसिख—संज्ञा पुं. [सं. विशिख] बाण, तीर।

बिसियर—वि. [सं. विषधर] विषैला, विषभरा।

बिसुकर्मा—संज्ञा पुं. [सं. विश्वकर्मा] विश्वकर्मा।

बिसुनना—क्रि. अ. [हिं. सुनकना] खाते समय किसी वस्तु का अंश नाक की ओर चढ़ जाना।

बिसूरना—क्रि. अ. [सं. विसूरण] चिंता या दुख करना।

संज्ञा स्त्री.—चिंता, दुख, सोच।

बिसूरी—क्रि. अ. [हिं. बिसूरना] दुख या चिंता करके। उ.—मधुबन बसत आस हुती सजनी, अब मरिहैं जु बिसूरी—१० उ.-८२।

बिसूरे—क्रि. अ. [हिं. बिसूरना] दुख या चिंता करके। उ.—तुम पुनि कहत स्रवन नहिं समुझत, दुख अति मरत बिसूरे—३०४२।

बिसेख—वि. [सं. विशेष] विशेष।

बिसेखता—संज्ञा स्त्री. [सं. विशेषता] विशेष गुण या स्वभाव।

बिसेखना—क्रि. अ. [सं. विशेष] (१) विशेष रीति से कहना या वर्णन करना। (२) निर्णय या निश्चय करना। (३) विशेष रूप से होना।

बिसेषि—वि. [सं. विशेष] विशेष प्रकार या रीति के। उ.—सिव सौं बोली बचन बिसेषि—४-५।

बिसेसर—संज्ञा पुं. [सं. विश्वेश्वर] परमेश्वर।

बिस्तर—संज्ञा पुं. [फा. बिस्तर] (१) बिछौना। (२) विस्तार।

बिस्तरना—क्रि. अ. [सं. विस्तरण] फैलना, बढ़ना।

क्रि. स.—(१) फैलाना, बढ़ाना। (२) बढ़ाकर कहना या वर्णन करना।

बिस्तरा—संज्ञा पुं. [हिं. बिस्तर] बिछौना, बिछावन।

बिस्तरी—क्रि. स. [हिं. बिस्तरना] विस्तार से कही या वर्णन की। उ.—गर्भ परीच्छित रच्छा करी। सोई कथा सकल बिस्तरी—१-२८९।

बिस्तरैं—क्रि. स. [हिं. बिस्तारना] विस्तार करें। उ.—इंद्री दासी सेवा करैं। तृप्ति न होइ, बहुरि बिस्तरैं—४-१२।

बिस्तर्यौ—क्रि. अ. [हिं. बिस्तरना] फैला, बढ़ा। उ.—जाकौ जस सब जग बिस्तरचौ—६-४।

बिस्तार—संज्ञा पुं. [सं. विस्तार] बढ़ा-चढ़ा रूप, विस्तार से कहा या वर्णन किया हुआ रूप। उ.—जय अरु विजय कथा नहिं कछुवै दसमुख-वध बिस्तार—१-२१५।

वि.—खूब फैले हुए, विस्तृत। उ.—देखि तरु सब अति डराने हैं वड़े बिस्तार—३८७।

बिस्तारना—क्रि. स. [सं. विस्तरण] बढ़ाना, विस्तार करना।

बिस्तारा—वि. [सं. विस्तार] फैला हुआ, विस्तृत। उ.—ऐसौ नीप-वृच्छ बिस्तारा, चीर हार धौं कितिक हजारा—७९९।

बिस्तार्‌यौ—क्रि. स. [हिं. बिस्तारना] (१) फैलाया, बढ़ाया। उ.—सुमिरत नाम, द्रुपद-तनया कौ पट अनेक बिस्तारचौ—१-१७। (२) विस्तार के साथ आरंभ किया। उ.—बिप्रनि जज्ञ बहुरि बिस्तारचौ—४-५।

बिस्तुइया—संज्ञा स्त्री. [हिं. विष+चूना] छिपकली।

बिस्मरना—क्रि. स. [सं. विस्मरण] भूल जाना।

बिस्मरौ—क्रि. स. [हिं. बिस्मरना] भुलाओ। उ.—हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ। आवे पलकहुँ जनि बिस्मरौ—६-१।

बिस्राम—संज्ञा पुं. [सं. विश्राम] आराम, चैन, सुख। उ.—(क) दासी तृस्ना भ्रमत टहल-हित लहत न छिन बिस्राम—१-१५१। (ख) नंद लिये आवत हरि देखे, तब पायौ बिस्राम—६७९।

बिस्वंभर—संज्ञा पुं. [सं. विश्वंभर] परमेश्वर। उ.—बिस्वंभर सब जग कौं भरै—२-२०।

बिस्वांसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिस्वा] बिस्वे का बीसवाँ भाग।

बिस्वा—संज्ञा पुं. [हिं. बीसवाँ] बीघे का बीसवाँ भाग।

मुहा०—बीस बिस्वा—निसंदेह, निश्चय ही।

बिस्वास—संज्ञा पुं. [सं. विश्वास] यकीन, प्रतीति। उ.—तौ बिस्वास होइ मन मेरैं—१-१४६।

बिहंग, बिहंगा—संज्ञा पुं. [सं. विहंग] पक्षी। उ.—मनो मुख मृदुल पानि पंकरुह गुरु गति मनहुँ मराल बिहंगा—१९०५।

बिहंडन—संज्ञा पुं. [सं. विघटन, प्रा. बिहंडन] (१) नष्ट करने की क्रिया या भाव। (२) नष्ट या दूर करने वाले। उ.—बाल-सखा की बिपति-बिहंडन संकट हरन मुरारे—१० उ.-६०।

बिहंडना—क्रि. स. [सं. विघटन, प्रा. बिहंडना] (१) खंडना, तोड़ना, काटना। (२) मारना, नष्टना।

बिहँसना—क्रि. अ. [सं. बिहसन] मंद-मंद मुस्कराना।

बिहँसाना—क्रि. स. [हिं. बिहँसना] हँसना, प्रसन्न करना।

क्रि. अ.—मंद-मंद हँसना, मुस्कराना।

बिहँसीं—क्रि. अ. [हिं. बिहँसना] मंद-मंद मुस्करायीं। उ.—हँसत नंद गोपी सब बिहँसीं—१०-१८०।

बिहँसौंहा—वि. [हिं. बिहँसना] हँसता हुआ।

बिहग—संज्ञा पुं. [सं. विहंग] (१) पक्षी। (२) बाण।

बिहद—वि. [फ़ा. बेहद] बहुत अधिक, असीम।

बिहबल—वि. [सं. विह्वल] व्याकुल। उ.—(क) जादौ-पति जदुनाथ खगपति साथ जन जान्यौ बिहबल तब छाँड़ि दियौ थल मैं। (ख) प्रात खरिकहिं गई आइ बिहबल भई, राधिका कुँवरि कहुँ डस्यौ कारौ—७५१।

बिहरत—क्रि. अ. [सं. विहरण] घूमता-फिरता है। उ.—घुटुरुनि चलत अजिर महँ बिहरत, मुख मंडित नवनीत—१०-९७।

बिहरना—क्रि. स. [सं. विघटन, प्रा. विहडन] (१) फटना, दरकना। (२) टूटना-फूटना।

क्रि. अ. [सं. विहरण] सैर करना, घूमना-फिरना।

बिहराना—क्रि. अ. [हिं. बिहरना] (१) फटना। (२) टूटना।

बिहाइ, बिहाई—क्रि. अ. [हिं. बिहाना] बीतती है। उ.—सब निसि याही भाँति बिहाइ—४-१२।

क्रि. स.—छोड़कर, त्यागकर। उ.—(क) भरत गयौ बन राज बिहाइ—९-२। (ख) अंसुमान मुनि राज बिहाइ, गंगा हेतु कियौ तप जाइ—९-९।

बिहाग—संज्ञा पुं. [देश.] आधी रात के बाद गाया जाने-वाला एक राग।

बिहागड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बिहाग] रात को गाया जाने-वाला एक राग।

बिहात—क्रि. अ. [हिं. बिहाना] बीतता है, व्यतीत होता है। उ.—सुनहु स्याम तुम बिनु उन लोगनि जैसे

दिवस बिहात—३४६० ।

बिहान—संज्ञा पुं. [सं. विभात, प्रा. विहाड, विहाण] सबेरा, प्रातःकाल । उ.—मोह-निसा कौ लेस रह्यौ नहिं भयौ बिबेक-बिहान—२-३३ ।

क्रि. वि.—आनेवाला दूसरा दिन, कल ।

बिहाना—क्रि. स. [सं. वि+हाना] छोड़ना, त्यागना ।

क्रि. अ.—बीतना, व्यतीत होना ।

बिहानी—क्रि. अ. [हिं. बिहाना] व्यतीत हुई, बीती । उ.—चिरई चुहचुहानी चंद की ज्योति परानी रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवान की—१६०६ ।

बिहाने—संज्ञा पुं. [हिं. बिहान] सबेरा, प्रातःकाल । उ.—सूरदास प्रभु जान देहु अब बहुरि कहौगे कालि बिहाने—११३६ ।

क्रि. वि.—आनेवाला दिन, कल । उ.—सूरदास गोबर्धन पूजा कीने कर फल लेहु बिहाने ९५१ ।

बिहानै—संज्ञा पुं. [हिं. बिहान] प्रातःकाल । उ.—सूरदास ऐसे लोगन को नाउँ न लीजै होत बिहानै—१५०० ।

बिहार—संज्ञा पुं. [सं. बिहरण] केलि, क्रीड़ा, लीला । उ.—देखि-देखि किलकत दँतियाँ द्वै राजत क्रीड़त बिबिध बिहार—१०-८४ ।

बिहारना—क्रि. अ. [सं. बिहरण] बिहार या क्रीड़ा करना ।

बिहारे—क्रि. अ. [हिं. बिहारना] केलि-क्रीड़ा की । उ.—तिन युवती बन बननि बिहारे—२४५९ ।

बिहाल, बिहाला—वि. [फ़ा. बेहाल] व्याकुल, बेचैन । उ.—(क) सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौं हँसत ही ग्वारिनि भई बिहाला—१०३४ । (ख) तरुनाई तनु आवन दीजै कित जिय होत बिहाला—१०३८ ।

बिहीन, बिहून—वि. [सं. विहीन] रहित, बिना । उ.—(क) बारि-बिहीन मीन ज्यौं व्याकुल त्यौं ब्रजनारि सबै । (ख) सूरदास सोभा क्यौं पावै, पिय बिहीन धनि मटकै—१-२६२ ।

बिहोरना—क्रि. अ. [हिं. बिहरना=फूटना] बिछुड़ना ।

बिह्वल—वि. [सं. विह्वल] व्याकुल, विकल । उ.—(क) जादौपति जदुनाथ, छाँड़ि खगपति-साथ जानि जन बिह्वल, छुड़ाइ लीन्हो पल मैं—८-५ । (ख) बिह्वल तन-मन, चकृत भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए—९-३१ ।

बींड़, बींड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बींडी] (१) गेंडुरी, इँडुरी । (२) पिंडी ।

बींड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. वेणी] (१) गेंडुरी । (२) पिंडी ।

बींधना—क्रि. अ. [सं. विद्ध] (१)फँसना, उलझना । (२) छिदना, बिध जाना ।

क्रि. स.—छेदना, बेधना ।

बींधि—क्रि. अ. [हिं. बींधना] फँसकर, उलझकर । उ.—ज्यौं कुञ्जरि रस बींधि हारि गथु सोचति पटकि चिती—१०३०-१०३ ।

बींधे—क्रि. अ. [हिं. बींधना] फँसे, उलझे । उ.—नैना बींधे दोऊ मेरे—पृ. ३२५ (४७) ।

बीका—वि. [सं. वक्र] टेढ़ा ।

बीख—संज्ञा पुं. [सं. वीखा] पद, कदम, डग ।

बीग—संज्ञा पुं. [सं. वृक] भेड़िया ।

बीगना—क्रि. स. [सं. विकीरण] बिखराना, गिराना ।

बीघा—संज्ञा पुं. [सं. विग्रह, प्रा. बिग्गह] जमीन की एक नाप जो ३०२५ वर्ग गज की, और एकड़ के पाँचवें भाग के बराबर होती है ।

बीच—संज्ञा पुं. [सं. विच=अलग करना] किसी परिधि, सीमा, वस्तु आदि का मध्य भाग ।

मुहा०—बीच खेत–सबके देखते देखते । बीच-बीच में—(१) रह-रह कर । (२) थोड़ी-थोड़ी दूर पर ।

(२) भेद, अन्तर । उ.—धन्य हो धन्य हो तुम घोष नारी । मोहि धोखा गयौ, दरस तुमकौ भयौ तुमहिं मोहिं देखौ री बीच भारी ।

मुहा०—बीच करना–(१) लड़नेवालों को रोकना । (२) झगड़ा निबटाना । उ.—बीच करन जो आवै कोऊ ताको सौंह दिवाऊँ—१५१२ । बीच न कियो—रक्षा नहीं की, बचाया नहीं । उ.—बीच न काहू तब कियौ (जब) दूतनि दीन्हीं मार—१-३२५ । बीच पड़ना—(१) अन्तर या परिवर्तन हो जाना । (२) झगड़ा निबटाने के लिए मध्यस्थ बनना । बीच डालना (पारना)—अन्तर, भेद या परिवर्तन करना । बीच में पड़ना—(१) मध्यस्थ होना । (२) जिम्मेदार या प्रतिभू बनना । बीच रखना—दुराव या भेद रखना । बीच में कूदना—दूसरे के काम में व्यर्थ ही पड़ना ।

किसी को बीच में देना—मध्यस्थ या साक्षी बनाना। किसी को बीच में रखकर कहना—उसकी शपथ खाकर कहना।

(३) दो वस्तुओं के बीच का अन्तर या अवकाश। (४) अवसर, मौका। उ.—पायौ बीच इंद्र अभिमानी हरि बिनु गोकुल आयौ—२८२०।(५) भेद, अन्तर। उ.—तुमसौं उनसौं बीच नहीं कछु तुम दोऊ बर नारि—१४२२।

क्रि. वि. (१) बीच ही में, लगभग मध्य भाग में, आधी दूर पर। उ.—मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं कृपासिंधु मुरारि।........। थक्यौ बीच बिहाल बिह्वल, सुनौ करुना-मूल। स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल—१-९९। (२) अन्दर से, भीतर से। उ.—(क) निकसे खंभ-बीच हैं नरहरि, ताहि अभय-पद दीन्हौ—१-१०४। (ख) पाहन-बीच कमल बिकसावै, जल में अगिनि जरै—१-१०५।

बीचहिं—क्रि. वि. [हिं. बीच+हिं (प्रत्य.)] (१) इसी काल के मध्य में। उ.—कहत हे, आगे जपिहैं राम। बीचहिं भई और की औरै परचौ काल सौं काम—१-५७। (२) बीच में ही, बात काट कर। उ.—सखा कहत हैं स्याम खिसाने।........। बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप—१०-२१४।

बीचि, बीची—संज्ञा स्त्री. [सं. वीचि] लहर, तरंग।

बीचु—संज्ञा पु. [हिं. बीच] (१) अवसर। (२) अन्तर।

बीचोबीच—क्रि. वि. [हिं. बीच] ठीक मध्य भाग में।

बीछना—क्रि. स. [सं. विचयन] (१) पसंद करके चुनना। (२) अलग करके देखना।

बीछी—संज्ञा स्त्री. [सं. वृश्चिक] बिच्छू।

बीछू—संज्ञा पुं. [सं. वृश्चिक] (१) बिच्छू। (२) 'बिछुआ' नामक शस्त्र।

बीज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिया या दाना जिससे पौधा अंकुरित होता है। उ.—(क) बीज मन माली मदन चूर आलबाल बयौ—३३०७। (ख) जैसौ बीज बोइए तैसौ लुनिए लोग कहत सब बावरी—३३३१। (२) मूल प्रकृति या कारण। (३) वीर्य। (४) किसी देवता का मूलमंत्र।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] बिजली।

बीजक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूची। (२) बीज। (३) कबीर का एक पद-संग्रह।

बीजगणित—संज्ञा पुं. [सं.] गणित का एक भेद।

बीजन—संज्ञा पुं. [सं. व्यजन] पंखा, बेना।

बीजना—क्रि. स. [हिं. बीज] बीज बोना।

बीजमंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी देवता का मूलमंत्र। (२) किसी कार्य की सिद्धि का गुर।

बीजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] बिजली। उ.—एक दिशा मनो मकर चाँदिनी, एक दिशा सघन बीजरी ऐसे हरि मन मोहैं—पृ. ३१६ (५७)।

बीजा—वि. [हिं. दूजा] दूसरा।

संज्ञा पुं. [हिं. बीज] बीज।

बीजाक्षर—संज्ञा पुं. [सं.] किसी बीजमंत्र का पहला अक्षर।

बीजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीज+ई] (१) गिरी। (२) गुठली।

संज्ञा पुं. [सं. वीजिन्] पिता।

बीजु—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] बिजली, विद्युत। उ.—(क) निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरसै मेह—१०-५। (ख) चमकत बीजु सैल कर मंड़ित गरजि निसान बजायौ—२८४०।

बीजुपात—संज्ञा पुं. [सं. वज्र+पात] बिजली गिरना।

बीजुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] बिजली।

बीजू—वि. [हिं. बीज+ऊ] जो बीज से उगा हो।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बिजली] बिजली।

बीझ—वि. [सं. विद्ध] सघन, घना।

बीझना—क्रि. अ.[सं. विद्ध, प्रा. बिज्झ] फँसना, लिप्तहोना।

बीझा—वि. [सं. विजन] निर्जन, एकान्त।

बीट—संज्ञा स्त्री. [सं. विट] पक्षी की विष्ठा।

बीठल—संज्ञा पुं. [सं. विट्ठल] विष्णु के अवतार एक देवता जिनका मंदिर पंढरपुर में है।

बीड़ा—संज्ञा पुं. [सं. बीटक] पान की गिलौरी।

मुहा०—बीड़ा उठाना—(१) किसी काम को करने का निश्चय करना। (२) तत्पर होना। बीड़ा डालना (रखना)-(१) किसी काम को करने का दायित्व लेने के लिए उपस्थित जन-समूह को चुनौती-सी देना।

बीड़ा देना—(१) काम करने का भार सौंपना।(२) बयाना या साई देना।

बीड़िया—वि. [हिं. बीड़ा+इया] बीड़ा उठानेवाला, कार्य-संपादन का भार लेनेवाला।

बीड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीड़ा] (१) छोटा बीड़ा। (२) गड्डी।

बीतत – क्रि. अ. [हिं. बीतना] व्यतीत होते हैं, समय बीतता है, वक्त कटता है। उ.—(क) दिन बीतत माया कैं लालच, कुल-कुटुंब कैं हेत—१-१२५। (ख) छिन इक माहिं कोटि जुग बीतत नर की केतिक बात —१-३१३।

बीतना—क्रि. अ. [सं. व्यतीत] (१) समय कटना या व्यतीत होना। (२) छूट जाना, दूर होना। (३) घटित होना, पड़ना।

बीता—क्रि. अ. [हिं. बीतना] समाप्त हो गया। उ.—भारत युद्ध होइ जब बीता। भयौ जुधिष्ठिर अति भयभीता—१-२६१।

संज्ञा पुं. [बित्ता] बालिश्त।

बीती—क्रि. अ. [हिं. बीतना] (१) समाप्त हो गयी, बीत गयी। उ.—भयौ अकाज अर्द्धनिसि बीती, लछिमन-काज नसायौ—६-१५५। (२) घटित हुई, पड़ी। उ.—हमरे मन की सोई जानै जापै बीती होई—३२०९।

संज्ञा स्त्री.—घटित या मन पर पड़ी हुई बात का प्रभाव। उ.—ऊधौ सों समुझाइ प्रगट करि अपने मन की बीती—२९४२।

बीते—क्रि. अ. [हिं. बीतना] (१) व्यतीत हुए, विगत हुए। उ.—(क) जनमत मरत बहुत जुग बीते, अजहूँ लाज न आइ - १-३१७। (ख) कछु दिन पत्र भक्ष करि बीते कछु दिन लीन्ही पानी। (२) पड़े, घटित हो।

बीतैं—क्रि. वि. [हिं. बीतना] बीतने पर, व्यतीत होने पर, समाप्ति के बाद। उ.—भारत के बीतैं पुनि आयौ। लोगनि सब बृत्तांत सुनायौ—१-२८४।

क्रि. अ. [हिं. बीतना] बीतते हैं, व्यतीत होते हैं। उ.—बाद-बिबाद सबै दिन बीतैं, खेलत ही अरु खात —२-२२।

बीतै—क्रि. अ. [हिं. बीतना] पड़े, संघटित हो। उ.—सूर स्याम केबस्यभए जेहिबीतै सो जानै—पृ.३२७ (६४)

बीतैगी—क्रि. अ. [हिं. बीतना] पड़ेगी, संघटित होगी। बीतैगी तबहीं जानौगे महा कठिन है नेह—३०६८।

बीत्यौ—क्रि. अ. [हिं. बीतना] छूट गया, दूर हो गया। उ.—उलटा नाम जपत अघ बीत्यौ मुनि उपदेस करायौ।

बीथित—वि. [सं. व्यथित] दुखी, पीड़ित।

बीथिन, बीथिनि – संज्ञा स्त्री. [हिं. वीथी] मार्ग, गलियाँ, पथ। उ.—(क) बरन-बरन पट परत पाँवड़े, बीथिनि सकल सुगंध सिंचाई—९-१६६। (ख) बारक इन बीथिनि ह्वैनिकसेमैंदूरि झरोखनि झाँक्यौ—२५४६।

बीध—क्रि. वि. [सं. विधि] विधिपूर्वक।

बीधना – क्रि. अ. [सं. विद्ध] फँसना, उलझना।

क्रि. स. [हिं. बीधना] छेदना, बेधना।

बीधे – क्रि. अ. [हिं. बीधना] फँसे, उलझे। उ.—नैना बीधे दोऊ मेरे—ना० २८९७।

बीन—संज्ञा स्त्री. [सं. वीण] वीणा।

बीनऊँ—क्रि. अ. [हिं. बिनवना] बिनती करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ। उ.—गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो) देवी सारद तोहि—१०-४०।

बीनति—क्रि. स. [हिं. बीनना] चुनती है। उ.—ब्रज-बनिता मृग सावक नैनी बीनति कुसुमकली – २०७१।

बीनती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिनती] प्रार्थना, निवेदन। उ.—(क) सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै—१-४। (ख) सूरदास की यहै बीनती दस्तक कीजै माफ—१-१५३। (ग) सूरदास की बीनती नीकैं पहुँचाऊँ—९-४२।

बीनना—क्रि. स.[सं. विनयन](१)चुनना।(२) छाँटना।

क्रि. स. [हिं. बीधना] बेधना, छेदना।

क्रि. स. [हिं. बुनना] बुनना।

बीनि—क्रि. स. [हिं. बीनि] छाँटकर। उ.—कठिन-कठिन कलि बीनि करत न्यारी प्यारी के चरन कोमल जानि सकुच अति गड़िबेहि डरात—२०६८।

बीबी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) पत्नी। (२) कुलीन स्त्री।

बीभत्स – वि. [सं.] (१) घृणित। (२) पापी।

संज्ञा पुं.—काव्य के नौ रसों में एक जिसमें रक्त, मांस आदि का वर्णन रहता है।

बीमार—वि. [फा.] रोगी।

बीमारी—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) रोग। (२) बुरी लत।

बीय, बीया—वि. [हिं. दूजा] दूसरा।

संज्ञा पुं. [सं. बीज] बीज, दाना।

बीर—वि. [सं. वीर] वीर, साहसी। उ.—तुम्हैं पहिचानति नाहीं बीर—९-८६।

संज्ञा पुं. [हिं. बीरन] भाई, भ्राता। उ.—सबै ब्रज है जमुना कैं तीर। कालिनाग के फन पर निरतत संकर्षन कौ बीर—५७५।

संज्ञा स्त्री.—(१) सखी, सहेली। (२) कान का एक आभूषण। उ.—हाथ पहुँची बीर कंगन जरित मुँदरी भ्राजई।

बीरउ—संज्ञा पुं. [हिं. बिरवा] बिरवा, पौधा।

बीरज—संज्ञा पुं. [सं. वीर्य्य] शुक्र, वीर्य।

बीरन—संज्ञा पुं. [हिं. बीरन] भाई।

बीरनि—संज्ञा स्त्री. [देश.] कान का एक गहना।

बीरबहूटी—संज्ञा स्त्री. [सं. वीर+बधूटी] एक छोटा लाल कीड़ा जिसके मखमली रोएँ होते हैं।

बीरभद्र—संज्ञा पुं. [सं. वीरभद्र] शिव जी के एक गण जो उनके पुत्र और अवतार माने जाते हैं। इनकी उत्पत्ति शिव जी के मुख से दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट करने के लिए हुई थी। सूरदास जी ने इनकी उत्पत्ति शिव जी की जटा से लिखी है। उ.—सिव ह्वै क्रोध इक जटा उपारी। बीरभद्र उपज्यौ बलभारी—४-५।

बीरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीड़ा] (१) पान का बीड़ा। उ.—जेंइ उठे अँचवन लियौ, दुहुँकर बीरा देत-४३७।

मुहा०—बीरा दीन्हौ—कार्य-भार सौंपा। उ.—यह सुनि नृपति हरष मन कीन्हौं, तुरतहिं बीरा दीन्हौं—१०-६१। बीरा लै आयौ—कार्य-संपादन करने का भार लिया। उ.—बीरा लै आयौ सन्मुख तैं, आदर करि नृप कंस पठायौ—५९१।

(२) वह फूल-फल जो देव-प्रसाद-रूप में भक्तों को दिया जाता है। उ.—कह अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा। सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु जब हँसि दैहौ बीरा—१-१३४।

बीरी—संज्ञा पुं. [हिं. बीड़ा] (१) पान का छोटा बीड़ा। उ.—तब बीरी तनक मुख नायौ—१०-१८३। (२) कान का एक गहना।

बीरो—संज्ञा पुं. [हिं. बिरवा] वृक्ष, पेड़।

बीर्य—संज्ञा पुं. [सं. वीर्य] शरीर की सात धातुओं में से एक जिसका निर्माण सबके अन्त में होता है। उ.—रुद्र कौ बीर्य खसि कै परयौ धरनि पर, मोहिनी रूप हरि लियौ दुराई—८-१०।

बीस—वि. [सं. विंशति, प्रा. वीशति, बीसा] (१) संख्या में दस का दूना हो। (२) श्रेष्ठ, उत्तम।

बीसहूँ बिसौ—निश्चय ही। उ.—जपत अठारहो भेद उनईस नहिं बीसहूँ बिसौ तैं सुखहिं पैहै—१२७८।

संज्ञा स्त्री.—(१) बीस की संख्या। (२) बीस (स्त्रियाँ)। उ.—ब्याहौ बीस धरौ दस कुबिजा अंतहु स्याम हमारे—३३४२।

बीसक—वि. [हिं. बीस+एक] लगभग बीस। उ.—बेसन के दस-बीसक दोना—३९६।

संज्ञा स्त्री., पुं.—बीस (स्त्री या पुरुष)। कबहुँक मिलि दस-बीसक धावति लेति छिड़ाइ मुरलि झकझोरी-२४०३।

बीसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बीस] (१) बीस चीजों का समूह। (२) आठ संवत्सरों के तीन विभागों—पहली, ब्रह्म बीसी; दूसरी, विष्णु; और तीसरी रुद्र बीसी—में से कोई एक।

बीसों—वि. [हिं. बीस] (१) कई (बार) बीस। (२) बीस से अधिक।

बीहड़—वि. [सं. विकट] (१) ऊबड़-खाबड़। (२) जो सम या सुगम न हो, विकट।

वि. [सं. विलग] अलग, पृथक।

बुंद—संज्ञा स्त्री. [सं. विंदु] बूँद। उ.—नाग-नर-पसु सबनि चाह्यौ सुरसरी कौ बुंद—९-१०।

वि.—थोड़ा या जरा सा।

बुँदका—संज्ञा पुं. [सं. विंदुक] (१) बड़ा और गोल धब्बा। (२) माथे का गोल टीका।

बुँदकी—संज्ञा स्त्री. [सं. विंदु+हिं. की] (१) छोटी गोल

बिंदी। (२) किसी चीज पर बनी, पड़ी या कढ़ी छोटी गोल बिंदी।

बुंदा—संज्ञा पुं. [सं. विंदु] (१) कान का एक गहना। (२) बड़ी बिंदी। उ.—उर बघनहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार, बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि-मनहर—१०-१५१।

बुँदिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूँदी] (१) बूँद। (२) एक मिठाई जो बेसन की बूँदों से बनायी जाती है।

बुँदेला—संज्ञा पुं. [हिं. बूँद+एला (प्रत्य.)] क्षत्रियों की एक जाति।

बुंदौरी, बुँदौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूँद+ओरी] 'बूँदी' नामक मिठाई।

बुआ—संज्ञा स्त्री. [देश.] पिता की बहन।

बुकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूकना] महीन चूर्ण।

बुकुन—संज्ञा पुं. [हिं. बूकना] (१) महीन चूर्ण, बुकनी। (२) पाचक चूर्ण, चूरन।

बुक्का—संज्ञा पुं. [हिं. बूकना] अभ्रक का चूर्ण।

बुखार—संज्ञा पुं. [अ. बुखार] (१) भाप, वाष्प। (२) ज्वर। (३) दुख, क्रोध आदि का आवेग।

मुहा०—जी (दिल) का बुखार निकालना—दुख, शोक आदि की बात कहकर जी शान्त करना।

बुजदिल—वि. [फा. बुजदिल] कायर।

बुजुर्ग—संज्ञा पुं. [फा. बुजुर्ग] (१) बाप-दादा। (२) व्यक्ति जो अवस्था में बड़ा हो।

बुजुर्गियत, बुजुर्गी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुजुर्ग] बड़प्पन।

बुझति—क्रि. अ. [हिं. बुझना] (अग्नि) बुझती या शांत होती है। उ.—दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन-बन, नाहिनँ बुझति बुझाई—९-५२।

बुझना—क्रि. अ. [देश.] (१) जलती हुई चीज का जलना बंद हो जाना। (२) तपी या गरम चीज का ठंढा होना। (३) किसी गरम चीज का पानी में डालने से ठंढा होना। (४) पानी से आग का शांत होना। (५) उमंग या उत्साह में कमी आना। (६) तृप्ति या संतोष का अनुभव होना, शांत होना।

बुझाइ—क्रि. अ. [हिं. बुझना] (१) तृप्त हुई। उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।........। अष्ट-दस-घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ—१-५६। (२) आवेग आदि में कमी आई। उ.—मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ—१०-२९७।

क्रि. स. [हिं. बुझाना] समझाकर। उ.—(क) बार बार बुझाइ हारी भौंह मोपर तानति—पृ. ३२६ (५४)। (ख) ज्ञान बुझाइ खबरि दै आवहु एक पंथ द्वै काज—२९२५।

बुझाई—क्रि. स. [हिं. बुझाना] (१) अग्नि बुझाने या शांत करने से। उ.—दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन-बन नाहिनँ बूझति बुझाई—९-५२। (२) समझाकर। उ.—सूर स्याम लिए हँसति जसोदा नंदहिं कहति बुझाई—१०-१८९।

क्रि. अ. [हिं. बुझना] (१) तृप्त या शांत हुई। उ.—जोग सिखाये क्यों मन मानै क्यौंऽब ओसकन प्यास बुझाई—३३१०। (२) दुख, क्रोध आदि के आवेग में कमी हुई। उ.—नैननि निरखि दुख निमेष न खंडित प्रेम व्यथा न बुझाई—२९७६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बुझाना] बुझाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

बुझाऊँगो—क्रि. स. [हिं. बुझाना] तृप्त या शांत करना। उ.—सुनहु सूर अधरन रस अँचवो दुहुँ मन तृषा बुझाऊँगो—१९४४।

बुझान—क्रि. स. [हिं. बुझाना] शांत करने (दे)।

प्र०—बुझा दे—बुझाने दे, शांत करने दे। उ.—गोपालहिं माखन खान दै।........। गहि बहियाँ हौं लैकै जैहौं, नैननि तपति बुझान दै—१०-२७४।

बुझाना—क्रि. स. [हिं. बुझना] (१) जलती चीज की आग ठंढी करना। (२) तपी हुई धातु आदि को पानी में डालकर ठंढा करना। (३) किसी चीज को तपाकर उसका गुण पानी में लाने के लिए उसे पानी में डालना। (४) पानी आदि से शांत करना। (५) आवेग, उत्साह आदि शांत करना।

क्रि. स. [हिं. बूझना] (१) बूझने को प्रवृत्त करना। (२) समझाना। (३) संतोष देना।

बुझानी—क्रि. अ. [हिं. बुझना] (१) तृप्त हुई, शांत हुई। उ.—निसि-दिन दुखित मनोरथ करि करि, पावत

हूँ तृष्ना न बुझानी—१-१४९ । (२) ताप में कमी आयी । उ.—(क) लोचन तृप्त भए दरसन तैं उर की तपति बुझानी—७७८ । (ख) ग्वालिनि बिकल देखि प्रभु प्रगटे हर्ष भयो तन तपति बुझानी—८४७ । (३) आवेग या उत्तेजना में कमी हुई । उ.—यह सुनि सुनि रिस कछुक बुझानी—१०४५ ।

बुझायौ—क्रि. स. [हिं. बुझाना] अग्नि शांत की । उ.—काम-क्रोध-मद-लोभ-अगिनि तैं कहूँ न जरत बुझायौ—१-१५४ ।

बुझावन—क्रि. स. [हिं. बुझाना] पूछने या बूझने (लगे) ।
प्र०—बुझावन लागे—पूछने या बुझने लगे । उ.—फल कौ नाम बुझावन लागे हरि कहि दियो अमोरि—२३७७ ।

बुझावै—क्रि. स. [हिं. बुझाना] अग्नि शांत करता है । उ.—पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै—२-१३१

क्रि. स. [हिं. बूझना] समझावे । उ.—चतुर काम फँग परे कन्हाई अब धौं इनहिं बुझावै को री–१५६३ ।

बुट—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूटी] जड़ी-बूटी, वनस्पति ।

बुटना—क्रि. अ. [देश.] भाग जाना ।

बुड़की—संज्ञा स्त्री. [हिं. डुबकी] डुबकी, गोता । उ.—(क) करति स्नान सब प्रेम बुड़की देहि । (ख) चक्रत होइ नीर तैं बहुरि बुड़की देइ—२५७० ।

बुड़ना—क्रि. अ. [हिं. डूबना] बूड़ना, डूबना ।

बुड़बुड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] कुढ़कर या झुँझलाकर बड़-बड़ाना ।

बुड़ाई—क्रि. स. [हिं. बुड़ाना] डूबने को प्रवृत्त किया ।
प्र.—देउँ बुड़ाई—डुबो दूँ । उ.—राखौं नहीं इन्हैं भूतल मैं गोकुल देउँ बुड़ाई—९०० ।

बुड़ाना—क्रि. स. [हिं. डुबाना] (१) पानी में गोता देना । (२) पानी में गोता देकर प्राण लेना ।

बुड़ाव—संज्ञा पुं. [हिं. डुबाव] पानी आदि की गहराई जो थाह या ऊँचाई से अधिक हो ।

बुढ़वा, बुढ़ा—वि. [सं. वृद्ध] बूढ़ा, वृद्ध ।

बुढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूढ़ा+आई (प्रत्य.)] बुढ़ापा । उ.—(क) त्राहि त्राहि करि नंद पुकारत, देखत ठौर गिरे भहराई । लोटत धरनि, परत जल भीतर, सूर स्याम दुख दियौ बुढ़ाई—५४४ । (ख) नंद पुकारत रोइ बुढ़ाई मैं मोहिं छाड़्यौ—५८६ ।

बुढ़ाना—क्रि. अ. [हिं. बूढ़ा] बूढ़ा होना ।

बुढ़ानी—क्रि. अ. [हिं. बुढ़ाना] बूढ़ी हुई । उ.—अब मैं जानी, देह बुढ़ानी । सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी—१-३०५ ।

बुढ़ाने—क्रि. अ. [हिं. बुढ़ाना] बूढ़े हो गये, शक्ति शिथिल या समाप्त हो गयी । उ.—सात दिवस जल बरषि बुढ़ाने—१०६० ।

बुढ़ापा, बुढ़ापौ—संज्ञा पुं. [हिं. बूढ़ा+पा] (१) बूढ़े होने का भाव । (२) वृद्धावस्था । उ.—बहुरौ ताहि बुढ़ापौ आवै । इंद्री-सक्ति सकल मिटि जावै—३-१३ ।

बुढ़ायौ – क्रि. अ. [हिं. बुढ़ाना] बूढ़ा हो गया । उ.—देखि बिधि कौ कह्यौ, यह बुढ़ायौ—८-८ ।

बुढ़ौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बूढ़ा+औती] वृद्धावस्था ।

बुत—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मूर्ति, प्रतिमा । (२) प्रियतम ।
वि.—जो प्रतिमा की तरह चुप-चाप हो ।

बुतना—क्रि. अ. [हिं. बुझना] बुझना ।

बुतपरस्त—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मूर्तिपूजक ।

बुताना—क्रि. अ. [हिं. बुतना] बुझना ।
क्रि. स.—बुझाना ।

बुत्ता—संज्ञा पुं. [देश.] (१) धोखा, झाँसा । (२) बहाना ।

बुदबुद, बुदबुदा—संज्ञा पुं. [सं.] पानी का बुलबुला, बुल्ला । उ.—(क) बारि मैं ज्यौं उठत बुदबुद, लागि बाइ बिलाइ—१-३१६ । (ख) मनहुँ बुदबुदा उपजत अमी—२३२१ ।

बुद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक जो शाक्यवंशी राजा शुद्धोधन की रानी महामाया के गर्भ से जन्मे थे । हिंदू शास्त्रों के अनुसार ये दस अवतारों में नवें, और चौबीस अवतारों में तेईसवें माने जाते हैं । उ.—बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयौ पुनि सोइ । सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ—२-३६ ।

बुद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] समझ, विवेक-शक्ति । उ.—चतुराई अँग-अंग भरी है, पूरन ज्ञान न बुद्धि (बुधि) की मोटी—१४७९ ।

बुद्धिचक्षु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रज्ञाचक्षु। (२) धृतराष्ट्र।
बुद्धिजीवी—संज्ञा पुं. [सं. बुद्धिजीविन्] वह जो बौद्धिक कार्य करके जीविकोपार्जन करता हो।
बुद्धिपर—वि. [सं.] जिस तक बुद्धि न पहुँच सके।
बुद्धिमत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] समझदारी।
बुद्धिमान—वि. [सं.बुद्धिमान्] समझदार।
बुध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौर जगत का एक ग्रह। (२) ज्योतिष के नौ ग्रहों में से चौथा जिसकी उत्पत्ति बृहस्पति की स्त्री तारा के गर्भ से और चन्द्रमा के वीर्य से हुई थी। किसी किसी का मत है कि इसने वैवस्वत मनु की कन्या ईला से विवाह किया था जिससे पुरुरवा का जन्म हुआ था। उ.—(क) सूरज कैं बैवस्वत भयौ।....। इला सुता ताकैं गृह जाई।....। बुध कैं आस्रम सो पुनि आयौ। तासौं गंधरब-ब्याह करायौ। बहुरौ एक पुत्र तिन जायौ। नाम पुरुरवा ताहि धरायौ—६-२। (ख) पँचएँ बुध कन्या की जौ है, पुत्रनि बहुत वढ़ैहैं—१०-८६। (३) बुद्धिमान पुरुष। उ.—तातैं बुध हरि-सेवा करैं। हरि-चरननि नितही चित धरैं—९-८।
बुधवान—वि. [सं. बुद्धिमान] समझदार।
बुधवार—संज्ञा पुं. [सं.] सात वारों में से एक जो मंगल-वार के बाद और वृहस्पतिवार के पूर्व पड़ता है। यह वार बुद्धग्रह का माना जाता है।
बुधि—संज्ञा स्त्री. [सं. बुद्धि] बुद्धि, समझ, विचार-शक्ति। उ.—बरज्यौ आवत तुम्हैं, असुर-बुधि इन यह कीनी —३-११।
बुधिवंत—वि. [सं. बुद्धि+वंत] बुद्धिमान, समझदार। उ.—बुधिवंत पुरुष यह सब सँभारैं—१०उ०-४६।
बुनना—क्रि. स. [सं. वयन] सूत, ऊन या अन्य तारों से कपड़ा तैयार करने या अन्य कोई वस्तु बिनने की क्रिया या भाव।
बुनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुनना] बुनने की क्रिया, भाव या मजदूरी।
बुनावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुनना+आवट] बुनने का ढंग या रीति।
बुनियाद, बुन्यादि—संज्ञा स्त्री. [फा. बुनियाद] (१) जड़, मूल, नींव। उ.—बृन्दावन आदि, ब्रज आदि, गोकुल आदि, आदि बुन्यादि सब अहिर जारौं—५९०। (२) वास्तविकता। उ.—आदि-बुन्यादि सबै हम जानति काहे को सतरात—११२४।
बुन्यौ—क्रि. स. [हिं. बुनना] बुनकर तैयार किया। उ.—घुनो बाँस गत बुन्यो खटोला, काहू को पलँग कनक पाटी को—१०उ०-७१।
बुबुकना—क्रि. अ. [अनु.] जोर से रोना।
बुबुकारी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] जोर से रोने की क्रिया।
बुभुक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] खाने की इच्छा, भूख।
बुभुक्षित—वि. [सं.] जिसे भूख हो, भूखा।
बुरकना—क्रि. स. [अनु.] महीन पिसी चीज को छिड़कना।
बुरका—संज्ञा पुं. [अ. बुरका] (१) मुसलमानियों का एक ढीलाढाला पहनावा। (२) झिल्ली जिसमें गर्भ का बालक लिपटा रहता है।
बुरा—वि. [सं. विरूप] जो अच्छा न हो, खराब।
मुहा०—बुरा मानना—(१) अप्रसन्न होना। (२) बैर रखना।
यौ०—बुरा-भला—(१) हानि-लाभ। (२) डाँट-फटकार। (३) गाली-गलौज।
बुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुरा] (१) खराबी। (२) खोटापन, नीचता। (३) अवगुण, दोष। (४) निंदा।
बुरादा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) चूर्ण। (२) लकड़ी का चूर्ण।
बुरौ—वि. [हिं. बुरा] (१) जो अच्छा या उत्तम न हो, खराब। उ.—भैया, बहुत बुरी बलदाऊ—४८१। (२) अनुचित। उ.—(क) कह्यौ ब्रह्मा सिव-निन्दा जहाँ। बुरौ कियौ तुम बैठे तहाँ—४-५। (ख) तैं जु बुरौ कर्म कियौ, सीता हरि ल्यायौ—९-११८।
मुहा०—बुरौ मानैंगे—अप्रसन्न होंगे। उ.—नंद बाबा बुरौ मानैंगे और जसोदा मैया—४४५।
बुर्ज—संज्ञा पुं. [अ.] (१) दीवारों के कोनों पर आगे की ओर निकला हुआ भाग। (२) मीनार का ऊपरी भाग। (३) गुम्बद।
बुलंद—वि. [फ़ा. बलंद] (१) भारी। (२) ऊँचा।
बुलबुल—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] एक गानेवाली चिड़िया।
बुलबुला—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुदबुद] बुदबुदा।

बुलवाना—क्रि. स. [हिं. बुलाना] बुलाने को प्रवृत करना।

बुलाइ—क्रि. स. [हिं. बुलाना] अपने पास आने को कहकर, निकट बुलाकर। उ.—निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अंचर लेत बलाइ—९-८३।

बुलाइकै—क्रि. स. [हिं. बुलाना] बुलाकर, पुकारकर। उ.—जोइ जोइ माँग्यौ जिनि, सोइ सोइ पायौ तिनि, दीजै सूरदास दर्स भक्तनि बुलाइकै—१०-३१।

बुलाई—क्रि. स. [हिं. बुलाना] (१) बुलाये, लौटाये, वापस कर लिये। उ.—अस्वत्थामा अस्त्र चलायौ। अर्जुन हूँ ब्रह्मास्त्र पठायौ। उन दोउनि सो भई लराई। अर्जुन तब दोउ लिए बुलाई—१-२८९। (२) बुलाकर। उ.—काकैं सत्रु जन्म लीन्यौ है, बूझै मतौ बुलाई—१०-४।

बुलाऊँ—क्रि. स. [हिं. बुलाना] बुलाकर एकत्र करूँ, इकट्ठा करूँ। उ.—तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौं पतित बुलाऊँ—१-१४६।

बुलाक—संज्ञा पुं. [तु. बुलाक] वह लम्बा मोती जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं।

बुलाकी—संज्ञा पुं. [तु. बुलाक़] घोड़ों की एक जाति।

बुलाना—क्रि. स. [हिं. बोलना] (१) पुकारना। (२) पास आने को कहना। (३) बोलने को प्रवृत करना।

बुलायौ—क्रि. स. [हिं. बुलाना] निमंत्रण दिया। उ.—दच्छ प्रजापति जज्ञ रचायौ। महादेव कौं नाहिं बुलायौ—५-४।

बुलावत—क्रि. स. [हिं. बोलना] (१) कहलाते हो, प्रसिद्ध हो। उ.—(क) दीनदयाल, पतित पावन प्रभु, बिरद बुलावत कैसौ—१-१२९। (ख) तुम कब मो सौं पतित उधार्‌यौ। काहे कौं हरि बिरद बुलावत, बिन मसकत को तार्‌यौ—१-१३२। (२) बोलने को प्रेरित करते हैं, बुलवाते हैं। उ.—(नंद) बार-बार बकि स्याम सौं कछु बोल बुलावत—१०-१२२। (३) पुकारते हैं, बुलाते हैं। उ.—खेलन चलौ बालगोविंद। सखा प्रिय द्वारैं बुलावत घोष बालक बृन्द—१०-२१८।

बुलावति—क्रि. स. [हिं. बुलाना] पुकारती है, आवाज देकर बुलाती है। उ.—छाक लिए सिर स्याम बुलावति—४५९।

बुलावते—क्रि. स. [हिं. बुलाना] पुकारते हैं, आवाज देकर बुलाते हैं। उ.—कबहुँक लै लै नाम मनोहर धवरी धेनु बुलावते—२७३५।

बुलावहु—क्रि. स. [हिं. बुलाना] (१) बुलाओ, पुकारो। उ.—बाँह उचारि काल की नाईं धौरी धेनु बुलावहु—१०-१७९। (२) निमंत्रण दो, न्योता भेजो। उ.—जसुमति नंदहिं बोलि कह्यौ तब, महर, बुलावहु जाति—१०-८९।

बुलावा—संज्ञा पुं. [हिं. बुलाना] निमंत्रण।

बुलावैं—क्रि. स. [हिं. बुलाना] कहते हैं, घोषणा करते हैं। उ.—पतित उधारन बिरद बुलावैं, चारौं बेद पुकारैं—१-१८३।

बुलावै—क्रि. स. [हिं. बुलाना] बुलाता है, पुकारता है, आने को कहता है। उ.—नैन मूँदि, कर जोरि, नाम लै बारहिं बार बुलावै—१०-२४९।

बुलाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुलाना] बुलावा।

बुलैहै—क्रि. स. [हिं. बुलाना] बुलाएगी, अपने पास आने को कहेगी। उ.—कबहुँक कृपावंत कौसिल्या, बधू-बधू कहि मोहिं बुलैहै—९-८१।

बुलौआ, बुलौवा—संज्ञा पुं. [हिं. बुलावा] निमंत्रण।

बुहारत—क्रि. अ. [हिं. बुहारना] बुहारता है। उ.—पवन बुहारत द्वार सदा संकर कुतवारी—११२८।

बुहारति—क्रि. स. [सं. बुहारना] झाड़ू देती है, साफ करती है। उ.—द्वार बुहारति फिरति अष्टसिद्धि—१०-३२।

बुहारना—क्रि. स. [सं. बहुकर] झाड़ू देना।

बुहारा—संज्ञा पुं. [हिं. बुहाना] बड़ा झाड़ू।

बुहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुहारना] छोटी झाड़ू, बढ़नी।

बूँद—संज्ञा स्त्री. [सं. विंदु] जल जैसे तरल पदार्थ का बहुत ही थोड़ा अंश जो गिरते समय छोटे दाने की तरह जान पड़ता है। उ.—करन-मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ—१-२३।

मुहा०—बूँद गिरना (पड़ना)—हल्की वर्षा होना। बूँद भर—बहुत थोड़ा।

बूँदन, बूँदनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. बूँद] बूँदों (में)। उ.—नान्हीं नान्हीं बूँदन में ठाढ़ो री—८३८।

बूँदाबाँदी—संज्ञा स्त्री· [हिं· बूंद+बांद (अनु.)] हल्की वर्षा।

बूँदी—संज्ञा स्त्री· [हिं· बूंद] (१) बेसन के दानों की एक मिठाई। (२) वर्षा की बूंद।

बू—संज्ञा स्त्री. [फ़ा·] (१) गंध। (२) दुर्गंध।

बूआ—संज्ञा स्त्री. [देश.] पिता की बहन।

बूकना—क्रि. स. [देश·] (१) खूब महीन पीसना। (२) अपनी योग्यता की धाक जमाने को बातें गढ़ना।

बूका—संज्ञा पुं. [हिं· बुक्का] अभ्रक का चूर्ण जो गुलाल में मिलाकर होली में उड़ाया जाता है। उ.—बूका सुरँग अबीर उड़ावत भरि-भरि झोरी—२४०८।

बूगा—संज्ञा पुं. [देश.] भूसा।

बूचा—वि· [सं· बुस] (१) कनकटा। (२) अंगहीन।

बूजना—क्रि. स. [देश.] धोखा देना, छिपाना।

बूझ—संज्ञा स्त्री. [सं· बुद्धि] (१) समझ। (२) पहेली।

बूझत—क्रि. स· [हिं· बूझना] (१) खोजता है। उ.—जौ लौं सत-सरूप नहिं सूझत। तौ लौं मृग-मद नाभि बिसारे, फिरत सकल बन बूझत—२-२५।(२) जानता-समझता है। उ.—राजा, इक पंडित पौरि तुम्हारी। अपद-दुपद पसु भाषा बूझत अविगत अल्प अहारी—८-१४। (३) पूछता है। उ.—बार-बार हरि मातहिं बूझत, कहि चौगान कहाँ है—१०-२४३।

बूझन—संज्ञा स्त्री· [हिं· बूझ] (१) बुद्धि। (२) पहेली।

क्रि· स. [हिं· बूझना] पूछने (लगे)। उ.—सखा बृंद लै तहाँ गए बूझन तेहि लागे—२५७५।

बूझना—क्रि· स. [हिं· बूझ] (१) जानना, समझना। (२) पूछना, प्रश्न करना। (३) खोजना, ढूँढ़ना।

बूझहु—क्रि· स. [हिं· बूझना] पूछो। उ.—यह तौ नाहिं बदी हम उनसौ बूझहु धौं यह बात—११९०।

बूझि—क्रि· स. [हिं· बूझना] समझकर, जानकर। उ·—जानि-बूझि मैं होत अजान—१-३४२।

संज्ञा स्त्री. [हिं· बूझ] समझदारी। उ.—जसुदा यह न बूझि कौ काम। कमल नैन की भुजा देखि धौं, तैं बाँधे हैं दाम—३६७।

बूझिए, बूझिये—क्रि. स. [हिं· बूझना] पूछिए। उ·—उठौ महरि कुसलात बूझियै आनन्द उमँगि भरी—२९६२।

बूझी—क्रि. स· [हिं· बूझना] पूछी। उ·—ते मोहिं मिले जात घर अपनैं, मैं बूझी तब जाति—१०-३६।

मुहा०—न बूझी बातें—खोज-खबर भी न ली। ज्यों मधुकर अम्बुज रस चाख्यौ बहुरि न बूझी बातैं आइ—३०५३।

बूझै—क्रि. स· [हिं· बूझना] (१) समझता है, जानता है। उ.—अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमैं-मरै न सोइ। नटवर करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ—२-३६। (२) पुकारता है।

बूझौ—क्रि· स· [हिं· बूझना](१) पूछो। उ.—(क) याकै चरित कहा कोउ जानै, बूझौ धौं संकर्षन भैया—१०-३३५। (ख) जंत्र-मंत्र कह जानैं मेरौ। यह तुम जाइ गुनिनि कौं बूझौ, इहाँ करति कत झेरौ—७५३।

बूझ्यौ—क्रि. स. [हिं· बूझना] (१) समझा, जाना। उ.—सूरदास अब कहति जसोदा, बूझ्यौ सबकौ ज्ञान—३३५। (२) पूछा, प्रश्न किया। उ.—तहँ के बासी नृपति बुलाइ। बूझ्यौ, तब तिन कही सुनाइ—९-३।

बूट—संज्ञा पुं· [सं. विटप] (१) चने का हरा पौधा। (२) चने का हरा दाना। (३) पेड़, पौधा।

बूटनि—संज्ञा स्त्री· [हिं· बहूटी] 'बीरबहूटी' कीड़ा।

बूटा—संज्ञा पुं· [सं. विटप] (१) पौधा। (२) बड़ी बूँटी।

बूटी—संज्ञा स्त्री· [हिं· बूटा] (१) जड़ी, वनस्पति। (२) भाँग। (३) छोटी बूटी।

बूड़—संज्ञा स्त्री· [हिं· डूब] डुबाव।

बूड़त—क्रि· अ. [हिं· बूड़ना] (१) डूबता है, निमज्जित होता है। उ· (क) मोह-समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि—१-१११। (ख) सूरदास प्रभु गोकुल बूड़त काहे न लेत उबारे—२७७४। (२) नष्ट होता है। उ.—ताकी कहा कहौं सुनि सूरज बूड़त कुटुंब समेत—२-१५।

बूड़न—क्रि· अ· [हिं· बूड़ना] डूबना, निमंत्रित होना।

यौ०—बूड़न लग्यौ—डूबने लगा। उ.—मंदराचल समुद्र माँहि बूड़न लग्यौ, तब सबनि बहुरि अस्तुति सुनाई—८-८।

बूड़ना—क्रि. अ. [सं. बुड] (१) (जल या पानी आदि में) डूबना। (२) लीन या निमग्न होना।

बूड़ा—संज्ञा पुं· [हिं· डूबना] (जल की) बाढ़ ।

बूड़ि—क्रि· अ· [हिं· डूबना] डूबकर । उ·—बूड़ि मुए कै कहुँ उठि गए—१-२८४ ।

बूड़ी—क्रि. अ· [हिं· बूड़ना] डूब गयी । उ·—सोक-सिंधु बूड़ी नँदरानी—५४७ ।

बूड़े—क्रि. अ· [हिं· बूड़ना] (१) डूबता है, निमज्जित होता है । उ·—कबहुँक तृन बूड़ै पानी में, कबहुँक सिला तरै—१-१०५ ।

बूड़्यौ—क्रि· अ· [हिं· बूड़ना] डूब गया, निमज्जित हो गया । उ·—सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तरचौ—१·२९१ ।

बूढ़—वि· [हिं· बुड्ढा] बूढ़ा ।
संज्ञा पुं· [देश] । (१) लाल रंग । (२) बीरबहूटी ।

बूढ़ा—संज्ञा पुं· [हिं· बुड्ढा] बूढ़ा ।
संज्ञा स्त्री·—बुड्ढी स्त्री ।

बूत, बूता, बूते—संज्ञा पुं· [हिं· वित्त, बूता] बल, पराक्रम, शक्ति । उ·—प्रेम न रुकत हमारे बूते—३३०५ ।

बूरना—क्रि· अ· [हिं· डूबना] डूबना ।

बूरा—संज्ञा पुं· [हिं· भूरा] (१) कच्ची चीनी । (२) साफ चीनी । (३) महीन चूर्ण ।

बृंद—संज्ञा पुं· [सं· बृंद] समूह, झुंड । उ·—(क) कुमुद-बृंद सँकुचित भए, भृंगलता भूले—१०-१०२ । (ख) मनौ बेद बंदीजन सूत-बृंद मागध-गन, बिरद बदत जै-जै जै जैति कैटभारे—१०-२०५ ।

बृंदावन—संज्ञा पुं· [सं· बृंदावन] वृन्दावन ।

बृंदावन, चंद—संज्ञा पुं· [सं· बृंदावन+चंद्र] वृन्दावन के चंद श्रीकृष्ण । उ·—देखन दै बृंदावन-चंदहि—८०३ ।

बृत्तांत—संज्ञा पुं· [सं· वृत्तांत] विवरण, समाचार, हाल, सूचना । उ·—भारत के बीतैं पुनि आयौ । लोगनि सब बृत्तांत सुनायौ—१-२८४ ।

बृथा, बृथाई—क्रि· वि· [सं· बृथा] व्यर्थ, निष्फल, निष्प्रयोजन । उ·—(क) सूर प्रभु जिहि करै कृपा, जीतै सोई, बिनु कृपा जाइ उद्यम बृथाई—८-८ । (ख) आजु कहा उद्यम करि आए । कहै, बृथा भ्रमि भ्रमि स्रम पाए—४-१२ ।

बृष—संज्ञा पुं [सं· वृष] (१) साँड़, बैल । (२) बारह राशियों में से दूसरी जिसमें १४१ तारे हैं एवं कृत्तिका नक्षत्र के अंतिम तीन पाद, पूरा रोहिणी नक्षत्र और मृगशिरा नक्षत्र के पहले दो पाद हैं । उ·—बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं—१०-८६ ।

बृषपर्वा—संज्ञा पुं· [सं· वृषपर्व्वा] एक दैत्य का नाम जिसने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था । शर्मिष्ठा इसकी पुत्री थी ।

बृषभ—संज्ञा पुं· [सं· वृषभ] (१) बैल । (२) एक असुर । उ·—अघ, बक, बृषभ, बकी, धेनुक हति, भव जल-निधि तैं जु उबारे—१-२७ ।

बृषभानु—संज्ञा पुं· [सं· वृषभानु] श्रीराधिका जीके पिता । ये पद्मावती के गर्भ से उत्पन्न सुरभानु के पुत्र थे । पहले ये रावल ग्राम में रहते थे और यहीं राधा का जन्म हुआ था; पश्चात् कंस के उपद्रवों से ऊबकर ये बरसाने जा बसे थे ।

बृषभास—संज्ञा पुं· [सं· वृषभ+असुर] एक दैत्य । उ·—बकी, बकासुर, सकट, तृनाव्रत, अघ, प्रलंब, बृषभास । कंस-केसि कौं वह गति दीनी, राखे चरन निवास—४८७ ।

बृषली—संज्ञा स्त्री· [सं· वृषली] वृषल या शूद्र जाति की स्त्री । उ·—(क) क्यों दासी-सुत कैं पग धारे ? ...... । सुनियत हीन, दीन, बृषली-सुत, जाति-पाँति तैं न्यारे—१-२४२ । (ख) अजामिल बिप्र कनौज-निवासी । सो भयौ बृषली कैं गृहवासी—६-४ ।

बृष्टि—संज्ञा स्त्री· [सं· वृष्टि] (१) वर्षा, बरसना । (२) ऊपर से बहुत सी चीजों का एक साथ गिरना । उ·—बान-बृष्टि स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार—९-१२४ ।

बृहत, बृहद—वि· [सं· बृहत्] (१) बहुत बड़ा, विशाल । (२) बली, दृढ़ । (३) ऊँचा ।

बृहदारण्यक—संज्ञा पुं· [सं·] एक उपनिषद् ।

बृहद्भानु—संज्ञा पुं· [सं·] (१) अग्नि । (२) सूर्य । (३) सत्यभामा के एक पुत्र का नाम ।

बृहद्रथ—संज्ञा पुं· [सं·] (१) इन्द्र । (२) शतधन्वा के पुत्र का नाम । (३) जरासंध के पिता का नाम ।

बृहन्नल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्जुन का एक नाम। (२) बाँह, बाहु।

बृहन्नला—संज्ञा स्त्री. [सं.] अर्जुन का वह नाम जो अज्ञातवासकाल में राजा विराट की पुत्री को नाच-गाना सिखाने के लिए रखा गया था।

बृहस्पति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देव-गुरु जिनके पिता अंगिरस थे और माता श्रद्धा थीं। (२) सौर जगत का पाँचवाँ ग्रह।

बग—संज्ञा पुं. [सं. भेक] मेढक। उ.— जैसें व्याल बेंग कौ ढूके बेंग पखारी ताके हो।

बेंचति—क्रि. स. [हिं. बेचना] बेंचती है। उ.—घर घर बेंचति फिरति दही री—१०-२९।

बेंचनहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेंचना+हारी] बेचनेवाली। उ.—नंद ग्राम को मारग बूझै है कोउ दधि बेचनहारी—१२१२।

बेंचना—क्रि. स. [हिं. बेचना] मूल्य लेकर देना।

बेंचि—क्रि. स. [हिं. बेचना] बेचकर, विक्रय करके। उ.—(क) विद्या बेंचि जीविका करिहौ—४-५। (ख) लाज बेंचि कूबरी बिसाही संग न छाँड़त एक घरी—२६७७।

मुहा०—बेंचि खाई—खो दी, गवाँ दी। उ.—पुरुष केरी सबै सोहै कूबरी के काज। सूर प्रभु की कहा कहिए बेंच खाई लाज—२७२७।

बेंट—संज्ञा स्त्री. [देश.] औजार की मूठ।

बेंड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेड़ा=आड़ा] गिरती वस्तु को रोकने के लिए नीचे लगाई जानेवाली टेक या चाँड।

बेंड़ा—वि. [हिं. आड़ा] (१) तिरछा। (२) कठिन।

बेंत—संज्ञा पुं. [सं. वेतस्] एक लता के डंठल की बनी हुई छड़ी। उ.—छोरि उदर तैं दुसह दाँवरी, डारि कठिन कर बेंत—१०-३४९।

मुहा०—बेंत की तरह काँपना—बहुत डर कर काँपना।

बेंदली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिंदी] बिंदी, टिकुली।

बेंदा—संज्ञा पुं. [सं. बिंदु] (१) गोल तिलक या टीका। (२) माथे की बड़ी बिंदी। (३) स्त्रियों के माथे का एक आभूषण। उ.—नाना विधि सिंगार बनाये बेंदा दीन्हौ भाल।

बेंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिंदी] (१) टिकली। (२) शून्य। (३) माथे की बिंदी। उ.—बेंदी भाल नैन नित आँजति निरखि रहति तनु गोरी। (४) माथे का बेंदी नामक गहना। उ.—(क) गुरुजन में बैठी आये हरि बेंदी सँवारन मिस पाइ लागी—११५४। (ख) बदन बिंद जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत—२०८०।

बे—अव्य० [फा.] बिना, बगैर।

अव्य. [हिं. हे] तिरस्कारसूचक संबोधन।

मुहा०—बे ते करना—तिरस्कार के ढंग से बात करना।

बेअदब—वि. [फा. बे + अ. अदब] अशिष्ट।

बेआब – वि. [फा. बे + आब] जिसमें चमक न हो।

बेआबरू – वि. [फा.] अप्रतिष्ठित।

बेइंसाफी—संज्ञा स्त्री. [फा.] अन्याय।

बेइज्जत—वि. [फा. बे+अ. इज्जत] (१) अप्रतिष्ठित। (२) अपमानित।

बेइज्जती – संज्ञा स्त्री. [हिं. बेइज्जत] (१) अप्रतिष्ठा। (२) अपमान।

बेइलि—संज्ञा पुं. [हिं. बेला] बेला पुष्प।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बेल] लता, बेल।

बेईमान—वि. [फा. बे+अ. ईमान] (१) अधर्मी। (२) अनाचारी। (३) जो विश्वास योग्य न हो।

बेईमानी—वि. [हिं. बेईमान] (१) अधर्म। (२) अनाचार, अन्याय।

बेकरार—वि. [फा. बे+करार] विकल, व्याकुल।

बेकल—वि. [सं. विकल] बेचैन, व्याकुल।

बेकली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेकल] बेचैनी।

बेकस—वि. [फा.] दीन, असहाय।

बेकाज—वि. [फा. बे+काज (कार्य)] जिसे कोई काम न हो, निकम्मा, निठल्ला। उ.—माधौ जू, मोहिं काहे की लाज। जनम-जनम यौं ही भरमायौ, अभिमानी, बेकाज—१-१५०।

क्रि. वि.—बेमतलब, वृथा, व्यर्थ। उ.—(क) हित की कहत कुहित की लागत इहाँ बेकाज अरौ

—३०३६। (ख) रे अलि चपल मूढ़ रस-लंपट कतहिं बकत बेकाज—३१६१।

बेकाम—वि. [हिं. बे+काम] निकम्मा, निठल्ला।

क्रि. वि.—व्यर्थ, निरर्थक। उ.—कतहिं बकत बेकाम काज बिन होहि न ह्याँ तें हातो—३१३२।

बेकायदे—वि. [हिं. बे+फा. कायदा] नियमविरुद्ध।

बेकार—वि. [हिं. बे+कार्य] निठल्ला, निकम्मा।

क्रि. वि.—व्यर्थ, निरर्थक।

बेकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेकार] बेकार होने का भाव।

बेकसूर—वि. [हिं. बे+अ. कुसूर] निरपराध।

बेखटक—वि. [हिं. बे+खटका] निस्संकोच।

कि. वि.—बिना किसी संकोच के।

बेख़ता—वि. [हिं. बे+अ. खता] निरपराध।

बेख़बर—वि. [हिं. बे+फा. खबर] बेसुध।

बेख़ौफ—वि. [हिं. बे+फा. खौफ] निडर।

बेग—संज्ञा पुं. [सं. वेग] (१) प्रवाह, बहाव। (२) तेजी, जोर। (३) जल्दी, शीघ्रता।

बेगम—संज्ञा स्त्री. [तु.] रानी, राज्ञी।

बेगरज—वि. [हिं. बे+अ. गरज] बिना मतलब के।

बेगाना—वि. [फ़ा.] (१) पराया। (२) अनजान।

बेगार—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) बिना मजदूरी दिये जबर-दस्ती लिया गया काम (२) बेमन से किया गया काम।

मुहा०—बेगार टालना—जैसे-तैसे बेमन से काम पूरा कर डालना।

बेगि—क्रि. वि. [सं. वेग] चटपट, तुरन्त, शीघ्रता से, जल्दी से। उ.—(क) लीजै बेगि निबेरि तुरत हीं सूर पतित कौ टाँड़ौ—१-१४६। (ख) पठवहु बेगि गोहार लगावन सूरदास जिहि नाम—२७२६।

बेगुनाह—वि. [फ़ा.] निरपराध, निर्दोष।

बेचक—संज्ञा पुं. [हिं. बेचना] बेचनेवाला।

बेचन—संज्ञा पुं. [हिं. बेचना] बेचने के लिए। उ.—मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ—१०-३१३।

बेचनहारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेचना+हारी (प्रत्य.)] बेचनेवाली, वह स्त्री जो कोई वस्तु बेचती हो।

मुहा०—हाट की बेचनहारी—गली-गली बेचने-वाली, क्षुद्र प्रकृति की नारी जो हाट-बाट में (वस्तु) बेंचती फिरती है। उ.—ब्रज की ढीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि सकुचै न देत गारि झगरत हैं।

बेचना—क्रि. स. [सं. विक्रय] मूल्य लेकर देना।

बेचारा—वि. [फ़ा.] दीन, गरीब, असहाय।

बेचैन—वि. [फ़ा.] विकल, व्याकुल।

बेचैनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] विकलता, बेकली।

बेजबान—वि. [हिं. बे+फ़ा. जबान] (१) गूँगा। (२) दीन।

बेजा—वि. [फ़ा.] (१) बुरा। (२) अनुचित।

बेजान—वि. [फा.] (१) मुरदा। (२) जिसमें बहुत कम दम या शक्ति हो। (३) निर्बल। (४) मुरझाया हुआ।

बेजोड़—वि. [हिं. बे+जोड़] (१) जिसमें जोड़ न हो। (२) जिसके समान दूसरा न हो, अनुपम।

बेझर, बेझरा—संज्ञा पुं. [हिं. मझरना=मिलाना] गेहूँ, जौ, चना आदि मिले हुए अनाज।

बेझा—संज्ञा पुं. [सं. वेध] निशाना, लक्ष्य।

बेटकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेटी] पुत्री, बेटी।

बेटला, बेटवा, बेटा, बेटौना, बेट्टा—संज्ञा पुं. [सं बटु=बालक, हिं. बेटा] पुत्र, सुत, लड़का।

यौ०—बेटा-बेटी—संतान।

बेटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेटी] पुत्री, लड़की। उ.—बूझत स्याम, कौन तू गोरी। कहाँ रहति, काकी है बेटी—६७३।

बेठन—संज्ञा पुं. [सं. वेष्टन] लपेटने का कपड़ा या कागज।

बेठिकाने—वि. [हिं. बे+ठिकाना] (१) जो अनुचित स्थान पर हो। (२) ऊल-जलूल। (३) व्यर्थ, निरर्थक।

बेड़—संज्ञा पुं. [हिं. बाढ़] वृक्ष के चारों ओर लगायी गयी बाड़, मेंड़।

बेड़ना—क्रि. स. [हिं. बेड़] मेंड़ या थाला बाँधना।

बेड़ा—संज्ञा पुं. [सं. वेष्टन] (१) लकड़ी, लट्ठों को बाँधने से बना ढाँचा जिस पर बैठकर नदी पार की जा सके।

मुहा०—बेड़ा पार करना (लगाना)—संकट से पार करना। बेड़ा पार लगना (होना)—संकट से छुटकारा मिलना। बेड़ा डूबना—संकट से नाश हो जाना।

(२) नावों या जहाजों का समूह।

वि. [हिं. आड़ा का अनु.] (१) आड़ा। (२) कठिन।

बेड़िन, बेड़िनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] नट जाति की स्त्री।

बेड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. वलय] लोहे की जंजीर जो कैदियों को पहनायी जाती है, निगड़ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बेड़ा] छोटा बेड़ा ।

बेडौल—वि. [हिं. बे+डौल] भद्दे डीलडौल का ।

बेढंग, बेढंगा—वि. [हिं. बे+ढंग] (१) जिसका ढंग ठीक न हो । (२) जो ठीक ढंग से लगाया या रखा न गया हो । (३) भद्दे रूप-रंग का ।

बेढ—संज्ञा पुं. [देश.] नाश, बरबादी ।

बेढ़न—संज्ञा पुं. [सं. वेष्टन] बेठन, घेरा ।

बेढ़ना—क्रि. स. [हिं. बेढ़न] घेरना ।

बेढब—वि. [हिं. बे+ढब] (१) बेढंगा, भद्दा । (२) बेधड़क बात कहनेवाला ।

बेढ़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बेढ़ना] हाथ का एक गहना ।

बेणी—संज्ञा स्त्री. [सं. वेणी] चोटी, वेणी ।

बेणीफूल—संज्ञा पुं. [सं. वेणी+हिं. फूल] शीश फूल नामक सिर का गहना ।

बेतकल्लुफ—वि. [फ़ा. बे+अ. तकल्लुफ़] निस्संकोच कार्य या व्यवहार करनेवाला ।

बेतना—क्रि. अ. [सं. वेतना] प्रतीत होना ।

बेतरह—वि. [फ़ा. बे+अ. तरह] बहुत अधिक ।

बेतवा—संज्ञा स्त्री. [सं. वेत्रवती] बुन्देलखंड की एक नदी जो भूपाल के ताल से निकलकर जमुना में मिलती है ।

बेतहाशा—क्रि. वि. [फ़ा. बे+अ. तहाशा] (१) बहुत तेजी से । (२) बहुत घबड़ाकर ।

बेताब—वि. [फ़ा.] विकल, व्याकुल ।

बेताल— संज्ञा पुं. [सं. वेताल] बैताल ।

संज्ञा पुं. [सं. वैतालिक] भाट, बंदी ।

बेतुका— वि [हिं. बे+तुक] बेमेल, बेढंगा ।

बेद—संज्ञा पुं. [सं. वेद] भारतीय आर्यों के प्राचीन धार्मिक ग्रंथ जो चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ।

बेदन—संज्ञा स्त्री. [सं. वेदना] वेदना । उ.—ज्यों अचेत बालक की वेदन अपने ही तन सहिए ।

बेदम—वि. [फ़ा.] (१) जिसमें दम न हो । (२) जिसमें शक्ति न हो । (३) जो कामलायक न हो, जर्जर ।

बेदर्द—वि. [फ़ा.] निर्दयी, कठोर ।

बेदाना—वि. [फ़ा. बे+दाना] (१) जिसमें बीज न हो । (२) मूर्ख, नासमझ ।

बेदाम — वि. [हिं. बे+दाम] बिना दाम का ।

बेदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. वेदी] किसी शुभ या धार्मिक कार्य के लिए तैयार की हुई ऊँची भूमि,- मंडप । उ.—चलियै बिप्र जहाँ जग-बेदी, बहुत करी मनुहारी—८-१४ ।

बेध—संज्ञा पुं. [सं. वेध] (१) छेद । (२) छेदने का भाव ।

बेधड़क—क्रि. वि. [हिं. बे+धड़क] (१) बिना संकोच के । (२) बिना भय या आशंका के । (३) बिना रुकावट के । (३) बिना सोचे-समझे ।

वि. (१) निसंकोची । (२) निडर, निर्भय ।

बेधत—क्रि. स. [हिं. बेधना] छेदता है, सूराख करता है, भेदता है । उ.—पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतो करत निषंग—१-३३२ ।

बेधना—क्रि स. [सं. बेधन] (१) बेधना, छेदना । (२) शरीर में घाव करना ।

बेधर्म —वि. [सं. विधर्म] धर्म से गिरा हुआ ।

बेधीर—वि. [हिं. बे+धीर] अधीर, व्याकुल । उ.—अधार-निधि बेधीर करिकै करत आनन हास ।

बेधे—क्रि. स. [हिं. बेधना] शरीर में घाव किये । उ.—बहुत सनाह समर सर बेधे, ज्यौं कंटक नल-नाल—१-२७८ ।

बेधै—क्रि. स. [हिं. बेधना] (१) छेद दे, भेद दे, बेध डाले । उ.—अचरज कहा पार्थ जौ बेधै, तीनि लोक इक बान—१-२६९ । (२) घाव करे, घायल करे ।

बेन—संज्ञा पुं. [सं. वेणु] (१) मुरली, बाँसुरी । (२) बाँस । (३) एक वृक्ष ।

बेना – संज्ञा पुं. [सं. वेणु] (१) छोटा पंखा । (२) खस, उशीर । (३) बाँस ।

संज्ञा पुं. [सं. वेणी] माथे का एक गहना ।

बेनागा —क्रि. वि. [फ़ा. बे+अ. नागा] बिना नागा किये ।

बेनि संज्ञा स्त्री. [हिं. वेनी] बालकों की चोटी । उ.—कजरी को पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै—१०-१७४ ।

बेनिमून—वि. [फ़ा. बे+नमूना] अनुपम, अद्वितीय ।

बेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वेणी] (१) गंगा, सरस्वती और यमुना का संगम, त्रिवेणी। उ.—सहस्र बार जौ बेनी परसौ चंद्रायन कीजै सौ बार। सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम के दूत खरे हैं द्वार—२-३। (२) स्त्रियों की चोटी। उ.—सुभ स्रवननि तरल तरौन बेनी सिथिल गुही—१०-२४।

बेनीपान - संज्ञा पुं. [हिं. बेनी+पान] बेंदी (गहना)।

बेनु—संज्ञा पुं. [सं. वेणु] (१) वंशी, मुरली, बाँसुरी। उ.—ताल, मृदंग, झाँझ, इंद्रिनि मिलि, बीना, बेनु बजायौ—१-२०५ (२) बाँस।

बेनौटी—संज्ञा पुं. [हिं. बिनौला] हलका पीला रंग।

बेनौरी - संज्ञा स्त्री. [हिं. बिनौला] ओला।

बेपरवाह—वि. [फ़ा.] (१) बेफिक्र। (२) मनमौजी।

बेपाइ—वि. [हिं. बे+सं. उपाय] बहुत घबराया हुआ।

बेपार—संज्ञा पुं. [सं. व्यापार] वाणिज्य, व्यापार।

बेपारी—संज्ञा पुं. [सं. व्यापारी] व्यवसायी।

बेपीर—वि. [हिं. बे+पीर] दूसरों का दुख-दर्द न समझने वाला, निर्दयी, निष्ठुर। उ.—सूरदास प्रभु दुखित जानिकै छाँड़ि गए बेपीर—२६८६।

बेफायदा—क्रि. वि. [फ़ा.] बिना किसी लाभ के।

बेफिक्र—वि. [फ़ा.] जिसे कुछ चिन्ता न हो।

बेबस—वि. [सं. विवश] (१) जिसका कुछ वश न चले। (२) पराधीन, परवश।

बेबाक—वि. [फ़ा.] चुकाया हुआ (ऋण आदि)।

बेभाव—क्रि. वि.[हिं. बे+भाव]बिना हिसाब या गिनती के।

बेमन—क्रि. वि. [हिं. बे+मन] बिना ध्यान लगाये।

बेमुरव्वत—वि. [फ़ा.] जिसमें शील या संकोच न हो।

बेर—संज्ञा स्त्री. [हिं. बार] (१) बार, दफा। उ.—बेर सूर की निठुर भए प्रभु, मेरौ कछु न सरचौ—१-१३३। (२) विलंब, देर। उ.—(क) प्रभु, हौं बड़ी बेर को ठाढ़ौ। और पतित तुम जैसे तारे, तिनहीं मैं लिखि काढ़ौ—१-१३७। (ख) मेरे प्रान-जिवन-धन माधौ, बाँधे बेर भई—३८१। (३) घड़ी, समय। उ.—मरती बेर सम्हारन लागे जो कछु गाड़ि धरी—१-७१।

संज्ञा पुं. [सं. बदरी] एक छोटा खटमिट्ठा फल।

बेरस—वि. [हिं. बे+रस] (१) जिसमें रस न हो। (२) जिसमें स्वाद न हो। (३) जिसमें आनन्द न हो।

बेरहम—वि. [फ़ा. बे+रहम] निर्दय, निठुर।

बेरा—संज्ञा पुं. [हिं. बेला] (१) समय, अवसर। उ.—सिव-आहुति-बेरा जब आई। विप्रनि दच्छहिं पूछ्यौ जाई—४-५। (२) सबेरा, प्रभात।

संज्ञा पुं. [हिं. बेड़ा] (१) लकड़ी-लट्ठों का बेड़ा। (२) नाव या जहाजों का समूह।

बेरिआ, बेरियाँ, बेरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेला, बिरियाँ] समय, बेला, वक्त। उ.—(क) आवहु कान्ह, साँझ की बेरिया—१०-२४६। (ख) ग्वाल-मंडली मैं बैठे मोहन बट की छाँह, दुपहर बेरिया सखनि संग लीने—४६७।

बेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेड़ी] लोहे की जंजीर जो प्रायः कैदियों को पहनाई जाती है, बेड़ी, निगड़। उ.—(क) पांडव सब पुरुषारथ छाँड़चौ, बाँधे कपट-बचन की बेरी—१-२५१। (ख) पति अति रोष माँहि मन ही मन, भीषम दई बचन बँधि बेरी—१-२५२। (ग) प्रीतम भयौ पाइ की बेरी—८०७।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बेर (फल)] बेर, फल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बार] (१) बार, दफा। (२) देर।

बेरो—संज्ञा पुं. [हिं. बेड़ा] बेड़ा। उ.—सूर मधुप उठि चले मधुपुरी बोरि जोग को बेरो—३४३१।

बेरोक—क्रि. वि. [हिं. बे+रोक] बेखटके।

बेरौ—संज्ञा पुं. [हिं. बेड़ा] लकड़ी-लट्ठों का बना बेड़ा। उ.—सेमर-ढाकहिं काटिकै बाँधौं तुम बेरौ—९-४२।

बेलंद—वि. [फ़ा. बलंद] ऊँचा, उच्च।

बेल - संज्ञा पुं. [सं. बिल्व] एक वृक्ष और उसका फल।

संज्ञा स्त्री. [सं. वल्ली] (१) लता, बल्ली।

मुहा० - बेल मँढ़े चढ़ना—किसी काम में अभीष्ट क्रम से पूरी सफलता मिलना।

(२) काम-काज के अवसर पर 'परजा' को दिया जाने-वाला धन या नेग। (३) संतान, वंश।

मुहा०—बेल बढ़ना—वंश-वृद्धि होना। (४) बेल-बूटेदार रेशमी या मखमली फीता। (५) एक तरह की लंबी कुदाली।

बेलदार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मजदूर, कारीगर।
बेलन, बलना—संज्ञा पुं. [सं. वलन] (१) लकड़ी, पत्थर आदि का कुछ लम्बा और गोल खंड। (२) लकड़ी का लंबा गोल खंड जो रोटी-पूरी बेलने के काम आता है।
बेलना—क्रि. स. [हिं. बेलन] (१) बेलन की सहायता से चकले पर रोटी-पूरी आदि को तैयार करना।
मुहा०—पापड़ बेलना—मुसीबतें और कठिनाइयाँ सहकर काम करना या समय काटना। (२) नष्ट करना। (२) पानी के छींटें उड़ाना।
बेलपत्र—संज्ञा पुं. [सं. विल्वपत्र] बेल वृक्ष की पत्ती।
बेलसना—क्रि. अ. [सं. विलास+ना] भोग करना।
बेलहरा—संज्ञा पुं. [हिं. बेल+हरा] पान की डिबिया।
बेला—संज्ञा पुं. [सं. विचकिल, प्रा. बिअइल्ल] (१) एक छोटा पौधा जिसमें बहुत सुगंधित सफेद फूल लगते हैं। (२) बेले के फूल की तरह का एक गहना।
संज्ञा पुं. [सं. वेला] (१) लहर। (२) तेल नापने की चमड़े की कुल्हिया। (३) कटोरा। उ.—बेला भरि हलधर कौ दीन्हौ। पीवत पय बल अस्तुति कीन्हौ—३९६। (४) समुद्र का किनारा। उ.—बरनि न जाइ कहाँ लौ बरनौं प्रेम-जलधि बेला बल बोरे। (५) समय, वक्त।
बेलि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेल] लता, बेल।
संज्ञा पुं. [हिं. बेला] बेले का फूल।
बेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बेल] बेल, लता, बल्ली। उ.—(क) ते बेली कैसैं दहियत हैं, जे अपनैं रस भेइ—१-२००। (ख) फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम-बेली—६-६४।
बेलौस—वि. [हिं. बे+फ़ा. लौस] खरा, सच्चा।
बेवकूफ—वि. [फ़ा. बेवक़ूफ़] मूर्ख, नासमझ।
बेवकूफी—वि. [हिं. बेवकूफ] मूर्खता, नासमझी।
बेवक्त—क्रि. वि. [फ़ा. बेवक़्त] कुसमय में।
बेवफा—वि. [फ़ा. बे+अ. वफा] (१) कृतघ्न। (२) बेमुरव्वत।
बेवरा—संज्ञा पुं. [हिं. ब्योरा] विवरण।
बेवस्था—संज्ञा स्त्री. [सं. व्यवस्था] प्रबंध, व्यवस्था।
बेवहरना—क्रि. अ. [सं. व्यवहार] बरतना, व्यवहार करना।
बेवहरिया—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार+हिं. इया] (१) लेनदेन का व्यवहार करनेवाला, महाजन। (२) मुनीम।
बेवहार—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार] बरताव, व्यवहार।
बेवा—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] विधवा, राँड़।
बेवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिवाई] 'बिवाई' नामक रोग।
बेवान—संज्ञा पुं. [सं. विमान] (१) रथ, यान। (२) आकाश-यान। (३) वृद्ध मनुष्य की अरथी।
बेश—संज्ञा पुं. [सं. वेश] (१) वस्त्र, पोशाक। (२) वस्त्र आदि पहनने का ढंग।
बेशऊर—वि. [फ़ा. बे+अ. शऊर] नासमझ, फूहड़।
बेशक—क्रि. वि. [फ़ा. बे+अ. शक] बिना शक-संदेह के।
बेशकीमती—वि. [फ़ा. बेश+अ. कीमती] बहुमूल्य।
बेशरम—वि. [फ़ा. बेशर्म] निर्लज्ज, बेहया। उ.—(क) बाँह पकरि तू ल्याई काको अति बेशरम गँवारि। (ख) ऐसे जन बेशरम कहावत—३००६।
बेशरमी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. बेशर्म] निर्लज्जता, बेहयाई।
बेशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) अधिकता। (२) लाभ।
बेशुमार—वि. [फ़ा.] अनगिनती।
बेश्म—संज्ञा पुं. [सं.] घर, गृह।
बेष—संज्ञा पुं. [सं. वेश] (१) वस्त्राभूषणों से सजाना। (२) रूप, स्वरूप। उ.—तुरत मोहिं गोकुल पहुँचावहु, यह कहि कै सिसु बेष धरयौ—१०-८।
बेष्ठित—वि. [सं. वेष्टित] छाया हुआ, घिरा हुआ, लिपटा हुआ। उ.—मुक्त-माल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ। मनौ तारा-गननि बेष्ठित गगन निसि रह्यौ छाइ—१०-२३४।
बेसंदर—संज्ञा पुं. [सं. वैश्वनर] अग्नि।
बेसँभर—वि. [हिं. बे+सँभाल] बेहोश।
बेसन—संज्ञा पुं. [देश.] (१) चने की दाल का आटा। उ.—बेसन मिलै सरस मैदा सौं अति कोमल पूरी है भारी—१०-२४१। (२) बेसन के बने व्यञ्जन। उ.—बरी, बरा, बेसन, बहु भाँतिनि, ब्यंजन बिबिध अगनियाँ—१०-२३८।
बेसनी—वि. [हिं. बेसन] बेसन का बना हुआ।
बेसबब—क्रि. वि. [फ़ा.] बिना कारण के।
बेसबरा—वि. [फ़ा. बे+अ. सब्र] धैर्य न रखनेवाला।

बेसमझ—वि. [हिं. बे+समझ] मूर्ख ।
बेसर—संज्ञा स्त्री. [देश.] नाक में पहनने का एक आभूषण, नथ ।
बेसरम—वि. [फा. बेशर्म] निर्लज्ज, बेहया, बेशर्म । उ.—बाँह पकरि तू ल्याइ काकौं, अति बेसरम गँवारि । सूर स्याम मेरे आगे खेलत, जोबन-मद मतवारि—१०-३१४ ।
बेसरा—वि. [फा. बे+सरा] आश्रयहीन ।
संज्ञा पुं. [देश.] एक शिकारी पक्षी ।
बेसरि—संज्ञा स्त्री. [देश.] नाक में पहनने की छोटी नथ । उ.—कच खुबि आँधरि काजर कानी नकटी पहिरै बेसरि - ३०२६ ।
बेसवा - संज्ञा स्त्री. [सं. वेश्या] वारांगना, वेश्या ।
बेसा—संज्ञा स्त्री. [सं. वेश्या] वारांगना, वेश्या ।
संज्ञा पुं. [सं. भेष] वेश-भूषा ।
बेसारा—वि. [हिं. बैठाना, गुज. बैसाना] (१) बैठानेवाला । (२) जमाने या रखनेवाला ।
बेसाहना—क्रि. अ. [देश.] (१) खरीदना । (२) साथ या पीछे लगाना ।
बेसाहा—संज्ञा पुं. [हिं. बेसाहना] खरीदा हुआ सौदा ।
बेसी—क्रि. वि. [फा. बेश.] अधिक ।
बेसुध—वि. [हिं. बे+सुध] (१) बेहोश । बेखबर ।
बेसुर—वि. [हिं. बे+स्वर] बेमेल स्वरवाला ।
बेसुरा—वि. [हिं. बे+स्वर] (१) बेमेल स्वरवाला । (२) बेमौके, बेठिकाने ।
बेस्वाद—वि. [हिं. बे+स्वाद] (१) जिसमें कोई स्वाद न हो । (२) जिसका स्वाद बुरा हो ।
बेहंगम—वि. [सं. विहंगम] (१) बेढंगा । (२) बेढब ।
बेह—संज्ञा पुं. [सं. वेध] छेद, छिद्र ।
बेहतर—वि. [फ़ा.] तुलना में बढ़कर ।
अव्य.—स्वीकृति-सूचक शब्द, स्वीकार है ।
बेहद - वि. [फ़ा.] बहुत अधिक ।
बेहना—संज्ञा पुं. [देश.] रुई धुननेवाला ।
बेहया—वि. [फ़ा.] निर्लज्ज, बेशर्म ।
बेहयाई—संज्ञा स्त्री. [फा.] निर्लज्जता, बेशर्मी ।
बेहर—वि. [देश.] (१) अचर । (२) पृथक ।
बेहरना—क्रि. अ. [देश.] फटना, दरार पड़ना ।
बेहरा—वि. [देश.] अलग, पृथक् ।
बेहराना—क्रि. स. [सं. विदीर्ण] फाड़ना ।
क्रि. अ.—फटना ।
बेहान—क्रि. वि. [हिं. बिहान] आनेवाला दिन, कल ।
बेहाल, बेहाला—वि. [फा. बे+अ. हाल] व्याकुल, विकल, बेचैन । उ.—(क) काम-क्रोध-मद-लोभ-महाभय, अहनिसि नाथ, रहत बेहाल—१-१२७ । (ख) मीड़त हाथ सकल गोकुल जन बिरह बिकल बेहाल—२५३६ । (ग) मुरछि परी धरनी बेहाला—३४०८ ।
बेहिसाब—क्रि. वि. [फ़ा. बे+अ. हिसाब] बहुत अधिक ।
बेहून—क्रि. वि. [सं. विहीन] बिना, बगैर ।
बेहोश—वि. [फ़ा.] बेसुध, मूर्छित ।
बैंगन—संज्ञा पुं. [सं. वंगण ?] एक पौधा जिसके फल की तरकारी बनती है ।
बैंगनी, बैंजनी—वि. [हिं. बैंगन] ललाई लिये नीले रंग का ।
संज्ञा स्त्री.—बैंगन के टुकड़े को बेसन में लपेटकर बनायी गयी पकौड़ी ।
बैडा—वि. [हिं. बेड़ा] (१) तिरछा । (२) कठिन ।
बै—संज्ञा स्त्री, [सं. वय] आयु, अवस्था ।
संज्ञा स्त्री. [अ.] बेचना, बिक्री ।
बैकल—वि. [सं. विकल] पागल, उन्मत्त ।
बैकुंठ—संज्ञा पुं. [सं. वैकुंठ] विष्णुलोक । उ.—त्राहि-त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुंठ अवाज खरी—१-२४९ ।
बैखरी—संज्ञा स्त्री. [सं. वैखरी] (१) व्यक्त और स्पष्ट वाणी । (२) वाक् शक्ति । (३) वाग्देवी ।
बैखानस—वि. [सं. वैखानस] बानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाला यति ।
बैजंती, बैजयंती—संज्ञा स्त्री. [सं. वैजयंती] (१) एक पौधा । (१) विष्णु की माला ।
बैठक—संज्ञा स्त्री. [हिं. बैठना] (१) बैठने का स्थान, चौपाल, अथाई । (२) वह आसन या पीठ जिस पर बैठा जाय । उ.—(क) अति आदर करि बैठक दीन्हौं—१२८५ । (ख) हृदय माँह पिय घर करौं री नैनन

बैठक देउँ--१२१५। (ग) गई भवन भीतर लिए तहँ बैठक दीन्हों—२१८२। (३) मूर्ति, खम्भे आदि की चौकी। (४) बैठने का कार्य, जमाव। (५) अधिवेशन। (६) बैठने का ढंग। (७) संग-साथ, मेल। (८) दीवट,बैठकी। (९) एक तरह की कसरत।

बैठका—संज्ञा पुं. [हिं. बैठक] बैठने का स्थान, चौपाल।

बैठकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बैठक] (१) बैठने का आसन, पीठ, पीढ़ा। उ.—कनक-भूमि पर कर-पग-छाया यह उपमा इक राजति। करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजति—१०-११०। (२) उठने-बैठने की कसरत। (२) मूर्ति, खंभे आदि की चौकी। (४) बैठने का ढंग।

बैठत—क्रि. अ. [हिं. बैठना] बैठता है।

मुहा०—बैठत-उठत—उठते-बैठते, हर समय। उ.—बैठत-उठत सेज सोवत मैं कंस डरनि अकुलात—१०-१२।

बैठन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बैठना] (१) बैठने की क्रिया, भाव या ढंग। (२) आसन, पीढ़ा।

बैठना—क्रि. अ. [सं. वेशन, बिष्ठ., प्रा. बिट्ठ+ना] (१) आसीन या स्थित होना।

मुहा०—बैठना-उठना—(१) समय बिताना। (२) साथ या संगत में रहना। उठ-बैठना— (१) जाग जाना। (२) लेटा न रहना।

(२) किसी खाली जगह में ठीक तरह से जमना। (३) ठीक या अभ्यस्त होना। (४) घुली हुई चीज का तल में इकट्ठा हो जाना। (५) नीचे की ओर जाना, धँस जाना। (६) पचक जाना, धँसना। (७) चलता हुआ कार्य-व्यापार बिगड़ जाना। (८) तौल में निकलना। (९) खर्च होना। (१०) गुड़ का पिघल जाना। (११) पकाने पर चावल का गीला हो जाना। (१२) सवार होना। (१३) पौधे का जमना या लगना। (१४) पद पर स्थित होना। (१५) समाना, अँटना। (१६) किसी स्त्री का पत्नी के समान रहने लगना। (१७) पक्षी का अंडे सेना। (१८) काम न मिलना या रहना। (१९) काम से नागा करना। (२०) अस्त हो जाना। (२१) स्त्री का रजस्वला होना।

बैठनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बैठना] (१) बैठने की क्रिया, भाव या ढंग। उ.—धन्य यह मिलनि धन्य यह बैठनि धन्य अनुराग,नहीं रुचि थोरी—पृ. ३१० (४)। (ख) लोचन भए पखेरू माइ। ....मोर मुकुट टाटी मानौं यह बैठनि ललित त्रिभंग—२८९० (ना.)।

बैठवाँ—वि. [हिं. बैठना] दबा या बैठा हुआ।

बैठवाना—क्रि. स. [हिं. बैठाना] (१) बैठाने को प्रवृत्त करना। (१) पौधा लगवाना।

बैठाइ—क्रि. स. [हिं. बैठाना] बैठाकर, आसीन करके। उ.—दाऊ जू कहि, हँसि मिले, बाँह गही बैठाइ—४३१।

बैठाए—क्रि. स. [हिं. बैठाना] स्थित किया, आसीन किया। उ.—अरघासन दै प्रभु बैठाए—९-६७।

बैठाना—क्रि. स. [हिं. बैठना] (१) आसीन या स्थित करना। (२) आसीन होने को कहना। (३) पद पर प्रतिष्ठित करना। (४) किसी स्थान पर ठीक से जमना। (५) अभ्यस्त करना। (६) घुली हुई वस्तु को तल पर इकट्ठा करना। (७) डुबाना, धँसाना। (८) पचकाना, दबाना। (९) कार्य-व्यापार चलता न रहने देना। (१०) फेंक या चलाकर किसी स्थान पर पहुँचाना। (११) सवार कराना। (१२) जमीन में गाड़ना या जमाना। (१३) किसी स्त्री को पत्नी के रूप में रख लेना। (१४) बेकाम कर देना।

बैठार—क्रि. स. [हिं. बैठालना] बैठाकर। उ.—बहुरौ गोद माँहि बैठार। कह्यौ, पढ़ेकहविद्या-सार—३-२।

बैठारना—क्रि. स. [हिं. बैठालना] बैठाना।

बैठारिहौं—क्रि. स. [हिं. बैठालना] बैठालूँगा, आसीन करूँगा। उ.—तोहिं बैठारिहौं नाव मैं हाथ गहि, बहुरि हम ज्ञान तोहिं कहि सुनावैं—८-१६।

बैठारौ—क्रि. स. [हिं. बैठाना] बैठाया, स्थित किया, रखा। उ.—बाहिर बाँधि सुतहिं बैठारौ। मथति दही माखन तोहिं प्यारौ—३९१।

बैठालना—क्रि. स. [हिं. बैठाना] बैठाना।

बैठावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बैठाना] बैठाने की क्रिया, भाव या ढंग। उ.—पाइन परि सब बधू महरि बैठावन रे—१०-२५।

बैठाव—क्रि. स. [हिं· बैठाना] स्थित करावे। उ.—हाथहिं पर तोहिं लीन्हे खेलै नैंकु नहीं धरनी बैठावै—१०-१९१।

बैठिब – संज्ञा पुं. [हिं· बैठना] स्थित या आसीन होने का भाव, कार्य या ढंग। उ.—ध्रुव खेलत-खेलत तहँ आए। गोद बैठिबे कौं पुनि धाए—४-९।

बैठे—क्रि. अ· [हिं. बैठना] स्थित हैं, आसीन हैं। उ.—सुनि देवकी को हितू हमारे। असुर कंस अपबंस बिनासन, सिर ऊपर बैठे रखवारे—१०-१०।

बैठैं—क्रि· अ. [हिं. बैठना] स्थित हों, आसीन हों, बैठें। उ.—मेरैं संग आइ दोउ बैठैं, उन बिनु भोजन कौने काम—१०-२३५।

बैढ़ना, बैड़ना—क्रि. स. [हिं. बाड़ा] रोकना, बन्द करना।

बैत—संज्ञा स्त्री· [अ.] पद्य, श्लोक।

बैतरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. वैतरणी] यम के द्वार के पास की एक कल्पित पौराणिक नदी।

बैताल, बैतालिक—संज्ञा पुं· [सं. वैताल, वैतालिक] राजा का वह सेवक जो स्तुति-पाठ कर उन्हें जगाता था।

बैद—संज्ञा पुं. [सं. वैद्य] चिकित्सक, वैद्य।

बैदई, बैदक—संज्ञा स्त्री. [हिं· बैद] वैद्य का कार्य।

बैदूर्य—संज्ञा पुं. [सं. वैदूर्य्य] लहसुनिया रत्न।

बैदेही—संज्ञा स्त्री· [सं· वैदेही] जनक की पुत्री जानकी।

बैद्य—संज्ञा पुं· [सं. वैद्य] चिकित्सक। उ.—(अश्विनि-सुत) कह्यौ, हम जज्ञ-भाग नहिं पावत। बैद्य जानि हमकौं बहरावत—९-३।

बैद्यक—संज्ञा स्त्री. [हिं. वैद्य] वैद्य का कार्य-व्यापार।

बैन—संज्ञा पुं. [सं. वचन, प्रा· वयन] (१) वचन, बात। उ.—किलकि-किलकि बैन कहत मोहन मृदु रसना—१०-९०। (२) शोकसूचक वाक्य। (३) व्यंग्य वाक्य।

बैनतेय—संज्ञा पुं. [सं. वैनतेय] गरुड़।

बैना—संज्ञा पुं. [सं. वायन] भेंट रूप में भेजी गयी मिठाई।

क्रि. स. [सं. वयन] बोना।

बैपार—संज्ञा पुं. [सं· व्यापार] काम-धंधा।

बैपारी—संज्ञा पुं. [सं. व्यापारी] व्यवसायी, रोजगारी।

बैयर—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहुअर] स्त्री।

संज्ञा पुं. [हिं· बैर] बैर, द्वेष।

बैयाँ—क्रि. वि. [अनु· पैयाँ] घुटनों के बल।

बैया—संज्ञा. पुं. [सं. वाय] जुलाहे की कंघी।

बैर—संज्ञा पुं. [सं· वैर](१) विरोध, शत्रुता। (२) दुर्भाव, द्रोह, द्वेष।

मुहा०—बैर काढ़ना (निकालना)—बदला लेना। बैर काढ़त—बदला लेता है। उ.—यहि बिधि सब नवीन पायौ ब्रज काढ़त बैर दुरासी। बैर ठहना (ठानना)—दुर्भाव रखना। बैर ठयौ—दुर्भाव हो गया है। उ.—कालि नहीं यहि मारग ऐहौं, ऐसौ मोसौं बैर ठयौ। बैर डालना - विरोध पैदा करना। बैर पड़ना-शत्रु बनकर कष्ट पहुँचाना। बैर परै—शत्रु बन जाय, विरोध करे। उ.—(क) जाकौं मनमोहन अंग करै। ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं जौ जग बैर परै—१-३७। (ख) कुटुंब बैर मेरे परे बैरिनि बैरि सिसुपाल—४१८८ (ना.)। बैर बढ़ाना—दुर्भाव उत्पन्न करना। बैर बढ़ैहै—दुर्भाव उत्पन्न करेगी। उ.—सुनहु सूर रस-छकी राधिका बातन बैर बढ़ैहै—१२६३। बैर बढ़ैहौ—दुर्भाव उत्पन्न करोगी। उ.—आवत जात रहत याही पथ मोसौं बैर बढ़ैहौ। बैर बिसाहना (मोल लेना)—व्यर्थ ही शत्रु बना लेना। बैर मानना—दुर्भाव या द्वेष रखना। बैर लेना—बदला लेना। बैर लेहु—बदला लो। उ.—भ्राता-बैर लेहु तुम जाइ—७-२। लैहौं बैर—बदला लूँगा। उ.—लैहौं बैर पिता तेरे को जैहै कहाँ पराई।

संज्ञा पुं. [हिं. बेर (फल)] बेर का पेड़ या फल।

बैरख—संज्ञा पुं. [तु. बैरक] सेना का झंडा, ध्वजा, पताका। उ.—सोई करौ जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउँ। अपने नाम की बैरख बाँधौ, सुबस बसौं इहिं गाउँ—१-१८५।

बैराखी—संज्ञा स्त्री. [हिं· बाहु + राखी] भुजा का एक गहना।

बैराग—संज्ञा पुं. [सं. वैराग्य] विरक्ति। उ.—मानौ बैराग पाइ, सकल सोक-गृह बिहाइ, प्रेम-मत्त फिरत भृत्य, गुनत गुन तिहारे—१०-२०५।

बैरागी—संज्ञा पुं. [सं. विरागी] वैष्णव साधुओं का एक वर्ग।

वि.—विरक्त ।

बैराग्य—संज्ञा पुं. [सं. बैराग्य] विरक्ति ।

बराना—क्रि. आ. [हिं. वायु] वायु प्रकोप से बिगड़ना ।

बैरी—वि. [सं. बैरी] (१) शत्रु, द्वेषी । उ.—जो भक्तनि सौं बैर करत है, सो बैरी निज मेरौ—१-२७२ । (२) विरोधी ।

संज्ञा पुं.—व्यक्ति जो शत्रुता या द्वेष रखता हो । उ.—रंगभूमि मैं कंस पछारौं धीसि बहाऊँ बैरी—१०-१७६ ।

बैरोचन—संज्ञा पुं. [सं. बैरोचन] विरोचन का पुत्र, राजा बलि । उ.—जज्ञ करत बैरोचन कौ सुत, बेद-बिहित विधि-कर्मा—१-१०४ ।

बैल—संज्ञा पुं. [सं.बलद] (१) वृषभ, बलीवर्द । उ.—प्रभु जू, यौं कीन्हीं हम खेती ।....। काम-क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज-तामस सब कीन्हौ । अति कुबुद्धि मन हाँकनहारे, माया जूआ दीन्हौ—१-१८५ । (२) मूर्ख या बुद्धिहीन व्यक्ति ।

बैवस्वत—संज्ञा पुं. [सं. वैवस्वत] सूर्य के एक पुत्र का नाम । उ.—सूरज कैं बैवस्वत भयौ । सुत-हित सो बसिष्ठ पै गयौ—९-२ ।

बैषानस—संज्ञा पुं. [सं. वैखानस] तपस्वी ।

बैसंदर—संज्ञा पुं. [सं. वैश्वानर] अग्नि ।

बैस—संज्ञा पुं. [सं. वयस्] (१) अवस्था, आयु, उम्र। उ.—(क) हम तुम सब बैस एक, को कारौं को अगरौ—१०-३३६ । (ख) जिन कीन्हे मोहन सुबस बैस ही थोरी—४२८६ (ना.) ।

मुहा०—बैस चढ़ै—युवावस्था को प्राप्त हो, जवानी आए । (२) अवस्था में वृद्धि हो । उ.—कजरी की पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै । जैसैं देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल-बैस चढ़ै—१०-१७४ ।

संज्ञा पुं. [सं. वैश्य] वैश्य जाति ।

संज्ञा पुं.—क्षत्रियों की एक शाखा ।

बैसना—क्रि. अ. [हिं. बैठना] बैठना ।

बैसवाड़ा, बैसवारा—संज्ञा पुं. [सं. बैस] अवध का पश्चिमी प्रान्त जहाँ बैस क्षत्रियों की बस्ती थी ।

बैसाख—संज्ञा पुं. [सं. बैशाख] चैत के बाद का महीना ।

बैसाखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बैसाख] बैसाख की पूर्णिमा ।

संज्ञा स्त्री. [सं. बैशाख] लँगड़े के सहारे की लाठी ।

बैसारना—क्रि. स. [हिं. बैसना] बैठाना ।

बैसी—क्रि. अ. [हिं. बैसना] बैठी (है) ।

मुहा०—ठाली बैसी है—कोई काम-धाम नहीं है, निठल्ली है । उ.—ऐसी को ठाली बैसी है तो सौं मूड़ लड़ावै—३२८७ ।

बैसैं—क्रि. स. [हिं. बैसना] बैठे, बैठे रहकर । उ.—जनम सिरानौ ऐसैं । कै घर-घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसैं—१-२९३ ।

बैहर—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु] हवा, वायु ।

बैहाल—संज्ञा पुं. [हिं. बिहाल] बुरा हाल ।

बैहौं—क्रि. स. [हिं. बोना] बोऊँगा । उ.—दैहौं छाँड़ि राखिहौं यह व्रत हरि हितु बीजु बहुरि को बैहौं—२५२४ ।

बोआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोना] बोने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

बोइए, बोइयै—क्रि. स. [हिं. बोना] बीज जमाइए, उगाइये, पैदा कीजिए । उ.—(क) जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे—१-६१ । (ख) जैसी बीज बोइए तैसौ लुनिए लोग कहत सब बावरी—३३३१ ।

बोक, बोकरा—संज्ञा पुं. [हिं. बकरा] बकरा ।

बोकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बकरी] बकरी ।

बोकला—संज्ञा पुं.[हिं. बकला](१) छिलका । (२) छाल ।

बोज—संज्ञा पुं. [देश.] घोड़ों का एक भेद ।

बोझ—संज्ञा पुं. [देश०] (१) भार, बोझा । उ.—(क) सूरदास भगवंत-भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत मारी ?—१-३४ । (ख) जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोष उतारी—३३१६ । (२) भारीपन । (३) कठिन काम । (४) खटका, चिंता । (५) कार्य-संपादन का श्रम या कष्ट । (६) वस्तु या व्यक्ति के संबन्ध-निर्वाह का भार । (७) गट्ठा । (८) भार जो एक बार में लादा जाय ।

मुहा०—बोझ उठना—कार्य-भार लिया जा सकना ।

बोझ उठाना—कार्य-भार का दायित्व लेना। बोझ उतरना—कठिन कार्य या दायित्व से छुटकारा पाना। बोझ उतारना—कठिन कार्य या दायित्व से छुटकारा दिलाना। (२) ऐसा कार्य करना या स्वयं दायित्व ले लेना, जिससे दूसरे की चिंता दूर हो जाय। (३) बेमन से काम करके बेगार-सी टालना।

बोझना—क्रि. स. [हिं. बोझ] भार लादना।

बोझल—वि. [हिं. बोझ] भारी, गुरु।

बोझा—संज्ञा पुं. [हिं. बोझ] बोझ, भार।

बोझिल—वि. [हिं. बोझ] भारी, गुरु।

बोटा—संज्ञा पुं. [सं. वोण्ट] लट्ठा, कुंदा।

बोटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोटा] मांस का छोटा टुकड़ा।

बोड़—संज्ञा स्त्री. [देश.] सिर का एक आभूषण।

बोड़री—संज्ञा स्त्री. [हिं. बौंड़ी] तोंदी, नाभि।

बोड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] बड़ा साँप, अजगर।

संज्ञा पुं. [देश.] लोबिए की फली।

बोड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] दमड़ी, कौड़ी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. बौंड़ी] तोंदी, नाभि।

बोत—संज्ञा पुं. [देश.] घोड़ों की एक जाति।

बोदा—वि. [सं. अबोध] (१) मूर्ख। (२) सुस्त, मट्ठर। (३) फुसफुसा।

बोदापन—संज्ञा पुं. [हिं. बोदा+पन] (१) मूर्खता, नासमझी। (२) फुसफुसापन, फुसफुसा होने का भाव।

बोध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञान, जानकारी। (२) धीरज, संतोष।

बोधक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जताने-बतानेवाला। (२) श्रृंगार रस का एक हाव जिसमें संकेत या क्रिया द्वारा मन का भाव जताया जाता है।

बोधगम्य—वि. [सं.] समझ में आने योग्य।

बोधत—क्रि. स. [हिं. समझाना] समझाते हैं। उ.—पुनि पुनि बोधत कृष्न लिखौ नहिं मेटै कोई—२६२५।

बोधति—क्रि. स. [हिं. बोधना] (१) समझाती-बुझाती है। उ.— (क) एकनि माथैं दूब-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर—१०-२५। (ख) सुनहु सूर जसुमति सुत बोधति बिधि के चरित सबै हैं न्यारे—६०८। (२) ज्ञान सिखाती है।

बोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समझाना, जताना। (२) उपदेश। (३) मंत्र जगाना।

बोधना—क्रि. स. [सं. बोधन] (१) समझाना-बुझाना। (२) ज्ञान सिखाना, जताना।

बोधि—क्रि. स. [हिं. बोधना] समझा-बुझाकर। उ.—सूर प्रभु कियौ बिस्राम सब निसि तहाँ बोधि अक्रूर निज घर पठाए—२५७०।

संज्ञा पुं. [सं.] पीपल का पेड़।

बोधितरु, बोधिद्रुम, बोधिवृक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] गया नगर का पीपल का वह पेड़ जिसके नीचे गौतम बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया था।

बोधिसत्व—संज्ञा पुं. [सं.] जो बुद्धत्व प्राप्त करने का अधिकारी हो, परंतु उसे प्राप्त न कर पाया हो।

बोधी—क्रि. स. [हिं. बोधना] समझाया। उ.—सूर यह कहि जननि बोधी, देख्यौ तुमहीं आइ—५८०।

बोना—क्रि. स. [सं. वपन] (१) उगाने के लिए बीज को जमीन में छितराना या डालना। (२) इधर-उधर डालना या छितराना।

बोबा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) स्तन, थन। (२) साज-सामान। (३) गठरी।

बोय—संज्ञा स्त्री. [फा. बू] (१) सुगंध। (२) दुर्गंध।

बोयौ—क्रि. स. [हिं. बोना] (१) उगाया, अंकुरित किया। (२) फेंका, डाला, बहाया। उ.—कंस, केसि, चानूर, महाबल करि निरजीव जमुनजल बोयौ—१-५४।

वि.—बोया या उगाया हुआ। उ.—अपनौ बोयौ आप लोनिए तुम आपहिं निरुवारौ ३२९४।

बोर—संज्ञा पुं. [हिं. बोरना] डुबाव।

संज्ञा पुं. [सं. वर्त्तुल] (१) कँगूरेदार घुँघरू जो आभूषणों में गूँथा जाता है। (२) सिर का एक गहना।

संज्ञा पुं. [देश.] गड्ढा, खड्ड, बिल।

बोरत—क्रि. स. [हिं. बोरना] डुबाता है, बोरता है, निमग्न करता है। उ.—यह भव-जल कलिमलहिं गहे है, बोरत सहस प्रकारौ—१-२०९।

बोरति—क्रि. स. [हिं. बोरना] बोरती, डुबाती या निमग्न

करती है। उ.—गोलक नाउ निमेष न लागत सो पलकनि बर बोरति—३४५४।

बोरन—क्रि. स. [हिं. बोरना] **बोरने या डुबाने के लिए।** उ.—गर्व सहित आयो ब्रज बोरन, यह कहि मेरी भक्ति घटाई—९९६।

बोरना—क्रि. स. [हिं. बूड़ना] (१) डुबाना। (२) **पानी में डालकर तर करना।** (३) **बदनाम करना।** (४) **मिलाना।** (५) **रंग के घोल में डालकर रँगना।**

बोरा—संज्ञा पुं. [सं. पुर] **टाट का बड़ा थैला।**

संज्ञा पुं. [हिं. बोर] **छोटा घुँघरू।**

क्रि. स. [हिं. बोरना] **डुबोया।**

बोरि—क्रि. स. [हिं. बोरना] (१) **पानी में डुबोकर।** उ.—सूर मधुप उठि चले मधुपुरी बोरि जोग को बेरो—३४३१। (२) **पानी की बाढ़ में बहाकर।** उ.—बल समेत निसि बासर बरसहु गोकुल बोरि पताल पठावहु—९४७। (३) **सुगंधित जल या रंग में डुबोकर।** उ.—रचि स्रक कुसुम सुगंध सेज सजि बसन कुमकुमा बोरि—२८१२। (४) **लपेटकर, मिलाकर, सानकर।** उ.—नील पुट बिच मनौ मोती धरे बंदन बोरि—१०-२२५।

बोरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोरा] **टाट का छोटा थैला।**

संज्ञा पुं. [फा.] **चटाई, बिस्तर।**

मुहा०—बोरिया-बँधना उठाना (समेटना)—**चलने की तैयारी करना।**

बोरी—क्रि. स. [हिं. बोरना] **डुबो दी, निमग्न कर दी।** उ.—धन-जोबन अभिमान अल्प जल, काहे कूर आपनी बोरी—१-३०३।

वि.—**डुबाकर भिगोई हुई, अच्छी तरह तर की हुई, रस से भरी हुई।** उ.—सुठि सरस जलेबी बोरी। जिहिं जेंवत रुचि नहिं थोरी—१०-१८३।

बोरे—वि. [हिं. बोरना] **डुबाये हुए, तर किये हुए।** उ.—घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड़ सरस रस बोरे—१०-१८३।

क्रि. स. बहु.—**डुबाये, निमग्न किये।**

बोरैं—क्रि. स. [हिं. बोरना] **डुबा देने से, बोरने से, निमज्जित करने से।** उ.—प्रेम के सिंधु को मर्म जान्यौ नहीं, सूर कहि कहा भयौ देह बोरैं—१-२२२।

बोरौं—क्रि. स. [हिं. बोरना] **पानी की बाढ़ में डुबो दूँ, या डुबोकर बहा दूँ।** उ.—ब्रज बोरौं प्रलय के पानी—१०२४।

बोरयौ—क्रि. स. [हिं. बोरना] (१) **डुबाया, निमग्न किया।** उ.—प्रीति नदी महँ पाँव न बोरयौ दृष्टि न रूप परागी—३३३५। (२) **कलंकित किया, बदनाम किया।** उ.—कैसैं नाथहिं मुख दिखराऊँ, जौ बिनु देखे जाउँ। बानर बीर हँसैंगे मोकौं, तैं बोरयौ पितु-नाउँ—९-७५।

बोल—संज्ञा पुं. [हिं. बोलना] (१) **वचन, वाणी, बोली, शब्द।** उ.—(क) (सुरपति) काग-रूप करि रिषि-गृह आयौ। अर्धनिसा तिहिं बोल सुनायौ—६-८। (ख) बार-बार बकि स्याम सौं कछु बोल बुलावत—१०-१२२। (ग) स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल—६३०। (२) **ताना, व्यंग्य, चुभती हुई बात।** उ.—ब्रज बसि करके बोल सहौं—२७७४।

मुहा०—बोल मारना—**ताना देना।**

(३) **सिखावन, सीख।** उ.—लोचन मानत नाहिन बोल—पृ० ३३५ (४५)। (४) **बात, कथन, निश्चय, प्रतिज्ञा।** उ.—अब न कीनौ चूक करिहौं यह हमारे बोल—३४७५।

मुहा०—बोल रखना—**बात मानकर काम करना, बात या कहा न टालना।** बोल रखायौ—**बात नहीं टाली, कहा मान लिया।** उ.—मथन नहीं मोहिं आवई, तुम सौंह दिवायौ। तिहिं कारन मैं आइ कै तुव बोल रखायौ—७१६। बोलबाला रहना—**बात या कहे का आदर होना।** बोलबाला होना—(१) **बात या कहे का आदर होना।** (२) **प्रताप या भाग्य बढ़ा-चढ़ा होना।** (३) **प्रसिद्ध होना।** बोल रहना—**मान-मर्यादा होना।**

(५) **बाजे का बँधा हुआ शब्द।** (६) **गीत का अंतरा।** (७) **संख्या।**

संज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह का गोंद।**

क्रि. अ.—**शब्दोच्चारण करके, कहकर।**

मुहा०—बोल जाना—(१) **मर जाना।** (२) **बाकी न बचना।** (३) **घिस या फट जाना।** (४) **दुखी**

या हैरान होकर हार मान लेना। (५) सिटपिटा जाना। (६) दिवाला निकल जाना।

क्रि. स.—कोई कथन, बात या वचन कहकर।

मुहा०—बोल उठना—एकाएक कुछ कहने लगना।

बोलक—संज्ञा पुं. [हिं. बोल+एक] एक बात, शिक्षा की एक-दो बातें। उ.—बोलक इनहू को सुनि लीजै—२९७२।

बोलचाल—संज्ञा स्त्री. [हिं.बोल+चाल](१) बात-चीत। (२) मेल-मिलाप। (३)सामान्य व्यवहार(की भाषा)।

बोलत—क्रि. अ. [हिं. बोलना] (१) बोलते हैं, मुख से शब्द निकालते हैं। (२) चहचहाते हैं। उ.—तमचुर खग-रोर सुनहु, बोलत बनराई—१०-२०२।

क्रि. स.—बुलाते हैं, पुकारते हैं। उ.—ग्वाल सखा ऊँचे चढ़ि बोलत बार बार लै नाम।

बोलता—संज्ञा पुं. [हिं. बोलना] (१) आत्मा। (२) प्राण।

वि. (१) जीवित। (२) वाक्पटु।

बोलती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोलना] (१) बोलने की शक्ति, वाणी।

मुहा०—बोलती मारी जाना—भय, संकोच आदि के कारण मुँह से शब्द न निकलना।

बोलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोलना] (१) बोलने की क्रिया या भाव। (२)वचन, बात, कथन। उ.—कुंज किलोल किये बन ही बन सुधि बिसरी उन बोलन की—३२९९।

बोलना—क्रि. अ. [सं. ब्रू, 'ब्रूयते', बूर्यते; प्रा. बुल्लइ] (१) मुँह से शब्द निकालना।

यौ.—बोलना-चालना—बातचीत करना। हँसना-बोलना—प्रेमपूर्वक बातें करके प्रसन्न होना।

(२) किसी चीज के ठोंके-पीटे जाने पर आवाज निकलना या ध्वनि होना।

क्रि. स.—(१) कथन, बात या वचन कहना। (२) ठहराना, बद लेना। (३) उत्तर देना। (४) रोक-टोक करना। (५) छेड़छाड़ करना, सताना। (६) बुलाना, पुकारना। (७) बुलाने का संदेसा भेजना।

बोलनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोलना] (१) बोलने की क्रिया या भाव। उ.—मन मोहनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन हरनि सु हँसि मुसुकनियाँ—१०-१०६। (ख) कुंडल लोल, कपोलनि की छबि, मधुरी बोलनि बरनि न जाई—६१६। (२) बात, वचन। उ.—तुम्हरी बोलनि कौन पतीजै ज्यौं भुस पर की भीति—३१६३।

बोलनो—संज्ञा पुं. [हिं. बोलना] बोलने या बात करने की क्रिया या भाव।

यौ.—हँसि-बोलनो—सस्नेह हँसने-बोलने में। उ.—रमत राम स्याम सँग ब्रज बालक सुख पावत हँसि बोलनो—२२८०।

बोलवाना—क्रि. स. [हिं. बोलना] कहलाना, बुलवाना।

बोलसर, बोलसिरी—संज्ञा पुं. [हिं. मौलसिरी] मौलसिरी।

बोलाना—क्रि. स.[हिं.बुलाना] बोलने को प्रेरित करना।

बोलायो—क्रि. स. [हिं. बुलाना] बुलाया, आने को कहा, आने का निमंत्रण या संदेश भेजा। उ.—सब कुल सहित नंद सूरज प्रभु हित करि तहाँ बुलायो—१० उ०-१०८।

बोलावन—संज्ञा. पुं. [हिं. बुलाना] बुलाने के लिए। उ.—गए ग्वाल तब नंद बोलावन—१००१।

बोलावा—संज्ञा पुं. [हिं. बुलाना] न्योता, निमन्त्रण।

बोलि—क्रि. [हिं. बोलना] (१) बोलकर, कहकर। (२) बुलाकर। उ.—पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी—१-२१। (३) आवाज देकर, पुकार कर। उ.—आइ दरजी गयौ, बोलि ताकौ लयौ—२४८४।

प्र०—बोलि आयौ—बोल निकला, मुँह से शब्द निकल सके। उ.—बीतैं जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस तव आइ सरयौ—१०.५९।

बोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोलना] (१) मुँह से निकली हुई आवाज, वाणी।

मुहा०—मीठी बोली—कानों को मधुर या प्रिय लगनेवाली वाणी।

(२) वचन,बात,कथन। (३)नीलाम में दामकहना।

(४)बोलचाल का भाषा-रूप। (५) हँसी-ठठोली।

मुहा०—बोली छोड़ना (बोलना या मारना)—ताना देना।

क्रि. स.— बुलाया। उ.—तब ब्रज बसत बेनु (ख) ध्वनि करि बन बोली अधरातनि—३०२५।

बोले—क्रि. स. [हिं. बोलना] बुलाये। उ.—औरै दसा भई छिन भीतर बोले गुनी नगर तैं—७४४।

बोलैं—क्रि. अ. [हिं. बोलना] (१) बोलते हैं, उच्चारण करते हैं। (२) नाम ले लेकर आशीर्वाद देते हैं, बढ़ती मनाते हैं। उ.—बंदीजन-मागध-सूत, आँगन-भौन भरे। ते बोलैं लै लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरै—१०-२४।

बोलौं—क्रि. स. [हिं. बोलना] कहूँ, बताऊँ, उत्तर दूँ। उ.—जौ तुम कहौ कौन खल तारयौ, तौ हौं बोलौं साखी—१-१२२।

बोलौ—क्रि. स. [हिं. बोलना] कहो, उच्चारण करो। उ.—तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं, बचन एक जौ बोलौ—१-१३६।

बोल्यौ—क्रि. अ. [हिं. बोलना] बोला, कहा। उ.—भोजन करत सखा इक बोल्यौ, बछरू कतहूँ दूरि गये—४३८।

बोवत—क्रि. स. [हिं. बोना] बोता है, उगाता है, बीज जमाता है। उ.—बोवत बबुर दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे—१-६१।

बोवना—क्रि. स. [हिं. बोना] उगाने के लिए बीज जमीन में डालना।

बोवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोवना] बोने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

बोवाना—क्रि. स. [हिं. बोना] बोने का काम करना।

बोह—संज्ञा स्त्री. [हिं. बोर] डुबकी, गोता।

मुहा०—बोह लेना—डुबकी या गोता मारना।

बोहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. बोधन=जगाना] (१) किसी चीज की पहली बिक्री। (२) दिन की पहली बिक्री। उ.—बिन बोहनी तनक नहिं दैहौं ऐसेहि छीन लेहु बर सगरौ।

बोहारना—क्रि. स. [हिं. बुहारना] झाड़ू देना।

बोहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बुहारी] झाड़ू।

बोहित—संज्ञा पुं. [सं. बोहित्थ] नाव, जहाज। उ.—भव-सागर, बोहित बपु मेरौ, लोभ-पवन दिसि चारौ—१-२१३।

बौंड़—संज्ञा स्त्री. [सं. वृंत] (१) डोरी जैसी पतली टहनी। (२) लता, बेल।

बौंड़ना—क्रि. अ. [हिं. बौंड़] पतली टहनी या लता की तरह बढ़कर फैलना।

बौंडर—संज्ञा पुं. [हिं. बवंडर] चक्कर खाता हुआ चलने वाला वायु का झोंका, बगूला, बवंडर। उ.—बौंडर महा भयावन आयौ, गोकुल सबै प्रलय कर मानौ। महा दुष्ट लै उड़यौ गुपालहिं, चल्यौ अकास कृष्न यह जानी—१०-७८।

बौंड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बौंड़] (१) कच्चा फल, ढेंड़ी। (२) फली, छीमी।

बौंरना—क्रि. अ. [हिं. बौर] लता का फूलना।

बौआना—क्रि. अ. [हिं. बाउ=वायु+आना] (१) सोते-सोते बकना। (२) बाई या पागलपन में बर्राना।

बौखल—वि. [हिं. बाउ=वायु+स्खलन] पागल, सनकी।

बौखलाना—क्रि. अ. [हिं. बौखल] पागल-सा हो जाना, बहकने लगना।

बौछाड़, बौछार—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु + क्षरण] (१) हवा का झोंका। (२) (ईंट, पत्थर आदि का) बूँदों की तरह बरसना। (३) (रुपया-पैसा) बहुत अधिक देना या लुटाना। (४) (गाली, कोसना आदि) का बहुत अधिक कहा जाना। (५) ताना, व्यंग्य।

बौड़हा—वि. [हिं. बाउर+हा] बावला, पागल।

बौद्ध—वि. [सं.] (१) गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित। (२) गौतमबुद्ध का अनुयायी।

संज्ञा पुं.—गौतम बुद्ध का अनुयायी या उनके धर्म में आस्था रखनेवाला व्यक्ति।

बौद्ध धर्म—संज्ञा पुं. [सं.] गौतमबुद्ध का प्रवर्तित प्रसिद्ध धर्म।

बौध—संज्ञा पुं. [सं. बौद्ध] (१) गौतमबुद्ध। (२) बुद्ध का अनुयायी।

बौधा—क्रि. वि. [सं. बहुधा] अनेक प्रकार से।
बौना—संज्ञा पुं. [सं. वामन] छोटे शरीर का, ठिगना। उ.—सूर प्रगट गिरि धरचौ बाम कर, हम जानति बलि बौना—६०१।
बौर—संज्ञा पुं. [सं. मुकुल, प्रा. मुउड़] आम की मंजरी।
बौरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बौरा] (१) पागलपन, सनक। (२) पागल स्त्री।
बौरना—क्रि. अ. [हिं. बौर+आना] आम के पेड़ में मंजरी या बौर आना।
बौरहा—वि. [हिं. वावला] (१) पागल, बावला। (२) बहुत बकनेवाला, बकवादी।
बौरा—वि. [हिं. बाउर] (१) पागल। (२) मूर्ख।
बौराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. बौरा] पागलपन।
बौराऐं—क्रि. स. [हिं. बौराना (ना. प्रत्य.)] मूर्ख बनाने, बहलाने या मति फेरने पर। उ.—तुम्हरौ प्रेम प्रगट मैं जान्यौ, बौराऐं न बहौंगौ—१०-१९४।
बौराना—क्रि. अ. [हिं. बौरा] (१) पागल हो जाना। (२) उन्मत्त या विवेकरहित हो जाना।
क्रि. स.—मूर्ख बनाना, मति फेरना।
बौरानी—क्रि. अ. [हिं. बौराना]पागल हो गयी है, बौरा गयी है। उ.—देखौ री जसुमति बौरानी। घर-घर हाथ दिवावति डोलति, गोद लिए गोपाल बिनानी—१०-२५८।
वि. स्त्री.—पगली, जो पागल हो गयी हो।
बौराने—वि. पु. [हिं. बौराना] पागल (जैसे)। उ.—हमअपने ब्रज ऐसेहिंरहिहैबिरहबाइ बौराने—३२३९।
बौरान्यौ - क्रि. अ. [हिं. बौराना] (१) पागल हो गया, बौराया, सनकी हुआ। (२) उन्मत्त हुआ, विवेक या बुद्धिरहित हुआ। उ.—बौरे मन्द रहन अटल करि जान्यौ। धन-दारा-सुत-बंधु-कुटुंब-कुल निरखि निरखि बौरान्यौ - १-३१९।
बौरायौ—क्रि. अ. [हिं. बौरना] उन्मत्त हुआ, विवेक-बुद्धि रहित हुआ। उ.—ऐसैंहि जनम बहुत बौरायौ। बिमुख भयौ हरि-चरन-कमल-तजि, मन संतोष न आयौ—१-२७।
क्रि. स.—विवेकहीन किया, मूर्ख बनाया। उ.—किधौं देवमाया बौरायौ किधौ अनत ही आयौ—१० उ०-६९।
बौरावत—क्रि. स. [हिं. बौराना] मूर्ख बनाता है। उ.—हम जानत परपंच स्याम बातन ही बौरावत—३१३५।
बौरावति—क्रि. अ. [हिं. बौराना] पागल होती है, सनक गयी है। उ.—साँचैहि सुत भयौ नंद-नायक कैं, हौं नाहीं बौरावति—१०-२३।
बौरावहीं—क्रि. स. [हिं. बौराना] मूर्ख बनाती हैं, बहलाती-फुसलाती हैं। उ.—अति बिचित्र लरिका की नाईं गुर देखाइ बौरावहिं—२९८५।
बौरावै—क्रि. स. [हिं. बौराना] पागल बना देता है, विवेक-बुद्धिरहित कर देती है। उ.—सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै—१-४२।
बौराह—वि. [हिं. वावला] पागल, सनकी।
बौरी—वि. स्त्री. [हिं. बौरा (पुं.)] (१) पगली। (२) बुद्धिहीन, मूर्ख। उ.—(क) कहति कहा ऊधौ सौं तुम बौरी—२००७। (ख) हम बौरी बकवाद करत हैं—३०९१। (३) उन्मत, मदमाती। उ.—री बौरी, सठ भई मदनबस, मेरैं ध्यान चरन रघुराई—९-५६।
बौरे—वि. [हिं. बौरा] (१) पागल, विक्षिप्त। (२) अज्ञान, नादान, मूर्ख। उ.—(क) तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ—१-५९। (ख) और उपाइ नहीं रे बौरे, सुनि तू यह दै कान—१-३०४।
बौरैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. बौरी] बावली, पागल, बौरी। उ.—आई सिखवन भवन पराऐं, स्यानि ग्वालि बौरैया—३७१।
बौलड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बहु+लड़] सिर का एक गहना।
बौहर—संज्ञा स्त्री.[सं. वधूवर,हिं.बहुवर] वधू, दुलहिन।
ब्यंग, ब्यंग्य—संज्ञा पुं. [सं. व्यंग्य] ताना, व्यंग्य।
ब्यंजन—संज्ञा पुं. [सं. व्यंजन] (१) तैयार या बनी हुई तरकारी और साग। (२) (विभिन्न प्रकार के) भोजन। उ.—(क) षट-रस ब्यंजन छाँड़ि रसोई, साग बिदुर-घर खाए—१-२४४ (ख) बहुत प्रकार किये सब ब्यंजन अमित बरन मिष्टान्न—१०-८९।
ब्यजन—संज्ञा पुं. [सं. व्यजन] हवा करने का पंखा। उ.—असुर-सुता तिहिं ब्यजन डुलावै—९-१७४।

व्यतीतत – क्रि. अ. [सं. व्यतीत] बीतता है।
व्यतीतना—क्रि. अ. [सं. व्यतीत] बीत जाना।
क्रि. स.—बिताना, व्यतीत करना।
व्यथा—संज्ञा स्त्री. [सं. व्यथा] पीड़ा, कष्ट।
व्यथित—वि. [सं. व्यथित] पीड़ित, दुखी।
व्यभिचारी—वि. [सं. व्यभिचारी] चरित्रहीन, दुश्चरित्र। उ.—बिना गोपाल और जेहि भावत ते कहिहैं व्यभिचारी—२४१६।
व्यवसाय—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसाय] (१) काम-धंधा। (२) जीविका-साधन। (३) व्यापार।
व्यवस्था—संज्ञा स्त्री. [सं. व्यवस्था] (१) कार्य-विधान। (२) उचित क्रम। (३) प्रबन्ध, योजना।
व्यवहर—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार] उधार, ऋण।
व्यवहरिया—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार] रुपए का लेन-देन करनेवाला, महाजन।
व्यवहार—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार] (१) बर्ताव। (२) रुपये का लेन-देन। (३) आने-जाने या लेने देने का संबंध। (४) रीति-नीति, प्रसंग, विवरण। उ.—पारवती-बिवाह व्यवहार, सूर कह्यौ भागवतऽनुसार—४-७। (५) कार्य, धर्म, प्रकृति। उ. – (क) हर्ष-सोक तनु कौ व्यवहार—५-४। (ख) सूरदास सिर देत सूरमा सोइ जानै व्यवहार—२६००।
व्यवहारी—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहारिन्] (१) कार्यकर्ता। लेन-देन करनेवाला। (३) इष्ट-मित्र। (४) प्रबंधक।
व्यष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं. व्यष्टि] समष्टि का विशिष्ट और पृथक अंश, समष्टि का विपरीतार्थक। उ.—प्रथम ज्ञान, बिज्ञानक द्वितिय मत, तृतिय भक्ति कौ भाव। सूरदास सोई समष्टि करि, व्यष्टि दृष्टि मन लाव—२-३८।
व्यसन—संज्ञा पुं. [सं. व्यसन] (१) भोग-विलास के प्रति आसक्ति। (२) बुरे शौक की लत।
व्यसनी—वि. [सं. व्यसनिन्] (१) जिसको भोग-विलास के प्रति आसक्ति हो। (२) जिसे बुरी बात का शौक हो।
व्याइ—क्रि. अ. [हिं. व्याना] बच्चा जनकर।
प्र.—रही व्याइ—बच्चा जन रही है। उ.—अबहीं एक सखा यह कहि गयौ गाइ रही बन व्याइ—१५५७।
व्याख्यान—संज्ञा पुं. [सं. व्याख्यान] व्याख्या, वर्णन।
प्र०—कियौ व्याख्यान—व्याख्या की, वर्णन किया। उ.—व्यासदेव तब करि हरि-ध्यान, कियौ भागवत कौ व्याख्यान—१-२३०।
व्याज – संज्ञा पुं. [सं. व्याज] (१) छल, बहाना, मिस। उ.—यहै जानि गोपाल बँधाए। साप-दग्ध ह्वै सुत कुबेर के, आनि भए तरु जुगल सुहाए। व्याज रुदन लोचन-जल ढारत, ऊखल दाम सहित चलि आए—३८६। (२) उधार दिये गये धन का सूद। उ.—सूर मूर अक्रूर गयौ लै व्याज निबेरत ऊधौ—३३७८।
व्याजू—वि. [हिं. व्याज] व्याज पर दिया हुआ या दिया जानेवाला धन।
व्याध—संज्ञा पुं. [सं. व्याध] पशु-पक्षियों को पकड़ने, बेचने और मारने से जीविका चलानेवाला, बहेलिया। उ.—लोचन भए पखेरू माई।.........। सूरदास मन व्याध हमारौ गृह-बन तैं जु बिसारे—सभा० २८९०।
व्याधा—संज्ञा पुं. [हिं. व्याध] व्याध, बहेलिया।
संज्ञा स्त्री. [सं. व्याधि] (१) रोग। (२) विपत्ति।
व्याधि—संज्ञा स्त्री. [सं. व्याधि] (१) रोग। (२) विरह के कारण अस्वस्थ रहना जो एक संचारी भाव है और पूर्व राग की दस अवस्थाओं में से भी एक है। (३) विपत्ति। (४) झंझट।
व्याना—क्रि. अ. [हिं. बिया = बीज] बच्चा जनना।
क्रि. स.—उत्पन्न करना, गर्भ से निकालना।
व्यानी—वि. [हिं. व्याना] व्यायी हुई, जिसने हाल ही में बच्चा जना हो। उ.—व्यानी गाय बछरुवा चाटति, हौं पय पियत पतूखिनि लैया—१०-३३५।
व्यापक—वि. [सं. व्यापक] दूर तक व्याप्त, चारों ओर फैला हुआ। उ.—दूरि गयौ दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी—१-११५।
व्यापत—क्रि. अ. [हिं. व्यापना] प्रभाव या असर करत है। उ.—हमारे देहु मनोहर चीर। काँपति, सीत तनहिं अति व्यापत, हिम सम जमुना-नीर—७९२।

ब्यापना—क्रि. अ. [सं. व्यापन] (१) अच्छी तरह फैलकर सब जगह घेर लेना। (२) चारों ओर छा जाना। (३) घेरना, ग्रसना। (४) प्रभाव या असर करना।

ब्यापार—संज्ञा पुं. [सं. व्यापार] (१) काम, कार्य। (२) काम करने का भाव। (३) रोजगार, धंधा।

ब्यापारी—संज्ञा पुं.[सं० व्यापारिन्]रोजगार करनेवाला।

ब्यापि—क्रि. अ. [हिं. ब्यापना] फैला है, व्याप्त है, वर्तमान है। उ.—रह्यौ घट-घट ब्यापि सोई, जोति-रूप अनूप—२-२७।

ब्यापिहै—क्रि. अ. [हिं. ब्यापना] प्रभाव डालेगी, असर करेगी, व्यापेगी। उ.—हरि कह्यौ अब न ब्यापिहै माया, तब वह गर्भ छाँड़ि जग आया—१-२२६।

ब्यापै—क्रि. अ. [हिं. ब्यापना] (१) किसी पात्र या पदार्थ के भीतर फैलता है अथवा व्याप्त होता है। (२) प्रभाव या असर करता है। उ.—(क) जाकौ काम-क्रोध नित ब्यापै। अरु पुनि लोभ सदा संतापै।... हरि-माया सब जग संतापै। ताकौ माया-मोह न ब्यापै।......। भक्ति पाइ पावै हरि-लोक। तिन्हैं न ब्यापै हर्षऽरु सोक—३-१३। (ख) माया, काल, कछु नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै। (२) घेरती है, ग्रसती है। उ.—जरा अबहिं तोहिं ब्यापै अई। भयउ बृद्ध तब कहेउ सिर नाई।

ब्यार—संज्ञा स्त्री. [हिं. बयार] हवा, वायु।

ब्यारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ब्यालू] रात का भोजन।

ब्याल—संज्ञा पुं. [सं. व्याल] (१) सर्प। (२) कालिय-नाग। उ.—नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ—५५७।

ब्याली—संज्ञा स्त्री. [सं. व्याली] साँपिन, नागिन।
वि.—सर्पों को धारण करनेवाला।

ब्यालू—संज्ञा पुं. [सं. विकाल] रात का भोजन।

ब्यावर—वि. स्त्री. [हिं. ब्याना] जिसने बच्चा जना हो। उ.—ब्यावर बिथा न बंध्या जानै—३४४२।

ब्यास—संज्ञा पुं. [सं. व्यास] श्रीकृष्ण द्वैपायन जो वेदों के संपादक और श्रीमद्भागवत आदि पुराणों के रचयिता माने जाते हैं। उ.—अन्तर-दाह जु मिट्यो ब्यास को इक चित ह्वै भागवत किऐं—१-९।

ब्याह—संज्ञा पुं. [सं. विवाह] विवाह, परिणय। उ.—कहति जननी ब्याह कौं तब रहत बदन दुराइ—४९८।

ब्याहता—वि.[सं. विवाहित]जिसके साथ ब्याह हुआ हो।
संज्ञा पुं.—पति।

ब्याहना—क्रि. स. [हिं. ब्याह+ना] विवाह करना।

ब्याहि—क्रि. स. [हिं. ब्याहना] ब्याह कर।
प्र०—ब्याहि दयौ—विवाह कर दिया। उ.—रुचि कै अत्रि नाम सुत भयौ, ब्याहि अनसुया सौं सो दयौ—४-२।

ब्याही—क्रि. स. [हिं. ब्याहना] विवाह किया, ब्याह लिया। उ.—हरि, हौं महा अधम संसारी। आन समुझि मैं बरिया ब्याही आसा कुमति कुनारी—१-१७३।

ब्याहुला—वि. [हिं. ब्याह] विवाह का।

ब्योंचना—क्रि. अ. [सं. विकुंचन, प्रा. बिउंचन] शरीर के किसी अंग का मुरक जाना या मोच खा जाना।

ब्योंची—संज्ञा स्त्री. [हिं. ब्योंचना] उलटी, कै, वमन।

ब्योंड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. बेड़ा] लम्बी गोलाकार लकड़ी जो दरवाजा खुलने से रोकने को लगाई जाती है।

ब्योंत—संज्ञा पुं. [सं. व्यवस्था] (१) ब्योरा, विवरण। (२) ढंग, विधि, रीति। (३) युक्ति, उपाय। (४) उपक्रम, तैयारी। (५) संयोग, अवसर। (६) पूरा-पूरा कार्य होने का हिसाब। (७) साधन, समाई। (८) पहनावे की काट-छाँट। (९) प्रबन्ध, व्यवस्था।
मुहा०—ब्योंत खाना—अनुकूल व्यवस्था होना।

ब्योंतत—क्रि. स. [हिं. ब्योंतना] किसी पहनावे के हिसाब से कपड़े को काटता-छाँटता है। उ.–सूर स्वामी अति रिस भीम की भुजा के मिस ब्योंतत बसन ज्यों सुत तन फारचौ।

ब्योंतना—क्रि. स. [हिं. ब्योंत] (१) किसी हिसाब से कपड़े को काटना-छाँटना। (२) मार डालना।

ब्योंताना—क्रि. स. [हिं. ब्योंतना] नाप के हिसाब से कपड़ा कटाना-छँटाना।

ब्योपार—संज्ञा पुं. [हिं. ब्यापार] रोजगार, धंधा।

ब्योपारी—संज्ञा पुं. [हिं. ब्यापारी] रोजगारी, व्यवसायी।

ब्योरन—संज्ञा स्त्री. [हिं.ब्योरना] बाल सँवारने की रीति।

ब्योरना—क्रि. स. [सं. ब्योरना] उलझे बाल सुलझाना।

ब्योरा—संज्ञा पुं. [सं. विवरण] (१) घटना आदि का विवरण। (२) किसी विषय या प्रसंग का पूरा हिसाब। (३) हाल, वृत्तान्त।

ब्योरेवार—क्रि. वि. [हिं. ब्वोरा] बिस्तार के साथ।

ब्योसाइ, ब्योसाय—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसाय] (१) कार-बार, धंधा। (२) व्यापार, व्यवसाय।

ब्योहर—संज्ञा पुं. [हिं. व्यवहार] सूद पर रुपये के लेन-देन का व्यापार।

ब्योहरा, ब्योहरिया—संज्ञा पुं. [हिं. ब्योहर] सूद पर रुपया देनेवाला।

ब्योहरना—क्रि. अ. [हिं. व्यवहार] काम में लाना।

क्रि. स.— आचरण या बर्ताव करना।

ब्योहार- संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार] बर्ताव, व्यवहार।

ब्यौंकना—क्रि. अ. [देश.] उछलना, कूदना, लपकना।

ब्यौंकि—क्रि. अ. [हिं. ब्यौंकना] उछलकर, लपककर। उ.—मैया री, मैं चंद लहौंगो। कहा करौं जलपुट भीतर कौ, बाहर ब्यौंकि गहौंगौ—१०-१९४।

ब्यौपार—संज्ञा पुं. [सं. व्यापार] (१) व्यवसाय। (२) कर्म, कार्य, काम। उ.—या बिधि कौ ब्यौपार बन्यौ-जग, तासौं नेह लगायौ—१-७९।

ब्यौपारी—संज्ञा पुं. [हिं. व्यापारी] व्यापारी, व्यवसायी। उ.—(क) यह मारग चौगुनी चलाऊँ तौ पूरौ ब्यौपारी—१-१४६। (ख) दीरघ मोल कह्यौ ब्यौपारी रहे ठगे सब कौतुक हार—१०-१७३।

ब्यौरौ— संज्ञा पुं. [हिं. ब्यौरा] प्रसंग, झगड़ा, चक्कर, बन्धन। उ.—श्रीभागवत सुनै जो कोइ, ताकौं हरि-पद प्रापति होइ। ऊँच-नीच ब्यौरौ न रहाइ। ताकी साखी मैं, सुनि आइ—१-२३०।

ब्यौसाइ—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसाय] कार-बार, व्यापार।

ब्यौसाई—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसायी] कार-बार करने वाला, व्यापारी।

ब्यौहर—संज्ञा पुं. [हिं. व्यवहार] सूद पर रुपया लेने-देने का व्यापार।

ब्यौहरा, ब्यौहरिया—संज्ञा पुं. [हिं. व्यवहारी] सूद पर रुपया लेने-देने का व्यापार करनेवाला।

ब्यौहार—संज्ञा पुं. [सं. व्यवहार] (१) काम-धंधा। उ.—जब हरि मुरली अधर धरी। गृह-ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी—६५९। (१) बर्ताव, व्यवहार।

ब्यौहारत—क्रि. अ. [हिं. व्यवहारना] व्यवहार करता है। उ.—ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ ब्योहारत—१-१२।

ब्यौहारना—क्रि. अ. [सं. व्यवहार] सम्बन्ध रखना।

ब्रंद—संज्ञा पुं. [सं. वृंद] समूह।

ब्रज—संज्ञा पुं. [सं. व्रज] मथुरा और वृन्दावन का समीपवर्ती प्रदेश जब श्रीकृष्ण ने बाललीलाएँ की थीं श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए यह प्रदेश समस्त तीर्थों से बढ़कर है।

ब्रजधर—संज्ञा पुं. [सं. व्रज+हिं. धरना] व्रज को धारण करनेवाले, व्रज में ही व्याप्त, व्रज के रक्षक। उ.—गिरिधर, ब्रजधर, मुरलीधर, धरनीधर—५७२।

ब्रजना—क्रि. अ. [सं. व्रजन] जाना, चलना।

ब्रजराइ, ब्रजराई—संज्ञा पुं. [सं. व्रज+हिं. राय] व्रजपति श्रीकृष्ण। उ.—अपने कृत तैं हौं नहिं बिरमत, सुनि कृपालु ब्रजराई—१-२०७।

ब्रजराज, ब्रजराजा—संज्ञा पुं. [सं. व्रजराज] (१) व्रज के राजा नन्द जी। उ.—जागिए, ब्रजराज-कुँवर, कमल-कुसुम फूले—१०-२०२। (२) व्रज के स्वामी श्री कृष्ण। उ.—(क) लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज—१-१०८। (ख) और लेहु कछ सुख ब्रज-राजा—३९६।

ब्रत—संज्ञा पुं. [सं. व्रत] (१) पुण्य-प्राप्ति के उद्देश्य से नियमपूर्वक उपवास करना। उ.—भक्तनि-हित तुम कहा न कियौ। गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही; अंबरीष ब्रत राखि लियौ—१-२६। (२) टेक, संकल्प। उ.—पतिब्रता जालंधर-जुवती सो पति-ब्रत तैं टारी—१-१०४।

ब्रह्मांड—संज्ञा पुं. [सं. ब्रह्मांड] चौदहों भुवनों का समूह, अखिल विश्व, ब्रह्मांड। उ.—अखिल ब्रह्मंड—खंड की महिमा, दिखराई मुख माँहि—१०-२५५।

ब्रह्म—संज्ञा पुं. [सं. ब्रह्मन्] (१) जगत का कर्त्ता जो सत, चित् और आनन्दस्वरूप माना गया है। उ.—सूर पूरन ब्रह्म निगम नाहीं गम्य तिनहिं अक्रूर मन यह बिचारै—२५५१। (२) आत्मा, चैतन्य। (३) ईश्वर।

ब्रह्मकन्यका, ब्रह्मकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्रह्मा की कन्या सरस्वती ।

ब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वीर्य को रक्षित रखने की साधना । (२) चार आश्रमों में प्रथम ।

ब्रह्मचारी—संज्ञा पुं. [सं. ब्रह्मचारिन्] ब्रह्मचर्य का साधक ।

ब्रह्मज्ञ—वि. [सं.] ब्रह्म का ज्ञाता ।

ब्रह्मज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म या अद्वैत सिद्धान्त का बोध या उसकी जानकारी ।

ब्रह्मज्ञानी—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म का ज्ञाता, अद्वैतवादी ।

ब्रह्मण्य—वि. [सं.] (१) ब्राह्मण पर श्रद्धा रखनेवाला । (२) ब्रह्म या ब्रह्मा-संबंधी ।

ब्रह्मन्य—वि. [सं. ब्रह्मण्य] ब्रह्मण्य । उ.—बिदित बिरद ब्रह्मन्य देव, तुम करुनामय सुखदाई—९-७ ।

ब्रह्मद्रव—संज्ञा पुं. [सं.] गंगाजल ।

ब्रह्मद्रोही—वि. [सं.] ब्राह्मण का बैरी ।

ब्रह्मद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] खोपड़ी के बीच का छेद जिससे प्राण निकलते माने जाते हैं, ब्रह्मरंध्र । उ.—(क) त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार भिदि यों मिलिहैं बनमाली । (ख) ब्रह्मद्वार फिरि फोरि कै निकसे गोकुलराय ।

ब्रह्मनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु ।

ब्रह्मपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा का पुत्र । (२) नारद । (३) एक नद जो मानसरोवर से निकलकर भारत के पूर्वी प्रदेश से होकर बंगाल की खाड़ी में गिरता है । इसका प्राचीन नाम 'लौहित्य' है ।

ब्रह्मपुत्री संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती ।

ब्रह्मपुराण—संज्ञा पुं. [सं.] १८ पुराणों में एक ।

ब्रह्मभोज—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण-भोजन ।

ब्रह्ममुकुन्द—संज्ञा पुं. [सं.] परब्रह्म । उ.—सुरनि कही गोकुल प्रगटे हैं पूरन ब्रह्ममुकुन्द—९७५ ।

ब्रह्ममुहूरत, ब्रह्ममुहूर्त—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्योदय से एक घण्टा पहले का समय । उ.—ब्रह्ममुहूरत भयौ सबेरौ जागे दोऊ भाई ।

ब्रह्मरंध्र—संज्ञा पुं. [सं.] खोपड़ी के बीच का गुप्त छिद्र जो प्राण निकलने का द्वार माना जाता है ।

ब्रह्मराक्षस—संज्ञा पुं. [सं.] वह ब्राह्मण जो मरकर प्रेत हुआ हो ।

ब्रह्मलोक—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा का लोक ।

ब्रह्मवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह सिद्धान्त जिसमें शुद्ध चैतन्य की सत्ता मानी जाय, अद्वैतवाद ।

ब्रह्मवादी—वि. [सं. ब्रह्मवाद] वेदान्ती, अद्वैतवादी ।

ब्रह्मविद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्रह्म को जानने की विद्या ।

ब्रह्महत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्राह्मण-वध ।

ब्रह्मांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चौदहों भुवनों का समूह । (२) खोपड़ी, कपाल ।

ब्रह्मांडपति—संज्ञा पुं. [सं.] चौदहों भुवनों के स्वामी । उ.—अखिल ब्रह्मांडपति तिहुँ भुवनाधिपति नीरपति पवनपति अगम बानी—१५२२ ।

ब्रह्मा—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्म के तीन सगुण रूपों में एक जो सृष्टि का रचयिता माना गया है, विधाता । उ.—ध्यान धरत महादेव व ब्रह्मा तिनहूँ पै न छटै—१-२६३ ।

ब्रह्माणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ब्रह्मा की स्त्री । (२) सरस्वती ।

ब्रह्मानंद—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मज्ञान के अनुभव का आनन्द ।

ब्रह्मावर्त—संज्ञा पुं. [सं.] सरस्वती और दृशद्वती नदियों के बीच के प्रदेश का नाम ।

ब्रह्मास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक अमोघ अस्त्र ।

ब्रात, ब्रात्य—वि. [सं. ब्रात्य] (१) जिसके दस संस्कार न हुए हों । (२) जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो । (३) वर्ण-संकर ।

ब्राह्म—वि. [सं.] ब्रह्म-संबंधी ।

ब्राह्मण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चार वर्णों में सर्वश्रेष्ठ वर्ण । (२) इस वर्ण का व्यक्ति । (३) वेद का भाग जो 'मंत्र' नहीं है ।

ब्राह्मणत्व - संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण का भाव या धर्म ।

ब्राह्मणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्राह्मण की स्त्री ।

ब्राह्मन—संज्ञा पुं. [सं. ब्राह्मण] ब्राह्मण । उ.—गुरु-ब्राह्मन अरु संत सुजन के जात न कबहुँ निकेत—२-१५ ।

ब्राह्ममुहूर्त—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्योदय से दो-तीन घड़ी पूर्व का समय ।

ब्राह्मी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुर्गा । (२) भारत की एक प्राचीन लिपि जिससे नागरी आदि लिपियाँ विकसित हुई हैं । (३) एक बूटी ।

ब्रीड़त—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ब्रीड़ना] लजाते हो, लज्जित होते हो। उ॰—मोसौं बात सकुच तजि कहिए। कत ब्रीड़त कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहियै—१-१३६।

ब्रीड़ना, ब्रीड़नो—क्रि॰ अ॰ [सं॰ व्रीडन] लजाना, लज्जित होना।

ब्रीड़ा—[संज्ञा स्त्री॰ सं॰ व्रीडा] लज्जा।

ब्वै—वि॰ [हिं॰ बिय] वो।

भ

भ—देवनागरी वर्णमाला का चौबीसवाँ और पवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण-स्थान ओष्ठ है।

भंकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ भय+करना] भयानक शब्द।

भंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) टूटने का भाव, विनाश। उ॰—(क) देवराज मष-भंग जानि कै बरष्यौ ब्रज पर आई—१-१२२। (२) बाधा, रुकावट। उ॰—छाँड़ि मन हरि बिमुखन कौ संग। जिनके संग कुबुद्धि उपजति है, परत भजन में भंग—१-३३२। (३) तरंग, लहर। (४) पराजय। (५) खंड, भाग। (६) टेढ़ापन। (७) टेढ़े होने या झुकने का भाव।

वि॰—टेढ़ी, कुटिल, झुकी हुई। उ॰—अलक अबिरल चारु हास-बिलास भृकुटी भंग—६२७।

संज्ञा स्त्री. [हिं॰ भाँग] भाँग।

भंगड़—वि॰ [हिं॰ भाँग] बहुत भाँग पीनेवाला।

भंगना, भंगनो—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ भंग] (१) टूटना। (२) हारना।

क्रि॰ स॰—(१) तोड़ना। (२) हराना।

भंगरा, भंगरैया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ भाँग] भाँग के रेशे से बना मोटा कपड़ा।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ भृंगराज] एक वनस्पति।

भंगार—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ भाँग] घास-फूस, कूड़ा-करकट।

भंगिमा - संज्ञा स्त्री. [सं॰] (१) टेढ़ापन। (२) हाव-भाव या कोमल चेष्टाएँ।

भंगी—वि॰ [सं॰ भंगिन्] (१) भंग या नष्ट होनेवाला। (२) भंग या नष्ट करनेवाला।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ भक्त] मेहतर।

वि॰ [हिं॰ भाँग] भाँग पीनेवाला, भँगेड़ी।

संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ भंगिमा] स्त्रियों के हाव-भाव।

भंगुर—वि॰ [सं॰] (१) भंग होनेवाला, नाशवान। उ॰—(क) इहिं तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार—१-८४। (ख) भ्रम्यौ बहुत लघु धाम बिलोकत छनभंगुर दुखदानी—१-८७। (२) टेढ़ा, कुटिल।

भँगेड़ी—वि॰ [हिं॰ भाँग] खूब भाँग पीनेवाला।

भंजक—वि॰ [सं॰] भंग करने या तोड़नेवाला।

भंजन—वि॰ [सं॰] नाश करनेवाला, तोड़नेवाला, भंजक। उ॰—(क) जन-दुख जानि, जमल-द्रुम-भंजन, अति आतुर ह्वै धाए—१-२७। (ख) रजक-मल्ल चानूर-दवानल-दुख-भंजन सुखदाई—१-१५८।

संज्ञा पुं॰—(१) तोड़ने या भंग करने का भाव। (२) नाश, ध्वंस।

भँजना, भँजानो—क्रि॰ अ॰ [सं॰ भंजन] (१) टूटना। (२) भुनना।

क्रि॰ अ॰ [हिं॰ भाँजना] (१) (रस्सी आदि का) बटा जाना। (२) (कागज आदि का) परतों में मोड़ा जाना।

भंजना, भंजनो—क्रि॰ स॰ [सं॰ भंजन] तोड़ना।

भँजाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ भाँजना] भाँजने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

भँजाना, भँजानो—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भँजना] (१) तुड़वाना। (२) भुनाना।

क्रि॰ स॰ [हिं॰ भाँजना] भाँजने को प्रवृत्त करना।

भंजि—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भंजना] तोड़कर, गिराकर। उ॰—बिटप भंजि, जमलार्जुन तारे, करि अस्तुति गोबिंद रिझाए—३८६।

भंजे—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भंजना] (१) तोड़े, टुकड़े-टुकड़े किये। (२) नष्ट किये, बिनाशे, दूर किये। उ॰—सुदामा-दारिद्र भंजे कूबरी तारी—१-१७६।

भंटा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वृंताक] बैंगन। उ॰—भरता भँटा खटाई दीनी—२३२१।

भंड—वि. [सं.] अश्लील बातें बकनेवाला ।
संज्ञा पुं. [हिं. भाड़] भाड़ ।

भंडता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भाँड़ों की बातें । (२) ओछी हँसी-मखौल ।

भंडना, भंडनो—क्रि. स. [सं. भंडन] (१) हानि पहुँचाना । (२) भंग करना, तोड़ना । (३) नष्ट करना । (४) बदनाम करना ।

भडफोड़—संज्ञा पुं. [हिं. भाँड़ा+फोड़ना] (१) बर्तन तोड़ना-फोड़ना । (२) भंडाफोड़ करना ।

भंडर, भँडरिया—वि. [हिं. भंड] पाखंडी, धूर्त ।

भँडसार, भँडसाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँड+शाला] खत्ती, गोदाम ।

भंडा—संज्ञा पुं. [सं. भाँड] (१) बर्तन । (२) भेद ।
मुहा०—भंडा फूटना—भेद खुलना। भंडा फोड़ना—भेद खोलना ।

भँडाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँड] उपद्रव । उ.—काहू कै घर करत भँडाई—१०-३४० ।

भँडाना, भँडानो—क्रि. स. [हिं. भाँड] (१) उपद्रव करना । (२) तोड़ना-फोड़ना ।

भँडायौ—क्रि. स. [हिं. भँडाना] तोड़-फोड़ दिया, नष्ट कर दिया, अव्यव्यस्त कर दिया । उ.—अब तौ इन्हैं जकरि बाँधौंगी, इहि सब तुम्हरौ गाँव भँडायौ ।

भँडार, भंडारा—संज्ञा पुं. [सं. भांडागार, हिं. भंडार] (१) कोष, खजाना । उ.—(क) तिन हारयौ सब भूमि-भँडार । हारी बहुरि द्रौपदी नार—१-२४६ (ख) हारि सकल भंडार-भूमि, आपुन बन-बास लह्यौ—१-२४७ । (२) अन्नादि रखने का कोठार । (३) व्यंजन पकाने और रखने का स्थान । (४) पेट ।

भंडारा—संज्ञा पुं. [हिं. भंडार] (१) कोष ।(२) कोठार । (३) समूह, झुंड । (४) साधुओं का भोज । (५) पेट ।

भँडारी—संज्ञा पुं. [हिं. भंडार] (१) भंडार, कोष, खजाना । उ.—(क) जो माँगौ सो देहुँ तुरतहीं, हीरा-रतन-भँडारी—८-१४ । (ख) तिन हारयौ सब भूमि-भँडारी (भँडार)—१-२४६ । (२) छोटी कोठरी ।
संज्ञा पुं.—(१) कोषाध्यक्ष, खजांची । (२) भंडार का अध्यक्ष । (३) रसोइया ।

भंडीर—संज्ञा पुं [सं.] (१) चौलाई । (२) बट ।

भँडेरिया—संज्ञा पुं. [हिं. भंड] चालाकी, मक्कारी ।

भँड़ैती—संज्ञा स्त्री. [हिं. भांड़] भांड़ का काम । (२) भाँड़ों की सी बातचीत या चेष्टा ।

भड़ौआ—संज्ञा पुं. [हिं. भांड़] (१) भाँड़ों का गीत । (२) हास्य रस की साधारण कविता ।

भँभरना—क्रि. अ. [हिं. भय] डरना, भयभीत होना ।

भंभा, भँभा, भँभाका—संज्ञा पुं. [सं. भंसस्] बड़ा छेद ।

भँभाना, भँभानो—क्रि. अ. [अनु.] गाय आदि का रँभाना ।

भँभीरी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] एक पतिंगा जिसकी पूछ लंबी और चार पर झिल्लीदार होते हैं । उ.—बाल अवस्था मैं तुम धाइ । उड़ति भँभीरी पकरी जाइ—३-५ ।

भँभेरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भँभरना] भय, डर ।

भँमर, भँमरा—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर] बड़ी मधुमक्खी ।

भँवत—क्रि. अ. [हिं. भँवना] हिलता-डोलता या चक्कर लगाता है । उ.—चंचल दृग अंचल-पट-दुति-छबि, झलकत चहुँ दिसि झालरी । मनु सेवाल कमल पर अरुझे, भँवत भ्रमर भ्रम-चाल री—१०-१४० ।

भँवन—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रमण] घूमना, भ्रमण ।

भँवना, भँवनो—क्रि. अ. [सं. भ्रमण] (१) घूमना । (२) चक्कर काटना ।

भँवर—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर, पा. भमर, प्रा० भँवर] (१) भौंरा । (२) जल का चक्करदार घुमाव । (३) गड्ढा । उ.—उरज भँवरी भँवर मानो मीन मनि की कांति—१४१६ ।

भँवरजाल—संज्ञा पुं. [हिं. भँवर+जाल] मोह-माया के सांसारिक झगड़े ।

भँवरना, भँवरनो—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] (१) घूमना । (२) चक्कर लगाना ।

भँवरभीख—संज्ञा स्त्री. [हिं. भँवर+भीख] तीन प्रकार की भिक्षा में से दूसरी जो घूम-घूमकर माँगी जाय ।

भँवरा—संज्ञा पुं. [हिं. भँवर] भौंरा । उ.—(क) ज्यौं भँवरा रस चाखि चाहि कै तहाँ जाइ जहाँ तव तन जानै—२६९८ । (ख) आपुहिं भँवरा आपुहिं फूल—३४०७ ।

भवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भँवरा] (१) प्राणी के शरीर के

ऊपर वह स्थान जहाँ के रोएं और बाल भँवर की तरह घूमे हुए हों। उ.—(क) उर बनमाल विचित्र बिमोहन, भृगु-भँवरी भ्रम कौं नासैं—१-६६। (ख) उरज भँवरी भँवर मानों मीन मनि की कांति—१४१६। (२) पानी का चक्कर, भँवर।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भँवना] (१) भाँवर। (२) सौदे की फेरी। (३) रक्षक की गश्त। (४) परिक्रमा।

भँवा - संज्ञा पुं. [हिं. भँवना] फेरा, चक्कर।

भँवाना, भँवानो—क्रि. स. [हिं. भँवना] (१) घुमाना-फिराना, चक्कर देना। (२) भ्रम या उलझन में डालना।

भँवारा – वि. [हिं. भँवना] घूमने-फिरनेवाला।

भँवारे—वि. [हिं. भँवारा] चक्कर लगानेवाले, घूमने-फिरने वाले। उ.—तुम कारे सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।

भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नक्षत्र। (२) भूधर। (३) भौंरा।

भइया—संज्ञा पुं. [हिं. भाई] (१) भाई। (२) एक प्रेम या स्नेह-सूचक संबोधन।

भइ—क्रि. अ. [हिं. भई] हुई। उ.—सिंह आगैं, सेष पाछैं, नदी भइ भरिपूरि—१०-५।

भईं—क्रि अ. [हिं. हुईं] (१) हुईं। उ.—जुवति बनि भईं ठाढ़ी और पहिरे चीर—१८५२। (२) निकलीं, उगीं, जन्मीं। उ.—दुहुँधा द्वै दँतुली भईं, मुख अति छबि पावत—१०-१२२।

भई—क्रि. अ. [हिं. हुई] हुई, घटित हुई। उ.—(क) पाछे भई सु भई सूर जन, अजहूँ समुझि सँभारि—२-३१। (ख) तातैं भई यज्ञ की हान—४-५।

भउजाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भौजाई] भावज, भाभी।

भए—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) हुए, हो गये, प्रतिष्ठित हुए, बने। उ.—(क) कहा कूबरी सील-रूप-गुन? बस भए स्याम त्रिभंगी—१-२१। (ख) पारथ के सारथि हरि आप भए हैं—१-२२। (ग) काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ये भए चोर तैं साहु—१-४०। (२) जन्मे, अवतरे, पैदा हुए। उ.—प्राचीनबर्हि भूप इक भए—४-१२।

भएँ—क्रि. अ. [हिं. होना] होने पर, हो जाने पर। उ.—बिरध भएँ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितानौ—१-३२९।

भक – संज्ञा स्त्री. [अनु.] सहसा जल उठना।

भकभकाना—क्रि. अ. [अनु.] 'भकभक' करके जलना।

भकभूरि—वि. [सं. भेक] (१) मूर्ख। (२) उजड्ड।

भकुआ—वि. [सं. भेक] मूर्ख।

भकुआना, भकुआनो—क्रि.अ. [हिं. भकुआ] घबरा जाना।

क्रि. स.—(१) घबरा देना। (२) मूर्ख बनाना।

भकोसना, भकोसनो—क्रि. स. [सं. भक्षण] जल्दी-जल्दी खाना।

भक्त—वि. [सं.] (१) कई भागों में बाँटा हुआ। (२) अनुयायी। (३) भजन या भक्ति करनेवाला। उ.—भक्त (भक्तनि) हित तुम कहा न कियौ—१-२६।

भक्तपन – संज्ञा पुं. [सं. भक्त+हिं. पन] भक्ति।

भक्तबछल, भक्तबच्छल, भक्तवत्सल, भक्तवत्सल—[सं. भक्तवत्सल] भक्तों पर कृपा रखनेवाला। उ.—(क) सूरदास प्रभु भक्त-बछल तुम पावन-नाम कहाए हो—१-७। (ख) कुसल प्रसननि कहे तुरत मन काम लहि भक्तबत्सल नाम भक्त गावैं—२५८८।

भक्ता—वि. [सं. भक्त] भक्ति करनेवाला। उ.—इह सुन के भृगु कह्यौ, नारद आदिक हरि-भक्ता—१८६१।

भक्ताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भक्त+आई] भक्ति।

भक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भागों में बाँटना। (२) भाग। (३) पूजा, अर्चन। (४) श्रद्धा। (५) अनुराग। (६) ईश्वर में श्रद्धापूर्ण अनुराग। इसके नौ भेद हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

भक्ष – संज्ञा पुं. [सं.] (१) खाने का पदार्थ, भोजन। (२) खाने का काम। उ.—जूठे की कछु संक न मानी भक्ष किए सत भाई।

भक्षक—वि. [सं.] खाने या भक्षण करनेवाला।

भक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन। (२) भोजन करना।

भक्षत—क्रि. स. [हिं. भक्षना] भोजन करता है।

भक्षना, भक्षनो—क्रि. स. [सं. भक्षण] भोजन करना।

भक्षिए, भक्षिये—क्रि. स. [हिं. भक्षण] खाइये।

भक्षित—वि. [सं.] खाया हुआ।
भक्षी—वि. [सं. भक्षिन्] खानेवाला, भक्षक।
भक्ष्य—वि. [सं.] खाने या भक्षण करने योग्य।
संज्ञा पुं.—भोजन, आहार।
भख—संज्ञा पुं. [सं. भक्ष, प्रा. भक्ख] आहार, भोजन। उ.—वेद-वेदांत उपनिषद अरपै सो भख भोक्ता नाहिं।
मुहा०—भख करना—भोजन करना।
भखना—क्रि. स. [सं. भक्षण, प्रा. भक्खन] (१) भोजन करना। (२) निगल जाना।
भखि—क्रि. स. [हिं. भखना] खाकर। उ.—दादुर जल बिनु जिवै पवन भखि, मीन तजै हठि प्रान—३३५७।
भखिहैं—क्रि. स. [हिं. भखना] भक्षण करेंगे, खायँगे। उ.—कृमि-पावक तेरी तन भखिहैं,—१-३१९।
भग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्त्री की योनि या जननेंद्रिय। उ.—इहिं अंतर गौतम गृह आयौ। इंद्र जानि यह बचन सुनायौ........।इक भग की तोहिं इच्छा भई। भग सहस्र मैं तोकौं दई—६-८। (२) ऐश्वर्य।
भगई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भगवा] लँगोटी।
भगण—संज्ञा पुं. [सं.] छंदशास्त्र में एक गण।
भगत—वि. [सं. भक्त] भक्ति करनेवाला, उपासक। उ.—भगत-बिरह कौ अति हीं कादर, असुर-गर्ब-बल नासत—२-३१।
संज्ञा पुं.—(१) साधु। (२) भूत-प्रेत उतारनेवाला ओझा।
भगतबछल, भगतबच्छल, भगतवत्सल, भक्तवत्सल—वि. [सं. भक्त-वत्सल] भक्त पर कृपा रखनेवाला।
भगति, भगती—संज्ञा स्त्री. [सं. भक्ति] (१) पूजा, अर्चना। उ.—परमारथ सौं बिरत, बिषय-रत, भाव-भगति नहिं नैंकहु जानी—१-१४९। (२) श्रद्धा। (३) विश्वास।
भगदत्त—संज्ञा पुं. [सं.] प्राग्ज्योतिषपुर का राजा जो नरकासुर का पुत्र था और महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ा था। उ.—इत भगदत्त, द्रोन, भूरिस्रव, तुम (भीष्म) सेनापति धीर—१-२६९।
भगदड़, भगदर—संज्ञा स्त्री. [हिं. भागना+दौड़ना] बहुत से लोगों के दौड़ने-भागने की क्रिया या भाव।
भगन—वि. [सं. भग्न] भग्न, टूटा फूटा।
भगना—क्रि. अ. [हिं. भागना] भागना।
संज्ञा पुं. [सं. भागनेय] बहन का लड़का, भानजा।
भगनी—संज्ञा स्त्री. [सं. भगिनी] बहन।
भगर, भगल, भगली—संज्ञा पुं. [देश.] (१) छल-कपट। (२) लूट-खसोट। (३) जादू।
भगवंत—संज्ञा पुं. [सं. भगवत् का बहु. भगवंत] भगवान, ईश्वर। उ.—(क) भक्त सात्विकी सेवैं संत। लखैं तिन्है मूरति भगवंत—३-१३। (ख) मानि भगवंत-आज्ञा सो आयौ तहाँ—८-८।
भगवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवी। (२) गौरी। (३) सरस्वती। (४) गंगा। उ.—त्रिभुवन-हार सिंगार भगवती सलिल चराचर जाके ऐन—९-१२।
भगवत्—वि. [सं.] (१) ऐश्वर्ययुक्त। (२) पूज्य।
संज्ञा पुं.—(१) ईश्वर। (२) विष्णु। (३) शिव।
भगवत्पदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंगा।
भगवदीय—वि. [सं. भगवत्] भगवान का (भक्त)।
भगवद्गीता—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ जो हिन्दू धर्म का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है और सभी भारतीय संप्रदायों में मान्य है।
भगवद्भक्त—संज्ञा पुं. [सं.] ईश्वर का भक्त
भगवान, भगवान्—वि. [सं. भगवत् का एक०] (१) ऐश्वर्य, बल, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छह गुणों से युक्त। (२) पूज्य।
संज्ञा पुं.—(१) ईश्वर। (२) विष्णु। (३) शिव। (४) कोई परम आदरणीय व्यक्ति।
भगाइ—क्रि. स. [हिं. भगाना] भगाकर, छिपाकर, हराकर। उ.—कै बालकनि भगाई जाहिं लै आन भूमि पर—५८९।
भगाई—क्रि. अ, [हिं. भागना] भागकर, दौड़कर।
प्र०—गए भगाई—भाग गए उ.—सखा सहित बलराम छपाने जहँ-तहँ गए भगाई—१०-२४०।
भगाऊँ—क्रि. स. [हिं. भगाना] भागने को प्रवृत्त करूँ।
भगात—क्रि. अ. [हिं. भागना] भागता है। उ.—जोइ लीजै सोई है अपनो जैसे चोर भगात—पृ. ३२४(३२)।

भगाना, भगानो—क्रि. स. [हिं. भागना] (१) भागने को प्रवृत्त करना, दौड़ना। (२) खदेड़ना, हटाना।
क्रि. अ.—भागना, दौड़ना।

भगाने—क्रि. अ. [हिं. भागना] भाग गये। उ.—सूर निरखि मुख सकुचि भगाने—६९५।

भगाड़, भगार—संज्ञा. स्त्री. [हिं. भागना] भागने की क्रिया या भाव। उ.—मल्ल सुभट परे भगार कृष्ण को परिसाने—२६१३।

भगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बहन, सहोदरा। उ.—सती कह्यौ, मम भगिनी सात। सबै बुलाई ह्वैहैं तात—४-५।

भगिनीय—संज्ञा पुं. [सं.] बहन का लड़का, भानजा।

भगी—क्रि. अ. [हिं. भागना] भाग गयी, चली गयी। उ.—सुपनेउ के सुख न सहि सकी नींद जगाइ भगी—२७९०।

भगीरथ—संज्ञा पुं. [सं.] अयोध्या के एक राजा जो दिलीप के पुत्र थे और जिनकी तपस्या से संतुष्ट होकर गंगा पृथ्वी पर आयी थी। उ.—बहुरि भगीरथ तप बहु कियौ। तब गंगा जू दरसन दियौ—९-९।

भगे—क्रि. अ. [हिं. भागना] (१) भाग गये। (२) दूर हो गये, हट गये। उ.—सूर स्याम ऐसे तैं देखे मैं जानति दुख दूर भगे—१३१८।

भगेड़ ,भगोड़ा—वि. [हिं. भागना] (१) छिपकर भागनेवाला। (२) काम पड़ने पर भागनेवाला, कायर।

भगौती—संज्ञा स्त्री. [सं. भगवती] देवी, भगवती।

भगौहाँ—वि. [हिं. भागना+औहाँ] (१) भाग जाने वाला, भागने को प्रस्तुत। (२) कायर।
वि. [हिं. भगवा] गेरू से रँगा हुआ, भगवा।

भग्गुल, भग्गू—वि. [हिं. भागना] भागनेवाला, कायर।

भग्न—वि. [सं.] (१) टूटा हुआ। उ०—भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन—१-३२१। (२) पराजित।

भग्नावशेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खँडहर। (२)टूटा-फूटा टुकड़ा या अंश।

भग्यो, भग्यौ—क्रि. अ. [हिं. भागना] भागा, दौड़ा। उ.—(क) अस्वत्थामा भय करि भग्यौ—१-२८९। (ख) कौन कौन को उत्तर दीजै ताते भग्यो अगाऊँ —३४६६।

भचकना, भचकनो—क्रि. अ. [हिं. भौचक] अचरज से स्तब्ध या हक्काबक्का रह जाना।
क्रि. अ. [अनु० भच] लचककर या कुछ लँगड़ाकर चलना।

भच्छ—संज्ञा पुं. [सं. भक्ष्य] भोजन, आहार।

भच्छक—संज्ञा पुं. [सं. भक्षक] भक्षण करनेवाला।

भच्छति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. भच्छना] खाती है, भक्षण करती है। उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।···। और अहित अभच्छ भच्छति, कला बरनि न जाइ—१-५६।

भच्छन—संज्ञा पुं. [सं. भक्षण] भोजन, आहार। उ.—बिधि-बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए—४१७।

भच्छना, भच्छनो क्रि. स. [सं. भक्षण] भक्षण करना।

भच्छि—क्रि. स. [हिं. भच्छना] भक्षण करके, खाकर। उ.—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी—१-१४०।

भछना, भछनो—क्रि. स. [हिं. भच्छना] खाना,।

भछ्यो, भछ्यौ—क्रि. स. [हिं. भच्छना] खाया, भक्षण किया। उ.—कहियत गुन प्रबीन है राधा क्रोधही में बिष भछ्यो—२२५९।

भजक—वि. [सं.] (१) भजन करनेवाला। (२) भाग करनेवाला।

भजत—क्रि. स. [हिं. भजना] (१) भजन करता है, स्मरण करता है, चित्त लगाता है। उ.—(क) सूर कहत जे भजत राम कौं, तिनसौं हरि सौं सदा बनी—१-३९। (२) वासना का भाव मन में लाता है, वासना के भाव से स्मरण करता या ध्यान लगाता है। उ.—पंजा पंच प्रपंच नारि-पर भजत सारि फिरि मारी—१-६०।
क्रि. अ. [हिं. भागना] भागता है, दौड़ता है। उ.—भजत सखनि समेत मोहन देखि ब्याई गाय—४९८।

भजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेवा, पूजा। (२) स्मरण, जप। उ.—स्याम भजन बिनु कौन बड़ाई—१-२४। (३) ऐसा गीत जिसमें देवी-देवता का गुण-गान हो।

भजना, भजनो—क्रि. स. [सं. भजन] (१) सेवा-पूजा

करना। (२) जपना, स्मरण करना। (३) आश्रित होना।

क्रि. अ. [सं. व्रजन, प्रा. वजन] (१) भागजाना। (२) पहुँचना।

भजनानंद—संज्ञा पुं. [सं.] भजन-भाव से प्राप्त होनेवाला आनन्द या सुख।

भजनानंदी—वि. [सं.] सदैव भजन के आनन्द में ही मग्न रहनेवाला।

भजनी, भजनीक—वि. [सं. भजनीय] भजन करने योग्य।

संज्ञा पुं.—भजन करनेवाला। उ.—यह प्रताप दीपक सुनिरंतर, लोक सकल भजनी—२-२८।

भजनीय—वि. [सं.] (१) सेवा-पूजा करने योग्य। (२) भजने योग्य।

भजहु—क्रि. स. [हिं. भजना] भजन करो, स्मरण करो, जपो। उ.—भजहु न मेरे स्याम मुरारी—१-२१२।

भजाइ—क्रि. स. [हिं. भजाना] हटाकर।

प्र० लेत भजाइ—हटा लेता है। उ.—कीर पिंजरै गहत अँगुरी ललन लेत भजाइ—४९८।

भजाना, भजानो—क्रि. अ. [हिं. भजना] भागना।

क्रि. स.—(१) भगाना। (२) खदेड़ना, हटाना।

भजायौ—क्रि. स. [हिं. भजाना] भगाया, दौड़ाया, भटकाया। उ.—अब तौ इन्हें जकरि धरि बाँधौं, इहि सब तुम्हरी गाउँ भजायौ—१०-३४०।

भजि—क्रि. अ. [हिं. भजना = भगना] भागकर।

प्रा०—जैहै भजि—भाग जायगा। उ.—जाकौ सुजस सुनत अरु गावत जैहै पाप-बृंद भजि भरहरि—१-३१२।

भजिऐ—क्रि. स. [हिं. भजना] स्मरण कीजिए, जपिए।

उ.—सब तजि भजिऐ नंदकुमार—१-६७।

भजिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. भजना] भजने की क्रिया या भाव। उ.—जिहिं तन हरि भजिबौ न कियौ। सो तन सूकर-स्वान-मीन ज्यौं, इहिं सुख कहा जियौ—२-१६।

भजियाउर—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाजी+चाउर=चावल] चावल, दही, घी आदि का बना नमकीन भोजन।

भजियै—क्रि. स. [हिं. भजना] भजन कीजिए, जपिए।

उ.—सदा सँघाती श्री जदुराइ। भजियै ताहि सदा लव लाइ—७-२।

भजी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. भजना = भागना] भागी, दौड़ी।

भजे—क्रि. अ. [हिं. भजना = भागना] भागे, दौड़े।

क्रि. स. [हिं. भजना] (१) शरण ली, आश्रित हुए। उ.—(क) जे जन सरन भजे बनवारी। ते-ते राखि लिए जग जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी—१-२२। (ख) बिषयी भजे, बिरक्त न सेए मन धन-धाम धरे—१-१९८। (२) स्मरण किया, जप किया। उ.—(क) पांडव पाँच भजे प्रभु-चरननि, रनहिं जिताए हैं जदुराई—१-२४। (ख) सूर सबै तजि हरि-पद भजे —१-२८८।

भजैं—क्रि. स. [हिं. भजना] स्मरण करें, ध्यान लगायें।

उ.—और सकल तजि मोकौं भजैं—९-५।

क्रि. अ. [हिं. भजना = भगना] भागें, दूर जायें। उ.—(धेनु) बेनु स्रवन सुनि, गोबर्धन तैं, तृन दंतनि धरि चालीं। आईं बेगि सूर के प्रभु पैं, ते क्यौं भजैं जे पाली—६१३।

भजै—क्रि. स. [हिं. भजना] स्मरण करे, जपे। उ.—मन-बच-क्रमजो भजै स्यामकौं, चारि पदारथ देत--१-२९६।

क्रि. अ. [हिं. भजना = भागना] भागती है, शीघ्रता से जाती है। उ.—ज्यौं पति सौं त्रिय रति करै। जैसे सरिता सिंधुहिं भजै—पृ. ३६० (५)।

भजौं—क्रि. स. [हिं. भजना] भजन करूँ, स्मरण करूँ।

उ.—(क) करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ—१-४५। (ख) तुमहिं समान और नहिं दूजो काहि भजौं हौं दीन—१-१११।

भजौ—क्रि. स. [हिं. भजना] स्मरण करो, ध्यान लगाओ।

उ.—दृढ़ बिस्वास भजौ नँदलालहिं—१-७४।

भज्यौ—क्रि. स. [हिं. भजना] भजन किया, जपा, स्मरण किया। उ.—अब हौं माया-हाथ बिकानौ। परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ—१-४७।

क्रि. अ. [हिं. भजना = भागना] भागा, पलायन किया। उ.—नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ, पीठि दई जमराज—१-९६।

भट—संज्ञा पुं. [सं.] योद्धा, वीर। उ.—(क) द्वार-कपाट कोट भट रोके—१०-११। (ख) उठी बहुरि सँभारि भट ज्यौं परम साहस कीन—३४५१।

भटई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाट] (१) भाट का काम, भाव या मजदूरी। (२) कोरी प्रशंसा या चाटुकारी।

भटकत—क्रि. अ. [हिं. भटकना] खोजता-फिरता है, मारा-मारा घूमता है। उ.—भटकत फिरयौ स्वान की नाईं नैंकु जूठ कैं चाइ—१-१५५।

भटकाई, भटकटैया—संज्ञा स्त्री. [सं. कंटकारी] एक काँटेदार झाड़।

भटकना, भटकनो—क्रि. अ. [सं. भ्रम] (१) खोजते फिरना, मारे-मारे घूमना। (२) रास्ता भूलकर घूमना। (३) भ्रम में पड़ना।

भटकाना, भटकानो—क्रि. स. [हिं. भटकना] (१) व्यर्थ मारे-मारे घुमाना-फिराना। (२) भ्रम में डालना।

भटकि—क्रि. अ. [हिं. भटकना] मारे-मारे फिरकर, व्यर्थ इधर-उधर घूमकर। उ.—श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मरयौ—१-२९१।

भटकी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. भटकना] भूली हुई, रास्ता भूल जाने के कारण इधर-उधर घूमती फिरती हुई।

प्र०—जैहैं भटकी—भटक जायंगी, मार्ग भूलकर इधर-उधर फिरने लगेंगी। उ.—अबकैं अपनी हटकि चरावहु, जैहैं भटकी घाली—५०३।

भटके—क्रि. अ. [हिं. भटकना] भ्रम में पड़ गये। उ.—ऊधौ भूलि भले भटके—३१०७।

भटकैं—क्रि. अ. [हिं. भटकना] मारे-मारे या भटका-भटका फिरता हुआ। उ.—जनम सिरानौ अटकैं अटकैं। राजकाज, सुतबित की डोरी, बिन बिवेक फिरयो भटकैं—१-२९२।

भटकै—क्रि. अ. [हिं. भटकना] मारा-मारा फिरता है, व्यर्थ घूमता है। उ.—ऐसो प्रभू छाँड़ि क्यों भटकै, अजहूँ चेति अचेत—१-२९६।

भटकैया—संज्ञा पुं. [हिं. भटकना] (१) भटकावे या भुलावे में डालनेवाला। (२) भटकने या भ्रम में पड़नेवाला।

भटकौंहाँ—वि. [हिं. भटकना+औहाँ] भटकानेवाला।

भटभेरा—संज्ञा पुं. [हिं. भट+भिड़ना] (१) योद्धाओं की भिड़ंत। (२) धक्का, टक्कर। (३) आकस्मिक भेंट।

भटू—संज्ञा स्त्री. [सं. बधू] (१) सखी। (२) स्त्रियों के लिए प्रेम और आदरसूचक एक संबोधन।

भटैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. भटकटैया] भटकटैया।

भट्ट—संज्ञा पुं. [सं. भट] (१) ब्राह्मणों की एक उपाधि। (२) भाट। (३) योद्धा, भट।

भट्टारक—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

वि.—मान्य, माननीय।

भट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. भट्ठा] बहुत बड़ी भट्ठी।

भट्ठी—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्राष्ट्र, प्रा० भट्ठ] विशेष आकार-प्रकार का बड़ा चूल्हा।

भठियारपन—संज्ञा पुं. [हिं. भठियारा+पन] लड़ना, झगड़ना और गाली बकना।

भठियारा—संज्ञा पुं. [हिं. भट्ठी] सराय का प्रबंधक।

भड़ंबा—संज्ञा पुं. [सं. विडंबन] दिखावटी शान।

भड़क—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) ऊपरी चमकदमक। (२) डरने-सहमने का भाव।

भड़कदार—वि. [हिं. भड़क+फा. दार] (१) जिसमें खूब चमक-दमक हो। (२) रोबदार।

भड़कना, भड़कनो—क्रि. अ. [हिं. भड़क] (१) बढ़ना, तेज होना (२) चौंककर पीछे हटना। उत्तेजित होना। (४) शरीर में गर्मी आना।

भड़काना, भड़कानो—क्रि. स. [हिं. भड़कना] (१) बढ़ाना, तेज करना। (२) उत्तेजित करना। (३) डराना, चौकाना। (४) शरीर में गर्मी पहुँचाना।

भड़कीला—वि. [हिं. भड़क] (१) खूब चमक-दमकवाला। (२) जल्दी चौकन्ना हो जाने वाला।

भड़भड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) 'भड़' होने का शब्द। भीड़-भब्बड़ की गड़बड़। (३) व्यर्थ की बातचीत।

भड़भड़ाना, भड़भड़ानो—क्रि. स. [अनु.] 'भड़भड़' शब्द करना।

क्रि. अ.—'भड़भड' शब्द होना।

भड़भाड़िया—वि. [हिं. भड़भड़] व्यर्थ बकनेवाला।

भड़भूँजा—संज्ञा पुं. [हिं. भाड़+भूँजन] भाड़ झोंकनेवाला।

भड़ास—संज्ञा स्त्री. [अनु.] गुप्त क्रोध या असंतोष जो विशेष अवसर पर प्रकट किया जाय।

भड़िहा—संज्ञा पुं. [सं. भांडहर] चोर।
भड़िहाई—क्रि. वि. [हिं. भांडहर] चोरों की तरह लुक छिपकर या आँख बचाकर।
भड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भड़क] भड़काने के लिए दिया गया झूठा बढ़ावा।
भड़ुआ—संज्ञा पुं. [हिं. भांड़] वेश्याओं का दलाल।
भणना—क्रि. अ. [सं. भण] कहना, बोलना।
भणित—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बात, कथा। (२) कविता।
वि.—जो कहा गया हो, कहा हुआ।
भतरौड़—संज्ञा पुं. [हिं. भात] (१) मथुरा-वृन्दावन के बीच एक स्थान जहाँ चौबों की स्त्रियों से भात माँगकर श्रीकृष्ण द्वारा खाये जाने की बात कही जाती है। (२) मंदिर का शिखर।
भतवान—संज्ञा पुं. [हिं. भात+वान] विवाह की एक रीति जिसमें विवाह के एक दिन पूर्व वर और उससे छोटों को कच्ची रसोई खिलायी जाती है।
भतार, भतारी—संज्ञा पुं. [सं. भर्तार] पति।
भतीजा—संज्ञा पुं. [सं. भ्रातृज] भाई का पुत्र।
भत्ता—संज्ञा पुं. [सं. भरण] यात्रा आदि के लिए, वेतन के अतिरिक्त दिया जानेवाला धन।
भद—संज्ञा स्त्री. [हिं. भद्दा] तुच्छ या हास्यास्पद बात या आचरण।
भदई—वि. [हिं. भादों] भादों का, भादों-सम्बन्धी।
भदभद—वि. [अनु.] (१) बहुत मोटा। (२) भद्दा।
भदेस, भदेसिल—वि. [हिं. भद्दा] भोंडा, कुरूप।
भदैला—वि. [हिं. भादों] भादों का, भादों संबंधी।
भदौंह—वि. [हिं. भादों] भादों में होनेवाला।
भद्दा—वि. [अनु. भद] (१) कुरूप, बेडौल, बेढंगा। (२) अनुचित। (३) अश्लील।
भद्दापन—संज्ञा पुं. [हिं. भद्दा+पन] भद्दे होने का भाव।
भद्र—संज्ञा पुं. [सं. भद्राकरण] सिर, दाढ़ी, मूछ आदि का मुंडन। उ.—राम पै भरत चले अतुराइ।....। लीनो हृदय लगाइ सूर-प्रभु, पूछत भद्र भए क्यों भाइ —९-५१।
वि.—[सं.] (१) सभ्य (२) मंगलकारी।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्षेम-कुशल। (२) महादेव। (३) व्रज के चौबीस वनों में एक। (४) खंजन पक्षी।
भद्रकाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा देवी।
भद्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिष्टता, सज्जनता।
भद्रवन—संज्ञा पुं. [सं.] मथुरा के पास का एक वन।
भद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रीकृष्ण की एक पत्नी जो केकयराज की पुत्री थी। उ.—भद्रा ब्याहि आप जब आये, द्वारावती अनंद—सारा० ६५७। (२) आकाश गंगा। (३) द्वितिया, सप्तमी और द्वादशी तिथियों की संज्ञा। (४) गाय। (५) दुर्गा। (६) मंगलकारिणी शक्ति। (७) पृथ्वी। (८) बाधा।
मुहा०—भद्रा उतरना—हानि होना। भद्रा लगाना—बाधा या हानि पहुँचाना।
भद्राकरण—संज्ञा पुं. [सं.] मुंडन।
भद्रासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह मणिजटित सिंहासन जिस पर राज्याभिषेक होता है। (२) योग का एक आसन। (३) सात द्वीपों में एक। उ.—इलावर्त और किंपुरुषा, कुरु और हरिवर्ष केतुमाल। हिरनमै, रमयक, भद्रासन भरतखंड सुखपाल—सारा० ३३।
भद्री—वि. [सं. भद्रिन्] भाग्यवान्।
भनक—संज्ञा स्त्री. [सं. भणन] (१) धीमी ध्वनि। उ.—स्रवन भनक परी ललिता के तान की—१६०९। (२) उड़ती हुई खबर। नंद-भवन भनक सुनी कंस कहि पठायो—२४९६।
भनकना—क्रि. स. [हिं. भनक] बोलना, कहना।
भनना, भननो—क्रि. स. [सं. भणन] कहना।
क्रि. अ.—ध्वनि होना।
भनभनाना, भनभनानो—क्रि. अ. [अनु.] 'भन-भन' शब्द करना।
भनभनाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. भनभन+आहट] भनभनाने का शब्द।
भनित—वि. [सं. भणित] जो कहा गया हो।
संज्ञा स्त्री.—(१) कही हुई बात। (२) कविता।
भनीजना, भनीजनो—क्रि. स. [सं. भणन] कहना, बोलना।
भनै—क्रि. अ. [हिं. भनना] ध्वनि होती है। उ.—जै जै ध्वनि भनै—पृ. ३४५ (३७)।

भभका—संज्ञा पुं. [हिं. भाप] अर्क आदि उतारने का यंत्र मुंह का घड़ा ।

भव्य—वि. [सं. भव्य] (१) सुन्दर, विशाल । (२) शुभ, मंगलकारी । उ.—अतिहिं पुनीत बिष्नु पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुनि चैन । परम पवित्र, मुक्ति की दाता, भागीरथहिं भव्य बर दैन—९-१२ ।

भभक—संज्ञा स्त्री. [अनु. भक] (१) उबाल । (२) तेज गंध ।

भभकत—क्रि. अ. [हिं. भभकना] छटपटाता है, उछलता है । उ.—कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत, मानो मद मतवारो । भभकत, तरफत स्रोनित मैं तन, नाहीं-परत निहारो – ९-१५९ ।

भभकना, भभकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) उबलना । (२) तेज गर्मी से फूटना । (३) तेजी से धधक उठना ।

भभका—संज्ञा पुं. [हिं. भाप] अरक निकालने का घड़ा ।

भभकि—क्रि. अ. [हिं. भभकना] उबलकर, फूटकर । उ.—भभकि कै दंत ते रुधिर धारा चली छींट छबि बसन पर भई भारी—२५९५ ।

भभकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भभक] झूठी धमकी, घुड़की ।

भभरिकै—क्रि. अ. [हिं. भभरना] घबराकर । उ.—सबनि मटुकिया रीतो देखी तरुनी गई भभरिकै—११६८ ।

भभरना, भभरनो—क्रि. अ. [हिं. भय+करना] (१) डरना । (२) घबरा जाना । (३) धोखे में पड़ जाना ।

भभूका—संज्ञा पुं. [हिं. भभक] ज्वाला, लपट ।

वि.—बहुत गहरे लाल रंग का ।

भभूत—संज्ञा स्त्री. [सं. विभूति] (१) देवमूर्ति के सामने जलनेवाली अथवा यज्ञादि की अग्नि की भस्म जो मस्तक, भुजा आदि पर लगायी जाती है । (२) भस्म जो शिव जी शरीर में लगाते हैं ।

भम्भड़—संज्ञा पुं. [हिं. भीड़] (१) भीड़-भाड़ । (२) शोर ।

भयंकर—वि. [सं.] डरावना, भयानक ।

भयंकरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भयानकता, भीषणता ।

भय—संज्ञा पुं. [सं.] डर, भीति ।

मुहा०—भय खाना, खानो–डरना, भयभीत होना ।

क्रि. अ. [हिं. होना] हुआ ।

भयउ—क्रि. अ. [हिं. हुआ] हुआ । उ.—यह सब कलिजुग कौ परभाउ । जो नृप कैं मन भयउ कुभाउ—१-२९० ।

भयकर—वि. [सं.] जिसे देखकर डर लगे ।

भयद—वि. [सं.] डरावना, भयानक ।

भयप्रद—वि. [सं.] जिसे देखकर डर लगे ।

भयभीत, भयभीता—वि. [सं. भयभीत] भयभीत, डरा हुआ । उ.—(क) भारत जुद्ध होइ जब बीता । भयौ जुधिष्ठिर अति भयभीता—१-२६१ । (ख) मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी पयोसार पठाई—९-१२४ ।

भयमोचन—वि. [सं.] डर दूर करनेवाला ।

भयल—वि. [हिं. होना] पूर्वी हिंदी में 'होना' का भूत० ।

भयहरण, भयहरन—वि. [सं. भयहरण] भय या डर दूर करनेवाला ।

भयहारी, भयहारे—वि. [सं. भयहारिन्, हिं. भयहारी] डर छुड़ानेवाला, भय दूर करनेवाला । उ.—गज-चानूर हते, दव नास्यौ, व्याल मथ्यौ, भयहारे १-२७ ।

भया—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक राक्षसी ।

क्रि. अ. [हिं. हुआ] हुआ ।

भयाकुल—वि. [सं.] डर से घबराया हुआ ।

भयातुर—वि. [सं.] डर से घबराया हुआ ।

भयान—वि. [सं. भयानक] भयानक, डरावना । उ.—(क) सुनि कै सिंह भयान अवाज । मारि फलांग चली सो भाज – ५-३ । (ख) तुम बिना सोभा न ज्यौं गृह बिना दीप भयान—३४४७ ।

भयानक—वि. [सं.] डरावना, भयंकर । उ.—(क) भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराऊँ—१-१६४ । (ख) अरी मोहिं भवन भयानक लागै माई स्याम बिना—२५४७ ।

संज्ञा पुं.—साहित्य के नौ रसों में एक जिसमें भीषण दृश्यों का वर्णन होता है ।

भयाना, भयानो—क्रि. अ. [सं. भय+हिं. आना] डरना ।

क्रि. स.—डराना, भयभीत करना ।

भयारा—वि. [सं. भयानक] डरावना, भयंकर ।

भयावन, भयावना—वि. [सं. भय+हिं. आवन] डरावना ।

भयावह—वि. [सं.] डरावना, भयंकर।

भयौ—क्रि. अ. [हिं. हुआ] (१) हुआ, प्रतिष्ठित हुआ, बना। उ.—राखी पैंज भक्त भीषम की, पारथ को सारथी भयौ—१-२६। (२) पैदा हुआ, जन्मा। उ.—ताकैं छौना सुन्दर भयौ—५-३।

भरंत—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रांति] भ्रम, संदेह।

भर—वि. [हिं. भरना] सब, सारा। उ.—अति करुना रघुनाथ गुसाईं जुग भर जात घरी।

क्रि. वि. [हिं. भार] भार या बल से, द्वारा।

संज्ञा पुं.—(१) भार, बोझ। उ.—(क) भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत-समाज—१-२१५। (ख) धरनि सीस धरि सेस गरब धर्‌यौ, इहिं (कालिय नाग) भर अधिक सँहार्‌यौ—५६७। (२) मोटाई, पुष्टता।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) भरण-पोषण करनेवाला। (२) लड़ाई, युद्ध।

भरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. भड़क] (१) चमक-दमक, चमकीलापन। (२) डरने-सहमने का भाव।

भरकना, भरकनो—क्रि. अ. [हिं. भड़कना] (१) तेजी से बल उठना। (२) चौंककर पीछे हटना। (३) उत्तेजित होना। (४) शरीर में कुछ गर्मी आना।

भरकाना, भरकानो—क्रि. स. [हिं. भड़काना] (१) तेजी से बलाना। (२) चौंककर पीछे हटाना। (३) उत्तेजित करना। (४) शरीर में कुछ गर्मी पहुँचाना।

भरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पालन-पोषण। (२) वेतन।

भरणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सत्ताइस नक्षत्रों में दूसरा।

वि.—पालन-पोषण करनेवाली।

भरत—संज्ञा पुं. [सं.] राजा दशरथ के कैकेयी से उत्पन्न पुत्र जो राम से छोटे थे। कैकेयी ने इनके लिए राजा दशरथ से राज्य माँगा और राम को निर्वासित कराया। भरत ने इस कर्म के लिए माता कैकेयी की निंदा की और राम को वापस लौटाने के लिए वे चित्रकूट गये। राम जब लौटने को तैयार न हुए तब वे इनकी पादुकाएँ ले आए और उन्हें ही सिंहासन पर रख कर राम के आने तक अयोध्या का शासन करते रहे। राम के वन से लौटने पर भरत ने राज्य उन्हें सौंप कर अपूर्व त्याग का परिचय दिया। (२) ऋषभ देव के पुत्र जड़ भरत। (३) शकुंतला के पुत्र का नाम; प्रसिद्ध है कि इस देश का नाम 'भारत' इन्हीं के नाम पर पड़ा है। (४) 'नाट्य शास्त्र' के रचयिता भरत मुनि।

संज्ञा पुं. [सं. भरद्वाज] 'लवा' नामक पक्षी।

क्रि. स. [हिं. भरना] (१) लादता है (लादकर) ढोता है। उ.—अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत—१-५५। (२) पेट पालता या भरता है। उ.—जीव मारि कै उदर भरत हैं—२-१४।

मुहा० - दुख भरत—दुख भोगता है, कष्ट सहता है। उ.—(क) मेरे हित इतनो दुख भरत—१-२२६। (ख) हम तौ उन बिनु बहु दुख भरत—१० उ. ३७। नैन भरत पानी—आँसू आ जाते हैं उ.—मेरे नैन भरत है पानी—२६४९। हियो भरत—हृदय भर-भर आता है। उ.—मोसौं कहत होहिं जिनि ऐसी नैन ढरत नहिं भरत हियो—२६४७।

भरतखंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पृथ्वी के नौ खंडों में से एक जिसका राजा भरत था। उ.—भरत सो भरत-खंड को राव—५-३।

भरता—संज्ञा पुं. [देश०] बैंगन आदि की ऐसी तरकारी जो अच्छी तरह भूनकर और नमक-मिर्च-खटाई डालकर बनायी जाती है। उ.—भरता भँटा खटाई दीनी—२३२१।

संज्ञा पुं. [सं. भर्तृ] (१) स्वामी। (२) पति।

भरतार—संज्ञा पुं. [सं. भर्त्ता] (१) पति। उ.—(क) काम अति तनु दहत, दीजै सूर हरि भरतार—७६७। (ख) तजि भरतार और जो भजिए सो कुलीन नहि होई—पृ. ३४१ (३)। (२) स्वामी, मालिक।

भरती—संज्ञा स्त्री. [हिं. भरना] (१) भरे जाने का भाव।

मुहा०—भरती करना—(२) रखना या सम्मिलित करना। (२) केवल खाना-पुरी के लिए रखना।

(२) प्रविष्ट होने या प्रवेश पाने का भाव।

भरतौ—क्रि. स. [हिं. भरना] किसी रिक्त वस्तु या पात्र में दूसरा पदार्थ डालकर उसे पूर्ण करता। उ.—पर-तिय-रति अभिलाष निसा-दिन मन-पिटरो लै भरतौ—१-२०३।

भरत्थ, भरथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीराम के छोटे भाई भरत। (२) जड़ भरत। (३) शकुंतला के पुत्र का नाम। (४) नाट्य शास्त्र के रचयिता भरतमुनि।

भरथरी—संज्ञा पुं. [सं. भर्तृहरी] राजा भर्तृहरि।

भरद्वाज—संज्ञा पुं. [सं.] उतथ्य ऋषि के भाई बृहस्पति का अपनी भावज ममता के गर्भ से उत्पन्न किया हुआ पुत्र जो आगे चलकर गोत्र-प्रवर्तक हुआ। (२) भरद्वाज ऋषि के वंशज।

भरन—संज्ञा पुं. [सं. भरण] पालन, पोषण। उ.—प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ। पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ—१-३२।

संज्ञा पुं. [हिं. भरना] भरने की क्रिया या भाव।

मुहा०—उदर भरन—पेट पालने के लिए। उ.—भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत। मलिन मंदमति डोलत घर-घर उदर भरन कैं हेत—२-१५।

भरना, भरनो—क्रि. स. [सं. भरण] (१) खाली पात्र को कोई चीज डालकर पूर्ण करना। (२) उँडेलना, डालना। (३) स्थान को खाली न छोड़ना। (४) दो चीजों के बीच की दरज आदि बंद करना। (५) (बंदूक आदि में) गोली डालना। (६) रिक्त पद की पूर्ति करना। (७) हानि पूरी करना, चुकाना।

मुहा०—(किसी का) घर भरना, भरनो—(किसी को) खूब धन देना।

(८) (किसी के मन में) बुरी धारणा जमाना। (९) बिताना, व्यतीत करना। (१०) निबाहना। (११) काटना, डसना। (१२) सहन करना। (१३) (पशु पर) बोझ लादना। (१४) (शरीर पर) पोतना।

क्रि. अ.—(१) रिक्त स्थान की पूर्ति होना। (२) उँडेला जाना। (३) रिक्त पद की पूर्ति होना। (४) बीच का अवकाश बंद होना। (५) गोली आदि डाली जाना। (६) हानि पूरी होना। (७) क्रोध या अप्रसन्नता होना। (८) बोझ आदि लदना। (९) परिश्रम से किसी अंग का दर्द करने लगना। (१०) घाव का ठीक होना। (११) शरीर का हृष्ट-पुष्ट होना। (१२) कमी या कसर न रह जाना।

संज्ञा पुं.—भरने की क्रिया या भाव।

भरनि, भरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भरना] भरने का भाव।

मुहा०—अंकम भरनी—गले या छाती से लगाने का भाव या कार्य। उ.—उमँगि उमँगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी—१०-४४।

संज्ञा स्त्री. [सं. भरण] पहनावा, पोशाक।

भरपाई—क्रि. वि. [हिं. भरना+पाना] भली भाँति।

संज्ञा स्त्री.—बाकी (धन आदि) पा जाने का भाव।

भरपूर-वि. [हिं. भरना+पूरना] पूरा, जिसमें कसर न हो।

क्रि. वि.—अच्छी तरह, भली भाँति।

भरभराना, भरभरानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) रोंआँ खड़ा होना। (२) घबराना, व्याकुल होना।

भरभेंटा—संज्ञा पुं. [हिं. भर+भेंटना] मुठभेड़।

भरम—संज्ञा पुं. [सं. भ्रम] (१) भ्रम, भ्रांति, धोखा। उ.—(क) भरम ही बलवंत सबमैं ईसहू कैं भाइ—१-७०। (ख) बदन उघारि दिखायौ अपनौ नाटक की परिपाटी। बड़ी बार भई, लोचन उघरे भरम-जवनिका फाटी—१०-२५४। (२) भेद, रहस्य।

मुहा०—भरम गँवाना (बिगाड़ना)—भेद खोलना।

भरमत—क्रि. अ. [हिं भरमना] (१) मारा मारा फिरता है, भटका है। उ.—(क) पंचनि के हित-कारन यह मन जहँ तहँ भरमत भाग्यौ—१-७३। (ख) जनम सिरानौ ऐसैं ऐसैं। कै घर घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसे—१-२९३। (२) घूमता-फिरता है। उ.—बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर फनपति सिर न डुलावै—१-१६३।

भरमना, भरमनो—क्रि. अ. [सं. भ्रमण] (१) घूमना-फिरना। (२) मारा-मारा फिरना। (३) धोखे में पड़ना।

संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रम] (१) भूल। (२) भ्रम, भ्रांति।

भरमाइ—क्रि. अ. [हिं. भरमना] भटकती है, घूमती-फिरती है। उ.—प्रात से सिर धरे मटुकी नंद गृह भरमाइ—१२११।

भरमाई—क्रि. अ. [हिं. भरमना] (१) मारा-मारा फिरता है, भटकता है। उ.—काया हरि कैं काम न आई। ....। जब लगि स्याम-अंग नहिं परसत, अंधे ज्यौं भरमाई—१-२९५। (२) भ्रम में पड़ गयी। उ.—(क) राधा हरि के रंगहि राँची, जननी रही

जिये भरमाई—१२५२। (ख) सूरदास राधा की बानी सुनत सखी भ्रमाई—१२७५। (३) चकित हुई।

क्रि. स. [हिं. भरमाना] (१) भ्रम या चक्कर में डाल दिया। उ.—(क) एकनि कह्यौ, याहि मत मारौ। याकौ सुन्दर रूप निहारौ। केतिक अमृत पिए यह भाई। हरि मति तिनकी यौं भरमाई—७-७। (ख) कोऊ निरखि रही चारु लोचन निमिष भरमाई—१३३८। (२) भटकाया, व्यर्थ मारे-मारे फिराया।

भरमाए—क्रि. स. [हिं. भरमाना] भ्रम या आश्चर्य में डाल दिया। उ.—अंकुस-कुलिस-वज्र-ध्वज परगट, तरुनी-मन भरमाए—६३१।

भरमात—क्रि. अ. [हिं. भरमाना] हैरान होता है, अचम्भे में आता है। उ.—एक अंग को पार न पावति चकित होइ भरमात—१४२४।

भरमाना, भरमानो—क्रि. स. [हिं. भरमना] भ्रम में डालना।

भरमान्यौ—क्रि. स. [हिं. भरमाना] भटकाता फिरा, मारे मारे घूमा। उ.—माधौ जू मोहि काहे की लाज। जन्म जन्म योंहीं भरमान्यौ अभिमानी बेकाज—१-१५०।

भरमाया—क्रि. स. [हिं. भरमाना] भ्रम या चक्कर में डाला, बहकाया। उ.—बिदुर कह्यौ, देखौ हरि-माया। जिन यह सकल लोक भरमाया—१-२८४।

भरमार—संज्ञा स्त्री. [हिं. भरना+मार=अधिकता] बहुत अधिकता।

भरमावत—क्रि. स. [हिं. भरमाना] भ्रम में डालते हो, बहकाते हो। उ.—तुम नारायन भक्त कहावत। केहिं कारन हमकौं भरमावत—४-९।

भरमावहु—क्रि. अ. [हिं. भरमाना] हैरान होते हो। उ.—आन जन्तु-धुनि सुनि कत डरपत, मो भुज कंठ लगावहु। जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौं भरमावहु—१०-१७६।

भरमावै—क्रि. स. [हिं. भरमाना] भ्रम में डालती है, चक्कर में डालती है, बहकाती है। उ.—माया नटी लकुटि कर लीन्हें, कोटिक नाच नचावै।······। तुमसौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै—१-४२।

भरमाहीं—क्रि. अ. [हिं. भरमाना] चकित या हैरान होती हैं। उ.—सूर स्याम छबि निरखि कै जुवती भरमाहीं—पृ. ३१९ (८५)।

भरमि—क्रि. स. [हिं. भरमना] भटककर, मारे-मारे फिर कर। उ.—लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिरि वाहीं मन दीनौ—१-६५।

भरमित—वि. [हिं. भरमना] चकित, हैरान, अचंभित। उ.—लखि लोचन, सोचै हनुमान। चहुँ दिसि लंक-दुर्ग दानवदल, कैसैं पाऊं जान।······। भरमित भयौ देखि मारुत-सुत दियौ महाबल ईस—९-७५।

भरमिहौ—क्रि. अ. [हिं. भरमना] मारी-मारी फिरोगी, भटकोगी। उ.—तुम जानकी, जनकपुर जाहु। कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु—९-३४।

भरमे—क्रि. अ. [हिं. भरमना] भ्रम में पड़ गये। उ.—सोच मुख देखि अक्रूर भरमे—२४६६।

भरमौंहाँ—वि. [सं. भ्रम] भ्रम उत्पन्न करनेवाला।

वि. [सं. भ्रमण] चक्कर खिलानेवाला।

भरम्यौ—क्रि. अ. [हिं. भरमना] मारा-मारा फिरा, फटका। उ.—(क) फिरि-फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौ, अब सुख-सरन पर्यौ—१-१५६। (ख) सुन मैया मैं बृथा भरम्यो बन जो देखौ नैननि भरि जोइ—१५७७।

भरराना, भररानो—क्रि. अ. [अनु०] (१) 'भरर' शब्द के साथ गिरना। (२) टूट पड़ना, पिल पड़ना।

क्रि. स.—(१) 'भरर' शब्द के साथ गिराना। (२) पिल पड़ने या टूट पड़ने को प्रवृत्त करना।

भरवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भरवाना] भरवाने की क्रिया।

भरवाना, भरवानो—क्रि. स. [हिं. भरना] भरने का काम कराना, भरने को प्रवृत्त करना।

भरसक—क्रि. वि. [हिं. भर+सक=शक्ति] यथाशक्ति।

भरसन—संज्ञा स्त्री. [सं. भर्त्सना] डाँट-फटकार।

भरहरना, भरहरनो—क्रि. अ. [हिं. भरभराना] घबराना, व्याकुल होना।

भरहराना,भरहरानो—क्रि. अ. [हिं. भहराना] (१) टूट पड़ना। (२) एकाएक गिरना। (३) फिसल पड़ना।

भरहरि—क्रि. अ. [हिं. भरभराना (अनु.)] व्याकुल होकर,

घबराकर। उ.—जाको सुजस सुनत अरु गावत, जैहै पाप-बृंद भजि भरहरि—१-३१२।

भरांति—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रांति] भ्रम, भ्रांति।

भराइ—क्रि. स. [हिं. भराना] भराकर।

प्र०—लेत भराइ—भर या भरा लेता है। उ.—सुभग कर आनन समीपै मुरलिका इहि भाइ। मनु उभै अंभोज-भाजन लेत सुधा भराइ—६२७।

भराई—क्रि. अ. [हिं. भरना] भर ली, भरी।

प्र०—जाति भराई—भरी जाती है। उ.—बेगिहिं नार छेदि बालक की, जाति बयारि भराई—१०-१६।

संज्ञा स्त्री.—भरने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

भराए—क्रि. स. [हिं. भराना] (१) सामग्री रखवायी। उ.—आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन। मनि कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन—१०-८९। (२) कमी पूरी करेंगे। उ.—सुनहु सूर कछु मोल लेहिंगे, कछु इक दान भराए—११०९।

भराना, भरानो—क्रि. स. [हिं. भरना] (१) रिक्त पात्र को किसी वस्तु से भरने को प्रवृत्त करना। (२) उलटाना, ढलवाना। (३) खाली स्थान को पूरा कराना। (४) करज आदि भरने को प्रवृत्त करना। (५) बंदूक आदि में गोली डलवाना। (६) पद पर नियुक्त कराना। (७) हानि पूरी कराना। (८) बुरी बात मन में बैठाना (९) निबाह कराना। (१०) डसवाना, कटवाना। (११) झेलने को प्रवृत्त करना। (१२) बोझ लदवाना। (१) शरीर में पुतवाना।

भरापूरा—वि. [हिं. भरना+पूरना] बहुत सम्पन्न।

भराव—संज्ञा पुं. [हिं. भरना] (१) भरने का भाव। (२) भरने का अवकाश। (३) भरी हुई वस्तु आदि।

भरावन—संज्ञा पुं. [हिं. भरना+आवन] भर जाने की क्रिया या भाव। उ.—ब्रह्मादिक, सनकादिक, गगन भरावन रे—१०-२८।

भरावहु—क्रि. स. [हिं. भरावना] भरने को प्रवृत्त करो। उ.—बाँधो बंदनवार मनोहर कनक कलस भरि नीर भरावहु—१० उ० २३।

भरि—क्रि. स. [हिं. भरना] (१) लगाकर, (गोद में) लेकर, आलिंगन करके। उ.—पुत्र-कबंध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर—१-२९। (२) हानि पूरी करके। उ.—अब दिन को भरि लेहुँ आजु ही तब छाँड़ौं मैं तुमको—१०८९।

भरित—वि. [सं.] (१) भरा हुआ। (२) पाला-पोसा हुआ।

भरिपूरि—वि. स्त्री. [हिं. भरपूर] खूब भरी हुई। उ.—सिंह आगैं, सेष पाछैं, नदी भइ भरिपूरि १०-५।

भरियत—क्रि. अ. [हिं. भरना] भर जाती है, जल-मग्न हो जाती है। उ.—स्वाति बिना ऊसर सब भरियत ग्रीव रंध्र मत कीन्हों—३०३४।

भरिया—वि. [हिं. भरना] (१) भरे हुए, युक्त, पूर्ण, मग्न, लीन। उ.—क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-उर स्यामा-स्याम उमँगि रसभरिया—६८८। (२) पूरा करनेवाला। (३) ऋण चुकानेवाला।

संज्ञा पुं.—बरतन ढालनेवाला।

भरिहैं—क्रि. अ. [हिं. भरना] (१) बीतेंगे, बीत सकेंगे, बिताये जा सकेंगे। उ.—कैसे कै भरिहैं री दिन सावन के—२८३०। (२) सहन होगी, सही जा सकेगी। उ.—अब यह व्यथा कौन बिधि भरिहैं कोऊ देइ बताइ—३११३।

भरिहौं—क्रि. स. [हिं. भरना] वसूल कर लूँगा। उ.—चोरी जाति बेंचि दान सब दिन को भरिहौं—१११६।

भरीं—वि. [हिं. भरना] पूर्ण, युक्त। उ.—पिय पहिलैं पहुँची जाइ अति आनन्द भरीं—१०-२४।

भरी—वि. [हिं. भरना] युक्त, पूर्ण, सहित। उ.—जिहिं जिहिं जोनि भ्रम्यौ संकट बस, सोइ सोइ दुखनि भरी—१-७१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भर] दस माशे के बराबर तौल।

भरीजै—क्रि. स. [हिं. भरना] भरिए, किसी पदार्थ को रिक्त स्थान में डालकर उसको पूर्ण कीजिए।

मुहा०—उदर भरीजै—पेट पालिए। उ.—ऐसैं बसिए ब्रज की बीथिनि। ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजै सीथिनि—१०-४९०।

भरु—संज्ञा पुं. [सं. भार] बोझ, बोझा, भार। उ.—इहिं भरु अधिक सह्यौ अपनैं सिर अमित अंडमय देष—५७०।

भरुआ—संज्ञा पुं. [हिं. भड़ आ] वेश्या का दलाल।

भरुका—संज्ञा पुं. [हिं. भरना] कुल्हड़, चुक्कड़।

भरुहाए—क्रि. स. [हिं. भरुहाना] भ्रम में डाला है, बहकाया है। उ.—तुमको नंद महर भरुहाए। माता गर्भ नहीं तुम उपजे तौ कहौ कहाँ ते आए—१७०२।

भरुहाना, भरुहानो—क्रि. अ. [हिं. भार+होना] घमंड करना, गर्व में चूर होना।

क्रि. स.[हिं. भ्रम](१) बहकाना, भ्रम में डालना। (२) उत्तेजित करना, बढ़ावा देना।

भरुहाने—क्रि. अ. [हिं. भरुहाना] घमंड में चूर होकर, अभिमान में भरकर। उ.—अब वै भरुहाने फिरैं कहुँ डरत न माई। सूरज प्रभु मुँह पाइ कै भए ढीठ बजाई—पृ. ३२३ (२०)।

भरुहावत—क्रि. स. [हिं. भरुहाना] भ्रम में डालते हैं, बहकाते हैं। उ.—अपने हैं ताते यह कहियत स्याम इनहिं भरुहावत हैं—पृ. ३३० (९३)।

भरे—वि. [हिं. भरना] युक्त, पूर्ण, सहित।

मुहा०—रंग भरे—प्रेम, विभोर, उन्मत्त। उ.—आजु नँद-नँदन रंग भरे। बिबि लोचन सुबिसाल दुहुँनि के चितवत चित्त हरे—६८९।

(२) कुल, पूरा, सब। उ.—पलक भरे की ओट न सहती अब लागे दिन जान—२५४७।

संज्ञा पुं.—भरापुरा स्थान। उ.—जित देखौं मन भयौ तितहिं को मनो भरे को चोर री—१०-१३३।

भरै—क्रि. स. [हिं. भरना] (१) रिक्त स्थान या पात्र को पूर्ण अथवा अंशत: भरता है। उ.—(क) अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै। (ख) रीतै भरै, भरैं पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै। ········। बागर तैं सागर करि डारै, चहुँ दिसि नीर भरै—१-१०५।

मुहा०—अंग भरै—गोद में लेती है। उ.—मुख के रेनु झारि अंचल सौं जसुमति अंग भरै—२८०३।

भरैया—वि. [हिं. भरण] पालन करनेवाला।

वि. [हिं. भरना] भरनेवाला।

भरोइ—वि. [हिं. भरा] युक्त, सहित। उ.—कन्हैया हालरो हलरोइ। हौं बारी तव इंदु-बदन पर, अति छबि अलग भरोइ—१०-५६।

भरोसा—संज्ञा पुं. [सं. भर=भार+आशा] (१) आसरा। (२) सहारा। (३) आशा। (४) दृढ़ विश्वास।

भरोसी—वि. [हिं. भरोसा] (१) आसरा रखनेवाला। (२) सहारे रहनेवाला। (३) आशा रखनेवाला। (४) विश्वास करने योग्य।

भरोसैं—संज्ञा पुं. [हिं. भरोसा] (१) आश्रय, आसरा। (२) सहारा, अवलंब। उ.—आज हौं एक-एक करि टरिहौं। कै तुमहीं कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं—१-१३४।

भरोसौ—संज्ञा पुं. [हिं. भरोसा] (१) सहारा, अवलंब। उ.—प्रभु तेरो बचन भरोसौ साँचौ। पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ—१-३२। (२) दृढ़ विश्वास। उ.—तातैं तुम्हरौ भरोसौ आवै। दीनानाथ पतित-पावन, जस बेद-उपनिषद गावै—१-१२२।

भरौं—क्रि. स. [हिं. भरना] संपूर्ण कर दूँ, खाली न रहने दूँ। उ.—कालि्ह जाइ अस उद्यम करौं। तेरे सब भंडारनि भरौं—४-१२।

भरौ—वि. [हिं. भरना] सारे शरीर में लगा हुआ, पुता हुआ, सना हुआ। उ.—धोयो चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहिं मानौ—१-१९४।

भर्ग—संज्ञा पुं. [सं. भर्ग्य] शिव, शंकर।

भर्त्ता, भर्त्तार—संज्ञा पुं.[सं. भर्तृ] (१) स्वामी। (२) पति।

भर्तृहरि—संज्ञा पुं. [सं.] उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के छोटे भाई जो पत्नी से अत्यधिक प्रेम करते थे; परन्तु एक बार उसकी चरित्रहीनता से खिन्न होकर विरक्त हो गये। ये प्रसिद्ध वैयाकरण और कवि थे।

भर्त्सन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) निंदा। (२) डाँट-फटकार।

भर्म—संज्ञा पुं. [सं. भ्रम] भ्रम, भ्रांति। उ.—नारद मन की भर्म तोहिं यतनो भरमायो—३०४७।

भर्मन—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमण] घूमना-फिरना।

भर्यौ—क्रि. सं. [हिं. भरना] भरा।

प्र०—अंकम भर्यौ—छाती से लगाया। उ.—पुनि माता के पायनि पर्यौ। माता ध्रुव कौं अंकम भर्यौ—४-९।

भर्राना, भर्रानो—क्रि. अ. [अनु.] 'भर्र' शब्द होना।

भर्सन—संज्ञा स्त्री. [सं. भर्त्सन] (१) निंदा। (२) फटकार।

भल—वि. [हिं. भला] भला, श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—कुंती प्रान तजे धरि ध्यान । जीवन-मरन उनहिं भल जान —१-२८८ ।
भलपति—संज्ञा पुं. [हिं. भाला+सं. पति] भाला रखनेवाला ; वह जिसके पास भाला हो ।
भलमनसाहत, भलमनसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भला+मनुष्य] सज्जनता ।
भलहिं—क्रि. वि. [हिं. भला] भली भाँति ।
भला—वि. [सं. भद्र] (१) उत्तम, अच्छा । (२) बढ़िया ।
संज्ञा पुं.—(१) कुशल, भलाई । (२) लाभ ।
अव्य.—(१) खैर, अस्तु । (२) 'नहीं' सूचक अव्यय ।
भलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भला+ई] (१) अच्छाई, अच्छी बात । उ.—(क) तिन कह्यौ, पा मैं एक भलाई । तुम सौं कहौं, सुनौ चित लाई—१-२९० । (ख) की गोकुल ते गमन कियौ तुम इन बातन है नहीं भलाई—पृ. ३४० (९७) । (२) उपकार । (३) सौभाग्य ।
भलापन—संज्ञा पुं. [हिं. भला] भले होने का भाव ।
भले—क्रि. वि. [हिं. भला] भली भाँति, अच्छी तरह ।
अव्य.—खूब, वाह ।
भलेरा—संज्ञा पुं. [हिं. भला] (१) कुशल । (२) लाभ ।
भलैं—अव्य. [हिं. भला] खूब, वाह । उ.—सूरदास प्रभु भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते जी कैं—१०-२८७ ।
भलौ—वि. [हिं. भला] भला, उत्तम, श्रेष्ठ ।
संज्ञा पुं. (१) भली बात, उत्तम कार्य, श्रेष्ठ कर्म । उ.—जहाँ गयौ तहँ भलौ न भावत, सब कोऊ सकुचानौ—१-१०२ । (२) कल्याण, कुशल, भलाई । उ.—ऐसौ को ठाकुर, जन-कारन दुख सहि, भलौ मनावै—१-१२२ ।
भल्ल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वध, हत्या । (२) भाला ।
भवँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. भौंह] भौंह ।
भवंग—संज्ञा पुं. [सं. भुजंग] साँप, सर्प ।
भवँर—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर] भौंरा ।
भवंत—वि. [सं. भवत्] आप लोगों का ।
भव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संसार, जगत । उ.—यहै जिय जानि कै अंध भव त्रास तैं सूर कामी-कुटिल सरन आयौ—१-५ । (२) संसार का दुख, जन्म-मरण का दुख । उ.—कमलनयन मकराकृति कुंडल देखत ही भव भागै । (३) उत्पत्ति, जन्म । (४) कारण । (५) कामदेव । (६) शिव ।
संज्ञा पुं. [सं. भय] डर, भय ।
वि.—(१) कल्याण-कारी । (२) जन्मा हुआ ।
भवचन्द—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी का धनुष, पिनाक ।
भवदीय—सर्व. [सं.] आपका ।
भवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर, मकान । उ.—भवन सँवारि, नारि रस लोभ्यौ, सुत, वाहन, जन, भ्रात—१-२१६ । (२) महल ।
संज्ञा पुं. [सं. भुवन] जगत, संसार ।
भवना, भवनौ—क्रि. अ. [सं. भ्रमण] घूमना-फिरना ।
भवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. भवन] गृहिणी, गृहस्वामिनी ।
भवबंधन—संज्ञा पुं. [सं.] सांसारिक माया-मोह के कष्ट ।
भवभंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परमेश्वर, (२) काल ।
भवभय—संज्ञा पुं. [सं.] जन्म-मृत्यु का भय ।
भवभामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती, भवानी ।
भवभार—संज्ञा पुं. [सं.] सांसारिक दुख और कष्ट, जन्म-मरण के कष्ट । उ.—सूर हरि कौ सुजस गावौ जाहि मिटि भव-भार—१-२९४ ।
भवभूष, भवभूषण—संज्ञा पुं. [सं.] संसार को भूषित करनेवाले (परमेश्वर) ।
भवमोचन—वि. [सं.] सांसारिक बंधनों से छुड़ानेवाले (परमेश्वर) ।
भवविलास—संज्ञा पुं. [सं.] सांसारिक सुख जो अज्ञान और माया-जन्य होते हैं ।
भवसंभव—वि. [सं.] संसार में होनेवाला ।
भवाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. भवना] भौंरा, चक्कर ।
भवाँना—क्रि. स. [सं. भ्रमण] घुमाना, चक्कर खिलाना ।
भवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती, भवानी ।
भवानी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिव-पत्नी पार्वती ।
भवितव्य—वि. [सं.] अवश्य होनेवाला ।
भवितव्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) होनी । (२) भाग्य ।
भविष, भविष्य, भविष्यत्—वि. [सं. भविष्यत्, हिं. भविष्य] आनेवाला काल या समय ।

भविष्यद्वक्ता—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भविष्यवाणी करनेवाला। (२) ज्योतिषी।

भविष्यद्वाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भविष्य में होनेवाली बात जो पहले से ही बता दी जाय।

भवेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संसार का स्वामी। (२) शिव।

भव्य—वि. [सं.] (१) सुन्दर, शानदार। (२) मंगलसूचक। (३) भविष्य में होनेवाला।

भव्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुन्दरता, शोभा।

भष—संज्ञा पुं. [सं. भक्ष्य] आहार, भोजन। उ.—(क) सुंदर स्याम गही कबरी कर, मुक्तामाल गही बलबीर। सूरज भष लैबे अप अपनौ, मानहुं लेत निबेरे सीर—१०-१६१। (ख) सिंह भष तजि चरत तिनुका सुनी बात नई—३१३१।

भषना, भषनौ—क्रि. स. [सं. भक्षण] भोजन करना।

भसम—संज्ञा पुं. [सं. भस्म] (१) राख। (२) चिता की राख। (३) अग्निहोत्र आदि की राख।

भसान—संज्ञा पुं. [बं. भसाना] पूजा के उपरांत मूर्ति को जल में प्रवाहित करने की क्रिया।

भसाना, भसानौ—क्रि. स. [बं.] (१) पानी पर तैराना। (२) जल में प्रवाहित करना।

भसिंड, भसिंडा, भसींड, भसींडा—संज्ञा स्त्री. [देश.] कमल की जड़।

भसुंड—संज्ञा पुं. [सं. भुशुंड] हाथी, गज।

भस्म—संज्ञा पुं. [सं. भस्मन्] (१) अग्निहोत्र की राख जो पवित्र मानी जाती है और जिसे शिव-भक्त मस्तक या शरीर में अथवा साधु सारे शरीर में लगाते हैं। उ.—कहा स्नान कियैं तीरथ के, अंग भस्म, जट-जूटै २-१९। (२) राख। (३) चिता की राख।

वि.—जला हुआ, जल कर भस्म हुआ। उ.—कालयवन मुचुंकुद सं हरि भस्म करायौ—१०-उ. ३।

भस्मासुर—संज्ञा पुं. [सं.] 'वृकासुर' नामक दैत्य जिसे शिव जी ने वरदान दिया था कि तू जिसके सर पर हाथ रख देगा, वह भस्म हो जायगा। पार्वती जी पर मुग्ध होकर जब भस्मासुर शिव जी के ही सर पर हाथ रखने बढ़ा तब वे भागे और विष्णु ने चतुरता से उसी के सर पर हाथ रखवाकर उसी को भस्म करा दिया।

भहराइ, भहराई—क्रि. अ. [अनु.] झोंके के साथ गिरकर। उ.—(क) परि कबंध रचनि तैं उठत मनौ झर जागि—९-१५८। (ख) त्राहि त्राहि करि नंद पुकारत देखत ठौर गिरे भहराई—५४४।

भहरात—क्रि. वि. [हिं. भहराना] झोंके के साथ। उ.—गिर्‌यौ भहरात सकटा सँहार्‌यौ—१०-६२।

भहराना, भहरानौ—क्रि. अ. [अनु.] (१) टूट पड़ना। (२) झोंके के साथ गिरना। (३) फिसल पड़ना।

भहूँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. भौंह] भौंह।

भाँई—संज्ञा पुं. [हिं. भाना] खरादनेवाला।

भाँउ—संज्ञा पुं. [सं. भाव] अभिप्राय।

भाँउर, भाँउरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँवर] विवाह के समय वर-वधू द्वारा अग्नि की परिक्रमा।

भाँग—संज्ञा स्त्री. [सं. भृंग] भंग, बिजया।

मुहा०—भाँग खाना, खानो खा जाना, पी जाना, पीना—पागलपन की बातें या काम करना। घर में भूँजी भाँग न होना—बहुत दरिद्र होना।

भाँगना, भाँगनौ—क्रि. स. [हिं. भंग] तोड़ना।

क्रि. अ.—टूटना टूट जाना।

भाँज—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँजना] भाँजने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

भाँजना, भाँजनौ—क्रि. स. [सं. भंजन] (१) तह करके मोड़ना। (२) मुग्दर आदि घुमाना। (३) कई लड़ों को बटना। (४) तोड़ना-फोड़ना।

भाँजा—संज्ञा पुं. [हिं. भानजा] बहन का लड़का।

भाँजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँजना] बाधा डालनेवाली बात।

भांजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भांजा] बहन की लड़की।

भाँजि—क्रि. स. [हिं. भाँजना] तोड़कर, फोड़कर। उ.—अब कैसैं जैयतु अपनैं बल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै—१०-२८७।

भाँट—संज्ञा पुं. [हिं. भाट] भाट, चारण। उ.—मागध, सूत, भाँट धन लेत जुरावन रे—१०-२८।

भाँटा—संज्ञा पुं. [हिं. भंटा] बैंगन।

भाँड़—संज्ञा पुं. [सं. भंड] (१) बहुत हँसी-मजाक करनेवाला। (२) स्वाँग भरकर नाचने-गानेवाला। (३)

हँसी-मजाक। (४) बेहया या निर्लज्ज पुरुष। (५) नाश, बरबादी।

संज्ञा पुं. [हिं. भाँड़ा] (१) बरतन-भाँड़ा। उ.—फोरि भाँड़ दधि-माखन खायौ—१०-३१८। (२) भंडाफोड़। (३) उपद्रव, उत्पात।

भांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बरतन-भाँड़ा। (२) व्यापार की वस्तुएँ।

भाँडना, भाँडनो—क्रि. अ. [सं. भंड] मारे-मारे घूमना।

क्रि. स.—(१) निंदा करते फिरना। (२) नष्ट-भ्रष्ट करना, तोड़ना-फोड़ना।

भाँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. भाण्ड] बड़ा बरतन।

भांडागार—संज्ञा पुं. [सं.] भंडार, कोष।

भांडार—संज्ञा पुं. [सं. भांडागार] (१) स्थान जहाँ बहुत सी चीजें रखी जायँ। (२) वह जहाँ एक सी अनेक बातें या चीजें हों। (३) अनाज या सामान रखने का स्थान। (४) कोष।

भांडारिक—संज्ञा. पुं. [हिं. भांडार] भंडार का अध्यक्ष, भंडारी।

भाँड़े—संज्ञा पुं. [हिं. भाँड़ा] बड़े बरतन।

मुहा०—भांड़े में जी (प्राण) देना—किसी के प्रति आसक्ति या प्रेम होना। भाँड़े भरना—पछताना। भांड़े भरति—पछताती है। उ.—तब तू मारिबोई करति। रिसनि आगे कहि जो आवत अब लै भांड़े भरति—२६७९।

भाँड़ौ—संज्ञा पुं. [हिं. भाँड़ा] बड़ा बरतन।

मुहा०—भरि भाँड़ौ—बहुत अधिक। उ.—बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हे भरि भाँड़ौ—१-१४६।

भाँत, भाँति, भाँती, भाँते—संज्ञा स्त्री. [सं. भेद, हिं. भांति] तरह, प्रकार, रीति। उ.—(क) कौन भांति हरि, कृपा तुम्हारी, सो स्वामी समुझी न परति—१-११५। (ख) पय पीवत पूतना निपाती, तृनावर्त इहिं भाँत—५८८। (ग) द्रुम फूले वन अनगन भाँती -पृ. ३४८ (५)। (घ) सारँगरिपु-सुत-सुहृदपति बिना दुख पावति बहु भाँते—३४६१।

मुहा०—भाँति-भाँति के—अनेक प्रकार से।

भाँपना, भाँपनो—क्रि. स. [देश.] ताड़ जाना, पहचान लेना, देखकर समझ जाना।

भाँयँ—संज्ञा पुं. [अनु.] सन्नाटे का शब्द।

यौ०—भाँयँ भाँयँ—सन्नाटे का शब्द।

भाँरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाँवर] विवाह के समय वर-वधू द्वारा की जानेवाली अग्नि की परिक्रमा।

भाँवता—वि. [हिं. भावता] भला लगनेवाला।

संज्ञा पुं.—प्रियपात्र, प्रियतम।

भाँवना, भाँवनो—क्रि. स. [सं. भ्रमण] (१) घुमावना। (२) गढ़ना, गढ़कर सुन्दर बनाना।

भाँवर, भाँवरि, भाँवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रमण, हिं. भाँवर] (१) परिक्रमा करना। (२) विवाह के समय वर-वधू का अग्नि की परिक्रमा करना। उ.—भाँवरि सी पारि फिरैं नारि ज्यों पराई—पृ. ३२८ (७०)।

संज्ञा पुं. [हिं. भौंरा] भौंरा, भ्रमर।

भाँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. धाँस (?)] 'धाँस' जैसी गंध। उ.—भहरात झहरात दवा (नल) आयौ।....। बरत-बन-बाँस, थरहरत कुस काँस, जरि, उड़त है भाँस, अति प्रबल धायौ—५९६।

भा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चमक, प्रकाश। (२) शोभा, छबि। (३) किरण, रश्मि। (४) बिजली।

अव्य.—चाहे, यदि, इच्छा हो।

क्रि. अ. [हिं. हुआ] हुआ (अवधी)।

भाइ—संज्ञा पुं. [सं. भाव] (१) प्रेम, प्रीति, भाव। उ.—आन देव की भक्ति भाइ करि कोटिक कसब करैगौ—१-७५। (२) संबंध, विषय। उ.—भरम ही बलवंत सबमैं ईसहू कैं भाइ। जब भगत भगवंत चीन्हैं, भरम मन तैं जाइ—१-७०। (३) स्वभाव। (४) विचार।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भांति] (१) भाँति, प्रकार, तरह। उ.—(क) वृषभ कह्यौ तासौं या भाइ—१-२९०। (ख) दासी-पुत्र होहु तुम जाइ। सूर बिदुर भयौ सो इहिं भाइ—३-५। (ग) उन दियौ साप ताहि या भाइ—६-५। (२) चालढाल, रंगढंग।

संज्ञा पुं. [हिं. भाई] (१) भाई, भ्राता। (२) आत्मीयता-सूचक संबोधन। उ.—ऊँच-नीच ब्यौरौ न रहाइ। ताकी साखि मैं, सुनि भाइ—१-२३०।

क्रि. स. [हिं. भाना] भाती है, रुचती है। उ.—कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर स्याम भक्तनि मन भाइ—१-२३६।

भाइप—संज्ञा पुं. [हिं. भाई+पन] (१) भाई-चारा। (२) मित्रता।

भाई—संज्ञा पुं. [सं. भ्रातृ] (१) भ्राता, सहोदर, बंधु। (२) चाचा, फूफा, मौसा, मामा आदि का लड़का। (३) जाति या समाज का व्यक्ति। (४) आत्मीयता सूचक संबोधन।

वि.—प्रिय, रुचिकर। उ.—छाँड़ि सकुच सब देति परस्पर अपनी भाई गारि—२३९९।

क्रि. स. [हिं. भाना] रुची, भली लगी। उ.—ब्रह्मा मन सो भली न भाई। सूर सृष्टि तब और उपाई—३-७।

भाईचारा—संज्ञा पुं. [हिं. भाई+चारा] (१) बंधुत्व, भाई-पन। (२) परम प्रिय होने का भाव।

भाईदूज—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाई+दूज] कार्तिक शुक्ल द्वितीया, जब बहन, भाई के टीका काढ़ती है।

भाईपन—संज्ञा पुं. [हिं. भाई+पन] (१) भाई की प्रीति का भाव। (२) मित्रता या आत्मीयता का भाव

भाईबंद, भाईबंधु—संज्ञा पुं. [हिं. भाई+बंधु] (१) भाई तथा अन्य संबंधी। (२) इष्ट-मित्र।

भाई-बिरादरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाई+बिरादरी] (१) नाते-रिश्तेदार। (२) जाति-समाज के लोग।

भाउ, भाऊ—संज्ञा पुं. [सं. भाव] (१) विचार, भाव। (२) उद्देश्य, तात्पर्य। उ.—गोपिकनि लिखि जोग पठयौ भाउ जान न जाइ—२९२९ (३) प्रीति। (४) स्वभाव, प्रकृति। उ.—अनजानैं बिधि यह करी, नए रचे भगवान। ····। वहै नाउ, वहै भाउ, धेनु बछरा मिलि रब के—४३७।

संज्ञा पुं. [सं. भव] जन्म, उत्पत्ति।

भाऊँ—संज्ञा पुं. [सं. भाव] (१) प्रेम, प्रीति। (२) भावना। (३) स्वभाव। (४) दशा, अवस्था। (५) महिमा, महत्व। (६) रूप, आकृति। (७) सत्ता, प्रभाव। (८) बिचार।

क्रि. स. [हिं. भाना] रुचूँ, भला लगूँ।

भाएँ, भाए—क्रि. वि. [सं. भाव] समझ में, दृष्टि में। उ.—(क) सबही या ब्रज के लोग चिकनिया मेरे भाएँ घास। (ख) सरबस दियो आपनो उनको तऊ न कछू कान्ह के भाए—३४०३।

क्रि. स. [हिं. भाना] रुचे, भले लगे। उ.—मधुबन की मानिनी मनोहर तहीं जाहु जहाँ भाए हो—२९८६।

भाकर—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

भाकसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भट्ठी] भट्ठी।

भाखना, भाखनो—क्रि. स. [सं. भाषण] कहना, बोलना।

भाखा—क्रि. स. [हिं. भाखना] कहा, बोला।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भाषा] (१) भाषा। (२) हिन्दी भाषा।

भाखि—क्रि. स. [हिं भाखना] कहो, बोलो, जपो। उ.—दुहूँ लोक सुखकरन, हरनदुख, वेद-पुराननि साखि। भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये, प्रेमनिरंतर भाखि—१-९०।

भाखी—क्रि. स. [हिं. भाखना] (१) कही। उ.—बुधि बिवेक उनमान आपने मुख आई सो भाखी—३४६९। (२) बतायी, वर्णन की। उ.—ग्राह ग्रसत गजराज छुड़ायौ, बेद पुराननि भाखी—५६७।

भाखे—क्रि. स. [हिं. भाखना] (१) कहे, सुनाये। उ.—चारि स्लोक कहे समुझाइ। ····। सोई अब मैं तुम सौं भाखे—१-२३०। (२) बताये, वर्णन किये। उ.—जे पद-कमल रमा-उर भूषन, बेद भागवत भाखे—५७१।

भाखै—क्रि. स. [हिं. भाखना] कहती है, बोलती है। उ.—बाल-बिनोद बचन हित-अनहित बार बार मुख भाखै—१-६०।

भाख्यौ—क्रि. स. [हिं. भाषना] (१) कहा, बताया। उ.—दुहुँनि मनोरथ अपनो भाख्यो, तब श्रीपति बानी उचरी—१-२६८। उच्चारण किया, पढ़ा। उ.—जोग-जज्ञ-जप-तप नहिं कीन्हौ, बेद बिमल नहिं भाख्यौ—१-१११।

भाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिस्सा, खंड, अंश। उ.—(क) जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिषिपति पतित बिचारै—१-२५। (ख) रिषि कह्यौ, मैं करिहौं जहँ जाग। दैहौं तुमहिं अवसि करि भाग—९-७३।

(२) ओर, तरफ। (३) भाग्य, तकदीर। उ.—दुख, सुख, कीरति, भाग आपनैं आइ परै सो गहियै—१-६२। (४) सौभाग्य। उ.—(क) नाहिंन इतनौ भाग जो यह रस, नित लोचन-पुट पीजै—१०-९। (ख) धनि-धनि महरि की कोख भाग-सुहाग भरी—१०-२४। (ग) ऐसे कबहुँ भाग होंहिगे बहुरौ गोद खेलाइ—३४३५। (५) माथा, ललाट। (६) प्रातःकाल। (७) ऐश्वर्य, वैभव। (८) गणित की 'भाग' करने की क्रिया।

भागड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. भगदड़] भगदड़, भाग-दौड़।

भागना, भागनो—क्रि. अ. [सं. भाज्] (१) दौड़ना, पलायन करना।

मुहा०—सिर पर पैर रखकर भागना—बहुत तेज भागना।

(२) हट जाना। (३) काम से बचना।

भागनेय—संज्ञा पुं. [सं.] बहन का बेटा, भानजा।

भागवंत—वि. [सं. भाग्यवान्] अच्छे भाग्यवाला।

भागवत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अठारह पुराणों में से एक जो वैष्णवों का मान्य धर्मग्रंथ है। इसे वे महापुराण मानते हैं। इसमें १२ स्कंध, ३१२ अध्याय और १८-००० श्लोक हैं। कृष्ण-भक्ति की प्रेमयुक्त कहानियाँ इसमें वर्णित हैं। सूरदास ने 'सूरसागर' का क्रम इसी ग्रंथ के अनुसार रखा है। उ.—सूर कह्यौ भागवतऽनुसार—४-७। (२) ईश्वर का भक्त।

वि. भगवत-संबंधी, भगवत-विषयक।

भागवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] वैष्णवों की कंठी।

भागि—क्रि. अ. [हिं. भागना] भागकर, दौड़कर, पलायन करके। उ.—बाँध्यो बैर दया भागिनी सौं, भागि दुरी सु बिचारी—१-१७३।

भागिनि, भागिनी—वि. स्त्री. [हिं. भाग्यवान्] अच्छे भाग्यवाली, भाग्यवती। उ.-कुबिजा सी भागिनि को नारी—२६४०।

भागिनेय—संज्ञा पुं. [सं.] बहन का बेटा, भानजा।

भागी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. भागना] दौड़ी, पलायन किया। उ.—घर की नारि बहुत हित जासौं, रहति सदा सँग लागी। जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत-प्रेत कहि भागी—१-७९।

वि. स्त्री. [हिं. भाग्य] अच्छे भाग्यवाली, भाग्यवती। उ.—तब बोले बलराम मातु तुमतें को भागी—२६२५।

संज्ञा पुं. [सं. भागिन्] (१) हिस्सेदार (२) अधिकारी।

भागीरथ—संज्ञा पुं. [सं. भगीरथ] राजा भगीरथ। उ.—भागीरथ जब बहु तप कियौ। तब गंगा जू दरसन दियौ—९-९।

भागीरथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंगा नदी जिसको राजा भगीरथ पृथ्वी पर लाये थे।

भागु—संज्ञा पुं. [सं. भाग्य] भाग्य, सौभाग्य। उ.—ऊधौ जाके माथे भागु—३०९५।

भागे—क्रि. अ. [हिं. भागना] दौड़े, पलायन किया, चटपट दूर चले गए। उ.—सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)—१-४४।

क्रि. व.—दौड़े हुए, भागते हुए। उ.—ध्रुव आये माता पै भागे—४-८।

वि. [हिं. भाग्य] परम भाग्यवान।

भाग्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नियति, अदृष्ट, किस्मत, तकदीर।

मुहा०—बड़े भाग्य—अच्छे भाग्य से, सौभाग्य से। उ.—(क) बड़े भाग्य इहिं मारग आये—९-७०। (ख) सूरदास प्रभु कहति जसोदा भाग्य बड़े ते पावै—२५-४९। भाग्य के मोटे—अच्छे भाग्य वाले, सौभाग्यशाली। उ.—बड़े भाग्य के मोटे हौ—२०६१।

भाग्य-भवन—संज्ञा पुं. [सं.] जन्मकुंडली में जन्म-लग्न से नवाँ स्थान जहाँ मनुष्य के शुभाशुभ भाग्य का विचार किया जाता है। उ.—भाग्य भवन मैं मकर मही-सुत बहु ऐश्वर्य बढ़ैहैं—१०-८६।

भाग्यवान्—वि. [सं.] जिसका भाग्य अच्छा हो।

भाग्यौ—क्रि. अ. [हिं. भागना] भागा, पलायन किया। उ.—पंचनि के हित-कारन यह मन जहँ-जहँ भरमत भाग्यौ—१-७३।

भाज—क्रि. अ. [हिं भाजना] भागना, दौड़ना।

प्र०—चली भाज—भाग या दौड़ चली। उ.—सुनि कै सिंह भयान अवाज। मारि फलाँग चली सो भाज—५-३। गये भाज—भाग गये, पलायन कर गये। उ.—और मल्ल मारे शल तोशल बहुत गये सब भाज।

भाजक—वि. [सं.] बाँटने या भाग करनेवाला।

भाजत—क्रि. अ. [हिं. भागना] भागता है।

वि.—भागता हुआ। उ.—रघुपति-रवि-प्रकास सौं देखौं, उडुगन ज्यौं तोहि भाजत—९-१३०।

भाजन—संज्ञा पुं. [सं. भाजन] (१) बरतन। उ.—(क) मेरौ मन मतिहीन गुसाईं। सब सुखनिधि पद-कमल छाँड़ि, स्रम करत स्वान की नाईं। फिरत वृथा भाजन अवलोकत, सूनैं सदन अजान—१-१०३। (ख) रस-चरन-अंबुज बुद्धि भाजन लेहि भरि-भरि-भरि—१-३०६। (२) पात्र, योग्य व्यक्ति।

संज्ञा पुं. [हिं. भाजना = भागना] भागने की क्रिया।

प्र०—कैसे पावतु भाजन—भागना कैसे हो सकता है, भागने का अवसर कैसे मिल सकता है। उ.—चहुँ दिसि तें तनु बिरहा घेरो अब कैसे पावतु भाजन—२८१७।

भाजनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पात्रता, योग्यता।

भाजना, भाजनो—क्रि. अ. [सं. व्रजन, प्रा. वजन, पुं. हिं. भजना] दौड़ना, भाग जाना, पलायन कर जाना।

भाजा, भाजो—क्रि. अ. [हिं. भाजना] भाग गया।

भाजित—वि. [सं.] भाग या विभक्त किया हुआ।

भाजिबे—संज्ञा पुं. [हिं. भाजना] भागने की क्रिया या भाव। उ.—पुरुष को भाजिबे तें मरन है भलो जाई सुरलोक द्वारे उधारे—१० उ.-२१।

भाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाजना = भूनना] तरकारी, साग। उ.—(क) तुम तौ तीनि लोक के ठाकुर, तुम तैं कहा दुरइयै? हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक, भाजी-साक छकइयै—१-२३९। (ख) मीठे तेल चना की भाजी। एक मकूनी दै मोहिं साजी—३९६।

क्रि. अ. [हिं. भाजना = भागना] भागी, दौड़ी, पलायन किया। उ.—बिडरे गज-जूथ सील, सैन-लाज भाजी—६५०।

भाजे—क्रि. अ. [हिं. भाजना] भागे, पलायन कर गये। उ.—भाजे नरक नाम सुनि मेरौ, जम दीन्यौ हठि तारौ—१-१३१।

भाजैं—क्रि. अ. [हिं. भाजना] भागते हैं, दौड़ते हैं। उ.—उग्रसेन-सिर छत्र धर्‌यौ है, दानव दस दिसि भाजैं—१-३६।

भाजै—क्रि. अ. [हिं. भाजना] (१) भागते हैं, दूर होते हैं। उ.—ह्रद बिच नाभि, उदर त्रिवली वर, अवलोकत भव भय भाजै—१-६९। (२) दूर हो, मिटे। उ.—भोजन किये बिनु भूख क्यौं भाजै बिन खाए सब स्वाद—२७७८।

भाज्य—वि. [सं.] जिसे भाग या विभक्त किया जाय।

भाज्यौ—क्रि. अ. [हिं. भाजना] भागा, पलायन किया। उ.—(क) हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान। ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान—१-९७। (ख) प्रथम पूतना इनहि निपाती काग मरत उठि भाज्यौ—२५८१।

भाट—संज्ञा पुं. [सं. भट्ट] (१) यश-गायक चारण या बंदी। (२) यश-गायकों की जाति। (३) चाटुकार। (४) राजदूत।

भाटा—संज्ञा पुं. [हिं. भाट] पानी का चढ़ाव से उतार की ओर जाना, 'ज्वार' का उलटा।

भाटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भट्टी] भट्टी, तपाने का स्थान।

भाटयौ—संज्ञा पुं. [हिं. भाट] भाट का काम।

भाठ, भाठा—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) नदी के साथ बहकर आयी हुई मिट्टी। (२) पानी का उतार। (३) नदी का किनारा। (४) बहाव। (५) गड्ढा।

भाठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाठा] पानी का उतार।

संज्ञा स्त्री. [भट्ठी] (१) भट्ठी। उ.—भवन मोहिं भाठी सौं लागत मरति सोच ही सोचन—१५१७। (१) शराब बनाने की भट्ठी।

भाड़—संज्ञा पुं. [सं. भ्राष्ट्र, प्रा. भट्टो] भड़भूजे की भट्ठी।

मुहा०—भाड़ झोंकना—(१) साधारण काम में शक्ति खोना। (२) व्यर्थ समय खोना। भाड़ में झोंकना

(डालना)—(१) आग में जलाना। (२) नष्ट करना। भाड़ में जाय (पड़े)—नष्ट हो जाय हमें परवाह नहीं।

भाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. भाटक] किराया।

भाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रूपक का एक भेद। (२) व्याज, बहाना। (३) ज्ञान, बोध।

भात—संज्ञा पुं. [सं. भक्त, पा. भत्त] (१) पकाया हुआ चावल। उ.—(क) परस्यौ थार धरचौ मग जोवत, बोलति बचन-रसाल। भात सिरात तात दुख पावत, वेगि चलौ मेरे लाल—१०-२२३। (ख) घर गोरस जनि जाहु पराए। दूध भात भोजन घृत अंमृत अरु आछौ करि दह्यौ जमाए—१०-३०९। (२) विवाह की एक रीति जिसमें कन्या के घर जाकर समधी 'भात' खाते हैं।

भाति, भाती—संज्ञा स्त्री. [सं. भाति] शोभा, कांति। उ.—मनोहर है नैनन की भाति (भांति)। मानहुँ दूरि करत बल अपने सरद कमल की कांति—ना. २४२९।

संज्ञा स्त्री. [सं. भांति] रीति, प्रकार।

भातु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

भाथा—संज्ञा पुं. [सं. भस्त्रा, पा. भत्था] (१) तीर रखने की चमड़े की थैली जो पीठ पर या कमर में बाँधी जाती है, तरकश, तूणीर। उ.—रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत। हाथ धनुष लीन्हे, कटि भाथा, चकित भए दिसि-बिदिसि निहारत—९-६१। (२) बड़ी धौंकनी।

भाथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाथा] लोहार की धौंकनी।

भादों, भादौं, भाद्र—संज्ञा पुं. [सं. भाद्र, पा. भद्दो, हिं. भादों]भादों या भाद्रपद नामक महीना जो सावन और क्वार के बीच में पड़ता है। इस महीने की पूर्णिमा को चंद्रमा भाद्रपद नक्षत्र में रहता है। प्रायः इस महीने में खूब वर्षा होती है। उ.–(क) करन मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ—१-२३। (ख) भादौं की अध राति अँध्यारी—१०-११। (ग) नैना सावन-भादौं जीते—२७६९।

भान—संज्ञा पुं. [सं. भानु] भानु, सूर्य। उ.—(क) सूर-मधुप निसि कमल-कोस-बस, करौ कृपा-दिन-भान—१-१००। (ख) जैसैं कमल होत अति प्रफुलित देखत दरसन भान—१-१६९। (ग) चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान—१-२३५।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश। (२) दीप्ति, कांति। (३) ज्ञान। (४) आभास, प्रतीति।

भानजा—संज्ञा पुं. [हिं बहन + जा] बहन का लड़का।

भानना, भाननो—क्रि. स. [सं. भंजन] (१) तोड़ना, भंग करना। (२) नाश करना। (३) हटाना, दूर करना। (४) काटना।

क्रि. स. [हिं. भान] समझना, अनुमानना।

भानमती—संज्ञा स्त्री. [सं. भानुमती] जादूगरनी।

भानवी—संज्ञा स्त्री. [सं. भानवीया] यमुना नदी।

भाना, भानो—क्रि. अ. [सं. भान = ज्ञान] (१) ज्ञान पड़ना, मालूम होना। (२) रुचना, भला लगना। (३) सोहना, फबना।

क्रि. स. [सं. भा = प्रकाश] चमकाना।

संज्ञा पुं. [सं. भानु] सूर्य, रवि।

संज्ञा स्त्री.—राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा, किन हार चोरायौ।......। सुमना बहुला चंपा जुहिला ज्ञाना भाना भाउ—१५८७।

भानि—क्रि. स [हिं. भानना] काट (डालेंगे)। उ.—रे दसकंध, अंधमति, तेरी आयु तुलानी आनि। सूर राम की करत अवज्ञा, डारैं सब भुज भानि—९-७९।

भानी—क्रि. स. [हिं. भानना] (१) काटकर, विच्छिन्न करके। उ.—मूरख सुख निद्रा नहिं आवै, लैहैं लंक बीस भुज भानी - ९-११६। (२) हटायी, दूर की। उ.—ढोटा एक भयौ कैसैंहु करि, कौन-कौन करवर बिधि भानी—३६८।

भानु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य, रवि।

भानुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यम। (२) शनिश्चर। (३) कर्ण। (४) मनु।

भानुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य की पुत्री, यमुना।

भानुतनया, भनुतनूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना नदी।

भानुमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] जादूगरनी।

भानुसुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्ण। उ.—दान-धर्म बहु कियौ भानु-सुत, सो तुव बिमुख कहायौ—१-१०४। (२) यम। उ.—प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न

बिचारी । कीजै लाज सरन आए की, रवि-सुत-त्रास निवारी—१-१११ । (३) शनिश्चर । (४) मनु ।

भानुसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना नदी ।

भाने—क्रि. स. [हिं. भानना] तोड़ता है, भंग करता है । उ.—आपुहिं हरता आपुहिं करता आपु बनावत, आपुहिं भाने—११८७ ।

भानै—क्रि. स. [हिं. भानना] (१) काट देंगे, काटेंगे उ.—अजहूँ सिय सौंपि नतरु बीस भुजा भानै । रघु-पति यह पैज करी, भूतल धरि पानै—९-९७ । (२) नष्ट-भ्रष्ट करती है । उ.—सरिता चली मिलन सागर को कूल सबै द्रुम भानै—३३३७ ।

संज्ञा पुं. [सं. भानु] सूर्य या रवि को । उ.—कुमुद चकोर मुदित बिधु निरखत कहा करै लै भानै—३४०४ ।

भान्यो, भान्यौ—क्रि. स. [हिं. भानना] (१) तोड़ा । (२) नष्ट किया ।

भाप, भाफ—संज्ञा स्त्री. [सं. वाष्प, पा. वप्प, हिं. भाप] वाष्प ।

भाभरा—वि. [हिं. भा+भरना] लाल (रंग का) ।

भाभी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाई] बड़े भाई की स्त्री, भौजाई । उ.—खैबे कौं कछु भाभी दीन्हे । श्रीपति श्री मुख बोले । फैंट उपर तैं अंजुल तंदुल बल करि हरि ज खोले—ना. ४२४५ ।

भाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रोध । (२) प्रकाश ।

संज्ञा स्त्री. [सं. भामा] स्त्री ।

भामा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्त्री, पत्नी । उ.—वह सुधि आवत तोहि सुदामा । जब हम तुम बन गए लकरियन पठए गुरु की भामा—१०-उ.-६६ । (२) क्रुद्ध स्त्री ।

भामिन, भामिनि, भामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. भामिन्] (१) स्त्री, नारी । उ.—जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे—१-९४ । (२) क्रुद्ध स्त्री । (३) पत्नी ।

भामी—वि. [सं. भामिन्] क्रुद्ध, नाराज ।

संज्ञा स्त्री.—(१) क्रुद्ध नारी । (२) नारी ।

भाय—संज्ञा पुं. [हिं. भाई] भाई ।

संज्ञा पुं. [सं. भाव] (१) भाव । उ.—गोबिंद प्रीति सबन की मानत । जेहि-जेहि भाय करी जिन सेवा अंतरगत की जानत—१-१३ । (२) परिमाण । (३) दर, भाव । (४) ढंग, भाँति ।

भायप—संज्ञा पुं. [हिं. भाई+पन] भाईचारा ।

भाया—वि. [हिं. भाना] रुचिकर, प्रिय ।

क्रि. स.—रुचा, भला या प्यारा लगा ।

भायो, भायौ—वि. [हिं. भाना=रुचना, भाया] जो अच्छा लगे, प्रिय, इच्छित । उ.—(क) जित-जित मन अर्जुन को तितहिं रथ चलायौ । कौरौ-दल नासि-नासि कीन्हौं जन भायौ—१-२३ । (ख) यह तन रचि-रचि करि बिरच्यौ कियौ आपनो भायौ—१-६७ । (ग) बारक मिलैं सूर के प्रभु तौ करौं आपने भायौ—३३८५ ।

क्रि. स.—रुचा, भला या प्यारा लगा । उ.—(क) वेद-विरुद्ध सकल पांडव-कुल, सो तुम्हरैं मन भायौ—१-१०४ । (ख) श्री रुकमिनि के जिय नाहिं भायौ—१० उ०-७ ।

भार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोझ । उ.—(क) जिहिं-जिहिं जोनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ को भार—१-६८ । (ख) मोह अघ सिर भार—१-९९ । (ग) कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महा गज, कबहुँक भार बहौं—१-१६१ । (घ) बिरथा जनम लियौ संसार । करी कबहुँ न भक्ति हरि की मारी जननी भार—१-२९४ । (ङ) सूरदास प्रभु दुष्ट-निकंदन धरनी भार उतारनकारी—२५८९ । (२) बोझ जो बहँगी में लादा जाय । (३) सँभाल, रक्षा । उ.—घर-घर गोपिन ते कहेउ कर भार चुरावहु । (६) आश्रय, बल, सहारा । (७) कर्तव्य-पालन का उत्तरदायित्व ।

मुहा०—किसी का भार उठाना—उसके पालन-पोषण या रख-रखाव का भार अपने ऊपर लेना । भार उतरना—उत्तरदायित्व से मुक्त होना । भार उतारना—(१) उत्तरदायित्व से मुक्त करना । (२) बेगार की तरह काम पूरा कर देना । भार डालना (देना)—उत्तरदायित्व सौंपना ।

संज्ञा पुं. [हिं. भाड़] भड़भूजे का भाड़ ।

भारत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महाभारत का युद्ध । उ.—भारत जुद्ध होइ जब बीता । भयौ जुधिष्ठिर अति भयभीता—१-२६१ । (२) महाभारत ग्रंथ । उ.—

भारत माहिं कथा यह बिस्तृत, कहत होइ बिस्तार—१-२६७। (३) घोर युद्ध। उ.—सोवत काली जाइ जगायौ, फिरि भारत हरि कीन्हौ—५७६।

क्रि. अ. [हिं. भारना] भार से दबाता है।

वि. भारी। उ.—आपुन तरि-तरि औरनि तारत।........। इहिं बिधि उपलै तरत पात ज्यौं, जदपि सैल अति भारत—९-१२३।

भारतवर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] आर्यावर्त, हिंदुस्तान।

भारति, भारती—संज्ञा स्त्री. [सं. भारती] (१) वाणी, वचन। (२) सरस्वती।

भारतीय—वि. [सं.] भारत-संबंधी।

भारथ—संज्ञा पुं. [सं. भारत] (१) युद्ध। (२) महाभारत का युद्ध। (३) महाभारत ग्रंथ।

भारथी—संज्ञा पुं. [सं. भारत] योद्धा, सैनिक।

भारद्वाज—संज्ञा पुं. [सं.] भरद्वाज का वंशज।

भारना, भारनो—क्रि. अ. [हिं. भार] (१) भार या बोझ लादना। (२) दबाना।

भारवाह, भारवाहक, भारवाहि, भारवाही—वि. [सं.] भार ढोनेवाला।

भारहारी—संज्ञा पुं. [सं. भारहारिन्] पृथ्वी का भार उतारने वाले (भगवान बिष्णु और उनके अवतार)।

भारा—संज्ञा पुं. [सं. भार] भार, बोझ। उ.—गयो कूदि हनुमंत जब सिंधु पारा। सेष के सीस लागे कमठ पीठि सौं, धँसे गिरिबर सबै तासु भारा—९-७६।

वि. (१) भारी। (२) बहुत बड़े, विशाल।

संज्ञा पुं. [हिं. भाला] भाला।

भारि—वि. [हिं. भार, भारा] विशाल, बड़े, विस्तृत। उ.—आइ घर जो नद देखे, तरु गिरे दोउ भारि—३८७।

भारी—वि. [सं. भार] (१) महान, बड़ा, महत्वशाली। उ.—जन प्रह्लाद प्रतिज्ञा पाली, कियौ बिभीषन राजा भारी—१-३४। (२) अधिक भारवाला, बोझिल।

मुहा०—पेट भारी होना—अपच होना। पैर भारी होना—गर्भिणी होना। सिर भारी होना—सिर में दर्द होना। आवाज (गला) भारी होना—गला पड़ जाना या बैठ जाना।

(३) कठिन, असह्य। उ.—(क) यहि अंतर जुवती सब आईं बन लाग्यौ कछु भारी—१०८२। (ख) स्याम बिन भई सरद-निसि भारी—१० उ०—९७। (४) अत्यंत, अधिक, बहुत। उ.—(क) बचन बाँह लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी—१-१४६। (ख) हँसे सबै कर तारी दै दै आनन्द कौतुक भारी १०-७५। (५) जिसका निर्वाह करना कठिन हो, दूभर। (६) फूला या सूजा हुआ। (७) सबल, अधिक शक्तिशाली। (८) गंभीर।

भारीपन—संज्ञा पुं. [हिं. भारी+पन] भारी होने का भाव।

भारे—वि. [हिं. भारी] (१) अधिक, बहुत अत्यंत। उ.—(क) काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-बस, अतिहिं किए अघ भारे—१-२७। (ख) कुरुपति अंध मोह बस तिनको देत सदा दुख भारे—३४९४। (२) विशाल, बड़ा, बृहत्, महा। उ.—जीव जल-थल जिते, बेष धरि-धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२०।

भारो, भारौ—वि. [हिं. भार, भारी] (१) अधिक, अत्यंत, बहुत। उ.—(क) सूर पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहत बिरद कत भारौ—१-१३१। (ख) मदनदूत मोहिं बात सुनाई इनमें भर्यौ महारस भारौ—११२२। (२) बड़ी, महान्, महिमामही। उ.— नाद मुद्रा बिभूति भारौ करौ रावर भेस—३४१३।

भार्गव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भृगु का वंशज। (२) परशुराम।

भार्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्नी, स्त्री।

भार्यौ—वि. [हिं. भारी] बहुत, अधिक, अत्यंत। उ.—माखन लै दाउनि कर दीन्हौ, तुरत मथ्यौ, मीठौ अति भार्यौ—४०७।

भाल—संज्ञा पुं. [सं.] माथा, ललाट। उ.—अधर दसन रसना रस बानी, स्रवन नैन अरु भाल—६४३।

संज्ञा पुं. [हिं. भाला] (१) भाला, बरछा। (२) तीर की नोक, गाँसी।

संज्ञा पुं. [सं. भल्लुक] रीछ, भालू।

भालना, भालनो—क्रि. स. [हिं. देखना का अनु.] (१) अच्छी तरह देखना। (२) ढूँढ़ना, खोज करना।

भाला—संज्ञा पुं. [सं. भल्ल] बरछा, साँग, नेजा।

भालि—संज्ञा स्त्री· [हिं· भाला] (१) बरछी। (२) काँटा।

भाली—संज्ञा स्त्री· [हिं· भाला] (१) भाले या तीर की गाँसी या नोक। उ.—जब वह सुरति होत उर अंतर लागति काम बान की भाली—१० उ०-७९। (२) शूल, काँटा। उ.—कहा री कहौं कछु कहति न बनि आवै लगी मरम की भाली री—८४६।

भालुनाथ—संज्ञा पुं. [हिं. भालू+सं. नाथ] जामवंत।

भालू—संज्ञा पुं. [सं. भल्लुक] 'रीछ' नामक चौपाया।

भावंता—संज्ञा पुं· [हिं· भाना]प्रिय, प्रीतम।

संज्ञा पुं. [सं. भावी] होनहार, भावी।

भाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) 'अभाव' का उलटा, अस्तित्व। (२) विचार। (३) अभिप्राय। (४) मुख की आकृति। (५) कृत्य, क्रिया। (६) विषय-भोग। (७) प्रेम, प्रीति। (८) उपदेश। (९) कल्पना। उ.—सूर स्याम जन के सुखदायक बँधे भाव रजु रंग—२५९। (१०) प्रकृति स्वभाव। (११) आंतरिक इच्छा। (१२) ढंग, रीति। (१३) प्रकार, तरह। (१४) दशा। (१५) विश्वास, भरोसा, (१६) प्रतिष्ठा। (१७) बिक्री की दर।

मुहा०—भाव उतरना—दर या दाम घटना। भाव चढ़ना—दर या दाम बढ़ जाना।

(१८) देवी-देवता के प्रति श्रद्धा-भक्ति। उ.—(क) बहुत भाव करि भोजन अर्प्यौ—९३५। (१९) नायक के दर्शन से नायिका के मन में उपजनेवाला विकार। (२०) आंतरिक अनुभव को शारीरिक चेष्टा द्वारा व्यक्त करना।

मुहा०—भाव देना—शारीरिक चेष्टा से मन का भाव प्रकट करना। भाव दै गयी—मनोभाव या मनोकामना सूचित कर गयी। उ.—स्याम को भाव दै गयी राधा। नारि नागरि न काहू लख्यौ कोऊ नहीं, कान्ह कछु करत हैं बहुत अनुराधा। भाव बताना—(१) नखरे के साथ हाथ-पैर हिलाना। (२) आंतरिक भाव सूचित करना।

(२१) नखरा, चोंचला। (२२) बुद्धि का गुण जिससे धर्म आदि का ज्ञान होता है।

भावइ—अव्य. [हिं· भाना] चाहो तो, इच्छा हो तो।

भावई—क्रि· स. [हिं· भाना] रुचिकर लगता है, प्रिय होता है। उ.—सुधारस जेहि स्वाद चाख्यौ विषहिं कौन ब भावई—३२६०।

भावक—क्रि· वि· [सं· भाव+क] थोड़ा, किंचित।

वि. [सं.] भावपूर्ण, भावयुक्त।

संज्ञा पुं· (१) भावना करनेवाला। (२) भाव से युक्त। (३) भक्त, श्रद्धालु। (४) भाव।

भावगति—संज्ञा स्त्री. [सं. भाव+गति] इच्छा, विचार।

भावगम्य—वि· [सं.] जो भाव द्वारा जाना जाय।

भावज - वि. [सं.] भाव से उत्पन्न।

संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रातृजाया, हिं. भौजाई] भाई की स्त्री।

भावत—क्रि. अ. [हिं. भाना] अच्छा लगता है, रुचता है, पसंद आता है। उ.—(क) जहाँ गयौ तहँ भयौ न भावत, सब कोऊ सकुचानौ—१-१०२। (ख) गरब गोविंदहिं भावत नाहीं—२-२३। (ग) उपवन बन्यौ चहूँघा पुर के अति ही मोकों भावत—२५५९।

भावता—वि. [हिं. भावना, भाना] जो भला लगे।

संज्ञा पुं.—प्रेमपात्र, प्रियतम।

भावताव—संज्ञा पुं. [हिं. भाव+ताव] मोल-तोल।

भावति—वि. स्त्री. [हिं. भावती] भली लगनेवाली, रुचिकर, प्रिय। उ. - आजु सो बात बिधाता कीन्ही, मन जो हुती अति भावति—१०-२३।

क्रि. स.—भली लगती है, प्रिय है। उ.—मोसौं तुम मुँह की मिलवत हौ भावति है वह प्यारी—१८६४।

भावती—वि. स्त्री. [हिं. पुं. भावता] जो भली लगे। उ.—(क) बालबिनोद भावती लीला, अति पुनीत मुनि भाषी—१०-८। (ख) एक-एक ते गुन-रूप उजागरि स्याम भावती प्यारी—११८५। (ग) तुमते को है भावती हृदय बसाऊँ—१८६८। (घ) वाकी भावती बात चलाइहौं—२२०९।

संज्ञा स्त्री.—प्रेमपात्री, प्रियतमा। उ.—(क) सूर स्याम की भावती कहै कहौ कहा री—१५७२। (ख) सूर-प्रभु-भावती के सदा रसभरे नैन भरि-भरि प्रिया रूप चाँरै—पृ० ३१७ (६४)।

भावते—वि. पुं· [हिं. भावता] जो-जो रुचे, भले लगे।

उ.—(क) होड़ाहोड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट—१-१४६ । (ख) सूरदास प्रभु भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते जी के—१०-२८७ ।

संज्ञा पुं.—प्रेमपात्र, प्रियतम ।

भावन—वि. [सं. भाव] अच्छा लगनेवाला, जो भला लगे, भानेवाला । उ.—चरन धोइ चरनोदक लीन्हौ, कह्यौ मांगु मन-भावन—८-१३ ।

प्र०—लागी भावन—भली लगने लगी है । उ.—सूर सुरति क्यों होति हमारी लागी नीकी भावन—२८६९ ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) भावना । (२) ध्यान ।

भावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ध्यान, विचार । (२) अनुभव-जन्य विचार । (३) कामना, वासना ।

क्रि. अ.—रुचना, भला लगना ।

वि.—(१) जो भला लगे । (२) मनचाहा, मनचीता । उ.—(तब) लादि पंकज कढ्यौ बाहिर, भयौ ब्रज-मन-भावना—५७७ ।

भावनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भाना] इच्छानुसार कार्य ।

भावनी—वि. [हिं. भावना] रुचिकर, प्रिय । उ.—भाट बोलैं बिरद नारी बचन कहैं मन भावनी—१०उ०-२४।

भावनो—वि. [हिं. भावना] भला लगनेवाला, रुचिकर । उ.—तेहि देखे त्रय ताप नासै ब्रज-बधू-मन-भावनो—२२८० ।

क्रि, अ.—रुचना, भला लगना ।

भावभक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. भाव+भक्ति] (१) भक्ति की भावना । उ.—भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौ—१-६५ । (२) आदर, सत्कार, श्रद्धा । उ.—नैन मूँदि कर जोरि बोलायौ । भाव-भक्ति सौं भोग लगायौ ।

भाववाचक—संज्ञा स्त्री. [सं.] संज्ञा (शब्द) जिससे किसी पदार्थ का गुण, धर्म आदि सूचित हो ।

भावशबलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अलंकार जिसमें कई भावों की संधि हो ।

भावसंधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह वर्णन-रीति जिसमें दो विरुद्ध भावों की संधि का वर्णन रहता है ।

भावहि—क्रि. स. [हिं. भाना] भला लगता है, रुचता है । उ.—नाहिन कछू सुहात तुमहिं बिन कानन भवन न भावहि—३४२७ ।

भाविक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भावी अनुमान । (२) वह अलंकार जिसमें भूत और भावी बातें प्रत्यक्षवत् वर्णित हों ।

वि.—जाननेवाला, सर्वज्ञ ।

भावित—वि. [सं.] (१) सोचा-विचारा हुआ । (२) सुगंधित किया हुआ । (३) भेंट किया हुआ, समर्पित ।

भाविता—संज्ञा स्त्री. [सं.] होनहार, होनी ।

भाविय, भाविहि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. भावी] भावी ही के, भवितव्यता ही के । उ.—कह्यौ, सुतनि-सुधि आवति कबहीं ? कह्यौ, भावियै कैं बस सबहीं—१-२८४ । (ख) सूरदास प्रभु भाविहि के बस मिलत कृपा कै अति सुख देवै—२६४१ ।

भावी—संज्ञा स्त्री. [सं. भाविन्] (१) भविष्य में होनेवाली बात, भवितव्यता होनी । उ.—भावी काहूसौं न टरै । कहँ वह राहु, कहाँ वह रवि-ससि आनि सँजोग परै । भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै—१-२६४ । (२) आनेवाला समय । (३) भाग्य, प्रारब्ध ।

भावुक—वि. [सं.] (१) सोचने-विचारनेवाला । (२) जिसके मन में भावों का उदय बहुत शीघ्र हो, जो सहज ही द्रवित हो जाय ।

भावै—क्रि. स. [हिं. भाना] प्रिय लगता है, रुचता है । उ.—(क) सुकृती-सुचि-सेवकजन काहि न जिय भावै—१-१२४ । (ख) प्रातहिं उठत तुम्हारे कान्ह को माखन-रोटो भावै—२७०७ । (ग) नहिन सोहात कछू हरि तुम बिनु कानन भवन न भावै—३४२३ ।

क्रि. वि.—(१) समझ में, बुद्धि के अनुसार । उ.—प्रान हमारे घात (?) होत हैं तुमरे भावै हाँसी—३०६३ । (२) चाहे । उ.—भावै परो आजु ही यह तन भावै रहौ अमान—२-३३ ।

भाषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथन । (२) व्याख्यान ।

भाषत—क्रि. अ. [हिं. भाषना] कहते हैं, बताते हैं । उ.—(क) महादेव कौं भाषत साधु—४-५ । (ख) बार-बार संकर्षन भाषत लेत नहीं ह्याँते गज टारी—२५८९ ।

भाषति—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ भाषना] कहती है, बोलती है। उ.—निबाहौ बाँह गहे की लाज। द्रुपद-सुता भाषति नँदनंदन, कठिन बनी है आज—१-२५५।

भाषना, भाषनो—क्रि॰ अ॰ [सं॰ भाषण] बोलना, कहना।

क्रि॰ अ॰ [सं॰ भक्षण] भोजन करना।

भाषांतर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अनुवाद, उल्था।

भाषा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बोली, जबान। (२) विशेष जन-समूह की बोली। (३) जन-साधारण में प्रचलित बोली का रूप। (४) आधुनिक हिंदी जिसका जन्म सन् १००० के आस-पास हुआ माना जाता है और जिसकी राजस्थानी, व्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली आदि जन-बोलियों के लिए (संस्कृत की तुलना में) 'भाषा' कहा जाता है। उ.—ब्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कंध बनाइ। सूरदास सोइ कहे पद भाषा करि गाइ—१-२२५।

भाषाबद्ध—वि॰ [सं॰] जनभाषा में लिखा हुआ।

भाषि—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ भाषना] कहकर, बोलकर।

भाषित—वि॰ [सं॰] कहा हुआ, कथित।

संज्ञा पुं॰—कथन, बातचीत।

भाषी—क्रि॰ अ॰ स्त्री॰ [हिं॰ भाषना] बोली, कहा, कहने लगी। उ.—(क) रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन-सरन कहि भाषी—१-२७। (ख) ऐसी भाँति नृपति बहु भाषी। सुनि जड़ भरत हृदय महँ राखी—५-४।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ भाषिन्] बोलनेवाला।

भाषैं—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भाषना] कहते हैं। उ.—सूरदास-प्रभु दीन बचन यौं हनूमान सौं भाषैं—९-१४६।

भाषै—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भाषना] कहता है, बोलता है। उ.—ठाढ़े आवीन भए देव-देव भाषै—२६१९।

भाषौं—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भाषना] कहता हूँ, बोलता हूँ। उ.—रसना इहई नेम लियो है और नहिं भाषौं मुख बैन—२७६८।

भाष्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] व्याख्या, टीका।

भाष्यकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] व्याख्या या टीकाकार।

भाष्यौ—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भाषना] कहा। उ.—(रिसि) कह्यौ, सर्प है भाष्यौ मोहिं। सूर्य रूप तुहौ नृप होहि—६-७।

भास—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) प्रभा, दीप्ति। (२) किरण।

भासना, भासनो—क्रि॰ स॰ [सं॰ भास] (१) चमकना। (२) जान पड़ना। (३) देख पड़ना। (४) फँस जाना।

क्रि॰ अ॰ [हिं॰ भाषना] कहना, बोलना।

भासमान—वि॰ [सं॰] जान पड़ता हुआ।

संज्ञा पुं॰—सूर्य।

भासित—वि॰ [सं॰] प्रकाशमान, दीपित।

भासी—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ भासना] फँसी, लिप्त हुई। उ.—अपने भुज दंडन कर गहिये बिरह-सलिल मैं भासी।

भास्कर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सूर्य। (२) अग्नि।

भास्वर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) सूर्य। (२) दिन।

भिंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ भृंग] (१) 'भृंगी' कीड़ा। (२) भौंरा।

संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ भंग] बाधा, रुकावट।

भिंगाना, भिंगानो, भिंजाना, भिंजानो—क्रि॰ स॰ [हिं॰ भिगोना] गीला करना।

भिंडी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ भिंड़ा] एक पौधे की फली जिसकी तरकारी बनती है। उ.—बनकौरा पिंडीक चिचिंड़ी, सीप पिंड़ारू कोमल भिंडी—३९६।

भिंसार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ भानु+सरण] प्रातःकाल।

भिआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ भैया] भाई, भ्राता।

भिक्षण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भीख माँगना।

भिक्षा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) माँगना, याचना। (२) भीख। (३) भीख में मिली वस्तु। (४) सेवा, नौकरी।

भिक्षाटन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भीख माँगते घूमना।

भिक्षापात्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भीख माँगने का पात्र।

भिक्षु, भिक्षुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) भिखारी। (२) साधु।

भिखमंगा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ भीख+माँगना] भिखारी।

भिखार—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ भीख] भिखारी।

भिखारिणि, भिखारिणी भिखारिनि, भिखारिनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ भिखारी] भीख माँगनेवाली स्त्री।

भिखारि, भिखारी—वि॰ [हिं॰ भीख+आरी (प्रत्य.)] भीख माँगनेवाला, भिक्षुक। उ.—और देव सब रंक-भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे—१-१७०।

भिखिया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ भीख] भीख, भिक्षा।

भिगाना, भिगानो, भिगोना, भिगोनो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] गीला करना।

भिच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं. भिक्षा] भीख, भिक्षा। उ.—रावन तुरत बिभूति लगाए, कहत आइ, भिच्छा दै माई—९-५९।

भिजवना, भिजवनो–क्रि. स. [हिं. भिगोना] गीला करना।

भिजवाना, भिजवानो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] गीला या तर कराना।

क्रि. स. [हिं. भेजना] भेजने को प्रवृत्त करना।

भिजाना, भिजानो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] गीला या तर करना।

क्रि. स. [हिं. भेजना] भेजने को प्रवृत्त करना।

भिजे—वि. [हिं. भीजना] गीले, तर, भीजे हुए। उ.—मूँग-पकौरा पनी पतबरा। इक कोरे इक भिजे गुर-बरा—३९६।

भिजोना, भिजोनो, भिजोवना, भिजोवनो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] गीला करना।

भिज्ञ—वि. [सं.] जानकार, ज्ञाता।

भिटना—संज्ञा पुं. [देश.] छोटा गोल फल।

भिटनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिटना] स्तन की घुंडी।

भिंडत—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिड़ना] मुठभेड़।

भिड़—संज्ञा स्त्री. [सं. वरट] बर्र, ततैया।

भिड़ना, भिड़नो–क्रि. अ. [हिं. भड़(अनु.)] (१) टकराना। (२) लड़ाई करना। (३) निकट या पास पहुँचना।

भितरिया—संज्ञा पुं. [हिं. भीतर] वल्लभ-संप्रदायी मंदिर में मूर्ति के निकट रहनेवाला पुजारी।

वि.—भीतर या अन्दर का।

भितल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. भीतर+तल] भीतरी परत।

भितल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीतर+तल] चक्की का निचला पाट।

भिताना, भितानो—क्रि. स. [सं. भीति] डराना, भयभीत करना।

क्रि. अ.—डरना, भयभीत होना।

भित्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दीवार। (२) भय, डर। (३) चित्र खींचने का आधार।

भिद्—संज्ञा पुं. [सं. भिद्] भेद, अन्तर।

भिदन—वि. [हिं. भेदना] भेदने, छेदने या नाश करने वाले। उ.—मधु कैटभ मथन, सुर भौम केसी भिदन कंस कुलकाल अनुसाल हारी—१०उ०—५०।

भिदना, भिदनो—क्रि. अ. [सं. भिद्] (१) घुसना, धँसना। (२) छेदा जाना। (३) घायल होना।

भिदि—क्रि. अ. [हिं. भिदना] धँसकर।

प्र०—भिदि गयौ—धँस गया। उ.—रोमनि रोमनि भिदि गयौ सब अँग अंग पगी—१५०३।

भिदुर—संज्ञा पुं. [सं. भिदिर] वज्र।

भिनकना, भिनकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) घृणा उत्पन्न होना। (२) मलिन या गंदा होना। (३) 'भिन-भिन' शब्द या ध्वनि करना।

मुहा०—(किसी पर) मक्खियाँ भिनकना—बहुत दुर्बल और दीन-मलीन होना।

भिनभिनाना, भिनभिनानो—क्रि. अ. [अनु.] 'भिनभिन' शब्द या ध्वनि करना।

भिनसार—संज्ञा पुं. [सं. वि+अह्नि+सार] प्रातःकाल।

भिनहीं—क्रि. वि. [सं. विनिशा] सबेरे, तड़के।

भिनुसार—संज्ञा पुं. [हिं. भिनुसार] सबेरा, प्रभात, प्रातःकाल। उ.—(क) उठौ नँदलाल भयौ भिनुसार, जगावति नंद की रानी—१०-२०८। (ख) बारहिं बार जगावति माता, अंबुजनैन भयौ भिनुसार—४०३।

भिन्न—वि. [सं.] (१) अलग, पृथक। (२) दूसरा, अन्य। उ.—बिष्नु, रुद्र, बिधि, एकहिं रूप। इन्हैं जानि मति भिन्न स्वरूप—४-५।

संज्ञा पुं.—संख्या जो इकाई से कम हो।

भिन्नता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अलगाव, भेद, अन्तर।

भिन्नाना, भिन्नानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) (दुर्गन्ध आदि से) सर चकराना। (२) खीझना, खिजलाना।

भियना, भियनो—क्रि. अ. [सं. भीति] भयभीत होना।

भिया—संज्ञा पुं. [हिं. भैया] भाई, भ्राता।

भिरत—क्रि. अ. [हिं. भिड़ना] लड़ता-फिरता है। उ.—सोभित सुभट प्रचारि पैज करि भिरत न मोरत अंग—९५७।

भिरना,भिरनो—क्रि. अ. [हिं. भिड़ना] (१) टकराना। (२) लड़ना-झगड़ना। (३) समीप या निकट पहुँचना।

भिरहु—क्रि. अ. [हिं. भिड़ना] लड़ो, जूझो। उ.—सब कहत भिरहु स्याम सुनत रहत सदा नाम हारि-जीति घर ही की कौन काहि मारै—२६००।

भिरे—क्रि. अ. [हिं. भिड़ना] लड़े, जूझे। उ.—रुद्र भगवान अरु बान सांबुक भिरे राम कुंभाउ माँड़ी लड़ाई—१० उ०—३५।

भिरौं—क्रि. अ. [हिं. भिड़ना] लड़ूँगा, सामना करूँगा। उ.—होइ सनमुख भिरौं, संक नहिं धरौं, मारि सब कटक सागर बहाऊँ—९-१२९।

भिलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भील] भील जाति की स्त्री।

भिल्ल—संज्ञा पुं. [हिं. भील] भील जाति।

भिल्लनि—संज्ञा पुं. बहु. [सं. भिल्ल] बहुत से भील। उ.—तहँ भिल्लनि सौं भई लराई। लूटे सब, बिन स्याम सहाई—१-२८६।

भिल्लिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीलनी] (१) भील जाति की स्त्री। (२) भीलनी शबरी जिसके बेर श्रीरामचन्द्र ने सरुचि खाए थे। उ.—भिल्लिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे—१-२५।

भिश्त—संज्ञा स्त्री. [फा. बिहिश्त] स्वर्ग।

भिश्ती—संज्ञा पुं. [?] मशक से पानी भरनेवाला।

भिषक, भिषक्, भिषज—संज्ञा स्त्री. [सं. भिषक्] वैद्य।

भिष्टा, भिसटा, भिस्टा—संज्ञा पुं. [सं. विष्टा] मल।

भिस्त—संज्ञा पुं. [फा. बिहिश्त] (मुसलमानों का) स्वर्ग।

भींचना, भींचनो—क्रि. स. [हिं. खींचना] (१) कसना, दबाना। (२) (आँख) मूँदना या बंद करना।

भींज—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीगना] नमी, तरी।

भी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भय, डर।

अव्य. [हिं. ही] (१) अवश्य, निश्चय ही। (२) अधिक, विशेष। (३) तक, लौं।

भीउ—संज्ञा पुं. [सं. भीम] युधिष्ठिर का भाई भीम।

भीक—वि. [सं.] डरा हुआ, भयभीत।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भीख] भिक्षा।

भीख—संज्ञा स्त्री. [सं. भिक्षा] (१) भिक्षा। (२) दान। उ.—पंच की भीख सूर बल-मोहन, कहति जसोमति माई—४५५।

भीखन—वि. [सं. भीषण] भयानक, भयंकर।

भीखम—संज्ञा पुं. [सं. भीष्म] भीष्म पितामह।

वि.—भयानक, डरावना।

भीगना, भीगनो—क्रि. अ. [सं. अभ्यंज] गीला होना।

भीजत—क्रि. अ. [हिं. भीजना] गीला या तर होता है। उ.—अति ही सीत भीत भीजत तनु गिरि कर क्यों न धरी—३२००।

भीजना, भीजनो—क्रि. अ. [हिं. भीगना] गीला होना।

भीजी—क्रि. अ. [हिं. भीजना] भीग गयी, गीली या तर हो गयी, आर्द्र या सराबोर हो गयी। उ.—(क) नैन सलिल भीजी सब सारी—पृ० ३५३ (९२)। (ख) या गोकुल के चौहटे रँग भीजी ग्वालिनि—२४०५।

भीजे—क्रि. अ. [हिं. भीजना] गीले या तर हो गये।

वि.—गीले, तर, आर्द्र। उ.—दसन दामिनि ज्योति उर पर माल मोती, ग्वाल-बाल सब आवैं रंग भीजे—२३५२।

भीजैं—क्रि. अ. [हिं. भीजना] (१) (भीगतो) भीगते हैं, गीले होते हैं। उ.—(क) पाहन तारे, सागर बाँध्यौ तापर चरन न भीजैं—९-१२६। (ख) बूँद परत रँग ह्वैहै फीको, सुरँग चूनरी भीजैं—७३१। (२) पुलकित या प्रेममग्न हो जाते हैं। उ.—गदगद सुर, पुलक रोम, अंक प्रेम भीजैं—१-७२।

भीजैगौ—क्रि. अ. [हिं. भीजना] गीला या तर हो जायगा। उ.—बेगि साँवरे पाइँ धारिये सूर के स्वामी नतरु भीजैगो पियरो पट आवत है पिय मेहरा—२००१।

भीजौ—क्रि. अ. [हिं. भीजना] गीले या तर हो जाओ। उ.—ठाढ़े रहौ आँगन ही हो पिय जौलौं मेह न नख-शिख भीजौ—२००२।

भीट, भीटा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) टीला। (२) स्थान जहाँ पान की खेती होती है।

भीड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिड़ना] (१) जन-समूह, झुंड।

मुहा०—भीड़ चीरना—झुंड हटाकर मार्ग बनाना।

भीड़ छँटना—जन-समूह का एकत्र न रह जाना। (२) संकट, आपत्ति, विपत्ति।

भीड़ना, भीड़नो—क्रि.स. [हिं. भिड़ाना] (१) मिलाना। (२) मलना।

भीड़भड़क्का—संज्ञा पुं. [हिं. भीड़] बहुत भीड़।

भीड़भाड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीड़] बहुत भीड़।

भीड़ा—वि. [हिं. भिड़ाना] तंग, संकुचित।

भींड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भिंडी] भिंडी (तरकारी)। उ.—बन कोरा पिंडीक चिचींड़ी। खीय पिंडारू कोमल भींड़ी—८३१।

संज्ञा स्त्री. [सं. भीड़] जन समूह, झुंड, भीड़।

भीत—संज्ञा स्त्री. [सं. भित्ति] (१) दीवार।

मुहा०—भीत में दौड़ना—शक्ति से बाहर काम करना।

(२) चित्र खीचने का आधार। उ.—बिन ही भीत चित्र किन कीनो किन नभ हठ करि घाल्यो झोरी—३०२८।

मुहा०—भीत बिना चित्र बनाना—बे सिर पैर की या उल्टी-सीधी बात करना।

वि. [सं.] डरा हुआ, भयभीत।

संज्ञा पुं.—भय, डर।

भीतर—क्रि. वि. [देश०] अंदर, में। उ.—जबतैं जनम लियौ जग भीतर तब तैं तिहिं प्रतिपारचौ—१-३३६।

मुहा०—भीतर का कुआँ—उपयोगी, परन्तु सबके काम न आ सकनेवाली वस्तु। उ.—सूरदास प्रभु तुम बिन जोबन घर भीतर को कूप। भीतर पैठना—तत्व की बात जानने का प्रयत्न करना।

संज्ञा पुं.—(१) हृदय, अन्तःकरण।

मुहा०—भीतर ही भीतर—मन ही मन में।

(२) रनिवास, जनानाखाना।

भीतरा—वि. [हिं. भीतर] रनिवास में आने-जानेवाला।

भीतरि—क्रि. वि. [हिं. भीतर] अंदर, में।

भीतरिया—संज्ञा पुं. [हिं. भीतर] (१) वह जो भीतर रहता हो। (२) वल्लभ-संप्रदायी मंदिरों के वे पुजारी जो मूर्ति के निकट रहते हैं।

वि.—भीतर का, भीतरी।

भीतरी—वि. [हिं. भीतर] (१) भीतर का। (२) गुप्त।

भीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भय, डर। उ.—ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ, भोर भए भई भीति—१-३२५। (२) कंप, कँपकँपी।

संज्ञा स्त्री. [सं. भित्ति] (१) दीवार। उ.—नंद-नंदन ब्रत छाँड़िकै को लिखि पूजै भीति—३४४३।

मुहा०—भुस पर की भीति—दृढ़ आधार न होने के कारण बहुत जल्दी ढा जाने या नष्ट हो जानेवाली चीज। उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु भई भुस पर की भीति—२७१६।

(२) चित्र खींचने का आधार। उ.—भीत बिन कह चित्र देखैं रही दूती हेरि—२०४३।

मुहा०—भीति (के) बिना चित्र करना (बनाना)—बे सिर-पैर की या आधार-रहित बात करना। भीति बिन चित्र करत—बे सिर-पैर की बातें करते हो। उ.—तात रिस करत भ्राता कहै मारिहौं, भीति बिन चित्र तुम करत रेखा—१२४६।

भीतिका, भीतिकारी—वि. [सं.] भयंकर, भयावना।

भीती—संज्ञा स्त्री. [सं. भित्ति] दीवार।

संज्ञा स्त्री. [सं. भीति] डर, भय। उ.—चंद की दुति गई, पहै पीरी भई सकुच नाहीं दई अतिहि भीती—१६१०।

भीन—संज्ञा पुं. [हिं. बिहान] सबेरा, प्रातःकाल।

वि. [हिं. भीनना] मग्न, निमग्न, लीन, डूबा हुआ। उ.—दुष्टनि दुख, सुख संतनि दीन्हौ, नृप-ब्रत पूरन कीन। रामचन्द्र दसरथहिं बिदा करि सूरदास रस-भीन—९-२६।

भीनना, भीननो—क्रि. अ. [हिं. भीगना] भर या समा जाना, लीन होना।

भीनी—वि. [हिं. भीनना] युक्त, लीन, डूबी हुई, निमग्न। उ.—चलत चरन गहि रहि गई गिरि खेद सलिल भय भीनी—३४४९।

भीने—वि. [हिं. भीनना] युक्त, लीन, डूबे हुए, निमग्न। उ.—(क) नवल निकुंज नवल रस दोऊ राजत हैं रँग भीने—पृ० ३१५ (४६)। (ख) दुरत न डर नख गात लाल रँग भीने हो—२४०१।

भीनो, भीनौ—वि. [हिं. भीनना] मग्न, लीन, डूबा हुआ। उ.—अति सुकुमार डोलत रस-भीनो—२-१०।

भीन्यौ—क्रि. अ. [हिं. भीनना] लीन या मग्न हो गया, समा गया। उ.—सूरदास स्वामीपन तजि कै सेवक पन रस भीन्यौ—८-१५।

भीन्ही—वि. [हिं. भीनना] (सुगंध आदि में) बसी हुई। उ.—गोरे गात मनोहर उरजन लसत फुलेल कंचुकी भीन्ही—२२९५।

भीम—संज्ञा पुं. [सं.] युधिष्ठिर का भाई भीमसेन।

मुहा०—भीम के हाथी—भीमसेन द्वारा फेंके गये हाथी जो आज भी आकाश में घूमते माने जाते हैं। तात्पर्य उस व्यक्ति या पदार्थ से है जो एक बार छूटकर फिर न मिले। उ.—अब मन भयौ भीम के हाथी सुपने अगम अपार—१० उ०-८४।

वि.—(१) भयानक, भयंकर। (२) बहुत बड़ा।

भीमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भयंकरता।

भीमा—वि. स्त्री. [सं.] भयंकर, डरावनी।

भीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीड़] (१) जन-समूह, भीड़। उ.—सूर स्याम को जसुमति टेरति बहुत भीर है हरि न भुलाहि—९१९। (२) ठठ, झुंड, समूह। उ.—प्रेम मगन गावत गंध्रब गन ब्यौम बिमाननि भार—५७५। (३) संकट, विपत्ति। उ.—(क) हरै बलबार बिना को पीर। सारंगपति प्रगटे सारंग तैं, जानि दीन पर भीर—१-३३१। (ख) जब-जब भीर परी संतन कौं चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ—१-१४। (ख) जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं तहाँ-तहाँ उठि धाऊँ—१-२४४।

वि. [सं. भीरु] (१) डरा हुआ। (२) कायर।

भीरना, भीरनो—क्रि. अ. [हिं. भीरु] भयभीत होना, डरना।

भीरा—वि. [सं. भीरु] कायर, साहसहीन।

संज्ञा स्त्री. [हिं. भीड़] संकट, विपत्ति।

भीरु—वि. [सं.] (१) डरपोक, कायर। (२) डरी हुई, भयभीत। उ.—दुखित द्रौपदी जानि जगतपति, आए खगपति त्याग। पूरे चीर भीरु-तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज—१-२२५।

भीरुता, भीरुताई—संज्ञा स्त्री. [सं. भीरुता] (१) कायरता। (२) भय, डर।

भीरू—वि. [सं. भीरू] कायर, साहसहीन।

भीरे—क्रि. वि. [हिं. भिड़ना] समीप, पास।

भील—संज्ञा पुं. [सं. भिल्ल] एक प्रसिद्ध जंगली जाति।

भीलि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भील] (१) भील जाति की स्त्री, भीलनी। (२) शबरी जिसे श्रीरामचन्द्र जी ने तारा था। उ.—अजामील अरु भीलि गनिका, चढ़े जात विमान—१-२३५।

भीलिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीलनी] भील जाति की स्त्री। उ.—अजामिल बिप्र कनौज-निवासी। सो भयौ बृषली कैं गृहबासी।......। ता भीलिनि कैं दस सुत भए। पहिले पुत्र भूलि तिहिं गए—६-४।

भीलु, भीलुक—वि. [सं.] कायर, भीरु।

भीवँ, भीव—संज्ञा पुं. [सं. भीम] भीमसेन।

भीष—संज्ञा स्त्री. [हिं. भीख] भिक्षा, भीख।

भीषक—वि. [सं. भीषण] भयंकर।

भीषज—संज्ञा पुं. [सं. भेषज] वैद्य।

भीषण, भीषन—वि. [सं. भीषण] (१) भयानक, डरावना। (२) उग्र, दुष्ट, कठोर।

भीषणता, भीषनता—संज्ञा स्त्री. [सं. भीषणता] भयंकरता, डरावनापन।

भीषम—संज्ञा पुं. [सं. भीष्म] (१) भीष्म पितामह। उ.—भार परैं भीषम-प्रन राख्यौ, अर्जुन कौ रथ हाँक्यौ—१-११३। (२) राजा भीष्मक जो रुक्मिणी के पिता थे। उ.—कुंदनपुर को भीषम राई—१० उ०-७।

भीष्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भयानक रस। (२) राजा शांतनु के, गंगा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र देवव्रत जो भीष्म पितामह के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भीष्मक—संज्ञा पुं. [सं.] विदर्भ के एक राजा जो रुक्मिणी के पिता थे।

भीष्मकसुता—संज्ञा पुं. [सं.] रुक्मिणी जो श्रीकृष्ण की पटरानी थी।

भुँइ, भुँई—संज्ञा स्त्री. [सं. भूमि] पृथ्वी।

भुइघरा, भुँइधरा, भुँइहरा—संज्ञा पुं. [सं. भूमि+गृह=घर] तहखाना।

भुंगल—संज्ञा पुं. [देश.] युद्ध का एक बाजा।

भुंजना, भुँजनो—क्रि. अ. [हिं. भूनना] भुनना।

भुंजैं—क्रि. अ. [हिं. भूँजना, भूनना] तपाती हैं, जलाती हैं। उ.—पवन पानि घनसारि सुमन दै दधि-सुत-किरन भानु भै भुंजैं—२७२१।

भुँजौना—संज्ञा पुं. [हिं. भूनना] (१) भूनने की मजदूरी। (२) भुना हुआ अन्न।

भुअ—संज्ञा स्त्री. [सं. भूमि] पृथ्वी।

भुअंग, भुअंगम—संज्ञा पुं. [सं. भुजंग] साँप। उ.—(क) डसी री स्याम भुअंगम कारे—७४७। (ख) भूलि न उठत जसोदा जननी मनो भुअंगम डासी—३४३९।

भुअन—संज्ञा पुं. [सं. भुवन] जगत, संसार।

भुआर, भुआल—संज्ञा पुं. [सं. भूपाल] राजा।

भुइँ—संज्ञा स्त्री. [सं. भूमि] भूमि, पृथ्वी। उ.—ऊखल चढ़ि, सींके को लीन्हौ, अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ—१०-३३१।

भुइँघरा, भुइँधरा, भुइँहरा—संज्ञा पुं. [सं. भूमिगृह] तहखाना।

भुइँचाल, भुइँडोल—संज्ञा पुं. [सं. भू+चलना, डोलना] भूचाल, भूडोल, भूकंप।

भुईं—संज्ञा स्त्री. [स. भूमि] भूमि, पृथ्वी। उ.—मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी? ....। तू जो कहति बल की बेनी ज्यों, ह्वै है लाँबी-मोटी। काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहै नागिनि सी भुईं लोटी—१०-१७५।

भुक—संज्ञा पुं. [सं. भुज्] (१) भोजन। (२) अग्नि।

भुकराँद, भुकराँयध—संज्ञा स्त्री. [अनु. भुक] सड़ने की दुर्गंध।

भुक्खड़—संज्ञा पुं. [हिं. भूख] जो सदा भूखा रहे।

भुक्त—वि. [सं.] (१) खाया हुआ। (२) भोगा हुआ।

भुक्ता—संज्ञा पुं. [हिं. भोक्ता] उपभोग करनेवाला, भोक्ता। उ.—(क) दाता-भुक्ता, हरता-करता, बिस्वंभर जग जानि। ताहि लगाइ माखन की चोरी, बाँध्यौ जसुमति रानि—४८७। (ख) मैं कर्ता मैं भुक्ता मोहिं बिनु और न —१० उ०-४७।

भुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भोजन। (२) सुख-भोग।

भुखमरा—वि. [हिं. भूख+मरना] भूख से मरनेवाला।

भुखमरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूख+मरना] भूख से मरने की स्थिति।

भुखाना, भुखानो—क्रि. अ. [हिं. भूख] भूखा होना।

भुखालू—वि. [हिं. भूख] भूखा।

भुगत—संज्ञा स्त्री. [सं. भुक्ति] (१) भोजन। (२) भोग।

भुगतना, भुगतनो—क्रि. स. [सं. भुक्ति] भोगना।

क्रि. अ.—(१) निपटना। (२) बीतना।

भुगतान—संज्ञा पुं. [हिं. भुगतना] भुगताने की क्रिया, भाव या मूल्य।

भुगताना, भुगतानो—क्रि. स. [हिं. भुगतना] (१) निपटाना। (२) बिताना। (३) चुकाना, अदा करना।

भुगति—संज्ञा स्त्री. [सं. भुक्ति] सुख-भोग, भोजन का सुख या रस। उ.—भोग भुगति भूलेहु भखनहिं, भ ी बिरह बैराग--३१२५।

भुगती—संज्ञा स्त्री. [सं. भुक्ति] (१) भोजन का भाव। (२) भोजन।

भुगतै—क्रि. स. [हिं. भुगतना] (फल) भोगे, सहे, झेले। उ.—हम तौ पाप कियौ भुगतै को पुण्य प्रगटि कियौ निठुर हियो री—१४०६।

भुच्च, भुच्चड़—वि. [हिं. भूत+चढ़ना] मूर्ख।

भुजंग—संज्ञा पुं. [सं.] साँप।

भुजंगम—संज्ञा पुं. [सं. भुजंगम्] साँप।

भुजंगा—संज्ञा पुं. [सं. भुजंग] साँप।

भुजंगिनि, भुजंगिनी, भुजंगी—संज्ञा स्त्री.[सं. भुजंगिनी] साँपिन, नागिन। उ.—माया बिषम भुजंगिनि को बिष, उतरयौ नाहिंन तोहिं—२-३२।

भुजंगेंद्र, भुजंगेश—संज्ञा पुं. [सं.] शेषनाग।

भुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाहु, बाँह। उ.—(क) उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज—१-६९। (ख) स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल—१-९९।

मुहा०—भुज भरि—गले लगाकर। उ.—(क) भुज भरि धरि अँकवारि बाँह गहि कै झकझोरयौ—

१०२६। (ख) भुज भरि मिलनि उड़त उदास ह्वै गत स्वारथ समए—२९९२।

(२) हाथी की सूड़। (३) दो की संख्या सूचक शब्द।

भुजग—संज्ञा पुं. [सं.] साँप।

भुजदंड—संज्ञा पुं. [सं.] बाहु रूपी दंड।

भुजपात—संज्ञा पुं. [सं. भोजपत्र] भोजपत्र।

भुजपाश—संज्ञा पुं. [सं.] दोनों हाथों का बंधन जिसमें बाँधकर गले या छाती से लगाया जाता है।

भुजबंद, भुजबंध—संज्ञा पुं. [सं. भुजबंध] बाजूबंद।

भुजनाथ—संज्ञा पुं. [सं. भुजपाश] भुजपाश।

भुजमूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कंधा। (२) बगल, काँख।

भुजवा—संज्ञा पुं. [हिं. भूँजना] भड़भूजा।

भुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाँह, हाथ।

मुहा०—भुजा उठाना (टेकना)—प्रण करना।

भुजाना, भुनानो—क्रि. स. [हिं. भुनाना] भुनाना।

भुजाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. भुज+आली] छोटी बरछी।

भुजिया—संज्ञा पुं. [हिं. भूँजना] (१) उबाले हुए धान के चावल। (२) भूनी हुई (बिना रसे की) तरकारी।

भुजेना—संज्ञा पुं. [हिं. भूजना] भुना हुआ चबेना।

भुट्टा—संज्ञा पुं. [सं. भृष्ट, प्रा. भुट्ठी] मक्का, ज्वार आदि की बाल।

भुतना, भुतवा—संज्ञा पुं. [हिं. भूत] प्रेत, भूत।

भुथरा—वि. [हिं. भोथरा] जिसमें धार न हो, कुंद।

भुथराई—संज्ञा स्त्री. [हिं भोथरा] कुंद होने का भाव।

भुनगा—संज्ञा पुं. [अनु.] उड़नेवाला छोटा कीड़ा।

भुनना, भुननो—क्रि. अ. [हिं. भूनना] (१) बिना जल के आग पर पकना। (२) गरम बालू में पकना। (३) घी-तेल में पकना। (४) तेज धूप या तपी जमीन पर जलना। (५) कष्ट होना।

क्रि. अ. [सं. भंजन] बड़े सिक्के के छोटे सिक्के मिलना।

भुनभुनाना, भुनभुनानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) 'भुनभुन' करना। (२) अस्पष्ट स्वर में बड़बड़ाना।

भुनाना, भुनानो—क्रि. स. [हिं. भूनना] भूनने को प्रेरित करना।

क्रि. स. [सं. भंजन] बड़े सिक्के को छोटे से बदलना।

भुवि—संज्ञा स्त्री. [सं. भू] पृथ्वी, भूमि।

भुरई—क्रि. स. [हिं. भुरवना] फुसला ली। उ.—सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि भुरई राधिका भोरी।

भुरकना, भुरकनो—क्रि. अ. [हिं. भुरका] (१) सूखकर भुरभुरा होना। (२) भूल जाना। (३) चूर्ण को छिड़कना।

भुरका—संज्ञा पुं. [सं. धूरि] बुकनी, चूर्ण, अबीर।

भुरकाना भुरकानो - क्रि. स. [हिं. भुरकना] (१) सुखाकर भुरभुरा करना। (२) छिड़कना। (३) भुलवाना, बहकाना।

भुरकि—क्रि. अ. [हिं. भुरकना] (किसी चूर्ण-पदार्थ को) छिड़ककर, भुरभुराकर। उ.—अरुन अधर-छबि दसन बिराजत, जब गावत कल मंदन। मुक्ता मनो नील-मनिमय-पुट, धरे भुरकि बर बंदन—४७६।

भुरकुस—संज्ञा पुं. [हिं. भुरकना] चूर्ण, चूरा।

मुहा०—भुरकुस निकलना—(१) इतनी मार पड़ना कि हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाय। (२ नष्ट होना। भुरकुस निकालना—मारते-मारते हड्डी-पसली चूर-चूर कर देना। (२) नष्ट करना।

भुरजी—संज्ञा पुं [हिं. भूजना] भड़भूजा।

वि.—जो 'भुरजी' जैसा काला हो।

भुरता—संज्ञा पुं. [हिं. भुरकना] दबने-कुचलने से बिगड़ी दशा वाला।

मुहा०—भुरता करना (कर देना)—दबाकर या मार-पीटकर चूर-चूर कर देना।

(२) तरकारी जो बैंगन आदि को आग में भूनकर बनती है।

भुरभुर, भुरभुरा—वि. [अनु.] हलके आघात से ही चूर-चूर हो जानेवाला।

भुरभुराना, भुरभुरानो—क्रि. स. [अनु.] (१) भुरभुरा करना। (२) छिड़कना, बुरकना।

भुरये—क्रि. स. [हिं. भुराना] भुलावे में डाला। उ.—तुम भुरये हौ नंद कहत हैं तुमसौं ढोटा। दधि-ओदन के काज देह धरि आए छोटा।

भुरयौ—वि. [हिं. भरमना] भ्रम में पड़ा हुआ, भूला हुआ। उ.—जनम साहिबी करत गयौ।....। कुबुधि-कमान चढ़ाइ कौप करि, बुधि-तरकस रितयौ। सदा सिकार करत मृग-मन कौ, रहत मगन भुरयौ—१-६४।

भुरवतिं—क्रि. स. स्त्री. [हिं. भुरवना] फुसलाती हैं, भुलावा देती हैं। उ.—ओढ़नि आनि दिखाई मोकौं, तरुनिनि की सिखई बुधि ठानी। घर लै ल मेरौ सुत भुरवहिं, ये ऐसी सब दिन की जानी—६९५।

भुरवना, भुरवनो—क्रि. स. [हिं. भरमना] फुसलाना, बहलाना।

भुरहरा—संज्ञा पुं. [हिं. भोर] सबेरा, प्रातःकाल।

भुरहरे—क्रि. वि. [हिं. भोरहरा] बहुत सबेरे।

भुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोला] सीधापन, सिधाई।

भुराना, भुरानो—क्रि. स. [हिं. भुलाना] भूल जाना।

क्रि. स. [हिं. भुरवना] बहलाना, फुसलाना।

भुराये—क्रि. स. [हिं. भुराना] बहलाया, फुसलाया, भ्रम में डाला। उ.—अति हीं चतुर कहावत राधा बातन ही हरि क्यों न भुराये—१४५३।

भुरी—वि. [हिं. भोली] भोली, सीधी।

क्रि. स. [हिं. भुराना] बहलाया, फुसला लिया।

भुरै—क्रि. स. [हिं. भुरवना] बहला-फुसलाकर।

प्र०—भुरै लई—बहला-फुसला लिया। उ.—कुंतल कुटिल भँवर भामिनि वर मालति भुरै लई। तजत न गहरु कियो तिन कपटी जानि निरास भई—३३०८।

भुरैहौं—क्रि. स. [हिं. भूलना] भूलूँगा, बहलाने-फुसलाने में आऊँगा। उ.—मैं अपनी सब गाय चरैहौं। प्रात होत बल के सँग जैहौं तेरे कहे न भुरैहौं।

भुलक्कड़—वि. [हिं. भूलना] भूल जानेवाला।

भुलना, भुलनो—वि. [हिं. भूलना] भूल जानेवाला।

भुलभुला—संज्ञा पुं. [अनु.] गरम राख।

भुलवाना, भुलवानो—क्रि. स. [हिं. भूलना] (१) भ्रम या भुलावे में डालना। (२) बिसराना।

भुलसना, भुलसनो—क्रि. अ. [हिं. भुलभुला] गरम राख में भुलसना।

भुलाइ—क्रि. स. [हिं. भुलाना] भुला कर।

प्र०—दई भुलाइ—भुला दिया। उ.—लेहु-लेहु गोपाल कोऊ दह्यौ दई भुलाइ—१२११। देति भुलाइ—भ्रम में डालती है, धोखा देती है। उ.—सूर प्रभु की सबल माया देति मोहि भुला—१-४५।

भुलाई—क्रि. स. [हिं. भूलना] भुला दी, विस्मरण की।

प्र०—रहे भुलाई—भूले रहे, (सब कुछ) भुला बैठे। उ.—जेंवत छाक गाइ बिसराई। सखा श्रीदामा कहत सबनि सौं, छाकहि मैं तुम रहे भुलाई—४७१।

भुलाऊ—क्रि. स. [हिं. भूलना] भुला दी, विस्मरण कर दी। उ.—सप्त रसातल सेषासन रहे तब की सुरति भुलाऊ—१०२२१।

भुलाए—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भूल गये, विस्मृत हो गये। उ.—सुरसरी-सुवन रनभूमि आए। बान-बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै, पार्थ-अवसान तब सब भुलाए—१-२७१।

भुलाना—क्रि. स. [हिं. भूलना] (१) भ्रम या धोखे में डालना। (२) भूलना, विस्मृत करना।

क्रि. अ.—(१) भ्रम या धोखे में पड़ना। (२) भटकना, राह भूलना। (३) बिसरना, भूल जाना।

भुलानीं—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भूल गयीं।

भुलानी—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भूल गयी, विस्मरण हो गयी, बिसर गयी। उ.—(क) चिंता कीन्हैं भूख भुलानी नींद फिरति उचटी—१-९८। (ख) सुरपति-पूजा तुमहि भुलानी—१००१।

भुलाने—क्रि. अ. [हिं. भुलाना] भटक गये हो, राह भूल गये हो। उ.—स्याम तुमहिं ह्याँ को नहिं पठए तुम हो बीच भुलाने—३००६।

भुलानो, भुलानौ—क्रि. अ. [हिं. भूलना] (१) भ्रम में पड़ा। उ.—सुत-बित-बनिता प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ—१-३२९। (२) भूल गया। (३) सुधि न रही, होश में न रहा, घबरा गया। उ.—कमल संकटनि भरे ब्याल मानौ। स्याम के बचन सुनि, मनहिं मन रह्यौ गुनि, काठ ज्यौं गयौ घुनि, तनु भुलानौ—५९०।

भुलान्यो, भुलान्यौ—क्रि. स. [हिं. भूलना] (१) भूल गया, विस्मृत कर दिया। उ.—सुर-नर-मुनि मोहित सब कीन्हे सिवहिं समाधि भुलान्यो—१८५७।(२) (मार्ग) भुला दिया, (राह) भूल गया। उ.—कब धौं गयो संग हरि के वह कीधौं पंथ भुलान्यौ—१४७१।

भुलायौ—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भ्रम में पड़ गया। उ.—अपनपौ आपुन ही मैं पायौ........। ज्यौं कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूंढ़त फिरत भुलायौ—४-१३।

भुलावत—क्रि. स. [हिं. भूलना] भूल जाता है, विस्मृत हो जाता है। उ.—वृन्दाबन मोकौं अति भावत।.......। कामधेनु, सुरतरु सुख जितने, रमा सहित बैकुंठ भुलावत—४४९।

भुलावा—संज्ञा पुं. [हिं. भूलना] छल, धोखा।

भुलावै—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भ्रम में पड़ जाता है। उ.—(क) जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिं देखि भुलावै—५-४। (ख) सूरदास प्रभु देखि-देखि सुर-नर-मुनि-बुद्धि भुलावै—१०-१२६।

भुलाहि—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भटक जाय, राह भूल जाय। उ.—सूर स्याम को जसुमति टेरति बहुत भीर है हरि न भुलाहि—९१९।

भुलाहीं—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भ्रम में पड़ जाती हैं। उ.—जब हरि मुरली अधर धरत।........।खग मोहैं मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि धरत—६२०।

भुलाहु—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भटक जाओ, राह भूल जाओ। उ.—सघन वृन्दावन अगम अति, जाइ कहुँ न भुलाहु—६१०।

भुवंग—संज्ञा पुं. [सं. भुजंग, प्रा. भुअंग] साँप। उ.—खाइ न सकै खरचि नहिं जानै ज्यौं भुवंग सिर रहत मनी—१-३९।

भुवंगम—संज्ञा पुं. [सं. भुजंगम्] साँप। उ.—(क) गइ मुरछाइ, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई—१०-५२। (ख) ज्यौं कैंचुरी भुवंगम त्यागत मात-पिता यौं त्यागे—पृ० ३३९ (८९)। (ग) माई री मोंहिं डस्यौ भुवंगम कारो।

भुवंगिनि, भुवंगिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भुजंगिनी] साँपिनी। उ.—नैन मीन भुवंगिनी भुअ नासिका थल बीच—१३५१।

भुवः—संज्ञा पुं. [सं.] भूमि और सूर्य के बीच का लोक, अंतरिक्ष लोक।

भुव—संज्ञा पुं. [सं.] आग, अग्नि।

संज्ञा स्त्री. [सं. भू, भूमि] भूमि, पृथ्वी। उ.—कंपै भुव वर्षा नहिं होहि—१-२८६।

संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रू] भौंह, भ्रू।

भुवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जगत। उ.—तुम हर्ता तुम कर्ता एकै, तुम ही अखिल भुवन के साँई—२५५८। (२) लोक। उ.—भुवन चौदह खुरनि खूँदति सुधौं कहा समाइ—१-५६। (३) चौदह की संख्या का द्योतक शब्द।

भुवनकोश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भूमंडल। (२) ब्रह्मांड।

भुवनायक—संज्ञा पुं. [सं.] संसार के स्वामी। उ.—येई हैं श्रीपति भुवनायक येई हैं कर्ता संसार—४९७।

भुवनिया—संज्ञा पुं. [सं. भुवन] भुवन, लोक। उ.—जो रस नंद-जसोदा बिलसत, सो नहिं तिहूँ भुवनिया—१०-२३८।

भुवपाल—संज्ञा पुं. [सं. भूपाल] राजा।

भुवा—संज्ञा पुं. [हिं. घूआ] रुई।

भुवार, भुवाल, भुवाला—संज्ञा पुं. [सं. भूपाल, प्रा. भुआल, हिं. भुआल] राजा। उ.—(क) रावन पै लै गए सकल मिलि, ज्यौं लुब्धक पसु जाल। कह्यौ बचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही भुवाल—९-१०४। (ख) कालिंदी कैं कूल बसत इक मधुपुरि नगर रसाला। कालनेमि अरु उग्रसेन-कुल उपज्यौ कंस भुवाला—१०-४।

भुवि—संज्ञा स्त्री. [सं. भूमि] भूमि, पृथ्वी। उ.—रवि-बंसी भयौ रैवत राजा। ता सम जग दुतिया न बिराजा। ता गृह जन्म रैवती लयौ। ताकौं लै सो ब्रह्मपुर गयौ।........। ब्याह-जोग अब साँई आहि। रैवत ब्याह कियौ भुवि आइ। आप कियौ तप बन मैं जाइ—९-४।

भुशुंडी—संज्ञा पुं. [सं.] काकभशुंडि।

संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्राचीन अस्त्र।

भुस—संज्ञा पुं. [सं. बुस] भूसा। उ.—टूटे कंधऽरु फूटी नाकनि, को लौं धौं भुस खैहौ—१-३३१।

मुहा०—भुस पर की (सी) भीत—शीघ्र नष्ट हो जानेवाली वस्तु, अस्थायी और अविश्वसनीय बात। उ.—(क) तुम्हरी बोलनि कौन पतीजै ज्यौं भुस पर की भीति—३१६३। (ख) बिनु गोविंद सकल सुख सुन्दरि भुस पर की सी भीत—१० उ०-७५। कह्यौ पवन को भुस भयौ—बात तत्काल उड़ गयी, किसी ने बात पर ध्यान ही नहीं दिया। उ.—मेरौ कह्यौ पवन को भुस भयौ गावत नंदकुमार—३४८४। भुस फटकै—व्यर्थ के कार्य में श्रम नष्ट करे, निरर्थक कार्य में शक्ति लगाये। उ.—सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तुम्हारे हेति—३२५६।

भुसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूसा] भूसी।

भुसुंडी—संज्ञा पुं. [सं. भुशुंडि] काकभुशुंडि।

भूँकना, भूँकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) 'भों-भों' करना। (२) कुत्ते का बोलना। (३) व्यर्थ बकना।

भूँख—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूख] भूख। उ.—भोजन किये बिनु भूँख क्यौं भाजै बिन खाए तब स्वाध—२७७८।

भूँखा—वि. [हिं. भूखा] भूखा।

भूँजना, भूँजनो—क्रि. स. [हिं. भूनना] (१) आग या ताप से पकाना। (२) गरम बालू से पकाना। (३) तलना। (४) दुख देना।

क्रि. स. [सं. भोगना] भोग करना।

भूँजब—क्रि. स. [हिं. भूँजना] भोगेंगे, भोग करेंगे। उ.—ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत-मुख देखे लेत। रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यौं यह खेत—९-३९।

भूँजा—संज्ञा पुं. [हिं. भूनना] भुना हुआ अन्न।

भूँसना, भूँसनो—क्रि. अ. [हिं. भूकना] भौं भौं करना, भूँकना।

भू—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी। उ.—(क) संकर को मन हर्‌यो कामिनी, सेज छाँड़ि भू सोयौ—१-४३। (ख) भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल गावत संत-समाज —१-२१५। (२) स्थान।

संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रू] भौंह। उ.—कीर नासा इंद्र धनु भ्रू भँवर सी अलकावली।

भूकंप—संज्ञा पुं. [सं.] भूचाल, भूडोल।

भूक—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूख] भूख।

भूकना, भूकनो—क्रि. अ. [हिं. भूँकना] भौं-भौं करना, भूँकना।

भूकि—क्रि. अ. [हिं. भूँकना] कुत्ते का भौं भौं शब्द करना। उ.—अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यौ। जैसैं स्वान काँच-मंदिर मैं, भ्रमि-भ्रमि भूकि मर्‌यौ—२-२६।

भूख—संज्ञा स्त्री. [सं. बुभुक्षा] (१) खाने की इच्छा, क्षुधा। उ.-(क) चिंता कीन्हे भूख भुलानी—१-९८। (ख) अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ केहरि भूख मरै—१-१०५।

मुहा०—भूख मरना—खाने की इच्छा न रह जाना। भूख लगना—खाने की इच्छा होना। भूख से (भूखों) मरना—भोजन न मिलने से कष्ट उठाना या मरना।

(२)—आवश्यकता। (३) समाई। (४) कामना।

भूखण, भूखन—संज्ञा पुं. [सं. भूषण] अलंकार, आभूषण।

भूखना, भूखनो—क्रि. स. [सं. भूषण] सजाना, अलंकृत करना।

भूखर—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूख] (१) भूख। (२) इच्छा।

भूखा—वि. [हिं. भूख] जिसे भूख लगी हो। उ.—मचला अकलैमूल, पातर, खाउँ खाउँ करै भूखा—१-१८६।

मुहा०—भूखा रहना—उपवास करना। भूखा-प्यासा—बिना खाये-पिये।

(२) इच्छुक, चाहनेवाला। (३) दरिद्र।

भूखे—वि. [हिं. भूखा] जिसे भूख लगी हो। उ.—भूखे छिन न रहत मन मोहन—१०-२३१।

भूगर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी का भीतरी भाग।

भूगोल—संज्ञा पुं. [सं.] वह शास्त्र जिससे पृथ्वी की प्राकृतिक बातों का ज्ञान होता है।

भूचर—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी पर रहनेवाले प्राणी।

भूचरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] समाधि की एक मुद्रा।

भूचाल—संज्ञा पुं. [सं. भू+हिं. चलना] भूकंप, भूडोल।

भूड़—संज्ञा स्त्री. [देश.] बलुई भूमि।

भूडोल—संज्ञा पुं. [सं. भू + हिं. डोलना] भूकंप, भूचाल।

भूरा—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमण] (१) जल-यात्रा (२) जल-विहार।

भूत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सृष्टि-रचना के मूल उपकरण जो पाँच माने गये हैं—पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि और आकाश। (२) जड़ या चेतन प्राणी, जीव।

यौ०—भूत-दया—प्राणीमात्र के प्रति दया।

(३) बीता हुआ समय। (४) क्रिया का वह रूप जो व्यापार की समाप्ति का सूचक हो। (५) मृत शरीर। (६) मृत प्राणी की आत्मा। (७) प्रेत। (८) वे पिशाच या दैत्य जो रुद्र के अनुचर तथा अत्यन्त कुरूप और क्रूर माने जाते हैं। उ.—संकर प्रगट भए भृकुटी तें, करी सृष्टि निर्मान। भूत-प्रेत बैताल रचे बहु दौरे विधि की खान—सारा. ६५।

मुहा०—(किसी बात का)भूत उतरना—(इस बात के लिए) जरा भी उत्साह न रह जाना। (किसी बात का) भूत चढ़ना (सवार होना)—(किसी बात के लिए) जी-जान से जुट जाना। भूत चढ़ना (सवार होना)—बहुत क्रोध होना। भूत उतरना—(१) क्रोध शांत होना। (२) उत्साह शेष न रहना। भूत बनना—(१) बहुत क्रुद्ध होना। (२) बहुत आवेश में होना। भूत बनकर लगना (पीछे पड़ना)—किसी तरह पीछा न छोड़ना। भूत का पकवान (की मिठाई)—(१) ऐसी चीज जिसका अस्तित्व न हो पर जो भ्रम से सच्ची प्रतीत हो। (२) सहज ही मिला हुआ धन या ऐश्वर्य जो अनायास नष्ट भी हो जाय।

वि.—(१) बीता हुआ, गत। (२) मिला हुआ, युक्त। (३) समान। (४) जो हो चुका हो।

भू-तनया—संज्ञा स्त्री. [सं.] सीता, जानकी।

भूतना—संज्ञा पुं. [सं. भूत] भूत, प्रेत।

भूतनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] रुद्र, शिव।

भूतनायिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

भूतपूर्व—वि. [सं.] वर्तमान से पूर्व का।

भूतभावन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) विष्णु।

भूतराज—संज्ञा पुं. [सं.] रुद्र, शिव।

भूतल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धरातल। (२) संसार, जगत। उ.—भक्त-बत्सल कृपानाथ असरन-सरन, भार-भूतल-हरन, जस सुहायौ—१-११९।

भूतलराइ, भूतलराई, भूतलराउ, भूतलराऊ—संज्ञा पुं. [सं. भूतल+राजा] पृथ्वीपति, भूपाल। उ.—मतौ यह पूछत भूतलराइ—१-२६९।

भूतविद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह विद्या जिससे प्रेत, पिशाच, कुग्रह आदि जनित मानसिक रोगों का निदान हो।

भूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धन-संपति। (२) भस्म, राख। (३) उत्पत्ति। (४) वृद्धि। (५) लक्ष्मी।

भूतिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूत] (१) भूत की स्त्री। (२) पिशाचिनी।

भूदेव, भूदेवता—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्राह्मण।

भूधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पहाड़। (२) शेषनाग।

भून—संज्ञा पुं. [सं. भ्रूण] गर्भ का बालक।

भूनना, भूननो—क्रि. स. [सं. भर्जन] (१) आग में डालकर पकाना। (२) गरम बालू से पकाना। (३) घी-तेल में तलना। (४) कष्ट देना।

भूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा, भूपति। (२) स्वामी। उ.—सेमर-फूल सुरँग अति निरखत मुदित होत खग-भूप—१-१०२।

भूपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा, भूपाल।

भूपाल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा। उ.—कहन लगे सब सूर-प्रभु सौं होहु इहाँ भूपाल—२५७१।

भूपाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

भूपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] मंगल ग्रह।

भूपुत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] जानकी, सीता।

भूभुल, भूभुरि—संज्ञा स्त्री. [सं. भू+भुर्ज] गर्म राख या रेत।

भूभृत्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा। उ.—करुनामय जब चाप लियौ कर, बाँधि सुदृढ़ कटि-चीर। भूभृत सीस नमित जो गर्बगत, पावक सींच्यौ नीर-९-२६। (२) पहाड़, पर्वत।

भूमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी।

भूमि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पृथ्वी।

मुहा०—भूमि होना—पृथ्वी पर गिरना।

यौ—भूमि-भँडार—धन-धाम । उ.—तिन हारयौ सब भूमि-भँडार—१-२४६ ।

(२) स्थान । (३) जड़, आधार । (४) प्रदेश ।

भूमिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रचना । (२) प्रस्तावना ।

संज्ञा स्त्री. [सं. भूमि] पृथ्वी, भूमि ।

भूमिज—वि. [सं.] भूमि या पृथ्वी से उत्पन्न ।

भूमिजीवी—संज्ञा पुं. [सं. भूमिजीविन्] खेतिहर, कृषक ।

भूयसी—वि. [सं.] बहुत अधिक ।

क्रि. वि.—बार-बार ।

भूर—वि. [सं. भूरि] बहुत, अधिक ।

संज्ञा पुं. [हिं. भुरभुरा] बालू, रेत ।

भूरज—संज्ञा स्त्री. [सं. भू+रज] धूल, मिट्टी ।

संज्ञा पुं. [सं. भूर्ज] भोजपत्र का पेड़ ।

भूरजपत्र—संज्ञा पुं. [सं. भूर्जपत्र] भोजपत्र ।

भूरा—वि. [सं. वभ्रु] मटमैले या धूमिल रंग का ।

भूरि—वि. [सं.] (१) अधिक, बहुत । (२) बड़ा ।

भूरिदा—वि. [सं.] बहुत बड़ा दानी ।

भूरिश्रव, भूरिश्रवा—संज्ञा पुं. [सं. भूरिश्रवस्, हिं. भूरिश्रवा] वाल्हीक का चंद्रवंशी राजा जो सोमदत्त का पुत्र था । महाभारत के युद्ध में यह दुर्योधन की ओर से लड़ा और अर्जुन द्वारा मारा गया था । उ.—इत भगदत्त द्रोन भूरिश्रव तुम सेनापति धीर—१-२६९ ।

भूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूरा] भूरे रंग की गाय । उ.—पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती । धुलही, फुलही, भौंरी, भूरी, हाँकि ठिकाई तेती—४५५ ।

वि. स्त्री.—भूरे रंग की ।

भूरुह—संज्ञा पुं. [सं.] वृक्ष, पेड़ ।

भूर्ज—संज्ञा पुं. [सं.] भोजपत्र का वृक्ष ।

भूर्जपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] भोजपत्र ।

भूल—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूलना] (१) भूलने का भाव । (२) गलती, चूक ।

मुहा०—भूल के कोई काम करना—अनजान या धोखे में कोई काम करना । भूल के (भी) कोई काम न करना—वह काम कदापि न करना, उस काम को न करने का पक्का निश्चय कर लेना ।

(३) दोष, अपराध । (४) अशुद्धि ।

भूलक—संज्ञा पुं. [हिं. भूल] भूल करनेवाला ।

भूलना, भूलनो—क्रि. स. [सं. विह्वल] (१) ध्यान या याद न रखना । (२) गलती करना । (३) खो देना ।

क्रि. अ.—(१) याद न रहना । (२) चूकना, गलती होना । (३) धोखे में आ जाना । (४) आसक्त हो जाना । (५) इतराने लगना । (६) खो जाना ।

वि.—जिसे स्मरण न रहता हो ।

भूलभुलैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूल+भूलना] (१) वह भवन जिसमें एक ही जैसे अनेक द्वारों के कारण मार्ग भूल जाय । (२) चक्करदार और पेचीदी बात ।

भूलि—क्रि. अ. [हिं. भूलना] भूलकर ।

प्र०—भूलि रहे—धोखे में पड़ गये । उ.—भूलि रहे अति चतुर चितै चित कौन सत्य कछु मर्म न पावत—१० उ.-५ ।

मुहा०—भूलि करी नहिं ऐसे काम—कदापि वैसा काम न करना । उ.—अब पर घर की सौंह करत है भूलि करी नहिं ऐसे काम—२०२३ ।

भूलिहु—क्रि. वि. [हिं. भूलना+हु] भूलकर भी, कदापि । उ.—(क) तू जननी अब दुख जनि मानहिं । रामचंद्र नहिं दूरि कहूँ, पुनि भूलिहु चित चिंता नहिं आनहिं—९-९५ । (ख) भूलिहु जिनि आवहिं इहि गोकुल तपत तरनि सम चंद ।

भूलीं—क्रि अ. [हिं. भूलना] आसक्त हो गयीं, मुग्ध हो गयी । उ.—गोपी तजि लाज, सँग स्याम-रंग भूलीं—६४२ ।

भूलै—क्रि. स.[हिं. भूलना] भूल जाय, ध्यान न रखे, पता न पावे, विस्मरण कर दे । उ.—ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताके पास—१-७० ।

भूलोई—क्रि. वि. [हिं. भूला+ई] भूला हुआ ही, भ्रम में पड़ा । उ.—तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत—१-१७७ ।

भूलोक—संज्ञा पुं. [सं.] संसार ।

भूलौ—वि. [हिं. भूलना] भूला हुआ, भ्रम में पड़ा हुआ । उ.—तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत—१-१७७ ।

भूल्यौ—क्रि. अ. [हिं. भूलना] (१) याद न रहा, विस्मृत हुआ, ध्यान न रहा । उ.—भूल्यौ भ्रम्यौ

तृषातुर मृग लौं, काहूँ स्रम न गँवायौ—१-२०१ । (२) भ्रम में पड़ गया, धोखे में आ गया । उ.—(क) अब हौं माया-हाथ बिकानौ । .... । हिंसा-मद-ममता रस भूल्यौ, आसा हीं लपटान्यौ—१-४७ । (ख) दीन जन क्यौं करि आवै सरन ? भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग, सुनहु न ताप-भय-हरन—१-४८ ।

भूवा—संज्ञा पुं. [हिं. धूआ] रुई ।
वि.—रुई जैसा उजला या सफेद ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. बुआ] पिता की बहन ।

भूशय्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी रूपी सेज । (२) भूमि पर सोना ।

भूशायी—वि. [सं. भूशायिन्] (१) पृथ्वी पर सोनेवाला । (२) मृतक ।

भूषण, भूषन—संज्ञा पुं. [सं. भूषण] (१) अलंकार । (२) शोभा बढ़ानेवाली वस्तु या व्यक्ति ।

भूषणता, भूषनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूषण का भाव या धर्म ।

भूषना, भूषनो—क्रि. स. [सं. भूषण] भूषित करना ।

भूषा—संज्ञा पुं. [सं. भूषण] (१) गहना । (२) सजाने की क्रिया ।

भूषित—वि. [सं.] (१) सजा-सजाया । (२) अलंकृत ।

भूष्य—वि. [सं.] सजाने योग्य ।

भूसन—संज्ञा पुं. [सं. भूषण] अलंकार, आभूषण ।
संज्ञा पुं. [हिं. भूँकना] भूँकने या बकने का भाव ।

भूसना, भूसनो – क्रि. अ. [हिं. भूँकना] (१) भूँकना, 'भौं-भौं' करना । (२) बकना ।

भूसा—संज्ञा पुं. [सं. तुष] (१) भुस । (२) भूसी ।

भूसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भूसा] अनाज का छिलका ।

भूसुर—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण ।

भूहर—संज्ञा पुं. [हिं. भू+सं. गृह] तहखाना ।

भृंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौंरा । (२) 'बिलनी' (कीड़ा) जो दूसरे कीड़ों के ढोले को पकड़ कर इस तरह 'भिनभिन' करता है कि वह भी उसी की तरह हो जाता है ।

भृंगी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भौंरी, भ्रमरी । उ.—(क) कहूँ ठौर नहिं चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यौं दसहूँ दिसि धावै—१-२३३ । (ख) भृंगी री, भजि स्याम-कमल-पद, जहाँ न निसि कौ त्रास—१-३३९ । (२) 'बिलनी' कीड़ा जो दूसरे कीड़ों को भी अपना जैसा बना लेता है ।

भृकुटि, भृकुटी—संज्ञा स्त्री. [सं. भृकुटी] भौंह । उ.—भृकुटी कुटिल, अरुन अति लोचन, अगिनि-सिखा-मुख कह्यो फिराई—९-५६ । (ख) भृकुटि पर मसि-बिंदु सोहै सकै सूर न गाइ—१२०-२५ ।

भृगु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्रसिद्ध मुनि जो शिव जी के पुत्र माने जाते हैं और जिनके वंश में परशुराम जन्मे थे । प्रसिद्धि है कि इन्होंने विष्णु की छाती में, उनकी सहनशीलता की परीक्षा के उद्देश्य से, लात मारी थी । विष्णु के सब अवतारों की छाती पर इस चिह्न का बना रहना माना गया है । (२) जमदग्नि । (३) परशुराम ।(४) शुक्राचार्य ।

भृगुनंद, भृगुनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] परशुराम ।

भृगुपति—संज्ञा पुं. [सं.] परशुराम । उ.—जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति-गति डारी काटि तहीं—९-९१ ।

भृगुरेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष्णु की छाती पर भृगु की लात का चिह्न । उ.—(क) माथे मुकुट सुभग पीतांबर उर सोभित भृगु-रेखा हो । (ख) तट भुजदंड भौंर भृगुरेखा चंदन चित्रित रंगन सुंदर ।

भृगुलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भृगु मुनि का चरण-चिह्न जो विष्णु की छाती पर है । उ.—उर अरु ग्रीव बहुरि हिय धारै । तापर कौस्तुभ मनिहिं बिचारै । तहँ भृगु-लता, लच्छमी जान । नाभि कमल चित धारै ध्यान—३-१३ ।

भृगुवार—संज्ञा पुं. [सं.] शुक्रवार ।

भृत—संज्ञा पुं. [सं.] भृत्य, दास, सेवक । उ.—जोइ भावै सोइ करहु तुम, लता सिला, द्रुम, गेहु । ग्वाल गाइ कौ भृत करौ, मानि सत्य व्रत एहु—४९२ ।
वि. [सं.] (१) भरा-पूरा । (२) पोषित ।

भृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नौकरी । (२) वेतन । (३) मूल्य । (४) पालन करना । उ.—वै पथ बिकल चकित अति आतुर भमंत हेतु दियौ । भृति बिलंबि पृष्टि दै स्यामा स्यामै स्याम बियौ—३४७४ ।

भृतु—संज्ञा पुं. [सं. भृत्य] दास, सेवक। उ.—तब पहिचानि जानि प्रभु कौ भृतु परम सुचित मन कीन्हौं—२९७१।

भृत्य—संज्ञा पुं. [सं.] सेवक, दास। उ.—मंत्री-भृत्य-सखा मो सेवक यातैं कहत सुजान—सारा. ५४६।

भृश—क्रि. वि. [सं.] बहुत अधिक।

भेंगा—वि. [हिं. भिगा] जिसकी आँखों की पुतलियाँ टेढ़ी-तिरछी रहती हों।

भेंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. भेंटना] (१) उपहार, उपायन। उ.—(क) चारि पदारथ दिए, सुदामा तंदुल भेंट धरयौ—१-१३३। (ख) ते सब पतित पायँ-तर डारौं, यहै हमारी भेंट—१-१४६। (२) मिलना, साक्षात्कार। उ.—(क) अब लगि प्रभु तुम बिरद बुलाए, भई न मोसौं भेंट। तजौ बिरद कै मोहिं उधारौ, सूर कहै कसि फेंट—१-१४५। (ख) नृपति के रजक सौं भेंट मग मैं भई, कह्यौ, दै बसन हम पहिरि जाहीं—२५८४।

भेंटइ—क्रि. स. [हिं. भेंटना] गले या छाती से लगाता है। उ.—धाइ धाइ द्रुम भेंटइ ऊधौ छाके प्रेम—३४४३।

भेंटत—क्रि. वि. [हिं. भेंटना] भेंटते समय, भेंटने पर। उ.—भेंटत आँसू परे पीठि पर, बिरह-अगिनि मनु जरत बुझाए—९-१६८।

क्रि. स.—भेंट करते हैं, चढ़ाते हैं। उ.—नंद करत पूजा, हरि देखत। घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल-चंदन लै भेंटत—१०-२६१।

भेंटन—संज्ञा पुं. [हिं. भेंट] मिलने, मुलाकात करने। उ.—(क) भारतादि दुरजोधन, अर्जुन, भेंटन गए द्वारिकापुरी—१-२६८। (ख) जुवतिन सबै कामबपु भेंटन कूँ ललचाय—सारा. ५१५।

भेंटना, भेंटनो—क्रि. अ. [हिं. भिड़ना] मिलना, साक्षात्कार करना।

क्रि. स.—गले या छाती से लगाना।

क्रि. स. [हिं. भेंट] भेंट देना।

भेंटिबौं, भेंटिबौ—क्रि. स. [हिं. भेंटना] गले या छाती से लगाना। उ.—श्रीदामा आदि सकल ग्वालनि को मेरे हित भेंटिबौं—२९४२।

भेंटी—क्रि. स. [हिं. भेंटना] गले या छाती से लगाया। उ.—(क) किशोरी अँग-अँग भेंटी स्यामहिं—१७०१। (ख) रुकमिनि राधा ऐसैं भेंटी। जैसैं बहुत दिननि की बिछुरी एक बाप की बेटी—४२९१।

भेंटे—क्रि. स. [हिं. भेंटना] भेंट की, गले या छाती से लगाया, मिले। उ.—जथाजोग भेंटे पुरबासी, गए सूल, सुख-सिंधु नहाए—९-१६८।

भेंटौंगी, भेंटौंगी—क्रि. स. [हिं. भेंटना] गले या छाती से लगाऊँगी। उ.—सूर स्याम ज्यौं उछँगि लई मोहिं यौं मैं हूँ हँसि भेंटौंगी—पृ० ३५२ (७९)।

भेंटौंगो, भेंटौंगो—क्रि. स. [हिं. भेंटना] गले या छाती से लगाऊँगा। उ.—मनो इन सकुल अबहीं यहि बन इन भुज भरि भेंटौंगो गोपालहिं—२४८३।

भेंवना, भेंवनो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] तर करना।

भेइ—क्रि. स. [हिं. भेवन] भिगोई, तर की, मग्न की। उ.—ते बेली कैसैं दहियत हैं जे अपनैं रस भेइ—१-२००।

भेउ—संज्ञा पुं. [सं. भेद] भेद, मर्म, रहस्य।

भेक—संज्ञा पुं. [हिं. मेढक] मेढक।

भेख—संज्ञा पुं. [सं. भेष] (१) पहनने के वस्त्र। (२) पहनने का ढंग।

भेखज—संज्ञा पुं. [सं. भेषज] दवा, औषधि।

भेज—संज्ञा स्त्री. [हिं. भेजना] भेजने की वस्तु।

भेजना, भेजनो—क्रि. स. [सं. व्रजन्] किसी वस्तु या व्यक्ति के जाने का आयोजन करना, रवाना करना।

भेजा—संज्ञा पुं. [?] सिर के भीतर का गूदा, मगज।

मुहा०—भेजा खाना—बकबक से तंग करना।

भेज्यौ—क्रि. स. [हिं. भेजना] भेजा, एक स्थान से दूसरे तक जाने को प्रेरित किया। उ.—रिषि सिष्यहिं भेज्यौ समुझाइ। नृप सौं कहि तू ऐसी जाइ—१-२९०।

भेड़—संज्ञा स्त्री. [सं. मेष] एक प्रसिद्ध चौपाया, गाडर।

वि.—(१) बहुत सीधा। (२) बहुत मूर्ख।

भेड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. भेड़] नर भेड़, मेढा।

भेड़िया—संज्ञा पुं. [हिं. भेड़] एक मांसाहारी चौपाया।

भेड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. भेड़] भेड़।

भेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भेदने-छेदने की क्रिया। (२) विरोधी पक्ष में परस्पर द्वेष उत्पन्न करना। (३) रहस्य। उ.—(क) अपुनपौ आपुनही मैं पायौ। सब्दहिं सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ—४-१३। (ख) मन इनसौं मिलि भेद बतायौ बिरह फाँस गरे डारी—पृ. ३२६ (५७)। (ग) घर को भेद और के आगे क्यौं कहिबे कौं जाहीं—१९००। (घ) कहा मन मैं घालि बैठी भेद मैं नहिं लखि सकी—२२५९। (४) अता-पता, खोज। उ०—छाक लिए सिर स्याम बुलावति। ढूंढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौं, कितहूँ भेद न पावति—४५९। (५) तात्पर्य। (६) अंतर, फर्क। उ.—(क) बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी आइ जनम लियौ तैसौ। उनहूँ कैं गृह सुत दाता हैं, उन्हें भेद कहु कैसौ—२-१४। (ख) भेद चकोर कियौ ताहू मैं बिधु प्रीतम रिपु भान—३३५७। (७) प्रकार, किस्म। उ.—इते पर हस्तकनि गति छबि नृत्य भेद अपार—पृ० ३५१ (७७)।

भेदक—वि. [सं.] भेदने-छेदनेवाला।

भेदन—संज्ञा पुं. [सं.] भेदने-छेदने की क्रिया।

भेदना, भेदनो—क्रि. स. [सं. भेदन] (१) बेधना, छेदना। (२) मनोभाव जानने के लिए पैनी दृष्टि से देखना।

भेदभाव—संज्ञा पुं. [सं.] अंतर।

भेदि—क्रि. अ. [हिं. भेदना] छेदकर, भेदन करके, विदीर्ण करके। उ.—धनि जननी जो सुभटहिं जावै। ···। मरै तौ मंडल भेदि भानु कौ, सुरपुर जाइ बसावै—९-१५२।

भेदिआ, भेदिया—संज्ञा पुं. [हिं. भेद] (१) भेद लेनेवाला। उ.—भेदिआ सौं भेद कहिबो छेद सौं छाती परी—३२६०। (२) गुप्त रहस्य जाननेवाला।

भेदी—संज्ञा पुं. [हिं. भेद] (१) भेद लेनेवाला। (२) गुप्त रहस्य जाननेवाला।

वि. [सं. भेदिन्] भेदनेवाला।

भेदीसार—संज्ञा पुं. [सं.] बढ़ई का 'बरमा' जिससे काठ में छेद किया जाता है।

भेद्य—वि. [सं.] जो भेदा या छेदा जा सके।

भेद्यौ—क्रि. स. [हिं. भेदना] मनोभाव जानने के लिए तीव्र दृष्टि से देखा। उ.—प्रभु जागे, अर्जुन-तन चितयौ। कब आये तुम, कुसल खरी। ता पाछैं दुर्योधन भेद्यौ, सिर-दिसि तैं मन गर्व धरी—१-२६८।

भेन, भेना—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहिन] बहिन।

भेना, भेनो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] तर करना।

भेर, भेरि, भेरी—संज्ञा स्त्री. [सं. भेरी] बड़ा ढोल या नगाड़ा, दुंदुभी। उ.—(क) घुरत निसान, मृदंग-संख धुनि, भेरि-झाँझ-सहनाइ—९-२९। (ख) बाजन बाजै गहगहे, बाजैं मंदिर भेरि—१०-४०।

भेरीकार—संज्ञा पुं. [सं. भेरी+कार] भेरी बजानेवाला।

भेल—वि. [सं.] (१) कायर, भीरु। (२) मूर्ख।

भेला—संज्ञा पुं. [हिं. भेंट] (१) भिड़ंत। (२) मुलाकात।

संज्ञा पुं. [देश.] (गुड़ का) बड़ा पिंड।

भेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. भेला (पुं.)] गुड़ की पिंडी। उ.—कान्ह कुँवर को कनछेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की—१०-१८०।

भेव—संज्ञा पुं. [सं. भेद] (१) मर्म की बात, भेद, रहस्य। उ.—जुग-जुग जनम, मरन अरु बिछुरन, सब समुझत मत-भेव। ज्यौं दिनकरहिं उलूक न मानत, परि आई यह टेव—१-१००। (२) बारी, पारी।

भेवना, भेवनो—क्रि. स. [हिं. भिगोना] तर करना।

भेश, भेष—संज्ञा पुं. [सं. वेश] कपड़े, गहने आदि से अपने को सजाना। उ.—अबिहित बाद-बिवाद सकल मत इन लगि भेष धरत—१-५५।

मुहा०—भेष बनायौ—शरीर धारण किया, अवतार लिया। उ.—नर तन सिंह बदन बपु कीन्हौ जन लगि भेष बनायौ—१-१९०।

भेषज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) औषध, दवा। उ.—वहाँ भेषज नाना बिधि को अरु मधुरिपु से हैं बैद—३०१३।

भेषति—क्रि. अ. [हिं. भेषना] पहनती है। उ.—अति सुगंध मर्दन अँग अँग ठनि बनि बनि भूषन भेषति—१५९६।

भेषना, भेषनो—क्रि. स. [हिं. भेष] (१) स्वाँग बनाना। (२) पहनना।

भेषा—संज्ञा पुं. [सं. वेश] वेश, रूप। उ.—संख-चक्र-गदा-पद्म बिराजत, अति प्रताप सिसु-भेषा—१०-४।

भेस—संज्ञा पुं. [सं. वेष] (१) रूप-रंग, पहनावा आदि। (२) बनावटी रूप-रंग और पहनावा।

भेसज—संज्ञा स्त्री. [सं. भेषज] औषध, दवा।

भेसना, भेसनो—क्रि. स. [सं. वेश, हिं. भेष] (१) वस्त्रादि पहनना। (२) स्वाँग बनाना।

भैंस—संज्ञा स्त्री. [सं. महिष] एक दुधारू चौपाया।

भैंसा—संज्ञा पुं. [हिं. भैंस] 'भैंस' का नर।

भैंसासुर—संज्ञा पुं. [सं. महिषासुर] एक दैत्य जो दुर्गा जी द्वारा मारा गया था।

भैंसौ—संज्ञा पुं. [हिं. भैंसा] भैंस का नर, भैंसा; यह यम का वाहन माना गया है। उ.—सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनौ ऊँट-बृष भैंसौ—२-१४।

भै—संज्ञा पुं. [सं. भय] भय, डर।

क्रि. अ. [हिं.] हुई, हुआ। उ.—कत ह्री सोत सहति व्रत-सुंदरि, ब्रज पूरन सब भै री—७८७।

भैचक, भैचक्क—वि. [हिं. भय+चक] भौचक्का, चकित।

भैजन—वि. [सं. भय+जनक] भय उत्पन्न करनेवाला।

भैजल—संज्ञा पुं. [सं. भव+जाल] संसार का बंधन।

भैदा—वि. [सं. भय+दा] भय पैदा करनेवाला।

भैन, भैना, भैनि, भैनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. बहन] बहन, भगिनी। उ.—(क) भैनी मात-पिता बंधव गुरु गुरुजन यह कहैं मोसौं—१२२१। (ख) भैनी देखि देति मोहिं गारी काहें कुलहि लजावति—१५१६।

भैने—संज्ञा पुं. [सं. भागिनेय] बहन का पुत्र, भानजा।

भैया—संज्ञा पुं. [हिं. भाई] (१) भाई, भ्राता। उ.—मातु-पिता भैया मिले, (रे) नई रुचि नई पहिचानि—१-३२५। (२) आत्मीयता-सूचक संबोधन।

भैरव—वि. [सं.] (१) भयंकर। (२) भयानक शब्दवाला।

संज्ञा पुं.—(१) शंकर। (२) शिव के एक गण। (३) एक राग। (४) भयानक शब्द।

भैरवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक देवी, चामुंडा। (२) एक रागिनी। (२) पार्वती।

भैरवीचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वे तान्त्रिक और वाममार्गी जो एक चक्र में बैठकर देवी का पूजन और मद्यपान करते हैं। (२) मद्यप और अनाचारी वर्ग।

भैरौं—संज्ञा पुं. [सं. भैरव] शंकर, रुद्र। उ.—परै भहराइ भभकंत रिपु घाइ सौं, करि कदन रुधिर भैरौं अघाऐं—९-१२९।

भैषज—संज्ञा स्त्री. [सं.] औषध, दवा।

भैहा—संज्ञा पुं. [हिं. भय+हा] (१) भयभीत। (२) जिस पर किसी भूत-प्रेत का आवेश आता हो।

भौं—संज्ञा स्त्री. [अनु.] 'भौं' का शब्द।

भौंकना, भौंकनो—क्रि. स. [अनु. भक] घुसेड़ना।

क्रि. अ. (१) 'भौं' 'भौं' करना। (२) कुत्ते का बोलना।

भौंड़ा—वि. [हिं. भद्दा] कुरूप। उ.—मूकू, निंद, निगोड़ा, भौंड़ा, कायर, काम बनावै—१-१८६।

भौंडापन—संज्ञा पुं. [हिं. भौंडा+पन] भद्दापन।

भौंतरा, भौंतला, भौंथरा, भौंथला—वि. [हिं. भुथरा] जिसकी धार तेज न हो, कुंद।

भौंदू—वि. [हिं. बुद्धू] मूर्ख, बेवकूफ। उ.—निर्घिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धी, भौंदू, नित को रोऊ—१-१८६।

भौंपा, भौंपू—संज्ञा पुं. [अनु. भौं+पू] एक बाजा।

भो—क्रि. अ. [हिं. भया] हुआ, भया।

संबोधन [सं.] हे, हो।

भोइ—क्रि. अ. [हिं. भीनना, भोना] (१) आसक्त या अनुरक्त होकर। उ.—(क) नागनि के काटैं बिष होइ। नारी चितवत नर रहै भोइ—९-२। (२) लीन या मग्न होकर। उ.—त्यों जिय रहै बिषय-रस भोइ—१० उ०-१२७।

भोए—वि. [हिं. भोना] लीन, निमग्न। उ.—लाल सौं रति मानी जानी कहे देत नैना री रंग भोए—२११२।

भोकस, भोकसा—वि. [हिं. भूख] भूखा, भुक्खड़।

भोकता, भोक्ता—वि. [सं. भोक्ता] (१) भोग करनेवाला। उ.—तुम दाता अरु तुमहिं भोकता हरता-करता तुमहीं सार—९३६। (२) भोजन करनेवाला। (३) विषय-सुख भोगनेवाला।

भोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप-पुण्य का फल जो सहा या भोगा जाता है, प्रारब्ध। उ.—अब कैसैं पैयत सुख माँगे। जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे—१-६१। (३) सुख-दुख का अनुभव। (३) सुख, विलास। उ.—काग हंसहिं संग जैसो कहाँ सुख कहँ भोग—२९११। (४) स्त्री से संभोग। (५)

फल, अर्थ। (६) देवी-देवता को चढ़ाया जानेवाला खाद्य, नैवेद्य। उ.—(क) पट अंतर दै भोग लगायौ —१०-२६१। (ख) गिरि गोवर्धन देवन कौ मनि सेवहु ताकौ भोग चढ़ाई—९१३।

भोगना, भोगनो—क्रि. अ. [सं. भोग] (१) सुख-दुख का अनुभव करना, भुगतना। (२) सहन करना। (३) संभोग करना।

भोगलिप्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] लत, व्यसन।

भोगली—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) नाक की लौंग (गहना)। (२) कान का एक गहना।

भोगवना, भोगवनो—क्रि. अ. [हिं. भोगना] (१) भुगतना। (२) सहन करना। (३) संभोग करना।

भोगवै—क्रि. अ. [हिं. भोगवना] (१) सुख-दुख का अनुभव करे। (२) सुख भोगे। (३) सहन करे। (४) सहवास करे।

भोगवाना, भोगवानो—क्रि. स. [हिं. भोगना] भोगने को प्रवृत्त करना।

भोग-विलास—संज्ञा पुं. [सं.] आमोद-प्रमोद।

भोगाना, भोगानो—क्रि. स. [हिं. भोगना] भोगने को प्रवृत्त करना।

भोगिन, भोगिनि, भोगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उपपत्नी। (२) प्रेयसी।

भोगी—वि. [सं. भोगिन्] (१) सुखी। (२) इन्द्रियों का सुख भोगनेवाला। उ.—सूर स्याम ब्रज जुवतिनि भोगी—१८४५। (३) भुगतनेवाला। (४) विषयासक्त। (५) विलासी, आनंद करनेवाला। उ.—सूर स्याम आपुन ही भोगी—१०२५। (६) विषयी, भोगासक्त। उ.—भौंरा भोगी बन भ्रमै (रे) मोद न मानै ताप—१-३२५। (७) खानेवाला। उ.—(क) सो ब्रज मैं माखन को भोगी—५९९। (ख) सूर-स्याम मेरौ माखन-भोगी तुम आवति बेकाज—७७५।

भोगैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. भोग] व्यंजनों को, खाद्यों को। उ.—नंद-भवन मैं कान्ह अरोगैं। जसुदा ल्यावैं षटरस भोगैं—३९६।

भोग्य—वि. [सं.] (१) जिसका भोग किया जाय। (२) जो भोगने योग्य हो। (३) खाद्य।

भोग्यभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुख-विलास का स्थान या प्रदेश। (२) मर्त्यलोक जहाँ पाप-पुण्य का फल दुख-सुख के रूप में भोगना होता है।

भोग्यमान—वि. [सं.] जो भोगने को शेष हो।

भोज—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण के एक ग्वाल सखा का नाम। उ.—अर्जुन, भोजऽरु, सुबल, सुदामा, मधुमंगल इक ताक—४६४।

संज्ञा पुं. [सं. भोजन] (१) दावत (२) खाद्य पदार्थ।

भोजक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोगनेवाला। (२) विलासी।

भोजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खाने की सामग्री। उ.—काग-सृगाल-स्वान को भोजन तू कहै मेरी मेरी—१-३४०। (२) खाना, भक्षण करना। उ.—करि भोजन अवसेस जज्ञ को त्रिभुवन-भूख हरी—१-१९।

भोजनभट्ट—संज्ञा पुं. [सं. भोजन+भट्ट] बहुत खाने वाला।

भोजनालय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाकशाला। (२) स्थान जहाँ मूल्य देकर भोजन किया जाय।

भोजपत्र—संज्ञा पुं. [सं. भूर्जपत्र] एक वृक्ष जिसकी छाल प्राचीन काल में ग्रंथ-लेखन के काम में आती थी।

भोजी—वि. [सं. भोजिन्] खानेवाला या वाली।

भोज्य—वि. [सं.] खाने योग्य।

भोड़र, भोडल—संज्ञा पुं. [देश.] (१) अबरक। (२) अबरक का चूर्ण जो होली में गुलाल के साथ उड़ाया जाता है।

भोथर, भोथरा—वि. [अनु.] कुंद धारवाला, गुट्ठल।

भोना, भोनो—क्रि. अ. [हिं. भीनना] (१) संचारित होना। (२) लिप्त, लीन या निमग्न होना। (३) आसक्त या अनुरक्त होना। (४) भीगना, तर होना।

क्रि. स.—(१) संचारित करना। (२) मिलाना। (३) आसक्त करना। (४) धोखे में डालना।

भोयो, भोयौ—क्रि. अ. [हिं. भोना] लीन हुआ, लिप्त या निमग्न हुआ।

वि. [हिं. भीनना, भोना] लिप्त, लीन, युक्त, निमग्न। उ.—(क) भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल—१-१५३। (ख) ब्रह्मा-महादेव सुर-सुरपति नाचत फिरत महारस भोयौ—१-५४।

भोर—संज्ञा पुं. [सं. विभावरी] प्रातःकाल, सबेरा, तड़का। उ.—खान-पान-परिधान मैं (रे) जोबन गयौ सब बीति। ज्यौं बिट पर-तिय सँग बस्यौ (रे) भोर भए भई भीति—१-३२५। (ख) भोर भयो जागे नँद-लाल—२५७१।

संज्ञा पुं. [सं. भ्रम] धोखा, भूल, भ्रम। उ.—हँसत परस्पर आपु में चली जाहिं जिय भोर।

वि.—चकित, स्तंभित। उ.—सूर प्रभु की निरखि सोभा भई तरुनी भोर—१३५५।

वि. [हिं. भोला] भोला, सीधा, सरल।

भोरए—क्रि. स. [हिं. भोराना] भ्रम में डालने (से), बहकाने से। उ.—सूरदास लोगन के भोरए काहे कान्ह अब होत पराए।

भोरना, भोरनो—क्रि. स. [सं. भ्रम] (१) भ्रम में डालना। (२) धोखा देना। (३) बहकाना, फुसलाना।

भोरा—संज्ञा पुं. [हिं. भोर] प्रातःकाल, सबेरा।

वि. [हिं. भोला] भोला, सीधा।

भोराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. भोरा+ई] सीधापन।

भोराना, भोरानो—क्रि. स. [हिं. भोर+आना] बहकाना, भ्रम में डालना।

क्रि. अ.—भ्रम में पड़ना, बहकाया जाना।

भोरानाथ—संज्ञा पुं. [हिं. भोलानाथ] शिव जी।

भोरि—क्रि. स. [हिं. भोराना] (१) धोखा देकर, भ्रम में डालकर। उ.—सखी री, मुरली लीजै चोरि।·····। ना जानौं कछु मेलि मोहिनी राखे अंग अंग भोरि—६५७। (२) बहकाकर, फुसलाकर। उ.—महा मोहिनी मोहि आतमा-अपमारगहिं लगावै।........। ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै लै परपुरुष दिखावै—१-४२।

भोरी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. भोला] (१) भोली, सीधी, सरल, अनजान। उ.—(क) देखी हरि मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी।········। दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढ़ी—१०-३००। (ख) सूरदास अबला हम भोरी गुर-चैंटी ज्यौं पागी—३३३५।

क्रि. स. [हिं. भोरना] बहकाया, भ्रम में डाला। उ.—आरज पंथ छिड़ाय गोपिकन अपने स्वारथ भोरी—२८६३।

भोरु—संज्ञा पुं. [हिं. भोर] सबेरा, प्रातःकाल।

संज्ञा पुं.—धोखा, भ्रम।

भोरे—वि. [हिं. भोला] सीधा, सरल स्वभाव का। उ.—(क) सूर स्याम उनको भाए भोरे हमको निठुर मुरारी—पृ. ३३० (९१)। (ख) सुनियत हुए तैसई देखे सुंदर सुमति सुभोरे—२९७१। (ग) ऊधौ, तुम सब साथी भोरे—३१७६। (२) अबोध, अनजान, अपरि-पक्व अवस्था के। उ.—(क) कहाँ रहत काके वै ढोटा वृद्ध तरुन की वो हैं भोरे—१२३८। (ख) की गोरे की कारे रँग हरि की जोबन की भोरे—१२६०।

भोरैं—संज्ञा पुं. [हिं. भोर] धोखे में, भ्रम में। उ.—किलकि किलकत हँसत, बाल सोभा लसत, जानि यह कपट, रिपु आयौ भोरैं—१०-६२।

भोरै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. भोर] भ्रम या धोखे में। उ.—कहा भयौ तेरे भवन गए जो पियौ तनक लै भोरै—१०-३२१।

भोरो, भोरौ—वि. [हिं. भोला] भोला, सीधा, सरल, अनजान। उ.—कह जानै मेरौ, बारौ भोरौ, झुकी महरि दै-दै मुख गारि—१०-३०४।

भोल—वि. [हिं. भोला] मुग्ध, आसक्त, लीन।

भोला—वि. [हिं. भूलना] (१) सीधा-सादा। (२) मूर्ख।

भोलानाथ—संज्ञा पुं. [हिं. भोला+सं. नाथ] (१) शीघ्र ही संतुष्ट हो जानेवाले, शिव, महादेव। उ.—सिव कौं सबनि कियौ सनमान। भोलानाथ लियौ सब गान—४-५। (२) सरल स्वभाव का व्यक्ति।

भोलापन—संज्ञा पुं. [हिं. भोला+पन] (१) सिधाई, सरलता। (२) नादानी, मूर्खता।

भोलाभाला—वि. [हिं. भोला+अनु. भाला] सीधा।

भोवति—क्रि. स. [हिं. भोवना] सुगन्धित करती है। उ.—कबहुँ सेज कर झारि सँवारति कबहुँ मलयरज भोवति—१९४९।

भोवना, भोवनो—क्रि. स. [हिं. भोना] सुगंधित करना।

भोसर, भोसरा—वि. [देश.] मूर्ख, मूढ़।

भौँ—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रू] भौंह, भृकुटी।

भौंकना, भौंकनो—क्रि. अ. [अनु. भौंभौं] (१) भौंभौं करना। (२) कुत्ते का बोलना। (३) बकवाद करना।

भौंतुआ, भौंतुवा—संज्ञा पुं. [हिं. भ्रमना] (१) एक कीड़ा। (२) एक रोग।

भौंर—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर] (१) तेज बहते हुए पानी में पड़ने वाला चक्कर, भँवर, आवर्त्त। उ.—कब लगि फिरिहौं दीन बह्यौ? सुरति-सरित-भ्रम भौंर-लोल मैं, मन परि तट न लह्यौ—१-१६२। (२) भौंरा, भ्रमर। उ.—रसभरे अंबुजनि भीतर भ्रमत मानौ भौंर—१३६४।

भौंरा—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर, पा. भमर, प्रा. भँवर] (१) भ्रमर, चंचरीक। उ.—भौंरा भोगी बन भ्रमैं मोद न मानै ताप—१-३२५। (२) बड़ी मधुमक्खी। (३) एक खिलौना जो डोरी लपेट कर नचाया जाता है। उ.—इत आवत दै जात देखाई ज्यौं भौंरा चकडोर। (४) हिंडोले की मयारी में लगी लकड़ी जिसमें डोरी बाँधी जाती है। उ.—हिंडोरना माई झूलत गोपाल।......। भौंरा मयारिनि नील मरकत खँचे पाँति अपार।

भौंराना, भौंरानो—क्रि. स. [सं. भ्रमण] (१) घुमाना। (२) विवाह की भाँवर दिलाना।

क्रि. अ.—घूमना, चक्कर काटना।

भौंराही—संज्ञा स्त्री. [हिं. भौंरा] भौंरों के मँडराने की क्रिया या भाव।

भौंरी—वि. [सं. भ्रमण] जिस पशु के रोओं या बालों का घुमावदार चक्र हो, जिसके स्थान आदि के विचार से पशु के गुण-दोष का निर्णय किया जाय।

संज्ञा स्त्री.—घुमावदार रोओं या बालों के चक्र वाली गाय। उ.—पियरीं, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी, जेती। दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी, हाँकि, ठिकाई तेती—४४५। (२) विवाह के समय वर-वधू द्वारा अग्नि की परिक्रमा। (३) जल-धारा का चक्कर। (४) बाटी (रोटी)।

भौंह—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रू] भौं, भँव। उ.—तब इक पुरुष भौंह तैं भयौ—३-७।

मुहा०—भौंह चढ़ाना (तानना)—अप्रसन्न होना, बिगड़ना। भौंह तनत—क्रुद्ध या असन्न होते हैं। उ.—बदत काहू नहीं निधरक निदरि मोहिं न गनत। बार-बार बुझाइ हारी भौंह मो पर तनत। भौंह चलाना—भौंह मटका कर संकेत करना। भौंह चलावै—भौंहें मटकाकर संकेत करता है। उ.—ठठकति चलै मटकि मुँह मोरे बंकट भौंह चलावै—८७६। भौंह जोहना—खुशामद करना। भौंह ताकना—रुख या मनोभाव परखना।

भौंहरा—संज्ञा पुं. [हिं. भू + गृह] तहखाना।

भौ—संज्ञा पुं. [सं. भव] संसार।

संज्ञा पुं. [सं. भय] डर, भय।

भौकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. भभक] (१) ज्वाला। (२) ताप।

भौगिया—वि. [हिं. भोग] सुख भोगनेवाला।

भौगोलिक—वि. [सं.] भूगोल-संबंधी।

भौचक—वि. [हिं. भय + चकित] हक्का-बक्का, चकित।

भौचाल—संज्ञा पुं. [हिं. भूचाल] भूकंप, भूडोल।

भौचाली—वि. [हिं. भौचाल] उपद्रवी।

भौज, भौजाइ, भौजाई—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रातृजाया] भाई की पत्नी, भावज। उ.—तेरो कोऊ कहा करैगौ धौं लरिहै हमसौं भौजाई—८५५।

भौजल—संज्ञा पुं. [सं. भव + जाल] सांसारिक बंधन।

भौठा—संज्ञा पुं. [देश.] पहाड़ी, टीला।

भौतिक—वि. [सं.] (१) पाँच भूतों से बना हुआ, पार्थिव, सांसारिक। उ.—भौतिक देह जीव अभिमानी देखत ही दुख लायौ। (२) शरीर संबंधी। (३) भूतयोनि-सम्बन्धी।

भौती—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात, रजनी।

क्रि. वि. [हिं. बहुत + ही] बहुत ही।

भौन—संज्ञा पुं. [सं. भवन] घर, गृह। उ.—आजु बिधाता मति मेरी गई भौन कान बिरमाई—२५३८।

भौना, भौनो—क्रि. अ. [सं. भ्रमण] चक्कर लगाना।

संज्ञा पुं. [सं. भवन] घर, गृह। उ.—मुरली बजाय बिसरावत भौना—२४२१।

भौम—वि. [सं.] (१) भूमि-संबंधी। (२) भूमि से उत्पन्न।

संज्ञा पुं—मंगल ग्रह। उ.—(क) नील, सेत अरु

पीत, लाल मनि लटकन भाल लुनाई। सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई—१०-१०८। (ख) मुक्ता-विद्रुम-नील-पीत मनि, लटकत लटकन भाल री। मानो सुक्र-भौम-सनि-गुरु मिलि, ससि कैं बीच रसाल री—१०-१४०।

भौमरत्न—संज्ञा पुं. [सं.] मूँगा।

भौमवार—संज्ञा पुं. [सं.] मंगलवार।

भौमासुर—संज्ञा पुं. [सं.] नरकासुर नामक दैत्य। उ.—(क) सिसु ह्वै भौमासुर तहाँ आयौ काहू जान न पाइ—२३७८। (ख) सत्यभामा सहित बैठे हरि, गरुड़ पर भौमासुर नगर गए तुरत धाई—१० उ०-३१।

भौमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी की कन्या, सीता।

भौर—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर] (१) भौंरा। (२) एक तरह का घोड़ा।

भ्रंश, भ्रंस—वि. [सं. भ्रंश] भ्रष्ट, खराब। उ.—सूर सुज्ञान सुनावति अबलनि सुनत होत मति भ्रंस—३०४९।

भ्रकुटि—संज्ञा स्त्री. [सं. भृकुटी] भौंह।

भ्रत—संज्ञा पुं. [सं. भृत्य] दास, सेवक।

भ्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धोखा, भ्रांति। (२) संदेह, संशय। (३) भ्रमण। (४) कुम्हार का चाक।

वि.—(१) घूमने वाला। (२) भ्रमण करनेवाला।

भ्रमकारी—वि. [सं. भ्रमकारिन्] भ्रम उत्पन्न करने वाला।

भ्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घूमना-फिरना। (२) आना-जाना। (३) यात्रा। (४) चक्कर, फेरी।

भ्रमत—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] घूमता-फिरता है। उ.—कौन बिरक्त अधिक नारद तैं, निसि दिन भ्रमत फिरै—१-३५।

वि.—घूमता-फिरता हुआ, चक्कर काटता। उ.—चक्र सौं भ्रमत चकृत भए देखि सब चहुँधा देखिए नंद-ढोटा—२५९१।

भ्रमति, भ्रमती—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] घूमती-फिरती है। उ.—तेरो दोष नहीं भ्रमती तू जहीं तहीं नदी डोंगर बन बन पात-पाता—१५४६।

भ्रमना, भ्रमनो—क्रि. अ. [सं. भ्रमण] घूमना-फिरना।

क्रि. अ. [सं. भ्रम] (१) धोखा खाना, भूल करना। (२) भूल-भटक जाना, भटकना।

भ्रमनि—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रमण] (१) घूमना-फिरना। (२) चक्कर, फेरी।

वि. [सं. भ्रम] भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति। उ.—तुम सर्वज्ञ, सबै बिधि पूरन, अखिल भुवन निज नाथ। तिन्हैं छाँड़ि यह सूर महा सठ, भ्रमत भ्रमनि कैं साथ—१-१०३।

भ्रममूलक—वि. [सं.] भ्रम से उत्पन्न।

भ्रमर—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा।

यौ०—भ्रमरगुफा—हृदय का स्थान-विशेष।

वि.—कामुक, विलासी, विषयी।

भ्रमरगीत—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर+गीत] कृष्ण-काव्य का अंश-विशेष जो कृष्ण-सखा उद्धव के योगोपदेश के उत्तर में ब्रज-बालाओं की उन उक्तियों से युक्त है जो 'भ्रमर' को संबोधित करके कही गयी हैं।

भ्रमरा—संज्ञा पुं. [सं. भ्रमर] भौंरा, भ्रमर। उ.—जैसे लुबधति कमल-कोश में भ्रमरा की भ्रमरी—पृ. ३२९ (८९)।

भ्रमरावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] भ्रमर पंक्ति, भ्रमर समूह।

भ्रमरी—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रमर] भौंरे की मादा, भौंरी।

भ्रमवात—संज्ञा पुं. [सं.] वायु मंडल जो सदैव घूमता रहता है।

भ्रमाइ—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] भ्रम में पड़ जाती है, चकित हो जाती है। उ.—जौन जराइ जु जगमगाइ रहे देखत दृष्टि भ्रमाइ—१० उ०-६।

भ्रमात्मक—वि. [सं.] (१) भ्रम उत्पन्न करनेवाला। (२) संदिग्ध।

भ्रमाना, भ्रमानो—क्रि. स. [हिं. भ्रमाना] (१) घुमाना-फिराना। (२) धोखे में डालना, भटकाना।

क्रि. अ.—(१) घूमना-फिरना। (२) भ्रम या धोखे में पड़ना, भटकना।

भ्रमाती—क्रि. अ. [हिं. भ्रमाना] (१) घूमती फिरती है। (२) भ्रम या धोखे में पड़ गयी है।

भ्रमावै—क्रि. अ. [हिं. भ्रमाना] भ्रम या धोखे में पड़ जाते हैं। उ.—जसुदा मदन-गुपाल सोवावै। देखि

सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै—१०-६५।

भ्रमि—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] घूम-फिरकर। उ.—सूर नगर चौरासी भ्रमि-भ्रमि घर-घर को जु भयौ—१-६४।

भ्रमित—वि. [सं.] (१) भ्रम में पड़ा हुआ। (२) घूमता-फिरता, भटकता।

भ्रमी—वि. [सं. भ्रमिन्] (१) जिसे भ्रम या धोखा हो गया हो। (२) चकित, भौचक्का।

भ्रमीन—वि. [सं. भ्रमण] घूमता हुआ।

भ्रमै—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] घूमता-फिरता है। उ.—भौंरा भोगी बन भ्रमै (रे) मोद न मानै ताप। सब कुसुमनि मिलि रस करै, (पै) कमल बँधावै आप—१-३२५।

भ्रम्यौ—क्रि. अ. [हिं. भ्रमना] मारा-मारा फिरा, भटका। उ.—(क) जिहिं-जिहिं जोनि भ्रम्यौ संकट-बस, सोइ सोइ दुखनि भरी--१-७१। (ख) भूल्यौ भ्रम्यौ तृषातुर मृग लौ, काहूँ स्रम न गँवायौ—१-२०१।

भ्रष्ट—वि. [सं.] (१) नीचे गिरा हुआ। (२) बिगड़ा हुआ। (३) दोषयुक्त। (४) बुरे चाल-चलनवाला।

भ्रष्टा—वि. [सं.] बुरे आचरणवाली।

भ्रष्टाचरण, भ्रष्टाचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुचित या भ्रष्ट आचार-विचार। (२) ईमानदारी से काम न करने का व्यवहार।

भ्रांत—वि. [सं.] (१) भ्रम या धोखे में पड़ा हुआ। (२) घबराया हुआ। (३) उन्मत्त।

भ्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भ्रम, धोखा। (२) संदेह। (३) मोह, प्रमाद। (४) एक काव्यालंकार।

भ्राज—क्रि. अ. [हिं. भ्राजना] सुशोभित है। उ.—दुलहिनि बृषभानु-सुता अंग अंग भ्राज—पृ.३४९(६०)।

भ्राजई—क्रि. अ. [हिं. भ्राजना] सुशोभित है। उ.—हाथ पहुँची बीर कानन जटित मुँदरी भ्राजई। ....। अँग अंग भूषन सुरस ससि पूरनकला मानों भ्राजई—१० उ०—२४।

भ्राजत—क्रि. अ. [हिं. भ्राजना] शोभित है। उ.—(क) लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत, मनमथ कोटि बारनें गै री—१०-५५। (ख) डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नँदलाल—१०-११४। (ग) राज-भूषन अंग भ्राजत अहीर कहत लजात—२६७२।

भ्राजना, भ्राजनो—क्रि. अ. [सं. भ्राजन=दीपन] शोभा पाना, शोभित होना।

भ्राजमान—वि. [हिं. भ्राजना] शोभायमान।

भ्राजै—क्रि. अ. [हिं. भ्राजना] शोभित होता है। उ.—मनि कुंडल मकराकृत तरुन तिलक भ्राजै—१४६५।

भ्रात, भ्राता—संज्ञा पुं. [सं. भ्रात, हिं. भ्राता] भाई। उ.—(क) वृषभासुर-बत्सासुर मारयो, बल-मोहन दोउ भ्रात—५०८। (ख) मुकुट कुंडल पीत पट छबि अनुज भ्राता स्याम—२५६५।

भ्रातृज—संज्ञा पुं. [सं.] भाई का लड़का।

भ्रातृजाया—संज्ञा स्त्री. [सं.] भाई की स्त्री, भौजाई।

भ्रातृत्व—संज्ञा पुं. [सं.] भाईपन, भाईचारा।

भ्रात्र—संज्ञा पुं. [सं. भ्रातृ] सगा भाई, सहोदर। उ.—भवन सँवारि, नारि रस लोभ्यौ, सुत, बाहन, जन, भ्रात्र—१-२१६।

भ्राम—संज्ञा पुं. [सं. भ्रम] भ्रम, धोखा।

भ्रामक—वि. [सं.] (१) भ्रम में डालनेवाला। (२) संदेह उत्पन्न करनेवाला। (३) चक्कर खिलानेवाला।

भ्रुम—संज्ञा पुं. [सं. भ्रम] एक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—भ्रुम अरु केसी इहाँ पछारयौ—३४०९।

भ्रुव—संज्ञा स्त्री. [सं. भ्रू] भौं, भौंह। उ.—(क) लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर-बिंदु भ्रुव-ऊपर री—१०-९८। (ख) अंजन दोउ दृग भरि दीन्हौ। भ्रुव चारु चखौड़ा कीन्हौ—१०-१८३।

भ्रू—संज्ञा स्त्री. [सं.] भौं, भौंह। उ.—चूमति कर-पग-अधर-भ्रू लटकति लट चूमति—१०-७४।

भ्रू-भंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौंह का संकेत। (२) भृकुटी या त्यौरी चढ़ाना। उ.—काल डरत भ्रू-भंग की आँचो—१-१८।

भ्रूण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गर्भ। (२) गर्भ का बालक।

भ्रूणहत्या—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भ के बालक की हत्या।

भ्रूविक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] भृकुटी चढ़ाना, भ्रूभंग।

भ्वहरना, भ्वहरनो—क्रि. अ. [हिं. भय+हरना] डरना।

भ्वासर—वि. [देश.] मूर्ख, मूढ़।

म

म—देवनागरी वर्णमाला का पचीसवाँ व्यंजन जो होंठ और नासिका से उच्चरित होता है।

मंकुर—संज्ञा पुं. [सं. मुकुर] शीशा, दर्पण।

मंग—संज्ञा स्त्री. [हिं. माँग] सिर के बालों के बीच की माँग। उ.—(क) गोरे भाल लाल सेंदुर छबि मुक्ता-बर सिर सुभग मंग को—१०४२। (ख) इन बिर-हिनि मैं कहूँ तू देखी सुमन गुहाए मंग—३२२३।

मँगइए—क्रि. स. [हिं. मँगाना] मँगाइए। उ.—सकुचत फिरत जो बदन छिपाए, भोजन कहा मँगइए—१-२३९।

मंगता, मँगता—संज्ञा पुं. [हिं. माँगना+ता] भिखमंगा।

मंगन—संज्ञा पुं. [हिं. माँगना] भिखमंगा। उ.—धेनु जे संकल्प राखीं लईं ते गनाइ कै……। मागध मंगन जन लेत मन भाइ कै—२६२८।

मंगना—क्रि. स. [हिं. माँगना] याचना करना।

मँगनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. माँगना] (१) माँगने की क्रिया या भाव। (२) कुछ समय के लिए माँग कर लेने का भाव। (३) कुछ समय के लिए माँग कर ली गयी वस्तु। (४) विवाह-पूर्व की एक रीति जिसमें सम्बन्ध पक्का किया जाता है।

मंगनो—संज्ञा पुं. [हिं. माँगना] माँगने की क्रिया या भाव। उ.—नवसत साज सिंगार नागरि मारगमय भूषन मंगनो—२२८०।

क्रि. स.—माँगना, याचना करना।

मंगरना, मंगरनो—क्रि. स. [हिं. मंगलना] जलाना, प्रज्ज्वलित करना।

मंगल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामना पूरी होना। (२) कुशल, कल्याण। (३) एक ग्रह। (४) इस ग्रह के नाम पर पड़ा 'वार'। (५) शुभ या पूजन-संबंधी कार्य। उ.—धूप दीप नैवेद्य साजि कै मंगल करे बिचारी—२५८७।

मंगलकलश, मंगलकलस—संज्ञा पुं. [सं. मंगलकलश] मंगल अवसर पर रखा जानेवाला पानी भरा घड़ा।

मंगलगीत—संज्ञा पुं. [सं.] शुभ दिवस पर अथवा प्रसन्नता के अवसर पर गाया जानेवाला गीत। उ.—गुन गावत मंगलगीत मिलि दस-पाँच अली—१०-२४।

मंगलघट—संज्ञा पुं. [सं.] मंगल अवसर पर रखा जाने वाला जल का घड़ा।

मंगलचार, मंगलचारा—संज्ञा पुं. [सं. मंगल+चार] (१) हर्ष, आनन्द, प्रसन्नता। (२) शुभ दिवस पर अथवा प्रसन्नता के अवसर पर किये जानेवाले नृत्य, गीत आदि हर्ष-सूचक कृत्य। उ.—(क) हय-गय-रतन हेम-पाटंबर आनँद मंगलचारा—१०-४। (ख) कमल-नयन मधुपुरी सिधारे मिटि गयो मंगलचार—२६८७। (ग) कनक कलस प्रति पौर बिराजत मंगल-चार बधाई—सारा. ३९५।

मंगलना, मंगलनो—क्रि. स. [सं. मंगल] जलाना, प्रज्ज्व-लित करना।

मंगल-पाठ—संज्ञा पुं. [सं.] पद्य जो शुभ कार्यारम्भ के पूर्व मंगल-कामना से पढ़ा जाता है।

मंगलपाठक—संज्ञा पुं. [सं.] बंदीजन।

मंगलप्रद—वि. [सं.] कल्याणकारी।

मंगलभाषित—संज्ञा पुं. [सं.] अशुभ या अप्रिय बात को शुभ या प्रिय रूप में कहने का ढंग।

मंगलवार—संज्ञा पुं. [सं.] सोमवार और बुधवार के बीच का वार, भौमवार।

मंगलसूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] तागा जो देव-प्रसाद-रूप में गले में या कलाई पर बाँधा जाता है।

मंगला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पार्वती। (२) पतिव्रता।

मंगलाचरण—संज्ञा पुं. [सं.] श्लोक या छन्द जो मंगल की कामना से किसी कार्य के आरम्भ में पढ़ा जाता या ग्रंथ के आदि में लिखा जाता है।

मंगलामुखी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंगलमुखी] वेश्या।

मंगली—वि. [सं. मंगल (ग्रह)] जिसकी जन्म लग्न के अनु-सार चौथे, आठवें या बारहवें स्थान में मंगल बैठा हो।

मँगवाना, मँगवानो—क्रि. स. [हिं. माँगना] (१) माँगने में दूसरे को प्रवृत्त करना। (२) दूसरे को खरीद कर लाने के लिए प्रवृत्त करना।

मंगा—संज्ञा स्त्री. [हिं. मांग] सिर के बालों के बीच की मांग। उ.—स्याम अलक बिच मोती दुति मंगा—१७६२।

मँगाइ, मँगाई—क्रि. स. [हिं. मँगाना] बुलवा ली, मँगवा ली, लौटवा ली। उ.—(क) मैं खेई ही पार कौं तुम उलटि मँगाई—९-४२। (ख) घसि चंदन चारु मँगाइ बिप्रनि तिलक करे—१०-२४। (ग) पँचरँग सारी मँगाइ बधूजननि पँहराइ—१०-९५।

मँगाए—क्रि. स. [हिं. मँगाना] बुलवाया है, बुलवा भेजा है। उ.—हम तुमको सुख-काज मँगाए—१००५।

मँगाना, मँगानो—क्रि. स. [हिं. मांगना] (१) मांगने के लिए दूसरे को प्रवृत्त करना। (२) दूसरे को कुछ खरीद कर लाने के लिए प्रवृत्त करना।

मँगाय—क्रि. स. [हिं. मँगाना] मँगाकर। उ.—पँचरँग सारी बहुत मँगाय—२४१०।

मँगायौ—क्रि. स. [हिं. मँगाना] बुलवाया, बुलवा भेजा। उ.—बैठि एकांत मंत्र दृढ़ कीन्हों राम-कृष्न दोउ बंधु मँगायौ—२४७७।

मँगारना, मँगारनो—क्रि. स. [सं. मंगल] जलाना, प्रज्वलित करना।

मँगावत—क्रि. स. [हिं. मँगाना] लाने को प्रवृत करता है। उ.—फूले फिरत नंद अति सुख भयौ, हरषि मँगावत फूल-तमोल—१०-९४।

मँगावति—क्रि. स. [हिं. मँगाना] लाने को प्रवृत्त करती है। उ.—बार-बार रोहिनि कौं कहि कहि पलिका अजिर मँगावति है—१०-७३।

मँगावन—क्रि. संज्ञा [हिं. मँगाना] मँगाने की क्रिया। प्र०—कह्यौ पकरि मँगावन—पकड़ मँगवाने को कहा है—उ.—बल मोहन को नाम धरचो, कह्यौ पकरि मँगावन—५८९।

मंगी—क्रि. स. [हिं. माँगना] मांग (लिया)। प्र०—लियौ मंगी—मांग लिया। उ.—कहा बिदुर की जाति-बरन है, आइ साग लियौ मंगी—१-२१।

मँगेतर—वि. [हिं. मँगनी+एतर] जिसके साथ मँगनी होकर विवाह-संबंध पक्का हुआ हो।

मँगैया—वि. [हिं. मांगना+ऐया] मांगनेवाला। उ.—धन्य दान धनि कान्ह मँगैया धन्य सूर तृन द्रुम बन हारि—११८१।

मंच, मंचक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीढ़ी, मँचिया। (२) ऊँचा बना हुआ मंडल।

मंचल—वि. [हिं. मचलना] मचलनेवाला। उ.—चंचल-अधर चरन-कर चंचल मंचल अंचल गहत बकोटनि—१०-१८७।

मंछल—संज्ञा पुं. [सं. मत्सर] ईर्ष्या, डाह। संज्ञा पुं. [हिं. मच्छड] मच्छड़।

मंजन—संज्ञा पुं. [सं. मञ्जन] (१) दांत साफ करने का कोई चूर्ण। (२) स्नान।

मँजना, मँजनो—क्रि. अ. [हिं. मांजना] (१) मांजा जाना। (२) अभ्यास होना।

मंजरि, मंजरिका, मंजरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंजरी] (१) कल्ला, कोंपल। (२) आम, तुलसी जैसे वृक्षों में फूलों या फलों के स्थान में एक सींक में लगनेवाले दाने। उ.—पुहुप मंजरी मुक्तन माला अँग अनुराग धरे—६८९।

मंजरित—वि. [सं. मंजरी] मंजरी से युक्त।

मँजाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मँजाना] मांजने या मँजाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

मँजाना, मँजानो—क्रि. स. [हिं. मांजना] मांजने को प्रवृत्त करना।

मंजार—संज्ञा पुं. [सं. मार्जार] बिल्ली का नर, बिल्ला। उ.—खाइ जाइ मंजार काज एको नहिं आवै—११४१।

मंजारी—संज्ञा स्त्री. [सं. मार्जारी] बिल्ली जिसका रास्ता काट जाना अशकुन समझा जाता है। उ.—आइ अजिर निकसी नँदरानी बहुरी दोष मिटाइ। मंजारी आगैं ह्वै आई पुनि फिरि आँगन आइ—५४०।

मंजिल—संज्ञा स्त्री. [अ. मंज़िल] (१) यात्रा में ठहरने का स्थान, पड़ाव। (२) मकान, मन्दिर आदि का खण्ड।

मँजीठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मजीठ] एक लता जिसकी जड़ और डंठल से लाल रंग बनता है। उ.—मानहुँ मीन मँजीठ प्रेम रँग तैसेही गहि जैहै—२०३३।

मंजीर—संज्ञा पुं· [सं.] घुंघरू, नूपुर। उ.—ढिग जरित भरि मंजीर इत-उत चरत पंकज रंग—२२८९।

मँजीरा—संज्ञा पुं. [सं. मंजीर] काँसे की छोटी कटोरियों की जोड़ी जिससे (संगीत में) ताल दी जाती है। उ.—बाजत हुडुक मँजीरा नूपुर नाना भाँति नचायौ —सारा० ४०७।

मंजु—वि· [सं.] सुन्दर, सुकुमार, मनोहर। उ.—मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि—१०-१०९।

मंजुल—वि. [सं.] सुन्दर, मनोहर। उ.—मंजुल तारनि की चपलाई चित चतुराइ करसै री—१०-१३७।

संज्ञा पुं.—(१) नदी तट। (२) कुंज।

मंजूर—वि. [अ.] जो मान लिया गया हो, स्वीकृत।

मंजूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मंजूर] स्वीकार करने का भाव।

मंजूषा, मंजूसा—संज्ञा स्त्री.[सं. मंजूषा]पिटारी, डिबिया।

मंझ, मंझा—वि. [सं. मध्य, पा०मज्झ]बीच या मध्य का।

संज्ञा पुं. [सं. मंच] (१) चौकी। (२) खाट।

मँझधार—संज्ञा स्त्री. [हिं. माँझ+धार] (१) धारा का मध्य भाग। (२) काम की अपूर्ण अवस्था।

मँझरिया—संज्ञा पुं. [हिं. माँझी] केवट, मल्लाह।

मँझला—वि. [हिं. मँझ+ला] बीच का।

मंझा—वि. [सं. मध्य] बीच का।

संज्ञा पुं.—बीच, मध्य।

संज्ञा पुं. [सं. मंच] पलँग, खाट।

संज्ञा पुं. [हिं. माँझा] पतंग लड़ाने की डोर।

मझार, मँझारि, मँझारी, मँझारे—क्रि. वि. [सं. मध्य] बीच में। उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी—१-१६। (ख) इंद्र एक दिन सभा मँझारि। बैठ्यौ हुतौ सिंहासन डारि—६-५। (ग) सब जादव सौं कह्यौ बैठिकै सभा मँझारी—१० उ०-१०५। (घ) इक दिन बैठे सभा मँझारे—४-५।

मँझोला—वि. [हिं. मझोला] (१) बीच का। (२) मध्यम आकारवाला।

मंड—संज्ञा पुं· [सं.] (१) उबले हुए चावल का माँड़। (२) भूषा, सजावट।

मंडइ, मंडई—संज्ञा स्त्री. [सं. मंडप] झोपड़ी, कुटी।

संज्ञा स्त्री· [हिं. मंडा] बाजार, मंडी।

मंडत—क्रि. स. [हिं. मंडना] सुसज्जित करता है। उ.—तुम्हरैं भजन सबहिं सिंगार। जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार—१-४१।

मंडन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सजाना, सँवारना। (२) प्रमाण आदि देकर किसी कथन की पुष्टि करना।

मंडना, मडनो—क्रि. स. [सं. मंडन] (१) सजाना-सँवारना। (२) प्रमाण आदि देकर सिद्ध करना।

क्रि. स. [सं. मर्दन] दलन-मर्दन करना।

मंडप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विश्रामालय। (२) ऊपर से छाया और चारों ओर से खुला स्थान। (३) उत्सव, आयोजन आदि के लिए बनाया गया सुसज्जित स्थान। उ.—(क) नव फूलन के मंडप छाए—१७०३। (ख) लग्न लै जु बगत साजी उनत मंडप छाइ—१० उ०-१३। (४) चँदोवा।

मंडपिका, मंडपी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंडप] छोटा मंडप।

मंडर—संज्ञा पुं [सं. मंडल] मंडल।

मंडरना, मंडरनो—क्रि. अ [सं. मंडल] मंडल बाँधकर या चारों ओर छाकर घेर लेना।

मँडराइ, मँडराई—क्रि. अ. [हिं. मँडराना] मंडल बाँध कर या चक्कर काट कर उड़ता है। उ.—हंस को मैं अंस राख्यौ काग कत मँडराइ—१० उ०-१३।

संज्ञा स्त्री.—मंडल या घेरा बाँधकर उड़ने की क्रिया या भाव।

मँडराना, मँडरानो—क्रि. अ. [सं. मंडल] (१) मंडल बाँध कर या चक्कर काटकर उड़ना। (२) चारों ओर घूमना, परिक्रमा करना। (३) आस-पास घूमना।

मँडरानी—क्रि. अ. [सं. मंडल] आस-पास घूमती या चक्कर काटती रहती है। उ.—देखहु जाइ और काहू को हरियर सबै रहत मँडरानी—१०५७।

मँडरे—क्रि. अ. [सं. मडल] छा गया, घेर लिया। उ.—झाँझ ताल सुर मँडरे रँग हो हो होरी—२४१०।

मंडल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गोलाई, वृत्त।

मुहा०—मंडल बाँधना—(१) गोलाई में चक्कर काटना। (२) चारों ओर छा जाना या घेरना।

(२) गोलाकार विस्तार। (३) बादलों आदि के कारण चंद्रमा या सूर्य के चारों ओर दिखायी देने

वाला घेरा। (४) किसी वस्तु या अंग का गोल भाग। उ.—चलित कुंडल गंडमंडल—१-३०७। (४)क्षितिज। (५) भूमि खंड। उ.—मथुरा मंडल भरत खंड निज धाम हमारो—१८६१। (६) समूह, समाज। उ.—गोपिनि मंडल मध्य बिराजत। (७) पहिया।

मंडलाकार—वि. [सं.] गोल।

मँडलाना, मँडलानो—क्रि. अ. [हिं. मँडराना] (१) चक्कर काटते हुए उड़ना। (२) चारों ओर घूमना। (३) आस-पास फिरना।

मंडली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समूह, समाज। उ.—ग्वाल मंडली मैं बैठे मोहन—४६७। (२) ढेर, राशि। उ.—पुहुप मंडली तापर छायो—१००१।

मंडलीक—संज्ञा पुं. [सं. मांडलीक] बारह राजाओं का अधिपति।

मंडव, मंड़वा—संज्ञा पुं. [सं. मंडप, प्रा० मंडव] मंडप।

मँडार—संज्ञा पुं. [सं. मंडल] गड्ढा

मंडित—वि. [सं.] (१) विभूषित, अलंकृत, सजे हुए। उ.—(क) ज्यौं माखी मृग-मद मंडित तन परिहरि पूय परै—१-१९८। (ख) मुख मंडित रोरी रंग—१०-२४। (ग) गो-रज मंडित केस—४७८। (२) छाया हुआ। (३) भरा हुआ।

मंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंडप] थोक बिक्री की जगह।

मंडूक—संज्ञा पुं. [सं.] मेंढक।

मंत—संज्ञा पुं. [सं. मंत्र] (१) मंत्र। (२) सलाह।

यौ.—तंत-मंत—उद्योग, प्रयत्न।

मंतव्य—संज्ञा पुं. [सं.] विचार, मत।

मंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुप्त सलाह। (२) यज्ञादि के विधान-सूचक वैदिक वाक्य। (३) वे शब्द या वाक्य जिनका जाप विभिन्न देवताओं को संतुष्ट करने अथवा विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। उ.—(क) माया-मंत्र पढ़त मन निसि दिनि—१-४९। (ख) धन्य ऐसौ गुरू कान के लागत ही मंत्र दै आजु ही वह लखायौ—१२६८।

यौ.—मंत्र-जंत्र (यंत्र)—जादू-टोना। उ.—साधन मंत्र-जंत्र उद्यम बल ये सब डारौ धोइ—१-२६२।

(४) उपाय, उद्योग, प्रयत्न। उ.—(क) थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीन्हें मोह अचेत—१-२९। (ख) जातैं रहै छत्रपन मेरौ, सोइ मंत्र कछु कीजै—१-२६९। (ग) मंत्रिनि नीकौ मंत्र बिचारयौ—९-९८।

मंत्रकार—संज्ञा पुं. [सं.] मंत्र का रचयिता।

मंत्रजल—संज्ञा पुं. [सं.] जल जो मंत्र के प्रभाव से युक्त हो।

मंत्रणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सलाह, परामर्श।

मंत्र-पूत—वि. [सं.] (१) मंत्र पढ़ कर पवित्र किया हुआ। (२) मंत्र पढ़ कर फूँका हुआ।

मंत्रित—वि. [सं.] जो मंत्र के प्रभाव से संस्कृत हो।

मंत्रित्व—संज्ञा पुं. [सं.] मंत्री का कार्य या पद।

मंत्री—संज्ञा पुं. [सं. मंत्रिन्] (१) परामर्शदाता। (२) राजकाज में परामर्श देनेवाला, सचिव। उ.—(क) मंत्री ज्ञान न औसर पावै कहत बात सकुचातौ—१-४०। (ख) मंत्री काम-क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति—१-१४१। (ग) पोच पिसुन लस दसन सभासद प्रभु अनंग मंत्री बिन भीति—२२२३। (३) शतरंज की एक गोटी।

मंत्रेला—संज्ञा पुं. [सं. मंत्र] झाड़फूँक या तंत्र-मंत्र जानने वाला।

मंथन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथना, बिलोना। (२) लीन होकर या अवगाहन करके तत्वों की खोज करना।

मंथर—वि. [सं.] (१) मंद, सुस्त। (२) मूर्ख।

मंथरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कैकेयी की दासी जिसके कहने से उसने राम को वन भिजवाया था।

मंद—वि. [सं.] (१) धीमा, सुस्त। उ.—डुलत नहिं द्रुम-पत्र बेली थकित मंद समीर—६५८। (२) मूर्ख। उ.—अहं ममता हमैं सदा लागी रहै, मोह मद-क्रोध-जुत मंद कामी—८-१६।

मंदग—वि. [सं.] धीरे धीरे चलने वाला।

मंदता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आलस्य। (२) धीमापन।

मंदन—क्रि. वि. [सं. मंद] धीमे से, धीरे-धीरे। उ.—(क) अरुन अधर छबि दसन बिराजत जब गावत कल मंदन—१८४१।

मंदबुद्धि—वि. [सं.] जिसकी बुद्धि हीन हो।

मंदभागी—वि. [सं.] अभागा, हतभाग्य।

मंदभाग्य—संज्ञा पुं. [सं.] अभाग्य, दुर्भाग्य।

मंदमति—वि॰ [सं.] मूर्ख । उ.—(क) बसत सुरसरी तीर मंदमति कूप खनावै—२-९ । (ख) मलिन मंद-मति डोलत घर घर उदर भरन कैं हेत—२-१५ ।

मंदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पर्वत जिससे समुद्र मथा गया था। उ.—(क) मथि समुद्र सुर-असुरन कैं हित मंदर जलधि धसाऊ—१०-२२१ । (ख) मंदर डरत सिंधु पुनि काँपत फिरि जनि मथन करै—१०-१४२ । (२) स्वर्ग ।

संज्ञा पुं. [सं. मंद्र] गंभीर ध्वनि या शब्द ।

वि.—धीमा, मंद ।

मंदरगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] मंदर पर्वत ।

मंदरा—वि. [सं. मंदर] नाटा, ठिगना ।

संज्ञा पुं [सं॰ मंडल] एक बाजा ।

मंदराचल—संज्ञा पुं. [सं.] मंदर पर्वत जिससे समुद्र मथा गया था। उ.-बासुकी नेति अरु मंदराचल रई—८-८ ।

मंदरी—वि. [हिं॰ मंदरा] नाटी, ठिगनी ।

मंदल—संज्ञा पुं. [सं. मृदंग] एक तरह का ढोल ।

मंदहिं—क्रि. वि. [हिं॰ मंद] धीरे से, कोमलता के साथ । उ.—नंद-नारि-आनन छुवै मंदहिं—१०-१०७ ।

मंदा—वि. [सं॰ मंद] (१) धीमा, मंद । (२) ढीला । (३) सस्ता । (४) खराब । (५ बिगड़ा हुआ ।

मंदाकिनि, मंदाकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंदाकिनी] (१) गंगा की वह धार जो स्वर्ग में मानी गयी है । (२) आकाश गंगा । (३) चित्रकूट के पास की वह नदी जो 'पयस्विनी' कहलाती है ।

मंदाग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं.] अन्न न पचने का रोग ।

मंदार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ग का एक देववृक्ष। (२) एक वृक्ष । उ.—उर पर मंदार हार—२३६२। (३) मंदर पर्वत ।

मंदिर, मंदिल, मंदिलरा—संज्ञा पु. [सं. मंदिर] (१) घर, महल, प्रासाद । उ.—(क) तब पूछ्यौ, कुरपति है कहाँ ? कह्यौ, पांडु-सुत-मंदिर जहाँ—१-२८४ । (ख) सुंदर नंद महर कैं मंदिर—१०-३२। (२) देवालय, देवस्थान ।

संज्ञा पुं. [सं. मृदंग] एक तरह का ढोल।

मंदी—संज्ञा स्त्री. [हि. मंद] सस्तापन ।

मंदे—वि. [हिं. मंदा] जहाँ भाव सस्ते हों । उ.—मुक्ति आनि मंदे मो मेली—३१४४ ।

मंदो—संज्ञा पुं. [हिं॰ मंदा] सस्ता भाव। उ.—मंदो परयो सिधाउ अनत लै यहि निर्गुन मत तेरो—३१४३ ।

मंदोदरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं.] रावण की पटरानी जो मय दानव की पुत्री थी ।

मंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंभीर ध्वनि । (२) संगीत में स्वर का एक भेद ।

वि.—(१) सुन्दर, मनोहर । (२) गंभीर ।

मंसना, मंसनो—क्रि. स॰ [सं॰ मनस्] संकल्प करना ।

मंसब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) पदवी । (२) अधिकार ।

मंसा—संज्ञा स्त्री. [अ॰ मंशा] (१) इच्छा । (२) संकल्प । (३) अभिप्राय, तात्पर्य ।

मइ—सर्व. [हिं॰ मैं] मैं ।

मइका—संज्ञा पुं. [हिं॰ मायका] माँ का घर ।

मइमत—वि. [हिं. मैमंत] मतवाला ।

मइया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ मैया] माँ, माता । उ.—बाबा नंद जसोदा मइया मिले सबन हित आइ—३४४४।

मई—प्रत्य. [हिं. मयी] एक प्रत्यय जो तद्रूप, विकार प्राचुर्य आदि के अर्थ में शब्दांत में जुड़ता है । उ.—(क) पद-नख-चंद चकोर बिमुख मन खात अँगार मयी—१-२९९ । (ख) उठि न गई हरि संग तबहिं तें ह्वै न गई सखि स्याममई—२५३७ । (ग) पाती लिखत बिरह तनु ब्याकुल कागर ह्वै गयौ नीर मई—३४१७ ।

मउर—संज्ञा पुं [हिं॰ मौर] मुकुट या मौर जो दूल्हे के सिर पर पहनाया जाता है ।

मकड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ मर्कटक] एक प्रसिद्ध कीड़ा जो जाला तान कर दूसरे कीड़े फँसाती और उन्हें खाकर जीवित रहती है ।

मकना—वि. पुं. [हिं. मकुना] (१) छोटा । (२) नाटा ।

मकबरा—संज्ञा पुं. [अ. मक़बरा] इमारत जिसमें किसी की कब्र हो, रौजा, मजार ।

मकरंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूलों का रस । उ.—(क) कृष्न पद मकरंद पावन और नहिं सरवरन—१०

३०८। (ख) इच्छा सौं मकरंद लेत मनु अलि गोलक के बेप री—१०-१३६। (२) फूल का केसर, किंजल्क।

मकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगर या घड़ियाल नामक जलजंतु जो कामदेव की ध्वजा का चिन्ह और गंगा का वाहन है। उ.—सुधा-सर जनु मकर क्रीड़त—६२७। (२) एक राशि। (३) एक लग्न। उ.—भाग्य भवन मैं मकर महीसुत बहु ऐश्वर्य बढ़ैहै—१०-८। (४) एक निधि। (५) मछली।

मकरकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

मकरध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—मनहुँ खेलत हैं परस्पर मकरध्वज द्वै मीन—३५३।

मकरपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामदेव। (२) ग्राह।

मकरसंक्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह समय जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है।

मकराकृत—वि. [सं.] 'मकर' के आकार का। उ.—मोर मुकुट मकराकृत कुंडल—५०७।

मकरालय—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।

मकरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा मगर।

मकान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) घर। (२) वासस्थान।

मकु—अव्य. [सं. म] (१) चाहे। (२) बल्कि। (३) शायद।

मकुना—वि. [सं. मनाक] (१) छोटा। (२) नाटा।

मकुनि, मकूनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] चने और गेहूँ अथवा मटर के आटे की रोटी। उ.—मीठे तेल चना की भाजी। एक मकूनी दै मोहिं साजी।

मकोइ, मकोई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मकोय] कांटेदार मकोय (वृक्ष)।

मकोय—संज्ञा स्त्री. [सं. काकमाटा] एक पौधा और उसका फल।

मकोरना, मकोरनो—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] मरोड़ना।

मक्कर—संज्ञा पुं. [अ. मक्र] (१) छल-कपट। (२) नखरा।

मक्का—संज्ञा पुं. [देश.] बड़ी ज्वार।

मक्कार—वि. [अ.] (१) छली, कपटी। (२) नखरीला।

मक्कारी—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) छल। (२) नखरा।

मक्खन—संज्ञा पुं. [सं. मंथज] नैनूं, नवनीत।

मुहा०—कलेजे पर मक्खन मला जाना—बहुत सुख-संतोष होना।

मक्खी—संज्ञा स्त्री. [सं. मक्षिका] एक प्रसिद्ध कीड़ा।

मुहा०—जीती मक्खी निगलना—जानबूझ कर अनुचित कार्य या पाप करना। नाक पर मक्खी न बैठने देना—अभिमान के कारण किसी को अपने ऊपर एहसान करने का अवसर न देना। मक्खी की तरह निकाल (फेंक) देना—ऐसा अलग करना कि किसी प्रकार का संबंध न रखना। मक्खी छोड़ हाथी निगलना—छोटी भूल से बचकर घोर पाप करना। मक्खी मारना—खाली या निठल्ला रहना।

मक्खीचूस—वि. [हिं. मक्खी+चूसना] बहुत ही कंजूस।

मक्षिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मक्खी।

मख—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ।

मखतूल—वि. [सं. महर्घतूल] काला रेशम।

मखनिया—वि. [हिं. मक्खन] मक्खन निकला हुआ।

मखमल—संज्ञा स्त्री. [अ० मखमल] एक बढ़िया कपड़ा।

मखशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] यज्ञशाला।

मखाना—संज्ञा पुं. [हिं. तालमखाना] तालमखाना।

मखियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मक्खी] मक्खी। उ.—झाँकति झपति झरोखा बैठी कर मीड़त ज्यौं मखियाँ—२७६६।

मखोना—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कपड़ा।

मखौल—संज्ञा पुं. [देश.] हँसी-ठट्ठा।

मखौलिया—वि. [हिं. मखौल] हँसोड़।

मग—संज्ञा पुं. [सं. मार्ग, प्रा० मग्ग] (१) रास्ता, राह। (क) भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग—१-४८। (ख) नैननि मग निरखि बदत सोभा रस पीजै—२७९९।

मुहा०—मग जोहना—प्रतीक्षा करना। मग जोवत—आसरा देखता है, प्रतीक्षा करता है। उ.—(क) परस्यौ थाल धर्यौ, मग जोवत—१०-२२३। (ख) अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ए इत्यो नहिं झूखी—३०२९। (ग) कबहुँ कहत ब्रजनाथ बन गए जोवत मग भई दृष्टि झाँवरी—३४४८।

मगज—संज्ञा पुं. [अ० मग्ज़] (१) दिमाग। (२) मींगी।

मगण—संज्ञा पुं. [सं.] वह 'गण' जिसमें तीन गुरु होते हैं।

मगद—संज्ञा. पुं. [सं. मुद्ग] एक मिठाई।

मगदर, मगदल—संज्ञा पुं. [सं. मुद्‌ग] एक तरह का लड्डू ।

मगदा—वि. [सं. मग+दा] मार्ग दिखानेवाला ।

मगन—वि. [सं. मग्न] (१) डूबा हुआ । उ.—(क) आनँद मगन राम गुा ग.वै—१-३९ । (ख) सुत कुबेर के मत्त मगन भए बिषै रस नैननि छाए—१-७ । (२) बहुत प्रसन्न। (३) लीन, तन्मय । उ.—(क) जैसैं मगन नाद-रस सारँग बधत बधिक बिन बान—१-१६९ । (ख) मम सरूप जो सब घट जान । मगन रहै तजि उद्यम आन—३-१३ । (४) मूर्छित ।

मगनता—संज्ञा स्त्री. [सं. मग्न+हिं. ता] (१) लीनता, तन्मयता । (२) हर्ष, आनन्द ।

मगना, मगनो—क्रि. अ. [सं. मग्न] (१) लीन या तन्मय होना । (२) डूबना ।

वि.—(१) लीन, तन्मय। (२) डूबा हुआ । उ.—काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना—२५४७ ।

मगर—संज्ञा पुं. [सं. मकर] (१) घड़ियाल । (२) मछली ।

अव्य० [फा.] लेकिन, परन्तु ।

मुहा०—अगर-मगर करना—टाल-टूट करना ।

मगरमच्छ—संज्ञा पुं. [हिं. मगर+मच्छ] (१) घड़ियाल। (२) मछली ।

मगसिर—संज्ञा पुं. [सं. मार्गशीर्ष] अगहन मास ।

मगह, मगहय, मगहर—संज्ञा पुं. [सं. मगध] मगध देश ।

मगही—वि. [हिं. मगह] मगध देश का ।

मगु, मग्ग—संज्ञा पुं. [सं. मार्ग] राह, रास्ता । उ.—जैसे फिरत रंध्र मगु कँगुरी तैसैं मैंहु फिराऊँ—पृ० ३११ (११) ।

मग्न—वि. [सं.] (१) डूबा हुआ । उ.—भव अगाध जल-मग्न महा सठ तजि पद कूल रह्यौ—१-२०१ । (२) लीन, तन्मय। (३) प्रसन्न । (४) नशे में चूर ।

मघई—वि. [हिं. मगही] मगध देश का ।

मघवा—संज्ञा पुं. [सं. मघवन्] इंद्र । उ.—मानौ नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई—१०-१०८ ।

मघवाप्रस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] 'इंद्रप्रस्थ' नामक नगर । उ.—फिरि आए हस्तिनपुर पारथ मघवाप्रस्थ बसायो ।

मघवारिपु—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र का शत्रु मेघनाद ।

मघा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक नक्षत्र ।

मघोनी—संज्ञा स्त्री. [सं. मघवन्] इंद्र की पत्नी ।

मघौना—संज्ञा पुं. [सं. मघवा] इंद्र ।

मचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. मचकना] दाब, दबाव ।

मचकना, मचकनो—क्रि. अ. [हिं. मच मच] 'मच-मच' शब्द करके दबना, झटके से हिलना ।

क्रि. स.—किसी चीज को इस तरह दबाना कि 'मच-मच' शब्द हो ।

मचका—संज्ञा पुं. [हिं. मचक] (१) झटका, झोंका । (२) झूले का पेंग ।

मचत—क्रि. अ. [हिं. मचना] झटके से या झोंका देकर हिलाते या झूले के पेंग भरते हैं । उ.—(क) कबहुँ रहँसत मचत लै सँग एक एक सहेलि—२२७८ । (ख) यह सुनि हँसत मचत अति गिरिधर डरत देखि अति नारि—२२८२ ।

मचति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. मचना] झोंका या झटका देकर हिलाती या झूले के पेंग भरती है । उ.—कोउ सग मचति कहत कोउ मचिहौं उपजी रूप अगाध-२२८२ ।

मचना, मचनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) शोर-गुल के साथ काम शुरू होना । (२) फैल या छा जाना ।

क्रि. अ. [हिं. मचकना] 'मच-मच' शब्द करके या झोंके से हिलना ।

मचमचाना, मचमचानो—क्रि. अ., क्रि. स. [अनु.] दबना या दबाना जिससे 'मच-मच' शब्द हो ।

मचल—संज्ञा स्त्री. [हिं. मचलना] मचलने की क्रिया या भाव ।

मचलना, मचलनो—क्रि. अ. [अनु०] हठ या जिद करना ।

मचला—वि. [हिं. मचलना] जिद्दी, हठीला, अड़ पर डटा रहने वाला । उ.—मचला अकलमूल पातर खाउँ खाउँ करै भूखा—१-१८६ ।

मचलाई - संज्ञा स्त्री. [हिं. मचलना] मचलने की क्रिया या भाव, मचल ।

मचलाना, मचलानो—क्रि. अ. [अनु.] जी मतलाना ।

क्रि. स. [हिं. मचलना] किसी को मचलने के लिए प्रवृत्त करना।

क्रि. अ.— हठ या जिद करना, अड़ना।

मचलि—क्रि. अ. [हिं. मचलना] हठ करके।

प्र०—मचलि जाइगी—जिद करने लगेगी, हठ पकड़ लेगी। उ.—अबहिं मचलि जाइगी तब पुनि कैसे मोसौं जाति बुझाई—१२५७।

मचवा—संज्ञा पुं. [सं. मंच] (१) खटिया। (२) चौकी या खाट का पावा। (३) नाव।

मचाई—क्रि. स. [हिं. मचाना] (१) फैलायी, छा दी। उ.—नाचत वृद्ध तरुन अरु बालक गोरस कीच मचाई—१०-२१। (२) मचाकर, (शोर) करके। उ.—बालक सब नंदहिं सँग धाए ब्रज-घर जहँ तहँ सोर मचाई—५४४।

मचाँग, मचान—संज्ञा स्त्री. [सं. मंच+हिं. आन, हिं. मचान] (१ शिकार खेलने के लिए पेड़ पर बनाया गया ऊँचा स्थान। (२) ऊँची बैठक।

मचाना, मचानो—क्रि. स. [हिं. मचना] (१) शोर-गुल के साथ काम शुरू करना। (२) फैलाना, छा देना।

मचायौ—क्रि. स. [हिं. मचाना] (शोर-गुल फैला दिया, (हुल्लड़) किया। उ.—ब्रज बीथिनि पुर गलिनि घरै घर घाट-बाट सब सोर मचायौ—१०-३४०।

मचावत—क्रि. स. [हिं. मचाना] (शोर-गुल आदि) करता है। उ.—फिरत जहाँ तहाँ दुंद मचावत ३७७।

मचिया—संज्ञा स्त्री. [सं. मंच] पीढ़ी, खटोली।

मचिलई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मचलना] मचलने का भाव।

मचिहौं—क्रि. अ. [हिं. मचना] झटका या झोंका दूँगी। उ.—कोउ संग मचति कहति कोउ मचिहौं उपजो रूप अगाध—२२८२।

मची—क्रि. अ. [हिं. मचना] फैली, छा गयी। उ.—कुमकुम कीच मची धरनी पर—२४१०।

मचौ—क्रि. अ. [हिं मचना] झोंका दो, पेंग भरो। उ.—अब जिनि मचौ पाँय लागति हौं मोकौं देहु उतारि—२२८२।

मच्छ—संज्ञा पुं. [सं. मत्स्य, प्रा० मच्छ] (१) मछली। उ.—मच्छ-बास ताकी सब हरी—१-१२९। (२) विष्णु का पहला अवतार जिसमें शरीर का निचला भाग रोहू मछली जैसा और ऊपरी मनुष्य का था। उ.—मच्छ कच्छ बाराह बहुरि नरसिंह रूप धरि—२-३६।

मच्छड़, मच्छर—संज्ञा पुं. [सं. मशक, हिं. मच्छड़] एक छोटा पतिंगा।

मच्छर—संज्ञा पुं. [सं. मत्सर] ईर्ष्या, द्वेष।

मच्छरता—संज्ञा स्त्री. [सं मत्सर+ता] ईर्ष्या, द्वेष।

मच्छी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मछली] मछली।

मच्छीमार—संज्ञा पुं. [हिं. मछली+मार] मछुआ।

मच्छोदरि, मच्छोदरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मत्स्योदरी] शांतनु की पत्नी सत्यवती जो व्यास जी की माता थी। उ.—सत्यवती मच्छोदरि नारी। गंगा-तट ठाढ़ी सुकुमारी—१-२२९।

मच्यौ—क्रि. अ. [हिं. मचना] फैल गया, छा गया, भर गया। उ.—ब्रज घर-घर सुख सिंधु मच्यौ री—६०६।

मछ—संज्ञा पुं. [सं. मत्स्य, हिं. मच्छ] मछली। उ.—कह्यौ, मछ बचन किहिं भाँति भाष्यौ—८-१६।

मछली—संज्ञा स्त्री. [सं. मत्स्य, प्रा. मच्छ] मीन, मत्स्य।

मछवा, मछुआ, मछुवा—सं. पुं. [हिं. मछली+उआ] मछली मारनेवाला।

मजदूर—संज्ञा पुं. [फ़ा. मज़दूर] बोझा ढोने या छोटा-मोटा काम करने वाले।

मजदूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मजदूर+ई] (१) बोझा ढोने का काम। (२) काम के पारिश्रमिक स्वरूप मिलने वाला धन।

मजना, मजनो—क्रि. अ. [सं० मज्जन] (१) डूबना, निमज्जित होना। (२) अनुरक्त होना।

मजनूँ—संज्ञा पुं. [अ.] (१) 'लैला' का प्रसिद्ध प्रेमी। (२) प्रेमी। (३) दीवाना। (४) बहुत दुबला-पतला।

मजबूत—वि. [अ. मज़बूत] (१) पक्का। (२) अचल, स्थिर। (३) बलवान।

मजबूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. मजबूत] (१) पक्कापन। (२) ताकत, बल। (३) साहस।

मजबूर—वि. [अ.] विवश, लाचार।

मजबूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मजबूर] लाचारी, विवशता।

मजमा—संज्ञा पुं. [अ.] भीड़भाड़, जमाव।

मजमून—संज्ञा पुं. [अ. मजमून] (१) विषय। (२) लेख।

मजलिस—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) सभा। (२) महफिल।

मजहब—संज्ञा पुं. [अ. मजहब] संप्रदाय, पंथ, मत।

मजहबी—वि. [हिं. मजहब] मत या संप्रदाय-संबंधी।

मजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. मज़ः] (१) स्वाद।

मुहा०—मजा चखाना—अपराध या अनुचित व्यवहार का दण्ड देना। (किसी चीज का) मजा पड़ना—चसका लगना।

(२) आनंद, सुख।

मुहा०—मजा उड़ाना (लूटना)—सुख भोगना। मजा किरकिरा होना—सुख में बाधा पड़ना।

(३) हँसी, दिल्लगी।

मुहा०—मजा आ जाना—हँसी-दिल्लगी का प्रसंग उपस्थित होना। मजा देखना (लेना)—तमाशा देखना।

(३) जिसमें मजा या आनन्द मिलता हो।

मजाक—संज्ञा पुं. [अ. मज़ाक़] हँसी, दिल्लगी, ठिठोली।

मुहा०—मजाक उड़ाना—उपहास करना।

मजार—संज्ञा पुं. [अ. मज़ार] (१) कब्र। (२) मकबरा।

मजारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मार्जारी] बिल्ली।

मजाल—संज्ञा स्त्री. [अ.] शक्ति, सामर्थ्य।

मजी—क्रि. अ. [हिं. मजना] अनुरक्त हुई। उ.—मानत नहीं लोक मर्यादा हरि के रंग मजी—११७३।

मजीठ—संज्ञा स्त्री. [सं. मंजिष्ठा] एक लता जिसके डंठलों से लाल रंग तैयार होता है। उ.—सींचिय मजीठ जैसी निकट काटी पाई—३२०९।

मजीर—संज्ञा स्त्री. [सं. मंजरी] मंजरी, मौर। उ.—करि कुंभ कुंजर बिटप भारी चमर चारु मजीर।

मजीरा—संज्ञा पुं. [सं. मंजीर] काँसे की ठोस कटोरियों की जोड़ी जिसको बजाकर संगीत में ताल दी जाती है।

मजूर, मजूरा—संज्ञा पुं. [सं. मयूर] मोर।

संज्ञा पुं. [हिं. मजदूर] मजदूर।

मजूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मजदूर] मजदूरी।

मजेदार—वि. [फ़ा. मजेदार] (१) स्वादिष्ट। (२) बढ़िया।

मज्ज—संज्ञा स्त्री. [सं. मज्जा] हड्डी या नली के भीतर का भेजा या गूदा।

मज्जत—वि. [हिं. मज्जना] डूबता हुआ, जो डूबने की स्थिति में हो। उ.—अब मोहिं मज्जत क्यों न उबारौ—१-२०९।

मज्जन—संज्ञा पुं. [सं. मज्जन] नहाना, स्नान।

मज्जना, मज्जनो—क्रि. अ. [सं. मज्जन] (१) नहाना, स्नान करना। (२) डूबना, निमग्न होना।

मज्जा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हड्डी का भीतरी गूदा।

मज्झ, मझ—क्रि. वि. [सं. मध्य, प्रा. मज्झ] बीच, मध्य।

मझधार—संज्ञा स्त्री. [हिं. मध्य+धार] (१) नदी, सरोवर आदि का बीच। (२) काम की अपूर्णता की स्थिति।

मुहा०—मझधार में छोड़ना—(१) अधूरे काम को छोड़ना। (२) बीच में ही छोड़ देना।

मझला—वि. [सं. मध्य, प्रा० मज्झ+ला] बीच का।

मझाना, मझानो—क्रि. स. [सं. मध्य] बीच या मँझधार में धँसाना।

क्रि. अ.—पैठना, प्रविष्ट होना।

मझार, मझारि, मझारी, मझारे—क्रि. वि. [सं. मध्य, प्रा. मज्झ + हिं. आर, हिं. मझार] बीच में, में, भीतर।

मझावना; मझावनो—क्रि. अ. [हिं. मझाना] पैठना, प्रविष्ट होना।

क्रि. स.—धँसाना, प्रविष्ट कराना।

मझियाना, मझियानो—क्रि. अ. [हिं माँझी+इयाना] नाव खेना।

क्रि. अ. [सं. मध्य + इयाना] बीच या मध्य से निकलना।

क्रि. स.—बीच से होकर निकालना।

मझियारा—वि. [सं. मध्य, प्रा० मज्झ + इयारा] बीच का।

मझोला—वि. [हिं. मझला] बीच का।

मट—संज्ञा पुं. स्त्री. [हिं. मटका] मटका, मटकी।

मटक—संज्ञा स्त्री. [सं. मट=चलना+क] (१) गति, चाल। उ.—मुकुट लटकि अरु भृकुटी मटक देखी कुंडल की चटक सों अटकि परी दृगनि लपट—८३९। (२) मटकने की क्रिया का भाव। उ.—लटकि निर्खन लग्यौ मटक सब भूलि गयौ हटक ह्वै कै गयौ गटकि सिला सों रह्यौ मीचु जाती—२६०९।

मटकत—क्रि. अ. [हिं. मटकना] अंग लचकाते या मटकाते (ही)। उ.—मटकत गिरी गागरी सिर तें—८६६।

मटकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. मटकना] मटकने की क्रिया या भाव। उ.—मुकुट लटकनि भृकुटि मटकन धरे नटवर अंग—१७४२।

मटकना, मटकनो—क्रि. अ. [हिं. मटक] (१) अंग लचकाकर नखरे के साथ चलना। (२) नेत्र, भृकुटी आदि अंगों को ऐसे चलाना जिससे लचक या नखरा जान पड़े। (३) वापस आना। (४) हिलना-डोलना।

मटकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. मटकना] (१) गति, चाल। (२) मटकने का भाव। उ.–(क) मोर पंख सिर-मुकुट की मुख-मटकनि की बलि जाउँ—४५१। (ख) रसिक रंग भौंहनि की मटकनि—५१८। (३) नखरा।

मटका—संज्ञा पुं. [हिं. मिट्टी] घड़ा, माट।

मटकाना, मटकानो—क्रि. स. [हिं. मटकना] (१) नेत्र, भृकुटि आदि अंगों का नखरे के साथ संचालन करना। (२) मटकने को प्रवृत्त करना।

मटकावै—क्रि. स. [हिं. मटकाना] नखरे के साथ अंग चमकाती है। उ.—चमकति चलै बदन मटकावै ऐसी जोबन जोरी—१६२१।

मटकियो—क्रि. अ. [हिं. मटकना] हिली-डुली। उ.—गहि पटकि पुहुमि पर नेंक नहिं मटकियो दंत मनु मृनाल से ऐंचि लीन्हे—२५९६।

मटकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मटका] छोटा मटका, कमोरी। उ.—कोरी मटकी दही जमायौ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मटकाना] मटकाने का भाव।

क्रि. अ.—(१) हिली-डुली। उ.—उतर न देत मोहिनी मौन ह्वै रही री सुनि सब बात नैंकहूँ न मटकी। (२) भृकुटी, नेत्र, हाथ आदि अंग चमकाकर या चमकाने लगी। उ.—(क) मुख मुख-हेरि तरुनि मुसकानी नैन सैन दै दै सब मटकी—११०५। (ख) बात करत तुलसी मुख मेलै सयन दै मुँह मटकी—१३०१।

मटकीला—वि. [हिं. मटकना] नखरे दिखानेवाला।

मटके—क्रि. अ. बहु. [हिं. मटकना] लौटे, फिरे, हटे। उ.—नैना बहुत भाँति हटके। बुधि बल छल उपाइ करि थाकी नेक नहीं मटके—पृ.३३६ (५२)।

मटकैं—क्रि. अ. [हिं. मटकना] मटकने या नखरे दिखाने (से)। उ.—सूरदास सोभा क्यों पावै पिय बिहीन धनि मटकैं—१-२९२।

मटकौअल, मटकौवल—संज्ञा पुं. [हिं. मटकना + औवल] मटकने की क्रिया या भाव।

मटक्यो, मटक्यौ—क्रि. अ. [हिं. मटकना] (१) हटे, लौटे, फिरे। उ.—स्याम सलोने रूप में अरी मन अरयौ। ऐसे ह्वैं लटक्यौ तहाँ तें फिरि नहिं मटक्यौ बहुत जतन मैं करयौ—१४८९। (२) हिला-डुला, विचलित हुआ। उ.—पटक्यौ भूमि फेरि नहिं मटक्यौ लीन्हें दंत उपारी—२५९४।

मटमैला—वि. [हिं. मिट्टी + मैला] मिट्टी के रंग का।

मटर—संज्ञा पुं. [सं. मधुर] एक अन्न।

मटरगश्त, मटरगश्ती—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. मट्ठर=मंद+फा. गश्त] (१) धीरे-धीरे घूमना। (२) सैर-सपाटा।

मटरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक नमकीन पकवान। उ.—पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाझा गूँझा मटरी—८१०।

मटिआना, मटिआनो, मटियाना, मटियानो—क्रि. स. [हिं. मिट्टी+आना] (१) मिट्टी से माँजना या मलना। (२) टालना, सुनी-अनसुनी करना।

मटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिट्टी] (१) मिट्टी। (२) शव, लाश।

मटियामसान—वि. [हिं. मटिया+मसान] नष्टप्राय।

मटियार—वि. [हिं. मिट्टी + यार] जिसमें मिट्टी चिकनी हो।

मटियाला, मटीला—वि. [हिं. मटमैला] मटमैला।

मटुक, मटुका—संज्ञा पुं. [हिं. मटका] घड़ा, मटका।

मटुकिया, मटुकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मटकी] छोटा घड़ा, मटकी। उ.—(क) आरि करत मटुकी गहि मोहन बासुकि संभु डरै—१०-१४२। (ख) कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ—३४६।

मट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिट्टी] मिट्टी।

मट्ठर—वि. [हिं. मंद] सुस्त।

मट्ठा—संज्ञा पुं. [सं. मंथन] छाछ, मही, तक्र।

संज्ञा पुं. [देश०] एक खस्ता पकवान।

मठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वासस्थान। (२) साधु या महंत का स्थान। (३) मंदिर, देवालय। उ.—सब दल होहु हुसियार चलहु मठ घेरहि जाई—१० उ०-८।

मठरी—संज्ञा स्त्री. [देश०] एक पकवान।

मठा—संज्ञा पुं. [हिं. मट्ठा] छाछ, मही, तक्र।

मठाधीश—संज्ञा पुं. [सं.] मठ का स्वामी, महंत।

मठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मठ] (१) छोटा मठ। (२) मठ का अधिकारी महंत।

मड़ई—संज्ञा स्त्री. [सं. मंडपी] (१) छोटा मंडप। (२) कुटिया, कुटी।

मड़क—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) घुमाव या पेंच की बात। (२) भेद, रहस्य।

मड़ना, मड़नो—क्रि. अ. [देश.] बिछना, आरंभ होना।

मड़वा—संज्ञा पुं. [सं. मंडप] (१) किसी उत्सव के लिए बनाया गया स्थान, मंडप। (२) मंच।

मड़ाड़—संज्ञा पुं. [देश०] कच्चा तालाब।

मड़ुआ—संज्ञा पुं. [देश.] एक मोटा अनाज।

मड़े—क्रि. अ. [हिं. मड़ना] बिछे, फैले, आरंभ हुए। उ.—चौपरि जगत मड़े जुग बीते—१-६०।

मड़ैआ, मड़ैया—संज्ञा स्त्री. [सं. मडपी] (१) छोटा मंडप। (२) कुटी, कुटिया, झोपड़ा। उ.—इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आनि छरयौ—१०उ.-६८।

मढ़ना, मढ़नो—क्रि. स. [सं. मंडन] (१) घेर देना, लपेट लेना। (२) बाजे के मुँह पर चमड़ा लगाना।

मुहा०—मढ़ आना—(बादल का) घिर आना।

(३) किसी को जबरदस्ती कोई दायित्व सौंपना या किसी पर दोषादि आरोपित करना। (४) टाँकना।

क्रि. अ.—आरंभ होना।

मढ़वाना, मढ़वानो—क्रि. स. [हिं. मढ़ना] किसी को मढ़ने के काम में प्रवृत्त करना।

मढ़ा—संज्ञा पुं. [हिं. मढ़ी] मिट्टी का छोटा घर।

मढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मढ़ना] मढ़ने का काम या वेतन।

मढ़ाउ—क्रि. स. [हिं. मढ़ना] जड़ दो, लगा दो, टाँक दो। उ.—पँचरंग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढ़ाउ बहु बिधि जरि करि जराउ ल्याउ रे बढ़ैया—१०-४१।

मढ़ाना, मढ़ानो—क्रि. स. [हिं. मढ़ना] मढ़ने के काम में प्रवृत्त करना।

मढ़ीं—वि. बहु०. [हिं. मढ़ना] जिनके कुछ मढ़ा गया हो। उ.—खुर ताँबैं, रूपैं पीठि, सानैं सींग मढ़ीं। ते दीन्हीं द्विजनि अनेक हरषि असीस पढ़ीं—१०-२४।

मढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मठ] (१) छोटा मठ। (२) छोटा मंदिर। (३) कुटी, झोपड़ी। उ.—सूरदास प्रभ हरि न मिलैं तौ घर तैं भली मढ़ी—२७९४।

मढ़ैया—संज्ञा पुं. [हिं. मढ़ना + ऐया] मढ़नेवाला।

संज्ञा स्त्री—मढ़ी।

मढ़ौं—क्रि. स. [हिं. मढ़ना] लिपटवा दूँ, चढ़वा दूँ, मढ़ा दूँ। उ.—सूरदास सोने कै पानी मढ़ौं चोंच अरु पाँखि—९-१६४।

मणि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बहुमूल्य रत्न। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

मणिधर—संज्ञा पुं. [सं.] सर्प, साँप।

मणिबंध—संज्ञा पुं. [सं.] कलाई, गट्टा।

मणियारे—वि. [हिं. मणि + आर] सुन्दर, सुहावने, दर्शनीय। उ.—तिनहूँ माँझ अधिक छबि उपजत कमलनैन मणियारे—३१७५।

मणी—संज्ञा पुं. [सं. मणिन्] सर्प, साँप।

संज्ञा स्त्री.—मणि, रत्न।

मतंग, मतंगज—संज्ञा पु. [सं.] (१) हाथी। उ.—(क) जेहरि पगज करयौ गाढ़े मनो मंद मंद गति यह मतंग की—१०४१। (ख) बारन छाँड़ि देत किन

हमको तूं जानत मतंग मतवारो—२५९०। (२) बावल। (३) एक ऋषि।

मतंगी—संज्ञा पुं. [सं. मतंगिन्] हाथी का सवार।

मत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सम्मति, राय। उ. सबै समर्पो सूरदास कौं यह साँची मत मेरी—१-२६६।

मुहा०—मत उपाना—सम्मति स्थिर करना।

(२) धर्म, पंथ, संप्रदाय। उ.—अबिहित बाद-बिवाद सकल मत इन लगि भेष धरत—१-५५। (३) भाव, आशय, तात्पर्य। उ.- बेद पुरान भागवत गीता सब को यह मत सार—१-६८। (४) ज्ञान। (५) पूजा।

वि.—(१) जिसकी पूजा की गयी हो। (२) बुरा।

क्रि. वि. [सं. मा] न, नहीं।

मतना, मतनो—क्रि. अ. [सं. मति+ना] राय या मत स्थिर करना।

क्रि. अ. [सं. मत्त] नशे म चूर होना।

मतरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. माता] माँ, माता।

वि. [सं. मंत्र] मंत्र देनेवाला।

मतलब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) आशय, तात्पर्य। (२) अर्थ, माने। (३) स्वार्थ, निजी लाभ। (४) उद्देश्य। (५) संबंध, वास्ता।

मतलबिया, मतलबी—वि. [हिं. मतलब] स्वार्थी।

मतली—संज्ञा स्त्री [हिं. मिचली] मिचली।

मतवार, मतवारा, मतवाला—वि. पुं. [सं. मत्त+वाला, हिं. मतवाला] (१) नशे में चूर। (२) उन्मत्त, पागल। उ.—जनु जल सोखि लयो से सविता जोवन गज मतवार—२०६२। (३) अभिमानी, अहंकारी।

मतवारि, मतवारी, मतवाली—वि. स्त्री. [हिं. मतवाली] उन्मत्त, पागल। उ.—सूर स्याम मेरे आगैं खेलत जोबन-मत-मतवारि—१०-३१४।

मतवारे, मतवारो, मतवाले, मतवालो—वि. [हिं. मतवाला] उन्मत्त, पागल। उ.—(क) बारन छाँड़ि देत किन हमको तूं जानत मतंग मतवारो—२५९०। (ख) रहु रहु मधुकर मधु मतवारे—२९९०।

मता—संज्ञा पुं. [सं. मत] (१) सम्मति। (२) तात्पर्य।

मति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बुद्धि, समझ। उ.—(क) त्य गति प्रान निरखि सायक-धनु गति-मति बिकल सरीर—१-२९। (ख) आजु बिश्राना मति मेरी गई भौन काज बिरमाई—२५३८। (ग) मल्लजुद्ध अति कंस कुटिल मति छल करि इहाँ हँकारे—२५६९। (२) सम्मति, राय। उ.—पारथ भीषम सौं मति पाइ—१-२७६। (३) इच्छा। (४) स्मृति।

वि.—चतुर, बुद्धिमान।

क्रि. वि.—मत, नहीं। उ.—(क) बिदुर कह्यौ, मति करौ अन्याइ—१-२८४। (ख) जिय अति डरचौ, मोहि मति सापै, ब्याकुल बचन कहंत—९-८३।

मतिधीर—वि. [सं. मति+धीर] धीर बुद्धिवाला, धीरवान। उ.—स्वायंभु के दुतिय पुत्र उत्तानपाद मतिधीर—सारा. ७१।

मतिधूत—संज्ञा स्त्री. [सं. मति+धूर्त] धूर्त मति, दुष्टता, कुटिलता। उ.—गेंद दियैं ही पै बनै छाँड़ि देहु मति-धूत—५८९।

मतिमंत—वि. [सं. मतिमंत्] बुद्धिमान, चतुर। उ.—(क) दीन्हीं सभा बनाय पांडु की मय मायागत अंत। ताकूं देख भ्रमे दुर्योधन महा मोह मतिमंत—७५९। (ख) त्रियाचरित मतिमंत न समुझत उठि प्रछालि मुख धोवत—९-३१।

मतिमंद—वि. [सं. मति+मंद] मंद बुद्धिवाला। उ.—गीध्यो दुष्ट हेम तस्कर ज्यौं अति आतुर मतिमंद—१-१०२।

मतिमान, मतिमाह—वि. [सं. मतिमान्] बुद्धिमान।

मतिवंत—वि. [सं. मतिमंत्] बुद्धिमान।

मतिहीनी—वि. [सं. मति + हीन] बुद्धिहीन, मूर्ख। उ.—अब तौ सहाय करौ तुम मेरी, हौं पामर मतिहीनी—सारा. ७६६।

मती—संज्ञा स्त्री. [सं. मति] (१) बुद्धि। (२) सम्मति। (३) इच्छा। (४) स्मृति।

क्रि. वि.—मत, न, नहीं।

मतीरा—संज्ञा पुं. [सं. मेट] तरबूज, कलींदा।

मतीस—संज्ञा पुं. [देश.] एक बाजा।

मते—संज्ञा पुं. [सं. मत] सम्मति, सलाह। उ.—काहे

को बादिहि बकति बावरी मानत कौन मते अब तेरे —पृ.३३१ (३)।

मतेई—संज्ञा स्त्री. [सं. विमाता] विमाता।

मतै—संज्ञा पुं. [सं. मत] आशय, उद्देश्य, सम्मति। उ.—मानो दोउ एकहि मतै—३०५०।

मतैक्य—संज्ञा पुं. [सं.] मत की एकता।

मतो, मतौ—संज्ञा पुं. [सं. मत] सम्मति, सलाह, आशय। उ.—(क) मतौ यह पूछत भूतलराइ—१-२६९। (ख) यामें कछू खरचियतु नाहीं अपनो मतो न दीजै—२९०६। (ग) बैठि असुर सब सभा रुक्म सों मतौ विचारयौ—१० उ०-८।

मत्त—वि. [सं.] (१) मस्त। (२) उन्मत्त, मतवाला। उ.—(क) सुत कुबेर के मत्त मगन भए विषै रस नैननि छाए (हो)—१-७। (ख) लट लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए—१०-९९।

मत्तकाशिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्तम स्त्री।

मत्तता, मत्तताई—संज्ञा स्त्री. [सं. मत्तता] मस्त या उन्मत्त होने का भाव।

मत्था—संज्ञा पुं. (१) माथा। (२) सिर।

मुहा०—मत्था टेकना—प्रणाम करना। मत्था मारना—बहुत सोच-विचार या उलझन करना।

(३) किसी चीज का ऊपरी भाग।

मत्स—संज्ञा पुं. [सं. मत्स्य] मछली, मत्स्य।

मत्सर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ईर्ष्या। (२) क्रोध।

वि.—ईर्ष्यालु, डाह करनेवाला।

मत्सरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] डाह, ईर्ष्या।

मत्सरी—संज्ञा पुं. [सं. मत्सरिन्] ईर्ष्यालु।

मत्स्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मछली। (२) मीन राशि। (३) एक महापुराण। (४) विष्णु का पहला अवतार। उ.—यहै कहि भए अंतरधान तब मत्स्य प्रभु, बहुरि नृप आपनौ कर्म साध्यौ—८-१६।

मत्स्यगंधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यास की माता सत्यवती।

मथति—क्रि. स. [हिं. मथना] मथती या बिलोती है। उ.—मथति दधि जसुमति—१०-६७।

मथन—संज्ञा पुं. [सं.] मथने या बिलोने की क्रिया या भाव। उ.—(क) को कौरव-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरिहै—१-२९। (ख) मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत, फिरि जनि मथन करै—१०-१४२।

वि.—मारने या नाश करनेवाला। उ.—मधु-कैटभ-मथन मुर भौम केसी भिदन कंस कुल काल अनुसाल हारी।

मथनहार—वि. [सं. मथन+हिं. हार] (१) मथने या बिलोने वाला। उ.—सिंधु मनौ इह घोष उजागर। मथनहार हरि रतनकुमार—१०३७। (२) नाश करनेवाला।

मथनहारि—वि. [सं. मथन + हिं. हारि] मथने या बिलोनेवाली। उ.—मथनहारि सब ग्वारि बुलाई —५२०।

मथना, मथनो—क्रि. स. [सं. मंथन या मथन] (१) (दही आदि) बिलोना। (२)। चलाकर मिलाना। (३) नष्ट करना। (४) ढूँढ़ना, पता लगाना। (५) एक ही क्रिया बार-बार करना।

संज्ञा पुं.—मथानी, रई। उ—घूमि रहे जित तित दधि मथना सुनत मेघ ध्वनि लाजै री।

मथनियाँ, मथनिया, मथनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मथानी] (१) वह मटका जिसमें दही मथा जाता है। उ.—माखन चोरि फोरि मथनी को पीवत छाछ पराई सारा—७४९। (२) मथानी। उ.—नंद जू के बारे कान्ह छाँड़ि दै मथनियाँ—१०-१४५।

मथवाह—संज्ञा पुं. [हिं. माथा + वाह] हाथी का महावत।

मथानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मथना] काठ का वह डंड जिससे दही मथा जाता है। उ.—जब मोहन कर गही मथानी—१०-१४४।

मथि—क्रि. स. [हिं. मथना] (१) बिलोकर, मथकर। उ.—ज्ञान-कथा को मथि मन देखौ ऊधौ बहु धोपी। (२) हिलाकर एक में मिलाकर। उ.—मथि मृग-मद-मलय कपूर माथैं तिलक किए—१०-२४। (३) नष्ट करके। उ.—(क) अघ-अरिष्ट केसी काली मथि दावानलहिं पियौ—१-१२१। (ख) धनुष तोरि गज मारि मल्ल मथि किए निडर जदुबंस—३०१८।

मथिऐ—क्रि. स. [हिं. मथना] मथी जाती है। उ.—

नित प्रति सहस मथानी मथिऐ, मेघ-सब्द दधि-माट घमर कौ—१०-३३३ ।

मथित—वि. [सं.] (१) मथा हुआ । (२) घोलकर मिलाया हुआ ।

मथी—वि. [सं. मथिन्] मथनेवाला ।

संज्ञा स्त्री.—मथानी ।

मथुरा—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुपुर] व्रज में यमुना के दाहिने किनारे पर बसा एक नगर जिसे मधु नामक दैत्य ने बसाया था जिससे उसका नाम 'मधुपुर' पड़ा। मथुरा की गणना सात पुरियों में है। कंस की यही राजधानी थी और श्रीकृष्ण ने यहीं उसका वध किया था। उ.—मारि कंस केसी मथुरा मैं मेटचौ सबै दुराजैं —१-३३ ।

मथुरापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथुरा का राजा। उ.—बज्रनाभ मथुरापति कीन्हौ—१-२८८ । (२) मथुरा का राजा कंस ।

मथुरिया—वि. [हिं. मथुरा+इया] मथुरा से संबंधित ।

मथै—क्रि. स. [हिं. मथना] मथती या बिलोती है। उ.—अपनैं घर यौंहीं मथै—७१६ ।

मथौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. माथा+औरी] माथे का एक कार का आभूषण ।

मथ्थ, मथ्था—संज्ञा पुं. [हिं. माथा] भाल, ललाट ।

मथ्यौ—क्रि. स. [हिं. मथना] (१) मथा, बिलोया । (२) नाश किया । उ.—गज चानूर हते दव नास्यौ, ब्याल मथ्यौ भयहारे—१-२७ ।

वि.—मथा या बिलोया हुआ । उ.—तुरत मथ्यौ दधि माखन आछौ खाहु देउँ सो आनि—४९४ ।

मदंध—वि. [सं. मदांध] गर्व से अंधा ।

मद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हर्ष, आनन्द । (२) मतवाले हाथी की कनपटी से बहनेवाला द्रव्य, दान । (३) मद्य । (४) मतवाला पन, नशा । (५) उन्मत्तता । उ.—सत्यवती मच्छोदरि नारी । गंगा तट ठाढ़ी सुकुमारी । तहाँ परासर रिषि चलि आए । बिबस होइ तिहिं कैं मद छाए—१-२२९ । (६) गर्व, अहंकार । उ.—भोजन करत माँगि घर उनकैं राजमान-मद टारत—१-१२ । (७) प्रमाद, मतिभ्रम । (८) कामदेव ।

मुहा०—मद पर आना—(१) युवा होना । (२) उमंग पर आना । (३) कामोन्मत्त होना ।

वि.—उन्मत्त, मतवाला । उ.—मद गजराज द्वार पर ठाढ़ो हरि कहेउ नेक बचाय ।

संज्ञा स्त्री. [अ.] खाता, प्रसंग ।

मदक—संज्ञा स्त्री. [सं. मद] एक मादक पदार्थ ।

मदकची—वि. [हिं. मदक+ची] मदक पीनेवाला ।

मदकल—वि. [सं.] (१) मतवाला । (२) पागल ।

मदगल—वि. [सं. मदकल] मत्त, मतवाला, मस्त ।

मदजल—संज्ञा पुं. [सं.] मतवाले हाथी के मस्तक से बहनेवाला मद या दान ।

मदत, मदद—संज्ञा स्त्री. [अ.](१) सहायता । (२) मजदूर-कारीगर आदि का समूह ।

मददगार—वि. [फा.] सहायता देनेवाला ।

मदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामदेव । उ.—मनु मदन धनु-सर सँधाने, देखि घन-कोदंड—१-३०७ । (२) कामक्रीड़ा ।

मदनगोपाल—संज्ञा पुं. [सं. मदन+गोपाल] श्रीकृष्ण का एक नाम । उ.—मदनगोपाल देखियत हैं सब अब दुख-सोक विसारी—२५६६ ।

मदनदमन—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी ।

मदनमोहन—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक नाम। उ.—जब तुम मदनमोहन करि टेरौ इहि सुनि कै घर जाऊँ ।

मदन-लेख—संज्ञा पुं. [सं.] प्रेम-पत्र ।

मदनांतक—संज्ञा पुं. [सं.] शिव ।

मदनांध—वि. [सं. मदन+अंध] काम-पीड़ित ।

मदनारि—संज्ञा पुं. [सं.] शिव । उ.—गरल ग्रीव, कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि—१०-१६९ ।

मदपि, मदपी—वि. [सं. मद्यप] शराबी ।

मदमत्त, मदमत्ता—वि. [सं. मदमत्त] मतवाला ।

मदमात, मदमाता—वि. [सं. मदमत्त] गर्व में चूर। उ.—या देही को गरब करत धन-जोबन के मदमात —२-२२ । (२) मदोन्मत्त । उ.—ज्यौं गज जूथ नेक नहिं बिछुरत सरद मदन मदमातौ—३३१९ ।

मदमाती—वि. [हिं. मद+माता] मतवाली, मदोन्मत्त ।

उ.—जोबन मदमाती इतराती बेनि ढुरति कटि लौं छबि बाढ़ी—१०-३०० ।

मदमातो, मदमातौ—वि. [हिं. मदमाता] (१) गर्व में चूर । (२) मतवाला, मदोन्मत्त ।

मदर—संज्ञा पुं. [सं. मंडल] घेरना, मँड़राना ।

प्र०—मदर करत है—मँड़राता है । उ.—ब्रज पर मदर करत है काम—१० उ.-९८ ।

मदरसा—संज्ञा पुं. [अ० मदर्सः] पाठशाला ।

मदांध—वि. [सं.] मद से उन्मत्त ।

मदार—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी ।

संज्ञा पुं. [सं. मंदार] आकवृक्ष ।

मदारी—संज्ञा पुं. [अ. मदार] (१) तमाशा करनेवाला । (२) भालू-बन्दर नचानेवाला ।

मदालसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक गंधर्वकन्या ।

मदालापी—संज्ञा पुं. [सं.] कोकिल ।

मदिर—वि. [सं.] (१) मादक । (२) मत्त ।

मदिरा, मदी—संज्ञा स्त्री. [सं. मदिरा] शराब, मद्य ।

मदीय—वि. [सं.] मेरा ।

मदीला—वि. [सं. मद+हिं. ईला] नशीला ।

मदोन्मत्त—वि. [सं.] मद से चूर ।

मदोवै—संज्ञा स्त्री. [सं. मंदोदरी] मंदोदरी ।

मद्धिम—वि. [सं. मध्यम] (१) बीच का । (२) मंदा ।

मद्धे—अव्य. [सं. मध्ये] (१) बीच में । (२) संबंध में । (३) लेखे में ।

मद्य—संज्ञा पुं. [सं.] मदिरा, शराब ।

मद्यप—वि. [सं.] मद पीनेवाला, शराबी ।

मद्यपान—संज्ञा पुं. [सं.] मदिरा पीने की क्रिया ।

मध, मधि—संज्ञा पुं. [सं. मध्य] बीच का भाग ।

वि.—(१) नीच । (२) बीच का ।

अव्य.—में, बीच में । उ.—(क) अंबर हरत द्रुपद-तनया की दुष्ट सभा मधि लाज सम्हारी—१-२२ । (ख) लोह तरै मधि रूपा लायौ—७-५ । (ग) कमल मधि अलि उड़त—३६० ।

मधिम—वि. [सं. मध्यम] बीच का ।

मधु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शहद । उ.—अब तो हैं हम निपट अनाथ । जैसें मधु तोरे की माखी त्यौं हम बिन ब्रजनाथ—२९९३ । (२) मिसरी । उ.—माखन मधु मिष्ठान महर लै दियौ अक्रूर के हाथ—२५३४ । (३) फूल का रस, मकरंद । (४) वसंत ऋतु । (५) चैत्र मास । (६) एक दैत्य जिसको मारने से विष्णु का नाम 'मधुसूदन' पड़ा । उ.—(क) धरनीधर विधि बेद उधारयौ मधु सौं शत्रु हयौ—२२६४ । (ख) एई माधो जिन मधु मारे री—२५६८ ।

वि.—(१) मीठा । (२) स्वादिष्ट । उ.—चारी भ्रात मिलि करत कलेऊ मधु मेवा पकवाना । (३) सुन्दर, सुकुमार । उ.—अंग सुभग सजि ह्वै मधु मूरति नैननि माँह समाऊँ—१०-४९ ।

मधुऋतु—संज्ञा स्त्री. [सं.] वसंत ऋतु ।

मधुकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] कोयल, कोकिल ।

मधुकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौंरा । उ.—जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ क्यौं करील फल भावै—१-६८ । (२) कामी पुरुष ।

मधुकरि, मधुकरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुकर] (१) भ्रमरी । उ.—सुनि मधुकरि भ्रम तजि कुमुदनि कौ राजिवबर की-आस—१-३३९ । (२) भिक्षा जिसमें केवल पका हुआ भोजन हो ।

मधुकैटभ—संज्ञा पुं. [सं.] मधु और कैटभ नामक दो दैत्य जो विष्णु द्वारा मारे गये थे ।

मधुकोश, मधुकोष, मधुकोस—संज्ञा पुं. [सं. मधुकोष] शहद की मक्खी का छत्ता ।

मधुप—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा, भ्रमर । उ.—पिउ पद-कमल कौ मकरंद । मलिन मति मन-मधुप परिहरि विषय नीरस मंद—९-१० ।

वि.—मधु का पान करनेवाला ।

मधुपति—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा, भ्रमर । उ.—निसि दै द्वार कपाट सदल बधु मधुपति प्यावत परम चैन—१९७७ ।

संज्ञा पुं.—श्रीकृष्ण ।

मधुपन, मधुपनि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. मधुप+नि] अनेक भ्रमर । उ.—(क) कुंचित केस सुबंधु सुबसु मनु उड़ि आए मधुपन के टोल—१३३० । (ख) बिन बिकसे कल कमल कोष तैं मनु मधुपनि की माल – १०-२०७ ।

मधुपर्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दही, घी, जल, शहद और शकर का घोल जो देवता पर चढ़ाया जाता है।

मधुपायी—संज्ञा पुं. [सं. मधुपायिन्] भौंरा।

मधुपुर—संज्ञा पुं. [सं.] मथुरा का प्राचीन नाम।

मधुपुरि, मधुपुरी—संज्ञा स्त्री. पुं.[सं. मधुपुरी]मथुरा का प्राचीन नाम। उ.—(क) कालिंदी कैं कूल बसत इक मधुपुरि नगर रसाला—१०-२। (ख) धनि कालिंदी मधुपुरी दरसन नासैं पापु—४९२।

मधुबन—संज्ञा पुं.[सं.](१ ब्रज का एक वन। उ.--मधुबन तुम कत रहत हरे—ना० ३८२८। (२) मथुरा। उ.—(क) गोपालहिं राखहु मधुबन जात—२५३१। (ख) मधुबन सब कृतज्ञ धरमीले—ना० ४२१२। (३) सुग्रीव का बाग। उ.—हनु, तैं सबकौ काज सँवारचौ। ....। तुरतहिं गमन कियौ सागर तैं बीचहिं बाग उजारचौ। कीन्हौ मधुबन चौर चहूँदिसि माली जाइ पुकारचौ—९-१०३।

मधुमंगल—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक सखा गोप। उ.—अर्जुन भोजऽरु सुबल सुदामा मधुमंगल इक ताक—४६४।

मधुमक्खी, मधुमक्षिका—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुमक्षिका] शहद की मक्खी।

मधुमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] समाधि की अवस्था जिसमें रज और तम गुणों के छूट जाने पर केवल सतगुण के प्रकाश का अनुभव होता है।

मधुमाखि, मधुमाखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मधुमक्खी] शहद की मक्खी। उ.—(क) ज्यौं मधुमाखी सँचति निरंतर बन की ओट लई—१-५०। (ख) ज्यौं घेरि रही मधुमाखि मिलि झूमक ह्वौ—२४११।

मधुमास—संज्ञा पुं. [सं.] चैत और वैसाख।

मधुमासी—संज्ञा स्त्री. [सं. मधु+हिं. मक्खी]मधुमक्खी।

मधुर—वि. [सं.] (१) मधु-जैसे स्वादवाला। (२) जो सुनने में मीठा जान पड़े। उ.—महा मधुर प्रिय बानी बोलत साखामृग तुम किहिं के तात—९-६९। (३) सुन्दर, सुकुमार। (४) प्रिय लगनेवाला। (५) शांत।

मधुरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मधुर+ई] (१) मधुरता। (२) मिठास। (३) सुकुमारता। (४) सुन्दरता।

मधुरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मधुर शब्द-योजना।

मधुराई—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुर+आई] (१) मधुरता। (२) मिठास, मीठापन। (३) कोमलता। (४) सुन्दरता।

मधुराज—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा।

मधुराना, मधुरानो—क्रि. अ. [हिं. मधुर+आना] (१) मीठा होना। (२) सुन्दर हो जाना। (३) प्रिय या रुचिकर होना।

मधुरान्न—संज्ञा पुं. [सं.] मिठाई।

मधुरि—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुर] सुन्दरता।

मधुरिपु—संज्ञा पुं. [सं.] 'मधु' दैत्य को मारनेवाले विष्णु। उ.—(क) सूरदास अब क्यौं बिसरत है मधुरिपु कौ परितोष—पृ. ३३२ (१८)। (ख) वहाँ भेषज नाना बिधि को अरु मधुरिपु से हैं बैद—३०१३।

मधुरिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुरिमन्] (१) मिठास, मीठापन। (२) मधुरता। (३) कोमलता। (४) सुन्दरता।

मधुरी—वि. [सं. मधुर] जो सुनने में प्रिय या रुचिकर लगे। उ.—तारी दै दै गावहीं मधुरः मृदु बानी—१०-१३४।

संज्ञा स्त्री. [सं. माधुर्य] सुन्दरता।

मधुरे—क्रि. वि. [सं. मधुर] धीरे-धीरे। उ.—(क) सकुच सहित मधुरे करि बोली—७००। (ख) मधुरे दोउ रोवन लागे—२६२५। (ग) अस्तुति करी बहुत नाना बिधि मधुरे बेनु बजाये—सारा०४८९।

मधुरैं—क्रि. वि. [सं. मधुर] (१) मधुर स्वर में। उ.—जसुमति मधुरैं गावै—१०-४३। (२) धीरे-धीरे।

वि. सवि.—जो सुनने में भला लगे। उ.—यह कहि कहि मधुरैं सुर गावति केदारौ—१०-१९७। (ख) मधुरैं सुर गावत—१०-२४२। (ग) करत चले मधुरैं सुर गान—४३८।

मधुवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्रज का एक वन। (२) सुग्रीव का वन। (३) मथुरा। (४) प्रेमी-प्रेमिका का मिलन-स्थल।

मधुवामन—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा, भ्रमर।

मधुसूदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) 'मधु' दैत्य को मारनवाले विष्णु। (२) श्रीराम। (३) श्रीकृष्ण।

मधुहंता—संज्ञा पुं. [सं. मधुहंतृ] 'मधु' नामक दैत्य को मारनेवाले विष्णु।

मधूक—संज्ञा पुं. [सं.] महुए का पेड़ या फूल।
मधुकड़ी, मधुकरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुकरी] मधुकरी।
मध्य—संज्ञा पुं. [सं.] बीच का भाग।
वि.—बीच का, मध्यम।
मध्यम—वि. [सं.] बीच या मध्य का।
मध्यस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बीच में पड़कर झगड़ा या विवाद मिटानेवाला। (२) उदासीन, तटस्थ।
मध्यमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बीच की अँगुली। (२) प्रिय के अपराध पर कुछ मान करके शीघ्र ही प्रसन्न हो जानेवाली नायिका।
मध्यस्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मध्यस्थ होने का भाव।
मध्यान, मध्यान्ह, मध्याह्न—संज्ञा पुं. [सं. मध्याह्न] दोपहर का समय। उ.—नृप, तुम हमसौं करी लराई। कह्यो करौं मध्यान बिताई—९-१३।
मध्ये—क्रि. वि. [सं. मध्य] संबंध में।
मध्वाचार्य—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य जिनका समय बारहवीं शताब्दी है।
मन—संज्ञा पुं. [सं. मनस्] (१) अंतःकरण, चित्त। उ.—मन-बानी कौं अगम अगोचर सो जानै जो पावै—१-२। (२) अंतःकरण की चार वृत्तियों में वह वृत्ति जिससे संकल्प-विकल्प होता है।

मुहा०—(किसी से) मन अटकना (उलझना)—प्रेम होना। मन अटक्यो—प्रेम हो गया। उ.—ता दिन ते मधुकर, मन अटक्यो बहुत करी निकरै न निकारयौ—३०३५। मन आना (में आना)—जँचना, समझ पड़ना। मन आई—इच्छा हुई, जँच गई। उ.—(क) नृपति रहूगन कैं मन आई। सुनियै ज्ञान कपिल सौं जाई—५-४। (ख) जमुना तीर आजु सुख कीजै यह मेरें मन आई—५८१। कहा मन आनी—यह क्या सूझी? ऐसा अनुचित विचार क्यों किया है? उ.—इंद्र देखि इरषा मन मन लायौ। करि कै क्रोध न जल बरसायौ। रिषभदेव तबहीं यह जानी। कह्यो, इंद्र यह कहा मन आनी—५-२। मन करना—इच्छा करना। करत इहाँ को मन—यहाँ आने की इच्छा करते हैं। उ.—कबहुँक स्याम करत इहाँ को मन कैंधौ चित सुध्यो बिसराई—३११८। मन का (कौ)—प्रिय या रुचिकर। उ.—तेरे मन कौ यहाँ कौन है—१०-३२०। मन (का) खराब होना—(१) मन फिरना। (२) अप्रसन्न होना। (३) बीमार होना। मन चलना—इच्छा होना। चलत कहाँ मन—मन कहाँ-कहाँ या किधर-किधर दौड़ता है। उ०—चलत कहाँ मन और पुरी तन जहाँ कछु लैन न दैन—४९१। मन चुराना (चोराना)—मोह लेना, मुग्ध कर लेना। मन लियौ चुराइ—मन मुग्ध कर लिया। उ.—कब देखौं वह मोहन मूरति जिन मन लियौ चुराई—६७९। चोरत मन—मन मुग्ध करते हैं। उ.—कछु दिन करि दधि-माखन चोरी अब चोरत मन मोर—७७६। मन टूटना—(१) निराश या हताश होना। (२) चारों ओर वेग से दौड़ना या लपकना। मन दसहूँ दिसि टूटै—दसों दिशाओं में मन दौड़ता या लपकता है। उ.—करनी और कहै कछु और मन दसहूँ दिसि टूटै—१-१९। मन ढरना—प्रेम या अनुराग होना। मन ढरयो—प्रेम हो गया, मन मुग्ध हो गया। उ.—रूपहीन कुलहीन कूबरी तासौं मन जो ढरयो—३०९२। मन देना—(१) मन लगाना। (२) ध्यान देना। मन दीनौं—मन लगाया। उ.—भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी मन बिसया मैं दीनौं—१-६५। (किसी पर) मन धरना—(१) ध्यान देना। (२) मन लगाना। मन न धारै—चित्त नहीं लगाता है। उ.—सूरदास स्वामी मनमोहन तामें मन न धरै—४८३। मन तोड़ना—(१) निराश या हताश करना। (२) निराश या हताश होना, साहस छोड़ना। मनहिं तोरै—साहस छोड़ देता है। उ.—कहुँ रसना सुनत स्रवन देखत नयन सूर सब भेद गुन मनहिं तोरै। मन बँधना—मुग्ध, आसक्त या लीन होना। मन बँध्यौ—मुग्ध, आसक्त या लीन हुआ। उ.—सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बँध्यौ राग की डोरि—६५७। मन (में) बसना—अच्छा लगना, रुचिकर होना। उ.—सूरदास मन बसैं तोतरे बचन बर—१०-१५१। मन बाँधना—मुग्ध, आसक्त या लीन करना। मन बाँध्यौ—मुग्ध या आसक्त हुआ। उ.—कनक

कामिनी सौं मन बाँध्यौ—१-७४ । मन वश में करना—मुग्ध या आसक्त कर लेना । बस कीन्हौ मन मेरौ—मेरा मन मुग्ध या आसक्त कर लिया है । उ.—रिसहिं उठी जहराइ, कह्यौ, यह बस कीन्हौं मन मेरौ—१९९९ । मन बिगड़ना—(१) मन का हटना या उदासीन होना । (२) कै या मचली जान पड़ना । (३) झुँझलाना, क्रुद्ध होना । (४) चित्त अस्वस्थ होना । मन बढ़ना—साहस या उत्साह बढ़ना । मन बुझना—चित्त में उमंग या उत्साह न होना । मन बूझना—मन की थाह लेना । मन बढ़ाना—उत्साह या साहस बढ़ाना । मन बढ़ायौ—उमंग या उत्साह बढ़ाकर उ.—दियौ सिर पाँव नृपराउ ने महर को आप पहरावनी सब दिखाए। अतिहिं सुखपाइ कै लियौ सिर नाइ कै हरषि नँदराइकै मन बढ़ायौ । मन (का) बूझना (मानना)—चित्त में शांति या संतोष होना । मन का मारा—खिन्न या दुखित चित्त वाला । मन का मैला—खोटा, कपटी । मन की मन में रहना—इच्छा पूरी न होना । मन के लड्डू खाना—कोरी कल्पना का आनन्द लेना, व्यर्थ की या असंभव आशा पर प्रसन्न होना । मन खोलना—रहस्य प्रकट कर लेना । मन चलना—इच्छा होना । मन (को) टटोलना —मन की थाह लेना । मन डोलना—(१) चित्त का चंचल हो जाना । (२) लोभ हो आना, नियत डोलना । मन डोलाना—(१) चित्त को चंचल करना । (२) नियत डुलाना, लोभ करना । मन न डोलावै—चित्त को चंचल न करे । उ.—भोजन करत गह्यौ कर रुक्मिनि सोइ देहु जो मन न डोलावै । मन देना—(१) ध्यान लगाना । (२) लीन या मुग्ध होना । मन फटना (फिर जाना)—घृणा या चिढ़ हो जाना । मन फिराना (फेरना)—चित्त हटाना । मन बहलाना—दुख भुलाने का प्रयत्न करना, खिन्न चित्त को प्रसन्न करना । मन भरना—(१) विश्वास होना । (२) तृप्ति, संतोष या समाधान होना । मन भर जाना—(१) अघा जाना, तृप्त हो जाना । (२) इच्छा या प्रवृत्ति न रह जाना । मन भाना—भला या रुचिकर लगना । मन भारी करना—खिन्न या उदास होना । मन मानना—(१) तृप्ति, संतोष या समाधान होना । (२) निश्चय या विश्वास होना । (३) भला या रुचिकर लगना, भा जाना । (४) प्रेम या अनुराग होना । मन मानत—संतुष्ट होता है । उ.—क्यों मन मानत है इन बातन—३०२५ । कैसे मन मानै—कैसे संतोष हो सकता है ? उ.—मधुकर कहि कैसैं मन मानै । जिनकौं इक अनन्य ब्रत सूझै, क्यौं दूजौ उर आनै—ना० ४३३३ । मन मान्यौ—अनुराग हो गया । उ.—(क) सखी री, स्याम सौं मन मान्यौ । नीकैं करि चित कमल नैन सौं घालि एकठौ सान्यौ—१२०२ । (ख) नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ कहा करैगो कोई री—१२०३ । मन मिलना—(१) प्रेम होना । (२) मित्रता होना । मन में आना-(१) प्रतिक्रिया-स्वरूप किसी विचार या भाव का उत्पन्न होना । (२) जान या समझ पड़ना । (३) भला या रुचिकर लगना । मन न आये—प्रतिक्रिया-स्वरूप कोई भाव जाग्रत न हुआ । उ.—तासों उन कटु बचन सुनाये । पै ताके मन कछू न आये । मन नहिं आवे—समझ या जान नहीं पड़ता । उ.—यह तनु क्यों ही दियौ न जावे । और देत कछु मन नहिं आवे । मन में आनना—सोचना, विचार करना । मन में जमना-(१) उचित जान पड़ना । (२) ध्यान में आना । मन में ठानना—दृढ़ संकल्प करना । मन में धरना—(१) प्रकट न करना । (२) स्मरण रखना । (३) ध्यान देना, श्रद्धा या विश्वास रखना । न मन मैं धरै—ध्यान नहीं देता है, श्रद्धा या विश्वास नहीं रखता है । उ.—जज्ञ सराध न कोऊ करै । कोऊ धर्म न मन मैं धरै—१-२९० । मन मैं यह धरी—यह निश्चय या संकल्प किया है । उ.—पै तुम बिनती बहु बिधि करी । तातैं मैं मन मैं यह धरी—६-५ । मन में बैठना—(१) ठीक जान पड़ना । (२) ध्यान में आना । मन में रखना—(१) प्रकट न करना । (२) स्मरण रखना । मन में भरना—हृदयंगम करना । मन में लाना—सोचना, विचार करना । मन में मानना—ध्यान देना, परवाह करना । मन मैं नहिं मान्यौ—कुछ परवाह या चिंता न की, ध्यान न दिया । उ.—छाक खाय

जूठन ग्वालन की कछु मन मैं नहिं मान्यौ—सारा. ७५० । मन मारना—(१) खिन्न या उदास होना । (२) इच्छा या उमंग को दबाना । मन मारि—खिन्न या उदास होकर । उ.—भवन ही मन मारि बैठी सहज सखी इक आई । मन मारे—खिन्न, उदास । उ.—(क) आए नंद घरहि मन मारे–५४१ । (ख) प्रिया-वियोग फिरत मारे मन परे सिंधु तट आनि । मन मारैं—खिन्न या उदास होता है । उ.—भूसुत सत्रु थान किन हेरत लखत मोहि मन मारैं । मन मूसना—मन हरना । मूसे मन—मेरा मन रूपी धन हरकर । उ.—जात कहाँ बलि बाँह छुड़ाये मूसे संपति मेरी (मन-संपति सब मेरी)—१५०६ । मन मिलना—(१ समान स्वभाव होना । (२) मित्रता या प्रेम होना । मन को मोहना—चित्त लुभाना या आकृष्ट करना । मन (को) मैला करना—खिन्न या अप्रसन्न होना । (किसी से) मन मोटा होना—अनबन होना । (किसी का) मन मोटा होना—विरक्त या तटस्थ होना । मन मोड़ना—(१) चित्त को दूसरी ओर लगाना । (२) विरक्त या तटस्थ रहना । (किसी का) मन रखना—इच्छा या कामना पूरी करना । मन राखे काम—इच्छा पूरी करना ही उचित है । उ.—उनहीं को मन राखे काम —१९९४ । मन (में) रखना—ध्यान में बसाना । मन राखत—ध्यान में रखते हैं । उ.—जिहिं जिहिं भाँति ग्वाल सब बोलत, सुनि स्रवननि मन राखत—४९३ । मन लगना—(१) तबियत लगना । (२) ध्यान बना रहना । (३) प्रेम या अनुराग होना । नहिं मन लागत—जी नहीं लगता है, तबियत घबराती है । उ.—(क) नैंकहूँ कहूँ मन न लागत काम-धाम बिसारि—७७७ । (ख) नेंक नहीं घर मों मन लागत —११७५ । मन लग्यो (लाग्यौ)—प्रेम या अनुराग हुआ । उ.—(क) जाको मन लाग्यौ नंदलालहि ताहि और नहिं भावै—२-१० । (ख) सूरदास चित ठौर नहीं कहुँ मन लाग्यौ नँदलालहि सौं—११८० । (ग) मेरो मन रसिक लग्यौ नँदलालहि झखत रहत दिन राती—३११६ । मन लगाना—(१) ध्यान देना, सोचना, विचारना । (२) जी बहलाना, विनोद करना । (३) प्रेम या अनुराग करना । मन नहिं अनत लगावै—दूसरी ओर ध्यान नहीं देता, कुछ और सोचता ही नहीं । उ.—ऐसे सूर कमल लोचन बिनु मन नहिं अनत लगावै हो—२८०४ । मन लाना—(१) जी लगाना, ध्यान देना । (२) प्रेम करना, आसक्त होना । मन लायौ—प्रेम किया । उ.—मूरख, त पर-तिय मन लायौ, इंद्रानी तजिकै ह्याँ आयौ—६-८ । मन से उतरना—(१) आदर-भाव न रह जाना । (२) याद न रहना । मन से उतारना—आदर-भाव न रखना । (२) भुलाना, याद न रखना । मन हरना—मोह लेना, मुग्ध करना । मन हरि लियौ—मुग्ध कर लिया । उ.—मन हरि लियौ मुरारि—७६४ । मन हरेउ—मन मुग्ध हो गया । उ.—सूरदास मेरौ मन वाकी चितवन देखि हरेउ री । मन हरयौ—मन मुग्ध कर लिया, मोह लिया । उ.—सूर स्याम मन हरयौ तुम्हारो हम जानौ इह बात बनाई—११८६ । (किसी का) मन हाथ में करना (लेना)-मन वश में करना । मन ही मन-चुपचाप, भीतर ही भीतर, बिना कुछ कहे-सुने । उ.–(क) फरकत बदन उठाइ कै मन ही मन भावै—१०-७२ । (ख) रिसनि रही अहराइ कै मन ही मन बाम—२१२६ । मन हरा होना—चित्त प्रसन्न होना । मन हारना—साहस छोड़ना, उत्साह न रह जाना ।

(३) इच्छा, इरादा, विचार ।

मुहा०—मन करना—इच्छा करना । मन माना—इच्छानुसार । मन माने की बात—अपनी-अपनी रुचि या इच्छा है । उ.—ऊधौ मन माने की बात । दाख छुहारा छाँड़ि कै बिष कीरा बिस खात—ना० ४६३९ । मन होना—इच्छा होना, जी चाहना ।

संज्ञा पुं. [सं. मणि] (१) मन । (२) चालीस सेर की एक तौल ।

मनई—संज्ञा पुं. [सं. मानव] आदमी, मनुष्य ।

मनकना, मनकनो—क्रि. अ. [अनु०] (१) हाथ-पैर हिलाना-डुलाना । (२) विरोध या तर्क-वितर्क करना ।

मनकरा—वि. [सं. मणि + हिं. कर] चमकदार ।

मनका—संज्ञा पुं. [सं. माणिक्य] (१) माला या सुमिरनी की गुरिया। (२) माला, सुमिरनी।

मनकामना—संज्ञा स्त्री. [हिं. मन+कामना] इच्छा, अभिलाषा। उ.—जौलौं मन-कामना न छूटै—२-१९।

मनगढ़ंत—वि. [हिं. मन+गढ़ना] जो कल्पित या गढ़ा हुआ हो।

संज्ञा स्त्री—कोरी कल्पना।

मनचला—वि. [हिं.मन+चलना] (१) चंचल चित्तवाला। (२) रसिक।

मनचाहता—वि. [हिं. मन+चाहना] (१) जो प्रिय लगे। (२) जो मन के अनुकूल हो।

मनचाहा—वि. [हिं. मन+चाहना] इच्छित।

मनचीतना, मनचीतनो—क्रि. स. [हिं. मन+चाहना] अच्छा लगना।

मनचीता, मनचीते, मनचीत्यो—वि. [हिं. मन+चेतना] मन में चाहा या सोचा हुआ। उ.—(क) घर डर बिसरेउ बढ़ेउ उछाह। मनचीते हरि पायौ नाह। (ख) सूर स्याम दासी सुख सोवहु भयौ उभय मन-चीत्यौ—२८८४।

मनजात—संज्ञा पुं [हिं. मन+सं. जात] कामदेव।

मनन—संज्ञा पुं. [सं.] चिंतन, विचार।

मननशील—वि. [सं. मनन+शील] चिंतनशील।

मननाना, मननानो—क्रि. अ. [अनु. मन्] गूँजना।

मनबांछित—वि. [सं. मनोवांछित] इच्छित, मनभाया। उ.—(क) मनबांछित फल सबहिन पायौ—सारा, १६५। (ख) माँगौ सकल मनोरथ अपने मनबांछित फल पायौ—सारा. ३६८।

मनभाया, मनभायो—वि. [हिं. मन+भाना] जो मन को रुचे या भला लगे। उ.—सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि कियौ कान्ह ग्वालिनि मनभायौ।

मनभावता, मनभावतो—वि. [हिं. मन+भाना] (१) रुचने या प्रिय लगनेवाला। (२) प्रिय, प्यारा।

मनभावन, मनभावनो—वि. [हिं. मन+भाना] (१) रुचने या प्रिय लगनेवाला। उ.—चरन धोइ चरनोदक लीनौ, कह्यौ माँगु मनभावन—८-१३। (२) प्रिय, प्यारा। उ.—(क) जुग-जुग जीवहु कान्ह सबही मन-भावन रे। (ख) हित कै चित की मानत सबके जिय की जानत सूरदास मनभावन—१०-२५१।

मनभावनी—वि. स्त्री. [हिं. मनभावना] (१) रुचनेवाली। उ.—भाट बोलै बिरद नारी बचन कहै मनभावनी। (२) प्यारी।

मनमत—वि. [हिं. मैमंत] मतवाला।

मनमति—वि. [हिं. मन+मति] मनमौजी, स्वेच्छाचारी।

मनमथ—संज्ञा पुं. [सं. मन्मथ] कामदेव। उ.—लटकन सीस कंठ मनि भ्राजत मनमथ कोटि वारनै गै री—१०-५५।

मनमथारि—संज्ञा पुं. [सं. मन्मथ+अरि] शिवजी।

मनमानना—वि. [हिं. मन+मानना] मनचाहा।

मनमाना—वि. [हिं. मन+मानना] (१) जो मन को रुचे। (२) मन के अनुकूल। (३) मनचाहा।

मनमानै—वि. [हिं. मन+मानना] जो रुचे या मन चाहे। उ.—मनमानै सोऊ कहि डारौ—३००४।

मनमुखी—वि. [हिं. मन+मुख्य] मनचाहा काम करनेवाला, स्वेच्छाचारी।

मनमुटाव—संज्ञा स्त्री. [हिं. मन+मोटा] बैर, वैमनस्य।

मनमोदक—संज्ञा पुं. [हिं. मन+मोदक] सुखदायी, परंतु कल्पित बात।

मनमोहन, मनमोहना, मनमोहनो—वि. [हिं. मन+मोहन] मन को मोहने या लुभानेवाला, चित्ताकर्षक।

संज्ञा पुं.—(१) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ.—(क) जाको मनमोहन अंग करै—१-३७। (ख) स्यामा स्याम मिले ललितादिहि सुख पावत मनमोहनो—२२८०।

मनमौजी—वि. [हिं. मन+मौज] मनमाना काम करनेवाला, स्वेच्छाचारी।

मनरंज, मनरंजन—वि. [हिं. मन+रंजना] मन को आनंदित करने वाला, मनोरंजक। उ.—(क) सिव-बिरंचि खंजन मनरंजन छिन छिन करत प्रवेस—१-३२९। (ख) खंजन मनरंजन न होहिं ए कबहीं नहिं अकुलात—२७७७।

संज्ञा पुं.—मनोरंजन।

मनलाड़ू—संज्ञा पुं. [हिं. मन+लड्डू] सुखद कल्पना,

मनमोदक। उ.—काकी भूख गई मनलाड़ू सो देखहु चित चेत—३२५६।

मनवांछित—वि. [सं. मनोवांछित] मनचाहा, अभीष्ट।

मनवाना, मनवानो—क्रि. स. [हिं. मानना] मानने की प्रेरणा देना।

मनशा—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) इच्छा। (२) तात्पर्य।

मनसना, मनसनो—क्रि. स. [हिं. मानस] (१) इच्छा या विचार करना। (२) संकल्प या निश्चय करना। (३) जल लेकर संकल्प करके दान करना।

मनसब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) पद। (२) काम।

मनसबदार—संज्ञा पुं. [फा.] जो किसी मनसब पर हो।

मनसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक देवी।

संज्ञा स्त्री. [सं. मानस] (१) इच्छा, कामना, अभिलाषा, मनोरथ। उ.—(क) सूरदास ज्यौं मन तें मनसा अनत कहूँ नहिं जावै। (ख) सूर प्रभु कौ दरस दीजै नहीं मनसा और—३३८३। (२) संकल्प, निश्चय। (३) मन। उ.—मनसा-बाचा-कर्म अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी—१-११५। (४) बुद्धि। उ.—(क) पाँच कमल मधि जुगल कमल लखि मनसा भई अपंग। (ख) सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग—६२७। (५) अभिप्राय, तात्पर्य।

वि.—(१) मन से उत्पन्न। (२) मन का। (३) मन में किया हुआ, मानसिक। उ.—मनसा पाप लगै नहिं कोइ—१-२९०।

क्रि. वि.—मन से, मन के द्वारा।

मनसाना, मनसानो—क्रि. अ. [हिं. मनसा] उमंग में आना।

क्रि. स. [हिं. मनसाना] संकल्प आदि पढ़कर या पढ़ाकर दान आदि कराना।

मनसानाथ—वि. [हिं. मनसा+सं. नाथ] इच्छा पूरी करनेवाला। उ.—मनसानाथ मनोरथ पूरन सुख निधान जाकी मौज घनी—१-३९।

मनसायन—संज्ञा पुं. [हिं. मानुस+आयन] मन-बहलाव के लिए जाने का स्थान।

मनसि—क्रि. वि. [हिं. मन] मन से।

मनसिज—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—तब को इंदु सम्हारि तुरत ही मनसिज साजि लियौ—३४७४।

मनसुखा—संज्ञा पुं. [हिं मन+सुख] श्रीकृष्ण का सखा एक गोप। उ.—रैता पैता मना मनसुखा हलधर संगहि रैहौं—४१२।

मनसूबा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) युक्ति। (२) इरादा।

मनसूर—संज्ञा पुं. [अ.] एक सूफी साधु।

मनस्क—संज्ञा पुं. [सं.] मन (अल्पार्थक रूप)।

मनस्ताप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आंतरिक दुख। (२) पछतावा, अनुताप।

मनस्वी—वि. [सं. मनस्विन्] बुद्धिमान।

मनहर—वि. [सं. मनोहर] मन हरनेवाला। उ.—(क) बेनी लटकन मसिबुंदा मुनि-मनहर—१०-१५१। (ख) बिनय बचननि सुनि कृपानिधि चले मनहर चाल—१०-२१८।

संज्ञा पुं.—घनाक्षरी छन्द।

मनहरण, मनहरन—संज्ञा पुं. [हिं. मन+हरण] मन हरने की क्रिया या भाव।

वि.—मन हरनेवाला, मनोहर।

मनहार, मनहारि, मनहारी—वि. [हिं. मनोहारी] सुंदर।

मनहुँ, मनहूँ—अव्य. [हिं. मानो] मानो, जैसे।

मनहूस—वि. [अ.] (१) अशुभ। (२) जो देखने में बुरा लगे। (३) आलसी, निकम्मा।

मना—वि. [अ.] जिसको करने की आज्ञा न हो, वर्जित।

संज्ञा पुं. [हिं. मन] (१) मन, चित्त। उ.—मना (मन) रे, माधव सौं करि प्रीति—१-३२५। (२) श्री कृष्ण का सखा एक गोप। उ.—रैता पैता मना मनसुखा हलधर संगहि रैहौं—४१२।

मनाइए, मनाइये—क्रि. स. [हिं. मनाना] प्रसन्न कीजिए, मान मोचन कीजिए। उ.—अति रिस कृष ह्वै रही किसोरी करि मनुहारि मनाइये—१६८८।

मनाई—क्रि. स. [हिं. मनाना] सेवा-पूजा की या करके। उ.—(क) यह औसर कब ह्वैहै फिरि कै पायौ देव मनाई—१०-१८। (ख) जा सुख कौं सिव-गौरि मनाई तिय-व्रत-नेम अनेक करी—१०-८०।

संज्ञा स्त्री. [हिं मनाही] न करने की आज्ञा।

मनाऊ—क्रि. स. [हिं. मनाना] (१) सेवा-पूजा से प्रसन्न

करूँ। (२) स्तुति या प्रार्थना करूँ। उ.—पुनि-पुनि देव मनाऊँ—सारा. ७८० ।

मनाक, मनाक्, मनाग—[सं. मनाक्] थोड़ा, अल्प ।

मनादी—संज्ञा स्त्री. [अ. मुनादी] ढिंढोरा, घोषणा ।

मनाना, मनानो—क्रि. स. [हिं. मानना] (१) दूसरे को मानने या स्वीकारने को प्रवृत्त करना। (२) रूठे हुए को प्रसन्न या संतुष्ट करने के लिए अनुनय-विनय या मीठी-मीठी बातें करना। (३) मनोरथ पूरा करने के लिए देवी-देवता आदि की पूजा, सेवा या प्रार्थना करना। (४) स्तुति या प्रार्थना करना। (५) कामना या इच्छा करना।

मनायो, मनायौ—क्रि. स. [हिं. मनाना] मनोरथ पूरा करने के लिए देवी-देवता की प्रार्थना की। उ.— मुदित ह्वै गई गौरि मंदिर जोरि करि बहु बिधि मनायौ—१० उ०-१८ ।

मनावत—क्रि. स. [हिं. मनाना] मीठी-मीठी बातें करके रूठे हुए को प्रसन्न करता है। उ.—ससि कौं देखि आइ हठि ठानी, करि मनुहार मनावत-सारा. ४३९ ।

मनावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. मनाना] प्रार्थना या स्तुति करती हैं। उ.—ब्रज-जुवती स्यामहिं डर लावति। बारंबार निरखि कोमल तनु कर जोरहिं बिधि कौं जु मनावति—३९० ।

मनावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. मनाना] (१) स्तुति या प्रार्थना करती है। उ.—कबहुँक कुल देवता मनावति —१०-११५ । (२) मनोरथ पूर्ण करने के लिए प्रार्थना करती है। उ.—(क) यह कहि कहि देवता मनावति। (ख) जोरि कर बिधि सों मनावति असीसै दै नाम—२५६५ ।

मनावन—संज्ञा पुं. [हिं. मनाना] (१) मनाने की क्रिया या भाव। (२) रूठे हुए को प्रसन्न करने की क्रिया या भाव; मनाने के लिए। उ.—(क) स्याम मनावन मोहिं पठाई—२०२२ । (३) स्तुति या प्रार्थना करने की क्रिया या भाव।

मनावहिं—क्रि. स. [हिं. मनाना] मीठी-मीठी बातें कहकर रूठे हुए को मनाते हैं। उ.—हम नाहिन कमला सी भोरी करि चातुरी मनावहिं—२९८५ ।

मनावहु—क्रि. स. [हिं. मनाना] मनोरथ पूर्ण करने के लिए देवी-देवता की प्रार्थना करो। उ.—वह देवता मनावहु सब मिलि तुरत कमल जो देइ पठाइ--५३१ ।

मनावैं—क्रि. स. [हिं. मनाना] स्तुति या प्रार्थना करती हैं। उ.—ब्रज जुवती हरि चरन मनावैं—६३१ ।

मनावै—क्रि. स. [हिं मनाना] (१) मनोरथ पूर्ण करने के लिए देवी-देवता की प्रार्थना या स्तुति करती है। उ. –(क) सूरदास ऐसे प्रभु तजि कै घर-घर देव मनावै—१-३१ । (ख) कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे कहि-बिधिहिं मनावै—१०-७४ । (२) कामना करता है। उ.—ऐसो को ठाकुर जन-कारन दुख सहि भलो मनावै—१-१२२ ।

मनाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. मना] न करने की आज्ञा।

मनि—संज्ञा स्त्री. [सं. मणि] (१) मणि, रत्न। (२) सर्प के मस्तक से प्राप्त (कल्पित) मणि। उ.—निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं—१०-२९६ ।

मनिआ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मनिका] (१) माला का दाना, गुरिया। (२) कंठी, माला। उ.—हौं करि रही कंठ में मनिआ निर्गुन कहा रसहिं ते काज—३३५२ ।

मनिका—संज्ञा स्त्री. [सं. मणि] माला का दाना, गुरिया।

मनिधर - संज्ञा स्त्री. [सं. मणिधर] साँप, सर्प। उ.— मानौं मनिधर मनि ज्यौं छाँड़यौ फन तर रहत दुराए—६७५ ।

मनिमय—वि. [सं. मणि+हिं. मय] (१) मणियों से युक्त। (२) जिसमें मणियाँ जड़ी हों। उ.—मनिमय भूमि नंद के आलय—१०-१२१ ।

मनियाँ, मनिया - संज्ञा स्त्री. [सं. माणिक्य] (१) कंठी या माला में पिरोया जानेवाला दाना। उ.—अपने हाथ पोहि पहिरावत कान्ह कनक के मनियाँ— २८ ७९ । (२) मोती या गजमोती आदि जो कठुला आदि में पिरोया जाय। उ.—कठुला कंठ मंजु गज-मनियाँ—१०-१०६ । (३) कंठी, माला। उ.— हौं करि रही कंठ में मनियाँ (मनिआ) निर्गुन कहा रसहिं ते काज—३३५२ ।

मनियार, मनियारा, मनियारो, मनियारौ--वि. [सं. मणि +आर] (१) चमकीला। (२) सुहावना, शोभायुक्त।

मंनिहार—संज्ञा पुं. [सं. मणिकार, प्रा० मनियार] चूड़ी बनाने-बेचने वाला।

मनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मान=अभिमान] घमंड, गर्व।
संज्ञा स्त्री. [सं. मणि] (१) मणि, रत्न। उ.—कहा काँच संग्रह के कीने हरि जो अमोल मनी—८९४। (२) सर्प के मस्तक की मणि। उ.—छाड़ न सकै खरचि नहि जानै ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी—१-३९। (३) श्रेष्ठतम व्यक्ति। उ.—तिहूँ लोक के धनी मनी तुमही की सो है—१० उ०-८।

मनीषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुद्धि।

मनीषि, मनीषी—वि. [सं. मनीषि] (१) पंडित, ज्ञानी। (२) बुद्धिमान।

मनु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा के 'स्वायम्' आदि वे चौदह पुत्र जिनसे 'मानव' जाति का आरंभ माना जाता है। उ.—(क) पुनि दच्छादि प्रजापति भए। स्वयंभुव सो आदि मनु जए—३-८। (ख) स्वायंभू मनु के सुत दोइ—४-८। (२) चौदह की संख्या।
अव्य० [हिं. मानना] मानो, जैसे। उ.—(क) मनु संचित भू-भार उतारन चपल भए अकुलाए—१-२७३। (ख) मनु मदन धनु-सर सँधाने—१-३०७।

मनुआँ, मनुआ—संज्ञा पुं. [हिं. मन] मन।
संज्ञा पुं. [हिं. मानव] मनुष्य।

मनुज—संज्ञा पुं. [सं.] मनुष्य।

मनुजात—वि. [सं.] 'मनु' से उत्पन्न।
संज्ञा पुं.—आदमी, मनुष्य।

मनुजाद—वि. [सं.] मनुष्य को खानेवाला।
संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस।

मनुरंजन—वि. [हिं. मनोरंजन] मनोरंजन करनेवाला। उ.—जगहित जनक-सुता मनुरंजन—९८२।

मनुश्रेष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

मनुष—संज्ञा पुं. [सं. मनुष्य] (१) मनुष्य। उ.—कह्यौ तिन तुम्हैं हम मनुष जानत नहीं। (२) (स्त्री का) पति।

मनुषी—संज्ञा स्त्री. [सं. मनुष्य] स्त्री, नारी।

मनुष्य—संज्ञा पुं. [सं.] आदमी। उ.—अबकी बेर मनुष्य देह धरि कियौ न कछु उपाइ—१-१५५।

मनुष्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मनुष्य होने का भाव। (२) दया, करुणा। (३) सभ्यता, शिष्टता।

मनुष्यत्व—संज्ञा पुं. [सं.] मनुष्य होने का भाव।

मनुसा—संज्ञा पुं. [सं. मनुष्य] मनुष्य।

मनुसाइ, मनुसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मानुस+आई] (१) पुरुषार्थ, पराक्रम। (२) मनुष्यता, शिष्टता।

मनुस्मृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] हिंदुओं का एक प्रसिद्ध धर्म-शास्त्र जिसके रचयिता 'मनु' माने जाते हैं।

मनुहार—संज्ञा स्त्री. [हिं. मान+हरना] (१) अप्रसन्नता या मान दूर करने के लिए की गयी खुशामद या विनय। उ.—(क) तुम्हरैं हेत लियौ अवतार। अब तुम जाइ करौ मनुहार—७-२। (ख) ससि कौं देखि आर हरि टानी करि मनुहार मनावति–सारा. ४३९। (ग) करि मनुहार, कलिबै कौं डर भरि-भरि देति जसौदा मात—१०-३३२। (२) विनय, प्रार्थना। (३) आदर-सत्कार। उ.—विदा करे निज लोक कौं इहि बिधि करि मनुहार—४९२।

मनुहारना, मनुहारनौ—क्रि. स. [हिं. मान+हरना] (१) मनाना, खुशामद करना। (२) विनय या प्रार्थना करना। (३) आदर-सत्कार करना।

मनुहारि, मनुहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मनुहार] (१) मनावन, खुशामद।
मुहा०—करि मनुहारि (मनुहारी)—(१) मीठी बातें कह कहकर, खुशामद करके, मनाकर। उ.—(क) करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ—१०-१६३। (ख) करि मनुहारि उठाइ गोद लै बरजति सुत कौं मात—१०-३२६। करति मनुहारि—बिनती या प्रार्थना करती है। उ.—सबैं करति मनुहारि ऊधौ, कहियौ हो जैसे गोकुल आवैं। करी (कीन्ही) मनुहारी–बिनती-प्रार्थना की। उ.—(क) चलियैं बिप्र जहाँ जग-बेदी बहुत करी मनुहारी—८-१४। (ख) उन सबकी कीन्ही मनुहारी—१० उ०-१०५।

मनैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मन+ऐ] मन में। उ.—यह हित मनैं कहत सूरज प्रभु इहिं कृति को फल तुरत चखैहौं—७-५।

मनैहैं—क्रि. स. [हिं. मनाना] (१) मनाकर, बिनती-प्रार्थना

करके। उ.—जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यो देवी-देव मनैहैं—१-८६। (२) मनायंगे, विनती-प्रार्थना करेंगे। उ.—मेरे मारत काहि मनैहैं—१०२४।
मनौं—अव्य० [हिं. मानो] मानो, जैसे।
मनोकामना—संज्ञा स्त्री. [हिं. मन+कामना] इच्छा।
मनोगत—वि. [सं.] मन का (विचार आदि)।
मनोगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा, अभिलाषा।
मनोज—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—सकल सुख की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि—१०-१०९।
मनोज्ञ—वि. [सं.] सुंदर, मनोहर।
मनोज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदरता, मनोहरता।
मनोनीत—वि. [सं.] (१) मन के अनुकूल। (२) चुना हुआ।
मनोभव—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।
मनोभाव—संज्ञा पुं. [सं.] मन का भाव।
मनोभिराम—वि. [सं.] सुंदर, मनोहर।
मनोमालिन्य—संज्ञा पुं. [सं.] मनमुटाव, वैर।
मनोयोग—संज्ञा पुं. [सं.] चित्त-वृत्ति का निरोध।
मनोरंजक—वि. [सं.] मन प्रसन्नकारी।
मनोरंजन—संज्ञा पुं. [सं.] मन-बहलाव, मनोविनोद।
मनोरथ—संज्ञा पुं. [सं.] इच्छा, अभिलाषा।
मनोरथदाता—वि. [सं.] इच्छा पूरी करनेवाला। उ.—मनसानाथ मनोरथदाता हौ प्रभु दीनदयाल—१-१८९।
मनोरथपूरन—वि. [सं. मनोरथ+पूर्ण] इच्छा पूरी करनेवाला। उ.—मनसानाथ मनोरथ पूरन सुख-निधान जाकी मौज घनी—१-३९।
मनोरम—वि. [सं.] सुंदर, मनोहर।
मनोरा—संज्ञा पुं. [सं. मनोहर] चित्र जो कार्तिक में गोबर से दीवार पर बनाकर पूजे जाते हैं।
यौ०—मनोरा झूमक—एक गीत जो फागुन में गाया जाता है और जिसके अंत में 'मनोरा झूमक' पद रहता है। उ.—गोकुल सकल ग्वालिनी हो घर-घर खेलैं फागु मनोरा झूमक रो—२४०१।
मनोराज, मनोराज्य—संज्ञा पुं. [सं. मनोराज्य] (१) मन की कल्पना। (२) मनमौजीपन।
मनोविकार—संज्ञा पुं. [सं.] वह विचार या भाव जो मन की अवस्था-विशेष में उत्पन्न हो।
मनोविज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] वह शास्त्र जिसमें मन की वृत्तियों का विवेचन हो।
मनोवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] मन की वृत्ति।
मनोवेग—संज्ञा पुं. [सं.] मन में उत्पन्न भाव।
मनोसर—संज्ञा पुं. [सं. मन] मनोविकार।
मनोहर—वि. [सं.] मन हरनेवाला, सुंदर। उ.—(क) परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन—१-३०८। (ख) तुम बिछुरत घनस्याम मनोहर हम अबला सरघाते—पृ० ४६०।
मनोहरता, मनोहरताई—संज्ञा स्त्री. [सं. मनोहरता] मनोहर होने का भाव, सुंदरता।
मनोहारि, मनोहारी—वि. [सं. मनोहारिन्] सुंदर।
मनौ—अव्य० [हिं. मानना] मानो, जैसे। उ.—सूरदास भगवत-भजन बिनु मनौ ऊँट-बृष-भैंसौ—२-१४।
मनौति, मनौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. मानना+औती] (१) अप्रसन्न को मनाना। (२) कामना पूर्ण होने पर पुण्य कार्य-विशेष करने का संकल्प देवी-देवता के समक्ष करना, मानता, मन्नत।
मनौवल—संज्ञा पुं. [हिं. मनाना] रूठे हुए को मनाने का भाव या कार्य।
मन्नत—संज्ञा स्त्री. [हिं. मनाना] मानता, मनौती।
मन्मथ—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—(क) सखी संग की निरखति यह छबि भई ब्याकुल मन्मथ की डाढ़ी—७३६। (ख) अबला कहा जोग मत जानैं मन्मथ ब्यथा बिगोयौं—३४८२।
मन्वंतर—संज्ञा पुं. [सं.] इकहत्तर चतुर्युगी का काल जो ब्रह्मा के एक दिन के चौदहवें भाग के बराबर होता है। उ.—(क) करौ मन्वंतर लौं तुम राज—७-२। (ख) मन्वंतर लौं कियौ जेहि राज—११-३।
मम—सर्व० [सं. 'अहं' का षष्ठी एक०] मेरा, मेरी। उ.—महाराज, तुम तो हौ साधु। मम कन्या तैं भयौ अपराध—९-३।
ममता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'अपना' समझने का भाव। (२) मोह, लोभ। उ.—(क) हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ आसाहीं लपटानो—१-४७। (ख) ममता घटा, मोह की बूँदैं—१-२०९।

ममत्व—संज्ञा पुं. [सं.] **मोह-ममता का भाव** । उ.—(क) सुत-कलत्र कौं अपनौं जानै अरु तिनसौं ममत्व बहु ठानै —३-१३ । (ख) रिषभ ममत्व देह कौ त्याग--५-२ ।

ममाखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मधुमक्खी] **मधुमक्खी** ।

ममिया—वि. [हिं. मामा + इया] **'मामा' के स्थान या संबंध का** ।

ममोला—संज्ञा पुं. [हिं. मन+मोल ?] **उत्साह, उमंग** ।

मयंक—संज्ञा पुं. [सं. मृगांक] **चंद्रमा** । उ.—मुख-मयंक मधु पियत करत कसि ललना तऊ न अघाति--१९२३ ।

मयंद—संज्ञा पुं. [सं.मृगेंद्र] (१) **सिंह** । (२) **राम की सेना का एक बानर अधिनायक** ।

मय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **एक प्रसिद्ध दानव जो बड़ा शिल्पी था** । उ.—मय मायामय कोट सँवारौ—७-७ ।

अव्य.—**युक्त, सहित** । उ.—खोवा मय मधुर मिठाई—१०-१८३ ।

मयगल—संज्ञा पुं. [सं.मंदकल, प्रा० मयगल] **मस्त हाथी** ।

मयत्रय, मयत्रेय—संज्ञा पुं. [सं.] **एक ऋषि जो पराशर के शिष्य थे और जिनसे विष्णु पुराण कहा गया था** । उ.-कह्यौ मयत्रेय सौं समुझाइ, यह तुम बिदुरहिं कहियौ जाइ—३-४ ।

मयन—संज्ञा पुं. [सं. मदन] **कामदेव** ।

मयना—संज्ञा स्त्री. [हिं. मैना] **मैना** ।

मयमंत, मयमत्त—वि. [सं. मदमत्त] **मस्त, मदमत्त** । उ.—त्रिया-चरित् मयमंत (मतिमंत) न समुझत—९-३१ ।

मया—संज्ञा स्त्री. [सं. माया] (१) **भ्रमजाल, माया** । (२) **संसार, जगत** । (३) **जीवन** । (४) **मोह-ममता, स्नेह** । उ.—(क) बाबा नंद झखत किहिं कारन यह कहि मया मोह अरुझाई—५३१ । (ख) हम पर बबा मया करि रहियौ सुत अपनौ जिय जान—२६५८ । (ग) हौं तौ धाइ तिहारे सुत की मया करत ही रहियौ—२७०७ । (५) **दया, कृपा** । उ.—(क) गुरुजन बिच मैं आँगन ठाढ़ी अति हित दरसन दियौ मया करि—१४६१ । (ख) कहिधौं मृगी मया करि हमसौं कहिधौं मधुप मराल—१८०८ । (ग) धन्य स्याम बृंदाबन कौ सुख संत मया तैं जान्यौ—१८५७ ।

मयार—वि. [सं. मायालु] **दयालु, कृपालु** ।

मयारि, मयारी—संज्ञा स्त्री. [देश०] **वह डंडा जिस पर हिंडोले की रस्सी लटकायी जाती है** । उ.—(क) कंचन खंभ मयारि मरुवा डाड़ी खचि हीरा बिच लाल प्रवाल—१०-८४ । (ख) खंभ जंबुनदि सुबिद्रुम रची रुचिर मयारि—२२८९ ।

मयी—अव्य. [हिं. मय] **युक्त, सहित** ।

मयूख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **किरण** । (२) **प्रकाश** ।

मयूर—संज्ञा पुं. [सं.] **मोर** । उ.—सोभित सुमन मयूर-चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम—१०-१५४ ।

मयूष—संज्ञा पुं. [सं. मयूख] **किरण, रश्मि** । उ.—लागत चंद-मयूष सु तौ तनु लता-भवन रंध्रनि मग आये—१५६२ ।

मयौ—अव्य. [हिं. मय] **युक्त, सहित** । उ.—बारंबार नंद कैं आँगन लोटत द्विज आनंद मयौ—१०-२५० ।

मरंद—संज्ञा पुं. [सं. मकरंद, प्रा० मरंद] **मकरंद** ।

मरई—क्रि. अ. [हिं. मरना] **मरता है** । उ.—याहि मारि तोहिं और बिबाहौं अग्र-सोच क्यौं मरई--१०-४ ।

मरक—संज्ञा पुं. [सं.] **मृत्यु, मरण** ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मड़क] (१) **संकेत** (२) **गूढ़ार्थ, गूढ़ उद्देश्य, विशेष आशय** ।

मरकट—संज्ञा पुं. [सं. मर्कट] **बंदर** । उ.—खर कौं कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग—१-३३२ ।

मरकत—संज्ञा पुं. [सं.] **पन्ना** । उ.—(क) यौं लपटाइ रहे उर उर ज्यौं मरकत मनि कंचन मैं जरिया—६८८ । (ख) करौं न अंजन धरौं न मरकत मृगमद तनु न लगाऊँ—२१५० ।

मरकना, मरकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) **दबकर टूटना, दबना** । (२) **मुड़ना, मुड़कना** ।

मरकहा—वि. [हिं. मारना] **सींग से मारनेवाला** ।

मरकाना, मरकानो—क्रि. स. [हिं. मरकना] (१) **दबाकर तोड़ना** । (२) **मोड़ना, मरोड़ना** ।

मरगजना, मरगजनो—क्रि. स. [हिं. मलना+गींजना] **मल-मसल कर विकृत कर देना** ।

मरगजा—वि. [हिं. मलना+गींजना] **दला-मला, मसला या गींजा हुआ** ।

मरगजी—वि. स्त्री. [हिं. मरगजा] **दली-मली, मसली या गींजी हुई** । उ.—(क) अंग मरगजी पटोरी राजति —१२३२ । (ख) नागरि अंग मरगजी सारी—१५६७ । (ग) सोधे अरगजी अरु मरगजी सारी —१५८२ ।

मरगजे, मरगजै—वि. [हिं. मरगजा] **दला-मला, मसला या गींजा हुआ** । उ.—(क) सूरदास प्रभु प्यारी राजत आवत भ्राजत बने हैं मरगजे बागे—पृ. ३१५ (४९) । (ख) सिथिल अंग मरगजे अंबर अतिहिं रूप भरे—१९२१ । (ग) हरबराइ उठि आइ प्रात तें बिथुरी अलक अरु बसन मरगजै—११८३ ।

मरघट—संज्ञा पुं. [हिं. मरना + घाट] **वह घाट या स्थान जहाँ मुर्दे फूँके जाते हों, श्मशान, मसान** ।

मरज—संज्ञा पुं. [अ. मर्ज़] (१) **रोग** । (२) **बुरी लत** ।

मरजाद, मरजादा—संज्ञा स्त्री. [सं. मर्यादा] (१) **सीमा, हद** । उ.—(क) सौ जोजन मरजाद सिंधु की पल मैं राम बिलोयौ—१-४३ । (ख) मनु मरजाद उलंघि अधिक बल उमँगि चली अति सुंदरताई—६१६ । (२) **प्रतिष्ठा, आदर** । उ.—आइ सृगाल सिंह बलि चाहत यह मरजाद जात प्रभु तेरी—९-९३ । (३) **रीति, विधि** । उ.—कलि-मरजाद जाइ नहिं कही —१-२३० ।

मरजिया—वि. [हिं. मरना+जीना] (१) **जो मरने से बचा हो** । (२) **जो मरने के समीप हो, मरणासन्न** । (३) **जो मरने को उतारू हो** । (४) **अधमरा** ।

संज्ञा पुं.—**गोताखोर** ।

मरजी—संज्ञा स्त्री. [अ. मरज़ी] (१) **इच्छा** । (२) **आज्ञा, स्वीकृति** । (३) **प्रसन्नता** ।

मरजीवा—संज्ञा पुं. [हिं. मरजिया] **गोताखोर** ।

मरण—संज्ञा पुं. [सं.] **मृत्यु, मौत** ।

मरत—क्रि. अ. [हिं. मरना] **मरता है** ।

प्र०—मरत हौं—**मरता हूँ** । उ.—बिनती करत मरत हौं लाज—१-९६ ।

वि.—**मरता हुआ, मरते समय** । उ.—मरत असुर चिकार पारयौ—४२७ ।

संज्ञा पुं. [सं. मृत्यु] **मौत, मरण, मृत्यु** ।

मरतबा—संज्ञा पुं. [अ. मर्त्तबः] (१) **पद** । (२) **बार** ।

मरतो, मरतौ—क्रि. अ. [हिं. मरना] **मरता, मृत्यु को प्राप्त होता** । उ.—पुनि जीतौ पुनि मरतौ—१-२०३ ।

मरद—संज्ञा पुं. [फा. मर्द] (१) **आदमी** । (२) **वीर** ।

मरदई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मरद+ई] (१) **मनुष्यता** । (२) **वीरता, बहादुरी** ।

मरदन—संज्ञा पुं. [सं. मर्दन] **नाश करनेवाले** । उ.—अघ मरदन बक बदन बिदारन—९५४ ।

मरदना, मरदनो—क्रि. स. [सं. मर्दन] (१) **मसलना** । (२) **नाश करना** । (३) **माँड़ना, गूँधना** ।

मरदनिया—वि. [हिं. मरदना] **तेल मलने वाला** ।

मरदानगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) **वीरता** । (२) **साहस** ।

मरदाना—वि. [फ़ा.] (१) **पुरुष संबंधी** । (२) **पुरुष जैसा** । (२) **वीरों जैसा, वीरोचित** ।

क्रि. अ. [हिं. मरद] **साहस करना** ।

मरदि—क्रि. स. [हिं. मरदना] **मसलकर, मर्दन करके** । उ.—मृष्ट को गर्दि मरदि कै चानूर चुरकुट करयौ —२६०९ ।

मरन—संज्ञा पुं. [सं. मरण] **मौत, मृत्यु** । उ.—तात मरन सिय हरन राम बन-बपु धरि बिपति भरै—१-२६४ ।

मरना, मरनो—क्रि. अ. [सं. मरण] (१) **मृत्यु होना** । (२) **बहुत दुख सहना** ।

मुहा०—(किसी के लिए) मरना—**बहुत दुख सहना** । (किसी पर) मरना—**आसक्त होना** । मरना-पचना—**बहुत दुख सहना** । (किसी) बात पर (के लिए) मरना—**किसी कारण बहुत दुख सहना** ।

(३) **सूखना, मुरझाना** । (४) **अत्यधिक लज्जा या संकोच होना** । (५) **सजीवता या तेजी न रह जाना** ।

मुहा०—पानी मरना—**पानी का दीवार या नींव आदि में धँसना** । (२) **दोष या कलंक आना** ।

(६) **खेल में गोटी या गुइयाँ का पिटना या हारना** । (७) **वेग का दबना या शांत होना** । (८) **जलना, डाह करना** (९) **पछताना** । (१०) **पराजित होना** ।

संज्ञा पुं.—**मरने की क्रिया या भाव, मरण** । उ.—तातैं साध-संग नित करना । जातैं मिटै जन्म अरु मरना—३-१३ ।

मरनि, मरनी—संज्ञा स्त्री. [हि. मरना] (१) मौत, मृत्यु।
प्र०—मति भई मरनी—मरने की इच्छा हुई।
उ.—सूर प्रभु के बचन सुनत, उरगिनि कह्यौ, जाहि अब क्यों न, मति भई मरनी—५५१।
(२) दुख, कष्ट। (३) मृत्यु का शोक। (४) मृत्यु पर किया जानेवाला क्रिया-कर्म।

मरभुक्खा—वि. [हि. मरना+भूखा] (१) भूख का मारा हुआ। (२) कंगाल।

मरबे, मरबो—संज्ञा पुं. [हि. मरना] मरना, मृत्यु। उ.—अपने मरबे ते न डरत है पावक पैठिजरै-२८०८।

मरम—संज्ञा पुं. [सं. मर्म] भेद, रहस्य, तत्व। उ.—(क) मैं मतिहीन मरम नहिं जान्यौ परचौं अधिक करि दौर—१-४६। (ख) खोजत नाल कितौ जुग गयौ। तौहू मैं कछु मरम न लयौ—२-३७।

मरमना, मरमनो—क्रि. अ. [सं. मर्म] तत्व या रहस्य जानना-समझना।

मरमर—संज्ञा पुं. [अनु.] 'मर मर' शब्द।

मरमराना, मरमरानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) 'मर-मर' शब्द करना। (२) 'मर-मर' शब्द करके दबना।

मरम्मत—संज्ञा स्त्री. [अ.] टूटी-फूटी चीज को ठीक करने की क्रिया या भाव।

मरयाद, मरयादा—संज्ञा स्त्री. [सं. मर्यादा] मर्यादा।

मरवाना, मरवानो—क्रि. स. [हि. मारना] (१) मारने को प्रवृत्त करना। (२) वध कराना।

मरसिया—संज्ञा पुं. [अ.] शोक-काव्य।

मरहट—संज्ञा पुं. [हि. मरघट] मसान, श्मशान।
संज्ञा स्त्री. [देश०] मोठ (अनाज)।

मरहम—संज्ञा पुं. [अ.] दवा की तरह घाव पर लगाया जानेवाला गाढ़ा लेप।

मरहिंगी—क्रि. अ. [हि. मरना] मर जायँगी। उ.—जादवन को प्रलय सुनि वे मरहिंगी अकुलाइ—११-४।

मराई—संज्ञा स्त्री. [हि. मराना] 'मराने' की क्रिया।
प्र०—डारहु मराई—मरवा डालो। उ.—प्रथमहिं कमल कंस कौं दीजै डारहु हमहि मराई--५३८।

मराना—क्रि. स. [हि. मारना] मारने को प्रवृत्त करना।

मरायल—वि. [हि. मारना+आयल] (१) जो मारा-पीटा गया हो। (२) शक्ति या सत्वहीन। (३) घाटा, हानि।

मराल—संज्ञा पुं. [सं.] हंस। उ.—(क) मनौ मधुर मराल-छौना किंकिनी कल राव—१०-३०७। (ख) मनौ मधुर मराल छौना बोलि बनै सिहात—१०-१८४।

मरिंद—संज्ञा पुं. [सं. मकरंद, प्रा. मरंद] मकरंद।

मरि—क्रि. अ. [हि. मरना] मर कर।
प्र०—मरि जैहौं—मर जाऊँगा। उ.—मनौं हौं ऐसे ही मरि जैहौं—२५५०।

मरिऐ—क्रि. अ. [हि. मरना] मरता हूँ। उ.—इहि लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)—१-४४।

मरिबो, मरिबौ—संज्ञा पुं. [हि. मरना] मरना, मृत्यु, मरण। उ.—(क) सप्तम दिन मरिबौ निरधार—१-२९०। (ख) एक दाइँ मरिबो नंदनंदन के काजनि—२८७२।

मरियत—क्रि. अ. [हि. मरना] मरता हूँ। उ.—(क) मरियत लाज पाँच पतितनि मैं हौं अब कहौ घटि का तैं—१-१३७। (ख) इनि बातनि के मारे मरियत—३२०२।

मरियल—वि. [हि मरना] बहुत दुबला-पतला।

मरियै—क्रि. अ. [हि. मरना] मृत्यु को प्राप्त होइए।
मुहा०—लाजन मरियै—अत्यंत ही लज्जित होइए। उ.—करियै कहा लाजन मरियै जब अपनी जाँघ उघारी—१-१७३।

मरिहैं—क्रि. अ. [हि. मरना] मरेंगे, मृत्यु को प्राप्त होंगे। उ.—मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं मोकौं आज्ञा दीजै—९-१४८।

मरिहै—क्रि. अ. [हि. मरना] मरेगा, मरेगी। उ.—भएँ अपमान उहाँ तू मरिहै—४-५।

मरिहौं—क्रि. अ. [हि. मरना] मरूँगा। उ.—जौ मरिहौं तौ सुरपुर जैहौं—६-५।

मरी—वि. [हि. मरना] मरी हुई, मृतक समान। उ.—ऐसी चरित तुरतहीं कीन्हौं कुँवरि हमारी मरी जिवाई—७६१।

मरीचि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि जो ब्रह्मा के मानसिक पुत्र और सप्तर्षियों में एक माने गये हैं। उ.—

ब्रह्मा सुमिरन करि हरि नाम। प्रगटे रिषय सप्त अभिराम। भृगु, मरीचि, अंगिरा वसिष्ठ। अत्रि, पुलह, पुलस्त्य अति सिष्ठ—३-८। (२) एक ऋषि जो कश्यप के पिता थे। उ.—रिषि मरीचि कश्यप उपजायौ—३-९।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) किरण। (२) कांति,ज्योति। (३) मृगमरीचिका।

मरीचिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मृगतृष्णा। (२) किरण।

मरीचिजल—संज्ञा पुं. [सं.] मृगतृष्णा।

मरीची—वि. [सं. मरीचिन्] जिसमें किरणें हों।

मरीज—वि. [अ. मरीज़] रोगी, बीमार।

मरु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रेगिस्तान। (२) 'मरुआ' पौधा।

मरुआ—संज्ञा पुं. [सं. मरुव] (१) एक पौधा। उ.—खूझा मरुआ कुंद सौं कहै गांद पसारी—१८२२। (२) हिंडोले को लटकाने की लकड़ी। उ.—कंचन खंभ मयारि मरुआ (मरुवा) डांड़ी खचित हीरा बिच लाल प्रबाल—१०-८४।

मरुत, मरुत्—संज्ञा पुं. [सं. मरुत्] (१) एक देवगण। (२) वायु।

मरुत्सुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हनुमान। (२) भीम।

मरुथल—संज्ञा पुं. [सं.मरुस्थल] रेगिस्तान।

मरुधर—संज्ञा पुं. [सं.] मारवाड़ देश।

मरुभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] रेगिस्तान।

मरुरना, मरुरनो—क्रि. अ. [हिं. मरोरना] ऐंठना, बल खाना।

मरुव, मरुवा, मरुवो, मरुवौ—संज्ञा पुं. [सं. मरुव] (१) एक पौधा। उ.—फूले बेल निवारी फूल मरुवो मोगरो सेवती—२४०५। (२) लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाया जाता है। उ.—कंचन के खंभ मयारि मरुवा डांड़ी खचित हीरा बिच लाल प्रबाल—१०-८४।

मरुस्थल—संज्ञा पुं. [सं.] रेगिस्तान।

मरूँगौ—क्रि. अ. [हिं. मरना] मृत्यु को प्राप्त होऊँगा। उ.—रामचंद्र के हाथ मरूँगौ परम पुरुष फल जान्यौ—सारा० २६३।

मरू—वि. [सं. मेरु या मरु] कठिन, दुरूह।

मुहा०—मरू करि (करि कै)—बड़ी कठिनता से।

मरूर, मरूरा, मरूरो, मरूरौ—संज्ञा पुं. [हिं. मरोड़] ऐंठन, मरोड़, बल।

मुहा०—मरूरा (मरूरो या मरूरौ) देना—ऐंठना, उमेठना। दियौ मरूरो—ऐंठ, उमेठ या मरोड़ दिया। उ.—मुख पर पवन परस्पर सुखवत गहे पानि पिय जूरो। बूझति जानि मन्मथ चिनगी फिरि मानो दियौ मूरूरो—२२७५।

मरैं—क्रि. अ. [हिं. मरना] मृत्यु को प्राप्त हो। उ.—मरैं नहिं देवता—८-८।

मरै—क्रि. अ. [हिं. मरना] मृत्यु को प्राप्त हो। उ.—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ केहरि भूख मरै—१-१०५। (२) दुख या कष्ट सहे। उ.—याहि लागि को मरै हमारे वृंदाबन चरनन सौं ठेली—३१४४।

मरोड़, मरोर—संज्ञा पुं. [हिं. मरोड़ना] (१) ऐंठने या उमेठने की क्रिया या भाव।

मुहा०—मरोड़ खाना—चक्कर खाना। मन में मरोड़ करना—कपट या दुराव करना। मरोड़ की बात—छल-कपट या घुमाव फिराव की बात।

(२) ऐंठन, बल। (३) क्षोभ, व्यथा।

मुहा०—मरोड़ खाना—उलझन में पड़ना।

(४) पेट में ऐंठन होना। (५) गर्व। (६) क्रोध।

मुहा०—मरोड़ गहना—क्रोध करना।

मरोड़ना, मरोरना, मरोरनो—क्रि. स. [हिं. मोड़ना] (१) ऐंठना, उमेठना।

मुहा०—अंग मरोड़ना—अँगड़ाई लेना। दृग या भौंह मरोड़ना—(१) आँख से इशारा करना। (२) नाक-भौं चढ़ाना।

(२) ऐंठकर तोड़ देना या नष्ट कर देना। (३) पीड़ा या दुख देना। (४) मींजना, मसलना।

मुहा०—हाथ मरोड़ना—हाथ मलना या पछताना।

मरोड़ा, मरोरा—संज्ञा पुं. [हिं. मरोड़ना] (१) ऐंठन। (२) पेट की पीड़ा जिसमें ऐंठन सी जान पड़ती है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मरोड़ना] (१) ऐंठन। (२) गुत्थी।

मरोड़त, मरोरत—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] ऐंठता है।

मुहा०—भौंह मरोरत—नाक-भौं चढ़ाता है।

उ.—बदन सकोरत भौंह मरोरत नैननि मैं कछु टोना—१०३७।

मरोड़ि, मरोरि—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] ऐंठ या उमेठकर। उ.—(क) घोंचि मरोरि दियौ कागासुर मेरैं ठिग फटकारी—१०-६०। (ख) बाँह मरोरि जाहुगे कैसे मैं तुमको नीके करि चीन्हे—१५०७।

मरोड़ी, मरोरी—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] ऐंठ या उमेठ दी। उ.—गुदी चाँपि लै जीभ मरोरी—१०-५७।

संज्ञा स्त्री.—ऐंठन, घुमाव, बल।

मुहा०—करत मरोरा—खींचातानी करता है। उ.—नख शिख लौं चित चोर सकल अँग चीन्हें पर कत करत मरोरी—१५०६।

मरोरै—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] ऐंठता-उमेठता है।

मुहा०—भौंह मरोरै—आँख से कनखी मारता है। उ.—भौंह मरोर मटकि कै री जमुना रोकत घाट—२४१३।

मरोड़्यो, मरोड़्यौ, मरोर्‍यो, मरोर्‍यौ—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] ऐंठा, उमेठा।

मुहा०—भौंह मरोर्‍यो—नाक-भौं चढ़ायी। उ.—अधर कंप रिस भौंह मरोर्‍यो मन ही मन गहरानी—१८६५।

मर्कट—संज्ञा पुं. [सं.] वानर, बंदर।

मर्कत—संज्ञा पुं. [सं. मरकत] पन्ना।

मर्तबा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) पद। (२) बार, दफा।

मर्त्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मनुष्य। (२) भूलोक।

मर्त्यलोक—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी।

मर्द—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) आदमी। (२) साहसी आदमी। (३) नर। (४) पति।

मर्दन—संज्ञा पुं. [सं. मर्द्दन] (१) कुचलना, रौंदना। (२) मलना, रगड़ना। उ.—(क) तेल लगाइ कियौ रुचि मर्दन—१-५२। (ख) आदर बहुत कियौ जादवपति मर्दन करि अन्हवायो—१० उ०-६५। (३) शरीर में तेल, उबटन आदि मलना या लगाना। उ.—(क) अति सुगंध मर्दन अँग-अँग ठनि बनि-बनि भूषन भेषति। (ख) अँग मर्दन करिबे कौ लागी उबटन तेल धरी—पृ.३३९ (८६)। (४) द्वंद्व युद्ध में परस्पर धस्सा लगाना। (५) नाश। उ.—अघ-मर्दन बिधि गर्बहत करत न लागी बार—४३७। (६) पीसना, घोटना।

वि.—नाश या संहार करने वाला।

मर्दना, मर्दनो—क्रि. स. [सं. मर्द्दन] (१) मालिश करना, मलना। (२) उबटन तेल आदि मलना। (३) तोड़ना-फोड़ना। (४) रौंदना, कुचलना। (५) नाश करना।

मर्दाना—वि. [फ़ा.] (१) वीर। (२) वीरोचित।

मर्दित—वि. [सं. मर्द्दित] (१) मला-मसला हुआ। (२) नष्ट किया हुआ।

मर्दुमी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] पौरुष।

मर्दुमशुमारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] जन-गणना।

मर्द्यौ—क्रि. स. [हिं. मर्दना] नाश किया, मिटाया। उ.—गिरि कर धारि इन्द्र मद मर्द्यौ दासनि सुख उपजाए—१-२७।

मर्म—संज्ञा पुं. [सं. मर्म्म] (१) रहस्य, तत्व, भेद। उ.—(क) प्रेम के सिंधु कौ मर्म जान्यौ नहीं, सूर कहा भयौ देह बोरैं—१-२२२। (ख) ताकौ कछू न पायौ मर्म—१२१२। (२) शरीर का वह स्थान जहाँ चोट पहुँचने से अधिक पीड़ा होती है।

मर्मज्ञ—वि. [सं.] (१) भेद या रहस्य का जाननेवाला। (२) गूढ़ाशय या तत्व समझनेवाला।

मर्मभिद्—वि. [सं.] हृदय पर आघात पहुँचानेवाला।

मर्मभेदी—वि. [सं. मर्मभेदिन्] हृदय पर आघात करने या चोट पहुँचानेवाला।

मर्मवचन, मर्मवचन—संज्ञा पुं. [सं. मर्म+वचन] हृदय पर आघात पहुंचाने वाली बात।

मर्मस्थल, मर्मस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] हृदय, कंठ आदि कोमल अंग जहां चोट लगने से प्राणी मर तक सकता है।

मर्मस्पर्शी—वि. [सं. मर्मस्पर्शिन्] हृदय को छूनेवाला, मार्मिक।

मर्मांतक—वि. [सं.] हृदय में चुभनेवाली।

मर्मी—वि. [हिं. मर्म] रहस्य जाननेवाला।

मर्याद, मर्यादा—संज्ञा स्त्री. [सं. मर्य्यादा] (१) सीमा, हद। उ.—(क) मनहु प्रेम समुद्र सूर सुख लै उघटित मर्याद—२४०७। (ख) मनहुँ सूर दोउ सुभग सरोवर

उमँगि चले मर्यादा डारि—२७९५। (२) नीति, व्यवस्था। उ.—(क) सूर स्याम मिलि लोक बेद की मर्यादा निदरी—पृ० ३३६ (५०)। (ख) पय पीवत जिन हती पूतना स्रुति-मर्यादा फोरी—२८६३। (३) मान, प्रतिष्ठा। उ.—मदन जाहु मर्यादा जैहै कह्यौ न काहे मानति—पृ. ३१७ (६२)।

मर्यादित—वि. [सं.] मर्यादा के अनुकूल।

मर्षण, मर्षन—संज्ञा पुं. [सं. मर्षण] रगड़, घर्षण।

वि.—(१) नाशक। (२) दूर करनेवाले।

मर्षत—क्रि. स. [हिं. मर्षना] मला, लेप किया। उ.—जातुधानि-कुच-गर मर्षत तब तहाँ पूतना पाई—१-२१५।

मर्षना, मर्षनो—क्रि. स. [सं. मर्षण] मलना, लेप करना।

मलंग, मलंगा—संज्ञा पुं. [फ़ा. मलंग] मुसलमान साधुओं का एक वर्ग।

मल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मैल, कीट। (२) शरीर का विकार। उ.—राख्यौ हो जठर महिं स्रोनित सौं सानि। जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम, सकल बिधि अगम खल मल खानि—१-७७। (३) विष्टा। उ.—रुधिर मेद मल-मूत्र कठिन कुच उदर-गंध गंधात—२ २४। (४) पाप। (५) प्रकृति-दोष।

मलकना, मलकनो—क्रि. अ. [हिं. मलकाना] (१) हिलना-डोलना। (२) इठलाना, इतराना।

मलकाना, मलकानो—क्रि. स. [अनु.] (१) हिलाना-डोलाना। (२) मटकाना, चमकाना।

क्रि. अ.—गढ़गढ़कर बातें करना।

मलखंभ, मलखम—संज्ञा पुं. [सं. मल्ल+हिं. खंभा, हिं. मलखम] डंडा जिस पर चढ़ और उतर कर कसरत की जाती है।

मलगजा—वि. [हिं. मलना+गींजना] मला-दला हुआ।

मलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मसलना। लेप करना।

मलना, मलनो—क्रि. स. [सं. मलन] (१) मींजना, मसलना, रगड़ना।

मुहा०—दलना-मलना-(१) पीसकर चूर्ण करना। (२) रगड़ना, मसलना। हाथ मलना—(१) पछताना। (२) क्रोध प्रकट करना।

(२) तेल आदि की मालिश करना। (३) दबाकर मसलना। (४) ऐंठना, मरोड़ना। (५) क्रोध या आवेश में हाथ से रगड़ना।

मलबा—संज्ञा पुं. [सं. मल] कूड़ा-करकट।

मलमल—संज्ञा स्त्री. [सं. मलमल्लक] एक तरह का बढ़िया महीन कपड़ा।

मलमलाना, मलमलानो—क्रि. स. [हिं. मलना] (१) स्पर्श कराना। (२) बार-बार खोलना-मूँदना। (३) पुनः पुनः आलिंगन करना।

मलमास—संज्ञा पुं. [सं.] वह मास जिसमें संक्रांति न पड़े; इसे 'अधिक मास' भी कहते हैं।

मलय—संज्ञा पुं. [सं. मलय=पर्वत] (१) एक पर्वत जो पश्चिमी घाट में है और जहाँ चंदन बहुत होता है। (२) चंदन, सफेद चंदन। उ.—जद्यपि मलय बृच्छ जड़ काटै कर कुठार पकरै। तऊ सुभाव न सीतल छाँड़े, रिपु-तन-ताप हरै—१-११७।

वि.—(१) सुगंधित। उ.—निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै—२-१३। (२) दक्षिणी (वायु)।

मलयगिरि, मलयगिरी—संज्ञा पुं. [सं. मलयगिरि] (१) पश्चिमी घाट का वह पर्वत जहाँ चंदन अधिक होता है। (२) मलयगिरि का चंदन।

मलयज—संज्ञा पुं. [सं.] चंदन।

मलयाचल—संज्ञा पुं. [सं.] मलय पर्वत जो पश्चिमी घाट में है और जहाँ चंदन बहुत होता है।

मलयानिल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मलय पर्वत से आने वाली वायु। (२) सुगंधित वायु। (३) वासंती पवन।

मलराना, मलरानो—क्रि. स. [हिं. मल्हाना] पुचकारना, दुलारना।

मलरुचि—वि. [सं.] (१) मल या दोष में रुचि रखने वाला। (२) दोषी, पापी।

मलवाना, मलवानो—क्रि. स. [हिं. मलना] मलने को प्रवृत्त करना।

मलाई—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) दूध-दही की साढ़ी। उ.—साज्यौ दही अधिक सुखदाई। ता ऊपर पुनि मधुर मलाई—२३२१। (२) सार, तत्व।

संज्ञा स्त्री. [हिं मलना] मलने की क्रिया, भाव । या मजदूरी ।

मलान—वि. [सं. म्लान] (१) मैला । (२) मुरझाया हुआ ।

मलानि—संज्ञा स्त्री. [सं. म्लान] मलिनता ।

मलार—संज्ञा पुं. [सं. मल्लार] एक राग । उ.—मुरली मलार बजावहिंगे—२८८९ ।

मलारि, मलारी—संज्ञा स्त्री. [सं. मल्लारी] 'बसंत' राग की एक रागिनी । उ.—गावत मलारी सुराग रागिनी गिरिधरन लाल छबि सोहनो—२२८० ।

मलाल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) दुख । (२) उदासी ।

मलाह—संज्ञा पुं. [हिं. मल्लाह] केवट ।

मलिंद—संज्ञा पुं. [सं. मिलिंद] भौंरा ।

मलि—क्रि. स. [हिं. मलना] (१) रगड़-रगड़कर । उ.—(क) तेल लगाइ कियो रुचि मर्दन बस्तर मलि मलि धोए—१-५२ । (ख) हंस उज्जल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं—१-३३८ । (२) तेल आदि मलकर ।

मलिक—संज्ञा पुं. [अ.] (१) राजा । (२) स्वामी ।

मलिका—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) रानी । (२) स्वामिनी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. मल्लिका] एक तरह का 'बेला' ।

मलित्त, मलिच्छ—संज्ञा पुं. [सं. म्लेच्छ] म्लेच्छ ।

वि.—गंदा, मलिन ।

मलिन—वि. [सं.] (१) मैला, गंदा । (२) बुरा, खराब । उ.—पिउ पद-कमल को मकरंद । मलिन मति मन-मधुप परिहरि, बिषय नीरस मंद—९-१० । (३) मटमैले या धूमिल रंग का । (४) पापी । उ.—भजन बिनु जीवत जैसैं प्रेत । मलिन मंदमति डोलत घर-घर उदर भरन कैं हेत—२-१५ । (५) धीमा, फीका । (६) खिन्न, उदास ।

मलिनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'मलिन' होने का भाव । उ.—प्राची अरुनानी भानि किरनि उज्यारी नभ छाई उडुगन चंद्रमा मलिनता लई—पृ. ३०० (८) ।

मलिनाइ, मलिनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मलिन] मलिनता ।

मलिनाना, मलिनानो—क्रि. अ. [हिं. मलिन] मैला होना ।

मलीदा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] चूरमा ।

मलीन—वि. [सं. मलिन] (१) मैला, अस्वच्छ । (२) उदास । उ.—(क) दरस मलीन दीन दुरबल अति तिनकौं मैं दुखदानी—१-१२९ । (ख) अति मलीन वृषभानुकुमारी—३४२५ । (३) कांतिहीन । उ.—बिधु मलीन रबि प्रकास गावत नर-नारी—१०-२०२ ।

मलीनता—संज्ञा स्त्री. [सं. मलिनता] 'मलिन' होने का भाव, मैलापन ।

मलूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक कीड़ा । (२) एक पक्षी ।

वि. [देश०] सुंदर, मनोहर ।

मलेच्छ, मलेच्छ, मलेछ—संज्ञा पुं. [सं. म्लेच्छ] म्लेच्छ ।

मलै—संज्ञा पुं. [सं. मलय] चंदन । उ.—(क) मिली कुबिजा मलै लैकै सो भई अरधंग—२६७२ । (ख) मृग-मद मलै परस तनु तलफत जनु बिषम बिष पिए—३४५९ ।

मलोलना, मलोलनो—क्रि. अ. [हिं. मलोला] (१) दुखी होना । (२) पछताना ।

मलोला—संज्ञा पुं. [अ. मलूल] (१) अरमान । (२) दुख ।

मुहा०—मलोला (मलोले) आना—दुख या पछतावा होना । मलोला (मलोले) खाना—दुख सहना । दिल का मलोला (के मलोले) निकालना—बकझक कर दुख दूर करना ।

मल्ल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन जाति । (२) पहलवान । उ.—(क) रजक मल्ल चानूर दवानल दुख-भंजन सुखदाई—१-१५८ । (ख) कुवलिया मल्ल मुष्टिक चानूर से कियो मैं कर्म यह अति उदासा—२५५१ । (३) एक प्राचीन देश का नाम । (४) दीप ।

मल्लक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुश्ती ।

मल्लजुद्ध, मल्लयुद्ध—संज्ञा पुं. [सं. मल्लयुद्ध] कुश्ती ।

मल्लशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] अखाड़ा ।

मल्लार—संज्ञा पुं. [सं.] 'मलार' राग ।

मल्लारि, मल्लारी—संज्ञा स्त्री. [सं. मल्लारी] बसंत राग की एक रागिनी ।

मल्लाह—संज्ञा पुं. [अ.] केवट, धीवर, माझी ।

मल्लाही—वि. [फ़ा.] मल्लाह संबंधी ।

मल्लिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'बेला' फूल का एक प्रकार । उ.—जमुना पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनी—१७३४ ।

मल्हराना, मल्हरानो—क्रि. स. [सं. मल्ह = गोस्तन] चुमकारना, पुचकारना।

मल्हरावति—क्रि. स. [हिं. मल्हराना] चुमकारती-पुचकारती है। उ.—सूरदास-प्रभु सोए कन्हैया हलरावति मल्हरावति है—१०-७३।

मल्हाना, मल्हानो—क्रि. स. [हिं. मल्हराना] चुमकारना, पुचकारना।

मल्हावति—क्रि. स. [हिं. मल्हाना] चुमकारती-पुचकारती हैं। उ.—बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर—१०-१५१।

मल्हावै—क्रि. स. [हिं. मल्हाना] चुमकारती-पुचकारती है। उ.—जसोदा हरि पालनैं झुलावै। हलरावै, दुलराइ मल्हावै जोइ-सोइ कछु गावै—१०-४३।

मल्हार—संज्ञा पुं. [हिं. मलार] 'मलार' राग।

मल्हारना, मल्हारनो—क्रि. स. [हिं. मल्हाना] चुमकारना।

मवाद—संज्ञा पुं. [अ.] (१) सामान। (२) पीब। (३) दिल का गुबार।

मवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रक्षा का स्थान, शरण।

मुहा०—मवास करना—निवास करना।

(२) किला, दुर्ग, गढ़। (३) पेड़ जो दुर्ग के प्राकार पर होते हैं।

मवासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मवास] छोटा गढ़, गढ़ी।

मुहा०—मवासी तोड़ना—(१) किला तोड़ना। (२) जीतना, विजय पाना।

संज्ञा पुं.—(१) किलेदार, गढ़पति। (२) प्रधान, अधिनायक। उ.—गोरस चुराइ खाइ बदन दुराइ राखै मन न धरत बृंदाबन को मवासी—१०४४।

मवासे—संज्ञा पुं. [सं. मवास] क़िले के प्राकार पर लगे वृक्ष। उ.—जहाँ तहाँ होरी जरै हरि होरी है। मनहुँ मवासे आगि लगी हरि होरी है—२४२३।

मवेशी—संज्ञा पुं. [अ. मवाशी] पशु, ढोर।

मशक—संज्ञा पुं. [सं.] मच्छड़।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] चमड़े का बड़ा थैला।

मशक्कत—संज्ञा स्त्री. [अ. मशक्क़त] परिश्रम।

मशविरा—संज्ञा पुं. [अ.] सलाह।

मशहूर—वि. [अ.] प्रसिद्ध।

मशान—संज्ञा पुं. [सं. श्मशान] मरघट, मसान। उ.—भूमि मशान बिदित ए गोकुल मनहु धाइ धाइ खाइ—२७००।

मशाल—संज्ञा पुं. [अ.] जलाने की मोटी बत्ती।

मशालची—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मशाल जलानेवाला।

मश्क—संज्ञा पुं. [अ] अभ्यास।

मष—संज्ञा पुं. [सं. मख] यज्ञ। उ.—(क) देवराज मष भंग जानि कै बरष्यौ ब्रज पर आई—१-१२२। (ख) सगरराज मष पूरन कियौ—९-९।

मष्ट—वि. [सं. मष्ठ, प्रा. मष्ट = मट्ठ] उदासीन, मौन।

मुहा०—मष्ट करना—चुप रहना, मुँह न खोलना। मष्ट करि (करु)—चुप रह, बोल मत, मुँह मत खोल। उ.—(क) मष्ट करु, हँसैंगे लोग, अँकवारि भरि भुजा पाई कहाँ स्याम मेरै—१०-३०७। (ख) सुनिहैं लोग मष्ट अबहूँ करि, तुमहिं कहाँ की लाज—७७५। मष्ट करो (करौ)—चुप रहो, बोलो मत। उ.—अबला कहा दशा दिगंबर, मष्ट करो पहिचाने—३००६। मष्ट धारना—चुप्पी साधना। रहौ मष्ट धारे—चुप रहो, मौन साधो। उ.—कहा पिय बहुत सुनिहै बात पौरिया, जाय कैहै, रहौ मष्ट धारे—२६२४। मष्ट मारना—चुप रहना।

मस—संज्ञा स्त्री. [सं. मसि] स्याही, रोशनाई।

संज्ञा पुं. [सं. मशक] मच्छड़।

संज्ञा स्त्री. [सं. श्मश्रु] मूँछ निकलने के पहले की रोमावली।

मुहा०—मस भींजना (भीजना)—(१) मूँछ की रेखा दिखाई पड़ना। (२) युवावस्था आना।

मसक—संज्ञा पुं. [सं. मशक] मच्छड़।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मशक] चमड़े की 'मशक'। उ.—छूछी मसक पवन पानी ज्यौं तैसेई जन्म बिकारी हो।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] मसकने की क्रिया या भाव।

मसकत—संज्ञा स्त्री. [हिं. मशक्कत] श्रम, परिश्रम। उ.—तुम कब मासौं पतित उधारचौ। काहे को प्रभु बिरद बुलावत बिनु मसकत को तारचौ—१-१३२।

मसकना, मसकनो—क्रि. स. [अनु.] (१) खिंचाव या

दबाव से कपड़े के तंतु तोड़ना। (२) जोर से दबाना। (३) दबाकर फाड़ना।

क्रि. अ.—(१) खिचाव या दबाव से कपड़े के तंतु टूटना। (२) दुखी या चिंतित होना।

मसकरा—वि. [हिं. मसखरा] हँसोड़।

मसकला—संज्ञा पुं. [अ. मस्क़ल] (१) धातु चमकाने का एक औजार। (२) धातु चमकाने की क्रिया।

मसकि—क्रि. स. [हिं. मसकना] दबाकर। उ.—चरन मसकि धरनी दली उरग गयौ अकुलाइ—५१९। उ.—लंपट ढीठ, गुमानी टूँडक महा मसखरा रूखा —१-१८६।

मसकीन—वि. [अ. मिसकीन] (१) दीन, दरिद्र। (२) साधु। (३) सुशील। (४) भोला।

मसखरा—वि. [अ. मसख़रा] हँसोड़, ठट्ठेबाज।

मसखरापन—संज्ञा पुं. [हिं. मसखरा+पन] ठठोली।

मसखरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मसखरा+ई] हँसी, ठठोली।

मसखवा—वि. [हिं. मांस+खाना] मांस खाने वाला।

मसजिद—संज्ञा स्त्री. [फा. मस्जिद] मुसलमानों का नमाज पढ़ने का स्थान।

मसनंद, मसनद—संज्ञा स्त्री. [अ. मसनद] (१) बड़ा तकिया (२) अमीरों के बैठने की गद्दी।

मसना, मसनो—क्रि. स. [हिं. मसलना] गूँधना।

मसमुंद—वि. [हिं. मस+मूँदना] धक्कम-धक्का।

मसयार, मसयारा—संज्ञा पुं. [हिं. मशाल] (१) मशाल। (२) मशालची।

मसरना, मसरनो—क्रि. स. [हिं. मसलना] मसलना।

मसल—संज्ञा स्त्री. [अ.] कहावत, लोकोक्ति।

मसलन—क्रि. वि. [अ. मसलन्] यथा, जैसे।

मसलना, मसलनो—क्रि. स. [हिं. मलना] (१) रगड़ना, मलना। (२) जोर से दबाना। (३) आटा गूँधना।

मसला—संज्ञा पुं. [अ. मसल] (१) कहावत। (२) विषय।

मसवासी—वि. [सं. मास+वासी] (१) एक स्थान पर एक मास रहने वाला (साधु)। (२) एक व्यक्ति के पास एक मास रहनेवाली (वेश्या)।

मसविदा—संज्ञा पुं. [अ. मुसविदा] (१) लेख का पहला या कच्चा रूप। (२) युक्ति।

मसहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मशक+हिं. हरना] मच्छरों से बचने के लिए पलँग के चारों ओर लटकायी जाने वाली जाली (जालीदार कपड़ा)।

मसहार—संज्ञा पुं. [हिं. मांस+आहार] मांसाहारी।

मसहूर—वि. [अ. मशहूर] प्रसिद्ध, विख्यात।

मसा—संज्ञा पुं. [सं. मांस+कील] शरीर पर उभरा हुआ मूंग, सरसों या बेर के बराबर दाना।

संज्ञा पुं. [सं. मशक] मच्छड़।

मसान—संज्ञा पुं. [सं. श्मशान] मरघट।

मुहा०—मसान जगाना—श्मशान पर बैठकर शव या मुरदे की सिद्धि करना। मसान जगायो (जगायौ) —श्मशान पर शव की सिद्धि की या करने लगे। उ.—हम तौ जरि-बरि भस्म भए तुम आनि मसान जगायौ—६०६३। मसान पड़ना—बहुत सन्नाटा हो जाना।

मसनिया—वि. [हिं. मसान] (१) मसान-संबंधी। (२) मसान पर रहनेवाला।

मसानी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्मशानी] श्मशान वासिनी डाकिनी, पिशाचिनी आदि।

संज्ञा स्त्री. [सं. मसि+फ़ा. दानी] दावात। उ.—पुहुमि पत्र करि सिंधु मसानी गिरि मसि कौं लै डारै —१-१८३।

मसाल—संज्ञा स्त्री. [अ. मशाल] मशाल।

मसालची—संज्ञा पुं. [फ़ा. मशालची] मशालची।

मसाला—संज्ञा पुं. [फ़ा. मसालह] (१) सामग्री, सामान। (२) साधन। (३) तेल। (४) हींग, मिर्च, धनिया आदि।

मसि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लिखने की स्याही। उ.—(क) कागद धरनि करै द्रुम लेखनि जल-सायर मसि घोरै—१-१२५। (ख) लोचन-जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्यामस्याम की पाती—२९७७। (२) काजल। (३) कालिख।

मसिदानी—संज्ञा स्त्री. [सं. मसि+फ़ा. दानी] दावात।

मसिपात्र—संज्ञा पुं. [सं.] दावात।

मसिबुन्दा—संज्ञा पुं. [सं. मसिबिंदु] काजल का टीका या दिठौना जो नजर से बचाने के लिए बच्चों के मुख पर

लगाया जाता है । उ.—उर बघनहा कंठ कठुला झँडूले बार । बेनी लटकन मसिबुन्दा मुनिमनहार ।
मसिमुख—वि. [सं.] काले मुँह वाला, कलंकी ।
मसियाना, मसियानो—क्रि. अ. [देश.] खब भर जाना ।
मसिबिंदु—संज्ञा पुं. [सं.] काजल का टीका या दिठौना जो बच्चों को नजर से बचाने के लिए उनके मुख पर लगाया जाता है ।
मसी—संज्ञा स्त्री. [सं. मसि] (१) स्याही । (२) कालिख ।
मसीत, मसीद—संज्ञा स्त्री. [हि. मसजिद] मसजिद ।
मसीह, मसीहा—संज्ञा पुं. [अं.] 'ईसा' का एक नाम ।
मसू—संज्ञा स्त्री. [हि. मरू] कठिनाई ।
मुहा०—मसू करके—बड़ी कठिनाई से ।
मसूड़ा—संज्ञा पुं. [सं. श्मश्रु] दाँतों के ऊपर-नीचे का मांस ।
मसूर—संज्ञा पुं. [सं.] एक अनाज । उ.—मूँग मसूर उरद चनदारी—३९६ ।
मसूरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेश्या । (२) मसूर की बरी ।
मसूरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'मसूर' नाम का अन्न । उ.—अरु तैसियै गाल मसूरी—१०-१८३ ।
मसूस, मसूसन—संज्ञा स्त्री. [हि. मसूसना] कुढ़न । उ.—कीजै कहा चाव अपनी कत्त इहाँ मसूसन मरिए—२२७५ ।
मसूसना, मसूसनो—क्रि. अ. [हि. मसोसना] (१) ऐंठना, उमेंठना । (२) निचोड़ना । (३) मनोवेग को दबाना । (४) कुढ़ना, खीझना ।
मसृण, मसृन—वि. [सं. मसृण] चिकना, मुलायम ।
मसोसना, मसोसनो—क्रि. अ. [फ़ा. अफसोस ?] कुढ़ना, खीझना ।
मसोसा—संज्ञा पुं. [हि. मसोसना] दुख, कष्ट ।
मस्त—वि. [फा.] (१) मतवाला । (२) सदा निश्चित रहने वाला । (३) यौवन मद से भरा हुआ । (४) जिसमें मद हो । (५) अभिमानी ।
मस्तक—संज्ञा पुं. [सं.] सिर । उ.—रावन के दस मस्तक छेदे सर गहि सारँगपानि—१-१३५ ।
मस्ताना, मस्तानो—वि. [फ़ा. मस्ताना] (१) मस्त । (२) मस्त-जैसा ।
क्रि. अ.—मस्ती पर आना, मत्त होना ।
मस्तिष्क—संज्ञा पुं. [सं.] बुद्धि का स्थान, दिमाग ।
मस्ती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] मतवालापन ।
मुहा०—मस्ती उतरना (झड़ना)—मस्ती दूर होना । मस्ती उतारना (झाड़ना)—मस्ती दूर करना ।
(२) भोग की प्रबल कामना । (३) हाथी आदि का मद ।
महँ—अव्य. [सं. मध्य] में । उ.—घुटुरुनि चलत अजिर महँ विहरत—१०-९७ ।
महँई—वि. [सं. महा] भारी, महान ।
अव्य. [हि. महँ] में ।
महँगा—वि. [सं. महार्घ] अधिक मूल्य का । उ.—पहिरि विविध पट मोलन महँगा—२४०२ ।
महँगाइ, महँगाई, महँगी—संज्ञा स्त्री. [हि. महँगा] (१) महँगे होने का भाव । (२) अकाल ।
महंत—संज्ञा पुं. [सं. महत् = बड़ा] मठ का मुखिया ।
वि.—प्रधान, मुखिया । उ.—सदा प्रवीन हमारे तुम हो तुमतैं नहीं महंत—२९२१ ।
महंताई, महंती—संज्ञा स्त्री. [हि. महंत] 'महंत' का भाव या पद ।
मह—वि. [सं. महत्] (१) अति, बहुत । (२) श्रेष्ठ ।
महक—संज्ञा स्त्री. [हि. गमक] गंध, बास ।
महकना, महकनो—क्रि. अ. [हि. महक] गंध देना ।
महकमा—संज्ञा पुं. [अ.] विभाग ।
महकान—संज्ञा पुं. [हि. महक] गंध, बास ।
महज—वि. [अ. महज] (१) शुद्ध । (२) केवल, सिर्फ ।
महत—संज्ञा पुं. [सं. महत्व] गौरव, मान, महत्व । उ.—(क) ऐसी को अपने ठाकुर कों इहि बिधि महत घटावै—१-१९२ । (ख) बचन कठोर कहत कहि दाहत अपनो महत गवाँवत—३००८ ।
महतरिया—संज्ञा स्त्री. [हि. महतारी] माता, मैया । उ.—आए हरि यह बात सुनतहीं धाइ लए जसुमति महतरिया—१०-२४६ ।
महता—संज्ञा स्त्री. [सं. महत्ता] गर्व, घमंड ।
महताब—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] चाँदनी ।
महतारी—संज्ञा स्त्री. [सं. माता] माता, मैया । उ.—महतारी सुत दोउवै मग रोकत जाइ—१०७० ।

महति, महती—संज्ञा स्त्री. [सं· महत्ता] मान, प्रतिष्ठा, महत्ता। उ·—मातु पितु गुरु जननि जान्यो भली खोई महति—११८९।
वि·—बड़ी, बहुत, अधिक।

महतु—संज्ञा पुं. [सं. महत्व] महिमा, बड़ाई। उ.—वृंदावन ब्रज को महतु कापै बरन्यौ जाइ।

महतो—संज्ञा पुं. [हिं· महत्ता] सम्मानसूचक संबोधन।

महत् - वि. [सं·] (१) बड़ा। (२) सर्वश्रेष्ठ।

महत्त—संज्ञा स्त्री. [सं· महत्ता] महिमा, बड़ाई। उ.—जो कोउ काज करै बिन बूझे पेलि महत्त हरी री—पृ. ३२७ (६७)।

महत्तत्व—संज्ञा पुं. [सं.] पचीस तत्वों में से तीसरा जिससे अहंकार की उत्पत्ति होती है। उ.—त्रिगुन प्रकृति तैं महत्तत्व महत्तत्व तैं अहंकार—२-३६।

महत्तम—वि. [सं.] सबसे श्रेष्ठ।

महत्तर—वि. [सं.] दो पदार्थों में श्रेष्ठ।

महत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बड़ाई। (२) श्रेष्ठता।

महत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ाई। (२) श्रेष्ठता।

महन—संज्ञा पुं. [सं· मथन] मथने की क्रिया या भाव।

महना, महनो—क्रि. स. [हिं. मथना] मथना, बिलोना।
संज्ञा पुं.—मथानी, रई।

महनिया—संज्ञा पुं. [हिं. मथनिया] मथनेवाला।

महनीय—वि. [सं.] पूज्य, पूजनीय।

महनु—संज्ञा पुं. [सं. मथन] (१) मथनेवाला। (२) नाश करनेवाला, विनाशक।

महफिल—संज्ञा स्त्री. [अ. महफ़िल] (१) सभा, समाज। (२) नाच-रंग या मनोविनोद का स्थान।

महबूब—संज्ञा पुं· [अ.] प्रेम-पात्र।

महबूबा—संज्ञा स्त्री. [अ.] प्रेमिका।

महभारथ—संज्ञा पुं. [सं. महाभारत] महाभारत का युद्ध। उ.—जाकें संग सेत बँध कीन्हौं अरु जीत्यौ महभारथ—१-२८७।

महमंत—वि. [सं. महा + मत्त] उन्मत्त, मदमत्त।

महमद—संज्ञा पुं. [अ. मुहम्मद] मुहम्मद।

महमदी—वि. [अ. मुहम्मदी] मुहम्मद का अनुयायी।

महमह—क्रि. वि. [हिं. महकना] सुगंध के साथ।

महमहा—वि. [हिं· महमह] खुश्बूदार, सुगंधित।

महमहाना, महमहानो—क्रि. अ. [हिं. महमह] महकना।

महमा—संज्ञा स्त्री. [सं. महिमा] (१) बड़ाई। (२) श्रेष्ठता।

महमान—संज्ञा पुं. [फ़ा. मेहमान] अतिथि।

महमाना, महमानो—क्रि. अ. [हिं. महमह] महक देना।

महमानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा· मेहमानी] आतिथ्य।

महमाय—संज्ञा स्त्री. [सं. महामाया] पार्वती।

महर—संज्ञा पुं. [सं. महत्] (१) एक आदरसूचक शब्द या संबोधन। (२) श्रीकृष्ण के पालक नंद जिनके लिए सम्मान सूचक शब्द 'महर' का प्रयोग किया जाता है। उ.—पहुँचे जाइ महर मंदिर मैं मनहिं न संका कीनी—१०-४। (ख) माखन-मधु-मिष्टान्न महर लै दियौ अक्रूर के हाथ—३५३४। (३) एक पक्षी। (४) कहार, महरा।
वि. [फ़ा· मेहर = दया] दयालु, दयावान्।
वि. [हिं. महक] सुगन्धित।

महरम—संज्ञा पुं. [अ.] भेद का जानकार।
संज्ञा स्त्री.—अँगिया, अँगिया की कटोरी।

महरा—संज्ञा पुं. [हिं. महत्ता] कहार।
वि.—(१) बड़ा। (२) श्रेष्ठ।

महराइ, महराई—संज्ञा पुं. [सं· महाराज] महाराज। उ·—राजा सौं अर्जुन सिर नाइ। कह्यौ, सुनौ बिनती महराइ—१-२८६।
संज्ञा स्त्री. [हिं· महरि] श्रेष्ठता, प्रधानता।

महराज—संज्ञा पुं. [सं. महाराज] महाराज।

महराणा, महराना—संज्ञा पुं. [सं. महाराणा] महाराणा।

महरान, महराना, महराने—संज्ञा पुं· [हिं. महर + आना] 'महरों' के रहने का स्थान। उ.—(क) गोकुल मैं आनंद होत है मंगल धुनि महराने टोल—१०-९४। (ख) तुमको लाज होत की हमको बात परै जो कहुँ महराने—११३६।

महराब—संज्ञा स्त्री. [अ. मेहराब] मेहराब।

महरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. महर] (१) स्त्रियों के लिए एक आदरसूचक संबोधन। (२) यशोदा जिनके लिए आदरसूचक 'महरि' का प्रयोग बराबर किया गया है।

उ.—(क) जागी महरि पुत्र-मुख देख्यौ, आनंद तूर बजायौ—१०-४। (ख) महरि पुत्र कहि सोर लगायो तरु ज्यों धरनि लुटाइ—२५३३। (३) घरवाली, गृह-स्वामिनी। (४) 'ग्वालिन' नामक पक्षी।

महरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] 'ग्वालिन' नामक पक्षी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. महरा] कहारिन।

महरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. महर+एटा] (१) महर का पुत्र। (२) श्रीकृष्ण जो नंदमहर के पुत्र थे।

महरेटी, महरैटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. महरेटा] (१) महर की पुत्री। (२) राधा जो बृषभानु महर की पुत्री थी।

महर्लोक—संज्ञा पुं. [सं.] भू, भुव आदि चौदह लोक।

महर्षि—संज्ञा पुं. [सं. महा+ऋषि] बड़ा ऋषि।

महल—संज्ञा पुं. [अ.] राजप्रासाद। उ.—सुनत बुलाइ महल ही लावैं सुफलक-सुत गयौ धाइ—२४६५। (२) रनिवास, अंतःपुर।

महलसरा—संज्ञा स्त्री. [अ. महल+फ़ा. सरा] रनिवास।

महलियाँ—संज्ञा स्त्री. [अ. महल] सुन्दर छोटा महल, महल जैसी सुन्दर कुटी। उ.—एक अनूपम माल बनावति एक परस्पर बेनी गूँथति भ्राजत कुंज-महलियाँ—२०७२।

महसिल—संज्ञा पुं. [अ. मुहस्सिल] कर उगाहनेवाला।

महसूल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) कर, लगान। (२) भाड़ा।

महसूस—वि. [अ.] अनुभूत।

महसूसना, महसूसनो—क्रि. स. [हिं. महसूस] अनुभव करना।

महाँ—अव्य. [हिं. महँ] में।

वि. [हिं. महा] (१) बड़ा। (२) श्रेष्ठ।

महा—वि. [सं.] (१) बहुत अधिक। (२) बहुत बड़ा। उ.—कोटिक करै एक नहिं मानै सूर महा कृतघन कौं—१-९। (३) सबसे बढ़कर।

महाअरंभ—वि. [सं. महा+रंभ=शोर] बहुत अधिक शोर, कोलाहल या हलचल।

महाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मथना+आई] मथने का काम, भाव या मजदूरी।

महाउत—संज्ञा पुं. [हिं. महावत] महावत।

महाउर—संज्ञा पुं. [हिं. महावर] महावर। उ.—(क) कहाँ महाउर पाग रँगाई यह सोभा इक न्यारी—१९९१। (ख) चंचल अंचल कतहिं दुरावति रूप-रासि अति मानहु मीन महाउर धोए—२११२।

महाकल्प—संज्ञा पुं. [सं.] वह समय जिसमें एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है।

महाकाल—संज्ञा पुं. [सं.] शिव का वह स्वरूप जिससे वे सृष्टि का अंत करते हैं। (२) शिव के एक पुत्र का नाम।

महाकाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) महाकाल-रूप शिव की पत्नी जिसके पाँच मुख और आठ भुजाएँ मानी गयी हैं। (२) दुर्गा की एक मूर्ति।

महाकाव्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह सर्गबद्ध प्रबंध काव्य जिसमें सभी रसों, ऋतुओं और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन हो। (२) स्थायी महत्त्व का श्रेष्ठ काव्य।

महाजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रेष्ठ व्यक्ति। (२) धनी। (३) रुपये-पैसे का लेन-देन करने वाला। (४) बनिया। (५) भलामानुस, सदाचारी व्यक्ति।

महाजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. महाजन] (१) रुपये के लेन-देन का काम। (२) एक लिपि।

महाजल—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र। उ.—मलय तनु मिलि लसति सोभा महाजल गभीर।

महाजाननिराइ—संज्ञा पुं [सं. महा+ज्ञान+राय] अत्यंत चतुर श्रीकृष्ण। उ.—सूर प्रभु बस किये नागरि महाजाननिराइ—१७७३।

महातत्व—संज्ञा पुं. [सं. महत्तत्व] पचीस तत्वों में तीसरा जिससे अहंकार की उत्पत्ति होती है। उ.—त्रिगुन तत्व ते महातत्व, महातत्व ते अहंकार। मन इंद्रिय सब्दादि पंची ताते किए बिस्तार।

महातम—संज्ञा पुं. [सं. माहात्म्य] (१) महिमा, बड़ाई। उ.—(क) सब सुख निधि हरि नाम महातम पायौ है नाहिन पहिचानत। (ख) कमलनैन कौं छाँड़ि महातम और देव कौं ध्यावै—१-१६८।

महातल—संज्ञा पुं. [सं.] चौदह भुवनों में पाँचवाँ जो पृथ्वी के नीचे है। उ.—अतल बितल अरु सुतल तलातल और महातल जान। पाताल और रसातल मिलि सातौ भुवन प्रमान—सारा. ३१।

महात्मा—वि. [सं. महात्मन्] (१) जिसका आशय, आचरण आदि उच्च हो। (२) बड़ा साधु।
महादंड—संज्ञा पुं. [सं.] यम का दंड।
महादंडधारी—संज्ञा पुं. [सं. महादंडधारिन्] यमराज।
महादेव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा देवता। (२) शिव जी। उ.—ब्रह्मा महादेव तैं को बढ़ तिनकी सेवा कछु न सुधारी—१-३४।
महादेवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा। (२) पटरानी।
महाधन—वि. [सं.] (१) बहुत मूल्यवान। उ.—तहँ राजत निज वीर शेषनाग ताकें तर कूरम बरात महाधन धीर—सारा. ३२। (२) बहुत धनी।
महान—वि. [सं. महान्] बहुत बड़ा। उ.—ब्रज-जन-मन कौं महान संतन सुख दिए—४५०।
महानाभ—संज्ञा पुं. [सं.] एक मंत्र जिससे शत्रु के शस्त्र व्यर्थ किये जाते हैं।
महानिद्रा—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु, मरण।
महानिधान—संज्ञा पुं. [सं.] धातुभेदी पारा।
महानिधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] अपार निधि। उ.—हरि सीता लै चल्यौ डरत जिय मानौं रंक महानिधि पाई—९-५९।
महानिर्वाण—संज्ञा पुं. [सं.] परिनिर्वाण जिसके अधिकार केवल बुद्ध गण माने जाते हैं।
महानुभाव—संज्ञा पुं. [सं.] उच्चाशय वाला व्यक्ति। उ.—महानुभाव निकट नहिं परसे जान्यौ न कृत विधात्र—१-२१६।
महानुभावता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़प्पन।
महान—वि. [सं.] बहुत बड़ा।
महापद्म—संज्ञा पुं. [सं.] नौ निधियों में एक।
महापात्र—संज्ञा पुं. [सं.] महा ब्राह्मण जो मृतक-कर्म का दान लेता है।
महापुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] श्रेष्ठ व्यक्ति। उ.—महापुरुष सब बैठे देखत केस गहत धरहरि न करी—१-२४९।
महाप्रतिहार—संज्ञा पुं. [सं.] नगर या राजप्रासाद के रक्षकों या प्रतिहारों का प्रधान।
महाप्रभु—संज्ञा पुं. [सं.] वल्लभाचार्य जी की एक उपाधि।
महाप्रलय—संज्ञा पुं. [सं.] वह काल जब सारी सृष्टि का विनाश होकर केवल जल ही रह जाता है। उ.—अरु पुनि महाप्रलय जब होइ। मुक्ति स्थान पाइहै सोइ—४-९।
महाप्रसाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जगन्नाथ जी का चढ़ा हुआ भात। (२) मांस (व्यंग्य)।
महाप्राण—संज्ञा पुं. [सं.] देवनागरी वर्णमाला के प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा वर्ण (ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ और भ) जिसके उच्चारण में प्राणवायु का विशेष व्यवहार किया जाता है।
महाबल—वि. [सं.] बहुत बली। उ.—अर्जुन भीम महाबल जोधा—१-२५४।
संज्ञा पुं.—बहुत वीर पुरुष। उ.—धरि अवतार महाबल काऊ एकहिं कर मेरी गर्व हरयौ—१०-५९।
महाबलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) मन।
महाबाहु—वि. [सं.] (१) लंबी भुजावाला। (२) वीर।
संज्ञा पुं.—एक राक्षस।
महाब्राह्मण—संज्ञा पुं. [सं.] वह ब्राह्मण जो मृतक-कर्म का दान ले।
महाभाग—वि. [सं.] भाग्यवान, सौभाग्यशाली।
महाभागवत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परम भक्त। (२) परम वैष्णव। (३) श्रीमद्भागवत महापुराण।
महाभारत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन भारतीय महाकाव्य। (२) कौरवों-पांडवों का महायुद्ध। (३) कोई महायुद्ध।
महाभूत—संज्ञा पुं. [सं.] पंचतत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।
महामति—वि. [सं.] बहुत बुद्धिमान।
महामना—वि. [सं. महामनस्] अत्यंत उदार।
महामनि—संज्ञा स्त्री. [सं. महा+मणि] श्रेष्ठ मणि।
उ.—सम करि गनै महामनि काँचै—२-११।
महामाइ, महामाई—संज्ञा स्त्री. [सं. महा+हिं. माई] (१) दुर्गा। (२) काली।
महामात्य—संज्ञा पुं. [सं.] प्रधानमन्त्री।
महामाया—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।
महामारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भीषण संक्रामक रोग।

महाय—वि. [सं. महा] बहुत, अधिक।

महायात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मृत्यु, मरण।

महादान—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्धों के तीन संप्रदायों में एक।

महारंभ—वि. [सं.] जिसका प्रारम्भ कठिनता से हो।

महारथ, महारथि, महारथी—संज्ञा पुं. [सं. महारथ] बहुत वीर योद्धा। उ.—स्यंदन खंडि महारथि खंडौं कपि-ध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

महारस—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत अधिक रस या आनन्द। उ.—मदनदूत मोहिं बात सुनाई इनमैं भरचो महारस भारो—११२२।

महाराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजाओं का भी राजा। उ.—लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज—१-१०८। (२) आचार्य आदि पूज्य व्यक्तियों के लिए आदरसूचक संबोधन।

महाराणा—संज्ञा पुं. [सं. महा+हिं. राणा] मेवाड़, चित्तौड़ और उदयपुर के राजाओं की उपाधि।

महारावल—संज्ञा पुं. [सं. महा+हिं. रावल] जैसलमेर, डूँगरपुर आदि राज्यों के राजाओं की उपाधि।

महाराष्ट्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा राष्ट्र। (२) दक्षिण का एक प्रदेश। (३) दक्षिणी महाराष्ट्र का निवासी।

महालक्ष्मी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नारायण की एक शक्ति।

महावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. माह=माघ+वट] माघ-पूस या जाड़े की वर्षा।

महावत—संज्ञा पुं. [हिं. महामात्र] हाथीवान। उ.—(क) मानहुँ चंद महावत मुख पर अंकुस बेसरि लावै—८७६। (ख) माथे नहीं महावत सतगुरु अंकुस ध्यान कर टूटो—३४०१।

महावर—संज्ञा पुं. [सं. महावर्ण] लाख से बना लाल रंग जिससे सौभाग्यवती स्त्रियाँ पैर रँगती-रँगाती है, यावक। उ.—नाइनि बोलहु नवरंगी (हो) ल्याउ महावर बेग—१०-४०।

महावरा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) मुहावरा। (२) अभ्यास।

महावरी—संज्ञा पुं. [हिं. महावर] 'महावर' की टिकिया जिससे सौभाग्यवती स्त्रियाँ पैर रँगती-रँगाती हैं।

महावीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हनुमान। (२) जैनियों के चौबीसवें और अंतिम जिन या तीर्थंकर जिन्होंने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था।

वि.—बहुत वीर।

महाशय—संज्ञा पुं. [सं.] महात्मा, सज्जन।

महिं—अव्य. [हिं. महँ] में। उ.—राख्यौ हो जठर मंहि स्रोनित सौं सानि—१-७६।

महि—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी। उ.—(क) डोलत महि अधीर भयौ फनिपति—९-२६। (ख) गरु भए महि मैं बैठाए—१०-७८।

महिआँ—अव्य. [हिं. महँ] में। उ.—(क) और कौन समान त्रिभुवन सकल गुन जेहि महिआँ—१७०२। (ख) कहत-सुनत समुझत मन महिआँ ऊधो बचन तुम्हारे—३०३६।

महिख—संज्ञा पुं. [सं. महिष] भैंसा।

महिदेव—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण।

महिधर—संज्ञा पुं. [सं. महीधर] (१) पर्वत। (२) शेष।

महिपाल—संज्ञा पुं. [सं. महीपाल] राजा।

महिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. महिमन्] (१) महत्व, प्रताप। उ.—(क) जासु महिमा प्रगटि केवट धोइ पग सिर धरन—१-३०८। (ख) सुक की महिमा सुक ही जानै—१-३४१। (ग) तैं सिव की महिमा नहिं लही—४-५। (२) आठ सिद्धियों में एक।

महियाँ—अव्य [हिं. महँ] में। उ.—(क) बिहरति फिरति सकल बन महियाँ—६१२। (ख) सूरदास प्रभु तुमरे दास को आनँद होत ब्रज महियाँ—१००१। (ग) खेलत हँसत गए बन महियाँ—२३६७। (घ) कबहुँ कहत वा मुरली महियाँ लै लै बोलत हमरो नाउँ—३४४८।

महिरावण, महिरावन—संज्ञा पुं. [सं. महिरावण] रावण का एक पुत्र जो पाताल में रहता था। उ.—तुम्हैं मारि महिरावन मारैं देहिं बिभीषन राई—९-१४०।

महिला—संज्ञा स्त्री. [सं.] भले घर की स्त्री।

महिष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भैंसा। (२) एक राक्षस जिसे दुर्गा ने मारा था।

महिषमर्दिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

महिषासुर—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस जिसे दुर्गा ने मारा था।

महिषी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भैंस । (२) रानी ।

महिषेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महिषासुर । (२) यमराज ।

महिसुत—संज्ञा पुं. [सं. महीसुत] पृथ्वी का पुत्र मंगल ग्रह । उ.—महिसुत गति तजि जलसुत गति लै सिंधु-सुता-पति भवन न भावै—२२४५ ।

महिसुर—संज्ञा पुं. [सं. महीसुर] ब्राह्मण ।

मही—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी । उ.—जज्ञ मैं करत तब मेघ बरसत मही—४-११ । (२) मिट्टी ।

संज्ञा पुं. [हिं. महना] मठा, छाँछ । उ.—(क) ऐसी तू है चतुर बिबेकी पय तजि पियत मही । (ख) छिरकि लरिकनि मही सौं भरि ग्वाल दए चलाइ —१०-२८९ । (ग) खाटी मही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को—३२५१ ।

महीदेव—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण ।

महीधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत । (२) शेषनाग ।

महीन—वि. [सं. महा+हिं. झीन] (१) पतला, झीना ।

मुहा०—महीन काम—बहुत कारीगरी का काम ।

(२) कोमल, धीमा, मंद ।

महीना—संज्ञा पुं. [सं. मास] (१) मास । (२) मासिक वेतन । (३) स्त्री का मासिक धर्म ।

महीप, महीपति, महीपाल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा । उ. —मागधपति बहु जीति महीपति कछु जिय मैं गरबाए—१-१०९ ।

महीपुत्र, महीसुत—संज्ञा पुं. [सं.] मंगलग्रह । उ.—भाग्य-भवन मैं मकर महीसुत बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैं—१०-८६ ।

महीसुर—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण ।

महीसूनु—संज्ञा पुं. [सं. मही+सुवन] मंगल ग्रह ।

महुँ—अव्य. [हिं. महँ] में ।

महुअर, महुअरि, महुअरी—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. मधुकर, प्रा. महुअर] एक बाजा । उ.—डफ बासुरी अरु महुअरि बाजत ताल मृदंग—२३९९ ।

महुआ—संज्ञा पुं. [सं. मधूक, प्रा. महुअ] एक वृक्ष ।

महुर्छो,महुर्छौ—संज्ञा पुं. [सं. महोत्सव, प्रा० महोच्छव] महोत्सव ।

महुवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. महुअर] 'महुअर' बाजा । उ.—सूर स्याम जानि चतुराई जेहि अभ्यास महुवरि को ।

महुवा—संज्ञा पुं. [हिं. महुआ] 'महुआ' वृक्ष ।

महूँख—संज्ञा पुं. [सं. मधूक] 'महुआ' वृक्ष ।

महूम—संज्ञा स्त्री. [अ. मुहिम] (१) लड़ाई, युद्ध । (२) चढ़ाई, अभियान ।

महूरत, महूरति—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. मुहूर्त] शुभ कार्य का समय ।

महेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इन्द्र । (२) विष्णु ।

महेर, महेरा—संज्ञा पुं. [देश.] झगड़ा, बखेड़ा ।

संज्ञा पुं. [हिं. मही+एरा] दही में चावल या आटा पकाकर बनाया जाने वाला एक व्यंजन ।

महेरि, महेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. महेरा] 'महेरा' व्यंजन । उ.—मधुर महेरि सो गापन प्यारी ।

वि. [हिं. महेर] अड़चन डालने वाला ।

महेला—वि. [देश.] सुन्दर, मनोहर ।

महेश, महेस—संज्ञा पुं. [सं. महेश] शिव ।

महेश्वर, महेसुर, महेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. महेश्वर] शिव ।

महोख, महोखा—संज्ञा पुं. [सं. मधूक] एक पक्षी ।

महोच्छव, महोछ, महोछा, महोत्सव—संज्ञा पुं. [सं. महोत्सव] बड़ा उत्सव । उ.—बरस दिवस को महा महोत्सव को आवै को कौन सुनाई—९१३ ।

महोदधि—संज्ञा पुं. [सं.] सागर, समुद्र ।

महोदय—संज्ञा पुं. [सं.] महाशय, महानुभाव ।

महोल, महोला—संज्ञा पुं. [अ. मुहेल] (१) हीला, बहाना । (२) धोखा, चकमा ।

मह्यो, मह्यौ—संज्ञा पुं. स्त्री. [हिं. मही] छाँछ, मठा । उ.—(क) प्रगट प्रताप ज्ञान गुरु गम तैं दधि मथि घृत लै तज्यौ मह्यौ—२-८ । (ख) मैं मतिहीन मर्म नहिं जान्यौ भूलो मथत मह्यौ—२८९४ ।

माँ—संज्ञा स्त्री. [सं. माता] जननी । उ.—(क) दोउ भैया जेंवत माँ आगे । (ख) परसुराम सौं यौं कही माँ कौ वेगि सँहार—९-१४ ।

अव्य. [सं. मध्य] में ।

माँखण, माखन—संज्ञा पुं. [हिं. माखन] मक्खन ।

माँखना, माँखनो—क्रि. अ. [हिं. माखना] **क्रोध करना।**

माँखी—संज्ञा स्त्री. [हिं मक्खी] **मक्खी।**

माँग—संज्ञा स्त्री. [हिं. माँगना] (१) **माँगने की क्रिया या भाव।** (२) **खपत, चाह।**

संज्ञा स्त्री. [सं. मार्ग ?] **सिर के बालों को काढ़कर निकाली गयी रेखा, सीमंत।**

यौ०—माँग-चोटी—**केश शृंगार।** माँगजली—**विधवा।**

मुहा०—माँग-कोख से सुखी रहना (जुड़ाना)—**स्त्री का सौभाग्य और संतानवती होना।** माँग-पट्टी करना—**केशों का शृंगार करना।** माँग पारना (बाँधना)—**बाल सँवारना।**

माँग-टीका—संज्ञा पुं. [हिं. माँग+टीका] **माँग का एक गहना।**

माँगत—क्रि. स. [हिं. माँगना] **याचना करता है।** उ.—(क) माँगत है सूर त्याग जिहिं तन-मन-राता—१-१२३। (ख) उलटे न्याउ सूर के प्रभु के वहे जात माँगत उतराई—३०५८।

माँगन—संज्ञा पुं [हिं. माँगना] (१) **माँगने की क्रिया या भाव।** (२) **माँगने के लिए।** उ.—(क) हरि कह्यौ जज्ञ करत तहँ बाम्हन। जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन—८९६। (ख) परमहंस विहंग देखतहिं आवत भिक्षा माँगन—३००१।

संज्ञा पुं. [हिं. मंगन] **भिखारी, भिक्षुक।**

माँगना, माँगनो—क्रि. स. [सं. मार्गण=याचना] (१) **याचना करना।** (२) **इच्छा पूरी करने को कहना।**

माँगफूल—संज्ञा पुं. [हिं. माँग+फूल] **माँग का एक गहना।**

मांगल गीत—संज्ञा पुं. [सं. मांगल्य गीत] **शुभ अवसर पर गाया जानेवाला गीत।**

मांगलिक—वि. [सं.] **शुभ मंगलकारी।**

मांगल्य—वि. [सं.] **शुभ, मंगलकारक।**

माँगा—संज्ञा पुं. [हिं. माँगना] **मँगनी।**

क्रि. स.—**माँग की।**

माँगि—क्रि. स. [हिं. माँगना] **माँगकर।**

प्र०—माँगि पठैहै—**मँगवा भेजेगा।** उ.—जब चहिहै तब माँगि पठैहै जो कोउ आवत जातो—३१२२।

माँगे—वि. [हिं. माँगना] **माँगा हुआ।** उ.—मुँह माँगे फल जो तुम पावहु तौ तुम माँनहु मोहिं—९१५।

संज्ञा पुं.—**माँगने का भाव, मँगनी।**

माँगै—क्रि. स. [हिं. माँगना] **कामना पूरी करने के लिए याचना करता है।** उ.—भक्त अनन्य कछु नहिं माँगै—३-१३।

माँग्यो, माँग्यौ—क्रि. स. [हिं. माँगना] **माँगा है, याचना की।** उ.—(क) राजा जल ता रिषि सौं माँग्यौ—१-२९० (ख) मोहन माँग्यौ अपनो रूप—३१८२।

वि.—**माँगा हुआ।** उ.—जो तुम मुँह माँग्यौ फल पावहु—१०१६।

माँचना, माँचनो—क्रि. अ. [हिं. मचना] (१) **शुरू या आरंभ होना।** (२) **प्रसिद्ध होना।**

माँचा—संज्ञा पुं. [सं. मंच, हिं. मंझा] (१) **पलँग।** (२) **मचान।**

माँची—क्रि. अ. [हिं. माँचना] **आरंभ हुई।**

माँछ—संज्ञा स्त्री. [सं. मत्स्य] **मछली।**

माँछना, माँछनो—क्रि. अ. [सं मध्य ?] **धँसना।**

माँछर, माँछरी, माँछल, माँछली—संज्ञा स्त्री. [सं. मत्स्य] **मछली।**

माँछी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मक्खी] **मक्खी।**

माँजना, माँजनो—क्रि. स. [सं. मज्जन] **रगड़ रगड़कर शरीर के अंगों का मैल छुड़ाना।**

क्रि. अ.—(१) **अभ्यास करना।** (२) **दोहराना।**

माँजर—संज्ञा स्त्री. [हिं. पंजर] **हड्डियों की ठठरी।**

माँजा—संज्ञा पुं. [देश.] **पहली वर्षा का फेन जो मछली के लिए मादक माना जाता है।**

माँझ—अव्य. [सं. मध्य] **में, भीतर, बीच।** उ.—(क) सभा माँझ द्रौपदि पति राखी—१-११३। (ख) गोकुल माँझ जोग बिस्तारयौ—२९८२। (ग) सो यह परम उदार मधुप ब्रज बीथिन माँझ बहायौ—२९९८। (घ) जो पै हृदय माँझ हरी—३२००।

संज्ञा पुं.—**अंतर, फर्क।**

माँझा—संज्ञा पुं. [सं. मध्य] (१) **पगड़ी का एक आभू-**

वण। (२) वे पीले कपड़े जो वर-वधू को विवाह के दो-तीन दिन पहले हल्दी चढ़ाने पर पहनाये जाते हैं।

संज्ञा पुं. [हिं. माँजना] (१) पतंग की डोरी को पैना बनाने के लिए चढ़ाया जानेवाला कलक। (२) डोरी जिस पर यह कलफ चढ़ा हो।

माँझिल—क्रि. वि. [सं. मध्य] बीच का।

माँझी—संज्ञा पुं. [सं. मध्य, हिं. माँझ ?] (१) नाव खेनेवाला। (२) झगड़े का बीच-बचाव करनेवाला।

माँट—संज्ञा पुं. [सं. मट्टक] (१) मटका, कुंडा। उ.—मानो नील माँट महँ बोरे लै जमुना जु पखारे। (२) अटा, अटारी।

माँठ—संज्ञा पुं. [सं. मट्टक] मट्का, कुंडा।

माँठी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की चूड़ी।

माँड़—संज्ञा पुं. [सं. मंड] पकाये हुए चावल या भात का लसदार पानी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. माँड़ना] माड़ने की क्रिया या भाव।

संज्ञा पुं. [देश.] एक राग।

माँड़ति—क्रि. स. [सं. मंडन] मचाती या ठानती है। उ.—सुनहु सूर हम सों हठ माँड़ति कौन नफा करि लैही—१११८।

माँड़ना—क्रि. स. [सं. मंडन] (१) मलना-मसलना। (२) सानना, गूँधना। (३) पोतना, लेपना। (४) रचना, सजाना। (५) मचाना, ठानना। (६) 'बाल' में से अनाज के दाने झाड़ना।

क्रि. अ.—चलना, गमन करना।

माँड़नि, माँड़नी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंडन] गोट, किनारी। उ.—अँगिया नील माँड़नी राती निरखत नैन चुराई—१७३९। (ख) नील कंचुकी माँड़नि लाल। भुजन नवै आभूषन माल—१८२०।

माँड़नो—क्रि. स. [सं. मंडन] (१) मलना, मसलना। (२) सानना-गूँधना। (३) पोतना, लेपना। (४) रचना, सजाना। (५) 'बाल' से अन्न के दाने झाड़ना। (६) मचाना, ठानना।

माँड़हि—क्रि. स. [हिं. माँड़ना] (१) पोतती या लगाती है। उ.—एक मुख माँड़हि कुमकुमा मिलि झूमक हो—२४१०। (२) मचाता या ठानता है। उ.—और मंत्र कछु उर जनि आनौ आजु सुकवि रन माँड़हि।

माँड़ि—क्रि. स. [हिं. माड़ना] किसी अन्न की 'बाल' से दाने झाड़कर। उ—माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को पोता भजन भरावै—१-१४२।

माँड़ी—क्रि. स. [हिं. माँड़ना] मचायी, ठानी। उ.—रुद्र भगवान अरु बान संबुक भिरे राम कुंभाउ माँड़ी लराई—१० उ०-३५।

माँड़ौगी—क्रि. स. [हिं. माँड़ना] ठानूँगी, मचाऊँगी। उ.—सुन री कुल की कानि ललन सों मैं झगरौ माँड़ौगी—१५११।

माँडलिक—संज्ञा पुं. [सं.] मंडल-विशेष का शासक।

माँड़व—संज्ञा पुं. [सं. मंडप] विवाहादि शुभ कार्यों के लिए छाया जानेवाला मंडप।

संज्ञा पुं. [सं. माण्डव्य] एक ऋषि जिन्हें बाल्यावस्था के अपराध के कारण यमराज ने शूली पर चढ़वाया था। इस पर ऋषि ने यमराज को शूद्र हो जाने का शाप दिया था; फलस्वरूप यमराज दासी के गर्भ से पांडु के यहाँ जन्मे और 'विदुर' कहलाये। उ.—माँडव रिषि जब सूली दयौ। तब सो काठ हरौ ह्वै गयौ। माँडव धर्मराज पै आयौ। क्रोधवंत यह बचन सुनायौ। .... । दासी पुत्र होहु तुम जाइ। सूर बिदुर भयौ सो इहिं भाइ—३-५।

मांडवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा जनक के भाई कुशध्वज की पुत्री जो भरत को ब्याही थी।

मांडव्य—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन ऋषि।

माँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. मंडप] मंडप, मँडवा।

संज्ञा पुं. [हिं. माँडना=गूँथना] (१) मैदे की पतली रोटी जो घी में पकायी जाती है। (२) पूरी, पराठा।

क्रि. स. भूत.—(१) गूँधा, साना। (२) पोता, लगाया। (३) रचा, सजाया। (४) मचाया, ठाना।

माँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. मंड] भात का पसावन, माँड़।

माड़े—संज्ञा पुं. [हिं. माड़] मैदे की पतली पूरी, लुचई। उ.—काको भूख गयी बयारि भखि बिना दूध-घृत-माड़े।

माँड़ो, माँड़ौ—संज्ञा पुं. [सं. मंडप] विवाह का मंडप।

माँड़्यो, माँड़्यौ—क्रि. स. [हिं. माड़ना] लीपा, पोता, लगाया। उ.—देखा मैं बालक बत छाँड़्यो। एक कहत अंगन दधि माड़्यो—१०५१।

संज्ञा पुं. [सं. मंडप] विवाह का मंडप, मँड़वा। उ.—आए नाथ द्वारका नीके रच्यो माँड़्यो छाय। ब्याह केलि विधि रची सकल सुख सौंज गनीनहिं जाय।

माँढ़ा—संज्ञा पुं. [हिं. माँड़व] विवाह-मंडप।

माँत—वि. [सं. मत्त] (१) उन्मत्त। (२) दीवाना।

वि. [सं. मंद] (१) उदास (२) पराजित।

माँतना, माँतनो—क्रि. अ. [सं. मत्त + हिं. ना] (१) उन्मत्त या बेसुध होना। (२) दीवाना होना।

माँता, माँती—वि. [सं. मत्त] उन्मत्त, दीवाना।

माँथ—संज्ञा पुं. [सं. मस्तक] माथा, मस्तक।

माँथबंधन—संज्ञा पुं. [हिं. माथा + बंधन] (१) परांदा, चोटी, चँवरी। (२) साफा, पगड़ी।

माँद—वि. [सं. मंद] (१) श्रीहीन, फीका। (२) पराजित।

संज्ञा स्त्री. [देश.] हिंसक जंतु की गुफा, खोह।

माँदगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) रोग। (२) थकावट।

माँदर—संज्ञा पुं. [हिं. मर्दल] 'मर्दल' नामक मृदंग।

माँदा—वि. [फा. मांद:] (१) थका हुआ। (२) बीमार।

मांधाता—संज्ञा पुं. [सं. मांधातृ] एक सूर्यवंशी चक्रवर्ती राजा जिसके पचास कन्याएँ थीं। उ.—कह्यो मांधाता सों जाइ। पुत्री एक देहु मोहिं राइ ९-८।

माँपना, माँपनो—क्रि. अ. [हिं. माँतना] नशे में चूर होना।

क्रि. स. [हिं. मापना] नाप करना या लेना।

माँय—अव्य. [सं. मध्य, हिं. माँझ] में, बीच।

संज्ञा स्त्री. [सं. माता] माता।

मांस—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर का गोश्त।

संज्ञा पुं. [सं. मास] महीना।

मांसभक्षी—वि. [सं. मांसभक्षिन्] मांस खानेवाला।

मांसल—वि. [सं.] (१) मांस से युक्त। (२) मोटा, पुष्ट।

मांसलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मांसल' होने का भाव। (२) पुष्टता और स्थूलता।

मांसाहारी—वि. [सं. मांसाहारिन] मांस खानेवाला।

माँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मासी] मौसी।

माँसु, माँसू—संज्ञा पुं. [सं. मांस] मांस, गोश्त।

माँह, माँहा, माँहिं, माँहीं, माहें, माहैं—अव्य. [सं मध्य] में, बीच, भीतर, अंदर।

मा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी। (२) माता।

माइँ, माईं—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृ] छोटा पूआ जिससे विवाहादि शुभ अवसरों पर कुलदेवी का पूजन किया जाता है।

मुहा०—माइँ (माइँन या माईं) में थापना—पितरों के समान आदर करना। माइँन मैं थपिहौं—पितरों के समान आदर करूँगी (करूँगा)। उ.—जब लौं हौं जीवौं जीवन भर सदा नाम तव जपिहौं। दधि-ओदन दोना भरि दैहौं अरु माइँन (पाठां-माइनि—माई) मैं थपिहौं—९-१६४।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] पुत्री, कन्या।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मामा] मामा की स्त्री, मामी।

माइ—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृ] (१) माता। उ.—कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा माइ-माइ कहि मोहिं सुनैहै—९-८१। (२) वृद्धा के लिए आदरसूचक संबोधन।

माइका—संज्ञा पुं. [सं मातृ+गृह] स्त्री के माता-पिता का घर नैहर।

माई—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृ] (१) माता, जननी।

यौ० माई का लाल—(१) उदार स्वभाव वाला। (२) वीर बली।

(२) सखी अथवा बूढ़ी स्त्री के लिए आदरसूचक संबोधन। उ.—(क) जसुमति माई कहा सुत सिख्यो हमको जैसे हाल कियो—८१०। (ख) सखि बोलावति टेरि दौरि आवहु री माई—२४१९। (ग) कोऊ माई आवत है तन स्याम—२९५८। (घ) सुंदर स्याम कान्ह लिखि पठई आइ सुनो री माई—२९७६।

माख—संज्ञा पुं. [सं. मक्ष] (१) अप्रसन्नता। (२) पछतावा।

माखन—संज्ञा पुं. [हिं. मक्खन] नवनीत, मक्खन। उ.—(क) कहियौ मधुप वारि मथि माखन काढ़ि जो भरी कमोरी—३०२८। (ख) हम अहीर माखन दधि बेचैं सबन टेक पकरी—३१०४। (ग) तापर लिखि-लिखि जोग पठावत बिसरी माखन चोरी—३१११।

माखनचोर—संज्ञा पुं. [हिं. माखन + चोर] श्रीकृष्ण।

माखना, माखनो—क्रि. अ. [हिं. माख] अप्रसन्न होना।

माखा—संज्ञा पुं. [हिं. माख] (१) अप्रसन्नता। (२) पछतावा।

संज्ञा पुं. [हिं. माखी] (१) बड़ी मक्खी। (२) नर मक्खी।

माखी, माखो—संज्ञा स्त्री. [सं. माक्षिक] (१) मक्खी। उ.—ज्यौं माखी मृगमद मंडित तन परिहरि पूय परै —१-१९८। (२) शहद की मक्खी। उ.—अब तो हैं हम निपट अनाथ। जैसे मधु तोरे की माखी त्यौं हम बिन ब्रजनाथ—२६९३।

मागध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाट, चारण। (२) जरासंध का एक नाम। उ.—(क) मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हें—१-१७। (ख) मागध मगध देस तैं आयौ लीन्हें फौज अपार।

वि. [सं. मगध] मगध देश का।

मागधपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगध का राजा। (२) जरासंध। उ.—मागधपति बहु जीति महीपति कछू जिय मैं घबराए—१-१०९।

मागधी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मगध की प्राचीन प्राकृत भाषा।

माघ—संज्ञा पुं [सं.] (१) पूस के बाद का महीना। उ.—माघ तुषार जुवति अकुलाही ह्यां बहू नंद सुवन तौ नाहीं—११९। (२) संस्कृत का एक प्रसिद्ध कवि।

संज्ञा पुं. [सं. माध्य] कुंद का फूल।

माघी—संज्ञा स्त्री. [सं. माघ + हिं. ई] माघ की पूर्णिमा।

वि.—माघ मास से संबंधित, माघ का।

माच—संज्ञा पुं. [हिं. मचान] मचान, मंच। उ.—तुरत माच ते धरनि गिरायो—२६३१।

संज्ञा पुं. [सं.] मार्ग, रास्ता।

माचना, माचनो—क्रि. स. [हिं. मचाना] (१) शोर-गुल के साथ कार्यारंभ करना। (२) फैलाना, छा देना।

माचल—वि. [हिं. मचलना] हठी, जिद्दी। उ.—महा माचल मारिबे की सकुच नाहिंन मोहिं—१-१०६।

माचा—संज्ञा पुं. [सं. मंच] (१) पीढ़ा। (२) मचान।

माची—संज्ञा स्त्री. [सं. मंच] पीढ़ी, मचिया।

माछ, माछर, माछा—संज्ञा पुं. [सं. मत्स्य] मछली।

संज्ञा पुं. [हिं. मच्छड़] मच्छड़।

माछी—संज्ञा स्त्री. [सं. मत्स्य] मछली।

संज्ञा स्त्री. [सं. मक्षिका] मक्खी।

माजरा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) वृत्तांत। (२) घटना।

माट—संज्ञा पुं. [हिं. मटका] मटका जिसमें दही आदि रखा जाता है। उ.—सिर दधि-माखन के माट गावत गीत नए।

माटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिट्टी] (१) मिट्टी। उ.—(क) उन तौ वह कीन्ही तब हमसौं ए रतन छँड़ाइ गहावत माटी—३०५६। (ख) माटी मैं ज्यौं कंचन परै —७-२१। (२) शरीर। (३) मृत शरीर, शव। (४) पाँच तत्वों में 'पृथ्वी' नामक तत्व। (५) धूल।

माठी—संज्ञा पुं. [हिं. मीठा] मैदे की छोटी पकी हुई टिकिया को शकर में पाग कर बनायी गयी मिठाई।

संज्ञा पुं [हिं. मटकी] मटकी, छोटा मटका।

माठा—संज्ञा पुं. [हिं. मठा] छाँछ, मठा।

वि. [हिं.] कंजूस कृपण।

माठी—संज्ञा स्त्री. [देश] एक तरह की कपास। उ.—बेगि चलि सजि शृंगार काढ़ि माठी खगवारौ आइकै साज—२२०२।

माड़—संज्ञा पुं. [हिं. माँड़] भात का पसेव, माँड़।

माड़ति, माड़ती—क्रि. स. [हिं. माड़ना] हाथ से मलती-मसलती है। उ.—कोउ काजर कोउ बदन माड़ती हर्षहि करहि कलोल २४२७।

माड़ना, माड़नो—क्रि. अ. [हिं. माँड़ना] ठानना, मचाना।

क्रि. स. [सं. मंडन] (१) मंडित या भूषित करना। (२) पहनना, धारण करना। (३) आदर करना।

क्रि. स. [सं. मर्दन] (१) पैर या हाथ से मलना-मसलना। (२) घूमना, फिरना।

माड़व—संज्ञा पुं. [सं. मंडप] मंडप।

माड़ी—क्रि. अ. [हिं. माड़ना] ठानी, मचायी। उ.—सुमति सुन्दरी परस प्रियारस लंपट माड़ी आरि—१३५२।

माड़ो, माड़ौ—क्रि. अ. [हिं. माड़ना] ठानो, मचाओ। उ.—हमहि मूरख बदनि आपु ए ढंग सदति पाइ अब मदति हठ करहि माड़ौ—१२६९।

क्रि. स.—मलो, मसलो, मर्दन करो। उ.—एक कहै प्रिय को मुख माड़ौ। एक कहैं फगुवा लै छाँड़ौ—२४१५।

माढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मढ़ी] मढ़ी। उ.—अँगिया बनी कुचन सो माढ़ी।

संज्ञा पुं.—[सं. मंडप] (१) मंच। (२) मचिया।

माणिक, माणिक्य—संज्ञा पुं. [सं. माणिक्य] एक लाल रत्न, 'लाल', पद्मराग, चुन्नी।

वि.—सर्वश्रेष्ठ, परम आदरणीय।

मातंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी। (२) चांडाल। (३) एक ऋषि जो पर्वत पर मौन रहा करते थे जिससे उसका नाम 'ऋष्यमूक' पड़ गया था।

मात—संज्ञा स्त्री. [हिं. माता] माँ, जननी। उ.—(क) मात-पितु के बंद छोरे बासुदेव कुमार—२९७५। (ख) मात-पिता हित प्रीति निगम पंथ तजि दुख-सुख भ्रम नाख्यो—३०१४।

संज्ञा स्त्री. [अ.] हार, पराजय।

वि.—हारा हुआ, पराजित।

वि. [सं. मत्त] मतवाला।

क्रि. अ. [हिं. मातना] मतवाला होकर। उ.—उमँगि अंगन मात कोऊ बिरध तरुन अरु बाल—२९५४।

मातना, मातना—क्रि. अ. [सं. मत्त] मस्त होना।

मातनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. माता+नि] माता से। उ.—निसि दिन स्रम-सेवा कराइ उठि अंत मिले पित-मातनि—३०२५।

मातम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) शोक। (२) मृत्यु-शोक।

मातलि—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र का सारथी।

मातलिसूत—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

माता—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृ] (१) जननी। उ.—माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि जौ लगि जिहिं कौ काम—१-७६। (२) पूज्या स्त्री। (३) लक्ष्मी। (४) शीतला, चेचक।

वि. [सं. मत्त] मतवाला, मदमस्त।

मातामह—संज्ञा पुं. [सं.] नाना।

माती—वि. स्त्री. [हिं. माता = मत्त] मतवाली, मदमस्त। उ.—(क) वे यौवन मद की सब माती कहाँ भेरौ तनक कन्हाई—८६७। (ख) मुख मृदु बचन बिना सींचे अब जियहि प्रेम-रस-माती—२९८०।

मातु—संज्ञा स्त्री. [हिं. माता] माँ, जननी। उ.—(क) जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भई—१-२९१। (ख) ताके बीच बिघन करिबे को मातु-पिता पचि हारे—३०३६।

मातुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मामा। उ.—मातुल को देखि हरि कहयो यों बिहँसि करि पंथ तै टारि गज को महावत २५९५। (२) धतूरा। उ.—दुइ मृनाल मातुल उभै द्वै कदलीखंभ बिन पात—१६८२।

मातुला, मातुलानी, मातुलि, मातुली—संज्ञा स्त्री. [सं.] मामी।

मातूल—संज्ञा पुं. [सं. मातुल] (१) मामा। (२) धतूरा। उ.—कमलपत्र मातूल चढ़ावैं। नयन मूँदि यह ध्यान लगावैं।

मातृ—संज्ञा स्त्री. [सं.] माता, जननी।

मातृक—वि. [सं.] माता-संबंधी, माता का।

मातृत्व—संज्ञा पुं. [सं.] माता होने का भाव।

मातृभाषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भाषा जो बालक अपनी माता से सीखता है।

माते—वि. बहु. [हिं. माता = मतवाला] मतवाले। उ.—हो हो हो हो लै लै बोलैं। गोरस केरी माते डोलैं—२४३८।

मातौ, मातो—वि. [हिं. माता = मतवाला] मतवाला, मदमस्त। उ.—मेरे जानि गह्यो चाहत हौं फेरिकै मगल मातो—३१३२।

मात्र—अव्य. [सं.] भर, सिर्फ, केवल। उ.—जात बिलै ह्वै छिनक मात्र मैं उघरत नैन किवार—२-३१।

मात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) परिमाण। (२) बारह खड़ी' में स्वर-सूचक रेखा जो व्यंजन में लगती है। (३) निश्चित अंश।

मात्रिक—वि. [सं.] (१) मात्रा-संबंधी। (२) जो मात्रा के अनुसार हो।

माथ, माथा—संज्ञा पुं. [सं. मस्तक, हिं. माथा] (१) मस्तक, भाल।

मुहा०—माथा कूटना—सिर पीटकर शोक मनाना। माथा घिसना—(१) नम्रता दिखाना। (२) खुशामद करना। माथा खपाना (खाली करना)—बहुत सोचना-विचारना। माथा झुकाना (टेकना या नवाना)—(१) नम्रता या अधीनता दिखाना। (२) सविनय प्रणाम करना। माथा ठनकना—भावी दुख, दुर्घटना आदि की पहले से ही आशंका होना। माथा धुनना या पीटना सिर पीटकर शोक मनाना। माथ धरना—अनुकूल आचरण के लिए करना। माथ धरि—अनुकूल आचरण के लिए स्वीकार करके। उ.—तात बचन रघुनाथ माथ धरि जब बन गौनि कियौ—९-४६।

यौ०—माथा-पच्ची या पिट्टन—बहुत बकना या समझाना।

(२) किसी चीज का अगला या ऊपरी भाग।

माथे, माथैं—क्रि. वि. [हिं. माथा] (१) सिर या मस्तक। उ.—(क) माथे मोर मुकुट—२९५१। (ख) ते अब कहत जटा माथे पर बदलो नाम कन्हाई—३१०६।

मुहा०—माथे चढ़ाना या धरना—सादर स्वीकार करना। माथे धरौ—सादर-सविनय स्वीकार करो। उ.—मम आयसु तुम माथे धरौ। छल बल तजि मम कारज करौ। माथे टीका होना—अधिकता या विशेषता होना। माथे पड़ना—भार या दायित्व आ जाना। माथे पर चढ़ना—दुलार के कारण धृष्ट हो जाना। माथे पर बल पड़ना—मुख पर असंतोष या अप्रसन्नता के चिह्न दिखायी देना। माथे भाग होना—भाग्यवान होना। जाके माथे भागु—जो भाग्यवान है। उ.—ऊधा जाके माथे भागु—३०९५। माथे मढ़ना—जबरदस्ती देना। माथे मानना—सादर स्वीकार करना। माथे मानि—सादर स्वीकार करके। माथे मानी—शिरोधार्य की। उ.—सूरदास प्रभु के जिय भावै आयसु माथे मानी—३२५०। माथे मारना—उपेक्षा या तिरस्कार के साथ कुछ देना।

(२) भरोसे, सहारे।

माथौ, माथौं—संज्ञा पुं. [हिं. माथा] सिर, मस्तक। उ.—सूर बाट जो माथो दीजै चलत आपनी गोहीं—३०५६।

मुहा०—माथौ नायौ—(१) सविनय प्रणाम किया। उ.—जामवंत अंगद हनू उठि माथौ नायौ—९-७२। (२) सर झुकाकर अर्थात् सविनय स्वीकार किया। उ.—जबै साप रिषि सौं नृप पायौ। तब रिषि चरननि माथौ नायौ—६-७।

माद—संज्ञा पुं. [सं. मद] (१) गर्व। (२) नशा।

मादक—वि. [सं.] जिससे नशा हो, नशीला।

मादकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नशीलापन।

मादन—वि. [सं.] (१) मादक। (२) मस्त करनेवाला। संज्ञा पु.—कामदेव के पाँच बाणों में एक।

मादर, मादरिया—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मादर] माता।

मादा, मादिन, मादिनि, मादी, मादीन—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मादा] स्त्री वर्ग का प्राणी।

मादूदा—संज्ञा पुं. [अं.] (१) मूल तत्व। (२) योग्यता, क्षमता। (३) मवाद, पीक।

माद्रि, माद्री—संज्ञा स्त्री. [सं. माद्री] राजा पांडु की पत्नी जो नकुल और सहदेव की माता थी।

माधव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु अथवा उनके रामकृष्ण अवतार। उ.—तुम मों से अपराधी माधव केतिक स्वर्ग पठाये हो—१-७। (२) बैशाख महीना। (३) बसंत ऋतु। (४) एक राग।

माधवी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक लता। (२) एक रागिनी।

माधुरई, माधुरई—संज्ञा स्त्री. [सं. माधुर्य] मिठास।

माधुरता—संज्ञा स्त्री. [सं. मधुरता] मिठास।

माधुरि, मधुरिया, माधुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. माधुरी] (१) मिठास। (२) शोभा, सुंदरता। उ.—(क) सूर निरखि यह रूप माधुरी नारि कंत मन डोरै—२५९७। (ख) अंग अंग प्रति अमित माधुरी—६६३। (३) मदिरा, मद्य।

माधुर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मधुरता। (२) सुंदरता। (३) मिठास। (४) काव्य का एक गुण जिसमें मधुर वर्णों की योजना रहती है।

माधैया, माधो, माधोया, माधौ—संज्ञा पुं. [सं. माधव] श्रीकृष्ण। उ.—(क) हरि हित मेरो माधैया। देहरी

चढ़त परत गिरि कर पल्लव जो गहत है री मैया । (ख) माधौ जू, मन मायावस कें रह्यौ—१-४६ । (ग) दुसह सँदेस सुनत माधौ को गोपी-जन बिलखानी—२९८८ । (घ) वरु माधौ मधुवन ही रहते कत जसुदा के आए—३०१३ ।

माध्यम—संज्ञा पुं. [सं.] साधन, उपाय ।

माध्व—संज्ञा पुं. [सं.] वैष्णवों के चार मुख्य संप्रदायों में एक जिसके प्रवर्तक मध्वाचार्य थे ।

माध्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शराब, मदिरा ।

मान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी पदार्थ का भार, तौल आदि । (२) नापने-तौलने आदि का पैमाना । (३) गर्व, अहंकार । उ.—काको मान-परेखो कीजै बँधी प्रेम की डोरी—३१११ ।

मुहा०—मान मथना—गर्व चूर करना । मान मथि—गर्व चूर करके उ.—इन जरासंध मदअंध मम मान मथि बाँधि बिनु काज बल इहाँ आने ।

(४) सम्मान, प्रतिष्ठा । उ.—भोजन करत माँगि घर उनकैं राज-मान मद टारत—१-१२ ।

मुहा०—मान रखना—सम्मान करना ।

(५) रूठना, अप्रसन्न होना । उ.—हठ करि मान कियौ जब भामिनि तब गहि पाइ परे—६८९ ।

मुहा० - मान मनाना रूठे हुए को मनाना । मान मोरना—मान छोड़ देना, प्रसन्न हो जाना ।

(६) सामर्थ्य, शक्ति । (७) विराम (संगीतशास्त्र)।

मानगृह—संज्ञा पुं [सं.] रूठकर बैठने का स्थान, कोपभवन । उ.—बैठो जाय एकांत भवन में जहाँ मानगृह चार ।

मानचित्र—संज्ञा पुं. [सं.] नक्शा, स्थान-चित्र ।

मानत—क्रि. अ. [हिं. मानना] समझता है । उ.—कोटि स्वर्ग सम सुखउ न मानत हरि समीप समता नहिं पावत—३१४२ ।

मुहा०—मन मानत—समझता है । उ.—क्यौं मन मानत है इन बातन—३०२५ ।

क्रि. स.—(१) सम्मान या प्रतिष्ठा करता है । उ.—मानत गिरि निंदत सुरपति को—१०३९ । (२) समझता या स्वीकार करता है । उ.—(क) तिनका सौं अपने जन को गुन मानत मेरु समान—१-८ । (ख) सूरदास ए हटक न मानत लोचन हठी हमारे—३०३६ । ग) राजिव रवि को दोष न मानत ससि सौं सहज उदास—३२१९ ।

मानता—संज्ञा स्त्री. [हिं. मन्नत] मनौती, मन्नत ।

मानति—क्रि. अ. [हिं. मानना] समझती या स्वीकार करती है । उ.—मानति हौं तुम मानति नाहीं, तुमहूँ स्याम सँघाती—२९८१ ।

मानना, माननो—क्रि. अ. [सं.] (१) स्वीकार या अंगीकार होना । (२) मान लेना, कल्पना करना । (३) ध्यान में लाना, समझना । (४) अनुकूल होना, ठीक मार्ग पर आना ।

क्रि. स.—(१) स्वीकार या अंगीकार करना । (२) आदर-सम्मान के योग्य समझना । (३) दक्ष या पारंगत समझना । (४) श्रद्धा या विश्वास करना । (५) मनौती करना । (६) ध्यान में लाना, समझना । (७) मानकर वैसा कार्य करना । (८) अनुरक्त होना ।

माननीय—वि. [सं.] मान्य, पूज्य, आदरणीय ।

मानमंदिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोपभवन । (२) वेधशाला ।

मानमनौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. मान+मनौती (१) मानता, मनौती । (२) रूठने और मनाने की क्रिया या भाव ।

मानमरोर—संज्ञा स्त्री. [हिं. मान+मरोड़] मन-मुटाव ।

मानमोचन संज्ञा पुं. [सं.] रूठे हुए को मनाना ।

मानव—संज्ञा पुं. [सं.] मनुष्य, मनुज ।

मानवता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मनुष्य होने की अवस्था भाव या गुण, मनुष्यता । (२) मनुष्य-जाति ।

मानवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री, नारी ।

मानवी, मानवीय—वि. [सं. मानवीय] मानव-संबंधी ।

मानस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मन, हृदय । (२) मानसरोवर । (३) मनुष्य । (४) दूत, चर ।

वि.—(१) मन से उत्पन्न ।(२) मन में सोचा हुआ ।

क्रि. वि.—मन या हृदय के द्वारा ।

मानसपूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूजा के दो प्रकारों में एक, पूजा जो मन में ही की जाय ।

मानसर, मानसरोवर, मानससर,—संज्ञा पुं. [सं. मानसरोवर] हिमालय के उत्तरी भाग में स्थित एक

झील। उ.—मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावैं—२-१३।

मानसिक—वि. [सं.] मन-संबंधी।

मानसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूजा जो मन ही मन में की जाय, मानसपूजा।

वि. (१) जो मन में ही की जाय। (२) मन की।

मानसी गंगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गोवर्धन पर्वत पर स्थित एक सरोवर।

मानसी सेवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सेवा जो मन ही मन में की जाय। उ.—मनसा और मानसी सेवा, दोउ अगाध करि जानी—१-२११।

मानहानि—संज्ञा स्त्री. [सं.] अपमान, अप्रतिष्ठा।

मानहि—क्रि. स. [हिं. मानना] समझे। उ.—याम प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उपासी—३१०९।

मानहिंगी—क्रि. स. [हिं. मानना] समझेंगी, स्वीकार करेंगी। उ.—मानहिंगी उपकार रावरो करी कृपा वलबीर—७९२।

मानहुँ—अव्य. [हिं. मानों] मानों। उ.—मानहुँ बहुरि विचारि कछू मन सुफलकसुत आयो ब्रज आज—२९६८।

मानहु—क्रि. स. [हिं. मानना] (१) समझो। उ.—मैं कहौं सो सत्य मानहु—३११९। (२) दक्ष या पारंगत समझना। उ.—मुँह माँगे फल जो तुम पावहु तौ तुम मानहु मोहिं—९१५।

मानहुगे—क्रि. अ. [हिं. मानना] ध्यान में लाओगे। उ.—मेरे कहे बिलग मानहुगे कोटि कुटिल लै जोरैं—३१७६।

माना—क्रि. स. [हिं. मापना] (१) नापना, तौलना। (२) जाँचना, परीक्षा करना।

क्रि. अ. [हिं. समाना] समाना, अमाना।

संज्ञा पुं. [हिं. मान] (१) गर्व, अहंकार। (२) प्रतिष्ठा, सम्मान। (३) मान, रूठना।

क्रि. अ. [हिं. मानना] समझ लिया।

वाक्य—मान लिया कि।

मानापमान—संज्ञा पुं. [सं. मान+अपमान] आदर और अनादर। उ.—मानापमान परम परितोषन सुस्थल थिति मन राख्यौ—३०१४।

मानि—क्रि. स. [हिं. मानना] (१) समझकर। उ.—सो सुहृद मानि ईस्वर अंतर जानि—१-७७। (२) स्वीकार करके। उ.—अपनी चूक मानि उर अंतर अब लागी दुख पावन—३११९।

प्र०—मानि लई—स्वीकार कर ली। उ.—(क) बहुत भाव करि भोजन अर्प्यो, इह सब मानि लई मैं तेरी—९३५। (ख) सेवा मानि लई हरि तेरी—१४५७।

मानिक—संज्ञा पुं. [सं. माणिक्य] पद्मराग, माणिक्य। उ.—मनि मानिक पाटंबर अंबर लेत न बनत बिभूत—१०-३६।

मानिनि, मानिनी—वि. स्त्री. [सं. मानिनी] (१) गर्व या अभिमान से युक्त। (२) रूठनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—वह नायिका जो नायक के अपराध पर रूठ जाय। उ.—मधुबन की मानिनी मनोहर तहीं जाहु जहाँ भाए हो—२९८३।

मानिये, मानियै—क्रि. स. [हिं. मानना] ध्यान दीजिए। उ.—लोकलाज, कुलकानि मनियै करिबै बंधु पिता महतारी—१२२९।

मानी—वि. [सं. मानिन्] (१) घमंडी, अहंकारी। (२) बड़ा, श्रेष्ठ, मानवाला। उ.—ऐसो सूरदास जन हरि को सब अधमनि मैं मानी—१-१२९।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घड़ा, कुंभ। (२) चक्की के ऊपरी पाट की लकड़ी जिसके छेद में कीली रहती है। (३) छेद।

क्रि. स. भूत. [हिं. मानना] (१) स्वीकार या अंगीकार की। उ.—मानी हार बिमुख दुरजोधन जाके जोधा हे सो भाई—१-२४। (ख) सूर स्याम को बेगि मिलावहु हारि आपनी मानी—१६९६। (२) अनुकूल आचरण के लिए स्वीकार की। उ.—(क) अब तौ यहै बात मन मानी—१-८७। (ख) स्याम कही सोई सब मानी। पूजा की विधि हम अब जानी—१०२७।

मुहा०—आयसु माथे मानी—आज्ञा शिरोधार्य

की। उ.—सूरदास प्रभु के जिय भावै आयमु माथे मानी—३२४९।

(३) स्वीकार या ग्रहण कर लो। उ.—स्याम कहत, पूजा गिरि मानी—९३३।

संज्ञा पुं. [सं. मान] नायक जो नायिका से अपमानित होकर खीझ गया हो।

संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) अर्थ। (२) तत्व। (३) हेतु।

मानु—संज्ञा पुं. [सं. मान] रूठना। उ.—सूर स्याम सों मानु करै किन काहे बृथा मरै री—१६५७।

मानुख, मानुष, मानुस—संज्ञा पुं. [सं. मानुष] मनुष्य। उ.—मानुष जनम पोत नकली ज्यों मानत भजन-बिना निस्तार—१-४१।

वि.—मनुष्य का, मनुष्य-संबंधी।

मानुखी, मानुषी, मानुसी—संज्ञा स्त्री. [सं. मानुषी] स्त्री, नारी।

वि. [सं. मानुषीय] मनुष्य का, मनुष्य-संबंधी। उ.—आपुनो कल्यान करि लै मानुषी तन पाइ—१-३१५।

माने—क्रि. स. [हिं. मानना] (१) समझे। (२) श्रद्धापूर्वक स्वीकार किये। (३) दक्ष, कुशल या पारंगत समझे।

प्र०—रैहौ माने—श्रद्धा-सम्मान का पात्र समझे या मानते रहना। उ.—(क) बड़ो देव गिरिराज गोबर्धन इनैं रहौ तुव माने—९३३। (ख) कान्ह तुम्हारो मोको जानैं। इनको रैहो तुम सब माने—१०३३।

संज्ञा पुं. [अ. मानी] अर्थ, तात्पर्य।

मानैं—क्रि. स. [हिं. मानना] दक्ष या पारंगत समझती हैं। (२) आदर का पात्र समझती हैं। उ.—एक ही संग भई सबै जोबन नई, अब होहु गुरू हम तुमहिं मानैं—१२६८।

मानै—क्रि. स. [हिं. मानना] (१) समझता या ध्यान में लाता है। उ.—(क) कोटिक करै एक नहिं मानै सूर महा कृतघन कौं—१-९। (ख) सीत-उष्न सुख-दुख नहिं मानै—२-११।

मुहा०—मनमानै—मन समझ सकता या धैर्य रख सकता है। उ.—मधुकर, कहि कैसे मन मानै—३१३६। रुचि मानै—आनंद या स्वाद ले सकता है, पसंद कर सकता है। उ.—खाटी मही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को—३२५१।

(२) दक्ष या पारंगत समझता है। (३) आदर या सम्मान का पात्र समझता है। उ.—(क) और न काहू को वह मानै कछु सकुचत बल भैया—८६२। (ख)—सूरदास इह सब कोउ जानै, जो जाको सो ताको मानै—१०४२। (४) विश्वास करता है।

मानो, मानों, मानौं—अव्य. [हिं. मानना] जैसे। उ.—(क) मानौं मृगी बन जरति ब्याकुल तुरत बरष्यो नीर—२९५५। (ख) मानों भरे दोउ एकहि साँचे—३०५१। (ग) मध्य द्रुम है फूल मानो कवच कंचन चीर—३१८०।

क्रि. स. [हिं. मानना] मानता या मानती हूँ। उ.—या पै नेकु बिलग जिनि मानौं अँखियाँ नाहिन हाथ—३२५८।

मानौंगी—क्रि. स. [हिं. मानना] समझूँगी, ध्यान दूँगी, परवाह करूँगी। उ.—अब तो इहै बसी री माई नहिं मानौंगी त्रास—१२०४।

मानौ—अव्य. [हिं. मानों] जैसे। उ.—मानो बग बगदाई प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाई—१-६०।

क्रि. स. [हिं. मानना] श्रद्धापूर्वक विश्वास करो। उ.—जो चाहौ ब्रज की कुसलाई तौ गोबर्धन मानौ—९१५।

मान्य—वि. [सं.] (१) मानने या स्वीकारने योग्य। (२) आदर-सम्मान के योग्य, पूज्य। उ.—तुमरे मान्य बसुदेव-देवकी जीव दान इहि दीजै १०-४। (३) प्रार्थनीय।

मान्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मान्य होने की क्रिया या भाव। (२) अस्तित्व या अधिकार की स्वीकृति।

मान्यो, मान्यौ—क्रि. स. [हिं. मानना] (१) समझा, स्वीकार किया। उ.—तुमरो दरसन पाइ आपनो जन्म सुफल करि मान्यो—२९७१। (२) संबंध-विशेष की दृष्टि से देखा। उ.—आगै मैं तुमको सुत मान्यो। (३) तदनुकूल आचरण के लिए शिरोधार्य किया। उ.—(क) पाप-उजीर कह्यो सोइ मान्यो

धर्म-भुवन लुट्यौ—१-६४। (ख) अपजस अति नकीब कहि टेरयौ सब सिर आयसु मान्यौ—१-१४१।

मुहा०—मन मान्यौ—प्रेम हुआ है। उ.—नंदलाल सों मेरो मन मान्यौ कहा करैंगो कोई री—१२०३।

मापत—क्रि. स. [हिं. मापना] नापते (हो या समय)। उ.—जै जैकार भयौ भुव मापत तीनि पैंड़ भइ सारी—८-१४।

मापना, मापनो—क्रि. स. [सं. मापन] नाप लेना।

क्रि. अ. [सं. मत्त] मतवाला होना।

माफ—वि. [अ. माफ़] जो क्षमा कर दिया गया हो।

मुहा०—माफ करना—क्षमा करना। माफ कीजै—क्षमा कीजिए। उ.—सूरदास की बीनती दस्तक कीजै माफ—१-१४३।

माफिक—वि. [अ. मुआफ़िक] (१) अनुकूल। (२) योग्य।

माफी—संज्ञा स्त्री. [अ. म.फ़ी] (१) क्षमा। (२) भूमि जो कर-रहित की गयी हो।

माम—संज्ञा पुं. [सं. माम्] (१) अहंकार। (२) शक्ति।

मामता—संज्ञा स्त्री. [सं. ममता] मोह, अपनापन।

मामलत, मामलति—संज्ञा स्त्री. [अ. मुआमिलत] (१) (२) व्यवहार की बात। (२) विवाद का विषय।

मामला—संज्ञा पुं. [अ. मुआमिला] (१) काम-धंधा। (२) व्यवहार। (३) विवाद का विषय।

मामा—संज्ञा पुं. [अनु.] माता का भाई।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) माता। (२) दासी।

मामी—संज्ञा स्त्री. [सं. मा (निषेध)] दोष या आरोप पर ध्यान न देने का भाव।

मामी पीना—दोष या आरोप पर ध्यान नहीं देती है। मामी पीवत या पीवै—दोष या आरोप पर ध्यान नहीं देता या देती है। उ.—(क) अहो जसोदा महरि पूत की मामी पावै—१०६२। (ख) सूर इते पर खुनसनि मरियत ऊधौ पीवत मामी—३०७९।

मामूली—वि. [अ.] (१) नियमित। (२) साधारण।

माय—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृ] (१) माँ, माता। उ.—जसुमति माय लाल अपने को सुभ दिन डोल झुलायो। (२) किसी बूढ़ी या पूजनीया स्त्री के लिए आदर सूचक संबोधन।

संज्ञा स्त्री. [सं. माया] माया।

अव्य. [सं. मध्य] में, माँहि। उ.—बरुन कुबेर अग्नि जम मारुत स्व बस किये छिन माय।

क्रि. अ. [हिं. समाना] समाता है। उ.—सो सुख दुहूँ के उर न माय—२३२८।

मायक—संज्ञा पुं. [सं.] माया रचनेवाला, मायावी।

मायका—संज्ञा पुं. [सं. मातृ+का] नैहर, पीहर।

मायन—संज्ञा पुं. [सं. मातृका+आनयन] (१) वह दिन जब विवाह आदि में मातृ-पूजन और पितृ-निमंत्रण होता है। (२) उस दिन का पूजन तथा कार्य।

मायनी—वि. [सं. मायाविनी] ठगिनी, कपटिन।

मायल—वि. [फ़ा.] (१) प्रवृत्त। (२) मिश्रित।

माया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धन-संपत्ति। (२) अज्ञानता, अविद्या। उ.—(क) हरि, तुव माया को न बिगोयौ—१-४३। (ख) तुम्हारी माया महाप्रबल जिहिं सब जग बस कीन्हौ हो—१-४४। (३) छल-कपट। उ.—धरि कै कपट भेष भिक्षुक को दसकंधर तहँ आयौ। हरि लीन्हीं छिन में माया करि अपने रथ बैठायौ। (४) सृष्टि की उत्पत्ति का कारण, प्रकृति। उ.—माया माँहि नित्य लै पावै। माया हरि पद माँहि समावै। (५) ईश्वर की शक्ति। उ.—रावन सौं नृप जात न जान्यौ माया बिषम सीस पर नाची—१-१८। (६) जादू, इंद्रजाल। (७) देव-लीला।

संज्ञा स्त्री. [हिं. माता] माँ, जननी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ममता] (१) मोह-ममता, आत्मीयता का भाव। उ.—गोकुल रहौ जाहु जनि मथुरा झूठो माया मोह—३०६८।

मायापति—संज्ञा पुं. [सं.] ईश्वर।

मायावाद—संज्ञा पुं. [सं.] दृश्य जगत को असत्य और अनित्य मानने का सिद्धांत।

मायावादी—संज्ञा पुं. [सं. मायावादिन्] 'मायावाद' में विश्वास रखने वाला।

मायाविनि, मायाविनी—वि. [सं.] ठगिनी।

मायावी—संज्ञा पुं. [सं. मायाविन्] कपटी, छलिया।

मायिक—वि. [सं.] (१) बनावटी। (२) मायावी।

मायूस—वि. [फ़ा.] निराश, खिन्न।

मायूसी—संज्ञा पुं. [फा.] निराशा, खिन्नता।

मार—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—प्रबल सत्र आहै यह मार। यातैं संतो चलौ सँभार—१-२२९।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मारना] (१) मारने की क्रिया या भाव। उ.—नर-वपु धारि नाहिं जन हरि कौं जम की मार सो खैहै—१-८६। (२) चोट। (३) मार-पीट। (४) युद्ध।

अव्य.—बहुत, अत्यंत। उ.—सुनत द्वारावती मार उत्सव भयौ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. माला] माला, समूह। उ.—दहिनावर्त देत मनो ध्रुव को मिलि नक्षत्र की मार—२०६२।

मारक—वि. [सं.] (१) मार डालने वाला, संहारक। (२) प्रभाव नष्ट करनेवाला।

मारग—संज्ञा पुं. [सं. मार्ग] (१) राह, रास्ता। उ.—(क) कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई—१-९३। (ख) एक कहत मारग नहिं पावनि—१०५१। (२) कर्म, प्रकार। उ.—पाप मारग जिते सबै कीन्हें तिते बच्यौ नहिं कोउ जहँ सुरति मेर—१-११०।

मुहा०—मारग मारना—राह में किसी को लूट लेना। मारग लगना—चला जाना।

मारगन—संज्ञा पुं. [सं. मार्गण] तीर, बाण।

मारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मार डालना। (२) एक तांत्रिक प्रयोग जो इस विश्वास से किया जाता है कि लक्षित व्यक्ति मर जायगा।

मारत—क्रि. अ. [हिं. मारना] मारता है। उ.—औरन को सरबसु तै मारत आपुन भए अभंगी—२९९७।

मारन—संज्ञा पुं. [हिं. मारना] मारने की क्रिया या भाव, मारने के लिए। उ.—(क) सिव-बिरंचि मारन कौं धाए यह गति काहू देव न पाई—१-३। (ख) भव भय हरन असुर मारन हित काल मधुपुरी आयो—२९९९।

मारना, मारनो—क्रि. स. [सं. मारण] (१) प्राण लेना, बध करना। (२) पीटना, आघात करना। (३) ठोंकना। (४) सताना, दुख देना। (५) पछाड़ना, हराना। (६) बंद करना। (७) शस्त्र फेंकना। (८) आवेग या मनोविकार को रोकना। (९) शिकार करना। (१०) किसी वस्तु को यों फेंकना कि वह दूसरी से टकरा जाय।

मुहा०—दे मारना—(१) पटकना। (२) पछाड़ना।

(११) छिपा लेना, गुप्त रखना। (१२) संचालित करना।

मुहा०—गाल मारना—बढ़-बढ़कर बातें करना। कुछ पढ़कर मारना—मंत्र पढ़कर कोई चीज किसी लक्ष्य पर फेंकना। जादू मारना—मंत्र-तंत्र करना। डींग मारना—बड़ी-बड़ी बातें करना, शेखी बघारना। मंत्र मारना—जादू करना।

(१३) धातु आदि को जलाकर उसकी भस्म तैयार करना। (१४) अनुचित रूप से हथिया लेना। (१५) करना, लगाना। (१६) खेल आदि में जीतना। (१७) प्रभाव कम करना। (१८) निर्जीव-सा कर देना। (१९) काटना, डसना। (२०) लगाना।

मारपेच—संज्ञा पुं. [हिं. मारना+पेच] धूर्तता।

मारफत—अव्य. [अ. मार्फत] द्वारा, जरिए से।

मारा—वि. [हिं. मारना] जो मार डाला गया हो।

मुहा०—मारा मारा फिरना—व्यर्थ घूमना।

संज्ञा पुं. [सं. मार=काम] कामदेव

मारामार—क्रि. वि. [हिं. मारना] बहुत शीघ्रता से।

मारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मारना। (२) मरी (रोग)।

क्रि. स.—मारकर, वध करके। उ.—(क) कंस मारि राजा करैं आगहु सिर नावैं—१-४। (ख) कंस नृप कों मारि, छोर्यो आपनो पितु मातु—२९७४।

मारित—वि. [सं.] जो मार डाला गया हो।

मारिबे, मारिबै—संज्ञा पुं. [हिं. मारना] मारे जाने को। उ.—महा माचल मारिबे की सकुच नाहिन मोहिं—१-१०६।

मारिबोइ, मारिबोई, मारिबौइ, मारिबौई—संज्ञा पुं. [हिं. मारना] मारा-पीटा ही। उ.—तब तू मारिबोई करति १-२६६९।

मारियो, मारियौ—क्रि. स. [हिं. मारना] दंड-देने के लिए (तुम) मारना-पीटना। उ.—मेरी सौं तुम याहि मारियो जबहीं पावौ घात—१०-३३०।

मारिष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाटक का सूत्रधार । (२) नाटक में किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए सम्मान सूचक संबोधन ।

मारी—संज्ञा स्त्री. [हिं मारना] भयानक संक्रामक रोग ।

क्रि. स.—वध किया । उ.—जिन पय पियत पूतना मारी—३२५० ।

संज्ञा पुं. [सं. मारिन्] हत्या करनेवाला, घातक ।

मारीच—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस जिसने सोने का मृग बनकर राम और सीता को धोखा दिया था । उ.—मृग-स्वरूप मारीच धरयौ तब फेरि चल्यौ बारक जो दिखाई—९-५९ ।

मारु—संज्ञा पुं. [सं. मार] कामदेव ।

मारुत—संज्ञा पुं. [सं.] वायु, पवन । उ.—(क) अब तौ है मारुत को महिवा वा मम मूठ नहै ३०६५ । (ख) देत मदन मारुत मिलि दसौ दिसि दुहाई--३५० ।

मारुततनय, मारुतनंदन, मारुतसुत, मारुतसुवन—संज्ञा पुं. [सं. मारुत+तनय, नंदन, सुत, सुवन] (१) हनुमान । उ. भ मित भयौ देखि मरुतसुत दियौ महाबल ईस—९ ७५ । (२) भीम ।

मारुति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हनुमान । (२) भीम ।

मारू—संज्ञा पुं. [हिं. मारना] (१) एक राग जो युद्ध के समय गाया जाता है । उ. दादुर मोर चातक पिक के जन सब मिलि मारू गायो—२८४० । (२) बहुत बड़ा नगाड़ा या धौंसा ।

संज्ञा पुं. [सं. मारु] मरुदेश का निवासी ।

वि. [हिं. मारना] (१) मारनेवाला । (२) बेधनेवाला, कटीला ।

मारे—अव्य. [हिं. मारना] कारण से ।

क्रि. स.—मारता है ।

प्र०—डारत मारे—मारे या बध किये डालता है । उ.—प्रेम-प्रीति की ब्यथा तप्त तनु सो माहिं डारत मारे—३२५४ ।

मारेहु—क्रि. स. [हिं. मारना] मारे-पीटे जाने पर भी । उ.—सूर स्याम की सिखवत हारी मारेहु लाज न आवत ८६५ ।

मारें—क्रि. स. [हिं. मारना] मारे या बधे जाने पर भी । उ.—श्रीभगवान कृपा जिहिं करी । सूर सो मारें काहे मरै—१-२८९ ।

मारौं—क्रि. स. [हिं. मारना] बध करूँ, प्राण हरूँ । उ.—राखौं नहीं काहु, सब मारौं—१०४३ ।

मारौ—क्रि. स. [हिं. मारना] वध करो, प्राण हरो । उ.—अश्वत्थामा न जब लगि मारौ, तब लगि अन्न न मुख मैं डारौ—१-२८८ ।

यौ०—करम को मारौ—अभागा, भाग्यहीन । उ.—तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ—१-१५७ ।

मार्कंड, मार्कंडेय—संज्ञा पुं. [सं. मार्कंडेय] 'मृकंड ऋषि' के पुत्र जो तप बल से अमर माने जाते हैं ।

मुहा०—मार्कंडेय की आयु—दीर्घायु ।

मार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रास्ता । (२) अगहन मास ।

मार्गण, मार्गन—संज्ञा पुं. [सं. मार्गण] तीर, बाण ।

मार्गशिर, मार्गशिरस्, मार्गशीर्ष—संज्ञा पुं. [सं. मार्गशीर्ष] अगहन का महीना ।

मार्गी—वि. [सं. मार्गिन्] मार्ग पर चलनेवाला ।

मार्जन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्वच्छ करना । (२) सफाई स्वच्छता ।

मार्जना, मार्जनो—क्रि. स. [सं मार्जन] स्वच्छ करना ।

मार्जार—संज्ञा पुं. [सं.] नर बिल्ली, बिलार ।

मार्जारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिल्ली । (२) कस्तूरी ।

मार्जित—वि. [सं.] स्वच्छ किया हुआ, शोधित ।

मार्तंड संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य । (२) आक वृक्ष ।

मार्मिक वि. [सं.] मर्मस्थान पर प्रभाव डालनवाला ।

मार्मिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मार्मिक होने का भाव । (२) मर्म तक पहुँचने की योग्यता ।

मार्‍यो, मार्‍यौ—क्रि. स. [हिं. मारना] मारा, वध किया । उ.—(क) धाइ चक्र लै ताहि उबार्‍यौ, मार्‍यौ ग्राह बिहंगा—१-२१ । (ख) को नृप भयो कंस किन मार्‍यो—३०७९ ।

माल—संज्ञा पुं. [सं. मल्ल] कुश्ती लड़नेवाला, मल्ल ।

संज्ञा स्त्री. [सं. माला] (१) हार, माला । उ.—रुचिर प्रान करि आँ माल धरि जय जय सब्द पुकारी । (२) पंक्ति, पाँती ।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) धन-संपत्ति । उ.—अल्प चोर बहु माल लुभान सगा सबन धराए ।

मुहा० माल उड़ाना—(१) धन का अपव्यय करना । (२) किसी की धन-संपत्ति मार लेना । माल काटना (चाबना)—(१) किसी के धन से मौज करना । (२) किसी का धन हड़प लेना । माल मारना—दूसरे का धन दबा लेना ।

(२) सामान, सामग्री । उ.—तुम जानत मैं हूँ कछु जानत जा जा माल तुम्हारे—११०६ ।

यौ०—मालटाल या माल-मता—माल असबाब ।

(३) बिक्री की वस्तु । (४) सुस्वादु भोजन ।

मुहा०—माल उड़ाना—सुस्वादु भोजन करना ।

मालका—संज्ञा स्त्री. [सं.] माला हार ।

मालकोश, मालकोस-संज्ञा पु. [सं. मालकोश] एक राग ।

मालगुजारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] कर, लगान ।

मालति, मालती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सफेद फूल की एक लता । उ.—(क) त्यागे फिरत सकल कुसुमावलि मालति भौंर लए—२९९१ । (ख) फूली माधवी मालती बेलि फूले ही मधुप करत हैं केलि—२४०७ । (२) चांदनी, चंद्रिका ।

मालदार—वि. [फ़ा.] धनी, संपन्न ।

मालन—संज्ञा स्त्री. [हिं. मालिन] माली की स्त्री ।

मालपुआ, मालपूआ, मालपूवा—संज्ञा पुं. [सं. पूप, हिं. मालपूआ] एक पकवान ।

मालव संज्ञा पुं. [सं.] (१) मालवा देश । (२) एक राग ।

वि.—मालव देश या जाति का ।

मालवाई—संज्ञा पुं. [सं. मालव] एक राग । उ.—मालवाई राग गौरी अरु आसावरि राग—२२७९ ।

माला —संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पंक्ति, पाँती । (२) हार, माला । उ.—(क) तव सुमिरन-छल दुर्भर के हित माला तिलक बनाई—१-२०७ । (ख) केसरि को तिलक मोतिन की माला बृन्दावन को वासी-३०३० ।

मुहा०—माला जपना (फेरना)—जप या भजन करना । जपति फिरी तेरे गुनन की माला—गुणों का स्मरण करती या उनको गाती फिरी । उ.—कुंज कुंज जपति फिरी तेरे गुनन की माला—१८१७ ।

(३) समूह, झुंड ।

मालामाल—वि. [फ़ा.] बहुत धनी और संपन्न ।

मालिक—संज्ञा पु. [अ.] (१) ईश्वर । (२) स्वामी । (३) स्त्री का पति ।

मालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पंक्ति । (२) माला । उ.—सूरदास कुसुमनि सुर बरसत कर संपुट करि मालिका—८०९ । (३) गले का एक आभूषण । (४) मालिन जाति की स्त्री ।

मालिन, मालिनि, मालिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. माली] 'माली' जाति की स्त्री । उ.—लछिमि-सी जहँ मालिनि बोलै । बंदनमाल बाँधत डोलै—१०-३२ ।

मालिन्य—संज्ञा पुं. [सं.] मलिनता, मैलापन ।

मालिश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] मलने की क्रिया या भाव ।

माली—संज्ञा पु. [सं. मालिन्, प्रा. मालिय] (१) बाग के पौधों की देख-रेख और सिंचाई करनेवाला । उ.—कीन्हौं मधुबन चार चहूँ दिसि माली जाइ पुकार्यौ—९-१०३ । (२) फूल लगाने-बेचनेवाला ।

वि.—जो माला पहने हो ।

वि. [फ़ा. माल] धन-संबंधी, आर्थिक ।

मालूम—वि. [अ.] जाना हुआ, ज्ञात ।

मालूर—संज्ञा पुं. [सं.] बेल का पेड़ या फल । उ.—(क) कमल-पत्र मालूर-पत्र फल नाना सुमन सुबास—७६६ । (ख) कमल-पत्र मालूर चढ़ावैं—७९९ ।

माल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूल । (२) माला ।

माल्यवंत, माल्यवान—संज्ञा पुं. [सं. माल्यवान्] एक राक्षस जिसके भाई सुमाली की कन्या कैकसी रावण की माता थी ।

माल्ह—संज्ञा पुं. [सं. माला] (१) माला । (२) पंक्ति ।

मावत—संज्ञा पुं. [हिं. महावत] महावत । उ.—दियौ पठाइ स्याम निज पुर को मावत सह गजराज ।

मावली—संज्ञा पुं. [देश.] दक्षिण की एक वीर जाति ।

मावस—संज्ञा स्त्री. [हिं. अमावस] अमावस ।

मावा—संज्ञा पुं. [हिं. माँड] (१) माँड़ । (२) सार, सत्त । (३) चंदन का इत्र ।

माशा—संज्ञा पुं. [सं. माष] एक मान जो तोले का बारहवाँ भाग होता है।

माशूक—संज्ञा पुं. [अ. माशूक़] प्रेमपात्र।

माष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उड़द। (२) मसा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. माख] (१) क्रोध। (२) गर्व।

माषना, माषनो—क्रि. स. [हिं. माखना] अप्रसन्न होना।

माषि, माषी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मक्खी] मक्खी। उ.—राति ज्यों अक्रूर दिन अलि मदन दह मधु माषि—३०४८।

मास—संज्ञा पुं. [सं.] महीना। उ.—(क) महा कष्ट दस मास गर्भ बसि अधोमुख सीस रहाई—१-३१८। (ख) आठ मास चंदन दियो—१०-४०। (ग) चारि मास बर्षा के लीन्हे मुनिहु रहत इक ठौर—३०९०।

संज्ञा पुं. [सं. मांस] मांस।

मासना, मासनो—क्रि. अ. [हिं. मींसना] मिलना।

क्रि. स.—मिलाना, मिश्रित करना।

मासर—संज्ञा पुं. [हिं. मौसा] मौसी का पति।

मासिक—वि. [सं.] (१) मास-संबंधी। (२) मास में एक बार होने वाला।

मासी—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृष्वसा, पा. मातुच्छा, प्रा. माउच्छा] माता की बहिन, मौसी। उ.—कहा कहत मासी के आगे जानत नानी-नानन।

माहँ—अव्य. [सं. मध्य, प्रा. मज्झ] में, बीच, भीतर। उ.—(क) हित करि मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माहँ—१-५१। (ख) सूर उहै निज रूप स्याम को है मन माहँ समान्यौ—३१२७।

माह—संज्ञा पुं. [सं. माघ, प्रा. माह] माघ (मास)।

संज्ञा पुं. [फा.] मास, महीना।

माहत—संज्ञा स्त्री. [सं. महत्व] बड़ाई, महत्व।

माहना, माहनो—क्रि. अ. [हिं. उमाहना] उमड़ना।

माहली—संज्ञा पुं. [हिं. महल] अंतःपुर का सेवक।

माहवार—क्रि. वि. [फ़ा.] प्रतिमास।

वि.—हर महीने का, मासिक।

माहाँ—अव्य. [हिं. महँ] में, मध्य, भीतर।

माहिं—अव्य. [सं. मध्य, प्रा. मज्झ] (१) में, भीतर। उ.—(क) बरुन-पास तैं ब्रजपतिहि छन माहि छुड़ावै—१-४। (ख) चरन-सरोवर माहिं मीन मन रहत एक रस रीति—३२२९। (२) अधिकरण कारकीय चिन्ह, में, पर। उ.—तब मन माहिं आनि बैराग—६-४।

माहिआँ—अव्य. [हिं. माहिं] में, पर। उ.—और कौन स्याम त्रिभुवन में सकल गुन जेहि माहिआँ—१७०२।

माहिर—वि. [अ.] (१) कुशल। (२) जानकार।

माहिला—संज्ञा पुं. [अ. मल्लाह] माँझी, केवट।

माहिष्मती—संज्ञा स्त्री. [सं.] दक्षिण भारत का एक प्राचीन नगर।

माहीं—अव्य. [हिं. माहिं] में, भीतर। उ.—बैस संधि सुख तजी सूर हरि गए मधुपुरा माही—३२४४।

माहुर—संज्ञा पुं. [सं. मधुर, प्रा. महुर=विष] विष।

मिंडना, मिंडनो—क्रि. अ. [हिं. मींडना] (१) मीड़ा या मिलाया जाना। (२) सटाया या चिपकाया जाना। (३) साथ लगना या होना।

मिंड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मींड़ना] मींजने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

मिंत—संज्ञा पुं. [सं. मित्र] सखा, मित्र।

मिचकना, मिचकनो—क्रि. अ. [हिं. मिचना] (१) आँख खुलना और बंद होना। (२) पलक झपकना।

मिचकाना, मिचकानो—क्रि. स. [हिं. मींचना] (१) आँख खोलना और बंद करना। (२) पलक झपकाना।

मिचकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिचकना] (१) आँख मिचकाने की क्रिया। (२) आँख का संकेत।

मिचना, मिचनो—क्रि. अ. [हिं. मींचना] आँख बंद होना।

मुहा०—आँख मीचना—मर जाना।

मिचलाना, मिचलानो—क्रि. अ. [हिं. मचलाना] कै, मतली या उबकाई आना।

मिचली—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिचलाना] मतली।

मिचवाना, मिचवानो—क्रि. स. [हिं. मिचाना] आँख बंद करने या कराने को प्रवृत्त करना।

मिचौनी, मिचौली—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीचना] आँख मींचने की क्रिया या भाव।

यौ०—आँख मिचौनी—बालकों का एक खेल जिसमें एक की आँख मूँदी जाती है और बाकी लड़के

इधर-उधर छिपते हैं।

मिचौहाँ—वि. [हिं. मिचना] मुँदने या बंद होनेवाला।

मिजाज—संज्ञा पुं [अ. मिज़ाज] (१) स्वभाव। (२) तबियत।

मुहा०—मिजाज खराब होना (बिगड़ना)—(१) अप्रसन्नता होना। (२) चित्त स्वस्थ न होना। मिजाज खराब करना (बिगाड़ना)—अप्रसन्न करना। मिजाज में आना—समझ में आना। मिजाज ठीक (सीधा) होना—(१) दंड आदि मिलने पर सुधार जाना। (२) प्रसन्न होना।

(४) घमंड, अभिमान।

मुहा०—मिजाज (में) आना (होना)—घमंड करना, नखरे दिखाना। मिजाज न मिलना—घमंड के मारे बात भी न करना।

मिटत—क्रि. अ. [हिं. मिटना] दूर होता है, नष्ट हो सकता है। उ.—ये उतपात मिटत इनहीं पै—६००।

मिटन—संज्ञा पुं. [हिं. मिटना] मिटने की क्रिया।

प्र०—न मिटन पाई—चिन्ह बना रहा। उ.—झाईं न मिटन पाई—८-५।

मिटना, मिटनो—क्रि. अ. [सं. मृष्ट, प्रा० मिट्ट] (१) अंकित चिह्न का दूर हो जाना। (२) नष्ट हो जाना। (३) खराब हो जाना। (४) रद्द हो जाना।

मिटाइ—क्रि. स. [हिं. मिटाना] कुप्रभाव आदि दूर करके। उ.—आइ अजर निकसी नंदरानी बहुरी दोष मिटाइ—५४०।

मिटाइए—क्रि. स. [हिं. मिटाना] दूर कीजिए। उ.—या लोक के उपहास आपुन ताहि बरजि मिटाइए—१० उ०-२४।

मिटाई—क्रि. स. [हिं. मिटाना] दूर की।

प्र०—डारी मिटाई—दूर कर दो। उ.—कृपा करि रारि डारी मिटाई—८-९।

मिटाऊँ—क्रि. स. [हिं. मिटाना] (१) दूर कर दूँ, निकाल डालूं। उ.—अपने जिय की खुटक मिटाऊँ—२४५९। (२) रद्द कर दूँ। उ.—मुनिवर साप मिटाऊँ—३८२।

मिटाना, मिटानो—क्रि. स. [हिं. मिटना] (१) चिह्न आदि दूर करना। (२) न रहने देना। (३) चौपट करना। (४) रद्द करना।

मिटायो, मिटायौ—क्रि. स. [हिं. मिटाना] रद्द किया, न माना।

प्र०—न जात मिटायौ—मानना या स्वीकारना पड़ता है। उ.—यह उपकार न जात मिटायौ—४-९।

मिटारो—क्रि. स. [हिं. मिटाना] नष्ट या दूर किया। उ.—सूर सुभेंटि सुदामा हरि दुख दरिद्र मिटारो—१० उ०-७७।

मिटावति—क्रि. स. [हिं. मिटाना] नष्ट या दूर करती है। उ.—बालक को यह दोष मिटावति—१०१०।

मिटावन—संज्ञा पुं. [हिं. मिटाना] मिटाने की क्रिया।

यौ०—मिटावन लायक—दूर करने में समर्थ। उ.—तुम बिन ऐसो कौन नंद-सुत यह दुख दुसह मिटावन लायक—९५४।

मिटावना, मिटावनो—क्रि. स. [हिं. मिटाना] (१) चिह्न आदि दूर करना। (२) न रहने देना। (३) नष्ट करना। (४) रद्द करना।

मिटावहि—क्रि. स. [हिं. मिटाना] दूर करता है।

मुहा०—नाउँ मिटावहि—चिह्न आदि भी न रहने दे। उ.—इन्द्रहिं पेलि करी गिरि पूजा सजिल बरषि ब्रज नाउँ मिटावहि—९४७।

मिटावहु—क्रि. स. [हिं. मिटाना] दूर करो। उ.—कहा करत ए बोलत नाहीं पिय, यह खेल मिटावहु—पृ. ३१२ (१३)।

मिटि—क्रि. अ. [हिं. मिटना] दूर होकर।

प्र०—जाहि मिटि—दूर हो जाय। उ.—सूर हरि की सुजस गावौ जाहि मिटि भव-भार—१-२९४।

मिटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिट्टी] (१) मटकी। (२) मिट्टी।

मिटियाना, मिटियानो—क्रि. स. [हिं. मिट्टी+आना] मिट्टी लगाकर साफ करना।

मिटी—क्रि. अ. [हिं. मिटना] (१) दूर हो गयी। उ.—नैननि की मिटी प्यास—८-५। (२) रह न गयी। उ.—मिटी सब लीला—३४३७।

मिटै—क्रि. अ. [हिं. मिटना] दूर या नष्ट हो। उ.-और भजे तें काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार—१-६८।

मिट्टी—संज्ञा स्त्री. [सं. मृत्तिका, प्रा. मिट्टिआ] (१) भूमि। (२) धूल।

मुहा०—मिट्टी करना—चौपट या बरबाद करना। मिट्टी के मल—बहुत सस्ता। मिट्टी डालना—(१) छोड़ देना। (२) दोष को छिपाना। मिट्टी देना—कब्र में गाड़ना। मिट्टी छूने (पकड़ने) से सोना होना—साधारण काम में भी बहुत लाभ होना। मिट्टी में मिलना—नष्ट होना। मिट्टी में मिलाना नष्ट कर देना। मिट्टी होना—(१) मैला हो जाना। (२) नष्ट होना। (३) स्वाद या आनंद रहित होना।

यौ०—मिट्टी का पुतला (की सूरत)—मानव शरीर। मिट्टी के माधव—भोंदू। मिट्टी खराब होना—दुर्दशा होना।

(३) मृत शरीर, शव।

मुहा०—मिट्टी ठिकाने लगना—शव की अंतिम क्रिया हो जाना। मिट्टी ठिकाने लगाना—शव की अंतिम क्रिया करना।

(४) शरीर की बनावट या गठन।

मुहा०—मिट्टी ढल जाना—अधिक आयु या रोग के कारण शरीर की गठन या बनावट बिगड़ जाना।

मिट्ठा—वि. [हिं. मीठा] जिसमें मिठास हो।

मिट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीठा] बच्चे का चुंबन।

मिट्ठू—वि. [हिं. मीठा] मीठा बोलनेवाला।

मुहा०—अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनना—अपनी बड़ाई स्वयं करना।

मिट्यो, मिट्यौ—क्रि. अ. भूत [हिं. मिटना] (१) नष्ट हो गया, दूर हो गया। उ.—आनँद मिट्यौ—३४-३७। (२) मर गया। उ.—कहा बापुरो कंस मिट्यो तब मन संस करत है जो को—२५५६।

मिठ—वि. [हिं. मीठा] 'मीठा' का संक्षिप्त रूप जो प्रायः किसी शब्द के पूर्व, यौगिक रूप बनाने को जुड़ता है।

मिठबोला—वि. [हिं. मीठा+बोलना] मधुरभाषी।

मिठलोना—वि. [हिं. मीठा=कम+लोन] जिसमें नमक कम हो।

मिठाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीठा+आई] (१) मिठास, माधुरी। (२) खाने की मीठी चीज, वह जिसमें मीठा पड़ा हो। उ.—(क) खोवामय मधुर मिठाई—१०-१८३। (ख) मानहुँ मूक मिठाई के गुन कहि न सकत मुख, सीस डुलावत—६४८। (ग) दई कोटि कलस भरि बाहन बहुत मिठाई पान हो—२४४९।

मिठाना, मिठानो—क्रि. अ. [हिं. मीठा] मीठा होना।

मिठास—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीठा+आस] (१) मीठे होने का भाव, मीठापन। (२) मीठी चीज, मिठाई। उ.—बहिरो तान स्वाद कहा जानै गूँगो खात मिठास—३३३६।

मिठौना—वि. [हिं. मीठा] मीठा।

मिठौरि, मिठौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीठा+बरी] उड़द या चने की बरी या बड़ियाँ।

मितंग—संज्ञा पुं. [सं. मितंगम्] हाथी।

मित—वि. [सं.] (१) जो सीमा में हो। (२) थोड़ा।

मितभाषी—वि. [सं. मितभाषिन्] कम बोलनेवाला।

मितव्यय—संज्ञा पुं. [सं.] कम खर्च करना।

मितव्ययी—वि. [सं. मितव्ययिन्] कम खर्चनेवाला।

मिताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीत+आई] मित्रता। उ.—(क) हमसौं-तुमसौं बाल मिताई—१-२९८। (ख) हम अहीरि मतिहीन बावरी हटकतहू हठि करहिं मिताई—३११८। (ग) मुख देखे को कौन मिताई—३३१०।

मिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीमा, हद। उ.—(क) तुम गुन की जैसे मिति नाहिन, हौं अघ कोटि बिचरतौ—१-२०३। (ख) इत लोभी उत रूप परम निधि कोउ न रहत मिति मानि—१४३०। (२) परिमाण। (३) काल की अवधि।

मिती—संज्ञा स्त्री. [सं. मिति] (१) तिथि, तारीख। (२) सीमा, हद। उ.—रहत अवज्ञा होइ गुसाईं चलत न दुखहिं मिती—१० उ.—१०३। (३) दिन, दिवस। (४) समय की अवधि।

मित्र, मित्त, मित्तर—संज्ञा पुं. [सं. मित्र] (१) दोस्त, सखा। (२) सूर्य।

मित्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दोस्ती। (२) मित्र का धर्म।

मित्रपन—संज्ञा पुं. [सं. मित्र+हिं. पन] मित्रता।

मित्रबिंदा, मित्रविंदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रीकृष्ण की एक पत्नी। उ.—हरहिं मित्रबिंदा चित ल्यायो—१० उ०-२८।

मित्राइ, मित्राई—संज्ञा स्त्री. [सं. मित्र+हिं. आई] मित्रता, मित्र का धर्म, मित्रता का निर्वाह। उ.—(क) हमसौं तुमसौं बाल-मिताई। हमसौं कछु न भई मित्राई—१-२८९। (ख) देखि माधौ की मित्राई—२७१८।

मिथि, मिथिल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा जनक का एक नाम। उ.—दीनो दान बहुत द्विजन कौं राजा मिथिल-नरेस—सारा. २३४।

मिथिला—संज्ञा स्त्री. [सं.] वर्तमान तिरहुत जहाँ प्राचीन काल में राजा जनक का राज्य था।

मिथुन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्त्री-पुरुष का युग्म। (२) संयोग, समागम। (३) एक राशि।

मिथ्या—वि. [सं.] (१) झूठ, असत्य। उ.—मिथ्या वाद विवाद छाँड़ि दै—१-३१२। (२) सार या आधार हीन, जिसमें वास्तविकता या स्थायित्व न हो। उ.—बल विद्या धन धाम रूप गुन और सकल मिथ्या सौंजाई—१-२४।

मिथ्याचार—संज्ञा पुं. [सं.] कपटपूर्ण व्यवहार।

मिथ्याध्यवसिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक काव्यालंकार।

मिथ्यावाद, मिथ्याबाद—संज्ञा पुं. [सं. मिथ्या+वाद] संसार को असत्य समझने का सिद्धांत। उ.—मिथ्या बाद उपाधि रहित ह्वै बिमल बिमल जस गावत—२-१७।

मिथ्यावादी, मिथ्याबादी—वि. [सं. मिथ्यावादिन्] झूठा।

मिथ्याभास—संज्ञा पुं. [सं] आभास जो वास्तविक स्थिति के विरुद्ध हो।

मिदुराना, मिदुरानो—क्रि. अ. [सं. मृदु] मृदु, मधुर या कोमल हो जाना।

मिनकना, मिनकनो—क्रि. अ. [अनु. मिनमिन] (किसी के) दबाव में आकर बहुत धीरे से बोलना।

मिनती—संज्ञा स्त्री. [हिं. बिनती] विनय, प्रार्थना।

मिनमिन—क्रि. वि. [अनु.] नाक से निकलने वाले धीमे या महीन स्वर में।

मिनमिना—वि. [अनु.] नाक से धीमें या महीन स्वर में बोलनेवाला।

मिनमिनाना, मिनमिनानो—क्रि. अ. [अनु.] नाक से धीमे स्वर में बोलना।

मिन्नत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) प्रार्थना। (२) दीनता।

मिमियाना, मिमियानो—क्रि. अ. [अनु.] बकरी की तरह बोलना।

मियाँ—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) स्वामी। (२) पति। (३) महाशय। (४) मुसलमान।

मियाँ-मिट्ठू—संज्ञा पुं. [फ़ा. मियाँ+हिं. मिट्ठू] (१) मिठबोला। (२) अपनी बड़ाई स्वयं करनेवाला।

मुहा०—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना—स्वयं अपनी बड़ाई करना।

(३) मूर्ख व्यक्ति। (४) तोता।

मुहा०—मियाँ मिट्ठू बनना—बिना समझे रटना। मियाँ मिट्ठू बनाना—बिना समझाए रटाना।

मियाद—संज्ञा स्त्री. [अ. मीयाद] निश्चित अवधि।

मिरग—संज्ञा पुं. [सं. मृग] हिरन, मृग। उ.—कहै मिरग सौं नारी—१-२२१।

मिरगछाला—संज्ञा स्त्री. [सं. मृगछाला] हिरन की खाल।

मिरगी—संज्ञा स्त्री. [सं. मृगी] एक मानसिक रोग।

मिरच, मिरचा, मिरची, मिरिच, मिरिचा, मिर्च—संज्ञा पुं., स्त्री. [सं. मरिच] (१) लाल मिर्च। उ.—(क) तिहि सोंठ-मिरिच रुचि नाई—१०-१८३। (ख) बरा कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टकटोरे। तीछन लागी नैन भरि आए रोवत बाहर दौरे—१०-२२४। (ग) हींग मिरच पीपरि अजवाइन ये सब बनिज कहावैं—११०८। (२) काली मिर्च।

मिरजई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मिरजा] बंददार बास्कट।

मिरजा—संज्ञा पुं. [अ. मिरजा] 'शहजादों' की उपाधि।

मिरदंग, मिर्दंग—संज्ञा पुं. [सं. मृदंग] मृदंग।

मिरदंगी मिर्दंगी—संज्ञा स्त्री. [सं. मृदंग] छोटा मृदंग।

मिरवना, मिरवनो—क्रि. स. [हिं. मिलाना] मिलाना।

मिलक—संज्ञा स्त्री. [अ. मिल्क] (१) जमींदारी। (२) जागीर। उ.—ब्रज की भूमि इंद्र तैं मानौ मदन मिलक (मिलिक) करि पाई—२८३६।

मिलकना, मिलकनो—क्रि. अ. [देश.] जलना।

मिलकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलक] (१) जमींदार। (२) धनी।

मिलते—क्रि. स. [हिं. मिलना] दर्शन देते। उ.—मनसा करि सुमिरत है जब-जब, मिलते तब तबहीं—१-२८३।

मिलन—क्रि. स. [सं.] मिलाप, भेंट। उ.—मिलन आस तनु प्रान रहत है दिन दस मारग चैहौं—२५५०।

मुहा०—मिलन कहियौ—बराबर वालियों से सप्रेम प्रणाम-नमस्कार आदि कहना, प्रणाम नमस्कार-सूचक मिलना या भेंटना कहना। उ.—या घर प्यारी आवति रहियौ। मंहरि हमारी बात चलावति ? मिलन हमारौ कहियौ—७२७।

प्र०—मिलन गए—मिलने, भेंटने या दर्शन करने गये। उ.—जिनकौं मिलन गए पति तेरे सो ठाकुर ये बिदित तुम्हारे—१-२४१। मिलन न पाई—मिल-भेंट न सकी, दर्शन न कर सकी। उ.—नंदनंदन के चलत सखी हे तिनको मिलन न पाई—२५६८।

मिलनसार—वि.—[हिं. मिलन+सार] हेलमेल या प्रेम-व्यवहार रखने वाला।

मिलनसारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलनसारी] हेलमेल या प्रेम का व्यवहार।

मिलना, मिलनो—क्रि. अ. [सं. मिलन] (१) मिश्रित होना। (२) दो पदार्थों का अंतर मिटकर एक होना। (३) सम्मिलित होना। (४) जुड़ना, चिपकना। (५) गुण, आकृति आदि समान होना। (६) भेंटना, छाती से लगाना। (७) भेंट या मुलाकात होना। (८) मेल-मिलाप होना। (९) पक्ष-विशेष में हो जाना। (१०) लाभ होना। (११) पता या खोज लगाना। (१२) सुर ठीक होना।

क्रि. स. [देश.] दूध दुहना।

मिलनि, मिलनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलना] (१) विवाह की एक रीति जिसमें विवाह के पूर्व अथवा पश्चात कन्या के संकट संबंधियों से गले मिलते और नकद भेंट देते हैं। (२) मिलने की क्रिया या भाव, भेंट, मिलन। उ.—(क) धन्य यह मिलनि धन्य यह बटनि धन्य अनुराग नहीं यह थोरी—पृ० ३१० (४)। (ख) वह हिलनि-मिलनि-खिलन की तेरे प्रेम प्रीति जनाई—२१०७। (३) प्रेम-पूर्ण संबंध या व्यवहार, मिलना-जुलना। उ.—जब बारे तब वैसी मिलनी की बड़े भए इहै देखौ—२१००।

मिलवत—क्रि. स. [हिं. मिलाना] (१) मिश्रित या सम्मि-लित करते हो। उ.—मिलवत कहाँ कहाँ की बातैं हँसत कहति अति उर सकुचाई—११६३। (२) मिलते-जुलते हो।

मुहा०—मुँह ही की हमसौं मिलवत—मिलने-भेंटने की कोरी बातें ही करते हो, हमसे मिलने-जुलने की केवल बातें करते हो (हृदय से वैसा नहीं चाहते), मुँह से तो हमसे मिलने-जुलने की बात करते हो (पर मन कहीं और है)। उ.—मुँह ही की हमसौं मिलावत जिय बसत जहाँ मन मोहनि—२०१४।

मिलवति—क्रि. स. [हिं. मिलाना] (१) मिश्रित या सम्मिलित करती है। (२)इधर-उधर की बातें जोड़ती है। उ.—मैं जानति उनके ढंग नीके बातैं मिलवति जोरि—८६७। (२) (इधर की उधर) लगाती है। उ.—उतकी इत इत की उत मिलवति समुझति नाहिन प्रीति-रीति—२०४६।

मिलवना, मिलवनो—क्रि. स. [हिं. मिलाना] मिलाना।

मिलवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलवाना] मिलवाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

मिलवाना, मिलवानो—क्रि. स. [हिं. मिलाना] (१) मिलने को प्रवृत्त करना। (२) भेंट या परिचय करना। (३) मेल कराना।

मिलाइ—क्रि. स. [हिं. मिलाना] मिश्रित करके, घोलकर। उ.-सलिल कौं सब रंग तजि कै एक रंग मिलाइ-१-७०।

मिलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलाना] मिलाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

मिलान—संज्ञा पुं. [हिं. मिलाना] (१) मिलाने की क्रिया। (२) समता, तुलना। (३) ठीक होने की जाँच।

मिलाना, मिलानो—क्रि. स. [सं. मिलन] (१) मिश्रित करना। (२) अंतर मिटाकर एक करना। (३) सम्मि-लित करना। (४) जोड़ना, चिपकाना। (५) ठीक होने की जाँच करना। (६) भेंट या परिचय करना। (७) मेल या संधि करना। (८) पक्ष-विशेष में करना। (९) सुर ठीक करना।

मिलाप—संज्ञा पुं. [हिं. मिलाना] (१) मिलने की क्रिया

या भाव। (२) मेल, मित्रता। (३) भेंट, मुलाकात। उ.—रानी सों मिलाप तहँ भयो—४-१२।

मिलाव—संज्ञा पुं. [हिं. मिलाना] (१) मिलावट। (२) मिलाप।

मिलावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलाना] (१) मिलाये जाने की क्रिया या भाव। (२) अच्छी में बुरी का मेल।

मिलावत—क्रि. स. [हिं. मिलावना] अच्छी चीज में बुरी या एक में दूसरी मिलाता है। उ.—देखौ आइ पूत के करतब दूध मिलावत पानी—१०-३३७।

मिलावना, मिलावनो—क्रि. स. [हिं. मिलाना] मिलाना।

मिलावै—क्रि. स. [हिं. मिलावना] भेंट करा दे। उ.—ऐसा कोऊ नाहिनै सजनी जो मोहनै मिलावै—२७४५।

मिलाहीं—क्रि. स. [हिं. मिलना] मिलते हैं, भेंटते या छाती से लगाते हैं। उ.—बरषत मेह मेदनी के हित प्रीतम हरषि मिलाहीं—२१९४।

मिलिंद—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा, भ्रमर।

मिलि—क्रि. स. [हिं. मिलना] मिलकर, संगति करके। उ.—धन-मद-मूढ़नि अभिमानिनि मिलि लोभ लिए दुर्बचन सहै—१-५३।

मिलिक—संज्ञा स्त्री. [अ. मिलक] (१) जमीदार। (२) जागीर। उ.—इह ब्रज भूमि सकल सुर-संपति सो मदन मिलिक करि पाई—२८३६।

मिलित—वि. [सं.] मिला हुआ, युक्त।

मिलिबे, मिलिबो, मिलिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. मिलना] मिलने की क्रिया या भाव। उ.—मिलिबे की तरसनि—१०-९६।

मिलिहौ—क्रि. स. [हिं. मिलना] मिलोगे, दर्शन करोगे। उ.—जीते जनम बिरोध करि मोकों मिलिहौ आई—३-११।

मिलीं—क्रि. स. [हिं. मिलना] संयुक्त हुईं, एक हो गयीं। उ.—मुक्तामाल मिलीं मानो द्वै सुरसरि एकै संग—६२८।

मिलै—क्रि. स. [हिं. मिलाना] (१) मिश्रित करके। उ.—बेसन मिलै सरस मैदा सों अति कोमल पूरी है भारी—१०-२४१। (२) स्वर ठीक करके, सुर मिलाकर। उ.—गौरी राग मिलै सुर गावत—५०६।

मिलोना, मिलोनो—क्रि. स. [हिं. मिलाना]। मिलाना। क्रि. स. [देश.] दूध दुहना।

मिलौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिलना] (१) मिलाने की क्रिया या भाव, मिलावट। (२) मिलाने के बदले में मिला हुआ धन।

मिल्यो, मिल्यौ—क्रि. स. [हिं. मिलना] मिला, प्राप्त हुआ। उ.—जिहिं तन हरि भजिबो न कियो।.....। तिन्है न मिल्यो हियो—२-१६।

मिश्र—वि. [सं.] (१) मिश्रित। (२) श्रेष्ठ। संज्ञा पुं.—ब्राह्मणों का एक वर्ग।

मिश्रण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेल, मिलावट। (२) कई चीजों का मिला हुआ घोल।

मिश्रित—वि. [सं.] मिलाया हुआ।

मिश्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिसरी] दोबारा साफ करके जमायी गयी चीनी। उ.—मिश्री सानि चटावै—१०-८४।

मिष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छल-कपट। (२) हीला-बहाना।

मिष्ट—वि. [सं.] मीठा, मधुर। उ.—अगनित तरु-फल सुगंध मृदुल मिष्ट खाटे—९-९६।

मिष्टभाषी—वि. [सं. मिष्टभाषिन्] मिठबोला।

मिष्टान्न, मिष्ठान्न—संज्ञा पुं. [सं. मिष्टान्न] मिठाई। उ.—माखन मधु मिष्टान्न महर लै दियो अक्रूर के हाथ—२५३४।

मिस—संज्ञा पुं. [सं. मिष] (१) हीला, बहाना। उ.—(क) दधि-मिस आपु बँधायो दाँवरि—१-२५। (ख) मिस दिगबिजय चहूँ दिसि गयो—१-२९०। (ग) आवति सूर उरहने के मिस—१०-३११। (२) नकल, स्वाँग।

मिसकना, मिसकनो—क्रि. अ. [अनु.] धीरे बोलना।

मिसकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिसकना] (१) धीरे बोलने की क्रिया। (२) धीमे स्वर से गाना।

मिसकीन—वि. [अ. मिस्कीन] दीन, निर्धन।

मिसकीनता—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिसकीन] दीनता, गरीबी।

मिसना, मिसनो—क्रि. अ. [सं. मिश्रण] मिश्रित होना। क्रि. अ. [हिं. मीसना] मीसा जाना।

मिसरा—संज्ञा पुं. [अ. मिसरअ] कविता का एक चरण।

मिसरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] दोबारा साफ करके जमाई गयी चीनी, मिश्री।

मिसहा—वि. [हिं. मिस] (१) बहानेबाज। (२) कपटी।
मिसाल—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) उपमा। (२) नमूना।
मिसि—संज्ञा पुं. [सं. मिष] बहाना। उ.—सुंदर स्याम पाहुने के मिसि मिलि न जाहु दिन चार—२७६९।
मिसिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिसरी] दोबारा साफ करके जमायी गयी चीनी। उ.—(क) सद दधि-माखन घीं आनी। ता पर मधु मिसिरी सानी—१०-१८३। (ख) दूध औट्यौ आनि, अधिक मिसिरी सानि—४४०।
मिसिल—वि. [अ. मिस्ल] समान, तुल्य।
मिसी—संज्ञा पु. [हिं. मिस] बहाना, हीला।
मिस्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. मिसरी] मिसरी।
मिस्रित—वि. [सं. मिश्रित] मिला हुआ।
प्र०—मिस्रित करि—मिलाकर। उ.—(क) मिस्री-दधि-माखन मिस्रित करि मुख नावत छबि धनियाँ—१०-२३८। (ख) घृत मिष्टान्न खीर मिस्रित करि परसि कृष्न हित ध्यार लगायौ—१०-२४८।
मिस्सा—संज्ञा पुं. [हिं. मीसना] कई दालों का मिला हुआ आटा।
यौ०—मिस्सा-कुस्सा—मोटा अनाज।
मिस्सी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मिसी = तांबे का] एक मंजन जिससे दाँत काले होकर सुंदर लगते हैं।
मुहा०—मिस्सी-काजल करना—शृंगार करना।
मिहचना, मिहचनो—क्रि. स. [हिं. मीचना] मूँदना।
मिहर—संज्ञा स्त्री. [अ. मेह्र] कृपा, दया।
मिहानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मथानी] मथानी।
मींगी—संज्ञा स्त्री. [सं. मुद्ग] बीज की भीतरी गिरी।
मींजत—क्रि. स. [हिं. मींजना] मलता-मसलता है, मलते-मसलते (हो)। उ.—मींजत पीठि प्रीति अति बाढ़ी—७९९।
मींजना, मींजनो—क्रि. स. [हिं. मींजना] (१) हाथ से मलना-मसलना। (२) कुचलना, दलना, मर्दन करना।
मींजि—क्रि. स. [हिं. मींजना] मल या मसलकर।
मुहा०—मींजि कर—हाथ मल-मलकर, बहुत दुखी होकर। उ.—यह सुनत जल नैन ढारत मींजि कर पछितांहि—२६७२।
मींजी—क्रि. स. [हिं. मींजना] हाथ से मली-मसली। उ.—कालिह धोखैं कान्ह मेरी पीठि मींजी आइ—७८०।
मींड़—संज्ञा स्त्री. [सं० मीड़म्] संगीत में एक स्वर से दूसरे पर इस कौशल से जाना कि स्वरों का संबंध तो स्पष्ट हो परंतु कोई व्यवधान न जान पड़े।
मींडत—क्रि. स. [हिं. मींडना] मलता-मसलता है। उ.—हम अस्नान करति जल-भीतर मींड़त पीठि कन्हाई—७७०।
मींड़ना, मींड़नो—क्रि.स. [हिं. मींड़ना] मलना, मसलना।
मीच—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीचु] मौत, मृत्यु। उ.-(क) ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है मीचति नीच नटी—१-९८। (ख) सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत—१-१४९।
मीचना, मीचनो—क्रि. स. [हिं. मूंदना] आँख मूँदना।
मीचि—क्रि. स. [हिं. मींचना] (आँख) मूँद या बंद कर। उ.—कह्यौ, आँखि अब मीचि तू—८-१६।
मीचु—संज्ञा स्त्री. [सं. मृत्यु, प्रा० मिच्चु] मौत, मृत्यु। उ.—जो पै यह हियो चाहत है मीचु बिरह सर घात—२५०२।
मीचत—क्रि. स. [हिं. मीचना] मीचता है, मीचते (हो), मीचते (हुए)। उ.—ठाढ़ी कुँअरि राधिका लोचन मीचत तहँ हरि आए—६७५।
मीचै—क्रि. स. [हिं. मीचना] बंद करता है। उ.—हौं यह जानति बानि स्याम की अँखियाँ मीचै बदन चलावै—१०-२३१।
मीजत—क्रि. स. [हिं. मीजना] मलता-मसलता है। उ.—फिरि देखैं तौ कुँवर कन्हाई मीजत रुचि सौं पीठि - ७६८।
मीजना, मीजनो—क्रि. स. [हिं. मींजना] मलना, मसलना।
मीजान—संज्ञा पुं. [अ.] संख्याओं का योग।
मीठा—वि. [सं. मिष्ट, प्रा० मिट्ठ] (१) मधुर। (२) स्वादिष्ट। (३) धीमा, मंद। (४) मामूली, साधारण। (५) हलका, मंद। (६) बहुत सीधा। (७) प्रिय, रुचिकर।
संज्ञा पुं.—(१) मिठाई। (२) गुड़।
मीठि, मीठी—वि. [हिं. मीठा] मधुर।
यौ०—कटु-मीठि—कड़ुआ और मीठा, बुरा और भला। उ.—सूर स्याम सुंदर रस अटके नहिं जानत कटु-मीठि—पृ. ३३४ (३६)।

मीठी छुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीठी+छुरी] (१) ऊपर से मित्र, भीतर से शत्रु। (२) कपटी, कुटिल।

मीठी मार—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीठी+मार] ऐसी चोट जो ऊपर से तो दिखायी न दे पर भीतर पीड़ा पहुँचाये।

मीठे—वि. [हिं. मीठा] (१) प्रिय, रुचिकर। उ.—सूरदास-प्रभु-हरि गुन मीठे नित प्रति सुनियत कान—१-१६९। (२) जिनमें मिठास हो, मधुर। उ.—सबरी कटुक बेर तजि मीठे चाखि गोद भरि लाई—१-१३।

प्र०—जूठो खइए मीठे कारन—कोई अनुचित काम तभी किया जाय जब उससे कम से कम कोई स्वार्थ या लाभ तो होता हो। उ.—जूठो खइए मीठे कारण आगुहि खात लड़ात—पृ० ३३१ (६)।

मीठैं तेल—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मीठा+तेल] मीठे तेल में, तिल के तेल में। उ.—मीठैं तेल चना की भाजी—३९६।

मीड़त—क्रि. स. [हिं. मींड़ना] मलता-मसलता है।

मुहा०—कर या हाथ मीड़त—हाथ मलता या पछताता है। उ.—(क) हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ। मीड़त हाथ सीस धुनि ढोरत रुदन करत नृप, पारथ—१-२८७। (ख) मीड़त हाथ सकल गोकुलजन बिरह बिकल बेहाल—२५३६। (ग) सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीड़त पछितात—३३५०। पलक मीड़त रही—दूर तक देखने के लिए आँख या पलक मलकर तैयार होने के यत्न में लगी रही। उ.—जौ लगि पानि पलक मीड़त रही तौ लगि चलि गए दूरि—२६९३।

मीड़ति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. मींड़ना] मलती है। उ.—कर मीड़ति पछिताति मनहिं मन क्रम क्रम करि समुझावै—३०९८।

मीड़ना, मोड़नो—क्रि. स. [हिं. मींड़ना] (१) मलना, मसलना। (२) कुचलना, दलना, मर्दन करना।

मीड़ैं—क्रि. स. [हिं. मीड़ना] मलते-मसलते हैं। उ.—ताहि कोऊ उपचार न लागत कर मीड़ैं सहचरि पछिताइ—७४८।

मीत—संज्ञा पुं. [सं. मित्र] (१) मित्र, सखा। उ.—(क) गोबिंद गाढ़े दिन के मीत—१-३१। (ख) सखीरी, काके मीत अहीर—२६८६। (ग) मधुकर काके मीत भए—२९९२। (२) प्रेमी।

मीतता—संज्ञा स्त्री. [हिं. मीत+ता] मित्रता।

मीता, मीते—संज्ञा पुं. [हिं. मीत] (१) मित्र, सखा। उ.—सूरदास प्रभु बहुरि कृपा करि मिलहु सुदामा मीते—२८९३। (१) प्रिय, प्रियतम। उ.—तिनको कहा परखो कीजै कुबिजा के मीता को—३३७६।

मीन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मछली। उ.—(ब) मीन बियोग न सहि सकै (रे) नीर न पूछै बात—१-३२५। (२) बारहवीं और अंतिम राशि। (३) बारहवीं और अंतिम लग्न।

मीनकेत, मीनकेतन, मीनकेतु—संज्ञा पुं. [सं. मीन+केतन, केतु] कामदेव जिसकी ध्वजा पर मीन अंकित कही गयी है। उ.—मीनकेत अंबुज आनंदित ताते ताहिन लहियत—२८५६।

मीनता—संज्ञा स्त्री. [सं. मीन+ता] 'मीन' का गुण, या स्वभाव, मीनपन। उ.—सूरदास मीनता कछू क जल भरि कबहूं न छाँड़त—२७७७।

मीन-मार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] हठ-योग की साधना का रूप जो (जल में मछली के मार्ग के समान) गुप्त रहता है।

मीन-मेख, मीन-मेष-संज्ञा पुं [सं. मीन+मेष (राशियाँ)] (१) आगा-पीछा, सोच-विचार। (२) छोटे-मोटे दोष निकालना।

मीना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) रंगीन पत्थर। (२) एक नीला पत्थर। (३) कीमिया। (४) सोने के आभूषण आदि पर किया जानेवाला रंगीन काम।

मीनाक्ष—वि. [सं.] मछली जैसे सुंदर नेत्रवाला।

मीनाक्षी—वि. स्त्री. [सं.] जिसके नेत्र मछली-जैसे हों।

मीनालय—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।

मीन्ही—संज्ञा स्त्री. [सं. मीन] मीन, मछली। उ.—सूर स्याम के रंगहि राची टरत नहीं जल तें ज्यों मीन्ही—१४३६।

मीमांसक—वि. [सं.] (१) मीमांसा करनेवाला। (२) मीमांसा शास्त्र का ज्ञाता।

मीमांसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तत्व का विवेचन या

निर्णय। (२) भारतीय छह दर्शनों में दो जो 'पूर्व' और 'उत्तर' मीमांसा कहलाते हैं।

मीर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) प्रधान नेता। (२) धर्माचार्य।

मीरग, मीरगा—संज्ञा पुं. [सं. मृग] हिरन।

मीलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बंद करना, मूँदना। (२) संकुचित करना।

मीलित—वि. [सं.] (१) बंद किया हुआ। (२) सिकोड़ा या संकुचित किया हुआ।

संज्ञा पुं.—एक अलंकार।

मुँगरा—संज्ञा पुं. [हि. मोगरा] नमकीन बूँदी।

मुँगौछी, मुँगौछो, मुँगौरी—संज्ञा स्त्री. [हि. मूँग+बरी] मूँग की बरी।

मुंचना, मुंचनो—क्रि. अ. [सं. मोचन] मुक्त होना।

क्रि. स.—मुक्त करना।

मुंज—संज्ञा पुं. [सं.] मूँज।

मुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर। (२) कटा हुआ सिर। (३) शुंभ दैत्य का सेनापति।

वि.—(१) मुँड़े हुए सिर वाला। (२) नीच।

मुंडन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर को मूँड़ने की क्रिया। (२) द्विजातियों में बालक का एक संस्कार जो सामान्यतया पाँचवें वर्ष किया जाता है।

मुँडना, मुंडनो—क्रि. अ. [सं. मुंडन] (१) सिर के बालों का मूँड़ा जाना। (२) लूटा या ठगा जाना। (३) हानि उठाना।

मुंडमाल, मुंडमाला—संज्ञा स्त्री. [सं. मुंडमाला] कटे हुए सिरों की माला जो शिव या काली के गले में रहती है। उ.—मुंडमाल सिव-ग्रीवा कैसी····। मुंडमाल कैसी तव ग्रीवा—१-२२६।

मुंडमालिनि, मुंडमालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवी काली।

मुंडमाली—संज्ञा पुं. [सं. मुंडमालिन्] शिव जी।

मुंडली—संज्ञा स्त्री. [हि. मुंडा] जिसका सिर मुँड़ा हो। उ.—मुंडली पाटी पारन चहै।

मुंडा—वि. [सं. मुंड] (१) जिसका सिर मुँड़ा हो। (२) जिस (पशु) के सींग न हों।

संज्ञा स्त्री.—एक लिपि जिसमें मात्राएँ आदि नहीं होतीं।

मुँडाइ, मुँड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हि. मुँड़ना] मूँड़ने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

मुँडाना, मुँड़ानो—क्रि. स. [सं. मुंडन] मुंडन कराना।

क्रि. अ.—(१) मूँड़ा जाना। (२) धोखे में धन गँवाना, ठगा जाना।

मुँड़ासा—संज्ञा पुं. [हि. मूँड] साफा, पगड़ी।

मुंडित—वि. [सं.] मुड़ा हुआ।

मुंड़िया—संज्ञा स्त्री. [हि. मूँड़] सिर, मूँड़।

संज्ञा पुं. [हि. मूँड़ना] वह जो सिर मुँड़ाकर किसी जोगी का चेला बन गया हो। उ.—जिनके जोग जोग यह ऊधौ ते मुँड़िया बसैं कासी।

मुंडी—संज्ञा स्त्री. [हि. मूँड़ना] (१) स्त्री जिसका सर मुड़ा हो। (२) विधवा।

संज्ञा पुं.—साधु जिसका सर मुँड़ा हो।

मुँडेरि, मुँड़ेरी—संज्ञा स्त्री. [हि. मुँडेरा] दीवार का ऊपरी भाग जो छत से कुछ उठा रहता है।

मुँडेरा—संज्ञा पुं. [हि. मूँड़] दीवार का वह ऊपरी भाग जो छत से कुछ उठा रहता है।

मुंडो—संज्ञा स्त्री. [हि. मुंडी] (१) स्त्री जिसका सर मुँड़ा हो। (२) विधवा, राँड़।

मुँदना, मुँदनो—क्रि. अ. [सं. मुद्रण] (१) बंद होना। (२) छिपना, लुप्त होना। (३) (छेद आदि) भर जाना।

मुंदरा—संज्ञा पुं. [सं. मुद्रा] (१) कुंडल जो जोगी कान में पहनते हैं। (२) कान का एक आभूषण।

मुँदरिया, मुँदरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मुद्रा] (१) उँगली में पहनने का छल्ला। (२) अँगूठी। उ.—(क) आज्ञा होइ, देउँ कर मुंदरी, कहौं सँदेसो पति को—९-८४। (ख) लाख मुँदरिया जाइगी कान्ह तुम्हारो मोल—११२७। (ग) हाथ पहुँचो बोर कानन जरित मुंदरी भ्राजई—१० उ०-२४।

मुँदाई—क्रि. स. [हि. मुँदाना] बंद करवायी। उ.—हरि तब अपनी आँखि मुँदाई—१०-२४०।

मुँदाए—क्रि. स. [हि. मुँदाना] बंद कराये। उ.—नैकु धीरज धरौ, जियहिं कोउ जिनि डरौ, कहा इहिं सरौ, लोचन मुँदाए—५९६।

मुंशी—संज्ञा पुं. [अ.] (१) लेखक। (२) मुहर्रिर।

मुँह—संज्ञा पुं. [सं. मुख] (१) मुख का विवर।

मुंह आना—मुंह में छाले पड़ना। (१) मुंह का कच्चा—जिसकी बात का विश्वास न हो। (२) जो किसी बात को गुप्त न रखकर सबसे कह देता हो। मुंह का कड़ा—उद्दंडता पूर्वक बातें करनेवाला। मुंह किलना—मुंह से बात या बोल न निकलना। मुंह कीलना—मुंह से बात न निकालने देना। मुंह की बात छिनना—जो बात स्वयं कहने जा रहे हों, वही दूसरे के द्वारा कही जाना। मुंह की बात छीनना—जो दूसरा कहने को हो, वही स्वयं कह देना। मुंह की मक्खी न उड़ा सकना—बहुत ही दुर्बल या अपाहिज होना। मुंह की मिलाना—मुंह देखी या चापलूसी की बातें करना। मुंह मिलवत (हौ)—मुंह देखी या चापलूसी की बातें करते हो। उ.—(क) मोसों तुम मुंह की मिलवत हौ भावति है वह प्यारी—१८६४। (ख) मुंह ही की हमसौं मिलवत, जिय बसत जहाँ मन मोहनि—२०१४। मुंह खराब करना—(१) स्वाद बिगाड़ना। (२) गंदी बात कहना। मुंह खराब होना—(१) स्वाद बिगड़ना। (२) गंदी बातें कही जाना। मुंह खुलना—(१) बोलना। (२) उद्दंडता की बात कहने का आदी होना। मुंह खुलवाना—(१) बोलने को प्रवृत्त करना। (२) कड़ी या उद्दंडता की बातें कहने को बाध्य करना। मुंह खोलकर रह जाना—कुछ कहने को होना, पर लज्जा, संकोच या भय से न कह पाना। मुंह खोलना—(१) बोलना। (२) बुरी या उद्दंडता-भरी बातें कहना। किसी के मुंह चढ़ना—(१) कोई बात हर समय याद आ जाना। (२) किसी के प्यार-दुलार के फलस्वरूप उद्दंड हो जाना। (किसी को) मुंह चढ़ाना—(१) अत्यधिक प्यार-दुलार से किसी को उद्दंड या धृष्ट करना। (२) बहुत प्रिय बनाना। मुंह चलना—(१) खाया जाना। (२) व्यर्थ की बातें या दुर्वचन कहा जाना। मुंह चलाना—(१) भोजन करना। (२) बोलना। (३) गाली देना। (४) काट लेना। मुंह चिढ़ाना—किसी की आकृति या उसके हाव-भाव की नकल बनाकर हँसी उड़ाना या उसको खिझाना।

मुंह चूम कर छोड़ देना—लज्जित करके छोड़ देना। मुंह छूना—(१) ऊपरी मन से या नाम मात्र को करना। (२) दिखावटी बात करना। मुंह (कड़ुआ) जहर होना—मुंह में कड़ुआहट होना। मुंह जुठारना (जूठा करना)—बहुत ही कम खाना। मुंह जोड़ना (जोरना)—कानाफूसी करना। मुंह डालना—(किसी पशु आदि का) खाने के पदार्थ को एक-दो कौर खाकर जूठा कर देना। मुंह तक आना—कहने को होना। मुंह थकना—बहुत बोलने से थक जाना। मुंह थकाना—बहुत बोलकर जबान थका देना। मुंह देना—(१) (किसी पशु आदि का) खाद्य पदार्थ को एक-दो कौर खाकर जूठा कर देना। (२) बहुत लाड़-प्यार करना। मुंह न दीजिए—बहुत लाड़प्यार न कीजिए। उ.—कबहूँ बालक मुंह न दीजिए मुंह न दीजिए नारि—१०९९। मुंह पकड़ना—कुछ बोलने न देना। मुंह पर न रखना—जरा भी न खाना। मुंह पर बात आना—(१) कुछ कहने की इच्छा होना। (२) सामने ही या उपस्थिति में कोई प्रसंग उठना या चर्चा चलना। (३) कुछ कहना। मुंह पर मोहर करना—बोलने न देना। मुंह पर लाना—(१) वर्णन करना। (२) कहने को होना। मुंह पर हाथ रखना—बोलने न देना। मुंह पसारकर दौड़ना—कुछ पाने के लालच में आगे बढ़ना। मुंह पसारकर रह जाना—(१) बहुत चकित या हक्का-बक्का रह जाना। (२) लज्जित होकर रह जाना। मुंह पाना—लाड़-प्यार पाना, पार्श्ववर्ती और प्रिय बनना। मुंह-पेट चलना—कै-दस्त होना। मुंह फटना—(१) मुंह का बहुत ज्यादा खुलना। (२) चूने आदि से मुंह कट जाना। मुंह फाड़कर कहना—बेहया बनकर कहना। मुंह फैलाना—(१) मुंह को बहुत खोलना। (२) जंम्हाई लेना। (३) अपनी ही भूल-चूक के होने पर भी निर्लज्जता से हँस देना। (४) भद्दे ढंग से हँसना। (५) अधिक प्राप्ति की इच्छा या हठ करना। मुंह फोड़कर कहना—निर्लज्ज बनाकर कहना। मुंह बंद करना—बोलने न देना। मूंह बंद कर लेना—कुछ न बोलना। मुंह बंद होना—चुप हो जाना। मुंह बांधकर बैठना—कुछ न बोलना।

मुँह बाँधना (बाँध देना)—बोलने न देना। मुँह बाना—(१) मुँह को बहुत खोलना या फैलाना। (२) जम्हाई लेना। (३) अपनी भूल-चूक होने पर भी निर्लज्जता से हँस देना। (४) भद्दे ढंग से हँसना। (५) अधिक प्राप्ति के लिए इच्छा या हठ करना। फिरत रहत मुँह बाए—अधिकाधिक (धन की) प्राप्ति के चक्कर में फिरता रहता हूं। उ.—निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए अहमिति जनम बिगोइसि—१-३३३। मुँह बिगड़ना—मुँह का स्वाद खराब होना। मुँह बिगाड़ना—मुँह का स्वाद खराब करना। मुँह भर आना—(१) किसी चीज को देखकर ललचा जाना। (२) जी मिचलाना। मुँह तक (भरकर)—(१) ऊपर तक, लबालब। (२) जितना जी चाहे। (३) भली भाँति। मुँह भर बोलना—प्यार-सम्मान से बात करना। मुँह भरना—(१) खिलाना। (२) रिश्वत देना। (३) बोलने से रोकना। मुँह मारना—(१) खाने की चीज में मुँह लगाकर जूठा कर देना। (२) दाँत से काट लेना। (किसी का) मुँह मारना—(१) बोलने न देना। (२) रिश्वत देना। (३) बढ़कर होना। मुँह मीठा करना—(१) मिठाई खिलाना। (२) कुछ देकर प्रसन्न होना। मुँह मीठा होना—(१) खाने को मिठाई मिलना। (२) लाभ या प्राप्ति होना। (३) मँगनी होना। (बात) मुँह में आना—कहने की इच्छा होना। मुँह में खून या लहू लगना—चाट या चस्का पड़ना। मुँह में जबान होना—कहने में समर्थ होना, कहने का साहस होना। मुँह में तिनका दबाना (लेना)—बहुत दीनता से बोलना। मुँह में पड़ना—खाने को मिलना। (बात का) मुँह में पड़ना—मुँह से कुछ कहा जाना। मुँह में पानी भर आना—(१) कोई आकर्षक, स्वादिष्ट या अच्छी चीज देखकर उसको पाने के लिए बहुत ललचाना। (२) ईर्ष्या होना। मुँह में बात करना (कहना या बोलना)—इतना धीरे बोलना कि किसी को सुनायी न देना। मुँह में लगाम देना—समझ-बूझकर बोलना। मुँह में लगाम न होना—बिना सोचे-समझे जो मुँह में आये कह डालना। मुँह लगाना—खाना, चखना। मुँह सँभालना—(१) सोच-समझकर मुँह से बात निकालना। (२) गाली-गलौज न करना। मुँह सीना—बिलकुल चुप रहना। मुँह सूखना—बहुत प्यास लगना। मुँह से दूध की बू आना (टपकना)—वयस्क का बालक-जैसा अनजान बनना। मुँह से निकालना—कहना। मुँह से फूटना—कहना (व्यंग्य या खिझलाहट)। मुँह से फूल झड़ना—(१) सुंदर और प्रिय बातें करना। (२) असुंदर और अप्रिय बात कहना (व्यंग्य या खिझलाहट)। मुँह से बात छीनना—जो दूसरा कहने जा रहा हो, वह स्वयं कह देना। मुँह से बात न निकालना—लज्जा, क्रोध या भय से कुछ बोल न सकना। मुँह से भाप (तक) न निकलना—भय के मारे चूँ तक न कर सकना। मुँह से लार गिरना (चूना, टपकना, बहना)—कोई सुंदर, स्वादिष्ट या आकर्षक वस्तु देखकर उसे पाने को बहुत लालायित होना। मुँह से लाल उगलना—(१) प्रिय और रुचिकर बात कहना। (२) अप्रिय और अरुचिकर बात कहना (व्यंग्य या खिझलाहट)।

(२) चेहरा, मुखमंडल।

मुहा०—अपना सा मुँह लेकर रह जाना—लज्जित होकर चुप या निश्चेष्ट हो जाना। इतना सा मुँह निकल आना—(१) बहुत सुस्त होना। (२) हानि, दुख, लज्जा आदि के कारण बहुत उदास होना। मुँह अँधेरे—बहुत सबेरे। (किसी के) मुँह आना—किसी से तर्क कुतर्क या गाली-गलौज करना। मुँह उजला होना—बात या इज्जत बनी रह जाना। मुँह उजाले (उठे)—बहुत सबेरे। मुँह उठना—किसी ओर चलने की इच्छा होना। मुँह उठाये चले जाना—बेधड़क चले जाना। मुँह उठाकर कहना—बिना सोचे-समझे बक देना। मुँह उतरना—(१) दुर्बलता या रोग से चेहरा सुस्त होना। (२) हानि या दुख से उदास हो जाना। (अपना) मुँह काला करना—अपनी बदनामी करना। (दूसरे का) मुँह काला करना—उपदेश दे कर त्यागना। मुँहकी खाना—(१) दुर्दशा या बेइज्जती कराना। (२) मुँहतोड़ उत्तर सुनना। (३) लज्जित या शर्मिंदा होना। (४) धोखा खाना। (५) बुरी तरह पराजित होना। मुँह के बल गिरना—ठोकर खाना,

आघात सहना । मुंह खोलना-घूंघट या परदा हटाना । मुंह चढ़ाना—आकृति से अप्रसन्नता या असंतोष प्रकट करना । मुंह चाटना—खुशामद या चापलूसी करना । मुंह छिपाना—लज्जा के कारण किसी के सामने न आना । मुंह झटक जाना—रोग या दुर्बलता से चेहरा सुस्त होना । मुंह झुलसना—लपट या लू आदि से चेहरा बहुत मलिन हो जाना । मुंह झुलसाना—(१) लपट या आग से चेहरा फूंकना (गाली) । (२) शव का दाह-कर्म करना । (३) कुछ ले-देकर झगड़ालू व्यक्ति से पीछा छुड़ाना । (अपना) मुंह टेढ़ा करना—अप्रसन्नता या असंतोष का भाव चेहरे पर लाना । (दूसरे का) मुंह टेढ़ा करना—(१) बहुत मारना-पीटना । (२) कटु बात कहना या उत्तर देना । मुंह ढांकना—किसी संबंधी के मरने पर शोक करना । (किसी का) मुंह ताकना—(१) एकटक देखना । (२) कुछ पाने की आशा से देखना, आश्रित या सहारे होना । (३) विवशता से देखना । (४) चकित होकर देखना । मुंह ताकना—काम-काज छोड़ कर चुपचाप बैठ रहना । मुंह तोड़कर जवाब देना—कटु या चुभती हुई बात कहना । मुंह तोड़ना—(१) बहुत मारना-पीटना । (२) कटु या चुभती हुई बात कहना । मुंह थुथाना—अप्रसन्न या असंतुष्ट होकर किसी से न बोलना । मुंह दिखाना—सामने आना । मुंह देखकर उठना—सोकर उठते ही किसी का दर्शन पाना । मुंह देखकर बात कहना—खुशामद करना । (किसी का) मुंह देखना—(१) किसी के सामने जाना । (२) चकित होकर देखना । (किसी का) मुंह देखकर—(१) किसी के सहारे या बल-बूते पर । (२) किसी को प्रसन्न या संतुष्ट करने के उद्देश्य से । मुंह धो रखना—प्राप्ति के संबंध में कोई आशा न रखना (व्यंग्य) । मुंह न देखना—घृणा या क्रोध के कारण कभी न मिलना-जुलना । मुंह न फेरना (मोड़ना)—(१) दृढ़ता के सामने डटे रहना । (२) अस्वीकार न करना । (इतना सा) मुंह निकल आना—(१) रोग या दुर्बलता से चेहरा सुस्त हो जाना । (२) हानि, दुख या अपमान से उदास हो जाना । मुंह पर—सामने ही । मुंह पर चढ़ना—सामना या मुकाबला करना । मुंह पर थूकना—बहुत अपमानित और लज्जित करना । मुंह पर नाक न होना—बहुत निर्लज्ज होना । मुंह पर पानी फिर जाना—(१) चेहरे पर रौनक या तेज आ जाना । (२) प्रसन्नता या संतोष का भाव प्रकट होना । मुंह पर फेंकना (फेंक मारना)—बहुत अप्रसन्न या असंतुष्ट होकर कोई चीज देना । मुंह पर से बरसना—आकृति से जान पड़ना या प्रकट होना । मुंह पर बसंत खिलना (फूलना)—(१) चेहरा पीला पड़ जाना । (२) भयभीत या उदास हो जाना । मुंह पर मारना (मार देना)—बहुत असंतुष्ट या अप्रसन्न होकर कोई चीज देना । मुंह दर मुंह—आमने-सामने । मुंह पर मुरदनी छाना (फिरना)—(१) चेहरा पीला पड़ जाना । (२) भयभीत, लज्जित या उदास होना । (३) अंत समय निकट होना । मुंह पर हवाई उड़ना (छूटना)—भय, लज्जा या अपमान से चेहरा बहुत उदास हो जाना । (किसी का) मुंह पाना—किसी को अपने अनुकूल समझना, सम्मान और प्रेम का व्यवहार पाना । मुंह पाइ—लाड़-प्यार और सम्मान पाकर, अनुकूल समझकर । उ.—नेक ही मुंह पाइ फूली अति गई इतराइ—२६८० । मुंह पावति—सम्मान और प्रेम का व्यवहार पाती है, अनुकूल समझती है । उ.—मुंह पावति तब ही लौं आवति और लावति मोहि—७२३ । मुंह पीट लेना—बहुत अधिक क्रोध, दुख, पराजय या असफलता की स्थिति में होना । मुंह फक होना—भय या आशंका से चेहरा बहुत उदास हो जाना । मुंह फिरना (फिर जाना)—सामने से हट या भाग जाना । मुंह फुलाकर बैठना (फुलाना)—असंतोष या अप्रसन्न होकर चुप बैठना । मुंह फूंकना—(१) मुंह में आग लगाना (गाली) । (२) शव का दाह-कर्म करना । (३) किसी झगड़ालू को कुछ ले-देकर हटाना । मुंह फूलना—अप्रसन्नता या असंतोष होना । (किसी का) मुंह फेरना—पराजित कर देना । (अपना) मुंह फेरना—(१) उपेक्षा करना । (२) किसी की ओर से ध्यान हटा लेना । मुंह बन जाना (बनना)—चेहरे से असंतोष या अप्रसन्नता

प्रकट होना । मुंह बनवाना—किसी बड़े कार्य या बड़ी प्राप्ति की पात्रता अपने में लाना (व्यंग्य) । मुंह बनाना—आकृति से असंतोष सूचित करना । मुंह बिगाड़ना—(१) चेहरे (विशेषतः शव के चेहरे) की आकृति खराब होना। (२) चेहरे पर अप्रसन्नता या असंतोष का भाव आना । (दूसरे का मुंह बिगाड़ना)—बहुत मारना-पीटना । (अपना) मुंह बिगाड़ना—असंतोष या अप्रसन्नता का भाव झलकाना । मुंह बुरा बनाना—असंतोष या अप्रसन्नता सूचित करना । मुंह में कालिख पुतना (लगना)—बहुत बदनामी होना, कलंक लगना । मुंह में कालिख पोतना (लगाना)—कलंक लगाना, बहुत बदनामी करना । (अपना) मुंह मोड़ना—(१) उपेक्षा प्रकट करना । (२) किसी ओर से ध्यान हटा लेना । (३) अस्वीकार कर देना । दूसरे का मुंह मोड़ना—पराजित कर देना । (किसी के) मुंह लगना—(१) किसी का बहुत लाड़-प्यार देखकर शोख या उद्दंड हो जाना । (२) सवाल-जवाब या तर्क-कुतर्क करना । मुंह लगाना—(१) लाड़-प्यार करके शोख या उद्दंड बनाना । (२) ध्यान देना, सहर्ष स्वीकार करना । मुंह न लगाई—ध्यान भी न दिया, सर्वथा उपेक्षा की । उ.—अष्टसिद्धि बहुरी रहँ आई । रिषभदेव ते मुंह न लगाई—५-२ । मुंह लपेटकर पड़ना (पड़ रहना)—बहुत दुखी हो जाना । मुंह लाल करना—(१) मुंह पर कई थप्पड़ या चाँटे मारना । (२) पान से सत्कार करना । मुंह लाल होना—क्रोध से चेहरा तमतमा जाना । मुंह सफेद होना—भय या लज्जा से चेहरे का रंग उड़ जाना । मुंह सिकोड़ना—अप्रसन्नता या असंतोष प्रकट करना । (अपना) मुंह सुजाना—असंतोष या अप्रसन्नता सूचित करने के लिए मौन हो जाना । (किसी का) मुंह सुजाना—मुंह पर बहुत थप्पड़ मारना । मुंह सुर्ख होना—क्रोध से चेहरा उदास हो जाना । मुंह सूखना—भय, लज्जा या अपमान से चेहरा उदास हो जाना ।

(४) किसी वस्तु का ऊपरी खुला हुआ भाग । (५) छेद, सूराख । (६) लिहाज, मुरव्वत ।

मुहा०—मुंह करना—लिहाज या मुरव्वत करना । मुंह देखे का—ऊपरी मन का, दिखावटी । मुंह पर जाना—लिहाज या मुरव्वत करना । मुंह मुलाहजे का—जान-पहचान का । मुंह रखना—लिहाज या मुरव्वत करना ।

(७) योग्यता, सामर्थ्य ।

मुहा०—(अपना) मुंह तो देखो—अपनी योग्यता या पात्रता का ध्यान तो रखो (व्यंग्य) । मुंह देखकर बात करना—योग्यता या पात्रता समझकर वैसी ही बात करना ।

(८) हिम्मत, साहस ।

मुहा०—मुंह पड़ना—हिम्मत या साहस होना ।

(९) ऊपर की सतह या किनारा ।

मुहा०—मुंह तक आना (भरना)—लबालब भरना ।

लोकोक्ति—छोटे मुंह बड़ी बात कहत (कही)—अपनी अवस्था, स्थिति या योग्यता को भुलाकर लंबी-चौड़ी बातें करता है । उ.—(क) छोटे मुंह बड़ी बात कहत, अबहीं मरि जैहै—५८९ । (ख) छोटे मुंह बड़ी बात कही किनि आपु सँभारे—१०१६ ।

मुंह अखरी—वि. [हिं. मुंह+अक्षर] जबानी, मौखिक ।

मुंह चोर—वि. [हिं. मुंह+चोर] सामने न आनेवाला ।

मुंहछुआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुंह+छूना] ऊपर मन से या केवल नाम को कुछ कहना ।

मुँहछुट—वि. [हिं. मुंह+छूटना] जो मन में आ जाय वही बेसमझे-बूझे कह डालने वाला ।

मुँहजोर—वि. [हिं. मुंह + जोर] (१) बकवादी ।

(२) मुंहफट । (३) शीघ्र ही वश में न आनेवाला, उद्दंड ।

मुँहजोरी—वि. [हिं. मुंहजोर] 'मुंहजोर' होने का भाव ।

मुँहदिखराई, मुँहदिखरावनी, मुँहदिखाई, मुँहदेखनी, मुँहदेखरावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुंह+दिखाई] नयी वधू का मुंह देखने की क्रिया, भाव या उसके फलस्वरूप दिया जानेवाला धन ।

मुँहदेखा—वि. [हिं. मुंह+देखना] जो हृदय से न हो, दिखावटी, ऊपरी भाव का ।

मुँहपड़ा—वि. [हिं. मुंह+पड़ना] प्रसिद्ध ।

मुँहफट—वि. [हिं. मुंह+फटना] बेसमझे-बूझे जो भी मन में आ जाय, कह देनेवाला।

मुँहबोला—वि. [हिं. मुंह+बोलना] जिससे रक्त का नहीं, केवल वचन या बात का संबंध हो।

मुँहभराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुंह+भरना] (१) मुंह भरने की क्रिया, भाव या पारिश्रमिक। (२) रिश्वत, घूस।

मुँहमाँगा—वि. [हिं. मुंह+माँगना] मनचाहा।

मुँहमाँगे—वि. बहु. [हिं. मुंहमांगा] इच्छा के अनुकूल। उ.—तो देखत बलि खाइगो मुंहमांगे फल देइ-९०८।

मुँहमाग्यो, मुँहमाग्यौ—वि. [हिं. मुंहमांगा] मनचाहा, इच्छानुकूल। उ.—(क) जो तुम मुंहमांग्यो फल पावहु—१०१६। (ख) आजु हरि पायो है मुंह माग्यो—१९७२।

मुँहा-चाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुंह+चाहना] दिखा-देखी।

मुँहामुँह—क्रि. वि. [हिं. मुंह+मुंह] लबालब, भरपूर।

मुँहासा—संज्ञा पुं. [हिं. मुंह+आसा] मुंह पर युवावस्था में निकलनेवाली फुंसियाँ।

मुअना, मुअनो—क्रि. अ. [हिं. मरना] मरना, मृत होना।

मुई—क्रि. अ. [हिं. मुअना] नष्ट हो गयी, रह न गयी। उ.—हरि-दरसन की साध मुई—१४३३।

मुए—क्रि. अ. [हिं. मुअना] मर गये। उ.—(क) बूड़ि मुए, कै कहुँ उठि गए—१-२८४। (ख) अर्जुन कह्यौ, सबै लरि मुए—१-२८८।

मुऐं—क्रि. अ. [हिं. मुअना] मरने (पर), मर जाने (से)। उ.—उनके मुऐं हिऐं सुख होइ—१-२८९।

मुकट—संज्ञा पुं. [सं. मुकुट] मुकुट।

मुकटा—संज्ञा पुं. [देश.] रेशमी धोती।

मुकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्त] (१) मुक्ति, मोक्ष। (२) छुटकारा।

मुकता—संज्ञा पुं. [सं. मुक्ता] मोती।

वि. [हिं. अ+मुकना] बहुत, अधिक, पर्याप्त।

मुकताइ, मुकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्ति] (१) मुक्त होने का भाव। (२) मुक्ति पाने की पात्रता।

मुकताफल, मुकताहल—संज्ञा पुं. [सं. मुक्ताफल] मोती। उ.—सूरदास मुकताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनही—३०१३।

मुकति—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्ति] (१) मुक्ति, मोक्ष। (२) छुटकारा।

मुकदमा—संज्ञा पुं. [अ. मुक़द्दमा] अभियोग।

मुकना, मुकनो—संज्ञा पुं. [हिं. मकना] (१) हाथी जिसके दांत न हों। (२) पुरुष जिसके मूंछ न हो।

क्रि. अ. [सं. मुक्त] मुक्त होना।

मुकरना—क्रि. अ. [सं. मा=न, नहीं+करना] कही हुई बात या काम से हट जाना, नटना।

वि.—कुछ कहकर मुकर जानेवाला।

मुकरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुकरना] (१) मुकरने या नटने की क्रिया। (२) चार चरणों की एक कविता जिसके तीन चरणों का आशय दो जगह घट सकता है और चौथे चरण में किसी अन्य आशय को सूचित करके या अन्य पदार्थ का नाम लेकर, कही हुई बात से जैसे 'मुकरा' जाता है।

मुकरनो—क्रि. अ. [हिं. मुकरना] कही हुई बात या काम से हट जाना।

वि.—कुछ कहकर मुकर जाने वाला।

मुकरवा—वि. [हिं. मुकरना] कहकर मुकर या नट जाने वाला। उ.—लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, बड़ो पढ़ैलो, लूटा—१-१८६।

मुकराए—क्रि. स. [हिं. मुकराना] मुक्त करवा दिया। उ.—(क) हमैं नंदनंदन मोल लिए। जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किए—१-१७१। (ख) अस्वत्थामा कौं गहि ल्याए। द्रौपदि, सीस मूंड़ि मुकराए—१-२८९।

मुकराना, मुकरानो—क्रि. स. [हिं. मुकरना] मुकरने को प्रवृत्त करना।

क्रि. स. [सं. मुक्त+हिं. करना] मुक्त करना।

मुकरायो, मुकरायौ—क्रि. स. [हिं. मुकराना=मुक्त करना] मुक्त कराया, छुटकारा दिलाया। उ.—(क) ग्राह गहे गजपति मुकरायो, हाथ चक्र लै धायो—१-१०। (ख) बरुन पास ब्रजपति मुकरायो—१-१७।

मुकरावन—वि. [हिं. मुकराना=मुक्त कराना] मुक्त कराने वाले। उ.—गजहित धावन, जन-मुकरावन, बेद बिमल जस गावत—८-४।

मुकरि, मुकरी —संज्ञा स्त्री. [हिं. मुकरना, मुकरी] चार चरण की एक कविता जिसके प्रथम तीन चरणों के दो आशय होते हैं और चौथे चरण में एक का नाम लेकर दूसरे से जैसे मुकरा जाता है।

मुकर्रर—वि. [अ. मुक़र्रर](१) निश्चित। (२) नियुक्त।

मुकलाना, मुकलानो—क्रि. स.[सं. मुक्त या मुकलित ?] (१) खोलना। (२) छोड़ना।

मुकाना, मुकानो—क्रि. स. [सं. मुक्त] (१) मुक्त कराना, छुड़ाना। (२) समाप्त या खत्म कराना।

क्रि. अ.—(१) छूटना। (२) समाप्त होना।

मुकाबला—संज्ञा पुं. [अ. मुक़ाबला] (१) मुठभेड़। (२) बराबरी। (३) तुलना। (४) मिलान। (५) लड़ाई।

मुकाम—संज्ञा पुं. [अ. मुक़ाम](१) पड़ाव। (२) ठहरना।

मुकित—वि. [सं मुक्त] स्वतंत्र, मुक्त।

मुकियाना, मुकियानो—क्रि. स. [हिं. मुक्की+इयाना] (१) हलके हलके मुक्के या घूंसे लगाकर शरीर के अंगों की शिथिलता दूर करना। (२) आटा गूँधकर मुक्कियों से दबाना। (३) घूँसे मारना।

मुकुंद—संज्ञा पुं. [सं.] मुक्तिदाता विष्णु। उ.—सूरदास प्रभु सब सुख-दाता दीनानाथ मुकुंद मुरारी—१-२२।

वि.—मुक्ति देनेवाले।

मुकु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुक्ति। (२) छुटकारा।

मुकुट—संज्ञा पुं. [सं.] राजाओं का शिरोभूषण। उ.—(क) कुंडल-मुकुट प्रभा न्यारी—१-६९। (ख) मुकुट कुंडल पीत पट छबि अनुज भ्राता स्याम—२५६५।

मुकुटी—वि. [सं. मुकुटिन्] जो मुकुट पहने हो।

मुकुटेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक शिवलिंग। (२) एक तीर्थ।

मुकुता—वि. [सं. मुक्त] स्वतंत्र, मुक्त।

मुकुता—संज्ञा पुं. [सं. मुक्ता] मोती। उ.—निरखि कोमल चारु मूरति हृदय मुकुता-दाम—२५६५।

संज्ञा स्त्री.—राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो।....। अमला अबला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारी—१५८०।

मुकुति—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्ति] (१) मुक्ति, मोक्ष। (२) छुटकारा।

मुकुर—संज्ञा पुं. [सं.] आइना, दर्पण।

मुकुल—संज्ञा पुं. [सं.] कली।

मुकुलना, मुकुलनो, मुकुलाना, मुकुलानो—क्रि अ. [हिं. मुकुल] (१) (कली का) खिलना। (२) बिखरना, छितरना।

मुकुलित—क्रि. अ. [हिं. मुकुलना] खिलता है।

प्र०—मुकुलित भए—खिल गये। उ.—मुकुलित भए कमल-जाल—६१९।

वि. [सं.] (१) जिसमें कलियाँ आयी हों। (२) खिला हुआ। (३) कुछ कुछ खुलता हुआ। उ.—मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि रूप-सुधा सियराइ—२८११। (४) झपकता हुआ (नेत्र)। (५) बिखरा या खुला हुआ। (क) मुकुलित कच तन घन कि ओट ह्वै अँसुवन चीर निचावति—१८००। (ख) मुकुलित केस सुदेस देखिअत नील बसन लपटाए—१० उ०-३८। (६) खिलती या बढ़ती हुई (आयु)। उ.—मुकुलित वय नव किसोर—२३६२।

मुकुली—वि. [सं. मुकुलिन्] जिसमें कलियाँ आयी हों।

मुकुले—क्रि. अ. [हिं. मुकुलना] खिले, विकसित हुए। उ.—मुकुले कमल—१६०८।

मुकेरना, मुकेरनो—क्रि. स. [देश.] नियंत्रण में रखना।

मुकेरैं—क्रि. स. [हिं. मुकेरना] रोके, नियंत्रित किये। उ.—मन बस होत नाहिनै मेरौ।.....। कहा करौं यह चरचौ बहुत दिन अंकुस बिना मुकेरैं—१-२०६।

मुक्का—संज्ञा पुं. [सं. मुष्टिका] घूँसा।

मुहा०—मुक्का (सा) लगना—हृदय पर किसी-अप्रिय बात या कार्य का आघात लगना।

मुक्की—संज्ञा पुं. [हिं. मुक्का] (१) घूँसा। (२) गूँधे हुए आटे को मुट्ठियों से दबाना।

मुक्त—वि. [सं.] (१) जिसे मुक्ति या मोक्ष मिल गयी हो। (२) बंधन से छूटा हुआ। उ.—मागध हत्यो मुक्त नृप कीन्हे—१-१७।

संज्ञा पुं. [सं. मुक्ता] मोती। उ.—कोटि मुक्त वारौं मुसुकनि पर—३१५४।

मुक्तकंठ—वि. [सं.] (१) चिल्लाकर बोलनेवाला। (२) निसंकोच कहनेवाला। (३) शुद्ध हृदय से कहनेवाला।

मुक्तक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक अस्त्र। (२) स्फुट या उद्‌भट काव्य जो प्रसंग से पूर्ण हो।

मुक्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मुक्त होने का भाव।

मुक्तहस्त—वि. [सं.] खुले हाथ से देनेवाला, बहुत उदार और बड़ा दानी।

मुक्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मोती।

मुक्ताहल—संज्ञा पुं. [सं.] मोती।

मुक्तामाल, मुक्तामाला—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्ता+माला] मोती की माला। उ.—कंठ मुक्तामाल—१-३०७।

मुक्तावन—वि. [सं. मुक्त] मुक्त करनेवाले। उ.—भक्त हेत देह धरन, पुहुमी को भार हरन जनम जनम मुक्तावन—१०-२५१।

मुक्तावलि, मुक्तावली—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्ता+अवलि] मोती की माला। उ.—कंचन मुकुट कंठ मुक्तावलि मोर पंख छबि छावै—१५४९।

मुक्ताहल—संज्ञा पुं. [सं. मुक्ताफल] मोती। उ.—भूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै—३१०५।

मुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बंधन आदि से छूटने की क्रिया या भाव। (२) दायित्व आदि से छूटने की क्रिया या भाव। (३) जन्म-मरण से छूटने का भाव, मोक्ष। उ.—अद्‌भुत राम-नाम के अंक। धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू ताटंक—१-९०।

मुक्तिक्षेत्र, मुक्तिछेत्र—संज्ञा पुं. [सं. मुक्तिक्षेत्र] काशी, वाराणसी।

वि.—जहाँ मुक्ति प्राप्त हो सके। उ.—बन बारानसि मुक्तिक्षेत्र है—१-३४०।

मुक्तेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] एक शिवलिंग।

मुख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुंह, आनन।

मुहा०—अपने ही मुख बड़े कहाना—अपनी प्रशंसा स्वयं करना। अपने ही मुख बड़े कहावत—अपनी बड़ाई आप ही करते हो, अपने मुँह ही मियाँ मिट्ठू बनते हो। उ.—अपने ही मुख बड़े कहावत हमहूँ जानति तुमकौं—२४९५। जीवत मुख चितए—मुख देखकर ही जीवित रहता है। उ.—चिरंजीव रहौ सूर नंद-सुत जीवत-मुख चितए—३१४१। मुख जोना—आश्रित या सहारे होना। बिषयिनि के मुख जोए—विलास-वासना में ही लिप्त रहा। उ.—तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै बिषयिनि के मुख जोए—१-५२। मुख जोवै—मुँह ताकता है। उ.—समुझि समुझि गुह आरति अपनी धर्मपुत्र मुख जोवै—१-२५९। (किसी के) मुख न समाना—रोक न पाना, किसी का मुख बंद न कर पाना। काहू मुख न समाउँ—किसी का मुख बंद नहीं कर पाती। उ.—सुनि न जात घर घर को घेरा काहू मुख न समाउँ—१२-२२। मुख मोड़ना (मारना)—मुँह फेर लेना, पूर्व संबंध की जरा भी परवाह न करके बिलकुल ध्यान हटा लेना। मोरि रहै मुख—मुख मोड़ लेती है, पूर्व संबंध को बिलकुल भुलाकर सर्वथा उपेक्षा करती है। उ.—चलत न काऊ संग चलै, मोरि रहै मुख नारि—२-२९। मोरि मुख—संबंध को सर्वथा भुलाकर, उपेक्षा करके। उ.—चलत रही चित चोरि, मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ—२-३०। अब न बनै मुख मोरै—अब उपेक्षा नहीं कर सकते, अब उपेक्षा करने से काम नहीं बन सकता। उ.—जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, सरय कहत अब हौं रे। सूरदास प्रभु पछिले खेवा अब न बनै मुख मोरे—४८८। मुख सँभाल कर बोलना—परिस्थिति और व्यक्ति देखकर उचित बात करना। मुख सँभारि बोलत नहिं बात—परिस्थिति और व्यक्ति देखकर उचित बात नहीं करती, मर्यादा और शिष्टाचार का ध्यान रखकर नहीं बोलती। उ.—ये सब ढीठ गरब गोरस कैं, मुख सँभारि बोलति नहिं बात—१०-३०८।

(२) द्वार, दरवाजा। (३) नाटक की एक संधि। (४) आदि, आरंभ। (५) किसी वस्तु के आगे या पहले आनेवाली वस्तु।

वि.—मुख्य, प्रधान।

मुखड़ा,—संज्ञा पुं. [सं. मुख+हिं. ड़ा] मुख, आनन।

मुखपट—संज्ञा पुं. [सं.] घूँघट, अवगुंठन।

मुखबंध, मुखबंधन—संज्ञा पुं. [सं.] ग्रंथ की भूमिका।

मुखभूषण, मुखभूषन—संज्ञा पुं. [सं. मुखभूषण] पान।

मुखमाँगा, मुखमाँगो—वि. [सं. मुख+हिं. माँगना] जो माँगा गया हो, इच्छित, अभीष्ट। उ.—मुखमाँगो

पैहौ सूरज प्रभु साहुहिं आनि दिखावहु—३३४० ।

मुखर—वि. [सं.] (१) अप्रिय या कटु भाषी । (२) बोलने वाला, बोलता हुआ ।

मुखरना, मुखरनो—क्रि. स. [सं. मुखर] बोलना ।

मुखरा—संज्ञा पुं. [हिं. मुखड़ा] मुख, आनन ।

मुखरित—वि. [सं. मुखर] बोलती या बजती हुई । उ.—कटि पट पीत मेखला मुखरित, पाइनि नूपुर सोहै—४५१ ।

प्र०— मुखरित है—(स्वर) निकलता है, बोलता है । उ.—मनु मधुकर बैठ्यो अंबुज पर मुखरित है सुर भैनो—सारा० १०५५ ।

मुखवासिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती ।

मुखस्थ—वि. [सं.] जो कंठ हो, कंठस्थ ।

मुखाग्र—वि. [सं.] जो कंठ हो, कंठस्थ ।

मुखापेक्षी—वि. [सं. मुखापेक्षिन्] दूसरों के सहारे या आश्रित रहनेवाला, पराश्रित ।

मुखारी—संज्ञा स्त्री. [सं. मुख] मुख-शुद्धि के लिए दतौन आदि करने की क्रिया । उ.—(क) दतवनि लै दोउनि करी मुखारी—४०७ । (ख) करी मुखारी अतुरई—१५४० ।

मुखिया—संज्ञा पुं [सं. मुख्य+इया] (१) नेता, प्रधान, अगुआ । (२) वल्लभ-संप्रदायी मंदिरों में पूजन करने और भोग लगानेवाला व्यक्ति ।

मुख्य—वि. [सं.] प्रधान, श्रेष्ठ ।

मुख्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रधानता, श्रेष्ठता ।

मुगदर, मुग्दर—संज्ञा पुं. [सं. मुग्दर] लकड़ी की 'जोड़ी' जिसे घुमाकर व्यायाम किया जाता है ।

मुगध—वि. [सं. मुग्ध] (१) मोह या भ्रम में पड़ा हुआ । (२) आसक्त, मोहित । उ.—वै किसोर कमनीय मुगध मैं लुब्धत हूं न डरी—१४५० ।

मुगल—संज्ञा पुं. [फ़ा. मुगल] मुसलमानों का एक वर्ग ।

मुगलई, मुगलाई—वि. [हिं. मुगल] मुगल-जैसा ।

मुगलानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुगल] मुगल स्त्री ।

मुगुध—वि. [सं.] मोह या भ्रम में पड़ा हुआ, मूढ़ । उ.—सुनु री ग्वारि मुगुध गँवारि—११९१ ।

मुंघम—वि. [देश.] जो (बात) धीरे या संकेत से कही जाय, जो (काम) कम खर्चे में चुपचाप कर लिया जाय ।

मुग्ध—वि. [सं.] (१) भ्रम या मोह में पड़ा हुआ, मूढ़ । उ.—(क) मूरख मुग्ध अजान मूढ़मति नाहीं कोऊ तेरो—१—३१९ । (ख) ऐसे प्रिय सो मान करति है तो सो मुग्ध न दूजी—२२७५ । (२) सुंदर । (३) नया । (४) आसक्त, मोहित ।

मुग्धकर—वि. [सं.] मुग्ध करनेवाला, मोहक ।

मुग्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मूढ़ता । (२) सुंदरता । (३) मोहित या आसक्त होने का भाव ।

मुग्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नायिका जो युवती तो हो पर जिसमें काम-चेष्टा न हो ।

मुचकुन्द, मुचुकुन्द—संज्ञा पुं. [सं. मुचुकुंद] मांधाता का पुत्र जो देवताओं से गहरी निद्रा का वर माँगकर बहुत समय तक एक गुफा में सोता रहा । जब श्री कृष्ण का पीछा करता हुआ, जरासंध का सहायक कालयवन वहाँ आया, तब श्रीकृष्ण उसे अपना पीताम्बर उढ़ाकर चले गये । कालयवन ने सोते हुए मुचुकुंद को श्री कृष्ण समझ कर लात मारी । निद्रा से इस प्रकार जगाये जाने से क्रुद्ध होकर मुचुकुंद ने इस प्रकार कालयवन को देखा कि वह वहीं भस्म हो गया । उ.—कालजवन मुचुकुंदहि सौं हरि भसम करायौ—ना० ४९८१ ।

मुचना, मुचनो—क्रि. स. [सं. मोचन] मुक्त होना ।

क्रि. अ. [हिं. मोच] अंग में मोच आना ।

मुचाई—क्रि. स. [हिं. मूंदना] (आँख) बंद करवायी ।

संज्ञा स्त्री.—(आँख) मुंदाने की क्रिया ।

यौ.—आँखि मुचाई—आँख मूंदने का खेल, आँख मिचौनी । उ.—इहँ हरि खेलत आँख मुचाई–३४०९ ।

मुछन्दर—वि. [हिं. मूंछ] बड़ी बड़ी मूंछोंवाला ।

मुजरा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) धन जो किसी धनराशि से काट लिया गया हो । (२) बड़े को किया गया अभिवादन । (३) वेश्या का गान जिसमें वह नृत्य न करे ।

मुजरिम—संज्ञा पुं. [अ.] अभियुक्त, अपराधी ।

मुझ—सर्व. [हिं. मुझे] 'मैं' का रूप जो कर्त्ता और संबंध के अतिरिक्त अन्य कारकों में विभक्ति लगाने के पूर्व दिया जाता है ।

मुझे—सर्व. [सं. मह्यम, प्रा० मज्झम] 'मैं' का वह रूप जो उसे कर्म और संप्रदान कारकों में प्राप्त होता है।

मुटका—संज्ञा पुं. [हिं. मोटा] एक तरह की रेशमी धोती। वि. [हिं. मोटा] मोटा-ताजा।

मुटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोटा + ई] (१) मोटापन। (२) घमंड, अहंकार।

मुहा०—मुटाई चढ़ना—धन आदि का घमंड होना। मुटाई झाड़ना—घमंड चूर करना।

मुटाना, मुटानो—क्रि. अ. [हिं. मोटा + आना] (१) मोटा या स्थूल होना। (२) घमंडी होना।

मुटिया—संज्ञा पुं. [हिं. मोट] बोझा ढोनेवाला।

मट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. मूठ] (१) उतना पूला जो मुट्ठी में आ सके। (२) चंगुल भर वस्तु। (३) छड़ी आदि का मुट्ठी से पकड़ा जानेवाला भाग।

मुट्ठी—संज्ञा स्त्री. [सं. मुष्टिका, प्रा० मुट्ठिआ] (१) बंद या बँधी हुई हथेली। (२) उतनी चीज जो हथेली बंद करने पर आ सके। उ.—मुट्ठी एक प्रथम जब लीन्हें खान लगे जदुनाथ—सारा. ८१५।

मुहा०—मुट्ठी में—वश या अधिकार में। मुट्ठी गरम करना—(१) धन देना। (२) रिश्वत देना। मुट्ठी बंद या बँधी होना—भेद या रहस्य प्रकट न होना। मुट्ठी में रखा होना—पास या समीप होना।

मुठभेड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूठ + भिड़ना] (१) टक्कर, भिड़ंत। (२) भेंट, सामना।

मुठि, मुठिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुट्ठी] (१) मुट्ठी। (२) घूँसा, मक्का।

मुठिया—संज्ञा स्त्री. [सं. मुष्टिका] (१) दस्ता, बेंट। (२) छड़ी आदि का हाथ में पकड़ा जानेवाला भाग।

मुठियाना, मुठियानो—क्रि. स. [हिं. मुट्ठी] मुट्ठी में लेकर धीरे धीरे दबाना।

मुठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुट्ठी] मुट्ठी। उ.—मुठी भरि लियौ सब नाइ मुख हीं दियौ सूर प्रभु पियौ दव ब्रज जन बचायौ—५९६।

मुड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुरकना] मुड़कने या मुरकने की क्रिया या भाव।

मुड़कना, मुड़कनो—क्रि. अ. [हिं. मुड़ना] (१) झुकना, मुड़ना। (२) फिर या घूम जाना। (३) वापस होना। (४) अंग का मोच खाना। (५) रुकना, हिचकना। (६) चौपट होना।

मुड़ना, मुड़नो—क्रि. अ. [सं. मुरण] (१) झुकना, घुमाव लेना। (२) फिर या घूम जाना। (३) किसी अन्य दिशा की ओर बढ़ना। (४) लौटना।

क्रि. अ. [हिं. मूँड़ना] (१) मूँड़ा जाना। (२) ठगा जाना।

मुडला, मुड़ला—वि. पुं. [हिं. मुंडा, मुँडला] जिसके सिर पर बाल न हों, मुंडा।

मुडली, मुड़ली—वि. स्त्री. [हिं. मुडला] जिस (स्त्री) के सिर पर बाल न हों, मुंडी। उ.—मुडली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि—३०२६।

मुडवाना, मुडवानो, मुड़वाना, मुड़वानो—क्रि. स. [हिं. मूँड़ना] (१) बाल मूँड़ने को प्रवृत्त करना। (२) ठगने को प्रवृत्त करना।

क्रि. स. [हिं. मुड़ना] मुड़ने, झुकने, घूमने या लौटने को प्रवृत्त करना।

मुड़वारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूँड़ + वारी] (१) दीवाल का सिरा, मुँडेरी। (२) सिर की दिशा, सिरहाना।

मुड़हर—संज्ञा पुं. [हिं. मूँड़ + हर] साड़ी या दुपट्टे का वह भाग जो सिर पर रहता है।

मुडाना, मुडानो, मुड़ाना, मुड़ानो—क्रि. स. [सं. मुंडन] सिर के सब बाल साफ करा देना।

मुडिया—संज्ञा पुं. [हिं. मूँड़ना] वह (साधु, सन्यासी या जोगी) जिसका सिर मुंडा हुआ हो। उ.—यह निर्गुन लै ताहि सुनावहु जे मुडिया बसैं कासी—३१०८।

मुतरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोती + सं. श्री] मोती की कंठी या माला। उ.—ग्रीव मुतसिरी तोरि कै अँचरा सों बाँध्यौ—१५४१।

मुतियनि—संज्ञा पुं. सवि. बहु. [हिं. मोती] मोतियों से। उ.—चंदन आँगन लिपाइ मुतियनि चौकें पुराइ-१०-९५।

मुतिलाड़ू—संज्ञा पुं. [हिं. मोती + लड्डू] मोतीचूर का लड्डू। उ.—मुतिलाड़ू हैं अति मीठे।

मुतिहरा, मुतेहरा—संज्ञा पुं. [हिं. मोती + हार] कलाई का एक गहना।

मुत्तिय, मुत्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. मुक्ता] मोती।
मुद—संज्ञा पुं. [सं.] हर्ष, प्रसन्नता।
मुद्‌गर—संज्ञा पुं. [हिं. मुगदर] (१) मुगदर। (२) एक प्राचीन अस्त्र जिसके सिरे पर गोल पत्थर लगा होता था। उ.—मुसल मुदगर हनत—१-१२०।
मुदना, मुदनो—क्रि. अ. [सं. मोद] प्रसन्न होना।
मुदर्रिस—संज्ञा पुं. [अ.] पाठशाला का अध्यापक।
मुदवंत—वि. [सं. मोद+हिं. वंत] प्रसन्न, हर्षित।
मुदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसन्नता, हर्ष।
अव्य०—[अ० मुद्‌आ] (१) तात्पर्य यह कि। (२) लेकिन, परंतु।
मुदाम—क्रि. वि. [फ़ा.] (१) सदा। (२) निरंतर।
मुदामी—वि. [फ़ा.] सब कालों में बना रहनेवाला।
मुदित—वि. [सं.] प्रसन्न आनंदित। उ.—सेमर-फूल सुरँग अति निरखत मुदित होत खगभूप—१-१०२।
मुदिता—संज्ञा स्त्री [सं.] वह परकीया नायिका जो पर पुरुष-प्रीति की आकस्मिक प्राप्ति से सुखी हो। (२) प्रसन्नता।
वि. स्त्री.—आनंदिता, प्रसन्नमना।
मुदिर—संज्ञा पुं. [सं.] बादल, मेघ।
मुद्‌गर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कसरत करने की 'जोड़ी'। (२) एक प्राचीन अस्त्र जिसके सिरे पर गोल पत्थर लगा होता था।
मुद्‌दई—संज्ञा वि. [अ०] (१) दावा करनेवाला। (२) शत्रु, बैरी।
मुद्‌दत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) अवधि। (२) बहुत दिन।
मुद्‌ध—वि. [सं. मुग्ध] (१) मूढ़। (२) आसक्त।
मुद्रण—संज्ञा पुं. [सं.] छपाई।
मुद्रांक—संज्ञा पुं. [सं.] चिन्ह जो मुद्रा पर हो।
मुद्रांकन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुद्रा अंकित करने का काम। (२) छापने का काम।
मुद्रांकित—वि. [सं.] (१) जिस पर मुद्रा अंकित हो। (२) जिस (वैष्णव) के शरीर पर विष्णु के विभिन्न आयुध अंकित हों।
मुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाम की छाप या मोहर। (२) सिक्का। (३) अँगूठी, मुद्रिका। उ.—बनचर कौन देस तैं आयो। कहँ वै राम कहाँ वै लछिमन क्यौं करि मुद्रा पायौ—९-८८। (४) काँच या स्फटिक का बना एक आभूषण जिसे गोरखपंथी साधु कान की लौ के बीच में छेद करके पहनते हैं। उ.—(क) सुंगी मुद्रा कनक खपर लै करिहौं जोगिन भेस—२७५४। (ख) मुद्रा भस्म बिषान त्वचा मृग ब्रज जुवतिन मन भाए—२९९१। (ग) मुद्रा न्याय अंग अंग भूषन पति ब्रज तें न टरौं—३०२७। (५) हाथ, पाँव, मुख आदि की कोई स्थिति। (६) मुख की आकृति। (७) विष्णु के आयुधों के चिन्ह जो वैष्णव अपने शरीर पर गुदवाता है। (८) हठ योग का विशेष अंग-विन्यास। (९) एक काव्यालंकार।
मुद्राचक—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष्णु के आयुधों के चिन्ह जो वैष्णव बाहु तथा अन्य अंगों पर गुदवाते हैं। यह मुद्रा दो प्रकार की होती है—शीतल और तप्त। शीतल मुद्रा चंदन आदि से की जाती है; पर तप्त मुद्रा तपे हुए ठप्पों से सामान्यतया द्वारका में दागी जाती है। उ.—मूँड़यो मूँड, कंठ बन माला मुद्रा-चक्र दिये—१-१७१।
मुद्रा कान्हड़ा—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग।
मुद्रा टोरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।
मुद्रावलि, मुद्रावली—संज्ञा स्त्री. [सं. मुद्रा+अवलि] (१) कमर का एक आभूषण। उ.—खसि मुद्रावलि चरन अरुझी गिरी धरनि बलहीन—३४५१। (२) चिन्ह, मुद्रा। उ.—राजति रुचिर कपोल महावर रद मुद्रावलि नाह दई री—२११५।
मुद्रिक, मुद्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं. मुद्रिका] (१) अँगूठी। उ.—(क) कनक बलय मुद्रिका मोदप्रद—१-६९। (ख) अब परतीति भई मन मोरैं संग मुद्रिका लाए—९-९०। (२) कुश की अँगूठी जिसे अनामिका में पहन कर पितृ-कार्य या तर्पण किया जाता है, पवित्री, पैंती। (३) मुद्रा, सिक्का।
मुद्रित—वि. [सं.] (१) अंकित किया हुआ। (२) मुँदा हुआ, बंद। उ.—(क) निसि मुद्रित प्रातहिं ए बिगसत, ए बिगसत दिनराति—१३४९। (ख) नैन

मुद्रित सकुच जैसे उदय ससि जलजात—३११३०।
(२) छोड़ा या त्यागा हुआ।
मुधा—क्रि. वि. [सं.] व्यर्थ, वृथा।
वि.—(१) व्यर्थ का। (२) मिथ्या।
संज्ञा पुं.—वह जो सत्य न हो, असत्य।
मुनक्का—संज्ञा स्त्री. [अ. मुनक्का] एक तरह की बड़ी किशमिश या सूखा हुआ अंगूर।
मुनरा—संज्ञा पुं. [सं. मुद्रा] कान का एक गहना।
मुनरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुंदरी] अँगूठी, मुंदरी।
मुनादी—संज्ञा स्त्री. [अ.] घोषणा, ढिंढोरा, डुग्गी।
मुनाफा—संज्ञा पुं. [अ. मुनाफ़ा] लाभ, नफा।
मुनार, मुनारा—संज्ञा पुं. [हिं. मीनार] मीनार।
मुनासिब—वि. [अ.] उचित।
मुनिंद्र—संज्ञा पुं. [सं. मुनि + इंद्र] मुनियों में श्रेष्ठ।
मुनि—संज्ञा पु. [सं.] (१) मननशील महात्मा, त्यागी, तपस्वी। उ.—मुनि सराप तैं भए जमलतरु—१-७। (२) सात की संख्या।
मुनिजनियाँ—संज्ञा पुं. बहु [सं. मुनि + जन] अनेक मुनि। उ.—सूर स्याम की अदभुत लीला नहिं जानत मुनिजनियाँ—१०-८३।
मुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [देश.] 'लाल' पक्षी की मादा।
मुनींद्र—संज्ञा पुं. [सं.] मुनियों में श्रेष्ठ।
मुनी—संज्ञा पुं. [सं. मुनि] तपस्वी महात्मा।
मुनीब, मुनीम—संज्ञा पुं. [अ. मुनीब] (१) नायब, सहायक। (२) हिसाब-किताब लिखनेवाला।
मुनीश, मुनीश्वर, मुनीस, मुनीस्वर—संज्ञा पुं. [सं. मुनीश, मुनीश्वर] मुनियों में श्रेष्ठ।
मुनैयनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. मुनियाँ] 'लाल' पक्षी की मादाएँ। उ.—मनु लाल मुनैयनि पाँति पिंजरा तोरि चली—१०-२४।
मुन्ना, मुन्नू—संज्ञा पुं. [देश०] छोटों के लिए स्नेह सूचक शब्द या संबोधन।
मुफ्त—वि. [अ. मुफ़्त] बिना दाम का।
मुबारक—वि. [अ.] शुभ, मंगलमय।
मुमकिन—वि. [अ.] जो हो सकता हो, संभव।
मुमुक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मोक्ष की इच्छा।
मुमुक्षु—वि. [सं.] मोक्ष की इच्छा रखनेवाला।
मुयो, मुयौ—क्रि. अ. [हिं. मुवना] मर गया। उ.—मुयौ असुर सुर भए सुखारी—७-२।
मुरंडा, मुरंदा—संज्ञा पुं. [देश. मुरंडा] भुने हुए गेहूँ के दानों को गुड़ में मिलाकर बनाया गया लड्डू।
वि.—सूखा हुआ।
मुहा०—मुरंडा होना—सूखकर काँटा होना।
मुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बेठन। (२) एक दैत्य जिसे मारने से विष्णु 'मुरारि' कहलाये। उ.—मधु-कैटभ मथन मुर भौम केसी भिदन कंस कुल काल अनुसाल हारी—१० उ०-५०।
मुरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुरकना] मुड़ने-मुड़कने की क्रिया या भाव।
मुरकना, मुरकनो—क्रि. अ. [हिं. मुड़ना] (१) झुकना, मुड़ना। (२) घूम या फिर जाना। (३) वापस होना। (४) अंग का मोच खाना। (५) रुकने लगना, हिचकना। (५) नष्ट या चौपट होना।
मुरकाना, मुरकानो—क्रि. स. [हिं. मुरकना] (१) झुकाना, मोड़ना। (२) फेरना, घुमाना। (३) वापस लौटाना। (४) अंग में मोच लाना। (५) रोकना, हिचकाना। (६) नष्ट या चौपट करना।
मुरकी—क्रि. अ. [हिं. मुरकना] रुकी, हिचकने लगी। उ.—लोचन भरि भरि दोऊ माता कनछेदन देखत जिय मुरकी—१०-१८०।
संज्ञा स्त्री.—कान में पहनने की बाली।
मुरखाइ, मुरखाई—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्ख] मूर्खता।
मुरगा—संज्ञा पुं. [फा. मुर्ग़] एक प्रसिद्ध पक्षी।
मुरगाबी—संज्ञा स्त्री. [फा. मुर्ग़ाबी] एक पक्षी।
मुरचंग, मुरचंगा—संज्ञा पुं. [हिं. मुहचंग] ताल देनें का एक बाजा, मुँहचंग।
मुरचा—संज्ञा पुं. [हिं. मोरचा] (१) लोहे पर लगने वाला जंग, मोरचा। (२) दर्पण पर जमा हुआ मैल।
मुरछना, मुरछनो—क्रि. अ. [सं. मूर्च्छन] (१) शिथिल होना। (२) अचेत, बेसुध या बेहोश होना।
मुरछल, मुरछला—संज्ञा पु. [हिं. मोरछल] मोर-पंख का बना हुआ चँवर।

मुरछा—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्च्छा] बेहोशी।
मुरछाइ, मुरछाई—क्रि. अ. [हिं. मुरछाना] मूर्छितहोकर। उ.—सैन्य के लोग पुनि बहुत घायल किये लरयो ध्वजा धरि धर परयो मुरछाइ—१० उ.-५६।
मुरछाना, मुरछानो—क्रि. अ. [सं मूर्च्छा] अचेत होना।
मुरछायो, मुरछायौ—क्रि. अ. [हिं. मुरछाना] मूर्छित हुआ। उ.—लगत त्रिसूल इन्द्र मुरछायौ—६-५।
मुरछावत—वि. [सं. मूर्च्छा+वंत] बेहोश, अचेत।
मुरछि—क्रि. अ. [हिं. मुरछना] मूर्छित होकर। उ.—सुनि नंद व्याकुल ह्वै परे मुरछि धरनी—२६६२।
मुरछित, मुरछी—वि. [सं. मूर्च्छित] अचेत, बेहोश। उ.- जो देखे द्रुम के तरे मुरछी सुकुमारी—१७९९।
मुरछे—वि. [सं. मूर्च्छित] सुप्त, सोता हुआ। उ.—इहि बिधि बचन सुनाय स्याम घन मुरछे मदन जगावते—२७३५।
मुरज—संज्ञा पुं. [सं.] मृदंग, पखावज। उ.—ताल मुरज रवाब बीना किन्नरी रस सार—१७४५।
मुरझना, मुरझनो—क्रि. अ. [सं. मूर्च्छन](१) अचेत होना। (२) कुम्हलाना। (३) उदास होना।
मुरझाइ—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] (१) मूर्छित होकर। उ.—(क) आनि अँचयो जल जमुन को तबहिं गए मुरझाइ—५०४। (ख) धरनि परी मुरझाइ जसोदा—५४४। (२) खिन्न या उदास होकर।
प्र०—रहे मुरझाइ—अत्यन्त खिन्न या उदास हो गये हैं। उ.—मदनगुपाल लाल के बिछुरे प्रान रहे मुरझाइ—३१५०।
मुरझाई—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] (१) मूर्छित या मृत होकर। उ.—पय सँग प्रान ऐंचि हरि लीनो, जोजन एक परी मुरझाई—१०-५१। (२) खिन्न या उदास होकर।
प्र०—गई मुरझाई—बहुत खिन्न या उदास हो गयीं। उ.—ब्रज जुवती अति गई मुरझाई—११४३। गए मुरझाई—बहुत खिन्न या उदास हो गये। उ.—सुनत सूर यह बात चकित पिय अतिहि गए मुरझाई—२०१९
मुरझात—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] खिन्न या उदास होता है। उ.—जहाँ खेलन को ठौर तुम्हारे, सब देखि मुरझात—३४३३।
मुरझान—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] मूर्छित हो गया। सूर सकत जैसे लछिमन तब बिह्वल होइ मुरझान—२७८८।
मुरझाना—क्रि. अ. [सं. मूर्च्छन] (१) मूर्छित होना। (२) कुम्हलाना, सूखने पर होना। (३) सुस्त होना।
मुरझाने—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] अचेत या बेसुध हो गये। उ.—रति रन जुद्ध जाम तब नीके सेज परे उठि पुनि मुरझाने—१६०७।
मुरझानो—क्रि. अ. [सं. मूर्च्छन] (१) अचेत या बेसुध होना। (२) कुम्हलाना। (३) उदास होना।
मुरझायो, मुरझायौ—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] (१) मूर्छित, अचेत या बेसुध हो गया। उ.—लगत त्रिसूल इंद्र मुरझायौ—६-५। (२) कुम्हला गया, सूख गया। उ.—पौढ़ि रहे धरनी पर तिरछे बिलखि बदन मुरझायौ—३५६।
मुरझि—क्रि. अ. [हिं. मुरझना] अचेत या बेसुध होकर। उ.—सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी मुरझि परीं ब्रजबाल—२५४०।
मुरझैया—क्रि. अ. [हिं. मुरझना] अचेत या बेसुध होकर। उ.—पुनि यह कहति मोहिं परमोधत धरनि गिरी मुरझैया—५६०।
मुरझ्यो, मुरझ्यौ—वि. [हिं. मुरझाना] सोया हुआ, सुप्त। उ.—अति बिपरीत भई सुनि सूर प्रभु मुरझ्यो मदन जगायो—१४६७।
मुरड़—संज्ञा पुं. [हिं.] गर्व, अभिमान।
मुरड़की—संज्ञा स्त्री. [हिं. मरोड़] ऐंठन, मरोड़।
मुरत—क्रि. अ. [हिं. मुड़ना] (१) मुड़ता या हिलता-डोलता है। उ.—इत-उत अंग मुरत झकझोरत—१०-३००। (२) मुड़ता, हटता, फिरता या लौटता है। उ.—(क) एक ते एक रणबीर जोधा प्रबल मुरत नहिं नैंक अति सबल जी के। (ख) रुकत न पौन महावत पै मुरत न अंकुस मोरे—२८१८।
मुरदर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

मुरदा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मरा हुआ प्राणी, मृतक।
वि.—(१) मरा हुआ, निर्जीव। (२) जिसमें दम न हो, बहुत ही दुबला-पतला, मृतकप्राय। (३) सूखा या कुम्हलाया हुआ।
मुरधर—संज्ञा पुं. [सं. मरु + धरा] मारवाड़ (प्राचीन नाम)।
मुरना, मुरनो—क्रि. अ. [हिं. मुड़ना] (१) लचना, झुकना। (२) टेढ़ा हो जाना। (३) घूम जाना। (४) लौटना, पलटना।
मुरपरैना—संज्ञा पुं. [हिं. मूँड़ = सिर + पारना = रखना] फेरी लगाने वालों का, सिर पर रखकर सौदा बेचने का बकुचा या बोझ। उ.—तहीं दीजै मुरपरैना नफो तुम कछु खाहु—३००३।
मुरब्बा—संज्ञा पुं. [अ. मुरब्बः] शकर की चाशनी में पकाकर रखा गया फल या मेवे का पाक।
मुरमर्दक, मुरमर्दन—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु, श्रीकृष्ण।
मुरमुरा—संज्ञा पुं. [अनु.] भुना हुआ पोला चावल, लावा।
मुरमुराना, मुरमुरानो—क्रि. अ. [अनु. मुरमुर] (१) चूर-चूर हो जाना। (२) कड़ी चीज के टूटने का शब्द होना।
मुररिपु—संज्ञा पुं. [सं.] मुरारि, विष्णु, श्रीकृष्ण। उ.—सूर मुररिपु (मुरारिपु) रँग रँगे सखि सहित गोपाल—२२९०।
मुररिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुर्री] ऐंठन, मरोड़।
मुरल—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा।
मुरलिका, मुरलिया—संज्ञा स्त्री. [सं. मुरलिका] मुरली, बाँसुरी। उ.—(क) स्याम, तुम्हारी मदन-मुरलिका नैंसुक सी जग मोह्यौ—६५६। (ख) हाथ मुरलिका राजै। (ग) अधर मुरलिका बाजै। (घ) मुरलिया मोकौं लागत प्यारी—२३३७।
मुरली—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाँसुरी, वंशी। उ.—(क) हरषि मुरली-नाद स्याम कीन्हौ—ना. १०६३। (ख) मुरली स्याम अधर नहिं टारत—१२३०।
मुरलीधर—संज्ञा पुं. [सं.] मुरलीधारी श्रीकृष्ण। उ.—गिरिधर, ब्रजधर, मुरलीधर, धरनीधर माधौ पीतांबर-धर—५७२।
मुरली-मनोहर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।
मुरवा—संज्ञा पुं. [देश.] एँड़ी या पैर का गट्टा।
संज्ञा पुं. [हिं. मोर] मोर, मयूर। उ.—हमारे माई, मुरवा (मोरवा) बैर परे—ना. ३९४७।
मुरवी—संज्ञा स्त्री. [सं. मौर्वी] धनुष की डोरी।
संज्ञा स्त्री. [हिं. मोर] मोरनी।
मुरवैरी—संज्ञा पुं. [सं. मुरवैरिन्] श्रीकृष्ण।
मुरसुत—संज्ञा पुं. [सं.] मुर दैत्य का पुत्र वत्सासुर।
मुरहा—संज्ञा पुं. [सं.] मुरारि, श्रीकृष्ण।
वि. [सं. मूल (नक्षत्र) + हा] नटखट, उपद्रवी।
मुरहारी—संज्ञा पुं. [सं.] मुरारि, श्रीकृष्ण।
मुराड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] जलती हुई लकड़ी, लुआठा।
मुराद—संज्ञा पुं. [अ.] (१) इच्छा। (२) आशय।
मुराना, मुरानो—क्रि. स. [अनु. मुरमुर] चबा कर मुलायम या नरम करना, चुभलाना।
क्रि. स. [हिं. मोड़ना] लौटाना, फेरना।
मुरार—संज्ञा पुं. [सं. मृणाल] कमल की जड़ या नाल।
संज्ञा पुं. [सं. मुरारि] श्रीकृष्ण। उ. तुमहीं आदि-अखंड-अनूपम असरन-सरन-मुरार—सारा. १२९।
मुरारिपु—संज्ञा पुं. [सं.] मुरारि, श्रीकृष्ण। उ.—सूर मुरारिपु रंग रँगे सखी सहित गोपाल—२२९०।
मुरारि, मुरारी—संज्ञा पुं. [सं. मुरारि] श्रीकृष्ण। उ.—(क) सूरदास प्रभु सब गुन-सागर दीनानाथ मुकुंद मुरारी—१-२२। (ख) स्याम सुंदर चतुरभुज मुरारी—४-६। (ग) ह्वैहैं जन्न अब देव मुरारी—७-२।
मुरारे—संज्ञा पुं. [सं.] हे मुरारि या श्रीकृष्ण (संबोधन)। उ.—(क) मम गृह तजे मुरारे—१-२४२। (ख) केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन राखी लाज मुरारे—१-२५७।
मुरासा—संज्ञा पुं. [अ० मुरस्सअ] कर्णफूल, तरकी।
संज्ञा पुं. [हिं. मुँड़ासा] साफा, पगड़।
मुरि—क्रि. अ. [हिं. मुड़ना] मुड़कर, मुँह फेरकर, एक ओर को कुछ हटकर। उ.—(क) स्याम सखा कौं गेंद चलाई। श्रीदामा मुरि अंग बचायौ, गेंद परी कालीदह जाई—५३५। (ख) सूर स्याम मुरि मुसकानि छबी री अँखियन मैं रही—८३८।
मुरीद—संज्ञा पुं. [अ.] शिष्य, चेला, अनुयायी।
मुरुंज—संज्ञा पुं. [सं. मुरज] एक बाजा। उ.—बजता

ताल मृदंग झांझ डफ रुंज मुरुंज बाँसुरी ध्वनि थोरी —२४४५ ।

मुरु—संज्ञा पुं. [सं. मुर] 'मुर' नामक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था ।

मुरुआ—संज्ञा पुं. [देश.] पं या एँड़ी का गट्टा ।

मुरुख—वि. [सं. मूर्ख] मूर्ख ।

मुरुछना, मुरछनो—क्रि. अ. [हिं.मूरछा] बेसुध होना ।

मुरुझना, मुरझनो—क्रि. अ. [हिं. मुरझाना] (१) कुम्हलाना, सूखना । (२) उदास होना । (३) अचेत होना ।

मुरेठा—संज्ञा पुं. [हिं. मूड़+ऐंठ] साफा, पग्गड़ ।

मुरेर—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुँडेर] मुँड़ेर ।

मुरेरना, मुरेरनो—क्रि. स. [हिं. मरोड़ना] मरोड़ना ।

मुरैठा—संज्ञा पुं. [हिं. मुरेठा] साफा, पग्गड़ ।

मुरौअत, मुरौवत—संज्ञा स्त्री. [अ. मुरव्वत] (१) शील, संकोच । (२) भलमनसाहत ।

मुर्छन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अचेत करने की क्रिया या भाव । (२) मूर्छित करने का मंत्र या प्रयोग । उ.—मोहन मुर्छन बसीकरन पढ़ि अगमति देह बढ़ाऊँ—१०-४९ ।

मुर्दनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मुर्दन=मरना] (१) मुख पर मृत्यु के चिह्न प्रकट या प्रत्यक्ष होना ।

मुहा०—चेहरे पर मुर्दनी छाना (फिरना)—(१) मुख पर मृत्यु के चिह्न प्रत्यक्ष होना । (२) बहुत निराश या उदास होना ।

(२) शव की अंतेष्टि के लिए साथ जाना ।

मुर्मुर—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव, मदन ।

मुर्रा—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुड़ना] एक तरह की भैंस ।

मुर्री संज्ञा स्त्री. [हिं. मरोड़] डोरी की ऐंठन ।

मुर्वा—संज्ञा पुं. [हिं. मुरवा] मोर, मयूर ।

मुर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] धनुष की डोरी ।

मुल—अव्य. [देश.] (१) लेकिन । (२) तात्पर्य यह कि ।

मुलक—संज्ञा पुं. [अ. मुल्क] (१) देश । (२) प्रदेश ।

मुलकना, मुलकनो—क्रि. अ. [हिं. पुलकना] (१) मुसकराना । (२) प्रसन्न होना ।

मुलकित—वि. [सं. पुलकित] (१) मुस्कराता हुआ । (२) प्रसन्न, हर्षित ।

मुलकी—वि. [अ. मुल्क] देश-सम्बन्धी, देश का ।

मुलजिम—वि. [अ. मुलज़िम] अभियुक्त ।

मुलतवी—वि. [अ. मुल्तवी] स्थगित ।

मुलतानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुलतान (नगर)] (१) एक रागिनी । (२) एक तरह की चिकनी मिट्टी ।

मुलना—संज्ञा पुं. [अ. मौलाना] मुल्ला, मौलवी ।

मुलमची—संज्ञा पुं. [हिं. मुलम्मा] मुलम्मा करनेवाला ।

मुलम्मा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) किसी चीज पर चढ़ायी गयी सोने या चाँदी की बहुत पतली परत । (२) ऊपरी तड़क-भड़क ।

मुलहा—वि. [सं. मूल (नक्षत्र) + हा] (१) जो मूल नक्षत्र में जन्मा हो । (१) उपद्रवी, नटखट ।

मुलाँ—संज्ञा पुं. [अ. मुल्ला] मुल्ला, मौलवी ।

मुलाकात—संज्ञा स्त्री. [अ. मुलाक़ात] (१) भेंट, मिलन । (२) हेल-मेल, मेल-मिलाप, परिचय ।

मुलाजिम—संज्ञा पुं. [अ. मुलाज़िम] सेवक, नौकर ।

मुलायम—वि. [अ.] (१) जो सख्त न हो । (२) धीमा, मंद । (३) सुकुमार । (४) शांत ।

यौ०—मुलायम चारा (१) जो सहज ही अपनी बातों में लाया या फुसलाया जा सके । (२) जो सहज ही पाया जा सके ।

मुलायमियत—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुलायम] नरमी ।

मुलाहजा—संज्ञा पुं. [अ. मुलाहज़ा] (१) निरीक्षण, देखभाल । (२) संकोच । (३) रियायत ।

मुलुक—संज्ञा पुं. [हिं. मुलक] (१) देश । (२) प्रदेश ।

मुलेठी—संज्ञा स्त्री. [सं. मूलयष्टि, प्रा० मूलयट्ठी] 'घुँघुची' या 'गुंजा' नामक लता की जड़ ।

मुल्क—संज्ञा पुं. [अ.] (१) देश । (२) प्रान्त ।

मुल्ला—संज्ञा पुं. [अ.] मुसलमानों का पुरोहित, मौलवी ।

मुवना, मुवनो – क्रि. अ. [सं.मृत, प्रा. मुअ + ना] मरना ।

मुवाइ—क्रि. स. [हिं. मुवाना] मार कर, हत्या करके ।

मुवाना, मुवानो—क्रि. स. [हिं. मुवना] मार डालना ।

मुवौ—क्रि. अ. [हिं. मुवना] मरा, मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

उ.—कहा जानैं कैवाँ मुवौ (रे) ऐसैं कुमति, कुमीच —१-३२५ ।

मुशल—संज्ञा पुं. [सं.] धान कूटने का मूसल ।

वि.—मूर्ख, लंठ।

मुशली—संज्ञा पुं. [सं.] मूसलधारी बलराम।

मुश्क—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) कस्तूरी। (२) गंध।

संज्ञा स्त्री. [देश.] भुजा, बाँह।

मुश्कनाभ, मुश्कनाभि—संज्ञा पुं. [फ़ा. मुश्क+सं. नाभि] मृग जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है।

मुश्किल—वि. [अ.] कठिन, दुस्साध्य।

संज्ञा स्त्री.—(१) कठिनता। (२) संकट, विपत्ति।

मुश्की—वि. [फ़ा.] (१) कस्तूरी के रंग का, काला। (२) जिसमें कस्तूरी मिली हो।

मुश्त—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मुट्ठी।

यौ०—एक मुश्त - एक ही बार में।

मुषर—वि. [सं. मुखर] बहुत बोलनेवाला।

मुषल—संज्ञा पुं. [सं.] धान कूटने का मूसल।

मुषाना, मुषानो—क्रि. स. [हिं. मुसाना] लूटने या चोरी करने को प्रवृत्त करना।

मुषायो, मुषायौ—क्रि. स. [हिं. मुसाना] लुटवा दिया। उ.—मदन चोर सों जानि मुषायो—१९६३।

मुषुर—संज्ञा स्त्री. [सं. मुखर] गुंजार।

मुष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मुट्ठी। (२) मुक्का।

मुष्टि, मुष्टिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कंस का दरबारी एक मल्ल जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—(क) कह्यौ चाणूर मुष्टि सब मिलिकै जानत हौ सब जी के। (ख) संखचूड़ मुष्टिक प्रलंब अरु तृनाबर्त संहारे—१-२७। (२) मुक्का, घूँसा। उ.—हिरनकसिप क्रोधहिं मन धारचौ।जाइ खंभ कौं मुष्टिक मारचौ—७-२। (३) मुट्ठी।

मुष्टिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मुट्ठी। (२) मुक्का, घूँसा। उ.—(क) बृक्ष पाषाण को जब उहाँ नाश भयौ मुष्टिका युद्ध दोऊ प्रचारी—१०उ०-४५। (ख) एक ही मुष्टिका प्रान ताके लए—२४८४।

मुष्टियुद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] युद्ध जो घूँसों से हो।

मुसक—संज्ञा पुं. [फ़ा. मुश्क] कस्तूरी।

मुसकनि, मुसकनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकान] मुसकराहट, मुसकान। उ.—(क) मुनि-मन हरनि सु हँसि मुसकनियाँ। (ख) दाड़िम दशन मंदगति मुसकनि मोहत सुर-नर-नाग—१३१४। (ग) कोटि मुक्त वारौं मुसकनि पर योग बापुरो सरो—३१५४।

मुसकराना, मुसकरानो—क्रि. अ. [सं. स्मय+कृ] मंद-मंद हँसी हँसना, होठों में हँसना।

मुसकराहट, मुसकराहटि—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकराना + आहट] मुसकराने की क्रिया या भाव, मंद-मंद हँसी।

मुसकात—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] हँसता है, हँसते हैं। उ.—चुटकी दै दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात (मुसुकात)—१०-२१५।

मुसकान—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसी।

मुसकाना—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसना।

मुसकानि, मुसकानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसी, मंद हास्य। उ.—(क) बिकानी हरि-मुख की मुसकानी—११९७। (ख) स्याम आपनी चितवनि बरजो अरु मुख की मुसकानी—१५७२।

क्रि. अ.—मंद-मंद रूप से या होंठों में हँसने लगी। उ.—आवति सूर उरहने के मिस, देखि कुँवर मुसकानी—१०-३११।

मुसकाने—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसे (थे) उ.—सूर स्याम जब तुमहिं पठायो तब नेंकहुँ मुसकाने—३००६।

मुसकानो—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसना।

मुसकिराना, मुसकिरानो—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसना।

मुसकिराहट, मुसकिराहटि—संज्ञा स्त्री.[हिं. मुसकराहट] मंद-मंद हँसने की क्रिया या भाव, मंद हास।

मुसकुराना, मुसकुरानो—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसना, होंठों में हँसना।

मुसकुराहट, मुसकुराहटि—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकराहट] मंद-मंद हँसने की क्रिया या भाव, मंद हास।

मुसक्याइ—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसकर। उ.—(क) नैंकु चितै, मुसक्याइ कै सब को मन हरि लीन्हौ—१-४४। (ख) असुर दिसि चितै मुसक्याइ मोहे सकल—८-८।

मुसक्यात—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसता है

या हँसते हैं। उ.—बारंबार बिलोकि सोचि चित नंद महर मुसक्यात (मुसुक्यात)—१०-१७२।

मुसक्यान—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकान] मंद-मंद हँसी। उ.—चारु चिबुक मुसक्यान—सारा. १७८।

मुसक्याना, मुसक्यानो—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसना, होंठों में हँसना।

मुसजर—संज्ञा पुं. [अ. मुशज्जर] एक छपा कपड़ा।

मुसना, मुसनो—क्रि. अ. [सं. मूषण] चुराया जाना।

मुसमुंद, मुसमुंध—वि. [देश.] नष्ट, ध्वस्त।

मुसरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूस] चूहे का बच्चा।

मुसल—संज्ञा पुं. [हिं. मूसल] धान कूटने का मूसल।

मुसलधार—क्रि. वि. [हिं. मूसलधार] मूसल जैसी मोटी धार से, बहुत तेज। उ.—बरसत मुसलधार सैनापति महा मेघ मघवा के पायक—९५४।

मुसलमान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मुहम्मद साहब का अनुयायी।

मुसली—संज्ञा पुं. [सं. मुशली] मूसलधारी बलराम।

मुसल्लम—वि. [फ़ा.] पूरा, सारा, अखंड।

मुसल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. मुसलमान] मुसलमान।

मुसवाना, मुसवानो—क्रि. स. [हिं. मूसना] लूटने या चोरी करने को प्रवृत्त करना।

क्रि. स. [हिं. मोसना] मोसने-मसलने देना।

मुसव्वर, मुसव्वरि, मुसव्विर—संज्ञा पुं. [अ. मुसव्विर] (१) चित्र खींचनेवाला। (२) बेल-बूटे बनानेवाला।

मुसव्विरी—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) चित्रकारी। (२) बेल-बूटे बनाने की क्रिया।

मुसाफिर—संज्ञा पुं. [अ.] बटोही, यात्री।

मसाहब—संज्ञा पुं. [अ.] वह जो किसी धनी या सम्पन्न के साथ रहकर उसका विनोद और चाटुकारी करे।

मुसाहबी, मुसाहिबी—संज्ञा स्त्री. [अ. मुसाहब] मुसाहब का पद या कार्य।

मुसीबत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कष्ट। (२) संकट।

मुसुकाहट, मुसुकाहटि—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकराहट] मंद-मंद हँसना, मंद हास।

मुसुकि—क्रि. अ. [हिं. मुसकराना] मंद-मंद हँसकर।

मुसुक्यात—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसते हैं। उ.—नंद महर मुसुक्यात—१०-१७२।

मुसुक्यान, मुसुक्यानि, मुसुक्यानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसना, मंद हास। उ.—(क) अधर मधुर मुसुक्यानि मनोहर करति मदन मन हीन—४७८। (ख) तामैं मृदु मुसुक्यानि मनोहर न्याइ करत कवि मोहन नाउँ—६५३। (ग) वह चितवन वह चाल मनोहर वह मुसुक्यानि जो मंद ध्वनि गावन—३३०७।

क्रि. अ.—मंद-मंद हँसी हँसने लगी।

मसुक्याने—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसी हँसे या हँसने लगे। उ.—(क) सूर स्याम यह सुनि मुसुक्याने—१०-२२२। (ख) मनमोहन मन मैं मुसुक्याने—६०४।

मुस्कराना—क्रि. अ. [सं. स्मय+कृ] धीरे से हँसना।

मुस्कराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुस्कराना] मंद हास।

मुस्काना—क्रि. अ. [हिं. मुस्कराना] धीरे से हँसना।

मुस्किल—वि. [अ. मुश्किल] कठिन, दुष्कर।

मुस्की—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकान] मुसकराहट।

वि. [फ़ा. मुश्की] (१) कस्तूरी जैसे काले रंग का। (२) जिसमें कस्तूरी मिली या पड़ी हो।

मुस्क्यान—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकाना] मुसकाहट।

मुस्क्याना—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसना।

मुस्क्यानि, मुस्क्यानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुसकान] मंद हास, मुसकराहट।

क्रि. अ.—मंद-मंद हँसी हँसने लगी।

मुस्क्यानो—क्रि. अ. [हिं. मुसकाना] मंद-मंद हँसना।

मुस्टंड, मुस्टंडा—वि.[सं.पृष्ठ](१)मोटा-ताजा।(२)गुंडा।

मुस्तकिल—वि. [अ. मुस्तक़िल] (१) पक्का। (२) स्थायी।

मुस्तैद—वि. [अ. मुस्तअद] (१) फुरतीला। (२) तत्पर।

मुस्तैदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुस्तैद] (१) फुरती, तेजी। (२) तत्परता।

मुस्तौफी—संज्ञा पुं. [अ. मुस्तौफ़ी] आय-व्यय की परीक्षा करनेवाला पदाधिकारी। उ.—चित्रगुप्त मु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी—१-१४३।

मुहकम—वि. [अ.] मजबूत, दृढ़। उ.—सूर पाप को गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार—१-१४४।

मुहचंग, मुहचंगा—संज्ञा पुं. [हिं. मुरचंग] मुँह से

बजाया जानेवाला एक बाजा। उ.—(क) आउझवर मुहचंद नैन सलोन री रँग राची ग्वालिनि—२४०५। (ख) फूले ही बजावै डफ ताल मृदंग बजै मुहवरि मुहचंग सरस रस ही फूलडोल—२४१२।

मुहताज—वि. [अ.] (१) दरिद्र। (२) आश्रित।

मुहब्बत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) प्रीति। (२) चाह। (३) मित्रता। (४) लगन, लौ।

मुहब्बती—वि. [हिं. मुहब्बत] प्रेम या मित्रता का व्यवहार करने या बनाये रखनेवाला।

मुहम्मद—संज्ञा पुं. [अ.] इसलाम धर्म के प्रवर्तक।

मुहम्मदी—वि. [हिं. मुहम्मद] मुहम्मद साहब का अनुयायी।

मुहरा—संज्ञा पुं. [हिं. मुँह] (१) सामने का भाग। (२) मुँह की आकृति। (३) शतरंज की गोट। (४) घोड़े का एक साज जो उसके मुँह पर पहनाया जाता है। (५) द्वार।

मुहर्रम—संज्ञा पुं. [अ.] अरबी वर्ष का पहला महीना जिसमें इमाम हुसेन के शहीद होने के कारण मुसलमान शोक मनाते हैं।

मुहा०—मुहर्रम का पैदा (की पैदाइश वाला)—जो सदा रोनी सूरत बनाये और दुखी रहे।

मुहर्रमी—वि. [हिं. मुहर्रम] (१) मुहर्रम का। (२) शोक या दुख-सूचक। (३) मनहूस।

मुहा०—मुहर्रमी सूरत—रोनी सूरत।

मुहर्रिर—संज्ञा पुं. [अ.] लेखक, मुंशी। उ.—मुहर्रिर (मोहरिल) पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीत—१-१४३।

मुहवर, मुहवरि—संज्ञा पुं. [हिं. महुअर] तूँबी या तूँबड़ी नामक बाजा। उ.—फूले ही बजावैं डफ ताल मृदंग बजै मुहवरि मुहचंग सरस रस ही फूलडोल—२४१२।

मुह ल—संज्ञा पुं. [अ. मुहासिल] (१) प्यादा, फेरीदार। (२) कर वसूलनेवाला।

मुहाँचही, मुहाचही, मुहाँचुही—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुंह +चाहना] परस्पर देखा-देखी। उ.—(क) मुहाँचुही सैनापति कीन्हीं—१०-६१। (ख) मुहाचही जुवतिन तब कीन्हीं—१२६७।

मुहाल—वि. [अ.] (१) असंभव। (२) कठिन।

मुहावरा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) वह वाक्य या शब्द जिसका विशेषार्थ लक्षणा-व्यंजना से निकलता हो। (२) आदत, अभ्यास।

मुहासिब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) हिसाब-किताब जानने वाला। (२) हिसाब लेने या जाँच-पड़ताल करनेवाला। उ.—सूर आपु गुजरान मुहासिब लै जवाब पहुँचावै—१-१४२।

मुहासिबा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) हिसाब, लेखा। उ.—सूरदास को यह मुहासिबा (पाठा०—की यहै बीनती) दस्तक कीजै माफ—१-१४३। (२) पूँछताँछ।

मुहिं—सर्व. [हिं. मोहिं] मुझे, मुझको। उ.—सत्य बचन गिरिदेव कहत हैं, कान्ह लेइ मुहिं कर उचकाई—९६१।

मुहिम, मुहीम—संज्ञा स्त्री. [अ. मुहिम] (१) कठिन काम। (२) लड़ाई, युद्ध। (३) चढ़ाई, आक्रमण।

मुहुः—अव्य. [सं.] बार-बार।

मुहूरत, मुहूरति, मुहूर्त, मुहूर्त्त—संज्ञा पुं. [सं. मुहूर्त्त] (१) दिन-रात का तीसवाँ भाग। उ.—दोइ मुहूरति आयु बताई।........। एक मुहूरत मैं भुव आयौ। एक मुहूरत हरि-गुन गायौ—१-३४३। (२) निर्दिष्ट काल या समय। (३) ज्योतिष की गणना से शुभ कार्य के लिए निकाला हुआ समय। उ.—(क) सुद्ध मुहूरत चौरी बिधि रची—१० उ.-२४। (ख) सुद्ध मुहूरत लग्न धरायौ - १० उ०-१३२।

मुह्य—वि. [सं.] (१) मोह-ममता में पड़ा या फँसा हुआ। (२) बेहोश, मूर्छित।

मूएँ—क्रि. अ. [हिं मरना] मरने (पर), मृत्यु को प्राप्त होने (पर)। उ.—जैसैं काग काग के मूएँ काँ काँ करि उड़ि जाहीं—१-३१९।

मूँग—संज्ञा स्त्री. [सं. मुद्ग] एक अन्न। उ.—(क) मूँग मसूर उरद चनदारी—३९६। (ख) मूँग ढरहरी हींग लगाई—२३२१।

मूँगफली—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूँग+फली] चिनिया बादाम।

मूँगा—संज्ञा पुं. [हिं. मूँग] एक समुद्री कृमि के समूह-पिंड की लाल ठठरी जिसकी गिनती रत्नों में है।

मूँगिया—वि. [हिं. मूँग] मूँग-जैसे हरे रंग का।

मूँछ—संज्ञा स्त्री. [सं. श्मश्रु, प्रा० मस्सु या मच्छु] पुरुष के होंठ के ऊपरी बाल जो पुरुषत्व के विशेष चिह्न माने जाते हैं।

मूँछ उखाड़ना—घमंड चूर करना। मूँछ (मूछों) पर ताव देना—मूँछ मरोड़कर अकड़ या गर्व दिखाना। मूँछ नीची होना—(१) घमंड टूटना। (२) अपमान होना। मूँछ पर हाथ फेरना—अकड़ या घमंड दिखाना।

मूँछनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. मूँछ] मूँछ पर।

मुहा०—मूँछनि ताव दिखायौ—गर्व या घमंड किया। उ.—कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ मूँछनि ताव दिखायौ—१-३०१।

मूँछी—संज्ञा स्त्री. [देश.] सेव की कढ़ी।

मूँज—संज्ञा स्त्री. [सं. मुञ्ज] एक तृण जो पवित्र माना जाता है और उपनयन संस्कार पर जिसकी करधनी पहनायी जाती है।

मूँड़—संज्ञा पुं. [सं. मुंड] सिर, कपाल, मुंड।

मुहा०—मूँड़ उघारना—निर्लज्ज की तरह गुरुजन के सामने सिर खोलना। मूड़ उघारचौ—गुरुजन के सामने सिर खोले फिरने की निर्लज्जता दिखायी। उ.—तजी लाज कुलकानि लोक की पति गुरुजन प्यौ-सारौ री। जिनकी सकुच देहरी दुर्लभ तिनमैं मूँड़ उघारचौ री—१-३३१। मूँड़ चढ़ना—ढिठाई करना। मूँड़ चढ़त है—ढिठाई करता है। उ.—जोइ मन करै सोइ करि डारै मूँड़ चढ़त है भारि—१०९९। मूँड़ चढ़ना—ढीठ या उद्दंड कर देना। मूँड़ चढ़ायौ—ढीठ या धृष्ट कर दिया (है)। उ.—(क) भलौ कार्य तैं सुतहिं पढ़ायौ। बारे ही तैं मूँड़ चढ़ायौ—१०-३३१। (ख) तैं ही उनको मूँड़ चढ़ायौ—१६५८। (ग) अब लौं कानि करी मैं सजनी बहुतैं मूड़ चढ़ायौ—पृ० ३२२ (१३)। मूँड़ चढ़ावै - ढीठपन देखकर हैरान हो, धृष्टता सहन करे। उ.–ऐसी को ठाली बैसी है तोसौं मूँड़ चढ़ावै—२२८७। मूड़ चढ़ी—सर पर चढ़कर। उ.—ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी—१-९८। मूड़ दुराना—सिर बचाकर अपनी रक्षा करना। मूँड़ दुरैहौ—सिर पर की गयी चोट बचाकर अपनी रक्षा करोगे। उ.—लादत जोतत लकुट बाजि-है तब कहँ मूँड़ दुरैहौ–१-३३१। मूँड पिराना (१) सर दर्द होना। (२) बकझक करके सर खाना या सर में दर्द कर देना। मूँड़ पिरायौ--बकझक करके सर खा लिया या सर में दर्द कर दिया। उ.—तुमहीं मिलि रसबाद बढ़ायौ उरहन दै दै मूँड़ पिरायौ—३९१। मूड़ मुड़ाना —सिर के बाल मुड़ाकर संन्यासी का वेश बनाना। मूँड़चौ मूड़–सिर मुड़वाकर संन्यासी का वेश बनाया। उ.--मूँड़चौ मूड़,कंठ बनमाला मुद्रा-चक्र दिये--१-१७१।

मूँड़न—संज्ञा पुं. [मुंडन] (१) मुंडन या चुड़ाकरण संस्कार जिसमें बालक के बाल पहले-पहल मुड़वाये जाते हैं (२) बाल मूँड़ने की क्रिया या भाव।

मूँड़ना मूँड़नो – क्रि. स. [सं. मुंडन] (१) सर के बाल बनाना। (२) किसी को ठगकर माल ले लेना। (३) चेला बनाना।

मूँड़ि—क्रि. स. [हिं. मूँड़ना] सर के बाल मुड़वाकर। उ.—अस्वत्थामा कौं गहि ल्याए। द्रौपदि सीस मूँड़ि मुकराए—१-२८९।

मूँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. मुंड] (१) सिर, कपाल।

मुहा०—मूँड़ी मरोड़ना—(१) गला दबाकर मार डालना। (२) किसी को धोखा देकर ठग लेना।

(२) किसी वस्तु का ऊपरी सिरा।

मूड़्यौ—क्रि. स. [हिं. मूँड़ना] (सिर के) बाल मुड़वा दिये। उ.—मूँड़चौ मूँड़—१-१७१।

मूँठि, मूँठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुट्ठी] मुट्ठी। उ.—मर्कट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी—२-२६।

मूँदना, मूँदनो – क्रि. स. [सं. मुद्रण] (१) ढक देना, बंद कर देना। (२) छेद खुला न रहने देना।

मूँदि—क्रि. स. [हिं. मूँदना] बंद करके।

प्र०—मूँदि लेत हैं—बंद कर लेते हैं। उ.—कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं—१०-४३।

मूँदे—क्रि. स. [हिं. मूँदना] बंद किये। उ.—(क) सबनि मूँदे नैन—५९७। (ख) नैन मूँदे खग—६५८।

मूँदै—क्रि. स. [हिं. मूँदना] बंद करता है, बंद करे। उ.—हलधर कह्यौ आँखि को मूँदै, हरि कह्यौ मातु जसोदा—१०-२३९।

मूँदो—क्रि. स. [हिं. मूँदना] बंद करो या किया। उ.—आवत देखि सबनि मुख मूँदो—१२८५।

मूँदौं—क्रि. स. [हिं. मूँदना] बंद करूँ। उ.—मैं मूँदौं हरि आँखि तुम्हारी—१०-२३९।

मूँदौ—क्रि. स. [हिं. मूँदना] बंद करती या ढकती हो। उ.—कर सौं कहा अंग उर मूँदौ, मेरे कहैं उघारौ—७९३।

मूँदयौ—क्रि. अ. [हिं. मूँदना] बंद किया। उ.—नैन उघारि, बदन हरि मूँदयौ—१०-२५३।

मूक—वि. [सं.] (१) गूँगा । (२) दीन। उ.—ज्यौं बिनु मनि अहि मूक फिरत है—२८०२।

मूकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गूँगापन।

मूकना, मूकनो—क्रि. स. [सं. मुक्त] (१) छोड़ना, त्यागना। (२) बंधन खोलना, बंधन से छुड़ाना।

मूका—संज्ञा पुं. [हिं. मोखा] दीवार के आर-पार बना छेद, मोखा, झरोखा।

संज्ञा पुं. [हिं. मुक्का] मुक्का, घूँसा।

मूकिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गूँगापन, मूकता।

मूकू, मूके—वि. [सं. मूक] (१) मट्ठस। उ.—मूकू निंद निगोड़ा भोड़ा कायर काम बनावै—१-१८६। (२) गूँगा। उ.—मूके भये जज्ञ के पसु लौं—२८८२।

मूखना, मूखनो—क्रि. स. [हिं. मूसना] चुरा लेना।

मूचना, मूचनो—क्रि. स. [हिं. मोचना] (१) त्यागना। (२) बहा देना। (३) छुड़ाना, मुक्त कराना।

मूछहिं—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. मूँछ] मूँछ को।

प्र०—मूँछहि पकरि अकरतौ—मूँछ पर हाथ फेर-कर गर्व या घमंड करता। उ.—मिथ्यावाद आप-जसु सुनि सुनि मूछहिं पकरि अकरतौ—१-२०३।

मूजी—वि. [अ. मूजी] कष्ट देनेवाला, दुष्ट।

मूठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुट्ठी] (१) मुट्ठी। (२) मुठिया, दस्ता। (३) उतनी चीज जितनी मुट्ठी में आ सके। (४) जादू-टोना।

मुहा०—मूठ चलाना (मारना)—जादू-टोना करना। मूठ लगना - जादू-टोने का प्रभाव पड़ना।

मूठना, मूठनो—क्रि. अ. [सं. मुष्ट, प्रा. मुट्ठ] नष्ट होना।

मूठा—संज्ञा पुं. [हिं. मूठ] मुट्ठा, पूला।

मूठालि, मूठाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूठ] तलवार।

मूठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूठ] मूठ, दस्ता।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मुट्ठी] मुट्ठी उ.—इतर नृपति जिहि उचत निकट करि देह न मूठि रिती—११-३।

मूठिक—वि. [हिं. मुट्ठी + इक=एक] एक मुट्ठी भर, जितना एक मुट्ठी में आ सके। उ.—मूठिक तंदुल बाँधि कृष्ण को बनिता बिनय पठायो—१० उ०-६५।

मूठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मुट्ठी] मुट्ठी। उ.—ज्यौं मर्कट मूठी नहिं छाँड़त—पृ. ३२९ (८१)।

मूठे—क्रि. अ. [हिं. मूठना] मर मिटे, न रहे। उ.—दुइ तुरंग दुइ नाव पाव धरि ते कवन न मूठे—१२००।

मूड़—संज्ञा पुं. [हिं. मूँड़] सिर, मूँड़।

मूढ़—वि. [सं.] (१) मूर्ख। उ.—तब तैं मूढ़ मरम नहि जान्यौ जब मैं कहि समुझायौ—९-११९। (२) स्तब्ध। (३) हतबुद्धि।

मूढ़ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मूर्खता, अज्ञानता। उ.—बरबस ही इन गही मूढ़ता प्रीति जाय चंचल सों जोरी—पृ. ३२८ (७३)।

मूढ़ात्मा—वि. [सं. मूढ़ात्मन्] मूर्ख, अज्ञान।

मूढ़मति—वि. [सं.] मतिभ्रष्ट, अज्ञान। उ.—मूरख, मुग्ध, अजान, मूढ़मति नाहीं कोऊ तेरौ—१-३१९।

मूत—संज्ञा पुं. [सं. मूत्र] मूत्र।

मूतना, मूतनो—क्रि. अ. [हिं. मूत] मूत्र करना।

मूत्र—संज्ञा स्त्री. [सं.] मूत, पेशाब। उ.—(क) रुधिर मेद मल-मूत्र कठिन कुच उदर-गंध-गंधात—२-२४। (ख) आँखि नाक मुख मूल दुवार। मूत्र स्रोन नव पुर कौ द्वार—४-१२। (ग) मूत्र-पुरीष अंग लपटावै—५-२।

मूना, मूनो—क्रि. अ. [हिं. मुवना] मरना।

मूर—संज्ञा पुं. [सं. मूल] (१) जड़। (२) जड़ी। (३) असल या मूल धन। उ.—सूर मूर अक्रूर गयो लै ब्याज निबेरत ऊधो—३२७८।

मूरख—वि. [हिं. मूर्ख] नासमझ, अज्ञान। उ.—(क) इतनी जड़ जानत मन मूरख मानत याहीं धाम—१-७६। (ख) मूरख मुग्ध अजान मूढ़मति—१-३१९।

मूरखता, मूरखताइ, मूरखताई—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्खता] नासमझी, नादानी, अज्ञता, मूर्खता।

मूरछन, मूरछना, मूरछनि—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्च्छना] संगीत में स्वरों का आरोह-अवरोह।

संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्च्छा] बेहोशी, अचेतना।

मूरछना, मूरछनो—क्रि. अ. [सं. मूर्च्छा] मूर्छित होना।

मूरछा—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्च्छा] बेहोशी, अचेतना। उ.—(क) माया-मंत्र पढ़त मन निसि दिन मोह-मूरछा आनत—१-४९। (ख) सूर मिटै अज्ञान-मूरछा ज्ञान-सुभेषज खाऐं—२-३२।

मूरत, मूरति—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्ति] प्रतिमा, मूर्ति। उ.—मूरति त्रिया जु भई धरम की, तिनके हरि अवतार—सारा. ६७।

मूरतिवंत—वि. [सं. मूर्ति+वत्] सशरीर, मूर्तिमान।

मूरध—संज्ञा पुं. [सं. मूर्द्धा] सिर, मस्तक।

मूरनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. मूर=मूल] जड़ी-बूटियों के लिए। उ.—अनजानत मूरनि कौं जित-तित उठि दौरीं जिनि जहाँ बताई—७४८।

मूरि, मूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मूल] (१) मूल, जड़। (२) जड़ी-बूटी। उ.—(क) सूरदास प्रभु बिनु क्यों जीवौं जात सँजीवन मूरि। (ख) कृष्न सुमंत्र जियावन मूरी जिन जन मरत जिवायौ—२-३२।

यौ०—ठगमूरी—कोई नशीली चीज जिसे पथिक को खिलाकर उसे ठग लिया जाय। उ.—सूर कहूँ ठगमूरी खाई व्याकुल डोलत ऐसे—पृ. ३३३ (२३)।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मूली] मूली। उ.—मूरी के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै—३१०५।

मूरुख, मूर्ख—वि. [सं. मूर्ख] नादान, नासमझ।

मूर्खता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मूढ़ता, नासमझी।

मूर्खा, मूर्खिनि, मूर्खिनी—वि. [सं. मूर्ख] मूढ़ा (स्त्री)।

मूर्खिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मूर्खता, अज्ञता।

मूर्च्छन, मूर्छन—संज्ञा पुं. [सं. मूर्च्छन] (१) अचेत या बेहोश होने की क्रिया या भाव। (२) अचेत या बेहोश करने का मंत्र या प्रयोग। उ.—मोहन-मूर्छन (मुर्छन) बसीकरन पढ़ि अगमति देह बढ़ाऊँ—१०-४९। (३) कामदेव का एक बाण।

मूर्च्छना, मूर्छना—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्च्छना] संगीत में स्वरों का आरोह-अवरोह।

मूर्च्छा, मूर्छा—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्च्छा] अचेतावस्था।

मूर्च्छित, मूर्छित—वि. [सं. मूर्च्छित] बेसुध, अचेत। उ.—गौतम रूप धारि तहँ आयौ। मूर्च्छित भयौ अहिल्या पायौ—६-८।

मूर्त, मूर्त्त—वि. [सं. मूर्त्त] जिसका रूप या आकार हो।

मूर्तता, मूर्त्तता—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्त्तता] मूर्त या साकार होने का भाव, साकारता।

मूर्ति, मूर्त्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्त्ति] (१) शरीर। (२) आकृति स्वरूप। (३) प्रतिमा, विग्रह।

मुहा०—मूर्ति के समान (वत्)—स्तब्ध, निश्चल। (४) चित्र, तसवीर।

मूर्तिकला, मूर्त्तिकला—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्त्तिकला] मूर्ति या प्रतिमा बनाने की विद्या या कला।

मूर्तिकार, मूर्त्तिकार—संज्ञा पुं. [सं. मूर्त्तिकार] (१) प्रतिमा बनानेवाला। (२) चित्र बनानेवाला।

मूर्तिपूजक—संज्ञा पुं. [सं. मूर्त्ति+पूजक] देव-भाव से प्रतिमा या विग्रह की पूजा करनेवाला।

मूर्तिभंजक, मूर्त्तिभंजक—वि. [सं. मूर्त्ति+भञ्जक] जो देव-मूर्तियों या प्रतिमाओं की पूजा व्यर्थ या आडंबर मानकर उनको तोड़ डालता हो।

मूर्तिपूजा—संज्ञा स्त्री. [सं. मूर्त्ति+पूजा] देव मानकर प्रतिमा का पूजन करने की क्रिया या भाव।

मूर्तिमान, मूर्तिमान्—वि. [सं. मूर्त्ति+मान्] (१) जिसका रूप या आकार हो, सशरीर। (२) साक्षात्।

मूर्द्ध, मूर्ध—संज्ञा पुं. [सं. मूर्द्धन्] सिर, मस्तक।

मूर्द्धन्य—वि. [सं.] (१) मूर्द्धा से संबंध रखनेवाला। (२) सिर या मूर्द्धा में स्थित। (३) जिन (वर्णों) का उच्चारण मूर्द्धा से हो; जैसे—ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष।

मूर्द्धा—संज्ञा पुं. [सं. मूर्द्धन्] सिर, मस्तक।

मूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेड़ की जड़। उ.—(क) महामूढ़ सो मूल तजि साखा जल नावै—२-९। (ख) सींचत नीर के सजनी मूल पतार गई—२७७३। (२) मीठी जड़ या कंद। (३) आदि, प्रारंभ। (४) आदि

कारण, उत्पत्ति का हेतु, आधार। उ.—भई आकास-बानी तिहिं बार। तू ये चार स्लोक बिचार।......। मूल भागवत के येई चारि। सूर भलीबिधि इन्हें बिचारि—२-३७। (५) असल धन या पूँजी जिससे कोई व्यापार आरंभ किया जाय। उ.—(क) होतो नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ—१-२९७। (ख) और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि—१-३१०। (६) किसी वस्तु का प्रारंभिक भाग। (७) सत्ताइस नक्षत्रों में उन्नीसवाँ। (८) किसी देवता का आदि या बीज मंत्र।

वि.—मुख्य, प्रधान।

संज्ञा पुं. [सं. मूल्य] महत्व, सम्मान। उ.—देखिकै नारि मोहित जो होवै। आपनो मूल या बिधि सो खोवै—८-११।

मूलक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूली। (२) मूल रूप।

वि. उत्पन्न करनेवाला, जनक।

मूल दुवार, मूल द्वार–संज्ञा पुं. [सं. मूल+द्वार] प्रधान या सिंह द्वार। उ.— आँखि, कान, मुख मूल दुवार—४-१२।

मूलधन—संज्ञा पुं. [सं.] पूँजी।

मूलस्थल, मूलस्थली—संज्ञा पुं. [सं.] थाला, आलबाल।

मूलहु—संज्ञा पुं. सवि. [सं. मूल+हिं. हु] पूँजी या मूलधन को भी। उ.—सूरदास तेहि बनिज कवन गुन मूलहु माँझ गवाँए—३२०१।

मूलाधार - संज्ञापुं.[सं.]शरीर के भीतरी छह चक्रों में एक।

मूलिका—संज्ञा पुं. [सं.] औषधि की जड़, जड़ी।

मूली—संज्ञा स्त्री. [सं. मूलक] एक पौधे की लम्बी जड़ जो खायी जाती है। उ.—मूली (मूरी) के पातन के बदले को मुक्ताहल दैहै—३१०५।

मुहा०—(किसी को) मूली-गाजर समझना—बहुत तुच्छ समझना।

मूल्य—संज्ञा पुं. [सं.] दाम, कीमत।

मूल्यन - संज्ञा पुं. [सं. मूल्य+हिं. न] मूल्यांकन।

मूल्यवान, मूल्यवान्—वि. [सं. मूल्यवान्] कीमती।

मूल्यांकन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु का मूल्य निश्चित करना। (२) किसी वस्तु का महत्व आँकना।

मूष, मूषक—संज्ञा पुं. [सं.] चूहा।

मूषकवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश जी।

मूषत—क्रि.स.[हिं.मूसना] चुरा ले जाता है। उ.—निशा-निमेष कपाट लगे बिनशशि मूषत सतसार—२८८८।

मूषना, मूषनो—क्रि. स. [हिं. मूसना] चुरा ले जाता है।

मूषिक—संज्ञा पुं. [सं.] चूहा।

मूषी—क्रि. स. [हिं. मूसना] चुरा ले गया। उ.—तेरे हती प्रेम-संपति सखि सो संपति केहि मूषी—२२७५।

मूषे—क्रि. स. [हिं. मूसना] चुरा ले गये। उ.—मेरेहु जान सूर प्रभु साँचे मदन चोर मिलि मूषे हो – १९६२।

मूस—संज्ञा पुं.[सं. मूष]चूहा। उ.—बालक मूस ज्यौं पूँछ धरि खेलिए तैसे हरि हाथ हाथी गिरायौ—२५९६।

मूसना, मूसनो—क्रि. स. [सं. मूषण] चुरा ले जाना।

मूसर, मूसल—संज्ञा पुं. [सं. मुशल, हिं. मूसल] (१) धान कूटने का मूसल। (२) एक अस्त्र जिसे बलराम धारण करते थे। उ.—हलधर हल-मूसल कर लीन्हे, सबहीं मलेच्छ सँहारे—सारा. ६०४। (३) राम और कृष्ण के पद का एक चिह्न।

वि.—अपढ़, गँवार या असभ्य।

मूसरचंद, मूसलचंद—वि. [हिं. मूसल+चंद्र] (१) अपढ़, गँवार। (२) हट्टा-कट्टा परन्तु निकम्मा।

मूसरधार, मूसलधार, मूसलाधार—क्रि. वि. [हिं. मूसल +धार] बहुत मोटी धार से, बहुत तेजी से।

संज्ञा पुं.—बहुत मोटी धार। उ.—मूसलधार टूटी चहुँ दिसि ते ह्वै गयौ दिवस अँधेरो—९५९।

मूसा—संज्ञा पुं. [सं. मूषक] चूहा। उ.—जैसैं घर बिलाव के मूसा रहत बिषय-बस वैसो—२-१४।

संज्ञा पुं. [इबरानी] यहूदियों के एक पैगंबर।

मूसि—क्रि. स. [हिं. मूसना] चुरा-चुराकर। उ.—(क) मूसि मूसि लै गए मन माखन जो मेरे धन हो री—१५१३। (ख) सरबस मूसि देत माधव को—पृ. ३३४ (४०)।

मूसी—क्रि. स. [हिं. मूसना] चुरा ले गया, चुरा ली। उ.—(क) मृग मूसी नैननि की सोभा जाति न गुप्त करी—९-६३। (ख) तेरे हती प्रेम-संपति सखि सो संपति सब मूसी (मूषी)—२२७५।

मृग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वन्य पशु । (२) हिरन । उ.—(क) मृग मूसी नैननि की सोभा—९-६३ । (ख) द्वै अपराध मोहिं वै लागे मृग-हित दियौ हथियार —९-८३ । (३) मृगशिरा नक्षत्र । (४) वैष्णवों के तिलक का एक भेद ।

मृगअरि—संज्ञा पुं. [सं. मृग + अरि] सिंह । उ.—राजति मृगअरि की सी लंक—२१९३ ।

मृगचरम, मृगचर्म—संज्ञा पुं. [सं. मृगचर्म] हिरन की खाल जो साधु-संन्यासी ओढ़ते,पहनते और बिछाते हैं ।

मृगछाल, मृगछाला—संज्ञा स्त्री. [सं. मृग + हिं. छाल, छाला] हिरन की खाल । उ.—दंड कमंडल हाथ बिराजत और ओढ़े मृगछाला—सारा. ३३३ ।

मृगछौना—संज्ञा पुं. [सं. मृग + हिं छौना] हिरन का बच्चा । उ.—मैं मृगछौना मैं चित दयौ, तातैं मैं मृग-छौना भयौ—५-३ ।

मृगज़—संज्ञा पुं. [सं.] मृग का बच्चा, मृग । उ.—(क) खंजन, मीन मृगज चपलाई नहि पटतर एक सैन —१३४९ । (ख) कमल खंजन मृगज मीन लोचन जीते—२१५६ ।

मृगजल—संज्ञा पुं. [सं.] मृगतृष्णा की लहरें ।

मृगजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कस्तूरी ।

मृगतृषा, मृगतृष्णा, मृगतृष्णिका, मृगतृष्ना—संज्ञा स्त्री. [सं. मृग + तृषा, तृष्णा] जल की लहरों का वह भ्रम जो रेतीले या ऊसर मैदान में कड़ी धूप पड़ने पर हो जाता है और जिसे जल समझकर प्यासा मृग दूर तक व्यर्थ दौड़ता है, मृग-मरीचिका । उ.—(क) रजनी गत बासर मृगतृष्ना रस हरि कौन चयौ—१-३८ । (ख) मृग-तृष्ना आचार-जगत जल ता सँग मन ललचावै—२-१३ ।

मृगदाव—संज्ञा पुं. [सं. मृग + दाव = वन] (१) वन जहाँ मृग बहुत हों । (२) 'सारनाथ' का प्राचीन नाम ।

मृगधर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।

मृगनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह ।

मृगनाभि—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी ।

मृगनारी—संज्ञा पुं. [सं. मृग + नारी] हिरनी, मृगी । उ.—मृगनारी सौं बूझहीं बूझैं सुकुमारी—१८२३ ।

मृगनैनी—वि. [सं. मृग + हिं. नयन + ई] हिरन-जैसे सुन्दर नेत्र वाली (नारी) ।

मृगपति—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह । उ.—कर-पल्लव उडु-पति रथ खैंच्यौ मृगपति बैर करयौ—२८९५ ।

मृगवारि—संज्ञा पुं. [सं. मृगवारि] मृगतृष्णा का जल ।

मृगभद्र—संज्ञा पुं. [सं.] हाथियों की एक जाति ।

मृगमद—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी । उ.—(क) ज्यौं माखी मृगमद मंडित तन परिहरि पूय परै—१-१९८ । (ख) मथि मृगमद-मलय-कपूर माथैं तिलक किये—१०-२४ ।

मृगमरीचिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मृगतृष्णा ।

मृगमित्र—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।

मृगमेद—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी ।

मृगया—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिकार, आखेट, अहेर । उ.—एक दिवस मृगया कौं निकस्यौ कंठ महामनि लाइ—सारा. ६४४ ।

मृगराज—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह ।

मृगरोचन—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी ।

मृगलांछन—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।

मृगलेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा का धब्बा ।

मृगलोचना, मृगलोचनी—वि. [सं. मृग + लोचन] (स्त्री) जिसके नेत्र मृग के समान हों ।

मृगवारि—संज्ञा पुं. [सं.] मृगतृष्णा का जल ।

मृगशिरा, मृगसिरा—संज्ञा पुं. [सं. मृगशिरस्, हिं. मृग-शिरा] सत्ताइस नक्षत्रों में पाँचवाँ ।

मृगांक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२) (वैद्यक में) एक रस जो सुवर्ण, रत्नादि से बनता है ।

मृगा—संज्ञा पुं. [सं. मृग] हिरन, मृग । उ.—(क) ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सुतौ ताके पास—१-७० । (ख) धावत कनक मृगा के पाछैं—१०-१९८ ।

मृगाक्षि, मृगाक्षी, मृगाछि, मृगाछी—वि. स्त्री. [सं. मृगाक्षी] (स्त्री) जिसके नेत्र मृग जैसे सुंदर हों ।

मृगाश, मृगाशन—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह ।

मृगिअन—संज्ञा पुं. सवि. [सं. मृग] मृगों को । उ.—जैसे मृगिअन ताकि बधिक दृग कर कोदंड गहि तानै—३१३६ ।

मृगिनी, मृगी—संज्ञा स्त्री. [सं. मृग] हिरनी, हरिणी। उ.—(क) मृग-मृगिनी द्रुम बन सारस खग काहू नहीं बतायौ री। (ख) जद्यपि व्याध बधै मृग प्रगटहि मृगिनी रहै खरी री—पृ. ३३३ (२५)।

मृगेंद्र, मृगेश—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह।

मृड़ा, मृड़ानी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, पार्वती।

मृणाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमल की नाल जिसमें फूल लगता है। (२) कमल की जड़। (३) खस।

मृणालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमलनाल।

मृणालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमलिनी।

मृणाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमलनाल।

मृत—वि. [सं.] मरा हुआ, मुर्दा।

मृतकंबल—संज्ञा पुं. [सं.] वस्त्र जिससे मुर्दा ढका जाय, कफन।

मृतक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मरा हुआ प्राणी। उ.—(क) दासी बालक मृतक निहारि। परी धरनि पर खाइ पछारि—६-५। (२) मरे हुए के समान। उ.—जबते कह्यौ कंस सों मन मोहन जीवत मृतक करि लेखो—२५४८।

मुहा०—मृतकहु ते पुनि मारे—जो स्वयं ही मर रहा था उसी को मार दिया, जिस पर स्वयं अपार संकट था, उस पर और भी अत्याचार किया। उ.—सूर स्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे—१० उ०-८३।

मृतक कर्म—संज्ञा पुं. [सं.] मरे हुए प्राणी का क्रिया-कर्म या प्रेत-कर्म।

मृतक धूम—संज्ञा पुं. [सं.] राख, भस्म।

मृतजीवनी—संज्ञा स्त्री. [सं.]। वह विद्या जिससे मृतक को भी जिला लिया जाय।

मृतप्राय—वि. [सं.] जो मरने के निकट हो।

मृतभाषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भाषा जो पहले कभी प्रचलित रही हो, परन्तु अब वैसी प्रचलित न हो और उसको बोलनेवाले बहुत कम हों।

मृतवत्सा—वि. स्त्री. [सं.] (स्त्री.) जिसकी संतान मर गयी हो या बार-बार मर जाती हो।

मृतसंजीवनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक बूटी जिससे मृतक को भी जिला लिया जाय।

मृत्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मिट्टी। उ.—कियौ स्नान मृत्तिका लाइ—१-३४१।

मृत्युंजय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जिसने मृत्यु पर विजय पा ली हो। (२) शिव। (३) शिव का एक जाप जिससे मृत्यु टल जाती है।

मृत्यु—संज्ञा स्त्री. [सं.] मौत, मरण।

मृत्युबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] यमराज।

मृत्युलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यमलोक। (२) संसार।

मृत्युहिं—संज्ञा स्त्री. सवि. [सं. मृत्यु.] मृत्यु को भी। उ.—मृत्युहिं बाँधि कूप मैं राखै भावी-बस सो मरै—१-२६४।

मृदंग, मृदंगा—संज्ञा पुं. [सं. मृदंग] एक बाजा जो ढोलक से कुछ लम्बा होता है। उ.—ताल मृदंग झाँझ इंद्रिनि मिलि बीना बेनु बजायौ—१-२०५।

मृदु—वि. [सं.] (१) छूने में नरम, कोमल। उ.—अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई—१०-१०८। (२) जो सुनने में कर्कश न हो। (३) सुकुमार। (४) मंद, धीमा। उ.—बिधु मुख मृदु मुसुक्यानि अमृत सम सकल लोक लोचन प्यारी—१-६९।

मृदुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कोमलता। (२) धीमापन।

मृदुल—वि. [सं.] (१) जो छूने में नरम हो, कोमल। (२) सुकुमार। उ.—मंजु मेचक मृदुल तनु—१०-१०९। (३) दयामय, कृपालु। उ.—सूर स्याम सरवज्ञ कृपानिधि करुना मृदुल हियौ—१-१२१।

मृदुलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कोमलता।

मृनाल—संज्ञा स्त्री. [सं. मृणाल] कमल की नाल या जड़।

मृन्मय—वि. पुं. [सं.] मिट्टी का बना हुआ।

मृषा—अव्य. [सं.] झूठमूठ, व्यर्थ।

वि.—झूठ, असत्य।

में—अव्य. [हिं. महँ] अधिकरण कारकीय चिह्न।

मेंगनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मींगी] पशु की विष्टा, लेंडी।

मेकल—संज्ञा पुं. [सं.] विंध्य पर्वत का एक भाग।

मेकलकन्यका, मेकलकन्या, मेकलसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नर्मदा नदी जो मेकल पर्वत से निकली है।

मेख—संज्ञा पुं. [सं. मेष] (१) भेड़। (२) एक राशि। (३) एक लग्न।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) कील। (२) खूँटा।

मुहा०—मेख ठोंकना—(१) (हाथ-पैर में कील ठोंकने-जैसा) कठोर दंड देना। (२) दबाना, हराना। मेख मारना—(१) कील ठोंककर हिलना-डोलना बंद करना। (२) ऐसी भाँजी मारना कि होता हुआ काम भी न हो। (३) चलते हुए काम में बाधा डालना।

मेखल, मेखला, मेखली—संज्ञा स्त्री. [सं. मेखला] (१) करधनी, किंकिणी। उ.—कटि पट पीत मेखला मुखरित पाइनि नूपुर सोहै—४५१। (२) वह वस्तु जो दूसरी के मध्य भाग में उसे चारों ओर से घेरे हो। (३) कमर में पहनी गयी डोरी। (४) गोल घेरा, मंडल। (५) कमरबंद जिसमें तलवार बाँधी जाती है। (६) साधुओं के गले में पड़ा रहनेवाला कपड़े का टुकड़ा, कफनी। उ.—कानन मुद्रा पहिरि मेखला धरैं जटा जोग अधारी—३२२३।

मेघ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बादल। उ.—को करि लेइ सहाइ हमारी प्रलय काल के मेघ अरे—८३२। (२) संगीत के छह रागों में एक।

मेघकाल—संज्ञा पुं. [सं.] वर्षा ऋतु।

मेघधनु—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष।

मेघध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] एक राजा जो विष्णु का बड़ा भक्त था और जिसने विदर्भ राज की कन्या से विवाह किया था। उ.—मेघध्वज सौं भयौ बिबाह। बिष्नु भक्ति कौ तिहिं उतसाह—४-१२।

मेघनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] इन्द्र।

मेघनाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेघ का गर्जन। (२) रावण का पुत्र इन्द्रजित जिसे लक्ष्मण ने मारा था।

मेघपटल—संज्ञा पुं. [सं.] बादल की घटा।

मेघपति—संज्ञा पुं. [सं.] इन्द्र।

मेघपुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इन्द्र का घोड़ा। (२) श्रीकृष्ण के रथ के चार घोड़ों में एक।

मेघमलार, मेघमल्लार—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग।

मेघमाल, मेघमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] बादल की घटा।

मेघराज—संज्ञा पुं. [सं.] इन्द्र।

मेघबर्त, मेघबर्तक, मेघवर्त, मेघवर्तक, मेघवर्त्त—संज्ञा पुं. [सं. मेघवर्त्त] प्रलयकालीन मेघों में एक। उ.—सुनि मेघबर्त सजि सैन आए। बलबर्त्त, बारिबर्त, पौनबर्त, बज्र, अग्निबर्तक, जलद संग ल्याए—८५३।

मेघवाइ, मेघवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मेघ+वाई] बादल की घटा।

मेघवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] इन्द्र।

मेघा—संज्ञा पुं. [सं. मेघ] बादल।

संज्ञा पुं.—मेढक, मंडूक।

मेघाच्छन्न—वि. [सं.] बादलों से ढका हुआ।

मेघाच्छादित—वि. [सं.] बादलों से ढका हुआ।

मेघावर, मेघावरि, मेघावलि, मेघावारि—संज्ञा स्त्री. [सं. मेघावलि] बादलों की घटा।

मेघास्थि—संज्ञा पुं. [सं.] ओला।

मेचक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंधकार। (२) धुआँ।

वि.—काला, श्याम। उ.—मंजु मेचक मृदुल तनु—१०-१०९।

मेचकता, मेचकताइ, मेचकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. मेचकता] कालापन, श्यामता।

मेजा—संज्ञा पुं. [हिं. मेढक, पू० हिं. मेझुका] मेढक।

मेटक—वि. [हिं. मेंटना] मिटानेवाला, नाशक।

मेटत—क्रि. स. [हिं. मेटना] नष्ट करता है। उ.—सूरदास जो संतनि कौं हित कृपावंत मेटत दुख-जालहिं—१९४।

मेटति—क्रि. स. [हिं. मेटना] नष्ट करती है। उ.—मेटति है अपने बल सबहिनि की रीति—६५०।

मेटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. मेटना] मेटने के लिए। उ.—सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मेटन कौं भू-भार—१०-१५।

मेटनहार, मेटनहारा, मेटनहारो—संज्ञा पुं. [हिं. मेटना +हार] मिटानेवाला। उ.—सो अब सत्य होत इहिं औसर को है मेटनहार—९-१२१।

मेटना, मेटनो—क्रि. स. [सं. मृष्ट, प्रा. मिट्ट+ना] (१) मिटा देना। (२) दूर करना। (३) नष्ट करना।

मेटि—क्रि. स. [हिं. मेटना] (१) मिटाकर, नष्ट करके।

उ.—बिधि की बिधि मेटि करति अपनी नई रीति —६५३ ।

प्र०—मेटि सकै—मिटा सकता हूँ । उ.—जो कछु लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोइ—१-२६२ । (२) दूर करके, रहने न देकर । उ.—मुनि-मद मेटि दास-व्रत राख्यौ अंबरीष-हितकारी—१-१७ । (३) हटाकर, प्रचलित न रहने देकर । उ.—सुरपति पूजा मेटि गोबर्धन कीनो यह संजोग—९२१ ।

मुहा०—मेटि धरे—आदर सम्मान मिटाकर अप्रसन्न कर दिया । उ.—कुलदेवता हमारे सुरपति तिनको सब मिलि मेटि धरे—९५३ ।

मेटिबो, मेटिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. मेटना] मेटने की क्रिया या भाव ।

क्रि. स.—दूर करना । उ.—सुख संदेस सुनाइ सबन को दिन दिन को दुख मेटिबो—२९४२ ।

मेटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. मटका] मटकी ।

वि. [हिं. मेटना] मेटनेवाला ।

मेटी—क्रि. स. [हिं. मेटना] मिटायी, नष्ट की।

प्र०—मेटी नहिं जाहि—मिटायी नहीं जा सकती। उ.—सूर सीय पछितानि यहै कहि करम-रेख मेटी नहिं जाहि—९-५९ ।

(२) दूर की, मिटा दी । उ.—मेटी पीर परम पुरुषोत्तम—१-११३ ।

मेटुकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मटकी] मटकी ।

मेटुआ, मेटुवा—वि. [हिं. मेटना] दूसरे का किया हुआ उपकार न माननेवाला, कृतघ्न ।

मेटे—क्रि. स. [हिं. मेटना] (१) मिटा दिये, साफ कर दिये । उ.—हमैं नँदनंदन मोल लिये । .... मेटे अंक बिये—१-१७१ । (२) नष्ट कर दिये । उ.—अंग परसि मेटे जंजाला—७९९ ।

मेटै—क्रि. स. [हिं. मेटना] दूर करे, रहने न दे । उ.—सूर स्याम मेटै संताप—१-२६१ ।

मेटौंगी—क्रि. स. [हिं. मेटना] दूर करूँगी, रहने न दूँगी । उ.—मैं हारी त्योंही तुम हारो चरन चापि स्रम मेटौंगी—१७७९ ।

मेटौं—क्रि. स. [हिं. मेटना] दूर करूँ, रहने न दूँ । उ.—तुव दरस तन-ताप मेटौं काम-द्वंद गँवाइ—६८३ ।

मेटौ—क्रि. स. [हिं. मेटना] (१) मिटाओ, (लांछन आदि) दूर करो । उ.—सूर स्याम इहिं बरजि कै मेटौ अब कुल-गारी हो—१-४४ । (२) (विपत्ति आदि) दूर करो । उ.—मेटौ बिपति हमारी—१-१७३ ।

मेट्यो, मेट्यौ—क्रि. स. [हिं. मेटना] (१) मिटाया, दूर किया । उ.—(क) मेट्यो सबै दुराजै—१-३६ । (ख) दुख मेट्यो दुहुँ घाँ को—१-११३ । (ग) दुर-जोधन को मेट्यो गारौ—१-१७२ । (घ) जामवंत मद मेट्यौ—१०-१२७ । (२) (वचन-आदि) तोड़ा ।

मुहा०—न मेट्यो जाइ—(वचन आदि) तोड़ा नहीं जाता । उ.—तुम्हरो वचन न मेट्यो जाइ —११-१ ।

मेड़—संज्ञा पुं. [सं. भित्ति ?] (१) खेत का ऊँचा घेरा । (२) खेत के बीच में या सीमा पर बना कुछ ऊँचा मार्ग ।

मेड़रा—संज्ञा पुं. [हिं. मंडरा] (१) किसी गोल चीज का उभरा हुआ किनारा । (२) मंडलाकार ढाँचा ।

मेडराना, मेडरानो—क्रि. अ. [हिं. मँडराना] (१) मंडल बाँधकर उड़ना । (२) चारों ओर घूमना । (३) आस-पास फिरना ।

मेडरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मेडरा] (१) गोल चीज का उभरा हुआ किनारा । (२) गोल ढाँचा ।

मेड़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. मढ़ी] मंडप, घर ।

मेढक, मेढ़क—संज्ञा पुं. [सं. मंडूक, हिं. मेढक] मंडूक ।

मेढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. मेढ्र] नर भेड़, दुंबा ।

मेढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. वेणी] तीन लड़ियों की चोटी ।

मेथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पौधा जिसका साग खाया जाता है और जिसकी फलियों के दाने 'मसाले' के काम आते हैं । उ.—सरसों मेथी, सोवा, पालक, बथुआ राँध लियौ जु उतालक—३९६ ।

मेथौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मेथी+बरी] मेथी के साग और उर्द की पीठी की बरी या बड़ियाँ ।

मेद—संज्ञा पुं. [सं. मेदस्, मेद] (१) चरबी ।

उ.—रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच, उदर गंध

गंधात—२-२४। (२) चरबी बढ़ने या मोटा होने का रोग। (३) कस्तूरी।

मेदा—संज्ञा स्त्री. [अ.] पाकाशय, पेट।

मेदनी, मेदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. मेदिनी] पृथ्वी जिसको मधु-कैटभ के 'मेद' से उत्पन्न माने जाने के कारण 'मेदिनी' कहते हैं। उ.—बरषत मेह मेदनी के हित—२१९४।

मेध, मेधा—संज्ञा पुं. [सं. मेध] यज्ञ।

मेधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्मरण रखने की शक्ति।

मेधविन, मेधावी—वि. [सं. मेधाविन्] (१) तीव्र स्मरण शक्तिवाला। (२) बुद्धिमान। (३) विद्वान।

मेनका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध अप्सरा जिसने विश्वामित्र का तप भंग करके उनके संयोग से शकुंतला को जन्म दिया था।

मेमना—संज्ञा पुं. [अनु. में में] (१) भेंड़ का बच्चा। (२) घोड़ों की एक जाति।

मेमार—संज्ञा पुं. [अ.] थवई, राजगीर।

मेर—संज्ञा पुं. [सं. मेल] मेल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मेड़] मेड़-जैसा ऊँचा। उ.—मानहुँ कुमुदिनि कनक-मेर चढ़ि ससि सनमुख मृदु सहित सिधाई—२११६।

सर्व. [हिं. मेरा] मेरा। उ.—मेर ही या हृदय की हरि कठिन सकल उपाइ —११-१।

मेरनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मेल] मेल में। उ.—अपने अपने मेरनि मनो उनि होरी हरषि लगाई।

मेरवन—संज्ञा स्त्री. [हिं. मेरवना] (१) मिलाने की क्रिया या भाव। (२) मिलाई हुई चीज।

मेरना, मेरनो, मेरवना, मेरवनो—क्रि. स. [सं. मेलना] (१) कई वस्तुओं को मिश्रित करना। (२) मेल-मिलाप कराना।

मेरा—सर्व. [हिं. मैं+रा] 'मैं' का संबंधकारकीय रूप।

संज्ञा पुं. [हिं. मेला] (१) मेला। (२) भीड़।

मेराउ, मेराव—संज्ञा पुं. [हिं. मेल] मेल-मिलाप।

मेरियै—सर्व. [हिं. मेरी] मेरी ही। उ.—यह सब मेरियै आइ कुमति—१-३००।

मेरी—सर्व. स्त्री. [हिं. मेरा] 'मेरा' का स्त्रीलिंग रूप। उ.—कौन गति करिहौ मेरी नाथ—१-१२४।

संज्ञा स्त्री.—(१) अहंकार। (२) मोह माया।

यौ०—मैं-मेरी—मोह-माया। मेरी-मेरी—मोह-ममता, माया।

मुहा०—मेरी मेरी करना—मोह-ममता लगाना, मोह-माया में फंसना। मेरी मेरी करि—मोह-माया लगाकर या उसमें फँसकर। उ.—अब मेरी-मेरी करि बौरे बहुरौ बीज बयौ—१-७८।

क्रि. स. [हिं. मेलना] मिलायी, मिश्रित की।

मेरु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) 'सुमेरु' पर्वत जो सोने का कहा गया है। (२) पर्वत। उ.—(क) तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान—१-८। (ख) अघ को मेरु बढ़ाइ—१६५। (३) जाप की माला का बड़ा दाना जो 'सुमेरु' कहलाता है।

मेरुदंड—संज्ञा पुं. [सं.] पीठ की निचली हड्डी, रीढ़।

मेरे—सर्व. [हिं. मेरा] 'मेरा' का बहुवचन। उ.—जौ प्रभु मेरे दोष बिचारैं—१-१८३।

मेरैं—सर्व. सवि. [हिं. मेरा] (१) मेरे (पास)। उ.—खेवनहार न खेवट मेरैं—१-१८४। (२) 'मेरे' का वह रूप जो सम्बंधी शब्द की विभक्ति लुप्त होने पर उसे दिया जाता है। उ.—तौ बिस्वास होइ मन मेरैं—१-१४६।

क्रि. स. [हिं. मिलाना] मिश्रित करते हैं।

मेरो, मेरौ—सर्व. [हिं. मेरा] मेरा। उ.—मेरौ मन मतिहीन गुसाईं—१-१०३।

क्रि. स. [हिं. मेलना] मिश्रित करो।

मेल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कई वस्तुओं या व्यक्तियों का संयोग या मिलाप। (२) एका, एकता।

यौ०—मेल-जोल, मेल-मिलाप या हेल-मेल—एका, एकता।

मुहा०—मेल करना—संधि या एका करना। मेल होना—संधि या एका होना।

(३) मित्रता, प्रीति।

मुहा०—मेल बढ़ना—मित्रता गाढ़ी होना। मेल बढ़ाना—मित्रता घनिष्ठ करना।

(४) संग, संगति, साथ, अनुरूप। उ.—ते अपनैं-अपनैं मेल निकसीं भाँति भली—१०-२४।

मुहा०—मेल खाना, बैठना या मिलना—(१) साथ निभना। (२) दो चीजों का जोड़ ठीक-ठीक होना।

(५) जोड़, टक्कर, बराबरी। (६) प्रकार, रीति। (७) दो वस्तुओं का मिश्रण।

मेलत—क्रि. स. [हिं. मेलना] डालता है। उ.—(क) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत—१०-६३। (ख) वरा कौर मेलत मुख भीतर—१२-२२४।

मेलना, मेलनो—क्रि. स. [हिं. मेल] (१) मिश्रित करना। (२) डालना, रखना। (३) पहनाना।

क्रि. अ.—इकट्ठा या एकत्र होना।

मेल-मल्लार—संज्ञा पुं. [सं.] एक रागिनी।

मेला—संज्ञा पुं. [सं. मेलक] (१) भीड़-भाड़। (२) दर्शन, उत्सव जैसे सामाजिक आयोजन के अवसर पर बहुत से लोगों का जमाव।

यौ०—मेला-ठेला—भीड़-भाड़।

मेलाना, मेलानो—क्रि. स. [हिं. मेल] मेल करने या मिलने को प्रवृत्त करना।

मेलि—क्रि. स. [हिं. मेलना] डालकर, रखकर। उ.—(क) सालिग्राम मेलि मुख भीतर बैठि रहे अरगाई—१०-२६३। (ख) ग्वालिन कर तैं कौर छुड़ावत, मुख लै मेलि सराहत जात—४६६।

प्र०—मेलि मोहिनी—मोहिनी डालकर। उ.—ना जानौं कछु मेलि मोहिनी राखे अँग-अँग भोरि—६५७।

मेली—संज्ञा पुं. [हिं. मेल] संगी-साथी।

वि.—हेल-मेल रखनेवाला।

क्रि. स. [हिं. मेलना] उपस्थित या प्रस्तुत की, विक्रयार्थ रखी। उ. मुक्ति आनि मदे मो मेली—३-१४४।

मेले—क्रि. स. बहु. [हिं. मेलना] मिलाये, डाले, मिश्रित किये। उ.—हींग हरद म्रिच छौंके तेले। अदरख और आँवरे मेले—३९६।

मेलो, मेलौ—क्रि. स. [हिं. मेलना] डालो, रखो।

प्र०—बंदि लै मेलो—बंदीगृह में डाल दो। उ.—बरु ए गो-धन हरौ कंस सब मोहिं बंदि लै मेलो—२५११।

मेल्यो, मेल्यौ—क्रि. स. [हिं. मेलना] डाला, रखा। उ.—चुपकहिं आनि कान्ह मुख मेल्यो, देखौं देव बड़ाई—१०-२६१।

मेल्हना, मेल्हनो—क्रि. अ. [देश.] (१) छटपटाना, बेचैन होना। (२) टाल-टूल कर समय बिताना।

मेव—संज्ञा पुं. [देश.] राजपूताने की एक लुटेरी जाति, मेवाती।

मेवा—संज्ञा पुं. स्त्री. [फ़ा.] किशमिश आदि सूखे फल। उ.—दूध दही घृत माखन मेवा जो माँगौं सो दै री—१०-१७६।

मेवाटी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मेवा+बाटी] एक पकवान जिसमें मेवा भरी जाती है।

मेवाड़—संज्ञा पुं. [देश.] राजपूताने का एक प्रांत।

मेवात—संज्ञा पुं. [सं.] राजपूताने और सिंध का मध्य वर्ती प्रदेश।

मेवासा—संज्ञा पुं. [हिं. मवासा] (१) किला, गढ़। (२) रक्षा का आश्रय या स्थान। (३) घर, मकान।

मेवासी—संज्ञा. पुं. [हिं. मेवासा] (१) घर का स्वामी। (२) किले में सुरक्षित व्यक्ति आदि।

मेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भेड़। (२) एक राशि। (३) एक लग्न। (४) सोच-विचार।

मुहा०—मेष या मीन-मेष करना—आगा-पीछा या सोच-विचार करना।

मेषै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. मेष] सोच-विचार।

मुहा० - करत मेषै—आगा-पीछा या सोच-विचार करता है। उ. – मनो आए सँग देखि ऐसे रँग मनहिं मन परस्पर करत मेषै—२४९३।

मेषी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा भेड़।

मेहँदी—संज्ञा स्त्री. [सं. मेन्धी] एक झाड़ी जिसकी पत्तियाँ पीसकर लगाने से हाथ-पैर आदि अंगों पर लाली चढ़ जाती है।

मुहा०—क्या पैर में मेहँदी लगी है—जो किसी जगह से उठकर काम करने न जा रहा हो, उसको उठाने के लिए ताना। मेहँदी रचना—मेंहदी लगाने

से खूब अच्छा लाल रंग चढ़ना। मेहँदी रचाना या लगाना—हाथ-पैर पर लाली चढ़ाने के लिए मेंहदी की पत्तियाँ पीसकर लगाना।

मह—संज्ञा पुं. [सं. मेघ, प्रा. मेह] (१) बादल। (२) वर्षा, झड़ी। उ.—ठाढ़े रहो आँगन ही हो पिय जौं लौं मेह न नख-शिख भीजो—२००२।

मेहतर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] भंगी।

मेहनत—संज्ञा स्त्री. [अ.] श्रम, प्रयास।

मेहनताना—संज्ञा पुं. [अ.+फ़ा.] पारिश्रमिक।

मेहनती—वि. [हिं. मेहनत] मेहनत करनेवाला।

मेहमान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पाहुना, अतिथि।

मेहमानदारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] अतिथि-सत्कार।

मेहमानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मेहमान] (१) अतिथि-सत्कार।

मुहा०—मेहमानी करना—गत बनाना, दुर्दशा करना। (२) मारना-पीटना। करति मेहमानी-दुर्दशा करती, अच्छी तरह गत बनाती। उ.—नंद महरि की कानि करति हौं नातरु करति मेहमानी—१०४६। मेहमानी खाना—दुर्दशा या गत बनायी जाना। मेहमानी खाते—दुर्दशा या गत बनायी जाती। उ.—मेहमानी कछु खाते।

(२) अतिथि के रूप में रहने का भाव।

मेहर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] दया, कृपा।

मेहरबान—वि. [फ़ा.] दयालु, कृपालु।

मेहरबानगी, मेहरबानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. मेहरबानी] दया, कृपा, अनुग्रह।

मेहरा—संज्ञा पुं. [हिं. मेहरी] स्त्रियों के बीच में बहुत अधिक रहने-बसने वाला।

संज्ञा पुं. [हिं. मेहर] खत्रियों की एक उपजाति।

संज्ञा पुं. [हिं. मेह] मेह, वर्षा। उ.—वेगि साँवरे पाइँ धारिए सूर के स्वामी नतरु भीजैंगो पियरो पट आवत है पिय मेहरा—२००१।

मेहराना, मेहरानो—क्रि. स. [हिं. मेह+राना] वर्षा के कारण कुरकुरे पदार्थों का सील जाना।

मेहराब—संज्ञा स्त्री. [अ.] द्वार का ऊपरी अर्द्धमंडलाकार भाग।

मेहरारू, मेहरिया, मेहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मेहना] (१) स्त्री, नारी। (२) पत्नी।

मेहु—संज्ञा पुं. [हिं. मेह] वर्षा, झड़ी। उ.—सूरदास विह्वल भई गोपी नैनन बरसत मेहु—१०-उ.-१९०।

मैं—सर्व. [सं. अहं] उत्तमपुरुष कर्त्ता-रूप सर्वनाम, स्वयं।

यौ०—मैं-मेरी—गर्व, स्वार्थ या लोभ का भाव। उ.—(क) मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै कीजै पंच सुहातो—१-२०३। (ख) मैं-मेरी करि जनम गँवावत—१-३०३। (२) मोह-ममता की भावना। उ.—मैं-मेरी अब रही न मेरैं, छुट्यो देह-अभिमान—२-३३।

अव्य०—[हिं. मय] युक्त, सहित।

मैंढ़नि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मेढ़ा] मेढ़ों (को)। उ.—अरु मम मैंढ़नि कौं मति खोवहु........। गंध्रव मैंढ़नि निसि लै धाए....। मम मैंढ़नि कौं लै गयो कोइ—९-२।

मैं—अव्य. [हिं. मय] युक्त, सहित।

मैका—संज्ञा पुं.[हिं. मायका] स्त्री के माता-पिता का घर।

मैगर, मैगल—संज्ञा पुं. [सं. मदकल] (मस्त) हाथी। उ.—(क) माधव जू मन सबहीं बिधि पोच। अति उनमत्त निरंकुस मैगल चिंता रहित असोच—१-१०२। (ख) मेरे जानि गह्यो चाहत हौ केरिकि मैगल मातो—३१३२।

वि.—मस्त, मत्त। उ.—गर्जत अति गंभीर गिरा मन मैगल मत्त अपार—२८२६।

मैजल—संज्ञा स्त्री.[अ. मंजिल](१) मंजिल। (२) यात्रा।

मैत्रि, मैत्री—संज्ञा स्त्री. [सं. मैत्री] मित्रता। उ.—ताको कहा निहोरो हमको मैत्रि-भंग करि दीनो—२९३८।

मैत्रेय—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जो पराशर के शिष्य थे और जिनसे विष्णुपुराण कहा गया था। उ.—विदुर सो मैत्रेय सौं लह्यौ—१-२२७।

मैत्रेयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] याज्ञवल्क्य की विदुषी पत्नी।

मैथिल—वि. [सं.] मिथिला का, मिथिला-सम्बन्धी।

(१) मिथिला निवासी। (२) राजा जनक।

मैथिली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जानकी, सीता। (१) 'मैथिल' नाम की भाषा।

मैथुन—संज्ञा पुं. [सं.] संभोग, रति-क्रिया।

मैदा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बहुत महीन आटा। उ.—

(क) बेसन मिलै सरस मैदा सौं अति कोमल पूरी है भारी—१०-२४१। (ख) मैदा उज्ज्वल करिकै छान्यौ —१००९।

मैदान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) समतल या सपाट भूमि। (२) खेलने की समतल भूमि। उ.—श्री मोहन खेलत चौगान। द्वारावती कोट कंचन मैं रच्यौ रुचिर मैदान —१० उ.-६।

मुहा०—मैदान मारना—खेल जीतना।

(३) युद्धभूमि, रणक्षेत्र।

मुहा०—मैदान करना—युद्ध करना। मैदान छोड़ना—लड़ाई से हटना या भागना। मैदान मारना—युद्ध में जीतना। मैदान हाथ रहना—युद्ध में जीतना। मैदान होना—युद्ध होना।

मैन—संज्ञा पुं. [सं. मदन] (१) कामदेव। उ.—(क) कचन कोट कँगूरन की छबि मानहुँ बैठे मैन—२५५८। (ख) निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत आइ फौजपति मैन—२८१९ (२) मोम। उ.—स्याम रँग रँगे रँगीली नैन। धोएँ छुटत नहीं यह कैसेंहु मिले पघिलि ह्वै मैन —ना. २८६९।

मैनफर, मैनफल—संज्ञा पुं. [सं. मदनफल, हिं. मैनफल] एक वृक्ष या उसका अखरोट जैसा फल।

मैनमय—वि. [हिं. मैन+मय] कामासक्त।

मैना—संज्ञा स्त्री. [सं. मदना] एक प्रसिद्ध पक्षिणी जो सिखाने से मनुष्य की बोली बोलती है, सारिका।

संज्ञा स्त्री. [सं. मेनका] (१) पार्वती की माता। (२) राधा की एक सखी। उ.—कहि राधा, किन हार चुरायौ।........। दर्वा, रंभा कृष्णा ध्याना मैना नैना रूप—१५८०।

संज्ञा पुं. [देश.] राजपूताने की 'मीना' जाति।

मैनाक—संज्ञा पुं. [सं.] एक पर्वत जो लंका के निकट समुद्र में सपक्ष रूप में स्थित माना जाता है।

मैमंत, मैमत, मैमत्त—वि. [सं. मदमत्त] (१) मतवाला, मदोन्मत्त। उ.—मैमत भए जीव जल-थल के तन की सुधि न सँभार—१७५२। (२) अभिमानी। उ.—अरी ग्वारि मैमंत बचत बोलत जो अनेरो—१११४।

मैया—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृका, प्रा. मातृआ, माइआ] मा, माता। उ.—मैया, मैं तो चंद-खिलौना लैहौं—१०-१९३।

मैर—संज्ञा स्त्री. [सं. मुदर, प्रा. मियर] साँप के काटने पर उसके विष से उठनेवाली लहर। उ.—(क) माया बिषम भुजंगिनि कौं बिष उतरचौ नाहिन तोहिं।........।बाकौ मोह-मैर अति छूटै सुजस गीत के गाएँ—२-३२। (ख) डसी री स्याम भुअंगम कारे। मोहन-मुख मुसुक्यानि मनहुँ बिष, जात मैर सौं मारे—७४७।

मैलंद—संज्ञा पुं. [सं. मिलिंद, प्रा. मैलंद] भौंरा।

मैल—संज्ञा पुं. [सं. मलिन, प्रा. मइल] धूल, गर्द आदि जिसके पड़ने या जमने से वस्तु, शरीर आदि गंदा हो जाता है। उ.—केसरि कौ उबटनौ बनाऊँ, रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ—१०-१८५।

मुहा०—हाथ-पैर का मैल—बहुत तुच्छ वस्तु।

(२) दोष, विकार।

मुहा०—मन का मैल—मन का दोष या विकार। मन में मैल रखना—दुर्भाव या बैर-भाव रखना।

मैलखोरा—वि. [हिं. मैल+फ़ा. खोरा] (रंग) जिस पर मैल जल्दी न दिखायी दे।

मैला—वि. [हिं. मैल] (१) अस्वच्छ। (२) दूषित।

संज्ञा पुं.—(१) कूड़ा-कर्कट। (२) विष्टा।

मैलो, मैलौ—वि. [हिं. मैला] मलिन, अस्वच्छ, गंदा। उ.—इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो —१-२२०।

मैहर—संज्ञा पुं. [हिं. नैहर] स्त्री के माता-पिता का घर, मायका।

मों—अव्य. [में] में, भीतर।

सर्व.—व्रज और अवधी में 'मैं' का वह रूप जो कर्त्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों में कारकीय चिह्न लगाने के पहले प्राप्त होता है।

मोंछ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मूँछ] मूँछ।

मोंढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. मूर्द्धा, प्रा. मूड्ढा] (१) बाँस का बना ऊँचा आसन। (२) कंधा।

यौ०—सीना-मोढ़ा—छाती और कंधा।

मो—सर्व. [सं. मम] (१) मेरा। उ.—(क) मो अनाथ

के नाथ हरी—१-१४९। (ख) हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ—१-२८७। (२) मुझे, मुझको। उ.—मो तजि भए निनारे—१४३। (३) व्रजभाषा और अवधी में 'मैं' का वह रूप जो कर्त्ता के अतिरिक्त अन्य कारकों में कारकीय चिह्न लगाने के पूर्व प्राप्त होता है। उ.—(क) मोकौं जनि छाँड़ौ—४१५। (ख) कछु न भवित मो मौं—१-१५१।

मोकति—क्रि. स. [हिं. मोकना] छोड़ती या त्यागतीहै। उ.—कंपित स्वाँस त्रास अति मोकति—२१९७।

मोकना,मोकनो—क्रि. स. [हिं. मुकना] (१) छोड़ना, त्यागना। (२) फेंकना।

मोकल, मोकला—वि. [हिं. मुकना] जो बँधा न हो, मुक्त।

मोक्ष, मोख—संज्ञा पुं. [सं. मोक्ष] (१) बंधन से छुटकारा। (२) जन्म-मरण से मुक्ति। उ.—अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी—१-३९।

मोखा—संज्ञा पुं. [सं. मुख] झरोखा।

मोगरा, मोगरो—संज्ञा पुं. [सं. मुद्‌गर] एक तरह का बेला (फूल)। उ.—फूले मरुवो मोगरो—२४०५।

मोघ—वि. [सं.] व्यर्थ चूक जानेवाला।

मोच—संज्ञा स्त्री. [सं. मुच] शरीर के किसी अंग की नस का झटके आदि से हट जाना जिससे बड़ी पीड़ा होती है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मोचना] छोड़ने या त्यागने की क्रिया या भाव।

प्र०—डारौं मोच—त्याग दूँगी, छोड़ दूँगी। उ.—सूर प्रभु हिलि-मिलि रहौंगी लाज डारौं मोच—८९०।

मोचक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुक्त करने या छुड़ानेवाला। (२) संन्यासी जो विषय-मुक्त हो।

मोचत—क्रि. स. [हिं. मोचना] (१) गिराता या बहाता है। उ.—अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते सूल नई—२५२७। (२) छोड़ता या त्यागता है। उ.—जा सँग रैनि बिहात न जानी भोर भए तेहि मोचत हौ—२१४०।

मोचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छुड़ाने या मुक्त करने की क्रिया या भाव। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज मोचन—१-६। (२) छुड़ाने या मुक्त करने के लिए। उ.—मित्र-मोचन मनहुँ आए तरल गति ह्वै तरनि—३५१। (३) दूर करने या हटाने की क्रिया या भाव।

मोचना, मोचनो—क्रि. स. [सं. मोचन] (१) छोड़ना, त्यागना। (२) गिराना, बहाना। (३) छुड़ाना, मुक्त करना। (४) दूर करना, हटाना।

मोचहिंगे—क्रि. स. [हिं. मोचना] छुड़ायँगे, मुक्त करेंगे। उ.—अब तिनके बंधन मोचहिंगे—११६१।

मोचि—क्रि. स. [हिं. मोचना] छुड़ाकर, मुक्त करके। उ.—मोचि बंधन राज दीनो—२६५२।

मोची—संज्ञा पुं. [सं. मोचन] चमड़े का काम या जूते आदि बनानेवाला।

वि. [सं. मोचित] (१) छुड़ानेवाला। (२) हटानेवाला।

मोचै—क्रि. स. [हिं. मोचना] बहाती या गिराती है। उ.—सुन बिधुमुखी बारि नयनन ते अब तू काहे मोचै—१० उ०-११०।

मोच्छ, मोछ—संज्ञा स्त्री. [सं. मोक्ष] (१) बंधन से छुटकारा। (२) जन्म-मरण से मुक्ति।

वि.—बंधन से मुक्त, स्वतंत्र। उ.—जमलार्जुन कौं मोच्छ कराए—३९१।

मोजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. मोज़ा] पायताबा, जुर्राब।

मोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोटरी] गठरी। उ.—(क) मोट अघ सिर भार—१-९९। (ख) अति प्रपंच की मोट बाँधि कै अपनैं सीस धरी—१-१८४। (ग) जोग मोट सिर बोझ—३३१६।

संज्ञा पुं.—कुएँ से पानी निकालने का चरसा, पुर।

वि. [हिं. मोटा] (१) जो महीन न हो। (२) जो दुबला न हो। (३) कम मूल्य का।

मोटरी—संज्ञा स्त्री. [तैलंग मूटा = गठरी] गठरी, मोट।

मोटा—वि. [सं. मुष्ट] (१) जो दुबला न हो, स्थूल।

यौ०—मोटा-ताजा—स्थूल शरीरवाला।

(२) अच्छे दल का, दलदार। (३) बड़े घेरे का।

मुहा.—मोटा असामी—धनी या मालदार व्यक्ति। मोटा भाग्य—सौभाग्य।

(४) जो खूब महीन न हो, दरदरा। (५) घटिया, कम मूल्य का, निम्न कोटि का।

यौ०—मोटा-झोटा—जो (अन्न, वस्त्र आदि) ज्यादा महीन या बढ़िया न हो।

(६) जो सुघर या सुंदर न हो, भद्दा, बेडौल।

मुहा.—मोटा काम—ऐसा काम जिसमें अधिक बुद्धि या कौशल न लगाना पड़े।

(७) भारी, कठिन, असाधारण।

मुहा० —मोटा दिखायी देना—दृष्टि कमजोर होना।

(८) गर्व या घमंड करनेवाला, अहंकारी।

संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. मोट] गठरी, गट्ठर, बोझ।

मोटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोटा] (१) मोटापन। (२) पाजीपन, मट्ठरपन।

मुहा०—मोटाई उतरना—पाजीपन या शरारत छूट जाना। मोटाई चढ़ना—पाजी या शरारती हो जाना। मोटाई झड़ना—(१) पाजीपन या शरारत छूट जाना। (२) गर्व चूर हो जाना।

मोटाना, मोटानो—क्रि. अ. [हिं. मोटा] (१) मोटा या स्थूल होना। (२) घमंडी होना। (३) मालदार होना।

क्रि. स.—किसी के मोटा होने में सहायता करना।

मोटापन—संज्ञा पुं. [हिं. मोटा+पन] (१) स्थूल होने का भाव। (२) घमंडी या धृष्ट होने का भाव। (३) धनी होने का भाव।

मोटापा—संज्ञा पुं. [हिं. मोटा](१) मोटाई, मोटापन। (२) धृष्टता, गर्व, घमंड।

मोटायो, मोटायौ—क्रि. अ. [हिं. मोटाना] मोटा या स्थूल हो गया। उ.—तू कह्यो, तैं है बहुत मोटायौ—५-४।

मोटिया—संज्ञा पुं. [हिं. मोटा] मोटा कपड़ा।

संज्ञा पुं. [हिं. मोट] बोझा ढोनेवाला।

मोटी—वि. स्त्री. [हिं. मोटा] (१) जो दुबली न हो, स्थूल। उ.—देखो धन्य भाग गाइनि के प्रीति करत बनवारी। मोटी भईं चरत बृंदावन नंदकुँवर की पाली—६१३। (२) अधिक घेरे या मानवाली।

मुहा०—कर्मन की मोटी—बहुत भाग्यशालिनी। उ.—सूरदास मन मुदित जसोदा भाग बड़े कर्मनि की मोटी—१०-१६५।

(३) साधारण, निम्न कोटि की।

मुहा०—बुधि की मोटी—जो अधिक बुद्धिमती न हो। उ.—तुम जानति राधा है छोटी। चतुराई अँग अंग भरी है, पूरन ज्ञान न बुधि की मोटी—१४७९।

(४) जो सुंदर या सुघर न हो। उ.—मेली सजि मुख अंबुज भीतर उपजी उपमा मोटी—१०-१६४।

मोटे—वि. [हिं. मोटा] (१) स्थूल। (२) अधिक घेरे या मान वाला।

मुहा०—भाग्य के मोटे—सौभाग्यशाली। उ.—बड़े भाग्य के मोटे हो—२०६१।

मोटो, मोटौ—वि. [हिं. मोटा] स्थूलकाय। उ.—नृपति कह्यौ, मोटौ तू आहि—५-४।

मोठ—संज्ञा स्त्री. [सं. मकुष्ठ, प्रा. मउट्ठ] एक मोटा अन्न।

मोठस—वि. [हिं. मट्ठूस] किसी बात का उत्तर न देने वाला।

मोड़—संज्ञा पुं. [हिं. मोड़ना] (१) मार्ग के घूमने का स्थान। (२) मुड़ने या घूमने की क्रिया या भाव। (३) किसी वस्तु का बीच या किनारे से घुमाव डालकर दूसरी ओर फेरा जाना।

मोड़ना, मोड़नो—क्रि. स. [हिं. मुड़ना] (१) फेरना, लौटाना।

मुहा०—मुँह मोड़ना—(१) किसी काम को करने से आनाकानी करना। (२) विमुख होना।

(२) विमुख करना। (३) फैली हुई चीज को तहाना। (४) सीधी लंबी चीज को किसी स्थान से दूसरी ओर घुमाना। (५) तेज धार को भुथरी या कुंठित करना।

मोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. मुंड] लड़का, बालक।

मोतिअन—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मोती] मोतियों से, मोतियों की। उ.—हौं बैठी पोवति मोतिअन लर—१४४७।

मोतिनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मोती] मोतियों का, मोतियों से। उ.—दीन्हो हार गरें कर कंकन मोतिनि थार भरें—१०-१७।

मोतियन—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मोती] मोतियों (के या से)। उ.—एक समय मोतियन के धोखे हंस चुनत है ज्वारि—२०४२।

मोतिया—संज्ञा पुं. [हिं. मोती] एक तरह का बेला (फूल)।
वि.—(१) हलके गुलाबी या पीले और गुलाबी रंग का। (२) मोती-संबंधी।

मोती—संज्ञा पुं. [सं. मौक्तिक, प्रा. मोत्तिय] एक गोल रत्न जो सीपी से निकलता है। उ.—नख-ज्योती मोती मानो कमल दलनि पर—१०-१५१।
मुहा०—मोती ढरकना—आँसू बहना। मोती ढरकाना—आँसू बहाना। मोती पिरोना—(१) बहुत सुंदर भाषण देना। (२) बहुत सुंदर अक्षर लिखना। (३) कोई महीन काम करना। (४) आँसू बहाना। मोती बींधना—मोती को पिरोने के लिए उसमें छेद करना। मोती रोलना—बहुत कम श्रम से अधिक धन पाना। मोती से मुँह भरना—प्रसन्न होकर बहुत अधिक धन देना।
संज्ञा स्त्री.—बाली जिसमें मोती पड़े हों।

मोतीचूर—संज्ञा पुं. [हिं मोती+चूर] बूँदी का लड्डू।

मोतीबेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोतिया+बेला] मोतिया बेला (फूल)।

मोतीभात—संज्ञा पुं. [हिं. मोती+भात] एक तरह का धान।

मोतीलाड़ू—संज्ञा पुं. [हिं. मोती+लड्डू] बूँदी का लडडू। उ.—सुठि मोतीलाड़ू मीठे—१०-१८३।

मोतीसरि, मोतीसरी, मोतीसिरि, मोतीसिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोती+सं. श्री] मोतियों की कंठी या माला। उ.—तोरि मोतीसरी तब गुप्त करि धरयो—१५४२।

मोथरा, मोथरो—वि. [हिं. भुथरा] कुंठित धारवाला।

मोथा—संज्ञा पुं. [सं. मुस्तक, प्रा. मुत्थ] एक घास।

मोद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हर्ष, आनंद। उ.—(क) पौढ़ाए पट पालनैं (हँसि) निरखि जननि मन-मोद। (ख) मोहयौ बाल-बिनोद मोद अति नैननि नृत्य दिखाइ—१०-१७७। (२) सुगंध।

मोदक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लड्डू। (२) किसी नशीली चीज, विष या औषध का बना हुआ लड्डू। उ.—(क) पीन उरोज मुख नैन चखावति इह विष मोदक जातन झारि—११६४। (ख) ते ही ठग मोदक भए मन धीर न हरि तन छूछो छिटकाए—३४००।
वि.—मोद या आनंद देनेवाला।

मोदकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह की गदा।

मोदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रसन्न करना। (२) महकाना।

मोदना, मोदनो—क्रि. अ. [सं. मोदन] (१) प्रसन्न या आनंदित होना। (२) सुगंधि फैलना, महकना।
क्रि. स. (१) प्रसन्न करना। (२) सुगंध फैलाना।

मोदप्रद—वि. स्त्री. पुं. [सं.] आनंददायिनी, सुखदायी। उ.—कनक बलय मुद्रिका मोदप्रद सदा सुभग संतनि काजैं—१-६९।

मोदा—संज्ञा पुं. [सं. मोद] हर्ष, आनंद। उ.—(क) सूर स्याम लए जननि खिलावति हरष सहित मन-मोदा—१०-२३९। (ख) कछु रिस कछु मन मैं करि मोदा—७९९। (ग) बाल-केलि हरि के रस मोदा—१०६९।

मोदित—वि. [सं.] प्रसन्न, आनंदित। उ.—मन मुदित-मोदित मानिनी मुख माधुरी मुसुकानि—२२८९।

मोदी—संज्ञा पुं. [सं. मोदक] (१) आटा, दाल आदि बेचनेवाला। (२) भंडारी। उ.—मोदी लोभ—१-१४१। (३) कर्मचारी जो नौकरों की भरती करता हो।

मोधुक—संज्ञा पुं. [सं. मोदक=एक वर्णसंकर जाति] मछली पकड़नेवाला। उ.—सोई मत्स्य पकरि मोधुक ने जाय असुर को दीन्ही—सारा. ६९३।

मोधू—वि. [सं. मुग्ध] मूर्ख, भोंदू।

मोन—संज्ञा पुं. [सं. मोण] झाबा, पिटारा।

मोना, मोनो—क्रि. स. [हिं. मोयन] भिगोना, तर करना।
संज्ञा पुं. [सं. मोण] झाबा, पिटारा।

मोम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वह चिकना पदार्थ जिससे शहद की मक्खियाँ छत्ता बनाती हैं।
यौ०—मोम की नाक—(१) अस्थिर मति या बुद्धि-वाला। (२) जरा सी बात में मिजाज बदलनेवाला। मोम की मरियम—कोमल और सुकुमार (नारी)।

मुहा०—मोम करना (बनाना)—द्रवीभूत या दयार्द्र कर लेना। मोम होना—कठोरता छोड़कर द्रवीभूत या दयार्द्र हो जाना।

मोमी—वि. [हिं. मोम] मोम का बना हुआ।

मोय—सर्व. [हिं. मुझे] मुझे।

मोयन—संज्ञा पुं. [हिं. मैन=मोम] गूँथे हुए आटे, मैदा, बेसन आदि में घी-तेल डालना जिससे उससे बनी चीज खस्ता हो।

मोयौ—क्रि. अ. [हिं. मोना] भिगोया, लीन या मग्न किया। उ.—काम क्रोध-लोभ-मोह-तृष्ना मन मोयौ —१-३३०।

मोरंग—संज्ञा पुं. [देश.] नैपाल का पूर्वी भाग जिसे 'किरात देश' भी कहा गया है।

मोर—संज्ञा पुं. [सं. मयूर, प्रा. मोर] मयूर पक्षी, शिखंडी, केकी। उ.—(क) मानो हंस मोर-भष लीन्हे—१०-१६४। (ख) सुनि सखि वे बड़भागी मोर—४७७।

सर्व. [हिं. मेरा] मेरा। उ.—(क) रावरें हित मोर—१-२५३। (ख) यह जीवन-धन मोर—१०-३१०।

मोरचंग—संज्ञा पुं. [हिं. मुरचंग] 'मुरचंग' बाजा।

मोरचंदा—संज्ञा पुं. [हिं. मोर+सं. चंद्र] मोर पक्षी के पंख की बूटी जो चंद्राकार होती है।

मोर-चंद्रिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोर+सं. चंद्रिका] मोर पक्षी के पंख की चंद्राकार बूटी।

मोरचा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) लोहे पर लग जानेवाली जंग। (२) दर्पण पर जम जानेवाला मैल।

संज्ञा पुं. [फ़ा. मोरचाल] (१) गड्ढा जो किले के चारों ओर रक्षार्थ खोदा जाता है। (२) गढ़ की भीतरी सेना। (३) स्थान जहाँ से शत्रु से युद्ध किया जाता है।

मुहा०—मोरचाबंदी करना या बाँधना—गड्ढे खोदकर या टीले बनाकर शत्रु से रक्षा करने के लिए सेना नियुक्त करना। मोरचा जीतना या मारना—शत्रु के मोरचे पर अधिकार कर लेना। मोरचा लेना—युद्ध जीतना।

मोरछड़, मोरछल—संज्ञा पुं. [हिं. मोर+छड़] मोर की पूँछ के परों से बनाया गया चँवर जो राजाओं या देवी-देवताओं पर डुलाया जाता है।

मोरछली—संज्ञा पुं. [हिं. मौलसिरी] बकुल (वृक्ष)।

संज्ञा पुं. [हिं. मोरछल] मोरछल डुलानेवाला।

मोरछाँह—संज्ञा पुं. [हिं. मोरछल] मोरछल।

मोरजुटना—संज्ञा पुं. [हिं. मोर+जुटना] माथे का एक गहना जो बेंदे के स्थान पर पहना जाता है।

मोरत—क्रि. स. [हिं. मोड़ना] (१) विमुख करता है।

मुहा०—न मोरत अंग—अंग भिड़ाये रहता है, अंग विमुख नहीं करता। उ.—सोभित सुभट प्रचारि पैज करि भिरत न मोरत अंग—९५७।

(२) फेरता, घुमाता या टेढ़ा करता है। उ.—(क) बदन सकोरि भौंह मोरत है—८५६। (ख) सुभग भृकुटी बिबि मोरत—१३५०।

मुहा०—अंग मोरत—अँगड़ाई लेता है। उ.—कबहुँ जम्हात कबहुँ अँग मोरत—२०८२।

मोरध्वज—संज्ञा पुं. [सं. मयूरध्वज] एक राजा जो, श्रीकृष्ण के परीक्षा लेने पर, अपने पुत्र का जीवित शरीर स्वयं आरे से चीरने को तैयार हो गया था।

मोरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोड़ना] मोड़ने की क्रिया या भाव।

संज्ञा स्त्री. [सं. मोरट] शिखरन जो मथे हुए दही में शकर तथा कुछ सुगंधित वस्तुएँ डालकर बनायी जाती है।

मोरना—क्रि. स. [हिं. मोड़ना] (१) फेरना, लौटाना। (२) घुमाना, टेढ़ा करना। (३) तेज धारको कुंठित करना।

क्रि. स. [हिं. मोरन] दही मथकर मक्खन निकालना।

मोरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोड़ना] मोड़ने की क्रिया या भाव। उ.—(क) सूर स्याम प्रभु भौंह की मोरनि फाँसी गस—११७७। (ख) भौंह मोरनि नैन फेरनि तहाँ ते नहिं टरै—१७७७।

संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मोर] अनेक मोर। उ.—हौं इन मोरनि की बलिहारी—ना० ४६७२।

मोरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोर] (१) मोर (पक्षी) की मादा। (२) नथ का लटकन।

मोरनो—क्रि. स. [हिं. मोड़ना] (१) लौटाना, फेरना।

(२) घुमाना, टेढ़ा करना। (३) तेज धार को कुंठित करना।

क्रि. स. [हिं. मोरन] दही मथकर माखन निकालना।

मोरपंख—संज्ञा पुं. [हिं. मोर+पंख] मोर का पर।

मोरपंखी—संज्ञा पुं. [हिं. मोरपंख] (१) गहरा नीला रंग। (२) मोरपंख की कलगी।

संज्ञा स्त्री.—मोर के पंखों की बनी पंखी।

वि.—मोर जैसा पंख गहरा चमकीला नीला।

मोरपंखा—संज्ञा पुं. [हिं. मोरपंख] (१) मोर का पर। (२) मोर के पंखों की कलगी जो श्रीकृष्ण जी मुकुट आदि में खोंसा करते थे।

मोरपखिआँ, मोरपखियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोरपंखी] मोरपंख की कलगी। उ.—काहू को ढोटा री एक सीस मोरपखिआँ—२३६६।

मोरभख, मोरभष—संज्ञा पुं. [हिं मोर+सं. भक्ष्य] मोर का आहार, सर्प। उ.—कान्ह कुँवर गही दृढ़ करि चोटी। मानो हंस मोर-भष लीन्हे—१०-१६५।

मोरमुकुट—संज्ञा पुं. [हिं. मोर+सं. मुकुट] मोर के पंखों का बना मुकुट जो श्रीकृष्ण पहना करते थे।

मोरवा—संज्ञा पुं. [हिं. मोर] मोर, मयूर। उ.—हमारे माई, मोरवा बैर परे—२८४१।

मोरा—सर्व. [हिं. मेरा] मेरा।

मोराना, मोरानो—क्रि. स. [हिं. मोड़ना] घुमाना, फिराना।

मोरि—क्रि. स. [हिं. मोरना] (१) मोड़ या मरोड़कर। उ.—मटुकी लई उतारि मोरि भुज कंचुकि फारी—११२६। (२) घुमाकर, फिराकर। उ.—सूर स्याम सुनि सुनि यह बानी भौंह मोरि मुसुकात—११४९।

मुहा०—मुख मोरि—(१) मुँह फेरकर, सर्वथा उदासीन होकर। उ.—(क) चलत न कोऊ सँग चलै मोरि रहै मुख नारि—२-२९। (ख) चलत सदा चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायो—२-३०। (२) विमुख या पराजित करके। उ.—तोरि धनुष मुख मोरि नृपति को सीय स्वयंवर कीनो—९-११५।

मोरिबो, मोरिबौ—संज्ञा पुं. [हिं मोरना] मोड़ने की क्रिया या भाव। उ.—मुँह मोरिबौ वाउ अधिकारी सो लैबौ—१०५२।

मोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं मोहरी] नाली, पनाली।

संज्ञा स्त्री. [हिं. मोर] मोर की मादा, मयूरी।

क्रि. स. [हिं. मोरना] घुमायी, फेरी। उ.—सुमिरन सदा बसत हीं रसना दृष्टि न इत-उत मोरी—१० उ.-१०६।

मुहा०—मुँह मोरी—(१) विमुख करके, भर्त्सना करके। उ.—अब आवैं जो उरहन लै कै तौ पठऊँ मुँह मोरी—८६८। (२) मुँह घुमा या फेरकर। उ.—घोष की नारी रहसि चली मुँह मोरी—१०-२९३। (क) बार बार बिहँसति मुख मोरी—६६९।

सर्व. [हिं. मेरी] मेरी। उ.—मूसी मन-संपति सब मोरी।

मोरे—क्रि. स. [हिं. मोरना] घुमाये, फिराये। उ.—(क) कुँवरि मुदित मुख मोरे—७३२। (ख) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरे—८७६।

मुहा०—मुख मोरे—उदासीन होने से। उ.—सूरदास प्रभु पछिले खेवा अब न बनै मुख मोरे—४८८।

सर्व. [हिं. मेरा] मेरे।

मोरैं—क्रि. स. [हिं. मोरना] मोड़ती हैं, घुमाती-फिराती हैं, बचने का यत्न करती हैं। उ.—सीत-उष्न कहुँ अंग न मोरैं—७९९।

मोल—संज्ञा पुं. [सं. मूल्य, प्रा. मुल्ल] (१) मूल्य।

मुहा०—मोल लई बिन मोल—बिना दाम के खरीद लिया। उ.—भौंहैं काट-कटीलियाँ मोहिं मोल लई बिन मोल—८९३।

(२) मूल्य जो अधिक बढ़ाकर कहा जाय। उ.—दीरघ मोल कह्यो ब्योपारी रहे ठगे सब कौतुक हार—१०-१७३।

यौ०—मोल-चाल या मोल-तोल—घटा-बढ़ाकर मूल्य तय करने का कार्य या भाव।

मुहा०—मोल करना—(१) उचित से अधिक मूल्य माँगना। (२) घटा-बढ़ाकर मूल्य तय करना।

मोलना—संज्ञा पुं. [अ. मौलाना] मुल्ला, मौलवी।

मोलाना, मोलानो—क्रि. स. [हिं. मोल] मोल तय करना।

मोलै—संज्ञा पुं. [हिं. मोल] दाम, कीमत, मूल्य।

मुहा०—बिकानी बिन मोलै—बिना दाम के ही बिक गयी। उ.—गोरस सुधि बिसरि गई आपु बिकानी बिनु मोलै—११८४।

मोवना, मोवनो—क्रि. स. [हिं. मोना] भिगोना।

मोष—संज्ञा पुं. [सं. मोक्ष] (१) छुटकारा। (२) मुक्ति।

मोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भ्रम, अज्ञान। उ.—(क) महा मोह मैं परचौ सूर प्रभु काहैं सुधि बिसरी—१-१६। (२) सांसारिक पदार्थों या संबंधियों को अपना समझने का भ्रम या अज्ञान। उ.—सुत-कलत्र दुर्बचन जो भाषै, तिन्हैं मोह बस मन नहिं राखै—५-४। (३) प्रीति। उ.—मोह्यौ जाइ कनक-कामिनि-रस ममता-मोह बढ़ाइ—१-१४७।

यौ०—मया (माया) मोह—मोह-ममता का भाव। उ.—(क) मया-मोह न छांड़ै तृष्णा—१-११८। (ख) माया-मोह ताहि नहिं गह्यौ—१-२२६। (ग) बिनु अपराध पुरुष हम मारैं, माया-मोह न मन मैं धारैं—९-२।

(४) दुख। (५) मूर्च्छा। (६) एक संचारी भाव।

मोहक—वि. [सं.] मन को लुभानेवाला।

मोहताज—वि. [अ.] (१) निर्धन। (२) आश्रित।

मोहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जिसे देखकर मन लुभा जाय। (२) श्रीकृष्ण। उ.—कहन लागे मोहन मैया मैया—१०-१५५। (३) वह तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी को मूर्छित किया जाय। उ.—मोहन मुर्छन बसीकरन पढ़ि अगमति देह बढ़ाऊँ—१०-४९। (४) एक प्राचीन अस्त्र जिससे शत्रु को मूर्छित कर दिया जाता था। (५) कामदेव का एक बाण।

वि.—लुभाने या मोहनेवाला।

मोहनभोग—संज्ञा पुं. [हिं. मोहन + भोग] हलुआ-विशेष।

मोहनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोने के दानों की माला।

मोहना—क्रि. अ. [सं. मोहन] (१) रीझना, मुग्ध होना। (२) बेहोश या मूर्छित होना।

क्रि. स.—(१) मुग्ध या मोहित करना, लुभाना। (२) भ्रम या धोखे में डालना। (३) बेहोश या मूर्छित करना।

मोहनास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन अस्त्र जो शत्रु को मूर्छित करने के लिए चलाया जाता था।

मोहनिशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रलय। (२) जन्माष्टमी की रात्रि जो भादों मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को होती है।

मोहनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भगवान का स्त्री-रूप जो उन्होंने समुद्र-मंथन के पश्चात् देव-दानवों को अमृत बाँटते समय धारण किया था। (२) लुभाने या मुग्ध करने का प्रभाव।

मुहा०—मोहनी डालना (लाना)—किसी को तुरन्त मोहित कर लेना। मोहनी सी लाइ—तुरन्त माया के वश में करके। उ.—स्याम सुंदर मदन मोहन मोहनी (मोहिनी) सी लाई—६७८। मोहनी लगना—मुग्ध या मोहित होना। मोहनी सी लागत—जादू जैसा प्रभाव पड़ने से मुग्ध हो गयी। उ.—मुख देखत मोहनी (मोहिनी)सी लागी स्वयं न बरन्यौ जाई री—१०-१३९।

(३) माया।

वि. स्त्री.—मोहित करनेवाली सुन्दरी।

मोहनै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. मोहन] मोहन या श्रीकृष्ण को (से)। उ.—ऐसो कोऊ नाहिनै सजनी जो मोहनै मिलावै—२७४५।

मोहर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) ठप्पा जिससे अक्षर-चिह्न आदि अंकित किया जा सके। (२) वह छाप जो ठप्पे से अंकित की जाय। (३) स्वर्ण मुद्रा, अशरफी।

मोहरा—संज्ञा पुं. [हिं. मुँह + रा] (१) किसी बरतन या पदार्थ का ऊपरी खुला हुआ मुँह। (२) सेना की अगली पंक्ति। (३) सेना की गति या उसका रुख।

मुहा०-मोहरा लेना-सामना करना, भिड़ जाना।

(४) छेद जिससे कोई वस्तु बाहर निकले। (५) चोली की तनी या बंद।

संज्ञा पुं. [फ़ा. मोहर] शतरंज की गोटी।

मोहरात्रि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रलय। (२) जन्माष्टमी की रात्रि जो भादों मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को होती है।

मोहराना, मोहरानो—संज्ञा पुं. [फ़ा. मुहर + आना]

धन जो किसी व्यक्ति को मोहर करने के लिए दिया जाय।

मोहरिल—संज्ञा पुं. [अ. मुहर्रिर] मुंशी। उ.—मोहरिल पाँच साथ करि दीने तिनकी बड़ी बिपरीत—१-१४३।

मोहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मोहरा] (१) पाजामे का वह भाग जिसमें टाँगें रहती हैं। (२) नाली, मोरी।

मोहर्रिर—संज्ञा पुं. [अ.] मुंशी।

मोहलत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) छुट्टी। (२) कार्य की अवधि।

मोहला—संज्ञा पुं. [सं. मोह] स्नेह, प्रेम।

मोहार—संज्ञा पुं [हिं.मोहरा](१) द्वार। (२) अगला भाग।

मोहाल—संज्ञा पुं. [अ. महाल] मोहल्ला।

मोहिं—सर्व. [सं. मह्यं, पा. मय्हं]ब्रजभाषा और अवधी में उत्तम पुरुष 'मैं' का वह रूप जो किसी समय सभी कारकों में प्रयुक्त होता था, परन्तु कालांतर में केवल कर्म और सम्प्रदान में प्रयुक्त होने लगा, मुझे, मुझको। उ.—(क) अब मोहिं सरन राखियै नाथ—१-२० ८। (ख) माधौ जू, मोहिं काहे की लाज—१-१५०।

मोहि—क्रि. स. [हिं. मोहना] मुग्ध या मोहित करके, लुभाकर। उ.—महामोहिनी मोहि आत्मा अपमारगहिं लगावै—१-४२।

मोहित—वि. [सं.] मुग्ध, आसक्त। उ.—(क) उमाहूँ देखि पुनि ताहि मोहित भई—८-१०। (ख) नृपति देखि तिहिं मोहित भयौ—९-२। (ग) प्रीति कुरंग नाद स्वर मोहित बधिक निकट ह्वै मारै—२८१०।

मोहिनी—वि. स्त्री. [सं.] मोहने या आसक्त करनेवाली। उ.—(क) महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहिं लगावै—१-४२। (ख) मन-मोहिनी तोतरी बोलनि—१०-१०६।

संज्ञा स्त्री.—(१) विष्णु का वह स्त्री-रूप जो उन्होंने सागर-मंथन के पश्चात् देव-दानवों को अमृत बाँटने के लिए धारण किया था। उ.—मोहिनी रूप धरि स्याम आए तहाँ, देखि सुर-असुर सब रहे लुभाई। आइ असुरनि कह्यौ, लेहु यह अमृत तुम, सबनि कौं बाँटि मेटी लराई—८-८। (२) विष्णु का वह स्त्री-रूप जो उक्त मोहिनी रूप का दर्शन शिव को कराने के लिए उन्होंने धारण किया था और जिसे देखकर शिव और उमा, दोनों अत्यन्त आसक्त हो गये थे। उ.—बैठि एकांत जोहन लगे पंथ सिव मोहिनी रूप कब दै दिखाई। ....। ह्वै अंतरधान हरि मोहिनी रूप धरि, जाइ बन माहिं दीन्हे दिखाई। ......। रुद्र कौ देखि कै मोहिनी लाज करि लियौ अंचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ। ....। रुद्र कौ बीर्य खसि कै परयौ धरनि पर, मोहिनी रूप हरि लियौ दुराई—८-१०। (३) माया, जादू, टोना। उ.—(क) मुख देखत मोहिनी सी लागी रूप न बरन्यौ जाई री—१०-१३८। (ख) ना जानौ कछु मेलि मोहिनी राखे अँग-अँग भोरि—६५७।

मोही—वि. [सं. मोहिन्] मुग्ध करनेवाला।

वि. [हिं. मोह+ई] (१) प्रीति या ममता रखने वाला। (२) भ्रम या अज्ञान में पड़ा हुआ, माया में लिप्त। (३) लोभी, लालची।

क्रि. स. [हिं. मोहना] मुग्ध या आसक्त हुई। उ.—मैं मोही तेरैं लाल री—१०-१४०।

मोहे—क्रि. स. [हिं. मोहना] मुग्ध या आसक्त कर लिये। उ.–(क) असुर दिसि चितै मुसकाइ मोहे सकल—८-८। (ख) महा मनोहर नाद सूर थिर-चर मोहे—६४८।

मोहैं—क्रि. स. [हिं. मोहना] मुग्ध या आसक्त होते हैं। उ.—सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं—६२०।

मोहै—क्रि. अ. [हिं. मोहना] मुग्ध या आसक्त होता है। उ.—(क) कटि लहँगा नीली बन्यौ को जो देखि न मोहै (हो)—१-४४। (ख) नारि के रूप कौं देखि मोहै न जो सो नहीं लोक तिहुँ माहिं जायौ—८-१०।

मोह्यौ—क्रि. अ. [हिं. मोहना] मुग्ध या आसक्त हुआ। उ.—(क) मोह्यौ जाइ कनक-कामिनि रस ममता-मोह बढ़ाइ—१-१४७। (ख) रुद्र कौं देखि कै मोहिनी लाज करि लियौ अंचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ—८-१०।

क्रि. स.—(१) अज्ञान या माया में फँसा लिया। उ.— काम, क्रोध रु लोभ मोह्यौ, ठग्यौ नागरि

नारि—१-३०९। (२) मुग्ध या आसक्त किया। उ.—स्याम, तुम्हारी मदन-मुरलिका नैंमुक सी जग मोह्यौ—६५३।

मौं—अव्य.[हिं. में] में। उ.—कछु न भक्ति मो मौं—१-१५१।

मौंगा—वि. [सं. मौन] मौन, चुप।

मौंगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मौगा] मौन, चुप्पी।

मौंड़ा—संज्ञा पुं. [सं. माणवक] लड़का, बालक। उ.—कहन लगे बन वड़ो तमासो सब मौंड़ा (मौड़ा) मिलि आऊ—४८१।

मौका—संज्ञा पुं. [अ. मौका] (१) घटनास्थल। (२) स्थान, जगह। (३) समय, अवसर।

मुहा०—मौका तकना (ताकना, देखना)—उपयुक्त अवसर की खोज या ताक में रहना। मौका देना—(१) समय या अवकाश देना। (२) अवसर देना। मौका पाना—(१) फुरसत या अवकाश पाना। (२) उपयुक्त समय या अवसर पाना। मौका मिलना या हाथ आना—(१) फुरसत या अवकाश मिलना। (२) उपयुक्त अवसर या घात पाना।

मौक्तिक—संज्ञा पुं. [सं.] मोती।

मौक्तिकमाल, मौक्तिकमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] मोती की माला।

मौक्तिकावलि, मौक्तिकावली—संज्ञा स्त्री. [सं मौक्तिकावलि] मोती की माला।

मौख—संज्ञा पुं. [सं.] मुख से किया जाने वाला पाप जैसे गाली देना।

संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का मसाला।

मौखर—संज्ञा पुं. [सं.] बढ़-बढ़कर बात करना।

मौखरी—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन भारतीय राजवंश।

मौखिक—वि. [सं.] (१) मुख-संबंधी। (२) मुख से केवल कहा जानेवाला, जबानी।

मौगा—वि. [सं. मुग्ध] मूर्ख।

मौगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मौगा] स्त्री, नारी।

वि.—मूर्ख (स्त्री)।

मौज—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) लहर, तरंग, हिलोर।

मुहा०—मौज मारना—लहरा-लहरा कर बहना।

(२) मन की उमंग या उछंग। उ.—मनसानाथ मनोरथ-पूरन सुखनिधान जाकी मौज घनी—१-३९।

मुहा०—मौज आना में आना)—उमंग में भरना, धुन होना। मौज उठना—उमंग में भरना। (किसी की) मौज पाना—इच्छा या मरजी जानना।

(३) धुन। (४) सुख, आनंद। उ.—(क) कछु हरषै कछु दुख करै मन मौज बढ़ावै—१६१४। (ख) सूर सुनत अक्रूर, कहत नृप मन-मन मौज् बढ़ावै—२४७७। (५) विभूति, वैभव।

मौजा—संज्ञा पुं. [अ. मौज़ा] गाँव, ग्राम।

मौजी—वि. [हिं. मौज] (१) मनमाना काम करनेवाला। (२) सदा प्रसन्न या प्रफुल्ल रहनेवाला। (३) कभी कुछ और कभी कुछ सोचने-विचारनेवाला।

मौजूद—वि. [अ.] (१) विद्यमान। (२) प्रस्तुत।

मौड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. मौंड़ा] लड़का, बालक।

मौत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) मरने का भाव मृत्यु। (२) मृत्यु का देवता।

मुहा०—मौत का सिर पर खेलना—(१) मरने को होना। (२) प्राण जाने का भय होना। (३) भयानक विपत्ति आना। अपनी मौत मरना—(१) सहज, स्वाभाविक या प्राकृतिक रूप से मरना। (२) स्वयं अपनी करनी से मरना। मौत बुलाना—ऐसी करनी करना जिससे मृत्यु निश्चित हो।

(३) मरने का समय या काल।

मुहा०—मौत के दिन पूरे करना—बड़े कष्ट से जीने के दिन पूरे करना या बिताना।

(४) बहुत कष्ट, भयानक विपत्ति।

मौन—संज्ञा पुं. [सं.] चुप रहने की क्रिया या भाव, चुप्पी। उ.—सुनत ये बचन हरि करयौ तब मौन।

मुहा०—मौन गहना (ग्रहण करना)—चुप रहना। मौह गही—चुप हो गया। उ.—सुनत बचन तब उनके मधुकर मौन गही। मौन खोलना (तजना)—कुछ समय तक चुप रहने के उपरान्त बोलना। मौन धरना (धारण करना)—चुप रहना। धरि मौन—चुप्पी साधे हुए। उ.—जहँ बैठी बृषभानु-नंदिनी तहँ

आये धरि मौन । मौन बांधना (सँभारना)—चुप्पी साधना ।

(२) चुप रहने का व्रत ।

वि. [सं. मौनी] जो चुप हो । उ.—सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै घोष बात जनि चालहि ।

संज्ञा पुं. [सं. मौण] (१) बरतन, पात्र । उ.—काढ़ौ कोरे कापरा हो अरु काढ़ौ घी के मौन—१०-२८ । (२) डिब्बा, मंजूषा, पिटारा ।

मौनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मौन होने या रहने का भाव ।

मौनव्रत, मौनव्रत—संज्ञा पुं. [सं. मौनव्रत] व्रत जिसमें मौन रहा जाय ।

मौना—संज्ञा पुं. [सं. मौण] घी-तेल का पात्र-विशेष ।

मौनी—वि. [सं. मौनिन्] चुप रहनेवाला ।

मौर—संज्ञा पुं. [सं. मुकुट, पा. मउड़] (१) विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला विशेष शिरोभूषण जो ताड़पत्र, खुखड़ी आदि का बनता है । (२) प्रधान, शिरोमणि । उ.—लूटि-लूटि दधि खात सबन को सब चोरन के मौर ।

संज्ञा पुं. [सं. मुकुल, प्रा. मउल] मंजरी, बौर । उ.—नंद महर घर के पिछवारे राधा आइ बतानी हो । मनौ अंब-दल मौर देखिकै कुहुकि कोकिला बानी हो ।

मुहा०—मौर बँधना-बौर आना, मंजरी लगना ।

संज्ञा पुं. [सं. मौलि=सिर] (१) गरदन, ग्रीवा । (२) सिर ।

मौरना, मौरनो—क्रि. स. [हिं. मौर] वृक्ष में बौर या मंजरी लगना ।

मौरसिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मौलसिरी] बकुल, मौलसिरी ।

मौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. मौर] विवाह के अवसर पर बधू के बांधा जानेवाला छोटा मौर ।

मौरूसी—वि. [अ.] पैतृक ।

मौर्ख्य—संज्ञा पुं. [सं.] मूर्खता ।

मौर्य—संज्ञा पुं. [सं. मौर्य्य] क्षत्रियों का वह वंश जो चंद्रगुप्त और अशोक के समय से बहुत प्रसिद्ध है ।

मौलवी—संज्ञा पुं. [अ.] मुसलमान धर्म-शास्त्रज्ञ ।

मौलसिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. मौलि+श्री] बकुल वृक्ष ।

मौला—संज्ञा पुं. [अ.] (१) स्वामी । (२) ईश्वर ।

मौलाना—संज्ञा पुं. [अ. मौलवी] मौलवी ।

मौलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिरा, चोटी । (२) मस्तक । (३) मुकुट, किरी । (४) जटाजूट । (५) मुखिया ।

मौलिक—वि. [सं.] (१) मूल या जड़ से सम्बन्धित । (२) मूल सिद्धांत या तत्व-संबंधी । (३) जो (रचना) अपनी प्रतिभा या योग्यता से लिखी जाय, अनुवादित या आधारित न हो ।

मौली—वि. [सं. मौलिन्] किरीट या जटाजूट धारण करनेवाला ।

संज्ञा स्त्री.—रँगा हुआ सूत जो पवित्र समझा जाता है और पूजा-जैसे अवसरों पर काम आता है ।

मौसम—संज्ञा पुं. [अ. मौसिम] (१) ऋतु । (२) स्थान-विशेष की वह अवस्था जो ऋतु आदि के विचार से जानी जाती है ।

मौसा - संज्ञा पुं. [हिं. मौसी] मौसी का पति ।

मौसाल—संज्ञा पुं. [हिं. मौसी+आलय] मौसी-मौसा का कुल, परिवार या घर ।

मौसिया—वि. [हिं. मौसी, मौसा] मौसी के सम्बन्ध का ।

संज्ञा पुं.—मौसी का पति ।

मौसी—संज्ञा स्त्री. [सं. मातृष्वसा] माता की बहन ।

मौसेरा—वि. [हिं. मौसी] मौसी के सम्बन्ध का ।

म्याँउँ, म्याँवँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) बिल्ली । (२) बिल्ली की बोली ।

मुहा०—म्याँउँ-म्याँउँ या म्याँवँ-म्याँवँ करना—दीनता दिखाकर या बहुत दबकर बोलना

म्यान—संज्ञा पुं. [फ़ा. मियान] (१) वह खाना या कोश जिसमें तलवार, कटार आदि के फल रहते हैं । (२) अन्नमय कोश, शरीर।

म्याना—क्रि. स. [हिं. म्यान] म्यान में रखना ।

संज्ञा पुं. [फ़ा. मियाना] एक तरह की पालकी।

म्यौं—संज्ञा स्त्री. [हिं. म्याँवँ] बिल्ली की बोली ।

मुहा०—करत म्यौं-म्यौं—दीनता दिखाता या दबकर बोलता है । उ.—लै लै ते हथियार आपने सान धराए त्यौं । जिनके दारुन दरस देखि कै पतित करत म्यौं-म्यौं—१-१५१ ।

म्लान—वि. [सं.] (१) कुम्हलाया हुआ। (२) मैला।

म्लानता, म्लानि—संज्ञा स्त्री. [सं. म्लानता] (१) मलिनता। (२) ग्लानि। (३) दुर्बलता।

म्लेच्छ—संज्ञा पुं. [सं.] वे जातियाँ जिनमें आर्यों की भाँति वर्णाश्रम धर्म न हो।
वि.—(१) नीच। (२) पापी।

म्हा—सर्व. [हिं. मुझ] मुझ।

म्हारा—सर्व. [हिं. हमारा] हमारा।

य

य—देवनागरी वर्णमाला का छब्बीसवाँ वर्ण जिसका उच्चारण-स्थान तालू है। स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच का होने से यह 'अंतस्थ' वर्ण कहा जाता है।

यंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तंत्र-शास्त्र के अनुसार वे कोष्ठक आदि जिनमें कुछ अंक या अक्षरों के लिख दिये जाने पर देवताओं का अधिष्ठान मान लिया जाता है और जिनको कार्य-विशेष की सिद्धि के लिए हाथ या गले में पहना जाता है, जंतर। (२) कल, औजार, उपकरण। (३) वीणा, बीन, बाजा। उ.—सूरदास स्वामी के चलिबे ज्यौं यंत्री बिनु यंत्र सकात। (४) ताला।

यंत्रणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यातना, कष्ट। (२) पीड़ा, वेदना।

यंत्र-मंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] जादू-टोना, टोटका।

यंत्रित—वि. [सं.] (१) यंत्र द्वारा रोका या बंद किया हुआ। (२) ताले में बन्द।

यंत्री—संज्ञा पुं. [सं. यंत्रिन्] (१) यंत्र-मंत्र जानने या करनेवाला। (२) बाजा बजानेवाला। उ.—(क) सूरदास स्वामी के चलिबे ज्यौं यंत्री बिनु यंत्र सकात। (ख) सूरदास प्रभु मौन सबै ब्रज बिन यंत्री बिन बीन—२८६६। (ग) अब तौ हाथ परी यंत्री के बाजत राग दुलारी—२९३५।

यक—वि. [हिं. एक] एक।

यकअंगी—वि. [हिं. एक+अंगी] (१) एक अंग या पक्षवाला। (२) जो एक पति या पत्नी के ही साथ रहे। (३) एक ही पर निर्भर रहनेवाला।

यकायक—क्रि. वि. [फ़ा.] अचानक, सहसा।

यकीन—संज्ञा पुं. [अ. यक़ीन] विश्वास।

यकृत—संज्ञा पुं. [सं.] (शरीर में) जिगर।

यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्रकार के देवता जो कुबेर के सेवक माने जाते हैं। उ.—यक्ष प्रबल बाढ़े भुव-मंडल तिन मारचो निज भ्रात। (२) कुबेर।

यक्षकर्दम—संज्ञा पुं. [सं.] अंगलेप जो कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोल से बनता है।

यक्षपति—संज्ञा पुं. [सं.] कुबेर। उ.—मृत्यु कुबेर यक्ष-पति कहियत जहँ संकर को धाम - सारा. २१।

यक्षपुर—संज्ञा पुं. [सं.] अलकापुरी।

यक्षरात्रि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कार्तिकी पूर्णिमा।

यक्षिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यक्ष या कुबेर की पत्नी।

यक्षी—संज्ञा पुं. [सं.] यक्ष का उपासक।

यक्ष्मा—संज्ञा पुं. [सं. यक्ष्मन्] 'क्षय' रोग।

यगण—संज्ञा पुं. [सं.] एक 'गण' जिसमें पहला वर्ण 'लघु' और शेष दो 'गुरु' होते हैं।

यग्य—संज्ञा पुं. [सं. यज्ञ] यज्ञ, याग।

यच्छ—संज्ञा पुं. [सं. यक्ष] यक्ष।

यच्छिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. यक्षिणी] (१) कुबेर की पत्नी। (२) यक्ष जाति की स्त्री।

यजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यज्ञ आदि करना। (२) वह स्थान जहाँ यज्ञ आदि किया जाय।

यजना, यजनो—क्रि. स. [सं. यजन] (१) यज्ञ करना। (२) पूजा करना।

यजमान—संज्ञा पुं. [सं.] वह जो यज्ञ, पूजन आदि कराने के पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा दे, व्रती।

यजमानी—संज्ञा स्त्री. [सं. यजमान] (१) यजमान से पुरोहित को मिलनेवाली वृत्ति। (२) यजमानों के रहने का स्थान।

यजुर्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] चार वेदों में एक जिसमें यज्ञ-कर्म का वर्णन बहुत विस्तार से है।

यज्ञ—संज्ञा पुं. [सं.] एक वैदिक कृत्य जिसमें हवन, पूजन आदि किया जाता था, योग, हवन। उ.—

योग यज्ञ जप तप तीरथ ब्रत कीजत है जेहि लोभा—१८६६।

यज्ञपत्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यज्ञ की पत्नी दक्षिणा। (२) मथुरा के यज्ञ-कर्ता ब्राह्मणों की वे स्त्रियाँ जो पतियों का विरोध करने पर भी श्रीकृष्ण के लिए भोजन ले गयी थीं।

यज्ञपुरुष - संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु। उ.—यज्ञपुरुष (जज्ञपुरुष) प्रसन्न जब भए, निकसि कुंड तैं दरसन दए—४-५।

यज्ञोपवीत - संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक संस्कार जो विद्यारंभ के पूर्व किया जाता था। यह ब्राह्मण बालक के आठवें, क्षत्रिय के ग्यारहवें और वैश्य के बारहवें वर्ष किया जाना चाहिए। आज इसमें कुछ धार्मिक कृत्य करके बालक को जनेऊ पहनाया जाता है; परंतु अवस्था का विशेष ध्यान नहीं रक्खा जाता। उ.—यज्ञोपवीत बिधोरु कियौ विधि सब सुर भिक्षा दीन्हीं— सारा० ३३२। (२) जनेऊ, यज्ञसूत्र। उ.—बच्छ-उद्धरन ब्रह्मा उद्धरन येइ प्रभु यज्ञ के पति यज्ञोपवीत-धारी—१३०३।

यतना, यतने, यतनो—वि. [हिं. इतना] इस मात्रा का, इस कदर। उ.—नारद मन की भर्म तोहिं यतनो भरमायो—१० उ०-४७।

मुहा०—यतने माँझ—इसी समय, इसी बीच में। उ.—यतने माँझ आपु हरि आए सुनी नृपति सब बात—सारा० ६२९।

यति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्रियनिग्रही। (२) विरक्त, संन्यासी।

संज्ञा स्त्री. [सं. यती] विराम (छंदशास्त्र)।

यतिभंग—संज्ञा पुं. [सं.] वह काव्य-दोष जिसमें 'यति' उचित स्थान पर न हो।

यती—संज्ञा पुं. [सं. यतिन्] (१) इंद्रियनिग्रही। (२) विरक्त, संन्यासी।

यतीम—संज्ञा पुं. [अ.] अनाथ, दीन।

यत्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयत्न। (२) उपाय। (३) रक्षा का प्रबंध या आयोजन।

यत्र—क्रि. वि. [सं.] जहाँ, जिस जगह।

यत्रतत्र—क्रि. वि. [सं.] (१) इधर-उधर। (२) जगह-जगह।

यथा—अव्य. [सं.] जैसे, जिस प्रकार।

यथाक्रम – क्रि. वि. [सं.] क्रम के अनुसार।

यथातथ्य - अव्य. [सं.] जैसा हो, वैसा ही।

यथायोग्य—अव्य. [सं.] जैसा उचित हो, वैसा।

यथारथ—अव्य. [सं. यथार्थ] (१) उचित, ठीक। (२) जैसा उचित हो, वैसा।

यथारुचि—अव्य. [सं.] रुचि के अनुकूल।

यथार्थ—अव्य. [सं.] (१) उचित, ठीक। (२) जैसा उचित हो, वैसा।

यथार्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] वास्तविकता।

यथालाभ—वि. [सं.] प्राप्ति के अनुसार।

यथार्थवाद – संज्ञा पुं. [सं.] किसी बात या प्रसंग को उसके यथार्थ रूप में मानना और उसी रूप में उसका वर्णन करना।

यथार्थवाद—वि. [सं.] जो 'यथार्थवाद' का माननेवाला हो।

यथाशक्य—अव्य. [सं.] भरसक, शक्ति भर।

यथाशक्ति—अव्य. [सं.] शक्ति के अनुसार।

यथासंभव—अव्य. [सं.] जहाँ तक संभव हो।

यथासमय - अव्य. [सं.] (१) नियत समय पर। (२) समय की माँग या आवश्यकता के अनुसार।

यथास्थान—अव्य. [सं.] उचित स्थान पर।

यथेच्छ - अव्य. [सं.] मनमाना, इच्छानुसार।

यथेष्ट—वि. [सं.] जितना चाहिए, उतना।

यथोचित—वि. [सं.] जैसा चाहिए, वैसा।

यदपि—अव्य. [सं. यद्यपि] यद्यपि।

यदा—अव्य. [सं.] (१) जब। (२) जहाँ।

यदाकदा—अव्य. [सं.] जब-तब, कभी-कभी।

यदि—अव्य. [सं.] जो, अगर।

यदु—संज्ञा पुं. [सं.] राजा ययाति का बड़ा पुत्र जिसके वंशज श्रीकृष्ण थे।

यदुनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यदुनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यदुपति—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यदुराइ, यदुराई—संज्ञा पुं. [सं. यदु + हिं. राजा] (यदुवंशी) श्रीकृष्ण।

यदुराज—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यदुवंश—संज्ञा पुं. [सं.] राजा यदु का वंश।

यदुवंशमणि—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यदुवंशी—संज्ञा पुं. [सं. यदुवंशिन्] यदु के वंशज।

यदुवर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यदुवीर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

यद्यपि—अव्य. [सं.] यदि ऐसा है ही, गो कि।

यम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यमराज। (२) इन्द्रिय-निग्रह। (३) धर्म-कर्म में चित्त लगाने का साधन जो 'योग' के आठ अंगों में पहला है। उ.—(क) अनुसूया के गर्भ प्रगट ह्वै कियौ योग आराधि। यम अरु नियम प्रान प्रत्याहार धारन ध्यान समाधि—सारा० ६०। (ख) सो अष्टांग जोग कौं करै। यम नियमासन, प्रानायाम, करि अभ्यास होइ निष्काम—२-२१।

यमक—संज्ञा पुं. [सं.] एक शब्दालंकार।

यमकात, यमकातर—संज्ञा पुं. [सं. यम + हिं. कातर] (१) यम का छुरा। (२) एक तरह की तलवार।

यमज—संज्ञा पुं. [सं.] जुड़वा बच्चे।

यमदग्नि—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जो परशुराम के पिता थे।

यमद्वितीया—संज्ञा स्त्री. [सं.] कार्तिक शुक्ला द्वितीया जब बहन के यहाँ भोजन करके उसे कुछ नेग दिया जाता है, भाई दूज।

यमधार—संज्ञा पुं. [सं.] वह तलवार या कटार जिसमें दोनों ओर धार हो।

यमनाह—संज्ञा पुं. [सं. यमनाथ] धर्मराज।

यमपुर—संज्ञा पुं. [सं.] यमलोक। उ.—यमपुर जाय संख-धुनि कीन्हीं—सारा. ५४१।

यमपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमलोक।

यमयातना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यमराज के दूतों द्वारा दी गयी पीड़ा, नरक की यातना। (२) मृत्यु की पीड़ा।

यमराज, यमराजा—संज्ञा पुं. [सं. यमराज] धर्मराज। उ.—यमपुर जाय संख-धुनि कीन्हीं यमराजा चलि आयौ—सारा. ५४१।

यमल—संज्ञा पुं. [सं.] युग्म, जोड़ा।

यमलार्जुन—संज्ञा पुं. [सं.] नंद जी के घर में लगे वे दो अर्जुन वृक्ष जिनका उद्धार श्रीकृष्ण ने उस समय किया था, जब वे उलूखल से बाँधे गये थे। पुराणानुसार वे वृक्ष कुबेर के दो पुत्र, नलकूबर और मणिग्रीव थे। एक बार वे मद्यावस्था में वस्त्रहीन हो स्त्रियों के साथ जलविहार कर रहे थे; तभी नारद ने उन्हें 'जड़ वृक्ष' हो जाने का शाप दिया था।

यमलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह लोक जहाँ प्राणी मृत्यु के पश्चात् जाता माना गया है। (२) नरक।

यमवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] भैंसा।

यमालय—संज्ञा पुं. [सं.] यमलोक।

यमी—संज्ञा पुं. [सं.] यम की बहन, यमुना।

वि. [सं. यमिन्] संयमी, निग्रही।

यमुना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यम की बहन यमुना जो सूर्य की, संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न, पुत्री मानी गयी है। (२) उत्तरी भारत की एक प्रसिद्ध नदी जो हिमालय में यमनोत्तरी से निकलकर प्रयाग में गंगा से मिल जाती है। श्रीकृष्ण की क्रीड़ाभूमि, वृन्दावन, यमुना के किनारे ही थी। मथुरा, दिल्ली, आगरा आदि प्रसिद्ध नगर यमुना के किनारे ही बसे हैं। (३) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा, किन हार चुरायो। ....। सुखमा, सीला, अवधा, नंदा, बृंदा, यमुना सारि—१५८०।

यमुनाभिद्—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण के भाई बलराम जिन्होंने अपने हल से यमुना के दो भाग कर दिये थे।

ययाति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा नहुष का पुत्र जिसने शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से विवाह किया था और उसकी दहेज-रूप में प्राप्त दानवराज की पुत्री शर्मिष्ठा से भी संबंध बना रखा था। उनके देवयानी से दो और शर्मिष्ठा से तीन पुत्र थे। देवयानी का बड़ा पुत्र यदु था जिसके कुल में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था।

यव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जौ (अन्न)। (२) एक तौल जो

बारह सरसों या एक जौ की मानी जाती है। (३) एक नाप जो एक इंच की तिहाई होती है।

यवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यूनान देशवासी। (२) कालयवन नामक म्लेच्छ राजा जो श्रीकृष्ण से कई बार लड़ा था। (३) मुसलमान।

यवनिका—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक का परदा।

यवनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यवन जाति की स्त्री।

यश—संज्ञा पुं. [सं. यशस्] (१) कीर्ति। (२) प्रशंसा।

यशस्विनी—वि. स्त्री. [सं.] कीर्तिमती।

यशस्वी—वि. पुं. [सं. यशस्विन्] कीर्तिमान्।

यशी—वि. [सं. यश] कीर्तिमान्, यशस्वी।

यशुमति, यशोदा—संज्ञा स्त्री. [सं. यशोदा] नंद जी की पत्नी यशोदा, जिसने श्रीकृष्ण को पाला था। उ.—अतिहीं सुंदर कुमार यशुमति रे हिणि बार बिलखाति यह कहत सबैं लोचन जल ढोरैं - २६०४।

यशोधर—संज्ञा पुं. [सं.] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

यशोधरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गौतम बुद्ध की पत्नी।

यशोमति, यशोमती—संज्ञा स्त्री. [सं. यशोदा] यशोदा।

यष्टि, यष्टिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] लाठी, लकड़ी।

यह—सर्व., वि. [सं. इदं] (१) निकट की वस्तु आदि का निर्देशक सर्वनाम जिसका संकेत श्रोता-वक्ता के अतिरिक्त जीवों, पदार्थों आदि की ओर होता है। उ.—(क) कह्यौ मयत्रेय सौं समुझाइ, यह तुम बिदुरहिं कहियौ जाइ—३-४। (ख) यह कहिकै मारी गदा हरि जू ताहि सम्हारि—३-११। (२) निकट की वस्तु का निर्देशक विशेषण। उ.—(क) यह आसा पापिनी दहै—१-५२। (ख) जसुमति, किहिं यह सीख दई—३८१।

यहाँ—क्रि. वि. [सं. इह] इस स्थान में या पर।

यहि—सर्व., वि.[हिं. यह] (१) 'यह' का विभक्ति लगने के पूर्व रूप, इस। (२) 'ए' का विभक्तियुक्त रूप, इसको।

यहीं—क्रि. वि. [हिं. यहाँ+ही] इसी जगह।

यही, यहै—अव्य. [हिं. यह] यह ही। उ.—(क) यही गोप, यह ग्वाल, इहै सुख, यह लीला कहुँ तजत न साथ। (ख) जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं—१-१३७। (ग) यहै बचन सुनि द्रुपद-सुता-मुख दीन्हौ बसन बढ़ाइ—५५६।

यहौ—अव्य. [हिं. यह] यह भी, इतना तक। उ.—अंतर्यामी यहौ न जानत जो मो उरहिं बिती—१० उ०-१०३।

याँ—क्रि. वि. [हिं. यहाँ] यहाँ।

या—सर्व., वि. [हिं. यह] (१) 'यह' का विभक्ति लगने के पूर्व रूप, इस। (२) निकटता-सूचक विशेषण-प्रयोग, इस। उ.—(क) ऐसी जो आवै या मन मैं तौ सुख कहँ लौं कहियै—२-१८। (ख) तमोगुनी चाहै या भाइ, मम बैरी क्यौंहूँ मरि जाइ—३-१३। (ग) लालन बारी या मुख ऊपर—१०-९२।

अव्य. [फ़ा.] अथवा, वा।

याक—वि. [हिं. एक] एक।

संज्ञा पुं. [सं. गावक, तिब्बती ग्याक] हिमालय का वह बैल जिसकी पूंछ का चँवर बनता है।

याकी—सर्व., वि. सवि. [व्रज या+की] इसकी। उ.—अकथ कथा याकी कछू कहत नहीं कहि आवै–१-४४।

याके—सर्व., वि. सवि. [व्रज. या+के] इसके, इसको। उ.—(क) याके मारैं हत्य होइ—१-२८९। (ख) टहल करत मैं याके घर की—१०-३२२।

याकैं सर्व. सवि. [व्रज. या+कैं] इसके (में, से आदि)। उ.— याकैं गर्भ अवतरैं जे सुत—१०-४।

याकौं—सर्व. सवि. [व्रज. या+कौं] इसको। उ.—याकौं ह्याँ तैं देहु निकारि—१-२८४।

याग—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ।

याचक—वि. [सं.] (१) माँगनेवाला। उ.—जिनि याजे व्रजपति उदार अति याचक फिरि न कहाये। (२) भिखारी।

याचत—क्रि. स. [हिं. याचना] माँगता या प्रार्थना करता है। उ.—याचत दास आस चरनन की अपनी सरन बसाव—पृ. ३५० (६४)।

याचना, याचनो—क्रि. स. [सं. याचन] (१) प्रार्थना करना, माँगना। (२) भिक्षा माँगना।

याज्ञ—वि. [सं.] यज्ञ-संबंधी।

याज्ञवल्क्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैशंपायन के शिष्य एक

ऋषि (२) राजा जनक के दरबारी एक ऋषि जिनके दो पत्नियाँ थीं—मैत्रेयी और गार्गी। (३) एक स्मृतिकार।

याज्ञिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यज्ञ करने-करानेवाला। (२) ब्राह्मणों की एक जाति।

यातना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पीड़ा, वेदना। (२) नरक के कष्ट।

याता—संज्ञा स्त्री. [सं. यातृ] देवर या जेठ की पत्नी।

यातायात—संज्ञा पुं. [सं.] आना-जाना।

यातुधान—संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस।

याते, यातैं—अव्य. [व्रज. या+तैं] इससे, इसलिए। उ.—(क) जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं—१-१३७। (ख) कछु करि गए तनक चितवनि मैं याते रहत प्रेम-मद छाक्यौ—२५४६।

यात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक स्थान से दूसरे को जाने की क्रिया, सफर। (२) प्रयाण। (३) तीर्थाटन। (४) एक प्रकार का अभिनय जिसमें नाचना-गाना भी रहता है।

यात्री—संज्ञा पुं. [सं. यात्रा] (१) यात्रा करनेवाला। (२) तीर्थाटन को जानेवाला।

याद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) स्मृति। (२) स्मरण करने की क्रिया।

यादगार—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] स्मारक, स्मृति-चिह्न।

याददाश्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) स्मृति। (२) स्मरण रखने को लिखी गयी बात।

यादव—वि. [सं.] राजा यदु-संबंधी।
संज्ञा पुं.—(१) यदु के वंशज। (२) श्रीकृष्ण।

यादवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यादव जाति की स्त्री।

यान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वाहन, सवारी। उ.—प्रभु हाँकैं रथ यान—१-२७५। (२) विमान।

याना—वि. [सं. सज्ञान] ज्ञानवान।

यानी, याने—अव्य. [अ.] तात्पर्य यह कि।

यापन—संज्ञा पुं. [सं.] बिताना, व्यतीत करना।

याम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीन घंटे का समय, पहर। (२) काल, समय।
संज्ञा स्त्री. [सं. यामि] रात। उ.—(क) इनकी को दासी सरि ह्वैहै धन्य सरद की याम। (ख) मन लौं हौं पहुनाई करिहौं राखौ अटकि द्यौस अरु याम—१५०९।

यामल—संज्ञा पुं. [सं.] जुड़वाँ बच्चे।

यामा—संज्ञा पुं. [सं. याम] तीन घंटे का समय, पहर। उ.—(क) व्रज ते चले भए षट यामा—२६४३। (ख) चपल समीर भयो तेहि रजनी भीजे चारौं यामा—१० उ०-६६।

यामिन, यामिनि, यामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. यामिनी] रात, रात्रि, रजनी।

यामैं—सर्व. सवि. [व्रज. या+मैं] इसमें। उ.—हरि-गुरु एक रूप नृप जानि। यामैं कछु संदेह न आनि—६-५।

यार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मित्र। (२) किसी स्त्री से अनुचित प्रेम-संबंध रखनेवाला, जार।

याराना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मित्रता। (२) किसी स्त्री-पुरुष का अनुचित प्रेम-संबंध।

यारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) मित्रता। (२) किसी स्त्री-पुरुष का अनुचित प्रेम-संबंध।

यावक—संज्ञा पुं. [सं.] महावर।

यावत—वि. [सं. यावत्] सब, कुल।
अव्य.—(१) जब तक। (२) जहाँ तक।

याहि—सवि. सर्व. [व्रज. या+हि] इसे, इसको। उ.—(क) कह्यौ, याहि लै जाउ उठाइ। सुमिरत मो रिपु कौं चित लाइ—७-२। (ख) आयौ देखन याहि—८५९।

याहीं—अव्य. [व्रज. या+हीं] यहाँ ही, इसे ही। उ.—इतनी जउ जानत मन मूरख मानत याहीं धाम—१-७६।

याही—सर्व. सवि. [व्रज. या+ही] इसका ही। उ.—सुनैं भवन कहूँ कोउ नाहीं, मनु याही को राज—१०-२७७।

याहू—सर्व. [व्रज. या+हूँ] इसे भी, इसको भी। उ.—याहू साँज संचि नहिं राखी अपनी धरनि धरी—१०-१३०।

युक्त—वि. [सं.] (१) जुड़ा या मिला हुआ। (२) सम्मिलित। (३) उचित, ठीक।

युक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उपाय। (२) चातुरी।

(३) रीति । (४) नीति । (५) कारण । (६) उचित बात ।

युक्तियुक्त—वि. [सं.] न्याय या तर्कसंगत ।

युग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो वस्तुओं का जोड़ा । (२) पीढ़ी, पुश्त । (३) समय, काल । (४) काल का एक दीर्घ परिमाण ।

मुहा०—युग-युग—बहुत समय तक । उ.—सूरदास चिरजीवहु युग-युग दुष्ट दले दोउ नंददुलारे —२५६९ ।

वि.—जो गिनती में दो हो ।

युगति—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्ति] (१) उपाय । (२) कौशल ।

युगम—संज्ञा पुं. [सं. युग्म] जोड़ा, युग्म ।

युगल—संज्ञा पुं. [सं.] जोड़ा, साथ-साथ दो ।

युगांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी काल या युग का अंतिम समय । (२) प्रलय ।

युगांतर—संज्ञा पुं. [सं.] नया युग या समय ।

मुहा०—युगांतर करना—(१) समय बदल देना । (२) पूर्व रीति-नीति बदलकर नयी चलाना ।

युगुति—संज्ञा स्त्री. [सं. युक्ति] (१) उपाय । (२) कौशल ।

युग्म—संज्ञा पुं. [सं.] जोड़ा, साथ-साथ दो वस्तुएँ ।

युत—वि. [सं.] (१) सहित । (२) मिला हुआ ।

युद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] लड़ाई, संग्राम ।

मुहा०—युद्ध माँड़ना—लड़ाई ठानना । युद्ध माँड़्यो—लड़ाई ठानी । उ.—निरखि यदुवंश को रहस मन में भयो देखि अनिरुद्ध युद्ध माँड़्यो ।

युधाजित—संज्ञा पुं. [सं. युधाजित्] (१) कैकेयी का भाई जो भरत का मामा था । (२) श्रीकृष्ण का एक पुत्र ।

युधिष्ठिर—संज्ञा पुं. [सं.] कुंती का धर्मराज से उत्पन्न पुत्र जो पांचों पांडवों में सबसे बड़ा था ।

युयुत्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बैर, शत्रुता । (२) युद्ध की इच्छा ।

युयुत्सु—वि. [सं.] युद्ध की इच्छा रखनेवाला ।

युवक—संज्ञा पुं. [सं.] युवा, जवान ।

युवति, युवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] युवा नारी । उ.—ज्यौं युवती पति आवत सुनिकै पुलकित अंग भई —२५६२ ।

युवराइ, युवराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. युवराज] युवराज का पद या अधिकार ।

युवराज, युवराजा—संज्ञा पुं. [सं. युवराज] राजकुमार जो राज्य का उत्तराधिकारी हो ।

युवराजी—संज्ञा स्त्री. [सं. युवराज] युवराज का पद ।

युवराज्ञी, युवरानी—संज्ञा स्त्री. [सं. युवराज्ञी] युवराज की पत्नी ।

युवा—वि. [सं. युवक] युवक, जवान ।

यूँ—अव्य. [हिं. यों] इस प्रकार, ऐसे ।

यूथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) झुंड, समूह । उ.—(क) अर्ध रैनि चली धरनि ते यूथ यूथनि नारि—पृ. ३३८ (८१) । (ख) ज्यौं गजयूथ नेक नहिं बिछुरत शरद मदन मद मातौ—३३१९ । (२) सेना, दल ।

यूथनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] सरदार, सेनापति ।

यूथप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नायक । (२) सेनापति ।

यूथपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नायक । (२) सेनापति ।

यूथिका, यूथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जूही का फूल या पौधा । उ.—सित अरु पीत यूथिका बेनी गूँथी बिबिध बनाय ।

यूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंभा जिसमें बलि-पशु बाँधा जाता है । (२) विजय-स्मारक, कीर्ति-स्तंभ ।

यूप, यूपा—संज्ञा पुं. [सं. द्यूत] जूआ, द्यूतकर्म ।

यूह—संज्ञा पुं. [सं. यूथ] समूह, झुंड ।

ये—सर्व., वि. [हिं. यह] 'यह' का बहुवचन । उ.—ये दससीस चरन पर राखौ मेटौ सब अपराध—९-११५ ।

येइ, येई—सर्व. [हिं. यह+ई] ये ही, यही । उ.—(क) मूल भागवत के येइ चारि—२-३७ । (ख) येई हैं सब ब्रज के जीवन—३६७ । (ग) ये महिमा येई पै जानैं —३८० । (घ) कंस बधन येई करिहैं—१०-८५ ।

येउ, येऊ—सर्व. [हिं. ये+ऊ] ये भी ।

येत, येतो—वि. [हिं. इतना] इतना ।

येह—सर्व. [हिं. यह] यह, ये ।

येहु, येहू—सर्व. [हिं ये+ऊ] यह भी, ये भी ।

यों—अव्य. [सं. एवमेव, प्रा० एमेअ, अप० एमि] ऐसे, इस भाँति, इस प्रकार से।

योंही—अव्य. [हिं. यों+ही] (१) इसी तरह से। (२) व्यर्थ ही। (३) बिना निश्चित उद्देश्य के।

यो—सर्व. [हिं. यह] यह।

योग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो या अधिक पदार्थों का संयोग। (२) उपाय, युक्ति। (३) प्रेम। (४) शुभ अवसर। (५) कौशल। (६) मेल-मिलाप। (७) उपयुक्तता। (८) वैराग्य। (९) ठिकाना, सुभीता, जुगाड़। (१०) ज्योतिष में विशिष्ट काल। (११) चित्त-वृत्ति का निरोध। उ.—योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत कीजत है जेहि लोभा—२५३६। (१२) छह दर्शनों में एक जिसमें चित्त-निरोध आदि का विधान है।

वि. [सं. योग्य] उपयुक्त योग्य। उ.—(क) सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख योग—२६९९। (ख) ऊधौ, योग योग हम नाहीं—३३१२। (ग) बारंबार असीस देत सब यह बर बन्यौ रुक्मिणी योग—१० उ०-१७।

योगकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] यशोदा के गर्भ से उत्पन्न वह कन्या जिसे लाकर वसुदेव ने, श्रीकृष्ण के स्थान पर, कंस को सौंप दिया था।

योगक्षेम—संज्ञा पुं. [सं.] कुशल-मंगल।

योगदान—संज्ञा पुं. [सं.] काम में सहयोग देना।

योगफल—संज्ञा पुं. [सं.] एक से अधिक संख्याओं का जोड़।

योगबल—संज्ञा पुं. [सं.] योग-साधना से प्राप्त शक्ति।

योगभ्रष्ट—वि. [सं.] जिसकी योग-साधना पूरी न हो सकी हो।

योगमाया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विष्णु की माया। (२) वह कन्या जो यशोदा के गर्भ से जन्मी थी और जिसे लाकर वसुदेव ने, श्रीकृष्ण के स्थान पर, कंस को सौंप दिया था। उ.—देखी परी योगमाया (जोगमाया) वसुदेव गोद करि लीनी—१०-४।

योगरूढ़ि—संज्ञा स्त्री. [सं.] दो शब्दों के योग से बना शब्द जिसका विशेष अर्थ हो।

योगांग—संज्ञा पुं. [सं.] योग के आठ अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि।

योगाभ्यास—संज्ञा पुं. [सं.] योग की साधना। उ.—बदरिकाश्रम रहे पुनि जाई। योगाभ्यास (योग-अभ्यास) समाधि लगाई।

योगाभ्यासी—संज्ञा पुं. [सं. योग+अभ्यासी] योग-साधक।

योगासन—संज्ञा पुं. [सं.] योग की साधना के लिए बैठने की रीति।

योगिनि, योगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. योगिनी] (१) रण-पिशाचिनी। (२) तपस्विनी। उ.—सूरदास प्रभु यह उपजति है धरिए योगिनि-वेष—२७५३। (३) देवी, योगमाया।

योगिनी-चक्र—संज्ञा पुं. [सं.] योगिनियों के साधन का चक्र (तंत्रशास्त्र)।

योगिराज—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत बड़ा योगी।

योगींद्र—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत बड़ा योगी।

योगी—संज्ञा पुं. [सं. योगिन्] (१) राग-विराग से मुक्त, आत्मज्ञानी। (२) वह जिसने योग-साधना में सिद्धि प्राप्त कर ली हो।

योगीश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योगियों का स्वामी। (२) बहुत बड़ा योगी। (३) शिव। (४) श्रीकृष्ण।

योगीश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योगियों का स्वामी। उ.—योगीश्वर वपु धरि हरि प्रगटे योग-समाधि प्रमान्यो—सारा. ३५१। (२) बहुत बड़ा योगी। (३) शिव। (४) श्रीकृष्ण।

योगेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योगियों का स्वामी। (२) बहुत बड़ा योगी। (३) शिव। (४) श्रीकृष्ण।

योगेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योगियों का स्वामी। (२) बहुत बड़ा योगी। (३) शिव। (४) श्रीकृष्ण।

योग्य—वि. [सं.] (१) उपयुक्त या अधिकारी (पात्र)। (२) श्रेष्ठ, उत्तम। (३) उचित, ठीक। (४) आदरणीय।

योग्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उपयुक्तता, पात्रता। (२) श्रेष्ठता, उत्तमता। (३) अनुकूलता, औचित्य। (४) आदर, सम्मान।

योजक—वि. [सं.] मिलाने या जोड़नेवाला।

योजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संयोग, मिलान। (२) दूरी की एक नाप जो दो, चार या आठ कोस की मानी जाती है।

योजनगंधा—वि. [सं.] जिसकी सुगंध एक योजन तक फैलती हो।

संज्ञा स्त्री.—(१) कस्तूरी। (२) सत्यवती जो शांतनु की पत्नी और व्यास की माता थी।

योजना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नियुक्त करने की क्रिया। (२) रचना, बनावट। (३) व्यवस्था, आयोजन।

योद्धा, योधा—संज्ञा पुं. [सं. योद्धा] सैनिक, भट। उ.—तोरि कोदंड मारि सब योधा तब बल भुजा निहार्‌यौ—२५८६।

योधेय—संज्ञा पुं. [सं.] सैनिक, योद्धा।

योनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आकर, खानि। (२) उत्पत्ति-स्थान। (३) स्त्री की जननेंद्रिय। (४) प्राणियों के विभाग या वर्ग। (५) देह, शरीर।

योषिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री, नारी।

यौं—अव्य. [हिं. यों] इस प्रकार से, ऐसे। उ.—(क) हँसि बोलौ जगदीस जगतपति बात तुम्हारी यौं—१-१५१। (ख) रहु रहु राजा, यौं न कहिए, दूषन लागै भारी—८-१४।

यौ—सर्व. [हिं. यह] यह।

यौगिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकृति-प्रत्यय के मेल से बना शब्द। (२) दो शब्दों के मेल से बना शब्द।

यौतक, यौतुक—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह का दहेज।

यौधेय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योद्धा। (२) एक प्राचीन देश या उसका निवासी।

यौन—वि. [सं.] योनि का, योनि-संबंधी।

यौवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युवा होने का भाव, तारुण्य, जवानी। उ.—सूर-स्याम बिनु क्यों मन राखौं तन यौवन के आगर—२९८०। (२) यौवन-काल। (३) युवती का सौंदर्य। (४) युवती के स्तन।

यौवराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युवराजत्व। (२) युवराज का पद।

र

र—देवनागरी वर्णमाला का सत्ताईसवाँ व्यंजन, जो स्पर्श और ऊष्म वर्णों के मध्य का है और जिसका उच्चारण जिह्वाग्र को मूर्द्धा से स्पर्श कराने से होता है।

रंक—वि. [सं.] (१) दरिद्र, कंगाल। उ.—(क) जाति गोत कुल नाम गनत नहिं रंक होइ कै रानौ—१-११। (ख) रंक सुदामा कियौ इंद्र-सम—१-९५। (ग) राव-रंक हरि गनत न दोई—२-५। (२) कंजूस।

रग, रंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाच-गाना, नृत्य-गीत। (२) नृत्य, अभिनय आदि का स्थान। (३) युद्धस्थल। (४) वर्ण। (५) वह पदार्थ जिससे चीजें रँगी जाती हैं। उ.—(क) सेत, हरी राती अरु पियरी रंग लेत है धोई—१-६३। (ख) सूरदास कारी कामरि पै चढ़त न दूजो रंग—१-३३२। (ग) रंग कापै होत न्यारो हरद-चूनो सानि—८९५। (घ) पहिलै ही चढ़ि रह्यौ स्याम रँग छूटत नहिं देख्यौ धोई— ३१४८।

यौ०—रंग-बिरंगा—जिसमें अनेक रंग हों।

मुहा०—रंग आना (चढ़ना)—रंग का अच्छे रूप में चमकने लगना। रंग उड़ना (उतरना)—रंग का फीका पड़ जाना। रंग खेलना (डालना या फेंकना)—होली के दिनों में रंग पानी में घोलकर एक दूसरे पर छिड़कना। रंग खेलत—होली के दिनों में रंग घोलकर परस्पर छिड़कते हैं। उ.—खेलत ग्वालनि संग रंग आनंद मुरारी—४९२। रंग निखरना—रंग का चटकीला हो जाना। रंग फीका होना— रंग में चमक या चटकीलापन न रह जाना। रँग ह्वैहै फीको— रँग की चमक या उसका चटकीलापन कम हो जायगा। उ.—बूँद परत रँग ह्वैहै फीको, सुरँग चूनरी भीजै—७३१।

(५) मुख और शरीर की रंगत।

मुहा०—रंग उड़ना (उतरना)—भय, लज्जा आदि से मुख का कांतिहीन हो जाना। रंग निकलना (निखरना)—मुख पर रौनक आ जाना, शरीर का कांतियुक्त

हो जाना। रंग फक होना—चेहरा पीला पड़ जाना। रंग बदलना—क्रोध से लाल-पीला होना।

(६) जवानी, युवावस्था, यौवन।

मुहा०—रंग चूना (टपकना)—यौवन का पूर्ण उभार या विकास पर होना, यौवन छा जाना।

(७) शोभा, सौंदर्य, छवि। उ.—कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहै—१-८६।

मुहा०—रंग पकड़ना (पर आना)—छवि या शोभा का बहुत बढ़ जाना। रंग फीका पड़ना (होना)—छवि या शोभा घट जाना। रंग बरसना—खूब रौनक होना। रंग है—वाह वा! बहुत बढ़िया।

(८) प्रभाव, असर।

मुहा०—रंग चढ़ना (जमना)—प्रभाव या असर होना।

(९) किसी के गुण, रूप आदि का दूसरे के हृदय पर पड़नेवाला प्रभाव या असर।

मुहा०—रंग जमना—अभीष्ट प्रभाव पड़ना। रंग उखड़ना—अभीष्ट प्रभाव न रह जाना। रंग जमाना—अभीष्ट रूप से प्रभावित कर लेना। रंग फीका रहना—अभीष्ट प्रभाव न पड़ सकना। रंग बँधना—अभीष्ट प्रभाव पड़ने लगना। रंग बाँधना—(१) अभीष्ट प्रभाव डालने का यत्न करना। (२) ढोंग या आडम्बर रचना। रंग बिगड़ना—प्रभाव नष्ट या कम हो जाना। रंग बिगाड़ना—(१) प्रभाव या महत्व घटाना। (२) ढोंग या आडम्बर प्रकट कर देना। (३) शेखी किरकिरी करना। रंग लाना—प्रभाव या महत्व दिखाना।

(१०) खेल, विनोद, क्रीड़ा-कौतुक। उ.—एक गावत एक नाचत एक करत बहु रंग—२४१५।

यौ०—रंग-रलियाँ—आमोद-प्रमोद।

मुहा०—रंग-रलना—आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा-विनोद या विलास-विहार करना। रंग रलिहैं—आमोद-प्रमोद या विलास-विहार करेंगे। उ.—भाव ही कह्यौ मन भाव दृढ़ राखिबो दै सुख तुमहिं संग रंग रलिहैं। रंग में भंग पड़ना (होना)—आमोद-प्रमोद या हास्य-विनोद में अकस्मात कोई दुःख या विघ्न आ पड़ना।

(११) मन की उमंग, तरंग या मौज। उ.—(क) रत्नजटित किंकिनि पग नूपुर अपने रंग बजावहु। (ख) तहँ सुख मानि, बिसारि नाथ-पद अपनैं रंग बिहरतौ—१-२०३। (ग) खेलत स्याम अपनैं रंग—१०-२३४। (घ) बाजत बेनु बिषान, सबै अपनैं रँग गावत—४३७। (ङ) चरहिं धेनु अपनैं अपनैं रँग अतिहि सघन बन चारौ—६११।

मुहा०—(किसी के) रंग में ढलना (ढरना)—किसी के प्रभाव में आकर उसकी इच्छानुसार कार्य करना। रँग ढरी—किसी के प्रभाव में आकर उसकी इच्छानुसार कार्य करने लगी। उ.—तुरत मन सुख मानि लीन्ही नारि तेहि रँग ढरी।

(१२) आनन्द, मजा। उ.—मोकौं व्याकुल छाँड़ि कै आपुन करैं जु रंग।

मुहा०—रंग आना—आनंद मिलना। रंग उखड़ना—आनंद के अवसर पर कुछ विपरीत बात से मजा किरकिरा हो जाना। रंग जमना—खूब आनन्द आना। रंग मचाना—धूम मचाना। रंग में भंग करना—आनन्द के अवसर पर अचानक कोई विघ्न खड़ा कर देना। रंग में भंग होना—आनन्द के अवसर पर सहसा विघ्न या बाधा आ जाना। रंग रचाना—उत्सव करना।

(१३) दशा, स्थिति, व्यवहार। उ.—कबहुँ नहिं इहिं भाँति देख्यौ, आजु कैसौ रंग—४२७।

मुहा०—रंग लाना—स्थिति या अवस्था-विशेष उपस्थित कर देना।

(१४) अद्भुत दृश्य या कांड। (१५) कृपा, दया, प्रसन्नता। (१६) प्रेम, अनुराग। उ.—(क) हरि-पद पंकज पियौ प्रेम-रस, ताही कै रँग रातौ—१-४०। (ख) देखि जरनि जड़ नारि की (रे) जरति प्रेत के संग। चिता न चित फीकौ भयौ (रे) रची जु पिय कैं रंग—१-३२५। (ग) भरतादिक सब हरि-रँग रए—५-२। (घ) कुबिजा भई स्याम-रँग-राती—१-६३।

मुहा०—रंग देना—दिखावटी प्रेम करना।

(१७) ढंग, ढब।

यौ०—रंग-ढंग—(१) दशा, स्थिति, अवस्था। (२) चाल-ढाल। (३) व्यवहार-बर्ताव। (४) लक्षण।

मुहा०—रंग काछना—ढंग अपनाना, चाल चलना। रँग काछत—ढंग अपनाते हैं। उ.—सूर स्याम जितने रँग काछत जुवती जन-मन के गोऊ हैं। (किसी को अपने) रंग में रँगना—किसी को प्रभावित करके अपना-सा या अपने मत और पक्ष का कर लेना।

(१८) भांति, प्रकार। (१९) चौपर की १६ गोटियों का दो बराबर भागों में विभाजन जिनमें ८ 'रंग' और शेष 'बदरंग' कहलाती हैं।

मुहा०—रंग जमना—चौपड़ की 'रंग' गोटी का ऐसे घर में पहुँचना जिससे खिलाड़ी की जीत निश्चित हो जाय। रंग मारना—बाजी जीतना।

(२०) युद्ध, समर, लड़ाई।

यौ०—रण-रंग—युद्धोत्साह। उ.—भिड़चौ चानूर सौं नंद-सुत बाँधि कटि पीतपट फेंट रण-रंग राजै —२६०७।

मुहा०—रंग मचाना—खूब उत्साह से युद्ध करना, घमासान मचा देना।

रंगत—संज्ञा स्त्री. [हिं. रंग] (१) रंग का भाव या उसकी चमक-दमक। (२) आनंद, मजा। (३) दशा, स्थिति, अवस्था।

रंग-थल—संज्ञा पुं. [सं. रंगस्थल] रंगस्थल।

रंगद्वार—संज्ञा पुं. [हिं. रंग+सं. द्वार] रंगभूमि का द्वार उ.—नवल नंदनन्दन रंगद्वार आए—२५९५।

रगना, रँगनो—क्रि. स. [हिं. रंग] (१) रंग चढ़ाना, रंगीन करना। (२) प्रेम करने लगना। (३) प्रभाव डालकर अपने अनुकूल करना।

क्रि. अ.—आसक्त या प्रेम में लीन होना।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रेंगना] धीरे-धीरे कौतुक करते घिसटना या चलना। उ.—मनिमय आँगन नंदराइ कौ बाल गोपाल करैं तहँ रँगना—१०-११३।

रंग-बिरंग, रंग-बिरंगा—वि. [हिं. रंग+बिरंग] (१) कई रंगोंवाला। (२) कई तरह का।

रंगभवन—संज्ञा पुं. [सं.] भवन जहाँ आमोद-प्रमोद के सभी साधन उपलब्ध हों।

रंगभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्सव, आयोजन आदि का स्थान। उ. कछु क्रोध कछु त्रास, कछु सोच, कछु सोक करैं सहास रंगभूमि आयौ २६०२। (२) क्रीड़ा, विनोद आदि का स्थान। उ.—रंगभूमि रमनीक मधुपुरी बारि चढ़ाइ कहौ दह कीजो—१० उ०-९५। (३) कुश्ती होने का स्थान, अखाड़ा। उ०—रंगभूमि मैं कंस पछारौं, घीसि बहाऊँ बैरी—१०-१७६। (४) रण-भमि, युद्धक्षेत्र। (५) नाटक खेलने का स्थान।

रंगभौन—संज्ञा पुं. [सं. रंगभवन] रंगमहल।

रँगमँगा, रँगमँगे—वि. [हिं. रंग+मग्न] आनंद में लीन, रसलीन। उ.—मानहुँ रति-रस भए रँगमँगे करत केलि पिय पलक न पारे—२१३२।

रंगमंच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाट्यशाला। (२) रंगभूमि।

रंगमहल—संज्ञा पुं. [सं. रंग+अ. महल] आमोद-प्रमोद या विलास का भवन। उ.—बैठी रंगमहल मैं राजति, प्यारी फेरि अभूषन साजति।

रँगमाता—वि. [सं. रंग+हिं. मत्त] आनंद में लीन।

रंग-रन—संज्ञा पुं. [सं. रंग+रण] युद्धोत्साह। उ.—धन्य सु भूमि जहाँ पग धारे जीतहिंगे रिपु आजु रंग-रन—२५७३।

रंगरली—संज्ञा स्त्री. [सं. रंग+हिं. रलना] आमोद-प्रमोद।

मुहा०—रंगरली करना (मचाना)—आमोद-प्रमोद या विलास-विहार करना।

रंगरस—संज्ञा पुं. [सं. रंग+रस] आमोद-प्रमोद।

रंगरसिया—वि. [सं. रंग+हिं. रसिया] विलासी।

रँगराता, रँगराते, रँगरातौ—वि. [सं. रंग+हिं. राता] अनुरक्त। उ.-भामिमि कुबिजा सौं रँगराते—२६८४।

रँगरेज—संज्ञा पुं. [फ़ा. रँगरेज] कपड़ा रँगने का काम करनेवाला।

रगरेजिन, रँगरेजिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रँगरेज] रँगरेज की स्त्री, कपड़े रँगनेवाली। उ.—जावक सौं कहाँ पाग रँगाई रँगरेजिन मिलिहै को बाल—१९३६।

रंगरेलि, रंगरेली—संज्ञा स्त्री. [सं. रंग+रेलना] मौज, विलास, आमोद-प्रमोद।

रँगवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रँगाई] रँगने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

रगवाना, रँगवानो—क्रि. स. [हिं. रँगना का प्रे०] रँगने का काम दूसरे से कराना।

रंगशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाट्यशाला।

रंगसाज—वि. [हिं. रंग+फ़ा. साज] रंग बनाने या चढ़ानेवाला।

रंगस्थल—संज्ञा पुं. [सं.] रंगभूमि।

रंगा—संज्ञा स्त्री. [सं. रंग] राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा, किनि हार चुरायो।.........। प्रेमा दामा रूपा हंसा रंगा हरषा जाउ—१५९०।

रगाई—संज्ञा स्त्री. [सं. रंग+हिं. आई] रँगने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

क्रि. स. [हिं. रँगाना] रंग चढ़वाया, रँगने को प्रवृत किया, रँगवा ली। उ.—जावक सों कहाँ पाग रँगाई—१९३६।

रगाना, रगानो—क्रि. स. [हिं. रँगना का प्रे०] रँगने का काम दूसरे से कराना।

रगावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. रंग+आवट] रँगने की क्रिया या भाव।

रगिया—संज्ञा पुं. [सं. रंग+हिं. इया] रँगनेवाला।

रंगी—वि. [हिं. रंग] (१) रँगीला। (२) रंगीन।

रंगीन—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) रँगा हुआ। (२) विलासी। (३) अनोखा, मजेदार।

रंगीनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रंगीन] (१) रंगीन होने का भाव (२) बनाव-सिंगार। (३) रँगीलापन।

रगीला—वि. [सं. रंग+हिं. ईला] (१) रसिक, रसिया। (२) सुंदर। (३) प्रेमी, अनुरागी।

रँगीली—वि. स्त्री. [हिं. रँगीला] आनंद में लीन, रसिकिनी, अपने राग-रंग में चूर। उ.—दधि लै मथति ग्वालि गरबीली।.........। भरी गुमान बिलोकति ठाढ़ी, अपनैं रंग रँगीली—१०-२९९। (२) सुंदर। (३) अनुरागभरी, मुग्ध।

रगीले—वि. [हिं. रँगीला] रसिक, रसिया। उ.—स्याम रँग रँगे रँगीले नैन।

रगैया—वि. [हिं. रँगना+ऐया] रँगनेवाला।

रँग्यौ—क्रि. अ. [हिं. रँगना] रँग लिया, रंग में मग्न या लीन हो गया। उ.—(क) तू तौ विषया-रंग रँग्यौ है, बिन धोए क्यौं छूटै—१-६३। (ख) तेहि रँग सूर रँग्यौ मिलिकै मन होइ न स्वेत अरुन फिर पेरौ—११९९।

रंच, रंचक—वि. [सं. न्यंच, प्रा० णंच] थोड़ा, तनिक, जरा सा। उ.—(क) रंच काँच-सुख लागि मूढ़ मति कंचन-रासि गँवाई—१-३२८। (ख) रंचक सुख-कारन तैं अंत क्यौं बिगोयौ—१-३३०। (ग) रंचक दधि के काज जसोदा बाँधे कान्ह उलूखल लाइ—२६९५।

रचिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. रचना] लीन या मग्न होना। उ.—रे मन, छाँड़ि बिषय को रँचिबौ—१-५९।

रंज—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) दुख। (२) शोक।

रंजक—वि. [सं.] (१) रँगनेवाला। (२) आनंदकारी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रंच=अल्प] (१) बंदूक की प्याली में आग लगाने को रखी जानेवाली बारूद। (२) भड़काने या उत्तेजित करनेवाली बात।

रंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रँगने की क्रिया। (२) प्रसन्न करने की किया।

वि.—प्रसन्न या आनंदित करनेवाला। उ.—सब वे दिवस चारि मन-रंजन अंत काल बिगरैगो—१-७५।

रंजना, रंजनो—क्रि. स. [सं. रंजन] (१) प्रसन्न करना। (२) स्मरण या भजन करना। (३) रँगना।

रंजित—वि. [सं.] (१) रँगा हुआ, सना हुआ। उ.—(क) अति बिराजत बदन-बिधु पर सुरभि-रंजित रेनु—१-३०७। (ख) सोभित मन अंबुज पराग-रुचि रंजित मधुप सुदेश—४७८। (२) प्रसन्न, हर्षित। (३) अनुरक्त, मुग्ध।

रंजिश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) दुखी होने का भाव। (२) मन-मुटाव। (३) शत्रुता।

रंजीदा—वि. [फ़ा.] (१) दुखी। (२) अप्रसन्न।

रंजै—क्रि. स. [हिं. रचना] स्मरण या भजन करता है। उ.—आदि निरंजन नाम ताहि रंजै सब कोऊ—३४४३।

रंडा—वि. [सं.] राँड़, विधवा।

रडापा—संज्ञा पुं. [सं. रंडा] विधवा की स्थिति।

रंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. रंडा] वेश्या।

रँडुआ, रँड़ुआ, रड़ुवा—वि. [हिं. राँड़] जिसकी पत्नी मर गयी हो।

रंता—वि. [सं. रत] लीन, लगा हुआ।

रंति—संज्ञा स्त्री. [सं.] केलि, क्रीड़ा।

रंद—संज्ञा पुं. [सं. रंध्र] किले की दीवार का मोखा जिससे तोप आदि चलायी जा सके।

रँदना, रँदनो—क्रि. स. [हिं. रंदा] रंदा फेरकर लकड़ी की सतह चिकनी करना।

रंदा—संज्ञा पुं. [सं. रदन] लकड़ी की सतह चिकनी करने का औजार।

रंधन—संज्ञा पुं. [सं.] रसोई बनाना।

रंध्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छेद, सूराख। उ.—(क) जैसे फिरत रंध्र मगु उँगरी तैसे मैंहुँ फिराऊँ—पृ० ३११ (११)। (ख) ग्रीवा रंध्र नैन चातक जल पिक मुख बाजै बाजन—२८१७। (२) दोष, छिद्र।

रंभ—संज्ञा स्त्री. [सं.] शब्द, कोलाहल।

रंभण, रंभन—संज्ञा पुं. [सं. रंभण] (१) गले लगाना, आलिंगन। (२) (गाय का) रँभाना।

रंभना, रंभनो—क्रि. अ. [सं. रंभण] (१) जोर का शब्द करना। (२) (गाय का) बोलना।

रंभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) केला। (२) एक अप्सरा। (३) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा, किनि हार चुरायो। ....। दर्वा रंभा कृष्ना ध्याना, मैना नैना रूप—१५८०।

रँभाना, रँभानो—क्रि. अ. [सं. रंभण] गाय का बोलना।

रंभि—क्रि. अ. [हिं. रंभाना] रँभाकर। उ.—मुरली धुनि गो रंभि चलत पग धूरि उड़ावति।

रँहचटा—संज्ञा पुं. [हिं. रहस+चाट] लालच, चस्का।

रइकौ—क्रि. वि. [हिं. रंच+कौ] जरा भी।

रइनि—संज्ञा स्त्री. [सं. रजनी, प्रा० रयणी] रात।

रईं—क्रि. अ. [हिं. रयना] लीन, आसक्त या अनुरक्त हुईं। उ.—प्रेम-बिबस सब ग्वालि भईं। उरहन देन चलीं जसुमति कौं, मनमोहन के रूप रईं—७७१।

रई—संज्ञा स्त्री. [सं. रय] मथानी। उ.—(क) बासुकि नेति अरु मंदराचल रई, कमठ मैं आपनी पीठि धारौं—८-८। (ख) त्यौं-त्यौं मोहन नाचै ज्यौं-ज्यौं रई-घमरकौं होइ—१०-१४८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रवा] (१) मोटा आटा। (२) चूर्ण।

वि. स्त्री. [हिं. रयना] (१) मग्न, लीन, पगी हुई। (२) अनुरक्त।

क्रि. अ.—अनुरक्त हुई। उ.—कहत परस्पर आपुस मैं सब कहाँ रहीं हम काहि रई। (ख) ज्यौं व्यभिचारि भवन नहिं भावत औरहि पुरुष रई—पृ० ३३४ (३९)। (ग) माधव राधा के रँग राचे, राधा माधव रंग रई—१० उ०-१२१।

रईस—वि. [अ.] धनी, अमीर।

रईसी—संज्ञा स्त्री. [अ. रईस] धनी होने का भाव, अमीरी।

रउताइ, रउताई—संज्ञा पुं. [हिं.रावत+आई] स्वामित्व, प्रभुता।

रउरे—सर्व. [हिं. राव, रावल] मध्यम पुरुष के लिए आदरसूचक शब्द, आप।

रए—क्रि. अ. [हिं. रयना] लीन या अनुरक्त हुए। उ.—(क) वह तौ जाइ समात उदधि में ए प्रति अंग रए—पृ० ३२१ (९७)। (ख) जोबन-बन ते निकसि चले ए मुरली-नाद रए—पृ० ३२५ (४८)।

रकछ—संज्ञा पुं. [हिं. रिकवँच] पत्ते की पकौड़ी।

रकत—संज्ञा पुं. [सं. रक्त] खून, लहू, रुधिर। उ.—चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग रकत-प्रवाह चल्यौ अधिकानी—१०-७८।

वि.—लाल।

रकबा—संज्ञा पुं. [अ. रक़बा] क्षेत्रफल।

रकबाहा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

रकम—संज्ञा स्त्री. [अ० रक़म] धन-दौलत।

रकसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. राकस] राक्षसपन।

रकाब—संज्ञा स्त्री. [फा.] घोड़े की जीन का पावदान।

मुहा०—रकाब पर पैर रखे होना—(१) जाने को तैयार होना। (२) जाने की जल्दी मचाना।

रकार—संज्ञा पुं. [सं.] 'र' का बोधक वर्ण।

रक्त—संज्ञा पुं. [सं.] खून, लहू, रुधिर।

वि.—(१) अनुरक्त, आसक्त। (२) रँगा हुआ। (३) लाल। (४) विलास में लीन।

रक्तकंठ—वि. [सं.] जिसका कंठ लाल हो।
संज्ञा पुं. (१) कोयल। (२) बैंगन, भाँटा।

रक्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] लाली, लालिमा।

रक्तदृग—वि. [सं.] जिसकी आँखें लाल हों।
संज्ञा पुं.—(१)कोकिल। (२) कबूतर।(३)चकोर।

रक्तपात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खून गिरना या बहना। (२) ऐसी लड़ाई कि लड़नेवाले घायल हो जायं।

रक्तबीज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनार, दाड़िम। (२) एक राक्षस जो शुंभ और निशुंभ का सेनापति था और जिसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें गिरती थीं, उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। चंद्रिका ने उसका सब रक्त पान करके उसे मार डाला था।

रक्ताक्त—वि. [सं.] (१) लाल। (२) रक्त-रंजित।

रक्ताभ—वि. [सं.] लाली लिए हुए।

रक्तिम—वि. [सं.] जो लाली लिये हुये हो।

रक्तोपल—संज्ञा पुं. [सं.] लाल (रत्न)।

रक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रक्षक। (२) रक्षा।
संज्ञा पुं. [सं. रक्षस्] राक्षस।

रक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] रक्षा करनेवाला।

रक्षण, रक्षन—संज्ञा पुं. [सं. रक्षण] रखवाली।

रक्षना, रक्षनो—क्रि. स. [सं. रक्षण] रक्षा करना।

रक्षस—संज्ञा पुं. [सं. रक्षस्] असुर, निशाचर।

रक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बचाव, रखवाली। (२) वह यंत्र या सूत्र जो नजर आदि से बचाने के लिए बालकों के बांधा जाता है। (३) राखी जो रक्षाबंधन के दिन बाँधी जाती है।

रक्षाइद—संज्ञा स्त्री. [हिं. रक्षा+आइद] राक्षसपन।

रक्षाबंधन—संज्ञा पुं. [सं.] हिंदुओं का एक त्योहार जो श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को होता है और जिस दिन ब्राह्मण अन्य वर्गों के या बहनें, भाइयों के अथवा घर का बड़ा छोटों के 'राखी' बांधता है।

रक्षित—वि. [सं.] जिसकी रक्षा की गयी हो।

रक्षी—संज्ञा पुं. [सं. रक्षिन्] रक्षा करनेवाला।
संज्ञा पुं. [सं. रक्षस्] राक्षसों को पूजनेवाला।

रखना—क्रि. स. [सं. रक्षण, प्रा० रक्खण] (१) धरना, टिकाना, (२) बचाना, रक्षा करना। (३) बिगड़ने या नष्ट न होने देना। (४) एकत्र या संग्रह करना। (५) सौंपना। (६) रेहन करना। (७) अपने अधिकार में करना। (८) पालना। (९) नियुक्त करना। (१०) पकड़ या रोक लेना। (११) चोट पहुँचाना। (१२) टालना, स्थगित करना। (१३) सामने न लाना। (१४) व्यवहार या उपयोग में लाना। (१५) मढ़ना, आरोप करना। (१६) ऋणी होना। (१७) मन में अनुभव करना। (१८) डेरा डलवाना, ठहरा देना। (१९) उपपत्नी या उपपति बनाना। (२०) बचा लेना।

रखनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रखना] रखैल, उपपत्नी।

रखनो—क्रि. स. [सं. रक्षण, प्रा. रक्खण] रखना।

रखवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रखाना] रखवाली करने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

रखवाना—क्रि. स. [हिं. रखना का प्रे०] रखने की क्रिया दूसरे से कराना।

रखवानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रखना] रक्षा, सुरक्षा।
उ.—जन्म भयौ जब तें ब्रज हरि को कहा कियौ करि-करि रख्वानी—२३७९।

रखवानो—क्रि. स. [हिं. रखना का प्रे०] रखने की क्रिया, दूसरे से कराना।

रखवार, रखवारा—संज्ञा पुं. [हिं. रखवाला] (१) रक्षक। (२) चौकीदार।

रखवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रखवाली] रक्षा, रक्षा करने की क्रिया या भाव। उ.—(क) मन-ममता-रुचि सौं रखवारी पहिलैं लेहु निबेरि—१-५१। (ख) रखवारी को बहुत महाभट दीन्हें रुक्म पठाई—१० उ०-१९।
संज्ञा पुं.—रक्षक, रखवाला। उ.—धेनुक असुर तहाँ रखवारी—४९९।

रखवारे—संज्ञा पुं. [हिं. रखवाला] रक्षा करने वाले।
उ.—(क) येई हैं कुलदेव हमारे। काहूँ नहीं और मैं जानति ब्रज-गोधन रखवारे—८१२। (ख) सिर ऊपर बैठे रखवारे—१०-१०।

रखवारो—संज्ञा पुं. [हिं. रखवाना] रक्षक। उ.—अब

को सात दिवस राखैगो दूरि गयो ब्रज को रखवारी —२८३२।

रखवाला—संज्ञा पुं. [हिं. रखना+वाला] (१) रक्षा करनेवाला। (२) चौकीदार, पहरेदार।

रखवया—संज्ञा पुं. [हिं. रखना+ऐया] रक्षा करनेवाला, रक्षक। उ.—दोउ सींग बिच ह्वै हौं आयौ, जहाँ न कोऊ हो रखवैया—१०-३३५।

रखाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रखना+आई] रक्षा करने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

रखाऊ—वि. [हिं. रखना] बहुत दिनों का रखा हुआ।

रखाना, रखानो—क्रि. स. [हिं. 'रखना' का प्रे०] रक्षा या चौकीदारी करने का काम दूसरे से कराना।

क्रि. अ.—रक्षा या रखवाली करना।

रखायौ—क्रि. स. [हिं. रखाना] रक्षा की।

मुहा०—बोल रखायौ—बात रख ली। उ.—तिहिं कारन मैं आइ कै तुव बोल रखायौ—७१६।

रखिया—संज्ञा पुं. [हिं. रखना+इया] रखनेवाला।

रखियाना, रखियानो—क्रि. स. [हिं. राख] राख से माँजना।

रखेल, रखेली, रखैल, रखैली—संज्ञा स्त्री. [हिं. रखना +एल, एली]स्त्री जो बिना विवाह के ही पत्नी की तरह रहे।

रखैया—संज्ञा पुं. [हिं. रखना+ऐया] (१) रखनेवाला। (२) रक्षक।

रग—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] नस या नाड़ी।

मुहा०—रग दबना—दबाव मानना। रग-रग फड़कना—बहुत उत्साह होना। रग-रग में—सारे शरीर में।

रगड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. रगड़ना] (१) रगड़ने की क्रिया या भाव। (२) रगड़ने से बन जानेवाला चिह्न। (३) कड़ी मेहनत।

मुहा०—रगड़ पड़ना—बहुत श्रम उठाना।

रगड़ना, रगड़नो—क्रि. स. [सं. घर्षण] (१) घिसना, घर्षण करना। (२) पीसना। (३) कोई काम बार-बार करना। (४) तंग या परेशान करना।

क्रि. अ.—कड़ी मेहनत करना।

रगड़वाना, रगड़वानो—क्रि. स. [हिं. 'रगड़ना' का प्रे०] रगड़ने का काम दूसरे से कराना।

रगड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. रगड़ना] (१) रगड़ने की क्रिया या भाव। (२) कड़ी मेहनत। (३) बहुत दिन चलनेवाला झगड़ा।

रगण—संज्ञा पुं. [सं.] एक 'गण' जिसमें पहला वर्ण गुरु, दूसरा लघु और तीसरा गुरु होता है (छंदशास्त्र)।

रगत—संज्ञा पुं. [सं. रक्त] खून, रुधिर।

रगमगा, रगमगो—वि. [सं. रंग+मग्न] प्रेमासक्त।

रगर—संज्ञा स्त्री. [हिं. रगड़] रगड़।

रगरा—संज्ञा पुं. [हिं. रगड़ा] रगड़ा।

रग-रेशा—संज्ञा पुं. [फ़ा. रग+रेशा] (१) नस। (२) सूक्ष्म से सूक्ष्म बात।

रगवाना, रगवानो—क्रि. स. [हिं. 'रगाना' का प्रे०] चुप कराना।

रगा—संज्ञा पुं. [देश.] मोर।

रगाना, रगानो—क्रि. अ. [देश.] चुप या शांत होना।

क्रि स.—चुप या शांत करना।

रगी, रगीला—वि. [हिं. रग] (१) जिद्दी। (२) दुष्ट।

रगेद—संज्ञा स्त्री. [हिं. रगेदना] दौड़ने की क्रिया।

रगेदना, रगेदनो—क्रि.स.[हिं. खेदना] भगाना, खदेड़ना।

रघु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यवंशी राजा दिलीप के, सुदक्षिणा से उत्पन्न पुत्र जो राजा दशरथ के दादा और राम के परदादा थे।

रघुकुल—संज्ञा पुं. [सं.] राजा रघु का वंश। उ.—हैं केतिक ये तिमिर निसाचर उदित एक रघुकुल के भानुहिं—९-९५।

रघुनंद, रघुनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रघुनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रघुनायक—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रघुपति—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र। उ.—रघुपति रिस पावक प्रचंड अति सीता-स्वाँस समीर—९-१५८।

रघुवंश—संज्ञा पुं. [सं. रघुवंश] महाराज रघु का वंश जिसमें श्रीरामचंद्र जन्मे थे।

रघुवंसी—संज्ञा पुं. [सं. रघुवंशी] महाराज रघु के वंशज। उ.—दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी—१-१८९।

रघुवर—संज्ञा पुं. [सं. रघुवर] श्रीरामचंद्र। उ.—जनक-सुता-पति हैं रघुवर-से—९-१४०।

रघुवीर—संज्ञा पुं. [सं. रघुवीर] श्रीरामचंद्र। उ.—प्रगट्यौ आइ लंक दल कपि को फिरी रघुबीर-दुहाई—९-८२।

रघुराइ, रघुराई—संज्ञा पुं. [सं. रघुराज] श्रीरामचंद्र।

रघुराज, रघुराजा—संज्ञा पुं. [सं. रघुराज] श्रीरामचंद्र।

रघुराय, रघुराया, रघुरैया—संज्ञा पुं. [सं. रघुराज] श्रीरामचंद्र।

रघुवंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महाराज रघु का प्रसिद्ध कुल जिसमें श्रीरामचंद्र जन्मे थे। (२) कालिदास का प्रसिद्ध महाकाव्य।

रघुवंशकुमार—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रघुवंशी—संज्ञा पुं. [सं.] महाराज रघु का वंशज।

रघुवर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रघुवीर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रचक—संज्ञा पुं. [सं.] रचना करनेवाला।

वि. [हिं. रंचक] थोड़ा, जरा सा, तनिक।

रचन—संज्ञा स्त्री. [हिं. रचना] निर्माण की क्रिया, चातुरी या विधान। उ.—(क) बात बनावन कौं है नीकौ बचन-रचन समुझावै—१-१८६। (ख) हाव-भाव नैनन सैनन दै बचन-रचन मुख भाषी—१८५६। (ग) बचन-रचन माधुरी सधर पर कवन कोकिला कूर—२११९।

रचना—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) बनाने की क्रिया या भाव, बनावट। उ.—(क) प्रभु जी की आरती बनी। अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी—२-२८। (ख) इंद्रलोक-रचना रिषि ठई—९-३। (ग) बुधि न सकति सेतु रचना रचि राम-प्रताप बिचारत—९-१२३। (२) निर्माण-कौशल। (३) निर्मित वस्तु। (४) केश-विन्यास। (५) लिखा गया गद्य या पद्य-विशेष।

क्रि. स. [सं. रचन] (१) बनाना, निर्माण करना। (२) निश्चित करना। (३) ग्रंथ आदि लिखना। (४) उत्पन्न करना। (५) ठानना, अनुष्ठान करना। (६) युक्ति या आयोजन करना। (७) कल्पना करना। (८) सजाना, सँवारना। (९) क्रमानुसार रखना।

क्रि. स. [सं. रंजन] रँगना।

क्रि. अ. (१) रँग चढ़ना, रँगा जाना। (२) आसक्त या अनुरक्त होना।

रचनी—वि. [हिं. रचना] रची हुई, निर्मित। उ.—काल-कर्म-गुन-ओर-अंत नहिं प्रभु इच्छा रचनी—२-२८।

रचनो—क्रि. स. [सं. रचन] रचना।

क्रि. स. [सं. रंजन] रँगना।

क्रि. अ. (१) रँगा जाना। (२) आसक्त होना।

रचयिता—संज्ञा स्त्री. [सं. रचयितृ] निर्माण करने, रचने या बनानेवाला।

रचयो, रचयौ—क्रि. स. [हिं. रचना] बनाया, तैयार किया। उ.—(क) ग्वाल-सखा सबहीं पय अँचयौ। नीकैं औटि जसोदा रचयौ - ३९६। (ख) सीतल जल कपूर-रस रचयौ—५१४।

रचवाना, रचवानो—क्रि. स. [हिं. 'रचना' का प्रे०](१) 'रचने' का काम दूसरे से कराना। (२) मेंहँदी, महावर आदि लगवाना।

रचाऊँ—क्रि. स. [हिं. रचाना] बनाऊँ, निर्मित करूँ। उ.—नव निकुंज बन-धाम निकट इक आनँद-कुटी रचाऊँ—१८५७।

रचाना, रचानो—क्रि. स. [सं. रचन] (१) आयोजन या अनुष्ठान करना या कराना। (२) बनवाना।

क्रि. स. [सं. रंजन] मेंहदी, महावर आदि लगाना।

रचायो, रचायौ—क्रि. स. [हिं. रचाना] आयोजन या अनुष्ठान किया। उ.—(क) दच्छ प्रजापति जज्ञ रचायौ—४-५। (ख) ब्रज नर-नारि-ग्वाल-बालक, कहि, कौनैं ठाठ रचायौ—४३६।

रचि—क्रि. स. [हिं. रचना] (१) सजा-सँवार कर। उ.—रचि बिरचि मुख-भौंह छबि लै चलति चित्त चुराइ—१-५६।

मुहा०—रचि-रचि—(१) बड़ी लगन, प्रेम या ममता से सजा-सँवारकर। उ.—(क) भूषन-बसन आदि सब रचि-रचि माता लाड़ लड़ावै। (ख) केसरि की उबटनी बनाऊँ रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ—१०-१८५। (२) बड़ी कुशलता और चातुरी से बनाकर। रचि-पचि

—(१) बड़ा श्रम करके। (२) गढ़ गढ़कर। उ.—बतियाँ रचि-पचि कहत सयानी—३४४२।

(२) बनाकर, निर्माण करके। उ.—पुनि सबको रचि अंड आपु मैं आपु समाए—२-३६। (२) आडंबर रचकर, छद्म वेश बनाकर उ.—बकासुर रचि रूप माया रह्यौ छल करि आइ ४२७। (३) फूल माला या गुच्छ आदि बनाकर। उ.—रचि स्रक कुसुम सुगंध सेज सजि बसन कुमकुमा बोरि—२८१२।

रचित—वि. [सं.] (१) बनाया हुआ, निर्मित। (२) लिखा हुआ, लिखित।

रचियो, रचियौ—क्रि. स. [हिं. रचाना] बनवाया, निर्मित कराया। उ.—लाखा-मंदिर कौरव रचियौ तहँ राखे बनवारी—१-२८२।

रची—वि. [हिं. रंच] थोड़ा, जरा सा।

क्रि. स. [हिं. रचना] (१) सोची, कल्पित की। उ.—तब इक बुद्धि रची अपनैं मन, गए नाँघि पिछ-वारैं—१०-२७७। (२) अनुरक्त या आसक्त हुई। उ.—देखि जरनि जड़, नारि की, जरति जु पिय कैं संग। चिता न चित फीको भयौ रची जु पिय कैं रंग—१-३२५। (३) ठानी, निश्चित की। उ.—सूर-दास प्रभु रची सु ह्वैहै, को करि सोच मरै—१-२६४।

रचे—क्रि. स. [हिं. रचना] (१) बनाये, निर्मित किये। उ.—रोम-रोम प्रति अंड कोटि रचे—४९७। (२) पैदा या उत्पन्न किये। उ.—बालक बच्छ बनाइ रचे वे ही उनहारी—४९२।

रचै—क्रि. स. [हिं. रचना] बनाता या निर्मित करता है। उ.—लोक रचै राखै अरु मारै, सो ग्वालनि सँग लीला धारै—१०-३।

रचैगी—क्रि. स. [हिं. रचना] गढ़ लेगी, (नयी बात, उक्ति या बहाना) बता देगी। उ.—बूझत ही कछु बुद्धि रचैगी बड़ी चतुर यह नारि—१५२५।

रचौं—क्रि. स. [हिं. रचना] बनाऊँ, निर्मित करूँ। उ.—(क) रचौं सृष्टि-बिस्तार, भई इच्छा इक औसर—२-३६। (ख) तीन पैग बसुधा दै मोकौं, तहाँ रचौं ध्रमसारी—८-१४।

रचौहाँ—वि. [हिं. रचना] (१) रचा हुआ। (२) रँगा हुआ। (३) मुग्ध, अनुरक्त।

रचौ—क्रि. स. [हिं. रचना] बनाओ, निर्मित करो, प्रबंध या आयोजन करो। उ.—लछिमन, रचौ हुता-सन भाई—९-१६१।

रच्छ—संज्ञा पुं. [सं. रक्ष] (१) रक्षक। (२) रक्षा।

रच्छक—संज्ञा पुं. [सं. रक्षक] रक्षा करने या बचाने-वाला। उ.—(क) कृषि-रच्छक भाइनि तव कीन्हौ—५-३। (ख) नंदघरनि कुल-देव मनावति, तुमहीं रच्छक घरी-पहर के—६०५।

रच्छन—संज्ञा पुं. [सं. रक्षण] (१) रक्षा या रखवाली करना। (२) रक्षक।

रच्छनहार, रच्छनहारा—वि. [सं. रक्षा + हिं. हार, हारा] रक्षा करनेवाला, रक्षक।

रच्छना, रच्छनो—क्रि. स. [सं. रक्षा] रक्षा करना।

रच्छस—संज्ञा पुं. [सं. राक्षस] दैत्य, दानव, असुर।

रच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं. रक्षा] बचाव, रक्षण। उ.—(क) जन अर्जुन की रच्छा कारन सारथि भए मुरारी १-२८८। (ख) जिहिं बल बिप्र तिलक दै थाप्यौ, रच्छा करी आप बिदमान—१०-१२७।

रच्यो, रच्यौ—क्रि. स. [हिं. रचना] (१) बनाया, निर्मित किया, गढ़ा। उ.—(क) ससि-तन गारि रच्यौ बिधि आनन बाँके नैननि जोहै—१०-१५८। (ख) द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान—१० उ०-६। (२) आयोजित किया। उ.—द्वै बालक बैठारि सयाने खेल रच्यौ ब्रज-खोरी—६०४।

रज—संज्ञा पुं. [सं. राजस्] (१) स्त्रियों तथा मादा प्राणियों के योनि-मार्ग से प्रति मास निकलनेवाला रक्त। (२) तीन गुणों में से दूसरा गुण जो काम, क्रोध, लोभ आदि का उत्तेजक माना गया है। (३) भक्ति का एक रूप। उ.—माता, भक्ति चारि परकार। सत रज तम गुन सुद्धा-सार—३-१३। (४) पानी, जल। (५) पुष्प का पराग।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धूल, गर्द। उ.—(क) सूरज प्रभु जसुमति रज झारति, कहाँ भरी यह खेह १०-१११। (ख) संध्या समय साँवरे मुख पर गो-

पँद-रज लपटाए—४१७ । (ग) कुंज-कुंज प्रति लोटि-लोटि ब्रज-रज लागै रँग-रीतनि—४९० ।

मुहा०—रज छानना—(१) इधर-उधर भटकना, मारे-मारे फिरना। (२) व्यर्थ का श्रम करना। उ.—अतिसय सुकृत-रहित अघ व्याकुल बृथा स्रमित रज छानत —१-२०१ ।

(२) रात। (३) ज्योति ।

संज्ञा पुं. [सं. रजत] चाँदी ।

संज्ञा पुं. [सं. रजक] धोबी । उ.—मारग मैं इक रज संहारयौ सबहिं बसन हरि लीन्हें ।

रजक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धोबी। उ.—नृपति रजक अंबर नृप धोवत—२५७४। (२) कंस का धोबी जिसकी धृष्टता से खीझकर श्रीकृष्ण ने उसको मार डाला था। उ.—रजक मल्ल चानूर-दवानल-दुख-भंजन सुखदाई—१-१५८।

रज-गज—संज्ञा स्त्री. [हिं. रज+गज (अनु.)] राजसी ठाटबाट ।

रंजगुन—संज्ञा पुं. [सं. रजोगुण] प्रकृति का वह गुण जिससे काम, क्रोध आदि की उत्पत्ति होती है।

रजतंत—संज्ञा स्त्री. [सं. राजतत्व] शूरता, वीरता।

रजत—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदी, रूपा।

वि.—सफेद, श्वेत, उज्ज्वल।

रजताइ, रजताई—संज्ञा स्त्री. [सं. रजत+हिं. आई] सफेदी, श्वेतता, उज्ज्वलता।

रजधानी—संज्ञा स्त्री. [सं. राजधानी] (१) वह नगर जहाँ राजा या शासक रहता हो अथवा जो शासन-प्रबंध का केन्द्र हो। उ.—(क) रामचन्द्र दसरथ-सुत ....कहँ तात के पंचवटी बन, छाँड़ि चले रजधानी —१०-१९९। (ख) रत्न जटित पलिका पर पौढ़े बरनि न जाइ कृष्न रजधानी—२३७९। (२) प्रसिद्ध या प्रमुख स्थान। उ.—नंदहिं कहति जसोदा रानी। माटी कैं मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी—१०-२५६। (३) प्रभु या आराध्य का निवास-स्थान। उ.—अब तौ यहै बात मनमानी। छाँड़ौं नहीं स्याम-स्यामा की वृन्दाबन रजधानी—१-८७।

रजना, रजनो—क्रि. अ. [सं. रंजन] रँगा जाना।

क्रि. स. रंग में डुबोना, रँगना।

रजनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात्रि। (२) हल्दी।

रजनीकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

रजनीगंधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक सुगंधित फूल जो रात में फूलता है।

रजनीचर—वि. [सं.] जो रात में घूमता हो।

संज्ञा पुं. (१) राक्षस। (२) चंद्रमा।

रजनीपति—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

रजनीमुख—संज्ञा पुं. [सं.] संध्या, सायंकाल। उ.—(क) रजनीमुख आवत गुन गावत नारद तुंबुर नाऊँ —९-१७२। (ख) रजनी-मुख बन तैं बने आवत भावति मंद गयंद की लटकनि—६१८।

रजनीश, रजनीस—संज्ञा पुं. [सं. रजनीश] चंद्रमा। उ.—कुटिल हरि-नख हिऐं हरि के हरषि निरखति नारि। ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि —१०-१६९।

रजपूत—संज्ञा पुं. [सं. राजपूत] (१) राजपूत। (२) राज-स्थान के क्षत्रियों के कुल-विशेष। (३) बीर पुरुष।

रजपूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. राजपूत] (१) क्षत्रियपन। (२) वीरता।

रजवंती, रजवती—वि. [सं. रजोवती] रजस्वला।

रजवाड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. राज्य+बाड़ा] (१) राज्य, रियासत। (२) राजा।

रजवार, रजवारा—संज्ञा पुं. [सं. राजद्वार] राज-दरबार, राजसभा।

रजस्वला—वि. स्त्री. [सं.] (स्त्री) जिसका मासिक धर्म चालू हो, ऋतुमती।

रजा—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) मरजी, इच्छा। (२) आज्ञा। (३) स्वीकृति।

रजाइ, रजाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. राजा+आई] (१) राजाज्ञा। (२) आज्ञा, आदेश।

संज्ञा स्त्री. [देश.] हलका लिहाफ।

रजाना, रजानो—क्रि. स. [सं. राज्य] (१) राज्य-सुख का भोग कराना। (२) बहुत सुख से रखना।

रजामंद—वि. [फ़ा. रज़ामंद] राज़ी, सहमत।

रजामंदी—वि. [हिं. रजामंद] सहमति, स्वीकृति ।

रजाय—संज्ञा स्त्री. [हिं.राजा] (१) आज्ञा । (२) इच्छा ।

रजायस, रजायसु—संज्ञा पुं. [सं. राजादेश, प्रा. रजाएस] (१) राजा की आज्ञा । (२) आज्ञा । उ.—(क) अब तौ सूर सरन तकि आयौ सोइ रजायसु दीजै—१-२६९ । (ख) मोकौं राम रजायसु नाहीं—९-३२ ।

रजी—क्रि. अ. [हिं. रजना] रँग गयी । उ.—सूर स्याम को मिली चून हरदी ज्यों रंग रजी—११७३ ।

रजु—संज्ञा स्त्री. [सं. रज्जु] रस्सी, जेवरी । उ.—(क) परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस भज्यौ न श्रीपति रानौ—१-४७ । (ख) जसुमति रिस करि-करि रजु करषै—१०-३४२ ।

रजोकुल—संज्ञा पुं. [सं. राजकुल] राजघराना ।

रजोगुण, रजोगुन—संज्ञा पुं. [सं. रजोगुण] प्रकृति के तीन गुणों में से एक जिससे काम, क्रोध, लोभ आदि की उत्पत्ति होती है ।

रजोगुणी, रजोगुनी—वि. [सं. रजोगुण+हिं. ई] जिसके स्वभाव में रजोगुण की प्रधानता हो । उ.—भक्त सात्विकी चाहत मुक्ति । रजोगुनी धन-कुटुंब ऽनुरक्ति—३-१३ ।

रजोदर्शन—संज्ञा पुं. [सं.] (स्त्री का) रजस्वला या मासिक धर्म से होना ।

रजोधर्म—संज्ञा स्त्री. [सं.] (स्त्री का) मासिक धर्म या रज-प्रवाह।

रज्जु—संज्ञा स्त्री. [सं.] रस्सी, जेंवरी ।

रज्वा—संज्ञा स्त्री. [सं. रज्जु] रस्सी । उ.—अति बल करि-करि काली हारचौ । .... । अति बलहीन छीन भयौ तिहिं छन देखियत है रज्वा सम डारचौ—५७४ ।

रटंत, रटंती—संज्ञा स्त्री. [हिं. रटना+अंत] रटने की क्रिया या भाव, रटाई ।

रट—संज्ञा स्त्री. [हिं. रटना] किसी शब्द या बात को बार-बार दोहराना । उ.—रहति रैनि दिन हरि-हरि हरि रट—३४६२ ।

रटत—क्रि. स. [हिं. रटना] (१) किसी शब्द या बात को बार-बार दोहराता है । उ.—रटत कृष्न गोबिंद हरि हरि मुरारी—१० उ०-३१ ।

रटति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. रटना] (१) किसी शब्द को बार-बार दोहराती है । उ.—निसि दिन रटति सूर के स्वामिहिं, ब्रज-बनिता देहैं बिसराई—६३९ । (२) बार-बार बजती या शब्द करती है । उ.—पाइ पैंजनि रटति रुनझुन—१०-११८ ।

रटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. रटना] रटने की क्रिया या भाव ।

रटना, रटनो—क्रि. स. [अनु.] (१) किसी शब्द या बात को बार-बार कहना । (२) किसी शब्द या वाक्य को कंठाग्र करने के लिए दोहराना । (३) शब्द करना, बजना ।

रटि—क्रि. स. [हिं. रटना] बार-बार कहकर । उ.—सूर सुमिरि सो रटि निसि-बासर, राम-नाम निज सार—१-२३१ ।

रटिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. रटना] रटने की क्रिया या भाव । उ.—राम-नाम नित रटिबौ करै—७-२ ।

रटै—क्रि. स. [हिं. रटना] कहता है, बतलाता है । उ.—होत सो जो रघुनाथ ठटै । .... । चारौं वेद रटै—१-२६३ ।

रठ—वि. [देश.] रूखा, शुष्क ।

रढ़ना, रढ़नो—क्रि. स. [हिं. रटना] (१) बार-बार कहना, रटना । (२) ईर्ष्या या क्षोभ से हूँसना ।

रढ़ै—क्रि. स. [हिं. रढ़ना] (१) रटता है । उ.—मन मैं राम-नाम नित रढ़ै—५-३ । (२) बहकाती है, कहती है । उ.—कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै । .... । पुनि पीवत हीं कच टकटोरत झूठहिं जननि रढ़ै—१०-१७४ ।

रण—संज्ञा पुं. [सं.] लड़ाई, युद्ध ।
संज्ञा पुं. [सं. अरण्य] वन, जंगल ।

रणक्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] युद्धभूमि ।

रण-चंडी—संज्ञा स्त्री. [सं.]रणक्षेत्र में मार-काट करानेवाली देवी ।

रणछोड़—संज्ञा पुं. [सं. रण+हिं. छोड़ना] श्रीकृष्ण का एक नाम जो मथुरा पर जरासंध के आक्रमण करने पर भागकर उनके द्वारका चले जाने से पड़ा था ।

रणखेत—संज्ञा पुं. [सं. रणक्षेत्र] युद्धभूमि।

रणधीर—वि. [सं.] युद्ध में धैर्य न छोड़नेवाला। उ.—सुनि भयभीत वज्र के पिंजर सूर सुरति रणधीर—१९०३।

रणन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शब्द करना। (२) बजना।

रण-नाद—संज्ञा पुं. [सं.] युद्ध में योद्धाओं की ललकार या गरज।

रणभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] युद्धभूमि।

रण-रोज, रण-रोझ—संज्ञा पुं. [सं. अरण्यरोदन] बन या एकान्त में बैठकर रोना जो व्यर्थ होता है।

रणरंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध। (२) युद्धभूमि। (३) युद्ध का उत्साह।

रणवीर—वि. [सं.] बहुत बड़ा योद्धा।

रणसिंघा, रणसिंहा—संज्ञा पुं. [सं. रण+हिं. सिंह] तुरही बाजा।

रण-स्तंभ—संज्ञा पुं. [सं.] विजय-स्मारक।

रणांगण—संज्ञा पुं. [सं.] युद्धक्षेत्र।

रत—वि. [सं.] (१) (कार्य में) लीन या तत्पर। उ.—परमारथ सौं बिरत बिषय-रत भाव-भगति नाहिनैं कहुँ जानी—१-१४९। (२) आसक्त, अनुरक्त।

रतजगा—संज्ञा पुं. [हिं. रात+जागना] (१) रात भर जागना। (२) किसी उत्सव आदि के अवसर पर रात भर जागना। (३) रात भर चलनेवाला आनंदोत्सव।

रतन—संज्ञा पुं. [सं. रत्न] रत्न, मणि। उ.—(क) हय गय-रतन-हेम पाटंबर आनन्द-मंगलचारा—१०-४। (ख) दोउ भैया मिलि खात एक सँग रतन-जटित कंचन की थारी—१०-२८८।

रतनकर, रतनगर—संज्ञा पुं. [सं. रत्नाकर] समुद्र।

रतनाइ, रतनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. रक्त, हिं. राता] लाली।

रतनाकर, रतनागर—संज्ञा पुं. [सं. रत्नाकर] समुद्र।

रतनार, रतनारा—वि. [सं. रत्न] कुछ-कुछ लाल।

रतनारी—संज्ञा पुं. [हिं. रतनार] एक तरह का धान।

वि. स्त्री.—कुछ-कुछ लाल।

संज्ञा स्त्री.—लाली, लालिमा।

रतनारे—वि. पुं. बहु. [हिं. रतनारा] कुछ-कुछ लाल। उ.—(क) काजर हाथ भरौ जनि मोहन ह्वैहैं नैना अति रतनारे—१०-१९०। (ख) सूर-स्याम सुखदायक लोचन दुखमोचन लोचन रतनारे—२१३२।

रतनालिया—वि. [हिं. रतनारा] कुछ-कुछ लाल।

रतनावली—संज्ञा स्त्री. [सं. रत्नावली] रत्न-समूह।

रतमुँहाँ—वि. [सं. रक्त+हिं. मुँह] लाल मुँहवाला।

रताना, रतानो—क्रि. अ. [सं. रत+आना] रत होना।

क्रि. स.—किसी का ध्यान अपनी ओर लगाना।

रतालू—संज्ञा पुं. [सं. रक्तालु] पिंडालू नामक तरकारी। उ.—सुंदर रूप रतालू रातो—२३२१।

रति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दक्ष प्रजापति की पुत्री जो कामदेव की पत्नी थी। उ.—वह रति, तुम रतिनाथ हो—२०१२। (२) काम-क्रीड़ा, संभोग। उ.—(क) पर-तिय-रति अभिलाष निसा-दिन मन-पिटरी लै भरतौ—१-२०३। (ख) स्वान संग सिहिनि-रति अजुगुत बेद बिरुद्ध असुर करै आइ—१० उ० -१०। (३) प्रेम, प्रीति। उ.—(क) मीन बियोग न सहि सकै, नीर न पूछै बात। देखि जु तू ताकी गतिहिं, रति न घटै तन जात—१-३२५। (ख) रति बाढ़ी गोपाल सौं—८०४। (ग) मधुपुरी की जुवति सब कहति अति रति भरी, देरी री देखी अंग अंग की लोनाई—२५९६। (४) स्नेह, वात्सल्य। उ.—(क) वेद-कमल-मुख परसति जननी अंक लिए सुत रति करि स्याम—१०-१५७। (ख) माखन माँगि लियौ जसुमति सौं। माता सुनत तुरत लै आई लगी रखावन रति सौं—१०-३१२। (५) मोह-ममता। उ.—सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति धन समान उनई—१-५०। (६) छवि, शोभा। (७) शृंगार रस का स्थायी भाव।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रात] रात्रि, निशा।

रतिक—क्रि. वि. [हिं. रत्ती+क] थोड़ा, जरा सा।

रतिकर—वि. [सं.] प्रेम या आनंद बढ़ानेवाला।

रतिज—वि. [सं. रति+ज] रति या संभोग से उत्पन्न (रोग आदि)।

रतिदान—संज्ञा पुं. [सं.] संभोग, मैथुन। उ.—कह्यौ

शर्मिष्ठा अवसर पाइ, रति की दान देहु मोहिं राइ—९-१७४।

रतिनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—वह रति, तुम रतिनाथ हौ, हम कैसे भावैं—२०१२।

रतिनायक—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

रतिनाह—संज्ञा पुं. [सं. रतिनाथ] कामदेव।

रतिपति—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव। उ.—मुनि-मन हरत जुवति-जन केतिक, रतिपति-मान जात सब खोइ—१०-२१०।

रतिप्रिय—वि. [सं.] अत्यन्त कामी, कामुक।

रति-प्रीता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नायिका जिसे प्रिय का चिंतन और ध्यान ही रुचिकर हो।

रतिभवन, रति-भौन—संज्ञा पुं. [सं. रति+भवन] केलि-गृह जहाँ रति-क्रीड़ा की जाय।

रति-मंदिर—संज्ञा पुं. [सं.] केलिगृह।

रतियाना, रतियानो—क्रि. अ. [सं. रति] अनुरक्त या आसक्त होना।

रतिरमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामदेव। (२) मैथुन।

रतिराइ, रतिराई—संज्ञा पुं. [सं. रतिराज] कामदेव।

रतिराज, रतिराजा—संज्ञा पुं. [सं. रतिराज] कामदेव।

रतिवंत—वि. [सं. रति+हिं. वंत] सुन्दर (पुरुष)।

रतिवर—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

रती—संज्ञा स्त्री. [सं. रति] (१) कामदेव की पत्नी, रति। (२) छवि, शोभा। (३) संभोग, मैथुन। (४) प्रेम, प्रीति।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रत्ती] घुँघुची, गुंजा।

वि.—थोड़ा, कम।

क्रि. वि.—जरा सा, रत्ती भर।

रतोपल—संज्ञा पुं. [सं. रक्तोत्पल] लाल कमल।

रतौंधी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रात+अंधा] रात में दिखायी न देने का रोग।

रतौहाँ—वि. [हिं. रत] किसी की ओर अनुरक्त होने की प्रवृत्तिवाला।

रत्त—संज्ञा पुं. [सं. रक्त] खून, रुधिर।

रत्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. रक्तिका, प्रा० रत्तीय] (१) घुंघुची का दाना, गुंजा। (२) तौल का एक बहुत छोटा मान जो घुँघुची के दाने से तौला जाता है।

मुहा०—रत्ती भर—बहुत थोड़ा सा।

संज्ञा स्त्री. [सं. रति] छवि, शोभा।

रत्थी—संज्ञा स्त्री. [सं. रथ] शव की अरथी।

रत्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मणि, नग, नगीना। (२) लाल, मानिक, माणिक्य। (३) सर्वश्रेष्ठ वस्तु या व्यक्ति।

रत्नगर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।

रत्नगर्भा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी, वसुंधरा।

रत्नसू—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

रत्ना—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा, किन हार चुरायो। ......। रत्ना कुमुदा मोहा करुना ललना लोभा नूप—१५८०।

रत्नाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समुद्र। (२) रत्न-समूह।

रत्नावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] मणिमाला।

रथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन सवारी, स्यंदन। उ.—देख री आजु नैन भरि हरि जू के रथ की सोभा—२५६६। (२) शरीर जो आत्मा का रथ है।

रथयात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हिंदुओं का एक पर्व जो आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को होता है। इसमें जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा जी की मूर्तियाँ रथ पर चढ़ाकर निकाली जाती हैं। 'पुरी' में यह उत्सव बहुत धूमधाम से होता है।

रथवान—संज्ञा पुं. [सं. रथवान्] सारथी।

रथवारे—वि. [सं. रथ+हिं. वाला] रथ पर चढ़ने योग्य, रथी। उ.—पीवौ छाँछ अघाइ कै, कब के रथवारे—१-२३८।

रथवाह—संज्ञा पुं.[सं.रथवाह](१) सारथी। (२) घोड़ा।

रथवाहक—संज्ञा पुं. [सं.] सारथी।

रथसूत—संज्ञा पुं. [सं.] सारथी।

रथांग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रथ का पहिया। (२) चक्र।

रथिक, रथी—संज्ञा पुं. [सं. रथिन्] (१) रथ पर चढ़कर चलने वाला। (२) रथ पर चढ़कर लड़नेवाला जो एक हजार योद्धाओं से अकेला लड़ सके।

वि.—रथ पर सवार।

संज्ञा स्त्री. [सं. रथ] शव की टिकठी, अरथी।

रथ्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाली, नाबदान।

रद—संज्ञा पुं. [सं.] दाँत, दशन।

वि. [अ०] (१) खराब। (२) फीका, हीन।

रदच्छद, रदछद—संज्ञा पुं. [सं. रदच्छद] ओंठ। उ. नासा को मुकता रदछद पर—१०-९३।

संज्ञा पुं [सं. रदक्षत] रति-प्रसंग में कपोल, स्तन आदि पर दाँत के काटने से बन जानेवाला चिह्न।

रदन—संज्ञा पुं. [सं.] दाँत, दशन।

रदनच्छद, रदनछद—संज्ञा पुं. [सं. रदनच्छद] ओंठ।

रदनी—वि. [सं. रदनिन्] दाँतवाला। उ.—चिबुक मध्य मेचक रुचि राजति बिंदु कुंद रदनी—पृ० ३१६ (५४)।

संज्ञा पुं.—हाथी।

रदपट—संज्ञा पुं. [सं.] ओंठ, अधर।

रद्द—वि. [अ.] (१) जो काट-छाँट करके निकाल या बदल दिया गया हो। (२) खराब, निकम्मा।

रद्दा संज्ञा पुं. [देश.] (१) तह। (२) गिराकर रगड़ते हुए आघात करना।

रद्दी—वि. [फ़ा. रद] निकम्मा, बेकार।

संज्ञा स्त्री.—बेकार की चीजें।

रन—संज्ञा पुं. [सं. रण] लड़ाई, युद्ध। उ.—(क) गहि सारँग रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई—१-२४ (ख) आजु अति कोपे हैं रन राम—९-५८।

संज्ञा पुं. [सं. अरण्य, प्रा० रन्न] बन, जंगल।

रनकना, रनकनो—क्रि. अ. [सं. रणन] घुँघरू बजना।

रनखेत—संज्ञा पुं. [सं. रणक्षेत्र] युद्धभूमि। उ.—अमृत की बृष्टि रन-खेत ऊपर करौ—९-१६३।

रनछोर—संज्ञा पुं. [सं. रणछोड़] श्रीकृष्ण का वह नाम जो जरासंध के आक्रमण करने पर उनके द्वारका भाग जाने पर पड़ा था।

रनधीर—वि. [सं. रणधीर] भयंकर युद्ध में भी धैर्यपूर्वक डटा रहनेवाले। उ.—रावन-कुल अरु कुंभकरन बन सकल सुभट रनधीर—९-५८।

रनना, रननो—क्रि. अ. [सं. रणन] बजना, झनकारना।

रनबंका, रनबाँकुरा—वि. [सं. रण+हिं. बाँका] वीर।

रनरोर—वि. [सं. रण] शूर, वीर।

संज्ञा पुं.—युद्ध का कोलाहल।

रनबादी—वि. [सं. रण+हिं. वादी] शूर, वीर।

रनवास—संज्ञा पुं. [हिं. रानी+बास] अंतःपुर।

रनसाजी—संज्ञा स्त्री.[सं.रण+फ़ा साजी]लड़ाई छेड़ना।

रनित—वि. [हिं. रनना] बजता या झनकार करता हुआ। उ.—चरन रनित नूपुर-धुनि, मानौ बिहरत बाल मराल—१०-११४।

रनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. रानी] रानी। उ.—चकित भई नँद-रनियाँ—१०-८३।

रनिवास—संज्ञा पुं. [हिं. रानी+वास] रानियों के रहने का स्थान, अंतःपुर।

रनी—संज्ञा पुं. [सं. रण+हिं. ई] वीर, योद्धा।

रपट—संज्ञा स्त्री. [हिं. रपटना] (१) रपटने की क्रिया या भाव। (२) दौड़। (३) उतार, ढाल।

रपटत—क्रि. अ. [हिं. रपटना] फिसलता है। उ.—आली, रपटत पग नहिं ठहरात—पृ. ३१४ (४६)।

रपटना, रपटनो—क्रि. अ. [सं. रफन] (१) फिसलना। (२) झपट कर चलना।

क्रि. स.—कोई काम चटपट कर डालना।

रपटाना, रपटानो—क्रि. स. [हिं. रपटना] (१) फिसलाना। (२) फिसलवाना। (३) किसी से चटपट काम कराना। (४) दौड़ाना।

रपटीला—वि. [हिं. रपटना+ईला] जहाँ पैर रपट जाय।

रपट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. रपटना] (१) फिसलाहट। (२) दौड़-धूप। (३) झपट्टा, चपेट।

रफा—वि. [अ. रफ़ा] (१) समाप्त या पूरा किया हुआ। (२) दबाया हुआ, शांत।

रब—संज्ञा पुं. [अ.] परमेश्वर।

रबकत—क्रि. अ. [हिं. रबकना] लपकता है। उ.—नैन मीन सरवर आनन मैं चंचल करत बिहार। मानौं कर्नफूल चारा को रबकत बारंबार।

रबकना, रबकनो – क्रि. अ. [हिं. रबकना] (१) लपकना, तेजी से बढ़ना। (२) उमगना, उछलना।

रबकि—क्रि. अ. [हिं. रबकना] (१) लपक-लपककर। उ.—(क) परम सनेह बढ़ावत मातनि रबकि रबकि हरि बैठत गोद—१०-११९। (ख) लीने बसन देखि

ऊँचे द्रुम रबकि चढ़नि बलबीर की—३३०३ । (२) उमगकर । उ.—यह अति प्रबल स्याम अति कोमल रबकि-रबकि उर परते ।

रबड़ना, रबड़नो—क्रि. स. [सं. वर्त्तन, प्रा. वट्टन] (१) चलाना । (२) (कलछी से) फेंटना ।

रबड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रबड़ना] एक मिठाई जो दूध को खूब गाढ़ा करके लच्छेदार बनाकर तैयार की जाती है, बसौंधी ।

रबदा—संज्ञा पुं. [हिं. रबड़ना] कीचड़ ।

मुहा०—रबदा पड़ना—खूब पानी बरसना ।

रबाना—संज्ञा पुं. [देश.] छोटा डफ (बाजा) ।

रबाब—संज्ञा पुं. [अ.] एक बाजा जिसमें सारंगी की तरह तार लगे होते हैं । उ.—ताल मुरज रबाब बीना किन्नरी रस-सार—पृ. ३४६ (४५) ।

रबाबी—वि. [हिं. रबाब] रबाब बजानेवाला ।

रबी—संज्ञा स्त्री. [अ. रबीअ] (१) बसंत ऋतु । (२) फसल जो वसंत में काटी जाती है ।

रब्त—संज्ञा पुं. [अ.] (१) अभ्यास । (२) मेल ।

यौ०—रब्त-जब्त—मेल-जोल ।

रब्ब—संज्ञा पुं. [अ. रब] परमेश्वर ।

रभस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेग । (२) प्रसन्नता । (३) उमंग । (४) खेद । (५) पछतावा ।

रमक—संज्ञा पुं. [सं.] प्रेमी, प्रेमपात्र ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रमकना] झोंका, झकोरा ।

संज्ञा स्त्री. [अ. रमक़] (१) अंतिम श्वांस । (२) हल्का प्रभाव । (३) नशे का थोड़ा असर ।

रमकत—क्रि. अ. [हिं. रमकना] झूलता या पेंग मारता है । उ.—कबहुँक निकट देखि बर्षा रितु झूलत सुरंग हिंडोरे । रमकत झमकत जनक-सुता-सँग हरष-भाव चित चोरे—सारा. ३१० ।

रमकना, रमकनो—क्रि. अ. [हि. रमना] (१) झूलना, पेंग मारना । (२) इतराते या झूमते हुए चलना ।

रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विलास, क्रीड़ा । (२) मैथुन, संभोग । (३) घूमना, विचरना । (४) पति ।

वि.—(१) सुन्दर (२) प्रिय । (३) रमनेवाला ।

रमणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नारी । (२) सुन्दरी ।

रमणीक—वि. [सं. रमणीय] सुन्दर, मनोहर ।

रमणीय—वि. [सं] सुंदर, मनोहर ।

रमणीयता—संज्ञा स्त्र . [सं.] सुन्दरता ।

रमत—क्रि. अ. [हिं. रमना] घूमता या विचरता है । उ.—बिबुधनि मन तर मान रमत ब्रज—१०-१२० ।

रमता—वि. [हिं. रमना] घूमने-फिरनेवाला ।

रमन—संज्ञा पुं. [सं. रमण] (१) विलास, केलि । (२) संभोग, मैथुन । (३) घूमना । (४) पति ।

रमना—संज्ञा पुं. [सं. आराम] (१) चरागाह । (२) घेरा, हाता । (३) बाग, वाटिका । (४) रमणीक स्थान ।

रमना, रमनो—क्रि. अ. [सं. रमण] (१) सुख-विलास के लिए ठहरना या रहना । (२) संभोग या रति-क्रीड़ा करना । (३) आनंद करना, मजा उड़ाना । (४) चारों ओर व्याप्त होना । (५) अनुरक्त होना । (६) आस-पास घूमना, लगे लगे फिरना । (७) गायब या लुप्त हो जाना । (८) आनंद-पूर्वक विचरना ।

रमनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रमणी] सुंदरी नारी ।

रमनीक—वि. [सं. रमणीक] सुंदर, मनोहर । उ.—अति रमनीक कदंब छाँह-रुचि परम सुहाई—४९२ ।

रमनीय—वि. [सं. रमणीय] सुंदर, मनोहर ।

रमल—संज्ञा पुं. [अ.] एक प्रकार का ज्योतिष ।

रमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] लक्ष्मी । उ.—(क) यह सीता जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनंदन-रानी—९-११६ । (ख) कामधेनु सुरतरु सुख जितने रमा सहित बैकुंठ भुलावत—४४९ ।

रमाइ, रमाई—क्रि. स. [हिं. रमाना] रचाकर, आयोजित करके ।

मुहा०—रास रमाइ—रास रचाकर । उ.—(क) षट-दस सहस गोपिका बिलसत बृंदाबन रस रास रमाइ—४९७ । (ख) करौं पूरन काम तुम्हरो सरद रास रमाई—७९६ । (ग) सूर स्याम बन बेनु बजावत चित हित रास रमाई—पृ. ३३९ (८३) ।

रमाकांत—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु । उ.—रमाकांत जासु को ध्यायो—१८६० ।

रमानरेश, रमानरेस—संज्ञा पुं. [सं. रमा+नरेश] विष्णु । उ.—जाय पताल बाट गहि लीन्हीं धरनी रमानरेस ।

रमाना, रमानो—क्रि. स. [हिं. 'रमना' का सक०] (१) मुग्ध या अनुरक्त करना, लुभाना। (२) अपने अनुकूल करना। (३) रोकना या ठहरा लेना। (४) रचना, आयोजित करना।

मुहा०—रास रमाना—रास रचाना। भभूत या विभूति रमाना—(१) शरीर में भस्म पोतना। (२) संन्यास लेना। मन रमाना—मन बहलाना।

रमानिवास—संज्ञा पुं. [सं. रमा + निवास] विष्णु।

रमापति—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु। उ.—छुद्र पतित तुम तारि रमापति अब न करौ जिय गारौ—१-१३१।

रमारमण—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

रमावति—क्रि. स. [हिं. रमाना] मुग्ध या अनुरक्त करती है, लुभाती है। उ.—गोरस मथत नाद इक उपजत किंकिनि-धुनि सुनि स्रवन रमावति—१०-१४९।

रमावै—क्रि. स. [हिं. रमाना] रचता या आयोजित करता है। उ.—जाकी महिमा कहत न आवै, सो गोपिन सँग रास रमावै—१०-३।

रमित—वि. [हिं. रमना] मुग्ध, लुभाया हुआ।

रमूज—संज्ञा स्त्री. [अ. रमूज़] (१) संकेत। (२) भेद।

रमेश—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

रमेसरी—संज्ञा स्त्री. [सं. रामेश्वरी] लक्ष्मी।

रमनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रामायण] कबीर के बीजक का वह भाग जो दोहे-चौपाइयों में है।

रमैया—संज्ञा पुं. [हिं. राम] (१) राम। (२) ईश्वर।

रम्माल—वि. [अ.] रमल जाननेवाला।

रम्य—वि. [सं.] सुंदर, मनोहर।

रम्हाना, रम्हानो—क्रि. अ. [सं. रँभण] गाय का रँभाना।

रय—संज्ञा पुं. [सं. रज] धूल, गर्द, खेह।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेग। (२) प्रवाह।

रयन—संज्ञा स्त्री. [सं. रजनी, प्रा. रयणी] रात।

रयना—क्रि. स. [सं. रंजन] रंग से भिगोना।

क्रि. स.—(१) अनुरक्त होना। (२) मिलना।

क्रि. स. [सं. रवण] (१) शब्द उत्पन्न करन। (२) कहना, बोलना।

रयनि, रयनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रजनी, प्रा. रयणी] रात।

रयनो—क्रि. स. [सं. रंजन] रंग से भिगोना।

क्रि. अ. (१) अनुरक्त होना। (२) मिलना।

क्रि. स. [सं. रवण] (१) शब्द उत्पन्न करना। (२) बोलना, कहना।

रय्यत—संज्ञा स्त्री. [अ. रअय्यत] प्रजा।

ररंकार—संज्ञा पुं. [सं. रकार] 'रकार' की ध्वनि।

रर—संज्ञा स्त्री. [हिं. ररना] रट, रटन।

ररक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कसक, टीस।

ररकना, ररकनो—क्रि. अ [अनु.] कसकना, सालना।

ररना, ररनो—क्रि. अ. [सं. रटना, प्रा. रड़ना] रटना।

ररिहा—संज्ञा पुं. [हिं. ररना + हा] (१) रट लगानेवाला। (२) रट या धुन लगाकर माँगनेवाला।

ररे—क्रि. अ. [हिं. ररना] बार-बार बोले। उ.—मनु बरषत मास असाढ़ दादुर-मोर ररे—१०-२४।

ररै—क्रि. अ. [हिं. ररना] बार-बार कहे। उ.—कब नंदहिं बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिं ररै—१०-७६।

ररी—वि. [हिं. रार] झगड़ालू।

संज्ञा पुं. [हिं. ररना] (१) गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। (२) अधम, नीच।

रलना, रलनो—क्रि. अ. [सं. ललन] मिल जाना।

यौ०—रलना-मिलना, रलनो-मिलनो—मिल-जुल कर एक हो जाना।

रलाना, रलानो—क्रि. स. [हिं. 'रलना' का सक.] मिलाना-जुलाना, सम्मिलित करना।

रलिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. रली] (१) क्रीड़ा। (२) आनंद।

रलिहैं—क्रि. अ. [हिं. रलना] विलास-विहार या आमोद-प्रमोद करेंगे। उ.—भाव ही कह्यो मन भाव दृढ़ राखिबो दै सुख तुमहिं सँग रंग रलिहैं—२०५६।

रली—क्रि. अ. [हिं. रलना] मिल गई, सम्मिलित हो गई। उ.—चली पीठि दै दृष्टि फिरावति अँग-अँग आनंद रली—७३९।

संज्ञा स्त्री. [सं. ललन] आनंद, प्रसन्नता। उ.—विविध कियौ ब्याह बिधि बसुदेव मन उपजी रली—१० उ०-२४।

रल्ल—संज्ञा पुं. [हिं. रेला] हल्ला, कोलाहल।

रव– संज्ञा पुं. [सं.] (१) ध्वनि, गुंजार। (२) आवाज, शब्द। (३) शोर, कोलाहल, हल्ला।

संज्ञा पुं. [सं. रवि] सूर्य, रवि।

रवकत—क्रि. अ. [हिं. रवकना] लपकता है। उ.—नैन मीन सरवर आनन मैं चंचल करत बिहार। मानौं कर्नफूल चारा के रवकत बारंबार।

रवकना, रवकनो—क्रि. अ. [हिं. रमना] (१) लपककर चलना, दौड़कर बढ़ना। (२) उमगना, उछलना।

रवकि—क्रि. अ. [हिं. रवकना] (१) लपककर। उ.—(क) परम सनेह बढ़ावत मातनि रवकि-रवकि हरि बैठत गोद—१०-११९। (ख) लीने बसन देखि ऊँचे द्रुम रवकि चढ़नि बलबीर की—३३०३। (२) उमगकर। उ.—यह अति प्रबल स्याम अति कोमल रवकि-रवकि उर परते।

रवणरेती—संज्ञा स्त्री. [सं. रमण+हिं. रेती] गोकुल के निकट यमुना-तट की वह रेतीली भूमि जहाँ श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ खेलते थे।

रवताइ, रवताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रावत+आई] (१) राजा होने का भाव। (२) प्रभुत्व, स्वामित्व।

रवन—संज्ञा पुं. [सं. रमण] पति। उ.—(क) भवन रवन सबही बिसरायौ—७६५। (ख) भवन-रवन की सुधि न रही तनु सुनत सब्द वह कान—पृ० ३३७ (७२)।

वि.—रमण करनेवाला। उ.—कर जोरि बिनती करै, सुनहु न हो रुकमिनी-रवन—१-१८०।

रवनवै—क्रि. अ. [हिं. रवना] रमण करता है, रमण कर सकता है। उ.—नँदनंदन बहु रवनि रवनवै, यहै जानि बिसरायौ—१६५८।

रवना – क्रि. अ. [हिं. रमना] भोग-विलास करना।

क्रि. अ. [हिं. रव] शब्द करना, बोलना।

रवनि, रवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रमणी] (१) पत्नी, भार्या। उ.—भूप अनेक बंदि तैं छोरे राज-रवनि जस अति बिस्तारौ—१-१७२। (२) रमणी, सुन्दरी नारी। उ.—नंदनंदन बहु रवनि रवनवै—१६५८।

रवनो—क्रि. अ. [हिं. रमना] रमण करना।

क्रि. अ. [हिं. रव] बोलना, कहना।

रवन्ना—संज्ञा पुं. [फ़ा. रवाना] कागज, जिस पर भेजे गये माल का ब्योरा लिखा हो।

रवाँ—वि. [फ़ा.] अभ्यस्त।

रवा—संज्ञा पुं. [सं. रज, प्रा. रअ] (१) कण, दाना। (२) सूजी (आटा)।

रवाज—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] प्रथा, परिपाटी।

रवादार—वि. [फ़ा. रवा+दार] संबंध रखनेवाला।

रवानगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] चलना, प्रस्थान।

रवाना—वि. [फ़ा.] भेजा हुआ।

क्रि. स. [हिं. रमाना] रमाना।

रवि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। उ.—(क) घट उपजै बहुरौ नसि जाइ, रवि-ससि रहैं एकहीं भाइ—३-१३। (ख) रवि बहु चढ़चौ, रैनि सब निघटी—४०७। (२) मदार का पेड़। (३) अग्नि।

रवि-कर—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य की किरण।

रविकुल—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यवंश।

रविचंचल—संज्ञा पुं. [सं.] काशी का 'लोलार्क' तीर्थ।

रवि-तनय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यम। (२) शनि। (३) सुग्रीव। (४) कर्ण। (५) अश्विनीकुमार।

रवि-तनया—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य की पुत्री, यमुना नदी। उ.—गए स्याम रवि-तनया कैं तट - ६७२।

रवितनुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना।

रविनंद, रविनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्ण। (२) सुग्रीव। उ.—रविनंदन जब मिले राम को अरु भेंटे हनुमान। अपनी बात कही उन हरि सौं बालि बड़ौ बलवान—सारा. २७४। (३) शनि। (४) यमराज। (५) अश्विनीकुमार।

रविनंदिनि, रविनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रविनंदिनी] यमुना।

रविपुत्र, रविपूत—संज्ञा पुं. [सं. रविपुत्र] (१) कर्ण। (२) सुग्रीव। (३) शनि। (४) यम। (५) अश्विनीकुमार।

रविबंसी—वि. [सं. रवि+वंश] सूर्यबंश का, सूर्यबंशी। उ.—रविबंसी भयौ रैवत राजा—९-४।

रविबिंब—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यमंडल।

रविमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] वह लाल गोला जो सूर्य के चारों ओर दिखायी देता है।

रविवंश—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यकुल।

रविवंशी—वि. [सं.] सूर्यकुल से संबंधित।

रविबाण—संज्ञा पुं. [सं.] ऐसा तीर जिससे सूर्य-जैसा प्रकाश निकलता हो।

रविवार—संज्ञा पुं. [सं.] शनिवार और सोमवार के बीच का दिन, इतवार। उ.—फागुन बदि चौदस सुभ दिन औ' रविवार सुहायौ।

रविवासर—संज्ञा पुं. [सं.] रविवार।

रविसुअन, रविसुवन—संज्ञा पुं. [सं. रवि+सूनु] (१) कर्ण। (२) सुग्रीव। (३) शनि। (४) यम। (५) अश्विनीकुमार।

रविसुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्ण। (२) सुग्रीव। (३) शनि। (४) अश्विनीकुमार। (५) यमराज। उ.—कीजै लाज सरन आए की रवि-सुत-त्रास निवारौ—१-१११।

रविसूनु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्ण। (२) सुग्रीव। (३) शनि। (४) यमराज। (५) अश्विनीकुमार।

रवी—संज्ञा पुं. [सं. रवि] सूर्य। उ.—कुंडल बिराजत गंड मंडल नहीं सोभा रवी-ससी—पृ. ३४५ (२)।

रवैया—संज्ञा पुं. [फ़ा. रवाँ] चाल-चलन, तौर-तरीका।

रशना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) करधनी। (२) कमर-पेटी।
  संज्ञा स्त्री. [सं. रसना] जीभ, जिह्वा।

रश्क—संज्ञा पुं. [फ़ा.] डाह, ईर्ष्या।

रश्मि—संज्ञा पुं. [सं.] किरण।

रस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छह प्रकार के स्वाद—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय, स्वाद। उ.—(क) ज्यौं गूँगैं मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै—१-२। (ख) छहौं रस जो धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ—१-५६। (२) छह की संख्या। (३) पदार्थ का सार, तत्व। (४) साहित्य के पठन-पाठन से होने वाली चित्त की वह लोकोत्तर स्थिति जो जाग्रत स्थायी भाव के विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से पुष्ट होने पर होती है; ये रस नौ माने गये हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत। कुछ आचार्य 'शांत' को रस नहीं मानते तो कुछ 'वात्सल्य' को दसवाँ और 'भक्ति' को ग्यारहवाँ रस मानते हैं। (५) नौ की संख्या। (६) मजा, सुख, आनंद। उ.—(क) भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-वेग न क्रमैं गह्यौ—१-४९। (ख) पर-निंदा रसना के रस करि केतिक जनम बिगोए—१-५२। (ग) मगन भयौ माया-रस-लंपट—१-९८। (घ) सुत-तनया-बनिता-बिनोद-रस इहिं जुर-जरनि जरायौ—१-१५४।

मुहा०—रस बींधना—मजा आने की स्थिति होना, मजे की झोंक में होना। रस बींधि—मजे की झोंक में। उ.—ज्यौं कुजुवारि रस बींधि हारि गथ सोचतु पटकि चिती—१० उ०-२०३। रस भीजना या भीनना—(१) मजा या आनंद आने लगना। (२) युवावस्था का आरम्भ होना। रस भीन्यौ—सुख या आनंद मानने-समझने लगा। उ.—सूरदास स्वामीपन तजिकै सेवकपन रस भीन्यौ—८-१५।

(७) प्रेम, प्रीति, अनुराग।

यौ०—रस-रंग—(१) प्रेम का सुख। (२) विलास-विहार का सुख। रस-रीति—(१) प्रीति की स्थिति में प्रेमी-प्रेमिका का पारस्परिक व्यवहार। (२) मित्रता का व्यवहार। उ.—और को जानै रस की रीति। कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति।

(८) काम-क्रीड़ा, भोग-विलास। उ.—(क) सुत कुबेर के मत्त मगन भए बिषै रस नैननि छाए हो—१-७। (ख) बालापन खेलत ही खोयौ, जुवा बिषय-रस मातैं—१-११८। (९) उमंग, जोश। (१०) गुण, विशेषता। (११) किसी प्रकार या विषय का आनंद। उ.—(क) जो रस ब्रह्मादिक नहिं पावैं, सो रस गोकुल गलिनि बहावैं—१०-३। (ख) जो रस नंद-जसोदा बिलसत सो नहिं तिहूँ भुवनिया—१०-२३८। (१२) कोई तरल या द्रव पदार्थ। (१३) पानी, जल। (१४) फल या वनस्पति का जलीय अंश। (१५) शरबत। (१६) धातुओं की भस्म। (१७) आनंदस्वरूप ब्रह्म। (१८) भाँति, प्रकार, रूप। उ.—(क) जहँ बिधु-भानु समान एक रस सो बारिज सुख रास—१-३३८। (ख) ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन कैं भेद भेद नहिं

मानै—५-४। (१९) मन की तरंग, मौज। उ.—सर्वस रीझि देत अपने रस सूर स्याम गुन गाये—१० उ०-३८। (२०) भाव। उ.—भ्रुव सुंदर करुना रस पूरन—१०-१०४।

रसकोर, रसकौर, रसकौरा—संज्ञा पुं. [हि. रस+कौर] रसगुल्ला।

रसगुनी—वि. [सं.रस+गुणी] काव्य या संगीत का ज्ञाता।

रसगुल्ला—संज्ञा पुं. [सं. रस+हि. गोला] एक मिठाई।

रसज्ञ—वि. पुं. [सं.] (१) रस का ज्ञाता। (२) काव्य या संगीत का ज्ञाता। (३) कुशल।

रसज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मर्मज्ञता।

रसज्ञा—वि. स्त्री. [सं.] (१) रस का ज्ञान रखनेवाली। (२) काव्य या संगीत की मर्मज्ञा। (३) निपुण, कुशल। उ.—सुनि सुनि स्रवन रीझि मन ही मन राधा रास रसज्ञा—पृ० ३४६ (४४)।

रसति—क्रि. अ. [हि. रसना] हर्षित या प्रफुल्लित होती है। उ.—सूर प्रभु नागरी हँसति मन मन रसति, बसत मन स्याम बड़े भागे।

रसद—वि. [सं.] (१) सुखद। (२) मजेदार।
संज्ञा स्त्री. [फा.] अनाज, गल्ला।

रसदार—वि. [सं. रस+हि. दार] जिसमें रस हो।

रसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चखना। (२) जीभ। उ. रसन दसन धरि भरि लिए लोचन—२८७१।

रसना—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीभ, जबान। उ.—(क) रसना द्विज दलि दुखित होति बहु तउ रिस कहा करै। छमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै—१-११७। (ख) रसना-स्वाद-सिथिल लंपट ह्वै अघटित भोजन करतौ—१-२०३। (ग) तब रसना हरि नाम भाषिकै—२५३३।

मुहा०—रसना खोलना—बोलने लगना। रसना तालू से लगाना—बोलना बंद करना। रसना तारू सौं नहिं लावत—क्षण भर को भी चुप नहीं होता। उ.—रसना तारू सो नहिं लावत पीवै-पीव पुकारत। रसना हारना—बात खाली जाना, इच्छा या याचना पूरी न होना। रसना हारी—बात खाली चली जाय, इच्छा पूरी न हो। उ.—जाँचक पै जाँचक कह जाँचै, जौ जाँचै तौ रसना हारी—१-३४।

रसना, रसनो—क्रि. अ. [सं. रस+हि. ना, नो] (१) धीरे-धीरे बहना, टपकना। (२) पसीजना। (३) हर्षित या प्रफुल्लित होना। (४) तन्मय या परिपूर्ण होना। (५) रस या स्वाद लेना। (६) अनुरक्त होना।

रसनायक—वि. [सं.] कुशल, निपुण। उ.—सूर स्याम लीला रस नायक—१०३०।

रसनेंद्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीभ, जिह्वा।

रसपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) शृंगार रस।

रसबाद—संज्ञा पुं. [सं. रसवाद] मनोरंजन के लिए की गयी छेड़छाड़। उ.—तुमही मिलि रसबाद बढ़ायौ, उरहन दै दै मूड़ पिरायौ—३९१।

रसभरी—संज्ञा स्त्री. [सं. रस+हि. भरी] (१) एक खट-मिट्ठा फल। (२) एक मिठाई।

रसभीना, रसभीनो—वि. [सं. रस+भीनना] (१) आनंद में मग्न या लीन। (२) तर, गीला, आर्द्र।

रसम—संज्ञा स्त्री. [अ. रस्म] (१) परिपाटी, प्रथा। (२) मेल-जोल का संबंध।

रसमय—वि. [सं. रस+हि. मय] रस से पूर्ण या युक्त। उ.—रसमय जानि सुवा सेमर कौं चौंच घालि पछितायौ—१-५८।

रसमसा—वि. [सं. रस+हि. मस (अनु.)] (१) आनंदमग्न। (२) तर, गीला, आर्द्र।

रसमि—संज्ञा स्त्री. [सं. रश्मि] (१) किरण। उ.—तौ जू मान तजहुगी भामिनि रवि की रसमि काम फल फीको—२१८८। (२) चमक, आभा।

रसरा संज्ञा पुं. [हि. रस्सा] रस्सा, मोटी रस्सी।

रसराइ, रसराई, रसराउ, रसराऊ, रसराय, रसराया, रसराव, रसराज, रसराजा—संज्ञा स्त्री. [सं. रसराज] (१) पारा, पारद। (२) शृंगार रस।

रसरी—संज्ञा स्त्री. [हि. रस्सी] रस्सी, मोटी डोरी।

रसरीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रीति का व्यवहार, भाव या आचरण। उ.—माया काल, कछू नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै—१-४०।

रसलीन—वि. [सं. रस+हि. लीन] आनंद में मग्न।

उ.—यहि बिधि करि उपदेस सबन को किये भजन रसलीन—सारा. ११२।

रसवंत—वि. [सं. रसवत्] (१) रसिक, प्रेमी। (२) रस से पूर्ण, रसीला।

रसवंती, रसवती—संज्ञा स्त्री. [सं. रसवती] रसौत।

वि. स्त्री.—(१) रसीली। (२) रसिकिनी।

रसवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रीति या रसिकता भरी बात। उ.—करति हौ परिहास हमसौं तजो यह रसवाद—पृ. ३४० (९८)। (२) विनोद या मनोरंजन के लिए की गयी छेड़छाड़। उ.—तुमहीं मिलि रसवाद (रसवाद) बढ़ायौ। उरहन दै दै मूँड़ पिरायौ—३९१। (३) बकवाद। उ.—तुम रसवाद करन अब लागे—२२६७।

रससागर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सात समुद्रों में एक जो प्लक्ष द्वीप में ऊख रस से भरा कहा गया है। (२) आनंद-सागर। उ.—गुनसागर अरु रस-सागर मिलि मानत सुख व्यवहार—६८७।

रसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी। (२) जीभ।

संज्ञा पुं. [सं. रस] तरकारी आदि का झोल।

रसाइन—संज्ञा पुं. [सं. रसायन] रसायन।

रसाइनी—संज्ञा पुं. [सं. रसायन+ई] (१) 'रसायन' विद्या का जानकार। (२) कीमियागर।

रसाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] पहुँच।

रसातल—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में छठा जहाँ दैत्य, दानव आदि रहते बताये गये हैं। उ.—(क) सुनि सुनि स्वर्ग रसातल भूतल तहाँ तहाँ उठि धाये—१-१५४। (ख) सप्त रसातल सेषासन रहे—१०-२२१।

मुहा०—रसातल में पहुँचाना—नष्ट या मटिया-मेट कर देना।

रसाना, रसानो—क्रि. स. [सं. रस+हिं. आना] (१) रस से पूर्ण या युक्त करना। (२) प्रसन्न करना। (३) पदार्थ-विशेष को रसने में प्रवृत्त करना।

क्रि. स.—(१) रस युक्त होना। (२) पदार्थ-विशेष का रसना। (३) प्रसन्न होना।

रसाभास—संज्ञा पुं. [सं.] रस-विशेष का अनुचित प्रसंग या स्थान में वर्णन।

रसायन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पदार्थों के तत्वों का ज्ञान। (२) एक कल्पित योग जिसमें ताँबे से सोना बनना माना जाता है। (३) धातु को भस्म में परिवर्तित करने की विद्या।

रसायनी—वि. [सं. रसायन] रसायन जाननेवाला।

रसाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊख। (२) आम।

वि.—(१) मधुर, मीठा। उ.—(क) सिव बोले तब बचन रसाल—१-२२६। (ख) सुंदर बोलत बचन रसाल—४७३। (२) रसीला। (३) सुंदर, मनोहर। उ.—(क) जो राजत तिहिं काल लाल ललना रसाल रसरंग—२४५०। (ख) सूरदास प्रभु फिरि कै चितयौ अंबुज नैन रसाल—२५३६।

संज्ञा पुं. [अ. इरसाल] कर, खिराज, राजस्व।

रसालस—संज्ञा पुं. [सं. रसाल] कौतुक।

रसाला—वि. [सं. रसाल] (१) सुंदर, मनोहर। उ.—(क) कालिंदी कै कूल बसत इक मधुपुरि नगर रसाला—१०-४। (ख) स्याम जलद तनु अंग रसाला—२४८२। (२) मधुर। (३) रसीला।

संज्ञा पुं. [फ़ा. रिसाला] घुड़सवार सेना।

रसालिका—वि. स्त्री. [सं. रसालक] सरस, सुंदर।

रसाली—वि. [सं. रस] रसिक।

रसाव—संज्ञा पुं. [हिं. रसना] रसने की क्रिया या भाव।

रसावर, रसावल—संज्ञा पुं. [हिं. रसौर] ऊख के रस में पकाये गये चावल।

रसिआउर, रसिआवर, रसिआवल—संज्ञा पुं. [हिं. रस+चाउर] (१) ऊख के रस में पकाये गये चावल। (२) एक गीत जो उस समय गाया जाता है जब नववधू पहली बार ऊख के रस या गुड़ के शर्बत में चावल पकाकर पति तथा अन्य संबंधियों को खिलाती है।

रसिक—वि. [सं.] (१) रस या स्वाद लेनेवाला। (२) प्रेमी-हृदय, सहृदय, भावुक, मर्मज्ञ। (३) आनंदी, रसिया। उ.—(क) सूरदास रास रसिक बिनु रास रसिकिनी बिरह बिकल करि भई हैं मगन। (ख) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि—१०-२९८। (४) मुग्ध,

आसक्त या लीन होनेवाले। उ.—रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई—२५३७।

रसिकइ, रसिकई—संज्ञा स्त्री. [सं. रसिक+ई] (१) रसिक होने का भाव या धर्म। उ.—रसिक रसिकई जानि नाम लेहु रहे जाके—२०८२। (२) हँसी-ठट्ठा, परिहास।

रसिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रसिक होने का भाव या धर्म। (२) हँसी-ठट्ठा, परिहास।

रसिक बिहारी—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक नाम।

रसिकाइ, रसिकाई—संज्ञा स्त्री. [सं. रसिक+हिं. आइ, आई] रसिकता।

रसित—संज्ञा पुं. [सं.] ध्वनि, शब्द।

रसिया—संज्ञा पुं. [सं. रसिक] (१) रस लेनेवाला, रसिक। उ.—जित देखौं तित दीखै री रसिया नंद कुमार जी—८८०। (२) फागुन का एक गीत।

रसी—वि. [सं. रसिक] रस लेनेवाला।

रसीद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] प्राप्ति का प्रमाण-पत्र।

रसील, रसीला—वि. [सं. रस+हिं. ईला] (१) रस से भरा। (२) मजेदार। (३) रस या आनंद लेने वाला। (४) विलासी, प्रेमी। (५) छबीला, सुन्दर।

रसीले—वि. [हिं. रसीला] रस या आनंद लेनेवाले। उ.—(क) सूर स्याम रस रसे रसीले—पृ. ३२२ (१७)। (ख) सूरदास प्रभु नवल रसीले—१९६६।

रसीलापन—संज्ञा पुं. [हिं. रसीला+पन] रसिक होने का भाव।

रसूख—संज्ञा पुं. [अ. रुसूख] (१) विश्वास। (२) पहुँच।

रसूम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) नियम। (२) प्रथानुसार दिया जानेवाला धन।

रसूल—संज्ञा पुं. [अ.] पैगंबर।

रसेस—संज्ञा पुं. [सं. रसेश] श्रीकृष्ण।

रसोइया—संज्ञा पुं. [हिं. रसोई] भोजन बनानेवाला।

रसोई, रसोई—संज्ञा स्त्री. [सं. रस+हिं. ओई] (१) बना हुआ भोजन। उ.—भीतर चली रसोई कारन छींक परी तब आँगन आइ—५४२।

यौ०—कच्ची रसोई—दाल, भात, रोटी आदि जिनमें सामान को घी से तला नहीं जाता। पक्की रसोई—पूरी, पकवान आदि जो घी में तल लिया जाता है।

मुहा०—रसोई चढ़ना या तपना—भोजन तैयार होना। रसोई चढ़ाना या तपाना—भोजन तैयार करना।

(२) स्थान जहाँ भोजन बने, चौका, पाकशाला। उ.—जसुमति चली रसोई भीतर तबहिं ग्वालि इक छींकी—५४०।

रसोईघर—संज्ञा पुं. [हिं. रसोई+घर]चौका, पाकशाला।

रसोय—संज्ञा स्त्री. [हिं. रसोई] भोजन।

रसौत—संज्ञा स्त्री. [सं. रसोद्भूत] एक औषध।

रसौर—संज्ञा पुं. [सं. रस+आउर] ऊख के रस या गुड़ के शरबत में पके हुए चावल।

रस्ता—संज्ञा पुं. [हिं. रास्ता] राह, मार्ग।

रस्म—संज्ञा स्त्री. [अ.] मेलजोल।

यौ०—राह-रस्म—मेलजोल, घनिष्ठता।

(२) रिवाज, चाल, रीति, प्रथा।

रस्मि—संज्ञा स्त्री. [सं. रश्मि] किरण।

रस्सा—संज्ञा पुं. [हिं. रसरा] मोटी रस्सी।

रस्सी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रस्सा] मोटी डोरी।

रहँकला—संज्ञा पुं. [सं. रथ+हिं. कला] (१) एक हल्की गाड़ी। (२) तोप लादने की गाड़ी। (३) गाड़ी पर लदी छोटी तोप।

रहँचटा—संज्ञा पुं. [सं. रस+हिं. चाट] प्रेमानंद का चस्का, प्रीति की चाह।

रहँट—संज्ञा पुं. [सं. आरघट्ट, प्रा. अरहट्ट] कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र जिसके खींचे जाने पर उसमें बँधी बहुत सी बालटियाँ या घड़े थोड़े श्रम से ही बहुत सा पानी निकाल देते हैं। सामान्यतया इस यंत्र को बैल खींचते हैं। उ.—बारंबार रहँट के घट ज्यौं भरि-भरि लोचन ढरतु—२२५३।

रहँटा—संज्ञा पुं. [हिं. रहँट] सूत कातने का चर्खा।

रहँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रहँटा] कपास ओटने की चर्खी।

रहचटा—संज्ञा पुं. [हिं. रहँचटा] प्रीति की चाह।

रहचह—संज्ञा स्त्री. [अनु.] चिड़ियों की चहचहाहट।

रहट—संज्ञा पुं. [हिं. रहँट] कुएँ से पानी निकालने का

रहँट। उ.—बारंबार रहट के घट ज्यों भरि भरि लोचन ढरतु—२२५३।

रहत—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहता है। उ.—(क) ज्यौं मृग नाभि कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत—१-४९। (ख) भूखे छिन न रहत मनमोहन —१०-२३१।

रहति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. रहना] रहती है। उ.— घर की नारि बहुत हित जासौं रहति सदा सँग लागी—१-७९।

रहन—संज्ञा स्त्री. [हिं. रहना] (१) रहने की क्रिया या भाव, रहना।

यौ०—रहन-सहन—चाल-ढाल, तौर-तरीका।

(२) संसार में जीवित रहना। उ.—बौरे मन, रहन अटल करि जान्यौ—१-३१९। (३) रहने का ढंग, व्यवहार, आचरण।

रहना—क्रि. अ. [सं. राज, पु. हिं. राजना] (१) स्थित होना, ठहरना। (२) रुकना, प्रस्थान न करना। (३) एकही दशा में बहुत समय तक ठहरना। (४) बसना, निवास करना। (५) अस्थायी रूप से ठहरना। (६) काम करना स्थगित कर देना। (७) चलना बंद कर देना। (८) विद्यमान या उपस्थित होना। (९) चुप-चुप या बिना किसी काम-काज के समय बिताना। (१०) काम-काज या नौकरी करना। (११) स्थित या स्थापित होना। (१२) संभोग या समागम करना। (१३) जीना, न मरना। (१४) बच जाना, शेष रह जाना।

रहनि, रहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रहना] (१) रहने की क्रिया, भाव या ढंग, आचरण-व्यवहार। (२) जीवित रहने की क्रिया या भाव। (३) लगन, प्रीति।

रहनो—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहना।

रहम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) दया। (२) अनुग्रह।

रहमान—संज्ञा पुं. [अ.] दयालु ईश्वर।

रहल—संज्ञा स्त्री. [अ.] पुस्तक रखने की चौकी।

रहस—संज्ञा पुं. [सं. रहस्] (१) रहस्य। (२) लीला, क्रीड़ा। (३) सुख, आनंद। उ.—भयौ जदुबंस अति रहस, सूर जन मंगलाचार गायौ—१०उ०-२५।

रहसत—क्रि. अ. [हिं. रहसना] (१) प्रसन्न या आनंदित होता है। उ.—(क) इहिं बिधि रहसत-बिलसत दंपति—७३२। (ख) परस्पर मिलि हँसत रहसत हरषि करत बिलास—पृ. ३४३ (२२)। (ग) कबहुँ रहसत मचत लै सँग एक एक सहेलि—२२७८।

रहसना, रहसनो—क्रि. अ. [हिं. रहस+ना] प्रसन्न या हर्षित होना।

रहसबधावा—संज्ञा पुं. [हिं. रहस+बधाई] विवाह की एक रीति जिसमें वधू का मुख देखकर उपहार आदि दिये जाते हैं।

रहसि—संज्ञा पुं. [हिं. रहस] (१) आनंद, प्रसन्नता। उ.—देस देस भयो रहसि सूर प्रभु जरासंध सिसुपाल की हाँसी—१०३०-२२। (२) गुप्त या एकांत स्थान। उ.—मुनि बल-मोहन बैठ रहसि मैं कीन्हों कछू बिचार—सारा. ६०२।

क्रि. अ. [हिं. रहसना] हर्षित, आनंदित या प्रसन्न होकर। उ.—(क) कबहुँक बैठ्यौ रहसि रहसि कै ढोटा गोद खिलायौ—१-३०१। (ख) इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी—१०-२९३।

रहस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुप्त भेद। (२) गुप्त स्थान। उ.—कहुँ पौढ़े कमला के सँग में परम रहस्य एकांत—सारा. ६७२। (३) मर्म या भेद की बात। (४) गूढ़ बात।

रहस्यवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह धार्मिक वृत्ति जिसमें ईश्वर से परोक्ष भाव या रूप से संबंध स्थापित किया जाता है।

रहस्यवादी—वि. [सं. रहस्यवादिन्] (१) रहस्यवाद-संबंधी। (२) रहस्यवाद में विश्वास रखनेवाला।

रहाइ, रहाई—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहता है। उ.— (क) ऊँच-नीच ब्यौरौ न रहाइ—१-२३०। (ख) महाकष्ट दस मास गर्भ बसि, अधोमुख-सीस रहाई— १-३१८। (ग) अंग तपति कछु सुधि न रहाई—७४८।

संज्ञा स्त्री.—(१) रहने की क्रिया, भाव या रीति। (२) चैन, आराम।

रहात—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहता है। उ.—छिनक मौन रहात —३५९।

रहाना, रहानो—क्रि. अ. [हिं. रहना] (१) रहना। (२) होना।

रहाय—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहता है। उ.—छिन जियरा न रहाय हो—२४००।

रहायो, रहायौ—क्रि. अ. [हिं. रहना] रह गया, शेष बचा। उ.—क्रोध बचन करि सबसे बोले, छत्री कोउ न रहायो—सारा. २२२।

रहावन—संज्ञा पुं. [हिं. रहना] पशुओं के रहने या एकत्र होने का स्थान।

रहा सहा—वि. [हिं. रहना+सहना (अनु.)] बचा-बचाया, बचा-खुचा, शेष।

रहाहीं—क्रि. अ. [हिं. रहना] (१) रहते हैं। उ.—बादल-छाहँ, धम-धौराहर जैसैं थिर न रहाहीं—१-३१९। (२) टिकता या ठहरता है। उ.—जद्यपि सुख-निधान द्वारावति तोऊ मन कहुँ न रहाहीं—१० उ०-१०३।

रहि—क्रि. अ. [हिं. रहना] (१) रहकर। (२) रह जा, रुक जा, चुप रह। उ.—(क) रहि री माँ धीरज उर धारे—५९५। (ख) रहि रहि अबला बोल न बोलै —९-१४०।

प्र०—रहि न सके—अपने को रोक न सके। उ.—रहि न सके, नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछारयौ—१-१०९। रहि गयौ–शेष रहा, बच रहा। उ.—एक बार महा परलै भयौ, नारायन आपुहि रहि गयौ—९-२। रहि जात—रहा जाता है, चैन पड़ती है। उ.—कान्ह तुमहिं बिनु रहत नहिं, तुमसौं क्यों रहि जात—५८९। रहि गए—स्तब्ध होकर एक ही स्थान पर ठहरे रहे। उ.—निरखि सुर-नर सकल मोहे रहि गए जहाँ के तहाँ—१० उ०-२४।

रहित—वि. [सं.] बिना, बगैर, हीन। उ.—(क) अति उन्मत्त निरंकुस मैगल चितारहित असोच—१-१०२। (ख) ब्रह्म पूरन अकल कला तें रहित—२५५६।

रहियै—क्रि. स. [हिं. रहना] टिक जाइए, ठहरिए, अस्थायी रूप से निवास कीजिए। उ.—सुनि सबहिनि सुख कियौ आजु रहियै जमुना-तट—५८९।

रहिल—संज्ञा पुं. [देश.] चना (अनाज)।

रहिहै—क्रि. अ. [हिं. रहना] बच सकेगी, बनी रह सकेगी। उ.—सूरदास अब बसै कौन ह्याँ पति रहिहै ब्रज त्यागैं—१०-३१७।

रही—क्रि. अ. [हिं. रहना] ध्यान न दिया, उपेक्षा की, गनीमत थी। उ.—चोरी रही, छिनारौ अब भयौ, जान्यौ ज्ञान तुम्हारौ—७७३।

रहीम—वि. [अ.] दयालु, कृपालु।

संज्ञा पुं.—(१) प्रसिद्ध कवि अब्दुर्ररहीम खानखाना। (२) ईश्वर का एक नाम।

रहु—क्रि. अ. [हिं. रहना] रुक, बोल मत, चुप रह। उ.—रहु रहु राजा यौं नहिं कहियै दूषन लागै भारी —८-१४।

रहुआ, रहुवा—संज्ञा पुं. [हिं. रहना] दूसरे के यहाँ रोटियों पर रहनेवाला।

रहूगण, रहूगन—संज्ञा पुं. [सं. रहूगण] एक राजा जो अंगिरस गोत्रीय था और जिसने कपिल मुनि से ज्ञान सुना था। उ.—नृपति रहूगन कैं मन आई, सुनियै ज्ञान कपिल सौं जाई—५-४।

रहै—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहता है।

मुहा०—चित न रहै—चित्त स्थिर या शांत नहीं होता। उ.—तबहीं तैं व्याकुल भइ डोलति चित न रहै कितनौ समझाऊँ—१६५४।

रहौंगौ—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहूँगा, मानूँगा, सहमत होऊँगा। उ.—बरज्यौ हौं न रहौंगौ—१०-१९४।

रह्यो रह्यौ—क्रि. अ. [हिं. रहना] (१) शेष रहा था, बचा था। उ.—हा करुनामय कुंजर टेरयौ, रह्यौ नहीं बल थाक्यौ—१-११३। (२) वास करता था, रहता था। उ.—जब मैं नाभि-कमल मैं रह्यौ—२-३७।

राँक, राँका, राँकौ—वि. [सं. रंक] दरिद्र, कंगाल। उ.—छोरी बंदि बिदा किए राजा, राजा ह्वै गए राँकौ —१-११३।

यौ०—राँकौ-फीकौ—बहुत ही दीन। उ.—बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा बंधन, राँकौ-फीकौ—१-१८६।

राँग, राँगा—संज्ञा पुं. [सं. रंग, हिं. राँगा] एक धातु

जो सफेद और नरम होती है। उ.—(क) नारि आनंद भरी राँग सी ह्वै ढरी, द्वार आपने खरी अंग पुलकी —२१५५। (ख) बातन हरत मन राँग ह्वै ढरै री—२४२३।

राँच—क्रि. अ. [हिं. राँचना] आकृष्ट हुआ, रम गया। उ.—बिषय अखेटक नृप मन राँच—४-१२।

अव्य. [हिं. रंच] जरा सा, तनिक।

राँचना, राँचनो—क्रि. अ. [सं. रंजन] (१) आसक्त या अनुरक्त होना। (२) लीन या मग्न होना। (३) रंग पकड़ना।

क्रि. स.—रँगना, रंग चढ़ाना।

राँचि—क्रि. अ. [हिं. राँचना] अनुराग करके।

यौ०—राँचि राँचि करि—बड़ी लगन या रुचि से, बड़े चाव से। उ.—यह तन राँचि राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनौ भायौ—१-६७।

राँची—क्रि. अ. [हिं. राँचना] रँग गयी, लीन या मग्न हो गयी। उ.—धाय सुघरी सील कुल छाँड़े राँची वा अनुराग—६५६।

राँचे—क्रि. अ. [हिं. राँचना] आसक्त या मुग्ध हुए। उ.—स्याम प्यारी-नैन राँचे—६७६।

राँचै—क्रि. अ. [हिं. राँचना] अनुरक्त हो, प्रेम करे। उ.—जौ अपनौ मन हरि सौं राँचै—१-८१।

राँजना, राँजनो—क्रि. अ. [सं. रंजन] काजल लगाना।

क्रि. स.—रँगना, रंजित करना।

क्रि. स. [हिं. राँगा] राँगे से जोड़ना।

राँटा—संज्ञा पुं. [देश.] टिटिहरी चिड़िया।

संज्ञा पुं. [हिं. रहँटा] सूत कातने का चर्खा।

राँड़—वि. स्त्री. [सं. रंडा] विधवा, बेवा।

राँढ़ना, राँढ़नो—क्रि. स. [सं. रुदन] रोना।

राँध—संज्ञा पुं. [सं. परांत] (१) निकट का स्थान। (२) पड़ोस।

क्रि. वि.—पास, निकट, समीप।

संज्ञा स्त्री. [हिं. राँधना] भोगने बनाने या राँधने की क्रिया या भाव।

वि.—परिपक्व अवस्था या बुद्धिवाला।

राँधना, राँधनो—क्रि. स. [सं. रंधन] (भोजन) पकाना।

राँधि—क्रि. स. [हिं. राँधना] पका कर। उ.—सरसौं मेथी, सोवा पालक बथुआ राँधि लियौ जु उतालक—३९६।

राँध्यो, राँध्यौ—क्रि. स. [हिं. राँधना] पकाया। उ.—बथुआ भली भाँति रचि राँध्यौ—२३२१।

राँभति—क्रि. अ. [हिं. राँभना] (गाय) बँबाती या बोलती है। उ.—राँभति गाइ बछा हित सुधि करि—४८०।

राँभना, राँभनो—क्रि. अ. [सं. रंभण] गाय का बोलना।

राआ—संज्ञा पुं. [सं. राजा] राजा, सम्राट।

राइ—संज्ञा पुं. [सं. राजा, प्रा. राया] (१) राजा, सम्राट। उ.—(क) निज पुर आइ राइ भीषम सौं कही जो बातैं हरि उचरी—१-२६८। (ख) सुक कह्यौ, सुनौ परिच्छित राइ, देहुँ तोहिं वृत्तांत सुनाइ—९-५। (२) राय, सरदार।

संज्ञा स्त्री. [हिं. राई] 'राई' नामक वस्तु।

मुहा०—राइ-लोन उतारि—नजर लगने पर उतारा करके राई और नमक आग में डालकर। उ.—कबहुँ अँग भूषन बनावति राइ-लोन उतारि—१०-११८।

राइता—संज्ञा पुं. [हिं. रायता] पतले दही में उबाले हुए साग आदि के साथ मसाले डालकर बनाया गया नमकीन पदार्थ। उ.—पानौरा राइता पकौरी —२३२१।

राई—संज्ञा पुं. [सं. राजा, प्रा. राया] (१) राजा। उ.—कुंदनपुर कौ भीषम राई—१० उ०-७। (२) राय, सरदार। (३) राज्य, राज्याधिकार। उ.—तुम्हें मारि महिरावन मारैं, देहिं बिभीषन राई—९-१४०। (४) प्रभु, स्वामी। उ.—किलकि झटकि उलटे परे देवनि-मुनि-राई—१०-६६।

संज्ञा स्त्री.—राजा होने का भाव, राजापन।

वि.—संपन्न, उत्तम, श्रेष्ठ। उ.—सूर स्याम ऐसे गुन राई—१८८०।

संज्ञा स्त्री. [सं. राजिका, अ. राइआ] (१) बहुत छोटी सरसों-जैसा एक मसाला।

मुहा०—राई काई करना—टुकड़े-टुकड़े कर डालना। राई काई होना—टुकड़े-टुकड़े हो जाना। राई-नोन (लोन) उतारना—नजर लगने पर राई-नमक उतार

कर आग में डालना। राई-नोन (लोन) उतारि—नजर लगने से बचाने के लिए राई-नोन उतार कर और आग में डालकर। उ.—कबहूँ अँग भूषन बनावति राई-लोन उतारि। राई-लोन उतारै—नजर से बचाने के लिए राई-नोन उतारकर आग में डालती है। उ.—जाको नाम कोटि भ्रम टारै; तापर राई-लोन उतारै—१०-१२९। राई से पर्वत करना—(१) थोड़ी बात को बहुत बढ़ा देना। (२) असंभव बात को भी संभव कर देना। राई से पर्वत करि डारै—छोटी या असंभव बात को बहुत बड़ा या संभव कर देता है। उ.—अविगति गति जानी न परै। राई ते पर्वत करि डारै पर्वत राई करै।

(२) बहुत थोड़ी मात्रा या परिमाण।

मुहा०—राई भर—(१) बहुत छोटा। (२) बहुत थोड़ा। राई-रत्ती करके—छोटी-छोटी रकम, तौल या नाप के हिसाब से।

राउ—संज्ञा पुं. [सं. राजा, प्रा. राय, राव] राजा। उ.—(क) हरि, हौं सब पतितनि कौ राउ—१-१४५। (ख) कह्यौ वृषभ, तुम ऐसेहिं राउ—१-२९०।

राउत—संज्ञा पुं. [सं. राज+पुत्र, प्रा. राअउत] (१) कोई राजवंश। (२) वीर पुरुष। (३) क्षत्रिय।

राउर—संज्ञा पुं. [सं. राज+पुर, प्रा० राय+उर] राजमहल का अंतःपुर, रनिवास, राजमहल। उ.—ब्रज घर-घर बूझत नँद-राउर, पुत्र भयौ, सुनि कै उठि धायौ—१०-२४८।

वि. आपका।

राउल—संज्ञा पुं. [सं. राजकुल] (१) राजा। (२) राजकुल का पुरुष।

राकस—संज्ञा पुं. [सं. राक्षस] राक्षस।

राकसिनि, राकसिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राकस] राक्षसी।

राका—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्णिमा की रात। उ.—(क) ब्रजप्राची राका तिथि यशुमति शरद सरस रितु नंद—१३३१। (ख) स्वेत छत्र मनो ससि प्राची दिसि उदय कियो निसि राका—२५६६।

राकापति—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

राकेश, राकेस—संज्ञा पुं. [सं. राकेश] चंद्रमा।

राक्षस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दैत्य, असुर। (२) दुष्ट व्यक्ति। (३) विवाह जिसमें कन्या के लिए युद्ध किया जाय।

राक्षसपति—संज्ञा पुं. [सं.] रावण।

राक्षसी—वि. [सं. राक्षस] (१) राक्षस-संबंधी। (२) राक्षसों जैसा जघन्य या विकट।

राख—संज्ञा स्त्री. [देश.] भस्म, खाक। उ.—निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं राख अंग लपटावै—२-१३।

राखत—क्रि. स. [हिं. रखना] (१) रक्षा करता है। उ.—राखत नहिं कोउ करुनानिधि अति बल ग्राह गह्यौ—८-४। (२) स्थिर या स्थापित करता है, रखता है। उ.—इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ—१-२२। (३) जीवित रहने देता है, बचाता या उपेक्षा करता है। उ.—वै हैं काल तुम्हारे प्रगटे काहे उनकौं राखत—५२२।

राखति—क्रि. स. स्त्री.[हिं. रखना] रोकती या ठहराती हूँ।

प्र०—बाँधि राखति—बाँधकर रखती हूँ। उ.—मैं बाँधि राखति सुतहिं मेरे देत महरहिं गारि—३८७।

राखनहार—वि. [हिं. रखना+हार] बचानेवाला, रक्षक। उ.—(क) राखनहार अहै कोउ औरै—७-४। (ख) गोकुल-ग्वाल-गाइ-गोसुत के येई राखनहार—५०८।

राखना, राखनो—क्रि. स. [हिं. रखना] (१) धरना, स्थित करना। (२) बचाना, रक्षा करना। (३) पालन या निर्वाह करना। (४) संग्रह करना। (५) सौंप देना। (६) रेहन या बंधक करना। (७) अधिकार में कर लेना। (८) नियुक्त करना। (९) पकड़ या रोक लेना। (१०) सामने न लाना। (११) व्यवहार करना। (१२) आरोप करना। (१३) ठहराना, निवास कराना।

राखहि—क्रि. स. [हिं. रखना] रखती (है)।

प्र०—बस राखहि—वश या अधिकार में रखती (है)। उ.—इंद्रिय बस राखहि किन पाँचौ—१-८३।

राखहु—क्रि. स. [हिं. रखना] रोक लो, जाने मत दो। उ.—गोपालहिं राखहु मधुबन जात—३४३१।

राखि—क्रि. स. [हिं. रखना] (१) बचा लो, रक्षा करो। उ.—(क) हा जगदीस राखि इहिं अवसर प्रगट पुकारि

कह्यौ—१-१४७। (ख) नमस्कार करि बिनय सुनाई, राखि-राखि असरन सरनाई—६-५। (२) धारण करके। उ.—जोगी जोग धरत मन अपनैं सिर पर राखि जटै—१-२६३।

प्र०—राखि लियो—(१) बचा लिया, रक्षा कर ली। उ—(क) अंबरीष ब्रत राखि लियौ—१-२६। (ख) सूरदास प्रभु कठिन बिपति सौं राखि लियौ जग जागी—१-२५०। राखि लीजै—बचा लीजिए, रक्षा कर लीजिए। उ.—जिहिं उपाय अपनौ यह बालक राखि कंस सौं लीजै—१०-९।

राखिहै—क्रि. स. [हिं. रखना] रक्षा करेगा, बचायेगा। उ.—(क) उलटि जाहु नृप-चरन-सरन मुनि, वहै राखिहै भाई—९-७। (ख) मेरे भारत कौन राखिहै—१०८२।

राखीं—क्रि. स. [हिं. रखना] बचा लीं। उ.—रानी सबै मरत ते राखीं—२६२१।

राखी—संज्ञा स्त्री. [सं. राखी] रक्षाबंधन का डोरा जो हिंदुओं के यहाँ श्रावण पूर्णिमा को पुरुषों की दाहनी कलाई पर बाँधा जाता है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. राख] राख, खाक।

क्रि. स. [हिं. रखना] (१) बचायी, रक्षा की। उ.—सभा माँझ द्रौपदि पति राखी—१-११३। (२) (ध्यान में) बसायी, स्मरण रखी। उ.—सखी नृपति सौं यह कहि भाखी, नृप सुनिकै हिरदै मैं राखी—६-७। (३) प्रस्तुत या उपस्थित की। उ.—जांबवती अरपी कन्या हरि मनि राखी समुहाइ—सारा० ६४९।

राखु—क्रि. स. [हिं. राखना] रक्षा करो, बचाओ। उ.—चटचटात अँग-अंग फटत हैं, राखु राखु प्रभु मोहिं—५८९।

राखैं—क्रि. स. [हिं. राखना] स्थिर या स्थित करते हैं, ठहराते या लगाते हैं। उ.—मन राखैं तुम्हरे चरननि पै—१-१९६।

राखै—क्रि. स. [हिं. राखना] पालता-पोसता या रक्षा करता है। उ.—लोक रचै, राखै अरु मारै—१०-३।

राखौं—क्रि. स. [हिं. राखना] रक्षा करूँ। उ.—कहि धौं प्रान कहाँ लौं राखौं, रोकि देह मुख द्वार—१-९२।

राखौ—क्रि. स. [हिं. राखना] बचाओ, रक्षा करो। उ.—(क) राखौ पति गिरिवर गिरिधारी—१-२४८। (ख) लाज मेरी राखौ स्याम हरी—१-२५४।

राख्यो, राख्यौ—क्रि. स. [हिं. राखना] (१) बचाया, रक्षा की। उ.—(क) राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं कर-नख पर गोवर्धनधारी—१-२२। (ख) राख्यौ स्याम, नहीं तिहिं मारयौ—५७४। (२) निर्वाह या पालन करने में सहायक हुआ। उ.—(क) भारत मैं मेरौ प्रन राख्यौ—१-१७७। (ख) धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ—९-१५१। (ग) देव ने राख्यौ बालक यह सुखकारी—सारा० ४१९। (२) (मन) स्थिर या स्थित किया, (ध्यान) लगाया। उ.—अनत नहीं चित राख्यौ—१०-१११। (३) निश्चित या निर्धारित किया। उ.—ताकौ नाम रुद्र बिधि राख्यौ—३-७।

राग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चाह, कामना, प्रवृत्ति। (२) कष्ट, क्लेश। (३) प्रेम, प्रीति। उ.—राग-द्वेष, बिधि-अबिधि, असुचि-सुचि, जिहिं प्रभु जहाँ सँभारी—१-१५७। (४) सुगंधित लेप, अंगराग। (५) (विशेषतः लाल) रंग। (६) संगीत की ध्वनि। उ.—सुमिरि सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यौ राग—१-३२५।

मुहा०—अपना राग अलापना—दूसरों से मेल न खाने वाली अपनी ही बात कहे जाना।

रागना, रागनो—क्रि. अ. [हिं. राग] (१) प्रेम करना। (२) रँग जाना। (३) निमग्न या लीन हो जाना।

क्रि. स.—गाना, अलापना।

रागिनि, रागिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रागिनी] किसी राग की पत्नी (संगीत)। उ.—गावत मलारी सुराग रागिनी गिरिधरन लाल छबि सोहनो—२२८०।

रागी—संज्ञा पुं. [सं. रागिन्] (१) प्रेमी। (२) विषयासक्त।

वि.—(१) रँगा हुआ। (२) लाल, अरुण। (३) रँगनेवाला। (४) कामना या चाह रखनेवाला। उ.—सूर सुजस-रागी न डरत मन सुनि जातना कराल—१-१८९।

संज्ञा स्त्री. [सं. राज्ञी] राजा की पत्नी, रानी।

राघव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रघुवंशी। (२) श्रीराम।

उ.—कुसुम-बिमान बैठी बैदेही देखी राघव पास—९-८२ ।

राच—क्रि. अ. [हिं. राचना] रँग गयी, अनुरक्त हो गयी ।
उ.—रुकमिनि पुत्री हरि रँग राच—१० उ०-७ ।

राचत—क्रि. अ. [हिं. राचना] प्रसन्न होता है । उ.—एक नाचत, एक राचत—२४२५ ।

राचना, राचनो—क्रि. स. [हिं. रचना] बनाना, रचना ।
क्रि. अ. रचा जाना, बनना ।
क्रि. अ. [सं. रंजन] (१) रँगा जाना । (२) आसक्त या अनुरक्त होना । (३) मग्न या लीन होना । (४) प्रसन्न होना । (५) भला जान पड़ना, शोभित होना । (६) सोच या चिंता में पड़ना ।
क्रि. स. आसक्त या अनुरक्त करना ।

राची—क्रि. स. [हिं. राचना] बनायी, रची । उ.—एक जीव देही द्वै राची—१६३६ ।
क्रि. अ.—(१) रँग गयी, रंजित हो गयी । उ.—(क) प्रेम मानि कछु सुधि न रही अँग रहे स्याम रँग राची । (ख) सूर प्रभु के अंग राची चितै रही चित लाइ—८४८ । (२) आसक्त या अनुरक्त हो गयी । निरखि जो जेहि अंग राची तहीं रही भुलाइ—१९५४ ।

राचे—क्रि. अ. [हिं. राचना] रँग गये, रंजित हुए । उ.—(क) ताही के सिधारो पिय जाके रँग राचे—२००३ । (ख) अब हरि औरहि रँग राचे—३३९३ ।

राचै—क्रि. अ. [हिं. राचना] सोच या चिंता में पड़े । उ.—हानि भए कछु सोच न राचै ।

राच्छसि, राच्छसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राक्षसी] राक्षसी ।
उ.—बदन निहारि प्रान हरि लीनो परी राच्छसी जोजन ताईं—१०-५० ।

राच्यो, राच्यौ—क्रि. स. [हिं. रचना] रचा, आयोजित किया । उ.—धनि धनि सूरदास के स्वामी अद्भुत राच्यौ रास ।
क्रि. अ.—(१) आसक्त या अनुरक्त हुआ । उ.—बिरंचि मन बहुरि राच्यौ आइ । (२) लीन या निमग्न हुआ । उ.—वाकैं रूप सकल जग राच्यो ।

राछ—संज्ञा पुं. [सं. रक्ष] (१) औजार । (२) जलूस ।

राछस—संज्ञा पुं. [सं. राक्षस] राक्षस ।

राछसि, राछसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राक्षसी] राक्षसी ।

राज—संज्ञा पुं. [सं. राज्य] (१) शासन, राज्य-प्रबंध ।
उ.—ताकौं सुमिरि राज तुम करौ—१-२६१ ।
यौ०—राज-काज—शासन-प्रबंध । उ.—राज-काज कछु मन नहिं धरै । राज-पाट—(१) राज-सिंहासन । (२) शासन । उ.—राजपाट सिंहासन बैठी नील पदुम हूँ सौं कहै थोरी—१-३०३ । राज-समाज—शासन प्रबंध और अधिकारी वर्ग । उ.—गए बन कौं तजि राज-समाज—५-३ ।
मुहा०—राज करना—खूब सुख भोगना । राज करैं—सदा सुख भोगे (आशीर्वाद या मंगल-कामना) । उ.—राज करैं वै धेनु तुम्हारी—४५५ । राज देना—शासन-प्रबंध सौंपना, शासनाधिकार देना । दीन्हों राज—शासनाधिकार सौंपा । उ.—दीन्हें मार असुर हरि ने तब देवन दीन्हो राज—सारा० । दै राज—शासनाधिकार सौंपकर । उ.—भरतहुँ दै पुत्रनि कौ राज—५-३ । राज पर बैठना—राज्याधिकार पाना । राज पर बैठाना—राज्याधिकार देना । राज बैठारयौ शासनाधिकार दिया । उ.—नरहरि हिरनाकसिप जब मारयौ, अरु प्रहलाद राज बैठारयौ—८-७ । राज रजना या राजना—(१) शासन-प्रबंध करना । (२) राजाओं जैसा सुख भोगना । राज राजैं—राज्याधिकार प्राप्त करके सुख भोगते हैं—लंका राज बिभीषन राजैं—१-३६ । राज रजाना—बहुत सुख देना ।
(२) राजा द्वारा शासित भूमि, राज्य । उ.—जौ तोहिं नाहिं बाहु-बल-पौरुष अर्ध राज देउँ लंक—९-१३४ । (३) पूरा अधिकार । (४ अधिकार या शासन का समय । (५) देश, जनपद ।
संज्ञा पुं. [सं. राजन्] (१) राजा । उ.—यह कहियौ ब्रज जाइ नंद सौं कंस राज अति काज मँगायौ—५२२ । (२) कारीगर, थवई ।
संज्ञा पुं. [फ़ा. राज़] भेद, रहस्य ।

राजई—क्रि. अ. [हिं. राजना] शोभित होता है । उ.—सेहरो सिर पर मुकुट लटक्यो कंठ माला राजई—१० उ०-२४ ।

राजकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा की पुत्री ।

राजकर—संज्ञा पुं. [सं.] 'कर' जो राजा लेता है।

राजकीय—वि. [सं.] राज्य-संबंधी।

राजकुँअर—संज्ञा पुं. [सं. राजकुमार] राजकुमार। उ. —लख्यौ सुभद्रा इहि संन्यासी। राजकुँअर कोउ भेष उदासी—१०उ०-४३०१।

राजकुँअरि, राजकुँआरि, राजकुँआरी—संज्ञा स्त्री. [सं. राजकुमारी] राजकुमारी।

राजकुमार—संज्ञा पुं. [सं.] राजा का पुत्र।

राजकुमारि राजकुमारी—संज्ञा स्त्री. [सं. राजकुमारी] राजकुमारी।

राजगढ़—संज्ञा पुं. [हिं. राजा+गढ़] किला या गढ़ जिसमें राजा रहता हो। उ.—निरभय देह राजगढ़ ताकौ—१-४०।

राजगद्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राजा+गद्दी] (१) राज-सिंहासन। (२) राज्याभिषेक। (३) राज्याधिकार।

राजगीर—संज्ञा पुं. [सं. राज+गृह] थवई, कारीगर।

राजगृह—संज्ञा पुं. [सं.] राजमहल।

राजछत्र—संज्ञा पुं. [सं.] राजचिह्न-रूप में राजा पर लगाया जाने वाला छत्र या छाता। उ.—राजक्षत्र नाहीं सिर धारौं—१-२६१।

राजतंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] राजा द्वारा शासन।

राजत—संज्ञा पुं. [सं. रजत] चांदी (धातु)।

क्रि. अ. [हिं. राजना] विराजते हैं। उ.—(क) प्रगट ब्रह्म राजत द्वारावति बेद पुरान उचारेउ। (ख) मध्य गोपाल मंडली राजत—४३२।

राजति—क्रि. अ. [हिं. राजना] शोभित होती है। उ. —(क) अति बिसाल बारिज-दल-लोचन राजति काजर-रेख री—१०-१३६। (ख) सूरदास जोरी अति राजति—४७३।

राजतिलक—संज्ञा पुं. [हिं. राजा+तिलक] राज्याभिषेक। उ.—नृपति जुधिष्ठिर राजतिलक दै मारि दुष्ट की भीर—सारा. ७८७।

राजत्व—संज्ञा पुं. [सं.] राजा का भाव, कर्म या पद।

राजदंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजशासन। (२) वह दंड जो राजा या राज्यविधान द्वारा दिया जाय।

राजदरबार—संज्ञा पुं. [हिं. राज+फ़ा. दरबार] राज्यसभा।

राजदूत—संज्ञा पुं. [सं.] राजा या शासन द्वारा नियुक्त किया हुआ दूत।

राजद्रोह—संज्ञा पुं. [सं.] राजा या राज्य के प्रति किया गया विद्रोह।

राजद्रोही—वि. [हिं. राजद्रोह] राजद्रोह करनेवाला।

राजधर्म—संज्ञा पुं. [सं.] राजा का धर्म या कर्तव्य। उ.—(क) राजधर्म तब भीषम गायौ—१-२६१। (ख) राजधर्म सुनि इहै सूर जिहिं प्रजा न जाहिं सताए—३३६३।

राजधानी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह प्रधान नगर जहाँ राजा रहता हो या जहाँ से शासन-प्रबंध होता हो।

राजन—संज्ञा पुं. [हिं. राजा] हे राजा (संबोधन)। उ. —राजन कहौ दूत काहू कौ कौन नृपति है मारचौ—९-९८।

क्रि. अ. [हिं. राजना] राज करने (लगे)।

प्र०—लागे राजन—राज्य करने लगे। उ.—सूर-दास श्रीपति की महिमा मथुरा लागे राजन—२८१७।

राजना—क्रि. अ. [सं. राजन=शोभित होना] (१) बिराजना। (२) सोहना, शोभित होना।

राजनीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह नीति जिससे राज्य की सुरक्षा हो और शासन दृढ़ बना रहे। उ.—(क) राजनीति जानी नहीं, गो-सुत चरवारे—१-२३८। (ख) संडामर्क रहे पचि हारि। राजनीति कहि बारं-बार—७-२। (ग) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए—३३६३।

राजनीतिक—वि. [सं.] राजनीति-संबंधी।

राजनो—क्रि. अ. [सं. राजन] (१) बिराजना। (२) सोहना, शोभित होना।

राजन्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्षत्रिय। (२) राजा।

राजपंथ, राजपथ—संज्ञा पुं. [सं. राजपथ] खूब चौड़ा मार्ग, राजमार्ग। उ.—(क) सुनु ऊधौ निर्गुन कंटक तैं राजपंथ क्यौं रूँधौ। (ख) राजपंथ तैं टारि बतावत उज्ज्वल कुचल कुपैंडौ—३३१३।

राजपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] राजकुमार।

राजपुत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजकुमारी।

राजपुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] राजकर्मचारी।

राजपूत—संज्ञा पुं. [सं. राजपूत] (१) राजकुमार। (२) क्षत्रियों के वंश-विशेष।

राज-प्रासाद—संज्ञा पुं. [सं.] राजमहल।

राजभंडार—संज्ञा पुं. [सं. राजभांडार] राजकोष।

राजभक्त—वि. [सं.] राजा या राज्य के प्रति भक्ति या सम्मान-भाव रखनेवाला।

राजभक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा या राज्य के प्रति सम्मान-भाव या भक्ति रखनेवाला।

राजभवन—संज्ञा पुं. [सं.] राजमहल, राजप्रासाद।

राजभाषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह भाषा जिसमें किसी राज्य का राज-कार्य होता हो।

राजभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह का धान। (२) राज्य-सुख। (३) देवताओं का प्रातःकालीन भोग।

राजमहल—संज्ञा पुं. [हिं. राजा+अ. महल] राजप्रासाद।

राजमहिषी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पटरानी।

राजमाता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा की माता।

राजमारग, राजमार्ग—संज्ञा पुं. [सं. राजमार्ग] खूब चौड़ा मार्ग, राजपथ। उ.—छाँड़ि राजमारग यह लीला कैसे चलहिं कुपैंड़े—३१६९।

राजमुनि—संज्ञा पुं. [सं.] राजर्षि। उ.—महाराज रिषिराज राजमुनि देखत रहे लजाई—१-४०।

राजयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अष्टांग योग जिसमें क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास किया जाता है। (२) ग्रहों का ऐसा योग जिससे मनुष्य राजसी सुख भोग सके।

राजरवनि, राजरवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. राजा+रमणी] राजा की स्त्री। उ.—(क) राजरवनि सुमिरे पति-कारन, असुर-बंदि तैं दिए छुड़ाई—१-२४। (ख) भूप अनेक बंदि तैं छोरे राज-रवनि जस अति बिस्तारौ—१-१७२।

राजराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजाओं का राजा, राजाधिराज। (२) कुबेर। (३) चंद्रमा।

राजराजेश, राजराजेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] राजाओं का राजा, राजाधिराज।

राजराजेश्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] महारानी।

राजरोग—संज्ञा पुं. [हिं. राजा+रोग] (१) असाध्य रोग। उ.—जाकौ राजरोग कफ बाढ़त दह्यौ खवावत ताहि—३१४५। (२) क्षय रोग।

राजर्षि—संज्ञा पुं. [सं.] वह ऋषि जो राजवंश या क्षत्रिय कुल का हो।

राजलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजवैभव, राज्यश्री।

राजवंश—संज्ञा पुं. [सं.] राजा का कुल।

राजवी—संज्ञा पुं. [सं. राजा] राजा।

राजश्री—संज्ञा स्त्री. [सं. राज्यश्री] राजवैभव, राज्यलक्ष्मी।

राजस—वि. [सं.] रजोगुण से उत्पन्न।

संज्ञा पुं.—(१) राज्याभिमान, राज-मद। उ.—इहिं राजस को को न बिगोयौ। हिरनकसिपु हिरनाच्छ आदि दै रावन कुंभकरन कुल खोयौ—१-५४। (२) क्रोध, आवेश।

वि. [सं. राजा] राजा या राज्य-संबंधी। उ.—राजस रीति सुरन कहि भाषी—२४५९।

राजसत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजशक्ति।

राजसभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा का दरबार।

राजसमाज—संज्ञा पुं. [सं.] राजाओं का दरबार या मंडल।

राजसिंहासन—संज्ञा पुं. [सं.] राजगद्दी।

राजसिक—वि. [सं. राजस] रजोगुणी।

वि. [हिं. राजसी] राजाओं-जैसा।

राजसिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. राज्यश्री] राजलक्ष्मी।

राजसी—वि. [हिं. राजा] राजा के योग्य शान, ठाट-बाट या तड़क-भड़क वाला।

वि. स्त्री. [सं.] रजोगुण की प्रधानतावाली।

राजसू, राजसूय—संज्ञा पुं. [सं.] एक यज्ञ। उ.—बड़ो जग्य राजसू रचायौ—सारा. ७३५।

राजस्व—संज्ञा पुं. [सं.] राजकर, राजधन।

राजहंस—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का हंस।

राजहीं—क्रि. अ. [हिं. राजना] सोहते हैं, सुशोभित हैं। उ.—हरि-नख उर अति राजहीं—१०-११६।

राजा—संज्ञा पुं. [सं. राजन्] (१) नृप, भूप। उ.—जिनकौं मुख देखत दुख उपजत तिनकौं राजा-राय

कहै—१-५३। (२) स्वामी, अधिपति। (३) बालकों के लिए प्रेम और दुलार का संबोधन। उ.—सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु भवन उताल —१०-२२३।

राजाज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा की आज्ञा।

राजाधिराज—संज्ञा पुं. [सं.] राजाओं का राजा।

राजि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कतार, अवली। (२) रेखा।

राजित—वि. [सं.] (१) शोभित। (२) विराजमान।

राजिव—संज्ञा पुं. [सं. राजीव] कमल।

राजिववर—संज्ञा पुं. [सं. राजीव+वर] श्रेष्ठ कमल। उ.—सुनि मधुकरि भ्रम तजि कुमुदनि कौं, राजिववर की आस—१-३३९।

राजी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पंक्ति, श्रेणी। उ.—राजति रोम-राजी रेख—६३५।

वि. [अ. राज़ी] (१) कोई बात मानने को प्रस्तुत, सहमत। (२) हर्षित, प्रसन्न (३) सुखी।

यौ०—राजी-खुशी—सकुशल और सानंद।

संज्ञा स्त्री. सहमति, अनुकूलता।

राजीव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल। उ.—मैं जु रह्यौं राजीव-नैन दुरि, पाप-पहार दरी—१-१३०। (२) नील कमल।

राजु—संज्ञा पुं. [हिं. राज] अधीनस्थ प्रदेश, राज्य। उ.—तज्यौ कंस कौ राजु—८०८।

राजेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] राजाओं का राजा।

राजैं—क्रि. अ. [हिं. राजा] (१) राज्य करते हैं।

मुहा०—राज राजैं—राज्य का सुख भोगते हैं। उ.—लंका राज बिभीषन राजैं—१-३६।

(२) सुशोभित हैं। उ.—पानि पदुम आयुध राजैं—१-६९।

राज्ञी—संज्ञा स्त्री. [सं.] रानी, राजमहिषी।

राज्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शासन। उ.—राज्य बिभीषन दैहौं—९-११३। (२) राजा द्वारा शासित प्रदेश।

राज्यश्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] राज्य की शोभा और वैभव।

राज्याभिषेक—संज्ञा पुं. [सं.] नये राजा का अभिषेक।

राज्यारोहण—संज्ञा पुं. [सं.] राजा का प्रथम बार सिंहासनासीन होकर राज्याधिकार प्राप्त करना।

राट—संज्ञा पुं. [सं. राट्] (१) राजा। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति। (३) किसी कौशल में बढ़ा-चढ़ा व्यक्ति।

राठ—संज्ञा पुं. [सं. राष्ट्र] (१) राज्य। (२) राजा।

राठवर, राठौर—संज्ञा पुं. [सं. राष्ट्रकूट, हिं. राठौर] दक्षिण भारत का एक राजवंश।

राड़—वि. [देश.] (१) निकम्मा। (२) कायर।

राढ़—वि. [हिं. राड़] (१) निकम्मा। (२) कायर।

संज्ञा स्त्री. [सं. राटि] रार, झगड़ा।

राढ़ि—संज्ञा पुं. [सं.] वंग देश का उत्तरी प्रदेश।

राणा—संज्ञा पुं. [सं. राट्] (१) राजा। (२) उदयपुर के शासकों की उपाधि।

रात—संज्ञा स्त्री. [सं. रात्रि] रात्रि, रजनी। उ.—अँधियारी भादौं की रात—१०-१२।

मुहा०—रात-दिन—सदा, सर्वदा। उ.—यह ब्यौहार लिखाय रात-दिन पुनि जीतौ पुनि मरतौ—१-२०३।

वि. [हिं. राता] लाल, अरुण।

रातड़ी, रातरी—संज्ञा स्त्री. [सं. रात्रि] रात, रजनी।

रातना, रातनो—क्रि. अ. [सं. रक्त, प्रा. रत्त+हिं. ना] (१) रंग से लाल हो जाना। (२) रँग जाना। (३) आसक्त या अनुरक्त होना।

राता—वि. [सं. रक्त, प्रा० रत्त] (१) लाल, अरुण। (२) रँगा हुआ। (३) आसक्त, अनुरक्त।

क्रि. अ. [हिं. रातना] आसक्त या अनुरक्त हुआ या है। उ.—ज्यौं चकोर ससि राता—९-४९।

राति—संज्ञा स्त्री. [सं. रात्रि] रात, रात्रि। उ.—तनक-तनक पग चलिहौ कैसैं, आवत ह्वैहै राति—४११।

रातिचर—संज्ञा पुं. [हिं. रात+सं. चर] राक्षस।

रातिब—संज्ञा पुं. [अ.] पशु का दैनिक आहार।

राती—संज्ञा स्त्री. [हिं. रात] रात, रात्रि। उ.—निमिष निमिष मों बिसरत नाहीं सरद सुहाई राती २९८१।

मुहा०—दिन-राती—सदा, सर्वदा। उ.—दिन-राती पोषत रह्यौ, जैसैं चोली-पान—१-३२५।

वि. [हिं. राता] लाल रंग की। उ.—(क) पहिरे राती चूनरी—१-४४ (ख) धौरी धूमरि राती

रौंछी बोल बुलाइ बिन्होरी—४४५। (ग) अँगिया नील माँड़नी राती—पृ० ३४५ (३८)।

क्रि. अ. [हिं. रातना] (१) रँग गयी। उ.—कुबिजा भई स्याम रँग-राती—१-६३। (२) अनुरक्त या आसक्त हो गयी।

रातुल—वि. [सं. रक्तालु, प्रा० रत्तालु] लाल रंग का। उ.—उर मोतिनि की माला री पहिरे, रातुल चीर, वारे कन्हैया।

राते, रातै—वि. [हिं. राता] लाल रंग का। उ.—(क) चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)—१-४४। (ख) वै जो देखत राते राते फूलन फूले डार—२७९८। (ग) सूरदास स्याम रँग राचे, फिरि न चढ़ै रँग रातै—३०२४।

रातौ—वि. [हिं. रातौ] लाल (रंग का)। उ.—(क) सेत हरौ रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई—१-६३। (ख) सुन्दर रूप रतालू रातौ—२३२१।

क्रि. अ. [हिं. रातना] रँग गया। उ.—हरि-पद पंकज पियौ प्रेम-रस ताही कैं रँग रातौ—१-४०।

रात्र, रात्रि—संज्ञा स्त्री. [सं. रात्रि] रात, निशा।

मुहा०—दिन-रात्र (रात्रि)—सदा, सर्वदा। उ.—छल-बल करि जित तित हरि पर-धन धायौ सब दिन रात्र—१-२१६।

रात्रिचर, रात्रिचारी—वि. [सं.] रात में विचरने वाला। संज्ञा पुं.—राक्षस, निशाचर।

रात्री—संज्ञा स्त्री. [सं. रात्रि] रात, निशा।

राधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधना। (२) साधन।

संज्ञा स्त्री. [सं. आराधना] पूजा, आराधना। उ.—कर्म धर्म तीरथ बिनु राधन ह्वै गए सकल अकाथ—१-२०८।

राधना, राधनो—क्रि. स. [सं. आराधना] (१) पूजा या आराधना करना। (२) पूर्ण या सिद्ध करना। (३) काम निकालना।

राधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रीति। (२) वृषभानु गोप की पुत्री जो श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम-भाव रखती थी।

राधाकांत—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

राधाकुंड—संज्ञा पुं. [सं.] गोवर्द्धन के निकट एक सरोवर।

राधारमण, राधारमन, राधारवन—संज्ञा पुं. [सं. राधा + रमण] श्रीकृष्ण। उ.—तिहूँ भुवन भरि नाद समानो राधारवन बजाई—पृ० ३४७ (५३)।

राधावल्लभ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

राधावल्लभी—वि. [सं.] श्रीकृष्ण या विष्णु से संबंधित। संज्ञा पुं.—वैष्णवों का एक प्रसिद्ध संप्रदाय।

राधाष्टमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भादों सुदी अष्टमी जिस दिन राधा का जन्म हुआ माना जाता है।

राधिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वृषभानु गोप की कन्या राधा जो श्रीकृष्ण की प्रेयसी थी।

राध्य—वि. [सं.] आराध्य।

रान—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] जाँघ, जंघा।

राना—संज्ञा पुं. [हिं. राणा] राणा।

क्रि. अ. [सं. राग] अनुरक्त होना।

रानी—संज्ञा स्त्री. [सं. राज्ञी, प्रा० राणी] (१) राजा की पत्नी। उ.—करुना करति मंदोदरि रानी—९-१६०। (२) स्वामिनी। (३) 'स्त्री' के लिए आदर सूचक शब्द।

रानीकाजर—संज्ञा पुं. [हिं. रानी + काजल] धान-विशेष।

रानो—क्रि. अ. [सं. राग] अनुरक्त होना।

रानौ, रान्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. राणा, राना] (१) राजा। उ.—(क) जाति गोत कुल नाम गनत नहिं रंक होय कै रानौ—१-११। (ख) जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ—१-३२९। (ग) की मारि डारियो दुहुँनि को होइ सो होइ यह कहत रान्यौ—२६०२। (२) महाराज, परम प्रभु। उ.—भज्यौ न श्रीपति रानौ—१-४७।

रापरंगाल—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रकार का नृत्य।

रापी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राँपी] चमड़ा साफ करने और काटने का औजार।

राब—संज्ञा स्त्री. [सं. द्रावक] औटाकर गाढ़ा किया हुआ गन्ने का रस।

राबड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राब+ड़ी] रबड़ी, बसौंधी।

राम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परशुराम। (२) बलराम।

(३) दशरथ के बड़े पुत्र श्रीरामचंद्र जो दस अवतारों में एक माने जाते हैं।

मुहा०—राम शरण होना—(१) संन्यासी हो जाना। (२) मर जाना। राम जाने—(१) मुझे नहीं मालूम। (२) भगवान को साक्षी करके। राम राम करना—(१) प्रणाम करना। (२) भगवान् को जपना। राम राम करके—बड़ी कठिनता से। राम राम होना—भेंट या मुलाकात होना। राम राम हो जाना—मर जाना। राम राम है—विदा-सूचक प्रणाम। उ.—सुनहु सूरज प्रभु अबकैं मनाइ ल्याउँ बहुरि रुठायही जू तौ मेरी राम राम है जू—२२४१।

(४) ईश्वर, भगवान। उ.—(क) कहत हे आगे जपिहैं राम—१-५७। (ख) पढ़ौ भाइ राम-मुकुंद मुरारि—७-४।

रामकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

रामचंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] दशरथ के बड़े पुत्र जो कौशल्या के गर्भ से जन्मे थे।

रामजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राम+जनना] (१) वेश्या। (२) कन्या जिसके पिता का पता न हो।

रामटोड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक संकर रागिनी।

रामतरोई—संज्ञा स्त्री. [हिं. राम+तुरई, तरोई] एक तरकारी। उ.—खीरा रामतरोई तामें—२३२१।

रामता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राम का गुण या भाव।

रामतारक संज्ञा पुं. [सं.] एक मंत्र—रां रामाय नमः।

रामति—संज्ञा स्त्री. [हिं. रमना] (भिखारी की) फेरी।

रामत्व—संज्ञा पुं. [सं.] राम का गुण या भाव।

रामदल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राम की बानरी सेना। (२) प्रबल सेना।

रामदाना—संज्ञा पुं. [सं. राम+हिं. दाना] एक तरह का दाना जिसकी गिनती 'फलाहार' में की जाती है।

रामदास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हनुमान। (२) शिवा जी के गुरु जो 'समर्थ' रामदास कहलाते हैं।

रामदूत—संज्ञा पुं. [सं.] हनुमान।

रामधाम—संज्ञा पुं. [सं.] साकेत लोक जो भगवान राम का नित्यलोक माना जाता है।

रामधुन—संज्ञा स्त्री. [सं. राम+हिं. धुन] राम-नाम जपने, भजने या कीर्तन करने की क्रिया या भाव।

रामनवमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चैत्र सुदी नवमी जिस दिन श्रीराम का जन्म हुआ था।

रामना—क्रि. अ. [सं. रमण] घूमना-फिरना।

रामनामी—संज्ञा पुं. [हिं. राम+नाम] (१) दुपट्टा जिस पर सारे में 'राम-राम' छपा हो। (२) गले का हार-विशेष जिसके बीच के टिकड़े पर 'राम' अंकित हो।

रामनो—क्रि. अ. [सं. रमण] घूमना-फिरना।

रामनौमी—संज्ञा स्त्री. [सं. रामनवमी] चैत्र सुदी नवमी जिस दिन श्रीराम का जन्म हुआ था।

रामपुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अयोध्या। (२) बैकुंठ।

रामफटाका—संज्ञा पुं. [सं. राम+हिं. फटाका] रामानुज के अनुयायियों का लंबा तिलक।

राममंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक मंत्र—रां रामाय नमः।

रामरज—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह की पीली मिट्टी।

रामरस—संज्ञा पुं. [हिं. राम+रस] नमक।

रामराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीरामचंद्र का सुखद शासन। (२) शासन जिसमें प्रजा सब तरह सुखी रहे।

रामरौला—संज्ञा पुं. [सं. राम+हिं. रौला] व्यर्थ का कोलाहल।

रामलीला—संज्ञा स्त्री. [सं.] राम-चरित्र का अभिनय।

रामबाण—वि. [सं.] अचूक (औषध)।

रामशर—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का सरकंडा।

रामश्री—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग।

रामा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी। (२) राधा। (३) सीता।

रामानंद—संज्ञा पुं. [सं.] एक वैष्णवाचार्य जो 'रामावत' संप्रदाय के प्रवर्तक थे।

रामानंदी—संज्ञा पुं. [हिं. रामानंद] रामानंद के 'रामावत' संप्रदाय का अनुयायी।

रामानुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राम का छोटा भाई। (२) एक प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य जो 'वैष्णव' संप्रदाय के प्रवर्तक थे।

रामायण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रंथ जिसमें राम-कथा वर्णित हो। (२) वाल्मीकि-कृत रामायण। (३) गो० तुलसीदास-कृत रामायण।

रामायणी—वि. [सं. रामायणीय] रामायण-संबंधी।
संज्ञा पुं.—रामायण का पंडित।

रामायन—संज्ञा पुं. [सं. रामायण] रामायण।

रामायुध—संज्ञा पुं. [सं.] धनुष।

रामावत—संज्ञा पुं. [सं.] रामानंद का संप्रदाय।

रामेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] वह शिवलिंग जो श्रीराम द्वारा लंका के लिए पुल बाँधने के पूर्व स्थापित किया गया कहा जाता है। यह भारत के चार मुख्य तीर्थों में एक है जो दक्षिण में समुद्रतट पर है।

राय—संज्ञा पुं. [सं. राजा, प्रा० राया] (१) राजा। (२) सामंत। (३) सम्मान की एक उपाधि। (४) भाट, बंदीजन। (५) एक लता।
संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] सम्मति, मत।

रायता—संज्ञा पुं. [सं. राजिकाक्त] उबाले हुआ कुम्हड़े, लौकी, बूँदी आदि को पतले दही में मसाला डालकर बनाया गया खाद्य। उ.—पानौरा रायता पकौरी डभकौरी मुँगछी सुठि सौंरी—३९६।

रायबेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. राय+बेल] एक लता।

रायभोग—संज्ञा पुं. [सं. राजभोग] धान-विशेष।

रायमुनिया, रायमुनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. राय+मुनिया] 'लाल' पक्षी की मादा।

रायमुनयनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. रायमुनियाँ] अनेक रायमुनिया पक्षी। उ.—मनु रायमुनैयनि पाँति पिंजरा तोरि चली—१०-२४।

रायरासि—संज्ञा स्त्री. [सं. राज+राशि] राजकोष।

रायसा—संज्ञा पुं. [हिं. रासो] काव्य जिसमें राजा-विशेष का जीवन-चरित्र हो।

राया—संज्ञा पुं. [सं. राजा] राजा।

रार, रारि, रारी—संज्ञा स्त्री. [सं. राटि, प्रा. राड़ि] (१) लड़ाई-झगड़ा, टंटा। उ.—(क) कृपा करि रारि डारौ मिटाई—८-९। (ख) उनकौं मारि तुरत मैं कीन्हौं मेघनाद सौं रार—९-१०४। (ग) ऐसी कैसे हरि करै कतहिं बढ़ावति रारी—१०६१। (२) हठ, जिद। उ.—जागत ही उठि रारि करत है—१०-२३१।

रारिया, रारी—वि. [हिं. रार] झगड़ा करनेवाला।

राल—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़ का चिपचिपा रस।
संज्ञा स्त्री. [सं. लाला] पतला लसदार थूक जो कुछ बच्चों और बूढ़ों के मुख से कभी-कभी बहने लगता है।
मुहा०—राल गिरना, चूना, टपकना या बहना—किसी पदार्थ को देखकर उसे पाने की बहुत इच्छा होना।

राव—संज्ञा पुं. [सं. राजा, प्रा. राया] (१) राजा। उ.—राव-रंक हरि गनत न दोइ—२-५। (२) सरदार, सामंत। (३) धनी। (४) भाट, बंदीजन।
संज्ञा पुं. [सं. रव] ध्वनि, शब्द।

राव-चाव—संज्ञा पुं. [हिं. राव+चाव] लाड़-प्यार।

रावट—संज्ञा पुं. [हिं. रावल] राजमहल।

रावटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रावट] (१) छोलदारी। (२) छोटा घर। (३) बारहदरी।

रावण—वि. [सं.] दूसरों को रुलानेवाला।
संज्ञा पुं.—लंका का प्रसिद्ध राजा जिसके पिता का नाम विश्रवा और माता का कैकसी था। सीता-हरण का अपराध करने पर श्रीराम ने इसे मारा था।

रावणारि—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीरामचंद्र।

रावणि—संज्ञा पुं. [सं.] रावण का पुत्र मेघनाद।

रावत—संज्ञा पुं. [सं. राजपुत्र, प्रा. राय+हिं. उत] (१) सामंत, सरदार। (२) शूर-वीर। (३) छोटा राजा।

रावन—संज्ञा पुं. [सं. रावण] लंका का राजा रावण। उ.—राजा कौन बड़ौ रावन तैं गर्बहिं गर्ब गरै—१-३५।

रावनगढ़—संज्ञा पुं. [सं. रावण+गढ़] लंका।

रावना—संज्ञा पुं. [सं. रावण] रावण।

रावना, रावनो—क्रि. स. [सं. रावण] रुलाना।

रावर, रावरा—संज्ञा पुं. [सं. राजपुर+प्रा० राय+उर] रनिवास।
वि. [हिं. राउ+का (विभक्ति)] आपका।

रावरी—वि. [हिं. रावर] आपकी। उ.—(क) टेक परिहै जानि सब रावरी—५५१। (ख) सूरदास प्रभु आनि मिलावहु, ऊधौ, कीरति होइ रावरी—३४३२।

रावरीय—वि. [हिं. रावर] आपकी ही। उ.—सूर स्याम प्यारी अति राजति रावरीय दुहाई—२२३९।

रावरैं—वि. [हिं. रावर] आप ही, (आपको ही)। उ.—पाँच पति हित हारि बैठे, रावरैं हित मोर—७९२।

रावरो, रावरौ—वि. [हिं. रावर] आपका। उ.—मानहिंगी उपकार रावरौ करौ कृपा बलवीर—७९२।

रावल—संज्ञा पुं. [सं. राजपुर, हिं. राउर] रनिवास।

संज्ञा पुं. [पा० राजुल] (१) राजा। (२) कुछ राजाओं की उपाधि। (३) सरदार, सामंत। (४) एक आदरसूचक संबोधन। (५) मथुरा का निकटवर्ती एक गाँव जहाँ राधा का जन्म होना कहा जाता है।

राशि, राशी—संज्ञा स्त्री. [सं. राशि] (१) समूह, ढेर, पुंज। (२) पृथ्वी जिस मार्ग से होकर सूर्य की परिक्रमा करती है, उस पर पड़ने वाले तारे-समूह जो बारह हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन।

मुहा०—राशि आना—अनुकूल होना। राशि मिलना—मेल मिलना।

राष्ट्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राज्य। (२) देश।

राष्ट्रिय, राष्ट्रीय—वि. [सं. राष्ट्रिय] राष्ट्र-संबंधी।

रास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोलाहल। (२) वह मंडलाकार नृत्य जिसका आरंभ श्रीकृष्ण द्वारा शरद् पूर्णिमा की रात्रि को किये गये उनके नृत्य से माना जाता है। उ.—(क) सो गोपिनि सँग रास रमावै—१०-३। (ख) गोप-नारी संग मोहन कियौ रास बनाइ—४९८। (३) नाटक-विशेष जिसमें श्रीकृष्ण की रासलीला का अभिनय किया जाय।

संज्ञा स्त्री. [अ.] घोड़े की लगाम।

मुहा०—रास कड़ी करना या रखना—अधिकार या अंकुश को कड़ा रखना। रास में लाना—अधिकार या अंकुश में लाना।

संज्ञा स्त्री. [सं. राशि] (१) ढेर, समूह, पुंज। उ.—(क) जहँ बिधु-भानु समान एक रस सो बारिज सुख-रास—१-३३९। (ख) बरनौं कहा अंग अँग-सोभा भरी भाव जल-रास री—१०-१३९। (२) राशि (ज्योतिष)। (३) जोड़। (४) धान-विशेष।

रासक—संज्ञा पुं. [सं.] हास्य-प्रधान एकांकी नाटक-विशेष।

रासधारी—संज्ञा पुं. [सं. रासधारिन्] रासलीला का अभिनेता।

रासभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गदहा, गर्दभ। उ.—गैवर मेटि चढ़ावत रासभ प्रभुता मेटि करत हिनती—१२२८। (२) एक दैत्य जिसे बलराम ने मारा था।

रासमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रास-क्रीड़ा का स्थान। (२) रासलीला में श्रीकृष्ण और राधा के साथ भाग लेनेवाली गोपियों का समूह, रासलीला करनेवालों की मंडली। उ.—रास-मडल बने स्याम स्यामा।

रासमंडली—संज्ञा स्त्री. [सं.] रासधारियों की टोली।

रासलीला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मंडलाकार नृत्य जो शरत पूर्णिमा की रात्रि को श्रीकृष्ण ने किया था। (२) रासधारियों द्वारा उक्त लीला-नृत्य का अभिनय।

रास-विलास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रास-क्रीड़ा। (२) आनंद-मंगल।

रासविहारी—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

रासि, रासी—संज्ञा स्त्री. [सं. राशि] (१) समूह, पुंज, ढेर। उ.—(क) कंचन-रासि गँवाई—१-३२८। (ख) सूरदास सुख की रासि कापै कहि आवै—१०-२०१। (ग) सूरदास प्रभु आनंद रासी—५४९। (घ) मुरली अधर सकल अँग सुन्दर रूप-सिंधु की रासी—३१०८। (२) पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के मार्ग में पड़नेवाले तारक-समूह। उ.—(क) चौथैं सिंह रासि के दिनकर जीति सकल महि लैहैं—१०-८६। (ख) रासि सोधि इक सुदिन धरयौ—१०-८८।

रासु—वि. [फ़ा. रास्त] (१) सरल। (२) ठीक।

संज्ञा पुं. [सं. रास] रास (लीला)।

रासेश्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा।

रासो—संज्ञा पुं. [सं. रहस्य] राजा-विशेष की युद्धवीरता आदि को लेकर लिखा गया पद्यमय जीवन-चरित्र।

रास्त—वि. [फ़ा.] (१) सीधा। (२) उचित।

रास्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) राह, मार्ग, पथ।

मुहा०—रास्ता काटना—(१) चलनेवाले के सामने से होकर निकल जाना। (२) यात्रा में समय

बिताना। रास्ता देखना—प्रतीक्षा करना। रास्ता पकड़ना—चल देना। रास्ता बताना—टालना, हटाना। रास्ते पर लाना—सीधे ढंग पर लाना।

(२) रीति, चाल। (३) तरकीब, उपाय।

मुहा०—रास्ता बताना—तरकीब या उपाय बताना।

राह—संज्ञा पुं. [सं. राहु] राहु (ग्रह)।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मार्ग, पथ। उ.—(क) चलत न तुम क्यों सूधैं राह—५-४। (ख) काहे को भरि भरि ढारति हौ इन नैन राह के नीर—२६८६।

मुहा०—राह गहना—मार्ग-विशेष पर चलना। राह मन गहियौ—राह-विशेष पर ही चलने का मन में निश्चय किया। उ.—ये सब वचन सुने मनमोहन वहै राह मन गहियौ—१०-३१३। राह ताकना या देखना—प्रतीक्षा करना। राह पड़ना—डाका या लूट पड़ना। राह लगना—(१) ठीक रास्ते पर आ जाना। (२) अपने काम से काम रखना। राह बताना—टालना, हटाना। राह पर लगाना या लाना—ठीक मार्ग बताना।

(२) प्रथा, रीति, चाल। उ.—(क) हमहिं छाँड़ि कुबिजा मन बाँध्यौ कौन वेद की राह—२७६८। (ख) हमहिं छाँड़ि कुबिजहिं मन दीनों मेटि वेद की राह—३३९७। (३) तरकीब, उपाय।

संज्ञा पुं. [हिं. रोहू] रोहू मछली।

राहगीर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बटोही, पथिक।

राहचलता—वि. [फ़ा. राह + हिं. चलना] पथिक।

राहचौरंगी—संज्ञा पुं. [फ़ा. राह + हिं. चौरंगी] चौराहा।

राहजनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. राहजनी] लूट, डकैती।

राहत—संज्ञा स्त्री. [अ.] सुख, चैन, आराम।

क्रि. अ. [हिं. रहना] रहता है।

राहना, राहनो—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहना।

राही—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पथिक, बटोही।

राहु—संज्ञा पुं. [सं.] नौ ग्रहों में एक जिसके पिता का नाम विप्रचित्ति और माता का सिंहिका था। सागर-मंथन के समय जब वह चोरी से अमृत पीने लगा था तब सूर्य और चंद्र के संकेत से विष्णु ने उसका सिर काट दिया था। परंतु अमृत के प्रभाव से वह मरा नहीं। तभी से उसका सिर 'राहु' और कबंध 'केतु'-रूप में जीवित है। उसी के ग्रसने पर सूर्य और चंद्र-ग्रहण होता है। उ.—(क) कहँ वह राहु कहाँ वै रवि-ससि आनि सँजोग परै—१-२६४। (ख) राहु ससि-सूर के बीच मैं बैठि कै, मोहिनी सौं अमृत माँगि लीन्हयौ—८-८। (ग) ऊँच-नीच जुवती बहु करिहैं सतऐं राहु परे हैं—१०-८६।

राहै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. राहु] राहु ने, राहु द्वारा। उ.—बिलपति अति पछितति मनहिं मन चंद्र गहे जनु राहै—२८०१।

रिंगण, रिंगन—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. रिंगण] (१) रेंगना, घुटनों के बल चलना। उ.—फिरि हरि आय जसोदा के गृह रिंगन लीला करिहैं—सारा. ५७१। (२) सरकना, फिसलना। (३) डिगना, विचलित होना।

रिंगना, रिंगनो—क्रि. अ. [हिं. रेंगना] (१) रेंगना। (२) धीरे धीरे चलना। (३) घूमना-फिरना।

रिंगाइ, रिंगाई—क्रि. स. [हिं. रिंगाना] (बहुत समय तक) खूब घुमा-फिराकर। उ.—सूर स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाई—५१०।

रिंगाना, रिंगानो—क्रि. स. [सं. रिंगण] (१) रेंगने को प्रवृत्त करना। (२) धीरे धीरे चलाना। (३) बहुत समय तक घुमाना-फिराना।

रिंगावत—क्रि. स. [हिं. रिंगाना] रेंगने-जैसा धीरे-धीरे चलाते हैं। उ.—कबहुँ कान्ह-कर छाँड़ि नंद पग द्वैक रिंगावत—१०-१२२।

रिंगावै—क्रि. स. [हिं. रिंगाना] धीरे धीरे चलाती है। उ.—कबहुँक पल्लव पानि गहावै, आँगन माँझ रिंगावै—१०-१३०।

रिंग्यो, रिंग्यौ—क्रि. अ. [हिं. रिंगना] रेंग कर आया। उ.—मनहुँ बिबर तें उरग रिंग्यौ तकि गिरि के संधि थली—२०७१।

रिंद—वि. [फ़ा.] (१) उदार। (२) मनमौजी।

रिआयत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कृपा। (२) छूट।

रिआया—संज्ञा स्त्री. [अ.] प्रजा।

रिक्त—वि. [सं.] (१) खाली, शून्य। (२) निर्धन।

रिक्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] रिक्त होने का भाव।

रिखभ—संज्ञा पुं. [सं. ऋषभ] बैल।

रिचा—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋचा] ऋचा।

रिच्छ, रिछ—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष] भालू।

रिछराज, रिछराजा—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्षराज] जांबवान। उ.—ताको मारि सिंह मीन लै गयौ, सिंह हत्यो रिछराजा—१० उ०-२६।

रिजाली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. रजील = नीच] निर्लज्जता।

रिजु—वि. [सं. ऋजु] (१) सीधा। (२) सुगम। (३) सज्जन। (४) प्रसन्न। (५) ईमानदार।

रिझई—क्रि. स. [हिं. रिझाना] रिझा ली। उ.—(क) सूर स्याम ऐसे मोहिं रिझई—१२०९। (ख) मिटयो काम तनु ताम रिझई मदन गोपाल—२१५१।

रिझए—क्रि. स. [हिं. रिझाना] रिझा लिये, प्रसन्न या अनुकूल किये। उ.—(क) कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन बिमल-बिमल जस गाइ—१-१५५। (ख) सूरज प्रभु सेवा करि रिझए—पृ० ३२१ (३)।

रिझकवार—वि. [हिं. रीझना + वार] रीझनेवाला, मुग्ध या प्रसन्न होनेवाला।

रिझयो, रिझयौ—क्रि. स. [हिं. रिझाना] अनुकूल या प्रसन्न कर लिया। उ.—सूरदास प्रभु बिबिध भाँति करि मन रिझयौ हरि पी को।

रिझवत—क्रि. स. [हिं. रिझाना] रिझाते या प्रसन्न करते हो। उ.—बिबिध बचन सुदेस बानी इहाँ रिझवत काहि—२८५०।

रिझवति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. रिझाना] रिझाती या मुग्ध करती है। उ.—आपुन रीझि कंत को रिझवति यह जिय गर्व बढ़ावति—पृ० ३५१ (७२)।

रिझवार—संज्ञा पुं. [हिं. रीझना + वार] (१) रीझने या मोहित होनेवाला। (२) प्रसन्न या अनुकूल होनेवाला। (३) प्रेम या अनुराग करनेवाला। (४) गुण का आदर करनेवाला।

रिझाई—क्रि. स. [हिं. रिझाना] मुग्ध कर लिया। उ.—सूर स्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई (हो)—७००।

रिझाउ—क्रि. स. [हिं. रिझाना] मुग्ध करो। उ.—पालागौं ऐसी इन बातनि उनहीं जाइ रिझाउ—३०७२।

रिझाए—क्रि. स. [हिं. रिझाना] प्रसन्न या अनुकूल कर लिया। उ.—बिटप भंजि जमलार्जुन तारे, करि अस्तुति गोबिंद रिझाए—३८६।

रिझाना, रिझानो—क्रि. स. [सं. रंजन] (१) प्रसन्न या अनुकूल करना। (२) मुग्ध या मोहित करना।

रिझायल—वि. [हिं. रीझना + आयल] (१) रीझनेवाला। (२) अनुकूल या प्रसन्न होनेवाला।

रिझाव—संज्ञा पुं. [हिं. रीझना + आव] (१) मुग्ध या मोहित होने का भाव। (२) प्रसन्न या अनुकूल होने का भाव।

रिझावति—क्रि. स. [हिं. रिझावना] मुग्ध करती है। उ.—ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीन्हे।

रिझावना, रिझावनो—क्रि. स. [हिं. रिझाना] (१) प्रसन्न या अनुकूल करना। (२) मुग्ध, आसक्त या मोहित करना।

रिझावैं—क्रि. स. [हिं. रिझाना] प्रसन्न या अनुकूल कर लें। उ.—जल ही मैं सब बाँह टेकि कै देखहु स्याम रिझावैं—७९१।

रिझावै—क्रि. स. [हिं. रिझाना] मुग्ध करता है। उ.—तान की तरंग रस रसिक रिझावै (हो)—६२९।

रिझावौं—क्रि. स. [हिं. रिझाना] प्रसन्न या अनुकूल करूँ। उ.—कहा करौं, किहिं भाँति रिझावौं हौं तुमको सुंदर नँदलाल—१-१२७।

रिझै—क्रि. स. [हिं. रिझाना] मुग्ध करके। उ.—(क) रैनि नृत्यत रिझै पिय मन तड़ित तें छबि लसी—१८६२। (ख) सूर स्याम इहिं भाँति रिझै कै तुमहुँ अधर-रस लेहु—२३४३।

प्र०—रिझै लई—मुग्ध कर ली। उ.—तब भए स्याम बरस द्वादस के, रिझै लई जुवती वा छबि पर १०-३०१।

रिझौंहाँ—वि. [हिं. रीझ + औंहाँ] रीझनेवाला।

रिढ़ना, रिढ़नो—क्रि. अ. [हिं. कढ़िरना] अंग-दोष अथवा वैसे ही अन्य किसी कारण से घसिटते हुए चलना।

रितयौ, रितयौ—क्रि. स. [हिं. रितवना] खाली कर दिया। उ.—कुबुधि कमान चढ़ाइ कोप करि बुधि-तरकस रितयौ—१-६४।

रितवना, रितवनौ—क्रि. स. [हिं. रीता+ना] रीता या खाली करना।

रिताना, रितानौ—क्रि. स. [हिं. रीता] खाली करना।

रितु—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋतु] ऋतु। उ.—रितु आए कौ खेल कन्हैया सब दिन खेलत फाग—१०-३२८।

रितुवंती—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋतुमती] रजस्वला स्त्री।

रिद्धि, रिधि—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋद्धि] बढ़ती, समृद्धि।

रिद्धि-सिद्धि, रिधि-सिधि—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋद्धि सिद्धि] समृद्धि और वैभव।—उ.—तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं रिधि-सिधि फिरि-फिरि जाहीं—१-३२३।

रिन—संज्ञा पुं. [सं. ऋण] ऋण।

रिनिआँ, रिनियाँ, रिनी—वि. [हिं. ऋणी] ऋणी।

रिपु—संज्ञा पुं. [सं.] दुश्मन, शत्रु। उ.—तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै रिपु-तन-ताप हरै—१-१७।

रिपुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] शत्रुता, बैर।

रिपुमार—संज्ञा पुं. [सं. रिपु+मार=काम] कामदेव का नाश करनेवाले। उ.—गिरिसुत तिन पति विवश करन को अक्षत लै पूजत रिपुमार—२३११।

रिम—संज्ञा पुं. [सं. अरिम्] शत्रु, बैरी।

रिमझिम—संज्ञा स्त्री. [अनु.] छोटी-छोटी बूँदों की वर्षा, फुहार।

क्रि. वि.—वर्षा की छोटी-छोटी बूँदों से।

रिमहर—संज्ञा पुं. [सं. अरिम्+हर] शत्रु-नाशक।

रिमिका—संज्ञा स्त्री. [देश.] काली मिर्च की लता।

रियासत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) राज्य। (२) रईसी।

रिर, रिरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रार] हठ, जिद।

रिरना, रिरनौ, रिरिना, रिरिनौ—क्रि. अ. [अनु.] गिड़गिड़ाना।

रिरिहा—वि. [हिं. रिरना] गिड़गिड़ाकर याचना करने-वाला।

रिलना, रिलनौ—क्रि. अ. [हिं. रेलना] (१) घुसना, प्रवेश करना। (२) हिलना, मिलना, एक हो जाना।

रिवाज—संज्ञा पुं. [अ.] प्रथा, रीति, चलन।

रिश्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा.] नाता, संबंध।

रिश्तेदार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] नातेदार, संबंधी।

रिश्तेदारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] नाता, संबंध।

रिश्वत—संज्ञा स्त्री. [अ.] घूस, उत्कोच।

रिष—संज्ञा पुं. [सं. ऋषि] ऋषि।

रिषभ—संज्ञा पुं. [सं. ऋषभ] (१) बैल। (२) ऋषभदेव। उ.—बहुरौ रिषभ बड़े जब भए। नाभि राज दै बन कौ गए—५-२।

रिषभदेव—संज्ञा पुं. [सं. ऋषभदेव] ऋषभदेव जो राजा नाभि के पुत्र थे। उ.—रिषभदेव तब जन्मे आइ, राजा के गृह बजी बधाइ—५-२।

रिषय, रिषि—संज्ञा पुं. [सं. ऋषि] ऋषि। उ.—(क) सेष सारद रिषय नारद संत चिंतत सरन—१-३०८। (ख) प्रगटे रिषय सप्त अभिराम—३-८। (ग) रिषि समाधि महँ त्योंही रह्यौ, सृंगी रिषि सौं लरिकन कह्यौ—१-२९०।

रिषिराज—संज्ञा पुं. [सं. ऋषि+राज] श्रेष्ठ ऋषि। उ.—(क) महाराज रिषिराज राजमुनि देखत रहे लजाई—१-४०। (ख) महर भवन रिषिराज गए—१०-८५।

रिषीस्वर—संज्ञा पुं. [सं. ऋषि+ईश्वर] श्रेष्ठ ऋषि। उ.—च्यवन रिषीस्वर बहु तप कियौ—९-३।

रिष्ट—वि. [सं. हृष्ट] (१) प्रसन्न। (२) मोटा-ताजा।

रिष्यमूक—संज्ञा पुं. [सं. ऋष्यमूक] दक्षिण का एक पर्वत जहाँ श्रीराम ने सुग्रीव से मित्रता की थी।

रिस—संज्ञा स्त्री. [सं. रुष] गुस्सा, क्रोध। उ.—(क) रिस भरि गए परम किंकर तब पकरयौ छुटि न सकौं—१-१५१। (ख) सँटिया लिए हाथ नँदरानी थर थरात रिस गात—१०-३४१।

मुहा०—रिस मारना—क्रोध को रोकना। रिस निवारना—क्रोध दूर करना। रिस निवारि—क्रोध दूर करके, क्रोध दूर करो। उ.—अपनी रिस निवारि प्रभु पितु मन अपराधी सो परम गति पाई ७४।

रिसना, रिसनौ—क्रि. स. [हिं. रसना] किसी द्रव का छोटे छिद्रों से छनछन कर बाहर आना।

रिसवाना, रिसवानो—क्रि.स. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध होना।
रिसहा—वि. [हिं. रिस+हा] क्रोधी।
रिसहाई—वि. स्त्री. [हिं. रिसाया] क्रुद्ध, कुपित। उ.—(क) लखि लीनी तब चतुर नागरी ये मो पर सब हैं रिसहाई। (ख)जननी अतिहिं भई रिसहाई–१५४४।
रिसहाया—वि. [हिं. रिसाया] नाराज, क्रुद्ध।
रिसाइ—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध होकर। उ.—(क) नाहिं काँचौ कृपानिधि हौं करौ कहा रिसाइ—१-१०६। (ख) जसोदा ग्वालिनि गारी देति रिसाइ—५१०।
रिसात—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध होता है। उ.—कान्ह सौं आवत क्यों ऽब रिसात—३६६।
रिसाति—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध होती है। उ.—(क) कतहिं रिसाति जसोदा इन सौं—३५९। (ख) हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहिं—११८१।
रिसाना—क्रि. अ. [हिं. रिस+आना] क्रुद्ध होना।
क्रि. स.—किसी पर अप्रसन्न होना।
रिसानी—क्रि. अ. [हिं. रिसना] क्रुद्ध हुई। उ.—जसोदा एतो कहा रिसानी – १०-३४३।
रिसाने—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध हुए। उ.—(क) आपुहिं-आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने—१०-२१४। (ख) आपुस ही मैं सबै रिसाने—१०६०।
रिसानो—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध होना।
क्रि. स.—किसी पर क्रुद्ध होना, बिगड़ना।
रिसान्यो, रिसान्यौ—क्रि. स. [हिं. रिसाना] (किसी पर) क्रुद्ध हुआ। उ.—(क) सूर स्याम सँग मन उठि लाग्यौ मो पर बारंबार रिसान्यौ—१४६०। (ख) मोपर कहा रिसान्यौ—१६७१।
रिसायौ—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध हुआ। उ.—ध्रुव बिमाता-बचन सुनि रिसायौ—४-१०।
रिसाल—संज्ञा पुं. [अ. इरसाल] राज्य-कर।
रिसाला—संज्ञा पुं. [फ़ा.] घुड़सवारों की सेना।
रिसाहि—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध होती है। उ.—तनक दधि कारन जसोदा इतो कहा रिसाहि—३५०।
रिसि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रिस] क्रोध।
रिसिआना, रिसिआनो—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध या कुपित होना।
क्रि. स.—किसी पर क्रुद्ध होना।
रिसिक—संज्ञा स्त्री. [सं. रिषीक] तलवार।
रिसियाना, रिसियानो—क्रि. अ. [हिं. रिसाना] क्रुद्ध या कुपित होना।
क्रि. स.—किसी पर क्रुद्ध होना।
रिसैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. रिस] गुस्सा, क्रोध। उ.—खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ। हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ—१०-२४५।
रिसौहाँ—वि. [हिं. रिस+औहाँ] (१) कुछ-कुछ क्रुद्ध। (२) क्रोध से युक्त।
रिहा—वि. [फ़ा.] छूटा हुआ, मुक्त।
रिहाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] छुटकारा, मुक्ति।
रिहाए—क्रि. स. [हिं. रिहाना] मुक्त किये, छुड़ाये। उ.—सूर कृपालु भए करुनामय आपुन हाथ सों दूत रिहाए।
रिहाना, रिहानो—क्रि.स. [फ़ा.रिहा] छुड़ाना, मुक्त करना।
क्रि. अ.—छूटना, मुक्त होना।
रींधना, रींधनो—क्रि. स. [सं. रंधन] (भोजन) पकाना, राँधना।
री—अव्य. [सं. रे] (१) स्त्री के लिए संबोधन। उ.—(क) राम जू कहाँ गए री माता—९-४९। (ख) सखी री, काहैं गहरु लगावति—१०-२३। (ग) मैया री, मोहिं माखन भावै—१०-२६४। (घ) सुनि सुनि री तैं महरि जसोदा तैं सुत बड़ौ लड़ायौ—१०-३३९। (२) मादा पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि के लिए संबोधन। उ.—भृंगी री, भजि स्याम कमल-पद जहाँ न निसि कौ त्रास—१-३३९।
रीछ—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष] भालू। उ.—रीछ लंगूर किलकारि लागे करन—९-१३८।
रीछराज—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष+राज] जामवंत।
रीझ—संज्ञा स्त्री. [सं. रंजन] (१) प्रसन्न होने की क्रिया या भाव। उ.—तनक रीझ पै देत सकल तन—१०-१५२। (२) मुग्ध, आसक्त या मोहित होने की क्रिया या भाव।

क्रि. अ. [हिं. रीझना] प्रसन्न होकर। उ.—रे मूरख, तू कहा पढ़ायौ कैसे देउँ तोहिं रीझ—सारा. ११८।

रीझत—क्रि. अ. [हिं. रीझना] प्रसन्न या अनुकूल होता है। उ.—जौ रीझत नहिं नाथ गुसाईं तौ कत जात जँच्यौ—१७४।

रीझति—क्रि. अ. [हिं. रीझना] मुग्ध या मोहित होती है। उ.—रीझति नारि कहति मथुरा की—सारा. ५०४।

रीझना, रीझनो—क्रि. अ. [सं. रंजन] (१) प्रसन्न या अनुकूल होना। (२) मुग्ध या मोहित होना।

रीझहीं—क्रि. अ. [हिं. रीझना] प्रसन्न या अनुकूल होते हैं। उ.—कबहुँ किएँ भक्ति हू के न ये रीझहीं —८-८।

रीझि—क्रि. अ. [हिं. रीझना] (१) प्रसन्न या अनुकूल होकर। उ.—सरबस प्रभु रीझि देत तुलसी कैं पाता —१-१२३।

प्र०—रीझि जाहीं—प्रसन्न हो जाते हैं। उ.—कबहुँ किएँ बैर के रीझि जाहीं—८-८।

(२) मुग्ध या मोहित होकर। उ.—रीझि तेहि रूप दियौ अंग सूधौ कियौ—२५८४।

रीझीं—क्रि. अ. [हिं. रीझना] मुग्ध या मोहित हुईं। उ.—ब्रज-ललना देखति गिरिधर कौं। एक-एक अँग-अँग पर रीझीं, अरुझीं मुरलीधर कौं—५४७।

रीझी—क्रि. अ. [हिं. रीझना] मुग्ध या मोहित हो गयी। उ.—देखत रीझी घोषकुमारी—७९९।

रीझे—क्रि. अ. [हिं. रीझना] (१) प्रसन्न हो गये। उ.—सूरदास प्रभु करत कलेवा रीझे स्याम सुजान—१०-२१२। (२) मुग्ध या मोहित हो गये। उ.—कैधौं मृग-जूथ जुरे मुरली-धुनि रीझे—६४२। (ख) सूर-प्रभु सर्वज्ञ स्वामी देखि रीझे भारि—७८१। (ग) कहा देखि रीझे राधा सौं चंचल नैन बिसालहिं —१० उ०-१०१।

रीझै—क्रि. अ. [हिं. रीझना] प्रसन्न या मुदित होती है। उ.—मोहन-मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै—१०-२१५।

रीझौं—क्रि. अ. [हिं. रीझना] प्रसन्न या अनुकूल होऊँगा। उ.—ऐसैं नहिं रीझौं मैं तुम सौं—७९१।

रीठ, रीठि—संज्ञा स्त्री. [सं. रिष्ट] तलवार।

वि.—(१) अशुभ। (२) बुरा।

रीठा—संज्ञा पुं. [सं. रिष्ट, प्रा. रिट्ठ] एक वृक्ष या उसका छोटा और काला फल।

रीढ़—संज्ञा स्त्री. [सं. रीढ़क] पीठ की खड़ी हड्डी, मेरुदंड।

रीत—संज्ञा स्त्री. [सं. रीति] (१) प्रकार, ढंग। (२) रिवाज, प्रथा।

रीतना, रीतनो—क्रि. अ. [सं. रिक्त, प्रा. रित्त+हिं. ना] खाली या रिक्त होना।

क्रि. स.—खाली या रिक्त करना।

रीता—वि. [सं. रिक्त, प्रा. रित्त] खाली, रिक्त।

रीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ढंग, प्रकार, ढब। उ.—(क) किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं घातक रीति ठटी—१-९८। (ख) जा दिना तैं जन्म पायौ यहै मेरी रीति—१-१०६। (ग) मंत्री काम क्रोध निज दोऊ अपनी-अपनी रीति—१-१४१। (घ) कहाँ वह प्रीति कहाँ वह बिछुरन कहाँ मधुबन की रीति —२७१६। (२) रस्म-रिवाज, परिपाटी उ.—(क) नई रीति इन अबहिं चलाई १०४१। (३) स्थिति, दशा। उ.—भई रीति हठि उरग छछूंदरि छाँड़े बनै न खात—३०५७। (४) नियम। (५) साहित्य में वर्णन की वह वर्ण-योजना जिससे उसमें ओज, प्रसाद या माधुर्य आता है। (६) स्वभाव।

रीती—वि. स्त्री. [हिं. रीता] खाली, रिक्त। उ.—(क) देखै जाइ मटुकिया रीती—१०-२७१। (ख) गहि गहि पानि मटुकिया रीती उरहन कैं मिस आवति जाति—१०-३३२।

संज्ञा स्त्री. [सं. रीति] (१) ढंग। (२) परिपाटी।

रीते—वि. बहु. [हिं. रीता] खाली, रिक्त।

रीतै—क्रि. स. [हिं. रीतना] खाली या रिक्त करता है। उ.—रीतै, भरै, भरे पुनि ढारै—१-१०५।

रीतौ—वि. [हिं. रीता] खाली, रिक्त । उ.—पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग—१-३३२ ।

रीत्यो, रीत्यौ—क्रि. अ. [हिं. रीतना] खाली या रिक्त कर दिया है । उ.—हमहूँ समुझि परी नीके करि यहै असित तनु रीत्यौ—२८८४ ।

रीधि सीधि—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋद्धि-सिद्धि] ऋद्धि-सिद्धि ।

रीस—संज्ञा स्त्री. [हिं. रिस] गुस्सा, क्रोध ।

संज्ञा स्त्री. [सं. ईर्ष्या] (१) डाह, ईर्ष्या । (२) स्पर्द्धा, होड़ । उ.—कह्यौ हिमालय सिव प्रभु ईस । हमकौं उनकौं कैसी रीस ।

रीसना, रीसनो—क्रि. अ. [हिं. रिस] क्रुद्ध होना ।

रुंज—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का बाजा । उ. (क) रुंज मुरज डफ झाँझ झालरी यंत्र पखावज तार—२४३७ । (ख) बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ रुंज मुरुंज बाँसुरि ध्वनि थोरी—२४४८ ।

रुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिना सिर का धड़, कबंध । (२) शरीर जिसके हाथ-पैर कटे हों ।

रुंदाइ—क्रि. स. [हिं. रुँदाना] पैरों से कुचलवा कर । उ.—मारौं गज तैं रुँदाइ मनहिं यह अनुमान्यो —२४७५ ।

रुंदाऊँ—क्रि. स. [हिं. रुदाना] पैरों से कुचलवा दूँगा । उ.—रंगभूमि गज चरन रुँदाऊँ—२४५९ ।

रुँदाना, रुँदानो, रुँदवाना, रुँदवानो—क्रि. स. [हिं. रौंदना का सक. या प्रेर.] पैरों से कुचलवाना, खुँदवाना ।

रुँधती—संज्ञा स्त्री. [सं. अरुंधती] वशिष्ठ मुनि की स्त्री ।

रुँधना, रुँधनो—क्रि. अ. [सं. रुद्ध+ना] (१) मार्ग न मिलने से रुकना या अटकना । (२) फँसना, उलझना । (३) काम में लगना । (४) रोक या रक्षा के लिए कँटीली झाड़ी आदि से घेरा जाना ।

रुंधि—क्रि. अ. [हिं. रुँधना] फाँसकर, बंद करके । उ.—ब्रज पिंजरी रुँधि मानो राखे निकसन को अकुलात—२७०३ ।

रु—अव्य. [हिं. अरु] और ।

रुआ—संज्ञा पुं. [सं. रोम] (१) शरीर के छोटे बाल, रोम । (२) सेमर के फूल का घूआ ।

रुआना, रुआनो—क्रि. स. [हिं. रुलाना] रुलाना ।

रुआब—संज्ञा पुं. [हिं. रोब] (१) धाक । (२) डर ।

रुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूई] कपास, रूई । उ.—यह संसार सुआ-सेमर ज्यौं सुन्दर देखि लुभायौ । चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि हाथ कछू नहिं आयौ—१-३३५ ।

रुगेंदा—वि. [हिं. रोना+ऐंदा] रुआसा ।

रुकना, रुकनो—क्रि. अ. [हिं. रोक] (१) मार्ग न मिलने से अटकना या ठहरना । (२) स्वेच्छा से ठहर जाना या आगे न बढ़ना । (३) सोच-विचार के कारण आगे काम न करना । (४) काम आगे न होना । (५) क्रम या सिलसिला बंद हो जाना ।

रुकमिनि, रुकमिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रुक्मिणी] रुक्मिणी जो श्रीकृष्ण की पहली पटरानी थी ।

रुकवाना, रुकवानो, रुकाना, रुकानो—क्रि. स. [हिं. रुकना का सक. या प्रेर.] रुकने या रोकने को प्रवृत्त करना ।

रुकाव—संज्ञा पुं. [हिं. रुकना] रुकावट, अटकाव ।

रुकावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. रुकना] (१) रोकने की क्रिया या भाव । (२) बाधा, अड़चन ।

रुकुम—संज्ञा पुं. [सं. रुक्म] रुक्म जो रुक्मिणी का भाई और श्रीकृष्ण का साला था ।

रुकुमि, रुकुमी—संज्ञा पुं. [सं. रुक्मी] रुक्मी जो रुक्मिणी का भाई और श्रीकृष्ण का साला था ।

रुक्का—संज्ञा पुं. [अ. रुक्कअ] छोटा पत्र या पुरजा । उ.—एक उपाय करौं कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ । पतित-उधारन नाम सूर प्रभु यह रुक्का पहुँचाऊँ—९-१७२ ।

रुक्ख—संज्ञा पुं. [हिं. रूख] पेड़, वृक्ष ।

संज्ञा पुं. [हिं. रुख] रुख ।

रुक्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना, स्वर्ण । (२) रुक्मिणी का एक भाई जो उसका विवाह शिशुपाल से करना चाहता था । रुक्मिणी-हरण के अवसर पर रुक्म के विरोध करने पर श्रीकृष्ण ने इसके बाल मूड़ कर छोड़ दिया था । उ.—कुंदनपुर को भीषम राई । ....। रुक्म आदि ताके सुत पाँच—१० उ.-७ ।

रुक्मिणि, रुक्मिणी, रुक्मिनि, रुक्मिनी—संज्ञा स्त्री,

[सं. रुक्मिणी] श्रीकृष्ण की पहली पटरानी जो विदर्भ के राजा भीष्मक की पुत्री थी। उ.—कुंदनपुर को भीषम राई।.........। रुक्मिणी पुत्री हरि रँग राँचे—१० उ.-७।

रुक्मी—संज्ञा पुं. [सं. रुक्मिन्] रुक्मिणी का एक भाई।

रुक्ष—वि. [सं. रूक्ष] (१) जिसमें चिकनाहट या स्निग्धता न हो, रूखा। (२) जिसमें रसिकता न हो। (३) जिसमें रस न हो। (४) जिसमें जल या तरी न हो।

रुक्षता—संज्ञा स्त्री. [सं. रूक्षता] (१) रूखापन। (२) सूखापन। (३) अरसिकता।

रुख—संज्ञा पुं. [फ़ा. रुख़] (१) मुख का भाव, आकृति। (२) आकृति या चेष्टा से प्रकट इच्छा। उ.—(क) जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौं कहति बीर के रुख की—४२५। (ख) जितहीं जितहिं रुख करै लड़ैती तितहीं आपुन आवै—२२७५।

मुहा०—रुख देना—ध्यान देना। रुख फेरना या बदलना—ध्यान न देना।

(३) कृपादृष्टि।

मुहा०—रुख फेरना या बदलना—अप्रसन्न होना।

(४) सामने या आगे का भाग। (५) शतरंज का एक मोहरा जो 'हाथी' कहलाता है।

क्रि. वि.—(१) तरफ, ओर। (२) सामने।

संज्ञा पुं. [हिं. रूख] पेड़, वृक्ष।

वि. [हिं. रूखा] (१) सूखा, शुष्क। (२) अरसिक।

रुखनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. रुख + नि] इच्छा के अनुकूल। उ.—धन्य नंद धनि मातु जसोमति चलत जाके रुखनि—९८१।

रुखसत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) विदाई। (२) छुट्टी।

रुखाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूखा] (१) रूखापन, उदासीनता। उ.—कै तौ रुखाई छाँड़िए—१८०९। (२) सूखापन, शुष्कता।

रुखानल—संज्ञा पुं. [सं. रोषानल] क्रोधाग्नि।

रुखाना, रुखानो—क्रि. अ. [हिं. रूखा] (१) चिकना न रह जाना। (२) सूख जाना। (३) उदास, उदासीन या कठोर हो जाना।

रुखानी—संज्ञा स्त्री. [सं. रोक + खनित्र] एक औजार।

रुखावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूखा] रूखापन।

रुखिता—संज्ञा स्त्री. [सं. रुषिता] मानवती नायिका।

रुखौंहाँ—वि. [हिं. रूखा] रूखेपन से युक्त।

रुग्ण, रुग्न—वि. [सं. रुग्ण] रोगी।

रुग्णता, रुग्नता—संज्ञा स्त्री. [सं. रुग्ण] रोगी होने का भाव।

रुच—संज्ञा स्त्री. [सं. रुचि] प्रवृत्ति, इच्छा।

रुचना, रुचनो—क्रि. अ. [सं. रुचि] भला लगना।

रुचि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रवृत्ति, झुकाव, इच्छा। उ.—कोटि लालच जौ दिखावहु नाहिनै रुचि आन—१-१०६। (२) प्रीति, चाह। उ.—हम रुचि करी सूर के प्रभु सौं दूजो मन न सुहाइ—३२१०। (३) सुख, आनंद। उ.—कोटि देहु तौ रुचि नहिं मानौं बिनु देखे नहिं जैहौं—१०-३५।

प्र०—रुचि करि—बहुत प्रसन्न या हर्षित होकर। उ.—कान्हैं लै जसुमति कोरा तैं रुचि करि कंठ लगाए—१०-५३।

मुहा०—रुचि-रुचि—बहुत चाव या उमंग से।

(४) छवि, शोभा। उ.—सुख मैं सुख औरै रुचि बाढ़ति हँसत देत किलकारी—१०-९१। (५) भूख, भोजन की इच्छा। (६) स्वाद।

प्र०—रुचि करि—स्वाद लेकर। उ. बन फल लै मँगाइ कै रुचि करि लागे खान—४३७। (७) एक अप्सरा।

वि.—फबता हुआ, शोभा के अनुकूल।

क्रि. वि.—सुख, सुविधा या इच्छा के अनुसार। उ.—तेल लगाइ कियौ रुचि मर्दन—१-५२।

रुचिकर—वि. [सं.] अच्छा लगनेवाला।

रुचिकारक—वि. [सं.] (१) अच्छा लगनेवाला। (२) स्वादिष्ट।

रुचिकारि, रुचिकारी—वि. [सं. रुचिकारिन्, हिं. रुचिकारी] (१) अच्छा लगने वाला, मनोहर। उ.—कोउ निरखि कटि पीत काछनी मेखला रुचिकारि—६३४। (२) स्वादिष्ट।

रुचिमान—वि. [सं. रुचि + हिं. मान] सुंदर, मनोहर।

रुचिर—वि. [सं.] (१) सुंदर, मनोहर। उ.—रुचिर

रोमावली हरि कैं चारु उदर सुदेस—६३४ (२) मीठा।
रुचिरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदर होने का भाव।
रुचिराइ, रुचिराई—संज्ञा स्त्री. [सं. रुचिर] सुंदरता।
रुची—संज्ञा स्त्री. [सं. रुचि] (१) इच्छा। (२) स्वाद।
रुचै—क्रि. अ. [हिं. रुचना] अच्छा या प्रिय लगे। उ. —(क) कछू हौंस राखै जनि मेरी जोइ जोइ मोहिं रुचै री—१०-१७६। (ख) जोइ जोइ रुचै सोइ तुम मोपैं माँगि लेहु किन तात—१०-३०८।
रुच्छ—वि. [हिं. रुक्ष] (१) रूखा। (२) अप्रसन्न।
संज्ञा पुं. [हिं. रूख] पेड़, वृक्ष।
रुज—संज्ञा पुं. [सं. रुज्] (१) कष्ट। (२) घाव। (३) रोग। (४) एक बाजा।
रुजा—संज्ञा स्त्री. [सं. रुज] (१) रोग। (२) पीड़ा।
रुजाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] अनेक रोग या कष्ट।
रुजी—वि. [हिं. रुज] रोगी, अस्वस्थ।
रुजू—वि. [अ. रुजूअ] (१) प्रवृत्त। (२) किसी ओर ध्यान लगाये।
रुझना, रुझनो—क्रि. अ. [सं. रुद्ध, प्रा. रुज्झ] घाव भरना।
क्रि. अ. [हिं. उलझना] उलझना।
रुझान—संज्ञा पुं. [अ. रुजहान] प्रवृत्ति।
रुठ—संज्ञा पुं. [सं. रुष्ट, प्रा. रुट्ठ] गुस्सा, क्रोध।
रुठना, रुठनो—क्रि. अ. [हिं. रूठना] रूठ जाना।
रुठाना, रुठानो—क्रि. स. [हिं. रूठना] अप्रसन्न कर देना।
रुठायहौ—क्रि. स. [हिं. रुठाना] अप्रसन्न करोगे। उ. सुनहु सूरज प्रभु अबके मनाइ ल्याउँ बहुरि रुठायहौ जू तौ मेरी राम राम है जू—२२४१।
रुणित—वि. [सं.] बजता या शब्द करता हुआ। उ.—चरन रुणित नूपुर ध्वनि मानो सूर बिहरत है बाल मराल।
रुत—संज्ञा स्त्री. [सं. ऋतु] ऋतु।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) कलरव। (२) ध्वनि।
रुतबा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) पद। (२) प्रतिष्ठा।
रुदंती—वि. [हिं. रुदना] रोती-बिलखती हुई।
रुदति—क्रि. वि. [हिं. रुदना] रोती-बिलखती। उ.—सकल सुरभि यूथ दिन प्रति रुदति पुर दिसि धाइ—३४२४।
रुदन—संज्ञा पुं. [सं. रोदन] रोने की क्रिया, क्रंदन। उ.—(क) मीड़त हाथ सीस धुनि ढोरत रुदन करत नृप पारथ—१-१२७। (ख) घरी एक सजन कुटंब मिलि बैठे रुदन बिलाप कराहीं—१-३१९। (ग) घरे न धीर अनमने रुदन, बल सो हठ करनि परे—पृ. ३३१ (५)।
रुदना, रुदनो—क्रि. अ. [हिं. रुदन] रोना, बिलापना।
रुदराच्छ, रुदराछ—संज्ञा पुं. [सं. रुद्राक्ष] रुद्राक्ष।
रुदित—वि. [सं.] रोता हुआ।
रुद्ध—वि. [सं.] (१) घेरा या रोका हुआ। (२) बंद, मुँदा हुआ।
यौ०—रुद्धकंठ—जो प्रेमावेश आदि के कारण बोल न सके।
रुद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक गणदेवता जो क्रोध-रूप माने जाते हैं। इनकी संख्या ग्यारह है। उ.—तब इक पुरुष भौंह तैं भयौ, होत समय तिन रोदन ठयौ। ताकौं नाम रुद्र बिधि राख्यौ—३-७। (२) ग्यारह की संख्या। (३) शिव का एक रूप। (४) रौद्र रस।
वि.—डरावना, भयंकर।
रुद्रक—संज्ञा पुं. [सं. रुद्राक्ष] रुद्राक्ष।
रुद्रतेज—संज्ञा पुं. [सं. रुद्र+तेज] स्वामिकार्तिक।
रुद्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव। उ.—रुद्रपति, छुद्रपति लोकपति वोकपति धरनिपति, गगनपति अगमबानी—१५२२।
रुद्राक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष का बीज जिसकी माला शैव लोग पहनते हैं।
रुद्राणी, रुद्रानी—संज्ञा स्त्री. [सं. रुद्राणी] पार्वती।
रुधिर—संज्ञा पुं. [सं.] रक्त, लहू। उ.—रुधिर मेद मल-मूत्र कठिन कुच उदर गंध गंधात—२-२४।
रुधिराशी—वि. [सं.] रक्त पीनेवाला।
रुनकझुनक—संज्ञा स्त्री [अनु.] नूपुर आदि का रुनझुन शब्द। उ.—रुनकझुनक कर कंकन बाजै—१०-२९९।
रुनझुन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] नूपुर आदि की झनकार। उ.—(क) कटि किंकिनि रुनझुन सुनि तन की हुंस

करत किलकारी। (ख) रुनझुन करति पाइँ पैजनियाँ —१०-१०६।

रुनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. अरुणाई] लाली, अरुणता।

रुनित—वि. [सं. रुणित] बजता या झनकार करता हुआ। उ.—चरन रुनित नूपुर कटि किंकिन करतल ताल रसाल—पृ. ३५० (६४)।

रुनी—संज्ञा पुं. [देश.] घोड़ों की एक जाति।

रुनुक, रुनुकझुनुक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] नूपुर आदि की झनकार या रुनझुन ध्वनि। उ.—(क) रुनुक झुनुक नूपुर पग बाजत धुनि अति ही मन-हरनी—१०-१२३ (ख) सूरदास प्रभु गिरिवरधर को चली मिलन गजराजगामिनी झनक रुनुक बन धाम—१९०२।

रुनुझुनु—संज्ञा स्त्री. [अनु.] नूपुर आदि की झनकार।

रुपना, रुपनो—क्रि. अ. [हिं. रोपना] (१) रोपा या लगाया जाना। (२) डट जाना, अड़ जाना।

रुपमनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूपवती] सुंदरी (स्त्री)।

रुपया—संज्ञा पुं. [सं. रुप्य] (१) चाँदी का एक सिक्का जो पहले सोलह आने के बराबर था और अब सौ नये पैसे के बराबर है। (२) धन-सम्पत्ति।

मुहा०—रुपया उड़ाना—खूब धन खर्च करना। रुपया जोड़ना—धन जमा करना। रुपया पानी में फेंकना—व्यर्थ धन खरचना।

यौ०—रुपया-पैसा—धन-सम्पत्ति।

रुपहरा, रुपहला—वि. [हिं. रूपा = चाँदी, रुपहला] चाँदी जैसे उज्ज्वल रंग का।

रुपैया—संज्ञा पुं. [हिं. रुपया] रुपया।

रुपौला—वि. [हिं. रुपहला] रुपहला।

रुबाइ, रुबाई—संज्ञा स्त्री. [अ.] वह कविता जिसमें चार मिसरे हों।

रुमावलि, रुमावली—संज्ञा स्त्री. [सं. रोमावली] नाभि से पेट तक गयी हुई रोयों की पंक्ति।

रुरना, रुरनो—क्रि. अ. [देश.] छा जाना।

रुराइ, रुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूरा] सुंदरता। उ.—मैं सब लिखि सोभा जो बनाई। सजल जलद तन बसन कनक रुचि उर बहु दाम रुराई।

रुरुआ—संज्ञा पुं. [हिं. ररना, ररुआ] एक तरह का उल्लू जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि यदि वह किसी का नाम लेकर रटने लगे तो वह मर जाता है।

रुरुच्छ—वि. [सं.] रूखा, रुक्ष।

रुलति क्रि. अ. [हिं. रुलना] हिलती-डोलती है। उ. —बेनी पीठि रुलति झकझोरी—६७२।

रुलना, रुलनो—क्रि. अ. [सं. लुलन] (१) मारे-मारे फिरना या घूमना। (२) इधर-उधर हिलना-डोलना।

रुलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोना] (१) रोने की क्रिया या भाव। (२) रोने की प्रवृत्ति या आवेग।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रुलना] हिलना-डोलना। उ. —नील, सेत अरु पीत लाल मनि लटकन भाल रुलाई—१०-१०८।

रुलाना, रुलानो—क्रि. स. [हिं. रोना का प्रेर.] रोने में प्रवृत्त कराना।

क्रि. स. [हिं. रुलना] (१) इधर-उधर घुमाना-फिराना। (२) हिलाना-डोलाना। (३) नष्ट करना।

रुवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. रोवाँ] सेमल के फूल का घूआ।

रुवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रुलाई] रोने की क्रिया या भाव।

रुष—संज्ञा पुं. [सं.] गुस्सा, क्रोध।

संज्ञा पुं. [हिं. रुख] (१) चेहरे का भाव। (२) चेष्टा या आकृति द्वारा प्रकट इच्छा। (३) शतरंज का 'हाथी' नामक मोहरा।

रुषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुस्सा, क्रोध।

रुष्ट—वि. [सं.] क्रुद्ध, अप्रसन्न।

रुष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अप्रसन्नता।

रुष्ट-पुष्ट—वि. [सं. हृष्टपुष्ट] मोटा-ताजा।

रुष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुस्सा, क्रोध।

रुसना, रुसनो—क्रि. अ. [हिं. रूसना] नाराज होना।

रुसवा—वि. [फ़ा.] बदनाम, निंदित।

रुसवाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] बदनामी।

रुसित—वि. [सं. रुषित] अप्रसन्न, क्रुद्ध।

रुस्तम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) फारस का एक प्रसिद्ध वीर। (२) वीर पुरुष।

मुहा०—छिपा रुस्तम—वह जो देखने में सीधा-

सादा और साधारण हो, परन्तु काम पड़ने पर बहुत गुणी, योग्य और कुशल सिद्ध हो।

रुह्—वि. [सं.] उत्पन्न।

रुहठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोहट=रोना] रूठने की क्रिया या भाव। उ.—रुहठि करै, तासौं को खेलै —१०-२४५।

रुहिर—संज्ञा पुं. [सं. रुधिर, प्रा. रुहिर] खून, रक्त।

रुहिराता—वि. [प्रा. रुहिर+हिं. राता] खून छलकने से लाल हो जानेवाला।

रुहिराते—वि. [हिं. रुहिराता] जो खून छलकने से लाल हो गया हो। उ.—उर नख-छत कंकन छत पाछे सोभित है रुहिराते—२१३६।

रूँगटा—संज्ञा पुं. [हिं. रोंगटा] रोम, रोआँ।

रूँगटाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोंगटा+वाली] भेंड़।

रूँदना—क्रि. स. [हिं. रौंदना] पैरों से कुचलना।

रूँध—वि. [सं. रुद्ध] रुका हुआ, अवरुद्ध।

रूँधना, रूँधनो—क्रि. स. [सं. रुंधन] (१) कटीली झाड़ी आदि से घेरना, बाढ़ लगाना। (२) चारो ओर से घेरकर रोकना। (३) मार्ग बन्द करना।

रूँधे—क्रि. स. [हिं. रूँधना] बंद या अवरुद्ध कर दिये। उ.—सुरति के दस द्वार रूँधे, जरा घेरचौ आइ—१-३१६।

रूआ—संज्ञा पुं. [हिं. घूआ] कपास का घूआ।

रूइ, रूई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोवाँ, रोईं, रूई] कपास के कोष के अन्दर का घूआ जिसके चिटकने पर कोमल रेशे के लच्छे निकलते हैं। उ.—पवन लागत ज्यौं रूइ उड़ाइ—११-३।

मुहा०—रूई का गाला—बहुत कोमल और सफेद। रूई की तरह तूमना—(१) अच्छी तरह नोचना। (२) बहुत मारना-पीटना। रूई की तरह धुनना या धुनकना—बहुत मारना-पीटना। रूई सा—बहुत कोमल।

रूख—संज्ञा पुं. [सं. वृक्ष, प्रा. रुक्ख] पेड़, वृक्ष। उ.—(क) बूझो द्रुम प्रति रूख राय कोउ कहै न पिय को नाउँ—१८१५। (ख) कै ए दोऊ रूख हमारे यमलार्जुन तोरे—३०८१। (ग) पाके फल वै देखि मनोहर चढ़े कृपा करि रूख—३२२७।

वि. [हिं. रूखा] (१) शुष्क। (२) कठोर।

रूखड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. रूख] पेड़, वृक्ष।

रूखना, रूखनो—क्रि. अ. [हिं. रूसना] रूठना।

रूखरा—संज्ञा पुं. [हिं. रूखड़ा] पेड़, वृक्ष।

वि. [हिं. रूखा] (१) शुष्क। (२) कठोर।

रूखा—वि. [सं. रुक्ष, प्रा. रुक्ख] (१) जो चिकना न हो। (२) जिसमें चिकना पदार्थ न लगा हो। (३) जो रुचिकर, चटपटा या स्वादिष्ट न हो।

मुहा०—रूखा-सूखा—जिसमें घी-तेल आदि रुचिकर या स्वादिष्ट बनानेवाले पदार्थ न पड़े हों।

(४) सूखा, नीरस। (५) जिसमें प्रेम या रसिकता न हो। (६) कठोर, परुष, अनुदारतापूर्ण। उ.—लंगर ढीठ, गुमानी, टूंडक, महा मसखरा रूखा—१-१८६।

मुहा०—रूखा पड़ना या होना—(१) बेमुरौव्वती करना। (२) क्रुद्ध या अप्रसन्न होना।

(७) विरक्त, उदासीन।

रूखापन—संज्ञा पुं. [हिं. रूखा+पन] (१) चिकनाहट का अभाव। (२) शुष्कता। (३) नीरसता। (४) अरसिकता। (५) व्यवहार या वचन की कठोरता। (६) उदासीनता। (७) स्वादहीनता।

रूखी—वि. स्त्री. [हिं. रूखा] (१) जिसमें चिकने पदार्थ न लगे हों। उ.—षटरस भोजन त्यागि कहौ को रूखी रोटी खात—पृ. ३२१। (२) कठोर, परुष। उ.—अब कैसे रहति स्याम रँग राती ए बातैं सुनि रूखी—३०६९।

रूखे—वि. [हिं. रूखा] (१) कठोर, अप्रसन्न।

मुहा०—रूखे हो—अप्रसन्न या क्रुद्ध हो। उ.—हमहीं पर पिय रूखे हो—२१४१। ह्वै गए रूखे—अप्रसन्न या क्रुद्ध हो गये। उ.—यह सुनि कै ह्वै गए वै रूखे—८९६।

रूखो, रूखौ—वि. [हिं. रूखा] बिना चिकनाई का। उ.—साँच-झूठ करि माया जोरी आपुन रूखो खातौ —१-३०२।

रूचना, रूचनो—क्रि. स. [हिं. रचना] रुचिकर लगना।

रूझना, रूझनो—क्रि. अ. [हिं. उलझना] उलझना।

रूठ—संज्ञा स्त्री. [सं. रुष्टि, प्रा. रुट्ठि] (१) रूठने की क्रिया या भाव। (२) गुस्सा, क्रोध।

रूठन - संज्ञा स्त्री. [हिं. रूठना] (१) रूठने की क्रिया या भाव। (२) क्रोध, अप्रसन्नता।

रूठना—क्रि. अ. [सं. रुष्ट, प्रा. रुट्ठ + हिं. ना] अप्रसन्न या क्रुद्ध होना, रूसना।

रूठनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूठना] (१) रूठने की क्रिया या भाव। (२) कोप, अप्रसन्नता।

रूठनो—क्रि. अ. [हिं. रूठना] रूसना।

रूठब - संज्ञा स्त्री. [हिं. रूठना] रूठने की क्रिया या भाव। उ.—तोहिं किन रूठब सिखई प्यारी–२२०१।

रूठि—क्रि. अ. [हिं. रूठना] क्रुद्ध या अप्रसन्न होकर। उ.—(क) ताकौ काल रूठि का करिहै जो चित चरन धरे—१-८२। (ख) हौं जु रही हठि रूठि मौन धरि —२७३६। (ग) कितिक कठिन सुरतरु प्रसून की, या कारन तू रूठि रही री—१० उ.-३०।

रूठेहिं—वि. सवि. [हिं. रूठना] रूठे हुए या अप्रसन्न (व्यक्ति) को। उ.—रूठेहिं आदर देत सयाने इहै सूरज सगाइए—१६८८।

रूड़, रूड़ा—वि. [हिं. रूरा] श्रेष्ठ, उत्तम।

रूढ़—वि. [सं.] (१) सवार, आरूढ़। (२) प्रसिद्ध, प्रचलित। (३) गँवार, उजड्ड। (४) कठिन, कठोर। (५) अविभाज्य (संख्या)।

संज्ञा पुं.—वह शब्द जो दो शब्दों या शब्द और प्रत्यय के योग से बना हो, परंतु जिसके खंड सार्थ न हों।

रूढ़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसिद्ध, प्रचलित।

रूढ़ि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्पत्ति। (२) प्रसिद्धि, ख्याति। (३) प्रथा, चाल। (४) विचार, निश्चय। (५) रूढ़ शब्द की शक्ति जिससे वह खंडों के सार्थ न होने पर भी अर्थ का बोध कराता है।

रूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूरत-शकल, आकार। उ.—रूप-रेख-गुन जाति-जुगुति बिनु निरालंब कित धावै —१-२। (२) स्वभाव। (३) सुंदरता।

मुहा०—रूप हरना—अपने सुंदरतर या सुँदरतम रूप से दूसरे या दूसरों को लज्जित करना।

(४) शरीर, देह। उ.—(क) रहि न सके नरसिंह रूप धरि गहि कर असुर पछारयौ—१-१०९। (ख) काग-रूप करि रिषि गृह आयौ, अर्ध निसा तिहिं बोल सुनायौ—६-८। (ग) धेनु-रूप धरि पुहुमि पुकारी सिव-बिरंचि के द्वारा—१०-४।

मुहा०—रूप लेना—देह धरना। रूप लीनो—देह धारण की। उ. पाछैं पृथु को रूप हरि लीनो।

(५) वेश, भेस। उ.—(क) रूप मोहिनी धरि ब्रज आई—१०-५०। (ख) अति मोहिनी रूप धरि लीनौ —१०-५१। (६) दशा, स्थिति, अवस्था। (७) समानता, सादृश्य। (८) भेद। (९) चिह्न, लक्षण। (१०) चाँदी, रूपा।

वि.—सुंदर, मनोहर।

रूपक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूर्ति। (२) दृश्यकाव्य। (३) एक अर्थालंकार।

रूपगर्विता—वि. [सं.] जिसे रूप का गर्व हो।

रूपचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी जिसे 'नरकाचौदस' भी कहते हैं।

रूपजीविनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।

रूपधारी—वि. [सं.] (दूसरे का) रूप धारण करनेवाला।

रूपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रूप का भाव। (२) सुंदरता, मनोहरता।

रूपमंजरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक फूल। (२) धान-विशेष।

रूपमनी—वि. स्त्री. [हिं. रूपमान] रूपवती, सुंदरी।

रूपमय—वि. [सं. रूप + हिं. मय] बहुत सुन्दर। उ. — नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन रोम रोम पट उदित रूपमय।

रूपमान—वि. [सं. रूपवान्] बहुत सुन्दर।

रूपरेख, रूपरेखा—संज्ञा स्त्री. [सं. रूप + रेखा] (१) आकार, शक्ल। उ.—(क) कहा करौं नीके करि हरि को रूप-रेख नहिं पावति। (ख) आदि अनादि रूपरेखा नहिं, इनतैं नहिं प्रभु और बियौ—१०-८५। (२) ढाँचा। (३) चिह्न, लक्षण।

रूपवंत—वि. [सं. रूपवान् का बहु.] सुंदर।
रूपवती—वि. स्त्री. [सं.] सुंदरी (स्त्री)।
रूपवान, रूपवान् - वि. [सं. रूपवत्] सुंदर।
रूपसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदरी नारी।
रूपांतर—संज्ञा पुं. [सं.] बदला हुआ रूप।
रूपांतरित—वि. [सं.] जिसका रूप बदल गया हो।
रूपा – संज्ञा पुं. [सं. रुप्य] (१) चाँदी। उ.—लोह तरें मधि रूपा लायौ, ताके ऊपर कनक लगायौ—७-७। (२) राधा की एक सखी का नाम। उ.—करि राधा, किनि हार चुरायौ।.........। प्रेमा दामा हंसा रंगा हरषा रूपा जाउ—१५८०।
रूपाजीवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।
रूपाश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] सुंदर पुरुष।
रूपी – वि. [सं. रूपिन्] (१) रूपधारी। (२) सदृश।
रूपे—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. रूपा] चाँदी से। उ.—ताँबे, रूपे, सोने सजि राखीं वै बनाइकै—२६२८।
रूपैं—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. रूपा] चाँदी से। उ.—खुर ताँबैं, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ीं —१०-२४।
रूपै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. रूप] रूप या सौंदर्य का।
संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. रूपा] चाँदी का।
रूप्य वि. [सं.] (१) सुंदर। (२) उपमेय।
संज्ञा पुं. [हिं. रूपा] चाँदी।
रूबरू—क्रि. वि. [फ़ा.] सामने, समक्ष।
रूम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] टर्की या तुर्की देश।
रूमना, रूमनो—क्रि. स. [हिं. झूमना का अनु.] झूमना।
रूमाल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] कपड़े का चौकोर टुकड़ा।
रूमी—वि. [फ़ा.] (१) रूम देश का। (२) रूम-वासी।
रूरना, रूरनो—क्रि. अ. [सं. रोरवण] (१) चिल्लाना। (२) विलाप करना।
रूरा—वि. पुं. [सं. रूढ़] श्रेष्ठ, सुंदर।
रूरि—क्रि. अ. [हिं. रूरना] (१) चिल्ला कर। (२) विलाप करके। उ.—संगहिं सबै चलौ माधौ के ना तौ मरिहौं रूरि (रूरी)—१० उ.-८२।
रूरी—वि. स्त्री. [हिं. रूरा] श्रेष्ठ, सुंदर। उ.—(क) दमकति दूध दतुरियाँ रूरी—१०-११७। (ख) आरोगत मुख की छवि रूरी—३९६।
रूष—संज्ञा पुं. [हिं. रूख] पेड़, वृक्ष।
रूषना, रूषनो -क्रि. अ. [हिं. रोष] रूठना।
संज्ञा पुं.— अप्रसन्न होने या रूठने का भाव या कार्य। उ.—प्रानहिं पियहिं रूषनो कैसो सुन वृषभानु दुलारी—२२७५।
रूषा—संज्ञा पुं. [हिं. रूख] पेड़, वृक्ष।
वि. [हिं. रूखा] (१) शुष्क। (२) कठोर।
रूषि—क्रि. अ. [हिं. रूसना] अप्रसन्न होकर, रूठकर।
प्र०—रूषि रही—अप्रसन्न हो रही है, रूठी है। उ.—आजु तेरे तन मैं नयो जोवन ठौर ठौर सु बन्यो पिय मिलि मेरे मन काहे रूषि रही वेकाज—२२०२।
रूषी—क्रि. अ. [हिं. रूषना] रूठी, अप्रसन्न हुई। उ.—तू जु झुकति है और रूसने अब कहि कैसे रूषी—२२७५।
रूसन—संज्ञा पं. [हिं. रूसना] रूठने या अप्रसन्न होने का भाव या कार्य। उ.—तासों न रूसन कीजै हित कै मनाइ लीजै—२२३१।
रूसनहारी—वि. [हिं. रूसना+हारी] रूठने या अप्रसन्न होने वाली। उ.—ज्यौं ज्यौं मैं निहोरे करौं त्यौं त्यौं यों बोलति है री अनोखी रूसनहारी—२०४७।
रूसना—क्रि. अ. [हिं. रोष] रूठना, अप्रसन्न होना।
रूसने—क्रि. अ. [हिं. रूसना] रूठ जाने (पर)। उ.—तू जु झकति है और रूसने अब कहि कैसे रूषी—२२७५।
रूसनो—क्रि. अ. [हिं. रूसना] रूठना।
रूसा—संज्ञा पुं. [सं. रूषक] 'अड़ूसा' वृक्ष।
संज्ञा पुं. [सं. रोहिष] एक सुगंधित घास।
रूसि—क्रि. अ. [हिं. रूसना] अप्रसन्न होकर, रूठकर। उ.- (क) कहाँ मैं जाउँ, कहु धौं रहौं रूसिकै—१५८६। (ख) कहा चूक हमको पिय लागे रूसि रहे हौ काहे जू—१९६१।
रूसिबे—संज्ञा स्त्री. [हिं. रूसना] अप्रसन्न होने या रूठने की। उ.—यह रितु रूसिबे की नाहीं—२१९४।
रूसे—वि. [हिं. रूसना] रूठे हुए, अप्रसन्न। उ. - यह उपकार तुम्हारो सजनी रूसे कान्ह मिलाए री—पृ० ३१९ (८३)।

रूह—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) जीवात्मा। (२) सत्त, सार।

रूहना, रूहनो—क्रि. अ. [सं. रोहण] उमड़ना।

क्रि. स. [हिं. रूँधना] घेरना, छेंकना।

रेंकना, रेंकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) गदहे का बोलना। (२) भद्दे स्वर से गाना।

रेंगत—क्रि. अ. [हिं. रेंगना] (१) घुटनों के बल या धीरे धीरे चलता है। उ.—(क) गिरि गिरि परत घुटुरुवनि रेंगत—१०-११३। (ख) ठुमुकि-ठुमुकि पग धरनी रेंगत—१०-१२६। (२) धीरे-धीरे चलता है। उ.—कोउ पहुँचे कोउ रेंगत मग में—९१९। (३) घूमते-फिरते (हैं)। उ.—तुम्हरी कमल-बदन कुम्हिलैहै रेंगत घामहिं माँझ–४११।

रेंगना—क्रि. अ. [सं. रिंगण] (१) कीड़ों आदि का पेट के बल चलना। (२) शिशु का घुटनों के बल या ठुमक ठुमककर चलना। (३) धीरे-धीरे चलना, घूमना-फिरना।

रेंगनि, रेंगनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेंगना] शिशु की घुटनों या ठुमक-ठुमक चलने की क्रिया। उ.—(क) धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि—१०-१०५। (ख) मैं बलिहारी रेंगनियाँ—१०-१३२।

रेंगनो—क्रि. अ. [सं. रिंगण] (१) कीड़ों आदि का पेट के बल चलना। (२) शिशु का घुटनों के बल या ठुमुक-ठुमुककर चलना। (३) धीरे-धीरे चलना या घूमना-फिरना।

रेंगाना, रेंगानो—क्रि. स. [हिं. रेंगना] (किसी को) रेंगने को प्रवृत्त करना।

रेंगै—क्रि. अ. [हिं. रेंगना] (शिशु) घुटनों के बल या ठुमुक-ठुमुक कर चले। उ.—कब मेरी लाल घुटुरुवन रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै—१०-७६।

रेंड—संज्ञा पुं. [सं. एरण्ड] एक पेड़।

रेंडना—क्रि. अ. [हिं. रेंड़] पेड़-पौधे का बढ़ना।

रेंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेंड] रेंड़ के बीज।

रेंरना, रेंरनो—क्रि. अ. [अनु.] बच्चे का धीरे-धीरे रोना।

रे—अव्य. [सं.] (१) पुरुष के लिए संबोधन शब्द। उ. —(क) रामहिं राम पढ़ौ रे भाई–७-२। (ख) रे पिय, लंका बनचर आयौ—९-११९। (ग) रे रे अंध बीसहू लोचन पर-तिय हरन बिकारी—९-१३२। (२) पुल्लिंग वर्ग के पदार्थ आदि के लिए संबोधन शब्द। उ.—रे मन, छाँड़ि बिषय कौ रँचिबौ—१-५९।

रेख—संज्ञा स्त्री. [सं. रेखा] (१) लकीर, रेखा। उ.—अति बिसाल बारिज-दल लोचन राजति काजर-रेख री—१०-१३६।

मुहा०—रेख काढ़ना, (खाँचना, खींचना या बनाना) —(१) लकीर बनाना। (२) जोर देकर या निश्चय पूर्वक कहना। काढ़ति रेख—रेखा बनाती है। उ.—तृन तोरयो गुन जात जिते गुन काढ़ति रेख मही। रेख बनाई—रेखा खींची। उ.—भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई—६१६। रेख देना—रेखा खींचकर सीमाबद्ध करना। दै रेख—रेखा द्वारा सीमा बद्ध करके। उ.—गयौ सो दै रेख, सीता कह्यौ सो कह्यौ न जाई—९-६०।

(२) निशान, चिह्न।

यौ०—रूप-रेख—आकार, ढाँचा, प्रारंभिक रूप।

(३) गिनती, गणना। (४) लेखा, लिखावट।

यौ०—कर्मरेख, करमरेख—भाग्य का लेख। उ. —सूर सीय पछितात यहै कहि, करम-रेख मेटी नहिं जाई—९-५९।

(५) निकलती हुई नयी मूछें।

मुहा०—रेखा आना, भीजना या भीनना - निकलती हुई मूछें दीख पड़ना।

रेखता—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक प्रकार का गाना जो अरबी-फारसी मिश्रित हिंदी में होता था और जिससे 'उर्दू' को बहुत समय तक 'रेखता' कहा जाता रहा।

रेखना—क्रि. स. [हिं. रेखा] (१) रेखा खींचना। (२) खरोंचना।

रेखनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. रेखा] रेखाएँ। उ.—कर कपोल भुज धरि जंघा पर लेखति माइ नखन की रेखनि—२७२२।

रेखनो—क्रि. स. [हिं. रेखना] (१) रेखा बनाना। (२) खरोंच डालना।

रेखहिं—क्रि. स. [हिं. रेखना] रेखा या चिह्न बनायें। उ.—बनमाला तुमकौं पहिरावहिं धातु-चित्र तनु रेखहिं—४२६।

रेखांकन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रूप-रेखा अंकित करने का कार्य। (२) रेखाचित्र।

रेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लकीर। (२) लिखावट।
यौ०—कर्मरेखा या भाल की रेखा—भाग्य में लिखी बात, भाग्य-लेख। उ.—सूर न मिटै भाल की रेखा—९-११६।
(३) गिनती, गणना। (४) सूरत-शक्ल, आकार। (५) हथेली, तलुए आदि की लकीरें।

रेखागणित—संज्ञा पुं. [सं.] गणित का वह विभाग जिसमें रेखाओं द्वारा अनेक प्रकार के सिद्धांत निश्चित किये जाते हैं।

रेखाचित्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) केवल रेखाओं से बना चित्र। (२) शब्द-चित्र।

रेखित—वि. [सं. रेखा] (१) अंकित, लिखित। (२) जिस पर रेखा पड़ी हो। (३) मसका या फटा हुआ।

रेखी—संज्ञा स्त्री. [सं. रेखा] रेखा, पंक्ति। उ.—कोमल नील कुटिल अलकावलि रेखी राजति भाल – ३३३३।

रेखें—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. रेखा] रेखाएँ। उ.—(क) अब क्यौं मिटत हाथ की रेखें—३१४८। (ख) गनतहिं गनत गई सुनि सजनी कर अँगुरिन की रेखें—३१९०।

रेखै—क्रि. स. [हिं. रेखना] रेखा खींचती या चित्र बनाती है। उ.—भीति बिन कर चित्र रेखै—२०४३।

रेखौ, रेखौ—क्रि. स. [हिं. रेखना] रेखा खींचते या खींचती या अथवा चित्र अंकित करते या करती हो।
प्र०—चित्र करति रखौ—चित्र अंकित करती हो
उ.—भीति बिनु चित्र तुम करति रेखौ—१२४६।

रेग—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] बालू।

रेगिस्तान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] मरुस्थल।

रेचक—वि. [सं.] जिसके खाने से दस्त आ जाय।
संज्ञा पुं.—प्राणायाम की तीसरी क्रिया जिसमें श्वांस को विधिपूर्वक बाहर निकालने का अभ्यास किया जाता है। उ.—सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ—३१३४।

रेचन—संज्ञा पुं. [सं.] दस्त लाने की औषध।

रेचना, रेचनो—क्रि. स. [सं. रेचन] दस्त लाना।

रेजगारी, रेजगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] छोटे सिक्के।

रेजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. रेजा] छोटा टुकड़ा या खंड।

रेणु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धूल। (२) बालू।

रेणुका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धूल। (२) बालुका। (३) परशुराम की माता का नाम।

रेत—संज्ञा स्त्री. [सं. रेतजा] (१) बालू। उ.—सूरदास जन ते बिछुरे ज्यौं कृत राई रेत—३३०९।

रेतना, रेतनो—क्रि. स. [हिं. रेत] (१) रेती या वैसे ही किसी औजार से रगड़ना। (२) धीरे-धीरे काटना।

रेतला—वि. [हिं. रेतीला] रेतीला, बलुआ।

रेता—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेत] (१) धूल। (२) बालू।

रेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेतना] रेतने का औजार।
संज्ञा स्त्री. [हिं. रेत] बालू, रेत।

रेतीला—वि. पुं. [हिं. रेत+ईला] बलुआ।

रेनु—संज्ञा स्त्री. [सं. रेणु] (१) धूल। उ.—(क) लै लै चरन-रेनु निज प्रभु की रिपु कें स्रोनित न्हात—९-१४७। (ख) माधौ, मोंहि करौ बृंदाबन-रेनु—४८९। (ग) करहु मोहिं ब्रज-रेनु—४९२। (२) रेत। (३) धूल के कण। उ.—भूमिरेनु कोउ गनै—२-३६।

रेनुका—संज्ञा स्त्री. [सं. रेणुका] (१) धूल। (२) बालू। (३) परशुराम की माता का नाम।

रेफ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रकार (र)। (२) 'रकार' का वह रूप जो किसी अक्षर के ऊपर लगता है।

रेरना, रेरनो—क्रि. स. [हिं. रे+करना] 'रे' कहकर या दुलार-तिरस्कार के साथ पुकारना।

रेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेलना] (१) बहाव, धारा। (२) अधिकता, भरमार।

रेलठेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेलना+ठेलना] (१) भीड़-भड़क्का। (२) भरमार, अधिकता।

रेलना, रेलनो—क्रि. स. [देश.] (१) ढकेलना, धक्का देकर आगे बढ़ाना। (२) खूब ठूँस-ठूँस कर खाना।
क्रि. अ.—ठसाठस भरा होना।

रेल-पेल—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेलना+पेलना] (१) भीड़-भाड़। (२) अधिकता।

रेला—संज्ञा पुं. [देश.] (१) जल-प्रवाह। (२) धावा। (३) धक्कमधक्का। (४) अधिकता। (५) समूह।

रेलि—क्रि. वि. [हिं. रेलना] अधिकता से। उ.—फूली माधवी मालती रेलि—२४०७।

रेवड़—संज्ञा पुं. [देश.] भेड़-बकरी का झुंड।

रेवड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] चीनी या गुड़ के पाग में तिल चिपका कर बनायी गयी टिकिया।

रेवत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक राजा जिसकी पुत्री रेवती बलराम को ब्याही थी। (२) एक पर्वत। उ.—द्वारका माँह उत्पात बहु भाँति करि बहुरि रेवत अचल गयौ धाई—१० उ.-४३।

रेवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सत्ताईसवाँ नक्षत्र। (२) बलराम की पत्नी जो राजा रेवत की कन्या थी। उ.—रविबंशी भयौ रैवत राजा।.....ता गृह जन्म रेवती लयौ।.....। हलधर कौं तुम देहु बिबाहि—९-४।

रेवतीरमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बलराम। (२) विष्णु।

रेवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नर्मदा नदी जिसके किनारे किसी समय हाथी बहुत पाये जाते थे। उ.—मनहुँ सेज रेवा ह्रद ते उठि आवत है गजराज—२१८५।

रेवाउतन—संज्ञा पुं. [सं. रेवा+उत्पन्न] हाथी (रेवा-तट किसी समय हाथियों की अधिकता के लिए विख्यात था)।

रेशम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक तरह का महीन चमकीला और चिकना रेशा जो एक प्रकार के कीड़े तैयार करते हैं, पाट, कौशेय।

रेशमी—वि. [फ़ा.] रेशम का बना हुआ।

रेशा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] तंतु या महीन सूत।

रेष—संज्ञा स्त्री. [हिं. रेख] रेख, रेखा।

रेसम—संज्ञा पुं. [फ़ा. रेशम] एक तरह का महीन चमकीला और चिकना रेशा जो एक प्रकार के कीड़े तैयार करते हैं, पाट, कौशेय। उ.—(क) पँचरँग रेसम लगाउ—१०-४१। (ख) रतन जटित बर पालनौ रेसम लागी डोर—१०-४७ (ग) रेसम बनाइ नव-रतन पालनौ—१०-४८।

रेसमी—वि. [फ़ा. रेशमी] रेशम का।

रेसा—संज्ञा पुं. [फ़ा. रेशा] तंतु या महीन सूत।

रेह—संज्ञा स्त्री. [देश.] खार मिली मिट्टी।

संज्ञा स्त्री. [सं. रेख] लकीर, रेखा।

रेहन—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बंधक, गिरवीं।

रेहुआ—वि. [हिं. रेह] जिसमें रेह अधिक हो।

रेहू—संज्ञा पुं. [हिं. रोहू] एक तरह की मछली।

रैंगति—क्रि. अ. [हिं. रेंगना] धीरे धीरे चलना। उ.—एक ग्वालि गो-सुत ह्वै रैंगति—३४८४।

रैता—संज्ञा पुं. [देश.] श्रीकृष्ण का सखा एक ग्वाल-बाल। उ.—रैता पैता मना मनसुखा हलधर संगहि रैहौं—४१२।

रैतिक—वि. [सं.] पीतल का।

रैतुआ, रैतुवा—संज्ञा पुं. [हिं. रायता] रायता।

रैदास—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक प्रसिद्ध भक्त जो जाति का चमार और रामानंद का शिष्य था। (२) चमार।

रदासी—वि. [हिं. रैदास] रैदास के संप्रदाय का।

रैन, रैना—संज्ञा स्त्री. [सं. रजनी] रात, रात्रि।

रैना—क्रि. अ. [सं. रंजन] (१) रँगा जाना। (२) मुग्ध, आसक्त या अनुरक्त होना।

क्रि. स.—(१) रँगना। (२) अनुरक्त करना।

रैनि, रैनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रजनी] रात, रात्रि। उ.—रवि बहु चढ्यौ रैनि सब निघटी—४०८। (ख) आजु रैनि नहिं नींद परी—२५४४।

रैनो—क्रि. अ. [सं. रंजन] (१) रँगा जाना। (२) मुग्ध, आसक्त या अनुरक्त होना।

क्रि. स.—(१) रँगना। (२) अनुरक्त करना।

रैयत—संज्ञा स्त्री. [अ.] प्रजा।

रैया—संज्ञा पुं. [हिं. राव] छोटा राजा। उ.—जानि रिपु-हानि तजि कानि यदुराज की बबकि उठि फूलि बसुदेव रैया—२६०७।

रैयाराव—संज्ञा पुं. [हिं. राजा+राव] (१) छोटा राजा। (२) सामंतों की एक प्राचीन उपाधि।

रैवंता—संज्ञा पुं. [हिं. रज+वंत] घोड़ा।

रैवत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुजरात का एक पर्वत। (२) एक सूर्यवंशी राजा जिसकी पुत्री रेवती बलराम को ब्याही थी। उ.—रविबंसी भयौ रैवत राजा।........ता गृह जन्म रेवती लयौ।........रैवत ब्याह कियौ भुवि आइ।.....। हलधर ब्याह भयौ या भाइ—९-४।

रैवतक—संज्ञा पुं. [सं.] गुजरात का एक पर्वत जहाँ अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया था।

रैसा—संज्ञा पुं. [सं. रेष] कलह, युद्ध।

रैहर—संज्ञा पुं. [सं. रेष] लड़ाई, कलह।

रैहै—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहेगा, बसेगा। उ.—नैंकु सुनत जो पैहौं ताकै, सो कैसैं ब्रज रैहै री—७११।

रैहौं—क्रि. अ. [हिं. रहना] (साथ) रहूँगा। उ.—हलधर संगहि रहौं—४१२।

रैहौ—क्रि. अ. [हिं. रहना] रहना। उ.—मोहिं नियरैं तुम रैहौ—६८०।

प्र०—रैहौ—मानोगे। उ.—हम जानति तुम यौं नहिं रैहौ, रैहौ गारी खाइ—१०२९।

रोंग, रोंगटा—संज्ञा पुं. [सं. रोमक, प्रा० रोअंक, हिं. रोंग+टा] शरीर का रोम या रोआँ।

रोंगटि, रोंगटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोना] खेल में बुरा मानना या बेइमानी करना। उ.—रोंगटि करत तुम खेलत ही में, परी कहा यह बानि।

रोंगटे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. रोगटा] रोम।

मुहा०—रोंगटे खड़े होना—भयानक या क्रूर कर्म देखकर जी दहलना।

रोंठा—संज्ञा पुं. [देश] कच्चे आम की सूखी फाँक।

रोंवँ—संज्ञा पुं. [सं. रोम] शरीर के रोम।

रो—क्रि. अ. [हिं. रोना] रुदन या विलाप करो।

मुहा०—रो बैठना—निराश होकर रह जाना। रो-रोकर—(१) दुख और कष्ट के साथ। (२) बहुत रुक-रुककर। रो-रोकर घर भरना—बहुत विलाप करना। रो-गाकर—दुःख के साथ और गिड़गिड़ाकर।

रोआँ—संज्ञा पुं. [हिं. रोयाँ] शरीर के रोम।

रोआइ, रोआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रुलाई] रुलाई।

रोआसा—वि. [हिं. रोना+आसा] जो रोने को हो।

रोइ—क्रि. अ. [हिं. रोना] रोकर, विलाप करके। उ.—(क) मातु-पिता अतिहीं दुख पावत, रोइ रोइ सब कृष्न बुलावत—५४९। (ख) नंद पुकारत रोइ—५८९।

प्र०—दीन्हौ रोइ—रो दिये, रो पड़े। उ.—भीर देखत अति डराने दुहुँनि दीन्हौ रोइ १०-२९०।

रोउँ—संज्ञा पुं. [हिं. रोंवँ] रोम, रोंगटा।

रोऊ—वि. [हिं. रोना] रोनेवाला। उ.—निर्घिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धी, भोंदू, नित को रोऊ—१-१८६।

रोएँदार—वि. [हिं. रोआँ+फा. दार] जिसके या जिसमें बहुत रोम या रोएँ हों।

रोए—क्रि. अ. [हिं. रोना] रो दिये। उ.—काल-बली तैं सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए—१-५२।

रोक—संज्ञा स्त्री. [सं. रोधक] (१) बाधा, अटकाव, अवरोध। (२) मनाहीं, निषेध। (३) काम में बाधा। (४) रोकनेवाली वस्तु। उ.—आनंदे मधुबन के वासी गई नगर की रोक—१० उ०-२।

संज्ञा पुं. [सं. रोक=नगद] रोकड़।

रोकटोक—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोकना+टोकना] (१) कार्य में बाधा या प्रतिबंध। (२) मनाही, निषेध।

रोकड़—संज्ञा स्त्री. [सं. रोक] (१) नगद रुपया। (२) पूँजी जो किसी व्यापार में लगायी जाय।

रोकत—क्रि. स. [हिं. रोकना] (१) रोकता या बाधा डालता है। उ.—काहे को रोकत मारग सूधो। (२) अधिकार में लेता या करता है। उ.—इक मारत इक रोकत गेंदहिं—५३३।

रोकनहार, रोकनहारा—वि. [हिं. रोकना+हार] रोकने या बाधा देनेवाला। उ.—सूर ऐसो कौन जो पुनि तुमहिं रोकनहार—११७१।

रोकना, रोकनो—क्रि. स. [हिं. रोक] (१)चलने या बढ़ने न देना। (२) जाने से मना करना। (३) कार्य स्थगित करना। (४) मार्ग छेंकना। (५) अड़चन या बाधा डालना। (६) वर्जन या मना करना। (७) ऊपर लेना, ओटना। (८) वश में करना। (९) सेना का सामना करना।

रोकि—क्रि. स. [हिं. रोकना] (१) मार्ग छेंककर। उ.—रोकि रहत गहि गली—१०-३२८।(२) वश में रखकर। उ.—प्रान कहाँ लौं राखौं रोकि—९-९२।

रोके—क्रि. स. [हिं. रोकना] (द्वार आदि पर अधिकार करके) मार्ग अवरुद्ध किये हुए। उ.- द्वार कपाट कोटि भट रोके—१०-११।

रोक्यो, रोक्यौ—क्रि. स. [हिं. रोकना] वर्जन या मना

किया। उ.—हरि-दरसन कौं जात क्यौं रोक्यौ बिना बिचार—३-११।

रोख, रोखा—संज्ञा पुं. [सं. रोष] गुस्सा, क्रोध।

रोग—संज्ञा पुं. [सं.] बीमारी, व्याधि।

मुहा०—रोग लेना—माता, पिता आदि गुरुजनों का बालकों को स्वस्थ रखने के लिए उनका रोग-घोग अपने ऊपर लेने की कामना करना। लीन्हे रोग—(बालकों के) रोग-घोग अपने ऊपर लेने की कामना की। उ.—सूर स्याम गाइन सँग आए मैया लीन्हें रोग—४९३।

रोगग्रस्त—वि. [सं.] बीमार, रोग से पीड़ित।

रोगन—संज्ञा पुं. [फा. रौगन] (१) चिकनाई। (२) पालिश जिससे कोई वस्तु चमकने लगे।

रोगिणि, रोगिणी, रोगिनि, रोगिनी—वि. स्त्री. [सं. रोगिणी] बीमार (स्त्री)।

रोगिया—वि. [हिं. रोग] रोगी, बीमार। उ.—यथा-योग ज्यौं होत रोगिया कुपथी करत नई।

रोगी—वि. [हिं. रोग] बीमार, अस्वस्थ। उ.—(क) कलहा, कुही, मूष रोगी—१-१८६। (ख) अंध छीन जे रोगी—३२०६।

रोचक—वि. [सं.] (१) रुचनेवाला। (२) मनोरंजक।

रोचकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] रोचक होने का भाव।

रोचन—वि. [सं.] (१) रुचनेवाला। (२) प्रिय। (३) लाल (रंग का)। उ.—मिलि रिस रुचि लोचन भए रोचन चितवत चित्त पराई ओर—२१३१।

संज्ञा पुं.—(१) रोली, रोचना। उ.—(क) कनक-थार भरि दधि-रोचन लै वेगि चलौ मिलि गावति—१०-२३। (ख) रोचन भरि लै देत सींक सौं स्रवन निकट अति ही चातुर की—१०-१८०। (२)गोरोचन।

रोचना—संज्ञा स्त्री. [सं. रोचन] रोली। उ.—एकनि माथैं दूब-रोचना—१०-२५।

रोचि—संज्ञा स्त्री. [सं. रोचिस] (१) प्रभा, शोभा। (२) किरण।

रोज—संज्ञा पुं. [सं. रोदन] रोना-धोना, विलाप।

संज्ञा पुं. [फ़ा. रोज़] दिन, दिवस।

अव्य.—प्रतिदिन, नित्य।

रोजगार—संज्ञा पुं. [फ़ा. रोज़गार] (१) पेशा, उद्यम।

मुहा०—रोजगार चमकना—पेशे में लाभ होना। रोजगार छूटना—बिना पेशे के होना। रोजगार चलना—पेशे में लाभ होने लगना। रोजगार लगना—पेशा मिल जाना। रोजगार लगाना—पेशे का प्रबंध कर देना। रोजगार से होना—पेशा मिल जाना।

(२) तिजारत, व्यापार।

रोजमर्रा—अव्य. [फ़ा. रोज़मर्रा] प्रतिदिन, नित्य।

रोजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. रोज़ा] (१) व्रत। (२) रमजान के ३० दिनों का व्रत।

रोजाना—क्रि. वि. [फ़ा. रोज़ाना] प्रतिदिन, नित्य।

रोजी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. रोज़ी] जीविका।

रोजीना—संज्ञा पुं. [फ़ा. रोज़ीना] प्रतिदिन का।

रोट—संज्ञा पुं. [हिं. रोटी] (१) मोटी रोटी। (२) पूआ।

रोटिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोटी] छोटी रोटी।

रोटिहा—वि. [हिं. रोटी+हा] केवल भोजन पर रहने वाला (सेवक)।

रोटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) चपाती, फुलका। उ.—(क) गोपालराय दधि माँगत अरु रोटी—१०-१६३। (ख) रोटी रुचिर कनक बेसन करि—२३२१। (२) भोजन, रसोई।

मुहा०—रोटी कपड़ा—खाना-कपड़ा। रोटी कमाना—जीविका का अर्जन करना। रोटी को रोना—भूखों मरना। रोटी का मारा—भोजन के बिना दुखी। किसी के यहाँ रोटी तोड़ना—किसी का दिया खाना। रोटी लगना—भोजन पाकर इतराना। रोटी लगाना—जीविकार्जन का साधन निश्चित कर देना। रोटी-दाल से खुश—अच्छा खाता-पीता। रोटी-दाल चलना—जीवन-निर्वाह होना।

रोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. लोष्ठ, प्रा. लोट्ठ] पत्थर का टुकड़ा।

मुहा०—रोड़ा अटकाना या डालना—बाधा या अड़चन डालना।

रोदन—संज्ञा पुं. [सं.] रोना, क्रंदन। उ.—(क) माता ताको रोदन देखि, दुख पायौ मन माहिं बिसेखि। (ख) तब इक पुरुष भौंह तैं भयौ, होत समय तिन रोदन ठयौ—३-७।

रोदसि, रोदसी—संज्ञा स्त्री. [सं. रोदसि] (१) स्वर्ग। (२) भूमि, पृथ्वी।

रोदा—संज्ञा पुं. [सं. रोध] धनुष की डोरी।

रोध—संज्ञा पुं. [सं. रोध] (१) रुकावट, बाधा। (२) तट, किनारा।

रोधक—संज्ञा पुं. [सं.] रोकनेवाला।

रोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रुकावट। (२) दमन।

रोधना, रोधनो—क्रि. स. [सं. रोधन] रोकना।

रोन—संज्ञा पुं. [सं. रमण] रमण।

रोना—क्रि. अ. [सं. रोदन, प्रा. रोअन] (१) रुदन या विलाप करना, दुख से आंसू बहाना।

मुहा०—रोना-कलपना या रोना-धोना—विलाप करना। रोना-पीटना—छाती या सिर पीटकर रोना। किसी वस्तु को रोना—वस्तु-विशेष के लिए बहुत दुखी होना। रोना-गाना—बहुत दुख से और गिड़गिड़ाकर कहना।

(२) चिढ़ना, बुरा मानना। (३) पछताना।

संज्ञा पुं. दुख, शोक।

मुहा०—रोना या रोना-पीटना पड़ना—शोक छा जाना।

वि.—(१) छोटी सी बात पर भी बहुत दुखी होने वाला। (२) बात-बात पर खीझने और चिढ़नेवाला। (३) हर समय रोवांसा रहनेवाला।

रोनी धोनी—वि. स्त्री. [हिं. रोना+धोना] हर समय दुखी रहकर आंसू बहानेवाली।

संज्ञा स्त्री. मनहूसियत।

रोप—संज्ञा पुं. [सं.] ठहराव, रुकावट।

रोपक—वि. [सं.] रोपनेवाला।

रोपण—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्थापित करना। (२) (बीज या पौधा) जमाना या उगाना। (३) मोहित या मुग्ध करना।

रोपना—क्रि. स. [सं. रोपण] (१) (पौधा) जमाना या उगाना। (२) पौधे को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे पर लगाना। (३) दृढ़ता के साथ स्थापित करना। (४) बीज बोना। (५) मोहित करना। (६)(हाथ या बर्तन) फैलाना या बढ़ाना।

मुहा०—हाथ रोपना—माँगने को हाथ फैलाना।

रोपनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोपना] रोपने का काम।

रोपनो—क्रि. स. [हिं. रोपना] (१) (पौधा) जमाना। (२) (बीज) उगाना। (३) पौधा एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे पर लगाना। (४) दृढ़ता से स्थापित करना। (५) कुछ माँगने को (हाथ या पात्र) फैलाना या बढ़ाना। (६) मोहित करना।

रोपित—वि. [सं.] (१) लगाया या जमाया हुआ। (२) स्थापित। (३) खड़ा किया हुआ।

रोपी—क्रि. स. [हिं. रोपना] (१) दृढ़ता से स्थापित की। उ.—रोपी सुथिर थुनी—१०-२४। (२) मुग्ध हुई। उ.—अँखियाँ स्याम रूप रोपी—३४८७।

रोपैं—क्रि. स. [हिं. रोपना] दृढ़ता से स्थापित करते हैं। उ.—मालिनि बाँधैं तोरना (रे) आँगन रोपैं केरि—१०-४०।

रोप्यो, रोप्यौ—क्रि. स. [हिं. रोपना] (१) लगाया, जमाया (२)। उ.—रोप्यौ द्वार सुभगति कलपतरु—१० उ०-७०। दृढ़ता के साथ स्थापित किया। उ. (क)—बीच सभा अंगद पद रोप्यौ। (ख) सर-पंजर रोप्यो चहुँ दिसि तें जहाँ पवन नहिं जाय—सारा. (५१)।

रोब—संज्ञा पुं. [अ. रूअब) धाक, आतंक।

मुहा०—रोब जमाना—आतंक बैठाना। रोब मिट्टी में मिलना (मिटना)—धाक न रह जाना। रोब मिट्टी में मिलाना (मिटाना)—प्रभाव नष्ट करना। रोब दिखाना—प्रभाव डालना। रोब में आना—(१) प्रभावित होना। (२) भय मानना।

रोबदार—वि. [अ.] प्रभावशाली, तेजस्वी।

रोम—संज्ञा पुं. [सं. रोमन्] (१) रोयाँ, रोंगटा, लोम। उ.—(क) सूर स्याम के एक रोम पर देउँ प्रान बलिहारी—१०-१३७। (ख) इक इक रोम बिराट किए तन किटि कोटि ब्रह्मांड—४८७।

मुहा०—रोम-रोम प्रति–प्रत्येक रोंगटे में। उ.—जिह्वा रोम-रोम प्रति नाहीं पौरुष गनौं तुम्हारे—९-१४७। रोम रोम में—सारे शरीर में। रोम रोम से—सच्चे हृदय से, तन-मन से।

(२) छेद, छिद्र ।

रोमकूप—संज्ञा पुं. [सं.] छिद्र जिनसे शरीर के रोयें निकले होते हैं ।

रोमनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. रोम+नि] रोम में । उ.—सत सत अघ प्रति रोमनि—१-१९२ ।

रोमपाट—संज्ञा पुं. [सं.] ऊनी कपड़ा ।

रोमराजी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रोमावली । (२) नाभि से पेट तक की रोम-पंक्ति । उ.—राजति रोमराजी रेष—६३५ ।

रोमलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाभि से पेट तक की रोम-पंक्ति ।

रोमहर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] रोंगटे खड़े होना ।

रोमहर्षण—वि. [सं.] जिससे रोंगटे खड़े हों, भयंकर ।

रोमांच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भय से रोओं का खड़े होना । (२) हर्ष से रोओं का खड़े होना । उ.—तनु पुलकित रोमांच प्रगट भए आनंद अश्रु बहाइ—७५८ ।

रोमांचित—वि. [सं.] (१) हर्षित । (२) भयभीत ।

रोमालि, रोमाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] रोमावली ।

रोमावलि, रोमावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रोयों की पंक्ति । (२) नाभि से पेट तक की रोम-पंक्ति । उ. —(क) रुचिर रोमावली हरि कैं चारु उदर प्रदेस—६७४ । (ख) रोमावली अनूप बिराजति जमुना की अनुहारि—६३७ । (ग) उर सुदेस रोमावलि राजति —पृ. ३४० (९३ ।) ।

रोमिल—वि. [सं. रोम] रोयेंदार ।

रोयाँ—संज्ञा पुं. [हिं. रोम] रोम, लोम ।

मुहा०—एक रोयाँ न उखड़ना—जरा भी हानि न होना । रोयाँ खड़ा होना—(१) हर्षित होना । (२) भयभीत होना । रोयाँ पसीजना—तरस आना ।

रोयो, रोयौ—क्रि. अ. [हिं. रोना] रुदन किया ।

मुहा०—नख-सिख तैं रोयौ—तन-मन से बहुत दुखी होकर पछताया । उ.—चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-सिख तैं रोयौ—१-४३ ।

रोर, रोरा—संज्ञा स्त्री. पुं. [सं. रवण, हिं. रोर] (१) कोलाहल । उ.—जिनके जात बहुत दुख पायो, रोर परी यहि खेरे । (२) रोने-चिल्लाने का शब्द । (३) पक्षियों का कोलाहल । उ.—तमचुर खग-रोर सुनहु बोलत बनराई—१०-२०२ । (३) उपद्रव, हलचल । (४) अत्याचार, दुख, कष्ट । उ.—रोर कै जोर तैं सोर धरनी कियौ—१-५ ।

वि.—(१) प्रचंड । (२) उपद्रवी, अत्याचारी ।

रोरि, रोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोली] रोली । उ.—(क) मुख-मंडित रोरी रँग सेंदुर माँग छुही—१०-२४ । (ख) काजर-रोरी आनहू (मिलि) करौ छठी कौ चार—१०४० ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. रोर] चहल-पहल, धूम । उ. —रोरि परी गोकुल मैं जहँ तहँ—२५२१ ।

वि. [हिं. रूरा] सुंदर, रुचिर । उ.—उर बनमाल काछनी काछे करि किंकिनि छवि रोरी—पृ. ३४५ (३९) ।

रोरित, रोरीत—वि. [हिं. रोर] कोलाहलपूर्ण ।

रोल—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. रोर] (१) शोर, कोलाहल । (२) ध्वनि, शब्द । उ.—आजु भोर, तमचुर के रोल । गोकुल मैं आनंद होत है, मंगल धुनि महराने टोल—१०-९४ ।

रोला—संज्ञा पुं. [हिं. रोर] (१) शोर । (२) घोर युद्ध ।

संज्ञा पुं. [सं.] एक छंद (पिंगल) ।

रोली—संज्ञा स्त्री. [सं. रोचनी] चूने-हल्दी से बनी लाल बुकनी, पूजा के अवसर पर जिसका टीका या तिलक लगाया जाता है ।

रोवत—क्रि. अ. [हिं. रोना] रोता या विलाप करता है । उ.—(क) लीन्हे गोद बिभीषन रोवत—९-१६० । (ख) मूँदि मुख छिन सुसुकि रोवत—३६० ।

रोवति—क्रि. अ. [हिं. रोना] रोती है । उ.—तासु वृषभ कैं पग त्रय नाहिं, रोवति गाइ देखि करि ताहिं —१-२९० ।

रोवन—संज्ञा पुं. [हिं. रोना] रोने का कार्य या भाव ।

प्र०—रोवन लग्यौ—रोने लगा । उ.—रोवन लग्यौ मृतक सो जान—१-२९० ।

रोवनहार, रोवनहारा—वि. [हिं. रोवना+हार] रोने या शोक करनेवाला ।

रोवना—क्रि. अ. [हिं. रोना] रुदन करना ।

वि.—(१) जल्दी ही रो देनेवाला। (२) जल्दी बुरा मान जाने या चिढ़नेवाला।

रोवनिहार, रोवनिहारा—वि. [हिं. रोवनहार] रोने या शोक करनेवाला।

रोवनी-धोवनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोवना+धोवना] रोने-धोने की वृत्ति, मनहूसी।

वि.—रोनी सूरत बनाये रहनेवाली।

रोवनो—क्रि. अ. [हिं. रोना] रोना, रुदन करना।

वि. (१) जल्दी रो देनेवाला। (२) जल्दी चिढ़ने वाला।

रोवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. रोयाँ] रोम, रोंगटा।

रोवासा—वि. [हिं. रोवना] रोने को तैयार।

रोवैं—क्रि. अ. [हिं. रोवना] रोते हैं। उ.—(क) रोवैं वृषभ तुरग अरु नाग—१-२८६। (ख) पुत्र-कलत्र देखि सब रोवैं—१-१४१।

रोवै—क्रि. अ. [हिं. रोवना] रोता है। उ.—कमलनैन हरि हिलकिनि रोवै—३४६।

रोवौं—क्रि. अ. [हिं. रोवना] रोता रहा। उ.—हौं डरपौं काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहिं धीर धराउ—४८१।

रोशन—वि. [फ़ा.] (१) जलता हुआ। (२) चमकदार। (३) प्रसिद्ध। (४) प्रकट।

रोशनाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) स्याही। (२) रोशनी।

रोशनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) प्रकाश। (२) दीपक। (३) दीपमाला का प्रकाश। (४) ज्ञान आदि का प्रकाश।

रोष—संज्ञा पुं. [सं.] गुस्सा, क्रोध। उ.—(क) रोष बिषम किन्हौ रघुनंदन सिय की बिपति बिचारि—९-१२४। (ख) इतनी कहि उकसारत बाहैं रोष सहित बल धायौ—३७४। (२) द्वेष। (३) लड़ाई का जोश।

रोषी—वि. [सं. रोषिन्] क्रोधी।

रोस—संज्ञा पुं. [सं. रोष] गुस्सा, क्रोध।

रोसी—वि. [सं. दोष] क्रोधी।

रोसनाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. रोशनाई] स्याही।

रोसनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. रोशनी] रोशनी।

रोह—संज्ञा पुं. [देश.] नील गाय।

रोहण संज्ञा पुं. [सं.] (१) चढ़ाई। (२) उगना।

रोहना, रोहनो—क्रि. अ. [सं. रोहण] (१) चढ़ना। (२) ऊपर उठना। (३) सवार होना।

क्रि. स.—(१) चढ़ाना। (२) धारण करना।

रोहिणि, रोहिणी—संज्ञा स्त्री. [सं. रोहिणी] (१) वसुदेव की एक पत्नी जो बलराम की माता थी। (२) सत्ताइस नक्षत्रों में चौथा जो चंद्रमा की स्त्री कहा गया है।

रोहिणीपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्र। (२) वसुदेव।

रोहित—वि. [सं.] लाल रंग का, लोहित।

संज्ञा पुं.–(१) लाल रंग। (२) रक्त। (३) कुंकुम।

रोहिनि, रोहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रोहिणी] (१) वसुदेव की स्त्री जो बलराम की माता थी। उ.—देखत नंद जसोदा रोहिनि अरु देखत ब्रज लोग—४९३। (२) सत्ताइस नक्षत्रों में चौथा। उ.—कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि हर्षन जोग उदार—१०-८६।

रोही—वि. [सं. रोहिन्] चढ़नेवाला।

संज्ञा पुं. [देश.] एक हथियार।

रोहू—संज्ञा स्त्री. [सं. रोहिष] एक तरह की मछली।

रौंट, रौंटि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोना] (१) खेल में बुरा मानना। (२) चिढ़कर बेईमानी करना। उ.—रौंटि करत तुम खेलत ही मैं परी कहा यह बानि—५३४।

रौंथ—संज्ञा स्त्री. [देश.] चौपायों की जुगाली।

रौंद, रौंदन—संज्ञा स्त्री. [हिं. रौंदन] रौंदने की क्रिया।

रौंदना, रौंदनो—क्रि. स. [सं. मर्दन] (१) पैरों से कुचलना। (२) लातों से मारना।

रौ—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) गति, चाल। (२) वेग, झोंक। (३) पानी का बहाव। (४) किसी बात की धुन।

संज्ञा पुं. [सं. रव] (१) शोर। (२) ध्वनि। उ.—गोरंभन गोपाल गरजनि घन धूमि दुंदुभिन रौ की—२७५०।

रौगन—संज्ञा पुं. [अ. रौग़न] (१) तेल। (२) पक्का रंग।

रौजा—संज्ञा पुं. [अ. रौज़ा] (१) बाग। (२) प्रसिद्ध कब्र।

रौणी—संज्ञा स्त्री. [सं. रमणी] नारी, स्त्री।

रौत—संज्ञा पुं. [हिं. रावत] ससुर।

रौताइन—संज्ञा स्त्री. [हिं. राव, रावत] (१) रावत की स्त्री। (२) स्त्री के लिए आदरसूचक संबोधन।

रौताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. रावत+आई] रावत होने का भाव या पद ।

रौद्र—वि. [सं.] (१) रुद्र-संबंधी । (२) भयंकर । (३) क्रोध-सूचक ।

संज्ञा पुं.—(१) क्रोध । (२) काव्य के नौ रसों में एक जिसमें क्रोध का वर्णन होता है ।

रौद्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१)भयंकरता । (२) प्रचंडता ।

रौन—संज्ञा पुं. [सं. रमण] (१) विलास, क्रीड़ा । (२) मैथुन । (३) घूमना, विचरना । (४) पति ।

रौनक—संज्ञा स्त्री. [अ. रौनक़] (१) चमक-दमक । (२) प्रफुल्लता । (३) शोभा, सुहावनापन ।

रौना—संज्ञा पुं. [सं. रमण] गौना, मुकलावा ।

संज्ञा पुं. [हिं. रोना] दुख, शोक ।

रौनी—संज्ञा स्त्री. [सं. रमणी] (सुन्दरी) स्त्री ।

रौप्य—संज्ञा पुं. [सं.] चाँदी, रूपा ।

वि.—चाँदी का बना हुआ ।

रौर, रौरई—संज्ञा स्त्री., पुं. [हिं. रोर] शोर, कोलाहल । उ.—रैनि कहूँ फँग परे कन्हाई कहति सबै करि रौर—२०९० ।

रौरव—वि. [सं.] (१) डरावना । (२) कपटी ।

संज्ञा पुं.—इक्कीस नरकों में पाँचवाँ ।

रौरा—संज्ञा पुं. [हिं. रौला] (१) शोर । (२) उद्यम ।

सर्व. [हिं. रावरा] आपका ।

रौराना—क्रि. अ. [हिं. रोद, रोरा] प्रलाप करना ।

रौरानी—क्रि. अ. [हिं. रौराना] प्रलाप करने लगी । उ. –अब यह और सृष्टि बिरहिनि की बकत बाइ रौरानी ।

रौरानो—क्रि. अ. [हिं. रौराना] प्रलाप करना ।

रौरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. रोर] शोर-गुल, कोलाहल । उ. —तिनके जात बहुत दुख पायो रौरि परी यहि खेरे—२६६४ ।

रौरे—सर्व. [हिं. राव, रावत] आप ।

रौल, रौला—संज्ञा पुं. [सं. रवण] (१) शोर । (२) उद्यम ।

रौलि—संज्ञा स्त्री. [देश.] चपत, धौल ।

रौस—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. रविश] (१) चाल, गति । (२) रंग-ढंग । (३) बाग की क्यारियों के बीच का मार्ग ।

रौहार, रौहाल—संज्ञा स्त्री. [देश.] घोड़ों की एक जाति ।

वि. [फ़ा. रहवार] चलनेवाला ।

ल

ल—देवनागरी वर्णमाला का अट्ठाईसवाँ व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान दंत है ।

लंक—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमर, कटि । उ.—उर सुदेस रोमावलि राजति मृग-अरि की सी लंक—पृ. ३४०-९३ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. लंका] लंका द्वीप जहाँ रावण का राज्य था । उ.—(क) गहि सारँग रन रावन जीत्यो, लंक बिभीषन फिरी दुहाई—१-२४ । (ख) जरिहै लंक कनकपुर तेरी उदवत रघुकुल भान—९-७९ । (ग) लैहैं लंक बीस भुज भानी—९-११६ ।

लंकनाथ, लंकनायक—संज्ञा पुं. [सं. लंका + नाथ, नायक] (१) रावण । (२) विभीषण ।

लंकपति—संज्ञा पुं. [सं. लंका+पति] लंका का राजा रावण ।

लंकपुर—संज्ञा पुं. [सं. लंका+पुर] लंका । उ.—लंक पुर आइ रघुराइ डेरा दियौ—९-१४२ ।

लंकपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. लंका+पुरी] लंका ।

लंका—संज्ञा स्त्री. [सं.] भारत के दक्षिण का एक द्वीप जहाँ रावण का राज्य था । उ.—(क) लंका बसत दैत्य अरु दानव—९-८६ । (ख) रे पिय, लंका बनचर आयौ – ९-११९ ।

लंकादाही—संज्ञा पुं. [सं. लंकादाहिन] हनुमान ।

लंकाधिपति—संज्ञा पुं. [सं.] रावण ।

लंकापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रावण । उ.—(क) जनक-सुता हित हत्यौ लंकापति—१-२५५ । (ख) मारौं आजु लंक लंकापति—९-७५ । (२) विभीषण ।

लंकापति-अनुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विभीषण । (२) कुंभकर्ण ।

लंकापती—संज्ञा पुं. [सं. लंकापति] लंका का स्वामी या राजा। उ.—आइ बिभीषन सीस नवायौ। देखत ही रघुबीर धीर कहि लंकापती बुलायौ—९-११२।

लंकार—संज्ञा पुं. [सं. अलंकार] भूषण, अलंकार, साज-शृंगार। उ.—बिधि सौं धेनु दई बहु बिपुनि सहित सर्व लंकार—२६२९।

लंकारि—संज्ञा पुं. [सं. लंका+अरि] श्रीरामचंद्र।

लंकाल—संज्ञा पुं. [हिं.] शेर, सिंह।

लंकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक राक्षसी जिसे, लंका में प्रवेश करते समय हनुमान ने मारा था।

लंकृत—वि. [सं. अलंकृत] सजा-सजाया, विभूषित, शोभित। उ.—(क) हृदय हार बिन ही गुन लंकृत—२०८८। (ख) सुंदर स्याम गंड लंकृत—३३२०। (ग) मानो इंदु आये नलिनी दल लंकृत अमी ओसकन जाल—३४५३।

लंकेश, लंकेस—संज्ञा पुं. [सं. लंकेश] (१) रावण। उ.—(क) कह्यौ लंकेस दै ठेस पग की तवै—९-११। (ख) दै सीता अवधेस पाइँ परि, रहु लंकेस कहावत ९-१३३। (२) बिभीषण।

लंकेश्वर, लंकेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. लंकेश्वर] (१) रावण। उ.—लंकेस्वर बाँधि राम-चरननि तर डारौं—९-८५। (२) विभीषण।

लंग—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाँग] धोती की लाँग जो पीठ की ओर खोंसी जाती है।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] लँगड़ापन।

वि. जो लँगड़ा हो।

लंगड़—वि. [हिं. लँगड़ा] जो लँगड़ता हो।

संज्ञा पुं. [हिं. लंगर] लंगर।

लँगड़ा—वि. [फ़ा. लंग] (१) जिसका एक पैर टूटा हो। (२) जिसका एक पाया टूटा हो।

संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कलमी आम।

लँगड़ाना, लँगड़ानो–क्रि. अ. [हिं. लँगड़ा] लँगड़े होकर चलना।

लगर—वि. [देश.] (१) दुष्ट। (२) ढीठ।

लंगर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) लोहे का बड़ा काँटा जो नाव या जहाज रोकने के लिए जल में डाल दिया जाता है। (२) लकड़ी का कुंदा जो पशु को भागने से रोकने के लिए उसके गले से बाँधा जाता है। (३) लोहे की भारी जंजीर। (४) चाँदी का तोड़ा जो पैर में पहना जाता है। (५) सिलाई के मोटे टाँके।

वि. (१) भारी, बोझीला। (२) नटखट, उपद्रवी। उ.—सूर स्याम दिन दिन लंगर भयौ—८६२। (३) धृष्ट, दुष्ट, अनाचारी। उ.—(क) लंगर ढीठ गुमानी टूँडक—१-१८६। (ख) महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ हँसति देखि मुख गारि—७०३।

मुहा०—लंगर करना—(१) उपद्रव करना। (२) दुष्टता या धृष्टता करना।

संज्ञा स्त्री.—ढिठाई, शरारत, उपद्रव। उ.—सूर स्याम जहँ तहाँ खिझावत जो मन भावत, दूरि करौं लंगर सगरी—१०४५।

वि. [हिं. लँगड़ा] जो लँगड़ाकर चलता हो।

लँगरई, लँगराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लंगर+अई, आई] नटखटपन, ढिठाई। उ.– (क) अजहूँ छाँड़ोगे लँगराई, दोउ कर जोरि जननि पै आये—३७०। (ख) अब पाई इनकी लँगराई रहते पेट समाने—पृ. ३२६ (५६)। (ग) दूरि करौं लँगराई वाकी—११६४।

मुहा०—लँगरई (लँगराई) करना या ठानना—नटखटपन या शरारत करना। लँगरई करत—शरारत या नटखटपन करता है। उ.—कालिहिं तैं लँगरई करत अति—४२५। करन लँगरई लागे—शरारत करने लगे हैं। उ.—मोहन करन लँगरई लागे—७७०। लँगरई कीन्हौ—शरारत की है। उ.—बहुत लँगरई कीन्हौं मोसौं—३४४। लँगरई ठानी—शरारत की। उ.—स्याम लँगरई ठानी—१०-२५३।

लँगराना, लँगरानो—क्रि. अ. [हिं. लँगड़ाना] लँगड़े होकर चलना।

लँगरी—वि. [हिं. लंगर] (१) शरारत भरी, नटखटपन की। उ.—भरन देहु जमुना-जल हमको, दूरि करौ बातैं ए लँगरी—८५३। (२) धृष्ट, दुष्ट। उ.—सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा कहति, सबै जुवती हैं लँगरी—१०-३१९। (३) निर्लज्ज। उ.—बन में पराई

नारि रोकि राखी बनवारी, जान नहीं देत, इयाँ कौन ऐसी लँगरी—१०४५।

संज्ञा स्त्री.—शरारत, नटखटपन। उ.—भली कही यह कुँवर कन्हाई, आजु मेटिहौं तुम्हरी लँगरी—८५४।

लँगरैयाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. लंगर] शरारतें, नटखटपन की बातें। उ.—जा दिन तैं सचरे गोपिनि मैं, ताही दिन तैं करत लँगरैयाँ—७३५।

लँगरैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लंगर] शरारत, नटखटपन। उ.—दूरि करै लँगरैया—८६२।

लंगी—वि. [हिं. लंग] लँगड़ाती हुई, लँगड़ी। उ.—ग्राह गह्यौ गज बल बिनु ब्याकुल, बिकल गात, गति लंगी—१-२१।

लंगर—संज्ञा पुं. [सं. लांगूली] (१) एक (विशेष) बंदर। उ.—(क) रीछ लंगूर किलकारि लागे करन—९-१३८। (२) (बंदर की) पूँछ। उ.—सन अरु सूत चीर पाटंबर लै लंगूर बँधाए—९-९८।

लंगूरफल—संज्ञा पुं. [हिं. लंगूर+सं. फल] नारियल।

लंगूल—संज्ञा पुं. [सं. लांगूल] (बंदर की) पूँछ।

लँगोट, लँगोटा—संज्ञा पुं. [सं. लिंग+ओट या पट्ट] कमर पर बाँधने का एक विशेष वस्त्र।

यौ०—लँगोटबंद—ब्रह्मचारी।

लँगोटिया—वि. [हिं. लँगोट] लंगोटी बाँधने के दिनों का, बचपन का।

मुहा०—लँगोटिया दोस्त या यार—बचपन का मित्र।

लँगोटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लँगोट] कोपीन, कछनी।

मुहा०—लँगोटी पर फाग खेलना—कम सामर्थ्य या साधन होने पर भी अधिक व्यय करना। लँगोटी बँधवाना—बहुत दीन या दरिद्र कर देना। लँगोटी बिकवाना—इतना दरिद्र या दीन कर देना कि पहनने को लँगोटी भी न रह जाय।

लंघन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फाका, उपवास। (२) लाँघने की क्रिया। (३) अतिक्रमण।

लंघना, लंघनो—क्रि. स. [हिं. लाँघना] लाँघना, पार चले जाना, नाँघना।

संज्ञा स्त्री. [सं.] उपेक्षा, अवमानना।

लंघै—क्रि. स. [हिं. लंघना] पार जाता है, लाँघ जाता है। उ.—जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै—१-१।

लंठ—वि. [हिं. लट्ठ] उजड्ड, गँवार, मूर्ख।

लंडूरा—वि. [देश.] बिना मूँछ का।

लंतरानी—संज्ञा स्त्री. [अ.] डींग, शेखी।

लंपट—वि. [सं.] (१) विषयी, कामुक, व्यभिचारी। उ.—मगन भयौ माया-रस लंपट—१-९८। (२) लोभी, कामी। उ.—(क) साधु-निंदक, स्वाद-लंपट—१-१२४। (ख) अति रस-लंपट मेरे नैन—२७६५।

संज्ञा पुं.—उपपति, यार।

लंपटता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुराचार, कामुकता।

लंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समकोण बनानेवाली रेखा। (२) प्रलंबासुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

संज्ञा स्त्री., पुं. विलंब।

वि. लंबा।

यौ०—लंबतड़ंग—बहुत लंबा।

लंबा—वि. [सं. लंब] (१) जो किसी एक दिशा में दूर तक चला गया हो।

मुहा०—लंबा करना—(१) चलता करना, टालना। (२) पटककर चित कर देना। लंबा होना—चल देना।

(२) जिसकी ऊँचाई अधिक हो। (३) जिसका विस्तार अधिक हो। (४) बड़ा, दीर्घ।

लंबाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लंबा] लंबे होने का भाव।

लंबान—संज्ञा स्त्री., पुं. [हिं. लंबा] लंबाई।

लंबायमान—वि. [हिं. लंबा] लेटा हुआ।

लंबी—वि. स्त्री. [हिं. लंबा] (१) जिसकी ऊँचाई या विस्तार अधिक हो। (२) बड़ी, दीर्घ।

मुहा०—लंबी तानना—ओढ़कर सो जाना। लंबी साँस लेना—दुख की ठंढी साँस लेना।

लंबुल—वि. [हिं. लंबा] लंबा, ऊँचा।

लंबोतड़ा, लंबोतरा—वि. [हिं. लंबा] लंबे आकार का।

लंबोदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेटू। (२) गणेश।

लँहड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] समूह, झुंड।

लईं—क्रि. स. [हिं. लेना] लीं।

प्र०—लईं बुलाइ—बुलवा लीं। उ.—लईं भीतर भवन बुलाइ सब सिसु-पाइँ परीं—१०-२५।

लई—क्रि. स. [हिं. लेना] ले ली। उ.—कामना-धेनु

पुनि सप्तरिषि कौं दई लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे —८-८।

प्र०—चुराइ लई—चुरा ली। उ.—तबहिं निसिचर गयौ छल करि लई सीय चुराइ—९-६०। रिझै लई—रिझा ली। उ.—रिझै लई जुवती वा छवि पर—१०-३०१। लइ लाइ—लगा ली, व्यस्त कर लिया। उ.—बातनि लई राधा लाइ—६८३।

लउटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लकुटी] लकड़ी।

लए—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) लिये या थामें हुए। उ.—लए लकुटिया द्वारैं ठाढ़े—८-१५। (२) साथ बैठाये, लगाये या लिये हुए। उ.—सूर स्याम लए जननि खिलावति—१०-२३९। (३) उठा लिये, पहुँचा दिये। उ.—आँगन मैं हरि सोइ गए री। दोउ जननी मिलि कै हरुऐं करि, सेज सहित तब भवन लए री—१०-२७४।

लकड़बग्घा—संज्ञा पुं. [हिं. लकड़ी+बाघ] एक जंगली पशु।

लकड़हारा—वि. [हिं. लकड़ी+हारा] लकड़ी बेचनेवाला।

लकड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. लगुड] (१) काठ। (२) ईंधन।

मुहा०—लकड़ी देना—मुरदे को जलाना। लकड़ी ठोंकना—मुरदे की कपाल-क्रिया करना।

(३) छड़ी, लाठी।

मुहा०—लकड़ी जैसा (सा)—बहुत दुबला-पतला। लकड़ी चलना—मार-पीट होना। लकड़ी होना—(१) दुबला-पतला होना। (२) सूखकर कड़ा होना।

लकरियन, लकरियनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. लकड़ी] लकड़ियों या ईंधन (के लिए)। उ.—जब हम तुम बन गए लकरियन पठए गुरु की भामा—१०उ०-६६।

लकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लकड़ी] (१) लकड़ी, डंडी। उ.—हमरे हरि हारिल की लकरी—३३६०।

मुहा०—सिर ठोंकी लकरी—मुरदे की कपाल-क्रिया की। उ.—लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी—१-७१।

लकवा—संज्ञा पुं. [अ. लक़वा] एक वात रोग।

लकीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लीक] (१) धारी। (२) पंक्ति।

मुहा०—लकीर का फकीर—पुराने ढंग पर चलनेवाला। लकीर पर चलना (पीटना)—किसी तरह पुरानी प्रथा निभाना।

लकुट, लकुटि, लकुटिआ, लकुटिया, लकुटी—संज्ञा स्त्री. [सं. लगुड, हिं. लकुट] लाठी, छड़ी। उ.—(क) तहीं तहिं त्रासत असम, लकुट, पद-त्रान—१-१०३। (ख) माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै—१-४२। (ग) चतुर ग्वालि कर गह्यौ स्याम कौ, कनक लकुटिआ पाई—८४२। (घ) करै टहल लकुटिया सौं डरि—३९२। (ङ) लकुट लै लै त्रास दीन्हौ—२५८३। (च) दौरि दामन देहिंगी लकुटी जसोदा पानि—२७५६।

मुहा०—बिरध समय की हरत लकुटिया—बुढ़ापे का सहारा छीनता है। उ.—बिरध समय की हरत लकुटिया पाप-पुन्य डर नाहीं। लकुट बजना—लकड़ी से मार पड़ना। लकुट बाजिहै—लकड़ी से मार पड़ेगी। उ.—लादत जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ—१-३३१।

लकुटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लकुट] लाठी, डंडा।

लक्कड़—संज्ञा पुं. [हिं. लकड़ी] लकड़ी का कुंदा।

लक्का—संज्ञा पुं. [अ. लक्क़ा] एक तरह का कबूतर।

लक्खी—वि. [हिं. लाख] लाख के रंग का।

वि. [हिं. लाख (संख्या)] लखपती, बहुत धनी।

लक्तक—संज्ञा पुं. [सं.] अलता, अलक्तक।

लक्ष—वि. [सं.] एक लाख।

संज्ञा पुं. (१) अंक जो एक लाख का द्योतक हो। (२) पैर। (३) चिह्न। (४) लक्ष्य। (५) एक प्रकार का अस्त्र।

लक्षक—वि. [सं.] लक्ष कराने या जतानेवाला।

संज्ञा पुं.—शब्द जो संबंध से अर्थ सूचित करे।

लक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आसार, चिह्न। उ.—अमल अकास कास कुसुमनि मिलि लक्षण स्वाति जनाए—२८५४। (२) नाम। (३) परिभाषा। (४) शरीर के विशेष चिह्न। (५) रंग-ढंग।

लक्षणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शब्द की शक्ति-विशेष जिससे उसका अभिप्राय सूचित हो।

लच्छना, लच्छनो—क्रि. स. [हिं. लखना] देखना, निहारना, ताकना।

लच्छि—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] लक्ष्मी।
संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्य] लक्ष्य।

लच्छित–वि. [सं.] (१) बताया हुआ। (२) देखा हुआ। (३) अनुमानित। (४) चिह्न या लक्षण-युक्त।
संज्ञा पुं.—'लक्षण' से ज्ञात शब्दार्थ।

लच्छिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नायिका जिसका प्रेम ज्ञात हो जाय।

लच्छी—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] लक्ष्मी।

लक्ष्म—संज्ञा पुं. [सं.] चिह्न, लक्षण।

लक्ष्मण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा दशरथ के तीसरे पुत्र जिनका जन्म सुमित्रा के गर्भ से हुआ था और जिनको उर्मिला ब्याही थी। (२) दुर्योधन का पुत्र।

लक्ष्मणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रीकृष्ण की एक पटरानी जो मद्र देश के राजा वृहत्सेन की पुत्री थी। (२) श्रीकृष्ण के पुत्र सांब की पत्नी। उ.—स्याम सुनि साँब गयौ हस्तिनापुर तुरत लक्ष्मणा जहाँ स्वयंवर रचायौ—१० उ०-४६।

लक्ष्मी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धन की अधिष्ठात्री जो विष्णु की पत्नी मानी जाती है। (२) धन-संपत्ति। (३) शोभा, छवि। (४) सुंदर और सौभाग्यशालिनी स्त्री या बधू।

लक्ष्मीकान्त—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु और उनके अवतार।

लक्ष्मीपति—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु और उनके अवतार।

लक्ष्मीपुत्र—वि. [सं.] बहुत धनी।

लक्ष्मीरमण—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु और उनके अवतार।

लक्ष्मीवल्लभ—संज्ञा पुं.[सं.] विष्णु और उनके अवतार।

लक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निशाना। (२) जिस पर आक्षेप किया जाय। (३) उद्देश्य। (४) अनुमानित प्रसंग। (५) 'लक्षणा' शक्ति से प्रकट अर्थ।

लक्ष्यक—वि. [सं.] (१) लक्ष्य करने-करानेवाला। (२) संकेत द्वारा सूचित करनेवाला।

लक्ष्यार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] 'लक्षणा' से प्रकट अर्थ।

लख—वि. [सं. लक्ष] लाख (संख्या)। उ.—(क) चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि—२-१३। (ख) है लख धेनु द्विजनि कौं दीन्हीं—१०-३२।

लखत—क्रि. स. [हिं. लखना] देखता है या देखते हैं। उ.—इहिं बिधि लखत—१-१८९।

लखति—क्रि. स. [हिं. लखना] दिखायी देती है। उ.—लखति पास बन सारी—२५६२।

लखन—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मण] श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण। उ.—लखन दल संग लै लंक घेरी--९-१३८।
संज्ञा स्त्री. [हिं.लखना] लखने की क्रिया या भाव।

लखना—क्रि. स. [सं. लक्ष] (१) समझ जाना, ताड़ लेना। (२) देखना।

लखनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लखना] लखने की क्रिया या भाव।

प्र.—जाति लखनि—समझी या जानी जा सकती है। उ.—सूर प्रभु महिमा अगोचर जाति कापै लखनि—९८१।

लखनौ–क्रि. स. [हिं. लखना] (१) समझना, ताड़ जाना। (२) देखना।

लखपति, लखपती—वि. [सं.लक्ष+पति, हिं. लखपति] जिसके पास लाखों की संपत्ति हो, बहुत धनी।

लखमी—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] लक्ष्मी।

लखराँव—संज्ञा पुं. [हिं. लाख+रावँ] बाग जिसमें बहुत पेड़ हों।

लखलखा—संज्ञा पुं. [फ़ा. लखलखा] (१) सुगंधित द्रव्य। (२) मूर्च्छा दूर करने का सुगंधित द्रव्य।

लखाई—क्रि. स. [हिं. लखाना] दिखायी, बतायी। उ.—यह औषधि इक सखी लखाई—७४८।

लखाउ—संज्ञा पुं. [हिं. लखना] (१) पहचान। (२) निशानी।

लखाना, लखानौ—क्रि. अ.[हिं. लखना] दिखायी पड़ना।
क्रि. स.—(१)दिखलाना।(२)समझाना, सुझाना।

लखायो, लखायौ—क्रि. स. [हिं. लखना] दिखायी दिया। उ.—(क) मग मैं अद्भुत चरित लखायौ—४-१२। (ख) खोजत जुग गए बीति अंत मोहूँ न लखायौ—४९२।

लखाव—संज्ञा पुं.[हिं. लखना](१) चिह्न। (२)निशानी।

लखावत—क्रि. स. [हिं. लखाना] दिखाता है, दिखाता

(हुआ)। उ.—आतम ह्व लखावत डोलत घट-घ व्यापक जोई—३०२२।

लखि—क्रि. स. [हिं. लखना] देखकर। उ.—रिषिनि कह्यौ, तुव सतम जग्य अरंभ लखि इंद्र कौ राज हित कंप्यौ हीयौ—४-११।

मुहा०—लखि न जाइ—(१) दिखायी नहीं पड़ता। उ.—मंदिर मैं गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ—१०-२७५। (२) देखने की सामर्थ्य, योग्यता या पात्रता न रही।

लखिआ, लखिया—वि. [हिं. लखना] देखनेवाला।

वि. [हिं. लाख] लखपती, बहुत धनी।

लखी—क्रि. स. [हिं. लखना] देखी, दिखायी दी। उ.—लखी न राघव नारि—९-७५।

लखेरा—वि.[हिं.लाख] लाख की चूड़ी आदि बनानेवाला।

लखै—क्रि. स. [हिं. लखना] देखता-समझता है। उ.—भक्त सात्विकी सेवै संत, लखै तिन्हैं मूरति भगवंत—३-१३।

लखोट, लखोटि, लखोठ, लखोठि—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. लकुट] लाठी, छड़ी, लकड़ी।

लखो, लखौ—क्रि. स. [हिं. लखना] देखो। उ.—लखौ अब नैन भरि, बुझि गई अगिनि झरि—५९७।

लखौट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाख+औट] लाख की बनी हुई चूड़ियाँ।

लखौटा—संज्ञा पुं. [हिं. लाख+औटा] (१) डिब्बा जिसमें सेंदुर आदि रक्खा जाय। (२) उबटन-विशेष।

लखौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाखा] (१) भृंगी का घर। (२) एक तरह की पतली ईंट।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लाख (संख्या)] किसी देवता पर लाख की संख्या में फल, फूल, पत्ती आदि चढ़ाना।

लख्यो, लख्यौ—क्रि. स. [हिं. लखना] देखा, लक्ष्य किया। उ.—गौतम लख्यौ, प्रात है भयौ—६-८।

लग—क्रि. वि. [हिं. लौ] (१) तक, पर्यन्त। (२) समीप।

अव्य. (१) लिए, वास्ते। (२) साथ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लौ] लगन, प्रीति। उ.—(क) लग लगान नहिं पावत स्याम—८७८। (ख) जब कहुँ लग लागें नहीं तब वाको जिव अकुलाइ री—८८०। (ग) लग लागे पागे उर अंतर कठिन सिलीमुख पायक—२२२९।

लगत—क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) लगता है, लगते हैं।

प्र०—लगत गोहारी—पुकार मचाते हो। उ.—परसुराम, तुम आइ लगत क्यौं नहीं गोहारी—९-१४।

मुहा०—पलक लगत—नींद आती है। उ.—तब तौ पलक लगत दुख पावत—३४०५।

(२) छाती से लगते हैं। उ.—लगत सेष-उर बिलखि जगत-गुरु—९-६२। छेड़छाड़ या शरारत करता है। उ.—औरनि सो करि रहे अचगरी मोसौं लगत कन्हाई।

लगति—क्रि. अ. [हिं. लगना] छूती या स्पर्श करती है। उ.—वाके आश्रम जोउ बसत, माया लगति न ताय।

लगती—क्रि. अ. [हिं. लगना] प्रभावित करती (है)।

मुहा०—लगती बात—(१) चुभने या पीड़ा पहुँचाने वाली बात। (२) मर्म या भेद भरी बात।

लगन—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] (१) प्रवृत्ति या ध्यान लगाने की क्रिया। उ.—कस्यप रिषि सुर-तात सु लगन लगावन रे—१०-२८। (२) प्रीति, स्नेह। (३) लगाव, संबंध।

संज्ञा पुं. [सं. लग्न] (१) विवाह का मुहूर्त। (२) सहालग। (३) शुभ कार्य का मुहूर्त।

यौ०—लगन घरी—शुभ कार्य का मुहूर्त। उ.—लगन घरी आवत यातैं न्हवाइ बनावौ—१०-९५।

(४) दिन का उतना अंश जितने में राशि-विशेष का उदय रहता है। उ.—(क) सोइ तिथि-बार-नछत्र लगन ग्रह सोइ जिहिं ठाट ठयौ—१-२९८। (ख) लगन सोधि सब जोतिष गनिकै—१०-८६।

लगनपत्री—संज्ञा स्त्री. [सं. लग्नपत्रिका] विवाह के मुहूर्त का निर्णय-सूचक पत्र जो कन्या पक्षवाले वर-पक्षवालों को भेजते हैं।

लगनवट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगन] प्रेम, लौ।

लगना—क्रि. अ. [सं. लग्न] (१) दो वस्तुओं का मिलना या सटना। (२) एक वस्तु का दूसरे में जुड़ना। (३) किसी वस्तु के तल पर पड़ना। (४) सिया या जड़ा जाना। (५) सम्मिलित होना। (६) उगना, जमना।

(७) ठिकाने पर पहुँचना। (८) क्रम से सजाया जाना। (९) खर्च होना। (१०) अनुभव होना। (११) स्थापित होना। (१२) कोई संबंध या रिश्ता होना। (१३) चोट या आघात पहुँचना। (१४) टकराना। (१५) पोता या मला जाना। (१६) जलन या किनकिनाहट उत्पन्न करना। (१७) बरतन के तल में लग जाना। (१८) शुरू हो जाना। (१९) काम में आना। (२०) काम के लिए जरूरी होना। (२१) चलना। (२२) जारी होना। (२३) रगड़ खाना। (२४) सड़ना, गलना। (२५) भीड़-भाड़ के कार्य का आरंभ होना। (२६) प्रभाव पड़ना। (२७) नियत या निश्चित होना। (२८) आरोप होना। (२९) जल उठना। (३०) ठीक, उपयुक्त या कामलायक होना। (३१) हिसाब या जोड़ होना। (३२) साथ हो जाना। (३३) चिमटना। (३४) कार्य में तत्पर होना। (३५) छूना, स्पर्श करना। (३६) दूध दुहा जाना। (३७) गड़ना, चुभना। (३८) बदले में दिया जाना। (३९) निकट पहुँचना। (४०) छेड़छाड़ करना। (४१) मुँदना, बंद होना। (४२) बाजी, दांव या शर्त पर रखा जाना। (४३) अंकित या चिह्नित होना। (४४) धार का तेज किया जाना। (४५) ताक या घात में रहना। (४६) एकत्र होना। (४७) दाम आँका जाना। (४८) परच जाना। (४९) बिछना। (५०) होना। (५१) सामने या बराबर आना।

लगनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] (१) प्रवृत्ति या ध्यान लगने की क्रिया। (२) प्रीति। (३) लगाव, संबंध।

लगनो—क्रि. अ. [हिं. लगना] लगना।

लगभग—क्रि. वि. [हिं. लग+भग अनु.] करीब-करीब।

लगर—संज्ञा पुं. [देश.] एक शिकारी पक्षी।

लगलग—वि. [अ. लक़लक़] दुबला, सुकुमार।

लगव—वि. [अ. लग़ो] (१) झूठा, (२) व्यर्थ।

लगवाना, लगवानो—क्रि. स. [हिं. लगाना का प्रेर०] लगाने को प्रवृत्त करना।

लगवार, लगवारा, लगवारो—संज्ञा पुं. [हिं. लगना+बार] यार, उपपति।

लगाइ—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) लगाकर। (२) आरोपित करके। उ.—तिहिं बहु अवगुन देइ लगाइ ५-४। (३) सटाकर, चिपकाकर। उ.—(क) सूर स्याम बिरुझाने सोए लिए लगाइ छतियाँ महतारी—१०-१९६। (ख) लीन्हीं जननि कंठ लगाइ—५८०। (४) साथ लेकर। उ.—लिये अमरगन संग लगाइ—१०६६। (५) मलकर, पोतकर। उ.—कुच बिष बाँटि लगाइ कपट करि बालघातिनी परम सुहाई—१०-५०।

लगाईं—क्रि. स. [हिं. लगाना] छुईं, स्पर्श कीं।

मुहा०—मुँह न लगाईं—बात भी नहीं की। उ.—अष्ट-सिद्धि बहुरौ तहँ आईं। रिषभदेव ते मुँह न लगाईं—५-२।

लगाई—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) की, कर दी। उ.—(क) बन मैं आजु अबार लगाई—४७१। (ख) जननी जिय व्याकुल भई कान्ह अबेर लगाई—५८९। (२) जोड़कर, संयुक्त करके। उ.—पटकत सिला गई आकासहिं दोउ भुज चरन लगाई - १०-४।

प्र०—प्रीति लगाई—प्रेम किया। उ.– मिटि गए राग-द्वेष सब तिनके जिन हरि प्रीति लगाई–१-३१८। दीठि लगाई—नजर लगा दी। खेलत मैं कोउ दीठि लगाई—१०-२००। टेर लगाई—पुकारा, आवाज दी। उ.—सखा द्वार परभात सौं सब टेर लगाई—१०-२०९। होड़ लगाई– स्पर्द्धा या प्रतियोगिता के लिए सन्नद्ध हुए। उ.—हमहूँ तुम मिलि होड़ लगाई—६६८। मोहिनी लगाई—मुग्ध या वशीभूत कर लिया। उ.—(क) स्याम बरन इक मिल्यौ ढोटौना तेहि मोकौं मोहनी लगाई ८४९। (ख) देखत ही मोहिनी लगाई—१४४०। समाधि लगाई —ध्यानावस्थित होकर। उ.—और कौन अबलनि ब्रत धारचौ योग-समाधि लगाई—३३४३।

लगाउ—क्रि. स. [हिं. लगाना] जोड़ो, बाँधो, संबद्ध करो। उ.– पालनौ अति सुन्दर गढ़ि····पंचरंग रेसम लगाउ—१०-४१।

लगाऊँ—क्रि. स. [हिं. लगाना] लेप करूँ, मलूँ। उ.—मृगमद तन न लगाऊँ—२१५०।

लगाए—क्रि. स. [हिं. लगाए] (१) मले,रगड़े। उ.—तन

उबटन तेल लगाए—१०-१८३ । (२) आघात किये । उ.—माता सँटिया ढूँक लगाए—३९१ । (३) साथ में ले लिये । उ.—ग्वाल-सखा सब संग लगाए—४४८ ।

लगातार—क्रि. वि. [हिं. लगना+तार] बराबर, निरंतर ।

वि.—क्रम से होता रहनेवाला ।

लगाद—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगाव] प्रेम, लौ ।

क्रि. वि. [हिं. लग] पर्यन्त, तक ।

लगान—संज्ञा पुं. [हिं. लगाना] भूमि-कर ।

लगाना—क्रि. स. [हिं. लगना] (१) एक वस्तु को दूसरे से मिलाना या सटाना । (२) एक वस्तु को दूसरी से जोड़ना । (३) किसी वस्तु के तल पर कुछ चिपकाना, गिराना या रगड़ना । (४) सीना, टाँकना । (५) सम्मिलित करना । (६) जमाना, उगाना । (७) उपयुक्त स्थान पर पहुँचाना । (८) क्रम से सजाना । (९) खर्च करना । (१०) अनुभव कराना । (११) स्थापित करना । (१२) चोट या आघात पहुंचाना । (१३) लेपना, पोतना, मलना । (१४) प्रवृत्ति आदि उत्पन्न करना । (१५) काम में लाना । (१६) सड़ाना, गलाना ।(१७) भीड़-भाड़ एकत्र करने का आयोजन करना । (१८) दी जानेवाली संख्या आदि नियत या निश्चित करना । (१९) अभियोग लगाना । (२०) जलाना । (२१) ठीक स्थान पर बैठाना, जड़ना । (२२) हिसाब या जोड़ करना । (२३) साथ या पीछे चलने को नियुक्त करना । (२४) साथ में संबद्ध करना । (२५) चुगली खाना ।

यौ०—लगाना-बुझाना—लड़ाई-झगड़ा कराना ।

(२६) साथ या पीछे ले चलना । (२७) काम में तत्पर करना । (२८) दूध दुहना । (२९) गड़ाना, धँसाना । (३०) समीप पहुँचाना । (३१) छुआना, स्पर्श कराना । (३२) बंद करना । (३३) बाजी, दाँव या शर्त पर रखना । (३४) किसी बात का अभिमान करना । (३५) पहनना, धारण करना । (३६) धार तेज करना । (३७) अंकित या चिह्नित करना । (३८) बदले में लेना । (३९) मूल्य आँकना । (४०) परचाना । (४१) नियत स्थान या कार्य पर पहुँचाना । (४२) बिछाना, फैलाना । (४३) करना । (४४) सामने या बराबर ले जाना ।

लगानी—क्रि. अ. [हिं. लगना] अनुरक्त हो गयी, प्रीति करने लगी । उ.—दिन दिन देन उरहनो आवति, ठुकि ठुकि करति लरैया ।.........। सूर स्याम सुन्दरहिं लगानी, वह जानै बल भैया—३७१ ।

लगानो—क्रि. स. [हिं. लगाना] लगाना ।

लगाम—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.](१) लोहे का वह ढाँचा जो घोड़े को वश में रखने के लिए उसके मुंह में रखा जाता है ।

मुहा०—लगाम चढ़ाना या देना-(किसी को)बोलने से रोकना ।

(२) उक्त ढाँचे से बँधी डोरी या तस्मा जो सवार या हाँकनेवाले के हाथ में रहता है, रास, बाग ।

लगाय—क्रि. स. [हिं. लगाना] लगाकर ।

प्र० —राखी घात लगाय—ताक या घात में रहे । उ.—सहसबाहु के सुतनि पुनि राखी घात लगाय—९-१४ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लगाव] प्रेम, लौ । उ.—सूर जहाँ लौं स्याम-गात हैं, तिनसौं क्यों कीजिए लगाय ।

लगायत—क्रि. वि. [हिं. लगाना] तक, पर्यन्त ।

लगाये—क्रि. स. [हिं. लगाये] सजा-सँवारकर और खाद्य पदार्थ परोसकर रखे । उ.—सखा सब बोलि हरि मंडली बनहिं के पात दोना लगाये—११७५ ।

लगायो, लगायौ—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) आरोपित किया । उ.—तुमहूँ मोहिं अपराध लगायौ—३७६ । (२) कान भरे । उ.—ब्रजनारी बटपारिनि हैं सब चुगली आपुहिं खाइ लगायौ—११६१ । (३) मढ़ा, जड़ा । उ. – लोह तरैं मधि रूपा लायौ, ताकैं ऊपर कनक लगायौ—७-७ ।

प्र०—चित, ध्यान या मन लगायो—लौ लगायो, ध्यान किया, भक्ति या प्रीति की । उ.—(क) हरि सौं चित्त न लगायौ—१-३०१ । (ख) अरु एकहिं सौं चित्त लगायौ—४-३ । (ग) मन-क्रम-बचन कहति हौं साँची मैं मन तुमहिं लगायौ—१२२३ । (घ) हरि-पद

-सौं नृप ध्यान लगायौ—२-२। कंठ लगायौ—गले या छाती से लगा लिया। उ.—(क) भरत सत्रुहन कियौ प्रनाम, रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ—९-५५। (ख) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि हँसि करि कंठ लगायौ—३५६।

लगार—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना+आर] (१) नियमित रूप से काम करने या कुछ देने का भाव या कार्य, बंधेज। (२) लगने की क्रिया या भाव, लगाव, संबंध। उ.—सहसौ फन फन फूंकरै नैन न तनहिं लगार। (३) सिलसिला, तार, क्रम। उ.—सात दिवस नहिं मिटी लगार, बरस्यौ सलिल अखंडित धार—१०६१। (ख) अखंड धारा सलिल निझरो मिटी नहीं लगार—९७३। (४) प्रीति, लगन। (५) भेद लाने या लेने-वाला। उ.—और सखी इक स्याम पठाई।........। बैठी आइ चतुरई काछे वह कछु नहीं लगार—२२-३२। (६) वह जिससे घनिष्ठ संबंध या मेल हो। (७) टिकने का स्थान।

लगालगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] (१) लगन, प्रीति। (२) हेल-मेल, मेल-जोल, संबंध।

लगाव—संज्ञा पुं. [हिं. लगना+आव] संबंध।

लगावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगाव] संबंध, लगाव, वास्ता। (२) प्रीति, लगन।

लगावत—क्रि. स. [हिं. लगाना] आरोपित करता है या करते हैं। उ.—झूठैं लोग लगावत मोकौं, माटी मोहिं न भावै—१०-२५३।

लगावति—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) आरोपित करती हैं। उ.—(क) सूर सु कत हठि दोष लगावति, घर ही को माखन नहिं खात—१०-३०८। (ख) अनलहते अपराध लगावति बिकट बनावति बात—१०-३२६। (२) मिलाती या जोड़ती हैं।

प्र०—न पलक लगावति—सोती नहीं। उ.—नैंकु न पलक लगावति डोल—६३०।

लगावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. लगाना] (१) करती है। उ.—सखी री, काहें गहरु लगावति—१०-२३। (२) संबंध जोड़ती है। उ.—कहा करौं, तुम बात कहूँ की कहूँ लगावति—१०७१। (३) मिलाती या संबद्ध करती है। (४) दोष या अपराध लगाती है। उ.—(क) झूठेहिं मोहिं लगावति ग्वारि—१०-३०४। (ख) जननी कैं खीझत हरि रोए झूठेहिं मोहिं लगावति धगरी—१०-३१९। (५) चिपटाती या चिपकाती है।

प्र०—कंठ लगावति—गले या छाती से लगाती है। उ.—लै जननी सुत कंठ लगावति—३९१।

लगावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगाना] लगाने की क्रिया या भाव।

प्र०—लगावन पावै—सम्पन्न कर पाता है। उ.—पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै—१०-२४९।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लगाव] संबंध, लगाव।

लगावना, लगावनो—क्रि. स. [हिं. लगाना] लगाना।

लगावहु—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) मलो, रगड़ो, पोतो। उ.—बिप्रनि कह्यौ, याहि अन्हवावहु। याकैं अंग सुगंध लगावहु—५-३। (२) लगा लोगे। उ.—गैयनि पै कहुँ चोट लगावहु—४०१।

प्र०—चित्त लगावहु—ध्यान करो, मानसिक संबंध जोड़ो। उ.—ताही सौं तुम चित्त लगावहु—५-२।

लगावैं—क्रि. स. [हिं. लगाना] करें।

प्र०—प्रीति लगावैं—प्रेम या भक्ति करें। उ.—हरि-पद-पंकज प्रीति लगावैं—३-१३।

लगावै—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) संबद्ध करती है, संबंध कराती है। (२) प्रवृत्ति को उकसाती है। उ.—महामोहिनी मोहि आत्मा अपमारगहिं लगावै—१-४२। (३) छुआता या स्पर्श कराता है। उ.—धेनु फिरति बिललाति बच्छ थन कोउ न लगावै—५८९। (४) आरोप लगाता या लगाती है। उ.—जौ तू रामहिं दोष लगावै करौं प्रान को घात—९-७७। (५) लक्ष्य करके चलाती है। उ.—भृकुटी धनुष कटाक्ष बाण मनो पुनि-पुनि हरिहिं लगावै—८७५।

लगावो, लगावौ—क्रि. स. [हिं. लगाना] करती हो। उ.—बेगि करौ किन, बिलंब काहैं लगावौ—१०-९५।

लगि—क्रि. अ. [हिं. लगना] सटकर, निकट होकर। उ.—सूर स्याम बैठे ऊखल लगि—३६९।

क्रि. वि. [हिं. लग] तक, पर्यंत, ताईं। उ.—(क) अजहूँ लगि........राज करै—१-३७। (ख) माता

पिता बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौ काम—१-७६। (ग) जब लगि काल न पहुँचै आइ—७-२। (घ) कहँ लगि तिनकौं करौं बखान—९-८। (ङ) तब लगि सबै सयान रहे – ६४६।

अव्य.—वास्ते, के लिए। उ.—(क) अबिहित बाद-बिबाद सकल मत इन लगि भेष धरत—१-५५। (ख) जन लगि भेष बनायौ—१-९०। (ग) तात बचन लगि राज तज्यौ—१०-१९८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लग्गी] लंबा बाँस।

लगिहै – क्रि. स. [हिं. लगना] (१) लगेगी, होगी। उ.—घरिक मोहिं लगिहै खटिका मैं—६७०। (२) चोट या आघात पहुँचेगा। उ.—दौरत कहा, चोट लगिहै कहुँ – १०-२२६।

लगीं—क्रि. स. [हिं. लगना] प्रवृत्त हुईं।

प्र०—कहन लगीं बोलने को प्रवृत्त हुईं, बोलने लगीं। उ.—कहन लगीं अब बढ़ि-बढ़ि बात—३५५।

लगी—क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) हुई, हो गयी। उ.—पवन-पुत्र पैठि मुख पधारे तहाँ लगी कछु बार – ९-७४। (२) व्यस्त हो गयी। उ. – आपु लगी गृह कामहिं—५१५। (३) आवश्यकता हुई, अनुभव की। उ.—भूख लगी मोहिं भारी—३९५। (४) प्रवृत्त हुई।

प्र०—लगी खवावन—खिलाने में प्रवृत्त हुई। उ. माता सुनत तुरत लै आई लगी खवावन रति सौं—१०-३१२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लग्गी] लंबा बाँस।

लगु—अव्य. [हिं. लग] (१) वास्ते। (२) संग।

लगुआ, लगुवा—वि. [हिं. लगना] पीछे-पीछे या साथ-साथ लगा रहनेवाला।

लगुड़—संज्ञा पुं. [सं.] डंडा, लाठी।

लगूर, लगूल—संज्ञा स्त्री. [सं. लांगूल] पूँछ, दुम।

लगे—क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) जड़े गये, लगाये गये। उ.—बिच-बिच हीरा लगे (नँद) लाल गरे कौ हार—१०-४०। (२) अंकुरित हुए, उगे। उ.—क्रम क्रम लगे फूल-फल आइ—९-५९। (३) जान पड़े। उ.—तुमको कैसे स्याम लगे—१३१८। (४) प्रतीक्षा करने को प्रवृत्त हुए। उ.—बैठि एकांत जोहन लगे पंथ सिव—८-१०। (५) प्रवृत्त हुए।

प्र०—करन लगे—करने को प्रवृत्त हुए। उ.—बान बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै—१-२७१।

लगैं—क्रि. अ. सवि. [हिं. लगना] लगने से, लगने पर। उ.—दुर्जन बचन सुनत दुख जैसौ बान लगैं दुख होय न तैसौ—४-५।

लगैगी—क्रि. स. [हिं. लगना] लग जायगी।

मुहा०—दीठि लगैगी—नजर लग जायगी। उ.—बाहेर जिन कबहूँ खैयै सुत, डीठि लगैगी काहू १००४।

लगौंहाँ—वि. [हिं. लगना] लगन लगानेवाला।

लगौ—क्रि. स. [हिं. लगना] लग जाय।

मुहा०—रोग-बलाइ लगौ—(तुम्हारा) रोग-धोग मुझे लग जाय। उ.—बाल-गोपाल लगौ इन नैननि रोग-बलाइ तुम्हारी—१०-९१।

लग्गत—संज्ञा स्त्री. [हिं. लागत] लागत।

लग्गा—संज्ञा पुं. [सं. लगुड] (१) लंबा बाँस। (२) दाँव।

संज्ञा पुं. [हिं. लगना] काम शुरू करना।

लग्गी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लग्गा] लंबा बाँस।

लग्घड़—संज्ञा पुं. [देश.] बाज पक्षी, शचान।

लग्न—संज्ञा पु. [सं.] (१) दिन का उतना अंश जितने में राशि-विशेष का उदय रहता है। उ.—(क) बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं—२०-८६। (ख) पुष्य नछत्र नौमी जु परम दिन लग्न सुद्ध सुभबार—सारा०-१६०। (२) शुभ कार्य का मुहूर्त। (३) विवाह का समय। उ.—एकहि लगन सबहिं कर पकरेउ, एक मुहूर्त बियाहे।

वि.—लगा या मिला हुआ।

लग्नक—संज्ञा पुं. [सं.] जमानत करनेवाला, प्रतिभू।

लग्यो, लग्यौ—क्रि. स. [हिं. लगना] (१) लग गया, सन गया, तल पर पड़ गया। उ.—कर नवनीत परस आनन सौं, कछुक खात कछु लग्यौ कपोलनि—१०-१२१। (२) प्रवृत्त हुआ।

प्र०—लग्यौ गुहारि—पुकार सुनी। उ.—ताकौं हरन कियौ, दसकंधर हौं तिहिं लग्यौ गुहारिं—९-६५।

लघिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. लघिमन्] (१) लघु होने का भाव, लघुत्व ।(२) आठ सिद्धियों में चौथी जिसे प्राप्त कर लेने पर मनुष्य छोटा और हलका बन सकता है ।

लघु—वि. [सं.] (१) आयु में कनिष्ठ, छोटा । उ.—(क) लघु सुत-नाम नरायन धरयौ—६-४ । (ख) लघु सुत नृपति-बुढ़ापो लयौ—९-७४ । (२) लंबाई में जो बड़ा या बड़ी न हो, छोटा, छोटी । उ.—लघु लघु लट सिर घूंघरवारी—१०-९३ । (३) आकार या विस्तार में छोटा । उ.—अस्त्र विद्या समर बहुरि लाग्यो करन, कबहुँ लघु कबहुँ दीरघ सो होइ—१० उ०—५६ । (४) थोड़ा, कम ।

लघुचेता—वि. [सं. लघुचेतस्] तुच्छ विचारोंवाला ।

लघुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छोटाई, छोटापन । उ.—मुरली कौन सुकृत-फल पाए ।.......। लघुता अंग, नहीं कछु करनी, निरखत नैन लगाए—६६१ । (२) तुच्छता, अपयश, ओछापन । उ.—अब तौं सूर भजी नँदलालहिं की लघुता की होइ बड़ाई—११९३ ।

लघुत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लघुता । (२) तुच्छता ।

लचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. लचकना] झुकाव, लचन ।

लचकना—क्रि. अ. [हिं. लचक] (१) लचना, बीच से झुकना । (२) (कोमलता या हाव-भाव के संकेत-स्वरूप) स्त्री की कमर का झुकना या लचकना ।

लचीला—वि. [हिं. लचना+ईला] (१) जो सरलता से झुक या लच सकता हो । (२) जिसमें सहज ही परिवर्तन या उतार-चढ़ाव हो सकता हो ।

लचीलापन—संज्ञा पुं. [हिं. लचीला+पन] लचीला होने का भाव, अवस्था या गुण ।

लचुइ, लचुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुचुई] मैदा की पूरी ।

लच्छ—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्य] (१) बहाना । (२) निशाना ।
संज्ञा पुं. [सं. लक्ष] लाख (संख्या) ।
संज्ञा स्त्री. [सं.] श्री, लक्ष्मी ।
यौ०—लच्छ-लच्छ—लाखों । उ.—रोम-रोम हनु मंत्र लच्छ लच्छ बान—९-९६ ।

लच्छण, लच्छन—संज्ञा पुं. [सं. लक्षण] (१) आदत, स्वभाव । (२) आसार, चिह्न । (३) गुण । उ.—(क) मुक्त नरनि के लच्छन कहौं—३-१३ । (ख) गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन—१०-८७ ।
संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मण] श्रीराम के अनुज, लक्ष्मण ।

लच्छना—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्षणा] लक्षणा (शब्दशक्ति) ।

लच्छमी—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] श्री, लक्ष्मी । उ.—चहूँ ओर चतुरंग लच्छमी कोरिक दुहियत धैन री—१०-१३९ ।

लच्छा—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) तारों का गुच्छा । (२) पतले-लंबे कटे टुकड़े । (३) इस प्रकार के लौकी के टुकड़ों की बनी मिठाई । (४) मैदे की एक मिठाई । (५) पैर का एक गहना जो सामान्यतया चाँदी का होता है ।

लच्छागृह—संज्ञा पुं. [सं. लाक्षागृह] लाक्षागृह ।

लच्छि—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] लक्ष्मी ।
संज्ञा पुं. [सं. लक्ष] लाख की संख्या ।

लच्छित—वि. [सं. लक्षित] (१) देखा या लक्ष्य किया हुआ । (२) अंकित, चिह्नित । (३) लक्षण से युक्त ।

लच्छिनाथ—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मीनाथ] विष्णु ।

लच्छिनिवास, लच्छिनिवासा—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मी+निवास] (१) विष्णु या उनके अवतार । (२) बैकुंठ ।

लच्छी—वि. [देश.] एक तरह का घोड़ा ।
संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] श्री, लक्ष्मी ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. लच्छा] गुच्छी, अट्टी ।
वि. [सं. लक्षण] लक्षणों से युक्त ।

लच्छेदार—वि. [हिं. लच्छा+फ़ा. दार] (१) जिसमें लच्छे पड़े हों । (२) (बात) जिसका सिलसिला न टूटे, पर साथ ही जो रोचक भी हो ।

लछ—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष] लाख योनियाँ । उ.—नृप चौरासी लछ फिरि आयौ—४-१२ ।

लछन—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मण] श्रीराम के अनुज लक्ष्मण । उ.—श्रीरघुनाथ-लछन ते मारे—९-५७ ।
संज्ञा पुं. [सं. लक्षण] (१) आदत, स्वभाव । (२) आसार, चिह्न । (३) गुण ।

लछना, लछनो—क्रि. अ. [हिं. लखना] देखना, ताड़ना ।

लछमन, लछिमन—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मण] श्रीराम के

अनुज लक्ष्मण । उ.—लछिमन सीता देखी जाइ—१-१६१ ।

लछमना, लछिमना—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मण] श्रीकृष्ण की एक पटरानी । उ.—बहुरि लछमना सुमिरन कीन्हो । ताहि स्वयंबर मैं हरि लीन्हौ ।

लछमी, लछिमी—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] श्री, लक्ष्मी । उ.—लछिमी सी जहँ मालिनि डोलै—१०-३२ । (ख) लछमी सहित होति नित क्रीड़ा—१-३३७ ।

लज—संज्ञा स्त्री. [सं. लज्जा] शर्म, लाज ।

लजना, लजनो—क्रि. अ. [सं. लज्जा] लज्जित होना ।

लजवाना, लजवानो —क्रि. स. [हिं. लजाना] (किसी को) लज्जित करना ।

लजाइ—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित होता है या होते हैं, लजाकर । उ.—सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ—३५२ ।

लजाई—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित हो गये, लजा गये । उ.—नँदनंदन मुख देखौ माई । अंग-अंग-छबि मनहुँ उये रवि, ससि अरु समर लजाई—६२६ ।

प्र०—रहे लजाई—लज्जित हो गये, लजा गये । उ.—हरि के जन की अति ठकुराई । महाराज, रिषि-राज, राजमुनि, देखत रहे लजाई—१-४० ।

लजाऊ —क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित होऊँ । उ.—भक्त-बछल बानो है मेरौ, बिरुदहिं कहा लजाऊँ—१०-४ ।

लजाति—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित होती है । उ.—(क) सूरज दोष देत गोबिंद कौं गुरु लोगनि न लजाति—१०-२९४ । (ख) प्राननाथ बिछुरे सखी जीवत न लजाति—२५४३ ।

लजाधुर—वि. [सं. लज्जाधर] जो बहुत लज्जा करे ।

लजाना, लजानो—क्रि. अ. [सं. लज्जा] लज्जित होना ।

क्रि. स. लज्जित करना ।

लजानी—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित हुई । उ.—(क) सुंदर मूरति देखि कै घन घटा लजानी—४७५ । (ख) यह बानी कहति ही लजानी—७७६ । (ग) रूप लकुट अभिमान निडर ह्वै जग-उपहास न सुनत लजानी—पृ. ३३३ (२९) ।

लजाने—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित हुए । उ.—कटि निरखि केहरि लजाने—१०-२३४ ।

लजान्यो, लजान्यौ—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित हुआ । उ.—मनहुँ चंद्रहि अब लजान्यो राहु घेरो जाल—१३५५ ।

लजायो, लजायौ—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लज्जित हुआ । उ.—गयो सो सब दिन हार जात मन बहुत लजायो १० उ.-३ ।

लजारा—वि. [हिं. लाज] (१) लज्जाशील । (२) लज्जित ।

लजारु, लजारू, लजालु, लजालू—संज्ञा पुं. [सं. लज्जालु, हिं. लजालू] एक पौधा । उ.—रुचिर लजालु लोनिका फाँगी—३९६ ।

लजावन—वि. [हिं. लजाना] लज्जित करनेवाला । उ.—बलि बलि जाउँ अरुन अधरनि की बिद्रुम-बिंब लजावन—६६४ ।

लजावनहार, लजावनहारा, लजावनहारो—वि. [हिं. लजावना] लज्जित करने वाले ।

लजावना, लजावनो—क्रि. स. [हिं. लजाना] लजाना, लज्जित करना ।

वि.—लज्जित करने वाला । उ.—सुंदर डाँडी चुनी बहुत लायो कोटिक मदन लजावनो—२२८० ।

लजावै—क्रि. स. [हिं. लजाना] लज्जित करे । उ.—(क) आन पुरुष कौ नाम लै पतिब्रतहिं लजावै--२-९ । (ख) लोह गहैं लालच करि जिय कौ औरौ सुभट लजावै—९-१५२ ।

लजियाना, लजियानो—क्रि. अ. [हिं. लजाना] लजाना, लज्जित होना ।

क्रि. स.—लज्जित करना ।

लज़ीज—वि. [अ. लज़ीज] स्वादिष्ट, सुस्वादु ।

लजीला—वि. [हिं. लाज+ईला] जो लजाता हो ।

लजुरि, लजुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. रज्जु, माग० लज्जु] कुएँ से पानी भरने की रस्सी ।

लजे—क्रि. अ. [हिं. लजना] लज्जित हुए । उ. (क) तारकगन लजे—पृ. ३४७ (५०) । (ख) सूर स्याम बैसेइ मनमोहन, वैसेहि प्यारी निरखि लजे—१८३३ ।

लजोर, लजोरा—वि. [हिं. लाज + आवर] जो लजाता हो, लजानेवाला।

लजोहन, लजोहा—वि. [सं. लज्जावह] जो लजाता हो, लजीला। उ.—रति-बिलास करि मगन भए अति निरखत नैन लजोहन—पृ. ३१५ (४४)।

लजोही—वि. [हिं. लजोहा] लजानेवाली।

लजौना—वि. [हिं. लाज+औना] (दूसरे को) लज्जित करने में समर्थ। उ.—सूर नंद-सुत मदन लजौना —२४२१।

लजौहाँ—वि. [हिं. लजोहा] जो लज्जित हो।

लजौहीं—वि. स्त्री. [हिं. लजौहाँ] जो लज्जित होती हो।

लज्जत—संज्ञा स्त्री. [अ. लज्ज़त] स्वाद।

लज्जा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लाज। उ.—जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार—१-३२५। (२) मान-मर्यादा या प्रतिष्ठा का ध्यान।

लज्जाप्रद—वि. [सं.] जिससे लज्जित होना पड़े।

लज्जावंत—वि. [सं.] जो लजाता हो।

लज्जावती—वि. स्त्री. [सं.] जो लजाती हो।

लज्यो—वि. [हिं. लजना] लज्जित हुए। उ.—तारागन मन में लज्यो—१८२४।

लज्जाशील—वि. [सं.] शीघ्र लजा जानेवाला।

लज्जित—वि. [हिं. लज्जा] जो लजा गया हो। उ.—(क) देखिकै उमा कौं रुद्र लज्जित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीन्हौ—८-१०। (ख) लज्जित होहिं पुर-बधू पूछैं सुनियत अद्भुत बात—९-४३।

लट—संज्ञा स्त्री. [सं. लट्वा] (१) बालों का लटकता हुआ गुच्छा, अलक। उ.—(क) लघु लघु लट सिर घूंघरवारी—१०-९३। (ख) लटकति लट चूमति —१०-७४। (ग) हौं जल भरति अकेली पनघट गही स्याम मेरी लट—८९०।

मुहा०—लट छिटकाना – (१) सिर के बाल खोल-कर इधर-उधर बिखराना। (२) सिर के बाल खोल-कर बहुत नम्रता, विनय या दीनता दिखाना।

(२) उलझे हुए बालों का समूह।

मुहा०—लट छोरना—(१) उलझे हुए बाल खोल-कर बिखराना। (२) लटें बिखराकर दीनता दिखाना।

लट छोरे—लटें बिखरा कर दीनता दिखाता हुआ। उ.—बिनवै चतुरानन कर जोरे। तुव प्रताप जान्यौ नहिं प्रभु जू, करै अस्तुति लट छोरे—४८८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लपट] ज्वाला, लौ, लपट। उ. झपटि झपटति लपट फूल फल चट चटकि फटत लट लटकि द्रुम-द्रुम नवायौ—५९६।

लटक—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव। (२) लचक, झुकाव। (३) लुभावनी चाल या चेष्टा। उ.—प्राननाथ सों प्रान प्यारी प्रान लटक सों लीन्हे।

लटकत—क्रि. अ. [हिं. लटकना] (१) लटकता है। उ.—लटकन लटकत ललित भाल पर—१०-९८। (२) झुकता है, गिरने लगता है। उ.—पटकत बाँस काँस कुस चटकत लटकत ताल तमाल—६१५। (३) लचक या बल खाकर। उ.—लटकत चलत नंदकुमार।

लटकहिं—क्रि. अ. [हिं. लटकना] लटकती हैं। उ.—लटकति ललित लटुरियाँ—१०-११६।

लटकति—क्रि. अ. [हिं. लटकना] (१) झुककर। उ.—जसुमति लटकति पाइ परै—१०-१७। (२) लटकती (हुई या है)। उ.—लटकति बेसरि जननि की—१०-७२।

लटकन—संज्ञा पुं. [हिं. लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव। (२) लटकने वाली चीज। (३) लुभावनी चाल या चेष्टा। (४) नाक का एक गहना। (५) कलगी आदि में लगा रत्नों का गुच्छा जो माथे पर हिलता-डोलता है। उ.—(क) लटकन लटकि रह्यौ माथैं पर—१०-९२। (ख) लटकन लटकत भाल—१०-९७।

लटकना—क्रि. अ. [सं. लडन = झूलना] (१) ऊपरी आधार से नीचे झूलना। (२) ऊपरी आधार से नीचे लटककर हिलना-डोलना। (३) टँगना। (४) किसी ओर को झुकना। (५) लचक या बल खाना। (६) दुबिधा या अनिर्णय की स्थिति में होना। (७) कार्य आदि में देर होना।

लटकनि, लटकनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटकना] (१)

लटकने की क्रिया या भाव। उ.—(क) लट लटकनि—१८-९१। (ख) लटकन लटकनि भाल की—१०-१०५। (२) लचकती, बल खाती या लचकभरो चाल। उ.—(क) भावति मंद गयंद की लटकनि—६१८। (ख) बझे जाइ खग ज्यौं पिय छबि लटकनी लस।

लटकनो—क्रि. अ. [हिं. लटकना] (१) ऊँचे आधार से लटककर झूलना। (२) हिलना-डोलना। (३) टँगना। (४) झुकना। (५) लचकना। (६) दुबिधा में पड़ना। (७) कार्य में देर होना।

लटकवाना, लटकवानो—क्रि. स.[हिं. लटकाना का प्रेर.] लटकाने का काम दूसरे से कराना।

लटका—संज्ञा पुं. [हिं. लटक] (१) चाल, ढब। (२) बनावटी चेष्टा। (३) बातचीत का बनावटी ढंग। (४) टोटका। (५) साधारण नुस्खा।

लटकाए—क्रि. स. [हिं. लटकाना] टाँग दिये। उ.—अति बिस्तार नीपतरु तामैं लै लै जहाँ-तहाँ लटकाए—७८४।

लटकाना, लटकानो—क्रि. स. [हिं. लटकना] (१) ऊँचे आधार से टिकाकर निराधार छोड़ देना। (२) टाँगना। (३) झुकाना, लचकाना। (४) दुबिधा में रखना। (५) कार्य में देर करना।

लटकायो, लटकायौ—क्रि. स. [हिं. लटकाना] टाँगा। उ.—देखि तुहीं सीकैं पर भाजन ऊँचै धरि लटकायो—१०-३३४।

लटकि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव। (२) झुकाव। उ.—मुकुट लटकि अरु भृकुटी मटक देखौ—८३९।

क्रि. अ.—(१) टेढ़े होकर, लचककर। उ.—लकुटि लपेटि लटकि भए ठाढ़े, एक चरन धर धारे—६३२।

लटकीला—वि. [हिं. लटक+ईला] लचकदार।

लटकैं—क्रि. अ. [हिं. लटकना] दुबिधा में पड़ता है।

प्र०—रह्यौ लटकैं—दुबिधा में ही पड़ा रहा। उ.—ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम रह्यौ बीचहीं लटकैं—१-२९२।

लटक्यो, लटक्यौ—क्रि. अ. [हिं. लटकना] लटका, लटकने लगा या लगी। उ.—(क) हरि तोरी मोतिनि की माला कछु गर कछु कर लटक्यौ—१११९। (ख) सेहरो सिर पर मुकुट लटक्यो—१० उ०-२४।

लटकौआ, लटकौवा—वि. [हिं. लटकना] लटकनेवाला।

लटना, लटनो—क्रि. अ. [सं. लड=हिलना-डोलना] (१) थककर गिरना या लड़खड़ाना। (२) श्रम, रोग आदि से शिथिल या अशक्त होना। (३) शक्ति या उत्साह से रहित होना। (४) थक जाना। (५) व्याकुल या विकल होना।

क्रि. अ. [सं. लल, लड=ललचाना] (१) लेने को ललचाना या लुभाना। (२) लीन या अनुरक्त होना।

लटपट, लटपटा—वि. [हिं. लटपटाना] (१) गिरता-पड़ता या लड़खड़ाता हुआ। (२) ढीला-ढाला, अस्तव्यस्त। (३) टूटा-फूटा या अस्पष्ट (शब्द)। (४) अंडबंड, अव्यवस्थित। (५) अशक्त, शिथिल। (६) गिंजा या मला-दला हुआ, जिसमें शिकन या सिलवटें पड़ गयी हों।

लटपटाइ—क्रि. अ. [हिं. लटपटाना] लड़खड़ाकर। उ.—लटपटाइ (लटपटात) पग धरनि धरत गज—१०६७।

लटपटात—वि. [हिं. लटपटाना] लड़खड़ाता हुआ। उ.—लटपटात पग धरनि धरत गज—१०६७।

लटपटान—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटपटाना] (१) लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। (२) लटक या लचकभरी गति या चाल।

लटपटाना, लटपटानो—क्रि. अ. [सं. लड+पत्] (१) गिरना-पड़ना, लड़खड़ाना। (२) डिगना, स्थिर न रहना। (३) ठीक तरह से काम न करना।

क्रि. अ. [सं. लल, लड] (१) लुभाना, ललचाना, लेने को लपकना। (२) लीन या अनुरक्त होना।

लटपटी—वि. स्त्री. [हिं. लटपटा] (१) गिरती-पड़ती, लड़खड़ाती हुई। उ.—चलत लटपटी चाल—१०-११४। (२) ढीली-ढाली, अस्तव्यस्त। उ.—(क) लटपटी पाग, उनींदे नैन। (ख) सूर देखि लटपटी पाग पर जावक की छवि लाल। (२) गिंजी, मली-

ढीली, शिकन या सिलवट भरी। उ.—त्रिबली पलोटन सलोट लटपटी सारी।

लटपटे—वि. [हिं. लटपटा] ढीले-ढाले, अस्तव्यस्त। उ.—छूटे बंदन अरु पाग की बाँधनि छुटी, लटपटे पेच अटपटे दिए—२००९।

लटा—वि. [सं. लट्ट] (१) लोलुप। (२) लुच्चा। (३) तुच्छ। (४) गिरा हुआ। (५) बुरा।

लटाना—क्रि. अ. [सं. लल, लड=लुभना] (१) लुभाना, लेने को ललकना। (२) लीन या अनुरक्त होना।

लटानी—क्रि. अ. [हिं. लटाना] लुभा गयी, लोभ से भर गयी। उ.—सकल सिंगार कियौ ब्रज बनिता नख-सिख लोभ लटानी हो—२४००।

लटानो—क्रि. अ. [हिं. लटाना] (१) लुभाना, लेने को ललकना। (२) लीन या अनुरक्त होना।

लटापटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटपटाना] (१) लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। (२) लड़ाई-झगड़ा।

लटापोट—वि. [हिं. लोटपोट] मुग्ध, मोहित।

लटि—क्रि. अ. [हिं. लटना] (१) लीन या अनुरक्त होकर। उ.—छपद कंज तजि बेलि सौं लटि-लटि प्रेम न जान्यौ। (२) शिथिल या विकल होकर। उ. —सूर प्रान लटि लाज न छाँड़त सुमिरि अवध आधार—२८८८।

लटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लट] लच्छी, अट्टी, आँटी।

लटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटा] (१) बुरी बात। (२) झूठी बात।

मुहा०—लटी मारना—गप्प हाँकना। मारत-फिरत लटी—गप्प हाँकता फिरता है। उ.—अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी—१-९८।

(३) भक्तिन, संन्यासिनी। (४) वेश्या।

लटुआ—संज्ञा पुं. [हिं. लट्टू] लट्टू (खिलौना)।

लटुरियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. लटूरी] अलकें, लटें। उ.—(क) छिटकि रहीं चहुँ दिसि जु लटुरियाँ—१०-१०५ (ख) लटकति ललित लटुरियाँ—१०-११६।

लटुरिया, लटुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लटूरी] लट, अलक। उ.—लटकति ललित लटुरिया भ्रू पर—१०-१२४।

लटुवा, लट्टू—संज्ञा पुं. [हिं. लट्टू] लट्ट (खिलौना)।

मुहा०—लटू (लटुवा) भईं—मुग्ध या मोहित हो गयीं। उ.—हम तौ रीझि लटू भईं लालन महा प्रेम तिय जान—२८११।

लटूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लट] लट, केश, अलक। उ.—लटकति ललित ललाट लटूरी—१०-११७।

लटट—वि. [सं.] दुष्ट, दुर्जन।

लट्टपट्ट—वि. [हिं. लथपथ] लथपथ।

लट्टू—संज्ञा पुं. [सं. लुठन] एक खिलौना जिसे लत्ती या डोरी से नचाया जाता है।

मुहा०—(किसी पर) लट्टू होना—(१) मुग्ध या मोहित होना। (२) रीझना। (३) पाने या प्राप्त करने को हैरान होना।

लट्ठ—संज्ञा पुं. [सं. यष्ठि, प्रा. लट्ठि] मोटा डंडा।

मुहा०—(किसी के पीछे) लट्ठ लिये घूमना (फिरना)—विरोध या प्रतिकूल आचरण करना।

लट्ठबाज—वि. [हिं. लट्ठ+फ़ा. बाज़] लठैत।

लट्ठमार—वि. [हिं. लट्ठ+मारना] (१) लट्ठ मारने-वाला। (२) कठोर, कर्कश।

लट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. लट्ठ] (१) लकड़ी का बड़ा या लंबा टुकड़ा। (२) एक मोटा कपड़ा।

लठ—संज्ञा पुं. [हिं. लट्ठ] मोटा डंडा।

लठबाँसी—वि. [हिं. लट्ठ+बाँस] लाठी-डंडा बाँधे लड़ने को तैयार, लड़ाकू। उ.—बटपारी, ठग, चोर उचक्का, गाँठिकटा, लठबाँसी—१-१८६।

लठिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाठी] लकड़ी, लाठी।

लठैत—वि. [हिं. लट्ठ] लाठी बाँधने, चलाने या उसको लेकर लड़नेवाला।

लड़ंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़ाई] (१) भिड़ंत। (२) मुकाबला, सामना।

लड़—संज्ञा स्त्री. [सं. यष्ठि, प्रा. लट्ठि] (१) माला। (२) पंक्ति, कतार।

मुहा०—लड़ मिलाना—मित्रता करना। लड़ में रहना—दल या पक्ष में रहना।

(३) पंक्ति में गुँथी कलियों-मंजरियों की छड़ी की तरह की पंक्ति।

लड़इता, लड़इतो—वि. [हिं. लड़ैता] लाडले प्रियतम।

उ.—तब कित लाड़ लड़ाइ लड़इतो बेनी कुसुम गुहि गाढ़ी—पृ.३५३ (९५)।

लड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. ललक] ललक, चाव।

लड़कइयाँ, लड़कई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़का+ई] (१) लड़कपन। (२) नादानी। (३) चिलबिल्लापन।

लड़कना, लड़कनो—क्रि. अ. [हिं. ललकना] ललकना।

लड़कपन—संज्ञा पुं. [हिं. लड़का+पन] (१) बाल्यावस्था। (२) चिलबिल्लापन, चंचलता।

लड़का—संज्ञा पुं. [हिं. लाड़] (१) बालक। (२) पुत्र।

मुहा०—राह-बाट का लड़का-लड़का जिसके माता-पिता का पता न हो। लड़का-लड़की—संतान। लड़का-वाला—(१) संतान। (२) परिवार, कुटुंब।

लड़काइ, लड़काई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़का+ई] (१) बाल्यावस्था। (२) नादानी। (३) चिलबिल्लापन।

लड़कानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़का] लड़कपन।

लड़किनि, लड़किनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़की] (१) बालिका। (२) पुत्री।

लड़कीला—वि.[हिं. लड़का+ईला] मोह-ममता से युक्त।

लड़कैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़का+ऐयाँ] लड़कपन।

लड़कौरी—वि. स्त्री. [हिं. लड़का+औरी] (स्त्री.) जिसकी गोद में बच्चा हो।

लड़खड़ाना, लड़खड़ानो—क्रि. अ. [सं. लड=डोलना +हिं. खड़ा] (१) डगमगाना। (२) झोंका खाकर गिरना। (३) ठीक-ठीक न चलना।

मुहा०—जीभ लड़खड़ाना—टूटे-फूटे शब्द या वाक्य निकलना।

लड़खड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़खड़ाना] डगमगाहट।

लड़ना, लड़नो—क्रि. अ. [सं. रणन] (१) युद्ध या लड़ाई करना। (२) मल्लयुद्ध करना। (३) तकरार या हुज्जत करना। (४) वादविवाद करना। (५) टकराना। (६) विरुद्ध प्रयत्न करना। (७) मेल मिल जाना।

मुहा०—हिसाब लड़ना—(१) लेखा-जोखा ठीक होना। (२) कार्य या बात का सुभीता हो जाना।

(८) अनुकूल या ठीक होना। (९) लक्ष्य पर पहुँचना।

लड़बड़ाना—क्रि. अ. [हिं. लड़खड़ाना] लड़खड़ाना।

लड़बावर, लड़बावला—वि. [हिं. लड़का+बावरा] (१) अल्हड़। (२) अनाड़ी। (३) (कार्य) जिससे मूर्खता प्रकट हो।

लड़बौरा—वि. [हिं. लड़बावरा] लड़बावरा।

लड़बौरी—वि. स्त्री. [हिं. लड़बौरी] अल्हड़, अनाड़ी।

उ.—सुन री राधा अति लड़बौरी जमुन गई तब संग कौन री।

लड़ाइ, लड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़ना, लड़ाई] (१) भिड़ंत। (२) संग्राम, युद्ध। (३) कुश्ती। (४) तकरार, हुज्जत। (५) बहस, वादविवाद। (६) टक्कर। (७) विरुद्ध प्रयत्न या चाल। (८) बैर, अनबन।

क्रि. स. [हिं. लाड़] प्यार-दुलार करके, प्यार-दुलार किया। उ.—(क) तब कित लाड़ लड़ाइ लड़इते बेनी कुसुम गुहि गाढ़ी—पृ. ३५३ (९५)। (ख) एक तौ लालन लाड़नि लड़ाइ, दूजे यौवन बावरी—२०४९। (ग) कहिए कहा नंद नंदन सौ, जैसे लाड़ लड़ाई—२२७५। (घ) अरु कत लाड़ लड़ाइ राग रस हँसि हँसि कंठ लगावै—३०९८।

लड़ाए—क्रि. स. [हिं. लाड़] प्यार-दुलार किया। उ.—लालन तुम ऐसे लाड़ लड़ाए—७९४।

लड़ाका, लड़ाकू—वि. [हिं. लड़ना] (१) झगड़ालू। (२) वीर, योद्धा।

लड़ाना, लड़ानो—क्रि. स. [हिं. लड़ना का प्रेर.] (१) लड़ने को प्रवृत्त करना। (२) झगड़ने को प्रवृत्त करना। (३) टक्कर खिलाना, भिड़ाना। (४) लक्ष्य पर पहुँचाना। (५) परस्पर उलझाना। (६) सफलता के लिए व्यवहार में लाना।

क्रि. स. [हिं. लाड़] प्यार-दुलार करना।

लड़ायतो, लड़ायतौ—वि. [हिं. लड़ैता] प्यारा-दुलारा।

लड़ायौ—क्रि. स. [हिं. लाड़] (१) लाड़-प्यार या दुलार किया। उ.—(क) भाँति भाँति करि मोहिं लड़ायौ सघन कुंज में जाय—सारा. ३२५। (ख) आसा करि करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ—२-३०। (ग) बालक प्रतिपालक तुम दोऊ, दसरथ लाड़ लड़ायौ—९-५५। (२) लाड़-प्यार करके ढीठ बना दिया।

उ.—सुनि सुनि री तैं महरि जसोदा तैं सुत बड़ो लड़ायौ—१०-३३९ ।

लड़ावत—क्रि. स. [हिं. लाड़] लाड़-प्यार करता है। उ.—फिरि बसुदेव बसे अपने गृह परम रुचिर सुख धाम । राम-कृष्न को लाड़ लड़ावत जानत नहिं दिन जाम—सारा. ५३६ ।

लड़ावति—क्रि. स. [हिं. लाड़] प्यार-दुलार करती है। उ.—सौमित्रा-कैकइ सुख पावति बहु बिधि लाड़ लड़ावति—सारा. १९५ ।

लड़ावति—क्रि. स. [हिं. लाड़] (१) प्यार-दुलार करती है। (२) आदर-प्रेम करती है। उ.—जनक-सुता बहु लाड़ लड़ावति निपट निकट सुख दीन्हों—सारा. ३०८।

लड़ावै—क्रि. स. [हिं. लाड़] लाड़-प्यार करती है। उ.—भूषन-बसन आदि सब रचि रचि माता लाड़ लड़ावै—सारा. १८२ ।

लड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़] (१) माला । (२) पंक्ति, कतार । (३) गुंथी हुई कलियों या मंजरियों की छड़ी की तरह की पंक्ति ।

लड़ीला—वि. [हिं. लाड़] (१) लाड़ला, दुलारा । (२) लाड़-प्यार से ढीठ हो जानेवाला । (३) प्रिय ।

वि. [हिं. लड़नेवाला] योद्धा ।

लडुआ, लडुवा—संज्ञा पुं. [सं. लड्डुक] लड्डू, मोदक । उ.—मृदु मुसुकनि मनो ठग-लडुआ मिषि गति-मति सुध बिसरे—पृ. ३३१ (५) ।

लड़ैता—वि. [हिं. लाड़+ऐता] (१) दुलारा, लाड़ला । (२) अधिक लाड़ प्यार के कारण धृष्ट हो जानेवाला । (३) प्रिय, प्यारा ।

वि. [हिं. लड़ना] वीर, योद्धा ।

लड़ैती—वि. स्त्री. [हिं. लड़ैता] प्यारी । उ.—जितहिं जितहिं रुख करै लड़ैती तितहीं आपुन आवै—२२७५।

लड़ैते—वि. [हिं. लड़ैता] दुलारे, लाड़ले । उ.—(क) बहु जतननि ब्रजराज लड़ैते तुम कारन राख्यौ बल-भैया—१०-२२९ । (ख) कहा कहौं मेरे लाल लड़ैते जब तू बिदा कियौ—२६९८ ।

लड़ैतो, लड़ैतौ—वि. [हिं. लड़ैता] दुलारा, लाड़ला । उ.—(क) मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत संकोच —२७०७। (ख) पठै देहु मेरो लाल लड़ैतो, वारौं ऐसी हाँसी—२७१० ।

लड़ैहौं—क्रि. स. [हिं. लाड़] लाड़-दुलार करूँगी । उ. —हौं अपने गोपाल लड़ैहौं, मौन-चाड़ सब रहौ घरी —१०-८० ।

लड्डू—संज्ञा पुं. [सं. लडडुक] मोदक ।

मुहा०—लड्डू खिलाना—आनंदोत्सव करना। लड्डू मिलना—कोई लाभ होना । लड्डू बँटना—लाभ या प्राप्ति होना । ठग के लड्डू खाना—होश-हवास में न रहना । मन के लड्डू उड़ाना, खाना या फोड़ना—किसी लाभ या प्राप्ति की व्यर्थ कल्पना करना ।

लड़्याना, लड़्यानो—क्रि. स. [हिं. लाड़] प्यार-दुलार करना ।

लढ़ा—संज्ञा पुं. [हिं. लढ़िया] बैलगाड़ी ।

लढ़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुढ़कना] बैलगाड़ी ।

लत—संज्ञा स्त्री. [सं. रति] बुरी आदत, दुर्व्यसन ।

लतखोर, लतखोरा—वि. [हिं. लात+फ़ा. खोर] (१) लात या मार खाने का काम करनेवाला। (२) नीच ।

लतपत—वि. [हिं. लथपथ] लथपथ ।

लतर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लता] बेल, लता ।

लतहा—वि. [हिं. लात+हा] लात मारनेवाला (पशु)।

लता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बेल, बल्ली । उ.—इंद्रिय-मूल-किसान, महातृन-अग्रज बीज बई । जन्म-जन्म की बिषय-बासना उपजत लता नई—१-१८५ । (२) कोमल शाखा । उ.—नाना भाँति पाँति सुंदर मनो कंचन की है लता बनाई ।

लताई—संज्ञा स्त्री. [सं. लता] कोमल शाखा । उ.—कंबु कपोत कंठ निसिबासर बाहु बली कटि कंज लताई—१८८७ ।

लताकुंज—संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जो लताओं से छाया हो।

लतागृह—संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जो लताओं से छाया हो ।

लताड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. लताड़ना] लताड़ने की क्रिया या भाव, भर्त्सना ।

लताड़ना, लताड़नो—क्रि. स. [हिं. लात] (१) पैरों से रौंदना । (२) लातों से मारना । (३) हैरान करना ।

लतापत्ता—संज्ञा पुं. [सं. लतापत्र] (१) पेड़-पत्ते । (२) जड़ी-बूटी ।

लताभवन—संज्ञा पुं.[सं.]स्थान जो लताओं से छाया हो ।

लतामंडप—संज्ञा पुं.[सं.]स्थान जो लताओं से छाया हो ।

लतिका—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) बेल । (२) कोमल शाखा ।

लतियर, लतियल—वि. [हिं. लात] लतखोरा ।

लतियाना, लतियानौ—क्रि. स. [हिं. लात+आना] (१) पैरों से रौंदना । (२) लातों से मारना ।

क्रि. स. [हिं. लत्ती] लट्टू को नचाने के लिए उसमें डोरी या लत्ती लपेटना ।

लतिहर, लतिहल—वि. [हिं. लात] लतखोरा ।

लतीफा—संज्ञा पुं. [अ. लतीफ़ा]हँसी की बात, चुटकुला ।

लत्ता—संज्ञा पुं. [सं. लत्तक] (१) चिथड़ा । (२) कपड़ा ।

मुहा०—लत्ता (लत्ते) लेना (ले डालना) किसी को खूब आड़े हाथों लेना ।

लत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. लात] (१) (पशु की) लात । (२) (पशु की) लात मारने की क्रिया ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लत्ता] (१) कपड़े की धज्जी । (२) लट्टू नचाने की डोरी ।

लथपथ—वि. [अनु.] (१) भीगा हुआ, तराबोर । (२) (कीचड़, रक्त आदि में) सना हुआ ।

लथाड़—संज्ञा स्त्री. [अनु. लथपथ] (१) पटककर घसीटने की क्रिया । (२) पराजय । (३) हानि । (४) डाँट-डपट, झिड़की ।

मुहा०—लथाड़ पड़ना—डाँटा-डपटा जाना ।

लथाड़ना, लथाड़नौ, लथेड़ना, लथेड़नौ—क्रि. स. [अनु. लथपथ] (१) (कीचड़ आदि में) सान लेना या सानकर गंदा करना । (२) पटक कर घसीटना । (३) कुश्ती में पछाड़ना । (४) हैरान करना । (५) डाँटना-डपटना ।

लदना, लदनौ—क्रि. अ. [हिं. लादना] (१) बोझ से भरा जाना । (२) आच्छादित होना । (३) किसी भारी चीज का दूसरी पर रखा जाना । (४) जेल जाना । (५) मर जाना ।

लदलद—क्रि. वि. [अनु.] किसी गीली-जैसी चीज के ऊपर से गिरने का शब्द ।

लदवाना, लदवानौ—क्रि. स. [हिं. लादना का प्रेर.] लादने का काम दूसरे से कराना ।

लदाइ—क्रि. स. [हिं. लदाना] बोझ या भार आदि रखवाकर । उ.—गयौ पताल उरग गहि आन्यौ, ल्यायौ तापर कमल लदाइ—६०० ।

लदाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लादना] लादने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

लदाऊ—वि. [हिं. लदना] लदने का भाव, भराव ।

लदाए—क्रि. स. [हिं. लदाना] बोझ या भार आदि रखवाये । उ.—ताही पर धरि कमल लदाए, सहस सकट भरि ब्याल पठाए—५८५ ।

लदान—संज्ञा स्त्री. [हिं. लादना] लादने की क्रिया या भाव ।

लदाना, लदानौ—क्रि. स. [हिं. लादना का प्रेर.] लादने का काम दूसरे से कराना ।

लदाफँदा—वि. [हिं. लदना+फँदना] भार से लदा हुआ ।

लदाव—संज्ञा पुं. [हिं. लादना] (१) लादने की क्रिया या भाव । (२) भार, बोझ ।

लदुआ, लदुवा—वि. [हिं. लादना] बोझ ढोनेवाला ।

लद्दू—वि. [हिं. लादना] बोझ ढोनेवाला ।

लद्धड़—वि. [हिं. लादना] जो फुर्तीला न हो ।

लद्धड़पन—संज्ञा पुं. [हिं. लद्धड़] सुस्ती, ढिलाई ।

लद्धना, लद्धनौ—क्रि. स. [सं. लब्ध, प्रा. लद्ध=प्राप्त] पाना, प्राप्त करना ।

लद्यो, लद्यौ—वि. [हिं. लदना] भार या बोझ से लदा या दबा हुआ । उ.—सुत-धन-धाम-त्रिया-हित औरै लद्यौ बहुत बिधि भारौ—१-२१३ ।

लप—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) लचीली चीज को हिलाने का शब्द या कार्य । (२) छुरी जैसी लचीली चीज की चमक की गति ।

मुहा०—लप लप करना—(१) लचीली चीज के हिलाने से होनेवाला शब्द । (२) चमाचम करना, चमकना । लप से—झट से, तुरंत ।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) अँजुली । (२) अंजुली भर कोई वस्तु ।

लपक—संज्ञा स्त्री. [अनु. लप] (१) ज्वाला, लपट, लौ। (२) चमक, लपलपाहट। (३) तेजी, वेग।
मुहा०—लपककर—(१) तेजी से जाकर। (२) झट से, तुरंत।

लपकत—क्रि. अ. [हिं. लपकना] तेजी से चलता है। उ.—कबहुँक दौरि घुटुरुवनि लपकत, गिरत उठत पुनि धावै री—१०-९८।

लपकना, लपकनो—क्रि. अ. [हिं. लपक] (१) तुरंत दौड़ पड़ना। (२) तेजी से चलना। (३) आक्रमण के लिए झपटना। (४) कोई वस्तु लेने को तेजी से बढ़ना या हाथ बढ़ाना।

लपका—संज्ञा पुं. [हिं. लपकना] लत, चस्का।

लपकि—क्रि. अ. [हिं. लपकना] झपटकर। उ.—बाज सों टूटि गजराज हाँकत परचो मनो गिरि चरन धरि लपकि लीन्हो—२५९०।

लपझप—वि. [अनु. लप+हिं. झपट] (१) चुपचाप न बैठनेवाला। (२) तेज, फुरतीला।
मुहा०—लपझप चाल—तेज पर बेढंगी चाल।
संज्ञा स्त्री. छीना-झपटी।

लपट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौ+पट=विस्तार] (१) ज्वाला, लौ। उ.—(क) झपटि झपटत लपट—५९६। (ख) उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल—६१५। (२) तपी हुई वायु, आंच की तेजी। (३) सुगंधित वायु का झोंका। (४) सुगंध, महक। उ.—सूरदास प्रभु की बानक देखे गोपी ग्वाल टारे न टरत निपट आवै सौंधे की लपट—८३९।
संज्ञा स्त्री.—[हिं. लिपट] लिपटने की क्रिया या भाव।

लपटना, लपटनो—क्रि. अ. [हिं. लिपटना] (१) आलिंगित होना। (२) सूत, डोरी आदि का किसी वस्तु के चारो ओर लपेटा जाना। (३) सट जाना। (४) उलझना, फँसना। (५) घिर जाना। (६) लगा या रत रहना।

लपटा—संज्ञा पुं. [हिं. लपटना] संबंध, लगाव।

लपटाइ—क्रि. स. [हिं. लपटाना] (१) सटाकर, लिपटाकर। उ.—(क) पूतना के प्रान सोखे आपु उर लपटाइ—४९८। (ख) यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यों मरकत मनि कंचन मैं जरिया—६८८। (२) कई फेरों से घेर लेना। उ.—उरग लियौ हरि कौं लपटाइ—५५५।
क्रि. अ. [हिं. लपटना] लगकर, सन कर।
प्र०—रही लपटाय—लग गयी थी। उ.—आपुहिं जाइ बाँह गहि ल्याई खेह रही लपटाइ—१०-२२६।

लपटाई—क्रि. अ. [हिं. लपटना] चिपटकर।
प्र०—रहे लपटाई—चिपट गये। उ.—अति आनंद सहित सुत पायौ, हिरदै माँझ रहे लपटाई—१०-५१।

लपटाए—क्रि. अ. [हिं. लपटना] चिपट गये।
प्र०—रहे लपटाए—चिपटे रहे। उ.—(क) उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए—९-३७। (ख) तब वह देह धरी जोजन लौं स्याम रहे लपटाए—१०-५३।
क्रि. स. [हिं. लपटाना] लगाये या धारे हुए। उ.—संध्या समय साँवरे मुख पर गो-पद-रज लपटाए—४१७।

लपटात—क्रि. अ. [हिं. लपटना] (१) चिपटता या लिपटता है। उ.—(क) जम के फंद परचो नहिं जब लगि चरननि किन लपटात—१-३१३। (ख) ऐसे अंध जानि निधि लूटत, पर-तिय सँग लपटात—२-२४। (ग) ज्यों पतंग हित जानि आपनो दीपक सौं लपटात—३३८६। (२) घेर लेता है। उ.—तउ कुटुँब को मोह न जात। तन-धन-लोभ आइ लपटात—१-३४२।
क्रि. स. [हिं. लपटना] मलता, लगाता या पोतता है। उ.—जेंवत कान्ह नंद इकठौरे। कछुक खात लपटात दोउ कर बाल केलि अति भोरे—१०-२२४।

लपटाति—क्रि. अ. [हिं. लपटना] लिपटी है, घेरे हुए है। उ.—तनक कटि पर कनक करधनि छीन छवि चमकाति। मनो कनक कसौटिया पर लीक सी लपटाति—१०-१८४।

लपटाते—क्रि. अ. [हिं. लपटना] लिपट जाते। उ.—

जब उठि दान माँगते हँसि कै संग गात लपटाते—२५२८ ।

लपटान—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपटना] लिपटने का भाव या क्रिया ।

प्र०—लागी लपटान— लिपटने लगी । उ.—तब मैं कह्यौ, ठग्यौ कब तुमकौं, हँसि लागी लपटान—७०९ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लपटाना] लिपटने की क्रिया या भाव ।

प्र०—लपटान दै—मलने, पोतने या लगाने दे । उ.—गोपालहिं माखन खान दै । सुनि री सखी, मौन ह्वै रहिए, बदन दही लपटान दै—१०-२७४ ।

लपटाना—क्रि. स. [हिं. लपटना] (१) लिपटाना, आलिंगन करना । (२) लपेटना । (३) घेरना । (४) मलना, पोतना, लगाना ।

क्रि. अ.—(१) सटना, संलग्न होना । (२) फँसना, उलझना ।

लपटानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपटना] लिपटने या लगने की क्रिया या भाव । उ.—रथ तैं उतरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि—१-२७९ ।

लपटानी—क्रि. स. [हिं. लपटाना] (१) लिपट गयी, लिपटा लिया । उ.—(क) रोवति जननि कंठ लपटानी सूर स्याम गुन राई—७४३ । (ख) ब्रज जुवतिनि उपवन मैं पाए लगी उठाय कंठ लपटानी—१०-७८ । (ग) मैं तो चरन-कमल लपटानी जो भावै सो होई री—१२०३ । (घ) सूरदास प्रभु कवन काज को माखी मधु लपटानी—३३७५ ।

क्रि. अ. व्यस्त थी, लगी थी । उ.— मैं गृह-काज रहौं लपटानी—१००१ ।

लपटाने—वि. [हिं. लपटाना] मले या सने हुए, भरे या लगाये हुए । उ.—(क) सो मुख चूमति महरि जसोदा दूध लार लपटाने (हो)—१०-१२८ । (ख) जे पद-कमल धूरि लपटाने, गहि गोपिनि उर लाए—५७१ ।

लपटानो, लपटानौ—वि. [हिं. लपटाना] लगा, लिपटा या सना हुआ । उ.—माखन कर, दधि मुख लपटानौ देखि रही नँदलाल—१०-२७० ।

क्रि. स. (१) लिपटाना, आलिंगन करना । (२) लपेटना । (३) घेरना ।

क्रि. अ.—(१) सटना, संलग्न होना । (२) उलझना, फँसना । (३) व्यस्त होना ।

क्रि. अ. भूत. लिपटा रहा, छोड़ न सका । उ.—हिंसा-मद-ममता रस भूल्यौ, आसा ही लपटानौ—१-४७ ।

लपटान्यो, लपटान्यौ—क्रि. स. [हिं. लपटाना] मला, लगाया, सान लिया । उ.—कहुँ आए ब्रज-बालक सँग लै माखन मुख लपटान्यौ—१०-२७० ।

लपटायो, लपटायौ—क्रि. स. [हिं. लपटाना] मला, साना, लगाया । उ.—तैं जु गँवारि पकरि भुज याकी बदन दह्यौ लपटायौ—१०-३३९ ।

लपटावति—क्रि. स. [हिं. लपटाना] चिपटाती या आलिंगन करती हैं । उ.—सूरदास प्रभु अति रति नागर, गोपी हरषि हृदय लपटावति—३९० ।

लपटावै—क्रि. स. [हिं. लपटाना] लगाता या मलता है । उ.—(क) निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै—२१३ । (ख) मूत्र पुरीष अंग लपटावै—५-२ ।

लपटाहीं—क्रि. अ. [हिं. लपटाना] लिपटते या आलिंगन करते हैं । उ.—सूर स्याम देखत नारिनि कौं रीझि-रीझि लपटाहीं—१८४३ ।

लपटि—क्रि. अ. [हिं. लपटना] लिपटकर ।

प्र०—लपटि गयौ — लिपट या चिपट गया, गुंडलों या फेरों से घेर लिया । उ.—अति बल करि करि काली हारयौ । लपटि गयौ सब अंग अंग प्रति, निर्बिष कियौ सकल बल झारयौ—५७४ ।

लपट्यौ—वि. [हिं. लपटना] लगाया, मला या पोता हुआ । उ.—बिष लपट्यौ अस्तन मुख नाई—१०-५१ ।

लपना, लपनो—क्रि. अ. [अनु. लप लप] (१) लचीली चीज का झोंक के साथ लचना । (२) झुकना, लचना । (३) लपकना, ललचना ।

लपलपाना, लपलपानो—क्रि. अ. [अनु. लप लप] (१) लचीली चीज का झोंक के साथ इधर-उधर लचना । (२) किसी पतली और लंबी चीज का हिलना-डोलना या भीतर से बार-बार बाहर निकलना ।

मुहा०—जीभ लपलपाना (लपलपानो)—चखने या पाने की तीव्र इच्छा होना।

(३) छुरी, तलवार आदि का चमकना।

क्रि. स. (१) लचीली चीज को झोंक के साथ इधर-उधर लचाना। (२) किसी पतली और लंबी चीज को हिलाना-डोलाना या बार-बार भीतर से बाहर निकालना।

मुहा०—जीभ लपलपाना (लपलपानो)—चखने या पाने की तीव्र इच्छा करना।

(३) छुरी, तलवार आदि को चमकाना।

लपलपाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपलपाना + आहट] (१) लपलपाने की क्रिया या भाव। (२) चमक, झलक।

लपसी—संज्ञा स्त्री. [सं. लप्सिका] (१) भुने हुए आटे में शकर या गुड़ का शरबत डालकर पकायी गयी गाढ़ी वस्तु। उ.—(क) लुचुई लपसी सद्य जलेबी—१०-२२७। (ख) लुचुई लपसी घेवर खाजा—३९६।

लपाना, लपानो—क्रि. स. [अनु. लपलप] (१) लचीली चीज को झोंक के साथ इधर-उधर लचाना। (२) पतली और लंबी चीज को हिलाना-डोलाना। (३) आगे बढ़ाना।

लपिटना, लपिटनो—क्रि. अ. [हिं. लपटना] (१) लिपटना, आलिंगित होना। (२) गुंडलों या फेरों से घेरा जाना। (३) सटना, संलग्न होना। (४) फँसना, लिप्त होना। (५) लगा रहना, रत रहना।

लपिटाना—क्रि. स. [हिं. लपटाना] (१) लिपटाना, आलिंगन करना। (२) गुंडल या फेरों से बांधना। (३) चारों ओर से घेरना। (४) सटाना, संलग्न करना। (५) फँसाना, लिप्त करना।

क्रि. अ.—(१) सटना, संलग्न होना। (२) उलझना, फँसना। (३) लगना, रत होना।

लपिटाने—वि. [हिं. लपिटाना] उलझे हुए। उ.—बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिं बरनी—९-७३।

लपिटानो—क्रि. अ., क्रि. स. [हिं. लिपटाना] लिपटना।

लपेट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिपटना] (१) लपेटने की क्रिया या भाव। (२) घुमाव, फेरा। (३) कपड़े की तह की मोड़। (४) ऐंठन, मरोड़। (५) उलझन, फँसाव, चक्कर। (६) घेरा, परिधि। (७) पकड़, बंधन।

लपेटत—क्रि. स. [हिं. लपेटना] घुमाव डालता है।

प्र०—लपेटत जात—गुंडल या फेरे डालकर बाँधता जाता है। उ.—सूर स्याम सौं दाउँ बतायौ, काली अंग लपेटत जात—५५४।

लपेटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपेटना] (१) लपेटने की क्रिया या भाव, लपेट। (२) फेरा, घुमाव। (३) ऐंठन, मरोड़। (४) फँसाव, चक्कर, उलझन।

संज्ञा पुं.—(१) लपेटने की वस्तु। (२) बांधने की वस्तु। (३) बाँधने का कपड़ा, बेठन। (४) पैर में उलझने या अटकाव डालनेवाली वस्तु।

लपेटना, लपेटनो—क्रि. स. [हिं. लिपटना] (१) सूत-डोरी जैसी चीज लपेट कर बाँधना या घेरना। (२) कपड़ा, कागज आदि लपेटकर बाँधना। (३) हाथ, पैर आदि की पकड़ में लेना। (४) पकड़ में लाना। (५) झंझट या उलझन में फँसाना। (६) गीली वस्तु लेपना या पोतना। (७) धूल आदि मलना या लगाना।

लपेटवाँ—वि. [हिं. लपेटना] (१) जो लपेटकर बनाया गया हो। (२) जिसका अर्थ छिपा हुआ हो। (३) घुमाव-फिराव या चक्कर का।

लपेटि—क्रि. स. [हिं. लपेटना] हाथ-पैरों की पकड़ में लेकर। उ.—लकुट लपेटि लटकि भए ठाढ़े—६३२।

लपोटना, लपोटनो—क्रि. स. [हिं. लिपटना] सानना, लगाना या लिपटा देना।

लपोटी—वि. [हिं. लपोटना] सनी हुई। उ.—सूरज प्रभु की लहै जु जूठनि लारनि ललित लपोटी—१०-१६४।

लप्प—संज्ञा पुं. [हिं. लप] (१) अँजुली। (२) अँजुली भर कोई वस्तु।

लप्पड़—संज्ञा पुं. [हिं. थप्पड़] थप्पड़।

लप्पा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का गोटा।

लफंगा—वि. [फ़ा. लफ़ंगा] लंपट, आवारा।

लफना, लफनो—क्रि. अ. [हिं. लपना] (१) लचीली चीज़ का झोंक के साथ इधर-उधर लचना। (२) झुकना, लचना। (३) ललचना, लपकना।

लफलफान, लफलफानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपलपाना] (१) लपलपाने की क्रिया या भाव। (२) चमक, झलक।

लफाना, लफानो—क्रि. स. [हिं. लपाना] (१) लचीली चीज को फटकारना। (२) लचाना, झुकाना।

लफ्ज—संज्ञा पुं. [अ. लफ़्ज़] (१) शब्द। (२) बात।

लब—संज्ञा पुं. [फ़ा.] ओंठ।

लबझना, लबझनो—क्रि. अ. [देश.] फँसना, उलझना।

लबड़धोंधों—संज्ञा स्त्री. [हिं. लबाड़+धूम] (१) व्यर्थ का गुल-गपाड़ा। (२) प्रबंध की गड़बड़ी। (३) अनीति। (४) बेईमानी की चाल।

लबड़ना, लबड़नो—क्रि. अ. [सं. लपन] (१) झूठ बोलना। (२) गप हांकना।

लबधि—संज्ञा स्त्री. [सं. लब्धि] प्राप्ति।

लबनी—संज्ञा स्त्री. [सं. लभनी] लभनी।

लबरा—वि. [सं. लपन] (१) झूठ बोलनेवाला। (२) गप हांकनेवाला, गप्पी।

लबराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लबारी] बढ़-बढ़कर झूठी बातें करने की क्रिया, भाव या रीति।

लबरी—वि. स्त्री. [हिं. लबरा] (१) झूठी। (२) गप्पिन। संज्ञा स्त्री. [हिं. लिबड़ी] कपड़ा-लत्ता।

लबलहका—वि. [हिं. लपना+लहकना] (१) लोभी, लालची। (२) चपल, चंचल।

लबादा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) चोगा, रुईदार चोगा। (२) ढीला-ढाला और भारी वस्त्र।

लबार—वि. [हिं. लबड़ा] (१) झूठा। उ.—आजु गए औरहिं काहू के, रिस पावति गहि बड़े लबार—१९२७। (२) गप्पी।

लबारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लबार] झूठ बोलने का काम। वि. (१) झूठा। (२) गप्पी। (३) चुगलखोर।

लबालब—क्रि. वि. [फ़ा.] ऊपर तक।

लबासी—वि. [हिं. लबार] झूठी और व्यर्थ की बातें गढ़नेवाला, गप्पी। उ.—कपटी कान्ह लबासी। संज्ञा स्त्री.—झूठी और व्यर्थ की बात, गप्प।

लबेद—संज्ञा पुं. [सं. वेद का अनु.] वेद का खंडन करनेवाला प्रसंग या दंतकथा।

लब्ध—वि. [सं.](१) मिला हुआ। (२) कमाया हुआ। (३) भाग करने से आया हुआ (गणित)।

लब्धकाम—वि. [सं.] जिसकी इच्छा पूरी हो गयी हो।

लब्धकीर्ति—वि. [सं. लब्ध+कीर्ति] प्रसिद्ध, विख्यात।

लब्धनाम—वि. [सं. लब्धनामन्] प्रसिद्ध।

लब्धप्रतिष्ठ—वि. [सं.] सम्मानित, प्रतिष्ठित।

लब्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्राप्ति, लाभ।

लभनी—संज्ञा स्त्री. [सं. लभन] हांडी जो ताड़ी भरने के लिए ताड़ में बाँधी जाती है।

लभ्य—वि. [सं.] (१) पाने योग्य। (२) उचित।

लमक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उपपति। (२) बिलासी।

लमकना, लमकनो—क्रि. अ. [हिं. लपकना] (१) लपकना। (२) उत्कंठित होना।

लमछड़—वि. [हिं. लंबा+छड़] बहुत लंबा। संज्ञा पुं.—भाला, बरछा।

लमधी—संज्ञा पुं. [देश.] (१) समधी का बाप। (२) समधी का दूसरा समधी।

लमहा—संज्ञा पुं. [अ.] क्षण, पल।

लमाना, लमानो—क्रि. स. [हिं. लंबा+ना] (१) लंबा करना। (२) दूर तक आगे बढ़ाना।
• क्रि. अ.—चलते-चलते दूर निकल जाना।

लय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विलीन होना, प्रवेश करना। (२) चित्तवृत्ति का एकाग्र होना। (३) प्रलय। (४) विनाश, लोप। उ.—ज्ञान, छमादिक सब लय भयो—१-२९०। (५) नृत्य, गीत और वाद्य का मेल। (६) वह समय जो स्वर निकालने में लगता है। संज्ञा स्त्री. (१) गाने का स्वर। (२) गीत की धुन।

लयन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विश्राम, शांति। (२) विश्रामस्थल। (३) आश्रय लेना।

लयलीन—वि. [हिं. लवलीन] तल्लीन, लवलीन।

लयिक—वि. [हिं. लय+क] लय-संबंधी।

लयो, लयौ—क्रि. स. [हिं. लिया] (१) धारण की। उ.—जब जब जनम तुम्हारो भयो, तब तब मुंडमाल मैं लयौ—१-२२६। (२)चुकाया। उ.—ताहि सूल पर सूली दयो। ताको बदलो तुमसौं लयो—३-५। (३) पाया। उ.—चक्र सुदरसन सीतल भयो, अभयदान दुरबासा लयो—९-५। (४) पीछा किया। उ.—

धायौ धर सर-सैल बिदिसि दिसि, चक्र तहाँ हूँ जाइ लयौ—९-६ । (५) ग्रहण या अंगीकार किया । उ.—लघु सुत नृपति बुढ़ापौ लयौ–९-१७४ । (६) मनाया । उ.—जसुमति-गृह आनंद लयौ—१०-२५० । (७) स्वागत किया । उ.—तब ब्रजराज सहित सब गोपिनि आगे ह्वै जो लयौ—३४४४ ।

लर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़] लड़, लड़ी । उ.—(क) मोतिनि लर ग्रीवा—४५१ । (ख) इक इक करि बिथराइ कै मोतिनि लर तोरयौ—१०५४ । (ग) टूटैगी मोतिनि लर मोरी—१२०९ । (घ) हौं बैठी पोवति मोतिनि लर—१४४७ ।

लरकइ, लरकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लरिकाई] (१) बाल्यावस्था । (२) नादानी । (३) चिलबिल्लापन ।

लरकत—क्रि. अ. [हिं. लरकना] खिसककर । उ.—बिहरत गोपालराइ, मनिमय रचे अंगनाइ, लरकत परंगिनाइ घुटुरुनि डोलै—१०-१०१ ।

लरकना, लरकनो—क्रि. अ. [सं. लड़न = झूलना] (१) लटकना । (२) झुकना । (३) खिसकना, खिसककर नीचे आना ।

लरका—संज्ञा पुं. [हिं. लड़का] (१) बालक । (२) पुत्र ।

लरकाना, लरकानो – क्रि. स. [हिं. लरकना] (१) लटकाना । (२) झुकाना । (३) खिसकाना, नीचे बढ़ाना ।

लरकिनि, लरकिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़की] (१) बालिका । (२) पुत्री ।

लरखत—क्रि. अ. [हिं. लरखना] झूमता या लचकता है । उ.—एक हरषत एक लरखत एक करत घातहिं को लोचन गुलाल डारि सौंधे ढरकावै—२४२५ ।

लरखना, लरखनो—क्रि. अ. [हिं. लड़खड़ाना] (१) डगमगाना । (२) झुकना, झूमना, लचकना ।

लरखर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़खड़ाना] लड़खड़ाने की क्रिया या भाव । उ.—सूर कहा न्यौछावर करिऐ अपने लाल ललित लरखर पर—१०-९३ ।

लरखरना—क्रि. अ. [हिं. लड़खड़ाना] (१) लड़खड़ाना । (२) झोंका खाकर गिरना । (३) ठीक से काम न कर पाना ।

लरखरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़खड़ाना] (१) डगमगाहट । (२) चलने या खड़े होने में ठीक से पैर न जमने का भाव । उ.—सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि—१०-१०९ ।

लरखरनो—क्रि. अ. [हिं. लड़खड़ाना] (१) डगमगाना । (२) झोंका खाकर गिरना । (३) ठीक से काम न कर पाना ।

लरखरात—क्रि. अ. [हिं. लरखराना] डगमगाकर । उ.—लरखरात गिरि परत हैं, चलि घुटुरुनि धावैं—१०-११२ ।

लरखराना, लरखरानो—क्रि. अ. [हिं. लड़खड़ाना] (१) डगमगाना । (२) झोंका खाकर गिरना । (३) ठीक से काम न कर पाना ।

लरजना, लरजनो—क्रि. अ. [फ़ा. लरज़ा] (१) काँपना, हिलना । (२) डरना, भयभीत होना ।

लरजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. लरज़ा] (१) कँपकँपी । (२) भूचाल । (३) जूड़ी (रोग) जिसमें कँपकँपी लगती है । क्रि. अ. [हिं. लरजना](१) काँपा । (२) डरा ।

लरजि—क्रि. अ. [हिं. लरजना] भयभीत होकर । प्र०—लरजि गई—भयभीत हो गयीं । उ.—घटा आई गरजि, जुवति गईं मन लरजि, बीजु चमकति तरजि डरत गाता—९५५ ।

लरझर—वि. [हिं. लड़ + झड़ना] अधिक, प्रचुर ।

लरत—वि. [हिं. लरना] जो लड़ रहे हों । उ.—निकसि सर तैं मीन मानौ लरत कीर छुराइ—३५२ ।

लरती—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़ती-झगड़ती । उ.—सूर तबहिं हमसों जो कहती तेरी घाँ ह्वै लरती—१२७१ ।

लरतौ—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़ाई-झगड़ा करता । उ.—उदर-अर्थ चोरी हिंसा करि मित्र-बंधु सौं लरतौ—१-२०३ ।

लरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. लरना] लड़ने की क्रिया या भाव, लड़ने-झगड़ने । उ.—लै किन जाहि भवन आपने ह्याँ लरन कौन सौं आई—२२७५ ।

लरना—क्रि. अ. [हिं. लड़ना] लड़ना-झगड़ना ।

लरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़ना] (१) लड़ाई (में) । उ.—(क) भुज भुजंग, सरोज नैननि बदन बिधु जित

लरनि—१०-१०९ । (ख) कुटिल कुंतल, मधुप मिलि मनु कियौ चाहत लरनि—३५१ । (२) लड़ने का ढंग । उ.—मोसौं बैर प्रीति करि हरि सौं ऐसी लरनि लरचौ ।

लरनो—क्रि. अ. [हिं. लड़ना] लड़ना-झगड़ना ।

लराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़ाई] (१)युद्ध, संग्राम । उ.—(क) तहँ भिल्लिनि सौं भई लराई—१-२८६ । (ख) बाँबी पर अहि करत लराई—३९ । (ग) खंजन जुग मानो लरत लराई कीर बुझावत रार

मुहा०—माँड़ी लराई—लड़ाई ठानी । उ.—रुद्र भगवान अरु सांबुक भिरे राम कुंभाउ माँड़ी लराई—१० उ०-३५ ।

(२) झगड़ा । उ.—(क) लेहु यह अमृत तुम, सबनि कौं बाँटि, मेटौ लराई—८-८ । (ख) उलटि जाहि अपने पुर माहीं, बादिहिं करत लराई—३२१० । (३) बैर, वैमनस्य । उ.—तुम तौ द्विज कुल-पूज्य हमारे, हम तुम कौन लराई—९-२८ ।

लराका—वि. [हिं. लड़ाका] झगड़ालू ।

लरि—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़कर । उ.—अर्जुन कह्यौ, सबै लरि मुए—१-२८८ ।

लरिकइ, लरिकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लरिका] (१) बाल्यावस्था । (२) नादानी । (३) चिलबिल्लापन ।

लरिक-सलोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लरिका+लोल] बालकों का खेल, खिलवाड़ का सुख । उ.—सूरदास प्रभु देत दिनहिं दिन ऐसिऐ लरिक सलोरी—१०-२८६ ।

लरिका—संज्ञा पुं. [हिं. लड़का] (१) बालक । उ.—कहा भयौ जो घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ—३५६ । (२) पुत्र । उ.–वा घट मैं काहू कैं लरिका, मेरौ माखन खायौ—१०-१५६ ।

लरिकनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. लड़का+नि] लड़कों को । उ.—(क) गोरस खाइ खवावै लरिकनि—१०-२७९ । (ख) छिरकि लरिकनि मही सौं—१०-२८९ ।

लरिकहिं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. लरिका] लड़के को । उ.—काहू के लरिकहिं हरि मारचौ—३६९ ।

लरिकाइ, लरिकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़का+आई] (१) बाल्यावस्था । उ.—लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि, कैसैं छूटत—३४०७ । (२) नादानी, अज्ञानता । उ.—कंस कहा लरिकाई कीनी, कहि नारद समुझायौ—१०-४ । (३) चिलबिल्लापन, चंचलता । उ.—(क) लरिकाई कहूँ नैंकु न छाँड़त—१०-२४६ । लरिकाई तब हीं लौं नीकी चारि बरष कै पाँच—७७० ।

लरिकिनि, लरिकिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़की] (१) बालिका, बालिकाएँ । उ.—उ.—(क) संग लरिकिनी चलि इह आवति दिन थोरी अति छवि तन गोरी—६७२ । (ख) खेलन को मैं जाउँ नहीं । और लरिकिनी घर-घर खेलति मोहीं को पै कहति तुहीं—१२४८ । (२) पुत्री ।

लरिहैं—क्रि. अ. [हि. लरना] लड़ेंगे, लड़ाई करेंगे । उ.—अब लौं कीन्ही कानि कान्ह अब तुम सौं लरिहैं—११३१ ।

लरिहौं—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़ूँगा, लड़ाई करूँगा । उ.—कै तुमहीं कै हमहीं माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं—१-१३४ ।

लरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लड़ी] लड़, लड़ी । उ.—चंपक बरन चरन करि कमलनि दाड़िम दसन लरी ।

लरे—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़े, युद्ध में प्रवृत्त हुए । उ.—एक समय सुर-असुर प्रचारि लरे, भई असुरनि की हार—७-७ ।

लरै—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़ता है । उ.—(क) सूर सुभट हठ छाँड़त नाहीं, काटो सीस लरै—२७७० । (ख) कायर बकै लोभ ते भागै, लरै सो सूर बखानै—३३३७ ।

लरैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लराई] लड़ाई, झगड़ा, वाद-विवाद । उ.—दिन दिन देन उरहनौ आवति, ढुकि-ढुकि करहिं लरैया—३७१ ।

लरौ—क्रि. अ. [हिं. लरना] लड़ो, युद्ध करो । उ.—करिकै जज्ञ सुरनि सौं लरौ—११-२ ।

लल—संज्ञा स्त्री. [सं. लालसा] प्रबल कामना ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लल्लो=जीभ] धोखे की बात ।

संज्ञा पुं. [देश.] सार, तत्व । उ.—अष्टसिद्धि नवनिधि सुर संपति तुम बिन तुसकन, कहूँ का कछु लल—१-२०४ ।

ललक, ललकन—संज्ञा स्त्री. [सं. ललन, हिं. ललक] ललकने की क्रिया या भाव, प्रबल कामना।

ललकत—क्रि. अ. [हिं. ललकना] पाने की बड़ी इच्छा से लपकता है। उ.—ललकत स्याम, मन ललचात।

ललकना, ललकनो—क्रि. अ. [हिं. ललक] (१) पाने की कामना से लपकना। (२) कामना से पूर्ण होना।

ललकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. ले ले से अनु.+कार] (१) युद्ध की चुनौती, प्रचारण, (२) लड़ने का बढ़ावा या प्रोत्साहन।

ललकारना, ललकारनो—क्रि. स. [हिं. ललकार] (१) युद्ध की चुनौती देना, प्रचारणा। (२) लड़ने को बढ़ावा या प्रोत्साहन देना।

ललकित—वि. [हिं. ललक] गहरी चाह से युक्त।

ललचना, ललचनो—क्रि. अ. [हिं. लालच] (१) पाने की प्रबल कामना होना। (२) लालसा से अधीर होना। (३) मोहित होना।

मुहा०—जी ललचना—कुछ पाने की प्रबल इच्छा या कामना होना।

ललचहा—वि. [हिं. लालच] लोभी, लालची।

ललचाइ—क्रि. अ. [हिं. ललचना] लालच या पाने के लोभ से अधीर होकर। उ.—यह मनि अति अनुपम है सो सुनि, रहि न सक्यो ललचाइ—१० उ०-२६।

ललचात—क्रि. अ. [हिं. ललचना] ललचाता है।

मुहा०—मन ललचात—पाने की प्रबल इच्छा होती है। उ.—बार बार ललचात साध करि—१०७४।

ललचाना—क्रि. स. [हिं. ललचना] (१) पाने की प्रबल कामना करना। (२) लुभानेवाली वस्तु प्रस्तुत करके लालच उत्पन्न करना। (३) लुभाना, मोहित करना।

मुहा०—जी या मन ललचाना—मन लुभाना।

क्रि. अ.—पाने की प्रबल कामना होना।

ललचाने—क्रि. अ. [हिं. ललचाना] मुग्ध या मोहित हो गये। उ.—(क) हरि छवि देखि नैन ललचाने—पृ. ३२२ (१५)। (ख) नारायण धुनि सुनि ललचाने—पृ. ३४७ (५५)।

ललचानो—क्रि. स. [हिं. ललचना] (१) पाने की प्रबल कामना करना। (२) लालच उत्पन्न करना। (३) लुभाना, मोहित करना।

क्रि. अ. पाने की प्रबल कामना होना।

ललचावै—क्रि. अ. [हिं. ललचना] पाने की प्रबल कामना करता है। उ.—मृगतृष्ना आचार जगत-जल, ता सँग मन ललचावै—२-१३।

क्रि. स.—मुग्ध करता है। उ.—नंदलाल ललना ललचि ललचावै री—६२९।

ललचि—क्रि. अ. [हिं. ललचना] मुग्ध होकर। उ.—नंदलाल ललना ललचि ललचावै री—६२९।

ललचौहाँ—वि. [हिं. लालच+औहाँ] ललचाया हुआ।

ललन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्यारा-दुलारा बेटा। उ.—ललन, हौं या छवि ऊपर वारी—१०-९१। (ख) गहे अँगुरिया ललन की नँद चलत सिखावत—१०-१२२। (२) प्रिय नायक या पति। उ.— ललन, तुम ऐसे लाड़ लड़ाए। लै करि चीर कदम पर बैठे किन ऐसे ढँग लाए—७९४।

ललना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्त्री, नारी। उ.—(क) ललना लै लै उछंग अधिक लोभ लागैं—१०-९०। (ख) ब्रज ललना देखति गिरिधर कौं—६४६। (२) पत्नी। उ.—अंबर थके अमर ललना सँग—५६५। (३) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहिं राधा किन हार चुरायो।........। रत्ना कुमदा मोहा करुना ललना लोभा नूप—१५८०।

संज्ञा पुं.—(१) प्यारा बच्चा। (२) प्रियतम।

लला—संज्ञा पुं. [हिं. लाल] (१) प्यारा-दुलारा लड़का या उसके लिए संबोधन। उ.—(क) दूरि खेलन जनि जाहु लला रे—१०-१५५। (ख) कीजै पान लला रे, यह लै आई दूध जसोदा—१०-२२९। (२) प्रिय के लिए प्यार का शब्द।

ललाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाल+आई] लाली, लालिमा। उ.—अधर अंजन दाग मिटचो है पीक और मिटी बंदन की ललाई—२००७।

ललाट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) माथा, भाल। उ.—लोचन ललित ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई—६१६। (२) भाग्य।

मुहा०—ललाट का लिखा–जो भाग्य में बदा हो।

ललाट-पलट, ललाट-फलक—संज्ञा पुं. [सं.] माथे या ललाट का तल।

ललाट-रेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भाग्य का लेख।

ललाना, ललानो—क्रि. अ. [सं. ललन] ललचना।

ललाम—वि. [सं.] (१) सुन्दर, श्रेष्ठ। (२) लाल।

संज्ञा पुं.—(१) भूषण, अलंकार। (२) रत्न।

ललामी—संज्ञा स्त्री. [सं. ललाम+ई] (१) सुन्दरता, श्रेष्ठता। (२) लाली, लालिमा।

ललित—वि. [सं.] (१) सुन्दर, मनोहर। उ.—(क) ललित गति राजत अति रघुबीर—९-२६। (ख) ललित श्रीगोपाल लोचन लोल–३५१। (२) हिलता-डोलता हुआ।

संज्ञा पुं.—श्रृंगार-रस का हाव-विशेष।

ललितई—संज्ञा स्त्री. [हिं. ललित+ई] सुन्दरता।

ललिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की प्रधान आठ सखियों में एक। उ.–ललिता चंद्रावली सहित राधा सँग कीरति महतारि—९२१।

ललिताई—संज्ञा स्त्री. [सं. ललित+आई] सुन्दरता।

लली—संज्ञा स्त्री. [हिं. लला] (१) दुलारी बेटी या उसके लिए दुलार का संबोधन (२) नायिका के लिए प्यार का शब्द।

ललौहाँ—वि. [हिं. लाल+औहाँ] जिसमें लाली हो।

लल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. लाल] दुलारा-प्यारा लड़का या उसके लिए दुलार का संबोधन।

लल्लाट—संज्ञा पुं. [हिं. ललाट] माथा, ललाट।

लल्लो—संज्ञा स्त्री [सं. ललना] जीभ, जिह्वा।

लल्लो चप्पो, लल्लो पत्तो—संज्ञा स्त्री. [हिं. लल्लो+ अनु. चप्पो या पत्तो] चिकनी-चुपड़ी बात।

लवंग—संज्ञा पुं. [सं.] लौंग।

लवंगलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लौंग का पेड़ या उसकी शाखा। उ.—(क) फूले हीन चंपक चोरु चमेली फूले मलयज लवंगलता बेलि सरस रस ही फूलडोल—२४०५। (ख) कनक बेलि सतदल सर मंडित दृढ़तर लता लवंग—३३२७। (२) राधा की एक सखी का नाम।

लव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहुत थोड़ी मात्रा।

मुहा०—लव भर—जरा भी, थोड़ा सा।

(२) समय का एक मान। (३) श्रीराम का एक पुत्र।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लौ] (१) चाह, लाग, राग। उ.—(क) सदा सँघाती श्रीजदुराइ, भजिए ताहि सदा लव लाइ—७-२। (ख) केवल स्यामहिं सों लव लाई—१०२०। (ग) सूरदास प्रभु प्रकट मिलन को चातक ज्यौं लव लागी—२७२५। (२) आशा, कामना। उ.—बारहिंबार इहै लव लागी गहे पथिक के पाइँ—२७०४।

लवका—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौकना] बिजली।

लवण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नमक। (२) एक असुर जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। (३) सात समुद्रों में एक जिसका पानी खारी है।

लवणासुर—संज्ञा पुं. [सं.] मधु दैत्य का पुत्र जो मथुरा में रहता था और जिसे शत्रुघ्न ने मारा था।

लवन—संज्ञा पुं. [सं.] खेत काटने का कार्य या उसका वेतन।

संज्ञा पुं. [सं. लवण] नमक।

लवन-सिंधु—संज्ञा पुं. [सं.] सात समुद्रों में एक। उ.—अगम सुपंथ दूरि दच्छिन दिसि तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन—१०. उ.-९१।

लवना—क्रि. स. [हिं. लुनना] पके अन्न के पौधों को काटकर एकत्र करना, लुनना।

क्रि. अ. चमकना।

वि. [हिं. लोना] (१) नमकीन। (२) सुंदर।

लवनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. लावण्य] सुंदरता।

लवनि, लवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. लवन] फसल की कटाई या उसकी मजदूरी।

संज्ञा स्त्री. [सं. नवनीत] मक्खन, माखन।

लवनो—क्रि. स. [हिं. लुनना] लूनना।

क्रि. अ. चमकना।

लवर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपट] ज्वाला, लौ, लपट।

लवलासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लव+लसी] प्रीति की लगावट, प्रेम की तीव्रता।

लवलीन—वि. [हिं. लय+लीन] तन्मय, तल्लीन, मग्न। उ.—(क) जय जय धुनि सुनि करत अमरगन नर-नारी लवलीन—९-२६। (ख) सूरदास जहँ दृष्टि परति है होति तहीं लवलीन—४७८। (ग) स्याम बारि बिधि लई बिरद तजि हम जु मरति लवलीन—२८९६।

लवलेश, लवलेस—संज्ञा पुं. [सं. लवलेश] (१) थोड़ी मात्रा। (२) बहुत थोड़ा लगाव या संपर्क।

लवा—संज्ञा पुं. [सं. लावा] भुने हुए धान या ज्वार की खील, लावा।

संज्ञा पुं. [सं. लावक] तीतर की जाति का एक पक्षी।

वि. [हिं. लाना=लगाना] लगानेवाला।

लवाई—संज्ञा स्त्री. [देश.] हाल की ब्याई गाय।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लवना+आई] फसल की कटाई या उसकी मजदूरी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लाना+आई] लाने का कार्य या उसकी मजदूरी।

लवाजमा—संज्ञा पुं. [अ. लवाज़िम] (१) दल-बल और साज-सामान। (२) आवश्यक सामग्री।

लवारा—संज्ञा पुं. [हिं. लवाई] गाय का बछड़ा।

वि. [हिं. आवारा] आवारा।

लवासी—वि. [हिं. लव+आसी] (१) बकवादी, गप्पी। (२) लंपट। उ.—काहे दियो सूर सुख में दुख कपटी कान्ह लवासी—३४३९।

लवैया—वि. [हिं. लाना+ऐया] लानेवाला।

लशकर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) दल, सेना। (२) भीड़-भाड़। (३) सेना टिकने का स्थान।

लशकारना—क्रि. अ. [हिं. लशकर] शिकार करने को बढ़ावा देना, लहकारना।

लषन—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मण] श्रीराम के अनुज लक्ष्मण। उ.—कनक-मृग मारीच मारयौ, गिरयौ लषन सुनाइ—९-६०।

लषना—क्रि. स. [हिं. लखना] देखना, ताड़ना।

लक्ष्यन, लष्पन—संज्ञा पुं. [सं. लक्ष्मण] श्रीराम के अनुज लक्ष्मण।

लस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चिपचिपाहट। (२) लासा। (३) चित्त लगने की बात, आकर्षण।

लसकर—संज्ञा पुं. [फ़ा. लशकर] भीड़भाड़, समूह। उ.—घेरयौ आइ कुटुम लसकर मैं—१-६४।

लसत—क्रि. अ. [हिं. लसना] (१) शोभित होता है। उ.—मंद मृदु हँसत अति लसत भारी—२५९६। (२) बिराजता है। उ.—(क) लसत चारु कपोल दुहुँ बिच सजल लोचन चारु। (ख) दसरथ-कौसल्या के आगैं, लसत सुमन की छहियाँ—९-१९।

लसति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. लसना] (१) बिराजती है। उ.—बरह-मुकुट कैं निकट लसति लट—४१७ (२) शोभित होती है। उ.—स्याम-देह दुकूल-दुति मिलि लसति तुलसी-माल—६२७।

लसदार—वि. [हिं. लस+फ़ा दार] जिसमें लस हो।

लसन—संज्ञा स्त्री. [सं.] शोभित होने की क्रिया या भाव।

लसना—क्रि. स. [सं. लसन] चिपकाना।

क्रि. अ. (१) (आकर्षण के स्थान में) हर समय चिपके रहना। (२) शोभित होना, फबना। (३) बिराजना, विद्यमान होना।

लसनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लसना] (१) विद्यमानता। (२) शोभा, छटा।

लसम—वि. [देश.] खोटा, दूषित।

लसलसा—वि. [हिं. लस] लसदार।

लसलसाना, लसलसानो—क्रि. अ. [हिं. लस] चिपचिपाना, चिपचिपा होना।

लसलसाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लसलसा] चिपचिपाहट।

लसि—क्रि. अ. [हिं. लसना] स्थित होकर।

प्र.—रहे लसि—विद्यमान या सुशोभित हैं। उ.—सुबरन थार रहे हाथनि लसि, कमलनि चढ़ि आए मानौ ससि—१०-३२।

लसित—वि. [सं.] सुशोभित।

लसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लस] (१) चिपचिपाहट। (२) आकर्षण। (३) लाभ का डौल। (४) लगाव, संबंध।

क्रि. अ. [हिं. लसना] शोभित हुई।

लसीला—वि. [हिं. लस+ईला] (१) लसदार। (२) सुंदर।

लस्टम पस्टम—क्रि. वि. [देश.] (१) धीरे-धीरे। (२) किसी न किसी तरह से।

लस्त—वि. [हिं. लटना] (१) थका हुआ। (२) अशक्त।

लस्त-पस्त—वि. [हिं. लस्त+फ़ा. पस्त] हारा-थका।

लस्सी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लस] (१) छाछ, मठा। (२) पतले दही में शकर या नमक डालकर बनने वाला पेय।

लहँगा—संज्ञा पुं. [हिं. लंक+अंगा] स्त्रियों का एक घेरदार पहनावा। उ.—(क) कटि लहँगा नीलो बन्यो—१-४४। (ख) पगनि जेहरि लाल लहँगा—पृ. ३४४ (२९)। (ग) कटि नील लहँगा—१० उ०-२४।

लहँडा, लहँड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] झुंड, समूह।

लहकना, लहकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) हवा में लहरना। (२) हवा का बहना। (३) आग का दहकना। (४) चाह से भरना, ललकना। (५) पाने को ललचना। (६) भड़कना, उत्तेजित होना।

लहकाना, लहकानो—क्रि. स. [हिं. लहकना] (१) हवा में लहराना, झोंका खिलाना। (२) आग दहकाना। (३) चाह से भर देना, ललकाना। (४) पाने को प्रेरित करना, ललचाना। (५) भड़काना। (६) शिकार करने को उत्तेजित करना।

लहकौर, लहकौरि, लहकौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लहना+कौर] विवाह की वह रीति जिसमें वर और बधू परस्पर कौर खिलाते हैं।

लहजा—संज्ञा पुं. [अ. लहजः] बोलने का ढंग।

संज्ञा पुं. पल, क्षण।

मुहा० - लहजा—क्षण भर, पल भर।

लहटना—क्रि. अ. [हिं. लहना+रटना] चसका लगना।

लहति—क्रि. स. [हिं. लहना] पाती है। उ.—दासी तृष्णा भ्रमति टहल-हित लहति न छिन बिस्राम—१-१४१।

लहन—संज्ञा स्त्री. [हिं. लहना] प्राप्त करने की क्रिया या भाव।

लहनदार—वि. [हिं. लहना+फ़ा. दार] पानेवाला।

लहना—क्रि. स. [सं. लभन, प्रा. लहन] प्राप्त करना।

संज्ञा पुं. (१) ऋण वसूल करना।

मुहा०—लहना चुकाना या साफ करना—ऋण अदा करना।

(२) मिलनेवाला धन। (३) भाग्य।

क्रि. स. [सं. लवन] फ़सल काटना।

लहनि, लहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लहना] (१) प्राप्ति। (२) भाग्यफल, फलभोग। उ.—लहनी काम के पाछे। दियौ आपनो लैहै सोई मिलै नहीं पाछे—१४०९।

लहनो, लहनौ—संज्ञा पुं. [हिं. लहना] (१) प्राप्त करने का भाव। उ.—सबके भाव दरस हरि लहनो—१०-२०। (२) सौभाग्य। उ.—लहनो ताको जाके आवै मैं बड़भागिनि पाए री—पृ० ३१९। (८३)।

क्रि. स. प्राप्त करना।

क्रि. स. [सं. लवन] फसल काटना।

लहबर—संज्ञा पुं. [हिं. लहर] ऊँचा झंडा।

लहमा—संज्ञा पुं. [अ. लहमः] पल, क्षण।

लहर—संज्ञा स्त्री. [सं. लहरी] (१) हवा के झोंके से जल में उठनेवाली हिलोर।

मुहा०—लहर लेना—समुद्र के किनारे लहरों से स्नान करना।

(२) उमंग, जोश। उ.—फूले फरे तरुवर आनँद लहर के—१०-३४। (३) मन की मौज या तरंग। (४) शारीरिक पीड़ा का बार-बार उठनेवाला झोंका। उ.—सूर सुरति तनु की कछु आई उतरत काम लहर (लहरि) के।

मुहा० - लहर देना या मारना—शरीर के किसी अंग में रह-रह कर पीड़ा उठना।

(५) प्रेमोन्माद। उ.—लहर उतारि राधिका-सिर तैं दई तरुनिनि पै डारि—७६४। (६)आनन्दातिरेक।

यौ०—लहर-बहर—अत्यन्त सुख और आनन्द।

मुहा०—लहर आना—आनन्द आना। लहर लेना या मारना—सुख भोगना।

(७) स्वर-कंप। (८) टेढ़ी या वक्र गति।

मुहा०—लहर देना या मारना—टेढ़े-टेढ़े चलना।

(९) टेढ़ी-मेढ़ी रेखा। (१०) हवा का झोंका। (११) गंध भरी वायु का झोंका।

लहरदार—वि. [हिं. लहर+फ़ा. दार] टेढ़ा, वक्र।

लहरना, लहरनो—क्रि. अ. [हिं. लहराना] (१) हवा से हिलना-डोलना। (२) पानी का हिलोर मारना। (३) उमंग होना। (४) पाने की इच्छा होना। (५) लपट निकलना। (६) शोभित होना।

लहर-पटोर—संज्ञा पुं. [हिं. लहर+पट] एक प्रकार का धारीदार रेशमी कपड़ा।

लहरा—संज्ञा पुं. [हिं. लहर] (१) तरंग। (२) आनन्द।

लहराना, लहरानो—क्रि. अ. [हिं. लहर+आना] (१) हवा के झोंके सेहिलना-डोलना।(२) पानी का हिलोर मारना। (३) मुड़ते या झोंका खाते चलना। (४) उमंग या उल्लास होना। (५) प्राप्ति की इच्छा होना। (६) आग दहकना। (७) शोभित होना।

क्रि. स. (१) हवा के झोंके से हिलाना-डोलाना। (२) पानी में हिलोर उठाना। (३) वक्र गति से चलाना। (४) हिलाना-डोलाना।

लहरि—संज्ञा स्त्री. [सं. लहरी] (१) पानी की हिलोर या तरंग। (२) उमंग, जोश। (३) पीड़ा का रह रहकर उठना। उ.—(क) सूर सुरति तनु की कछु आई उतरत काम लहरि कै—११६८। (ख)आवति लहरि मदन बिरहा की को हरि वेद हँकारे—३२५४।

मुहा०—लहर आना, देना या मारना—रह-रहकर पीड़ा होना। साँप काटने की लहर—साँप काटे प्राणी की वह स्थिति जब वह बेहोशी के बीच जाग-जाग पड़ता है। उ.—ल्यावौ गुनी जाइ गोविंद कौं, बाढ़ी अतिहि लहरि—७५०।

(४) आनन्द की उमंग। (५) भावना, उठान, वेग। उ.—स्याम उलटे परे देखे बढ़ी सोभा लहरि—१०-६७। (६) स्वर की गूँज। (७) वक्र गति या रेखा। (८) गंध-भरी वायु का झोंका।

लहरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लहर] (१) लहरदार चिह्न। (२) एक तरह का कपड़ा जिसमें लहरियाँ पड़ी होती हैं। (३) लहरियाँ पड़ी साड़ी। (४) लहर, हिलोर।

लहरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लहर। (२) मौज।

वि. आनंदी, मनमौजी।

लहलह, लहलहा—वि. [हिं. लहलहाना] (१) लहलहाता हुआ। (२) हर्षित, प्रफुल्लित।

लहलहाना, लहलहानो—क्रि. अ. [हिं. लहरना](१) हरी-भरी पत्तियों से युक्त होना। (२) आनन्द से पूर्ण होना। (३) सूखे पेड़ में फिर से पत्तियाँ निकलना। (४) दुर्बल शरीर में पुनः शक्ति आना।

लहलही—वि. स्त्री. [हिं. लहलहा] (१) हरी-भरी। (२) हर्षित, प्रफुल्लित।

लहसुन—संज्ञा पुं. [सं. लशुन] एक पौधा जिसकी जड़ गोल गाँठ के रूप में होती है और जिसमें बहुत तीक्ष्ण और उग्र गंध होती है। उ.—जैसे काग हंस की संगति लहसुन संग कपूर—२६८३।

लहसुनिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लहसुन] एक रत्न।

लहा—संज्ञा पुं. [सं. लाभ] नफा, फायदा, लाभ।

लहाछेह—संज्ञा पुं. [देश.] नाचने की तेजी या झपट।

लहाना, लहानो—क्रि. स. [सं. लभना] प्राप्त कराना, मिलाना।

क्रि. स. [हिं. लहन] कौशल से बात करके अभिप्राय सिद्ध कराना।

लहालह—वि. [हिं. लहलहा](१) हरा-भरा। (२) प्रफुल्ल।

लहालोट—वि. [हिं. लाभ+लोटना] (१) बहुत हर्षित या प्रफुल्लित। (२) मुग्ध, मोहित।

लहास—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाश] मृत शरीर।

लहि—अव्य. [हिं. लहना] तक, पर्यन्त।

क्रि. स. (१) प्राप्त करो। उ.—सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार—१-६८। (२) प्राप्त करके। उ.—रिषि-प्रसाद तैं तिन सुत जायौ, सुत लहि दंपति अति सुख पायौ—६-५।

लहिए, लहिऐ—क्रि. स. [हिं. लहना] (१) अनुभव कीजिए। उ.—कानन भवन रैनि अरु बासर कहूँ न सचु लहिए—२८९२। (२) प्राप्त कीजिए। उ.—प्रेम बँध्यो संसार प्रेम परमारथ लहिए—३४४३।

प्र०—अंत नहिं लहिए—समाप्त न कर सकिए, समाप्त करने में समर्थ न होइए। उ.—ऐसैं कहीं कहाँ लगि गुन-गन, लिखत अंत नहिं लहिए—१-११२।

लहियत—क्रि. स. [हिं. लहना] पाता है।

प्र०—पार न लहियत—पार या अंत नहीं पाता है। उ.—बासरहू या बिरह सिंधु को कैसेहुँ पार न लहियत—३३००।

लहियै—क्रि. स. [हिं. लहना] पाइए, प्राप्त कीजिए। उ.—(क) सूरदास भगवंत-भजन करि अंत बार कछु लहियै—१-६२। (ख) हरि-रस तौऽब जाइ कहुँ लहियै—२-१८ (ग) जातैं हरि-पुर बासा लहियै—३-१३।

लहियौ—क्रि. स. [हिं. लहना] गतिविधि लक्ष्य करना, सावधान रहना। उ.—मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ, मेरे घर कौ द्वार सखी री, तब लौं देखति रहियौ। ।.........। और नहीं या ब्रज मैं काऊ, नंद-सुवन सखि लहियौ—१०-३१३।

लही—क्रि. स. [हिं. लहना] (१) अनुभव की,मान ली। उ.—पूरे चीर अंत नहिं पायौ, दुरमति हारि लही—१-२५८। (२) जान या समझ सका। उ.—तैं सिव की महिमा नहिं लही—४-५। (३) पायी, प्राप्त की। उ.—अहो नँदरानि, सीख कौन पै लही री—३४८।

लहु—अव्य. [हिं. लौं] (१) तक, पर्यन्त। (२) समान।

क्रि. स. [हिं. लहना] लहो, प्राप्त करो।

वि. [सं. लघु] छोटा, लघु।

लहुर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लहुरा] छोटाई, छोटापन। उ.—अरस-परस चुटिया गहैं, बरजति है माई। महा ढीठ मानैं नहीं कछु लहुर-बड़ाई—१०-१६२।

लहुरा वि. [सं. लघु, प्रा. लहु + रा] छोटा, कनिष्ठ।

लहुरी—वि. स्त्री. [हिं. लहुर] छोटी, कनिष्ठा।

लहू—संज्ञा पुं. [हिं. लोहू] रक्त, रुधिर।

मुहा०—लहूलुहान होना—रक्त से लथपथ होना।

लहे—क्रि. स. [हिं. लहना] पाये, प्राप्त किये। उ.—ब्रह्मा सो नारद सौं कहे, ब्यास सोइ नारद सौं लहे—२-३७।

लहेरा—संज्ञा पुं. [हिं. लाह = लाख + एरा] (१) लाख का पक्का रंग चढ़ानेवाला। (२) पक्का रेशम रँगने-वाला रँगरेज।

लहैंगे—क्रि. स. [हिं. लहना] पायँगे, प्राप्त करेंगे। उ.—सूरदास प्रभु जसुमति को तजि मथुरा कहा लहैगे—२५००।

लहै—क्रि. स. [हिं. लहना] पा जाय, प्राप्त करे। उ.—(क) निर्गुन मुक्तिहुँ कौं नहिं चहै, मम दर्सन ही तैं सुख लहै—३-१३। (ख) सूरज प्रभु की लहै जु जूठनि लारनि ललित लपोटी—१०-१६४।

यौ०—लहै-बहै—उचित, उपयुक्त या न्यायसंगत हो, समझ में आ सके और समझायी जा सके। उ.—बात कहै जो लहै, बहै री—७७३।

लहौं—क्रि. स. [हिं. लहना] (१) पाऊँ, प्राप्त करूँ। उ.—(क) नरक कि सरग लहौं—१-१५१। (ख) मैं यह ज्ञान छलीं ब्रजबनिता, दियौ सु क्यौं न लहौं—३-२। (२) पाता हूँ, प्राप्त करता हूँ। उ.—कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं—१-१६१।

लहौंगौ—क्रि. स. [हिं. लहना] प्राप्त कर सकूँगा, पकड़ सकूँगा। उ.—यह तौ झलमलात झकझोरत, कैसैं कै जु लहौंगौ—१०-१९४।

लह्यौ—क्रि. स. [हिं. लहना] (१) (जन्म) पाया। उ.—पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर-अवतार—१-८८। (२) पहुँच सका, प्राप्त कर सका। उ.—सुरति-सरित-भ्रम भौंर लोल मैं मन परि, तट न लह्यौ—१-१६२। (३) समझा, प्राप्त किया। उ.—सूत सौनकनि सौं पुनि कह्यौ, बिदुर सो मैत्रेय सौं लह्यौ—१-२२७। (४) (वास) ग्रहण किया। उ.—हारि सकल भंडार-भूमि, आपुन बन-बास लह्यौ—१-२४७। (५) पाया, (प्राप्त) किया। उ.—प्रभु मैं तुम्हरौ दरसन लह्यौ, माँगन कौं पाछैं कहा रह्यौ—४-९। (६) अनुभव किया। उ.—पुर कौं देखि परम सुख लह्यौ—४-१२। (७) धारण किया, धरा। उ.—कहा जानि तुम मोसौं कह्यौ, यह सुनि रिषि-स्वरूप नृप लह्यौ—५-४।

लाँक—संज्ञा स्त्री. [हिं. लंक] कमर, कटि।

लाँग—संज्ञा स्त्री. [सं. लांगूल] धोती का वह भाग जो पीछे की ओर कमर में खोंसा जाता है, काछ।

लांगूल—संज्ञा पुं. [सं.] दुम, पूँछ।

वि. [हिं. लंगर] ढीठ।

लाँगूली—संज्ञा पुं. [सं. लांगूलिन्] बंदर, बानर।

लाँघ—संज्ञा स्त्री. [सं. लंघन्] बाधा, रुकावट ।
लाँघना, लाँघनो—क्रि. स. [सं. लंघन] नाँघना ।
लाँच, लाँची—संज्ञा स्त्री. [देश.] घूस, रिशवत ।
लांछन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चिह्न । (२) दोष, कलंक ।
लांछना—संज्ञा स्त्री. [सं. लांछन] दोष, कलंक ।
लांछनित, लांछित—वि. [सं. लांछन] जिसे दोष लगा हो, कलंकित ।
लाँझ—संज्ञा स्त्री. [देश.] रुकावट, बाधा ।
लाँबा—वि. [हिं. लंबा] लंबा ।
लाँबी—वि. स्त्री. [हिं. लंबी] लंबी । उ.—तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वैहै लाँबी-मोटी—१०-१७५ ।
लाइ—संज्ञा स्त्री. [सं. अलात, प्रा. अलाय] अग्नि ।
क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) लगाकर ।
प्र०—दौ दीनी लाइ—आग लगा दी । उ.—पुनि जुरि दौ दीनी पुर लाइ—४-१२ ।
(२) मलकर, पोतकर, चिह्नित करके । उ.—(क) देहीं लाइ तिलक केसरि कौ जोबन-मद इतराति—१०-२९४ । (ख) कियौ स्नान मृत्तिका लाइ—१-३४१ । (३) व्यस्त करके ।
प्र०—लई लाइ—व्यस्त कर लिया । उ.—बातनि लई राधा लाइ—६८३ ।
(४) पकड़कर । उ.—कबहुँक हरि कौं लाइ आँगुरी चलन सिखावति ग्वारि—१०-११८ । (५) (चित्त-वृत्ति) एकाग्र कर या करके, ध्यान लगा या लगाकर । उ.—(क) अजहूँ तू हरि-पद चित लाइ—४-६ । (ख) करन लगे सुमिरन चित लाइ—५-३ । (ग) कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ—९-९ । (घ) जो यह कथा सुनै चित लाइ—९-१०२ ।
लाइक—वि. [हिं. लायक] (१) उचित । (२) सुयोग्य ।
लाई—संज्ञा स्त्री. [सं. लाजा] लावा, खीलें ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. लाना, लगाना] चुगली ।
यौ०—लाई-लुतरी—(१) चुगली । (२) चुगली खानेवाला, चुगलखोर ।
क्रि. स. [हिं. लगाना] लगाकर ।
प्र०—हियैं लियौ लाई—छाती से लगा लिया । उ.—अपनौ जानि हियैं लियौ लाई—७-४ । छाती सौं लाई—छाती से लगाकर । उ.—निसि-बासर छाती सौं लाई बालक लीला गाई—३४३५ ।
(२) प्रज्वलित करके, आग लगाकर । उ.—सूरदास प्रभु बिरह जरी है बिनु पावक दौ लाइ—३३२२ । (३) प्रभावित करके ।
प्र०—मोहनी लाई—मुग्ध या मोहित किया है । उ.—हृदय ते टरति नाहिन ऐसी मोहिनी लाई री—८८१ ।
(४) विलंब या देर की । उ.—(क) खेलत बड़ी बार कहुँ लाई—१०-२३५ । (ख) बिप्र भवन रथ चढ़यौ चलत तब बार न लाई—१० उ०-८ ।
लाऊँ—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) लगाऊँ । उ.—कुमकुम को लेप मेटि, काजर मुख लाऊँ—१-१६३ । (२) देर या विलंब करूँ । उ.—अब विलंब नहिं लाऊँ—३८२ । (३) चिपटाऊँ । उ.—अंकम भरि सबकौं उर लाऊँ—७९७ ।
लाऊ—संज्ञा पुं. [हिं. अलावू] लौकी, कद्दू, घिया ।
लाए—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) लगाकर, लगाये । उ.—अति सुरूप बिष अस्तन लाए राजा कंस पठाई—१०-५२ । (२) चिपटा लिये, (छाती से) लगा लिये । उ.—हरषवंत जुवती सब लै लै मुख चूमति उर लाए—१०-९३ । (३) (विलंब या देर) की, (दिन) लगा दिये । उ.—(क) समुझत नहिं चूक सखी अपनी बहुतै दिन हरि लाए—२८२२ । (ख) आवन कह्यौ बहुत दिन लाए करी पाछिली गाह—२८६८ ।
लाकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लकड़ी] लकड़ी ।
लाक्षणिक—वि. [सं.] लक्षणा-संबंधी ।
लाक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] लाख, लाह ।
लाक्षागृह—संज्ञा पुं. [सं.] लाख का घर जो दुर्योधन ने पाण्डवों के लिए बनवाया था, परन्तु जिसके जला देने पर भी वे बचकर निकल गये थे ।
लाख—वि. [सं. लक्ष, प्रा. लक्ख] (१) सौ हजार । उ.—(क) सब दै लेउ लाख लोचन कहे जो कोउ करत नये री—१३४८ । (ख) लाख मुँदरियाँ जायँगी कान्ह तुम्हारौ मोल—पृ० २५३ (२७) । (२) बहुत अधिक ।

उ.—लाख जतन करि देखौ, तैसें बार-बार विष घूँटै—१-६३ ।

मुहा०—लाख टके की बात—अत्यंत उपयोगी सीख, या सलाह ।

क्रि. वि. बहुत, अधिक, कितना भी ।

मुहा०—लाख से लीख होना—जहाँ सब कुछ हो, वहाँ कुछ न रह जाना । लाख का घर नाश होना—जहाँ लाखों का कार-बार या धन-वैभव हो, वहाँ कुछ न रह जाना ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लाल पदार्थ जो कई वृक्षों की शाखाओं पर कीड़ों से बनता है, लाह । उ.—आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहिं बुधि अवरेखत—११०८ ।

लाखना, लाखनो—क्रि. अ. [हिं. लाख] लाख लगाकर किसी धातु के पात्र का छेद बन्द करना ।

क्रि. स. [हिं. लखना] समझ-बूझ लेना ।

लाखामंदिर—संज्ञा पुं. [हिं. लाख+सं. मंदिर] लाक्षा-गृह । उ.—लाखामंदिर कौरव रचियौ ।

लाखपति, लाखपती—वि. [हिं. लखपती] जिसके पास लाखों की संपत्ति हो, लखपती ।

लाखा—संज्ञा पुं. [हिं. लाख] लाख का बना रंग जो स्त्रियाँ होंठों पर लगाती हैं ।

लाखागृह—संज्ञा पुं. [सं. लाक्षागृह] लाख का बना वह घर जो दुर्योधन ने पाण्डवों को जला देने के लिए बनवाया था; परन्तु जहाँ से वे सुरक्षित ही निकल गये थे । उ.—(क) लाखागृह तैं, सत्रु-सैन तैं, पांडव-बिपति निवारी—१-१७ । (ख) लाखागृह पांडवनि उबारे—१-३१ ।

लाखी—वि. [हिं. लाख] मटमैले लाल रंग का ।

लाखों—वि. [हिं. लाख] (१) कई लाख । (२) बहुत अधिक ।

लाग—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] (१) लगाव, संबंध । (२) प्रेम, प्रीति । (३) लगन, तत्परता । (४) युक्ति, उपाय । (५) विशेष कौशल का स्वाँग । (६) होड़, स्पर्धा । (७) बैर, शत्रुता । (८) जादू, टोना । (९) शुभ कार्य में ब्राह्मण, नाई आदि को दिया जानेवाला नेग । (१०) लगान, भूमिकर । उ.—अपनो लाग लेहु लेखो करि जो कछु राज अंस को दाम—२५०५ । (११) नृत्य-विशेष ।

अव्य. [हिं. लग] वास्ते, लिए । उ.—खोयौ जन्म बिषय-सुख लाग—१-२९० ।

क्रि. वि. [हिं. लौं] तक, पर्यन्त ।

लागडाँट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाग+डाँट] (१) होड़, स्पर्धा । (२) बैर, शत्रुता ।

लागत—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] वह धन जो किसी वस्तु को तैयार करने में व्यय हो ।

क्रि. अ. (१) लागू या चरितार्थ होते हैं । उ.—जेते अपराध जगत लागत सब मोहीं—१-१२४ । (२) चोट या आघात होते (ही) । उ.—लागत बान देव-गति पाई—९-५९ । (३) अनुभव करता है । उ.—ग्वाल-बाल गाइनि के भीतर नैंकहुँ डर नहिं लागत—४२० । (४) उपयुक्त है, फबती है, ठीक जान पड़ती है । उ.—यह उपमा कछु लागत—६४५ । (५) सफल या कारगर होता है । उ.—सूर गारुड़ी गुन करि थाके, मंत्र न लागत थर तैं—७४४ । (६) स्थिर या एकाग्र होता है, चैन या शांति पाता है । उ.—नैंकहुँ कहुँ मन न लागत काम-धाम बिसारि—७७७ ।

लागति क्रि. अ. [हिं. लगना] लगती है । उ.—(क) मुख मुसकाति महा छबि लागति—६३० । (ख) स्रवननि सुनत अधिक रुचि लागति—७१२ ।

लागन—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] लगने की क्रिया या भाव । उ.—लग लागन नहिं पावत स्याम—८७८ ।

लागना, लागनो—क्रि. अ. [हिं. लगना] लगना ।

लागि—अव्य. [हिं. लगना] (१) कारण, हेतु । उ.—(क) माखन लागि उलूखन बाँध्यौ—३४७ । (ख) बचन लागि मैं है कियौ जसुमति को पय पान-११४० । (२) वास्ते, लिए । उ.—धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ—१-८० ।

क्रि. अ. [हिं. लगना] सटकर ।

महा०—कानि लागि कह्यौ—कान के पास मुंह

से जाकर बहुत धीरे से कहा। उ.—कान लागि कह्यौ जननि जसोदा वा घर मैं बलराम—१०-२४०।

लागी—क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) लगी, पहुँची। उ. —कहुँ धौं चोट न लागी—१०-७९। (२) आरोपित हो गयी। उ.—तब तैं हत्या मद कौं लागी। यहै जानि सब सुर-मुनि त्यागी—९-१७३।

लागु—संज्ञा स्त्री. [हिं. लगना] लगान, राजकर। उ. —लीजै लागु यहाँ तैं अपनो जो कछु राज को अंस —२५०७।

लागू-वि. [हिं. लगना] (१) जो लगने योग्य हो। (२) जो चरितार्थ हो सके।

लागे—अव्य. [हिं. लगना] (१) कारण। (२) वास्ते।

क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) चोट पहुँचायी, आघात किया। उ.—सुरुचि के बचन बान सम लागे —४-६। (२) लग गये, संपादित करने लगे।

प्र०—कहन लागे—कहने में समर्थ हो गये। उ.—कहन लागे मोहन मैया-मैया—१०-१५५। लागे खान—खाने लगे। उ.—बन फल लए मँगाइ कै, रुचि करि लागे खान—४३८।

लागै—क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) सफल या कारगर होता है। उ.—तंत्र न फुरै मंत्र नहिं लागै, चले गुनी गुन हारे—३२५४। (२) लगे, हो। उ.—तुमरे कुल कौं बेर न लागै होत भस्म संघात—९-७७।

लागौं—क्रि. अ. [हिं. लगना] लगती हूँ।

प्र०—लागौं पाउँ—पैर छूती हूँ, विनम्र निवेदन करती हूँ। उ.—अरि अरि सुंदर नारि सुहागिनि लागौं तेरैं पाउँ—९-४४।

लाग्यो, लाग्यौ—क्रि. अ. [हिं. लगना] (१) लगा, जान पड़ा। उ.—अँचवत पय तातो जब लाग्यौ रोवत जीभि डढ़ै—१०-१७४। (२) लग गया।

मुहा०—मन लाग्यौ—प्रीति हो गयी। उ.—(क) जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिं ताहि और नहिं भावै (हो)—२-१०। (ख) सूरदास चित ठौर नहीं कहुँ मन लाग्यौ नँदलालहिं सौं—११८०।

लाघव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लघु होने का भाव, लघुता। (२) थोड़ा होने का भाव, कमी। (३) हाथ की सफाई या फुर्ती।

लाघवी—संज्ञा स्त्री. [सं. लाघव+ई] फुर्ती, शीघ्रता।

लाचार—वि. [फ़ा.] मजबूर, विवश।

क्रि. वि. मजबूर या विवश होकर।

लाचारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] मजबूरी, विवशता।

लाची—संज्ञा स्त्री. [हिं. इलायची] इलायची।

संज्ञा पुं.—एक तरह का धान।

लाछी—संज्ञा स्त्री. [सं. लक्ष्मी] लक्ष्मी।

लाज—संज्ञा स्त्री. [सं. लज्जा] (१) शर्म, लज्जा। उ.—(क) माधौ जू, मोहिं काहे की लाज— १-१५०। (ख) सूर पतित पावन करि लीजै बाँह गहे की लाज—१-२१९।

मुहा०—लाज गए—मर्यादा नष्ट हो जाने पर। उ.—लाज गए कछु काज न सरिहै बिछुरत नंद के तात—२५३१। लाज लगाई—मर्यादा या प्रतिष्ठा नष्ट की। उ.—ग्वालनि कैं सँग भोजन कीन्हौं, कुल कौं लाज लगाई—१-२४४। लाज रखना—प्रतिष्ठा बचाना।

(२) चिंता, ध्यान। उ.—हरि कह्यौ, मोहिं बिरद की लाज—७-२।

लाजति—क्रि. अ. [हिं. लाजना] लज्जित होती है। उ.—(क) तड़ित दसन-छबि लाजति—६३८। (ख) कोटि मदन-छबि लाजति - ६४५।

लाजना, लाजनो—क्रि. अ. [हिं. लाज+ना] लज्जित होना।

क्रि. स. लज्जित करना।

लाजनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. लाज+नि] लाज से, लज्जा के कारण। उ.—(क) निरखि कुरुँख उन बालनि की दिसि लाजनि अँखियनि गोवै - ३४७। (ख) मोहिं कहति आनि जब नारी, बोलि जाति नहिं, लाजनि मारी—३९१। (ग) ब्रज बनिता सब चोर कहति, लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ—३९९।

लाजवंत—वि. [हिं. लाज+वंत] शर्मदार।

लाजवाब—वि. [फ़ा.] (१) अनुपम। (२) निरुत्तर।

लाजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चावल। (२) खील, लावा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लाज] शर्म, लज्जा। उ.—(क)

उनतैं कछू भयौ नहिं काजा। यह सुनि-सुनि मोहिं आवत लाजा—५२१। (ख) बालक सुनत होइ जिय लाजा—२४५९।

लाजिम, लाजिमी—[अ. लाज़िम] (१) उचित। (२) आवश्यक। (३) अनिवार्य।

लाजी—क्रि. स. [हिं. लाजना] लज्जित किया। उ.—कुल कुठार, जननी कत लाजी—२६६५।

लाजैं—क्रि. अ. [हिं. लाजना] लज्जित होते हैं। उ.—अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अंब-सुत लाजैं—१-३६।

लाजै—क्रि. अ. [हिं. लाजना] लज्जित होता है। उ.—तेरौ मुख देखत ससि लाजै—७१८।

लाजौं—क्रि. स. [हिं. लाजना] लज्जित करूँ, लाज लगाऊँ। उ.—तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनुसुत न कहाऊँ—१-२७०।

लाज्यो, लाज्यौ—क्रि. अ. [हिं. लाजना] लज्जित हुआ। उ.—स्यामा बदन देखि हरि लाज्यौ—२३००।

लाट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन देश जो गुजरात का भाग-विशेष था। (२) एक अनुप्रास।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) मोटा-ऊँचा खंभा। (२) वैसी बनावट या इमारत।

लाटानुप्रास—संज्ञा पुं. [सं.] एक शब्दालंकार।

लाटी—संज्ञा स्त्री. [अनु. लट लट] वह स्थिति जिसमें मुँह का थूक और होंठ सूख जाते हैं।

लाठी—संज्ञा स्त्री. [सं. यष्टि, प्रा० लट्ठी] डंडा, लकड़ी।

मुहा०—लाठी चलना—मार-पीट होना।

लाड, लाड़—संज्ञा पुं. [सं. लालन] प्यार, दुलार। उ.—(क) आसा करि करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ—२-३०। (ख) प्रभु कै लाड़ बदति नहिं काहू—२९७७।

मुहा०—लाड़ उतारना या उतार कर धर देना—मारपीट कर ढिठाई दूर कर देना। धरिहैं लाड़ उतारि—उचित दंड देकर ढिठाई दूर कर देंगी। उ.—करि लरकनि के बर करत यह पुनि धरिहैं लाड़ उतारि—११२५।

लाड़लड़ैता, लाड़लड़ैतो, लाड़लड़ैतौ—वि. [हिं. लाड़+लड़ाना] प्यारा, दुलारा, लाड़ला। उ.—पठै देहु मेरौ लाड़लड़ैतो बारौं ऐसी हाँसी।

लाड़ला, लाडला—वि. [हिं. लाड़] प्यारा-दुलारा।

लाड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. लाड़] दूल्हा, वर।

लाड़िली, लाडिली—वि. स्त्री. [हिं. लाड़ला, लाडला] प्यारी, दुलारी।

संज्ञा स्त्री. प्यारी, दुलारी बेटी। उ.—ब्याकुल भई लाड़िली मेरी, मोहन देहु जिवाइ—७५९।

लाड़िले, लाडिले—वि. [हिं. लाड़ला, लाडला] प्यारे, दुलारे। उ.—तुम जागौ मेरे लाड़िले गोकुल सुख-दाई—१०-२०९।

संज्ञा पुं.—प्यारा-दुलारा पुत्र।

लाड़िलो, लाड़िलौ, लाडिलो, लाडिलौ—वि. [हिं. लाड़ला, लाडला] प्यारा, दुलारा।

संज्ञा पुं. प्यारा-दुलारा पुत्र। उ.—नंदराइ कौ लाड़िलौ जीवै कोटि बरीस—१०-२७।

लाड़ू—संज्ञा पुं. [हिं. लड्डू] लड्डू, मोदक। उ.—(क) खीर खाँड़ घृत लावनि लाड़ू—३९६। (ख) स्याम दरस लाड़ू करि दीन्हौ, प्रेम ठगौरी लाइ—पृ. ३२६ (५७)।

लात—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) पैर, पद।

मुहा०—लात देना—लात रखना। दै लात—पैर रखकर। उ.—कैसैं कहति लियौ छीकैं तैं ग्वाल-कंध दै लात—१०-२९०। लात फटकना—पैर से आघात करना। फटक्यौ लात—पैर से आघात किया। उ.—नैंकु फटक्यौ लात,सबद भयौ आघात, गिरयौ भहरात सकटा सँहारयौ—१०-६२। लात पसारना—(१) पैर फैलाना। (२) (स्थिति या हैसियत देखकर) व्यय आदि करना। (अपनो पट देखि) पसारहिं लात—(१) अपना वस्त्र देखकर पैर फैलाता है। (२) अपनी हैसियत या स्थिति को देखकर काम करता है। उ.—हम तन हेरि चितै अपनो पट देखि पसारहि लात—३२८२।

(२) पैर से किया गया प्रहार या आघात।

मुहा०—लात खाना—(१) पैर की ठोकर सहना। (२) मार खाना। लात चलाना—लात से

ठोकर देना। लात मारना—तुच्छ या निरर्थक समझकर लेने या पाने की इच्छा न करना। लात मार कर खड़ा होना—बहुत अस्वस्थता के पश्चात् स्वस्थ होना।

लाता—संज्ञा पुं. [हिं. लात] पैर, पद। उ.—गौतम की नारि तरी नैंकु परसि लाता—१-१२३।

लाद—संज्ञा स्त्री. [हिं. लादना] (१) लादन की क्रिया। (२) आंत, अँतड़ी। (३) पेट।

मुहा०—लाद निकलना—तोंद निकलना।

लादत—क्रि. स. [हिं. लादना] लादता है।

यौ०—लादत-जोतत—लादने और जोतने के अवसर पर। उ.- लादत-जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ—१-३३१।

लादना, लादनो—क्रि. स. [सं. लब्ध, प्रा. लद्ध+ना] (१) किसी पर बहुत सी चीजें रखना। (२) (वाहन आदि को) भार से युक्त करना। (३) कर्तव्य या दायित्व का भार रखना।

लादि—क्रि. स. [हिं. लादना] (भार या सामान) रखकर या लादकर। उ.—करि हियाव यह सौंज लादि कै हरि कै पुर लै जाहि—१-३१०।

लादी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लादना] लादने की गठरी।

लाध—संज्ञा पुं. [सं. लाभ] प्राप्ति, लाभ।

लाधना, लाधनो—क्रि. स. [सं. लब्ध, प्रा. लद्ध+ना] पाना, प्राप्त करना।

लाधो, लाधौ—क्रि. स. [हिं. लाधना] पाया, प्राप्त किया। उ.—(क) छिन छिन परसत अंग मिलावत प्रेम प्रगट ह्वै लाधौ—२५०८। (ख) सो सुख सिव सनकादि न पावत जो सुख गोपिन लाधो—२७५८।

लानत—संज्ञा स्त्री. [अ. लअनत] धिक्कार।

लाना—क्रि. अ. [हिं. लेना+आना] (१) ले आना। (२) सामने रखना। (३) पैदा करना।

क्रि. स. [सि. लाय=आग+ना] आग लगाना।

क्रि. स. [हिं. लगाना] लगाना।

लाने—अव्य. [हिं. लाना=लगाना] लिए, वास्ते।

लानो—क्रि. अ. [हिं. लाना] (१) ले आना। (२) सामने रखना। (३) पैदा या उत्पन्न करना।

क्रि. स. [हिं. लाय+ना] आग लगाना

क्रि. स. [हिं. लगाना] लगाना।

लाप—संज्ञा पुं. [सं. आलाप] आलाप।

लापता—वि. [अ. ला+पता] (१) जिसका पता न चल रहा हो, खोया हुआ। (२) गायब।

लापरवा, लापरवाह—वि. [अ. ला+फ़ा. परवाह] (१) जिसे किसी बात की चिंता न हो। (२) जो सावधान न हो।

लापरवाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. लापरवाह] (१) बेफिक्री, निश्चिंतता। (२) असावधानी।

लापसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपसी] भुने हुए आटे में शरबत डालकर बनाया गया मीठा खाद्य। उ.—लुचुई ललित लापसी सोहै—२३२१।

लाबर—वि. [हिं. लबार] (१) झूठा। (२) गप्पी।

लाभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राप्ति। (२) नफा, फायदा। उ.—(क) लाभ हानि कछु समुझत नाहीं—१-४६। (ख) दुख-सुख लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोई—१-२६२। (३) भलाई, उपकार।

लाभकर, लाभकारी—वि. [सं.] गुणकारक।

लाभदायक—वि. [सं.] जिससे लाभ हो।

लाभा—संज्ञा पुं. [सं. लाभ] नफा, फायदा। उ.—जुगल कमल-पद नख मनि-आभा। संतनि मन संतत यह लाभा—६२५।

लाम—संज्ञा पुं. [फ़ा. लाम] (१) फौज, सेना।

मुहा०—लाम बांधना—चढ़ाई, आक्रमण या युद्ध के लिए सेना सजाना।

(२) भीड़-भाड़, समूह।

मुहा०—लाम बांधना—(१) बहुत सा मजमा इकट्ठा कर लेना।

(२) बहुत सा सामान जमा कर लेना। (३) खूब लंबी-चौड़ी बातें करना।

क्रि. वि. [सं. लंब] दूर, फासले पर।

लामन—संज्ञा पुं. [देश.] (१) लँहगा। (२) स्त्रियों की धोती या साड़ी का निचला भाग।

लामा—वि. [हिं. लंबा] जो लंबाई में बड़ा हो।

संज्ञा पुं. [तिब्बती] बौद्धों का तिब्बती धर्माचार्य।

लामी—वि. स्त्री. [हिं. लंबा] लंबी । उ.—अजहुँ न आइ मिले इहिं औसर अवधि बतावत लामी—३०८० ।

लामैं—क्रि. वि. [हिं. लाम = दूर] फासले पर ।

लाय—संज्ञा स्त्री. [सं. अलात, प्रा० अलाय] (१) ज्वाला, लपट । (२) आग, अग्नि ।

लायक—वि. [अ. लायक़] (१) उचित, ठीक । (२) उपयुक्त । उ.—(क) तुम लायक भोजन नहिं गृह मैं—१-२४१ । (ख) उपमा काहि देउँ, को लायक—६८८ । (ग) जा लायक जो बात होइ सो तैसियै तासों कहिये—३२१७ । (३) सुयोग्य, सत्पात्र । उ.—सूर स्याम रति पति के नायक सब लायक बनवारी—१९५१ । (४) समर्थ । उ.—तुम बिनु ऐसो कौन नंद-सुत यह दुख दुसह मिटावन लायक—९५४ ।

लायकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लायक + ई] (१) लायक होने का भाव । (२) सुयोग्यता, सत्पात्रता ।

लायचा—संज्ञा पुं. [देश.] एक बढ़िया रेशमी कपड़ा ।

लायची—संज्ञा स्त्री. [हिं. इलायची] इलायची ।

लायो, लायौ—क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) (ध्यान, चित्त या मन) लगाया । उ.—(क) हठी प्रहलाद चित चरन लायौ—१-५ । (ख) जिन जिन हरि चर-ननि चित लायौ—४-८ । (ग) हरि-पद अंबरीष चित लायौ—९-५ । (२) (भाव) उत्पन्न या अनुभव किया । उ.—इंद्र देखि इरषा मन लायौ—५-२ । (३) लगाया, जड़ा । उ.—लोह तरैं, मधि रूपा लायौ—७-७ । (४) लगाया, छिड़का, स्पर्श कराया । उ.—काम पावक जरत छाती लोन लायौ आनि—३३५५ । (५) आच-रण या व्यवहार किया । उ.—सूर स्याम भुज गही नँदरानी, बहुरि कान्ह अपनैं ढँग लायौ—१०-३४० ।

लार—संज्ञा स्त्री. [सं. लाला] (१) वह पतला थूक जो कभी-कभी तार के रूप में मुंह से निकलता है ।

मुहा०—मुंह से लार टपकना—पाने की बहुत इच्छा होना ।

(२) पतला थूक जो प्रायः बच्चों और बूढ़ों के मुँह से तार के रूप में बहता है । उ.—सो मुख चूमति महरि जसोदा दूध लार लपटाने (हो)—१०-१२८ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. तार अनु.] कतार, पंक्ति ।

अव्य. [मारवाड़ी लैर] (१) संग, साथ । उ.—जन्म-जन्म के दूत तिरोवन को नहिं लार लगाए—२९९६ । (२) पीछे ।

मुहा०—लार लगाना—फँसाना ।

लारनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. लार] लार से । उ.—सूरज प्रभु को लहै जु जूठनि लारनि ललित लपोटी—१०-१६४ ।

लाल—संज्ञा पुं. [सं. लालक] (१) प्यारा-दुलारा बालक । उ.—चलत लाल पैजनि के चाइ—१०-१३३ । (२) पुत्र, बेटा । उ.—लाल, हौं वारी तेरे मुख पर ।....। सूर कहा न्यौछावर करियै अपने लाल ललित लरखर पर—१०-९३ । (३) प्रिय व्यक्ति या प्रियतम के लिए संबोधन ।

संज्ञा पुं. [सं. लालन] प्यार-दुलार ।

संज्ञा स्त्री. [सं. लालसा] चाह, इच्छा ।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] मानिक, माणिक्य (रत्न) ।

मुहा०—लाल उगलना—प्यारी-प्यारी बातें करना ।

वि.—(१) सुर्ख, अरुण, रक्त वर्ण । उ.—खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लाल पनहियाँ—९-१९ ।

यौ०—लाल अंगारा या लाल भभूका—बहुत ज्यादा लाल ।

(२) बहुत अधिक क्रुद्ध ।

मुहा०—लाल आँखें करना, दिखाना या निकालना—बहुत क्रोध से देखना । लाल पड़ना—क्रुद्ध होना । लाल-पीला होना—गुस्सा होना । लाल हो जाना या होना—क्रोध में भर जाना ।

(३) (चौसर की) जो (गोटी) सब चालें चलकर बीच के घर में पहुँच जाय । (४) जो (खिलाड़ी) सबसे पहले जीत जाय ।

संज्ञा पुं.—एक प्रसिद्ध छोटी चिड़िया जिसकी मादा 'मुनिया' कहलाती है ।

लालच—संज्ञा पुं. [सं. लालसा] (१) लोभ, लोलुपता । उ.—(क) तिहिं लालच कबहूँ कैसैंहूँ, तृप्ति न पावत प्रान—१-१०३ । (ख) लोह गहैं लालच करि जिय को, औरौ सुभट लजावै—९-१५२ । (ग) मनौ भुजंग

अमी-रस-लालच फिरि फिरि चाहत सुभग सुचंदहिं—१०-१०७।

मुहा०—लालच देना—लोभ या लालसा उत्पन्न करना, प्रलोभन देना। लालच निकालना—लोभ के लिए दंड देने को प्रस्तुत होना।

लालचहा—वि. [हिं. लालच] लालची, लोभी।

लालची—वि. [हिं. लालच+ई] लोभी। उ.—लोचन लालची भारी—पृ. ३३४ (३८)।

लालड़ी—संज्ञा पुं. [हिं. लाल+ड़ी] लाल या अरुण रंग का एक नग।

लालन—संज्ञा पुं. [सं.] लाड़-प्यार।

संज्ञा पुं. [हिं. लाला] (१) बालक, कुमार। (२) प्यारा-दुलारा पुत्र। उ.—(क) लालन, वारी या मुख ऊपर—१०-९१। (ख) अब कहा करौं निछावरि, सूरज सोचति अपनैं लालन जू पर—१०-९२।

लालना, लालनो—क्रि. स. [सं. लालन] दुलार करना।

लाल-बुझक्कड़—संज्ञा पुं. [हिं. लाल+बूझना] किसी बात का अट्कलपच्चू मतलब या कारण बतानेवाला।

लालमन, लालमनि, लालमनी—संज्ञा पुं. [हिं. लाल+मणि] (१) श्रीकृष्ण। (२)एक तरह का तोता।

लालमुनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाल+मुनियाँ] 'लाल' पक्षी की मादा।

लालमुनैयनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. लालमुनियाँ] 'लालों' (मादाओं) की। उ.—मनु लाल मुनैयनि पाँति पिंजरा तोरि चली—१०-२५।

लालरि, लालरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लालड़ी] एक तरह का लाल नग।

लालस—वि. [सं.] ललचाया हुआ, लोलुप।

लालसा, लालसाई—संज्ञा स्त्री. [सं. लालसा] (१) चाह। उ.—निसि दिन इनि नैननि को री नँदलाल की लागी रहै लालसाई—१४९०। (२) उत्सुकता।

लाल सिखी—संज्ञा पुं. [हिं. लाल+शिखा] मुर्गा।

लालसी—वि. [हिं. लालसा] (१) इच्छुक। (२) उत्सुक।

लाला—संज्ञा पुं. [सं. लालक] (१) सम्मानसूचक संबोधन या शब्द।

मुहा०—लाला-भइया करना—(१) सम्मान के साथ संबोधन या बात करना। (२) प्रेम या स्नेह के साथ संबोधन या बात करना।

(२) छोटों के लिए प्यार-दुलार सूचक संबोधन।

मुहा०—लाला-मुनुआँ करना—दुलार-प्यार के साथ बात या संबोधन करना।

(३) प्रिय व्यक्ति, विशेषतः नायक, के लिए संबोधन। उ.—मैं तो लाला की छबि नेकहु न जोही—८३८।

संज्ञा स्त्री. [सं.] लार, थूक।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] पोस्त का लाल रंग का फूल।

वि. [हिं. लाल] लाल रंग का।

लालायित—वि. [सं.] ललचाया हुआ, उत्सुक।

लालिची—वि. [हिं. लालच] लोभी। उ.—सूरदास प्रभु की सोभा को अति लालिची रहे ललचाने—१६९७।

लालित—वि. [सं.] पाला-पोसा हुआ।

लालित्य—संज्ञा पुं. [सं.] सौंदर्य।

लालिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] लाली, ललाई, अरुणिमा।

लालीं—वि. स्त्री. [हिं. लालना] पाली-पोसी या दुलार की हुईं। उ.—काहे न दूध देहिं ब्रज-पोषन हस्त-कमल की लालीं—६१३।

लाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. लाल+ई] (१) ललाई, लालिमा उ.—अपनी लाली खोइ पीक की लाली पलकनि पायी—१९६३। (२) मान-मर्यादा।

लाले—संज्ञा पुं. [सं. लाला] अरमान, अभिलाषा।

मुहा०—लाले पड़ना—देखने या पाने को तरस जाना।

लाल्हा—संज्ञा पुं. [हिं. लाल+साग] 'मरसा' का साग। उ.—चौलाई, लाल्हा अरु पोई—३९६।

लाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लवा पक्षी। (२) लौंग।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लाय=आग] आँच, अग्नि।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) रस्सा। डोरी।

क्रि. स. [हिं. लाना] लाओ, लाने का अभ्यास करो। उ.—सूरदास सोइ समष्टि करि व्यष्टि दृष्टि मन लाव—२-३८।

लावक—संज्ञा पुं. [सं.] लवा पक्षी।

लावण्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लवण का भाव या धर्म। (२) सौंदर्य, सलोनापन।

लावत—क्रि. स. [हिं. लाना] (१) आरोपित करता है। उ.—हारि-जीति कछु नैंकु न समुझत लरिकनि लावत पाप—१०-२१४। (२) स्पर्श करता है।

मुहा०—रसना तारू सौं नहिं लावत—बराबर रट लगाये जाता है, जरा चुप नहीं होता। उ.—रसना तारू सों नहिं लावत पीवै पीव पुकारत—पृ० ३३० (९८)।

(३) चिपटाता है। उ.—झुलत झुलावत कंठ लावत बढ़ी आनँद वेलि—२२७८।

लावति—क्रि. स. [हिं. लाना] (१) करती है। उ.—परसहु वेगि, बेर कत लावति भूखे सारँग पानि—३९५। (२) लगाती या स्पर्श करती है। उ.—निरखत अंक स्याम सुंदर के बार-बार लावति लै छाती—२९७७।

लवदार—वि. [हिं. लाव = आग + फ़ा. दार] (१) तोप में बत्ती लगाने वाला। (२) (तोप) जो छोड़ी जाने को तैयार हो।

लावन—संज्ञा पुं. [सं. लावण्य] सौंदर्य।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लावना] 'लाने' की क्रिया या भाव।

लावनता—संज्ञा स्त्री. [सं. लावण्य + ता] सुंदरता।

लावना—क्रि. स. [हिं. लाना] लाना।

क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) स्पर्श कराना। (२) जलाना।

लावनि—संज्ञा स्त्री. [सं. लावण्य] सौंदर्य, सलोनापन। उ.—सुन्दर मुख की बलि-बलि जाऊँ।....। लावनि-निधि गुन निधि सोभा-निधि निरखि निरखि जीवन सब गाऊँ—६६३।

लावनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक प्रकार का लोक-गीत।

लावनो—क्रि. स. [हिं. लावना] लाना।

क्रि. स. [हिं. लगाना] (१) स्पर्श कराना। (२) जलाना।

लाव-लश्कर—संज्ञा पुं. [फ़ा] सेना और उसके साथ रहनेवाले लोग तथा सबका सामान।

लावहिंगे—क्रि. स. [हिं. लावना] चिपटायेंगे। उ.—रति-सुख अंत भरौंगी आलस अंकम भरि उर लावहिंगे—२१५८।

लावहि—क्रि. स. [हिं. लावना] (१) लगाता या स्पर्श कराता है।

मुहा०—जरे ऊपर लोन लावहि—जो पीड़ित या दुखी है, उसकी पीड़ा या दुख और भी बढ़ाने का उपक्रम करता है। उ.—जरे ऊपर लोन लावहि को है उनते बावरे—३२६०। (२) आरोपित करता है। उ.—लावहि साँचेन को खोर—१०-३।

लावहु—क्रि. स. [हिं. लावना] (१) सटाते हो। उ.—कैसैं बछरा थन लै लावहु—४०१। (२) लगाओ या स्पर्श कराओ।

मुहा०—जिनि लोन लावहु—नमक मत लगाओ, दुखी और पीड़ित का दुख या पीड़ा बढ़ाने वाले कार्य न करो और बात मत कहो। उ.—जाहु जिनि अब लोन लावहु देखि तुमही डरी—३३१८।

लावा—संज्ञा पुं. [सं.] 'लवा' पक्षी।

संज्ञा पुं. [सं. लाजा] खील, लाई।

मुहा०—लावा मेलना—(१) जादू-टोना करना। लावा मेलि दए हैं—जादू-टोना कर दिया है, जादू फेर दिया है। उ.—लावा मेलि दए हैं तुमकौं बकत रहौ दिन-आखौ—३०२१।

संज्ञा पुं. [हिं. लवना] खेत काटने वाला मजदूर।

लावा परछन—संज्ञा पुं. [हिं. लावा + परछना] विवाह की एक रीति जिसमें सप्तपदी के पूर्व कन्या के हाथ की डलिया में उसका भाई धान का लावा डालता है।

लावारिस—वि. [अ.] (१) जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। (२) जिसका कोई मालिक न हो।

लावै—क्रि. स. [हिं. लाना] (१) करता है। उ.—(क) देवै कौं बड़ौ महर, देत न लावै गहर—१०-३९। (ख) हरत बिलंब न लावै—१०-१२६। (२) (एकटक) देखता है। उ०—लटकति बेसरि जननि की इकटक चख लावै—१०-७२। (३) लगाये, मले। उ.—कोढ़ी लावै केसरि—३०२६।

लाश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] मृतक देह, शव।

लाष—संज्ञा पुं. [सं. लाक्षा] लाख, लाह। उ.—लाष भवन बैठार दुष्ट ने भोजन में विष दीन्हो—सारा. ७७७।

लाषना, लाषनो—क्रि. स. [हिं. लखना] देखना, ताड़ना।

लास—संज्ञा पुं. [फ़ा. लाश] मुरदा, शव।

संज्ञा पुं. [सं. लास्य] (१) नृत्य-विशेष। (२) मटक।

लासक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाचनेवाला। (२) मयूर।

लासकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाचनेवाली, नर्तकी।

लासा—संज्ञा पुं. [हिं. लस] (१) लसदार चीज। (१) वह लसदार पदार्थ जिसे बाँस या डाली पर लगाकर बहेलिया पक्षी पकड़ता है। उ.—चितवन ललित लकुट लासा लट काँपै अलक तरंग—पृ. ३२५ (३९)।

मुहा०—लासा लगाना—(फँसाने के लिए) लालच या प्रलोभन देना। लासा होना—हमेशा साथ लगे रहना।

लासानी—वि. [अ.] बेजोड़, अनुपम।

लासि—संज्ञा स्त्री. [सं. लास्य] नृत्य-विशेष।

लासु, लासू, लास्य—संज्ञा पुं. [सं. लास्य] (१) नृत्य। (२) (विशेषतया स्त्रियों का) नृत्य-विशेष।

लाह—संज्ञा स्त्री. [सं. लाक्षा] लाख, चपड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. लाभ] नफा, फायदा, लाभ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] चमक, कांति।

लाहक—वि. [हि. लहना+क] लहने या चाहनेवाले। उ.—प्रेम-प्रीति के लाहक—१-१९।

लाहन—संज्ञा पुं. [देश.] ढोने की मजदूरी।

लाहल—संज्ञा पुं. [अ. लाहौल] लाहौल।

लाहा—संज्ञा पुं. [सं. लाभ] फायदा, लाभ। उ.—और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि—१-३१०।

लाही—संज्ञा स्त्री [हिं. लाख, लाह] एक कीड़ा जो लाख उत्पन्न करता है।

वि. मटमैले लाल रंग का।

संज्ञा स्त्री. [हिं· लावा] खील, लाजा, लावा।

लाहु, लाहो, लाहौ—संज्ञा पुं. [सं.लाभ] नफा, फायदा। उ.—(क) सूर पाइ यह समौ, लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार—१-६८। (ख) जनि कछु प्रिया सोच मन करिहौ, मातु-पिता-परिजन-सुख लाहु—९-३४। (ग) यहै मोहिं लाहौ, नैननि दिखरावौ—१०-९५।

लाहौल—संज्ञा पुं. [अ.] एक वाक्य का पहला शब्द जिसका प्रयोग प्रायः घृणा सूचित करने के लिए किया जाता है।

लिंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चिह्न, लक्षण। (२) साधन-हेतु। (३) मूल प्रकृति। (४) पुरुष की गुप्त इंद्रिय। (५) शिव की मूर्ति-विशेष। (६) व्याकरण में वह भेद जिससे शब्द के स्त्री-पुरुष-वर्ग का ज्ञान होता है। (७) एक पुराण।

लिंगदेह—संज्ञा पुं. [सं] वह सूक्ष्म शरीर जो स्थूल के नष्ट होने पर भी कर्म-फल भोगने के लिए जीवात्मा के साथ रहता है। उ.—लिंग-देह नृप को निज गेह, दस इंद्रिय दासी सौं नेह—४-१२।

लिंगनाश—संज्ञा पुं. [सं.] अंधकार।

लिंगांकि—संज्ञा पुं. [सं.] एक शैव संप्रदाय।

लिंगायत—संज्ञा पुं. [सं.] एक शैव संप्रदाय।

लिंगी—संज्ञा पुं. [सं. लिंगिन्] (१) चिह्नवाला। (२) आडंबर करनेवाला।

संज्ञा स्त्री. [सं· लिंग] छोटा लिंग या पिंड।

लिए—अव्य.—संप्रदान कारकीय चिह्न, के वास्ते। उ.—धन-मद-मूढ़नि अभिमानिनि मिलि लोभ लिए दुर्बचन सहै—१-५३।

क्रि. स. [हिं. लेना] (१) (गोद में) लेकर या लिये हुए। उ.—(क) जसुमति तब नंद बुलावति लाल लिए कनियाँ दिखरावति—१०-९५। (ख) गोद लिए जसुदा नंद-नंदहिं—१०-१०७। (ग) सूरदास प्रभु कौं लिए जसुदा चितै-चितै मुसुकानी—१०-१५३। (२) (साथ) लेकर या लिये हुए। उ.—सखा लिए तहँ गये—४३७।

प्र०—लाइ लिए—चिपटा लिया। उ.—मोहन कत खिझत अयानी, लिए लाइ हिऐं नंदरानी—१०-१८३। बोलि लिए—बुला लिया। उ.—जागे नंद जसोदा जागी बोलि लिए हरि पास—५१७।

लिक्खाड़—वि. [हिं. लिखना] बहुत लिखनेवाला।

लिखत—संज्ञा स्त्री. [सं. लिखित] लिखी हुई बात।

यौ.—लिखत-पढ़त—लिखा-पढ़ी।

क्रि. स. [हिं. लिखना] (१) लिखता है। (क) चित्रगुप्त जम-द्वार लिखत हैं मेरे पातक झारि—१-१९७। (ख) बरस दिवस करि होत पुरातन फिरि-फिरि लिखत नयौ—१-२९८। (२) लिख लिखकर, लिखते-लिखते। उ.—सुर-तरुवर की साख लेखिनी लिखत सारदा हारैं—१-१८३।

लिखति—क्रि. स. [हिं. लिखना] चित्रित करती हो। उ.—भीति बिना तुम चित्र लिखति हौ, सो कैसैं निबहै री—७७३।

लिखधार—संज्ञा पुं. [हिं. लिखना+धार] लिखनेवाला, मुंशी। उ.—साँचौ सो लिखधार (लिखहार) कहावै। काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै—१-१४२।

लिखन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लिखावट, लिखा हुआ लेख। (२) भाग्य-लेखा।

लिखना—क्रि. स. [सं. लिखन] (१) चिह्न अंकित करना। (२) लिपिबद्ध करना। (३) चित्रित करना। (४) रचना, बनाना।

लिखनि—संज्ञा स्त्री. [सं. लिखन] (१) लिखावट, लिखा हुआ लेख। (२) कर्म का लेख।

लिखनी—संज्ञा स्त्री. [सं. लेखनी] कलम।

लिखनो—क्रि. स. [हिं. लिखना] (१) अंकित करना। (२) लिपि-बद्ध करना। (३) चित्रित करना। (४) रचना।

लिखवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिखाई] (१) लिखावट। (२) लिखने का कार्य या मजदूरी।

लिखवाना, लिखवानो—क्रि. स. [हिं. लिखाना] लिखने का काम दूसरे से कराना।

लिखहार—संज्ञा पुं. [हिं. लिखना+हार] लिखनेवाला, मुंशी। उ.—साँचौ सो लिखहार कहावै। काया-ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै—१-१४२।

लिखा—वि. पुं. [हिं. लिखना] (१) लिपिबद्ध। (२) अंकित, चित्रित।

लिखाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिखना] (१) लिखावट।

यौ०—लिखाई-पढ़ाई—विद्याभ्यास, अध्ययन।

(२) लिखने का कार्य या मजदूरी।

लिखाना, लिखानो—क्रि. स. [सं. लिखन] लिखने का काम दूसरे से कराना।

यौ०—लिखाना-पढ़ाना, लिखानो-पढ़ानो—शिक्षा देना।

लिखा-पढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिखना-पढ़ना] (१) पत्र-व्यवहार, चिट्ठी-पत्री। (२) कोई बात लिखकर पक्की करना।

लिखार—संज्ञा पुं. [हिं. लिखना+आर] लिखनेवाला।

लिखावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिखना+आवट] (१) लेख, लिपि। (२) लिखने का ढंग या रीति।

लिखि—क्रि. स. [हिं. लिखना] (१) लिखकर।

मुहा०—लिखि राखी—भाग्य में लिख दिया है। उ.—जो कछु लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोइ—१-२६२।

(२) अंकित या चित्रित करके। उ.—(क) मनौं चितेरैं लिखि-लिखि काढ़ी—३९१। (ख) मनौ चित्र की सी लिखि काढ़ी—६४७। (ग) हरि के चलत देखियत ऐसी मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी—२५३५। (घ) नँदनंदन ब्रज छाँड़ि कै को लिखि पूजै भीति—३४४३। (ङ) चित्ररेखा सकल जगत के नृपन की छिनिक में मुरति तब लिखि दिखाई—१० उ०-३४।

लिखित—वि. स्त्री. पुं. [सं.] लिपिबद्ध की हुई।

संज्ञा पुं.—(१) लिखी हुई बात। (२) प्रमाणपत्र।

लिखी—वि. स्त्री. [हिं. लिखना] चित्रित, अंकित। उ.—मनहुं चित्र की सी लिखी मुखहिं न आवै बोल—१००८।

लिखेरा—संज्ञा पुं. [हिं. लिखना] लिखनेवाला।

लिखै—क्रि. स. [हिं. लिखना] (१) लिपिबद्ध करे। उ.—लिखै गनेस जनम भरि मम कृत—१-१२५। (२) चित्रित या अंकित करता है। उ.—तेरौ चित्र लिखै अरु निरखै बासर बिरह गँवावै—२०३२।

लिख्यो, लिख्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. लिखना] (भाग्य में) लिखा हुआ लेख, भाग्य-लेख। उ.—(क) अखिल लोकनि भटकि आयौ, लिख्यौ मेटि न जाई—१-३१६।

(ख) मैं अपराध कियौ सिसु मारे लिख्यौ न मेटयौ जाई—१०-४।

क्रि. स. अंकित या चित्रित किया। उ.—लिखौ काजर नाग द्वारें, स्याम देखि डराई—४९८।

लिच्छिवि, लिच्छिवी—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन राजवंश।

लिटाना—क्रि. स. [हिं. लेटना] दूसरे को लेटने में प्रवृत्त करना।

लिट्ट—संज्ञा पुं. [देश.] मोटी रोटी जो केवल आग पर ही सेंकी जाती है।

लिडार—वि. [देश.] डरपोक, कायर।

लिपट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिपटना] लिपटने की क्रिया या भाव।

लिपटना, लिपटनो—क्रि. अ. [सं. लिप्त] (१) चिमटना, चिपटना। (२) गले लगना। (३) (कार्य में) जी-जान से जुट जाना।

लिपटाना, लिपटानो—क्रि. स. [हिं. लिपटना] (१) चिपटाना, चिमटाना। (२) गले लगाना। (३) (कार्य में) जी-जान से जुटा देना।

लिपना, लिपनो—क्रि. अ. [हिं. लीपना] (१) पोता जाना। (२) स्याही जैसी चीज का फैल जाना।

लिपवाना, लिपवानो—क्रि. स. [हिं. लीपना] लीपने का काम दूसरे से कराना।

लिपाइ—क्रि. स. [हिं. लिपाना] (फर्श आदि पर किसी चीज का) लेप करवा कर। उ.—चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौक पुराइ—१०-९५।

लिपाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लीपना] लीपने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

लिपाऊँ—क्रि. स. [हिं. लिपाना] लीपने का काम दूसरे से करा दूँ। उ.—चंदन भवन लिपाऊँ—८७६।

लिपाना, लिपानो—क्रि. स. [हिं. लीपना] तह चढ़-वाना, लेप कराना, पुता देना।

लिपायो, लिपायौ—क्रि. स. [हिं. लिपाया] (गच-विशेष को) पुता-लिपा दिया या लेप करा दिया।

उ.—(क) चंदन भवन लिपायौ—१०-४। (ख) भोजन कौं निज भवन लिपायौ—१०-२४८।

लिपावो, लिपावौ—क्रि. स. [हिं. लिपाना] (गच-विशेष को) पुता-लिपा लो, या लेप करा दो। उ.—ललिता बिसाखा अंगना लिपावो—२३९५।

लिपि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अक्षर लिखने की पद्धति। (२) लिखा हुआ लेख। (३)लिखावट।

लिपिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिखनेवाला। (२) मुंशी।

लिपिकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिखनेवाला। (२) प्रतिलिपि करनेवाला।

लिपिबद्ध—वि. [सं.] लिखा हुआ, लिखित।

लिप्त—वि. [सं.] (१) लिपा-पुता। (२) लीन।

लिप्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा, चाह।

लिबड़ना, लिबड़नो—क्रि. अ. [अनु] कीचड़ आदि से लथपथ होना।

क्रि. स. कीचड़ आदि से लथपथ करना।

लिबास—संज्ञा पुं. [अ.] पोशाक, पहनावा।

लियाकत—संज्ञा स्त्री. [अ. लियाक़त] (१) योग्यता। (२) गुण। (३) शिष्टता, शील।

लियो, लियौ—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) उठाया, धरा। उ.—गाइ-गोप-गोपीजन-कारन गिरि कर-कमल लियौ—१-१२१। (२) (जन्म) धारण किया। उ.—जब तैं जग जनम लियौ, जीव नाम पायौ—१-१२४। (३) ठाना, निश्चित किया। उ.—अत्रि पुत्र-हित बहु तप कियौ, तासु नारिहूँ यह व्रत लियौ—४-३। (४) अपनाया। उ.—असी-इक कर्म बिप्र को लियौ—५-२। (५) हाथ में रक्खा। उ.—स्नान करि अंजली जल जबै नृप लियौ—८-१६।

प्र०—अँचल लियौ—अंचल से कुछ मुँह ढक लिया। उ.—रुद्र कौं देखि कै मोहिनी लाज करि लियौ अँचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ—८-१०।

(६) (अंक या गोद में) उठा लिया। उ.—बालक लियौ उछंग दुष्टमति—१०-५०। (७) (चुराकर या छिपाकर) उतार लिया। उ.—कैसैं कहति लियौ छींकें तैं, ग्वाल-कंध दै लात—१०-२९०।

लिलाट, लिलाटा, लिलार लिलारा—संज्ञा पुं. [सं. ललाट] (१) माथा, मस्तक। उ.—(क) तिलक लिलार—१०-२४। (ख) मुकुलित अलक लिलार—

११८२। (२) भाग्य। उ.—सुनहु सखी री दोष न काहू जो बिधि लिखो लिलार—२६८७।

लिलारे—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. लिलार] माथे पर। उ.—हृदय हार बिन ही गुन लंकृत मृगमद मिल्यौ लिलारे—२०८८।

लिलोही—वि. [सं. लल] लालची, लोभी।

लिव—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौ] लगन।

लिवाइ, लिवाई—क्रि. स. [हिं. लिवाना] लेकर।

प्र०—गई लिवाइ—साथ ले गयी। उ.—स्याम कौं भीतर गई लिवाइ—१०-२२६। जाहु लिवाइ—साथ ले जाओ। उ.—जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौं—४२५। चलौ लिवाइ—साथ ले चलो। उ.—(क) धेनु बन चलौ लिवाइ—६१९। (ख) ऊधो, संगहि चलौ लिवाइ—३१३४। ल्याए लिवाई—साथ ले आये। उ.—भरत दया ता ऊपर आई। ल्याये आस्रम ताहि लिवाई—५-३।

लिवाऊँ—क्रि. स. [हिं. लिवाना] थमाऊँ, पकड़ाऊँ। उ.—सूरदास भीषम परतिज्ञा अस्त्र लिवाऊँ (गहावन) पैज करी—१-२६८।

लिवाना, लिवानो—क्रि. स. [हिं. लेना का प्रेर०] (१) लेने का काम दूसरे से कराना। (२) थमाना, पकड़ाना।

क्रि. स. [हिं. लाना का प्रेर.] लाने का काम दूसरे से कराना।

लिवाल—वि. [हिं. लेना + वाला] लेने या खरीदनेवाला।

लिवावन—संज्ञा पुं. [हिं. लिवाना] साथ ले जाने। उ. कीरति महरि लिवावन आई—७५७।

लिवैया—वि. [हिं. लेना] लेने या खरीदनेवाला।

वि. [हिं. लाना] लानेवाला।

लिहाज—संज्ञा पुं. [अ. लिहाज़] (१) व्यवहार में किसी बात का ख्याल या ध्यान। (२) कृपादृष्टि। (३) मुरव्वत, संकोच। (४) पक्षपात। (५) पद, सम्मान, संबंध आदि का ध्यान। (६) शर्म, लाज।

मुहा०—लिहाज उठना, टूटना या न रहना—(१) पद-मर्यादा आदि का ध्यान न रह जाना। (२) हया-शर्म न रह जाना।

लिहाड़ा—वि. [देश.] बेकार, खराब, निकम्मा।

लिहाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लिहाड़ा] निंदा, उपहास।

मुहा०—लिहाड़ी लेना—निंदा या उपहास करना।

लिहाफ—संज्ञा पुं. [अ. लिहाफ़] भारी रजाई।

लिहित—वि. [हिं. लेह] चाटता हुआ।

लीक—संज्ञा स्त्री. [सं. लिख्] (१) चिह्न, लकीर, रेखा।

मुहा०—लीक करके—निश्चयपूर्वक। लीक खिंचना—(१) अटल और दृढ़ होना। (२) व्यवहार की मर्यादा बँधना। (३) साख बँधना। लीक खाँची—साख बँध गयी है। उ.—सूरदास भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ दिसि (जुग) खाँची—१-१८। लीक खींचकर—जोर देकर, दृढ़तापूर्वक। कहति लीक मैं खाँची—प्रतिज्ञा करके अथवा निश्चयपूर्वक कहती हूँ। उ.—सूर स्याम तेरे बस राधा, कहति लीक मैं खाँची—१४७५।

(२) गहरी पड़ी हुई लकीर या रेखा। उ.—मनौ कनक कसौरिया पर लीक सी लपटाति—१०-१८४। (३) गाड़ी का पहिया चलने से बननेवाली रेखा। (४) (पगडंडी जैसा) मार्ग का पड़ जाने वाला चिह्न।

मुहा०—लीक चलना या लीक पकड़ना—पगडंडी के सहारे आगे बढ़ाना। लीक पीटना—चली आने वाली प्रथा का किसी न किसी तरह निर्वाह करना।

(५) मर्यादा, महिमा। (६) लोक-व्यवहार की बँधी हुई परंपरा। उ.—नँदनंदन के नेह-मेह जिनि लोक लीक लोपी—३४८७। (७) प्रथा, रीति। (८) सीमा, प्रतिबंध। (९) कलंक, लांछन। उ.—तिन देखत मेरौ पट काढ़त लीक लगै तुम लाज—१-२२५। (१०) गिनती, गणना।

लीकति—संज्ञा स्त्री. [हिं. लीक] लीक।

लीके—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. लीक] रेखा को।

मुहा०—करे कहति हौं लीके—निश्चय या प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ। उ.—और अंग की सुधि नहिं जानै करे कहति हौं लीके—१४००

लीकौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. लीक] लकीर, रेखा।

मुहा०—खैंचि कहति हौं लीकौ—निश्चय या प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। उ.—कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ—१-१३८।

लीख—संज्ञा स्त्री. [सं. लिक्षा] जूँ का अंडा ।

लीचड़—वि. [देश.] (१) निकम्मा । (२) पिंड या पीछा न छोड़नेवाला ।

लीची–संज्ञा स्त्री. [चीनी लीचू] एक पेड़ या उसका फल ।

लीझी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) उबटन के साथ छूटा हुआ मैल । (२) रस निचुड़ा चीफुर, सीठी ।

वि.—(१) रस-रहित । (२) निकम्मा ।

लीजतु—क्रि. स. [हिं. लेना] लेता है । उ.—(क) रवि, ससि, राहु सँजोग बिना ज्यौं, लीजतु है मन मानि—२-३८ । (ख) जदपि मोहिं बहुतै समुझावत सकुचन लीजतु मानि—२७४७ ।

लीजै—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) बचा लीजिए । उ.—मोह-समुद्र सूर बूड़त है,लीजै भुजा पसारि—१-१११ ।

प्र०—राखि लीजै—बचा लीजिए, रक्षा कीजिए । उ.—(क) नाथ सारंगधर, कृपा करि दीन पर डरत भव-त्रास तैं राखि लीजै—१-१२० । (ख) सूर स्याम अबके इहिं औसर आनि राखि ब्रज लीजै—२८१९ ।

(२) (आक्रमण या सामना करके अथवा घेरकर) नष्ट कर दीजिए । उ.—जा सहाइ पांडव-दल जीतैं अर्जुन कौं रथ लीजै—१-२६९ । (३) ग्रहण कीजिए, अपनाइए । उ.—राजा कह्यौ, कहा अब कीजै, द्विजनि कह्यौ, चरनोदक लीजै—९-५ । (४) ठानिए, निश्चित कीजिए । उ.—महाराज दसरथ मन धारी । अवध-पुरी कौ राज राम दै, लीजै व्रत बनचारी—९-३० । (५) माँग लीजिए, ले लीजिए । उ.—कान्हा बलि आरि न कीजै, जोइ-जोइ भावै सोइ-सोइ लीजै—१०-१८३ ।

लीजौ—क्रि. स. [हिं. लेना] कहना, बताना । उ.—मेरौ नाम नृपति सौं लीजौ, स्याम कमल लै आए—५८३ ।

प्र०—टेरि लीजै—बुला लेना, पुकार लेना । उ.—सूरदास प्रभु कहत सौंह दै, मोहिं लीजौ तुम टेरि—४०१ ।

लीद—संज्ञा स्त्री. [देश.] पशुओं का मल ।

लीन—वि. [सं.] (१) जो किसी चीज में समा गया हो । (२) कार्य आदि में रत, संलग्न या तत्पर । (३) ध्यान-मग्न । (४) तन्मय, मग्न । उ.—सूरदास प्रभु प्रान न छूटत अवधि आस में लीन—३२०६ ।

लीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समा जाने की क्रिया या भाव । (२) कार्य आदि में संलग्नता या तत्परता । (३) मग्नता, तन्मयता । (४) ध्यान-मग्नता ।

लीना–वि. स्त्री. [सं. लीन] ध्यानमग्न, अनुरक्त । उ.—अति ही चतुर सुजान जानमनि वा छवि पै भई मैं लीना—१४९१ ।

लीनी–क्रि. स. स्त्री. [हिं. लेना] ले ली ।

प्र०—गोद करि लीनी—गोद में उठा लिया । उ.—देखी परी जोगमाया, बसुदेव गोद करि लीनी—१०-४ ।

लीने—क्रि. स. [हिं.] लिये (हुए) । उ.—पैठि गए मुख ग्वाल धेनु-बछरा सँग लीने—४३१ ।

लीनो, लीनौ—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) भजा, जपा, उच्चारण किया । उ.—जो कबहुँ नर-जन्म पाइ, नहिं नाम तुम्हारौ लीनौ—१-१२९ । (२) (जन्म आदि) धारण किया । उ.—परशुराम जमदग्नि-गेह लीनौ अवतारा—९-१३ ।

प्र०—धरि लीनौ—(१) रूप या वेश बनाया या धारण किया । उ.—अति मोहिनी रूप धरि लीनौ—१०-५१ । (२) धारण या स्थापित कर लिया, रख लिया । उ.—छिन इक मैं भृगुपति प्रताप बल करषि हृदय धरि लीनौ—९-११५ ।

लीन्यो, लीन्यौ—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) पाया, प्राप्त किया । उ.—हरि, तुम बलि कौं छलि कहा लीन्यौ ८-१४ । (२) लिया, पकड़ा, उठाया । उ.—तरुवर तब इक उपारि हनुमत कर लीन्यौ—९-९६ ।

लीन्ही–क्रि. स. [हिं. लेना] ली, ले ली । उ.—देह जमानति लीन्ही—१-१९६ ।

प्र०—हरि लीन्ही—हरण कर लिया । उ.—तहाँ बसत सीता हरि लीन्ही रजनीचर अभिमानी—९-१९९ । सहि लीन्ही—सहन कर लिया । उ.—सुनहु सूर चोरी सहि लीन्ही—१०-३०३ । लीन्हीं फेंट छुड़ाइ—फेंट छुड़ा ली । उ.—रिस करि लीन्हीं फेंट छुड़ाइ—५३९ ।

लीन्हें—अव्य. [हिं. लीन्ह = लिया] (१) लिए, वास्ते। (२) के कारण, फेर या चक्कर में पड़कर। उ.—कंचन मनि तनि काँचहिं सैंतत या माया के लीन्हें।

लीन्हे—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) ले लिया, लिये (हुए)। उ. - हाथ धनुष लीन्हे – ९-६२।

प्र०—लीन्हे साथ-साथ ले लिया, (किसी के) साथ चलना स्वीकार कर लिया। उ.—अंतरजामी प्रीति जानिकै लछिमन लीन्हे साथ—९-३७। लीन्हे गोद—गोद में ले लिया, गोद में लेने को उठा लिया। उ.—जननि उबटि न्हवाइ कै (सिसु) क्रम सौं लीन्हे गोद —१०-४२। गाढ़ै करि लीन्हे – मजबूती से पकड़ लिया। उ.—दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हे —१०-३१७। लीन्हे रोग—रोग-घोग (अपने ऊपर) ले लिये या लेकर (शिशु की) कल्याण-कामना की। उ.—सूर स्याम गाइनि सँग आए मैया लीन्हे रोग—४९३।

लीन्हैं—अव्य. [हिं. लिए या लेना] के लिए, (में फँसे होने) के कारण। उ.—माया-मोह-लोभ के लीन्हैं, जानी न बृंदावन रजधानी—१-१४९।

लीन्हों, लीन्हौं—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) ग्रहण किया। उ.—कछु दिन पत्र भच्छ करि बीते, कछु दिन लीन्हो पानी—सारा. ७५। (२) ठाना, (प्रण आदि का) निश्चय किया। उ.—धर्म-पुत्र जब जग्य उपायौ, द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौं—१-२९।

लीन्हो, लीन्हौ—क्रि. स. [हिं. लिया] (१) भार ग्रहण किया, उठाया। उ.—(क) सात दिवस गिरि लीन्हो —१-१७। (२) (वार करने को) उठाया। उ.—(क) रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ—१-२७१। (ख) श्री रघुनाथ धनुष कर लीन्हौ—९-५९। (३) (आचमन या पान) किया। उ.—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ—१०-२३८। (४) पकड़ा, थाम लिया। उ.—अटपट आसन बैठि कै गो-धन कर लीन्हौ—४०९।

प्र०—गहि लीन्हौ—पकड़ लिया। उ.—पग सौं चाँपि घींच बल तोरयौ, नाक फोरि गहि लीन्हौ—५५८। झपि जल लीन्हौ—पानी में कूद पड़े। उ.—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि झपि जमुना जल लीन्हौ—५७६।

लीपना—क्रि. स. [सं. लेपन] गोबर, मिट्टी आदि का गाढ़ा या पतला लेप या घोल दीवार या फर्श पर चढ़ाना या पोतना।

मुहा०—लीपना-पोतना—(१) सफाई करना। (२) सारा काम बिगाड़ देना।

लीपि—क्रि. स. [हिं. लीपना] (किसी चीज का) घोल फर्श आदि पर चढ़ाकर। उ.—(क) चौक चंदन लीपि कै धरि आरती सँजोइ—१०-२६। (ख) अस्थल लीपि पात्र सब धोए—१०-२६०।

लीबड़, लीबर—वि. [हिं. लिबड़ना] कीचड़ आदि से लथपथ।

लीबे—संज्ञा पुं. [हिं. लेना] (गोद में) लेने की क्रिया या भाव। उ.—ऐसो भाग होइगो कबहूँ स्याम गोद में लीबे—२९६६।

लीयो, लीयौ—क्रि. स. [हिं. लेना] लिया।

प्र०—माँगि लीयौ—माँग लिया। उ.—कान्ह माँगि सीतल जल लीयौ—३९६।

लीर—संज्ञा स्त्री. [सं. चीर] धज्जी, चिथड़ा।

लील—वि. [सं. नील] नीले रंग का, नीला। उ.—लीलांबुज तनु लील बसन मनि चितयो न जात धूम के भोरे—३२४८।

लीलकंठ—संज्ञा पुं. [सं. नीलकंठ] नीलकंठ पक्षी।

लीलत—क्रि. स. [हिं. लीलना] लीलता है, लीलते (हो)। उ.—जैसे मीन अहार लोभ ते लीलत परे गरे—पृ. ३२८ (७४)।

लीलना, लीलनो – क्रि. स. [हिं. निगलना] निगलना।

लीलम—संज्ञा पुं. [हिं. नीलम] नीलमणि, नीलम।

लीलया—क्रि. वि. [सं.] (१) खेल ही खेल में। (२) सहज ही में, अनायास।

लीलांबर—संज्ञा पुं. [सं. नीलांबर] नीला अंबर या वस्त्र।

लीलांबुज—संज्ञा पुं. [सं. नीलांबुज] नीला कमल। उ.—लीलांबुज तनु लील बसन मनि चितयो न जात धूम के भोरे—३२४८।

लीला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खेल, क्रीड़ा। उ.—लीला करत कनक मृग मारयौ—९-११५। (२) प्रेम-विनोद। (३) अद्‌भुत् या रहस्यमय व्यापार। उ.—लीला सुभग सूर के प्रभु की ब्रज में गाइ जियौ—४८६। (४) ईश्वरावतारों के चरित्रों का अभिनय।

संज्ञा पुं. [सं. नील] काले रंग का घोड़ा।

वि.—नीले रंग का, नीला।

लीलाधर—संज्ञा पुं. [सं.] लीलावतारी, विष्णु या उनके प्रमुख अवतार, राम और कृष्ण। उ.—निर्गुन ब्रह्म सगुन लीलाधर सोई सुत करि मान्यौ—१०-२६३।

लीलापुरुषोत्तम—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

लीलामय—वि. [सं.] (१) विनोद या क्रीड़ायुक्त। (२) रहस्यपूर्ण।

लीली—वि. स्त्री. [सं. नील] नीले रंग की, नीली। उ.—बंदन सिर ताटंक गंड पर रतन जटित मनि लीली—१८४६।

लीले—संज्ञा पुं. [सं. नील] काले रंग का घोड़ा। उ.—लीले सुरंग कुमैत स्याम तोहि परदे सब मन रंग—१० उ०-६।

लीलैव—क्रि. वि. [सं. लीला+इव] (१) लीला-रूप में। (२) खिलवाड़ में। (३) बहुत सहज रूप में।

लीलो, लीलौ—वि. [हिं. नीला] नीले रंग का।

लीह—संज्ञा स्त्री. [देश.] जमीन, भूमि।

लुँगाड़ा—वि. [देश.] लुच्चा, लफंगा।

लुंचन—संज्ञा पुं. [सं.] नोचने या काटने की क्रिया।

लुंचित—वि. [सं.] नोचा या काटा हुआ।

लुंज, लुंजा, लुंजैं—वि. [सं. लुंचन] (१) लूला-लँगड़ा। उ.—ए ऊधौ कहियौ माधौ सों मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं—२७२१। (२) बिना पत्ते का (पेड़), ठूँठ।

लुंठक—वि. [सं.] लुटेरा।

लुंठना, लुंठनो—क्रि. स. [सं. लुंठन] (१) लुढ़कना। (२) लूटना।

लुंठित—वि. [सं.] (१) गिरा या लुढ़कता हुआ। (२) जो लूटा-खसोटा गया हो।

लुंड—संज्ञा पुं. [सं. रुंड] बिना सिर का धड़।

लुंडा—वि. [सं. रुंड] जिसके पूँछ और पंख न हों।

लुआठ, लुआठा—संज्ञा पुं. [सं. लोक+काष्ठ] जलती या सुलगती हुई लकड़ी।

लुआठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुआठा] जलती हुई लकड़ी।

लुआब—संज्ञा पुं. [अ.] लस, लासा।

लुआर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लू] तप्त वायु, लूक।

लुकंजन—संज्ञा पुं. [सं. लोकांजन] वह अंजन जिसको लगानेवाला तो सबको देखता है, पर उसे कोई नहीं देख सकता।

लुकंदर—वि. [हिं. लुकना] छिपनेवाला।

लुक—संज्ञा पुं. [सं. लोक] लपट, ज्वाला।

लुकना, लुकनो—क्रि. अ. [सं. लुक] छिपना।

लुकाई—क्रि. अ. [हिं. लुकना] छिपकर।

प्र०—रहे लुकाई—छिप गये। उ.—टेरि टेरि मैं भई बावरी दोउ भैया तुम रहे लुकाई—४६२।

लुकाए—क्रि. अ. [हिं. लुकना] छिपे।

प्र०—रहे लुकाए—छिप गये। उ.—डर तें तब हरि रहे लुकाए—२४३३।

लुकाट—संज्ञा पुं. [सं. लकुच] एक पेड़ या उसका फल।

संज्ञा पुं. [हिं. लुआठा] जलती हुई लकड़ी।

लुकाना—क्रि. स. [हिं. लुकना] छिपाना।

क्रि. अ.—लुकना, छिपना।

लुकाने—क्रि. अ. [हिं. लुकाना] छिपे, छिप गये। उ.—कोउ कहै ग्वाल-बाल सँग खेलत बन में जाइ लुकाने—३४७१।

प्र०—रहे लुकाने—छिप गये। उ.—यह बिपरीत जानि तुम जन की अंतर दै, बिच रहे लुकाने—१-२१७।

लुकानो—क्रि. स. [हिं. लुकना] छिपाना।

क्रि. अ. लुकना, छिपना।

लुकाय—क्रि. स. [हिं. लुकाना] छिपाकर।

प्र०—चाहति लेन लुकाय—छिपा लेना चाहती है। उ.—मनो जलद को दामिनीगन चाहति लेन लुकाय—२२८४।

लुकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुक+आर] लपट, ज्वाला।

लुकारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] जलती लकड़ी या फूस।

लुकावत—क्रि. स. [हिं. लुकाना] छिपाता है। उ.—(क) सूर स्याम यह सुनि मुसक्याने, अंचल मुखहि

लुकावत—१०-२२२। (ख) चाँपी पूंछ लुकावत अपनी जुवतिनि कौं नहिं सकत दिखाय—५५५।
लुकावैं—क्रि. स. [हिं. लुकाना] छिपाती हैं। उ.—सकुचि अंग जल पैठि लुकावैं—७९९।
लुकावैगी—क्रि. स. [हिं. लुकाना] छिपायेगी, प्रकट न करेगी। उ.—मोहिं कहत नहिं, काहि कहैगी, कब लौं बात लुकावैगी—२१७७।
लुके—क्रि. अ. [हिं. लुकना] छिप गये। उ.—टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ—९-२३।
लुकेठा—संज्ञा पुं. [हिं. लुक] जलती लकड़ी या फूस।
लुक्क—संज्ञा पुं. [लुक] लपट, ज्वाला।
लुक्कायित—वि. [सं.] लुका या छिपा हुआ।
लुगदी—संज्ञा स्त्री. [देश.] गीली वस्तु की पिंडी।
लुगरा—संज्ञा पुं. [हिं. लूगा + ड़ा] (१) कपड़ा। (२) फटा-पुराना कपड़ा, लत्ता। (३) छोटी चादर, ओड़नी।
वि. [देश.] चुगली खानेवाला।
लुगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुगरा] फटी धोती या ओढ़नी।
संज्ञा स्त्री. [देश.] चुगली।
लुगाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोग] (१) स्त्री। (२) पत्नी।
लुगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूगा] (१) फटी-पुरानी धोती या ओढ़नी। (२) लहँगे का चौड़ा किनारा।
लुग्गा—संज्ञा पुं. [हिं. लूगा] (१) कपड़ा। (२) धोती।
लुचई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुचुई] मैंदे की पतली पूरी। उ.—लुचई ललित लापसी सोहै—२३२१।
लुचकना, लुचकनो—क्रि. स. [सं. लुंचन] छीनना।
लुचवाना, लुचवानो—क्रि. स. [सं. लुंचन] नोचवाना।
लुचुई—संज्ञा स्त्री. [सं. रुचि, मा० लुचि] मैंदे की पतली पूरी। उ.—(क) लुचुई लपसी सद्य जलेबी—१०-२२७। (ख) लुचुई लपसी घेवर खाजा—३९६।
लुच्चा—वि. [हिं. लुचकना] (१) छीन-झपट कर ले जाने वाला। (२) दुराचारी, लफंगा।
लुच्ची—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुचुई] मैंदे की पूरी।
वि. स्त्री. [हिं. लुच्चा] दुराचारिणी (स्त्री)।
लुटंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूट] लूट।
लुटकना, लुटकनो—क्रि. अ. [हिं. लटकना] इधर-उधर पड़ा होना।
लुटत—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूट] लूट।
लुटना, लुटनो—क्रि. अ. [सं. लुट्] (१) लूट लिया जाना। (२) सर्वस्व खो जाना।
क्रि. अ. [हिं. लुठना] (१) लोटना। (२) लुढ़कना।
लुटयो, लुटयौ—क्रि. स. [हिं. लुटाना] लुटा दिया। उ.—धर्म-सुधन लुटयो—१-६४।
लुटाइ—क्रि. स. [हिं. लुटाना] उदारतापूर्वक फेंककर कि जो चाहे ले ले। उ.—कंस को भँडार सब देत हैं लुटाइ कै—२६२८।
लुटाऊँ—क्रि. स. [हिं. लुटाना] उदारता पूर्वक (मुट्ठी भर-भरकर) बाँटूं या वितरण करूँ। उ.—जो मोहन मेरे बस होवहिं हीरा लाल लुटाऊँ—पृ. ३०६ (७६)।
लुटाए—क्रि. स. [हिं. लुटाना] उदारतापूर्वक फेंके कि जो चाहे ले ले। उ.—रजक मारि हरि प्रथम ही नृप बसन लुटाए—२५७९।
लुटाना, लुटानो—क्रि. स. [हिं. लूटना] (१) लूट या छीन लेने देना। (२) बिना मूल्य के दे देना। (३) व्यर्थ फेंकना या व्यय करना। (४) मुट्ठी-भर-भरकर फेंकना।
लुटायो, लुटायौ—क्रि. स. [हिं. लुटाना] (१) दूसरे को लूटने या छीन लेने दिया, लुटा दिया। उ.—(क) कटक जात ही नगर ताको लुटायो—१० उ.-३५। (ख) काहू कौ दधि-दूध लुटायौ—१०-३४०।
लुटावत—क्रि. स. [हिं. लुटाना] (१) लुटाते या लूट लेने देते हैं। उ.—महर-महरि ब्रज-हाट लुटावत—१०-२२। (२) उदार होकर बाँटते या वितरण करते हैं। उ.—अति रस-रासि लुटावत-लूटत—६८६।
लुटावन—संज्ञा पुं. [हिं. लुटावना] लुटाने की क्रिया या भाव। उ.—गोकुल हाट-बजार करत जु लुटावन रे—१०-२८।
लुटावना, लुटावनो—क्रि. स. [हिं. लुटाना] (१) छीनने या लूटने देना। (२) बिना मूल्य देना। (३) व्यर्थ फेंकना या बरबाद करना। (४) उदारता से बाँटना।
लुटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोटा] छोटा लोटा।
लुटेरा—वि. [हिं. लूटना] छीन या लूट लेनेवाला।

लुठना, लुठनो—क्रि. अ. [सं. लुंठन] (१) (भूमि पर) लोटना। (२) लुढ़कना।

लुठाना, लुठानो—क्रि. स. [हिं. लुठना] (१) (भूमि पर) लोटाना। (२) लुढ़काना।

लुठायो, लुठायौ—क्रि. स. [हिं. लुठाना] लुढ़का दिया। उ.—बालक अजौं अजान, न जानैं केतिक दह्यौ लुठायौ – ३५६।

लुढ़कना, लुढ़कनो—क्रि. अ. [हिं. लुठना] (१) (समतल या ढालू सतह पर) गेंद की तरह ऊपर-नीचे होते हुए बढ़ना। (२) गिर पड़ना।

लुढ़काना, लुढ़कानो–क्रि. स. [हिं. लुढ़कना] (१) (समतल या ढालू सतह से) इस तरह छोड़ना कि चक्कर खाते या ऊपर-नीचे होते आगे बढ़ जाय। (२) गिरा देना।

लुढ़त—क्रि. अ. [हिं. लुढ़ना] गिरता है। उ.– बरही मुकुट लुढ़त अवनी पर नाहिंन निज भुज भरतु—२२५३।

लुढ़ना, लुढ़नो—क्रि. अ. [हिं. लुढ़कना] (१) लुढ़कना। (२) गिरना।

लुढ़ाइ, लुढ़ाई—क्रि. स. [हिं. लुढ़ाना] ढरकाकर।

प्र०—दियौ लुढ़ाई—लुढ़का दिया। उ.—माखन खाइ खवायौ ग्वालनि जो उबरचौ सो दियौ लुढ़ाई —१०-३०३।

लुढ़ाना, लुढ़ानो—क्रि. स. [हिं. लुढ़काना] लुढ़काना।

लुढ़ाय—क्रि. स. [हिं. लुढ़ाना] लुढ़काकर।

प्र० —देत लुढ़ाय—लुढ़का देता है। उ.—बरजैं न माखन खात कबहूँ दह्यौ देत लुढ़ाय —२७५६।

लुतरा—वि. [देश.] (१) चुगलखोर। (२) दुष्ट।

लुत्थ—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोथ] लोथ।

लुत्फ—संज्ञा पुं. [अ. लुत्फ़] (१) मजा। (२) स्वाद।

लुनना, लुननो—क्रि. स. [सं. लवन] (१) फसल काटना। (२) दूर या नष्ट करना।

लुनाइ, लुनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोना+आई] सुंदरता।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लुनना] फसल काटने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

लुनिए, लुनिऐ—क्रि. स. [हिं. लुनना] फसल काटिए। उ.—(क) जैसोइ बोइयै, तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे—१-६१। (ख) जैसो बीज बोइए तैसो लुनिए—३३३१।

लुनेरा – वि. [हिं. लुनना] फसल काटनेवाला।

लुनै—क्रि. स. [हिं. लुनना] (फसल) काटे। उ.—बालि छाँड़ि कै सूर हमारे अब नरवाई को लुनै—३१५८।

लुन्यो, लुन्यौ—क्रि. स. [हिं. लुनना] (फसल) काटी। उ.– सूर सुरपति सुन्यो बयो जैसो लुन्यो प्रभु कह्यो गुन्यो गिरि सहित बैहै—९४४।

लुपना, लुपनो – क्रि. अ. [सं. लुप्त] छिप जाना।

लुप्त वि. [सं.] (१) गुप्त। (२) अदृश्य। (३) नष्ट।

लुबध, लुबुध—वि. [सं. लुब्ध] मुग्ध, मोहित।

लुबधत, लुबुधत—क्रि. स. [हिं. लुबुधना] मुग्ध होता है।

लुबधति, लुबुधति—क्रि. स. [हिं. लुबुधना] मुग्ध होती है। उ.—जैसे लुबधति कमलकोस मैं भ्रमरा की भ्रमरी—पृ. ३२८ (८२)।

लुबधना, लुबधनो, लुबुधना, लुबुधनो—क्रि. अ. [हिं. लुबुध+ना] मुग्ध या मोहित होना।

क्रि. स. मुग्ध या मोहित करना।

लुबधा, लुबुधा—वि. [सं. लुब्ध] मुग्ध, आसक्त।

वि. [सं. लोभ] लोभी।

लुबधीं, लुबुधीं—क्रि. अ. [हिं. लुबुधना] मुग्ध या मोहित हुईं। उ.—ब्रजललना देखतिं गिरिधर कौं। .... । लुबधी स्याम सुँदर कौं—६४७।

लुबधी, लुबुधी—क्रि. अ. [हिं. लुबुधना] मुग्ध या मोहित हुई। उ.—हौं लुबधी मोहन-मुख-बैन—७४२।

लुबधियो, लुबधियौ, लुबुधियो, लुबुधियौ क्रि. अ. [हिं. लुबुधना] मुग्ध या मोहित हुई। उ.– यहि तें जो नेकु लुबुधियो री—३३४५।

लुबध्यो, लुबध्यौ, लुबुध्यो, लुबुध्यौ क्रि. अ. [हिं. लुबुधना] मुग्ध या मोहित हुआ। उ. (क) लुबध्यौ स्वाद मीन आमिष ज्यौं—१-१०२। (ख) मनो मध्य खंजन सुक बैठ्यो लुबध्यो बिंब बिचार—पृ. ३०७ (८४)।

लुब्ध—वि. [सं.] (१) ललचाया या लुभाया हुआ। उ.—(क) अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं—१-१११। (ख) इनहिं स्वाद जो लुब्ध सूर सोइ जानत चाखन

हारी—१०-१३५। (ग) लालच-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं—१-३२८। (२) मुग्ध, मोहित।

लुब्धक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लालच दिखाकर पशु-पक्षियों को पकड़नेवाला, बहेलिया, शिकारी। उ.—सूरदास प्रभु सों मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तरयो—८९१। (२) लोभ या लालच में फँसा हुआ। उ.—ते कहा जानैं पीर पराई लुब्धक अपने कामहिं—३०८५।

लुब्धना, लुब्धनो—क्रि. अ. [हिं. लुबुधना] मुग्ध होना।

लुब्धि—क्रि. अ. [हिं. लुब्धना] लुभाकर।

प्र०—लुब्धि परे—लुभा गये। उ.—चपल नैन मृग मीन कुंज जित अलि ज्यों लुब्धि परे—पृ. ३३४ (३१)।

लुब्धे—क्रि. अ. [हिं. लुब्धना] मुग्ध या मोहित हुए। उ.—नैन विमुख जन देखे जात न लुब्धे अरुन अधर को—१५७१।

लुब्ध्यो, लुब्ध्यौ—क्रि. अ. [हिं. लुब्धना] मुग्ध या मोहित हुआ। उ.—मन लुब्ध्यो हरि-रूप निहारि—१४१९।

लुभाइ—क्रि. अ. [हिं. लुभाना] रीझकर।

प्र०—रहे लुभाइ—रीझ गये, मुग्ध या मोहित हो गये। उ.—(क) अमृत अलि मनु पिवए आए, आइ रहे लुभाइ—३५२। (ख) कूबरी के कौन गुन पै रहे कान्ह लुभाइ।

लुभाईं—क्रि. अ. [हिं. लुभाना] रीझ गयीं, मुग्ध या मोहित हो गयीं। उ.—निरखि हरि रूप सो सब लुभाईं—१० उ०-३१।

लुभाई—क्रि. अ. [हिं. लुभाना] रीझकर, रीझी।

प्र०—रहे लुभाई—रीझे, मुग्ध या मोहित हो गये। उ.—मोहिनी रूप धरि स्याम आए तहाँ देखि सुर-असुर रहे सब लुभाई—८-८।

लुभाए—क्रि. अ. [हिं. लुभाना] रीझे, मुग्ध या मोहित हुए। उ.—न ये देखि कै मोहिं लुभाए—८-८।

लुभाना—क्रि. अ. [हिं. लोभ+आना] (१) रीझना, मुग्ध या मोहित होना। (२) लालच या लोभ में पड़ना।

क्रि. स.—(१) रिझाना, मुग्ध या मोहित करना। (२) लोभ या लालच देना। (३) मोह या भ्रम में डालना।

लुभाने—वि. [हिं. लुभाना] मुग्ध, मोहित। उ.—यह उपदेस देहु लै कुबिजहिं जाके रूप लुभाने हो—३००५।

लुभानो—क्रि. अ. [हिं. लोभ+आना] (१) रीझना, मुग्ध या मोहित होना (२) रीझा, मुग्ध हुआ। उ.—सूर स्याम मन तुमहिं लुभानो हरद चून रँग रोचन—१५१७। (३) लोभ या लालच में पड़ना।

क्रि. स. (१) रिझाना, मुग्ध या मोहित करना। (२) लोभ या लालच देना। (३) भ्रम या मोह में डालना।

लुभान्यो, लुभान्यौ—क्रि. अ. [हिं. लुभाना] लोभ या लालच में पड़ गया। उ.—मन-मधुकर पद-कमल लुभान्यो—१४१७।

लुभाय—क्रि. स. [हिं. लुभाना] भ्रम में डालकर।

प्र०—देति लुभाय—सुध-बुध भुला देती है, मोह या भ्रम में डाल देती है। उ.—सूर हरि की प्रबल माया देति मोहिं लुभाय।

लुभायो, लुभायौ—क्रि. अ. [हिं. लुभाना] मुग्ध या मोहित हो गया। उ.—इंद्रानी कौं देखि लुभायो—६-७।

लुभौहाँ—वि. [हिं. लुभाना+औंहा] (१) लुभाने या मोहित करनेवाला। (२) लुब्ध या मोहित होनेवाला।

लुरकना, लुरकनो—क्रि. अ. [सं. लुलन] लटकना।

लुरका—संज्ञा पुं. [हिं. लुरकना] भुमका।

लुरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लुरका] कान की बाली।

लुरना, लुरनो क्रि. अ. [सं. लुलन] (१) लटकना, हिलना-डोलना। (२) झुक या टूट पड़ना। (३) एकाएक आ जाना। (४) रीझ या लुभा जाना।

लुरियाना, लुरियानो—क्रि. अ. [हिं. लुरना] सप्रेम छूना या स्पर्श करना।

लुरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] हाल की ब्यायी गाय।

लुलना, लुलनो—क्रि. अ. [सं. लुलन] हिलना-डोलना।

लुआर, लुवार—संज्ञा पुं. [हिं. लू] लू, लूक।

लुहना, लुहनो—क्रि. अ. [सं. लुभन] लुभाना, रीझना।

लुहार—संज्ञा पुं. [प्रा० लोहार] लोहे की चीजें बनाने वाला।

लूँ—अव्य. [हिं. लौं] (१) तक। (२) तुल्य।

लू—संज्ञा स्त्री. [सं. लुक] गर्मी की तप्त वायु, लूक।

लूक—संज्ञा स्त्री. [सं. लुक] (१) ज्वाला, लपट। (२) जलती हुई लकड़ी। (३) गर्मी की तप्त वायु, लू। (४) टूटा तारा, उल्का।

लूकट—संज्ञा पुं. [हिं. लुआठा] जलती हुई लकड़ी।

लूकना, लूकनो—क्रि. स. [हिं. लूक + ना] आग लगाना।

क्रि. अ. [हिं. लुकना] छिपना, लुकना।

लूका—संज्ञा पुं. [हिं. लूक] (१) ज्वाला, लपट। (२) जलती हुई लकड़ी।

मुहा०—लूका लगाना—(१) आग लगाना। (२) झगड़ा कराना। मुँह में लूका लगाना मुँह में आग लगाना (गाली)।

लूकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूका] चिनगारी।

लूखा, लूखे—वि. [हिं. रूखा] (१) जिसमें चिकनाहट न हो, रूखा। (२) अप्रसन्न। उ.—कीधौं हमसों कहुँ तुम लूखे हो—२१४१।

लूगड़—संज्ञा पुं. [हिं. लूगा] (१) वस्त्र, अंबर। (२) ओढ़नी।

लूगा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) वस्त्र। (२) धोती।

लूट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूटना] (१) बलपूर्वक छीनना। (२) बल से छीनी गयी संपत्ति या माल।

लूटक—संज्ञा पुं. [हिं. लूट] (१) लूट-मार करनेवाला, डाकू, लुटेरा। (२) कांति या शोभा में बढ़ जानेवाला।

लूट-खसोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूट + खसोट] माल लूटना और छीनना।

लूटत—क्रि. स. [हिं. लूटना] (१) अन्याय या अनुचित रीति से हरण करता है। उ.—ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय सँग लपटात—२-२४। (२) (सुख या आनंद का) भोग करता है। उ.—अति रस रासि लुटावत लूटत लालचि लाल सभागे—६८६।

लूटति—क्रि. स. [हिं. लूटना] (सुख या आनंद) भोगती है। उ.—बल-मोहन दोउ जेंवत रुचि सौं सुख लूटति नँदरानी—४४२।

लूटन—संज्ञा पुं. [हिं. लूटन] लूटने की क्रिया या भाव। उ.—तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं, मेरी देह धरी—१-२११।

लूटना—क्रि. स. [सं. लुट्] (१) भय दिखाकर या बल पूर्वक छीन-झपट लेना। (२) धोखे से या अन्याय पूर्वक धन या माल हरण करना। (३) उचित से बहुत अधिक मूल्य लेना। (४) नष्ट करना। (५) मुग्ध या मोहित करना। (६) (सुख या आनंद) भोगना।

लूटनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूटना] लूटने की क्रिया या भाव। उ.—धनि यह अरस-परस छबि लूटनि महा चतुर मुख भोरे भोरी—पृ. ३१० (४)।

लूटनो—क्रि. स. [सं. लुट्] लूटना।

लूटहु—क्रि. स. [हिं. लूटना] (सुख या आनंद का) भोग करो। उ.—जे दिन गए सु ते गए अब सुख लूटहु मात—१९२५।

लूटा—वि. [हिं. लूट] लुटेरा। उ.—लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, बड़ौ पढ़ैलौ, लूटा—१-१८६।

लूटि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूट] लूटने की क्रिया या भाव, लूट। उ.—(क) गए कंचुकि बँद टूटि लूटि हिरदय सो पाई। (ख) परदा सूर बहुत दिन चलतो दुहुँनि फबती लूटि—२७०६।

क्रि. स. [हिं. लूटना] लूटकर। उ.—लूटि लूटि दधि खात—सारा. ८६४।

प्र०—लूटि लयौ—बलात अपहरण कर लिया। उ.—दगाबाज कुतवाल काम-रिपु सरबस लूटि लयौ—१-६४।

लूटीं—क्रि. स. [हिं. लूटना] माल आदि का अपहरण किया। उ.—बृंदाबन गोबर्धन कुंजनि लूटीं नारि पराई—सारा. ७४०।

लूटैं—क्रि. स. [हिं. लूटना] (सुख या आनंद) भोगती हैं। उ.—कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं—२-२५।

लूटौ—क्रि. स. [हिं. लूटना] धन-संपत्ति का अपहरण कर लिया। उ.—धर्म-जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौ—१-१८५।

लूट्यो, लूट्यौ—क्रि स. [हिं. लूटना] (१) भ्रम या मोह में डालकर नष्ट कर दिया। उ.—इहिं माया सब लोगनि लूट्यौ—१-२८४। (२) (सुख या आनंद) भोगा। उ.—सूर स्याम निसि को सुख लूट्यो—१९५७।

लूता—संज्ञा पुं. [हिं. लूका] लुआठा।

संज्ञा पुं. [हिं. लूट] लुटेरा।

लूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. लूका] जलती हुई लकड़ी।

संज्ञा स्त्री. [सं.] मकड़ी।

लूते—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. लूता] लुआठे से। उ.—बिरह-समुद्र सुखाय कौन बिधि किरचक जोग अगिन के लूते—३२०५।

लून—संज्ञा पुं. [हिं. लोन] नमक, लवण।

लूनना, लूननो—क्रि. स. [हिं. लुनना] (१) फसल काटना। (२) दूर या नष्ट करना।

लूम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (पशु की) पूँछ, दुम। (२) चक्कर, फेरा।

लूमड़—वि. [देश.] जवान, सयाना (व्यंग्य)।

लूमना, लूमनो—क्रि. अ. [सं. लंबन] लटक कर झूलना या हिलना-डोलना।

लूमर—वि. [हिं. लूमड़] सयाना, लंबा-तड़ंगा।

लूमरी—वि. [हिं. लूमर] लंबी-तड़ंगी (युवती)।

लूरना, लूरनो—क्रि अ. [हिं. लुरना] (१) लटककर हिलना-डोलना। (२) झुक या टूट पड़ना। (३) सहसा आ जाना या उपस्थित हो जाना।

लूला—वि. [सं. लून] (१) बिना हाथ का, लुंजा। (२) बेकाम, असमर्थ।

लूलू—वि. [देश.] उजड्ड, मूर्ख।

लूसना, लूसनो—क्रि. स. [देश.] नाश करना।

लूह, लूहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. लू] लूक, लू।

लेंगा—संज्ञा पुं. [हिं. लहँगा] लहँगा।

लेंहड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] दल, झुंड, समूह।

ले—अव्य. [हिं. लेना लेकर] आरंभ होकर।

अव्य. [हिं. लग, लगि] तक, पर्यंत।

क्रि. स. [हिं. लेना] (१) ग्रहण कर। (२) खरीदकर।

मुहा०—ले देना—खरीद या माँगकर देना।

(३) प्राप्त, एकत्र या संचय करके।

मुहा०—ले उड़ना—(१) प्राप्त या एकत्र करके भाग जाना। (२) किसी बात या प्रसंग का संकेत पाकर बहुत-कुछ कह-सुन डालना या अंदाज भिड़ाने लगना। ले चलना—थामकर, उठाकर या साथ करके चलना। ले डालना—(१) चौपट या नष्ट करना। (२) हराना। (३) समाप्त करना, निबटाना। ले-दे करना—(१) इज्जत या तकरार करना। (२) बहुत कोशिश करना। ले-देकर—(१) पाने और देने का हिसाब करके। (२) सब मिलाकर, जोड़-जाड़ करके। (३) बड़ी कठिनता से। ले निकलना—प्राप्त या एकत्र करके भाग जाना। ले पड़ना—अपने साथ जमीन पर गिरा देना। ले पालना—गोद लेना। ले बैठना—(१) बोझ से डूब जाना। (२) खराब या नष्ट करना। (३) कार्य-व्यापार का नष्ट होकर पूँजी समाप्त कर देना। ले भागना—(१) प्राप्त या ग्रहण करके भाग जाना। (२) थोड़ा संकेत या ज्ञान पाकर ही विषय-विशेष में उन्नति कर लेना। ले मरना—अपने साथ ही नष्ट करना।

सम्बोधन—(१) जैसी तेरी इच्छा है, वैसा ही होगा। (२) जो तू नहीं मानता (मानती) तो मैं यहाँ तक करता (करती) हूँ। (३) देख, कैसा मजा चखा या (बुरा) फल मिला (व्यंग्य या आक्षेप)।

लेइ—अव्य. [हिं. लग, लगि] तक, पर्यंत।

क्रि. स. [हिं. लेना] लेकर।

प्र०—लेइ जिवाइ—जीवित कर लेगा। उ.—जौ यह संजीवनि पढ़ि जाय, तौ हम सत्रुनि लेइ जिवाइ—९-१७३।

लेई—संज्ञा स्त्री. [सं. लेही] (१) लपसी। (२) आटे या मैदा का पका हुआ लसदार घोल।

लेउ—क्रि. स. [हिं. लेना] लो, ग्रहण करो। उ.—जो भावै लेउ आनी—१०-२०८।

लेउगे—क्रि. स. [हिं. लेना] उच्चरित करोगे, कहोगे, बताओगे। उ.—अब तुम काकौ नाउँ लेउगे, नाहिंन कोऊ साथ—१०-२७९।

लेऊ—वि. [हिं. लेना] लेने वाला।

लेख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिपि। (२) लिखी हुई बात। (३) लिखावट। (४) लेखा।

वि. [सं. लेख्य] लिखने या लेखा करने योग्य।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लीक] पक्की बात।

लेखक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिपिकार। (२) रचयिता।

लेखत—क्रि. स. [हिं. लेखना] सोचता-विचारता है। उ.—बड़ी बार भई कोऊ न आई सुर स्याम मन लेखत—८४१।

लेखन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिखने का कार्य, भाव या विद्या। (३) चित्र खींचने का कार्य, भाव या कला। जल बिनु तरँग भीति बिन लेखन बिन चेतहिं चतुराई—३३१७। (३) हिसाब या लेखा लगाना।

लेखनहार, लेखनहारा—वि. [हिं. लिखना+हार] (१) लिखनेवाला। (२) चित्र खींचनेवाला।

लेखना—क्रि. स. [सं. लेखन] (१) लिखना। (२) चित्र बनाना। (३) हिसाब या लेखा लगाना।

मुहा०—लेखना-जोखना—(१) ठीक ठीक अंदाज लगाना। (२) जाँच-पड़ताल करना।

(४) सोचना, विचारना।

लेखनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कलम, लिखनी।

लेखनो—क्रि. स. [सं. लेखन] (१) लिखना। (२)सोचना।

लेखा—संज्ञा पुं. [हिं. लिखना] (१) हिसाब-किताब। उ.—(क) अधिकारी जम लेखा माँगै—१-१८५। (२) आय-व्यय का विवरण। उ.—जमा खरच नीकैं करि राखै, लेखा समुझि बतावै—१-१४२। (३) ठीक ठीक अंदाज। (४) अनुमान।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लिखावट। (२) रेखा।

लेखिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लिखनेवाली। (२) रचना करनेवाली।

लेखिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. लेखनी] कलम। उ.—सूर तरुवर की साख लेखिनी लिखत सारदा हारैं—१-१८३।

लेखी—क्रि. स. [हिं. लेखना] मानी, ठहरायी, समझी। उ.—जीवनि-आस प्रबल स्तुति लेखी—१-२८४।

लेखैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. लेखा] विचार, समझ।

मुहा०—उनहीं के लेखैं—उन्हीं के अनुसार। उ.—कृपा सिंधु उन्हीं के लेखैं मम लज्जा निरबहिऐ—१-११२।

लेखो, लेखौ—संज्ञा पुं. [हिं. लेखा] हिसाब, गणना। उ.—(क) लेखौ करत लाख ही निकसत को गनि सकत अपार—१-१९६। (ख) बाढ़ैं गो-सुत गाइ दूध दधि को कहा लेखौ—९०६।

लेख्य—वि. [सं.] लिखने योग्य।

लेख्यो, लेख्यौ—क्रि. स. [हिं. लेखना] समझा, माना। उ.—पीतांबर अरु स्याम जलद बपु निरखि सुफल दिन लेख्यो—सारा. ३६६।

लेजर, लेजुरि, लेजुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. रज्जु, माग० प्रा० लेज्जु] (१) डोरी। (२) कुएँ से पानी खींचने की रस्सी या डोरी।

लेटना, लेटनो—क्रि. अ. [हिं. लोटना] (१) पौढ़ना, लोटना। (२) झुककर गिरना। (३) मर जाना।

लेटाना, लेटानो—क्रि. स. [हिं. लेटना] (१) लेटने को प्रवृत्त करना। (२) मार डालना।

लेत—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) लेता है। उ.—सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ तातैं लेत सवाद—१०-६४। (२) उच्चारण करता है। उ.—दनुज-देव-पसु पच्छी को तू नाम लेत रघुराइ—९-८३। (३) पान करता हूँ। उ.—इच्छा सौं मकरंद लेत मनु अति गोलक के बेष री—१०-१३६।

लेदी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक छोटी चिड़िया।

लेन—संज्ञा पुं. [हिं. लेना] (१) लेने की क्रिया या भाव। उ.—देवकि उर अवतार लेन कह्यौ—१०-८५। (२) लहना, पावना, बाकी।

मुहा०—कछु लेन न देन में—कोई संबंध या प्रयोजन न होना। उ.—हम कछु लेन न देन मैं, ये बीर तिहारे—१-२८३।

लेन-देन—संज्ञा पुं. [हिं. लेना+देना] आदान-प्रदान।

लेनहार, लेनहारा—वि. [हिं. लेना+हार] लेनेवाला।

लेना—क्रि. स. [हिं. लहना] (१) प्राप्त या ग्रहण करना। (२) थामना, पकड़ना। (३) खरीदना। (४) जीतना। (५) उधार करना। (६) काम पूरा

करना। (७) गोद में थामना। (८) स्वागत या अगवानी करना। (९) पहुँचना। (१०) कार्य-भार या दायित्व ग्रहण करना। (११) पीना, पान करना। (१२) धारण या अंगीकार करना। (१३) काटकर अलग रखना। (१४) उपहास से लज्जित करना।

मुहा०—आड़े हाथ (हाथों) लेना—व्यंग्य या भर्त्सना द्वारा लज्जित करना।

(१५) एकत्र या संचय करना।

मुहा०—लेना-देना—रुपया उधार देने-लेने का व्यवसाय। लेना-देना होना—मतलब या सरोकार होना। लेना एक न देना दो—मतलब या सरोकार न होना।

लेनिहार, लेनिहारा—वि. [हिं. लेना+हार] लेनेवाला।

लेने—संज्ञा पुं. [हिं. लेना] पाने, ग्रहण या संचय करने की क्रिया या भाव।

मुहा०—लेने के देने पड़ना—(१) लाभ के बदले हानि होना। (२) कठिन समस्या या विपत्ति का पड़ना।

लेनो—क्रि. स. [हिं. लेना] लेना।

लेप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाढ़ी गीली वस्तु। (२) उस वस्तु की किसी वस्तु या शरीर के अंग-विशेष पर फैलायी गयी पतली तह। उ.—(क) कुमकुम को लेप मेटि, काजर मुख लाऊँ—१-१६६। (ख) मुख दधि-लेप किए १०-९९। (ग) लिए चंदन बहुरि आनि कुबिजा मिली स्याम-अँग लेप कीयो बनाई—२५८४।

लेपत—क्रि. स. [हिं. लेपना] पोतता, मलता या चुपड़ता है। उ.—लेपत देह दही—१०-२९१।

लेपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लेप की तह चढ़ाने की क्रिया या भाव। उ.—खर कौं कहा अरगजा-लेपन—१-३३२। (२) कोई भी गीली वस्तु पोतने या लगाने की क्रिया या भाव।

लेपना, लेपनो—क्रि. स. [सं. लेपन] (१) लेप की तह चढ़ाना। (२) कोई गीली वस्तु पोतना या लगाना।

लेरुवा—संज्ञा पुं. [सं. लेह] बछड़ा।

लेलिहान—संज्ञा पुं. [सं.] साँप, सर्प।

वि. (१) बार-बार चाटने या चखने वाला। (२) ललचाया या लुभाया हुआ।

लेव—संज्ञा पुं. [सं. लेप्य] (१) लेप। (२) मिट्टी आदि का गाढ़ा घोल। (३) दीवार पर पोतने का गिलावा।

मुहा०—लेव चढ़ना—चरबी बढ़ना, मोटा होना।

क्रि. स. [हिं. लेना] (१) लो, ग्रहण करो। (२) खरीद लो।

लेवा—संज्ञा पुं. [सं. लेप्य] (१) लेप। (२) मिट्टी आदि का गाढ़ा घोल। (३) दीवार पर पोतने का गिलावा।

वि. [हिं. लेना] लेनेवाला।

यौ०—लेवा-दई, लेवादेई—लेनदेन, आदान-प्रदान। उ.—लेवादई (लेवादेई) बराबर में है, कौन रंक को भूप—३१८२।

लेवाल—वि. [हिं. लेना+वाला] लेने या खरीदनेवाला।

लेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अणु। (२) सूक्ष्मता। (३) चिह्न। (४) लगाव, संबंध।

वि. थोड़ा, अल्प।

लेष—संज्ञा पुं. [सं. लेश] लेश।

संज्ञा पुं. [सं. लेख] लेख।

लेषना—क्रि. सं. [हिं. लखना] देखना, ताड़ लेना।

क्रि. स. [हिं. लिखना] लिखना।

लेषनी, लेषिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. लेखनी] कलम।

लेषे—संज्ञा पुं. [हिं. लेखे] अनुमान में, समझ में।

लेस—वि. [सं. लेश] (१) थोड़ा, अल्प। (२) तुच्छ, निकृष्ट उ.—हरि को भजन करी सबही मिलि और जगत सब लेस।

संज्ञा पुं. अल्पांश, चिह्न। उ.—मोह-निशा को लेस रह्यौ नहिं—२-३३।

संज्ञा पुं. [हिं. लासा] चस, चेप।

लेसदार—वि. [हिं. लेस+फ़ा. दार] लसीला, लसदार, चिपचिपा।

लेसना, लेसनो—क्रि. स. [सं. लेश्या] जलाना।

क्रि. स. [हिं. लेस, लस] (१) लगाना, पोतना। (२) चिपकाना, सटाना। (३) चुगली खाना। (४) उत्तेजित करना।

लह—संज्ञा पुं. [सं.] गाढ़ा घोल, अवलेह ।
क्रि. स. [हिं. लेना] लेता है ।

लेहन—संज्ञा पुं. [सं. लेहक] चखने या चाटने की क्रिया या भाव । उ.—अस्तुति कर मन हरष बढ़ायो लेहन जीभ कटाय—सारा. १३० ।

लेहना, लेहनो—संज्ञा पुं. [हिं. लहना] (१) धन जो वसूल करना हो । (२) धन जो मिलने वाला हो । (३) तकदीर, भाग्य ।
क्रि. स. पाना, प्राप्त करना ।
क्रि. स. (१) फसल काटना । (२) छीलना, कतरना ।

लेहिं—क्रि. स. [हिं. लेना] लेते हैं । उ.—अमृत प्याइ तिहिं लेहिं जिवाइ—७-७ ।

लेहिंगी—क्रि. स. [हिं. लेना] लेंगी, वसूल करेंगी । उ.—मोहन गए आजु तुम जाहु, दांव हम लेहिंगी हो—२४१६ ।

लेहि—क्रि. स. [हिं. लेना] ले, ग्रहण या प्राप्त कर ।
प्र०—लेहि गाइ—गा ले, गुणगान कर ले । उ.—दिन दस लेहि गोबिंद गाइ—१-३१३ ।

लेहु—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) लो, प्राप्त या ग्रहण करो । उ.—(क) जज्ञ के हेतु अस्व यह लेहु—९-९ । (ख) लेहु मातु सहदानि मुद्रिका—९-८३ । (२) पकड़ो, रोको, थामो । उ.—लेहु लेहु सब करत बंदिजन—१० उ.-१८ ।

लेहुगे—क्रि. स. [हिं. लेना] लोगे ।
प्र०—टेरि लेहुगे—बुला लोगे, पुकार लोगे । उ.—सोवत मोकौं टेरि लेहुगे—४१५ ।

लेहैं—क्रि. स. [हिं. लेना] लेंगे । उ.—सब लेहैं बरिआई—१-३ ।

लेहौ—क्रि. स. [हिं. लेना] पाओगे, प्राप्त करोगे । उ.—चरन-रेनु सिर धरि गोपिनि की तुमहूँ अभय-पद लेहौ—सारा. ५४८ ।

लेह्य—वि. [सं.] जो चाटा जा सके ।

लैंगिक—संज्ञा पुं. [सं.] दर्शन में अनुमान प्रमाण ।
वि.—लिंग-संबंधी ।

लै—अव्य. [हिं. लग, लगि] तक, पर्यंत ।
क्रि. स. [हिं. लेना] (१) लेकर, ग्रहण करके, अपना कर । उ.—(क) लै लै ते हथियार आपने सान धराए त्यौं—१-१५१ । (ख) कंचन लै ज्यौं माटी तजै—७-२ । (ग) बहुरि कर लै गदा असुर धायौ—७-६ । (घ) तृन दसननि लै मिलि दसकंधर—९-११४ ।
प्र०—राखि लै—रक्षा कर ले, सहायता कर दे । उ.—सूर हरि की सरन आयौ, राखि लै भगवान—१-२३५ । लै जाइ—साथ ले जाता । उ.—जहँ लै जाइ तहाँ वह जाइ—७-७ । ल गयौ—ले गया । उ.—कामधेनु जमदग्नि की लै गयौ नृपति छिनाय—९-१४ । लै जातौ—साथ ले जाता । उ.—रावन मारि तुम्हैं लै जातौ—९-८८ ।
(२) पीकर, पान करके । उ.—लै चरनोदक निज व्रत साध्यौ—९-५ । (३) उच्चारण करके । उ.—सजन प्रीतम नाम लै लै दै परस्पर गारि—१०-२६ ।

लैकै—क्रि. स. [हिं. लेना] लेकर । उ. गहि बहियाँ लैकै जैहौं—१०-२७४ ।

लैन—संज्ञा पुं. [हिं. लेना] (१) लेना, लेने के लिए । उ.—(क) कोऊ धाई जल लैन—७४९ । (ख) आए मधुकर मधु ही लैन—२०८७ । (२) अपनाने या ग्रहण करने को । उ.- द्वादस बर्ष सेए निसिबासर, तब संकर भाषी है लैन—९-१२ ।
मुहा०—लैन न देन—न लेना न देना, कोई सरोकार, मतलब या संबंध नहीं । उ.—(क) चलत कहाँ मन और पुरी तन, जहाँ कछु लैन न दैन—४९१ । (ख) ए सीधे नहिं टरत वहाँ ते, मोसौं लैन न दैन—पृ. ३२३ (१८) ।

लैनु—संज्ञा पुं. [हिं. लेना] लेने (को) ।
प्र०—सुख लैनु—सुख भोगने को । उ.—सूर स्याम निज धाम बिसारत आवत यह सुख लैनु—४४८ ।

लैया—संज्ञा पुं. [देश.] अगहनी धान ।
संज्ञा स्त्री. भुने हुए धान का लावा ।
क्रि. स. [हिं. लाना] (१) लगा लिया ।
प्र०—उर लैया—छाती से लगा लिया । उ.—पाछैं नंद सुनत हे ठाढ़े, हँसत हँसत उर लैयौ—१०-२१७ ।

(२) लेकर, लगाकर। उ.—हौं पय पियत पतूखिनि लैया—१०-३३५।

लैरू—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बछड़ा। (२) बच्चा।

लैस—संज्ञा पुं. [देश.] नुकीली नोक का बाण।

लैहीं—क्रि. स. [हिं. लेना] लेते हैं, हरण करते हैं। उ.—ऐसनि कौ बल वै सब लैहीं—५२१।

लैहैं—क्रि. स. [हिं. लेना] ले लेंगे, अधिकार कर लेंगे। उ.—लैहैं लंक बीस भुज मानी—९-११६।

लैहौं—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) प्राप्त करूँगा। उ.—जीते जगत माहिं जस लैहौं—६-५। (२) (गोद आदि में) लूँगा। उ.—इहि आँगन गोपाल लाल को कबहुँक कनियाँ लैहौं।

लैहौ—क्रि. स. [हिं. लेना] (१) (चित्त या ध्यान) लगाओगे। उ.—अजहूँ जौ हरि-पद चित लैहौ—४-९। (२) पाओगे, प्राप्त करोगे। उ.—जगत में कहा उपहास लैहौ—२६०५।

लौं—अव्य. [हिं. लौं] (१) तक। (२) तुल्य।

लोंदा—संज्ञा पुं. [सं. लुंठन] (१) गीले पदार्थ का डले की तरह बँधा कुछ अंश। (२) सुस्त और आलसी व्यक्ति (व्यंग्य)।

लो—अव्य. [हिं. लेना] ध्यान आकर्षित करने का संबोधक एक अव्यय।

लोइ—संज्ञा पुं. [सं. लोक, प्रा. लोओ या लोयो] लोग। उ.—(क) ताहि असाधु कहत सब लोइ—३-१३। (ख) अपजस करिहैं लोइ—९-९९। (ग) ब्रजवासीं मोहे सब लोइ—१०-२१०।

संज्ञा स्त्री. [सं. रोचि, प्रा. लोई] (१) प्रभा, दीप्ति। (२) लौ, ज्वाला।

लोइन—संज्ञा पुं. [सं. लावण्य] सलोनापन।

संज्ञा पुं. [सं. लोचन] नेत्र, आँख।

लोई—संज्ञा स्त्री. [सं. लोप्ती, प्रा० लोबी] गुँधे हुए आटे की वह गोली जो रोटी बेलने के पहले तोड़ी जाती है।

संज्ञा स्त्री. [सं. लोमीय] पतले बढ़िया ऊन का बना कम्बल जो प्रायः सफेद होता है।

संज्ञा पुं. [सं. लोक, प्रा० लोओ या लोयो] लोग। उ.—(क) मारग मैं अटके सब लोई—१०३६। (ख) मात-पिता को डर को मानै, मानै सजन कुटुँब सब लोई—१२३०।

लोकंजन—संज्ञा पुं. [हिं. लुकना+अंजन] वह (कल्पित) अंजन जिसे लगाकर मनुष्य का अदृश्य हो जाना कहा जाता है।

लोकंदा—संज्ञा पुं. [देश.] विवाह में कन्या के साथ दासी भेजने की प्रथा या कार्य।

लोकंदी—संज्ञा स्त्री. [देश.] दासी जो किसी कन्या के डोले के साथ भेजी जाय।

लोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मनुष्य द्वारा कल्पित स्थान जैसे दो लोक—इहलोक और परलोक; तीन लोक—पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक या भूः, भुव, स्वः; चौदह लोक—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनर्लोक, तपलोक और सत्य लोक के साथ-साथ सात पाताल—अतल, नितल, वितल, गभस्तिमान्, तल, सुतल और पाताल (अथवा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल अथवा अतल, वितल, नितल, गभस्ति-मान्, महातल, सुतल और पाताल)। उ.—(क) दुहुँ लोक सुखकरन—१-९०। (ख) सो मेरे इहिं लोक बसौ जनि—७-४। (ग) नृप जग करि तिहिं लोक सिधायौ—९-२। (घ) सुन्दरता तिहुँ लोक की जसुमति ब्रज आनी—४७५। (२) संसार, जगत। उ.—जीव न तजै स्वभाव जीव कौ लोक-बिदित दृढ़ताई—१-२०७। (३) निवास स्थान। उ.—सूरदास प्रभु दरस-परस करि ततछन हरि कैं लोक सिधायौ—९-६६। (४) प्रदेश। (५) लोग, जन। (६) समाज। उ.—नँदनंदन के नेह मेह जिन लोक लीक लोपी। (७) प्राणी।

लोक-कंकट—वि. [सं.] दुखदायी, कष्टदायी।

लोकगाथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] जनसाधारण में प्रचलित कहानियाँ।

लोकगीत—संज्ञा पुं. [सं.] जनसाधारण में प्रचलित गीत।

लोकधुनि, लोकध्वनि—संज्ञा स्त्री. [सं. लोकध्वनि] अफवाह, जन-रव।

लोकटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] लोमड़ी।

लोकना—क्रि. स. [सं. लोपन] (१) गिरती हुई चीज को बीच में ही हाथों से पकड़ लेना। (२) बीच में ही ले लेना।

लोकनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा। (२) लोकपाल। (३) परब्रह्म।

लोकनायक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सकल लोक के स्वामी, परब्रह्म। उ.—सकल लोकनायक सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ—१०-४। (२) ब्रह्मा। (३) लोकपाल।

लोकनो—क्रि. स. [सं. लोपन] (१) गिरती हुई चीज को बीच में ही हाथों से पकड़ लेना। (२) बीच में ही ले लेना।

लोकप, लोकपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोक का पालन-कर्ता या स्वामी, परब्रह्म। उ.—तुम प्रभु अजित अनादि लोकपति, हौं अजान मतिहीन—१-१८१। (२) ब्रह्मा। (३) राजा। (४) लोकपाल।

लोकपाल—संज्ञा पुं. [सं.] दिक्‌पाल जो आठ हैं—पूर्व का इंद्र, दक्षिण-पूर्व का अग्नि, दक्षिण का यम, दक्षिण-पश्चिम का सूर्य या निऋंति, पश्चिम का वरुण, उत्तर-पश्चिम का वायु, उत्तर का कुबेर और उत्तर-पूर्व का सोम या ईशानी अथवा पृथ्वी।

लोकपितामह—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

लोकप्रवाद—संज्ञा पुं. [सं.] अफवाह।

लोक-रव—संज्ञा पुं. [सं.] अफवाह, प्रवाद।

लोकप्रिय—वि. [सं.] (१) जिससे सब प्रेम करें। (२) जो सबको रुचे या प्रिय लगे।

लोकप्रियता—संज्ञा स्त्री. [सं.] लोकप्रिय होने का भाव या अवस्था।

लोकरा—संज्ञा पुं. [देश.] चिथड़ा, लत्ता।

लोक-लाज—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोक+लाज] लोक-मर्यादा। उ.—लोक-लाज कुल-कानि भुलानी, लुबधीं स्याम सुंदर कौं—६७४।

लोक-लीक—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोक + लीक] लोक या संसार की मर्यादा।

लोक-लोकन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. लोक+लोक] समस्त या अनेक लोकों या भुवनों (में)। उ.—लोक-लोकन विदित २६१८।

लोकवार्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] जन-साधारण में प्रचलित विश्वासों, धारणाओं, प्रथाओं आदि का कथन, विचार या विवेचन।

लोकविश्रुत—वि. [सं.] संसार में प्रसिद्ध।

लोकश्रुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] अफवाह, जनश्रुति।

लोकसंग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सबको प्रसन्न करना। (२) सबका कल्याण चाहना।

लोकांतर—संज्ञा पुं. [सं.] वह लोक जहाँ जीव का मरने के उपरांत जाना माना जाता है।

लोकांतरित—वि. [सं.] (१) जो दूसरे लोक को चला गया हो। (२) मृत, स्वर्गीय।

लोकाचार—संज्ञा पुं. [सं.] संसार का व्यवहार।

लोकाट—संज्ञा पुं. [चीनी लुः + क्यू] एक पौधा या उसका पीला फल।

लोकाधिप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परब्रह्म। (२) ब्रह्मा। (३) लोकपाल।

लोकाना, लोकानो—क्रि. स. [हिं. लोकना] उछालना।

लोकपवाद—संज्ञा पुं. [सं.] जनसाधारण में फैलनेवाली बदनामी या निंदा।

लोकायत—संज्ञा पुं [सं.] (१) वह जो परलोक को न मानता हो। (२) चार्वाक का दर्शन जिसमें परलोक का खंडन है।

लोकेश, लोकेस—संज्ञा पुं. [सं. लोक+ईश] (१) परब्रह्म। (२) ब्रह्मा। उ.—शेष महेश लोकेश शुक-दिक नारदादि मुनि की हैं स्वामिनी—पृ. ३४५ (४०)। (३) लोकपाल।

लोकेश्वर, लोकेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. लोक+ईश्वर] (१) परब्रह्म। (२) ब्रह्मा। उ.—बालक बच्छ हरे लोकेस्वर बार बार टेरत लै नाउँ—४३८। (३) लोकपाल।

लोकैषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सांसारिक सुख-वैभव की कामना। (२) स्वर्गीय सुख-वैभव की कामना।

लोकोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] कहावत।

लोकोत्तर—वि. [सं.] जो इस लोक के पदार्थों से बढ़कर हो, अत्यंत अद्भुत।

लोग—संज्ञा पुं. [सं. लोक] आदमी, मनुष्य, जन। उ.—(क) सूरदास आपुहिं समुझावै लोग बुरौ जिनि मानौ—१-६३। (ख) झूठैं लोग लगावत मोकौं—१०-२५३। (ग) अब ये झूठहु बोलत लोग—१०-२९२।

लोगाइ, लोगाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोक] (१) स्त्री, नारी। उ.—पुनि जुरि दौ दीनी पुर लाइ, जरन लगे पुर लोग-लोगाइ (लुगाइ)—४-१२। (२) पत्नी।

लोच—संज्ञा स्त्री. पुं. [हिं. लचक] (१) लचलचाहट, लचक। (२) कोमलता, सुकुमारता। (३) अच्छी रीति या ढंग।

संज्ञा पुं. [सं. रुचि] अभिलाषा

संज्ञा पुं. [सं. लुचन] जैन-साधु का सिर के बाल नोचना।

लोचन—संज्ञा पुं. [सं.] आंख, नयन, नेत्र। उ.—मोह मगन लोचन जल-धारा बिपति न हृदय समाइ—९-५२।

मुहा०—लोचन भर आना—आँखों में आँसू आ जाना। लोचन भरि-भरि—आँखों में आंसू भरकर। उ.—(क) लोचत भरि भरि दोऊ माता कनछेदन देखत जिय मुरकी—१०-१७९। (ख) कुँवर जल लोचन भरि-भरि लेत—३४९।

लोचना, लोचनो—क्रि. स. [हिं. लोचन] (१) प्रकाशित करना। (२) रुचि उत्पन्न करना। (३) इच्छा या कामना करना।

क्रि. अ. शोभित होना।

क्रि. अ. (१) इच्छा, लालसा या कामना होना। (२) तरसना, ललचना।

संज्ञा पुं. [सं. लुंचन] नाई, नाऊ।

लोचहिंगे—क्रि. अ. [हिं. लोचना] तरसेंगे। उ.—दरस बिना पुनि हम लोचहिंगे—११६१।

लोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोटना] लोटने या लेट जाने बदलना। (४) लेटकर विश्राम करना। (५) चकित या मुग्ध होना।

की क्रिया या भाव।

मुहा०—लोट जाना—(१) बेहोश होना। (२) मर जाना। लोट पोट करना—लेटकर विश्राम करना। लोट-पोट हो जाना या होना। (१) बार-बार लोटने लगना। (२) बेसुध हो जाना। लोट मारना—(१) सोना, लोटना। (२) किसी के प्रेम में बेसुध होना। लोट-पोट होना या हो जाना—(१) रीझना, आसक्त होना। (२) व्याकुल होना।

लोटक-पोटो—संज्ञा पुं. [हिं. लौटना+पलटना] उलट-पलट, अस्तव्यस्त, नष्टभ्रष्ट। उ.—बिरद आपनौ और तिहारो करिहौं लोटक-पोटो—१-१७९।

लोटत—क्रि. अ. [हिं. लोटना] (१) भूमि पर लेटता फिरता है। उ.—दीन के दयाल हरि कृपा मोकौं करि यह कहि-कहि लोटत बार-बार—१०-२५२। (२) भूमि पर गिरकर या लेटकर विरोध सूचित करता है। उ.—(क) लोटत सूर स्याम पुहुमी पर—१०-१५९। (ख) जसुमति जबहिं कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री—१०-१८६। (३) विकल होकर भूमि पर गिरता पड़ता है। उ.—निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर बपु न सँभारत—९-६२। (४) लुढ़कता है। उ.—रावन-सीस पुहुमि पर लोटत मंदोदरि बिलखाइ—९-८६।

लोटन—संज्ञा पुं. [हिं. लोटना] (१) लोटने की क्रिया या भाव। (२) कबूतर जो चोंच पकड़कर भूमि पर लुढ़का दिये जाने पर, जब तक उठाया न जाय, लोटता ही रहता है। (३) छोटी कंकड़ियाँ जो वायु के झोंके से इधर-उधर लुढ़कती हैं।

लोटना—क्रि. अ. [सं. लुंठन] (१) सीधे-उलटे लेटकर जाना। (२) लुढ़कना। (३) तड़पना, कष्ट से करवट बदलना। (४) लेटकर विश्राम करना। (५) चकित या मुग्ध होना।

लोटनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोटना] लोटने की क्रिया, भाव या रीति। उ.—देखौ माई, हरि जू की लोटनि—१०-१८७।

लोटनो—क्रि. अ. [सं. लुंठन] (१) सीधे-उलटे लेटकर जाना। (२) लुढ़कना। (३) तड़पना, कष्ट से करवट

लोटपटा—संज्ञा पुं. [हिं. लोटना + पाटा] (१) विवाह की एक रीति जिसमें वर के आसन पर बधू और बधू के आसन पर वर को बैठाया जाता है। (२) बाजी या दाँव का उलट-फेर।

लोटा—संज्ञा पुं. [हिं. लोटना] बड़ी लुटिया।

मुहा०—लोटा डुबोना या डोब देना—(१) सारा काम चौपट कर देना। (२) कलंक लगा देना।

लोटि—क्रि. अ. [हिं. लोटना] (१) भूमि पर उलटे-सीधे लेटकर। उ.—कुंज-कुंज प्रति लोटि-लोटि ब्रज-रज लागै रँग-रीतिनि - ४९०। (२) विरोध सूचित करने के लिए भूमि पर लेटकर।

प्र०—जैहौं लोटि—विरोध सूचित करने के लिए (भूमि पर) लेट जाऊँगा उ.—जैहौं लोटि धरन पर अबहीं तेरी गोद न ऐहौं—१०-१९३।

लोटी—क्रि. अ. [हिं. लोटना] भूमि पर लेटकर।

प्र०—जात हैं लोटी—भूमि पर लेट जाते हैं, लोट-पोट हो जाते हैं। उ.—यह छवि देखि नंद मन आनँद, अति सुख हँसत जात हैं लोटी—१०-१६५।

लोटै—क्रि. अ. [हिं. लोटना] (१) विरोध सूचित करने के लिए भूमि पर लेटता है। उ.—कर धरत धरनि पर लोटै—१०-३८३। (२) व्याकुल होकर (पृथ्वी पर) लेटता है। उ.—पटकि पूँछ माथो धुनि लोटै—९-७५।

लोड़ना, लोड़नो—क्रि. स. [पं. लोड़] दरकार होना।

लोढ़कना, लोढ़कनो—क्रि. अ. [हिं. लुढ़कना] लुढ़कना।

लोढ़ना, लोढ़नो—क्रि. स. [सं. लुंचन] (१) तोड़ना, चुनना। (२) ओटना।

लोढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. लोष्ठ] (सिल का) बट्टा।

लोढ़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोढ़ा] छोटा लोढ़ा।

लोण—संज्ञा पुं. [सं. लवण] नमक।

लोथ—संज्ञा स्त्री. [सं. लोष्ठ] (१) शव, लाश।

मुहा०—लोथ गिरना–मारा जाना। लोथ डालना—मार गिराना। लोथपोथ—थकान से चूर। (२) मांस का लोथड़ा, मांसपिंड।

लोथड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. लोथ + ड़ा] मांसपिंड।

लोध, लोध्र—संज्ञा पुं. [सं. लोध्र] एक जाति।

लोन—संज्ञा पुं. [सं. लवण] (१) नमक।

मुहा०—(किसी का) लोन खाना—अन्न खाना, दास होना। (किसी का) लोन निकलना—उपकार न मानने का फल पाना। लोन न मानना - उपकार न मानना, अकृतज्ञ होना। लोन मानना—किया हुआ उपकार मानना। लोन मान्यो —उपकार माना। उ.—जैसे लोन हमारो मान्यो कहा कहौं, कहि काहि सुनाऊँ—पृ० ३२३ (२६)। जरे दाधे या दाहे पर लोन लाना या लगाना—दुखी को और दुख देना। दाधे पर लोन लगावै—दुखी को और दुखी करता है। उ.—सूरदास प्रभु हमहिं निदरि दाधे पर लोन लगावै—३०८८। लोन लगावत अनल के दाहि—दुखी को और दुखी करता है। उ.—अब काहे को लोन लगावत बिरह-अनल के दाहि - ३१४५। जरे ऊपर लोन लावहि—दुखी को और दुखी करता है। उ.—जरे ऊपर लोन लावहि को है उनतें बावरे—३२६०। जिनि अब लोन लावहु—दुखी को और दुख न दो। उ.—जाहु जिनि अब लोन लावहु, देखि तुमहीं डरी—३३१८। जरत (छाती) लोन लायो—दुखी को और दुख दिया। उ.—काम पावक जरत छाती, लोन लायो आनि—३३५५। राई-लोन उतारना—नजर से बचाने के लिए सिर पर से सात बार राई-लोन उतार कर आग में डालने का टोटका करना। उ.—कबहुँक अँग भूषन बनावति राई-लोन उतारि—१०-११८। (किसी बात का) लोन-सा लगना—बहुत अप्रिय या अरुचिकर होना।

(२) सौंदर्य, लावण्य।

लोनहरामी—वि. [हिं. लोन + अ. हरामी] नमक-हराम, कृतघ्न। उ.—(क) मन भयो ढीठ इनहिं के कीन्हें ऐसे लोन हरामी री—पृ० ३२३ (१९)। (ख) नैना लोन हरामी ए—पृ० ३२६ (५२)।

लोना - वि. [हिं. लोन] (१) सलोना। (२) सुंदर। संज्ञा पुं. (१) नमकीन मिट्टी। (२) क्षार जो

चने की पत्तियों पर जमा हो जाता है। (३) वह क्षार जो दीवार पर लग कर उसे कमजोर बना देता है।

क्रि. स. [सं. लवण] फसल काटना।

लोनाइ, लोनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोना + ई] लावण्य, सुंदरता। उ.—देखौ री देखौ अंग-अंग की लोनाई —२५९६।

लोनिका—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोन] 'लोनी' साग।

वि. स्त्री. नमकीन, सलोनी।—

लोनिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोन] 'लोनी' साग।

संज्ञा पुं. 'नोनिया' नामक शूद्र जाति जो नमक बनाने का कार्य-व्यवसाय करती है।

लोनिये—क्रि. स. [हिं. लोना] (फसल) काटिए। उ. —(क) अपनो बोयो आप लोनिये तुम आपहिं निरुवारो—३३९४। (ख) बीज बोइये जोइ अंत लोनिये सोइ—३४११।

लोनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोन] (१) 'लोनी' साग। (२) क्षार जो चने के साग पर इकट्ठा हो जाता है। (३) क्षार से युक्त मिट्टी जिससे नमक, शोरा आदि बनता है।

वि. स्त्री. [हिं. लोना] सुंदर। उ.—नासिका परम लोनी बिंबाधर तरै री—२४२३।

संज्ञा पुं. [सं. नवनीत] मक्खन, माखन। उ.— उ.—लै आई बृषभानु-सुता हँसि सद लोनी है मेरौ —११७८।

लोप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाश। (२) विच्छेद। (३) अभाव। (४) छिपना, अंतर्द्धान होना। (५) (वर्ण आदि का) लुप्त होना।

लोपन—संज्ञा पुं. [सं.] लुप्त या नाश करने की क्रिया या भाव।

लोपना, लोपनो—क्रि. स. [सं. लोपन] (१) मिटाना, लुप्त करना। (२) छिपाना, अंतर्द्धान करना।

क्रि. अ. (१) मिटना, लुप्त होना। (२) छिपना।

लोपांजन—संज्ञा पुं. [सं.] एक कल्पित अंजन जिसके लगाने से व्यक्ति का अदृश्य हो जाना माना जाता है।

लोपामुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अगस्त्य ऋषि की पत्नी।

लोपी—क्रि. स. [हिं. लोपना] मिटायी, लुप्त की। उ.— नँदनंदन के नेह-मेह जिनि लोक-लीक लोपी— ३४८७।

लोबान—संज्ञा पुं. [अ.] एक वृक्ष का सुगंधित गोंद।

लोबिया—संज्ञा पुं. [सं. लोम्य] एक पौधा जिसकी फली के बीज खाये जाते हैं।

लोभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लालच। उ.—दर-दर लोभ लागि लिये डोलत नाना स्वाँग बनावै—१-४२। (२) कंजूसी, कृपणता।

लोभना, लोभनो—क्रि. अ. [सं. लोभ] मुग्ध होना, ललचना, लुब्ध होना।

क्रि. स. ललचाना, लुभाना, मुग्ध करना।

लोभनीय—वि. [सं. लोभ] (१) जिसे देखकर लोभ हो। (२) सुंदर, मनोहर।

लोभा—संज्ञा पुं. [सं. लोभ] लालच, लोभ। उ.—योगयज्ञ जप तप तीरथ व्रत कीजत है जेहि लोभा—२५६६।

लोभाई—क्रि. अ. [हिं. लोभना] मोहित या मुग्ध हुई। उ.—कुँवर तन स्याम मानों काम है दूसरो, सपन मैं देखि ऊषा लोभाई—३४३४।

लोभातुर—वि. [सं. लोभ + हिं. आतुर] अत्यंत लोभ से विकल होकर। उ.—लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई—१-२९५।

लोभाना—क्रि. स. [हिं. लोभाना] मुग्ध करना।

क्रि. अ. (१) मुग्ध या मोहित होना। (२) लालच में पड़ना।

लोभानी—क्रि. अ. [हिं. लोभाना] मुग्ध या मोहित हुईं। उ.—(क) यशोमति सुत सुन्दर तनु निरखि हो लोभानी—१४६५। (ख) अँखियाँ हरि के रूप लोभानी—३४४२।

लोभाने—क्रि. अ. [हिं. लोभाना] मुग्ध या आसक्त हुए। उ.—(क) सूर स्याम हो बहुत लोभाने बन देख्यौ यौं सूनो—११२१। (ख) सूर स्याम मृदु हँसनि लोभाने—पृ० ३३४ (३१)। (ग) की काहू के अनत लोभाने—१९३२। (घ) सूर प्रभु दासी लोभाने, ब्रज बधू अनखात—२६८०। (२) लालच या लोभ में पड़ गए। उ.—मनहुँ कंज ऊपर बैठे अलि उड़ि न सकत मकरंद लोभाने—२०८६।

लोभानो—क्रि. स. [हिं. लोभना] मुग्ध करना।

क्रि. अ. (१) मुग्ध या मोहित होना। (२) लोभ या लालच में पड़ना।

लोभार—वि. [हिं. लोभ+आर] लुभानेवाला।

लोभावै—क्रि. अ. [हिं. लोभाना] मुग्ध या आसक्त होता है। उ.—कहूँ त्रिया के रूप लुभावै—१० उ.-१०५।

लोभित—वि. [हिं. लोभ] (१) मुग्ध, आसक्त। उ.—कदंब मुनि मन मधुप सदा रस-लोभित सेवत अज सिव अंब। (२) लालची।

लोभिनी—वि. स्त्री. [हिं. लोभी] (१) बहुत लोभ करने वाली, लालचिनी। (२) लुभायी हुई। उ.—ए कैसी हैं लोभिनी छवि धरति चुराइ–पृ. ३३७ (७०)। (३) जो (स्त्री) मुग्ध या आसक्त हो।

लोभी—वि. [हिं. लोभ] (१) लालची। उ.—(क) लोभी, लौंद मुकरवा झगरू—१-१८६। (ख) इन लोभी नैनन के काजे परवश भई जो रहौं—२७७४। (२) मुग्ध, आसक्त।

लोभ्यो, लोभ्यौ—क्रि. अ. [हिं. लोभाना] लुभाया, मुग्ध या आसक्त हुआ। उ.—नारि-रस-लोभ्यो—१-२१६।

लोम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोवाँ, रोम। उ.—शत शत इंद्र लोम प्रति लोमनि—१०१२। (२) बाल।

संज्ञा पुं. [सं. लोमश] लोमड़ी।

लोमकूप—संज्ञा पुं. [सं.] रोएँ की जड़ का छिद्र।

लोमड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. लोमश] एक प्रसिद्ध जंतु।

लोमनि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. लोम+नि] शरीर के प्रत्येक रोम में। उ.—शत शत इंद्र लोम प्रति लोमनि—१०-१२।

लोमश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि। (२) भेड़ा।

वि. अधिक और बड़े बड़े रोएँवाला।

लोमहर्षण—वि. [सं.] बहुत भीषण या भयानक।

लोय—संज्ञा पुं. [सं. लोक] लोग।

संज्ञा स्त्री. [हिं. लव] लौ, लपट।

संज्ञा पुं. [हिं. लोयन] आँख, नेत्र।

अव्य. [हिं. लौं.] तक, पर्यंत।

लोयन—संज्ञा पुं. [सं. लोचन] आँख, नेत्र, नयन।

लोर—वि. [सं. लोल] (१) चंचल। उ.—(क) सूर स्याम मुख निरखि चली घर आनँद लोचन लोर—७७६। (ख) चारु आनन लोर धारा बरनि कापै जाइ—पृ. ३४२ (१८)। (२) (दर्शन के) इच्छुक या उत्सुक। उ.—बोलि ढिग बैठारि ताको पोछि लोचन लोर—२१६१।

संज्ञा पुं. (१) कुंडल। (२) लटकन। (३) आँसू।

लोरना, लोरनो—क्रि. अ. [हिं. लोर+ना] (१) चंचल होना। (२) ललकना, लपकना। (३)लिपटना। (४) झुकना। (५) लोटना।

लोरी—संज्ञा स्त्री. [सं. लाल] (१) (बच्चों को सुलाने के लिए गाया जाने वाला) गीत।

लोरैं—क्रि. अ. [हिं. लोरना] लकलते या झपटते हैं। उ.—देखो री मल्ल इनहिं मारन को लोरैं—२६०४।

लोरै—क्रि. अ. [हिं. लोरना] ललकता या लपकता है। उ.—पुनि उठत जागि देखै मुकुर नारि कर ललचात अंग भरि लैन लोरै—पृ. ३१७ (६४)।

लोल—वि. [सं.] (१) हिलता-डोलता। उ.—कुंडल लोल कपोलनि की छवि—६१६। (२) चंचल। उ.—(क) ललित श्रीगोपाल-लोचन लोल—३५१। (ख) बेन बिसाल अति लोचन लोल—६३०। (३) परिवर्तनशील। (४) क्षणभंगुर। (५) इच्छुक, उत्सुक।

लोलक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (नथ या बाली का) लटकन। (२) कान की लव, लोलकी।

लोलकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोलक] कान की लव।

लोलत—क्रि. अ. [हिं. लोलना] हिलता-डोलता या चंचल होता है। उ.—ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहिं चुरावै—८७६।

लोलदिनेश—संज्ञा पुं. [सं.] लोलार्क नामक सूर्य।

लोलन—संज्ञा पुं. [सं.] हिलने-डुलने या हिलाने-डुलाने की क्रिया या भाव।

लोलना, लोलनो—क्रि. अ. [सं. लोल] (१) हिलना-डोलना। (२) चंचल होना।

लोला—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीभ, जिह्वा।

संज्ञा पुं. [देश.] एक खिलौना जिसमें डंडे के सिरों पर दो लट्टू होते हैं।

लोलार्क—संज्ञा पुं. [सं.] काशी का एक तीर्थ ।

लोलुप—वि. [सं.] (१) लालची, लोभी । (२) चटोरा । (३) परम उत्सुक ।

लोलै—क्रि. अ. [हिं. लोलना] हिलती-डोलती है । उ.—कुटिल अलक वदन की छवि अवनि परि लोलै—१०-१०१ ।

लोवा—संज्ञा स्त्री. [सं. लोमश] लोमड़ी ।
संज्ञा पुं. लवा या गुरगा पक्षी ।

लोष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पत्थर । (२) ढेला ।

लोहँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. लौहभांड] (१) लोहे का एक पात्र । (२) तसला ।

लोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोहा (धातु) । उ.—(क) सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट—१-२३२ । (ख) लोह तरैं, मधि रूपा लायौ—७-७ । (ग) आगर इक लोहजटित लीन्हीं बरिबंड—९-९६ । (२) हथियार, अस्त्र । उ.—लोह गहै लालच करि जिय को औरौ सुभट लजावै—९-१५२ ।

लोहकार—संज्ञा पुं. [सं.] लोहार ।

लोहपन, लोहपना, लोहपनो—संज्ञा पुं. [हिं. लोहा+पन] 'लोहा' होने का भाव या उसका बोध । उ.—पारस परसि होत ज्यौं कंचन लोहपनो मिटि जाई—१० उ.-१३१ ।

लोहा—संज्ञा पुं. [सं. लोह] (१) 'लोह' नामक प्रसिद्ध धातु । उ.—जैसैं लोहा कंचन होय—१-२३० ।
मुहा०—लोहे के चने—बहुत कठिन काम । लोहे के चने चबाना—बहुत कठिन काम करना ।
(२) हथियार, अस्त्र ।
मुहा०—लोहा गहना—(युद्ध करने को) हथियार उठाना । लोहा बजना—(युद्ध में परस्पर) अस्त्र चलना । लोहा बरसना—(युद्ध में)तलवार या अस्त्र चलना । (किसी का) लोहा मानना—(१) (किसी की) विद्वता, प्रभुता आदि की श्रेष्ठता स्वीकार करना । (२) हार या पराजय मानना । लोहा लेना—सामना या युद्ध करना ।
(३) लोहे का बना कोई उपकरण ।
वि. बहुत कड़ा या कठोर ।

लोहाना, लोहानो—क्रि. अ. [हिं. लोहा+आना] (किसी पदार्थ में लोहे के संसर्ग से) लोहे का रंग या स्वाद आ जाना ।

लोहार—संज्ञा पुं. [सं. लोहकार] एक जाति जो लोहे की चीजें बनाने का काम करती है ।

लोहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लोहार+ई] लोहार का काम ।

लोहित—वि. [सं.] लाल (रंग का) । उ.—अति लोहित दृग रँगमगे—२४०२ ।
संज्ञा पुं. [सं. लोहितक] मंगल ग्रह ।

लोहित्य—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मपुत्र नद ।

लोहिया—वि. [हिं. लोहा] लोहे का ।

लोही—संज्ञा स्त्री. [सं. लोहित] उषा की लाली ।

लोहू—संज्ञा पुं. [सं. लोहित] रक्त, रुधिर ।

लौं—अव्य. [हिं. लग] (१) तक, पर्यंत । उ.—(क) करौ मन्वंतर लौं तुम लाज—७-२ । (ख) द्वितीय सिंधु सिय-नैन नीर ह्वै जब लौं मिलै न आइ—९-११० । (ग) भीतर तैं बाहर लौं आवत—१०-१२५ । (२) बराबर, समान, तुल्य । उ.—(क) हरि कौ नाम दाम खोटे लौं झकि झकि डारि दियौ—१-६४ । (ख) उदर भरयौ कूकर सूकर लौं—१-६५ । (ग) अब सबहीं कौं बदन स्वान लौं चितवत दूरि भयौ—१-२९८ ।

लौकना, लौकनो—क्रि. अ. [सं. लोकना] (१) दिखायी देना, दृष्टि-गोचर होना । (२) चमकना । (३) आंखों में चकाचौंध होना ।

लौंग—संज्ञा पुं. [सं. लवंग] (१) एक झाड़ की कली जिसकी गिनती 'मसालों' में की जाती है । उ.—लौंग नारियर दाख सुपारी कहा लादे हम आवैं—११०८ । (२) नाक का एक आभूषण जो लौंग के आकार का ही होता है ।

लौंडा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) सुंदर लड़का । (२) पुत्र ।
वि. (१) अबोध, नासमझ । (२) छिछोरा ।

लौंडापन—संज्ञा पुं. [हिं. लौंडा+पन] (१) लड़कपन, नासमझी । (२) छिछोरापन ।

लौंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौंडा] दासी । उ.—लौंडी की डौंडी बाजी जब बढ़यो स्याम अनुराग—३०९५ ।

लौंद—संज्ञा पुं. [देश.] मलमास, अधिमास ।
वि. [हिं. लौंदा] मूर्ख, नासमझ । उ.—लोभी लौंद मुकरवा झगरू—१-१८६ ।
लौंदरा—संज्ञा पुं. [देश.] पानी जो वर्षारंभ से पहले ही बरस जाता है, लवँद, दौंगरा, लवँदरा ।
लौंध, लौंन—संज्ञा पुं. [हिं. लौंद] मलमास ।
लौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. लपट] (१) आग की लपट, ज्वाला । (२) दीपशिखा ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. लाग] (१) चाह, लगन, राग । (२) आशा, कामना । (३) चित्त-वृत्ति ।
लौआ—संज्ञा पुं. [सं. लावुक] घीआ, कद्दू ।
लौकना, लौकनो—क्रि. अ. [हिं. लौ] (१) दिखायी पड़ना । (२) चमकना ।
लौकिक—वि. [सं.] (१) सांसारिक । (२) व्यावहारिक ।
लौकी—संज्ञा स्त्री. [सं. लावुक] घीआ (तरकारी) ।
लौटना—क्रि. अ. [हिं. उलटना] (१) पलटना, वापस आना । (२) पीछे की ओर मुँह करना ।
क्रि. स. उलटना, पलटना ।
लौटनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौटना] उलटने की क्रिया या भाव ।
लौटनो—क्रि. अ. [हिं. उलटना] (१) वापस आना । (२) पीछे की ओर मुँह करना ।
क्रि. स. उलटना, पलटना ।
लौट-पौट—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौटना+अनु. पौटना] (१) उलटने-पलटने की क्रिया या भाव । (२) तहस-नहस करने की क्रिया या भाव ।
लौट-फेर—संज्ञा पुं. [हिं. लौटना+फेरना] उलट-फेर, भारी परिवर्तन ।
लौटान—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौटना] लौटने की क्रिया या भाव ।
लौटाना, लौटानो—क्रि. स. [हिं. लौटना] (१) वापस करना । (२) फेरना, पलटना । (३) ऊपर-नीचे या उलट-पुलट करना ।
लौन—संज्ञा पुं. [सं. लवण] नमक । उ.—खेलत मैं कोउ दीठि लगाई लै लै राई-लौन उतारति—१०-२०० ।

मुहा०—पजरे पर लौन—जो स्वयं दुखी है, उसे और दुखाने वाली बात से अधिक पीड़ा होना । उ. बचन दुसह लागत अलि तेरे ज्यौं पजरे पर लौन—३१२२ ।
लौनहार, लौनहारा—वि. [हिं. लौना+हार] खेत काटने वाला ।
लौना—संज्ञा पुं. [सं. ज्वलन] ईंधन ।
संज्ञा पुं [हिं. लुनना] फसल की कटाई ।
वि. [हिं. लौन, लोन] सुंदर ।
लौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. लौना] फसल की कटाई ।
संज्ञा स्त्री. [सं. नवनीत] माखन, नैनू । उ.—(क) लौनी कर आनन परसत हैं कछुक खाइ कछु लग्यौ कपोलनि । (ख) नैंकु रहौ, माखन द्यौं तुमकौ । ठाढ़ी मथति जननि दधि आतुर, लौनी नंद-सुवन कौं—१०-१६७ ।
वि. स्त्री. [हिं. लौन, लोन] सुंदरी ।
लौरि, लौरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (गाय की) बछिया ।
लौलीन—वि. [हिं. लौ+लीन] (किसी के) ध्यान में लीन या मग्न ।
लौह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोहा । (२) अस्त्र-शस्त्र ।
लौहित—संज्ञा पुं. [सं.] महादेव का त्रिशूल ।
लौहित्य—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मपुत्र नद ।
ल्याइ—क्रि. स. [हिं. लाना] लाकर । उ.—अतिहिं पुरुषारथ कियौ उन कमल दह के ल्याइ—५८६ ।
ल्याइयै—क्रि. स. [हिं. लाना] लाने का प्रबंध, आयोजन या कार्य कीजिए । उ.—कह्यौ भगवान अब बासुकी ल्याइयै—८-८ ।
ल्याइहै—क्रि. स. [हिं. लाना] लाने का प्रबंध, आयोजन या कार्य करेगा, लायेगा । उ.—वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन मैं ९-७४ ।
ल्याई—क्रि. स. स्त्री. [हिं. लाना] ले आयी हूँ । उ.—खाटे फल तजि मीठे ल्याई—९-६७ ।
ल्याउँगी—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आऊँगी ।
प्र०—ल्याउँगी धरि—पकड़कर ले आऊँगी । उ.—मोहिं छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याउँगी तुमकौं धरि—६८१ ।

ल्याउ—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आओ । उ.—हलधर कहत, ल्याउ री मैया—३९६ ।

ल्याऊँ—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आऊँगी, ले आऊँ। उ.—हौंस होइ तौ ल्याऊँ पूआ—३९६ ।

ल्याए - क्रि. स. [हिं. लाना] ले आए। उ.—पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल तब जदुनंदन ल्याए—१-२९ ।

ल्याना, ल्यानौ – क्रि. स. [हिं. लाना] लाना ।

ल्यायो, ल्यायौ—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आया। उ. —ह्वै बराह पृथ्वी ज्यौं ल्यायौ—३-१० ।

ल्यारि, ल्यारी—संज्ञा पुं. [देश.] भेड़िया ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] लू, लूक ।

ल्यावना, ल्यावनौ—क्रि. स. [हिं. लाना] लाना ।

ल्यावहु—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आओ । उ.—ल्यावहु जाइ जनक-तनया-सुधि—९-७४ ।

ल्यावैं—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आयें उ.—कहौ तौ माखन ल्यावैं घर तैं—१५४ ।

ल्यावै—क्रि. स. [हिं. लाना] ले आये । उ.—लाच्छागृह तैं काढ़ि कैं पांडव गृह ल्यावै—१-४ ।

प्र०—मन में ल्यावै—इच्छा करे । उ.—मुक्ति-मनोरथ मन मैं ल्यावै—३-१३ ।

ल्हेसना, ल्येसनौ—क्रि. अ. [हिं. लसना] (१) चिपकना, सटना । (२) ऊपर होना ।

क्रि. स. (१) चिपकाना, सटाना । (२) ऊपर रखना ।

ल्हेसित-वि. [सं. लसित] सजन या शोभा देनेवाला,शोभित ।

व

व—देवनागरी वर्णमाला का उन्तीसवाँ वर्ण जो अंतस्थ अर्द्धव्यंजन माना जाता है और जिसका-उच्चारण स्थान दंत्योष्ठ है ।

वंक—वि. [सं.] कुछ झुका हुआ, टेढ़ा ।

वंकट—वि. [सं. वंक] (१) झुका हुआ, टेढ़ा । (२) जो सीधा न हो, कुटिल । (३) दुर्गम, विकट । उ.—रही दै घूँघट-पट की ओट । मानौ कियौ फिरि मान मवासौ मन्मथ बंकट कोट—२७६९ ।

वंकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] टेढ़ापन ।

वंकनाल, वंकनाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. वंक+नाल] सुषुम्ना नाड़ी ।

वंकिम—वि. [सं.] कुछ झुका हुआ, टेढ़ा ।

वंग—संज्ञा पुं. [सं.] बंगाल (प्रदेश) ।

वंगीय—वि. [सं.] वंग देश का।

वंचक—वि. [सं.] (१) ठग । (२) दुष्ट ।

वंचकता—संज्ञा स्त्री. [सं. वंचक] ठगी ।

वंचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठगी । (२) दुष्टता ।

वंचना—संज्ञा स्त्री. [सं.] धोखा, ठगी, छल ।

वंचना, वंचनो—क्रि. स. [सं. वंचन] धोखा देना ।

क्रि. स. [सं. वाचन] पढ़ना, बाँचना ।

वंचित—वि. [सं.] (१) जो ठगा गया हो । (२)अलग किया हुआ । (३) हीन, रहित ।

वंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्तुति और प्रणाम, जो षोड़शोपचार पूजन का एक अंग है । (२) नवधा भक्ति का एक अंग । उ.—स्रवन कीरतन, स्मरन, पादरत, अरचन, वंदन, दास । सख्य और आतमा-निवेदन प्रेम-लच्छना जास—सारा. ११६ । (३) शरीर पर बनाये गये तिलक आदि चिह्न । उ.—वंदन चित्रविचित्र अंग सिर कुसुम सुवास धरे नंदनंदन—२५७३ ।

वि. पूज्य, पूजित (जैसे जगबंदन) ।

वंदनमाल, वंदनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदनमाल] वंदनवार ।

वंदनवार—संज्ञा स्त्री. [सं. वंदनमाल] फूल-पत्तियों की माला जो उत्सव के समय द्वार या मंडप के चारो ओर बाँधी जाती है ।

वंदना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्तुति और प्रणाम । (२) शरीर पर बनाये गये तिलक आदि चिह्न ।

वंदनीय—वि. [सं.] प्रणाम या सम्मान के योग्य ।

वंदारु—वि. [सं.] वंदनीय ।

वंदित—वि. [सं.] (१) जिसकी वंदना की जाय । (२) पूज्य, माननीय ।

वंदिता—वि. स्त्री. [सं. वंदित] (१) जिसकी वंदना की जाय। (२) पूजनीया।

वंदी—संज्ञा पुं. [सं. वंदिन्] क़ैदी, बंदी।

वंदीगृह—संज्ञा पुं. [सं.] क़ैदखाना।

वंदीजन—संज्ञा पुं. [सं.] एक यश-गायक जाति।

वंद्य—वि. [सं.] वंदना-योग्य, वंदनीय।

वंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बांस। (२) बांसुरी। (३) कुल।

वंशज—संज्ञा पुं. [सं.] कुल में उत्पन्न, संतान।

वंशजा—संज्ञा पुं. [सं.] कन्या, पुत्री।

वंशतिलक—संज्ञा पुं. [सं.] एक छंद।

वंशधर—संज्ञा पुं. [सं.] वंशज।

वंशस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] एक वर्णवृत्त।

वंशहीन—वि. [सं.] जिसके वंश में कोई न हो।

वंशावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी वंश के पुरुषों की कालक्रमानुसार सूची।

वंशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बांसुरी, मुरली। इसका जो छोर बजानेवाले के मुँह में रहता है, 'फूत्काररंध्र' कहलाता है और सुर निकालनेवाले सात छेदों को 'ताररंध्र' कहते हैं।

वंशीधर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

वंशीय—वि. [सं.] कुल में उत्पन्न, वंशज।

वंशीवट—संज्ञा पुं. [सं.] वृन्दावन का वह वट वृक्ष जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे।

वंशीवादन—संज्ञा पुं. [सं.] वंशी बजाना।

वंशोद्भव—वि. [सं.] कुल में उत्पन्न, वंशज।

व—अव्य. [फा.] और।

वक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बगला पक्षी। (२) अगस्त का वृक्ष या फूल। (३) एक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। (४) एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था।

वकवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] छल-कपट से काम निकालने की वृत्ति।

वकव्रती—संज्ञा पुं. [सं.] छली-कपटी व्यक्ति।

वकालत—संज्ञा स्त्री. [अ. वक़ालत] वकील का काम।

वकासुर—संज्ञा पुं. [सं] (१) एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। (२) एक राक्षस जिसे भीमसेन ने मारा था।

वकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूतना जो वकासुर की बहन थी।

वकील—संज्ञा पुं. [अ. वक़ील] दूसरे के पक्ष का समर्थन करने वाला।

वकुल—संज्ञा पुं. [सं.] अगस्त का पेड़ या फूल।

वकुली—संज्ञा स्त्री. [सं.] मौलसिरी।

वक्त—संज्ञा पुं. [अ. वक्त] (१) समय, काल।

मुहा०—वक्त काटना—(१) कठिनता से समय बिताना। (२) जी बहलाना। वक्त की चीज—(१) समय या ऋतु विशेष में मिलनेवाली चीज। (२) अवसर-विशेष के उपयुक्त चीज या गीत।

(२) अवसर। (३) अवकाश। (४) मृत्युकाल।

वक्तव्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथन, भाषण (२) किसी विषय में कही गयी बात।

वक्ता—वि. [सं. वक्ता] (१) बोलनेवाला। (२) भाषण-पटु।

संज्ञा पुं. कथा कहनेवाला, व्यास। उ.—सूत तहँ कथा भागवत की कहत है रिषि अठासी सहस हुते स्रोता। राम को देखि सनमान सब ही कियौ सूत नहिं उठचो निज जानि वक्ता—१० उ०-५८।

वक्तृता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वाक्पटुता, वाक्कौशल। (२) व्याख्यान, भाषण।

वक्तृत्व—संज्ञा पुं. [सं.](१) व्याख्यान। (२) कथन।

वक्र—वि. [सं.] (१) झुका हुआ, टेढ़ा, तिरछा। (२) दांव-पेंच खेलनेवाला।

वक्रगामी—वि. [सं. वक्रगामिन्] टेढ़ी चाल चलनेवाला।

वक्रदृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] क्रोध की दृष्टि।

वक्रोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) व्यंग्य भरी बात। (२) एक काव्यालंकार।

वक्ष—संज्ञा पुं. [सं. वक्षस्] छाती, उरस्थल।

वक्षस्थल—संज्ञा पुं. [सं. वक्षःस्थल] छाती, उर।

वक्षोज, वक्षोरुह—संज्ञा पुं. [सं.] स्तन, कुच।

वगलामुखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दस महाविद्याओं में एक।

वग़ैरह—अव्य. [अ. वग़ैरह] आदि, इत्यादि।

वच—संज्ञा पुं. [सं. वच्] वचन, वाक्य।

वचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वाणी, वाक्य । (२) कही हुई बात, कथन । उ.—तुम्हरो वचन न मेटयो जाइ —१० उ०-१०१ । (३) शब्द का वह रूप-विधान जिससे एकत्व या बहुत्व सूचित होता है (व्याकरण) ।

वचनकारी—वि. [सं.] आज्ञाकारी ।

वचनलक्षिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जिसकी बात से उपपति के प्रति उसका प्रेम लक्षित हो ।

वचनविदग्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो वचन की चतुरता से नायक की प्रीति का साधन करे ।

वचनीय—वि. [सं.] कथनीय ।

वच्छ—संज्ञा पुं. [हिं. वक्ष] छाती, उर ।

वजन—संज्ञा पुं. [अ. वज़न] (१) बोझ । (२) तौल ।

वज़नी—वि. [हिं. वजन+ई] (१) अधिक भार वाला, भारी । (२) प्रभावशाली ।

वजह—संज्ञा स्त्री. [अ.] कारण, हेतु ।

वजा—संज्ञा स्त्री. [अ. वजअ] (१) रचना, बनावट । (२) सजधज । (३) आकृति । (४) दशा, अवस्था । (५) रीति, प्रणाली ।

वजीफा—संज्ञा पुं. [अ. वज़ीफ़ा] वृत्ति ।

वजीर—संज्ञा पुं. [अ. वज़ीर] (१) मंत्री । (२) शतरंज की एक गोटी जो आगे, पीछे, दायें, बायें, सब ओर चलती है ।

वजू—संज्ञा पुं. [अ. वुज़ू] नमाज के पूर्व हाथ-पैर धोना ।

वजूद—संज्ञा पुं. [अ.] अस्तित्व ।

वज्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाले के फल के समान एक शस्त्र जो इंद्र का प्रधान शस्त्र माना गया है । (२) बिजली, विद्युत । (३) हीरा । उ.—दसन एकन वज्र वारौं—१४१५ । (४) भाला, बरछा । उ.—हरन रुक्मिनी होत है दुहूँ ओर भइ भीर । अति अघात कछु नाहिन सूझत वज्र चलहिं ज्यौं नीर—१० उ० -६१ । (५) श्रीकृष्ण का एक प्रपौत्र जो अनिरुद्ध का पुत्र था ।

वि. (१) बहुत कड़ा । (२) भीषण ।

वज्रधर—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र ।

वज्रपाणि—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र ।

वज्रपात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिजली गिरना । (२) घोर अनर्थ या अनिष्ट होना ।

वज्रांगी—वि. [सं.] वज्र के समान कठोर अंग या शरीरवाला । उ.—काल-रूप वज्रांगी जोधा—२६०६ ।

वज्रायुध—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र । उ.—वज्रायुध जल वर्षि सिराने—१०७० ।

वज्रावर्त—संज्ञा पुं. [सं.] एक मेघ का नाम । उ.—सुनत मेघ वर्तक सजि सैन लै आये । जलवर्त, वारि-वर्त, पवनवर्त, वज्रावर्त, आगिवर्तक जलद संग लाये ।

वज्रासन—संज्ञा पुं. [सं.] चौरासी आसनों में एक ।

वज्री—संज्ञा पुं. [सं. वज्रिन] इंद्र ।

वट—संज्ञा पुं. [सं.] बरगद का पेड़ । उ.—कहि धौं कुंद कदम बकुल वट चंपक लता तमाल—१८०८ ।

वाटिका, वटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गोली, टिकिया ।

वटु, वटुक—संज्ञा पुं.[सं.] (१) बालक । (२)ब्रह्मचारी ।

वणिक—संज्ञा पुं. [सं. वणिक्] व्यापारी, बनिया ।

वत—अव्य. [सं. वत्] समान, सदृश । उ.—एक याम नृप को निशि युग वत भई भारी—२४७४ ।

वतन—संज्ञा पुं. [अ.] (१) जन्मभूमि । (२) वासस्थान ।

वत्स—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाय का बछड़ा । (२) शिशु । (३) वत्सासुर जो कंस का सेवक था और जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था ।

वत्सर—संज्ञा पुं. [सं.] साल, वर्ष ।

वत्सल—वि. [सं.] (१) संतान-प्रेम से युक्त । (२) छोटों के प्रति कृपालु ।

वत्सला—वि. [सं. वत्सल] स्नेह-भाव रखनेवाले । उ.—गाइ-गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई—१-२३८ ।

वि.स्त्री. (१) जो (नारी) संतान-प्रेम से युक्त हो । (२) जो (नारी) छोटों के प्रति कृपालु हो ।

वत्सासुर—संज्ञा पुं. [सं.] कंस का अनुचर एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । उ.—वत्सासुर को इहाँ निपात्यो—३४०९० ।

वदंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] बात, कथा ।

वदक—संज्ञा पुं. [सं.] कहनेवाला, वक्ता ।

वदत—क्रि. अ. [हिं. वदना] बोलता है । उ.—चातक मोर चकोर वदत पिक मनहु मदन चटसार पढ़ावत—१० उ०-५ ।

क्रि. स. बरजता या रोकता हूँ, मना करता हूँ। उ०—बारन नहिं छाँड़ि दै, बदत बलराम तोहिं बार बारी—३४९० ।

वदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुँह, मुख । उ.—हौं वारी तव इंदु-वदन पर अति छवि अलस भरोइ—१०-५६ । (२) कथन ।

वदना, वदनो—क्रि. अ. [सं. वदन] कहना, बोलना ।

क्रि. स. रोकना, मना करना ।

वदान्य—वि. [सं.] (१) उदार । (२) मधुरभाषी ।

वदि—संज्ञा पुं. [सं. अवदिन्] कृष्ण पक्ष ।

वदुसाते—क्रि. स. [हिं. वदुसाना] भला-बुरा कहते या दोष देते । उ.—सूर स्याम यहि भाँति सयाने हमहीं को वदुसाते—३३३८ ।

वदुसाना, वदुसानो—क्रि. स. [सं. विदूषण] भला-बुरा कहना, दोष या अपराध लगाना ।

वध—संज्ञा पुं. [सं.] नाश, मारण ।

वधक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिंसक, घातक । (२) व्याध । (३) मृत्यु । (४) यमराज ।

वधत्र—संज्ञा पुं. [सं.] हथियार, अस्त्र ।

वधन—संज्ञा पुं. [सं. वध] नाश । उ.—कंस बधन ऐहीं करिहैं ।

संज्ञा पुं. सवि. मारने के लिए । उ.—बदरिआ वधन बिरहिनी आई—२८२१ ।

वधिक—संज्ञा पुं. [सं.] वध करनेवाला ।

वधुका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पुत्रवधू, पतोहू । (२) नववधू, दुलहिन ।

वधू—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुलहिन । (२) पतोहू । (३) पत्नी । उ.—जौ यह वधू (बधू) होइ काहू की दारु-स्वरूप धरे—९-४१ ।

वधूटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुलहिन । (२) पतोहू । (३) पत्नी, भार्या ।

वधूत—संज्ञा पुं. [सं. अवधूत] साधु, संन्यासी ।

वध्य—वि. [सं.] (१) जहाँ वध किया जाय । (२) वध करने योग्य ।

वन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगल । (२) वाटिका । (३) जल । (४) घर, आलय ।

वनचर, वनचारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वन में रहने-चलनेवाला । (२) जंगली प्राणी ।

वनज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जो वन (जंगल या पानी) से जन्मा हो । (२) कमल ।

वनद—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

वनदेव—संज्ञा पुं. [सं.] वन का अधिष्ठाता देवता ।

वनदेवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वन की अधिष्ठात्री देवी ।

वनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वन के फूलों की बनी माला । (२) अनेक प्रकार के वन-पुष्पों की बनी, घुटनों तक लंबी वह माला जो श्रीकृष्ण धारण करते थे । उ.—वनमाला (बनमाला) पीतांबर काछे–५०७ ।

वनमाली—संज्ञा पुं. [सं.] वनमाला धारण करने वाले श्रीकृष्ण ।

वनराज—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह ।

वनराजि, वनराजी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वन या वृक्ष-समूह । (२) वन की पगडंडी ।

वनरुह, वनरूह—संज्ञा पुं. [सं. वनरुह] कमल ।

वनलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वन की शोभा या श्री ।

वनवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वन में निवास (करना) । (२) बस्ती छोड़कर वन में बसने की व्यवस्था ।

मुहा०—वनवास देना—(सुख-साधनों और बंधु-बांधवों का साथ छोड़कर) वन में रहने-बसने की आज्ञा देना । वनवास लेना—(१) (सुख-साधनों और बंधु-बांधवों को छोड़कर) वन में रहने-बसने का निश्चय करना । (२) संन्यास लेना ।

वि. वन में रहने-बसनेवाला, वनवासी ।

वनवासी—वि. [सं. वनवासिन्] वन में रहने-बसने वाला ।

वनस्थली—संज्ञा स्त्री. [सं.] वन प्रदेश ।

वनस्पति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वृक्ष जिसमें फूल न दिखायी दे, केवल फल ही हों । (२) पेड़-पौधे ।

वनांत—संज्ञा पुं. [सं.] वन प्रदेश ।

वनिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रियतमा । (२) नारी ।

वनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] छोटा वन ।

संज्ञा पुं. [सं. वनिन्] वानप्रस्थ ।

वन्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं. अवन्तिका] अवंतिका नगरी ।

उ.—कहौ बिप्र हम गये वंतिका गुरु के सदन बिख्यात —सारा. ८११।

वन्य—वि. [सं.] (१) वन में रहने-बसने या उत्पन्न होनेवाला। (२) वन-संबंधी।

वन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सघन वन। (२) वन-समूह। (३) जल-प्लावन। (४) जल-राशि। (५) बेल, लता।

वपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) केशों का मुंडन। (२) बीज बोना।

वपनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्थान जहाँ नाई क्षौर-कर्म करता है।

वपनीय—वि. [सं.] बोने योग्य।

वपु—संज्ञा पुं. [सं. वपुस्] (१) शरीर, देह। (२) रूप।

वपुष्टमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] परीक्षित के पुत्र जन्मेजय की पत्नी जो काशीराज की पुत्री थी।

वफा—संज्ञा स्त्री. [अ. वफ़ा.] (१) वादा पूरा करना। (२) पूर्णता, निर्वाह। (३) मुरौव्वत, शालीनता।

वफादार—वि. [अ. वफ़ा.+फ़ा. दार] (१) बात निबाहने वाला। (२) निबाहनेवाला। (३) सच्चा।

वफात—संज्ञा स्त्री. [अ. वफ़ात] मृत्यु।

वमन—संज्ञा पुं. [सं.] कै, उलटी।

वमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जी मचलाने का रोग। (२) आग, अग्नि।

वयं - सर्व. [सं.] हम।

वय:क्रम—संज्ञा पुं. [सं.] अवस्था, आयु।

वय:संधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाल्य और यौवनावस्था के बीच की स्थिति, अवस्था या समय।

वय - संज्ञा स्त्री. [सं. वयस्] आयु, अवस्था।

वयक्रम - संज्ञा पुं. [सं. वय:क्रम] आयु, अवस्था। उ. —एक वयक्रम एकहि बानक रूप गुन की सींव—२०७२।

वयन—संज्ञा पुं. [सं.] बुनने का काम।

वयस्—संज्ञा पुं. [सं.] आयु, अवस्था।

वयस्क—वि. [सं.] (१) जो बालक न हो, सयाना। (२) अवस्था का।

वयस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हमजोली, समवयस्क। (२) मित्र।

वयोवृद्ध—वि. [सं.] बड़ा-बूढ़ा।

वरंच—अव्य. [सं.] (१) ऐसा न होकर ऐसा, बल्कि, अपितु। (२) लेकिन, परंतु।

वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह बात या मनोरथ जिसकी पूर्ति के लिए किसी बड़े या देवी-देवता से प्रार्थना की जाय। (२) किसी बड़े या देवी-देवता से प्राप्त फल या सिद्धि। (३) दूल्हा।

वि. श्रेष्ठ, उत्तम। उ.—मन के मनोज फूले हलधर वर के—१०-३४।

वरक—संज्ञा पुं. [अ. वरक़] (१) पत्र, पन्ना, सफा। (२) सोने, चांदी आदि का बहुत महीन पत्तर जो मिठाइयों आदि पर लगाया जाता है।

वरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कन्या के विवाह में वर को स्वीकारने की रीति। (२) पूजा, अर्चना।

वरणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी के उत्तर में बहनेवाली एक छोटी नदी।

वरणीय—वि. [सं.] (१) पूज्य। (२) श्रेष्ठ।

वरद—वि. [सं.] मनोरथ पूर्ण करनेवाला।

वरदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कन्या।

वरदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी बड़े या देवी-देवता का प्रसन्न होकर (दूसरे का) अभीष्ट सिद्ध करना। (२) किसी की प्रसन्नता से होनेवाला लाभ।

वरदानी—वि. [सं.] मनोरथ पूर्ण करनेवाला।

वरन्—अव्य. [सं. वरम्] ऐसा नहीं, बल्कि।

वरना—संज्ञा पुं. [सं. वरण] ऊँट। उ.—वरना-भख कर में अवलोकत केस पास कृत बंद। अधर समुद्र सदल जो सहसा ध्वनि उपजत सुख-कंद।

अव्य. [फ़ा. वर्नः] नहीं तो, ऐसा न हुआ तो।

वरम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] सूजन।

वरयात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विवाह के लिए वर का बंधु-बांधवों सहित वधू के यहां जाना।

वरही—संज्ञा पुं. [हिं. वर] सोने की 'टीका' नामक पट्टी जो विवाह में वधू को पहनायी जाती है।

संज्ञा पुं. [हिं. वर्ही] मोर, मयूर।

वरांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदरी नारी ।
वराक—वि. [सं.] (१) दरिद्र । (२) दयनीय । (३) अभागा, दीनहीन । (४) नीच ।
वराट, वराटक—संज्ञा पुं. [सं.] कौड़ी ।
वराटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कौड़ी ।
वरानना—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदरी नारी ।
वरासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रेष्ठ आसन । (२) विवाह में वर का आसन ।
वराह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शूकर । (२) विष्णु ।
वराही—संज्ञा स्त्री. [सं.] शूकरी, सूअरी ।
वरिष्ठ—वि. [सं.] श्रेष्ठ, पूज्य ।
वरीयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी को औरों से श्रेष्ठ मानना, समझना या कहना ।
वरु—संज्ञा पुं, [सं. वर] वर, दूलह । उ.- मोर मुकुट रचि मौर बनायो माथे पर धरि हरि वरु आयो—पृ० ३४८ (२) ।
वरुण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक वैदिक देवता जो जल के अधिपति कहे गये हैं। पुराण इन्हें पश्चिम दिशा का दिक्पाल कहते हैं। साहित्य में इन्हें करुण रस का अधिष्ठाता माना गया है । इनका प्रसिद्ध अस्त्र पाश है । (२) जल ।
वरुणपाश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वरुण का अस्त्र पाश । (२) 'नाक' या 'नक्र' नामक जल-जंतु ।
वरुणालय—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।
वरुथ – संज्ञा पुं. [सं.] (१) बख्तर, कवच । (२) ढाल । (३) फौज, दल, सेना ।
वरुथिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सेना, सैन्य ।
वरेण्य—वि. [सं.] (१) मुख्य । (२) पूजनीय ।
वर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं का समूह । (२) रीति-नीति या आचार-विचार में समान भाव रखनेवाले व्यक्तियों या पदार्थों का समूह । (३) विभाग, परिच्छेद । (४) बराबर लंबाई-चौड़ाई वाला चौखूंटा क्षेत्र जिसके चारों कोण समकोण हों ।
वर्चस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रूप । (२) कांति, प्रभा ।
वर्चस्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तेज । (२) श्रेष्ठता ।
वर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्याग । (२) निषेध, मनाही ।
वर्जना – क्रि. स. [सं. वर्जन] मना करना ।
वर्जित—वि. [सं.] (१) त्यागा हुआ । (२) जो ग्रहण के अयोग्य हो, निषिद्ध ।
वर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रंग । (२) प्राचीन आर्यों द्वारा जन-समुदाय के किये गये चार विभाग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । (३) भेद, प्रकार । (४) अक्षर । (५) गुण ।
वर्णन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चित्रण । (२) सविस्तार कथन । उ.—सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत विचार । (३) गुण कथन, प्रशंसा ।
वर्णनातीत—वि. [सं.] जिसका वर्णन न हो सके ।
वर्णमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी लिपि के अक्षरों की क्रमानुसार सूची ।
वर्णविकार—संज्ञा पुं. [सं.] शब्द के एक वर्ण का परिवर्तित होकर दूसरा हो जाना ।
वर्णविचार—संज्ञा पुं. [सं.] व्याकरण का वह अंग जिसमें वर्णों के आकार, उच्चारण, संधि-नियम आदि का वर्णन हो ।
वर्णविपर्यय—संज्ञा पुं. [सं. वर्ण + विपर्य्यय] शब्द में वर्णों का उलटफेर ।
वर्णवृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] वह छंद जिसके चरणों में वर्णों की संख्या और लघु-गुरु-क्रम में समानता हो ।
वर्णसंकर—वि. [सं.] जो भिन्न जातियों के स्त्री-पुरुष के संयोग से जन्मा हो ।
वर्णिक—वि. [सं.] जिस (छंद) के चरणों में अक्षरों की संख्या और लघु-गुरु-क्रम में समानता हो ।
वर्णित—वि. [सं.] (१) कहा हुआ । (२) वर्णन किया हुआ ।
वर्णना—क्रि. स. [सं. वर्णन] वर्णन करना ।
वर्णिये – क्रि. स. [हिं. वर्णना] वर्णन कीजिए । उ.—और कहाँ लगि वर्णिये पर-पुरुष न उबरन पावै—पृ० ३४९ (५९) ।
वर्ण्य—वि. [सं.] (१) जो वर्णन का विषय हो । (२) जो वर्णन करने के उपयुक्त हो ।
वर्तन—संज्ञा पुं. [सं. वर्त्तन] (१) व्यवहार बर्ताव ।

(२) व्यवसाय, जीवन-वृत्ति। (३) बटना, घुमाना। (४) फेरफार, परिवर्तन। (५) सिल-बट्टे से पीसना।

वर्तमान—वि. [सं. वर्त्तमान] (१) जो चल रहा हो। (२) उपस्थित, विद्यमान। (३) हाल का।

संज्ञा पुं. (१) व्याकरण में क्रिया का वह काल जिससे उसका चलता रहना (समाप्त न होना) सूचित हो। (२) समाचार, वृत्तांत। (३) चलता व्यवहार।

वर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त्ति] बत्ती।

वर्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त्तिका] सलाई, शलाका।

वर्तित—वि. [सं.] (१) चलाया या जारी किया हुआ। (२) किया हुआ, संपादित।

वर्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्त्तिन्] (१) बत्ती। (२) सलाई।

वर्तुल—वि. [सं. वर्त्तुल] गोल, वृत्ताकार।

वर्त्म—संज्ञा पुं. [सं.] गाड़ी के पहिए का मार्ग, लीक।

वर्द्धक—वि. [सं.] बढ़ानेवाला।

वर्द्धन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ाने की क्रिया या भाव। (२) वृद्धि, बढ़ती, उन्नति।

वर्द्धमान—वि. [सं.] (१) बढ़ता हुआ। (२) बढ़नेवाला।

संज्ञा पुं. जैनियों के २४ वें जिन, महावीर।

वर्द्धित—वि. [सं.] बढ़ा हुआ।

वर्म—संज्ञा पुं. [सं. वर्म्मन] कवच।

वर्य—वि. [सं.] (१) श्रेष्ठ। (२) प्रधान।

वर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] साल, संवत्सर।

वर्षगाँठ—संज्ञा स्त्री. [सं. वर्ष + हिं. गाँठ] पूरे वर्ष के बाद आनेवाला जन्म दिन, सालगिरह।

वर्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह ऋतु जब खूब पानी बरसता है। (२) पानी बरसने की क्रिया या भाव।

मुहा०—(किसी चीज की) वर्षा होना—(मेघ की तरह ऊपर से) बहुत अधिक बरसना। (२) बहुत अधिक संख्या में मिलना।

वर्षागम—संज्ञा पुं. [सं.] वर्षा ऋतु का प्रारंभ।

वर्ही—संज्ञा पुं. [सं. वर्हिन्] मोर, मयूर।

वलभी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घर के ऊपरी शिखर पर बना मंडप। (२) कठियावाड़ की एक प्राचीन नगरी।

वलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंडल। (२) चूड़ी।

वलाहक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेघ, बादल। (२) पर्वत। (३) श्रीकृष्ण के रथ के एक घोड़े का नाम।

वलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लकीर, रेखा। (२) झुर्री। (३) दैत्यराज प्रह्लाद का पौत्र जिसे विष्णु ने वामन अवतार लेकर छला था।

वलित—वि. [सं.] (१) लचक या बल खाया हुआ। (२) मोड़ा या झुकाया हुआ। (३) घेरा हुआ। (४) जिसमें सिकुड़न या झुर्रियाँ पड़ी हों। (५) लगा या लिपटा हुआ। (६) ढका हुआ। (७) युक्त, सहित।

वली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) झुर्री, सिकुड़न। (२) लकीर, रेखा। (३) पेटी के सिकुड़ने से पेट के दोनों ओर पड़ जानेवाली रेखा।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) स्वामी। (२) साधु, फकीर।

वल्कल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेड़ की छाल। (२) पेड़ की छाल का बना वस्त्र जिसे तपस्वी पहना करते थे।

वल्कली—वि. [सं. वल्कलिन्] वल्कल का वस्त्रधारी।

वल्गा—संज्ञा स्त्री. [सं.] घोड़े की बाग, लगाम।

वल्द—संज्ञा पुं. [अ.] बेटा, पुत्र।

वल्दियत—संज्ञा स्त्री. [अ.] पिता के नाम का पता।

वल्मीक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दीमकों की बाँबी। (२) वाल्मीकि मुनि।

वल्लभ—वि. [सं.] अत्यंत प्रिय, प्रियतम।

संज्ञा पुं. (१) नायक। (२) पति। (३) स्वामी। (४) एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका जीवनकाल सन् १४७९ से १५३१ तक माना जाता है। ये वैष्णव संप्रदाय के प्रवर्तक थे और इनका संप्रदाय 'वल्लभ-संप्रदाय' कहलाता है। सूरदास इन्हीं के शिष्य थे।

वल्लभा, वल्लभी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रियतमा। (२) पत्नी।

वि. स्त्री. अत्यंत प्रिय।

वल्लभिनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. वल्लभी] प्रियतमाओं (का)। उ.—सुरति सँदेस सुनाइ मेटौ बल्लभिनि को दाहु—२९२०।

वल्लरि, वल्लरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लता, बेल। (२) मंजरी।

वल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं.] लता। उ.—द्रुमनि दर वल्ली वियोगिनि मिलति हैं पहिचानि—२८२८ ।

वल्वल—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जिसे बलराम ने मारा था। उ.—राम दिन कइक ता ठौर औरहू रहे, आइ वल्वल तहाँ दियौ दिखाई। रुधिर अरु मांस की लग्यौ वर्षा करन ऋषि सकल देखि कै गये डराई।

वशंवद—वि. [सं.] आज्ञाकारी।

वश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इच्छा। (२) अधिकार।

मुहा०—(किसी के) वश में होना—(१) अधीन होना। (२) कहे में होना। (किसी पर) वश होना—(१) अधिकार होना। (२) कहे के अनुसार काम करा लेना। वश का—(१) जिस पर अधिकार हो। (२) जिससे इच्छानुसार काम कराया जा सके।

(३) शक्ति, सामर्थ्य।

मुहा०—वश का—जिसका पूरा करना शक्ति या सामर्थ्य में हो। वश चलना—कुछ कर सकने की शक्ति या सामर्थ्य होना।

(४) अधिकार या प्रभुत्व में लाने का भाव। उ.—हरि कछु ऐसो टोना जानत। सबके मन अपने वश आनत।

वशवर्त्ती—वि. [सं. वशवर्त्तिन्] अधीन, आज्ञानुवर्त्ती।

वशित्व—संज्ञा पुं. [सं.] आठ सिद्धियों में एक जिससे सबको वश में किया जा सकता है।

वशी—वि. [सं. वशिन्] (१) वश में रखनेवाला। (२) अधीन किया हुआ।

वशीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वश में करने की क्रिया। (२) मंत्रादि से किसी को वश में करने का प्रयोग।

वशीकृत—वि. [सं.] (१) वश में किया हुआ। (२) मंत्रादि से वश में किया हुआ। (३) मोहित, मुग्ध।

वशीभूत—वि. [सं.] (१) अधीन। (२) इच्छानुसार कार्य करने को विवश।

वश्य—वि. [सं.] अधीन, वशीभूत। उ.—लूटत रूप अखूट दाम को स्याम वश्य यों मोर—पृ. ३२४ (३३)।

वश्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अधीनता।

वसंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भारतीय वर्ष की सर्वप्रथम ऋतु जो चैत और बैसाख में होती है। उ.—ब्रज बनितनि के नैन प्रान बिच तुमहीं स्याम वसंत—सारा. ५८१। (२) छह रागों में दूसरा।

वसंततिलका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्ण वृत्त।

वसंतपंचमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] माघ के शुक्ल पक्ष की पंचमी जिसे 'श्रीपंचमी' भी कहते हैं। इस दिन वसंत और रति सहित काम की पूजा का विधान है। उ.—प्रथम वसंतपंचमी लीला सूरदास यश गायौ—२३९१।

वसंत महोत्सव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वसंत पंचमी के दूसरे दिन वसंत और काम की पूजा के उपलक्ष में मनाया जाने वाला उत्सव। (२) होलिकोत्सव।

वसंतसखा—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

वसंती—संज्ञा पुं. [सं. वसंत] हलका पीला रंग।

वि. सरसों के फूल जैसे हल्के पीले रंग का।

वसंतोत्सव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वसंत पंचमी के दूसरे दिन वसंत और कामदेव की पूजा का उत्सव जिसे 'मदनोत्सव' भी कहते हैं। (२) होलिकोत्सव।

वसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वस्त्र। उ.—रजक मारि हरि प्रथम ही नृप वसन लुटाए—२५७९। (२) ढकने की वस्तु, आवरण।

वसना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (स्त्री की) कमर या कटि का एक भूषण।

वसवास—संज्ञा पुं. [अ.] (१) भ्रम, संदेह। (२) भुलावा, बहकावा, प्रलोभन।

वसवासी—वि. [अ. वसवास] (१) संदेह में पड़ने वाला। (२) भुलावे में डालने वाला।

वसह—संज्ञा पुं. [सं. वृषभ, प्रा. वसह] बैल। उ.—अमरा सिव रवि ससि चतुरानन हय गय वसह हंस मृग जावत—९७८।

वसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मेद, चरबी।

वसिष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन ऋषि जो ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा माने जाते हैं। कामधेनु के लिए वसिष्ठ और विश्वामित्र का बहुत समय तक झगड़ा होता रहा। अपनी अनेक पत्नियों में वसिष्ठ को अरुंधती विशेष प्रिय थी। (२) सप्तर्षि

मंडल का एक तारा जिसके पास का छोटा तारा 'अरुंधती' कहा जाता है।

वसीका—संज्ञा पुं. [अ. वसीका] वह धन जो सरकारी खजाने में इसलिए जमा किया जाय कि उसका ब्याज जमा करनेवाले के संबंधियों को मिलता रहे।

वसीयत—संज्ञा स्त्री. [अ.] मरणासन्न व्यक्ति द्वारा अपनी संपत्ति-संबंधी लिखी गयी व्यवस्था।

वसीला—संज्ञा पुं. [अ.] (१) सहारा। (२) सिद्धि का उपाय।

वसुंधरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

वसु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक देव-गण जिसमें आठ देवता हैं। (२) आठ की संख्या।

वसुदेव—संज्ञा पुं. [सं.] शूर कुल के एक यदुवंशी राजा जिनके पिता का नाम देवमीढ़ और माता का मारिषा था। इनकी बारह पत्नियों में रोहिणी के गर्भ से बलराम और देवकी से श्रीकृष्ण जन्मे थे। इनकी बहन कुंती पांडवों की माता थी।

वसुधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

वसुमति, वसुमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

वसुहंस—संज्ञा पुं. [सं.] वसुदेव का पुत्र और श्रीकृष्ण का भाई एक यादव।

वसूल—वि. [अ.] प्राप्त, लब्ध।

वसूली—संज्ञा स्त्री. [अ. वसूल] रुपया वसूलने या चुकता कराने की क्रिया।

वस्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नाभि के नीचे का भाग, पेड़ू। (२) पिचकारी।

वस्तिकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] गुदा मार्ग आदि में पिचकारी देने की क्रिया।

वस्तु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह जिसका अस्तित्व हो। (२) चीज, पदार्थ।

वस्तुज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु की पहचान। (२) तथ्य-बोध, तत्वज्ञान।

वस्तुतः—अव्य. [सं.] वास्तव में, यथार्थतः।

वस्तुवाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक दार्शनिक सिद्धांत जिसमें जगत जैसा दृश्य है उसी रूप में उसकी सत्ता मानी जाती है।

वस्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] कपड़ा।

वस्फ़—संज्ञा पुं. [अ. वस्फ़](१) प्रशंसा। (२) विशेषता।

वह—सर्व. [सं. सः] (१) वक्ता द्वारा श्रोता से तीसरे व्यक्ति या पदार्थ की ओर संकेत करनेवाला एक सर्वनाम। (२) दूर या परोक्ष की वस्तु की ओर संकेत करनेवाला एक सर्वनाम।

वहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खींच या लादकर ले जाना। (२) ऊपर लेना, उठाना।

वहना—क्रि. स. [सं. वहन] (१) ढोना। (२) अपने ऊपर लेना।

वहम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) मिथ्या धारणा। (२) भ्रम। (३) व्यर्थ की शंका या संदेह।

वहमी—वि. [अ. वहम] (१) मिथ्या धारणा-जनित। (२) जो वहम करता हो।

वहशत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) जंगलीपन। (२) पागलपन। (३) उदासी, सन्नाटा।

वहशी—वि. [अ.] (१) जंगली। (२) असभ्य।

वहाँ—अव्य. [हिं. वह] उस स्थान पर।

वहिः अव्य. [सं.] जो अंदर या भीतर न हो, बाहर।

वहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाव, नौका।

वहिरंग—संज्ञा पुं. [सं.] ऊपरी या बाहरी भाग।
वि. (१) ऊपरी, बाहरी। (२) जो सार-रूप न हो। (३) अनावश्यक।

वहिर्गत—वि. [सं.] बाहर या ऊपर की ओर निकला या गया हुआ।

वहिर्लापिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] पहेली।

वहिष्कृत—वि. [सं.] निकाला या त्यागा हुआ।

वहीं—अव्य. [हिं. वहाँ+ही] उसी स्थान पर।

वही—सर्व. [हिं. वह+ही] (१) पूर्वोक्त ही। (२) निर्दिष्ट ही, अन्य नहीं।

वहै—सर्व. [हिं. वह+ही] (१) वैसा ही। उ.—ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता बहुरि वहै सुभाइ—१-४५। (२) वह ही। उ.—उलटि जाहु नृप-चरन-सरन सुनि वहै राखिहै भाई—९-७।

वह्नि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्नि। उ.—ज्यौं घृत होम

वह्नि की महिमा सूर प्रगट या माहीं—१६९२ । (२) श्रीकृष्ण का मित्रविंदा से उत्पन्न एक पुत्र ।

वह्निमित्र—संज्ञा पुं. [सं.] हवा, वायु ।

वह्निमुख—संज्ञा पुं. [सं.] देवता ।

वाँ—अव्य. [हिं. वहाँ] उस स्थान पर ।

वांछना—संज्ञा स्त्री. [हिं. वांछा] इच्छा, चाह । उ.—यह वांछना होइ क्यों पूरन दासी ह्वै बरु ब्रज रहिए —पृ० ३४४ (३२) ।

वांछनीय—वि. [सं.] (१) चाह या इच्छा के योग्य । (२) जिसकी चाह या इच्छा हो ।

वांछा—संज्ञा स्त्री. [सं. वाञ्छा] चाह, इच्छा ।

वांछित—वि. [सं.] चाहा हुआ, इच्छित । उ.—(क) सो निज गोपी चरण-रज वांछित हौ तुम देव—१८६१ । (ख) घर-घर नगर अनंद बधाई मनवांछित फल सबनि लहो—२६४४ ।

वांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] कै, उलटी, वमन ।

वा—अव्य. [सं.] या, अथवा ।

सर्व. [हिं. वह] (१) व्रजभाषा में प्रथम पुरुष का कारक चिह्न लगने के पूर्व एकवचन रूप । (२) उस । उ.—(क) जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि जगत नहिं नाचै—१-८१ । (ख) वा घट मैं काहू कैं लरिका मेरौ माखन खायौ—१०-१५६ ।

वाइ—सर्व. [हिं. वाहि] उसे ही ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. वायु] हवा, वायु । उ.—आसन ध्यान वाइ आराधन अलि मन चित तुम ताए—२९९१ ।

वाउ—संज्ञा स्त्री. [हिं. वायु] हवा, वायु । उ.—उठत बिरह धूम पावक जरि बरि वाउ बहो—३११९४ ।

वाकई—अव्य. [अ. वाक़ई] सचमुच, वास्तव में ।

वाक़या—संज्ञा पुं. [अ. वाक़या] (१) घटना । (२) समाचार ।

वाकि—सर्व. [हिं. वा+की] उसकी । उ.—एते पर मन हरत है री कहा कहौं गति वाकि—२४१३ ।

वाक़िफ़—वि. [अ. वाक़िफ़] (१) जानकार । (२) अनुभवी ।

वाकी—सर्व. [हिं. वा+की] उसकी । उ.—(क) संपति दै वाकी पतिनी को—१-७ । (ख) वाकी पैज सरै—१-८२ ।

वाके—सर्व. [हिं. वा+के] उसके । उ.—कपट-लोभ वाके दोउ भैया—१-१७३ ।

वाकों, वाकौं—सर्व. [हिं. वा+को, कौं] उसको । उ.—मैया री, मैं जानत वाकौं—६९४ ।

वाक्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वाणी, वाक्य । (२) बोलने की इंद्रिय । (३) सरस्वती ।

वाक्चपल—वि. [सं.] (१) बहुत बातें करनेवाला । (२) कोरी बातें करनेवाला, भड़भड़िया ।

वाक्छल—संज्ञा पुं. [सं.] धोखा देने के लिए श्लिष्ट या भ्रामक शब्दों का प्रयोग ।

वाक्पटु—वि. [सं.] बात करने में चतुर ।

वाक्फियत—संज्ञा स्त्री. [अ. वाक्फ़ियत] जानकारी ।

वाक्य—संज्ञा पुं. [सं.] कर्त्ता-क्रिया से युक्त सार्थक पद-समूह जो वक्ता के अभिप्राय का बोधक हो ।

वाक्यविन्यास—संज्ञा पुं. [सं.] वाक्य-रचना ।

वाक्संयम—संज्ञा पुं. [सं.] वाणी पर नियंत्रण रखकर व्यर्थ बातें न करना ।

वाक्सिद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह सिद्धि जिससे कही हुई बात ठीक उतरे ।

वाक्यांश—संज्ञा पुं. [सं.] वाक्य का कुछ अंश ।

वागा—संज्ञा स्त्री. [सं.] लगाम, वल्गा ।

वागीश—वि. [सं.] अच्छा बोलनेवाला, सुवक्ता ।

वागीशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती ।

वागीश्वर—वि. [सं.] अच्छा बोलनेवाला, सुवक्ता ।

वागीश्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती ।

वाग्जाल—संज्ञा पुं. [सं.] बातों का आडंबर ।

वाग्दंड—संज्ञा पुं. [सं.] मौखिक दंड, डाँट-डपट ।

वाग्दत्त—वि. [सं.] जिसको देने की बात कही जा चुकी हो ।

वाग्दत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह कन्या जिसके विवाह की बात मौखिक रूप से पूर्णतया निश्चित हो चुकी हो ।

वाग्दान—संज्ञा पुं. [सं.] सुयोग्य पात्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने का मौखिक निश्चय ।

वाग्देवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वाणी, सरस्वती ।

वाग्दोष—संज्ञा पुं. [सं.] बोलने की उच्चारण-जैसी या व्याकरण-संबंधी त्रुटि ।
वाग्मी—वि. [सं.] अच्छा बोलनेवाला, सुवक्ता ।
वाग्विदग्ध—वि. [सं.] बातचीत में चतुर ।
वाग्विलास—संज्ञा पुं. [सं.] आनंददायी संभाषण ।
वाग्वैदग्ध्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बात करने का कौशल । (२) अलंकारों और चमत्कारपूर्ण उक्तियों के व्यवहार का कौशल ।
वाङ्मय—वि. [सं.] जो पठन-पाठन का विषय हो ।
संज्ञा पुं. साहित्य ।
वाङ्मयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती ।
वाच्—संज्ञा स्त्री. [सं.] वाणी, वाक्य ।
वाचक—वि. [सं.] सूचक, बोधक, द्योतक ।
संज्ञा पुं. नाम, संज्ञा, संकेत ।
वाचन—संज्ञा पुं. [सं.] पढ़ना, बाँचना ।
वाचयिता—वि. [सं. वाचयितृ] बाँचनेवाला, वाचक ।
वाचस्पति—संज्ञा पुं. [सं.] बृहस्पति ।
वाचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वाणी । (२) वचन ।
वाचाबंध—वि. [सं. वाचाबद्ध] प्रतिज्ञाबद्ध, वचनबद्ध । उ.—वाचाबंध कंस करि छाँड़यो तब बसुदेव पतीजे हो । याके गर्भ अवतरे जे सुत सावधान ह्वै लीजे हो ।
वाचाबद्ध—वि. [सं.] वचन या प्रतिज्ञाबद्ध ।
वाचाल—वि. [सं.] (१) बकवादी । (२) वाक्पटु ।
वाचालता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बकवादीपन । (२) वाक्पटुता ।
वाचिक—वि. [सं.] (१) वाणी-संबंधी । (२) वाणी से किया हुआ । (३) संकेत द्वारा सूचित ।
वाची—वि. [सं. वाचिन्] बोधक, सूचक ।
वाच्य—वि. [सं.] जिसका बोध शब्द-संकेत अथवा अभिधा द्वारा हो, अभिधेय ।
वाच्यार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] वह अभिप्राय जो शब्दों के सामान्य अर्थ द्वारा ही सूचित हो, मूल शब्दार्थ ।
वाजपेय—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ-विशेष ।
वाजपेयी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वाजपेय यज्ञ करनेवाला । (२) अत्यंत कुलीन व्यक्ति । (२) कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक उपाधि ।
वाजिब—वि. [अ.] ठीक, उचित ।
वाजिबी—वि. [अ.] ठीक, उचित ।
वाजिमेध—संज्ञा पुं. [सं.] अश्वमेध ।
वाजिराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तम अश्व । (२) उच्चैःश्रवा ।
वाजी—संज्ञा पुं. [सं. वाजिन्] घोड़ा, अश्व ।
वाजीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] अश्व के समान रति-शक्तिवाला प्रयोग ।
वाट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मार्ग । (२) मंडप ।
वाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाग, बगीचा ।
वाड़व—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्री आग ।
वाड़वागि, वाड़वाग्नि—संज्ञा स्त्री. [सं. वाड़वाग्नि] समुद्री आग ।
वाण—संज्ञा पुं. [सं.] तीर ।
वाणिज्य—संज्ञा पुं. [सं.] व्यापार ।
वाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरस्वती । (२) वाक्-शक्ति । उ.—इतनी कहत गरुण पर चढ़िकै तुरतहिं मधुबन आए । कंबु कपोल परसि बालक के वाणी प्रगट कराये । (३) मुँह से निकले शब्द, वचन । उ.—सबन सुनाइ कही यह वाणी इह नँदनंद कह्यौ—२५७८ । (४) जीभ, रसना । उ.—नैन निरखि चकित ह्वै गये, मन वाणी दोऊ थकित रये । (५) स्वर ।
वात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हवा, वायु । (२) शरीर के भीतर की वायु जो श्वास, प्रश्वास आदि कार्यों का मूल है और जिसके कुपित होने से अनेक रोग होते हैं ।
वातज—वि. [सं.] वायु द्वारा उत्पन्न ।
वातपट—संज्ञा पुं. [सं.] ध्वजा, पताका ।
वातपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हनुमान । (२) भीम ।
वातायन—संज्ञा पुं. [सं.] झरोखा, गवाक्ष ।
वातावरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह हवा जो पृथ्वी को घेरे है । (२) आसपास की परिस्थिति ।
वातुल—वि. [सं.] बावला, उन्मत्त ।
वातैं—सर्व. [हिं. वा + तैं] उससे । उ.—वातैं दूनी देह धरी, असुर न सक्यो सम्हारि—४३१ ।
वात्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] बवंडर ।

वात्सल्य–संज्ञा पुं. [सं.] वह स्नेह जो माता, पिता, गुरु आदि में पुत्र, पुत्री, शिष्य आदि छोटों के प्रति होता है।

वात्सल्य-भाजन—वि. [सं.] स्नेहपात्र।

वाद—संज्ञा पुं. [सं.] दलील, तर्क, शास्त्रार्थ।

वादक—वि. [सं.] (१) तर्क करनेवाला। (२) बाजा बजानेवाला।

वादग्रस्त—वि. [सं.] जिसके संबंध में मतभेद हो।

वादत—क्रि. अ. [हिं. वादना] कहना, बोलना। उ. वादत बड़े सूर की नाईं अबहिं लेत हौं प्रान तुम्हारो —२५९०।

वादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाजा। (२) बाजा बजाने की क्रिया।

वादना–क्रि. स. [सं. वादन] बाजा बजाना।
क्रि. अ. कहना, बोलना।

वादप्रतिवाद—संज्ञा पुं. [सं.] बहस, वादविवाद।

वादरायण—संज्ञा पुं. [सं.] वेदव्यास।

वादरायणि—संज्ञा पुं. [सं.] व्यास-पुत्र शुकदेव।

वादविवाद–संज्ञा पुं. [सं.] बहस, तर्क-वितर्क।

वादा—संज्ञा पुं. [अ. वाइदा] वचन, प्रतिज्ञा।
मुहा०—वादा करना—प्रतिज्ञा करना, वचन देना। वादा पूरा करना—वचन के अनुसार काम करना। वादा रखाना—प्रतिज्ञा करा लेना।

वादि—संज्ञा पुं. [सं.] विद्वान, पंडित।
अव्य. [हिं. बादि] व्यर्थ, निःप्रयोजन।

वादित—वि. [सं.] बजाया हुआ।

वादित्र—संज्ञा पुं. [सं.] बाजा, वाद्य।

वादिहि–अव्य. [हिं. बादि+हि] व्यर्थ ही, निष्प्रयोजन। उ.—वादिहि मरि जैहै पल भीतर कहे देत नहिं दोष हमारो—२५९०।

वादी—संज्ञा पुं. [सं. वादिन्] (१) बोलनेवाला। (२) अभियोग चलानेवाला।

वाद्य—संज्ञा पुं. [सं.] बाजा।

वाद्यक—संज्ञा पुं. [सं.] बाजा बजानेवाला।

वान—संज्ञा पुं. [सं. वाण] तीर, बाण।

वानप्रस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] मनुष्य जीवन के चार आश्रमों में तीसरा आश्रम जो गार्हस्थ्य के पीछे और संन्यास के पहले पड़ता है। इसमें वैराग्य का अभ्यास किया जाता है। उ.—आपुहि वानप्रस्थ ब्रह्मचारी—३४४२।

वानर—संज्ञा पुं. [सं.] बंदर।

वानरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बँदरिया।

वाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोना। (२) खेत।

वापक—संज्ञा पुं. [सं.] बीज बोनेवाला।

वापन—संज्ञा पुं. [सं.] बीज बोने का कार्य।

वापस—वि. [फ़ा.] लौटा हुआ।

वापसी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. वापस] लौटने या लौटाने की क्रिया या भाव।

वापिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बावली, जलाशय, वापी।

वापी—संज्ञा स्त्री. [सं.] छोटा जलाशय, बावली।

वाम—वि. [सं.] (१) बायाँ। उ.—वाम भाग की छवि टरत न मन तैं—२३५३। (२) प्रतिकूल। (३) टेढ़ा, कुटिल। (४) दुष्ट, नीच, बुरा।
संज्ञा पुं. (१) कामदेव (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।
संज्ञा स्त्री. [सं. वामा] स्त्री। उ.—ताही माग्यो हेत करि इन, हँसति ब्रज की वाम—२५८२।

वामदेव—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

वामदेवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

वामन—वि. [सं.] छोटे डील का, बौना।
संज्ञा पुं. विष्णु का पाँचवाँ अवतार जो राजा बलि को छलने के लिए अदिति के गर्भ से हुआ था।

वाममार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] वेद-मार्ग के प्रतिकूल एक तांत्रिक मत जिसमें पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन जैसी वर्जित बातों का ही विधान रहता है।

वामांगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्नी।

वामा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नारी। (२) दुर्गा।

वामाचार—संज्ञा पुं. [सं.] वेदमार्ग के प्रतिकूल एक तांत्रिक मत जिसमें पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन जैसी वर्जित बातों का विधान रहता है।

वामावर्त—वि. [सं.] जो (परिक्रमा आदि) बायीं ओर

से आरंभ हो। (२) जिसमें बायीं ओर घुमाव या भँवरी हो।
वाय—संज्ञा स्त्री. [सं. वायु] हवा।
वायन—संज्ञा पुं. [सं.] पकवान आदि जो विशेषोत्सव के लिए बनाया जाय।
वायविक—वि. [सं.] वायुसंबंधी।
वायवी, वायव्य—वि. [सं.] (१) वायु-संबंधी (२) वायु से बना हुआ। (३) जिसका देवता वायु हो।
संज्ञा पुं. पश्चिमोत्तर दिशा जिसका अधिपति वायु है।
वायस—संज्ञा पुं. [सं. वायस्] कौआ। उ.—(क) बाँह थकी वायस हीं उड़ावत कब देखौं उनहार—२७६९। (ख) काज सरे दुख गए कहौ धौं का वायस की पीर—३१००।
वायु—संज्ञा स्त्री. [सं.] हवा, वात।
वायुपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हनुमान। (२) भीम।
वायुभक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं.] साँप, सर्प।
वायुमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश।
वार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) द्वार। (२) रोक। (३) अवसर। (४) सप्ताह का दिन। (५) दाँव, बारी। (६) आघात। उ.—जहाँ बरन-बरन बादर बानैत अरु दामिनि करि करि वार—१० उ-२१। (७) (नदी, समुद्र आदि का) किनारा।
वारक—वि. [सं.] निषेध करनेवाला।
वारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मनाही, निषेध। (२) रुकावट, बाधा। (३) अंकुश। (४) हाथी।
वारत—क्रि. स. [हिं. वारना] निछावर करता है।
वारति—क्रि. स. [हिं. वारना] निछावर करती है। उ.—(क) छुद्रावली उतारति कटि तैं सैंति धरति मन ही मन वारति—५११। (ख) छवि निरखति तनु वारति अपनो—८७७। (ग) चितै रही मुख इंदु मनोहर या छवि पर वारति तन को।
वारतिय—संज्ञा स्त्री. [सं. वारस्त्री] वेश्या।
वारद—संज्ञा पुं. [सं. वारिद] बादल, मेघ।
वारदात—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) दुर्घटना। (२) दंगा-फसाद। (३) घटना-संबंधी समाचार।
वारन—संज्ञा स्त्री. [हिं. वारना] निछावर।
संज्ञा पुं. [सं. वंदन] बंदनवार। उ.—घर घर भुजा पताका बानी। तोरन वारन बासर ठानी।
संज्ञा पुं. [सं. वारण] हाथी। उ.—बारबार संकर्षण भाषत वारन बनि वारन करि त्यारो—२५९०।
वारना—क्रि. स. [हिं. उतारना] निछावर करना।
संज्ञा पुं. निछावर।
वारनारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।
वारने—संज्ञा पुं. [हिं. वारना] निछावर। उ.—लटकन सीस कंठ मनि भ्राजत....कोटि वारने गै री।
प्र०—वारने करिया—निछावर कर दिये। उ.—उपमा काहि देउँ को लायक मन्मथ कोटि वारने करिया—६८८। वारने जाऊँ—निछावर हो जाऊँ, बलि जाऊँ। उ.—कान्ह प्यारे वारने जाऊँ स्यामसुंदर मूरति पर—१५७६। जैए वारने—निछावर होइए, बलि जाइए। उ.—स्याम बरन घन सुंदर ऐसे नट-नागर के जैए री वारने—पृ. ३४५ (३७)।
वारनौ—क्रि. स. [हिं. उतारना] निछावर करना।
संज्ञा पुं. निछावर।
वारपार—संज्ञा पुं. [सं. अवर+पार] (१) (नदी आदि का) इस किनारे से उस किनारे तक पूरा विस्तार। (२) यह छोर और वह छोर, अंत। उ.—(क) यह छवि नहिं वार-पार—६१९। (ख) सूर स्याम अँखियनि देखति जाको वार न पार—१३११।
अव्य. (१) इस किनारे से उस किनारे तक। (२) एक ओर से दूसरी ओर तक।
वारफेर—संज्ञा स्त्री. [हिं. वारना+फेरना] (१) वह धन जो विशेष अवसरों पर वर-वधू या अन्य प्रियजनों के सिर से उतार कर नाई, डोम आदि को दिया जाय। (२) निछावर।
वारमुखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।
वारवधु, वारवधू—संज्ञा स्त्री. [सं. वारवधू] वेश्या।
वारस्त्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।
वारांगणा, वारांगना—संज्ञा स्त्री. [सं. वारांगणा] वेश्या।
वारांनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।
वारा—संज्ञा पुं. [सं. वारण] बचत, लाभ।

संज्ञा पुं. [हिं. वार] इधर का किनारा । उ.—सिंधु समान पार ना वारा—१०१८ ।

वि. [हिं. वारना] जो निछावर हुआ हो ।

मुहा०—वारा जाना या होना—निछावर होना ।

वाराणसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी का एक नाम जिसकी व्युत्पत्ति कुछ लोग वरुणा और असी नदियों के नाम पर, कुछ (वर+अनस्=जल) 'पवित्र जलवाली पुरी' और कुछ 'उत्तम रथोंवाली पुरी' बतलाते हैं ।

वारान्यारा—संज्ञा पुं. [हिं. वार+न्यारा] (१) निर्णय, निश्चय । (२) निबटेरा, अंत ।

वाराह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शूकर । (२) विष्णु का तीसरा अवतार ।

वारि—संज्ञा पुं. [सं.] पानी, जल ।

क्रि. स. [हिं. वारना] निछावर करके । उ.—देति अभूषन वारि वारि सब—१०-७८ ।

वारिए—क्रि. स. [हिं. वारना] निछावर कीजिए । उ. —सूर ऐसे बदन ऊपर वारिए तन प्रान—३५० ।

वारिचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जलजंतु । (२) मछली ।

वारिज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल । (२) मछली । (३) शंख । (४) घोंघा । (५) कौड़ी । (६) खरा सोना ।

वारिजात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल । (२) शंख ।

वारित—वि. [सं.] जो रोका गया हो, निवारित ।

वारिद—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

वारिधर—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

वारिधि—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।

वारिनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेघ । (२) समुद्र । (३) वरुण ।

वारिनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।

वारियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. वारी] निछावर ।

वारिरुह—संज्ञा पुं. [सं.] कमल ।

वारिवर्त—संज्ञा पुं. [सं. वारि+वर्त्त] एक मेघ का नाम । उ.—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लाए । जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त बज्रवर्त आगिवर्तक जलद संग ल्याए—९४४ ।

वारिवाह—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ, बादल ।

वारिस—संज्ञा पुं. [अ.] उत्तराधिकारी ।

वारींद्र—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।

वारी—वि. स्त्री. [हिं. वारा] निछावर । उ.—मोहन के मुख ऊपर वारी—१०-३० ।

संज्ञा पुं. [सं. वारि] पानी, जल । उ.—अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को वारी - ३३४० ।

वारीफेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. वारना+फेरना] (१) विशेष अवसरों पर दूल्हा-दुलहिन अथवा अन्य प्रियजनों के ऊपर से कुछ धन उतार कर नाई डोम आदि को देना । (२) निछावर ।

वारीश—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।

वारुणी - संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मदिरा । (२) वरुण की स्त्री, वरुणानी । (३) पश्चिम दिशा । (४) वृंदावन के एक कदंब का रस जो वरुण की कृपा से बलराम को मिला था । उ.—वारुणी वलराम पियारी—१० उ०-३९ ।

वारौं—क्रि. स. [हिं. वारना] निछावर कर दूँ ।

वार्त्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जनश्रुति । (२) वृत्तांत । (३) विषय, प्रसंग । (४) बातचीत ।

वार्तालाप—संज्ञा पुं. [सं.] बातचीत ।

वार्तिक—संज्ञा पुं. [सं. वार्त्तिक] किसी ग्रंथ के क्लिष्ट अंश को स्पष्ट करने को लिखा गया भाष्य ।

वार्द्धक्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बुढ़ापा । (२) वृद्धि ।

वार्षिक—वि. [सं.] (१) वर्ष संबंधी । (२) वर्ष भर का । (३) प्रति वर्ष होनेवाला । (४) वर्षाकाल में होनेवाला ।

वार्ष्णेय—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण ।

वालिकुमार—संज्ञा पुं. [हिं. वाली+कुमार] अंगद ।

वालदैन—संज्ञा पुं. [अ.] माता-पिता ।

वाला—प्रत्य. [देश.] स्वामित्व, संबंध, अधिकार आदि का सूचक एक प्रत्यय ।

वालिद—संज्ञा पुं. [अ.] पिता ।

वालिदा—संज्ञा स्त्री. [अ.] माता ।

वाली—संज्ञा पुं. [सं. वालिन्] वानरराज जो सुग्रीव का बड़ा भाई और अंगद का पिता था ।

प्रत्य. स्त्री. [हिं. वाला] स्वामित्व, संबंध, अधिकार आदि सूचक एक स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय।

वालुका—संज्ञा स्त्री. [सं.] रेत, बालू।

वाल्मीकि—संज्ञा पुं. [सं.] एक मुनि जो संस्कृत रामायण के रचयिता और आदि कवि कहे जाते हैं। इनका आश्रम तमसा नदी के किनारे था।

वावैला—संज्ञा पुं. [अ.] (१) रोना-पीटना। (२) शोरगुल, कोलाहल। (३) झगड़ा।

वाष्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आंसू। (२) भाप।

वासंती—वि. [सं. वसंत] वसंत-संबंधी।

वास - संज्ञा पुं. [सं.] (१) निवास। (२) घर।

वासकसज्जा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो नायक से मिलने को घर आदि सजाकर और स्वयं भी सज-धज कर बैठी हो।

वासना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इच्छा। (२) भावना।

वासर - संज्ञा पुं. [सं.] (१) दिन, दिवस। उ.—आगम सुख उपचार विरह ज्वर वासर ताप नसावते—२७-३५। (२) वह घर जिसमें नवदंपति पहली रात को सोते हैं।

वासव—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

वासा संज्ञा पुं. [सं. वास] निवास-स्थान।

वासित—वि. [सं.] (१) सुगंधित किया हुआ। (२) जो ताजा न हो, बासी।

वासिल—वि. [अ.] (१) पहुँचाया हुआ। (२) मिला हुआ।

यौ.—वासिल बाकी—वसूल और बाकी रकम। उ.—वासिल बाकी स्याहा मुजमिल सब अधरम की बाकी। चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी सरन गहूँ मैं काकी —१-१४३।

वासी—वि. [सं. वासिन्] रहने-बसनेवाला।

वासु—संज्ञा पुं. [सं. वास] रहना, निवास। उ.—विरहिनी वासु क्यों करै पावस काल प्रतीत—२८७६।

वासुकी—संज्ञा पुं. [सं.] आठ नागराजों में दूसरा जिसकी नेति बना कर सागर मथा गया था। उ.—वासुकी (बासुकी) नेति अरु मंदराचल रई कमठ मैं आपनी पीठि धारौं—८-८।

वासुदेव—संज्ञा पुं. [सं.] वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण।

वासुदेवक—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का उपासक।

वासौं - सर्व. [हिं. वा + सौं] उससे। उ.—पै वासौं उत्तर नहिं लह्यौ—१-२९०।

वास्तव - वि. [सं.] प्रकृत, यथार्थ, सत्य।

यौ०—वास्तव में— सचमुच।

वास्तविक—वि. [सं.] (१) सत्य। (२) ठीक।

वास्तविकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] यथार्थता।

वास्ता—संज्ञा पुं. [अ.] लगाव, संबंध।

वास्तु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर। (२) इमारत।

वास्ते— अव्य. [अ.] (१) लिए निमित्त। (२) हेतु।

वाह—संज्ञा पुं. [सं.] वाहन, सवारी।

अव्य. [फ़ा.] (१) प्रशंसासूचक शब्द। (२) आश्चर्यसूचक शब्द। (३) आनंदसूचक शब्द। (४) घृणासूचक शब्द।

वाहक— संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोझ ढोनेवाला। (२) सारथी।

वाहन— संज्ञा पुं. [सं.] सवारी।

वाहवाही—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] प्रशंसा, स्तुति।

वाहि—सर्व. [हिं. वा + हि] उसे। उ.—सोवैं तब जब वाहि सुवावै—५-३।

वाहिनी— संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सेना जिसमें ८१ हाथी ८१ रथ, २४३ घोड़े और ४०५ पैदल हों। (२) सेना।

वाहिनीपति संज्ञा पुं. [सं.] सेनापति।

वाहियात—वि. [अ. वाही + फ़ा. यात] (१) बेकार, व्यर्थ। (२) बुरा।

वाहीं—सर्व. [हिं. वा + हीं] उसही में, उसमें ही। उ. —लख चौरासी जोनि भरमिकै फिरि वाहीं मन दीनौ—१-६५।

वाही - वि. [हिं. वा + ही] उस ही। उ. (क) बरु वाही दिन काहे न मारी—१०-११। (ख) वाही भाँति बरन-बपु वैसेहि - ४३८।

वि. [अ.] (१) सुस्त। (२) निकम्मा। (३) मूर्ख। (४) आवारा। (५) बे ठिकाने का।

वाहीतबाही—संज्ञा स्त्री. [अ. वाही + तबाही] अंडबंड बातें, गाली-गलोज ।
बाहु—संज्ञा स्त्री. [सं.] भुजदंड ।
बाहुमूल—संज्ञा पुं. [सं.] कांख, बगल ।
बाहुल्य - संज्ञा पुं. [सं.] अधिकता ।
बाह्य—क्रि. वि. [सं.] (१) बाहर । (२) अलग ।
बाह्यांतर—क्रि. वि. [सं.] भीतर और बाहर ।
बाह्लीक—संज्ञा पुं. [सं.] गांधार के निकट एक प्रदेश ।
विंद—संज्ञा पुं. [सं. वृंद] समूह ।
संज्ञा पुं. [सं. विंदु] बुंदा ।
विंदक - वि. [सं.] (१) पानेवाला । (२) जाननेवाला ।
विंदु- संज्ञा पुं. [सं. बिंदु] (१) बूँद । (२) बिंदी । (३) अनुस्वार । (४) शून्य । (५) कण ।
विंदुमाधव—संज्ञा पुं. [सं.] काशी की एक विष्णु मूर्ति जिसके नाम का पूर्वार्द्ध अग्निबिंदु ऋषि के नाम का है ।
विंदुर—संज्ञा पुं. [सं. विंदु] बुंदकी ।
विंद्य, विंध्य—संज्ञा पुं. [सं. विंध्य] विंध्य पर्वत ।
विंध्यवासिनी - संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध देवी मूर्ति जो मिर्जापुर में विंध्य के एक टीले पर अवस्थित है ।
विंध्याचल—संज्ञा पुं. [सं.] विंध्य पर्वत ।
विंश—वि. [सं.] बीसवाँ ।
विंशत—वि. [सं.] बीस ।
विंशति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बीस की संख्या ।
वि—उप [सं.] (१) विशेष । (२) वैरूप्य । (३) निषेध, हीनता ।
विकच—वि. [सं.] (१) खिला हुआ, विकसित । (२) बिना बाल का, केशरहित ।
विकट—वि. [सं.] (१) विकराल, भयंकर । (२) टेढ़ा, वक्र । उ.—भृकुटी विकट निकट नैननि के राजति अति वर नारि । (३) मुश्किल, कठिन । उ.—अन-समुझे अपराध लगावति विकट बनावति बात । (४) दुर्गम । (५) दुस्साध्य ।
विकरार—वि. [सं. विकराल] भयंकर, भीषण । उ.—कियौ युद्ध अति ही विकरार ।
वि. [फ़ा. बेक़रार] बेचैन, व्याकुल ।
विकराल—वि. [सं.] भीषण, भयानक ।
विकर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] तीर, बाण ।
विकर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खींचना । (२) विभाग । (३) एक शास्त्र जिसमें आकर्षण करने की विद्या का वर्णन है ।
विकल - वि. [सं.] (१) बेचैन, व्याकुल । (२) कलाहीन । (३) खंडित । (४) असमर्थ । (५) अस्वाभाविक ।
विकलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बेचैनी, व्याकुलता ।
विकलांग - वि. [सं.] जिसका कोई अंग खंडित हो ।
विकलाना—क्रि. अ. [सं. विकल + हि. आना] व्याकुल होना ।
विकलानी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. विकलाना] व्याकुल हुई । उ.– निठुर बचन सुनि स्याम के युवती विक-लानी ।
विकलानो - क्रि. अ. [सं. विकल + हि. आना] व्याकुल होना ।
विकलाहीं—क्रि. अ. [हि. विकलाना] व्याकुल हुईं । उ.—एक एक ह्वै ढूँढ़हीं तरुनी विकलाहीं ।
विकलित—वि. [सं.] (१) व्याकुल । (२) दुखी ।
विकल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भ्रम, धोखा । (२) निश्चय के विरुद्ध सोच-विचार । (३) विपरीत या विरुद्ध कल्पना । (४) कई विधियों का मिलना । (५) चित्त-वृत्ति-विशेष । (६) समाधि-विशेष ।
विकल्पित—वि. [सं.] (१) संदिग्ध । (२) अनियमित ।
विकल्मष - वि. [सं.] पापरहित, निष्पाप ।
विकसन - संज्ञा पुं. [सं.] खिलना, प्रस्फुटन ।
विकसना, विकसनो—क्रि. अ. [सं. विकास] विकसित होना ।
विकसाना, विकसानो - क्रि. स. [हि. विकसना] विक-सित करना, खिलाना ।
विकसित—वि. [सं.] खिला हुआ ।
विकार संज्ञा पुं. [सं.] (१) रूप, रंग आदि का बदलना । (२) एक वर्ण के स्थान में दूसरा हो जाना । (३) बिग-ड़ना । (४) दोष । उ.—(क) हौं पतित अपराध-पूरन, भरयौ कर्म-विकार—१-१२६ । (ख) सब बिसरि गए मन-बुधि-विकार—९-१६६ । (५) वृत्ति-विशेष,

वासना। उ.—कह्यौ तुमको ब्रह्म ध्यावो छाँड़ि विषै विकार—१९७५। (६) परिणाम। (७) उपद्रव। (८) हानि।

वि. दोषयुक्त, अनुचित, असंगत। उ.—बोलहि वचन विकार अहो हरि होरी है—२४२३।

विकारि, विकारी—वि. [सं. विकारिन्] (१) जिसमें विकार हो। (२) क्रोधादि दुष्ट वासनाओं से युक्त। उ.—रे रे अंध बीसहूँ लोचन पर-तिय-हरन विकारी (विकारी)—९-१३२। (३) जिसमें विकार या परिवर्तन हुआ हो, परिवर्तित।

विकाश, विकास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विस्तार, वृद्धि। (२) खिलना, प्रस्फुटन।

विकासना, विकासनो—क्रि. स. [सं. विकास] (१) निकालना, प्रकट करना। (२) खिलाना, विकसित या प्रस्फुटित करना।

क्रि. अ. (१) प्रकट होना। (२) विकसित होना।

विकास्यो, विकास्यौ—क्रि. स. [हिं. विकासना] खिलाया, विकसित या प्रस्फुटित किया। उ.—जंगम जड़ थावर चर कीन्हे पाहन कमल विकास्यो—पृ. ३४७ (५२)।

विकीर्ण—वि. [सं.] (१) चारों ओर बिखरा, फैला या छितराया हुआ। (२) प्रसिद्ध, विख्यात।

विकुंठ—संज्ञा पुं. [सं. वैकुंठ] बैकुंठ लोक।

वि. [सं.] जो कुंठित न हो, तेज धारवाला।

विकुक्षि—वि. [सं.] तोंदवाला, तोंदियल।

विकृत—वि. [सं.] (१) बिगड़ा हुआ। (२) भद्दा, कुरूप। (३) अस्वाभाविक। (४) अपूर्ण।

विकृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिगाड़, खराबी। (२) बिगड़ा हुआ रूप। (३) विकार (४) क्षोभ।

विक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु का एक नाम। (२) बल, पराक्रम। (३) विक्रमादित्य।

वि. श्रेष्ठ, उत्तम।

विक्रमादित्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उज्जयिनी का एक प्रतापी राजा। (२) शकों को पराजित करनेवाला वह राजा जिसकी विजय की स्मृति में ईसा पूर्व ५७ वर्ष से विक्रम संवत् चलना माना जाता है।

विक्रमाब्द—संज्ञा पुं. [सं.] विक्रम संवत्।

विक्रमी—वि. [सं.] (१) विक्रम-संबंधी। (२) पराक्रमी।

विक्रय—संज्ञा पुं. [सं.] बेचना, बिक्री।

विक्रयी—वि. [सं.] बेचनेवाला।

विक्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बेचने की क्रिया या भाव। (२) बेचने से मिलनेवाला धन।

विक्रेता—वि. [सं.] बेचनेवाला।

विक्षत—वि. [सं.] जिसके क्षत लगा हो, घायल।

विक्षिप्त—वि. [सं.] (१) फेंका या बिखराया हुआ। (२) त्यागा हुआ, त्यक्त। (३) पागल। (४) घबराया हुआ।

विक्षिप्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पागलपन।

विक्षुब्ध—वि. [सं.] जो क्षुब्ध हो।

विक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फेंकने या बिखरने की क्रिया या भाव। (२) झटका देने की क्रिया या भाव। (३) चंचल करने की क्रिया या भाव। (४) धनुष चढ़ाने की क्रिया या भाव। (५) एक अस्त्र। (६) बाधा, विघ्न।

विक्षोभ—संज्ञा पुं. [सं.] चित्त की उद्विग्नता।

विक्षोभी—वि. [सं. विक्षोभिन्] जो क्षोभ उत्पन्न करे।

विख—संज्ञा पुं. [सं. विष] जहर, विष।

विखाण, विखान—संज्ञा पुं. [सं. विषाण] सींग।

विखायँध—संज्ञा स्त्री. [सं. विष + हिं. आयँध] जहर की सी कड़वी गंध।

विख्यात—वि. [सं.] प्रसिद्ध। उ.—यक्ष प्रबल ब्रह्म भुव मंडल तिन मारयो निज भ्रात। तिनके काज अंस हरि प्रगटे ध्रुव जगत विख्यात—सारा. ८१।

विख्याति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसिद्धि।

विख्यापन—संज्ञा पुं. [सं.] प्रसिद्ध करने की क्रिया या भाव।

विगंध—वि. [सं.] (१) जिसमें गंध न हो। (२) जिसमें बुरी गंध हो, दुर्गंधयुक्त।

विगत—वि. [सं.] (१) बीता हुआ। (२) बीते हुए से पहले का। (३) जो कहीं चला गया हो। (४) कांतिहीन। (५) रहित, विहीन। उ.—प्रमुदित जनक निरखि अंबुज मुख विगत नयन मन पीर।

विगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गति, दुर्दशा।

विगलित—वि. [सं.] (१) जो गिर गया हो। (२) जो टपक या चूकर बह गया हो। (३) जो ढीला, शिथिल या बिखरा हुआ हो। उ.—(क) चीरी डोरी विगलित केस—१८२२। (ख) कच विगलित माला गिरी—१८२८। (४) बिगड़ा हुआ।

विगुण—वि. [सं.] गुण रहित।

विग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विभाग। (२) यौगिक अथवा समस्त पदों के शब्दों को अलग करना। (३) कलह, झगड़ा। (४) युद्ध, समर। उ.—निसि वासर कै विग्रह आयो—२८२६। (५) विपक्षियों में फूट डालना। (६) आकृति। (७) शरीर। (८) मूर्ति। (९) शृंगार।

विग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] रूप धारण करना।

विग्रही—वि. [सं. विग्रहिन्] (१) झगड़ा करनेवाला। (२) युद्ध या समर करनेवाला।

विघटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संयोजित भाग या अंग को अलग करना। (२) तोड़ना-फोड़ना। (३) नष्ट करना।

विघटित वि. [सं.] (१) अलग किया हुआ। (२) तोड़ा-फोड़ा हुआ। (३) नष्ट-भ्रष्ट।

विघन—संज्ञा पुं. [सं. विघ्न] बाधा।

विघात - संज्ञा पुं. [सं.] (१) आघात, प्रहार। (२) नाश। (३) बाधा, विघ्न। (४) विफलता।

विघातक—वि. [सं.] विघ्न डालनेवाला, बाधक।

विघाती—वि. [सं.] (१) बाधक। (२) घातक।

विघ्न—संज्ञा पुं. [सं.] बाधा, रुकावट, अंतराय।

विघ्नकारी—वि. [सं.] बाधा डालनेवाला।

विघ्ननाशक—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

विचक्षण—वि. [सं.] (१) प्रकाशमान। (२) निपुण, कुशल। (३) पंडित, विद्वान। (४) बुद्धिमान।

विचच्छन—संज्ञा पुं. [सं. विचक्षण] चतुर, बुद्धिमान।

विचरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना। (२) पर्यटन।

विचरत—क्रि. अ. [हिं. विचरना] घूमता-फिरता है। उ.—रामचरन धरि हृदय मुदित मन विचरत फिरत निसंक।

विचरति—क्रि. अ. [हिं. विचरना] घूमती-फिरती है। उ.—विचरति है आन गृह-गृह तरे—२५३०।

विचरन—संज्ञा पुं. [सं. विचारना] (१) चलना। (२) घूमना-फिरना, पर्यटन।

प्र.—विचरन लागे—घूमने-फिरने लगे। उ.—भोग समग्री जुरी अपार। विचरन लागे सुख संसार।

विचरना—क्रि. अ. [सं. विचरण] (१) चलना। (२) घूमना-फिरना, पर्यटन करना।

विचरनि—संज्ञा स्त्री. [सं. विचरण] चलने या घूमने-फिरने की क्रिया या भाव।

विचरे—क्रि. अ. [हिं. विचरना] घूमे-फिरे जीवन बिताया, काल-यापन किया। उ.—पाछे करि संन्यास जगत में विचरे परम उदार—सारा. ८७।

विचल—वि. [सं.] (१) हिलता हुआ। (२) अस्थिर। (३) स्थान से डिगा हुआ। (४) प्रतिज्ञा या निश्चय या हटा हुआ।

मुहा०—मन का चल-विचल होना—चित्त का चंचल या अस्थिर होना।

विचलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंचलता, अस्थिरता। (२) व्याकुलता, घबराहट।

विचलना, विचलनो—क्रि अ. [सं. विचलन] (१) स्थान से हट जाना। (२) अधीर होना, घबराना। (३) वचन या संकल्प पर दृढ़ न रहना।

विचलाना, विचलानो - क्रि. स. [सं. विचलन] (१) विचलित या चंचल करना। (२) घबरा देना, स्थिर न रहने देना।

विचलित—वि. [सं.] (१) अस्थिर, चंचल। (२) वचन या निश्चय से डिगा हुआ।

विचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निश्चय, सोची हुई बात। (२) ख्याल, भावना। (३) अभियोग की सुनवाई और निर्णय।

विचारक – वि. [सं.] (१) विचार करनेवाला। (२) निर्णायक, न्यायकर्ता।

विचारणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विचार करने की क्रिया।

विचारणीय—वि. [सं.] (१) जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो। (२) जो सिद्ध या प्रमाणित न हो।

विचारना—क्रि. अ. [सं. विचार] (१) सोचना-समझना। (२) पता लगाना।

विचारी - वि. [सं. विचारिन्] (१) विचार करनेवाला। (२) विचरण करनेवाला।

विचि—संज्ञा स्त्री. [सं.] तरंग, लहर।

विचित्र - वि. [सं.] (१) कई रंगोंवाला। (२) विचक्षण, असाधारण। (३) चकित करनेवाला। (४) सुंदर। उ.—भूषन भवन विचित्र देखियत सोभित सुन्दर अंग—२५६१।

विचित्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अद्भुत होने का भाव।

विचित्रवीर्य—संज्ञा पुं. [सं.] राजा शांतनु का एक पुत्र जिसका विवाह काशिराज की दो पुत्रियों अंबिका और अंबालिका के साथ हुआ था। विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा पत्नियों से द्वैपायन ने नियोग करके धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये थे।

विच्छिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विच्छेद। (२) कमी। (३) एक हाव जिसमें नारी सहज श्रृंगार से ही पुरुष को मोहने की चेष्टा करती है।

विच्छिन्न—वि. [सं.] (१) विभक्त। (२) जुदा, अलग। (३) जिसका विच्छेद हुआ हो।

विच्छेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अलग करने की क्रिया। (२) क्रम का टूट जाना। (३) नाश। (४) वियोग।

विछलना, विछलनो—क्रि. अ. [हिं. फिसलना] (१) फिसलना। (२) अस्थिर, चंचल या विचलित होना।

विछेद—संज्ञा पुं. [सं. विच्छेद] विछोह, वियोग, विरह। उ.—सूर स्याम के परम भावती पलक न होत विछेद —पृ. ३३७ (६६)।

विछोई—वि. [हिं. विछोह + ई] विरही, वियोगी।

विछोह—संज्ञा पुं. [सं. विच्छेद] वियोग, विरह।

विजन—वि. [सं.] जनरहित, निर्जन।

संज्ञा पुं. [सं. व्यजन] पंखा, बीजन।

विजनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निर्जनता।

विजना—संज्ञा पुं. [सं. विजन] पंखा।

विजय—संज्ञा स्त्री. [सं.] जय, जीत।

संज्ञा पुं. विष्णु का एक द्वारपाल जो सनकादि के शाप से हिरण्याक्ष, कुंभकर्ण आदि असुर योनियों में जन्मा था। उ.—जय अरु विजय असुर योनि को भए तीनि अवतार—सारा. ४८।

विजया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भाँग। (२) श्रीकृष्ण की माला का नाम। (३) विजयादशमी।

विजयादशमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आश्विन, शुक्ला दशमी जो क्षत्रियों का प्रसिद्ध त्योहार है।

विजयी—वि. [सं. विजयिन्] जीतनेवाला।

विजाति, विजातीय—वि. [सं.] दूसरी जाति का।

विजित—वि. [सं.] जो जीत लिया गया हो।

विजेता - वि. [सं. विजेतृ] जीतनेवाला।

विजै - संज्ञा पुं. [सं. विजय] जीत, विजय।

विजोग—संज्ञा पुं. [सं. वियोग] विरह, वियोग।

विजोगी—वि. [हिं. वियोगी] विरही, वियोगी।

विजोर—वि. [सं. वि + हिं. जोर] निर्बल। उ.—जीव को सुख दुख तनु सँग होई। जोर विजोर तन के सँग सोई।

विज्जु—संज्ञा स्त्री. [सं. विद्युत] बिजली, विद्युत।

विज्जुलता—संज्ञा स्त्री. [सं. विद्युल्लता] बिजली।

विज्ञ - वि. [सं.] (१) जानकार। (२) पंडित।

विज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जानकारी। (२) पांडित्य।

विज्ञप्त - वि. [सं.] सूचित किया हुआ।

विज्ञप्ति - संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सूचित करने की क्रिया। (२) विज्ञापन।

विज्ञाता—वि. [सं. विज्ञातृ] जो जानता-बूझता हो।

विज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विशिष्ट ज्ञान। (२) विशिष्ट तत्वों का विशिष्ट ज्ञान।

विज्ञानी—वि. [सं. विज्ञानिन्] (१) विशिष्ट ज्ञान रखनेवाला। (२) वैज्ञानिक। (३) आत्मा, ईश्वर आदि के स्वरूपों का ज्ञाता।

विज्ञापक—वि. [सं.] (१) सूचित करनेवाला। (२) विज्ञापन करनेवाला।

विज्ञापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूचना देना। (२) सूचनापत्र, विज्ञप्ति।

विज्ञापना—संज्ञा स्त्री. [सं.] ज्ञात करने की क्रिया।

विज्ञापित—वि. [सं.] (१) जिसकी सूचना दी गयी हो। (२) जिसका विज्ञापन निकाला गया हो।

विट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामी, कामुक। (२) वह नायक जो विषय-भोग में सारी संपत्ति नष्ट कर दे और बात बनाने में कुशल हो।

विटप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेड़, वृक्ष। (२) झाड़ी।

विटपी—संज्ञा पुं. [सं.] पेड़, वृक्ष।

विट्ठल—संज्ञा पुं. [?] विष्णु की एक मूर्ति का नाम।

विडंबना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) किसी को चिढ़ाने के लिए उसकी नकल उतारना। (२) हँसी उड़ाना। (३) डाँटना-डपटना। (४) भाग्य का खिलवाड़।

विडरत—क्रि. अ. [हिं. विडरना] इधर-उधर हो जाता है, भागता है। उ.—(क) विडरत विझुकि जानि रथ तें मृग जनु ससंकि ससि लंगर सारे। (ख) मन गह्यो वै विडरत नाहीं, थकित प्रगट पुकारि - २०२८।

विडरति—क्रि. अ. [हिं. विडरना] भागती फिरती हैं। उ.—द्रुम चढ़ि काहे न टेरौ कान्हा गैयाँ दूरि गई।....। विडरति फिरति सकल बन महियाँ एकै एक भई—६१२।

विडरना, विडरनो—क्रि. अ. [सं. वि.+हिं. डरना] (१) इधर-उधर या तितर-बितर हो जाना। (२) दौड़-भाग मचाना।

विडराना, विडरानो—क्रि. स. [हिं. विड़ारना] (१) इधर-उधर या तितर-बितर करना। (२) दौड़ाना, भगाना। (३) नष्ट करना।

विडरी—क्रि. अ. [हिं. विडरना] इधर-उधर हो गयी, (उचित मार्ग से) हट गयी। उ.—इतने मान व्याकुल भई सजनी आरज पंथहु तें विडरी—२५४४।

विडरे—क्रि. अ. [हिं. विडरना] इधर-उधर या तितर-बितर हो गये। उ.—जानत नहीं कौन गुन यहि तन जाते सब विडरे।

विडारना, विडारनो—क्रि. स. [हिं. विडरना] (१) इधर-उधर या तितर-बितर कर देना। (२) दौड़ाना, भगाना। (३) नष्ट करना।

विडारे—क्रि. स. [हिं. विडारना] नष्ट कर दिये। उ. असुर मारि सब तुरत विड़ारे दीन्हे रुद्र निकेत।

विड़ाल—संज्ञा पुं. [सं.] बिल्ली, मार्जार।

वितंड—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

वितंडा—संज्ञा पुं. [सं.] व्यर्थ का झगड़ा।

वितंत—संज्ञा पुं. [सं.] बिना तार का बाजा।

वित—वि. [सं. विद्] (१) जाननेवाला। (२) चतुर।

वितताना—क्रि. अ. [सं. व्यथा] व्याकुल होना।

विततानी—क्रि. अ. [हिं. वितताना] व्याकुल हुई। उ. (क) देखे आइ तहाँ हरि नाहीं, चितवति जहाँ तहाँ विततानी—८४७। (ख) कहि धौं बात हृदय की मोसों ऐसी तू काहे विततानी—१६५३।

वितताहीं—क्रि. अ. [हिं. वितताना] व्याकुल होती हैं। उ.—सूर स्याम रस भरी गोपिका बन में यों वितताही—११६४।

वितन, वितनु—वि. [सं. वितनु] जो बहुत सूक्ष्म हो। संज्ञा पुं. कामदेव।

वितपन्न—वि. [सं. व्युत्पन्न] (१) दक्ष, प्रवीण, कुशल। उ.—(क) सूरज प्रभु वितपन्न कोक गुन ताते हरि-हरि ध्यावति। (ख) कोक कला वितपन्न भई हौ कान्ह रूप तनु आधा—१४३७। (ग) कोक कला वितपन्न परस्पर देखत लज्जित काम—पृ. ३५१ (७१)। (२) विकल, व्याकुल। उ.—उनहिं मिले वितपन्न भई तिनु वै बिन गये भुलाइ—१२६९।

वितरक—वि. [सं. वितरण] बाँटनेवाला।

वितरण—संज्ञा पुं. [सं.] बाँटने का कार्य।

वितरन—संज्ञा पुं. [सं. वितरण] (१) बाँटने का काम। (२) बाँटनेवाला व्यक्ति।

वितरना, वितरनो—क्रि. स. [सं. वितरण] बाँटना।

वितरिक्त—अव्य. [सं. व्यतिरिक्त] अतिरिक्त।

वितरित—वि. [सं.] बाँटा हुआ।

वितरेक—क्रि. वि. [सं. व्यतिरिक्त] अतिरिक्त।

वितर्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तर्क से उत्पन्न तर्क। (२) संदेह। (३) अनुमान। उ.—सपनो अहि कि सत्य ईस इहि बुद्धि वितर्क बनावति—१६९४।

वितल—संज्ञा पुं. [सं.] सात पातालों में एक। उ.—अतल वितल अरु सुतल तलातल और महातल जान।

पाताल और रसातल मिलिकै सातों भुवन प्रमान—सारा. ३१।

वितलिन—संज्ञा पुं. [सं. वितलिन्] वितल लोक को धारण करनेवाले बलदेव।

वितस्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पंजाब की झेलम नदी।

वितान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विस्तार, फैलाव। (२) बड़ा चँदोवा या खेमा। (३) समूह।

वितानना, विताननो—क्रि. स. [सं. वितान] (१) तंबू तानना। (२) कोई चीज तानना।

वितिक्रम—संज्ञा पुं. [सं. व्यतिक्रम] क्रम-भंग।

वितीत—वि. [सं. व्यतीत] बीता हुआ।

वितुंड—संज्ञा पुं, [सं. वि+तुंड] हाथी।

वितु—संज्ञा पुं. [सं. वित्त] धन-संपत्ति।

वितृष्णा—संज्ञा स्त्री. [सं.] तृष्णा का अभाव।

वित्त—संज्ञा पुं. [सं.] धन-संपत्ति।

वित्तपति—संज्ञा पुं. [सं.] कुबेर।

वित्तहीन—वि. [सं.] निर्धन, दरिद्र।

वित्तप—वि. [सं.] धन-संबंधी।

विथकना, विथकनो—क्रि. अ. [हिं. थकना] (१) शिथिल होना। (२) मुग्ध होकर स्तब्ध रह जाना।

विथकित—वि. [हिं. विथकना] (१) थका हुआ, शिथिल। (२) जो चकित या मुग्ध होकर स्तब्ध रह जाय। उ.—(क) गोपीजन विथकित ह्वै चितवति सब ठाढ़ी। (ख) पसु मोहे सुरभी विथकित तृन दंतनि टेकि रहत—६२०।

विथके—वि. [हिं. विथकना] मुग्ध या चकित होकर स्तब्ध रह गये। उ.—देखत सुर विथके अमरन जहाँ—१०२३।

विथराना, विथरानो—क्रि. स. [सं. वितरण] (१) फैलाना, बिखेरना। (२) इधर-उधर करना।

विथा—संज्ञा स्त्री. [सं. व्यथा] (१) पीड़ा। (२) रोग।

विथारना, विथारनो—क्रि. स. [सं. वितरण] (१) फैलाना, बिखेरना। (२) इधर-उधर करना।

विथित—वि. [सं. व्यथित] (१) पीड़ित। (२) रोगी।

विद्—वि. [सं. विद्] (१) जानकार। (२) पंडित।

विदग्ध—वि. [सं.] (१) रसिक, रसज्ञ। (२) पंडित, विद्वान। (३) चालाक, चतुर। (४) जला हुआ।

विदग्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कुशलता। (२) विद्वता।

विदग्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह परकीया नायिका जो वचन अथवा क्रिया से पर-पुरुष के प्रति अपना प्रेम-भाव प्रकट कर दे।

विदमान—अव्य. [सं. विद्यमान] सामने, सम्मुख, प्रत्यक्ष। उ.—(क) फोरयो नयन काग नहिं छाड़यो सुरपति के विदमान। (ख) ताको बध न कियो इहिं रघुपति तो देखत विदमान। (ग) बिन पावस पावस रितु आई देखत हैं विदमान—३०४३।

विदरण—संज्ञा पुं. [सं.] फाड़ना, विदारण करना।

विदरत—क्रि. अ. [हिं. विदरना] फटता है। उ.—(क) विदरत नहीं वज्र को हृदय हरि-वियोग क्यों सहिए—२६९९। (ख) उर पाषाण विदरत न विदारे—३०७५।

विदरति—क्रि. अ. [हिं. विदरना] फटती है। उ.—विदरति नाहिं वज्र की छाती—३४३५।

विदरन—संज्ञा पुं. [सं.] फटने की क्रिया।

प्र.—विदरन चाहत—फटना चाहता है। उ.—यहै कहत नँद गोप सखा सब विदरन चाहत हियो—२६५४।

विदरना, विदरनो—क्रि. अ. [सं. विदरण] फटना। क्रि. स. फाड़ना, विदीर्ण करना।

विदर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आधुनिक बरार प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) एक राजा जिसके नाम पर 'विदर्भ' प्रदेश का नाम पड़ना कहा जाता है।

विदर्भजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दमयंती का एक नाम। (२) रुक्मिणी का एक नाम।

विदलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दलने-मलने की क्रिया। (२) फाड़ने की क्रिया।

विदलना, विदलनो—क्रि. स. [सं. विदलन] दलित या नष्ट करना।

विदलित—वि. [सं.] (१) दला-मला, कुचला हुआ। (२) फाड़ा हुआ। (३) नष्ट किया हुआ।

विदा—संज्ञा स्त्री. [अ. विदाअ] (१) प्रस्थान। (२) प्रस्थान की आज्ञा या अनुमति।

विदाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. विदा+ई] (१) प्रस्थान। (२) प्रस्थान की आज्ञा या अनुमति। (२) वह धन जो विदा के समय किसी को दिया जाय।

विदार—क्रि. स. [हिं. विदारना] फाड़कर। उ.—घन घटा अटा मंद छटको दै उदित चंद्र बादर विदार—२४३२।

प्र.—दीन्हो विदार—फाड़ दिया। उ.—सोरहकला चंद्र ज्यों प्रगटे दीन्हों तिमिर विदार—सारा. ३६३।

विदारक—वि. [सं.] फाड़नेवाला।

विदारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फाड़ने की क्रिया। (२) मार डालना। (३) युद्ध।

विदारन—वि. [सं. विदारण] फाड़नेवाले। उ.—अघ मर्दन वक वदन विदारन—९५४।

विदारना, विदारनो—क्रि. स. [हिं. विदरना] फाड़ना।

विदारित—वि. [सं.] फाड़ा हुआ, विदीर्ण किया हुआ।

विदारी—वि. [सं. विदारिन्] फाड़नेवाला।

क्रि. स. [हिं. विदारना] फाड़कर। उ.—मानो अरुन किरनि दिनकर की पसरी तिमिर विदारी—१६८४।

प्र.—डारो विदारी—फाड़ डाला। उ.—पकरि लियो छिन माँझ असुर बल डारो नखन विदारी—सारा. १२४।

विदारे—क्रि. स. [हिं. विदारना] फाड़ने (से)। उ.—उर पाषाण विदरत न विदारे—३०७५।

विदाह—संज्ञा पुं. [सं.] जलन।

विदाही—वि. [सं.] जलन पैदा करनेवाला।

विदित—वि. [सं.] जाना हुआ, ज्ञात।

विदिश—संज्ञा स्त्री. [सं. विदिश्] (१) दो दिशाओं का कोना। (२) दिशा। उ.—उड़त गुलाल अबीर जोर तहँ विदिश दीप उजियारी—२३९१।

विदिशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वर्तमान भेलसा का प्राचीन नाम। (२) दिशा-कोण, दिशा।

विदीर्ण—वि. [सं.] (१) फाड़ा हुआ। (२) टूटा हुआ। (३) मार डाला हुआ, निहत।

विदुर—वि. [सं.] (१) ज्ञाता। (२) ज्ञानी। (३) कौरवों-पांडवों के चाचा।

विदुष—वि. [सं.] पंडित, विद्वान। उ.—विदुष जननि विराट प्रभु दीखे अति मन में सुख पायो—सारा. ५१७।

विदुषी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पंडिता, विद्वान स्त्री।

विदूखी—वि. [सं.] बहुत दुखी। उ.—कहा करौं लै निर्गुण तुम्हरो विरहिनि विरह विदूखी—३११७।

विदूर—वि. [सं.] जो बहुत दूर हो।

विदूषक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामुक, विषयी। (२) मसखरा। (३) निंदक। (४) भांड़। (५) प्राचीन नाटकों का एक विनोदी और हँसोड़ पात्र।

विदूषण—संज्ञा पुं. [सं.] दोष लगाने का कार्य।

विदूषना, विदूषनो—क्रि. स. [सं. विदूषण] (१) दुख देना। (२) दोष लगाना।

क्रि. अ. दुखी होना।

विदेश—संज्ञा पुं. [सं.] परदेश। उ.—कहा करौं मोपै रह्यो न जाई छिन सब सुखदायक बसत विदेश—३२२५।

विदेशी—वि. [सं.] परदेशी।

विदेह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो शरीर से रहित हो। (२) राजा जनक का एक नाम।

विदेहपुर—संज्ञा पुं. [सं.] राजा जनक की राजधानी, जनकपुर।

विदोष—वि. [सं.] दोषरहित, निर्दोष।

विद्—वि. [सं.] (१) ज्ञाता। (२) पंडित।

विद्ध—वि. [सं.] (१) छिदा हुआ। (२) जिसमें बाधा पड़ी हो। (३) मिला हुआ।

विद्यमान—वि. [सं.] उपस्थित, वर्तमान। उ.—यह परयो विद्यमान नैन अपने किन देखो—९०६।

विद्यमानता—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपस्थिति।

विद्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिक्षा द्वारा उपार्जित ज्ञान। उ.—(क) विद्या बेंचि जीविका करिहौ—४-५। (ख) जेहि गोपाल मेरे वश होते सो बिद्या न पढ़ी—२७९४।

विद्याधर—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रकार की देवयोनि।

उ.—(क) विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति—१०-६। (ख) विद्याधर को रूप धरि कह्यो नाथ करै को तुम्हरी होड़—२१९२।

विद्याधरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] विद्याधर की नारी।

विद्यामणि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विद्या रूपी धन। (२) बहुत बड़ा विद्वान। उ.—ज्ञाननमणि, विद्यामणि गुनमणि चतुरनमणि चतुराई - २१७०।

विद्यारंभ - संज्ञा पुं. [सं.] वह संस्कार जिसमें विद्या की पढ़ाई प्रारंभ होती है।

विद्यार्थी—संज्ञा पुं. [सं.] छात्र, शिष्य।

विद्यालय—संज्ञा पुं. [सं.] पाठशाला।

विद्युत—संज्ञा स्त्री. [सं. विद्युत्] बिजली।

विद्रुम—संज्ञा पुं. [सं.] मूँगा, प्रवाल। उ.—विद्रुम फटिक पची परदा छवि लाल रंध्र की रेख - २५६१।

विद्रोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) द्वेष। (२) उपद्रव।

विद्रोही—वि. [सं.] (१) द्वेष करनेवाला। (२) उपद्रवी।

विद्वत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पांडित्य।

विद्वान—संज्ञा पुं. [सं. विद्वस्] (१) पंडित। (२) सर्वज्ञ।

विद्वेष—संज्ञा पुं. [सं.] वैर, शत्रुता।

विद्वेषी—वि. [सं. विद्वेषिन्] शत्रु, वैरी।

विधंस—संज्ञा पुं. [सं. विध्वंस] नाश।

विधंसना, विधंसनो—क्रि. स. [सं. विध्वंसन] बरबाद या नष्ट करना।

विध - संज्ञा पुं. [सं. विधि] ब्रह्मा।

विधए—क्रि. स. [हिं. विधना] साथ लगा लिये, फाँस लिये। उ.— (क) लए फँदाइ विहंगम मानो मदन व्याध विधए—पृ. ३२७ (६५)। (ख) थाके सूर पथिक मग मानो मदन व्याध विधए री। (ग) वचन पासि विधए मृग मानो उन रथ नाइ लए—३०५०।

विधनहिं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. विधना + हिं.] विधाता को। उ.—सूरदास यह कहति जसोदा, ना जानौं विधनहिं का भायौ—१०-७७।

विधना—संज्ञा स्त्री. [सं. विधि] होनी, होतव्यता।
संज्ञा पुं. विधि, ब्रह्मा। उ.—मरै वह कंस निर्वंस विधना करै—२६२४।

विधना, विधनो - क्रि. स. [सं. विधि] अपने साथ लगाना, अपने ऊपर लेना, फाँस लेना।

विधर—क्रि. वि. [हिं. उधर] उस ओर, उधर।

विधर्म—संज्ञा पुं. [सं. विधर्म्म] पराया धर्म।

विधर्मी—वि. [सं. विधर्म्मिन्] (१) जो धर्म के विपरीत आचरण करता हो, धर्म-भ्रष्ट। (२) दूसरे धर्म का अनुयायी।

विधवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] जिसका पति मर गया हो।

विधवापन—संज्ञा पुं. [सं. विधवा + हिं. पन] विधवा होने की स्थिति, रँड़ापा, वैधव्य।

विधाँसना, विधाँसनो—क्रि. स. [सं. विध्वंसन्] (१) इधर-उधर या अस्तव्यस्त करना। (२) नष्ट करना।

विधाता—संज्ञा पुं. [सं. विधातृ] (१) रचने या बनाने वाला। (२) प्रबंध या व्यवस्था करनेवाला। (३) उत्पन्न करनेवाला। (४) सृष्टि का रचयिता, ब्रह्मा। उ.—आजु विधाता मति मेरी गई, भौन काज विरमाई—२५३८।

विधातै - संज्ञा पुं. सवि. [हिं. विधाता] विधाता ने। उ.—ए अहीर वह कंस की दासी जोरी करी विधातैं —२६८४।

विधात्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रचने या बनानेवाली। (२) प्रबंध या व्यवस्था करनेवाली।

विधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्य का संपादन-क्रम। (२) प्रबंध, व्यवस्था। (३) विधि, प्रणाली। (४) रचना, निर्माण। (५) उपाय, युक्ति। (६) पूजा।

विधायक—संज्ञा पुं. [सं.] कार्य-संपादन करनेवाला। (२) रचने या बनानेवाला। (३) व्यवस्था या प्रबंध करनेवाला।

विधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रीति, प्रणाली। (२) व्यवस्था, योजना।

मुहा०—विधि बैठना—(१) मेल खाना या बैठना, व्यवहार निभना। (२) इच्छानुकूल व्यवस्था होना।

(३) शास्त्रीय व्यवस्था या विधान। उ.—यज्ञोपवीत विधोक्त कियो विधि सब सुर भिक्षा दीनी—सारा. ३३२। (४) कर्म या आचरण-संबंधी शास्त्रीय आज्ञा।

यौ०—विधि-निषेध—अमुक कार्य या आचरण करने और अमुक न करने की शास्त्रीय अनुमति।

(५) क्रिया का आदेशात्मक रूप। (६) चाल-ढाल, आचार-व्यवहार। (७) भाँति, प्रकार।

संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा, विधाता।

विधिना—संज्ञा पुं. [सं. विधि+हिं. ना] ब्रह्मा, विधाता। उ.—ए अहीर वह दासी पुर की विधिना जोरी भली मिलाई—२६७९।

विधिपुर—संज्ञा पुं. [सं. विधि+पुर] ब्रह्मलोक।

विधिरानी—संज्ञा स्त्री. [सं. विधि+रानी] ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती।

विधिवत्—क्रि. वि. [सं.] (१) विधि या पद्धति के अनुसार। (२) उचित रूप से।

विधिवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा का वाहन, हंस।

विधुंत, विधुंतुद—संज्ञा पुं. [सं. विधि+तु, तुद] चंद्रमा को दुख देनेवाला, राहु। उ.—मानो विधु जु विधुंत ग्रहण डर आयो तेरे सरन सखी री—२११३।

विधु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा। उ.—अब विधु-बदन बिलोकि सुलोचन स्रवन सुनत ही आली—२५६७।

विधुदार, विधुदारा—संज्ञा स्त्री. [सं. विधु+दारा] चंद्रमा की पत्नी, रोहिणी।

विधुप्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रोहिणी। (२) कुमुदिनी।

विधुबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] कुमुद।

विधुबैनी—वि. [सं. विधु+वदन, प्रा. वयन] चंद्रमुखी, सुंदरी (नारी)।

विधुर—वि. [सं.] (१) दुखी। (२) व्याकुल। (३) जिसकी स्त्री मर चुकी हो।

विधु-लेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा की किरण।

विधुवदनी—वि. [सं.] चंद्रमुखी (नारी)।

विधूम—वि. [सं.] बिना धुएँ का, निर्धूम।

विधेय—वि. [सं.] (१) जिसका करना उचित हो। (२) जो किया जानेवाला हो। (३) जिसके करने का नियम हो। (४) जिस (शब्द या वाक्य) के द्वारा किसी के संबंध में कुछ कहा जाय।

विधोक्त—वि. [सं. विधि+उक्त] शास्त्रीय विधि या विधान के अनुसार। उ.—यज्ञोपवीत विधोक्त कियो विधि सब सुर भिक्षा दीनी—सारा. ३३२।

विध्वंस—संज्ञा पुं. [सं.] नाश, विनाश।

विध्वंसक—वि. [सं.] नाश करनेवाला।

विध्वंसज—संज्ञा पुं. [सं. विध्वंस+ज] मारा जाने पर भी जीवित रहनेवाला रा । उ.—विध्वंसज ग्रस्यो कलानिधि तजत नहीं बिनु दाने—२०५३।

विध्वंसित—वि. [सं.] नष्ट किया हुआ। उ.—जनु विध्वंसित व्याल बालक अमी की झकाझोर—१७०३।

विध्वंसी—वि. [सं.] नाशकारी।

विध्वस्त—वि. [सं.] नष्ट किया हुआ।

विन—सर्व. [हिं. वा] प्रथम पुरुष बहुवचन सर्वनाम का कारक चिह्न लगने के पूर्व रूप, उन।

अव्य. बिना, रहित।

विनत—वि. [सं.] (१) झुका हुआ। (२) विनीत।

विनतड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. विनति] (१) नम्रता। (२) प्रार्थना।

विनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दक्ष प्रजापति की वह पुत्री जो कश्यप की पत्नी और गरुड़ की माता थी।

विनति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नम्रता। (२) प्रार्थना।

विनती—संज्ञा स्त्री. [सं. विनति] प्रार्थना, अनुनय।

विनम्र—वि. [सं.] (१) झुका हुआ। (२) विनीत।

विनय—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नम्रता। (२) प्रार्थना, अनुनय। (३) शिक्षा। (४) नीति।

विनयपिटक—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्धशास्त्र-विशेष।

विनयी—वि. [सं. विनयिन्] नम्र, विनीत।

विनशन—संज्ञा पुं. [सं.] नाश।

विनशना—क्रि. अ. [सं. विनशन] नष्ट होना।

विनशाना—क्रि. स. [सं. विनशन] नष्ट करना।

विनश्वर—वि. [सं.] नाशवान, अनित्य।

विनश्वरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अनित्यता।

विनष्ट—वि. [सं.] (१) जो नष्ट-ध्वस्त हो गया हो। (२) मरा हुआ। (३) बिगड़ा हुआ। (४) पतित।

विनसना, विनसनो—क्रि. अ. [सं. विनशन] नष्ट होना।

विनसाना, विनसानो—क्रि. स. [हिं. विनसना] (१) नष्ट करना। (२) बिगाड़ना।

क्रि. अ. बरबाद या नष्ट होना।

विना—अव्य. [सं.] (१) बगैर। (२) अतिरिक्त।

विनाथ—वि. [सं.] अनाथ।

विनायक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश। (२) बाधा, विघ्न। (३) गरुड़।

विनायक-केतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़ध्वज। (२) विष्णु। (३) श्रीराम। (४) श्रीकृष्ण।

विनाश, विनास—संज्ञा पुं. [सं. विनाश] (१) अस्तित्व न रह जाना, ध्वंस। (२) लोप। (३) बिगड़ जाने का भाव। (४) बुरी दशा।

विनाशक, विनासक—वि. [सं. विनाशक] (१) नाश करनेवाला। (२) खराब करने या बिगाड़नेवाला।

विनाशन, विनासन—वि. [सं. विनाशन] (१) नाश करनेवाला। (२) मारने वाला। उ.—अध मर्दन वक वदन विदारन वकी विनाशन सब सुखदायक—९५४।

संज्ञा पुं. (१) नष्ट करना। (२) वध या संहार करना। (३) बिगाड़ना, खराब करना।

विनाशना, विनासना, विनासनो—क्रि. स. [सं. विनाशन] (१) नष्ट करना। (२) वध या संहार करना। (३) बिगाड़ना।

क्रि. अ. बरबाद या नष्ट होना।

विनाशी, विनासी—वि. [सं. विनाशिन्] (१) नष्ट करनेवाला। (२) मार डालनेवाला। (३) बिगाड़नेवाला।

विनिंदक—वि. [सं.] बहुत निंदा करनेवाला।

विनिंदित—वि. [सं.] जिसकी बहुत निंदा हुई हो।

विनिपात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ध्वंस, नाश। (२) वध, हत्या। (३) अपमान।

विनिमय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वस्तु के बदले में वस्तु देने का व्यवहार। (२) आदान-प्रदान।

विनियोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयोग, उपयोग। (२) भेजना, प्रेषण।

विनियोजित—वि. [सं.] (१) प्रयुक्त। (२) प्रेरित।

विनीत—वि. [सं.] नम्र, विनययुक्त, शिष्ट।

विनीतता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नम्रता, विनय।

विनु—अव्य. [सं. विना] (१) रहित। (२) अतिरिक्त।

विनूठा—वि. [हिं. अनूठा] बढ़िया, सुंदर।

विनोद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तमाशा, कौतूहल। (२) क्रीड़ा। (३) प्रमोद, परिहास।

विनोदी—वि. [सं. विनोदिन्] (१) कौतूहल करनेवाला। (२) क्रीड़ा करनेवाला। (३) हँसी-ठट्ठे में रस लेनेवाला। उ.—स्याम विनोदी (बिनोदी) रे मधुबनियाँ—ना. ३९९५।

विन्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यथास्थान रखना या स्थापना। (२) सजाना। (३) जड़ना।

विपंची—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक तरह की वीणा। (२) केलि, क्रीड़ा।

विपक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विरुद्ध पक्ष। (२) शत्रु पक्ष। (३) विरोध, खंडन।

वि. (१) विरुद्ध, प्रतिकूल। (२) जिसके पक्ष में कोई न हो। (३) पंखहीन।

विपक्षी—वि. [सं. विपक्षिन्] (१) विरुद्ध पक्ष का। (२) शत्रु। (३) बिना पंख का।

विपति, विपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. विपत्ति] (१) दुख, कष्ट। उ.—सूरदास अक्रूर कृपा तें सही विपति तनु गाढ़ी—२५३५। (२) दुर्दिन।

मुहा०—विपत्ति उठाना—कष्ट सहना। विपत्ति काटना—दुर्दिन बिताना। विपत्ति झेलना—कष्ट सहना। विपत्ति डालना—दुख या कष्ट पहुँचाना। विपत्ति ढहना—सहसा कष्ट आ पड़ना। विपत्ति ढहाना—सहसा कष्ट में डाल देना।

(३) झंझट, झगड़ा, कठिनाई।

मुहा०—विपत्ति मोल लेना—व्यर्थ झगड़े में पड़ना। विपत्ति सिर पर लेना—व्यर्थ झंझट में फँस जाना।

विपथ—संज्ञा पुं. [सं.] कुमार्ग।

विपद्—संज्ञा स्त्री. [सं.] संकट, विपत्ति।

विपदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] संकट, विपत्ति।

विपन्न—वि. [सं.] (१) जिस पर विपत्ति पड़ी हो। (२) दुखी। (३) कठिनाई या झंझट में पड़ा हुआ।

विपरीत—वि. [सं.] (१) उलटा, विरुद्ध। (२) इच्छा के प्रतिकूल। (३) रुष्ट, अनिष्टसाधक। उ.—सुना-

वर्त विपरीत महाखल सो नृपराय पठायो—सारा. ४२८। (४) दुखद, कष्टदायी।

विपरीतता—संज्ञा स्त्री. [सं.] विपरीत होने का भाव।

विपरीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विपरीत होने का भाव। (२) कष्टदायी आचरण या व्यवहार, विरुद्धाचार, विरोध। उ.—(क) अब की बेर मिलो मनमोहन बहुत भई विपरीति—२७१६। (ख) मिल ही में विपरीति करी विधि होत दरस की बाधा—२७५८।

विपर्यय—संज्ञा पुं. [सं. विपर्य्यय] (१) उलट-पलट, अव्यवस्था। (२) और का और, विरुद्ध स्थिति। (३) भ्रम, मिथ्या ज्ञान।

विपाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पकना। (२) कर्म-फल।

विपाशा, विपासा—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यास नदी।

विपिन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वन। (२) वाटिका।

विपिनपति—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह।

विपिनविहारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वन में विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण का एक नाम।

विपुल—वि.[सं.] (१) बहुत अधिक। उ.—श्रीविट्ठल विपुल विनोद विहारन व्रज को बसिबो छाजै--२६३२। (२) बहुत गहरा।

संज्ञा पुं. रोहिणी से उत्पन्न वसुदेव का एक पुत्र।

विपुलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अधिकता।

विपुला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी। (२) एक देवी।

विपुलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. विपुल + हिं. आई] अधिकता।

विपोहना, विपोहनो—क्रि. स. [सं. वि + प्रोत] (१) लीपना, पोतना। (२) मिटाना, नाश करना। (३) अच्छी तरह पोहना।

विप्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्राह्मण। उ.—राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-विप्र प्रतिपारे—९-५४। (२) पुरोहित।

विप्रचरण, विप्रचरन—संज्ञा पुं. [सं. विप्र + चरण] (१) ब्राह्मण के चरण। (२) भृगु मुनि का चरण-चिह्न जो विष्णु के हृदय पर माना जाता है।

विप्रचित्ति—संज्ञा पुं. [सं.] एक दानव जिसकी सिंहिका नाम्नी पत्नी राहु की माता थी।

विप्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्राह्मणत्व।

विप्रत्व—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मणत्व।

विप्रबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] कर्म-च्युत ब्राह्मण।

विप्रराम—संज्ञा पुं. [सं.] परशुराम।

विप्रलंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वियोग, विरह, विच्छेद। (२) धोखा, छल। (३) दुष्कर्म।

विप्रलंभी - वि. [स. विप्रलंभिन्] धूर्त, छली, धोखेबाज।

विप्रलब्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो संकेत स्थान पर प्रियतम को न पाकर निराश हो।

विप्रौ संज्ञा पुं. सवि. [सं. विप्र + हिं. औ] विप्र या विप्रों को भी। उ.—ए कहा जानहिं सभा राज को ए गुरुजन विप्रौ न जुहारे—२५०४।

विप्लव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अशांति और हलचल, उपद्रव। (२) राज्य के भीतर अशांति और उपद्रव। (२) उथल-पुथल, अव्यवस्था।

विप्लवी, विप्लावी—वि. [सं. विप्लव] उपद्रव करनेवाला।

विफल—वि. [सं.] (१) जिसमें फल न लगता हो, फलरहित। उ.—मुरली सुनत अचल चले। थके चर, जल झरत पाहन, विफल बृच्छ फले—ना. १०६८। (२) निष्फल, व्यर्थ। (३) असफल। (४) निराश।

विफलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] असफलता।

विबुध—संज्ञा पुं. [सं. वि + बुध] (१) पंडित। (२) देवता। (३) चंद्रमा।

विबुधतटिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशगंगा।

विबुधतरु—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।

विबुधधेनु—संज्ञा स्त्री. [सं.] कामधेनु।

विबुधविलासिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] अप्सरा।

विबुधवेलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कल्पलता।

विबोध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जागरण। (२) ज्ञान।

विभंज—संज्ञा पुं. [सं. वि + भज्] (१) टूटना-फूटना। (२) नाश, ध्वंस।

विभंजन—वि. [हिं. विभंज] (१) तोड़नेवाले। उ.—रघुपति प्रबल पिनाक-विभंजन—९८२। (२) नाश करनेवाले।

विभक्त—वि. [सं. वि+भज्] (१) विभाजित। (२) अलग या पृथक् किया हुआ।

विभक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] अलग या विभक्त होने की क्रिया या भाव। (२) वह प्रत्यय या कारक चिह्न जो शब्द के आगे लगकर उसका क्रियापद से संबंध सूचित करता है। (संस्कृत में शब्द के अंत्य अक्षर के अनुसार विभक्ति-रूप भिन्न-भिन्न होते हैं; खड़ीबोली के कारकों में शुद्ध विभक्तियों के स्थान पर कारक चिह्नों का व्यवहार होता है।)

विभव—संज्ञा पुं. [सं.] धन-संपत्ति, ऐश्वर्य।

विभाँति—वि. [सं. वि+हिं. भाँति] अनेक प्रकार का।

अव्य. अनेक प्रकार से।

विभा—संज्ञा स्त्री.[सं.](१) प्रभा, शोभा। (२) किरण।

विभाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) मदार।

विभाग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँटने की क्रिया या भाव। (२) अंश, भाग, हिस्सा। उ.—अरध विभाग आजु तैं हम तुम भली बनी है जोरी—१०-२६७। (३) अध्याय, प्रकरण। (४) कार्यक्षेत्र।

विभागी—वि. [सं. विभागिन्] (१) विभाग करनेवाला। (२) विभाग या अंश पानेवाला।

विभाजक—वि. [सं.] (१) विभाग करनेवाला। (२) वह (संख्या) जो भाग दे।

विभाजन—संज्ञा पुं.[सं.] भाग करने की क्रिया या भाव।

विभाजित—वि. [सं.] जो बाँटा गया हो।

विभाज्य—वि. [सं.] जिसका विभाजन करना हो।

विभात—संज्ञा पुं. [सं.] सबेरा, प्रभात।

विभाति, विभाती संज्ञा स्त्री. [सं. विभाति] सुंदरता, शोभा।

विभाना, विभानो—क्रि. अ. [सं. विभा+हिं. ना, नो] (१) चमकना, झलकना। (२) शोभित होना।

विभारना, विभारनो—क्रि. अ. [हिं. विभाना] (१) चमकना, झलकना। (२) शोभा पाना।

विभाव—संज्ञा पुं. [सं.] (रस-विधान में) भाव को उद्दीप्त करनेवाला व्यक्ति, पदार्थ या वातावरण।

विभावन—संज्ञा पुं. [सं.] (रस-विधान में) वह मानसिक व्यापार जिससे (साधारणीकरण द्वारा] पात्र के भाव का भागी श्रोता या पाठक भी होता है।

विभावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अर्थालंकार।

विभावरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात, तारों भरी रात।

विभावित—वि. [सं.] (१) कल्पित। (२) स्वीकृत।

विभास—संज्ञा पुं. [सं.] चमक, प्रभा, तेज। उ.—हँसनि प्रकास विभास देखिकै निकसत पुनि तहँ बैठत—पृ. ३२५ (४४)।

विभासना, विभासनो—क्रि. अ. [सं. विभास] चमकना।

विभासित—वि. [सं.] (१) चमकता हुआ। (२) प्रकट।

विभिन्न—वि. [सं.] (१) पृथक्। (२) अनेक प्रकार का।

विभिन्नता—संज्ञा स्त्री. [सं.] विभिन्न होने का भाव।

विभीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भय। (२) शंका।

विभीषण—संज्ञा पुं. [सं.] रावण का भाई जो उसके मारे जाने के बाद लंका का राजा हुआ था।

विभीषिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] भयानक कांड या दृश्य।

विभु—वि. [सं.] (१) जो सर्वत्र रम रहा हो। (२) जो सर्वत्र जा सकता हो। (३) सब काल में रहनेवाला। (४) चिरस्थायी। (५) ऐश्वर्य या शक्तिमान।

संज्ञा पुं. (१) ब्रह्म। (२) आत्मा। (३) प्रभु।

विभुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सर्वव्यापकता। (२) प्रभुता, ईश्वरता। (३) ऐश्वर्य, शक्ति।

विभूत, विभूति—संज्ञा स्त्री. [सं. विभूति] (१) धन-संपत्ति, ऐश्वर्य। (२) दिव्य शक्ति जिसके अंतर्गत आठों सिद्धियाँ हैं। (३) राख, भस्म। उ.—चंदन छाँड़ि विभूति बतावत, यह दुख क्यौं न जरौं—३०२७।

विभूषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भूषित करने की क्रिया। (२) भूषण, अलंकार।

वि. भूषित या अलंकृत करनेवाला।

विभूषना, विभूषनो—क्रि. स. [सं. विभूषण] (१) गहने या भूषण से सजाना। (२) सुशोभित करना। (३) शुभागमन या उपस्थिति से सुशोभित करना।

विभूषित—वि. [सं.] (१) सजा हुआ, अलंकृत। (२) युक्त, सहित। (३) शोभित।

विभेंटन—संज्ञा पुं. [सं. वि.+हिं. भेंट] गले लगाने या आलिंगन करने की क्रिया या भाव।

विभेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंतर, भिन्नता। (२) अनेक प्रकार या भेद। (३) विभाग।

विभेदना, विभेदनो—क्रि. स. [सं. विभेदन] (१) छेदना, काटना। (२) घुसना, प्रवेश करना। (३) अंतर या भेद डालना।

विभो—संज्ञा पुं. [सं. विभु का संबोधन] हे प्रभु।

विभोर—वि. [सं. विह्वल] (१) विकल, व्याकुल। (२) मग्न, लीन। (३) मस्त, मत्त।

विभौ—संज्ञा पुं. [सं. विभव] धन-संपत्ति, ऐश्वर्य।

विभ्रंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१)विनाश। (२) पतन।

विभ्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चक्कर, भ्रमण। (२) धोखा। (३) संदेह। (४) घबराहट। (५) एक हाव जिसमें स्त्री उलटे-पुलटे वस्त्राभषण पहनकर विचित्र भाव प्रकट करती है।

विभ्राट—वि. [सं.] दीप्ति या प्रकाशमान।

संज्ञा पुं. (१) आपत्ति। (२) उपद्रव।

विमंडन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सजाना। (२) भूषण।

विमंडित—वि. [सं.] (१) सजा हुआ, अलंकृत। (२) युक्त, सहित। (३) सुशोभित।

विमत—संज्ञा पुं. [सं.] विपरीत या प्रतिकूल मति।

विमति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कुमति। (२) असम्मति।

विमत्सर—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत अहंकार।

वि. अहंकार रहित।

विमन—वि. [सं. विमनस्] अनमना, उदास।

विमर्श—संज्ञा पुं. [सं.] विवेचन, विचार, तथ्यानुसंधान। (२) आलोचना, समीक्षा, परीक्षा।

विमर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विवेचन, विचार। (२) आलोचना, समीक्षा। (३) नाटक का अंग-विशेष जिसमें दोषकथन, क्रोधयुक्त वार्तालाप आदि का वर्णन होता है।

विमल—वि. [सं.] (१) स्वच्छ, निर्मल। (२) निर्दोष, शुद्ध। उ.—मिथ्यावाद-उपाधि रहित ह्वै विमल-विमल जस गावत—२-१७। (३) सुंदर, मनोहर।

विमलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्वच्छता। (२) पवित्रता। (३) शुद्धता। (४) मनोहरता।

विमला—वि. स्त्री. [सं.] (१) निर्मल, स्वच्छ। (२) दोषरहिता। (३) सुंदर, मनोहर।

संज्ञा स्त्री. (१) सरस्वती। (२) राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किनि हार चुरायौ।····। कमला, तारा, विमला, चंदा चंद्रावलि सुकुमार—१५८०।

विमाता—संज्ञा स्त्री. [सं. विमातृ] सौतेली माँ।

विमान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वायुयान। (२) मृतक, वृद्ध या वृद्धा की सजी हुई अरथी।

विमुक्त—वि. [सं.] (१) अच्छी तरह मुक्त। (२) फेंका हुआ। (३) पूर्णतया स्वतंत्र।

विमुख—वि. [सं.] (१) जिसके मुख न हो। (२) जो किसी विषय में ध्यान न दे। (३) जो अनुरक्त न हो, उदासीन। उ.—ब्रज ही बसत विमुख भई हरि सों शूल न उर तें जाई—२५३८। (४) विरुद्ध, प्रतिकूल। (५) निराश, विफलमनोरथ।

विमुखता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विरति। (२) विरोध।

विमुग्ध—वि. [सं.] (१) मोहित। (२) बेसुध।

विमुग्धकारी—वि. [सं.] मोहित करनेवाला।

विमुद—वि. [सं.] उदास, खिन्न।

विमूढ़—वि. [सं.] (१) अत्यंत मुग्ध। (२) बेसुध। (३) भ्रम में पड़ा हुआ। (४) कर्तव्य-ज्ञान या बुद्धि रहित। (५) बहुत मूर्ख।

विमोचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बंधन आदि खोलना। (२) बंधन से छुड़ाना, मुक्त कराना। (३) बाहर करना, बहाना, निकालना। (४) फेंकना, छोड़ना। (५) गिराना।

विमोचना, विमोचनो—क्रि. स. [सं. विमोचन] (१) बंधन आदि खोलना। (२) मुक्त करना। (३) बाहर करना, निकालना, बहाना। (४) गिराना, टपकाना।

विमोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अज्ञान, भ्रम। (२) बेसुध होना। (३) आसक्ति।

विमोहक—वि. [सं.] (१) मोहनेवाला। (२) बेसुध करनेवाला। (३) लालच उत्पन्न करनेवाला।

विमोहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुग्ध या मोहित करना।

(२) मन वश में करना। (३) कामदेव के पाँच बाणों में एक। (४) सुध-बुध भुलाना।

विमोहनशील—वि. [सं. विमोहन+शील] (१) भ्रम में डालने या धोखा देनेवाला। (२) मुग्ध या मोहित करनेवाला।

विमोहना, विमोहनो—क्रि. अ. [सं. विमोहन] (१) मोहित या मुग्ध होना। (२) अचेत या बेसुध होना। (३) भ्रम या धोखे में पड़ना।

क्रि. स. (१) मोहित या मुग्ध करना। (२) बेसुध करना। (३) भ्रम या धोखे में डालना।

विमोहित—वि. [सं.] (१) मुग्ध, लुभाया हुआ। (२) भ्रांत। (३) मूर्छित।

विमोही—वि. [सं. विमोहिन्] (१) मुग्ध या मोहित करनेवाला। (२) बेसुध या अचेत करनेवाला। (३) भ्रम में डालनेवाला। (४) जिसमें मोह-ममता न हो, निर्मम, निष्ठुर।

विमोहे—क्रि. अ. [हिं. विमोहना] मुग्ध हो गये। उ.—सुर ललना सुर सहित विमोहे रच्यो मधुर सुर गान—सू. ३५० (६९)।

विमोह्यो, विमोह्यो—क्रि. अ. [हिं. विमोहना] सुध-बुध खो बैठा। उ.—सूर स्याम को मिलनि सुरति करि मनु निरधन धन पाइ विमोह्यो—२४७८।

विमौट—संज्ञा पुं. [सं. वल्मीक, हिं. बाँबी+औट] दीमकों का बनाया मिट्टी का ढूह, बाँबी।

वियंग—संज्ञा पुं. [हिं. विय+अंग] दो अंगवाले शिव।

विय—वि. [सं. द्वि, द्वितीय; प्रा. विय] (१) दो, जोड़ा। (२) दूसरा, अन्य।

वियत—संज्ञा पुं. [सं. वियत्] आकाश।

वियुत—वि. [सं.] (१) अलग। (२) हीन, रहित।

वियुक्त—वि. [सं.] (१) जो बिछुड़ा हुआ हो। (२) अलग, पृथक्। (३) हीन रहित।

वियो—वि. [प्रा. विय] (१) दो, जोड़ा। उ.—ऊधो, जो मन होत वियो—३१४७। (२) दूसरा, अन्य। उ.—उनतें प्रभु नहिं और वियो—२६२१।

वियोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संयोग या मिलाप न होना, बिछोह। (२) अलग होने का भाव, अलगाव। (३) जुदाई, विरह।

वियोगांत—वि. [सं.] जिस (नाटक आदि) की कथा का अंत दुख-पूर्ण हो।

वियोगिन, वियोगिनि, वियोगिनी—वि. स्त्री. [सं. वियोगिनी] जो प्रिय या पति से बिछुड़ी हो।

वियोगी—वि. [सं. वियोगिन्] जो प्रिया या पत्नी से बिछुड़ा हो, विरही।

विरंग—वि. [सं.] (१) बुरे रंग का, बदरंग। (२) अनेक रंगोंवाला।

विरंच, विरंचि—संज्ञा पुं. [सं. विरंचि] विधाता।

विरंचिसुत—संज्ञा पुं. [सं. विरंचि+सुत] नारद।

विरक्त—वि. [सं.] (१) जिसे चाह या अनुराग न हो, विमुख। (२) खिन्न, उदासीन।

विरक्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाह का अभाव, विमुखता। (२) खिन्नता, उदासीनता।

विरक्ति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) चाह का अभाव, विराग। (२) खिन्नता, उदासीनता।

विरचन—संज्ञा पुं. [सं.] रचना, निर्माण।

विरचना, विरचनो—क्रि. स. [सं. विरचन] (१) रचना, बनाना। (२) सजाना, अलंकृत करना।

क्रि. अ. [सं. वि+रंजन] विरक्त होना।

विरचि—क्रि. अ. [हिं. विरचना] विरक्त या उचटा होकर। उ.—विरचि मन बहुरि राच्यो आइ—३३३४।

विरचित—वि. [सं.] (१) बनाया हुआ। (२) लिखा हुआ।

विरज—वि. [सं. विरजस्] (१) सुख-वासना से रहित। (२) निर्मल, स्वच्छ। (३) निर्दोष।

विरजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रीकृष्ण की एक प्रिया जिसने राधा के भय से नदी का रूप धारण कर लिया था।

विरत—वि. [सं.] (१) जिसे चाह न हो, विमुख। (२) जो लीन या तत्पर न हो, निवृत्त। (३) विरक्त, वैरागी। (४) विशेष रूप से रत या लीन।

विरति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाह न होना, विमुखता। (२) निवृत्ति, उदासीनता। (३) वैराग्य।

विरथ—वि. [सं.] (१) जिसके पास रथ न हो। (२) रथ से गिरा हुआ। (३) पैदल।

क्रि. वि. [सं. व्यर्थ] निरर्थक, व्यर्थ। उ.—सूर विरथ बकवाद करत है, यहि व्रज नंदकुमार—३२५३।

विरद—संज्ञा पुं. [सं. विरुद] (१) ख्याति, प्रसिद्धि। (२) यश, कीर्ति। उ.—यदुकुल विरद बोलावत—२८००।

वि. [सं.] बिना दाँत का।

विरदावली—संज्ञा स्त्री. [सं. विरुदावली] यश-गाथा।

विरदैत—वि. [हिं. विरद + ऐत] बड़ी कीर्तिवाला।

विरध—वि. [सं. वृद्ध] वृद्ध। उ.—(क) उमँगि अग न मात कोऊ विरध, तरुन अरु बाल—२९५४। (ख) विरध समय की हरत लकुटिया पाप-पुण्य डर नाहीं—२४१८।

विरमना, विरमनो—क्रि. अ [सं. विरमण] (१) मन लगाना, अनुरक्त हो जाना। (२) रुकना, ठहरना। (३) मोहित होकर रुकना। (४) वेग आदि का कम होना या थमना।

विरमाना, विरमानो—क्रि. स. [हिं. विरमना] (१) किसी का मन लगाना, अनुरक्त करना। (२) रोकना, ठहराना, फँसा रखना। (३) मुग्ध करके रोक लेना। (४) भ्रम या भुलावे में रखना।

क्रि. स. [हिं. विलवाना] (१) देर कराना। (२) लटकाना। (३) सहारा देना।

विरमि—क्रि. अ. [हिं. विरमना] मुग्ध या मोहित होने के कारण, रुककर।

प्र०—विरमि जात—रुक जाता है। उ.—नैनहूँ न रहत, विरमि जात तहाँ धाई री—पृ. ३३२ (१७)। विरमि रहे—मुग्ध या मोहित होकर रुक गये। उ.—(क) सूरदास कित विरमि रहे प्रभु आवत नाहि चले। (ख) बहुत दिनन विरमि रहे हो संग ते बिछोहि हमहि गए बरजी—३१६२।

विरल—वि. [सं.] (१) जो घना न हो। (२) जो दूर-दूर हो। (३) दुर्लभ। (४) निर्जन। (५) थोड़ा, अल्प।

विरव—वि. [सं.] शब्दरहित, नीरव।

विरस—वि. [सं.] (१) रसहीन, नीरस, बिना स्वाद का। (२) अप्रिय, अरुचिकर। (३) रसहीन (काव्य)। (४) आनंदरहित, विरक्त, क्षुब्ध। उ.—(क) छिन-छिन विरस करति है सुंदरि क्यों बहरत मन मार—२२१४। (ख) गए संग बिसारि रिस में, विरस कीन्हो बाल—पृ. ३५३ (९१)।

संज्ञा पुं. (१) रस या आनन्द का अभाव। (२) रस के विपरीत स्थिति। (३) अनुराग, आनंद आदि के विपरीत दशा या स्थिति। उ.—रस में अंतर विरस जनायो—१८६०। (४) क्षोभ, अप्रसन्नता। (५) रस-भंग।

विरसता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नीरसता, स्वाद-हीनता। (२) रस-भंग, आनन्द न रह जाना।

विरह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु का अभाव। (२) प्रिय जन का वियोग। (३) वियोग-दुख।

वि. हीन, बिना, रहित।

विरहा—संज्ञा पुं. [सं. विरह] (१) विरह, वियोग। उ.—(क) तन-मन-धन-यौवन-सुख संपति विरहा अनल दढ़ी—२७९४। (ख) सखा री विरहा यह बिपरीत—२८७६। (२) एक प्रकार का विरहगीत।

विरहिणी—वि. स्त्री. [सं.] प्रिय की वियोगिनी।

विरहित—वि. [सं.] हीन, बिना, रहित।

विरहिनि, विरहिनी—वि. [सं. विरहिणी] वियोगिनी। उ.—विरहिनि क्यों धीरज मन धरै—ना. ४२२०।

विरही—वि. [सं. विरहिन्] प्रिया के विरह से दुखी। उ.—(क) विरही कहँ लौं आपु सँभारै—ना. ४३९६। (ख) विरही कैसे जिएँ बिचारे—ना. प. २०२।

विरहोत्कंठिता—संज्ञा स्त्री [सं.] वह नायिका जिसे नायक के आने का विश्वास हो और कारणवश इसके न आने से जो दुखी हो।

विराग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुराग या लगन का अभाव। (२) उदासीन भाव। (३) सांसारिक बातों से विरक्ति।

विरागी—वि. [सं. विरागिन्] (१) जिसमें अनुराग या

लगन न हो। (२) उदासीन, विमुख। (३) जो सांसारिक बातों या सुखों से विरक्त हो।

विराजत—क्रि. अ. [हिं. विराजना] उपस्थित या शोभित होता है। उ.—सबके ऊपर सदा विराजत ध्रुव सदा निस्सोक—सारा. ८२।

विराजना, विराजनो—क्रि. अ. [सं. विराजन] (१) सोहना, शोभित होना। (२) विद्यमान या उपस्थित होना। (३) बैठना।

विराजमान वि. [सं.] (१) शोभित। (२) विद्यमान, उपस्थित। (३) बैठा हुआ।

विराजित—वि. [सं.] (१) शोभित। (२) उपस्थित।

विराट—संज्ञा पुं. [सं. विराट्] (१) ब्रह्म का वह स्थूल रूप जिसके अन्दर अखिल विश्व है। (२) मत्स्य देश (वर्तमान अलवर और जयपुर का प्रदेश)। (३) मत्स्य देश का वह राजा जिसके यहाँ अज्ञातवास-काल में पांडव रहे थे।

वि. बहुत बड़ा और भारी। उ.—सम बल वैस विराट मैन से प्रगट भए हैं आइ—२५८०।

विराध—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस जिसे दंडकारण्य में लक्ष्मण ने मारा था। उ.—मारग में बहु मुनिजन तारे अरु विराध रिपु मारे—सारा. २५५।

वि. सताने या पीड़ित करनेवाला।

विराम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठहराव। (२) विश्राम। (३) छंद में यति। (४) वाक्य में वह स्थान जहाँ ठहरना पड़े।

विराव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोली। (२) शोर।

वि. शब्दरहित, नीरव।

विरास—संज्ञा पुं. [सं. विलास] आनंद, भोग-विलास।

विरासी—वि. [सं. विलासी] सुख-भोग में लीन।

विरिंच, विरिंचन संज्ञा पुं. [सं. विरंचि] ब्रह्मा।

विरुज—वि. [सं.] रोगरहित, नीरोग।

विरुझना—क्रि. अ. [हिं. उलझना] (१) फँसना, अटकना। (२) लिपटना। (३) काम में लीन होना। (४) झपड़ना। (५) कठिनाई में पड़ना।

क्रि. अ. [हिं. विरुझना] झगड़ना।

विरुझैं—क्रि. अ. [हिं. विरुझना] झगड़ने लगें। उ.—तब न कछू बनि आइहै जब विरुझैं सब नारि—११२५।

विरुत—वि. [सं.] रव-युक्त, गूँजता हुआ।

विरुद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यश, कीर्ति। (२) यश-कीर्तन, प्रशस्ति। (३) यश-सूचक पदवी।

विरुदावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] यश-वर्णन, प्रशंसा।

विरुद्ध—वि. [सं.] (१) प्रतिकूल। (२) अप्रसन्न। (३) विपरीत। (४) अनुचित, नीति के प्रतिकूल।

विरुद्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विरुद्ध होने का भाव। (२) प्रतिकूलता, विपरीतता।

विरूप—वि. [सं.] (१) कुरूप। (२) परिवर्तित।

विरूपा—वि. स्त्री. [सं.] कुरूपा (नारी)।

विरूपाक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने मारा था।

विरोचन—संज्ञा पुं. [सं.] प्रह्लाद का पुत्र जो राजा बलि का पिता था।

विरोचन-सुत—संज्ञा पुं. [सं.] राजा बलि जिसे वामन ने छला था।

विरोध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भिन्नता, विपरीतता। (२) अनबन, शत्रुता। (३) दो बातों का साथ-साथ न हो सकना। (४) उलटी स्थिति।

विरोधना—क्रि. स. [सं. विरोधन] बैर करना।

विरोधाभास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो बातों में दिखायी देने वाला विरोध। (२) एक अलंकार।

विरोधी—वि. [सं. विरोधिन्] बाधक, विपक्षी, शत्रु।

विलंब—वि. [सं. विलम्ब] देर, अतिकाल।

विलंबन—संज्ञा पुं. [सं.] देर करने का भाव।

विलंबना, विलंबनो—क्रि. अ. [सं. विलंबन] (१) देर करना। (२) मन लगने के कारण रम जाना। (३) लटकना। (४) अवलंब या सहारा देना।

विलंबाना, विलंबानो—क्रि. स. [हिं. विलंबना] (१) देर कराना। (२) मन लगाने के कारण रमने को प्रवृत्त करना। (३) लटकाना। (४) अवलंब या सहारा देना।

विलंबित—वि. [सं.] (१) झूलता या लटकता हुआ। (२) जिसमें देर हुई हो।

विलच्छण—वि. [सं.] असाधारण, अनोखा।
विलच्छणता—संज्ञा स्त्री [सं.] अनोखापन।
विलखना, विलखनो—क्रि. अ. [सं. विकल] दुखी होना।
क्रि. अ. [सं. वि+लक्ष] लक्ष्य करना, ताड़ना।
विलखाना, विलखानो—क्रि. स. [सं. विकल] दुखी या पीड़ित करना।
विलग—वि. [सं. वि.+हिं. लगना] (१) अलग, पृथक्। (२) अनुचित, बुरा। उ.—(क) विलग जनि मानौ हमरी बात—ना. ४१५१। (ख) विलग जनि मानौ ऊधौ कारे—ना ४३८०। (ग) विलग हम मानैं ऊधौ काकौं—ना. ४४७४। (घ) याको विलग बहुत हम मान्यो जब कहिं पठयो धाइ—२९३१।
विलगाना, विलगानो—क्रि. अ. [हिं. विलग] अलग या पृथक् होना।
क्रि. स. अलग या पृथक् करना।
विलच्छन—वि. [सं. विलक्षण] अद्भुत, अनूठा।
विलपत—क्रि. अ. [हिं विलपना] विलाप करते (हुए)। उ.—सीता संता विलपत डोलत—सारा. २७३।
विलपति—क्रि. अ. [हिं. विलपना] विलाप करती है। उ.—सूरदास राधा विलपति है, हरि को रूप अगाधो—२७५८।
विलपना, विलपनो—क्रि. अ. [सं. विलाप] रोना।
विलपाना, विलपानो—क्रि. स. [हिं. विलपना] रुलाना, विलाप करने को प्रवृत्त करना।
विलम—संज्ञा पुं. [सं. विलंब] देर, विलंब। उ.—(क) विलम करौ जिनि नेकहूँ अबहीं ब्रज जाइ—२४७६। (ख) गए पास तब विलम न करी—१० उ.—२८। (ग) राम-कृष्ण को लावौ मधुपुरि विलम करौ जनि जात—सारा. २३९४।
विलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोप। (२) नाश।
विलसत—क्रि. स. [हिं. विलसना] सुख भोगते या आनन्द उठाते हैं। उ.—(क) इंद्रासन बैठे सुख विलसत दूर किये भुव-भार—सारा. ५०। (ख) पुहुप-बास रस-रसिक हमारे विलसत मधुर गोपाल—३३४३।
विलसन—संज्ञा पुं. [सं.] क्रीड़ा, प्रमोद।
विलसना, विलसनो—क्रि. अ. [सं. विलसन] (१) क्रीड़ा या विलास करना। (२) आनंद मनाना।
विलसाना, विलसानो—क्रि. स. [हिं. विलसना] (१) क्रीड़ा या विलास में प्रवृत्त करना। (२) आनंद मनाने को प्रवृत्त करना।
विलसियौ, विलसियौ—क्रि. अ. [हिं. विलसना] सुख या आनंद भोगना। उ.—सुख दै कह्यो, लिये आवति हौं, संग विलसियौ बाम—१८७६।
विलसी—क्रि. स. [हिं. विलसना] सुख उठाना। उ.—कौनैं रंक संपदा विलसी सोवत सपने पाई—३३४३।
विलाप—संज्ञा पुं. [सं.] क्रंदन, रुदन।
विलापना, विलापनो—क्रि. अ. [सं. विलाप] रुदन, क्रंदन या शोक करना।
विलायन—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन अस्त्र।
विलास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुख-भोग। उ.—(क) स्यामा सुधा-सरोवर मानो क्रीड़त विविध विलास—पृ. ३५० (६४)। (ख) ब्रजवासिनि सो करत विलास—१० उ.-३७। (२) हर्ष, आनंद। उ.—प्रभु मुकुंद कै हेत नूतन होहिं घोष विलास—१०-२६। (३) हाव-भाव, अंगों की मनोहर चेष्टा। उ.—सूरदास अब क्यों बिसरत हैं नख-सिख अंग-विलास—३२२२। (४) हिलना-डोलना। (५) अत्यंत विषय-भोग या काम-सुख।
विलासिनि, विलासिनी—संज्ञा स्त्री. [सं विलासिनी] (१) विलास करनेवाली, भोग-विलास में लिप्त रहने वाल, कामिनी। (२) वेश्या।
विलासी—वि. [सं. विलासिन्] (१) विषय-भोग में लिप्त, कामी। (२) आमोदप्रिय।
विलासै—क्रि. स. [हिं. विलासना] क्रीड़ा करता और आनन्द मनाता है। उ.—वृंदावन में रास विलासै मुरली मधुर बजावै—१० उ.-४३।
विलीक—वि. [सं. व्यलीक] अनुचित।
विलीन—वि. [सं.] (१) लुप्त, अदृश्य। (२) जो घुल-मिल गया हो। (३) छिपा हुआ। (४) नष्ट।

विलोकना, विलोकनो—क्रि. स. [सं. विलोकन] देखना, अवलोकन करना।

विलोकि—क्रि. स. [हिं. विलोकना] देखकर। उ.—अब विधु-बदन विलोकि सुलोचन—२५६७।

विलोचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नेत्र, नयन। (२) आँखें फोड़ने की क्रिया।

विलोपना, विलोपनो—क्रि. स. [सं. विलोपन] लुप्त या अदृश्य करना, नाश करना।

विलोम—वि. [सं.] (१) विपरीत, प्रतिकूल। (२) स्वर का उतार या अवरोह।

विलोल—वि. [सं.] (१) चंचल। (२) सुंदर।

विल्व—संज्ञा पुं. [सं.] बेल का पेड़।

विल्वमंगल—संज्ञा पुं. [सं.] सूरदास का समकालीन एक प्रसिद्ध भक्त।

विव—वि. [सं. द्वि] (१) दो। (२) दूसरा।

विवदना, विवदनो—क्रि. अ. [सं. विवाद] वाद-विवाद या तर्क-वितर्क करना।

विवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छेद। (२) दरार। (३) गुफा।

विवरण—संज्ञा पुं. [सं.] वृत्तांत, विस्तृत वर्णन।

विवरन—संज्ञा पुं. [सं. विवरण] वृत्तांत।

वि. [सं. विवर्ण] कांतिहीन। उ.—विवरन भये जे दाधे वारिज ज्यों जलहीन—२७६७।

विवर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] वह भाव जिसमें भय, लज्जा आदि से मुख का रंग बदल जाता है।

वि. (१) जिसका रंग खराब हो गया हो, बदरंग। (२) रंग बदलनेवाला। (३) जिसके चेहरे का रंग उतरा हुआ हो, कांतिहीन।

विवर्तन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घूमना-फिरना। (२) नाच, नृत्य।

विवश, विवस—वि. [सं. विवश] (१) लाचार, मजबूर। (२) पराधीन, परवश। (३) शक्तिहीन।

विवसन, विवस्त्र—वि. [सं.] वस्त्रहीन।

विवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वाक्युद्ध, वितर्क। (२) झगड़ा। (३) मतभेद।

विवाह—संज्ञा पुं. [सं.] शादी, दांपत्य-सूत्र-बंधन का संस्कार। विवाह आठ प्रकार के माने गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच। उ.—करि विवाह ताही लै आयो—१०-उ.-२८।

विवाहना, विवाहनो—क्रि. स. [सं. विवाह] शादी या विवाह करना।

विवाहित—वि. [सं.] ब्याहा हुआ।

विवाहिता—वि. स्त्री. [सं.] ब्याही हुई।

विवाही—वि. स्त्री. [सं. विवाह] ब्याही हुई।

क्रि. स. [हिं. विवाहना] विवाह किया। उ.—तैसेहो लछमना विवाही पूरन परमानंद—सारा. ६५७।

विवि—वि. [सं. द्वि] (१) दो, दोनों। उ.—नैन कटाक्ष विलोकन मधुरी सुभग भृकुटी विवि मोरत—१३५०। (ख) मानो परनकुटी सिव कीन्ही विवि मूरति धरि न्यारे—२७६२। (२) दूसरा, अन्य।

विविध—वि. [सं.] अनेक प्रकार का। उ.—कनक दंड सारंग विविध रंव कीरति निगम सिद्ध सुर धाइ—२५५५।

विविर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुफा। (२) बिल। (३) दरार।

विबुध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता। (२) ज्ञानी।

विवृत्त—वि. [सं.] (१) विस्तृत। (२) खुला हुआ।

संज्ञा पुं. ऊष्म स्वर-उच्चारण का एक प्रयत्न।

विवेक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सत्-असत्-ज्ञान। (२) समझ, बुद्धि। (३) सत्य ज्ञान। (४) अच्छे बुरे को पहचानने की शक्ति।

विवेकी—वि. [सं.] (१) बुद्धिमान। (२) भले-बुरे का ज्ञान रखनेवाला। (३) ज्ञानी। (४) न्यायशील।

विवेचक—वि. [सं.] विवेचना करनेवाला।

विवेचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जाँचना, परीक्षा, मीमांसा। (२) व्याख्या, तर्क-वितर्क। (३) अनुसंधान। (४) सत्-असत्-विचार।

विवेचना—संज्ञा स्त्री. [सं.] विवेचन।

विशद—वि. [सं.] (१) स्पष्ट। (२) विस्तृत।

विशाखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सताईस नक्षत्रों में सोलहवाँ। (२) राधा की सखी एक गोपी। उ.—ललिता विशाखा सब सुलावैं—२२८०।

विशारद—वि. [सं.] (१) विद्वान, पंडित। (२) दक्ष, कुशल। (३) श्रेष्ठ, उत्तम।

विशाल—वि. [सं.] (१) बड़ा, विस्तृत। उ.— रथ बैठे दूर ते देखे अंबुज नैन विशाल—२५३६। (२) सुंदर, भव्य। (३) प्रसिद्ध।

विशालता—संज्ञा स्त्री. [सं.] विशाल होने का भाव।

विशाली—वि. स्त्री. [सं. विशाल] बड़ा। उ.– घन तन स्याम सुदेह पीत पट सुंदर नैन विशाली—२५६७।

विशिख—संज्ञा पुं. [सं.] तीर, वाण।

विशिष्ट—वि. [सं.] विशेषतायुक्त।

विशिष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] विशेषता।

विशिष्टाद्वैत—संज्ञा पुं. [सं.] रामानुजाचार्य का वह दार्शनिक सिद्धांत जिसके अनुसार जगत और जीवात्मा को ब्रह्म कार्य-रूप में एक दूसरे से भिन्न मानने पर भी वस्तुतः एक ही माना जाता है।

विशुद्ध—वि. [सं.] अत्यंत शुद्ध।

विशुद्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] विशुद्ध होने का भाव।

विश्रृंखल—वि. [सं.] कड़ी या शृंखलारहित।

विशेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जिसमें कुछ खास या नयी बात हो। (२) विशिष्ट व्यक्ति, वस्तु आदि से संबंध रखनेवाला। (३) सामान्य से अधिक गुणवाला। (४) खास कामों के लिए रखा या लगाया हुआ।

संज्ञा पुं. एक अर्थालंकार।

विशेषज्ञ—वि. [सं.] विशेष ज्ञान रखनेवाला।

विशेषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विशेषता उत्पन्न करने या बतानेवाला। (२) वह विकारी शब्द जो किसी संज्ञा की विशेषता सूचित करे।

विशेषता—संज्ञा स्त्री. [सं.] खासियत, विशेष गुण।

विशेषी—वि. [सं. विशेषिन्] विशेषतायुक्त।

विशेष्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह संज्ञा (शब्द) जिसकी विशेषता सूचित की जाय।

विश्रांत—वि. [सं] जिसने विश्राम कर लिया हो।

विश्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] आराम, विश्राम।

विश्राम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रम मिटाना, आराम करना। उ.— सूर प्रभु कियो विश्राम सब निशि तहाँ—२५७०। (२) चैन, सुख। (३) ठहरने का स्थान।

विश्रामिनि, विश्रामिनी—वि. स्त्री. [सं. विश्राम] सुख देनेवाली। उ.—रूप-निधान स्यामसुंदर घन-आनँद मन विश्रामिनि—पृ. ३४४ (३४)।

विश्रुत—वि. [सं.] (१) जाना या सुना हुआ। (२) प्रसिद्ध, विख्यात।

विश्रुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रसिद्धि, ख्याति।

विश्लेषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संयोजक तत्वों को अलग करना। (२) विवेचन, मीमांसा।

विश्वंभर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विश्व का भरण-पोषण करने वाला, ईश्वर। (२) विष्णु।

विश्वंभरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

विश्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चौदहों भुवनों का समूह, संपूर्ण ब्रह्मांड। (२) संसार।

विश्वकर्ता—संज्ञा पुं. [सं. विश्वकर्तृ] परमेश्वर।

विश्वकर्मा—संज्ञा पुं. [सं. विश्वकर्म्मन्] (१) संसार का रचयिता, ईश्वर। उ.— ज्ञान तुही कर्म तुही विश्व-कर्मा तुही अनंत शक्ति प्रभु असुर-शालक—१०-उ.—३५। (२) एक पौराणिक आचार्य जो शिल्पशास्त्र के आविष्कर्त्ता और सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। उ.—विश्वकर्मा को आज्ञा दीनी रची द्वारका आय—सारा. ६०३।

विश्वकोश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह भांडार जिसमें संसार के सब पदार्थ हों। (२) वह महाग्रंथ जिसमें संसार के सब विषयों का प्रामाणिक परिचय हो।

विश्वजित—वि. [सं.] संसार को जीतनेवाला।

विश्वनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) काशी का एक प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग।

विश्वभरन—वि. [सं. विश्वंभर] विश्व का भरण-पोषण करनेवाले। उ.—सूरदास प्रभु विश्वभरन ए चोर भए ब्रज तनक दही के—२३७५।

विश्वमोहन—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

विश्वविद्यालय—संज्ञा पुं. [सं.] वह संस्था जहाँ सभी विषयों की उच्चकोटि की शिक्षा दी जाती हो।

विश्वव्यापी—वि. [सं.] जो सारे विश्व में व्याप्त हो।

विश्वश्रवा—संज्ञा पुं. [सं. विश्वश्रवस्] एक मुनि जो रावण आदि के पिता थे ।

विश्वसनीय—वि. [सं.] विश्वास करने योग्य ।

विश्वस्त—वि. [सं.] जिसका विश्वास किया जाय ।

विश्वात्मा—संज्ञा पुं. [सं. विश्वात्मन्] (१) विष्णु । (२) शिव । (३) ब्रह्मा ।

विश्वामित्र—संज्ञा पुं. [सं.] महाराज गाधि के पुत्र जो क्षत्रिय होते हुए भी ब्रह्मर्षि कहलाए । मेनका अप्सरा से उत्पन्न शकुंतला इन्हीं की पुत्री थी ।

विश्वास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यकीन, एतबार । (२) आस्था । (३) अनुमान पर आधारित निश्चय ।

विश्वासकारक—वि. [सं.] विश्वास उत्पन्न करनेवाला ।

विश्वासघात—संज्ञा पुं. [सं.] विश्वास के प्रतिकूल या विरुद्ध कार्य ।

विश्वासघातक—वि. [सं.] विश्वास करनेवाले को, प्रतिकूल कार्य करके, धोखा देनेवाला ।

विश्वासघाती—वि. [सं.] विश्वास करनेवाले का अपकार करने या उसको धोखा देनेवाला । उ.—पुनि वह बधिक विश्वासघाती हनत विषम शर तानि—३२३८ ।

विश्वासपात्र—वि. [सं.] विश्वास करने के योग्य ।

विश्वासी—वि. [सं. विश्वासिन्] (१) विश्वास करनेवाला । (२) जिसका विश्वास किया जाय ।

विष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जहर, गरल । (२) वह जो सुख-शांति में बाधक हो ।

मुहा०—विष की गाँठ—झगड़ा, उपद्रव आदि करानेवाला ।

विषकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव ।

विषकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह कन्या जिसको जन्म से ही इस उद्देश्य से विष-पान कराया जाय कि उसके संपर्क में आनेवाला तुरंत मर जाय ।

विषधर—संज्ञा पुं. [सं.] साँप, सर्प ।

विषम—वि. [सं.] (१) जो सम या समान न हो । (२) जिस (संख्या) को दो से भाग देने पर एक शेष बचे । (३) जटिल, क्लिष्ट । (४) तेज, तीव्र । उ.—विषधर विषय विषम विष बाँचौ—१-८३ ।—(५) विकट, भीषण, भयंकर । उ.—(क) श्रीजत ग्वाल गाइ गोसुत सब विषम बूँद लागत जनु सायक—९५४ । (ख) जे बै लता लगत तनु सीतल अब भईं विषम अनल की पुंजें—२ २१ । (ग) पुनि वह बधिक विश्वासघाती हनत विषम सर तानि—३२३८ ।

संज्ञा पुं. संकट, विपत्ति ।

विषमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विषम होने का भाव, असमानता । उ.—आपु विषमता तजि दोऊ सम भैं बानक ललित त्रिभंग—३३२७ । (२) वैर, द्रोह ।

विषमायुध—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव ।

विषयक—वि. [सं.] विषय का, विषय-संबंधी ।

विषयपति—संज्ञा पुं. [सं.] जनपद का शासक ।

विषयासक्त—वि. [सं.] विलासी, कामी ।

विषयासक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] विलासिता ।

विषयी—वि. [सं. विषयिन्] भोग विलास में लिप्त रहनेवाला, विलासी, कामी । उ.—(क) अपत उतार अभागौ कामी विषयी निपट कुकर्मी—१-१८६ । (ख) महामूढ़ विषयी भयौ चित आकर्ष्यौ काम—१-३२५ ।

विषलाडू—संज्ञा पुं. [सं. विष + हिं. लड्डू] लड्डू जिसमें विष मिला हो । उ.—फंदा फाँसि धनुष विष-लाडू सूर स्याम नहिं हमहिं बतायौ—११६१ ।

विषहर—वि. [सं.] जो (औषध, मंत्र आदि) विष का प्रभाव दूर करे ।

संज्ञा पुं. [सं. विषधर] साँप, सर्प । उ.—लागे हैं विषारे बान स्याम बिनु पुग याम घायल ज्यौं घूमैं मनो विषहर खाई है—२८२० ।

विषांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] विषकन्या ।

विषाक्त—वि. [सं.] जहरीला विषयुक्त ।

विषाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सींग । (२) दाँत ।

विषाद—संज्ञा पुं. [सं.] खेद, दुख । उ.—जा चरनार बिंद के रस को सुर-मुनि करत विषाद—१०-६४ ।

विषान—संज्ञा पुं. [सं. विषाण] सींग या सिंगी बाजा । उ.—मुद्रा भस्म विषान त्वचा मृग ब्रज युवतिनि मन भाए—२९९१ ।

विषानन—संज्ञा पुं. [सं.] साँप, सर्प ।

विषारी—वि. [सं. विष + हिं. आरी] विषभरा,

बिषैला । उ.—अंग कारो मुख बिषारो दृष्टि परैं ताहि लागिहै—५७७ ।

विषुवरेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह कल्पित रेखा जो पृथ्वीतल पर, दोनों मेरुओं के ठीक मध्य में मानी जाती है ।

विषै—संज्ञा पुं. [सं. विषय] भोग-विलास । उ.—कह्यो तुमको ब्रह्म ध्यावो छाँड़ि विषै विकार—२१७५ ।

विष्कंभ, विषकंभक—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक का वह अंक जिसमें मध्यम पात्रों द्वारा पूर्व की अथवा होनेवाली कथा की सूचना दी जाती है ।

विष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मैला, मल ।

विष्णु—संज्ञा पुं. [सं.] हिंदुओं के एक प्रधान देवता जो सृष्टि का भरण-पोषण करनेवाले माने जाते हैं । इनके चौबीस अवतारों में दस प्रमुख माने जाते हैं । लक्ष्मी इनकी पत्नी हैं । इनके चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं । गरुड़ इनका वाहन है । गंगा इनके चरणों से निकली कही गयी है ।

विष्णुपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वैकुंठ ।

विष्वक्सेन—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का एक नाम ।

विसम—वि. [सं. विषम] (१) जो सम न हो । (२) क्लिष्ट । (३) तेज, तीव्र । (४) भीषण ।

विसमता—संज्ञा स्त्री. [सं. विषमता] असमानता ।

विसर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्याग । (२) वह वर्ण जिसके आगे दो बिंदु ऊपर-नीचे होते हैं और जिसका उच्चारण प्रायः अर्द्ध 'ह' जैसा होता है ।

विसर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परित्याग । (२) समाप्ति ।

विसर्पी—वि. [सं. विसर्पिन्] (१) फैलनेवाला, प्रसरणशील । (२) तेज चलनेवाला ।

विसूरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुख । (२) चिंता ।

विसूरति—क्रि. अ. [हिं. विसूरना] शोक करती है । उ.—बार-बार सिर धुनति विसूरति—२७६६ ।

विसूरना, विसूरनो—क्रि. अ. [सं. विसूरण] बहुत दुख या शोक करना ।

विस्तर—वि. [सं.] अधिक, विशेष ।

विस्तरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] अधिक होने का भाव ।

विस्तरना, विस्तरनो—क्रि. स. [सं. विस्तर] विस्तार देना, फैलाना, बढ़ाना ।

विस्तरौ, विस्तरौ—क्रि. स. [हिं. विस्तरना] विस्तार करो । उ.—शुक्र कह्यो तुम जग विस्तरौ—११०२ ।

विस्तार—संज्ञा पुं. [सं.] फैलाव ।

विस्तारन—संज्ञा पुं. [सं. विस्तार] फैलाने का कार्य । उ.—करुनाकर जलनिधि तैं प्रगटे सुधा-कलस लै हाथ । आयुर्वेद विस्तारन कारण सब ब्रह्माण्ड के नाथ—सारा. १३८ ।

विस्तारना, विस्तारनो—क्रि. स. [सं. विस्तार] विस्तार देना, फैलाना, बढ़ाना ।

विस्तारी—वि. [सं. विस्तारिन्] अधिक विस्तारवाला ।

विस्तारे—क्रि. स. [हिं. विस्तारना] फैलाया, प्रचलित किया । उ.—उहाँ दासी रति की कीरति कै इहाँ योग विस्तारे—३०५५ ।

विस्तीर्ण—वि. [सं.] (१) फैला हुआ, विस्तृत । (२) बहुत बड़ा, विशाल । (३) बहुत अधिक ।

विस्तृत—वि. [सं.] (१) खूब फैला हुआ । (२) पर्याप्त विवरण के साथ । (३) बहुत बड़ा, विशाल ।

विस्फार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फैलाव, विस्तार । (२) विकास । (३) काँपना ।

विस्फारित—वि [सं.] (१) अच्छी तरह खोला या फैलाया हुआ । (२) फाड़ा हुआ ।

विस्फोट—संज्ञा पुं [सं.] फूट पड़ना ।

विस्मय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आश्चर्य । (२) अद्भुत रस का स्थायी भाव जो अलौकिक या अद्भुत कार्यों से मन में उत्पन्न होता है ।

विस्मरण—संज्ञा पुं. [सं.] स्मरण न रहना ।

विस्मित—वि. [सं.] चकित ।

विस्मृत—वि. [सं.] जो स्मरण न हो ।

विस्मृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूल जाना, विस्मरण ।

विस्राम—संज्ञा पुं. [सं. विश्राम] आराम, सुख ।

विहंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी, विहग । (२) तीर, बाण । (३) रवि सूर्य ।

विहंगम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी । (२) सूर्य ।

विहंगराज—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़ ।

विहंगी—संज्ञा पुं. [सं. पक्षी] पक्षी।
विहग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी। (२) सूर्य।
विहरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना-फिरना, घूमना। (२) वियोग।
विहरना, विहरनो—क्रि. अ. [सं. विहरण] घूमना, चलना-फिरना।
विहरै—क्रि. अ. [हिं. विहरना] घूमता-फिरता या विचरण करता है। उ.—यमुना के तीर ग्वाल संगहि विहरै री—२४२३।
विहसित—संज्ञा पुं. [सं.] मधुर हास।
विह्वान—संज्ञा पुं. [सं. वि + अह्नि] सबेरा, प्रभात।
विहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घूमना-फिरना। (२) रति-क्रीड़ा। (३) बौद्ध श्रमणों का मठ।
विहारी—वि. [सं.] (१) विहार करनेवाला। (२) विहार करनेवाले (श्रीकृष्ण)। उ.—बोले सुभट, हौंस मन जिनि करौ वन विहारी—२५८४।
संज्ञा पुं. श्रीकृष्ण।
विहित—वि. [सं.] (१) जिसका विधान हो, जिसके लिए अनुमति हो। (२) किया हुआ।
विहीन—वि. [सं.] बिना, रहित।
विहून—वि. [सं. विहीन] बिना, रहित।
विह्वल—वि. [सं.] व्याकुल, विकल। उ.—सूर स्याम रतिपति विह्वल करि नागरि रहि मुरझाइ—२०७७।
विह्वलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्याकुलता, घबराहट।
वीक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] देखने का कार्य।
वीचि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लहर, तरंग। (२) चमक प्रभा, दीप्ति।
वीचिमाली—संज्ञा पुं. [सं.] सागर, समुद्र।
वीची—संज्ञा स्त्री. [सं.] लहर, तरंग।
वीज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूल कारण। (२) वीर्य। (३) तेज। (४) बीज। (५) एक प्रकार का मंत्र।
वीजमार्गी—संज्ञा पुं. [सं. वीजमार्गिन्] वह वैष्णव जो निर्गुणोपासक होता है।
वीणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध बाजा।
वीणापाणि—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती।
वीत—वि. [सं.] (१) त्यागा हुआ। (२) मुक्त। (३) समाप्त। (४) निवृत्त, विरक्त।
वीतराग—वि. [सं.] जिसमें आसक्ति न हो।
वीतशोक—वि. [सं.] जिसने शोक त्याग दिया हो।
वीथिका, वीथी—संज्ञा स्त्री. [सं. वीथी] (१) रूपक के २७ भेदों में एक। (२) मार्ग। (३) सूर्य का मार्ग।
वीप्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) व्याप्त होने की इच्छा। (२) व्याप्ति। (३) एक काव्यालंकार।
वीर—वि. [सं.] (१) बहादुर, शूर, साहसी। उ.—परम निसंक समर सरिता तट क्रीड़त यादव वीर—१० उ.-२। (२) जो किसी काम में दूसरों से बहुत बढ़-चढ़ कर हो।
संज्ञा पुं. (१) सैनिक। (२) भाई। (३) एक रस जिसमें उत्साह, वीरता आदि का वर्णन होता है। उत्साह इसका स्थायी भाव है।
वीरगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वीरों को प्राप्त उत्तम गति। (२) स्वर्ग।
वीरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बहादुरी, शूरता।
वीरभद्र—संज्ञा पुं. [सं.] शिव का एक गण।
वीरललित—वि. [सं.] वीरों जैसा, परन्तु कोमल (स्वभाव)।
वीरव्रत—वि. [सं.] निश्चय पर दृढ़ रहनेवाला।
वीरशय्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] रणभूमि।
वीरसू—संज्ञा स्त्री. [सं.] वीर की जननी।
वीराचारी—संज्ञा पुं. [सं. वीराचारिन्] वे वाममार्गी या शैव जो वीर भाव से उपासना करते हैं।
वीरान—वि. [फ़ा.] (१) उजड़ा हुआ। (२) श्रीहीन।
वीराना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] उजाड़ स्थान।
वीरासन—संज्ञा पुं. [सं.] एक आसन जिसमें बायें पैर और टखने पर दाहिनी जाँघ रख कर बैठते हैं।
वीरुध—संज्ञा पुं. [सं.] वृक्ष, लता, वनस्पति।
वीरेश, वीरेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।
वीर्य—संज्ञा पुं. [सं. वीर्य्य] (१) शरीर की सात धातुओं में अंतिम जिससे शरीर में बल और तेज आता है। यही संतान-जन्म का मूल है। (२) सार, तत्व। (३) बल, शक्ति।
वृंत—संज्ञा पुं. [सं. वृंत] (१) कच्चा फल। (२) बौंड़ी। (३) पतला डंठल।

वृंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह। उ.—सखा वृंद लै तहाँ गए—२५७५। (२) सौ करोड़ की संख्या। (३) एक मुहूर्त।

वृंदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तुलसी। (२) राधा के सोलह नामों में एक। (३) राधा की एक सखी।

वृंदारक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

वृंदारण्य—संज्ञा पुं. [सं.] वृन्दावन।

वृंदावन—संज्ञा पुं. [सं.] मथुरा जिले का एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ श्रीकृष्ण ने अनेक बाल-लीलाएँ की थीं।

वृक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भेड़िया। (२) गीदड़। (३) कौआ। (४) क्षत्रिय। (५) चोर।

वृकोदर—संज्ञा पुं. [सं.] भीमसेन जिनके पेट में 'वृक' नाम्नी अग्नि थी।

वृक्क, वृक्कक—संज्ञा पुं. [सं.] गुरदा।

वृक्का—संज्ञा पुं. [सं.] हृदय।

वृक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेड़, द्रुम, विटप। (२) वृक्ष से मिलती-जुलती वह आकृति जिसमें मूल, शाखा, प्रशाखाएँ आदि दिखायी गयी हों।

वृजि—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्रजभूमि।

वृजिन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप। (२) दुख।
 वि. (१) टेढ़ा, कुटिल। (२) पापी।

वृत—वि. [सं.] (१) नियुक्त। (२) स्वीकृत।
 संज्ञा पुं. [सं. वृत्त] (१) चरित्र। (२) वृत्तांत।

वृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चरित्र। (२) समाचार।

वृत्तांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समाचार, घटना का विवरण। उ.—सुनि जरासंध वृत्तांत अस सुना से युद्ध हित कटक अपनो हँकारयो—११ उ.-१। (२) आख्यान।

वृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीविका। (२) सहायतार्थ दिया जाने वाला धन, उपजीविका। (३) व्याख्या। (४) विवरण, वृत्तांत। (५) वर्णन की शैली। (६) चित्त की अवस्था-विशेष। (७) स्वभाव, प्रकृति। (८) एक शस्त्र।

वृत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्वष्टासुर का पुत्र जिसे इंद्र ने वज्र से मारा था। (२) मेघ। (३) अंधकार।

वृत्रहा—संज्ञा पुं. [सं.] वृत्रासुर को मारनेवाला इंद्र।

वृत्रासुर—संज्ञा पुं. [सं.] त्वष्टा का पुत्र जिसे इंद्र ने वज्र से मारा था।

वृथा—वि. [सं.] बिना मतलब का, व्यर्थ का।
 क्रि. वि. बिना मतलब के, व्यर्थ।

वृद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बूढ़ा प्राणी। (२) वृद्धावस्था।

वृद्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुढ़ापा, वृद्धावस्था।

वृद्धा—वि. स्त्री. [सं.] बूढ़ी।

वृद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बढ़ने की क्रिया, बढ़ती। (२) समृद्धि, आढयता।

वृश्चिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिच्छू। (२) बारह राशियों में आठवीं। (३) अगहन मास।

वृष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल, साँड़। उ.—तेली के वृष लौं नित भरमत—१-१०२। (२) बारह राशियों में दूसरी। (३) बारह लग्नों में दूसरी।

वृषक—संज्ञा पुं. [सं.] साँड़, बैल।

वृषकेतन, वृषकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

वृषभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल, साँड़। (२) श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम।

वृषभान, वृषभानु—संज्ञा पुं. [सं.] राधिका के पिता का नाम।

वृषभानुनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा। उ.—ता दिन तें वृषभानुनंदिनी अनत जान नहिं दीन्हें—२१८५।

वृषभानुपुरा—संज्ञा पुं. [सं.] वृषभानु के रहने का स्थान। उ.—प्यारी गयी वृषभानुपुरा तन श्याम जात नँदधाम—२०८१।

वृषभानुसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा।

वृषभासुर—संज्ञा पुं. [सं.] कंस का अनुचर एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—केसी तृनावर्त वृषभासुर हती पूतना जब बारे री—२५६८।

वृषल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शूद्र। (२) चंद्रगुप्त मौर्य का एक नाम।

वृषली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शूद्र जाति की स्त्री। (२) पर-पुरुष से प्रेम करनेवाली नारी।

वृषवासी—संज्ञा पुं. [सं. वृषवासिन्] केरल देश के वृष पर्वत पर बसनेवाले शिव जी।

वृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जल बरसना, वर्षा। (२)

ऊपर से किसी चीज का बहुत बड़ी संख्या में एक साथ गिरना या गिराया जाना। उ.—(क) अमृत की वृष्टि रन-खेत उपर करौ—६-३६३। (ख) देव दुंदुभी पुहुप वृष्टि जै ध्वनि करै—२६१८। (३) किसी क्रिया का कुछ समय तक बराबर होते रहना।

वृष्णि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेघ, बादल। (२) यदुकुल, यादववंश। (३) श्रीकृष्ण।

वृहत्—वि. [सं. वृहत्] बड़ा, महान।

वृहन्नला—संज्ञा स्त्री. [सं.] अर्जुन का उस समय का नाम जब वे अज्ञातवासकाल में राजा विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य-गान सिखाते थे।

वे—सर्व. [हिं. वह] 'वह' का बहु. रूप।

वेइ, वेई—सर्व. [हिं. वे + ही] वे ही। उ.—(क) तुमकौं लैहैं वेइ बचाइ —९-५। (ख) कालिहिं तैं वेइ सबै ल्यावैं गाइ चराइ—४३७।

वेक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] भली भाँति देखना-भालना।

वेग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहाव, प्रवाह। (२) तेजी। (३) शीघ्रता। (४) झुकाव, प्रवृत्ति।

वेणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बालों की गूथी हुई चोटी।

वेणु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँस। (२) बाँसुरी, वंशी।

वेतन—संज्ञा पुं. [सं.] तनखाह, पारिश्रमिक।

वेतनभोगी—वि. [सं.] वेतन पर काम करनेवाला।

वेत्ता—वि. [सं.] जाननेवाला, ज्ञाता।

वेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] बेंत।

वेत्रवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] बेतवा नदी।

वेत्रासुर—संज्ञा पुं. [सं.] एक असुर जिसे इंद्र ने मारा था।

वेद—संज्ञा पुं. [सं.] भारतीय आर्यों के सर्वप्रधान धार्मिक ग्रंथ जिनकी संख्या चार है—ऋग्वेद, यजुः, साम और अथर्व। इनकी रचना ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व होना माना जाता है।

वेदज्ञ—वि. [सं.] (१) वेदों का ज्ञाता। (२) ब्रह्मज्ञानी।

वेदन—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. वेदना] पीड़ा, कष्ट। उ.—(क) सूरदास वै आपु स्वार्थी पर-वेदन नहिं जान्यौ—१४१७। (ख) सूर नंद बिछुरे की वेदन मोपै कहिय न जाइ—२६५०। (ग) प्राणनाथ बिछुरे की वेदन और न जानै कोई—२८८१।

वेदना—संज्ञा स्त्री. [सं.] पीड़ा, कष्ट।

वेदनिंदक—वि. [सं.] (१) वेदों की बुराई या निंदा करनेवाला। (२) नास्तिक। (३) वाममार्गी।

वेदमाता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गायत्री, सावित्री।

वेदवाक्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेदों का कथन। (२) सर्वथा प्रामाणिक कथन।

वेदविद्—वि. [सं.] वेदों का ज्ञाता, वेदज्ञ।

वेदव्यास—संज्ञा पुं. [सं.] पराशर-पुत्र श्रीकृष्ण द्वैपायन जिन्होंने वेदों का संग्रह-संपादन किया था।

वेदांग—संज्ञा पुं. [सं.] वेदों के छह अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद।

वेदांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मविद्या, अध्यात्म। (२) छह दर्शनों में वह प्रधान दर्शन जिसमें ब्रह्म को ही एकमात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार किया गया है; अद्वैतवाद।

वेदांती - वि. [सं.] वेदांत का ज्ञाता, ब्रह्मवादी।
वि. [सं. त्रि + हिं. दाँत] जिसके दाँत हों।

वेदी—संज्ञा स्त्री. [सं. वेदिन्] (१) शुभ कार्य या अनुष्ठान के लिए तैयार की गयी भूमि। उ.—देत भाँवरि कुंज मंडल पुलिन में वेदी रची—पृ. ३४८ (४)। (२) सरस्वती।

वेध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नोक से छेदना, बेधना। (२) ग्रहों, नक्षत्रों आदि को देखना।

वेधशाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्थान जहाँ ग्रहों, नक्षत्रों आदि का अध्ययन करने के यंत्र हों।

वेधा—संज्ञा पुं. [सं. वेधस्] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु।

वेधित—वि. [सं.] जो बेधा या छेदा गया हो।

वेधी—वि. [सं.] (१) बेधने या छेदनेवाला। (२) जिससे वेध किया जाय।

वेला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समय, काल। (२) दिन-रात का चौबीसवाँ या दिन का आठवाँ भाग। (३) मर्यादा। (४) समुद्र का किनारा। (५) समुद्र की लहर।

वेल्लि, वेल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं. वेल्लि] लता, बेल।

वेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वस्त्राभूषण से अपने को सजाना। (२) वस्त्राभूषण पहनने की रीति।

मुहा०—किसी का वेश धारण करना—किसी के रूप, रंग, पहनावे, चाल-ढाल आदि की नकल करना।

(३) पहनने के वस्त्र, पोशाक।

यौ०—वेश-भूषा—पहनने के कपड़े, पोशाक।

वेशधारी—वि. [सं.] जिसने किसी का वेश धारण किया हो, छद्मवेशी।

वेशी—वि. [सं.] वेश धारण करनेवाला।

वेश्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] गणिका, वारवनिता।

वेष्टन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लपेटने की क्रिया या भाव। (२) लपेटने की वस्तु, बेठन।

वेष्ठित—वि. [सं.] लिपटी या लपेटी हुई। उ.—अति हित बेनी उर परसाए वेष्टित भुजा अमोचन—पृ. ३१८ (७२)।

वै—सर्व. [हिं. वे] वे। उ.—(क) सुबल श्रीदामा सुदामा, वै भए इक ओर—१०-२४४। (ख) सूरदास वै आपु स्वारथी—१४१७।

प्रत्य. [सं. व] (१) भी। (२) ही।

संज्ञा पुं. [सं. वय] अवस्था।

वैकल्पिक—वि. [सं.] (१) एकांगी। (२) संदिग्ध। (३) जो इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके।

वैकुंठ—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का धाम।

वैखरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कंठ से उत्पन्न स्वर का विशिष्ट रूप। (२) वाक्शक्ति। (३) वाग्देवी।

वैखानस—वि. [सं.] (१) जो वानप्रस्थ आश्रम में हो। (२) वनवासी (ब्रह्मचारी या तपस्वी)।

वैचित्र्य—संज्ञा पुं. [सं.] विलक्षणता।

वैजयंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पताका। (२) श्रीकृष्ण की पँचरंगिणी माला जो घुटनों तक रहती थी।

वैज्ञानिक—वि. [सं.] विज्ञान-संबंधी।

संज्ञा पुं. विज्ञान का अच्छा ज्ञाता।

वैतनिक—वि. [सं.] (१) वेतन लेकर काम करनेवाला। (२) वेतन-संबंधी।

वैतरणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमलोक के बाहर बहनेवाली एक नदी जिसे पार करके ही प्राणी उस लोक पहुँच पाता है। इसका जल बहुत गरम है और इसमें लहू, हड्डियाँ आदि भरी हैं। पापियों को इसके पार करने में बड़ा कष्ट होता है। मृत्यु के पूर्व 'गो-दान' करनेवाले सहज ही इसके पार उतर जाते हैं।

वैताल, वैतालिका—संज्ञा पुं. [सं.] स्तुति-पाठक।

वैद—संज्ञा पुं. [सं. वैद्य] चिकित्सक। उ.—सूर वैद व्रजनाथ मधुपुरी काहि पठाऊँ लैन—२७६५।

वैदग्ध, वैदग्ध्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पांडित्य। (२) कौशल, पटुता। (३) चतुरता।

वैदर्भी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) काव्य की वह रीति जिसमें मधुर वर्णों के द्वारा मधुर रचना की जाती है। (२) दमयंती। (३) रुक्मिणी।

वैदिक—वि. [सं.] (१) जो वेदों में कहा गया है। (२) वेद-संबंधी, वेद का।

वैदूर्य—संज्ञा पुं. [सं.] लहसुनिया रत्न।

वैदेशिक—वि. [सं.] विदेश-संबंधी।

वैदेही—संज्ञा स्त्री. [सं.] विदेह-सुता, सीता।

वैद्य—संज्ञा पुं. [सं.] चिकित्सक।

वैद्यक—संज्ञा पुं. [सं.] चिकित्सा-शास्त्र।

वैद्यनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] बंगाल का एक शिव तीर्थ।

वैध—वि. [सं.] जो विधि के अनुकूल हो, ठीक।

वैधव्य—संज्ञा पुं. [सं.] विधवापन, रँड़ापा।

वैनतेय—संज्ञा पुं. [सं.] विनिता-पुत्र, गरुड़। उ.—वैनतेय संपुट सनकादिक चतुरानन जय-विजय सखाइ—२५५५।

वैभव—संज्ञा पुं. [सं.] धन-संपत्ति, ऐश्वर्य।

वैभवशाली—वि. [सं.] ऐश्वर्य-संपन्न।

वैभाषिक—वि. [सं.] विभाषा-संबंधी।

वैमनस्य—संज्ञा पुं. [सं.] वैर, द्वेष।

वैमात—वि. [सं.] विमाता से उत्पन्न, सौतेला।

वैया—अव्य [सं. वान्] करनेवाला।

वैयाकरण—संज्ञा पुं. [सं.] व्याकरण का पंडित।

वैर—संज्ञा पुं. [सं.] द्वेष, शत्रुता। उ.-(क) गरजि-गरजि घन बरसन लागे मनो सुरपति निज वैर सँभारयो—२८३२। (ख) हमारे माई मोरवा वैर परे—२८४१।

वैराग—संज्ञा पुं. [सं. वैराग्य] विरक्ति।

वैरागी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विरक्त व्यक्ति। (२) रामानुज के अनुयायी उदासीन वैष्णव।

वैराग्य—संज्ञा पुं. [सं.] विरक्ति ।
वैराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] एक ही देश में, एक ही काल में दो राजाओं का शासन ।
वैरूप्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विरूपता । (२) विकृति ।
वैरोचन, वैरोचनि—संज्ञा पुं. [सं.] राजा बलि ।
वैवस्वत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक मनु जिनसे आज का मन्वंतर माना जाता है । (२) वर्तमान मन्वंतर ।
वैवाहिक—वि. [सं.] विवाह-संबंधी ।
वैशंपायन—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जो वेदव्यास के शिष्य थे और जिन्होंने जनमेजय को महाभारत की कथा सुनायी थी ।
वैशाख—संज्ञा पुं. [सं.] चैत के बाद का महीना । उ.—ऐसो सुनियत द्वै वैशाख—३३२१ ।
वैशाखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वैशाख की पूर्णिमा ।
वैशाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] बौद्ध काल की एक नगरी ।
वैशेषिक—संज्ञा पुं. [सं.] छह दर्शनों में एक जो महर्षि कणाद-कृत है और जिसमें पदार्थ-विचार तथा द्रव्य-निरूपण है, पदार्थ-विद्या ।
वैश्य—संज्ञा पुं. [सं.] चार वर्णों में तीसरा ।
वैश्वानर—संज्ञा पुं. [सं.] अग्नि ।
वैषम्य—संज्ञा पुं. [सं.] विषमता ।
वैषयिक—वि. [सं.] (१) विषय-संबंधी । (२) विषयी ।
वैष्णव—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का उपासक ।
वि. विष्णु-संबंधी, विष्णु का ।
वैष्णवत्व—संज्ञा पुं. [सं.] वैष्णव होने का भाव ।
वैष्णवी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु की उपासिका । (२) विष्णु की शक्ति ।
वैसंधि—संज्ञा स्त्री. [सं. वयःसंधि] बाल्यावस्था और यौवनावस्था के बीच की स्थिति । उ.—कहत न बनै सुनतहुँ न आवै वैसँधि वर्णत कविन कठोर—२१३१ ।
वैस—संज्ञा पुं. [हि. वयस] अवस्था । उ.—और वैस को कहै वरणि—३०३१ ।
वैसा—वि. [हि. वह+सा] उस तरह का ।
वैसी—वि. स्त्री. [हि. वैसा] उस तरह की । उ.—वैसी आपदा तैं राख्यौ—१-७७ ।
वैसे—क्रि. वि. [हि. वैसा] उस तरह ।
मुहा०—वैसे तो—किसी और अथवा दूसरी दशा में ।
वैसेहिं—वि. [हि. वैसा+ही] वैसे ही । उ.—वाही भाँति बरन वपु वैसेहिं सिसु सब रचे नंद-सुत आन—४३८ ।
वोइ—सर्व. [हिं. वह+ही] वह ही, वही । उ.—कितिक बार अवतार लियो व्रज ऐहै ऐसे वोइ—१००४ ।
वोउ—सर्व. [हिं. वह+ऊ] वह भी । उ.—दरसन नीके देत न वोउ—१४२८ ।
वोक—संज्ञा पुं. [अनु. ओक या लोक] (१) दिशा ओर । उ.-सूरस्याम काली उर निरतति आए व्रज की वोक । (२) घर, स्थान । उ.—जरासंध को जीति सूर प्रभु आये अपने वोक—१० उ.-२ ।
वोछी—वि. [हिं. ओछी] तुच्छ, साधारण । उ.—वोछी पूँजी हरै ज्यों तस्कर रंक मरै पछिताइ—३२०३ ।
वोछे—वि. [हिं. ओछा] तुच्छ, साधारण, हीन । उ.—डारत खात देत नहिं काहू वोछे घर निधि आइ—पृ. ३२२ (९) ।
वोछो—वि. [हिं. ओछा] तुच्छ, हीन । उ.—तुमहिं दोष नहिं लाडिले वोछो गुन क्यों जाइ—११३५ ।
वोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओट] आड़ । उ.—पलक वोट निमि पर अनखाती यह दुख कहाँ समाइ—३४४४ ।
वोढ़नहार—वि. [हिं. ओढ़नहार] ओढ़नेवाला । उ.—ढीठ गुवाल दही के माते वोढ़नहार कमरि को—१०५३ ।
वोढ़नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओढ़नी] ओढ़नी । उ.—पीतांबर वोढ़नी शीश पै राधा को मनरंजत है—पृ. ३११ (८) ।
वोढ़ाय—क्रि. स. [हिं. ओढ़ाना] ओढ़ाकर । उ.—लिये वोढ़ाय कामरी मोहन—३३८२ ।
वोढ़ैं—क्रि. स. [हिं. ओढ़ना] ओढ़ लें ।
मुहा०—वोढ़ैं कि बिछावैं-न ओढ़ने के काम आ सकती है और न बिछाने के; अतएव सर्वथा व्यर्थ और अनुपयोगी है (खीझकर कहा गया वाक्य) उ.—इह योग कथा वोढ़ैं कि बिछावैं—३४१२ ।

वोढ़ैया—वि. [हिं. ओढ़ैया] ओढ़नेवाला । उ.—कंस पास ह्वै आइए कामरी वोढ़ैया—२५७५ ।

वोद्र—संज्ञा पुं. [सं. उदर] पेट ।

वोर—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओर] दिशा, तरफ । उ.—(क) अनजानत कल बैन स्रवन सुनि चितै रहत उत उनकी वोर—पृ. ३३५ (४०) । (ख) कोउ आवत ओहिं वोर जहाँ नँद सुवन पधारे—३४४३ ।

वोस—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओस] ओस । उ.—तौ इह तृषा जाइ क्यों सूरज आनि वोस के नीर—२७७१ ।

वोहित—संज्ञा पुं. [सं. वोहित्थ] बड़ी नाव, जहाज । उ.—भटक परचो वोहित के खग ज्यों फिरि हरि ही पै आयो—३३८५ ।

व्यंग, व्यंग्य—संज्ञा पुं. [सं. व्यंग्य] (१) गूढ़ अर्थ । (२) लगती हुई बात, ताना ।

व्यंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकट या व्यक्त करने की क्रिया । (२) पका हुआ भोजन । (३) वह वर्ण जो बिना स्वर की सहायता के न बोला जा सके; जैसे देवनागरी वर्णमाला के 'क' से 'ह' तक वर्ण ।

व्यंजना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रकट या व्यक्त करने की क्रिया । (२) शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा साधारण अर्थ को छोड़कर विशेष अर्थ सूचित हो ।

व्यक्त—वि. [सं.] (१) प्रकट । (२) स्पष्ट ।

व्यक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रकट होने की क्रिया या भाव ।
संज्ञा पुं. (१) समूह या समाज का अंग, व्यष्टि । (२) आदमी, मनुष्य ।

व्यक्तिगत—वि. [सं.] व्यक्ति-विशेष से संबंध रखनेवाला, वैयक्तिक ।

व्यक्तित्व—संज्ञा पुं. [सं.] वह विशेष गुण जिससे व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता सूचित हो ।

व्यग्र—वि. [सं.] (१) व्याकुल । (२) भयभीत ।

व्यग्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्याकुलता ।

व्यजन—संज्ञा पुं. [सं.] (हवा करने का) पंखा ।

व्यतिक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रम का उलट-फेर या विपर्यय । (२) बाधा, विघ्न ।

व्यतिपात—संज्ञा पुं. [सं.] उत्पात, उपद्रव ।

व्यतिरेक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभाव । (२) भिन्नता । (३) अतिक्रम । (४) एक अर्थालंकार ।

व्यतीत—वि. [सं.] बीता हुआ, गत ।

व्यथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पीड़ा । (२) क्लेश ।

व्यथित—संज्ञा स्त्री. [सं.] पीड़ित, दुखी ।

व्यभिचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बुरा या दूषित आचार । (२) पर-स्त्री या पर-पुरुष का संबंध ।

व्यभिचारि, व्यभिचारिणि, व्यभिचारिणी, व्यभिचारिनि, व्यभिचारिनी—वि. स्त्री. [सं. व्यभिचार] व्यभिचार करनेवाली । उ.—ज्यों व्यभिचारि भवन नहिं आवति औरहिं पुरुष रई—पृ. ३३४ (३९) ।

व्यभिचारी—वि. [सं. व्यभिचारिन्] (१) जिसका चाल-चलन अच्छा न हो । (२) पर-स्त्री से संबंध रखनेवाला ।

व्यय—संज्ञा पुं. [सं.] खर्च ।

व्ययी—वि. [सं.] बहुत खर्चीला ।

व्यर्थ—वि. [सं.] (१) निरर्थक, बेमतलब । (२) जिसमें कोई अर्थ न हो । (३) जिसमें लाभ न हो ।
क्रि. वि. बिना किसी मतलब के ।

व्यर्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यर्थ होने का भाव ।

व्यलीक—वि. [सं.] (१) अप्रिय । (२) कष्टदायक ।

व्यवधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परदा । (२) अंतर । (३) विभाग । (४) अलग होना । (५) समाप्ति ।

व्यवसाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्य जिससे जीविका-निर्वाह हो । (२) व्यापार । (३) उद्यम ।

व्यवसायी—वि. [सं. व्यवसायिन्] (१) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला । (२) उद्यमी ।

व्यवस्था—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शास्त्रीय विधान । (२) क्रमानुसार सजाना । (३) प्रबंध ।

व्यवस्थापक—वि. [सं.] (१) शास्त्रीय व्यवस्था बतानेवाला । (२) प्रबंध करनेवाला ।

व्यवस्थित—वि. [सं.] नियमानुसार ।

व्यवहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम, कार्य । (२) बरताव । उ.—सूरदास जाके जिय जैसी हरि कीने तैसो व्यवहार—१० उ.-७ । (३) व्यापार । (४) लेन-देन का काम । उ.—सूरदास-सिर देत सूरमा सोइ जानै व्यवहार—२७१३ । (५) स्थिति ।

व्यवहारतः—क्रि. वि. [सं.] (१) व्यवहार की दृष्टि से। (२) व्यवहार के रूप में।

व्याज—संज्ञा पुं. [सं.] कपट जिसमें कहा कुछ और किया कुछ जाय। (२) बाधा, विघ्न। (३) विलंब।

व्याजनिंदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऐसी निंदा जो स्पष्ट निंदा न जान पड़े। (२) एक शब्दालंकार।

व्याजस्तुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऐसी स्तुति जो स्पष्ट प्रशंसा न जान पड़े। (२) एक शब्दालंकार।

व्याजोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छल-कपट की बात। (२) एक अर्थालंकार।

व्याध—संज्ञा पुं. [सं.] शिकारी।

व्याधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रोग। (२) आपति।

व्यापक—वि. [सं.] (१) चारो ओर फैलनेवाला या व्याप्त। (२) चारो ओर से घेरनेवाला।

व्यापकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्यापक होने का भाव। उ.—जोवै गुन अतीत व्यापकता, तौ हम काहे न्यारी —३२७०।

व्यापना—क्रि. अ. [सं. व्यापन] व्याप्त होना।

व्यापार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम, कार्य। (२) रोजगार, व्यवसाय। उ.—यह व्यापार वहाँ जो समातो हुती बड़ी नगरी—३१०४।

व्यापारी—वि. [सं.] (१) रोजगारी, व्यवसायी। (२) व्यापार-संबंधी।

व्यापि—क्रि. अ. [हिं. व्यापना] व्याप्त होकर।

प्र०—व्यापि गई—(मन में) व्याप्त हो गयी। उ.—जबहिं मन न्यारो हठि कीन्हो गोपनि मन इह व्यापि गई—२६४६।

व्याप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) व्याप्त होने की क्रिया या भाव। (२) आठ सिद्धियों में एक।

व्यामोह—संज्ञा पुं. [सं.] अज्ञान, मोह।

वि. मोह या अज्ञान के वशीभूत। उ.—असुरनि को व्यामोह कियो हरि धरो माहिनी रूप—सारा. ३२२।

व्यायाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रम। (२) कसरत।

व्यायोग—संज्ञा पुं. [सं.] रूपक के दस प्रकारों में एक प्रकार।

व्याल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साँप। (२) हाथी।

व्यालू—संज्ञा स्त्री. [सं. वेला] रात का भोजन।

व्यावहारिक—वि. [सं.] व्यवहार-संबंधी।

व्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पराशर के पुत्र श्रीकृष्ण द्वैपायन जिन्होंने वेदों का संग्रह-संपादन किया था। (२) कथावाचक। (३) गोल वृत्त के एक स्थान से सीधी दूसरे स्थान तक पहुँचनेवाली रेखा।

व्याहत—वि. [सं.] (१) वर्जित। (२) व्यर्थ।

व्याहृत—वि. [सं.] कहा हुआ, कथित।

व्याहृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] कथन, उक्ति।

व्युत्पत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्पत्ति-स्थान। (२) शब्द का मूल रूप। (३) विशिष्ट ज्ञान।

व्युत्पन्न—वि. [सं.] (१) जिसका संस्कार हो चुका हो। (२) विशिष्ट ज्ञानवाला।

व्यूह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह। (२) निर्माण। (३) युद्ध-काल में सेना खड़ी करने की योजना। (४) शक्ति, स्वरूप। उ.—तीनों व्यूह संग लै प्रगटे पुरुषोत्तम श्रीराम—सारा. १५८।

व्योम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) मेघ।

व्योमासुर—संज्ञा पुं. [सं.] एकअसुर जिसेश्रीकृष्णने मारा था। उ.—व्योमासुर केसी सब मारे—सारा. ४८४।

व्योसाइ—संज्ञा पुं. [सं. व्यवसाय] काम, काज, संबंध। उ.—सूरदास दिगबरपुर तें रजक कहा व्योसाइ—३३३४।

व्रज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जाना, गमन। (२) समूह। (३) मथुरा और वृंदावन का निकटवर्ती प्रदेश जो श्रीकृष्ण की लीला-भूमि रही थी। पुराणों में मथुरा के चारो ओर चौरासी कोस की भूमि 'व्रजभूमि' कही गयी है जिसकी प्रदक्षिणा का बहुत माहात्म्य है।

व्रजन—संज्ञा पुं. [सं.] जाना, गमन।

व्रजनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

व्रजपति—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

व्रजभाषा—संज्ञा पुं. [सं.] शौरसेनी प्राकृत से उत्पन्न वह भाषा जो मथुरा, आगरा, इटावा आदि के निकटवर्ती प्रदेशों में बोली जाती है और जिसका प्राचीन साहित्य अत्यंत समृद्ध है।

व्रजमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] मथुरा के चारों ओर चौरासी कोस की भूमि।

व्रजमोहन—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

व्रजराइ, व्रजराई, व्रजराज, व्रजराजा, व्रजराय, व्रजराया—संज्ञा पुं. [सं. व्रजराज] श्रीकृष्ण।

व्रजलाल, व्रजलाला—संज्ञा पुं. [सं. व्रजलाल] श्रीकृष्ण।

व्रजवल्लभ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

व्रजेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

व्रजेश, व्रजेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

व्रज्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घूमना-फिरना। (२) जाना, गमन। (३) चढ़ाई, आक्रमण।

व्रण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फोड़ा। (२) घाव।

व्रत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उपवास। उ.—सत संजम तीरथ व्रत कीन्हें तब यह संपति पाई—१०-१६।

(२) दृढ़ निश्चय या संकल्प।

व्रतचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं. व्रतचर्य्या] व्रत रखना।

व्रतचारी—वि. [सं.] व्रत रखनेवाला।

व्रती—वि. [सं.] व्रत रखनेवाला।

व्राचड़—संज्ञा स्त्री. [अप.] (१) सिंध में प्रचलित एक प्रचीन अपभ्रंश भाषा। (२) पैशाची भाषा का एक भेद।

व्रात्य - वि. [सं.] व्रत-संबंधी।

संज्ञा पुं (१) वह व्यक्ति जिसके दस संस्कार न हुए हों। (२) वह व्यक्ति जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो।

व्रीड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शरम, लज्जा।

व्रीहि—संज्ञा पुं. [सं.] धान, चावल।

श

श—देवनागरी वर्णमाला का तीसवाँ व्यंजन जिसे, प्रधानतया तालू की सहायता से उच्चरित होने के कारण, 'तालव्य' कहते हैं। उच्चारण में घर्षण-विशेष होने से यह 'ऊष्म' भी कहलाता है।

शंक—संज्ञा स्त्री. [सं.] भय, आशंका। उ.—(क) हौं सकुचनि बोलो नहीं, लोक-लाज की शंक करी—(ख) करत ओघ प्रजा लोगं सब नृपति की शंक न मानी—२५४५।

शंकना—क्रि. अ. [सं. शंका] भय या शंका करना।

शंकर—वि. [सं.] (१) शुभ। (२) मंगलकारी।

संज्ञा पुं. (१) शिव। (२) शंकराचार्य।

शंकरशैल—संज्ञा पुं. [सं.] कैलास।

शंकराचार्य—संज्ञा पुं. [सं. शंकराचार्य्य] प्रसिद्ध शैवाचार्य (सन् ७८८-८२०) जिनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का सुभद्रा था। आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास लिया था। इन्होंने शास्त्रार्थ में मंडन मिश्र को सपत्नीक परास्त किया था। तदनंतर सारे भारत में भ्रमण करके वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया था। उपनिषद और वेदांत सूत्र पर इन्होंने अत्यंत विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी थीं। इनके स्थापित चार मठों—बद्रिकाश्रम, करवीरपीठ, द्वारकापीठ और शारदापीठ—की गद्दी के अधिकारी आज भी शंकराचार्य कहे जाते हैं।

शंकरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती, शिवा।

वि. मंगल या कल्याण करनेवाली।

शंका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) डर, भय। उ.—शशि शंका निसि जालनि के मग वसन बनाइ किए—३४५९। (२) संदेह, संशय। (३) एक संचारी भाव।

शंकाना—क्रि. अ. [सं. शंका] भय या आशंका करना।

शंकानो—क्रि. अ. [हि. शंकाना] भयभीत या शंकित हुआ। उ.—वहि क्रम बिनु द्वै सुत अहीर के रे कातर कत मन शंकानो—३३७८।

शंकि—वि. [सं. शंका] भयभीत, शंकित। उ.—देखत ही शंकि गए काल गुण बिहाल भए कंस डरन घेरि लिए दोउ मन मुसकाए—२६००।

शंकित—वि. [सं.] (१) डरा हुआ। उ.—(क) सूरदास सुरपति शंकित ह्वै सुरन लिए सँग आयो—१०००। (ख) शंकित नंद निरस बानी सुनि विलम करत कहा क्यों न चले—२६४७। (२) जिसे संदेह हुआ हो। (२) अनिश्चित।

शंकु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नुकीली चीज जैसे मेख, खूँटी। (२) भाला। (३) एक बाजा। (४) उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

शंके—क्रि. अ. [सं. शंका] भयभीत या शंकित हुए। उ.—(क) महाराज शक्के कहा सपने कह शंके—२४७०। (ख) मारयो कंस सुनत सब शंके—२६४३।

शंख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह का बड़ा घोंघा जो देव-पूजा और युद्ध के समय बजाया जाता है। उ.—पंचानन ज शंख तहँ लीन्हों मारि असुर अति नीच—सारा. ५४०।

मुहा०—शंख बजना—विजय प्राप्त होना। शंख बजाना—किसी की हानि या अपमान देखकर आनंद मनाना।

(२) एक लाख करोड़ (संख्या)। (३) एक दैत्य जो वेदों को चुरा ले गया था और जिसे मारकर वेदों का उद्धार करने के लिए भगवान ने मत्स्यावतार धारण किया था। (४) नौ निधियों में एक। (५) राजा विराट् का एक पुत्र।

शंखचूड़—संज्ञा पुं. [सं.] कंस का अनुचर एक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—(क) शंखचूड़ चाणूर सँहारन—९८२। (ख) धेनुक अरु प्रलंब सँहारे शंखचूड़ बध कीन्हों—सारा. ४७९।

शंखधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण। उ.—गिरिधर वज्रधर धरनीधर पीतांबरधर मुकुटधर गोपधर शंख-धर सारँगधर चक्रधर रस धरें अधर सुधाधर। (२) विष्णु।

शंखपाणि—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

शंखासुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक दैत्य जो वेद चुराकर समुद्र में जा छिपा था और जिसको मारने के लिए विष्णु ने मत्स्यावतार लिया था। उ.—चार बेद लै गयो सखासुर जल में रह्यो छुपाय। धरि हयग्रीव रूप हरि मारयो लीन्हें वेद छुड़ाय—सारा. ९०। (२) मुर दैत्य का पिता।

शंखिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चार प्रकार की स्त्रियों में एक जो सलोम शरीरवाली, लज्जा और शंका रहित, सुंदर, अत्यंत रतिप्रिय आदि होती है। (२) मुँह की नाड़ी-विशष।

शंठ—वि. [सं.] (१) अविवाहित। (२) मूर्ख।

शंड—वि. [सं.] (१) नपुंसक। (२) उन्मत्त। (३) साँड़।

शंडामर्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शंड और मर्क नाम के दो दैत्य। (२) प्रह्लाद के शिक्षागुरु। उ.—शंडामर्क (संडामर्क) रहे पचि हारि। राजनीति कहि बारंबार—७-२।

शंतनु—संज्ञा पुं. [सं. शांतनु] राजा शांतनु।

शंतनु-सुत—संज्ञा पुं. [सं. शांतनु+सुत] भीष्म।

शंपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिजली। (२) कमर।

शंबर—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जिसे इंद्र ने मारा था। (२) एक दैत्य जो कामदेव का शत्रु था और जिसे श्रीकृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न ने मारा था। उ.—पहिलो पुत्र रुक्मिनी जायो प्रदुमन नाम धरायो। कामदेव प्रगटे हरि के गृह पहिले रुद्र जरायो। नारद जाय कही शंबर सों तव रिपु बपु धरि आयो⋯⋯महाबली बलराम कृष्ण-सुत कीन्हों असुर सँहार—सारा. ६८९-१०-९६।

वि. (१) श्रेष्ठ। (२) भाग्यशाली। (३) सुखी।

शंबरसूदन—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

शंबरारि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामदेव। (२) प्रद्युम्न।

शंबुक—संज्ञा पुं. [सं.] घोंघा।

शंभु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) स्वायंभुव (मनु)।

शं—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) कल्याण।

शऊर—संज्ञा पुं. [अ.] (१) ढंग। (२) बुद्धि।

शक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन जाति जिसने ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व भारत के कुछ भागों पर अधिकार करके लगभग दो सौ वर्ष तक राज्य किया। कनिष्क शक जातीय राजा था। (२) राजा शालि-वाहन का चलाया हुआ संवत् जो ईसा के ७८ वर्ष पश्चात् आरंभ हुआ था।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) शंका। (२) कमी, अपूर्णता। उ.—कहिबे में न कछू शक राखी—३४६९।

शकट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छकड़ा, बैलगाड़ी। (२) शकटासुर नामक दैत्य जो कंस का अनुचर था और जिसे श्रीकृष्ण ने शैशवावस्था में ही मारा था। उ.—

जिन हति शकट प्रलंब तृणावृत इंद्र प्रतिज्ञा टाली —२५६७।

शकटव्यूह—संज्ञा पुं. [सं.] सेना की शकटाकार रचना।

शकटारि—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

शकटासुर—संज्ञा पुं. [सं.] एक असुर जो कंस का अनुचर था और जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

शकठ—संज्ञा पुं. [सं.] मचान।

शकर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] शक्कर, चीनी, शर्करा।

शकरकंद—संज्ञा पुं. [हिं. शकर+सं. कंद] एक कंद।

शकरपारा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) एक पकवान। (२) शकरपारे के आकार की सिलाई।

शकल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमड़ा, छाल। (२) खंड।
 संज्ञा स्त्री. [अ. शक्ल] (१) (मुख की) आकृति। (२) मुख का भाव या चेष्टा। (३) बनावट, ढाँचा, गढ़न। (४) स्वरूप, आकार। (५) तरकीब, उपाय। (६) मूर्ति।

शकाब्द—संज्ञा पुं. [सं.] शक संवत् जो राजा शालिवाहन द्वारा ईसा के ७८ वर्ष पश्चात् चलाया गया था।

शकारि—संज्ञा पुं. [सं.] शक-विजेता विक्रमादित्य।

शकील—वि. [फ़ा. शक्ल] सुंदर।

शकुंत—संज्ञा पुं. [सं.] चिड़िया, पक्षी।

शकुंतला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अप्सरा मेनका के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र की पुत्री जिसका, शकुंतों द्वारा रक्षा की जाने के कारण 'शकुंतला' नाम पड़ा। इसका लालन-पालन कण्व ऋषि ने किया था। यह दुष्यंत को ब्याही थी और इसके पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। (२) कालिदास का एक नाटक जिसमें शकुंतला की कथा है।

शकुन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी कार्यारंभ के समय दिखायी देनेवाले शुभ या अशुभ लक्षण। सामान्यतया 'शकुन' से तात्पर्य शुभ लक्षणों से ही लिया जाता है। (२) शुभ मुहूर्त में किया जानेवाला कार्य। (३) मंगल अवसर पर गाये जानेवाले गीत।

शकुनि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गांधारी का भाई जो कौरवों का मामा था और जिसे दुर्योधन ने मंत्री बना लिया था। इसके कपट से ही पांडवों की जुए में हार हुई थी। इसे सहदेव ने मारा था। (२) पाजी या दुष्ट आदमी।

शकुनी—वि. [सं. शकुन+ई] शकुन-फल बतानेवाला।

शक्कर—संज्ञा स्त्री. [सं. शर्करा] चीनी, शकर।

शक्की—वि. [अ. शक+ई] हमेशा शक करनेवाला।

शक्त—वि. [सं.] शक्तिवाला, समर्थ।

शक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बल, पराक्रम। (२) किसी प्रकार का बल। (३) प्रभाव डालनेवाला बल। (४) वश, अधिकार। (५) ईश्वर की माया, प्रकृति। (६) देव-बल। (७) किसी पीठ की अधिष्ठात्री देवी। (८) दुर्गा, भगवती। (९) गौरी। (१०) लक्ष्मी। (११) 'साँग' नामक शस्त्र। (१२) तलवार।

शक्तिधर—संज्ञा पुं. [सं.] स्कंद, कार्तिकेय।

शक्तिपूजक—वि. [सं.] शक्ति का उपासक, शाक्त।

शक्तिमत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] शक्तिमानता।

शक्तिमान—वि. [सं. शक्तिमान्] बली।

शक्तिशाली—वि. [सं. शक्तिशालिन्] बलवान।

शक्ति-संपन्न—वि. [सं.] शक्ति से युक्त, बली।

शक्तिहीन—वि. [सं.] (१) बलहीन। (२) नपुंसक।

शक्य—वि. [सं.] (१) जो संभव या किया जाने योग्य हो। (२) जिसमें शक्ति हो।

शक्र—संज्ञा पुं. [सं.] (दैत्य-नाशक) इंद्र।

शक्रचाप—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष।

शक्रजित—संज्ञा पुं. [सं. शक्रजित] मेघनाद।

शक्रदिश, शक्रदिशा—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्रदिश] पूर्व दिशा जिसका स्वामी इंद्र है।

शक्रधनु, शक्रधनुष—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष।

शक्रनन्दन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बालि। (२) अर्जुन।

शक्राणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] इंद्र-पत्नी, इंद्राणी।

शक्ल—संज्ञा स्त्री. [अ. शक्ल] (१) चेहरा, मुखाकृति। (२) मुख का भाव, चेष्टा। (३) बनावट, ढाँचा। (४) स्वरूप। (५) उपाय। (६) मूर्ति।

शख्स, शख्श—संज्ञा पुं. [अ. शख्स] मनुष्य।

शगल—संज्ञा पुं. [अ. शग़ल] (१) कामधंधा। (२) मनोविनोद का साधन या कार्य।

शगुन, शगून—संज्ञा पुं. [सं. शकुन, हिं. शगुन] (१)

शुभाशुभ लक्षण या विचार। (२) शुभ लक्षण या विचार। (३) विवाह के पूर्व वर के तिलक या टीके की रीति जिसमें संबंध पक्का किया जाता है। (४) नजराना, भेंट।

शगुनियाँ, शगूनियाँ—वि. [हिं. शगुन, शगुनियाँ] शगुन बतानेवाला।

शगूफा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सगूफ़ा] (१) कली। (२) फूल। (३) नयी और विलक्षण घटना।

मुहा०—शगूफा खिलना—(१) नयी बात होना। (२) झगड़ा होना। शगूफा खिलाना या छोड़ना—(१) नयी बात कर बैठना। (२) कोई बात कहकर झगड़ा करा देना।

शचि, शची—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इंद्र की पत्नी इंद्राणी जो दानवराज पुलोमा की पुत्री थी।। उ.—उमा रमा अरु शची अरुंधती दिनप्रति देखन आवैं—पृ० ३४५ (४१)। (२) बुद्धि, प्रज्ञा।

शचीपति—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

शजरा – संज्ञा पुं. [अ. शजरा] वंशावली। (२) वृक्ष।

शठ—वि. [सं.] (१) धूर्त, चालाक। (२) दुष्ट।

संज्ञा पुं. पाँच प्रकार के नायकों में एक जो छल-पूर्वक अपना अपराध छिपाने में चतुर हो और दूसरी स्त्री से प्रेम करते हुए भी अपनी पत्नी से प्रेम प्रदर्शित करने में कुशल हो।

शठगी—संज्ञा स्त्री. [सं. शठ] दुष्टता, धूर्तता।

उ.—बहुत प्रकार निमेष लगाए छूटि नहीं शठगी—२७९०।

शठता—संज्ञा स्त्री. [सं.] धूर्तता, दुष्टता।

शत—वि. [सं.] सौ (संख्या)।

संज्ञा पुं. सौ की संख्या।

शतक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौ का समूह। (२) सौ चीजों का संग्रह। (३) सौ वर्ष, शताब्दी।

शतकोटि, शतकोटी—संज्ञा पुं. [सं.शतकोटि] सौ करोड़ की संख्या। उ.—शतकोटी रामायण कीनो तऊ न लीन्हों पार—सारा. १५५।

शतदल—संज्ञा पुं. [सं.] कमल, पद्म।

शतद्रु—संज्ञा स्त्री. [सं.] सतलज नदी।

शतधन्वा—संज्ञा पुं. [सं. शतधन्वन्] एक योद्धा जिसने सत्राजित को मारा था और इस अपराध के कारण जिसे श्रीकृष्ण ने मार डाला था—१० उ.-२७।

शतधा—अव्य. [सं.] (१) सैकड़ों बार। (२) सैकड़ों प्रकार से। (३) सैकड़ों टुकड़ों या धाराओं में।

शतपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] कमल, पद्म।

शतपथ—वि. [सं.] अनेक शाखाओंवाला।

शतभिषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सत्ताइस नक्षत्रों में चौबीसवाँ नक्षत्र।

शतरंज—संज्ञा पुं. [फा.] एक प्रसिद्ध खेल।

शतरुद्र—संज्ञा स्त्री. [सं. शतद्रु] सतलज नदी।

उ.—पुनि शतरुद्र और चंद्रभागा गंगा व्यास न्हवाये—सारा. ८२८।

संज्ञा पुं. सौ मुखवाला रुद्र।

शतरूपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्रह्मा की मानसी कन्या जो स्वयंभुवमनु की पत्नी थी। उ.—स्वयंभुवमनु अरु शतरूपा तुरत भूमि पर आए—सारा. ३८।

शतशः—वि. [सं.] (१) सैकड़ों। (२) सौ गुना। (३) बहुत अधिक।

शतांश—संज्ञा पुं. [सं.] सौवाँ भाग।

शतानन्द—संज्ञा पुं. [सं.] जनक के पुरोहित।

शताब्दी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सौ वर्ष का समय।

शतायु—वि. [सं. शतायुस्] सौ वर्ष की आयुवाला।

शती—संज्ञा स्त्री. [सं.] सौ का समूह, सैकड़ा।

शत्रुंजय - वि. [सं.] शत्रुओं को जीतनेवाला।

शत्रु—संज्ञा पुं. [सं.] दुश्मन, रिपु, अरि।

शत्रुघ्न—वि. [सं.] शत्रु का नाश करनेवाला।

संज्ञा पुं. लक्ष्मण का छोटा भाई।

शत्रुता, शत्रुताई – संज्ञा स्त्री. [सं. शत्रुता] दुश्मनी।

शत्रुहा—संज्ञा पुं. [सं.] शत्रुघ्न।

शनि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नौ ग्रहों में सातवाँ ग्रह। (२) अभाग्य, दुर्भाग्य।

शनिवार—संज्ञा पुं. [सं.] शुक्रवार और रविवार के बीच का दिन या वार।

शनिश्चर—संज्ञा पुं. [सं.] शनि ग्रह।

शनैः—अव्य. [सं.] धीरे।

शपथ—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कसम, सौगंध । (२) प्रतिज्ञा, संकल्प, दृढ़ निश्चय । उ.—मन-बच क्रम शपथ सुनि ऊधो संगहि चली लिवाई—३१३४ ।

शफरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक छोटी मछली ।

शफा—संज्ञा स्त्री. [अ. शफ़ा] नीरोगता ।

शफ़ाखाना—संज्ञा पुं. [अ. शफ़ा+फा. खाना] चिकित्सालय ।

शब—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] रात, रात्रि ।

शबनम—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] ओस, तुषार ।

शबर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन अनार्य जाति । (२) शूद्र । (३) भील ।

शबरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'शबर' नामक अनार्य जाति की एक भक्तिन जिसने वन में श्रीराम को जूठे बेर खिलाये थे ।

शबल—वि. [सं.] (१) रंग-बिरंगा । (२) चितकबरा ।

शबाब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) जवानी । (२) सुंदरता ।

शबोह—संज्ञा स्त्री. [अ.] तसवीर, चित्र ।

शब्द—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आवाज, ध्वनि । उ.—(क) किंकिणि शब्द चलत ध्वनि रुनु-झुन—२५४९ । (ख) घर-घर इहै शब्द परचो—२९५४ । (२) वह स्वतंत्र सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोग से उत्पन्न हो और किसी कार्य, भाव या वस्तु की बोधक हो । (३) 'ओ३म्' जो परमात्मा का मुख्य नाम है । (४) साधु-महात्मा के पद या गीत ।

शब्दकोश—संज्ञा पुं. [सं.] वह (कोश) ग्रंथ जिसमें बहुत से शब्द अर्थसहित दिये गये हों ।

शब्दचित्र—संज्ञा पुं. [सं.] शब्दों द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य आदि का ऐसा स्पष्ट वर्णन कि उसका पूरा चित्र सामने आ जाय ।

शब्दजाल—संज्ञा पुं [सं. शब्द+हिं. जाल] बड़े-बड़े शब्दों का ऐसा आडंबरपूर्ण प्रयोग जिसमें अर्थ या भाव विशेष न हो ।

शब्द-प्रमाण—संज्ञा पुं. [सं.] ऐसा प्रमाण जो किसी के कथन पर आधारित हो ।

शब्दभेधी—संज्ञा पुं. [सं. शब्दवेधिन्] वह मनुष्य जो केवल शब्द सुनकर, बिना देखे ही, लक्ष्य को बाण से वेध सकता हो ।

शब्दशक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा विशेष भाव सूचित हो । यह शक्ति तीन प्रकार की होती है—अभिधा, लक्षण और व्यंजना । इनसे प्रकट अर्थ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तथा इन्हें प्रकट करनेवाले शब्द क्रमशः वाचक, लक्षक और व्यंजक कहलाते हैं ।

शब्दाडंबर—संज्ञा पुं. [सं.] बड़े-बड़े शब्दों का ऐसा प्रयोग जिसमें अर्थ या भाव विशेष न हो ।

शब्दानुशासन—संज्ञा पुं. [सं.] व्याकरण ।

शब्दालंकार—संज्ञा पुं. [सं.] वह अलंकार जिससे भाषा में लालित्य या सौंदर्य लाया जाय ।

शब्दावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शब्द-समूह । (२) विषय या कार्य-विशेष की शब्द-सूची । (३) किसी वाक्य या प्रश्न के शब्दों का क्रम या प्रकार ।

शम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंतःकरण एवं अंतरेंद्रिय-निग्रह । (२) शांत रस का स्थायी भाव । (३) क्षमा ।

शमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिंसा । (२) शांति । (३) दमन । (४) यम । (५) रात, रात्रि ।

शमशेर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] तलवार ।

शमा—संज्ञा स्त्री. [अ. शमअ] (१) मोम । (२) मोमबत्ती ।

शमादान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वह आधार जिसमें मोमबत्ती जलायी जाती है ।

शमित—वि. [सं.] (१) जिसका शमन या दमन किया गया हो । (२) ठहरा हुआ, शांत ।

शमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सफेद कीकर का वृक्ष जिसकी पूजा विजयादशमी को की जाती है ।

शमीक—संज्ञा पुं. [सं.] एक क्षमाशील ऋषि जिनके गले में परीक्षित ने मरा हुआ साँप डाल दिया था और जिनके पुत्र ने उनको सातवें दिन तक्षक नाग द्वारा डसे जाने का शाप दिया था ।

शयन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोने या निद्रित होने की क्रिया । (२) बिछौना, शैया ।

शयनकक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] सोने का कमरा, शयनागार ।

शयनआरती—संज्ञा स्त्री. [सं. शयन+हिं. आरती] वह आरती जो रात्रि में देवता के शयन के पूर्व की जाती है।

शयनबोधिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] अगहन कृष्णा एकादशी।

शयनमंदिर—संज्ञा पुं. [सं.] सोने का स्थान या कमरा।

शयनागार—संज्ञा पुं. [सं.] सोने का स्थान या कमरा।

शयनैकादशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आषाढ़ शुक्ला एकादशी जबसे विष्णु का शयनारंभ माना जाता है।

शय्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिछौना। (२) पलंग।

शर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीर, बाण। (२) भाले का फल। (३) चिता। (४) पाँच की संख्या।

शरण—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रक्षा, आश्रय। (२) रक्षा या आश्रय का स्थान।

शरणागत—वि. [सं.] शरण में आया हुआ।

शरणार्थी—वि. [सं. शरणार्थिन्] शरण माँगनेवाला।

शरणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मार्ग, पथ।

वि. शरण या आश्रय देनेवाली।

शरण्य—वि. [सं.] शरणागत का रक्षक।

शरत्, शरद्—संज्ञा स्त्री. [सं. शरत्] (१) वह ऋतु जो आश्विन और कार्तिक मास में होती है। (२) साल, वर्ष।

शरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तीर चलाने की कला या विद्या।

शरदपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुआँर की पूर्णिमा।

शरदेंदु—संज्ञा पुं. [सं.] शरत ऋतु का चन्द्र।

शरनाई—संज्ञा स्त्री [सं. शरण+हिं. आई] शरण।। उ.—हमतौ हैं तुम्हारी शरनाई—८०४।

शरनी—वि. [सं. शरणी] शरण देनेवाली। उ.—अशरन शरनी भव भय हरनी वेद पुरान बखानी—पृ. ३४६ (४०)।

शरपट्टा—संज्ञा पुं. [सं. शर+हिं. पट्टा] एक शस्त्र।

शरबत—संज्ञा पुं. [अ.] (१) गुण या शकर का घोल। (२) चीनी के घोल में पका हुआ अर्क। (३) सगाई की एक रीति।

शरबती—वि. [हिं. शरबत] (१) ललाई लिये हुए हल्के पीले रंग का। (२) रस से भरा हुआ।

शरभंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक महर्षि जिनके दर्शन श्रीराम ने किये थे। उ.—बंदन करि शरभंग महामुनि अपने दोष निवारे—सारा. २५५।

शरभ—संज्ञा पुं. [सं.] राम का एक बानर-सेनानायक।

शरम—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शर्म] (१) लज्जा। उ.—रिसम उठी झहराइ झटकि भुज छुवत कहा पिय शरम नहीं—२१४२। (२) लिहाज, संकोच। (३) इज्जत, मर्यादा, प्रतिष्ठा।

शरमाऊँ—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित होता हूँ। उ.—यह वाणी भजन स्रवन बिन सुनत बहुत शरमाऊँ—१८५८।

शरमाऊ—वि. [हिं. शरम+आऊ] लज्जित होनेवाला।

शरमाति—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित होती है। उ.—सूर श्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि शरमाति—१३४९।

शरमाना—क्रि. अ. [हिं. शरम+आना] लजाना, लाज करना, लज्जित होना।

क्रि. स. (दूसरे को) लज्जित करना।

शरमाने—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लजाये, लज्जित हुए। उ.—काहे को इतनो शरमाने, रैनि रहे फिरि जाहु तहाँ—१९९३।

शरमानो—क्रि. अ. [हिं. शरम+आनो] लजाना।

क्रि. स. (दूसरे को) लज्जित करना।

शरमाशरमी—क्रि. वि. [हिं. शरम] लाज के कारण, संकोच से।

शरमिंदा—वि. [फ़ा.] लज्जित।

शरमीला—वि. [हिं. शरम+ईला] शरमानेवाला।

शरवाणि—संज्ञा स्त्री. [सं.] तीर का फल।

शराध—संज्ञा पुं. [सं. श्राद्ध] मृतक का श्राद्ध।

शराप—संज्ञा पुं. [सं. शाप] शाप। उ.—ता शराप ते भए श्याम तन तउ न गहत डर जी को—३०४०।

शरापना—क्रि. अ. [सं. शाप] (१) शाप देना। (२) कोसना।

संज्ञा स्त्री. पीड़ित की हाय।

शराफत—संज्ञा स्त्री. [अ. शराफ़त] भलमनसी, सज्जनता।

शराब—संज्ञा स्त्री. [अ.] सुरा, मदिरा।

शराबी—वि. [हिं. शराब] जिसे शराब पीने की लत या उसका व्यसन हो।

शराबोर—वि. [फ़ा.] पानी से बहुत भीगा हुआ।

शरारत—संज्ञा स्त्री. [अ.] पाजीपन, दुष्टता।

शराव—संज्ञा पुं. [सं.] मिट्टी का पुरवा, कुल्हड़।

शरासन—संज्ञा पुं. [सं.] कमान, चाप, धनुष।

शरीक—वि. [अ. शरीक़] मिला हुआ, सम्मिलित।
संज्ञा पुं. (१) साथी, सहायक। (२) साझीदार।

शरीफ-वि. [अ. शरीफ़] (१) कुलीन। (२) सभ्य। (३) पवित्र। (४) सकुशल।

शरीफ़ा—संज्ञा पुं. [सं. श्री.फल] एक वृक्ष या उसका मीठा फल जिसके बीज काले होते हैं।

शरीर—संज्ञा पुं. [सं.] तन, बदन, देह।
वि. [अ.] नटखट, पाजी, दुष्ट।

शरीरांत—संज्ञा पुं. [सं.] मौत, देहांत।

शरीरी—संज्ञा पुं. [सं. शरीरिन्] (१) शरीरधारी। (२) आत्मा, जीव। (३) प्राणी।

शरेष्ठ—वि. [सं. श्रेष्ठ] उत्तम।

शर्करा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चीनी, खाँड़, शक्कर।

शर्त—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) बाजी, बदान, दाँव। (२) बदी हुई बात, प्रतिबंध।

शर्तिया—क्रि. वि. [अ.] निश्चय ही।
वि. निश्चित, अचूक।

शर्बत—संज्ञा पुं. [हिं. शरबत] शरबत।

शर्बती—वि. [हिं. शरबत] शरबत के रंग का।

शर्म—संज्ञा स्त्री. [फा.] लाज, संकोच।

शर्मद—वि. [सं. शर्म्मद] सुखदायी।

शर्मा—संज्ञा पुं. [सं. शर्म्मन्] ब्राह्मणों की उपाधि।

शर्मिष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री जो देवयानी की दासी बनकर राजा ययाति के यहाँ गयी थी और रानी के अनजाने में उनसे संभोग करके जिसने तीन पुत्र जने थे।

शर्मीला—वि. [फ़ा. शर्म] लजानेवाला।

शर्याति—संज्ञा पुं. [सं.] एक राजा जिनकी पुत्री सुकन्या च्यवन ऋषि को ब्याही थी।

शर्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) विष्णु।

शर्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) साँझ।

शर्वरीश—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

शर्वाणी—संज्ञा स्त्री. [सं. शर्व्वाणी] (१) पार्वती। (२) दुर्गा।

शल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कंस का एक मल्ल। उ.—और मल्ल मारे शल तोशल बहुत गए सब भाग—सारा. ५२३। (२) कंस का एक अमात्य। (३) धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

शलगम, शलजम—संज्ञा पुं. [फा. शलजम] एक कंद।

शलभ—संज्ञा पुं. [सं.] पतंगा।

शलाका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लोहे की सलाई या सलाख। उ.- अलि आली गुरु ज्ञान शलाका क्यों सहि सकति तुम्हारी—३०३९। (२) सुरमा लगाने की सलाई।

शल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मद्र देश का एक राजा जिसकी बहन माद्री पांडु को ब्याही थी। महाभारत के युद्ध में शल्य दुर्योधन की ओर से लड़ा था और युद्ध के अंतिम दिन सेनापति बनाये जाने पर अर्जुन के हाथ से मारा गया था। (२) अस्त्र-चिकित्सा। (३) एक प्रकार का बाण।

शल्यकी—संज्ञा स्त्री. [सं. शल्लकी] साही नामक जंतु।

शल्यक्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] चीर-फाड़ का इलाज।

शल्ल—वि. [सं.] सुन्न, शिथिल।

शव—संज्ञा पुं. [सं.] (मानव का) मृत शरीर।

शवता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निर्जीवता।

शवदाह—संज्ञा पुं. [सं.] मृत शरीर को जलाना।

शवभस्म—संज्ञा स्त्री. [सं.] चिता की भस्म।

शवमंदिर—संज्ञा पुं. [सं.] मरघट, श्मशान।

शवयान—संज्ञा पुं. [सं.] मुर्दे की अरथी, टिकठी।

शवर—संज्ञा पुं. [सं.] एक जंगली पहाड़ी जाति।

शवरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शवर जाति की स्त्री। (२) शवर जाति की श्रमणा नाम्नी तपस्विनी जिसने, सीता को ढूँढ़ते हुए राम के अपने आश्रम में पहुँचने पर उनको जूठे बेर समर्पित करके उनकी अभ्यर्थना की थी और उन्हीं के सामने अपने को चिता में भस्म कर दिया था। उ.—शवरी परम भक्त रघुपति की

बहुत दिननि की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरन भवित प्रकासी—सारा. २७२।

शश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खरहा, खरगोश। (२) चंद्रमा का कलंक। (३) मनुष्य के चार (प्रकारों) में एक; सुशील, कोमलांग और गुण-निधान व्यक्ति।

शशक—संज्ञा पुं. [सं.] खरहा, खरगोश।

शशधर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

शशलांछन—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

शशशृंग—संज्ञा पुं. [सं.] (खरगोश के सींग जैसी) असंभव और अनहोनी बात।

शशांक—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

शशा—संज्ञा पुं. [सं. शश] खरहा, खरगोश।

शशि—संज्ञा पुं. [सं. शशिन्] (१) चंद्रमा। उ. श्वेत छत्र मनो शशि प्राची दिशि उदय कियो निशि राका —८५६६।

शशिकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा की किरण।

शशिकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा की कला।

शशिकुल—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रवंश।

शशिज—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का पुत्र बुध।

शशितिथि—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्णिमा।

शशिधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) एक प्राचीन नगर।

शशिप्रभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चांदनी, ज्योत्सना।

शशिप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुमुद। (२) मोती।

शशिभूषण—संज्ञा पं. [सं.] शिव, महादेव।

शशिमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का घेरा। उ.—सब नक्षत्र को राजा दीन्हों शशिमंडल में छाप।

शशिमुख—वि. [सं.] चंद्र-सा सुंदर मुखवाला।

शशिरेखा, शशिलेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्र-कला।

शशिशाला—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शीशा+सं. शाला] शीशों का महल, शीशमहल।

शशिशेखर—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

शशिसुत—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का पुत्र बुध ग्रह।

शशिहीरा—संज्ञा पुं. [सं. शशि+हिं. हीरा] चंद्रकांत मणि।

शशी—संज्ञा पुं. [सं. शशि] चंद्रमा।

शशीकर—संज्ञा पुं. [सं. शशिकर] चंद्र-किरण।

शस्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शरीर। (२) कल्याण।
वि. (१) श्रेष्ठ। (२) प्रशस्त। (३) जो मार डाला गया हो। (४) कल्याणयुक्त।

शस्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्तुति, प्रशंसा।

शस्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] हथियार जिसे हाथ में पकड़े रहकर वार किया जाय।

शस्त्रजीवी—संज्ञा पुं. [सं. शस्त्रजीविन्] योद्धा।

शस्त्रधर—संज्ञा पुं. [सं.] योद्धा, सैनिक।

शस्त्रधारी—वि. [सं. शस्त्रधारिन्] शस्त्र बांधनेवाला।

शस्त्रागार—संज्ञा पुं. [सं.] शस्त्र रखने का स्थान।

शस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नयी घास या तृण। (२) फसल, खेती। (३) अन्न, धान्य।

शहंशाह—संज्ञा पुं. [फ़ा. शाहंशाह] महाराजाधिराज।

शह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) महाराज। (२) दूल्हा।
संज्ञा स्त्री. (१) शतरंज की किश्त। (२) भड़काने या उत्तेजित करने की क्रिया या भाव।

शहजादा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शाहज़ादा] राजकुमार।

शहजोर—वि. [फ़ा. शहज़ोर] बली, बलवान।

शहजोरी—वि. [फा. शहज़ोरी] ताकत, बल।

शहतीर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बड़ा लट्ठा।

शहतूत—संज्ञा पुं. [फ़ा.] तूत का पेड़ या फल।

शहद—संज्ञा पुं. [अ.] मधु।
मुहा॰—शहद लगाकर चाटना—किसी उपयोगी पदार्थ का सदुपयोग न करने पर किया जानेवाला व्यंग्य। शहद लगाकर अलग हो जाना या होना—झगड़ा कराकर अलग हो जाना।

शहनाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] नफीरी बाजा।

शहबाला—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वह बालक जो दूल्हे के साथ घोड़े पर या पालकी में बैठता है।

शहर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बड़ीबस्ती, नगर। उ.—चले जात सब घोष शहर को—१०३६।

शहरपनाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] शहर की चारदीवारी, नगरकोटा, प्राचीर।

शहरी—वि. [फ़ा.] (१) शहर से संबंधित। (२) शहर में रहने बसनेवाला।

शहसवार—वि. [फ़ा.] घुड़सवारी में कुशल ।

शहादत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) गवाही, साक्ष्य । (२) सबूत, प्रमाण ।

शहिज़दा—संज्ञा पुं. [हिं. शाहज़ादा] राजकुमार ।

शहीद—वि. [अ.] धर्म या देश की रक्षा अथवा ऐसे ही शुभ कार्य के लिए प्राण देनेवाला ।

शांडिल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक मुनि । (२) एक गोत्र ।

शांत—वि. [सं.](१) जिसमें वेग, क्षोभ या क्रिया न हो । (२) (रोग आदि) मिटा हुआ । (३) क्रोधरहित, प्रकृतिस्थ । (४) मरा हुआ, मृत । (५) गंभीर, सौम्य । (६) चुप, मौन । (७) मनोविकाररहित । (८) उत्साहहीन । (९) हारा-थका, श्रांत । (१०) बुझा हुआ । (११) विघ्न-बाधारहित । (१२) स्वस्थ चित्त । (१३) अप्रभावित ।

संज्ञा पुं. नौ रसों में एक जिसका स्थायी भाव निर्वेद (काम-क्रोध आदि का शमन) है ।

शांतनु—संज्ञा पुं. [सं.] प्रतीप के पुत्र एक चंद्रवंशी राजा जिनके, गंगादेवी से देवव्रत भीष्म का जन्म हुआ था और धीवर कन्या सत्यवती से विचित्रवीर्य और चित्रांगद का ।

शांता—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा दशरथ की पुत्री जो महर्षि ऋष्यश्रृंग की पत्नी थी ।

शांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेग, क्षोभ या क्रिया का अभाव, स्थिरता । (२) सन्नाटा, नीरवता । (३) चित्त की स्वस्थता । (४) रोग, पीड़ा आदि का न रह जाना । (५) मरण, मृत्यु । (६) गंभीरता, धीरता, सौम्यता । (७) वासना से मुक्ति, विरक्ति । (८) अमंगल दूर करने का उपचार । (९) राधा की सखी एक गोपी का नाम ।

शांतिकर—वि. [सं.] शांति देनेवाला ।

शांतिदायी—वि. [सं. शांतिदायिन्] शांति देनेवाला ।

शांतिप्रद—वि. [सं.] शांति देनेवाला ।

शांतिमय—वि. [सं.] शांति से पूर्ण ।

शांबरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जादू । (२) जादूगरनी ।

शांभर—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजपूताने की एक झील जिसमें 'साँभर' नमक होता है ।

शाइस्तगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] भलमनसाहत, शिष्टता ।

शाइस्ता—वि. [फ़ा. शाइस्तः] शिष्ट, विनम्र ।

शाकंभरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा ।

शाक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साग-भाजी, तरकारी । (२) सात द्वीपों में एक । उ.—सातों द्वीप कहे शुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर । जंबू प्लक्ष क्रौंच, शाक, सालमलि कुश पुष्कर भरपूर—सारा. ३४ ।

शाकल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंड । (२) हवन-सामग्री ।

शाकाहार—संज्ञा पुं. [सं.] निरामिष भोजन ।

शाकाहारी—वि. [सं. शाकाहारिन्] केवल अनाज और साग-भाजी खानेवाला ।

शाकुनि—संज्ञा पुं. [सं.] बहेलिया ।

शाक्त—वि. [सं.] शक्ति-संबंधी ।

संज्ञा पुं. शक्ति का उपासक ।

शाक्य—संज्ञा पुं. [सं.] नैपाल की तराई की एक क्षत्रिय जाति जिसमें गौतमबुद्ध उत्पन्न हुए थे ।

शाक्यमुनि—संज्ञा पुं. [सं.] गौतमबुद्ध ।

शाख—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शाख़] (१) टहनी, डाली । (२) नदी की बड़ी धारा से निकली छोटी धारा ।

शाखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टहनी, डाल । (२) मूल वस्तु के भेद-उपभेद । (३) विभाग । (४) अवयव, अंग ।

शाखामृग—संज्ञा पुं. [सं.] बंदर, वानर ।

शाखोच्चार—संज्ञा पु. [सं.] विवाह में वंशावली का कथन ।

शागिर्द—संज्ञा पुं. [फ़ा.] चेला, शिष्य ।

शागिर्दी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) शिष्टता । (२) सेवा ।

शाटक—संज्ञा पु. [सं.] वस्त्र, पट ।

शाटिका, शाटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] धोती, साड़ी ।

शाठ्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छल-कपट । (२) दुष्टता ।

शाण—संज्ञा पुं. [सं.] धार तेज करने का पत्थर ।

शाणित—वि. [सं.] (१) तेज धारवाला । (२) कसौटी पर कसा हुआ ।

शातिर—वि. [अ.] काइयाँ, घुटा हुआ, पक्का ।

शाद—वि. [फ़ा.] (१) प्रसन्न । (२) भरा-पुरा ।

शादी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) आनंदोत्सव । (२) विवाह ।

शाद्वल—संज्ञा पुं. [सं.] रेगिस्तानी हरियाली और बस्ती ।

शान—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) तड़क-भड़क, ठाठ-बाट । (२) ठसक, ऐंठ, अकड़ ।

मुहा.—शान दिखाना—ठसक दिखाना ।

(३) करामात, चमत्कार । (४) प्रतिष्ठा, मर्यादा ।

मुहा.—शान जाना—मान भंग होना । शान घटना—इज्जत में कमी होना । शान मारी जाना—मान कम हो जाना । शान में बट्टा लगना—मान में कमी हो जाना । किसी की शान में (कहना)—किसी (प्रतिष्ठित व्यक्ति) के संबंध में या उसके प्रति (कुछ कहना) ।

संज्ञा पुं. [सं. शाण] धार तेज करने का पत्थर ।

शानदार—वि. [अ. शान + फ़ा. दार] (१) तड़क-भड़क या ठाटबाट का । (२) भव्य, विशाल । (३) वैभव या ऐश्वर्यपूर्ण । (४) ठसक भरा ।

शान-शौकत—संज्ञा स्त्री. [अ. शान + शौकत] (१) तड़क भड़क, ठाठ, सजावट । (२) वैभव, ऐश्वर्य ।

शाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अहित या अनिष्ट-कामना-सूचक शब्द या कथन, कोसना । (२) फटकार, धिक्कार, भर्त्सना । (३) किसी से रुष्ट होकर शपथपूर्वक ऐसी बात कहना जिसका परिणाम अनिष्टकारी हो ।

शापग्रस्त—वि. [सं.] जिसे शाप दिया गया हो ।

शापन—संज्ञा पुं. [सं. शाप] शाप देने के उद्देश्य से । उ.—दुर्वासा शापन को आए तिनकी कछु न चलाई—सारा. ७७२ ।

शापना—क्रि. स. [सं. शाप] (१) शाप देना । (२) कोसना, अमंगल-कामना करना ।

शापमुक्त—वि. [सं.] जिस पर शाप का प्रभाव शेष न रहा हो, जिसने शाप का परिणाम भोग लिया हो ।

शापित—वि. [सं.] जिसे शाप दिया गया हो ।

शाबल्य—संज्ञा पुं. [सं.] विभिन्न भावों, वस्तुओं, रंगों आदि का मेल या मिलावट ।

शाबाश—अव्य. [फ़ा.] वाह, धन्य (प्रशंसासूचक) ।

शाबाशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] प्रशंसा, साधुवाद ।

शाब्दिक—वि. [सं.] शब्द का, शब्द-संबंधी ।

संज्ञा पुं. (१) शब्द-शास्त्रज्ञ । (२) वैयाकरण ।

शाब्दी—वि. स्त्री. [सं.] (१) शब्द से संबंध रखनेवाली । (२) शब्द पर निर्भर रहनेवाली ।

शाम—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] साँझ, संध्या ।

मुहा.—शाम फूलना—संध्या की लालिमा फैलना ।

संज्ञा पुं. [सं. श्याम] श्रीकृष्ण ।

वि. (१) काला, श्याम । (२) नीला ।

श्यामकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] घोड़ा जिसके कान काले या श्याम रंग के हों ।

शामत—संज्ञा स्त्री. [अ.] दुर्भाग्य, दुर्दशा ।

मुहा.—शामत का घेरा या मारा—जिसकी दुर्दशा होने को हो । शामत सवार होना या सिर पर खेलना—दुर्दशा का समय आना ।

शामियाना—संज्ञा पुं. [फ़ा. शामियानः] बड़ा तंबू ।

शामिल—वि. [फ़ा.] मिला हुआ, सम्मिलित ।

शायक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तीर, बाण । (२) तलवार ।

वि. [अ. शायक़] (१) शौकीन । (२) इच्छुक ।

शायद—अव्य. [फ़ा.] कदाचित्, संभव है ।

शायर—संज्ञा पुं. [अ.] कवि ।

शायरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] कविता, काव्य ।

शाया—वि. [अ.] (१) प्रकट । (२) प्रकाशित ।

शायी—वि. [सं. शायिक] सोने या शयन करनेवाला ।

शारंग—संज्ञा पुं. [सं. सारंग] सारंग ।

शारंगपाणि, शारंगपाणी, शारंगपानि, शारंगपानी—संज्ञा पुं [सं.] 'शारंग' नामक धनुष हाथ में लेनेवाले, विष्णु या उनके प्रमुख अवतार राम और कृष्ण । उ.—सुत के हेत मर्म नहिं पायो प्रगटे शारँगपानी—३४३५ ।

शारद—वि. [सं.] शरद्काल-संबंधी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शारदा] सरस्वती । उ.—शारद का बरनै मति भोरी—२४४३ ।

शारदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वीणा-विशेष । (२) सरस्वती, भारती । (३) एक प्राचीन लिपि ।

शारदी, शारदीय—वि. [सं.] शरद् काल-संबंधी ।

शारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मैना (चिड़िया) ।

शारीरिक—वि. [सं.] शरीर संबंधी ।

शार्ङ्ग—संज्ञा पुं. [सं.]. (१) कमान, धनुष । (२) विष्णु या उनके प्रमुख अवतारों, राम और कृष्ण के हाथ

में रहनेवाला धनुष ।

शार्ङ्गधर—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु या उनके प्रमुख अवतार राम और कृष्ण जो 'शार्ङ्ग' नामक धनुष धारण करते कहे गये हैं ।

शार्ङ्गपाणि—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु या उनके प्रमुख अवतार राम और कृष्ण जिनके हाथ में 'शार्ङ्ग' नामक धनुष रहना माना जाता है ।

शार्दूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाघ । (२) सिंह ।

वि. सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम ।

शार्दूलविक्रीडित—संज्ञा पुं. [सं.] एक वर्णवृत्त ।

शाल—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साल] (१) सालने की क्रिया या भाव । (२) पीड़ा, वेदना । उ.—सौति शाल उर में अति शाल्यो—२६७३ ।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] ऊनी या रेशमी चादर, दुशाला ।

शालक—वि. [हिं. सालना] (१) सालने या पीड़ा पहुँचाने वाला । उ.—जे रिपु तुम पहिले हति हाँडे बहुरि भए मम शालक—३१६५ । (२) नाश करनेवाला । उ.—........अनंत शक्ति प्रभु असुर शालक—१०उ.-३५ ।

वि. [सं.] मसखरा, हँसोड़ ।

शालग्राम—संज्ञा पुं. [सं.] गंडकी नदी से प्राप्त पत्थर की बटिया जिस पर चक्र का चिह्न बना रहता है; यह विष्णु की मूर्ति मानी जाती है ।

शालत—क्रि. स. [हिं. सालना] पीड़ा पहुँचाती है । उ.—सूर नंद के हृदय सालत सदा—२४६६ ।

शालति—क्रि. स. [हिं. सालना] पीड़ा पहुँचाती है । उ.—अब वै शालति हैं उर महियाँ—२५४२ ।

शालभ—वि. [सं.] पतिंगों के संबंध का ।

शालव—संज्ञा पुं. [सं. शाल्व] सौभ राज्य का राजा जो शिशुपाल का मित्र था और जो उसकी मृत्यु के पश्चात् द्वारका का घेरा डालने पर श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था । उ.—(क) शालव दंतबक्र बनारसी को नृपति चढ़े दल साजि मानो रविहिं छाए—१०उ.-२१ । (ख) कीन्हों युद्ध आप शालव सों उन बहु माया कीनी—सारा. ७९२ ।

शाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घर, गृह । (२) पाठशाला । उ.—लरिका और पढ़त शाला में तिनहिं करत उपदेस—सारा. १११ ।

शालातुरीय—संज्ञा पुं. [सं.] पाणिनि का एक नाम ।

शालि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धान जो हेमंत में होता है, जड़हन धान । (२) यज्ञ-विशेष ।

क्रि. स. [हिं. सालना] पीड़ा पहुँचाकर, कष्ट देकर ।

प्र०—रही शालि—पीड़ा या कष्ट दे रही है ।

उ.—कत रही उर शालि—२८२६ ।

शालिवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] शक जाति का एक राजा जिसने शक संवत् चलाया था ।

शालिहोत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घोड़ा, अश्व । (२) अश्व-चिकित्सा-शास्त्र । (३) एक गोत्र प्रवर्तक ऋषि ।

शाली—क्रि. अ. [हिं. सालना] चुभ गयी । उ.—फिरि चितवन उर शाली री—८४६ ।

प्रत्य. [सं. शालिन्] एक प्रत्य जो 'संपन्न' या 'वाला'-जैसा अर्थ देता है ।

शालीन—वि. [सं.] (१) विनीत । (२) चतुर, दक्ष ।

शालीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नम्रता ।

शालीय—वि. [सं.] शाला-संबंधी ।

शालै—क्रि. स. [हिं. सालना] पीड़ित करता है । उ.—तौ कत कठिन कठोर होत मन मोहिं बहुत दुख शालै—३४९१ ।

शाल्मलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेमल का वृक्ष । (२) सात द्वीपों में एक जो ऊख रस के समुद्र से घिरा कहा गया है । उ.—सातो द्वीप...... ....। जंबू प्लक्ष क्रौंच, शाक, शाल्मलि कुश पुष्कर भरपूर—सारा. ३४ ।

शाल्यो, शाल्यौ—क्रि. अ. [हिं. सालना] पीड़ा पहुँचायी ।

उ.—सौति शाल उर में अति शाल्यो—२६७३ ।

शाल्व—संज्ञा पुं. [सं.] सौभ देश का राजा जो शिशुपाल का मित्र था और उसके मारे जाने पर द्वारका को घेरने के कारण श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था । उ.—सुभट शाल्व करि क्रोध हरिपुरी आयो—१० उ.-५६ ।

शावक—संज्ञा पुं. [सं.] (पशु-पक्षी का) बच्चा ।

शाश्वत—वि. [सं.] सदा बना रहनेवाला, नित्य ।

शाश्वती—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी ।

शासक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शासन करनेवाला (२) राज्य

का प्रबंधक या व्यवस्थापक ।

शासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आज्ञा, आदेश। (२) वश या अधिकार में रखने की क्रिया या भाव । (३) निग्रह, नियंत्रण । (४) राजकीय प्रबंध (५) दंड ।

शासित—वि. [सं.] (१) जिसका या जिस पर शासन किया जाय। (२) जिसे दंड दिया जाय, दंडित।

शास्ता—संज्ञा पुं. [सं. शास्तृ] (१) शासक। (२) राजा। (३) पिता। (४) गुरु, आचार्य ।

शास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राचीन ऋषि-मुनियों के बनाये वे ग्रंथ जिनमें उचित कृत्यों का निर्देश और अनुचित का निषेध किया गया है। (२) विषय-विशेष का विशिष्ट और अगाध ज्ञान।

शास्त्रकार—संज्ञा पुं. [सं.] शास्त्र-रचयिता।

शास्त्रज्ञ—वि. [सं.] शास्त्रों का ज्ञाता या वेत्ता।

शास्त्री—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो शास्त्रों का ज्ञाता हो। (२) आधुनिक विश्वविद्यालयों की एक उपाधि ।

शास्त्रीय—वि. [सं.] शास्त्र-सम्बन्धी ।

शास्त्रोक्त—वि. [सं.] शास्त्रों में कहा हुआ।

शाह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) बादशाह। (२) मुसलमान फकीरों की उपाधि। (३) धनी, महाजन।

शाहदरा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] महल या किले के नीचे बसी हुई आबादी या बस्ती ।

शाही—वि. [फ़ा.] शाहों का, राजसी।

शिंगरफ—संज्ञा पुं. [देश. ?] ईंगुर।

शिंजन—संज्ञा पुं. [सं.] झनकार, झनझनाहट।

शिंजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) करधनी, नूपुर आदि की झनकार। (२) धनुष की डोरी।

शिंजित—वि. [सं.] झनकार करता हुआ।

शिंजिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) करधनी या नूपुर के घुँघरू। (२) धनुष की डोरी।

शिंशपा, शिंशुपा—संज्ञा स्त्री. [सं. शिंशपा] (१) शीशम का पेड़। (२) अशोक का पेड़।

शिकंजबी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शिकंजबीन] फल के रस को ठंढे या गरम पानी में डालकर बनाया गया पेय।

शिकंजा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] दबाने, कसने या पेरने का यंत्र।

शिकन—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] सिकुड़न, सिलवट।

शिकमी—वि. [फ़ा.] दूसरे की ओर से खेती करनेवाला।

शिकरा—संज्ञा. पुं. [फ़ा.] एक प्रकार का बाज पक्षी।

शिकवा—संज्ञा पुं. [अ.] शिकायत, उलाहना।

शिकस्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] हार, पराजय।

शिकस्ता—वि. [फ़ा. शिकस्तः] टूटा हुआ।

शिकायत—संज्ञा स्त्री. [अ. शिक़ायत] (१) बुराई करना। (२) उलाहना, उपालंभ। (३) रोग।

शिकार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मृगया, अहेर, आखेट। (२) जंतु जिसका आखेट किया गया हो। (३) आहार। (४) वह जिसके फँसने या वश में होने से अपना विशेष लाभ हो।

मुहा०—शिकार आना—ऐसे असामी का आना जिससे लाभ हो। शिकार करना—किसी असामी से खूब लाभ उठाना। सिकार खेलना—किसी असामी को खूब लूटना। किसी का शिकार होना—(१) किसी के द्वारा फाँसा जाना। (२) किसी पर मुग्ध या मोहित होना।

शिकारी—वि. [फ़ा.] शिकार करनेवाला।

शिक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] शिक्षा देनेवाला।

शिक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] शिक्षा देने का कार्य।

शिक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पढ़ने-पढ़ाने की क्रिया। (२) विद्या का ग्रहण या अभ्यास। (३) दक्षता। (४) उपदेश। (५) मन्त्रोच्चारण का विषय जो छह वेदांगों में एक है। (६) शासन, नियंत्रण। (७) बुरा परिणाम।

शिक्षार्थी—संज्ञा पुं. [सं. शिक्षार्थिन्] विद्यार्थी।

शिक्षालय—संज्ञा पुं. [सं.] विद्यालय।

शिक्षिका—वि. स्त्री. [सं.] शिक्षा देनेवाली।

शिक्षित—वि. [सं.] (१) पढ़ा-लिखा। (२) पंडित।

शिखंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोर की पूँछ या पुच्छ। उ.—कुटिल कच भ्रुव तिलक रेखा शीश शिखी शिखंड। (२) चोटी, शिखा। उ.—शोभित केश बिचित्र भाँति द्युति शिखि शिखंड हरनी—पृ. ३१६ (५४)। (३) काकुल, काकपक्ष।

शिखंडिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मोरनी, मयूरी। (२) द्रुपदराज की कन्या जो बाद में पुरुष हो गयी थी।

शिखंडी—संज्ञा पुं. [सं. शिखंडिन] (१) मोर, मयूर। (२)

मोर या मयूर की पूँछ। (३) शिखा, चोटी। उ.—शिखंडी शीश मुख मुरली बजावत। (४) द्रुपदराज का वह पुत्र जो पहले कन्या-रूप में जन्मा था। महाभारत के युद्ध में भीष्म की मृत्यु का यही कारण बना था और अंत में अश्वत्थामा द्वारा मारा गया था।

शिख—संज्ञा स्त्री. [सं. शिखा] शिखा। उ. फूली फिरति रोहिणी मैया नख-शिख करि सिंगार।

शिखर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिरा, चोटी। (२) पहाड़ की चोटी। उ.—मारुत सोर करत चातक पिक अरु नग शिखर सुहाई—२८२१। (३) कँगूरा, कलश, गुंबद। (४) एक रत्न जो अनारदाने की तरह लाल और सफेद होता है। उ.—श्रीफल सकुचि रहे दुरि कानन शिखर हियो बिहरान। (५) कुंद की कली।

शिखरन—संज्ञा पुं. [सं. शिखरिणी] दही और चीनी से बना हुआ एक प्रसिद्ध पेय।

शिखरिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्णवृत्ति।

शिखरा—संज्ञा स्त्री. [सं. शिखर] एक गदा जो विश्वामित्र ने श्रीरामचंद्र को दी थी।

शिखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चोटी, चुटिया।

यौ. शिखा-सूत्र—चोटी और जनेऊ।

(२) पंखों का गुच्छा, कलगी। (३) आग की लपट। (४) दीप की लौ। (५) नोक, सिरा (६) शिखर।

शिखि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोर, मयूर। उ.—चीरि फारि करिहौं भगौहौं शिखिनि शिखी लवलेस। (२) अग्नि। (३) तीन की संख्या।

शिखिवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] कुमार कार्तिकेय।

शिखी—वि. [सं. शिखिन्] जिसके चोटी हो।

संज्ञा पुं. (१) मोर, मयूर। उ.—कुटिल कच भू तिलक रेखा सीस शिखी शिखंड। (२) मुर्गा। (३) अग्नि। (४) तीन की संख्या। (५) दीपक।

शिगूफा—संज्ञा. पुं. [फ़ा. शिगूफ़ा] (१) कली। (२) फूल। (३) अनोखी या विचित्र बात।

मुहा.—शिगूफा खिलाना—विनोद या झगड़ा कराने के लिए कोई नयी बात छेड़ देना। शिगूफा खिलना—विनोद या झगड़े के लिए कोई नयी बात छिड़ना। शिगूफा छोड़ना—(१) विचित्र बात कहना। (२) विनोद या झगड़े के लिए कोई बात कह देना।

शिति—वि. [सं.] (१) सफेद। (२) काला, नीला।

शितिकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

शिथिल—वि. [सं.] (१) ढीलाढाला। (२) सुस्त, धीमा। (३) हारा-थका। उ.—देह शिथिल भई उठयो न जाई। (४) आलसी। (५) बात पर दृढ़ न रहने वाला। (६) जिसका पालन कड़ाई के साथ न हो। (७) जो सुनायी न दे। (८) जो दबाव में न रहा हो।

शिथिलई—संज्ञा स्त्री. [सं. शिथिल] शिथिलता

शिथिलता—संज्ञा. स्त्री. [सं.] (१) ढिलाई, ढीलापन। (२) थकान, थकावट। (३) आलस्य। (४) नियम के पालन में कड़ाई की कमी। (५) शक्ति की कमी। (६) वाक्य में शब्द-संगठन या अर्थ-संबंध की कमी। (७) तर्क या प्रमाण में कुछ कमी।

शिथिलाई—संज्ञा. स्त्री. [सं. शिथिल] शिथिलता।

शिथिलाना—क्रि. अ. [सं. शिथिल] (१) ढीला पड़ना। (२) थकना, श्रांत होना।

शिथिलाने—क्रि. अ. [हिं. शिथिलाना] थक गये, श्रांत हो गये। उ.—करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस शिथिलाने—१७२१।

शिथिलित—वि. [सं.] जो शिथिल हो गया हो।

शिथिले—वि. [सं. शिथिल] शिथिल, श्रांत। उ—भए अंग शिथिले—२७१२।

शिनाख्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शिनाख़्त] (१) पहचान। (२) गुण या स्वरूप की परख।

शिफर—संज्ञा पुं. [फ़ा. सिवर] ढाल।

संज्ञा पुं. [अ. सिफ़र] शून्य।

शिया—संज्ञा. पुं. [अ. शीया] (१) सहायक। (२) अनुयायी। (३) मुसलमानों का वह संप्रदाय जो हजरत अली को पैगंबर का उत्तराधिकारी मानता है।

शिर—संज्ञा पुं. [सं. शिरस्] (१) मुंड, कपाल। (२) मस्तक। (३) सिरा, चोटी। (४) प्रधान, मुखिया।

शिरकत—संज्ञा स्त्री. [अ. शिरक़त] (१) साझा। (२) कार्य में योग या सहयोग।

शिरत्राण, शिरत्रान—संज्ञा पुं. [सं. शिरस्त्राण] सिर की रक्षा के लिए पहनी जानेवाली लोहे की टोपी।

उ.—टूटत धुजा पताक छत्र रथ चाप चक्र शिरत्राण ।

शिरफूल—संज्ञा पुं. [हिं. शिर+हिं. फूल] सिर का शीश-फूल नामक आभूषण ।

शिरमौर—संज्ञा पुं. [हिं. शिर+हिं. मौर] (१) मुकुट । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति । (३) नायक ।

शिरस्त्राण, शिरस्त्रान—संज्ञा पुं. [सं. शिरस्त्राण] युद्ध में योद्धाओं द्वारा सर की रक्षा के लिए पहना जाने-वाला लोहे का टोप, कूँड़ ।

शिरहन—संज्ञा पुं. [हिं. शिर+सं. आधान](१) तकिया । (२) (पलँग आदि का) सिरहाना ।

शिरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) (रक्त की छोटी) नाड़ी । (२) पानी का सोता या स्रोत ।

शिरीष—संज्ञा पुं. [सं.] सिरस का पेड़ ।

शिरोधार्य—वि. [सं. शिरोधार्य्य] सिर पर धरने योग्य, सादर मान्य ।

शिरोभूषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर का आभूषण । (२) मुकुट । (३) श्रेष्ठ व्यक्ति ।

शिरोमणि—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं.] (१) चूड़ामणि । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति । (३) माला में सुमेरु ।

शिरोरुह—संज्ञा पुं. [सं.] सिर के बाल ।

शिला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पत्थर । (२) चट्टान । उ.—डारि दियो ताहि शिला पर बालक ज्यों खेल्यो—२५७७ । (३) न हिलने-डोलनेवाला व्यक्ति (व्यंग्य) । (४) भूमि या खेत में पड़ा हुआ एक-एक दाना बीनने का काम ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शीला] राधा की एक सखी का नाम । उ.—शिला नाम ग्वालिनि अचानक आइ गहे कन्हाई—२४१९ ।

शिलाजीत—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. शिलाजतु] काले रंग की एक ओषधि ।

शिलान्यास—संज्ञा पुं. [सं.] भवन, मंदिर आदि की नींव का पहला पत्थर रखा जाना ।

शिलालेख—संज्ञा पुं. [सं.] पत्थर पर लिखा लेख ।

शिलावृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] ओले बरसना ।

शिलाहरि—संज्ञा पुं. [सं.] शालग्राम की मूर्ति ।

शिलाहारी—संज्ञा पुं. [सं. शिलहारिन्] शिला या अन्नकण बीन कर जीवन-निर्वाह करनेवाला ।

शिलीमुख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौंरा, भ्रमर । उ.—(क) कुँवरि ग्रसित श्रीखंड अहिभ्रम चरण शिलीमुख लाम । (ख) कुंचित अलक शिलीमुख मानो लै मकरंद उड़ाने । (२) तीर, बाण ।

शिल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ की कारीगरी, दस्त-कारी । (२) कला-संबंधी व्यवसाय ।

शिल्पकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथ की कारीगरी ।

शिल्पकार—संज्ञा पुं. [सं.] कारीगर, शिल्पी ।

शिल्पकारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दस्तकारी, कारीगरी ।

संज्ञा पुं. कारीगर, शिल्पी ।

शिल्पी—संज्ञा पुं. [सं. शिल्पिन्] (१) दस्तकार, कारी-गर । (२) चितेरा, चित्रकार ।

शिव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंगल, कल्याण । (२) पानी, जल । (३) महादेव, शंकर, शंभु ।

शिवता—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिव होने का भाव या धर्म । उ.—शिव शिवता इनहीं सों लही ।

शिवदिशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] ईशान कोण ।

शिवनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश । (२) कार्तिकेय ।

शिवनामी—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह चादर जिस पर 'शिव' या 'जय शिव' लिखा हो ।

शिवनिर्माल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव पर चढ़ायी गयी वस्तु जिसके ग्रहण का निषेध है । (२) त्याज्य या अग्रा-ह्य वस्तु, वस्तु जो ग्रहण न की जाय ।

शिवपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी, वाराणसी ।

शिवरात्रि—संज्ञा स्त्री. [सं.] फाल्गुन बदी चतुर्दशी जब शिव जी के पूजन, व्रत आदि का माहात्म्य है ।

शिवरिपु—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव । उ.—ता दिन ते उर-भौन भयो सखि शिवरिपु को संचार—२८८८ ।

शिवलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] शिव की पिंडी जिसकी पूजा की जाती है ।

शिवलोक—संज्ञा पुं. [सं.] कैलास ।

शिववाहन—संज्ञा पुं. [सं.] बैल, नंदी ।

शिवशैल—संज्ञा पुं. [सं.] कैलास ।

शिवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पार्वती, गिरिजा । उ.—जेहि रस शिव सनकादि मगन भए शंभु रहत दिन

साधा। सो रस दिये सूर प्रभु तोको शिवा न लहति अराधा। (२) सियार की मादा, सियारिन।

शिवालय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव का मन्दिर। (२) देव-मंदिर। (३) मरघट, श्मशान।

शिवाला—संज्ञा पुं. [सं. शिवालय] (१) शिव का मंदिर। (२) देव-मन्दिर।

शिवि—संज्ञा पुं. [सं.] राजा उशीनर का पुत्र एक राजा जो ययाति का दौहित्र था और जो अपनी दानशीलता के लिए बहुत प्रसिद्ध है।

शिविका—संज्ञा स्त्री. [सं.] डोली, पालकी।

शिविर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डेरा, निवेश। (२) सेना का पड़ाव, छावनी। (३) किला, कोट, दुर्ग।

शिशिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋतु जो माघ-फाल्गुन में होती है। उ.—परम दीन जनु शिशिर हेम हत अंबुज गत बिनु पात। (२) जाड़ा, शीत-काल। (३) बरफ, पाला, हिम।

शिशिरांत—संज्ञा पुं. [सं.] शिशिर के अंत या पश्चात् की ऋतु, वसंत।

शिशु—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा बच्चा। उ.—शंख चक्र भुज चारि बिराजत अति प्रताप शिशु भेषा हो।

शिशुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बचपन, बाल्यावस्था। उ.—अति शिशुता में ताहि सँहारचो—९८६। (२) शिशु का भाव, धर्म या कार्य।

शिशुताई—संज्ञा स्त्री. [सं. शिशुता] शिशु का भाव, धर्म या कार्य। उ.—जसुमति भाग सुहागिनी हरि को सुत जानै। मुख मुख जोरि बतावई शिशुताई ठानै।

शिशुपन—संज्ञा पुं. [सं. शिशु + हिं. पन] बचपन।

शिशुपाल—संज्ञा पुं. [सं.] चेदि देश का राजा जो रुक्मिणी से विवाह करना चाहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने पांडवों के राजसूय यज्ञ में मारा था। उ.—देस देस के नृपति जुरे सब भीष्म नृपति के धाम। रुक्म कह्यो, शिशुपाल को देहौं नहीं कृष्ण सों काम—सारा. ६२८।

शिष—संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] शिष्य।

संज्ञा स्त्री. [सं शिक्षा] सीख, सिखावन। उ.—आपुन को उपचार करौ कछु तब औरन शिष देहु—३०१३।

संज्ञा स्त्री. [सं. शिखंड या शिखा] चोटी, शिखा जो मुंडन के समय सिर पर रक्खी जाती है। उ.—कटि पट पीत पिछौरी बाँधे कागपच्छ शिख शीश।

शिषरी—वि. [सं. शिखर] जिसमें शिखर हो।

शिषा—संज्ञा स्त्री. [सं. शिखा] चोटी।

शिषि—संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] चेला।

शिषी—संज्ञा पुं. [सं. शिखी] मोर, मयूर।

शिष्ट—वि. [सं.] (१) शांत। (२) सुशील। (३) श्रेष्ठ। (४) सज्जन, सभ्य। (५) शालीन।

शिष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सज्जनता, सभ्यता। (२) शालीनता। (३) उत्तमता, श्रेष्ठता।

शिष्टाचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सभ्य आचरण। (२) विनय, नम्रता। (३) दिखावटी सभ्य व्यवहार। (४) आव-भगत, स्वागत-सत्कार।

शिष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विद्यार्थी, अंतेवासी। उ.—तीर चलावत शिष्य सिखावत धर निशान देखरावत। (२) चेला, शागिर्द। (३) दीक्षा या मंत्र लेनेवाला।

शिष्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिष्य होने का भाव या धर्म।

शिष्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विद्यार्थिनी। (२) चेली।

शीकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ओस, तुषार। (२) जलकण। (३) वर्षा की छोटी-छोटी बूँदें, फुहार।

शीघ्र—क्रि. वि. [सं.] चटपट, तुरंत।

शीघ्रगामी—वि. [सं. शीघ्रगामिन्] तेज चलनेवाला।

शीघ्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तेजी, फुरती।

शीत—वि. [सं.] (१) ठंढा (२) शिथिल।

संज्ञा पुं. (१) जाड़ा। (२) तुषार, पाला।

शीतकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

शीतकाल—संज्ञा पुं. [सं.] हेमंत और शिशिर ऋतु।

शीतल—वि. [सं.] (१) ठंढा। (२) शांत।

शीतलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ठंढापन। (२) जड़ता।

शीतलताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] शीतलता। (१) ठंढापन, सर्दी। (२) जड़ता, स्थिरता।

शीतला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक देवी। (२) चेचक।

शीरा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) शर्बत। (२) चाशनी।

शीर्ण—वि. [सं.] (१) टूटा-फूटा। (२) गिरा हुआ। (३) फटा-पुराना। (४) मुरझाया हुआ। (५) दुबला-पतला।

शीर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर। (२) माथा। (३) सिरा।

शीर्षक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर। (२) माथा। (३) सिरा, चोटी। (४) विषय-परिचायक शब्द या उपवाक्य जो लेख या प्रबंध के आरंभ में लिखा जाय।

शील—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आचरण, चरित्र। (२) स्वभाव, प्रकृति। (३) उत्तम स्वभाव या प्रकृति। (४) कोमल हृदय। (५) संकोच, ध्यान।

मुहा०—शील तोड़ना—बेमुरौव्वती दिखाना। आँखों में शील न होना—लज्जा, संकोच का भाव न होना, बेमुरौव्वत होना।

वि. प्रवृत्ति या स्वभाववाला।

शीलवान, शीलवान्—वि.[सं. शीलवत्] (१) अच्छे आचरण या चरित्रवाला। (२) अच्छे स्वभाववाला।

शीलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'शील' का भाव।

शीला—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की एक सखी का नाम। उ.—(क) कहि राधा किन हार चुरायो।.........। सुषमा शीला अवधा नंदा वृन्दा यमुना सारि—१५८०। (ख) वै निशि बसे महल शीला के—१९३२। (ग) शीला नाम ग्वालिनी तेहि गहे कृष्न धपि धाई हो—२४४९।

शीश—संज्ञा पुं. [सं. शीर्ष] सिर।

मुहा०—शीश धुनै—शोक या पछतावे से सिर पीटना। शीश धुनै—शोक या पछतावे से सिर पीटता है। उ.—शीश धुनै दोऊ कर मीड़ै अंतर साँच परचो—१० उ.-६८। शीश नीचे नवाना - लाज या संकोच से सिर झुकाना। शीश नीच्यो क्यों नावत—लाज या संकोच से सिर क्यों झुकाता है? उ.—सूर शीश नीच्यो क्यों नावत, अब काहे नहिं बोलत—३१२१। शीश पड़ना—भाग या हिस्से में आना, स्वयं परिणाम भुगतना। शीश परचो - भाग में आया, परिणाम भुगतना पड़ा। उ.— जानि-बूझि मैं यह कृत कीन्हों सो मेरे ही शीश परचो—१६६८।

शीशम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक प्रसिद्ध पेड़।

शीशमहल—संज्ञा पुं. [फ़ा. शीशा+अ. महल] वह स्थान या महल जहाँ सब ओर शीशे जड़े हों।

शीशा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शीशः] (१) काँच। (२) दर्पण।

शीशी—संज्ञा स्त्री. [हिं. शीशा] काँच का पात्र-विशेष।

शुंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक क्षत्रिय वंश जो मौर्यों के पश्चात मगध साम्राज्य का स्वामी बना।

शुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी की सूड़। (२) हाथी की कनपटी से बहनेवाला मद।

शुंडा—संज्ञा स्त्री.[सं.] (१) सूड़। (२) मद्यपान का स्थान। (३) शराब। (४) वेश्या।

शुंडादंड—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी की सूड़।

शुंडाल—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

शुंडि—संज्ञा पुं. [सं. शुंड] हाथी की सूड़। उ.—वाम कर गहि शुंडि डारिहौं अमरपुर हाँक दै तुरत गज को हँकारे—२५९०।

शुंडिन, शुंडी—संज्ञा पुं. [सं. शुंडिन] हाथी। उ.—भुजा भुज धरत मनो द्विरद शुंडिन लरत उर उरनि भिरे दोउ जुरे मन ते—१७००।

शुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] एक असुर जो प्रह्लाद का पौत्र और निशुंभ का भाई था; यह दुर्गा द्वारा मारा गया था।

शुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तोता। (२) रावण का एक दूत। (३) शुकदेव जी।

शुकदेव—संज्ञा पुं. [सं.] कृष्णद्वैपायन के पुत्र जिनका राजा परीक्षित को दिया हुआ मोक्ष-धर्म का उपदेश आज 'श्रीमद्भागवत्' के रूप में उपलब्ध है।

शुक-नलिका—संज्ञा पुं. [सं.] वह नली या नलनी जो तोते को पकड़ने के लिए इस प्रकार बनायी जाती है कि उसके बैठते ही घूम जाती है और तोता उलटकर नीचे आ जाता है एवं उड़ने की शक्ति भुला देने के कारण पकड़ लिया जाता है।

शुकराना—संज्ञा पुं. [अ. शुक्र] (१) कृतज्ञता। (२) धन्यवाद के रूप में दिया जानेवाला धन।

शुकवाह—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव जिसका वाहन तोता माना गया है।

शुकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा तोता, तोती, सुग्गी।

शुक्त—वि. [सं.] (१) खट्टा। (२) अप्रिय।

शुक्ति, शुक्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] सीप, सीपी।

शुक्तिज—संज्ञा पुं. [सं.] मोती, मुक्ता।

शुक्र—संज्ञा पुं.[सं.] (१) एक चमकीला ग्रह। (२) एक ऋषि

जो दैत्यों के गुरु थे। (२) बृहस्पतिवार और शनिवार के बीच का दिन। (३) वीर्य। (४) बल, पौरुष।

शुक्रगुजार—वि. [अ. शुक्र+फा. गुज़ार] कृतज्ञ।

शुक्रवार—संज्ञा पुं. [सं.] बृहस्पतिवार और शनिवार के बीच का दिन या वार।

शुक्राचार्य—संज्ञा पुं. [सं. शुक्राचार्य्य] एक ऋषि जो महर्षि भृगु के पुत्र और दैत्यों के गुरु थे। उनकी पुत्री देवयानी राजा ययाति को ब्याही थी। उन्होंने देवगुरु बृहस्पति-पुत्र कच को संजीवनी विद्या सिखायी थी।

शुक्रिया—संज्ञा पुं. [फ़ा.] धन्यवाद।

शुक्ल—वि. [सं.] सफेद, उजला, धवल।

संज्ञा पुं. (१) ब्राह्मणों की एक पदवी। (२) उजला पाख या पक्ष।

शुक्ल पक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] अमावस्या के बाद प्रतिपदा से पूर्णिमा तक का पक्ष जिसमें प्रतिदिन चंद्रकला के बढ़ते रहने से रात उजेली होती है।

शुक्लाभिसारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह परकीया नायिका जो शुक्ल पक्ष या चाँदनी रात में प्रियतम से मिलने संकेतस्थल पर जाती है।

शुचि—वि. [सं.] (१) शुद्ध, पवित्र। उ.—माली मिल्यो माल शुचि लैकै—२६४३, (२) स्वच्छ, निर्मल। (३) निष्पाप, निर्दोष। (४) स्वच्छ हृदयवाला।

शुचिता—संज्ञा स्त्री [सं.] पवित्रता, निर्मलता।

शुद्ध—वि. [सं.] (१) पवित्र। (२) ठीक, सही। (३) दोषरहित, निर्दोष। उ.—पुष्य नक्षत्र नौमि जु परम दिन लगन शुद्ध शुक्रवार—सारा. १६०। (४) जिसमें किसी प्रकार की मिलावट न हो, खालिस।

शुद्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पवित्रता। (२) ठीक होने का भाव। (३) निर्दोषता।

शुद्धांत—संज्ञा पुं. [सं.] रनिवास, अन्तःपुर।

शुद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शुद्ध होने का कार्य। (२) सफाई, स्वच्छता। उ.—....नारि आतुरी गई वन तीर तनु शुद्धि हेती—२०५६। (३) वह कृत्य जो अशुभ व्यक्ति को शुद्ध करने के लिए किया जाता है।

शुद्धोदन—संज्ञा पुं. [सं.] एक शाक्य राजा जो गौतम बुद्ध के पिता थे।

शुबहा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) संदेह। (२) भ्रम।

शुभंकर—वि. [सं.] कल्याण करनेवाला।

शुभ—वि. [सं.] (१) अच्छा। (२) कल्याणकारी।

संज्ञा पुं. मंगल, कल्याण।

शुभचिंतक—वि. [सं.] कल्याण चाहनेवाला।

शुभ्र—वि. [सं.] सफेद, उजला, श्वेत।

शुमार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) गिनती, गणना (२) हिसाब।

शुरू—संज्ञा पुं. [अ. शुरुअ] आरंभ।

शुल्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर। (२) दहेज, दायजा। (३) किराया। (४) मूल्य। (५) फीस। (६) पत्र-पत्रिका का (वार्षिक) चंदा।

शुश्रूषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सेवा, परिचर्या।

शुष्क—वि. [सं.] (१) सूखा। (२) जलहीन। (३) नीरस। (४) जिसमें मन न लगे। (५) निरर्थक। (६) मोह-ममता आदि से रहित, निर्मम। (७) अरसिक।

शुष्कता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सूखापन। (२) जलहीनता। (३) नीरसता। (४) रूखापन। (५) निर्ममता। (६) अरसिकता।

शुष्क हृदय—वि. [सं.] अरसिक, अभावुक।

शूकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुअर, वाराह। (२) विष्णु का तीसरा अवतार जो वाराह का था। उ.—आई छींक नाक ते प्रगटे सूकर अति लघु रूप—सारा. ४०।

शूकर क्षेत्र - संज्ञा पुं. [सं.] एक तीर्थ जो नैमिषारण्य के निकट है और जहाँ भगवान ने वाराह अवतार लेकर हिरण्यकेशी को मारा था; आजकल यह स्थान 'सोरों' नाम से प्रसिद्ध है।

शूकरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुअरी, वाराही।

शूची—संज्ञा स्त्री. [सं. सूची] सुई।

शूद्र—संज्ञा पुं. [सं.] चार वर्णों में अन्तिम।

शूद्रद्युति—संज्ञा पुं. [सं.] नीला रंग।

शूद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शूद्र वर्ण की स्त्री।

शूद्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] शूद्र वर्ण की स्त्री।

शून्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खाली स्थान। (२) आकाश। (३) एकांत स्थान। (४) बिंदी, सिफर। (५) कुछ न होना, अभाव। (६) ईश्वर।

वि. (१) खाली, रिक्त। (२) निराकार। (३) जो

कुछ न हो। (४) विहीन, रहित।

शून्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] शून्य होने का भाव या धर्म।

शूप—संज्ञा पुं. [सं. सूर्प] सूप, फटकनी।

शूर—वि. [सं.] बहादुर, वीर। उ.—वादत बड़े शूर की नाईं अबहिं लेत हौं प्राण तुम्हारो—२५९०।

शूरता, शूरताइ, शूरताई—संज्ञा स्त्री [सं.शूरता] वीरता।

शूरमा—वि.[सं. शूर] वीर। उ.—सूरदास सिर देत शूरमा सोइ जानै व्यवहार—२९०५।

शूरसेन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथुरा का राजा जो वसुदेव का पिता और श्रीकृष्ण का पितामह था। (२) मथुरा और उसका निकटवर्ती प्रदेश जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।

शूरा—वि. [सं. शूर] बहादुर, वीर।
संज्ञा पुं. [हिं. सूर्य] सूर्य, भानु, रवि।

शूर्पकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी। (२) गणेश।

शूर्पणखा, शूर्पनखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शूर्पणखा] रावण की बहन जिसके नाक-कान लक्ष्मण ने काटे थे।

शूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन-अस्त्र। (२) सूली। (३) त्रिशूल। (४) काँटा। (५) तेज दर्द। (६) टीस, पीड़ा, कसक, दुख। उ.—(क) तुम लछिमन निज पुरहिं सिधारो। बिछुरन भेंट देहु लघु बंधू जियत न जैहै शूल (सूल) तुम्हारौ—९-३६। (ख) मन तोसों कोटिक बार कही। समुझ न चरन गहत गोविंद के उर अघ शूल(सूल) सही—१-३४४। (ग) अब काहे सोचत जल मोचत समौ गए ते शूल नई—२५३७। (घ) को जानै तन छूटि जाइगो शूल रहै जिय साधो—२५५८। (७)छड़, सलाख, शलाका। (८) झंडा, पताका।

शूलधर, शूलधारी—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, शंकर।

शूलना—क्रि. अ. [सं शूल] (१) शूल के समान गड़ना। (२) कष्ट या दुख देना।

शूलपाणि, शूलपानि संज्ञा पुं. [सं. शूलपाणि] हाथ में शूल धारण करनेवाले, महादेव।

शूलिक—वि. [सं.] सूली या फाँसी देनेवाला।

शूली—संज्ञा पुं. [सं. शूलिन्] (१) शिव। (२) एक नरक।
संज्ञा स्त्री. [सं. शूल] पीड़ा, कष्ट।

शृंखल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करधनी, मेखला। (२) जंजीर, साँकल। (३) हथकड़ी-बेड़ी।

शृंखलता—संज्ञा स्त्री. [सं] क्रमबद्ध होने का भाव।

शृंखला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सिलसिला, क्रम। (२) जंजीर, साँकल। (३) करधनी, मेखला। (४) कतार, श्रेणी। (५) एक काव्यालंकार।

शृंखलाबद्ध—वि. [सं.] (१) जो सिलसिल या क्रम से हो। (२) जो जंजीर से बँधा हो।

शृंखलित—वि. [सं.] (१) क्रमबद्ध। (२) पिरोया हुआ।

शृंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत का शिखर, चोटी। (२) (पशु के) सींग। उ.—भक्ति बिन बैल बिराने ह्वैहौ। पाँउ चारि शिर शृंग (सृंग) गुंग मुख तब कैसे गुन गैहौ—१-३३१। (३) कँगूरा। (४)सिंगी बाजा उ.—कंस ताल करताल बजावत शृंग (सृंग) मधुर मुँहचंग।

शृंगवेरपुर—संज्ञा पुं.[सं.] एक प्राचीन नगर जहाँ रामायण-काल में निषादराज गुह की राजधानी थी।

शृंगार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नौ रसों में एक जो रसराज, कहा जाता है और जिसका स्थायी भाव रति; आलंबन विभाव नायक-नायिका, उद्दीपन सखा-सखी, वन-बाग, चंद्र, हाव-भाव आदि हैं। यह रस दो प्रकार का होता है—संयोग और वियोग। (२) स्त्रियों की सजावट; शृंगार १६ हैं—उबटन, स्नान, वस्त्र धारण, सँवारना, काजल लगाना, माँग भरना, महावर लगाना, तिलक लगाना, चिबुक और कपोल पर तिल बनाना, मेंहदी रचाना, सुगंधित लेप लगाना, आभूषण पहनना, पुष्पमाल धारण करना, पान खाना और मिस्सी लगाना।(३) किसी चीज की सजावट। (४) भक्ति का वह रूप जिसमें भक्त अपने को पत्नी और इष्टदेव को पति मानता है। (५) वह जिससे किसी की शोभा बढ़े। उ.—यशुमति कोख सराहि बलैया लेन लगीं ब्रजनार। ऐसो सुत तेरे गृह प्रगटयो या ब्रज को शृंगार।

शृंगारत—क्रि. स. [हिं. शृंगारना] शृंगार करते हैं। उ.—मोहन मोहिनी अंग शृंगारत—पृ. ३८८ (८०)।

शृंगारना—क्रि. स. [सं. शृंगार] शृंगार करना, सजाना।

शृंगारमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्रज का एक स्थान जहाँ श्रीकृष्ण द्वारा राधिका का शृंगार किया जाना प्रसिद्ध

है। (२) प्रेमी-प्रेमिका का मिलन या क्रीड़ास्थल।

शृंगारहाट—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंगार + हिं. हाट] वह बाजार जहाँ वेश्यालय हों, चकला।

शृंगारिक वि. [सं.] शृंगार-संबंधी।

शृंगारित—वि. [सं.] जिसका शृंगार हुआ हो।

शृंगारिया—वि. [सं. शृंगार + हिं. इया] (१) जो देवताओं का शृंगार करे। (२) बहुरूपिया।

शृंगारी—वि. [सं. शृंगार] शृंगार-संबंधी।

शृंगारे—क्रि. स. बहु. [हिं. शृंगारना] सजाये-सँवारे। उ.—कहुँ गजराज बाजि शृंगारे, तापर चढ़े जु आप—सारा ६७७।

शृंगि—वि. [सं. शृंगिन्] जिसके सींग हों।

शृंगी—संज्ञा पुं. [सं. शृंगिन्] (१) पहाड़, पर्वत। (२) एक ऋषि जो शमीक के पुत्र थे और जिनके शाप से तक्षक ने राजा परीक्षित को डसा था। (३) सींगवाला पशु। (४) सींग का बना बाजा। (५) शिव, महादेव। (६) एक प्राचीन देश।

शृंगेरी—संज्ञा पुं. [सं.] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध मठ जिसके अधीश्वर 'शंकराचार्य' कहलाते हैं।

शृग, शृगाल—संज्ञा पुं. [सं. शृगाल] गीदड़।
वि. भीरु, कायर।

शेख—संज्ञा पुं. [सं. शेष] शेष।
संज्ञा पुं. [अ. शेख] मुसलमानों का एक वर्ग।

शेखचिल्ली—संज्ञा पुं. [अ. शेख + हिं. चिल्ली] बड़ी-बड़ी बातें गढ़ने या हाँकनेवाला।

शेखर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर, माथा। (२) मुकुट, किरीट। (३) पर्वत की चोटी, शिखर। (४) सर्वश्रेष्ठ-व्यक्ति।

शेखावत—संज्ञा स्त्री. [सं. शेष] एक क्षत्रिय जाति।

शेखी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शेखी] (१) घमंड, गर्व। (२) ऐंठ, अकड़। (३) डींग, गर्व की बात।
मुहा०—शेखी झड़ना, दूर होना या निकलना—घमंड चूर हो जाना। शेखी बघारना, मारना या हाँकना—डींग मारना, गर्वभरी बातें करना।

शेखीबाज—वि. [फ़ा शेखी + बाज] (१) घमंडी, अभिमानी। (२) डींग मारनवाला।

शेफालि, शेफालिका, शेफाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] निर्गुंडी (पौधा)।

शेर—संज्ञा पुं. [फ़ा] (१) बाघ, सिंह।
मुहा०—शेर होना—उद्दंड हो जाना।
(२) बहुत वीर और साहसी पुरुष।
संज्ञा पुं. [अ.] (उर्दू) कविता के दो चरण।

शेरदहाँ—वि. [फ़ा.] शेर के मुँहवाला।
संज्ञा पुं. पुराने ढंग की एक बंदूक।

शेरपंजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शेर + हिं. पंजा] बघनहा।

शेरबच्चा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शेर + हिं. बच्चा] (१) शेर का बच्चा। (२) साहसी मनुष्य। (३) एक तरह की बंदूक।

शेरबबर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] सिंह, केसरी।

शेवाल—संज्ञा पुं. [सं.] सेवार, सेवाल।

शेष—संज्ञ. पुं. [सं.] (१) बची हुई वस्तु, भाग या संख्या। (२) अंत, समाप्ति। (३) फल, परिणाम। (४) नाश, मरण। (५) सहस्र फनों का सर्पराज जिसके फनों पर पृथ्वी टिकी है, अनंत। (६) लक्ष्मण जो 'शेष' का अवतार कहे जाते हैं। (७) बलराम जो 'शेष' का अवतार कहे जाते हैं।
वि. (१) बचा हुआ। (२) समाप्त। उ.—बातें करत शेष निसि आई ऊषा गए असनान—सारा.। (३) दूसरे, अन्य, अतिरिक्त।

शेषधर—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

शेषनाग—संज्ञा पुं. [सं.] शेष जिसके सहस्र फनों पर पृथ्वी टिकी मानी जाती है।

शेषशायी—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु जो शेषनाग पर शयन करनेवाले माने जाते हैं।

शेषांश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बचा हुआ या शेष अंश। (२) अंतिम भाग।

शेषाचल—संज्ञा पुं. [सं.] दक्षिण भारत का एक पर्वत।

शैक्षिक—वि. [सं.] शिक्षा-संबंधी।

शैतान—संज्ञा पुं. [सं] (१) असत् या पथ-भ्रष्ट करनेवाला (दुष्ट) देवता।
मुहा०—शैतान का बच्चा—बहुत दुष्ट या नीच आदमी। शैतान की आँत—बहुत लंबी चीज।

(२) भूत, प्रेत। (३) दुष्ट या क्रूर पुरुष। (४) नटखट, शरारती। (५) झगड़ा, टंटा।

शैतानी—संज्ञा स्त्री. [अ. शैतान] पाजीपन।

शैथिल्य—संज्ञा पुं. [सं.] शिथिलता।

शैल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पहाड़, पर्वत। उ.—(क) दीन्हों डारि शैल तें भू पर पुनि जल भीतर डारयो। (ख) मुष्टिक अरु चाणूर शैल सम सुनियत हैं अति भारे—२५६९। (२) चट्टान, शिला।

शैलकन्या, शैलकुमारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती।

शैलगंगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गोवर्द्धन पर्वत की एक नदी जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा सब तीर्थों का आवाहन किया जाना प्रसिद्ध है।

शैलजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती।

शैलतटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पहाड़ की तराई।

शैलधर, शैलधरन—संज्ञा पुं. [सं. शैलधर] गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्ण। उ.—सूरदास प्रभु शैलधरन बिनु कहा सबै अब तोते—२८३३।

शैलनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती।

शैलपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिमालय। (२) शिव।

शैलरंध्र—संज्ञा पुं. [सं.] गुहा, गुफा।

शैलराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिमालय। (२) शिव।

शैलसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती।

शैली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ढब, ढंग, रीति। (२) पद्धति, प्रणाली, परिपाटी। (३) प्रथा, चलन, रिवाज। (४) वाक्य-रचना की विशिष्ट रीति।

शैलूष—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक खेलनेवाला अभिनेता।

शैलेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] हिमालय।

शैव—वि. [सं.] शिव-संबंधी।

संज्ञा पुं. शिव का उपासक।

शैवलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी।

शैवाल—संज्ञा स्त्री [सं.] सेवार, सिवार।

शैव्य—वि. [सं.] शिव-संबंधी।

शैव्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] सत्यवादी हरिश्चन्द्र की रानी।

शैशव—वि. [सं.] (१) शिशु-संबंधी। (२) बाल्यावस्था या शिशु-अवस्था-संबंधी।

संज्ञा पुं. (१) बचपन। (२) बच्चों सा व्यवहार।

शोक—संज्ञा पुं. [सं.] प्रियजन के अभाव या पीड़ा आदि से उत्पन्न दुख; (नौ रसों के नौ स्थायी भावों में एक है शोक जो करुण रस का मूल है; इसे मृत्यु का पुत्र कहा गया है)। उ.—मदन गोपाल देखियत हैं सब अब दुख शोक बिसारी—२५६६।

शोककारक—वि. [सं.] शोक उत्पन्न करनेवाला।

शोकाकुल—वि. [सं.] शोक से व्याकुल।

शोकार्त—वि. [सं. शोकार्त्त] शोक से व्याकुल।

शोख—वि. [फ़ा. शोख़] (१) ढीठ। (२) नटखट। (३) चंचल। (४) चटकीला (रंग)।

शोखी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शोख़ी] (१) ढिठाई। (२) चंचलता। (३) नटखटी। (४) चटकीलापन।

शोच—संज्ञा पुं. [सं. शोचन] (१) दुख। (२) चिंता।

शोचनीय—वि. [सं.] (१) जिसकी दशा देखकर दुख हो। (२) बहुत हीन या बुरा।

शोण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाली, अरुणता। (२) आग, अग्नि। (३) सेंदुर। (४) एक नद।

शोणित—वि. [सं.] लाल रंग का।

संज्ञा पुं. खून, रक्त, रुधिर।

शोथ—संज्ञा पुं. [सं.] सूजन, वरम।

शोध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्धि, संस्कार। (२) ठीक किया जाना। (३) जाँच-पड़ताल, परीक्षा। (४) खोज-खबर, ढूँढ़। उ.—(क) जा दिन ते मधुबन हम आए, शोध न तुम ही लीनो हो—२९३२। (ख) सूर हमहिं पहुँचाइ मधुपुरी बहुरो शोध न लीनो—२९६५। (ग) जेइ जेइ पथिक हुते ब्रजपुर के बहुरि न शोध करे—२९८२।

शोधक—वि. [सं.] (१) शुद्धि करनेवाला। (२) सुधार करनेवाला। (३) ढूँढ़ने-खोजनेवाला।

शोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्ध करना। (२) सुधारना। (३) धातु का संस्कार। (४) जाँच, छानबीन, परीक्षा। (५) खोजना, ढूँढ़ना। (६) प्रायश्चित। (७) दंड।

शोधना—क्रि. स. [सं. शोधन] (१) शुद्ध या स्वच्छ करना। (२) सुधारना, संस्कार करना। (३) धातु का संस्कार करना। (४) ढूँढ़ना, खोजना।

शोधवाना—क्रि.स. [हिं. शोधना] शोधने को प्रवृत्त करना।

शोधि—क्रि. स. [हिं. शोधना] खोजकर, ढूँढ़कर । उ.—(क) ग्रहबल, लग्न, नक्षत्र, शोधि कीनी बेद धुनी । (ख) सब शोधि रहे, न शोध पायो—१० उ.-२४ ।

शोधु—संज्ञा पुं. [सं. शोध] खोज, पता । उ.—राख्यो रूप चराइ निरंतर सो हरि शोधु लह्यो—३१४० ।

शोधैया—वि. [हिं. शोधना+ऐया] शोधनेवाला ।

शोभ—वि. [सं.] सुंदर, शोभायुक्त ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शोभा] शोभा ।

शोभन—वि. [सं.] सुंदर, शोभायुक्त । (२) सुहावना । (३) उत्तम, श्रेष्ठ । (४) शुभ ।

संज्ञा पुं. (१) कमल । (२) आभूषण । (३) मंगल, कल्याण । (४) सौंदर्य । (५) सेंदुर ।

शोभना—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदरी नारी ।

क्रि. अ. [सं.] सोहना, शोभित होना ।

शोभनीय—वि. [सं.] सुंदर ।

शोभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चमक, कांति । (२) छबि, सुंदरता । उ.—कछुक विलाय वदन की शोभा अरुण कोटि गति पावै—२५४९ । (३) सजावट ।

शोभात—क्रि. अ. [हिं. शोभना] शोभित होता या सुंदर लगता है । उ.—गत पतंग राका शशि विय सँग घटा सघन शोभात—२१८५ ।

शोभायमान—वि. [सं.] सुंदर ।

शोभावत—क्रि.अ.[हिं शोभावना] सुंदर लगता है । उ.—कुंडल छबि रवि किरन हूँ तें द्युति मुकुट इंद्रधनु ते शोभावत—८६९ ।

शोभावना—क्रि. अ. [हिं शोभना] सुंदर लगना ।

शोभित—वि. [सं.] (१) सुंदर, शोभायुक्त । (२) सजा हुआ । (३) बिराजता हुआ ।

शोर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) गुल-गपाड़ा, हल्ला, कोलाहल । उ.—(क) सूर नारि नर देखन धाए घर घर शोर अकूत—२४९२ । (ख) नगर शोर अकनत सुनत अति रुचि उपजावत—२५६० । (ग) हलधर संग छाक भरि काँवरि करत कुलाहल सोर—सारा. ४७१ । (२) आवाज, पुकार, गुहार । उ.—महरि पुत्र कहि शोर लगायो तरु ज्यों धरनि लुटाइ—२५३३ । (३) धूम, प्रसिद्धि । उ.—आय द्वारका शोर कियो उन हरि हस्तिनपुर जाने ।

शोरबा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] तरकारी का रसा या झोल ।

शोरा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक तरह का क्षार ।

शोरापुश्त—वि. [फ़ा.] झगड़ालू, उद्दंड ।

शोला—संज्ञा पुं.[अ. शोअलऽ] आग की लपट या ज्वाला ।

शोशा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) नोक । (२) अनोखी बात । (३) झगड़े की बात । (४) व्यंग्य ।

शोषक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुखाने या सोखनेवाला ।(२) चूसनेवाला । (३) घुलानेवाला । (४) नाशक ।

शोषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुखाना । (२) सोख लेना । (३) चूसना । (४) घुलाना । (५) नाश करना । (६) कामदेव के पाँच बाणों में एक ।

शोषित—वि. [सं.] (१) सोखा या सुखाया हुआ । (२) चसा हुआ । (३) पीड़ित ।

शोहदा—वि. [अ.] गुंडा, बदमाश, लंपट ।

शोहरत—संज्ञा स्त्री [अ.] (१) प्रसिद्धि । (२) धूम ।

शोहरा—संज्ञा पुं. [अ. शोहरत] (१) प्रसिद्धि । (२) धूम ।

शौक—संज्ञा पुं. [अ. शौक़] (१) तीव्र चाह या लालसा ।

मुहा.—शौक करना—भोग करना, आनंद लेना । शौक चर्राना या पैदा होना—बहुत चाह या लालसा होना (व्यंग्य) । शौक पूरा करना या मिटाना—चाह पूरी करना । शौक फरमाना—भोग करना, आनंद लना । शौक से—सहर्ष, आनंद से ।

(२) लालसा (३) चस्का । (४) झुकाव ।

शौकत—संज्ञा स्त्री. [अ. शौक़त] ठाठ-बाट, शान ।

शौकिया—क्रि. वि. [अ. शौक़िया] शौक पूरा करने को ।

शौकीन—वि. [अ. शौक़] (१) शौक या चाव रखनेवाला । (२) सदा बना-ठना रहनेवाला ।

शौकीनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. शौकीन] शौकीन होने का भाव या काम, रँगीलापन, छैलापन ।

शौच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्धता, पवित्रता । (२) शुद्धता के लिए किये गये दैनिक कर्म ।

शौध—वि. [सं. शुद्ध] निर्मल, पवित्र ।

शौरसेन—संज्ञा पुं. [सं.] शूरसेन का राज्य जिसका विस्तार आधुनिक व्रजमंडल के लगभग था ।

शौरसेनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शौरसेन प्रदेश की प्राचीन

प्राकृत भाषा। (२) एक प्राचीन अपभ्रंश भाषा जो मध्यप्रदेश में प्रचलित थी।

शौर्य—संज्ञा पुं. [सं. शौर्य्य] वीरता, शूरता।

शौहर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] स्त्री का स्वामी, पति।

श्मशान—संज्ञा पुं. [सं.] मसान, मरघट।

श्मशानपति—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

श्मश्रु—संज्ञा पुं. [सं.] दाढ़ी-मूँछ।

श्याम—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक नाम।
वि. (१) काला, साँवला। (२) नीला।

श्यामकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफेद और एक कान काला हो।

श्याम टीका—संज्ञा पुं. [सं.] दिठौना।

श्यामता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्याम होने का गुण या भाव। (२) काला या साँवलापन। उ.—सूर प्रभु श्याम की श्यामता मेघ की यहै जिय सोच कछु नहिं सोहाई—१६२६।

श्यामल—वि. [सं.] काला, साँवला।

श्यामलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] काला या साँवलापन।

श्यामला—वि. [सं. श्याम] काला, साँवला।
संज्ञा पुं. श्रीकृष्ण।

श्यामसुंदर—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक नाम।

श्यामांग—वि. [सं.] काले या साँवले रंगवाला।

श्यामा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रीकृष्ण की प्रिया राधा। (२) राधा की एक सखी का नाम। उ.– (क) इंदा बिंदा राधिका श्यामा कामा नारि—११०२। (ख) कहि राधा किन हार चुरायो····। श्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमदा नारि—१५८०। (३) काले रंग की गाय। (४) रात, रात्रि। (५)। एक पक्षी।
वि. काले या श्याम वर्णवाली।

श्याल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साला। (२) बहनोई।
संज्ञा पुं. [सं. शृगाल] सियार, गीदड़। उ.—रोवैं वृषभ तुरग अरु नाग। स्याल (स्यार) दिवस, निसि बोलैं काग—१-२८६।

श्येन—संज्ञा पुं. [सं.] बाज या शिकरा पक्षी।

श्रद्धांजलि—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रद्धा+अंजलि] (१) अंजुलि में फूल लेकर श्रद्धा से चढ़ाना। (२) श्रद्धा-भाव-सूचक कार्य, कृति या आयोजन।

श्रद्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बड़ों के प्रति आदर या पूज्य भाव। (२) भक्ति, आस्था।

श्रद्धालु—वि. [सं.] श्रद्धा रखनेवाला।

श्रद्धेय—वि. [सं.] श्रद्धा करने के योग्य, श्रद्धा-पात्र।

श्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेहनत, परिश्रम, उद्यम। उ.—दूरि तीर्थन श्रम करि जाहिं। (२) थकावट। उ.—आज कहा उद्यम करि आए। कहै वृथा भ्रमि भ्रमि श्रम (स्रम) पाए—४-१२। (३) एक संचारी भाव। (४) क्लेश, दुख। (५) दौड़-धूप। (६) प्रयास।

श्रमकण—संज्ञा पुं. [सं.] पसीने की बूँद।

श्रमजल—संज्ञा पुं. [सं.] पसीना, स्वेद। उ.—कुमकुम आड़ श्रवत श्रमजल मिलि मधु पीवत छबि छींट चली री।

श्रमजित—वि. [सं. श्रम+हिं जीतना] श्रम को जीत लेनेवाला, कभी न थकनेवाला।

श्रमजीवी—वि. [सं. श्रमजीविन्] शारीरिक परिश्रम करके जीविका अर्जन करनेवाला।

श्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्ध संन्यासी।

श्रमबिंदु—संज्ञा पुं. [सं.] पसीने की बूँद।

श्रमसीकर—संज्ञा पुं. [सं.] पसीने की बूँद। उ. कुंडल मकर कपोलनि झलकत श्रमसीकर के दाग।

श्रमिक—संज्ञा पुं. [सं.] मजदूर।

श्रमित—वि.[सं. श्रम] थका हुआ, श्रांत। उ.—चारों भ्रातनि श्रमित जानिकै जननी तब पौढ़ाए—सारा. १९३।

श्रमी—वि. [सं. श्रमिक] (१) परिश्रमी। (२) श्रमजीवी।

श्रवण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कान, कर्ण। (२) देव-चरित्र सुनना। उ.—श्रवण कीर्तन सुमिरन करै। (३) नौ प्रकार की भक्तियों में एक। उ.—श्रवण कीर्तन स्मरण पद-रत अर्चन वंदन दास—सारा. ११६। (४) राजा मेघध्वज के एक पुत्र का नाम। उ.—ता संगति नव सुत तिन जाए। श्रवणादिक मिलि हरि-गुन गाए। (५) सत्ताइस नक्षत्रों में बाइसवाँ। (६) मातृ-पितृ-भक्त पुत्र।

श्रवत—क्रि. अ. [सं. स्रव] बहता है। उ.—राति दिवस रस श्रवत सुधा में कामधेनु दरसाई।

श्रवन—संज्ञा पुं. [सं. श्रवण] (१) कान, कर्ण। (२) देव-चरित्र सुनना। (३) नौ प्रकार की भक्तियों में एक।

(४) राजा मेघध्वज का एक पुत्र। (५) एक नक्षत्र।

श्रवन द्वादसी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रवण + द्वादशी] भादों के शुक्ल पक्ष की द्वादशी जिस दिन वामनावतार होना माना जाता है। उ.—भादौं श्रवन द्वादसी शुभ दिन धरो बिप्र हरि-रूप—सारा. ३३१।

श्रवना—क्रि. अ. [सं. स्राव] बहना, रसना।

क्रि. स. बहाना, गिराना।

श्रवित—वि. [सं. स्राव] बहा या गिरा हुआ।

श्रव्य—वि. [सं.] जो सुना जा सके, सुनने योग्य।

श्रव्य काव्य—संज्ञा पुं. [सं.] काव्य जो केवल सुना जा सके और अभिनय-योग्य न हो।

श्रांत—वि. [सं.] (१) थका हुआ। (२) दुखी। (३) शांत। (४) सुख-भोग से तृप्त।

श्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रम। (२) थकावट। (३) दुख, खेद। (४) विश्राम।

श्राद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रद्धापूर्वक किया जानेवाला कार्य। (२) वह कृत्य जो पितरों के लिए किया जाय। उ.—कतहूँ श्राद्ध करत पितरन को तर्पण करि बहु भाँति—सारा. ६७३। (३) आश्विन कृष्ण पक्ष जिसमें पितरों की तृप्ति-हेतु पिंडदान, तर्पण आदि करके ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, पितृपक्ष।

श्राद्धपक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] आश्विन कृष्ण पक्ष जब पितरों को पिंडदान, तर्पण आदि करके ब्राह्मण को भोजन कराया जाता और दक्षिणा दी जाती है।

श्राप—संज्ञा पुं. [सं. शाप] शाप।

श्रावक, श्रावग—संज्ञा पुं. [सं. श्रावक] जैन या बौद्ध संन्यासी। उ.—अजहूँ श्रावग ऐसो करै, ताही को मारग अनुसरै।

वि. सुननेवाला, श्रोता।

श्रावगी—संज्ञा पुं. [सं. श्रावक] जैन धर्मानुयायी।

श्रावण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) असाढ़ और भादों के बीच का महीना। (२) शब्द।

श्रावणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रावण मास की पूर्णिमा जिस दिन 'रक्षाबंधन' या 'सलूनों' का त्योहार होता है।

श्रावना—क्रि. स. [सं. स्रवना] गिराना, बहाना।

श्रावस्ती—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्राचीन नगरी।

श्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रिया] मंगल, कल्याण।

संज्ञा स्त्री. [सं. श्री] शोभा।

श्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विष्णु-पत्नी कमला, लक्ष्मी। उ.—तजि बैकुंठ गरुड़ तजि श्री तजि निकट दास के आयो—१-१०। (२) सरस्वती। (३) धन-सम्पत्ति। (४) ऐश्वर्य, विभूति। (५) कीर्ति। (६) प्रभा, शोभा, कांति। (७) वृद्धि। (८) सिद्धि। (९) 'बेंदी' नामक आभूषण। (१०) आदरसूचक शब्द। उ.—(क) श्री नृसिंह बपु धरयो असुर हति—१-१७। (ख) श्रीकंत सिधारो मधुसूदन पै सुनियत हैं वै मीत तुम्हारे —१०उ.-६०।

संज्ञा पुं. (१) एक वैष्णव-संप्रदाय। (२) एक राग।

वि. (१) सुंदर। (२) श्रेष्ठ। (३) शुभ।

श्रीकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

श्रीकंत, श्रीकांत—संज्ञा पुं. [सं. श्रीकांत] विष्णु।

श्रीखंड, श्रीखंडा—संज्ञा पुं. [सं. श्रीखंड] (१) चंदन-विशेष, हरिचंदन। उ.—तनु श्रीखंड मेघ उज्ज्वल अति, देखि महाबल भाँति। (२) शिखरन।

श्रीदामा—संज्ञा पुं. [सं. श्रीदामन्] श्रीकृष्ण का एक ग्वाल सखा जिसे 'सुदामा' भी कहा जाता है। उ.—खेलत स्याम ग्वालनि संग। सुबल हलधर अरु श्रीदामा करत नाना रंग—१०-२१३।

श्रीधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु का एक नाम। उ.—धनि जसुमति जिन श्रीधर जाए—३८४। (२) कंस का अनुचर एक निर्दयी ब्राह्मण जो श्रीकृष्ण को मारने आया था और जिसकी जीभ मरोड़कर श्रीकृष्ण ने उसे अबोला कर दिया था। उ.—श्रीधर बाँभन करम कसाई, कह्यो कंस सौं बचन सुनाई। प्रभु, मैं तुम्हरो आज्ञाकारी, नंद-सुवन की आवौं मारी।.........जबही बाँभन हरि ढिग आयौ। हाथ पकरि हरि ताहि गिरायौ। गुदी चाँपि लै जीभ मरोरी—१०-७७।

श्रीधाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, बैकुंठ। (२) लाल कमल, पद्म।

श्रीनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण। उ.—आइ निकट श्रीनाथ निहारे, परी तिलक पर दीठि। सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि

हँसि दीन्ही पीठ—१-२७४।

श्रीनिकेत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, बैकुंठ। उ.—श्रीनिकेत समेत सब सुख रूप प्रगट निधान। (२) लाल कमल, पद्म।

श्रीनिकेतन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, बैकुंठ (२) लाल कमल। (३) विष्णु।

श्रीनिधि—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का एक नाम।

श्रीनिवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, बैकुंठ। (२) लाल कमल। (३) विष्णु।

श्रीपंचमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] माघ शुक्ल पंचमीया वसंत पंचमी जब सरस्वती पूजन होता है।

श्रीपत, श्रीपति—संज्ञा पुं. [सं. श्रीपति] (१) विष्णु। उ.—जाके सखा श्यामसुंदर से श्रीपति सकल सुखन के दाता। (२) रामचंद्र। उ.—बारबार श्रीपति कहैं धीवर नहिं मानै—९-४२। (३) श्रीकृष्ण। उ.—तौ हम कछ न बसाइ पार्थ, जौ श्रीपति तोहिं जितावैं—१-२७५।

श्रीपद—वि. [सं.] ऐश्वर्यदाता।

श्रीपाद—वि. [सं.] पूज्य, श्रेष्ठ।

श्रीप्रदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा का एक नाम।

श्रीफल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बेल (फल)। उ.—श्रीफल सकुचि रहे दुरि कानन—१८९७। (२) नारियल। उ.—श्रीफल मधुर चिरौंजी आनी—१०-२११। (३) आँवला।

श्रीबंधु संज्ञा पुं. [सं.] अमृत, चन्द्र आदि वे चौदह रत्न जो समुद्र-मंथन से लक्ष्मी के साथ निकले थे।

श्रीभान—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का, सत्यभामा के गर्भ से जन्मा, एक पुत्र।

श्रीमंतः—संज्ञा पुं. [सं. श्री + मंत] श्रीमान् का बहु वचन।

श्रीमंत—संज्ञा पुं. [सं. सीमंत] (१) एक शिरोभूषण। उ. शीश सचिक्कन केश ही बिच श्रीमंत सँवारि—२०६५। (२) स्त्री के सिर के बीच की माँग। उ.—सरस सुमना जात शीश कर सों करति श्रीमंत अलक पुनि पुनि सँवारै—२१५६।

वि. श्रीमान्, श्रीसंपन्न्।

श्रीमत्—वि. [सं.] (१) धनी। (२) श्रीसंपन्न।

श्रीमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (सौभाग्यवती) स्त्री के लिए आदरसूचक शब्द।

श्रीमान, श्रीमान्—संज्ञा पुं. [सं. श्रीमान्] किसी पुरुष के लिए आदरसूचक शब्द, श्रीयुत। उ.—जय जय जय श्रीमान महावपु जय जय जय जगत अधार।

वि. (१) धनी। (२) श्रीसंपन्न।

श्रीमाल—संज्ञा स्त्री. [सं. श्री + हिं. माला] गले का एक आभूषण, कंठश्री। उ.—चिबुक तर कंठ श्रीमाल मोतीन छवि।

श्रीमुख—संज्ञा पुं. [सं.] सुंदर मुख (आदरसूचक)। उ.—सूरजदास दास की महिमा श्रीपति श्रीमुख गाई—९-७।

श्रीयुक्त, श्रीयुत—वि. [सं. श्रीयुक्त] (१) शोभायुक्त। (२) धन-संपन्न। (३) श्रेष्ठ व्यक्तियों के लिए एक आदरसूचक विशेषण।

श्रीरंग—संज्ञा पुं. [सं.] लक्ष्मीपति, विष्णु। उ.—काके होंहि जो नहिं गोकुल के सूरज प्रभु श्रीरंग—३३२७।

श्रीरमण, श्रीरमन, श्रीरवन—संज्ञा पुं. [सं. श्रीरमण] लक्ष्मीपति विष्णु या उनके अवतार।

श्रीराग—संज्ञा पुं. [सं.] छह रागों में एक।

श्रीरूपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीता जी। (२) राधा।

श्रीवंत—वि. [श्रं. श्रीमत्] ऐश्वर्यसंपन्न।

श्रीवत्स—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) विष्णु के वक्षस्थल पर बना भृगु का चरण-चिह्न।

श्रीश—संज्ञा पुं. [सं.] लक्ष्मी के स्वामी विष्णु।

श्रीहत—वि. [सं.] शोभाहीन, निस्तेज।

श्रुत—वि. [सं.] (१) सुना हुआ (२) प्रसिद्ध।

श्रुतकीर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा जनक के भाई कुशध्वज की पुत्री जो शत्रुघ्न को ब्याही थी।

श्रुतदेव—संज्ञा पुं. [सं.] एक मुनि। उ.—तहाँ बसत श्रुतदेव महामुनि सुनि दरसन को धायो—सारा. १९९।

श्रुतदेवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती।

श्रुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुनना। (२) कान, श्रवण। (३) सुनी हुई बात। (४) शब्द, ध्वनि। (५) किंवदंती। (६) वेद। उ.—(क) जीवनि-आस प्रबल श्रुति लेखी—१-२२४। (ख) जाके श्वाँस उसाँस लेत में प्रगट भए श्रुति चार—२६२९। (७) चार की संख्या। (८) अनुप्रास का एक भेद।

श्रुतिकटु—वि. [सं.] कानों को कठोर और कर्कश लगने वाला (वर्ण या शब्द)।
श्रुतिपथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रवणेंद्रिय, कान। (२) वेद-विहित मार्ग, सन्मार्ग।
श्रुतिमुख—संज्ञा पुं. [सं] (चार मुखवाले) ब्रह्मा।
श्रुतिवेध—संज्ञा पुं. [सं.] कनछेदन (संस्कार)।
श्रुतिहारी—वि. [सं.] सुनने में प्रिय।
श्रुत्य—वि. [सं.] (१) सुनने योग्य। (२) प्रसिद्ध।
श्रुत्यनुप्रास—संज्ञा पुं. [सं.] अनुप्रास का एक भेद।
श्रेणि, श्रेणी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेणि] (१) कतार, पाँती, पंक्ति। (२) सिलसिला, क्रम, शृंखला। (३) दल, समूह। (४) सेना, सैन्य। (५) मंडली।
श्रेणीबद्ध—वि. [सं.] पंक्ति में स्थित।
श्रेय—वि. [सं. श्रेयस्] (१) श्रेष्ठ। (२) शुभ, मंगलकारी। (३) यश या कीर्तिदायक।
संज्ञा पुं. (१) श्रेष्ठता। (२) मंगल, कल्याण। (३) यश, कीर्ति। (४) धर्म, पुण्य।
श्रेयस्कर—वि. [सं.] कल्याण करनेवाला।
श्रेष्ठ—वि. [सं.] (१) बहुत अच्छा। (२) मुख्य, प्रधान। (३) पूज्य। (४) ज्येष्ठ। (५) कल्याण-भाजन।
श्रेष्ठता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तमता (२) बड़प्पन।
श्रेष्ठी—संज्ञा पुं. [सं.] महाजन, सेठ।
श्रोण—संज्ञा पुं. [सं. शोण] शोण नद।
श्रोणि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमर, कटि।
श्रोणित—संज्ञा पुं. [सं. शोणित] रक्त, रुधिर।
श्रोणि सूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] करधनी, मेखला।
श्रोणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कमर, कटि।
श्रोत—संज्ञा पुं. [सं. श्रोतस्] कान, श्रवण।
श्रोता—वि. [सं. श्रोतृ] (१) सुननेवाला। (२) कथा, व्याख्यान आदि सुननेवाला।
श्रोत्रिय, श्रोत्री वि. [सं. श्रोत्रिय] वेद-वेदांग का ज्ञाता।
श्रोन—संज्ञा पुं. [सं. शोण] रक्त, रुधिर।
श्रोनित—संज्ञा पुं. [सं. शोणित] रक्त, रुधिर।
श्रौन—संज्ञा पुं. [सं. श्रवण] कान।
श्लथ—वि. [सं.] अशक्त, शिथिल।
श्लाघन—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी प्रशंसा करना।
श्लाघनीय—वि. [सं.] प्रशंसनीय।
श्लाघा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रशंसा। (२) स्तुति, बड़ाई। (३) चापलूसी। (४) इच्छा, कामना।
श्लाघ्य—वि. [सं.] सराहनीय, प्रशंसनीय।
श्लिष्ट—वि. [सं.] (१) मिला या जुड़ा हुआ। (२) आलिंगित। (३) जिसमें श्लेष हो, श्लेषयुक्त।
श्लील—वि. [सं.] (१) उत्तम। (२) शुभ।
श्लेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलना, जुड़ना। (२) संयोग। (३) आलिंगन। (४) एक काव्यालंकार।
श्लेष्मा—संज्ञा पुं. [सं. श्लेष्मन्] बलगम, कफ।
श्लोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शब्द, ध्वनि। (२) स्तुति, प्रशंसा। (३) कीर्ति, यश। (४) संस्कृत का एक प्रसिद्ध छंद। (५) संस्कृत का कोई पद्य।
श्वपच—संज्ञा पुं. [सं.] चांडाल, डोम।
श्वश्रु—संज्ञा स्त्री. [सं.] सास।
श्वसन संज्ञा पुं. [सं.] साँस लेना।
श्वसुर—संज्ञा पुं. [सं.] ससुर।
श्वान—संज्ञा पुं. [सं.] कुत्ता। उ.—सोये श्वान (स्वान); पहरुआ सोये—१०-३।
श्वापद—संज्ञा पुं. [सं.] हिंसक पशु।
श्वास—संज्ञा पुं. [सं.] साँस।
मुहा०—श्वास रहते—जीते जी। श्वास छूटना—प्राण निकलना, मृत्यु होना।
श्वासा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्वास] (१) साँस। उ.—श्वासा तासु भए श्रुति चार। (२) प्राणवायु, प्राण।
श्वासोच्छ्वास—संज्ञा पुं. [सं.] वेग से साँस खींचना और निकालना।
श्वेत—वि. [सं.] सफेद, धवल, निर्मल, उज्ज्वल। उ.—श्वेत छत्र मनो शशि प्राची दिशि उदय कियो निशि राका—२५६६।
श्वेत काक—संज्ञा पुं. [सं.] सफेद कौआ अर्थात् (जो बात असंभव हो)।
श्वेत गज—संज्ञा पुं [सं.] ऐरावत हाथी। उ.—अप्सरा पारजातक धनुष अश्व गज श्वेत ए पाँच सुरपतिहिं दीन्हें—८-८।
श्वेतता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सफेदी, उज्ज्वलता।

श्वेतभानु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

श्वेतांबर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सफेद वस्त्र पहननेवाला। (२) जैनियों के दो प्रधान संप्रदायों में एक।

श्वेतांशु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

ष

ष—देवनागरी वर्णमाला का इकतीसवाँ वर्ण जो मूर्द्धा से उच्चरित होने के कारण 'मूर्द्धन्य' कहलाता है। प्राचीन काव्य-भाषा में इसका उच्चारण कभी 'ख' और कभी 'श' के समान होता है।

षंड—संज्ञा पुं. [सं.] नामर्द, नपुंसक।

षंडामर्क—संज्ञा पुं. [सं.] शुक्राचार्य के पुत्र का नाम जो प्रहलाद का शिक्षा-गुरु था। उ.—षंडामर्क जो पूछन लाग्यो तब यह उत्तर दीन—सारा. ११२।

षट, षट्—वि. [सं.] (गिनती में) छह।

संज्ञा पुं. छह की संख्या।

षट्कोण—वि. [सं.] जिसमें छह कोण हों।

षटचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुंडलिनी के ऊपर पड़नेवाले छह चक्र। (२) कुचक्र।

षटचरण—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा, भ्रमर।

षटताल—संज्ञा पुं. [सं.] मृदंग की एक ताल।

षटतिला—संज्ञा स्त्री. [सं.] माघ कृष्ण एकादशी जब तिल खाने और दान करने का माहात्म्य है।

षटदर्शन—संज्ञा पुं. [सं.] भारतीय आर्यों के छह दर्शन या शास्त्र; यथा—सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग और वेदांत।

षटदश—वि. [सं. षट्+दश] सोलह। उ॰—षट्दश सहस कन्या असुर बंदि में नींद अरु भूख अहनिशि बिसारी—१० उ.-३१।

षटपद—वि. [सं.] छह पैरवाला।

संज्ञा पुं. भौंरा, भ्रमर। उ.—सूरदास पूरो दै षट्पद कहत फिरत हो सोई—३०२२।

षटपदी—वि. स्त्री. [सं.] छह पैरवाली।

संज्ञा स्त्री. भौंरी, भ्रमरी।

षटरस—संज्ञा पुं. [सं.] छह प्रकार के स्वाद या रस—मधुर लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल। उ.—बहु व्यंजन बहु भाँति रसोई, षटरस के परकार—३९४।

वि. छह प्रकार के स्वादवाल। उ.—षटरस व्यंजन छाँड़ि रसोई साग बिदुर घर खाए—१-२४४।

षटराग—संज्ञा पुं. [सं. षट्+राग] (१) संगीत के छह राग—भैरव, मलार, श्रीराग, हिंडोल, मालकोस और दीपक। (२) बखेड़ा, जंजाल, झंझट।

षटवांग—संज्ञा पुं. [सं.] एक राजर्षि जिन्होंने इंद्र की सहायता की थी और जो केवल दो घड़ी की साधना से मुक्त हो गये थे। उ.—(क) नृप षट वांग पूर्व इक भयौ, सु तौ द्वै घरी मैं तरि गयौ—१-३४२। (ख) ज्यौं षट्वांग तरयौ गुन गाइ। नृप षट्वांग भयौ भुव माहिं।''''इंद्रपुरी षट्वांग सिधाए—१-३४३।

षडानन—वि. [सं.] जिसके छह मुख हों।

संज्ञा पुं. स्वामिकार्तिक।

षड्ज—संज्ञा पुं. [सं.] संगीत के सात स्वरों में चौथा।

षड्दर्शन—संज्ञा पुं. [सं.] न्याय आदि छह दर्शन।

षड्यंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] जाल, कुचक्र।

षड्रस—संज्ञा पुं. [सं.] छह प्रकार के स्वाद या रस—नमकीन, तीता, कड़ुवा, कसैला और खट्टा।

षड्रिपु—संज्ञा पुं. [सं.] काम, क्रोध आदि छह दोष जो प्राणी के शत्रु हैं।

षष्टि—वि. [सं.] साठ।

षष्ठ—वि. [सं.] छठा।

षष्ठी—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) किसी पक्ष का छठा दिन। (२) संबंधकारक (व्याकरण)। (३) बालक के जन्म का छठा दिन या उस दिन का उत्सव।

षाड़व—संज्ञा पुं. [सं.] वे राग जिसमें केवल छह स्वर, स रे ग म प और ध लगते हैं, निषाद वर्जित है।

षाण्मासिक—वि. [सं.] छमाही।

षोडश—वि. [सं. षोडशन्] (१) सोलह। (२) सोलहवाँ।

संज्ञा पुं. सोलह की संख्या।

षोडश श्रृंगार—संज्ञा पुं. [सं.] स्त्री का पूर्ण श्रृंगार जिसके सोलह अंग हैं।

षोडश संस्कार—संज्ञा पुं. [सं.] सोलह संस्कार—गर्भाधान,

पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत, केशांत, समावर्तन और विवाह।

षोडशी—वि. [सं.] (१) सोलह से संबंधित, सोलहवीं। (२) सोलह वर्ष की (युवती)।
संज्ञा स्त्री. सोलह वर्ष की युवती।

षोडशोपचार—संज्ञा पुं. [सं.] पूजा के सोलह अंग—आवाहन, आसन, अर्घ्यपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गंध (चंदन), पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा और बंदना।

षोड़स—वि. [सं. षोडश] सोलह। उ.—षोड़स जुक्ति, जुवति चित षोड़स, षोड़स बरस निहारे—१-६०।

स

स—देवनागरी वर्णमाला का बत्तीसवाँ व्यंजन जिसका उच्चारण-स्थान दंत है।

सं—अव्य [सं. सम्] (१) एक अव्यय जो शब्द के आदि में जुड़कर शोभा, समानता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करता है। (२) से।

सँइतना—क्रि. स. [सं. संचय] (१) जोड़ना, इकट्ठा करना। (२) सहेजना, सँभालना।

सँउपना—क्रि. स. [हिं. सौंपना] देना, अर्पित करना।

संक—संज्ञा स्त्री. [सं. शंक] (१) डर, भय। उ.—(क) अजहुँ नाहिं संक धरत बानर मति-भंगा—९-९७। (ख) होइ सनमुख भिरौं, संक नहिं मन धरौं—९-१२९। (२) संकोच। उ.—इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं—१०-२४। (३) संदेह। (४) अनिष्टाशंका।

संकट—संज्ञा पुं. [सं. सम+कृत, प्रा. संकट] (१) विपत्ति, दुख, कष्ट। उ.—(क) काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहैं—१-२९। (ख) सूर तुम्हारी आसा निवहै, संकट मैं तुम साथै—१-११२। (ग) संकट परैं जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ—९-१३२। (२) भीड़, समूह। (३) जल या थल के दो बड़े भागों को जोड़नेवाला पतला भाग। (४) दो पहाड़ों के बीच का तंग रास्ता, दर्रा।

संकटा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध देवी।

संकना, संकनो—क्रि. अ. [सं. शंका] (१) डरना, भयभीत होना। (२) शंका या संदेह करना।

सँकर—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] जंजीर।
संज्ञा पुं. [हिं. संकर] संकर।
वि. [हिं. सँकरा] तंग, सँकरा।

संकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो चीजों का मिलना। (२) वह जिसकी उत्पत्ति भिन्न वर्णों या जातियों के स्त्री-पुरुष से हुई हो, दोगला। (२) साहित्य में दो या अधिक अलंकारों की साथ-साथ प्रयुक्त होने की स्थिति-विशेष।
वि. (१) दो या अधिक के योग से बना हुआ। (२) जो भिन्न वर्णों या जातियों के स्त्री-पुरुष से उत्पन्न हो, दोगला।
संज्ञा पुं. [सं. शंकर] शिव, महादेव। उ.—(क) सनक संकर ध्यान धारत—१-३०८। (ख) संकर पारबती उपदेसत—२-३।

संकर घरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. शंकर+गृहिणी] पार्वती।

संकरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मिश्रित होने का भाव या धर्म, मिलावट। (२) दोगलापन।

सँकरा—वि. [सं. संकीर्ण] कम चौड़ा, पतला।
संज्ञा पुं. कष्ट, दुख, विपत्ति।
संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] साँकल, जंजीर।

सँकराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सँकरा] विपत्ति, दुख। उ.—श्री रघुबीर मोसौं जन जाकै, ताहि कहा सँकराई—९-१४६।

सँकराना, सँकरानो—क्रि. स. [हिं. सँकरा] (१) सँकरा या संकुचित करना। (२) बंद करना।
क्रि. अ. (१) सँकरा होना (२) बंद होना, मुँदना।

संकरी—वि. [हिं. संकर] दोगला।
संज्ञा स्त्री. [सं. शंकरी] पार्वती।

संकर्पण, संकर्षन—संज्ञा पुं. [सं. संकर्षण] (१) खींचना। (२) हल जोतना। (३) श्रीकृष्ण के भाई बलराम जिनका आयुध हल था। उ.—(क) कालिनाग के फन पर निरतत संकर्षन को बीर—५७५। (ख) सूर प्रभु आकरषि ताते संकर्षण है नाम—३४८२। (४)

एक वैष्णव संप्रदाय जिसके प्रवर्तक निंबार्क थे।

संकल—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] जंजीर, साँकल।

संकलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एकत्र या संग्रह करना। (२) संग्रह। (३) जोड़, योग। (४) ग्रंथों या पत्र-पत्रिकाओं से प्रसंग या प्रबंध-विशेष चुनने की क्रिया। (५) वह ग्रंथ जो इस प्रकार चुनकर तैयार किया गया हो।

संकलप–संज्ञा पुं. [सं. संकल्प] (१) पक्का विचार, दृढ़ निश्चय। (२) दान, पुण्य आदि के पूर्व मंत्रोच्चारण से अपना विचार व्यक्त करना। (३) वह मंत्र जिससे ऐसा विचार व्यक्त किया जाय।

संकलपना, संकलपनो–क्रि. स. [सं. संकल्प] (१) पक्का विचार या दृढ़ निश्चय करना। (२) मंत्र-विशेष पढ़कर दान देना या धर्म-कार्य करने का निश्चय करना।

क्रि. अ. इरादा या विचार होना।

संज्ञा स्त्री. (१) संकल्प करने की क्रिया (२) इच्छा, कामना, अभिलाषा।

संकला—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] साँकल, जंजीर।

संकलित—वि. [सं.] (१) चुना हुआ, संगृहीत। (२) इकट्ठा या एकत्र किया हुआ। (३) जोड़ा हुआ, योजित।

संकल्प - संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्का विचार, दृढ़ निश्चय। उ.—(क) करि संकल्प अन्न-जल त्याग्यौ—१-३४१। (ख) गए कटि नीर लौं नित्य संकल्प करि करत स्नान इक भाव देख्यो—२५५४। (२) दान, पुण्य आदि के पूर्व मन्त्रोच्चारण द्वारा अपना विचार व्यक्त करना। उ.–जब नृप भुव संकल्प कियो है, लागे देह पसारन —सारा. ३३९। (३) वह मंत्र जिसके द्वारा ऐसा विचार व्यक्त किया जाय।

संकल्पना, संकल्पनो–क्रि. स. [सं. संकल्प] (१) पक्का विचार या दृढ़ निश्चय करना। (२) मंत्र पढ़कर दान, पुण्य आदि का निश्चय व्यक्त करना।

क्रि. अ. (१) इरादा या विचार होना। (२) दृढ़ निश्चय होना।

संज्ञा स्त्री. (१) संकल्प करने की क्रिया। (२) इच्छा, कामना, अभिलाषा।

संकल्पित—वि. [सं. संकल्प] संकल्प किया हुआ। उ.—नापौ देह हमारी द्विजवर सो संकल्पित कीन्हों—सारा. ३४१।

संका--संज्ञा स्त्री. [सं. शंका] (१) डर, भय, संकोच। उ. —(क) पहुँचे जाइ महर-मंदिर मैं, मनहिं न संका कीनी—१०-४। (ख) जब दधि-सुत हरि हाथ लियौ। खगपति-अरि डर, असुरनि संका, बासर-पति आनंद कियौ—१०-१४३। (ग) जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौ भरमावहु—१०-१७९। (घ) भजी निसंक आइ तुम मोकौं गुरुजन की संका नहिं मानी—पृ. ३४३ (२०)। (२) संदेह, आशंका।

संकाइ—क्रि. अ. [हिं संकाना] भयभीत होकर। उ.—तब संडामर्का संकाइ, कह्यौ असुर-पति सौं यौं जाइ—७-२।

संकाना, संकानो—क्रि. अ. [सं. शंक] (१) डरना, भयभीत होना। (२) शंकित होना।

क्रि. स. (१) डराना, भयभीत करना। (२)। आशंकित करना।

संकार—संज्ञा पुं. [सं. संकेत] इशारा, संकेत।

संकारना, संकारनो—क्रि. स. [हिं. संकेत] इशारा या संकेत करना।

संकाश—वि. [सं.] (१) मिलता-जुलता, समान, सदृश। (२) पास, निकट, समीप।

संकीर्ण—वि. [सं.] (१) तंग, सँकरा, संकुचित। (२) छोटा, क्षुद्र। (३) नीच, तुच्छ। (४) जो उदार न हो, अनुदार। (५) मिला हुआ, मिश्रित।

संज्ञा पुं. मिश्रित या संकर राग।

संकीर्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सँकरापन। (२) छोटापन। (१) नीचता। (४ अनुदारता।

संकीर्तन—संज्ञा पुं. [सं. संकीर्त्तन] (१) कीर्ति का भली भाँति वर्णन करना। (२) देवता आदि की उचित रीति से की गयी वंदना, भजन आदि।

संकु—संज्ञा [पुं. शंकु] (१) नुकीली वस्तु। (२) मेख। (३) भाला, बरछा। (४) एक बाजा।

संकुचन—संज्ञा पुं. [सं.] सिकुड़ना।

संकुचित—वि. [सं.] (१) लज्जा या संकोचयुक्त। (२) सिमटा, मुँदा या सिकुड़ा हुआ। उ.—(क) जनु रवि-गत संकुचित कमल-जुग निसि अलि उड़न न पावै—

१०-६५ । (ख) कुमुद्ध-बृंद संकुचित भए—१०-२०२ । (३) तंग, सँकरा, संकीर्ण । (४) अनुदार । (५) अच्छे विचार न ग्रहण करनेवाला ।

संकुल—वि. [सं.] (१) घना । (२) भरा हुआ, परिपूर्ण । (३) मिला हुआ, युक्त ।

संज्ञा पुं. (१) लड़ाई, युद्ध । (२) झुंड, समूह, भीड़ । (३) परस्पर विरोधी वाक्य ।

संकुलित—वि. [सं.] (१) घना । (२) भरा हुआ, परिपूर्ण । (३) एकत्र । (४) सिकुड़ा हुआ ।

सँकेत—संज्ञा पुं. [सं. संकष्ट] कष्ट, संकट ।

संकेत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इशारा, इंगित । (२) स्थान जहाँ प्रेमी-प्रेमिका मिलना निश्चित करें । (३) निशान, चिह्न । (४) पते की बात । (५) घटना आदि का सूचक संक्षिप्त उल्लेख ।

संकेतना, संकेतनो—क्रि. स. [सं. संकीर्ण] संकट या कष्ट में डालना ।

क्रि. स. [सं. संकेत] संकेत करना ।

संकेत विघट्टना—संज्ञा स्त्रीं. [सं.] वह नायिका जो संकेतस्थल के नष्ट होने से दुखी हो ।

सकेतित—वि. [सं.] जिसके संबंध म संकेत किया जाय ।

सँकेलना, सँकेलनो—क्रि. स. [हिं. सकेलना] (१) समेटना, एकत्र करना । (२) सहेजना, सँभालना ।

सँकोच, संकोच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खिचाव, तनाव । (२) कुछ-कुछ लज्जा । उ.—मेरो अलकलड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सँकोच—२७०७ । (३) डर, भय । उ.—जारौं लंक, छेदि दस मस्तक सुर-संकोच निवारौं—९-१३२ । (४) आगा-पीछा, हिचकिचाहट । (५) बहुत सी बात को थोड़े में कहना । (६) एक काव्यालंकार ।

संकोचन—संज्ञा पुं. [सं.] सिकुड़ने की क्रिया ।

संकोचना, संकोचनो—क्रि. स. [सं. संकोच] (१) संकुचित करना । (२) संकोच करना ।

संकोचित—वि. [सं.] (१) जिसमें संकोच हो । (२) जो खिला या विकसित न हो । (३) लज्जित ।

संज्ञा पुं. तलवार चलाने का एक ढंग ।

संकोची—वि. [सं.] (१) सिकुड़नेवाला । (२) लज्जा या संकोच करनवाला ।

सँकोचै, संकोचै—क्रि. अ. [हिं. संकोचना] संकोच न करे । उ.—सूरदास जी बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाउँ—९-१६५ ।

संकोपना, संकोपनो—क्रि. अ. [सं. संकोप] क्रुद्ध या अप्रसन्न होना ।

संक्यो, संक्यौ—क्रि. अ. [हिं. संकना] आशंकित या भयभीत हो गया । उ.—कंप्यौ गिरि अरु सेष संक्यौ, उदधि चल्यौ अकुलाइ—१०-१६६ ।

संक्रंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र । (२) क्रंदन ।

संक्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना, गमन । (२) घूमना-फिरना । (३) अतिक्रमण । (४) एक अवस्था से दूसरी में पहुँचना । (५) एक के हाथ से दूसरे हाथ या अन्य के अधिकार में पहुँचना ।

संक्रमित—वि. [सं.] जो अंतरित या हस्तांतरित हुआ हो ।

संक्रांत—वि. [सं.] (१) प्राप्त । (२) बीता हुआ ।

संक्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सूर्य का एक राशि से दूसरी में प्रवेश । (२) एक राशि से दूसरी में सूर्य के प्रवेश का समय । (३) वह दिन जब सूर्य एक राशि से दूसरी में प्रवेश करता है । हिन्दुओं में यह दिन एक पर्व माना जाता है ।

संक्रामक—वि. [सं.] जो (रोग) छूत या संसर्ग से फैले ।

संक्रामण—संज्ञा पुं. [सं.] अंतरित या हस्तांतरित करने की क्रिया या भाव ।

संक्रामित—वि. [सं.] जिसका संक्रामण हो ।

संक्रोन—संज्ञा स्त्री. [सं. संक्रांति] संक्रांति ।

संक्षिप्त—वि. [सं.] (१) जो संक्षेप में कहा या लिखा जाय । (२) थोड़ा, अल्प ।

संक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) थोड़े में कहना या लिखना । (२) विस्तार से कही या लिखी गयी बात का सार ।

संक्षेपण—संज्ञा पुं. [सं.] संक्षिप्त रूप या सार प्रस्तुत करने की क्रिया ।

संक्षेपन—अव्य. [सं. संक्षेपण] संक्षिप्त या सार रूप में । उ.—वर्णन कियो प्रथम संक्षेपन अबहूँ वर्ण न पाये—सारा. ५३१ ।

सक्षेपतः—अव्य. [सं.] थोड़े या संक्षेप में ।

संख—संज्ञा पुं. [सं. शंख] (१) बड़ा घोंघा, कंबु, कंबोज ।

उ.—संख कुलाहल सुनियन लागे—९-१२५। (२) एक लाख करोड़ की संख्या। उ.—केतिक संख जुगै जुग बीते मानव असुर अहार—९-३२। (३) शंखासुर जो देवताओं को जीतकर वेद चुरा ले गया था जिनके उद्धार के लिए भगवान को मत्स्यावतार धारण करना पड़ा था। उ.—चतुरमुख कह्यौ, संख असुर स्रुति लै गयौ—८-१६। (४) सागर-मंथन से निकले चौदह रत्नों में एक जो विष्णु को मिला था। उ.—संख कौस्तुभ मनि लई पुनि आपु हरि—८-८।

संखचूड़—संज्ञा पुं. [सं. शंखचूड़] कंस का अनुचर एक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—संखचूड़, मुष्टिक, प्रलंब अरु तृनावर्त संहारे—१-२७।

संखधर—संज्ञा पुं. [सं. शंखधर] शंख धारण करनेवाले विष्णु या उनके अवतार राम और कृष्ण। उ.—संख-चक्र-धर, गदा-पद्म-धर—५७२।

संखासुर—संज्ञा पुं. [सं. शंखासुर] एक दैत्य जो देवताओं को हराकर, वेदों को चुरा ले गया था जिनके उद्धार के लिए विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया था। उ.—(क) बहुरि संखासुरहिं मारि वेदाऽनि दिए—८-१६। (ख) चारि बेद लै गयौ सँखासुर, जल मैं रह्यौ लुकाई। मीन रूप धरिकै जब मार्‌यौ—१०-२२१।

संखिया—संज्ञा पुं. [सं. शृंगिका] एक प्रसिद्ध विष।

संख्यक—वि. [सं.] संख्यायुक्त।

संख्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक, दो, तीन आदि गिनती। (२) अदद, अंक।

सँग, संग—संज्ञा पुं. [सं. सङ्ग] (१) मिलना, मिलन। (२) साथ रहना, सहवास, संसर्ग। उ.—(क) बिपति परी तब सब सँग छाड़ै, कोउ न आवै नेरे—१-७९। (ख) साधु-संग मोकौं प्रभु दीजै—७-२।

मुहा०—संग लगना—साथ रहना। संग लगे फिरना—साथ-साथ रहना, पीछे पीछे फिरना, पीछे लगे रहना। सदा रहति सँग लागी – सदा साथ रहती है। उ.—घर की नारि बहुत हित जासौं रहति सदा सँग लागी—१-७९। संग लगाना—साथ-साथ रखना।

(३) सांसारिक विषयों के प्रति अनुराग या आसक्ति। (४) नदियों का संगम।

क्रि. वि. साथ, सहित।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] पत्थर, पाषाण।

संगठन—संज्ञा पुं. [सं. संघटन] (१) मेल, मिलाप, संयोग। (२) रचना, बनावट। (३) बिखरी हुई शक्तियों, लोगों आदि को एकत्रित करने या मिलाने की व्यवस्था। (४) वह संस्था जो ऐसी व्यवस्था करे।

संगठित—वि. [हिं. संगठन] जिसका संघटन हुआ हो।

संगत—वि. [सं.] (१) जो किसी वर्ग या जाति का होने के कारण उनके साथ रक्खा जा सके। (२) पूर्वापर प्रसंग की दृष्टि से ठीक बैठने या मेल खानेवाला (विचार या कार्य), प्रसंगानुकूल।

संज्ञा स्त्री. (१) संग रहना, साथ, संगति। (२) संबंध, संसर्ग। (३) उदासी साधुओं का मठ। (४) संगीत में वाद्य बजाकर किया जानेवाला किसी कलाकार का साथ।

संगतरा—संज्ञा पुं. [फ़ा. संगतरः] संतरा (फल)।

संगतराश—वि. [फ़ा.] पत्थर काटने-गढ़नेवाला।

संगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) संगत होने की क्रिया या भाव। (२) मिलने की क्रिया, मेल, मिलाप। (३) संग, साथ। उ.—(क) ज्यौं जन-संगति होति नाव मैं, रहति न परसैं पार—१-८४। (ख) सूरदास साधुनि की संगति बड़े भाग्य जो पाऊँ—१-३४०। (ग) साधु-संग प्रभु, मोकौं दीजै, तिहिं संगति निज भक्ति करीजै—७-२। (४) संबंध, संसर्ग। (५) पूर्वापर प्रसंग की दृष्टि से ठीक बैठना या मेल खाना, प्रसंगानुकूलता। (६) सभा, समाज।

संगतिया—संज्ञा पुं. [हिं. संगत] (१) साथी, संगी। (२) गवैये के साथ बजानेवाला।

संगती—संज्ञा पुं. [हिं. संगत] (१) संगी, साथी। (२) गवैये के साथ बजानेवाला।

संगदिल—वि. [फ़ा.] निर्दयी, निष्ठुर।

संगदिली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] निर्दयता, कठोरता।

संगम—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल, मिलाप, संयोग। (२) दो नदियों के मिलने का स्थान। (३) साथ, संग। (४) संभोग, समागम। उ.—धनि त्रिय तुमको जो सुखदानी संगम जागत रैनि बिहानी—१९६७। (ख)

सघन निकुंज सुरति-संगम मिलि मोहन कंठ लगायो—सारा. ७१८। (५) दो या अधिक ग्रह, नक्षत्र या अन्य वस्तुओं के मिलने का भाव या स्थान। उ.—बुध-रोहिनी-अष्टमी संगम बसुदेव निकट बुलायौ—१०-४।

संगमरमर, संगमर्मर—संज्ञा पुं. [फ़ा. सर्ग+अ. मर्मर] एक चिकना सफेद पत्थर।

संगमूसा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक चिकना काला पत्थर।

संगर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध, संग्राम। (२) विपत्ति। (३) नियम। (४) जहर, विष।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) सेना की रक्षा के लिए बनायी गयी खाई, धुस या दीवार। (२) मोरचा।

संगराम—संज्ञा पुं. [सं. संग्राम] युद्ध।

संगा—क्रि. वि. [हिं. संग] साथ, सहित। उ.—(क) सूरदास मानो चली सुरसरी श्रीगोपाल सागर सुख संगा—१९०५। (ख) तात मात निज नारि लै हरि जी सब संगा—१० उ.-१०५।

सँगाती—संज्ञा पुं. [हिं. संग] संगी, साथी, मित्र। उ.—सूरदास प्रभु ग्वाल-सँगाती जानी जाति जनावति—१९७६।

संगिनि, संगिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. संगी] (१) साथ रहने-वाली, सखी, सहेली। (१) पत्नी, भार्या।

संगी—संज्ञा पुं. [हिं. संग] (१) साथ रहनेवाला, साथी। उ.—(क) नाथ अनाथनि ही के संगी—१-२१। (ख) संगी गए संग सब तजकै—१६४७। (२) मित्र, सखा, बंधु। उ.—आए माई स्याम के संगी—२९९७।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का रेशमी कपड़ा।

वि. [फ़ा. संग=पत्थर] पत्थर का।

संगीत—संज्ञा पुं. [सं.] वह कार्य जिसमें नाचना, गाना और बजाना, तीनों हों; ताल, स्वर, लय आदि के नियमानुसार पद्य का उच्चारण, गाना। उ.—उघट्यौ सफल संगीत रीति-भव अंगनि अंग बनायौ—१-२०५।

संगीतज्ञ—वि. [सं.] (१) संगीत का ज्ञाता। (५) गवैया।

संगीन—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वह बरछी जो बंदूक के सिरे पर लगी रहती है।

वि. (१) जो पत्थर का बना हो। (२) मोटा या भारी। (३) टिकाऊ, मजबूत। (४) विकट, भीषण।

संगृहीत—वि. [सं.] संग्रह या एकत्र किया हुआ, संकलित।

संगृहीता—वि. [सं. संगृहीतृ] संग्रह करनेवाला।

संग्या—संज्ञा स्त्री. [सं. संज्ञा] (१) चेतनाशक्ति। (२) वह विकारी शब्द जो व्यक्ति, वस्तु या भाव का बोधक हो।

संग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एकत्र करना, संचय। उ.—कहा काँच संग्रह के कीने, हरि जो अमोल मनी—८९४। (२) वह ग्रंथ जिसमें विषय या रीति-विशेष की रचनाएँ संगृहीत हों। (३) स्थान जहाँ विशेष प्रकार की वस्तुएँ एकत्र की जायँ। (४) ग्रहण करने की क्रिया।

संग्रहणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध रोग।

संग्रहणीय—वि. [सं. संग्राह्य] संग्रह-योग्य।

संग्रहना, संग्रहनो—क्रि. स. [सं. संग्रहण] संग्रह करना।

संग्रहालय—संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जहाँ विशेष प्रकार की वस्तुओं का संग्रह हो।

संग्रही—वि. [सं. संग्रहिन्] संग्रह करनेवाला।

संग्राम—संज्ञा पुं. [सं.] लड़ाई, युद्ध। उ.—करत फिरत संग्राम सुगम अति कुसुम माल करवार—२९०५।

संग्राहक—वि. [सं.] संग्रह करनेवाला।

संग्राह्य—वि. [सं.] संग्रह करने योग्य।

संघ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, समुदाय। (२) सभा, समिति, समाज। (३) वह संघटन जिसे नियमानुसार एक व्यक्ति के रूप में शासन का अधिकार हो। (४) प्रतिनिधियों द्वारा प्रजातंत्रीय शासन। (५) ऐसे राज्यों का समूह जो कुछ बातों में स्वतंत्र हों और कुछ में केंद्रिय शासन के अधीन हों। (६) बौद्धों की संघटित संस्था।

संघचारी—वि. [सं. संघचारिन्] झुंड बनाकर रहने-विच-रनेवाले (पशु)।

संघट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राशि, ढेर। (२) लड़ाई, युद्ध। (३) मुठभेड़। (४) मिलन, संयोग।

संघटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेल, मिलाप, मिलन, संयोग। (२) रचना, बनावट। (३) बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करना। (४) वह संस्था जो बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने के लिए बने।

संघटित—वि. [सं.] जिसका संघटन हुआ हो।

संघट्ट, संघट्टन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलन, मिलाप, संयोग। (२) रचना, बनावट।

संघर—संज्ञा पुं. [सं. संगर] (१) युद्ध। (२) विपत्ति।

संघरना, सँघरनो—क्रि. स. [सं. संहार] संहार करना।

सँघराना, सँघरानो—क्रि. स. [देश.] (उदासीन) गाय-भैसों को दूध दुहने के लिए परचाना या फुसलाना।

संघर्ष, संघर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रगड़, घिस्सा। (२) होड़, स्पर्धा। (३) रगड़ना, घिसना। (४) दो दलों का विरोध जिसमें एक, दूसरे को दबाने का प्रयत्न करे। (५) वह प्रयत्न या प्रयास जो विषम परिस्थिति से अपने को निकालकर आगे बढ़ने के लिए किया जाय।

संघर्षी—वि. [सं.] संघर्ष करनेवाला।

संघ-स्थविर—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्ध संघाराम का प्रधान।

संघाता—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जमाव, झुंड, समूह। (२) विशेष कार्य से बना संघ या समूह। (३) निवास स्थान। (४) संग, साथ। (५) चोट, आघात। (६) मार डालना, वध। (७) इक्कीस नरकों में एक। (८) शरीर।

वि. (१) घना, सघन। (२) नष्ट। उ.—तुमरे कुल कौं बेर न लागै होत भस्म संघात—९-७७।

संघातक—वि. [सं.] (१) प्राण लेनेवाला। (२) नष्ट या नाश करनेवाला।

सँघाती, संघाती—संज्ञा पुं. [सं. संघ] (१) साथ रहनेवाला, साथी, सहचर। उ.—(क) सदा सँघाती आपनो (रे) जिय कौ जीवन-प्रान—१-३२५। (ख) सदा सँघाती श्री जदुराइ—७-२। (ग) बिछुरे री मेरे बाल-सँघाती—२८८२। (२) मित्र। उ.—जानति हौं तुम मानति नाहीं तुमहूँ श्याम-संघाती—२९८१।

वि. [सं. संघात] प्राणनाशक।

संघार—संज्ञा पुं. [सं. संहार] (१) वध। (२) नाश।

संघारना, संघारनो—क्रि. स. [हिं. संहारना] (१) मार डालना, वध करना। (२) नाश करना।

संघाराम—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्ध श्रमणों का मठ, बिहार।

संघारि—क्रि. स. [हिं. संघारना] मार कर।

प्र.—संघारि डारौं—मार डालूँ। उ.—सूर प्रभु सहित संघारि डारौं—५९०।

सँघेरना, सँघेरनो—क्रि. स. [हिं. संग+करना] पशु के दो पैर बाँधना जिससे वह दूर या तेज न जा सके।

संघेला—संज्ञा पुं. [सं. संग] (१) सहचर। (२) मित्र।

संघोष—संज्ञा पुं. [सं.] जोर का शब्द, घोष।

संच—संज्ञा पुं. [सं. संचय] (१) संग्रह, संचय। (२) रक्षा, देख-भाल।

संचक—वि. [सं. संचय] इकट्ठा करनेवाला।

संचति—क्रि. स. [हिं. संचना] इकट्ठा या संग्रह करती है। उ.—ज्यौं मधुमाखी सँचति निरंतर, वन की ओट लई—१-५०।

संचना, संचनो क्रि. स. [सं. संचयन] (१) इकट्ठा या संग्रह करना। (२) रक्षा या देखभाल करना।

संचय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ढेर, राशि, समूह। (२) एकत्र या संग्रह करने की क्रिया।

संचयन—संज्ञा पुं. [सं.] संग्रह करने की क्रिया।

संचयी—वि. [सं. संचयिन्] (१) इकट्ठा या संग्रह करनेवाला। (२) कंजूस, कृपण।

संचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना। (२) मार्ग।

संचरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना, गमन। (२) फैलना, प्रसरण। (३) काँपना।

संचरना, संचरनो—क्रि. अ. [सं. संचरण] (१) घूमना-फिरना, चलना। (२) फैलना, प्रसरित होना। (३) प्रचलित या व्यवहृत होना।

क्रि. स. [सं. संचारण] (१) चलाना, घुमाना। (२) फैलाना। (३) प्रचलित करना।

क्रि. स. [सं. संचय] इकट्ठा या एकत्र करना।

संचरित—वि. [सं.] जिसमें या जिसका संचार हुआ हो।

संचरै—क्रि. स. [हिं. संचरना] इकट्ठा, एकत्र या संग्रह करती है, उपस्थित या प्रस्तुत करती है। उ.—रसना द्विज दलि दुखित होत बहु, तउ रिसि कहा करै। छमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै—१-११७।

संचान—संज्ञा पुं. [सं.] बाज, शिकरा, श्येन (पक्षी)।

सँचार, संचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना, गमन। (२) फैलने विशेषतः भीतर फैलने, या विस्तृत होने कीक्रिया, प्रवेश। उ.—(क) अर्जुन तब सरपिंजर कियौ, पवन सँचार रहन नहिं दियो—ना. ४३०९। (ख) ता दिनतैं

उर-भीन भयो सखि सिव-रिपु को संचार—२८८८। (३) चलाने की क्रिया। (४) ग्रह का एक राशि से दूसरी में जाना।

संचारक—वि. [सं.] (१) चलानेवाला। (२) फैलानेवाला। (३) प्रचार करनेवाला।

संचारना, संचारनो—क्रि. स. [सं. संचारण] (१) फैलाना। (२) प्रचार करना। (३) (अस्त्र-शस्त्र) चलाना। (४) जन्म देना, उत्पन्न करना।

संचारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुटनी, दूती।

वि. (१) चलानेवाली। (२) फैलानेवाली। (३) प्रचार करनेवाली।

संचारित—वि. [सं.] जिसका संचार किया गया हो।

संचारी—संज्ञा. पुं. [सं. संचारिन्] (१) वायु, हवा। (२) संगीत में पहला या स्थाई पद या उसका कुछ अंश पुनः भिन्न रीति से कहने की क्रिया या भाव। (३) काव्य के ३३ संचारी भाव।

वि. संचरण करनेवाला, गतिशील।

क्रि. स. [हिं. संचारना] फैलायी, संचारित की। उ.—बन बरही चातक रटै द्रुम द्युति सघन संचारी —२२९६।

संचारी भाव—संज्ञा पुं. [सं.] सहित्य में वे भाव जो रस के उपयोगी होकर, मुख्य भाव की पुष्टि करते और स्थायी भाव की तरह स्थिर न रहकर, अत्यन्त चंचलता पूर्वक सब रसों में संचरित होते रहते हैं। इनको 'व्यभिचारी भाव' भी कहते हैं। इनकी संख्या ३३ है —अपस्मार (मूर्च्छा), अमर्ष (क्रोध या असहनशीलता), अलसता या आलस्य, अवहित्था (मनोभाव का दुराव-छिपाव), असूया या अनसूया (ईर्ष्या), आवेग, उग्रता, उन्माद, औत्सुक्य या उत्सुकता, गर्व, ग्लानि, चपलता, चिंता, जड़ता, दीनता या दन्य, धृति, निद्रा, निर्वेद (निराशा-जन्य खिन्नता या विरक्ति), मति, मद, मरण, मोह, लज्जा या ब्रीड़ा, वितर्क, विबोध(जागना, जागरण). विषाद, व्याधि, शंका, श्रम, संत्रास (अहित-आशंका-जनित चिंता या भय), स्मृति, स्वप्न और हर्ष।

संचारयो, संचारयौ—क्रि. स. [हिं. संचारना] एकत्र किया। उ.—ईंधन दौरि दौरि संचारयो—१० उ.-५२।

संचालक—वि. [सं.] (१) चलाने या गति देनेवाला, परिचालक। (२) अपने निरीक्षण-निर्देशन में कार्य-विशेष चलाने या करानेवाला।

संचालन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलाने की क्रिया, परि-चालन। (२) वह प्रबंध या व्यवस्था जिससे कार्य होता रहे। (३) देख-रेख, नियंत्रण, निर्देशन।

संचालित—वि. [सं.] जिसका संचालन किया गया हो या किया जा रहा हो।

संचि—क्रि. स. [हिं. संचना] एकत्र या संग्रह करके। उ.-याहू सौंज संचि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी—१-१३०।

संचित—वि. [सं.] (१) एकत्र या संग्रह किया हुआ। (२) ढेर लगाया हुआ।

सँचिबो, सँचिबौ—संज्ञा पुं. [हिं. संचना] एकत्र या संग्रह करने का भाव। उ.—सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-नाम-धन सँचिबौ।

संचु—संज्ञा पुं. [हिं. सच्] (१) सुख। (२) हर्ष।

सँचै—क्रि. स. [हिं. संचना] एकत्र या संचय करे। उ.—सुमति सुरूप सँचै स्रद्धा-विधि—२-१२।

सँच्यो, सँच्यौ—क्रि. स. [हिं. संचना] उ.—एकत्र या संचय किया। उ.—(क) देखत आनि सँच्यौ उर अंतर दै पलकनि की तारौ री—१०-१३५। (ख) सुख संच्यो स्रवन दुआर—३२४३।

संजम—संज्ञा पुं. [सं. संयम] इंद्रिय-निग्रह। उ.—(क) गनिका किए कौन ब्रत संजम सुक-हित नाम पढ़ावै—१-१२२। (ख) नौमी नेम भली बिधि करै। दसमी कौं संजम विस्तरै—९-५।

संजमी—वि. [सं. संयमी] (१) संयम से रहनेवाला। (२) इंद्रियनिग्रही।

संजय—संज्ञा पुं. [सं.] धृतराष्ट्र का एक मन्त्री जिसने दिव्य-दृष्टि-संपन्न होने के कारण हस्तिनापुर में बैठे-बैठे उनको कुरुक्षेत्र के महाभारत-युद्ध का यथार्थ विवरण सुनाया था।

संजात—वि. [सं.] (१) उत्पन्न (२) प्राप्त।

संजाफ—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. संजाफ़] झालर, गोट।

संज्ञा पुं. घोड़ा जो आधा लाल और आधा हरा या सफेद हो।

संजाफी—वि. [फ़ा. संजाफ़ी] गोट या झालरदार।
संजाब—संज्ञा पुं. [फ़ा. संजाफ़] संजाफ घोड़ा।
संजीदगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. संजीदगी] गंभीरता।
संजीदा—वि. [फ़ा. संजीदा] (१) गंभीर। (२) बुद्धिमान।
संजीवनि, संजीवनी—वि. स्त्री. [सं. संजीवनी] जीवन, प्राण या शक्ति-दायिनी।
संज्ञा स्त्री. एक कल्पित औषधि जिसके सेवन से मृतक भी जी उठता माना गया है। उ.—(क) दौना-गिरि पर आहि सँजीवन बैद सुषेन बताई—९-१४९। (ख) श्री रघुनाथ सँजीवनि कारन मोकौं इहाँ पठायौ —९-१५५।
संजुक्त—वि. [सं. संयुक्त] (१) जुड़ा हुआ। (२) मिला हुआ। (३) संबद्ध। (४) साथ, सहित।
संजुग—संज्ञा पुं. [सं. संयुत] युद्ध, संग्राम।
संजुत—वि. [सं. संयुक्त] साथ, सहित। उ.—(क) ललित कन-संजुत कपोलनि लसत कज्जल अंक—२५३। (ख) कटि किंकिनि चंद्रमनि-संजुत—६२५।
सँजोइ—क्रि. स. [हिं. सँजोना] सजाकर, संजोकर। उ.—चौक चंदन लीपि कै धरि आरती सँजोइ—१२-२६।
क्रि. वि. [सं. संयोग] संग या साथ में।
सँजोइल—वि. [हिं. सँजोना] (१) सजा-सजाया, सुसज्जित। (२) एकत्र या संग्रह करनेवाला।
सँजोऊ—वि. [हिं. सँजोना] (१) सजाने या सुसज्जित करनेवाला। (२) एकत्र या संग्रह करनेवाला।
संज्ञा पुं. (१) तैयारी। (२) सामान,सामग्री।
संजोग—संज्ञा पुं. [सं. संयोग] (१)संयोग। उ.—(क) रवि-ससि राहु संजोग बिना ज्यों लीजतु है मन मानि—२-३८। (ख) तड़ित-घन संजोग मानौ—६२७। (२) संबंध, लगाव, चेतना। उ.—उहाँ जाइ कुरुपति बल-जोग, दियो छाँड़ि तन कौं संजोग—१-२८४। (३) इत्तिफाक, अकस्मात घटित होना। उ'—नीकैं पहुँचे आइ तुम, भलौ बन्यौ संजोग—४३७।
यौ०—बिधि-संयोग—विधाता की देन या व्यवस्था (से)। उ.—(क) बिधि-संयोग टारत नाहिं टरैं—९-७७। (ख) तीनि पुत्र भए बिधि-संजोग—९-१७४।
संजोगिनि, संजोगिनी—वि.[सं. संयोगिनी] जो(स्त्री) पति या प्रेमी के साथ हो।
संजोगी—वि. [सं. संयोगिन्] (१) मिले हुए, संयुक्त। (२) जो प्रिया या प्रेमिका के साथ हो।
सँजोना, सँजोनो—क्रि. स. [सं. सज्जा] सजाना, सज्जित या अलंकृत करना।
क्रि. स. [सं. संचय] इकट्ठा करना।
सँजोवन—संज्ञा पुं. [हिं सँजोना] सजाने की क्रिया।
सँजोवना—क्रि. स. [सं. सज्जा. हिं. सँजौना] सज्जित या, अलंकृत करना।
क्रि. स. [सं. संचय, हिं. संजोना] इकट्ठा, एकत्र या संग्रह करना।
सँजोवल, सँजोवस—वि. [हिं. सँजोना] (१) सुसज्जित, अलंकृत। (२) सेना-सहित। (३) सजग, सावधान।
सँजोवा—संज्ञा पुं. [हिं. सँजोना] (१) सजावट, शृंगार। (२) जमाव, जमघट।
संज्ञक—वि. [सं.] नाम या संज्ञा वाला।
संज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चेतनाशक्ति। (२) बुद्धि। (३) ज्ञान। (४) नाम। (५) वह विकारी शब्द जो किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव का बोधक हो। (६) संकेत। (७) सात तत्वों में एक। उ.—पृथिवी अप तेज वायु नभ संज्ञा शब्द परस अरु गंध—सारा. ८। (८) सूर्य की पत्नी जो विश्वकर्मा की पुत्री और यम-यमुना की माता थी।
संज्ञाहीन—वि. [सं.] बेहोश, अचेत।
सँझला—वि. [प्रा० संझा] संध्या-संबंधी।
सँझबत्ती—संज्ञा स्त्री. [प्रा. संझा+हिं. बत्ती] (१) संझा को जलने या जलाया जानेवाला दीपक। (२) संझा को गाया जाने वाला गीत।
संझा—संज्ञा स्त्री. [सं. संध्या, प्रा. संझा] शाम, संध्या।
संझावलि—संज्ञा स्त्री. [हिं. संझा] राधा की सखी एक गोपी का नाम। उ.—कज्जल लै आई संझावलि—२३१२।
सँझिया, सँझैया—संज्ञा पुं. [हिं. संझा] शाम का भोजन।
सँझोखा—संज्ञा पुं. [हिं. संझा] शाम का समय।
सँटिया, संटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] पतला बेंत या डंडी। उ.—(क) माता सँटिया ढ्रैक लगाए—३९१। (ख)

सैटिया लै मारन जब लागी—८६१ ।

संठ—संज्ञा स्त्री. [सं. शांत] शांति, निस्तब्धता ।
वि. [सं. शठ] (१) धूर्त । (२) नीच । उ.—सुनि अरे संठ दसकंठ—९-१२९ ।

ंड—वि. [हि. संडा] मोटा-ताजा ।

संडमुसंड—वि. [हिं. संडा + मुसंडा (अनु.)] मोटा-ताजा, हट्टा-कट्टा (व्यंग्य) ।

संडसा—संज्ञा पुं. [सं. संदंश] लोहे का एक औजार।

संडसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सँडसा] छोटा सँडसा ।

संडा—वि. [सं. शंड] मोटा-ताजा ।

संडामर्क, संडामर्का—संज्ञा पुं. [सं शंडामर्क] प्रहलाद के शिक्षा-गुरु। उ.—पाँच बरस की भई जब आइ, संडामर्कहि लियौ बुलाइ ।……… । संडामर्क रहे पचि हारि, राजनीति कहि बारंबार । ………तब संडामर्का संकाइ, कह्यौ असुर-पति सौं यों जाइ—७-२ ।

संडा-मुसंडा—वि.[हिं.संडा + मुसंडा (अनु.)] मोटा-ताजा, हट्टा-कट्टा (व्यंग्य) ।

संडास—संज्ञा पुं. [देश.] कुएँ-जैसा बना गहरा पाखाना, शौचकूप ।

संत—वि. [सं. सत्] (१) संन्यासी, महात्मा, त्यागी । उ.—(क) उद्धव संत सराह्यो—सारा. ५५८ । (ख) सूर स्याम कारन यह पठवत ह्वै आवैंगे संत—२९२१ । (२) हरि-भक्त ।
संज्ञा पुं. (१) संन्यासी, महात्मा । उ.—सादर संत देखि मन मानौ प्रेखें प्राण हरै—२८०८ । (२) हरि-भक्त । उ.—भक्त सात्विकी सेवैं संत, लखै तिन्हैं मूरति भगवंत—३-१३ ।

संतत—अव्य. [सं.] (१) सदा, सर्वदा । उ.—(क) संतत निकट रहत हौ । (ख) संतत सुभ चाहत—१-७७ । (२) लगातार, निरंतर ।

संतति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाल-बच्चे, संतान ।

संतपन—संज्ञा. पुं. [सं.] साधुता, महात्मापन ।

संतप्त—वि. [सं.] (१) खूब जला या तपा हुआ । (२) बहुत दुखी या पीड़ित ।

संतरण—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छी तरह तैरने या तैरकर पार होने की क्रिया ।
वि. तारने या पार उतारनेवाला ।

संतरा—संज्ञा पुं. [पुर्त. संगतरा या फ़ा. संगतरः] एक प्रसिद्ध फल जो मीठा होता है ।

संतान—संज्ञा पुं., स्त्री. [सं.] (१) बाल-बच्चे, संतति । उ.—सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति घन समान उनई—१-५० । (२) कुल, वंश ।

संताप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आँच, जलन, ताप । (२) मानसिक कष्ट या दुख । उ.—(क) आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप कीकाटि तनी—१-२९ । (ख)प्रगट पाप संताप सूर अब कापर हठै गहौं३-२ । (ग) बिछुरनकौ संताप हमारौ तुम दरसन दै काट्यौ—९-८७ । (३) शत्रु ।

संतापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जलाना। (२) दुख या कष्ट देना । (३) कामदेव का एक बाण जो विरही को संतप्त करता है ।
वि. (१) जलानेवाला । (२) दुखदायी ।

संतापना, संतापनौ—क्रि. स. [सं. संताप] (१) जलाना, दग्ध करना । (२) दुख या कष्ट देना ।

संतापित—वि. [सं.] (१) जला हुआ, दग्ध । (२) दुखी ।

संतापी—वि. [सं. संतापिन्] (१) जलाने या दग्ध करनेवाला । (२) दुख या कष्ट देनेवाला । उ.—घातक, कुटिल, चबाई, कपटी महा कुटिल संतापी—१-१४० ।

संतापै—क्रि. स. [हिं. संतापना] दुख या कष्ट पहुँचाता है। उ.—(क) अरु पुनि लोभ सदा संतापै । (ख) हरि-माया सब जग संतापै—३-१३ । (ग) सुख-दुख तनिकौ तिहिं न संतापै—३-१३ ।

संति, संती—अव्य. [सं. संति ?] बदले या स्थान में ।

संतुलन—संज्ञा पुं.[सं.] (१) तौल या भार बराबर होना या करना । (२) दो पक्षों का बल बराबर होना या करना ।

संतुष्ट—वि. [सं.] (१) जिसे संतोष हो गया हो । (२) जो सहमत हो गया हो ।

संतोख, संतोष—संज्ञा पुं. [सं. संतोष] (१) हर स्थिति में प्रसन्न रहना और अधिक की कामना न करना । उ.—सील-संतोष सखा, दोउ मेरे तिन्हैं बिगोवति भारी—१-१७३ । (२) जी भर जाना, तृप्ति । उ.—(क) बहुतै काल भोग मैं किए, पै संतोष न आयो हिए—९-२ ।

(ख) बहुत काल या भाँति बितायौ, पै रिषि-मन संतोष न आयौ—९-८ । (३) हर्ष, सुख, आनंद ।

संतोषना, संतोषनौ—क्रि. स. [सं. संतोष] (१) तृप्त करना । (२) प्रसन्न या सुखी करना ।

क्रि. अ. (१) तृप्त होना । (२) प्रसन्न होना ।

संतोषि—क्रि. स. [हिं. संतोषना] संतोष देकर, संतुष्ट करके । उ.—तिन्हें संतोषि कह्यौ, देहु माँगै हमैं, बिष्नु की भक्ति सब चित्त धारौ—४-११ ।

संतोषित—वि. [हिं. संतोष] संतुष्ट ।

संतोषी—वि. [सं. संतोषिन्] जो सदा संतोष रखता हो ।

संतोख्यो, संतोख्यौ—क्रि. स. [हिं. संतोषना] संतोष दिया । उ.—धनुभँजन जज्ञ हेत बोले इनहिं और डर नहीं सबन कहि संतोख्यौ—२५०३ ।

संत्रास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भय । (२) अहित की आशंका से उत्पन्न चिंता या भय जिसको 'त्रास' भी कहते हैं और जो एक संचारी भाव है ।

संथा—संज्ञा पुं. [सं. संहिता ?] एक बार में पढ़ा या पढ़ाया हुआ पाठ या अंश ।

संदंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सँडसी । (२) चिमटी ।

संद—संज्ञा पुं. [सं. संधि] छेद, बिल, दरार ।

संज्ञा पुं. [सं. चंद्र] चंद्र, चंद्रमा ।

संज्ञा पुं. [देश.] दबाव ।

संदहिं—संज्ञा पुं सवि. [देश. संद] दबाव से । उ.—मनौ सुरग्रह ते सुर-रिपु कन्या सौतै आवति ढुरि संदहि ।

संदर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रचना, बनावट । (२) प्रबंध, निबंध । (३) वह आकर ग्रंथ जिसमें अनेक प्रकार की विशिष्ट बातें लिखी हों । (४) संबंधित प्रसंग या वर्णित विषय ।

संदर्शन—संज्ञा पुं. [सं.] भली-भाँति देखना ।

संदल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] चंदन, श्रीखंड ।

संदली—वि. [फ़ा. संदल] (१) चंदन का (बना हुआ), चंदन से संबंधित । (२) चंदन जैसे हल्के पीले रंग का ।

संज्ञा पुं. (१) एक तरह का हल्का पीला रंग । (२) एक तरह का हाथी । (३) एक तरह का घोड़ा ।

संदि—संज्ञा स्त्री. [सं. संधि] मेल, संधि ।

संदिग्ध—वि. [सं.] (१) जिसमें संदेह या संशय हो । (२) जिस पर शक या संदेह हो ।

संज्ञा पुं. एक प्रकार का व्यंग्य ।

संदिग्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] संदिग्ध होने का भाव ।

संदिग्धत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संदिग्ध होने का भाव । (२) एक काव्य-दोष जो अर्थ के अस्पष्ट होने या तत्संबंधी संदेह बने रहने पर माना जाता है ।

संदिष्ट—वि. [सं.] कहा हुआ, कथित ।

संदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पलँग, शैया ।

संदीपक—वि. [सं.] उद्दीपनकारी, उद्दीपक ।

संदीपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उद्दीप्त करने की क्रिया, उद्दीपन । (२) श्रीकृष्ण के गुरु जिनको श्रीकृष्ण ने गुरु-दक्षिणा में मृतक पुत्र ला दिये थे । उ.—संदीपन सुत तुम प्रभु दीने विद्या-पाठ कर्‌यो—१-१३३ । (३) कामदेव के पाँच बाणों में एक ।

वि. उद्दीपन करनेवाला ।

संदूक—संज्ञा पुं. [अ. संदूक़] लकड़ी, टीन या लोहे का बना पिटारा, पेटी, बकस । उ.—(क) संदूकनि भरि धरे ते न खोलै री—१५४९ । (ख) कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर में पलक संदूक पर अटके—पृ. ३२९(८८) ।

संदूकची, संदूकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. संदूक + ची, ड़ी] लकड़ी, टीन या लोहे की छोटी पेटी ।

संदूर—संज्ञा पुं. [हिं. सिंदूर] सिंदूर ।

संदेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समाचार, संवाद । (२) उद्देश्य-विशेष से कही या कहलायी गयी बात । (३) एक प्रकार की बँगला मिठाई ।

संदेशहर—संज्ञा पुं. [सं. संदेश + हर] संदेश पहुँचाने-वाला, दूत, बसीठ ।

संदेस, संदेसा—संज्ञा पुं. [सं. संदेश] किसी के द्वारा कहा या कहलाया गया समाचार या संदेश । उ.—(क) तब दारुक संदेस सुनायौ—१-१८४ (ख) हाय मुद्रिका प्रभु दई संदेस सुनायौ—९-७२ ।

संदेशी, संदेसी—संज्ञा वि. [सं. संदेशिन्] संदेश पहुँचाने-वाला, दूत, बसीठ ।

सँदेसो, संदेसो, संदेसौ—संज्ञा पुं. [सं. संदेश] किसी के द्वारा कहलाया गया समाचार । उ.—(क) कहियौ नन्द संदेसौ इतनौ जब हम वै इक थान—९-८३ । (ख)

कहौं सँदेसौ पति कौ—९-८४ । (ग) सँदेसौ देवकी सौं कहियौ—ना. ३७९३ ।

संदेह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शक, संशय, शंका । उ.—(क) रघुपति, मन संदेह न कीजै—९-१४८ । (ख) सूरदास प्रभु अतर्यामी भक्त संदेह हरचौ—२५५२ । (२) एक अर्थालंकार ।

संदेहात्मक—वि. [सं.] (१) जिसके प्रति संदेह हो । (२) जिसके कारण संदेह हो ।

संदेहास्पद—वि. [सं. संदेह+आस्पद] (१) जिसमें संदेह हो । (२) जिसके कारण संदेह हो ।

संदेहैं—संज्ञा पुं. सवि [सं. संदेह] संशय को उ.—तेरे सब संदेहैं देहौं—३.१३ ।

संदोल—संज्ञा पुं. [सं.] 'कर्णफूल' नाम का गहना ।

संदोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूध दुहना । (२) वस्तु का पूर्ण रूप । (३) झुंड, समूह । (४) ढेर, राशि ।

संध—संज्ञा स्त्री. [सं. संधि] जोड़, संधि । उ.—जरासंध की संधि जोरचो हुतौ, भीम ता संध को चीर डारचो—१० उ०-५१ ।

संधना, संधनो—क्रि. अ. [सं. संधि] जुड़ना ।

संधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धनुष पर वाण चढ़ाकर निशाना लगाने की क्रिया, लक्ष-वेध । उ.—(क) सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी कर छूट्यौ संधान—१-९७ । (ख) दिति दुर्बल अति अदिति हृष्टचित, देखि सूर संधान—९-२० । (ग) तबै सूर संधान सफल हौ रिपु कौ सीस उतारौं—९-१३७ । (घ) भाल-तिलक भ्रुव चाप आप लै सोइ संधान संधानत—पृ. ३३६ (६१) । (२) खोजने-ढूँढ़ने का व्यापार । (३) मिलाना, योजन । (४) जमा-खर्च करना । (५) मेल या जोड़-तोड़ बैठाना । (६) संधि । (७) काँजी । (८) अचार । (९) मदिरा ।

संधानत—क्रि. स. [हिं. संधानना] निशाना लगाता या लक्ष्य साधता है । उ.—भाल तिलक भ्रुव चाप आप लै सोइ संधान संधानत—पृ. ३३६ (६१) ।

संधानति—क्रि. स. [हिं संधानना] निशाना लगाती या लक्ष्य साधती है । उ.—सूर सुंदरी आपु ही कहा तू शर संधानति—२२५१ ।

संधानना, संधाननो—क्रि. स. [सं. संधान+ना, नो] (१) धनुष पर वाण चढ़ाकर निशाना लगाना या लक्ष्य पर तीर छोड़ना । (२) प्रयोग करने के लिए किसी अस्त्र को ठीक करना । (३) जोड़ना ।

संधाना—संज्ञा पुं. [सं. संधानिका] अचार ।

सँधाने—क्रि. स. [हिं. संधानना] धनुष पर तीर चढ़ाकर निशाना लगाया या लक्ष्य पर तीर छोड़े । उ.—(क) मनु मदन धनु-सर सँधाने देखि घन-कोदंड—१-३०७ । (ख) काम-वाण पाँचौं संधाने—१० उ.-१०५ ।

संज्ञा पुं. [हिं. संधान] अचार । उ.—अंब आदि दै सबै सँधाने । सब चाखे गोवर्धन राने—३९६ ।

सँधानौं—संज्ञा पुं. [हिं. संधान] अचार । उ.—तुमकौं भावत पुरी सँधानौ—१०-२११ ।

संधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दो चीजों का मेल, संयोग । उ.—जैसे खरी कपूर दोउ यक समय यह भई ऐसी संधि—२९१२ । (२) दो चीजों के मिलने का जोड़ । (३) दो राजाओं या राज्यों के बीच होनेवाला मैत्री-संबंध । (४) सुलह, मित्रता । (५) शरीर में दो हड्डियों के मिलने का जोड़ या गाँठ । (६) व्याकरण में दो अक्षरों के मेल से होनेवाला विकार । (७) नाटक में प्रयोजन-विशेष के साधक कथांशों का अन्य से होनेवाला संबंध जो पाँच प्रकार का होता है—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श या अवमर्श और निर्वहण । (८) सेंध, छेद । (९) एक काल, युग या अवस्था के अंत और दूसरे के आरंभ के बीच का समय । उ.—वैस-संधि सुख तजी सूर हरि गए मधुपुरी माँहीं—३२४४ । (१०) (दो चीजों के बीच की) खाली जगह, अवकाश । उ.—धरनि आकास भयौ परिपूरन नैंकु नहीं कहुँ संधि बचायौ—५९१ । (११) भेद, रहस्य ।

संधि-थली—संज्ञा स्त्री. [सं. संधि+स्थल] संधि के निकट का खाली स्थान । उ.—मनहुँ बिबर ते उरग रिंग्यो तकि गिरि के संधि थली—२०७१ ।

संधि राग—संज्ञा पुं. [सं.] सिंदूर, सेंदुर ।

संधि-विच्छेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समझौता तोड़ना या टूटना । (२) व्याकरण में किसी पद की संधि तोड़कर शब्द अलग करना ।

संध्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शाम, सायंकाल। उ.—(क) संध्या समय निकट नहिं आयो, ताके ढूँढ़न कौं उठि धायौ—५-३। (ख) संध्या समय होन आयौ—७-६। (२) भारतीय आर्यों की एक उपासना जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल को होती है (३)सीमा।

संन्यस्त—वि. [सं. संन्यास] (१) जिसने संन्यास लिया हो। (२) काम में अत्यधिक संलग्न।

संन्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भारतीय आर्यों के चार आश्रमों में अंतिम जिसमें सब कार्य निष्काम भाव से किये जाते हैं। (२) क्षेत्र अथवा सीमा-विशेष में ही रहकर कार्य करने का व्रत या निश्चय।

संन्यासी—संज्ञा पुं. [सं. संन्यासिन्] संन्यास-आश्रम में रहने और उसके नियमों का पालन करनेवाला।

संपजना—क्रि. अ. [सं. सम+उपजना] (१) उगना, पैदा होना। (२) प्रकाशित होना।

संपत, संपति, संपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. संपत्ति] (१) धन-दौलत, जायदाद। उ.—(क) तैसैं धन-दारा सुख-संपति बिछुरत लगै न बार—१-८४। (ख) सूरदास मोहन दरसन बिनु सुख-संपति सपना—२५४७। (२) ऐश्वर्य, वैभव। (३) कोई बहुमूल्य लाभ या प्राप्ति, परम निधि। उ.—(क) सत संजम-तीरथ-व्रत कीन्हैं, तब यह संपति पाई—१०-१६ (ख) जे पद-कमल संभु की संपति—५६८। (४) लक्ष्मी जिसकी उत्पत्ति समुद्र से मानी गयी है। उ.—कहौ तौ लंकु उखारि डारि देउँ जहाँ पिता संपति को—९-८४।

संपद, संपदा—संज्ञा स्त्री. [सं. संपद्] (१) वैभव, ऐश्वर्य। उ.—देखि व्रज की संपदा कौं फूलै सूरजदास—१०-२६। (२) धन, पूँजी। उ.—ऐसी विधि हरि पूजै सदा। हरि-हित लावै सब संपदा—९-५। (३) सिद्धि। (४) सौभाग्य। उ.—सूरदास संपदा-आपदा जिनि कोऊ पतिआइ—१-२६५।

संपन्न—वि. [सं.] (१) पूण या सिद्ध किया हुआ। (२) सहित, युक्त। उ.—सत्य-सील-सपन्न सुमूरति—१-६९। (३) धन-धान्य से पूर्ण। (४) धनी।

संपर्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लगाव, संसर्ग, संबंध। (२) मेल, संयोग। (३)स्पर्श।

संपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिजली, विद्युत।

संपात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक साथ गिरना। (२) संगम, समागम। (३) संगम-स्थान। (४) वह स्थान जहाँ एक रेखा दूसरी रेखा से मिले या उसको काटे।

सपाति, संपाती—संज्ञा पुं. [सं. संपाति] एक गीध जो गरुड़ का ज्येष्ठ पुत्र और जटायु का बड़ा भाई था। सीता की खोज में गये हुए बानर-दल को संपाती ने ही उनका पता बताया था। उ.—आए तीर समुद्र के, कछु सोधि न पायौ। सूर सँपाती तहँ मिल्यौ, यह बचन सुनायौ—९-७२।

संपादक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम पूरा या संपन्न करने वाला। (२) किसी पत्र-पत्रिका या पुस्तक के क्रम, पाठ आदि को व्यवस्थित करनेवाला।

संपादकत्व—संज्ञा पुं. [सं.] संपादन करने का भाव।

संपादकीय—वि. [सं.] (१) संपादक-संबंधी। (२) संपादक का लिखा हुआ।

संपादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम पूरा करना। (२) पत्र-पत्रिका या पुस्तक का क्रम, पाठ आदि व्यवस्थित करना।

संपादित—वि. [सं.] (१) पूर्ण किया हुआ। (२) जिसका क्रम, पाठ आदि व्यवस्थित किया गया हो।

संपीड़न—संज्ञा पुं. [सं. सम्पीडन] (१) खूब दबाना, मलना या निचोड़ना। (२) बहुत पीड़ा या दुख।

संपुट—संज्ञा पु. [सं.] (१) कटोरे या दोने के आकार की कोई वस्तु। उ.—जलज संपुट सुभग छबि भरि लेत उर जनु धरनि—१०-१०९। (२) पत्ते का बना दोना। (३) डिब्बा, पिटारी। (४) अंजुली। (५) फूल का कोश। (६) मुँहबंद पात्र।

सँपुटी—संज्ञा स्त्री. [सं. संपुट] कटोरी, प्याली।

सँपूरन—वि. [सं संपूर्ण] (१) पूर्ण, संपूर्ण। उ.—अष्टम मास सँपूरन होइ—३-१३। (२) सफल, सिद्ध। उ.—भयो पूरब फल सँपूरन लह्यौ सुत दैतारी—२६२७। (३) समाप्त। उ.—एक भोजन करि सँपूरन गई वैसेहि त्यागि—पृ. ३३९ (८४)।

संपूर्ण—वि. [सं.] (१) खूब भरा हुआ। (२) सब,

सारा। (३) खतम, समाप्त।

संज्ञा पुं. वह राग जिसमें सातों स्वर लगते हों।

संपूर्णतः—क्रि. वि. [सं.] पूर्ण रूप से।

संपूर्णतया—क्रि. वि. [सं.] भली भाँति।

संपूर्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पूरा या सम्पूर्ण होने का भाव। (२) अंत, समाप्ति।

संपृक्त—वि. [सं.] (१) संसर्ग या संबंध में आया हुआ, संबद्ध। (२) मिला हुआ।

सँपेरा—संज्ञा पुं. [हिं. साँप] साँप पालने और उसका तमाशा दिखानेवाला मदारी।

संपै—संज्ञा स्त्री. [सं. संपत्ति] धन-संपत्ति।

सँपोला—संज्ञा पुं. [हिं. साँप+ओला] साँप का बच्चा।

सँपोलिया—संज्ञा पुं. [हिं. सँपोला+इया] साँप का बहुत छोटा बच्चा।

संपोषण—संज्ञा पुं. [सं.] भली भाँति पालन-पोषण करने की क्रिया या भाव।

संप्रज्ञात—संज्ञा पुं. [सं.] वह समाधि जिसमें विषयों के बोध से सर्वथा निवृत्त न होने के कारण आत्मा को अपने स्वरूप का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं होता।

संप्रति—अव्य. [सं.] इस समय, आजकल, अभी।

संप्रद—वि. [सं.] देनेवाला, दाता।

संप्रदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (दान आदि) देने की क्रिया या भाव। (२) शिष्य को मंत्र या दीक्षा देना। (३) (व्याकरण में) वह कारक जिसमें कोई शब्द 'देना' क्रिया का लक्ष्य होता है।

संप्रदाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोई विशेष धर्म-संबंधी मत। (२) किसी सिद्धांत या मत के अनुयायियों का वर्ग या समूह। (३) मार्ग, पथ। (४) परिपाटी।

संप्राप्त—वि. [सं.] (१) आया या पहुँचा हुआ, उपस्थित। (२) पाया हुआ। (३) जो हुआ हो, घटित।

संप्रेक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] देखनेवाला, दर्शक।

संप्रेक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] जाँच या निरीक्षण करना।

संबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ-साथ बँधना, जुड़ना या मिलना। (२) वास्ता, लगाव, संपर्क। (३) रिश्ता, नाता। (४) बहुत मेल-जोल। (५) विवाह या उसका निश्चय। (६) (व्याकरण में) एक कारक जिससे एक शब्द के साथ दूसरे का लगाव या संबंध सूचित होता है।

संबंधातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'अशियोक्ति' अलंकार का एक भेद।

संबंधित—वि. [सं. संबंध] संबंध-युक्त।

संबंधी—वि. [सं. संबंधिन्] (१) लगाव या संपर्क रखने वाला। (२) सिलसिले या प्रसंग का, विषयक।

संज्ञा पुं. रिश्तेदार, नातेदार।

संवत—संज्ञा पुं. [सं. संवत्] साल, वर्ष, संवत्सर। उ.—(क) द्वापर सहस एक की भई। कलियुग सत संबत रहि गई—१-२३० (ख) सत संबत मानुष की आइ। आधी तो सोवत ही जाइ—७-८।

संबद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जिससे संबंध हो। (२) बँधा या जुड़ा हुआ। (३) संयुक्त, सहित।

संबर—संज्ञा पुं. [सं. शंबर] (१) एक दैत्य जो कामदेव का शत्रु था। (२) एक शस्त्र। (३) युद्ध।

संबल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राह का भोजन। (२) वह साधन जिसके भरोसे पर कोई काम किया जाय। (३) सहारा, आश्रय।

संबाद—संज्ञा पुं. [सं. संवाद] वार्तालाप, संवाद। उ.—कपिलदेव बहुरौ यौं कह्यौ। हमैं-तुम्हैं संबाद जु भयौ—३-१३।

संबुद्ध—वि. [सं.] जिसे ज्ञान हो गया हो।

संज्ञा पुं. (१) गौतम बुद्ध। (२) (जैनियों के) जिन देव।

संबोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जगाना (२) पुकारना। (३) समझाना-बुझाना। (४) जताना, विदित कराना। (५) धीरज या सांत्वना देना। (६) (व्याकरण में) वह कारक जिससे शब्द का किसी को पुकारना या बुलाना सूचित हो। (७) (नाटक में) आकाश-भाषित।

संबोधना, संबोधनो—क्रि. स. [सं. संबोधन] समझाना-बुझाना, प्रबोधना।

संबोधित—वि. [सं.] जिसे पुकारा जाय।

संभर—वि. [सं.] भरण-पोषण करनेवाला।

संभरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पालन-पोषण की व्यवस्था या साधन। (२) योजना।

सँभरना, सँभरनो, सँभलना, सँभलनो—क्रि. अ. [हिं. सँभलना] (१) बोझ आदि का थामा या रोका जा सकना। (२) सहारे या आधार पर ठहर सकना। (३) सचेत या सावधान होना। (४) गिरने, चोट खाने या हानि होने से बचना। (५) बुरी दशा या स्थिति से बचे रहना। (६) निर्वाह हो सकना। (७) स्वास्थ्य-लाभ करना।

संभव—संज्ञा पुं. [सं. सम्भव] (१) उत्पत्ति। (२) संयोग, समागम। (३) हेतु, कारण।

वि. (१) उत्पन्न। (२) हो सकने योग्य।

संभवत :—अव्य [सं.] संभव है कि।

संभवत—क्रि. अ. [हिं. संभवना] संभव होता या हो सकता है, सधता है। उ.—धर्म-स्थापन-हेतु पुनि धार्यो नर अवतार। ताको पुत्र-कलत्र सों नहिं संभवत पियार—१० उ.-४७।

संभवतया—अव्य. [सं.] संभव है कि।

संभवना, संभवनो—क्रि. स. [हिं. संभव+ना] पैदा या उत्पन्न करना।

क्रि. अ. (१) पैदा या उत्पन्न होना। (२) हो सकना।

संभवनीय—वि. [सं.] जो हो सकता हो।

सँभार—संज्ञा पुं. [हिं. सँभालना] (१) होश-हवास, ध्यान, (तन-बदन की) सुध। उ.—(क) व्याकुल भई गोपालहिं बिछुरे गयो गुन ज्ञान सँभार—३२१५। (ख) भोजन-भूषन की सुधि नाहीं, तनु की नहीं सँभार—पृ. ३३९। (८३)। (ग) मैमत भए जीव-जल-थल के तनु की सुधि न सँभार—पृ. ३४७। (५२)। (२) निगरानी, देखरेख। उ.—सूरदास प्रभु अपने ब्रज की काहे न करत सँभार—२८२०। (३) पालन-पोषण।

यौ. सार-सँभार—पालन-पोषण, देखभाल।

(४) वश में रखने का भाव, रोक, निरोध।

क्रि. अ. सावधानी के साथ, सचेत होकर। उ.—प्रबल सत्रु आहै यह मार। यातैं संतौ, चलौ सँभार—१-२२९।

संभार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इकट्ठा या एकत्र करना, संचय। (२) तैयारी, साज-सामान। (३) भांडार, आगार। (४) सजावट। (५) धन-सम्पत्ति। (६) पालन-पोषण। (७) देख-रेख, रखवाली। (८) प्रबंध।

सँभारत—क्रि. स. [हिं. सँभालना] (१) सचेत या सावधान होता है। उ.—कर्म सुख-हित करत, होत दुःख नित, तऊ नर मूढ़ नाहीं सँभारत—८-१६। (२) रक्षा करता या बचाता है, देखरेख रखता है। उ.—क्यों न सँभारत ताहि—१-३२५।

सँभारति—क्रि. स. [हिं सँभालना] रोक या पकड़ में रखती है, सँभालती है। उ.—अंचल नहीं सँभारति—२५६२।

सँभारना, सँभारनो—क्रि. स. [सं. संभार] (१) याद या स्मरण करना। (२) सँभालना।

सँभारहि—क्रि. स. [हिं. संभालना] सचेत या सावधान हो जाना। उ.—तातैं कहत सँभारहि रे नर, काहे कौं इतरात—२-२२।

सँभारि—क्रि. स. [हिं. सँभारना] (१) स्मरण द्वारा संचित करके। उ.—(क) चतुरानन बल सँभारि मेघनाद आयो—९-९६। (ख) पूरब प्रीति सँभारि हमारे तुमको कहन पठायौ—३०६३। (२) नष्ट होने, खोने या बिगड़ने से बचाओ। उ.—पाछैं भई सु भई सूर जन अजहूँ समुझि सँभारि—२-३१।

प्र. सकै सँभारि—बचा सकता या रक्षा कर सकता है। उ.—घालति छुरी प्रेम की बानी, सूर-दास को सकै सँभारि—११६४।

(३) सँभल जा, सावधान हो जा। उ.—कह्यौ असुर, सुरपति सँभारि। लै करि बज्र मोहिं पर-डारि—६-५। (४) रोककर, काबू या नियंत्रण में रखकर।

मुहा०—सकी सँभारि—सम्हाल सकी। उ.—कठिन वचन सुनि स्रवन जानकी, सकी न वचन सँभारि—६-७६। मुख सँभारि—वाणी पर नियंत्रण रखकर। उ.—ये सब ढीठ गरब गोरस कैं, मुख सँभारि बोलति नहिं बात—१०-३०८।

क्रि. वि. सँभालकर, सावधानी के साथ। उ.—और सँभारि मनोरथ धरै—१० उ.-१०५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सँभार] होश-हवास,चेत, तन-

बदन की सुध। उ.—(क) काम-अंध कछु रहि न सँभारि। दुर्बासा रिषि कौं पग मारि—६-७। (ख) अंग अभरन उलटि साजे, रही कछू न सँभारि—पृ. ३३० (९३)।

संभारी—वि. [सं. सम्भारिन्] भरा हुआ, पूर्ण।

क्रि. स. [हिं. सँभारना] चेते या ध्यान किया।

मुहा.—सुधि सँभारी—चेतना या ध्यान ठीक रखा। उ.—जमुना जू थकित भई, नहीं सुधि सँभारी—६४९।

सँभारे—क्रि. वि. [हिं. सँभालना] सावधानी के साथ। उ.—बंधू, करियौ राज सँभारे—९-५४।

क्रि. स. याद या स्मरण किया। उ.—(क) जे पद-पदुम तात-रिस त्रासत मन-क्रम-बच प्रहलाद सँभारे—१-९४। (ख) तव तैं गोविंद क्यौं न सँभारे—१-३३४।

सँभारै—क्रि. स. [हिं. सँभालना] रक्षा, देखभाल या रखवाली करे। उ.—(क) ऐसे बल बिन कौन सँभारै—१०५८। (ख) बिबस भई तनु न सँभारै री—११८४। (२) रोके, वश या काबू में रखे, सावधान रहे। उ.—बिरही कहाँ लौ आपु सँभारै—३१८९।

सँभारौ—क्रि. स. [हिं. सँभालना] (१) याद या स्मरण किया। उ.—राग-द्वेष बिधि अबिधि असुचि सुचि जिहिं प्रभु जहाँ सँभारौ। कियौ न कबहुँ बिलंब कृपा निधि, सादर सोच निवारौ—१-१५७। (२) स्मरण या याद करके एकत्र करो। उ.—द्विरद कौ दंत उपटाय तुम लेत हौ, उहै बल आजु काहे न सँभारौ—२६०२। रोक, पकड़ या काबू में रखो।

मुहा०—बात करि मुख सँभारौ—वाणी पर नियंत्रण रख कर बात करो। उ.—बारन हौं करौं बारन सहित फटकिहौं, बावरे, बात कहि मुख सँभारौ—२६९०।

(३) आक्रमण के लिए ग्रहण किया। उ.—दुरबासा कौं चक्र सँभारौ—१-७२। (४) सचेत या सावधान होकर अपनी रक्षा का प्रबंध करो। उ.—जग्य माहिं तुम पसु जे मारे। ते सब ठाढ़े सस्त्रनि धारे। जोहत हैं वे पंथ तिहारौ। अब तुम अपनौ आप सँभारौ—४-१२।

सँभारचो, सँभारचौ—क्रि. स. [हिं. सँभालना] (१) (प्रहार करने को) लिया, उठाया, थामा। उ.—जब जब भीर परी संतनि कौं चक्र सुदरसन तहा सँभारचौ—१-१४। (२) स्मरण या याद किया। उ.—अंध-अचेत-मूढ़मति बौरे! सो प्रभु क्यौं न सँभारचौ—१-३३६।

मुहा०—बैर सँभारचौ—पिछले बैर का स्मरण करके बदला लेने को प्रवृत्त हुआ। उ.—गरजि गरजि घन बरसन लागे, मानो सुरपति निज बैर सँभारचौ—२८३२।

(३) रक्षा की, बचाया। उ.—काल तहीं तिहिं पकरि सँभारचो। सखा प्रानपति तउ न सँभारचौ—४-१२। (४) भार ऊपर लिया, भार उठाये रहा। उ.—धरनि सीस धरि सेस गरब धरचौ, इहिं भर अधिक सँभारचौ—५६७।

सँभाल—संज्ञा स्त्री. [सं. सम्भार] (१) रक्षा (२) भरण-पोषण। (३) देखरेख। (४) प्रबंध, व्यवस्था। (५) होश-हवास, चेत, तन-बदन की सुध।

सँभालना, सँभालनो—क्रि. स. [सं. संभार] (१) भार ऊपर ले सकना या रखे रहना। (२) रोक, पकड़ या काबू में रखना। (३) हटने, गिरने या खिसकने से रोकना, थामना। (४) सहारा देना। (५) रक्षा करना। (६) बुरी दशा होने से बचाना। (७) पालन-पोषण करना। (८) देखरेख करना। (९) प्रबंध या व्यवस्था करना। (१०) निर्वाह करना। (११) रोग, व्याधि आदि की रोक-थाम करना। (१२) सहेजना। (१३) मनोवेग को रोकना।

सँभाला—संज्ञा पुं. [हिं. सँभलना] मरने के पहले सहसा चेतना-सी आ जाना।

मुहा०—सँभाला लेना—मरने के पहले रोगी का सचेत होना या सँभल जाना।

संभावना—संज्ञा स्त्री. [सं. सम्भावना] (१) अनुमान, कल्पना। (२) हो सकना, मुमकिन होना। (३) एक काव्यालंकार। (४) क्रिया, कार्य।

संभावित—वि. [सं. सम्भावित] (१) जो हो सकता हो। (२) ध्यान या कल्पना के योग्य। (३) सम्मान का

ध्यान रखनेवाला, स्वाभिमानी।

संभाव्य—वि. [सं. सम्भाव्य] (१) जो हो सकता हो। (२) अनुमान या कल्पना के योग्य।

संभाषण, संभाषन—संज्ञा पुं. [सं. सम्भाषण] बातचीत, कथोपकथन। उ.—नैन सैन संभाषन कीन्हौ, प्यारी की उर तपनि मिटाई—७०१।

संभाषी—वि. [सं. सम्भाषिन्] बात करनेवाला।

संभीत—वि. [सं. सम्भीत] डरा हुआ, भयभीत।

संभु—संज्ञा पुं. [सं. शम्भु] शिव, महादेव। उ.—(क) संभु की सपथ, सुनि कुकवि, कायर, कृपन, स्वास, आकास बनचर उड़ाउँ—९-१२९। (ख) जे पद कमल संभु की संपति—५६८।

संभु-भूषण, संभु-भूषन—संज्ञा पुं. [सं. शम्भु-भूषण] चंद्रमा। उ.—मनहुँ सोभित अभ्र-अंतर संभु-भुषन वेष—६३५।

संभूत—वि. [सं. सम्भूत] (१) उत्पन्न। (२) एक साथ उत्पन्न होनेवाले। (३) युक्त, सहित।

संभूय—अव्य. [सं सम्भूय] एक साथ, साझे में।

संभृत—वि. [सं. सम्भृत] (१) एकत्र। (२) पोषित।

संभेद—संज्ञा पुं. [सं. सम्भेद] (१) मिले हुए प्राणियों, पदार्थों आदि का वियोग या अलगाव। (२) विरोध कराने की नीति। (३) किस्म, प्रकार।

संभोग—संज्ञा पुं. [सं. सम्भोग] (१) वस्तु आदि का सुख-पूर्वक उपयोग या व्यवहार। (२) रतिक्रीड़ा। (३) संयोग शृंगार। (४) भोग-विलास की सामग्री या साधन। उ.—जदपि कनकमय रची द्वारका सखी सकल संभोग—१० उ.-१०२।

संभोगी—वि. [हिं. संभोग] संभोग करनेवाला।

संभोग्य—वि. [सं. सम्भोग्य] (१) जिसका सुख भोगा जाय। (२) व्यवहार या उपयोग के उपयुक्त।

संभ्रम—संज्ञा पुं. [सं. सम्भ्रम] (१) उतावली, आतुरता। (२) भ्रम में पड़ने की घबराहट या व्याकुलता। (३) दौड़धूप, प्रयत्न। (४) उत्कंठा। (५) आदर, मान।

क्रि. वि. उतावली या आतुर होकर। उ.—सूर सुनत संभ्रम उठि दौरत, प्रेम-मगन, तन दसा बिसारे—१-२४०।

संभ्रमना, संभ्रमनो—क्रि. अ. [सं. सम्भ्रम] (१) उतावली या आतुरता होना (२) भ्रम में पड़ने की घबराहट या व्याकुलता होना। (३) उत्कंठा होना।

संभ्रम्यो, संभ्रम्यौ—क्रि. अ. [सं. सम्भ्रम] भ्रम में पड़ने से घबराहट या व्याकुलता हुई। उ.—जगत पितामह संभ्रम्यौ, गयौ लोक फिरि आइ—४९२।

संभ्रांत—वि. [सं. सम्भ्रान्त] (१) भ्रम में पड़ने से घबराया हुआ या व्याकुल। (२) सम्मानित, प्रतिष्ठित।

संभ्राजना, संभ्राजनो—क्रि. अ. [सं सम्भ्राज] पूर्णतया सुशोभित होना।

संमत—वि. [सं. सम्मत] मान्य, सम्मति-युक्त। उ.—यह प्रसिद्ध सबहीं को संमत बड़ौ बड़ाई पावै—१-१९२।

संयंता—संज्ञा पुं. [सं. संयंतृ] संयमी, निग्रही।

संयत—वि. [सं.] (१) बँधा हुआ, बद्ध। (२) पकड़ या दबाव में रखा हुआ। (३) व्यवस्थित, नियमबद्ध। (४) निग्रही, संयमी। (५) सीमा या मर्यादा के भीतर रहनेवाला।

संयम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोक, दाब (२) निग्रह, चित्त-वृत्ति-निरोध का कार्य। (३) बुरी या हानिकारक बातों से बचने का भाव या कार्य। (४) बाँधना, बंधन। (५) सीमा या औचित्य के भीतर होना या रहना। (६) योग में ध्यान, धारणा और समाधि का साधन।

संयमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दाब, रोक। (२) चित्त-वृत्ति-निरोध, निग्रह। (३) बाँधना, कसना। (४) खींचना, तानना। (५) यमपुर।

संयमनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमपुरी।

संयमित—वि. [सं.] (१) रोक या दाब में रखा हुआ। (२) दमन किया हुआ। (३) बँधा या कसा हुआ। (४) संयम या निग्रह के द्वारा रोका हुआ।

संयमी—वि. [सं. संयमिन्] (१) मनोभावों को वश में रखनेवाला, आत्मनिग्रही। ( ) बुरी या हानि-कारक बातों से बचनेवाला।

संयुक्त—वि. [सं.] (१) जुड़ा, सटा या लगा हुआ। (२) मिला हुआ। (३) साथ रहकर या मिलकर काम करने-वाला। (४) साथ, सहित। (५) पूर्ण, समन्वित।

संयुग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेल, मिलाप। (२) भिड़ंत। (३) लड़ाई, युद्ध।

संयुत—वि. [सं.] (१) जुड़ा, बँधा या लगा हुआ। (२) साथ, सहित, संबद्ध। उ.—मनो मर्कत कनक संयुत खच्यो काम सँवारि—१५६४।

संयूत—वि. [सं.] साथ, सहित, संयुक्त। उ.—जहाँ आदि निजलोक महानिधि रमा सहस संयूत—सारा. १४।

संयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलावट, मिश्रण। (२) मिलाप, संभोग, समागम (शृंगार)। (३) लगाव, संबंध। उ.— (क) तदपि मनहिं बसत बंसीवट ललिता के संयोग—१० उ.-१०२। (४) सहवास, रति-क्रीड़ा। (५) मतैक्य। (६) जोड़, योग। (७) दो या कई बातों का सहसा एक साथ हो जाना, इत्तफाक। उ.—सबै संयोग जुरे हैं सजनी हठि करि घोष उजारयो—२८३२।

मुहा.—संयोग से—बिना पूर्व निश्चय या किसी योजना के, अकस्मात।

(८) अवसर। उ.—आवत जात डगर नहिं पावत गोबर्द्धन पूजा संयोग—९१९।

संयोग शृंगार—संज्ञा पुं. [सं.] शृंगार रस का वह विभाग जिसमें प्रेमियों के मिलन या संयोग आदि का वर्णन हो।

संयोगी—वि. [सं. संयोगिन्] (१) मिला हुआ। (२) मिलने या मिलानेवाला। (३) जो प्रिया या प्रेमिका के साथ हो। उ.—अधर सुधा-रस सुकृत पान दै, कान्ह भए अति भोगी।........तासों रहत सँयोगी—सारा ५६७।

संयोजक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जोड़ने या मिलानेवाला। (२) व्याकरण में दो शब्दों, उपवाक्यों या वाक्यों के बीच में आकर उन्हें जोड़नेवाला शब्द। (३) समिति का वह सदस्य जिसे बैठक बुलाने और उसकी अध्यक्षता करने का अधिकार दिया जाय।

संयोजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जोड़ने या मिलाने की क्रिया। (२) आयोजन, व्यवस्था।

संयोजित—वि. [सं.] जोड़ा या मिलाया हुआ।

संयोज्य—वि. [सं.] (१) जोड़ने या मिलाने योग्य। (२) जो जोड़ा या मिलाया जाने को हो।

संयोना—क्रि. स. [हिं सँजोना] सजाना।

संरक्षक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देखरेख या रक्षा करने वाला। (२) पालन-पोषण करने और आश्रय में रखने वाला। (३) अभिभावक।

संरक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हानि, विपत्ति आदि से रक्षा करना। (२) आश्रय या देखरेख में रखकर पालन-पोषण या संवर्द्धन करना। (३) देखरेख, निगरानी। (४) अधिकार।

संरक्षित—वि. [सं.] (१) सँभालकर रखा या बचाया हुआ। (२) देखरेख या संरक्षा में लिया हुआ।

संलक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] लखना, पहचानना।

संलक्षित—वि. [सं.] (१) लखा या पहचाना हुआ। (२) लक्षणों से जाना हुआ।

संलक्ष्य—वि. [सं.] जो देखने में आ सके।

संलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्यंजना जिसमें वाच्यार्थ के उपरांत व्यंग्यार्थ-बोध का क्रम लक्षित हो।

संलग्न—वि. [सं.] (१) लगा या सटा हुआ। (२) जुड़ा हुआ, संबद्ध। (३) जो अन्त में जुड़ा या लगा हो।

संलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बातचीत, वार्तालाप। (२) आप ही कुछ बोलना या बड़बड़ाना जो पूर्व राग की दस दशाओं के अंतर्गत एक दशा है। (३) नाटक का वह संवाद जिसमें क्षोभ या आवेग न होकर धीरता हो।

संलापक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संलाप करनेवाला। (२) नाटक का वह संवाद जिसमें धीरता हो। (३) एक प्रकार का उपरूपक।

संवत, संवत्—संज्ञा पुं. [सं. संवत्] (१) साल, वर्ष। उ—सत संवत आयु कुल होई—१० उ.-१०३। (२) चालू वर्ष-गणना का कोई वर्ष। (३) महाराज विक्रमादित्य के समय से प्रचलित वर्ष-गणना का कोई वर्ष।

संवत्सर—संज्ञा पुं. [सं.] साल, वर्ष। उ.—सरस संवत्सर लीला गावै जुगल चरन चित लावै—सारा. ११०७।

सँवर—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] (१) स्मरण। (२)

हाल, समाचार, वृत्तान्त।

संवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोक, परिहार। (२) निग्रह। (३) चुनना, पसंद करना। (४) कन्या का वर या पति चुनना।

संज्ञा पुं. [सं. संबल] (१) मार्ग का भोजन। (२) सहारा, साधन।

संवरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोकना, दूर करना। (२) छिपाना, गोपन करना। (३) विचार, इच्छा या चित्तवृत्ति को रोकना या दबाना। (४) अंत या समाप्त करना। (५) चुनना, पसंद करना। (६) कन्या का वर या पति चुनना।

सँवरना, सँवरनो—क्रि. अ. [हिं. सँवारना का अक.] (१) बनना, ठीक होना। (२) सजना, अलंकृत होना।

क्रि. स. [हिं. सुमिरन] याद या स्मरण करना।

सँवरा, सँवरिया—वि. [हिं. साँवला] श्याम।

संवर्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रलय काल के सात मेघों में एक। (२) इंद्र का अनुचर एक मेघ जिससे बहुत जल बरसता है।

संवर्तन - संज्ञा पुं. [सं.] फेरा देना, लपेटना।

संवर्द्धक—वि. [सं.] बढ़ानेवाला।

संवर्द्धन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ना, वृद्धि होना। (२) पालना-पोसना। (३) बढ़ाना।

संवहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ढोना। (२) दिखाना।

संवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बातचीत। (२) समाचार, वृत्तांत। (३) कथा-प्रसंग।

संवादी—वि. [सं. संवादिन्] (१) बातचीत करनेवाला। (२) अनुकूल या मेल में होनेवाला।

संज्ञा पुं. संगीत में वह स्वर जो वादी के साथ मिलकर उसकी मधुरता बढ़ाता हो।

सँवार—संज्ञा स्त्री. [सं. संवाद] समाचार।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सँवारना] सजाने या सँवारने की क्रिया या भाव।

क्रि. स. सजाकर, सज्जित करके। उ.—जैसे कोऊ गेह सँवार—१० उ.-१२९।

संवार – संज्ञा पुं. [सं.] शब्दोच्चारण का वह प्रयत्न जिसमें कंठ सिकुड़ता है।

संवारण—संज्ञा पुं. [सं.] रोकना, निषेध करना।

सँवारत—क्रि. स. [हिं. सँवारना] (१) रचाते, सजाते या अलंकृत करते हैं। उ.—गोवर्धन पर वेनु बजावत, फूलन भेष सँवारत—सारा. ४७२ (२) शस्त्रादि तेज करते हैं। उ.—कहुँ कर लैकै सस्त्र सँवारत—सारा. ६६६।

सँवारति क्रि. स. [हिं. सँवारना] सजाती या अलंकृत करती है। उ.—जसुमति राधा कुँवरि सँवारति—७०४।

सँवारन - संज्ञा पुं. [हिं. सँवारना] (काम) बनाने या सँभालने वाले। उ.—कृपानिधान दानि दामोदर सदा सँवारन काज—१-१०९।

सँवारना, सँवारनो—क्रि. स. [सं. सँवर्णन] (१) ठीक करना। (२) सजाना, अलंकृत करना। (३) क्रमबद्ध या व्यवस्थित करना। (४) सुचारु रूप से काम करना।

संवारना – क्रि. अ. [सं. संवारण] रोकना, मना करना।

सँवारि—क्रि. स. [हिं. सँवारना] (१) (अस्त्र-शस्त्र) तेज करके। उ. – राख्यो सुफल सँवारि सान दै कैसे निफल करौं वा बानहिं ९-९५। (२) सजाकर, अलंकृत करके। उ. – (क) भवन सँवारि नारि रस लोभ्यौ—१-२१६। (ख) गाइ बच्छ सँवारि लाए—१०-१६। (३) बनाकर, रचकर। उ.—(क) कंठ कठुला नील मनि अंभोजमाल सँवारि -१०-१६९। (ख) सीस सचिक्कन केस हो बिच सीमंत सँवारि—२०६५। (४) व्यंजन आदि ठीक से बनाकर। उ.—यह सुनतहिं मन हर्ष बढ़ायो कियो पकवान सँवारि—९९२।

सँवारी—क्रि. स. [हिं. सँवारना] (१) बुरी दशा का सुधार कर लो। उ.—पतित उधारन बिरद जानिकै बिगरी लेहु सँवारी—१-११८। (२) (व्यंजन आदि) सावधानी से बनाकर। उ.—तुरत करौ सब भोग सँवारी—१००७। (३) रची या बनायी हुई।

मुहा. दई सँवारी—बिधाता की गढ़ी हुई (व्यंग्य)। उ.—जुबती हैं सब दई सँवारी घर बनहूँ में रहति भरी—१६१७।

सँवारे—क्रि. स. [हिं सँवारना] (१) बना दिये, सुधार दिये, ठीक कर दिये। उ.—(क) सबके काज सँवारे—

१-२५। (ख) जिन हमरे सब काज सँवारे—१-२८६। (२) पकाये, पका कर तैयार किये। उ.—अरु खुरमा सरस सँवारे—१०-१८३।

सँवारै—क्रि. स. [हिं. सँवारना] (१) रचती या बनाती है। उ.—मुडली पटिया पारि सँवारै ३०२६। (२) सजाती है। उ.—ललिता रुचिकरि धाय आपने सुमन सुगंधनि सेज सँवारै—१९३०।

सँवारौ—क्रि. स. [हिं सँवारना] (१) बनाओ, निर्मित करो। उ.—(क) हाड़नि कौ तुम बज्र सँवारौ—६-५। (ख) तब ब्रह्मा यह बचन उचारौ। मय माया-मय कोट सँवारौ- ७-७। (२) सुधारो।

मुहा. परलोक सँवारौ—ऐसी वेद-विधि से क्रिया-कर्म करो जिससे उनकी गति सुधर जाय। उ.—राजा कौ परलोक सँवारौ—९-५०।

सँवारचो, सँवारचौ—क्रि.स. [हिं. सँवारना] (१) सजाया। उ.—झूठ-साँच करि माया जोरी रचि-पचि भवन सँवारचौ --१-३३६। (२) (सुस्वाद) बनाया। उ.—सुरस निमोननि स्वाद सँवारचौ—२३२१। (३) (काम) बना दिया। उ.—सूरदास प्रभु की यह लीला व्रज कौ काज सँवारचौ—४३३।

संवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ-साथ रहना। (२) सार्वजनिक निवासस्थान। (३) घर, मकान।

संवाहक—वि. [सं.] ढोनेवाला।

संवाही वि. [सं.] ढोनेवाला।

संविद—वि. [सं.] चेतन, चेतनायुक्त।

संविद्—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चेतना। (२) बोध, समझ। (३) अनुभूति। (४) वृत्तांत। (५) नाम, संज्ञा।

संविदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] समझौता, ठेका।

संविधान—संज्ञा पुं [सं.] (१) व्यवस्था। (२) रचना। (३) शासन का विधान। (४) रीति, विधि।

संवृत—वि. [सं.] (१) ढका या बंद किया हुआ। (२) दबाया या दमन किया हुआ (३) रक्षित।

संवृद्ध—वि. [सं.] (१) बढ़ा हुआ। (२) उन्नत।

संवृद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बढ़ती। (२) समृद्धि।

संवेग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पूर्ण तेजी या वेग। (२) घबराहट। (३) भय। (४) अतिरेक।

संवेद—संज्ञा पुं. [सं.] बोध, ज्ञान।

संवेदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विशेष चेतना या अनभूति होना, सुख-दुख आदि का अनुभव करना। (२) जताना, बोध कराना (३) बोध, ज्ञान।

संवेदना—संज्ञा स्त्री. [सं. संवेदना] (१) मन का बोध या अनुभव। (२) किसी का कष्ट देखकर मन में होने वाला दुख, सहानुभूति।

संवेद्य—वि. [सं.] (१) बोध या अनुभव करने योग्य। (२) बताने या जताने योग्य।

यौ.—स्वसंवेद्य जो स्वयं ही अनुभव किया जा सके, दूसरे को बताया न जा सके।

संशय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संदेह। (२) आशंका।

संशयात्मक—वि. [सं.] जिसमें संदेह हो।

संशयात्मा—वि. [सं] जिसके मन में संदेह या अविश्वास बना रहे या शेष हो।

संशयालु—वि. [सं.] संदेह करनेवाला।

संशयी—वि. [सं. संशयिन्] जो प्रायः संशय या संदेह करता हो, शक्की।

संशुद्ध—वि. [सं.] शुद्ध किया हुआ।

संशोधक—वि. [सं.] (१) ठीक या शोधन करनेवाला। (२) बुरी दशा सुधारनेवाला।

संशोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्ध करना। (२) ठीक करना, दोष दूर करना। (३) प्रस्ताव आदि में घटाने-बढ़ाने का सुझाव।

संशोधित—वि. [सं.] (१) शुद्ध किया हुआ। (२) ठीक किया या सुधारा हुआ।

संश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मेल, संयोग। (२) लगाव, संबंध। (३) सहारा, आश्रय।

संश्रित—वि. [सं.] (१) जुड़ा या मिला हुआ। (२) शरण में आया हुआ। (३) आश्रित।

संश्लिष्ट—वि. [सं.] (१) मिला या सटा हुआ। (२) मिश्रित, सम्मिलित। (३) आलिंगित।

संश्लेषण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सटाना, मिलाना। (२) कार्य-कारण आदि का मिलान या विचार करना, 'विश्लेषण' का विपरीतार्थक।

संस, संसइ—संज्ञा पुं. [सं. संशय] संशय, आशंका।

उ.—करुना करी छाँड़ि पग दीन्हीं, जानि सुरनि मन संस—१०-६४। (ख) सूरस्याम के मुख यह सुनि तब मन मन कीन्ही संस—११२७।

संसक्त—वि. [सं.] (१) सटा या लगा हुआ। (२) संवद्ध। (३) लीन, लिप्त। (४) प्रवृत्त, अनुरक्त।

संसक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मिलान, सटान। (२) जोड़, संबद्धता। (३) लीनता (४) प्रवृत्ति, अनुरक्ति।

संसद्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सभा, मंडली। (२) राजसभा। (३) प्रजा के प्रतिनिधियों की राजसभा।

संसय—संज्ञा पुं. [सं. संशय] संदेह, संशय। उ.—यह वर दै हरि कियौ उपाइ। नारद मन संसय उपजाइ—१-२२६। (ख) तेरे हृदै न संसय राखौं—२-३७।

संसरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना, गमन करना। (२) संसार, जगत। (३) सड़क, मार्ग।

संसर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लगाव, संबंध। (२) मिलाप, संयोग। (२) साथ, संगति। (४) सहवास, समागम।

संसर्ग दोष—संज्ञा पुं. [सं.] संगत का दोष।

संसर्गी—वि. [सं. संसर्गिन्] लगाव रखनेवाला।

संसा—संज्ञा पुं. [सं. संशय] संदेह, संशय।

संसार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुनियाँ, जगत, सृष्टि। उ.—(क) हरि बिन अपनौ को संसार—१-८४। (ख) यह संसार विषय-विष-सागर, रहत सदा सब घेरे—१-८५। (२) इहलोक, मर्त्यलोक। (३) माया-जाल। (४) घर-गृहस्थी।

संसार-तिलक—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का चावल।

संसार-भावन—संज्ञा पुं. [सं.] संसार को दुखमय जानना।

संसारी—वि. [सं. संसारिन्] (१) लौकिक, सांसारिक। (२) संसार की माया में फँसा हुआ। उ.—(क) हरि हौं महा अधम संसारी-१-२७३। (ख) भजन-रहित वूड़त संसारी—१-२१९। (३) बार-बार जन्मने-वाला। (४) लोक-व्यवहार में कुशल।

संसिक्त—वि. [सं.] (१) जो खूब भीगा हुआ हो। (२) जो खूब सींचा हुआ हो।

संसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सँड़सी] सँड़सी।

संसृति—संज्ञा स्त्री [सं. संसार, जगत।

संसृष्ट—वि. [सं.] (१) मिश्रित, संश्लिष्ट। (२) संबद्ध। (३) अंतर्गत, सम्मिलित। (४) संगृहीत।

संसृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मिलावट, मिश्रण। (२) संबंध, लगाव। (३) रचना, संयोजन। (४) संग्रह। (५) साहित्य में दो या अधिक अलंकारों का इस प्रकार आना कि सब स्वतंत्र हों, एक दूसरे के आश्रित नहीं।

संसै—संज्ञा पुं. [सं. संशय] संदेह, आशंका।

संसौ—संज्ञा पुं. [सं. श्वास] (१) साँस, श्वास। (२) प्राण, जीवन-शक्ति।

संज्ञा पुं. [सं. संशय] संदेह, आशंका।

संस्करण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्ध या सुधार करना। (२) सुंदर या परिष्कृत करना। (३) विहित संस्कार करना। (४) पत्र-पत्रिका या पुस्तक की एक बार की छपाई, आवृत्ति।

संस्कर्ता—संज्ञा पुं. [सं.] संस्कार करनेवाला।

संस्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुधार, शुद्धि। (२) परिष्कार। (३) स्वभाव का शोधन। (४) शिक्षा, उपदेश, संगत, वातावरण आदि का मन पर पड़ा हुआ प्रभाव। (५) पूर्व जन्म का प्रभाव जो अनश्वर आत्मा के साथ लगे रहने से नये जन्म में भी स्वभाव का अंग बन जाता है। (६) परंपरा से चला आने वाला कृत्य जिसका विधान अवसर-विशेष के लिए हो। (७) हिंदुओं में शुद्ध और उन्नत करनेवाले वे कृत्य जिनकी संख्या किसी ने बारह और किसी ने सोलह बतायी है गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, मुंडन या केशांत, यज्ञोपवीत या समावर्त्तन और विवाह। (८) मृतक का क्रिया-कर्म।

संस्कारक—वि. [सं.] (१) शुद्ध या परिष्कृत करनेवाला। (२) संस्कार करनेवाला।

संस्कारी—वि. [सं. संस्कारिन्] (१) संस्कार करनेवाला। (२) जो अच्छे गुणों या संस्कारों से युक्त हो।

संस्कृत—वि. [सं.] (१) शुद्ध किया हुआ, जिसका संस्कार हुआ हो। (२) परिमार्जित, परिष्कृत। (३) सुधारा या ठीक किया हुआ। (४) सजाया-सँवारा हुआ। (५) जिसका उपनयन या समावर्त्तन संस्कार हुआ हो।

संज्ञा स्त्री. भारतीय आर्यों की प्राचीन साहित्यिक

भाषा, देववाणी।

संस्कृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सफाई, शुद्धि। (२) सुधार, संस्कार, परिष्कार। (३) व्यक्ति, जाति अथवा राष्ट्र आदि के जीवन-व्यापार की वे बातें जिनसे उसके आचार-विचार, कला-कौशल, बौद्धिक विकास, सभ्यता आदि का परिचय मिल सके।

संस्तवन—संज्ञा पुं [सं.] (१) स्तुति या प्रशंसा करना। (२) कीर्ति या यश बखानना।

संस्तुत—वि. [सं.] (१) परिचित, ज्ञात। (२) जिसकी सिफारिश या प्रशंसा की गयी हो।

संस्तुति - संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सिफारिश। (२) प्रशंसा।

संस्था संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठहरने की क्रिया या भाव, स्थिति। (२) व्यवस्था, रूढ़ि, मर्यादा। (३) जत्था, गिरोह, समूह। (४) कोई संघटित समाज, मंडल या वर्ग। (५) जीवन के क्षेत्र-विशेष से संबंध रखनेवाला परंपरागत विधान या नियम।

संस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठहरने की क्रिया या भाव, ठहराव, स्थिति। (२) बैठाना, स्थापन। (३) जीवन, अस्तित्व। (४) ठहरने का स्थान। (५) बस्ती, जनपद। (६) सार्वजनिक स्थान जहाँ सर्वसाधारण एकत्र हो सके। (७) प्रबंध, व्यवस्था। (८) साहित्य, कला, विज्ञान आदि की उन्नति के लिए स्थापित संस्था, मंडल या वर्ग।

संस्थापक—वि. [सं] (१) भवन आदि स्थापित करनेवाला (२) नयी बात चलानेवाला, प्रवर्तक। (३) संस्था आदि स्थापित करनेवाला। (४) रूप या आकार देनेवाला।

संस्थापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भवन आदि उठाना या निर्मित करना। (२) स्थित या प्रतिष्ठित करना। (३) नयी बात चलाना। (४) रूप या आकार देना। (५) संस्था या मंडल आदि स्थापित करना।

संस्थापित—वि. [सं.] (१) भवन आदि उठाया हुआ या निर्मित। (२) स्थित किया हुआ, प्रतिष्ठित। (३) चलाया हुआ, प्रवर्तित। (४) (संस्था मंडल आदि) स्थापित।

संस्पर्श—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भली भाँति स्पर्श का भाव। (२) गहरा लगाव, घनिष्ठ संबंध।

संस्पर्शी—वि. [सं. संस्पर्शिन्] स्पर्श करनेवाला।

संस्पृष्ट—वि. [सं.] (१) सटा या लगा हुआ। (२) परस्पर जुड़ा हुआ या संबद्ध।

संस्मरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भली भाँति स्मरण। (२) भली भाँति सुमिरना या नाम लेना। (३) किसी व्यक्ति के स्वभाव आदि पर प्रकाश डालनेवाली स्मरणीय घटनाएँ या उनका उल्लेख।

संस्मरणीय—वि. [सं.] (१) भली भाँति स्मरण करने योग्य। (२) नाम जपने या सुमिरने योग्य। (३) जिसकी याद सदा बनी रहे। (४) जिसके संस्मरण उल्लेखनीय हों। (५) जिसका स्मरण मात्र रह गया हो, अतीत।

संस्मारक—वि. [सं.] याद दिलाने या स्मरण करानेवाला।

संहंता—वि. [सं. संहतृ] वध करनेवाला।

संहत—वि. [सं.] (१) खूब जुड़ा या सटा हुआ, संबद्ध। (२) सहित, संयुक्त। (२) कड़ा, सख्त। (४) गठा हुआ, घना। (५) एकत्र। (६) घायल, आहत।

संज्ञा पुं. नृत्य की एक मुद्रा।

संहति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल, मिलान। (२) इकट्ठा होने का भाव। (३) राशि। (४) झुंड, समूह। (५) गठन, घनत्व। (६) जोड़, संधि।

संहर - संज्ञा पुं. [सं. संहार] नाश, वध।

संहरण संज्ञा पुं. [सं.] (१) संग्रह या एकत्र करना। (२) (केश का) एक साथ बाँधना या गूँथना। (३) नाश, संहार या ध्वंस करना।

संहरना, संहरनो—क्रि. स. [सं. संहार] नाश या वध करना।

क्रि अ. नाश या वध होना।

संहरि क्रि. स. [हिं. सिंहरना] मरवाकर। उ.—नातरु कुटुँब सकल संहरि कै कौन काज अब जीजै — १-२६९।

संहरी—क्रि. स. [हिं. संहरना] वध कर दिया। उ.—जब नृप ओर दृष्टि तिहिं करी। चक्र सुदरसन सो संहरी—९-५।

संहरैं—क्रि. स. [हिं. संहारना] वध या नाश करते हैं। उ.—(क) ताकी सक्ति पाइ हम करैं। प्रतिपालैं

बहुरौ संहरैं-४-३ । (ख) ऐसे असुर किते संहरैं-७-२ ।

संहरै—क्रि. स. [हिं संहरना] मारता या वध करता है । उ.— मंत्री कहै, अखेट सो करै । विषय-भोग जीवन संहरै—४-१२ ।

संहर्ता - संज्ञा पुं. [सं. संहर्तृ] (१) इकट्ठा या एकत्र करनेवाला । (२) नाश या वध करनेवाला ।

संहर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उमंग से रोओं का खड़ा होना, पुलक । (२) स्पर्धा, होड़ । (३) ईर्ष्या । (४) संघर्ष ।

संहात—संज्ञा पुं. [सं.] समूह, जमावड़ा ।

संहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बटोरना, समेटना, इकट्ठा करना । (२) संग्रह, संचय । (३) (केश) बाँधना या गूँथना । (४) छोड़ा हुआ वाण अपनी ओर लौटाना । (५) अंत, समाप्ति । (६) नाश, ध्वंस । उ.—अब सबकौ संहार होत है—५९५ । (७) (युद्ध आदि में) मार डालना (८) (अस्त्र आदि को) व्यर्थ करना ।

क्रि. स. [हिं. संहारना] वध कर दो, मार डालो । उ.—परसुराम सौं यौं कही, माँ कौं वेगि सँहार—९-१४ ।

संहारक—वि. [सं.] (१) मार डालनेवाला । (२) नाश या ध्वंस करनेवाला ।

संहारकर्ता—वि. [सं.] (१) मार डालनेवाला । (२) नाश या ध्वंस करनेवाला ।

संहारकारी—वि. [सं. संहारकारिन्] (१) नाश या ध्वंस करनेवाला । (२) वध करनेवाला ।

संहारकाल—संज्ञा पुं. [सं.] संसार के समस्त प्राणियों के नाश का समय, प्रलयकाल ।

सँहारत, संहारत—क्रि. स. [हिं. संहारना] नाश या ध्वंस करता है । उ.—(क) पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत अंड अनेक अवधि पल आधे—९-५२ । (ख) जग सिरजत पालत संहारत पुनि क्यौं बहुरि करयो—१० उ.-१३१ ।

सँहारन, सहारन—वि. [हिं. संहारना] मारने या वध करनेवाले । उ.—(क) असुर-सँहारन भक्तनि-तारन पावन-पतित कहावत बाने—३८० । (ख) अघा बका संहारन ऐई—२५८१ ।

संज्ञा पुं. वध या नाश करने (के लिए) । उ.—असुर सँहारन आए—२५८१ ।

संहारना, संहारनो—क्रि. स. [सं. संहार] (१) मार डालना, वध करना । (२) नाश या ध्वंस करना ।

संहारि—क्रि. स. [हिं. संहारना] वध करके, मारकर । उ.—(क) असुर-कुलहिं संहारि धरनि कौ भार उतारौं—४३१ । (ख) अघा-बका संहारि—५८९ । (ग) योधा सुभट संहारि—२६२५ ।

संहारिक—वि. [सं] मार डालनेवाला । (२) नाश या ध्वंस कर देनेवाला ।

संहारी—क्रि. स. [हिं. सँहारना] मार डाली । उ. - सुन्यौ कंस पूतना सँहारी, सोच भयौ ताके जिय भारी—१०-५८ ।

सँहारे, संहारे—क्रि. स. बहु. [हिं. संहारना] मार डाले । उ.—(क) ये बालक तैं वृथा सँहारे—१-१८९ । (ख) सुनि पुकार निसिचर बहु आए, कूदि सबन संहारे - सारा. ८८४ ।

संहारेउ क्रि. स. [हिं. संहारना] मार डाला । उ.—सहस कवच इक असुर सँहारेउ—सारा. ६८ ।

संहारै—क्रि. स. [हिं संहारना] मारे, मारता है । उ.—जीव नाना संहारै—४-१२ ।

सँहारो, संहारो—क्रि. स. [हिं. संहारना] वध करो । उ.—दसकंधर कौं वेगि संहारो—सारा. २५९ ।

संहारौं—क्रि. स. [हिं. संहारना] मार डालूँ, वध कर दूँ । उ.—वेगि संहारौं सकल घोष-सिसु—१०-४९ ।

संहारौ—क्रि. स. हिं. संहारना] मार डाला । उ.—चोंच फारि बका संहारौ—४२७ ।

संहार्य—वि. [सं. संहार्य्य] (१) संग्रह योग्य । (२) निवारण या परिहार के योग्य ।

संहार्‍यो, संहार्‍यो क्रि. स. [हिं. संहारना] मार डाला, वध किया । उ.—सकटा तृत इनहिं संहारयो—५८१ ।

संहित वि. [सं.] (१) एकत्र किया हुआ । (२) जड़ा या लगा हुआ, संबद्ध । (३) सम्मिलित । (४) सहित, संयुक्त । (५) विधि या नियम की संहिता के रूप में प्रस्तुत किया हुआ ।

संहिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल, मिलावट । (२) (व्याकरण में) संधि । (३) वह ग्रंथ जिसका पाठ

प्राचीन काल से गृहीत चला आता हो। (४) विधि-नियम आदि का संग्रह। (५) वेदों का मंत्र-भाग। उ.—तातैं हरि करि ब्यासऽवतार। करी संहिता बेद बिचार—१-२३०।

संहृत—वि. [सं.] (१) एकत्र किया हुआ, संगृहीत। (२ नष्ट, ध्वस्त। (३) समाप्त। (४) (अस्त्र आदि) रोका हुआ, निवारित।

संहृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समेटने की क्रिया। (२) संग्रह। (३) नाश, ध्वंस। (४) अंत, समाप्ति। (५) रोक, परिहार। (६) प्रलय। (७) छीनना, हरण।

स—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संगीत में षड़ज स्वर का सूचक अक्षर। (२) पिंगल में 'सगण' का सूचक अक्षर या उसका संक्षिप्त रूप।

उप. एक उपसर्ग जो शब्दारंभ में जुड़कर 'सह' (जैसे सजीव, सपरिवार), 'स्व' या 'एक ही' (जैसे सगोत्र), 'सु' (जैसे सपूत) आदि अर्थ सूचित करता है।

सइ—अव्य. [सं. सह] से, साथ।

अव्य. [प्रा० सुंतो] एक कारक-चिह्न जो करण और अपादान में लगता है, से, द्वारा।

सइना—संज्ञा स्त्री. [सं. सेना] फौज, सेना।

सइयो—संज्ञा स्त्री. [सं. सखी] सहेली, सजनी।

सइबर, सइवर संज्ञा पुं. [सं. शैवल] सेवार, शैवाल। उ.—चिकुर सइबर निकरि अरुझति सकति नहिं निरुवारि—२०२८।

सउँ—अव्य. [हिं. सों] करण या अपादान कारक का चिह्न, से, द्वारा।

सउजा—संज्ञा पुं. [सं. शावक] शिकार।

सउत—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौत] सपत्नी।

सउतेला—वि. [हिं. सौतेला] विमाता से उत्पन्न।

सक—संज्ञा पुं. [सं. शक] 'शक' जाति।

संज्ञा पुं. [अ. शक़] संदेह, शंका।

संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] शक्ति।

सकट—संज्ञा पुं. [सं. शकट] गाड़ी, छकड़ा। उ.—(क) सकट कौ रूप धरि असुर लीन्हौ—१०-६२। (ख) सहस सकट भरि कमल चलाए—५८३।

सकटा—संज्ञा पुं. [सं. शकट] (१) गाड़ी, छकड़ा। उ.—सब गोपिनि मिलि सकटा साजे—४०२। (२) शकटासुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—नैंकु फटक्यो लात, सबद भयौ आघात, गिरचौ भहरात, सकटा सँहारचौ—१०-६२।

सकटासुर—संज्ञा पुं. [सं. शकट + असुर] कंस का अनुचर एक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—प्रथम पूतना मारि काग सकटासुर पेल्यौ—५८९।

सकटैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. संकटा] सकटासुर ने। उ.—मुहाँचुही सेनापति कीन्हीं, सकटैं गर्व बढ़ायौ—१०-६१।

सकत—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] (१) बल। (२) संपत्ति।

क्रि. अ. [हिं. सकना] सकता है।

प्र०—राखि सकत—रख सकता है। उ.—देखि साहस सकुच मानत राखि सकत न ईस—१-१०६। सकत दिखाइ—(दूसरे को) दिखा सकता है। उ.—चाँपी पूँछ लुकावत अपनी, जुवतिनि कौं नहिं सकत दिखाइ—५५५।

सकता—संज्ञा स्त्री [सं. शक्ति] बल, सामर्थ्य।

सकति—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] बल, सामर्थी।

क्रि. अ. [हिं. सकना] सकती हैं। उ.—(क) बुद्धि रचति तरि सकति न सोधा, प्रेम बिबस ब्रजनारि—६३६। (ख) चिकुर सइबर निकरि अरुझति सकति नहिं निरुवारि—२०२८।

सकती—संज्ञा स्त्री. [सं शक्ति] (१) 'शक्ति' अस्त्र। (२) बल।

सकना, सकनो—क्रि. अ. [सं. शक् या शक्य] कुछ करने में समर्थ या योग्य होना।

क्रि. अ. [सं. शंका] डरना, शंकित होना।

सकपकाना, सकपकानो, सकबकाना, सकबकानो—क्रि. अ. [अनु. सकपक, सकबक] (१) अचरज करना। (२) आगा-पीछा करना, हिचकना। (३) लज्जित होना। (४) ऐसी चेष्टा करना जिससे प्रेम, लज्जा, शंका आदि भाव सम्मिलित रूप से व्यंजित हों।

सकरना, सकरनो—क्रि. अ. [सं. स्वीकरण] (१) मंजूर या स्वीकृति होना। (२) माना जाना।

सकरुण—वि. [सं.] जिसमें दया हो।

सकर्मक—वि. [सं.] वह 'क्रिया' शब्द, वाक्य में जिसका 'कर्म' भी वर्तमान हो।

सकर्मक क्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह 'क्रिया' शब्द जिसका कार्य 'कर्म' पर समाप्त हो।

सकल—वि. [सं.] सब, समस्त। उ.—(क) बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि—९-११०। (ख) मीड़त हाथ सकल गोकुल जन—२५३६।

संज्ञा पुं. (१) समस्त वस्तु, संबंध आदि। उ.—सकल तजि, भजि मन चरन मुरारि—२-३१। (२) निर्गुण ब्रह्म और सगुण प्रकृति।

सकलकल—वि. [सं.] सोलहों कलाओं से युक्त।

सकलात—संज्ञा पुं. [देश.] (१) ओढ़ने की रजाई, दुलाई। (२) सौगात, उपहार। (३) मखमल (कपड़ा)।

सकलाती—वि. [हिं. सकलात] (१) उपहार-रूप में देने योग्य। (२) अच्छा, बढ़िया, उत्तम।

सकलौ—वि. [सं. सकल] सारा, समस्त। उ.—बिनसि जात तेज-तप सकलौ—६-५।

सकसकात—क्रि. अ. [हिं. सकसकाना] डर से काँपता है। उ.—सकसकात तन भीजि पसीना—७४८।

सकसकाना, सकसकानो—क्रि. अ. [अनु.] बहुत डर कर काँपने लगना।

सकसकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सकसकाना] बहुत डर से होने वाली कँपकँपी। उ.—आए हौ सुरति किए ठाठ करख लिये सकसकी धकधकी हिए—२००६।

सकसना, सकसनो, सकसाना, सकसानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) डरना, भयभीत होना। (२) अड़ना, अटकना। (३) फँसना।

सका—संज्ञा पुं. [अ. सक्क़ा] भिश्ती।

सकाए—क्रि. अ. [हिं. सकाना] डरे, भयभीत हुए। उ.—प्रबल बल जानि मन में सकाए—१६०८।

सकात—क्रि. अ. [हिं. सकाना] (१) संदेह या शंका करते हैं। उ.—देखि सैन ब्रज लोग सकात—१०६७। (२) डरता है। उ.—मुक्ता मनौ चुगत जुग खंजन ....। मानौ सूर सकात सरासन उड़िबे कौं अकुलात—३६६। (३) (भय से) संकोच करता या हिचकता है। उ.—इहै बड़ौ दुख गाँव-बास को चीन्हे कोउ न सकात—१०८७।

क्रि. अ. [हिं. सकना] सकता है। उ.—बोलत है बतियाँ तुतरौहीं चलि चरननि न सकात—१०-२९४।

सकान—क्रि. अ. [हिं. सकाना] डरा, भयभीत हुआ। उ.—अति ही कोमल अजान सुनत नृपति जिय सकान तनु बिनु जनु भयौ प्रान मल्लनि पै आए—२६००।

सकाना—क्रि. अ. [सं. शंका] (१) संदेह या शंका करना। (२) डरना, भयभीत होना। (३) डर या भय से संकोच करना या हिचकना। (४) दुखी होना।

सकाने—क्रि. अ. [हिं. सकाना] डरे, भयभीत हुए। उ.—(क) बालक बृच्छ धेनु सबै मन अतिहिं सकाने—४३१। (ख) गये अकुलाइ धाइ मो देखत नेकहुँ नहीं सकाने—पृ. ३२२ (१५)।

सकानै—क्रि. वि. [हिं. सकाना] डरकर, भयभीत होकर। उ.—मानौ मन्मथ फंद त्रास ते फिरत कुरंग सकानै—२०५३।

सकानो, सकानौ—क्रि. अ. [सं. शंका] संदेह या शंका करना। (२) डरना, भयभीत होना। (३) डर या भय से संकोच करना या हिचकना। (४) दुखी होना।

सकान्यो, सकान्यौ—क्रि. अ. [हिं. सकाना] डर या भय से काँपने लगा। उ.—थरथराइ चानूर सकान्यो—२६०६।

सकाम—वि. [सं.] (१) जिसे किसी बात की कामना या इच्छा हो। (२) जिसकी कामना या इच्छा पूरी हो गयी हो। (३) जिसमें कामवासना हो। (४) जो किसी स्वार्थ या फल की इच्छा से काम करे। (५) प्रेम करनेवाला।

सकामा—वि. [सं.] जिस (स्त्री) में काम-वासना हो।

सकामी—वि. [सं. सकामिन्] (१) जिसमें कामना या इच्छा हो। (२) जिसमें काम-वासना हो, विषयी। (३) फल के लोभ से कार्य करनेवाला। उ.—भक्त सकामी दूजो होइ, क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ—३-१३।

सकार—संज्ञा पु. [सं.] (१) 'स' अक्षर। (२) 'स' वर्ण जैसी ध्वनि।

क्रि. वि. [सं. सकाल] सबेरे, प्रातःकाल। उ.—

बहुरि यह मग जाहु-आवहु राति साँझ सकार—११७१।

सकारना, सकारनो—क्रि. अ. [सं. स्वीकरण] (१) **मंजूर या स्वीकार करना।** (२) **'हुंडी' मान्य करना।**

सकारात्मक—वि. [हिं. सकार+आत्मक] **स्वीकृति या सहमति-सूचक (कथन या उत्तर)।**

सकारे, सकारौ—क्रि. वि. [सं. सकाल] (१) **सबेरे, प्रातःकाल।** उ.—पुनि खेलिहौ सकारे—१०-२२६। (२) **नियत समय से पूर्व।** (३) **जल्दी, शीघ्र।**

सकिलना, सकिलनो—क्रि. अ. [हिं. फिसलना] (१) **सरकना।** (२) **सिकुड़ना, सिमटना।** (३) **पूरा या संपादित हो सकना।**

सकीं—क्रि. अ. [हिं. सकना] **समर्थ हुईं।** उ.—तदपि सूर तरि सकीं न सोभा—६२८।

सकी—क्रि. अ. [हिं. सकना] **समर्थ हुई।** उ.—कहि न सकी, रिस ही रिस भरि गई, अति ही ढीठ कन्हाई—३७७।

सकील—वि. [अ. सक़ील] (१) **गरिष्ठ।** (२) **भारी।**

सकुच—संज्ञा पुं., स्त्री. [सं. संकोच] **शर्म, लाज, संकोच।** उ.—(क) मोसौं बात सकुच तजि कहिए—१-३३६। (ख) ताहू सकुच सरन आए की होत जु निपट निकाज—१-१८१। (ग) तातैं मोहिं सकुच अति लागै—३-१३। (घ) सकुच छाँड़ि मैं तोहिं कहत—६७१। (ङ) सबके सकुच गँवाए—७९४।

सकुचत—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] (१) **सिमटता-सिकुड़ता या संकुचित होता है।** उ.—जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ।....। बिदुखि सिंधु सकुचत, सिव सोचत—१०-१४३। (२) (फूल) **मुँदता या संपुटित होता है।** उ.—तरनि किरनहिं परसि मानौ कुमुद सकुचत भोर—३५८। (३) **लज्जा या संकोच करके।** उ.—सकुचत फिरत जो बदन छिपाए, भोजन कहा मँगइए—१-२३९।

सकुचति—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] **संकोच करती है।** उ.—यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर—१०-९३।

सकुचन—संज्ञा पुं. स्त्री. सवि. [हिं. संकोच] **संकोच से।** उ.—जदपि मोहिं बहुतै समुझावत सकुचन लीजतु भानि—२७४७।

सकुचना—क्रि. अ. [हिं. सकुच+ना] (१) **लज्जा या संकोच करना।** (२) **(फूल का) मुँदना या बंद होना।**

सकुचनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं संकोच+नि] **संकोच की।** उ.—भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचनि ओट लई—२७९१।

सकुचनो—क्रि. अ. [हिं. सकुच+नो] (१) **लज्जा या संकोच करना।** (२) **(फूल का) मुँदना या बंद होना।**

सकुचाइ—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] (१) **बंद या संकुचित हो जाता है।** उ.—कुमुद निसि सकुचाइ—१०-३५२। (२) **संकुचित या लज्जित हो जाता है।**

प्र०—गए सकुचाइ—**संकुचित या लज्जित-से हो गये।** उ.—यह बानी सुनतहिं करुनामय तुरत गए सकुचाइ—५५६।

सकुचाई—संज्ञा स्त्री. [सं. सकोच] (१) **संकुचित होने का भाव।** (२) **लज्जा, संकोच।**

सकुचात—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] **सकुचता या संकोच करता है।** उ.—यातैं जिय अकुलात नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी—९-८७।

सकुचातो, सकुचातौ—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] **सकुचता या संकोच करता है।** उ.—मंत्री ज्ञान न औसर पावै कहत बात सकुचातौ—१-४०।

सकुचाना—क्रि. अ. [सं. संकोच] **संकोच करना।**

क्रि. स. (१) **सिकोड़ना।** (२) **लज्जित करना।**

सकुचानी—क्रि. अ. [हिं. सकुचाना] **लजाकर, संकोच करके।** उ.–बैठि गई तरुनी सकुचानी—७९९।

सकुचि—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] **संकोच करके, संकुचित होकर।** उ. (क) कछु चाहौं सकुचि मन मैं रहौं, आपने कर्म लखि त्रासु आवै—१-११०। (ख) सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद तुल्य भगवान—१-८।

प्र.—सकुचि गयौ—**संकुचित हो गया।** उ.—सकुचि गयौ मुख डर तैं—३५४। सकुचि जात—**संकुचित हो जाता है।** उ.—ब्रज-बनिता सब चोर कहति तोहिं लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ—३९९।

सकुचाना, सकुचानो—क्रि. अ. [हिं. सकुचाना] **संकोच**

किया। उ.—जहाँ गयौ तहँ भली न भावत सब कोऊ सकुचानो—१-१०२ ।

सकुची—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] मुँदी या संपुटित हो गयी। उ.—कुमुदिनि सकुची—१०-२३३ ।

सकुचीला, सकुचौहाँ—वि. [हिं संकोच] संकोच करनेवाला, लजानेवाला, संकोची ।

सकुचैं—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] संकोच या ख्याल करें। उ.—ब्रज की ढीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि, सकुचैं न देत गारि झगरत हूँ—१०-२९५ ।

सकुचैए—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] लज्जा या संकोच कीजिए। उ.—गुरु-पितु-गृह बिनु बोलेहु जैए। है यह नीति नाहिं सकुचैए—४-५ ।

सकुच्यौ, सकुच्यौ—क्रि. अ. [हिं. सकुचना] लज्जित या संकुचित हुआ। उ.....सुफलकसुत मन हीं मन सकुच्यो करौं कहा अब काजा—१० उ.-२७ ।

सकुन—संज्ञा पुं. [सं. शकुंत] चिड़िया, पक्षी ।

संज्ञा पुं. [सं. शकुन] शुभ लक्षण ।

सकुनि, सकुनी—संज्ञा स्त्री. [सं. शकुंत] पखेरू, पक्षी ।

संज्ञा पुं. [सं. शकुनि] गांधारी का भाई जो कौरवों का मामा था और जिसके कपट से पांडवों की जुए में हार हुई थी। उ.—भीषम द्रोन करन अस्थामा सकुनि सहित काहू न सरी—१-२४९ ।

सकुपना, सकुपनो—क्रि. अ. [हिं. कोपना] क्रोध या रोष करना ।

सकुल्य वि. [सं.] एक ही कुल या गोत्र का ।

सकूनत—संज्ञा स्त्री. [अ.] रहने की जगह ।

सके—क्रि. अ. [हिं. सकना] (काम करने में) समर्थ हुए। प्र.—रहि न सके—(अपने को) रोकने में समर्थ न हुए। उ.—रहि न सके नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछारयौ—१-१०९ ।

सकेत—संज्ञा पुं. [सं. संकेत] (१) इशारा, संकेत। (२) प्रेमी-प्रेमिका-मिलन का निर्दिष्ट स्थान ।

वि. [सं. संकीर्ण] सँकरा, संकुचित ।

संज्ञा पुं. दुख, कष्ट, विपत्ति ।

सकेतना, सकेतनो—क्रि. अ. [हिं. संकेत] सिकुड़ना, सिमटना, मुँदना, संकुचित होना ।

सकेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सकेत] कष्ट, विपत्ति ।

सकेरना, सकेरनो—क्रि. स. [हिं. समेटना] समेटना ।

सकेरा संज्ञा पुं. [सं. सकाल] शीघ्रता ।

सकेल—क्रि. स. [हिं. सकेलना] इकट्ठा करके ।

सकेलत—क्रि. स. [हिं. सकेलना] दबाता है। उ.—बिदरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिग दंतीनि सकेलत—१०-६३ ।

सकेलना, सकेलनो—क्रि. स. [संकलन] (१) इकट्ठा या एकत्र करना। (२) कसना। (३) दबाना ।

सकेला—संज्ञा स्त्री. [अ. सैक़ल] एक तरह की तलवार ।

सकेलि—क्रि. स. [हिं. सकेलना] एकत्र करके। उ.—नर सकल सकेलि घर के—१० उ.-५२ ।

सकेले—क्रि. स. [हिं. सकेलना] इकट्ठा या जमा किये। उ.—जो बनिता सुत-जूथ सकेले हय-गय बिभव घनेरौ—१-२६६ ।

सकै—क्रि. अ. [हिं. सकना] (कुछ करने में) समर्थ हो। उ.—(क) खाइ न सकै—९-३९। (ख) ऐसी को सकै करि बिनु मुरारी—८-१७ ।

सकोच—संज्ञा पुं. [सं. संकोच] (१) सिकुड़ने की क्रिया। (२) लज्जा। (३) हिचकिचाहट ।

सकोचति—क्रि. स. [हिं. सकोचना] सिकोड़ती है ।

सकोचना, सकोचनो—क्रि. स. [हिं. सकोचना] (१) सिकोड़ना। (२) लजाना। (३) हिचकिचाना ।

सकोड़ना—क्रि. स. [हिं. सिकोड़ना] (१) समेटना। (२) संकुचित करना। (३) तंग या सकरा करना ।

सकोपना, सकोपनो—क्रि. अ. [हिं. कोपना] गुस्सा, कोप या क्रोध करना ।

सकोपित—वि. [सं. स+कुपित] नाराज, क्रुद्ध ।

सकोरना, सकोरनो—क्रि. स. [हिं. सिकोड़ना] (१) समेटना। (२) संकुचित करना। (३) तंग या सँकरा करना ।

सकोरा—संज्ञा पुं. [हिं. कसोरा] मिट्टी की चौड़ी कटोरी की तरह का एक पात्र ।

सकोरत—क्रि. स. [हिं. सकोड़ना] संकुचित करता है। उ.—कैसें बदन सकोरत है—१३१२ ।

सकोरति—क्रि. स. [हिं. सकोड़ना] संकुचित करती है ।

उ.—भौंह सकोरति—१२३३ ।

सकोरि—क्रि. स. [हिं. सकोड़ना] संकुचित करके । उ. —बदन सकोरि भौंह मोरत है—८५६ ।

सकोरै—क्रि. स. [हिं. सकोड़ना] संकुचित करती या सिकोड़ती है । उ.—कबहुँ भ्रू निरखि रिस करि सकोरै —पृ. ३१६ (५८) ।

सकोरचो, सकोरचौ—क्रि. स. [हिं. सकोड़ना] संकुचित किया । उ.—(क) सूरदास प्रभु अंग सकोरचो व्याकुल देख्यो व्याल—५५६ । (ख) बार-बार तुम भौंह सकोरचो—११५० ।

सक्करपारा—संज्ञा पुं. [हिं. शक्कर+पाग] शक्कर में पगा हुआ मैदे का बना एक पकवान । उ.—सक्करपारे सद पागे—१०१८३ ।

सकौ—क्रि. अ. [हिं. सकना] (कुछ करने में) समर्थ हो । उ.—नाथ, सकौ तौ मोहिं उधारौ—१-१३१ ।

सक्करी—संज्ञा स्त्री. [सं. शर्करी] 'शर्करी' नामक छंद ।

सक्का—संज्ञा पुं. [फ़ा. सक्का] भिश्ती, मशकवाला ।

सक्त—वि. [सं.] (१) आसक्त (२) संलग्न ।

सक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] बल, शक्ति । उ.—ताकी सक्ति पाइ हम करैं, प्रतिपालैं बहुरौ संहरैं—४-३ ।

सक्तु—संज्ञा पुं. [सं. शक्तु] सत्तू ।

सक्यो, सक्यौ—क्रि. अ. [हिं. सकना] (कुछ करने में) समर्थ हुआ । उ.—(क) बातैं दूनी देह धरी, असुर न सक्यौ सम्हारि—४३१ । (ख) सरिता-जल चल न सक्यौ—६२३ ।

सक्र—संज्ञा पुं. [सं. शक्र] (१) इंद्र । (२) मेघ ।

सक्रघन—संज्ञा पुं. [सं. शक्रघन] इंद्रास्त्र, वज्र ।

सक्र-सरोवर—संज्ञा पुं. [सं. शक्र-सरोवर] 'इंद्रकुंड' नामक स्थान जो व्रज में है ।

सक्रारि—संज्ञा पुं. [सं. शक्रारि] इंद्र का शत्रु मेघनाद ।

सक्रिय—वि. [सं.] (१) जिसमें क्रिया या क्रियाशीलता भी हो । (२) जो क्रिया-रूप में हो । (३) जिसमें कुछ करके दिखाया जाय ।

सक्रियता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सक्रिय' या क्रियाशील होने का भाव ।

सक्षम—वि. [सं.] (१) जिसमें क्षमता हो । (२) जो कुछ करने में समर्थ हो ।

सखनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सखा+नि] सखाओं को । उ.—ये वसिष्ठ कुल-पूज्य हमारे पालागन कहि सखनि सिखावत—९-१६७ ।

सखर—वि. [हिं. स+खर] (१) तेज धारवाला, पैना (२) तेज, उग्र । (३) प्रबल ।

सखरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. निखरी से अनु.] कच्ची रसोई ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शिखर] पहाड़ी ।

सखा—संज्ञा पुं. [सं. सखिन्] (१) सदा साथ रहनेवाला, संगी । उ.—धूम बढ़चौ लोचन खस्यौ सखा न सूझचौ संग—१-३२५ । (२) दोस्त, मित्र । उ.—सखा विप्र दारिद्र हरचो—१-२६ । (३) साहित्य में 'नायक' का सहचर जो सुख-दुख में उसके साथ रहता है और जिससे वह मन की सब बात कहता है । ये 'सखा' चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक ।

सखाई—संज्ञा पुं. [हिं. सखा] संगी, साथी, सहचर । उ.—मधुकर, तुम हौ स्याम सखाई—३३४४ ।

सखार—वि. [सं. स+हिं. खार (क्षार)] (१) खारा । (२) क्षारयुक्त ।

सखिनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [सं. सखी] सखियों को । उ. आछौ दिन सुनि महरि जसोदा सखिनि बोलि सुध गान करचौ— १०-८८ ।

सखियनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [सं. सखी] सखियों ने । उ. ऐपन की सी पूतरी सब सखियनि कियौ सिंगार - १०-४० ।

सखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सहेली, सहचरी । उ.— हरषी सखी सहेलरी (हो) अनँद भयौ सुभ-जोग-१०-४० । (२) मित्र (स्त्री) । (३) साहित्य में नायिका की सहचरी जिससे वह हृदय की भी बात कहती हो । इसके चार कार्य हैं—मंडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास । (४) एक छंद ।

वि. [अ. सखी] दाता, दानी ।

सखीभाव—संज्ञा पुं. [सं.] वैष्णव भक्ति का एक प्रकार जिसमें भक्त स्वयं को इष्ट या आराध्यदेव की पत्नी या सखी मानकर उसकी सेवा-उपासना करता है ।

सखीसंप्रदाय—संज्ञा पुं. [सं.] वैष्णव भक्तों का वह

संप्रदाय जिसमें सखीभाव की सेवा, उपासना या आराधना की जाती हो।

सखुन—संज्ञा पुं.[फ़ा. सख़ुन] (१) बातचीत, वार्तालाप। (१) कौल, वचन।

मुहा.—सखुन देना—वचन देना। सखुन डालना—(१) कुछ चाहना या याचना करना। (२) कोई बात या प्रश्न पूछना।

(३) कथन, उक्ति। (४) कविता, काव्य।

सखुनतकिया—संज्ञा पुं. [फ़ा.सख़ुन+तकिया] वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगों की जबान पर ऐसा चढ़ जाता है कि बात करते समय बार-बार कहा जाता है, तकियाकलाम।

सख्त—वि. [फ़ा. सख़्त] (१) कड़ा, कठोर। (२) कठिन। (३) कड़ा या कठोर बर्ताव या व्यवहार करनेवाला।

सख्य—संज्ञा पुं. [स.] (१) 'सखा' होने का भाव, सखापन। (२) दोस्ती, मित्रता। (३) भक्ति का वह रूप जिसम इष्टदेव को सखा मानकर सेवा-उपासना की जाय। उ.—वंदन दासपनौं से करै, भक्तनि सख्य-भाव अनुसरै—९-५।

सख्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. सख्य] सख्य-भाव।

सगण—संज्ञा पुं. [सं.] छंदशास्त्र में वह गण जिसमें प्रथम दो वर्ण लघु और अंतिम दीर्घ (IIS) हो।

सगत, सगति, सगती—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] (१) बल, सामर्थ्य। (२) शिव-शक्ति, पार्वती।

सगदा—संज्ञा पुं. [देश.] एक मादक द्रव्य।

सगन—संज्ञा पुं. [सं. सगण] सगण।

संज्ञा पुं. [सं. शकुन] सगुन।

सगनौती—संज्ञा स्त्री. [सं. शकुन] (१) शगुन विचारने की क्रिया या भाव। (२) मंगलपाठ।

सगपहती—संज्ञा स्त्री. [हिं. साग+पहती=दाल] साग मिलाकर बनायी गयी दाल।

सगबग—वि. [अनु.] (१) तरबतर, लथपथ। (२) द्रवित। (३) भरा हुआ, परिपूर्ण।

क्रि. वि. चटपट, शीघ्र, तुरंत।

सगबगाना, सगबगानो—क्रि. अ. [हिं. सगबग] (१) तरबतर या लथपथ होना। (२) शंकित या भयभीत होना। (३) चकित होना।

क्रि. स. (१) तरबतर या लथपथ करना। (२) शंकित या भयभीत करना। (३) चकित करना।

सगर—संज्ञा पुं. [सं.] अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा जिनके साठ हजार पुत्रों को कपिल मुनि ने भस्म कर दिया था। राजा भगीरथ और श्री रामचन्द्र उन्हीं के वंशज थे। उ.—नातो मानि सगर सागर सौं कुस-साथरी परचौ—९-१२२।

वि. [हिं. सगरा] सब।

सगरा—वि. [सं. सकल] सब, समस्त, सकल।

संज्ञा पुं. [सं. सागर] (१) बड़ा जलाशय। (२) समुद्र, सागर, सिंधु।

सगरी—वि. [हिं. सगरा] सब, सारी। उ.—(क) उरहन लै आवति हैं सगरी—१०-३१६। (ख) सूर स्याम जहँ तहाँ खिझावत जो मनभावत, दूरि करौं लंगर सगरी—१०४५। (ग) हौं जानति हौं फौज मदन की लूटि लई सगरी—२१०६।

सगरो, सगरौ—वि. [हिं. सगरा] सारा का सारा, सब का सब। उ.—(क) दूध, दही, माखन लै डारि देत सगरौ—१०-३३६। (ख) अनबोहनी तनक नहिं दैहौं, ऐसेहिं छीनि लेहु बरु सगरौ—पृ. ३३५ (३१)।

सगर्भ—वि. [सं.] सहोदर (भाई)।

सगर्भा—वि. [सं.] (१) गर्भवती। (२) सहोदरा।

सगल—वि. [सं. सकल] सब, सारा।

सगलगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सगा+लगना] (१) बहुत सगापन या आत्मीयता दिखाने की क्रिया या भाव। (२) खुशामद, चापलूसी।

सगला, सगलो—वि. [सं. सकल] सब, कुल, सारा।

सगा—वि. [सं. स्वक्] (१) एक माता से उत्पन्न, सहोदर। (२) निकट संबंध का।

सगाइ, सगाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सगा+आई (प्रत्य.)] (१) सगे होने का भाव, सगापन, आत्मीयता। (२) पारिवारिक या आत्मीयता का संबंध, नाता, रिश्ता। उ.—(क)त्रियनि कहचौ, जग झूठ सगाई—८९६। (ख) सूर स्याम वह गई सगाई वा मुरली के संग—२७२९। (ग) दिवस चारि करि प्रीति सगाई रस लै अनत गए

—२९९३। (घ) सूर जहाँ लगि स्याम गात हैं तिनसे कत कीजिए सगाई—३०५३। (ङ) सूरदास प्रभु रँगे प्रेम रँग जारौं जोग सगाई—३१०९। (च) उनसौं हमसौं कौन सगाई—३२०८। (३) एक या समान वर्ग का होने का भाव या उसकी अवस्था। (४) मँगनी, विवाह का निश्चय। उ.—तासौं तेरी भई सगाई—१० उ.—३२। (५) विधवा या परित्यक्त के साथ पुरुष का वह संबंध जो कुछ जातियों में विवाह के समान ही माना जाता है।

सगापन—संज्ञा पुं. [हिं. सगा+पन] सगा या आत्मीय होने का भाव।

सगारत—संज्ञा स्त्री. [हिं. सगा+आरत (प्रत्य.)] सगा या आत्मीय होने का भाव।

सगी—वि. स्त्री. [हिं. सगा] निकट संबंधवाली, आत्मीयता का परिचय देनेवाली। उ.—वह मूरति, वह सुख दिखरावै सोई सूर सगी—२७९०।

सगुण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्म का वह रूप जो सत्, रज और तम गुणों से युक्त होने के कारण साकार माना जाता है। (२) वह भक्ति-संप्रदाय जिसमें ब्रह्म को 'सगुण' मानकर उसके अवतारों की पूजा-उपासना होती है। सूरदास, तुलसीदास आदि भक्त इसी वर्ग के थे।

सगुणता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सगुण होने का भाव।

सगुणी—वि. [सं. सगुण] सगुण।

सगुन—संज्ञा पुं. [सं. सगुण] सगुण। उ.—सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै—१-४।

संज्ञा पुं. [सं. शकुन] शकुन। उ.—(क) इतनौ कहत नैन उर फरके सगुन जनायौ अंग—९-८३। (ख) निकसत सगुन भले नहिं पाए—३७०।

सगुनई—संज्ञा स्त्री. [सं. सगुण+अई (प्रत्य.)] सगुण होने का भाव, सगुणता। उ.—सूर सगुनई जात मधुपुरी निर्गुन नाम भए—३०९०।

सगुनता—संज्ञा स्त्री. [सं. सगुणता] सगुण होने का भाव, सगुणता।

सगुनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. सगुण+आई (प्रत्य.)] सगुण होने का भाव, सगुणता। उ.—बिछुरत तनु नाम ज्यों हठि तिहिं छिन गई नहीं सगुनाई—२७८४।

सगुनाना, सगुनानौ—क्रि. स. [हिं. सगुन+आना (प्रत्य.)] (१) सगुन या शकुन बतलाना। (२) सगुन या शकुन देखना या निकालना।

सगुनावै—क्रि. स. [हिं. सगुन+आना (प्रत्य.)] शकुन बताता है। उ.—भौंरा इक चहुँ दिसि ते उड़ि-उड़ि करन लागि कछु गावै। उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि अंग अंग सगुनावै—२९४६।

सगुनिया—वि. [हिं. सगुन+इया (प्रत्य.)] शकुन विचारने और बतलानेवाला।

सगुनौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सगुन+औती (प्रत्य)] (१) भावी शुभाशुभ या शकुन विचारने की क्रिया। उ.—बैठी जननि करति सगुनौती। लछिमन राम मिलैं अब मोकौं दोउ अमोलक मोती—९-१६४। (२) मंगलपाठ, मंगलाचरण।

सगुरा—वि. [हिं. स+गुरु] (१) जिसने गुरु से दीक्षा ली हो। (२) जिसने गुरु से कार्य-विशेष की सम्यक् शिक्षा पायी हो।

सगे—वि. बहु. [हिं. सगा] निकट या घनिष्ठ संबंध या आत्मीयता रखनेवाले। उ.—जानति नहीं, कहूँ नहिं देखे, मिलि गई मनहुँ सगे—१३१८।

सगोती, सगोत्र, सगोत्रिय—संज्ञा पुं. [सं. सगोत्र] (१) एक गोत्र के लोग। (२) नाते-रिश्तेदार, भाई-बंधु।

सगौ—वि. [हिं. सगा] प्रेम या आत्मीयता का संबंध रखनेवाला। उ.—तौ लगि यह संसार सगौ है जौ लगि लेहि न नाम—१-७६।

सगौती—संज्ञा स्त्री. [देश.] खाने का मांस।

सग्गा—वि. [हिं. सगा] घनिष्ठ संबंधी।

सघन—वि. [सं.] (१) घना, गँझा हुआ, अविरल। उ.—(क) सघन बृन्दाबन अगम अति जाइ कहुँ न भुलाइ—६१०। (ख) चरति धेनु अपनैं अपनैं रँग, अतिहिं सघन बन चारौ—६११। (२) घनघोर, अटूट, अबिरल। उ.—(क) सघन गुंजत बैठि उन पर भौंरहूँ बिरमाहिं—१-३३८। (ख) गत पतंग राका ससि बिय सँग, घटा सघन सोभात—२१८५। (ग) निसि अँधेरी, बीजु चमकै सघन बरषै मेह—१०-५। (३) ठोस।

सघनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सघन होने का भाव।

सच—वि. [सं. सत्य] (१) जैसा हो वैसा (कहा या लिखा हुआ)। (२) यथार्थ, वास्तविक। (३) सही, ठीक।

सचन—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा करने की क्रिया या भाव।

सचना, सचनो—क्रि. स. [सं. संचयन] (१) इकट्ठा या एकत्र करना। (२) पूरा या संपादित करना। (३) बनाना, निर्माण करना। (४) बचाना, रक्षा करना।

क्रि. अ. [हिं. सजना] सजना।

क्रि. स. सजाना, सज्जित करना।

सचमुच—अव्य. [हिं. सच+मुच (अनु.)] (१) वास्तव में, यथार्थ रूप में। (२) अवश्य, निश्चय, निस्संदेह।

सचरना, सचरनो—क्रि. अ. [सं. संचरण] (१) (किसी बात का) फैलना या संचरित होना। (२) (किसी वस्तु या प्रथा का) प्रचलित या व्यवहृत होना। (३) प्रवेश या संचार करना।

सचराचर—संज्ञा पुं. [सं.] संसार के चर-अचर या स्थावर-जंगम, सभी पदार्थ और प्राणी।

सचरे—क्रि. अ. [हिं. सचरना] प्रविष्ट हुए, संचार किया। उ.—(क) जा दिन तैं सचरे गोपिनि मैं, ताही दिन तैं करत लँगरैया—७३५। (ख) कुटिल अलक भ्रुव चारु नैन मिलि सचरे स्रवन समीप सुमीति—२२२३।

सचल—वि. [सं.] (१) जो अचल न हो, चलता हुआ, गतिशील, जंगम। (२) चंचल।

सचाई—संज्ञा स्त्री. [सं. सत्य, प्रा. सच्च] (१) सच्चापन, सत्यता। (२) यथार्थता।

सचान—संज्ञा पुं. [सं. संचान] बाज पक्षी, श्येन। उ.—हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया पारधि साधे बान। ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान—१-९७।

सचारना, सचारनो—क्रि. स. [हिं. सचारना] (१) (किसी बात को) फैलाना या संचरित करना। (२) (किसी वस्तु या प्रथा को) प्रचलित या व्यवहृत करना। (३) प्रवेश या संचार कराना।

सचावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सच+आवट (प्रत्य.)] सच्चाई, सच्चापन, सत्यता।

सचिंत—वि. [सं.] जिसे चिंता हो, चिंतित।

सचि—क्रि. स. [हिं. सचना] एकत्र या संग्रह करके, बचाकर। उ.—हम शर घात ब्रजनाथ सुधानिधि राखे बहुत जतन करि सचि सचि—२९०२।

सचिक्कण, सचिक्कन—वि. [सं. सचिक्कण] बहुत चिकन या स्निग्ध। उ.—सीस सचिक्कन केस ह्वो बिच सीमंत सँवारि—२०६५।

सचित्—वि. [सं.] ज्ञान या चेतनायुक्त।

सचित्त—वि. [सं.] जिसका ध्यान एक ही ओर हो।

सचिरे—क्रि. अ. [हिं. सचरना] प्रविष्ट हुए। उ.—अंगन सर सचिरे—३१७९।

सचिव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मित्र। (२) वजीर, मंत्री। उ.—कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि एकहिं एक पछारौं—९-१०८।

सची—संज्ञा स्त्री. [सं. शची] इंद्र-पत्नी, इंद्राणी। उ.—सची नृपति सौं यह कहि भाषी। नृप मुनिकै हिरदै मैं राखी—६-७।

क्रि. स. [हिं. सचना] सजायी, सज्जित की। उ.—जो कछु सकल लोक की सोभा लै द्वारका सची री—१० उ.-८६।

सची-सुत—संज्ञा पुं. [सं. शची+सुत] जयंत।

सचु—संज्ञा पुं. [देश.] (१) सुख, आनन्द। उ.—(क) सहज भजै नँदलाल कौं सो सब सचु पावै—२-९। (ख) जौ लै मीन दूध मैं डारै बिनु जल नहिं सचु पावै—२-१०। (ग) कब वह मुख बहुरौ देखौंगी कब वैसो सचु पैहौं—२५१०। (घ) कानन भवन रैनि अरु बासर कहूँ न सचु लहिए—२८९२। (२) खुशी, प्रसन्नता। (३) संतोष।

सचुपाना—क्रि. अ. [हिं. चुपाना] चुप या मौन होना।

क्रि. स. चुप या मौन करना या कराना।

सचेत—वि. [सं. सचेतन] (१) चेतनायुक्त। उ.—ऐरावत अमृत कै प्याए, भयौ सचेत इंद्र तब धाए—६-५। (२) समझदार। (३) सजग, सावधान।

सचेतन—वि. [सं.] (१) जिसमें ज्ञान या चेतना हो। (२) जो जड़ न हो, चेतन। (३) समझदार, चतुर। (४) सजग, सावधान।

सचेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सचेत] (१) सचेत होने का भाव। (२) सजगता, सावधानी।

सचेष्ट—वि. [सं.] (१) जिसमें चेष्टा हो। (२) जो चेष्टा

कर रहा हो।

सचै—क्रि. स. [हिं. सचन] जमा करता है, संग्रह या संचय करता है। उ.—जाकी जहाँ प्रतीति सूर सो सर्वस तहाँ सचै री—२२७०।

सचैन—क्रि. वि. [हिं. स+चैन] सुख के साथ, सानंद। उ.—सूरदास प्रभु सब विधि नागर पीवत हौं रस परम सचैन – २०८७।

सचैयत - संज्ञा स्त्री. [हिं. सच्च+ऐयत (प्रत्य.)] सच्चाई, सच्चापन, सत्यता।

सच्चरित, सच्चरित्र - वि. [सं.] अच्छे चाल-चलनवाला, सदाचारी।

संज्ञा पुं. अच्छा चालचलन, सदाचार।

सच्चर्या—संज्ञा स्त्री. [सं. सच्चर्य्या] सदाचार।

सच्चा—वि. [सं. सत्य] (१) सच बोलनेवाला। (२) यथार्थ, वास्तविक। (३) जो झूठा या बनावटी न हो। (४) जैसा चाहिए उतना और वैसा।

सच्चाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सच्चा+आई (प्रत्य.)] सच्चापन, सत्यता।

सच्चापन—संज्ञा पुं. [हिं. सच्चा+पन] सत्य होने का भाव, सच्चाई, सत्यता।

सच्चाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सच्चा+हट (प्रत्य.)] सच्चा होने का भाव, सत्यता।

सच्चिक्कन—वि· [सं. सचिक्कण] बहुत चिकना।

सच्चित्—संज्ञा पुं. [सं.] (सत्-चित् से युक्त) ब्रह्म।

सच्चिदानन्द—संज्ञा पुं. [सं.] (सत्, चित् और आनंद से युक्त) ब्रह्म।

सच्चिन्मय—वि. [सं.] सत् और चैतन्यस्वरूप।

सच्छंद—वि. [सं. स्वच्छंद] पूर्ण स्वतंत्र।

सच्छत—वि. [सं. सक्षत] घायल।

सच्छास्त्र—संज्ञा पुं. [सं. सद्+शास्त्र] अच्छा या उत्तम शास्त्र।

सच्छी—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. साक्षी] गवाह, साखी।

सच्यो, सच्यौ—क्रि. स. [हिं. सचना] एकत्र या संचित था या किया। उ.—(क) सोधि-सकल गुन काछि दिखायौ अंतर हो जो सच्यौ—१-१७४। (ख) यह मुख अबलौं कहाँ सच्यौ—पृ. ३५० (६७)। (ग) हरि-मुख-कमल सच्यो रस सजनी अति आनंद पियूष पिये—२०३५।

सछोलि—क्रि. स. [हिं. छोलना] छीलकर। उ.—टेंटी टेंट सछोलि कियो पुनि—२३२१।

सज—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजावट] (१) सजन की क्रिया या भाव। (२) बनावट, गढ़न। (३) शोभा। (४) सुन्दरता।

सजग—वि. [सं. सज्ञान] सचेत, सावधान। उ.—कुबलिया मल्ल मुष्टिक चानूर सों होई तुम सजग कहि सबनि ऐंठयौ—२५६३।

सजगता—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजग] (१) सजग रहने या होने की क्रिया या भाव। (२) सावधानी, सतर्कता।

सजदार—वि. [हिं. सज+फ़ा. दार] सुन्दर, सजीला।

सजधज—संज्ञा स्त्री. [हिं. सज+धज (अनु.)] बनाव-सिंगार, सजावट।

सजन—संज्ञा पुं. [सं. सत्+जन] (१) भला या सज्जन व्यक्ति। (२) पति। (३) स्वजन, घनिष्ठ संबंध वाले प्रिय व्यक्ति। उ.—(क) धरी इक सजन कुटुँब मिलि बैठे रुदन बिलाप कराहीं—१-३१९। (ख) सजन-कुटुँब परिजन बढ़े सुत-दारा-धन-धाम—१-३२५। (ग) सजन प्रीतम नाम लै लै दै परस्पर गारि - १०-२६। (४) प्रियतम, उपपति।

वि. [सं.] जिसमें लोग हों, जन सहित।

सजना क्रि. अ. [सं. सज्जा] (१) सज्जित या अलंकृत होना, शृंगार होना, सजाया जाना। (२) भला लगना, शोभा देना, शोभित होना।

क्रि. स. सजाना, सुसज्जित करना।

सजनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजन] सखी, सहेली। उ.—(क) अब लौं कानि करी मैं सजनी बहुतै मूँड़ चढ़ायौ—पृ. ३२२ (१३)। (ख) मदन गोपाल देखत ही सजनी सब दुख सोक बिसारे—२५६९।

सजल—वि. [सं.] (१) जिसमें पानी हो, जल से पूर्ण या युक्त। उ.—सजल देह, कागद तैं कोमल किहिं बिधि राखै प्रान—१-३०४। (२) आँसू भरे या अश्रुपूर्ण (नयन)। उ.—त्रास तैं अति चपल गोलक सजल सोभित छोर—३५८।

सजला—वि. [हिं. मँझला से अनु.] चार सहोदरों में तीसरा

जो दूसरे से छोटा परन्तु अन्तिम से बड़ा हो।

वि. [सं. सजल] जल से भरी हुई।

सजवना, सजवनो—क्रि. स. [हिं॰ सजाना] (१) अलंकृत करना। (२) यथाक्रम रखना।

सजवल—संज्ञा पुं. [हिं. सजना] (१) सजावट। (२) सुन्दरता। (३) तैयारी, उपक्रम। (४) ठाटबाट।

सजवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजना + वाई (प्रत्य.)] सजवाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

सजवाना, सजवानो—क्रि. स. [हिं. सजाना का प्रे.] सुसज्जित करवाना।

सजा, सजाइ, सजाई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सज़ा, हिं. सजा] (१) अपराध का दंड।

प्र०—करौं सजाई—दंड दूँगा। उ.—मेरी बलि औरहिं लै सौंपत, इनकी करौं सजाई—९१६।

(२) कारागार में बंद रखने का दंड।

सजाइ—क्रि. स. [हिं. सजाना] सजाकर। उ.—बहुत धरे जल-माँझ सजाइ—५८२।

सजाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजाना + आई] सजाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

सजागर—वि. [सं.] (१) जो सोता न हो, जागता हुआ। (२) सजग, सतर्क, सावधान।

सजात—वि. [सं.] (१) जो साथ ही जन्मा हो। (२) जो एक ही स्थान पर जन्मे, पले और रहते हों।

सजाति, सजातीय—वि. [सं.] (१) एक ही जाति या वर्ग के (लोग या पदार्थ)। (२) एक ही आकार-प्रकार या आकृति-प्रकृति के (लोग या पदार्थ)।

सजान—वि. [सं. सज्ञान] (१) जानकार, ज्ञाता। (२) होशियार, चतुर।

सजाना, सजानो—क्रि. स. [सं. सज्जा] (१) यथाक्रम या यथास्थान रखना। (२) सँवारना, शृंगार करना, अलंकृत करना। (३) तैयार करना।

सजाय—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजा] दंड।

सजायो—क्रि. स. [हिं. सजाना] सजाकर या सँवारकर तैयार किया या रखा। उ.—सद माखन घृत दही सजायौ—१०१९०।

सजाव—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का दही।

संज्ञा पुं., स्त्री. [हिं. सजाना] सजावट, बनाव।

सजावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजाना] (१) सज्जित या सजे हुए होने का भाव या धर्म। (२) शोभा। (३) तैयारी, उपक्रम। (४) ठाट।

सजावना, सजावनो—संज्ञा पुं. [हिं. सजाना] (१) सजाने या अलंकृत करने की क्रिया। उ.—स्फटिक सिंहासन मध्य राजत हाटक सहित सजावनो—२२८०। (२) तैयार या सुसज्जित करने की क्रिया।

क्रि. स. [हिं. सजाना] सजाना।

सजावहु—क्रि. स. [हिं. सजाना] तैयार करो। उ.—बल समेत तन कुसल सूर प्रभु हरि आये आरती सजावहु—१० उ. २३।

सजि—क्रि. अ. [हिं. सजाना] (१) अस्त्रशस्त्र से सज्जित या प्रस्तुत होकर। उ.—ब्रज पर सजि पावस दल आयौ—२८१९। (२) धारण करके। उ.—घन तन दिव्य कवच सजि—९-१५८। (३) अलंकृत होकर। उ.—अंग सुभग सजि ह्वै मधु मूरति—१०-४९। (४) सजाकर, तैयार करके। उ.—अगम सिंधु जतननि सजि नौका हठि क्रम भार भरत—१-५५।

सजियो—क्रि. स. [हिं. सजाना] (सप्रेम या सरुचि) रखी या डाली जाय। उ.—नाहिंन मीन जीवत जल बाहर गो घृत मैं सजियो—३१४७।

सजी—क्रि. अ. [हिं. सजना] (१) (अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर) प्रस्तुत हुई। उ.—जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संग सजी अघ-सैनी—९-११। (२) संबद्ध की, सुशोभित की। उ.—मुरली अधर सजी बलबीर—६५८।

सजीव—वि. [सं. सजीव] (१) जिसमें प्राण हो। (२) ओजयुक्त, ओजस्वी।

सजीला—[हिं. सजना + ईला] (१) सजधज से रहनेवाला, छैल-छबीला। (२) सुन्दर, सुडौल।

सजीव—वि. [सं.] (१) जिसमें प्राण या जीवन हो। (२) जिसमें ओज या तेज हो। (३) जो बहुत तेज या फुर्तीला हो।

संज्ञा पुं. प्राणी, जीवधारी।

सजीवता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सजीव होने का भाव।

सजीवन, सजीवनि, सजीवनी—संज्ञा स्त्री. [सं. संजीवन, हिं. संजीवनी] (१) संजीवनी नामक बटी जो मरे हुए को भी जिलानेवाली कही जाती है। उ.—सूरदास मनु जरी सजीवनि श्री रघुनाथ पठाई—९-८०। (२) वह व्यक्ति या पदार्थ जो संजीवनी के समान प्राण या जीवनदाता हो। उ.—कोउ कोउ उबरचौ साधु-संग जिन स्याम-सजीवनि पायौ—२-३२।

सजीवनमूर, सजीवनमूरी, सजीवनमूल, सजीवनमूली, सजीवनिमूर, सजीवनिमूरी, सजीवनिमूल, सजीवनिमूली - संज्ञा स्त्री. [हिं. संजीवनी+मूल] (१) संजीवनी नामक बूटी जो मृतकों को भी जिलानेवाली मानी जाती है। (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति या वस्तु।

संजीवनी मंत्र—संज्ञा पुं. [सं. संजीवन+मंत्र] (१) वह (कल्पित) मंत्र जो मृतक को भी जिला लेनेवाला माना जाता है। (२) वह मंत्र जिससे कोई कार्य सुगमता से हो जाय।

सजुग—वि. [हिं. सजग] सचेत, सतर्क।

सजूरी—संज्ञा स्त्री. [देश. या अनु. खजूरी] एक तरह की मिठाई। उ.—(क) माधुरि अति सरस सजूरी। (ख) घेवर मालपुआ मोतिलाड़ू सधर सजूरी सरस सँवारी —१०-२२७।

सजैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सजा] अपराध का दंड।

प्र.—करौं सजैया—अपराध का दंड दूँ। उ.—आवन तौ घर देहु स्याम को जैसी करौं सजैया—८६२।

सजोना, सजोनो—क्रि. स. [हिं. सजाना] (१) सज्जित करना। (२) सामान इकट्ठा करना।

सजोयल—वि. [हिं. सँजोना या सजाना] सजी हुई, क्रमबद्ध। उ.—स्याम घटा गज असन बाजि रथ चित बगपाँति सजोयल—२८१९।

सज्ज—संज्ञा पुं. [हिं. साज] (१) सजावट। (२) ठाट-बाट। (३) सामग्री।

सज्जन—वि. [सं. सत्+जन] (१) शरीफ, भला। (२) अच्छे वंश या कुल का।

सज्जनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भलमंसी; सौजन्य।

सज्जनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. सज्जनता] भलमंसी।

सज्जा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सजाने की क्रिया या भाव, सजावट। (२) वेश-भूषा। (३) कार्य-विशेष से संबंधित साधन या उपकरण। (४) उन साधनों या उपकरणों को व्यवस्थित करना।

संज्ञा स्त्री. [सं. शय्या] (१) चारपाई, पलँग, शैया। उ.—आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर कर-पल्लव पलुटावति—६५५।

वि. [हिं. सारा] पूरा, साबुत।

सज्जित—वि. [सं.] (१) सजा हुआ, अलंकृत। (२) आवश्यक साधनों से युक्त।

सज्जी—संज्ञा स्त्री. [सं. सर्जिका] एक तरह का क्षार।

वि. स्त्री [हिं. सज्जा] पूरी, साबुत।

सज्जे—वि. बहु. [हिं. सज्जा=पूरा] पूरे, साबुत।

सज्ञान—वि. [सं.] (१) ज्ञानवान। (२) चतुर, सयाना। (३) विवेकयुक्त, बुद्धिमान।

सज्या—संज्ञा स्त्री. [सं. सज्जा] (१) सजधज, सजावट। (२) वेश-भूषा।

संज्ञा स्त्री. [सं. शय्या] पलँग, शैया। उ.—भीषम सर-सज्या पर परचौ—१-१७६।

सट—संज्ञा पुं. [सं.] जटा।

सटक—संज्ञा स्त्री. [अनु. सट] (१) सटकने की क्रिया। (२) धीरे से या चुपचाप चल देना। (३) पतली छड़ी। (४) हुक्का पीने की लचीली नली या नैचा।

सटकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सटकना] सटकने या चुपचाप चंपत होने की क्रिया।

सटकना, सटकनो—क्रि. अ. [अनु. सट] धीरे से खिसक जाना या चंपत हो जाना।

क्रि. स. अन्न की बालों से अनाज निकालने के लिए उन्हें कूटना-पीटना।

सटकाना, सटकानो—क्रि. स. [हिं. सटकना] (१) छड़ी या कोड़े से 'सट' शब्द करते हुए मारना। (२) 'सट-सट' करते हुए हुक्का पीना।

सटकार—संज्ञा स्त्री. [अनु. सट] (१) सटकने, झटकने या फटकारने की क्रिया या भाव। (२) पशुओं को हाँकने की क्रिया। उ.—सारथी पाय रुख दये सटकार हय द्वारकापुरी जब निकट आई—१० उ.-१५६।

सटकारना, सटकारनो—क्रि. स. [हिं. सटकार] (१)

पतली छड़ी या कोड़े से 'सटसट' शब्द करते हुए मारना। (२) झटकारना। (३) पशुओं को हाँकना।

सटकारा—वि. [अनु.] चिकने और लंबे (बाल)।

सटकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सटकार] पतली-लंबी छड़ी।

सटकि—क्रि. अ. [हिं. सटकना] धीरे से चंपत होकर, चुपचाप खिसककर।

प्र०—गयौ सटकि—चुपचाप या धीरे से खिसक गया। उ.—असुर यह घात तकि गयौ रन ते सटकि—१० उ.-३५।

सटका—संज्ञा पुं. [अनु. सट] दौड़, झपट।

मुहा.—सटक्का मारना—दौड़ या झपट कर चले जाना।

सटना, सटनो—क्रि. अ. [सं. स+स्था] (१) दो चीजों का इस प्रकार एक में मिलना या लगना कि दोनों पार्श्व या तल एक दूसरे से लग जायँ। (२) चिपकना। (३) साथ होना, मिलना।

सटपट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) इधर-उधर की या व्यर्थ की बातें या काम। (२) शील, संकोच। (३) दुबिधा, असमंजस। (४) डर, भय। (५) सटपटाने की क्रिया, घबराहट, चकपकाहट।

सटपटाना, सटपटानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) 'सटपट' की ध्वनि होना। (२) घबराना।

सटर-पटर—वि. [अनु. सटपट] छोटा-मोटा, तुच्छ या व्यर्थ का (काम)।

संज्ञा स्त्री. (१) झंझट या उलझन का काम। (२) तुच्छ या व्यर्थ का काम।

सटसट—क्रि. वि. [अनु.] (१) 'सट' शब्द के साथ, सटासट। (२) शीघ्र, तुरंत।

सटा—संज्ञा स्त्री. [सं. सट या हिं. जटा] (१) घोड़े या शेर की गरदन के बाल, अयाल, केसर। (२) जटा। (३) चोटी, शिखा।

सटाक—संज्ञा पुं. [अनु.] 'सट' शब्द।

सटान—संज्ञा स्त्री. [हिं. सटना] (१) सटने की क्रिया या भाव। (२) सटने या मिलने का जोड़।

सटाना, सटानो—क्रि. स. [हिं. सटना] (१) दो चीजों को इतने समीप करना कि उनका तल या पार्श्व परस्पर मिल जाय। (२) मिलाना, जोड़ना, चिपकाना।

सटाय—वि. [देश.] घटिया, खराब।

सटाल—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह, केसरी।

सटियल—वि. [हिं. सड़ियल (अनु.)] घटिया, खराब।

सटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सटाना] (१) गुप्त रूप से कुचक्र या षड्यंत्र रचकर किसी को अपनी ओर मिलाने की क्रिया। उ.—उनहूँ जाइ सौंह दै बूझी, मैं करि पठयौ सटिया—१-१९२। (२) एक तरह की चूड़ी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साँटी] पतली छड़ी।

सटीक—वि. [सं.] जिसमें (मूल के साथ) टीका-व्याख्या भी हो।

वि. [हिं. ठीक] जैसा चाहिए ठीक वैसा ही।

सट्टा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) इकरारनामा। (२) खरीद-बिक्री का वह प्रकार जो केवल तेजी-मंदी के विचार से अतिरिक्त लाभ के लिए होता है।

संज्ञा पुं. [हिं. हाट या सट्टी] हाट, बाजार।

सट्टा-बट्टा—संज्ञा पुं. [हिं. सटना+अनु. बट्टा] (१) हेलमेल (२) अनुचित संबंध। (३) चालबाजी।

मुहा.—सट्टा-बट्टा लड़ाना—कार्य-सिद्धि के लिए अनुचित चाल चलना।

सट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हट्टी] हाट, बाजार।

मुहा.—सट्टी मचाना—हाट-बाजार जैसा शोर करना। सट्टी लगाना—बहुत सी चीजें इधर-उधर बिखरा या फैला देना।

सठ—वि. [सं. शठ] (१) मूर्ख, बुद्धिहीन। उ.—(क) इते मान यह सूर महासठ हरि-नग बदलि विषय-बिष आनत—१-११४। (ख) रे सठ, बिन गोविंद सुख नाहीं—१-३२३। (२) दुष्ट।

सठई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सठ] (१) दुष्टता। (२) मूर्खता।

सठता—संज्ञा स्त्री. [हिं. सठ] (१) मूर्खता। (२) शठता।

सठमति—वि. [सं. शठ+मति] (१) मूर्ख। (२) दुष्ट।

सठियाना, सठियानो—क्रि. अ. [हिं. साठ+इयाना (प्रत्य)] (१) साठ वर्ष का होना। (२) बुड्ढा होना। (३) बूढ़ा हो जाने से विवेक का कम हो जाना, बूढ़ा होकर बुद्धि खो-बैठना।

सड़क—संज्ञा स्त्री. [अ. शरक़] चौड़ा मार्ग, राजपथ।

सड़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. सड़ना] सड़ने (विकार और दुर्गंध आने) की क्रिया या भाव।

सड़ना – क्रि. अ. [हिं. सड़न] (१) किसी पदार्थ में विकार और दुर्गंध आने लगना। (२) पानी मिले पदार्थ में खमीर उठना या आना। (३) बुरी, गिरी हुई या हीन दशा में रहना।

सड़सठ—संज्ञा पुं. [हिं. सड़ (=सात) + साठ] वह संख्या जो साठ से सात अधिक हो।

सड़ाना—क्रि. स. [हिं. सड़ना] (१) किसी पदार्थ में विकार और दुर्गंध आने तक डाल रखना। (२) पानी मिले पदार्थ में खमीर उठाना। (३) बुरी या हीन दशा में डाल रखना।

सड़ायँध—संज्ञा स्त्री. [हिं. सड़न+गंध] किसी चीज के सड़ने पर उसमें से आनेवाली दुर्गंध।

सड़ाव—संज्ञा. पुं. [हिं. सड़ना] सड़ने की क्रिया या भाव।

सड़ासड़ – क्रि. वि. [अनु. सड़] (१) 'सड़सड़' शब्द के साथ। (२) बहुत जल्दी-जल्दी।

सड़ियल—वि. [हिं. सड़ना+इयल (प्रत्य.)] (१) सड़ा-गला। (२) रद्दी, खराब। (३) तुच्छ, निकम्मा।

सत—वि. [सं. सत्] (१) सत्य। उ.—(क) भीषम परतिज्ञा सत भाषी—५६९। (ख) आध पैंड़ बसुधा दै राजा, नातरु चलि सत हारी—८-१४। (२) साधु, सज्जन। (३) नित्य, स्थायी। (४) शुद्ध, पवित्र। (५) श्रेष्ठ, उत्तम।

संज्ञा पुं. (१) सत्यतापूर्ण धर्म या आचरण। उ.—(क) सतजुग सत त्रेता तप कीजै द्वापर पूजा चारि—२-२। (ख) सत-संजम तीरथ-ब्रत कीन्हैं—१०-१६।

मुहा.—सत पर चढ़ना – पति के मृत शरीर के साथ पत्नी का सती होना। सत पर रहना (से न हटना)—पतिव्रता रहना। सत न टरई—सदा पातिव्रत-धर्म का आचरण करेगी, सती रहेगी, उसका पातिव्रत धर्म दृढ़ और अटल रहेगा। उ.– श्री रघुनाथ-प्रताप पतिव्रत सीता सत न टरई – ९-७८।

(२) भक्ति का एक रूप। उ.—माता, भक्ति चारि परकार। सत रज तम गुन सुदधा सार—३-१३।

संज्ञा पुं. [सं. सत्व] (१) प्रकृति के तीन गुणों में एक जो सबसे उत्तम है और जिसके लक्षण ज्ञान, शांति, शुद्धता आदि हैं। (२) मूल तत्व, सार भाग। (३) जीवनी शक्ति।

वि. [सं. शत] सौ। उ.— (क) सत-सत अघ प्रति रोमनि—१-१९२। (ख) धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिएँ—१०-९९।

वि. [हिं. सात] (१) 'सात' का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों के आरंभ में प्रयुक्त होता है। (२) सात, जो संख्या में सात हो।

सतएँ—अव्य. [हिं. सात] (जन्मकुंडली के) सातवें घर या स्थान में। उ.—ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं सतएँ राहु परे हैं—१०-८६

सतकार—संज्ञा पुं. [सं. सत्कार] आदर-सम्मान।

सतकारना, सतकारनो—क्रि. स. [सं. सत्कार+ना] आदर-सत्कार करना।

सतगुरु—संज्ञा पुं. [सं. सत् + गुरु] (१) सच्चा और उत्तम गुरु या दीक्षक। उ. – (क) सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि जिनि भ्रम सकल निवारयौ—१-३३६। (ख) सब्दहिं सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ — ४-१३। (ग) सतगुरु-कृपा-प्रसाद कछुक तातैं कहि आवै —४९२। (घ) माथे नहीं महावत सतगुरु अंकुस ध्यान कर टूटो—३४०१। (२) परमात्मा।

सतजुग—संज्ञा पुं. [सं. सत्ययुग] चार युगों में पहला जिसे 'कृत युग' भी कहते हैं। पुण्य और सत्यता की अधिकता के कारण यह युग सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। उ.—(क) सतजुग लाख बरस की आइ—१-२३०। (ख) सतजुग सत त्रेता तप कीजै द्वापर पूजा चारि — २-२।

सतत—अव्य. [सं.] सदा, निरंतर। उ.—नैन चकोर सतत दरसन ससिकर अरचन अभिराम—२-१२।

सततगति—संज्ञा पुं. [सं.] हवा, वायु।

सतदल—संज्ञा पुं. [सं. शतदल (सौ दलवावा)] कमल। उ.—कनकवेलि सतदल सर मंडित हृद तर लता लवंग —३३२७।

सतनजा—संज्ञा पुं. [हिं. सात + अनाज] वह मिश्रण जिसमें सात तरह के अनाज हों।

सतपतिया—वि. [हि. सात+पति] (१) जिसके सात पति हों। (२) व्यभिचारिणी।

सतपदी—संज्ञा स्त्री. [सं. सप्तपदी] भाँवर, भँवरी।

सतपात—संज्ञा पुं. [सं. शतपत्र] कमल।

सतफेरा—संज्ञा पुं. [हि. सात+फेरा] भाँवर, भँवरी।

सतभाई—क्रि. वि. [सं. सद्भाव] सच्चे या अच्छे भाव से। उ.—जूठनि की कछु संक न मानी विदा किए सत भाई—१-१३।

सतभाएँ—क्रि. वि. [सं. सद्भाव] (१) अच्छे भाव से। (२) सच्चाई के साथ, सत्यतापूर्वक।

सतभामा—संज्ञा स्त्री. [सं. सत्यभामा] सत्यभामा जो श्रीकृष्ण की एक पटरानी थी। उ.—सतभामा करि सोक पिता को जदुपति पास सिधाई—१० उ.-२७।

सतभाय, सतभाव—संज्ञा पुं. [सं. सद्भाव] (१) अच्छा भाव। (२) सीधापन। (३) सच्चापन, सच्चाई। उ.—हँसत कहत कीधौं सतभाव—१२४०।

क्रि वि. (१) अच्छे भाव से। (२) सच्चाई के साथ।

सतभौंरी—संज्ञा स्त्री. [हि. सात+भँवरी] भाँवर, भँवरी।

सतम—वि. [सं. शत] सौवाँ। उ.—रिषिनि कह्यौ, तुव सतम जज्ञ आरंभ लखि इंद्र कौ राज-हित कँप्यौ हीयौ—४-११।

सतमख—वि. [सं. शत+मख] सौ यज्ञ करनेवाला।

संज्ञा पुं. देवराज इन्द्र।

सतमासा—वि. [हि. सात+मास] सातवें महीने जन्मनेवाला (शिशु)।

संज्ञा पुं. वह रसम जो शिशु के गर्भ में आने पर सातवें महीने की जाती है।

सतयुग—संज्ञा पुं. [सं. सत्ययुग] चार युगों में पहला जो 'कृतयुग' भी कहलाता है। पुण्य और सत्य की अधिकता के कारण यह युग अन्य तीनों युगों से श्रेष्ठ समझा जाता है।

सतरंग, सतरंगा वि. [हि. सात+रंग] जिसमें सात रंग हों, सात रंगवाला।

संज्ञा पुं. इन्द्रधनुष।

सतरंज—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शतरंज] एक प्रसिद्ध खेल।

सतर—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) लकीर, रेखा। (२) कतार, पंक्ति, अवली।

वि. (१) टेढ़ा, वक्र। (२) कुपित, क्रुद्ध। उ.—(क) हमसौं सतर होत सूरज प्रभु कमल देहु अब जाइ—५३७। (ख) कहा हमारी मन यह राखै अरु हमहीं पर सतर गई—१२६७। (ग) सतर होति काहे को माई—पृ. ३२३ (२७)।

क्रि. वि. [सं. सत्वर] जल्दी से।

सतरह—संज्ञा पुं. [हि. सत्तरह] (१) वह संख्या जो दस से सात अधिक हो। (२) सतरह की संख्या जो अष्टांग योग और नवधा भक्ति की सूचक मानी जाती है। अथवा पासे के खेल का वह दाँव जिसमें दो छक्के और एक पंजा साथ-साथ पड़ते हैं। उ.—राखि सतरह मुनि अठारह चोर पाँचों मारि—१-३०९।

सतराइ—क्रि. अ. [हि. सतराना] क्रोध करके, कुपित होकर। उ.—लाज नहीं तुम आवई बोलत जब सतराइ—११३३।

सतराई—संज्ञा स्त्री. [सं. शत्रु+आई] दुश्मनी, शत्रुता। उ.—कोउ कहै होई करम दुखदाता। सो तौ मैं न कीन्ह सतराई।

सतरात—क्रि. अ. [हि. सतराना] कोप या क्रोध करता है। उ.—(क) काहे को सतरात, बात मैं साँची भाषत—१०१८। (ख) आदि-बुन्यादि सबै हम जानति काहे को सतरात—११२४। (ग) सुनहु सखी सतरात इते पर हम पर भौहैं तानत—पृ. ३२८ (७७)।

सतराति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. सतराना] कोप या क्रोध करती हो (हूँ)। उ.—(क) धन तुम लिए फिरति हौ, दान देत सतराति—१०३६। (ख) नित ही नित बूझति ये मोसौं मैं इन पर सतराति—१६१३। (ग) बहियाँ गहत सतराति कौन पर—२०४७।

सतराना, सतरानो—क्रि. अ. [हि. सतर] (१) कुढ़ना, चिढ़ना। (२) कोप या क्रोध करना।

सतरानी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. सतराना] कुपित या क्रुद्ध हुई। उ.—जाइ करौ ह्वाँ बोध सबनि को मोपर कत सतरानी—१८८३।

सतराने—क्रि. अ. [हि. सतराना] कुपित या क्रुद्ध हुए। उ.—तुमहिं उलटि हम पर सतराने—११३६।

सतराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सतराना+हट] (१) चिढ़, कुढ़न। (२) गुस्सा, कोप, क्रोध।

सतरौहाँ—वि. [हिं. सतराना] (१) क्रुद्ध, कुपित। (२) कोप या क्रोध-सूचक।

सतर्क—वि. [सं.] (१) तर्कयुक्त। (२) सचेत।

सतर्कता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सावधानी।

सतर्पना, सतर्पनो—क्रि. स. [सं. सतर्पण] भली-भाँति तुष्ट या तृप्त करना।

सतलज—संज्ञा स्त्री. [सं. शतद्रु] शतुद्र नदी जो पंजाब की पाँच प्रसिद्ध नदियों में एक है।

सतलड़ा—वि. [हिं. सात+लड़] जिसमें सात लड़ें हों।

संज्ञा पुं. हार जिसमें सात लड़ें हों।

सतलड़ी—वि. स्त्री. [हिं. सात+लड़ी] जिसमें सात लड़ियाँ हों।

संज्ञा स्त्री. सात लड़ियों की माला।

सतवंती, सतवती—वि. स्त्री. [हिं. सत्य+वंती] सती, पतिव्रता।

सतसंग—संज्ञा पुं. [सं. सत्संग] भली संगत, साधु-सज्जनों का साथ। उ.—सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयिनि सँग बिसरामी—१-१४८।

सतसंगति—संज्ञा स्त्री. [सं. सत+हिं. संगत] भली संगत, साधु-सज्जनों का साथ, सत्संग। उ.— अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैं कछु पैहै—१-८६।

सतसंगी—वि. [सं. सत्संगी] सत्संग करनेवाला।

सतसई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सात+सं. शती] (१) एक ही तरह की सात सौ चीजों का समूह। (२) वह ग्रंथ जिसमें सात सौ छंदों (विशेषतया दोहों) का संग्रह हो।

सतसठ—वि. [हिं. सात+साठ] सड़सठ।

सत-सार—संज्ञा पुं. [सं. सत्य+सार] (१) सार-तत्व। (२) प्राण या जीवन शक्ति। उ.—निसा निमेष कपाट लगौ बिनु ससि मूषत सत-सार—२८८८।

सतह—संज्ञा स्त्री. [अ.] वस्तु का ऊपरी तल।

सतहत्तर—संज्ञा पुं. [सं. सप्तसप्तति, पा. सत्तसत्तति, प्रा. सत्तहत्तरि] सत्तर से सात अधिक की संख्या।

सतहरा—वि. [सं. सत्व+हिं. हारना] जिसने सत्य (हारकर) छोड़ दिया हो।

सतांग—संज्ञा पुं. [सं. शतांग] रथ, यान।

सताए—क्रि. स. [हिं. सताना] पीड़ित किया (किये)। उ.—(क) राज-धर्म सुनि इहै सूर जिहिं प्रजा न जाहिं सताए—३३-६३। (ख) सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिना मदन की ताप सताए—३३८३।

सतानंद—संज्ञा पुं. [सं.] राजा जनक के पुरोहित जो गौतम ऋषि के पुत्र थे।

सताना, सतानो—क्रि. स. [सं. संतापन, प्रा. संतावन] तंग करना, कष्ट या दुख देना।

सतायो, सतायौ—क्रि. स. [हिं. सताना] पीड़ित किया, दुख दिया। उ.—(क) दुरबासा अँबरीष सतायौ—१-३८। (ख) कह्यौ सुरनि, तुम रिषिहिं सतायौ, तातैं कर रहि गयौ उचायौ—९-३। (ग) इन नैननि मोहिं बहुत सतायौ पृ. ३२२ (१३)।

सतावत—क्रि. स. [हिं. सतावना] कष्ट देता या पीड़ित करता है, दुख देता है। उ.—ऊधौ, इतने मोहिं सतावत—३०७६।

सतावति—क्रि. स. [हिं. सतावना] कष्ट देती है। उ.—प्रभु तुव माया मोहिं सतावति—१-२२६।

सतावना, सतावनो—क्रि. स. [हिं. सताना] तंग करना, दुख या संताप देना।

सतावै—क्रि. स. [हिं. सतावना] दुख या संताप देता है। उ.— नाहिनैं नाथ जिय सोच धन-धरनि कौ, मरन तै अधिक यह दुख सतावै—१० उ.-५०।

सति—संज्ञा पुं. [सं. सत्य] सत्य।

सतिभाइ—क्रि. वि. [सं. सत्य+भाव] सद्भाव से। उ.— पवनपुत्र बोल्यौ सतिभाइ—९-१५५।

सतिभाउ, सतिभाऊ—क्रि. वि. [सं. सत्य+भाव] सद्भावना के साथ। उ.— की तू कहति बात हँसि मोसौं की बूझति सतिभाऊ—१२६०।

सतिभाएँ, सतिभायें—क्रि. वि. [सं. सत्य+भाव] सद्भावना से। उ.—(क) पूछे समाचार सतिभाएँ—१-२८४। (ख) सुख सजनी सतिभायें सँवारी—१० उ.—३९।

सती—वि. स्त्री. [सं.] (१)पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का पतिभाव से ध्यान न करनेवाली, पतिव्रता,

साध्वी । उ.—सूरदास स्वामी सौं विमुख ह्वै सती कैसें भोग—१-३२१ । (२) पति के शव के साथ अथवा उसके मरने पर किसी भी अन्य प्रकार से प्राण त्याग देनेवाली (स्त्री) ।

संज्ञा स्त्री. (१) दक्ष प्रजापति की कन्या जो शिवजी को ब्याही थी । उ.—(क) सती दच्छ की पुत्री भई। दच्छ सो महादेव कौं दई—४-५ ।

वि. पुं. [सं. सत+ई] सच्चा, सत्यनिष्ठ । उ.—जती सती तापस आराधैं—१-२६३ ।

सतीचौरा—संज्ञा पुं. [सं. सती+चौरा] वह चबूतरा या वेदी जो किसी पतिव्रता के सती होने के स्थान पर, उसकी स्मृति में, बनाया जाता है ।

सतीत्व—संज्ञा पुं. [सं.] सती होने का भाव, पातिव्रत ।

सतीपन—संज्ञा पुं. [सं. सती+पन (प्रत्य.)] सतीत्व, पातिव्रत धर्म ।

सतुआ—संज्ञा पुं. [हिं. सत्तू] सत्तू ।

सतून—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुतून] खंभा, स्तंभ ।

सतूना—संज्ञा पुं. [हिं. सतून] बाज की वह झपट जिसमें वह शिकार के ठीक ऊपर से एक बारगी उस पर टूट पड़ता है ।

सतृष्ण—वि. [सं.] जिसमें तृष्णा हो ।

सतोखना, सतोखनो—क्रि. स. [सं. सतोषण] (१) प्रसन्न या संतुष्ट करना । (२) धैर्य या सांत्वना देना ।

सतोगुण—संज्ञा पुं. [सं. सत्वगुण] प्रकृति के तीन गुणों में सर्वोत्तम जो सत्कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है ।

सतोगुणी—वि. [हिं. सतोगुण] जो सत्वगुण से युक्त हो, सात्विक ।

सतौसर—वि. [सं. सप्तसृक] सतलड़ा ।

सत्—संज्ञा पुं. [सं.] सत्यतापूर्ण धर्म ।

वि. [सं. शत] सौ ।

संज्ञा पुं. [सं. सत्व] (१) किसी पदार्थ का मूल तत्व, सार भाग । (२) जीवनी शक्ति ।

सत्कर्ता—वि. [सं. सत्कर्तृ] (१) अच्छा कार्य या सत्कर्म करनेवाला । (२) सत्कार करनेवाला ।

सत्कर्म—संज्ञा पुं. [सं. सत्कर्मन्] (१) अच्छा काम । (२) पुण्य, धर्मकाय । (३) अच्छा संस्कार ।

सत्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनेवाले का आदर-सम्मान । उ.—सूरदास सत्कार किएँ तैं ना कछु घटै तुम्हारौ—१-२१५ । (२) धन आदि भेंट देकर किया जानेवाला आदर-सम्मान । (३) आतिथ्य ।

सत्कारक—वि. [सं.] सत्कार करनेवाला ।

सत्कार्य—संज्ञा पुं. [सं. सत्कार्य्य] उत्तम कार्य ।

सत्कार्य्य—वि. [सं.] (१) सत्कार करने योग्य । (२) जिसका सत्कार करना हो । (३) जिस (मृतक) का क्रिया-कर्म करना हो ।

संज्ञा पुं. उत्तम कार्य ।

सत्कार्य्यवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह दार्शनिक सिद्धांत जिसके अनुसार इस जगत की उत्पत्ति किसी मूल सत्ता से मानी जाती है ।

सत्कीर्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. सत्कीर्ति] उत्तम कीर्ति ।

सत्कुल—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम कुल ।

सत्कृत—वि. [सं.] (१) उत्तम रीति से किया हुआ । (२) जिसका आदर-सत्कार किया गया हो ।

संज्ञा पुं. (१) आदर-सत्कार । (२) सत्कर्म ।

सत्कृति - वि. [सं.] सत्कर्मी ।

संज्ञा स्त्री. उत्तम कार्य या कृति ।

सत्क्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आदर-सत्कार । (२) आतिथ्य । (३) तैयारी । (४) सत्कर्म ।

सत्त—संज्ञा पुं. [सं. सत्व] (१) किसी पदार्थ का सार भाग या तत्व । (२) जीवनी शक्ति । (३) जीव, प्राणी । (४) मनुष्य । (५) काम की चीज, तत्व ।

संज्ञा पुं. [सं. सत्य] (१) सत्य । उ.—धर्म-सत्त मेरे पितु माता—१-१७३ । (२) सतीत्व, पातिव्रत ।

वि. [हिं. सात] सात (संख्या) ।

सत्तर—संज्ञा पुं. [सं. सप्तति, प्रा. सत्तरि] साठ और दस की संख्या ।

सत्तरह—संज्ञा पुं. [सं. सप्तदश, प्रा. सत्तरह] (१) दस और सात की संख्या । (२) पासे के खेल का वह दाँव जिसमें दो छक्के और एक पंजा साथ-साथ पड़ते हैं । या अष्टांग योग और नवधा भक्ति का योग-सूचक अंक । उ.—राखि सत्तरह (सतरह) सुनि अठारह चोर पाँचों मारि—१-३०९ ।

सत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विद्यमान होने का भाव या उसकी अवस्था,अस्तित्व। (२) शक्ति, सामर्थ्य। (३) अधिकार, प्रभुत्व।

मुहा.—सत्ता चलाना या जताना—शक्ति या अधिकार दिखाना या सिद्ध करना।

संज्ञा पुं. [हिं. सात] ताश का वह पत्ता जिसमें सात बूटियाँ हों।

सत्ताईस—संज्ञा पुं. [सं. सप्तविंशति, प्रा. सत्ताईसा] बीस और सात की संख्या।

सत्ताधारी—वि. [सं.] जिसके हाथ में शक्ति, सामर्थ्य या अधिकार हो, अधिकारी।

सत्तानबे—संज्ञा पुं. [सं. सप्तनवति, प्रा. सत्तनवइ] नब्बे और सात की संख्या।

सत्तावन—संज्ञा पुं. [सं. सप्तपंचाशत प्रा. सत्तावन्ना] पचास और सात की संख्या।

सत्ताशास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह दर्शन जिसमें पारमार्थिक सत्ता का विवेचन हो।

सत्तासी—वि. [सं. सप्ताशीति, प्रा. सत्तासी] अस्सी और सात की संख्या।

सत्तू—संज्ञा पुं. [सं. सक्तुक्त, प्रा. सत्तुअ] भुने हुए जौ, चने, लावा आदि का चूर्ण।

मुहा.—सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना— (१) पूरी तैयारी के साथ किसी काम को करने में लगना। (२) सब काम-धंधा छोड़ कर किसी के विरुद्ध प्रयत्न करना।

सत्पथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तम मार्ग। (२) उत्तम आचार-व्यवहार, सदाचार। (३) श्रेष्ठ सिद्धांत।

सत्पात्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रेष्ठ और सदाचारी व्यक्ति। (२) (कन्या के योग्य) उत्तम वर। (३) दान आदि ग्रहण करने के योग्य उत्तम, सदाचारी और धर्मनिष्ठ व्यक्ति।

सत्पुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] सदाचारी और सज्जन व्यक्ति।

सत्यंकार—संज्ञा पुं [सं.] (१) वादा पूरा करना। (२) वादा निश्चित करने के लिए अग्रिम दिया जानेवाला धन, अग्रिम।

सत्य—वि. [सं.] (१) जिसके ठीक या यथार्थ होने में किसी प्रकार का संदेह न हो। उ.—ज्यों कोउ दुख-सुख सपनैं जोइ, सत्य मानिलै ताकौं सोइ—३-१३। (२) जैसा हो या होना चाहिए वैसा। (३) असल, यथार्थ, वास्तविक। उ.—कौन सत्य कछु मर्म न पावत—१० उ.-५।

संज्ञा पुं. (१) ठीक बात, यथार्थ या वास्तविक तत्व। (२) उचित या धर्म की बात। उ.—सत्य-सील सपन्न सुमूरति सुर-नर-मुनि भक्तनि भावै—१-६९। (३) पारमार्थिक सत्ता जो सदा ज्यों की त्यों रहे। (४) ऊपर के सात लोकों में सबसे ऊपरी। (५) चार युगों में प्रथम जिसमें पुण्य और सदाचार की अधिकता रहना माना जाता है। (६) प्रतिज्ञा, शपथ।

सत्यकाम—वि. [सं.] उत्तम, सत्य और सद् बातों की कामना रखनेवाला या प्रेमी।

सत्यत:—अव्य. [सं.] वास्तव में, यथार्थत:।

सत्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सत्य या यथार्थ होने का भाव। (२) नित्यता।

सत्यधन – वि. [सं.] जिसे सत्य सर्वप्रिय हो।

सत्यनारायण—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का एक नाम या रूप जिसकी कथा प्रायः पूर्णिमा को कही-सुनी जाती है।

सत्यपुरुष—संज्ञा. पुं. [सं.] ईश्वर, परमात्मा।

सत्यप्रतिज्ञ—वि. [सं.] वचन का सच्चा।

सत्यव्रत—वि. [सं. सत्यव्रत] जिसने सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा या निश्चय किया हो।

संज्ञा पुं. एक राजा जिसने 'प्रलय' देखने की कामना या अभिलाषा की थी। उ.—सत्यव्रत कह्यौ, परलै दिखायौ—८-१६।

सत्ययुग—संज्ञा पुं. [सं.] चार युगों में पहला जिसे 'कृतयुग' भी कहते हैं और जो पुण्य, धर्म तथा सदाचार के कारण अन्य तीनों युगों से श्रेष्ठ समझा जाता है।

सत्ययुगी—वि. [सं. सत्ययुग] (१) सत्ययुग-संबंधी। (२) बहुत प्राचीन। (३) सज्जन, धर्मात्मा।

सत्यलोक—संज्ञा पुं. [सं.] ऊपर के सात लोकों में सबसे ऊपरी जहाँ ब्रह्मा का निवास कहा गया है। उ.—सत्यलोक जनलोक, तप लोक और महर निज लोक—सारा. २२।

सत्यवती—वि. स्त्री. [सं.] (१) सच बोलनवाली। (२)

सत्य-धर्म का पालन करनेवाली ।

संज्ञा स्त्री. (१) 'मत्स्यगंधा' नामक धीवर-कन्या जिसके गर्भ से कुमारी अवस्था में ही पराशर ऋषि के संयोग से कृष्णद्वैपायन या व्यास की उत्पत्ति हुई थी । उ.—सत्यवती मच्छोदरि नारी ।…… ……। तहाँ परासर रिषि चलि आए । बिबस होइ तिहिं कैं मद छाए । रिषि कह्यौ ताहि, दान-रति देहि ।………। सत्यवती सराप-भय मानि, रिषि कौ वचन कियौ परमान ।………। व्यासदेव ताके सुत भए—१-२२९ ।

सत्यवादी—वि. [सं. सत्यवादिन्] (१) सच बोलनेवाला । (२) वचन या धर्म पर दृढ़ रहनेवाला ।

सत्यवान, सत्यवान्—वि. [सं. सत्यवत्] (१) सच बोलने वाला । (२) प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला ।

संज्ञा पुं. शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन का पुत्र जो अल्पायु था; परन्तु जिसकी पत्नी ने अपने पातिव्रत्य के बल से जिसे मृत्योपरांत पुनः जिला लिया था ।

सत्यव्रत—वि. [सं.] सत्य बोलने का निश्चयी ।

संज्ञा पुं. (१) सत्य बोलने का प्रण, नियम या निश्चय । (२) एक सूर्यवंशी राजा जिसके तप से प्रसन्न होकर परब्रह्म ने उसे दर्शन दिया था । उ.—सत्यव्रत राजा रविवंसी पहिलैं भए मनु बंस । कीनौ तप बहु भाँति परम रुचि प्रगट भए हरि-अंस—सारा.९१ ।

सत्यसंध—वि. [सं.] सत्यप्रतिज्ञ ।

संज्ञा पुं. श्रीरामचंद्र का एक नाम ।

सत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सच्चाई, सत्यता । (२) व्यास की माता सरस्वती । (३) सीता का एक नाम ।

सत्याग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] किसी न्यायपूर्ण बात के लिए शांतिपूर्वक आग्रह करना ।

सत्याग्रही—वि. [सं.] किसी न्यायपूर्ण बात के लिए शांतिपूर्वक आग्रह करनेवाला ।

सत्यानाश, सत्यानास—संज्ञा पुं. [सं. सत्ता + नाश] मटियामेट, ध्वंस, सर्वनाश ।

सत्यानाशी, सत्यानासी—वि. [हिं. सत्यानाश] सर्वनाश करनेवाला ।

सत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यज्ञ । (२) घर, गृह । (३) वह स्थान जहाँ दीनों को भोजन दिया जाता हो, छेत्र, सदावर्त । (४) वह काल या समय जिसमें एक कार्य निरंतर समान गति से चलता रहे ।

सत्रह—वि. [हिं. सत्तरह] दस और सात की संख्या का । उ.—सत्रह सौ भोजन तहँ आए—३९६ ।

सत्राइ, सत्राई—संज्ञा स्त्री. [सं. शत्रुता] दुश्मनी, शत्रुता । उ.—(क) कोउ कहै सत्रु होइ दुखदाई । सो तौ मैं न कीन्ह सत्राई—१-२९० । (ख) मम सत्राई हिरदैं आन, करिहै वह तेरौ अपमान ।………। सिव कह्यौ मेरैं नहिं सत्राई—४-५ । (ग) उनकैं मन नाहीं सत्राई—९-५ ।

सत्राजित—संज्ञा पुं. [सं.] एक यादव जिसने सूर्य की तपस्या करके स्यमंतक मणि प्राप्त की थी और उसके खो जाने पर श्रीकृष्ण को चोरी लगाई थी । जब श्रीकृष्ण ने जांबवान से युद्ध करके उसकी मणि ला दी तब उसने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया था ।

सत्रु—संज्ञा पुं. [सं. शत्रु] दुश्मन, शत्रु । उ.—(क) सुर-अरु असुर कस्यप के पुत्र । भ्रात बिमात आपु मैं सत्रु—३-९ । (ख) सैल-सिला-द्रुम बरषि ब्योम चढ़ि सत्रु-समूह सँहारौं—९-१०८ । (ग) छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं—१०-८६ ।

सत्रुघन—संज्ञा पुं. [सं शत्रुघ्न] श्रीराम के सबसे छोटे भाई । उ.—नाहीं भरत-सत्रुघन सुंदर जिनसौं चित्त लगायौ—९-१४६ ।

सत्रुता - संज्ञा स्त्री. [सं. शत्रुता] दुश्मनी, शत्रुता । उ.—पृथु कह्यौ, नाथ, मेरैं न कछु सत्रुता अरु न कछुकामना, भक्ति दीजै—४-११ ।

सत्रुहन—संज्ञा पुं. [सं. शत्रुघ्न] श्रीराम के सबसे छोटे भाई । उ.—लछिमन भरत सत्रुहन सुन्दर राजिव-लोचन राम—९-२० ।

सत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) होने का भाव, अस्तित्व । (२) सार, तत्व । (३) आत्मतत्व, चैतन्य । (४) प्राण, जीवनी शक्ति । (५) प्रकृति के तीन गुणों में एक जिसके फलस्वरूप अच्छे कर्मों की ओर ही प्रवृत्ति रहती है । (६) जीवधारी, प्राणी । (७) शक्ति, सामर्थ्य ।

सत्वगुण—संज्ञा पुं. [सं.] वह गुण या प्रकृति जो अच्छे

कर्मों की ओर ही प्रवृत्त करे।

सत्वगुणी—वि. [सं.] जो अच्छे कर्मों की ओर ही प्रवृत्त रहे, उत्तम प्रकृतिवाला।

सत्वर—क्रि. वि. [सं.] शीघ्र, तुरंत। उ.—सत्वर सूर सहाय करै को रही छिनक की बात—३१६५।

सत्संग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधु-सज्जनों के साथ उठना-बैठना, भली संगत। (२) वह समाज जिसमें धर्मोपदेश आदि होते हों।

सत्संगति—संज्ञा स्त्री. [सं. सत्संग] अच्छी संगत।

सत्संगी—वि. [हिं. सत्संग] (१) अच्छी संगत में रहनेवाला। (२) धर्म-कर्म के आयोजक समाजों में भाग लेनेवाला।

सत्समागम—संज्ञा. पुं. [सं.] भलों का साथ।

सथर—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थल] भूमि, पृथ्वी।

सथिया—संज्ञा पुं. [सं. स्वस्तिक, प्रा. सत्थिअ] स्वस्तिक चिह्न (卐) जो मंगल-सूचक और सिद्धिदायक माना जाने के कारण विशेष अवसरों पर कलश, दीवार आदि पर बनाया जाता है। उ.—(क) द्वार सथिया देति स्यामा सात सींक बनाइ—१०-२६। (ख) कौरनि सथिया चीतति नवनिधि—९०-३२। (२) देवताओं आदि के पद-तल का चिह्न-विशेष। (३) भारतीय ढंग का अस्त्र-चिकित्सक।

सद—अव्य. [सं. सद्य] तुरन्त, तत्काल। उ. करहु कृपा अपने जन पर सद—१८२।

वि. (१) ताजा। उ.—(क) सद दधि-माखन ल्यौं आनी—१०-१८३। (ख) माखन-रोटी सद दही जेंवत रुचि उपजाय—४३१। (२) हाल का, नया, नवीन।

वि. [सं. सद्] अच्छा, बढ़िया, उत्तम।

संज्ञा स्त्री. [सं. सत्व] आदत, टेव, प्रकृति।

संज्ञा पुं. [सं. सदस्] (१) मंडली, सभा, समिति। (२) छोटा मंडप।

सदई—अव्य. [हिं. सदा] सदैव, सर्वदा।

सदका—संज्ञा पुं. [अ. सदकः] (१) खैरात, दान। (२) वह वस्तु जो किसी के सिर पर से उतार कर रास्ते या चौराहे पर रखी जाय, उतारा, उतारन। (३) वह वस्तु जो किसी की कल्याण या मंगल-कामना से, उसके सर पर से उतारकर किसी को दी जाय, निछावर। उ.—सूरदास प्रभु अपने सदका घरहिं जान हम दीजै—१०५३।

सदके—वि. [हिं. सदका] निछावर किया हुआ।

मुहा.—सदके जाऊँ बलि जाऊँ, निछावर होऊँ।

सदगति—संज्ञा स्त्री. [सं. सद्गति] मरने के बाद उत्तम लोक में जाना। उ.—आज्ञा होइ करौं अब सोइ। जातैं मेरी सदगति होइ—१-३४१।

वि. [सं. सद्+गति] सदा चलता रहनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) हवा, वायु। (२) सूर्य।

सद्चारी—वि. [हिं. सदाचारी] उत्तम आचरणवाला।

वि. ठीक और सत्य।

सदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर, मकान। उ.—(क) बरनौं कहा सदन की सोभा बैकुंठहुँ तैं राजै री—१०-१३९। (ख) गहचौ स्याम-कर कर अपने सों लिए सदन को आई—२५८७। (२) आलय, स्थान। उ.—सुनि स्रवन दसबदन, सदन-अभिमान, कै नैन की सैन अंगद बुलायौ—९-१२९। (३) वह स्थान जहां किसी विषय पर विचार करनें या नियम, विधान आदि बनाने के लिए सदस्यों या प्रतिनिधियों की बैठक हो। (४) ऐसी बैठक में भाग लेनेवालों का समूह। (५) एक कसाई का नाम जो प्रसिद्ध हरि-भक्त था।

वि. [सं. सद्यस्] (१) ताजा। (२) नया।

सदना—संज्ञा पुं. [देश.] एक कसाई का नाम जो प्रसिद्ध हरि-भक्त था।

क्रि. अ. [सं. सदन=थिराना] छेद से रस-रसकर चूना या टपकना।

सद्मा—संज्ञा पुं. [अ. सद्मः] मानसिक आघात।

सदय वि. [सं.] दयालु, दयायुक्त।

सदर—वि. [अ. सद्र] खास, प्रधान, मुख्य।

संज्ञा पुं. (१) केंद्रस्थल। (२) सभापति।

सदर्थना, सदर्थनो—क्रि. स. [सं. समर्थन] समर्थन करना।

सदसद्विवेक—संज्ञा पुं. [सं.] भले-बुरे का ज्ञान।

सदसि—संज्ञा स्त्री. [सं. सदस्य] सदस्य या सभ्यों के बैठन का स्थान, सभा, समाज।

सदस्य—संज्ञा पुं. [सं.] मेंबर, सभासद।

सदस्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सदस्य का भाव या पद।

सदा—अव्य. [सं.] (१) हमेशा, नित्य, सदैव। उ.—(क) सुमिरन कथा सदा सुखदायक—१-८३। (ख) यह संसार बिषय-बिष-सागर रहत सदा सब घेरे—१-८५। (२) निरंतर।

संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) गूँज। (२) आवाज, ध्वनि। (३) पुकार।

सदाई—अव्य. [हिं. सदा] नित्य ही सदैव। उ.—(क) बिलसत मदन सदाई—६२६। (ख) प्रभु-पतिव्रत तुम करौ सदाई—८९६।

सदाकत—संज्ञा स्त्री. [अ. सदाक़त] सच्चाई।

सदाचरण—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छा चाल-चलन।

सदाचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अच्छा आचरण। (२) शिष्ट या सज्जनोचित व्यवहार।

सदाचारिता—संज्ञा स्त्री. [हिं. सदाचारी] 'सदाचारी' होने का भाव, शिष्टता।

सदाचारी—वि. [हिं. सदाचार] उत्तम आचरणवाला।

सदाफर, सदाफल—वि. [सं. सदाफल] जो (वृक्ष) सदा फूलता-फलता हो।

संज्ञा पुं. (१) एक तरह का नीबू। (२) गूलर। (३) नारियल। (४) बेल।

सदाबरत—संज्ञा पुं. [सं. सदावर्त] वह स्थान जहाँ दीन-अनाथों को नित्य भोजन बटता हो।

सदाबहार—वि. [हिं. सदा+फ़ा. बहार] सदा हरा-भरा रहनेवाला (वृक्ष)।

सदारत—संज्ञा स्त्री. [अ.] सभापतित्व।

सदावर्त—संज्ञा पुं. [सं. सदाव्रत] (१) वह स्थान जहाँ दीन-हीनों को नित्य भोजन बटता हो। (२) वह दान जो नित्य दिया जाय।

सदाशय—वि. [सं.] जिसके भाव उच्च और उदार हों, सज्जन, शिष्ट, उदार।

सदाशयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सदाशय' होने का भाव, सज्जनता, उदारता।

सदाशिव, सदासिव—संज्ञा पुं. [सं. सदाशिव] शिव, महादेव। उ.—पाइ सुधि मोहिनी की, सदासिव चले जाइ भगवान सों कहि सुनाई—८-१०।

वि. सदा कल्याण करनेवाला।

सदासुहागिन, सदासुहागिनि, सदासुहागिनी—वि. स्त्री. [हिं. सदा+सुहागिनि] जो (स्त्री) कभी पतिहीन या विधवा न हो।

संज्ञा पुं. वेश्या (परिहास)।

सदी—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) शताब्दी। (२) सैंकड़ा।

सदुपदेश, सदुपदेस—संज्ञा पुं. [सं. सदुपदेश] (१) उत्तम शिक्षा। (२) अच्छी सलाह।

सदुपयोग—संज्ञा पुं. [सं. सद्+उपयोग] अच्छी तरह या अच्छे काम में उपयोग करना।

सदूर—संज्ञा पुं. [सं. शार्दूल] शेर, सिंह।

सदृश, सदृस—वि. [सं. सदृश] (१) समान रूप-रंग का, अनुरूप। उ.—तड़ित बसन घनस्याम सदृस तन—१-६९। (२) बराबर, तुल्य।

सदृशता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अनुरूपता (२) तुल्यता।

सदेह, सदेहियाँ—क्रि. वि. [सं. सदेह] (१) बिना शरीर का त्याग किये, सशरीर। (२) (मानव) देह या शरीर धारण करके, प्रत्यक्ष या मूर्तिमान होकर। उ.—मानौं चारि हंस सरवर तैं बैठे आइ सदेहियाँ—१-१९।

सदैव—अव्य. [सं.] हमेशा, सर्वदा।

सदोष—वि. [सं.] (१) जिसमें दोष हो। (२) जिसने अपराध किया हो, दोषी।

सद्गति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तम अवस्था। (२) मरने के बाद अच्छे लोक की प्राप्ति।

सद्गुण—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम गुण।

सद्गुणी—वि. [हिं. सद्गुण] अच्छे गुणवाला।

सद्गुरु—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम शिक्षक या आचार्य। (२) वह धर्मोपदेशक या मंत्रदाता जो शिष्य को भव-बंधन से मुक्त कराने में समर्थ हो। (३) परमात्मा।

सद्ग्रंथ—संज्ञा पुं. [सं. सत्+ग्रंथ] (१) उत्तम शिक्षा से युक्त ग्रंथ। (२) वह धर्म-ग्रंथ जिसके मनन और आचरण से भव-बंधन से मुक्त होने की प्रेरणा और सिद्धि मिले।

सद्द—संज्ञा पुं. [सं. शब्द, प्रा. सद्द] शब्द, ध्वनि।

अव्य. [सं. सद्य] तुरंत, तत्काल।

वि. (१) तुरंत का बना, ताजा। (२) हाल का,

नया, नवीन ।

सद्धर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रेष्ठ या उत्तम धर्म । (२) (भगवान बुद्ध का) बौद्ध धर्म ।

सद्भाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रेम, हित और शुभचिंतना का भाव । (२) (किसी कार्य के करने में) सच्चा और निष्कपट भाव । (३) मेलजोल, मैत्री ।

सद्भावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शुभ या उत्तम भाव । (२) प्रेम, हित या मंगल का भाव ।

सद्म—संज्ञा पुं. [सं. सद्मन्] (१) घर, गृह (२) युद्ध ।

सद्य, सद्यः—अव्य. [सं. सद्य] (१) आज ही । (२) अभी, इसी समय । (३) तुरंत, शीघ्र ।

वि. अभी का, ताजा । उ.—माखन रोटी सद्य जम्यौ दधि—१०-२१२ ।

सद्रूप—वि. [सं.] (१) अच्छे रूपवाला, सुंदर । (२) उत्तम आचरणवाला । उ.—साधु-सील सद्रूप पुरुष को अप-जस बहु उच्चरतौ—१-२०३ ।

सद्रूपता—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) 'सद्रूप' होने का भाव, सुंदरता । (२) सदाचार ।

सद्वृत्त—वि. [सं.] सदाचारी ।

सद्वृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सदाचार ।

सद्व्रत—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम व्रत या निश्चय ।

वि. (१) जिसने उत्तम व्रत या निश्चय किया हो । (२) सदाचारी ।

सद्व्रती—वि. [सं.] (१) उत्तम व्रत या निश्चय करने-वाला । (२) सदाचारी ।

सधना—क्रि. अ. [हिं. साधना] (१) काम पूरा होना । (२) मतलब निकलना । (३) अभ्यस्त होना । (४) गौं पर चढ़ना, प्रयोजन-सिद्धि के उपयुक्त या अनुकूल होना । (५) निशाना या लक्ष्य ठीक होना । (६) हो सकना ।

सधर—संज्ञा पुं. [सं.] ऊपर का होंठ ।

सधर्मी—वि. [सं. सधर्मिन्] (१) समान गुण या विशेषता-वाला । (२) तुल्य ।

सधवा—वि. [हिं. विधवा का अनु.] जिसका पति जीवित हो, सुहाग या सौभाग्यवती (स्त्री) ।

सधाना—क्रि. स. [हिं, साधना] (१) साधने का कार्य दूसरे से कराना । (२) सिद्ध या संपन्न करना । (३) पशु-पक्षियों को कार्य-विशेष के लिए शिक्षित करना या सिखलाना ।

सधुक्कड़ी—वि. [हिं. साधु + उक्कड़ (प्रत्य.)] साधुओं की, साधुओं जैसी ।

संज्ञा स्त्री. 'साधु' होने का भाव, साधुता ।

सधायो, सधायौ—क्रि. स. [हिं. सधाना] साधने को प्रवृत्त किया । उ.—राधा, मौनव्रत किन सधायो—१२६८ ।

सधावन—संज्ञा पुं. [हिं. सधाना] सधाने या साधने की क्रिया या भाव । उ.—पवन सधावन भवन छोड़ावन नवल रसाल गोपाल पठायो—२९९९ ।

सधूम—क्रि. वि. [सं.] धुएँ, कोहरे या भाप सहित ।

सधे—वि. [हिं. सधना] खूब सिखा-सिखाया, अच्छी तरह सधा हुआ । उ.—कबहुँक सधे अस्व चढ़ि आपुन नाना भाँति नचावत—सारा. १९० ।

सध्यो, सध्यौ—क्रि. स. [हिं. सधना] (कार्य) पूरा या संपादित हुआ । उ.—सध्यौ नहिं धर्म सुचि सील तप व्रत कछू कहा मुख लै तुम्हैं बिनै करिए—१-११० ।

सनंक—संज्ञा पुं. [अनु. सनसन] सन्नाटा, नीरवता ।

सनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों में एक जो कपिल मुनि के पूर्व सांख्य मत के प्रवर्तक थे । उ.—ब्रह्मा ब्रह्मरूप उर धारि । मन सौं प्रगट किए सुत चारि । सनक सनंदन सनतकुमार । बहुरि सनातन नाम ये चार - ३-६ ।

सन—संज्ञा पुं. [सं. शण] एक पौधा जिसके रेशों से रस्सी और टाट बनते हैं । उ.—सन और सूत चीर-पाटंबर लै लंगूर बँधाए—९-९८ ।

प्रत्य. [सं. संग] साथ ।

अव्य. [प्रा. संतो] 'से' विभक्ति का पुराना रूप । उ.—(क) बरबस सरम करत हठ हम सन—१६८७ । (ख) जो कछु भयो तो कहिहौं तुम सन—२७९२ । (ग) यह रजायसु होत मो सन कहत बदरी जान—१० उ.–१०४ ।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] वेग से चलने या निकलने का शब्द ।

वि. [हिं. सन्न] (१) स्तब्ध । (२) मौन ।

मुहा.—जी सन होना—घबरा जाना।

सनई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सन] 'सन' की जाति का एक पौधा।

सनक—संज्ञा स्त्री. [सं. शंक = खटका] पागलों की सी धुन, झक या प्रवृत्ति।

मुहा.—सनक चढ़ना (सवार होना)—पागल-जैसी धुन या झक होना या चढ़ना।

संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों में एक। उ.—ब्रह्मा ब्रह्मरूप चित धारि। मन सौं प्रगट किए सुत चारि। सनक सनंदन सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार—३-६।

सनकना, सनकनो—क्रि. अ. [हिं. सनक] (१) पागल होना। (२) पागलों की सनक-जैसा आचरण करना।

क्रि. अ. [सं. शंक] शंकित होना, आभास या संकेत पाकर चौकन्ना होना।

क्रि. अ. [अनु. सनसन] वेग से किसी ओर जाना या फेंका जाना।

सनकाना, सनकानो—क्रि. स. [हिं. सनकना] (१) किसी को सनकने को प्रवृत्त करना। (२) किसी को आभास या संकेत करके सचेत या चौकन्ना करना।

सनकारना, सनकारनो—क्रि. स. [हिं. सैन+करना] (१) इशारा या संकेत करना। (२) सचेत या सावधान करना। (३) इशारे या संकेत से बुलाना। (४) किसी काम के लिए इशारा करना।

सनकियाना—क्रि. अ. [हिं. सनकाना] पागल या झक्की हो जाना, पगलाना।

क्रि. स. [हिं. सनकना] किसी को सनकने में प्रवृत्त करना, किसी को पागल कर देना या बनाना।

क्रि. स. [हिं. सैन] इशारा या संकेत करना।

सनकर्षन—संज्ञा पुं. [सं. संकर्षण] श्रीकृष्ण के भाई बलराम का एक नाम। उ.—जननी मधि सनमुख संकर्षन खैंचत कान्ह खस्यौ सिर-चीर—१०-१६१।

सनत, सनत्—संज्ञा पुं. [सं. सनत्] ब्रह्मा।

सनतकुमार, सनत्कुमार—संज्ञा पुं. [सं. सनत्कुमार] ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों में एक। उ—ब्रह्मा ब्रह्मरूप चित धारि। मन सौं प्रगट किए सुत चारि। सनक सनंदन सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार—३-६।

सनतसुजात, सनत्सुजात—संज्ञा पुं. [सं. सनत्सुजात] ब्रह्मा के सात मानसपुत्रों में एक।

सनद—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) प्रमाण। (२) प्रमाणपत्र।

सनना, सननो—क्रि. अ. [हिं. सानना] (१) लेई जैसा गीला होकर मिलना। (२) लेई-जैसी गीली वस्तु लगना, उससे मिलना या ओतप्रोत होना। (३) लीन या लिप्त होना।

सनबंध—संज्ञा पुं. [सं. संबंध] (१) रिश्ता। (२) लगाव।

सनम—संज्ञा पुं. [अ.] प्रियतम।

सनमान—संज्ञा पुं. [सं. सम्मान] आदर-सत्कार। उ.—पुनि सनमान रिषिन सब कीन्हौ—१-३४१।

सनमानना, सनमाननो—क्रि. स. [सं. सम्मान] आदर-सत्कार करना।

सनमुख—अव्य. [सं. सम्मुख] आगे, सामने, समक्ष। उ.—(क) धरि न सकत पग पछमनौ सर सनमुख उर लाग—१-३२५। (ख) सनमुख होइ सूर के स्वामी भक्तनि कृपा-निधान—९-१३४।

सनसनाना, सनसनानो क्रि. अ. [अनु. सनसन] 'सन-सन' शब्द करते हुए बहना या चलना।

सनसनाहट—संज्ञा पुं. [अनु. सनसन] (१) सनसन करते हुए चलने या बहने का शब्द, उसकी क्रिया या भाव। (२) सनसनी।

सनसनी—संज्ञा स्त्री. [अनु. सनसन] (१) शरीर के संवेदन सूत्रों का एक प्रकार का स्पंदन जिसमें कोई अंग कुछ देर को जड़-सा होकर 'सनसन' करता जान पड़ता है, झनझनाहट, झुनझुनी। (२) अत्यंत भय या आश्चर्यपूर्ण स्तब्धता, उत्तेजना या क्षोभ। (३) सन्नाटा, नीरवता।

सना—प्रत्य. [सं. संग] करणकारकीय चिह्न, से, साथ।

सनाढ्य—संज्ञा पुं. [सं. सन = दक्षिणा + आढ्य] ब्राह्मणों का एक वर्ग।

सनातन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अत्यंत प्राचीन काल। (२) बहुत प्राचीन समय से चला आता हुआ व्यवहार, क्रम या परंपरा। (३) ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों में एक। उ.—ब्रह्मा ब्रह्म रूप उर धारि। मन सौं प्रगट किए

सुत चारि। सनक सनंदन सनत कुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार—३-६।

वि. (१) अत्यंत प्राचीन, अनादि काल का। (२) बहुत समय से चला आनेवाला, परंपरागत। (३) सदा रहनेवाला, नित्य, शाश्वत। उ.—(क) आदि सनातन हरि अविनासी। सदा निरंतर घट-घट वासी—१०-३। (ख) सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हित करि दोउ लीन्हौ री—१०-९८।

सनातन धर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राचीन धर्म। (२) परंपरागत धर्म। (३) वर्तमान हिंदू धर्म जो परंपरागत है और जिसमें पुराण, बहुदेवोपासना, मूर्तिपूजन, तीर्थ-व्रत आदि माननीय हैं।

सनातन पुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु भगवान।

सनातनी—संज्ञा पुं. [सं. सनातन] (१) प्राचीन या परंपरागत धर्म में विश्वास रखनेवाला। (२) वर्तमान हिंदू धर्म का अनुयायी।

वि. (१) अत्यंत प्राचीन। (२) परम्परागत।

सनाथ—वि. [सं.] (१) जिसका कोई रक्षक या स्वामी हो। उ.- सूरदास प्रभु कंस-निकंदन देवकि करनि सनाथ—२५३४। (२) अभीष्ट-प्राप्ति से जिसका अस्तित्व सार्थक या सफल हो गया हो। उ.—भए सखि नैन सनाथ हमारे—२५६९।

सनाथा—वि. स्त्री. [सं. सनाथ] जिसका कोई रक्षक या स्वामी हो। उ.—निदरि मार्‌यो असुर पूतना आदि ते धरनि पावन करी भई सनाथा—२६१८।

सनान—संज्ञा पुं. [सं. स्नान] नहाना, स्नान। उ.—तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत—२-१७।

सनाल—संज्ञा पुं. [हिं. स+नाल] नाल-सहित। उ.—मनु जुग जलज सुमेर सृंग तें जाइ मिले सम ससिहिं सनाल—३४५३।

सनाह—संज्ञा पुं. [सं. सन्नाह] बख्तर, कवच। उ.—(क) बहुत सनाह समर सर वेधे—१-२७८। (ख) मारै मार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह—२८२६।

सनि—संज्ञा पुं. [सं. शनि.] सौर जगत का सातवाँ ग्रह जो फलित ज्योतिष में अशुभ और कष्टदायक माना जाता है; परन्तु कुछ ग्रहों से मिलकर अत्यंत सुख और लाभदायक भी हो जाता है। उ.—(क) छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं—१०-८६। (ख) मानौं गुरु सनि कुज आगैं करि ससिहिं मिलन तम के गन आए—१०-१०४।

अव्य. [हिं. सन] 'से' विभक्ति का एक प्राचीन विकृत रूप।

सनित—वि. [हिं. सनना] सना या मिला हुआ, मिश्रित।

सनीचर—संज्ञा पुं [सं. शनैश्चर] सौर जगत का सातवाँ ग्रह जो फलित ज्योतिष में प्रायः कष्टदायक, परंतु विशेष स्थिति में सुखदायक भी माना जाता है। उ.—कर्म-भवन के ईस सनीचर स्याम बरन तन ह्वैहैं—१०-८६।

सनीचरी—संज्ञा पुं [हिं. सनीचर] शनि की दशा जिसमें दुख, व्याधि आदि की अधिकता रहती है।

मुहा. मीन की सनीचरी मीन राशि पर शनि की स्थिति की वह दशा जिसके फलस्वरूप राजा, प्रजा, सबका सर्वनाश होना माना जाता है।

सनेस, सनेसा—संज्ञा पुं. [सं. संदेश] संदेश।

सनेह—संज्ञा पुं. [सं. स्नेह] (१) वात्सल्य, स्नेह। उ.—ता दिन सूर सहर सब चकित सबर सनेह तज्यौ पितु-मात—९-३८। (२) प्रेम, प्रणय। उ.—(क) सुनि सनेह कुरंग कौ स्त्रवननि राच्यौ राग—१-३२५। (३) श्रद्धा, भक्ति। उ.—करि हरि सौं सनेह मन साँचौ—१-८३। (४) प्रेम या आत्मीयता के संबंध। उ.—(क) बिछुरत हंस बिरह के सूलनि, झूठे सबै सनेह—८०१। (ख) बिछुरति सहति बिरह के सूलनि, झूठे सबै सनेह—८९७।

सनेहिया—संज्ञा पुं [सं. स्नेही] (१) मित्र (२) प्रियतम।

सनेही—वि. [सं. स्नेह] स्नेह या प्रेम करनेवाला। उ.—सूधी प्रीति न जसुदा जानै स्याम सनेही ग्वैयाँ—३७१।

संज्ञा पुं. (१) मित्र। (२) प्रियतम।

सनेहौ—संज्ञा पुं. [सं. स्नेह] प्रेम और आत्मीयता का संबंध भी। उ.—सबनि सनेहौ छाँड़िदयौ—१-२९८।

सनै सनै—अव्य. [सं. शनैः शनैः] धीरे-धीरे। उ.—

मेरी भक्ति चतुर्विधि करै । सनै सनै त सब निस्तरै ।
·······सनै सनै बिधिलोकहिं जाइ—३-१३ ।

सनौ—अव्य. [सं. संग] मिला हुआ, युक्त ।

सन्—संज्ञा पुं. [अ.] (१) वर्ष । (२) संवत ।

सन्न—वि. [हिं. सुन्न या अनु.] (१) संज्ञा-शून्य, जड़, निश्चेष्ट । (२) भौचक्क, स्तब्ध (३) भय से मौन ।

मुहा.—सन्न मारना एकबारगी चुप हो जाना ।

सन्नद्ध—वि. [सं.] (१) बँधा, कसा या जकड़ा हुआ। (२) कवच आदि धारण करके तैयार । (३) उद्यत, प्रस्तुत । (४) काम में जुटा हुआ ।

सन्नाटा—संज्ञा पुं. [हिं. सुन्न+आटा (प्रत्य.)] (१) किसी प्रकार का शब्द न होने की अवस्था, नीरवता । (२) निर्जनता । (३) अत्यंत भय या आश्चर्य से निश्चेष्टता या स्तब्धता ।

मुहा.—सन्नाटा छाना (सन्नाटे में आना)—(सबका) स्तब्ध रह जाना ।

(४) खामोशी, चुप्पी, मौन ।

मुहा.—सन्नाटा खींचना (मारना)—उपस्थित जनों का बिलकुल चुप हो जाना । सन्नाटा छाना—(सबका) शांत या मौन हो जाना ।

(५) किसी तरह की चहल-पहल न होना, उदासी ।

मुहा.—सन्नाटा बीतना—उदासी में समय कटना ।

वि. (१) जहाँ किसी प्रकार का शब्द न हो, नीरव । (२) जहाँ कोई न हो, निर्जन ।

संज्ञा पुं. [अनु. सनसन] (१) जोर से हवा के चलने का शब्द । (२) तेज चलती हवा को चीर कर गति से बढ़ने का शब्द ।

मुहा.—सन्नाटे के साथ या से—बड़ी तेजी से ।

सन्नाह—संज्ञा पुं. [सं.] बख्तर, कवच । उ.—पीत पट डारि कंचुकी मोचित करनि कवच सन्नाह ए छुटत तन ते—१७०० ।

सन्निकट—अव्य [सं.] पास, समीप, निकट ।

सन्निकर्ष - संज्ञा पुं. [सं.] (१) संबंध । (२) निकटता ।

सन्निधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समीपता, निकटता । (२) वह स्थान जहाँ धन एकत्र किया जाय । (३) स्थापित करने या रखने की क्रिया या भाव ।

सन्निधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] समीपता, निकटता ।

सन्निपात—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रसिद्ध रोग ।

सन्निविष्ट—वि. [सं.] (१) किसी के अन्तर्गत आया, मिलाया या समाया हुआ । (२) स्थापित, प्रतिष्ठित ।

सन्निवेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ बैठने या स्थित होने का भाव । (२) जमाकर या सजाकर रखने का भाव । (३) अटना या समाना । (४) इकट्ठा या एकत्र होना । (५) समाज, समूह । (६) स्थापना । (७) बनावट ।

सन्निवेशन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलाना, सम्मिलित करना । (२) जमाकर या सजाकर रखना । (३) स्थापित या प्रतिष्ठित करना । (४) व्यवस्था ।

सन्निहित—वि. [सं.] (१) निकट या समीप की । (२) रखा या धरा हुआ । (३) टिकाया हुआ ।

सन्मान—संज्ञा पुं. [सं. सम्मान] आदर-सत्कार । उ.—करि सन्मान कह्यौ या भाइ—१-२८४ ।

सन्मानना, सन्माननो—क्रि. स. [हिं. सनमानना] आदर-सत्कार करना ।

सन्माने—क्रि. स. [हिं. सनमानना] आदर-सत्कार किया । उ.—आये जान नृपति सन्माने कीन्हीं अति मनुहार—सारा. २३१ ।

सन्मुख—अव्य. [सं. सम्मुख] सामने, समक्ष । उ.—(क) सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं सोई सुफल करै—१११७ । (ख) स्याम त्रिया सन्मुख नहिं जोवत—१९९६ ।

सन्यास—संज्ञा पुं. [सं. संन्यास] (१) छोड़ना त्याग । (२) वैराग्य, विरक्ति । (३) चौथा आश्रम ।

सन्यासी—वि. [सं. संन्यासी] (१) त्यागी । (२) विरक्त । (३) जो चतुर्थ आश्रमी हो ।

सपंक, सपंका—वि. [सं. स+पंक] (१) कीचड़ से भरा हुआ । (२) जिसे पार करना कठिन हो, बीहड़ ।

सपक्ष—वि. [सं.] (१) जो अपने पक्ष में हो। (२) पोषक, समर्थक ।

संज्ञा पुं. मित्र, सहायक ।

वि. [सं. स+पक्ष=पंख] जिसके पंख हों ।

सपच्छी—वि. [सं. सपक्ष] (१) जो अपने पक्ष का हो । (२) पोषक, समर्थक ।

सपच – संज्ञा पुं. [सं. श्वपच] चांडाल ।

सपचना, सपचनो – क्रि. अ. [हिं. सपुचना] (१) पूरा होना । (२) बढ़ना । (३) (आग) सुलगना ।

सपत्न—वि. [सं.] बैरी, विरोधी, शत्रु ।

सपत्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पति की दूसरी पत्नी, सौत ।

सपत्नीक—वि. [सं.] पत्नी के साथ ।

सपथ—संज्ञा पुं. [सं. शपथ] कसम, सौगंध । उ.—(क) इती न करौं, सपथ तौ हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊँ—१-२७० । (ख) सूर सपथ मोहिं इनहिं दिननि मैं लै जु आइहौं कृपानिधानहिं – ९-९५ । (ग) संभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपन स्वास आकास बनचर उड़ाऊँ—९-१२८ ।

सपदि – क्रि. वि. [हिं. स + पद = पैर] जल्दी-जल्दी, तुरंत, शीघ्र (चलकर) ।

सपनंतर—वि. [सं. स्वप्न + अंतर] स्वप्न में देखी हुई, स्वप्न-काल की । उ.—जो मैं कहत रह्यौ भयौ सोई सपनंतर की प्रगट बताई—९३२ ।

सपन, सपना—संज्ञा पुं. [सं. स्वप्न] निद्रावस्था में मानसिक दृष्टि से दिखायी देनेवाला दृश्य । उ.—(क) जग-प्रभुत्व प्रभु देख्यौ जोइ । सपन-तुल्य छनभंगुर होइ —७-२ । (ख) दरसन कियौ आइ हरि जी को कहत सपन की साँची—१० उ.-११२ ।

मुहा.—सपना हो जाना (होना)—इतना दुर्लभ हो जाना कि देखने को भी न मिले । सपना देखना—किसी अलभ्य पदार्थ को पाने की आशा करना (व्यंग्य) ।

सपनाना—क्रि. स. [हिं. सपना + आना] स्वप्न दिखलाना । क्रि. अ. स्वप्न देखना ।

सपनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सपना] सपना देखने की स्थिति या अवस्था ।

सपनैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सपना] सपने में । उ—(क) ज्यौं कोउ दुख-सुख सपनैं जोइ । सत्य मानि लै ताकौं सोइ—३-१३ । (ख) सूर स्याम सपनैं नहिं दरसत, मुनिजन ध्यान लगावत—४६८ ।

सपनौ—संज्ञा पुं. [हिं. सपना] सपना, स्वप्न । उ.—जीवन-जन्म अल्प सपनौ सौं समुझि देखि मन माहीं—१-३१९ ।

सपरना, सपरनो—क्रि. अ. [सं. संपादन, प्रा. संपाडन] (१) काम का पूरा होना या निबटना । (२) काम का हो सकना ।

मुहा.—सपर जाना—मर जाना ।

(३) तैयार होना, तैयारी करना ।

सपराना, सपरानो—क्रि. स. [हिं. सपरना] (१) काम पूरा करना या निबटाना । (२) काम को पूरा कर पाना या कर सकना ।

सपरिकर—क्रि. वि. [सं.] अनुचरों और ठाट-बाट के साथ ।

सपरिच्छद – क्रि. वि. [सं.] तैयारी या ठाट-बाट-सहित ।

सपर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूजा-उपासना, आराधना ।

सपाट—वि [सं. स + पट्ट] (१) बराबर, समतल ।

मुहा.—पारि सपाट—तोड़-फोड़कर बराबर करके । उ. – बड़ौ माट घर धर्यौ जुगनि कौ, टूक-टूक कियौ सबनि पकरि । पारि सपाट चले, तब पाए—१०-३१८ ।

(२) जिसकी सतह पर उभार या खुरदुरापन न हो, चिकना । (३) जो क्षितिज की ओर दूर तक सीधा चला गया हो ।

सपाटा—संज्ञा पुं. [सं. सर्पण = सरकना] (१)चलने, दौड़ने या उड़ने का वेग, झोंका । (२) झपट, झपट्टा ।

यौ.—सैर-सपाटा—मन-बहलाव के लिए किसी रमणीक स्थान में घूमना-फिरना ।

सपाद—वि. [सं.] (१) चरण-सहित । (२) जिसमें एक पूरे अंश के साथ चौथाई और मिला हो, सवाया ।

यौ.—सपाद लक्ष— सवा लाख ।

सपिंड—वि. [सं.] जो एक ही कुल के हों और एक ही पितरों को पिंडदान करते हों ।

सपिंडी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मृतकों के श्राद्ध की एक क्रिया जिसके द्वारा वह अन्य पितरों में मिलाया या सम्मिलित किया जाता है ।

सपुचना—क्रि. अ. [सं. संपूर्ण] (१) पूरा होना, पूर्णता तक पहुँचना । (२) बढ़ना । (३) आग सुलगना ।

सपुलक—वि. [सं.] पुलक या हर्ष के साथ ।

सपूत—वि. [सं. सुपुत्र, प्रा. सपुत्त, सउत्त] योग्य और कर्तव्यनिष्ठ (पुत्र) । उ.—(क)लरिका छिरकि मही सौं

देखै, उपज्यौ पूत सपूत महरि कैं—१०३१८।(ख) पूत सपूत भयौ कुल मेरैं अब मै जानी बात—१०-३२९।

संज्ञा पुं. गुणवान और आज्ञाकारी पुत्र।

सपूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सपूत] (१) सपूत होने का भाव। (२) योग्य और कर्तव्यनिष्ठ पुत्र उत्पन्न करने वाली माता। उ.—लछिमन जनि हौं भई सपूती राम-काज जौ आवै—९-१५२।

सपूतौ—वि. [हिं. सपूत] योग्य और कर्तव्यनिष्ठ (पुत्र)। उ.—कहा बहुत जो भए सपूतौ एकै बंसा—४३१।

संज्ञा. पुं. योग्य और गणवान पुत्र।

सपेट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सपाटा] झपट।

सपेत, सपेद—वि. [फा. सफ़ेद, हिं. सफ़ेद] श्वेत, उज्ज्वल।

सपेती, सपेदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सफेदी] (१) श्वेतता, उज्जवलता। (२) चूने की पुताई। (३) उषःकाल का उज्जवल प्रकाश।

सप्त—वि. [सं.] सात (गिनती)। उ.—(क) हरिजू की आरती बनी।........मही सराव, सप्त सागर घृत बाती सैल घनी—२-२८। (ख) जो कुल माहिं भक्त मम होइ। सप्त पुरुष लौं उधरै सोइ—७-२।

सप्तऋषि—संज्ञा पुं. [सं सप्तर्षि] सात ऋषियों का समूह या मंडल। उ.—ध्रुव समान आए री जु सप्तऋषि बहुरि तौ वेर ह्वैहै—२२४६।

सप्तक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सात वस्तुओं का समूह। (२) संगीत में सात स्वरों का समूह। उ.—(क) प्रथमनाद बल घेरि निकट लै मुरली सप्तक सुर बंधान सौं—१५३९। (ख) कबहुँक नृत्य करत कौतूहल सप्तक भेद दिखावत—२३५४।

सप्तजिह्व—संज्ञा पुं. [सं.] अग्नि जिसकी सात जिह्वाएँ मानी गयी हैं।

सप्तद्वीप—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी के सात बड़ विभाग जिनके नाम ये हैं—जंबू, कुश, प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंच, शाक और पुष्कर।

सप्तधातु—संज्ञा पुं [सं.] शरीर के सात द्रव्य-रक्त, पित्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र।

सप्तपदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विवाह की एक रीति जिसमें वर-वधू अग्नि की सात परिक्रमाएँ करके विवाह पक्का करते हैं, भाँवर, भँवरी। (२) (किसी बात को) अग्नि की साक्षी देकर पक्का करना।

सप्तपाताल—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी के नीच सात लोक—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

सप्तपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सात पवित्र नगर या पुरी —अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार (माया), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी) और द्वारका।

सप्तम—वि. [सं.] सातवाँ। उ.—सप्तम दिन तोहिं तच्छक खाइ—१-२९०।

सप्तमातृका संज्ञा स्त्री. [सं.] सात शक्तियाँ जिनका पूजन शुभ कार्यों के पूर्व होता है - ब्रह्मा या ब्राह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इंद्राणी और चामुंडा।

सप्तमी—वि. स्त्री. [सं.] सातवीं।

संज्ञा स्त्री. (१) चांद्र मास के किसी पक्ष की सातवीं तिथि या दिन। (२) व्याकरण में अधिकरण कारक की विभक्ति।

सप्तर्षि—संज्ञा पुं [सं.] (१) सात ऋषियों का समूह या मंडल जिनके नाम कहीं ये बताये गये हैं—गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, यमदग्नि, वसिष्ठ, कस्यप और अत्रि; तथा कहीं ये—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ। (२) सात तारों का समूह जो ध्रुवतारे के चारो ओर घूमता जान पड़ता है।

सप्तशती—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) सात सौ का समूह। (२) सात सौ पद्यों या छंदों का समूह।

सप्तस्वर—संज्ञा पुं. [सं.] संगीत के सात स्वर—स, ऋ, ग, म, प, ध और नि।

सप्ताह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सात दिनों का समूह। (२) सोमवार से रविवार तक के सात दिन। (३) 'श्रीमद्-भागवत' जैसे किसी धर्मग्रंथ का पाठ जो सात दिन में पढ़ या सुन लिया जाय।

सप्रमाण—वि. [सं.] (१) प्रमाण या साक्षी के साथ। (२) ठीक, प्रामाणिक।

सफ—संज्ञा स्त्री. [फा. सफ़.] (१) पंक्ति। (२) बिछावन।

संज्ञा स्त्री. [फा. सैफ़] तलवार।

सफर—संज्ञा पुं. [अ. सफ़र] यात्रा।

सफरी—वि. [हिं. सफर] सफर में काम आनेवाला।

संज्ञा पुं (१) रास्ते का सामान या खर्च। (२) अमरूद। (३) श्रीफल मधुर चिरौंजी आनी। सफरी चिउरा अरुन खुबानी—१०-२११।

संज्ञा स्त्री. [सं. शफरी] एक तरह की मछली।

सफल—वि. [सं.] (१) जो फल से युक्त हो। (२) जिसका कुछ फल या परिणाम निकले, जिसका करना या होना व्यर्थ न जाय, सार्थक। उ.—ता छिन हृदय-कमल प्रफुलित ह्वै जनम सफल करि लेखौं—९-३५। (३) पूरा होना। (४) जो कृतकार्य हुआ हो।

सफलता—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) सफल होने का भाव, कार्य-सिद्धि। (२) पूर्णता।

सफलित—वि. [हिं. सफल] (१) सार्थक। (२) कृतकार्य।

सफलीभूत—वि. [सं.] जो सफल हुआ हो।

सफा—वि. [हिं. साफ] (१) स्वच्छ। (२) पवित्र। (३) जो खुरदुरा न हो, चिकना।

संज्ञा पुं. [अ. सफ़हः]। पुस्तक आदि का पृष्ठ।

सफाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सफा] (१) स्वच्छता, निर्मलता। (२) कूड़ा-करकट हटाने की क्रिया। (३) अर्थ या अभिप्राय प्रकट होने का गुण। (४) मन म मैल या दुर्भाव न रहना। (५) छल, कपट या दुराव का न होना। (६) दोष या आरोप का हटना, निर्दोषिता।

मुहा.—सफाई देना—(किसी को) निर्दोष प्रमाणित करना। सफाई होना-(किसी का) निर्दोष सिद्ध होना।

(६) लेन देन का हिसाब साफ होना। (७) झगड़े का निबटारा।

सफाचट—वि. [हिं. साफ] (१) स्वच्छ। (२) चिकना।

सफेद—वि. [फ़ा. सुफ़ैद] (१) उजला, श्वेत।

मुहा—रंग सफेद पड़ जाना (होना)—भय आदि से चेहरे का रंग फीका पड़ जाना या मुख का कांतिहीन हो जाना। स्याह-सफेद—भला-बुरा।

सफेदपोश—संज्ञा पुं. [फ़ा. सफ़ैद+पोश] (१) साफ कपड़े पहननेवाला। (२) शिक्षित और कुलीन।

सफेदा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुफ़ैदा] (१) जस्ते का चूर्ण या भस्म। (२) एक तरह का बढ़िया आम। (३) एक तरह का बढ़िया खरबूजा। (४) एक बड़ा वृक्ष।

सफेदी—संज्ञा स्त्री. [हि. सफेद] (१) उजलापन।

मुहा.—सफेदी आना—बाल सफेद होना, बुढ़ापा आना। सफेदी छाना—बहुत भय के कारण मुख का कांतिहीन हो जाना।

(२) दीवार आदि पर चूने की पुताई। (३) उषःकाल का प्रकाश।

सबंधु—क्रि. वि. [हिं. स+बंधु] भाई-बन्धुओं के साथ। उ.—कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि एकहिं एक पछारौं—९-१०८।

सब—वि. [सं. सर्व, प्रा. सव्ब] (१) जितने हों, कुल, समस्त। उ.—हेरी देत चले सब बालक—६११। (२) पूरा, सारा।

सबक—संज्ञा पुं. [फ़ा. सबक़] (१) पाठ। (२) उपदेश।

सबज—वि. [हिं सब्ज] हरे रंग का।

सबद—संज्ञा पुं. [सं. शब्द] (१) आवाज, ध्वनि। उ.—सबद करचो आघात, अघासुर टेरि पुकारचौ—४३१। (२) वर्ण या अक्षरों से बनी सार्थक ध्वनि। (३) साधमहात्मा के वचन। (४) उपदेशपूर्ण बात।

सबदरसी, सबदर्सी—वि. [सं. सर्वदर्शी] (संसार में) सब कुछ देखनेवाला।

सबब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) कारण। (२) साधन।

सबर—संज्ञा पुं. [अ. सब्र] धैर्य, संतोष। उ.—ता दिन सूर सहर सब चक्रित सबर-स्नेह तज्यौ पितु-मात-९-३८।

मुहा.—किसी का सबर पड़ना—अत्याचार करनेवाले को, सब तरह के अत्याचार सबर या सहनशीलता के साथ सहनेवाले का या इसकी 'हाय' का कुफल भोगना पड़ना।

सबरा—वि.[हिं. सब] (१) सब, समस्त। (२) सारा, पूरा।

सबरी—वि. स्त्री. [हिं सबरा] (१) सब, कुल, समस्त। (२) सारी, पूरी।

[सं. शबरी] शबर नामक अनार्य जाति की एक स्त्री भक्त जिसके जूठे बेर श्रीराम ने सराह-सराह कर खाये थे। उ.—सबरी आस्रम रघुबर आये। अरघासन दै प्रभु बैठाए—९-६७।

सबरै—क्रि. स. [हिं. सँवरना] सँवरे, बने, सुधरे। उ.—

बिगरै सबरै हमरे सिर ऊपर बल को बीर रखवारो -९८७।

सबल—वि. [सं.] (१) बलवान, प्रबल। उ.—(क) सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहिं भुलाइ—१-४५। (ख) माया सबल धाम-धन-बनिता बाँध्यौ हौं इहिं साज—१-१०८ (२) जिसके साथ फौज या सेना का बल हो। उ.—सुभट अनेक सबल दल साजे, परे सिंधु के पार—९-८३।

सबार, सबारे, सबारैं, सबारौ —क्रि. वि. [हिं. सवेरा] (१) शीघ्र, जल्दी। उ.—(क) घर के कहत सबारे काढ़ौ भूत होइ धरि खैहै—१-८६। (ख) चली न वेगि, सबारे जैए भाजि आपनैं धाम १०-२००। उ.—अबलौं कहा सोए मनमोहन और बार तुम उठत सबार—४०३। (२) उपयुक्त या निश्चित समय से पूर्व। (३) सबेरे, प्रातः काल। उ.—जेवन करन चली जब भीतर छींक परी तौ आज सबारे—५९५।

यौ० साँझ सबारैं—सबेरे-शाम, हर समय, दिन भर। उ.—(क) उरहन कै कै साँझ सबारैं, तुमहिं बँधायौ स्याम—३५५। (ख) अब को निकरै साँझ सबारौ—७६२।

सबारचो, सबारचौ—क्रि. वि. [हिं. सवेरा) इतनी सबेरे। उ.—बोलि उठे बलराम, स्याम कत उठे सबारचौ —४३१।

सबिता—संज्ञा पुं. [सं. सविता] सूर्य, रवि। उ.—(क) सूर महरि सबिता सौं बिनवति, भली स्याम की जोटी—७०२। (ख) बार-बार सबिता सौं माँगति, हम पावैं पति स्याम सुजान—७८५।

सबी—संज्ञा स्त्री. [अ. शबीह] तसबीर, चित्र।

सबील—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) मार्ग। (२) उपाय। (३) प्रबंध, व्यवस्था। (४) पौशाला।

सबूत—संज्ञा पुं [अ.] प्रमाण।

सबेर—क्रि. वि. [अनु. बेर या हिं. सवेरा] जल्दी, शीघ्र। उ. —कूदि परचौ चढ़ि कदम तैं खबरि न करी सबेर —५८९।

यौं—देर-सबेर—(१) कुछ समय म। (२) कभी जल्दी, कभी देर। (२) कभी-कभी।

सबेरा—संज्ञा पुं [हिं. स. + वेला] प्रातःकाल।

सबेरे—क्रि. वि. [हिं. सवेरा] प्रातःकाल को। उ.—ऊधौ जाहु सबेरे ह्याँ तैं वेगि गहर जनि लावहु—३३४०।

सबेरो, सबेरौ—संज्ञा पुं [हिं. सवेरा] प्रातःकाल।

क्रि. वि. (१) जल्दी, शीघ्र। उ.—जो कोऊ तेरौ हितकारी सो कहै काढ़ि सबेरौ—१-३१९। (२) हर समय

यौ.—बेर-सबेरौ—(१) कुछ समय में। (२) कभी जल्दी, कभी देर। (३) हर समय, कभी कभी। उ.—मुरली जैंत बिषान देखिए शृंगी बेर-सबेरौ—२९६५।

सबै—वि. [हिं. सब + ही] (१) सभी (संख्यावाचक)। उ.—(क) सुख मैं आइ सबै मिलि बैठत रहत चहूँ दिसि घेरे - १-७९। (ख) ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं—१-८६। (२) सारा, समस्त (परिमाणवाचक)। उ.—जिती हुती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी—१-१३०।

सब्ज—वि. [फ़ा. सब्ज] (१) हरे रंग का, हरा। (२) कच्चा और ताजा (फूल, फल आदि)। (३) सुंदर और लहलहाता हुआ।

मुहा.—सब्ज बाग दिखाना—(किसी स्वार्थ से) बड़ी बड़ी आशाएँ दिखाना।

(४) शुभ, उत्तम।

सब्जा—संज्ञा पुं. [हिं. सब्ज] (१) हरियाली। (२) भाँग, विजया। (३) पन्ना नामक रत्न।

सब्जी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सब्जी] (१) हरियाली। (२) हरी तरकारी।

सब्द—संज्ञा पुं. [सं. शब्द] (१) ध्वनि, आवाज। उ.—(क) ताकी सरन रह्यौ क्यौं भावै सब्द न सुनिऐ कान —१-१३४। (ख) यहै सब्द सुनियत गोकुल मैं—६२२। (२) वर्णों या अक्षरों से बनी सार्थक ध्वनि। (३) संत-महात्माओं के वचन या पद। (४) शिक्षा या उपदेश-प्रधान उक्ति।

सब्र—संज्ञा पुं. [अ.] धर्य, संतोष।

मुहा.—(किसी का) सब्र पड़ना —अत्याचारी को, अत्याचार सहन करनेवाले के धैर्य या उसकी 'आह' का कुफल भोगना पड़ना। सब्र कर बैठना (लेना)—हानि, अनिष्ट या अत्याचार को सह लेना। सब्र समे-

टना—ऐसा अन्याय या निर्दयता का कार्य करना कि दूसरे की 'आह' का कुफल भोगना पड़े।

सभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समिति, गोष्ठी, परिषद्। (२) समूह, मंडली। उ.—डासन काँस कामरी ओढ़न बैठन गोप-सभा ही—२२७५। (३) वह संस्था या समूह जो विषय-विशेष पर विचार करने के लिए बनायी गयी हो। (४) राजदरबार, राजसभा। उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी—१-१६। (ख) द्रुपद-सुतहिं दुष्ट दुरजोधन सभा माँहि पकरावै—१-१२२।

सभाग—संज्ञा पुं. [हिं. स+भाग] सौभाग्य।

वि. जो सौभाग्यशाली हो।

सभागा—वि. [हिं. सभाग] भाग्यशाली।

सभागी—वि. स्त्री. [हिं. सभागा] भाग्यशालिनी। उ.—चिरजीवौ मेरौ लाड़िलौ, मैं भई सभागी—१०-६८।

अव्य. छोटोंको पुकारने का एक शुभ संबोधन। उ.—कहाँ चली उठि भोरही सोवै न सभागी—१५४१।

सभागृह—संज्ञा पुं. [सं.] वह स्थान जहाँ सभा या समिति की बैठक हो।

सभागे—वि. [हिं. सभाग] भाग्यशाली। उ.—(क) अहो वसुदेव जाहु लै गोकुल तुम हौ परम सभागे—१०-४। (ख) रसिक रासिका को सुख लूट्यौ स्याम सभागे—२२७५।

सभापति—संज्ञा पुं. [सं.] सभा का प्रधान।

सभा-चतुर—वि. [सं.] जो सभा या समाज में सम्मिलित होकर चतुराई से बात कर सके।

सभा-चातुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सभा-समाज में बैठकर रुचिकर बातें करने की चतुरता या योग्यता।

सभा-मंडप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह स्थान जहाँ सभा-समाज की बैठक हो। (२) देव-मंदिरों में वह स्थान जहाँ बैठकर भक्तजन कीर्तन आदि करते हों।

सभासद—संज्ञा पुं. [सं.] सदस्य, सभ्य। उ.—पोच-पिसुन लस दसन सभासद प्रभु अनंग मंत्री बिन भीति—२२२३।

सभीत—वि. [हिं. स+भीत] डरा हुआ। उ.—अखुटित रहत सभीत ससंकित, सुकृत सब्द नहिं पावै—१-४८।

सभ्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सदस्य, सभासद। (२) भला और शिष्ट व्यक्ति।

वि. भला, शिष्ट।

सभ्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सदस्यता। (२) भलमंसी, शिष्टता। (३) वे बातें जो किसी व्यक्ति, जाति या राष्ट्र के सुजन, शिष्ट, शिक्षित और उन्नत होने की सूचक हों।

समंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठीक करना या बैठाना। (२) हिसाब ठीक करना।

समंजस—वि. [सं.] (१) उचित। (२) अभ्यस्त।

समंत—संज्ञा पुं. [सं.] सीमा, छोर।

वि. सब, कुल, समस्त।

समंदर—संज्ञा पुं. [सं. समुद्र] (१) सागर, समुद्र। (२) बड़ा तालाब या झील।

सम—वि. [सं.] (१) समान, तुल्य। उ.—(क) अमित ता सम नाहीं—१-२४१। (ख) आपु बिषमत तजि दोउ सम भै बानक ललित त्रिभंग—३३२७। (२) जिसमें कहीं उतार-चढ़ाव या हेर-फेर न हो। (३) जिसका तल ऊबर-खाबड़ न होकर बराबर या चौरस हो। उ.—धनुष सौं टारि पर्वत किए एक दिसि, पृथ्वी सम करि प्रजा सब बसाई—४-११। (४) जिस (संख्या) को दो से भाग करने पर शेष कुछ न बचे।

अव्य. (किसी के) समान या बराबर। उ.—(क) जौ पै राम-भक्ति नहिं जानी, कह सुमेर सम दान किए—१-८९। (ख) रंक सुदामा कियौ इंद्र सम—१-९५। (ग) देखियत ह्वै रज्वा सम डारयौ—५७४। (घ) नहिं तिहुँ भुवन कोउ सम तुम्हारे—१० उ. ३१।

संज्ञा पुं. (१) संगीत में वह स्थान जहाँ लय के विचार से गति की समाप्ति होती है और गायक या वादक का सर अपने आप हिल जाता है। (२) एक अर्थालंकार।

संज्ञा पुं. [सं. शम] (१) अंतःकरण तथा इंद्रियों का संयम। उ.—गो कह्यौ, हरि बैकुंठ सिधारे, सम-दम उनहीं संग पधारे—१-१२९०। (२) माफी, क्षमा। (३) शांति।

संज्ञा पुं. [अ.] जहर, विष।

संज्ञा पुं. [अ. क़सम] शपथ, सौगंध।

समकक्ष—वि. [सं.] (१) समान (२) बराबरी का।

समकालीन—वि. [सं.] जो (दो या कई) एक ही समय में हुए हों।

समकिति—संज्ञा स्त्री. [सं. सम्यक] सम्यकता।

समकियाना, समकियानो - क्रि. स. [हिं. सम + करना] बिखरी चीजें यथाक्रम रखना या सजाना।

समकोण—संज्ञा पुं. [सं.] ९० अंश का कोण।

समक्ष—अव्य. [सं.] सामने, सम्मुख।

समग्र—वि. [सं.] सारा, सब।

समग्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. सामग्री] सामान, पदार्थ। उ.—(क) भोग-समग्री भरे भँडार—९-८। (ख) छाक-सामग्री सबै जोरि कै वाकैं कर दै तुरत पठाई—४५७।

समझ—संज्ञा स्त्री. [सं. सम्बुद्ध, प्रा. समुज्झ, समुंझ] जानने-समझने की बुद्धि।

समझदार—वि. [हिं. समझ + फ़ा. दार] बुद्धिमान।

समझदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. समझदार] समझदार होने का भाव, बुद्धिमानी।

समझना, समझनो—क्रि. स. [हिं. समझ] (१) पढ़ या सुनकर हृदयंगम करना। (२) विचार करके ध्यान में लाना। (३) किसी परिचित या ज्ञात विषय में अधिक अनुमान करना।

समझाना, समझानो—क्रि. स. [हिं. समझना] दूसरे को समझने को प्रवृत्त करना।

समझाव, समझावा – संज्ञा पुं. [हिं. समझना, समझाना] समझने या समझाने की क्रिया या भाव।

समझौता—संज्ञा पुं. [हिं. समझ] आपस में ही होनेवाला निबटारा।

समतल—वि. [सं.] जिसकी तह या तल बराबर हो, सपाट, चौरस।

समता – संज्ञा स्त्री. [सं.] सम या समान होने का भाव, बराबरी, समानता। उ.—कोटि स्वर्ग सम सुखउ न मानत हरि समीप समता नहिं पावत—३२४२।

समताई—संज्ञा स्त्री. [सं. समता] बराबरी, समता। उ.—अतिहिं करी उन अपतई हरि सों समताइ —पृ. ३२३ (२०)।

समतुल, समतूल—वि. [सं. हिं. सम + तोल] बराबर, समान। उ.—तो समतुल कन्या किन उपजी जो कुल सत्रु न मारचौ—९-१३४।

समतूली—संज्ञा स्त्री. [हिं. समतूल] बराबरी।

समतोल—वि. [सं. सम + हिं. तोल] बराबर।

समतोलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महत्व की दृष्टि से समान रखना। (२) दोनों पलड़ों या पक्षों को समान रखना।

समत्थ—वि. [सं. समर्थ] समर्थ।

समत्व—संज्ञा पुं. [सं.] बराबरी, तुल्यता।

समद—संज्ञा पुं. [सं. समुद्र] सागर।

समदत—क्रि. स. [हिं. समदना] (१) सौंपना, समर्पित करना। (२) भेंट या उपहार देना।

क्रि. वि. समर्पित करते ही, सौंपते हीं। उ.—(क) तनया जा मातनि कौं समदत नैन नीर भरि आए—९-२७। (ख) समदत भई अनाहत बानी कंस कान झनकारा—१०-४।

समदन—संज्ञा स्त्री. [सं. समादान] (१) उपहार, भेंट। (२) मुलाकात, भेंट।

संज्ञा पुं. [सं.] लड़ाई, युद्ध।

समदना, समदनो—क्रि. स. [हिं. समदन] (१) सौंपना, समर्पित करना। (२) उपहार या भेंट देना।

क्रि. अ. आनंद या उमंगमें भरकर भेंटना, प्रेमपूर्वक या सप्रेम मिलना।

समदर्शन, समदर्सन—वि. [सं. समदर्शन] सबको समान समझनेवाला।

समदरसी, समदर्शी—वि. [सं. समदर्शिन्] सबको बराबर या समान समझने या माननेवाला। उ.—समदरसी है नाम तुम्हारौ—१-२२०।

समदे—क्रि. अ. [हिं. समदना] मिले, भेंटे। उ.—यह कहिकै समदे सकल जन नयन रहे जल छाई—१० उ.-१२३।

समदृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं] समदर्शी की दृष्टि या भावना। उ.—जो समदृष्टि आदि निर्गुन पद तौ कत चित्त चोराए—३२०१।

समधिक—वि. [सं.] बहुत, अधिक।

समधियाना—संज्ञा पुं. [हिं. समधी] समधी का घर।

समधी—संज्ञा पुं. [सं. सम्बन्धी] (१) वर-वधू के पिता। (२) मान्य संबंधी। उ. ताल पखावज चले बजावत समधी सोंभा कौं—१-१५१।

समधिन, समधिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. समधी] समधी की पत्नी। उ.—इहिं भाँति चतुर सुजान समधिनि सकति रति सबसौं करै—१० उ.—२४।

समन—संज्ञा पुं. [सं. शमन] (१) दोष, विकार आदि दबाना। (२) शांति। (३) यम, यमराज।

सम-नाम—संज्ञा पुं. [सं.] समानार्थक शब्द।

समन्वय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विरोध का अभाव। (२) मिलन, संयोग। (३) कार्य-कारण का निर्वाह।

समन्वित—वि. [सं.] (१) जिसका समन्वय हुआ हो। (२) मिला हुआ, संयुक्त। (३) जो किसी के अन्तर्गत या सम्मिलित हो।

समपाद—संज्ञा पुं. [सं.] छंद जिसके चारो चरण बराबर या समान हों।

समबुद्धि—वि. [सं.] जिसकी बुद्धि सुख-दुख, लाभ-हानि आदि की स्थिति में समान रहे।

समय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वक्त, काल। उ.—(क) बहुरि संध्या समय होन आयौ—७-६। (ख) प्रात समय रवि-किरनि कोंवरी—१०-७३। (२) मौका, अवसर। उ.—(क) तीनौ पन ऐसे हीं खोए, समय गये पर जाग्यौ—१-७३ (ख) त्रिय-नगन समय पति राखी—५६९

मुहा. समय पाइ—सुअवसर या उचित अवसर देखकर। उ.—समय पाइ ब्रज बात चलाई—३४१८। तनेहोंमाद(३) सुख या दुख के दिन।

यौ—समय-कुसमय—(१) अच्छे-बुरे दिन, सुख-दुख के दिन। (२) हर समय।

(४) फुरसत, अवकाश। उ.—बुधि-विवेक बिचित्र पौरिया समय न कबहूँ पावैं—१-४०। (४) अंत, परिणाम।

समया—संज्ञा पुं. [सं. समय] संकट का अवसर, बुरे दिन। उ.—और मित्र ऐसे समया महँ कत पहिचान करैं—१० उ.—७४।

समयौ—संज्ञा पुं. [सं. समय] अवसर। उ.—तिन अंकनि कोउ फिरि नहिं बाँचत गत स्वारथ समयौ—१-२९८।

समर—संज्ञा पुं. [सं.] लड़ाई, युद्ध, संग्राम। उ.—(क) लगन नहिं देत कहूँ समर-आँच ताती—१-२३। (ख) बहुत सनाह समर सर बेधे—१-२७८।

संज्ञा पुं. [सं. स्मर] कामदेव।

समरत्थ, समरथ—वि. [सं. समर्थ] (१) कोई काम करने की शक्ति या योग्यता रखनेवाला। उ.—(क) अब यह बिथा दूरि करिबे कौं और न समरथ कोई—१-११८। (ख) सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै—६-६। (२) शक्ति और साधन-संपन्न। उ.—(क) सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै, हौं समरथ की नारी—९-७९। (ख) कै यह ठौर लियौ कहुँ आइ रह्यौ कोऊ समरथ नर—१० उ.-७०।

समरपना, समरपनौ—क्रि. स. [हिं. समर्पना] समर्पण करना, भेंट में देना।

समरपे—क्रि. स. [हिं. समर्पना] भेंट में दिये, अर्पित किये। उ.—जिन तन-मन-धन मोहिं प्रान समरपे सील-सुभाव बड़ाई—९-७।

समर-भूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] युद्ध-क्षेत्र।

सम-रस—वि. [सं. सम + रस] (१) समान रसवाले। (२) समान विचारवाले। (३) सदा एक-सा रहनेवाला।

समर-शायी—वि. [सं. समरशायिन्] जो युद्ध में मारा गया हो, जिसे वीरगति मिली हो।

समर-शैया—संज्ञा स्त्री. [सं. समर + शय्या] युद्ध-भूमि में घायल होकर गिरने की स्थिति।

समर-सेज, समर-सेज्या—संज्ञा स्त्री. [सं. समर + हिं. सेज] युद्ध क्षेत्र में घायल होकर गिरने की अवस्था। उ.—पौढ़े कहा समर-सेज्या सुत—१-२९।

समरांगण, समरांगन—संज्ञा पुं. [सं. समरांगण] लड़ाई का मैदान, युद्ध-क्षेत्र।

समराना, समरानौ—क्रि. स. [हिं. सँवारना] (१) सजाना या सजवाना। (२) सँवारना या सँवरवाना।

समरारी, समुरारी—संज्ञा पुं. [सं. समर + अरि] समर-भूमि में युद्ध की इच्छा से उपस्थित वीर योद्धा। उ.—समरारी को कुयस, कुयस की प्रगट एक ही काल—२०९७।

समर्थ—वि. [सं.] (१) कोई काम करने की शक्ति या योग्यता रखनेवाला (२) शक्ति और साधन संपन्न। उ.—ब्रह्म पूरन अकल कला तें रहित ए हरता-करता समर्थ और नाहीं—२५५६। (३) अधिकार रखनेवाला, सक्षक। (४) प्रभावित कर सकनेवाला। (५) काम में आ सकने योग्य।

समर्थक—वि. [सं.] समर्थन करनेवाला।

समर्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समर्थ होने का भाव या धर्म। (२) शक्ति, सामर्थ्य।

समर्थन—संज्ञा पुं. [सं.] किसी विचार या मत से सहमत होकर उसका पोषण करना।

समर्थित—वि. [सं.] जिसका समर्थन हुआ हो।

समर्थक वि. [सं.] समर्पण करने वाला।

समर्पण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी को आदरपूर्वक या भेंट-स्वरूप कुछ देना। (२) श्रद्धा या भक्तिपूर्वक कुछ अर्पित करना। (३) अपना अधिकार, दायित्व आदि दूसरे को सौंपना। (४) विवाद, युद्ध आदि से बचने के लिए अपने को विपक्षी या किसी अधिकारी के हाथ में सौंप देना। (५) देना, दान।

समर्पत—क्रि.स. [हिं. समर्पना] दान देते या अर्पित करते हैं। उ.— एकनि कौं गौ-दान समर्पत—१०-२५।

समर्पना, समर्पनो—क्रि. स. [सं. समर्पण] (१) भेंट देना, अर्पित करना। (२) सौंपना।

समर्पि—क्रि. स. [हिं. समर्पना] अर्पित या अर्पण करके। उ.—तंदुल घिरत समर्पि स्याम कौं संत परोसौ करतौ —१-२९७।

समर्पित वि. [सं.] (१) जो समर्पण किया गया हो। उ. —तनु आत्मा समर्पित तुम कहँ पाछे उपजि परी यह बात—१० उ. - ११। (२) जो सौंपा गया हो।

समर्पिती – वि. [सं. समर्पित] (१) जिसे समर्पण किया गया हो। (२) जिसे सौंपा गया हो।

समर्पौ—क्रि. स. [हिं. समर्पना]। अर्पित या अर्पण करो। उ.—सबै समर्पौ सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ —१—२६६।

समवयस्क—वि. [सं.] बराबर की उम्र का।

समवर्ती वि. [सं. समवर्तिन्] (१) पास या साथ रहने वाला। (२) समकालीन।

समवाय— संज्ञा पुं. [सं.] (१) झुंड, समूह। (२) सदा बना रहनेवाला या नित्य संबंध।

समवायी वि. [सं. समवायिन्] नित्य संबंध रखनेवाला।

समवृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] छंद जिसके चारो चरण समान वर्ण या मात्रावाले हों।

समवेत—वि. [सं.] (१) जमा या इकट्ठा किया हुआ, एकत्र, संचित। (२) सम्मिलित। (३) नित्य संबंध से बंधा हुआ।

समष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] सबका समूह, 'व्यक्ति' का विपरीतार्थक। उ.—सूरदास सोई समष्टि करि व्यष्टिभाव मन लाव—२-३८।

समसरि—वि. [सं. सम] बराबर, समान। उ.—(क) सूरदास सिसुता-सुख जलनिधि कहँ लौं कहौं, नहिं कोउ समसरि—१०-१२०। (ख) अपनी समसरि और गोप जे तिनको साथ पठाये—५८३।

संज्ञा स्त्री. बराबरी, समानता। उ.—दुहुन देहु कछु दिन अरु मोकौं तब करिहौ मो समसरि आई—६६८।

समसान—संज्ञा पुं. [सं. श्मशान] श्मशान।

सम-सामयिक— वि. [सं. सम + सामयिक] जो (दो या कई) एक ही समय में हुए हों।

समस्त—वि. [सं.] (१) सब, कुल, समग्र। (२) मिलाया हुआ, संयुक्त। (३) जो समास द्वारा मिलाया गया हो, समासयुक्त।

समस्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जटिल या विकट प्रसंग। (२) छंद आदि का वह चरणार्द्ध जो नया और स्वतंत्र छंद बनाने के लिए कवियों को दिया जाता है।

समस्या-पूर्ति— संज्ञा स्त्री. [सं.] दिये हुए चरणार्द्ध के आधार पर स्वतंत्र छंद बनाना।

समाँ—संज्ञा पुं. [हिं. समय] वक्त, समय।

मुहा.— समा बँधना—(संगीत, काव्य-पाठ आदि का) इतनी उत्तमता से संपन्न होना कि उपस्थित जन-समूह तन्मय हो जाय।

समा—संज्ञा स्त्री. [सं.] साल, वर्ष।

समाइ—क्रि.अ. [हिं समाना] लीन होकर, लीन हो जाय। उ.—(क) सनै सनै बिधि-लोकहिं जाइ, ब्रह्मा सँग हरि

पदहिं समाइ—३-१३ । (ख) ताहि सुनै जो प्रीति कै सो हरि पदहिं समाइ—१८६१ ।

प्र.—जाइ समाइ—जाकर लीन हो जाय । उ.—जाइ समाइ सूर वा निधि मैं बहुरि न उलटि जगत में नाचै—२-११ । गए समाइ—लोप से हो गये । उ.—मंदिर में गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ—१०-२७५ । कहा समाइ—कैसे समा सकता या सहा जा सकता है ? उ.—पलक वोट निमि पर अनखाती यह दुख कहा समाइ—३४४४ । सकै न समाइ—भरा नहीं जा सकता है । उ.—सूर-दास प्रभु सिमुता कौ सुख सकै न हृदय समाइ—१०- १७८ । गयो समाइ—लीन हो गया, पच गया, मिल गया । उ.—वह्वल देखि जननि व्याकुल भइ अंग विष गयौ समाइ—७५८ ।

समाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. समाना] (१) समान की क्रिया या भाव (२) शक्ति, सामर्थ्य । (३) हैसियत औकात ।

समाउँ—क्रि. अ. [हिं. समाना] भर या समा जाता हूँ । उ.—ह्याँ के वासी अवलोकत हौं आनँद उर न समाउँ ९—१६५ ।

समाऊँ—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा जाऊँ । उ.—अंग सुभग सजि, ह्वै मधु मूरति नैननि माँह समाऊँ—१०४९ ।

समाए—क्रि. अ. [हिं. समाना] (१) लीन हो गया । उ.—पुनि सबको रचि अंड आपु मैं आपु समाए—२-३६ । (२) आ गया, भर सका, समा सका । उ.—अति बिसाल चंचल अनियारे हरि-हाथनि न समाए—६७५ ।

समाक –वि. [सं. सम्यक्] सब, पूरा ।

समागत—वि. [सं.] (१) कहीं से आया हुआ (अतिथि आदि) । (२) उपस्थित या प्रस्तुत (प्रसंग आदि) ।

समागम—संज्ञा पुं [सं.](१)आना, आगमन । (२) मिलना, मिलन । (क) ना हरि-भक्ति न साधु-समागम रह्यो बीच ही लटकैं - १-२९२ । (ख) सूरदास प्रभु संत-समागम आनँद अभय निसान बजावै—१-२३३ । (ग) धरनि तृन तनु रोम पुलकित पिय समागम जानि—२८२८ । (३) मैथुन, संभोग । उ.—प्रथम समागम आनँद-आगम दूलह वर-दुलहिनी दुलारी—१०३-३९ ।

समाचार—संज्ञा पुं. [सं.] हाल, खबर, संवाद । उ.—(क) पूछे समाचार सति भाएँ—१-२८४ । (ख) काहू समाचार कछु पूछे—४-५ । (ख) श्री रघुनाथ और लछि-मन के समाचार सब पाये—९-९० ।

समाचार पत्र संज्ञा पुं. [सं.] अखबार ।

समाज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह । (२) एक ही कार-बार, आचार-विचार या समस्या के लोगों का वर्ग या समुदाय । उ.—कछु डर नाहिंन जिय मैं डरपत अति आनंद समाज—सारा-४२ । (३) सभा, समिति ।

समाजवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह सिद्धांत जो समाज में सब प्रकार की समानता स्थापित करनेवाला हो ।

समाजवादी—वि. [सं.] 'समाजवाद' के सिद्धांत में विश्वास रखनेवाला ।

समाजी—संज्ञा पुं. [हिं. (आर्य) समाज] आर्य समाज का मतानुयायी ।

संज्ञा पुं. [हिं. समाज] नर्तकी के साथ तबला, सारंगी आदि बजानेवाला वर्ग ।

समाज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] यश, कीर्ति ।

समात—क्रि. अ. [हिं. समाना] (१) समाता है । उ.–(क) अमर मुनि फूले सुख न समात मुदित मति—१०-६ । (ख) अति अनुराग संग कमला तन पुलकित अंग न समात हियौ – १०-१४३ (२) रुकता या ठहरता है । उ.—ठाढ़ो थक्यो उतर नहिं आवै लोचन जल न समात—२४५७ ।

समाति—क्रि. अ. [हिं. समाना] समाती है । उ.—(क) संपति घर न समाति—१०-३६ (ख) विद्यमान बिरह-सूल उर में जु समाति—२५४३ ।

समातो, समातौ—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा जाता । उ.—यह व्यापार वहाँ जु समातो हुती बड़ी नगरी—३१०४ ।

समादर—संज्ञा पुं. [सं.] यथेष्ट सम्मान-सत्कार ।

समादृत—वि. [सं.] यथेष्ट रूप से सम्मानित ।

समाध—संज्ञा स्त्री [सं. समाधि] समाधि ।

समाधा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निपटारा । (२) विरोध दूर करना । (३) समाधान । उ.–निरखत बिधि भ्रमि भूलि परचौ तब, मन मन करत समाधा—७०५ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. समाधि] समाधि । उ.—नहिं पावत

जो रस योगीजन तब तब करत समाधा—१२३६ ।

समाधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी का संदेह, आशंका आदि दूर करने को दिया जानेवाला उत्तर जिससे उसे संतोष हो जाय । उ.—(क) समाधान सुरगन को करिकै - सारा. २९४। (ख) समाधान सबहिनि को कीन्हो—सारा. ३०१ । (ग) तुम हरि समाधान को पठए हमसों कहन सँदेस—३२३२ । (२) मतभेद या विरोध दूर करना। (३) निराकरण । (४) समाधि। (५) ध्यान । (६) समर्थन। (७) नाटक की मुखसंधि के बारह अंगों में एक जिसमें बीज को ऐसे रूप में पुनः प्रस्तुत किया जाय कि नायक या नायिका का अभिमत पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाय ।

समाधानना, समाधाननो—क्रि. स. [सं. समाधान] (१) संदेह, आशंका आदि दूर करके संतुष्ट करना । (२) धैर्य या सांत्वना देना ।

समाधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ईश्वर के ध्यान में मग्न होना । उ.—(क) रिषि की कपट-समाधि बिचारि, दियौ भुजंग मृतक गर डारि—१-२९० । (ख) सुचि-रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीनबंधु करुनामय उर धरि—१-३१२ । (ग) सिव समाधि जिहिं अंत न पावैं—१०-३ । (घ) जिहिं सुख कौं समाधि सिव साधी—१०-१२८। (२) योग का चरम फल जो उसके आठ अंगों में अंतिम है। इसके चार भेद हैं—संप्रज्ञात, सवितर्क, सविचार और सानंद। इस अवस्था में मनुष्य के चित्त की सब वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, बाह्य जगत से किसी प्रकार का संबंध नहीं रह जाता और अनेक प्रकार की शक्तियों के साथ अंत में कैवल्य की प्राप्ति होती है । उ.—सो अष्टांग जोग कौं करै ।···
···। क्रम क्रम सौं पुनि करै समाधि । सूर स्याम भजि मिटै उपाधि—२-२१ । (३) प्राणी की वह अवस्था जिसमें उसकी चेतना नष्ट हो जाती है और वह कोई शारीरिक क्रिया नहीं कर पाता । (४) मौन । (५) निद्रा । (६) मृत व्यक्ति की अस्थियाँ या शव गाड़ना । (७) वह स्थान जहाँ शव या अस्थियाँ गाड़ी जायँ । (८) एक अर्थालंकार ।

समाधित—वि. [सं.] जिसने समाधि लगायी हो ।

समाधिस्थ—वि. [सं.] जो समाधि में लगा हो ।

समान—वि. [सं.] रूप, गुण, आकार आदि में एक जैसा, बराबर, तुल्य । उ.—(क) तुमहिं समान और नहिं दूजौ—१-१११ । (ख) सुनि थके देव बिमान, सुर-बधु चित्र समान—६२३ । (ग) कोमल कमल समान देखियत ये जसुमति के बारे—२५६९ ।

महा.—एक समान—बिलकुल मिलत-जुलते ।

यौ.—समान वर्ण—एक ही स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्ण जैसे, त, थ, द, ध ।

संज्ञा स्त्री. बराबरी, समानता ।

समानता संज्ञा स्त्री. [सं.] बराबरी, तुल्यता ।

समानान्तर—संज्ञा पुं. [सं. समान+अंतर] वे रेखाएँ जो आदि से अंत तक समान अंतर पर ही रहें ।

समाना—क्रि. अ. [सं. समावेश] (१) किसी वस्तु, अंग आदि के भीतर पहुँचकर भर जाना या लीन हो जाना । (२) कहीं से आकर उपस्थित होना, पहुँचना ।

क्रि. स. किसी वस्तु आदि में भरना ।

समानाधिकरण—संज्ञा पुं. [सं.] व्याकरण में किसी शब्द या पद का अर्थ या संबंध स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया जानेवाला समानार्थी शब्द या पद ।

समानार्थी—संज्ञा पुं. [सं.] वह शब्द जिसका अर्थ दूसरे के समान अर्थात् वही हो, पर्याय ।

समानार्थक—वि. [सं.] (किसी शब्द या पद के) समान अर्थ रखनेवाला, पर्यायवाची ।

समानी—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा गयी, भर गयी, लीन हो गयी । उ.—(क) सूर अगिनि सब बदन समानी—६१५ । (ख) कहा करौं, सुन्दर मूरति इन नयननि माँझ समानी—११९८। (ग) बुधि बिबेक बल बचन चातुरी मनहुँ उलटि उन माँझ समानी—पृ.३३२ (२९) । (घ) नव से नदी चलत मर्यादा सूधी सिंधु समानी—२०४४ ।

समाने—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा गये, भर गये, लीन हो गये। उ.—(क) कबहुँ अघासुर बदन समाने—४९७ । (ख) कोउ बन में रहे-दुरि, कोऊ गगन समाने —१२९६ । (ग) नैना नैननि माँझ समाने—पृ. ३२७ (६४) । (घ) सो मति मूढ़ कहत अबलनि सों, नहिं

सो हृदय समाने—३२१३।

वि. [हिं. समान] बराबर, तुल्य। उ.—मन-बच-कर्म पल वोट न भावत, छिन युग बरस समाने—पृ. ३२७ (६४)।

समानै—वि. [हिं. समान] बराबर, तुल्य।

समानो—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा गया, भर गया। उ.—तिहूँ भुवन भरि नाद समानौ—पृ. ३४७ (५३)।

समान्यो, समान्यौ—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा गया, भर गया। उ.—(क) गैयन भीतर आइ समान्यौ—२३७३। (ख) सूर उहै निज रूप स्याम कौ है मन माँझ समान्यो—३१२७।

समापक—वि. [सं.] समाप्त करनेवाला।

समापत—वि. [सं. समाप्त] खत्म, समाप्त।

समापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्य पूरा या समाप्त करना। (२) विचार, विवाद आदि से बचने के लिए समाप्ति का आदेश देना या प्रस्ताव करना। (३) मार डालना। (४) समाधान।

समापन्न—वि. [सं.] समाप्त किया हुआ।

समापिका क्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्याकरण में वह क्रिया जिससे किसी कार्य की समाप्ति सूचित हो।

समापित—वि. [सं.] समाप्त किया हुआ।

समापी—वि. [सं.] समाप्त करनेवाला।

समाप्त—वि. [सं.] जो खत्म या पूरा हो गया हो।

समाप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) किसी चलते हुए कार्य का खत्म या पूरा होना। (२) सीमा, अवधि आदि का अंत होना। (३) (अस्तित्व आदि) न रह जाना।

समाप्य—वि. [सं.] (१) समाप्त करने योग्य। (२) जो समाप्त होने को हो।

समाय—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा जाय, भर जाय, लीन हो जाय। उ.—जाइ समाय सूर वा निधि मैं बहुरि जगत नहिं नाचै—१-८१।

समायो, समायौ—क्रि. अ. [हिं. समाना] (१) समा गया। उ.—तब तनु तजि मुख माहिं समायौ—१-२२६। (२) डूब गया। उ.—मन-कृत दोष अथाह तरंगिनि तरि नहिं सक्यौ, समायौ—१-६७।

समारंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अच्छी तरह शुरू या आरंभ होना। (२) समारोह।

समारना, समारनो—क्रि. स. [हिं. सँवारना] (१) ठीक करना। (२) सजाना। (३) काम बनाना।

समारोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धूम-धाम, तड़क-भड़क। (२) धूम-धाम या तड़क-भड़क से होनेवाला कोई उत्सव या आयोजन।

समर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] समान अर्थवाला शब्द, पर्याय।

समार्थक—वि. [सं.] समान अर्थवाला, पर्यायवाची।

समालोचक—वि. [सं.] समालोचना करनेवाला।

समालोचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भली-भाँति देख-भाल कर गुण-दोषों का पता लगाना। (२) उक्त प्रकार से ज्ञात गुण-दोषों की विवेचना करना।

समालोचना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भली भाँति देख-भालकर गुण-दोषों का पता लगाना। (२) उक्त प्रकार से ज्ञात गुण-दोषों की विवेचना करना। (३) वह रचना जिसमें उक्त विवेचना की गयी हो।

समालोची—वि. [सं. समालोचिन्] समालोचना करने-वाला, समालोचक।

समाव—संज्ञा पुं. [हिं. समाई] (१) समाने की क्रिया या भाव। (२) शक्ति, सामर्थ्य। (३) हैसियत, बिसात।

समावत—क्रि. अ. [हिं. समाना] समाता है। उ.—गोप-सखा सब बदन निहारत उर आनँद न समावत—४७९।

समावनो—संज्ञा पुं. [हिं. समाना] समाने की क्रिया या भाव। उ.—अधर अरुन छबि कोटि बज्र दुति ससि गुन रूप समावनो—२२८०।

समावर्त्तन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लौटना, वापस आना। (२) वह संस्कार या आयोजन जो शिक्षार्थी के शिक्षा समाप्त कर लेने पर, स्नातक होकर उसके लौटने के समय प्राचीन गुरुकुलों में किया जाता था या आधुनिक विश्वविद्यालयों में होता है।

समाविष्ट—वि. [सं.] जो समाया हुआ, सम्मिलित या अन्तर्गत हो।

समावृत्त—वि. [सं.] जिसका समावर्तन संस्कार हो चुका हो।

समावेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक साथ रहना। (२)

एक वस्तु का दूसरी के अंतर्गत होना।

समावेशित—वि. [सं.] जो किसी में समाया हुआ या किसी के अंतर्गत हो।

समावै—क्रि. अ. [हिं. समाना] भर जाय, लीन हो जाय, समा जाय। उ.—(क) आधे मैं जल-वायु समावै।....। प्रान-वायु पुनि आइ समावै—३-१३। (ख) सूरदास सो प्रेम हरि-हियैं न समावै री—६२९।

समास - संज्ञा पुं. [सं.] (१) संक्षेप। (२) समर्थन। (३) संग्रह। (४) सम्मिलिन। (५)व्याकरण में दो या अधिक शब्दों का संयोग। इसके चार मुख्य भेद हैं—अव्ययी भाव, तत्पुरुष, समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय और द्वंद्व।

समासक—संज्ञा पुं. [सं. समास+क (प्रत्य.)] समास चिह्न जो पदों के सामासिक होने का सूचक होता है।

समासोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अर्थालंकार।

समाहना, समाहनो—क्रि. अ. [हिं. सामुहें=सामने] सामने आना, सामना करना।

क्रि. स. [सं. समाहित] पकड़ना।

समाहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहुत सी चीजों को इकट्ठा करना। (२) राशि, ढेर। (३) मिलाना, मिलाप कराना। (४) व्याकरण में द्वंद्व समास का एक भेद।

समाहित—वि. [सं.] (१) एकत्र, संगृहीत। (२) शांत। (३) समाप्त। (४) स्वीकृत।

संज्ञा पुं. 'समाधि' नामक एक अर्थालंकार का दूसरा नाम।

समाहिं—क्रि. अ. [हिं. समाना] मग्न या लीन हो जाते हैं। उ.—अतिहिं मगन महा मधुर रस रसन मध्य समाहिं—१-३३८।

समाही—क्रि. अ. [हिं. समाना] समा जाता है, लीन हो जाता है। उ.—(क) जैसैं नदी, समुद्र समाही—पृ. ३१९ (८४)। (ख) ज्यों पानी में होत बुदबुदा पुनि ता माहिं समाही—१० उ.-१३१।

समिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सभा, समाज।

समिद्ध—वि. [सं.] (१) जलता हुआ। (२) उत्तेजित।

समिध—संज्ञा पुं. [सं.] अग्नि।

समिधा—संज्ञा स्त्री. [सं. समिधि] हवन-कुंड मे जलाने की लकड़ी।

समिर—संज्ञा पुं., स्त्री. [सं. समीर] हवा, वायु।

समी—संज्ञा पुं. [हिं. शमी] 'शमी' वृक्ष।

समीक - संज्ञा पुं. [सं. शमीक] एक क्षमाशील ऋषि जिनके गले में परीक्षित ने मरा हुआ साँप डाल दिया था और जिनके पुत्र ने उनको सातवें दिन तक्षक नाग द्वारा डसे जाने का शाप दिया था। उ.—इक दिन राइ अखेटक गयौ।....। रिषि समीक कैं आस्रम आयौ। ....। दियौ भुजंग मृतक गर डारि—१-२९०।

समीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (दो या अधिक वस्तुओं, राशियों आदि को) समान करने की क्रिया या भाव। (२) गणित में ज्ञात राशि से अज्ञात का पता लगाने की क्रिया। (३) यह सिद्ध करना कि अमुक-अमुक राशियाँ या मान समान हैं।

समीक्षक—वि. [सं.] समीक्षा करनेवाला।

समीक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देखना-भालना, जाँच-पड़ताल। (२) आलोचना।

समीक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देखने-भालने या जाँच-पड़ताल करने की क्रिया। (२) समालोचना।

समीचीन—वि. [सं.] (१) ठीक। (२) उचित।

समीचीनता - संज्ञा स्त्री. [सं.] ठीक, उचित या न्यायसंगत होने का भाव।

समीति—क्रि. वि. [सं.] प्रीति या मित्रता-भाव से। उ. जिनि पतियाहु मधुर सुनि बातैं लागे करन समीति। —३०५४।

संज्ञा स्त्री [सं. समिति] सभा, समाज।

समीप—क्रि. वि. [सं.] (१) पास, निकट। उ.—छहौं रस लै समीप सँचरै - १-११७। (२) सामने, तुलना में। उ.—कोटि स्वर्ग सम सुखउ न मानत हरि समीप समता नहिं पावत—३१४२।

समीपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] समीप ही स्थित, निकटता।

समीपवर्ती—वि. [सं. समीपवर्त्तिन्] निकट का।

समीपस्थ—वि. [सं.] निकट का।

समीपै—क्रि. वि. [सं. समीप] पास, निकट। उ.—सुभग कर आनन समीपै मुरलिया इहिं भाइ - ६२७।

समीर—संज्ञा पुं. [सं.] हवा, वायु। उ.—रघुपति रिस

पावक प्रचंड अति सीता-स्वास समीर— ९-१५८ ।

समीर—कुमार—संज्ञा पुं. [सं. समीर+कुमार]हनुमान।

समीरण—संज्ञा पुं [सं.] हवा, वायु।

समीहा संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चेष्टा। (२) इच्छा।

समुंदर—संज्ञा पुं. [सं. समुद्र] सागर, समुद्र।

समुचित वि. [सं.] (१) उचित। (२) उपयुक्त।

समुच्चय-संज्ञा पुं. [सं.](१) कुछ चीजों का एक में मिलना। (२) ढेर, राशि, समूह। (३) एक अर्थालंकार।

समुच्चयबोधक—संज्ञा पुं. [सं.] व्याकरण में वह अव्यय जो दो शब्दों, पदों या वाक्यों को परस्पर जोड़ता हो।

समुच्चित—वि. [सं.] (१) ढेर या राशि-रूप में इकट्ठा किया हुआ। (२) एकत्र, संगृहीत।

समुज्ज्वल—वि. [सं.] (१) बहुत चमकीला। (२) बहुत प्रकाशमान।

समुझ—संज्ञा स्त्री.[हिं समझ]अक्ल, बुद्धि। उ.—गुन अवगुन की समुझ न संका परि आई यह टेव—१-१५० ।

समुझत–क्रि. स. [हिं. समुझना] समझता, बूझता या ध्यान में लाता है। उ.—(क) मगन भयौ माया रस लंपट समुझत नाहिं हटी—१-९८। (ख) जुग जुग जनम, मरन अरु बिछुरन, सब समुझत मत-भेव—१-१०० ।

समुझना, समुझनो—क्रि. स. [हिं. समझना] (१) कोई बात विचार करके ध्यान में लाना। (२) किसी बात का स्वरूप आदि देखकर तद्विषयक अनुमान या कल्पना करना।

समुझाइ—क्रि. स. [हिं. समुझाना] अच्छी तरह बताकर या समझा-बुझाकर। उ.— मन तोसौं किती कही समुझाइ —१-३१७ ।

समुझाईं – क्रि. स. बहु. [हिं. समुझाना]समझाया-बुझाया। उ.—मानैं नहीं, कितौ समुझाईं—३९१ ।

समुझाई—क्रि. स. [हिं. समुझाना] समझाया-बुझाया। उ.—मन मैं सोच न करि तू माता, यह कहिकै समुझाई—९-८० ।

समुझाना, समुझानो—क्रि. स. [हिं. समुझना] (१) समझाने की बातं करना। (२) धीरज देना।

समुझायो, समुझायौ— क्रि. स. [हिं. समझाया] (१) समझाया-बुझाया। (२) धीरज दिया।

संज्ञा पुं. समझाने की क्रिया, भाव या उसका प्रभाव। उ.—छिन छिन सुरति करत जसुमति की परत न मन समुझायो—१० उ.-७८ ।

समुझाव, समुझावा—संज्ञा पुं. [हिं. समुझाना] समझने-समझाने की क्रिया या भाव।

समुझावत—क्रि. स. [हिं. समुझाना] समझाते-बुझाते हो, प्रबोधते हो। उ.—मधुकर, हमहीं क्यौं समुझावत —२९८९।

समुझावति—क्रि. स. [हिं. समुझाना] समझाती या प्रबोधती हैं। उ.—जैहैं बिगरि दाँत ये आछे तातैं कहि समुझावति—१०-२२२।

समुझावही—क्रि. स. [हिं. समुझाना] समझाता या प्रबोधता है। उ.–सूर दुष्ट समुझावही त्यौं त्यौं जिय खरई —२८६१।

समुझावहु—क्रि. स. [हिं. समुझाना] समझाते या प्रबोधते हो। उ.—ऊधौ, हमैं कहा समुझावहु—३२०६ ।

समुझावै—क्रि. स. [हिं. समुझाना] (१) बताता या सिखाता है। उ.—बचन-रचन समुझावै—१-१८६। (२) समझाता या प्रबोधता हैं, समझाती या प्रबोधती है। उ.—(क) सूरदास आपुहिं समझावै लोग बुरौ जिनि मानौ—१-६३। (ख) ऐसौ पुरुषारथ सुनि जसुमति खीझति फिरि समुझावै—४८२।

समुझि—क्रि. स. [हिं. समुझना] समझ-बूझकर, ध्यान देकर। उ. – (क) रे मन, समुझि सोचि-बिचारि —१-३०९। (ख) बौरे मन, समुझि-समुझि कछु चेत —१-३२२।

समुझिबी—क्रि. स. [हिं. समुझना]समझ लो या लेंगे, जान लेंगे या लो। उ.—इतने महि सब तात समुझिबी चतुर सिरोमनि नाह—२८६८।

समुझी—क्रि. स. [हिं. समुझना] समझ में आयी।

प्र.—समुझी न परी—समझ में नहीं आई, जान नहीं पाया। उ.—कौन भाँति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी समुझी न परी १-११५ ।

समुझे—वि. [हिं. समुझना] समझने-बूझनेवाले। उ.—सूरदास समुझे की यह गति, मन ही मन मुसुकायौ—४-१३१ ।

समुझैए—क्रि. स. [हिं. समुझना] समझाइए-बुझाइए, प्रबोधिए। उ.—कामी होइ काम आतुर तेहि कैसे कै समुझैए—२२७५।

समुझैहौं—क्रि. स. स्त्री., पुं. [हिं. समुझाना] समझाऊँ-बुझाऊँगी, प्रबोधूँगी। उ.—किहिं बिधि करि कान्हहिं समुझैहौं—१०-१८९।

समुझ्यो, समुझ्यौ—क्रि. स. [हिं. समझना] समझ-बूझ सका, जान सका। उ.—मैं अज्ञान कछू नहिं समझ्यौ परि दुख-पुंज सह्यो—१-४६।

समुद—संज्ञा पुं. [सं. समुद्र] सागर, समुद्र। उ.—(क) त्रिदसपति समुद के मथन के बचन जो सो सकल ताहि कहि कै सुनाए—८-८। (ख) हम लंकेस-दूत प्रतिहारी समुद तीर कौं जात अन्हाए—९-१२०।

समुदय—संज्ञा पुं. [सं] (१) उदय। (२) दिन। (३) युद्ध।
 वि. सब, कुल, समस्त।
 संज्ञा पुं. [सं. समुदाय] (१) ढेर, राशि। (२) गरोह, झुंड, समूह।

समुदाइ, समुदाई—संज्ञा पुं. [सं. समुदाय] समूह, समुदाय। उ.—सुख-संपति दारा-सुत झूठ सबै समुदाइ—१-३१७।

समुदाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ढेर, राशि। (२) झुंड, समूह।

समुदायों—संज्ञा पुं. [सं. समुदाय] झुंड या समूह में। उ.—सूर चले बन तें गृह को प्रभु बिहँसत मिलि समुदायो २३१६।

समुदित—वि. [सं.] (१) उन्नत। (२) उत्पन्न।

समुद्यय—वि. [सं.] अच्छी तरह से तैयार।

समुद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सागर, उदधि। उ.—आए तीर समुद्र के—९-७२। (२) किसी विषय के ज्ञान, गुण आदि का बहुत बड़ा आगार।

समुद्रकांची—संज्ञा स्त्री. [सं. समुद्रकाञ्ची] पृथ्वी जिसकी मेखला समुद्र है।

समुद्रकांता—संज्ञा स्त्री. [सं. समुद्रकान्ता] नदी।

समुद्रचुलुक—संज्ञा पुं. [सं.] अगस्त्य मुनि जिन्होंने सारा समुद्र चुल्लुओं से पी डाला था।

समुद्रज—वि. [सं.] समुद्र से उत्पन्न।
 संज्ञा पुं. मोती आदि रत्न जो समुद्र से उत्पन्न माने जाते हैं।

समुद्रफेन—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र का फेन या झाग।

समुद्री, समुद्रीय—वि. [सं. समुद्रीय] (१) समुद्र का। (२) समुद्र में होनेवाला।

समुन्नत—वि. [सं.] भली भाँति उन्नत।

समुन्नति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) यथेष्ट उन्नति। (२) महत्ता। (३) उच्चता।

समुल्लास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनंद, उल्लास। (२) ग्रंथादि का प्रकरण या परिच्छेद।

समुहा—वि., क्रि. वि. [सं. सम्मुख] सामने।

समुहाइ, समुहाई—क्रि. अ. [हिं. समुहाना] (१) सामने होकर। उ.—(क) सोचति चली कुँवरि घर हीं तैं। खरिक गई समुहाइ—६७९। (ख) सुन्दरि गयी गृह समुहाइ—३९६। (ग) मुकाबला या सामना करती है, सामने आकर अड़ती है। उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ। ....। ढीठ, निठुर, न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ—१-५६।

समुहाना—क्रि. अ. [सं. सम्मुख] (१) सामने आना। (२) सामने आकर अड़ना, सामना करना।
 क्रि. अ. [हिं. समूह] समूह बनाना, एकत्र होना।

समुहाने—क्रि. अ. [हिं. समुहाना] (किसी के) सामने या सम्मुख आ गये। उ.—सुनि मृदु बचन देखि उन्नत कर हरषि सबै समुहाने—५०३।

समुहानो—क्रि. अ. [सं. सम्मुख] (१) सामने आना। (२) सामना करना।

समुहाहिं—क्रि. अ. [हिं. समूह] एकत्र होकर, समूह बनाकर। उ.—सूर राधा सहित गोपी चलीं ब्रज समुहाहिं—१३०६।

समूचा—वि. [सं. समुच्चय] (१) सब, कुल। (२) बिना कटा-पिटा, पूरा, सारा।

समूढ़—वि. [सं.] (१) एकत्र, संचित। (२) भोगा हुआ। (३) ठीक, संगत। (४) हाल का जन्मा हुआ। (५) विवाहित।
 संज्ञा पुं. (१) समूह। (२) भंडार, आगार।

समूर—संज्ञा पुं. [सं.] 'शंबर' या 'साबर' मृग।
 वि. [सं. स+मूल] मूलसहित।

संमूरा—वि. [सं. समस्त] सारा, समूचा ।
वि. [सं. स+मूल] मूल सहित ।

समूल—वि. [सं.] (१) जिसमें जड़ या मूल हो । (२) जिसका कारण या हेतु हो ।
क्रि. वि. जड़-मूल से ।

समूह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह की चीजों का ढेर । उ.—अधम-समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी —१-१३० । (२) (मनुष्यों का) समुदाय । उ.—सैल-सिला-द्रुम बरषि व्योम चढ़ि सत्रु-समूह सँहारौं —९-१०८ ।

समूहत:—क्रि. वि. [सं.] सामूहिक रूप से ।

समृत—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] (१) ज्ञान जो स्मरण-शक्ति से प्राप्त हो । (२) साहित्य में किसी भूली बात का याद आना जो एक संचारी भाव है । (३) प्रियतम संबंधी बातों का याद आना जो पूर्वराग की दस अवस्थाओं में एक है । (४) हिंदू धर्म-शास्त्र । उ.—समृत-बेद-मारग हरि-पुर कौं तातैं लियौ भुलाई— १-१८७ ।

समृद्ध—वि. [सं.] धन- संपत्तिवाला ।

समृद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] धन-वैभव-संपन्नता ।

समृद्धी—वि. [सं. समृद्धिन्] धन-वैभव बढ़ानेवाला ।
संज्ञा स्त्री. [सं. समृद्धि] धन-वैभव-संपन्नता ।

समेटना, समेटनो—क्रि. स. [हिं. सिमटना] बिखरी हुई चीजों को इकट्ठा करना ।

समेत—वि. [सं.] मिला हुआ, संयुक्त ।
अव्य. साथ, सहित । उ.—(क) अस्व समेत बभ्रु-बाहन लै सुफल जज्ञ-हित आए—१-२९ । (ख) बल समेत नृप कंस बोलाए—२५६८ । (ग) गज समेत तोहि डारौं मारी —२५८९ ।

समै—संज्ञा पुं. [सं. समय] समय । उ.—(क) सुरत समै के चिह्न राधिका राजत रंग भरे—२११४ । (ख) तब तेहि समै आनि ऐरापति ब्रजपति सों कर जोरे —१११८ ।

समैबो, समैबौ—संज्ञा पुं. [हिं. समाना] जल में समाने या निमज्जित होने की क्रिया या भाव । उ.—कैसै बसन उतारि धरैं हम कैसैं जलहिं समैबौ—७७९ ।

समैया—क्रि. स. [हिं. समाना] समाता है । उ.—फूँकि फूँकि जननी पय प्यावति, सुख पावति जो उर न समैयां —१०-२२९ ।

समैहै—क्रि. स. [हिं. समाना] समायगी, समा सकेगी । उ.—जिन पै ते लै आए ऊधौ, तिनहिं के पेट समैहै —३१०५ ।

समैहौं—क्रि. स. [हिं. समाना] समाऊँगी, समा जाऊँगी । उ.—तजि अकास पिय भौन समैहौं—१२०७ ।

समो—संज्ञा पुं. [सं. समय] समय । उ.—अब वहि देस नंदनंदन कहँ कोउ न समो जनावत—२८३५ ।

समोई—क्रि. स. [हिं. समोना] लीन हुई ।
प्र.—रही समोई – समा गयी, लीन हो गयी । उ. —कहा कहौं कछु कहत न आवै तन मन रही समोई —३१०३ ।

समोखना, समोखनो—क्रि. स. [स. सम्मुख] बहुत जोर देकर कहना ।

समोधना, समोधनो—क्रि. स. [सं. सम्बोधन] समझा-बुझाकर शांत करना या उचित मार्ग पर लाना ।

समोधे—क्रि. स. [हिं. समोधना] समझा बुझाकर शांत किया । उ.- ठानी कथा प्रबोधि तबहिं फिरि गोप समोधे—३४४३ ।

समोना, समोनो—क्रि. स. [हिं. समाना ?] मिलाना ।
क्रि. अ. (१) डूबना । (२) लीन होना ।
वि. [हिं. स+मोयन] (पकवान) जिसमें मोयन मिला हो, जो (पकवान) मोयन मिलाने से बहुत मुलायम हो गया हो ।

समोयो, समोयौ—क्रि. स. [हिं. समोना] (१) मिलाया । उ.—तातौ जल आनि समोयौ अन्हवाइ दियौ, मुख धोयौ १०-१८३ ।
क्रि. अ. मिल गया, लीन या विलीन हो गया । उ.—जज्ञ समय सिसुपाल सुजोधा अनायास लै जोति समोयौ—१-५४ ।
मुहा. गरद समोयौ—धूल में मिल गया, नष्ट हो गया । उ.—सौ भैया दुरजोधन राजा, पल मैं गरद समोयौ—१-४३ ।

समोसा—संज्ञा पुं. [देश.] एक नमकीन पकवान ।

समौ—संज्ञा पुं. [सं. समय] समय ।

मुहा.—समौ गए तें—उपयुक्त समय या अवसर बीत जाने पर। उ.—(क) सुनि सुंदरि यह समौ गए तें पुनि न सूल सहि जैहै— २०३३। (ख) अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए तें सूल नई २५ ७। समौ पहिचान— उपयुक्त समय या अवसर देख-कर। उ.—करिये बिनती कमलनयन सों सूर समौ पहिचान—२५२२।

समौरिया— वि. [सं. सम+हिं. उमर] समान उम्र का।

सम्मत—वि. [सं.] जिसकी राय मिलती हो, सहमत।

सम्मति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) राय, सलाह। (२) अनुमति, आदेश। (३) मत, विचार अभिप्राय। उ.—सोचि-विचारि सकल स्रुति सम्मति, हरि तैं और न आगर—१-९१। (४) एकमत होना। (५) प्रस्ताव या विचार के पक्ष में दी जानेवाली अनुमति।

सम्मान—संज्ञा पुं. [सं.] गौरव, प्रतिष्ठा।

सम्मानना, सम्माननो—क्रि. स. [सं. सम्मान] आदर या सम्मान करना।

सम्मानित—वि. [सं.] (१) जिसका सम्मान किया गया हो। (२) जिसका सब सम्मान करें, प्रतिष्ठित।

सम्मान्य—वि. [सं.] आदर के योग्य।

सम्मिलन—संज्ञा पुं. [सं.] मिलना, मिलाप।

सम्मिलित—वि. [सं.] मिला हुआ, युक्त।

सम्मिश्रण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलने या मिलाने की क्रिया। (२) मेल, मिलावट।

सम्मुख – अव्यय [सं.] सामने, समक्ष।

सम्मुखी—संज्ञा पुं. [सं. सम्मुखिन्] दर्पण, मुकुर।

वि. जो सामने या समक्ष हो।

सम्मुखीन—वि. [सं.] जो सामने हो।

सम्मुहँ, सम्मुहें, सम्मुहों, सम्मुहौं—क्रि. वि. [सं. सम्मुख] सामने, समक्ष।

सम्मेलन संज्ञा पुं. [सं.] (१) सभा, समाज। (२) जमा-वड़ा, जमघट। (३) मिलाप, संगम।

सम्मोह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रेम। (२) भ्रम, संदेह। (३) बेहोशी, मूर्छा। (४) एक छंद।

सम्मोहक—वि. [सं.] मोहनेवाला, लुभावना।

सम्मोहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोहित या मुग्ध करने की क्रिया। (२) एक प्राचीन-अस्त्र जिससे शत्रु-पक्ष को मोहित कर लिया जाता था। (३) कामदेव के पाँच बाणों में एक।

वि. जिससे मोह उपजे, मोहकारक।

सम्यक, सम्यक्—वि. [सं. सम्यक्] पूरा, सब।

क्रि. वि. (१) सब प्रकार से। (२) भली भाँति।

सम्राज्ञी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सम्राट की पत्नी। (२) साम्राज्य की अधीश्वरी।

सम्राट, सम्राट्—संज्ञा पुं. [सं. सम्राज] बड़ा राजा।

सम्रित, सम्रिति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] (१) वह ज्ञान जो स्मरणशक्ति से प्राप्त होता रहता है। (२) याद, स्मरण। (३) किसी पुरानी या भूली हुई बात का स्मरण हो आना जो एक संचारी भाव माना गया है। (४) प्रियतम के संबंध में पुरानी बातों का रह-रहकर याद आना जो पूर्वराग की दस अवस्थाओं में एक है। (५) वे हिंदू धर्मशास्त्र जिनकी रचना वेदों का स्मरण-चिंतन करके की गयी थी। (६) 'स्मरण' नामक अलंकार।

सम्हरना, सम्हरनो, सम्हलना, सम्हालनो—क्रि अ. [हिं. सँभलना] (१) किसी बोझ आदि का रोका या कर्तव्य आदि का निर्वाह किया जा सकना। (२) आधार या सहारे पर रुका या टिका रहना। (३) सावधान होना। (४) बचाव करना। (५) रोग से छूटकर स्वस्थता प्राप्त करना। (६) सुधरना।

सम्हार, सम्हाल—संज्ञा पुं. [हिं. सँभाल, सँभार] (१) रक्षा। (२) पोषण या देखभाल का भार। (३) तन-बदन या शरीर की सुध। उ.—तन की सुधि-सम्हार कछु नाहीं—७९९।

क्रि. स. [हिं. सम्हालना] सुधार या बनाकर।

प्र.—दीन्ही बात सम्हार—बात सुधार या बना दी। उ.—हीरा जनम दियौ प्रभु हमकौं, दीन्ही बात सम्हारि—१-१९६।

सम्हारत, सम्हालत—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] सुधारता है। उ.—पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगैं—१-६१।

सम्हारति, सम्हालति - क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हा-

लना] (१) ठीक या व्यवस्थित रखती है। उ.—आनँद उर अंचल न सम्हारति सीस सुमन बरसावति —१०-२३। (२) बुरी दशा में जाने से बचाती या रक्षा करती है। उ.—पद-रिपु पट अँटक्यौ न सम्हारति उलट न पलट खरी—६५९।

सम्हारन—संज्ञा पुं. [हिं. सम्हारना] 'सम्हालने' की क्रिया या भाव।

प्र.—सम्हारन लागे—समेटने, बटोरने या इकट्ठा करने लगे। उ.—मरती बेर सम्हारन लागे जो कछु गाड़ि धरी—१-७१।

सम्हारना, सम्हालना—क्रि. स. [हिं. सँभालना] (१) भार ऊपर लेना। (२) रोककर वश में रखना। (३) गिरने न देना। (४) रक्षा करना। (५) बुरी दशा में जाने से बचाना। (६) पालन-पोषण या देखरेख करना। (७) ठीक तरह से काम करना। (८) ठीक या व्यवस्थित रखना, अस्तव्यस्त न होने देना। (९) सहेजना। (१०) सुधार लेना।

सम्हारहुगे, सम्हालहुगे—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] निभाओगे। उ.—अपनौ बिरद सम्हारहुगे तौ यामैं सब निबरी—१-१३०।

सम्हारि, सम्हालि—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] (१) सँभालो।

मुहा.—सुरति सम्हारि—होश में आओ, सचेत या सावधान हो जाओ। उ.—भली भई अबकैं हरि बाँचे अब तौ सुरति सम्हारि—१०-७९।

(२) भार आदि रोका या उठा सका। उ.—बातैं दूनी देह धरी, असुर न सक्यौ सम्हारि—४३१। (३) सुधार या सम्हाल लेती है। उ.—ज्यौं बालक अपराध सत जननी लेति सम्हारि—४९२। (४) रक्षा करके।

मुहा.—लैहै सम्हारि—रक्षा कर सकेगा। उ.—सूर कौन सम्हारि लैहै चढ़यौ इंद्र प्रचारि—९५०। नाहिंन परत सम्हारि—धैर्य नहीं रह जाता, धीरज छूटने लगता है। उ.—सूर प्रभु व्रत देखि इनको नाहिंन परत सम्हारि—७७७।

सम्हारी, सम्हाली—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] (१) बचायी, रक्षा की। उ.—अंबर हरत द्रुपद-तनया की दुष्ट-सभा मधि लाज सम्हारी—१-२२। (२) मनोवेग को रोका, सम्हाला।

प्र.—नहिं सके सम्हारी—मनोवेग को रोक नहीं सके, अधीर या द्रवित हो गये। उ.—थर थर अंग कँपति सुकुमारी। देखि स्याम नहिं सके सम्हारी —७९९।

सम्हारे, सम्हाले—क्रि. अ. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] सचेत या सावधान हुए, ध्यान दिया। उ.—देवबानी भई जीत भई राम की ताउ पै मूढ़ नाहीं सम्हारे १० उ.—३३।

सम्हारै, सम्हालै—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] (१) रक्षा करता है, बचाता या सुधारता है। उ.—हरि तोहिं बारंबार सम्हारै—२०३८। (२) सम्हालकर, सचेत या सावधान होकर। उ.—तब झुकि बोली ग्वालि बात किन कहौ सम्हारै—१०१४।

सम्हारो, सम्हारौ, सम्हालो, सम्हालौ—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] बचाता या सँभालता है। उ.—लोटत पीत पराग कीच में नीच न अंग सम्हारो—२९९०।

सम्हारयो, सम्हारयौ, सम्हाल्यो, सम्हाल्यौ—क्रि. स. [हिं. सम्हारना, सम्हालना] बचाया, रोका, रक्षा की, सँभाला।

प्र० नहिं जात सम्हारयो—बचा नहीं सका, रोक या सँभाल नहीं सका। उ.—निरतत पद पटकत फन-फन-प्रति, बमत रुधिर, नहिं जात सम्हारयौ—५६४।

सयन—संज्ञा पुं. [सं. शयन] सोना, निद्रित होना, शयन। उ.—(क) देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै—१०-६५। (ख) छीरसमुद्र सयन संतत—३९२।

सयल—संज्ञा पुं. [सं. शैल] पर्वत, शैल।

वि. [सं. सकल] सब, समस्त।

सयान—संज्ञा पुं. [हिं. सयाना] (१) चतुरता, चालाकी, सयानापन। उ.—(क) ब्याकुल रिस तन देखि कै सब गयौ सयान—२२६९। (ख) देखौं सकल सयान तिहारो लीने छोरि फटके—३१०७। (२) समझदारी। उ.—(क) तब लगि सबै सयान रहै—६४६।

(ख) अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज जा कारन उठि आए हो—२९८६ । (३) सार, तत्व, बुद्धिमत्ता । उ. —नाहिनैं कछू सयान ज्ञान में इह नीके हम जानैं—३२११ । (४) बुद्धि, विवेक । उ.–एतो बालक अजान देखो, उनके सयान कहा—२६०४ ।

सयानप, सयानपन—संज्ञा पुं. [हिं. सयाना, सयानपन] (१) चालाकी, चतुरता । उ.—तेरे तनक मान मोहन के सबै सयानप भूले—२०७५ । (२) समझदारी । उ.—(क) बाँधन गए, बँधायौ आपुन, कौन सयानप कीन्हौ—८-१५ । (ख) सूरदास बिरही क्यौं जीवै कौन सयानप एहू—३३८२ ।

सयाना—वि. [सं. सज्ञान] (१) पूर्ण अवस्था का, वयस्क । (२) चतुर, चालाक, बुद्धिमान । (३) धूर्त ।

सयानी—वि. स्त्री. [हिं. सयाना] (१) पूर्ण या परिपक्व अवस्था की, वयस्क । उ.— भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी बड़ी बैस अब भई सयानी—३६८ । (२) चतुर, चालाक, बुद्धिमती । उ.— (क) औरनि सों दुराव जो करती तौ हम कहतीं भली सयानी—१२६२ । (ख) तुम इह कहति सबै वह जानति, हम सब तैं वह बड़ी सयानी—१२८४ । (ग) जिनि सोचहु सुखमान सयानी —२८५३ । (३) चतुराई से भरी हुई । उ. - लोग सब कहत सयानी बातैं—२७१३ ।

सयाने, सयानै—वि. बहु. [हिं. सयाने] (१) पूर्ण या परिपक्व अवस्था के, वयस्क । उ.— (क) द्वै बालक बैठारि सयाने, खेल रच्यौ ब्रज-खोरी – ६०४ । (ख) गोप-बालक कछु सयाने, नंद के सुत बाल—६१० । (ग) सूर स्याम अब होहु सयाने बैरिनि के मुख खेहु—१००४ । (घ) रूठेंहि आदर देत सयाने, इहै सूरज सगाइए—१६८८। (२) चतुर, बुद्धिमान । उ.—(क) जा जस कारन देत सयाने तन-मन-धन सब साजु—२८५१ । (ख) सूर सपथ दै ऊधौ पूछो इहिं ब्रज कौन सयानै—३२११ ।

सयानो, सयानौ—वि. [हिं. सयाना] (१) चतुर, बुद्धिमान । उ.—और काहि बिधि करौं तुमहिं तैं कौन सयानौ—४९२ । (२) चतुरतापूर्ण, बुद्धिमानी का । उ.—कीजै कछु उपकार परायो यहै सयानो काज —२८५१ ।

सयान्यो, सयान्यौ– संज्ञा पुं. [हिं. सयाना] चतुरता, सयानापन । उ.—चूक परी मोको सबही अँग कहा करौं गई भूलि सयान्यो—१४६० ।

सरंजाम—संज्ञा पुं. [अ. सर+अंजाम] (१) कार्य की समाप्ति। (२) प्रबंध, व्यवस्था । (३) सामान ।

सर—संज्ञा पुं. [सं. सरस्] ताल, तालाब, जलाशय । उ.—मानहु मकर सुधा-सर क्रीड़त—६४५ ।

संज्ञा पुं. [सं. शर] तीर, बाण । उ.—(क) सूर-दास सर लग्यौ सचानहिं – १-९७ । (ख) धर्म कहैं सर-सयन गंग-सुत तेतिक नाहिं सँतोष—१-२१५ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सदृश] बराबरी, समानता । उ.—(क) ब्रज-जुवती ब्रजजन ब्रजवासी कहत स्याम सर कौन करै—९८९ । (ख) कहाँ स्याम की तुम अर्धांगिनि, मैं तुम सर की नाहीं—२९३७ ।

मुहा.—(किसी का) सर पूजना—(किसी की) बराबरी का सकना, (किसी के) समान हो सकना ।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) सिर । (२) सिरा । (३) चरम सीमा ।

मुहा.—सर (तक) पहुँचाना—ठिकाने, हद या चरम सीमा तक पहुँचाना ।

वि. (१) पराजित किया हुआ । (२) बलपूर्वक दबाया हुआ । (३) प्रभावित, अभिभूत।

मुहा.—सर करना—(१) वश में करना, दबाना । (२) खेल में हराना या पराजित करना ।

संज्ञा पुं. [सं. अवसर से अनु.] (१) ऐसा अवसर जो कार्य-विशेष के उपयुक्त न हो । (२) जब अवसर या अवकाश हो । उ.—सेवा यहै नाम सर-अवसर जो काहुहिं कहि आयो—१-१९३ ।

मुहा.—सर-अवसर न जानना (देखना या समझना) —यह न सोचना कि अमुक कार्य के लिए कोई अवसर उपयुक्त या अनुकूल है या नहीं । सर-अवसर नहिं जान्यो—यह न समझा कि अमुक कार्य के लिए उपयुक्त या अनुकूल अवसर है या नहीं । उ.—नृप सिसुपाल महापद पायौ, सर-अवसर नहिं जान्यो ।

क्रि. वि. [अनु.] 'सर-सर' की ध्वनि के साथ । उ.

—साँटी दीन्हीं सर-सर—३७३।

सरई—क्रि. अ. [हिं. सरना] (काम) हो सकता या चल सकता है, पूरा पड़ सकता है। उ.—आगैं बृच्छ फरै जो बिष-फर, बृच्छ बिना किन सरई—१०-४।

सरंकडा—संज्ञा पुं. [सं. शरकांड] 'सरपत' की तरह की एक वनस्पति जिसकी छड़ें गाँठदार होती हैं।

सरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. सरकना] (१) 'सरकने' की क्रिया या भाव, चलना, खिसकना। (२) नशे की खुमारी। उ.—बारंबार सरक मदिरा की अपरस रटत उघारे —२९९०। (३) मद्यपात्र। (४) यात्री-दल।

सरकना, सरकनो—क्रि. अ. [हिं. खिसकना या सं. सरण] (१) खिसकना, किसी तरह हटना। (२) नियत काल से आगे टल जाना। (३) काम चलना, निर्वाह होना।

सरकश—वि. [फ़ा.] (१) नटखट, शरारती। (२) उद्दंड। (३) शासन या नियंत्रण न माननेवाला।

सरकार—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.](१) स्वामी। (२) शासनसत्ता।

सरकारी—वि. [फ़ा.] (१) स्वामी का। (२) शासन का।

सरकि - क्रि. अ. [हिं. सरकना] किसी ओर को खिसक या हटकर।

प्र.—सरकि रही—एक ओर को खिसक या हट रही है। उ.—सूरदास मदन दहत पिय प्यारी सुनि ज्यों क्यों कह्यो, त्यों त्यों बरु उतकौं सरकि रही —२२३६।

सरका—वि. [हिं. सरक] मस्त, मत्त।

सरखत—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरख़त] वह कागज जिस पर किराये, लेनदेन आदि की शर्तें लिखी हों।

सरग—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्ग] (१) स्वर्ग। उ.—मोकौं पंथ बतायौ सोई नरक की सरग लहौं—१-१५१। (२) सुखदायी स्थान। (३) सुख-शांतिपूर्ण परिवार।

सरगतिया, सरगतीय—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर्ग + हिं. त्रिया] (१) अप्सरा। (२) देवांगना।

सरगना—क्रि. अ. [देश.] डींग हाँकना।

संज्ञा पुं. [फ़ा. सरग़ना] सरदार, अगुवा।

सरगम—संज्ञा पुं. [हिं. स रे ग म] संगीत में सात स्वरों का समूह या उनके चढ़ाव-उतार का क्रम।

सरगर्म—वि. [फ़ा.] (१) जोशीला। (२) उत्साही।

सरगर्मी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) जोश। (२) उत्साह।

सर-घर—संज्ञा पुं. [सं. शर = तीर + हिं. घर] तरकश।

सरघा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मधुमक्खी।

सरज—संज्ञा पुं. [सं. सर + ज] कमल। उ.—प्रफुलित सरज सरोवर सुंदर—२८५३।

सरजना, सरजनो—क्रि. स. [हिं. सिरजना] (१) रचना, बनाना। (२) उत्पन्न या तैयार करना।

क्रि. अ. (१) बनना, रचा जाना। (२) उत्पन्न होना।

सरजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरजाह या अ. शरजः] (१) सरदार। (२) शेर, सिंह। (३) शिवाजी का एक नाम।

सरजिव—वि. [सं. सजीव] (१) जीवित। (२) ओजपूर्ण। (३) प्रभावशाली। (४) सशक्त।

सरजी—क्रि. अ. [हिं. सरजना] बनी (हैं), रची गयी (हैं)। उ.—बिरह सहन को हम सरजी हैं।

सरजीवन—वि. [सं. संजीवन] (१) जिलाने या जीवन-शक्ति देनेवाला। (२) हरा-भरा, ताजा। (३) उपजाऊ, उर्वर। (४) प्रसन्न या प्रफुल्ल करनेवाला।

संज्ञा स्त्री. संजीवनी (बूटी)।

सरजोर—वि. [फ़ा. सरज़ोर] (१) बलवान। (२) जबरदस्त, प्रबल। (३) उद्दंड। (४) विद्रोही।

सरजोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सरजोर] (१) जबरदस्ती, प्रबलता। (२) उद्दंता। (३) विद्रोह।

सरट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छिपकली। (२) गिरगिट।

सरण—संज्ञा पुं. [सं.] सरकना, खिसकना।

सरणी - संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रास्ता, मार्ग। (२) ढर्रा, ढंग। (३) पगडंडी। (४) लकीर, रेखा।

सरत—क्रि. अ. [हिं. सरना] (काम बनता या चलता है। उ.—इहिं विधि भ्रमत सकल निसि दिन गत कछु न काज सरत—१-५५।

सरता बरता—संज्ञा पुं. [हिं. बरतना + अनु. सरतना] बँटाई।

मुहा.—सरता बरता करना—किसी तरह आपस में ही बाँट-बँटाई करके काम चला लेना।

सर-ताज—संज्ञा पुं. [हिं. सिरताज] (१) मुकुट। (२) शिरोमणि। (३) सरदार, नायक। (४) स्वामी।

सरद—वि. [फ़ा. सर्द] (१) शीतल। (२) सुस्त।

संज्ञा स्त्री. [हिं. शरद] शरद ऋतु। उ.—ब्रज प्राची राका तिथि जसुमति, सरद सरस रितु नंद—१३३१।

सरदई—वि. [हिं. सरदा] 'सरदा' फल के, हलका हरापन लिए हुए, पीले रंग का।

संज्ञा पुं. हल्का हरापन लिये पीला रंग।

सर-दर—क्रि. वि. [फ़ा. सर+दर=भाव] (१) एक सिरे से। (२) सब मिलाकर, औसत में।

सरदा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सर्दः] एक तरह का खरबूजा।

सरदार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) नायक, अगुआ। उ.—तुम अपने चित सोचत जा को असुरन के सरदार—२३-७७। (२) शासक। (३) रईस, अमीर।

सरदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सरदार] नायक या प्रधान का पद, कार्य का भाव।

सरदियाना, सरदियानो—क्रि. अ. [हिं. सरदी] (१) सरदी से ठंडा हो जाना। (२) आवेश शांत होना।

सरदी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सर्दी] (१) ठंढक। (२) जाड़ा।

सर-धन—संज्ञा पुं. [सं. शर+हिं. धरना] तरकश।

सरधा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रद्धा] श्रद्धा।

सरन—संज्ञा स्त्री. [सं. शरण] रक्षा, आश्रय। उ.—(क) इहिं कलिकाल-ब्याल-मुख ग्रासित सूर सरन उबरै—१-११७। (ख) सरन आए की प्रभु लाज धरिए—१-१८०। (ग) पटपटात टूटत अँग जान्यौ सरन-सरन सु पुकारयौ—५५६।

सरनगत—वि. [सं. शरणागत] शरण में आया हुआ।

प्र.—सरनगत भऐं—शरण में जानेपर। उ.—सूरदास गोपाल सरनगत भऐं न को गति पावत—१-१८१।

सरना, सरनो—क्रि. अ. [सं. शरण] (१) सरकना, खिसकना। (२) हिलना-डोलना। (३) काम चलना, उद्देश्य सिद्ध होना, पूरा पड़ना। (४) किसी के काम या उपयोग में आना। (५) किया जाना, निबटना, संपादित होना। (६) निभना, पटना, परस्पर सद्भाव या प्रेम-भाव रहना।

सरनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. शरण] आश्रय, रक्षा। उ.—(क) सूर कुटिल राखौ सरनाई—१-२०१। (ख) इतनी कृपा करी नहिं काहू, जिनि राखे सरनाई—५५७।

वि. आश्रय या रक्षा में लेनेवाले, शरण में रखनेवाले। उ.—नमस्कार करि विनय सुनाई, राखि राखि असरन-सरनाई—६-५।

सरनागत—वि. [सं. शरणागत] शरण में आया हुआ। उ.—(क) सरनागत की ताप निवारी—१-१२८। (ख) अर्जुन कह्यौ, जानि सरनागत, कृपा करौ ज्यौं पूर्व करी—१-२६८।

सरनाम—वि. [फ़ा.] प्रसिद्ध, विख्यात।

सरनी—संज्ञा संज्ञा [सं. सरणी] (१) ढंग, रीति। उ.—(क) ब्रज-जुवती सब देखि थकित भईं सुन्दरता की सरनी—१०-१२३। (२) रास्ता, पगडंडी, मार्ग। (३) लकीर, लीक, रेखा।

सरनैं—संज्ञा स्त्री. सवि. [सं. शरण] शरण में। उ.—वलि सुरपति कौं बहु दुख दयौ, तब सुरपति हरि-सरनैं गयौ—८-७।

सरपंच—संज्ञा पुं. [फा. सर+हिं. पंच] पंचों में प्रधान, पंचायत का सभापति।

सरपंजर, सरपँजरा, सरपिंजरो, सरपिंजरौ—संज्ञा पुं. [सं. शर+हिं. पिंजरा] बाणों का बना हुआ घेरा। उ.—अर्जुन तब सर-पिंजर कियौ। पवन सँचार रहन नहिं दियौ—ना. ४३०९।

सरप—संज्ञा पुं. [सं. सर्प] साँप।

सरपट—क्रि. वि. [सं. सर्पण] घोड़े की तेज चाल की तरह दौड़ते हुए।

सरपत—संज्ञा पुं [सं. शरपत्र] एक तरह की घास जिससे छप्पर आदि छाये जाते हैं।

सरपना, सरपनो—क्रि. अ. [सं. सर्पण] (१) सरकना, खिसकना। (२) धीरे-धीरे आगे बढ़ना।

सरपरस्त—वि. [फ़ा.] (१) रक्षक। (२) अभिभावक।

सरपरस्ती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) रक्षा। (२) अभिभावकता।

सरपेच—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पगड़ी के ऊपर की कलगी।

सरफराना, सरफरानो—क्रि. अ. [अनु.] घबराना।

सरबंगी—वि. [सं. सर्वज्ञ] सर्वज्ञ। उ.—सूधी कहै सबन समुझावत हे साँचे सरबंगी—२९९७।

सरबंधी—वि [सं. शरबंध] तीरंदाज, धनुर्धर।

संज्ञा पुं. [सं. सम्बन्धी] संबंधी ।

सरब—वि. [सं. सर्व] (१) सब । (२) पूरा ।

सरबज्ञ—वि. [सं. सर्वज्ञ] सब कुछ का ज्ञाता । उ.—(क) तुम सरबज्ञ सबै बिधि समरथ असरन-सरन मुरारि—१-१११ । (ख) सूर स्याम सरबज्ञ कृपानिधि--१-१२१ ।

सरबर—संज्ञा स्त्री. [हिं. सर+अनु. बर] बराबरी, समानता । उ.—(क) सेवक करै स्वामि सों सरबर इनि बातनि पति जाइ—९८५ । (ख) मूरख, उन तुम सरबर करै—१० उ.-३२ ।

वि. बराबर, समान ।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] व्यर्थ की या बहुत बढ़-चढ़कर की जानेवाली बात ।

सरबरन—वि. [हिं. सरबर] समान, तुल्य । उ.--कृष्न-पद-मकरंद पावन और नहिं सरबरन—१-३०८ ।

सरबरना, सरबरनो—क्रि. अ. [हिं. सरबर] (किसी की) बराबरी या समता करना ।

सरबरि, सरबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सर-बर] बराबरी, समानता । उ.--(क) ताकी सरबरि करै सो झूठौ, जाहि गोपाल बड़ौ करै—१-०३४ । (ख) जब लगि जिय घटअंतर मेरैं कौ सरबरि करि पावै—१-२७५ । (ग) खगपति सौं सरबरि करी तू—५८९ ।

वि. बराबर, समान । उ.– दिननि हमहूँ तुम सरबरी, तुव छवि अधिकाई—पृ. ३१७ (६१)

संज्ञा स्त्री. [सं. शर्वरी] रात, रात्रि ।

सरबस—संज्ञा पुं. [सं. सर्वस्व] सारी संपत्ति और जमा-पूँजी, सब कुछ । उ.—(क) सिव कौ धन संतनि कौ सरबस, महिमा बेद-पुरान बखानत—१-११४ । (ख) सरबस लै हरि धरयौ सबनि कौ—६५४ ।

सरबोर—वि. [हिं. सराबोर] तरबतर, खूब तर ।

सरभ—संज्ञा पुं. [सं. शरभ] (१) पशु (हाथी, शेर, ऊँट, बानर आदि) । (२) टिड्डी ।

सरम—संज्ञा स्त्री. [हिं. शरम] हया, लाज । उ.—(क) सूर सुहरि अब मिलहु कृपा करि बरबस सरम करत हठ हम सन—१६८७ । (ख) रिसन उठी भहराइ झटकि भुज छुवत कहा पिय सरम नहीं—२१४२ ।

सरमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवताओं की एक कुतिया जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है । (२) कुतिया ।

सरमाइ—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लजाता या लजाती है । उ.—(क) नासिका सुक नयन खंजन कहत कवि सरमाइ—१२९४ । (ख) उरज परसत स्याम सुन्दर नागरी सरमाइ—१८४९ ।

सरमाई—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित हुआ या हुई । प्र.—गए सरमाई—लज्जित हो गये । उ.—यह सुनि अमर गए सरमाई—१०६५ ।

सरमात—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लजाता या लज्जित होता है । उ.—तुम तौ अति ही करत बड़ाई, मन मेरो सरमात—१४२४ ।

सरमाना—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित होना ।

सरमानी—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित हुई । उ.—बेसरि नाउँ लेत सरमानी तब राधा झहरानी—१५-३४ ।

सरमाने—क्रि. अ. बहु. [हिं. शरमाना] लज्जित हुए । उ.—हम तौ आज बहुत सरमाने मुरली टेरि बजायो—१७०० ।

सरमानो—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित होना ।

सरमाया—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरमाय:] पूँजी, संपत्ति ।

सरमिष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं. शर्मिष्ठा] दानवराज वृषपर्वा की पुत्री जो दानव-गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी की प्रसन्नता के लिए उसकी दासी बनकर राजा ययाति के यहाँ गयी थी और राजा से जिसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे । उ.—कह्यौ, सरमिष्ठा, सुत कहँ पाए ? उनि कह्यौ, रिषि किरपा तैं जाए—९-१७४ ।

सरमैहौ—क्रि. अ. [हिं. शरमाना] लज्जित होगे, शरमाओगे । उ.—सूर स्याम राधा की महिमा रहै जानि सरमैहौ—१४९८ ।

सरयू—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नदी जिसका नाम ऋग्वेद में है और जिसके किनारे पर प्राचीन अयोध्या नगरी बसी थी ।

सररात—क्रि. अ. [हिं. सरराना] वेग से हवा चलती है । उ.—घटा घनघोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग डरपे—९४६ ।

सरराना, सररानो—क्रि. अ. [अनु. सर सर] वेग से हवा

बहने या उसमें किसी चीज के वेग से चलने का शब्द होना।

सरल—वि. [सं.] (१) जो टेढ़ा न हो, सीधा। (२) सीधा-सादा, भोलाभाला। (३) सहज, सुगम।

सरलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीधापन। (२) सिधाई, भोलापन। (३) सहजता, सुगमता।

सरवंग—संज्ञा पुं. [सं. सर्वांग] (१) संपूर्ण शरीर। (२) किसी चीज, काम या बात के सब भाग या अंग।

क्रि. वि. सब प्रकार से।

सरवन—संज्ञा पुं. [सं. श्रमण] अंधक मुनि का पुत्र जो माता-पिता को बहँगी में बिठाकर तीर्थ-यात्रा कराने के कारण अपनी मातृ-पितृ-भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। (२) मातृ-पितृ-भक्त पुत्र। (३) श्रमण।

वि. मातृ-पितृ-भक्त (पुत्र)।

संज्ञा पुं. [सं. श्रवण] कान।

सरवर—संज्ञा पुं. [सं. सरोवर] तालाब, जलाशय। उ.—(क) सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै—१-२६५। (ख) मानौं चारि हंस सरवर तैं बैठे आइ सदेहियाँ—९-१९।

सरवर, सरवरि, सरवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सदृश, प्रा. सरिस + वर] (१) बराबरी, समानता। उ.—सूरदास ह्याँ की सरवरि नहिं कल्पवृच्छ सुरधेनु—४९१। (२) स्पर्धा, होड़।

सरवरिया—वि. [हिं. सरवार] सरयूपार का।

संज्ञा पुं. सरयूपारी (व्यक्ति)।

सरवांक, सरवाक—संज्ञा पुं. [सं. शरावक] (१) डिबिया। (२) प्याला, कटोरी। (३) सकोरा।

सरवान—संज्ञा पुं. [देश.] (१) तंबू। (२) झंडा।

सरवार—संज्ञा पुं. [सं. सरयू + पार] सरयू नदी के उस पार का प्रदेश।

सरस—संज्ञा पुं. [सं. सरस्] सरोवर।

वि. [सं.] (१) रसीला, रसयुक्त। (२) गीला, तर। उ.—(क) ह्वै गयौ सरस समीर दुहूँ दिसि—९५७। (ख) सरस बसन तन पोंछि स्याम को—१०-२२६। (३) हरा-भरा और ताजा। (४) सुंदर, मनोहर। उ.—(क) संबत सरस बिभावन—१०-८६। (ख) ब्रज-प्राची राका तिथि जसुमति सरद सरस रितु नंद—१३३१। (ग) स्यामा निसि में सरस बनी री—१५९९। (५) मीठा, मधुर। (६) जिसमें भाव जगाने की शक्ति हो, भावपूर्ण। (७) रसिक, भावुक, सहृदय।

सरसई—संज्ञा स्त्री. [सं. सरस्वती] शारदा, भारती।

संज्ञा स्त्री. [सं. सरस] (१) सरसता, रसपूर्णता। (२) हरापन, ताजापन।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सरसों] फलों के सरसों बराबर छोटे दाने या अंकुर जो पहले दिखायी देते हैं।

सरसता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'सरस' होने का भाव। (२) रसीलापन। (३) रसिकता। (४) सुंदरता। (५) मधुरता। (६) भावपूर्णता।

सरसना, सरसनो—क्रि. अ. [सं. सरस] (१) हरा होना, पनपना। (२) बढ़ना, वृद्धि या उन्नति को प्राप्त होना। (३) सोहना, शोभित होना। (४) रसपूर्ण होना। (५) कोमल भाव की उमंग में भरना।

सरसब्ज—वि. [फ़ा. सरसब्ज] (१) हरा-भरा, लहलहाता हुआ। (२) जहाँ हरियाली हो। (३) जहाँ सुख हो।

सर-सर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) जमीन पर (सर्प-जैसी) रेंगने की ध्वनि। (२) हवा के चलने से उत्पन्न ध्वनि।

क्रि. वि. 'सर-सर' की ध्वनि के साथ। उ.—साँटी दीन्हीं सर-सर—३७३।

सरसराना, सरसरानो—क्रि. अ. [अनु. सर सर] (१) सर-सर की ध्वनि होना। (२) वायु का सर-सर ध्वनि करते हुए बहना। (३) (सर्प जैसे) कीड़े का तेजी से चलना। (४) जल्दी-जल्दी कोई काम होना।

सरसराहट—संज्ञा पुं. [हिं. सरसर + आहट] (१) (साँप आदि के) रेंगने की ध्वनि। (२) तेजी से हवा के चलने का शब्द। (३) शरीर पर रेंगने-जैसा अनुभव, सुर-सुराहट।

सरसरी—वि. [फ़ा. सरासरी] जो (दृष्टि) जमी हुई या एकाग्र न हो, जो जल्दी की हो।

क्रि. वि. मोटे तौर पर, स्थूल रूप से।

सरसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सरस] (१) सरसता। (२) शोभा, सुंदरता। (३) अधिकता।

वि. हरी-भरी, ताजी।

क्रि. अ. [हिं. सरसाना] शोभित हुई।

सरसाना, सरसानो—क्रि. स. [हिं. सरसना] (१) रस से पूर्ण या युक्त करना। (२) हरा-भरा करना।
क्रि. अ. (१) हरा-भरा होना। (२) बढ़ना। ३) सोहना, शोभित होना। (४) रसपूर्ण होना। (५) भाव की उमंग में भरना।

सरसाम संज्ञा पुं. [फ़ा.] सन्निपात (रोग)।

सरसार—वि. [फ़ा. सरशार] (१) मग्न। (२) चूर।

सरसिक—संज्ञा पुं. [सं. सरसीक] सारस पक्षी।

सरसिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] छोटा तालाब, बावली।

सरसिज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो ताल से उत्पन्न होता हो। (२) कमल।

सरसिजनैनी—वि. स्त्री. [सं. सरसिज+हिं. नयनी] जिसके नेत्र कमल (के समान सुन्दर) हों। उ.—जा जल सुद्ध निरखि सनमुख ह्वै, सुंदरि सरसजिनैनी—९-११।

सरसिजयोनि—संज्ञा पुं. [सं.] (कमल से उत्पन्न) ब्रह्मा।

सरसिरुह—संज्ञा पुं. [सं.] (सर से उत्पन्न) कमल।

सरसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छोटा ताल या सरोवर। (२) बावली। (३) एक वर्णवृत्त।

सरसीक—संज्ञा पुं. [सं.] सारस पक्षी।

सरसीरुह—संज्ञा पुं. [सं.] (सर से उत्पन्न) कमल।

सरसेटना, सरसेटनो—क्रि. स. [अनु.] भला-बुरा कहना।

सरसों, सरसौं—संज्ञा स्त्री. [सं. सर्षप] एक धान्य या पौधा जिसके छोटे-छोटे बीजों से तेल निकलता है और पत्तों का साग बनता है। उ.—(क) सरसौं मेथी सोवा पालक—३९६। (ख) सोवा अरु सरसों सरसाई—२३२१।

सरसौंहा—वि. [हिं. सरस] सरस करनेवाला।

सरस्वति, सरस्वती—संज्ञा स्त्री. [सं. सरस्वती] (१) एक प्राचीन नदी जिसकी क्षीण धारा कुरुक्षेत्र में अब भी है। उ.—आजु सरस्वति-तट रहौ सोइ—१-२८९। (२) विद्या। (३) विद्या की देवी, भारती, शारदा। उ.—मनहुँ सरस्वति संग उभय दुज कल मराल अरु नील कठीर—१०-१६१।

सरस्वती-पूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती का एक उत्सव जो कहीं वसंत-पंचमी को और कहीं-कहीं आश्विन में होता है।

सरहंग—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) सिपाही। (२) सेनानायक।

सरहंगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) सिपाहीगीरी। (२) वीरता।

सरह—संज्ञा पुं. [सं. शलभ, प्रा. सरह] (१) पतिंगा। (२) 'टिड्डी' नामक कीड़ा।

सरहज संज्ञा स्त्री. [सं. श्यालजाया] साले की पत्नी।

सरहथ—संज्ञा पुं. [सं. शर या शल्य+हिं. हाथ] एक हथियार जिससे मछली का शिकार किया जाता है।

सरहद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सर+अ. हद] (१) सीमा। (२) चौहद्दी की रेखा। (३) सीमा की भूमि, सिवान।

सरहरा—वि. [सं. सरण] चिकना।

सरा—संज्ञा स्त्री. [सं. शर] चिता।
संज्ञा पुं. बाण, तीर।
संज्ञा स्त्री. [हिं. सराय] सराय।

सराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सलाई] सलाई, सलाका।
संज्ञा स्त्री. [सं. शराव] सकोरा।

सराख—संज्ञा स्त्री. [हिं. सलाख] छड़, सलाख।

सराजाम—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरअंजाम] सामग्री।

सराध—संज्ञा पुं. [सं. श्राद्ध] श्राद्ध। उ.—जज्ञ-सराध न कोऊ करै—१-२३०।

सराना, सरानो—क्रि. स. [हिं. सारना] (१) काम पूरा करना। (२) काम पूरा कराना।

सराप—संज्ञा पुं. [सं. शाप] शाप। उ.—(क) जय अरु बिजय कर्म कह कीन्हौं, ब्रह्म सराप दिवायौ—१-१०४। (ख) सत्यवती सराप-भय मान, रिषि कौ बचन कियौ परमान—१-२२९।

सरापना, सरापनो—क्रि. स. [सं. शाप] (१) शाप देना, कोसना। (२) गाली देना।

सरापै—क्रि. स. [हिं. सरापना] शाप दे। उ.—मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठग मति कौ-९-८४।

सराफ—संज्ञा पुं. [अ. सर्राफ़] (१) सोने-चाँदी का व्यापारी। (२) बट्टा काटकर रुपये भुना देनेवाले दूकानदार।

सराफा—संज्ञा पुं. [हिं. सराफ] सराफों का बाजार।

सराफी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सराफ] (१) सराफ का काम। (२) महाजनी या मुंडालिपि।

सराब—संज्ञा पुं. [अ. शराब] मदिरा।

सराबोर—वि. [सं स्राव+हि. वोर] बहुत भीगा हुआ।

सराय—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] मुसाफिरखाना।

मुहा.—सराय का कुत्ता—मतलबी यार-दोस्त। सराय की भठियारी (भठियारिन)—लड़ाका और निर्लज्ज स्त्री।

सरायो, सरायौ—क्रि. स. [हिं. सराना] (काम) कराया या निकाला। उ.—पुरुष भँवर दिन चार आपने अपनो चाउ सरायौ—१६५८।

सराव—संज्ञा पुं. [सं. शराव) (१) शराब पीने का प्याला, मद्यपात्र। (२) सकोरा, कटोरा। (३) दीया। (४) आरती के ऊपर का दीपक जिसमें घी भरा जाता है। उ.—हरि जू की आरती बनी। ··· । मही सराव सप्त सागर घृत बाती सैल घनी—२-२८।

सरावग, सरावगी—संज्ञा पुं. [सं श्रावक] जैन।

सरासन—संज्ञा पुं. [सं. शरासन] धनुष। उ.—(क) मनौ सरासन धरे कर स्मर भौंह चढ़ै सर बरषै री—१०-१३७। (ख) मानौ सूर सकात सरासन, उड़िबै कौं अकुलात—३६६।

सरासर—अव्य. [फ़ा.] (१) पूरा-पूरा। (२) प्रत्यक्ष।

सराह—संज्ञा स्त्री. [हिं. सराहना] बड़ाई, प्रशंसा।

सराहत—क्रि. स. [हिं. सराहना] बड़ाई या प्रशंसा करता है। उ.–ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत मुख लै मेलि सराहत गात—४६६।

सराहती—क्रि. स. स्त्री. [हिं. सराहना] बड़ाई या प्रशंसा करती। उ.—उन विपदनि कुंचित जो करते कछुअन जीव सराहती—३२४७।

सराहना—क्रि. स. [सं. श्लाघन्] बड़ाई करना।

संज्ञा स्त्री. तारीफ, बड़ाई, प्रशंसा।

सराहनीय—वि. [हिं. सराहना] (१) बड़ाई या प्रशंसा के योग्य। (२) अच्छा, बढ़िया।

सराहनो—क्रि. स. [सं. श्लाघन्] बड़ाई करना।

सराहि—क्रि. स. [हिं. सराहना] बड़ाई करके, अच्छा बताकर। उ.—बारंबार सराहि सूर प्रभ साग बिदुर घर खाहीं—१-२४१।

सराहौं, सराहौं—क्रि. स., स्त्री., पुं.[हिं. सराहना] तारीफ या बड़ाई करती हूँ। उ.—सराहौं तेरो नंद हियौ—२६९८।

सरि—संज्ञा स्त्री. [सं.] झरना, निर्झर।

संज्ञा स्त्री [सं. सरित्] नदी, सरिता।

संज्ञा स्त्री. [सं. सृक] लड़ी, शृंखला।

संज्ञा स्त्री [प्रा. सरिस] समता, बराबरी। उ.—(क) और न सरि करिवे कौं दूजौ महा मोह मम देस। १-१४१। (ख) कौन करै इनकी सरि आन—४३५। (ग) राम-नाम-सरि तऊ न पूजै जौ तनु गारौ जाइ हिवार—२-३।

वि. बराबर, समान, सदृश। उ.—(क) सुनहु स्याम तुमहूँ सरि नाहीं—५३७।(ख)एक प्रवीन अरु सखा हमारे, जानी तुम सरि कौन—२९२५।

क्रि. वि. तक, पर्यंत।

सरिका-संज्ञा स्त्री. [सं.] मोतियों की लड़ी।

सरिगम, सरिगमा—संज्ञा पुं. [हि. सरगम] संगीत के सात स्वर या उनके चढ़ाव-उतार का क्रम। उ.—सरिगमा पधनिसा संसप्त सुरनि गाइ—पृ. ३५२ (८३)।

सरित, सरिता, सरित्-संज्ञा स्त्री. [सं. सरित्=प्रवाहित] (१) धारा। उ.—बानवृष्टि स्रोनित करि सरिता, व्याहत लगी न बार—९-१२४। (२) नदी। उ.—(क) जैसैं सरिता मिलै सिंधु कौं, बहुरि प्रवाह न आवै—२-१०। (ख) अपनी गति तजत पवन सरिता नहिं ढरै—६५२। (ग) स्याम सुन्दर सिंधु सनमुख सरित उमँगि बही—ना. २३८१।

सरितपति, सरितराज, सरितापति—संज्ञा पुं. [हिं. सरित, सरिता+राजा, पति] सागर, समुद्र। उ.—याकौ कहा परेखौ निरखौ, मधु छीलर, सरितापति खारौ—९-३६।

सरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. शर] पतली छड़।

सरियाना, सरियानो—क्रि. स. [हिं. सरि=पंक्ति] (१) तरतीब या क्रम से लगाना या रखना। (२) सुलझाना।

सरिवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सर=वरि] बराबरी, समता।

सरिश्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरिश्तः](१) कचहरी, अदालत। (२) कार्यालय। (३) संबंध।

सरिस—वि. [सं. सदृश, प्रा. सरिस] समान, सदृश। उ.–

पाहन सरिस कठोर—९-८३।

सरिहै—क्रि. प्र. [हिं. सरना] काम होगा, पूरा पड़ेगा, निर्वाह होगा। उ.—(क) आरज पंथ चले कहा सरिहै स्यामहिं संग फिरौ री—१६७२। (ख) लाज गए कछु काज न सरिहै, बिछुरत नंद के तात—२५३१।

सूरी—क्रि. अ. [हिं. सरना] (काम) पूरा हुआ, (उद्देश्य) सिद्ध हुआ। उ.— भैया-बंधु कुटुम्ब घनेरे तिनतैं कछु न सरी—१-७१। (ख) सूरदास तैं कछु सरी नहिं, परी काल फँसरी—१-७१। (ग) सूर प्रभु के संग बिलसत सकल कारज सरी—१०-३०२।

सरीक—वि. [अ. शरीक़] (१) किसी काम में साथ देनेवाला। (२) मिला हुआ, सम्मिलित।

सरीकता—संज्ञा स्त्री. [हिं. सरीक+ता] साझा।

सरीका, सरीखा—वि. [प्रा. सरिस] समान।

सरीर—संज्ञा पुं. [सं. शरीर] देह, शरीर। उ.—(क) देख्यौ भरत तरुन अति सुंदर। थूल सरीर रहित सब दुंदर—५-३। (ख) जद्यपि बिद्यमान सब निरखत दुःख सरीर भरयौ—१-१००।

सरीसृप—संज्ञा पुं. [सं.] रेंगनेवाले जंतु।

सरुज—वि. [सं.] रोगी।

सरुझना—क्रि. अ. [हिं. सुलझना] सुलझ जाना।

सरुष—वि. [सं.] कुपित, क्रुद्ध।

सरूप—वि. [सं.] (१) जिसमें आकार या रूप हो। (२) सुंदर, मनोहर। (३) समान रूपवाला।

संज्ञा पुं. (१) व्यक्ति, पदार्थ आदि की आकृति। (२) मूर्ति, चित्र। उ.—सो सरूप हिरदै महँ आन। रहियौ करत सदा मम ध्यान—१-२८६। (३) वह जिसने कोई देव-रूप धारण किया हो। (४) देव अवतार। उ.— हँसत गोपाल नंद के आगैं, नंद सरूप न जान्यौ—१०-२६३।

सरूर—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुरूर] नशे की तरंग।

सरूरुह—संज्ञा पुं. [सं. सरोरुह] कमल।

सरेख—वि. [सं. श्रेष्ठ] सयाना, समझदार।

सरेखना, सरेखनौ—क्रि. स. [हिं. सहेजना] सँभालना।

सरेस—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरेश] एक लसदार वस्तु।

वि. (१) चिपकनेवाला, लसीला। (२) जो हर समय साथ लगा रहे।

सरै क्रि. स. [हिं. सरना] (१) (काम) पूरा होता है, (उद्देश्य) सिद्ध होता है। उ.—(क) कियैं नर की स्तुती कौन कारज सरै, करै सो अपनौ जनम हारै—४-११। (ख) बहुत उपाइ करै बिरहिनि, कछु न चाव सरै—२७८३। (२) बनता-बिगड़ता है। (३) (प्रण आदि) पूरा होता या करता है। उ.—चक्र धरे बैकुंठ तैं धाए, बाकी पैज सरै—१-८२।

सरैगौ—क्रि. स. [हिं. सरना] (काम) पूरा, सिद्ध या संपन्न होगा। उ.—राज काज तुमतैं सरैगो, काया अपनी पोषु—३०२६।

सरोंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिलवट] शिकन, सिलवट।

सरो—संज्ञा पुं. [फ़ा. सर्व] एक वृक्ष।

सरोकार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) वास्ता, लगाव। (२) पारस्परिक व्यवहार का संबंध।

सरोज—संज्ञा पुं. [सं.] कमल। उ.—(क) बंदौ चरन-सरोज तिहारे—१-९४। (ख) बाहु-पानि सरोज-पल्लव—१-३०७।

सरोजना—क्रि. स. [देश.] पाना, प्राप्त करना।

सरोजमुखी—वि. स्त्री. [सं.] कमल-जैसा मुखवाली।

सरोजै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कमल] कमल के (समान)। उ.—काम कमान समान भौंह दोउ चंचल नैन सरोजै —पृ. ३४५ (४१)।

सरोजिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमल से भरी सरसी। (२) कमलों का समूह। (३) कमलिनी।

सरोजी—वि. [सं. सरोजिन्] जहाँ कमल हों।

सरोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिलवट] शिकन, सिलवट।

सरोता—संज्ञा पुं. [सं. श्रोता] सुननेवाले।

सरोद—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बीन या सारंगी की तरह का एक प्रसिद्ध बाजा।

सरोरुह—संज्ञा पुं. [सं.] कमल।

सरोवर—संज्ञा. पुं. [सं.] तालाब। उ.—(क) चकई री, चलि चरन-सरोवर जहाँ न प्रेम-वियोग—१-३३७। (ख) मानसरोवर छाँड़ि हंस तट-काग-सरोवर न्हावै —३-१३।

सरोवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सरोवर] सरसी, छोटा ताल।

उ.—श्रीपति केलि-सरोवरी सैसव जल भरिपूरि—२०६५।

सरोष—वि. [सं.] कुपित, क्रुद्ध।

सरोही—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिरोही] एक चिड़िया।

सरौ—क्रि. स. [हिं. सरना] (काम, उद्देश्य या लाभ) सिद्ध या पूरा हुआ या होगा। उ.—(क) सकल सुरनि कौ कारज सरौ, अंतर्धान रूप यह करौ—७-२। (ख) नैंकु धीरज धरौ, जियहिं कोउ जिनि डरौ, कहा इहिं सरौ, लोचन मुँदाए—५९६।

संज्ञा पुं. [सं. शराव] कटोरी, प्याली।

संज्ञा पुं. [हिं. सरो] एक वृक्ष।

सरौता—संज्ञा पुं. [सं. सार = लोहा + पत्र, प्रा. सारवत्त] सुपारी काटने का प्रमुख औजार।

सर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चलना, गमन। (२) संसार, सृष्टि। (३) बहाव, प्रवाह। (४) उत्पत्ति-स्थान। (५) जीव, प्राणी। (६) संतान। (७) स्वभाव, प्रकृति। (८) ग्रंथ का अध्याय।

सर्गबंध, सर्गबद्ध—वि. [सं.] (काव्य या ग्रंथ) जो अध्यायों में विभक्त हो।

सर्गुन—वि. [सं. सगुण] सगुण। उ.—बिनु बानी ए उमँगि सजल होइ सुमिरि सुमिरि वा सर्गुन जसहिं—३०१७।

सर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (कोई चीज) चलाना, छोड़ना या फेंकना। (२) निकालना। (३) बनाना, रचना।

सर्जू—संज्ञा स्त्री. [सं. सरयू] सरयू नदी।

सर्त—संज्ञा स्त्री. [हिं. शर्त] (१) दाँव, बाजी। (२) प्रतिबंध। (३) पारस्परिक निश्चय।

सर्द—वि. [फ़ा.] (१) ठंढा। (२) सुस्त। (३) मंद।

मुहा.—सर्द होना—(१) ठंडा होना। (२) मर जाना। (३) मंद या धीमा होना। (४) उत्साहहीन या उदासीन हो जाना।

सर्दा—संज्ञा पुं. [पं.] एक तरह का खरबूजा।

सर्दार—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरदार] नायक।

सर्दी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) ठंढ। (२) जाड़ा।

सर्प—संज्ञा पुं. [सं.] साँप। उ.—सर्प इक आइहै तुम्हरै निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग बाँधौ—८-१६।

सर्प-काल—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़।

सर्प-गति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सर्प की चाल। (२) टेढ़ी चाल, कपटभरी रीति।

सर्पपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शेषनाग। (२) वासुकि।

सर्पप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] चंदन।

सर्पबेल, सर्पबेलि—संज्ञा स्त्री. [सं. सर्पबेल] पान।

सर्पयज्ञ, सर्पयाग—संज्ञा पुं. [सं.] वह यज्ञ जो जनमेजय ने सर्पों के संहार के लिए किया था।

सर्पराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शेषनाग। (२) वासुकि।

सर्पारि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सर्पों का शत्रु। (२) गरुड़। (३) नेवला। (४) मोर, मयूर।

सर्पिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] साँप की मादा, साँपिन।

सर्पिल—वि. [सं.] (१) साँप की चाल जैसा टेढ़ा-तिरछा। (२) जो साँप-सा कुंडली मारे हो।

सर्पी—वि. [सं. सर्पिन्] धीरे-धीरे चलनेवाला।

सर्फ—वि. [अ. सर्फ़] खर्च किया हुआ।

सर्फा—संज्ञा पुं. [अ. सर्फ़ः] खर्च, व्यय।

सर्व—वि. [सं.] सब, समस्त। उ.—(क) बच्छ बालक लै गयौ धरि, तुरत कीन्हें सर्व ४८५। (ख) सूर भक्त बत्सलता बरनौं सर्ब कथा कौ सार—१-२६७।

अव्य. सर्वत्र। उ.—सूर-चन्द्र नक्षत्र-पावक सर्ब तासु प्रकास—२-२७।

सर्वदा—अव्य. [सं. सर्वदा] हमेशा, सदा। उ.—सदा सर्बदा राज राम कौ—९-१७।

सर्वस—संज्ञा पु. [सं. सर्वस्व] सारी जमा-पूँजी।

सर्वोपरि—वि. [सं. सर्वोपरि] सबसे ऊपर, सबसे बढ़कर। उ.—सर्वोपरि आनंद अखंडित—१-८७।

सर्म संज्ञा पुं. [हिं. शरम] हया, लाज।

सर्यो, सर्यौ—क्रि. अ. [हिं. सरना] (१) (काम या उद्देश्य) बना या सिद्ध हुआ। उ.—बेर सूर की निठुर भए प्रभु मेरौ कछु न सर्यो—१-१३३। (२) (आयु) पूरी या समाप्त हो गयी। उ. सुनहुँ कंस, तव आइ सर्यौ—१०-५९।

सर्रा—संज्ञा पुं. [अनु. सर सर] धुरा, धुरी।

सर्राटा—संज्ञा पुं. [अनु. सर्र सर्र] (१) तेज हवा चलने का सर्र-सर्र शब्द। (२) तेज भागने का सर्र-सर्र शब्द।

मुहा.—सर्राटा भरना—(तेजी से) सर्र-सर्र शब्द

करते हुए जाना।

सर्राफ—संज्ञा पुं. [अ. सर्राफ़] (१) सोने-चाँदी का व्यापारी। (२) रुपये-पैसे भुनानेवाला।

सर्राफा—संज्ञा पुं. [हिं. सर्राफ] सराफों का बाजार।

सर्व—वि. [सं.] सब, सारा। उ.—सर्वरी सर्व बिहानी तोहिं मनावति—२०४८।

सर्व-काम—वि. [सं.] (१) सब तरह की इच्छाएँ रखनेवाला। (२) सब तरह की इच्छाएँ पूरी करनेवाला।

सर्व-कामद—वि. [सं.] सब इच्छाएँ पूरी करनेवाला।

सर्व-काल—क्रि. वि. [सं.] हर समय, सदा।

सर्वग—वि. [सं.] सब जगह जा सकनेवाला।

सर्वगत—वि. [सं.] जो सबमें हो, सर्वव्यापक।

सर्वगामी—वि. [सं.] सब जगह जा सकनेवाला।

सर्वग्रास—संज्ञा पुं. [सं.] वह ग्रहण जिसमें चंद्र या सूर्य का सारा बिंब ढक जाता है, खग्रास ग्रहण।

सर्वजनीन—वि. [सं.] सबसे संबंधित, सबका।

सर्वजित, सर्वजिय—वि. [सं. सर्वजित] (१) सबको जीत लेनेवाला। (२) सबसे बढ़कर।

सर्वज्ञ—वि. [सं.] सब कुछ जाननेवाला। उ.— तुम सर्वज्ञ सबै बिधि पूरन—१-१०३।

संज्ञा पुं. (१) ईश्वर। (२) ओंकार।

सर्वज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सर्वज्ञ' होने का गुण या भाव (जो ईश्वर का एक गुण माना जाता है)।

सर्वज्ञा—वि. स्त्री. [सं.] सब कुछ जाननेवाली।

सर्वतंत्र—वि. [सं.] जिसे सब (शास्त्रादि) मानते हों।

सर्वतः—अव्य. [सं.] (१) सब ओर। (२) सब तरह से। (३) पूर्ण रूप से।

सर्वतोभद्र—वि. [सं.] (१) सब तरह से कल्याणकारी। (२) जिसका सिर, दाढ़ी, मूँछ—सब मुड़े हों।

संज्ञा पुं. (१) देव-पूजन के वस्त्रों पर बनाया जानेवाला एक तरह का मांगलिक चिह्न। (२) हठयोग में बैठने का एक आसन या मुद्रा। (३) एक तरह का चित्रकाव्य।

सर्वतोभाव—क्रि. वि. [सं.] सब प्रकार से।

सर्वतोमुख—वि. [सं.] (१) जिसके मुँह चारों ओर हो। (२) जो सब दिशाओं में प्रवृत्त हो। (३) सब जगह मिलने या होनेवाला, व्यापक।

सर्वतोमुखी—वि. स्त्री. [सं.] (१) जो सब दिशाओं में प्रवृत्त हो। (२) सब जगह मिलने या होनेवाली।

सर्वत्र—अव्य. [सं.] सब जगह।

सर्वथा—अव्य. [सं.] (१) सब तरह से, सब प्रकार स। (२) बिलकुल, पूरा।

सर्वदर्शी—वि. [सं. सर्वदर्शिन्] सब कुछ देखनेवाला।

सर्वदा—अव्य. [सं.] हमेशा, सदा।

सर्वदैव—अव्य. [सं.] सदा ही, सदैव।

सर्वनाम—संज्ञा पुं. [सं. सर्वनामन्] संज्ञा शब्द के स्थान पर प्रयुक्त होनेवाला शब्द (व्याकरण)।

सर्वनाश—संज्ञा पुं. [सं.] पूरी बरबादी, सत्यानाश।

सर्वनाशक—वि. [सं.] सब कुछ नष्ट करनेवाला।

सर्वनाशी—वि. [सं.] सत्यानाश करनेवाला।

सर्वप्रिय—वि. [सं.] जो सबको प्रिय हो।

सर्वप्रियता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सबको प्रिय लगने या होने का भाव, लोकप्रियता।

सर्वभक्षी—वि. [सं. सर्वभक्षिन्] सब कुछ खानेवाला।

सर्वभोगी—वि. [सं.] अच्छी-बुरी, सभी चीजों का भोग करनेवाला।

सर्वमंगला—वि. [सं.] सब तरह से कल्याण या मंगल करनेवाला।

सर्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं. शर्वरी] रात, रात्रि। उ.—(क) उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससांक किरन-हीन—१०-२०५। (ख) सर्वरी सर्व बिहानी तोहिं मनावति राधा-रानी—२२४८।

सर्वविद्—वि. [सं.] सर्वज्ञ।

संज्ञा पुं. (१) ईश्वर। (२) ओंकार।

सर्वव्यापक—वि. [सं.] जो सबमें व्याप्त हो।

संज्ञा पुं. ईश्वर।

सर्वव्यापी—वि. [सं.] जो सबम व्याप्त हो।

संज्ञा पुं. ईश्वर।

सर्वशः—अव्य. [सं.] (१) पूरा-पूरा। (२) पूर्णरूप से।

सर्वशक्तिमान, सर्वशक्तिमान्—वि. [सं. सर्वशक्तिमत्] जो सब कुछ करने में समर्थ हो।

संज्ञा पुं ईश्वर।

सर्वश्री—वि. [सं.] एक आदरसूचक विशेषण जिसका प्रयोग साथ-साथ प्रयुक्त कई नामों में से प्रत्येक के साथ 'श्री' का प्रयोग न करके, सामूहिक 'श्री' सूचक रूप में, केवल प्रथम नाम के साथ प्रयुक्त होता है।

सर्वश्रेष्ठ—वि. [सं.] सबसे उत्तम।

सर्वसंहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काल। (२) यमराज।

सर्वस—संज्ञा पुं. [सं. सर्वस्व] सारी जमा-पूँजी, सर्वस्व। उ.—जाकी जहाँ प्रतीति सूर सो सर्वस तहाँ सँचै री —२२७०।

सर्व-सम्मत—वि. [सं.] जिससे सब सहमत हों।

सर्व-सम्मति—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्थिति जिसमें, किसी प्रसंग में, सभी संबंधितजन सहमत हों।

सर्व-साधारण—संज्ञा पुं. [सं.] सारा जन-समूह।

सर्व-सामान्य—वि. [सं.] जो सबमें समान हो।

सर्व-सिद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] सभी कार्यों की सिद्धि।

सर्वसु—संज्ञा पुं. [सं. सर्वस्व] सारी जमा-जथा या संपत्ति। उ.—सूरदास प्रभु सर्वसु लै गए हँसत हँसत रथ हाँक्यो —२५४६।

सर्वसोख वि. [सं. सर्व + हिं. सोखना] सब कुछ निगल जाने, ले लेने या हजम कर जानेवाला।

संज्ञा पुं. काल। (२) यमराज।

सर्वस्व—संज्ञा पुं. [सं.] सारी जमा-जथा।

सर्वहर—वि. [सं.] सब कुछ हर लेनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) काल। (२) यमराज।

सर्वहारी—वि. [सं. सर्वहारिन्] सब कुछ हर लेनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) काल। (२) यमराज।

सर्वांग—क्रि. वि. [सं.] सब प्रकार से।

संज्ञा पुं. (१) सारा शरीर। (२) (किसी वस्तु आदि के) सब अंग या अंश।

सर्वांगीण—वि. [सं.] (१) सब अंगों से संबंधित। (२) सब अंगों से युक्त, संपूर्ण।

सर्वाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, पार्वती।

सर्वात्मा—संज्ञा पुं. [सं. सर्वात्मन्] आत्मा-रूप में सारे विश्व में व्याप्त चेतन सत्ता, ब्रह्म।

सर्वाधिकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पूर्ण प्रभुत्व। (२) सभी प्रकार का अधिकार।

सर्वाधिकारी—वि. [सं.] जिसे सभी अधिकार हों।

सर्वास्तिवाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक दार्शनिक सिद्धांत जिसमें सभी वस्तुओं की सत्ता यथार्थ मानी जाती है, असत्य नहीं।

सर्वास्तिवादी—वि. [सं.] उक्त सिद्धांत का माननेवाला।

सर्वेश, सर्वेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सबका स्वामी। (२) ईश्वर, परमेश्वर।

सर्वेसर्वा—वि. [सं. सर्वे-सर्वाः] जिसे सब अधिकार हों।

सर्वोत्तम—वि. [सं.] सबसे उत्तम।

सर्वोदय संज्ञा पुं [सं.] वह सिद्धांत जिसमें सबकी सभी प्रकार की उन्नति का समर्थन हो।

सर्वोपरि—वि. [सं.] सबसे ऊपर या बढ़कर।

सर्षप संज्ञा पुं. [सं.] सरसों।

सल—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) सिलवट। (२) परत, तह। (३) जानकारी। (४) परिचय।

संज्ञा पुं [सं.] (१) पानी, जल। (२) एक कीड़ा।

सलज्ज—वि. [सं.] जिसे लज्जा लगे।

क्रि. वि. शरमाते या लजाते हुए।

सलतनत—संज्ञा स्त्री. [अ. सल्तनत] (१) बादशाहत। (२) साम्राज्य। (३) आराम, सुभीता। (४) प्रबंध। मुहा. सलतनत बैठना—प्रबंध ठीक होना।

सलना, सलनो—क्रि. अ. [सं. शल्य] (१) छिदना, भिदना। (२) छेद में किसी चीज का डाला जाना।

सलब—वि. [अ. सल्ब] बरबाद, नष्ट।

सलभ—संज्ञा पुं. [सं. शलभ] पतिंगा।

सलमा—संज्ञा पुं. [अ. सलमः] सोने-चाँदी का बहुत पतला या महीन तार, बादला।

सलवट - संज्ञा स्त्री. [हिं. सिलवट] सिकुड़न, सिमटन।

सलवार—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शलवार] एक तरह का ढीला पाजामा जिसे प्रायः स्त्रियाँ पहनती हैं।

सलसलाना, सलसलानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) हल्की खुजली या सरसराहट होना। (२) गुदगुदी होना। (३) रेंगना।

क्रि. स. (१) खुजलाना। (२) गुदगुदाना। (३) बहुत शीघ्रता से काम करना।

सलसलाहट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) सलसल शब्द। (२)

खुजली। (३) गुदगुदी। (४) लपझप जैसी शीघ्रता।

सलइज—संज्ञा स्त्री. [हिं. साला] साले की पत्नी।

सलाइ—क्रि. स. [हिं. सलाना] चुभाकर, पीड़ित होकर। उ.—सौति साल सलाइ बैठी डुलति इत उत नाहिं—२०२१।

सलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. शलाका] (१) काठ या धातु की महीन सींक जैसी छड़। (२) सुरमा लगाने की सींक-जैसे छड़।

मुहा.—सलाई फेरना—(१) आँख में सलाई से सुरमा आदि लगाना। (२) किसी को अंधा करने के लिए गरम सलाई आँखों में लगाना।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सालना] सालने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

सलाक—संज्ञा स्त्री. [सं. शलाका] पतली छड़, सलाख। उ.—पलकनि सूल सलाक सही है, निसि-वासर दोउ रहत अरे रीपृ.—३२७ (६०)।

संज्ञा पुं. तीर, बाण।

सलाकना, सलाकनो—क्रि. अ. [सं. शलाका] सलाई जैसी चीज से कुरेदकर चिह्न बनाना।

सलाकनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. सलाक+नि] सलाखों से। उ.—सहि न सकति अति बिरह त्रास तनु आगि सलाकनि जारी—३२४६।

सलाका—संज्ञा स्त्री. [सं. शलाका] सलाख। उ.—सहि न सकति अलि, गुरु ज्ञान सलाका।

सलाख—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सलाख़] धातु की छड़।

सलाम—संज्ञा पुं. [अ.] प्रणाम।

मुहा.—दूर से सलाम करना—बुरी वस्तु या बुरे आदमी से बचकर या दूर रहना। सलाम है—दूर ही रहना चाहते हैं, बाज आये। सलाम करके चलना—अप्रसन्न होकर विदा लेना। सलाम फेरना—किसी से इतना अप्रसन्न होना कि प्रणाम भी स्वीकार न करना।

सलामत—वि. [अ.] (१) हानि या आपत्ति से बचा हुआ या रक्षित। (२) जीवित और स्वस्थ। (३) कायम, बरकरार, स्थित।

क्रि. वि. खरियत से, सकुशल।

सलामती—संज्ञा स्त्री. [अ. सलामत] (१) तंदुरुस्ती, स्वस्थता। (२) कुशल-क्षेम। (३) जिंदगी, जीवन।

सलामी—संज्ञा स्त्री. [अ. सलामी] (१) प्रणाम करने की क्रिया। (२) सैनिकों आदि की शस्त्रों से प्रणाम करन की रीति या प्रणाली। (३) उक्त रीति से किसी माननीय व्यक्ति का अभिवादन।

मुहा.—सलामी उतारना (देना)—उक्त प्रकार से किसी माननीय व्यक्ति का अभिवादन करना। सलामी लेना—उक्त अभिवादन को स्वीकार करना।

वि. जो स्थान कुछ-कुछ ढालू हो।

सलाह—संज्ञा स्त्री. [अ.] राय, परामर्श।

मुहा.—सलाह ठहराना—(सबका) निश्चय करना।

सलाहकार—वि. [अ. सलाह+फ़ा. कार] राय या परामर्श देनेवाला।

सलिल—संज्ञा पुं. [सं.] पानी, जल। उ.—(क) सलिल सौं सब रंग तजि कै एक रंग मिलाइ—१-७०। (ख) जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै सुखित समोइ करे—९-१७१।

सलिलज—वि. [सं.] जो जल से उत्पन्न हो।

संज्ञा पुं. कमल, नीरज।

सलिला—संज्ञा स्त्री. [सं. सलिल] नदी।

सलीका—संज्ञा पुं. [अ. सलीक़ः] (१) काम ठीक-ठीक करने का ढंग। (२) हुनर, लियाकत। (३) शिष्टता।

सलीता—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक तरह का बहुत मोटा कपड़ा। (२) झोला, थैला।

सलील—वि. [सं.] (१) लीला युक्त। (२) खिलाड़ी। (३) कौतुकी, कौतूहलप्रिय।

सलीस—वि. [अ.] (१) सुगम। (२) मुहावरेदार।

सलूक - संज्ञा पुं. [अ. सलूक़] (१) बर्ताव। (२) उपकार। (३) मेल-मिलाप। (४) तौर-तरीका।

सलूनो—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रावणी ?] रक्षाबंधन।

सलोक—संज्ञा पुं. [सं. श्लोक] श्लोक।

सलोन, सलोना—वि. [हिं. स+लोन] (१) नमकीन। (२) रसीला, सुन्दर। उ.—(क) इत सुन्दरी बिचित्र उतहिं घनस्याम सलोना—११३२। (ख) खेलैं फाग नैन सलोन री रँग राँची ग्वालिनि—२-४०५।

सलोनापन—संज्ञा पुं. [हिं. सलोना+पन] (१) नमकीन

होने का भाव। (२) सुन्दर होने का भाव।

सलोनी—वि. स्त्री. [हिं. सलोना] (१) सुन्दरी। (२) जिसमें नमक पड़ा हो। उ.—दाल भात घृत कढ़ी सलोनी—सारा. १८७।

सलोनो—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रावणी ?] रक्षाबंधन।

सलोल—वि. [सं. स+लोल] बहुत चंचल या हिलता-डोलता। उ.—लोचन जलज मधुप अलकावलि कुंडल मीन सलोल—पृ. ३४४ (३५)।

सल्लम—संज्ञा पुं. स्त्री. [देश.] गाढ़ा (कपड़ा)।

सल्लाह—संज्ञा स्त्री. [हिं. सलाह] राय, परामर्श।

सल्लू—वि. [देश.] बेवकूफ, मूर्ख।

सल्व—संज्ञा पुं. [सं. शल्व] शल्व।

सव—संज्ञा पुं. [सं. शव] मृत शरीर। उ.—फिरत सृगाल सज्यौ सव कटात चलत सो सीस लै भागि—९-१५८।

मुहा.—सव साजना—चिता बनाकर उस पर जलाने के लिए शव रखना।

सवत, सवति—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौत] सौत, सपत्नी।

मुहा.—कीने सवति बजाइ—खुल्लमखुल्ला या सबको जताकर किसी की सौत करना। उ.—सूरदास प्रभु हम पर ताको कीने सवति बजाइ—२३२९।

सवत्स—वि. [सं.] जिसके साथ बच्चा हो।

सवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रसव। (२) यज्ञ।

सवयस्क—वि. [सं.] समान अवस्थावाला।

सवया—संज्ञा स्त्री. [सं.] सखी, सहेली, सहचरी।

सवर्ण—वि. [सं.] (१) समान, सदृश। (२) एक ही वर्ण या जाति का।

सवाँग—संज्ञा पुं. [हिं. स्वाँग] (१) बनावटी वेश या रूप। उ.—सूरदास प्रभु जब जब देखत नट सवाँग सो काछे—पृ. ३३१ (६)।

सवाँगना, सवाँगनो—क्रि. अ. [हिं. स्वाँगना] बनावटी वेश या रूप बनाना।

सवा—वि. [सं. स+पाद] चौईथा (भाग) सहित।

सवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सवा] जयपुर के महाराजाओं की एक उपाधि।

वि. (१) एक और चौथाई, सवाया। (२) सामान्य से अधिक। उ.—(क) मान करौ तुम और सवाई—१८८८। (ख) प्रीतम सो जो रहै एकरस निसि बढ़ि प्रेम सवाई—३३१०।

सवाद—संज्ञा पुं. [सं. स्वाद] (१) कुछ खाने पीने से जीभ को होनेवाला अनुभव, खाने-पीने का सुखद अनुभव। उ.—(क) ज्यौं गूँगौ गुरु खाइ अधिक रस, सुख-सवाद न बतावै—२-१०। (ख) सो रस है मोहूँ कौ दुरलभ, तातैं लेत सवाद—१०-६४। (२) किसी बात में होनेवाली रुचि या उससे मिलनेवाला आनंद।

सवादिक, सवादिल—वि. [सं. स्वादिष्ट] स्वादिष्ट।

सवाब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) पुण्य। (२) उपकार।

सवाया—वि. [हिं. सवा] (१) पूरे से एक चौथाई अधिक। (२) सामान्य से कुछ अधिक।

सवार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) वह जो (घोड़े, गाड़ी या वाहन पर) चढ़ा हो। (२) घुड़सवार सैनिक।

वि. (घोड़े, गाड़ी या वाहन आदि पर) चढ़ा हुआ। उ.—सुरपुर तैं आयौ रथ सजिकै, रघुपति भए सवार—९-१५८।

मुहा.—पाँचवा सवार बनना—योग्यता या पात्रता न होने पर भी बड़ों के साथ अपनी गिनती कराने का प्रयत्न करना।

क्रि. वि. [हिं. सबार] जल्दी, शीघ्र। उ.—सूरदास प्रभु सों हठ कीन्हो उठि चल क्यों न सवार—२२११।

संज्ञा पुं. सबेरा, प्रातःकाल।

सवारना, सवारनो—क्रि. स. [हिं. सँवारना] सजाना, अलंकृत करना।

सवारा—संज्ञा पुं. [हिं. सबेरा] प्रातःकाल।

सवारि—क्रि. वि. [हिं. सबार] जल्दी, शीघ्र। उ.—सहज सिथिल पल्लव ते हरि जू लीन्हों छोरि सवारि—पृ. ३४८ (५)।

सवारी—क्रि. वि. [हिं. सबार] जल्दी, शीघ्र, तुरन्त। उ.—(क) सुरपति-पूजा करौ सवारी—१००७। (ख) तुम सुन्दरी काकी बधू घर जाहु सवारी—पृ. ३१७ (६३)।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) किसी चीज पर (विशेषतः) चलने के लिए चढ़ने की क्रिया। (२) वह चीज या वाहन जिस पर सवार हुआ जाय। (३) वह व्यक्ति

जो सवार हो। (४) बड़े आदमी, देव-मूर्ति आदि के साथ चलनेवाला जलूस।

सवारे—क्रि. वि. [हिं. सवार] शीघ्र, तुरन्त। उ.—(क) जेहि हठ तजै प्रान प्यारी सो जतन सवारे करिए—२२७५। (ख) ह्वै यह जीति विधाता इनकी करहु सहाय सवारे—२५६९।

संज्ञा पुं. सवेरा, प्रातःकाल। उ.—यहै देत लवनी नित मोको, छिन छिन साँझ-सवारे—१०-१८९।

सवारैं, सवारै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सवार] सवेरे, प्रातःकाल को ही। उ.—(क) साँझ-सवारै आवन लागी—७१०। (ख) निकट बैठारि सब बात तेई कही गए जे भाषि नारद सवारैं—२४६६।

सवारो, सवारौ—क्रि. वि. [हिं. सबार] शीघ्र, तुरंत। उ.—इह उपदेस आपुनो ऊधौ, राखौ ढाँप सवारो—३२०५।

सवाल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) पूछने की क्रिया। (२) वह जो पूछा जाय, प्रश्न। (३) माँग, याचना। (४) गणित का प्रश्न।

सवाल-जवाव—संज्ञा पुं. [अ.] (१) बहस, तर्क-वितर्क, वाद विवाद। (२) तकरार, हुज्जत, झगड़ा।

सविकल्प—वि. [सं.] संदेहयुक्त, संदिग्ध।

संज्ञा पुं. दो प्रकार की समाधियों में एक जो किसी आलंबन की सहायता से होती है।

सविता—संज्ञा पुं. [सं. सवितृ] (१) रवि, सूर्य। उ.—जनु जल सोखि लयो सो सविता—२०६२। (२) बारह की संख्या। (३) आक, मदार। (४) ईश्वर।

सवेरा—संज्ञा पुं. [हिं. स+सं. वेला] (१) सुबह, प्रातःकाल। (२) निश्चित समय या उपयुक्त अवसर से पूर्व का समय।

सवैया—संज्ञा पुं. [हिं. सवा+ऐया] (१) सवा सेर का बाँट। (२) वह पहाड़ा जिसमें संख्याओं का सवाया रहता है। (३) सवाया भाग। (४) एक प्रसिद्ध छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक गुरु होता है। इसे 'मालिनी', 'मदिरा' और 'दिवा' भी कहते हैं।

वि. जो सवाया हो।

सव्य—वि. [सं.] (१) बाँया, बाम। (२) दाहना, दांया। (३) उलटा, प्रतिकूल।

सव्यसाची—संज्ञा स्त्री. [सं.] अर्जुन जो दाहने और बाय, दोनों हाथों से तीर चला सकते थे।

सशंक—वि. [सं.] (१) जिसे शंका हो, शंकित। (२) डरा हुआ, भयभीत।

सशंकना—क्रि. अ. [सं. सशंक] (१) शंका या संदेह करना, शंकित होना। (२) डरना, भयभीत होना।

सशक्त—वि. [सं.] बली, शक्तिशाली।

सशस्त्र—वि. [सं.] (१) शस्त्रों से युक्त। (२) शस्त्रों से लज्जित।

ससंकि—क्रि. अ. [हिं. सशंकना] शंकित होकर। उ.—बिडरत बिझुकि जानि रथ ते मृग जनु ससंकि ससि लंगर सारे—१३३३।

ससंकित—क्रि. अ. [हिं. सशंकना] शंकित होकर। उ.—अखुटित रहत सभीत ससंकित सुकृत सब्द नहिं पावै—१-४८।

सस—संज्ञा पुं. [सं. शशि] (१) चंद्रमा। (२) चंद्रमा का काला धब्बा या कलंक।

संज्ञा पुं. [सं. शस्य] (१) अनाज। (२) खेतीबारी।

ससक, ससका—संज्ञा पुं. [सं. शशक] खरगोश।

ससकाई—संज्ञा स्त्री. [सं. शशक+हिं. आई] चंद्रमा की कालिमा। उ.—माँग उरग नव तरनि तरौना तिलक भाल ससि की ससकाई—१८८७।

ससना, ससनो—क्रि. अ. [सं. शासन] कष्ट सहना।

क्रि. अ. [देश.] समाना, प्रविष्ट होना।

क्रि. अ. [हिं. साँस] साँस लेने में कष्ट होना।

ससहर—संज्ञा पुं. [सं. शशिधर] चंद्रमा।

ससहरना, ससहरनो—क्रि. अ. [हिं. सिहरना] डरना।

ससांक—संज्ञा पुं. [सं. शशांक] चंद्रमा। उ.—उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससांक किरनहीन—१०-२०५।

ससा—संज्ञा पुं. [सं. शशा] खरगोश।

ससाना, ससानो—क्रि. अ. [हिं. सासना] (१) घबराना, विकल होना। (२) काँपना।

ससि—संज्ञा पुं. [सं. शशि] चंद्रमा। उ.—(क) रवि-ससि किये प्रदच्छिनकारी—३-३४। (ख) बारिज ससि बैर जानि जिय—१०-१६४।

संज्ञा पुं. [सं. शस्य] अनाज, धान्य।

ससिधर, ससिहर संज्ञा पुं. [सं. शशिधर] चन्द्रमा।

ससी—संज्ञा पुं. [सं. शशि] चन्द्रमा।

ससुधौटी—संज्ञा स्त्री. [सं स+हिं. सुधौटी] सुधा का पात्र। उ.—हरि-कर राजति माखन-रोटी। मनु बारिज ससि बैर जानि जिय गह्यौ सुधा ससुधौटी—१०-१६४।

ससुर, ससुरा—संज्ञा पुं. [सं. श्वशुर] पति या पत्नी का पिता।

ससुरा, ससुराल—संज्ञा स्त्री. [सं. श्वशुर+आलय] पति या पत्नी के पिता का घर।

सस्ता—वि. [सं. स्वस्थ] (१) थोड़े मूल्य का, जो महँगा न हो। (२) जिसका मूल्य गिर गया हो।

मुहा. सस्ता समय—वह समय जब सब चीजें थोड़े ही मूल्य पर मिल जाती हों। सस्ता छूटना—(१) साधारण से भी कम दाम पर बिक जाना। (२) सहज में ही या बहुत थोड़ी हानि सहकर किसी काम या झंझट से छुटकारा पा जाना।

(३) जो बहुत थोड़े परिश्रम, व्यय या कार्य से प्राप्त हो जाय। (४) घटिया, मामूली।

सस्ताना, सस्तानो—क्रि. अ. [हिं. सस्ता] सस्ता होना।

क्रि. स. सस्ते दाम पर बेचना।

क्रि. अ. [हिं. सुसताना] थकावट दूर करना।

सस्ती—वि. स्त्री. [हिं. सस्ता] (१) साधारण से भी कम मूल्य की। (२) जिसका मूल्य गिर गया हो। (३) जो बहुत थोड़े श्रम या व्यय से प्राप्त हो जाय। (४) घटिया, मामूली।

संज्ञा स्त्री. (१) सस्ता होने का भाव। (२) वह समय जब सब चीजें सस्ते दाम पर मिल जायँ।

सस्तो, सस्तौ—वि. [हिं. सस्ता] जो थोड़े ही श्रम से सिद्धि प्राप्त करा दे। उ.—जहाँ तहाँ तैं सब आवैंगे सुनि-सुनि सस्तौ नाम—१-१९१।

सस्त्र—संज्ञा पुं. [सं. शस्त्र] हथियार जिन्हें हाथ में पकड़े रहकर ही वार किया जाय। उ.—(क) जुद्ध न करौं सस्त्र नहिं पकरौं, एक ओर सेना सिगरी—१-२६८। (ख) जेतक सस्त्र सो किए प्रहार—६-५।

सस्त्रनि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. शस्त्र] हथियारों या शस्त्रों को। उ.—ते सब ठाढ़ सस्त्रनि धारे—४-१२।

सस्त्रीक—वि. [सं.] स्त्री या पत्नी के साथ।

सस्मित—वि. [सं. स+स्मित] हँसता हुआ।

क्रि. वि. मुस्कराकर, हँसकर।

सस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनाज। (२) खेतीबारी।

सहँगा—वि. [हिं. महँगा का अनु.] सस्ता।

सह—अव्य. [सं.] समेत, सहित। उ.—मनु बराह भूधर सह पुहुमी धरी दसन की कोटी—१०-१६४।

वि. [सं.] (१) सहनशील। (२) योग्य, समर्थ।

सहकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुगन्धित पदार्थ। (२) आम का पेड़। (३) सहायक। (४) सहयोग।

सहकारता, सहकारिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मिलकर काम करना। (२) मदद, सहायता।

सहकारी—संज्ञा पुं. [सं. सहकारिन्] (१) सहयोगी, साथी। (२) सहायक।

सहगमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी के साथ जाने की क्रिया या भाव। (२) पति के शव के साथ स्त्री के सती होने की क्रिया। उ.—ज्यौं सहगमन सुन्दरी के सँग बहु बाजन हैं बाजत—९-१३०।

सहगान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कई लोगों के साथ मिलकर गाना। (२) वह गान जो इस प्रकार गाया जाय।

सहगामिनि, सहगामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सहगामिनि] (१) वह स्त्री जो पति के शव के साथ सती हो जाय। (२) पत्नी। (३) सहेली।

संज्ञा पुं. स्त्री. सहगमन। उ.—(क) गंधारी सह-गामिनि कियौ—१-२८४। (ख) सब नारिनि सह-गामिनि कियौ—९-९।

सहगामी—संज्ञा पुं. [सं. सहगामिन्] (१) साथ चलने-वाला। (२) साथ रहनेवाला, साथी। (३) अनुकरण करनेवाला, अनुयायी।

सहगौन—संज्ञा पुं. [सं. सहगमन] सहगमन।

सहचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संगी साथी। (२) पति। (३) सेवक।

सहचरि, सहचरी संज्ञा स्त्री. [सं.सहचरि] (१) पत्नी। (२) सेविका। (३) सखी, सहेली। उ.-(क) सुपनेहुसंयोग सहति नहिं सहचरि सौति भई—२७९१। (ख) गावहिं सब

सहचरी कुँवरि तामस करि हेरयौ—१० उ.-८ ।

सहचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ । (२) साथी ।

सहचारिणी, सहचारिनि, सहचारिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सहचारिणी] (१) सखी, सहेली, । (२) पत्नी ।

सहचारिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सहचरी' होने का भाव ।

सहचारी—संज्ञा पुं. [सं. सहचारिन्] (१) संगी, साथी, सहचर । (२) सेवक ।

सहज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सगा भाई । (२) स्वभाव ।

वि. (१) साथ-साथ उत्पन्न होनेवाला । (२) प्राकृतिक, स्वाभाविक । उ.—(क) नाभि-हृद रोमावली अलि चले सहज सुभाव—१-३०७ । (३) प्रकृत, साधारण । उ.—मनौ नव घन दामिनी, तजि रही सहज सुवेस—६३३ । (४) सरल, सुगम ।

क्रि. वि. (१) सुगमता से । उ.– बहुरो ध्यान सहज ही होइ—३-१३ । (२) सरल और आडंबररहित रूप में । उ.—सहज भजै नँदलाल कौं सो सब सचु पावै २-९ । (३) सीधेपन से, सिधाई से । उ.—हम माँगत हैं सहज सों तुम अति रिस कीन्हों—२५७६ ।

सहजता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरलता, सुगमता । (२) स्वाभाविकता ।

सहज-ध्यान—संज्ञा पुं. [सं.] वह ध्यान जो सुगम रूप में किया जाय और जिसके लिए आसन, मुद्रा आदि की आवश्कता न हो ।

सहज-पंथ—संज्ञा पुं. [सं.] गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय का एक वर्ग ।

सहज-बुद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] जीव-जंतु या प्राणी की स्वाभाविक ज्ञान-शक्ति ।

सहज-समाधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह समाधि जो सुगम रूप में लगायी जाय और जिसके लिए आसन, मुद्रा आदि की आवश्यकता न हो । उ.—सुचि रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीनबंधु करुनामय उर धरि — १-३१२ ।

सहजात—वि. [सं.] (१) साथ-साथ उत्पन्न होनेवाला, सहोदर । (२) यमज ।

सहजिया—वि. [सं.] सहज-पंथानयायी ।

सहजीवी—वि. [सं.] साथ रहनेवाला ।

सहत—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करता है, सहता है । उ.—(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि जड़ किते सहत अपमान—१-१०३ । (ख) सूर सो मृग ज्यौं बान सहत कित - १-३२० ।

सहताना, सहतानो—क्रि. अ. [हिं. सुसताना] आराम करके थकावट दूर करना ।

सहतिं—क्रि. स. [हिं. सहना] सहती या सहन करती हैं । उ.—सलिल तैं सब निकसि आवहु वृथा सहतिं तुषार —७८६ ।

सहति – क्रि. स. [हिं. सहना] भोगती, झेलती या बरदाश्त करती है । उ.—(क) कत हौ सीत सहति ब्रज-सुंदरि —७८७ । (ख) सहति बिरह के सूलनि—८९७ । (ग) बात मेरी सुनति नाहिंन, कतहिं निंदा सहति —११८९ ।

सहदान—संज्ञा पुं. [सं.] अनेक देवताओं के लिए एक ही में दिया जानेवाला दान ।

सहदानि, सहदानी—संज्ञा स्त्री. [सं. संज्ञान] निशानी, पहचान, चिह्न । उ—(क) लेहु मातु सहदानि मुद्रिका दई प्रीति करि नाथ—९-८३ (ख) चरन चापि महि प्रगट करी पिय सेष सीस सहदानी—२०७६ ।

सहदूल—संज्ञा पुं. [सं. शार्दूल] सिंह ।

सहदेव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा पांडु के पाँच पुत्रों में सबसे छोटा पुत्र जो माद्री के गर्भ से अश्विनीकुमारों के औरस से जन्मा था । (२) जरासंध का पुत्र जो महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु द्वारा मारा गया था ।

सहधर्मिणी संज्ञा स्त्री. [सं. सहधर्म्मिणी] पत्नी ।

सहधर्मी – संज्ञा पुं. [सं. सहधर्म्मी] पति ।

सहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहने की क्रिया या भाव । (२) क्षमा । (३) आज्ञा या आदेश पालन करना ।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) घर का आँगन या चौक । (२) एक तरह का रेशमी कपड़ा ।

सहनशील – वि. [सं.] (१) बरदाश्त या सहन करनेवाला, सहिष्णु । (२) संतोषी ।

सहनशीलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सहनशील होने का भाव, सहिष्णुता । (२) संतोष ।

सहना—क्रि. स. [सं. सहन] (१) बरदाश्त करना, झेलना,

सहभोज—संज्ञा पुं. [सं.] लोगों का साथ भोजन करना।
सहभोजी—वि. [सं. सहभोजिन्] साथ खानेवाला।
सहम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) डर। (२) हिचक, संकोच।
सहमत—वि. [सं.] एक मत का।
सहमति—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी के साथ एकमत या सहमत होने की क्रिया या भाव।
सहमना, सहमनो—क्रि. अ. [फ़ा. सहम] डरना।
सहमरण—संज्ञा पुं. [सं.] स्त्री का सती होना।
सहमाना, सहमानो—क्रि. स. [फ़ा. सहम] डराना।
सहयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ मिलकर काम करने का व्यापार या भाव। (२) संग, साथ। (३) सहायता।
सहयोगी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ मिलकर काम करनेवाला व्यक्ति। (२) वह जो एक ही कार्यालय या विभाग में काम करता हो।(२) साथी, सहकारी। (४) समवयस्क। (५) समकालीन।
सहर—क्रि. वि. [हिं. सहराना] धीरे, रुक रुककर।
संज्ञा पुं. [देश.] बनबिलाव।
संज्ञा पुं. [अ.] सबेरा, प्रातःकाल।
संज्ञा पुं. [अ. सेह्र] जादू-टोना।
संज्ञा पुं. [फ़ा. शहर] पुर, नगर। उ.—ता दिन सूर सहर सब चकित सबर-सनेह तज्यौ पितु मात—९-३८। (ख) आनँद मगन नर गोकुल सहर के—१०-३०। (ग) जीवन हैं ये स्याम, सहर के—६०७।
सहराना, सहरानो—क्रि. स. [हिं. सहलाना] धीरे-धीरे हाथ फेरना, धीरे-धीरे मलना।
सहरी—संज्ञा स्त्री. [अ.] निर्जल व्रत के दिन बहुत तड़के किया जानेवाला भोजन।
संज्ञा स्त्री. [सं. शफ़री] एक तरह की मछली।
वि. [हिं. सहर] नगर या पुर का।
सहल—वि. [अ.] सरल, सहज, सुगम।
सहलग, सहलगा—वि. [सं. सह+हिं. लगना] साथ-साथ लगा रहनेवाला।
संज्ञा पुं. साथी, सहचर।
सहलगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सहलगा] (१) साथ लगे रहने की क्रिया या भाव। (२) सहचरी।
वि. साथ-साथ लगी रहनेवाली।
सहलाना, सहलानो—क्रि. स. [अनु.] (१) धीरे धीरे हाथ फेरना। (२) धीरे-धीरे मलना।
सहवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ-साथ रहना, संग, साथ। (२) मैथुन, संभोग।
सहवासी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथी। (२) पति।
सहस—वि. [सं. सहस्र] हजार, हजारों। उ.—(क) सहस सकट भरि कमल चलाए—५८३। (ख) सोरह सहस घोषकुमारि—७९५।
सहसक—वि. [सं. सहस+एक] लगभग हजार। उ.—मन सहसक केसरि लै दीनो—८४३३।
सहसकिरन—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रकिरण] सूर्य।
सहसगो—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रगु] सूर्य।
सहसचरण—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रचरण] सूर्य।
सहसजिभ्या, सहसजीभ, सहसजीभी—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रजिह्व] शेषनाग।
सहसदल—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रदल] कमल।
सहसनयन—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रनयन] इंद्र।
सहसनाम—संज्ञा पुं. [सं. सहस्र+नाम] (१) वह स्तोत्र जिसमें किसी देवता के हजार नाम हों। (२) महाप्रभु वल्लभाचार्य का 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम नामक' ग्रंथ। उ.—सहसनाम तहँ तिन्हैं सुनायौ—१-२२६।
सहसनैन—संज्ञा पुं [सं. सहस्रनयन] इंद्र।
सहसफन, सहसफनी—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रफण] शेषनाग। उ.—हरि जू की आरती बनी।........डाँड़ी सहसफनी—२-२६।
सहसवदन—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रवदन] शेषनाग।
सहसबाहु—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रबाहु] राजा कृतवीर्य का पुत्र 'हैहय' जिसे कार्तवीयार्जुन भी कहते हैं। इसने रावण को युद्ध में परास्त किया था और पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए परशुराम ने इसे मार डाला था। उ.—सहसबाहु रविबंसी भयौ।......। सहसबाहु तब ताकौ गह्यौ—९-१३।
सहसमुख—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रमुख] शेषनाग।
सहसवदन—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रवदन] शेषनाग।
सहससीस—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रशीर्ष] शेषनाग।
सहसा—अव्य. [सं.] एकाएक, अचानक।

सहसाई—संज्ञा पुं. [सं. सहाय] सहायता।
संज्ञा पुं. सहायता करनेवाला व्यक्ति।

सहसाच्छ, सहसाच्छि, सहसाखि, सहसाखी—संज्ञा पुं. [सं. सहस्राक्ष] इन्द्र।

सहसान—संज्ञा पुं. [सं.] मोर, मयूर।

सहसानन—संज्ञा पुं. [सं. सहस्रानन] शेषनाग। उ.—(क) चारि बदन मैं कह कहौं, सहसानन नहिं जान—४९२। (ख) सहसानन जेहि गावै हो—१५५७।

सहसौ—वि. [सं. सहस्र] हजार, हजारों। उ.—सेष सकुचि सहसौ फल पेलत—१०-६३।

सहस्रार—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर के भीतरी आठ कमलों या चक्रों में एक जिसे 'शून्य चक्र' भी कहते हैं। यह सहस्र दलवाला और मस्तिष्क के ऊपरी भाग में स्थित कहा गया है।

सहस्र—संज्ञा पुं. [सं.] हजार की संख्या।
वि. जो गिनती में हजार हो। उ.—(क) सतजुग लाख बरस की आइ, त्रेता दस सहस्र कहि गाइ—१-२३०। (ख) साठ सहस्र सगर के पुत्र—९-९।

सहस्र—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

सहस्रकरण—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

सहस्रचच्छु—संज्ञा पु. [सं. सहस्रचक्षुस्] इन्द्र।

सहस्रकिरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) विष्णु।

सहस्रदल—संज्ञा पुं. [सं.] कमल, पद्म।

सहस्रधारा—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं को स्नान कराने का पात्र जिसमें हजार छेद होते हैं।

सहस्रनयन—संज्ञा पुं. [सं.] इन्द्र।

सहस्रनाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह स्तोत्र जिसम किसी देवता के हजार नाम हों। (२) महाप्रभु वल्लभाचार्य का 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' नामक ग्रंथ।

सहस्रपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] कमल, पद्म।

सहस्रपाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) विष्णु।

सहस्रबाहु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यवंशी राजा कृतवीर्य का पुत्र जो 'हैहय' और 'सहस्रार्जुन' नामों से भी प्रसिद्ध है। इसने एक बार रावण को पराजित किया था। मुनि जमदग्नि की कामधेनु हरने और उनकी हत्या करने के अपराध में उनके पुत्र परशुराम ने उसे मार डाला था।

सहस्रभुज—संज्ञा पुं. [सं. सहस्र+भुजा] सहस्रबाहु।

सहस्रभुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवी का वह रूप जब महिषासुर का वध करने के लिए उनकी हजार भुजाएँ हो गयी थीं।

सहस्रलोचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) विष्णु।

सहस्राक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इन्द्र। (२) विष्णु।

सहस्राब्द—संज्ञा पुं. [सं.] हजार वर्ष।

सहस्रार्जुन—संज्ञा पुं. [सं.] सहस्रबाहु।

सहाइ, सहाई—वि. [सं. सहाय] सहायता करनेवाला। उ.—(क) सूर स्याम ......गिरि लै भए सहाई—१-१२२। (ख) जहाँ तहाँ सो होत सहाई—३९१। (ग) जहँ तहँ तुमहिं सहाइ सदा हौ—६०७। (घ) राजसूय यज्ञ को कियो अरंभ मै जानि कै नाथ तुमको सहाई—१० उ.-५१।
संज्ञा स्त्री. (१) सहायता। उ.—(क) हरिजू ताकी करी सहाइ—७-२। (ख) ना जानौं धौं कौन पुन्य तैं को करि लेत सहाइ—१०-८१। (ग) तिनके चरन सरोज सूर अब किए गुरु कृपा सहाइ—२५५५। (२) फौज, सेना।
क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करके या की, सहन करने को प्रवृत्त किया।

सहाउ, सहाऊ—वि. [सं. सहाय] सहायक।

सहाध्यायी—संज्ञा पुं. [सं. सहाध्यायिन्] सहपाठी।

सहाना, सहानो—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करने को प्रवृत्त या विवश करना।
वि. [फ़ा. शाहाना] (१) राजसी (२) उत्तम।
संज्ञा पुं. एक तरह का राग (संगीत)।

सहानी—संज्ञा पुं. [फ़ा. शाहाना] एक रंग जो पीलापन लिये हुए लाल हो।

सहानुगमन—संज्ञा पुं. [सं.] सती होना, सहगमन।

सहानुभूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी के दुख से दुखी या द्रवित होना।

सहाब—संज्ञा पुं. [फ़ा. शहाब] एक तरह का गहरा लाल रंग जो कुसुम के फूलों से बनता है।

सहाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहायता। उ.—(क) कहं न सहाय करी भक्तनि की—१-२५। (ख) कौन सहाय

करैं घर अपने मेटैं विधि अपना—२५४७। (ग) इनकी करहु सहाय सवारे—१५६९। (घ) सत्वर सूर सहाय करै को—३१६५। (२) सहारा, भरोसा।
वि. सहायक। उ.—तेरी पुन्य सहाय भयौ है—१०-३३५।

सहायक—वि. [सं.] (१) सहायता करनेवाला। उ.—सूरदास हम दृढ़ करि पकरे अब ये चरन सहायक—१-१७७। (२) जो (छोटी नदी) बड़ी नदी में मिलती हो। (३) अधीन काम करनेवाला, सहकारी।

सहायता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मदद, कार्य में सहयोग। (२) कार्य-विशेष के लिए दिया जानेवाला धन।

सहायी—वि. [सं. सहाय] सहायक।
संज्ञा पुं. (१) सहायता। (२) आश्रय।

सहायौ—वि. [सं. सहाय] सहायक। उ.—तुमहिं बिना प्रभु कौन सहायौ—३९१।

सहार—संज्ञा पुं. [हिं. सहारना] (१) सहने की क्रिया या भाव। (२) सहनशीलता।

सहारना, सहारनो—क्रि. स. [हिं. सहार] (१) बर्दाश्त या सहन करना, सहना। (२) अपने ऊपर भार लेना या सँभालना। (३) गवारा करना। (४) सहारा देना।

सहारा—संज्ञा पुं. [सं. सहाय] (१) मदद, सहायता। (२) आश्रय। (३) भरोसा।
मुहा.—सहारा पाना—सहायता पाना। सहारा देना—(१) सहायता करना। (२) टेक देना। (३) आसरा देना। (४) आश्रय देना। (५) रोकना। सहारा ढूँढ़ना—आसरा ताकना।

सहारि—क्रि. स. [हिं. सहारना] सहन करके।
प्र.—सकी सहारि—सहन कर सकी। उ.—कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी, सकी न बचन सहारि (सँभारि)—९-१९।

सहारे—वि. [हिं. सहारा] सहायक। उ.—सो उबरयौ भयौ धर्म सहारे—५९५।

सहारो, सहारौ—संज्ञा पुं. [हिं. सहारा] आश्रय। उ.—सूर पतित कौ और ठौर नहिं है हरि-नाम सहारौ—१-३३९।

सहालग—संज्ञा पुं. [सं. सह+हिं. लगाव या लगना] (१) ब्याह-शादी के दिन, लगन। (२) लाभ के दिन।

सहावल—संज्ञा पुं. [हिं. साहुल] लटकन, साहुल।

सहाहीं—वि. [सं. सहाय] सहायक। उ.—तब अति ध्यान कियौ श्रीपति कौ, केसव भये सहाहीं—सारा. ३९।

सहिंजन—संज्ञा पुं. [हिं. सहिजन] एक वृक्ष।

सहि—क्रि. स. [हिं. सहना] (१) झेलकर, बरदाश्त करके। उ.—सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करैं—१-११७।
प्र.—सहि जैहै—झेली या सहन की जायगी। उ.—सुनि सुन्दरि यह समौ गए तें पुनि न सूल सहि जैहै—२०३३। लई सहि कै—झेल ली, सहन कर ली। उ.—हमसों कही, लई हम सहि कै जिय गुन लेहु सयाने—३००६। सहि सकत—झेली जा सकती है, सहन की जा सकती है। उ.—सहि न सकति अति बिरह त्रास तनु आगि सलाकनि जारी—३२४६। सहि सकी—सहन कर सकी। उ.—सहि न सकी, रिस ही रिस भरि गई बहुतै ढीठ कन्हाई—३७७।

सहिए, सहिऐ—क्रि. स. [हिं. सहना] बरदाश्त या सहन कीजिए। उ.—(क) सखा-भीर लै पैठत घर मैं आपु खाइ तौ सहिऐ—१०-३२२। (ख) कैसे रिस मन सहिए जू—२०१५।

सहिक—वि. [सं. स (अस्)+हिं. क (प्रत्य.)] (१) स्पष्ट और निश्चित (कथन)। (२) वास्तविक। (३) दृढ़ और निश्चित।

सहिजन—संज्ञा पुं. [सं. शोभांजन] एक वृक्ष जिसकी फलियों की तरकारी बनती है।

सहिजानी—संज्ञा स्त्री. [सं. संज्ञान] निशानी।

सहित, सहितै—अव्य. [सं. सहित] साथ, समेत। उ.—(क) लक्ष्मी सहित होति नित क्रीड़ा—१-३३७। (ख) बेगि बढ़ै बल सहित बिरध लट—१०-१३८। (ग) सूर राधा सहित गोपी चलीं ब्रज समुहाहिं—१३०६। (घ) गिरिवर सहितै ब्रजै बहाई—१०४१।

सहिदान—संज्ञा पुं. [सं. संज्ञान] निशान, चिह्न।

सहिदानि, सहिदानी—संज्ञा स्त्री. [सं. संज्ञान] निशानी, पहचान, चिह्न। उ.—(क) कछु इक अंगनि की सहिदानी मेरी दृष्टि परी—९-६३। (ख) लेहु मातु सहि-

दानि मुद्रिका दई कृपा करि नाथ—९-८३ ।

सहिबे—संज्ञा पुं. [हिं. सहना] सहन करने की क्रिया, सहना । उ.—मन मानै सोऊ कहि डारौ पालागैं हम सुनि सहिबे को—२००४ ।

सहियत—क्रि. स. [हिं. सहना] भोगते या सहते हैं । उ.—इतनो दुख सहियत—२८५६ ।

सहियै—क्रि. स. [हिं. सहना] भोगिए, सहन कीजिए । उ.—(क) जम की त्रास न सहियै—१-६२ । (ख) इतौ द्वंद जिय सहिए—२-१८ ।

सहिष्णु—वि. [सं.] सहन करनेवाला ।

सहिष्णुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सहनशीलता ।

सहींजन—संज्ञा पुं. [हिं. सहिजन] एक वृक्ष जिसकी फलियों की तरकारी बनती है । उ.—फूले फूले सहींजन छौंके —२३२१ ।

सही—वि. [फ़ा. सहीह] (१) सच, सत्य । उ.—करवत चिन्ह कहै हरि हमकौं ते अब होत सही—२५०१ । (२) यथार्थ, प्रामाणिक । (३) ठीक, शुद्ध ।

मुहा.—सही पड़ना—ठीक उतरना, सच होना, प्रमाणित होना । सही परी—ठीक या सत्य हुआ । उ.—(क) निगमनि सही परी—१०-६९ । (ख) तीनि लोक अरु भुवन चतुरदस वेद पुरानन सही परी—२६५६ । सही भरना—(१) मान लेना । (२) सत्यता की साक्षी देना ।

संज्ञा स्त्री. छाप, दस्तखत, हस्ताक्षर । उ.—रही ठगी, चेटक सो लाग्यौ परि गयी प्रीति सही—१०-२८१ ।

मुहा.—सही करना—मान लेना । करैं सही—मान लें, अंगीकार कर लें । उ.—अब जोई पद देहि कृपा करि सोइ हम करैं सही—३३७० ।

क्रि. स. [हिं. सहना] भोगी, बरदाश्त या सहन की, झेली । उ.—(क) उर अघ-सूल सही—१-३२४ । (ख) सही दूध-दही की हानि—१०-२७६ । (ग) पलकनि सूल-सलाक सही है—पृ. ३२७ (६०) सही बिपति तनु गाढ़ी—२५३५ ।

प्र.—परति सही—सही जाती हैं । उ.—कहा करौं दिनप्रति की बातैं, नाहिन परति सही—१०-२९१ । परति सही—सहन की जाती है । उ.—(क) नाहिन सही परति मौपै अब दारुन त्रास निसाचर केरी—९-९३ । (ख) दित प्रति कैसैं सही परति है दूध-दही की हानि—१०-२८० ।

क्रि. वि. सत्य ही, सचमुच, वस्तुतः ।

सही-सलामत—वि. [हिं सही + अ. सलामत] (१) भला-चंगा, स्वस्थ । (२) जिसमें कोई बाधा न पड़े ।

क्रि. वि. सकुशल, कुशलपूर्वक ।

सहुँ—अव्य. [सं. सम्मुख] (१) सामने । (२) ओर ।

सहु—वि. [हिं. सब] सारा, कुल ।

सहूँ—क्रि. स. [हिं. सहना] झेलूँ, सहन करूँ । उ.—निपट निलज बैल (?) बिलखि सहूँ—१०-२९५ ।

सहूलियत—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] आसानी, सुगमता ।

सहृदय—वि. [सं.] (१) दूसरे का सुख-दुख समझनेवाला । (२) दयालु, भला, सज्जन । (३) रसिक, भावुक ।

सहृदयता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सहृदय होने का भाव । (२) दयालुता, सौजन्य । (३) रसिकता, भावुकता ।

सहेज—संज्ञा पुं. [देश.] (दही का) जामन ।

सहेजना, सहेजनो—क्रि. स. [हिं. सही] (१) सँभालना । (२) समझा-बुझाकर सुपुर्द करना ।

सहेजवाना, सहेजवानो—क्रि. स. [हिं. सहेजना] सहेजने को प्रवृत्त करना ।

सहेट—संज्ञा पुं. [हिं. संकेत] मिलने का स्थल ।

सहेटना, सहेटनो—क्रि. अ. [देश.] घूमना-फिरना ।

क्रि. स. (१) समेटना । (२) सँभालना ।

सहेटी—वि. [हिं. सहेटना] घुमक्कड़ ।

सहेत—संज्ञा पुं. [सं. संकेत] प्रेमी-प्रेमिका-मिलन का पूर्व निश्चित एकान्त स्थल ।

क्रि. वि. [सं. स + हेतु] (१) हेतु या उद्देश्य से । (२) प्रेम या प्रीति से ।

सहेतुक—वि. [सं.] जिसमें कुछ उद्देश्य हो ।

क्रि. वि. किसी हेतु या उद्देश्य से ।

सहेलरा—वि. [हिं. सुहेल] (१) सुहावना । (२) सुखद ।

संज्ञा पुं. (१) मित्र । (२) साथी ।

सहेलरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सहेलरा] सहेली, सखी, सहचरी । उ.—हरषी सखी-सहेलरी (हो) आनँद भयौ

सुभ जोग—१०-४० ।

सहेला—वि. [हिं. सुहेला] (१) सुंदर । (२) सुखद ।
संज्ञा पुं. (१) मित्र । (२) साथी ।

सहेलि, सहेली—संज्ञा स्त्री. [सं. सह + हिं. एली (प्रत्य.)] सखी, संगिनी । उ.—(क) बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु, पिता न सहेली—९-९३ । (ख) कबहुँ रहसत मचत लै सँग एक-एक सहेलि—२२७८ । (ग) एकै मत सब भईं सहेली—३१४४ ।

सहेस—क्रि. वि. [सं. स + हर्ष] सानंद, सहर्ष ।

सहैंगे—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करेंगे । उ.—बासर निसि कहुँ होत न न्यारे बिछुरन हृदय सहैंगे—२५०० ।

सहै—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करे या करता है । उ.—(क) लोभ लिए दुर्बचन सहै—१-५३ । (ख) घन आसा सब दुख सहै—१-३२५ । (ग) त्रिभुवन-नाथ नाह जो पावै सहै सो क्यों बनवास—९-८३ ।

सहैया—संज्ञा पुं. [सं. सहाय] सहायक ।
संज्ञा स्त्री. सहायता । उ.—(क) स्याम कहत नहिं भुजा पिरानी ग्वालनि कियो सहैया—१०७१ । (ख) जब-जब गाढ़ परति है हमकौ, तहँ करि लेत सहैया—२३७४ ।
वि. [सं. सहन] सहन करनेवाला, सहनशील ।

सहोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक काव्यालंकार ।

सहोदर, सहोवर—वि. [सं. सहोदर] एक ही माता के गर्भ से जन्म लेनेवाला, सगा ।
संज्ञा पुं. सगा भाई ।

सहोदरा, सहोदरी, सहोवरि, सहोवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सहोदरा] सगी बहन ।
वि. एक ही माता के गर्भ से जन्म लेनेवाली ।

सहौं—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करूँ । उ.—(क) कहाँ लगि सहौं रिस—१०-२९५ । (ख) ब्रज बसि काके बोल सहौं—२७७४ । (ग) समुझि आपनी करनी गुसाईं काहे न सूल सहौं—११-२ ।

सहौ—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करो । उ.—तुम जिनि सहौ स्याम सुन्दर बर, जेती में जु सही—१-२५८ ।

सह्य—वि. [सं.] जो सहा जा सके ।
संज्ञा पुं. [सं.] बम्बई प्रान्त का 'सह्याद्रि' पर्वत ।

सह्याद्रि—संज्ञा पुं. [सं.] बम्बई प्रान्त का एक पर्वत ।

सह्यो, सह्यौ—क्रि. स. [हिं. सहना] (१) सहन किया, सहा । उ.—किहिं जुग इतौ सह्यौ—१-४९ । (२) भार उठाया । उ.—इहिं भरु अधिक सह्यौ अपनैं सिर अमित अंडमय बेष—५७० ।
प्र.—सह्यौ न जाइ—सहा या सहन किया नहीं जाता । उ.—ताकौ बिषम बिपाद अहो मुनि मोपै सह्यौ न जाइ—९-७ ।

साँइयाँ—संज्ञा पुं. [हिं. साँईं] (१) पति । उ.—जागिहै मेरौ साँइयाँ—५७७ । (२) स्वामी । (३) परमेश्वर ।

साँई—संज्ञा पुं. [सं. स्वामी] (१) मालिक, स्वामी । उ.—तुम हर्ता तुम कर्ता एकै तुम हौ अखिल भुवन के साईं—२५५८ । (२) ईश्वर । (३) पति । (४) (मुसलमान) फकीर ।

साँक—संज्ञा स्त्री. [सं. शंका] (१) अनिष्ट का भय । (२) 'शंका' नामक संचारी भाव । (३) संदेह, संशय ।
वि. [सं. सशंक] (१) जिसके शंका या संदेह हो । (२) डरा हुआ, भयभीत ।

साँकड़—संज्ञा पुं. [शृंखल] (१) जंजीर, सीकड़ । (२) पैर का एक गहना जो चाँदी का बनता है ।

साँकड़ा—संज्ञा पुं. [सं. शृंखला] पैर में पहनने का चाँदी का एक गहना ।

साँकर—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] जंजीर, शृंखला ।
वि. [सं. संकीर्ण] (१) सँकरा । (२) कष्टपूर्ण ।
संज्ञा पुं. संकट, विपत्ति ।

साँकरा—वि. [हिं. सँकरा] (१) कम चौड़ा, तंग, सँकरा । (२) कष्ट या दुखमय ।
संज्ञा पुं. (१) कष्ट, दुख । (२) कष्ट या दुख का समय या अवस्था ।

साँकरी—वि. स्त्री. [हिं. साँकरा] कम चौड़ी, तंग । उ.—(क) नाचत फिरत साँकरी खोरि—१०-३२७ । (ख) रोकि रहत गहि गली साँकरी—१०-३२८ । (ग) तब घिरे साँकरी खोरि—२४४७ ।

साँकरे—वि. [हिं. साँकरा] (१) कम चौड़ा, तंग । (२) छोटा, छोटे क्षेत्रफल या आकार का । उ.—सोभा-सिंधु समाइ कहाँ लौं हृदय साँकरे ऐन—२७६५ ।

संज्ञा पुं. संकट के दिवस या स्थिति। उ.—हरि तुम साँकरे के साथी—१-११२।

साँकरैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. साँकरा] संकट के समय या स्थिति में। उ.-तुम बिनु साँकरैं को काकौ-१-११३।

सांकर्य—संज्ञा पुं. [हिं. संकरता] (१) मिले हुए या संकर होने का भाव। (२) दोगलापन।

सांकेतिक - वि. [सं.] (१) इशारे या संकेत का। (२) जो संकेत-रूप में हो।

साँखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शंका] (१) अनिष्ट का भय। (२) 'शंका' नामक संचारी भाव। (३) संदेह।

सांख्य—संज्ञा पुं. [सं.] छह भारतीय दर्शनों में एक जिसके कर्त्ता महर्षि कपिल थे। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम की चर्चा है तथा जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष को जगत का मूल माना गया है।

सांख्यिकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विषय-विशेष की संख्याएँ एकत्र करके निष्कर्ष निकालना। (२) इस उद्देश्य से एकत्र की गयी संख्याएँ।

साँग, सांग—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] एक तरह की बरछी, शक्ति। उ.—ताहि आवत निरखि स्याम निज साँग को काटि करि साल्व की सुधि भुलाई-१० उ.-५६।

वि. [सं. स + अंग] पूर्ण, सफलता से सम्पन्न। उ.—मैं अपमान रुद्र कौ कियौ। तब मम जज्ञ सांग नहिं भयौ—४-५।

संज्ञा पुं. [हिं. स्वाँग] (१) बनावटी वेश या रूप। (२) नकल।

साँगि, साँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँग] छोटी बरछी।

सांगोपांग—अव्य. [सं. साङ्गोपाङ्ग] अंगों और उपांगों सहित, सम्पूर्ण।

सांघातिक—वि. [सं.] (१) संघात सम्बन्धी। (२) घातक (चोट या प्रहार)। (३) बड़े संकट का।

साँच—वि. [सं. सत्य] (१) ठीक, सत्य, सिद्ध, यथार्थ। उ.—पतित पावन बिरद साँच (तौ) कौन भाँति करिहौ—११२४।

मुहा.—साँच-झूठ करि—झूठे-सच्चे व्यापार से, उचित-अनुचित सभी कुछ करके। उ.—साँच-झूठ करि माया जोरी—१-३०२।

(२) सच बोलनेवाला।

साँचना, साँचनो—क्रि. स. [सं. संचय] (१) संचित करना। (२) किसी चीज में भरना।

साँचला—वि. [हिं. साँच] जो सच बोले, सच्चा।

साँचा—संज्ञा पुं. [सं. स्थाता] (१) वह उपकरण जिसमें कोई गीली या गाढ़ी चीज डालकर आकार-विशेष की बनायी जाय।

मुहा.—साँचा (साँचे में) ढला—रूप-आकार में सुन्दर और सुडौल होना। साँचा (साँचे में) ढालना—बहुत सुन्दर और सुडौल बनाना।

(२) किसी आयोजित बड़ी कृति का छोटा नमूना। (३) बेल-बूटे छापने का ठप्पा या छापा। (४) गठी हुई देह, शरीर।

वि. [हिं. साँच] (१) सत्य। (२) सत्यवादी।

साँचि—वि. स्त्री. [हिं. साँच] सत्य। उ.—मेरी कही साँचि तुम जानौ, कीजै आगत-स्वागत—१४८२।

साँचिया—वि. [हिं. साँचा] साँचा बनानेवाला।

साँचिला—वि. [हिं. साँचला] जो सच बोले, सच्चा।

साँचिले वि. [हिं. साँचला] ठीक, यथार्थ। उ.—सूरदास प्रभु साँचिले उपमा कवि गाए—१६७५।

साँची—संज्ञा पुं. [हिं. साँची नगर ?] पान-विशेष।

संज्ञा पुं. [हिं. साँचा] पुस्तक की बेड़े बल की छपाई।

वि. [हिं. साँचा] (१) ठीक, सत्य, यथार्थ। उ.—(क) साँची बिरुदावलि—१-१२२। (ख) मन-क्रम-बचन कहति हौं साँची, मैं मन तुमहिं लगायो—१२२३। (ग) कहि कुसलातैं, साँची बातैं—३४४१। (घ) दरसन कियौ आइ हरि जी को कहत सपन की साँची—१० उ.-११२। (२) सच या सत्य बोलनेवाली। उ.—यह है बिन कलंक की साँची, हम कलंक में सानी—१६०३।

क्रि. वि. सत्य ही, सचमुच।

साँचे—वि. [हिं. साँच] सच्चे। उ.—दीनानाथ हमारे ठाकुर साँचे प्रीति-निबाहक—१-१९।

क्रि. वि. सत्य ही, सचमुच, वस्तुतः। उ.—हौं जानौं साँचे मिले माधौ भूलो यह अभिमान—२७८८।

संज्ञा पुं. [हिं. साँचा] उपकरण-विशेष में, जिससे विभिन्न आकारोंऔर रूपों की वस्तुएँ बनायी जाती हैं।

मुहा.—साँचे भरि काढ़ी—साँचे में ढालकर सुन्दर और सुडौल बनायी है। उ.—अँगिया बनी कुचनि सौं माढ़ी। सूरदास प्रभु रीझि थकित भए मनहुँ काम साँचे भरि काढ़ी—१०-३००। एक ही साँचे के ढले या भरे हुए—एक ही रूप-रंग, आकार या स्वभाव के। भरे दोउ एक ही साँचे—दोनों एक ही रूप, आकार या स्वभाव के हैं। उ.—मानो भरे दोउ एकहिं साँचे—३०५१।

साँचेन—वि. सवि. [हिं. साँच] सत्य बोलनेवालों को। उ.—लावहिं साँचेन को खोर—११-३।

साँचैहिं—क्रि. वि. [हिं. साँच] सत्य ही, सचमुच। उ.—साँचैहिं सुत भयौ नँदनायक कैं—१०-२३।

साँचौ—वि. [हिं. साँच] सच्चा, ठीक, यथार्थ। उ.—(क) प्रभु, तेरौ बचन-भरोसौ साँचौ—१-३२। (ख) सूर स्याम कौ सौदा साँचौ—१-३१०।

साँझ, साँझि—संज्ञा स्त्री. [सं. संध्या] शाम, सायंकाल। उ.—(क) देखियत नहिं भवन माँझ, जैसोइ तन तैसि साँझि—१०-२७६। (ख) साँझ-सवारे आवन लागी—७१०।

साँझी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँझ] देव-मंदिरों या भक्तों के यहाँ भूमि या मिट्टी के चबूतरे अथवा दीवारों पर रंगीन चूर्ण या फूल-पत्तियों से, सावन के महीने में बनाये गये विविध लीलाओं के चित्र या विशेष आकृतियाँ आदि।

साँट—संज्ञा स्त्री. [अनु. सट] (१) छड़ी। (२) कोड़ा। (३) शरीर पर बना हुआ छड़ी या कोड़े की मार का चिह्न।

साँटा—संज्ञा [हिं. साँट = छड़ी] (१) कोड़ा। (२) गन्ना।

संज्ञा पुं. [देश.] बदला, प्रतिकार।

साँटि—क्रि. वि. [देश.] किसी के बदले में।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सटना] मेल-मिलाप। उ.—नैननि साँटि करी मिलि नैननि।

साँटिया—संज्ञा पुं. [हिं. साँटा] साँटेमार।

संज्ञा पुं. [देश.] डुग्गी या डौंड़ी पीटनेवाला।

साँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँट] पतली छड़ी। उ.—(क) साँटी लिये दौरि भुज पकरयौ—१०-२५३। (ख) मारन कौं साँटी कर तौरै—३४४। (ग) साँटी दीन्हीं सर-सर—३७३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सटना] (१) मेल-मिलाप। (२) बदला।

साँटेमार—संज्ञा पुं. [हिं. साँटा + मारना] राजा की सवारी के साथ साँटा लेकर चलनेवाले सिपाही।

साँठ—संज्ञा पुं. [देश.] (१) पैर में पहनने का 'साँकड़ा' नामक गहना। (२) गन्ना। (३) सरकंडा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सटना] (१) हेलमेल। (२) सम्बन्ध।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ से अनु.] पूँजी, मूलधन।

यौ—साँठ-गाँठ—(१) गुप्त सम्बन्ध या मेल। (२) गुप्त संधि या कुचक।

साँठना, साँठनो—क्रि. स. [हिं. सटना] पकड़ना।

साँठा—संज्ञा पुं. [सं. शरकांड] (१) गन्ना। (२) सरकंडा।

साँठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ से अनु.] पूँजी, धन।

साँड़—संज्ञा पुं. [सं. षंड] (१) बैल जो केवल गर्भाधान करने के लिए पाला जाता है। (२) बैल जो मृतक की स्मृति में दागकर छोड़ दिया जाता है।

मुहा.—साँड़ की तरह (सा) घूमना—आजाद और बेफिक्र घूमना। साँड़ की तरह डकराना—बहुत जोर से या डरावना शब्द करके चिल्लाना।

संज्ञा पुं. ऊँट।

वि. (१) खूब मजबूत। (२) आवरा, चरित्रहीन।

साँड़नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँड़] ऊँटनी जो बहुत तेज चलने के लिए प्रसिद्ध है।

साँड़िया—संज्ञा पुं. [हिं. साँड़] साड़नी-सवार।

सांत—वि. [सं. स + अंत] (१) जिसका अंत अवश्य होता हो। (२) अंत-युक्त।

वि. [सं. शांत] (१) राग आदि से रहित। (२) गति रहित। (३) शब्द-रहित। (४) जिसके दुष्ट विचारों का अन्त हो गया हो। (५) विघ्न-बाधा से रहित। (६) धीर और सौम्य। (७) मौन। (८) मृत।

संज्ञा पुं. साहित्य के नौ रसों में एक।

सांतनु—संज्ञा पुं. [सं. शांतनु] भीष्म पितामह के पिता का नाम । उ.—तौ लाजौं गंगा-जननी कौं सांतनु-सुत न कहाऊँ—१-२६९ ।

सांतनु-सुत—संज्ञा पुं. [सं. शांतनु+सुत] भीष्म पितामह ।

सांति—संज्ञा स्त्री. [सं. शांति] (१) चित्त की आवेगहीनता । उ.—बहुरि पुरान अठारह किये । पै तउ सांति न आई हिये—१-२३० । (२) गतिहीनता । (३) सन्नाटा, नीरवता । (४) मार-काट या विघ्न-बाधा का प्रभाव । (५) धीरता और सौम्यता । (६) मृत्यु । (७) अमंगल आदि दूर करनेवाले धार्मिक कृत्य ।

सांत्वना—संज्ञा स्त्री. [सं.] ढारस, धीरज ।

साँथरी—संज्ञा स्त्री. [सं. संस्तर] चटाई, बिछौना ।

साँद, साँदा—संज्ञा पुं. [देश.] लकड़ी जो पशु को भागने से रोकने के लिए गले में बाँधी जाती है ।

सांदीपन, सांदीपनि—संज्ञा पुं. [सं. सान्दीपनि] एक प्रसिद्ध मुनि जिन्होंने श्रीकृष्ण और बलराम को धनुर्वेद की शिक्षा दी थी ।

सांद्र—संज्ञा पुं. [सं.] जंगल, वन ।

वि. (१) घना । (२) कोमल । (३) सुन्दर ।

सांद्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सांद्र' होने का भाव ।

साँध, सांध—संज्ञा पुं. [सं. संधान] निशाना, लक्ष्य ।

संज्ञा स्त्री. [सं. संधि] संधि ।

वि. [सं.] संधि का, संधि-संबंधी ।

साँधत—क्रि. स. [हिं. साँधना] निशाना साधता है । उ.—हँसि हँसि नाग-फाँस सर साँधत बंधन बंधु समेत बँधायौ—९-१४१ ।

साँधना, साँधनो—क्रि. स. [सं. संधान] निशाना साधना, लक्ष्य या संधान करना ।

क्रि. स. [सं. साधन] पूरा करना, साधना ।

क्रि. स. [सं. संधि] (१) एक में मिलाना, मिश्रित या सम्मिलित करना । (२) सानना । (३) टूटी रस्सी में जोड़ लगाना ।

साँधा—संज्ञा पुं. [सं. संधि] टूटी रस्सी आदि को जोड़ने से पड़ी हुई गाँठ ।

मुहा.—साँधा मारना—टूटी रस्सी को गाँठ लगाकर जोड़ना ।

साँधि, सांधि—संज्ञा स्त्री. [सं. संधि] संधि ।

क्रि. स. [हिं. साँधना] निशाना साधकर, लक्ष्य या संधान करके । उ.—(क) सप्त ताल सर साँधि बालि हति—९-७० । (ख) भृकुटी सर धनु साँधि बचनबर—१८८७ ।

साँधिल—वि. [हिं. साधना] साधक ।

साँधे—वि. [हिं. साँधना] लक्ष्य या संधान किये हुए । उ.—राम धनुष अरु सायक साँधे, सिय-हित मृग पाछैं उठि धाए—९-५८ ।

क्रि. स. लक्ष्य या संधान किये ।

साँध्य—वि. [सं.] संध्या-सम्बन्धी ।

साँप—संज्ञा पुं. [सं. सर्प, प्रा. सप्प] भुजंग, सर्प ।

मुहा.—कलेजे पर साँप लोटना—(किसी की उन्नति या सफलता देखकर) ईर्ष्या आदि के कारण बहुत दुख होना । साँप सूँघ जाना—(१) साँप के काटने से निर्जीव हो जाना । (२) सर्वथा गतिहीन और मौन हो जाना (व्यंग्य) । साँप की तरह केंचुल छोड़ना या झाड़ना—पुराना और भद्दा रूप-रंग छोड़कर नया और सुन्दर रूप धारण करना (व्यंग्य) । साँप के मुँह में—बड़े जोखिम या संकट में । साँप-छँछूदर की दशा—बहुत असमंजस और दुबिधा की दशा या स्थिति । (२) बहुत दुष्ट और निर्दयी व्यक्ति ।

सांपत्तिक—वि. [सं. साम्पत्तिक] संपत्ति का, आर्थिक ।

साँपधरन—संज्ञा पुं. [हिं. साँप + सं. धारण] शिवजी ।

साँपि, साँपिन, साँपिनि, साँपिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँप] (१) सर्प की मादा । उ.—पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काँपि काली काँपि, देखि सब साँपि-अवसान भूले—५५२ । (२) दुष्ट और कुटिल नारी । (३) घोड़े के शरीर की एक भौंरी जो अशुभ समझी जाती है ।

साँपियाँ—संज्ञा पुं. [हिं. साँप] गहरा भूरा या काला रंग जो साँप के रंग जैसा होता है ।

सांप्रत—अव्य. [सं. साम्प्रत] अभी, इसी समय ।

सांप्रतिक—वि. [सं. साम्प्रतिक] आधुनिक ।

सांप्रदायिक—वि. [सं. साम्प्रदायिक] संप्रदाय का ।

सांप्रदायिकता—संज्ञा स्त्री. [सं. साम्प्रदायिकता] (१) सांप्रदायिक होने का भाव । (२) केवल अपने संप्रदाय

का ही हित चाहने की संकुचित भावना या दृष्टि ।

सांब--संज्ञा पुं. [सं. साम्ब] श्रीकृष्ण का पुत्र जो जांबवंती के गर्भ से जन्मा था । अत्यन्त रूपवान होने का इसे बहुत गर्व था । इसका विवाह दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा से हुआ था । उ.—स्याम सुनि सांब गयौ हस्तिनापुर तुरत लक्ष्मणा जहाँ स्वयंवर रचायो—१० उ.-४६ ।

सांवर—संज्ञा पुं. [सं. संबल] राहखर्च, पाथेय ।

संज्ञा पुं.[सं.] (१) सांभरहिरन । (२) साँभरनमक ।

सांवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. साम्बरी] जादूगरी, माया ।

साँभर—संज्ञा पुं. [सं. सम्भल या साम्भल] (१) राजपूताने की एक झील जिसके खारे पानी से नमक बनता है । (२) उक्त झील के पानी से बना हुआ नमक । (३) एक तरह का हिरन ।

संज्ञा पुं. [सं. संबल] राहखर्च, पाथेय ।

साँमुहें—अव्य. [सं. सम्मुख] सामने, सम्मुख ।

साँवत—संज्ञा पुं. [सं. सामन्त] (१) योद्धा । (२) सामन्त ।

संज्ञा पुं. एक तरह का राग ।

साँवर, साँवरा—वि. [हिं. साँवरा] (१) श्याम रंग का । (२) सलोना, सुन्दर ।

संज्ञा पुं. (१) श्रीकृष्ण का एक नाम । (२) पति, प्रियतम, प्रेमी ।

साँवरी—वि. स्त्री. [हिं. साँवला] श्याम वर्ण की । उ.—जहाँ जमुना वहै सुभग साँवरी—३४३० ।

साँवरे—वि. [हिं. साँवला] श्याम रंगवाले । उ.—मानो गज-मुक्ता मरकत पर सोभित सुभग साँवरे गात —१०-१५९ ।

संज्ञा पुं. सवि. श्रीकृष्ण ने । उ.—मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी—६२३ ।

साँवरैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. साँवरा] श्रीकृष्ण ने । उ.—सूर सरबस हरचौ साँवरैं—१०-३०७ ।

साँवरो, साँवरौ—वि. [हिं. साँवरा] श्याम वर्ण का । उ.—साँवरो मनमोहन माई—६१६ ।

संज्ञा पुं. विष्णु या उनके अवतार राम और कृष्ण । उ.—छाड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ, पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५ ।

साँवल—वि. [हिं. साँवला] श्याम रंग का । उ.—उज्जल साँवल बपु सोभित अंग—१६१३ ।

संज्ञा पुं. (१) श्रीकृष्ण का एक नाम । (२) पति, प्रियतम, प्रेमी ।

साँवलता, साँवलताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँवला] 'सावला' होने का भाव, श्यामता ।

साँवला—वि. [सं. श्यामला] श्याम वर्ण का ।

संज्ञा पुं. (१) श्रीकृष्ण का एक नाम । (२) पति, प्रियतम, प्रेमी ।

साँवलापन—संज्ञा पुं. [हिं. साँवला + पन] साँवला होने का भाव, अवस्था या गुण, श्यामलता ।

साँवाँ—संज्ञा पुं. [सं. श्यामक] एक तरह का घटिया अन्न ।

वि. [सं. श्याम] (१) साँवला । (२) काला ।

साँस—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. श्वास] (१) नाक या मुँह से हवा खींचने और निकालने की क्रिया, दम ।

मुहा.—साँस उखड़ना—मरते समय बहुत कष्ट से साँस ले पाना । साँस ऊपर-नीचे होना—(१) साँस रुकना, दम घुटना । (२) बहुत घबरा जाना । साँस खींचना—दम साधना । साँस चढ़ना—परिश्रम आदि से साँस का बहुत जल्दी-जल्दी चलना । साँस चढ़ाना —दम साधना । साँस टूटना—मरते समय बहुत कष्ट से साँस ले पाना । साँस तक न लेना—बिलकुल चुप-चाप या मौन होना । साँस फूलना—(१) दमे का रोग होना । (२) जल्दी-जल्दी साँस चलना । गहरी, ठंढी या लंबी साँस भरना या लेना—(१) बहुत अधिक दुख के कारण लंबी साँस लेकर और रोककर धीरे-धीरे छोड़ना । (२) बहुत संतोष का अनुभव करना । साँस रहते—जीते जी, जीवित रहते हुए । साँस रुकना—साँस के लेने-निकालने में किसी कारण से बाधा होना । उलटी साँस लेना—(१) मरते समय बहुत कष्ट से साँस ले पाना । (२) बहुत अधिक दुख आदि के कारण लम्बी साँस लेकर और रोककर धीरे-धीरे निकलना या छोड़ना ।

(२) फुरसत, छुट्टी, अवकाश ।

मुहा.—साँस लेना—कोई काम करते करते थक-कर विश्राम लेने के लिए ठहरना या रुकना ।

(३) गुंजाइश, दम, समाई । (४) वह संधि या

दरार जिसमें से होकर हवा पानी आ-जा सके।

मुहा.—(किसी पदार्थ या वस्तु का) साँस लेना—(किसी पदार्थ या वस्तु में) संधि या दरार पड़ जाना।

(४) किसी अवकाश में भरी हुई हवा।

साँसत—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँस+त] (१) दम छुटने-जैसी बहुत यातना या पीड़ा। (२) झंझट, बखेड़ा। (३) सजा, दंड।

साँसतघर—संज्ञा पुं. [हिं. साँसत + घर] (१) काल कोठरी। (२) वह घर जहाँ हवा-रोशनी न आती हो।

साँसना—क्रि. स. [सं. शासन] (१) सजा या दंड देना। (२) बहुत अधिक कष्ट या यातना पहुँचाना। (३) डाँटना, डपटना।

संज्ञा स्त्री. (१) बहुत अधिक कष्ट या यातना। (२) दंड। (३) डाँट-डपट।

सांसर्गिक—वि. [सं.] (१) संसर्ग-सम्बन्धी। (२) संसर्ग के कारण उत्पन्न होनेवाला।

साँसा—संज्ञा पुं. [हिं. साँस] (१) साँस, श्वास। (२) जिंदगी, जीवन। (२) प्राण।

संज्ञा पुं. [हिं. साँसत] (१) घोर कष्ट। (२) चिंता।

मुहा.—साँसा चढ़ना—बहुत चिंता होना।

संज्ञा पुं. [सं. संशय] (१) शक, संदेह। (२) डर।

मुहा.—साँसा पड़ना—संदेह होना।

सांसारिक—वि. [सं.] संसार-सम्बन्धी, लौकिक।

साँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँस] साँस, श्वास।

साँसो—संज्ञा पुं. [हिं. साँसा] संशय, संदेह।

सांस्कृतिक—वि. [सं.] संस्कृति-सम्बन्धी।

सा—अव्य. [सं. सदृश] (१) समान, तुल्य। (२) एक परिमाण-सूचक शब्द।

संज्ञा पुं. [सं. षड्ज] संगीत में षड़ज-सूचक शब्द।

साइक—संज्ञा पुं. [सं. शायक] (१) तीर। (२) खड्ग।

साइत—संज्ञा स्त्री. [अ. साअत] (१) क्षण, पल। (२) समय। (३) मुहूर्त। (४) शुभ समय।

साइयाँ—संज्ञा पुं. [हिं. साँईं] (१) स्वामी। (२) पति। (३) परमेश्वर।

साइर—संज्ञा पुं. [सं. सागर] सागर, समुद्र। उ.—जनक-सुता हित हत्यौ लंकपति, बाँध्यौ साइय-(सायर)-पाँज—१-२५५।

साईं—संज्ञा पुं. [सं. स्वामी] (१) प्रभु, स्वामी। (२) परमेश्वर। (३) पति।

साई—संज्ञा स्त्री. [हिं. साइत ?] पेशगी, बयाना।

मुहा.—साई बजाना—जिससे साई पायी हो, उसके यहाँ जाकर गाना-बजाना।

वि. [हिं. शायी] सोने या शयन करनेवाला।

यौ. जलसाई—जलशायी, जल में शयन करनेवाले विष्णु। उ.—अच्युत रहै सदा जलसाई—१०-३।

साउज—संज्ञा पुं. [हिं. सावज] शिकार।

साऊ—संज्ञा पुं [हिं. शाह] महाजन। उ.—मोसौं कहत मोल को लीनौ, आपु कहावत साऊ—३८१।

साकभरी—संज्ञा पुं. [सं. शाकम्भरी] साँभर झील या उसका निकटवर्ती प्रदेश।

साक—संज्ञा पुं. [सं. शाक] साग-भाजी, सब्जी। उ.—साक पत्र लै सबै अघाए—१-१२२।

संज्ञा पुं. [हिं. साका] रोब, धाक।

मुहा.—साक चलना—प्रभाव माना जाना, धाक बँधना। चलति साक—(सर्वत्र) प्रभाव या धाक है। उ.—करजकर पर कमल वारत चलति जहँ-तहँ साक—१४१३।

साक-चेरी, साकचेरी—संज्ञा स्त्री. [सं. शाक+हिं. चेरी ?] हिना, मेंहदी।

साकट, साकत—वि. [सं. शाक्त] (१) शाक्त मत का अनुयायी। उ.—तुम साकट वै भगत भागवत राग-द्वेष तैं न्यारे—१-२४२। (२) जिसने गुरु-दीक्षा न ली हो। (३) जो मद्य-मांस-सेवी हो। (४) दुष्ट, कुटिल।

संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] शक्ति।

साकर—वि. [सं. संकीर्ण] तंग, सँकरा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. शक्कर] शक्कर।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साँकल] जंजीर, शृंखला। उ.—धावत अघ अवनी आतुर तजि साकर सगुन सु छूटो—३४०१।

साकल, साकला—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँकल] जंजीर।

साकल्य—संज्ञा पुं. [सं.] सकलता, पूर्णता।

साका, साकौ—संज्ञा पुं. [सं. शाका] (१) संवत्। (२)

ख्याति, प्रसिद्धि । (३) यश, कीर्ति । (४) कीर्ति का स्मारक । (५) रोब, धाक ।

मुहा.—साका चलना—रोब या धाक बँधना, प्रभाव माना जाना। साका चलाना या बाँधना—रोब या धाक जमाना, प्रभाव डालना । साकौ कीन्हौ—रोब या धाक जमाकर कीर्ति या ख्याति प्राप्त की है। उ.—ऐसौ और कौन त्रिभुवन मैं तुम सरि साकौ कीन्हौ —१०-३५ ।

(२) ऐसा असामान्य कार्य जिससे कर्ता की कीर्ति या ख्याति बढ़े ।

साकार—वि. [सं.] (१) जिसका आकार या स्वरूप हो। (२) मूर्त, मूर्तिमान, साक्षात् । (३) स्थूल ।(४) कल्पना या योजना) जिसे क्रियात्मक रूप दिया जाय ।

संज्ञा पुं. ईश्वर का अवतारी या मूर्तिमान रूप ।

साकारता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'साकार' होने का भाव ।

साकारोपासना—संज्ञा स्त्री. [सं.] ईश्वर की मूर्ति, रूप या अवतार की उपासना ।

साकिन—वि. [अ.] रहनेवाला, निवासी ।

साकी—संज्ञा पुं. [अ. साक़ी] (१) शराब पिलानेवाला । (२) वह जिससे प्रेम किया जाय ।

साकेत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अयोध्या नगरी । (२) भगवान रामचन्द्र का लोक या धाम ।

साक्षर—वि. [सं.] पढ़ा-लिखा, शिक्षित ।

साक्षरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] साक्षर होने का भाव ।

साक्षात, साक्षात्—अव्य. [सं. साक्षात्] सामने, प्रत्यक्ष ।

वि. साकार, मूर्तिमान ।

संज्ञा पुं. मुलाकात, भेंट, देखा-देखी, मिलन ।

साक्षात्कार—संज्ञा पुं. [सं.] मुलाकात, भेंट, मिलन ।

साक्षी—संज्ञा पुं. [सं. साक्षिन्] (१) वह जिसने किसी घटना को स्वयं देखा हो । (२) गवाह, साखी । (३) देखनेवाला, दर्शक ।

संज्ञा स्त्री. किसी बात को कहकर प्रमाणित करने की क्रिया, गवाही ।

साक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गवाही । (२) दृश्य ।

साख—संज्ञा पुं. [हिं. साक्षी] (१) गवाह । (२) गवाही ।

संज्ञा पुं. [हिं. साका] (१) रोब, धाक । (२) मर्यादा । (३) लेनदेन आदि में खरेपन की मान्यता ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शाखा] वृक्ष की शाखा या डाली । उ.—सुर तरुवर की साख लेखिनी लिखत सारदा हारैं —१-१८३ ।

साखना, साखनो—क्रि. स. [हिं. साख] गवाही देना ।

साखर—वि. [सं. साक्षर] पढ़ा-लिखा, साक्षर ।

साखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शाखा] (१) पेड़ की टहनी या डाली । उ.—(क) फल की आसा चित्त धरि, जो बृच्छ बढ़ावै । महामूढ़ सो मूल तजि साखा जल नावै—२-९ । (ख) साखा पत्र भए जल मेलत—१०-१७३ ।

(२) वंश या जाति का उपभेद ।

साखामृग—संज्ञा पुं. [सं. शाखामृग] बंदर । उ.—महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग तुम किहि के तात —९-६९ ।

साखि, साखी—संज्ञा पुं. [सं. साक्षि, हिं. साखी] गवाह, साक्षी । उ.—(क) ऊँच-नीच ब्योरौ न रहाई । ताकी साखी मैं, सुनि भाइ—१-२३० । (ख) सकल देव-मुनि साखी—१०-४ । (ग) ग्वाल सबै हैं साखी—७७४ । (घ) भए चंद्र सूरज तहाँ साखी—२४५९ ।

संज्ञा स्त्री.(१) गवाही, साक्षी । उ.—(क) चिंता तजै परीच्छित राजा सुनि सिख-साखि हमार—१-२२२ । (ख) अब लौं हमारी जग में चलती नई पुरानी साखी —२७३९ ।

मुहा.—साखी पुकारना—गवाही देना । पुकारत साखि—गवाही देता है । उ.—सूरदास स्वामी के आगे निगम पुकारत साखि—३३७३ ।

(२) ज्ञान-संबंधी दोहें, पद या कविता ।

संज्ञा पुं. [सं. शाखिन्] पेड़, वृक्ष ।

साखू—संज्ञा पुं. [सं. शाख या शाल] शाल वृक्ष ।

साखै—क्रि. स. [हिं. साखना] गवाही या साक्षी (देते) हैं । उ.—जाति-पाँति-कुल कानि न मानत बेद-पुराननि साखै—१-१५ ।

साखोच्चारन—संज्ञा पुं. [सं. शाखोच्चारण] विवाह के अवसर पर वर-वधू का वंश-परिचय देने की क्रिया ।

साग—संज्ञा पुं. [सं. शाक] (१) कुछ पेड़-पौधों की पत्तियाँ जो तरकारी की तरह खायी जाती हैं । उ.—(क)

सँग चनौ सँग सब चौराई—२३२१। (ख) भक्त के बस भक्त-वत्सल बिदुर सातो साग खायो—१० उ.-१८।
(२) तरकारी, भाजी।
यौ.—साग-पात—(१) रूखा-सूखा भोजन। (२) तुच्छ और निकम्मी चीज।
मुहा.—साग-पात समझना—बहुत तुच्छ समझना।

सागर—संज्ञा पुं [सं.] (१) समुद्र। उ.—देखौ माई, सुंदरता कौ सागर—६२८। (२) झील, जलाशय (३) आकर, निधान। उ.—कलानिधान सकल गुन-सागर—१-७। (४) दशनामी साधुओं की उपाधि या सांप्रदायिक नाम।

सागौन—संज्ञा पुं. [सं. शाल] एक वृक्ष।

साग्र—वि. [सं.] सब, कुल, समस्त।
क्रि. वि. आदि या आरंभ से।

साग्रह - क्रि. वि. [सं.] जोर देकर, आग्रहपूर्वक।

साचरी—संज्ञा स्त्री. [सं] एक रागिनी।

साचेत - वि. [सं. सचेत] (१) चेतनायुक्त। (२) सचेत।

साच्छात - अव्य. [सं. साक्षात्] सामने, सम्मुख, प्रत्यक्ष रूप में। उ.—(क) जीवनि-आस प्रबल स्तुति लेखी। साच्छात सो तुममैं देखी—१-२८४। (ख) ब्रह्मादिक खोजत नित जिनकौं। साच्छात् देख्यौ तुम तिनकौं—८००।
वि. साकार, मूर्तिमान।
संज्ञा पुं. मुलाकात, भेंट, मिलन।

साच्छ, साछ—संज्ञा पुं. [सं. साक्षी] गवाह।
संज्ञा स्त्री. गवाही, साक्षी।

साच्छी, साछी—संज्ञा स्त्री. [सं. साक्षी] गवाही।

साज—संज्ञा पुं. [फ़ा. साज या सं. सज्जा] (१) सजावट का काम, बात या तैयारी। उ.—सूर अब डर न करि जुद्ध को साज करि—९-१४२ (२) वैभव, शोभा आदि की सूचक बातें। उ.—या विधि राजा करयौ बिचारि राज-साज सबहीं कौं डारि—१-३४१। (३) सजावट का सामान, उपकरण या सामग्री। उ.—कर कंकन कंचन थार मंगल-साज लिए—१०-२४। (४) रंग-ढंग, स्थिति, दशा। उ.—और पतित आवत न आँखि-तर देखत अपनो साज—१-९६। (५) बाजा, बाद्य।
मुहा.—साज छेड़ना—बाजा बजाना शुरू करना।
(६) लड़ाई के हथियार (७) मेल-जोल।
वि. बनाने या मरम्मत करनेवाला।

साजति—क्रि. स. [हिं. साजना] सजाती है। उ.—(क) नैन दोउ आँजति नासा बेसरि साजति—२०८०। (ख) उलटि अंग आभूषन साजति—२५७२।

साजन—संज्ञा पुं. [सं. सज्जन] (१) सज्जन। (२) प्रेमी, प्रिय, वल्लभ। उ.—सूरदास गोपी क्यौं जीवैं बिछुरे हरि जी साजन—१० उ.-९९। (३) पति, भर्ता।
संज्ञा पुं. [सं. सज्जा] (१) साज-शृंगार। उ.—(क) सूरदास प्रभु मिली राधिका अंग अंग करि साजन—६२२। (ख) दूलह फिरत व्याह के साजन-३१८३।
संज्ञा पुं. [हिं. साजना] सजाने की क्रिया या भाव।
क्रि. स. आवश्यकतानुसार तैयारी करना।
प्र.—लग्यो साजन—सजाने लगा। उ.—फौज मदन लग्यो साजन—२८१७।

साजना, साजनो—क्रि. स. [हिं. सजाना] (१) क्रमानुसार रखना। (२) अलंकृत करना।
क्रि. अ. [हिं. सजना] अलंकृत होना।
संज्ञा पुं. [हिं. साजन] (१) पति। (२) प्रेमी।

साज-बाज —संज्ञा पुं. [हिं. साज+अनु. बाज] (१) तैयारी, उपक्रम। (२) मेल-जोल, घनिष्ठता।

साज-सामान - संज्ञा पुं. [हिं. साज+सामान] (१) माल-असबाब, सामग्री। (२) ठाटबाट।

साजिंदा—संज्ञा पुं. [फ़ा. साजिंदः] बाजा बजानेवाला।

साजि—क्रि. स. [हिं. साजना] अवसर के अनुकूल रूप में प्रस्तुत करके। उ.—दिन दस लौं जल-कुंभ साजि दीप-दान करवायौ—९-५०।

साजिया—वि. [हिं. सजाना] सजानेवाला।
संज्ञा पुं. परमेश्वर।
संज्ञा पुं. [हिं. साज] बाजा बजानेवाला।

साजिश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. साज़िश] कुचक्र, षड्यंत्र।

साजु—संज्ञा पुं. [हिं. साज] (१) (तैयारी या साधना के) उपकरण या साधन। उ.—कैसे हैं निबहत अबलन पै कठिन योग के साजु—३२३५ (२) तैयारी, उपक्रम। उ.—चितवति हुती झरोखैं ठाढ़ी किये मिलन को साजु—८०८। (३) ऐश्वर्य-सूचक बातें और साधन।

उ.—जा जस कारन देत सयाने तन-मन-धन सब साजु —२८५१ ।

साजुज्य—संज्ञा पुं. [सं. सायुज्य] (१) संपूर्ण मिलन । (२) मुक्ति का वह रूप जिसमें जीवात्मा जाकर परमात्मा में लीन हो जाय ।

साजे—क्रि. स. [हिं. साजना] (१) सजाये, तैयार किये । उ.—सब गोपिन मिलि सकटा साजे—४१२ । (२) धारण किये । उ.—सकल सभा जिय जानिकै साजे हथियारा—१० उ.-८ ।

साजै—क्रि. अ. [हिं. साजना] शोभित होते हैं । उ.—सूरदास प्रभु महा भक्ति तैं जाति अजातिहिं साजे —१-३६ ।

क्रि. स. सजाता है ।

साजै—क्रि. अ. [हिं. साजना] सोहता है ।

क्रि. स. सजाता है ।

साजौं—क्रि. अ. [हिं. साजना] सजाकर तैयार करूँ। उ.—सूर साजौं सबै, देहुँ डाँड़ो अबै, एक तैं एक रन करि बताऊँ—९-१२९ ।

साजौ—वि. [हिं. साजना] सजाया या क्रमानुसार तैयार किया हुआ । उ.—(क) सीरा साजौ लेहु व्रजपती — ३९६ । (ख) सद माखन साजौ दधि मीठौ —४५६ ।

साज्यो, साज्यौ—वि. [हिं. साजना] सजाया या क्रमानुसार प्रस्तुत किया हुआ ।

क्रि. अ. सजा हुआ है, शोभित है । उ.—देखो माई, रूप सरोवर साज्यो —पृ. ३४४ (३५) ।

साझा—संज्ञा पुं. [सं. साधक] (१) भाग, हिस्सा । (२) हिस्सेदारी ।

साझिया, साझी—[हिं. साझा] हिस्सेदार ।

साझे—संज्ञा पुं. [हिं. साझा] भाग, हिस्सा । उ.—साझे भाग नहीं काहू को, हरि की कृपा निनारी—२९०० ।

साझेदार—संज्ञा पुं. [हिं. साझा + फ़ा. दार] हिस्सेदार ।

साझेदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साझेदार] हिस्सेदारी ।

साझो—संज्ञा पुं. [हिं. साझा] हिस्सेदारी । उ.—बहुरि न जीवन-मरन सों साझो करी मधुप की प्रीति—२८८४ ।

साट—संज्ञा स्त्री [हिं. साँट] छड़ी । उ.—साट सकुच नहिं मानहीं बहु बारनि मारि—१२६७ ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (स्त्रियों की) साड़ी ।

संज्ञा पुं. [?] बेचने की क्रिया, विक्रय ।

साटक—संज्ञा पुं. [सं. हाटक से अनु.] (१) भूसी, छिलका । (२) बिलकुल निकम्मी या तुच्छ वस्तु ।

साटना, साटनो—क्रि. स. [हिं. सटाना] (१) दो चीजों को जोड़ना, मिलाना । (२) किसी को गुप्त रीति से अपनी ओर मिला लेना ।

साटमार—संज्ञा पुं. [हिं. साँट + मारना] (साँटे मार-मारकर) हाथियों को लड़ानेवाला ।

साटि, साटी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) सामान । (२) जमा-पूँजी (३) कमची, पतली छड़ी ।

साठ—संज्ञा पुं. [सं. षष्ठि] पचास और दस की संख्या ।

वि. जो पचास और दस हो । उ.—साठ सहस्र सागर के पुत्र—९-९ ।

साठनाठ—वि. [हिं. साँठि + नाठ (नष्ट)] (१) जिसकी पूँजी नष्ट हो गयी हो, निर्धन । (२) रूखा, नीरस । (३) तितर-बितर, अस्तव्यस्त ।

साठा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) ईख, गन्ना । (२) एक तरह का धान । (३) एक तरह की मधुमक्खी ।

वि. [हिं. साठ] साठ वर्ष की उम्रवाला ।

साठि—वि. [हिं. साठ] साठ । उ.—(क) साठि पुत्र अरु द्वादस कन्या—१-४३ । (ख) साठि सहस की कथा सुनाए—९-९ ।

साठी—संज्ञा पुं. [सं. षष्टिक] एक तरह का धान ।

साड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. शाटिका] चौड़े किनारे की, स्त्रियों के पहनने की धोती ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साढ़ी] दूध के ऊपर की मलाई ।

साढ़साती—संज्ञा स्त्री. [हिं. साढ़े + सात] शनि ग्रह की साढ़े सात दिन, मास या वर्ष की दशा जिसका फल बहुत बुरा होता है ।

साढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. असाढ़] फसल जो असाढ़ मास में बोई जाती है, असाढ़ी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सार ?] दूध के ऊपर जमने या पड़नेवाली मलाई । उ.—(क) सब हेरि धरी हैं साढ़ी, लई ऊपर ऊपर काढ़ी—१०-१८३ । (ख) नीरस करि छाँड़ी सुफलक-सुत जैसें दूध बिन साढ़ी—२५३५ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साड़ी] चौड़े किनारे की जनानी धोती ।

साढ़ू – संज्ञा पुं. [सं. श्यालिवोढर] साली का पति ।

साढ़ेसाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. साढ़े+सात+ई] शनि ग्रह की वह दशा जो साढ़े सात दिन, मास या वर्ष की होती है और जिसका फल बहुत बुरा होता है ।

मुहा. साढ़ेसाती आना या चढ़ना—दुर्दशा या विपत्ति के दुर्दिन आना या होना ।

सातंक—क्रि. वि. [सं. स+आतंक] आतंक के साथ ।

सात—वि. [सं. सप्त] जो पाँच और दो के योग के बराबर हो । उ.—तद्यपि भवन भाव नहिं ब्रज बिनु खोजौ दीपै सात—३३५१ ।

मुहा.—सात-पाँच या पाँच और सात—(१) चालाकी, चतुरता । उ.—सूरदास प्रभु के वै वचन सुनहु मधुर मधुर अब मोहिं भूली री पाँच और सात —पृ. ३१५ (४८) । (२) मक्कारी, धूर्तता । सात-पाँच करना—(१) बहाना करना या बनाना । (२) झगड़ा या उपद्रव करना । (३) चतुराई दिखाना । (४) मक्कारी या धूर्तता करना । सात परदे में रखना —(१) बहुत छिपाकर रखना (२) बहुत सँभालकर रखना । सात समुद्र पार—बहुत दूर । सात राजाओं की साक्षी देना—किसी बात की सत्यता को दृढ़ता-पूर्वक कहना । सात राजा साखि – सत्यता की दृढ़ता-पूर्वक पुष्टि करके । उ.—मनसि वचन अरु कर्मना कछु कहति नाहिंन राखि । सूर प्रभु यह बोल हिरदय सात राजा साखि ।

वि. [सं. सात्] एक प्रत्यय जो 'मिला हुआ' या 'रूप में आया हुआ' अर्थ देता है ।

सातत्य—संज्ञा पुं. [सं.] 'सतत' का भाव, निरंतरता ।

सात फेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सात+फेरी] विवाह की भाँवर नामक रीति जिसमें वर-वधू अग्नि की सात परिक्रमाएँ करते हैं ।

सातवें, सातवैं—वि. सवि. [हिं. सात] जो क्रम में सात के स्थान पर हो । उ.—सातवैं दिवस दिखराइहौं प्रलय तोहिं—८-१६ ।

साता—वि. [हिं. सात] सात । उ.—पियौ पय मोद करि घूँट साता—४४० ।

सातिक – वि. [सं. सात्विक] (१) सतोगुणी । (२) पवित्र । (३) सत्वगुण से उत्पन्न ।

सातों, सातौं—वि. [हिं. सात] कुल सात, सब सात । उ. —सातौं द्वीप राज ध्रुव कियौ—४-९ ।

मुहा.—सातों भूल जाना – पाँच इंद्रियों के साथ-साथ मन और बुद्धि का भी काम न करना, होश-हवास चला जाना ।

सात्—वि. [सं.] एक प्रत्यय जो शब्दांत में जुड़कर 'मिला हुआ' या 'रूप में आया हुआ' अर्थ देता है ।

सात्म्य—संज्ञा पुं. [सं.] एकरूपता, सरूपता ।

सात्यकि, सात्यकी—संज्ञा पुं. [सं. सात्यकि] एक यादव जिसने श्रीकृष्ण और अर्जुन से अस्त्र विद्या सीखी थी ।

सात्व—वि. [सं.] सत्वगुण-सम्बन्धी ।

सात्वती—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) शिशुपाल की माता का नाम । (२) सुभद्रा का एक नाम । (३) नाटक की एक वृत्ति जिसका व्यवहार वीर, रौद्र, अद्‌भुत और शांत रसों में होता है । इसमें नायक के वाक्यों से उसकी, दानशीलता आदि गुण प्रकट होते हैं ।

सात्विक—वि. [सं.] (१) सत्वगुण से सम्बन्ध रखनेवाला, सतोगुणी । (२) सत्वगुण से उत्पन्न । (३) जिसमें सत्वगुण की प्रधानता हो । (४) निर्मल, पवित्र ।

संज्ञा पुं. (१) सतोगुण से उत्पन्न आठ अंग-विकार —स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय । (२) सात्वती वृत्ति । (३) विष्णु । (४) वह भक्त जिसकी वृत्ति में सत्वगुण की प्रधानता हो ।

सात्विकी—वि. पुं. स्त्री. सत्वगुण से सम्बन्धित ।

संज्ञा पुं. भक्त जिसकी वृत्ति में सात्विकता की प्रधानता हो । उ.—भक्त सात्विकी सेवैं संत, लखैं तिन्हैं मूरति भगवंत""""भक्त सात्विकी चाहत मुक्ति —३-१३ ।

साथ—संज्ञा पुं. [सं. सहित] (१) संगत, सहचार ।

मुहा.—साथ छूटना—अलग होना । साथ देना—सहायता या सहयोग देना । साथ लेना—अपने संग ले चलना या रखना । साथ सोना—समागम करना । साथ रहकर या सोकर मुँह छिपाना—बहुत घनिष्ठता

होने पर भी संकोच या दुराव करना। साथ का (को) —सहायक खाद्य पदार्थ। साथ का खेला—बचपन का साथी। साथ की खेली—बचपन की सहचरी।

(२) साथी, संगी। (३) मेल, मित्रता।

अव्य. (१) एक सम्बन्ध सूचक अव्यय, सहित। उ. —(क) रहत विषय के साथ—१-११२। (ख) सेना साथ बहुत भाँतिनि की—१-१४१। (ग) अपनी समसरि और गोप जे तिनको साथ पठाए—५८३।

मुहा.—साथ ही - सिवा, अतिरिक्त। साथ-साथ या साथ ही साथ—एक ही सिलसिले में। एक साथ —एक क्रम या सिलसिले में।

(२) प्रति, से। (२) द्वारा। उ.—नखन साथ तब उदर बिदार्‍यौ—७-२।

साथरा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) बिछौना। (२) चटाई।

साथरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) बिछौना। (२) चटाई, कुश की बनी चटाई। उ.—(क) कुस-साथरी बैठि इक आसन—९-१२१। (ख) नातौ मान सगर सागर सौं कुस-साथरी परयौ—९-१२२।

साथी—संज्ञा पुं. [हिं. साथ] (१) साथ रहनेवाला, संगी। उ.—तुम अलि कमलनयन के साथी—३३२०। (२) सहायक। उ.- हरि तुम साँकरे के साथी – १-११२।

साथै— संज्ञा पुं. सवि. [हिं. साथ] (साथी या सहायक) रूप में (हों या रहते हों) उ.—सूर तुम्हारी आसा निबहै संकट मैं तुम साथै—१-११२।

सादगी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) सादापन। (२) सीधापन।

सादर—क्रि. वि. [सं. स + आदर] आदर सहित।

सादा—वि. [फ़ा. सादः] (१) साधारण और संक्षिप्त बनावट का। (२) जिसके ऊपर बेल-बूटे-जैसा सजावट का काम न हो। (३) बिना मेल या मिलावट का। (४) जो छल-कपट न जानता हो, सीधा।

यौ. सीधा-सादा—सरल हृदयवाला।

सादापन—संज्ञा पुं. [हिं. सादा + पन] सादगी।

सादी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सादा] (१) वह पूरी जिसमें पीठी, दाल आदि न भरी हो। (२) 'लाल' चिड़िया की मादा।

संज्ञा पुं. [फ़ा. सद = शिकार] (१) शिकारी। (२) घोड़ा। (३) घुड़सवार व्यक्ति।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शादी] ब्याह, विवाह।

सादूर—संज्ञा पुं.[सं. शार्दूल] (१) सिंह। (२) हिंसक पशु।

सादृश्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समान या सदृश होने का भाव, समानता। (२) बराबरी, तुलना।

साध—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रद्धा = उत्कट कामना] (१) इच्छा, कामना, अभिलाषा। उ.—(क) हरि देखन की साध भरी—९०२। (ख) बार-बार ललचात साध करि, सकुचति पुनि-पुनि बाला—२०७४। (ग) जोइ जोई मन की साध कहौं मैं करिहौं सोई—२६२५। (घ) कल्पतरु देखिबे की भई साध मोहिं—१० उ.-३१।

मुहा.—(किसी बात की) साध न रहने देना—सब प्रकार से इच्छा पूरी कर लेना या कर देना। साध राधना—इच्छा पूरी करना या होना।

(२) गर्भ के सातवें महीने होनेवाला उत्सव।

वि. [सं. साधु] (१) अच्छा, उत्तम। (२) सज्जन। उ.- हौं असाध, तुम साध हौ—१८१४। (३) साधु, महात्मा। उ.—महाराज, तुम तौ हौ साध—९-३।

साधक—वि. [सं.] (१) साधना करनेवाला। (२) तप करनेवाला, तपस्वी। उ.—पचि पचि रहे सिद्ध-साधक मुनि तऊ न घटै बढ़ै—१-२६३। (३) भूत-प्रेत आदि को साधने या वश में करनेवाला। (४) जो दूसरे के स्वार्थ-साधन में सहायक हो।

संज्ञा पुं. (१)वह जिससे कोई कार्य सिद्ध हो, जरिया, साधन। (२) वह हेतु या लक्षण जिसके आधार पर कोई बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाय।

साधतिं—क्रि. स. [हिं. साधना] अभ्यास में संलग्न रहती हैं, साधना करती हैं। उ.—गौरीपति पूजतिं, तप साधतिं, करत रहतिं नित नेम—७८२।

साधन—संज्ञा पुं. [सं.](१) काम को सिद्ध करने की क्रिया, विधान। उ.—दुर्मति अति अभिमान ज्ञान बिन सब साधन तैं टरतौं—१-२०३। (२) निर्देश, आदेश आदि के अनुसार कार्य का रूप देना। (३) कर्तव्य या दायित्व का निर्वाह।(४) वह उपचार या कार्य जिससे दोष या क्षति का परिहार हो। (५) सामान या उपकरण जिससे कोई वस्तु तैयार की जाय। (६) कार्य पूरा करने की शक्ति या सामर्थ्य। (७) उपाय, युक्ति। (८) औषध

के लिए धातु-शोधन-कार्य। (९) साधना, उपासना। उ.—(क) साधन मंत्र-जंत्र उद्यम बल ये सब डारो धोई—१-२६२। (ख) जप, तप, व्रत संजम साधन तैं द्रवित होत पाषान—७६५। (१०) सहायता। (११) कारण, हेतु। (१२) तपस्या-द्वारा मंत्र सिद्ध करना।

साधनता - संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) साधन का भाव या धर्म। (२) साधन-क्रिया, साधना। उ.— कहि आचार भक्ति-बिधि भाषी हंस-धर्म प्रगटायो। कहीं बिभूति सिद्ध साधनता आस्रम चार कहायो—सारा. ८४४।

साधनहार, साधनहारा— वि. [सं. साधना+हिं. हार] (१) साधने या सिद्ध करनेवाला। (२) जो साधा या सिद्ध किया जा सके। (३) जो हो सकता हो, साध्य।

साधना— संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कार्य सिद्ध करने की क्रिया या भाव। (२) उपासना, आराधना। (३) साधन।

क्रि. स. [सं. साधन] (१) कार्य सिद्ध या पूरा करना। (२) निशाना लगाना, लक्ष्य या संधान करना। (३) अभ्यास करना। (४) शोधना, शुद्ध करना। (४) सच्चा प्रमाणित करना। (६) पक्का करना, ठहराना। (७) इकट्ठा या एकत्र करना। (८) वश में करना। (९) बनावटी को असल की तरह कर दिखाना।

साधनिक—वि. [सं.] (१) साधन का। (२) कार्य-साधन से सम्बन्ध रखनेवाला।

साधनी—संज्ञा स्त्री. [सं. साधन] (१) जमीन या दीवार की सीध नापने का औजार। (२) राज, मेमार।

साधनीय—वि. [सं.] (१) साधना करके के योग्य। (२) जो हो सके या साधा जा सके।

साधनो—क्रि. स. [सं. साधन] साधना।

साधर्म्य—संज्ञा पुं. [सं.] समान धर्म या गुणों से युक्त होने की अवस्था या भाव, 'वैधर्म्य' का विपर्याय।

साधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. साध] इच्छा, कामना। उ.—(क) मनहुँ तड़ित घन इंदु तरनि, ह्वै बाल करत रस साधा—७०५। (ख) कहाँ मिली नँदनंदन को जिन पुरयौ मन की साधा—११३५। (ग) मैं जानी यह बात हृदय की रही नहीं कछु साधा—१४३७। (घ) कहति कंत (मोहिं) झूलन की साधा—२२७७.

साधार—वि. [सं. स+आधार] जिसका आधार हो।

साधारण—वि. [सं.] (१) जिसमें कोई विशेषता न हो, सामान्य। (२) सरल, सहज। (३) सार्वजनिक। (४) सबके समझने योग्य, सुगम।

साधारणतः, साधारणतया—अव्य. [सं. साधारणतः] (१) सामान्य रूप से। (२) अक्सर, प्रायः, बहुधा।

साधारणता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'साधारण' होने का भाव या धर्म।

साधारणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अप्सरा का नाम।

साधारणीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] विशिष्ठ तत्वों के आधार पर ऐसा सामान्य नियम या सिद्धांत स्थिर करना जो उन सब पर समान रूप से प्रयुक्त हो। (२) समान गुण-धर्म के आधार पर अनेक तत्वों में समानता स्थिर करना।

साधि— क्रि. स. [हिं. साधना] (१) सिद्ध या सम्पन्न करके, साधकर। उ.—जब तैं रसना राम कह्यौ। मानौ धर्म साधि सब बैठयौ, पढ़िबे मैं धौं कहा रह्यौ—२-८। (२) सिद्ध या साधन करो। उ.—सुचि रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीनबंधु करुनामय उर धरि—१-३१२।

साधिका - वि. स्त्री. [सं.] सिद्ध या साधना करनेवाली।

साधिकार—क्रि. वि. [सं.] अधिकारपूर्वक।

वि. (१) जिसे अधिकार प्राप्त हो। (२) जो अधिकारपूर्वक कहा या किया जाय।

साधित—वि. [सं.] सिद्ध किया या साधा हुआ।

साधी— क्रि. स. [हिं. साधना] सिद्ध या सम्पन्न की, लगायी। उ.—जिहिं सुख कौं समाधि सिव साधी—१०-२२।

साधु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संत, महात्मा। उ.—(क) साधु-निंदक स्वाद-लंपट कपटी गुरु-द्रोही—१-१२४। (ख) एक अधार साधु-संगति कौ—१-१३०। (२) शिष्ट या सज्जन पुरुष।

मुहा.—साधु-साधु कहना—अच्छा काम करने पर किसी की बहुत प्रशंसा करना।

वि. (१) भला, उत्तम। (२) प्रशंसनीय। (३) शिष्ट और शुद्ध (भाषा)। (४) उपयुक्त।

अव्य. (१) ठीक है (स्वीकारात्मक)। (२) बहुत

और उत्तम।

साधुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'साधु' होने का भाव या धर्म। (२) साधु का या साधु-जैसा आचरण। (३) सज्जनता।(४) नकी, भलाई। (५) सिधाई, सीधापन।

साधुवाद—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम कार्य करने पर 'साधु-साधु' कहकर उसकी प्रशंसा करना।

साधू—संज्ञा पुं. [सं. साधु] साधु-संत।

साधे—क्रि. स. [हिं. साधना] (१ सिद्ध या संपन्न किये। उ.—राघव आवत हैं अवध आज। रिपु जीते, साधे देव-काज—९-१६६। (२) ठाने, पक्का किये, ठहराये। उ.—सुफलत-सुत मिलि ढँग ठान्यो है, साधे बिष मन घात—३३५१। (३) निशाना ठीक किये (हैं)। उ.—हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम-डरिया पारधि साधे बान—१-९७।

साधैं—क्रि. स [हिं. साधना] साधना करती हैं। उ.—पति कैं हेत नेम तप साधैं—७९९।

साधै—क्रि. स. [हिं. साधना] (१) करता है। उ.—मुक्ति-हेत जोगी स्रम साधै—१-१०४। (२) इकट्ठा या एकत्र करती है। उ.—जसुमति जोरि जोरि रजु बाँधै। अंगुर द्वै द्वै जेंवरि साधै—३९१।

साधो, साधौ—संज्ञा पुं. [सं. साधु] संत, साधु।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साध] लालसा, कामना। उ.—(क) नैन भरत दरसन की साधो—१८०९। (ख) मिटै न दरस की साधो—२५०८। (ग) को जानै तन छूट जायगो, सूल रहै जिय साधो—२७५८।

क्रि. स. [हिं. साधना] सिद्ध या संपन्न किया। उ.—बहुरि नृप आपनी कर्म साधौ—८-१६।

साध्य—वि. [सं.] (१) (सिद्ध या संपन्न) करने योग्य। (२) जो सिद्ध या संपन्न हो सके। (३) सरल, सहज, सुगम। (४) (बात) जो सिद्ध या प्रमाणित करना हो। (५) (रोग) जो ठीक किया जा सके।

संज्ञा पुं. (१) बारह गणदेवता। (२) देवता। (३) ज्योतिष के सत्ताइस योगों में इक्कीसवाँ जो बहुत शुभ माना जाता है। (४) वह पदार्थ जिसका अनुमान किया जाय। (५) प्रश्न या समस्या रूप में सामने आनेवाली बात जिसे ठीक सिद्ध करना हो। (६) शक्ति, सामर्थ्य।

साध्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] साध्य का भाव या धर्म।

साध्यो, साध्यौ—क्रि. स. [हिं. साधना] (१) सिद्ध, संपन्न या पूर्ण किया। उ.—लै चरनोदक निज ब्रत साध्यो—९-५। (२) साधन किया, साधा। उ.—(क) सकल जोग ब्रत साध्यौ—१२-१२८। (ख) मन-क्रम-बच हरि सों धरि पतिब्रत प्रेम योग तप साध्यौ—३०१४। (३) लक्ष्य का संधान किया। उ.—लागत तो जानो नहिं बिषम बाण साध्यौ—२८०६।

साध्वी—वि. स्त्री. [सं.] (१) पतिव्रता। (२) शुद्ध चरित्र या आचरणवाली, सच्चरित्रा।

सानंद—क्रि. वि. [सं.] आनंदपूर्वक।

सान—संज्ञा पुं. [सं. शाण] वह पत्थर जिस पर घिसकर अस्त्रादि की धार तेज की जाती है।

मुहा. सान देना या धरना—धार तेज करना। सान धराना—धार तेज कराना। सान धराए—(हथियार) तेज किये हुए। लै लै ते हथियार आपने सान धराए त्यौं—१-१५१।

संज्ञा स्त्री. [अ. शान] (१) ठाट-बाट। (२) ठसक।

सानना—क्रि. स. [हिं. सनना] (१) किसी चूर्ण को तरल पदार्थ मिलाकर गीला करना, गूँधना। (२) मिलाना, मिश्रित करना। (३) एक के दोष, अपराध आदि के लिए उसके साथ दूसरे को अकारण ही दोषी या अपराधी बनाने का प्रयत्न करना। (४) घोलना।

क्रि. स. [हिं. सान=शाण] धार तेज करना।

साना—क्रि. अ. [सं. शांत] (१) शांत होना (२ समाप्त होना (३) नष्ट होना।

क्रि. स. (१)शांत करना। (२) समाप्त करना। (३) नष्ट करना।

सानि—क्रि. स. [हिं. सानना] (१) मिलाकर, लपेटकर, मिश्रित करके। उ.—(क) यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई। नैन नीर रघुनाथ सानि सो सिव ज्यों गात चढ़ाई—९-६४। (ख) सानि-सानि दधि-भात लियौ कर सुहृद सखनि कर देत—४१६। (ग) रंग कापै होत न्यारो हरद-चूनो सानि—८९५। (घ) जोग पाती हाथ दीनी बिष लगायौ सानि

—३३५५ । (२) घोलकर । उ.—दूध औटयौ आनि अधिक मिसरी सानि—४४०

सानिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मुरली, वंशी ।

सानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सानना] (१) भूसा या चारा जो पानी से सानकर पशुओं को खिलाया जाता है । (२) अनुचित रीति से एक में मिलाए हुए कई खाद्य पदार्थ (व्यंग्य) ।

वि. [अ.] (१) दूसरा, द्वितीय । (२) बराबरी का, समानता करनेवाला ।

यौ. लासानी – बेजोड़, अद्वितीय, अनुपम ।

क्रि. स. [हिं. सानना] (१) मिलायी, मिश्रित की । उ.—सद दधि-माखन घौं आनी । तापर मधुमिसरी सानी—१०-१८३ ।(२) लपेट या लथेड़ दी, भिगो दी । उ.—मेरे सिर की नई बहनियाँ, लै गोरस मैं सानी —१०-३३८ ।

वि. [हिं. सनना] भरी या लिपटी हुई, सनी हुई । उ.—यह है बिन कलंक की साँची, हम कलंक में सानी —१६३० ।

सानु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत की चोटी, शिखर । (२) छोर, सिरा । (३) चौरस जमीन । (४) वन, जंगल ।

वि. (१) लंबा-चौड़ा । (२) चौरस, सपाट ।

सानुज –क्रि. वि. [सं. स+अनुज] अनुज के साथ ।

साने—वि. [हिं. सनना] (१) लगे या जड़े हुए । उ.—भूषन मय मनि साने—१३५४ । (२) भरे या लिपटे हुए । उ.—जैसे हरि तैसे तुम सेवक कपट चतुरई साने हो—३०१५ ।

सानै—क्रि. स. [हिं. सानना] मिलाती है या सानती है । उ.—तब महरि बाँह गहि आनै । लै तेल उबटनो सानै —१०-१८३ ।

सान्निधि—क्रि. वि. [सं.] समीप ।

सान्निध्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समीपता, निकटता । (२) मुक्ति का वह प्रकार जिसमें आत्मा, परमात्मा के समीप पहुंचती मानी जाती है ।

सान्निध्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] समीप होने का भाव या धर्म ।

सान्यो, सान्यौ—क्रि स. [हिं. सानना] (१) मिलाया, मिश्रित किया । (२) साना (३) लिपटा या सम्मिलित है । उ.—ऊख माँहि ज्यों रस है सान्यौ—३-१३ ।

साप – संज्ञा पुं. [सं. शाप] किसी के अनिष्ट की कामना से कहा हुआ वाक्य । उ. - (क) देहौं साप, सहा दुख भरै—१-२२९ । (ख) धन्य धन्य रिषि साप हमारे—३८५ ।

सापत्न्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सपत्नी का भाव । (२) सौत या सपत्नी का पुत्र । (३) शत्रु ।

सापन—संज्ञा पुं. [सं. शाप] शाप देने की क्रिया या भाव, शाप देने (को) । उ.—(क) कौरव-काज चले रिषि सापन—१-१३ । (ख) अतिथि रिषीस्वर सापन आए —१-२८२ ।

सापना, सापनो—क्रि. स. [हिं. साप] (१) अनिष्ट की कामना से कोई बात कहना, शाप देना । (२) कोसना, दुर्वचन कहना ।

सापै—क्रि. स. [हिं. सापना] शाप दे । उ.—जिय अति डरयौ, मोहिं मति सापै, ब्याकुल बचन कहंत—९-८३ ।

सापेक्ष—वि. [सं.] (१) जो किसी तत्व, विचार आदि से संबंधित होने के कारण उसकी अपेक्षा रखता हो । (२) किसी की अपेक्षा करनेवाला । (३) जो निर्णय या आदेश की अपेक्षा में रुका हो ।

सापेक्षता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सापेक्ष' होने का भाव ।

सापेक्षवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह सिद्धांत जिसमें दो बातें एक दूसरे की अपेक्षक मानी जाती हैं ।

साप्ताहिक—वि. [सं.] (१) सप्ताह-संबंधी । (२) प्रति सप्ताह होनेवाला । (३) प्रति सप्ताह छपने या प्रकाशित होनेवाला ।

साफ—वि. [अ. साफ़] (१) स्वच्छ, निर्मल । (२) शुद्ध । (३) दोषरहित । (४) स्पष्ट । (५) उज्ज्वल । (६) जिसमें गड़बड़ी या झगड़ा-बखेड़ा न हो । (७) चमकीला । (८) जिसमें छल-कपट न हो ।

मुहा. साफ-साफ सुनाना—खरी बातें कहना ।

(९) जिसके सुनने-समझने में कठिनाई न हो । (१०) समतल । (११) जिसमें विघ्न-बाधा न हो । (१२) सादा, कोरा । (१३) जिसमें कुछ सार-तत्व न रह गया हो । (१४) जिसमें रद्दी भाग न हो । (१५) खाली ।

मुहा. साफ करना—(१) मार डालना। (२) चौपट कर देना। (३) खा-पी जाना।

(१६) लेन-देन का निपटना या चुकता होना। उ.—बढ़ी तुम्हार बरामद हूँ की लिखि कीन्हो है साफ—१-१४३।

क्रि. वि. (१) बिना किसी दाग, द्वेष या कलंक के। (२) बिना हानि या कष्ट उठाये। (३) इस तरह कि किसी को पता न लगे या कोई बाधक न बन सके। (४) बिलकुल, नितांत।

साफल्य—संज्ञा पुं [सं.] सफलता, सिद्धि।

साफा—संज्ञा पुं. [अ. साफ़ः] (१) पगड़ी, मुरेठा, मुड़ासा। (२) पशु-पक्षियों को किसी उद्देश्य से उपवास कराना।

मुहा. साफा देना—भूखा रखना।

(३) वस्त्रादि को साबुन लगाकर साफ करना।

साफी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साफ] (१) छोटा रूमाल। (२) वह कपड़ा जो गाँजा पीनेवाले चिलम के नीचे रखते हैं। (३) भाँग छानने का कपड़ा।

साबर—संज्ञा पुं. [सं. शंबर] (१) साँभर (हिरन)। (२) साँभर का चमड़ा। (३) शबर जाति के लोग। (४) एक प्रकार का सिद्ध मंत्र जो शिव कृत माना जाता है। उ.—साबर मंत्र लिख्यो स्रुतिद्वार।

वि. [सं. शाबर] शबर-संबंधी।

साबल—संज्ञा पुं. [सं. शबर] बरछी, भाला।

साबिक—वि. [अ. साबिक़] पहले का, पुराने समय का। उ.—साबिक जमा हुती जो जोरी मिनजालिक तल ल्यायी—१-१४३।

पद—साबिक-दस्तूर—जैसा पहले था वैसा ही।

साबिका—संज्ञा पुं. [अ. साबिक़ा] (१) जान-पहचान। (२) सरोकार, संबंध, व्यवहार, संपर्क।

मुहा. साबिका पड़ना—(१) काम पड़ना। (२) संबंध होना। (३) लेन-देन होना।

साबित—वि. [फ़ा.] जिसका सबूत दिया गया हो।

वि. [अ. सबूत] (१) पूरा। (२) ठीक। उ.—द्वै लोचन साबित नहिं तेऊ—१४२८। (३) पक्का।

साबुत—वि. [फ़ा. सबूत] (१) संपूर्ण। (२) दुरुस्त, ठीक। (३) पक्का, दृढ़।

साबुन—संज्ञा पुं. [अ. साबून] शरीर, वस्त्रादि साफ करने का एक प्रसिद्ध पदार्थ।

साबूदाना—संज्ञा पुं. [अँ. सैगो+हिं. दाना] सागू के तने के गूदे से तैयार किये गये दाने जो शीघ्र पच जाने के लिए प्रसिद्ध हैं।

साभार—क्रि. वि. [सं. स+आभार] कृतज्ञतापूर्वक।

सामंजस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) औचित्य, उपयुक्तता। (२) अनुकूलता। (३) विरोध या विषमता का अभाव, एकरसता।

सामंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वीर, योद्धा। (२) बड़ा और शक्तिशाली जमींदार या सरदार।

सामंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

संज्ञा स्त्री. [सं. सामंत] सामंत का भाव या पद।

साम—संज्ञा पुं. [सं. सामन्] (१) वे वेद-मंत्र जो गेय हों। (२) चारों वेदों में तीसरा। (३) मीठी बातें, मधुर भाषण। (४) राजनीति के चार अंगों में एक जिसमें शत्रु से मीठी-मीठी बातें करके उसे अपनी ओर मिला लिया जाता है। (५) मित्रता।

संज्ञा पुं. [सं. श्याम] श्याम, श्रीकृष्ण।

वि. श्याम, साँवला।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शाम] साँझ, संध्या।

संज्ञा पुं. [सं. स्वामी] (१) प्रभु। (२) पति।

सामक—संज्ञा पुं. [सं. श्यामक] 'साँवा' नामक अन्न।

वि. [सं.] सामवेद का ज्ञाता।

सामकारी—वि. [सं. सामकारिन्] मधुरभाषी।

संज्ञा स्त्री. मधुर वचन बोलने की रीति-नीति।

सामग—वि. [सं.] सामवेद का गायक या ज्ञाता।

सामग्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) (आवश्यक) वस्तुएँ। (२) घर-गृहस्थी के काम की वस्तु। (३) साधन, उपकरण।

सामत—संज्ञा स्त्री. [अ. शामत] (१) दुर्भाग्य।

पद—शामत का मारा—अभागा

(२) विपत्ति, दुर्दशा।

मुहा. शामत सवार होना—विपत्ति का समय आना।

सामना—संज्ञा पुं. [हिं. सामने] (१) समक्ष या सम्मुख होने की क्रिया या भाव। (२) मुलाकात, भेंट, मिलन।

(३) किसी पदार्थ का आगे का भाग। (४) मुकाबला, विरुद्ध या विपक्ष में होना।

मुहा. सामना करना समक्ष या सम्मुख रहकर जवाब देना या धृष्टता करना।

सामने—क्रि. वि. [सं. सम्मुख, पु. हिं. सामुहें] (१) समक्ष, सम्मुख।

मुहा. सामने आना—आगे या सम्मुख आना। सामने का—(१) जो सम्मुख या समक्ष हो। (२) जो अपनी उपस्थिति में घटित हुआ हो। (३) जो अपनी उपस्थिति में जन्मा या पला हो। सामने करना—सम्मुख या समक्ष उपस्थित करना। सामने की बात-बात जो अपने सामने घटित हुई हो। सामने पड़ना—दिखायी दे जाना। सामने होना—(स्त्री का) परदा न करके सम्मुख या समक्ष आना।

(२) मौजूदगी या उपस्थिति में। (३) सीधे या आगे की ओर। (४) मुकाबले में, विरुद्ध। (५) तुलना में।

सामबेद—संज्ञा पुं. [सं. सामवेद] चारों वेदों में तीसरा। उ.—भीर भई दसरथ के आँगन सामवेद धुनि छाई —९-१७।

सामयिक—वि. [सं.] (१) समय से संबंध रखनेवाला। (२) वर्तमान समय का। (३) समय की दृष्टि से ठीक, उचित या उपयुक्त, समयानुसार।

सामयिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सामयिक होने का भाव। (२) वर्तमान समय या स्थिति के विचार से युक्त दृष्टिकोण या अवस्था।

सामरथ—संज्ञा स्त्री. [सं. सामर्थ्य] शक्ति, क्षमता।

सामरस्य—संज्ञा पुं. [सं. सम+रस] समरसता।

सामरा—वि. [हिं. साँवला] साँवला।

संज्ञा पुं. श्याम, श्रीकृष्ण।

सामरिक—वि. [सं.] समर-संबंधी।

सामर्थ, सामर्थ्य—संज्ञा स्त्री. [सं. सामर्थ्य] (१) 'समर्थ' होने का भाव। (२) ताकत, शक्ति। (३) योग्यता। (४) शब्द की व्यंजनाशक्ति।

सामवेद—संज्ञा पुं. [सं. सामन्] भारतीय आर्यों के चार वेदों में तीसरा जिसकी ऋचाएँ गायत्री छंद में हैं।

सामवेदिक, सामवेदी—वि. [सं. सामवेदिन्] (१) सामवेद-संबंधी। (२) जो सामवेद का ज्ञाता हो।

सामसाली—वि. [सं. साम+शाली] साम, दाम, दंड, भेद, राजनीति के इन चार अंगों का ज्ञाता, राजनीतिज्ञ।

सामहिं—अव्य. [हिं. सामने] सम्मुख, समक्ष।

सामाँ—संज्ञा पुं. [फ़ा. सामान] (१) उपकरण। (२) साधन। (३) आवश्यक वस्तुएँ। (४) माल-असबाब।

वि. [सं. श्यामा] साँवली।

संज्ञा स्त्री. श्यामा, राधा।

सामाजिक—वि. [सं.] समाज से संबंधित।

सामाजिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] लौकिकता।

सामान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) सामग्री, उपकरण। (२) तैयारी, आयोजन, उपक्रम। (३) माल-असबाब।

मुहा. सामान बाँधना—चलने की तैयारी करना।

सामान्य—वि. [सं.] (१) मामूली, साधारण। (२) लगभग सबसे संबंध रखनेवाला। (३) सार्वजनिक।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) बराबरी, समानता। (२) सारे वर्ग में समान रूप से पाया जानेवाला गुण या धर्म। (३) एक काव्यालंकार।

सामान्यतः, सामान्यतया—क्रि. वि. [सं.] (१) साधारण रूप से। (२) जैसा साधारणतः होता है।

सामान्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मामूली या सामान्य होने का भाव या स्थिति। (२) लगभग सर्वत्र सामान्य रूप से पाये जाने का भाव या स्थिति।

सामान्य बुद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह सहज बुद्धि जो सामान्यतया सभी में होती है और जिससे वे साधारण कार्य अंतःप्रेरणा से ही किया करते हैं।

सामान्य विधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] साधारण कर्तव्य या दायित्व-संबंधी आज्ञा या विधि।

सामान्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] नायिका जो धन लेकर पर-पुरुष से संबंध रखती है।

सामासिक—वि. [सं.] (१) समास का या समास-संबंधी। (२) समास से युक्त।

सामिग्री—संज्ञा स्त्री. [सं. सामग्री] सामग्री।

सामियाना—संज्ञा पुं. [हिं. शामियाना] बड़ा तंबू।

सामिल—वि. [फ़ा. शामिल] सम्मिलित।

सामिष—वि. [सं.] (भोजन) जिसमें आमिष (मांस, मछली

आदि) का अंश हो।

सामी—संज्ञा पुं. [सं. स्वामी] (१) प्रभु। (२) पति।

सामीप्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निकटता, समीपता। (२) मुक्ति का एक प्रकार जिसमें जीव का परमाराध्य के समीप पहुँच जाना माना जाता है। उ.—सालोक्य सामीप्य नासारोपिता भुज चारि—२९२४।

सामीर—संज्ञा पुं. [सं. समीर] वायु, पवन।

सामीर्य—वि. [सं.] वायु का, वायु-संबंधी।

सामुझि—संज्ञा स्त्री. [हिं. समझ] अक्ल, बुद्धि।

सामुदायिक—वि. [सं.] समुदाय संबंधी।

सामुद्र—वि. [सं.] (१) समुद्र-संबंधी। (२) जो समुद्र से उत्पन्न हुआ हो।

सामुद्रिक—वि. [सं.] समुद्र-संबंधी।

संज्ञा पुं. (१) वह विद्या जिसमें मनुष्य की हथली या शारीरिक लक्षण देखकर जीवन की घटनाएँ तथा शुभाशुभ फल आदि बताये जाते हैं। (२) इस विद्या का ज्ञाता व्यक्ति।

सामुहाँ, सामुहीं, सामुहें, समुहैं—अव्य. [पु. हिं. सामुहें] सामने। उ.—(क) रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हो, सुभट सामुहैं आए—१-२७४। (ख) जाके अस्त्र तिनहिं तेहि मारयो, चले सामुहीं खोरी—२५८६। (ग) मैं जब चली सामुहैं पकरन तब के गुन कहा कहिऐ—१०-३२२।

सामूहिक—वि. [सं.] समूह से संबंधित।

साम्य—संज्ञा पुं. [सं.] समता, समानता।

साम्यवाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक पाश्चात्य सामाजिक सिद्धांत जिसके अनुसार समाज में सभी को समान होना चाहिए, किसी को न बहुत अमीर होना चाहिए न बहुत गरीब; समाजवाद, समष्टिवाद।

साम्यवादी—वि. [सं.] उक्त सिद्धान्त का समर्थक, समाज या समष्टिवादी।

साम्राज्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा या सार्वभौम राज्य। (२) पूर्ण अधिकार, आधिपत्य।

साम्राज्यवाद—संज्ञा पुं. [सं.] वह सिद्धांत जिसके अनुसार साम्राज्य बनाये रखा और बढ़ाया जाय।

साम्राज्यवादी—वि. [सं.] उक्त सिद्धांत का समर्थक।

सायं—संज्ञा पुं. [सं.] शाम, संध्या।

वि. संध्या-संबंधी, संध्याकालीन।

सायंकाल—संज्ञा पुं. [सं.] संध्या का समय।

सायंकालीन—वि. [सं.] संध्या के समय का।

साय—संज्ञा पुं. [सं. सायं] शाम, संध्या।

सायक—संज्ञा पुं. [सं.] तीर, बाण। उ.—(क) त्यागति प्रान निरखि सायक-धनु—१-२९। (ख) राम धनुप अरु सायक साँधे—९-५८। (२) खड्ग। (३) (कामदेव के पाँच बाणों के कारण) पाँच की संख्या।

सायत—संज्ञा स्त्री. [अ. साअत] (१) पल, क्षण। (२) समय। (३) मुहूर्त। (४) शुभ समय।

अव्य. [फ़ा. शायद] कदाचित्, संभव है।

सायन—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य की वह गति जब उसके भूमध्य रेखा पर पहुँचने पर (२० मार्च और २३ सितम्बर को) दिन और रात दोनों बराबर होते हैं।

वि. अयनयुक्त (ग्रह आदि)।

सायना, सायनो—क्रि. अ. [हिं. साना] (१) शांत होना। (२) समाप्त होना। (३) नष्ट होना।

क्रि. स. (१) शांत करना। (२) समाप्त करना, शेष न रखना। (३) नष्ट करना।

सायब—संज्ञा पुं. [फ़ा. साहब] (१) स्वामी। (२) पति।

सायबान—संज्ञा पुं. [फ़ा. साय:बान] मकान या कमरे के सामने का छाजन या ओसारा।

सायर—संज्ञा पुं. [सं. सागर] (१) सागर, समुद्र। उ.—(क) कागद धरनि, करैं द्रुम लेखनि, जल-सायर मसि घोरैं—१-१२५। (ख) सकल बिषय-बिकार तजि तू उतरि सायर-सेत—१-३१९। (२) बड़ा जलाशय। उ.—सात दिवस मूसल जलधारा सायर समुद्र भरे—९६८। (३) ऊपरी भाग, शीर्ष।

संज्ञा पुं. [अ. शायर] कवि।

सायल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) प्रश्नकर्ता। (२) भिखारी। (३) याचक। (४) प्रार्थी। (५) इच्छुक।

साया—संज्ञा पुं. [फ़ा. साय:] (१) छाँह, छाया।

मुहा. साया मिलना—शरण या संरक्षण पाना।

(२) परछाईं, प्रतिबिंब।

मुहा. साया से बचना या भागना—बहुत दूर या

बचकर रहना ।

(३) भूत, प्रेत आदि ।

मुहा. साया आना या पड़ना भूत, प्रेत आदि से प्रभावान्वित होना।

(४) असर, प्रभाव ।

मुहा. साया पड़ना—किसी की कुसंगत का असर होना। साया डालना—(१) कृपा करना। (२) प्रभाव डालना।

सायास—क्रि. वि. [सं. स+आयास] प्रयत्नपूर्वक ।

सायुज, सायुज्य—संज्ञा पुं. [सं. सायुज्य] (१) एक में मिल जाना। (२) मुक्ति का एक प्रकार जिसमें जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है।

सायुज्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सायुज्य का भाव ।

सायुध—वि. [सं. स+आयुध] अस्त्र-शस्त्र से सज्जित ।

सारँग, सारंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मृग। उ.-(क) प्रथम ही उपमान सारँग सों करावत हेत-लहरी.। (ख) स्रवन सुयस सारंग नाद-विधि—२-१२। (२) कोयल, कोकिल। उ.—(क) बयन बर सारँग सम—लहरी। (ख) निकस सारँग तें सु 'सारँग' हरत तन की ताप—लहरी.। (ग) सूरदास सदा प्रहर्षन सुरुच सारँग बैन—लहरी.। (३) बाज (पक्षी), श्येन। उ.—हेरो सारँग मदन-तिया के अंत बिचारी बाम—लहरी.। (४) रवि, सूर्य। उ.-(क) जलसुत दुखी, दुखी है मधुकर द्वै पंछी दुख पावत। सूरदास सारँग केहि कारन सारँग-कुलहिं लजावत। (ख) उदै 'सारँग' जान सारँग गयौ अपने देस—लहरी. ५५। (५) सिंह। (६) हंस पक्षी। (७) मोर, मयूर। उ.—सारँग ऊपर सारँग राजत 'सारँग' शब्द सुनावै—सारा. ९४४। (८)पपीहा(पक्षी), चातक। उ.—(क) ति पी-पी डर डार दीनी, प्रान बारी रंक। रटन सारँग तें निकासी नाग समर मिलाइ। डार दीनी सुमुख तिनकैं—लहरी.। (९) हाथी। (१०) घोड़ा। (११) छाता, छत्र। (१२) शंख। उ.—निकस 'सारँग' तें सारँग, हरत तन की ताप—लहरी.। (१३) कमल। उ.—(क) लब उलटी दो जाऊँ तिहारी, ताको सारँग-नैन—लहरी.। (ख) उलटौ रस सारँग हित सजनी, कबहूँ तीर न जैहौं—लहरी.। (ख) सारँग सम कर नीक—लहरी.। (१४) सोना, स्वर्ण। (१५) गहना, आभूषण। (१६) तालाब, सर, सरोवर। उ.—मानहुँ उमँगि चल्यौ चाहत है सारँग सुधे भरे। (१७) भौंरा, भ्रमर। उ.—खुल्यौ चाहत सरनि सारँग, देत 'सारँग' दान—लहरी.। (१८) भौंरा या लट्टू नामक खिलौना। उ.—नचत हैं सारंग सुंदर करत सब्द अनेक—लहरी.। (१९) मधुमक्खी-विशेष। (२०) धनुष, विष्णु का धनुष। उ.—(क) गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ—१-२४। (ख) घन तन दिव्य कवच सजि करि अरु कर धारचौ सारँग—९-१५८। (ग) एकहू बान आयौ न हरि के निकट, तब गहचौ धनुष सारंगधारी। (२१) कपूर, कर्पूर। (२२) लवा पक्षी। (२३) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ.—सारँग-सुता देखि 'सारँग' कौं तेरौ अटल सुहाग—सारा. ९४६। (२४) चंद्रमा, शशि। उ.—धिग 'सारंग', सारँगमय सजनी—लहरी.। (२५) सागर, समुद्र। (२६) जल, पानी। (२७) तीर, बाण। उ.—ज्यौं सारँग, सारँग के कारन, 'सारँग' सहत, न डोलै—लहरी। (२८) दिया, दीपक। उ.—परो सारँग, रिपु न मानत, करत अद्भुत खेद—लहरी.। (२९) शिव, शंभु। उ.—जनु पिनाक की आस लागि ससि सारँग सरन बचै। (३०) सुगन्धित द्रव्य। (३१) साँप, सर्प। उ.—सारँग चरन पीठ पर 'सारँग, कनक खंभ अहि मनहुँ चढ़ोरी—लहरी.। (३२) चंदन। (३३) जमीन, भूमि। (३४) बाल, केश, अलक। (३५) चमक, ज्योति, दीप्ति। (३६) सुन्दरता, सरसता, शोभा। उ.—सारंग देख सुनै मृगनैनी, सारंग सुख दरसावै—सारा. ९४४। (३७) नारी, स्त्री, नायिका। उ.—'सारँग' हेरत उर सारँग तें, सारंग-सुत ढिग आवै—लहरी.। (३८) रात, रात्रि। उ.—धिग सारँग, 'सारँग' मै सजनी, सारंग अंग समाई—लहरी.। (३९) दिन, दिवस। (४०) अनुराग। उ.—'सारँग' बस भय, भय बस सारँग, 'सारँग' बिसमै मानै—लहरी.। (४१) राग। उ.—ज्यों सारँग 'सारँग' के कारन सारँग सहत, न डोलै—लहरी.। (४२) मेघ, बादल। उ.—(क) बाचर नीतन

तें सारँग अति, बार-बार झर लावै—लहरी । (ख) 'सारँग' ऊपर 'सारँग' राजत, सारँग सब्द सुनावै—सारा. ९४४ । (४३) कामदेव । उ.—(क) बिग सारँग, सारँग मैं सजनी, 'सारँग' अंग न समाई—लहरी. । (ख) सारँग देख सुनै मृगनैनी, 'सारँग' सुख दरसावै—सारा. ९४४ । (४४) कबूतर, कपोत । (४५) एक छंद । (४६) एक प्रकार का मृग । (४७) मोती । (४८) कुच, स्तन । (४९) हाथ । (५०) कौआ, वायस । (५१) ग्रह, नक्षत्र । (५२) खंजन पक्षी । (५३) आकाश, गगन । (५४) चिड़िया, पक्षी । (५५) कपड़ा, वस्त्र । (५६) 'सारंगी' नामक वाद्ययंत्र । (५७) ईश्वर । (५८) काजल, अंजन । (५९) बिजली, विद्युत । (६०) फूल, पुष्प । (६१) एक राग ।

वि. (१) रँगा हुआ, रंगीन, रंजित । उ.—सारँग दसन बसन पुनि 'सारँग' बसन पीतपट डारी । (२) सुन्दर, सुहावना । (३) सरस । उ.—सारँग नैन बैन बर 'सारँग' सारँग बदन कहै छबि को री-लहरीं ।

सारँग नट—संज्ञा पुं. [सं. सारंग + हिं. नट] एक संकर राग ।

सारंगधर—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग + धरना] 'सारंग' नामक धनुष धारण करनेवाले विष्णु या उनके अवतार । उ.—(क) श्रीनाथ सारंगधर कृपा करि दीन पर—१-१२० । (ख) जब लौं सारँगधर-कर नाहीं सारँग-बान बिराजत—९-१३० । (ग) सरन साधु श्रीपति सारँग-धर—९८२ ।

सारंगपति—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग = मेघ + पति] मेघों का स्वामी इन्द्र । उ.—सारँग-पति ता पति ता बाहन कीरत रट अनुराग—सारा. ९४६ ।

सारंगपतिनी, सारंगपत्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं सारंग = समुद्र + पत्नी] समुद्र की पत्नी, गंगा । उ.—स्रवन वचन तें पावन पतिनी-सारँग कहत पुकार—लहरी. ।

साँरगपाणि, साँरगपानि, साँरगपानी—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग + सं. पाणि] 'सारंग' नामक धनुष धारण करनेवाले विष्णु या उनके अवतार । उ.—(क) तेली के बृष लौं नित भरमत भजत न सारँगपानि—१-१०२ । (ख) सोइ दसदथ कुल-चंद अमित बल आए सारँग-पानी—९-११५ । (ग) कुंभकरन समुझाइ रहे पचि, दै सीता सारँगपानी—९-१६० ।

सारंग-पिता—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग = कमल + पिता] कमल का पिता, जल या समुद्र । उ.—सारंग-पितु-सुत-घर-सुत-बाहन आजु न नैंक पुकारै—लहरी. ।

सारंग-बैरी—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग = भौंरा + वैरी] भौंरे का शत्रु, चंपा पुष्प । उ.—आदि को सारंग-बैरी पट प्रथम दिखराइ—लहरी. ।

सारंग-माल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सारंग = कमल + माला] कमलों की माला । उ.—सारँग-माल लसत सारँग सी—लहरी. ।

सारंग-रिपु—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग = दीपक, भौंरा + रिपु] (१) दीपक का शत्रु वस्त्र या घूंघट । उ.—परो सारँग-रिपु न मानत करत अद्भुत खेद—लहरी. । (२) दीपक का शत्रु वस्त्र या साड़ी का अंचल । उ.—आनन-अमल पोंछ सारँग-रिपु तैं—लहरी. । (३) भ्रमर का शत्रु, चंपा का फूल । उ.—सुधा गेह में करि की सोभा, सारँग-रिपु सीस बनैहै—लहरी. ।

सारंगलोचना—वि. स्त्री. [हिं. सारंग + सं. लोचना] मृग या हिरन जैसी नेत्रवाली, मृगनयनी ।

सारंग-सुत—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग = दीपक + सुत] दीपक से उत्पन्न, काजल । उ.—(क) बिछुर गयौ सारँग-सुत सिगरौ—लहरी. । (ख) सारँग-सुत नीकन तें बिछुरत—लहरी. । (ग) सारँग-सुत नीकन में सोहत-लहरी. । (घ) सारँग-सुत रेख सँभारी—लहरी. ।

सारंगसुता—संज्ञा स्त्री. [हिं. सारंग = आह्लाद, सूर्य + सुता = पुत्री] (१) आह्लाद की पुत्री, आह्लादिनी या आनंद देनेवाली शक्ति । उ.—सारँग-सुता देख सारँग को, तेरी अटल सुहाग—सारा. ९४६ । (२) सूर्य की पुत्री, यमुना । उ.—ब्रह्म-सुता-सुत-पद-रज परसत, सारँग-सुता दिखावै—सारा. ९६१ ।

सारंगिन, सारंगिनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सारंग] सखी, सहचरी । उ.—सारँग-माल लसत सारँग-सी सारंगिनि जो फूली—लहरी. ।

सारंगिया—वि. [हिं. सारंगी] सरंगी बजानेवाला ।

सारंगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सारंग] एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें

लगे हुए तार कमानी से बजाये जाते हैं । उ.—सुर सरनाई सरस सारंगी उपजत तान तरंग-सारा ।

सार—संज्ञा पुं. [सं.] पदार्थ का मूल या मुख्य भाग, सत्त, तत्व ।

पद—सार कौ सार—सर्वोत्तम तत्व । उ.—(क) सूर भक्त-वत्सलता बरनी सर्व कथा कौ सार—१-२६७ । (ख) सार कौ सार सकल-सुख कौ सुख हनूमान-सिव जानि गह्यौ—२-८ ।

(२) तात्पर्य, निष्कर्ष । (३) किसी पदार्थ का अरक या रस । (४) पानी, जल । (५) गूदा । (६) मलाई । (७) मक्खन । (८) फल, परिणाम । (९) धन-संपत्ति । (१०) अमृत । (११) लोहा । (१२) बल, शक्ति । (१३) जुआ खेलने का पासा । (१४) तलवार । (१५) एक छंद । (१६) एक अर्थालंकर ।

वि. (१) श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—हम तीनों हैं जग-करतार, माँगि लेहु हमसौं वर सार—४-३ । (२) मजबूत, दृढ़ ।

संज्ञा पुं. [सं. सारिका] मैना (पक्षी) ।

संज्ञा पुं. [हिं. सारना] (१) पालन-पोषण । (२) देख-रेख । (३) खोज-खबर । उ.—तलफत छाँड़ि गए मधुबन को बहुरि न कीन्ही सार—२७१७ । (४) रक्षा । उ.—जहँ जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौं तहँ तहँ सार करैं—१-४५ (५) पलँग, शैया ।

संज्ञा पुं. [सं. घनसार] कपूर ।

संज्ञा पुं. [हिं. साल] (१) सालने की क्रिया या भाव । (२) मन में खटकने या कष्ट देनेवाली बात ।

संज्ञा पुं. [हिं. साला] पत्नी का भाई, साला ।

वि. मुश्किल, कठिन ।

वि. [हिं. सर] (एक) जैसे, (एक) से । उ.—सखी री स्याम सबै इक सार—२६८७ ।

सारखा—वि. [हिं. सरीखा] समान, सदृश ।

सारगंध, सारगंधि—संज्ञा पुं. [सं.] चंदन ।

सारगर्भित—वि. [सं.] तत्वपूर्ण ।

सारग्रहण—संज्ञा पुं. [सं. सार+ग्रहण] तत्व-भाग स्वीकार या ग्रहण करने का भाव, अवस्था या प्रवृत्ति ।

सार-ग्राहिता—संज्ञा स्त्री [सं.] तत्व-भाग ग्रहण करने का भाव, अवस्था या प्रवृत्ति ।

सार-ग्राही—वि. [सं.] तत्व ग्रहण करनेवाला ।

सारघ—संज्ञा पुं. [सं.] शहद, मधु ।

सारज—संज्ञा पुं. [सं.] मक्खन, नवनीत ।

सारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पारे आदि रसों का संस्कार । (२) रावण का एक मंत्री जो राम की सेना में उनका भेद लेन गया था ।

सारणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] छोटी नदी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सारिणी] छोटे-छोटे खानों में अंक आदि की सूची ।

सारत—क्रि. स. [हिं. सारना] पूरी या पालन करता है । उ.—बरबस ही लै जात कहत हैं, पैज आपनी सारत —पृ. ३२७ (६८) ।

सारता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सार या तत्व का भाव या धर्म ।

सारथि—संज्ञा पुं. [सं. सारथी] (१) रथादि चलानेवाला, सूत । उ.—पारथ के सारथि हरि आप भए हैं—१-२३ । (२) सागर, समुद्र ।

सारथित्व—संज्ञा पुं. [सं.] सारथी का कार्य, पद या भाव ।

सारथी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रथ आदि चलानेवाला, सूत । उ.—(क) अरजुन के हरि हुते सारथी—१-२६४ । (ख) सारथी पाव रुख दये सटकार हय—१० उ.-५६ । (२) सागर, समुद्र ।

सारथ्य—संज्ञा पुं. [सं.] सारथी का कार्य, पद या भाव ।

सारद—संज्ञा स्त्री. [सं. शारदा] सरस्वती । उ.—(क) सेस, सारद रिषय नारद संत चिंतन सरनं—१-३०८ । (ख) गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो) देवी सारद तोहि —१०-४० ।

संज्ञा पुं. [सं. शरद्] शरद ऋतु ।

वि. शरद ऋतु-संबंधी, शारदीय ।

सारदा—संज्ञा स्त्री. [सं. शारदा] सरस्वती । उ.—सुर-तरुवर की साख लेखिनी लिखत सारदा हारैं—१-१८३ ।

सारदी, सारदीय—वि. [सं. शारदीय] शरद ऋतु-सम्बन्धी ।

सारदूल—संज्ञा पुं. [सं. शार्दूल] सिंह ।

सारधू—संज्ञा स्त्री. [हिं.] पुत्री, कन्या ।

सारन—संज्ञा पुं. [सं. सारण] रावण का मंत्री जो गुप्त दूत बनकर राम की सेना का भेद लेने गया था। उ.—सुक-सारन द्वै दूत पठाए—९-१२०।

सारना—क्रि. स. [हिं. सरना] (१) (काम) पूरा या ठीक करना। (२) प्रतिज्ञा पूरी करना, प्रण पालना। (३) सजाना, सुंदर करना। (४) बनाना, साधना। (५) सँभालना, देखरेख या रक्षा करना। (६) आँखों में अंजन लगाना। (७) (अस्त्र-शस्त्र) चलाना, प्रहार करना। (८) दूर हटाना। (९) (आग) बुझाना।

सारनाथ—संज्ञा पुं. [हिं. सारंग+नाथ] बनारस से उत्तर-पश्चिम पर स्थित एक प्रसिद्ध स्थान जो हिंदुओं, बौद्धों और जैनियों का तीर्थ है। यहीं प्राचीन मृगदाव है जहाँ से गौतम बुद्ध ने अपना उपदेश आरम्भ किया था।

सारनो—क्रि. सं. [हिं. सरना] सारना।

संज्ञा पुं. 'सारने' की क्रिया या भाव। उ.–ललिता बिसाखा ब्रजवधू झुलावैं सुरुचि सार सारको सारनो —२२८०।

सारल्य—संज्ञा पुं. [सं.] सरलता।

सारवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक छंद।

सारवत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सार ग्रहण करने का भाव। (२) सारवान् होने का भाव।

सारवान, सारवान्—वि. [सं. सारवान्] सारयुक्त।

सारस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक सुन्दर पक्षी। उ.—मृग मृगनी द्रुम बन सारस खग काहू नहीं बतायौ री --१८०८। (२) हंस। (३) चंद्रमा। (४) कमल। उ—(क) सारस रस अचवन को मानो तृषित मधुप जुग जोर। (ख) सारस हूँ तैं नैन बिसाला—२४८२। (५) स्त्रियों का एक कटिभूषण। (६) झील का जल। (७) छप्पय छंद का एक भेद।

सारसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करधनी। (२) कमरबंद।

सारसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आर्या छंद का एक भेद। (२) सारस पक्षी की मादा।

सार-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर-सुता] यमुना। उ.–निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सार-सुता की ओर।

सारसुती—संज्ञा स्त्री. [सं. सरस्वती] भारती, शारदा।

सारस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सरसता। (२) रसीलापन।

सारस्वत—संज्ञा पुं. [सं] (१) दिल्ली के उत्तर-पश्चिम का वह प्रदेश जो सरस्वती नदी के तट पर है। (२) इस देश का प्राचीन निवासी। (३) इस देश का ब्राह्मण।

वि. (१) सरस्वती-संबंधी। (२) विद्वानों का। (३) सारस्वत प्रदेश का।

सारांश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निचोड़, सार-भाग संक्षेप। (२) तात्पर्य, अभिप्राय। (३) परिणाम। (४) उप-संहार, परिशिष्ट।

वि. उत्तम, श्रेष्ठ।

सारा—संज्ञा पुं. [सं. सार] सार, तत्व।

पद—सार के सारा—सर्वश्रेष्ठ या मूल तत्व। उ.—तुम संसार-सार के सारा—२४५९।

संज्ञा पुं. [हिं. साला] पत्नी का भाई, साला।

वि. [सं. सह] पूरा, समस्त।

संज्ञा पुं. एक काव्यालंकार।

सारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चौपड़ या जूआ खेलने का पासा। उ.—ढारि पासा साधु-संगति फेरि रसना सारि। दाँव अबकैं परचौ पूरौ कुमति पिछली हारि—१-३०९। (२) चौपड़ या पासा खेलनेवाला। (३) गोटी। उ.—चौपरि जगत मड़े जुग बीते। गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि, न कबहूँ जीते—१-६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साड़ी] साड़ी। उ.—पगनि जेहरि लाल लहँगा अंग पँचरँग सारि—पृ. ३४४ (२९)।

क्रि. स. [हिं. सारना] (१) (तिलक आदि) लगाकर या बनाकर। उ.—इंद्र की पूजा मिटाई, तिलक गिरि को सारि—९४१। (२) (भोजन आदि) ग्रहण करके। उ—सारि जेवनार अँचवन कै भए सुद्ध दियौ तमोर नँद हर्ष आगे—२४६३। (३) (व्रत आदि का) निर्वाह या पालन (करो)। उ.—भूख लगी भोजन करिहैं हम नेम सारि तुम लेहु—२५५३।

सारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मैना (पक्षी)। उ.—बन उप-बन फल फूल सुभग सर सुक सारिका हंस पारावत।

सारिखा, सारिखे—वि. [हिं. सरीखा] समान, तुल्य। उ.—तुम सारिखे बसीठ पठाए कहिए कहा बुद्धि उन केरी—३०१२।

सारिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खाने या स्तंभ-रूप में दिये गये अंक आदि। (२) सूची।

सारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मैना (पक्षी), सारिका। (२) गोटी। (३) पासा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साड़ी] स्त्रियों की बढ़िया धोती, साड़ी। उ.—(क) तब अंबर और मँगाइ सारी सुरंग चुनी—१०-२४। (ख) यह तौ लाल ढिगनि की औरै है काहू की सारी—६९३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साली] पत्नी की बहन।

वि. [हिं. सारा] सब, पूर्ण, समस्त। उ.—बलि हो बृन्दाबन की भूमिहिं सो तो भाग की सारी—३४१२।

वि. [सं. सारिन्] अनुकरण करनेवाला।

सारु—संज्ञा पुं. [सं. सार] सार। उ.—मनहुँ छिड़ाइ लिये नँदनंदन वा ससि को सत सारु—१३३२।

सारूप, सारूप्य—संज्ञा पुं. [सं. सारुप्य] (१) समान रूप होने का भाव, एकरूपता। (२) पाँच प्रकार की मुक्तियों में एक जिसमें भक्त उपास्य का ही रूप प्राप्त कर लेता है।

सारूपता, सारूप्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. सारूप्यता] सारूप्य का भाव।

सारे—वि. [हिं. सारा] सब। उ.—(क) भीमादिक रोए पुनि सारे—१-२८८। (ख) यौं कहि पुनि बैकुंठ सिधारे। बिधि हरि महादेव सुर सारे—४-५।

क्रि. स. [हि. सारना] निर्वाह किये, निबाहे। उ.—जन्मत ही गोकुल सुख दीन्हो नंद दुलार बहुत सारे री—२५३३।

सारो—संज्ञा पुं. [हिं. साला] पत्नी का भाई।

संज्ञा स्त्री. [सं. सारिका] मैना (पक्षी)।

सारोपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'लक्षणा' का एक भेद।

सारौं—संज्ञा स्त्री. [सं. सारिका] मैना (पक्षी)।

सारौ—वि. [हिं. सारा] सब। उ.—जज्ञ मैं करत तब मेघ बरसत मही, बीज अंकुर तबै जमत सारौ ४-११।

सार्ङ्गपानि, सार्ङ्गपानी—संज्ञा पुं. [सं. सारङ्गपाणि] 'सारंग' नामक धनुष धारण करनेवाले विष्णु या उनके अवतार। उ.—फूली है जसोदा रानी, सुत जायौ सार्ङ्गपानी—१०-३४।

सार्थ—वि. [सं.] अर्थ से युक्त या सहित।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह। (२) वणिक्-समूह।

सार्थक—वि. [सं.] (१) अर्थ-युक्त। (२) सफल, पूर्ण मनोरथ। (३) गुणकारी, उपकारी।

सार्थकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सार्थक होने का भाव। (२) सफलता, सिद्धि।

सार्थपति—संज्ञा पुं. [सं.] समूह में जाकर व्यापार करनेवालों का नायक।

सार्थवाह—संज्ञा पुं. [सं.] समूह के साथ दूर स्थानों म जाकर व्यापार करनेवाला।

सादूर्ल—संज्ञा पुं. [सं. शार्दूल] सिंह।

सार्यो, सार्यौ—क्रि. स. [हिं. सारना] पूरा किया। उ.—अदिति सुतन को कारज सारयो—११-२।

सार्व—वि. [सं.] सबसे संबंध रखनेवाला।

सार्वकालिक—वि. [सं.] (१) सब समयों से संबंधित। (२) सर्व कालों में होनेवाला।

सार्वजनिक—वि. [सं.] (१) सब लोगों से संबंध रखने वाला। (२) सब लोगों के काम आनेवाला।

सार्वजनीन—वि. [सं.] सबसे संबंधित।

सार्वत्रिक—वि. [सं.] सब स्थानों में होनेवाला।

सार्वदेशिक—वि. [सं.] (१) सारे देश से संबंधित। (२) सब देशों में होनेवाला या सब देशों से संबंधित।

सार्वभौतिक—वि. [सं.] सब भूतों या तत्वों से संबंधित या उनमें होनेवाला।

सार्वभौम—संज्ञा पुं. [सं.] चक्रवर्ती राजा।

वि. सारी पृथ्वी से संबंधित या उसमें होनेवाला।

सार्वभौमिक—वि. [सं.] (१) सारी पृथ्वी से संबंधित या उसमें होनेवाला। (२) सारी पृथ्वी के समस्त देशों को एक समान समझने के उदार दृष्टिकोणवाला।

साल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सालना] (१) 'सालने' की क्रिया या भाव। (२) सूराख, छेद। (३) घाव। (४) दुख, पीड़ा, वेदना। उ.—सुरति-साल-ज्वाला उर अंतर ज्यौं पावकहिं पियौ—९-४६।

वि. चुभने, खटकने या पीड़ा पहुँचानेवाले। उ.—(क) बैरिनि कौ उर साल—१०-१३८। (ख) मन-मन बिहँसत गोपाल, भक्त-पाल, दुष्ट-साल—१०-२७६।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) जड़, मूल। (२) किला।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] बरस, वर्ष।

संज्ञा पुं. [सं. शाल] सूखा वृक्ष।

संज्ञा पुं. [फ़ा. शाल] दुशाला।

संज्ञा पुं. [सं. शालि] धान-विशेष।

संज्ञा स्त्री. [सं. शाला] (१) घर। (२) स्थान।

सालई क्रि. स. [हिं. सालना] पीड़ा पहुँचाता है।

सालक—वि. [हिं. सालना+क (प्रत्य.)] दुख देनेवाला। उ.—(क) सुर पालक असुरनि उर सालक त्रिभुवन जाहि डराई—३६३। (ख) सूर स्याम चले गाइ चरावन कंस उरहिं के सालक—४३६। (ग) तुही अनंत सक्ति प्रभु असुर सालक—१० उ.-३५।

साल-गिरह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] बरस-गाँठ।

सालग्राम—संज्ञा पुं. [सं. शालग्राम] शालग्राम।

सालग्रामी—संज्ञा स्त्री. [सं. शालग्राम] गंडक नदी (जिसमें शालग्राम की शिलाएँ पायी जाती हैं)।

सालत—क्रि. स. [हिं. सालना] छेद करते, चुभते या दुख पहुँचाते हैं। उ.—आपुस ही में कहत हँसत हैं प्रभु हृदय यह सालत—२५७४।

सालन—संज्ञा पुं. [सं. सलवण] पकी हुई मसालेदार तरकारी। उ.—(क) सालन सकल कपूर सुबासत, स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत—३९६। (ख) बेसन सालन अधिकौ नागर—२३२१।

सालना, सालनो—क्रि. अ. [सं. शल्य] (१) मन में खटकना या कसकना। (२) चुभना, गड़ना।

क्रि. स. (१) छेद करना। (२) चुभाना, गड़ाना। (३) दुख या कष्ट पहुँचाना। (४) प्रविष्ट करना। (५) एक लकड़ी आदि में छेद करके दूसरी का सिरा उसमें डालना।

साला—संज्ञा. पुं. [सं. श्यालक] (१) पत्नी का भाई। (२) इस संबंध की सूचक एक गाली।

संज्ञा पुं. [सं. सारिका] मैना (पक्षी)।

संज्ञा स्त्री. [सं. शाला] (१) घर। (२) पाठशाला।

सालाना—वि. [फ़ा. सालान:] साल का, वार्षिक।

सालार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) पथ-प्रदर्शक। (२) नेता, अगुआ, प्रधान, नायक।

सालि—संज्ञा पुं. [सं. शालि] धान-विशेष।

सालिग्राम—संज्ञा पुं. [सं. शालग्राम] विष्णु की, एक प्रकार के गोल पत्थर की, मूर्ति। उ.— सालिग्राम मेलि मुख भीतर बैठि रहे अरगाई—१०-२६३।

साली—संज्ञा स्त्री. [हिं. साला] पत्नी की बहन।

सालु—संज्ञा पुं. [हिं. सालना] (१) कष्ट। (२) ईर्ष्या।

सालू—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का लाल कपड़ा जो विवाह जैसे मांगलिक कार्यों में उपयोग में आता है।

सालोक्य—संज्ञा पुं. [सं.] पाँच प्रकार की मुक्तियों में एक जिसमें भक्त भगवान के साथ उनके लोक में वास करता है। उ.—(क) सालोक्य सामीप्य नासारोपिता भुज चारि—२९२४। (ख) हम सालोक्य स्वरूप सरो जो रहत समीप सहाई—३२९०।

साल्मलि, साल्मली—संज्ञा पुं. [सं. शाल्मली] (१) सेमल (पेड़)। (२) एक (पौराणिक) द्वीप। उ.—सातों दीप ....। जंबू प्लच्छ, क्रौंच, साक, साल्मलि कुस पुष्कर भरपूर—सारा. ३४।

साल्व—संज्ञा पुं. [सं. शाल्व] शाल्व। उ.—ताहि-आवत निरखि स्याम निज साँग को काटि करि साल्व की सुधि भुलाई—१० उ.-५६।

सावंत—संज्ञा पुं. [सं. सामंत] (१) वह भूस्वामी जो किसी बड़े राजा को कर देता हो। (२) वीर, योद्धा। उ.—लात के लगत सिर तें गयो मुकुट गिर केस बरि लै चले हरषि सावंत—२६१४। (३) अधिनायक।

साव—संज्ञा पुं. [सं. शावक] बालक, पुत्र।

संज्ञा पुं. [हिं. सार] साहु।

सावक—संज्ञा पुं. [सं. शावक] पशु-पक्षी का बच्चा। उ.—सिंह-सावक ज्यौं तजै गृह इंद्र आदि डरात—१-१०६।

संज्ञा पुं. [सं. श्रावक] (१) बौद्ध संन्यासी। (२) जैनी साधु, जैनी।

सावकाश—क्रि वि. [सं.] अवकाश होनेपर, सुभीते से।

वि. अवकाश के साथ।

सावचेत—वि. [सं. सा+हिं. चेत] चौकन्ना, सावधान।

सावचेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सावचेत] सतर्कता।

सावत—संज्ञा पुं. [हिं. सौत] सौतिया डाह।

सावधान—वि. [सं.] सजग, सचेत, सतर्क। उ.—(क) अजहूँ सावधान किन होहि। माया बिषम भुजंगिनि कौ बिष उतरयौ नाहिंन तोहिं—२-३२। (ख) सावधान करिकै गई – १६७८।

सावधानता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सजगता, सतर्कता।

सावधानी—संज्ञा स्त्री. [सं. सावधान] सतर्कता।

सावधि—वि. [सं. स+अवधि] जिसमें या जिसकी अवधि निश्चित की गयी हो।

सावन—संज्ञा पुं. [सं. श्रावण] (१) श्रावण मास जब खूब पानी बरसता है। उ.—नैना सावन-भादों जीते—२७६५। (२) इस मास में गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत। (३) कजली (गीत)।

संज्ञा पुं. [सं.] एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का समय।

सावनी—संज्ञा पुं. [हिं. सावन] धान-विशेष।

संज्ञा स्त्री. (१) सावन में गाया जानेवाला एक गीत। (२) कजली (गीत)। (३) सावन में वर-पक्ष की ओर से कन्या के लिए भेजे जानेवाले वस्त्र, मिठाई आदि उपहार।

वि. सावन की, सावन-संबंधी। उ.—रंगमहल में जहँ नँदरानी खेलति सावनी तीज सुहाई—२२९०।

संज्ञा स्त्री. [सं. श्रावणी] सावन मास की पूर्णमा जो 'रक्षाबंधन' का दिन है।

सावर—संज्ञा पुं. [सं. शावर] शिव-कृत एक तंत्र का नाम। उ.—सावर-मंत्र लिख्यौ स्तुति-द्वार।

संज्ञा पुं. [सं. शबर] एक तरह का हिरन।

सावर्ण—वि. [सं.] समान वर्ण सम्बन्धी।

सावित्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) सूर्य का पुत्र।

वि. सविता या सूर्य-संबंधी।

सावित्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) (वेदमाता) गायत्री। (२) सरस्वती। (३) उपनयन के समय होनेवाला एक संस्कार। (४) मद्र देश के राजा अश्वपति की पुत्री जो सत्यवान को ब्याही थी और जिसने अपने मृत पति के प्राण वरदान-रूप में यमराज को प्रसन्न करके प्राप्त किये थे। (५) सती-साध्वी स्त्री। (६) सधवा स्त्री।

सावित्रीव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्रत जो स्त्रियाँ, पतियों की दीर्घायु-कामना से ज्येष्ठ कृष्ण १४ को करती हैं।

साश्रु—वि. [सं. स+अश्रु] जिनमें आँसू भरे हों।

क्रि. वि. आँखों में आँसू भरकर।

साषी—संज्ञा स्त्री. [सं. साक्षी] गवाही, साक्षी।

साष्टांग—क्रि. वि. [सं.] आठों अंगों से।

वि. आठों अंग-सहित।

यौ. साष्टांग प्रणाम—भूमि पर लेटकर, मस्तक, हाथ, पैर, हृदय, आँख, जाँघ, वचन और मन से प्रणाम करना।

मुहा.—(किसी को) साष्टांग प्रणाम कहना या करना—(किसी से) बहुत दूर या बचकर रहना।

सास—संज्ञा स्त्री. [सं. श्वश्रु] (१) पति या पत्नी की माता। उ.—जिय परी ग्रंथि कौन छोर, निकट ननँद न सास—पृ. ३४८ (५७ (२) वह वृद्धा जिससे पति या पत्नी की माता-जैसा संबंध माना जाय। उ.—नाहीं व्रज-वास, सास, ऐसी बिधि मेरी—१०-२७६।

सासत—क्रि. स. [हिं. सासना] (१) दंड देता है। (२) कष्ट पहुँचाता है। (३) डाँटता-डपटता है।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साँसत] (१) दंड। (२) कष्ट।

सासरा—संज्ञा पुं. [सं. सास] ससुराल।

सासन—संज्ञा पुं. [सं. शासन] (१) आज्ञा, आदेश। (२) नियंत्रण। (३) राज्य-संचालन।

सासना—संज्ञा स्त्री. [सं. शासन] (१) सजा, दंड। (२) डाँट-डपट। (३) बहुत अधिक शारीरिक कष्ट, साँसत। उ.—(क) बहुत सासना दई प्रहलादहिं ताहि निसंक कियौ—१-३८। (ख) हिरनाकुस प्रहलाद भक्त कौं बहुत सासना जारयौ—१-१०९।

क्रि. स. (१) दंड देना। (२) डाँटना-डपटना। (३) बहुत अधिक शारीरिक कष्ट देना।

सासरा—संज्ञा पुं. [हिं. सास+आलय] ससुराल।

सासा—संज्ञा पुं. [सं. संशय] संदेह।

संज्ञा पुं. [हिं. साँस] (१) साँस। (२) प्राण।

सासु—संज्ञा स्त्री. [हिं. सास] पति या पत्नी की माता। उ.—(क) सासु-ननद घर घर लिए डोलति, याकौं

रोग बिचारौ री—१०-१३५। (ख) सासु रिसाय, लरै मेरी ननदी—२३९७।

सासुर – संज्ञा पुं. [हिं. ससुर] (१) पति या पत्नी का पिता। (२) ससुराल।

साह—संज्ञा पुं. [हिं. साहु] (१) सज्जन। (२) सेठ, महाजन। (३) बनिया, व्यापारी। (४) ईमानदार।

संज्ञा पुं. [फा. शाह] (१) महाराज। (२) मुसलमान फकीर।

वि. (१) बड़ा, भारी, महान। (२) उदार।

साहचर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ रहने का भाव, सहचरता। (२) संग, साथ।

साहना – क्रि. स. [हिं. सहना] लेना, ग्रहण करना।

साहनी संज्ञा पुं. [सं. साधनिक, प्रा. साहनिय] (१) सेना के विभागीय अध्यक्ष। (२) राज-कर्मचारी। (३) परिषद। (४) संगी, साथी।

संज्ञा स्त्री. फौज, सेना।

साहब—संज्ञा पुं. [अ. साहिब] (१) प्रभु, स्वामी। (२) परमेश्वर। उ.– (क) तुम साहब मैं ढाढ़ी तुम्हरौ प्रभु मेरे ब्रजराज—१०-३६। (ख) पोषन-भरन बिसंभर साहब—१-३५। (ग) साहब सों जो करै धुताई—१०४१। (३) एक सम्मानसूचक शब्द, महाशय। (४) गोरी जाति का व्यक्ति।

वि. बहुत फैशन से रहनेवाला।

साहबजादा—संज्ञा पुं. [अ. साहिब+जादा] बेटा।

साहब-सलामत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) सलाम। (२) मेल-जोल।

साहस—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) मन की वह दृढ़ता जो कोई बड़ा काम करने को प्रवृत्त करती है, हिम्मत, हियाब। उ.—जरत ज्वाला गिरत गिरि तैं स्व कर काटत सीस। देखि साहस सकुच मानत राखि सकत न ईस—११०६। (२) कोई बुरा काम। (३) जबरदस्ती धन लूटना।

साहसिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पराक्रमी। (२) डाकू। (३) मिथ्यावादी। (४) निडर, निर्भय।

साहसी—वि. [सं. साहसिन्] हिम्मत रखनेवाला।

साहस्र—वि. [सं.] सहस्र का, सहस्र-संबंधी।

साहस्रिक—वि. [सं.] सहस्र का, सहस्र सम्बन्धी।

साहस्री—संज्ञा स्त्री. [सं. सहस्र] हजार वर्षों का समूह।

साहाय्य—संज्ञा पुं. [सं.] मदद, सहायता।

साहि—संज्ञा पुं. [फ़ा. शाह] राजा।

संज्ञा पुं. [हिं. साहु] साहु।

साहित्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) 'सहित' या साथ होने या रहने का भाव। (२) किसी भाषा के उन गद्य-पद्य ग्रंथों आदि का समूह जिनमें स्थायी, उच्च और गूढ़ विषयों का व्यवस्थित विवेचन हो, वाङ्मय। (३) वे कृतियाँ जिनके गुण और प्रभाव के कारण समाज में आदर हो। (४) किसी विषय या वस्तु से सम्बन्धित कृतियाँ। (५) किसी कवि या लेखक की समस्त रचनाएँ। (६) गद्य-पद्य के गुण-दोष, भेद-उपभेद आदि सम्बन्धी ग्रंथों का समूह।

साहित्यकार—संज्ञा पुं. [सं.] वह जो ग्रंथादि लिखकर साहित्य की रचना करता हो।

साहित्यिक—वि. [सं.] (१) साहित्य-संबंधी। (२) साहित्य की सेवा या रचना करनेवाला।

साहिब—संज्ञा पुं. [हिं. साहब] साहब।

साहिबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. साहब] (१) 'साहब' होने का भाव। (२) प्रभुता। (३) महत्व। (४) ऐश्वर्य और अधिकार का सुख-भोग। उ.—(क) नहात-खात सुख करत साहिबी, कैसैं करि अनखाऊँ—९-१७। (ख) जनम साहिबी करत गयौ—१-६४। (५) ठाट-बाट।

वि. (१) साहब का। (२) साहब-जैसा।

साहियाँ—संज्ञा पुं. [सं. साँईं] (१) पति। (२) स्वामी।

साहिल—संज्ञा पुं. [अ.] तट, किनारा।

साही—संज्ञा स्त्री. [सं. शल्यकी] एक जंगली जंतु जिसके शरीर पर लंबे-लंबे काँटे होते हैं।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शाही] एक तरह की तलवार।

वि. बादशाहों का, राजसी।

साहु—संज्ञा पुं. [सं. साधु] (१) भलामानस, सज्जन। (२) बनिया, व्यापारी। (३) जो 'चोर' न हो, ईमानदार। उ.—(क) ये भए चोर तैं साहु—१-४०। (ख) ए हैं साहु कै चोर—३५९। (ग) बीस बिरियाँ चोर की तौ कबहुँ मिलिहैं साहु—१२८०। (४) सेठ, महा-

जन। उ.—मुख मागौ पैहौ सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावहु—३३४०।

साहुल—संज्ञा पुं. [फ़ा.शाकूल] दीवार की सीध नापने का एक यंत्र जिसकी डोरी में एक लट्टू-सा बँधा रहता है।

साहू—संज्ञा पुं. [हिं. साहु] साह, साहु।

साहूकार—संज्ञा पुं. [हिं. साहु + कार] बड़ा महाजन।

साहूकारा—संज्ञा पुं. [हिं. साहूकार] (१) महाजनी कारबार। (२) वह बाजार जहाँ महाजनी कारबार होता हो। (३) वह स्थान जहाँ साहूकार रहते हों।

साहेब—संज्ञा पुं. [हिं. साहब] साहब।

साहैं—संज्ञा स्त्री. [हिं. बाँह] बाजू, भुजदंड।

अव्य. [हिं. सामुहें] सामने, सम्मुख।

सिउँ—प्रत्य. [पुं. हिं. स्यों] (१) साथ। (२) निकट।

सिंकना—क्रि. अ. [हिं. सेंकना] सेंका जाना।

सिंग—संज्ञा पुं. [हिं. सींग] सींग।

सिंगरफ—संज्ञा पुं. [फ़ा. शिगरफ़] ईंगुर।

सिंगरफी—वि. [हिं. सिंगरफ] ईंगुर का बना हुआ।

सिंगरौर—संज्ञा पुं. [सं. शृंगवेर] प्रयाग के पश्चिमोत्तर स्थित शृंगवेरपुर जहाँ निषादराज गुह की राजधानी थी।

सिंगा—संज्ञा पुं. [हिं. सींग] सींग या लोहे का बना एक बाजा, तुरही, नरसिंहा, रणसिंगा।

सिंगार—संज्ञा पुं. [सं. शृंगार] (१) सजावट, सज्जा। उ.—(क) ऐपन की सी पूतरी सब सखियनि कियौ सिंगार—१०-४०। (ख) सूर स्याम कहैं चीर देत हौं मो आगे सिंगार करौ—७९०। (२) शोभा। उ.—तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार—१-४१। (३) शृंगार-रस (साहित्य)।

सिंगारदान—संज्ञा पुं. [हिं. सिंगार + फ़ा. दान] शृंगार की सामग्री रखने की पेटी या संदूकची।

सिंगारना, सिंगारनो—क्रि. स. [हिं. सिंगार] सजाना।

सिंगार-हाट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिंगार + हाट] वेश्याओं के रहने का स्थान, चकला।

सिंगारहार—संज्ञा पुं. [सं. हरशृंगार] हरसिंगार (फूल)।

सिंगारिया—संज्ञा पुं. [हिं. सिंगार + इया] देव-मूर्ति का शृंगार करनेवाला पुजारी।

सिंगारी—वि. पुं. [हिं. सिंगार] (१) सजानेवाला। (२) शृंगार-संबंधी।

संज्ञा पुं. देवमूर्ति का शृंगार करनेवाला।

सिंगार्‍यो, सिंगार्‍यौ—क्रि. स. [हिं. सिंगारना] सजाया, सँवारा। उ.—पहिरि पटम्बर जकरि अडंबर यह तन मूढ़ सिंगारयौ—१-३३६।

सिंगिया—संज्ञा पुं. [सं. शृंगिका] एक विष।

सिंगी—संज्ञा पुं. [हिं. सींग] सींग का बना बाजा।

मुहा.—सिंगी पूरना—सिंगी बाजा बजाना।

संज्ञा स्त्री. (१) एक तरह की मछली। (२) सींग की नली जिससे शरीर का दूषित रक्त चूसकर निकाला जाता है।

सिंगौटा—संज्ञा पुं. [हिं. सींग] पशुओं के सींगों पर चढ़ाया जानेवाला धातु का आवरण।

सिंगौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिंगार + औटी] स्त्रियों की शृंगार-प्रसाधन की पिटारी।

सिंघ—संज्ञा पुं. [हिं. सिंह] सिंह।

सिंघल—संज्ञा पुं. [सं. सिंहल] सिंहल द्वीप।

सिंघली—वि. [हिं. सिंहली] सिंहल द्वीप-वासी।

सिंघाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. शृंगाटक] पानी की एक लता जिसके छोटे-छोटे तिकोने फल, जिन पर दो सींग से रहते हैं, खाये जाते हैं।

सिंघासन—संज्ञा पुं. [सं. सिंहासन] सिंहासन।

सिंघिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंहनी] शेरनी।

सिंचन—संज्ञा पुं. [सं.] सींचना।

सिंचना—क्रि. अ. [हिं. सींचना] सींचा जाना।

सिंचाई—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंचन] सींचने का काम, भाव, पारिश्रमिक या कर।

सिंचाना—क्रि. स. [हिं. सींचना] सींचने को प्रवृत्त करना।

सिंचित—वि. [सं.] (१) सींचा हुआ। (२) गीला, तर।

सिंजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अलंकारों की झनकार।

सिंजित—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंजा] ध्वनि, झंकार।

वि. जिसमें ध्वनि या झनकार हो।

सिंदन—संज्ञा पुं. [सं. स्यंदन] रथ।

सिंदूर—संज्ञा पुं. [सं.] ईंगुर का लाल चूर्ण जिससे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ अपनी माँग भरती हैं।

मुहा.—सिंदूर चढ़ना—कुमारी का विवाह होना। सिंदूर देना या लगाना—कन्या की माँग में सिंदूर लगाकर उसे पत्नी बनाना।

सिंदूर-दान—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह के अवसर पर वर का कन्या की माँग में सिंदूर भरना।

सिंदूरवंदन—संज्ञा पुं. [सं.] विवाह की एक रीति जिसमें वर, कन्या की माँग में सिंदूर भरता है।

सिंदूरिया, सिंदूरी—वि. [सं. सिंदूर+इया, ई] सिंदूर के पीले मिले लाल रंग का।

सिंदोरी, सिंदौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंदूर] सिंदूर रखने की डिबिया जो सौभाग्य की सामिग्री में होती है।

सिंध—संज्ञा पुं. [सं. सिंधु] (१) पश्चिमी भारत का एक प्रदेश जो अब पाकिस्तान में है। (२) पंजाब की एक प्रसिद्ध नदी।

सिंधव—संज्ञा पुं. [सं. सैंधव] (१) नमक। (२) सिंधु देश का घोड़ा।

वि. (१) सिंध देश का। (२) समुद्र का।

सिंधवी—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंधु] एक रागिनी।

सिंधारा—संज्ञा पुं. [देश.] सावन की दोनोंतीजों को वर-पक्ष का कन्या के लिए भेजा गया पकवान, वस्त्र आदि।

सिंधिया—संज्ञा पुं. [मराठी शिंदे] ग्वालियर के मराठा-वंश की एक प्रसिद्ध उपाधि।

सिंधी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिंध] सिंध प्रांत की बोली।

वि. सिंध देश का, सिंध देश-संबंधी।

संज्ञा पुं. (१) सिंध देश का निवासी। (२) सिंध देश का घोड़ा।

सिंधु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नद, बड़ी नदी। (२) पंजाब का प्रसिद्ध नद। (३) सागर, समुद्र। उ.—(क) बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि आपुन आयसु दीजै—९-११०। (ख) सोभा-सिंधु समाइ कहाँ लौं हृदय साँकरे ऐन—२६६५। (४) बड़ा जलाशय। (५) आकर, निधान। उ.—करनी करुना-सिंधु की मुख कहत न आवै—१-४। (६) सात की संख्या। (७) सिंध प्रदेश। (८) एक राग।

सिंधुज—वि. [सं.] (१) जो समुद्र से उत्पन्न हो। (२) सिंधु देश में होनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) सेंधा। (२) शंख।

सिंधुजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) (समुद्र से उत्पन्न) लक्ष्मी। (२) सीप जिसमें से मोती निकलता है।

सिंधुजात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंधी घोड़ा। (२) मोती।

सिंधुनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (समुद्र का पुत्र) चंद्रमा।

सिंधुर—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी, हस्ती।

सिंधुर-मणि—संज्ञा पुं. [सं.] गजमुक्ता।

सिंधुरवदन संज्ञा पुं. [सं.] गजवदन, गणेश।

सिंधुरागामिनी—वि. स्त्री. [सं.] गजगामिनी।

सिंधुलवण, सिंधुलवन—संज्ञा पुं. [सं. सिंधु+लवण] (१) नमक का या खारा समुद्र। उ.—अगम सुपंथ दूरि दच्छिन दिसि तहँ सुनियत सखि सिंधु-लवन—१० उ.-९१। (२) सेंधानमक।

सिंधुशयन, सिंधुसयन—संज्ञा पुं. [सं. सिंधुशयन] विष्णु।

सिंधु-सुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जलंधर राक्षस जिसे शिवजी ने मारा था। (२) चंद्रमा।

सिंधु-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी। उ.—(क) जो पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारै—१-९४। (ख) चकृत होइ नीर में बहुरि बुड़की दई, सहित सिंधु-सुता तहाँ दरस पाए—२५७०। (२) सीप जिसमें से मोती निकलता है।

सिंधु-सुता-सुत—संज्ञा पुं. [सं.] सीप का पुत्र अर्थात् मोती। उ.—सिंधु-सुता-सुत ता रिपु गमनी सुन मेरी तू बात—लहरी।

सिंधूरा—संज्ञा पुं. [सं. सिंधुर] एक राग।

सिंधूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंधुर] एक रागिनी।

सिंधोरी, सिंधौरी संज्ञा स्त्री. [हिं. सिंदूर+औरी] सिंदूर रखने की डिबिया।

सिंबी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) फली। (२) सेम।

सिंह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शेर बबर, केसरी। उ.—नृप-गज को अब डर कहीं प्रगट्यो सिंह कन्हाइ—५८९। (२) बारह राशियों में पाँचवीं। उ.—चौथैं सिंह रासि के दिनकर जीति सकल महि लैहैं—१०-८६। (३) वीरता या श्रेष्ठतावाचक शब्द। (४) वीर पुरुष। (५) एक राग।

सिंहकर्मा—संज्ञा पुं. [सं.] वीर पुरुष।

सिंह-केसर—संज्ञा पुं. [सं.] सिंह की गरदन के बाल ।
सिंहद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] किले, महल आदि का बड़ा फाटक जहाँ प्रायः सिंह की मूर्ति बनी रहती है। उ.— सिंह द्वार आरती उतारहि जसुमति आनँदकंद की ।
सिंह-नाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंह की गरज या दहाड़ । (२) युद्ध में वीरों की ललकार । (३) ललकार कर कही हुई बात । (४) रावण के एक पुत्र का नाम ।
सिंह-नादी—वि. [सं. सिंह+नादिन्] सिंह-सा गरजने या ललकारनेवाला ।
सिंहनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शेरनी (२) एक छंद ।
सिंहपौर—संज्ञा पुं. [सं. सिंह+हि. पौर] किले, महल आदि का बड़ा फाटक जिस पर प्रायः सिंह की मूर्ति बनी रहती है । उ.— भीर जानि सिंह-पौर त्रियन की जसुमति भवन दुराई—सारा. १०२८ ।
सिंहयाना—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा जिसका वाहन सिंह है ।
सिंहल—संज्ञा पुं. [सं.] भारत के दक्षिण का एक द्वीप जिसे प्राचीन 'लंका' माना जाता है ।
सिंहली—वि. [हिं. सिंहल] सिंहल द्वीप-संबंधी ।
संज्ञा पुं. सिंहल द्वीप का निवासी ।
संज्ञा स्त्री. सिंहल द्वीप की भाषा ।
सिंहवाहिनी—वि. स्त्री. [सं.] सिंह पर चढ़नेवाली ।
संज्ञा स्त्री. दुर्गा जिसका वाहन सिंह है ।
सिंह-शावक, सिंह-सावक—संज्ञा पुं. [सं. सिंह+शावक] सिंह का बच्चा । उ.—सिंह-सावक ज्यौं तजै गृह इंद्र आदि डरात—१-१०६ ।
सिंहस्थ—वि. [सं.] सिंह राशि में स्थित (ग्रह) ।
संज्ञा पुं. वह समय जब वृहस्पति सिंह राशि में हो ।
सिंहहनु—वि. [सं.] सिंह जैसी दाढ़वाला ।
सिंहार-हार—संज्ञा पुं. [हिं. हर-सिंगार] हरसिंगार (फूल) ।
सिंहाली—वि. पुं. स्त्री. [सं. सिंहल] सिंहल का (की) ।
सिंहावलोकन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंह की तरह पीछे देखते हुए आगे बढ़ना । (२) पिछली बातों का संक्षेप में कथन । (३) पद्य-रचना की एक रीति जिसमें पिछले चरणांत के शब्द लेकर अगला चरण चलता है ।
सिंहासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा या देवता के बैठने का विशेष आसन या चौकी । उ.—(क) आसा के सिंहासन बैठ्यौ, दंभ-छत्र सिर तान्यौ—१-१४१ । (ख) स्फटिक-सिंहासन मध्य राजत हाटक सहित सजावनों—२२८० । (२) भौंहों की बीच का तिलक-विशेष ।
सिंहिका—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) एक राक्षसी जो दक्षिणी समुद्र में रहती थी और आकाशचारियों की छाया देखकर ही उनको खींचकर खाती थी । लंका जाते समय हनुमान ने इसको मारा था । राहु इसका पुत्र कहा जाता है । (२) एक छंद ।
सिंहिकासुवन, सिंहिकासूनु—संज्ञा पुं. [सं. सिंहिका+सुवन] सिंहिका राक्षसी का पुत्र राहु । उ.—ललित-लट छिटकति मुख पर देति सोभा दून । मनु मयंकहिं अंक लीन्हौ सिंहिका कै सून—१०-१८४ ।
सिंहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंह] शेरनी । उ.—स्वान संग सिंहनी रति अजुगुत वेद बिरुद्ध असुर करै आई ।
सिंही—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंह] शेरनी, सिंहिनी ।
सिंहेजा, सिंहेला—संज्ञा पुं.[सं. सिंह] सिंह का बच्चा ।
सिंहोदरी—वि. स्त्री. [सं.] सिंह-सी पतली कमरवाली ।
सि—वि. स्त्री. [हिं. सा.] समान, तुल्य ।
सिअन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीवन] सिलाई, सीवन ।
सिअरा—वि. [सं. शीतल] ठंढा ।
संज्ञा पुं. छाँह, छाया ।
संज्ञा पुं [हिं. सिआर] सिआर ।
सिआए—क्रि. स. [हिं. सिआना, सिलाना] सिलवाए । उ.—पहिरि मेखला चीर चिरातन पुनि पुनि फेरि सिआए—३१२५ ।
सिआना, सिआनो—क्रि. स. [हिं. सिलाना] सिलाना ।
सिआर—संज्ञा पुं. [सं. शृगाल] गीदड़ ।
सिकंजबी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सीकंजबीव] (१) सिरके या नीबू के रस में पकाया हुआ शरबत या दवा । (२) नीबू का शरबत ।
सिकंजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शिकंजा] (१) दबाने, कसने आदि का यंत्र । (२) अपराधी को दंड देने का एक प्राचीन यंत्र ।

सिकड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] (१) जंजीर। (२) दरवाजे की कुंडी या साँकल। (३) गले में पहनने का एक गहना। (४) करधनी, तागड़ी।

सिकत, सिकता—संज्ञा स्त्री. [सं. सिकता) (१) बालू, रेत। उ.—सूर सिकत हठि नाव चलावत ए सरिता हैं सूखी—३०२९। (२) रेतीली जमीन। (३) शकर, चीनी, शर्करा।

सिकतिल—वि. [सं. सिकता] रेतीला।

सिकदार—संज्ञा पुं. [हिं. सरदार] नायक, अधिपति। उ.—ब्रज-परगन-सिकदार महर, तू ताकी करत नन्हाई—१०-३२९।

सिकरवार—संज्ञा पुं. [देश.] क्षत्रियों की एक शाखा।

सिकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिकड़ी] (१) जंजीर। (२) साँकल, कुंडी। (३) गले का एक गहना। (४) करधनी, तागड़ी।

सिकली—संज्ञा स्त्री. [अ. सैकल] धारदार हथियारों पर सान चढ़ाने की क्रिया।

सिकलीगर—संज्ञा पुं. [हिं. सिकली + फ़ा. गर] गुट्ठल धार पर सान धरने या धातु को चमकानेवाला।

सिकहर—संज्ञा पुं. [सं. शिक्य + धर] छींका।

सिकहरैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सिकहर] छींके को। उ.—आपु खाइ सो सब हम मानैं, औरनि देत सिकहरैं तोरि—१०-३२७।

सिकार—संज्ञा पुं. [फ़ा. शिकार] मृगया, आखेट। उ.—सदा सिकार करत मृग-मन कौ—१-६४।

सिकारी—वि. [फ़ा. शिकार] आखेट करनेवाला।

सिकुड़न—संज्ञा स्त्री. [सं. संकुचन] (१) फैली हुई वस्तु के सिमटने की क्रिया। (२) सिमटने से पड़ा हुआ चिन्ह, शिकन।

सिकुड़ना, सिकुरना, सिकुरनो—क्रि. अ. [हिं. सिकुड़न, सिकुड़ना] (१) फैली हुई वस्तु का सिमटना। (२) शिकन या सिमटन पड़ना। (३) तनाव के कारण छोटा या तंग होना।

सिकोड़ना, सिकोरना, सिकोरनो—क्रि. स. [हिं. सिकुड़ना] (१) फैली हुई वस्तु को समेटना या संकुचित करना। (२) समेटना, बटोरना। (३) तंग, छोटा या संकीर्ण करना।

सिकोरा—संज्ञा पुं. [हिं. सकोरा] मिट्टी का छोटापात्र।

सिकोली—संज्ञा स्त्री. [देश.] मूँज, बेंत आदि से बनायी गयी डलिया।

सिकोही—वि. [फ़ा. शिकोह = वैभव] (१) वैभवसम्पन्न। (२) आनबान या ठसकवाला,। (३) बहादुर, वीर।

सिक्कड़, सिक्कर—संज्ञा पुं. [सं. सीकर] (१) छींट, जल-कण। (२) पसीना, स्वेद-कण।

सिक्का—संज्ञा पुं. [अ. सिक्कः] (१) मोहर, छाप। (२) टकसाल में ढला हुआ निर्दिष्ट मूल्य का धातु खंड। (३) अधिकार, प्रभुत्व।

मुहा० सिक्का जमना या बैठना—(१) प्रभुत्व या अधिकार स्थापित होना। (२) रोब जमना, आतंक छाना। सिक्का जमाना या बैठाना—(१) प्रभुत्व या अधिकार स्थापित करना। (२) रोब जमाना, प्रभाव डालना।

सिक्ख—संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] (१) चेला, शिष्य। (२) गुरु नानक के पंथ का अनुयायी, सिख।

संज्ञा स्त्री. [सं. शिक्षा] सीख, उपदेश।

संज्ञा पुं. [सं. शिखा] चोटी, शिखा।

सिक्त—वि. [सं.] (१) सींचा हुआ। (२) भीगा हुआ।

सिखंड—संज्ञा पुं. [सं. सिखंडी] (१) मोर, मयूर। (२) मोर का पंख। उ.—(क) कुटिल भ्रू पर तिलक-रेखा सीस सिखिनि सिखंड—१-३०७। (ख) सिखी सिखंड सीस, मुख मुरली—४७६।

संज्ञा पुं. [सं. श्रीखंड] (१) हरिचंदन। (२) शिखरन।

सिखंडी—संज्ञा पुं. [हिं. शिखंडी] (१) मोर, मयूर। (२) मुर्गा (पक्षी)। (३) बाण, तीर। (४) शिखा। (५) राजा द्रुपद का नपुंसक पुत्र जिसे सामने करके अर्जुन ने भीष्म को मारा था। उ.—पारथ भीषम सौं मति पाइ। कियौ सारथी सिखंडी आइ। भीषम ताहि देखि मुख फेरयौ—१-२७६।

सिख—संज्ञा स्त्री. [सं. शिक्षा] सीख, उपदेश। उ.—(क) चिंता तजौ परीच्छित राजा सुन सिख-साखि हमार—२-२। (ख) सुनु सिख कंत दंत तृन धरिकै

स्यौं परिवार सिधारौ—९-११५। (ग) किती दई सिख-मंत्र साँवरे तउ हठ लहरि न जागी—२२७५। (घ) सुन री सखी समुझि सिख मेरी—२८५१।

संज्ञा स्त्री. [सं. शिखा] चोटी, शिखा। उ.—रोम-रोम नख-सिख लौं मेरैं महा अघनि बपु पाग्यौ—१-१३।

संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] (१) चेला, शिष्य। (२) गुरु नानक आदि दस गुरुओं का अनुयायी।

सिखई—क्रि. स.[हिं. सिखाना] (१) शिक्षा दी, सिखायी। उ.—इक हरि चतुर हुते पहिले ही, अब बहुतै उन गुरु सिखई—३३०४। (२) सिखाया है। उ.—तोहिं किन रूठब सिखई प्यारी—२२०१।

संज्ञा स्त्री. सिखायी हुई बात। उ.—श्रीमुख की सिखई ग्रंथो कत, तें सब भईं कहानी—३४६९।

वि. सिखायी हुई। उ.—सिखई कहत स्याम की बतियाँ, तुमकौं नाहिंन दोपु—३०२६।

सिखना—क्रि. स. [हिं. सीखना] (१) कोई बात जानना। (२) किसी काम को समझना।

सिखये—क्रि. स. [हिं. सिखाना] सिखा-पढ़ा दिये (जाने पर)। उ.—एक बेर श्रीपति के सिखये, उन आयो सब गुन गान—२३४०।

सिखयो, सिखयौ—क्रि. स. [हिं. सिखाना] सिखाया-पढ़ाया, समझाया। उ.—जसुमति माइ कहा सुत सिखयौ—७७१।

सिखर—संज्ञा पुं. [सं. शिखर] (१) सिरा, चोटी। (२) पहाड़ की चोटी। उ.—चढ़ि गिरि-सिखर सब्द इक उचरचौ गगन उठचौ आघात—९-७४। (३) कँगूरा, कलश। (४) गुंबद।

संज्ञा पुं. [हिं. सिकहर] छींका।

सिखरन, सिखरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. शिखरन] दही मिला हुआ चीनी का गाढ़ा शरबत। उ.—बासौंधी सिखरनि अति सोंधी—२३२१।

सिखराना, सिखरानो—क्रि. स. [हिं. सिखलाना] (१) किसी बात की जानकारी कराना। (२) समझाना, बताना।

सिखरावै—क्रि. स. [हिं. सिखलाना] समझाता या बताता है। उ.—आपुन सिखै औरनि सिखरावै—१०७०।

सिखलाना, सिखलानो—क्रि. स. [हिं. सिखाना] (१) किसी बात की जानकारी कराना। (२) बताना, समझाना।

सिखवत—क्रि. स. [हिं. सिखाना] बताता या समझाता है। उ.—(क) फिरि-फिरि बात सोइ सिखवत, हम दुख पावत जातैं—२०२४। (ख) निरगुन ज्योति कहाँ उन पाई, सिखवत बारंबार—३२१५।

सिखवति—क्रि. स. [हिं. सिखाना] सिखाती है, अभ्यास कराती है। उ.—सिखवति चलनि जसोदा मैया—१०-११५।

क्रि. वि. सिखाते-सिखाते, समझाते-समझाते। उ.—सूरस्याम को सिखवति हारी, मारेहु लाज न आवति—८६५।

सिखवन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिखावन] (१) सीख, उपदेश। उ.—अंतहु सिखवन सुनहु हमारी, कहियत बात बिचारी—३३१३। (२) सिखाने की क्रिया, भाव या उद्देश्य (से)। उ.—(क) आईं सिखवन भवन पराएँ स्यानि ग्वालि बौरैया—३७१। (ख) जाहि ज्ञान सिखवन तुम आए—३३१३।

सिखवहु—क्रि. स. [हिं. सिखाना] सिखाओ, बताओ। उ.—धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि। आपुन बैठि गए तिनकैं सँग, सिखवहु मोहिं कहत गोपालनि—४००।

सिखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शिखा] चोटी, शिखा।

सिखाना, सिखानो—क्रि. स. [सं. शिक्षण] (१) शिक्षा या उपदेश देना। (२) पढ़ाना, समझाना।

मुहा० सिखाना-पढ़ाना—(१) चालाकी सिखाना, चालबाजी बताना। (२) खूब कान भरना।

(३) धमकाना, दंड या ताड़ना देना।

सिखापन—संज्ञा पुं. [हिं. सिखाना+पन] सीख, उपदेश।

सिखायो, सिखायौ—क्रि. स. [हिं. सिखाना] बताया-समझाया है। उ.—बाबा मोकौं दुहन सिखायौ—६६७।

सिखावत—क्रि. स. [हिं. सिखावना] बताते-समझाते हैं। उ.—(क) ये बशिष्ठ कुल-इष्ट हमारे, पालागन कहि सखनि सिखावत—९-१६७। (ख) निज प्रतिबिंब

सिखावत ज्यौं सिसु—१०-२६७। (ग) कोउ हेरी देत परस्पर स्याम सिखावत—४३१। (घ) वेनु पानि गहि मोकों सिखावत मोहन गावन गौरी—२८७३।

सिखावतिं—क्रि. स. [हिं. सिखावना] **बताती हैं, अभ्यास कराती हैं।** उ.—जसुमति-सुत कौं चलन सिखावति अँगुरी गहि-गहि दोउ जनियाँ—१०-१३२।

सिखावति—क्रि. स. [हिं. सिखावना] **समझाती है।** उ. —जसुमति कान्हहिं यहै सिखावति। सुनहु स्याम अब बड़े भए तुम, कहि अस्तन-पान छुड़ावति–१०-२२२।

सिखावन—संज्ञा पुं. [हिं. सिखाना + वन] **सीख।**

सिखावना, सिखावनो–क्रि. स. [हिं. सिखाना] **सिखाना।**

सिखावहु—क्रि. स. [हिं. सिखावना] **बताओ, समझाओ।** उ.—मैं दुहिहौं, मोहिं दुहन सिखावहु—४०१।

सिखावैं—क्रि. स. [हिं. सिखावना] **बतायेंगे, सिखायेंगे।** उ.—काल्हि तुम्हैं गो-दुहन सिखावैं, दुहीं सकल अब गाइ—४००।

सिखावै – क्रि. स. [हिं. सिखाना] (१) **समझाता-बुझाता है।** (२) **सीख देता है।** उ.—छिन न रहै नँदलाल इहाँ बिनु जो कोउ कोटि सिखावै —३४१०। (२) **समझा-बुझा सकता है।** उ.—मूरख कौं कोउ कहा सिखावै—३९१।

सिखि—संज्ञा पुं. [सं. सिखिन्] **मोर (पक्षी), मयूर।** उ.—चंद्र-चूड़ सिखि-चंद सरोरुह जमुना-प्रिय गंगा-धारी – १०-१७१।

सिखिर—संज्ञा पुं. [सं. शिखर] **पर्वत की चोटी।**

सिखी—संज्ञा पुं. [हिं. शिखी] **मोर, मयूर।** उ.—सिखी सिखंड सीस—४७६।

सिखै—क्रि. स. [हिं. सीखना] (१) **सीखकर, समझकर।** उ.—आपुन सिखै औरनि सिखरावैं—१०७०। (२) **सीखें, समझें।** उ.—यह अक्रूर दसा जो सुमिरै, सीखै, सुनै अरु गावै—३४९४।

क्रि. स. [हिं. सिखाना] **सिखाकर, समझा-बुझा कर।** उ.— हरि कौ सिखै, सिखावत हमको अब ऊधो पग धारे—३०५५।

क्रि. वि. **सिखा-पढ़ाकर, समझा-बुझाकर।** उ.— इक हम जरैं खिझावन आए, मानो सिखै पठाए—३२१०।

सिगरा—वि. [सं. समग्र] **सब, सारा।**

सिगरी—वि. स्त्री. [हिं. सिगरा] (१) **सब, सारी (परिमाणवाचक)।** उ.—(क) सिगरी रैनि नींद भरि सोवत जैसैं पसू अचेत– १-१२५। (ख) जाके बदन-सरोज निरखत आस सिगरी भरी—१०-३०२। (ग) सूर तहाँ नग अंग परसि रस लूटति निधि-सिगरी। (२) **सब (संख्यावाचक)।** उ.—उरहन कौं ठाढ़ी रहैं सिगरी—३९१।

सिगरे—वि. बहु. [हिं. सिगरो] **सब (संख्यावाचक)।** उ.—सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाँइ पिराइँ —५१०।

सिगरो, सिगरौ—वि. [हिं. सिगरा] **सारा (परिमाण-वाचक)।** उ.—नीके राखि लियो ब्रज सिगरो— ९९७।

सिगरोइ, सिगरौइ—वि. [हिं. सिगरा + ही] **सारा ही, सारा का सारा।** उ.—सिगरोइ दूध पियौ मेरे मोहन, बलहिं न दैहौं बाँटी—१०-२५९।

सिगारहार—संज्ञा पुं. [हिं. हरसिंगार] **हरसिंगार (फूल)।**

सिचान—संज्ञा पुं. [सं. संचान] **बाज (पक्षी)।**

सिच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं. शिक्षा] (१) **शिक्षा।** (२) **सीख।** उ.—हरि तिनसौं कह्यौ आइ, भली सिच्छा तुम दीनी—३-११।

सिजदा—संज्ञा पुं. [अ. सिजदा] **माथा टेकना।**

सिजल—वि. [हिं. सजीला] **सुंदर, रूपवान।**

सिझना, सिझनो क्रि. अ. [हिं. सीझना] **आँच या आग पर पकना।**

सिझाना, सिझानो—क्रि. स. [सं. सिद्ध, प्रा. सिज्झ + हिं. आना] (१) **आँच पर पकाकर गलाना।** (२) **कष्ट देना, पीड़ित करना।** (३) **मिलने योग्य या प्राप्य करना।** (४) **बहला-फुसलाकर (धन) वसूल करना।** (५) **शरीर को तपाना, तपस्या करना।**

सिटकिनी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **चटकिनी।**

सिटपिटाना, सिटपिटानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) **मंद पड़ना, दबना।** (२) **भयभीत या संकुचित होकर स्तब्ध रह जाना।** (३) **दुबिधा या असमंजस में पड़**

जाना।

सिट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीटना] बढ़-बढ़कर बोलना, डींग हाँकना।

यौ० सिट्टी-पिट्टी—होश-हवास।

मुहा० सिट्टी (पिट्टी) गुम होना या भूलना —बहुत घबरा जाना, होश-हवास ठीक न रहना।

सिट्ठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीठी] (१) नीरस भाग। (२) सारहीन पदार्थ। (३) बची-खुची चीज।

सिठनी—संज्ञा स्त्री. [सं. अशिष्ट] विवाह के अवसर पर गायी जानेवाली गालियाँ।

सिठाई - संज्ञा स्त्री. [हिं. सीठी] फीकापन, नीरसता।

सिड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिड़ी] (१) पागलपन। (२) धुन, झक, सनक।

मुहा० सिड़ सवार होना—धुन, झक या सनक चढ़ना।

सिड़वारा—वि. [हिं. सिड़+वाला] (१) पागल। (२) सनकी, झक्की। (३) मनमौजी।

सिड़ी—वि. [सं. शृणीक] (१) पागल बावला। (२) सनकी, झक्की (३) मनमानी करनेवाला।

सित—वि. [सं.] (१) सफेद, उजला। उ.—(क) असित अरुन सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै—१०-६५। (ख) अरुन असित सित बपु उनहार। (२) चमकीला, उज्ज्वल। उ.—अगिनि-पुंज सितबान धनुष धरि तोहिं असुर-कुल सहित जरावन-९-१३१। (३) स्वच्छ, निर्मल।

संज्ञा पुं. (१) शुक्र ग्रह। (२) शुक्ल पक्ष। (३) शुक्राचार्य। (४) चीनी, शक्कर। (५) चाँदी, रजत।

सितकंठ - वि. [सं.] जिसका कंठ सफेद हो।

संज्ञा पुं. [सं. शितिकण्ठ] महादेव, शिव।

सितकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सितकुंजर—संज्ञा पुं. [सं.] ऐरावत हाथी।

सितच्छद—संज्ञा पुं. [सं.] हंस, मराल।

सितता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सफेदी। (२) चमकीलापन, उज्ज्वलता। (३) निर्मलता, स्वच्छता।

सितपच्छ, सितपच्छ—संज्ञा पुं. [सं. सितपक्ष] (१) हंस, मराल। (२) शुक्लपक्ष। उ.-सो सितपच्छ सम बीतत कबहुँ न देत दिखाई—३४८६।

सितपुष्पा—संज्ञा पुं. [सं.] चमेली-विशेष, मल्लिका।

सितभानु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सितम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) अनर्थ। (२) अत्याचार।

सितमगर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] दुखदायी, अत्याचारी।

सितल—वि. [सं. शीतल] (१) ठंढा। (२) शांत।

सितलता—संज्ञा स्त्री. [सं. शीतलता] (१) ठंढक। (२) शांति, उद्वेगहीनता।

सितलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. शीतल+आई] शीतलता।

सितवराह—संज्ञा पुं. [सं.] श्वेतवाराह जिसने पृथ्वी का उद्धार किया था।

सितवराहपत्नी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

सितसागर—संज्ञा पुं. [सं.] क्षीरसागर।

सितांबर—वि. [सं.] श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले।

संज्ञा पुं. जैनों का श्वेतांबर संप्रदाय।

सितांशु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

सिता—संज्ञा स्त्री.—[सं] (१) चीनी, शक्कर। (२) शुक्लपक्ष। (३) मोतिया, मल्लिका। (४) चाँदनी, चंद्रिका। (५) शराब, मदिरा। (६) चाँदी, रजत।

सिताब—क्रि. वि. [फ़ा. शिताब] (१) शीघ्र। (२) सहज में।

सितार—संज्ञा पुं. [सं. सप्त+तार] एक प्रसिद्ध बाजा जिसके तार उँगली से बजाये जाते हैं।

सितारा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सितार] (१) तारा, नक्षत्र। (२) भाग्य, प्रारब्ध।

मुहा० सितारा चमकना या बुलंद होना—भाग्योदय होना। सितारा मिलना—परस्पर प्रेम होना।

(३) चाँदी-सोने के पत्तरों की छोटी-छोटी गोल बिंदियाँ, चमकी।

संज्ञा पुं. [हिं. सितार] सितार बाजा।

सितारिया—वि. [हिं. सितार] सितार बजानेवाला।

सितारेहिंद—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक उपाधि जो 'स्टार आव इंडिया' का अनुवाद है।

सितासित—वि. [सं.] सफेद और काला।

सिति—वि. [सं. शिति] (१) सफेद। (२) श्याम।

सितिकंठ—संज्ञा पुं. [सं. शितिकंठ] महादेव, शिव।

सितिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सफेदी, श्वेतता।
सितोत्पल—संज्ञा पुं. [सं.] सफेद कमल।
सितोदर—संज्ञा पुं. [सं.] श्वेत उदरवाला, कुबेर।
सिथिल—वि. [सं. शिथिल] (१) जो अच्छी तरह बँधा, कसा और जकड़ा न हो, ढीला। उ.—(क) सुभ स्रवननि तरल तरीन, वेनी सिथिल गुही—१०-२४। (ख) सिथिल धनुष रति-पति गहि डारयौ—१०-२३३। (२) धीमा, जो कड़ा न हो, कोमल। उ.—सहज सिथिल पल्लव तैं हरि जू लीन्हे छोरि सवारि—पृ. ३४८ (५)। (३) अलसाया हुआ, आलस्ययुक्त। उ.—सिथिल रूप मन में लस वाको—२६०६।
सिथिलाइ, सिथिलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. शिथिल] शिथिलता।
सिद—संज्ञा पुं. [सं. सिद्ध] (१) सुनार। (२) पारखी।
सिदिक—वि. [अ. सिद्क] सच्चा, खरा।
सिदौसी—क्रि. वि. [देश.] जल्दी, शीघ्र।
सिद्ध—वि. [सं.] (१) जिसका साधन हो चुका हो, संपन्न, संपादित। (२) प्राप्त, सफल, उपलब्ध। (३) प्रयत्न में सफल, कृतकार्य। (४) जिसका तप, योग या आध्यात्मिक साधना पूरी हो चुकी हो। (५) जो योग की विभूतियाँ प्राप्त कर चुका हो। (६) जिसे अलौकिक सिद्धि हुई हो। (७) लक्ष्य पर पहुँचा हुआ। (८) जिस (कथन) के अनुसार ही कोई बात घटी हो। (९) जो तर्क या प्रमाण से ठीक या निश्चित हो, प्रमाणित। (१०) जो नियमानुसार ठीक हो। (११) जिसका फैसला या निबटारा हो चुका हो। (१२) पकाकर तैयार किया हुआ। उ.—देखौ आइ जसोदा सुत-कृत, सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायो—१०-२४८। (१३) प्रसिद्ध। (१४) तैयार, प्रस्तुत।

संज्ञा पुं. (१) वह जिसने योग या तप में अलौकिक शक्ति या सिद्धि प्राप्त की हो। (२) वह जो पूर्ण योगी या ज्ञानी हो। (३) बहुत पहुँचा हुआ संत या महात्मा। (४) एक देवयोनि।
सिद्धकाम—वि. [सं. (१) जिसकी कामना पूरी हो गयी हो। (२) सफल, कृतकार्य।
सिद्धगुटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह (कल्पित) मंत्र सिद्ध गोली जिसे मुँह में रखने से व्यक्ति अदृश्य हो जाता है।
सिद्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सिद्ध होने की स्थिति या अवस्था। (२) प्रामाणिकता। (३) पूर्णता।
सिद्धपीठ - संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जहाँ योग या तांत्रिक साधन में शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो।
सिद्धधर - संज्ञा पुं. [सं. सिद्धि + धर] एक ब्राह्मण जो कंस की आज्ञा से श्रीकृष्ण को मारने गया था और श्रीकृष्ण ने जिसकी जीभ मरोड़ दी थी। उ.—सिद्ध (श्रीधर) बाँभन करम कसाई। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई—१०-५७।
सिद्धविनायक—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश की एक मूर्ति।
सिद्धहस्त—वि. [सं.] (१) जिसका हाथ किसी काम में खूब सधा हुआ या साफ हो। (२) कुशल, निपुण।
सिद्धांजन—संज्ञा पुं. [सं.] वह (कल्पित) अंजन जिसे आँखों में लगा लेने से जमीन के भीतर गड़ी चीजें भी दिखायी देने लगती हैं।
सिद्धांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोच-विचार कर निश्चित किया हुआ मत, उसूल, नियम। (२) मुख्य उद्देश्य, अभिप्राय या लक्ष्य। (३) वह बात या मत जो विद्या, कला आदि के संबंध में विद्वानों द्वारा स्थापित किया जाय। (४) ऋषि-मुनियों के मान्य उपदेश। (५) तत्व की बात। उ.—सकल निगम सिद्धांत जन्मकर स्याम उन सहज सुनायी—३४९०। (६) पूर्ण या विरोधी पक्ष के खंडन के पश्चात् स्थिर किया गया मत। (७) शास्त्र-विशेष संबंधी ग्रंथ।
सिद्धांतित—वि. [सं.] तर्क से प्रमाणित।
सिद्धांती—वि. [सं. सिद्धांत] (१) तार्किक। (२) शास्त्रीय तत्वों का ज्ञाता। (३) अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहनेवाला।
सिद्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सिद्ध' की पत्नी।

संज्ञा पुं. [सं. असिद्ध] बिना पका हुआ अन्न, सीधा जिसमें कच्चा अनाज रहता है।
सिद्धाई—संज्ञा स्त्री. [सं. सिद्ध + हिं. आई] सिद्धपन।
सिद्धार्थ—वि. [सं.] जिसकी कामना पूर्ण हो गयी हो।

संज्ञा पुं. (१) गौतम बुद्ध। (२) राजा दशरथ

का एक मंत्री ।

सिद्धासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) योग-साधना का एक आसन । (२) सिद्ध पीठ ।

सिद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) काम का पूरा होना, पूर्णता । उ.—राजा कह्यौ सप्त दिन माहिं सिद्धि होति कछु दीसति नाहिं—१-१४१ । (२) सफलता, कृतकार्यता । (३) प्रमाणित होना । (४) निर्णय, निश्चय । (५) पकना, सीझना । (६) योग, तप आदि से प्राप्त अलौकिक शक्ति या संपन्नता । (७) योग-साधन के अलौकिक फल जो आठ सिद्धियों के रूप में माने गये हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व । उ.—अष्ट सिद्धि नवनिधि सुर-संपति—१०-२०४ । (८) मुक्ति, मोक्ष । (९) दक्षता, निपुणता । (१०) भाँग, विजया ।

सिद्धिदाता - संज्ञा पुं. [सं. सिद्धिदातृ] गणेश ।

सिद्धिभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] सिद्धपीठ ।

सिद्धेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महायोगी । (२) शिव ।

सिध · वि. [सं. सिद्ध] पकाकर तैयार किया हुआ । उ.—सिध जेवन सिरात, बैठे नंद, ल्यावहु बोलि कान्ह तत्कालहिं—१०-२३६ ।

संज्ञा पुं. योगी, ज्ञानी । उ.—मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी, सुनि सिध-समाधि टरी—६२३ ।

सिधवाना, सिधवानो—क्रि. स.[हिं.सीधा] सीधा कराना ।

सिधाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीधा] सीधापन, सरलता ।

क्रि. अ. [हिं. सिधाना] गयी, गमन किया । उ.—(क) नंद-घरनि कछु काज सिधाई—१०-५० । (ख) सतभामा करि सोक पिता को जदुपति पास सिधाई —१० उ.-२७ ।

सिधाए—क्रि. अ. [हिं. सिधाना] गये, प्रस्थान किया । उ.—सूरदास हरि के गुन गावत हरषवंत निज पुरी सिधाए—३८६ ।

सिधाना, सिधानो—क्रि. अ. [हिं. सीधा+जाना] जाना, गमन या प्रस्थान करना ।

सिधाये—क्रि. अ. [हिं. सिधाना] गए, प्रस्थान किया । उ.—स्याम आनंद सहित पुर सिधाए—१० उ.-२१ ।

सिधायो, सिधायौ – क्रि. अ. [हिं. सिधाना] गया, गमन किया । उ.—(क) सूर के प्रभु की सरन आयौ जो नर करि जगत-भोग बैकुंठ सिधायौ—४-१० । (ख) यह सुनि ह्वाँ तैं भरत सिधायौ—५-३ ।

सिधारना, सिधारनो—क्रि. अ. [हिं. सिधाना] (१)जाना, गमन या प्रस्थान करना (२) मरना, स्वर्गवास होना ।

क्रि. स. [हिं. सुधारना] ठीक करना, सुधारना ।

सिधारे—क्रि. अ. [हिं. सिधारना] गये, प्रस्थान किया । उ.—(क) सूरज-प्रभु नँद-भवन सिधारे—१०-१० । (ख) सदा रहत बर्षा रितु हम पर जब तें स्याम सिधारे—२७६३ ।

सिधारो, सिधारौ—क्रि. अ. [हिं. सिधारना] जाओ, प्रस्थान करो । उ.—तुम लछिमन निज पुरहिं सिधारौ—९-३६ । (ख) सुनु सिख कंत दंत तृन धरिकै, स्यौं परिवार सिधारौ—९-११५ । (ग) श्रीकंत सिधारौ मधुसूदन पै, सुनियत हैं, वै मीत तुम्हारे—१० उ.-६० ।

सिधारचो, सिधारचौ—क्रि. अ. [हिं. सिधारना] चला गया, मर गया । उ.—काल-अवधि पूरन भई जा दिन तनहूँ त्यागि सिधारचौ—१-३३६ ।

सिधावै—क्रि.अ. [हिं. सिधाना] (मरकर) जाता है । उ.-निष्कामी बैकुंठ सिधावै—३-१३ ।

सिधि—संज्ञा स्त्री. [सं. सिद्धि] योग-साधना के अलौकिक फलस्वरूप प्राप्त आठ शक्तियाँ या सिद्धियाँ । उ. —(क) अष्ट महासिधि द्वारैं ठाढ़ी—१-४० । (ख) सूर स्याम सहाइ हैं तो आठहूँ सिधि लेहि—१-३१४ । (ग) तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं रिधि-सिधि फिरि-फिरि जाहीं—१-३२३ ।

सिन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शरीर (२) वस्त्र ।

संज्ञा पुं. [अ.] उम्र, अवस्था ।

अव्य. [पुं. हिं. सन] से । उ.—तौ का कहिए सूर स्याम सिन—३३९४ ।

सिनि, सिनी—संज्ञा पुं. [सं. शिनि] (१) एक यादव जो सात्यकि का पिता था । (२) क्षत्रियों की एक प्राचीन शाखा ।

सिनीवाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक वैदिक देवी । (२) शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा । (३) एक प्राचीन नदी ।

सिन्नी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शीरीनी] पीर या देवता को

चढ़ाकर प्रसाद-रूप में बाँटी जानेवाली मिठाई।
सिपर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (वार रोकने की) ढाल।
सिपरा—संज्ञा स्त्री. [सं. सिप्रा] (१) स्त्रियों का कटिबंध। (२) मालवा की एक नदी जिसके किनारे उज्जैन बसा है।
सिपहसालार—संज्ञा पुं. [फ़ा.] सेनानायक।
सिपाई—संज्ञा पुं. [फ़ा. सिपाही] सैनिक, योद्धा।
सिपारस—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिफारिश] सिफारिश।
सिपारसी—वि. [हिं. सिफारशी] सिफारशी।
सिपारा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] 'कुरान' के तीस भागों में कोई एक।
सिपाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] फौज, सेना, कटक।
सिपाहियाना—वि. [फ़ा.] सिपाही-जैसा।
सिपाही—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) योद्धा, सैनिक। (२) पुलिस विभाग का कर्मचारी। (३) पहरेदार। (४) चपरासी।
सिप्पर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सिपर] ढाल।
सिप्पा—संज्ञा पुं. [देश] (१) निशाने या लक्ष्य पर किया गया वार। (२) कार्य-साधन का डौल या उपाय।
मुहा. सिप्पा जमना (भिड़ना, लड़ना)—(१) कार्य-साधन की युक्ति होना। (२) डौल या उपाय का सफल होना। सिप्पा जमाना (भिड़ाना, लड़ाना)—कार्य-साधन का उपाय करना।
(३) डौल, प्रारम्भिक उपाय, सूत्रपात, भूमिका।
मुहा. सिप्पा जमना (भिड़ना, लड़ना)—कार्य-साधन की भूमिका तैयार होना। सिप्पा जमाना—(भिड़ाना, लड़ाना)—कार्य-साधन की भूमिका तैयार करना।
(४) रंग, धाक, प्रभाव। (५) एक तरह की तोप।
सिप्पी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीपी] 'सीप' नामक जंतु का आवरण या संपुट।
सिप्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्त्रियों का कटिबंध। (२) मालवा की एक नदी जिसके किनारे उज्जैन बसा है।
सिफत—संज्ञा स्त्री. [अ. सिफ़त] (१) गुण, विशेषता। (२) लक्षण। (३) स्वभाव। (४) सूरत, शक्ल।
सिफर—संज्ञा पुं [अ. सिफ़र] शून्य।
सिफारिश—संज्ञा स्त्री, [फ़ा. सिफ़ारिश] किसी के पक्ष में कुछ अनुकूल अनुरोध, अनुशंसा।
सिफारिशी—वि. [फ़ा. सिफ़ारशी] (१) जिसमें सिफारिश की गयी हो। (२) जिसकी सिफारिश की गयी हो।
यौ. सिफारशी टट्टू—जो (योग्यता से नहीं) केवल सिफारिश के बल पर उन्नति करता हो।
सिबिका—संज्ञा स्त्री. [सं. शिविका] डोली, पालकी।
सिमंत—संज्ञा पुं. [सं. सीमंत] स्त्री (के सिर) की माँग।
सिमट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिमटना] सिमटने-सिकुड़ने की क्रिया, भाव या स्थिति।
सिमटना, सिमटनो—क्रि. अ. [सं. समित+ना] (१) सुकड़ना, संकुचित होना। (२) शिकन या सिलवट पड़ना। (३) बटुरना, इकट्ठा होना। (४) (कार्य) पूरा होना, निपटना। (५) लज्जित या संकुचित होना। (६) सिटपिटा जाना।
सिमरना, सिमरनो—क्रि. स, [हिं. सुमिरना] स्मरण करना।
सिमरिख—संज्ञा स्त्री. [देश] एक चिड़िया।
संज्ञा पुं. [शिंग़रफ़] ईंगुर।
वि. ईंगुर के रंग का।
सिमाना—संज्ञा पुं. [सं. सीमांत] हद, सीमा, सिवाना।
क्रि. स. [हिं. सिलाना] सिलाना।
सिमिट—क्रि. अ. [हिं. सिमटना] एकत्र होकर। उ.—परिवा सिमिट सकल ब्रजवासी चले जमुन-जल न्हान—२४४६।
सिमिटना, सिमिटनो—क्रि. अ.[हिं. सिमटना] सिमटना।
सिमिटि—क्रि. अ. [हिं. सिमिटना] बटुर कर, एकत्र होकर। उ.—इतनी सुनत सिमिटि सब आए प्रेम-सहित धारे अँसुपात—९-३८। (ख) मानौ जल-जीव सिमिटि जाल मैं समान्यौ—९-९६।
सिमिटैं—क्रि. अ. [हिं. सिमिटना] बटुरकर (एकत्र हों)। उ.—यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं आइ होइ इक ठौर—१-१४६।
सिमृति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] याद, स्मृति।
सिमेटना, सिमेटनो—क्रि. स. [हिं. समेटना] (१) सुकोड़ना, संकुचित करना। (२) इकट्ठा या एकत्र करना। (३) (काम) पूरा करना या निबटाना।

सिय—संज्ञा स्त्री. [सं. सीता] **जानकी, सीता ।**

सियना, सियनो—क्रि. अ. [सं. सृजन] **उत्पन्न करना ।**

क्रि. अ. [हिं. सीना] **(वस्त्रादि) सीना ।**

सियपति—संज्ञा पुं. [सं. सीता+पति] **श्रीरामचंद्र ।** उ.—हा सीता, सीता, कहि सियपति उमड़ि नयन जल भरि-भरि ढारत—९-६२ ।

सियर—वि. [हिं. सियरा] **ठंढा, शीतल ।**

सियरना, सियरनो—क्रि. अ. [हिं. सियरा] **शीतल होना ।**

सियरा—वि. [सं. शीतल, प्रा. सीअड़] (१) **ठंढा, शीतल ।** (२) **कच्चा, अपक्व ।**

सियराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सियरा+ई] **ठंढक, शीतलता ।** उ.—मुकुलित कुसुम नयन निद्रा तजि रूप-सुधा सियराई—२८११ ।

संज्ञा पुं. [सं. सीता+राज, हिं. राय] **श्रीराम ।**

क्रि. अ. **ठंढी या शीतल हो गयी ।**

सियराना, सियरानो—क्रि. अ. [हिं. सियरा+ना] **जुड़ाना, ठंढा या शीतल होना ।**

सियरी—वि. स्त्री. [हिं. सियरा] **ठंढी, शीतल ।**

सियरो—वि. [हिं. सियरा] **शीतल, सुखदाई ।** उ.—विषयासक्त रहत निसिबासर सुख सियरो, दुख तातौ—१-३०२ ।

सिया—संज्ञा स्त्री. [सं. सीता] **जानकी, सीता ।** उ.—बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषन सिया दिखाए-९-७० ।

सियाना, सियानो—वि. [हिं. सयाना] (१) **चतुर ।** (२) **वयस्क ।**

क्रि. स. [हिं. सिलाना] **सिलाना ।**

सियापा—संज्ञा पुं. [हिं. स्यापा] **मरे हुए संबंधी के शोक में प्रतिदिन परिवार और जाति की स्त्रियों के एकत्र होकर रोने-पीटने की रीति ।**

सियार—संज्ञा पुं. [हिं. स्यार] **गीदड़, जंबुक ।** उ.—सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर-स्वान सियार —१-१४ ।

सियारा—संज्ञा पुं. [हिं. सियरा+काल] **शीतकाल ।**

सियारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. स्यारी] **गीदड़ी ।**

सियाल—संज्ञा पुं [सं. शृगाल] **गीदड़, जंबुक ।** उ.—चहुँ दिसि सूर सोर करि धावैं ज्यों केहरिहि सियाल ।

सियाला—संज्ञा पुं. [सं. शीतकाल] **जाड़े की ऋतु ।**

सियाली—वि. [हिं. सियाला] **जाड़े की फसल ।**

सियाह—वि. [हिं. स्याह] **काला ।**

सियाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. स्याही] (१) **रोशनाई ।** (२) **कालिमा ।**

सिर—संज्ञा पुं. [सं. शिरस्] (१) **शरीर का सबसे ऊपरी भाग, खोपड़ी, कपाल ।** (२) **शरीर में गर्दन के ऊपर का भाग ।** उ.—(क) मीन इंद्री तनहिं काटत मोट अघ सिर भार—१-९९ । (ख) दंभ-छत्र सिर तान्यौ —१-१४१ ।

मुहा.—सिर-आँखों पर बैठाना या लेना—**बहुत स्वागत-सत्कार के साथ ग्रहण करना ।** सिर-आँखों पर होना—**सहर्ष स्वीकार करना, शिरोधार्य होना ।** सिर उठाना—(१) **दुख, कष्ट, रोग आदि से छुटकारा पाना ।** (२) **विरोध या शत्रुता के लिए खड़ा होना ।** (३) **उधम या उपद्रव करना ।** (४) **घमंड करना ।** (५) **लज्जित न होना ।** (६) **ससम्मान खड़ा होना या जीवन व्यतीत करना ।** सिर उठाने की फुरसत न होना—**कार्य की अधिकता के कारण बहुत व्यस्त होना ।** सिर उठाकर चलना—**अकड़कर चलना, घमंड दिखाना ।** सिर उतरवाना—**मरवा डालना ।** सिर उतारना—**मार डालना ।** (किसी का) सिर ऊँचा करना—**सम्मान बढ़ाना, सम्मान का पात्र बनाना ।** (अपना) सिर ऊँचा करना—**(प्रतिष्ठित लोगों में) प्रतिष्ठा के साथ रहना ।** सिर (के) ऊपर—**बहुत ही निकट ।** उ.—(क) अजहूँ चेति भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ—१-८० । (ख) सिर ऊपर बैठे रखवारे—१०१० । सिर औंधाकर पड़ना (औंधाना)—**बहुत चिंता या दुख से सिर झुकाना, सिर झुकाकर बहुत चिंता या दुख सूचित करना ।** सिर करना—(१) **(स्त्रियों का) केश सँवारना ।** (२) **बहुत लाड़-प्यार करना ।** (कोई वस्तु) सिर करना—**इच्छा के विरुद्ध देना, गले मढ़ना ।** सिर काटना—**मार डालना ।** सिर काढ़ना—**प्रसिद्ध होना ।** सिर का बोझ टलना—**झंझट या मुसीबत दूर होना, बला टलना ।** सिर का बोझ टालना—**जी लगाकर न करना, बेगार टालना ।** सिर

के बल चलना या जाना—(१) (किसी के प्रति) बहुत विनीत भाव या आदर प्रदर्शित करते हुए जाना या चलना। (२) प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहन करते हुए जाना या चलना। सिर खाली करना—(१) बहुत बकवाद करना। (२) सोच-विचार करके हैरान होना। सिर खाना—बहुत बकवाद करके तंग या परेशान करना। सिर खपाना—(१) बहुत सोच विचार करके हैरान होना। (२) किसी कार्य में बहुत व्यस्त या व्यग्र होना। सिर खुजलाना—(१) मार खाने की इच्छा होना। (२) शरारत सूझना। सिर चकराना—(१) सिर में चक्कर आना। (२) घबराहट या चिंता से विभ्रम होना। सिर चढ़ा—बहुत मुँह लगा हुआ, ढीठ, धृष्ट। सिर चढ़ाना—(१) माथे से लगाकर सम्मान या पूज्य भाव दिखाना। (२) किसी को मुँह लगाकर धृष्ट कर देना। (३) किसी देवी-देवता के सामने या महत् उद्देश्य से सिर कटा देना। (४) आदर पूर्वक मान्य या शिरोधार्य करना। सिर घूमना—(१) सिर में चक्कर आना। (२) घबराहट या चिंता से विभ्रम होना। सिर चढ़कर बोलना—(१) भूत-प्रेत का प्रभाव पड़ना। (२) अपना पाप या अपराध छिपाने में असमर्थ होकर स्वयं प्रकट कर देना। सिर चढ़कर मरना—किसी के ऊपर क्रुद्ध होकर या प्रति-कार स्वरूप अपनी जान दे देना। सिर जोड़कर बैठना-मिलजुल कर रहना। सिर जोड़ना—(१) एकत्र होकर पंचायत करना। (२) कुचक्र या षड़यन्त्र रचना। सिर झाड़ना—बाल सभालना, कंघी करना। सिर झुकाना—(१) नमस्कार करना। (२) लज्जित होना। (३) चुपचाप मान लेना। सिर टकराते फिरना—जहाँ जाना वहाँ असफल होना। (किसी के) सिर डालना—कार्य-विशेष का भार (दूसरे को) सौंपना। सिर टूटना—लड़ाई-झगड़ा होना। सिर टेकना—(१) नमस्कार करना। (२) विनय दिखाना। सिर टेकि—माथा नवाकर। उ.—असुर सिर टेकि तब कह्यौ निज नृपति सों, नहिं तिहुँ भुवन कोउ सम तुम्हारे—१० उ.-३१। सिर ढोरना—(१) प्रसन्न होकर सिर हिलाना। (२) सहर्ष स्वीकार करना। सिर तोड़ना—(१) खूब मार-पीट करना। (२) वश में करना। सिर देना—प्राण निछावर करना। सिर देत—प्राण निछावर करता है। उ.—सूरदास सिर देत सूरमा सोइ जानै व्यवहार—२९०५। (किसी के) सिर दोष देना—(दूसरे को) दोषी या अपराधी बताना। सिर दोष लगावन कौं—दोषी या अपराधी बताने के लिए। उ.—तुम तौं दोष लगावन कौं सिर, बैठे देखत नैरैं। सिर धरना—सादर स्वीकार करना, शिरोधार्य करना। (किसी के) सिर धरना (दूसरे पर) दोष या अपराध लगाना। सिर धारचौ सादर स्वीकार किया, शिरोधार्य किया। उ. मात-पिता-पति-बंधु-सुजनजन तिनहूँ को कहिबो सिर धारचौ—३०३५। सिर धुनना—अपनी भूल समझकर शोक और पछतावा करना। सिर धुनत—अपनी भूल के लिए शोक और पछतावा करता है। उ.—बार-बार सिर धुनत जातु मग, कैहौं कहा बदन दिखराई—९७७। सिर धुनति—अपनी भूल के लिए शोक और पछतावा करती हैं। उ.—कर मीड़ति सिर धुनति नारि सब यह कहि-कहि पछिताहीं—१८००। सिर धुनति—अपनी भूल के लिए शोक करती और पछताती है। उ.—बार-बार सिर धुनति बिसूरति बिरह-ग्राह जनु भखियाँ—२७६६। सिर धुनि—सिर पीट-पीट कर, बहुत शोक और पश्चाताप करके। उ.—(क) कहत सूर भगवंत-भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछितायौ—१-३३५। (ख) रोहिनी चितै रही जसु-मति तन सिर धुनि-धुनि पछितानी-३९५। (ग) नारद गिरा सम्हारी पुनि-पुनि सिर धुनि आयु सरै—२४६२। सिर नंगा करना—(१) (पुरुष का) सिर से टोपी या पगड़ी उतारना। (२) (स्त्री का) सिर से धोती या पल्ला उतारना। (३) इज्जत लेना, अपमानित करना। सिर नवाना—(१) सिर झुकाना, नमस्कार करना। (२) दीन या विनम्र बनना। सिर नीचा करना—(१) लज्जित या अपमानित करना। (२) पराजित करना। सिर नीचा होना—(१) लज्जित या अपमानित होना। (२) पराजित होना। सिर पचाना—(१) बहुत परि-श्रम करना। (२) बहुत सोच-विचार करके हैरान होना। सिर पटकना—(१) बहुत परिश्रम करना। (२) बहुत

पछताना। सिर पर—(१) ऊपर। (२) बहुत पास या सामने। सिर पर आ पड़ना—(१) अपने ऊपर आना या बीतना । (२) अपने जिम्मे पड़ना, अपने गले मढ़ा जाना । सिर पर आ जाना—(१) बहुत समीप आ जाना । (२) थोड़े ही दिन शष रह जाना । सिर पर उठा लेना—बहुत उधम मचाना या हो-हल्ला करना । सिर पर पाँव (पैर) रखकर भागना—बहुत तेजी से भागना । (किसी के) सिर पर पाँव रखना—(किसी के साथ) बहुत उद्दंडता का व्यवहार करना । सिर पर पृथ्वी या आसमान उठाना - बहुत शोर-गुल करना और उधम मचाना । सिर पर पड़ना—(१) जिम्मे पड़ना, गले मढ़ा जाना । (२, अपने ऊपर बीतना या घटित होना। सिर पर खून चढ़ना या सवार होना—(१) किसी की जान लेने को उतारू होना । (२) किसी की हत्या करके आपे में न रह जाना । सिर पर खेलना—अपने प्राण संकट में डालना । (किसी के) सिर पर खेलना—(दूसरे के सामने या उसकी उपस्थिति में ही) उद्दंडता दिखाना या दुष्कर्म करना । सिर पर रखना—(१) आदर-सत्कार करना । (२) सादर स्वीकार करना । सिर राखै—सादर स्वीकार करता है । उ. —अपने जन को प्रसाद सारी सिर राखै—२६१९ । (किसी के) सिर पर छप्पर रखना—बहुत बोझ या दबाव डालना । सिर पर मिट्टी डालना—बहुत शोक करना । सिर पर लेना—अपने ऊपर जिम्मेदारी लेना। सिर पर शैतान चढ़ना—बहुत ज्यादा गुस्सा आना । सिर पर जूं न रेंगना—जरा भी होश या ध्यान न आना । सिर रहना—मान या प्रतिष्ठा बनी रहना । किसी के सिर पर डालना—(दूसरे के) जिम्मे देना या सौंपना । सिर पर बीतना—अपने ऊपर पड़ना, भुगतना । सिर पर होना—(१) बहुत ही निकट होना (२) थोड़ा ही समय शेष रह जाना। (किसी का) किसी के सिर पर होना—संरक्षक होना । सिर पर हाथ धरना या रखना–(१) सहायक या संरक्षक होना। (२) शपथ खाना । (दर्द या पीड़ा से) सिर फटना या फटा जाना—सिर में बहुत दर्द या पीड़ा होना । सिर फिरना –(१) सिर चकराना। (२) होश-हवास ठीक न रहना, बुद्धि नष्ट हो जाना। (३) पागल हो जाना। सिर फोड़ना—(१) लड़ाई झगड़ा करना। (२) शव की कपाल-क्रिया करना । सिर फेरना—अस्वीकार या अवज्ञा करना। सिर बाँधना – (१) पटेबाजी या लड़ाई में) सिर पर आक्रमण करना । (२) (स्त्री का) केश सँवारना या चोटी करना । सिर बेचना—सेना में नौकरी करना । सिर भारी होना—स्वस्थ न होना । सिर मारना – (१) समझाते-समझाते हैरान हो जाना। (२) बहुत सोचते-विचारते परेशान हो जाना । (३) चिल्लाकर पुकारना । (४) बहुत प्रयत्न या परिश्रम करना। सिर मुड़ाना—संन्यास लेना । सिर मुड़ाते ही ओले पड़ना—आरम्भ में ही संकट आ जाना । सिर मढ़ना—(किसी की) इच्छा के विरुद्ध कोई दायित्व सौंपना । सिर (में) लकड़ी ठोंकना—कपाल-क्रिया करना । सिर ठोंकी लकरी—कपाल-क्रिया की । उ. —लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी—१-७१ । सिर रँगना—सिर फोड़कर लहू-लोहान करना। सिर रहना—दिन-रात परिश्रम करना । (किसी के) सिर रहना या होना–(किसी के) पीछे पड़जाना । सिर सफेद होना—वृद्धावस्था से बाल सफेद हो जाना । सिर पर सेहरा होना – किसी कार्य का श्रेय मिलना। सिर (पर) सहना—(अपने ऊपर) झेलना । अपने सिर सह्यौ—(भार आदि) उठाया या झेला । उ.—इहिं भरु अधिक सह्यौ अपनैं सिर अमित अंडमय वेष—५७० । सिर सहलाना—(१) खुशामद करना । (२) बहुत दुलार-प्यार करना । सिर सूँघना—छोटों का दुलार करने या उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उनका सिर सूँघना । सिर से पैर तक --(१) एड़ी से चोटी तक । (२) आरम्भ से अंत तक । सिर से पैर तक आग लगना—बहुत क्रोध आना । सिर (के बल या) से चलना —बहुत सम्मान करना । सिर से कफन बाँधना—मरने के लिए तैयार होना । सिर से बला टालना—जी लगाकर काम न करना, बेगार टालना। सिर से बोझ उतरना—(१) झंझट दूर होना । (२) निश्चित होना । सिर से बोझ उतारना—(१) झंझट दूर करना । (२) किसी तरह काम निबटाकर निश्चित

होना। सिर तक पानी होना या आ जाना—(१) बहुत ऋण चढ़ जाना। (२) सहन की पराकाष्ठा हो जाना। सिर से खेल जाना—प्राण दे देना। सिर से सिरवाहा (पगड़ी) है—सरदार या स्वामी के साथ सेना या सेवक अवश्य रहेंगे। सिर पर सींग होना—कोई विशेषता होना। सिर का पसीना पैर तक आना—बहुत परिश्रम पड़ जाना। सिर होना—(१) पीछा न छोड़ना। (२) बार-बार आग्रह करके तंग करना। (३) झगड़ा कर बैठना। (किसी बात के) सिर होना—(१) उसी की धुन में लगे रहना। (२) समझ या ताड़ लेना। (३) जिम्मे होना, ऊपर पड़ना। सिर हिलाना—(१) स्वीकृति-अस्वीकृति जताना। (२) प्रसन्नता सूचित करना।

(२) ऊपर का छोर, सिरा, चोटी।

वि. (१) बड़ा,महान। (२) बढ़िया, उत्तम

सिरकटा—वि. [हिं. सिर+कटना] जिसका ऊपरी भाग या सिर कटा हुआ हो।

वि. [हिं. सिर+काटना] (१) दूसरों का सिर काटनेवाला। (२) किसी का अपकार करनेवाला।

सिरका—संज्ञा पुं. [फ़ा.] धूप में पकाकर खट्टा किया हुआ किसी फल का रस।

सिरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सरकंडा] (१) सरकंडा। (२) सरकंडे का छोटा छप्पर।

सिरगा—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

सिरगाना, सिरगानो—क्रि. स. [हिं. सुलगाना] सुलगाना।

सिरगिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिर + गिरि] कलगी।

सिर-चंद—संज्ञा पुं.[हिं. सिर+सं. चंद्र] हाथी के मस्तक का एक अद्र्ध चंद्राकार गहना।

सिरजक—वि. [हिं. सिरजना] रचनेवाला।

संज्ञा पुं. सृष्टिकर्ता, ईश्वर।

सिरजत—क्रि. स. [हिं. सिरजना] रचता या बनाता है। उ.—जग सिरजत पालत संहारत पुनि क्यों बहुरि करयो—१० उ.-१३१।

सिरजन—संज्ञा पुं. [सं. सृजन] (१) रचने या बनाने की क्रिया। (२) सृष्टि।

सिरजनहार, सिरजनहारा, सिरजनहारो—वि. [सं. सृजन +हिं. हार] रचने या बनानेवाला।

संज्ञा पुं. सृष्टि की रचना करनेवाला ईश्वर।

सिरजना, सिरजनो—क्रि. स. [सं. सृजन] (१) रचना, बनाना। (२) उत्पन्न करना।

क्रि. स. [सं. संचय] सुरक्षित रखना।

सिरजित वि. [सं. सर्जित] (१) रचा या बनाया हुआ। (२) तैयार या उत्पन्न किया हुआ।

सिरजी—क्रि. अ. [हिं. सिरजना] उत्पन्न की गयी (हैं)। उ—बिरह सहन को हम सिरजी हैं पाहन हृदय हमार —३२१५।

सिरताज—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+फ़ा. ताज] (१) मुकुट। (२) सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति या वस्तु, शिरोमणि। उ.—(क) पाछैं भयौ न आगैं ह्वैहै सब पतितनि सिरताज —१-९६। (ख) सूर स्याम तहाँ स्याम सबनि की दिखियत है सिरताज—९२०। (३) नायक, मुखिया। उ.—अपने सुत कौ बदन दिखावहु बड़ महर सिरताज —१०-३६।

सिर ता पा—क्रि. वि. [हिं. सिर+ फ़ा. ता+पा=पैर] (१) सिर से पैर तक। (२) आदि से अंत तक।

सिरत्राण, सिरत्रान—संज्ञा पुं. [सं. शिरस्त्राण] युद्ध में सिर की रक्षा के लिए पहना जानेवाला टोप, कूँड।

सिरदार—संज्ञा पुं. [फ़ा. सरदार] (१) नायक, मुखिया। उ.—जग सिरदार सूर के स्वामी देखि-देखि सुख पावैं —८७६। (ख) गाउँ दसक सिरदार कन्हाई— १००२। (२) शासक।

सिरदारी—संज्ञा स्त्री.[हिं. सरदारी] सरदार का पद, भाव या कार्य।

सिरधर, सिरधरा, सिरधरू—वि. [हिं. सिर+धरना] (१) संरक्षक। (२) जिसे सिर पर धारण किया जाय।

सिरनामा—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+नाम] (१) पत्र पर लिखा जानेवाला पता। (२) पत्र के आदि में लिखा जानेवाला संबोधन आदि। (३) लेख आदि का शीर्षक।

सिरनेत—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+सं. नेत्री=धज्जी या डोरी] (१) पगड़ी, पटा, चीरा। (२) क्षत्रियों का एक प्रसिद्ध वर्ग।

सिरपच्ची—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिर+पचाना] सिर खपाना।

सिरपाँव, सिरपाव—संज्ञा पुं. [हिं. सिरोपाव] वह पूरी पोशाक जो राज-दरबार से किसी को सम्मान-रूप में दी जाती है, खिलअत। उ.—(क) नंद कौ सिरपाव दीन्हो, गोप सब पहिराइ—५८६। (ख) कहि खवास को सैन दै सिर-पाँव मँगायौ—२४७६।

सिरपेच—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+फ़ा. पेच] (१) पगड़ी। (२) पगड़ी के ऊपर का छोटा कपड़ा। (३) पगड़ी पर बाँधने का एक आभूषण।

सिरफूल—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+फूल] सिर पर पहना जानेवाला, स्त्रियों का एक आभूषण।

सिरफेंटा—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+फेंटा] मुरेठा, पगड़ी।

सिरबंद—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+फ़ा. बंद] साफा, पगड़ी।

सिरबंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिर+फ़ा. बंदी] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण।

सिरमनि—संज्ञा पुं. [सं. शिरोमणि] सिर पर पहनने का एक रत्न।

वि. सबसे अच्छा, सर्वश्रेष्ठ।

सिरमौर—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+मौर] (१) सिर का मुकुट। (२) प्रधान या श्रेष्ठ व्यक्ति, शिरोमणि। उ.—गोप-सिरमौर नृप ओर कर जोरि कै, पुहुप के काज प्रभु पत्र दीन्हौ—५८४।

वि. सबसे श्रेष्ठ। उ.—(क) तिनमैं अजामील गनिकादिक, उनमें मैं सिरमौर—१-१४५। (ख) दस सुत मनु के उपजे और। भयौ इच्छवाकु सबनि सिर-मौर—९-२।

सिररुह—संज्ञा पुं. [सं. शिरोरुह] सिर के बाल।

सिरस—संज्ञा पुं. [सं. शिरीष] एक वृक्ष।

सिरहाना—संज्ञा पुं. [सं. शिरस+आधान] सोने के स्थान पर सिर की ओर का भाग या सिरा।

सिरा—संज्ञा पुं. [हिं. सार] (१) लंबाई में किसी ओर का छोर या अंत। (२) ऊपरी या शीर्ष भाग। (३) आरंभ या अंत का भाग। (४) नोक, अनी।

संज्ञा स्त्री. [सं. शिरा] (१) शरीर में रक्त-नाड़ी। (२) खेत में सिंचाई की नाली।

सिराइ—क्रि. अ. [हिं. सिराना] (१) शीतल या सुखी होता है। उ.—तुम ही हौ ब्रज के जीवन-धन देखत नैन सिराइ—१०-७९। (२) बीते, व्यतीत हो। उ.—ऐसैं ही जौ जनम सिराइ, बिन हरि-भजन नरक महँ जाइ—७-२। (३) मिटाकर, दूर करके। उ.—अब रघुनाथ मिलाऊँ तुमको सुन्दरि सोग सिराइ (निवारि)—९-८३।

सिराए—क्रि. अ. [हिं. सिराना] शीतल या सुखी हुए। उ.—सिया-राम-लछिमन निरखत सूरदास के नैन सिराए—९-१६८।

सिरात—क्रि. अ. [हिं. सिराना] (१) ठंढा होता है, गरम नहीं रह जाता है। उ.—(क) भात सिरात तात दुख पावत, बेगि चलौ मेरे लाल—१०-२२३। (ख) सिद्ध जेंवन सिरात, नंद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह तत्कालहिं—१०-२३६। (२) शीतल या सुखी होता है। उ.—(क) सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिए—१-१७१। (ख) सूरदास प्रभु की ऐसी अधीनता देखत मेरे नैन सिरात—२०६८। (३) बीतते या व्यतीत होते हैं। उ.—गोपी-ग्वालबाल सँग खेलत सब दिन हँसत सिरात—३४९३।

सिराति—क्रि. अ. [हिं. सिराना] (१) बीतती या व्यतीत होती है। उ.—जाति सिराति राति बातनि मैं, सुनौ भरत चित लाइ—९-१५५। (२) शीतल या सुखी होती है। उ.—अधिक पिराति सिराति न कबहूँ अनेक जतन करि हारी—३०३९।

सिरान—क्रि. अ. [हिं. सिराना] (१) मंद, धीमा या निष्क्रिय हो गया है। उ.—धनुष बान सिरान कैधौं गरुड़ बाहन खोर—१-२५३। (२) शीतल या सुखी होने (दो)। उ.—बैन सुनौं, बिहरत बन देखौं, इहिं सुख हृदय सिरान दै—८०५।

सिराना—क्रि. अ. [हिं.सीरा=ठंढा+ना] (१) ठंढा होना, गरम न रहना। (२) शीतल या सुखी होना। (३) मंद या धीमा होना, निराश या हतोत्साह होना। (४) पूरा या समाप्त होना (५) मिटना, दूर होना। (६) बीतना, व्यतीत होना। (७) बंद होना। (८) फुरसत पाना। (९) निभना।

क्रि. स. (१) ठंढा करना। (२) शीतल या सुखी करना। (३) पूरा या समाप्त करना। (४) बिताना।

सिराने—क्रि. अ. [हिं. सिराना] निराश या हतोत्साह हो गए। उ.—(क) सात दिवस जल बर्षि सिराने हारि मानि मुख फेरो—९५९। (ख) बज्रायुध जल बरषि सिराने परचो चरन तब प्रभु करि जाने—१०७०।

सिरानो—क्रि. अ., क्रि. स. [हिं. सिराना] सिराना।

सिरानौ—क्रि. अ. [हिं. सिराना] बीता जाता है। उ.—भक्ति कब करिहौ जनम सिरानौ—१-३२९। (२) व्यतीत हो गया। उ.—(क) जनम सिरानौ ऐसैं ऐसैं। कै घर-घर भरमत जदुपति बिनु कै सोवत कै बैसैं—१-२९३। (ख) ब्रजहिं बसत सब जनम सिरानौ, ऐसी करी न आरति—५२६।

सिरानौई—क्रि. अ. [हिं. सिराना] बीता ही (जाता है)।

प्र.— सिरानौई लाग्यौ—बीता ही जाता या जा रहा है। उ.— जनम सिरानौई सो लाग्यौ—१-७३।

सिरान्यो, सिरान्यौ—क्रि. अ. [हिं. सिराना] निराश या हतोत्साह हो गया। उ.—सात दिवस जल बरसि सिरान्यो आवत चल्यो ब्रजहिं अत्रावत—९७८।

सिरायो, सिरायौ - क्रि. अ. [हिं. सिराना] (१) शीतल या सुखी हुआ। उ.—अब कुबिजा पाइ हियो सिरायो—३४४२। (२) (गरम पदार्थ) ठंढा हुआ। उ.—रिषि मग जोवत बर्ष बितायौ। पै भोजन तौहूँ न सिरायौ—९-५।

सिरावन—संज्ञा पुं. [हिं. सिराना] (१) 'सिराने' की क्रिया या भाव। उ.—है कह्यौ सिरावन सीरा—१०-१८३। (२) ठंढा करने के लिए। उ.—एक दुहनी दूध जामन को सिरावन जाहिं—पृ. ३३९ (८४)।

वि. (१) ठंढा या शीतल करनेवाला। (२) क्लेश या संताप दूर करनेवाला।

सिरावना, सिरावनो—क्रि. स. [हिं. सिराना] (१) ठंढा करना। (२) शीतल या सुखी करना। (३) पूरा या समाप्त करना। (४) बिताना, व्यतीत करना।

सिरावै—क्रि. स. [हिं. सिराना] ठंढा या शीतल करे। उ.—कोटि बेर जल औटि सिरावै—२७४७।

सिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्री] (१) लक्ष्मी। (२) शोभा, (३) रोली, रोचना। (४) माथे का एक गहना।

सिरीखंड—संज्ञा पुं. [सं श्रीखंड] हरिचंदन।

सिरीपंचमी —संज्ञा स्त्री. [सं. श्रीपंचमी] वसंतपंचमी।

सिरोपाँव, सिरोपाव—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+पाँव] सिर से पैर तक के वस्त्र (अंगा, पगड़ी, पाजामा, पटुका और दुपट्टा) जो राज-दरबार से किसी को सम्मान-रूप में दिये जाते हैं।

सिरोमनि—वि. [सं. शिरोमणि] सबसे अच्छा, सर्वश्रेष्ठ। उ.—(क) चतुर-सिरोमनि नंद-सुत—१-४४। (ख) हैं पतित-सिरोमनि—१-१९२। (ग) सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि—१०-२९८। (घ) इतने महिं सब तात समुझिबी चतुर-सिरोमनि नाह—२८६८।

संज्ञा पुं. सिर पर पहनने का एक रत्न।

सिरोरुह—संज्ञा पुं. [सं. शिरोरुह] सिर के बाल।

सिरोही—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की चिड़िया जिसकी चोंच और पैर लाल तथा शरीर काला होता है।

संज्ञा पुं. राजपूताने का एक स्थान।

संज्ञा स्त्री. सिरोही की बनी बढ़िया तलवार।

सिर्फ—वि. [अ. सिर्फ़] (१) अकेला। (२) शुद्ध।

क्रि. वि. केवल, मात्र।

सिल—संज्ञा स्त्री. [सं. शिला] (१) पत्थर, चट्टान। (२) पत्थर की बटिया जिस पर बट्टे से कुछ पीसा जाता है।

संज्ञा पुं, [सं. शिल] कटे हुए खेत में गिरे हुए अनाज के दाने बीनकर निर्वाह करने की वृत्ति।

सिलक - संज्ञा स्त्री. [हिं. सिलक] (१) लड़ी। (२) पंक्ति।

संज्ञा पुं. तागा, धागा, डोरा।

सिलखड़िया, सिलखड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिल+खड़िया] (१) एक तरह का मुलायम पत्थर। (२) खड़िया मिट्टी।

सिलगना, सिलगनो—क्रि. अ. [हिं. सुलगना] सुलगना।

सिलप—संज्ञा पुं. [सं. शिल्प] कौशल, शिल्प। उ.—बिस्वकर्मा सुतिहार स्तुति धरि सुलभ सिलप दिखावनो—२१८०।

सिलपर—वि. [सं. शिला पर] (१) बराबर, चौरस। (२) घिसा हुआ। (३) चौपट, नष्ट।

सिलपोहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिल+पोहना] विवाह की एक रीति जिसमें वर-वधू सिल पर कुछ पीसते हैं।

सिलबिल, सिलबिल्ला—वि. [देश.] लपझप काम करनेवाला, क्रम या व्यवस्था का ध्यान न रखनेवाला।

सिलवट—संज्ञा स्त्री. [देश.] सिकुड़न, शिकन।

सिलवाना, सिलवानो—क्रि. स. [हिं. सीना] सिलाना।

सिलसिला—संज्ञा पुं. [अ.] (१) क्रम, बँधा हुआ तार या क्रम। (२) श्रेणी, पंक्ति। (३) लड़ी, शृंखला। (४) व्यवस्था।

वि. [सं. सिल] (१) गीला, भीगा हुआ। (२) रपटनेवाला। (३) चिकना।

सिलसिलेवार—क्रि. वि. [अ.सिलसिला+फ़ा. वार] (१) सिलसिले या क्रम से, क्रमबद्ध। (२) व्यवस्थित रूप से।

सिलह—संज्ञा पुं. [अ. सिलाह] हथियार, शस्त्र।

सिलहखाना—संज्ञा पुं. [हिं. सिलह+फा. खाना] हथियार रखने का स्थान, शस्त्रागार।

सिलहला, सिलहला—वि. [हिं. सील+हिला=कीचड़] (स्थान) जहाँ काई से पैर फिसले।

सिलहार, सिलहारा—वि. [सं शिला+हिं. हार] खेत में गिरा हुआ अनाज बीन कर निर्वाह करनेवाला।

सिला—संज्ञा स्त्री. [सं. शिला] (१) चट्टान, शिला। उ.—(क) सिला तरी जल माँहि सेत बँधि—१-३४। (ख) सैल-सिला-द्रुम बरषि ब्योम चढ़ि सत्रु-समूह सँहारौं—९-१०६। (ग) आपुहिं गिरयौ सिला पर आई ३९१। (२) शालग्राम की बटिया। उ.—बदन पसारि सिला जब दीन्ही, तीनौं लोक दिखाए—१०-२६२।

संज्ञा पुं. [सं. शिल] (१) खेत में कटी हुई फसल उठा ले जाने पर गिरा हुआ अनाज। (२) फटकने-पछोरने के लिए रखा गया अनाज का ढेर। (३) खेत में गिरे हुए अनाज बीनकर निर्वाह करने की वृत्ति।

सिलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीना+आई] (१) सुई से सीने का काम, ढंग या मजदूरी। (२) टाँका, सीवन।

सिलाजीत—संज्ञा पुं. [सं. शिलाजतु] शिलाओं का एक लसदार पसेव जो बड़ी पुष्टई माना जाता है।

सिलाना, सिलानो—क्रि. स. [हिं. सीना] सीने का काम दूसरे से कराना, सिलवाना।

सिलावट—संज्ञा. पुं. [सं. शिला+पट्ट] पत्थर काटने-गढ़नेवाला कारीगर।

सिलासार—संज्ञा पुं [सं. शिलासार] लोहा।

सिलाह—संज्ञा पुं. [अ.] (१) जिरह-बख्तर, कवच। (२) हथियार, अस्त्र-शस्त्र।

सिलाहबंद—वि. [अ. सिलाह+फ़ा. बंद] सशस्त्र।

सिलाहर, सिलाहरा, सिलाहार, सिलाहारा—वि. [सं. शिल+हिं. हारा.] (१) कटे हुए खेत में बिखरे हुए अनाज के दाने बीनकर जीवन निर्वाह करनेवाला। (२) बहुत दरिद्र, अकिंचन।

सिलाही—वि. [अ. सिलाह+ई] (१) कवचधारी। (२) सशस्त्र।

संज्ञा पुं. सिपाही, सैनिक।

सिलिप—संज्ञा पुं. [सं. शिल्प] कौशल, शिल्प।

सिलिमुख—संज्ञा. पुं. [सं. शिलीमुख] भौंरा।

सिलियार, सिलियारा—वि. [हिं. सिलहारा] सिलाहारा।

सिलीमुख—संज्ञा पुं. [सं. शिलीमुख] भौंरा। उ.—कुंचित अलक सिलीमुख मानो लै मकरंद निदाने—१३३४।

सिलोच्च संज्ञा पुं.[सं. शिलोच्च] एक पर्वत जो रामचंद्र को विश्वामित्र के साथ जाते समय गंगा तट पर मिलाथा।

सिलौट, सिलौटा—संज्ञा पुं. [हिं. सिल+बट्टा] (१) बड़ी सिल। (२) सिल और बट्टा।

सिलौटिया, सिलौटी—वि. [हिं. सिलौटा] छोटी सिल।

सिल्प—संज्ञा पुं. [सं. शिल्प] कारीगरी, कला-कौशल।

सिल्ला—संज्ञा पुं. [सं. शिल] (१) फसल कट जाने पर खेत में बिखरा हुआ अनाज। (२) खलियान में भूसे का ढेर जिसमें अनाज के कुछ दाने रह जाते हैं।

मुहा. सिल्ला चुनना या बीनना—खेत या भूसे में बिखरे हुए अनाज के दाने बीनना।

सिल्ली—संज्ञा स्त्री. [सं. शिला] (१) धार तेज करने का छोटा पत्थर। (२) आरे से चीरा हुआ तख्ता। (३) छोटी सिल। (४) पत्थर की छोटी पटिया।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सिल्ला] फटकने-पछोरने के लिए लगाया गया अनाज का ढेर।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक जल-पक्षी।

सिव—संज्ञा पुं. [सं. शिव] (१) मंगल, कल्याण। (२) महादेव उ.—(क) ब्रह्म-सिव-सेस-सुक सनक ध्यायौ—१-११९। (ख) सिव न, अवध सुन्दरी, बधो जिन—१६८७।

सिवई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेंवई] गुंधी हुई मैदा के बटकर बनाए गए सूत के से लच्छे जो सुखाकर दूध में पकाकर या घी में भूनकर और चाशनी में पागकर खाए जाते हैं।

मुहा. सिवईं तोड़ना, पूरना या बटना—गुंधी हुई मैदा के सूत कातना या बनाना।

सिवकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेवकाई] सेवा, सेवक का कार्य। उ.—सन्मुख रहत टरत नहिं कबहूँ, सदा करत सिवकाई—पृ. ३३६ (५६)।

सिवता—संज्ञा स्त्री. [सं. शिवता] शिवत्व। उ.—सिव सिवता इन्हीं तैं लई—३-१३।

सिवपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. शिवपुरी] काशीनगरी।

सिवरात्रि—संज्ञा स्त्री. [सं. शिवरात्रि] फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी जो शिवजी के विवाह की तिथि होने से एक पर्व के रूप में मान्य है और शैव इस दिन व्रत करते हैं।

सिवरानि, सिवरानी—संज्ञा स्त्री. [सं. शिव + हिं. रानी] पार्वती।

सिव-रिपु—संज्ञा पुं. [सं. शिव + रिपु] कामदेव। उ.—ता दिन तें उर-भौन भयो सखि सिव-रिपु को संचार—२८८८।

सिव-लिंग संज्ञा पुं. [सं. शिवलिंग] शिवजी की पिंडी जिसकी पूजा होती है।

सिव-लोक—संज्ञा पुं. [सं. शिव + लोक] कैलास।

सिवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा। (२) पार्वती। (३) सियारिन, शृगाली। (४) मुक्ति, मोक्ष।

अव्य. [अं.] अलावा, अतिरिक्त।

वि. ज्यादा, अधिक।

सिवान—संज्ञा पुं. [सं. सीमांत] हद, सीमा।

सिवाय—अव्य. [अ. सिवा] अतिरिक्त।

वि. ज्यादा, अधिक।

सिवार, सिवाल—संज्ञा स्त्री. [सं. शैवाल] पानी में होनेवाली एक तरह की लम्बी और लच्छेदार घास। उ.—(क) पग न इत-उत धरन पावत उरझि मोह-सिवार १-९९। (ख) ब्रिरह-सरोवर बूड़ई अंधकार-सिवार—१५३८।

सिवालय, सिवाला—संज्ञा पुं. [सं. शिवालय] शिव-मंदिर।

सिवि—संज्ञा पुं. [सं. शिवि] एक प्रसिद्ध राजा।

सिविका—संज्ञा स्त्री. [सं. शिविका] डोली, पालकी।

सिविर—संज्ञा पुं. [सं. शिविर] (१) सेना के ठहरने का स्थान, पड़ाव। (२) वह स्थान जहाँ लोग उद्देश्य विशेष से ठहरें या रहें। (३) डेरा, खेमा। (४) किला, दुर्ग, कोट।

सिवैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिवईं] सिवईं।

सिष—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीख] उपदेश, शिक्षा।

संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] चेला, शिष्य।

सिष्ट—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शिस्त] बंसी की डोरी।

सिष्ट, सिष्ठ—वि. [सं. शिष्ट] (१) भला आदमी। (२) साधु-महात्मा। उ.—भृगु मरीचि-अंगिरा बसिष्ठ। अत्रि पुलह पुलस्त अति सिष्ठ—३-८।

सिष्य—संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] चेला, शिष्य।

सिष्यहिं—संज्ञा पुं. सवि. [सं. शिष्य] शिष्यों को। उ. रिषि सिष्यहिं भेज्यौ समुझाइ। नृप सौं कहि तू ऐसी जाइ—१-२९०।

सिसकत—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] बहुत भय लगता है, धकधकी होती है, जी धड़कता है। उ.—तबहीं तें इकटक चितवत और सिसकत डर तें—१८६९।

सिसकना, सिसकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) भीतर ही भीतर या बहुत धीरे-धीरे रोने में निकलती हुई साँस छोड़ना। (२) लंबी साँस रोक-रोककर छोड़ते हुए रोना। (३) बहुत भय लगना, जी धड़कना। (४) मरने के निकट होने से उलटी साँस या हिचकियाँ लेना। (५) (पाने या प्राप्त करने के लिए) रोना या तरसना।

सिसकती—वि. स्त्री. [हिं. सिसकना] रोनी, रोती हुई।

मुहा.—सिसकती-भिनकती—मैली-कुचैली और रोनी सूरत।

सिसकारना, सिसकारनो—क्रि. अ. [अनु. सी सी + हिं.

करना] (१) मुंह से सीटी का सा हल्का शब्द निकालना। (२) (अत्यन्त पीड़ा या आनन्द से) मुंह स सांस खींचना या शीत्कार करना।

सिसकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिसकारना (१) सिसकारने का शब्द। (२) शीत्कार।

सिसकी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) धीरे-धीरे रोने का शब्द। (२) शीतकार।

सिसिर—संज्ञा पुं. [सं. शिशिर] (१) माघ और फाल्गुन मास की ऋतु। (२) जाड़ा, शीतकाल।

सिसु—संज्ञा पुं. [सं. शिशु] छोटा बच्चा। उ.—(क) यह कहिकै सिसु-भेष धरयौ—१०-८। (ख) उपजि परयौ सिसु-कर्म-पुन्य फल—१०-१३८। (ग) कोउ आयौ सिसु-रूप रच्यौ री—६०६।

सिसुता—संज्ञा स्त्री. [सं. शिशुता] (१) बचपन, बाल्यावस्था। उ.—(क) सूरदास सिसुता-सुख जलनिधि कहँ लौं कहौं, नाहिं कोउ समसरि—१०-१२०। (ख) सूरदास प्रभु सिसुता कौ सुख सकै न हृदय समाइ—१०-१७८। (ग) अति सिसुता मैं ताहि संहारयौ परयौ सिला पर आइ—९८६। (२) बालकों का-सा आचरण, लड़कपना। उ.—अखिल ब्रह्मंड-खंड की महिमा सिसुता माहिं दुरावत—१०-१०२।

सिसुताइ सिसुताई—संज्ञा स्त्री. [सं. शिशुता] (१) बचपन। (२) बालकों जैसा आचरण। उ.—मुख-मुख जोरि बत्यावई सिसुताई ठानै—१०-७२।

सिसुपाल—संज्ञा पुं. [सं. शिशुपाल] चेदि देश का एक प्रसिद्ध राजा जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—दंतबक्र सिसुपाल जे भए। बासुदेव ह्वै सो पुनि हए—१०-२।

सिसृक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] रचने की इच्छा।

सिसृक्षु—वि. [सं.] रचना करने का अभिलाषी।

सिसोदिया—संज्ञा पुं. [सिसोद (स्थान)] गुहलौत राजपूतों की एक शाखा जिसकी प्राचीन राजधानी चित्तौड़ थी और आधुनिक उदयपुर है।

सिस्न—संज्ञा पुं. [सं. शिश्न] पुरुष का लिंग।

सिस्य—संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] चेला, शिष्य।

सिस्टि, सिस्टी—संज्ञा स्त्री. [सं. सृष्टि] (१) रचकर तयार करने की क्रिया या भाव। (२) जन्म, उत्पत्ति। (३) रचना, निर्माण। (४) जगत, संसार।

सिहरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिहरना] सिहरने की क्रिया या भाव।

सिहरना, सिहरनो—क्रि. स. [सं. शीत+ना] (१) काँपना। (२) ठंढ से काँपना। (३) भय से काँपना। (४) रोंगटे खड़े होना।

सिहरा—संज्ञा पुं. [हिं. सेहरा] सेहरा।

सिहराना, सिहरानो—क्रि.स. [हिं. सिहरना] (१) कँपाना। (२) सरदी से कँपाना। (३) भय से कँपाना। (४) रोंगटे खड़े करना।

क्रि. स. [हिं. सहलाना] सहलाना।

सिहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिहरना] (१) कँपकँपी। (२) शीत की कँपकँपी। (३) भय। (४) रोंगटे खड़े होना।

सिहलाना—क्रि.अ. [सं. शीतल] (१) ठंढा होना, सिराना। (२) सरदी खा जाना। (३) सरदी पड़ना।

सिहलावन—संज्ञा पुं. [हिं. सिहलाना] ठंढ, सरदी।

सिहात—क्रि. अ. [हिं. सिहाना] (१) मुदित, मोहित या मुग्ध होता है। उ.—(क) मनौ मधुर मराल छौना बोलि बैन सिहात—१०-१८४। (ख) हरि प्यारी के मुख तन चितवत मनही मनहु सिहात—१५२१। (ग) परस्पर दोउ करत क्रीड़ा मनहिं मनहिं सिहात—पृ. ३५१ (७६)। (घ) श्रीमुख स्याम कहत यह बानी ऊधौ सुनत सिहात-२९२५। (२) स्पर्द्धा करता है। उ.—द्वारिका की देखि छबि सुर-असुर सकल सिहात।

सिहाति—क्रि. अ. [हिं. सिहाना] लुभाती है, ललचती है। उ.—सूर प्रभु को निरखि गोपी मनहि मनहि सिहाति।

सिहाना—क्रि.अ. [सं. ईर्ष्या] (१) डाह या ईर्ष्या करना। (२) किसी अच्छी वस्तु देखकर इसलिए दुखी होना कि वह या वैसी वस्तु हमारे पास नहीं हैं, स्पर्द्धा करना। (३) लोभ होना, ललचना। (४) मुग्ध, मोहित या मुदित होता। (५) संतुष्ट होना।

क्रि. स. (१) ईर्ष्या या डाह से देखना (२) पाने की अभिलाषा करना, ललचना।

सिहानी—क्रि. अ. [हिं. सिहाना] मुग्ध या मोहित हुई। उ.—(क) सूर स्याम मुख निरखि जसोदा मनहीं मन जु सिहानी—१०-२०८। (ख) अति पुलकित गदगद मुख बानी मन-मन महरि सिहानी—१०-२५३। (ग) भोर भए व्रजधाम चले दोउ मन-मन नारि सिहानी—२०८१। (घ) बीरा खात देखि दोउ बीरा दोउ जननी मुख देखि सिहानी—२३७९।

सिहानो—क्रि. अ., स. [हिं. सिहाना] सिहाना।

सिहारना, सिहारनो—क्रि. अ. [देश.] (१) तलाश करना, ढूँढ़ना। (२) जुटाना, एकत्र करना।

सिहाहिं—क्रि. अ. [हिं. सिहाना] मुग्ध होते हैं। उ.—पियहिं के गुन गुनत उर में दरस देखि सिहाहिं—पृ. ३३२ (१२)।

सिहिकना, सिहिकनो—क्रि. अ. [देश.] (फसल) सूखना।

सिहुँड, सिहोड़, सिहोर—संज्ञा पुं. [सं. सिहुंड] 'थूहर' या सेंहुँड़ का पौधा।

सींक—संज्ञा स्त्री. [सं. इषीका] (१) मूँज या सरपत, नारियल आदि के बीच की पतली तीली; ऐसी बहुत सी तीलियों से झाड़ू बनाते हैं। (२) किसी घास या तृण का महीन डंठल या उसका तिनका। उ.—रोचन भरि लै देत सीक सौं स्रवन निकट अति हीं आतुर की—१०-१८०।

मुहा. सात सींक बनाइ—शिशु के जन्म के छठे दिन की एक रीति जिसमें सात सींकें रखी जाती हैं। उ.—द्वार सथिया देति स्यामा सात सींक बनाइ—१०-२६।

(३) नाक का एक गहना, लौंग, कील।

सींका—संज्ञा पुं. [हिं. सींक] पेड़-पौधों की बहुत पतली टहनी, डाँड़ी।

संज्ञा पुं. [हिं. छीका] डोरी या धातु की तीलियों का, कुछ रखने के लिए बना छींका।

सींके, सींकैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सींका = छींका] (१) छींके पर। उ.—कब सींकैं चढ़ि माखन खायौ—१०-२९३। (२) छींके को। उ.—सींके छोरि.......... माखन-दधि सब खायो—१०-३२८।

सींकिया—वि. [हिं. सींक] सींक जैसा पतला।

मुहा. सींकिया पहलवान—बहुत दुबला-पतला आदमी जिसे अपने बल का घमंड हो।

सींग—संज्ञा पुं. [सं. शृंग] (१) खुर वाले कुछ पशुओं के सिर के दोनों ओर निकले हुए वे कड़े और नुकीले अवयव जिनसे वे रक्षा या आक्रमण करते हैं, विषाण। उ.—(क) माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।.........। नील खुर अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ—१-५६। (ख) खुर ताँबें, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ीं—१०-२४।

मुहा.—(किसी के) सिर पर सींग होना—(किसी में) दूसरों से बढ़कर कोई बात या विशेषता होना (व्यंग्य)। सींग कटाकर बछड़ों में मिलना—किसी सयाने का बच्चों में मिलना या उनके साथ खेलना (व्यंग्य)। सींग जमना—लड़ने की इच्छा होना। सींग दिखाना या देना—कोई वस्तु न देना और चिढ़ाना, अँगूठा दिखाना। सींग निकलना—(१) चौपाये का जवान होना। (२) किसी किशोर-किशोरी का इतराने लगना। कहीं सींग समाना—कहीं गुजारा या निर्वाह होना, कहीं आश्रय या शरण मिलना। सींग पर मारना—बहुत तुच्छ या नगण्य समझना, कुछ परवाह न करना।

(२) सींग का बना बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है, सिंगी।

सींगड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. सींग] सिंगी बाजा।

सींगड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की फली जिसकी तरकारी बनती है।

सींगना, सींगनो—क्रि. स. [हिं. सींग] सींग देखकर पशु की जाँच-पड़ताल या पहचान करना।

सींगर, सींगरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की फली जिसकी तरकारी बनती है, मोगरे की फली। उ.—सेमि सींगरी छमकि झोरई—२३२१।

सींगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सींग] (१) हिरन के सींग का बना बाजा जो मुँह से (फूँककर) बजाया जाता है। उ.—हृदय सींगी टेर मुरली नैन खप्पर हाथ—३१२६। (२) वह पोला सींग जिससे शरीर का दूषित रक्त खींचा जाता है।

मुहा. सींगी तोड़ना या लगाना—सींगी से दूषित

रक्त सींचना।

(३) एक तरह की सींगदार मछली।

सींच—संज्ञा स्त्री. [हिं. सींचना] (१) सींचने की क्रिया या भाव। (२) छिड़काव।

सींचत—क्रि. स. [हिं. सींचना] (खेतों या पेड़ों में) पानी देता है। उ.—अति अनुराग सुधाकर सींचत दाड़िम बीज समान।

सींचना, सींचनो—क्रि. स. [सं. सेचन] (१) (खेतों या पेड़ों में) पानी देना। (२) पानी छिड़ककर तर करना या भिगोना। (३) (पानी आदि) छिड़कना।

सींचिये—क्रि. स. [हिं. सींचना] (पानी आदि) डालिए या छिड़किए। उ.—सूर सुजल सींचिये कृपानिधि निज जन चरन-तटी—९-९८।

सींच्यो, सीच्यौ—क्रि. स. [हिं. सींचना] (पानी आदि) डाला या छिड़का। उ.—भूभृत सीस नमित जो गर्व-गत पावक सींच्यो नीर—९-२६।

सींव, सींवा—संज्ञा स्त्री. [सं. सीमा] हद, सीमा, मर्यादा। उ.—(क) सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा हरनि—१०-१०९। (ख) मध्य नायक गोपाल बिराजत सुंदरता की सींवा हो—२४००।

सी—वि. स्त्री. [हिं. सा] सम, समान, सदृश।

मुहा. अपनी सी—(१) अपनी शक्ति भर। उ.—अपनी सी मैं बहुत करी री। (२) अपनी इच्छा के अनुसार।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] सिसकारी, शीत्कार।

सीअर—वि. [सं. शीतल] ठंढा, शीतल।

सीउ, सीऊ—संज्ञा पुं. [सं. शीत] ठंढ, जाड़ा।

सीक—संज्ञा पुं. [अनु.] शीत्कार।

सीकचा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सीख] लोहे की छड़।

सीकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल-कण। (२) पसीना, स्वेद-कण। उ.—स्रम स्वेद सीकर गंड मंडित रूप अंबुज कोर।

संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखला] जंजीर, सिकड़ी।

सीकल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिकली] हथियारों की सफाई।

सीकस—संज्ञा पुं. [हिं. सिकता] (१) रेतीली या बलुई भूमि। (२) ऊसर या बंजर भूमि।

सीका—संज्ञा पुं. [सं. शीर्ष] सिर का एक गहना।

संज्ञा पुं. [सं. शिक्या] छींका, सिकहर।

सीकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीका] छोटा छींका।

संज्ञा पुं. [देश] (१) छेव। (२) मुंह, मुंहरा।

सीकुर—संज्ञा पुं. [सं. शूक] अनाज की बाल के ऊपर निकले हुए बाल जैसे कड़े सूत।

सीको—संज्ञा पुं. [हिं. सीका] छींका, सिकहर।

संज्ञा पुं. सिर का एक आभूषण।

सीख—संज्ञा स्त्री. [सं. शिक्षा, प्रा. सिक्खा] (१) सिखाने की क्रिया या भाव, शिक्षा। (२) वह बात जो सिखायी जाय। उ.—अहो नंदरानि, सीख कौन पै लही री—३४८। (३) सलाह, मंत्रणा। उ.—याकी सीख सुनै ब्रज को रे। (४) उपदेश।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सीख़] पतली छड़।

सीखचा—संज्ञा पुं. [हिं. सीख] पतली छड़।

सीखत—क्रि. स. [हिं. सीखना] अभ्यास करते (हैं), सीख रहे (हैं)। उ.—मुरली अधर धरन सीखत हैं—५०७।

सीखन—संज्ञा पुं. [हिं. सीखना] (१) सीखने या सिखाने की क्रिया या भाव। उ.—तात दुहन सीखन कह्यौ मोहिं धौरी गैया—४०९। (२) हित के लिए बतायी गयी बात, उपदेश, शिक्षा।

सीखनहार, सीखनहारा, सीखनहारो—वि. [हिं. सीखना+हार] सीखनेवाला।

सीखनहारि, सीखनहारी—हि. स्त्री. [हिं. सीखना+हारी] सीखने की इच्छा रखनेवाली, सीखने को तत्पर। उ.—तुमही कहौ इहाँ इतननि महिं सीखनहारी को है—३२३०।

सीखना, सीखनो—क्रि. स. [सं. शिक्षण, प्रा. सिक्खण] (१) जानकारी या ज्ञान प्राप्त करना। (२) काम करने का ढंग आदि जानना-समझना। (३) कला, विद्या आदि की शिक्षा पाना।

सीखी—क्रि. स. [हिं. सीखना] जानती है। उ.—तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै—१०-२१५।

सीखे—क्रि. स. [हिं. सीखना] जान या समझ पाए (हैं)। उ.—अबहिं नैंकु खेलन सीखे हैं—७७४।

सीख्यो, सीख्यौ—क्रि. स. [हिं. सीखना] जाना या समझा

है। उ.—सूरदास प्रभु झगरौ सीझ्यौ—७३४।
सीगा—संज्ञा पुं. [अ. सीगा] (१) साँचा, ढाँचा। (२) पेशा, व्यापार। (३) महकमा, विभाग।
सीज, सीझ—संज्ञा स्त्री. [सं. सिद्ध, प्रा. सिज्झि, हिं. सीझ] आग या गरमी से पकने की क्रिया या भाव।
सीजना, सीजनो, सीझना, सीझनो—क्रि. अ. [सं. सिद्धि, प्रा. सिज्झि, हिं. सीझना] (१) आँच या गरमी से पकना, गलना या चुरना। (२) आँच या गरमी का ताव खाकर नरम पड़ना। (३) भस्म होना, जलना। (४) सूखे हुए चमड़े का किसी घोल में भीगकर मुलायम होना। (५) कष्ट या क्लेश सहना। (६) तप या तपस्या करना।
सीझौ—क्रि. अ. [हिं. सीझना] पक गयो, चुर गयो।
सीटना, सीटनो—क्रि. अ. [अनु.] बढ़-बढ़कर बातें करना, डींग हाँकना, शेखी मारना।
सीटी—संज्ञा स्त्री. [सं. शीतृ] (१) ओठों को गोलाई में सिकोड़ कर आघात के साथ वायु निकलने से होने-वाला महीन, पर तेज शब्द।

मुहा. सीटी देना—सीटी देकर कोई संकेत करना।

(२) इसी प्रकार का तेज शब्द जो किसी यंत्र या बाजे से निकलता हो।

मुहा. सीटी देना—सीटी देकर समय आदि सूचित करना या सावधान करना।

(३) वह बाजा जिससे वैसा शब्द निकले।
सीठ—वि. [हिं. सीठ] बिना स्वाद का, फीका।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सीठी] (१) साररहीन वस्तु। (२) फीकी चीज।
सीठना—संज्ञा पुं. [सं. अशिष्ट, प्रा. असिट्ठ+ना] विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर गायी गयी गाली।
सीठनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीठना] विवाह आदि के अवसर पर गायी जानेवाली गाली।
सीठा—वि. [सं. शिष्ट, प्रा. सिट्ठ] फीका, नीरस।
सीठापन—संज्ञा पुं. [हिं. सीठा+पन] फीकापन।
सीठी—संज्ञा स्त्री. [सं. शिष्ट, प्रा. सिट्ठ] (१) किसी वस्तु का रस या साररहित अंश। (२) निस्सार या तत्व-हीन वस्तु। (३) फीकी या नीरस वस्तु।
सीड़—संज्ञा स्त्री. [सं. शीत] तरी, नमी, सील।
सीढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेणी] (१) निसेनी। (२) जीना।

मुहा. सीढ़ी सीढ़ी चढ़ना—क्रमशः उन्नति करना।

(३) क्रमशः उन्नति का क्रम।
सीत—वि. [सं. शीतल] (१) ठंढा। (२) सुस्त, धीमा।

संज्ञा पुं. [सं. शीत] (१) सरदी, जाड़ा। उ.—(क) सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं सोई सुफल करै—१-११७। (ख) सीत-बात-कफ कंठ बिरोधै रसना टूटै बात—१-३१३। (ग) सीत-भीति नहिं करति छहौं रितु—७८२। (घ) कत हो सीत सहति ब्रज-सुंदरि—७८७। (ङ) सीत तैं तन कँपत थर-थर—७८९। (२) पाला। उ.—सकुचत सीत-भीत जलरुह ज्यौं—३५७। (३) जाड़े के दिन, जाड़े की ऋतु।
सीतकर—संज्ञा पुं. [सं. शीत+कर] चंद्रमा।
सीतल—वि. [सं. शीतल] (१) ठंढा, शीतल। उ.—(क) जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै सुखित समोइ करे—९-१७१। (ख) अब मोकौं सीतल जल आनौ—३९६। (ग) सीतल सलिल सुगंध पवन—५८९। (२) सुस्त, धीमा। (३) शांत। उ.—(क) तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै—१-११७। (ख) चक्र सुदरसन सीतल भयौ—९-५। (४) सुखी, संतुष्ट। उ.—सीतल भयौ मातु कौ हियौ—४-९। (५) सुखद, सुखदायी। उ.—सेव चरन सरोज सीतल—१-३०७।
सीतलपाटी—संज्ञा स्त्री. [सं. शीतल+हिं. पट] एक तरह की बढ़िया चिकनी चटाई।
सीतला—संज्ञा स्त्री. [सं. शीतला] (१) चेचक रोग। (२) इस रोग की अधिष्ठात्री देवी।
सीता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भूमि जोतते समय हल की फाल से पड़ जाने वाली रेखा, कूँड़। (२) मिथिला के राजा जनक की पुत्री जो श्री रामचन्द्र को ब्याही थी। उ. श्रीरघुनाथ-प्रताप पतिब्रत सीता-सत नहिं टरई—९-७८। (३) एक वर्णवृत्त।
सीतानाथ, सीतापति—संज्ञा पुं. [सं.] श्री रामचन्द्र। उ.—चितत चित्त सूर सीतापति मोह-मेरु-दुख टरत न टारत ९-६२।
सीताफल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शरीफा। (२) कुम्हड़ा।
सीतारमण, सीतारवन, सीतारौन—संज्ञा पुं. [सं. सीता-

रमण] श्रीरामचन्द्र।

सीत्कार—संज्ञा स्त्री. [सं. शीत्कार] सी सी शब्द।

सीथ—संज्ञा पुं. स्त्री. [सं. सिक्थ] (१) अन्न का दाना। (२) पके हुए अन्न का दाना। (३) जूठन।

सीथिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीथ] जूठन से। उ.—ऐसैं बसिए व्रज की वीथिनि। ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि उदर भरीजै सीथिन—४९०।

सीद—संज्ञा पुं. [सं. शीद्] कष्ट, दुख, पीड़ा।

सीदना, सीदनो—क्रि. अ. [सं. सीदति] (१) दुख या कष्ट पाना। (२) नष्ट होना।

क्रि. स. (१) दुख देना। (२) नष्ट करना।

सीध—संज्ञा स्त्री. [हिं. सीधा] (१) ठीक सामने की स्थिति या भाव, सीधापन। (२) सीधी रेखा या दिशा। (३) निशाना, लक्ष्य।

मुहा. सीध बाँधना—निशाना साधना।

सीधा—वि. [सं. शुद्ध] (१) जिसमें फेर, घुमाव या टेढ़ापन न हो। (२) जो ठीक लक्ष्य की ओर हो।

मुहा. सीधा करना—(तीर, बन्दूक आदि का) निशाना साधना। सीधा आना—भिड़ जाना।

(३) जो कुटिल या कपटी न हो, भोला। (४) शांत, सुशील, शिष्ट।

यौ. सीधा-सादा—(१) भोला-भाला। (२) जिसमें ज्यादा तड़क-भड़क न हो।

मुहा. (किसी को) सीधा करना—(१) दंड देकर ठीक करना। (२) अपने अनुकूल करना। सीधा दिन—शुभ दिन या मुहूर्त।

(५) आसान, सहज, सुगम, सुकर।

यौ. सीधा-साधा—सुगम और प्रत्यक्ष।

(६) जो सरलता से समझ में आ सके। (७) दाहिना, दक्षिण।

क्रि. वि. ठीक सामने की ओर, सम्मुख।

संज्ञा पुं. सामने का भाग।

संज्ञा पुं. [सं. असिद्ध] (१) बिना पका हुआ अन्न। (२) बिना पका हुआ वह अन्न जो दान दिया जाय।

सीधापन, सीधापना—संज्ञा पुं. [हिं. सीधा+पन] सिधाई, सरलता, भोलापन।

सीधि—संज्ञा स्त्री. [सं. सिद्धि] सफलता।

सीधी—वि. स्त्री. [हिं. सीधा] सीधा।

मुहा सीधी राह—सुमार्ग, अच्छा आचरण। सीधी-सीधी सुनाना—(१) साफ-साफ या खरी बात करना। (२) भला-बुरा कहना। सीधी तरह—नरमी या सज्जनता से।

सीधे—क्रि. वि. [हिं. सीधा] (१) सामने की ओर। (२) बिना कहीं रुके या मुड़े। (३) बिना और कहीं जाय। (४) नरमी या सज्जनता से। (५) शांति से।

सीना—क्रि. स. [सं. सीवन] कपड़े, चमड़े आदि के टुकड़ों को सुई में तागा पिरोकर जोड़ना, टाँका मारना।

यौ. सीना-पिरोना—सिलाई-कढ़ाई का काम।

संज्ञा पुं. [फ़ा. सीनः] छाती, वक्षस्थल।

सीप—संज्ञा पुं. [सं. शुक्ति, प्रा. सुत्ति] (१) शंख, घोंघे आदि की तरह कड़े आवरण में रहनेवाला एक जल-जंतु, सीपी। उ.—उपजि परयौ सिसु कर्म-पुन्य फल समुद्र-सीप ज्यों लाल—१०-१२८। (२) सीप नामक जल-जंतु का सफेद, कड़ा और चमकीला आवरण जिससे बटन आदि बनते हैं। (३) ताल के सीप का संपुट जो चम्मच आदि के काम आता है। (४) वह लम्बोतरा पात्र जिसमें देव-पूजा या तर्पण आदि के लिए जल रखा जाता है।

सीपज—संज्ञा पुं. [हिं. सीप+सं. ज] (सीप से उत्पन्न) मोती। उ. (क) दमकति दूध दँतुलियाँ, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर—१०-९३। (ख) सीपज-माल स्याम-उर सोहै—१०-१३९। (ग) की सुक सीपज की बग-पंगति, की मयूर की पीड़ पखी री—१६२७।

सी-पति—संज्ञा पुं. [सं. श्रीपति] विष्णु।

सीपर—संज्ञा पुं. [फ़ा. सिपर] ढाल।

सीप-सुत—संज्ञा पुं. [हिं. सीप+सं. सुत] मोती। उ.—परसत आनन मनु रबि कुंडल, अंबुज स्रवत सीप-सुत जोटी—१०-१८७।

सीपिज—संज्ञा पुं. [हिं. सीपी+सं. ज] मोती। उ.—दमकति द्वै द्वै दँतुलियाँ बिहँसत, मानौ सीपिज (सीपज) घर कियो बारिज पर—१०-९३।

सीपी—संज्ञा स्त्री [हिं. सीप] 'सीप' नामक जल-जन्तु का

आवरण या संपुट ।

सीबी—संज्ञा स्त्री. [अनु. सी सी] अत्यन्त पीड़ा या आनंद के समय मुँह से निकलनेवाली शीत्कार ।

सीमंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्त्रियों के सिर की माँग । उ.—सीस सचिक्कन केस हो बिच सीमंत सँवारि—२०६५ । (२) सीमंतोन्नयन संस्कार ।

सीमंतक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्त्रियों की माँग निकालने की क्रिया । (२) सिंदूर जिससे सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपनी माँग भरती हैं ।

सीमंतिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री, नारी ।

सीमंतोन्नयन—संज्ञा पुं. [सं.] हिन्दुओं के दस संस्कारों में तीसरा जिसमें गर्भस्थिति के चौथे, छठे या आठवें महीने में गर्भवती की माँग निकाली जाती है ।

सीम—संज्ञा स्त्री. [सं. सीमा] हद, सीमा ।

मुहा. सीम काँड़ना या चरना—दूसरे के क्षेत्र में अधिकार जताना ।

सीमांत—संज्ञा पुं. [सं.] वह स्थान जहाँ सीमा का अंत होता हो ।

सीमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) किसी प्रदेश या स्थान के विस्तार का अंतिम स्थान, हद ।

मुहा. सीमा बंद करना—ऐसा प्रबन्ध करना कि देश की सीमा पर से बाहरी आदमियों का और माल का आना-जाना न हो सके ।

(२) (नियम या मर्यादा की) वह हद जहाँ तक कोई बात या काम करना उचित हो ।

मुहा. सीमा से बाहर जाना—औचित्य या मर्यादा का उल्लंघन करके कोई काम करना ।

सीमाबद्ध—वि. [सं.] हद (की रेखा) से घिरा या घेरा हुआ ।

सीमोल्लंघन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हद या सीमा को लाँघना या पार करना । (२) नियम, मार्यदा का औचित्य से बाहर काम करना ।

सीय—संज्ञा स्त्री. [सं. सीता] सीता, जानकी । उ.—तोरि धनुष, मुख मोरि नृपति को, सीय स्वयंबर कीनौ—९-११५ ।

संज्ञा पुं. [सं. शीत] (१) जाड़ा । (२) जाड़े की ऋतु ।

वि. [सं. शीतल] (१) ठंडा । (२) शांत ।

सीयरा—वि. [सं. शीतल] (१) ठंडा । (२) अपरिपक्व ।

सीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हल (२) सूर्य ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सीर=हल] (१) साझा । (२) साझे में जमीन जोतने-बोने की रीति । (३) वह जमीन जो साझे में जोती-बोयी जाय । (४) वह जमीन जो जमींदार स्वयं जोतता-बोता हो । (५) लगाव, संबंध ।

मुहा. सीर में रहना—मिल-जुलकर रहना ।

संज्ञा पुं. [सं. शिरा] रक्त की नाड़ी ।

मुहा. सीर खुलवाना—फसद खुलवाना ।

संज्ञा पुं. [हिं. सिर] (१) सिर (२) ऊपरी भाग ।

वि. [सं. शीतल या हिं. सीरा] ठंडा ।

सीरक वि. [हिं. सीरा] ठंडा करनेवाला ।

संज्ञा स्त्री. ठंडक । उ.—सोइ करौ जो मिटै हृदय को दाहु परै उर सीरक ।

सीरख—संज्ञा पुं. [सं. शीर्ष] (१) चोटी । (२) कपाल । (३) माथा, मस्तक । (४) सामने का भाग ।

सीरध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजाजनक । (२) बलराम ।

सीरनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. शीरनी] मिठाई ।

सीरष—संज्ञा पुं. [सं. शीर्ष] (१) सिरा । (२) सिर । (३) माथा, मस्तक । (४) आगे का भाग ।

सीरा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शीरः] (१) पका कर गाढ़ा किया हुआ शक्कर का घोल या किसी प्रकार का रस, चाशनी । (२) गेहूँ के आटे की गुड़ की बनी लपसी, हलुआ, मोहनभोग । उ.—(क) है कहयौ सिरावन सीरा—१०-१८३ । (ख) सीरा साजो लेहु ब्रजपती—३९६ ।

संज्ञा पुं. [हिं. सिर] सिरहाना ।

वि. [सं. शीतल, प्रा. सीअड़] (१) ठंडा, शीतल । (२) शांत । (४) चुप, मौन ।

सीरी—वि. स्त्री. [हिं. सीरा] (१) ठंडी, शीतल । उ.—सीरी पौन अगिनि सी दाहति । (२) ठंडा या शांत करनेवाली, सुखद । उ.—कछु सीरी कछु ताती बानी कान्हहिं देति दोहाई—२२७५ ।

सीरे—वि. [हिं. सीरा] ठंडा, शीतल । उ.—नख-सिख

लौं तनु जरत निसा-दिन निकसि करत किन सीरे—३११९८ । (२) ठंढा या शांत करनेवाले, सुखद । उ.—समाचार ताते अरु सीरे पाछे जाइ लहै—२७१३ ।

सील—संज्ञा स्त्री. [सं. शीतल] नमी, तरी ।

संज्ञा पुं. [सं. शील.] उत्तम स्वभाव या आचरण । उ.—(क) कहा कूबरी सील-रूप गुन बस भए स्याम त्रिभंगी—१-२१ । (ख) सत्य-सील-संपन्न सुमूरति—१-६९ । (ग) सील संतोष सखा दोउ मेरे—१-१७३ ।

सीला—संज्ञा पुं. [सं. शिल] (१) फसल कटने पर खेत में पड़े रह जानेवाले अनाज के दाने, सिल्ला । (२) खेत में इस प्रकार पड़े रह जानेवाले दाने बीनकर निर्वाह करने की वृत्ति ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शीला] राधा की एक सखी का नाम । उ.—सुखमा सीला अवधा नंदा बृन्दा जमुना सारि—१५८० ।

वि. [हिं. सील] गीला, तर, नम ।

सीव—संज्ञा स्त्री. [सं. सीमा] हद, सीमा । उ.—निरखि सखि, सुंदरता की सीव—१३४४ ।

संज्ञा पुं. [सं. शिव] महादेव, शंकर । उ.—प्रभु तुम्हरे इक रोम-रोम प्रति कोटिक ब्रह्मा सीव—४९२ ।

सीवक—संज्ञा पुं. [सं.] सिलाई करनेवाला ।

सीवड़ो—संज्ञा पुं. [सं. सीमांत] (गाँव का) सिवाना ।

सीवन—संज्ञा पुं. [हिं. सीना] (१) सीने का काम । (२) सिलाई का जोड़ या उसके टाँके । (३) दरार, संधि ।

सीवना, सीवनो—क्रि. स. [हिं. सीना] (कपड़े आदि) सीना ।

सीवाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. सीमा] हद, सीमा । उ.—सुन्दर त्रयगुन रस की सीवाँ सूर राधिका स्याम—पृ. ३४४ (३१)

सीष—संज्ञा पुं. [सं. शिष्य] चेला, शिष्य ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सीख] उपदेश, शिक्षा ।

संज्ञा पुं. [सं. शीर्ष] (१) चोटी । (२) सिर, कपाल । (३) मस्तक । (४) सामने का भाग ।

सीस—संज्ञा पुं. [सं. शीर्ष] सिर, माथा, मस्तक । उ.—स्वकर काटत सीस—१-१०६ ।

मुहा.—सीस उतारना—मार डालना । सीस उतारौं—सिर काट कर मार डालूँ । उ.—तबै सूर संधान सफल हौं, रिपु को सीस उतारौं—९-१३७ । सीस डुलाना—सिर हिलाकर आश्चर्य आदि प्रकट करना । सीस डोलाए—आश्चर्य आदि प्रकट किया । उ.—जम सुनि सीस डोलाए—१-१२५ । सिर ढोरना—अत्यंत मुग्ध या चकित होकर सिर हिलाना । सीस ढोरैं—अत्यंत मुग्ध या चकित होकर सिर हिलाती हैं । उ.—सुनत मुरली की घोरैं, सुर-बधू सीस ढोरैं—२२८७ । चरन पर सीस धरना—अत्यंत विनय, नम्रता या दीनता दिखाना । चरन सीस धरि—अत्यंत विनय, नम्रता या दीनता दिखाकर । उ.—सूर स्याम कें चरन सीस धरि, अस्तुति करि निज धाम सिधारे—३८५ । सीस धुनना—सिर पीटना, सिरपीट कर पछताना या दुखी होना । सीस धुनै—सिर पीट कर पछताता या दुखी होता है । उ.—नगन न होति चकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारै—१-२५७ । नमित सीस—विनय, नम्रता या दीनता से झुका हुआ सिर (या व्यक्ति) । उ.—भूभृत सीस नमित जो गर्वगत पावक सींच्यौ नीर—९-२६ । सीस फोड़ना या फोरना—कपाल-क्रिया करना । सीस फोरि—कपाल-क्रिया करके । उ.—तेई लै खोपरी, बाँस दै सीस फोरि बिखरैहैं—१-८६ । चरन तर सीस लुटना या लोटना—अत्यंत विनय, नम्रता या दीनता से चरण पर सिर झुकना । लुटत सीस चरन तर—अत्यंत विनय, नम्रता या दीनता से चरणों पर सीस झुकता है । उ.—लुटत सक्र को सीस चरनतर युग गुन गत समए—९८४ ।

सीसक—संज्ञा पुं. [सं.] सीसा (धातु) ।

सीसज—संज्ञा पुं. [सं.] सिंदूर ।

सीस-ताज—संज्ञा पुं. [हिं. सीस + फ़ा. ताज] वह टोपी जो शिकारी जानवरों के नेत्र, मुँह आदि बन्द रखने के लिए चढ़ायी जाती और शिकार के समय खोली जाती है ।

सीसत्रान—संज्ञा पुं. [सं. शिरस्त्राण] टोप ।

सीसफूल—संज्ञा पुं. [हिं. सीस + फूल] सिर पर पहनने

का फूल के आकार का एक गहना।

सीसमहल—संज्ञा पुं. [हिं. शीशा+अ. महल] वह मकान जिसमें सब ओर शीशे जड़े हों।

सीसा—संज्ञा पुं. [सं. सीसक] एक धातु।

संज्ञा पुं. [हिं. शीशा] (१) काँच। (२) दर्पण।

सीसी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) बहुत पीड़ा या आनंद के समय की गयी शीतकार। (२) जाड़े के कष्ट के कारण निकली हुई ध्वनि।

संज्ञा स्त्री. [हिं. शीशी] शीशी।

सीह—संज्ञा स्त्री. [सं. सीधु] महक, गंध।

संज्ञा पुं. [देश.] साही जंतु, सेही।

संज्ञा पुं. [सं. सिंह] सिंह।

सीहगोस, सीहगोसा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सियहगोश] एक जंतु जिसके कान काले होते हैं।

सीँहुड़—संज्ञा पुं. [सं.] थूहर (वृक्ष)।

सुँ—प्रत्य. [पुं. हिं. सों] से।

सुँघनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूँघना] तंबाकू की बुकनी।

सुँघाना, सुँघानो—क्रि. स. [हिं. सूँघना] किसी को सूँघने को प्रवृत्त करना।

सुंड—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूँड़] (हाथी की) सूँड़।

सुंडभुसुंड—संज्ञा पुं. [सं. शुंडभुशुंडि] (सूँड़ ही जिसका अस्त्र है वह) हाथी।

सुंडा—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूँड़] (हाथी की) सूँड़।

सुंडाल—संज्ञा पुं. [हिं. सूँड़] हाथी।

सुंद—संज्ञा पुं. [सं.] एक असुर जो निसुंद का पुत्र और उपसुंद का भाई था। तिलोत्तमा अप्सरा के लिए सुंद और उपसुंद परस्पर लड़ मरे थे। उ.—असुर द्वै हुते बलवत भारी। सुंदउपसुंद स्वेच्छाबिहारी—८-११।

सुंदर—वि. [सं.] (१) रूपवान, मनोहर। उ.—(क) सुंदर स्याम—१-९४। (ख) परम सुंदर नैन—१-३०७। (२) अच्छा, बढ़िया। (३) शुभ।

सुंदरई—संज्ञा स्त्री. [सं. सुंदर+ई] सुंदरता। उ.—रीझे स्याम देखि वा छबि पर रिस मुख सुंदरई—१९७९।

सुंदर-कांड—संज्ञा पुं. [सं.] रामायण का पाँचवाँ कांड जिसका नाम लंका के 'सुंदर' पर्वत के नाम पर है।

सुंदरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सुंदर' होने का भाव या अवस्था, सौंदर्य। उ.—(क) देखी माई सुंदरता की सागर—६२८। (ख) मध्य नायक गोपाल बिराजत सुंदरता की सींवा हो—२४००।

सुंदरताई—संज्ञा स्त्री. [सं. सुंदरता+ई] सुंदरता। उ.—(क) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई—१०-१०८। (ख) स्याम भुजनि की सुंदरताई—६४१। (ग) सूरदास कहि कहा बखानै यह निसि यह अँग सुंदरताई—पृ. ३४२-११।

सुंदराई—संज्ञा स्त्री. [सं. सुंदर+हिं. आई] सुंदरता।

सुंदरापा—संज्ञा पुं. [सं. सुंदर+हिं. आपा] सौंदर्य।

सुंदरि, सुंदरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुंदरी] (१) रूपवती स्त्री। उ.—(क) जा जल-सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुंदरि सरसिज-नैनी—९-११। (ख) ज्यौं सहगमन सुंदरी कैं सँग बहु बाजन हैं बाजत—९-१३२। (ग) इत सुंदरी बिचित्र उतहि घनस्याम सलोना—११३२। (२) सवैया छंद का एक भेद (३) एक वर्णवृत।

सुंवा—संज्ञा पुं. [देश.] छेद करने का औजार।

सुंभ—संज्ञा पुं. [सं. शुंभ] एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था।

सु—उप. [सं.] 'सुंदर या श्रेष्ठ' का वाचक एक उपसर्ग।

वि. (१) अच्छा। (२) श्रेष्ठ। (३) शुभ।

सर्व. [सं. स] सो, वह। उ.—(क) भरि सोवै सुख-नींद मैं तँह सु जाइ जगावै—१-४४। (ख) ज्यौ मृगा कस्तूरि भूलै सु तौ ताके पास—१-७०। (ग) पटपटात टूटत अँग जान्यो, सरन-सरन सु पुकारयौ—५५५।

अव्य. [सं. सह] तृतीया, पंचमी और षष्ठी बिभक्तियों का चिह्न।

सुअंग—वि. [सं. सु+अंग] सुंदर अंगवाला।

सुअटा—संज्ञा पुं. [हिं. सूआ] तोता, शुक।

सुअनजर्द—संज्ञा पुं. [हिं. सोनजर्द] पीली जूही।

सुअना—संज्ञा पुं. [सं. सुत, प्रा. सुअ] बेटा, पुत्र।

सुअना, सुअनो—क्रि. अ. [हिं. सुअन ?] (१) उत्पन्न या उदय होना। (२) उगना।

संज्ञा पुं. [हिं. सूआ] तोता, शुक।

सुअर—संज्ञा पुं. [सं. शूकर] एक प्रसिद्ध जंतु।

सुअरदंता—वि. [हिं. सुअर+दंता] सुअर जैसे दाँत वाला।

सुअवसर—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छा समय या मौका।

सुआ—संज्ञा पुं. [हिं. सूआ] (१) तोता, शुक। (२) बड़ी और मोटी सुई, सूजा।

सुआद–संज्ञा पुं. [सं. स्वाद] स्वाद।

संज्ञा पुं [हि] याद, स्मरण करना।

सुआन—संज्ञा पुं. [सं. श्वान] कुत्ता।

सुआना, सुआनो—क्रि. स. [हिं. सुलाना] सुलाना।

क्रि. स. [हिं. सूना] उत्पन्न करना।

सुआमी—संज्ञा पुं. [सं. स्वामी] (१) प्रभु। (२) पति।

सुआर—संज्ञा पुं. [सं. सूपकार] रसोइया।

सुआरव–वि. [सं.] (१) मीठी वाणी बोलनेवाला। (२) मीठे स्वर से बजानेवाला।

सुआसन—संज्ञा पुं. [सं.] (बैठने का) सुन्दर आसन।

सुआसिन, सुआसिनि, सुआसिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुवासिनी] (१) (आस-पास या साथ रहनेवाली) सहचरी। (२) सुहागिन या सधवा स्त्री।

सुआहित—संज्ञा पुं. [सं. सु+आहत ?] तलवार चलाने के बत्तीस ढंगों में एक।

सुई—संज्ञा स्त्री. [सं. सूची] (१) तागा पिरो कर कपड़ा सीने का बहुत छोटा उपकरण, सूची। (२) सूई की तरह का तार या काँटा।

मुहा.—सुई का फावड़ा या भाला बनाना—जरा सी बात को बहुत बड़ा कर देना, बात का बतंगड़ कर देना। आँख की सुई (या सुइयाँ) निकलना—किसी कठिन काम को समाप्तप्राय देखकर और शेषांश पूरा करके सारा श्रेय प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

(३) पौधे का छोटा, पतला अंकुर।

सुकंठ—वि. [सं.] (१) जिसकी गरदन या कंठ सुंदर हो। (२) जिसका स्वर मधुर हो। उ.—चारौ बेद पढ़त मुख आगर अति सुकंठ सुर गावत—८-११।

संज्ञा पुं. [सं.] सुग्रीव।

सुक—संज्ञा पुं. [सं. शुक] (१) तोता, कीर। उ.—(क) गनिका किए कौन व्रत संजम सुक-हित नाम पढ़ावै—१-१२२। (ख) ज्यौं सुक सेमर आस लगि—१-३२६। (ग) नासिका सुक नयन खंजन—१२९४। (२) शुकदेव मुनि। उ.—ब्रह्म सिव सेस सुक-सनक ध्यायौ—१-११९। (३) एक राक्षस जो रावण का दूत था। उ. सुक-सारन द्वै दूत पठाए—९-१२०।

सुकचाना, सुकचानो—क्रि. अ. [हिं. सकुचाना] (१) संकोच करना, हिचकिचाना। (२) लजाना।

सुकटि—वि. [सं.] जिसकी कमर सुंदर हो।

सुकड़ना, सुकड़नो–क्रि. अ. [हिं. सिकुड़ना] सिकुड़ना।

सुकदेव—संज्ञा पुं. [सं. शुकदेव] व्यासपुत्र शुकदेव मुनि। उ.—सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ, राजा सौं बोल्यौ या भाइ—३-१।

सुकनासा—वि. [सं. शुक+नासिका] जिस स्त्री की नाक तोते की चोंच जैसी सुंदर हो।

सुकन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा शर्याति की पुत्री जो च्यवन ऋषि को ब्याही थी।

सुकबि–संज्ञा पुं. [सं. सुकवि] श्रेष्ठ कवि। उ.—या छवि की पटतर दीबे कौं सुकवि कहा टकटोहै—१०-१५८।

सुकर—वि. [सं.] सहज में या अनायास किया जानेवाला (कार्य), सुगम।

संज्ञा पुं. [सं. सु+कर] सुंदर हाथ। उ.—अंबु सलिल बूड़त सब गोकुल सूर सुकर गहि लीजै—३४५४।

सुकरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'सुकर' या सहज में होने का भाव, सुगमता, सुभीता। (२) सुंदरता।

सुकराना—संज्ञा पुं. [हिं. शुकराना] (१) धन्यवाद। (२) काम करनेवाले को धन्यवाद रूप में दिया जानेवाला धन।

सुकरित—वि. [हिं. सुकृत] (१) भला, शुभ। (२) भला या शुभ कार्य करनेवाला। (३) भाग्यवान। (४) धर्मशील।

संज्ञा पुं. (१) पुण्य। (२) सत्कर्म।

सुकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छा काम।

सुकर्मा–वि. [सं. सुकर्म्मन्] अच्छा काम करनेवाला। उ.—आपुन भए सुकर्मा भारि।

सुकर्मी–वि. [सं. सुकर्म्मिन्] अच्छा काम करनेवाला। (२) पुण्यात्मा। (३) सदाचारी।

सुकल—संज्ञा पुं. [सं. शुक्ल] शुक्ल (पक्ष)।

सुकचना, सुकचनो—क्रि. अ. [देश.] चकित होना।

सुकचाना, सुकचानो—क्रि. स. [देश.] चकित करना।

क्रि. अ. चकित होना, अचंभे में होना।

क्रि. स. [हिं. सुखवाना] सुखाने को प्रवृत्त करना।

सुकवि—संज्ञा पुं. [सं.] श्रेष्ठ कवि।

सुकांड - वि. [सं.] जिसकी डाल या शाखा सुंदर हो।

सुकांडी—संज्ञा पुं. [सं. सुकांडिन्] भौंरा, भ्रमर।

सुकाग —संज्ञा पुं. [सं. सु + हिं. काग] कौवा जिसने सगुन सूचित करके सत्कार्य किया हो। उ.—इतनी कहत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ—९-१६४।

सुकाज—संज्ञा पुं. [सं. सु + हिं. काज] उत्तम कार्य।

सुकातिज - संज्ञा पुं. [सं. शुक्तिज] मोती।

सुकाना, सुकानो—क्रि. स. [हिं. सुखाना] (१) (धूप या गरमी से) गीलापन दूर करना। (२) गीलापन दूर करने के लिए धूप आदि में डालना। (३) दुर्बल बनाना।

क्रि. अ. दुर्बल होना, सूख जाना।

सुकाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अच्छा या सुख का समय। (२) अन्न की उपज के विचार से सस्ती का समय।

सुकावना, सुकावनो—क्रि. स. [हिं. सुखाना] सुखाना।

सुकिज—संज्ञा पुं. [सं. सुकृत] उत्तम या शुभ कार्य।

सुकिया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वकीया] वह स्त्री जो केवल अपने पति से ही प्रेम करती हो।

सुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. शुक] तोते की मादा।

सुकीउ—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वकीया] वह स्त्री जो केवल अपने पति से ही प्रेम करती हो।

सुकुआर - वि. [सं. सुकुमार] जिसके अंग बहुत कोमल हों। उ.—उन दिननि सुकुआर हते हरि।

सुकुति—संज्ञा स्त्री. [सं. शुक्ति] सीप।

सुकुमार—वि. [सं.] जिसके अंग बहुत कोमल हों। उ.—भयौ सुरुचि तैं उत्तम क्वार, अरु सुनीति कैं ध्रुव सुकुमार—४-९।

संज्ञा पुं. (१) कोमल अंग का बालक। (२) कोमल अक्षरों या शब्दों से युक्त काव्य।

सुकुमारता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कोमलता।

सुकुमारि, सुकुमारी—वि. [सं. सुकुमारी] कोमल अंगोंवाली (स्त्री)। उ.—(क) सत्यवती मच्छोदरि नारी। गंगा तट ठाढ़ी सुकुमारी—१-२२९। (ख) प्रातहीं उठि चलीं सब मिलि जमुन-तट सुकुमारि—७७७।

सुकुरना, सुकुरनो - क्रि. अ. [हिं. सिकुड़ना] संकुचित होना।

सुकुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तम कुल या वंश। (२) उत्तम कुल या वंश में जन्मा व्यक्ति।

संज्ञा पुं. [सं. शुक्ल] शुक्ल पक्ष।

वि. सफेद, उजला, उज्ज्वल।

सुकुलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुलीनता।

सुकुवाँर, सुकुवार - वि. [सं. सुकुमार] कोमल।

सुकृत—वि. [सं. सुकृत्] (१) उत्तम और शुभ कार्य करनेवाला। (२) धार्मिक, पुण्यवान।

संज्ञा पुं. [सं.] सत्कार्य, पुण्य। उ.—(क) जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल सुकृत-अमृत रस पीजै—१-३३७। (ख) इक मन अरु ज्ञानेंद्री पाँच.........।ज्यौं मग चलत चोर धन हरैं। त्यौं ये सुकृत-धनहिं परिहरैं—५-४। (ग) बदत बिरंचि बिसेष सुकृत ब्रज-बासिन के—४८७।

मुहा. सुकृत मनाना—अपने पुण्यों का मन ही मन स्मरण करना जिससे संकट से रक्षा हो।

वि. भाग्यवान, भाग्यशाली।

सुकृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] पुण्य, सत्कर्म।

वि. [हिं. सुकृती] पुण्यात्मा, सत्कर्मी। उ.—सुनहु सूर नृप पास जाति हैं बीच सुकृति अति दरस दियो—२६३३।

सुकृती—वि. [सं. सुकृतिन्] (१) सत्कर्मी, पुण्यात्मा। उ.—सुकृती सुचि सेवकजन काहि न जिय भावै—१-१२४। (२) भाग्यवान।

सुकृत्य—संज्ञा पुं. [सं.] सत्कर्म, पुण्य।

सुकेतु - संज्ञा पुं. [सं.] ताड़का के पिता का नाम।

सुकेश—वि. [सं.] जिसके बाल सुन्दर हों।

सुकेशि—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रसिद्ध राक्षस जो माल्यवान, सुमाली और माली का पिता था।

सुकेशी—वि. स्त्री. [सं.] उत्तम केशोंवाली।

सुकोमल—वि. [सं. सु + कोमल] बहुत मुलायम या सुकु-

मार । उ.—माखन सहित देहि मेरी मैया सुपक सुकोमल रोटी—१०-१६३ ।

सुक्की—वि. [सं. स्वकीय] अपना, निज ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शुक] तोते की मादा, तोती ।

सुक्ख—संज्ञा पुं. [सं. सुख] आराम, आनंद ।

सुक्र—संज्ञा पुं. [सं. शुक] (१) सौर गृह का एक प्रसिद्ध गृह जो दैत्यों का गुरु माना गया है। उ.—(क) छठऐं सुक्र तुला के सनि जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं—१०-८६। (ख) मानहुँ गुरु-सनि-सुक्र एक ह्वै लाल-भाल पर सोहै री—१०-१३९ । (ग) सुक्र उदय होन लाग्यौ—२०४६ ।

सुक्रतु—वि. [सं.] सत्कर्म करनेवाला ।

सुक्रित—संज्ञा पुं. [सं. सुकृत] सत्कर्म, पुण्य । उ.—(क) परम भाग्य सुक्रित के फल तैं सुंदर देह धरी—१-७१ । (ख) तस्कर ज्यौं सुक्रित-धन लेहिं—५-४ ।

सुक्ल—वि. [सं. शुक्ल] उजला, सफेद ।

संज्ञा पुं शुक्ल पक्ष ।

सुक्षम—वि. [सं. सूक्ष्म] बहुत छोटा, थोड़ा या पतला ।

सुखंडी—वि. [हिं. सूखना] बहुत दुबला-पतला ।

सुखंद, सुखंदा—वि. [सं. सुखद] आनंददायक ।

सुख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह अनुकूल और प्रिय अनुभूति जिसकी सबको अभिलाषा रहती है, आराम ।

मुहा. सुख मानना—(१) हरी-भरी अवस्था में रहना । (२) संतुष्ट या प्रसन्न रहना । सुख में—सुख-सौभाग्य के दिनों से । उ.—सुख में आइ सबै मिलि बैठत रहत चहूँ दिसि घेरे—१-७९ । सुख भोगना या लूटना—खूब मौज करना । सुख की नींद सोना—सब तरह से निश्चित रहना ।

(२) स्वस्थता, आरोग्य । (३) स्वर्ग । (४) पानी । (५) सवैया छंद का एक भेद ।

सुख-आसन—संज्ञा पुं. [सं. सुख+आसन] पालकी, सुखपाल । उ.—चढ़ि सुख-आसन नृपतिं सिधायौ—५,४ ।

सुखकंद, सुखकंदन—वि. [सं. सुख+हिं. कंद] सुख या आनंद देनेवाला ।

सुखकंदर—वि. [सं, सुख+कंदरा] सुख का घर ।

सुखक—वि. [हिं. सूखा] सूखा शुष्क ।

सुखकर—वि. [सं.] (१) सुख देनेवाला । (२) जो सुख से या सहज ही किया जा सके । (३) जिसका हाथ हलका हो ।

सुखकरण, सुखकरन—वि. [सं. सुखकरण] सुख देनेवाला । उ.—दुहूँ लोक सुखकरन हरन-दुख बेद-पुराननि साखि—१-९० ।

सुखकारक—वि. [सं.] सुख देनेवाला ।

सुखकारी—वि. [सं. सुखकारिन्] सुख देनेवाला । उ.—(क) सूर स्याम सेवक-सुखकारी—१-३० । (ख) माता-हेत जनहिं सुखकारी ।........। ऐसे हरि जनक सुखकारी—३९१ ।

सुखकारो—वि. [सं. सुखकर] सुख देनेवाला । उ.—बंसी-बट तट रास रच्चौ है सब गोपिनि सुखकारी—पृ. ३५१ (७०) ।

सुखजनक—वि. [सं.] सुखदायक ।

सुखजननि, सुखजननी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुखजननी] सुख देने या उपजानेवाली ।

सुखजीवी—वि. [सं. सुख+जीविन्] सुख-सुविधा से जीवन बिताने की चेष्टा करने या इच्छा रखनेवाला ।

सुखज्ञ—वि. [सं. सुख+ज्ञ] सुख का अनुभवी ।

सुखढरन—वि. [सं. सुख+हिं. ढालना] सुखदायक ।

सुख-थर—संज्ञा पुं. [सं सुख+स्थल] सुखदायी स्थान ।

सुखद—वि. [सं.] सुख देनेवाला, सुखदायी ।

क्रि. वि. सुख के साथ । उ.—इहिं वृन्दावन इहिं जमुना-तट ये सुरभी अति सुखद चरावत—४४९ ।

सुखदनियाँ - वि. [सं. सुख+हिं. देना] सुख देनेवाला । उ.—अंग-अंग सुभग सकल सुखदनियाँ—१०-१०६ ।

सुखदा—वि. स्त्री. [सं.] सुख देनेवाली ।

सुखदाइ—वि. [हिं. सुखदायी] सुख देनेवाला । उ.—(क) सब के ईस परम करुनामय सबहीं कौं सुखदाइ—९-१३४ । (ख) सूरस्याम ब्रज-लोग कौं जहँ तहँ सुखदाइ—५८९ ।

सुखदाइन, सुखदाइनि, सुखदाइनी—वि. स्त्री. [सं. सुखदायिनी] सुख देनेवाली ।

सुखदाई—वि. [हिं. सुखदायी] सुख देनेवाली (वाला) । उ. (क) कर जोरे बिनती करौं दुरबल-सुखदाइ—

१-२३८ । (ख) दारा-सुत-देह-गेह-संपति सुखदाइ—१-३३० ।

सुखदात, सुखदाता—वि. [सं. सुखदातृ, हिं. सुखदाता] सुख या आनंद देनेवाला ।

सुखदान, सुखदानि—वि. [सं. सुख + हिं. देना] सुख देनेवाला, सुखद ।

संज्ञा पुं. प्रियतम, पति ।

सुखदानी—वि. स्त्री. पुं. [सं. सुख + हिं. देना] सुख देनेवाला (वाली) । उ.—(क) ऐसे प्रभु सुखदानी—१-११२ । (ख) धनि त्रिय तुमको जो सुखदानी संगम जागत रैनि विहानी—१९६७ ।

सुखदायक—वि .[सं.] सुख देनेवाला । उ.—(क) सुमिरन कथा सदा सुखदायक—१-८३ । (ख) सकल लोकनायक सुखदायक—१०-४ । (ग) सूर स्याम संतनि सुखदायक—६०७ ।

सुखदायिनि, सुखदायिनी—वि. स्त्री. [सं. सुखदायिनी] सुख देनेवाली, सुखदा ।

सुखदायी—वि. [सं. सुखदायिन्] सुखद ।

सुखदायो, सुखदायौ—वि. [हिं. सुखदायी] सुख देनेवाला । उ.—तैसी हंस-सुता पवित्र तट तैसोई कल्पवृच्छ सुखदायो ।

सुखदाव—वि. [हिं. सुखदायी] सुखद ।

सुखदेन, सुखदैनी—वि. [सं. सुख + देना] सुखद ।

सुखदेनी, सुखदैनी—वि. स्त्री. [हिं. सुख + देना] सुख या आनंद देनेवाली, सुखदायिनी ।

सुख-धाम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुख का स्थान या भवन । (२) वह जो बहुत सुख देनेवाला या सुखदायी हो । (३) बैकुंठ, स्वर्ग । उ.—(क) छाँड़ि सुख-धाम अरु गरुन तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५ । (ख) सुनियत है तुम बहुपतितनि कौं दीन्हौ है सुखधाम—१-१७९ ।

सुखनिधान—वि. [सं. सुख + निधान] (१) अत्यंत सुखदायिनी । उ.—जद्यपि सुख-निधान द्वारावति तौउ मन कहुँ न रहाहीं—१०- उ.-१०३ । (२) समस्त सुखों के आकर । उ.—मनसा नाथ मनोरथ पूरन सुख-निधान जाकी मौज घनी—१-३९ ।

सुख-पाल—संज्ञा पुं. [सं. सुख + पाल] ऐसी पालकी जिसका ऊपरी भाग शिवालय के शिखर-सा हो । उ.—तजि सुख-पाल रह्यौ गहि पाइ—५-४ ।

सुख-पुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुख + पुरी] स्वर्ग, बैकुंठ ।

सुखपूर्वक—क्रि. वि. [सं.] सुख से ।

सुखप्रद—वि. [सं.] सुख देनेवाला ।

सुखमन—संज्ञा स्त्री. [सं. सुषुम्ना] 'सुषुम्ना' नाड़ी ।

सुखमा—संज्ञा स्त्री. [सं. सुषमा] (१) शोभा, छवि । (२) राधा की सखी एक गोपी । उ.—(क) कहि राधा किन हार चुरायो ।''' '''। सुखमा सीला अवधा नंदा वृन्दा जमुना सारि—१५८० । (ख) सुखमा महल द्वार ही ठाढ़ी—२०८१ ।

सुखमानी—वि. [सं. सुखमानिन्] हर अवस्था या स्थिति में सुखी रहनेवाला ।

सुख-मुख—वि. [सं.] सुंदर बातें करनेवाला ।

सुख-रात्रि—संज्ञा स्त्री. [सं.] दिवाली की रात ।

सुखरास, सुखरासि, सुखरासी—वि. [सं. सुख + राशि] जो सर्वथा सुखमय हो । उ.—(क) सो बारिज सुख-रास—१-३३९ । (ख) मीत हमारे परम मनोहर कमलनयन सुखरासी—३३१४ ।

सुखलाना, सुखलानो—क्रि. स. [हिं. सुखीन] सुखाना ।

सुखवंत, सुखवंता—वि. [सं. सुखवत्] (१) सुखी, प्रसन्न । (२) सुख देनेवाला, सुखद ।

सुखवत—क्रि. स. [हिं. सुखवना, सुखाना] सुखाता है । उ.—(क) सोभित सिथिल बसन मनमोहन सुखवत स्रम के पागे—६८६ । (ख) मुख के पवन परस्पर सुखवत गहे पानि पिय जारो—२२७५ ।

सुखवन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूखना] किसी चीज के सूखने पर हो जानेवाली छीज या कमी ।

संज्ञा पुं. स्याही सुखाने की बालू ।

सुखवना, सुखवनो—क्रि. स. [हिं. सुखाना] सुखाना ।

सुखवा—संज्ञा पुं. [हिं. सुख] सुख, आनंद ।

सुखवादी—वि. [सं. सुख + वादिन्] भोग विलास में ही जीवन का सुख समझनेवाला, विलासी ।

सुखवार—वि. [सं. सुख + हिं. वार] (१) सुखी, प्रसन्न । (२) सुख से ही रहने का अभ्यस्त ।

सुखवास—संज्ञा पुं. [सं.] सुख का स्थान।
सुख-सार—संज्ञा पुं. [सं. सुख+सागर] सुख निधान।
उ.—सूरदास स्वामी सुख-सागर—१०-१०२।
सुखसाध्य—वि. [सं.] जो सुख से किया जा सके।
सुख-सार—संज्ञा पुं. [सं.] मोक्ष, मुक्ति।
सुख-सेज, सुख-सेज्या—संज्ञा स्त्री. [सं. सुख+शैय्या] वह शैया जो बहुत सुखदायिनी हो। उ.—कमल-नैन पोढ़े सुख-सेज्या—२-२६८।
सुख-स्वप्न—संज्ञा पुं. [सं.] भावी सुख या सिद्धि संबंधी कोई सुखद योजना या कल्पना।
सुखांत—वि. [सं.] (१) जिसका अंत या परिणाम सुखकर हो। (२) जिस (काव्य, नाटक या कथा) के अंत में सुखपूर्ण घटना, जैसे संयोग, अभीष्ट सिद्धि, आदि हो।
सुखाधार—वि. [सं.] जिस पर सुख निर्भर हो।
संज्ञा पुं. स्वर्ग।
सुखाना—क्रि. स. [हिं. सूखना] (१) किसी गीली चीज को धूप या हवा में अथवा आग के पास इस प्रकार रखना कि उसकी नमी या आर्द्रता दूर हो जाय। (२) नमी या आर्द्रता दूर करना। (३) दुर्बल बनाना।
क्रि. अ. [हिं. सूखना] (१) नमी या आर्द्रता न रह जाना। (२) जल न रहना या कम हो जाना। (३) रोग, चिंता आदि से दुर्बल हो जाना। (४) भय से सन्न होना।
क्रि. अ. [हिं. सुख] (१) अच्छा या भला लगना। (२) अनुकूल या सहज होना।
सुखानी—क्रि. अ. [हिं. सूखना] रोग, चिंता आदि से दुर्बल हो गयी। उ.—तज्यौ मूल साखा से पत्रनि सोच सुखानी देहु—२३४३।
सुखानो—क्रि. स., अ. [हिं. सुखाना] सुखाना।
सुखान्यो, सुखान्यौ—क्रि. अ. हिं. सूखना] दुर्बल हो गया। उ.—तनु तप तेज सुखान्यौ—३१२७।
सुखारा—वि. [सं. सुख+हिं. आरा] (१) सुखी, प्रसन्न। (२) सुख देनेवाला, सुखद। (३) सुख से होनेवाला।
सुखारि, सुखारी—वि. [हिं. सुखारा] सुखी, प्रसन्न। उ. मुयो असुर सुर भये सुखारी—७-२।
सुखारो—वि. [हिं. सुखारा] (१) सुखी, प्रसन्न। (२) सुखद। (३) सहज, सुगम।
सुखार्थी—वि. [सं. सुखार्थिन्] (१) सुख चाहनेवाला। (२) सुख में ही रमा रहनेवाला, विलासी।
सुखाला, सुखाली—वि. [सं. सुख+हिं. आला] (१) सुख या आनंददायक। (२) सहज, सुगम।
सुखावह—वि. [सं.] (१) सुखद। (२) सहज।
सुखाश—वि. [सं.] जिसे सुख की आशा हो।
सुखाशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आनंद की आशा।
सुखाश्रय—वि. [सं.] जिस पर सुख निर्भर हो।
सुखासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आसन जिस पर बैठने में सुख मिले। (२) पालकी।
सुखिआ—वि. [हिं. सुखी] प्रसन्न, आनंदित।
सुखित—वि. [हिं. सुखी] (१) सुखी, प्रसन्न। (२) सुख देनेवाला, सुखद। उ.—जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै सुखित समोइ करे—९-१७१।
वि. [हिं. सूखना] सूखा हुआ, शुष्क।
सुखिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुखी होने का भाव। (२) सुख, आनंद।
सुखिया—वि. [हिं. सुखी] प्रसन्न, आनंदित।
सुखिर—संज्ञा पुं [देश.] साँप का बिल, बाँबी।
सुखी—वि. [सं. सुखिन्] (१) जिसे सब सुख प्राप्त हों। (२) प्रसन्न, आनंदित।
सुखेन—अव्य. [सं.] सुख से, सुखपूर्वक।
संज्ञा. पुं. [सं. सुषेण] एक वानर जो वरुण का पुत्र, वाली का ससुर और सुग्रीव का राजवैद्य था। उ.—(क) दौनागिरि पर आहि संजीवन बैद सुखेन (सुषेन) बताई—९-१४९। (ख) सुग्रीव बिभीषन जामवंत। आनंद सुखेन (सुषेन) केदार संत—९-१६६।
सुखैन, सुखैना—वि. [सं. सुख+अयन] सुख देनेवाला।
सुखैहै—क्रि. अ. [हिं. सूखना] (चिंता आदि से) दुर्बल हो जायगा। उ.—तुम बिनु मोकों देखि सुखैहै—२६४९।
सुख्याति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रसिद्धि। (२) यश।
सुगंध—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अच्छी महक या गंध, सुवास, सौरभ। (२) वह वस्तु जिसकी गंध सुन्दर हो। उ.—(क) याकैं अंग सुगन्ध लगावहु—५-३।

(ख) चंदन अगर सुगंध और घृत विधि करि चिता बनायी—९-५० ।

वि. जिसमें सुंदर गंध हो । उ.—सीतल सलिल सुगन्ध पवन सुख-तरु वंसीबट—५८६ ।

सुगंधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] सौरभ ।

वि. सुगंधयुक्त, सुगंधित ।

सुगंधित—वि. [सं. सुगंधि] जिसमें सुंदर गंध हो ।

सुगंधी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुगंधि] सौरभ ।

वि. [सं. सुगंधिन्] जिसमें सुंदर गंध हो ।

सुगत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) महात्मा बुद्ध का एक नाम । (२) बुद्ध धर्मानुयायी, बौद्ध ।

सुगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] मुक्ति, मोक्ष ।

सुगना—संज्ञा पुं. [हिं. सुग्गा] तोता, कीर ।

सुगम—वि. [सं.] (१) जहाँ या जिसमें जाना या पहुँचना सरल हो । (२) जो सहज में जाना, किया या पाया जा सके । उ.—भक्त जमुने सुगम, अगम औरै—१-२२२ । (३) जो सरलता से हो सके, सहज । उ.—जब जब दीननि कठिन परी । जानत हौं करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी—१-१६ ।

सुगमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] आसानी, सरलता ।

सुगम्य—वि. [सं.] जिसमें सरलता से प्रवेश हो सके ।

सुगर, सुगल—संज्ञा पुं. [स. सु+हिं. गला] सुग्रीव ।

सुगात—संज्ञा पुं. [सं. सु+गात] सुंदर शरीर । उ.—आपु जबहिं द्वारे ह्वै निकसत देखत सबै सुगात—१२२२ ।

सुगान संज्ञा पुं. [सं. सु+गान] सुंदर गीत । उ.—गावहिं मंगल सुगान, नीके सुर नीकी तान–१०-९६ ।

सुगाना—क्रि. अ. [सं. शोक] (१) दुखी होना । (२) बिगड़ना, अप्रसन्न होना ।

क्रि. अ. [देश.] संदेह करना ।

सुगानी—क्रि. अ. [हिं. सुगाना] बिगड़ी, अप्रसन्न या रुष्ट हुई । उ.—सूर स्याम के संग न जैहौं जा कारन तू मोहिं सुगानी—१२५५ ।

सुगुरा—वि. [सं. सुगुरु] जिसे अच्छे गुरु से मंत्र, दीक्षा या शिक्षा मिले ।

सुगैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुग्गा] अँगिया, चोली ।

सुग्गा—संज्ञा पुं. [सं. शुक] तोता, कीर ।

सुग्रिव, सुग्रीव—वि. [सं. सुग्रीव] सुंदर ग्रीवावाला ।

संज्ञा पुं. (१) बानरराज बालि का भाई जो उसके बाद राजा बना और जिसने श्रीराम को रावण के जीतने में सहायता दी थी । उ.—पहुँचे आइ निकट रघुबर कै सुग्रिव आयौ धाई—९-१०२ । (२) इंद्र । (३) शंख ।

सुघट—वि. [सं.] (१) सुडौल, सुंदर । (२) जो सहज में बन या होसके ।

सुघटित—वि. [सं. सुघट] जो सुडौल या सुंदर रूप में बनाया गया या निर्मित हो ।

सुघड़, सुघर—वि. [सं. सुघट] (१) सुडौल, सुंदर । (२) (हाथ के काम में) निपुण, कुशल । उ.—सब्द संग मृदंग मिलवत सुघर नंदकुमार—पृ० ३४६ (४५) ।

सुड़घई, सुघरई—संज्ञा स्त्री. [हिं० सुघड़+ई] (१) अच्छी बनावट, सुडौलता । (२) कुशलता, निपुणता ।

सुघड़ता, सुघरता, संज्ञा स्त्री [हिं. सुघड़+ता] (१) अच्छी बनावट, सुडौलता । (२) दक्षता, कुशलता ।

सुघड़पन, सुघरपन—संज्ञा पुं. [हिं. सुघड़+पन] (१) अच्छी बनावट, सुंदरता । (२) निपुणता, दक्षता ।

सुघड़ाई, सुघराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुघड़+आई] (१) अच्छी बनावट, सुडौलता । उ.–अंग दिखाइ गई हँसि प्यारी, सुरति-चिन्हनि की सुघराई—२१८४ । (२) कुशलता, निपुणता ।

सुघड़ाया, सुघराया—संज्ञा पुं. [हिं. सुघड़+आया] (१) अच्छी बनावट, सुंदरता । (२) दक्षता, कौशल ।

सवड़ी, सुघरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. घड़ी] शुभ समय या साइत ।

वि. स्त्री. [हिं. सुघड़] सुडौल, सुंदर ।

सुघड़ी, सुघरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सु+घड़ी] अच्छी या शुभ घड़ी, साइत या समय ।

वि. स्त्री. [हिं. सुघड़] सुडौल, सुंदर ।

सुघोष—वि. [सं.] सुंदर स्वर या कंठवाला ।

सुचंग—संज्ञा पुं [डिं.] घोड़ा, अश्व ।

सुचंद, सुचंद्र—वि. [सं. सु+चंद्र] उत्तम श्रेष्ठ ।

संज्ञा पुं. पूर्णिमा का चाँद ।

सुच—वि. [सं. शुचि] (१) पवित्र । (२) स्वच्छ ।

सुचना—क्रि. स. [सं. संचय] इकट्ठा करना ।
क्रि. अ. एकत्र या संचित होना ।
सुचरित, सुचरित्र—वि. [सं.] उत्तम आचरण वाला ।
सुचरित्रा—वि. [सं.] सती, साध्वी ।
सुचा—वि.[सं. शुचि] (१) पवित्र । (२) स्वच्छ ।
संज्ञा स्त्री. [सं. सूचना] (१) सूचना । (२) चेतना ।
सुचान—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोचना] (१) सोचने की क्रिया या भाव (२) सूझ, विचार । (३) सुझाव, सूचना ।
सुचाना, सुचानो—क्रि. स. [हिं. सोचना] (१) सोचने को प्रवृत्त करना । (२) दिखना । (३) ध्यान आकृष्ट करना ।
सुचार—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. चाल] १) अच्छी चाल । (२) उत्तम आचरण ।
वि. [सं. सुचारु] सुंदर, मनोहर । उ.—सांख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरन सुचार - सारा. ५७ ।
सुचारु—वि. [सं.] बहुत सुंदर ।
सुचाल—संज्ञा स्त्री. [सं.सु+हिं. चाल] (१)अच्छी चाल । (२) उत्तम आचरण ।
सुचाली—वि. [हिं. सुचाली] (१) अच्छी चाल वाला । (२) अच्छे आचरण वाला ।
सुचि—वि. [सं. शुचि] (१) पवित्र । उ.—दिन दस लौं जलकुंभ साजि सुचि दीप-दान करवायौ—९-५० । (२) स्वच्छ । उ.—बृन्दा बिपिन बिसद जमुना-तट सुचि ज्यौनार बनाई—४१६ ।
सुचिकरमा—वि. [सं. शुचिकर्म] पुण्य कार्य या पवित्र आचरण करनेवाला ।
सुचित--वि. [सं. सुचित्त] (१) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो । (२) निश्चित । उ.—अबहिं निवछरो समय सुचित ह्वै हम तो निधरक कीजै—१-१९१ । (३) एकाग्र, स्थिर, सावधान । उ.—तब पहिचानि जानि प्रभु को भृगु परम सुचित मन कीन्हौं —२९७१ ।
सुचितई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुचित] (१) फुरसत, छुट्टी । (२) निश्चितता । (३) एकाग्रता, स्थिरता ।
सुचिती—वि. [हिं. सुचित] जिसका चित्त दुविधा में न होकर, स्थिर हो । (२) निश्चित ।
सुचित्त—वि. [सं.] (१) (किसी कार्य से) निवृत्त । (२) निश्चित । (३) एकाग्र, स्थिर (४) स्थिर चित्तवाला ।
सुचिमंत, सुचिमत—वि. [सं. शुचि+मत] शुद्ध या पवित्र आचरणवाला, सदाचारी ।
सुचिमन—वि. [सं. शुचि+मन] पवित्र मन वाला ।
सुचिर—वि. [सं.] (१) पुराना । (२) स्थायी ।
सुची—संज्ञा स्त्री. [सं. शची] इंद्र-पत्नी शची ।
वि. [सं. शुचि] पवित्र । उ.—जमुना, तोहिं बह्यौ क्यों भावै ।........। तेरो नीर सुची जो अब लौं खार-पनार कहावै - ५६१ ।
सुचेत—वि. [सं. सुचेतस्] चौकन्ना, सावधान ।
संज्ञा पुं. [सं. सु+हिं. चेत] चेतना, ध्यान । उ. —बुद्धि सोचति त्रिया ठाढ़ी नेक नहीं सुचेत—२१८७ ।
सुचेता—वि. [हिं. सुचेत] चौकन्ना, सतर्क ।
सुच्चा, सुच्चो—वि. [सं. शुचि] (१) पवित्र, शुद्ध । (२) जो जूठा न किया गया हो । (३) ठीक, निर्दोष । (४) असली, सच्चा ।
सुच्छंद—वि. [सं. स्वच्छंद] (१) स्वतंत्र । (२) निरंकुश ।
सुच्छ—वि. [सं. स्वच्छ] (१) निर्मल । (२) पवित्र ।
सुच्छम—वि. [सं. सूक्ष्म] बहुत छोटा, पतला या थोड़ा ।
सुछंद—वि. [सं. स्वच्छंद] (१) स्वाधीन, स्वतंत्र । उ.—सब सखि-सखा सुछंद—१०-२०३ । (२) निरंकुश ।
सुजक्का—वि. [?] सुंदर, मनोहर ।
सुजघन संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. जघन] सुंदर जाँघ । उ.– जानु सुजघन करभ-कर आकृति १-६९ ।
सुजन—संज्ञा पुं. [सं.] भला या सज्जन पुरुष । उ.—(क) सुजन-वेष रचना अति जनमनि आयौ पर धन हरतौ—१-२०३ । (ख) बिप्र सुजन चारन-बंदीजन सकल नंद-गृह आये—१०-८७ ।
संज्ञा पुं. [सं. स्वजन] परिवार के लोग, आत्मीय-जन । उ.—हरषित सुजन सखा त्रिय बालक कृष्न मिलन जिय भाए ।
सुजनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भलमंसी, सौजन्य ।
सुजन्मा—वि. [सं. सुजन्मन्] अच्छे कुल में जन्मा हुआ ।
सुजल—संज्ञा पुं. [सं. सु+जल]अच्छा या पवित्र जल । उ.

—सूर सुजल सींचियै कृपानिधि निज जन चरन-तटी १-९८।

सुजस—संज्ञा पुं. [सं. सुयश] **सुंदर कीर्ति।** उ.—(क) जाकौ सुजस सुनत अरु गावत जैहैं पाप-वृन्द भजि भरहरि—१-३१२। (ख) निगम जाकौ सुजस गावत —१-३३५।

सुजागर—वि [सं. सु+जागर=प्रकाशित होना] (१) **प्रकाशमान।** (२) **सुंदर, सुशोभित।**

सुजात—वि. [सं.] (१) **उत्तम कुल में उत्पन्न, कुलीन।** (२) **सुंदर, मनोहर।**

सुजाति, सुजाती—संज्ञा स्त्री. [सं. सुजाति] **उत्तम जाति या कुल।**

वि. **उत्तम जाति या कुल का।** उ.—यह पाती लै जाहु मधुपुरी जहाँ बसैं स्याम सुजाती—२९८१।

सुजातिया—वि. [सं. सुजाति] **उत्तम कुल का।**

वि. [सं. स्व+जाति] **अपनी जाति का।**

सुजान—वि. [सं. सज्ञान] (१) **चतुर, समझदार।** उ.—(क) दीनानाथ कृपाल परम सुजान जादौराइ—३-३। (ख) सुक कह्यो, सुनि यह नृपति सुजान—५-४। (२) **निपुण, कुशल, प्रवीण।** (३) **विज्ञ, पंडित।** उ.—निगम जाकौ सुजस गावत सुनत संत सुजान—१-२३५। (४) **सज्जन।**

संज्ञा पुं. (१) **पति।** (२) **प्रेमी।** (३) **ईश्वर।**

सुजानता—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुजान+ता] (१) **चतुरता, समझदारी।** (२) **निपुणता** (३) **विज्ञता।** (४) **सज्जनता।**

सुजानी—वि. [हिं. सुजान] **विज्ञ, पंडित, ज्ञानी।**

सुजोग—संज्ञा पुं. [सं. सु+योग] (१) **अच्छा या उपयुक्त अवसर।** (२) **अच्छा मेल या सुयोग।**

सुजोधन—संज्ञा पुं. [सं. सुयोधन] **'दुर्योधन' का एक नाम।**

सुजोधा—वि. [सं. सु+योद्धा] **बहुत वीर, बड़ा योद्धा।** उ.—जग्य समय सिसुपाल सुजोधा अनायास लै जोति समोयौ—१-४४।

सुजोर—वि. [सं. सु+फ़ा. जोर] (१) **मजबूत, दृढ़।** (२) **बलवान, बली।**

सुज्ञ—वि. [सं.] **पंडित, विद्वान।**

सुज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] **उत्तम या श्रेष्ठ ज्ञान।** उ.—जो कछु हरि सौं सुन्यौ सुज्ञान, कह्यौ मयत्रेय ताहि बखान—४-३।

सुज्ञानवान—वि. [सं. सुज्ञान+हिं. वान] **बहुत ज्ञानी।** उ.—पुत्र सुज्ञानवान मोहिं दीजै—४-३।

सुझाइ—क्रि. स. [हिं. सूझना] **दिखायी देता है।**

मुहा. कछु न सुझाइ—(१) **कुछ दिखायी नहीं देता है।** (२) **कुछ समझ में नहीं आता, कोई उपाय नहीं सूझता।** उ.—तब तैं अब गाढ़ी परी मोकौं कछु न सुझाइ—५८९।

सुझाना, सुझानो—क्रि. स. [हिं. सूझना] (१) **दिखाना, देखने को प्रवृत्त करना।** (२) **दूसरे की समझ या ध्यान में लाना।**

सुझाव—संज्ञा पुं. [हिं. सुझाना+आव] (१) **सुझाने की क्रिया या भाव।** (२) **किसी नयी या विशेष बात, पक्ष या अंग की ओर ध्यान दिलाना।** (३) **इस प्रकार ध्यान दिलाने के लिए कही गयी बात।**

सुटुकना, सुटुकनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) **चुपचाप चले या खिसक जाना।** (२) **सिकुड़ना।**

क्रि. स. **सुटका या चाबुक मारना।**

सुठ—वि. [हिं. सुठि] (१) **सुंदर।** (२) **उत्तम।** (३) **बहुत।**

सुठहर—संज्ञा पुं. [सं. सु+हिं. ठहर=स्थान] **अच्छा या बढ़िया स्थान।**

सुठान—वि. [सं. सु+हिं. उठान] (१) **जिसकी उठान अच्छी हो।** (२) **सुडौल, सुंदर।**

सुठार—वि. [सं. सुष्ठु, प्र. सुट्ठ] **सुडौल, सुंदर।** उ.—चपल नैन नासा बिच सोभा अधर सुरंग सुठार—१६८४।

सुठि—वि. [सं. सुष्ठु, प्रा. सुट्ठ] (१) **बढ़िया, अच्छा।** उ.—(क) बहुत प्रकार किये सब ब्यंजन अनेक बरन मिष्ठान। अति उज्ज्वल कोमल सुठि सुंदर देखि महरि मन मान—१०-८९। (२) **सुडौल, सुंदर।** (३) **बहुत, अत्यंत।** उ.—(क) केहरि नख उर पर रुरै सुठि सोभाकारी—१०-१३४। (ख) स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल—६३०। (ग) सुठि सुठान ठोड़ी अति सुन्दर सुन्दरता को सार—२०६२।

सुठैना, सुठौन—वि. [हिं. सुठि] (१) अच्छा, बढ़िया। (२) सुडौल, सुंदर। (३) बहुत, अत्यंत।

सुड़कना—क्रि. अ. [अनु.] नाक या मुँह से 'सुड़'-'सुड़' शब्द करके ऊपर खींचना।

सुड़सुड़ाना—क्रि. स. [अनु.] 'सुड़-सुड़' शब्द करना।

सुडौल—वि. [सं. सु+हिं. ढंग] सुंदर बनावट या आकारवाला, जिसके सब अंग ठीक हों।

सुढंग—संज्ञा पुं. [सं. सु+हिं. ढंग] (१) उत्तम रीति या ढंगवाला। (२) सुघड़ता, सुंदरता।

सुढंगी—वि. [हिं. सुढंग] (१) उत्तम रीति या ढंगवाला। (२) सुघड़, सुंदर। (३) उच्च कोटि का।

सुढर—वि. [सं. सु+हिं. ढलना] दयालु, कृपालु।

वि. [सं. सु+हिं. ढार] सुडौल, सुंदर।

सुढार, सुढारु—वि. [सं. सु+हिं. ढलना] (१) सुंदर ढला या बना हुआ। उ.—(क) (पालनौ अति सुन्दर) ...... आनि धर्‌यौ नंद-द्वार अतिहीं सुंदर सुढार—१०-४१। (ख) डाँडी खचि पचि-पचि मर्कत मय पाँति सुढार—२२८९। (२) सुडौल, सुंदर। उ.—(क) कर ऊपर लै राखि रहे हरि, देत न मुक्ता परम सुढार—१०-१७३। (ख) कनक बरन सुढार सुन्दरि सकुचि बदन दुराइ—६७६।

सुतंत, सुतंतर—वि. [सं. स्वतंत्र] स्वाधीन।

सुतंत्र—वि. [सं.] अच्छा तंत्र या शासन।

वि. [सं. स्वतंत्र] स्वच्छंद, स्वाधीन।

सुतंत्रि—वि. [सं.] (वीणा आदि) तंत्र (=तार)-वाद्य बजाने में निपुण या प्रवीण।

सुत—संज्ञा पुं. [सं.] बेटा, पुत्र। उ.—धनसुत-दारा काम न आवैं—१-८०।

वि. (१) पार्थिव। (२) उत्पन्न, जात।

सुतधार—संज्ञा पुं. [सं. सूत्रधार] (१) नाट्यशाला का प्रधान जो नाटक के अभिनय का सारा प्रबंध करता है। (२)(किसी कार्य या योजना का)संचालक या प्रबंधक।

सुतना—क्रि. अ. [हिं. सूतना] (१) ऊपर से नीचे की ओर हाथ फिरना। (२) डोरे आदि पर माँझ चढ़ना। (३) नुचना, खसोटा जाना। (४) साफ होना। (५) सूख जाना, चुस जाना।

सुतनु—वि. [सं.] सुंदर शरीरवाला (वाली)।

सुतप्त—वि. [सं.] गरम, गुनगुना। उ.—देखत सुतप्त जल तरसैं—१०-१८३।

सुत-याग—संज्ञा पुं. [सं.] वह यज्ञ जो पुत्र की कामना से किया जाय।

सुतर—संज्ञा पुं. [अ. शुतुर] ऊँट।

वि. [सं.] जो सरलता से तैर कर पार की या किया जा सके।

सुतरनाल—संज्ञा स्त्री. [अ. शुतुर+फ़ा. नाल] तोप जो ऊँट पर रखकर चलायी जाय।

सुतरां—अव्य. [सं. सुतराम्] (१) इसलिए, अतः। (२) और भी, अपितु।

सुतरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. तुरही] तूर, तुरही (बाजा)।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सुतली] सुतली।

सुतल—संज्ञा पुं. [सं.] सात पाताल लोकों में से एक। उ.—(क) अतल वितल अरु सुतल, तलातल और महातल जान—सारा. ३१। (ख) सुतल लोक मैं थिर करि थाप्यो—सारा. ३४३।

सुतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूत] सूत या सन की बटी हुई पतली डोरी।

सुतवाँ—वि. [हिं. सूतवाँ] सुडौल।

सुतहर, सुतहार—संज्ञा पुं. [सं. सूत्रकार] (१) बढ़ई। उ.—(क) कनक-रतन-मनि पालनौ गढ़यौ काम सुतहार—१०-४२। (ख) मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना रचे बिस्वकर्मा सुतहार—१०-८४। (२) कारीगर, शिल्पकार, शिल्पी।

सुतहा—वि. [हिं. सूत] सूत का, सूत-संबंधी।

सुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बेटी, पुत्री। उ.—द्रुपद-सुतहिं दुष्ट दुरजोधन सभा माहिं पकरावै—१-१२२।

सुता-सिंधु—संज्ञा स्त्री. [सं. सिंधु+सुता] लक्ष्मी। उ. चकृत होइ नीर में बहुरि बुड़की दई सहित सुता-सिंधु तहँ दरस पाए—२५७०।

सुताना—क्रि. स. [हिं. सूतना] 'सूतने' को प्रवृत्त करना, 'सूतने' का काम दूसरे से कराना।

सुतार—संज्ञा पुं. [सं. सूत्रकार] (१) बढ़ई। (२) कारीगर, शिल्पकार, शिल्पी।

वि. [सं. सु+तार] अच्छा, उत्तम।

संज्ञा पुं. सुभीता, सुविधा का समय।

सुतारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुतार] (१) बढ़ईगीरी। (२) कारीगरी, शिल्प-कौशल या कला।

संज्ञा पुं. (१) बढ़ई। (२) शिल्पकार, शिल्पी।

सुतिन—वि. [सं. सुतनु] सुन्दरी, रूपवती।

सुतिनी—वि. [सं.] पुत्रवती (स्त्री)।

सुतिया—संज्ञा. स्त्री. [देश.] गले का एक गहना, हँसली।

सुतिहर, सुतिहार—संज्ञा पु. [सं. सूत्रकार] (१) बढ़ई। उ.—(क) मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना रचे विस्वकर्मा सुतिहार (सुतहार)—१०-८४। (ख) बिस्वकर्मा सुतिहार स्रुतिधार सुलभ सिलप दिखावनो—२२८०। (२) शिल्पकार, शिल्पी।

सुती—वि. [सं. सुतिन] जिसके पुत्र हो।

सुतीच्छण, सुतीच्छन, सुतीखन, सुतीछन—संज्ञा. पुं. [सं. सुतीक्ष्ण] अगस्त्य मुनि के भाई जो वनवासकाल में श्री रामचन्द्र से मिले थे। उ.- दरसन दियौ सुतीछन गौतम पंचवटी पग धारे—सारा. २५६।

वि. (१) बहुत तीखा। (२) बहुत तेज धारवाला।

सुतीछा—[सं. सुतीक्ष्ण] (१) बहुत तीखा। (१) बहुत तेज धारवाला।

सुतुही—संज्ञा स्त्री. [सं. शुक्ति] सीपी।

सुतोष—वि. [सं.] जिसे संतोष हो गया हो।

सुत्ता—वि. [हिं. सोना] सोया हुआ, निद्रित।

सुथना—संज्ञा. पुं. [हिं. सूथन] एक तरह का पायजामा।

सथनिया, सुथनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूथन] स्त्रियों के पहनने की सूथन।

सुथरा—वि. [सं. स्वच्छ] साफ, स्वच्छ।

सुथरी—वि. स्त्री. [हिं. सुथरा] स्वच्छ। उ.—सौइ रहौ सुथरी सेजरिया—१०-२४६।

सुथराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुथरा] स्वच्छता।

सुथरापन—संज्ञा पुं. [हिं. सुथरा+पन] सफाई।

सुथराशाह—संज्ञा पुं. एक महात्मा जो गुरु नानक के शिष्य थे।

सुथरेशाही—संज्ञा स्त्री. [सुथराशाह] (१) सुथराशाह का संप्रदाय। (२) इस संप्रदाय का अनुयायी।

सुथल—संज्ञा पुं. [सं. सु+स्थल] सुंदर स्थान। उ.—हंस मानो मानसर अरुन अंबुज सुथल निरखि आनंद करि हरषि गाजै—२६१४।

सुथिर—वि. [सं. सु+स्थिर] अत्यंत स्थिर या दृढ़। उ.—अति पूरन पूरे पुन्य रोपी सुथिर थुनी—१०-२४।

सुदंत—वि. [सं. सुदन्त] सुंदर दाँतोंवाला।

सुदच्छिण, सुदच्छिन—संज्ञा पुं. [सं. सुदक्षिण] एक राजा। उ.—नृप सुदक्षिण जरची जरी बाराणसी—१०-३४५।

सुदच्छिणा, सुदच्छिना—संज्ञा स्त्री. [सं. सुदक्षिणा] (१) राजा दिलीप की पत्नी का नाम। (२) श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम।

सुदत, सुदत्—वि. [सं. सुदत्] सुंदर दाँतोंवाला।

सुदती—वि. स्त्री. [सं.] सुंदर दाँतोंवाली।

सुदरसन, सुदर्शन—संज्ञा पुं. [सं. सुदर्शन] (१) विष्णु के चक्र का नाम। उ.—(क) जब जब भीर परी संतनि कौं चक्र सुदरसन तहाँ सँभारचौ—१-१४। (ख) चक्र सुदरसन रच्छा करै—९-५। (२) शिव। (३) एक प्रकार का चूर्ण जिसका प्रयोग विषम ज्वर में होता है।

वि. जो देखने मे सुंदर हो, प्रिय दर्शन।

सुदरसनपानि, सुदर्शनपाणि—संज्ञा पुं. [सं. सुदर्शन-पाणि] (सुदर्शनचक्रधारी) विष्णु।

सुदरसना, सुदर्शना—वि. स्त्री. [सं. सुदर्शन] जो देखने में सुंदरी हो, प्रियदर्शनी।

सुदल—वि. [सं.] अच्छे दल या पत्तोंवाला।

सुदामा—संज्ञा पुं. [सं. सुदामन्] (१) एक निर्धन ब्राह्मण जो श्रीकृष्ण का सहपाठी था और जिसे उन्होंने इंद्र-जैसा वैभव प्रदान किया था। उ.—(क) रंक सुदामा कियौ इंद्र-सम—१-९५। (ख) चारि पदारथ दिए सुदामा तंदुल भेंट धरचौ—१-१३३। (२) श्रीकृष्ण का एक गोप सखा। उ.—(क) सुबल, श्रीदामा, सुदामा वै भए इक ओर—१०-२४४। (ख) बछरा चारन चले गुपाल। सुबल सुदामा अरु श्रीदामा संग लिए सब ग्वाल—४१०। (३) कंस का एक माली जो श्रीकृष्ण को मथुरा में मिला था। उ.—धनुषसाला चले नंदलाला।........। पुनि सुदामा कह्यौ, गेह मम अति

निकट कृपा करि तहाँ हरि चरन धारे—ना. ३६६५।

सुदास—वि. [सं.] अपने आराध्य की भली-भाँति पूजा-उपासना करनेवाला।

सुदि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुदी.] शुक्ल पक्ष।

सुदिन—संज्ञा पुं. [सं. सु+दिन] (१) अच्छा या शुभ दिन। उ.—बिप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यौ, रासि सोधि इक सुदिन धरचौ—१०-८८। (२) सुख-सौभाग्य के दिन।

सुदिव—वि. [सं.] चमकीला, दीप्तिमान।

सुदी—संज्ञा स्त्री. [सं. शुक्ल या शुद्ध] शुक्ल पक्ष।

सुदीपति, सुदीप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. सुदीप्ति] खूब उजाला, अत्यत प्रकाश।

सुदूर—वि. [सं.] बहुत दूर।

सुदृढ़—वि. [सं.] बहुत मजबूत।

सुदृष्टि—संज्ञा पुं. [सं.] गिद्ध।

संज्ञा स्त्री. (१) उत्तम दृष्टि। (२) कृपापूर्ण दृष्टि। उ.—(क) कृपानिधान, सुदृष्टि हेरियै, जिहिं पतितनि अपनायौ—१-२०५। (ख) वहौ बिरद की लाज दीन-पति करि सुदृष्टि देखौ—३४०१।

वि. (१) दूरदर्शी। (२) दूरदृष्टिवाला।

सुदेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुंदर या उत्तम देश। (२) उचित या उपयुक्त स्थान।

वि. (१) सुंदर, मनोहर। (२) उत्तम, श्रेष्ठ।

सुदेष्ण—संज्ञा पुं. [सं.] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

सुदेस—संज्ञा पुं. [सं. सुदेश] (१) सुंदर या उत्तम देश। (२) उचित या उपयुक्त स्थान।

वि. सुंदर। उ.—(क) कटि तट पीत बसन सुदेस—६३३। (ख) अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन—१०-१०८। (ग) घन तन स्याम सुदेस पीत पट—२५६६।

संज्ञा पुं. [सं. स्वदेश] अपना देश।

सुदेसी—वि. [सं. स्वदेशी] अपने देश का।

सुदेह—संज्ञा पुं. [सं.] सुंदर शरीर।

वि. सुंदर, मनोहर।

सुदैव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौभाग्य। (२) सुसंयोग।

सुद्ध—वि. [सं. शुद्ध] (१) पवित्र (२) स्वच्छ, निर्मल। उ.—जा जल सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै सुंदर सरसिज नैनी—९-११। (३) उत्तम, श्रेष्ठ। उ.—मुख मृदु बचन जानि मति जानहु, सुद्ध पंथ पग धरतौ—१-२०३। (४) ठीक, सही। (५) खालिस, जिसमें मिलावट न हो। (६) निर्दोष।

सुद्धाँ—अव्य. [सं. सह] मिलाकर, समेत।

सुद्धा—संज्ञा स्त्री. [सं. शुद्धा] एक प्रकार की भक्ति। उ.—माता भक्ति चारि परकार। सत रज तम गुन सुद्धा सार—३-१३।

वि. जिसमें 'शुद्धा' भक्ति हो। उ.—सुद्धा भक्त मोहि कौं चाहै। भक्तिहुँ कौं सो नहिं अवगाहै—३१३।

सुद्धि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुध] (१) याद, स्मृति। उ.—देह-गेह की सुद्धि बिसारी—११६१। (२)। खबर, पता। उ.—गोपी हुतीं प्रेमरस माती तिन ताकौं कछु सुद्धि न पायौ—२३१६।

संज्ञा स्त्री. [सं. शुद्धि] (१) 'शुद्ध' होने या करने का कार्य या भाव। (२) स्वच्छता।

सुद्युम्न—संज्ञा पुं. [सं.] वैवस्वत मनु का पुत्र जो शिव जी के शाप से स्त्री हो गया था और बुध की आराधना से शापमुक्त हुआ था। उ.—हरि ता पुत्री कौं सुत करचौ। नाम सुद्युम्न ताहि रिषि धरचौ—९-२।

सुद्रष्ट—वि. [सं. सुदृष्ट] दयालु, कृपालु।

सुधंग—संज्ञा पुं. [हिं. सुढंग] उत्तम ढंग या रीत।

वि. सुंदर, मनोहर। उ.—(क) गति सुधंग सो भाव दिखावत—पृ. ३४६ (४४)। (ख) गति सुधंग नृत्यत ब्रजनारी—पृ. ३४६ (४३)। (ग) कबहुँ चलत सुधंग गति सौं—पृ. ३५२ (८०)।

सुध—संज्ञा स्त्री. [सं. शुद्ध] (१) याद, स्मृति।

मुहा. सुध दिलाना—स्मरण कराना। सुध न रहना—भूल जाना। सुध बिसरना, बिसराना, बिसारना, भुलाना या भूलना—(किसी को) भूल जाना।

(२) होश, चेतना।

मुहा. सुध बिसरना—होश में न रहना, अचेत होना। सुध बिसराना—बेहोश या अचेत करना।

सुध न रहना—बेहोश या अचेत हो जाना। सुध सँभालना—होश में आना।

(३) खबर, हाल, पता।

मुहा. सुध लेना—पता या हाल-चाल जानना। सुध रखना—खोज-खबर, पता या चौकसी रखना। सुध लीन्हीं—खोज-खबर की, पता लगाया। उ.—प्रद्युमन को बिलंब भयो तब सत्राजित सुध लीन्ही।

वि. [सं. शुद्ध] (१) पवित्र। (२) स्वच्छ। (३) ठीक, सही। (४) खालिस। (५) निर्दोष।

संज्ञा स्त्री. [सं. सुधा] अमृत।

सुधनक—वि. [सं.] बड़ा अमीर या धनी।

सुधना, सुधनो—क्रि. अ. [सं. शुद्ध] ठीक या शुद्ध किया जाना या होना।

सुधनु—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम या श्रेष्ठ धन। उ.—धर्म-सुधन लुटयौ—१-६४।

सुधन्वा—वि. [सं.] अच्छा धनुर्धर।

सुध-बुध—संज्ञा स्त्री. [सं. शुद्ध+बुद्धि] होश-हवास, चेत, ज्ञान, चेतना।

मुहा० सुध-बुध खोना (जाती रहना, ठिकाने न होना या मारी जाना)—होश-हवास जाते रहना, बुद्धि ठिकाने न रह जाना।

सुधमना—वि. [हिं. सुध=होश+मन] (१) जो होश में हो, सचेत। (२) सावधान, सतर्क।

सुधरतौ—क्रि. अ. [हिं. सुधरना] बन जाता, ठीक हो जाता। उ.—अबकौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ—१-२९७।

सुधरना, सुधरनो—क्रि. अ. [हिं. शोधन या हिं. सु+ढरना] (१) बिगड़ी या सदोष वस्तु का ठीक होना। (२) बिगड़ी आदतों वाले का ठीक या भला होना।

सुधराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुधरना] सुधरने, सुधारने या सुधरवाने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

सुधर्म—वि. [सं.] (१) पुण्य कर्म करनेवाला, धर्मपरायण। (२) अच्छा, बढ़िया।

संज्ञा पुं. पुण्य कर्तव्य, उत्तम धर्म।

सुधर्मनिष्ठ—वि. [सं.] अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाला।

सुधर्मा—वि. [सं. सुधर्मन्] धर्मनिष्ठ, धर्मपरायण। उ.—(क) बात कहन कों यों आवत है बड़े सुधर्मा धर्महिपाल—१११२। (ख) फँसिहारिनि, बटपारिनि हम भईं, आपुन भए सुधर्मा भारी—११६०।

सुधर्मी—वि. [सं. सुधर्मिन्] धर्मनिष्ठ, धर्मपरायण।

सुधवाना, सुधवानो—क्रि. स. [हिं. सुधरना] दोष-त्रुटि दूर करना, ठीक या शोधन कराना।

क्रि. स. [हिं. सुध+दिलाना] सुध दिलाना, याद या स्मरण कराना।

क्रि. अ. सुध आना, याद या स्मरण होना।

सुधाँ—अव्य. [हिं. सुद्धाँ] मिलाकर, समेत।

सुधांग—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सुधांशु, सुधांसु—संज्ञा पुं. [सं. सुधांशु] चंद्रमा।

सुधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अमृत। उ.—(क) मनु उभै अंभोज-भाजन लेत सुधा भराइ—६२७। (ख) अधर-सुधा उपदंस सीक सुचि बिधु पूरन सुखवास सचारे—२२७१। (२) जल। (३) दूध। (४) मकरंद। (५) धरती, पृथ्वी। (६) शहद, मधु। (७) चूना।

सुधाइ—क्रि. स. [हिं. सुधवाना] (लग्न, कुंडली आदि) ठीक या निश्चित कराना। उ.—नीकौ सुभ दिन सुधाइ झूलौ हो झुलैया—१०-४१।

सुधाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूधा=सीधा] सीधापन।

सुधाकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] कोयल, कोकिल।

सुधाकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सुधाघट—संज्ञा पुं. [सं. सुधा+घट] चंद्रमा। उ.—मुक्ता-माल नंदनंदन उर अर्ध सुधाघर कान्ति।

सुधातु—संज्ञा पुं. [सं.] सोना, स्वर्ण।

सुधादीधिति—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सुधाधर—संज्ञा पुं. [सं. सुधा+धर] चंद्रमा।

वि. [सं. सुधा+अधर] जिसके अधरों में अमृत जैसा स्वाद हो।

सुधाधरण—संज्ञा. पुं. [सं. सुधा+धरण] चंद्रमा।

सुधाधवल—वि. [सं.] चूने जैसा सफेद।

सुधा-धाम—संज्ञा. पुं. [सं. सुधा+धाम] चंद्रमा।

सुधाधार—संज्ञा. पुं. [सं.] चंद्रमा।

सुधावी—वि. [सं. सुधा] सुधा के समान।

सुधाधौत—वि. [सं.] चूने से पुता हुआ।

सुधाना—क्रि. स. [हिं. सुध] याद दिलाना।

क्रि. अ. याद या स्मरण आना।

क्रि. अ. (१) ठीक करने या शोधने का काम दूसरे से कराना। (२) (लग्न, कुंडली आदि) ठीक या निश्चित कराना।

सुधानिधि—संज्ञा. पुं. [सं.] चंद्रमा। उ.—मनहुँ सुधा-निधि बर्षत घन पर अमृत धार चहुँ ओर। (२) सागर, समुद्र।

वि. अत्यंत मधुर।

सुधामयूख—संज्ञा. पुं. [सं.] चंद्रमा।

सुधार—संज्ञा पुं. [हिं. सुधरना] (१) सुधरने या सुधारने की क्रिया या भाव, संस्कार, संशोधन। (२) बिगड़ी हुई बात बनाना या ठीक करना। (३) अधिक अच्छा और उपयोगी बनाना।

सुधारक—संज्ञा पुं. [हिं. सुधार+क] (१) त्रुटि या दोषों को दूर करनेवाला, संशोधक। (२) धार्मिक या सामाजिक उन्नति या सुधार के लिए प्रयत्न या आंदोलन करनेवाला।

सुधारना, सुधारनो—क्रि. स. [हिं. सुधरना] (१) त्रुटि, दोष आदि दूर करना। (२) अधिक अच्छा या उपयोगी बनाना।

सुधारनी—वि. [हिं. सुधार] सुधारनेवाली।

सुधारवादी—वि. [हिं. सुधार+वादी] जो सुधार करने के पक्ष में हो।

सुधारश्मि—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सुधारा—वि. [हिं. सूध=सीधा+आरा] भोला-भाला, सरल प्रकृति का, निष्कपट।

सुधासुर—संज्ञा पुं. [सं.] राहु ग्रह।

सुधारि—क्रि स. [हिं. सुधारना] सुधारकर।

प्र. लीजै सुधारि—(बिगड़ी दशा या स्थिति को) ठीककर या बना लीजिए। उ.—लीजै जनम सुधारि—७-३।

सुधारी—वि. [हिं. सूधा=सीधा+आरी] भोला-भाला, सरल प्रकृति का। उ.—फाटक दै कै हाटक माँगत भोरो निपट सुधारी—३३४०।

क्रि. स. [हिं. सुधारना] (बिगड़ी दशा या स्थिति को) ठीक किया या बनाया। उ.—ब्रह्मा महादेव तैं को बड़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी—१-३४।

सुधारू—वि. [हिं. सुधारना] सुधारक, संशोधक।

सुधाश्रवा—संज्ञा पुं. [सं. सुधा+श्रवण] (१) अमृत बरसानेवाला। (२) चंद्रमा।

सुधासदन—संज्ञा पुं. [सं. सुधा+सदन] चंद्रमा।

सुधासुर—संज्ञा पुं. [सं.] राहु नामक ग्रह।

सुधि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुध] (१) याद, स्मृति। उ.—(क) गरभ-बास अति त्रास अधोमुख तहाँ न मेरी सुधि बिसरी—१-११६। (ख) कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल—१-१५३। (ग) तब जमलार्जुन की सुधि आई—३९१। (घ) जबहीं आवति सुधि सखिनि की रहत अति सरमाइ—१६१५। (२) होश, चेत, ज्ञान, चेतना। उ.—(क) प्रेम-बिबस कछु सुधि न अपनियाँ—१०-१०६। (ख) मुरछि परी तन-सुधि गई—५८९। (ग) मैमत भए जीव जल-थल के तनु की सुधि न सँभार—पृ० ३४७ (५२) (घ) मन सुधि गई सँभारति नाहिन—२५४५।

मुहा. सुधि बिसराई—होश में नहीं रही। उ.—जसुमति तब अकुलाइ परी धर तनु की सुधि बिसराई—६०४। सुधि भुलाई—होश-हवास भुला दिये, बहुत विकल कर दिया। उ.—स्याम तब सांग को काटि करि साल्व की सुधि भुलाई—१० उ.-५६।

(३) खोज-खबर, पता। उ.—(क) पाइ सुधि मोहिनी की सदासिव चले—८-१०। (ख) ल्यावहु जाइ जनक-तनया-सुधि रघुपति कौं सुख देहु—९-७४।

सुधि-बुधि—संज्ञा. स्त्री. [सं. शुद्धि-बुद्धि] होश-हवास, चेत। उ.—स्रवन सुतत सुधि-बुधि सब बिसरी—७४२।

सुधियाना, सुधियानो—क्रि. अ. [हिं. सुधि+आना] याद आना, स्मरण हो आना।

क्रि. स. याद दिलाना, स्मरण कराना।

सुधी—वि. [सं.] (१) चतुर, समझदार, बुद्धिमान। उ.—सुधी निपट देखियत तुमकौं तातैं करियत साथ—६७४। (१) विद्वान, पंडित। (३) धार्मिक।

संज्ञा स्त्री. अच्छी और तीव्र बुद्धि।

सुधीर—वि. [सं.] जो बहुत धैर्यवान हो।

सुधौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुधा] सुधा-पात्र ।

सुध्यो, सुध्यौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुध] सुध, याद या स्मृति भी । उ.—(क) बैननि हू सुध्यौ भूली—१४७४ । (ख) कबहुँक स्याम करत इहाँ को मन कैधौं चित्त सुध्यौ बिसराई—३११८ ।

सुनंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण का एक पार्षद । (२) बलराम का मूसल ।

सुनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र ।

सुनंदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रीकृष्ण की एक पत्नी ।

सुनइये—क्रि. स. [हिं. सुनाना] सुनाइए, सुनने को प्रवृत्त कीजिए । उ.—बिना नाद संगीत सुधानिधि मूढ़हिं कहा सुनइयै—३३१७ ।

सुन-किरवा—संज्ञा पुं. [हिं. सोना+किरवा=कीड़ा] हरे पंखवाला एक कीड़ा ।

सुनगुन—वि. [हिं. सुन्न+गुन्न] उदास और मौन ।

संज्ञा स्त्री. (१) बहुत धीरे-धीरे की गयी बात, फुसफुसाहट, कानाफूसी । (२) वह भेद जो इधर-उधर की बातें सुनने से ज्ञात हो ।

सुनत—क्रि. स. [हिं. सुनना] (१) सुनता है, सुनते हैं । उ.—(क) निगम जाको सुजस गावत सुनत संत सुजान —१-२३५ । (ख) जाकौ सुजस सुनत अरु गावत—१-३१२ । (२) सुनकर, सुनते (ही) । उ.—घूम रहीं जित-जित दधि मथनी, सुनत मेघ-धुनि लाजैं—१०-१३९ । (ख) सुनत-सुनत सुधि-बुधि सब बिसरी—७४२ ।

सुनति—क्रि. स. [हिं. सुनना] सुनती है ।

सुनन—संज्ञा पुं. [हिं. सुनना] 'सुनने' की क्रिया या भाव ।

यौ. कहन-सुनन—जो केवल कहने-सुनने के लिए हो, वस्तुतः न हो । उ.—सतजुग लाख बरस की आइ ।.........। कलिजुग सत संबत रहि गई । सोऊ कहन-सुनन कौं रही—१-२३० ।

सुनना, सुननो—क्रि. स. [सं. श्रवण] (१) कही हुई बात या शब्द का ज्ञान कानों से प्राप्त करना, श्रवण करना । (२) किसी के कथन पर ध्यान देना । (३) भली-बुरी बातें श्रवण करना ।

सुनय—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम नीति ।

सुनयन—वि. [सं.] सुंदर नेत्रोंवाला ।

संज्ञा पुं. हिरन, मृग ।

सुनरिया, सुनरी [सं. सुंदरी] सुंदरी नारी ।

सुनवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुनना+वाई] (१) सुनने की क्रिया या भाव । (२) आरोप, अभियोग आदि का विचार के लिए सुना जाना ।

सुनवैया—वि. [हिं. सुनना+वैया] (१) सुननेवाला ।(२) सुनकर ध्यान देनेवाला ।

सुनसान—वि. [सं. शून्य+स्थान] (१) निर्जन, एकांत, जनहीन । (२) वीरान, उजाड़ ।

संज्ञा पुं. सन्नाटा ।

सुनहरा, सुनहला—वि. [हिं. सोना] सोने के रंग का ।

सुनहा—संज्ञा पुं [सं. श्वान] कुत्ता ।

सुनहु—क्रि. स. [हिं. सुनना] श्रवण करो । उ.—(क) हमारी जन्मभूमि यह गाउँ । सुनहु सखा सुग्रीव बिभीषन अवनि अजोध्या नाउँ—९-१६५ । (ख) सुनहु सखी सतरात इते पर हम पर भौंहैं तानत—पृ. ३२८ (७७) ।

सुना—वि. [हिं. सुनना] जो (कथन आदि) श्रवण किया गया हो ।

मुहा. सुना-अनसुना कर देना (करना)—कोई बात सुनकर भी उस पर ध्यान न देना या टाल जाना । कहा-सुना—पारस्परिक वार्तालाप में प्रसंगवश जो कुछ उचित-अनुचित कह-सुन दिया गया हो ।

सुनाइ—क्रि. स. [हिं. सुनाना] (१) सुनाकर । (२) सुनायी देता है ।

क्रि. अ. [सं. सु+हिं. नवाना] अच्छी तरह झुकाकर ।

सुनाई—क्रि. स. [हिं. सुनाना] (कहकर) श्रवण करायी । उ.—ग्वालनि हरि की बात सुनाई—५८५ ।

संज्ञा स्त्री. (१) सुनने की क्रिया या भाव । (२) आरोप, अभियोग आदि का विचार या निर्णय करने के लिए सुना जाना ।

सुनाए—क्रि. स. [हिं. सुनाना] श्रवण कराये । उ.—ताहि या बिधि बचन कहि सुनाए—१-२७१ ।

सुनाद—संज्ञा पुं. [सं.] शंख ।

वि. सुन्दर शब्द या ध्वनिवाला।

सुनाना—क्रि. स. [हिं. सुनना] (१) किसी को सुनने को प्रवृत्त करना। (२) खरी-खोटी कहना।

सुनाभ, सुनाभी—वि. [सं. सुनाभि] सुन्दर नाभिवाला।

सुनाम—संज्ञा पुं. [सं.] यश, कीर्ति, ख्याति।

सुनामा—वि. [सं.] यशस्वी, विख्यात।

सुनायो, सुनायौ—क्रि. स. [हिं. सुनाना] श्रवण कराया। उ.—(क) सूरदास सो बरनि सुनायौ—१-२२७। (ख) नृपति बचन यह सबनि सुनायौ—१०-६१।

सुनार—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्णकार] सोने-चाँदी के गहने बनानेवाला कारीगर। उ.—विसकर्मा सुतहार रच्यौ काम ह्वै सुनार—१०'४१।

सुनारिनि, सुनारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुनार] सुनार की स्त्री। उ.—सुनारिनि ह्वै जाउँ निरखि नैननि सुख देऊँ—पृ. ३४९ (६१)।

सुनारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुनार] सुनार का काम।

सुनावत—क्रि. स. [हिं. सुनाना] सुनाता है, श्रवण कराता है। उ.—(क) क्यों न सुनावत निज दुख मोहिं—१-२९०। (ख) सूर-स्याम के कृत्य जसोमति, ग्वाल-बाल कहि प्रगट सुनावत—४८०।

सुनावन—संज्ञा पुं. [हिं. सुनाना] सुनाने की क्रिया या भाव। उ.—सूर सो दिन कबहुँ तौ ह्वैहै मुरली सब्द सुनावन—२७५२।

सुनावनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुनाना] (१) दूरस्थ प्रदेश से किसी संबंधी की मृत्यु का आया हुआ समाचार। (२) ऐसा समाचार आने पर किया जाने वाला शोक, स्नान आदि।

सुनावै—क्रि. स. [हिं. सुनाना] दूसरे को श्रवण कराये। उ.—यह लीला जो सुनै सुनावै—४-१२।

सुनासिक—वि. [सं.] जिसकी नाक सुन्दर हो।

सुनि—क्रि. स. [हिं. सुनना] सुनकर। उ.—नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ—१-९६।

प्र. सुनि न जात—सुना नहीं जाता, सुनना सहन नहीं होता। उ.—सुनि न जात घर-घर को घेरा काहू मुख न समाऊँ—१२२२।

सुनियत—क्रि. स. [हिं. सुनना] सना जाता है, सुनते हैं। उ.—(क) सुनियत हैं, तुम बहु पतितनि कौं दीन्हौ है सुखधाम—१-१७९। (ख) जाकी चरन-रेनु की महि मैं सुनियत बहुत बड़ाई—९-४०। (ग) मुष्टिक अरु चानूर सैल सम सुनियत हैं अति भारे—२५६०। (घ) श्रीकंत सिधारी मधुसूदन पै, सुनियत है वै भीत तुम्हारे—१० उ.-६०।

सुनियन—संज्ञा पुं. [हिं. सुनना] सुनने की क्रिया या भाव।

प्र. सुनियन लागे—सुनने लगे, सुनायी देने लगा। उ.—संख कुलाहल सुनियन लागे—९-१२५।

सुनिहौं—क्रि. स. [हिं. सुनना] सुनूँगा, श्रवण करूँगा। उ.—कबहिं कमल-मुख सुनिहौं उन बोलनि—१०७४।

सुनिश्चित—वि. [सं.] भली-भाँति या दृढ़ता से निश्चित किया हुआ।

सुनी—क्रि. स. [हिं. सुनना] श्रवण की। उ.—श्री भागवत सुनी नाहिं स्रवननि—१-६५।

सुनीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तम नीति। (२) राजा उत्तानपाद की पत्नी जो ध्रुव की माता थी। उ.—उत्तानपाद पृथ्वीपति भयौ।........। नाम सुनीति बड़ी तिहिं दार।........। अरु सुनीति कैं ध्रुव सुकुमार—४-९।

सुनीथ—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

सुनील—वि. [सं.] बहुत गहरा नीला।

सुनु—क्रि. स. [हिं. सुनना] (ध्यान से) श्रवण करो। उ.—सुनु सिख कंत, दंत तृन धरि कै स्यौं परिवार सिधारौ—९-११४।

सुनेत्र—वि. [सं.] सुन्दर नत्रवाला।

सुनै—क्रि. स. [हिं. सुनना] श्रवण करो। उ.—यह लीला जौ सुनै-सुनावै—४-१२।

सुनैया—वि. [हिं. सुनना] सुननेवाला।

सुनैहैं—क्रि. स. [हिं. सुनना] सुनायँगे, श्रवण करायँगे। उ.—खेलत तैं तब आइ भूख कहि मोहिं सुनैहैं—५८९।

सुनोची—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

सुनौ—क्रि. स. [हिं. सुनना] श्रवण करो। उ. थक्यौ बीच बिहाल बिह्वल सुनौ करुनामूल—१-९९।

सुन्न—वि. [सं. शून्य] निर्जीव, जड़वत्, स्पंदनहीन। उ.—महा कठोर सुन्न हिरदै कौ—१-१८६।

संज्ञा पुं. सिफर, शून्य ।

सुन्नत – संज्ञा स्त्री. [अ.] खतना ।

सुन्नसान—वि. [हिं. सूनसान] (१) निर्जन, । (२) वीरान ।

सुन्ना – संज्ञा पुं. [सं. शून्य] सिफर, बिंदी ।

सुन्नी—संज्ञा पुं. [अ.] मुसलमानों का एक वर्ग ।

सुन्यौ, सुन्यौं—क्रि. स. [हिं. सुनना] सुना, श्रवण किया । उ.—(क) सूर पतित जव सुन्यौ विरद यह तब धीरज मन आयौ—९-१९५ । (ख) नाहीं सूर सुन्यौ दुख कबहूँ प्रभु करुनामय कंत—९-९२ ।

सुपंथ—संज्ञा पुं. [सं.] सत्पंथ, सन्मार्ग ,

सुपक, सुपक्क—वि. [सं. सुपक्व] (१) खूब पका-पकाया (फल) । उ.—(क) दसमुख छेदि सुपक नव फल ज्यौं संकर-उर दससीस चढ़ावन—९-१३१ । (ख) सुपक बिंब सुक-खंडित मंडित अधर-सुधा-मधु लाल लई री —२११५ । (२) खूब पकाया हुआ (व्यंजन या खाद्य-पदार्थ) । उ.—माखन सहित देहि मेरी मैया सुपक सुकोमल रोटी—१०-१६३ ।

सुपक्ष—वि. [सं.] जिसके पंख सुन्दर हों ।

सुपक्ष्मा—वि. [सं. सुपक्ष्मन्] सुन्दर पलकोंवाला ।

सुपच—संज्ञा पुं. [सं. श्वपच] चांडाल, डोम ।

सुपट—वि. [सं.] सुंदर वस्त्रों से युक्त ।

संज्ञा. पुं. सुन्दर वस्त्र ।

सुपटु— वि. [सं.] विषय-विशेष में पारंगत ।

सुपत—वि. [सं. सु + हिं. पत = प्रतिष्ठा] प्रतिष्ठित, माननीय । उ.— वह जूठो ससि जानि बदन बिधु रच्यौ बिरंचि इहै री । सौंप्यौ सुपत बिचारि स्याम हित सु तूँ रही लटि लै री—२२७० ।

सुपत्थ—संज्ञा. पुं. [सं. सुपथ] सन्मार्ग ।

सुपत्र—वि. [सं.] (१) जिसके पत्त सुंदर हों । (२) जिसके पंख सुन्दर हों ।

सुपथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुमार्ग, सत्पथ । (२) समतल मार्ग ।

वि. [सं. सु + पथ] समतल ।

सुपद—वि. [सं.] (१) सुंदर पैरोंवाला । (२) तेज चलने वाला ।

संज्ञा पुं. [सं. सु + पद] सुंदर पैर ।

सुपन—संज्ञा पुं. [सं. स्वप्न] स्वप्न । उ.—मै कह्यौ निसि सुपन तोसौं, प्रगट भयौ सु आइ—५८० ।

सुपनक—वि. [सं. स्वप्न] स्वप्न देखनेवाला ।

सुपना—संज्ञा. पुं. [सं. स्वप्न] स्वप्न ।

सुपनाना, सुपनानौं—क्रि. स. [हिं.सपना] स्वप्न दिखाना या देना ।

सुपनैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सुपना] स्वप्न में । उ.—(क) लोभ-मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यौं डहकानौं—१-३२९ । (ख) जैसे सुपनैं सोइ देखियत तैसे यह संसार —२-३१ । (ग) सोवत मह्रा मनो सुपने सखि अवधि निधन निधि पाई — २७८४ ।

सुपरस – संज्ञा पुं. [सं. स्पर्श] स्पर्श । उ.—राम सुपरस मय कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं—९-३२ ।

सुपर्ण—वि. [सं.] (१) जिसके पत्ते सुंदर हों । (२) जिसके पर या पंख सुंदर हों ।

संज्ञा पुं. (१) गरुड़ । (२) पक्षी । (३) किरण । (४) सुन्दर पत्ता । (५) सुंदर पंख ।

सुपर्णी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गरुड़ की माता ।

सुपर्व—संज्ञा. पुं. [सं. सुपर्व्वन्] (१) देवता । (२) शुभ मुहूर्त या काल ।

सुपाग–संज्ञा पुं. [सं. सु + हिं. पाग] अच्छी पगड़ी । उ.–कुंचित केस मयूर चंद्रिका मंडल सुमन सुपाग–१२१४ ।

सुपात्र—संज्ञा पुं. [सं] (१) योग्य और उपयुक्त व्यक्ति । (२) सुंदर और पवित्र बर्तन ।

सुपारी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुप्रिय] एक वृक्ष जिसके फल के छोटे-छोटे टुकड़े पान में डालकर खाये जाते हैं । उ. —लौंग नारियर दाख सुपारी कहा लादे हम आवैं—११०८ ।

सुपास—संज्ञा पुं. [देश.] आराम, सुख, सुभीता ।

सुपासी – वि. [हिं. सुपास] सुख देनेवाला ।

सुपीत—वि. [सं.] गहरे पीले रंग का ।

सुपीन—वि. [सं.] बहुत मोटा या बड़ा ।

सुपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छा और योग्य पुत्र । उ.—धन्य सुपुत्र पिता पन राख्यौ—९-१५१ ।

सुपुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुंदर पुरुष । (२) सत्पुरुष, सज्जन पुरुष ।

सुपुर्द—वि. [हिं. सपुर्द] किसी को सौंपा हुआ।
सुपूत—वि. [सं. सु+हिं. पूत] अच्छा पुत्र, सुपुत्र।
सुपूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सपूत] (१) 'सुपुत्र' होने का भाव। (२) अच्छे पुत्रों की माता।
सुपेत, सुपेद, सुफेद—वि. [हिं. सफेद] सफेद।
सुपेती, सुपेदी, सुफेदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सफेद] (१) सफेदी। (२) बिछौना। (३) गद्दा, तोशक। (४) रजाई, लिहाफ।
सुप्त—वि. [सं.] (१) सोया हुआ। (२) ठिठुरा हुआ। (३) मुंदा हुआ (जैसे फूल)। (४) सुस्त। (५) जिसकी क्रिया या चेष्टा रुकी हुई हो, निष्क्रिय, अकर्मण्य।
सुप्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुप्त होने का भाव। (२) नींद, निद्रा।
सुप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नींद, निद्रा। (२) ऊँघाई। (३) अंग की निश्चेष्टा।
सुप्रज्ञ—वि. [सं.] बहुत बुद्धिमान।
सुप्रतिष्ठ—वि. [सं.] (१) जिसका खूब आदर-सम्मान हो। (२) सुप्रसिद्ध।
सुप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अच्छा मान-सम्मान। (२) सुप्रसिद्ध।
सुप्रभ—वि. [सं.] (१) विशेष प्रभा या प्रकाशयुक्त। (२) सुंदर, सुरूप।
सुप्रभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुन्दर प्रकाश। (२) अग्नि की सात जिह्वाओं में एक।
सुप्रभात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुन्दर प्रातःकाल। (२) मंगलसूचक प्रभात।
सुप्रसन्न—वि. [सं.] (१) बहुत प्रसन्न। (२) अत्यंत विकसित। (३) बहुत निर्मल।
सुप्रसाद—वि. [सं.] अत्यंत प्रसन्न या कृपालु।
सुप्रसिद्ध—वि. [सं.] अत्यंत विख्यात।
सुप्रिय—वि. [सं.] अत्यंत प्रिय।
सुप्रीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सच्ची प्रीति या भक्ति। उ.—औरौ सकल सुकृत श्रीपति-हित प्रतिफल-रहित सुप्रीति—२-१२।
सुप्रेम—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत अधिक प्रेम। उ.—बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर—१०-१५१।
सुफल—संज्ञा पुं [सं.] सुंदर फल। उ.—धर बिधंसि नर करत किरषि हल बारि बीज बिथरै। सहि सन्मुख तउ सीत उष्न कौं सोई सुफल करै—१-११७।
वि. (१) सुंदर फल। उ.—अंब सुफल छाँड़ि, कहा सेमर कौं धाऊँ—१-१६६। (२) सुंदर फल या फाल वाला (अस्त्र)। (३) सफल, कृतकार्य। उ.—(क) सबनि कौं अँग परसि कीन्हों सुफल व्रत-व्यवहार—७९६। (ख) नैन सुफल भए सबके—१८१९।
सुफलक—संज्ञा पुं. [सं.] एक यादवजो अक्रूर का पिता था।
सुफलकसुत—संज्ञा पुं. [सं. सुफलक+सुत] अक्रूर जो सुफलक नामक यादव का पुत्र था और जो कंस की आज्ञा से श्रीकृष्ण, बलराम आदि को मथुरा ले गया था। उ.—सुफलकसुत मिलि ढंग ठान्यौ है, साधे बिषमन घात—३३५१।
सुफला—वि. [सं.] (१) सुंदर या बहुत फल उपजानेवाली। (२) सुंदर फल या फालवाली।
सुफेद—वि. [हिं. सफेद] सफेद।
सुबंध—वि. [सं.] अच्छी तरह बँधा हुआ।
सुबंधु—वि. [सं.] जिसके अच्छे बंधु या मित्र हों।
संज्ञा पुं. अच्छा या उत्तम भाई।
सुबचन—संज्ञा पुं. [सं. सु+वचन] श्रेष्ठ वचन। उ.—(क) हरिजू कह्यौ, सुनौ दुरजोधन सत्य सुबचन हमारे—१-२४२। (ख) सूर सुबचन मनोहर कहि कहि अनुज सूल बिसरायौ—३७४।
सुबधू—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. बधू] सुंदर या श्रेष्ठ आचरण या संस्कारवाली बधू। उ.—धन्य सुपुत्र पिताप्रन राख्यौ, धनि सुबधू कुल-लाज—९-१५१।
सुबरन—वि. [सं. सु+वर्ण] सुंदर रंगवाला।
संज्ञा पुं. [सं स्वर्ण] सोना, स्वर्ण। उ.—सुबरन थार रहे हाथनि लसि—१०-३२।
वि. सोने के। उ.—सुबरन लंक-कलस-आभूषण—९-३०।
सुबरनियाँ—वि. [सं. सु+वर्ण] सुंदर रंग की। उ.—रुचिर-चिबुक द्विज-अधर, नासिका अति सुंदर राजति सुबरनियाँ—१०-१०६।
सुबल—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का सखा एक गोप। उ.—

(क) सुबल हलधर अरु श्रीदामा करत नाना रंग—१०-२१३। (ख) सुबल श्रीदामा सुदामा वै भए इक ओर—१०-२४४।

वि. बहुत बली या बलशाली। उ.—सुभट अनेक सुबल दल साजे परे सिंधु के पार—९-८३।

सुबस—वि. [सं. स्व+वस] जो अपने वश या अधिकार में हो।

क्रि. वि. अपने वश या अधिकार में। उ.—(क) सुबस बसौं इहिं गाउँ—१-१८५। (ख) नैन सुबस नाहीं अलि मेरे—३४४२। (ग) तुमरे सुबस सदा अलि खेलैं—सारा. ५७६।

सुबह—संज्ञा स्त्री. [अ.] सबेरा, प्रातःकाल।

सुबहान अल्ला—पद [अ.] ईश्वर धन्य है।

सुबात—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. बात] सुंदर बात।

सुबास—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. बास] सुगंध।

संज्ञा पुं. [सं. सु+हिं. वास] सुंदर निवासस्थान।

संज्ञा पुं. [सं. स्व+हिं. बास] ईश्वर या ब्रह्म का निवास स्थान, ब्रह्मलोक।

सुबासत—क्रि. अ. [हिं. सुबासना] महकता है। उ.—सालन सकल कपूर सुबासत—३९६।

सुबासना—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. बास] सुगंध।

क्रि. स. महकाना, सुबासित या सुगंधित करना।

क्रि. अ. महकना, सुगंध देना या फैलना।

सुबासिक—वि. [सं. सु+वास] सुगंधयुक्त।

सुबासित—वि. [सं. सुवासित] सुगंधित।

सुबाहु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (२) एक राक्षस का नाम। उ.—मारिच और सुबाहु महासुर विघन करत दिन जाम—सारा.१७९।

वि. (१) सुंदर बाहोंवाला। (२) मजबूत या बलशाली बाहुओंवाला।

सुबीता—संज्ञा पुं. [हिं. सुभीता] (१) सुगमता। (२) सुअवसर। (३) आराम।

सुबुक—वि. [फ़ा.] (१) जो भारी न हो, हलका। (२) मनोहर, सुंदर।

संज्ञा पुं. एक तरह का मजबूत घोड़ा।

सुबुद्धि—वि. [सं.] (१) बुद्धिमान। (२) श्रेष्ठ बुद्धि वाला।

संज्ञा स्त्री. अच्छी या उत्तम बुद्धि।

सुबुध—वि. [सं. बुद्धि] (१) बुद्धिमान। (२) सतर्क, सावधान।

सुबू—संज्ञा पुं. [हिं. सुबह] प्रातःकाल।

सुबूत—संज्ञा [अ. सबूत] प्रमाण।

सुबेद—वि. [सं. सुवेद्य] अच्छी तरह जानने योग्य।

सुबोध—वि. [सं.] (१) समझदार, बुद्धिमान। (२) जो सबकी समझ में आ सके।

सुब्रह्मण्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) दक्षिण भारत का एक प्राचीन प्रदेश।

सुबेस—संज्ञा पुं. [सं. सु+वेश] सुंदर वेश। उ.—मनौ नव घन दामिनी तजि रही सहज सुबेस—६३३।

सुभ—वि. [सं. शुभ] (१) अच्छा। उ.—बहुरि हिमाचल कैं सुभ घरी। पारवती ह्वै सो अवतरी—४-७। (२) मंगलप्रद, कल्याणकारी। उ.—(क) द्वादस स्कंध परम सुभ प्रेम-भक्ति की खानि—१०-१। (ख) आछौ दिन सुनि महरि जसोदा सखिनि बोलि सुभ गान करयौ—१०-८८।

संज्ञा पुं. मंगल, कल्याण। उ.—संतत सुभ चाहत प्रिय जन जानि—१-७७।

सुभग—वि. [सं.] (१) सुंदर, मनोहर। उ.—(क) उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज—१-६९। (ख) मेरौ सुभग सांवरौ ललना—१०-५४। (ग) इंदु बदन नव जलद सुभग तनु दोउ खग नैन कह्यौ—२५६४। (२) सौभाग्यवती। उ.—सोभित सुभग नंद जू की रानी—१०-७८। (३) प्रिय लगनेवाला, रुचिकर। (४) सुखद, सुखदायी।

सुभगता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुंदरता। (२) सौभाग्य। (३) प्रेम। (४) (स्त्री का) सुख।

सुभगा—वि. स्त्री. [सं.] (१) सुंदरी। (२) सौभाग्यवती। (३) (स्त्री) जो पति को प्रिय हो।

सुभगी—वि. स्त्री. [सं. सुभग] सुभग।

सुभट—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छा या श्रेष्ठ योद्धा। उ.—रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ सुभट सामुहैं आए—१-२७४। (ख) सुभट अनेक सबल दल साजे परे सिंधु के

पार—९-८३। (ग) ऐसौ सुभट नहीं महिमंडल देख्यौ बालि समान—९-१३४।

वि. वीर, बली। उ.—संकट परैं तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं—१-९।

सुभटवंत—वि. [सं. सुभट+वत्] वीर, बली। उ.—लख्यौ बलराम यह सुभटवंत है कोऊ हल मुसल सस्त्र अपनो संभारचौ—१० उ.-४५।

सुभद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (२) सौभाग्य। (३) मंगल, कल्याण।

सुभद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रीकृष्ण की बहन जिसका विवाह अर्जुन से हुआ था।

सुभर—वि. [सं. शुभ] (१) भला, अच्छा। (२) मंगलप्रद, कल्याणकारी।

वि. [सं. सु + हिं. भरना] अच्छी तरह भरा हुआ।

सुभा—संज्ञा स्त्री. [सं. शुभा] (१) सुधा। (२) शोभा। (३) हड़, हरीतकी।

सुभाइ—संज्ञा पुं. [सं. स्वभाव] (१) बान, आदत। उ.—ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता बहुरि बहै सुभाइ—१-४५। (२) प्रकृति, सहज गुण। उ.—(क) सूर जो द्वै रंग त्यागै यहै भक्त सुभाइ—१-७०। (ख) संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ—१२६५। (ग) बिकसति लता सुभाइ आपने छाया सघन भई—२७७३।

क्रि. वि. (१) बड़ी लगन या आत्मीयता से। उ.—कंटक सों कंटक लै काढ़्यौ अपने हाथ सुभाइ—३२२७। (२) सहज भाव से, स्वभावतः। (३) बहुत सहज में।

सुभाई—क्रि. वि. [सं. सु+भाव] सहज भाव से। उ.—चारिहूँ जुग करी कृपा परकार जेहि, सूरहू पर करी तेहि सुभाई—८-९।

सुभाउ—क्रि. वि. [सं. सु+भाव] सहज भाव से। उ.—कछुक जनाऊँ अपुनपौ अब लौं रह्यौं सुभाउ—४३२।

संज्ञा पुं. [सं. स्वभाव] प्रकृति, सहज गुण। उ.—मुख प्रसन्न सीतल सुभाउ निस देखत नैंन सिराइ।

सुभाए—वि. [सं. सु+हिं. भाना] प्रिय लगनेवाले। उ.—इन माँहि गुन हैं सुभाए—८-८।

संज्ञा पुं. [सं. स्वभाव] सहज गुण, स्वभाव, प्रकृति। उ.—मुरली कौन सुकृत फल पाए।....। अंतर सून्य सदा देखियत है, निज कुल बंस सुभाए—६६१।

सुभाग—संज्ञा पुं. [सं. सौभाग्य] (१) अच्छा भाग्य। (२) स्त्री की सधवा होने की दशा, सुहाग।

वि. (१) भाग्यवान। (२) सुखी।

सुभागा—वि. [सं. सु+भाग्य] भाग्यशाली।

सुभागिन—वि. स्त्री. [सं. सु+भाग्य] (१) भाग्यवती। (२) सुहागिन।

सुभागी, सुभागीन—वि. [सं. सु+भाग्य] (१) भाग्यशालिनी। (२) सुहागिन, सौभाग्यवती।

सुभाग्य—संज्ञा पुं. [सं.] परम भाग्य, सौभाग्य। उ.—तिनके कपिलदेव सुत भए। परम सुभाग्य मानि तिन लए—३-१३।

सुभान—अव्य. [अ. सुबहान] धन्य-धन्य।

यौ. सुभान अल्ला—ईश्वर धन्य है।

सुभाना, सुभानो—क्रि. अ. [हिं. शोभना] देखने में सुन्दर या भला जान पड़ना।

सुभानु—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

वि. सुंदर या उत्तम प्रकाश से युक्त।

सुभाय—संज्ञा पुं. [सं. स्वभाव] (१) बान, आदत। (२) सहज गुण, प्रकृति। उ.—प्रभु को देखौं एक सुभाय—१-८।

संज्ञा पुं. [सं. सु+भाव] सद्भाव।

सुभायक—वि. [सं. स्वाभाविक] स्वाभाविक।

सुभाव—संज्ञा पुं. [सं. स्वभाव] (१) बान, आदत। उ.—जिन तन-धन मोहिं प्रान समरपे सील-सुभाव बढ़ाई—९-७। (२) सहज गुण, प्रकृति। उ.—(क) यहै सुभाव सूर के प्रभु को भक्त-बछल प्रन पारत—१-१२। (ख) तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै—१-११७। (ग) नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए—१०-१०४।

क्रि. वि. सहज भाव से। उ.—नाभि-ह्रद रोमावली अलि चले सहज सुभाव—१-३०७।

सुभाषित—वि. [सं.] अच्छे ढंग से कहा हुआ।

संज्ञा पुं. सुंदर और सत्य उक्ति।

क्रि. वि. सुंदर स्वर या ढंग से। उ.—जिहिं

गीत सुभाषित गावत कहति परस्पर गासक—३२२१।

सुभाषी—वि. [सं. सुभाषिन्] सुंदर और प्रिय बोलनेवाला, मिष्टभाषी, प्रियंवद।

सुभास—वि. [सं.] खूब चमकीला या प्रकाशवान।

सुभिक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] ऐसा समय जब अन्न खूब सस्ता हो, सुकाल।

सुभी—वि. स्त्री. [सं. शुभ] मंगलकारिणी। उ.—है जलधार हार मुकुता मनो बगपंगति कुमुदमाल सुभी—१४४८।

सुभीता—संज्ञा पुं. [देश.] (१) आसानी, सुगमता। (२) सुअवसर, सुयोग। (३) आराम, सुख।

सुभीमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रीकृष्ण की एक पत्नी।

सुभुज—वि. [सं.] सुंदर भुजाओंवाला, सुबाहु।

सुभूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कौशल। (२) उन्नति।

सुभूषित—वि. [सं.] भली-भाँति अलंकृत।

सुभेषज—संज्ञा पुं. [सं. सु+भेषज] गुणकारी औषध। उ.—सूर मिटै अज्ञान-मूरछा ज्ञान सुभेषज खाऐं—२-३२।

सुभोग्य—वि. [सं.] सुख से भोगने योग्य।

सुभोरे—वि. [सं. सु+हिं. भोला] सरल और सीधे स्वभाव का, निष्कपट। उ.—सुनियत हुते तैंसे देखे सुंदर सुमति सुभोरे—२९७१।

सुभौटी—संज्ञा स्त्री. [सं. शोभा] शोभा।

सुभ्र—वि. [सं. शुभ्र] उजला, श्वेत।

सुभ्रु—वि. [सं.] जिसकी भवें सुंदर हों।

सुमंगल—वि. [सं.] अत्यंत शुभ।

सुमंगली—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह दक्षिणा जो विवाह में सप्तपदी के बाद पुरोहित को दी जाती है।

सुमंत, सुमंत्र—संज्ञा पुं. [सं. सुमंत्र] राजा दशरथ का एक मंत्री जो उनका सारथी भी था।

संज्ञा पुं. [सं. सु+मंत्र] सुंदर मंत्र। उ.—कृष्न सुमंत्र जियावनमूरी जिन जन मरत जिवायौ—२-३२।

सुमंत्रित—वि. [सं.] (१) (व्यक्ति) जिसे अच्छा परामर्श मिला हो। (२) (कार्य-व्यापार) जिसके संबंध में उचित परामर्श मिला हो।

सुमंथन—संज्ञा पुं. [सं. सु+मंथ=पर्वत] मंदराचल।

सुमंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] 'सरसी' छंद का दूसरा नाम (होली के 'कबीर' प्रायः इसी छंद में होते हैं)।

सुम—संज्ञा पुं. [फ़ा.] चौपायों के खुर, टाप।

सुमत—वि. [सं.] ज्ञानी, बुद्धिमान।

संज्ञा स्त्री. [सं. सुमति] (१) अच्छी या उत्तम बुद्धि। (२) पारस्परिक हेल-मेल।

सुमति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) राजा सगर की पत्नी का नाम। (२) सुंदर मति, सुबुद्धि। उ.—(क) नहिं कर लकुटि सुमति-सतसंगति जिहिं अधार अनुसरई—१-४८। (ख) कहु री सुमति कहा तोहिं पलटी, प्रान-जिवन कैसैं बन जात—९-३८। (३) पारस्परिक हेल-मेल।

वि. अच्छी बुद्धिवाला, बुद्धिमान। उ.—(क) अर्जुन भीम जुधिष्ठिर सहदेव सुमति नकुल बलभारे—१-२५७। (ख) सुनियत हुते तैसेई देखे सुन्दर सुमति सु भोरे—२९७१।

सुमद—वि. [सं.] मतवाला, मदोन्मत्त।

सुमदा—वि. [सं.] राधा की सखी एक गोपी। उ.—स्यामा कामा चतुरा नवला प्रमदा सुमदा नारि—१५८०।

सुमधुर—वि. [सं.] बहुत मीठा या मधुर।

सुमन—संज्ञा पुं. [सं. सुमनस्] (१) देवता। (२) पंडित, विद्वान। (३) फूल, पुष्प। उ.—बंधुक सुमन अरुन पद पंकज—१०-१०४।

वि. (१) सहृदय, दयालु। (२) मनोहर।

सुमनचाप—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव जिसका धनुष फूलों का माना गया है।

सुमनस—संज्ञा पुं. [सं. सुमनस्] (१) देवता। (२) विद्वान। (३) फूल, पुष्प।

वि. प्रसन्नचित।

सुमना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चमेली (पुष्प)। (२) कैकेयी का वास्तविक नाम। (३) राधा की सखी एक गोपी। उ.—सुमना बहुला चंपा जुहिला ज्ञाना माना भाउ—१५८०।

वि. स्त्री. (१) सहृदय या दयालु (नारी)। (२) प्रसन्नचित्त (नारी)। (३) सुंदरी।

सुमनित—वि. [सं. सुमणि] जिसमें सुंदर मणियाँ जड़ी हों।
वि. [सं. सुमन] जिस (पौधे) में सब फूल लगे हों।
सुमरन—संज्ञा पुं. [सं स्मरण] स्मरण।
संज्ञा स्त्री. [हिं. सुमरनी] जाप की माला।
सुमरना—क्रि. स. [सं. स्मरण] (१) ध्यान, चिंतन या स्मरण करना। (२) बार-बार नाम लेना, जपना।
सुमरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुमरना] जाप करने की माला जिसमें सत्ताईस दाने होते हैं।
सुमानस—वि. [सं.] सहृदय।
सुमानी—वि. [सं. सुमानिन्] (१) बहुत घमंडी या अभिमानी। (२) स्वाभिमानी।
सुमान्य—वि. [सं.] विशेष प्रतिष्ठित।
सुमारग, सुमार्ग—संज्ञा पुं. [सं. सु+मार्ग] (१) साफ, चिकना और समतल मार्ग। (२) नैतिक दृष्टि से अच्छा मार्ग, सुपथ, सन्मार्ग। उ.—सूर सुमारग फेरि चलैगो। वेद बचन उर धारौ—१-१९२।
सुमाल—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. माल] सुन्दर माला। उ.—कंठ सुमाल हार मुक्ता के हीरा रत्न अपार—३३२१।
सुमली—संज्ञा पुं. [सं. सुमालिन्] (१) एक राक्षस जो रावण, कुम्भकर्ण आदि का नाना था। (२) एक बानर का नाम।
सुमित्र—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।
वि. उत्तम मित्रोंवाला।
सुमित्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा दशरथ की पत्नी जो लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की माता थी।
सुमित्रानंदन—संज्ञा पुं [सं.] लक्ष्मण और शत्रुघ्न।
सुमिरण—संज्ञा पुं. [सं. स्मरण] स्मरण।
सुमिरत—क्रि. स. [हिं. सुमिरना] स्मरण करता है या करते (हो)। उ.—(क) सुमिरत ही तत्काल कृपानिधि बसन प्रवाह बढ़ायौ—१-१०९। (ख) मनसा करि सुमिरत है जब जब मिलते तब तब हीं—१-२८३। (ग) मन बच कर्म और नहिं जानत सुमिरत और सुमिरावत—२-१७।
सुमिरन—संज्ञा पुं. [सं. स्मरण] (१) याद। उ.—माया मोह ताहि नहिं गह्यौ। सुन्यौ ज्ञान सो सुमिरन रह्यौ १-२२६। (२) नौ प्रकार की भक्तियों में एक जिसमें परमाराध्य का निरंतर ध्यान या जाप किया जाता है। उ.—(क) सो श्रीपति जुग जुग सुमरिन-बस—१-१७। किते दिन हरि सुमिरन बिनु खोये—१-५२। (ग) नर-देही दीनी सुमिरन कौं—१-११६। (घ) सुमिरन-ध्यान कथा हरि जू की—१-३२४।
सुमिरना, सुमिरनो—क्रि. स. [हिं. सुमरना] (१) याद या स्मरण करना। (२) (नाम) जपना।
सुमिरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुमरनी] जाप करने की माला जो सत्ताईस दानों की होती है।
सुमिराना, सुमिरानो—क्रि. स. [हिं. सुमिरना] (१) याद या स्मरण कराना। (२) (नाम) जपने को प्रवृत्त करना।
सुमरावत—क्रि. स. [हिं. सुमिराना] (नाम) जपता या जपने की प्रेरणा देता है। उ.—मन बच कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत—२-१७।
सुमिरि—क्रि. स. [हिं. सुमिरना] (१) याद या स्मरण करके। उ.—कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन—१-१६४। (२) याद या स्मरण कर या करो। उ.—सुमिरि सनेह कुरंग कौ—१-३२५।
सुमिरिनिया, सुमिरिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुमरनी] नाम जपने की माला जिसमें सत्ताईस दाने होते हैं।
सुमिरे—क्रि. स. [हिं. सुमिरना] ध्यान या स्मरण किया। उ.—(क) जहाँ जहाँ सुमिरे हरि जिहिं विधि, तहँ तैसे उठि धाए—१-७। (ख) राज-रवनि सुमिरे पति-कारन असुर बंदि तैं दियै छुड़ाई—१-२४।
सुमिरौ—क्रि. स. [हिं. सुमरना] ध्यान या स्मरण करो। उ.—(क) सूरदास प्रभु हित कै सुमिरौ तौ आनँद करिकै नाँचौ—१-८३। (ख) हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ—१-२२६।
सुमिर्‍यौ, सुमिर्‍यौ—क्रि. स. [हिं. सुमिरना] ध्यान या स्मरण किया। उ.—(क) राम न सुमिरचौ एक घरी—१-७१। (ख) मनसा करि सुमिरचौ गज बपुरैं ग्राह प्रथम गति पावै—१-१२२।
सुमिल—वि. [सं. सु+हिं. मिलना] (१) जो सहज में मिल सके या मिला हो। (२) जिसका ठीक-ठीक मेल बैठ

जाय, उपयुक्त । (३) मेल-जोल या स्नेह-भाव बनाये रखनेवाला ।

सुमीड़—क्रि. स. [हिं. सुमीड़ना] अच्छी तरह मीड़ या मसलकर । उ.—राहु केतु मानो सुमीड़ विधु—३४८२

सुमीड़ना, सुमीड़नो—क्रि. स. [सं. सु+हिं. मीड़ना] अच्छी तरह मीड़ना, मसलना या मसोसना ।

सुमुक्त—वि. [सं. सु+युक्त] पूर्णतया मुक्त । उ.—ऐसौ भक्त सुमुक्त कहावै । सो बहुरचौ भव-जल नहिं आवै —३-१३ ।

सुमुख—संज्ञा पुं. [सं.] सुन्दर मुख ।

वि. (१) सुंदर मुखवाला । (२) सुंदर । (३) प्रसन्न।

सुमुखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदर मुख वाली स्त्री । उ.—पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस—१०-१२० ।

वि. (१) सुंदर मुखवाली । (२) मनोहर ।(३) प्रसन्न ।

सुमूरति—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+मूर्ति] सुंदर रूपवाली मूर्ति या स्वरूप । उ.—सत्य-सील-संपन्न सुमूरति सुर-नर-मुनि भक्तनि भावै—१-६९ ।

सुमृत, सुमृति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] (१) याद । (२) किसी पुरानी बात का याद आना जो एक-एक संचारी भाव है । (३) प्रियतम से संबंधित बातों का याद आना जो पूर्व राग की दस दशाओं में एक है । (४) वे धर्म-शास्त्र जो वेदों का चिंतन-मनन करके रचे गए थे । उ.—(क) वेद, पुरान सुमृति संतनि कौं यह अधार—१-२०४ । (ख) वेद, पुरान, सुमृति सबै—१-३२५ । (ग) स्रुती, सुमृति, सब पुरान कहत मुनि बिचारी—३९४ ।

सुमेध, सुमेधा—वि. [सं. सुमेधस्] बुद्धिमान ।

सुमेर, सुमेरु—संज्ञा पुं. [सं. सुमेरु] (१) एक पर्वत जो सोने का माना गया है । उ.—(क) पावक जथा दहत सबहीं दल तूल-सुमेरु समान—१-२६९ । (ख) जौ पै राम-भक्ति नहिं जानी कहै सुमेरु सम दान दिऐं—१-८९ । (ग) सूरदास प्रभु दुरत दुराऐं डुँगरनि ओट सुमेर—४५८ । (घ) मनु जुग जलज सुमेर सृंग तें जाई मिले सम ससिहिं सनाल—३४५३ । (२) जप-माला के बीच का बड़ा दाना जहाँ से जाप आरम्भ होता है । (३) उत्तरी ध्रुव । (४) एक वृक्ष ।

वि. (१) बहुत ऊँचा । (२) बहुत सुंदर ।

सुमेरुवृत्त—संज्ञा पुं. [सं.] वह रेखा जो उत्तरी ध्रुव से २३॥ अक्षांश पर स्थित है ।

सुम्रत, सुम्रित, सुम्रिति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] वे धर्मशास्त्र जो वेद का चिंतन मनन करके रचे गये थे । उ.—(क) स्रुति सुम्रिति देख्यौ सब जाइ—२-५ । (ख) स्रुति-सुम्रिति मुनिजन सब भाषत—२-३१ ।

सुयश, सुयस—संज्ञा पुं. [सं. सुयश] सुकीर्ति, सुख्याति । उ.—सभरारी कौ सुयस कुयस की प्रगट एक ही काल —२०६३ ।

सुयोग—संज्ञा पुं. [सं.] सुअवसर ।

सुयोग्य—वि. [सं.] बहुत योग्य ।

सुयोधन—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन का एक नाम ।

सुरँग, सुरंग—वि. [सं.] (१) अच्छे या सुंदर रंग का । उ.—(क) तब अंबर और मँगाइ सारी सुरंग चुनी । ....। उर अंचल उड़त न जानि सारी सुरँग सुही—१०-२४ । (ख) कुलही लसति सिर स्याम सुँदर कैं बहु बिधि सुरँग बनाई—१०-१०८ । (ग) बूँद परत रँग ह्वैहै फीकौ, सुरँग चूनरी भीजै—७३१ । (घ) बसन सुरंग—२५६१ ।(२)सुंदर, सुडौल ।उ.—(क)अलका-वलि मुक्तावलि गूँथी डोर सुरंग बिराजै । (ख) सब पुर देखि धनुषपुर देख्यौ, देखे महल सुरंग—सारा २१० । (३) लाल रंग का । उ.—सेमर-फूल सुरँग अति निरखत मुदित होत खग-भूप—१-१०२ । (४) रसपूर्ण । उ.—गौर अंग सुरंग लोचन—२५८२ ।

संज्ञा पुं. (१) नारंगी । (२) एक तरह का घोड़ा ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सुरंगा] (१) जमीन या पहाड़ के नीचे खोदकर या बारूद से उड़ाकर बनाया गया मार्ग । (२) किले या दीवार को बारूद से उड़ाने के लिए बनाया गया मार्ग । (३) समुद्री चट्टानों को उड़ाने का एक यंत्र । (४) सेंध ।

सुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता । उ.—सुर-नर-मुनि भक्तनि भावै—१-६९ । (२) सूर्य । (३) विद्वान (४) ऋषि, मुनि ।

संज्ञा पुं. [सं. स्वर] आवाज, ध्वनि । उ.—(क) अति सुकंठ-सुर गावन—८-१३ । (ख) गदगद सुर—

१-७२। (ग) नीके सुर नीकी तान—१०-९६। (घ) सप्तक सुर बंधान सों—१५३९।

मुहा. किसी के सुर में सुर मिलाना—हाँ में हाँ मिलाना, चापलूसी करना। सुर भरना—गाने-बजाने में सहारा देने के लिए सुर अलापना या बाजे से सुर निकालना।

सुरकंत—संज्ञा पुं. [सं. सुर+कांत] इंद्र।

सुरक—संज्ञा पुं. [सं. सुर] नाक या माथे पर का वह तिलक जो भाले या बरछी के आकार का होता है।

सुरकना, सुरकनो—क्रि. स. [अनु.] (१) किसी तरल पदार्थ को धीरे-धीरे 'सुड़सुड़' करते हुए नाक या मुँह से पीना। (२) हवा के साथ धीरे धीरे ऊपर की ओर खींचना।

सुरकरि, सुरकरी—[सं. सुरकरिन्] देवताओं का हाथी, दिग्गज।

सुरकार्मुक—संज्ञा पुं. [सं. सुरकार्म्मुक] देवधनुष, इंद्रधनुष।

सुरकुदाउँ, सुरकुदाव—संज्ञा पुं. [सं. स्वर+कु+हिं. दावँ] स्वर बदलकर बोलने की क्रिया या भाव जिससे लोग धोखा खा जायँ।

सुरकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता या इंद्र की ध्वजा। (२) इंद्र।

सुरकोदंड—संज्ञा पुं. [सं. सुर+कोदंड] इंद्रधनुष। उ.—पीत बसन दामिनि मनु घन पर, तापर सुर-कोदंड—५६६।

सुरक्ष—वि. [सं.] भली-भाँति रक्षित।

सुरक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम रीति से की गयी रखवाली या रक्षा।

सुरक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अच्छी तरह की गयी रखवाली या रक्षा।

सुरक्षित—वि. [सं.] (१) जिसकी रक्षा अच्छी तरह की गयी हो। (२) जो इस रूप में स्थित हो कि कोई हानि न पहुँच सके।

सुरक्षी—संज्ञा पुं. [सं. सुरक्षिन्] विश्वस्त रक्षक।

सुरख, सुरखा—वि. [हिं. सुर्ख] लाल रंग का।

सुरखाब—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुरख़ाब] चकवा (पक्षी)।

मुहा. सुरखाब का पर लगना—अनोखापन या विशेषता होना (व्यंग्य)।

सुरखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुर्ख] (१) ईंटों का महीन चून या चूर्ण। (२) लाली, लालिमा। (३) लेख आदि का शीर्षक।

सुरखुरू—वि. [हिं. सुर्खरू] (१) जिसके मुँह पर स्वास्थ्य की लाली या कांति हो। (२) सफलता से जिसके मुँह पर लाली आ जाय। (३) मान्य, प्रतिष्ठित।

सुरग—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्ग] स्वर्ग।

सुरगज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवताओं का या इंद्र का हाथी, ऐरावत।

सुरगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] दैवी गति, भावी।

सुरगबेसाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर्ग+वेश्या] अप्सरा।

सुरगा—वि. [सं. सुरंग] सुंदर।

सुरगाय—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर+हिं. गाय] कामधेनु।

सुरगायक—संज्ञा पुं. [सं.] गंधर्व।

सुरगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] सुमेरु (पर्वत)।

सुरगी—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्गीय] देवता।

सुरगुरु—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं के गुरु, बृहस्पति। उ.—गान नारद करैं, बार गुरु कहै, बेद ब्रह्मा पढ़ै पौरि टेरै—९-१८९।

सुरगैया—संज्ञा स्त्री. [सं सुर+हिं. गैया] कामधेनु।

सुरचाप—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष।

सुरच्छन—संज्ञा पुं. [सं सुरक्षण] रखवाली, रक्षा।

सुरज—वि. [सं. सुरजस्] (फूल) जिसमें उत्तम और प्रचुर पराग हो।

संज्ञा पुं. [सं. सूर्य] सूरज।

सुरजन—वि. [सं.] देववर्ग।

वि. (१) सुजन, सज्जन। (२) चालाक, चतुर।

सुरझन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुलझन] सुलझने की क्रिया या भाव।

सुरझना, सुरझनो—क्रि. अ. [हिं. सुलझना] सुलझना।

सुरझाऊँ—क्रि. स. [हिं. सुलझाना] अलग करूँ, सुलझाऊँ। उ.—क्यों सुरझाऊँ री नंदलाल सों अरुझि रह्यौ मन मेरौ—१४७०।

सुरझाना, सुरझानो—क्रि. स. [हिं. सुलझाना] **सुलझाना।**

सुरझावति—क्रि. स. [हिं. सुरझावना] **सुलझाता है।** उ.—बंध अबंध अमित निसि-बासर को सुरझावति आन—२८११।

सुरझावना, सुरझावनो—क्रि. स. [हिं. सुलझाना] **सुलझाना।**

सुरटीप—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर + हिं. टीप] **स्वर का आलाप।**

सुरत—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **रति-क्रीड़ा, काम-केलि, संभोग।** उ.—(क) सुरत ही सब रैन बीती कोक पूरन रंग। (ख) सुरत समै के चिन्ह राधिका राजत रंग भरे—२११४।

संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] (१) **सुध, ज्ञान।**

मुहा. सुरत बिसारना—**सुध न रहना, विस्मृत होना।** सुरत सँभालना—**होश या सुध सँभालना।**

(२) **लौ, लगन, ध्यान।** (३) **समाधि।**

सुरतरंगिणी, सुरतंगिनि, सुरतरंगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **आकाश गंगा।** (२) **गंगानदी।**

सुरतरु—संज्ञा पुं. [सं.] **कल्पवृक्ष।** उ.—जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं लै सुरतरु बिधि हाथ—१-१११।

सुरतरुवर—संज्ञा पुं. [सं.] **श्रेष्ठ देवतरु, कल्पवृक्ष।** उ.—सुरतरुवर की साख लेखिनी लिखत सारदा हारैं—१-१८३।

सुरतांत—संज्ञा पुं. [सं.] **रति या संभोग का अंत।**

सुरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **सुर या देवता होने का भाव, देवत्व।** (२) **संभोग का सुख।**

संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति, हिं सुरत] (१) **चेतना, सुध, ज्ञान।** (२) **लौ, लगन, ध्यान।** (३) **याद।**

सुर-तात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **देवताओं के पिता कश्यप।** उ.—कस्यप रिषि सुर-तात, सु लगन गनावन रे—१०-२८। (२) **देवराज इंद्र।**

सुरति—संज्ञा स्त्री. [सं. सु + रति] (१) **भोग-विलास, काम-केलि।** उ.—(क) सुरति-अंत गोपाल रीझे जानि अति सुखदाइ—६९०। (ख) अंग दिखाइ गई हँसि प्यारी सुरति चिन्हनि की सुघराई—२१६८। (२) **अत्यन्त लगन या प्रीति।** उ.—सूरदास संगति करि तिनकी जे हरि सुरति करावति—२-१७।

संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] (१) **चेत, चेतना, ज्ञान।**

मुहा. सुरति बिसारना—**चेत न रहना।** सुरति बिसारे—**होश-हवास खोये हुए।** उ.—उड़त ध्वजा तन सुरति बिसारे अंचल नहीं सँभारति-२५६१। सुरति सँभालना—**सचेत होना।** सुरति सँभारी—**होश में आयी, सचेत हुई।** उ.—पुनि रानी जब सुरति सँभारी। रुदन करन लागी अति भारी—६-५।

(२) **याद, स्मृति, सुधि।** उ.—(क) सूर स्याम की मिलनि सुरति करि मनु निरधन धन पाइ बिमोह्यौ—२४७८। (ख) नाना कुसुम लै लै अपने कर दिए मोहिं वह सुरति न जाई—२८८५। (ग) कबहुँ सुरति करत माइन की कीधौं रहे बिसराई—३४४४। (घ) छिन छिन सुरति करत जदुपति की परत न मन समुझायौ—१० उ.-७८। (३) **ध्यान।** उ.—ब्रज करि अवाँ जोग ईंधन सम, सुरति आगि सुलगाए—३१९१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सूरत] **मूर्ति, स्वरूप।**

सुरति-कमल—संज्ञा पुं. [सं.] **शरीर के आठ कमलों या चक्रों में अंतिम जिसका स्थान मस्तिष्क में सहस्रार के ऊपर माना गया है।**

सुरति-गोपना—संज्ञा स्त्री. [सं.] **वह नायिका जो रति-क्रीड़ा की बात अपनी सखियों से छिपाती हो।**

सुरति-रव—संज्ञा पुं. [सं.] **संभोग-काल में होनेवाली, आभूषणों की ध्वनि।**

सुरतिवंत—वि. [सं. सुरति + वान्] **कामातुर।** उ.—हरि हँसि भामिनी उर लाइ। सुरतिवंत (पाठा. सुरति-अंत) गोपाल रीझे जानि अति सुखदाइ—६९०।

सुरतिविचित्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **वह मध्या नायिका जिसकी रति-क्रिया विचित्र हो।**

सुरती—संज्ञा स्त्री. [सूरत (नगर)] **तंबाकू।**

सुरत्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **स्वर्ण।** (२) **माणिक्य।**

वि. (१) **सर्वश्रेष्ठ।** (२) **श्रेष्ठ रत्नों से युक्त।**

सुरत्यौ—संज्ञा स्त्री. [सं. सुरति] **याद या स्मृति भी।** उ.—जमुना तोहिं बह्यौ क्यौं भावै। तोमैं कृष्न हेलुवा खेलै, सो सुरत्यौ नाहिं आवै—५६१।

सुरत्राता—संज्ञा पुं. [सं. सुर+त्रातृ] विष्णु।
सुरद—वि. [सं.] सुंदर दाँतोंवाला।
सुरदार—वि. [हिं. सुर+फ़ा. दार] सुरीला।
सुरदेवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवताओं की पूजनीया देवी। उ.—आदि ब्रह्म-जननी सुरदेवी नाम देवकी बाला—१०-४। (२) योगमाया जिसने यशोदा के गर्भ से अवतार लिया था और कंस के पटकने पर जो छूटकर आकाश में चली गयी थी। उ.—गगन गई बोली सुरदेवी, कंस मृत्यु नियराई—१०-४।
सुरदेश—संज्ञा पुं. [सं. सुर+देश] देवलोक, स्वर्ग।
सुरद्रुम—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।
सुरद्विप—संज्ञा पुं. [सं.] ऐरावत।
सुरधनु, सुरधनुष—संज्ञा पुं. [सुरधनुस्] इंद्रधनुष।
सुरधाम—संज्ञा पुं. [सं. सुरधामन्] स्वर्ग।
मुहा. सुरधाम सिधारना—मर जाना।
सुरधामिनि, सुरधामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंगा।
सुरधामी—वि. [सं. सुरधामिन्] (१) जो स्वर्ग में रहता हो। (२) स्वर्गीय।
सुरधुनि, सुरधुनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंगा।
सुरधेनु, सुरधैनु—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर+धेनु] कामधेनु। उ.—सूरदास ह्याँ की सरवरि नहिं कल्पबृच्छ सुर-धैनु—४६१।
सुरनदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गंगा। (२) आकाशगंगा।
सुरनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।
सुरनायक—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।
सुरनारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवबाला।
सुरनाह—संज्ञा पुं. [सं. सुरनाथ] इंद्र।
सुरनि—संज्ञा पुं. सवि.[सं. सुर+नि] (१) अनेक देवता। उ.—बहुरौ ब्रह्मा सुरनि समेत। नरहरि जू कैं जाइ निकेत—७-२। (२) स्वरों में। उ.—सारेगम पध-निसा संसप्त सुरनि गाई—पृ. ३५२-८३।
सुरप, सुरपति, सुरपती—संज्ञा पुं. [सं. सुरपति] इंद्र। उ.—(क) सुरपति कौं सँताप जब भयौ। सो सुरपुर भय तैं नहिं गयौ—६-७। (ख) सुरपति पूजा करौ सवारी—१००७। सूर सुनत सुरपती उदासी—१०६।
सुर-पथ—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश।
सुर-पर्वत—संज्ञा पुं. [सं.] सुमेरु।
सुर-पादप—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।
सुरपाल, सुरपालक—संज्ञा पुं. [सं. सुर+पालक] देव-राज इंद्र।
सुरपुर—संज्ञा पुं. [सं.] देवलोक, स्वर्ग, अमरावती। उ.—(क) सुरपति कौं सँताप जब भयौ। सो सुरपुर भय तैं नहिं गयौ—६-७। (ख) सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कै रघुपति भए सवार—९-१५८।
मुहा. सुरपुर पठाना—मार डालना। सुरपुर पठाये—मार डाले। उ.—दुष्ट ये मारि सुरपुर पठाए—२६१८। सुरपुर सिधारना—मर जाना, गत हो जाना।
सुरपुर-केतु—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।
सुरपुरोधा—संज्ञा पुं. [सं. सुरपुरोधस्] बृहस्पति।
सुरबहार—संज्ञा पुं. [हिं. सुर+फ़ा. बहार] एक बाजा।
सुरबाला—संज्ञा स्त्री [सं.] देवांगना।
सुरबृच्छ, सुरबृच्छ—संज्ञा पुं. [सं. सुरवृक्ष] कल्पतरु।
सुरबेल, सुरबेली—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर+वल्ली] कल्पलता
सुरभंग—संज्ञा पुं. [सं. स्वर+भंग] प्रेम, भय, आनंद आदि से स्वर में होनेवाला कंप या परिवर्तन जो सात्विक भावों के अंतर्गत है।
सुर-भान, सुरभानु—संज्ञा पुं. [सं. सुर+भानु] (१) इंद्र। उ.—रावे सो रस बरनि न जाई। जा रस कौं सुरभानु (पाठा. स्वरभानु) सीस दियौ, सु तैं पियौ अकुलाइ—ना. ३३९१। (२) सूर्य।
सुरभि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी। (२) गाय। उ.—कोउ टेरत कोउ हाँकि सुरभिगन जोरि चलावत—४३१। (२) खुशबू, सुगंध।
वि. (१) सुगंधित, सुवासित। (२) सुंदर, मनोहर। (३) उत्तम, श्रेष्ठ। (४) सदाचारी।
सुरभित—वि. [सं.] सुगंधित, सुवासित।
सुरभिभक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] हठयोग की वह क्रिया जिसमें साधक जीभ उलटकर ताल के मूलवाले छेद में लगाता और सहस्रार से निकलनेवाला अमृत पीता है।
सुरभिमान—वि. [सं. सुरभिमत्] सुगंधित।
सुरभी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खुशबू, सुगंध। (२) गाय। उ.—(क) लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत सँग—१-९।

(ख) सूर स्याम सुरभी दुही संतनि हितकारी—४०९। (ग) इहिं बृंदावन इहिं जमुनातट ये सुरभी अति सुखद चरावत—४४९।

सुरभीपुर—संज्ञा पुं. [सं.] गो-लोक जो श्रीकृष्ण का निवास-स्थान और सब लोकों से ऊपर माना गया है।

सुरभूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) विष्णु।

सुरभूरुह—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।

सुरभोग—संज्ञा पुं. [सं.] अमृत।

सुरभौन—संज्ञा पुं. [सं. सुर+भवन] (१) मंदिर, देवालय। (२) सुरलोक, अमरावती।

सुरमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देव-समूह या वर्ग। (२) एक बाजा जिसके एक तख्ते में लगे तार मिजराब से बजाये जाते हैं।

सुरमई—वि. [फ़ा.] सुरमे-जैसे हल्के नीले रंग का, सफेदी लिये नीले या काले रंग का।

संज्ञा पुं. हल्का नीला या सफेदी लिये काला रंग।

सुरमचू—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुरमः+चू] आँख में सुरमा लगाने की सलाई।

सुरमणि—संज्ञा पुं. [सं.] चिंतामणि।

सुरमा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुर्मः] एक प्रसिद्ध खनिज जो प्रायः नीले रंग का होता है और जिसका महीन चूर्ण आँखों में लगाया जाता है।

सुरमौर—संज्ञा पुं. [सं. सुर+हिं. मौर] विष्णु।

सुरम्य—वि. [सं.] अत्यंत रमणीय।

सुरयोषित—संज्ञा स्त्री. [सं.] अप्सरा।

सुरराइ, सुरराई—संज्ञा पुं. [सं. सुरराज] (१) इंद्र। (२) (२) विष्णु।

सुरराज, सुरराजू—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

सुरराय, सुररायो, सुरराव—संज्ञा पुं. [सं. सुरराज] (१) इंद्र। (२) विष्णु।

सुररिपु—संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस, असुर।

सुर-रूख—संज्ञा पुं. [सं. सुर+हिं. रूख] कल्पवृक्ष।

सुरल—वि. [हिं. सुरीला] मधुर स्वरवाला।

सुरललना—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवबाला, देवांगना।

सुरली—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+हिं. रली] सुंदर केलिक्रीड़ा।

सुरलोक—संज्ञा पुं. [सं.] देवलोक, स्वर्ग।

सुरवधू—संज्ञा पुं. [सं.] देवबाला, देवांगना।

सुरवाजि—संज्ञा पुं. [सं.] उच्चैःश्रवा घोड़ा।

सुरवाणी—संज्ञा पुं. [सं.] देववाणी, संस्कृत भाषा।

सुरवास—संज्ञा पुं. [सं.] देवलोक, स्वर्ग।

सुर-विटप—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।

सुरवीर—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

सुरवृक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पतरु।

सुरस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पानी, जल। (२) सुख, आनंद। (३) प्रेम, प्रीति। (४) सुस्वादु, श्रेष्ठ रस। उ.—तेरे ही काजैं गोपाल, सुनहुँ लाड़िले लाल, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ—१०-२९५।

वि. (१) रसीला, सरस। (२) सुस्वादु, स्वादिष्ट। (३) सुंदर। उ.—अंग अंग भूषन सुरस ससि पूरन-कला जनु भ्राजई।

सुरसति, सुरसती—संज्ञा स्त्री. [सं. सरस्वती] सरस्वती।

सुरसर—संज्ञा पुं. [सं. सुर+सर] मानसरोवर।

सुरसरि, सुरसरित, सुरसरिता सुरसरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुरसरित्] (१) गंगा। उ.—(क) जे पद-पदुम-परस जल-पावन सुरसरि-दरस कटत अघ भारे—१-९४। (ख) बसत सुरसरी तीर मंदमति कूप खनावै—२-९। (ग) साठ सहस्र सगर के पुत्र, कीने सुरसरि तुरत पवित्र—९-९। (घ) सूरदास मनो चली सुरसरी श्रीगोपाल सागर सुख संगा—१९०५।

सुरसरि-सुवन, सुरसरी-सुवन—संज्ञा पुं. [हिं. सुरसरी+सुवन] गंगा के पुत्र, भीष्म पितामह। उ.—सुरसुरी-सुवन रनभूमि आए—१-२७१।

सुरसाँई—संज्ञा पुं. [सं. सुर+स्वामी] (१) विष्णु। उ.-भक्तबछल बपु धरि नरकेहरि दनुज दह्यो, उर दरि सुरसाँई—१-६ (२) इंद्र।

सुरसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक नागमाता जो समुद्र में रहती थी और जिसने विकराल राक्षसी रूप धरकर हनुमान को समुद्र पार करते समय रोका था। उ.—तहँ इक अद्भुत देखि निसिचरी सुरसा-मुख-बिस्तार—९-७४।

सुरसाई—संज्ञा पुं. [सं. सुर+स्वामी] (१) इंद्र। (२) शिव। (३) विष्णु।

सुरसाल, सुरसालु—वि. [सं. सुर+हिं. सालना] (१) देवताओं को सतानेवाला। (२) राक्षस, असुर।

सुरसाहब—संज्ञा पुं. [सं. सुर+फ़ा. साहब] (१) देवताओं के स्वामी। (२) इंद्र। (३) शिव। (४) विष्णु।

सुरसुंदरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अप्सरा। (२) देवकन्या।

सुर-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना।

सुरसुरभी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कामधेनु।

सुरसुराना, सुरसुरानो—क्रि. अ. [अनु.] (१) कीड़ों आदि का रेंगना। (२) कुलबुलाना। (३) हलकी हलकी खुजली होना।

कि. स. हलकी खुजली उत्पन्न करना।

सुरसुराहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुरसुराना+आहट] (१) हलकी खुजली। (२) गुदगुदी।

सुरसुरी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हलकी खुजली। (२) गुदगुदी।

सुरसेनप, सुरसेनपति—संज्ञा पुं. [सं. सुर+सेनापति] देव-सेना के नायक, कार्तिकेय।

सुरसैयाँ—संज्ञा पुं. [सं. सुर+स्वामी] (१) इंद्र। (२) शिव। (३) विष्णु।

सुरस्वामी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) शिव। (३) विष्णु।

सुरहर, सुरहरा—वि. [सं. सरल] सीधा ऊपर की ओर गया हुआ।

वि. [अनु.] जिसमें 'सुर-सुर' शब्द हो।

सुरही—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोलह] (१) सोलह चित्ती कौड़ियाँ जिनसे जुआ खेला जाता है। (२) सोलह चित्ती कौड़ियों से खेला जानेवाला जुआ।

सुरांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवबाला। (२) अप्सरा।

सुरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शराब, मदिरा। उ.—चरनोदक कौं छाँड़ि सुधा-रस सुरा-पान अँचयौ—१-६४।

सुराई—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर] देवतापन, देवत्व।

संज्ञा स्त्री. [सं. शूर] शूरता-वीरता।

सुराग संज्ञा पुं. [सं. सु+राग] (१) अत्यंत प्रेम। (२) श्रेष्ठ और सुंदर राग। उ.—गावत मलारी सुराग रागिनी गिरिधरन लाल छबि सोहनो—२२८०।

संज्ञा पुं. [अ. सुराग़] पता, टोह।

सुरागाय—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर+गाय] गाय-विशेष जिसकी पूंछ से चँवर बनता है।

सुरागार—संज्ञा पुं. [सं.सुर, सुरा+आगार] (१) देवालय। (२) मदिरालय।

सुराज—संज्ञा पुं. [सं. सु+राज्य] देश जहाँ का शासन उत्तम हो और प्रजा सुखी हो।

संज्ञा. पुं. [सं. स्व+राज्य] देश जहाँ उसके ही निवासियों का शासन हो।

सुराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह राज्य जहाँ उत्तम शासन होने से प्रजा सुखी हो।

संज्ञा. पुं. [सं. स्वराज्य] वह राज्य जिस पर उसके ही वासियों का शासन हो।

सुराद्रि—संज्ञा पुं. [सं.] सुमेरु पर्वत।

सुराधिप—संज्ञा पुं. [सं.] देवराज इंद्र।

सुरानक—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं का नगाड़ा।

सुरानीक—संज्ञा स्त्री. [सं.] देव-सेना।

सुरापगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंगा नदी।

सुरापान—संज्ञा पुं. [सं. सुरा+पान] मदिरा-पान। उ.—कही, हरि-बिमुखऽरु वेस्या जहाँ; सुरापान बधिकनि गृह तहाँ—१-२९०।

सुरापी—वि. [सं. सुरापिन्] शराबी, मद्यप।

सुराब्धि—संज्ञा पुं. [सं.] सुरा का सागर जो सात समुद्रों में तीसरा माना गया है।

सुरारि—संज्ञा पुं. [सं.] असुर, राक्षस।

सुरालय—संज्ञा पुं. [सं. सुर+आलय] (१) देवलोक। (२) देवालय। (३) सुमेरु।

संज्ञा पुं. [सं. सुरा+आलय] मदिरालय।

सुरावट—संज्ञा स्त्री. [सं. सुर] (१) स्वरों का उतार-चढ़ाव। (२) सुरीलापन।

सुरावती—संज्ञा स्त्री. [सं. सुरावनि] कश्यप की पत्नी अदिति जो देवताओं की माता थी।

सुराष्ट्र—वि. [सं.] जिस राष्ट्र का शासन अच्छा हो।

सुरासुर—संज्ञा पुं. [सं.] देवता और राक्षस। उ.—जे गिरि कमठ सुरासुर सर्पहिं धरत न मन मैं नैंकु डरे—१०-१४१।

सुराही—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) जल रखने का एक विशेष

प्रकार का पात्र जो प्रायः मिट्टी या किसी धातु का बना होता है।

संज्ञा पुं [सं. सु+हिं. राही] सत्पथ का पथिक।

सुराहीदार—वि. [हिं. सुराही + फ़ा. दार] सुराही की तरह गोल और लंबोतरी बनावट का।

सुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवबाला, देवललना।

सुरीला—वि. [हिं. सुर+ईला] मीठे या मधुर स्वरवाला, सुस्वर, सुकंठ।

सुरुख—वि. [सं. सु+फ़ा. रुख़ = प्रवृत्ति] (१) सुंदर रूप या आकृतिवाला। (२) प्रसन्न, अनुकूल।

वि. [हिं. सुर्ख] लाल रंग का।

सुरुखुरू—वि. [फ़ा. सुर्ख़रू] (१) जिसके मुंह पर तेज या लाली हो। (२) प्रतिष्ठित (३) यशस्वी।

सुरुच—वि. [सं.] (१) सुंदर प्रकाशवाला। (२) सुंदर रुचि या मनोवृत्तिवाला।

सुरुचि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) राजा उत्तानपाद की दो पत्नियों में एक जो 'उत्तम' की माता और ध्रुव की विमाता थी। उ—उत्तानपाद पृथ्वीपति भयौ......। सुरुचि दूसरी ताकी नार। भयौ सुरुचि तैं उत्तम क्वार—४—९। (२) श्रेष्ठ या उत्तम रुचि। (३) अत्यंत प्रसन्नता।

वि. जिसकी रुचि उत्तम या परिष्कृत हो।

सुरुचिर—वि. [सं.] (१) सुंदर। (२) उज्ज्वल।

सुरुज—वि. [सं.] बहुत बीमार या अस्वस्थ।

संज्ञा पुं. [हिं. सूर्य] भानु, रवि।

सुरुजमुखी—संज्ञा पुं. [हिं. सूर्यमुखी] एक फूल।

सुरुति—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रुति] (१) सुनना। (२) कान, श्रवण। (३) सुनी हुई बात। (४) वेद। (५) चार की संख्या (६) एक प्रकार का अनुप्रास। (७) संगीत के सातों स्वरों के कुछ खंड।

सुरुप—वि. [सं.] सुंदर रूपवाला या वाली। उ.—(क) अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम बियोग भरै—१-३५। (ख) अति सुरूप बिष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई—१०-५२।

संज्ञा पुं. सुंदर रूप। उ.—(क) गुन बिनु गुनी सुरूप रूप बिनु नाम बिना श्री स्याम हरी—१-११५। (ख) सुमति सुरूप सँचै स्रद्धा-बिधि उर-अंबुज अनुराग —२-१२।

संज्ञा पुं. [सं. स्वरूप] (१) आकृति। (२) मूर्ति।

सुरूपता संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदरता।

सुरूपा – वि. स्त्री. [सं.] सुंदर रूपवाली।

सुरेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] सुरराज, इंद्र।

सुरेंद्रचाप—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष।

सुरेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुंदर रेखा। (२) हाथ-पाँव की वे रेखाएँ जिनका रहना शुभ माना जाता है।

सुरेता—वि. [सं. सुरेतस्] बहुत वीर्यवान।

सुरेथ—संज्ञा पुं. [देश.] 'सूस' नामक जलजंतु।

सुरेश—संज्ञा पुं. [सं.] सुरराज, इंद्र।

सुरेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

सुरेश्वरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शची। (२) लक्ष्मी। (३) राधा। (४) दुर्गा।

सुरेस, सुरेसा—संज्ञा पुं. [सं. सुरेश] इंद्र। उ.—सेस-सुरेस-दिनेस सारा. ६८४।

सुरैत—संज्ञा स्त्री. [सं. सुरति] रखेली, उपपत्नी।

सुरैतवाल, सुरैतवाल—संज्ञा पुं. [हिं. सुरैत + बाल, वाल] उपपत्नी का पुत्र।

सुरैतिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुरैत] रखेली।

सुरोचि—वि. [सं. सुरुचि] सुंदर।

सुरोत्तम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) सूर्य।

सुरोद, सुरोदक—संज्ञा पुं. [सं. सुरोद] सुरा-सिंधु।

सुरोदय—संज्ञा पुं. [सं. स्वरोदय] स्वरों या श्वासों से शुभ-अशुभ फल जानने की विद्या।

सुरोम, सुरोमा—वि. [सं. सुरोमन्] सुंदर रोमवाला।

सुर्ख—वि. [फ़ा. सुर्ख़] लाल रंग का।

संज्ञा पुं. गहरा लाल रंग।

सुर्खरू—वि. [फ़ा सुर्ख़रू] (१) जिसके मुख पर तेज या कांति हो। (२) प्रतिष्ठित। (३) यशस्वी।

सुर्खरूई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुर्खरू] (१) 'सुर्खरू' होने का भाव। (२) तेज। (३) मान। (४) यश।

सुर्खाब—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुरख़ाब] चकवा (पक्षी)।

मुहा. सुर्खाब का पर लगना—श्रेष्ठतासूचक विशेषता होना।

सुर्खी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सुर्खी] (१) लाली। (२) 'सुरखी' चूना। (३) रक्त। (४) लेखादि का शीर्षक।

सुर्ता – वि. [हिं. सुरति] समझदार, बुद्धिमान।

सुर्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुरती] तंबाकू।

सुर्मा—संज्ञा पु. [हिं. सुरमा] सुरमा।

सुर्रा—संज्ञा पुं. [सुर्र से अनु.] तेज हवा।

सुर्लभ, सुर्ल्लभ—वि. [सं. सुलभ, 'दुर्लभ' के अनु. पर] सुगमता से प्राप्त हो सकनेवाला। उ.—(क) मोकौं भयौ सो अतिही सुर्लभ—१-२७७ (ख) हमकौं भयौ सो अति ही सुर्ल्लभ—१० उ.-१२७।

सुलंक—संज्ञा स्त्री. [सं.सु+लंक] सुंदर कटि।

वि. जिसकी कमर या कटि सुंदर हो।

संज्ञा पुं. [हिं. सोलंकी] सोलंकी क्षत्रिय।

सुलंकी—संज्ञा पुं. [?] क्षत्रियों की एक शाखा जिसने बहुत समय तक गुजरात पर राज्य किया था।

सुलच्छण—वि. [सं. सु+लक्षण] (१) अच्छे लक्षणोंवाला। (२) भाग्यवान।

संज्ञा पुं. अच्छा चिह्न या लक्षण।

सुलच्छणा, सुलच्छणी—वि. स्त्री. [सं सुलक्षण] (१) अच्छे लक्षणोंवाली। (२) भाग्यवती।

सुलग—अव्य [हिं. सु+लगना] पास, समीप।

संज्ञा स्त्री [हिं सुलगना] सुलगने या जलने की क्रिया या भाव।

सुलगन—संज्ञा स्त्री [सं सु+हिं. लगन] सच्ची प्रीति या भाव।

संज्ञा. स्त्री. [हिं. सुलगना] सुलगने या जलने की क्रिया या भाव।

सुलगना, सुलगनौ—क्रि. अ. [सं. सु + हिं. लगना] (लकड़ी, कोयले आदि का) जलना या दहकना। (२) बहुत दुखी या संतप्त होना।

सुलगाए—क्रि. स. [हिं. सुलगाना] जलाया या प्रज्ज्वलित किया। उ.—व्रज करि अवाँ जोग ईंधन सम सुरति आगि सुलगाए—३१९१।

सुलगाना, सुलगानौ—क्रि.स. [हिं. सुलगना] (१) जलाना, दहकाना, प्रज्ज्वलित करना। (२) दुखी या संतप्त करना।

सुलगि—क्रि. अ. [हिं. सुलगना] जलकर। उ.—सुलगि सुलगि जरति ही आनि फूँकि दई—३१५७।

सुलग्न—संज्ञा पुं. [सं.] शुभ मुहूर्त।

वि. [सं.] दृढ़ता से लगा हुआ।

सुलच्छन—वि. [सं. सुलक्षण] (१) अच्छे लक्षणोंवाला, सुंदर। उ.—परम सुसील सुलच्छन जोरी बिधि की रची न होई—९-४५। (२) भाग्यवान।

संज्ञा पुं. अच्छा चिह्न या लक्षण।

सुलच्छना, सुलच्छनी—वि. स्त्री. [सं सुलक्षणा] (१) अच्छे लक्षणोंवाली। (२) भाग्यवती।

सुलच्छ—वि. [सं. सुलक्षण] (१) अच्छे लक्षणों वाला, सुंदर। उ.—सुलच्छ लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ। (२) भाग्यवान।

संज्ञा पुं. अच्छा चिह्न या लक्षण।

सुलज—वि. [सं. सु+हिं. लाज] लाज या मर्यादा का ध्यान रखनेवाला। उ.—सुंदर सुलज सुबंस देखियत यातैं स्याम पठायौ—२९६३।

सुलझन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुलझना] सुलझने की क्रिया या भाव, सुलझाव।

सुलझना, सुलझनौ—क्रि. अ. [हिं. उलझना] उलझन या जटिलता दूर होना या हटना।

सुलझाना, सुलझानौ—क्रि. स. [हिं. सुलझना] उलझन या जटिलता दूर करना या हटाना।

सुलझाव—संज्ञा पुं. [हिं. सुलझना+आव] सुलझने की क्रिया या भाव, सुलझना।

सुलटा—वि. [हिं. उलटा का अनु.] सीधा।

सुलतान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बादशाह, महाराज। उ.—और हैं आज काल के राजा, मैं तिनमें सुलतान—१-१४५।

सुलताना—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सुलतान] महारानी।

सुलतानी—वि. [फ़ा. सुलतान] (१) सुलतान या बादशाह-संबंधी। (२) लाल रंग का।

संज्ञा स्त्री. (१) बादशाहत, राज्य। (२) सुलतान का शासन-काल। (३) एक तरह का रेशमी कपड़ा।

सुलप—वि. [सं० स्वल्प] (१) थोड़ा। उ.—सूर स्याम नागर अरु नागरि ललना सुलप मंडली राजति—

पृ. ३५१ (७२)। (२) मंद। उ.–चलि सुलप गजहंस मोहति कोक-कला प्रवीना—पृ. ३५१ (७३)।

संज्ञा पुं. [सं.+सु+आलाप] सुंदर आलाप।

सुलफ—वि. [सं० सु+हिं. लपना] (१) लचीला, लचनेवाला। (२) नाजुक, मुलायम, कोमल।

सुलफा—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुल्फ़ः] (१) वह तंबाकू जो चिलम में बिना तवा रखे सुलगाकर पिया जाता है। (२) चरस, गाँजा आदि।

सुलभ—वि. [सं.] (१) सुगमता से मिलने या प्राप्त होने योग्य। उ.—सदा सुभाव सुलभ सुमिरन-बस भक्तनि अभै दियो—१-१८१, (२) सुगम, सरल। (३) साधारण। (४) उपयोगी।

सुलभता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुगमता से प्राप्त होने का भाव। (२) सुगमता, सरलता।

सुलभ्य—वि. [सं.] जो सहज में मिल सके।

सुललित—वि. [सं.] अत्यंत सुंदर।

सुलह—संज्ञा स्त्री [अ.] (१) मेल, मिलाप। (२) लड़ाई समाप्त होने पर या करने के लिए होनेवाली संधि।

सुलहनामा—संज्ञा पुं. [अ. सुलह+फ़ा. नामा] संधिपत्र।

सुलाक—संज्ञा पुं. [हिं. सूराख] छेद, सूराख।

सुलाकत—क्रि. अ. [हिं. सुलाकन] छेद करने पर। उ.—अगिनि सुलाकत (पाठा. सुलागत) मोरचौ न अंग-मन बिकट बनावत वेहु—२३४३।

सुलाकना, सुलाकनो—क्रि. अ. [हिं. सुलाक] छेद या सूराख करना।

सुलाखना, सुलखानो—क्रि. स. [सं. सु+हिं. लखना] (सोने-चाँदी को) तपाकर परखना।

सुलागत—क्रि. स. [हिं सुलगाना] आग में तपाये जाने पर। उ.—अगिनि सुलागत (पाठा. सुलाकत) मोरचो न अंग-मन बिकट बनावत वेहु—२३४३।

सुलागना, सुलागनो—क्रि. स. [हिं. सुलगाना] (१) जलाना, तपाना। (२) दुख देना।

क्रि. अ. (१) जलना, तपना। (२) दुखी होना।

सुलाज—संज्ञा स्त्री. [सं.सु+हिं. लाज] लज्जा या मर्यादा (का ध्यान)। उ.—सखी सुलाज समुझि परस्पर सन्मुख सबै सही—२५४२।

सुलाना, सुलानो—क्रि. स. [हिं. सोना] (१) सोने के लिए प्रवृत्त करना। (२) लिटाना (३) मार डालना।

सुलभ—वि.[सं.सुलभ] (१) सुगमता से प्राप्त होने योग्य। (२) सहज, सुगम।

संज्ञा पुं. सुंदर या उत्तम लाभ।

सुलेख—संज्ञा पुं. [सं. सु+लेख] (१) सुंदर लिखावट। (२) सुंदर रूप से अंकित चिह्न या छाप। उ.-निरखि सुंदर हृदय पर भृगु-पाग परम सुलेख—६३५।

सुलेखक—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम लेखक या ग्रंथकार।

सुलेमाँ, सुलेमान—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुलेमान] (१) यहूदियों का एक बादशाह जो पैगंबर भी माना जाता है। (३) पश्चिमी पंजाब का एक पर्वत।

सुलेमानी—वि. [फ़ा.] सुलेमान-संबंधी।

सुलोक—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग।

सुलोचन—वि. [सं.] जिसके नेत्र सुंदर हों। उ.—अब विधु-बदन बिलोकि सुलोचन—२५६७।

संज्ञा पुं. (१) सुंदर नेत्र (२) हिरन, मृग। (३) रुक्मिणी के पिता का नाम।

सुलोचना—वि. स्त्री. [सं.] सुंदर नेत्रवाली।

संज्ञा स्त्री. वासुकी नाग की पुत्री जो मेघनाद की पत्नी थी।

सुलोचनि, सुलोचनी—वि. स्त्री. [सं. सुलोचना] जिसके नेत्र सुन्दर हों।

सुलोम—वि. [सं.] जिसके रोयें सुन्दर हों।

सुलोमा—वि. स्त्री. [सं.] सुन्दर रोमवाली।

सुल्तान—संज्ञा पुं. [फ़ा. सुलतान] बादशाह।

सुवंश, सुवंस—वि. [सं. सुवंश] उत्तम या कुलीन वंश का। उ.—सुंदर सुलज सुबंस देखियत यातैं स्याम पठायौ—२९६३।

सुव—संज्ञा पुं. [हिं. सुअन] पुत्र, बेटा।

सुवक्ता—वि. [सं. सु+वक्तृ] व्याख्यान-कुशल।

सुवक्ष—वि. [सं. सुवक्षस्] विशाल वक्षस्थलवाला।

संज्ञा पुं. सुंदर और विशाल वक्षस्थल।

सुवक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] मयदानव की पुत्री जो त्रिजटा और विभीषण की माता थी।

सुवच—वि. [सं.] जिसका उच्चारण सुगम हो।

सुवचन—वि. [सं.] मीठा बोलनेवाला ।
संज्ञा पुं. सुन्दर और मीठे वचन ।

सुवचनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक देवी ।
वि. सुन्दर और मीठे वचन बोलनेवाली ।

सुवटा—संज्ञा पुं. [हिं. सुअटा] तोता । उ.—सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौनैं पकरचौ—२-२६१ ।

सुवदन—वि. [सं.] जिसका मुख सुन्दर हो ।
संज्ञा पुं. सुन्दर मुख ।

सुवदना - वि. स्त्री. [सं.] सुंदर मुखवाली ।

सुवन—संज्ञा पुं. [हिं. सुअन] पुत्र, बेटा । उ.—(क) अहि-पति-सुता-सुवन सनमुख ह्वै बचन कह्यौ इक हीनौ—१-२९ । (ख) नंद-सुवन-छवि चंद-वदनियाँ—१०-१०६ । (ग)सुवन तन चितै नंद डरत भारी–६८४ । (घ)सूर प्रभु नंद-सुवन दोऊहंस बाल उपाम-२५६५ ।
संज्ञा पुं. [सं. सुमन] फूल, पुष्प ।

सुवनारा—संज्ञा पुं. [हिं. सुवन] पुत्र, बेटा ।

सुवपु—वि. [सं. सुवपुस्] सुंदर शरीरवाला ।
संज्ञा पुं. सुंदर शरीर ।

सुवरण, सुवरन, सुवर्ण—संज्ञा पुं. [सं. सुवर्ण] (१) सोना, स्वर्ण । (२) सुंदर वर्ण । (३) सुंदर रंग ।
वि. (१) सुंदर वर्ण का । (२) सुंदर रंग का ।

सुवर्णक—वि. [सं.] (१) सोने का । (२) सुंदर वर्ण का ।

सुवर्णकरणी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुवर्ण+करण] एक जड़ी जो रोग-जनित विवर्णता दूर करके शरीर को सुंदर वर्ण का बना देती है ।

सुवर्णकार—संज्ञा पुं. [सं.] सुनार ।

सुवर्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुवर्ण का भाव या धर्म । (२) सुंदरता ।

सुवर्णपक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़ ।
वि. जिसके पंख या पर सोने के हों ।

सुवर्णरोमा—वि. [सं. सुवर्णरोमन्] जिसके रोम या रोएँ सुनहरे हों ।

सुवर्णवर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] सोने का (सा) रंग ।
वि. सोने के रंग का, सुनहरा ।

सुवर्मा—वि. [सं. सुवर्म्मन्] उत्तम कवच से युक्त ।

सुवस—वि. [सं. स्व+वश] जो अपने वश या अधिकार में हो । उ.—(क) बसन कुबेर अग्नि यम मारुत सुवस कियो छन माँयँ—सारा. । (ख) सूने किये भुवन भूपति के सुवस किए सुरलोक—१० उ.-२ ।

सुवह—वि. [सं.] (१) जो सहज ही वहन किया या उठाया जा सके । (२) धीर, धैर्यवान ।

सुवाँग—संज्ञा पु. [हिं. स्वाँग] (१) बनावटी भेस या रूप । (२) नकल, तमाशा । (३) धोखा देने का आडंबर ।

सुवाँगी—संज्ञा पुं. [हिं. स्वाँगी] बहुरूपिया ।

सुवा—संज्ञा पुं. [हिं. सुआ] तोता । उ.—(क) रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ—१-५८ । (ख) कत तू सुवा होत सेमर को—१-५९ । (ग) मन सुवा तन पींजरा—१-३११ ।

सुवाइ—क्रि. स. [हिं. सुवाना] सुलाकर, सुला दे । उ.—ल्याउ कुँवर को वेगि जगाइ । दूध प्याइ कै बहुरि सुवाइ—६-५ ।

सुवाऊँ—क्रि स. [हिं. सुवाना] सुला दूँ । उ.—तुम सोवौ मैं तुम्हैं सुवाऊँ—१०-२३० ।

सुवाक्य—वि. [सं.] सुंदर वचन बोलनेवाला ।
संज्ञा पुं. सुंदर और मधुर वचन ।

सुवाग्मी—वि. [सं. सुवाग्मिन्] सुवक्ता ।

सुवाचा—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+वाचा] (मुँह से निकलनेवाली) अच्छी और शुभ बात ।

सुवाजी—वि. [सं. सुवाजिन्] (तीर या वाण) जिसके पंख सुंदर हों ।

सुवाद—संज्ञा पुं. [सं. स्वाद] जायका, स्वाद ।

सुवादी—वि. [सं. स्वाद] अच्छाखाने का आदी, स्वाद का अभ्यस्त । उ.—सूरदास तिल तेल सुवादी, स्वाद कहा जानै घृत ही री १४९९ ।

सुवाना सुवानो—क्रि. स. [हिं. सुलाना] (१) सोने को प्रवृत्त करना । (२) लिटाना । (३) मार डालना ।

सुवार—संज्ञा पुं. [सं. सूपकार] रसोइया ।
संज्ञा पुं. [सं. सु+वार] शुभ दिन या वार ।

सुवार्ता, सुवार्त्ता—संज्ञा स्त्री. [सं. सुवार्त्ता] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम ।

सुवावैं क्रि. स. [हिं. सुवाना] सुला दें, सोने को प्रवृत्त कर चुकें । उ.—सोवैं तब जब वाहि सुवावैं—५-३ ।

सुवावै—क्रि. स. [हिं. सुवाना] सुलाती है, सुला दे। उ. —मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै १०-४३।

सुवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अच्छी महक, सुगंध। (२) उत्तम घर या निवास।

वि. [सं. सुवासस्] सुंदर वस्त्रों से युक्त।

संज्ञा पुं. [सं. श्वास] साँस।

सुवासिका—वि. [हिं. सुवास] सुगंधित करनेवाली।

सुवासित—वि. [सं.] सुगंध-युक्त।

सुवासिनी संज्ञा स्त्री. [सं.] सधवा स्त्री।

सुविक्रम—वि. [सं.] अत्यंत साहसी।

सुविख्यात—वि. [सं.] बहुत (ही) प्रसिद्ध।

सुविग्रह—वि. [सं.] सुंदर शरीर या रूपवाला।

सुविचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तम विचार। (२) सुंदर या ठीक न्याय। (३) रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

सुविचारित—वि. [सं.] अच्छी तरह सोचा हुआ।

सुविचारी—वि. [सं. सुविचारिन्] (१) अच्छी तरह विचार करनेवाला। (२) उचित न्याय करनेवाला।

सुविज्ञ—वि. [सं.] बहुत चतुर।

सुविज्ञेय—वि. [सं.] जो सहज में जाना जा सके।

सुवित्त—वि. [सं.] बहुत धनी।

संज्ञा पुं. उत्तम या श्रेष्ठ धन।

सुविद, सुविद्—संज्ञा पुं. [सं. सुविद्] विद्वान।

सुविदग्ध—वि. [सं.] बहुत चतुर।

सुविदित वि. [सं.] भली-भाँति ज्ञात।

सुविधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुभीता] (१) सुगमता और सुकरता की स्थिति। (२) सुअवसर। (३) आराम।

सुविधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] अच्छी रीति-नीति।

सुविधिति—क्रि. वि. [सं.] अच्छी तरह से।

सुवीर—वि. [सं.] महान वीर।

सुवीर्य—वि. [सं.] बहुत शक्तिशाली।

सुवृत्त—वि. [सं.] (१) सच्चरित्र। (२) अच्छी बात कहने या बतानेवाला।

वि. [सं. सु+वृत्त] जिसकी गोलाई ठीक हो।

सुवृत्ति संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तम वृत्ति या जीविका। (२) सदाचार।

वि. (१) जिसकी वृत्ति या जीविका उत्तम हो। (२) सदाचारी, सच्चरित्र।

सुवेल—संज्ञा पुं. [सं] लंका का त्रिकूट पर्वत जहाँ श्रीराम सेना सहित ठहरे थे।

सुवेश, सुवेष, सुवेस—वि. [सं. सुवेश] (१) जिसकी वेशभूषा सुंदर हो। (२) सुंदर, रूपवान।

सुवेशता, सुवेषता, सुवेसता—संज्ञा स्त्री. [सं. सुवेशता] सुसज्जित होने का भाव।

सुवेशित, सुवेषित, सुवेसित—वि. [सं. सुवेश] सुसज्जित।

सुवेशी, सुवेषी, सुवेसी—वि. [सं. सुवेश] (१) सुंदर वेश-भूषा वाला। (२) रूपवान।

सुवेसल—वि. [सं. सुवेश] सुंदर, मनोहर।

सुवैया—वि. [हिं. सोना+ऐया] सोनेवाला।

सुवो—संज्ञा पुं. [हिं. सुवा] तोता।

सुव्यक्त—वि. [सं] स्पष्ट रूप से व्यक्त।

सुव्यवस्थित—वि. [सं.] जिसकी व्यवस्था या प्रबंध उत्तम रूप से किया गया हो।

सुव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुंदर व्रत या निश्चय। (२) ब्रह्मचारी।

वि. (१) व्रत का पालन दृढ़ता से करनेवाला। (२) धर्मनिष्ठ।

सुव्रता—वि. [सं.] पतिव्रता (स्त्री)।

सुशांत—वि. [सं.] अत्यंत शांत या स्थिर।

सुशिक्षित—वि. [सं.] (१) जिसने अच्छी शिक्षा पायी हो।

सुशिक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अच्छी शिक्षा। (२) उपयोगी या उचित शिक्षा।

सुशील—वि. [सं.] (१) उत्तम शील-स्वभाववाला। (२) सच्चरित्रता, सदाचारी। (३) विनीत, नम्र। (४) सरल, भोला, सीधा।

सुशीलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तम स्वभाव। (२) सच्चरित्रता। (३) नम्रता। (४) सरलता।

सुशीला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) राधा की एक सखी का नाम। (२) श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम। (३) सुदामा की पत्नी का नाम।

सुशृंग—वि. [सं.] जिसके सींग सुंदर हों।
संज्ञा पुं. शृंगी ऋषि।
सुशोभन—वि.[सं.](१) अत्यंत शोभायुक्त। (२) जो देखने में बड़ा प्रिय लगे, प्रियदर्शन।
सुशोभित—वि. [सं.] अत्यंत शोभायमान।
सुश्रवा—वि. [सं. सुश्रवस्] प्रसिद्ध, विख्यात।
सुश्राव्य—वि. [सं.] जो सुनने में अच्छा लगे।
सुश्री—वि. [सं.](१) सुंदर श्री से युक्त। (२) बहुत सुंदर या शोभायुक्त। (३) बहुत धनी।
संज्ञा स्त्री. एक आदरसूचक शब्द जो कुमारी, सधवा और विधवा, सभी स्त्रियों के नाम के पहले लगाया जा सकता है।
सुश्रुत—संज्ञा पुं. [सं.] आयुर्वेद के एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका 'सुश्रुत संहिता नामक' ग्रंथ बहुत मान्य है।
वि. (१) अच्छी तरह सुना हुआ। (२) प्रसिद्ध।
सुश्रूखा, सुश्रूषा—संज्ञा स्त्री.[सं.सुश्रूषा](१) टहल, सेवा। (२) रोगी की परिचर्या।
सुश्रोणि—वि. [सं.] सुंदर नितंबवाली।
सुश्लोक—वि. [सं.] (१) पुण्यात्मा। (२) सुप्रसिद्ध।
सुष—संज्ञा पुं. [सं. सुख] सुख, हर्ष।
सुषम—वि. [सं.] (१) शोभायुक्त। (२) सम, समान।
सुषमन, सुषमना, सुषमनि—संज्ञा स्त्री. [सं. सुषुम्ना] वह नाड़ी जो नाभि से आरंभ होकर मेरुदंड से होती हुई ब्रह्मरंध्र तक जानेवाली मानी गयी है। इसी के अन्तर्गत वह ब्रह्मनारी कही जाती है जिससे चलकर कुंडलिनी ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है। उ.—(क) इंगला पिंगला सुषमना नारी—३४०८। (ख) इड़ा पिंगला सुषमन नारी—३४४२ (९)।
सुषमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अत्यंत सुंदरता या शोभा।
सुषमाशाली—वि. [सं.] बहुत सुंदर या शोभायुक्त।
सुषाना—क्रि. स. [हिं. सुखाना] (१) धूप या आग के पास रखकर आर्द्रता दूर करना। (२) दुर्बल बनाना।
क्रि. अ. (१) भला लगना। (२) सह्य होना।
सुषारा—वि. [हिं. सुखारा] (१) सुखद। (२) सुगम।
सुषिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाँस। (२) आग, अग्नि। (३) वह बाजा जो वायु के दबाव से बजने लगता हो।
वि. (१) जिसमें छेद हों। (२) पोला, खोखला।
सुषुपु—वि. [सं. सुषुपस्] जो सोने या निद्रा का इच्छुक या उसके लिए आतुर हो।
सुषुप्त—वि. [सं.] गहरी नींद में सोया हुआ।
सुषुप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गहरी नींद, घोर निद्रा। (२) योग-साधन में चित्त की उस वृत्ति या अनुभूति की अवस्था जब जीव ब्रह्म की प्राप्ति तो नित्यप्रति करता है, परंतु उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता।
सुषुप्स—वि. [सं.] जो सोने या निद्रा का इच्छुक और उसके लिए आतुर हो।
सुषुप्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शयन करने की इच्छा।
सुषुम्ना—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नाड़ी जो नाभि से आरंभ होकर मेरुदंड में से होती हुई ब्रह्मरंध्र तक जानेवाली मानी गयी है। इसीके अंतर्गत वह ब्रह्मनाड़ी भी कही जाती है जिससे चलकर कुंडलिनी ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है। योग के अनुसार शरीर की तीन प्रधान नाड़ियों — इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना — में सुषुम्ना मध्य में है। यह त्रिगुणमयी और चंद्र, सूर्य और अग्नि-स्वरूपिणी है। वैद्यक के अनुसार सुषुम्ना शरीर की चौदह प्रधान नाड़ियोंमें है जिससे अन्य सब नाड़ियाँ लिपटी हुई हैं।
सुषेण, सुषेन—संज्ञा पुं. [सं. सुषेण] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (३) एक बानर का नाम जो वरुण का पुत्र, बाली का ससुर और सुग्रीव का वैद्य था। इसने राम-रावण युद्ध में श्रीराम की विशेष सहायता की थी। उ.—(क) द्रोन-गिरि पर आहि सँजीवनि बैद सुषेन बताई – ९-१४। (ख) सुग्रीव बिभीषन जामवंत, अँगद सुषेन केदार संत—९-१६६।
सुषोपति, सुषोप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. सुषुप्ति] (१) गहरी नींद। (२) योग-साधना में चित्त की वह अवस्था जब वह ब्रह्म का साक्षात्कार तो करता है, परंतु उसकी उसे अनुभूति नहीं होती।
सुष्ट—संज्ञा पुं. [सं. दुष्ट का अनु. या सं. सुष्ठु] (१) जो दुष्ट न हो, भला। (२) सुंदर, श्रेष्ठ। उ.—आयसु पाइ सुष्ट रथ कर गहि अनुपम तुरंग साजि धृत जोह्यौ—२४७८।

सुष्ठु—वि. [सं.] (१) अच्छा, उत्तम। (२) सुंदर।
अव्य. (१) अत्यंत। (२) अच्छी तरह, भली-भाँति। (३) ठीक ठीक, यथायोग्य।
संज्ञा पुं. (१) तारीफ, प्रशंसा। (२) सत्य।

सुष्ठुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भलाई, मंगल, कल्याण। (२) सौभाग्य। (३) सुंदरता।

सुष्म—संज्ञा पुं. [सं.] रस्सी, रज्जु।

सुष्मन, सुष्मना, सुष्मनि, सुष्मनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सुषुम्ना] सुषुम्ना नाड़ी।

सुसंग—संज्ञा पुं. [सं. सु + हिं. संग] सत्संग।

सुसंगत—वि. [सं.] बहुत उचित या युक्तियुक्त।

सुसंगति, सुसंगती—संज्ञा स्त्री [सं. सु + हिं. संगति] अच्छी संगति या साथ, सत्संग।

सुस—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वसृ] बहन, भगिनी।

सुसकना—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] सिसकी भरकर या धीरे-धीरे रोना।

सुसकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सिसकना] सिसक-सिसक कर या सिसकी भरकर रोने की क्रिया या भाव। उ.—सुसकनि की बारी हौं बलि-बलि, हठ न करहु तुम नंद-दुलारे—१०-१६०।

सुसकनो—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] सिसकी भरकर या धीरे-धीरे रोना।

सुसक्यो, सुसक्यौ—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] सिसक-सिसक कर या सिसकी भर कर रोने लगा या रोया। उ.—जानि परचो तहँ कोउ नहीं जिय ही जिय सुसक्यो—२४७०।

सुसज्जित—वि. [सं.] अच्छी तरह सजा या सजाया हुआ।

सुसताना, सुसतानो—क्रि. अ. [फ़ा सुस्त+आना] थकावट दूर करना, विश्राम करना।

सुसती—संज्ञा स्त्री [हिं. सुस्ती] (१) सुस्त होने का भाव, शिथिलता। (४) आलस्य।

सुसबद—संज्ञा पुं. [सं. सुशब्द] यश, कीर्ति।

सुसमय—संज्ञा पुं. [सं.] वे दिन जिनमें अकाल का कष्ट न हो, सुकाल।

सुसमा—संज्ञा स्त्री. [सं. सुषमा] बहुत अधिक शोभा या सुंदरता।

सुसमुझि—वि. [सं. सु + हिं समझ] अच्छी समझवाला, समझदार, सुबुद्धि।

सुसर, सुसरा—संज्ञा पुं. [हिं ससुर] (१) पति या पत्नी का पिता, श्वसुर। (२) एक गाली।

सुसरार, सुसरारि, सुसराल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुसराल] पति या पत्नी के पिता का घर।

सुसरित—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+सरित] (१) नदियों में श्रेष्ठ। (२) गंगा नदी।

सुसरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ससुरी] (१) पति या पत्नी की माता, सास। (२) एक गाली।
संज्ञा स्त्री [सं. सु+सरित] (१) श्रेष्ठ नदी। (२) गंगा नदी।

सुसह्—वि. [सं.] जो सहज में उठाया या सहन किया जा सके।

सुसांत—वि. [सं. सुशांत] अत्यंत शांत या स्थिर। उ.—बहुत काल लौं जल में बिचरे तब हरि भये सुसांत—सारा ९८।

सुसांति—संज्ञा स्त्री. [सं. सुशांति] पूर्ण शांति या स्थिरता।

सुसा—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वसृ] बहन, भगिनी।
संज्ञा पुं. [देश] एक तरह का पक्षी।

सुसाध, सुसाधा—संज्ञा स्त्री [सं. सु+हिं. साध] उत्तम या श्रेष्ठ इच्छा या कामना।

सुसाधन—संज्ञा पुं. [सं. सु+साधन] श्रेष्ठ या उत्तम उपाय, युक्ति या साधन।

सुसाध्य—वि. [सं.] जो सहज में किया जा सके, जिसका साधन सुगम हो, सुखसाध्य।

सुसाना, सुसानो—क्रि. अ. [हिं. साँस] सिसकना।

सुसार—संज्ञा पुं. [सं.] नीलम (मणि)।

सुसारना, सुसारनो—क्रि. स. [सं. सु+सारण] अच्छी तरह समझाकर कहना।

सुसिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] चीनी, शक्कर।

सुसिद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उत्तम सिद्धि या सफलता। (२) एक काव्यालंकार।

सुसीतल—वि. [सं. सु+शीतल] बहुत ठंढा।

सुसीतलता, सुसीतलताई—संज्ञा स्त्री [सं. सुशीतलता] बहुत ठंढ या शीत।

सुसील—वि. [सं. सुशील] (१) उत्तम शील-स्वभाववाला। परम सुसील सुलच्छन जोरी बिधि की रची न होई—९-४५। (२) सदाचारी।

सुसीलता—संज्ञा स्त्री [सं. सुशीलता] (१) अच्छा शील-स्वभाव। (२) सच्चरित्रता। (३) नम्रता।

सुसीला—संज्ञा स्त्री. [सं सुशीला] सुदामा की पत्नी का नाम। उ.—नाम सुसीला ताकी नार—१०३-५९।

सुसीले—वि.[सं. सुशील] (१) अच्छे शील-स्वभाव वाले। (२) नम्रता भरे, विनययुक्त। उ.—अति उदार पर-हित डोलत हैं बोलत बचन सुसीले—३०५५।

सुसकत—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] सिसकी भरते, सिसकते। उ.—सुसुकत सुनि जसुमति अतुराई, कहा महर भ्रम पायौ—२४७३।

सुसुकना, सुसुकनो—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] (१) सिसक कर रोना। (२) सिसकी भरना।

सुसुकि—क्रि. अ. [हिं. सिसकना] सिसकी भरकर। उ.—(क) खसि खसि परत कान्ह कनियाँ तैं सुसुकि-सुसुकि मन खीजैं—१०-१९०। (ख) मूँदि मुख छिन सुसिक रोवत छिनक मौन रहत—३५९।

सुसुपि, सुसुप्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. सुसुप्ति] (१) गहरी नींद। (२) समाधि की अवस्था-विशेष।

सुसूक्ष्म—वि० [सं.] अत्यंत सूक्ष्म।
संज्ञा पुं. परमाणु।

सुसेन—संज्ञा पुं. [सं.सुषेण] एक वानर जो सुग्रीव का वैद्य था।

सुसो—संज्ञा पुं. [सं. शश] खरगोश।

सुसौभग—संज्ञा पुं. [सं.] दांपत्य-सुख।

सुस्त—वि. [फ़ा.](१) जो (चिंता, लज्जा आदि के कारण) प्रसन्न या उत्साही न हो, उदास। (२) जिसमें वेग, गति आदि की तीव्रता न हो। (३) जिसके काम में तत्परता न हो। ४) धीमी चालवाला। (५) जिसकी बुद्धि तीव्र न हो।

सुस्तना, सुस्तनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+स्तन] जिसके स्तन सुडौल और सुन्दर हों।

सुस्ताई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुस्ती] सुस्ती।

सुस्ताना, सुस्तानो—क्रि. अ. [हिं. सुसताना] थकावट दूर करने के लिए आराम या विश्राम करना।

सुस्ती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सुस्त] (१) सुस्त होने का भाव, शिथिलता (२) आलस्य।

सुस्तैन—संज्ञा पुं. [सं. स्वस्त्ययन] वह धार्मिक कृत्य जो अशुभ बातों का नाश करके शुभ की स्थापना के लिए किया जाता है।

सुस्थ—वि. [सं.] (१) भला-चंगा, स्वस्थ। (२) सुखी, प्रसन्न। (३) सुस्थित, सुस्थिर। (४) सुंदर।

सुस्थचित्त—वि. [सं.] जिसका चित्त प्रसन्न, सुखी और उत्साहपूर्ण हो।

सुस्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नीरोगता, स्वस्थता। (२) प्रसन्नता, सुख। (३) कुशल-क्षेम।

सुस्थमानस—वि. [सं.] जिसका चित्त प्रसन्न, सुखी और उत्साहपूर्ण हो।

सुस्थल—संज्ञा पुं. [सं.] सुंदर स्थान।

सुस्थित—वि. [सं.] (१) भली-भाँति स्थित, सुदृढ़। (२) स्वस्थ। (३) भाग्यवान।

सुस्थिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अच्छी या उत्तम स्थिति। (२) आनंद। (३) कुशल-क्षेम।

सुस्थिर—वि. [सं.] दृढ़, अविचल।

सुस्मित—वि. [सं.] हँसमुख, हँसोड़।

सुस्वधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कल्याण। (२) सौभाग्य।

सुस्वन—संज्ञा पुं. [सं.] शंख।
वि. (१) उत्तम शब्द या ध्वनि से युक्त।(२) बहुत ऊँचा। (३) सुंदर, मनोहर।

सुस्वप्न—संज्ञा पुं. [सं.] अच्छा या शुभ सपना।

सुस्वर—वि. [सं.] जिसका स्वर या कंठ ध्वनि मधुर हो, सुरीला, सुकंठ।
संज्ञा पुं. (१) सुरीला स्वर। (२) शंख।

सुस्वरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुरीलापन, स्वर की मधुरता। (२) वंशी के पाँच गुणों में एक।

सुस्वाद, सुस्वादु—वि. [सं. सुस्वादु] बहुत स्वादिष्ट।

सुहंग, सुहंगम, सुहँगा—वि. [हिं. महँगा का अनु.] सस्ता।
वि. [सं. सुगम] सरल, सहज।

वि. [हिं. सु+ढंग] सुंदर ।

सुहटा—वि. [हिं. सुहावना] सुंदर ।

सुहड़—संज्ञा पुं. [सं. सुभट] योद्धा ।

वि. [सं. सु+हिं. हाड़] सुंदर शरीरवाला ।

सुहथ—संज्ञा पुं. [सं. सु+हिं. हाथ] सुंदर हाथ । उ.—छूटे चिहुर बदन कुभिलानो सुहथ सँवारि बनाइये—१६८८ ।

सुहनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोहनी] झाड़ू ।

वि. स्त्री. [हिं. सोहना] सुंदर, सुहावनी ।

वि. संज्ञा स्त्री. एक प्रकार की रागिनी ।

सुहम—वि. [सं. सूक्ष्म] बहुत छोटा या सूक्ष्म ।

सुहराना, सुहरानो—क्रि. स. [हिं. सहलाना] (१) धीरे-धीरे हाथ फेरना । (२) मलना ।

सुहल—संज्ञा पुं. [अ. सुहेल] एक कल्पित तारा ।

सुहव, सुहवि, सुहवी—संज्ञा पुं. [हिं. सूहा] एक राग । उ.—राग रागिनी सँचि मिलाई गावै सुघर मलार । सुहवी सारँग टोड़ी भैरवी केदार—२२७९ ।

सुहस्त—वि. [सं. सु+हस्त] सुंदर हाथोंवाला ।

सुहा—वि. [हिं. सूहा] लाल रंग का ।

संज्ञा पुं. (१) 'लाल' नामक पक्षी । (२) एक राग ।

सुहाइ—क्रि. स. [हिं. सुहाना] (१) अच्छा या भला लगता है । उ.—(क) छहौं रस जौ धरौं आगैं तउ न गंध सुहाइ—१-५६ । (ख) बड़ी बेर भई अजहुँ न आए, गृह बन कछु न सुहाइ—५७८ । (ग) हम रुचि करी सूर के प्रभु सों दूजो मन न सुहाइ—३२१० ।

क्रि. अ. शोभा देता है, सुंदर लगता है । उ.–नील खुर अरु अरुन लोचन सेत सींग सुहाइ—१-५६ ।

सुहाई—क्रि. अ. [हिं. सुहाना] शोभित हुई । उ.—कुच बिष बाँटि लगाइ कपट करि बाल-घातिनी परम सुहाई—१०-५० ।

वि. [हिं. सुहावनी] सुहानेवाली, शोभित होनेवाली,सुंदर । उ.—(क) यमुना पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई यामिनी । (ख) निमिष-निमिष मों बिसरत नाहीं सरद सुहाई राती—२९८१ ।

सुहाउँ—क्रि. स. [हिं. सुहाना] भला लगूँ । उ.—काकैं द्वार जाइ होउँ ठाढो, देखत काहि सुहाऊँ—१-१२८ ।

सुहाए—क्रि. अ. [हिं सुहाना] शोभायमान हुए, सुंदर लगे । उ.—बाल-दसा के चिकुर सुहाए—१०-१०४ ।

वि. [हिं. सुहावना] सुंदर । उ. –साप दग्ध ह्वै सुत कुबेर के आनि भए तरु जुगल सुहाए—३८६ ।

सुहाग—संज्ञा पुं. [सं. सौभाग्य] (१) स्त्री के सधवा रहने की अवस्था, अहिवात, सौभाग्य । उ.—धनि-धनि महरि की कोख भाग सुहाग भरी—१०-२४ ।

मुहा. सुहाग भरना - स्त्री को सौभाग्यवती बनाने के लिए उसकी माँग भरना । सुहाग मनाना—पति-सुख के सदा बने रहने की कामना करना । सुहाग माँगना–(देवी देवता या शुभचिंतक गुरुजन से) सौभाग्य अखंड रहने का आशीर्वाद माँगना ।

(२) माँगलित गीत जो विवाह के समय कन्या-पक्ष की स्त्रियाँ गाती हैं ।

मुहा० सुहाग गाना—मांगलिक गीत गाना ।

(३) सुख-सौभाग्य उ.—हरि अनुराग सुहाग भरि अमी के गागर रे—३१५० ।

सुहागन—वि. [हिं सुहागिन] सौभाग्यवती ।

सुहागरात—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुहाग+रात] विवाह के बाद की वह रात जिसमें वर-वधू का पहले-पहल मिलन और समागम होता है ।

सुहागा—संज्ञा पुं. [सं सुभग] एक प्रकार का क्षार जो सोना गलाने, छींट छापने तथा कुछ औषधों को बनाने के काम आता है ।

सुहागिन, सुहागिनि, सुहागिनी, सुहागिल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुहाग] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो, सधवा या सौभाग्यवती स्त्री ।उ.—(क) जसुमति भाग सुहागिनी, जायौ हरि सौ पूत—१०-४० । (ख) जसुमति भाग सुहागिनी हरि कौं सुत जानै—१०-७२ । (ग) चारि चारि दिन सबै सुहागिनि री ह्वै चुकीं मैं स्वरूप अपनी—१६६२ ।

सुहात—क्रि. स. [हिं. सुहाना] भला या अच्छा लगता है, रुचता है । उ.—(क) अब न सुहात बिषय-रस-छीलर वा समुद्र की आस—१-३३७ । (ख) गोकुल बाजत सुनी बधाई, लोगनि हिएँ सुहात—१०-१२ । (ग) सखी-सखा-सुख नहिं त्रिभुवन मैं, नहिं बैकुंठ सुहात

—२९१० । (घ) भयौ उदास, सुहात न कछुवै—सारा. ४३६ ।

सुहाता—वि.[हिं.सहना] (१) जो सहा जा सके, जो सहन करने के योग्य हो, सह्य । (२) जो प्रिय या रुचिकर हो ।

सुहाती—क्रि. अ. [हिं. सुहाना] शोभित होती है । उ.—जे जरि मरै प्रगट पावक परि ते त्रिय अधिक सुहाती —२४९९ ।

वि. [हिं. सुहावनी] भली लगनेवाली, रुचिकर । उ.—(क) सूरदास प्रभु कहा चलत है कोटिक बात सुहाती—२९८१ । (ख) समय पाइ ब्रज बात चलाई सुख ही माँझ सुहाती—३४१८ ।

सुहातौ - वि. [हिं. सुहाता] जो भला या अच्छा लगे, जो प्रिय या रुचिकर हो । उ.—मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच सुहातौ—१-३०२ ।

सुहाना, सुहानो—क्रि. अ. [सं. शोभन] शोभित होना ।

क्रि. स. भला या अच्छा लगना, रुचिकर लगना, रुचिकर या प्रिय होना ।

वि. [हिं. सुहावना] देखने में भला और सुंदर लगनेवाला, प्रिय दर्शन ।

सुहाया, सुहायो, सुहायौ—वि. [हिं. सुहाना] जो देखने-सुनने में भला जान पड़े, सुहावना, सुंदर । उ.—बोलि बोलि सुत-स्वजन मित्र-जन लीन्यौ सुजस सुहायौ —२-३० ।

सुहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+आहारी] (१) हथेली के आकार से भी छोटी-छोटी सादी पूरियाँ जो देवी-देवता की पूजा अथवा अन्य वैसे ही उत्सवों के लिए बनायी जाती हैं । उ.—कान कुँवर को कनछेदन है हाथ सुहारी (सोहारी) भेली गुर की—१०-१७९ । (२) सादी पूरी नामक पकवान । उ.—(क) घेबर, फेनी और सुहारी—१०-२११ । (ख) सेव सुहारी घेवर घी के—२३२१ ।

सुहाल संज्ञा पुं. [सं. सु+आहार] एक प्रकार का बहुत खस्ता और नमकीन पकवान जो मैदे का बनता है ।

सुहाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुहारी] सुहारी ।

सुहाव—वि. [हिं. सुहाना] सुंदर, भला ।

संज्ञा पुं. [सं. सु+हाव] सुंदर हाव (-भाव) ।

सुहावत—क्रि. स. [हिं. सुहावना] प्रिय या रुचिकर लगता है । उ.—पुनि पुनि कहत स्याम श्रीमुख सौं, तुम मेरे मन अतिहिं सुहावत—४४९ ।

सुहावता, सुहावन—वि. [हिं. सुहाना] (१) अच्छा या भला लगनेवाला, सुंदर । (२) रुचिकर, प्रिय ।

सुहावना—क्रि. अ. [हिं. सुहाना] देखने में अच्छा या भला मालूम होना ।

क्रि. स. रुचिकर और प्रिय लगना ।

वि. (१) अच्छा या भला लगनेवाला, मनोहर । (२) प्रिय या रुचिकर लगनेवाला ।

सुहावनापन—संज्ञा पुं. [हिं. सुहावना+पन] सुहावने का भाव, सुंदरता, मनोहरता ।

सुहावनो—वि. [हिं. सुहावना] (१) सुंदर, मनोहर । उ.—द्वै खंभ कंचन के मनोहर रत्न जटित सुहावनो —२२८० । (२) प्रिय, रुचिकर ।

सुहावला—वि. [हिं. सुहावना] सुहावना ।

सुहावै - क्रि. स. [हिं. सुहाना] प्रिय या रुचिकर लगती है । उ.—झूठैं लोग लगावत मोकौं, माटी मोहिं न सुहावै १०-२५३ ।

सुहास - वि. [सं.] (१) सुंदर या मधुर मुस्कानवाला । (२) जो हर समय हँसता रहे ।

संज्ञा पुं. सुंदर या मधुर हास्य ।

सुहासी—वि. [सं. सुहासिन्] सुंदर या मधुर मुस्कान-वाला, चारुहासी ।

सुहाहीं—क्रि. अ. [हिं. सुहाना] भले या सुंदर लगते हैं, शोभित होते हैं । उ.—गोबर्धन परबत के ऊपर बोलत मोर सुहाहीं—सारा. ८६२ ।

सुहित—वि. [सं.] (१) बहुत लाभकारी या उपयोगी । (२) किया हुआ । (३) संतुष्ट । (४) उपयुक्त ।

संज्ञा पुं. विशेष मंगल या कल्याण ।

सुहिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुहा] 'लाल' पक्षी ।

सुही—वि. [हिं. सुहा] लाल रंग की । उ.-(क) उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरँग सुही—१०-२४ । (ख) पहिरे चीर सुही सुरंग सारी चुहचुहु चूनरी बहु रंगनो —२२८०

सुहूँ—वि. [सं. शुद्ध] (१) पूरा । (२) ठीक, शुद्ध ।

सुहृत, सुहृत्, सुहृद, सुहृद्—संज्ञा पुं. [सं. सुहृत्] (१) अच्छे और शुद्ध हृदयवाला व्यक्ति । (२) मित्र, सखा, बंधु । उ.—(क) सूर सो सुहृद मानि—१७७ । (ख) सानि-सानि दधि-भात लियौ कर सुहृद सखनि कर देत —४१६ ।

वि. (१) अच्छे, शुद्ध और दयार्द्र हृदयवाला । उ. पंछी एक सुहृद जानत हौं, करचौ निसाचर भंग—९-८३ । (२) सहृदय, उदार, जो निष्ठुर न हो । उ.—बिहँसि बृषभानु-तनया कहति, हम निष्ठुर तुम सुहृद बात वह जिनि चलावौ—२०७३ ।

सुहृदय—वि. [सं.] (१) उदार या विशद दृष्टिकोणवाला, उन्नतमना । (२) सदय, सहृदय ।

सुहेल—संज्ञा पुं. [अ.] एक कल्पित तारा जिसके उदय पर चमड़े में सुगंध आना और अनेक जीवों का मर जाना माना जाता है ।

सुहेलरा, सुहेला—वि. [सं. शुभ, हिं. सुहेला] (१) सुंदर, सुहावना । (२) सुखद, सुखदायक ।

संज्ञा पुं. (१) मंगलगीत । (२) स्तुति ।

संज्ञा पुं. [सं. सुहृद] मित्र, सखा, साथी ।

सुहेस—वि. [सं. शुभ] अच्छा, भला, सुंदर ।

सुहोता—संज्ञा पुं. [सं.सुहोतृ] उत्तम रीति या विधि से हवन करनेवाला होता ।

सूँ—अव्य.[सं. सह]ब्रजभाषा में करण और अपादान कारक का चिह्न जिसका प्रयोग बोलचाल में अधिक होता है, से । ('सूरसागर' में इसका प्रयोग नहीं है; 'सारावली' में ही है ।) उ.—(क) दुर्जोधन सूँ कह्यौ दूत ह्वै—सारा ७७३ । (ख) नव निकुंज में मिलौ स्याम सूँ—सारा ९२२ ।

संज्ञा पुं. [अनु.] किसी चीज से या किसी प्राणी की नाक से निकलने वाला 'सूँ' शब्द ।

सूँइस—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूंस] एक जल-जंतु ।

सूँघति—क्रि. स. [हिं. सूँघना] (सूँघकर) महक या वास का अनुभव करती या पता लगाती हैं । उ.—जहाँ तहाँ गोदोहन कीनो सूँघति सोई ठावें—३४२१ ।

सूँघना, सूँघनो—क्रि. स. [सं. सं+घ्राण] (१) नाक से (सूँघकर) किसी महक या वास का पता लगाना या अनुभव करना ।

मुहा. सिर सूँघना—एक रीति जिसके द्वारा गुरु-जन मंगलकामना के भाव से छोटों का सिर या मस्तक सूँघते हैं । जमीन सूँघना—(१) ऊँघना । (२) जमीन पर मुँह के बल पटक दिया जाना ।

(२) बहुत ही कम भोजन करना (व्यंग्य) । (३) (साँप का) डसना या काटना ।

सूँघा—संज्ञा पुं. [हिं. सूँघना] (१) केवल जमीन सूँघकर उसके नीचे पानी या खजाना बता सकनेवाला व्यक्ति । (२) सूँघ-सूँघकर शिकार तक पहुँचा सकनेवाला पशु । (३) जासूस ।

सूँघि—क्रि. स. [हिं. सूँघना] नाक से महक या वास लेकर, सूँघकर । उ.—ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि फिरचौ—२-२६ ।

सूँड, सूँडा—संज्ञा स्त्री. [सं. शुण्ड] हाथी की नाक जो बहुत लंबी होती है, शुंड ।

सूँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं शुण्डी] एक सफेद कीड़ा ।

सूँतना—क्रि. स. [हिं. सूतना] (१) सीधा करना । (२) ऊपर से नीचे की ओर हाथ फेरना । (३) डोरे आदि पर माँझ या कलफ करना । (४) नोचना-खसोटना । (५) चूसना, सोखना ।

सूँस—संज्ञा स्त्री. [सं. शिशुमार] एक जलजंतु ।

सूँह—अव्य. [सं. सम्मुख, पु. हिं. सौंहें] सामने ।

सूअर—संज्ञा पुं. [सं. शूकर] (१) एक प्रसिद्ध पशु जो आकार, वास-स्थान और स्वभाव के विचार से दो प्रकार का होता है—पालतू और जंगली । (२) एक गाली ।

सूअरबियान—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूअर+बियाना] (१) हर साल बच्चा जनने की क्रिया । (२) वह स्त्री जो हर साल बच्चा जनती हो ।

सूआ—संज्ञा पुं. [सं. शुक, आ. सूअ] तोता, कीर ।

संज्ञा पुं. [हिं. सुई] बड़ी और मोटी सुई ।

सूई—संज्ञा स्त्री. [सं. सूची] (१) लोहे का वह पतला तार-जैसा उपकरण जिसके महीन छेद में तागा पिरोकर कपड़ा आदि सिया जाता है ।

मुहा० आँख की सूई निकालना—किसी विकट काम को समाप्तप्राय देखकर शेषांश को पूरा करके सारे कार्य-संपादन का श्रेय प्राप्त करने का प्रयत्न करना। सुई का फावड़ा या भाला बना देना—जरा सी बात को बहुत बढ़ा देना, बात का बतंगड़ करना।

(२) किसी विशेष अंग, दिशा आदि का सूचक उपकरण। (३) पौधे का पतला अँखुआ या अंकुर। (४) गोदना गोदने का तार।

सूईकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुई+फ़ा कारी] सुई से काढ़कर कपड़े पर बेल-बूटे बनाने का शिल्प।

सूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वाण। (२) वायु।

संज्ञा पुं. [सं. शुक] तोता, कीर।

संज्ञा पुं. [सं. शुक्र] सौर-जगत का 'शुक्र' नामक ग्रह जो दैत्यों का गुरु कहा गया है।

सूकना—क्रि. अ. [हिं. सूखना] सूखना।

सूकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुअर (पशु)। उ.—(क) भजन-बिनु जैसैं सूकर-स्वान सियार—१-४१। (ख) उदर भरयौ कूकर-सूकर लौं—१-६५। (ग) बहुतक जन्म पुरीष-परायन सूकर-स्वान भयौ—१-७८। (२) एक नरक का नाम।

सूकरखेत, सूकरखेत—संज्ञा पुं. [सं. शूकरक्षेत्र] एटा जिले का 'सोरों' नामक स्थान जहाँ वाराह-अवतार की मूर्ति और मंदिर है।

सूकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूकर] (१) 'सुअर' नामक पशु की मादा। (२) वाराही देवी।

सूका—संज्ञा पुं. [सं. सपादक=चतुर्थांश सहित] चार आने का सिक्का, चवन्नी।

सूकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूका=सिक्का] घूस, रिश्वत।

सूक्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेद-मंत्रों या ऋचाओं का संग्रह या संकलन। (२) उत्तम कथन या भाषण।

वि. भली भाँति कहा हुआ या कथित।

सूक्तदर्शी—वि. [सं. सूक्तदर्शिन्] वेदमंत्रों या ऋचाओं का अर्थ करनेवाला, मंत्रद्रष्टा।

सूक्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मैना, सारिका।

सूक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुंदर उक्ति या वाक्य।

सूच्छम, सूच्छम—वि. [सं. सूक्ष्म] बहुत छोटा, थोड़ा या महीन। उ.—गंड सूक्ष्म—२३०९।

संज्ञा पुं. (१) अणु, परमाणु। (२) लिंग शरीर। (३) एक काव्यालंकर।

सूच्छमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूक्ष्म होने का भाव।

सूच्छमदर्शिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बारीक या सूक्ष्म बात सोचने-समझने का गुण।

सूच्छमदर्शी—वि. [सं. सूक्ष्मदर्शिन्] बारीक या सूक्ष्म बात सोचने-समझनेवाला।

सूच्छमदृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह दृष्टि जो बहुत ही सूक्ष्म बातें देख-समझ ले।

संज्ञा पुं. वह जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें देखने-समझने की दृष्टि रखता हो।

सूच्छमदेही—वि. [सं. सूक्ष्मदेहिन्] जिसका शरीर बहुत ही छोटा या दुबला-पतला हो।

सूच्छममति—वि. [सं.] जिसकी बुद्धि तीव्र हो।

सूच्छम शरीर—संज्ञा पुं. [सं.] पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेंद्रिय, पाँच सूक्ष्म भूतों तथा मन और बुद्धि—इन सत्रह तत्वों के समूह से निर्मित वह कल्पित शरीर जिसे 'लिंग शरीर' भी कहते हैं। हिंदुओं का विश्वास है कि सूक्ष्म या लिंग शरीर, प्राणी की मृत्यु और स्थूल शरीर के नाश के उपरांत भी उस समय तक बना रहता है जब तक मुक्ति नहीं होती। स्वर्ग और नरक के भोग भी इसी शरीर को भोगने पड़ते हैं।

सूख—वि. [हिं. सूखा] (१) जिसमें जल न रहा हो। (२) रसहीन। (३) कांतिहीन। (४) कोरा। (५) केवल, निरा, खाली। (६) दुबला, कृश।

मुहा. सूखकर काँटा होना—बहुत दुबला या कृश होना।

सूखति—क्रि. अ. [हिं. सूखना] सूख रही है, दुर्बल या कृश हो रही है। उ.—सूखति सूर धान अंकुर सी बिनु बरषा ज्यों मूल तुई—१४३३।

सूखना, सूखनो—क्रि. अ. [सं. शुष्क, हिं. सूखा] (१) नमी, तरी, गीलापन या आर्द्रता न रहना। (२) जल का बिलकुल न रहना या बहुत कम हो जाना। (३) कांति-तेजहीन, खिन्न या उदास होना। (४) बरबाद

या नष्ट होना। (५) डरना, सन्न रह जाना। (६) रोग, चिंता आदि से दुबला या कृश होना।

सूखा—वि. [सं. शुष्क] (१) जिसकी नमी, तरी या आर्द्रता उड़ या जल गयी हो। (२) जिसका जल उड़ गया या बहुत कम रह गया हो (३) जो कांति या तेजहीन, खिन्न या उदास हो गया हो। (४) बरबाद, नष्ट। (५) कठोर या हृदयहीन। (६) कोरा, निरा, खाली, केवल।

मुहा. सूखा जवाब देना—साफ-साफ इनकार कर देना। सूखा टरकाना या टालना—याचक या आकांक्षी की कोई भी या कुछ भी इच्छा पूरी न करके लौटाना

संज्ञा पुं. (१) पानी न बरसने की दशा या स्थिति, अनावृष्टि। (२) नदी का किनारा जो जल से ऊपर हो। (३) ऐसा स्थान जहाँ जल न हो। (४) एक तरह की खाँसी जो बच्चों के प्राण तक ले लेती है। (५) एक रोग जिसमें खाना खाने पर भी दुबलापन बना रहता है।

मुहा. सूखा लगना—ऐसा रोग होना कि शरीर बराबर सूखता ही जाय।

सूखे—वि. [हिं. सूखा] (१) जिसमें रस या आर्द्रता न रह गयी हो। उ.—सूखे पात और तृन खाइ–५-३। (२) उदास, खिन्न, तेज या कांतिहीन। उ.—सूखे बदन स्रवत नैनन तैं जलधारा उर बाढ़ी—२५३५।

सूखै—क्रि. अ. [हिं. सूखना] पानी उड़ या जल जाय। उ.—सरवर नीर भरै भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ —१-२६५। (ख) जिनके क्रोध पुहुमि नभ पलटै, सूखै सकल सिंधु कर पानी—९-११६।

सूख्यो, सूख्यौ—क्रि. अ. [हिं. सूखना] नमी, तरी या आर्द्रताहीन हो गया। उ.—देखौ करनी कमल की, कीन्हौं रवि सौं हेत। प्रान तज्यौ प्रन न तज्यौ सूख्यौ सरहिं समेत—१-३२५।

सूघर—वि. [हिं. सुघड़] सुडौल, सुंदर।

सूच—वि. [सं. शुचि] निर्मल, पवित्र।

सूचक—वि. [सं.] (१) बताने या सूचना देनेवाला। (२) बोध या ज्ञान करानेवाला (लक्षण या तत्व)।

संज्ञा पुं. (१) दरजी। (२) सूत्रधार।

सूचत—क्रि. स. [हिं. सूचना] बताता या जताता है, प्रकट या सूचित करता है। उ.—(क) नमित मुख इमि अधर सूचत सकुच मैं कछु रोष—३५०। (ख) ताहू मैं अति चारु बिलोकनि गूढ़ भाव सूचत सखि सैन—१३१३।

सूचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बताने की क्रिया। (२) बोध या ज्ञान कराने की क्रिया।

सूचना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (२) बोध या ज्ञान कराने की क्रिया। (१) जताने, बताने या परिचय कराने के लिए कही गयी बात। (२) वह पत्र या विज्ञापन जिस पर किसी विषय का परिचय कराने की बात लिखी हो, परिचायक विज्ञप्ति।

क्रि. स. [सं. सूचन] बताना, सूचित करना।

सूचनापत्र—संज्ञा पुं. [सं.] विज्ञापन, विज्ञप्ति।

सूचनीय—वि. [सं.] बताये-जताने योग्य।

सूचा—वि. [हिं. सुचित्त] जो सचेत या सावधान हो।

सूचि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुई। (२) दृष्टि।

वि. [सं. शुचि] शुद्ध, पवित्र।

सूचिक—संज्ञा पुं. [सं.] दरजी, सौचिक।

सूचिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] सुई।

वि. स्त्री. (१) सूचना देनेवाली। (२) बोधक।

सूचित—वि. [सं.] बताया या जताया हुआ, जिसकी सूचना दी गयी हो, ज्ञापित।

सूची—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कपड़ा आदि सीने-काढ़ने की सुई। (२) सेना का एक प्रकार का व्यूह। (३) तालिका, नामावली। (४) पिंगल की एक रीति जिसमें नियत वर्णों या मात्राओं से बन सकनेवाले छंदों की संख्या जानी जाती है।

सूचीक—संज्ञा पुं. [सं.] मच्छर जैसे जंतु जिनके डंक सुई की तरह के होते हैं।

सूचीकर्म—संज्ञा पुं. [सं. सूचीकर्म्मन्] सिलाई की कला जो चौंसठ कलाओं में एक है।

सूचीपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] प्राप्त वस्तुओं की सूची, तालिका या नामावली।

सूचीभेद, सूचीभेद्य—वि. [सं. सूचिभेद्य] (१) जो सुई से भेदा जाने योग्य हो। (२) बहुत घना।

सूचीमुख—संज्ञा पुं. [सं.](१) सुई का छेद या नाका। (२) एक नरक का नाम।

सूची-शिल्प—संज्ञा पुं. [सं.] सुई का काम जो चौंसठ कलाओं में एक है।

सूच्छम—वि. [सं. सूक्ष्म] (१) बहुत छोटा। उ.—सूच्छम चरन चलावत बल करि–१०-१२०। (२) बहुत पतली या क्षीण। उ.—(क) सूर आगम कियौ नभ तें जमुन सूच्छम धार—६२४। (ख) राजति रोम-राजी रेख। नील घन मनु धूम धारा रही सूच्छम सेष—६३५।

सूच्य—वि. [सं.] सूचित करने के योग्य।

सूच्यग्र—संज्ञा पुं. [सं.] सुई की नोक।

सूच्यार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] वह अर्थ जो शब्दों की व्यंजना शक्ति से निकलता हो।

सूछम, सूछिम–वि. [सं. सूक्ष्म] बहुत छोटा, पतला या थोड़ा।

सूजन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूजना] सूजने की क्रिया, भाव या अवस्था, शोथ।

सूजना—क्रि. अ. [फ़ा. सोज़िश] रोग, चोट आदि से शरीर के किसी अंग का (इस प्रकार) फूलना (कि उसमें पीड़ा भी हो), शोथ होना।

सूजा—संज्ञा पुं. [हिं. सूजी] बड़ी मोटी सुई।

सूजी—संज्ञा स्त्री. [सं. शुचि] गेहूँ का कुछ मोटा और दरदरा आटा।

संज्ञा स्त्री. [सं. सूची] सुई।

संज्ञा पुं. [सं. सूची] कपड़ा सीनेवाला।

सूझ—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूझना] (१) सूझने का भाव। (२) नजर, दृष्टि। (३) होने या आनेवाली बातों का पहले ही ध्यान में आ जाने का भाव या गुण। (४) अनूठी उपज या कल्पना, उद्‌भावना।

सूझई—क्रि. अ. [हिं. सूझना] दिखायी देता है। उ.—नैनन कछू न सूझई—३४२६।

सूझत—क्रि. अ. [सं. संज्ञान] (१) दिखायी देता है। उ.—(क) उपजत दोष नैन नहिं सूझत—१-११४। (ख) गरजत क्रोध-लोभ को नारी, सूझत कहुँ न उतारौ—१-२०९। (ग) सूझत नहीं बीसहूँ लोचन—९-१३४। (घ) रवि कौ रथ सूझत नहिं धरनि-गगन छायौ—९-१३९। (२) ध्यान में आता है। उ.—जौलौं सत सरूप नहिं सूझत—२-२५।

सूझना, सूझनौ—क्रि. अ. [सं. संज्ञान] (१) दिखायी देना, देख पड़ना। (२) ख्याल या ध्यान में आना। (३) छुट्टी पाना, मुक्त होना।

सूझ-बूझ—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूझना-बूझना] समझ या बुद्धि की बातें ध्यान में आना और समझ-बूझकर उनका उपयोग करना, दूरदर्शिता और बुद्धिमता।

सूझिए—क्रि. अ. [हिं. सूझना] दिखायी देता है। उ.—और अनत न सूझिए—१० उ.-२४।

सूझी—क्रि. अ. [हिं. सूझना] दिखायी दी। उ.—जिह्वा स्वाद मीन ज्यौं उरझयौ सूझी नहीं फँदाई—१-१४७।

सूझै—क्रि. अ. [हिं. सूझना] (१) दिखायी देता है। उ.—(क) कान न सुनैं, आँखि नहिं सूझै—३-१३। (ख) अंधधुंध मग कहूँ न सूझै—१०५०। (ग) इत हीं तें जाति उत, उत हीं तें फिरै, इत निकटह्वै जाति नहिं नैंक सूझै—११८८। (घ) सूर नंदनंदन को देखति और न कोई सूझै—३१५१। (२) ध्यान में आता है। उ.—(क) और सरन सूझै नहिं कोइ—१८०९। (ख) जिनके एक अनन्य ब्रत सूझै क्यों दूजो उर आनै—३१३६।

सूझ्यो, सूझ्यौ—क्रि. अ. [हिं. सूझना] दिखायी दिया। उ.—(क) धूम बढ़यौ, लोचन खस्यौ, सखा न सूझ्यौ संग—१-३२५। (ख) तब मारग सूझ्यौ नैननि कछु जिय अपने तिय गई लजाई—८८८।

सूत—संज्ञा पुं. [सं. सूत्र] (१) रुई, रेशम आदि का वह पतला बटा हुआ तागा जिससे कपड़ा बुना जाता है। (२) रुई का बटा हुआ तार जिससे कपड़ा आदि सिया जाता है, तागा, धागा, डोरा।

मुहा० सूत-सूत—जरा-जरा, तनिक-तनिक। सूत बराबर—बहुत महीन। सूत सों तोरयो—महीन सूत की तरह बड़ी सरलता से या अनायास तोड़ दिया। उ.—गृह गुरु लाज सूत सों तोरयो, डरी नहीं ब्यवहार—पृ. ३३९ (८३)।

(३) कई सूतों को बटकर बनायी गयी डोरी। उ.—(क) सन अरु सूत चीर-पाटंबर लै लंगूर बँधाए—

९-९८ । (ख) ग्रंथित सूत धारत तेहिं ग्रीवा जहाँ धरते वनमाल—३३३३ । (४) किसी चीज से निकलनेवाला महीन या पतला तार । (५) बच्चों के गले में पहनाने का गंडा । (६) करधनी । (७) लंबाई नापने का एक मान । (८) पत्थर, लकड़ी आदि पर निशान डालने की डोरी ।

मुहा. सूत धरना या बाँधना—(कोयले, गेरू आदि के रंग में रँगे हुए सूत से पत्थर लकड़ी आदि पर निशान लगाना ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक वर्ण-संकर जाति जिसका काम रथ हाँकना था । (२) रथ हाँकनेवाला, सारथी । उ.—बाजि मनोरथ, गर्व मत्त-गज, असत कुमति रथ-सूत—१-१४१ । (३) बंदी, भाट या चारण जिनका काम राजाओं का यश-गान करना था । उ.—(क) मागध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयंद-हय-चीर-९-१८ । (ख) मागध-बंदी-सूत अति करत कुलाहल बार—१०-२७ । (ग) आनंदित बिप्र सूत-मागध जाचकगन—१०-३० । (४) पुराणवक्ता या पौराणिक जिनमें सबसे प्रसिद्ध हैं लोमहर्षण जो वेदव्यास के शिष्य थे और जिन्होंने नैमिषारण्य में ऋषियों को सब पुराण सुनाये थे । उ.—सूत सौनकनि सौं पुनि कह्यौ—१-२२७ । (५) बढ़ई, सूत्रधार ।

वि. [सं.] (१) उत्पन्न, प्रसूत । (२) प्रेरित ।

वि. [सं. सूत्र] अच्छा, भला, उत्तम ।

संज्ञा पुं. थोड़े अक्षरों या शब्दों में कहा गया ऐसा पद या वाक्य जो बहुत अर्थ प्रकाशित करता हो ।

संज्ञा पुं. [सं. सुत] पुत्र, बेटा ।

सूतक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जन्म । (२) संतान के जन्म पर माना जानेवाला अशौच । (३) किसी निकट संबंधी की मृत्यु पर परिवार में माना जानेवालाअशौच ।

सूतका—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री जिसने हाल ही में बच्चा जना या प्रसव किया हो ।

सूतकी—वि [सं. सूतकिन्] (१) संतान-जन्म होने से जिसे अशौच हो । (२) संबंधी की मृत्यु पर जिसे सूतक लगा हो ।

सूत-तनय—संज्ञा पुं. [सं.] कर्ण (जिसका पालन-पोषण अधिरथ सारथी ने किया था) ।

सूतधार—संज्ञा पुं. [सं. सूत्रधार] बढ़ई । उ.—अगरु चँदन कौ पालनौ (रँगि) ईंगुर ढार-सुढार । लै आयौ गढ़ि डोलना (हो) बिसकर्मा सूतधार (पाठा.—सूतहार) —१०-४० ।

सूत-नंदन—संज्ञा पुं. [सं.] कर्ण (जिसका पोषण और पालन अधिरथ सारथी ने किया था) ।

सूतना, सूतनौ–क्रि. स. [हिं. सूत+ना] (१) सीधा करना, सीध में निशान लगाना । (२) ऊपर से नीचे की ओर हाथ फेरना । (३) डोरे आदि पर माँझ या कलफ चढ़ाना । (४) नोचना-खसोटना । (५) साफ करना । (६) सोख लेना, चूस लेना ।

क्रि. अ. [हिं. सोना] शयन करना ।

सूत-पुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] कर्ण (जिसका पालन अधिरथ सारथी ने किया था) ।

सूतवाँ—वि. [हिं. सूत] सुडौल ।

सूता—संज्ञा पुं. [हिं. सूत] तागा, धागा, डोरा ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री जिसने बच्चा जना हो ।

सूति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जन्म । (२) जनन, प्रसव । (३) उद्गम । (४) पैदावार ।

सूतहार—संज्ञा पुं. [सं. सूत्र+धार] बढ़ई । उ.—अगरु चँदन कौ पालनौ (रँगि) ईंगुर ढार-सुढार । लै आयौ गढ़ि डोलना (हो) बिसकर्मा सूतहार—१०-४० ।

सूतिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्त्री जिसने हाल ही में बच्चा जना हो, जच्चा ।

सूतिकागार—संज्ञा पुं. [सं.] वह स्थान जहाँ बच्चा जना जाय या जना गया हो ।

सूती—वि. [हिं. सूत] सूत का बना हुआ ।

संज्ञा स्त्री. सूत या सारथी की पत्नी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. शुक्ति] सीप, सीपी ।

सूते—क्रि. अ. [हिं. सूतना=सोना] सो गये । उ.—स्वान सूते पहरुवा सब, नींद उपजी गेह—१०-५ ।

संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सूत] (१) धागे या डोरी से । (२) किसी वस्तु से निकलने वाले महीन तंतु से । उ.

—किहिं गयंद बाँध्यौ सुन मधुकर पद्मनाल के काचे सूते—३३०५ ।

सूत्तर—वि. [सं.] बहुत बढ़कर, परमोत्तम ।

सूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तागा, डोरा । (२) जनेऊ, यज्ञोपवीत । (३) करधनी । (४) नियम, व्यवस्था । (५) ऐसा पद या वाक्य जिसमें अक्षर या शब्द तो बहुत थोड़े हों, परन्तु जो बहुत अर्थ प्रकाशित करता हो, सारगर्भित संक्षिप्त पद । (६) कारण, निमित्त । (७) सुराग, पता । (८) वह सांकेतिक पद या वाक्य जिसमें विशिष्ट कार्य, प्रयोग आदि का संक्षिप्त विधान निहित हो । (९) कार्य आदि की रूपरेखा के अंगों में कोई ।

सूत्रकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूत्र का रचनेवाला । (२) बढ़ई । (३) जुलाहा, तंतुवाय । (४) मकड़ी ।

सूत्रधर, सूत्रधार—संज्ञा पुं. [सं. सूत्रधर] (१) नाट्यशाला का प्रधान और व्यवस्थापक नट । (२) बढ़ई, सुतार (३) एक प्राचीन वर्ण-संकर जाति ।

सूत्रधारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नटी ।

संज्ञा पुं. [सं. सूत्रधारिन्] सूत्र धारण करनेवाला ।

सूत्रपात—संज्ञा पुं. [सं.] शुरू, प्रारम्भ, नींव पड़ना ।

सूत्रयी—वि. [सं. सूत्र] सूत्र जानने या रचनेवाला ।

सूत्रित—वि. [सं.] सूत्र-रूप में लाया, प्रस्तुत किया या बनाया हुआ ।

सूत्री—वि. [सं. सूत्र+ई] (१) सूत्र का, सूत्र-संबंधी । (२) जिसमें सूत्र हों, सूत्र-युक्त ।

संज्ञा पुं. [सं. सूत्रिन्] नाटक का सूत्रधार ।

सूत्रीय—वि. [सं.] (१) सूत्र का । (२) सूत्र-युक्त ।

सूथन, सूथनि, सूथनी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का पायजामा । उ.—(क) सूथन जंघन बाँधि नारावँद तिरनी पर छबि भारी—पृ. ३४५ (५२७) । (ख) नारावंदन सूथ जंघन—१८२० ।

सूथार—संज्ञा पुं [पु. हिं. सुतार] बढ़ई ।

सूद—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) लाभ । (२) ब्याज ।

मुहा. सूद दर सूद—ब्याज पर ब्याज । सूद पर देना या लगाना—सूद लेकर रुपया उधार देना ।

संज्ञा. पुं. [सं.] (१) रसोइया । (२) सूत या सारथी का काम ।

सूदखोर—वि. [फ़ा. सूदखोर] जो बहुत ब्याज लेता हो ।

सूदन—वि. [सं.] विनाश करनेवाला । उ.—नमो नमस्ते बारम्बार । मदन-सूदन गोविंद मुरार ।

संज्ञा पुं. वध या विनाश करने की क्रिया ।

सूदना, सूदनो—क्रि. स. [सं. सूदन] (१) मार डालना, वध करना । (२) नष्ट करना ।

सूदित—वि. [सं.] (१) घायल, आहत । (२) जो नष्ट हो गया हो । (३) जो मार डाला गया हो ।

सूदी—वि. [फ़ा. सूद] (वह पूँजी या धन) जो ब्याज पर दिया या लिया गया हो ।

सूद्र—संज्ञा पुं. [सं. शूद्र] शूद्र वर्ण का व्यक्ति । उ.—तब बिचारि करि राजा देख्यौ । सूद्र नृपति कलिजुग करि लेख्यौ—१-२९० ।

सूध—वि. [हिं. सूधा] सीधा ।

वि. [सं. शुद्ध] (१) पवित्र । (२) ठीक । (३) खालिस ।

क्रि. वि. [हिं. सीधे] (१) सामने की ओर । (२) सीधी तरह से, चुपचाप ।

सूधना, सूधनो—क्रि. अ. [सं. शुद्ध] (१) सिद्ध होना । (२) ठीक, सही या सत्य होना ।

सूधरा, सूधा—वि. [सं. शुद्ध, हिं. सूधा] (१) सरल स्वभाव या व्यवहार का, निष्कपट । (२) जो टेढ़ा न हो, सीधा । (३) चित्त पड़ा हुआ । (४) सामने का । (५) जो उलटा न हो, सीधा । (६) जिसमें टेढ़ापन या वक्रता न हो ।

सूधी—वि. स्त्री. [हिं. सूधा] (१) सरल या भोले स्वभाव की, निष्कपट । उ.—(क) सूधी निपट देखियत तुमकौं तातैं करियत साथ—६७४ । (ख) छंद-कपट कछु जानत नाहीं, सूधी हैं सब ब्रज की बाल—१३१५ । (२) जो या जिसमें टेढ़ापन न हो । उ.—(क) टेढ़ी जेहरि सूधी कीन्हीं—२६४३ । (ख) स्वान पूछ को कोटिक लागे सूधी काहु न करी—३०१० ।

क्रि. वि. बिना ठहरे या रुके । उ.—तब से नदी चलत मर्यादा सूधी सिंधु समानी—२०४४ ।

मुहा. सूधी सुनना या सहना—किसी की खरी-

खरी बातें सुनकर सहन करना। सूधी-सूधी सुनाना—खूब खरी-खरी बातें कहना।

सूधे—वि. [हिं. सूधा] (१) जिसमें व्यंग्य या वक्रता न हो। उ.—पूछे तैं तुम बदन दुरावत सूधें बोल न बोलत—१०-२१९। (२) जो टेढ़ा न हो। उ.—सुचि करि सकल बान सूधे करि कटि-तट कस्यौ निषंग—९-१५८।

क्रि. वि. (१) बिना ठहरे या रुके, बिना विलंब किये। उ.—(क) लै बसुदेव धँसे दह सूधे—१०-४। (ख) दधि बेंचहु घर सूधे आवहु काहे झेर लगावति—११७४। (२) सीधी तरह से, सीधे से। उ.—(क) सूधे दान काहे न लेत। (ख) हौं बड़ हौं बड़ बहुत कहावत सूधे (सूधैं) कहत न बात—२-२२।

मुहा० सूधे-सूधे—कोरा, साफ-साफ।

सूधैं—क्रि. वि. [हिं. सूधे] सीधी तरह से, सीधे से। उ.—(क) हौं बड़, हौं बड़ बहुत कहावत सूधैं कहत न बात—२-१२। (ख) चलत न क्यौं तुम सूधैं राह—५-४।

सूधो—वि. [हिं. सूधा] (१) जो टेढ़ा न हो, सीधा। उ.—रीझि तेहि रूप दियो, अंग सूधो कियो—२५८४। (२) जिसमें व्यंग्य, वक्रता या अस्पष्टता न हो। उ.—त्यों त्रिदोष उपजे जक लागत बोलति बचन न सूधो—३०१३।

सूधौ—वि. [हिं. सूधा] (१) सरल, भोला-भाला। उ.—भली महर सूधौ सुत जायौ चोली-हार बतावत—३४१। (२) सस्ता, सुलभ। उ.—तैं तौ नाम स्याम मेरे कौं सूधौ करि है पायौ—१०-३१५।

क्रि. वि. सीधी तरह से, सीधे से। उ.—सूधौ कहौ तब कैसे जीहैं निज चलिहौं उठि प्रात—२५०२।

सून—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जनन, प्रसव। (२) फूल की कली। (३) फूल, पुष्प। (४) पुत्र, बेटा। उ.—मनु मयंकहिं अंक लीन्हौ सिंहिका कैं सून—१०-१८४।

वि. [सं.] (१) खिला हुआ या विकसित (पुष्प)। (२) उत्पन्न, जात।

वि. [सं. शून्य] (१) सूना, सुनसान, निर्जन। उ.—निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर वपु न सँभारत—९-६२। (२) हीन, रहित।

संज्ञा पुं. (१) खाली स्थान। (२) आकाश। (३) बिंदी। (४) अभाव। (५) ईश्वर।

सूनशर—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

सूनसान—वि. [हिं. सुनसान] निर्जन, एकांत।

सूना—वि. [सं. शून्य] निर्जन, जनहीन।

मुहा. सूना या सूना-सूना लगना—सुनसान या निर्जन जान पड़ना।

संज्ञा स्त्री. [सं.] पुत्री, बेटी।

सूनापन—संज्ञा पुं. [हिं. सूना+पन] (१) 'सूना' होने का भाव। (२) सन्नाटा, सुनसान।

सूनु, सूनू—संज्ञा पुं. [सं. सून] पुत्र, बेटा।

सूनू—संज्ञा स्त्री. [सं.] पुत्री, बेटी।

सूनृत—वि. [सं.] (१) सत्य और प्रिय। (२) दयालु।

सूनैं—वि. सर्वि. [हिं. सूना] खाली या निर्जन (घर, स्थान आदि) में। उ.—(क) सूनैं सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ—१०-२६५। (ख) पैठे सखनि सहित घर सूनैं—१०-२००।

सूनो—वि. [हिं. सूना] खाली, सुनसान, निर्जन। उ.—(क) तुम बिनु सूनो वाको गेहरा—२००१। (ख) विद्यमान अपने इन नैननि सूनो देखति गेहु—२७३३। (ग) स्याम बिन सब ब्रजहिं सूनो—३४२६।

सूनौ—वि. [हिं. सूना] निजन, एकांत। उ.—सूर स्याम हौ बहुत लोभाने बन देख्यौ धौं सूनौ—११२१।

सून्य—वि. [सं. शून्य] जिसके अन्दर कुछ न हो, खाली। उ.—अन्तर सून्य सदा देखियत है निज कुल बंस सुभाए—६६१।

सूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पकी हुई दाल या उसका पानी। (२) रसेदार तरकारी। (३) रसोइया। (४) तीर, बाण।

संज्ञा पुं. [सं. शूर्प] अनाज फटकने का एक पात्र या 'छाज' जो प्रायः सरई या सींक बनता है। उ.—तीनि लोक जाके उदर-भवन सो सूप कैं कोन परची है—१०-१२८।

मुहा. सूप भर—बहुत अधिक।

सूपक—संज्ञा पुं. [सं. सूप] रसोइया।

सूपकार—संज्ञा पुं. [सं.] रसोइया।

सूपकारी—संज्ञा स्त्री. [सं. सूपकार] रसोई बनाने की विद्या, कला या क्रिया ।

संज्ञा पुं. रसोई बनानेवाला, रसोइया ।

सूपच—संज्ञा पुं. [सं. श्वपच] चांडाल ।

सूपनखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शूर्पणखा] शूर्पणखा । उ.—सूपनखा ये समाचार सब लंका जाइ सुनाए—९-५७ ।

सूफ—संज्ञा पुं. [अ. सूफ़] ऊन ।

सूफियाना—वि. [अ. सूफ़ी] (१) सूफी धर्म या वर्ग संबंधी । (२) सादा परन्तु सुन्दर ।

सूफी – संज्ञा पुं. [अ. सूफ़ी] (१) एकेश्वरवादी और उदार दृष्टिकोण वाले मुसलमानों का एक धार्मिक संप्रदाय । (२) इस संप्रदाय का अनुयायी ।

वि. [हिं. सूफ ऊन](१) ऊनी वस्त्र पहननेवाला । (२) साफ, पवित्र । (३) निर्दोष, निरपराध ।

सूबा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) किसी देश का भू-भाग, प्रान्त, प्रदेश । (२) सूबेदार ।

सूबेदार—संज्ञा पुं. [फ़ा. सूबा + दार] (१) प्रांत या प्रदेश का शासक । (२) एक छोटा फौजी ओहदा ।

सूबेदारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) सूबेदार का ओहदा, पद या काम । (२) सूबेदार होने की अवस्था या स्थिति ।

सूभर—वि. [सं. शुभ्र] (१) सफेद । (२) सुन्दर ।

सूम—वि. [अ. शूम = असुभ] कंजस, कृपण । उ.—कृपन सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारिकै औरै—१-१८६ ।

सूमति—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूम] कंजूसी, कृपणता ।

सूय—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ ।

सूर – संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य, रवि । उ.—ससि अरु सूर उदै भए मानों दोऊ एकहीं बार—२५७२ । (२) मदार, आक या अर्क का वृक्ष । (३) विद्वान, पंडित । (४) महाकवि सूरदास के नाम का संक्षिप्त रूप; महाकवि सूरदास के नाम की छाप जो उनके पदों में मिलती है । उ.—लीला सुभग सूर के प्रभु की ब्रज में गाइ जियौ—४८६ । (५) अंधा व्यक्ति ।

वि. [सं. शूर] वीर, बहादुर । उ.—यह सुनि नृपति हरष मन कीन्हौ तुरतहिं बीरा दीन्हौं । बारंवार सूर कहि ताकौं, आपु प्रसंसा कीन्हौ—१०-६१ । (ख) कायरबकै लोभ तें भागै, लरै सो सूर बखानै-३३३७ ।

संज्ञा पुं. [सं. शूर = शूरसेन] शूरसेन ।

यौ. सूर सामंत या सावंत—(१) वीर और बहादुर । (२) सेना का वीर नायक । (३) राज्य का पदाधिकारी ।

संज्ञा पुं. [सं. शूकर, प्रा. सूअर] सूअर ।

संज्ञा पुं. [सं. शूल] (१) बरछे की तरह का एक प्राचीन अस्त्र । (२) लंबा और नुकीला काँटा । (३) वायु-कोप से पेट में होनेवाली प्रबल पीड़ा । (४) पीड़ा, दर्द ।

संज्ञा पुं. [देश.] पठानों की एक जाति ।

सूरकांत—संज्ञा पुं. [सं. सूर्यकांत] (१) एक तरह का बिल्लौर या स्फटिक, जिसमें से, सूर्य के सामने रखे जाने पर आग निकलती है । (२) आतशी या सूरजमुखी शीशा ।

सूरकुमार—संज्ञा पुं. [सं. शूर = शूरसेन + कुमार] वसुदेव ।

सूरज—संज्ञा पुं. [सं. सूर्य्य] (१) सूर्य, रवि । उ.—सूरज कोटि प्रकास अंग में कटि मेखला बिराजै—सारा. ३३४ । (ख) आए ब्रह्म सभा में बामन सूरज तेज बिराजै—सारा. ३३६ ।

मुहा. सूरज पर थूका मुँह पर आता है—साधु-सज्जन और लोकोपकारी व्यक्ति पर कलंक या लांछन लगाने से उसका तो कुछ बिगड़ता नहीं, अंततः स्वयं ही लांछित होना पड़ता है । सूरज को दीपक दिखाना —(१) जो स्वयं गुणवान है, उसे कुछ बताने का निरर्थक प्रयत्न करना । (२) जो स्वयं विख्यात हो उसका परिचय देने का निरर्थक प्रयत्न करना । सूरज पर धूल फेंकना—साधु, निर्दोष और लोकोपकारी व्यक्ति पर कलंक या लांछन लगाना ।

(२) एक छाप जो 'सूरसागर' के कुछ पदों में मिलती है और जिसे अधिकांश आलोचक महाकवि सूरदास की ही 'छाप' मानते हैं । उ.—संतत दीन, महा अपराधी काहैं सूरज कूर बिसारौ—१-१७२ ।

वि. [सं. शूर + ज] जो वीर की संतान हो ।

संज्ञा पुं. [सं. सूर + ज] (१) शनि । (२) यम । (३) अश्विनीकुमार । (४) सुग्रीव । (४) कर्ण ।

सूरजतनय—संज्ञा पुं.[हिं. सूरज+सं. तनय] (१) शनि। (२) यम। (३) सुग्रीव। (४) अश्विनीकुमार। (५) कर्ण।

सूरजतनया, सूरजतनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूरज+सं. तनया] यमुना।

सूरजदास—संज्ञा पुं. [हिं सूरज+सं. दास] 'सूरसागर' के कुछ पदों में मिलनेवाली एक छाप जिसे अधिकांश आलोचक महाकवि सूरदास की ही छाप मानते हैं। उ.-सूरजदास स्याम सेए तैं दुस्तर पार तरै—१-८२।

सूरजमुखी—संज्ञा पुं. [हिं. सूर्यमुखी] (१) एक पौधा जिसके पीले फूल सूर्योदय होने पर खिलते और सूर्यास्त पर मुर्झा जाते हैं। (२) एक शीशा जो सूर्य के सामने रखा जाने पर ताप या अग्नि उत्पन्न करता है। (३) एक प्रकार का राजचिह्न या छत्र। (४) एक तरह की आतिशबाजी।

सूरजवंसी—वि. [हिं. सूरज+सं. वंशी] सूर्यवंशी। उ.-सूरजवंसी सो कहवाए। रामचंद्र ताही कुल आए—९-२।

सूरजसुत—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूरज+सं. सुत] (१) शनि। (२)यम। (३)अश्विनीकुमार। (४)सुग्रीव। (५) कर्ण।

सूरजसुता—संज्ञा पुं. [हिं. सूरज+सं. सुता] यमुना।

सूरजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य की पुत्री, यमुना।

सूरण—संज्ञा पुं. [सं.] सूरन, जिमीकंद।

सूरत—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) शक्ल, आकृति।

यौ. सूरत-शक्ल—चेहरा-मोहरा, आकृति।

मुहा० सूरत दिखाना—सामने आना। सूरत बनाना—(१) अच्छा रूप देना या बनाना। (२) रूप बनाने में लापरवाही दिखाना। (३) भेस बदलना। (४) नाक-भौं सिकोड़ना, अरुचि प्रकट करना। (५) चित्र बनाना। सूरत बिगड़ना—(१) चेहरे की रंगत फीकी पड़ना। (२) बदसूरत या कुरूप होना। सूरत बिगाड़ना—(१) बदसूरत या कुरूप करना। (२) अपमानित करके चेहरा फीका कर देना। (३) दंड देकर चेहरा फीका या उदास कर देना।

(२) छवि, शोभा, सौंदर्य। (३) कार्य-सिद्धि का मार्ग,उपाय, ढंग या युक्ति। (४) हालत, दशा,अवस्था।

संज्ञा पुं. [सं. सौराष्ट्र] बंबई प्रदेश का एक नगर।

संज्ञा स्त्री. [सं. स्मृति] याद, सुधि, ध्यान।

वि. [सं. सु+रत] अनुकूल, कृपालु।

सूरता, सूरताई—संज्ञा स्त्री. [सं. शूरता] वीरता।

सूरति—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूरत] (१) आकृति। (२) शोभा। (३) उपाय। (४) दशा।

संज्ञा स्त्री. [सं.+स्मृति] याद, सुध, ध्यान।

सूरती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूरत नगर]एक प्रकार की तलवार जो सूरत नगर में बनती थी।

सूरदास—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तर भारत के हिंदी कृष्णभक्त कवियों में सर्वश्रेष्ठ जिनका समय वि. संवत् १५३५ से १५४० तक माना जाता है। इनका 'सूरसागर' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ गीतकाव्य है। इसके अनेक पदों में 'सूरदास' छाप भी मिलती है। उ.—सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार वंदौं तिहिं पाइ—१-१।

सूरन—संज्ञा पुं. [सं. सूरण] जिमींकंद जिसकी तरकारी बनती है। उ.—(क) निबुआ सूरन आम अथानौ—१०-२४१। (ख) सूरन करि तरि सरस तरोई–२३२१।

सूरनखा सूरपनखा–संज्ञा स्त्री [सं. शूर्पणखा] शूर्पणखा।

सूर-पुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि (२) सुग्रीव। (३) कर्ण।

सूरबीर—वि. [सं. शूर+वीर] बहादुर, वीर।

सूर-मल्लार—संज्ञा पुं. [हिं. सूरदास+मल्लार] एक संकर राग जो वर्षा में दिन के दूसरे पहर में गाया जाता है।

सूरमा—वि. [सं. शूर] वीर। उ.—सूरदास सिर देत सूरमा—२७१३।

सूरमापन—संज्ञा पुं. [हिं. सूरमा+पन] बहादुरी।

सूरमुखी—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यमुखी शीशा।

सूरमुखी मनि—संज्ञा स्त्री. [सं. सूर्य्यमुखीमणि] सूर्यकांत मणि।

सूरवाँ—वि. [हिं. सूरमा] बहादुर, वीर।

सूरसागर—संज्ञा पुं. [हिं. सूर=सूरदास+सागर] हिन्दी के महाकवि सूरदास कृत गीतकाव्य का नाम जिसमें श्रीकृष्ण लीला के साथ-साथ अनेक पौराणिक कथाएँ राग-रागिनियों में वर्णित हैं। इसके दो रूप प्राप्त हैं—संग्रहात्मक और स्कंधात्मक। इसके लगभग पाँच हजार पद आज प्राप्त हैं।

सूर-सामंत, सूरसावंत—संज्ञा पुं. [सं. शूर+सामंत] (१) नायक, सरदार। (२) वीर, योद्धा।

सूर-सुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) अश्विनीकुमार। (४) सुग्रीव। (५) कर्ण।

सूर-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना।

सूर-सूत—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य का सारथी अरुण।

सूरसेन—संज्ञा पुं. [सं शूरसेन] मथुरा प्रदेश का पुराना नाम।

सूरसेनपुर—संज्ञा पुं. [सं. शूरसेन+पुर] मथुरा।

सूराख—संज्ञा पुं. [फ़ा. सूराख़] छेद, छिद्र।

सूरि, सूरी—संज्ञा पुं. [सं. सूरिन्] (१) सूर्य। (२) यज्ञ करानेवाला। (३) बड़ा विद्वान। (४) श्रीकृष्ण का एक नाम।

सूरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विदुषी, पंडिता। (२) सूर्य की पत्नी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सूली] सूली।

संज्ञा पुं. [सं. शूल] भाला।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सूअरी] सूअर की मादा।

सूरुज—संज्ञा पुं. [हिं. सूर्य] रवि, भानु।

सूरुवाँ—वि. [हिं. सूरमा] बहादुर, वीर।

सूर्पनखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शूर्पणखा] सूर्पणखा। उ.—सूर्पनखा ये समाचार सब लंका गाइ सुनाए—९-५७।

सूर्मि, सूर्मी—संज्ञा स्त्री. [सं.] लोहे की बनी हुई स्त्री-मूर्ति (जिसको तपाकर आलिंगन करने से गुरु-पत्नी से व्यभिचार करनेवाले का पाप नष्ट होना कहा गया है)।

सूर्य—संज्ञा पुं. [सं. सूर्य्य] (१) सौर जगत का सबसे ज्वलंत पिंड जिससे सब ग्रहों को गरमी और प्रकाश मिलता है, दिनकर, भानु।

मुहा० सूर्य को दीपक दिखाना—(१) जो स्वयं विख्यात हो उसका परिचय देने का (निरर्थक) प्रयत्न करना। (२) जो स्वयं गणवान है, उसे कुछ बताने का निरर्थक प्रयत्न करना। सूरज पर थूका मुँह पर आता है—साधु-सज्जन और लोकोपकारी व्यक्ति पर कलंक या लांछन लगाने से उसका तो कुछ बिगड़ता नहीं, अंततः स्वयं ही लांछित होना पड़ता है। सूरज पर धूल फेंकना—साधु, निर्दोष और लोकोपकारी व्यक्ति पर कलंक या लांछन लगाना।

(२) बारह की संख्या। (३) आक, मदार।

सूर्य-कर—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य की किरण।

सूर्यकांत, सूर्यकांतमणि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्रकार का बिल्लौर या स्फटिक जिसमें से, सूर्य के सामने रखने पर, आँच निकलती है। (२) आतशी या सूरजमुखी शीशा।

सूर्यकांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य का प्रकाश या दीप्ति।

सूर्यग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा के आ जाने और उसकी छाया पड़ने से होनेवाला ग्रहण जो अमावस्या को होता है। (२) हठयोग में वह अवस्था जब पिंगला नाड़ी से होकर प्राण कुंडलिनी में पहुँचते हैं।

सूर्यज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) अश्विनीकुमार। (४) सुग्रीव (५) कर्ण।

सूर्यजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना।

सूर्यतनय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) अश्विनीकुमार (५) सुग्रीव। (५) कर्ण।

सूर्यतनया—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना।

सूर्यनंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) सुग्रीव। (४) अश्विनीकुमार। (५) कर्ण।

सूर्यनंदनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] यमुना।

सूर्यपत्नी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) संज्ञा। (२) छाया।

सूर्यपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) अश्विनीकुमार। (४) सुग्रीव। (५) कर्ण।

सूर्यपुत्री—संज्ञा स्त्री [सं.] यमुना।

सूर्यप्रभ—वि. [सं.] सूर्य के समान दीप्ति या प्रकाशमान।

संज्ञा पुं. श्रीकृष्ण की पत्नी लक्ष्मणा के प्रासाद का नाम।

सूर्यलोक—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य का लोक (जो युद्ध में मरनेवाले वीरों और सूर्य के भक्तों को प्राप्त होता है)।

सूर्यवंश—संज्ञा पुं. [सं.] क्षत्रियों का वह प्रधान कुल जिसकी उत्पत्ति सूर्य से मानी गयी है।

सूर्यवंशी—वि: [सं सूर्य्यवंशिन्] जो क्षत्रियों के सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ हो।

सूर्यविलोकन—संज्ञा पुं. [सं.] एक मांगलिक कृत्य जिसमें बच्चे को, चार महीने का हो जाने पर सूर्य का प्रथम बार दर्शन कराया जाता है।
सूर्यवेश्म—संज्ञा पुं. [सं. सूर्य्यवेश्मन्] सूर्यमंडल।
सूर्यव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] एक व्रत जो रविवार को किया जाता है।
सूर्यसुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) अश्विनीकुमार। (४) सुग्रीव। (५) कर्ण।
सूर्यसुता—संज्ञा स्त्री [सं.] यमुना।
सूर्यसूत—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य का सारथी, अरुण।
सूर्या—संज्ञा स्त्री [सं.] सूर्य की पत्नी संज्ञा।
सूर्याणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य की पत्नी संज्ञा।
सूर्यातप—संज्ञा पुं. [सं.] धूप, घाम।
सूर्यात्मज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि। (२) यम। (३) अश्विनीकुमार। (४) सुग्रीव। (५) कर्ण।
सूर्यालोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य का प्रकाश। (२) सूर्य का ताप, धूप।
सूर्यावर्त, सूर्यावर्त्त—संज्ञा पुं. [सं. सूर्य्यावर्त्त] सिर की वह पीड़ा जो सूर्योदय से आरंभ होकर दिन बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती और घटने के साथ घटकर सूर्यास्त को शांत हो जाती है।
सूर्यास्त—संज्ञा पु. [सं.] (१) संध्याकाल में सूर्य का छिपना या डूबना। (२) संध्याकाल।
सूर्योदय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रातःकाल सूर्य का निकलना या उदय होना। (२) सूर्य के उदय होने का समय।
सूर्योपासक—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य की पूजा, उपासना और व्रत करनेवाला व्यक्ति या वर्ग।
सर्योपासना—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य की पूजा-उपासना या आराधना करना।
सूल—संज्ञा पुं. [सं. शूल] (१) बरछा, भाला, साँग। उ.—ताहि सूल पर सूली दयौ—३-५। (२) कोई चुभनेवालीनुकीली चीज, काँटा। उ.-पैं तिहिं रिषि-दृग जाने नाहिं। खेलत सूल दए तिन माहिं—९-३। (३) भाला चुभने की सी पीड़ा, कसक, दर्द। उ०-(क) समुझि न चरन गहे गोबिंद के उर अघ सूल सही—१-३२४। (ख) जियत न जैहै सूल तुम्हारी—९-३६। (ग) मन की सूल हरी—१०-२४। (घ) सूर सुबचन मनोहर कहि-कहि अनुज सूल बिसरायौ—३७४। (ङ) सुनि सुन्दरि यह समौ गए तें सूल नई—२५३७। (छ) विद्यमान बिरह-सूल उर में जु समात—२५४३। (४) वायु के प्रकोप से पेट में उठनेवाली अत्यधिक पीड़ा। (५) माला के ऊपर का फुलरा।
सूलधर, सूलधारी—संज्ञा पुं. [सं. शूल+हिं. धरना] (त्रिशूलधारी) महादेव।
सूलना, सूलनो—क्रि. स. [हिं. सूल+ना] (१) किसी नुकीली चीज, जैसे काँटे या भाले, से छेदना। (२) कष्ट या पीड़ा देना।
क्रि. अ. (१) किसी नुकीली चीज, जैसे काँटे या भाले, से छिदना। (२) पीड़ित या व्यथित होना।
सूलपानि, सूलपानी—संज्ञा पुं. [सं. शूलपाणि] (त्रिशूलधारी) महादेव।
सूली—संज्ञा स्त्री. [सं. शूल] (१) लोहे का नुकीला डंडा या वैसा ही कोई उपकरण जिस पर बैठाकर या जिससे लटकाकर प्राचीन काल में प्राणदंड दिया जाता था। उ.—ताहि सूल पर सूली दियौ। ताकौ बदलौ तुमसौं लियौ—३-५। (२) फाँसी, प्राणदंड।
संज्ञा पुं. [सं. शूलिन्] शिव, महादेव।
सूवना, सूवनो—क्रि. अ. [सं. स्रवण] बहना, प्रावहित होना।
संज्ञा पुं. [हिं. सूआ] तोता, कीर।
सूवा—संज्ञा पुं. [हिं. सूआ] तोता, शुक।
सूवै—क्रि अ. [हिं. सूवना] बहता या प्रवाहित होता है। उ.—कहा करौं अति सूवै नयना, उमँगि चलत पग पानी।
सूस—संज्ञा पुं. [हिं. सूँस] एक जलजंतु।
सूसमार—संज्ञा पुं. [सं. शिशुमार] सूस नामक जलजंतु।
सूसला—संज्ञा पुं. [सं. शश] खरगोश।
सूसि—संज्ञा पुं. [हिं. सूस] एक जलजंतु।
सूहा—संज्ञा पुं. [हिं. सोहना] (१) एक तरह का लाल रंग। (२) एक संकर राग।
वि. पुं. लाल रंग का।
सूही—वि. स्त्री. [हिं. सूहा] लाल रंग का, लाल

सृंखल—संज्ञा पुं. [सं. शृंखल] हथकड़ी-बेड़ी।
वि. जो क्रम से हो, व्यवस्थित।

सृंखलता—संज्ञा स्त्री. [सं. शृंखलता] क्रम के अनुसार और व्यवस्थित होने की दशा या भाव।

सृंखला—संज्ञा स्त्री. [शृंखला] (१) पिरोयी हुई कड़ियों का समूह। (२) जंजीर, साँकल। (३) माला। (४) कतार, पंक्ति, श्रेणी। (५) एक काव्यालंकार।

सृंग—संज्ञा पुं. [सं. शृंग] (१) पहाड़ की चोटी या शिखर। (२) सींग। उ.-(क) पाउँ चारि सिर सृंग गुंग मुख तब कैसैं गुन गैहौ—१-३३१। (ख) सर्प इक आइ बहुरि तुम्हरैं निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग बाँधौ–८-१६। (३) कँगूरा। (४) सींग का बना एक तरह का बाजा। उ.-सृंग-बेनु-नाद करत, मुरली मधु अधर धरत—६१९।

सृंगार—संज्ञा पुं. [सं. शृंगार] (१) सजावट। (२) वह जिससे शोभा बढ़े। (३) गहने-कपड़ों से अपने आपको सजाना। (४) साहित्य के नौ रसों में एक जो 'रसराज' कहा जाता है।

सृंगारना, सृंगारनो—क्रि. स. [सं. शृंगारना] सजाना।

सृंगारिया—वि. [सं. शृंगारिया] देव-मूर्ति का शृंगार करनेवाला।

सृंगी—संज्ञा पुं. [सं. शृंगी] (१) हाथी। (२) पहाड़। (३) सींगवाला पशु। (४) सींग का बना हुआ एक प्रकार का बाजा। उ.—मुरली बेंत बिषान देखियो सृंगी बेर सबेरो। लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो—२९६५। (५) शिव, महादेव। (६) एक प्राचीन ऋषि जिनके शाप से परीक्षित को तक्षक नाग ने काटा था। उ.-रिषि समाधि महँ त्यौंही रह्यौ। सृंगी रिषि सौं लरिकन कह्यौ।....। नृपति दोष कहियै किहिं जाइ। दियौ साप तिहिं तच्छक खाइ—१-२९०।

सृक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाला, शूल। (२) तीर, बाण। (३) हवा, वायु। (४) कमल का फूल।
संज्ञा पुं. [सं. स्रज, स्रक] हार, माला। उ.—(क) सूर परस्पर करत कुलाहल गर सृक (पाठा.—सृग) पहिरावैंनी—९-११। (ख) की सृक सीपज की बगपंगति की मयूर की पीड पखी री—१६२७।

सृकाल—संज्ञा पुं. [सं. शृगाल] सियार।

सृक्क, सृक्व—संज्ञा पुं. [सं. सृक्व] ओठों का छोर, मुँह का कोना।

सृग—संज्ञा पुं. [सं. सृक] (१) भाला, बरछा। (२) तीर, बाण। (३) हवा, वायु। (४) कमल का फूल।
संज्ञा पुं. [सं. स्रज, स्रक] हार, गजारा, माला। उ.—गर-सृग पहिरावैंनी—९-११।

सृगाल—संज्ञा पुं. [सं. शृगाल] (१) सियार, गीदड़। उ.—(क) सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै—९-७९। (ख) आइ सृगाल सिंह बलि चाहत, यह मरजाद जात प्रभु तेरी—९-९३। फिरत सृगाल सज्यौ सब काटत चलत सो सिर लै भागी—९-१५८। (२) धोखेबाज धूर्त। (३) डरपोक, कायर

सृगालिका—संज्ञा स्त्री. [सं. शृगालिका] (१) गीदड़ी, सियारिन। (२) लोमड़ी।

सृगालिनी, सृगाली—संज्ञा स्त्री. [सं. शृगाल] गीदड़ी।

सृजक—वि. [सं. सृज] रचना करनेवाला।

सृजत—क्रि. स. [हिं. सृजना] रचता है। उ.—पालत सृजत सँहारत सैंतत अंड अनेक अवधि पल आधे—९-५८।

सृजन—संज्ञा पुं. [सं. सृज, सर्जन] (१) सृष्टि या रचना करने की क्रिया, उत्पादन। (२) सृष्टि, उत्पत्ति। (३) छोड़ने या निकालने की क्रिया।

सृजनहार, सृजनहारा, सृजनहारो—वि. [हिं. सृजन+हार, हारा] रचने, बनाने या उत्पन्न करनेवाला।

सृजना, सृजनो—क्रि. स. [सं. सृज+हिं. ना] रचना, बनाना, सृष्टि करना।

सृत—वि. [सं.] (१) जो खिसक गया हो। (२) जो चला गया हो, गत।

सृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रास्ता, मार्ग। (२) जन्म। (३) चलना, गमन। (४) आवागमन। (५) सरकना। (६) खिसकना।

सृष्ट—वि. [सं.] (१) पैदा, उत्पन्न। (२) रचित, निर्मित। (३) छोड़ा या निकाला हुआ। (४) व्यक्त।

सृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रचकर या बनाकर तैयार करने की क्रिया या भाव। (२) जन्म, उत्पत्ति (३) रचना, निर्माण। (४) संसार, जगत। उ.—मानौं आन सृष्टि करिवे कौं अंबुज नाभि जम्यौ—१-२७३। (५) संसार या जगत के चर-अचर प्राणी। उ.—इनतैं प्रगटी सृष्टि अपार—३-८। (६) प्रकृति, निसर्ग।

सृष्टिकर्ता, सृष्टिकर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं. सृष्टिकर्तृ] (१) सृष्टि या संसार की रचना करनेवाला, ब्रह्मा। (२) ईश्वर।

सृष्टि-विज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] वह शास्त्र जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति, रचना, विकास आदि का विचार किया जाता है।

सेंक—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेंकना] (१) सेंकने की क्रिया या भाव। (२) गरमी, ताप। (३) शरीर के किसी अंग पर गरम चीज से पहुँचाई जानेवाली गर्मी, टकोर।

सेंकना, सेंकनो—क्रि. स. [सं. श्रेषण=जलाना, तपाना] (१) आँच के पास या आग पर रखकर गर्मी पहुँचाना या भूनना। (२) धूप में या गरमी पहुँचानेवाली चीज के सामने रहकर उसकी गर्मी से लाभ उठाना या उठाने को प्रवृत्त करना।

मुहा. आँखें सेंकना—किसी (नारी) का सुन्दर रूप देखकर आँखें तृप्त करना।

सेंगर—संज्ञा पुं. [सं. शृंगार] (१) एक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी बनती है। (२) इस पौधे की फली।

संज्ञा पुं. [सं. शृंगीवर] क्षत्रियों की एक जाति।

सेंट—संज्ञा स्त्री. [देश.] स्तन से निकलनेवाली दूध की धार।

सेंठा—संज्ञा पुं. [देश.]। मूँज या सरकंडे के सींके का निचला मोटा हिस्सा।

सेंत—संज्ञा स्त्री. [सं. संहति=किफायत] (१) अपने पास से कुछ खर्च या व्यय न होना।

मुहा. सेंत का—(१) जिसके लिए कुछ खर्च न करना पड़ा हो, मुफ्त में मिला हुआ। (२) बहुत सा, ढेर का ढेर। उ.—दधि में पड़ी सेंत की मोपै चीटी सबै कढ़ाई—१०-३२२ सेंत में—(१) बिना कुछ दाम दिये या खर्च किये। (२) व्यर्थ, निष्प्रयोजन।

वि. बहुत अधिक, ढेर का ढेर।

सेंतना, सेंतनो—क्रि. स. [हिं. सैंतना] (१) इकट्ठा या संचित करना। (२) समेटना। (३) सहेजना।

सेंतमेंत—क्रि. वि. [हिं. सेंत + मेंत (अनु.)] (१) बिना दाम दिये, मुफ्त में। उ.—कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंतमेंत न विकाऊँ—१-१२८।

मुहा. सेंतमेंत का—मुफ्त का। सेंतमेंत में—(१) मुफ्त में। (२) व्यर्थ।

(२) बेमतलब, वृथा, निष्प्रयोजन।

सेंति, सेंती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेंत] कुछ खर्च या व्यय का न होना।

मुहा. सेंति के—बहुत से। उ.—सखा संग लीन्हें जु सेंति के फिरत रैनि दिन बन में धाए—१०९३। सेंति या सेंति में—बिना मूल्य के, मुफ्त में। उ—प्रानन के बदले न पाइयत सेंति बिकाय सुजस की ढेरी—२८५२।

प्रत्य. [प्रा. सुंतो (पंचमी विभक्ति)] पुरानी हिन्दी की करण और अपादान की विभक्ति, से। उ.—(क) ता रानी सेंती सुत ह्वैहै—६-५। (ख) तप कीन्हें सो दैहैं आग। ता सेंती तुम कीनौ जाग—९-२। (ग) बहुरि सक्र सेंती कह्यौ जाइ—९-१७४।

सेंथी—संज्ञा स्त्री [सं. शक्ति] भाला, बरछी। उ.—इंद-जीत लीनी जब सेंथी (पाठा.—सक्ती) देवनि हहा करयौ। छूटी बिज्जु-रासि वह मानौ, भूतल बंधु परयौ—९-१४४।

सेंद—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेंध] चोरी करने के लिए दीवार में किया गया छेद जिसमें से होकर चोर घर में जा सके और सामान बाहर निकाल सके।

सेंदुर—संज्ञा पुं. [हिं. सिंदूर] ईंगुर की बुकनी, सिंदूर जो सौभाग्यवती स्त्रियाँ माँग में भरती हैं और जो उनके सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। उ.—(क) मुख मंडित रोरी रंग, सेंदुर माँग छुही—१०-२४। (ख) आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहि बुधि अवरे-खत—११०८। (ग) कहुँ जावक कहुँ बने तमोर रँग कहुँ अँग सेंदुर दारयौ—१९७२।

मुहा. सेंदुर चढ़ना—स्त्री का विवाह होना (विवाह में वर जब कन्या की माँग में सेंदुर भरता है तभी से

वह उसकी पत्नी बन जाती है)। सेंदुर देना—विवाह के समय वर का कन्या की माँग भर कर उसको पत्नी बनाना।

सेंदुरानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेंदुर+फ़ा. दानी] सिंदूर रखने की डिबिया, सिंदूरा।

सेंदुरा—वि. [हिं. सेंदुर] सेंदुर-जैसे लाल रंग का।
संज्ञा पुं. सेंदुर रखने की डिबिया।

सेंदुरिया—वि. [हिं. सेंदुर] सेंदुर-जैसे लाल रंग का।

सेंदुरि, सेंदुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेंदुर] सेंदुर-जैसे लाल रंग की गाय। उ.—कजरी धौरी सेंदुरी धूमरि मेरी गैया—६६६।
वि. स्त्री. सेंदुर जैसे लाल रंग की।

सेंद्रिय—वि. [सं.] (१) जिसमें इंद्रियाँ हों, सजीव। (२) जो पुरुषत्वयुक्त हो।

सेंध—संज्ञा स्त्री. [सं. संधि] चोरी करने के लिए दीवार में किया गया ऐसा छेद जिससे होकर चोर घर के भीतर जा सके और माल बाहर लाया जा सके।

सेंधना, सेंधनो—क्रि. स. [हिं. सेंध] सेंध लगाना।

सेंधा—संज्ञा पुं. [सं. सैंधव] एक तरह का नमक जो खान से निकलता है। यह सब नमकों में उत्तम माना जाता है और व्रत में प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता ह। इसे 'लाहौरी' भी कहते हैं।

सेंधिया—वि. [हिं. सेंध] सेंध लगानेवाला।
संज्ञा पुं. [हिं. सिंधिया] एक मराठा राजवंश।

सेंधुर—संज्ञा पुं. [हिं. सेंदुर] सिंदूर।
संज्ञा पुं. हाथी।

सेंवई—संज्ञा स्त्री. [सं. सेविका] मैदे के सुखाये हुए सूत के से लच्छे जो घी में तलकर और दूध में पकाकर खाये जाते हैं। कुछ हिंदू जातियों में रक्षाबन्धन के और मुसलमानों में ईद के दिन सेंवई अवश्य बनती है।

सेंवर—संज्ञा पुं. [हिं. सेमल] एक पेड़ जिसके फल में से एक तरह की रुई निकलती है।

सेंहा—संज्ञा पु. [हिं. सेंध] कुआँ खोदनेवाला।

सेंहुड़—संज्ञा पुं. [सं. सेहुण्ड] थूहर (वृक्ष)।

से—प्रत्य. [प्रा. सुंतो, पु. हिं. सेंति] करण और अपादान कारकीय चिह्न, तृतीया और पंचमी की विभक्ति।
वि. [हिं. सा] समान, सदृश।
सर्व. [हिं. सो] वे।

सेइ—क्रि. स. [सं. सेवन, हिं. सेना] सेवा करके। उ.—ताकौं सेइ परम गति पावत—५-२।

सेइए, सेइयै—क्रि. स. [सं. सेवन, हिं. सेना] उपासना या आराधना कीजिए। उ.—(क) तातैं सेइयै श्री जदुराइ—१-२६५। (ख) पिय अपना ना होइ तऊ ज्यौं ईस सेइए कासी—२२७५।

सेउ—संज्ञा पुं. [सं. सेविका] एक तरह का पकवान।
संज्ञा स्त्री. [सं. सेवा] सेवा।

सेऊँ—क्रि. स. [सं. सेवन, हिं. सेना] सेवा, उपासना या आराधना करूँ। उ.—श्री वृषभानु-सुता-पति सेऊँ—१८५८।

सेए—क्रि. स. [सं. सेवन, हिं. सेना] सेवा, उपासना या आराधना की। उ.—(क) सेए नाहि चरन गिरिधर के—१-१४७। (ख) द्वादस बर्ष सेए निसि-बासर तब संकर भाषी है लैन—९-१२।
प्र.—सेए तैं—सेवा आदि करने से। उ.—सूरज दास स्याम सेए तें दुस्तर पार तरै—१-८२।

सेक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंचाव, छिड़काव। (२) (राजा का) अभिषक।

सेख—संज्ञा पुं. [सं. शेष] (१) बाकी। (२) समाप्ति। (३) शेषनाग। (४) लक्ष्मण।
संज्ञा पुं. [अ. शेख़] मुसलमानों के चार वर्गों में से एक प्रसिद्ध वर्ग।

सेखर—संज्ञा पुं. [सं. शेखर] (१) सिर, माथा। (२) मुकुट, किरीट। (३) पहाड़ की चोटी या शिखर।
वि. सबसे अच्छा या श्रेष्ठ।

सेखावत—संज्ञा पुं. [फ़ा. शेख] एक राजपूत जाति।

सेखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. शेखी] (१) घमंड। (२) ऐंठ, अकड़। (३) बढ़बढ़कर बातें करना, डींग।

सेगा—संज्ञा पुं. [अ. सेग़ा] (१) विभाग। (२) सत्र।

सेचक—वि. [सं.] सींचनेवाला।
संज्ञा पुं. [सं.] बादल, मेघ।

सेचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल से सींचना, सिंचाई। (२) छिड़काव। (३) अभिषेक।

सेज—संज्ञा स्त्री. [सं. शय्या, प्रा. सज्जा] पलंग, शैया। उ.—(क) सेज छाँड़ि भू सोयौ—१-४३। (ख) बैठत उठत सेज-सोवत मैं कंस डरनि अकुलात—१०-१२। (ग) स्वच्छ सेज मैं तैं मुख निकसत गयौ तिमिरि मिटि मंद—१०-२०३। (घ) दामिनि की दमकनि, बूँदनि की झमकनि सेज की तलफ कैसे जीजियत माई है—२८२७।

सेजपाल—संज्ञा पुं. [हिं. सेज+पाल] राजा की शैया या शयनगृह पर पहरा देनेवाला।

सेजरिया, सेजिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेज] छोटा पलँग, शैया। उ.—सोइ रही सुथरी सेजरिया—१०-२४६।

सेज्या—संज्ञा स्त्री. [सं. शय्या] पलँग, सेज, शैया। उ.—(क) कमलनैन पौढ़े सुख-सेज्या—१-१६८। (ख) कुंज-भवन कुसुमनि की सेज्या अपने हाथ निवारत पात—१८९३। (ग) कोमल कमल दलनि सेज्या रची—२२९८।

सेझना, सेझनो—क्रि. अ. [सं. सेधन] हटना, दूर होना।

सेटना, सेटनो—क्रि. अ. [सं. श्रत] (१) मानना, समझना। (२) महत्व स्वीकार करना।

सेठ—संज्ञा पुं. [सं. श्रेष्ठी] (१) बड़ा महाजन या साहूकार। (२) थोक व्यापारी। (३) खत्रियों की एक प्रसिद्ध जाति।

सेठन—संज्ञा स्त्री. [देश.] झाड़ू, बुहारी।

सेत—संज्ञा पुं. [सं. सेतु] (१) नदी आदि का पुल। उ.—(क) सिला तरी जल माहिं सेत बँधि—१-३४। (ख) सकल विषय-बिकार तजि तू उतरि सायर-सेत—१-३११। (ग) करि कपि कटक चले लंका कौं छिन मैं बाँध्यौ सेत—सारा. २८८। (२) खेत की मेंड़। (३) हद, सीमा।

वि. [सं. श्वेत] सफेद, उजला। उ.—(क) सेत उपरना सोहै—१-४४। (ख) सेत सींग सुहाइ—१-५६। (ग) नीलांबर पाटंबर सारी सेत पीत चुनरी अरुनाए—७८४।

मुहा. स्याम चिकुर भए सेत—काले बाल सफेद हो गये, युवावस्था से बुढ़ापा आ गया। उ.—इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत—१-३२२।

सेतकुली—संज्ञा पुं. [सं. श्वेतकुलीय] सफेद जाति का नाग जो सर्पों के अष्टकुल में एक है। उ.—मोकौं तुम अब जज्ञ करावहु। तच्छक कुटुँब समेत जरावहु। बिप्रन सेतकुली जब जारी। तब राजा तिनसौं उच्चारी—१० उ.-२०५।

सेतद्युति—संज्ञा पुं. [सं. श्वेतद्युति] चन्द्रमा।

सेतना, सेतनो—क्रि. स. [हिं. सैंतना] इकट्ठा, संगृहीत या संचित करना।

सेतबंध—संज्ञा पुं. [सं. सेतुबंध] वह पुल जो लंका पर चढ़ाई के समय श्रीराम ने समुद्र पर बाँधा था।

सेतवाह—संज्ञा पुं. [सं. श्वेतवाहन] (१) अर्जुन (पांडव)। (२) चंद्रमा।

सेति—क्रि. स. [हिं. सेतना] संचित करके। उ.—वैं कहा करैंगी, सेति राखै री—१५४८।

सेति, सेती प्रत्य. [प्रा. सुंतो, पु. हिं. सेंति, सेंती] करण और अपादान कारक की विभक्ति, से। उ.—(क) कहन लग्यौ, मम सुत ससि गोद। ता सेती ससि करत बिनोद—५-३। (ख) तप कीन्हैं सो दैहैं आग। ता सेती तुम कीनौ जाग—९-३।

सेतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बँधाव, बंधन। (२) मिट्टी का ऊँचा पटाव, धुस्स। (३) मेड़, डाँड़। (४) नदी, जलाशय आदि के पार जाने के लिए बनाया गया पुल। (५) हद, सीमा। (६) मर्यादा, प्रतिबंध।

वि. [सं. श्वेत] सफेद, उजला, उज्ज्वल।

सेतुबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुल की बँधाई। (२) वह पुल जो श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से नल, नील आदि बानरों की सहायता से बँधवाया था।

सेतुबंध रामेश्वर—संज्ञा पुं. [सं. सेतुबंध+रामेश्वर] दक्षिण में शिव का एक मंदिर जिसकी स्थापना सेतु-बंधन के अवसर पर श्रीराम द्वारा की जाना प्रसिद्ध है। यह हिन्दुओं के चार मुख्य धामों में से एक है।

सेतुवा—संज्ञा पुं. [हिं. सूस] एक जलजंतु।

सेद—संज्ञा पुं. [सं. स्वेद] (१) पसीना। (२) हर्ष, लज्जा आदि से पसीना आना जो एक सात्विक अनुभाव है।

सेदज—वि. [सं. स्वेदज] पसीने से उत्पन्न होनेवाला।

सेध—संज्ञा पुं. [सं.] मनाही, निषेध।

सेधक—वि. [सं.] हटाने या रोकनेवाला।

सेन—संज्ञा पुं. [सं.] एक भक्त जो जाति का नाई था।

संज्ञा पुं. [सं. श्येन] बाज पक्षी।

संज्ञा स्त्री. [सं. सेना] फौज, सैनिकदल।

सेनजित, सेनजित्—संज्ञा पुं. [सं. सेनजित्] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

सेनप, सेनपति—संज्ञा पुं. [सं. सेना+प, पति] सेनापति।

सेना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) फौज, सैनिक-दल। उ.—सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ। चली जाऊँ सेना (सैना) सब मोपर धरौ चरन रघुबीर—९-१०७ (२) बहुत बड़ा झुंड या दल। उ.—(क) कोटि छ्यानबे नृप-सेना सब जरासंध बँध छोरे—१-३१। (ख) सेना साथ बहुत भाँतिनि की कीन्हें पाप अपार—१-१४१।

क्रि. स. [सं. सेवन] (१) टहल या सेवा करना। (२) पूजा, उपासना या आराधना करना। (३) नियम पूर्वक खाने-पीने आदि के कार्य करना। (४) किसी स्थान पर निरंतर वास करना या पड़े रहना। (५) दूर न करके व्यर्थ के लिए बैठे रहना। (६) मादा चिड़िया का गरमी पहुँचाने के लिए अंडे पर बैठना।

सेनादार—संज्ञा पुं. [सं. सेना+फ़ा. दार] सेनापति।

सेनाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] सेनानायक।

सेनानायक—संज्ञा पुं. [सं.] सेनापति।

सेनानी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेनापति। (२) देव-सेनापति स्वामि कार्तिकेय का एक नाम।

सेनापति—संज्ञा पुं. [सं.](१) सेना का प्रधान अधिकारी। (२) देवसेनापति, स्वामी कार्तिकेय।

सेनापत्य—संज्ञा पुं. [सं.] सेनापति का पद, कार्य या अधिकार।

सेनापाल—संज्ञा पुं. [सं. सेना+पाल] सेनापति।

सेनावास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छावनी। (२) शिविर।

सेना-व्यूह—संज्ञा पुं. [सं.] युद्ध के लिए की गयी सेना-रचना या स्थापना।

सेनि—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेणी] (१) कतार, पाँति, पंक्ति। (२) क्रम। (३) दरजा। (४) सीढ़ी।

सेनिका—संज्ञा स्त्री. [सं. श्येनिका] बाज पक्षी की मादा।

सेनी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सीनी] तश्तरी, रकेबी।

संज्ञा स्त्री. [सं. श्येनी] बाज पक्षी की मादा।

संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेणी] (१) पंक्ति। (२) परंपरा। (३) दरजा। (४) सीढ़ी।

सेनु—संज्ञा स्त्री. [सं. सेना] झुंड, दल, समूह। उ.—(क) स्याम-हलधर संग सँग बहु गोप-बालक-सेनु—४२७। (ख) जुरी ब्रज-बालक सेनु—४४८।

सेफालिका—संज्ञा स्त्री.[सं. शेफालिका] निर्गुंड़ी (पौधा)।

सेब—संज्ञा पुं. [फ़ा.] एक प्रसिद्ध फल। उ.—सफरी सेब छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम—१०-२१२।

सेम—संज्ञा स्त्री. [सं. शिंबी] एक तरह की फली जिसकी तरकारी बनती है।

सेमई—संज्ञा पुं. [हिं. सेम] हलका हरा रंग।

वि. सेम जैसे हलके हरे रंग का।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सेवईं] मैदा के तागे-जैसे लच्छे जो घी में तलकर और दूध में पकाकर खाये जाते हैं।

सेमर, सेमल—संज्ञा पुं. [सं. शाल्मलि] एक पेड़ जिसके फल में से एक तरह की रुई निकलती है। उ.—(क) अंब सुफल छाँड़ि कहा सेमर कौं धाऊँ—१-१६६। (ख) सेमर-ढाकहिं काटि कै बाँधौं तुम बेरौ—९-४२। (ग) सेमर फूल सुरँग अति निरखत मुदित होत खग-भूप—१-१०२।

पद—सेमर या सेमल का सुक, सुआ या सूआ—सेमल के सुंदर फूल में रस और गूदे के लोभ से चोंच मारने, परंतु रुई न निकलने पर पछतानेवाला तोता जो व्यर्थ की आशा लगाने, परंतु अंततः निराश होने और पछतानेवाले व्यक्ति के समान है। उ.—(क) रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ—१-५८। (ख) कत तू सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बँचिबौ—१-५९। (ग) ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि निसि बासर हठि चित्त लगायौ—१-३२६।

सेमि—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेम] 'सेम' नाम की फली जिसकी तरकारी बनती है। उ.—सेमि सींगरी छमकि झोरई—२३२१।

सेये—क्रि. सं. [सं. सेवन, हिं. सेना] पूजा या उपासना

की । उ.—सूरदास सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई—१-२९९ ।

सेयो, सेयौ—क्रि. स. [सं. सेवन, हिं. सेना] निरंतर वास किया । उ.—जा कारन तुम बन सेयों सो तिय मदन-भुअंगम खाई —७४८ ।

सेर—संज्ञा पुं. [सं. सेठ ?] एक तौल जो मन का चालीसवाँ भाग होती है ।

संज्ञा पुं. [फ़ा. शेर] बाघ, नाहर ।

वि. [फ़ा.] तृप्त, तुष्ट ।

सेरसाह, सेरसाहि—संज्ञा पुं. [फ़ा. शेरशाह] बादशाह शेरशाह ।

सेरा—संज्ञा पुं. [हिं. सिर] चारपाई के सिरहाने की पाटी ।

सेराना, सेरानो—क्रि. अ. [सं. शीतल, प्रा. सीअड़, हिं. सीअर, सीरा] (१) ठंडा या शीतल होना । (२) मर जाना । (३) समाप्त होना । (४) शेष न बचना ।

क्रि. स. (१) ठंडा या शीतल करना । (२) मूर्ति आदि को जल में प्रवाहित करना या जमीन में गाड़ना ।

क्रि. अ. [फ़ा. सेर] अघाना, तृप्त होना ।

क्रि. स. तुष्ट या तृप्त करना ।

सेरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] तृप्ति, तुष्टि । उ.—नेंकहूँ न पावति भजि भजन सेरी ।

सेल—संज्ञा पुं. [सं. शल, प्रा. सेल] बरछा, भाला, साँग ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] माला ।

सेलना, सेलनो—क्रि. अ. [सं. शेल] (१) मर जाना । (३) छेदना ।

सेला—संज्ञा पुं. [सं. शल्लक] (१) एक प्रकार की रेशमी चादर या दुपट्टा । (२) रेशमी साफा ।

सेलिया—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का घोड़ा ।

सेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेल] छोटा भाला, बरछी ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सेल] (१) छोटा दुपट्टा या चादर । (२) गले में बाँधने की चादर, गाँती । (३) बद्धी या माला जिसे योगी-यती गले में डालते या सिर में लपेटते हैं । उ.—सीस सेली केस, मुद्रा कनक बीरी, बीर । बिरह-भस्म चढ़ाइ बैरी सहज कंथा चीर —३१२६ । (४) स्त्रियों का एक गहना ।

सेल्ला—संज्ञा पुं. [सं. शल] भाला, बरछा ।

सेल्ह—संज्ञा पुं. [हिं. सेला] भाला, बरछा ।

सेल्हा—संज्ञा पुं. [हिं. सेला] (१) दुपट्टा । (२) साफा ।

सेल्ही—संज्ञा स्त्री. [हिं. सेला] (१) छोटा दुपट्टा । (२) योगियों की माला । (३) गले में लपेटने की चादर ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सेली] छोटा भाला या बरछी ।

सेवँई—संज्ञा स्त्री. [सं. सेविका] मैदे के सूत के लच्छे जो घी में तलकर और दूध में पकाकर खाये जाते हैं ।

सेवंत—संज्ञा पुं. [सं. सामंत] एक राग ।

सेवँर—संज्ञा पुं. [हिं. सेमल] एक वृक्ष जिसके फलों से एक प्रकार की रुई निकलती है ।

सेव—संज्ञा पुं. [सं. सेविका] बेसन का बना हुआ एक पकवान जो नमकीन भी बनाया जा सकता है और पागकर मीठा भी । उ.—(क) फेनी सेव अँदरसे प्यारे—३९६ । (ख) सेव सुहारी घेवर घी के—२३२१ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सेवा] (१) टहल, परिचर्या । उ. —राजा सेव भली बिधि करै । दंपति-आयसु सब अनुसरै—१-२८४ । (२) पूजा, उपासना, आराधना । उ.—(क) तातैं बिबस भयौं करुनामय छाँड़ि तिहारी सेव—१-४९ । (ख) करै जो सेव तुम्हारी सो सेइयो बिष्नु सिव ब्रह्मा मम रूप सारे —१० उ.-३५ ।

क्रि. स. [हिं. सेवना] (१) उपासना-आराधना करो । उ.—सेव चरन-सरोज-सीतल तजि बिषय रस पान—१-३०७ । (२) व्यर्थ ही निकट या पास (आशा लगाये) बैठा रहता है । उ.—ज्यौं सुक सेमर सेव आस लागि निसि-बासर हठि चित्त लगायौ—१-३२६ ।

संज्ञा पुं. [हिं. सेव] 'सेव' फल ।

सेवक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टहल या परिचर्या करने-वाला, नौकर-चाकर, भृत्य । उ.—(क) इंदु समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी—१-३९ । (ख) अनाचार सेवक सौं मिलि कै करत चबाइनि काम —१-१४१ । (ग) सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी बिधाता—९-४९ । (घ) सेवक कौ सेवापन एतौ, आज्ञाकारी होइ—९-९९ । (ङ) सुर-नर-असुर-कीट-पसु-पच्छी सब सेवक प्रभु तेरे—५७० । (२) भक्त, उपासक, आराधक । उ.—जिहिं जिहिं

बिधि सेवक सुख पावै, तिहि बिधि राखत मन कौं—१-९। (ख) तीनि लोक के ताप निवारन सूर स्याम सेवक सुखकारी—१-३०। (ग) सूर सुकृत सेवक सो साँचौ स्यामहिं सुमिरैगौ—१-७५। (३) व्यवहार या सेवन करनेवाला। (४) किसी स्थान में नियम-पूर्वक अथवा उद्देश्य-विशेष से वास करनेवाला।

सेवकाइ, सेवकाई—संज्ञा स्त्री. [सं. सेवक+हिं. आई] सेवक का काम, टहल, सेवा। उ.—(क) खरिक दुहावन जाति हौं, तुम्हरी सेवकाई—७१३। (ख) चूक परी हरि की सेवकाई २६९५।

सेवकनी, सेवकिन, सेवकिनि, सेवकिनी, सेविका, सेविकिन—संज्ञा स्त्री. [सं. सेवक] (१) सेवा करनेवाली, टहलिनी, परिचारिका। उ.—रमा सेवकिनी देऊँ करि, कर जोरैं दिन याम—१६२५। (२) पूजा-उपासना करनेवाली। (३) सेवन करनेवाली। (४) स्थान-विशेष में नियमित रूप से वास करनेवाली।

सेवकु—संज्ञा पुं. [सं. सेवक] सेवक उ.—सेवकु करै स्वामि सौं सरवर, इनि बातनि पति जाइ—९८५।

सेवत—क्रि. स. [हिं. सेवना] (१) टहल, सेवा या परिचर्या करता है। उ.—(क) सिव-बिरंचि-सुरपति सब सेवत प्रभु-पद-चाए—१-१६३। (ख) बिविध आयुध धरे सुभट सेवत खरे—९-१२९। (२) पूजा, उपासना या आराधना करके या करता है। उ.—स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद-सेवत बिनु गोपाल द्विज जन्म न भावै—१-२३३। (ख) कर्मजोग करि सेवत कोई-१० उ.-१२७।

सेवति, सेवती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वाति] पंद्रहवाँ नक्षत्र जिसकी वर्षा के जल से मोती उपजना माना जाता है।

संज्ञा स्त्री. [सं. सेवती] सफेद गुलाब। उ.—(क) जाही जूही सेवती करना कनिआरी—१८२२। (ख) फूले मरुवो मोगरो सेवती फूल—२४०५।

सेवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टहल, परिचर्या, सेवा। (२) उपासना, आराधना। (३) नियमित प्रयोग या व्यवहार। (४) लगातार रहना, वास करना। उ.-कोउ कहै तीरथ सेवन करो, कोउ कहै दान जज्ञ बिस्तरो—१-३४१। (५) उपभोग।

सेवना—क्रि. स. [सं. सेवन, हिं. सेना] (१) सेवा-टहल करना। (२) उपासना-आराधना करना। (३) निरंतर वास करना। (४) प्रयोग या व्यवहार करना। (५) उपभोग करना।

सेवनि, सेवनी—संज्ञा स्त्री. [सं.सेवनि] (१) सुई, सूची। (२) जोड़, टाँका, सीवन। (३) जूही (फूल)।

संज्ञा स्त्री. [सं. सेवनी] दासी, सेविका।

सेवनीय—वि. [सं.] (१) सेवा के योग्य। (२) पूजा के योग्य। (३) व्यवहार के योग्य। (४) उपभोग के योग्य।

सेवनो—क्रि. स. [सं. सेवन] सेना, सेवना।

सेवर—संज्ञा पुं. [सं. शबर] एक प्राचीन अनार्य जाति।

सेवरा—संज्ञा पुं. [देश.] साधुओं का एक वर्ग।

सेवरि, सेवरी—संज्ञा स्त्री. [सं. शवरी] 'शबर' जाति की एक भक्तिन जिसके जूठे बेर श्रीराम ने खाये थे।

सेवल—संज्ञा पुं [देश.] विवाह की एक रीति जिसमें वर-पक्ष की कोई सधवा, थाली में दीपक रखकर वर के हाथ में देती, उसका माथा नवाती और अपना माथा छूती है।

सेवहु—क्रि. स. [हिं. सेवना] पूजा, उपासना या आराधना करो। उ.—करहिं विचार सुन्दरी सब मिलि, अब सेवहु त्रिपुरारि—७६४।

सेवांजलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] सेवक या भक्त का अंजुली में कुछ लेकर स्वामी या उपास्य को अर्पण करना।

सेवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टहल, परिचर्या। उ.—राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे—९-५४। (२) नौकरी, चाकरी। (३) पूजा, उपासना, आराधना। उ.—(क) जिहिं जिहिं भाइ करत जन सेवा अंतर की गति जानत—१-११। (ख) ब्रह्मा महादेव तैं को बड़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी—१-३४। (ग) तजि सेवा बैकुंठनाथ की, नीच नरनि कैं संग रहै—१-५३। (घ) मनसा और मानसी सेवा दोउ अगाध करि जानौ—१-२११। (ङ) जोग न जज्ञ, ध्यान नहिं सेवा, संत-संग नहिं ज्ञान—१-३०४।

मुहा. सेवा में—पास, समीप, सामने।

(४) आश्रय, शरण। (५) रक्षा, संरक्षण। (६) उपभोग।

सेवाति, सेवाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. स्वाती] पंद्रहवाँ नक्षत्र जिसकी वर्षा के जल से मोती का उत्पन्न होना माना जाता है।

पद—बूँद सेवाती—(१) स्वाती नक्षत्र की वर्षा के जल की बूँद। (२) वह दुष्प्राप्य वस्तु जिसके प्राप्त होने पर असीम प्रसन्नता हो। उ.—सूरदास प्रभु प्रानहिं राखहु होइ करि बूँद सेवाती—३११६।

सेवादार—संज्ञा पुं. [सं. सेवा+फ़ा. दार] किसी देवालय में सेवा-व्यवस्था आदि करने का अधिकारी।

सेवाधर्म—संज्ञा पुं. [सं. सेवा+धर्म्म] सेवक का धर्म, कर्तव्य या दायित्व।

सेवापन—संज्ञा पुं. [सं. सेवा+हिं. पन] (१) टहल, परिचर्या। (२) सेवक का धर्म या कर्तव्य। उ.—सेवक कौ सेवापन एतौ आज्ञाकारी होइ—९-९९।

सेवा-बंदगी—संज्ञा स्त्री. [सं. सेवा+बंदगी] पूजा, उपासना, आराधना।

सेवार, सेवाल—संज्ञा स्त्री. [सं. शैवाल] पानी में होनेवाली एक तरह की घास। उ.—(क) मनु सेवाल कमल पर अरुझे -१०-१४०। (ख) राम औ जांबवान सुभट ताके हते रुधिर की नहर सरिता बहाई। सुभट मनो मकर अरु केस सेवार ज्यौं धनुष त्वच चर्म कूरम बनाई—१० उ.-२१।

सेवावृत्ति - संज्ञा स्त्री. [सं.] नौकरी, चाकरी।

सेवि—संज्ञा पुं. [सं. सेवी] 'सेवी' का रूप जो समास में होता है।

वि. [सं. सेवित] सेवित।

वि. [सं. सेव्य] सेव्य।

सेविका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दासी, परिचारिका। (२) पूजा-उपासना करनेवाली।

सेवित—वि. [सं.] (१) जिसकी टहल या सेवा की गयी हो। (२) जिसकी पूजा-उपासना की गयी हो। (३) जिसका प्रयोग या व्यवहार किया गया हो। (४) जिसने आश्रय लिया हो। (५) जिसका उपभोग किया गया हो।

सेवितव्य—वि. [सं.] (१) सेवा-योग्य। (२) उपासना-योग्य।

सेविता—संज्ञा पुं. [सं. सेवितृ] सेवा करनेवाला।

सेवी—वि. [सं. सेविन्] (१) सेवा करनेवाला। (२) उपासना-आराधना करनेवाला। (३) सेवन करनेवाला। (४) व्यवहार करनेवाला। (५) उपभोग करनेवाला। (६) स्थान-विशेष पर निरंतर वास करनेवाला।

सेवै—क्रि. स. [हिं. सेवना] (१) टहल या परिचर्या करे उ.—(क) सोइ करहु जिहिं चरन सेवै सूर जूठनि खाइ —१-१२६। (ख) भक्त सात्विकी सेवै संत—३-१३ (२) पूजा-उपासना करे। उ.—(क) जो जो जन निस्चै करि सेवै हरि निज बिरद सँभारै—१-२५७। (ख) ज्यौं सेवै त्योंही गति होई—१० उ.-१२७।

सेवो, सेवौ - क्रि. स. [हिं. सेवना] सेवा-पूजा करो। उ.—संत संग सेवौ हरि-चरना—५-२।

सेव्य—वि. [सं.] (१) जो सेवा या परिचर्या के योग्य हो या जिसकी सेवा परिचर्या की जाय। (२) जिसकी पूजा-उपासना करनी हो या की जाय। (३) जो सेवा-योग्य हो।

संज्ञा पुं. मालिक, प्रभु, स्वामी।

सेव्य-सेवक—संज्ञा पुं. [सं.] स्वामी और सेवक।

पद. सेवक-सेव्य भाव—भक्ति का वह रूप या भाव जिसमें उपास्य को स्वामी और अपने को उसका सेवक समझा जाता है।

सेश्वर—वि. [सं.] जिसमें ईश्वर की सत्ता मानी गयी हो।

सेष—संज्ञा. पुं. [सं. शेष] (१) बाकी। (२) अंत, समाप्ति। (३) शेषनाग। उ.—(क) कंपत कमठ-सेष-बसुधा नभ रबि-रथ भयौ उतपात—९-७४। (ख) सिंह आगैं, सेष पाछैं, नदी भइ भरिपूरि—१०-५। (४) लक्ष्मण जो शेष-नाग के अवतार माने जाते हैं। उ.—लगत सेष-उर, बिलखि जगत गुरु, अद्भुत गति नहिं परति बिचारी—९-६२।

वि. (१) बाकी, बचा हुआ। (२) समाप्त।

सेषनाग—संज्ञा पुं. [सं. शेषनाग] वह नाग जिसके हजार फनों पर पृथ्वी ठहरी या टिकी हुई मानी गयी है।

सेषरंग—संज्ञा पुं. [सं. शेष+रंग] (शेषनाग-जैसा) सफेद या श्वेत रंग।

सेसरेख, सेसरेखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शेष+रेखा] (शेषनाग के अवतार) लक्ष्मण द्वारा खींची गयी वह रेखा जो उन्होंने मरीच का 'हा लक्ष्मण' पद सुनकर, सीताजी को अकेला छोड़कर जाते समय खींची थी और जिसके बाहर जाने का उनको निषेध कर दिया था। रावण ने उस रेखा को लाँघने का साहस नहीं किया था और सीताजी जब उस रेखा के बाहर आ गयी थीं, तभी उसने उनका हरण किया था। उ.—सूनैं भवन गवन तैं कीन्हौ, सेष-रेख नाहिं टारी—९-१३२।

सेषासन—संज्ञा पुं. [सं. शेष+आसन] शेषनाग का आसन जिस पर विष्णु शयन करते कहे जाते हैं। उ.—सप्त रसातल सेषासन रहे, तबकी सुरति भुलाऊ—१०-२२१।

सेस—संज्ञा पुं. [सं. शेष] (१) बाकी। (२) समाप्ति। (३) शेषनाग। उ.—(क) सेस सारद रिषय नारद संत चिंतत सरन—१-३०८। (ख) धरनि सीस धरि सेस गरब धरचौ इहिं भर अधिक सँभारयौ—५६७। (४) लक्ष्मण (शेषावतार)।

वि. (१) बचा हुआ, अवशिष्ट। (२) समाप्त।

सेसनाग—संज्ञा पुं. [सं. शेषनाग] शेषनाग। उ.—सेसनाग के ऊपर पौढ़त तेतिक नाहिं बड़ाई—१-२१५।

सेसरंग—संज्ञा पुं. [सं. शेष+रंग] (शेषनाग-जैसे) सफेद रंगवाला।

सेसर—संज्ञा पुं. [फ़ा. सेह=तीन+सर=बाजी] (१) ताश के तीन-तीन पत्तों से खेला जानेवाला एक तरह का जुआ। (२) चालबाजी, जालसाजी, छलकपट, धूर्तता। (२) जाल।

सेसरिया—वि. [हिं. सेसर+इया] (१) चालबाजी या छल-कपट करनेवाला (२) जाल-फरेब करनेवाला।

सेसरेख, सेस-रेखा—संज्ञा स्त्री. [सं. शेष+रेखा] (१) (शेषावतार) लक्ष्मण द्वारा, मारीच का 'हा लक्ष्मण' पद सुनकर और सीताजी को अकेली छोड़कर जाते समय, खींची गयी वह रेखा जिसको लाँघने का सीता जी को निषेध था और जिसके बाहर आ जाने पर ही उनको रावण हर सका था।

सेसी—संज्ञा पुं. [देश.] एक वृक्ष।

सेह—संज्ञा स्त्री. [हिं. साही] 'साही' जंतु।

वि. [फ़ा.] तीन।

सेहत—संज्ञा स्त्री. [अ.] स्वास्थ्य।

सेहरा—संज्ञा पुं. [हिं. सिर+हार] (१) फूलों और सुनहरे-रुपहले तारों आदि की मालाओं से बना वह जाल-पुंज जो विवाह के समय दूल्हे के मौर के नीचे लटकता या पाग आदि पर बाँधा जाता है। (२) विवाह का मुकुट या मौर।

मुहा. किसी के सिर सेहरा बाँधना—किसी को कार्य-विशेष के संपादन का श्रेय देना।

(३) वे मांगलिक गीत या पद्य जो विवाह के अवसर पर वर के यहाँ गाये जाते हैं।

सेहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. शफरी] छोटी मछली।

सेहरो—संज्ञा पुं. [हिं. सेहरा] दूल्हे का मौर या मुकुट। उ.—(क) लटकत सिर सेहरो मनो सिखी सिखंड सुभाव—पृ. ३४९ (६०)। (ख) सेहरो सिर पर मुकुट लटवचौ, कंठमाला राजई—३४२४।

सेही—संज्ञा स्त्री. [हिं. साही] 'साही' जंतु।

सेहुँआ—संज्ञा पूं. [देश.] एक चर्म रोग।

सेहुँड़—संज्ञा पुं. [सं. सेहुण्ड] थूहर का पेड़।

सैं—प्रत्य. [हिं. से] से।

अव्य. [सं. सदृश] समान।

सकड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. सौ] सौ का समूह।

सैंकड़े—क्रि. वि. [हिं. सैंकड़ा] प्रतिशत।

सैंकड़ों - वि. [हिं. सैंकड़ा] (१) कई सौ। (२) गिनती में बहुत अधिक।

सैंगर—संज्ञा पुं. [हिं. सेंगर] एक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी बनती है।

सैंतत—क्रि. स. [हिं. सैंतना] (१) इकट्ठा या एकत्र करता है। उ.—कंचन मनि तजि काँचहिं सैंतत या माया के लीन्हे—१-१७७। (२) सहेजता-सँभालता है। उ.—यक सैंतत घर के सब बासन—१०५२।

सैंतति—क्रि. स. [हिं. सैंतना] सहेजती और सँभाल कर रखती है। उ.— (क) सैंतति महरि खिलौना हरि के—७१२। (ख) धरति, सैंतति धाम बासन—९५०। (ग) महरि सबै नेवज लै सैंतति—१०१०।

सैंतना, सैंतनो—क्रि. स. [सं. संचय] (१) इकट्ठा, एकत्र या संचित करना। (२) बिखरी हुई चीज को हाथ से समेटना। (३) सहेजना, सँभालकर या सावधानी से रखना।

सैंतालिस, सैंतालीस—संज्ञा पुं. [सं. सप्तचत्वारिंशत्, पा. सत्तचत्तालीसति, प्रा. सत्तालीस, हि. सैंतालीस] चालीस से सात अधिक की संख्या।

सैंति—क्रि. स. [हि. सैंतना] (१) इकट्ठा या एकत्र करके। उ.—कहा होत जल महा प्रलय को राख्यौ सैंति सैंति है गेह। भुव पर एक बूँद नहिं पहुँची निझरि गए सब मेह। (२) सहेज या सँभालकर। उ. —(क) नीलाम्बर पीताम्बर लीन्हे, सैंति धरति करि ध्यान—५११। (ख) अपनो जोग सैंति धरि राखौ यहाँ देत कत डारे—३०११।

सैंतिस, सैंतीस—संज्ञा पुं. [सं. सप्तत्रिंशत्, पा. सत्ततिंसति, प्रा. सत्तिसइ, हिं. सैंतीस] तीस से सात अधिक की संख्या।

सैंथी—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] भाला, बरछी। उ.—इन्द्रजीत लीन्हीं जब सैंथी (पाठा. सक्ती) देवन हहा करचौ—९-१४४।

सैंदूर—वि. [सं.] (१) सिंदूर से रँगा हुआ। (२) सिंदूर जैसे लाल रंग का।

सैंधव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेंधा नमक। (२) सिंध देश का घोड़ा (३) सिंध देश का निवासी। (४) सिंध देश का राजा जयद्रथ।

वि. (१) जो सिंध देश में जन्मा या उत्पन्न हुआ हो। (२) जो सिंध देश से संबंधित हो। (३) जो समुद्र से उत्पन्न हो। (४) जो समुद्र से संबंधित हो।

सैंधवपति, सैंधवपती—संज्ञा पुं. [सं. सैंधव+पति] सिंधवासियों का राजा जयद्रथ।

सैंधवी – संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

सैंधू—संज्ञा स्त्री. [सं. सैंधवी] एक रागिनी।

सैंयाँ—संज्ञा पुं. [सं. स्वामी] पति।

सैंवर—संज्ञा पुं. [हिं. साँवर] (१) राजपूताने की एक झील। (२) इस झील के पानी से बननेवाला नमक। (३) एक प्रकार का हिरन।

सैंहथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सैंथी] शक्ति (अस्त्र)।

सैंहल—वि. [सं.] सिंहल का, सिंहली।

सैंहिक—संज्ञा पुं. [सं.] (सिंहिका-पुत्र) राहु।

सै—वि. [सं. शत, प्रा. सय] सौ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सत्व या फ़ा. शै = वस्तु] (१) सार, तत्व। (२) वीर्य। (३) बल, शक्ति। (४) बढ़ती, वृद्धि, लाभ।

सैकत—वि. [सं.] (१) रेतीला, बालुकामय। (२) रेत या बालू का बना हुआ।

संज्ञा पुं. (१) बलुआ किनारा या तट। (२) बलुई या रेतीली मिट्टी।

सैकतिक—वि. [सं.] (१) बालू या रेत संबंधी। (२) भ्रम या संदेह में रहनेवाला।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) संन्यासी, क्षपणक। (२) मंगलसूत्र या रक्षा।

सैकती—वि. [सं. सैकतिन्] रेतीला (तट)।

सैकल—संज्ञा पुं. [अ. सैक़ल] हथियारों आदि पर सान धरने का काम।

सैकलगर—संज्ञा पुं. [हिं सैकल+फ़ा. गर] हथियारों आदि पर सान धरनेवाला।

सैथी—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति या हिं. सैहथी] बरछी, साँग, छोटा भाला।

सैद—संज्ञा पुं. [अ. सैयद] मुहम्मद साहब के नाती हुसेन के वंशजों की उपाधि।

सैद्धांतिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिद्धांत का ज्ञाता या पंडित। (२) तांत्रिक।

वि. (१) सिद्धांत का, सिद्धांत संबंधी। (२) जो सिद्धांत के आधार पर हो।

सैन—संज्ञा स्त्री. पुं.[सं. संज्ञपन, प्रा. सण्णवन](१) (आँख या उँगली का) इशारा, संकेत या इंगित। उ.—(क) नैन की सैन अंगद बुलायौ—९-१२९। (ख) कमल नैन माखन माँगत हैं करि करि सैन बतावत—१०-१०२। (ग) सैन देइ सब सखा बुलाए—१०-२८२। (घ) मोहि लई नैंननि की सैन—७४२। (ङ) बात करत तुलसी मुख मेलै नैन सैन दै मुँह मटकी—१३-०१ (च) ताहू मैं अति चारु बिलोकनि गूढ़ भाव सूचत

सखि सैन—१३१३ । (छ) रीझत नारि कहत मथुरा की आपुस मैं दै सैन—सारा. ५०४ । (२) निशान, चिह्न, लक्षण ।

संज्ञा पुं. [सं. शयन] (१) सोना, निद्रा लेना । (२) लेटना । (३) शैया । (४) बिछौना ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सेना] फौज, कटक, सेना । उ.—(क) नातरु कुटंब सैन संहरि सब कौन काज कौं जीजै —१-२७५ । (ख) हरि प्रभाउ राजा नहिं जान्यौ, कह्यौ सैन मोहिं देहु हरी—१-२६८ । (ग) दामिनि कर करवार, बूँद सर,इहिं बिधि साजे सैन—२८१९ । (घ) सखी री पावस सैन पलान्यौ—२८२० ।

संज्ञा पुं. [सं. श्येन] बाज पक्षी ।

संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का बगला ।

सैननि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सैन] संकेत से । उ.—राजिवनैन मैन की मूरति सैननि दियो बताई—९-४५ ।

सैनपति, सैनपती—संज्ञा पुं. [सं. सेनापति] सेनानायक, सेनापति ।

सैनभोग—संज्ञा पुं. [सं शयन+भोग] रात्रि का नैवेद्य जो मंदिरों में चढ़ता ह ।

सैना—संज्ञा स्त्री [सं. सेना] फौज, कटक, सेना । उ.—बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि—९-११० ।

सैनापति, सैनापती—संज्ञा पुं. [सं. सेनापति] सेनानायक । उ.—(क) मुहाँचुही सेनापति कीन्हीं सकटै गर्व बढ़ायौ —१०-६१ । (ख) बरषत मुसलधार सैनापति महामेघ मघवा के पायक—९५४ ।

सैनिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फौज में रहकर लड़नेवाला सिपाही । (२) प्रहरी, सैन्यरक्षक ।

वि. सेना का, सेना-संबंधी ।

सैनिका—संज्ञा स्त्री. [सं. श्येनिका] एक छंद ।

सैनी—संज्ञा पुं. [सेना भगत नाई] नाई । उ.—दरसन हूँ नासै जम सैनिक जिमि नह बालक सैनी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. सेना] (१) कटक, सेना । उ.—जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संग सजी अघसैनी —९-११ । (२) दल, समूह । उ.—एकै नाम लेत सब भाजै पीर सो भव-भय-सैनी—९-११ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेणी] कतार, पंक्ति ।

सैनु—संज्ञा पुं. [हिं. सैन] इशारा, संकेत, इंगित । उ.—ग्वाल-बाल कोउ कहूँ न देखौं, टेरत नाउँ लेत दै सैनु —५०१ ।

संज्ञा पुं. [सं. शयन] शयन । उ.—सब जीवनि लै उदर माँझ प्रभु महा प्रलय-जल करत हो सैनु-४८९ ।

सैनेह—वि. [सं. सेना] सेना में रहकर लड़ने के योग्य ।

सैनेश, सैनेस—संज्ञा पुं. [सं. सैन्य+ईश=सैन्येश] सेनापति ।

सैन्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सैनिक । (२) सेना । (३) प्रहरी । (४) छावनी, शिविर ।

वि. सेना का, सेना-संबंधी ।

सैफ—संज्ञा स्त्री. [अ. सैफ़] तलवार ।

सैयद—संज्ञा पुं. [अ.] मुहम्मद साहब के नाती हुसेन के वंशजों की उपाधि ।

सैयाँ—संज्ञा पुं. [सं स्वामी] पति, स्वामी ।

सैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. शैया] पलँग, सेज ।

सैरंध—संज्ञा पुं. [सं.] घर का नौकर ।

सैरंध्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दासी । (२) द्रौपदी का वह नाम जो उसने अज्ञातवास काल में राजा विराट के यहाँ रहने के लिए रखा था ।

सैर—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) मन बहलाने के लिए घूमना-फिरना । (२) मौज, आनंद । (३) खान-पान और आमोद-प्रमोद । (४) तमाशा, मनोरंजक दृश्य ।

सैल—संज्ञा पुं. [सं. शैल] पहाड़, पर्वत । उ.—(क) व्योम धर नद सैल कानन इते चरि न अघाइ—१-५६ । (ख) मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी—२-२८ । (ग) सैल-सिला द्रुम बरषि व्योम चढ़ि सत्रु-समूह सँहारौ—९-१०८ ।

संज्ञा पुं. [सं. शेल] बरछा, भाला ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सैर] सैर ।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सैलाब] (१) बाढ़ । (२) बहाव ।

सैलकुमारी—संज्ञा स्त्री. [सं. शैलकुमारी] पार्वती ।

सैलजा—संज्ञा स्त्री. [सं. शैलजा] पार्वती ।

सैलसुता—संज्ञा स्त्री. [सं. शैल+सुता] पार्वती ।

सैला—संज्ञा पुं. [सं. शल्य] (१) मेख । (२) मुठिया ।

सैलात्मजा—संज्ञा स्त्री. [सं. शैलात्मजा] पार्वती।

सैलानी—वि. [हिं. सैल = सैर] (१) सैर करने या मनमाना घूमनेवाला। (२) मनमौजी, आनंदी।

सैलाब—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पानी की बाढ़।

सैलूख—संज्ञा पुं. [सं. शैलूष] (१) नाटक का अभिनेता, नट। (२) चालाक, धूर्त।

सैव—संज्ञा पुं. [सं. शैव] शिव के उपासकों का वर्ग या संप्रदाय।

वि. (१) शिव का, शिव-संबंधी।

सैवल—संज्ञा पुं. [सं. शैवाल] सेवार।

सैवलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. शैलविनी] नदी।

सैवार, सैवाल—संज्ञा पुं. [सं. शैवाल] सेवार।

सैसव—संज्ञा पुं. [सं. शैशव] बचपन।

वि. (१) शिशु का। (२) बचपन का।

सैसवता—संज्ञा स्त्री. [सं. शैशव] बचपन, बाल्यावस्था। उ.–सैसवता में हे सखी, जोबन कियौ प्रवेस—२०६५।

सैहथी—संज्ञा स्त्री. [सं. शक्ति] बरछी, साँग।

सैहौं—क्रि. स. [हिं. सहना] सहन करूँगा या करूँगी। उ. एक गाँव एक ठाँव को बास एक तुम कैहौ, क्यौं मैं सैहौं—८४३।

सों—प्रत्य., अव्य. [प्रा. सुंतो] करण और आपादान कारकीय चिह्न, से, द्वारा।

अव्य. [हिं. सा] समान, तुल्य।

अव्य. [हिं. सौंह] सामने, सम्मुख।

संज्ञा स्त्री. कसम, शपथ। उ.—बात सुने तें बहुत हँसोंगे चरन-कमल की सों।

क्रि. वि. साथ, संग। उ.—मन हरि सों, तनु धरहिं चलावति।

सर्व. [हिं. सो] वह।

सोंज—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंज] (१) वस्तु। (२) सामग्री।

सोंट, सोंटा—संज्ञा पुं. [सं. शुण्ड या हिं. सटना, सोंटा] (१) मोटा डंडा।

मुहा. सोंटा चलना—मार-पीट होना। सोंटा चलाना या जमाना—सोंटे से प्रहार करना।

(२) भंग घोटने का मोटा डंडा।

सोंठ, सोंठि—संज्ञा स्त्री. [सं. शुण्ठी] सुखाया हुआ अदरक। उ.—(क) अति प्यौसर सरस बनाई। तिहिं-सोंठ-मिरिच रुचि नाई—१०-१८३। (ख) कूट काइफर सोंठि चिरैतौ कटजीरा कहुँ देखत—११०८।

सोंठौरा—संज्ञा पुं. [हिं. सोंठ + औरा] (प्रसूता स्त्री के लिए) सोंठ तथा कुछ मेवा-मसालों का बना हुआ लड्डू।

सोंध—अव्य. [हिं. सौंह] सामने, सम्मुख।

सोंधा—वि. [सं. सुगंध] (१) खुशबूदार, सुगंधित। (२) तपी हुई भूमि पर वर्षा का पहला पानी पड़ने या भुने हुए चने या बेसन की सुगंध के समान।

संज्ञा पुं. (१) एक तरह का सुगंधित मसाला जिससे स्त्रियाँ केश धोती हैं। (२) एक मसाला जो तेल को सुगंधित करने के लिए उसमें मिलाया जाता है।

संज्ञा पुं. खुशबू, सुगंध।

सोंधी—वि. स्त्री. [हिं. सोंधा] सुगंधित। उ.—बासौंधी सिखरनि अति सोंधी—२३२१।

सोंधु—वि. [हिं. सोंधा] सुगंधित।

सोंधे—संज्ञा पुं. [हिं. सोंधा] सुगंध। उ.—(क) सूरदास प्रभु की बानक देखे गोपी-ग्वाल टारे न टरत निपट आवै सोंधे की लपट—८३९। (ख) पवन गवन आवैं सोंधे की झकोरे—२२८७।

सोंवनिया—संज्ञा पुं. [सं. सुवर्ण] नाक का एक आभूषण। उ.—नासिका अति सुंदर राजत सोंवनिया।

सोंह—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंह] कसम, शपथ।

अव्य. सामने, सम्मुख।

सोंहट—वि. [देश.] सीधा-सादा, सरल।

सोंही—अव्य. [हिं. सौंह] सामने, सम्मुख।

सो—सर्व. [सं. सः] वह। उ.—सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे—१-८।

अव्य. इसलिए, अतः, निदान।

वि. [हिं. सा] समान, तुल्य।

सोऽहम, सोऽहम्—पद [सं. सः + अहम्] वह (अर्थात् ब्रह्म) मैं ही हूँ।

सोऽहमस्मि—पद [सं. सः + अहम् + अस्मि] वही (अर्थात् ब्रह्म) मैं ही हूँ।

सोअना, सोअनो—क्रि. अ. [हिं. सेना] नींद लेना।

सोआ—संज्ञा पुं. [सं. मिश्रेया] एक तरह का साग।

सोआए—क्रि. स. [हि. सोआना] सुला दिये। उ.—छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघरचौ—१०-८।

सोआना, सोआनो—क्रि. स. [हिं.सोआना] सुलाना, सोने को प्रवृत्त करना।

सोइ—सर्व. [हिं. सो+ही] वही। उ.—(क) सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै—१-४। (ख) सोइ प्रसाद सूरहिं अब दीजै—१-२०४। (ग) ज्ञान बिराग तुरत तिहिं होइ। सूर बिष्नु पद पावै सोइ—६-४। (घ) पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ—१-६४।

क्रि. अ. [हिं. सोना] सोकर, सोने (पर)। उ.—जैसैं सुपने सोइ देखियत तैसे यह संसार—१-३१।

प्र.—सोइ रह्यौ— सो रहो। उ.—सूर स्याम तुम सोइ रहौ अब प्रात जान मैं दैहौं—४२०।

अव्य. [हिं. सो] इसलिए, अतः।

सोइयत—क्रि. अ. [हिं. सोना] सोया जाता है। उ.—नाहिन इतौ सोइयत सुनि सुत प्रात परम सुचि काल—१०-२०७।

सोई—सर्व. [हिं. सो+ही]वही। उ.—(क) सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं सोई सुफल करै—१-११७। (ख) जो मैं कहत रह्यौ भयौ सोई सपनंतर की प्रगट बताई—९३२।

क्रि. अ. [हिं. सोना] निद्रा लेने लगी। उ.—टहल करत मैं याके घर की, यह पति संग मिलि सोई—१०-३२२।

सोऊँ—क्रि. अ. [हिं. सोना] निद्रा लूँ, शयन करूँ। उ.-सुख सोऊँ, सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि बाँह—१-५१।

सोऊ—सर्व [हिं. सो+ऊ] वह भी। उ.—महादेव-हित जो तप करिहैं। सोऊ भव-जल तैं नहिं तरिहैं—४-५।

वि. [हिं. सोना] सोनेवाला। उ.—तृष्ना हाथ पसारे निसि दिन, पेट भरे पर सोऊ—१-१८६।

सोए—क्रि. अ. [हिं. सोना] निद्रा लेते रहे, सो गये, शयन किया। उ.—(क) सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे परि सोए—१-५२। (ख) सूर स्याम बिरुझाने सोए—१०-१९६। (ग) अब लौं कहा सोए मन-मोहन, और बार तुम उठत सबार—४०३।

सोक—संज्ञा पुं. [सं. शोक] (१) प्रिय व्यक्ति की मृत्यु से होने वाला परम कष्ट। उ.—दरसन सुखी, दुखी अति सोचति षट-सुत सोक-सुरति उर आवति—१०-७।

मुहा. सोक मनाना— प्रियजन की मृत्यु पर शोक-चिह्न धारण करना और सामाजिक उत्सव आदि में सम्मिलित न होना।

(२) प्रियजन के विरह से होनेवाला कष्ट। उ.—(क) करिहैं सोक-संताप धार पितु-मातहिं देखौ—४९२। (ख) मदन गोपाल देखत ही सजनी सब दुख-सोक बिसारे—२५६९। (३) दुख, कष्ट। उ.—(क) सीत-उष्न सुख-दुख नहिं मानै हर्ष-सोक नहिं खाँचै—१-८१। (ख) अंबर हरत सभा मैं कृष्ना सोक-सिंधु तैं तारी—१-२८२। (ग) गदगद कंठ सोक सौं सोवत बारि बिलोचन छाए—९-६७।

सोकना, सोकनो—क्रि. स. [सं. शोक] दुख या शोक करना, कष्ट पाना।

क्रि. स. [हिं. सोखना] सोख लेना।

सोकित—वि. [सं. शोक] जिसे दुख या शोक हो।

सोख—क्रि. स. [हिं. सोखना] चूस या शोषण(करके)।

प्र. लिये सोख—सुखा डाले, प्राण खींच या चूस लिये। उ.—कुंभकरन पुनि इंद्रजीत यह महाबली बलसार। छिन में लिये सोख मुनिवर ज्यों छत्री बली अपार—सारा. २९२।

वि. [फ़ा. शोख़] (१) ढीठ, धृष्ट। (२) नटखट, पाजी। (३) चंचल। (४) गहरा और चमकदार(रंग)।

सोखक—वि. [सं. शोषक] (१) सुखा डालने या शोषण करनेवाला। (२) नाश करनेवाला।

सोखता—वि. [फ़. सोख़्तः] जला हुआ, दग्ध।

संज्ञा पुं. (स्याही) सोखनेवाला, मोटा कागज।

सोखना, सोखनो—क्रि. स. [सं. शोषण] (१) नमी या रस चूस लेना या सुखा डालना, शोषण करना। (२) बहुत अधिक पानी जैसा पेय पदार्थ पी लेना (व्यंग्य)। (३) प्राण खींच लेना, मार डालना।

सोखा—वि. [हिं. चोखा से अनु.] चतुर।

सोखि—क्रि. स. [हिं. सोखना] सुखाकर, शोषण करके। उ.—(क) सोखि समुद्र, उतारौं कपि दल—९-१०९।

(ख) जनु जल सोखि लयो से सविता जोवन गज मत-वार—२०६२।

सोखू—वि. [हिं. सोखना] सोखनेवाला।

सोखे—क्रि. स. [हिं. सोखना] खींच लिये। उ.—पूतना के प्रान सोखें—४९८।

सोख्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा. सोख़्तः] एक प्रकार का खुरदरा कागज जो स्याही सोख लेता है।

वि. जला हुआ, दग्ध।

सोग—संज्ञा पुं. [सं. शोक] (१) प्रिय जन की मृत्यु का परम कष्ट।

मुहा. सोग मनाना—प्रियजन की मृत्यु पर शोक-चिह्न धारण करना और किसी उत्सव आदि में सम्मि लित न होना।

(१) प्रियजन के वियोग का दुख। उ.-(क) देवकी-वसुदेव-सुत सुनि जननि कैहै सोग—२९३३। (ख) सूर उसाँस छाँड़ि भरि लोचन बढ़चो बिरह-ज्वर सोग—३४९२। (३) दुख, कष्ट। उ.—(क) जोग, भोग रस रोग-सोग-दुख जाने जगत सुनावत—३२७६। (ख) अपने-अपने भाव सु पेखत, मिट्यौ सकल मन-सोग—सारा. ५१४।

सोगन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौगंद] कसम, शपथ।

सोगवारा—संज्ञा पुं. [सं. शोक+हिं. वारा] वह स्थान जहाँ प्रियजन की मृत्यु का शोक मनाया जा रहा हो।

सोगिनी—वि. स्त्री. [हिं. सोग] शोक करनेवाली।

सोगी—वि. पुं. [हिं. सोग] (१) प्रियजन की मृत्यु का शोक करनेवाला। (२) वियोगी। (३) दुखी।

सोच—संज्ञा पुं. [सं. शोच] (१) फिक्र, चिंता। उ.—(क) सूरदास प्रभु रची सु ह्वैहै, को करि सोच मरै—१-२६४। (ख) कंसराय जिय सोच परी—१०-४८। (ग) सूरज सोच हरौं मन अबहीं, तौ पूतना कहाऊँ—१०-४९। (घ) सुन्यौ कंस पूतना सँहारी। सोच भयौ ताकैं जिय भारी—१०-५८। (ङ) तब तैं यो जिय सोच, जबहिं तैं बात परी सुनि—५८९। (२) रंज। दुख। उ.—(क) औगुन की कछु सोच न संका—१-१८६। (ख) कियौ न कबहुँ बिलम्ब कृपानिधि सादर सोच निवारौ—१-१५७। (३) पछतावा, पश्चाताप। उ.—देखि कै उमा को रुद्र लज्जित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ।............। चतुर्भुज रूप हरि आइ दरसन दियौ, कह्यौ, सिव सोच दीजै बिहाई—८-१०।

सोचत—क्रि. अ. [हिं. सोचना] (किसी विषय में) विचार करता है। उ.—(क) बिदुखि सिंधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ—१०-१४३। (ख) कैसे कै वाको मारैंगे, सोचत हैं पुर-नारी—सारा. ५०५।

सोचति—क्रि. अ. [हिं. सोचना] चिंतित होती है, चिंता करती है। उ.—(क) दरसन सुखी, दुखी अति सोचति घट सुत-सोक सुरति उर आवति—१०-७। (ख) कैसेहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि पुनि सोचति परी खभारे—५९५।

सोचन—संज्ञा पुं. सवि [हिं. सोच] विचार या चिंता में। उ.—भवन मोहिं भाटी सों लागत मरति सोच ही सोचन—१४१७।

प्र.—लगे या लागे सोचन—सोचने, विचारने या चिंता करने लगे। उ.—(क) भूमि परे तैं सोचन लागे महा कठिन दुख भारे—१-३३४। (ख) अबकी बेर बहुरि फिरि आवहु कहा लगे जिय सोचन—२७०८।

सोचना, सोचनो—क्रि. अ. [सं. शोचन] (१) किसी बात, विषय या प्रसंग पर विचार करना। (२) फिक्र या चिंता करना। (३) दुख या खेद करना।

सोच-विचार—संज्ञा पुं. [हिं. सोच+सं. विचार] सोचने, समझने और विचार करने की क्रिया या भाव, गौर।

सोचहु—क्रि. अ. [हिं. सोचना] सोच-विचार करो। उ.—जिनि सोचहु सुख मान सयानी, भली रितु सरद भई—२८५३।

सोचान—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोचना] सोचने-विचारने की क्रिया या भाव।

सोचाना, सोचानो—क्रि. स. [हिं. सोचना] (१) सोचने-विचारने को प्रवृत्त करना। (२) सोचने-विचारने के लिए (किसी संबंध में) ध्यान आकृष्ट करना।

सोचि—क्रि. अ. [हिं. सोचना] विचार करके।

सोचि-विचारि—क्रि. अ. [हिं. सोचना+विचारना]

(अच्छी तरह) समझ-बूझ लो। उ.—(क) सोचि-बिचारि सकल स्रुति सम्मति, हरि तैं और न आगर —१-९१। (ख) रे मन, समुझि सोचि-बिचारि —१-३०९।

सोचु—संज्ञा पुं. [हिं. सोच] (१) फिक्र, चिंता। (२) दुख, शोक। (३) पछतावा, पश्चाताप।

सोचै—क्रि अ. [हिं. सोचना] फिक्र या चिंता करो। उ.—अब हरि आइहैं, जिनि सोचै.........।

सोज—संज्ञा स्त्री. [हिं. सूजना] सूजन, शोथ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंज] (१) वस्तु। (२) सामग्री।

सोजन—संज्ञा पुं. [फ़ा. सोज़न] (१) सुई। (२) काँटा।

शोझ, सोझा—वि. [सं. सम्मुख, म० प्रा. समुज्झ] सीधा-सादा, सरल।

सोटा—संज्ञा पुं. [हिं. सोंटा] मोटा डंडा।

संज्ञा पुं. [हिं. सुअटा] तोता, शुक।

सोढ—वि. [सं.] सहनशील, सहिष्णु।

सोढर—वि. [देश.] भोंदू, मूर्ख।

सोढी—वि. [सं. सोढिन्] जिसने सहन किया हो।

सोत—संज्ञा पुं. [सं. स्रोत, हिं. सोता] सोता।

सोतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौत] सौत, सपत्नी।

सोता—संज्ञा पुं. [सं. स्रोत] (१) प्राकृतिक जल-धारा, झरना। (२) नदी की शाखा। (३) नहर।

सोतिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोता] छोटा सोता।

सोतिहा—संज्ञा पुं. [हिं. सोता] कुँआ या जलाशय जिसमें सोते का पानी आता है।

सोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोता] छोटा स्रोत।

संज्ञा स्त्री. [हिं. स्वाती] स्वाति नक्षत्र।

संज्ञा पुं. [सं. श्रोत्रिय] (१) वह जो वेद-शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता हो। (२) ब्राह्मणों की एक जाति।

सोथ—संज्ञा पुं. [सं. शोथ] वरम, सूजन।

सोदर—संज्ञा पुं. [सं.] सगा भाई, सहोदर।

सोदरा, सोदरी—संज्ञा स्त्री. [सं. सोदर] सगी बहन।

सोध—संज्ञा पुं. [सं. शोध] (१) खोज-खबर, पता, टोह। उ.—(क) हरि के दूत जहाँ-तहाँ रहैं। हम तुम उनकी सोध न लहैं—६-४। (ख) आए तीर समुद्र के कछु सोध न पायौ—९-१२। (ग) सब सोधि रह्यौ, न सोध पायौ, बिन सुने का कीजिए—१० उ.-२४। (२) सुधारन, संशोधन। (३) चुकता होना, अदा होना।

संज्ञा पुं. [हिं. सुध] सुध, ध्यान। उ.—आनँद मगन भए सब डोलत कछु न सोध सरीर—९-१८।

संज्ञा पुं. [सं. शौध] महल, प्रासाद।

सोधक—वि. [सं. शोधक] (१) ढूँढ़ने-खोजनेवाला। (२) ठीक या शुद्ध करनेवाला।

सोधन—संज्ञा पुं. [सं. शोधन] (१) ढूँढ़, खोज, तलाश। (२) जाँच, छानबीन।

सोधना, सोधनो—क्रि. स. [सं. शोधन] (१) साफ, शुद्ध या शोधन करना, शुद्धता की जाँच करना। (२) गलती, त्रुटि या दोष दूर करना। (३) ठीक या निश्चित करना। (४) खोजना, ढूँढ़ना, पता लगाना। (५) धातु-संस्कार करना। (६) दुरुस्त या ठीक करना, सुधारना। (७) ऋण अदा करना, चुकाना।

सोधाना, सोधानो—क्रि. स. [हिं. सोधना का प्रे.] (१) शोधन या शुद्धता की जाँच कराना। (२) दोष दूर कराना। (३) निश्चित कराना। (४) ढुँढ़वाना। (५) धातु का संस्कार कराना। (६) सुधरवाना। (७) अदा करवाना।

सोधि—क्रि. स. [हिं. सोधना] (१) ढूँढ़ या खोजकर। उ.—पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल तब जदुनंदन ल्याए —१-२९। (२) विचार या गणना द्वारा निश्चित करके। उ.—(क) ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि कीन्ही वेद-धुनी—१०-२४। (ख) लगन सोधि सब जोतिष गनिकै चाहत तुमहिं सुनायौ—१०-८६। (ग) बिप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यौ रासि सोधि एक सुदिन धर्‌यौ —१०-८८।

सोधु—संज्ञा पुं. [हिं. सोध] शोध, सोध।

सोधे—क्रि. स. [हिं.सोधना]खोज की, पता लगाया। उ.—खग-मृग-मीन पतंग लौं मैं सोधे सब ठौर—१३२५।

सोधी—वि. [सं. शोधक] (१) ढूँढ़ने-खोजनेवाला। (२) ठीक या शुद्ध करनेवाला।

सोन—संज्ञा पुं. [सं. शोण] एक प्रसिद्ध नद जो बिहार में दानापुर से दस मील उत्तर गंगा में मिला है।

वि. लाल, अरुण ।

संज्ञा पुं. [हिं. सोना] सोना, सुवर्ण ।

संज्ञा पुं. [देश.] जलाशय के निकट रहनेवाला एक पक्षी ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सोना] एक लता जो बारहों महीन हरी रहती है; इसके फूल पीले होते हैं ।

सोनकिरवा—संज्ञा पुं. [हिं. सोना + किरवा = कीड़ा] (१) चमकीले परोंवाला एक कीड़ा । (२) जुगनूँ ।

सोनगहरा—संज्ञा पुं. [हिं. सोना + गहरा] गहरा सुनहरा रंग ।

वि. गहरे सुनहरे रंग का ।

सोनचंपा—संज्ञा पुं. [हिं. सोना + चंपा] पीली चंपा ।

सोनचिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोना + चिरी = चिड़िया] नट जाति की स्त्री, नटिनी, नटी ।

सोनजरद, सोनजर्द—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोना + फ़ा. ज़र्द = पीला] पीली जूही, स्वर्ण यूथिका ।

सोनजूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोना + जूही] पीले फूलवाली जूही जिसके फूल सफेद जूही से अधिक सुगंधवाले होते हैं ।

सोनपेड़ुकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोना + पेड़की] एक पक्षी ।

सोनभद्र—संज्ञा पुं. [सं. शोणभद्र] शोण नद जो बिहार में दानापुर से उत्तर में गंगा से मिलता है ।

सोनरास, सोनरासा—संज्ञा पुं. [हिं. सोना + राशि] पका हुआ सफद या पीला पान ।

सोनवान, सोनवाना—वि. [हिं. सोना + वर्ण] सोने के रंग का, सुनहरा ।

सोनहरा, सोनहला—वि. [हिं. सुनहला] सोने के रंग का ।

सोनहा—संज्ञा पुं. [सं. शुन = कुत्ता] 'कोगो' नामक हिंसक जंतु जो शेर तक को मार डालता है ।

सोनहार—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी ।

सोना—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्ण] (१) एक प्रसिद्ध पीली धातु जिसके गहने आदि बनते हैं, कंचन, कनक । (२) अत्यंत मूल्यवान वस्तु । (३) बहुत सुंदर वस्तु । (४) एक प्रकार का हंस, राजहंस ।

क्रि. अ. [सं. शयन] (१) नींद लेना, शयन करना । (२) शरीर के किसी अंग का सन्न हो जाना । (३) किसी विषय या कार्य की ओर से उदासीन होकर चुप या निष्क्रिय होना ।

सोनापाठा—संज्ञा पुं. [सं. शोण + हिं. पाठा] एक वृक्ष ।

सोनापेट—संज्ञा पुं. [हिं. सोना + पेट] सोने की खान ।

सोनामक्खी, सोनामाखी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर्णमक्षिका] एक खनिज पदार्थ जिसमें सोने का कुछ अंश और गुण रहता है । (२) रेशम का एक कीड़ा ।

सोनार—संज्ञा पुं. [हिं. सुनार] सुनार ।

सोनित—संज्ञा पुं. [सं. शोणित] खून, लहू, रक्त, रुधिर ।

उ.—सोनित (पाठा. स्रोनित)--छिछ उछरि आकासहिं गज-बाजिनि सिर लागि—९-१५८ ।

वि. लाल, अरुण ।

सोनी—संज्ञा पुं. [हिं. सोना] सुनार, स्वर्णकार ।

संज्ञा पुं. [देश.] एक वृक्ष ।

सोने—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सोना] (१) स्वर्ण के । उ.—सूरदास सोने कैं पानी मढ़ौं चोंच अरु पाँखि—९-१६४ । (२) सोने या स्वर्ण से । प्र.—ताँबे रूपे सोने सजि राखीं वै बनाइ कै—२६२८ ।

मुहा० सोने का घर मिट्टी करना—बहुत अधिक धन-सम्पत्ति नष्ट कर देना । सोने का घर मिट्टी होना—अत्यन्त धन-धान्य पूर्ण घर या परिवार का वैभव नष्ट हो जाना । सोने में घुन लगना—अनहोनी या असंभव बात होना । सोने में सुगंध (होना)—किसी बहुत अच्छी चीज में (कारण-विशेष से) और भी गुण या विशेषता आ जाना ।

पद. सोने की कटार—वह चीज जो देखने में तो बहुत सुन्दर और आकर्षक हो, परन्तु वस्तुतः हानिकारिणी और घातक हो ।

सोनैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. सोना] सोने या स्वर्ण से ।

उ.—खुर ताँबें, रूपैं पीठि, सोनैं सींग मढ़ी—१०-२४ ।

सोनो—संज्ञा पुं. [हिं. सोना] सोना, स्वर्ण ।

सोपत—संज्ञा पुं. [सं. सूपपत्ति] सुबीता, सुपास ।

सोपान—संज्ञा पुं [सं.] जीना, सीढ़ी ।

सोपानित—वि. [सं.] जिसमें सीढ़ियाँ हों ।

सोऽपि, सोपि, सोपी—वि. [सं. सः + अपि] (१) वही ।

(२) वह भी । उ.—बरि कुबजा के रंगहिं राचे तदपि तजी सोपी—३४८७ ।

सोफता—संज्ञा पुं. [हिं. सुभीता] (१) एकांत स्थान । (२) अवकाश का समय । (३) रोग में कमी की दशा या स्थिति ।

सोफियाना—वि. [हिं. सूफियाना] सूफियों का, सूफी-संबंधी । (२) जो सादा पर भला लगे ।

सोफी—संज्ञा पुं. [हिं. सूफी] (१) मुसलमानों का एक धार्मिक संप्रदाय । (२) इस संप्रदाय का अनुयायी ।

सोबुन—संज्ञा पुं. [सं. सुवर्ण] सोना (धातु) ।

सोभ—संज्ञा स्त्री.[सं.शोभा] (१) कांति । (२) सुंदरता, छटा । (३) सजावट ।

सोभन—वि. [सं. शोभन] (१) सुंदर ।(२) सुहावना । (३) उत्तम । (४) शुभ ।

संज्ञा पुं. (१) भूषण । (२) कल्याण । (३) सौंदर्य ।

सोभना, सोभनो—क्रि. अ. [सं. शोभन] सोहना, शोभित होना ।

सोभर—संज्ञा पुं. [सं. शोभा या शुभ+गृह ?] स्थान जहाँ स्त्रियाँ प्रसव करती हैं ।

सोभांजन—संज्ञा पुं. [सं. शोभांजन] 'सहिंजन' वृक्ष जिसमें लंबी फलियाँ लगती हैं ।

सोभा—संज्ञा स्त्री. [सं.शोभा] (१) चमक, कांति, दीप्ति । (२) छटा, सुंदरता । उ.—(क) मृग मूसी नैननि की सोभा जाति न गुप्त करी –९-६३ । (ख) स्याम उलटे परे देखे, बढ़ी सोभा-लहरि—१०-६७ । (ग) सोभा मेरे स्यामहिं पर सोहै—१०-१५८ । (घ) तदपि सूर तरि सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचि हारि—६२८ । (३) सजावट । उ.—बरनौं कहा सदन की सोभा बैकुंठहूँ तैं राजै री—१०-१३९ । (४) किसी की सुंदरता बढ़ानेवाली कोई वस्तु, बात या विशेषता । उ.—कुबिजा भई स्याम-रँग राती तातैं सोभा पाई —१-६३ । (५) मान-सम्मान, आदर । उ.-(क) गनिका-सुत सोभा नहिं पावत जाके कुल कोऊ न पिता री—१-३४ । (ख) पति कौं ब्रत जो धरै तिय, सो सोभा पावै—२-९ ।

सोभाकारि, सोभाकारी—वि. [सं. सोभाकर] शोभा बढ़ाने या देनेवाला, सुंदर । उ.—(क) तिलक ललित ललाट केसरि-बिंदु सोभाकारि—१०-१६९ । (ख) केहरी-नख उर पर रुरै सुठि सोभाकारी—१०-१३४ ।

सोभात -क्रि. स. [हिं. शोभाना] फबता या सोहता है । उ.—(क) गत पतंग राका ससि बिष सँग घटा सघन सोभात–२१८५ । (ख) नैन दोऊ ब्रह्म से परम सोभात से—२६१७ ।

सोभाना, सोभानो—क्रि. अ. [सं. शोभन] शोभा देना ।

सोभायमान—वि. [सं. शोभायमान] शोभा बढ़ाने या देनेवाला, सुंदर ।

सोभार—वि. [सं. स+हिं उभार] जिसमें उभार हो, उभरा हुआ, उभारदार ।

क्रि. वि. उभार के साथ, उभरकर ।

सोभावै—क्रि. अ. [हिं. शोभना] सोहती, फबती या शोभित होती है। उ.–कर सिर-तर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सोभावै—१०-६५ ।

सोभित—वि .[सं. शोभित] (१) सुंदर । (२) शोभा देने या बढ़ानेवाला । (३) फबता या सुंदर लगता हुआ। उ.—(क) छाता लौं छाँह किए सोभित हरि छाती—१-२३ । (ख) उर सोभित भृगु रेख—१०-४ । (ग) सोभित सीस लाल चौतनियाँ—१०-१०६ । (घ) मानौ गज-मुक्ता मरकत पर सोभित सुभग साँवरे गात—१० १५९ । (ङ) सोभित अति कुंडल की डोलनि–६३९ ।

सोम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक लता जिसका रस पीले रंग का और मादक होता था । यह रस वदिक ऋषि पान किया करते थे । (२) एक प्राचीन वैदिक देवता । (३) चंद्रमा । उ.—मानौ सोम संग करि लीने, जानि आपने गोती री—१०-१३९ । (४) सोमवार । (५) अमृत । (६) जल । (७) एक राग ।

सोमकर—संज्ञा पुं. [सं. सोम+कर=किरण] चंद्रमा की किरणें ।

सोमकांत—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रकांत मणि ।

वि. (१) चंद्रमा-सा प्रिय । (२) जिसे चंद्र प्रिय हो ।

सोमग्रहण—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रग्रहण ।

सोमज—वि. [सं.] जो चंद्रमा से उत्पन्न हो ।

संज्ञा पुं. [सं.] बुध ग्रह ।

सोमजाजी—वि. [हिं. सोमयाजी]'सोम' यज्ञ करनेवाला।

सोमदिन—संज्ञा पुं. [सं. सोम+हिं. दिन] सोमवार।

सोमदेव—संज्ञा पुं. [सं.](१) 'सोम' नामक वैदिक देवता। (२) चंद्रमा देवता।

सोमन—संज्ञा पुं. [सं. सौमन] एक अस्त्र।

सोमनस—संज्ञा पुं. [सं. सौमनस्य] (१) सज्जनता। (२) प्रसन्नता। (३) प्रेम। (४) संतोष।

सोमनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक। (२) उक्त ज्योतिर्लिंग का मंदिर जो कठियावाड़ में है।

सोमपायी—वि. [सं.सोमपायिन्] सोम रस पीने या उसका पान करनेवाला।

सोमपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का पुत्र, बुध।

सोमप्रभ—वि. [सं.] चंद्र-सी कांतिवाला।

सोमबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] कुमुद।

सोमवंस—संज्ञा पुं. [सं. सोमवंश] क्षत्रियों का चंद्रवंश। उ.—सोमवंश पुरुरवा सौं भयौ—९-२१।

सोमवंसी—वि. [सं. सोमवंशीय] (१) चंद्रवंश-संबंधी। (२) चंद्रवंश में उत्पन्न।

सोमभू—संज्ञा पुं. [सं.] (चंद्र-पुत्र) बुध।
वि. (१) चंद्रमा से उत्पन्न। (२) चंद्रवंशी।

सोमयज्ञ, सोमयाग—संज्ञा पुं. [सं.] एक यज्ञ।

सोमयाजी—वि. [सं. सोमयाजिन्] जिसने सोमयज्ञ किया हो, जो सोमयज्ञ करता हो।

सोमरस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोमलता का रस। (२) मादक द्रव, मदिरा।

सोमराज—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

सोमराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रलोक।

सोमवंश—संज्ञा पुं. [सं.] क्षत्रियों का चंद्रवंश।

सोमवंशी, सोमवंशीय, सोमवंसी, सोमवंसीय—वि. [सं. सोमवंशीय] (१) चंद्रवंश-संबंधी। (२) चंद्रवंश में उत्पन्न।

सोमवती—वि. [सं] सोमवार को होनेवाली।

सोमवती अमावस्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोमवार को पड़नेवाली अमावस्या जो पुण्य तिथियों या पर्वों में गिनी जाती है और हिंदू उस दिन नदी-स्नान करते हैं।

सोमवार—संज्ञा पुं. [सं.] सात वारों में एक जो रविवार और मंगलवार के बीच में पड़ता है और सोम या चंद्रमा का वार माना जाता है।

सोमवारी—वि. [सं. सोमवार] सोमवार-संबंधी।

सोमसुत—संज्ञा पुं. [सं.] (चंद्र-पुत्र) बुध।

सोमसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नर्मदा नदी।

सोमांशु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्र-किरण।

सोमावती—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा की माता का नाम।

सोमास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक अस्त्र।

सोमाह—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा का दिन, सोमवार।

सोमित्र—संज्ञा पुं. [सं. सौमित्र] लक्ष्मण।

सोमेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काशी का एक शिवलिंग। (२) सोमनाथ। (३) श्रीकृष्ण का एक नाम।

सोय—सर्व. [हिं. सो+ई, ही] वही।
सर्व. [हिं. सो] वह।

सोया—संज्ञा पुं. [हिं. सोआ] एक साग।

सोयो, सोयौ—क्रि. अ. [हिं. सोना] निद्रा ली, शयन किया। उ.—(क) संकर कौ मन हरयौ कामिनी, सेज छाँड़ि भू सोयौ—१-४३। (ख) सूरदास जो चरन सरन रह्यौ, सो जन निपट नींद भरि सोयौ—१-५४।

सोर—संज्ञा पुं. [फ़ा. शोर] हल्ला, कोलाहल। उ.—(क) होत जय-जय सोर—१-२५३। (ख) चहुँ दिसि सूर सोर करि धावैं—९-१०४। (ग) कटक सोर अति घोर—९-११५। (घ,लंक मैं सोर परयौ—९-१३९।
मुहा. सोर पारना—ललकारना। सोर पारि—ललकारकर, चुनौती देकर। उ.—सोर पारि हरि सुबलहिं धाए, गह्यौ श्रीदामा जाइ—१०-२४०।
(२) पुकार, आर्तनाद। उ.—रोर कैं जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका द्वार ठाढ़ौ—१-५। (३) घोर शब्द। उ.—झहरात भहरात दवानल आयौ। घेरि चहुँ ओर करि सोर अंदोर बन धरनि आकास चहुँ पास छायौ—५९६। (४)नाम, प्रसिद्धि, ख्याति।
संज्ञा स्त्री. [सं. शटा, प्रा. सड़] जड़, मूल।
संज्ञा पुं. [सं.] टेढ़ी चाल, वक्र गति।

सोरटठ, सोरठ—संज्ञा पुं. [सं. सौराष्ट्र, हिं. सोरठ] (१)

गुजरात और दक्षिण काठियावाड़ का प्राचीन नाम । (२) उस देश की राजधानी सूरत ।

संज्ञा स्त्री. पुं. एक राग ।

सोरठ मल्लार—संज्ञा पुं. [हिं.सोरठ+मल्लार] एक राग जिसमें जब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

सोरठा—संज्ञा पुं. [सोरठ (देश)] एक प्रसिद्ध छंद ।

सोरठी—संज्ञा स्त्री. [सोरठ (देश)] एक रागिनी ।

सोरन—वि. [सं. शूरण] जिमीकंद '

सोरनी—संज्ञा स्त्री.[हिं. सँवरना ?]'(१) झाड़ू, बुहारी । (२) मृत्यु के तीसरे दिन होनेवाला संस्कार जिसमें मृतक की राख बटोरकर नदी में बहा दी जाती है ।

सोरबा—संज्ञा पुं. [फ़ा. शोरबा] तरकारी का रसा ।

सोरह—वि. [हिं. सोलह] सोलह । उ.—सोरह सहस घोष कुमारि—७४५ ।

सोरहिया, सोरही—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोलह] (१) सोलह चित्ती कौड़ियाँ जिनसे जुआ खेला जाता है । (२) वह जुआ जो सोलह कौड़ियों से खेला जाता है ।

सोरा—संज्ञा पुं. [हिं. शोरा] मिट्टी से निकलनेवाला एक प्रसिद्ध क्षार ।

सोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. शोर] आवाज, ध्वनि, कोलाहल । उ.—देखत गोकुल लोग जहाँ तहँ नंद उठे सुनि सोरी —२४९२ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. स्रवण] बरतन में हो जानेवाला महीन छेद जिसमें से पानी आदि द्रव टपक-टपक कर बह जाते हैं ।

सोलंक—संज्ञा पुं. [देश.] क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसने बहुत समय तक गुजरात में राज्य किया था ।

सोलह—संज्ञा पुं [सं. षोडश, प्रा. सोलस, सोरह] दस से छह अधिक की संख्या ।

सोलह सिंगार—संज्ञा पुं. [हिं. सोलह+सिंगार] स्त्रियों के शृंगार के सोलह अंग जिनसे शृंगार पूरा समझा जाता है—उबटन लगाना, स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, केश-सज्जा, नेत्र आँजना, माँग भरना, महावर लगाना, भाल पर तिलक या बिंदी लगाना, चिबुक पर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, सुगंध लगाना, आभूषण पहनना, फूलमाला पहनना, मिस्सी लगाना, पान खाना और होंठ रँगना ।

सोलहों—वि. [हिं. सोलह] सोलह में सब ।

मुहा. सोलहों आने—पूरा-पूरा, सब ।

सोल्लास—वि. [सं.] उल्लासयुक्त ।

क्रि. वि. उल्लास के साथ ।

सोवज—संज्ञा पुं. [हिं. सावज] वह पशु जिसका शिकार किया जाता है ।

सोवत—क्रि. अ. [हिं. सोवना] (१) सोने या शयन करने (में) उ.—(क) सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै—१-४२ । (ख) सोवत मुदित भयौ सपने मैं पाई निधि जो पराई—१-१४७ । (२) सोते या शयन करते (ही) । उ.–सोवत नींद आइ गइ स्यामहिं—५१५ ।

मुहा. सोवत-जागत—सोते-जागते, किसी भी समय । उ.—सूरदास मोहिं पलक न बिसरत मोहन मूरति सोवत-जागत—३४०७ ।

वि. सोता हुआ, निद्रित । उ.—सूरदास रावन कुल खोवन सोवत सिंह जगायौ—९-८८ ।

सोवन—संज्ञा पुं. [हिं. सोवना] सोने की क्रिया या भाव, शयन, निद्रा ।

सोवना—क्रि.अ.[हिं. सोना] (१) नींद लेना, शयन करना । (२) शरीर के किसी अंग का सुन्न होना । (३) किसी बात या कार्य की ओर से उदासीन होकर मौन या निष्क्रिय हो जाना ।

सोवनार—संज्ञा पुं.[हिं. सोना + आर = आगार]शयनागार

सोवनो—क्रि. अ. [हिं. सोना] सोना ।

सोवरी – संज्ञा स्त्री. [हिं. सौरी] वह स्थान जहाँ स्त्री प्रसव करती है ।

सोवा—संज्ञा पुं. [हिं. सोआ] एक तरह का साग । उ.—(क) सरसौं मेथी सोवा पालक—३९७ । (ख) सोवा अरु सरसौं सरसाई—२३२१ ।

सोवाना, सोवानो—क्रि. स. [हिं. सुलाना] (१) सोने को प्रवृत्त करना । (२) मार डालना ।

सोवावति – क्रि. स. [हिं. सोवाना] सुलाती या शयन कराती है । उ.—रुचिर सेज लै गइ मोहन कौं भुजा उछंग सोवावति—१०-७३ ।

सोवावै—क्रि. स. [हिं. सोवाना] सुलाती या शयन कराती है । उ.—जसुदा मदन गुपाल सोवावै—१०-६५ ।

सोवै—क्रि. अ. [हिं. सोना] सोती या शयन करती है । उ.—भरि सोवै सुख-नींद मैं तहँ सु जाइ जगावै । .... । एकनि कौं दरसन ठगैं, एकनि के सँग सोवै —१-४४ ।

सोवैया—वि. [हिं. सोवना] सोनेवाला ।

सोवौं—क्रि. अ. [हिं. सोना] नींद लूँ, शयन करूँ । उ.—आजु न सोवौं नंद-दुहाई, रनि रहौंगौ जागत-४२० ।

सोवौ—क्रि. अ. [हिं. सोना] शयन करो । उ.–तुम सोवौ, मैं तुम्हैं सुवाऊँ—१०-२३० ।

सोषक—वि. [सं. शोषक] (१) सोखने या सुखानेवाला । (२) दूसरों का धन हरनेवाला ।

सोषन–संज्ञा पुं. [सं. शोषण](१) सोखना । (२) सुखाना । (३) धन हरना । (४) नाश करना ।

सोषना, सोषनो—क्रि. अ. [हिं. सोखना] शोषण करना ।

सोषु—वि. [हिं. सोखना] सोखनेवाला, शोषक ।

सोसन—संज्ञा पुं. [फ़ा. सौसन] एक पौधा जिसके फूलों के दलों से जीभ की उपमा दी जाती है ।

सोसनी - वि. [हिं. सोसन] सौसन पौधे के फल-जैसे लाली लिये नीले रंग का ।

सोसु—वि. [हिं. सोखना] सोखनेवाला, शोषक ।

सोस्मि—पद [सं. सोऽहमस्मि] वह अर्थात् ब्रह्म मैं ही हूँ ।

सोहँ—क्रि. वि. [हिं. सौंह] सामने, सम्मुख ।

सोहं, सोहंग, सोहंगम—पद [सं. सोऽहम्] वह अर्थात् ब्रह्म मैं ही हूँ ।

सोहई—क्रि. अ. [हिं. सोहना] शोभित है । उ.— मोरमुकुट सिर सोहई—४३७ ।

सोहगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोहाग] ब्याह की एक रीति जिसमें लड़के का तिलक चढ़ जाने के बाद उसके यहाँ से लड़की के लिए फल, मिठाई, गहने, कपड़े आदि चीजें भेजी जाती हैं । (२) सिंदूर, मेंहदी आदि सुहाग-सूचक वस्तुएँ ।

सोहगैला—संज्ञा पुं. [हिं. सुहाग] (सुहाग-सूचक) सिंदूर रखने की डिबिया, सिंदूरा ।

सोहत—क्रि. अ. [हिं. सोहना] (१) शोभित होता है । उ.—सीस मुकुट सिर सोहत—५६५ । (२) अच्छे लगते हैं । उ.—वृंदाबन बिहरत नँदनंदन ग्वाल सखा सँग सोहत—६४५ ।

सोहति—क्रि. अ. [हिं. सोहना] शोभित है । उ.—कान्ह गरैं सोहति मनि-माला—१०-९४ ।

सोहदा—संज्ञा पुं. [अ. शोहदा] (१) लुच्चा, बदमाश, आवारा । (२) लंपट ।

सोहन—वि. [सं. शोभन, प्रा. सोहण] सुंदर, सुहावना, मनभावना । उ.—बजावत मृदंग ताल, अरस-परस करैं बिहार सोभा को बरनी न पार एक-एक दैं सोहन —२४२८ ।

संज्ञा पुं. सुंदर पुरुष, नायक ।

संज्ञा पुं. एक पक्षी ।

संज्ञा पुं. [हिं. सौंह] कसम या शपथ । उ.—(क) बार-बार कह बीर दोहाई, तुम मानत नहिं सोहन—८८६ । (ख) त्रिय तनु को दुख दूरि कियौ पिय दै-दैं अपनी सोहन—पृ. ३१५-४४।

सोहन पपड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोहन + पपड़ी] एक तरह की मिठाई ।

सोहन हलवा, (हलुआ) संज्ञा पुं. [हिं. सोहन + हलवा] एक तरह की मिठाई ।

सोहना—क्रि.अ.[सं.शोभन, प्रा.सोहण] (१) सुंदर लगना, शोभित होना । (२) भला या रुचिकर लगना, फबना ।

वि. सुंदर, सुहावना, मनोहर ।

सोहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. शोभनी] झाड़ू, बुहारी ।

वि. [हिं. सोहना] सुहावनी, मनभावनी ।

संज्ञा स्त्री. सुंदरी स्त्री, नायिका ।

संज्ञा स्त्री. एक प्रकार की रागिनी ।

सोहनो—क्रि. अ. [सं. शोभन] सोहना ।

वि. सुंदर, मनोहर । उ.—पहिरि पवित्रा सोहनो । ....। गिरिधरन लाल छबि सोहनो—२२८० ।

सोहबत—संज्ञा स्त्री. [अ.] संग, साथ, संगत ।

सोहमस्मि—पद [सं. सोऽहमस्मि] वह अर्थात् ब्रह्म मैं ही हूँ

सोहर—संज्ञा पुं. [सं. सूतिगृह, प्रा. सूइहर] (१) बच्चे का जन्म होने पर गाए जानेवाले मंगलगीत । (२)मंगलगीत

संज्ञा स्त्री. स्थान जहाँ बच्चे का जन्म हो ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] नाव का पाल खींचने की रस्सी ।

सोहराना, सोहरानो—क्रि. स. [हिं. सहलाना] किसी वस्तु या अंग पर धीरे-धीरे हाथ फेरना ।

सोहला—संज्ञा पुं. [हिं. सोहर] (१) बच्चे के जन्म पर गाए जानेवाले गीत । (२) मंगलगीत । (३) किसी देवी-देवता की पूजा के गीत ।

सोहहीं—क्रि. अ. [हिं. सोहना] शोभित होते हैं । उ.—कमल मुख कर कमल लोचन कमल मृदु पद सोहहीं —१० उ-२४ ।

सोहाइ—क्रि. अ.[हिं. सोहाना]अच्छा या रुचिकर लगता है । उ.—बिछुरे बारि मीनहिं अनत कहा सोहाइ—३४२४ ।

सोहाइन—वि. [हिं. सुहावन] मनोहर, सुंदर ।

सोहाई—क्रि. अ. [हिं. सोहाना] (१) शोभित होती है । उ.—बाँधत बंदन-माल, साथियै द्वारै धुजा सुहाई—सारा. ३९५ । (२) भला या अच्छा लगता है । उ.—सूरदास प्रभु बिनु ब्रज ऐसो, एको पल न सोहाई—२५३८ ।

वि. सुंदर, सुहावनी । उ.—सरद सोहाई आई रात ।

सोहाए—क्रि. अ. [हिं. सोहाना] अच्छा या भला लगता है । उ.—कहा करहि, कहाँ जाइ सखी री हरि बिनु कछु न सोहाए—२९९६ ।

सोहाग—संज्ञा पुं. [हिं. सुहाग] सौभाग्य । उ.-राज-सोहाग बढ़ो सबै कहा निहोरो मोहिं—१० उ.-८ ।

सोहागा—संज्ञा पुं. [हिं. सुहागा] एक खनिज ।

सोहागिन, सोहागिनि, सोहागिनी, सौहागिल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुहागिन] सधवा या सौभाग्यवती स्त्री । उ.—ता तीरथ-तप के फल लैके, स्याम सोहागिनि कीन्ही—६५६ ।

सोहागु—संज्ञा पुं. [हिं. सुहाग] सौभाग्य । उ.—अबलन जोग सिखावन आए चेरिहिं चपरि सोहागु—३०९५ ।

सोहात—क्रि. स. [हिं. सोहाना] अच्छा या भला लगता है, रुचता है । उ.—(क)सबन इहै सुहात—२६८१ । (ख) कछु न सुहात दिवस अरु राती—२८८२ । (ग) नहिंन सोहात कछु हरि, तुम बिनु—३४२३ । (घ) सबन कछू न सोहात—३४२६ ।

सोहाता—वि. [हिं. सोहना] सुंदर, सुहावना ।

सोहाती—वि. स्त्री. [हिं. सोहाता] मनभावनी, रुचिकर । उ.—बात बिचारि सोहाती कहियै—३२३१ ।

सोहाना, सोहानो—क्रि. अ. [हिं. सोहना] (१) सुंदर लगना, शोभित होना । (२) प्रिय लगना, रुचना ।

सोहाय—क्रि. अ. [हिं. सोहाना] अच्छा लगता है । उ.—तब हरि कह्यौ, सोहिं राधा बिन पल-छिन कछु न सोहाय—सारा. ७२२ ।

सोहाया, सोहायो, सोहायौ—वि. [हिं. सोहाना] मन-भावना, रुचिकर । उ.—मिल्यौ सोहायो साथ स्याम कौ, कहाँ कंस, कहाँ काग—३०९५ ।

सोहारद—संज्ञा पुं. [सं. सौहार्द] (१) सज्जनता । (२) मित्रता, प्रेम-भाव ।

सोहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. सु+आहार] (१) सादी पूरी । (२) बहुत छोटी-छोटी सादी या मीठी पूरियाँ जो देवी-देवताओं के पुजापे के लिए की जाती हैं । उ.—कान्ह कुँवर कौ कनछेदन है हाथ सोहारी भेली गुर की—१०-१८० ।

सोहाल—संज्ञा पुं. [सं. सु+आहार] एक तरह का सादा या नमकीन पकवान जो मैदे का बनता है ।

सोहाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुहारी] सुहारी ।

सोहावन—वि. [हिं. सुहावना] सुंदर, मनभावना ।

सोहावना—क्रि. अ. [हिं. सोहाना] (१) शोभित होना । (२) प्रिय या रुचिकर लगना, रुचना ।

वि. सुंदर, मनभावना, रुचिकर ।

सोहावनि, सोहावनी—वि. [हिं. सुहावना] मनभावना, रुचिकर ।

सोहासित—वि.[हिं. सोहाना] (१) मनभावना, रुचिकर । (२) सुंदर, सुहावना ।

संज्ञा पुं. [सुभावित] ठकुरसुहाती ।

सोहिं—क्रि. वि. [हिं. सौंहैं] सामने, सम्मुख ।

सोहिनी—वि. स्त्री. [हिं. सोहना] (१) सुहावनी, सुंदर । (२) प्रिय लगनेवाली, रुचिकर ।

संज्ञा स्त्री. करुण रस की एक रागिनी ।

सोहिल—संज्ञा पुं. [हिं. सुहेल] अगस्त्य तारा ।

सोहिला, सोहिलो, सोहिलौ—संज्ञा पुं. [हिं. सोहला] (१) बच्चे के जन्म पर गाए जानेवाले गीत। उ.—गावौं हरि कौ सोहिलौ मन-आखर दै मोहिं—१०-४०।

सोहिं, सोहीं, सोहें, सोहैं—क्रि. वि. [हिं. सौंह] सामने, आगे, सम्मुख।

सोहैं—क्रि. अ. [हिं. सोहना] सोहते हैं। उ.—संग-संग बल मोहन सोहैं—१०-११७।

सोहै—क्रि. अ. [हिं. सोहना] शोभित होता है, सुंदर लगता है। उ.—(क) सेत उपरना सोहै—१-४४। (ख) मोर मुकुट पीताम्बर सोहै—३-१३। (ग) भृकुटि पर मसि-बिंदु सोहै—१०-२२५।

सौं—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंह] कसम, शपथ। उ.—सुंदर स्याम हँसत सजनी सों नंद बबा की सौं री।

अव्य. [हिं. सा.] समान, तुल्य। उ.—(क) तिनुका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान—१-८। (ख) हरि सौं ठाकुर और न जन कौं—१-९।

प्रत्य. [प्र. सुंतो] से, द्वारा। उ.—(क) जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं—१-२५। (ख) गजराज ग्राह सौं अटक्यौ—१-३२। (ग) प्रेम पतंग दीप सौं—१-५५। (घ) बिमुखनि सौं रति जोरत दिन-प्रति—१-४९। (ङ) भावी काहूँ सौं न टरै—१-२६४। (च) कुँवरि सौं कहति वृषभानु-घरनी—६९८।

सौंकारा—संज्ञा पुं. [सं. सकाल] सबेरा, प्रातःकाल।

सौंकरै—क्रि. वि. [हिं. सौंकारा] (१) सबेरे। (२) नियत समय से पूर्व ही।

सौंघा—वि. [हिं. महँगा का विप.] (१) अच्छा। (२) वाजिब, ठीक। (३) सस्ता।

सौंघाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंघा] (१) उत्तमता। (२) औचित्य। (३) सस्तापन। (४) अधिकता।

सौंघी—वि. स्त्री. [हिं. सौंघा] (१) अच्छी। (२) ठीक, उचित। (३) सस्ती।

सौंचर—संज्ञा पुं. [हिं. सोंचर] एक तरह का नमक।

सौंज—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौज] वस्तु, सामग्री। उ.—(क) याहू सौंज संचि नहिं राखी—१-१३०। (ख) यह सौंज लादि कै हरि कै पुर लै जाहि—१-३१०। (ग) षटरस सौंज बनाइ जसोदा—३९७। (घ) दै सब सौंज अनंत लोकपति निपट रंक की नाईं—१० उ.—१३३।

सौंजा—संज्ञा पुं. [हिं. समझना] (१) आपस का समझौता। (२) गुप्त रूप से किया गया मंतव्य। (३) सौंपने की क्रिया या भाव।

सौंजाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंज] शोभा, पद और मान बढ़ानेवाली वस्तुएँ। उ.—बल विद्या धन धाम रूप गुन और सकल मिथ्या सौंजाई—१-१४।

सौंजु—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंज] वस्तु, सामग्री।

सौंड़, सौंड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] ओढ़ने की चादर, रजाई आदि।

सौंतुख, सौंतुष—क्रि. वि. [सं. सम्मुख] सामने, प्रत्यक्ष। उ.—देखि बदन चकित भई सौंतुष की सपनैं—४३९।

संज्ञा पुं. सम्मुख, प्रत्यक्ष।

सौंदना, सौंदनो—क्रि. स. [सं. संधम् = मिलना] (१) सानना, ओत-प्रोत करना। (२) मिट्टी आदि लगाकर गंदा करना।

सौंदर्ज, सौंदर्य—संज्ञा पुं. [सं. सौन्दर्य] खूबसूरती, सुंदरता, रमणीयता।

सौंदर्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. सौन्दर्य] सुंदरता।

सौंध—संज्ञा पुं. [हिं. सौध] (१) महल। (२) चाँदी।

संज्ञा स्त्री. [सं. सुगन्ध] खुशबू, सुगंध।

सौंधना सौंधनो—क्रि. स. [हिं. सौंदना] सानना।

क्रि. स. [सं. सुगन्धि] सुगंधित करना।

सौंधा—वि. [हिं. सोंधा] (१) सुगंधित। (२) तपी हुई भूमि पर वर्षा का पहला छींटा पड़ने या भुने हुए चने या बेसन की सुगंध के समान सुगंधवाला। (३) सुंदर। (४) रुचिकर।

संज्ञा पुं. सुगंधित पदार्थ।

सौंनमक्खी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोनामक्खी] सोनामक्खी।

सौंपति—क्रि. स. [हिं. सौंपना] सुपुर्द करती हूँ। उ.—दधि-माखन द्वै माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियौ—१०-३१३।

सौंपना, सौंपनो—क्रि. स. [सं. समर्पण, प्रा. सउप्पण] (१) (देख-रेख आदि के लिए किसी के) सुपुर्द या हवाले करना। (२) सँभालने के लिए कहना, सहेजना।

सौंपि—क्रि. स. [हिं. सौंपना] सुपुर्द या हवाले कर दे । उ.—अजहूँ सिय सौंपि नतरु बीस भुजा भानै—९-९७

प्र.—सौंपि दई—सुपुर्द या समर्पण कर दिया । उ.—स्याम बिना ये चरित करै को, यह कहिकै तनु सौंपि दई । सौंपि गए— सँभालने-सहेजने को सुपुर्द कर गये । उ.—भली भई तुम्हें सौंपि गए मोहिं, जान न देहौं तुमकौं—६८१ ।

सौंपी—क्रि. स. [हिं. सौंपना] सँभालने-सहेजने को सुपुर्द किया । उ.—कीजै कहा बाँधि करि सौंपी सूर स्याम के पानि—पृ. ३२२ (१३) ।

सौंपो, सौंपौ—क्रि. स. [हिं. सौंपना] सँभालने-सहेजने के लिए दो । उ.—यह तौ सूर ताहि लै सौंपो जिनके मन चकरी—३३६० ।

सौंप्यो, सौंप्यौ—क्रि. स. [हिं. सौंपना] सुपुर्द या समर्पण किया । उ.—(क) सूर सबै इनको क्यौं सौंप्यो, यह कहि पछितावै—पृ. ३३० (९०) । (ख) सिंधु तें काढ़ि संभु कर सौंप्यौ गुनहगार की नाईं—३०७७ ।

सौंफ—संज्ञा स्त्री. [सं. शतपुष्पा] एक पौधा जिसके बीज दवा और मसाले के काम आते हैं ।

सौंफिया, सौंफी—वि. [हिं. सौंफ] जिसमें सौंफ पड़ी हो ।

संज्ञा स्त्री. सौंफ की बनी शराब ।

सौंभरि—संज्ञा पुं. [सं. सौभरि] एक प्राचीन ऋषि ।

सौंर—संज्ञा पुं. [हिं. सौरी] वह स्थान जहाँ स्त्री प्रसव करती है, सूतिकागार ।

सौंरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. साँवला] साँवलापन ।

सौंरना, सौंरना—क्रि. स. [हिं. सुमरना] स्मरण करना ।

क्रि. अ. [हिं. सँवरना] सँवारा या ठीक किया जाना

क्रि. स. सँवारना, ठीक करना ।

सौंसे—वि. [सं. समस्त] सब, कुल ।

सौंह—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौगंद, सौगंध] कसम, शपथ । उ.—(क) उनहूँ जाइ सौंह दै पूछी मैं करि पठयौ सटिया—१-१९२ । (ख) कहा कहौं बलि जाउँ, छोरि तू, तेरी सौंह दिवाई—३६३ । (ग) कंस नृपति की सौंह है, पुनि-पुनि कही तुमको—२५७७ । (घ) चरन कमल की सौंह कहत हौं, इह सँदेस मोहिं बिष सों लागत—३४०७ ।

संज्ञा पुं. [सं. सम्मुख] सामना, समक्षता ।

क्रि. वि. सामने, सम्मुख ।

सौंहन—वि. [हिं. सोहन] सुंदर, सुहावना ।

संज्ञा पुं. (१) सुंदर पुरुष । (२) नायक ।

संज्ञा पुं. एक पक्षी ।

सौंही—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह का हथियार ।

क्रि. वि. सामने, सम्मुख ।

सौंहें, सौंहैं—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. सौंह = शपथ] कसम, शपथ । उ.—(क) दै दै सौंहैं नंद बबा की जननी पै लै आइ—१०-२४० । (ख) मोहिं अपने बबा की सोहैं कान्हहिं अब न पत्याउँ—३४५ ।

क्रि. वि. [सं. सम्मुख] सामने, समक्ष ।

सौ—संज्ञा पुं. [सं. शत] नब्बे से दस अधिक की संख्या या अंक ।

वि. जो गिनती में पचास का दूना हो । उ.—(क) जाके जोधा हे सौ भाई—१-२४ । (ख) सौ भैया दुरजोधन राजा—१-४३ ।

मुहा. सौ बातन की एक बात—सारांश, तात्पर्य । उ.—सौ बातन की एकै बात—१० उ.-१२६ । सौ की सीधी एक—सबका निचोड़ या सार । सौ बार कहना—बार-बार या अनेक बार कहना । उ.—जौ पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार—१-३२५ ।

अव्य. वि. [हिं. सा] समान, तुल्य ।

सौक—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौत] सपत्नी ।

वि. [हिं. सौ + एक या क] एक सौ ।

क्रि. वि. सौ के लगभग, लगभग सौ ।

संज्ञा पुं. [अ. शौक़] (१) किसी वस्तु की प्राप्ति या सुख के उपभोग की प्रबल इच्छा ।

मुहा. सौक से—प्रसन्नता से, सहर्ष ।

(२) चसका, व्यसन ।

सौकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौत] सपत्नी ।

सौकर्य—संज्ञा पुं.[सं.] (१) 'सुकर' का भाव, सुसाध्यता । (२) सुबिधा, सुभीता ।

सौकीन—वि. [हिं. शौकीन] (१) जिसे किसी बात का शौक या व्यसन हो । (२) ठाट-बाट से या बना-ठना रहनेवाला ।

सौकीनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. शौकीनी] (१) तरह-तरह के शौक या व्यसन करने का भाव। (२) बना-ठना या ठाट-बाट से रहने का भाव।

सौकुमार्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुकुमारता।(२) यौवन। (३) काव्य का एक गुण जो ग्राम्य और परुष शब्दों के त्याग एवं कोमल शब्दों के प्रयोग से आता है।

सौक्ति—वि. [सं.] सूक्त संबंधी।

सौख—संज्ञा पुं. [हिं. शौक] (१) किसी वस्तु की प्राप्ति या उसके सुखोपभोग की प्रबल कामना। (२) चस्का, व्यसन।

सौखिक—वि. [सं.] सुख चाहनेवाला, सुखार्थी।

सौखीन—वि. [हिं. शौकीन] (१) किसी बात का शौक या व्यसन करनेवाला। (२) बना-ठना रहनेवाला, छैला।

सौख्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुख का भाव, सुखता। (२) सुख, आराम।

सौगंद—संज्ञा स्त्री. [सं. सौगंध] कसम, शपथ।

सौगंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुगंध। (२) सुगंधित तेल आदि का व्यापार करनेवाला, गंधी।

वि. सुगंधित, सुगंधयुक्त।

संज्ञा स्त्री. [सं. सौगन्ध] कसम, शपथ।

सौगंधिक—संज्ञा पुं. [सं. सौगन्धिक] गंधी।

वि. सुगंधिक, सुवासित।

सौगत—संज्ञा पुं. [सं.] सुगत (बुद्ध) का अनुयायी।

वि. (१) सुगत-संबंधी। (२) बौद्ध मत का।

सौगतिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुगत (बौद्ध)का अनुयायी, बौद्ध भिक्षु। (२) नास्तिक।

सौगरिया—संज्ञा पुं. [देश.] क्षत्रियों की एक जाति।

सौगात—संज्ञा स्त्री. [तु.] तोहफा, भेंट, उपहार।

सौगाती—वि. [हिं. सौगात] (१) सौगात या उपहार के योग्य। (२) बढ़िया, उत्तम।

सौघा—वि. [हिं. महँगा का विप.] सस्ता।

सौच—संज्ञा पुं. [सं. शौच] (१) शुद्धता। (२) पविता। जीवन-यापन। (३)मल-त्याग, कुल्ला-दातुनआदिकृत्य।

सौचि, सौचिक—संज्ञा पुं. [सं. सौचिक] सूची-कर्म से जीविकार्जन करनेवाला, दरजी।

सौज—संज्ञा स्त्री. [सं. सज्जा] (१) साज-सामान,सामग्री उ.—(क) लेहु सँभारि देहु पिय अपनी बिन प्रमान सब सौज धरी। (ख) जन पुकारे हरि पै जाइ। जिनकी यह सब सौज राधिका तेरे तनु सब लई छँड़ाइ। (२) चीज, वस्तु।

वि. [सं. सौजस्] बलवान, शक्तिशाली।

सौजना, सौजनो—क्रि. अ. [हिं. सजना] सँवरना।

क्रि. स. [हिं. सजाना] सँवारना।

सौजन्य—संज्ञा पुं. [सं.] भलमंसाहत, सुजनता।

सौजन्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. सौजन्य] भलमंसी, सुजनता

सौजा—संज्ञा पुं. [हिं. सावज] वह पशु या पक्षी जिसका शिकार किया जाता हो।

सौड़—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंड़] ओढ़ने की चादर।

सौड़ा—वि. [हिं. चौड़ा का विप.] कम चौड़ा।

सौत,सौतन,सौतनि,—संज्ञा स्त्री. [सं.सपत्नी] किसी स्त्री के प्रेमी या पति की दूसरी प्रेमिका या पत्नी, सवत।

सौति—संज्ञा पुं. [सं.] 'सूत' का पुत्र, कर्ण।

संज्ञा स्त्री. [हिं. सौत] सवत, सौकन, सपत्नी। उ.—(क) मानौं स्वर्गहिं तैं सुरपति-रिपु-कन्या-सौति आइ ढरि सिंदहिं—१०-१०७। (ख) चेरि सौति भइ आइ—६५६। (ग) नींद जो सौति भई रिपु हमको, सहि न सकी रति तिल की—२७८६।

सौतिन, सौतिनि, सौतिनी—संज्ञा स्त्री.[हिं.सौता] सवत, सपत्नी। उ.—धरनी नख चरननि कुरवारति सौतिन भाग सुहाग दुहीली—१३०९।

सौति-साल—संज्ञा स्त्री. [हिं. सौति + साल] सौत के कारण होनेवाली कुढ़न या मिलनेवाला दुख। उ.—(क) इक टक चितै रही प्रतिबिंबहिं सौति-साल जिय जानी—१८६५। (ख) सौति-साल उर में अति साल्यौ नखसिख लौं भहरानी—२६७३।

सौतुक, सौतुख, सौतुष—संज्ञा पुं. [हिं. सौंतुख] सामना, समक्ष, समक्षता, प्रत्यक्षता। उ.—देखि बदन चकृत भई सौतुक की सपने।

क्रि. वि. सामने, समक्ष, प्रत्यक्ष।

सौतेला, सौतेलो—वि. [हिं. सौत + एला, एलो] (१)

सौत से उत्पन्न। (२) जिसका संबंध सौत के रिश्ते या पक्ष से हो।

सौत्र—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण।

वि. (१) सूत-संबंधी। (२) सूत्र-संबंधी।

सौत्रांत्रिक—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्धों का एक वर्ग।

सौत्रिक—संज्ञा पुं. [सं.] जुलाहा, तंतुवाय।

सौदर्य—संज्ञा पुं. [सं.] भाईपन, भ्रातृत्व।

सौदा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) वह चीज जो खरीदी या बेची जाय।

मुहा. सच्चा सौदा—खरा सौदा, ऐसा सौदा जिसमें किसी प्रकार का धोखा या हानि न हो।

(२) खरीदने-बेचने या लेन-देन की बातचीत। (३) खरीदने-बेचने की बातचीत पक्की करना।

मुहा० सौदा करना—खरीदने की बात करना। सौदा कराना—खरीदने की बातचीत कराना। सौदा पटना या होना—खरीदने की बातचीत पक्की होना। सौदा पटाना—खरीदने की बातचीत पक्की करना या कराना।

(४) क्रय-विक्रय, व्यापार।

मुहा० सच्चा सौदा, सौदा साँचौ—खरा व्यापार, व्यापार जिसमें किसी प्रकार का छल-कपट न हो। उ.—सूर स्याम को सौदा साँचौ—१-३१०।

यौ. सौदा-सुलुफ—खरीदन की चीजें। सौदा-सूत—व्यापार, व्यवहार।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) पागल, बावला या दीवानापन। (२) उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर।

सौदाई—संज्ञा पुं. [हिं. सौदा] पागल, बावला।

मुहा० सौदाई होना—बहुत आसक्त होना। सौदाई बनाना—अपने ऊपर किसी को आसक्त करना।

सौदागर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] व्यापारी, व्यवसायी।

सौदागरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा] वाणिज्य, व्यापार।

सौदामनी, सौदामिनि, सौदामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सौदामनी] (१) बिजली, विद्युत। उ.—बंदन सों ससि में बए मनो सौदामिनि के बीज—२०६५। (२) एक रागिनी।

सौदामनीय, सौदामिनीय—वि. [सं सौदामनीय] बिजली जैसा चंचल और चमकदार।

सौध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रासाद। (२) चाँदी।

सौधकार—संज्ञा पुं. [सं.] भवन बनानेवाला, राज।

सौधना, सौधनो—क्रि. स. [हिं. सोधना] (१) शुद्ध करना। (२) शुद्धता की जाँच करना। (३) भूल या त्रुटि दूर करना। (४) ढूँढ़ना। (५) धातु संस्कार करना। (६) ऋण चुकाना। (७) निश्चित करना।

सौनंद—संज्ञा पुं. [सं.] बलराम के मूसल का नाम।

सौनंदी—संज्ञा वि. [सं. सौनन्दिन्] 'सौनंद' नामक मूसलधारी, बलराम।

सौन—क्रि. वि. [सं. सम्मुख] सामने, प्रत्यक्ष।

संज्ञा पुं. [सं. स्वर्ण] (१) सोना, स्वर्ण। (२) पीला या सुनहरा रंग। (३) अबीर।

सौनक, सौकनि—संज्ञा पुं. [सं.शौनक] शौनक ऋषि।

उ.— सूत सौनकनि सौं यौं कह्यौ—१-२०७।

सौनजाइ, सौनजुही—संज्ञा स्त्री. [हिं. सोनजुही] पीली जूही या चमेली, स्वर्ण यूथिका।

सौना—संज्ञा पुं. [हिं. सोना] स्वर्ण, (धातु)।

सौंपना, सौंपनो—क्रि. स. [हिं. सौंपना] सौंपना।

सौपर्ण—वि. [सं.] सुपर्ण अथवा गरुण-संबंधी।

सौबल—संज्ञा पुं. [सं.] गांधार के राजा सुबल का पुत्र शकुनि जो दुर्योधन का मामा था।

सौवीर— संज्ञा पुं. [सं. सौवीर] (१) सिंधु नद के आसपास के प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) उस प्रदेश का निवासी।

सौभग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौभाग्य। (२) सुख। (३) ऐश्वर्य। (४) सौंदर्य।

सौभद्र—संज्ञा पुं. [सं.] सभद्रा का पुत्र, अभिमन्यु।

सौभरि—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि जिन्होंने यमुना में एक मत्स्य को मछलियों से भोग करते देख, काम-वासना से मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह करके उनसे पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये। अंत में भोग से तृप्ति न होते देख विरक्त होकर कठोर तपस्या करने के उपरांत शरीर त्याग दिया था। उ.—सौभरि रिषि जमुना-तट गयौ। तहाँ मच्छ इक देखत भयौ— ९-८।

सौभागिन, सौभागिनि, सौभागिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. सौभाग्य] सधवा या सुहागिन स्त्री ।
सौभाग्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खुशकिस्मती, अच्छा भाग्य । (२) सुख, आनंद । (३) कुशल-क्षेम । (४) स्त्री के सधवा होने की अवस्था । (५) ऐश्वर्य, वैभव ।
सौभाग्यवती—वि. स्त्री. [सं.] (१) सधवा, सुहागिन । (२) अच्छे भाग्यवाली ।
सौभाग्यवान, सौभाग्यवान्—वि. [सं. सौभाग्यवत्] (१) अच्छे भाग्यवाला । (२) सुख-संपन्न ।
सौमन—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन अस्त्र ।
सौमनस—वि. [सं.] (१) फूलों का । (२) सुंदर ।
संज्ञा पुं. (१) प्रसन्नता । (२) अस्त्रों को निष्फल करनेवाला अस्त्र ।
सौमनस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रसन्नता । (२) प्रेम ।
वि. आनंद या प्रसन्नता देनेवाला ।
सौमित्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लक्ष्मण । (२) मित्रता ।
सौमित्रा—संज्ञा स्त्री. [हिं. सुमित्रा] सुमित्रा जो लक्ष्मण की माता थी । उ.—सौमित्रा कैकेयी मन आनंद यह सबहिन सुत जायौ—९-२२ ।
सौमित्रि—संज्ञा पुं. [सं.] सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ।
सौम्य—वि. [सं.] (१) सोमरस-संबंधी । (२) चंद्रमा-संबंधी । (३) नम्र और सुशील । (४) उत्तर की ओर का । (५) शुभ, मांगलिक ।
संज्ञा पुं. (१) सोम यज्ञ । (२) चंद्रमा का पुत्र, बुध । (३) अगहन मास । (४) सुशीलता । (५) एक दिव्यास्त्र ।
सौम्यग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (चार) शुभ ग्रह—चंद्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र ।
सौम्यता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सुशीलता । (२) शीतलता । (३) सुंदरता । (४) उदारता ।
सौम्यदर्शन—वि. [सं.] जो देखने में सुंदर हो ।
सौम्यी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदनी । चंद्रिका ।
सौर—वि. [सं.] (१) सूर्य का, सूर्य-संबंधी । (२) सूर्य से उत्पन्न । (३) सूर्य के अनुसार या उससे प्रभावित ।
संज्ञा पुं. (१) सूर्य का पुत्र, शनि । (२) सूर्य का उपासक । (३) सूर्यवंशी क्षत्रिय ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंड] ओढ़ने की चादर ।
सौरज—संज्ञा पुं. [सं. शौर्य्य] शूरता, वीरता ।
सौर-जगत—संज्ञा पुं. [सं. सूर्य्य+जगत] सूर्य और उसकी परिक्रमा करनेवाले ग्रहों का समूह ।
सौरत वि. [सं.] सुरत या रति-संबंधी ।
सौरत्य—संज्ञा पुं. [सं.] रति-सुख, संभोग ।
सौर दिवस—संज्ञा पुं. [सं.] एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय ।
सौरभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खुशबू, सुगंध । उ.—(क) त्रिबिध समीर सुमन सौरभ मिलि मत्त मधुप गुंजार । (ख) ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है द्रुम-तृन सूँघि फिर्यौ—२-२६ । (२) आम, आम्र ।
वि. सुरभि अर्थात् गाय से उत्पन्न ।
सौरभमय—वि. [सं.] सुगंधित ।
सौरभित—वि. [सं.] सुगंध से युक्त ।
सौर मास—संज्ञा पुं. [सं.] तीस दिन का वह समय जब सूर्य बारह राशियों में से किसी एक राशि में रहता है; एक संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक का समय ।
सौरवर्ष, सौरसंवत्सर—संज्ञा पुं. [सं.] उतना काल जितना सूर्य को बारह राशियों पर घूमने में लगता है; एक मेष संक्रांति से दूसरी मेष संक्रांति तक का समय ।
सौरसेन—संज्ञा पुं. [सं. शौरसेन] आधुनिक मथुरा और उसके आसपास के प्रदेश का पुराना नाम जो राजा शूरसेन के नाम पर पड़ा था ।
सौरस्य—संज्ञा पुं. [सं.] रसीलापन, सुरसता ।
सौराटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी ।
सौराष्ट्र संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुजरात-काठियावाड़ का पुराना नाम, सोरठ देश । (२) उक्त देश का निवासी ।
सौराष्ट्रक—संज्ञा पुं. [सं.] सौराष्ट्र का निवासी ।
सौराष्ट्रिक—वि. [सं.] सौराष्ट्र-संबंधी ।
संज्ञा पुं. सौराष्ट्र प्रदेश का निवासी ।
सौरास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन दिव्यास्त्र ।
सौरि—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य का पुत्र, शनि ।
सौरिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शनि ग्रह । (२) स्वर्ग ।
सौरी—संज्ञा स्त्री [सं. सूतिका] वह स्थान जहाँ स्त्री प्रसव करे, सूतिकागार ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सूर्य की पत्नी । (२) गाय ।
संज्ञा स्त्री. [सं. सफरी] एक तरह की मछली ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. सौंड़] ओढ़ने की चादर ।
सौरे, सौरेय, सौरेयक—संज्ञा पुं. [सं.] सफेद कटसरैया या झिंटी ।
सौर्य—वि. [सं. सौर्य्य] सूर्य-संबंधी ।
संज्ञा पुं. सूर्य का पुत्र, शनि ।
सौवर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] सोना (धातु), सुवर्ण ।
वि. सोने का ।
सौवाँ—वि. [हिं. सौ+वाँ] जिसका स्थान निन्यानबे की संख्या के बाद पड़े ।
सौवीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंधु नद के आसपास के प्रदेश का प्राचीन नाम । (२) उक्त प्रदेश का निवासी या राजा ।
सौवों, सौवौं—वि. [हिं. सौवाँ] जिसका स्थान निन्यानबे की संख्या के बाद पड़े । उ.—सौवों जज्ञ सगर जब ठयौ। इंद्र अस्व कौं हरि लै गयौ—९-९ ।
सौष्ठव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुडौलता, सुष्ठता । (२) सौंदर्य । (३) फुर्ती, तेजी ।(४) नाटक का एक अंग ।
सौसन—संज्ञा पुं. [हिं. सोसन] एक पौधा ।
सौसनी—संज्ञा पुं. [हिं. सोसनी] लाली मिला नीला या पीला रंग ।
वि. सोसन के फूल के रंग का ।
सौहँ—संज्ञा स्त्री. [सं. शपथ, प्रा. सवह] कसम, सौगंध ।
क्रि. वि. [सं. सम्मुख, प्रा. सम्मुह] सामने, समक्ष ।
सौहर—संज्ञा पुं. [फ़ा. शौहर] पति ।
सौहरा—संज्ञा पुं. [हिं. ससुर] ससुर ।
सौहार्द, सौहार्द्य—संज्ञा [सं.] (१) मित्रता, बंधुत्व । (२) सज्जनता ।
सौहीं—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. सोहन] एक तरह का हथियार ।
क्रि. वि. [हिं. सौहँ] सामने, समक्ष ।
सौहृद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मित्रता । (२) मित्र ।
वि. सुहृद या मित्र-संबंधी ।
स्कंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निकलने या बाहर आने की क्रिया । (२) विनाश, ध्वंस । (३) देव सेनापति कार्तिकेय । (४) देह, शरीर ।

[स्कंद]क—संज्ञा पुं. [सं.] सिपाही, सैनिक ।
स्कंदगुप्त—संज्ञा पुं. [सं.] गुप्त वंश का एक प्रसिद्ध सम्राट जो 'विक्रमादित्य' के नाम से भी प्रसिद्ध है ।
स्कंदजननी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती, दुर्गा ।
स्कंदजित, स्कंदजित्—संज्ञा पुं. [सं. स्कंदजित्] स्कंद को जीतनेवाले विष्णु ।
स्कंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोखना, शोषण । (२) जाना, गमन । (३) बहना, गिरना, स्खलन ।
स्कंदपुराण—संज्ञा पुं. [सं.] अठारह पुराणों में एक ।
स्कंदित—वि. [सं.] बहा हुआ, स्खलित ।
स्कंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोढ़ा, कंधा । (२) वृक्ष के तने का ऊपरी भाग जिसमें से डालियाँ निकलती हैं, कांड । (३) डाल, शाखा । (४) झुंड, समूह । (५) सेना का अंग, व्यूह । (६) ग्रंथ का विभाग या खंड जिसमें कोई पूरा प्रसंग हो । उ.—व्यास कह्यौ सुकदेव सौं, श्रीभागवत बखानि । द्वादस स्कंध परम सुभ प्रेम-भक्ति की खानि—१०-१ । (७) मार्ग, पंथ । (८) देह, शरीर । (९) वह वस्तु जिसका राज्याभिषेक में उपयोग हो । (१०) युद्ध, संग्राम । (११) दर्शन शास्त्र में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ।
स्कंधदेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कंधा । (२) पेड़ का तना ।
स्कंधवह स्कंधवाह—संज्ञा पुं. [सं. स्कंधवाह] वह पशु जो कंधों के बल बोझ खींचता हो ।
स्कंधावार—संज्ञा पुं. [सं.](१) राजा का डेरा या शिविर । (२) सेना का पड़ाव, छावनी ।
स्कंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंभा । (२) ईश्वर ।
स्खलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चीरना-फाड़ना । (२) हिंसा, हत्या । (३) सताना, उत्पीड़न । (४) गिरना, बहना ।
स्खलित—वि. [सं.] (१) गिरा या बहा हुआ । (२) फिसला या सरका हुआ । (३) लड़खड़ाया हुआ, विचलित । (४) चूका हुआ, लक्ष्य से हटा हुआ ।
स्तंबक—संज्ञा पुं. [सं.] गुच्छा ।
स्तंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंभा । (२) पेड़ का तना । (३) (हर्ष, लज्जा, भय आदि से) शरीर के अंगों का शिथिल या जड़ हो जाना, जो साहित्य में एक प्रकार का सात्विक भाव माना गया है । (४) जड़ता, अच-

लता। (५) रुकावट, प्रतिबंध। (६) वह तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा, गति या शक्ति रोकी जाय। (७) वह व्यक्ति, तत्व आदि जो किसी संस्था, कार्य-सिद्धांत आदि का आधार-स्वरूप हो। (८) समाचार-पत्रों का विषय-विशेष के अनुसार किया गया विभाग।

स्तंभक—वि. [सं.] (१) रोकनेवाला, रोधक। (२) संभोग-काल में वीर्य को शीघ्र स्खलित होने से रोकनेवाला (प्रयोग या औषध)।

संज्ञा पुं. खंभा, स्तम्भ।

स्तंभना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'स्तंभ' का भाव, अवरुद्धता। (२) जड़ता, अचलता।

स्तंभन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रुकावट, अवरोध। (२) वीर्य-पात को रोकना। (३) शीघ्र वीर्य-पात को रोकने की औषध। (४) सहारा, टेक। (५) जड़ या निश्चेष्ट करना। (६) वह तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा, शक्ति आदि को रोका जाय। (६) कामदेव के पाँच बाणों—उन्माद, शोषण, तापन, सम्मोह, और स्तंभन—में एक।

स्तंभित—वि. [सं.] (१) जड़, सुन्न, निश्चल, निश्चेष्ट। (२) ठहरा या ठहराया हुआ। (३) रुका या रोका हुआ। (४) आश्चर्य-युक्त, चकित।

स्तन—संज्ञा पुं. [सं.] स्त्रियों या मादा पशुओं के शरीर का वह अंग जिसमें दूध रहता है।

स्तनन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ध्वनि, नाद। (२) बादलों की गर्जन। (३) कराह, आर्तनाद।

स्तनप—वि. [सं.] दूध पीनेवाला (बच्चा)।

स्तन-पान—संज्ञा पुं. [सं.] स्तन से दूध पीना।

स्तनपायिका—वि. [सं.] दूध पीती (बच्ची)।

स्तनपायी—वि. [सं. स्तनपायिन्] दूध पीता (बच्चा)।

स्तन्य—संज्ञा पुं. [सं.] दूध।

वि. (१) जो स्तन में हो। (२) स्तन-संबंधी।

स्तब्ध—वि. [सं.] (१) जड़, सुन्न, अचल, निश्चेष्ट। (२) दृढ़ता से स्थिर। (३) धीमा, सुस्त, मंद।

स्तब्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जड़ता, अचलता। (२) दृढ़ता, स्थिरता। (३) सुस्ती, मंदता। (४) सन्नाटा।

स्तर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तह, परत। (२) भूमि का वह विभाग जो भिन्न-भिन्न कालों में बनी हुई उसकी तहों या परतों के आधार पर होता है। (३) कार्य-संपादन, उत्सव-आयोजन, जीवन-यापन आदि में व्यय इत्यादि की दृष्टि से लगायी जानेवाली अनुमानित उच्च, मध्यम अथवा निम्न श्रेणी।

स्तरण—संज्ञा पुं. [सं.] फैलाना, बिखेरना।

स्तव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी देवी-देवता की पद्यबद्ध स्तुति या गुण-गान, स्तोत्र। (२) स्तुति, प्रार्थना। (३) श्लाघा प्रशंसा।

स्तवक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्तव, स्तुति या प्रार्थना करनेवाला। (२) फूलों का गुच्छा, गुलदस्ता। (३) झुंड, समूह। (४) ढेर, राशि। (५) पुस्तक का अध्याय या परिच्छेद।

स्तवन—संज्ञा पुं. [सं.] स्तुति, गुण-कथन।

स्तिमित—वि. [सं.] (१) तर, गीला, आर्द्र। (२) स्थिर, निश्चल। (३) शांत। (४) प्रसन्न, संतुष्ट।

स्तीर्ण—वि. [सं.] (१) दूर तक फला हुआ, विस्तृत। (२) इधर-उधर बिखरा हुआ, विकीर्ण।

स्तुत—वि. [सं.] जिसकी स्तुति की गयी हो।

स्तुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रशंसा, गुणकथन, प्रार्थना। उ.—(क) कपिल स्तुति तिहिं बहु बिधि कीन्हीं—९-९। (ख) अक्रूर बिमल स्तुति गावै—२५५७। (ग) लोक-लोकन बिदित कथा तुरतही गई, करन स्तुतिहिं जहाँ तहाँ आए—२६१८।

स्तुतिवादक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्तुति या प्रशंसा करने वाला। (२) खुशामदी, चाटुकार।

स्तुती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्तुति] प्रार्थना, बड़ाई। उ.—किएँ नर की स्तुती कौन कारज सरै, करै सो आपनो जन्म हारै—४-११।

स्तुत्य—वि. [सं.] स्तुति या प्रशंसा के योग्य।

स्तूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिट्टी-पत्थर का ढूह, टीला। (२) वह ढूह या टीला जिसके नीचे भगवान बुद्ध या किसी अन्य बौद्ध महात्मा की अस्थि, दाँत, केश आदि स्मृति-चिह्न संरक्षित हों।

स्तेन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चोर। (२) चोरी।

स्तेय—संज्ञा पुं. [सं.] चोरी का कार्य।

स्तोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बूंद । (२) चातक (पक्षी) ।
स्तोता—वि. [सं. स्तोतृ] स्तुति करनेवाला ।
स्तोत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवी-देवता की पद्यबद्धस्तुति । (२) प्रार्थना, स्तुति ।
स्तोम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्तुति । (२) समूह, राशि ।
स्त्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नारी । (२) पत्नी ।
स्त्रीजित, स्त्रीजित्—वि. [सं. स्त्रीजित्] स्त्री या पत्नी के वश में रहनेवाला ।
स्त्रीत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) 'स्त्री' होने का भाव, गुण या धर्म । (२) स्त्रियों जैसा भाव, जनानापन । (३) स्त्री का वह गुण जिसके अनुसार वह पति के अतिरिक्त किसी से प्रेम या शरीर-संबंध नहीं करती, सतीत्व । (४) (व्याकरण में) शब्द का स्त्री-लिंग-वाची प्रत्यय ।
स्त्री-धन—संज्ञा पुं. [सं.] ऐसा धन जो स्त्री को मैके या ससुराल से मिले और जिस पर एकमात्र उसी का अधिकार रहे ।
स्त्री-धर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्त्री का (प्रति मास) रजस्वला होना । (२) स्त्री का कर्तव्य ।
स्त्रीलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] व्याकरण में वह शब्द जो स्त्री-जाति का अथवा वस्तु के अल्पार्थक या सुकुमार रूप का सूचक होता है ।
स्त्रीव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] पत्नी के अतिरिक्त दूसरी स्त्री की कामना न करना ।
स्त्रीव्रती—वि. [सं. स्त्रीव्रत] जो पत्नी के अतिरिक्त दूसरी स्त्री की कामना न करे ।
स्त्रैण—वि. [सं.] (१) स्त्री-संबंधी । (२) स्त्रियों-जैसा । (३) स्त्री या पत्नी के वश में रहनेवाला । (४) जो स्त्रियों के संपर्क में ही रहता हो ।
स्थ—प्रत्य. [सं.] एक प्रत्यय जो शब्दांत में लगकर मुख्यतः चार अर्थ देता है—स्थित, विद्यमान, निवासी और लीन ।
स्थकित—वि. [हिं. थकित] थका हुआ, शिथिल ।
स्थगन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छिपाना, लुकाना । (२) ढकना, आच्छादन । (३) (कार्य, विचार, बैठक आदि) कुछ समय के लिए रोक देना ।
स्थगित—वि. [सं.] (१) ढका हुआ, आच्छादित । (२) छिपा हुआ, तिरोहित । (३) बंद, रुद्ध । (४) रोका या ठहराया हुआ । (५) जो कुछ समय के लिए रोक दिया गया हो ।
स्थल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जमीन, भूमि । (२) जल से रहित भूमि । (३) जगह, स्थान । (४) ऐसी जगह जहाँ कोई विशेष रचना, निर्माण आदि हो या होने को हो । (५) मौका, अवसर ।
स्थल-कमल—संज्ञा पुं. [सं.] एक फूल ।
स्थलगामी—वि. [सं. स्थलगामिन्] भूमि पर रहने-बसने वाला (प्राणी) ।
स्थलचर—वि. [सं.] भूमि पर रहने-बसनेवाला (प्राणी) ।
स्थलचारी—वि. [सं. स्थलचारिन्] भूमि पर रहने या विचरण करनेवाला (प्राणी) ।
स्थलज—वि. [सं.] जो भूमि से उत्पन्न हो ।
स्थल-युद्ध—संज्ञा पुं. [सं.] मैदान की लड़ाई ।
स्थल-विग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] मैदान का युद्ध ।
स्थली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जमीन, भूमि । (२) जगह या स्थान-विशेष । उ.—प्रगट भई कुच-स्थली सोभ्यो जोबन-सूरि—२०६५ ।
स्थलीय—वि. [सं.] (१) भूमि का, भूमि-संबंधी । (२) भूमि पर रहने-बसनेवाला । (३) किसी स्थान का, स्थानीय ।
स्थविर—संज्ञा पुं. [सं.] बुढ़ा मनुष्य ।
स्थविरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बूढ़ी स्त्री ।
स्थाई—वि. [सं. स्थायी] स्थायी ।
स्थाणु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंभा, स्तंभ । (२) (पेड़ का) ठूंठ ।(३) एक तरह का भाला । (४) स्थिर वस्तु । वि. स्थिर, अचल, स्थावर ।
स्थान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठहराव, स्थिति । (२) मैदान, खुला स्थान । (३) विशेषतायुक्त स्थल । उ.—पावै मेरो परम स्थान—११-६ । (४) नियत या निश्चित स्थल । (५) घर, आवास । (६) काम करने की जगह । (७) दर्जा, ओहदा, पद । (८) (व्याकरण में) मुख का वह अंग जहाँ से किसी वर्ण का उच्चारण हो । (९) मंदिर, देवालय । (१०) मौका, अवसर । (११) कारण, उद्देश्य । (१२) जगह (की जगह पर), बदला

(के बदले में)। उ.—पात्र स्थान हाथ हरि दीन्हें—२-२०।

स्थानच्युत—वि. [सं.] (१) जो अपने स्थान से गिर या हट गया हो। (२) जो अपने पद से हटा दिया गया हो।

स्थानभ्रष्ट—वि. [सं. स्थान+भ्रष्ट] स्थानच्युत।

स्थानांतर—संज्ञा पुं. [सं.] प्रस्तुत से भिन्न स्थान।

स्थानांतरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु का एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर रखा जाना। (२) किसी वस्तु का एक व्यक्ति से दूसरे के हाथ में पहुंचना। (३) किसी कर्मचारी या कार्यकर्ता का एक विभाग से दूसरे विभाग में या एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाना, बदली।

स्थानांतरित—वि. [सं.] जिसका स्थान बदल दिया गया हो, जो एक स्थान से दूसरे पर रख या भेज दिया गया हो।

स्थानापन्न—वि. [सं.] किसी के न रहने पर उसके स्थान पर अस्थायी रूप से बैठने या काम करनेवाला।

स्थानिक—वि. [सं.] उस स्थान का जिसके संबंध में कुछ चर्चा या उल्लेख हो।

स्थानीय—वि. [सं.] (१) जो किसी स्थान पर स्थित हो। (२) उस स्थान से संबंधित जिसका उल्लेख हुआ हो।

स्थानेश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] थानेश्वर नामक तीर्थ।

स्थापक—वि. [सं.] (१) स्थापन करनेवाला। (२) (संस्था आदि की) स्थापना करनेवाला, संस्थापक।

संज्ञा पुं. (१) मूर्ति या प्रतिमा बनानेवाला। (२) (नाटक में) सूत्रधार का सहकारी।

स्थापत्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भवन-निर्माण। (२) वह विद्या जिसमें भवन-निर्माण-संबंधी विषयों का विवेचन हो, वास्तुशास्त्र।

स्थापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दृढ़तापूर्वक जमाना, बैठाना या रखना। (२) स्थायी रूप से स्थित करना। (३) नयी संस्था का नया कार-बार खड़ा करना। (४) किसी विषय को (सप्रमाण) सिद्ध करना।

स्थापना—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्थापन।

क्रि. स. स्थापित करना।

स्थापित—वि. [सं.] (१) जिसकी स्थापना की गयी हो। (२) व्यवस्थित, निर्दिष्ट। (३) निश्चित। (४) दृढ़ता से स्थित।

स्थायित्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थायी होने का भाव, गुण, धर्म या अवस्था। (२) स्थिरता।

स्थायी—वि. [सं. स्थायिन्] (१) टिकने, ठहरने या स्थिर रहनेवाला। (२) बहुत दिन तक चलने या बना रहनेवाला।

संज्ञा पुं. संगीत में किसी गीत का पहला चरण, टेक (दूसरा पद 'अंतरा' होता है)।

स्थायी भाव—संज्ञा पुं. [सं.] वे तत्व या भाव जो मनुष्य के मन में सदा निहित रहते और विशिष्ट कारण से जाग्रत होते हैं और रस-परिपाक में, विरुद्ध-अविरुद्ध भावों को अपने में समा लेते हुए, अंत तक बने रहते हैं। इनके आधार पर साहित्य में नौ रस माने गये हैं जिनके नाम और उनके स्थायी भाव ये हैं – शृंगार रस का स्थायीभाव रति, हास्य का हास, करुण का शोक, रौद्र का क्रोध, वीर का उत्साह, भयानक का भय, बीभत्स का घृणा, अद्भुत का विस्मय और शांत का निर्वेद।

स्थाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हंडी, हँडिया। (२) मिट्टी की तश्तरी।

स्थालीपुलाक न्याय—संज्ञा पुं. [सं.] (हाँडी में पकते चावलों में से एक देखकर सबकी स्थिति जान लेने की तरह) एक बात देखकर अन्य बातें समझ लेना।

स्थावर—वि. [सं.] (१) अचल, स्थिर। उ.—मुरली अति गर्व काहु बदति नाहिं आजु......... । स्थावर चर, जंगम जड़ करति जीति जीति—६५३। (२) जो अपने स्थान से हट ही न सके, 'जंगम' का विरुद्धार्थक। (३) स्थायी।

संज्ञा पुं. (१) पहाड़, पर्वत। (२) अचल संपत्ति।

स्थावरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्थिरता।

स्थाविर—संज्ञा पुं. [सं.] बुढ़ौती, वृद्धावस्था।

स्थित—वि. [सं.] (१) एक स्थान पर ठहरा या टिका हुआ। (२) बैठा हुआ, आसीन। (३) अपनी बात पर दृढ़। (४) विद्यमान, उपस्थित। (५) रहनेवाला,

निवासी । (६) बसा हुआ, अवस्थित । (७) अचल, स्थिर ।

स्थिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टिकाव, ठहराव । (२) बैठन या आसीन रहने की अवस्था या भाव । (३) रहने या निवास करने की स्थिति । (४) दर्जा, पद । (५) एक स्थान, अवस्था या रूप में बना रहना (६) पर्याप्त समय, अवस्था या कार्य के पश्चात् प्राप्त व्यक्ति, संस्था आदि कीमर्यादा, सम्मान आदि की सूचक दशा । (७)किसी आरोप आदि के पक्ष में अपने संबंध को स्पष्ट करनेवाली बात ।

स्थितिप्रज्ञ—वि. [सं.] जिसकी विवेकबुद्धि स्थिर हो । (२) आत्मसंतोषी ।

स्थिर—वि. [सं.] (१) एक ही स्थिति में बना रहनेवाला, निश्चल । (२) निश्चित । (३) शांत, प्रकृतिस्थ । (४) दृढ़, अटल । (५) सदा बना रहनेवाला, स्थायी ।

स्थिरचित्त—वि. [सं.] (१) जो अपनी बात या विचार पर दृढ़ रहता हो । (२) जो विकल या विचलित न हो ।

स्थिरचेता—वि. [सं. स्थिर + हिं. चेत] स्थिरचित्त ।

स्थिरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ठहराव, निश्चलता । (२) दृढ़ता । (३) स्थायित्व । (४) धीरता, धैर्य ।

स्थिरधी—वि. [सं.] स्थिरचित्त ।

स्थिरबुद्धि—वि. [सं.] स्थिरचित्त ।

स्थिरमति—वि. [सं.] स्थिरचित्त ।

स्थिरमना—वि. [सं. स्थिर + मन] स्थिरचित्त ।

स्थिर यौवन—वि. [सं.] जो सदा युवा रहे ।

स्थिरा—वि. [सं.] दृढ़ चित्तवाली ।

स्थिरीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] स्थिर करने की क्रिया ।

स्थूल—वि. [सं.](१) मोटा, पीन । उ.—देख्यौ भरत तरुन अति सुंदर । स्थूल सरीर, रहित सब द्वंदर .... । तन स्थूल अरु दूबर होइ । परमातम कौं ये नहिं दोइ —५-४ । (२) सहज में दिखायी देने या समझ में आ सकनेवाला, सूक्ष्म का विपरीतार्थक । (३) मूर्ख, जड़ । (४) मोटे हिसाब से अनुमान किया या ध्यान में आया हुआ ।

स्थूलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'स्थूल' होने का गुण, भाव या धर्म । (२) मोटापन । (३) भारीपन ।

स्थैर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थिरता । (२) दृढ़ता ।

स्नात—वि. [सं.] (१) जिसने स्नान किया हो । (२) जिस पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ा हो, ओत-प्रोत ।

स्नातक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जिसने (ब्रह्मचर्यपूर्वक) विद्याध्ययन समाप्त कर लिया हो । (२) वह जो विश्वविद्यायल की परीक्षा में उत्तीर्ण हो ।

स्नान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नहाना । उ.—(क) स्नान करि अंजली-जल नृप लियौ—८-१६ । (ख) तहँ उरबसी सखिनि समेत आई हुती स्नान कैं हेत—९-२ । (ग) यहि अंतर यमुना तट आए स्नान-दान कियौ खरचौ—२५५२ । (२) धूप, वायु आदि के सामने शरीर को इस प्रकार करना कि उसका सारे अंगों पर पूरा प्रभाव पड़े । (२) इस प्रकार किसी वस्तु का दूसरी पर पड़नेवाला प्रभाव ।

स्नानगृह—संज्ञा पुं. [सं.] वह कमरा जिसमें स्नान करने की व्यवस्था हो ।

स्नानागार—संज्ञा पुं. [सं.] स्नानगृह ।

स्नायविक—वि. [सं.] स्नायु-संबंधी ।

स्नायवीय—संज्ञा पुं. [सं.] (हाथ, पैर आदि) कर्मेन्द्रिय ।

स्नायु—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर की वे नसें जिनसे शीत, ताप, वेदना आदि की अनुभूति होती है ।

स्निग्ध—वि. [सं.] (१) जिससे स्नेह या प्रेम हो । (२) जिसमें स्नेह या तेल लगा हो, चिकना ।

स्निग्धता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चिकनापन, चिकनाहट । (२) प्रिय होने का भाव, प्रियता ।

स्नुषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पुत्र की पत्नी, पतोहू, पुत्रवधू ।

स्नेह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छोटों के प्रति वात्सल्य-भाव । (२) प्यार, प्रेम । (३) चिकना पदार्थ, तेल ।

स्नेहपात्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह जिसके प्रति स्नेह हो ।

स्नेही—संज्ञा पुं. [सं. स्नेहिन्] (१) स्नेहपात्र । (२) प्रेमी । वि. (१) जिसके प्रति स्नेह हो । (२) जिसका स्वभाव ही स्नेह करने का हो । (३) चिकना ।

स्पंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धीरे-धीरे हिलना । (२) अंगों आदि की फड़क, धड़क ।

स्पंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी चीज का धीरे-धीरे हिलना-काँपना । (२) (अंगों का) फड़कना ।

स्पंदित—वि. [सं.] हिलता-काँपता या फड़कता हुआ।

स्पंदी—वि. [सं. स्पंद] हिलने, काँपने या फड़कनेवाला।

स्पर्द्धा, स्पर्धा—संज्ञा स्त्री. [सं. स्पर्द्धा] (१) किसी के मुकाबले या किसी प्रतियोगिता में आगे बढ़ने की इच्छा, होड़। (२) सामर्थ्य या योग्यता से अधिक करने या पाने की इच्छा, हौंसला या साहस। (२) सद्भावपूर्वक किसी के समक्ष होने की कामना या चेष्टा। (४) ईर्ष्या, द्वेष।

स्पर्द्धी, स्पर्धी—वि. [सं. स्पर्द्धिन्, हिं. स्पर्द्धी] स्पर्द्धा करनेवाला, जिसमें स्पर्द्धा का भाव हो।

स्पर्श—संज्ञा पुं.[सं.](१) दो या अधिक वस्तुओं के परस्पर सटने, लगने या छूने का भाव। (२) त्वचा का वह गुण जिससे छूने, दबने आदि का बोझ या अनुभव हो। (३) व्याकरण में उच्चारण के आभ्यंतर प्रयत्नों के चार भेदों में से एक जिसमें उच्चारण करते समय वागिंद्रिय का द्वार बंद-सा हो जाता है (देवनागरी वर्णमाला के 'क' से 'म' तक के व्यंजनों का उच्चारण इसी प्रयत्न से होता है)। (४) 'ग्रहण' के समय सूर्य या चंद्रमा पर छाया पड़ने का आरंभ।

स्पर्श-जन्य—वि. [सं.] जो स्पर्श से या उसके कारण उत्पन्न हो, संक्रामक।

स्पर्शता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'स्पर्श' का भाव या धर्म।

स्पर्शमणि, स्पर्शमनि—संज्ञा पुं. [सं. स्पर्शमणि] पारस पत्थर।

स्पर्शास्पर्श—संज्ञा पुं. [सं. स्पर्श+अस्पर्श] छूताछूत।

स्पर्शी—वि. [सं. स्पर्शिन्] छूनेवाला।

स्पर्शेंद्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] त्वचा, त्वगेंद्रिय।

स्पष्ट—वि. [सं.] (१) साफ साफ दिखायी देने या समझ में आ सकनेवाला।

मुहा. स्पष्ट कहना या सुनाना—(बिना दुराव-छिपाव के) साफ-साफ कहना।

(२) जिसके संबंध में संदेह न हो। (३) व्याकरण में ('प' से 'म' तक के) वर्णों के उच्चारण का वह प्रयत्न जिसमें दोनों होंठ एक दूसरे से छू जाते हैं।

स्पष्टतया—क्रि. वि. [सं.] साफ-साफ, स्पष्ट रूप से।

स्पष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्पष्ट होने का भाव।

स्पष्टवक्ता—संज्ञा पुं. [सं.] (बिना किसी संकोच या भय के) साफ और सच्ची बात कहनेवाला व्यक्ति।

स्पष्टवादी—संज्ञा पुं. [सं. स्पष्टवादिन्] स्पष्टवक्ता।

स्पष्टीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोई बात इस प्रकार स्पष्ट करना कि वक्त पर संदेह न रहे। (२) कार्य-विशेष के संबंध में आपत्ति, आरोप आदि होने पर अपनी स्थिति स्पष्ट करना और अपने आचरण के कारणों पर प्रकाश डालना।

स्पृश्य—वि. [सं.] स्पर्श करने के योग्य हो।

स्पृष्ट—वि. [सं.] जिसका या जिससे स्पर्श हुआ हो, छुआ हुआ।

संज्ञा पुं. वर्णोच्चारण का स्पष्ट प्रयत्न।

स्पृहण—संज्ञा पुं. [सं.] इच्छा, अभिलाषा।

स्पृहणीय—वि. [सं.] (१) जिसकी या जिसके लिए इच्छा या कामना की जाय, वांछनीय। (२) जो गौरव या बड़ाई के योग्य हो, गौरवशाली।

स्पृहा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा, कामना।

स्पृही—वि. [सं.] इच्छा करनेवाला।

स्फटिक संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह का सफेद पारदर्शी पत्थर, बिल्लौर। उ.—(क) फूल स्फटिक खंभ रचित कंचन हीं—२४०२। (ख) बिद्रुम स्फटिक पत्री कंचन खचि मनिमय मंदिर बने बनावत—१० उ.-५। (२) सूर्यकान्त मणि। (३) काँच, शीशा।

स्फार—वि. [सं.] (१) अधिक,प्रचुर। (२) विकट। (३) जो फैल या फूलकर बड़ा हो गया हो।

स्फीत—वि. [सं.] (१) बढ़ा हुआ, वर्द्धित। (२) फूला या उभरा हुआ। (३) संपन्न, समृद्ध।

स्फीतता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वृद्धि। (२) मोटाई। (३) समृद्धि, संपन्नता।

स्फीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] वृद्धि, बढ़ती।

स्फुट—वि.[सं.](१)दिखायी देनेवाला, व्यक्त। (२) खिला हुआ, विकसित। (३) साफ, स्पष्ट। (४) अलग-अलग, फुटकर।

स्फुटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फटना, फूटना। (२) (फूल का) खिलना या विकसित होना। (३) सामने आना, व्यक्त होना।

स्फुटित—वि. [सं.] (१) खिला हुआ, विकसित। (२) प्रकट किया हुआ। (३) हँसता हुआ।

स्फुत्कार—संज्ञा पुं. [सं.] फुफकार, फूत्कार।

स्फुरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी चीज का जरा-जरा हिलना। (२) अंग का फड़कना।

स्फुरणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अंगों का फड़कना।

स्फुरति—संज्ञा स्त्री. [हिं. स्फूर्त्ति] स्फूर्ति।

स्फुरित—वि. [सं.] हिलने या फड़कनेवाला।

स्फुलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] (आग की) चिनगारी।

स्फूर्ति, स्फूर्त्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्फूर्त्ति] (१) धीरे-धीरे हिलना या फड़कना। (२) कार्य करने का चाव या उत्साह। (३) फुरती, तेजी।

स्फोट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी पदार्थ का, ऊपरी आवरण तोड़कर, बाहर निकलना, फूटना। (२) फोड़ा, फुंसी।

स्मर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कामदेव। उ.—मनो सरासन धरे कर स्मर भौंह चढ़ै सर बरसै री—१०-१३७। (२) याद, स्मरण। (३) (संगीत में) एक राग-भेद।

स्मरगुरु—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण का एक नाम।

स्मरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी देखी, सुनी, कही, पढ़ी या अनुभव की हुई बात का फिर से याद या ध्यान में आना।

मुहा० स्मरण दिलाना—भूली हुई बात को याद कराना।

(२) नौ प्रकार की भक्तियों में एक जिसमें उपासक निरंतर अपने उपास्य का ध्यान या याद किया करता है। उ.—स्रवण कीर्तन स्मरण पादरत अरचन बंदन दास—सारा. ११६। (३) एक काव्यालंकार।

स्मरणशक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] याद रखने की शक्ति।

स्मरणासक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपास्य के स्मरण या ध्यान के लिए होनेवाली आसक्ति जिसके फलस्वरूप उपासक हर समय उसका स्मरण करता है।

स्मरणीय—वि. [सं.] याद रखने योग्य।

स्मरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कामदेव का भाव या धर्म। (२) स्मरण का भाव या धर्म।

स्मर-दशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विरह-दशा।

स्मर-दहन—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव को भस्म करनेवाले शिवजी।

स्मरन—संज्ञा पुं. [सं. स्मरण] स्मरण।

स्मरना, स्मरनो—क्रि. स. [सं. स्मरण+ना] याद या स्मरण करना।

स्मरारि—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव के शत्रु, शिव।

स्मर्ण—संज्ञा पुं. [सं. स्मरण] स्मरण।

स्मसान—संज्ञा पुं. [सं. श्मशान] मसान, श्मशान।

स्मारक—वि. [सं.] स्मरण करानेवाला।

संज्ञा पुं. (१) वह कृत्य, रचना आदि जो किसी की स्मृति बनाये रखने के लिए हो। (२) वह वस्तु जो अपनी स्मृति बनाये रखने के लिए किसी को दी जाय।

स्मार्त, स्मार्त्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वे कृत्य, विधान आदि जो स्मृति-ग्रंथों में लिखे हुए हैं। (२) वह जो स्मृति-ग्रंथों में लिखे के अनुसार सब कृत्य करता हो। (३) वह जो स्मृति, ग्रंथों का अच्छा ज्ञाता या पंडित हो।

वि. स्मृति का स्मृति-संबंधी।

स्मित—संज्ञा पुं. [सं.] मंद हँसी, मुस्कराहट।

(१) वि. मुस्कराता हुआ। (२) खिला हुआ, विकसित।

स्मिति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्मित] मुस्कराहट।

स्मृत—वि. [सं.] जिसका स्मरण हो आया हो।

स्मृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह ज्ञान जो स्मरण-शक्ति से प्राप्त होता रहता है। (२) याद, स्मरण। (३) किसी पुरानी या भूली हुई बात का स्मरण हो आना जो साहित्य में एक संचारी भाव माना गया है। (४) प्रियतम के सम्बन्ध में पुरानी बातों का रह-रहकर याद आना जो साहित्य में पूर्वराग की दस अवस्थायों में से एक है। (५) वे हिन्दू धर्म-शास्त्र जिनकी रचना वेदों का स्मरण-चिंतन करके की गयी थी। (६) 'स्मरण' अलंकार का दूसरा नाम।

स्यंदन—संज्ञा पुं. [सं.] रथ, विशेषतः युद्ध में काम आने वाला रथ। उ.—(क) स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०। (ख) जैसोइ स्याम बलराम श्री स्यंदन चढ़े, वहै छबि कुँवर सर मांझ

पेख्यौ—२५५४। (ग) धनुष तरंग भँवर स्यंदन पग जलचर सुभट सरीर—१०उ.-२।

स्यमंतक—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रसिद्ध मणि जो सूर्य से सत्राजित नामक यादव को मिली थी और जिसकी चोरी का झूठा कलंक श्रीकृष्ण पर लगा था। उ.—दीन्हीं मनि आदित्य स्यमंतक, कोटिक सूर-प्रकास—सारा. ६४२।

स्यात, स्यात्—अव्य. [सं. स्यात्] शायद, कदाचित।

स्याद्वाद—संज्ञा पुं. [सं.] जैन दर्शन जिसमें अनेक विरुद्ध मतों का सापेक्षत्व स्वीकार किया जाता है और 'स्यात यह भी है' 'स्यात वह भी है' आदि कहा जाता है, अनेकांतवाद।

स्यान—वि. [हिं. स्याना] स्याना।

स्यानप, स्यानपन—संज्ञा पुं. [हिं. सयाना+पन]. (१) चतुराई, बुद्धिमानी। (२) चालाकी, धूर्तता।

स्याना—वि. [सं. सज्ञान] (१) चतुर, बुद्धिमान। (२) चालाक, काइयाँ, धूर्त। (३) जो बालक न हो, बड़ा, वयस्क।

संज्ञा पुं. (१) बड़ा-बूढ़ा या वृद्ध पुरुष। (२) झाड़-फूँक करनेवाला।

स्यानापन—संज्ञा पुं. [हिं. स्याना+पन] (१) चतुराई, चातुरी। (२) चालाकी, काइयाँपन, धूर्तता। (३) वयस्क या स्याना होने की अवस्था।

स्यानि, स्यानी—वि. स्त्री. [हिं. स्याना] चालाक। उ.—आई सिखवन भवन पराएँ स्यानि ग्वालि बौरैया—३७१।

स्यापा—संज्ञा पुं. [फ़ा. स्याहपोश] किसी संबंधी की मृत्यु पर परिवार और हेलमेल की स्त्रियों का कुछ दिन एकत्र होकर शोक मनाना और रोना-पीटना।

मुहा. स्यापा पड़ना—(१) रोना-पीटना होना। (२) (किसी स्थान का) बिलकुल उजाड़ या सूनसान हो जाना।

स्याबास—अव्य. [फ़ा. शाबास] वाह-वाह, साधुवाद।

स्याम—संज्ञा पुं. [सं. श्याम] श्रीकृष्ण। उ.—छाँड़ौं नहीं स्याम-स्यामा की बृन्दाबन रजधानी—१-८७।

वि. काला, नीला।

स्यामकरन, स्यामकर्न—संज्ञा पुं. [सं. श्यामकर्ण] वह सफेद घोड़ा जिसका एक कान काला हो।

स्याम कल्यान—संज्ञा पुं. [सं. श्याम कल्याण] एक राग।

स्यामकृष्न—वि. [सं.] जिसका रंग कुछ कालापन लिये नीला हो।

संज्ञा पुं. कुछ कालापन लिए नीला रंग।

स्यामघन—संज्ञा पुं. [सं. श्यामघन] (१) घनश्याम, श्रीकृष्ण। (२) काले-काले बादल।

स्यामता—संज्ञा स्त्री. [सं. श्यामता] काला या साँवलापन।

स्यामता-कोर—संज्ञा स्त्री. [सं. श्यामता+हिं. कोर] काली रेखा, काला धब्बा। उ.—बहुरौ देख्यौ ससि की ओर। तामैं देखि स्यामता कोर—५-३।

स्यामल—वि. [सं. श्यामल] साँवला। उ.—गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कह स्यामल गात—१०-२१५।

स्यामलता—संज्ञा स्त्री. [सं. श्यामलता] साँवलापन।

स्यामलिया—संज्ञा पुं. [हिं. श्यामल] श्रीकृष्ण।

स्यामसुंदर—संज्ञा पुं. [सं. श्यामसुंदर] श्रीकृष्ण। उ.—(क) भई न कृपा स्यामसुंदर की अब कहा स्वारथ फिरत बहै—१-५३। (ख) कुलही लसत सिर स्याम सुंदर कैं बहु बिधि सुरँग बनाई—१०-१०८।

स्यामा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्यामा] (१) (कृष्ण-प्रिया) राधा। उ.—छाँड़ौं नहीं स्याम-स्यामा की बृन्दाबन रजधानी—१-८७। (२) सुरीले कंठवाली एक काली चिड़िया। (३) सोलह वर्ष की युवती। (४) काली गाय। (५) यमुना नदी। (६) रात।

वि. स्त्री. काली, श्याम रंग का।

स्यार—संज्ञा पुं. [हिं. सियार] गीदड़, सियार। उ.—या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैं—१-८६।

स्यारपन—संज्ञा पु. [हिं. सियार+पन] (१) गीदड़ का स्वभाव। (२) डरपोंकपन, कायरता।

स्यारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सियारी] गीदड़ की मादा।

स्याल—संज्ञा पुं. [सं.] पत्नी का भाई, साला।

संज्ञा पुं. [हिं. सियार] गीदड़।

स्यालि, स्यालिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. सियारी] गीदड़ी।

स्याली—संज्ञा स्त्री. [सं.] पत्नी की बहन, साली।

स्यालू—संज्ञा पुं. [हिं. सालू] ओढ़नी उपरैनी।

स्यावज—संज्ञा पुं. [हिं. सावज] वह पशु जिसका शिकार किया जाता हो।

स्याह—वि. [फ़ा.] काले रंग का, काला।

संज्ञा पुं. एक तरह का घोड़ा।

स्याहा—संज्ञा पुं. [फ़ा.सियाहा] बही, खाता, रोजनामचा। उ.—प्रभु जू मैं ऐसौ अमल कमायौ। ''''''''वासिल बाकी, स्याहा मुजमिल सब अधर्म की बाकी—१-१४३।

स्याही—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) रोशनाई, मसि। (२) कालापन, कालिमा।

मुहा. स्याही जाना—बालों का कालापन न बना रहना, युवावस्था बीत जाना।

(३) कलौंछ, कालिख, कालिमा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. साही] एक जंतु।

स्यों, स्यौं—अव्य [सं. सह] साथ, सहित। उ.—(क) सुनु सिख कंत, दंत तृन धरिकै, स्यौं परिवार सिधारौ—९-११५। (ख) स्यौं परबत सर बैठि पवन-सुत, हौं प्रभु पै पहुँचाऊँ—९-१५५। (२) पास, निकट।

स्रंग—संज्ञा पुं. [सं. शृंग] (१) पर्वत की चोटी, शिखर। (२) चौपायों के सींग। (३) कँगूरा।

स्रक, स्रक्, स्रग—संज्ञा स्त्री. पुं. [सं. स्रक्] (१) फूलों की माला। उ.—(क) रचि स्रक कुसुम सुगंध सेज सजि बसन कुमकुमा बोरि—२८०७। (ख) स्रुति-कुंडल अरु पीत बसन स्रक वैसोइ साज बनाए—२९५९। (ग) स्रक चंदन बनिता बिनोद रस—३२३०। (२) एक छंद। (३) एक वृक्ष।

स्रगाल—संज्ञा पुं. [सं. शृगाल] गीदड़, सियार।

स्रग्धरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्णवृत्त।

स्रग्वान, स्रग्वान्—वि. [सं. स्रगवात्] जो हार या माला धारण किये हो।

स्रग्विणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्णवृत्त।

स्रग्वी—वि. [सं. स्रग्विन्] जो माला पहने हो।

स्रज, स्रज्—संज्ञा स्त्री. [सं. स्रक] फूल-माला।

स्रजना, स्रजनों—क्रि. स. [हिं. सृजना] रचना, बनाना।

स्रजात—संज्ञा पुं. [सं. शर्याति] एक राजा जिसकी पुत्री सुकन्या का विवाह च्यवन ऋषि से हुआ था। उ.—ता आस्रम स्रजात नृप गयौ। ''''''''तब स्रजात रानी सौं कही। जब तैं कन्या ऋषि कौं दई—९-३।

स्रद्धा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रद्धा] आस्था, आदरपूर्ण और पूज्य भाव। उ.—सुमति सुरूप सँचै स्रद्धा-बिधि उर-अंबुज अनुराग—२-१२।

स्रम—संज्ञा पुं. [सं. श्रम] शरीर को थकानेवाला काम, परिश्रम। उ.—(क) चित चकोर गति करि अतिसय रति तजि स्रम सघन बिषय लोभा—१-६९।

मुहा. स्रम साधना—(१) कठिन परिश्रम करना। (२) निरंतर अभ्यास करना। स्रम साधैं—निरंतर अभ्यास करते हैं। उ.—मुक्ति हेत जोगी स्रम साधैं असुर बिरोधैं पावैं—१-१०४।

(२) जीविका-निर्वाह या धनोपार्जन के लिए किया जानेवाला काम। उ.—जन जानत जदुनाथ जिते जन निज भुज-स्रम सुख पायौ—१-१५।

मुहा. श्रम ठयना—बड़ी लगन से कठिन परिश्रम करना। श्रम ठयौ—बड़ी लगन से निरंतर परिश्रम किया। उ.—पिता सो तासु काल-बस भयौ। भ्रातनि हूँ स्रम बहु बिधि ठयौ—५-३।

(४) थकावट, क्लांति। उ.—जिय करि कर्म जन्म बहु पावै। फिरत-फिरत बहुतै स्रम आवै—५-४। (५) दौड़-धूप। (६) पसीना। (७) साहित्य में संभोग आदि के कारण होनेवाली थकावट जिसकी गिनती संचारी भावों में की गयी है। उ.—सोभित सिथिल बसन मनमोहन सुखवत स्रम के पागे—६८६।

स्रम-कन—संज्ञा पुं. [सं. श्रमकण] अधिक परिश्रम आदि के कारण शरीर से निकलनेवाली पसीने की बूँदें।

स्रम-जल—संज्ञा पुं. [सं. श्रमजल] पसीना, स्वेद।

स्रमन—संज्ञा पुं. [सं. श्रमण] (१) बौद्ध संन्यासी। (२) यती, मुनि।

स्रमना, स्रमनो—क्रि. अ. [सं. श्रम+ना] (१) श्रम या परिश्रम करना। (२) थकना।

स्रम-वारि—संज्ञा पुं. [सं. श्रम+वारि] पसीना, स्वेद।

स्रम-बिंदु—संज्ञा पुं. [सं. श्रम+बिंदु] पसीना, स्वेद।

स्रम-सीकर—संज्ञा पुं. [सं. श्रम+सीकर] पसीना।

स्रमि—क्रि. अ. [हिं. स्रमना] थककर। उ.—उर भयौ

विबस कर्म-निरअंतर स्रमि सुख-सरनि चह्यौ—१-१६२।

स्रमिक—संज्ञा पुं. [सं. श्रमिक] मजदूर।

स्रमित—वि.[सं. श्रमित] अधिक श्रम के कारण थका हुआ या शिथिल। उ.—स्रमित भयौ, जैसे मृग चितवत देखि-देखि भ्रम-पाथ—१-२०८।

स्रमिष्ठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दानवराज वृषपर्वा की पुत्री स्रमिष्ठा जो शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी की दासी बनकर राजा ययाति के यहाँ गयी थी और उनसे प्रेम पाकर पुत्रवती हुई थी। उ.-कह्यौ स्रमिष्ठा अवसर पाइ। रति कौ दान देहु मोहिं राइ।''''। कह्यौ, स्रमिष्ठा, सुत कहँ पाए। उनि कह्यौ, रिषि किरपा तैं जाए—९-१७४।

स्रवण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बहने की क्रिया या भाव, बहाव, प्रवाह। (२) गर्भपात।

स्रवत—क्रि. अ. [हिं. स्रवना] बहता या टपकता है। उ.—स्रवत स्रोनकन—१-२७३।

क्रि. स. गिराता, बहाता या टपकता है। उ.—(क) अमृत हूँ तैं अमल अति गुन स्रवत निधि आनंद—९-१०। (ख) परसत आनन मनु रवि कुंडल अंबुज स्रवत सीप-सुत-जोटी—१०-१८७।

स्रवन—संज्ञा पुं. [सं. श्रवण] कान, कर्णेंद्रिय। उ.—(क) स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बाढ़्यौ बसन उमंगी—१-२१। (ख) स्रवन न सुनत—१-११८। (ग) रोचन भरि लै देत सींक सौं स्रवन-निकट अतिही आतुर की—१०-१८०।

संज्ञा पुं.[सं. श्रवण] (१) बौद्ध संन्यासी। (२) मुनि।

स्रवना, स्रवनो—क्रि. अ. [सं. स्रवण] (१) बहना। (२) टपकना। (३) गिरना।

क्रि. स. (१) बहाना। (२) टपकाना। (३) गिराना।

स्रवित—वि. [हिं. स्राव] बहा हुआ।

स्रवैं—क्रि. स. [हिं. स्रवना] टपकाती हैं। उ.—आनँद-मगन धेनु स्रवैं थनु पय-फेनु—१०-३०।

स्रव्य—वि. [सं. श्रव्य] (१) जो सुना जा सके। (२) जो सुनने-योग्य हो।

स्रांत—वि. [सं. श्रांत] थका हुआ।

स्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रांति] (१) परिश्रम। (२) थकावट, क्लांति। (३) विश्राम।

स्रष्टा—संज्ञा पुं. [सं. स्रष्ट्] (१) सृष्टि की रचना करने-वाला, ब्रह्मा। (२) शिव। (३) विष्णु।

वि. रचने या बनानेवाला।

स्रस्त—वि. [सं.] (१) अपने स्थान से गिरा हुआ। (२) ढीला, शिथिल। (३) धँसा हुआ। (४) अलग किया हुआ।

स्राद्ध—संज्ञा पुं. [सं. श्राद्ध] पितरों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के उद्देश्य से किये गये पिंडदान, ब्राह्मण-भोजन आदि कृत्य।

स्राप—संज्ञा पुं. [सं. शाप] किसी के अनिष्ट की कामना से कही गयी बात।

स्रापना, स्रपनो—क्रि. स. [हिं. शापना] शाप देना।

स्रापित—वि. [सं. शापित] जिसे किसी ने शाप दिया हो, शापग्रस्त।

स्राव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (खून आदि का) बह या रसकर निकलना। (२) गर्भपात। (३) वह जो बह, रस या चू कर निकला हो।

स्रावक—वि. [सं.] स्राव करानेवाला।

संज्ञा पुं. [सं.श्रावक] (१) बौद्धभिक्षु या संन्यासी। (२) जैन-धर्मानुयायी।

स्रावग—संज्ञा पुं. [सं. श्रावक] (१) बौद्ध संन्यासी। (२) जैन-धर्मानुयायी। उ.—अजहूँ स्रावग ऐसोहि करैं। ताही को मारग अनुसरैं—५-२।

स्रावगी—संज्ञा पुं. [सं. श्रावक] जैन-धर्मानुयायी, जैन। उ.—राजा रहत हुतौ तहँ एक। भयौ स्रावगी रिषभहिं देखि—५-२।

स्रावन—संज्ञा पुं. [सं. श्रावण] सावन मास।

संज्ञा पुं. [सं. श्रवण] सुनने की क्रिया या भाव।

वि. श्रवण या सुनने से संबंधित।

स्रावना—क्रि. स. [हिं. स्रवना] (१) गिराना। (२) बहाना। (३) टपकाना।

स्रावनी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रावणी] सावन मास की पूर्णिमा जो 'रक्षाबंधन' का दिन है।

स्रावनो—क्रि. स.[हिं. स्रवना] (१) गिराना (२) बहाना। (३) टपकाना।

स्रावित—वि. [सं. श्रावित] सुना हुआ।

स्रावी—वि. [सं. स्राविन्] स्राव करानेवाला।

स्राव्य—वि. [सं.] बहाने या टपकाने योग्य।
वि. [सं. श्राव्य] सुनने योग्य।

स्रिंग—संज्ञा पुं. [सं. शृंग] (१) पहाड़ की चोटी, शिखर। (२) पशु के सींग। (३) कँगूरा।

स्रिजन - संज्ञा पुं. [सं. सृजन] (१) रचने या निर्माण करने की क्रिया। (२) सृष्टि।

स्रियस्री—संज्ञा स्त्री [सं. श्री] (१) लक्ष्मी। (२) ऐश्वर्य। (३) संपत्ति। (४) छटा, शोभा। (५) यश, कीर्ति।

स्रुत—वि. [सं.] बहा या टपका हुआ।
वि. [सं. श्रुत] (१) सुना हुआ। (२) जो परंपरा से सुनते आये हों। (३) प्रसिद्ध।

स्रुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बहाव।
संज्ञा स्त्री. [सं. श्रुति] (१) सुनना, श्रवण करना। (२) सुनने की इंद्रिय, कान। (३) सुनी हुई बात। (४) वेद। उ.—(क) और अनंत कथा स्रुति गाई—१-६। (ख) सोचि-बिचारि सकल स्रुति-सम्मति, हरि तैं और न आगर—१-९१। (ग) सकल स्रुति-दधि मथत पायौ, इतौई घृत-सार—२-३। (घ) जस अपार स्रुति पार न पावै—१०-३। (ङ) स्रुति, स्रमृति सब पुरान कहत मुनि बिचारी—३९४।

स्रुतिकटु—वि. [सं. श्रुतिकटु] जो सुनने में कटु, कठोर या परुष जान पड़े।

स्रुतिकीरति, स्रुतिकीत, स्रुतकीर्ती—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रुतिकीर्त्ति] उर्मिला की छोटी बहन जो शत्रुघ्न को ब्याही थी।

स्रुति-द्वार—संज्ञा पुं. [सं. श्रुति+द्वार] कान या श्रवण द्रिय के सामने के भाग या द्वार पर। उ.—संकर पारवती उपदेसत तारक मंत्र लिख्यौ स्रुति-द्वार—२-३।

स्रुति-पथ—संज्ञा पुं. [सं. श्रुति+पथ] (१) कान या श्रवर्ण-मार्ग। (२) वेद-विहित मार्ग।

स्रुति-माथ—संज्ञा पुं. [सं. श्रुति+मस्तक या हिं. माथा] बिष्णु।

स्रुती—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रुति] वेद। उ.—स्रुती स्रमृति सब पुरान कहत मुनि बिचारी—३९४।

स्रुव, स्रुवा—संज्ञा स्त्री. [सं. स्रुवा] लकड़ी की कलछी जिससे हवन की अग्नि में घी की आहुति दी जाती है।

स्रेनिका, स्रेनी—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेणी] (१) कतार, पंक्ति। उ.—तड़ित धन संजोग मानो स्रेनिका सुक-जाल—६२७। (२) क्रम, परंपरा। (३) सीढ़ी।

स्रेष्ठ—वि. [सं. श्रेष्ठ] अच्छा, उत्तम, श्रेष्ठ। उ.- स्व-पचहू स्रेष्ठ होत पद सेवत १-२३३।

स्रेष्ठता—संज्ञा स्त्री. [सं. श्रेष्ठता] उत्तमता।

स्रोत—संज्ञा पुं. [सं. स्रोतस्] (१) पानी का प्रवाह, धारा। (२) सोता, झरना। (३) नदी। (४) वह आधार या साधन जिससे कोई वस्तु बराबर आती रहे।

स्रोतस्विनि, स्रोतस्विनी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्रोतस्विनी] नदी, सरिता।

स्रोता—संज्ञा पुं. [सं. स्रोता] (१) सुननेवाला। (२) कथा-पुराण आदि सुननेवाला।

स्रोत्र—संज्ञा पुं. [सं. श्रोत्र] कान।

स्रोन—संज्ञा पुं. [सं. श्रवण] कान। उ.—कूप समान स्रोन दोउ जानै—३-१३।
संज्ञा पुं. [सं. शोण] लहू, रक्त, रुधिर। उ.—लै-लै स्रोन हृदय लपटावति चुंबति भुजा गँभीर-१-२९।

स्रोनकन—संज्ञा पुं.[सं.श्रमकण]पसीने की बूँदें, स्वेदकण।
संज्ञा पुं. [सं. शोण+कण] रक्त की बूँदें। उ.—गोबिंद कोपि चक्र कर लीन्हौ।.......। स्रवत स्रोन-कन, तन शोभा, छबि-घन बरसत मनु लाल—१-२७३।

स्रोनित—संज्ञा पुं. [सं. शोणित] खून, रक्त, रुधिर। उ.—(क) तब रावन को बदन देखिहौं दससिर स्रोनित न्हाइ—९-७७। (ख) लै लै चरन-रेनु निज प्रभु की रिपु कैं स्रोनित न्हात—९-१४७।

श्लथ—वि. [सं. श्लथ] (१) ढीला, शिथिल। (२) मंद धीमा। (३) कमजोर, दुर्बल।

श्लाघा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्लाघा] (१) तारीफ, बड़ाई, प्रशंसा। (२) खुशामद, चापलूसी।

स्लोक—संज्ञा पुं. [सं. श्लोक] संस्कृत का पद्य या अनुष्टुप छंद । उ.—(क) श्रीमुख चारि स्लोक दए ब्रह्मा कौं समुझाइ—१-२२५ । (ख) तब नारद तिनकैं ढिग आइ चारि स्लोक कहे समुझाइ—१-२३० ।

स्वः—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश । (२) स्वर्ग ।

स्वःसरित, स्वःसरित्, स्वःसरिता—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वःसरित्] आकाशगंगा ।

स्वःसुंदरी – संज्ञा स्त्री. [सं. अप्सरा] अप्सरा ।

स्व—वि. [सं.] अपना, निज का । उ.—स्व कर काटत सीस—१-१०६ ।

प्रत्य. एक प्रत्यय जो शब्दांत में जुड़कर भाव-वाचकता, प्राप्य धन आदि का अर्थ देता है ।

स्वकर्मी—वि. [सं. स्वकर्मिन्] केवल अपने ही काम से मतलब रखनेवाला, स्वार्थी ।

स्वकीय—वि. [सं.] अपना, निज का ।

स्वकीया—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो केवल अपने ही पति से प्रेम करती हो, पर पुरुष का ध्यान तक न करती हो ।

स्वच्छ—वि. [हिं. स्वच्छ] साफ, निर्मल ।

स्व-ख्यापन—संज्ञा पुं. [सं.] स्वयं ही अपनी प्रशंसा करके अपने को प्रसिद्ध करना ।

स्वगत—क्रि. वि. [सं.] आप ही आप या स्वतः (कुछ कहना या बोलना) ।

वि. (१) अपने में आया या लाया हुआ, आत्मगत । (२) मन में आया हुआ, मनोगत ।

स्वगत कथन—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक में अन्य पात्रों की उपस्थिति में किसी पात्र का इस प्रकार कुछ कहना जैसे वह अपने से ही या अपने मन में कुछ कह रहा है जिसे दर्शक तो सुन लें, परंतु मंच पर उपस्थित पात्र न सुनें । इसे 'अश्राव्य' या 'आत्मगत' भी कहते हैं ।

स्वच्छंद—वि. [सं.] (१) जो किसी के नियंत्रण में न हो, स्वतंत्र, स्वाधीन । उ.—यह तौ जाइ उन्हैं उपदेसौ सनकादिक स्वच्छंद—२४०२ । (२) मनमाना काम या आचरण करनेवाला, निरंकुश ।

क्रि. वि. बिना किसी संकोच या विचार के । उ.—बालक रूप ह्वै के दसरथ-सुत करत केलि स्वच्छंद—सारा. ।

स्वच्छंदचारी—वि. [सं. स्वच्छंदचारिन्] स्वेच्छाचारी ।

स्वच्छंदता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वतंत्रता, स्वाधीनता ।

स्वच्छ—वि. [सं.] (१) साफ, निर्मल । (२) उज्जवल, शुभ्र । उ.—स्वच्छ सेज मैं तैं मुख निकसत गयौ तिमिर मिटि मंद—१०-२०३ । (३) स्पष्ट । (४) शुद्ध, पवित्र ।

स्वच्छता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निर्मलता ।

स्वच्छना, स्वच्छनौ—क्रि. स. [सं. स्वच्छ] (१) निर्मल करना । (२) पवित्र या शुद्ध करना ।

स्वच्छी—वि. [सं. स्वच्छ] स्वच्छ ।

स्वज—वि. [सं.] अपने से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं. (१) पुत्र । (२) रक्त । (३) पसीना ।

स्वजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अपने परिवार के लोग, आत्मीय जन । उ.—(क) सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति घन समान उनई—१-५० । (ख) बोलि-बोलि सुत-स्वजन मित्रजन लीन्यौ सुजस सुहायौ—२-३० । (२) नाते-रिश्तेदार, संबंधी ।

स्वजनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आत्मीयता । (२) नाते-रेश्तेदारी ।

स्वजनि, स्वजनी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वजन] (१) अपने परिवार की स्त्री । (२) नाते-रिश्ते की स्त्री । (३) सखी, सहेली ।

स्वजन्मा—वि. [सं. स्वजन्मन्] जो अपने आप उत्पन्न हुआ हो (ईश्वर) ।

स्वजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बेटी, पुत्री ।

वि. स्त्री. अपने से उत्पन्न (पुत्री) ।

स्वजात—वि. [सं.] अपने से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं. बेटा, पुत्र ।

स्वजाति—संज्ञा स्त्री. [सं.] अपनी जाति ।

वि. अपनी ही जाति का ।

स्वजातीय—वि. [सं.] (१) अपनी जाति या वर्ग का । (२) एक ही जाति या वर्ग का ।

स्वतंत्र—वि. [सं.] (१) जो किसी के अधीन न हो, स्वाधीन । (२) मनमानी करनेवाला, निरंकुश । (३) अलग, भिन्न, पृथक् । (४) बंधन, नियम आदि से रहित या

मुक्त ।

स्वतंत्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिना किसी दबाव या रोक-टोक के सब कुछ करने का पूर्ण अधिकार, आजादी, स्वाधीनता ।

स्वतंत्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो केवल धन के लोभ से पर-पुरुषों से संबंध रखती हो, सामान्या नायिका, गणिका ।

स्वतंत्री—वि. [सं. स्वतंत्रिन्] आजाद, स्वाधीन ।

स्वतः—अव्य. [सं. स्वतस्] अपने आप, आप ही ।

स्वतःसिद्ध—वि. [हिं. स्वतः + सं. सिद्ध] जो (बात या तत्व) बिना किसी तर्क या प्रमाण के आप ही ठीक, प्रत्यक्ष और सिद्ध या प्रमाणित हो ।

स्वत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) 'स्व' या अपना होने का भाव, अपनापन । (२) वह अधिकार जिसके बल पर कोई चीज अपनी समझी या अपने पास रखी जाय ।

स्वत्वाधिकारी—संज्ञा पुं. [सं. स्वत्वाधिकारिन्] (१) वह जिसके हाथ में किसी बात या विषय का पूरा स्वत्व या अधिकार हो । (२) मालिक, स्वामी ।

स्वदेश—संज्ञा पुं. [सं.] मातृभूमि ।

स्वदेशी, स्वदेशीय—वि. [सं. स्वदेशीय] (१) अपने देश से संबंधित । (२) अपने देश में बना या उत्पन्न ।

स्वधर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अपना धर्म । (२) अपना कर्तव्य ।

स्वधा—अव्य. [सं.] एक शब्द जिसका उच्चारण या प्रयोग यज्ञ में हवि देने के समय किया जाता है ।

संज्ञा स्त्री. पितरों के उद्देश्य से दिया जानेवाला अन्न या भोजन ।

स्वन—संज्ञा पुं. [सं.] शब्द, ध्वनि ।

स्वनामधन्य—वि. [सं.] जिसने अपने महान और गौरव-पूर्ण कार्यों से अपना नाम धन्य या प्रसिद्ध कर दिया हो ।

स्वनित—वि. [सं.] ध्वनित, ध्वनियुक्त ।

स्वपच—संज्ञा पुं. [सं. श्वपच] (२) चांडाल । उ.—ढूँढ़ि फिरे घर कोउ न बतायौ, स्वपच कोरिया लौं—१-१५१ । (२) एक निम्नजातीय भक्त । उ.—गायौ स्वपच परम अघपूरन—१-६५ ।

स्वपन, स्वपना—संज्ञा पुं. [सं. स्वप्न] स्वप्न ।

स्वप्न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोने की क्रिया या अवस्था, निद्रा (२) निद्रावस्था में, ठीक-ठीक नींद न आने के कारण कुछ घटनाएँ आदि दिखायी देना । उ.—बहुरि कह्यौ, रिषि कौ कहि नाम ? कह्यौ स्वप्न देख्यौ अभिराम—९-१७४ । (३) वह घटना आदि जो निद्रित अवस्था में दिखायी दे और जिसे साहित्य में एक संचारी भाव माना गया है । (४) मन में उठनेवाली वह ऊँची कल्पना या विचार जिसे साधारणतया कार्य-रूप न दिया जा सके ।

मुहा० स्वप्न में भी न करना—(जागने में तो मनुष्य को अपने पर अधिकार होता है, अतएव अनिच्छित कार्य करने से वह सहज ही बच जाता है; परंतु सोते समय स्वप्न पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता; अतएव उस अवस्था में अप्रिय कार्य करते भी वह अपने को देख सकता है । अतः जागते-सोते) किसी भी दशा में करने को तैयार न होना । उ.—स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं स्वप्न हूँ माँहि नहिं हृदय ल्याऊँ—१-१७७ । स्वप्न समान जानना–झूठा, असत्य या मिथ्या समझना । स्वप्न समान जानौ–झूठा, मिथ्या या नश्वर समझो । उ.—सब जग जानौ स्वप्न समान—१-३४१ ।

स्वनप्द्शी—वि. [सं. स्वप्नदर्शिन्] (१) स्वप्न देखनेवाला । (२) व्यर्थ की कल्पनाएँ करनेवाला ।

स्वप्नाना—क्रि. अ. [सं. स्वप्न + आना] स्वप्न देखना ।

क्रि. स. स्वप्न दिखाना ।

स्वप्निल—वि. [सं.] (१) स्वप्न का । (२) स्वप्न देखनेवाला

स्वप्रकाश, स्वप्रकास—वि. [सं. स्वप्रकाश] जो अपने ही तेज से प्रकाशित हो ।

स्वभाइ, स्वभाई, स्वभाउ, स्वभाऊ – संज्ञा पुं. [सं स्वभाव] स्वभाव ।

स्वभाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (किसी वस्तु आदि में) सदा लगभग एक-सा बना रहनेवाला मूल या प्रधान गुण । जीव न तजै स्वभाव जीव कौ, लोकबिदित दृढ़ताई—१-१०७ । (२) (किसी व्यक्ति के) मन की प्रवृत्ति, प्रकृति (३) बान, आदत ।

स्वभावज—वि. [सं.] जो स्वभाव या प्रकृति-जन्य हो, स्वाभाविक, प्राकृतिक ।

स्वभावतः—अव्य. [सं.] स्वभाव से, सहज ही।
स्वभाव-सिद्ध—वि. [सं.] स्वाभाविक।
स्वभावोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक काव्यालंकार।
स्वभू—वि. [सं.] जो अपने आप से जन्मा हो।
संज्ञा पुं. (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव।
स्वयं—अव्य. [सं. स्वयम्] (१) खुद, आप। (२) आप से आप, अपने आप, स्वतः।
स्वयंदूत—संज्ञा पुं. [सं.] वह नायक जो नायिका से अपने प्रेम की बात स्वयं ही प्रकट करे।
स्वयंदूतिका, स्वयंदूती—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो अपने प्रेम की बात नायक पर स्वयं प्रकट करे।
स्वयंपाकी—वि. [सं. स्वयंपाकिन्] अपना भोजन स्वयं ही पकानेवाला।
स्वयंप्रकाश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो अपने ही प्रकाश से प्रकाशित हो। (२) ईश्वर।
स्वयंप्रभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इंद्र की एक अप्सरा जिसे मय दानव हर लाया था और जिसके गर्भ से उसने मंदोदरी नामक कन्या उत्पन्न की थी।
स्वयंभु, स्वयंभू—संज्ञा पुं. [सं. स्वयम्भू] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव। (४) काल। (५) कामदेव। (६) चौदह मनुष्यों में से प्रथम जो स्वयंभू ब्रह्मा से उत्पन्न माने गये हैं। उ.—बहुरि स्वयंभू मनु तप कीनौ (ख) ब्रह्मा सौं स्वयंभू मनु भयौ—३-१०।
वि. (१) जो आप से आप जन्मा हो। (२) जो (बिना योग्यता आदि के) स्वयं ही किसी पद पर प्रतिष्ठित हो गया हो।
स्वयंवर—संज्ञा पुं. [सं.] भारत की एक प्राचीन प्रथा जिसमें कन्या अपना वर स्वयं चुनती थी। उ.—(क) जनक बिदेह कियो जु स्वयंवर बहु नृप बिप्र बुलाये—सारा.२०६। (ख) तोरि धनुष, मुख मोरि नृपनि कौं सीय स्वयंवर कीनौ—९-११५।
स्वयंवरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्त्री जो स्वयं ही अपने उपयुक्त वर का वरण करे।
स्वयंसिद्ध—वि. [सं.] जो (बात) अपने आप सिद्ध हो।
स्वयंसेवक—संज्ञा पुं. [सं.] जो अपनी ही इच्छा से, केवल सेवा-भाव से कोई कार्य करे।
स्वयमेव—क्रि. वि. [सं.] आप ही, स्वयं ही।
स्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राणी के कंठ से अथवा किसी पदार्थ पर आघात होने से निकलनेवाला शब्द जिसमें कोमलता, कटुता आदि गुण हों। (२) संगीत में वे सात निश्चित ध्वनियाँ जिनका स्वरूप, तीव्रता आदि निश्चित है, सुर। उ.—चाँपति चरन जननि अप अपनी कछुक मधुर स्वर गाये—सारा. १९६।
मुहा. स्वर उतारना—सुर धीमा करना। स्वर चढ़ाना—सुर तेज करना। स्वर निकालना—सुर उत्पन्न करना। स्वर भरना—अभ्यास के लिए एक ही सुर बार-बार निकालना। स्वर मिलाना—(वाद्य आदि के) सुनायी देते स्वर के अनुसार सुर निकालना।
(३) व्याकरण में वह वर्ण जिसका उच्चारण बिना किसी वर्ण की सहायता के हो और जो किसी व्यंजन के उच्चारण में सहायक हो।
संज्ञा पुं. [सं. स्वर] (१) आकाश। (२) स्वर्ग।
स्वरग—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्ग] स्वर्ग।
स्वर-ग्राम—संज्ञा पुं. [सं.] संगीत के सातों स्वरों का समूह, सप्तक।
स्वरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वर का भाव या धर्म।
स्वर-पात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उच्चारण करते समय शब्द के किसी वर्ण पर रुकना। (२) रुकाव आदि का ध्यान रखते हुए किसी शब्द या पद का किया गया उच्चारण।
स्वरभंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गला बैठना। (२) हर्ष, भय क्रोध, मद आदि के कारण गला रुँध जाने से कुछ कह न पाना या कुछ के बदले कुछ कह जाना जो साहित्य में एक सात्विक अनुभाव माना गया है।
स्वर-भानु—संज्ञा पुं. [सं.] सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के दस पुत्रों में से एक का नाम।
स्वरमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा।
स्वरमंडलिका संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्राचीन वीणा।
स्वरयंत्र—संज्ञा पुं. [सं.] गले के भीतर का वह अंग जिससे स्वर या शब्द निकलता है।
स्वरलहरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (संगीत आदि के लिए निकाली गयी) उतार-चढ़ाववाले स्वरों की लहर या क्रम।

स्वरलासिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वंशी, मुरली ।

स्वरलिपि— संज्ञा स्त्री. [सं.] संगीत में किसी गीत, तान आदि में आनेवाले स्वरों का क्रमबद्ध लेखन ।

स्वरसमुद्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा ।

स्वरांत--वि. [सं.] (शब्द) जिसके अंत में स्वर हो ।

स्वराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह शासन-प्रणाली जिसमें किसी देश पर उसके ही निवासियों का पूर्ण शासन हो ।

स्वराट, स्वराट्—संज्ञा पुं. [सं.] स्वतंत्र सम्राट ।

वि. जो स्वयं प्रकाशमान हो और दूसरों को भी प्रकाशित करे ।

स्वरिक—वि. [सं. स्वर] कंठ-स्वर-संबंधी ।

स्वरित—संज्ञा पुं. [सं.] मध्यम रूप से उच्चरित स्वर ।

वि. (१) जिसमें स्वर हो । (२) गूँजता हुआ ।

स्वरूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यक्ति, पदार्थ आदि की शकल या आकृति । उ.– नारायन भुव भार हरो है अति आनंदस्वरूप—सारा. १४५ । (२) आकार । उ.—देखत गज-से होय गये हैं, कीन्हों बृहत स्वरूप—सारा. ४० । (३) मूर्ति, चित्र आदि । (४) देवताओं आदि का धारण किया हुआ रूप । (५) वह जिसने देव-रूप धारण किया हो ।

वि. (१) सुंदर । (२) समान, तुल्य ।

अव्य. तौर पर, रूप में ।

संज्ञा पुं. [सं.] मुक्ति का वह रूप जिसमें भक्त अपने उपास्य देव का रूप प्राप्त कर लेता है । उ.—हम सालोक्य स्वरूप सरो ज्यौं रहत समीप सदाई —३२९० ।

स्वरूपज्ञ—वि. [सं.] जो आत्मा-परमात्मा का स्वरूप पहचानता हो, तत्वज्ञ ।

स्वरूपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'स्वरूप' का भाव या धर्म ।

स्वरूपमान, स्वरूपवान—वि. [सं. स्वरूपवत्] सुंदर ।

स्वरूपी—वि. [सं. स्वरूपिक] (१) स्वरूपवाला । (२) जिसने किसी का स्वरूप धारण किया हो ।

संज्ञा पुं. [सं. सारूप्य] मुक्ति का वह रूप जिसमें भक्त अपने-आराध्य का ही स्वरूप प्राप्त कर लेता है ।

स्वरोद—संज्ञा पुं. [सं. स्वरोदय] एक तरह का बाजा ।

स्वरोदय—संज्ञा पुं. [सं.] नथनों से निकली स्वाँस के द्वारा शुभ-अशुभ फल जानने की विद्या ।

स्वर्गंगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाश-गंगा ।

स्वर्ग— संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिंदुओं के सात लोकों में से तीसरा जिसमें प्राणी पुण्यों और सत्कर्मों के फल-स्वरूप सुख भोगने जाता है । उ.—सुनि-सुनि स्वर्ग रसातल भूतल, जहाँ तहाँ उठि धायौ—१-१५४ ।

मुहा०—स्वर्ग के पथ पर पैर देना या रखना —(१) मरना । (२) जान जोखिम में डालना, प्राण संकट में डालना । स्वर्ग को उड़ जाना—मर जाना । गयौ उड़ि स्वर्ग को—मर गया । उ.—तुरँत गयौ उड़ि स्वर्ग को—२५७७ । स्वर्ग जाना या सिधारना—मर जाना । स्वर्ग पठाना—(१) मार डालना । (२) मरने पर स्वर्ग का सुख भोगने को भेजना । उ.— तुम मौसे अपराधी माधव, कोटिक स्वर्ग पठाए हौ—१-७ ।

यौ. स्वर्ग सुख—वैसा सुख जैसा स्वर्ग में मिलता है । कोटि स्वर्ग सम सुख—कल्पना से भी बाहर का सुख । उ.—कोटि स्वर्ग सम सुख अनुमानत, हरि समीप समता नहिं पावत—३१४२ । स्वर्ग की धार, स्वर्ग-धारा—आकाशगंगा ।

(२) वह स्थान जहाँ बहुत अधिक सुख मिले । (३) आकाश । (४) सुख । (५) ईश्वर । (६) प्रलय ।

स्वर्गकाम, स्वर्गकामी—वि. [सं.] स्वर्ग की कामना रखनेवाला ।

स्वर्गगमन—संज्ञा पुं. [सं.] मरना ।

स्वर्गगामी—वि. [सं. स्वर्गगामिन्] (१) स्वर्ग जानेवाला । (२) मृत, स्वर्गीय ।

स्वर्गद—वि. [सं.] स्वर्ग दिलानेवाला ।

स्वर्गनदी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर्ग+नदी] आकाशगंगा ।

स्वर्गलाभ—संज्ञा पुं. [सं.] मरना, स्वर्ग की प्राप्ति ।

स्वर्गवाणी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर्ग+वाणी] आकाशवाणी

स्वर्गवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मरना, स्वर्ग जाना । (२) स्वर्ग में निवास करना ।

स्वर्गवासी—वि. [सं. स्वर्गवासिन्] (१) स्वर्ग में रहनेवाला । (२) मृत, स्वर्गीय ।

स्वर्गस्थ—वि. [सं.] (१) जो स्वर्ग में (स्थित) हो । (२) मृत, स्वर्गवासी ।

स्वर्गीय—वि. [सं.] (१) स्वर्ग का, स्वर्ग-संबंधी। (२) स्वर्ग में रहने या होनेवाला। (३) जिसका स्वर्गवास हो गया हो, मृत। (४) जिसकी मृत्यु हाल ही में हुई हो।

स्वर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] सोना (धातु), सुवर्ण।

स्वर्णकाय—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़।

वि. जिसका शरीर सोने का या सोने-सा हो।

स्वर्णकार—संज्ञा पुं. [सं.] सुनार।

स्वर्णकीट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक सुनहरा कीड़ा, सोन किरवा। (२) जुगनूँ।

स्वर्णगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] सुमेरु पर्वत।

स्वर्णचूड—संज्ञा पुं. [सं.] नीलकंठ पक्षी।

स्वर्णज—वि. [सं.] (१) सोने से उत्पन्न। (२) सोने का बना हुआ।

स्वर्णजयंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी व्यक्ति, संस्था, कार्य आदि के पचास वर्ष पूरे होने पर की जानेवाली जयंती।

स्वर्णजातिका, स्वर्णजाती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वर्णजातिका] पीली चमेली।

स्वर्णजीवी—संज्ञा पुं. [सं. स्वर्णजीविन्] सुनार।

स्वर्णदिवस—संज्ञा पुं. [सं.] बहुत ही शुभ और महत्वपूर्ण दिन।

स्वर्णपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] लंकापुरी।

स्वर्णभूमि—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्थान या देश जहाँ सभी श्री-संपन्न और सुखी हों।

स्वर्णमय—वि. [सं.] जो सोने का बना हो।

स्वर्णमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोने का सिक्का।

स्वर्णयूथिका, स्वर्णयूथी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पीली जुही।

स्वर्णका—संज्ञा पुं. [सं.] सोने की खान।

स्वर्णिम—वि. [सं. स्वर्ण] सुनहला।

स्वर्भू—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्गलोक।

स्वर्लोक—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग।

स्वल्प—वि. [सं.] (१) बहुत थोड़ा या कम। उ.—स्वल्प साग तैं तृप्त किए सब कठिन आपदा टारी—१-२८२। (२) बहुत थोड़ी, हलकी या धीमी। उ.—सरस स्वल्प ध्वनि उघटत सुखद—१८२६।

स्ववश, स्ववश्य—वि. [सं.] (१) जो अपने वश में हो। (२) जो अपनी इंद्रियों को वश में रखता हो।

स्वविवेक—संज्ञा पुं. [सं.] उचित-अनुचित या युक्त-अयुक्त का विचार करने की बुद्धि, शक्ति या योग्यता।

स्वसंभव—वि. [सं.] जो स्वतः उत्पन्न हो।

स्वसंभूत—वि. [सं.] जो आप से आप उत्पन्न हो।

स्वसंविद, स्वसंविद्—वि. [सं. स्वसंविद्] जिसका ज्ञान इंद्रियों से न हो सके, अगोचर।

स्वसंवेद्य—वि. [सं.] (बात) जिसका अनुभव वही कर सकता हो, जिस पर बीती हो।

स्वसा—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वसृ] बहन, भगिनी।

स्वस्ति—अव्य. [सं.] कुशल-मंगल हो।

संज्ञा स्त्री. (१) मंगल, कल्याण। (२) ब्रह्मा की तीन पत्नियों में एक। (३) सुख।

स्वस्तिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंगल-चिह्न जो शुभ अवसरों पर दीवारों आदि पर अंकित किया जाता है। (२) शरीर के विशिष्ट अंगों में होनेवाला उक्त आकार का चिह्न जो बहुत शुभ माना जाता है। (३) हठयोग का एक आसन। (४) एक प्रकार का मंगल-द्रव्य जो चावल को पानी में पीसकर बनाया जाता है।

स्वस्तिबाचन—संज्ञा पुं. [सं. स्वस्तिवाचन] मंगल कार्यों के प्रारंभ में किया जानेवाला एक धार्मिक कृत्य जिसमें गणेश-पूजन और मंगल-सूचक मंत्रों का पाठ किया जाता है। उ.—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषी नँदरानी। बिप्र बुलाय स्वस्तिबाचन करि रोहिनि नैन सिरानी - सारा. ४२१।

स्वस्तिवाचक—वि. [सं.] (१) मंगल-सूचक बात कहनेवाला। (२) अशीर्वाद देनेवाला।

स्वस्तिवाचन—संज्ञा पुं. [सं.] मंगल कार्यों के आरंभ में किया जानेवाला एक धार्मिक कृत्य जिसमें देव-पूजन और मंगल-पाठ आदि होता है।

स्वस्ती वचन—संज्ञा पुं. [सं. स्वस्ति+वचन] मांगलिक मंत्र। उ.—बिप्र बुलाय बेद-धुनि कीन्हीं स्वस्तीवचन पढ़ायौ—सारा. ३९१।

स्वस्तेन, स्वस्त्ययन—संज्ञा पुं. [सं. स्वस्त्ययन] एक धार्मिक कृत्य जो अशुभ बातों का नाश करके मंगल या कल्याण के लिए किया जाता है।

स्वस्थ—वि. [सं.] (१) जिसे कोई रोग न हो, भलाचंगा।

(२) जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। (३) जिसका चित्त ठिकाने हो, सावधान। (४) जिसमें कोई दोष या अश्लीलता न हो। (५) जिसमें कोई विकार न हो।

स्वस्थचित्त—वि. [सं.] जिसका चित्त ठिकाने हो।

स्वस्थता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नीरोगता। (२) सावधानता।

स्वस्थ-प्रज्ञ—वि. [सं.] जो सब, बातें ठीक-ठीक समझने-करने में समर्थ हो।

स्वाँग—संज्ञा पुं. [सं. सु+अंग] (१) दूसरे का रूप बनने के लिए धारण किया गया बनावटी या कृत्रिम वेश, भेस। उ.—उनपै कह्यौ तुम कोऊ क्षत्रिया, कपट करि बिप्र को स्वाँग स्वाँग्यो—१० उ.-५१। (२) परिहास-पूर्ण तमाशा, नकल या खेल। उ.—(क) दर-दर लोभ लागि लिये डोलति नाना स्वाँग बनावै—१-४२। (ख) जैसे नटवा लोभ कारन करत स्वाँग बनाइ—१-४५। (ग) तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे इहै स्वाँग कौं काछे—१-१३६। (घ) चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि भ्रमि भ्रमि जमहिं हँसावै—२-१३। (ङ) रैनि नहीं तौ अब जु कृपा भइ, धनि जिनि स्वाँग करायौ जू—१९३४। (च) करि आए नट स्वाँग से मोको तुम वैसे—२५७६। (३) धोखा देने के लिए बनाया गया रूप या किया गया कार्य, आडंबर।

मुहा. स्वाँग रचना या लाना—धोखा देने या कपट-व्यवहार करने के लिए आडंबर रचना।

स्वाँगना, स्वाँगनो—क्रि. अ. [हिं. स्वाँग] (१) बनावटी वेश या रूप धारण करना। (२) आडंबर रचना।

स्वाँगी—वि. [हिं. स्वाँग] (१) जो नकली या दूसरे का वेश बनाकर जीविकार्जन करता हो। (२) अनेक रूप धारण करनेवाला, बहुरूपिया। उ.—स्वाँगी से ए भए रहत हैं छिन ही छिन ए और—पू. ३३६ (५४)।

संज्ञा पुं. वह जो स्वाँग करे।

स्वाँग्यो, स्वाँग्यौ—क्रि. अ. [हिं. स्वाँगना] बनावटी वेश या रूप धारण किया, स्वाँग बनाया। उ.—भीम अर्जुन सहित बिप्र को रूप धरि हरि जरासंध सों युद्ध माँग्यौ। दियौ उनपै कह्यौ, तुम कोऊ क्षत्रिया कपट करि बिप्र को स्वाँग स्वाँग्यौ—१० उ.-५१।

स्वांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंतःकरण। (२) मृत्यु।

स्वांतज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रेम। (२) मनोज।

वि. जो मन या अंतःकरण से उत्पन्न हो।

स्वाँस, स्वाँसा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्वास] साँस।

स्वाक्षर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हस्ताक्षर। (२) किसी के हाथ का हस्ताक्षर या लेख जो अपने पास स्मृति-रूप में रखा जाय।

स्वाक्षरित—वि. [सं.] अपने हस्ताक्षर से युक्त।

स्वागत—संज्ञा पुं. [सं.] किसी मान्य या प्रिय व्यक्ति के आने पर आगे बढ़कर अभिनन्दन करना। उ.—मेरी कही साँचि तुम जानो कीजै आगत स्वागत—१४८२।

स्वागतकारिणी—वि. स्त्री. [सं.] स्वागत करनेवाली।

स्वागतकारी—वि. [सं. स्वागतकारिन्] स्वागत या अभ्यर्थना करनेवाला।

स्वागतपत्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो विदेश से पति के लौटने पर उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो।

स्वागतप्रिया—संज्ञा पुं. [सं.] वह नायक जो विदेश से पत्नी के लौटने से उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो।

स्वागतिक—वि. [सं.] स्वागत करनेवाला।

स्वाच्छंद—क्रि. वि. [सं. स्वच्छंद] सुख से, सहज में, स्वच्छंदतापूर्वक।

संज्ञा स्त्री. स्वच्छंदता।

स्वातंत्र्य—संज्ञा पुं. [सं.] स्वतंत्रता, स्वाधीनता।

स्वात, स्वाति, स्वाती—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वाति] पंद्रहवाँ नक्षत्र जिसकी वर्षा के जल से सीप में मोती, बाँस में वंशलोचन और साँप में विष उत्पन्न होना माना जाता है।

स्वाति-पथ, स्वाती-पथ—संज्ञा पुं. [सं. स्वाति+पंथ] आकाशगंगा।

स्वाति-सुत, स्वाती-सुत—संज्ञा पुं. [सं. स्वाति+सुत] मोती। उ.—स्वाति-सुत माला बिराजत स्याम तन इहिं भाइ—१०-१७०।

स्वाति-सुवन, स्वाती-सुवन—संज्ञा पुं. [सं. स्वाति+हिं. सुवन] मोती। उ.—ज्योति प्रकाश सुघन में खोलत स्वाति-सुवन आकार।

स्वाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी चीज के खाने-पीने से

जीभ या रसनेंद्रिय को होनेवाला अनुभव, जायका। उ.—(क) किंचित स्वाद स्वान-वानर ज्यौं घातक रीति ठटी—१-९८। (ख) साधु-निंदक स्वाद-लंपट, कपटी गुरु-द्रोही—१-१२४। (ग) जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौं उरझ्यौ सूझी नहीं फँदाई—१-१४७। (घ) रसना स्वाद सिथिल लंपट ह्वै अघटित भोजन करतौ—१-२०३। (ङ) सालन सकल कपूर सुबासत। स्वाद लेत सुंदर हरि गासत—३९६। (च) सूरदास तिल-तेल-सुबादी स्वाद कहा जानै घृत ही री—१४९९। (२) मजा, आनंद, रसानुभूति। उ.—बहिरौ तान स्वाद कहा जानै गूँगौ खात मिठास—३३३६।

मुहा. स्वाद चखाना—(१) अपराध का दंड देना। (२) भयंकर बदला लेना।

(३) चाह, इच्छा, कामना। (४) मीठा रस।

स्वादक—वि. [सं.] स्वाद लेनेवाला।

स्वादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चखना, स्वाद लेना। (२) मजा या आनंद लेना।

स्वादित—वि. [सं.] चखा हुआ।

स्वादिष्ट, स्वादिष्ठ—वि. [सं. स्वादिष्ट] जिसका स्वाद अच्छा हो, सुस्वादु।

स्वादी—वि. [सं. स्वादिन्] (१) स्वाद चखने या लेने वाला। (२) मजा या आनंद लेनेवाला।

स्वादीला—वि. [सं. स्वाद] स्वादिष्ट।

स्वादु—वि. [सं. स्वाद] (१) स्वादिष्ट। (२) मधुर।

स्वाद्य—वि. [सं.] चखने के योग्य।

स्वाध—संज्ञा पुं. [सं. स्वाद] स्वाद।

स्वाधिकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अपना अधिकार। (२) स्वतंत्रता, स्वाधीनता।

स्वाधिष्ठान—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर के आठ चक्रों में दूसरा जिसका स्थान शिश्न के मूल में है।

स्वाधीन—वि. [सं.] (१) स्वतंत्र। (२) निरंकुश।

स्वाधीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आजादी, स्वतंत्रता। (२) निरंकुशता।

स्वाधीन-पतिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जिसका पति उसके वश में हो।

स्वाधीनी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वाधीन] स्वतंत्रता।

स्वाध्याय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेदों की कोई शाखा। (२) वेदों का विधिपूर्वक अध्ययन। (३) किसी विषय का अध्ययन-अनुशीलन।

स्वान—संज्ञा पुं. [सं. श्वान] कुत्ता। उ.—(क) ह्वै गज चल्यौ स्वान की चालहिं—१-७४। (ख) बहुतक जनम पुरीष-परायन सूकर-स्वान भयौ—१-७८। (ग) स्रम करत स्वान की नाईं—१-१०३।

स्वाना—क्रि. स. [हिं. सुलाना] सोने को प्रवृत्त करना।

संज्ञा पुं. [सं. स्वान] कुत्ता, स्वान।

स्वाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नींद, निद्रा। (२) सपना, स्वप्न। (३) अज्ञान।

स्वापक—वि. [सं.] नींद लानेवाला, निद्राकारक।

स्वापन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन अस्त्र जिससे शत्रु को निद्रित किया जाता था। (२) नींद लानेवाली औषध।

वि. (१) नींद लानेवाला, निद्राकारक।

स्वाभाविक—वि. [सं.] (१) स्वभाव से या अपने आप होनेवाला, प्राकृतिक, नैसर्गिक। (२) स्वभाव से संबंध रखनेवाला, स्वभाव-संबंधी।

स्वाभाविकी—वि. [सं. स्वभाविक] प्राकृतिक।

स्वाभिमान—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी प्रतिष्ठा, मर्यादा या गौरव का अभिमान।

स्वाभिमानी—वि. [सं. स्वाभिमानिन्] जिसे अपनी प्रतिष्ठा, मर्यादा या गौरव का अभिमान हो।

स्वामि—संज्ञा पुं. [हिं. स्वामी] (१) प्रभु, स्वामी। उ.—सेवक करै स्वामि सौं सरवर इनि बातनि पति जाई—९८५। (२) पति। उ.—(तुम) जाहु बालक छाँडि जमुना स्वामि मेरौ जागिहै—५७७।

स्वामिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रभु या स्वामी होने का भाव या स्थिति।

स्वामिकार्तिक, स्वामिकार्त्तिक—संज्ञा पुं. [सं. स्वामि-कार्त्तिक] शिवजी के पुत्र स्कंद, कार्तिकेय।

स्वामित्व—संज्ञा पुं. [सं.] प्रभुत्व।

स्वामिन, स्वामिनि, स्वामिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वामिनी] (१) मालकिन, स्वत्वाधिकारिणी। (२) घर की मालकिन, गृहिणी। (३) प्रभु या स्वामी की पत्नी। उ.—

सेष, महेष, लोकेस, सुकादिक, नारदादि मुनि की हैं स्वामिनी—पृ. ३४५ (४०)। (४) श्रीराधा। उ.—सूर स्वामी स्वामिनी बने एक से कोउ न पटतर-अरस-परस दोऊ—पृ. ३१३ (२४)।

स्वामी—संज्ञा पुं. [सं. स्वामिन्] (१) अन्नदाता। (२) घर का कर्ता-धर्ता या प्रधान। (३) मालिक, स्वत्वाधिकारी। (४) (स्त्री का) पति। (५) परम आराध्य, ईश्वर, भगवान। उ.—(क) सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठ सो अभागे—१-८। (ख) निधरक रहौं सूर के स्वामी, जनम न जानौं फेरि—१-५१। (ग) कौन भाँति हरि-कृपा तुम्हारी, सो स्वामी समुझी न परी—१-११५। (घ) सनमुख होइ सूर के स्वामी भक्तनि कृपा-निधान—९-१३४। (ङ) ब्रह्मपूरन सकल स्वामी रहे ब्रज निसि धाम—२५८२। (च) सूरदास स्वामी के आगे निगम पुकारत साखि—३३७३। (६) साधु, संन्यासी और धर्माचार्यों की उपाधि या संबोधन। उ.—तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, बिषयिनि के मुख जोए—१-५२।

स्वायंभुव—संज्ञा पुं. [सं.] चौदह मनुओं में प्रथम जो स्वयंभू ब्रह्मा से उत्पन्न माने गये हैं। उ.—स्वायंभुव सौं आदि मनु जए—३-८।

स्वायंभुवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] ब्रह्माणी।

स्वायंभू—संज्ञा पुं. [सं. स्वायंभुव] ब्रह्मा से उत्पन्न प्रथम मनु। उ.—स्वायंभू मनु के सुत दोइ—४-८।

स्वायत्त—वि. [सं.] जिस पर अपना ही पूर्ण अधिकार और शासन हो।

स्वायो, स्वायौ—क्रि. स. [हिं. सुलाना] सुलाया (हुआ)। उ.—मनहुँ देखि रवि-कमल प्रकासत तापर भृंगी सावक स्वायो—२०६३।

स्वारथ—संज्ञा पुं. [सं. स्वार्थ] (१) (अपना) मतलब, उद्देश्य या प्रयोजन। उ.—(क) हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ—१-२८४। (ख) गोपी हरी सूर के प्रभु बिनु, रहत प्रान किहिं स्वारथ—१-२८७। (ग) तिन अंकनि कीउ फिर नहिं बाँचत गत स्वारथ समयौ—१-२९८। (२) (अपना) लाभ, भलाई या हित। उ.—भई न कृपा स्यामसुंदर की अब कहा स्वारथ फिरत बहैं—१-५३।

मुहा॰ स्वारथ आना—भलाई या हित के लिए सहायक या उपयोगी होना। न आयौ स्वारथ—काम नहीं आया, सहायक नहीं हुआ। उ.—काहु न धरहरि करी हमारी कोउ न आयौ स्वारथ—१-२५९।

वि. [सं. सार्थ] (१) सफल, सिद्ध, फलीभूत, सार्थक। उ.—सेवा सब भई अब स्वारथ।

स्वारथी—वि. [सं. स्वार्थी] अपना ही मतलब देखनेवाला। उ.—सूरदास वै आपु स्वारथी पर-वेदन नहिं जान्यौ—१४१७।

स्वारस्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रसीलापन, सरसता। (२) किसी कारण से मिलनेवाला आनंद।

स्वारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सवारी] (१) वाहन। (२) वह जो वाहन पर सवार हो। (३) देव-मूर्ति के साथ का जलूस।

स्वार्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (अपना) मतलब, उद्देश्य या प्रयोजन। (२) (अपना) लाभ, भलाई या हित।

मुहा॰ स्वार्थ आना—काम आना, सहायक होना। (किसी बात में) स्वार्थ लेना—रुचि लेना, अनुराग रखना।

वि. [सं. सार्थक] सफल, फलीभूत, सिद्ध।

स्वार्थ-त्याग—संज्ञा पुं. [सं.] (किसी भले काम के लिए) अपने लाभ या हित का ध्यान छोड़ देना।

स्वार्थत्यागी—वि. [सं. स्वार्थ+हिं. त्यागी] जो (किसी भले काम के लिए) अपने हित या लाभ को सहर्ष छोड़ दे।

स्वार्थ-पंडित—वि. [सं.] पक्का मतलबी।

स्वार्थपर—वि. [सं.] मतलबी, स्वार्थी।

स्वार्थपरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वार्थी होने का भाव।

स्वार्थपरायण—वि. [सं.] स्वार्थी।

स्वार्थपरायणता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वार्थपरता।

स्वार्थसाधक—वि. [सं.] पक्का मतलबी।

स्वार्थसाधन—संज्ञा पुं. [सं.] काम निकालना।

स्वार्थांध—वि. [सं.] जो अपना मतलब साधने में इतना अंधा हो जाय कि भले-बुरे का ध्यान भी छोड़ दे।

स्वार्थी—वि. [सं. स्वार्थिन्] मतलबी।

स्वाल—संज्ञा पुं. [हिं. सवाल]

स्वावलंब, स्वावलंबन—संज्ञा पुं. [सं.] अपने ही बल-भरोसे पर काम करना।

स्वावलंबी—वि. [सं. स्वावलंबिन्] अपने ही बल-भरोसे पर काम करनेवाला।

स्वाश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] अपना ही सहारा।

स्वाश्रित—वि. [सं.] अपने ही सहारे रहनेवाला।

स्वास, स्वासा—संज्ञा स्त्री. [सं. श्वास] साँस, श्वास। उ.—रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता स्वास समीर—९-१५८।

स्वास्थ्य—संज्ञा पुं. [सं.] तंदुरुस्ती, आरोग्य।

स्वास्थ्यकर—वि. [सं.] स्वस्थ करनेवाला।

स्वाहा—अव्य. [सं.] एक शब्द जिसका प्रयोग हवन को हवि देते समय होता है।

मुहा. स्वाहा करना—फूँक डालना, नष्ट करना। स्वाहा होना—नष्ट होना।

वि. (१) जो जलकर राख हो गया हो। (२) बरबाद, नष्ट।

संज्ञा स्त्री. अग्नि की पत्नी का नाम।

स्वीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अपनाना, अंगीकार करना। (२) मानना, राजी होना।

स्वीकार—संज्ञा पुं. [सं.] मंजूर, अंगीकार।

स्वीकारात्मक—वि. [सं.] जो स्वीकार करने योग्य हो या स्वीकार किया जाय।

स्वीकारोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह कथन जिसमें अपना दोष, अपराध आदि स्वीकार किया गया हो।

स्वीकार्य—वि. [सं.] स्वीकार करने योग्य।

स्वीकृत—वि. [सं.] (१) स्वीकार किया हुआ। (२) ग्रहण किया या माना हुआ। (३) मान्यताप्राप्त।

स्वीकृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मंजूरी, स्वीकार करने की क्रिया या भाव। (२) ग्रहण करने की क्रिया या भाव। (३) मानने या राजी होने की क्रिया या भाव।

स्वीय—वि. [सं.] अपना, निजी।

स्वीया—संज्ञा स्त्री. [सं. स्वकीया] अपने ही पति में पूर्ण अनुराग रखनेवाली नायिका।

स्वे—वि. [सं. स्वः] अपना।

स्वेच्छया—क्रि. वि. [सं.] अपनी ही इच्छा से।

स्वेच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं.] अपनी मर्जी या इच्छा।

स्वेच्छाचार—संज्ञा पु. [सं.] मनमाना काम करना।

स्वेच्छाचारिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निरंकुशता

स्वेच्छाचारी—वि. [सं. स्वेच्छाचारिन्] मनमाने ढंग से काम करनेवाला, निरंकुश।

स्वेच्छा-बिहार, स्वेच्छा-विहार—संज्ञा पुं. [सं. स्वेच्छा + विहार] निरंकुशतापूर्वक किया गया विहार।

स्वेच्छा-विहारी—वि. [सं. स्वेच्छा + हिं. बिहारी] निरंकुशतापूर्वक विहार या विलास करनेवाला। उ.—असुर द्वै हुते बलवंत भारी। सुंद-उपसुंद स्वेच्छा-बिहारी—८-११।

स्वेच्छामृत्यु—वि. [सं.] जिसकी मृत्यु उसकी इच्छा पर हो, इच्छानुसार मरनेवाला।

संज्ञा पुं. भीष्म पितामह जो अपनी इच्छानुसार मरे थे।

स्वेच्छासेवक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो अपनी इच्छाओं का दास हो। (२) वह जो अपनी मर्जी या इच्छा से सेवक बना हो, स्वयंसेवक।

स्वेत—वि. [सं. श्वेत] सफद। उ.—अप्सरा, पारिजातक, धनुष, अस्व गज स्वेत, ये पाँच सुरपतिहिं दीन्हें—८-८।

स्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पसीना, प्रस्वेद। उ.—चलत चरन चित गयौ गलित झिर स्वेद सलिल भै भीनी—२९०६। (२) लज्जा, हर्ष, श्रम आदि से शरीर का पसीने से भर जाना जो एक सात्विक अनुभाव माना गया है। (३) भाप, बाष्प।

स्वेदक—वि. [सं.] पसीना लानेवाला (पदार्थ)।

स्वेद-कण—संज्ञा पुं. [सं.] पसीने की बूँद।

स्वेदज—वि. [सं.] पसीने से उत्पन्न होनेवाला।

संज्ञा पुं. (जूँ, खटमल आदि) जीव जो पसीने से उत्पन्न होते हैं।

स्वेदन—संज्ञा पुं. [सं.] शरीर से पसीना लाना।

स्वेदित—वि. [सं.] (१) पसीने से भरा हुआ। (२) भफारा दिया हुआ, भाप से सेंका हुआ।

स्वै—वि. [सं. स्वीय] अपना, निजी।

सर्व. [हिं. सो] सो।

स्वैच्छिक—वि. [सं.] (१) अपनी इच्छा से संबंधित।

(२) अपनी इच्छा से लिया हुआ।

स्वैर—वि. [सं.] (१) मनमाना काम करनेवाला। (२) धीमा, मंद। (३) मनमाना।

स्वैरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] निरंकुशता।

स्वैराचार—संज्ञा पुं. [सं.] मनमाना काम करना।

स्वैराचारिणी—वि. [सं.] मनमाना काम करनेवाली।

संज्ञा स्त्री. व्यभिचारिणी।

स्वैराचारी—वि. [सं. स्वैरचारिन्] मनमाना काम करनेवाला, निरंकुश।

स्वैरिणी—वि. [सं.] मनमाना काम करनेवाली।

संज्ञा स्त्री. व्यभिचारिणी स्त्री।

स्वैरिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वेच्छाचारिता।

स्वैरी—वि. [सं. स्वैरिन्] स्वेच्छाचारी।

स्वोपार्जित—वि. [सं.] अपना कमाया हुआ।

ह

ह—देवनागरी वर्णमाला का तेंतीसवाँ और अंतिम व्यंजन जो उच्चारण की दृष्टि से 'ऊष्म' वर्ण है।

हँक—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाँक] (१) उच्च स्वर से किया हुआ संबोधन। (२) ललकार। (३) बढ़ावा। (४) दुहाई।

हँकड़ना, हँकरना—क्रि. अ. [हिं. हाँक] (१) उच्च स्वर से चिल्लाना। (२) ललकारना।

हँकराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँकराना] जोर से पुकारने या बुलाने की क्रिया या भाव।

क्रि. स. पुकरवाया, बुलवाया। उ.—जमुना तट मन बिचारि गाइनि हँकराई—६१९।

हँकराए—क्रि. स. [हिं. हँकराना] बुलाया, बुलाये। उ.—(क) मोहन ग्वाल-सखा हँकराए। (ख) कौन काज को हम हँकराए—१००५।

हँकरानो, हँकरानो—क्रि. स. [हिं. हाँक] (१) जोर से आवाज देना या संबोधन करना। (२) बुलाना, पुकारना। (३) बुलाने या पुकारने का काम दूसरे से कराना, बुलवाना, पुकरवाना।

हँकराये—क्रि. स. [हिं. हँकराना] बुलवाया। उ.—(क) इहीं काज तुमकौं हँकराए—१०४६। (ख) सूर इंद्र गण हँकराये—१०६२।

हँकरावा—संज्ञा पुं. [हिं. हँकरावा] (१) बुलाने की क्रिया या भाव, पुकार, बुलाहट। (२) बुलावा, न्योता।

हँकवा—संज्ञा पुं. [हिं. हाँकना] बहुत से लोगों का कोलाहल करते हुए शेर, चीते आदि को तीन ओर से घेरकर उस दिशा में ले चलना जिधर शिकारी उसे मारने को तैयार बैठा हो।

हँकवाना—क्रि. स. [हिं. हाँकना का प्रे.] पुकारने का काम दूसरे से कराना, हाँक लगवाना।

हँकवैया—संज्ञा पुं. [हिं. हाँकना+वैया] हाँकनेवाला। उ.—मन मंत्री सो रथ हँकवैया—४-१२।

हँका—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाँक] ललकार।

हँकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाँकना] हाँकने की क्रिया, भाव या मजदूरी।

हँकाना, हँकानो—क्रि. स. [हिं. हाँक] (१) चौपायों को हाँककर या हँकाकर किसी ओर ले जाना। (२) बुलाना, पुकारना। (३) हाँकने का काम दूसरे से कराना, हँकवाना।

हँकार—संज्ञा स्त्री. [सं. हक्कार] जोर से पुकारने की क्रिया या भाव, पुकार।

मुहा० हँकार पड़ना—(चारों ओर से) बुलाने के लिए आवाजें लगना।

हँकार—संज्ञा पुं. [सं. अहंकार] घंमड, शेखी, गर्व।

संज्ञा पुं. [सं. हुंकार] वीरों की ललकार।

हँकारत—क्रि. स. [हिं. हँकारना] जोर से पुकारता है, ऊँचे स्वर से बोलता है। उ.—ऊँचे तरु चढ़ि स्याम सखनि कौं बारंबार हँकारत।

हँकारना, हँकारनो—क्रि. स. [हिं. हँकार] (१) जोर से पुकारना, ऊँचे स्वर से बुलाना। (२) अपने पास आने को कहना, बुलाना। (३) युद्ध के लिए ललकारना या आह्वान करना।

हँकारना, हँकारनो—क्रि. अ. [हिं. हुंकार] युद्ध में वीरों का

हुंकार या वपनाद करना।

क्रि. अ. [हिं. अहंकार] घमंड या गर्व करना।

हँकारा - संज्ञा पुं. [हिं. हँकारना] (१) पुकार, बुलाहट। (२) बुलावा, न्योता, निमंत्रण।

हँकारि—क्रि. अ. [हिं. हँकारना] हाँक देकर, ललकारकर। उ.—आगैं हरि पाछैं श्रीदामा, धरयौ स्याम हँकारि —१०-२१३।

प्र. लिए हँकारि—बुला या बुलवा लिये। उ.—ग्वाल-बाल लिए हँकारि—६१९।

हकारी—संज्ञा पुं. [हिं. हँकार] (१) लोगों को बुलाकर लानेवाला व्यक्ति। (२) दूत।

संज्ञा स्त्री. बुलाने की क्रिया या भाव, बुलाहट।

क्रि. स. [हिं. हँकारना] हँकार करके।

प्र. लेहु हँकारी—बुला या बुलवा लो। उ.—ऐरावत को लेहु हँकारी—१०६६।

क्रि. वि. पुकारते, बुलाते या चिल्लाते हुए। उ.—हमको देखत ही गए उत ग्वाल-बाल हँकारी – १५३२।

क्रि. अ. [हिं. हंकराना] हुंकार करके।

प्र. उठे हँकारी—वीरनाद या हुंकार कर उठे। उ.—अंकुस राखि कुंभ पर करष्यो, हलधर उठे हँकारी —२५९४।

वि. [हिं. अंहकारी] गर्व करनेवाला, घमंड़ी।

हँकारे—क्रि. स. [हिं. हँकारना] बुलाया या बुलवाया है। उ.-(क)तुम दारुक आगैं ह्वै देखौ, भक्त भवन किधौं अनत सिधारे। सुनि सुंदरि उठि उत्तर दीन्हयौ, कौरव-सुत कछु काज हँकारे—१-२४०। (ख) मल्ल-युद्ध प्रति कंस कुटिल मति छल करि इहाँ हँकारे—२५६९।

हँकारौ–क्रि. स. [हिं. हँकारना] (१) बुलाया या बुलवाया। उ.—न्यौति नृप प्रजा कौं तब हँकारौ—४-११। (२) बुलाओ या पुकारो, बुलवाओ या पुकरवाओ। उ.—नैंकु काहैं न सुत कौ हँकारौ—७५१।

हँकारयो, हँकार्‌यौ—क्रि. स. [हिं. हँकारना] (१) बुलाया-बुलवाया है, न्योता या निमंत्रण दिया या भिजवाया। उ.— (क) दच्छ रिस मानि जब जज्ञ आरंभ कियौ, सबनि कौं सहित पत्नी हँकारयौ—४-६। (ख) आयो सुन्यो अहीर मनो महि काल हँकारयौ—१० उ. ८। (२) बुलाकर तैयार कराया। उ.—सुनि जरासंघ बृत्तांत अस सुता से जुद्ध हित कटक अपनो हँकारयौ —१० उ.-१।

क्रि. अ. [हिं. अहंकारना] घमंड या गर्व से भर गया। उ.—घात मन करत, लै डारिहौं दुहुँनि पर, दियो गज पेलि आपुन हँकारयो—२५९२।

हंगामा—संज्ञा पुं. [फ़ा. हंगामः] (१) उपद्रव, उत्पात। (२) शोरगुल, हल्ला। (३) भीड़-भाड़।

हंडना, हंडनो—क्रि. अ. [सं. अध्यटन] (१) घूमना-फिरना। (२) मारे-मारे या व्यर्थ घूमना। (३) इधर-उधर ढूंढ़ना, छानबीन करना।

हंडा—संज्ञा पुं. [सं. भांडक] (१) पीतल, ताँबे आदि का बहुत बड़ा बरतन। (२) वह रोशनी जिस पर शीशे की हंडे-जैसी बड़ी चिमनी हो।

हँडाना, हँडानो—क्रि. स. [हिं. हंडना] (१) घुमाना, फिराना। (२) मारे-मारे या व्यर्थ घुमाना-फिराना। (३) छानबीन कराना, ढुँढ़ाना।

हँडिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. हंडी] मिट्‌टी, पत्थर आदि का बना बरतन, हाँड़ी।

हंडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हंडा] मिट्‌टी, पत्थर आदि का बना गोलाकार बरतन, हाँड़ी।

हंत—अव्य. [सं.] खेद या शोकसूचक शब्द।

हंता—वि. [सं. हंतृ] वध करनेवाला।

हंत्री - वि. स्त्री. [हिं. हंता] हत्या करनेवाली।

हँफनि, हँफनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव।

मुहा. हँफनि या हँफनी मिटाना—दम लेना, सुस्ताना, थकावट दूर करना।

हंवा—अव्य. [हिं. हाँ] सम्मति या स्वीकृति-सूचक अव्यय, हाँ।

हँवाना, हँवानो—क्रि. अ. [देश.] (गाय का) रँभाना।

हंभा—संज्ञा स्त्री. [देश.] (गाय बैल के) बोलने या रँभाने का शब्द।

हंस—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बतख की तरह का एक जल पक्षी जिसका वर्षाकाल में मानसरोवर आदि झीलों में चला जाना और शरत्काल में लौटना प्रसिद्ध है।

उ.—(क) मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै—२-१३। (ख) मानौं चारि हंस सरवर तैं बैठे आइ सदेहिया—९-१९। (२) सूर्य, रवि। (३) ब्रह्म, परमात्मा। (४) माया से निर्लिप्त शुद्ध आत्मा, जीवात्मा (५) जीवनी शक्ति, प्राण। उ.—(क) जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत-प्रेत कहि भागी—१-७९। (ख) बिछुरत हंस बिरह कैं सूलनि, झूठे सबै सनेह—८०१।

मुहा० हंस उड़ जाना—शरीर से प्राण निकल जाना।

(६) विष्णु का एक अवातर जो सनकादिक का भ्रम और गर्व दूर करने के लिए हुआ था। उ.—(क) सनकादिक, पुनि व्यास बहुरि भए हंस-रूप हरि—२-३६। (ख) तब हरि हँस-रूप धरि आए—११-६। (७) संन्यासियों का एक भेद। उ.—कहि आचार भक्ति-बिधि भाखी हंस धर्म प्रगटायो—सारा.। (८) पैर का 'नूपुर' नामक आभूषण।

हस—क्रि. अ. [हिं. हँसना] हास करके।

मुहा. हँसकर बात उड़ाना—तुच्छ या साधारण समझकर टाल देना।

हंसक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हंस पक्षी। (२) पैर का 'बिछुआ' या 'नूपुर' नामक आभूषण।

हंस-किंकिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

हंस-गति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हंस जैसी सुंदर चाल। (२) सायुज्य मुक्ति।

हंसगामिनी—वि. स्त्री. [सं.] हंस के समान सुंदर गति से चलनेवाली।

हंसजा—संज्ञा. पुं. [सं.] सूर्य-पुत्री, यमुना।

हँसत—क्रि. अ. [हिं. हँसना] हँसता है। उ.—(क) हँसै हँसत, बिलखैं बिलखत हैं-१-१९५। (ख) हुलसत, हँसत, करत किलकारी, मन अभिलाष बढ़ावैं—१०-४५।

हँसता—वि. [हिं. हँसना] जो हँस रहा हो।

मुहा० हँसता चेहरा या मुख—हँसमुख।

हँसता-हँसता—(१) प्रसन्नता के साथ। (२) सहज में, सरलता से।

हँसति—क्रि. अ. [हिं. हँसना] हँसती है। उ.—रूखी ह्वै रहति हँसे ते हँसति—१८६९।

हँसन-संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसना] हँसने की क्रिया, भाव या ढंग।

हँसना—क्रि. अ. [सं. हसन] (१) प्रसन्नता सूचित करने के लिए खिलखिलाना या ठट्ठा मारना, हास करना।

मुहा० हँसना खेलना—प्रसन्नता या आनंद करना, आमोद-प्रमोद करना। हँसना-बोलना—प्रेमपूर्वक बात-चीत करना। ठठाकर हँसना—जोर से हँसना, अट्टहास करना।

(२) दिल्लगी या परिहास करना। (३) मनोहर या रमणीय लगना। (४) प्रसन्न या सुखी होना। (५) खिलना, विकसित होना।

क्रि. स. उपहास या व्यंग करना।

मुहा० किसी व्यक्ति पर हँसना—उसकी हँसी उड़ाना, उसका उपहास करना। किसी वस्तु पर हँसना—तुच्छ या बुरी समझकर उसकी व्यंग्यपूर्ण निंदा करना।

हंसनादिनि, हंसनादिनी—वि. स्त्री. [सं. हंसनादिनी] सुंदर या मधुर बोलनेवाली।

हँसनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसना] हँसने की क्रिया, भाव या ढंग। उ.—हँसनि माधुरता।

हंसनी—संज्ञा स्त्री. [सं. हंस] हंस की मादा।

हँसनो—क्रि. अ., स. [हिं. हँसना] हँसना।

हंस-मंगला—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

हंस-बाल—संज्ञा पुं. [सं. हंस + बाल] हंस का बच्चा, बाल हंस। उ.—सूर प्रभु नंद-सुवन दोउ हंस-बाल उपाय—२५६५।

हंसमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हंसों की पंक्ति। (२) एक वर्णवृत्त।

हंसमुख—वि. [हिं. हँसना + मुख] (१) सदा हँसता रहनेवाला। (२) मसखरा, ठिठोलीबाज।

हंसरथ—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा जिनका वाहन हंस।

हँसली—संज्ञा स्त्री. [सं. अंसली (१) गरदन और छाती के बीच की धन्वाकार हड्डी। (२) गले का एक आभूषण।

हंस-वंश—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यवंश।

हंसवाहन—संज्ञा पुं [सं.] ब्रह्मा।

हंसवाहिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती।

हंस-सुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सूर्य की पुत्री, यमुना नदी। उ.—हंस-सुता की सुंदर कगरी अरु कुंजन की छाहीं—ना० ४७७४।

हंसा—संज्ञा स्त्री. [सं. हंस] राधा की सखी एक गोपी। उ.—कहि राधा किन हार चुरायो"" ""। प्रेमा दामा रूपा हंसा रंगा हरषा जाउ—१५८०।

हँसाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसना] (१) हँसने की क्रिया, भाव या रीति। (२) बदनामी, निंदा, उपहास। उ.—(क) सूरदास कूबरि रँग राते ब्रज में होति हँसाई। (ख) सूरदास प्रभु बिरद लाज धरि मेटहु इहाँ के लोग हँसाई—३११८।

हँसाना, हँसानो—क्रि. स. [हिं. हँसना] किसी को हँसने में प्रवृत्त करना।

मुहा. अपने को हँसाना—ऐसा आचरण या व्यवहार करना जिससे दूसरे उपहास करें।

हँसाय—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसाई] (१) हँसने की क्रिया, भाव या रीति। (२) निंदा, उपहास।

हंसारूढ़—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

वि. जो हंस पर सवार हो।

हंसारूढ़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सरस्वती।

वि. स्त्री. जो हंस पर सवार हो।

हंसालि—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक छंद।

हँसावत—क्रि. स. [हिं. हँसाना] हँसने को प्रवृत्त करता है। उ.—(क) बालक-बृंद बिनोद हँसावत—६१८। (ख) गावत हँसत गवाय हँसावत—८०९।

हँसावै—क्रि. स. [हिं. हँसाना] हँसने या उपहास करने को प्रवृत करता है। उ.– चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि भ्रमि भ्रमि जमहि हँसावै—२-१३।

हँसि—क्रि. अ. [हिं. हँसना] (१) हँसकर। उ.—हँसि बोलौ जगदीस जगतपति—१-१५१। (२) परिहास या विनोद करके। उ.—की तू कहति बात हँसि मोसों की बूझति सति भाऊ—१२६०।

हंसिका—संज्ञा स्त्री [सं.] हंस की मादा।

हंसिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. हंसी] हंस की मादा।

हँसिया—संज्ञा पुं. [सं. हंस] (१) एक धारदार अर्द्धचंद्राकार औजार। (२) हाथी के अंकुश का टेढ़ा भाग।

हंसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हंस की मादा। उ.—कैसैं ल्याउँ संगीत सरोवर मगन भई गति हंसी—१६८५। (२) एक वर्णवृत्त।

हँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसना] (१) हँसने की क्रिया या भाव, हास।

यौ. हँसी-खुशी—प्रसन्नता। हँसी ठट्ठा—विनोद। हँसी-खेल—विनोद और क्रीड़ा।

मुहा. हँसी छूटना—(बहुत जोर से) हँसी आना। (२) मजाक, दिल्लगी, ठट्ठा, परिहास।

यौ. हँसी-खेल—(१) आमोद-प्रमोद, विनोद। (२) सहज या साधारण बात। हँसी-ठठोली—दिल्लगी, मजाक. हँसी-दिल्लगी।

मुहा. हँसी उड़ाना—उपहास करना। हँसी समझना या हँसी-खेल समझना—खिलवाड़ या साधारण बात समझना। हँसी में उड़ाना—साधारण या उपेक्षणीय समझ कर टाल देना, परिहास या विनोद की बात कहकर टाल देना। हँसी में लेना या ले जाना—गंभीर या महत्वपूर्ण बात (पर गंभीरता से विचार न करके उस) को हँसी या मन-बहलाव की बात समझना। हँसी में खसी होना या हो जाना—दिल्लगी, मजाक या विनोद की बात करते करते परस्पर झगड़ने लगना या मारपीट कर बैठना।

(३) अनादरसूचक हास, व्यंग्यपूर्ण निंदा।

मुहा. हँसी उड़ाना—व्यंग्यपूर्ण निंदा करना।

(४) बदनामी, लोक-निंदा।

मुहा. हँसी होना—बदनामी या निंदा होना। हँसी (हांसी) होन लगी—बदनामी या निंदा होने लगी है। उ.—हँसी (हांसी) होन लगी या ब्रज में कान्हहिं जाइ सुनावौ।

हँसीला—वि. [हिं. हँसना] हँसी-मजाक करनेवाला।

हँसुआ—संज्ञा पुं. [हिं. हँसिया] हँसिया।

हँसुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसली] हँसली।

हँसुवा—संज्ञा पुं. [हिं. हँसिया] हँसिया।

हँसें, हँसैं—क्रि. वि. [हिं. हँसना] हँसने या हँसाये जाने पर। उ.—(क) हँसैं हँसत, बिलखैं बिलखत हैं—१-१९५। (ख) हँसें तें हँसति—१८६९।

हँसै—क्रि. स. [हिं. हँसना] हँसी उड़ावे, उपहास करे।
उ.—ऐसे चलौ हँसै नहिं कोऊ—१४९७।
हँसैगो—क्रि.स.[हिं. हँसना]हँसी उड़ायेंगे, उपहास करेंगे।
मुहा. नाउँ हँसैगो—नाम की हँसी उड़ायेंगे, उपहास करेंगे। उ.—यह बिचारि सुनि ग्वारिनी नाउँ हँसैगो लोग—११२०।
हँसोड़, हँसोर—वि. [हिं. हँसना+ओड़] हँसी-ठट्ठा करनेवाला, मसखरा।
हँसोहाँ—वि. [हिं. हँसना] हँसौहाँ।
हँसौगे—क्रि.अ.[हिं. हँसना] (१) हास करोगे, खिलखिलाओगे। उ.—बात सुने तैं बहुत हँसौगे, चरन-कमल की सौं—१-१५१।(२) उपहास करोगे।
हँसौहीं, हँसौहाँ—वि. [हिं. हँसना] (१) कुछ-कुछ हँसता हुआ, कुछ कुछ हँसी लिये। (२) जो स्वभाव से हँसमुख हो। (३) बहुत जल्दी हँस देनेवाला। (४) परिहासयुक्त।
हई—संज्ञा पुं. [सं. हयिन्, हिं. हयी] घुड़सवार।
अव्य. [अनु.] अचरज या आश्चर्यसूचक शब्द।
संज्ञा स्त्री. डर, भय।
क्रि. अ. [हिं. है+ही] 'है ही' (का संक्षिप्त रूप)।
क्रि. स. [हिं. हयना] (१) पीड़ित कर दिया। उ.—(क) मदन हई री—१४७४। (ख) प्रिया जानि अंकम भरि लीन्ही कहि कहि ऐसी काम हई—१८३२। (२) नष्ट कर दिया। उ.—घटी घटा सब अभिन मोह मद तमिता तेज हई—२८५३।
हउँ—क्रि. अ. [ब्रज. हौं] हूँ।
सर्व. ब्रजभाषा में उत्तमपुरुष, सर्वनाम का एकवचन रूप, मैं।
हए—क्रि. स. [हिं. हयना] (१) मार डाला। उ.—(क) दंतवक्र सिसुपाल जो भए। बासुदेव ह्वै सो पुनि हए—१०-२। (ख) कोट सबन भूलि गए हाँक देत चकृत भए लपकि लपकि हए उबरचौ नहिं कोऊ—२६१०। (२) आघात किया, लक्ष्य बनाकर आहत किया। उ.—(क) सूर स्याम बिथुरे कच मुख पर नख नाराच हए—२०८४। (ख) इन हिय हेरि मृगी सब गोपी सायक ज्ञान हए—३०५०।

हक—वि. [अ. हक़] (१) सच। (२) उचित।
संज्ञा पुं. अधिकार, स्वत्व।
मुहा. हक दबाना या मारना—किसी को प्राप्य वस्तु या बात से वंचित करना। हक पर या के लिए लड़ना—प्राप्य या अधिकार की रक्षा के लिए लड़ना। हक दबना या मारा जाना—प्राप्य या अधिकार से वंचित रहना। हक में—लाभ की दृष्टि से, पक्ष में।
(३) फर्ज, कर्तव्य।
मुहा. हक अदा करना—कर्तव्य पालन करना।
(४) वह वस्तु जिस पर न्यायतः अधिकार हो। (५) दस्तूरी की रकम।
मुहा. हक दबना या मारा जाना—दस्तूरी की रकम न मिलना। हक दबाना या मारना—दस्तूरी की रकम न देना।
(६) ठीक या उचित बात या पक्ष।
मुहा. हक पर होना–उचित बात का आग्रह करना
हकदार—वि. [अ. हक+फ़ा. दार] अधिकारी।
हकनाहक़—अव्य. [अ. हक+फ़ा. नाहक़] (१) जबरदस्ती, धींगा-धींगी से। (२) व्यर्थ, निष्प्रयोजन।
हकबक—वि. [हिं. हक्काबक्का] घबराया हुआ।
हकबकाना, हकबकानो—क्रि. अ. [अनु.] घबरा जाना।
हकराना, हकरानो—क्रि. स. [हिं. हकार] बुलाना।
हकलना, हकलनो—क्रि. अ. [सं. हुंकार] (१) हुंकार करना। (२) ललकारना।
हकला—वि. [हिं. हकलाना] (वाग्दोष के कारण) रुक-रुक कर बोलनेवाला।
हकलाना, हकलानो—क्रि. अ. [अनु. हक] (वाग्दोष के कारण) रुकरुककर बोलना।
हकलाहा—वि. [हिं. हकला] हकला।
हकार—संज्ञा पुं. [सं.] 'ह' अक्षर या वर्ण।
हकारना, हकारनो—क्रि. अ. [हिं. हकार] 'हे' कहकर पुकारना।
हकाहक—क्रि. वि. [अनु.] खूब जोरों से।
संज्ञा स्त्री. जोरों की लड़ाई, घोर युद्ध।
हकीकत—संज्ञा स्त्री. [अ. हक़ीक़त] (१) असलियत, सत्य या वास्तविक बात।

मुहा. हकीकत खुलना—ठीक बात का पता लगना। हकीकत में—सचमुच, वास्तव में।

(२) सच्चा और ठीक-ठीक वृत्तांत।

हकीकी—वि. [अ. हक़ीक़ी] (१) सच्चा, ठीक। (२) सगा, आत्मीय। (३) भगवत्संबंधी।

हकीम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) विद्वान। (२) यूनानी चिकित्सक।

हकीमी—वि. [अ. हकीम] हकीम-संबंधी।

संज्ञा स्त्री. (१) यूनानी चिकित्सा शास्त्र। (२) हकीम का काम, पेशा या व्यवसाय।

हकीर—वि. [अ. हक़ीर] (१) तुच्छ। (२) उपेक्षणीय।

हकूमत—संज्ञा पुं. [अ. हुकूमत] (१) शासन, अधिकार।

मुहा. हकूमत चलाना या दिखाना—अधिकार या बड़प्पन दिखाना।

हक्क—संज्ञा पुं. [हिं. हक] हक।

हक्का—संज्ञा पुं. [सं. हुंकार] (१) हाँक, पुकार। (२) ललकार। (३) हुंकार।

हक्काबक्का—वि. [अनु. हक, बक] घबराया हुआ, भौंचक्का।

हक्कार—संज्ञा पुं. [हिं. हाँक] चिल्लाकर बुलाने का शब्द।

हक्कारना, हक्कारनो—क्रि. स. [सं. हुंकार] ललकारना।

हचकना, हचकनो—क्रि. अ. [अनु.] 'हच-हच' करके रुकना, झुकना या हिलना-डोलना।

हचका—संज्ञा पुं. [हिं. हचकना] झोंका, धक्का।

हचकोला—संज्ञा पुं. [हिं. हचकना] धक्का, धचका।

हचना, हचनो—क्रि. अ. [अनु.] हिचकना।

हज—संज्ञा पुं. [अ.] काबे के दर्शन या परिक्रमा के लिए मक्के (अरब) जाना (मुसलमान)।

हजम—वि. [अ. हज़्म] (१) पचा हुआ। (२) बेईमानी या अनुचित रूप से लिया हुआ।

मुहा. हजम होना—बेईमानी या अनुचित रीति से ली गयी वस्तु का पास रहना या पच सकना।

हजरत—संज्ञा पुं. [अ. हज़रत] (१) महापुरुष, महात्मा। (२) दुष्ट या धूर्त (व्यंग्य)।

हजामत—संज्ञा स्त्री. [अ.] सिर के बाल काटने और दाढ़ी बनाने का काम या मजदूरी।

मुहा. हजामत बनाना—(१) सिर या दाढ़ी के बाल काटना। (२) धन या अन्य वस्तु ठगकर ले लेना। (३) मारना-पीटना। हजामत होना—(१) धन या अन्य वस्तु का ठगकर लिया जाना। (२) मार पड़ना, दंड मिलना।

हजार—वि. [फ़ा. हज़ार] (१) सहस्र (२) अनेक। उ. मैं देखें की नाहीं देखे तुम तौं बार हजार—१३११।

संज्ञा पुं. दस सौ की संख्या या अंक।

क्रि. वि. कितना ही, चाहे जितना अधिक।

हजारहाँ—वि. [फ़ा. हज़ारहाँ] (१) हजारों, सहस्रों। (२) बहुत से, अनेक।

हजारा—वि. [फ़ा. हज़ारा] (फूल) जिसमें हजार या बहुत अधिक पंखुड़ियाँ हों, सहस्रदल।

संज्ञा पुं. (१) फुहारा। (२) एक तरह की आतिश-बाजी।

हजारी - संज्ञा पुं. [फ़ा. हज़ारी] एक हजार सिपाहियों का नायक या सरदार।

यौ. हजारी बजारी—सरदारों से लेकर बनियों तक सब, अमीर-गरीब सभी।

हजारों—वि. [हिं. हजार] (१) सहस्रों। (२) अनेक।

हजूम—संज्ञा पुं. [अ. हुजूम] भीड़।

हजूर—संज्ञा पुं. [अ. हुज़ूर] (१) किसी बड़े या अधिकारी की समक्षता। (२) बादशाह या शासनाधिकारी का दरबार या कचहरी। उ.—दधि-माखन-घृत लेत छँड़ाए, आजुहिं मोहिं हजूर बोलावहु—१०९४। (३) किसी बड़े अधिकारी, शासक या स्वामी के लिए संबोधन शब्द।

क्रि. वि. किसी बड़े या शासनाधिकारी के सामने या समक्ष। उ.—रजु लै सबै हजूर होति तुम सहित सुता वृषभान—२९३६।

हजूरी—संज्ञा पुं. [हिं. हजूर] किसी बादशाह, राजा या शासनाधिकारी के पास रहनेवाला सेवक।

मुहा. जी-हजूरी करना—चापलूसी, खुशामद या चाटुकारी करना।

वि. हजूर का।

हजो—संज्ञा स्त्री. [अ. हज्व] बदनामी, निंदा।

हज्ज—संज्ञा पुं. [हिं. हज] हज।

हज्जाम—संज्ञा पुं. [अ.] नाई, नापित ।

हटक—संज्ञा स्त्री. [हिं. हटकना] (१) मना करने या रोकने की क्रिया, वारण, वर्जन ।

मुहा. हटक मानना—मना करने पर रुक जाना, रोकने पर मान जाना । हटक न मानत—रोकने पर भी नहीं रुकते । उ.—सूरदास ए हटक न मानत लोचन हठी हमारे—३०३६ । हटक न मानति—मना करने पर भी नहीं मानती । उ.—बंसी धुनि मृदु कान परत ही गुरुजन-हटक न मानति ।

(२) पशुओं को हाँकने की क्रिया या भाव ।

हटकत—क्रि. स. [हिं. हटकना] रोककर दूसरी ओर हांकने (पर भी), मना या वर्जित करने (पर भी, उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ ।""""यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति—१-५१ ।

हटकति—क्रि. स. [हिं. हटकना] रोकती या मना करती, रोकने या मना करने (पर) । उ.—(क) सुत को हटकति नाहिं, कोटि इक गारी दीन्हीं—१०७० । (ख) सूर जब हम हठकि हटकति बहुत हम पर लरी—पृ. ३३७ (६७) ।

हटकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. हटकना] (१) मना करना, रोकना, वारण, वर्जन । (२) चौपायों को हांकना । (३) चौपायों को हांकने की लाठी ।

हटकना—क्रि. स. [हिं. हटक] (१) रोकना, मना करना, निषेध या वर्जन करना । (२) पशुओं को किसी ओर हांकना ।

क्रि. अ. मना करने से मानना, रोकने से रुकना ।

हटकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. हटकन] (१) मना करना । (२) चौपायों को हाँकने की क्रिया । उ.—बालक-बृन्द बिनोद हँसावत, करतल लकुट धेनु की हटकनि—६१८ । (३) पशुओं को हांकने की लाठी ।

हटकनो—क्रि. स. क्रि. अ. [हिं. हटक] हटकना ।

हटका—संज्ञा पुं. [हिं. हटक] किवाड़ों को खुलने से रोकने के लिए लगाया गया काठ, अर्गल ।

हटकि—क्रि. स. [हिं. हटकना] (१) रोक कर, मना करके । उ.—(क) सूर स्याम को हटकि न राखै, तैं ही पूत अनोखो जायौ—१०-३३१ । (ख) कुल-अभिमान हटकि हठि राखी, तैं जिय मैं कछु और धरी—८०६ । (ग) बारहिंबार कहि हटकि राखति, निकसि गए हरि संत नहिं रहे घेरे—पृ. ६२२ । (१६) (घ) जद्यपि हटकि हटकि राखति हौं, तद्यपि होति खरी—पृ. ३३७ (६३) । (२) पशुओं को किसी दिशा में जाने से रोककर । उ.—पायँ परि बिनती करौं हौं हटकि लावौ गाय । (ख) अबकैं अपनी हटकि चरावहु, जैहैं भटकी घाली—५०३ ।

मुहा. जबरदस्ती, हठात् । (२) बिना कारण ।

हटकी—क्रि. स. [हिं. हटकना] रोका, मना किया । उ.—माई री, गोबिंद सों प्रीति करत तबहीं काहे न हटकी री—१२०० ।

हटके—क्रि. स. [हिं. हटकना] रोका, मना किया । उ.—नैना बहुत भाँति हटके—पृ. ३३६ (५२) ।

हटकौ—क्रि. स. [हिं. हटकना] पशु को रोककर दूसरी ओर हाँको । उ.—माधौ, नैंकु हटकौ गाइ—१-५६ ।

हटक्यो, हटक्यौ—क्रि. स. [हिं. हटकना] रोका, मना किया । उ.—जुरीं आय सिगरीं जमुना तट हटक्यो, कोउ न मान्यो ।

हटतार—संज्ञा पुं. [हिं. हरताल] एक खनिज पदार्थ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हठतार] माला का सूत ।

संज्ञा पुं. [हिं हठ+तारा] टकटकी ।

हटना, हटनो—क्रि. अ. [सं. घट्टन] (१) एक स्थान को छोड़कर दूसरे पर जाना । (२) पीछे की ओर सरकना । (३) (काम से) जी चुराना या विमुख होना ।

मुहा. पीछे न हटना—(काम करने को) तैयार रहना ।

(४) समने से दूर होना । (५) किसी बात का नियत समय पर न होकर आगे के लिए टल जाना । (६) न रह जाना, मिटना । (७) बात पर दृढ़ न रहना ।

क्रि. स. [हिं. हटकना] रोकना, मना करना ।

हटवाई—संज्ञा स्त्री· [हिं. हाट+वाई] हाट में सौदा लेना या बेचना, हाट का क्रय-विक्रय ।

संज्ञा पुं. हाट में सौदा बेचनेवाला ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हटाना] हटाने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

हटवाना, हटवानो—क्रि. स. [हिं. हटाना का प्रे.] हटाने का काम दूसरे से कराना।

हटवार, हटवारा, हटवारो—संज्ञा पुं. [हिं. हाट+वारा] हाट में सौदा बेचनेवाला।

हटा—संज्ञा पुं. [हिं. हटकना] रोक, मनाही।

हटाना, हटानो—क्रि. स. [हिं. हटना] (१) एक स्थान से दूसरे पर ले जाना। (२) दूर करना, न रहने देना। (३) स्थान छोड़ने पर विवश करना।(४) (किसी बात का) विचार छोड़ देना। (५) बात पर दृढ़ न रहने देना।

हटी—संज्ञा स्त्री [हिं. हाट] (१) दूकान। (२) बाजार।
  वि. [हिं. हठी] जिद्दी, हठी।

हटुआ, हटुवा—संज्ञा पुं. [हिं. हाट+उआ, उवा] हाट में बेचनेवाला, दूकानदार।

हटौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाड़+औती] देह का ढाँचा, शरीर की गठन।

हट्ट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूकान। (२) बाजार।

हट्टा-कट्टा—वि. [सं. हृष्ट+अनु, कट्टा] मोटा-ताजा।

हट्टी—संज्ञा स्त्री. [सं. हट्ट] दूकान।

हठ—संज्ञा पुं. [सं.] जिद, अड़, टेक। उ.—(क) हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित नौबत द्वार बजावत—१-१४१। (ख) हठ न करहुतुम नंददुलारे—१०-१६०।
  मुहा. हठ पकड़ना—किसी बात के लिए अड़ जाना। हठ रखना—जिस बात के लिए जिद हो, उसे मान लेना। हठ में पड़ना—हठ करना। हठ माँड़ना—हठ ठानना। हठ माँड़ि रही—जिद कर रही है। उ.—क्यों हठ माँड़ि रही री सजनी टेरत स्याम सुजान।
  (२) दृढ़ प्रतिज्ञा, अटल संकल्प। (३) अनुचित बात के लिए की गयी जिद, दुराग्रह।

हठ-धर्म—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी बात पर दृढ़तापूर्वक डटे रहना।

हठधर्मी—संज्ञा स्त्री. [सं. हठ+हिं. धर्मी] (१) अनुचित बात पर भी डटे रहना, दुराग्रह। (२) मत या संप्रदाय की बात को लेकर अड़ना, कट्टरता।
  वि. अनुचित बात पर भी अड़ा रहनेवाला।

हठना, हठनो—क्रि. अ. [हिं. हठ] (१) जिद या हठ करना। (२) दुराग्रह करना। (३) दृढ़ प्रतिज्ञा करना। (४) जोर देना, आग्रह करना।
  मुहा. हठ कर—जबरदस्ती, बलात्।

हठयोग—संज्ञा पुं. [सं.] योग का वह रूप जिसमें शरीर को साधने के लिए कठोर मुद्राओं और आसनों का विधान है।

हठशील—वि. [सं.] जिद्दी, हठी।

हठहिं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हठ+हिं] हठ को।
  मुहा. हठहिं गहौं—हठ करूँ। उ.—प्रगट ताप तनु ताप सूर प्रभु केहि पर हठहिं गहौं—११-३।

हठात—प्रत्य. [सं.] (१) हठपूर्वक। (२) जबरदस्ती, बलात्। (३) अचानक, सहसा।

हठाहठ, हठाहठी—क्रि. वि. [सं. हठात्] हठात्।

हठि—क्रि. वि. [हिं. हठना] (१) हठ या दुराग्रहपूर्वक। उ.—अगम सिंधु जतननि सजि नौका हठि क्रम-भार भरत—१-५५। (२) दृढ़तापूर्वक। उ.—ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-बासर हठि चित्त लगायौ—१-३२६।

हठिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] हल्ला-गुल्ला, शोर।

हठिहैं—क्रि. अ. [हिं. हठना] हठ करेंगी। उ.—करिहैं न कबहूँ मान हम, हठिहैं न माँगत दान—२७३५।

हठी—वि. [सं. हठिन्] हठ करनेवाला। उ.—सूरदास ए हटक न माँगत लोचन हठी हमारे—३०३६।

हठीला—वि. [हिं. हठ+ईला] (१) जिद्दी, हठी। (२) दृढ़प्रतिज्ञ। (३) युद्ध में डटा रहनेवाला।

हठीली—वि. स्त्री. [हिं. हठीला] हठ करनेवाली। उ.—(क) सूरदास प्रभु माखन माँगत, नाहिंन देति हठीली—१०-२९९। (ख) तू अजहूँ तजि मान हठीली कहौं तोहिं समुझाय। (ग) कहति नागरी स्याम सों तजो मान हठीली—पृ. ३१२ (१५)।

हठीले—वि. [हिं. हठ] हठ, ऐंठ या अकड़भरे। उ.—हारै तोरचौ, चीरहिं फारचौ बोलत बोल हठीले हो—१०३३।

हठे—वि. [हिं. हठ] हठ कर रहे हैं। उ.-सखि, ये नैनहठे।

हठै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हठ] हठ को। उ.—प्रगट पाप संताप सूर अब कापर हठै गहौं—३-२।

क्रि. अ. [हिं. हठना] हठ करता है। उ.—सूरदास प्रभु इती बात कौं कत मेरौ लाल हठै—१०-१९५।
हठैहौ—क्रि. स [हिं. हठना] ह करोगे। उ.—जो पै तुम या भाँति हठैहौ।
हड़—संज्ञा स्त्री. [सं. हरीतकी] (१) एक पेड़ जिसका फल औषध के रूप में काम आता है, हर्र। (२) हड़ के आकर का, नाक का एक गहना, लटकन।
हड़कंप—संज्ञा पुं. [सं. हृत्कंप] भारी हलचल।
हड़क—संज्ञा स्त्री. [प्रा.] (१) पागल कुत्ते के काटने पर पानी के लिए होनेवाली व्याकुलता। (२) किसी वस्तु को पाने की रट या धुन।
हड़कना—क्रि. अ. [हिं. हड़क] कोई चीज न मिलने पर या किसी अभाव से दुखी होना।
हड़काना—क्रि. स. [हिं. हड़कना] (१) तंग करने के लिए किसी को पीछे लगा देना, लहकारना। (२) तरसाना। (३) 'नाहीं' करके हटा देना।
हड़काया—वि. [हिं. हड़कना] (१) पागल (कुत्ता)। (२) किसी वस्तु के लिए बहुत उतावला।
हड़ताल—संज्ञा स्त्री. [सं. हट्ट+ताला] किसी असंतोष को सूचित करने के लिए दूकानें या काम बंद करना।
हड़प—वि. [अनु.] (१) खाया या निगला हुआ। (२) अनुचित रीति से लिया हुआ।
मुहा. हड़प करना—अनुचित रीति से ले लेना।
हड़पना—क्रि. स. [हिं. हड़प] (१) खा या निगल लेना। (२) अनुचित रीति से ले लेना।
हड़बड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) जल्दी, उतावली। (२) उतावली के कारण होनेवाली घबराहट।
मुहा. हड़बड़ करना—बहुत जल्दी मचाना।
हड़बड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] बहुत जल्दी करना।
क्रि. स. शीघ्रता करने को प्रवृत्त करना।
हड़बड़िया—वि. [हिं. हड़बड़] जल्दी मचानेवाला।
हड़बड़ी—संज्ञा स्त्री [अनु.] (१) जल्दी, शीघ्रता। (२) उतावली के कारण घबराहट।
मुहा.—हड़बड़ी में पड़ना—ऐसी स्थिति होना कि सारा काम बहुत जल्दी निबटाना पड़े।
हड़हड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] बहुत जल्दी करना।
क्रि. स. जल्दी मचाकर दूसरे को घबराना।
हड़हा—संज्ञा पुं. [देश.] जंगली बैल।
वि. [हिं. हाड़] इतना दुबला कि शरीर में हड्डियाँ ही शेष रह गयी हों।
हड़ावर, हड़ावरि, हड़ावल, हड़ावलि—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाड़+सं. अवलि] (१) हड्डियों का समूह। (२) हड्डियों का ढाँचा, ठठरी। (३) हड्डियों की माला।
हड़ि—संज्ञा पुं. [सं.] काठ की बेड़ी।
हड़ीला—वि. [हिं. हाड़+ईला] (१) जिसमें हड्डी हों। (२) जो इतना दुबला हो कि केवल हड्डियाँ बच रहें।
हड्डी—संज्ञा स्त्री. [सं. अस्थि, प्रा. अत्थि, अट्ठि] (१) शरीर के भीतर की वह कठोर वस्तु जो ढाँचे या आधार के रूप में होती है, अस्थि।
मुहा. हड्डी (हड्डियाँ) गढ़ना या तोड़ना—बहुत मारना-पीटना। हड्डी (हड्डियाँ) निकल आना—(रोग आदि के कारण) इतना दुबला हो जाना कि हड्डियाँ दिखायी देने लगें।
यौ. पुरानी हड्डी—किसी वृद्ध या वृद्धा का मजबूत शरीर, पुराने समय के आदमी जैसा दृढ़ शरीर।
(२) खानदान, वंश, कुल।
हत—वि. [सं.] (१) जो मार डाला गया हो। (२) जो मारा-पीटा गया हो। (३) रहित, विहीन। (४) जिसके आघात या ठोकर लगी हो। (५) जो रह न गया हो, नष्ट। उ.—बिधि-गर्व हत करत न लागी बार—४३७। (६) पीड़ित, ग्रस्त। (७) जिसमें विकार आ गया हो। (८) गया-बीता, निकृष्ट।
हतक—संज्ञा स्त्री. [अ. हतक़] हेठी, अपमान।
हतचेत—वि. [सं. हत+चेत] बेहोश, अचेत।
हतज्ञान—वि. [सं.] संज्ञाशून्य।
हतदैव—वि. [सं.] दैव का मारा, अभागा।
हतन—संज्ञा पुं. [हिं. हतना] (१) मार डालना। (२) दूर करना। उ.—ज्यौं कपि सीत-हतन हित गुंजा सिमिटि होत लौलीन—१-१०२।
वि. (१) मारनेवाला। (२) दूर या नष्ट करनेवाला। उ.—नगर नारि ब्याकुल जिय जानत प्रभु

सूर स्याम गर्व-हतन नाम ध्यान करि करि वै हरषैं—२६०४ ।

हतना, हतनो—क्रि. स. [सं. हत+हिं. ना] (१) मार डालना, वध करना । (२) मारना-पीटना । (३) न मानना, पालन न करना । (४) तोड़ना, भंग करना ।

हतप्रभ—वि. [सं.] तेज या कांतिहीन ।

हतप्रभाव—वि. [सं.] (१) जिसका असर न रह गया हो । (२) जिसका अधिकार न रह गया हो ।

हतबुद्धि—वि. [सं.] (१) मूर्ख, बुद्धिहीन । (२) विमूढ़, किंकर्तव्यविमूढ़ ।

हतबोध—वि. [सं.] (१) मूर्ख । (२) विमूढ़ ।

हतभाग, हतभागा, हतभागी, हतभाग्य, वि. [सं. हत+भाग्य] अभागा, भाग्यहीन ।

हतभागिन, हतभागिनि, हतभागिनी—वि. स्त्री. [सं.] हत+भाग्य] अभागी, भाग्यहीना ।

हतमना—वि. [सं. हत+मनस्] (१) उमंग या उत्साह रहित । (२) चिंचित और दुखी ।

हतवाना, हतवानो—क्रि. स. [हिं. हतना का प्रे.] (१) वध करवाना । (२) नष्ट करवाना ।

हतश्री—वि. [सं.] (१) तेज, कांति या श्रीहीन । (२) मुरझाया हुआ, उदास ।

हता—क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' का भूतकालिक एक वचन रूप, था ।

वि. स्त्री. [सं. हत] नष्ट चरित्रवाली ।

हताई—संज्ञा. स्त्री. [हिं. हतना] घायल होने, मरने आदि की क्रिया या भाव ।

हताना, हतानो—क्रि. स. [हिं. हतना] 'हत' करने को प्रवृत्त करना, हतवाना ।

हताश, हताशा, हतास, हतासा–वि. [सं. हताश] जिसकी आशा नष्ट हो गयी हो, निराश ।

हताहत—वि. [सं.] मारे हुए और घायल ।

हति—क्रि. स. [हिं. हतना] (१) मारकर । उ.—(क) अघ-बक-तृनावर्त-धेनुक हति—१-१५८ । (ख) कंस वंस बधि, जरासंध हति—१-१८१ । (ग) हति गज-सत्रु—८-६ । (२) तोड़ कर, भंग करके ।

प्र०—डारत हति—तोड़ डालता है, भंग कर देता है । उ.—ज्यौं गज फटिक सिला मैं देखत, दसननि डारत हति (पाठा. जाइ परचौ)—२-३६ ।

हतिहैं—क्रि. स. [हिं. हतना] मार डालेगा । उ.—मैं देखौं इनको अब हतिहैं, अति व्याकुल हहरचौ—२५५२ ।

हती—क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग एकवचन रूप, थी । उ.—तेरे हती प्रेम-संपति सखि, सो संपति केहि मूषी—२२७५ ।

हते— क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' क्रिया का भूतकालिक बहुवचन रूप, थे । उ.—नयन हते तिनहूँ पर बीती ।

क्रि. स. [हिं. हतना] मारे, मार डाले । उ.—(क) ज्ञान-विवेक बिरोधे दोऊ, हते बंधु-हितकारी—१-१३ । (ख) हरि कह्यौ, राज न करत धर्मसुत । कहत, हते मैं भ्रात तात जुत—१-२६१ । (ग) राम औ' जादवन सुभट ताके हते—१० उ.-२१ ।

हतो—क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' क्रिया का भूत-कालिक एकवचन रूप, था ।

हतोत्साह—वि. [सं.] जिसमें (कुछ करने की) उमंग या उत्साह शेष न रह गया हो ।

–अव्य. [अनु.] एक अव्यय जिसका प्रयोग उपेक्षा, बुरापन आदि सूचित करने के लिए होता है ।

हत्थ—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ] हाथ, हस्त ।

हत्था—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ] (१) किसी औजार का दस्ता या मूठ । (२) हाथ के नीचे रखने का आधार । (३) केले के फलों की घौद । (४) ऐपन आदि से बनाया गया पंजे या हाथ का चिह्न ।

हत्थी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हत्था] मूठ, दस्ता ।

हत्थे—क्रि. वि. [हिं. हाथ] (१) हाथ में ।

मुहा. हत्थे चढ़ना—(१) हाथ में आना, मिलना, प्राप्त होना । (२) वश में होना ।

(२) हाथ से, द्वारा ।

हत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मारने की क्रिया, वध । उ.—करिकै क्रोध तुरत तिहिं मारचौ । हत्या हित यह मंत्र उचारचौ । चारि अंस हत्या के किए ।······ब्राह्मन हत्या कै दुख तयौ—६-५ ।

मुहा. हत्या लगना या होना—किसी का वध करने का पाप लगना । हत्या लगी - वध करने के पाप के

भागी बने। उ.—राम तिहिं हत्यौ, तब सब रिषिन मिलि कह्यौ, बिप्र हत्या तुम्हैं लगी भाई—ना.४८४१। हत्या होइ– वध करने का पाप लगेगा। उ.—हरि-जन मारैं हत्या होइ—५-३।

(२) (वध करने के उद्देश्य से नहीं) अनजान-में या संयोगवश किसी के प्राण ले लेना। (३) हैरान करनेवाली बात, झँझट, बखेड़ा।

मुहा. हत्या टलना–झंझट से छुटकारा मिलना। हत्या गले पड़ना या सिर लगना—झंझट या बखेड़े के किसी काम में फँसना। हत्या गले डालना या सिर लगाना—बखेड़े या झंझट के काम में फँसाना।

हत्यार, हत्यारा—[सं. हत्या+कार या हिं. आर, आरा] (१) मार डालने या वध कर देनेवाला। (२) फाँसी देनेवाला, जल्लाद। (३) क्रूर कार्य करनेवाला।

हत्यारी—वि. [हिं. हत्यारा] वध करनेवाली।

संज्ञा स्त्री. हिंसा या हत्या का पाप।

हत्यो, हत्यौ—क्रि. स. [हिं. हतना] (१) मारा, वध किया। उ.—(क) मागध हत्यौ—१-१७। (ख) हत्यौ कंस नरेस—२९७५। (२) दूर किया, मिटाया। उ.—गर्व हत्यौ—१८१७।

हथ—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ] (१) हाथ।

मुहा. पर-हथ बिकाऊँ—दूसरे के हाथ बिकूँ, दूसरे के वश में हो जाऊँ। उ.—काकैं द्वार जाइ सिर नाऊँ पर-हथ कहा बिकाऊँ—१-१६४।

(२) 'हाथ' का वह संक्षिप्त रूप जो समस्त पदों के प्रारंभ में लगता है।

हथ-उधार—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+उधार] वह ऋण जो थोड़े दिनों के लिए, बिना किसी लिखा-पढ़ी के, लिया जाय।

हथकंडा—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+सं. कांड] (१) हाथ की सफाई या चालाकी। (२) (काम निकालने के लिए की गयी) छिपी हुई चालबाजी या गुप्त चाल।

हथकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथ+कड़ी] जंजीर या डोरी से बँधा लोहे के कड़ियों का जोड़ा जो अपराधी या कैदी के हाथ में पहनाया जाता है।

हथगोला—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+गोला] बारूद का गोला जो हाथ से फेंका जाता है।

हथछुट—वि. [हिं. हाथ+छूटना] जो जरा-जरा सी बात में किसी को मार बैठता हो।

हथनाल—संज्ञा पुं. [हिं. हाथी+नाल=तोप] वह तोप जो हाथी पर रखकर चलायी जाय, गजनाल।

हथनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथी] हाथी की मादा।

हथफूल—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+फूल] (१) एक तरह की आतिशबाजी। (२) हथेली के पीछे पहनने का एक जड़ाऊ गहना।

हथफेर—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथ+फेरना] (१) स्नेह या प्यार से शरीर पर हाथ फेरना। (२) हाथ की सफाई या चालाकी से किसी का माल उड़ा लेना। (३) कुछ समय के लिए, बिना किसी लिखा-पढ़ी के, लिया हुआ उधार या ऋण।

हथली—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथ] चरखे की मुठिया।

हथलेआ, हथलेवा– संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+लेना] (१) विवाह में वर द्वारा अपने हाथ में कन्या का हाथ लेने की रीति, पाणिग्रहण। (२) विवाह में कन्या का हाथ लेनेवाला, वर।

हथवाँस—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+बाँस] नाव का डाँड़ा, लग्गा, पतवार आदि।

हथवाँसना—क्रि. स. [हिं. हाथ+अवाँसना] किसी व्यवहारोपयोगी वस्तु का पहले पहल उपयोग करना।

हथसंकर, हथसाँकर, हथसाँकल, हथसाँकला—संज्ञा पुं., स्त्री. [हिं. हाथ+साँकल] 'हथफूल' नामक गहना।

हथसार, हथसारा, हथसाल, हथसाला—[हिं. हाथी+सं. शाला] हाथी बाँधने का स्थान।

हथा—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ] हाथ का चिह्न जो दीवार आदि पर बनाया जाता है, थापा।

हथाहथी—अव्य. [हिं. हाथ+हाथ] (१) एक के हाथ से दूसरे के हाथ में, हाथोहाथ। (२) चटपट, तुरन्त।

हथिआर, हथिआरा—संज्ञा पुं. [हिं. हथियार] अस्त्र-शस्त्र

मुहा. कसे साजे हथिआरा—अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए। उ.—सकल सभा जिय जानि कसे साजे हथिआरा—१० उ. ८।

हथिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. हस्तिनी, प्रा. हत्थिणी] हाथी की मादा।

हथियन—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हाथी] हाथियों ने। उ.—मानो मत्त मदन के हथियन बल करि बंधन तोरे–२८१८

हथिया—संज्ञा पुं. [सं. हस्त, प्रा. हत्थ] (१) हस्त नक्षत्र। (२) हस्त नक्षत्र की वर्षा।

हथियाना, हथियानो—क्रि. स. [हिं. हाथ+आना] (१) अपने हाथ में करना, ले लेना। (२) हाथ में पकड़ना। (३) दूसरे की चीज धोखा देकर ले लेना।

हथियार—संज्ञा पुं. [हिं. हथियार] (१) हाथ में लेकर काम करने का औजार या उपकरण। (२) हाथ से पकड़कर चलाया जानेवाला अस्त्र-शस्त्र। उ.—लै लै ते हथियार आपने सान धराए ज्यौं —१-१५१।

मुहा. हथियार उठाना—(१) लड़ाई के लिए तैयार होना। (२) प्रहार करने या मारने के लिए शस्त्र हाथ में लेना। हथियार कसना, धरना, बाँधना, लेना या लगाना–(१) अस्त्र-शस्त्र धारण करना। (२) युद्ध के लिए तैयार होना। धरे हथियार—अस्त्र-शस्त्र सजाये हुए। उ.—धरे यंत्र-हथियार अहो हरि होरी है—२४१६।

हथियारबंद—वि. [हिं. हथियार+फ़ा. बंद] जो हथियार लिये हो, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित।

हथेरी, हथेली—संज्ञा स्त्री. [सं. हस्ततल, प्रा. हत्थतल] कर-तल, हस्ततल।

मुहा. हथेली खुजलाना—कुछ मिलने या प्राप्त होने का शकुन होना। हथेली का फफोला—बहुत ही सुकुमार वस्तु जिसके टूटने-फूटने का डर सदा बना रहे। हथेली देना या लगाना—हाथ का सहारा देना, सहायता करना। किसकी हथेली में बाल जमे हैं—कौन ऐसा संसार में है। हथेली पर जान लेकर काम करना—जान जोखिम में या प्राण संकट में डालकर काम करना। हथेली में जान होना—बड़े संकट में पड़ना।

हथेव—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ] हथौड़ा।

हथोरि, हथोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हथेली] हथेली।

हथौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथ+औटी] (१) काम करने का ढंग या कौशल। (२) काम में हाथ लगाने की स्थिति, क्रिया या भाव।

हथौड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+औड़ा] एक औजार जिससे कुछ ठोंका, पीटा या गढ़ा जाता है।

हथौड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हथौड़ा] छोटा हथौड़ा।

हथौना—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ+औना] वर-वधू के हाथ में मिठाई रखने की रीति।

हथ्याना, हथ्यानो—क्रि. स. [हिं. हथियाना] हथियाना।

हथ्यार, हथ्यारा – संज्ञा पुं. [हिं. हथियार] हथियार।

हद—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) सीमा।

मुहा. हद बँधना—सीमा निश्चित होना। हद बाँधना—सीमा निश्चित करना। हद तोड़ना—सीमा के बाहर जाना या कुछ करना। हद से बाहर ठहरायी हुई या मान्य सीमा से आगे।

(२) उचित संख्या या परिमाण, संख्या या परिमाण का मान्य औचित्य।

मुहा. हद से ज्यादा—बहुत अधिक संख्या या परिमाण में। हद न होना—संख्या या परिमाण की दृष्टि से बहुत ही अधिक।

(३) वह औचित्य जहाँ तक कोई काम, व्यवहार या आचरण ठीक हो, मर्यादा।

मुहा. हद पारना—मर्यादा या औचित्य का पालन या निर्वाह करना। हद पारो—(उचित कार्य-संपादन द्वारा) मर्यादा या औचित्य का पालन या निर्वाह करो। हद से गुजरना—मर्यादा या औचित्य से भी आगे बढ़ जाना।

क्रि. वि. बहुत अधिक, अत्यंत।

हदस—संज्ञा स्त्री. [अ. हादिस ?] ऐसा भाव जो किसी को किंकर्तव्यविमूढ़ कर दे।

हदसना, हदसनो—क्रि. अ. [हिं. हदस] बहुत अधिक डरना या भयभीत होना।

हदीस—संज्ञा स्त्री. [अ.] मुसलमानों का एक धर्मग्रंथ जिसमें मुहम्मद साहब के वचन संगृहीत हैं।

हनत—क्रि. स. [हिं. हनना] प्रहार करता है, प्रहार करते-करते। उ.—मुसल मुगदर हनत—१-१२०।

हनन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मार डालना, वध करना। (२) प्रहार या आघात करना।

हनना, हननो – क्रि. स. [सं. हनन] (१) मार डालना, वध करना। (२) प्रहार या आघात करना। (३) ठोंकना। (४) (नगाड़ा आदि लकड़ी से) पीट-पीट कर बजाना। (५) (शस्त्र) चलाना।

हनवाना, हवनानो—क्रि. स. [हिं. हनना] 'हनने' को प्रवृत्त करना।

क्रि. स. [हिं. नहाना] नहलाना।

हनाना—क्रि. अ. [हिं. नहाना] स्नान करना।

हनिवंत, हनिवंता—संज्ञा पुं. [हिं. हनुमंत] हनुमान।

हनी—क्रि. स. [हिं. हनना] मारी, वध किया। उ.—पहिले ही इन हनी पूतना—सारा. ५६९।

हनु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दाढ़ की हड्डी, जबड़ा। (२) ठोढ़ी, चिबुक।

हनुमंत, हनुमंता—संज्ञा पुं. [हिं. हनुमान] हनुमान।

हनुमान, हनुमान्—वि. [सं. हनुमत्] (१) भारी दाढ़ या जबड़ेवाला। (२) बहुत बड़ा वीर।

संज्ञा पुं. श्रीराम के परम भक्त एक बानर जिन्होंने लंका के युद्ध में उनके अनेक कार्य बड़ी तत्परता से किये थे। अंजना इनकी माता और वायु या मरुत् पिता कहे जाते हैं।

हनुव—संज्ञा पुं. [हिं. हनुमान] हनुमान।

हनूमान, हनूमान्—संज्ञा पुं. [हिं. हनुमान] हनुमान।

हने—क्रि. स. [हिं. हनना] मार डाले। उ.—वृषभ-गंजन मथन-केसी हने पूँछ फिराइ—४९८।

हनोज—अव्य. [फा. हनोज] अभी, अभी तक।

हनोद—संज्ञा पुं. [देश.] एक राग।

हन्यो, हन्यौ—क्रि. स. [हिं. हनना] मार डाला। उ.—मनहुँ चंद्र-मुख कोपि हन्यो रिपु राहु विषय बलवान—१८९७।

हप—संज्ञा पुं. [अनु.] मुँह में चट से कुछ रखकर ओंठ बंद करने का शब्द।

मुहा. हपकर जाना—चटपट खा जाना।

हफ्ता—संज्ञा पुं. [फा. हफ्ता] सप्ताह।

हबकना, हबकनो—क्रि. अ. [अनु.] खाने या काटने के लिए मुँह खोलना या बाना।

क्रि. स. दाँत से काट लेना।

हबराना, हबरानो—क्रि. अ. [हिं. हड़बड़ाना] (१) जल्दी मचाना। (२) घबराना।

हबीब – संज्ञा पुं. [अ.] (१) मित्र। (२) मुहम्मद साहब जो ईश्वर के परम प्रिय माने जाते हैं। (३) बहुत प्यारा, अत्यंत प्रिय।

हबूब—संज्ञा पुं. [अ. हबाब या हुबाब] (१) पानी का बुल्ला या बुलबुला। (२) झूठमूठ की बात।

हब्स – संज्ञा पुं. [अ.] कैद, कारावास।

संज्ञा पुं. [फ़ा. हब्श] अफ्रीका का एक देश जहाँ के निवासी बहुत काले होते हैं।

हब्सी—संज्ञा पुं. [फ़ा. हब्शी] (१) अफ्रीका के हब्श देश का निवासी जो बहुत काला होता है। (२) एक तरह का काल अंगूर।

हम—सर्व. [सं. अहम्] 'मैं' का बहुवचन।

संज्ञा पुं. घमंड, अहंकार, अहंभाव।

अव्य. [फ़ा.] (१) संग, साथ। (२) समान।

हमकना, हमकनो—क्रि. अ. [हिं. हुमकना] (१) किसी चीज पर चढ़कर उसे बार-बार नीचे दबाना। (२) उछलना-कूदना।

हमकाना, हमकानो – क्रि.अ. [अनु.] 'हूँ हूँ' शब्द करना।

हमजोली—संज्ञा पुं. [फ़ा. हम + हिं. जोड़ी] संगी, साथी।

हमता—संज्ञा स्त्री. [हिं. हम + ता] अपने को बहुत-कुछ समझने का अहम् भाव, अहंकार। उ.—हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानै—१-११।

हमदर्द—संज्ञा पुं. [फ़ा.] दुख का साथी, दुख की स्थिति में सहानुभूति दिखानेवाला।

हमदर्दी – संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] सहानुभूति।

हमनिवाला—संज्ञा पुं. [फ़ा.] साथ-साथ भोजन करने वाला घनिष्ठ मित्र।

हमरा – सर्व. [हिं. हमारा] हमारा।

हमराह—वि. [फ़ा.] साथ-साथ जानेवाला।

अव्य. साथ, संग में।

मुहा. हमराह करना—साथ कर देना। हमराह होना—साथ-साथ जाना।

हमरी—सर्व. स्त्री. [हिं. हमारी] हमारी। उ.—अब इह सुरति करै को हमरी—१८३२।

मुहा. हमरी उनकी सी मिलवत हौ—हमारी और उनकी हाँ में हाँ मिलाते हो, जो हम और वे कहते हैं उसी का समर्थन करते हो। उ.—हमरी उनकी सी मिलवत हौ तातें भए बिहंगी—२९९७।

हमरे—सर्व. [हिं. हमारे] हमारे। उ.—हमरे डर करि दोऊ भाई नगर समुद्र बसायौ—सारा. ७५२।

हमरैं—सर्व. सवि. [हिं. हमारे] हमारे में, हममें। उ.—बिना काम हमरैं नहिं चाह—९-२।

हमरो, हमरौ—सर्व. [हिं. हमारा] हमारा। उ.—बालक बह्यो सिंधु में हमरो सो नित प्रति चित लाग्यौ—सारा. ५३९।

हमला—संज्ञा पुं. [अ. हम्मला] (१) चढ़ाई, धावा। (२) मारने के लिए झपटना, आक्रमण। (३) वार, प्रहार। (४) किसी को हानि पहुँचाने के लिए किया गया काम या प्रयत्न। (५) आक्षेप, व्यंग्य।

हमवतन—संज्ञा पुं. [फ़ा. हम+अ. वतन] स्वदेशवासी।

हमवार—वि. [फ़ा.] समतल, सपाट।

हमसर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बराबरी का आदमी।

हमसरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] बराबरी, समानता।

हमसाया—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पड़ोसी।

हमहमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हम+हम+ही] (१) अपने-अपने लाभ का प्रयत्न। (२) अपने को ही सबसे ऊपर या सबके आगे करने का प्रयत्न।

हमाम—संज्ञा पुं. [अ. हम्माम] स्नानागार।

हमार—सर्व. [हिं. हमारा] हमारा, हमारी। उ.—सुनि सिख-साखि हमार—२-२।

हमारा—सर्व. [हिं. हम+आरा] 'हम' का संबंधकारकीय पुँल्लिग रूप।

हमारी—सर्व. स्त्री. [हिं. हमारा] 'हम' का संबंधकारकीय स्त्रीलिंग रूप। उ.—इंद्री खड्ग हमारी—१-१४४।

हमारो, हमारौ, हमार्‌यो, हमार्‌यौ—सर्व. [हिं.हमारा] हमारा। उ.—या ब्रज कोउ नाहिं हमार्‌यो—२८९२।

हमाल—संज्ञा पुं. [अ. हम्माल] (१) भार या बोझ उठाने वाला। (२) रक्षा करने या सँभालनेवाला। (३) (बोझ ढोनेवाला) कुली।

हमाहमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हम+हम+ही] (१) अपने-अपने लाभ या स्वार्थ के लिए किया हुआ आतुर प्रयत्न। (२) अपने को आगे बढ़ाने या ऊपर उठाने का आतुर प्रयत्न।

हमीर—संज्ञा पुं [सं. हम्मीर] रणथंभोर का एक प्रसिद्ध चौहान राजा।

हमें—सर्व. [हिं. हम] 'हम' का कर्म और संप्रदानकारकीय रूप, हमको।

हमेल—संज्ञा स्त्री. [अ. हमायल] सोने-चाँदी के सिक्के जैसे गोल टुकड़ों की माला। उ.—(क) दुलरी अरु तिलरी बँद तापर सुभग हमेल बिराजत—१०७९। (ख) और हार चौकी हमेल अब तेरे कंठ न नैहौं—१५५०।

हमेव—संज्ञा पुं. [हिं. हम] घमंड, अहंकार।

मुहा. हमेव टूटना—शेखी या गर्व निकल जाना।

हमेशा, हमेस, हमेसा—अव्य. [फ़ा. हमेशा] सदा।

मुहा. हमेशा के लिए—सब दिनों के लिए।

हमैं—अव्य. [हिं. हमें] हमको।

हम्द—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) प्रशंसा। (२) ईश-स्तुति।

हम्माम—संज्ञा पुं. [अ.] स्नानागार।

हम्मीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रणथंभोर का एक प्रसिद्ध चौहान राजा जो (सन् १३०० में) अलाउद्दीन खिलजी से बड़ी वीरता से लड़कर मरा था। (२) एक संकर राग।

हम्मीरनट—संज्ञा पुं. [सं.] एक संकरराग।

हयंद—संज्ञा पुं. [सं. हयेंद्र] (१) अच्छा या बड़ा घोड़ा। (२) इंद्र का उच्चैःश्रवा घोड़ा।

हय—संज्ञा पुं. [सं.] घोड़ा। उ.—हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ—१-१६६। इंद्र का एक नाम।

हयगृह—संज्ञा पुं. [सं.] घुड़साल, अश्वशाला।

हयग्रीव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु का एक अवतार जो मधुकैटभ नामक दैत्यों से वेदों का उद्धार करने के लिए हुआ था। उ.—(क) प्रगट भए हयग्रीव महानिधि प्रगट ब्रह्म अवतार—सारा. ८९। (ख) कपिल

मनु हयग्रीव पुनि कीन्हौं ध्रुव अवतार—२-३६। (२) एक असुर जो ब्रह्मा की निद्रा के समय वेद उठा ले गया था। उससे वेदों का उद्धार करने लिए विष्णु ने मत्स्य अवतार लिया था।

हयग्रीवा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा का एक नाम।

हयन—संज्ञा पुं. [सं.] साल, वर्ष।

हयना, हयनो—क्रि. स. [सं. हत प्रा. हय+ना] (१) मार डालना, वध करना। (२) मारना-पीटना। (३) ठोंक-पीटकर बजाना। (४) न रहने देना, मिटाना, नष्ट करना।

क्रि. अ. [सं. हनन या अ. हैबत=भय] बहुत डरना, भयभीत होना।

हयनाल—संज्ञा स्त्री. [सं. हय+नाल=तोप] घोड़े पर से चलायी जानेवाली तोप।

हयमेध—संज्ञा पुं. [सं.] अश्वमेध।

हयशाला, हयसार, हयसारा, हयसाल, हयसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. हयशाला] घुड़साल।

हया—संज्ञा स्त्री. [अ.] शर्म, लाज, लज्जा।

हयात—संज्ञा स्त्री. [अ.] जिंदगी, जीवन।

हयादार—वि. [अ. हया+फ़ा. दार] जिसे अनुचित काम करने में शर्म या लाज आती हो, लज्जाशील।

हयादारी—संज्ञा स्त्री. [अ. हया+फ़ा. दारी] अनुचित काम करते समय लजाने का भाव, लज्जाशीलता।

हयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] घोड़ी।

संज्ञा पुं. [सं. हयिन्] घुड़सवार।

हयो, हयौ—क्रि. स. [हिं. हयना] (१) मार डाला, वध किया। उ.—(क) सोच सबको गयो, दनुज कुल सब हयो—२६१७। (ख) नए सखा जोरे जादव कुल अरु नृप कंस हयो—३३४७। (२) दूर किया, मिटाया। उ.—सखा बिप्र दारिद्र हयौ—१-२६। (३) बरबादी कर ली, नष्ट कर लिया। उ.—पूर नंद-नंदन जेहिं बिसरयौ, आपुहिं आपु हयौ—१-७८।

हर—वि. [सं.] (१) ले लेनेवाला, छीनने या लूटनेवाला। (२) दूर करने या मिटानेवाला। (३) मारने या बध करनेवाला। (४) ले जाने या पहुँचानेवाला, वाहक।

प्रत्य. एक प्रत्यय जो शब्दांत में लगकर उक्त अर्थ देता है।

संज्ञा पुं. (१) शिव, महादेव। उ.—हरि-हर संकर नमो नमो—१०-१७१। (२) एक राक्षस जो विभीषण का मंत्री था। (३) वह संख्या जिससे भाग दें।

प्रत्य. एक प्रत्यय जो शब्दांत में लगकर स्थान, घर आदि का अर्थ देता है।

संज्ञा पुं. [सं. हल] हल। उ.—बंजर भूमि गाँउ हर जोते, अरु जेती की तेती—१-१८५।

वि. [फ़ा.] एक-एक, प्रत्येक।

मुहा. हर एक—एक-एक, प्रत्येक। हर कोई या किसी—सब कोई या किसी, सर्वसाधारण। हर दफा या बार—प्रत्येक अवसर पर। हर हाल या हालत में—प्रत्येक दशा में। हर दम—प्रतिक्षण, सदा।

हरई—क्रि. स. [हिं. हरना] लूटता या हरण करता है। उ.—घर-घर माखन हरई—२५४२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हरुआ] (१) हलकापन। (२) ओछापन।

हरएँ—अव्य. [हिं. हरुवा] (१) धीरे-धीरे, मंद गति से। (२) हलके-हलके। (३) चुपके से। (४) क्रम-क्रम से।

हरकत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) हिलना-डोलना। (२) चेष्टा, क्रिया। (३) बुरी चाल, नटखटी।

हरकना, हरकनो—क्रि. स. [हिं. हटकना] (१) रोकना, मना करना। (२) पशुओं को किसी ओर हाँकना। (३) अलग या दूर करना, हटाना।

हरकारा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] पत्र या संदेश ले जानेवाला।

हरक्कत—संज्ञा स्त्री. [देश.] हरज, नुकसान।

हरख—संज्ञा पुं. [सं. हर्ष] खुशी, प्रसन्नता।

हरखना, हरखनो—क्रि. अ. [हिं. हरख+ना] खुश, प्रसन्न या हर्षित होना।

हरखाना, हरखानो—क्रि. स. [हिं. हरखना] खुश, प्रसन्न या हर्षित करना।

हरगिज—अव्य. [फ़ा. हरगिज] किसी दशा में, कदापि।

हरगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] कैलास पर्वत।

हरचंद—अव्य. [फ़ा.] कितना ही, कितनी ही बार।

हरज—संज्ञा पुं. [फ़ा. हर्ज] (१) अड़चन, रुकावट, बाधा। (२) नुकसान, हानि।

हरजा—संज्ञा पुं. [हिं. हरज] (१) बाधा। (२) हानि।
संज्ञा पुं. [हिं. हरजाना] हरजाना

हरजाई—वि. [फ़ा.] (१) हर जगह व्यर्थ घूमनेवाली। (२) हर किसी से अनुचित संबंध करनेवाली।
संज्ञा स्त्री. (१) व्यभिचारिणी स्त्री। (२) वेश्या।

हरजाना—संज्ञा पुं. [फ़ा. हर्जानः] (१) हानि का बदला, क्षतिपूर्ति। (२) वह धन जो क्षति-पूर्ति के रूप में दिया जाय।

हरट्ट—वि. [सं. हृष्ट] मोटा-ताजा, मजबूत।

हरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छीनना, लूटना, चुराना। (२) दूर करना, मिटाना। (३) नाश, संहार। (४) ले जाना, वहन। (५) भाग देना (गणित)।

हरत—क्रि. स. [हिं. हरना] (१) छीनता, लूटता या चुराता है। उ.– ज्यों ठग निधिहिं हरत—२५४३। (२) मिटाता या नष्ट करता है। उ.—कोटि ब्रह्मंड करत छिन भीतर हरत बिलंब न लावै—१०-१२६।

हरता—वि., संज्ञा पुं. [सं. हर्त्ता] हरण करनेवाला। उ.—(क) हरता करता आपुहि सोइ—१-२६१। (ख) मैं हरता-करता संहार—५-२। (ग) दाता-भुक्ता, हरता-करता, बिस्वंभर जग जानि—४८७। (घ) ए हरता करता समर्थ और नाहीं—२५५६।

हरता-धरता—वि., संज्ञा पुं. [सं.हर्त्ता+धर्त्ता](१) रक्षा या नाश करनेवाला। (२) सब कुछ करने में समर्थ।

हरताल—संज्ञा स्त्री. [सं. हरिताल] एक खनिज पदार्थ जिसमें स्याही या रंग उड़ाने का गुण होता है।
मुहा. हरताल लगाना—मिटाना, नष्ट करना।

हरताली—वि. [हिं. हरताल] हरताल से पीले रंग का।
संज्ञा पुं. एक तरह का पीला या गंधकी रंग।

हर-तिलक—संज्ञा पुं. [सं. हर+तिलक] उ.—चंद्रमा जो शिव के मस्तक पर है। उ.—(क) जनौ हर-तिलक कुहू उग्यौ री—६९१। (ख) हर को तिलक हरि बिनु दहत—२८५८।

हरतेज—संज्ञा पुं. [सं. हरतेजस्] पारा (जो शिव का वीर्य कहा जाता है।)

हरतो, हरतौ—क्रि. वि. [हिं. हरना] लूटता, चुराता या हरण करता हुआ। उ.—सजन-वेष-रचना प्रति जन मनि आयौ पर-धन हरतौ—१-२०३।

हरद, हरदि, हरदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलदी] 'हलदी' नामक मसाला। उ.—(क) छिरकत हरद दही—१०-१९। (ख) हींग हरद मिर्च छौंके तेले—३९६। (ग) रंग कापै होत न्यारो हरद चूनो सानि—८९५। (घ) हरद दूब केसर मग छिरकौ—१० उ. २३। (ङ) दै करवँदा हरदि रँग भीने—२३२१। (च) हरदि समान देखिअत गात—२७७९। (छ) नूतन सुभग दूब-हरदी-दधि हरषित सीस बँधाए—१०-८७।

हरदिया—वि. [हिं. हलदी] हलदी के रंग का।
संज्ञा पुं. पीले रंग का घोड़ा।

हरद्वार—संज्ञा पुं. [सं. हरिद्वार] हरिद्वार तीर्थ।

हरन—संज्ञा पुं. [सं. हरण] हरने की क्रिया या भाव। उ.—एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चहयौ—१-२४७।
वि. [हिं. हरना] (१) मिटाने या दूर करनेवाला। उ.—(क) दुहूँ लोक सुखकरन, हरन-दुख बेद-पुराननि साखि—१-९०। (ख) भू-भर हरन प्रगत तुम भूतल—१-१२५। (२) चुराने या हरण करनेवाला। उ.—रे रे अंध, बीसहूँ लोचन पर-तिय-हरन बिकारी—९-१३२। (३) मारने या नाश करनेवाला। उ.—सूर स्याम खल हरन, करन सुख—२५७२।
संज्ञा पुं. [हिं. हरिन] हिरन (पशु)।

हरना—क्रि. स. [सं. हरण] (१) छीनना, लूटना, चुराना, हरण करना।
मुहा० मन हरना—लुभाना, मोहित करना।
(२) दूर करना, हटाना, न रहने देना। (३) मिटाना, नाश करना।
मुहा० प्राण हरना—(१) मार डालना। (२) बहुत कष्ट देना।
(३) उठाकर ले जाना, वहन करना।
क्रि. अ. [हिं. हारना] (१) जुए आदि में हारना। (२) पराजित होना। (३) थकना।
संज्ञा पुं. [हिं. हिरन] हिरन (पशु)।

हरनाकस, हरनाकुस—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्यकशिपु] एक दैत्य जो प्रहलाद का पिता था।

हरनाच्छ, हरनाछ—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्याक्ष] एक दैत्य।

हरनि, हरनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिरन] हिरन की मादा हिरनी। उ.—रिसनि मोहिं दहति, बन भई हरनी—६९८।

वि. [हिं. हरना](१) छीनने, लूटने या हरण करने वाली। (१) सरद निसि कौ अंसु अगनित इंदु आभा हरनि—३५१। (ख) सोभित केस बिचित्र भाँति दुति सिखि सिखा हरनी—पृ. ३१६ (५४)।

मुहा० मन हरनी—लुभाने या मोहित करने वाली। उ.—रुनुक-झुनुक पग बाजत पुनि अति ही मन हरनी—१०-१२३।

(२) दूर करने या मिटानेवाली। उ.—असरन सरनी भव-भय हरनी बेद-पुरान बखानी—पृ. ३४६। (४१)।

हरनो—क्रि. स., क्रि. अ. [हिं. हरना] हरना।

हरपा, हरप्पा—संज्ञा पुं. [देश.] डिब्बा।

हरफ—संज्ञा पुं. [अ. हरफ़] अक्षर, वर्ण।

मुहा. किसी पर हरफ आना—दोष या अपराध लगना। हरफ उठाना - अक्षर पहचान कर पढ़ लेना। हरफ बनाना—सुंदर लिखने का अभ्यास करना। किसी पर हरफ लाना—दोष या अपराध लगाना।

हरबर—संज्ञा पुं. [हिं. हड़बड़] उतावली।

क्रि. वि. उतावली करते हुए। उ. हरबर चक्र धरे हरि आवत—८-३।

हरबराइ—क्रि. अ. [हिं. हरबराना] घबराकर, उतावली करके। उ.—(क) हरबराइ उठि आइ प्रात ते—११८३।(ख)हरबराइ कोउ सखन बोलायो—१५६०।

हरबरात—क्रि. अ. [हिं. हरबराना] घबराते या उतावली करते हो। उ.—अजहूँ रैनि तीन याम है जू काहे को हरबरात स्याम जू—२२४१।

हरबराना, हरबरानो—क्रि. अ. [हिं. हड़बड़ाना] जल्दी या उतावली करना।

हरबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हड़बड़ी] (१) जल्दी या शीघ्रता करने की उतावली। (२) घबराहट।

हरबा—संज्ञा पुं. [अ. हरब:] हथियार, अस्त्र।

हरबोंग—वि. [देश.] गँवार, उजड्ड।

संज्ञा पुं. (१) अंधेर। (२) उपद्रव।

हर-भूषण, हरभूषन—संज्ञा पुं.[सं.हर+भूषण] चंद्रमा। उ.—सिंहि को सुत हर-भूषन ग्रसि, सोइ गति भई हमारी—२७५१।

हरम—संज्ञा पुं. [अ.] रनिवास, अंतःपुर।

संज्ञा स्त्री. (१) रखैल (स्त्री)। (२) पत्नी।

हरयारी, हरयालि, हरयाली—संज्ञा स्त्री.[हिं.हरियाली] हरियाली।

हरयें—अव्य. [हिं. हरएँ] (१) धीरे-धीरे। (२) चुपके से। (३) क्रम-क्रम से।

हरवल—संज्ञा पुं. [तु. हरावल] सेना में सबसे आगे रहनेवाला सैनिक-दल।

हरवली—संज्ञा स्त्री. [तु. हरावल] (१) सेना की अध्यक्षता। (२) हरावल सेना की अध्यक्षता।

हरवा—वि. [हिं. हरुवा] जो भारी न हो, हलका।

संज्ञा पुं. [हिं. हार] (गले में पहनने का) हार।

हरवाना—क्रि. अ. [हिं. हड़बड़] उतावली करना।

हरवाह, हरवाहा—संज्ञा पुं. [हिं. हलवाहा] हल चलाने वाला नौकर या किसान।

हर-वाहन—संज्ञा पुं. [सं.] (शिव की सवारी) बैल।

हरवाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. हल+वाही] बैल चलाने का काम या मजदूरी।

हरवो—वि. [हिं. हरुआ] जो भारी न हो, हलका। उ.—बोझ पृथ्वी को हरवो भयो—१० उ. १३८।

हरशेखर—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंगा (जिसका वास शिवजी के सिर पर माना गया है)।

हरष—संज्ञा पुं. [सं. हर्ष] प्रसन्नता, आनंद। उ.—दनुज कुल सब हयौ तिहूँ भुवन जै जयो हरष कूबरी के—२६१७।

क्रि. अ. [हिं. हरषना] प्रसन्न हुए। उ.—हरषीं पास-परोसिनैं, हरष नगर के लोग—१०-४०।

हरषत—कि. अ. [हिं. हरषना] प्रसन्न होते हैं। उ.—छिरकत हरद दही, हिय हरषत—१०-१९।

हरषना, हरषनो—क्रि. अ. [सं. हर्ष+ना] (१) **प्रसन्न होना**। (२) **पुलकित या रोमांचित होना**।

हरषवंत—वि. [सं. हर्ष+हिं. वंत] **प्रसन्न, हर्षित**। उ.—सूरदास प्रभु के गुन गावत हरषवंत निज पुरी सिधाए—३८६।

हरषा—संज्ञा स्त्री. [सं. हर्ष] **राधा की सखी एक गोपी**। उ.—प्रेमा, दामा, रूपा, हंसा, रंगा हरष नाउ—१५८०।

हरषाना, हरषानो—क्रि. अ. [हिं. हरषना] (१) **प्रसन्न या हर्षित होना**। (२) **पुलकित होना**।

क्रि. स. (१) **प्रसन्न करना**। (२) **पुलकित करना**।

हरषावति—क्रि. अ. [हिं. हरषाना] **प्रसन्न होती है**। उ.—ब्रज-तरुनी हरषावति री—२९५०।

हरषावना, हरषावनो—क्रि. स., क्रि. अ. [हिं. हरषाना] **हरषाना**।

हरषावैं—क्रि. स. [हिं. हरषावना] **प्रसन्न या आनंदित करते हैं**। उ.—बिषय-भोग हृदय हरषावैं—४-१२।

हरषाहीं—क्रि. अ. [हिं. हरषाना] **प्रसन्न या आनंदित होती हैं**। उ.—ब्रज जुवती निरखि निरखि हरषाहीं—१३४२।

हरषि—क्रि. वि. [हिं. हरषना] **हर्ष के साथ**। उ.—हरषि निरखहिं नारि—१०-१६९।

हरषित—वि. [सं. हर्षित] **खुश, प्रसन्न**। उ.—मथुरा हर्षित आज भई—२५-२।

क्रि. वि. **प्रसन्नता या हर्ष के साथ**। उ.—नूतन सुभग दूब-हरदी-दधि हरषित सीस बँधाए—१०-८७।

हरषी—क्रि. अ. [हिं. हरषना] **प्रसन्न हुईं**। उ.—हरषीं पास-परोसिनैं—१०-४०। (ख) गईं ब्रजनारि जमुना तीर, देखि लहरि तरंग हरषीं—१२९१।

हरषे—क्रि. अ. [हिं. हरषना] **प्रसन्न हुए**। उ.—(क) ब्रज नर नारि अतिहिं मन हरषे—६०७। (ख) सुनत अक्रूर यह बात हरषे—२५५४।

हरषैं—क्रि. अ. [हिं. हरषना] **प्रसन्न होती या होते हैं**। उ.—(नगर नारि) ध्यान करि करि वै हरषैं—२६०४।

हरष्यो, हरष्यौ—क्रि. अ. [हिं. हरषना] **प्रसन्न हुआ**। उ.—बिषया जात हरष्यौ गात—२-२४।

हरसना, हरसनो—क्रि. अ. [हिं. हरषना] **हर्षित होना**।

हरसाना, हरसानो—क्रि. अ., क्रि. स. [हिं. हरषाना] **हरषाना**।

हर-सिंगार—संज्ञा पुं. [सं. हार+हिं. सिंगार] **एक प्रसिद्ध वृक्ष या उसका फूल**।

हरहर—वि. [हिं. हरकना] **नटखट (बैल)**।

हरहा—वि. [हिं. हरहर] **नटखट (बैल)**।

हरहाई—वि. स्त्री. [हिं. हरहा] **नटखट (गाय), जो बार-बार खेत चरने दौड़े या इधर-उधर भागती फिरे**। उ.—यह (गाइ) अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति—१-५१।

हरहाया—वि. [हिं. हरहा] **नटखट (बैल)**।

हर-हार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **(शिव का हार) सर्प**। (२) **शेषनाग**।

हरहु—क्रि. स. [हिं. हरना] **दूर करो, मिटाओ**। उ.—हरहु लोचन प्यास—१०-२१८।

हराँस—संज्ञा स्त्री. [अ. हिरास] (१) **डर, भय**। (२) **दुख, चिंता**। (३) **थकावट**। (४) **हरारत, हल्काज्वर**।

हरा—वि. [सं. हरित, प्रा. हरिअ] (१) **घास-पत्ती के रंग का, हरित**। (२) **प्रसन्न, प्रफुल्ल**। (३) **ताजा, जो मुरझाया न हो**। (४) **(घाव) जो सूखा न हो**। (५) **(फल) जो पका न हो**।

मुहा० हरा बाग—**ऐसी बात जो व्यर्थ की आशा बँधाने या लुभानेवाली हो**। हरा भरा—(१) **जो सूखा या मुरझाया न हो**। (२) **जो हरे पेड़-पौधों से भरा हो**।

संज्ञा पुं. **घास-पत्ती जैसा रंग, हरित रंग**।

संज्ञा पुं. [हिं. हार] **माला, हार**।

वि. [हिं. हारना] (१) **हारा हुआ**। (२) **जो (कोई बात) हारकर छोड़ चुका हो**।

वि. [सं. हर] **रहित, विहीन, शून्य**।

संज्ञा स्त्री. [सं.] **हर या शिव की पत्नी, पार्वती**।

हराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हारना] **हारने की क्रिया या भाव, हार, पराजय**।

हराए—क्रि. अ. [हिं. हराना] **(युद्ध) हार जायँगे**। उ.—कह्यौ करि कोप, प्रभु, अब प्रतिज्ञा तजौ, नहीं तो जुद्ध निज हम हराए—१-२७१।

हराठा—वि. [सं. हृष्ट] हट्टा-कट्टा ।

हराना, हरानो—क्रि. स. [हिं. हरना या हारना] (१) युद्ध, प्रतियोगिता आदि में शत्रु या प्रतिद्वंद्वी को पराजित या परास्त करना । (२) वह काम या प्रयत्न करना जिससे कोई परास्त या पराजित हो जाय । (३) थकाना, शिथिल करना ।

हरापन—संज्ञा पुं. [हिं. हरा+पन] हरे होने का भाव, हरितता ।

हराम—वि. [अ.] बुरा, वर्जित, निषिद्ध ।

संज्ञा पुं. (१) वर्जित वस्तु या बात । (२) सुअर (जिसके खाने का कहीं-कहीं निषेध है) ।

मुहा० (कोई बात) हराम कर देना—ऐसा प्रयत्न करना कि उस कार्य को करना अत्यन्त कष्ट दायक या असंभव ही हो जाय । (कोई बात) हराम होना—किसी काम का करना बहुत मुश्किल हो जाना ।

(३) बेईमानी, अधर्म, बुराई, पाप ।

मुहा० हराम का—(१) जो बेईमानी, पाप या अधर्म से कमाया या पाया गया हो । (२) जो बिना मेहनत का हो, मुफ्त का ।

(४) स्त्री-पुरुष का अनुचित संबंध ।

हरामखोर—संज्ञा पुं. [अ. हराम+फ़ा. खोर] (१) पाप या अधर्म की कमाई खानेवाला । (२) बिना मेहनत के कमाने-खानेवाला, धन लेकर भी काम न करने वाला ।

हरामजादा—वि. [अ. हराम+फा. जादा] (१) दोगला, वर्णसंकर । (२) पाजी, दुष्ट ।

हरामी—वि. [अ. हराम] (१) दोगला । (२) दुष्ट ।

हरारत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) गरमी, ताप । (२) हल्का या मंद ज्वर ।

हरावर, हरावरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. हड़ावरि] (१) हड्डियों का ढाँचा, ठठरी । (२) हड्डियों की माला ।

संज्ञा पुं. [हिं. हरावल] हरावल ।

हरावल, हरावलि—संज्ञा पुं. [तु. हरावल] सेना में सबसे आगे रहनेवाला सैनिक-दल ।

हरास—संज्ञा पुं. [फ़ा. हिरास] (१) डर, भय । (२) खटका, अंदेशा, आशंका । (३) दुख, चिंता, विषाद । (४) निराशा ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हरना] हारने की क्रिया, भाव या इच्छा ।

हराहर—संज्ञा पुं. [हिं. हरना] छीना-झपटी ।

संज्ञा पुं. [सं. हलाहल] भयंकर विष ।

हरि—वि. [सं.] हरे रंग का ।

संज्ञा पुं. (१) विष्णु । उ.—बृहदभानु ह्वैके हरि प्रगटे—सारा. ३५२ । (२) विष्णु के अवतार राम । (३) विष्णु के अवतार कृष्ण । उ.—एक दिना ब्रज-पति की पौरी खेलत हरि ब्रजबाल—सारा. ४४५ । (४) घोड़ा । (५) बन्दर । (६) सिंह । उ.—कुटिल 'हरि'-नख हिऐं हरि के—१०-१६९ । (७) सूर्य ।(८) अग्नि । (९)एक छंद । (१०) मोर, मयूर । (११) इंद्र । (१२) सर्प ।

अव्य. [हिं. हरुए] (१) धीरे । (२) चुपके ।

क्रि. स. [हिं. हरना] हर कर, हरण करके । उ. —इंद्र अस्व कौं हरि लै गयौ—९-९ ।

हरिअर—वि. [हिं. हरा] हरे रंग का ।

संज्ञा पुं. हरा या हरित रंग ।

हरिअराना, हरिअरानो—क्रि. अ. [हिं. हरिआना] हरा होना ।

हरिअरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरिअर] हरियाली ।

वि. स्त्री. हरे रंगवाली, हरी ।

हरिआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरिअर] हरियाली ।

हरिआना, हरिआनो—क्रि. अ. [हिं. हरिअर] (१) पेड़-पौधों का हरा होना । (२) प्रसन्न या प्रफुल्लित होना ।

क्रि. स. (१) हरा-भरा करना (२) प्रसन्न करना ।

हरिआली—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरियाली] हरे-भरे पेड़-पौधों का समूह या विस्तार ।

मुहा. हरिआली सूझना—चारों ओर आनंद ही आनंद दिखायी पड़ना, संकट में भी विनोद, प्रसन्नता या उमंग की बातें सूझना ।

हरिकथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भगवान या उनके अवतारों का चरित्र-वर्णन । उ.—कहौं हरि-कथा सुनौ चित लाइ—३-१ ।

हरिकीर्तन—संज्ञा पुं. [सं. हरिकीर्तन] भगवान या उनके अवतारों के नाम या गुण का भजन या कीर्तन।

हरिखंड—संज्ञा पुं. [सं.] मोर-पंख।

हरिगीतिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्रसिद्ध छंद।

हरिचंद - संज्ञा पुं. [सं. हरिश्चंद्र] एक सत्यवादी राजा।

हरि-चंदन—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का चंदन।

हरि-चर्म—संज्ञा पुं. [सं.] बाघंबर, व्याघ्रचर्म।

हरि-चाप—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रधनुष।

हरिजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ईश्वर का भक्त। (२) अस्पृश्य जाति का सामूहिक नाम।

हरिजान, हरिजाना—संज्ञा पुं. [सं. हरियान] विष्णु का वाहन, गरुड़।

हरिण—संज्ञा पुं. [सं.] हिरन, मृग।

हरिण-कलंक—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

हरिणनयना, हरिणनयनी—वि. स्त्री. [सं.] मृग जैसी सुंदर आँखोंवाली।

हरिणाक्षी—वि. स्त्री. [सं.] हिरन जैसी सुंदरआँखोंवाली।

हरिणी—संज्ञा स्त्री.[सं.](१) हिरन की मादा, मृगी। (२) 'चित्रिणी' स्त्री जो कम सुकुमार,चंचल तथा क्रीड़ाशील प्रकृति की होती है (कामशास्त्र)। (३) एक वर्ण-वृत्त।

हरित, हरित्—वि. [सं. हरित्] हरे रंग का, हरा।

हरितमणि—संज्ञा पुं. [सं.] पन्ना, मरकत।

हरिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) 'हरि' का भाव, विष्णुत्व। (२) दूब। (३) हल्दी।

हरिताभ—वि. [सं.] हरापन लिये हुए, हरे रंग की आभा या कांतिवाला।

हरितालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] भादों के शुक्ल पक्ष की तीज या तृतीया जब सौभाग्यवती स्त्रियाँ निर्जल व्रत रखकर शिव-पार्वती का पूजन करती हैं।

हरिदास—संज्ञा पुं. [सं.] भगवान का भक्त।

हरिद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हलदी।

हरिद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तरी भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ गंगा पहाड़ों को छोड़कर मैदान में आती है। 'हरिद्वार' नाम पड़ने का कारण यह विश्वास है कि इस तीर्थ के सेवन से विष्णुलोक का द्वार खुल जाता है।

हरि-धाम—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णुलोक, वैकुंठ।

हरिन, हरिना—संज्ञा पुं. [सं. हरिण] हिरन, मृग।

हरि-नख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंह या बाघ का नाखून। बच्चों को नजर से बचाने के लिए पहनायी जानेवाली वह ताबीज जिसमें बाघ या सिंह का नख बँधा हो। उ.—कुटिल हरि-नख हिएँ हरि के—१०-१६९।

हरि-नग—संज्ञा पुं. [सं.] साँप की मणि।

हरिनाकुस—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्यकशिपु] एक दैत्य जो प्रह्लाद का पिता था।

हरिनाच्छ, हरिनाच्छ, हरिनाछ—संज्ञा पुं [सं. हिरण्याक्ष] एक प्रसिद्ध दैत्य।

हरिनाम—संज्ञा पुं. [सं. हरिनामन्] भगवान का नाम।

हरिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरिन] हिरन की मादा।

हरिपुर—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णुलोक, बैकुंठ।

हरिप्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी। (२) तुलसी। (३) द्वादशी। (४) एक छंद।

हरिवाहन—संज्ञा पुं. [सं. हरिवाहन] विष्णु का वाहन, गरुड़। उ.—(क) अतिहिं उठ्यौ अकुलाइ, डरयौ हरि-बाहन खग सौं—५८९। (ख) कद्रुज पैठि पताल दुरि रहे खगपति हरि-बाहन भए जाइ—२२२४।

हरिबोधिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] देवोत्थान एकादशी।

हरिभक्त—संज्ञा पुं. [सं.] ईश्वर का भक्त।

हरियर—वि. [हिं. हरा] (१) हरे रंग का, हरा। (२) हरा-भरा। उ.—तब लगि सेवा करि निश्चय सौं, जब लगि हरियर खेत—१-३२२।

हरियरना, हरियरनो—क्रि. अ. [हिं. हरियर] (१) हरा-भरा होना। (२) प्रसन्न होना।

हरिया—संज्ञा पुं. [हिं. हर=हल] हलवाहा।

हरियाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरियाली] हरियाली।

हरियान—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का वाहन गरुड़।

हरियाना—क्रि. अ. [हिं. हरिअर] (१) पेड़-पौधों का हरा होना। (२) प्रसन्न होना।

क्रि. स. (१) हरा-भरा करना। (२) प्रसन्न करना।

संज्ञा पुं. [सं. हरियान ?] हिसार, रोहतल और करनाल का निकटवर्ती प्रदेश, बाँगड़।

हरियानी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं. हरियाना] हरियाना प्रदेश की बोली, बाँगड़ू ।

हरियारी, हरियाली—संज्ञा स्त्री. [सं. हरित+अवलि, [हिं., हरियाली] (१) हरेपन या हरे रंग का विस्तार । (२) हरी घास या हरे-भरे पेड़-पौधों का समूह या विस्तार ।

मुहा. हरियाली सूझना—चारो ओर आनंद ही आनंद जान पड़ना, संकट में भी विनोद, उमंग या प्रसन्नता की बातें सूझना ।

हरिल—संज्ञा पुं. [हिं. हारिल] एक प्रसिद्ध पक्षी ।

हरि-लोक—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णुलोक, बैकुंठ ।

हरिवंश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) श्रीकृष्ण का वंश । (२) एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें श्रीकृष्ण और उनके कुल का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

हरिवर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] जंबू द्वीप के नौ खंडों में एक । उ.—इलावर्त और किंपुरुष कुरु औ हरिवर्ष केतुमाल । हिरनमय रमनक भद्रासन भरतखंड सुखपाल —सारा. ३३ ।

हरिवल्लभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लक्ष्मी । (२) तुलसी ।

हरिवाह—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का वाहन, गरुड़ ।

हरिवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़ ।

हरिशयनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आषाढ़ शुक्ल एकादशी जिस दिन विष्णु शेष-शैया पर (कार्तिक प्रबोधिनी एकादशी तक के लिए) सोते हैं ।

हरिश्चंद्र—संज्ञा पुं.[सं.] एक सूर्यवंशी राजा जो त्रिशंकु के पुत्र थे और अपनी सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध हैं ।

हरिस—संज्ञा स्त्री. [सं. हलीषा] हल की लंबी लकड़ी ।

हरि-सुत—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ।

हरिहाई—वि. स्त्री. [हिं. हरहाया] नटखट (गाय) ।

हरिहैं—क्रि. स. [हिं. हरना] दूर करेंगे, हल्का करेंगे । उ.—भूमि-भार येई हरिहैं—१०-८५ ।

हरी—वि. स्त्री. [हिं. हरा] हरे रंग की, हरित । उ.—(क) हरी घास हूँ सो नहिं चरै—५-३ । (ख) इतनी कहत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ—९-१६४ ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हर की पत्नी, पार्वती । (१) एक वर्णवृत्त जिसे 'अनंद' भी कहते हैं ।

संज्ञा पुं. [सं. हरि] विष्णु या उनके अवतार राम-कृष्ण । उ.—(क) हमारी तुमकौं लाज हरी—१-१८४ । (ख) नाम बिना श्री स्याम हरी—१-११५ । (ग) हरि-प्रभाउ राजा नहिं जान्यौ, कह्यो सैन मोहिं देहु हरी—१-२६८ ।

हरीचंद—संज्ञा पुं. [सं. हरिश्चंद्र] सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र । उ.—हरीचंद सो को जग दाता, सो घर नीच भरै—१-२६४ ।

हरीत—संज्ञा पुं. [सं.हारीत] (१) चोर । (२) डाकू ।

हरीतकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] हड़, हर्रे ।

हरीतिमा—संज्ञा स्त्री. [सं.](१) हरे-भरे पौधों का समूह या विस्तार, हरियाली । (२) हरापन ।

हरीरा—संज्ञा पुं. [अ. हरीरः] एक पेय जो दूध में मेवे-मसाले डालकर बनता है ।

वि. [हिं. हरिअर] (१) हरे रंग का, हरा । (२) प्रसन्न, हर्षित ।

हरील—संज्ञा पुं. [हिं. हारिल] 'हारिल' पक्षी ।

हरीस—संज्ञा स्त्री. [सं. हलीषा] हल की लंबी लकड़ी ।

हरुअ, हरुआ—वि.[देश. हरुआ] जो भारी न हो, हलका ।

हरुआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरुआ] भारीपन का प्रभाव, हलकापन ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हरुआना] (१) जल्दी । (२) फुर्ती ।

हरुआना, हरुआनो क्रि. अ. [हिं. हरुआ] (१) हलका होना । (२) तेजी या फुर्ती करना । (३) घबराकर उतावली दिखाना ।

हरुआय—क्रि. अ. [हिं. हरुआना] जल्दी या फुर्ती करके । उ.—कर धनु लै किन चंदहिं मारि । तू हरुआय जाय मंदिर चढ़ि ससि सन्मुख दर्पन बिस्तारि ।

हरुई—वि. स्त्री. [हिं. हरुआ] हलकी ।

हरुए, हरुऐं—क्रि. वि. [हिं. हरुआ] (१) धीरे-धीरे । उ.—आपु गए हरुऐं सूनैं घर—१०-२८२ । (२) इस प्रकार कि आहट न मिले, चुपके से । उ.—(क) फिरि चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुऐं सूनैं घर —१०-३०१ । (ख) बरजति है घर के लोगनि कौं, हरुऐं लै लै नाम—५१५ । (ग) ना जानौं कित तैं हरुए हरि आय मूँदि दिए नैन । (३) बिना फैले हुए,

सिमट कर। उ.—पौढ़ि गई हरुएँ करि आपुन अंग मोरि तब हरि जँभुआने—१०-१९७। (४) बहुत हलके हाथ से, इस प्रकार कि जरा भी गति न हो। उ.—दोउ जननी मिलि कैं हरुएँ करि, सेज सहित तब भवन लए री—१०-२४७।

हरुव, हरुवा—वि. [हिं. हरुआ] हलका।

हरुवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरुवा] हलकापन। उ.—दुहुँनि गोद अक्रूर लिए हँसि सुमनहुँ तें हरुवाई—२४९२।

हरुवाना, हरुवानो—क्रि. अ. [हिं. हरुआना] हरुआना।

हरू—वि. [हिं. हरुअ] हलका।

हरूफ—संज्ञा पुं. [अ. हरफ़ का बहु., हरूफ़] अक्षर।

हरें—अव्य. [हिं. हरुएँ] (१) धीरे-धीरे। (२) चुपके से। (२) क्रम-क्रम से।

हरे—संज्ञा पुं. [सं.] 'हरि' का संबंधित रूप। उ.—मोसौं पतित न और हरे—१-१९८।

क्रि. वि. [हिं. हरुए] (१) धीरे से। (२) (शब्द) जो ऊँचा या तेज न हो। (३) (आघात, स्पर्श आदि) जो कठोर या तीव्र न हो।

यौ. हरे-हरे—धीरे-धीरे।

वि. (१) हलका। (२) धीमा। (३) मंद।

क्रि. स. [हिं. हरना] (१) हरण होने या खो देने पर। उ.—व्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस—१-५०। (२) हरण किया है। उ.—मैं तो जे हरे हैं, ते तौ सोवत परे हैं—४८४।

मुहा. चित्त हरे—मन को लुभाया या आकर्षित किया। उ.—बिबि लोचन सु बिसाल दुहुँनि के चितवत चित्त हरे—६८९।

हरेक—वि. [हिं. हर+एक] हर एक।

हरेरा—वि. [हिं. हरा] हरे रंग का, हरा।

हरेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हरियारी] हरियाली।

वि. स्त्री. [हिं. हरेरा] हरे रंग की, हरी।

हरेव—संज्ञा पुं. [देश.] (१) मंगोलों का देश। (२) मंगोल जाति।

हरेवा—संज्ञा पुं. [हिं. हरा] एक हरा पक्षी।

हरैं—क्रि. वि. [हिं. हरुए] (१) धीरे से। उ.—(क) हरैं बोलि जुवतिनि कौं लीन्हौ—३८८। (ख) हरत लाल हिंडोल झूलत, हरैं देत झुलाइ—४९८। (२) धीरे-धीरे, चुपके से। उ.—हरैं हरैं बेनी गहि पाछैं, बाँधी पाटी लाइ—१०-३२२।

हरै—क्रि. स. [हिं. हरना] (१) छीनता, खसोटता या लूटता है। उ.—कुरुपति चीर हरै—१-३७। (२) दूर करता या मिटाता है। उ.—रिपु-तन-ताप हरै—१-११७।

हरैगो—क्रि. स. [हिं. हरना] हर लेगा।

मुहा. प्रान हरैगो—जान ले लेगा उ.—पिय को प्रेम तेरो प्रान हरैगो—२८७०।

हरैया—वि. [हिं. हरना] (१) लूटने, खसोसने या छीननेवाला। (२) मिटाने या दूर करनेवाला।

हरोल—संज्ञा पुं. [हिं. हरावल] सेना में सबसे आगे रहनेवाला सैनिक-दल।

हरौं—क्रि. स. [हिं. हरना] लूट या छीन लूँ, हरण करूँ। उ.—सूर प्रभु अनुमान कीन्हौं, हरौं उनके चीर—७८३। (२) मिटाऊँ, दूर करूँ। उ.—सूरज सोच हरौं मन अबहीं, तौ पूतना कहाऊँ—१०-४९।

हरौ—वि. [हिं. हरा] (१) हरे रंग का, हरा। उ.—सेत हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई—१-६३। (२) हरा-भरा। उ.—मांडव रिषि जब सूली दियौ। तब सो काठ हरौ ह्वै गयौ—३-५।

हरौल—संज्ञा पुं. [हिं. हरावल] सेना में सबसे आगे का सैनिक दल।

हर्ज—संज्ञा पुं. [अ.] (१) बाधा। (२) हानि।

हरौहर—संज्ञा स्त्री. [सं. हरण] (१) बल से छीन लेना। (२) लूट।

हर्ता, हर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं. हर्तृ] (१) दूर करनेवाला। (२) नाश करनेवाला। उ.—(क) हर्ता-कर्ता आपै सोइ—७-२। (ख) तुम हर्ता, तुम कर्ता—२५५८। (ग) तुमहीं कर्ता तुमहीं हर्ता तुमते और न कोई—१० उ.-२८।

हर्तार—संज्ञा पुं. [सं.] हर्त्ता।

हर्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलदी] हलदी।

हर्फ—संज्ञा पुं. [हिं. हरफ] अक्षर।

हर्बा—संज्ञा पुं. [हिं. हरबा] हथियार, अस्त्र।

हर्म्य—संज्ञा पुं. [सं.] राजमहल, प्रासाद।

हर्‌यो, हर्‌यौ—क्रि. स. [हिं. हरना] दूर किया, मिटाया। उ.—(क) करुनासिंधु दयाल दरस दै, सब संताप हर्‌यौ —१-१७। (ख) सूरदास प्रभु अंतर्यामी भक्त संदेह हर्‌यो –११५२। (२) लूटा, छीना, चुराया, हरण किया। उ.—(क) बेष धरि-धरि हर्‌यो पर धन—१-४५। (ख) ढूँढ़ि-ढूँढ़ि गोरस सब घर कौ, हर्‌यौ तुम्हारैं तात—१०-२९०। (ग) सुनि सखी, सूर सर-बस हर्‌यौ सावरैं—१०-३०७। (घ) मदन मोहन रूप धर्‌यौ। तब गरब अनंग हर्‌यौ—६२३।

हर्र, हर्रा, हर्रे, हर्रै – संज्ञा स्त्री. [हिं. हड़] 'हड़' नामक मसाला। उ.—बाइबिरंग बहेरा हर्रै—१-१०८।

हर्रैया—संज्ञा स्त्री. [देश.] हाथ का एक गहना।

हर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनंद, प्रफुल्लता। उ.—सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हर्ष-सोक नहिं खाँचै—१-८१। (२) भय या प्रसन्नता के कारण रोएँ खड़े होना या रोमांच होना। (३) संयोग शृंगार का एक संचारी भाव जिसमें प्रसन्नता या प्रफुल्लता से रोएँ खड़े हो जाते या मुख पर पसीना आ जाता है।

हर्षक – वि. [सं.] आनंददायक।

हर्षण, हर्षन—संज्ञा पुं. [सं. हर्षण] (१) भय या हर्ष से रोयों का खड़ा होना। (२) प्रसन्न करना या होना। (३) कामदेव के पाँच वाणों में एक। (४) फलित ज्योतिष में एक योग। उ.—कृष्न पच्छ रोहिनी अर्द्ध निसि हर्षन जोग उदार—१०-८६।

हर्षना, हर्षनो— क्रि. अ. [सं. हर्षण] प्रसन्न होना।

हर्षाना, हर्षानो—क्रि. अ. [सं. हर्ष + हिं. आना] प्रसन्न या प्रफुल्लित होना।

क्रि. स. प्रसन्न या आनंदित करना।

हर्षित—वि. [सं.] प्रसन्न, प्रफुल्लित।

हर्षुल– वि. [सं.] प्रसन्न, प्रफुल्ल।

हर्षोत्फुल्ल – वि. [सं.] खुशी से फूला हुआ।

हलंत—संज्ञा पुं. [सं.] शुद्ध व्यंजन जिसके उच्चारण में स्वर न उच्चरित हो।

हल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जमीन जोतने का एक प्रसिद्ध यंत्र। उ.—धर बिधंसि नल करत किरषि हल बारि बीज बिथरै—१-११७।

मुहा. हल जोतना—(१) खेत में हल चलाना। (२) खेती करना। (३) देहाती या गँवार जैसा काम करना।

(२) एक प्राचीन अस्त्र का नाम। उ.—लख्यो बलराम यह सुभटवंत है कोऊ, हल-मुसल सस्त्र अपनो सँभार्‌यो—१० उ.-४५।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) हिसाब लगाना। (२) किसी समस्या का समाधान।

हलकंप—संज्ञा पुं. [हिं. हिलना + कंप] (१) हलचल। (२) चारों ओर फैली हुई घबराहट।

हलक—संज्ञा पुं. [अ. हलक़] गले की नली, कंठ।

मुहा. हलक के नीचे उतरना—(१) (किसी बात का) मन में बैठना या असर होना। (२) (किसी बात का) ठीक या युक्तिसंगत जान पड़ना।

हलकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलका] (१) हलकापन। (२) ओछापन। (३) हेठी, अप्रतिष्ठा।

हलकना, हलकनो—क्रि. अ. [सं. हल्लन] (१) (पात्र में) भरे जल के हिलाने से उसका हिलना-डोलना या शब्द करना। (२) हिलोरें लेना, तरंग मारना। (३) बत्ती की लौ का झिलमिलाना। (४) हिलना-डोलना।

हलका—वि. [सं. लघुक, प्रा. लहुक, विपर्यय 'हलुक'] (१) जो भारी न हो। (२) जो गाढ़ा न हो। (३) जो (रंग) गहरा या चटक न हो। (४) जो (सर आदि) गहरा न हो, उथला। (५) जो (भूमि) उपजाऊ न हो। (६)जो (भोजन)गरिष्ठ न हो। (७) कम, थोड़ा। (८) जो (दुःख-दर्द) जोर का न हो। (९) जो (चोट) कठोर, ज्यादा या तेज न हो। (१०) जिसमें गंभीरता या बड़प्पन न हो, ओछा, तुच्छ। (११) आसान, सरल। (१२) बेफिक्र, निश्चिंत। (१३) प्रसन्न, प्रफुल्ल। (१४) जो मोटा न हो, झीना। (१५) कम अच्छा, घटिया। (१६) जिसमें कुछ भरा न हो, खाली।

मुहा० हलका करना—अपमानित करना। हलका काम—(१) ओछा या तुच्छ काम। (२) बुरा काम। हलका-भारी होना— लोगों की दृष्टि में ओछा बनना। हलका-भारी बोलना – खरी-खोटी सुनाना।

संज्ञा पुं. [अनु. हल-हल] हिलोर, लहर।

संज्ञा पुं. [अ. हल्क:] (१) गोलाई, वृत्त। (२) घेरा, परिधि। (३) झुंड, मंडली। (४) पशुओं (विशेषतः हाथियों) का झुंड। (५) (किसी काम के लिए नियत) मुहल्लों, गाँवों या कसबों का समूह।

हलकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलका] (१) हलकापन। (२) ओछापन। (३) हेठी, अप्रतिष्ठित।

हलकान—वि. [हिं. हलाकान] परेशान, हैरान।

हलकाना, हलकानो—क्रि. अ. [हिं. हलका+ना] बोझ कम या हलका होना।

क्रि. स. (१) (बरतन में भरे) पानी को हिलाना-डुलाना। (२) हिलोरा देना।

हलकापन—संज्ञा पुं. [हिं. हलका+पन] (१) हलका होने का भाव, भार का अभाव। (२) ओछापन, तुच्छता। (३) हेठी, अप्रतिष्ठा।

हलकारना, हलकारनो—क्रि. स. [अनु.] तितर-बितर करना, छितराना, बिखराना।

हलकारा—संज्ञा पुं. [हिं.हरकारा] पत्र या संदेश पहुँचाने-वाला।

हलकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हड़+कारी] कपड़ा रँगते समय, रँग चटक करने के लिए फिटकरी, हड़ आदि की पुट देना।

हलकोरा—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) तरंग, लहर। (२) झोंका।

हलचल—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलना+चलना] (१) हिलने-डुलने की क्रिया या भाव। (२) भगदड़, खलबली। (३) दंगा, उपद्रव।

वि. हिलता-डोलता या डगमगाता हुआ।

हलजीवी—वि. [सं. हलजीविन्] हल या खेती से जीविका-र्जन करनेवाला।

हलति—क्रि. अ. [हिं. हिलना]हिलती-डोलती है। उ.—कर भटकत, चकडोरि हलति—६०१।

हलद—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलदी] हलदी।

हलदहात, हलदात—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलदी+हाथ] विवाह के (तीन या पाँच दिन) पहले वर-वधू के शरीर में हलदी-तेल लगाने की रीति, हलदी चढ़ना।

हलदी—संज्ञा स्त्री. [सं. हरिद्रा] एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी जड़ मसाले और रँगाई के काम आती है।

मुहा. हलदी उठना या चढ़ना—विवाह के (तीन या पाँच दिन) पहले वर-वधू के शरीर में हलदी-तेल लगाने की रीति होना। हलदी लगना—विवाह होना। हलदी लगाकर बैठना—(१) कोई काम-धाम न करके एक जगह बैठा रहना। (२) घमंड, ऐंठ या अकड़ में फूला रहना।

कहा. हलदी लगे न फिटकरी रँग चोखा आ (हो) जाय—बिना कुछ खर्च या परिश्रम किये ही सारा काम बन जाय।

हलधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हल को धारण करनेवाला, किसान। (२) हल नामक अस्त्र को धारण करनेवाला, बलराम। उ.—सुबल हलधर अरु श्रीदामा करत नाना रंग—१०-२१३।

हलना, हलनो—क्रि. अ. [सं. हल्लन](१) हिलना-डोलना। (२) घुसना, प्रवेश करना।

हलपाणि, हलपानि—संज्ञा पुं. [सं. हलपाणि] बलराम (जिनके हाथ में 'हल' नामक अस्त्र रहता था)।

हलफ—संज्ञा पुं. [अ. हलफ़] कसम, सौगंध।

मुहा. हलफ उठवाना या देना—(ईश्वर को साक्षी करके) शपथ खिलाना या खाने को कहना। हलफ उठाना या लेना—(ईश्वर को साक्षी करके) शपथ खाना।

हलफा—संज्ञा पुं. [अनु. हलहल] हिलोर, तरंग।

मुहा. हलफा मारना—लहरें उठना, लहराना।

हलब—संज्ञा पुं. [देश.] फारस की तरफ का एक देश जहाँ का शीशा प्रसिद्ध था।

हलबल—संज्ञा पुं. [हि. हल+बल] खलबली।

हलबली—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलबल] खलबली, हलचल।

हलबी, हलब्बी—वि. [हिं. हलब] (१) हलब देश का। (२) मोटे दल का और बढ़िया (शीशा)।

हलभल—संज्ञा पुं. [हिं. हलबल] हलचल।

हलभलई, हलभलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाल+भलाई] भला बनने के लिए की गयी चाटुकारी की बात।

मुहा. मुँह की हलभलई—भला बनने के लिए केवल मुँह से (दिल या जी से नहीं) कही गयी चाटु-कारी की बात। उ.—मुँह की हलभलई मोहूँ सो

करन आए, जिय की जासों, ताही सों, तुम बिनु सूनौं वाको गेहरा—२००१ ।

हलभली—संज्ञा स्त्री. [हि. हलभल] खलबली ।

हलराना, हलरानो, हलरावना, हलरावनो—क्रि. स. [हिं. हिलोरा] (बच्चों को प्यार-दुलार से) हाथ पर लेकर हिलाना-डुलाना या झुलाना ।

हलरावति—क्रि. स. [हिं. हलरावना] (बच्चों को प्यार-दुलार से) हाथ पर लेकर हिलाती-डुलाती या झुलाती है। उ.—गावति हलरावति कहि प्यारे—१०-४६ ।

हलरावैं—क्रि. स. [हिं. हलरावना] हलराते हैं। उ.—नंद-जसोदा हरषि हलरावैं—१०-४५ ।

हलरावै—क्रि. स. [हिं. हलरावना] हलराती है। उ.—(क) हलरावै, दुलराइ मल्हावै—१०-४३ । (ख) जसोदा हलरावै अरु गावै - १०-१२८ ।

हलवा—संज्ञा पुं. [अ.] एक मीठा भोजन ।

मुहा. हलवा-माँड़े से काम—अपने लाभ या स्वार्थ से मतलब । हलवा निकालना – बहुत मारना-पीटना ।

हलवाइन—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलवाई] हलवाई की स्त्री ।

हलवाई—संज्ञा पुं. [अ. हलवा] मिठाई बनाने-बेचनेवाला ।

हलवाह, हलवाहा—संज्ञा पुं. [सं. हलवाह] हल चलाने वाला नौकर या किसान ।

हलहल—वि. [हिं. हिलना] हिलता-काँपता हुआ ।

हलहला—संज्ञा स्त्री. [सं.] हर्षसूचक किलकार ।

हलहलाना, हलहलानो—क्रि. स. [अनु. हलहल] जोर से हिलाना, झकझोरना ।

क्रि. अ. काँपना, थरथराना ।

हला—संज्ञा पुं. [हिं. हल्ला] शोर-गुल ।

हलाए—क्रि. स. [हिं. हिलाना] हिलाने-डुलाने लगे । उ.—सैन जानि तब ग्वाल जहाँ तहँ द्रुम द्रुम डार हलाए—१०८४ ।

हलाक—वि. [अ. हलाक़त] मारा हुआ, हत ।

हलाकान—वि. [हिं. हलाक] हैरान, परेशान ।

हलाकानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलाकान] परेशानी ।

हलाकी—वि. [हिं. हलाक] मारनेवाला, घातक ।

हलाकू—वि. [हिं. हलाक] वध करनेवाला ।

हलाना, हलानो—क्रि. स. [हिं. हिलाना] (१) गति देना, हिलाना-डुलाना (२) कंपित या चलायमान करना । (३) कँपाना । (४) ढीला करना । (५) धँसाना । (६) डिगाना ।

हला-भला—संज्ञा पुं. [हिं. भला+अनु. हला] (१) निबटारा । (२) परिणाम । (३) कल्याण । (४) सुख ।

हलायुध—संज्ञा पुं. [सं.] बलराम (जिनका आयुध 'हल' कहा गया है) ।

हलाल—वि. [अ.] जो हराम न हो, जो धर्मानुकूल हो ।

संज्ञा पुं. वह पशु जिसका माँस खाने का निषेध न हो ।

मुहा. हलाल करना—(१) (गला रेतकर) पशु की हत्या करना । (२) मार डालना । (३) ईमानदारी के साथ पूरा काम करना ।

पद. हलाल का – हराम का नहीं, ईमानदारी का ।

हलावै—क्रि. स. [हिं. हलाना] हिलाती या गति देती है । उ.—बेनी डोलति दुहूँ नितंब पर मानहुँ पूँछ हलावै—८७६ ।

हलाहल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह प्रचंड विष जो समुद्र-मंथन करने पर सबसे पहले निकला था और जिसका पान शिव जी ने किया था । उ.—भयौ हलाहल प्रगट प्रथमहीं मथत जब, रुद्र कैं कंठ दियौ ताहिं धारी—८-८ । (२) महा विष । उ.—घोरि हलाहल सुन री सजनी औसर तेहि न पियौ—२५४५ ।

वि. पूरा-पूरा, भरपूर ।

हली—संज्ञा पुं. [सं. हलिन्] (१) किसान । (२) बलराम ।

हलीम—वि. [अ.] सीधा, शांत, सुशील ।

हलुआ – संज्ञा पुं. [अ. हलवः] एक मीठा भोजन ।

हलुक—वि. [हिं. हलका] जो भारी न हो, हलका ।

हलुकई—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलकाई] हलकापन ।

हलुकी— वि. स्त्री. [हिं. हलका] जो भारी न हो, हलकी ।

हलुवा—संज्ञा पुं. [हिं. हलुआ] हलुआ ।

हलूफा—संज्ञा पुं. [अ. अलूफः] मिठाई, अनाज, वस्त्र आदि वे वस्तुएँ जो विवाह के एक दिन पहले लड़की के यहाँ से लड़केवाले के यहाँ भेजी जाती हैं ।

हले—क्रि. अ. [हिं. हलना] हिले-डोले, चलायमान या

कंपित हुए। उ.—धीर चलत मेरे नैनन देखे तिहि छिन अंस हले—२७१२।

हलेरा—संज्ञा पुं. [हिं. हिलोर] तरंग, लहर।

हलोर—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलोर] लहर, तरंग।

हलोरना, हलोरनो - क्रि. स. [हिं. हिलोरना] (१) साफ करने के लिए पानी में लहर या तरंग उत्पन्न करना। (२) मथना। (३) अनाज फटकना। (३) (धन आदि) दोनों हाथों से समेटना।

हलोरा—संज्ञा पुं. [हिं. हिलोरा] लहर, तरंग।

हलोरि, हलोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलोर] तरंग।

क्रि. स. [हिं. हलोरना] (साफ करने के लिए) पानी हिलाकर। उ.—जल हलोरि गागरि भरि नागरि जबहीं सीस उठायौ - ८४२।

हल्—संज्ञा पुं. [सं.] व्यंजन का वह शुद्ध रूप जिसके साथ स्वर न उच्चरित हो।

हल्का—वि. [हिं. हलका] जो भारी न हो।

हल्दी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हलदी] हलदी।

हल्लन - संज्ञा पुं. [सं.] हिलना-डोलना।

हल्ला--संज्ञा पुं. [अनु.] (१) शोरगुल, कोलाहल। (२) लड़ाई के समय की ललकार। (३) चढ़ाई, धावा।

हल्लीश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक उपरूपक जिसमें एक ही अंक रहता है और नृत्य की प्रधानता रहती है। (२) एक प्रकार का नृत्य।

हव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्नि में दी गयी आहुति। (२) आग, अग्नि।

हवन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंत्र पढ़कर घी, जौ, तिल आदि अग्नि में डालने का धार्मिक कृत्य, होम। उ.—होम, हवन, द्विज पूजा गनपति, सूरज, सक्र, महेस,—सारा. २३४। (२) आग, अग्नि। (३) अग्निकुंड। (४) आहुति डालने का चमचा, श्रुवा।

हवस—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) चाह, लालसा, कामना। (२) तृष्णा। (३) काम-वासना। (४) (दिल का) अरमान, हौंसला।

मुहा. हवस पकाना—व्यर्थ की कामना करना। हवस पूरी करना—इच्छा पूरी करना। हवस पूरी होना—इच्छा पूरी होना। हवस रखना—(१) इच्छा करना। (२) इच्छा पूरी करना।

हवा - संज्ञा स्त्री. [अ.] वायु, पवन।

मुहा. हवा उड़ना—खबर फैलना। हवा उड़ाना—खबर या अफवाह फैलाना। हवा करना—पंखा हाँकना। (कोई चीज) हवा करना—चीज उड़ा देना या गायब कर देना। हवा के मुँह पर या रुख जाना—जिस ओर हवा बहती हो, उसी ओर जाना। हवा के घोड़े पर सवार होना—(१) बहुत जल्दी या उतावली में होना। (२) किसी प्रकार की उमंग या नशे में होना। हवा खाना—(१) शुद्ध वायु-सेवन के लिए बाग-बगीचे या खुली जगह में घूमना-फिरना या टहलना। (२) (किसी से कोई चीज न पाकर) विकल या वंचित होना। हवा गिरना—(१) तेज हवा का चलना बंद होना। (२) (किसी चीज के) तेज भाव का सस्ता हो जाना। हवा गाँठ में बाँधना—अनहोनी या असंभव बात के लिए परेशान होना। हवा पीकर या फाँककर रहना—बिना भोजन-पानी के रहना (व्यंग्य)। हवा बताना—(१) (कोई चीज न देकर) यों ही टाल देना। (२) किसी के मनोरंजन या स्वार्थ-सिद्धि में बाधक होकर उसे दूर हटा देना। हवा बाँधना—(१) शेखी हाँकना, लंबी-चौड़ी बातें करना। (२) जोड़-जोड़कर झूठी बातें कहना। हवा पलटना, फिरना या बँधना—(१) हवा का रुख बदलकर दूसरी ओर चलने लगना। (२) हालत, दशा या स्थिति का बदल जाना। हवा भर जाना—खुशी या घमंड से फूल जाना। हवा बिगड़ना—(१) कोई भयंकर, छुतहा या संक्रामक रोग फैलना। (२) रीति या चाल खराब होना या बिगड़ना। (३) दशा या स्थिति खराब होना या बिगड़ना। हवा बिगाड़ना—(मार-पीट कर) दुर्दशा कर देना। दिमाग में हवा भर जाना—(१)बहुत घमंड या गर्व हो जाना। (२) बुद्धि ठिकाने न होना। हवा देना—(१) (आग) फूँकना। (२) हवा में रखना। (३) झगड़ा बढ़ाना। हवा-सा—बहुत ही महीन और हलका। हवा से बातें करना—(१) बहुत तेज चलना या दौड़ना। (२) आप

ही आप या व्यर्थ ही बहुत बोलना। हवा से लड़ना —किसी से अकारण झगड़ बैठना। हवा लगना— (१) हवा का झोंका पड़ना। (२) वात रोग से ग्रस्त होना। (३) बुद्धि ठीक न रहना। (४) सीधी-सादी बातें छोड़कर नयी-नयी हानिकारिणी बात आदि सीख लेना। किसी की हवा लगना—किसी की संगत के प्रभाव से नयी या बुरी बातें सीखना। हवा हो जाना —(१) बहुत जल्दी या झटपट चले जाना। (२) बहुत जल्दी गायब या समाप्त हो जाना। कहीं की हवा खाना—कहीं जाना। कहीं की हवा खिलाना—(१) खूब घुमाना-फिराना। (२) कहीं भेजना।

(२) भूत, प्रेत। (३) यश, कीर्ति, ख्याति। (४) उत्तम व्यवहार की साख, ख्याति या विश्वास।

मुहा. हवा उखड़ना—(१) प्रसिद्धि या ख्याति न रह जाना। (२) साख न बनी रहना, विश्वास उठ जाना। हवा बँधना—कीर्ति, यश या ख्याति फैलना। (२) बाजार में साख होना या विश्वास जमना। हवा बिगड़ना—पहले की सी धाक, साख, मर्यादा या विश्वास न रह जाना।

(५) किसी बात की सनक या धुन।

हवाई—वि. [अ. हवा] (१) हवा-संबंधी। (२) हवा में चलनेवाला। (३) जिसमें सत्य का आधार न हो, निर्मूल।

संज्ञा स्त्री. एक तरह की आतिशबाजी।

मुहा. मुँह पर हवाई (बहु. हवाइयाँ) उड़ना— चेहरे का रंग बहुत फीका पड़ जाना।

हवाईजहाज—संज्ञा पुं. [हिं. हवाई + जहाज] वायु यान।

हवादार—वि. [अ. हवा + फ़ा. दार] जिसमें हवा आने के लिए काफी दरवाजे, खिड़कियाँ आदि हों।

हवा-पानी—संज्ञा पुं. [अ. हवा + हिं. पानी] जल-वायु।

हवाल—संज्ञा पुं. [अ. अहवाल] (१) दशा, अवस्था। (२) समाचार, वृत्तांत। (३) गति, परिणाम।

हवाला—संज्ञा पुं. [अ.] (१) घटना, प्रमाण आदि का उल्लेख। (२) मिसाल, उदाहरण, दृष्टांत। (३) कब्जा, सुपुर्दगी, अधिकार।

संज्ञा पुं. [हिं. हवाल] गति, दशा, परिणाम। उ. —ऐसी बातनि झगरी ठानो हो, मूरख तेरो कौन हवाला—१०३४।

हवालात—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) पहरे के भीतर रखा जाना। (२) मामूली कैद। (३) वह स्थान जिसमें कैदी या अभियुक्त रखा जाता है।

हवाले—संज्ञा पुं. [हिं. हवाला] जिम्मे, अधिकार।

मुहा. किसी के हवाले करना—किसी को सौंपना। किसी के हवाले पड़ना या होना—(१) किसी को सौंपा जाना। (२)किसी के हाथ या चंगुल में आ जाना।

हवास—संज्ञा पुं. [अ.] (१) इंद्रियाँ। (२) संवेदन। (३) होश, सुध, चेतना, संज्ञा।

मुहा. हवास गुम होना—होश या बुद्धि ठिकाने न रहना, कर्तव्य न सूझना।

हवि—संज्ञा पुं. [सं. हविस्] वह द्रव्य या वस्तु जिसकी अग्नि में आहुति दी जाय। उ.—(क) तर्कत नैन हृदय होमत हवि मन-बच-क्रम और नहिं काम— २२३०। (ख) सूर सकल उपमा जो रही यों, ज्यों होइ आवै कहत होमत हवि—२३१४।

हवित्र, हवित्रि, हवित्री—संज्ञा स्त्री. [सं. हवित्री] हवन-कुंड।

हविष्मान, हविष्मान्—वि. [सं. हविष्मत्] हवन करनेवाला

हविष्य—वि. [सं.] (१) हवन करने योग्य। (२) जिसकी आहुति दी जाने को हो।

संज्ञा पुं. वह वस्तु जिसकी आहुति दी जाय।

हविष्यान्न—संज्ञा पुं. [सं.] वह सात्विक आहार जो यज्ञ, व्रत आदि के दिन किया जाय।

हविस—संज्ञा स्त्री. [अ.हवस] (१) लालसा। (२) तृष्णा। (३) काम-वासना। (४) अरमान, हौंसला।

हवेली—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) बहुत बड़ा और पक्का मकान। (२) पत्नी।

हवौ—क्रि. अ. [हिं. होना] हो। उ.—मोहन-मोहन कहि कहि टेरै कान्ह हवौ यहि बन मेरे—१८१३।

हव्य—संज्ञा पुं. [सं.] (देवताओं के लिए) हवन की सामग्री। (पितरों के लिए हवन-सामग्री 'कव्य' कहलाती है)

हसद—संज्ञा पुं. [अ.] डाह, ईर्ष्या।

हसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हँसना। (२) परिहास।

संज्ञा पुं. [अ.] हजरत अली के दो बेटों में एक जो लड़ाई में मारे गये थे और जिनका शोक शिया मुसलमान मुहर्रम में मनाते हैं।

हसब—अव्य. [अ.] मुताबिक, अनुसार।

हसमत—संज्ञा स्त्री. [अ. हशमत] (१) गौरव, मान। (२) वैभव, ऐश्वर्य।

हसरत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) दुख। (२) कामना।

हसि—क्रि. अ. [सं. अस्ति] 'है' या 'हो' का अव्यय रूप।

हसिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हँसी। (२) विनोद।

हसित—वि. [सं.] (१) जिस पर लोग हँसते हों, हास्यास्पद। (२) हँसता हुआ। (३) खिला हुआ।

संज्ञा पुं. (१) हास, हँसी। (२) उपहास। (३) कामदेव का धनुष।

हसीन—वि. [अ.] खूबसूरत, सुंदर।

हसील—वि. [अ. असील] सीधा-सादा।

हस्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ। उ.—थाके हस्त, चरन गति थाकी—१-२८७। (२) हाथी की सूँड़। (३) चौबीस अंगुल की एक नाप। (४) लिखा हुआ, लिखावट। (५) एक नक्षत्र। (६) संगीत या नृत्य में हाथ से भाव बताना। (७) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (८) गुच्छा, समूह।

हस्तक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ। (२) नृत्य में हाथों की मुद्रा। उ.—हस्तक भेद ललित गति लाई—१८२८।(३)करताल।(४)हाथ से बजायी गयी ताली।

हस्त-कोहली—संज्ञा स्त्री. [सं.] वर-कन्या की कलाई में मंगल-सूत्र बाँधने की रीति।

हस्त-कौशल—संज्ञा पुं. [सं.] हाथ की कारीगरी।

हस्तक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] (काम में) दखल देना।

हस्तगत—वि. [सं.] हाथ में आया या मिला हुआ, हासिल, प्राप्त।

हस्ततल—संज्ञा पुं. [सं.] हथेली।

हस्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नृत्य, गायन आदि में हाथ से भाव बताने का ढंग।

हस्त-रेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हथेली में पड़ी हुई रेखाएँ जिन्हें देखकर जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाएँ बतायी जाती हैं।

हस्त-लाघव—संज्ञा पुं. [सं.] हाथ की चालाकी, फुर्ती या सफाई।

हस्तलिखित—वि. [सं.] हाथ का लिखा हुआ।

हस्तलिपि, हस्तलेखा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथ की लिखावट या लिपि।

हस्तांतरण—संज्ञा पुं. [सं.] (संपत्ति आदि का) एक के हाथ से दूसरे के पास जाना।

हस्तांतरित—वि. [सं.] एक के हाथ से दूसरे को मिला हुआ।

हस्ताक्षर—संज्ञा पुं. [सं.] दस्तखत।

हस्तामलक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ में लिया हुआ आँवला। (२) वह वस्तु या विषय जिसका अंग-प्रत्यंग (हथेली पर लिये हुए आँवले के समान) स्पष्टतः ज्ञात हो सके।

हस्ति—संज्ञा पुं. [सं. हस्तिन्] हाथी।

हस्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक प्राचीन बाजा।

हस्तिनपुर, हस्तिनापुर—संज्ञा पुं. [सं.] वह प्रचीन नगर जो वर्तमान दिल्ली से उत्तरपूर्व २८ कोस पर स्थित था, जिसे हस्तिन नामक एक चंद्रवंशी राजा ने बसाया था और जो कौरवों की राजधानी था। उ.—तब अक्रूर बैठि हरि के रथ हस्तिनपुर जु सिधारे—सारा. ५९१।

हस्तिनी—संज्ञा स्त्री.[सं.] (१) हथिनी। (२)एक सुगंधित द्रव्य। (३) साहित्य में चार प्रकार की स्त्रियों में सबसे निकृष्ट जो लोभयुक्त और स्थूल शरीरवालीतथाआहार और कामवासना में सबसे अधिक कही गयी है।

हस्तिमुख—संज्ञा पुं. [सं.] गजानन, गणेश।

हस्ती—संज्ञा पुं. [सं. हस्तिन्] (१) हाथी। उ.—मद के हस्ती समान फिरति प्रेम लटकी—१२००। (२) वह चंद्रवंशी राजा जिसने हस्तिनापुर को बसाया था।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) होने का भाव, अस्तित्व। (२) ताकत, शक्ति, सामर्थ्य। (३) व्यक्तित्व।

मुहा. किसी की क्या हस्ती है—क्या गिनती या ताकत है?

हस्ते—अव्य. [सं.] हाथ से, द्वारा।

हहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. हहरना] (१) डर। (२) कँपकँपी।

हहरना, हहरनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) **थरथराना, काँपना।** (२) **डर से दहलना या थर्राना।** (३) **दंग या चकित रह जाना।** (४) **डाह या ईर्ष्या करना, सिहाना।** (५) **'हहर-हहर' करना।**

हहरात—क्रि. वि. [हिं. हहराना] **डर से काँपते-थर्राते।** उ.—घहरात, तरतरात, गररात, हहरात, थररात, झहरात माथ नाए—९४४।

हहराना, हहरानो—क्रि. अ.[अनु.] (१) **काँपना।** (२) **डर से दहलना।** (३) **दंग या चकित होना।** (४) **डाह या ईर्ष्या करना।**

क्रि. स. **डराना, दहलाना, भयभीत करना।**

हहर्‌यो, हहर्‌यौ—क्रि. अ. [हिं. हहरना] **दहल गया, थर्रा गया, भयभीत हो गया।** उ.—मैं देखौं, इनकों अब हतिहै, अति व्याकुल हहरयो—२५५२।

हहलना, हहलनो—क्रि. अ. [हिं. हहरना] **हहरना।**

हहलाना, हहलानो—क्रि. अ. [हिं. हहरना] **हहरना।**

क्रि. स. [हिं. हहराना] **हहराना।**

हहा—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) **हँसने का शब्द, ठट्टा।** (२) **हाहाकार।** उ.—इंद्रजीत लीन्हीं तब सक्ती देवनि हहा करयौ—९-१४४। (३) **गिड़गिड़ाने या दीनता प्रकट करने का शब्द।** (४) **चिरौरी, बिनती।**

मुहा. हहा खाना—**बहुत गिड़गिड़ाना।**

क्रि. वि. **गिड़गिड़ाहट के साथ, बिनती के स्वर में।** उ.—सूर स्याम कर जोरि मातु सौं गाइ चरावन कहत हहा रे—४२३।

हाँ—अव्य. [सं. आम्] (१) **स्वीकृति, सहमति या समर्थन सूचक शब्द।** (२) **एक शब्द जिससे यह सूचित हो कि पूछी गयी बात ठीक है।**

मुहा. हाँ करना—(१) **राजी होना, स्वीकारहोना** (२)**ठीक मान लेना।** हाँ न करना—(१)**राजी न होना।** (२) **ठीक न मानना।** हाँ जी हाँ जी करना या बोलना अथवा हाँ में हाँ मिलाना—(१) **किसी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बिना विचार किये ही उसके मन की बात करना या उसका समर्थन करना।** (२) **खुशामद या चापलूसी करना।** उ.—स्वारथ मानि लेत रति करिकै बोलत हाँ जी हाँ जी—पृ. ३२३। हाँ-नाहीं न करना—(१) **न स्वीकार करना, न अस्वीकार ही; कोई उत्तर न देकर मौन रहना।** उ.—हाँ नाहीं नहिं कहत हौ, मेरी सौं काहै—ना. ३१०५। (२) **स्पष्ट उत्तर न देकर टाल देना।** हाँ हाँ करना—(१) **स्वीकृति या सहमतिसूचक शब्द कहना।** (२) **बात न काटना।** (३) **खुशामद या चापलूसी करना।**

(३) **वह शब्द जिसके द्वारा किसी बात का अंशतः माना जाना सूचित हो।** (४) **यहाँ।**

हाँक—संज्ञा स्त्री. [सं. हुंकार] (१) **जोर से पुकारने का शब्द।**

मुहा० हांक देना, मारना या लगाना—**जोर से पुकारना या बुलाना।** हाँक दई—**जोर से पुकारा या बुलाया।** उ.—हार-चीर लै चले पराई। हाँक दई कहि नंद-दुहाई—७९९। दै दै हाँक—**जोर से चिल्ला कर, कूक देकर या आवाज लगा कर।** उ.—ग्वाल सखा सँग लीन्हें डोलत, दै दै हाँक जहाँ तहँ धावत—ना. २०५२। हाँक-पुकार कर कहना—**निर्भय और निसंकोच रूप से सबको सुनाकर कहना।** हाँक पड़ना या होना—**पुकार या बुलाहट होना।** हाँक परी—**पुकार या बुलाहट हुई।** उ.—भोर भयौ दधि-मथन होत सब ग्वालि-सखनि की हाँक परी—४०४।

(२) **युद्ध में दपट, ललकार या हुंकार।** उ—(क) हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौं ऐंठे—१-२३। (ख) हाँक दै तुरत गज कौ हँकारे—ना. २६७२। (३) **बढ़ावे का शब्द, बढ़ावा।** (४) **दुहाई।** उ.—बसत श्री सहित बैकुंठ के बीच गजराज की हाँक पै दौरि आए।

हाँकत—क्रि. स. [हिं. हाँकना] (**गाड़ी, रथ, यान आदि) चलाता हूँ या है।** उ.—(क) (रथ) हाँकत हरि—१-२३। (ख) हाँकत हौं रथ तेरौ—१-२७२।

हाँकन—संज्ञा पुं. [हिं. हांकन] **हाँकने की क्रिया या भाव।**

हाँकनहार, हाँकनहारा, हाँकनहारे, हाँकनहारो, हाँकनहारौ—वि. [हिं. हाँकना + हारा] (**रथ, यान आदि चलानेवाला।** उ.—अति कुबुद्धि मन हाँकनहारे, माया जूआ दीन्हौ—१-१८५।

हाँकना, हाँकनो—क्रि. स. [हिं. हाँक+ना] (१) **चिल्ला कर पुकारना या बुलाना।** (२) **युद्ध में ललकारना**

या हुंकारना। (३) बढ़-बढ़ कर बोलना। (४) जानवरों को चलाना या इधर-उधर हटाना और भगाना। (५) (गाड़ी, यान आदि) चलाना। (६) पंखे से हवा करना, पंखा झलना।

हाँका—संज्ञा पुं. [हिं. हांकना] जंगली पशु को तीन ओर से घेर कर शोर करते हुए ऐसे स्थान पर लाना जहां से वह शिकारी का लक्ष्य बन सके।

हाँकि—क्रि. स. [हिं. हाँकना] पशुओं को आगे बढ़ाकर या इधर-उधर हटाकर। उ.—(क) न्यारौ जूथ हाँकि लै अपनौ—१०-२१६। (ख) कोउ हाँकि सुरभि-गन जोरि चलावत—४३१।

संज्ञा पुं. [हिं. हाँका] हाँका।

हाँकौ—क्रि. स. [हिं. हाँकना] (१) (यान, रथ आदि) चलाया। उ.—अर्जुन कौ रथ हाँकौ—१-११३। (२) पशुओं को आगे बढ़ाओ। उ.—संध्या को आगम भयौ, ब्रज-तन हाँकौ फेरि—४३७।

हाँक्यो, हाँक्यौ—क्रि. स. [हिं. हांकना] (यान आदि) चलाया। उ.—(क) आतुर रथ हाँक्यो मधुबन कौ—ना. ३६११। (ख) हँसत हँसत रथ हाँक्यौ—२५४६।

हाँगर—संज्ञा पुं. [देश.] 'शार्क' मछली।

हाँगा—संज्ञा पुं. [सं. अंग] (१) ताकत, बल।

मुहा. हाँगा छूटना—हिम्मत न रहना।

(२) जबरदस्ती, धींगाधींगी।

हाँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाँ] हामी, स्वीकृति।

मुहा. हाँगी भरना—मानना, स्वीकार करना।

हाँड़ना—क्रि. अ. [सं. भण्डन] आवारा घूमना।

वि. व्यथ इधर-उधर घूमनेवाला, आवारा।

हाँडी, हाँड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हंडा] (१) बटलोई या देगची की तरह का मिट्टी का छोटा बरतन।

मुहा. हाँडी उबलना—खुशी से फूलना या इतराना। हाँडी पकना—(१) बकवाद होना। (२) कुचक्र या षड्यंत्र रचा जाना। हाँड़ी चढ़ना—कोई चीज पकना। हाँड़ी चढ़ाना कोई चीज पकाना। किसी के नाम पर हाँड़ी फ़ोड़ना—किसी के चले जाने पर प्रसन्न होना। काठ की हाँडी—ऐसा छल जो बार-बार न चल सके।

(२) इसी आकार का शीशे का पात्र जिसमें शोभा के लिए मोमबत्ती जलायी जाती है।

हाँतना—क्रि. स. [सं. हात] (१) अलग करना। (२) दूर करना, हटाना।

क्रि. स. [हिं. हतना] (१) मार डालना। (२) मारना-पीटना। (३) पालन न करना, न मानना। (४) तोड़ डालना, भंग करना।

हाँता—वि. [सं. हात = छोड़ा हुआ] (१) छोड़ा या त्याग किया हुआ। (२) दूर किया या हटाया हुआ।

हाँपना, हाँपनो, हाँफना, हाँफनो—क्रि. अ. [अनु.] मेहनत करने, दौड़ने आदि से जोर-जोर और जल्दी-जल्दी साँस लेना।

हाँफा—संज्ञा पुं. [हिं. हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव।

हाँफी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाँफना] हाँफने की क्रिया या भाव।

हाँस—संज्ञा स्त्री. [हिं. हँसी] हँसी, हास।

हाँसना, हाँसनो—क्रि. अ. [हिं. हँसना] (१) प्रसन्नता से खिलखिलाना। (२) परिहास करना।

क्रि. स. किसी की हँसी या उपहास करना।

हाँसल—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

हाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हास] (१) हँसने की क्रिया या भाव, हँसी, हास। उ.—(क) दुख अरु हाँसी सुनौ सखी री, कान्ह अचानक आए—७९४। (ख) सूर स्याम की यहै परेखौ, इक दुख दूजे हाँसी—ना. ४६६१। (२) दिल्लगी, मजाक, हँसी-ठट्ठा, परिहास। उ.—(क) हाँसी मैं कोउ नाम उचारै—६-४। (ख) पठै देहु मेरे लाल लड़ैतैं, बारौं ऐसी हाँसी—ना. ३७९७। (ग) प्रान हमारे घात होत हैं तुम्हरे भाएँ हाँसी—ना. ४२२५। (घ) हमरौ प्रान घात ह्वै निसरैं तुम्हरे जानैं हाँसी—ना. १९७ (परि.)। (ङ) सूरदास प्रभु बेगि मिलहु अब पिसुन करत सब हाँसी—ना. ४७६५। (३) उपहास, निंदा। उ.—(क) यह तौ कथा चलैगी आगैं, सब पतितनि मैं हाँसी—१-१९२। (ख) ऐसी बातैं बहुतै कहि कहि लोग करत हैं हाँसी—ना. ३९९३। (ग) हाँसी होन लगी है ब्रज मैं जोगहिं राखौ गोई—ना. ४१६०। (घ) देस देस भयौ रहस सूर प्रभु जरासंध सिसुपाल की हाँसी—ना. ४८०२।

हाँसुल—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

हाँ हाँ—अव्य. [हिं.हाँ+हाँ] स्वीकृति, समर्थन या सहमति सूचक शब्द।

अव्य.[हिं.हैं !] मना करने या रोकने अथवा निषेध या वारण करने का शब्द।

हा—अव्य. [सं.] शोक या दुखसूचक शब्द। उ.—हा करुनामय कुंजर टेर्यौ, रह्यौ नहीं बल थाक्यौ—१-११३। (२) भयसूचक शब्द। उ.—जारत है मोहिं चक्र सुदरसन हा प्रभु लेहु बचाई–९-७। (३) आश्चर्य या प्रसन्नतासूचक शब्द।

संज्ञा पुं. मारन या हनन करनेवाला।

हाइ—अव्य. [हिं. हाय] शोक, दुख, पीड़ा आदि का सूचक शब्द। उ.—भवन न भावै माई, आँगन न रह्यौ जाइ, करै हाइ हाइ देखौ जैसो हाल कर्यौ है—८७२।

हाइल—वि. [हिं. हाही=तीव्र इच्छा] तीव्र इच्छा या उत्कट लालसा रखनेवाला।

वि. [अ. हायल] चारों ओर से घिरा या बँधा हुआ।

हाई—संज्ञा स्त्री. [सं. घात] (१) दशा। (२) घात, ढंग, ढब। उ.—ऊधौ दीनी प्रीति दिनाई। बातनि सुहृद, करम कपटी के, चले चोर की हाई।

हाऊ—संज्ञा पुं. [हिं. हौआ] बच्चों को डराने के लिए कल्पित भयानक चीज। उ.—खेलन दूरि जात किन कान्हा। आज सुन्यौ बन हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा।......। तब हँसि बोले कान्हा, मैया, कौन पठाए हाऊँ—१०-२२१।

हाकल—संज्ञा पुं. [सं.] एक छंद।

हाकलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्णवृत्त।

हाकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] 'सारवती' छंद का एक नाम।

हाकिम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) शासक। (१) बड़ा अधिकारी या अफसर।

हाकिमी—वि. [अ. हाकिम] हाकिम-संबंधी।

संज्ञा स्त्री. शासन, प्रभुत्व।

हाजत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) जरूरत। (२) चाह। (३) पहरे के भीतर रखा जाना।

मुहा. हाजत में देना या रखना—हवालात में रखना।

हाजमा—संज्ञा पुं. [अ. हाज़मा] भोजन पचने की क्रिया या पचाने की शक्ति।

मुहा. हाजमा बिगड़ना—अन्न न पचना।

हाजिर—वि. [अ. हाज़िर] (१) उपस्थित, विद्यमान। (२) तैयार, प्रस्तुत।

हाजिर जवाब—वि. [अ. हाज़िर+जवाब] हर बात का तुरंत और उचित उत्तर देनेवाला।

हाजिरजवाबी—संज्ञा स्त्री. [अ. हाज़िर+जवाबी] चटपट उपयुक्त उत्तर देने की निपुणता।

हाजिरी—संज्ञा स्त्री. [अ.] उपस्थिति।

हाजी—संज्ञा पुं. [अ.] वह जो हज कर आया हो।

हाट—संज्ञा स्त्री. [सं. हट्ट] (१) दूकान। (२) बाजार। उ.—भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्वै हरि-नग निर्मल लेहि—१-३१०।

मुहा. हाट करना—(१) दूकान लगाकर बैठना। (२) सौदा लेने के लिए बाजार जाना। हाट की बेचनहारि (बेचनहारी)—हाट-बाजार में सामान बेचनेवाली जिसे अपनी मान-मर्यादा का अधिक ध्यान न हो। उ.—ब्रज की ढीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि, सकुचै न देत गारि झगरत हूँ—१०-२९५। हाट-बाजार करना–खरीदारी करना। हाट खोलना—(१) दूकान खोलना। (२) सौदा सामने रखना, दूकान लगाना। हाट लगना—बाजार में दूकानें लगना। हाट चढ़ना—बाजार में बिकने के लिए आना। हाट का दिन—(स्थान-विशेष में) जिस दिन बाजार लगता हो।

हाटक—संज्ञा पुं. [सं.] सोना धातु, स्वर्ण। उ.—(क) किंकिनी कलित कटि हाटक रतन जटि—१०-१५१। (ख) फाटक दैकै हाटक माँगत भोरौ निपट सुधारी—३३४०।

हाटकपुर—संज्ञा पुं. [सं.] सोने की लंका।

हाटकपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोने की लंका।

हाटकलोचन—संज्ञा पुं. [सं.] हिरण्याक्ष दैत्य।

हाटकीय—वि. [सं.] सोने का बना हुआ।

हाड़—संज्ञा पुं. [सं. हड्ड] (१) हड्डी, अस्थि। उ.—रिषि दधीचि हाड़ लै दान।......। लिए हाड़ कियौ बज्र बनाइ—६-५। (२) वंश की मर्यादा, कुलीनता।

हाड़ना—क्रि. स. [सं. हरण] तराजू का घड़ा करना, तराजू के दोनों पलड़े बराबर करना।

क्रि. स. व्यर्थ इधर-उधर घूमना।

हाड़ा—संज्ञा पुं. क्षत्रियों की एक शाखा।

हात—वि. [सं.] छोड़ा या त्यागा हुआ।

हातव्य—वि. [सं.] छोड़ने योग्य, त्याज्य।

हातनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. घात] घात या चाल से। उ.—बालि जीति जिन वलि बंधन किये लुब्धक कैसी हातनि (पाठा. की सी घातनि)—ना. ४१६७।

हाता—संज्ञा पुं. [हिं. अहाता] (१) घेरा हुआ स्थान।(२) प्रांत, प्रदेश। (३) हद, सीमा।

वि. [सं. हात] (१) अलग या दूर किया हुआ। (२) बरबाद, नष्ट।

संज्ञा पुं. [सं. हता] वध करनेवाला।

हातिम—वि. [अ.] (१) चतुर, निपुण। (२) पक्का, उस्ताद। (३) बड़ा दानी।

संज्ञा पुं. एक प्राचीन अरब सरदार जो बड़ा दानी और परोपकारी था।

हातु—संज्ञा पुं. [सं.] मौत, मृत्यु।

हातो, हातौ—वि. [सं. हात, हिं. हाता] (१) अलग या दूर किया हुआ, हटाया हुआ। उ.—(क) छीरोदक घूँघट हातौ करि सन्मुख दियौ उघारि—ना. २७३६। (ख) कतहिं बकत है काम-काज बिनु, होहि न ह्याँ तैं हातौ—ना. ४३२४।

(२) बरबाद, नष्ट। उ.—तब नहिं निमिष बियोग सहत उर, करत काम नहिं हातौ—ना. ४५५१।

वि. [हिं. हितू] हितू, शुभचिंतक। उ.—बाहर हेत हातो (पाठा. हितू) कहवावत, भीतर काज सयाने—ना. ४६२६।

हाथ—संज्ञा पुं. [सं. हस्त, प्रा. हत्थ] कर, हस्त। उ.—(क) कुंज भवन कुसुमन की सेज्या अपने हाथ निवारत पात—१८९३। (ख) हृदय सिंगी, टेर मुरली, नैन खप्पर हाथ—ना. ४३१२।

मुहा. हाथ आना (में आना) (१) मिलना, प्राप्त होना। (२) अधिकार या वश में आना। हाथ कछू नहिं आयौ—कुछ मिल न सका, प्राप्त नहीं हुआ। उ.—चाखन लाग्यौ, रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयौ—१-३३५। काहूँ हाथ न आवै—किसी के वश या अधिकार में नहीं आता। उ.—सूर स्याम अति करत अचगरी, कैसेहुँ काहू हाथ न आवै—ना. २०५१। (किसी को) हाथ उठाना—सलाम या प्रणाम करना। (किसी पर) हाथ उठना—किसी को मारने-पीटने को तैयार होना। (किसी पर) हाथ उठाना—किसी को मारना-पीटना। हाथ उठाकर देना—अपनी खुशी से देना। हाथ उठाकर कोसना—किसी के अनिष्ट की ईश्वर से प्रार्थना करना। हाथ उठाकर कहना—ईश्वर को साक्षी करके प्रण करना। हाथ उतरना—(१) हाथ की हड्डी उखड़ जाना। (२) हाथ में पहले जैसी कारीगरी या कार्य-क्षमता न रह जाना। हाथ ऊँचा होना—(१) दान करने को प्रवृत्त होना। (२) देने या खर्च करने योग्य होना। हाथ छोड़ना—हाथ फैलाना, लेना, माँगना, याचना करना। हाथ कट जाना—(१) साधन या सहायक के अभाव से कुछ करने लायक न रह जाना। (२) प्रतिज्ञा, वचन आदि से बद्ध होने के कारण कुछ करने को स्वच्छंद न रह जाना। हाथ कटा देना—(१) साधन या सहायक खो कर अपने को कुछ कर सकने योग्य न रखना। (२) वचन, प्रतिज्ञा आदि करके अपने को कुछ कर सकने को स्वच्छंद न रखना। हाथ करना—वार या प्रहार करना। हाथ का झूठा—चोर, बेईमान। हाथ का दिया—(खुशी से) दिया हुआ, प्रदत्त। हाथ का सच्चा—(१) ईमानदार। (२) ऐसा वार करनेवाला जो खाली न जाय। (३) ऐसा काम करनेवाला जिसमें भूल-चूक न हो। हाथ का (की) मैल—बराबर हाथ में आता-जाता रहनेवाला, ऐसी तुच्छ या साधारण चीज जिसके जाने का जरा भी दुख करना उचित न हो। किसी के हाथ की चिट्ठी या पुरजा—स्वयं उसी का लिखा हुआ अर्थात् प्रामाणिक लेख। हाथ की लकीर—(१) हथेली में पड़ी हुई रेखाएँ जिनका शुभाशुभ फल भोगना ही पड़ता है। (२) किस्मत, भाग्य। हाथ के तले (नीचे) आना—इस प्रकार काबू या वश में आना कि मनचाहा

कराया जा सके। हाथ खाली आना—(१) वार चूकना, प्रहार या लक्ष्य ठीक न होना। (२) चाल या युक्ति सफल न होना। खाली हाथ—बिना कुछ लिये। हाथ खाली होना—पास में रुपया-पैसा न होना। (किसी स्त्री के) हाथ खाली होना—(१) हाथ में चूड़ियाँ न होने से स्त्री का विधवा होना। (२) हाथ में कोई भी गहना न होना। (स्त्री के) हाथ खाली लगना—हाथ में बहुत ही हलका गहना या चूड़ी होना। (स्त्री के) खाली-खाली हाथ—हाथ में कोई भी गहना न होना। हाथ खाली न होना—फुरसत न होना, काम में फँसा होना। (स्त्री के) हाथ खाली न होना—हाथ में अच्छे खासे या काफी गहने पहने होना। हाथ खुजलाना—(१) मारने को जी करना। (२) (कुछ धन आदि) मिलने या प्राप्त होने के लक्षण दिखायी देना। हाथ खींचना—(१) कोई काम करते-करते उससे अलग हो जाना। (२) खर्च आदि देते-देते बंद कर देना। हाथ खुलना—(१) देने या दान में प्रवृत्त होना। (२) खूब खर्च करना। हाथ खोलना—(१) बहुत देना या दान करना। (२) खूब खर्च करना। (किसी का) हाथ गरम करना—(१) किसी प्रकार की आर्थिक प्राप्ति कराना। (२) किसी को घूस आदि देना। (किसी का) हाथ गरम होना—(१) किसी प्रकार की आर्थिक प्राप्ति होना। (२) खूब घूस मिलना। (किसी का) हाथ चढ़ना या चढ़ा होना—विशेष कार्य-क्षमता या कौशल होना। (किसी के) हाथ चढ़ना—(१) मिलना, प्राप्त होना। (२) वश या अधिकार में होना। हाथ चलना—(१) गति या कौशल से काम होना। (२) मारने के लिए हाथ उठना। हाथ चलाए—हाथ से प्रहार किया। उ.—सोयौ हुतौ असुर तरु छाया। हलधर कौं देख्यौ तिन आए। हाथ दोऊ बल करि जु चलाए—४९९। हाथ चलाना—(१) गति या कौशल से काम करना। (२) मारने के लिए तैयार होना। (३) किसी वस्तु को छूने या लेने के लिए हाथ बढ़ाना। हाथ चूमना—किसी की करीगरी या कला-निपुणता पर इतना मुग्ध होना कि उसके हाथ को प्यार करने को ललक उठना। हाथ का चालाक—(१) फुर्ती से दूसरे की चीज उड़ा लेनेवाला। (२) किसी काम में हाथ की सफाई या कारीगरी दिखानेवाला। हाथ की चालाकी—(१) फुर्ती से दूसरे की चीज उड़ा लेने का कौशल। (२) किसी काम में हाथ की सफाई, कारीगरी या कौशल। हाथ चाटना—(१) सब कुछ खाकर भी तृप्त न होना। (२) बहुत स्वादिष्ट लगना। हाथ छूटना—मारने के लिए हाथ उठना। (किसी के) हाथ छोड़ना—(कोई काम किसी को) सौंपना। (किसी पर) हाथ छोड़ना—मारना, प्रहार करना। हाथ जड़ना—थप्पड़ मारना। (किसी को) हाथ जोड़ना—प्रणाम या नमस्कार करना। (२) (कृपा के लिए) अनुनय-विनय करना। (३) (ईश्वर या देवी-देवता) की बिनती या प्रार्थना करना। (४) दूर रहने का निश्चय करना। दूर से हाथ जोड़ना—बिलकुल दूर या अलग रहना, किसी प्रकार का भी संबंध न रखना। हाथ जोड़े रहना—सेवक या दास-भाव से विनीत या नम्र रहना। रहत हाथ जोरैं—दास या सेवक की तरह नम्र या विनीत बना रहता है। उ.—प्रात जो न्हात, अघ जात ताके सकल, ताहि जमहूँ रहत हाथ जोरैं—१-२२२। हाथ जूठा होना—मुँह का स्पर्श होने से हाथ का अपवित्र हो जाना। (किसी काम में) हाथ जमना—ऐसा अभ्यास होना कि हाथ ठीक-ठीक चला करे। हाथ झाड़ना—खूब मारना, प्रहार करना। हाथ झुलाते आना—खाली हाथ आना। हाथ झाड़ देना—(१)मार बैठना। (२) कह देना कि कुछ भी पास नहीं है। हाथ झाड़ कर खड़े हो जाना—(१) कह देना कि कुछ भी पास नहीं है। (२) बिलकुल अलग हो जाना। हाथ टेकना—सहारा देना। हाथ डालना—(१) कोई काम करना, काम में योग देना। (२) दखल देना, हस्तक्षेप करना। हाथ तंग होना—पास में कुछ न होना। हाथ तकना—दूसरे के देने के सहारे होना, दूसरे से सहारा चाहना। हाथ थिरकना—हाथ का हिलना या मटकना। हाथ थिरकाना—(बोलने में या नृत्य करते समय) हाथ मटकाना या हिलाना-डोलाना। हाथ दिखाना—(१)भावी शुभाशुभ

जानने के लिए सामुद्रिक जाननेवाले से हस्तरेखाओं का विचार कराना (२) वैद्य को नाड़ी दिखाना। (३) धन आदि से रहित होने का संकेत करना। (४) हाथ से किसी बात का संकेत करना। हाथ दिलाना या दिवाना—(१) दूसरे से पिटवा देना। (२) भूत-प्रेत की बाधा शांत करने या नजर झड़वाने के लिए सयाने से हाथ फिरवाना। हाथ दिखावति डोलति—भूत-प्रेत की बाधा दूर करने या नजर झड़वाने के लिए सयानों या बूढ़ों से हाथ फिरवाती है। उ.—घर-घर हाथ दिवावति डोलति गोद लिए गोपाल बिनानी—१०-२५८। हाथ देखना—(१) सामुद्रिक का शुभाशुभ विचार करना। (२) वैद्य का नाड़ी देखना। (किसी के) हाथ देना—मारना-पीटना। (किसी को) हाथ देना—(१) सहारा देना, सहायक होना। (२) कार्य में सहयोग देने के लिए हाथ मिला कर समझौता करना या एक प्रकार से वचनबद्ध होना। (३) गुप्त रूप से सौदा तै करना। (४) हाथ के संकेत से रोकना या मना करना। (५) बाजी लगाना। हाथ देना—(१) हाथ के झोंके से दिया बुझाना। (२) भूत प्रेत की बाधा पर विचार करना। (किसी का) हाथ धरना—(१) कोई काम करने या अधिक देने से रोकना या मना करना। (२) किसी को सहारा देना। (३) सहारा या आश्रय देना। (४) किसी को अपनी रक्षा में लेना। (५) कन्या से विवाह करना। (किसी पर) हाथ धरना—(१) अपने आश्रय या संरक्षण में लेना। (२) किसी को आशीर्वाद देना। (किसी वस्तु से) हाथ धोना—गँवा या खो देना।(२) प्राप्ति की आशा छोड़ देना। हाथ धोकर (किसी काम के) पीछे पड़ना—काम में जी-जान से, अन्य सब बातें छोड़कर, जुट जाना। (किसी व्यक्ति के पीछे) हाथ धोकर पड़ जाना सब काम-धंधा छोड़कर किसी को हानि पहुँचाने के लिए जी-जान से लग जाना। (पुट्ठे पर हाथ धरने या रखने न देना—(१)(पशु का) हाथ से स्पर्श करते ही उछलने-कूदने या दौड़ने लगना। (२) (व्यक्ति का)जरा सी बात भी मानने के लिए किसी तरह तैयार न होना। (स्त्री के)नंगे (नंगे-नंगे) हाथ—हाथ में कोई गहना, यहाँ तक कि चूड़ी भी न होना। (स्त्री के) हाथ नंगे हो जाना—(१) हाथ की चूड़ी टूट जाना। (२) हाथ की चूड़ी टूटने से विधवा होना। (३) हाथ में कोई गहना न रह जाना। हाथ नचाना—हाथ मटकाना या चमकाना। हाथ नचावति आवति—हाथ मटकाती हुई आती है। उ.—हाथ नचावति आवति ग्वारिनि जीभ करै किन थोरी—१०-२९३। हाथ पकड़ना—(१) किसी काम को करने से रोकना या मना करना। (२) सहारा देना। (३) शरण या संरक्षण में लेना (४) कन्या से विवाह करना। हाथ पड़ना—(१) हाथ छू या लग जाना। (२) छापा या डाका पड़ना, लुट जाना। हाथ पत्थर तले दबना—(१) मुश्किल या संकट में फँसना। (२) कुछ करने की शक्ति या अवकाश न रहना। (३) लाचार या विवश होना। (४) किसी चलते हुए कार्य को रोकने पर विवश होना। हाथ पर गंगाजली धरना या रखना—गंगा की शपथ खिलाना। हाथ पर गंगाजली उठाना या लेना—गंगा की शपथ खाना। हाथ पर नाग खिलाना - प्राण संकट में डालना। हाथ पर हाथ धरे या रखकर बैठे रहना—कुछ काम-धंधा न करके खाली बैठे रहना। हाथ पर हाथ धरकर या रखकर बैठ जाना—निराश होकर काम छोड़ बैठना। हाथ पर हाथ मारना—(१) बाजी लगना, शर्त बदना। (२) किसी बात को पक्का करना। (किसी के आगे) हाथ पसारना या फैलाना—किसी से माँगने या कुछ लेने के लिए हाथ बढ़ाना। हाथ पसारे—माँगने या याचना करने के लिए हाथ फैलाये। उ.—तृष्ना हाथ पसारे निसि दिन पेट भरे पर सोऊ—१-१८६। हाथ पसारे जाना – खाली हाथ जाना, परलोक में कुछ साथ न ले जाना। हाथ-पाँव (पैर) चलना—काम करने की सामर्थ्य, शक्ति या क्षमता होना। हाथ-पाँव (पैर) चलाना—काम-धंधा करना। (२) यत्न करना। हाथ-पाँव (पैर) जोड़ना—बहुत गिड़गिड़ाना, अनुनय-विनय करना। हाथ-पाँव (पैर) टूटना—(१) अंग-भंग होना। (२) शरीर में पीड़ा होना। हाथ-पाँव (पैर) ठंढे होना—(१) शरीर में गर्मी न रह जाना,

मरणासन्न होना। (२) भय, आशंक आदि से ठक या स्तब्ध हो जाना। हाथ-पाँव (पैर) तोड़ना—(१) अंग भंग कर लेना। (२) बहुत मारना पीटना। हाथ-पाँव (पैर) निकलना—सामान्य शरीर का मोटा-ताजा या लंबा हो जाना। हाथ-पाँव (पैर) निकालना—(१) नटखटी या शरारत करने लगना।(२)छेड़छाड़ करना (३) सीमा का अतिक्रमण करना। हाथ-पाँव (पैर) फूलना—डर या भय से इतना घबरा जाना कि कुछ कर न सके। हाथ-पाँव (पैर) बचाकर काम करना—इस प्रकार काम करना कि अपने को किसी तरह की हानि न पहुँचे। हाथ-पाँव (पैर) पटकना—(१) जी जान से कोशिश करना। (२) बहुत छटपटाना। (३) तैरने के लिए हाथ-पैर चलाना। हाथ-पाँव (पैर) मारना या हिलाना—(१) तैरने के लिए हाथ-पैर चलाना। (२) बहुत कोशिश या प्रयत्न करना। (३) दुख या पीड़ा से छटपटाना या तड़पना। (४) मेहनत या परिश्रम करना। हाथ-पाँव (पैर) से छटना—सहज में और सकुशल (स्त्री का) प्रसव होना। हाथ-पाँव (पैर) हारना—(१) हिम्मत या साहस छोड़ना। (२) निराश होना। हाथ-पाँव (पैर) पीले पड़ना—इतना दुर्बल हो जाना कि शरीर में बहुत कम रक्त रह जाय। हाथ पीले करना—(विवाह के समय हलदी लगाने की रीति करके) कन्या का विवाह करना। (२) किसी प्रकार की तंगी या परेशानी से कन्या का विवाह कर पाना। हाथ-पाँव (पैर)फेंकना-बहुत कोशिश या मेहनत करना। हाथ फेंकना—(१) मारने को हाथ चलाना। (२) वार या प्रहार करना। हाथ फेरना—प्यार से शरीर सहलाना। (किसी वस्तु पर) हाथ फेरना—सफाई या चालाकी से वह वस्तु उड़ा लेना या गायब कर देना। हाथ बँटाना—सहयोग देना। हाथ फैलना—(१) माँगने को हाथ बढ़ना। (२) लेने को हाथ बढ़ना। हाथ फैलाना - (२) माँगने को हाथ बढ़ाना। (किसी काम में) हाथ बँटाना—शामिल या सम्मिलित होना। हाथ बंद होना—(१) पास में रुपया-पैसा न होना। (२) रुपया-पैसा देने का क्रम रोकना। हाथ बढ़ाना—(१) कुछ लेने को हाथ फैलाना। (२) कुछ माँगने को हाथ फैलाना। (३) हद से बाहर जाना। हाथ बाँधकर खड़ा होना—(१) हाथ जोड़कर खड़ा होना। (२) सेवा में उपस्थित रहना। (३) कोई काम न करके खाली खड़े रहना। (किसी के आगे) हाथ बाँधे खड़े रहना—सेवा में उपस्थित रहना। (किसी के) हाथ बिकना—(१) किसी को मोल लेकर दिया जाना। (२) उसके वश या अधिकार में होना। (किसी व्यक्ति का किसी के) हाथ बिकना—(१) किसी का खरीदा गुलाम या दास होना। (२) किसी के बिलकुल अधीन होना। उन हाथ बिकानी—उनके हाथ बिक गयी, उनके अधीन हो गयी, उनके वश या अधिकार में हो गयी। उ.—मैं उन तन उन मो तन चितयो, तब हीं तैं उन हाथ बिकानी—ना. २००३०। हाथ बिकानौ—किसी के वश या अधिकार में अथवा अधीन हो गया या है। उ.—(क) तदपि सूर मैं भक्तबछल हैं, भक्तनि हाथ बिकानौ—१-२४३। (ख) सूरदास भगवंत भजन बिनु जम कैं हाथ बिकानौ—१९-३२९। किसी के हाथ बेचना—मूल्य लेकर देना। (किसी काम में) हाथ बैठना—ऐसा अभ्यास होना कि हाथ बराबर ठीक तरह से काम करे। (किसी पर) हाथ बैठना—(१) जोर का थप्पड़ लगना। (२) वार खाली न जाना। हाथ भर आना—काम करते-करते हाथ का थक जाना। हाथ भरना—हाथ में रंग या महावर लगना। (किसी के) हाथ भरे होना—खाली या बेकार न होना, काम में व्यस्त होना। (स्त्री के) हाथ भरे होना—(१) स्त्री का हाथ में चूड़ी पहने रहने से सौभाग्यवती होना। (२) स्त्री के हाथ में कई या (हाथ के) सब गहने होना। किसी के हाथ भेजना—किसी के द्वारा भेजना। हाथ मँजना–अभ्यास होना। हाथ माँजना–निरंतर अभ्यास करना। हाथ मलना—(१) भूल-चूक होने पर पछताना। (२) निराश या दुखी होना। हाथ मारना—(१) बात पक्की करना। (२) बाजी लगाना। (३) (होड़ या स्पर्धा आदि में) आगे बढ़ जाना या जीत जाना। (किसी वस्तु पर) हाथ मारना—(१) बेईमानी

से ले लेना। (२) सफाई से उड़ा देना या गायब करना (भोजन पर) हाथ मारना—खुब डट कर खाना। हाथ मारे जात – (होड़ या स्पर्धा में) आगे बढ़ा या जीता जाता है। उ. – मेरी जोरी है श्रीदामा, हाथ मारे जात—१०-२१३। हाथ मिलाना—(१) भेंट होने पर सप्रेम या सहर्ष हाथ में हाथ लेना। (२) पंजा लड़ाना। (३) संपर्क या संबंध स्थापित करना। (४) सौदा पटाना। (५) एकमत होना। हाथ मींजना या मींड़ना—(१) भूल चूक होने पर पछताना। (२) निराश या दुखी होना। मींड़त हाथ – दुख या निराशा प्रगट करता है, या करते हैं। उ.—मींड़त हाथ, सीस धुनि ढोरत, रुदन करत नृप पारथ—१-२८७। हाथ में करना—(१) वश में या अधीन करना। (२) ले लेना, प्राप्त करना। (मन) हाथ में करना—प्रेम में फँसाना, लुभाना, मुग्ध या मोहित करना। हाथ में गंगाजली देना—गंगा की शपथ खाने को कहना या खिलाना। हाथ में गंगाजली लेना—गंगा की शपथ खाना या खाने को तैयार होना। हाथ में ठीकरा देना —भीख मँगवाना। हाथ में ठीकरा लेना—भीख माँगने लगना। हाथ में पड़ना—(१) मिलना, प्राप्त होना। (२) वश या अधिकार में होना। हाथ में लाना —(१) ले लेना, प्राप्त करना। (२) वश में या अधीन करना। हाथ में लेना—(१) ग्रहण या स्वीकार करना। (२) वश में या अधीन करना। (३) (काम) हाथ में लेना —काम का भार अपने ऊपर लेना, काम करने को सहमत होना। हाथ में हाथ देना—(१) कन्या का विवाह करना। (२) हेल-मेल कराना। हाथ में होना —(१) पास होना। (२)अपने वश में या अधीन होना। जीवन जाकैं हाथ (है) – जिसके हाथ में या जिसकी दया पर यह जीवन है। उ.—परम दयालु कृपालु है, (रे) जीवन जाकैं हाथ—१-३२५। हाथ में गुन या हुनर होना—किसी बात में बहुत कुशल या निपुण होना। हाथ रँगना—(१) हाथ में मेंहदी रचाना। (२) किसी बुरे काम का कलंक अपने ऊपर लेना। (२) घूस या रिशवत लेना। (किसी के खून से) हाथ रँगना —किसी का वध या हत्या करना। रँगे हाथ (हाथों) पाया जाना—कोई अपराध करते समय ही पूरे प्रमाण के साथ देख लिया जाना। हाथ रह जाना—(१) हाथ का सुन्न या गतिहीन हो जाना। (२) हाथ का थक जाना। (३) हाथ का रुक जाना। पचना या पचिबौ हाथ रहना—व्यर्थ परिश्रम करके हैरान होना ही मिलेगा, सारा परिश्रम नष्ट हो जायगा। हाथ रहैगी पचिबौ—व्यर्थ परिश्रम करके हैरान होना पड़ेगा, सारा श्रम नष्ट हो जायगा। उ.– अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगो पचिबौ—१-५९। पछताना या पछतावा हाथ रहेगा—बहुत श्रम करने पर भी सफलता या यश न मिलकर पछताना ही होगा। हाथ रोकना —(१) किसी काम का करना बंद या स्थगित कर देना। (२) ठीक से या सामान्य गति से काम न करने देना।(३)स्वयं किसी को मारने के लिए हाथ उठाकर ही रह जाना या रुक जाना। (४) खर्च करते समय आगा-पीछा सोचना, पूर्व गति से, अंधाधुंध खर्च न करके, सम्हालकर करना। (५) जो मारने को हाथ उठा रहा हो, उसे रोकना या मना करना। हाथ रोपना – माँगने के लिए हाथ बढ़ाना या फैलाना। हाथ लगना—(१) छू जाना। (२) शुरू होना। कोई वस्तु हाथ लगना— (१) कुछ मिलना या प्राप्त होना। (२) गणित करते समय वह संख्या जो पूर्व संख्या ले लेने पर बचती है, बाकी बचना। (किसी काम में) हाथ लगना—शुरु या आरंभ होना। (काम में किसी का) हाथ लगना— किसी के द्वारा किया जाना। (किसी वस्तु में) हाथ लगना—छू जाना। (किसी काम में) हाथ लगाना— (१) शुरु या आरंभ करना। (२) काम करने में योग या सहायता देना। (किसी वस्तु में) हाथ लगाना— छूना, स्पर्श करना। लगे हाथ (हाथों)—कोई काम करते समय या जैसे ही उसे पूरा कर लिया जाय वैसे ही, समाप्तप्राय कार्य के साथ-साथ। हाथ लगे टूटना —इतना कोमल या मुलायम होगा कि स्पर्श मात्र से टूट जाय। हाथ लगे मैला होना—इतना स्वच्छ होना कि केवल स्पर्श से मैला हो जाना। हाथ सधना— धीरे-धीरे अभ्यास हो जाना। हाथ साधना—(१) कोई काम करके यह देखना कि आगे भी वह या वैसा

ही कार्य हो सकता है या नहीं। (२) किसी कार्य में निपुण होने के लिए बार-बार अभ्यास करना। हाथ साफ करना—किसी कार्य में कुशल होने के लिए बार-बार अभ्यास करना। (किसी पर) हाथ साफ करना—किसी को मारना-पीटना। (किसी वस्तु पर) हाथ साफ करना—(१) बेइमानी से लेना। (२) हाथ की सफाई या फुर्ती दिखाकर गायब कर देना या उड़ा लेना। (भोजन पर) हाथ साफ करना—खूब डटकर खाना। (किसी के) सिर पर हाथ रखना—(१) किसी की रक्षा का भार लेना। किसी को आश्रय या शरण में लेना। (२) किसी को आशीर्वाद देना। (३) किसी की कसम खाना। (अपने) सिर पर हाथ रखना—अपनी कसम खाना। हाथ से—मारफत, द्वारा। हाथ से जाना या निकल जाना—(१) अपने पास न रहना। (२) वश में या अधीन न रह जाना। हाथ से हाथ मिलाना—अपने हाथ से किसी के हाथ में कुछ देना या रखना। हाथ हिलाते आना—(१) बिना कुछ लिये लौटना। (२) बिना कार्य सिद्ध किये हुए लौटना। हाथ (या हाथों) में चाँद आना—मनचाही वस्तु मिलना। (स्त्री के) हाथ (या हाथों में) चाँद आना—पुत्र उत्पन्न होना। हाथ में रखना—बड़े लाड़-प्यार या आदर-सम्मान से रखना। हाथों-हाथ—(१) एक के हाथ से दूसरे के हाथ में, हर समय किसी न किसी के हाथ में। (२) एक के हाथ से दूसरे के, दूसरे से तीसरे के होते-होते। हाथों हाथ उड़ जाना—(१) एक के हाथ से दूसरे के और दूसरे से तीसरे के पहुँचते-पहुँचते गायब हो जाना। (२) बहुत जल्दी बिक जाना। हाथों-हाथ बिक जाना—बहुत जल्दी बिक जाना। हाथों-हाथ रहना—बहुत प्यार-दुलार से रखा जाना। हाथों-हाथ लाना—बहुत आदर-सत्कार से लाना। हाथों हाथ लेना—बहुत आदर-सम्मान से स्वागत करना।

(२) चौबीस अंगुल का एक मान।

मुहा. हाथ भर का कलेजा होना—(१) बहुत खुशी या प्रसन्नता होना। (२) बहुत उत्साह होना। (३) बहुत साहस की आवश्यकता होना।

(३) हाथ के खेलों में हर खिलाड़ी के खेलने की बारी या दाँव। (४) किसी कार्यालय आदि में काम करने वाले आदमी।

हाथफूल—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ + फूल] हथेली की पीठ पर पहनने का एक गहना।

हाथहिं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हाथ] हाथ में।

मुहा. हाथहिं आए—पकड़ में आये हैं। उ.—निसि बासर मोहिं बहुत सताए अब हरि हाथहिं आए—१०-२९७।

हाथा—संज्ञा पुं. [हिं. हाथ] (१) किसी औजार या हथियार का दस्ता या मूठ। (२) पंजे की छाप जो मंगल या पूजन के अवसरों पर हलदी, ऐंपन आदि से दीवाल पर बनायी जाती है। उ.—घर घर देति जुवतिजन हाथा—ना. १५१३। (३) हाथ।

मुहा. तुम्हरे हाथा—तुम्हारे ही हाथ में है तुम पर ही निर्भर है। उ.—हमरी पति सब तुम्हारे हाथा—७९९।

हाथापाई—संज्ञा स्त्री [हिं. हाथ + पावँ] वह लड़ाई-भिड़ाई जिसमें नोचने, खसोटने, थप्पड़ और ठोकर देने के लिए हाथ-पैर का खूब काम लिया जाय।

हाथाहाथी—अव्य. [हिं. हाथ + हाथ] (१) एक हाथ से दूसरे हाथ में, हाथोंहाथ। (२) तुरंत।

हाथियाँ—संज्ञा पुं. [हिं. हाथी] हाथी। उ.—(तब) धाइ धायौ अहि जगायौ, मनौ छूटे हाथियाँ—५७७।

हाथी—संज्ञा पुं. [सं. हस्तिन्; हस्ती; प्रा. हत्थी] (१) एक प्रसिद्ध चौपाया, गज, करि। उ.—सुनत पुकार परम आतुर ह्वै, दौरि छुड़ायौ हाथी—१-११२।

मुहा. हाथी जैसा या सा—बहुत मोटा या स्थूलकाय। हाथी पर चढ़ना—बहुत धनी होना। हाथी बाँधना—(१) बहुत अमीर होना। (२) ऐसे व्यक्ति को साथ लेना या ऐसा काम करना जिसके लिए बहुत अधिक व्यय करना पड़े। हाथी के संग गन्ने या गाँड़े खाना—किसी का अपने से इतने बड़े की बराबरी करने का दुस्साहस करना जिसके साथ किसी प्रकार की तुलना ही न हो।

पद. भीम के हाथी—भीमसेन के द्वारा आकाश में फेंके गये वे सात हाथी जिनके संबंध में प्रसिद्ध है कि

वे आज तक वहीं चक्कर लगा रहे हैं। उ.—अब मन भयौ भीम के हाथी, सुनियत अगम अपार—ना. ४८७?।

कहा. हाथी का खाया कैथ—ऐसी वस्तु जो ऊपर से तो बिलकुल ठीक या सारपूर्ण जान पड़े, परन्तु वस्तुतः सार या तत्वहीन हो।

(२) शतरंज का एक मोहरा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथ] हाथ का सहारा।

हाथीखाना—संज्ञा पुं. [हि.हाथी+फ़ा. खाना] वह स्थान जहाँ हाथी पाले या बाँधे जाते हों।

हाथीदाँत—संज्ञा पुं. [हिं. हाथी+दाँत] हाथी के मुँह के दोनों छोरों पर निकले हुए वे सफेद अवयव जिनसे कई चीजें बनायी जाती हैं।

हाथीनाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. हाथी+नाल=तोप] वह तोप जो हाथी की पीठ पर रखकर ले जायी या चलायी जाती थी।

हाथीपाँव—संज्ञा पुं. [हिं. हाथी+पाँव] एक रोग।

हाथीवान—संज्ञा पुं. [हिं. हाथी+वान] महावत।

हाथै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हाथ] हाथ में। उ.—ज्यौं जानौ त्यौं करौ, दीन की बात सकल तब हाथै—१-११२।

हादसा—संज्ञा पुं. [अ.] दुर्घटना, आपत्ति।

हान, हानि—संज्ञा स्त्री. [सं. हानि] (१) न रह जाने का भाव, क्षय, नाश। उ.—मैं कीन्हीं बहु जिय की हानि—४-१२। (२) टूटने-फूटने से होनेवाला क्षय। (३) वह अनुचित बात या आघात जिससे मान-मर्यादा आदि में कमी हो। (४) घाटा, टोटा, 'लाभ' का विप.। उ.—(क) लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं—१-४६। (ख) और बनिज मैं नाहीं लाहा, होति मूल मैं हानि—१-३१०। (५) नुकसान, आर्थिक क्षति। उ.—(क) अब लौं मैं करी कानि, सही दूध-दही हानि—१०-२७६। (ख) केतिक गोरस हानि, जा कौं करति है अपमान—३५०। (६) अपूर्ण रहना, निष्फल होना। उ.—तातैं भई जज्ञ की हान—४-५। (७) न मिलना, न पाना, वंचित रहना। उ.—अतिहिं अधीर नीर भरि आवत, सहत न दरसन हानि—ना. २९६७। (८) स्वास्थ्य को पहुँचनेवाली खराबी। (९) बुराई, अपकार।

मुहा. हानि उठाना—नुकसान सहना। हानि पहुँचना—नुकसान होना। हानि पहुँचाना—नुकसान करना।

हानिकर, हानिकारक, हानिकारी—वि. [सं. हानिकर] (१) जिससे नुकसान या हानि हो। (२) अनिष्ट करने वाला। (३) स्वास्थ्य बिगाड़नेवाला।

हानी—वि. [सं. हीन] हीन, रहित।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हानि] हानि।

हाफिज—वि. [अ. हाफ़िज] रक्षक।

संज्ञा पुं. वह (मुसलमान) जिसे कुरान कंठ हो।

हामी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हा] 'हाँ' या स्वीकार करने का भाव, स्वीकृति।

मुहा. हामी भरना—मंजूर या स्वीकार करना।

वि. [अ.] हिमायत करनेवाला।

हाय—अव्य. [सं. हा] (१) शोक या दुखसूचक शब्द। (२) पीड़ा या कष्टसूचक शब्द।

मुहा. हाय करना या मारना—(१)शोक से हाय-हाय करना। (२) दुख से कराहना।

संज्ञा स्त्री. कष्ट, पीड़ा, दुख।

मुहा. (किसी की) हाय पड़ना—किसी सताये गये की हाय या दुरसीस का बुरा फल भुगतना।

हायन—संज्ञा पुं. [सं.] साल, वर्ष।

हायल—वि. [सं. हात, प्रा. हाय, या सं. हत] (१) घायल, क्षत-विक्षत। (२) ढीला, शिथिल। (३) थका हुआ। (४) बहुत दुखी।

वि. [अ.] बीच में आड़ करनेवाला।

हाय-हाय—अव्य. [सं. हा] हाय।

संज्ञा स्त्री. (१) शोक, दुख। (२) घबराहट।

हाया, हायौ, हायौ—अव्य. [हिं. हाही] (किसी चीज के) लिए आतुर या व्याकुल। उ.—मेल्यौ जाल काल जब खैंच्यो, भयौ मीन जल-हायौ—१-६७।

हार—संज्ञा स्त्री. [सं. हारि] (१) पराजय, असफलता।

मुहा. हार खाना—हारना, पराजित होना। हार देना—पराजित करना। हार मानना—अपनी पराजय

स्वीकार करना। हार मानि कै—अपनी पराजय स्वीकार करके। उ.—कै प्रभु हार मानिकै बैठो, कै अब हीं निस्तारौ—१-१३९। मानै हार – पराजय माने या स्वीकार करे। उ.—तन-मन-धन-जोबन खसै (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५।

(२) थकावट, शिथिलता। (३) हानि, क्षति।

क्रि. अ. [हिं. हारना] हार कर, हारता है। उ.-प्रबल माया ठग्यौ सब जग जनम जूआ हार-१-२९४।

मुहा. हार कर—विवश या असमर्थ होकर।

संज्ञा पुं. [हिं. हाड़] हड्डी, अस्थि, हाड़। उ.—छार सुगंध सेज पुहुपावलि हार छुवैं हिय हार जरैगो—ना. ३९८६।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) (राज्य द्वारा) हरण। (२) बिरह, वियोग। (३) गले में पहनने की मोतियों, फूलों आदि की माला। उ.—(क) मनि-गन-मुक्ता-हार—९-१२४। (ख) मानिक-मोती-हार रंग कौ—ना. २०९३। (ग) कंठ सुमाल हार मुकता के—ना. ४४३३। (४) (अंकगणित में) भाजक।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) जंगल, वन। (२) मैदान। (३) खेत।

वि. (१) हरण करनेवाला। (२) ले जाने या वहन करनेवाला। (३) नाश करनेवाला, नाशक।

संज्ञा पुं. [हिं. हाल] (१) दशा। (२) परिस्थिति। (३) वृत्तांत। (४) विवरण।

प्रत्य. [हिं. हारा] एक प्रत्यय जो कर्तत्व, स्वामित्व आदि का सूचक होता है।

हारक—वि. [सं.] (१) हरण करनेवाला। (२) मन हरनेवाला। (३) जानेवाला।

संज्ञा पुं. (१) चोर। (२) लुटेरा। (३) माला।

हारद—वि. [सं. हार्दिक] (१) हृदय-संबंधी। (२) हृदय से निकला हुआ, सच्चा।

संज्ञा पुं. [सं.हृदय] मन की बात। उ.— मैं हरिभक्त नाम मम नारद। मोसौं कहि तू अपनौ हारद-४-९।

हारना, हारनो—क्रि. अ. [हिं. हार+ना] (१) विफल या पराजित होना। (२) थकना, शिथिल होना। (३) प्रयत्न में निराश या विफल होना।

क्रि. स. (१) (विफल या पराजित होकर धन या बाजी की) चीज जाने देना। (२) खोना, गँवाना। (३) छोड़ देना। (४) दे देना।

हारयष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं] हार की लड़ी।

हारल - संज्ञा पुं. [देश.] हारिल पक्षी।

हारवार, हारवारा—संज्ञा स्त्री. [हिं. हड़बड़ी] (१) जल्दी, शीघ्रता। (२) उतावली।

हारा—प्रत्य. [सं. धार= रखनेवाला ?] एक प्रत्यय जो कर्तृत्व, स्वामित्व, धारण या संयोग आदि सूचित करता है।

संज्ञा पुं. [हिं. हार] हार, माला।

हारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हार, पराजय, विफलता। उ.—(क) पूरे चीर अंत नहिं पायौ, दुरमति हारि लही—१-२३८। (ख) जीतैं जीति भक्त अपने कैं, हारैं हारि बिचारौं—१-२७१। (ग) चरन-कमल मन सनमुख राखौ, कहूँ न आवै हारि—७-३। (घ) लरे भई असुरनि की हारि—७-७। (२) कारवाँ, पथिक-समूह।

वि. (१) हरण करनेवाला। (२) मन हरनेवाला।

क्रि. अ. [हिं. हारना] (१) पराजित या विफल होकर। उ.—(क) संडामर्क रहे पचि हारि—७-२। (ख) तदपि सूर तरि सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचि हारि—६२८।

मुहा. हारि मानि (कै)—पराजय या विफलता स्वीकार करके। उ.—(क) कै प्रभु हारि मानि कै बैठौ, कै करौ बिरद सही—१-१३७। (ख) सात दिवस जल बर्षि सिराने, हारि मानि मुख फेरौ—९५९। (ग) हारि मानि हहरयौ हरि चरननि, हरषि हिये अब हेतु करौ—९८९। (घ) हारि मानि कै रही मौन ह्वै—पृ. ३३२ (१६)। मानी हारि—पराजय स्वीकार कर ली। उ.—गिरी सुमार खेत बृंदाबन रन मानी नहिं हार—ना. ४२८०। हारि कै— लाचार या विवश होकर। उ.—हारि कै तब टेरि दीन्हीं, पहुँचे गिरिधारी—१-१७६।

(२)थके, शिथिल या क्लांत हुए। उ.–कहति रोहिनी, सोवन देहु न, खेलत-दौरत हारि गए री—१०-२४७।

क्रि. स. पराजित होकर बाजी या दाँव की चीज जाने देकर। उ.—(क) हारि सकल भंडार-भूमि आपुन बनवास लह्यौ—१-२४७। (ख) ज्यौं कुजुवारि रस बींधि, हारि गथ सोवतु पटकि चिती—१० उ. २०३।

हारित—वि. [सं.] (१) हरण किया या कराया हुआ। (२) लाया हुआ। (३) छीना हुआ। (४) खोया हुआ। (५) वंचित। (६) हारा हुआ। (७) मोहित, मुग्ध।

संज्ञा पुं. (१) तोता, शुक। (२) एक वर्णवृत्त।

हारिल—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी जो हर समय अपने चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिये रहता है।

पद. हारिल की लकरी—ऐसी वस्तु जिसे किसी भी स्थिति में छोड़ा न जाय। उ.—हमरे हरि हारिल की लकरी—ना. ४६०६।

वि. [हिं. हारना] (१) हारा हुआ। (२) थका हुआ।

हारी—वि. [सं. हारिन्] (१) हरण करनेवाला। (२) ले कर चलनेवाला। (३) चुराने या लूटनेवाला। (४) दूर करने या हटानेवाला। (५) नाश करनेवाला।(६) वसूल करने या उगाहनेवाला। (७) जीतनेवाला। (८) मन हरनेवाला। (९) हार पहननेवाला।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हारना] हार, पराजय।

क्रि. अ. [हिं. हारना] (१) पराजित हुई। उ.—परबस परी सुनौ करुनामय मम मति-तिय अब हारी—१-१६५। (२) थक गयी, थकी। उ.—मैं हारी, त्यौंही तुम हारी, चरन चापि स्रम मेटौंगी—ना. १७६५।

मुहा. कहि हारी—कहते कहते थक गयी। उ.—मैं बरजति सुत जाहु कहूँ जनि, कहि हारी दिन-जाम—३७६। जतन करि हारी—बहुत प्रकार के उपाय करते-करते थक गयी। उ.—अधिक पिराति सिराति न कबहूँ बहुत जतन करि हारी—ना. ४१९८। सिखवति हारी—सिखाते-सिखाते थक गयी। उ.—सूर स्याम कौं सिखवति हारी, मारेहुँ लाज न आवति —ना. २०४५।

क्रि.स. (१) (दाँव, बाजी आदि) में जीत न सका। उ.—सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी—१-६०।

मुहा. रसना हारी—बात खाली जाय, माँग पूरी न हो। उ.—जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै, जौ जाँचै तौ रसना हारी—१-३४।

(२) बाजी या दाँव हारने पर उससे संबंधित-वस्तु जीतनेवाले को दी। उ.—(क) हारी बहुरि द्रौपदी नार—१-२४६। (ख) रही न पैंज प्रबल पारथ की जब तैं धरम-सुत धरनी हारी—१-२४८। (३) छोड़ दी, रख न सका। उ.—ग्राह जब गजराज घेरयौ, बल गयौ हारी—१-१७६।

मुहा. चलि सत हारी—अपना सत्य या वचन छोड़ या तोड़ दे। उ.—आध पैंड़ बसुधा दै राजा, नातरु चलि सत हारी—८-१४। पत जाहु हारी—अपनी मान-मर्यादा छोड़ दो, अपनी अप्रतिष्ठा कराओ। उ.—बचन जो करयौ, प्रतिपाल ताकौ करौ, कै सभा माँहि पत जाहु हारी—ना. ४८३३।

हारीत—संज्ञा पुं. [सं.] चोर, डाकू, लुटेरा।

हारु—संज्ञा पुं. [हिं. हार] माला, हार।

संज्ञा पुं. [हिं. हाड़] हाड़, हड्डी। उ.—छार सुगंध सेज पुहुपावलि, हार छुवैं हिय हार जरैगो—२८७०।

हारुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हरण करनेवाला। (२) ले जानेवाला।

हारे—क्रि. अ. [हिं. हारना] प्रयत्न करते-करते निराश या असमर्थ हो गये। उ.—(क) मुसल मुगदर हनत त्रिबिध करमनि गनत मोहिं दंडत धरम-दूत हारे—१-१२०। (ख) तुव सुत कौ पढ़ाइ हम हारे—७-२। (ग) मधुबन बसत आस दरसन की जोइ नैन मग हारे —ना. ४८७०।

मुहा. हारे-अटके—किसी वस्तु की अत्यंत आवश्यकता होने पर उसकी प्राप्ति के समस्त प्रयत्नों में निराश होकर, बहुत ही आवश्यकता के अवसर पर। हारे दर्जे—(१)सब प्रकार से निराश होकर, किसी तरह का कोई वश न चलने पर। (२) लाचार या विवश होकर।

प्रत्य० कर्तृत्व, स्वामित्व आदि सूचक एक प्रत्यय। उ.—सूर सुगंध चुरावनहारे कैसैं दुरत दुराए—१२३३।

हारैं—क्रि. अ. [हिं. हारना] थक जायँ, शिथिल हो जायँ। उ.–सुर-तरुवर की साख लेखिनी, लिखत सारदा हारैं–१-१८३। (२) हारने की स्थिति या अवस्था में)। उ.—जीतैं जीति भक्त अपन के, हारैं हार बिचारौं-१-२७२।

हारै—क्रि. स.[हिं. हारना] (दाँव, बाजी आदि) हार जाय।

मुहा. जनम या जन्म हारै—जीवन व्यर्थ या नष्ट करे। उ.- (क) माया-मद में भयौ मत्त, कत जनम बादिहीं हारै—१-६३। (ख) कियैं नर की स्तुति कौन कारज सरै, करै सो आपनौ जन्म हारै—४-११।

संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हार] माला या हार को। उ.—हारै तोरचौ, चीरहिं फारचौ—१०३३।

हारो, हारौ—क्रि. अ. [हिं. हारना] थक जाओ, शिथिल हो जाओ। उ.—मैं हारी त्यौंही तुम हारौ, चरन चापि स्रम मेटौंगी—ना. १७६५।

क्रि. स. (दाँव या बाजी) हारी।

मुहा. अपुनपौ हारौ—अपना ज्ञान-विवेक, प्रतिष्ठा का ध्यान आदि सब कुछ भुला या मिटा दिया। उ.—धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ—१-८४।

प्रत्य. [हिं. हारा] कर्तृत्व, स्वामित्व आदि का सूचक एक प्रत्यय। उ. सूर सुगंध चुरावनहारौ, कैसैं दुरत दुरायौ—ना. २३१३।

हारौल—संज्ञा पुं. [हिं. हरावल] सेना में सबसे आगे चलने वाला सैनिक दल।

हार्द—संज्ञा पुं. [सं.] स्नेह।

वि. हृदय का, हृदय-संबंधी।

हार्दिक—वि. [सं.] (१) हृदय का, हृदय संबंधी। (२) हृदय से निकला हुआ, सच्चा।

हारचो, हारचौ—क्रि. अ. [हिं. हारना] पराजित हुआ, हार गया। उ.—(क) कियौ युद्ध, पै असुर न हारचौ—६-५। (ख) जीतै सबै असुर हम आगै, हरि कबहूँ नहिं हारचौ—४३३।

मुहा. हारचौ हिय अपनैं—अपने हृदय में हार गया, हृदय से पराजय स्वीकार कर ली। उ.—भ्रमि भ्रमि अब हारचौ हिय अपनैं, देखि अनल जग छायौ—१-१५४।

क्रि. स. (१) दाँव, बाजी या उसमें लगायी गयी वस्तु) हार गया। उ.—(क) तिन हारचौ सब भूमि भँडार—२-४६। (ख) चितवत नंद ठगे से ठाढ़े, मानौ हारचौ हेम जुआर—२६७१।

मुहा. अवसर या औसर हारचौ—उचित अवसर पर चूक गया, उपयुक्त अवसर का लाभ नहीं उठाया। उ.—औसर हारचौ रे, तैं हारचौ—१-३३६।

(२) खो दिया, गवाँ दिया, व्यर्थ कर दिया।

मुहा. जनम या जन्म हारचौ—जीवन व्यर्थ नष्ट कर दिया। उ.—करी न प्रीति कमल लोचन सौं, जन्म जुआ ज्यौं हारचौ—१-१०१।

हाल—संज्ञा पुं. [अ.] (१) दशा, स्थिति, अवस्था। (२) दुर्दशा, दुर्गति। उ.—कौन हाल हमरैं ब्रज बीतत, जानत नहीं बिरह की रीति—ना. ४४१०।

मुहा. हाल करना—(१) दुर्दशा बनाना, बहुत परेशान करना, दुर्गति करना। (२) दंड देना। हाल करिहौं या करौं—अच्छी तरह दंड दूँगी। उ.—(क) कैसे हाल करौं धरि हरि के, तुमकौं प्रगट दिखाऊँ—१०-३४१(ख) सूर हाल कैसे करिहौं धरि, आवैं तो हरि अबहीं—ना. २०४१। हाल किए (किये)—दुर्दशा की, दुर्गति बनायी। उ.—(क) जसुमति माइ कहा सुत सिखयौ, हमकौं जैसे हाल किए—७७१। (ख) जैसे हाल किए हरि हमकौं, भए कहूँ जग आहैं न—७७२। (ग)........करैं हाइ हाइ, देखौ जैसे हाल करचौ है—ना. २०५३। (घ) ऐसौ हाल हमारौ कीन्हौ, जाति हुतीं दहि लै हौं—ना. २०८४। हाल करत—दुर्दशा या दुर्गति करता है। उ.—ऐसे हाल करत री कोऊ, रहीं अकेली नारि—ना. २४५९।

(३) करनी, करतूत। उ.- बन भीतर जुवतिनि कों रोकत हम खोटी तुम्हरे ये हाल—१११२। (४) माजरा, परिस्थिति। (५) समाचार, वृत्तांत। (६) ब्योरा, विवरण। (७) आख्यान, चरित्र। (८) भक्तों या साधकों की वह स्थिति जबवे अपने को भूलकर ईश्वर-प्रेम में लीन या तन्मय हो जाते हैं।

मुहा. (किसी पर) हाल आना—प्रेम में तन्मयता या लीनता होना।

वि. मौजूद, वर्तमान, उपस्थित।

मुहा. हाल में—कुछ ही दिन पहले। हाल का—(१) बहुत थोड़े दिन का। २) नया, ताजा।

अव्य. (१) अभी, इसी समय। (२) चटपट, तुरंत।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हालना] (१) हिलने की क्रिया या भाव, गति। (२) कंप, कंपन। (३) झटका, झोंका। (४) लोहे का बंद जो पहिये पर चढ़ाया जाता है।

संज्ञा पुं. [देश.] खेल, दाँव। उ.—बलै अछत छल-बल करि जीते, सूरदास प्रभु हाल – ना. ४७८४।

हालगोला—संज्ञा पुं. [हिं. हाल + गोला] गेंद।

हालडोल—संज्ञा पुं. [हिं. हालना + डोलना] (१) हिलने की क्रिया या भाव, गति। (२) कंप, कंपन। (३) हलचल।

हालत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) अवस्था, दशा। (२) आर्थिक स्थिति। (३) परिस्थिति।

हालना, हालनो–क्रि. अ. [हि.हिलना] (१)हिलना-डोलना। (२) काँपना। (३) झूमना।

हालरी – संज्ञा पुं. [हिं. हालना] (१) बच्चों को हाथ में लेकर हिलाने-डुलाने की क्रिया। (२) झोंका। (३) लहर, हिलोर।

हालरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हालना] बच्चों को सुलाने का गीत, लोरी।

हालहूल—संज्ञा स्त्री. [हिं. हल्ला] (१) शोरगुल। (२) हलचल।

हालाँकि—अव्य. [फ़ा.] गो कि, यद्यपि।

हाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] शराब, मदिरा।

हालाहल—संज्ञा पुं. [सं. हलाहल] भयंकर विष।

हाली - अव्य. [अ. हाल] जल्दी, शीघ्र।

यौ. हाली हाली—जल्दी-जल्दी, शीघ्रता से।

हाले—अव्य. [अ. हाल] (१) अभी। (२) तुरंत।

हाल्यो, हाल्यौ—क्रि. अ. [हि. हालना] हिला-डुला। उ.—नेंक नहीं हाल्यो नख पर तें मेरो सुत अहंकारी—१००१।

हाव—संज्ञा पुं. [सं.] (साहित्य में) संयोग के समय नायक को मोहित करने, उससे मिलन की इच्छा प्रकट करने अथवा तत्संबंधी सहमति या स्वीकृति सूचित करने के लिए की जानेवाली स्वाभाविक चेष्टाएँ जो कायिक तथा मानसिक अनुभावों के अंतर्गत ग्यारह प्रकार की कही गयी हैं–लीला, विलास, विच्छित्ति (शोभावर्द्धक शृंगार), विभ्रम (उतावली में उलटे-पलटे या अस्त-व्यस्त भूषण, वस्त्र धारण करना), किलकिंचित (एक साथ कई भाव प्रकट करना), मोट्टायित (मुग्ध होकर अनुराग व्यक्त करना), विब्वोक (मानपूर्वक प्रिय या उसकी प्रदत्त वस्तु के प्रति उपेक्षा दिखाना), विहृत (लज्जा के कारण प्रिय पर अपना भाव प्रकट न करना), कुट्टमित (संयोग के समय बनावटी दुख चेष्टा), ललित (सुकुमार भाव से और आकर्षक रूप से अंग-संचालन) और हेला (आँखें या भौहें नचाकर मिलन की अभिलाषा स्पष्ट करना)। इन ग्यारह के अतिरिक्त कहीं-कहीं 'बोधक' (प्रेमी-प्रिया का संकेतों से अपनी कामना व्यक्त करना) बारहवाँ हाव माना गया है। उ.—हाव अरु भाव करि चलत, चितवत जबै, कौन ऐसौ जो मोहित न होई - ८-१०।

हाव-भाव—संज्ञा पुं. [सं.] पुरुष का चित्त आकर्षित करने के लिए की गयी स्त्री की मनोहर चेष्टा, नाज-नखरा।

हाशिया—संज्ञा पुं. [अ. हाशियः] (१) कोर, किनारा। (२) गोट। (३) कागज पर किनारे छोड़ी हुई जगह।

हास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हँसने की क्रिया या भाव, हँसी। उ.—ईषद हास दंत-दुति बिगसति—१०-२१०। (२) मजाक, परिहास। (३) उपहास। उ.—लाल गोपाल बाल-छबि बरनत कबि कुल करिहै हास री—१०-१३९। (४) केवल कौतुक के लिए कही गयी बात या बनाया गया वेश जो साहित्य में सात्विक भावों के अंतर्गत है।

हासक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हँसने-हँसानेवाला। (२) हँसोड़।

हासकर—वि. [सं.] जिसमें हँसी आवे।

हासिल—वि. [अ.] मिला हुआ, प्राप्त।

मुहा. हासिल करना—पाना। हासिल होना—मिलना।

संज्ञा पुं. (१) गणित में किसी संख्या का वह अंश जो शेष भाग के लिखे जाने पर बच रहे। (२) पैदा-

बार, उपज। (३) नफा, लाभ। (४) (जमीन का) लगान। (५) (चौथ, खिराज जैसा) धन जो किसी से अधिकारपूर्वक लिया जाय।

हासी—वि. [सं. हासिन्] हँसनेवाला।

हास्य—वि. [सं.] (१) जिस पर लोग हँसें, हँसने के योग्य। (२) उपहास के योग्य।

संज्ञा पुं. (१) हँसने की क्रिया या भाव, हँसी। (२) साहित्य के नौ रसों में एक जो असंगत-विकृत घटनाओं, बातों आदि से उत्पन्न होता है; इसका स्थायी भाव 'हास' है।

(३) ठठोली, मजाक, दिल्लगी। (४) उपहास।

हास्यकर—वि. [सं.] (१) जिसमें हँसी आवे। (२) हँसानेवाला।

हास्यास्पद—वि. [सं.] (१) जिसे देखकर लोग हँसें। (२) उपहास के योग्य।

हा हंत—अव्य. [सं.] अत्यंत शोकसूचक शब्द—हे ईश्वर! यह क्या हो गया!!

हा हा—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) जोर से हँसने का शब्द।

यौ. हाहा हीही—(१) (निम्न कोटि का) हँसी-ठट्ठा। (२) जोर-जोर से हँसना।

मुहा.—हाहा हीही करना—(१) जोर से हँसना। (२) (निम्न कोटि की) हँसी करना। हाहा हीही मचना या होना—बहुत जोर की हँसी होना।

(२) दीनता की या बहुत बिनती की पुकार, दुहाई। उ.—हाहाकंत मानि बिनती यह—ना. १४२१।

मुहा. हाहा करना—बहुत गिड़गिड़ाना या बिनती करना। हाहाकरि—बहुत गिड़गिड़ाकर या बिनती करके। उ.—(क) हाहाकरि द्रौपदी पुकारी, बिलंब न करौ घरी—१-२५४। (ख) मैं आज तुम्हैं गहि बाँधौ। हा हा करि अनुराधौं—१०-१८३। (ग) सूर स्याम जसुमति मैया सौं, हाहा करि कहै केति—४२४। (घ) दोहनि नहिं देत कर तैं हरि, हाहा करि परैं पाइ—७३७। (ङ) हाहा करि, दसननि तृन धरि-धरि लोचन नीर बहाऊँ री—ना. २७२१। हाहा करति—बहुत गिड़गिड़ाकर बिनती करती है। उ.—हा हा करति पाइ तेरे लागति अब जनि दूरि जाइ मेरे बारे—६०८। हाहा करिहौ—बहुत गिड़गिड़ाकर बिनती करोगे। उ.—जो पाऊँ तौ तुमहिं दिखाऊँ हाहा करिहौ अबहीं—ना. २०४१। हाहा खाना—बहुत गिड़गिड़ाना या बिनती करना। हाहा खात—बहुत गिड़गिड़ाकर बिनती करता है। उ.—साँटी लै जसुमति अति तरजति हरि बसि हाहा खात।

अव्य. [सं. हा] शोक, दुख आदि का सूचक शब्द। उ.—सूर उसाँस छाँड़ि हा हा ब्रज जल अँखियाँ भरि लीनी—ना. ४७७२।

हाहाकार—संज्ञा पुं. [सं.] जन-समूह की, भय, दुख आदि सूचक पुकार या चिल्लाहट, कुहराम। उ.—हाहाकार भयौ सुरलोकनि—सारा. १०७।

हाहाठीठी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] हँसी-ठट्ठा।

हाहाहूत—संज्ञा पुं. [अनु.] हाहाकार।

वि. बहुत बड़ा।

हाहाहूती—वि. [हिं हाहाहूत] बहुत बड़ा या बड़ी।

हाहू—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) कोलाहल। (२) हलचल।

हिंकरना, हिंकरनो—क्रि.अ. [सं. हिंकार] (१) पीड़ा से कराहना। (२) (घोड़ों का) हींसना, हिनहिनाना। (३) (गाय, बैल का) रँभाना।

हिंकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रँभाने का शब्द। (२) 'हिं' का उच्चारण।

हिंग—संज्ञा स्त्री. [हिं. हींग] हींग।

हिंगलाज, हिंगलाजा—संज्ञा स्त्री. [सं. हिंगुलाजी] दुर्गा या देवी की एक मूर्ति।

हिंगु—संज्ञा पुं. [सं.] हींग।

हिंगुल—संज्ञा पुं. [सं.] ईंगुर।

हिंगुलाजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा या देवी की एक मूर्ति जो सिंध और बिलोचिस्तान के बीच की पहाड़ियों में है।

हिंगोट—संज्ञा पुं. [सं. हिंगुपत्र, प्रा. हिंगुवट] एक कटीला पेड़ जिसके फलों से तेल निकलता है, इंगुदी।

हिंछना, हिंछनो—क्रि. अ. [सं. इच्छण] इच्छा करना।

हिंछा—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा] चाह, कामना।

हिंडन—संज्ञा पुं. [सं.] घूमना-फिरना।

हिंडोरना, हिंडोरनो, हिंडोरनौ, हिंडोरा—संज्ञा पुं.

[हिं. हिंडोला] हिंडोला। उ.—(क) सुरँग हिंडोरना माई झूलत स्यामा-स्याम—ना. ३४३७। (ख) जमुना पुलिनहिं रच्यौ रंग सुरंग हिंडोरनौ—ना. ३४५०।

हिंडोरनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं.हिंडोरे] हिंडोले में। उ.—हरषि हिंडोरनि गावहिं—ना. ४००५।

हिंडोरें, हिंडोरैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हिंडोला] (१) हिंडोले में। उ.—झूलत सुरँग हिंडोरें—सारा. ३१०

हिंडोल—संज्ञा पुं. [सं. हिन्दोल] (१) हिंडोला। उ —डरत लाल हिंडोल झूलत, हरैं देत झुलाइ—३९८। (२) एक राग।

हिंडोलना, हिंडोलनो, हिंडोलनौ, हिंडोला—संज्ञा पुं. [सं. हिन्दोल, हिं. हिंडोला]। (१) काठ का ऊपर-नीचे जानेवाला चक्करदार झूला। (२) झूला। उ.—तैसेइ मोर पिक करत कुलाहल हरषि हिंडोलना गावहिंगे—२८८९। (३) पालना। (४) वह गीत जिसमें नायक-नायिका के हिंडोले पर झूलने का वर्णन हो।

हिंडोली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

हिंताल—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का खजूर।

हिंद—संज्ञा पुं. [फ़ा.] भारतवर्ष।

हिंदवी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] हिंद की भाषा, हिंदी।

हिंदी—वि. [फ़ा.] हिंद का, भारतीय।

संज्ञा पुं. हिंद-वासी, भारतवासी।

संज्ञा स्त्री. (१) हिंद की भाषा। (२) उत्तरी और मध्य भारत की सर्वप्रमुख भाषा जो अब भारतीय राष्ट्र की राष्ट्रभाषा है।

मुहा. हिंदी की चिंदी निकालना—(१) बहुत सूक्ष्म पर व्यर्थ के दोष निकालना। (२) कुतर्क करना।

हिंदुस्तान—संज्ञा पुं. [फ़ा. हिंदोस्तान] भारत।

हिंदुस्तानी—वि. [फ़ा.] भारतीय।

संज्ञा पुं भारतवासी।

संज्ञा स्त्री. (१) भारत की भाषा। (२) हिंदी भाषा का वह व्यावहारिक रूप जिसमें अरबी-फारसी और संस्कृत के क्लिष्ट शब्द न हों।

हिंदुस्थान—संज्ञा पुं. [फ़ा. हिंदू+सं. स्थान] भारतवर्ष।

हिंदू—संज्ञा पुं. [फ़ा.] भारतीय आर्यों के वर्तमान भारतीय वंशज जो भारत में प्रवर्तित और पल्लवित धर्म-संस्कार और समाज-व्यवस्था को मानते और वेद, स्मृति, पुराण आदि के प्रति श्रद्धा-भाव रखते हैं।

हिंदूपन—संज्ञा पुं. [फ़ा. हिंदू+पन] हिंदुत्व।

हिंदोल—संज्ञा पुं. [सं. हिन्दोल] (१) हिंडोला। (२) हिंडोल नामक राग।

हिंयाँ—अव्य. [हिं. यहाँ] यहाँ।

हिंव—संज्ञा पुं. [सं. हिम] (१) बरफ। (२) पाला।

हिंवर—संज्ञा पुं. [सं. हिमालि] (१) बरफ। (२) पाला।

मुहा. हिंवार पड़ना—(१) बरफ गिरना। (२) पाला पड़ना। (२) बहुत सर्दी होना।

हिंस—संज्ञा स्त्री. [अनु. हिं हिं] (घोड़ों के) हींसने या हिनहिनाने का शब्द।

हिंसक—वि. [सं.] (१) हत्यारा, घातक। (२) जीवों को मारनेवाला। (३) दूसरों का अहित या हानि करनेवाला।

संज्ञा पुं. (पशु) जो जीवों को मारकर उनका मांस खाता हो।

हिंसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) (जीवों का) वध या घात करना। (२) (जीवों को) पीड़ा या कष्ट देना। (३) किसी का अनिष्ट करना।

हिंसना, हिंसनो—क्रि. स. [सं. हिंसन] (१) हत्या करना। (२) बहुत पीड़ा या कष्ट पहुँचाना। (३) निंदा, बुराई या अनिष्ट करना।

हिंसा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्राणियों को मारना या अत्यंत कष्ट देना। उ.—हिंसा-मद ममता-रस भूल्यौ, आसा हीं लपटानौ—१-४७। (२) हानि पहुँचाना, अनिष्ट करना।

हिंसात्मक—वि. [सं.] जिसमें हिंसा हो।

हिंसालु—वि. [सं.] हिंसा करनेवाला।

हिंस्र, हिंस्रक—वि. [सं.] हिंसा करनेवाला।

हि—विभ. एक पुरानी विभक्ति जो पहले तो प्रायः सभी कारकों में प्रयुक्त होती थी, परंतु कालांतर में, 'को' के अर्थ में, केवल कर्म और संप्रदान में प्रयुक्त होने लगी थी।

अव्य. [हिं. ही] एक अव्यय जिसका प्रयोग निश्चय,

अल्पता या परिमिति, हीनता या उपेक्षा, किसी बात पर बल देने आदि के लिए होता है।

हिअ, हिआ—संज्ञा पुं. [प्रा. हिअ] (१) हृदय। (२) छाती।

हिआउ, हिआव—संज्ञा पुं. [प्रा. हिअ + हिं. आव] जिगरा, हिम्मत, साहस।

हिएँ, हिऐं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हिय] हृदय में। उ.—उनके मुऐं हिऐं सुख होई—१-२८९। (ख) पै संतोष न आयौ हिऐं—९-२।

हिकमत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) नयी बात खोजने या निर्माण करने की बुद्धि या कौशल। (२) कार्य-सिद्धि की युक्ति या उपाय। (३) चतुराई की चाल या ढंग। (४) किफायत। (५) हकीम का पेशा, हकीमी।

हिकमती—वि. [अ. हिकमत] (१) कार्य-साधन की युक्ति या उपाय निकालनेवाला। (२) चालाक, चतुर। (३) किफायती।

हिक्का—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हिचकी। (२) एक रोग जिसमें बहुत हिचकियाँ आती हैं।

हिचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिचकना] किसी काम को करने में आने वाली मानसिक रुकावट, आगा-पीछा।

हिचकना, हिचकनो—क्रि. अ. [अनु. हिच + ना] किसी काम में भय, संकोच आदि के कारण तत्परता से प्रवृत्त न होना, आगा-पीछा करना।

क्रि. अ. [हिं. हिचकी] हिचकियाँ लेना।

हिचकिचाना, हिचकिचानो—क्रि. अ. [हिं. हिचकना] आगा-पीछा करना।

हिचकिचाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिचकिचाना + आहट] हिचक, आगा-पीछा।

हिचकिची—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिचक] हिचक।

हिचकिनि—क्रि. वि. [हिं. हिचकी] सिसक-सिसक कर। उ. कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवै—३४६।

हिचकी—संज्ञा स्त्री. [अनु. हिच या सं. हिक्का] (१) पेट की वायु का, झोंक के साथ, कंठ में धक्का देते हुए निकलने की क्रिया या भाव।

मुहा. हिचकी (हिचकियाँ) लगना—मरने के निकट होना।

(२) सिसक-सिसक कर रोने का शब्द।

हिचर-मिचर—संज्ञा पुं. [हिं. हिचक + अनु.] (१) आगा-पीछा, सोच-विचार। (२) टाल-मटोल।

हिजड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] नपुंसक।

हिजरत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) एक स्थान छोड़कर दूसरे को जाना। (२) मुहम्मद साहब का मक्के से मदीने जाना।

हिजरी—संज्ञा पुं. [अ.] मुसलमानी सन् जो मुहम्मद साहब के मक्के से मदीने जाने या हिजरत की तारीख (१५ जुलाई, ६२२ ई.) से चला था।

हिज्जे—संज्ञा पुं. [अ. हिज्जः] अक्षरी, वर्तनी।

हिज्र—संज्ञा पुं. [अ.] जुदाई, बिछोह, वियोग।

हिडिंब—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था।

हिडिंबा—संज्ञा स्त्री. [सं.] हिडिंब राक्षस की बहन जिससे भीमसेन ने विवाह करके घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न किया था।

हित—वि. [सं.] (१) लाभदायक। (२) अनुकूल। (३) भलाई करने या चाहनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) कल्याण, मंगल। (२) भलाई, उपकार। उ.—अति उदार पर-हित डोलत हैं, बोलत बचन सुसीलें—ना. ४२१२। (३) फायदा, लाभ। (४) अनुराग, प्रेम। उ.—(क) हित करि स्याम सौं कह पायौ। (ख) तहँ मृगछौना सौं हित भयौ—५-४।

मुहा. हित लगाना—प्रेम या अनुराग करना। हित न लगावै—प्रेम या अनुराग नहीं किया। उ.—खान-पान सो सब पहुँचावै, पै नृप तासौं हित न लगावै—४-१२।

(५) श्रद्धा, भक्ति। उ.—श्रीभागवत सुनै जो हित करि, तरै सो भव-जल पार—१-२३१। (६) अनुकूलता। (७) मित्रता। (८) हितैषी। (९) नाता, रिश्ता, संबंध। (१०) नातेदार, संबंधी।

अव्य. (१) (किसी की) भलाई या प्रसन्नता के लिए। (२) लिए, हेतु, कारण, निमित्त। उ. (क) पारबती सिव-हित तप करयौ—४-७। (ख) ज्यौं कपि सीत हतन-हित गुंजा सिमिटि होत लौलीन—१-१०२। (ग) व्यास पुत्र-हित बहुतप कियौ—१-२२६।

हितकर—वि. [सं.] (१) भलाई, उपकार या कल्याण

करनेवाला। उ.—परम उदार स्याम-घन सुंदर, सुख-दायक संतन हितकर हरि—१-३१२। (२) लाभ पहुँचानेवाला। (३) स्वास्थ्य के लिए उपयोगी।

हितकर्ता, हितकर्त्ता—वि. [सं. हितकर्त्ता] भलाई या कल्याण करनेवाला।

हितकाम—संज्ञा पुं. [सं.] भलाई की कामना।
वि. भलाई चाहनेवाला।

हितकार, हितकारक—वि. [सं. हितकारक] (१) भलाई, उपकार या कल्याण करनेवाला उ.—सहज स्वभाव भक्त-हितकर—१०७०। (२) लाभदायक। (३) स्वास्थ्य के लिए उपयोगी।

हित-कारन—वि. [सं. हितकारिन्] भलाई या कल्याण करनेवाला। उ.—जसुमति-भाव भक्ति हितकारन—ना. १५६९।

हितकारि—वि. [हिं. हितकारी] स्वास्थ्य के लिए उपयोगी, स्वास्थ्यकर। उ.—दूध अकेली धौरी कौ यह, तन कौं अति हितकारि—४९६।

हितकारिणी, हितकारिनि, हितकारिनी—वि. स्त्री. [सं. हितकारिणी] (१) मंगल या कल्याण चाहनेवाली। उ.—संग-संग जसुमति-रोहिनी हितकारिनि मैया—१०-११६। (२) स्वास्थ्यकर।

हितकारी वि. [सं. हितकारिन्] (१) भलाई, उपकार या कल्याण करनेवाला। उ.—(क) जाकौ चरनोदक सिव सिर धरि तीन लोक हितकारी—१-१५। (ख) मुनि-मद मेटि दास-ब्रत राख्यौ अंबरीष हितकारी—१-१७। (ग) ऐसे कान्ह भक्त-हितकारी—१-२९। (घ) हते बंधु हितकारी—१-१७३। (ङ) संतनि के हितकारी—१-२८२। (च) जो कोऊ तेरौ हितकारी, सो कहै काढ़ि सबेरौ—१-३१९। (छ) सूर तुरत मधुबन पग धारे, धरनी के हितकारी—२५३३। (२) लाभ पहुँचानेवाला। (३) स्वास्थ्यकर।

हितचिंतक—वि. [सं.] शुभचिंतक, हितैषी।

हितचिंतन—संज्ञा पुं. [सं.] (किसी की) भलाई, उपकार या कल्याण की बात सोचना।

हितता—संज्ञा स्त्री. [सं. हित] (१) भलाई, उपकार। (२) मंगल, कल्याण। (३) अनुराग, प्रेम।

हितवचन—संज्ञा पुं. [सं.] कल्याण का उपदेश।

हितवना, हितवनो—क्रि. अ. [हिं. हिताना] हिताना।

हितवाई—संज्ञा स्त्री. [सं. हित] हिताई।

हितवादी—वि. [सं. हितवादिन्] मंगल-कल्याण या लाभ की बात कहनेवाला।

हिताई—संज्ञा स्त्री. [सं. हित+हिं. आई] (१) नातेरिश्तेदारी। (२) हितचिंतन। (३) मेल-जोल।

हिताना, हितानो—क्रि. अ. [सं हित+हिं. आना] (१) लाभदायक या अनुकूल होना। (२) कल्याणकारी होना। (३) प्रेम या स्नेहयुक्त होना। (४) प्रिय या रुचिकर होना।

हितानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. हिताना] स्नेह, प्रेम अथवा मंगल कामना के भाव से युक्त हो गयी। उ.—बाँध्यो देखि स्याम को परबस गोपी परम हितानी।

हितावह—वि. [सं.] कल्याणकारी।

हिताहित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भलाई-बुराई, उपकार-अपकार। (२) लाभ-हानि।

हिती—वि. [सं. हित] (१) हितकर। (२) हितैषी। (३) संबधी। (४) स्नेही।

हितु संज्ञा पुं. [सं. हित] हित।
वि. [हिं. हितू] हितू।

हितुआ, हितुवा—वि. [हिं. हितू] हितू।

हितू—वि. [सं. हित] (१) भलाई करने या चाहनेवाला, हितैषी। उ.—कमल नयन हरि हितू हमारे—१-२४० (ख) बाहर हेत हितू कहवावत, भीतर काज सयाने—ना. ४६२६। (२) संबंधी। (३) स्नेही।

हितूकर—वि. [सं. हितकर] (१) हितकारक। (२) हितैषी। (३) स्नेही।

हितेच्छा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (किसी की) भलाई, उपकार या कल्याण की कामना।

हितेच्छु—वि. [सं.] हितैषी।

हितैती—संज्ञा स्त्री. [हिं. हितता] हिताई।

हितैषिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] भलाई की कामना।

हितैषी—वि. [सं. हितैषिन्] भलाई या कल्याण चाहनेवाला, हितचिंतक।
संज्ञा पुं. दोस्त, मित्र, सुहृद।

हितैहौं—वि. [हिं. हिताना] प्रिय या रुचिकर लगूँगा । उ.—ऐसे करम नाहिं प्रभु मेरे जातें तुम्हें हितैहौं ।

हितोक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] कल्याणकारी कथन ।

हितोपदेश—संज्ञा पुं. [सं.] कल्याणकारी सीख ।

हितौना, हितौनो—क्रि. अ. [हिं. हिताना] (१) लाभदायक होना । (२) प्रेम करना । (३) भलाई करना ।

हिदायत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) सीख, उपदेश । (२) निर्देश । (३) पथ-प्रदर्शन ।

हिनकाना—क्रि. अ. [अनु. हिन हिन + करना] (घोड़े का) हींसना या हिनहिनाना ।

हिनती—संज्ञा स्त्री. [सं. हीनता] (१) छोटापन, तुच्छता । (२) अप्रतिष्ठा । उ.—गैवर मोहि चढ़ावत रासभ, प्रभुता मेटि करत हिनती – ना. २३०७ ।

हिनहिनाना, हिनहिनानो—क्रि. अ. [अनु. हिन हिन] घोड़े का बोलना, हींसना ।

हिनहिनाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिनहिनाना] घोड़े की बोली, हींसने की ध्वनि ।

हिना—संज्ञा स्त्री. [अ.] मेंहदी ।

हिनाई—वि. [अ.] मेंहदी के रंग का, लाल ।
संज्ञा पुं. उक्त रंग का घोड़ा ।

हिफाजत—संज्ञा स्त्री. [अ. हिफ़ाज़त] (१) रक्षा । (२) देख-रेख, रखवाली ।

हिब्बा—संज्ञा पुं. [अ. हिब्बः] (१) दान । (२) कौड़ी । (३) दो जौ की एक तौल ।
मुहा. हिब्बा भर—जरा सा, बहुत थोड़ा ।

हिमंचल—संज्ञा पुं. [सं. हिमालय] हिमालय पर्वत ।

हिमंत—संज्ञा पुं. [सं. हेमंत] अगहन-पूस की ऋतु ।

हिम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाला, तुषार । उ.—मानौ कमलहिं हिम तरसायौ—३९१ । (२) जाड़ा, ठंढ, शीत । (३) जाड़े की ऋतु । (४) चंद्रमा । (५) चंदन । (६) कपूर । (७) मोती ।
वि. ठंढा, शीतल ।

हिम-उपल—संज्ञा पुं. [सं.] ओला ।

हिमकण—संज्ञा पुं. [सं.] पाले या तुषार के छोटे-छोटे टुकड़े ।

हिमकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । उ.—(क) सूर-स्याम-लोचन-जल बरसत जनु मुकता हिमकर तैं—३५४ । (ख) छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी—ना. ४६७१ । (२) चंदन ।

हिमदीधिति—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।

हिमपात—संज्ञा पुं. [सं.] पाला पड़ना, बरफ गिरना ।

हिमभानु—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।

हिमवान, हिमवान् - वि. [सं. हिमवत्] (१) जिसमें बरफ या पाला हो । (२) जिसमें शीतलता हो ।
संज्ञा पुं. (१) हिमालय पर्वत । (२) चंद्रमा ।

हिमांक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कपूर । (२) शीत की वह स्थिति जिसमें पानी जमने लगता है ।

हिमांशु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

हिमाकत—संज्ञा स्त्री. [अ. हिमाक़त] बेवकूफी, मूर्खता ।

हिमाचल—संज्ञा पुं. [सं.] हिमालय पर्वत जो संसार का सबसे ऊँचा पर्वत है । पुराणों में यह मेना या मेनका का पति और पार्वती का पिता कहा गया है । उ.—कह्यौ हिमाचल, सिव प्रभु ईस – ४-७ ।

हिमाद्रि—संज्ञा पुं. [सं.] हिमालय पर्वत ।

हिमानी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पाला, तुषार । (२) बरफ । (३) बरफ की चट्टान ।

हिमायत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) संरक्षा । (२) पक्षपात । (३) समर्थन, मंडन ।

हिमायती—वि. [फ़ा.] (१) संरक्षक । (२) सहायक । (३) पक्षपाती । (४) समर्थक ।

हिमाल, हिमालय—संज्ञा पुं. [सं. हिमालय] भारत के उत्तर का एक पर्वत जो संसार में सबसे ऊँचा है । पुराणों में यह मेना या मेनका का पति और पार्वती का पिता कहा गया है ।

हिमि—संज्ञा पुं. [सं. हिम] हिम ।

हिमीकर—वि. [सं. हिम + कर] बर्फ जैसा शीतल करनेवाला ।

हिम्मत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) साहस । (२) पराक्रम ।
मुहा. हिम्मत पड़ना—साहस होना । हिम्मत हारना—साहस छोड़ना ।

हिम्मती—वि. [फ़ा.] (१) साहसी । (२) पराक्रमी ।

हिय—संज्ञा पुं. [सं. हृदय, प्रा. हिअ] (१) हृदय, मन ।

उ.—इन हिय हेरि मृगी सब गोपी सायक ज्ञान हुए—३०५० ।

मुहा. हिय की फूटना—ज्ञान-नेत्र न होना; बुद्धि, विवेक या ज्ञान न होना । हिय की फूटी—ज्ञान-दृष्टि रहित; बुद्धि, विवेक या ज्ञान-हीन । उ.—एक आँधरी, हिय ही फूटी, दौरत पहिरि खराऊँ—ना. ४७४४ । हिय हारना—हिम्मत या साहस छोड़ना । हिय हारचौ —साहस छोड़ बैठा । उ.—भ्रमि भ्रमि अब हारचौ हिय अपनैं, देखि अनल जग छायौ—१-१५४ ।

(२) छाती, वक्षस्थल ।

हियरा, हियरो, हियरौ—संज्ञा पुं. [हिं. हियरा + रा] (१) हृदय, मन । (२) छाती, वक्षस्थल ।

मुहा. हियरा (हियरो) सुलगावत—जो जलाता या जलाते हो । उ.—(क) फूँकि फूँकि हियरो सुलगावत उठि न इहाँ तैं जात—ना. ४१६३ । (ख) काहे को हियरा सुलगावत—३२७९ ।

हियाँ—अव्य. [हिं. यहाँ] इस स्थान पर ।

हिया—संज्ञा पुं. [हिं. हिय] (१) हृदय । (२) छाती ।

मुहा. हिया जलना—(१) दुख होना । (२) क्रोध या ईर्ष्या होना । हिया जलाना—कुढ़ाना । हिया जुड़ाना या ठंढा होना—मन तृप्त और आनंदित होना । हिया ठंढा करना—मन को सुखी और संतुष्ट करना । हिया फटना—(कलेजा फटने जैसा) अत्यंत शोक या दुख होना । हिया फाड़ना—(कलेजा फाड़ डालने जैसा) घोर दुख या शोक देना । हिया भर आना—अत्यंत शोक या दुख होना । हिया भर लेना—दुख से लंबी साँसें लेना । हिया शीतल करना—किसी के हृदय को सुखी और संतुष्ट करना । हिया शीतल होना—मन का तृप्त ओर संतुष्ट होना ।

(३) हिम्मत, साहस ।

हियाव—संज्ञा पुं. [हिं. हिय + आव] जीवट, हिम्मत, साहस । उ.—कहि हियाव यह सौंज लादि कै हरि के पुर लै जाहि—१-३१० ।

मुहा.—हियाव खुलना—(१) हिम्मत बँधना, साहस हो जाना । (२) धड़क खुलना; संकोच, हिचक या भय न रह जाना । हियाव पड़ना—हिम्मत या साहस होना ।

हिये, हियें, हियैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हिय] हृदय में । उ.—(क) सब कोउ कहत गुलाम स्याम को, सुनत सिरात हिये—१-१७१ । (ख) राजा हियैं सुरुचि सौं नेह —४-९ । (ग) प्रेम पुलक न समात हिये—१०-८८ । (घ) सूरदास प्रेम हरि हियैं न समावै री—६२९ । हरषि हियें अब हेतु करै—९८९ ।

मुहा. हिये का अंधा—परम मूर्ख । हिये की फूटना-बुद्धि या विवेकहीन होना । हिये की फूटी—बुद्धि-विवेक रहित । उ.—एक आँधरी, हिय की फूटी, दौरत पहिरि खराऊँ—३४६६ । हिये लगना—गले या छाती से लगना । हिये लगाना—हृदय या छाती से लगाना । हिये में लोन-सा लगना—बहुत बुरा लगना, अत्यंत अप्रिय होना । हिये पर पत्थर रखना—अत्यंत धैर्यपूर्वक सहन करना ।

हियो, हियौ—संज्ञा पुं. [हिं. हिय] (१) हृदय । उ.—(क) सूर-स्याम सरबज्ञ कृपानिधि करुना-मृदुल हियौ—१-१२१ । (ख) अति अनुराग संग कमला-तन प्रफुलित अंग न समात हियौ—१०-१४३ । (ग) सराहौं तेरौ नंद हियौ—ना. ३७८३ ।

मुहा. हियो फूलना—अत्यंत प्रसन्नता होना । फूल्यौ हियौ—अत्यंत प्रसन्नता हुई । उ.—लै लै अधर-परस करि जेंवत देखत फूल्यौ मात-हियौ—१०-१६८ । हियौ सिराना या शीतल होना—कलेजा ठंढा होना, बहुत सुख-संतोष होना । सिरायौ हियौ या सीतल भयौ —सुखी और संतुष्ट हुआ । उ.—(क) अब कुबिजा पै हियौ सिरायौ—ना.४७१२ । (ख) सातौं द्वीप राज ध्रुव कियौ । सीतल भयौ मातु कौ हियौ—४-९ ।

(२) छाती, वक्षस्थल । उ.—आपु कहति मेरौ सुत बारौ, हियौ उघारि दिखाऊँ—७७२ ।

मुहा. हियौ फाटनो—(अत्यंत शोक या दुख से) कलेजा फटना । फाटचौ न हियौ—(अत्यंत शोक या दुख होने पर भी) कलेजा नहीं फटा । उ.—हरि बिछुरत फाटचौ न हियौ—ना. ३६२३ ।

हिरकना, हिरकनो—क्रि. अ. [सं. हरुक = समीप] (१) पास या निकट आना । (२) बहुत ही समीप होना,

सटना । (३) परचना । (४) रोकना, हटकना, मना करना ।

हिरकाना, हिरकानो—क्रि. स. [हिं. हिरकना] (१) निकट करना । (२) सटाना । (३) परचाना । (४) (किसी को) रुकने को प्रवृत्त करना ।

हिरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वर्ण । (२) कौड़ी ।

संज्ञा पुं. [हिं. हिरन] मृग (पशु) ।

हिरण्मय—वि. [सं.] सुनहरा, सोने का ।

संज्ञा पुं. (१) ब्रह्मा । (२) जंबू द्वीप के नौ खंडों में एक ।

हिरण्य—संज्ञा पुं. [सं.] सोना (धातु), स्वर्ण ।

हिरण्यकशिपु, हिरण्यकश्यप—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्यकशिपु] एक प्रसिद्ध दैत्य जो प्रहलाद का पिता था और जिससे प्रहलाद की रक्षा के लिए नृसिंह अवतार हुआ था ।

हिरण्यकेश—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का एक नाम ।

हिरण्यगर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह ज्योतिर्मय अंड जिससे ब्रह्मा और सारी सृष्टि की उत्पत्ति हुई मानी जाती है । (२) ब्रह्मा । (३) विष्णु ।

हिरण्यनाभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु । (२) मैनाक पर्वत ।

हिरण्याक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्रसिद्ध दैत्य जो हिरण्यकशिपु का भाई था । उसने पृथ्वी को पाताल में रख छोड़ा था जिसके उद्धार के लिए बाराह अवतार हुआ था ।

हिरदय—संज्ञा पुं. [सं. हृदय] दिल, हृदय ।

मुहा. हिरदय धरौ—ध्यान लगाओ । उ.—नरहरि-पद नित हिरदय धरौ—७-२ ।

हिरदैं—संज्ञा पुं. सवि. [सं. हृदय] हृदय में । उ.—(क) मम सत्राई हिरदैं आन—४-५ । (ख) हरि-जन हरि-चरचा जो करैं । दासी-सुत सो हिरदैं धरैं—७-८ ।

हिरदै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. हृदय] (१) दिल या हृदय (ने) । उ.—हमारैं हृदयै कुलिसहु जीत्यौ—ना. ४००१ ।

मुहा. हिरदै महँ आन—हृदय में लाकर, ध्यान लगाकर । उ.—सो सुरूप हिरदै महँ आन—१-२८६ । हिरदै महँ राखी—मन में बसा लो, स्मृति में रख लो, स्मरण कर लो । उ.—सची नृपति सौं यह कहि भाषी । नृप सुनिकैं हिरदै महँ राखी—६-७ । हिरदै राखि—ध्यान लगाकर । उ.—श्रीगोपाल हिरदै राखि—१-३०६ । सुन्न हिरदै कौ—अत्यंत निष्ठुर या कठोर हृदयवाला । उ.—महा कठोर सुन्न हिरदै कौ, दोष देन कौं नीकौ—१-१८६ ।

(२) छाती, वक्षस्थल ।

मुहा. हिरदै माँझ रहे लपटाई—छाती से लिपट गये । उ.—अति आनंद सहित सुत पायौ, हिरदै माँझ रहे लपटाई—१०-५१ ।

हिरन—संज्ञा पुं. [सं. हरिण] मृग (पशु) ।

मुहा. हिरन हो जाना—(१) बहुत तेजी से भाग जाना । (२) चटपट दूर या नष्ट हो जाना ।

संज्ञा पुं. [सं. हिरण्य] सोना (धातु), स्वर्ण ।

हिरनकसिपु, हिरनाकुस—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्यकशिपु] हिरण्यकशिपु नामक प्रसिद्ध दैत्य । उ.—हिरनकसिपु हिरनाच्छ आदि दै रावन-कुंभकरन कुल खोवन—१-५४ ।

हिरनमय—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्मय] जंबू द्वीप के नौ खंडों या वर्षों में एक । उ.—इलावर्त औ किम्पुरुषा कुरु औ हरिवर्ष केतुमाल । हिरनमय रमनक भद्रासन भरतखंड सुखपाल—सारा. ३३ ।

हिरनवारि—संज्ञा पुं. [सं. हरिण+वारि] मृगतृष्णा ।

हिरना—संज्ञा पुं. [हिं. हिरन] मृग (पशु) ।

क्रि. स. [हिं. हेरना] (१) ढूँढ़ना । (२) देखना । (३) परखना, परीक्षा करना ।

हिरनाच्छ—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्याक्ष] हिरण्याक्ष नामक प्रसिद्ध दैत्य । उ.—हिरनकसिपु हिरनाच्छ आदि दै रावन कुम्भकरन कुल खोवन—१-५४ ।

हिरनौटा—संज्ञा पुं. [हिं. हिरन+औटा (प्रा. उत्त से)] हिरन का बच्चा, मृगशावक ।

हिरन्य—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्य] स्वर्ण ।

हिरनाछ, हिरन्याच्छ—संज्ञा पुं. [सं. हिरण्याक्ष] हिरण्याक्ष नामक प्रसिद्ध दैत्य । उ.—हरि जब हिरन्याच्छ कौं मारयौ—७-२ ।

हिरमंजी, हिरमिंजी, हिरमजी, हिरमिजी—संज्ञा स्त्री.

[अ. हिरमजी] एक तरह की लाल मिट्टी जो दीवार, धन्नी आदि रँगने के काम आती है।

हिरवा—संज्ञा पुं. [हिं. हीरा) हीरा, रत्न।

हिरस—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिर्स] हिर्स।

हिराती—संज्ञा पुं. [हिरात देश] 'हिरात' देश का घोड़ा।

हिराना—क्रि. अ. [सं. हरण] (१) खो जाना, गायब होना। (२) मिटना, दूर होना। (३) न रह जाना, अभाव होना। (४)हक्का-बक्का होना, दंग या चकित होना। (५) अपने को भूल जाना, आपा खोना।

क्रि. स. भूल जाना, ध्यान में न आना।

हिरानी—क्रि.अ.[हिं.हिराना] (१)मिट गयी, दूर हो गयी, क्षीण हो गयी, जाती रही। उ.—(क) मिट गई चमक दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी—१-३०५। (ख) भूख न दिन निसि नींद हिरानी—२९०७। (२) (२) खो गयी, इधर-उधर चली गयी। उ.—बालक द्वै दए पठै धेनु बन कहूँ हिरानी—४३७। (३) दंग या चकित रह गयी, अपने को भूल गयी। उ.—सबै हिरानी हरि-मुख हेरैं—ना. २२७१।

क्रि. स. भूल गयी, ध्यान में नहीं रही। उ.—बिकल भई तन दसा हिरानी।

हिराने—क्रि. अ. [हिं. हिराना] खो गये, इधर-उधर चले गये। उ.—(क) जनु खद्योत चमक चलि सकत न, निसि-गत-तिमिर हिराने—ना. ३२१९। (ख) उत नंदहिं सपनो भयो, हरि कहूँ हिराने—ना. ३५५३।

हिरानो, हिरानौ—क्रि. अ. [हिं. हिराना] हिराना।

हिरान्यो, हिरान्यौ—क्रि. स. [हिं. हिराना] भूल गया। उ.—स्याम अधर पर बैठि नाद कियौ, मारग चंद हिरान्यौ—ना. १६८७।

हिरायो, हिरायौ—क्रि. अ. [हिं. हिराना](१) खो गया। उ.—सपनैं माहिं नारि कौं भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरायौ—४-१३। (२) दूर हो गया, मिट गया। उ. लखि गोपिन को प्रेम भुलायो। ऊधो को सब ज्ञान हिरायो।

हिरावल—संज्ञा पुं. [हिं. हरावल] सेना में सबसे आगे रहने वाला सैनिक-दल।

हिरास—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) भय, त्रास। (२)निराशा। (३) खेद, खिन्नता।

वि. [फ़ा.हिरांसा] (१)निराश। (२) उदासीन।

हिरासत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) किसी व्यक्ति की देखरेख के लिए रखा जानेवाला पहरा। (२) कैद।

मुहा. हिरासत में करना या रखना—कैद करना।

हिरासाँ—वि. [फ़ा.] (१) निराश। (२) उदासीन।

हिरौंजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिरमिजी] हिरमिजी।

हिरौल—संज्ञा पुं. [हिं.हरावल] सेना में सबसे आगे रहने वाला सैनिक-दल।

हिर्स—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) लालच, लोभ। (२) तीव्र इच्छा, वासना। (३) स्पर्द्धा।

मुहा. हिर्स दिलाना—(१) लालच दिलाना। (२) लालसा जगाना। (३) स्पर्द्धा करने को प्रवृत्त करना। हिर्स मिटना—(१) इच्छा में कमी आना। (२) लालच न रहना। (३) स्पर्द्धा का भाव दूर होना। हिर्स मिटाना—(१) इच्छा पूरी करना। (२) स्पर्द्धा का भाव शांत करना।

हिलकना, हिलकनो—क्रि. अ. [सं. हिक्का] (१) हिचकी लेना। (२) सिसकना।

क्रि. अ. [हिं. हिलगना] (१) निकट आना। (२) सहना। (३) पचना। (४) रोकना, मना करना।

हिलकिनि, हिलकियनि—क्रि. अ.[हिं. हिलकना] सिसक-सिसककर। उ.—(क) देखौ माइ, कान्ह हिलकियनि रोवै—३४७। (ख) नैंकहूँ न दरद करति, हिलकिनि हरि रोवै—३४८।

हिलकी—संज्ञा स्त्री. [सं. हिक्का] (१) हिचकी। (२) सिसक-सिसक कर रोने का शब्द, सिसकन। उ.—जौ जागौं तो कोऊ नाहीं, रोके रहति न हिलकी—ना. ३८७९।

हिलकोर—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलोर] पानी की तरंग, हिलोर या लहर।

हिलकोरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलकोर] हिलकोर।

मुहा. हिलकोरा (बहु. हिलकोरे) लेना—पानी का लहराना।

हिलकोरना, हिलकोरनो—क्रि. अ. [हिं. हिलकोर] लहराना, तरंगित होना।

क्रि. स. (पानी को हिलाकर) लहरें उठाना।

हिलग—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलगना] (१) हिलने-मिलने या परचने का भाव, हेलमेल। (२) लगाव, संबंध। उ.—खान-पान तनु की न सम्हार। हिलग छँड़ायो गृह-व्यवहार—ना. १७९८। (३) लगन, प्रेम, प्रीति।

हिलगन—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलगना] (१) हेलमेल। (२) लगाव। (३) लगन, प्रेम। (४) बान, टेव, आदत।

हिलगना, हिलगनो—क्रि. अ. [सं. अधिलग्न, प्रा. अहिलग्न] (१) अटकना, फँसना, उलझना। (२) (सहारे से) लटकना, टँगना। (३) हिलमिल जाना, परचना। (४) सटना, भिड़ना।

हिलगाना, हिलगानो—क्रि. स. [हिं. हिलगना] (१) अटकाना, फँसाना। (२) लटकाना। (३) हेलमेल करना, परचाना। (४) सटाना, भिड़ाना।

हिलन—संज्ञा पुं. [हिं. हिलना] मेल-जोल, प्रेम।

मुहा. हिलन-मिलन—मिलना-जुलना, प्रेम या प्रीति का संबंध। उ.—हिलन-मिलन दिन चारि कौ—ना. ३७३२।

हिलना—क्रि. अ. [सं. हल्लन = इधर-उधर लुढ़कना](१) इधर-उधर डोलना, गति में आना।

मुहा. हिलना-डोलना—(१) थोड़ा इधर-उधर होना, चलायमान होना। (२) थोड़ा घूमना-फिरना। (३) काम-धंधा करना।(४) प्रयत्न या उद्योग करना।

(२) (अपने स्थान से) हटना, टलना या सरकना। (३) काँपना, थरथराना। (४) (अपने स्थान पर) जमा या दृढ़ न रहना। (५) झूमना, लहराना। (६) (पानी में) पैठना या धँसना। (७) (मन का) चंचल होना या डिगना।

क्रि. अ. [हिं. हिलगाना] हेल-मेल में होना, परचना।

यौ. हिलना-मिलना—(१) मेल-जोल रखना। (२) एकता के साथ रहना। (३) बहुत घनिष्ठ हो जाना। (४) प्रेम या प्रीति का संबंध।

हिलनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिलना] प्रीति, प्रेम।

यौ. हिलनि-मिलनि—परस्पर मेल-जोल या प्रेम के साथ मिलना और रहना। उ.—सूरदास प्रभु की सुनजरि उदित अंग, हिलनि-मिलनि तुव प्रीति प्रगटाई—ना. ३२७६।

हिलनो—क्रि. अ. [सं. हल्लन] हिलना।

हिला—वि. [हिं. हिलना] परचा हुआ।

यौ. हिला-मिला—(१) मेल-जोल में आया हुआ। (२) खूब परचा हुआ।

हिलाना, हिलानो—क्रि. स. [हिं.हिलना] (१) चलायमान करना। (२) (स्थान से) उठाना या हटाना। (३) कँपाना। (४) नीचे-ऊपर या इधर-उधर डुलाना।(५) जमा हुआ या दृढ़ न रखना। (६) (चित्त को) चंचल करना। (७) (पानी में) घुसाना या पैठाना।

क्रि. स. [हिं. हिलगना] परचाना।

हिलायो, हिलायौ—क्रि. स. [हिं. हिलाना] नीचे-ऊपर या इधर-उधर डुलायी। उ.—निकसि कंदरा हूँ तें केहरि सिर पर पूँछ हिलायो—३४८०।

हिलि—क्रि. अ. [हिं. हिलना] मिलकर।

मुहा. हिलिमिलि, हिलमिली—(१) मेल-जोल या प्रेमपूर्वक। उ.—(क) आनि खेलत रहौ प्यारि स्याम तुम हिलमिली—७०५। (ख) आपुन जाइ मधुपुरी छाए, उहाँ रहे हिलिमिलि—ना. ४४३९। (२) इकट्ठा या एकत्र होकर।

हिलिमिलौ—क्रि. अ. [हिं. हिलना + मिलना] हेल-मेल या प्रेम का व्यवहार करो। उ.—वाही बिधि मोसौं हिलिमिलौ—९-२।

हिलोर—संज्ञा स्त्री. [सं. हिल्लोल] (पानी की) तरंग।

हिलोरा—संज्ञा पुं. [हिं. हिलोर] (पानी की) लहर।

मुहा. हिलोर (बहु. हिलोरे) लेना—(पानी का) लहराना या तरंगित होना। (जी का) हिलोरा (बहु. हिलोरे) लेना—खूब मौज या मस्ती पर आना।

हिलोरना—क्रि. स. [हिं. हिलोर + ना] (१) पानी को हिलाकर लहरें उठाना। (२) इधर-उधर हिलाना-डुलाना, लहराना।

हिलोरि—क्रि. स. [हिं. हिलोरना] तरंगित करके। उ.—अमृत-सिंधु हिलोरि पूरन, कृपा दरसन देइ—ना. २४४९।

हिलोरी—क्रि. स. [हिं. हिलोरना] (जल को) तरंगित

करके। उ.—ग्वाल-बाल सब संग मुदित मन जाइ जमुन-जल न्हाइ हिलोरी—ना. ३५२६।

हिलोरे—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. हिलोर] (मन की) तरंग या कामना। उ.—तेरे बल भामिनी बदत नहिं उपजत काम हिलोरे—ना. ३४४४।

हिलोल, हिल्लोल—संज्ञा पुं. [सं. हिल्लोल] (१) (जल की) लहर या हिलोर। (२) (मन की) मौज या तरंग। (३) 'हिंडोल' राग का एक नाम।

हिलोलन, हिल्लोलन—संज्ञा पुं. [सं. हिल्लोल] (१) (जल की) लहर। (२) (मन की) तरंग।

हिलोलना, हिलोलनो, हिल्लोलना, हिल्लोलनो—क्रि. स. [सं. हिल्लोल] हिलोरना।

हिवँ—संज्ञा पुं. [सं. हिम] (१) बरफ। (२) पाला।

हिवंचल—संज्ञा पुं. [सं. हिम+अंचल] हिमालय।

हिवाँर, हिवार—संज्ञा पुं. [सं. हिम+हिं. वार ?] हिम-स्थान। उ.—राम-नाम सरि तऊ न पूजै, जौ तनु गारौ जाइ हिवार—२-३।

हिवड़ा—संज्ञा पुं. [सं. हृदय] मन, हृदय।

हिसका, हिसखा—संज्ञा पुं. [सं. हिंसा या हिं. हींस] (१) ईर्ष्या, डाह। (२) द्वेष, शत्रुता। (३) होड़, स्पर्द्धा।

यौ. हिसका-हिसकी—पारस्परिक स्पर्द्धा।

हिसना, हिसनो—क्रि. अ. [सं. ह्रास] कम या क्षीण होना, ह्रास होना।

हिसाब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) गिनकर या गणित करके लेखा तैयार करने का कार्य। (२) लेनदेन या आय-व्यय का लिखित विवरण।

मुहा. हिसाब करना—जो जिसको देना हो, देकर साफ करना। कच्चा हिसाब—ऐसा ब्योरा जो मोटे तौर पर या अधूरे ढंग से तैयार किया गया हो। चलता हिसाब—लेन-देन या उधार बिक्री का जारी सिलसिला। हिसाब चलना—(१) लेन-देन का लेखा रखा जाना। (२) उधार का लिखा जाना। हिसाब चुकता करना या चुकाना—(१) जो कुछ बाकी हो, वह अदा करना। (२) किसी के पिछले अपराध का उचित दंड देना। हिसाब जाँचना—आय-व्यय के विवरण की जाँच करना। हिसाब जोड़ना—आय-व्यय या लेनदेन का लेखा करना। टेढ़ा हिसाब—(१) गड़बड़ ढंग से लिखा गया लेन-देन का ब्योरा। (२) (२) गड़बड़ व्यवहार या रीति। हिसाब देना—(१) आय व्यय या लेन-देन का ब्योरा बताना या समझाना। (२) किसी कार्य के संपादन का ठीक या उचित उपाय या युक्ति बताना। हिसाब पर चढ़ना—लेखेमें लिखा जाना। हिसाब बंद करना—(१) लेन-देन का सारा विवरण तैयार कर जोड़ लेना। (२) लेने-देने का कार्य आगे न चलाना। हिसाब बराबर करना—(१) जो देना हो, वह देना; जो लेना हो, वह लेना। (२) अपना काम पूरा करना। बेड़ा हिसाब—(१) कोई कठिन या जटिल कार्य। (२) गड़बड़ व्यवहार या रीति। बे हिसाब—बहुत ही अधिक। हिसाब बेबाक करना—जो बाकी हो, वह दे-लेकर हिसाब चुकता करना। हिसाब बैठना—(१) सब बातों की उचित व्यवस्था या इच्छानुसार प्रबंध हो जाना। (२) सुख-सुविधा का प्रबंध होना। हिसाब में जमा होना—लेन-देन के ब्योरे में किसी से पायी हुई रकम का लिखा जाना। हिसाब में लगना—लेन-देन में लगना। (किसी) हिसाब में लगना—किसी कार्य, युक्ति या उपाय में जुटना। हिसाब में लगाना—लेन-देन के ब्योरे में लिखना या सम्मिलित करना। (किसी) हिसाब में लगाना—किसी कार्य, युक्ति या उपाय के साधन में जुटाना। हिसाब रखना—आय-व्यय या लेन-देन का ब्योरा रखना। हिसाब लगना या लड़ना—(१) कोई तदबीर या युक्ति ठीक होना जिससे अभीष्ट सिद्ध हो सके। (२) तबियत या मेल मिलना। हिसाब लेना या समझना—आय-व्यय या लेन-देन का ब्योरा या विवरण पूछना और समझना। हिसाब समझाना—आय-व्यय या लेन-देन का ब्योरा या विवरण समझाना। हिसाब से—(१) अनुमान से। (२) लिखे हुए ब्योरे या विवरण के अनुसार।

(३) गणित विद्या। (४) गणित का प्रश्न।

मुहा. टेढ़ा हिसाब—गणित का कठिन, पेचीदा या जटिल प्रश्न। (२) मुश्किल या जटिल कार्य।

(५) किसी चीज की दर, भाव।

मुहा. हिसाब से—(१) दर या भाव से। (२) क्रम, गति या परिणाम के अनुसार।

(६) बँधी हुई रीति या व्यवस्था। (७) समझ, धारणा।

मुहा. हिसाब से—विचार या ध्यान से, औचित्य की दृष्टि से।

(८) हाल, दशा। (९) रहन-सहन, रीति-नीति। (१०) किफायत, मितव्यय। (११) विचार, स्वभाव आदि का साम्य या मेल।

मुहा. हिसाब बैठना—स्वभाव या प्रकृति में समानता होना, मेल मिलना।

हिसाब-किताब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) आय-व्यय का ब्योरा या लेखा। (२) रुपये-पैसे का लेन देन, उधार लेना-देना। (३) चाल, रंग-ढंग, रीति-नीति।

हिसिखा, हिसिषा, हिस्का—संज्ञा स्त्री. [सं. ईर्ष्या या हिंसा] (१) बैर, द्वेष। (२) डाह, ईर्ष्या। (३) होड़, स्पर्धा। (४) बराबरी, समता, तुलना।

हिस्सा—संज्ञा पुं. [अ. हिस्सः] (१) अंश। (२) टुकड़ा, खंड। (३) बँटने या विभक्त होने पर प्राप्त भाग। (४) व्यापार में पूँजी, लाभ-हानि आदि का साझा या भाग। (५) अंग, अवयव।

हिस्सेदार—संज्ञा पुं. [अ. हिस्सः+फ़ा. दार] (१) वह जिसे किसी वस्तु का हिस्सा मिला हो या मिलने को हो। (२) साझेदार। (३) किसी कार्य आदि में भाग लेनेवाला, सहभागी।

हिस्सेदारी - संज्ञा स्त्री. [हिं. हिस्सेदार] हिस्सेदार होने का भाव या स्थिति, सहभागिता।

हिहिनाना, हिहिनानो—क्रि. अ. [अनु. हिं. हिं.] (घोड़ों का) बोलना, हींसना या हिनहिनाना।

हींग—संज्ञा स्त्री. [सं. हींगु] एक प्रसिद्ध मसाला जो अफगानिस्तान और फारस में अधिकता से होनेवाले एक पौधे का जमाया हुआ दूध का गोंद होता है। उ.-(क) हींग हरद मिरच छौंके तेले—३९६। (ख) हींग मिरच पीपरि अजवाइनि ये सब बनिज कहावैं—पृ. २४३ (८)। मूँग ढरहरी हींग लगाई—पृ. ४२१ (२१)।

हींगड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. हींग+ड़ा] घटिया हींग।

हींचना, हींचनो—क्रि. स. [हिं. खींचना] (१) बल लगा कर अपनी तरफ लाना या खींचना। (२) म्यान से अस्त्र निकालना। (३) चूसना, सोख लेना। (४) किसी चीज का गुण निकाल लेना। (५) लकीरों से कोई आकृति या आकार बनाना।

हींछना, हींछनो—क्रि. स. [हिं. हींछा] इच्छा करना।

हींछा—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा] इच्छा, चाह।

हींडना—क्रि. अ. [हिं. हुंडना] व्यर्थ या निरुद्देश्य घूमना-फिरना।

क्रि. स. खोजना, ढूँढ़ना।

हींस—संज्ञा स्त्री. [सं. हेष] घोड़े के बोलने का शब्द, हिनहिनाहट। उ.—गर्जनि पणव निसान शंख रव हय गज हींस चिकार—पृ. ५७० (२)।

हींसना, हींसनो—क्रि. अ. [हिं. हींस+ना] घोड़े का बोलना, हिनहिनाना।

ही—अव्य. [सं. हिं (निश्चयार्थक)] एक अव्यय जिसका प्रयोग किसी बात पर जोर या बल देने, निश्चय सूचित करने, अल्पता या परिमिति बताने, हीनता या उपेक्षा जताने, स्वीकृति देने आदि के लिए होता है। उ.—पहिलैं हौं ही हो तब एक—२-३८।

संज्ञा पुं. [सं. हृदय, हिं. हिय] हृदय। उ.—जो बीतति मोको री सजनी कहौं काहि यह ही की—पृ. ३३१ (९)।

क्रि. अ. [ब्रज. 'हो' का स्त्री.] थी। उ.—एक दिवस मेरे गृह आए, मैं ही मथति दही। (ख) जो मन मैं अभिलाष करति ही, सो देखति नँद-घरनी—१०-१२३।

हीअ, हीअरा, हीआ—संज्ञा पुं. [प्रा. हिअ.] (१) हृदय। (२) छाती।

हीक—संज्ञा स्त्री. [सं. हिक्का] (१) हिचकी। (२) हल्की-हल्की अप्रिय गंध।

मुहा. हीक आना या मारना—हलकी-हलकी दुर्गंध आने लगना।

हीचना, हीचनो—क्रि. अ. [हिं. हिचकना या अनु. हिच्] हिचकना।

हीछना, हीछनो—क्रि. अ. [हिं. हींछा + ना] चाहना, इच्छा या कामना करना।

हीछा - संज्ञा स्त्री. [हिं. हींछा] चाह, इच्छा।

हीज—वि. [देश.] काहिल, आलसी।

हीड़ना - क्रि. अ. [हिं. हुंडना] व्यर्थ या निरुद्देश्य घूमना-फिरना।

क्रि. स. खोजना, ढूँढ़ना, पता लगाना।

हीठना—क्रि. अ. [सं. अधिष्ठा, प्रा. अहिट्ठा] (१) पास या समीप जाना। (२) जाना, पहुँचना।

हीन—वि. [सं.] (१) छोड़ा हुआ, परित्यक्त। (२) बिना, वंचित, रहित, शून्य। (३) घटिया, निम्नकोटि का, निकृष्ट। (४) बुरा, नीच। उ.—मोसों कोउ पतित नहिं अनाथ हीन दीन—१-१८२। (५) तुच्छ, महत्व हीन, नगण्य। उ.—अधर मधुर मुसुक्यानि मनोहर, करति मदन मन हीन—४७८। (६) सुख-समृद्धिहीन। (७) (पथ से) भटका हुआ। (८) कम, थोड़ा, अल्प।

संज्ञा पुं. (साहित्य में) अधम नायक।

हीनक—वि. [सं.] हीनता-सूचक।

हीनक भावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] अपने को व्यक्ति-विशेष अथवा व्यक्तियों से हीन समझने की क्षुद्र भावना।

हीनकर्मा—वि. [सं.] (१) निर्दिष्ट कर्म न करनेवाला। (२) बुरा काम करनेवाला।

हीनकुल—वि. [सं.] नीच या निम्न कुल का।

हीनक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्य-दोष जो क्रम-व्यवस्था भंग करने पर होता है।

हीनचरित—वि. [सं.] जिसका चरित्र बुरा हो।

हीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमी, अभाव, राहित्य। (२) तुच्छता, क्षुद्रता। (३) बुराई, निकृष्टता। (४) ओछापन।

हीनत्व—संज्ञा पुं. [सं.] हीनता।

हीनपक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] वह तर्क या बात जो प्रमाण से सिद्ध या पुष्ट न हो।

हीनबल—वि. [सं.] जिसमें बल न हो या जिसका बल घट गया हो।

हीनबुद्धि—वि. [सं.] मूर्ख, जड़।

हीनमति—वि. [सं.] मूर्ख, बुद्धिहीन।

हीनयान—संज्ञा पुं. [सं.] बौद्ध धर्म की वह प्राचीन शाखा जिसका प्रचार सिंहल, बरमा, स्याम आदि देशों में हुआ था और जिसके ग्रंथ मुख्यतः पाली भाषा में हैं।

हीनयोनि—वि. [सं.] निम्न जाति या कुल का।

हीनरस—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्य-दोष जो किसी रस के उत्कर्ष में बाधक प्रसंगों के समावेश से होता है।

हीनवर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] निम्न या शूद्र वर्ण।

वि. जो निम्न या शूद्र वर्ण का हो।

हीनवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यर्थ या मिथ्या तर्क। (२) ऐसा कथन जिसमें पूर्वापर विरोध हो।

हीनवीर्य—संज्ञा पुं. [सं. हीनवीर्य्य] बलहीन।

हीन-हयात—संज्ञा पुं. [अ.] जीवन-काल।

अव्य. जीवन भर के लिए।

हीनांग—वि. [सं.] (१) जिसका कोई अंग खंडित हो। (२) जो सर्वांग या पूर्ण न हो, अधूरा।

हीना—वि. [सं. हीन] निम्न कोटि या श्रेणी का। उ.—ताको करत हीना—पृ. २८८ (९१)।

हीनार्थ—वि. [सं.] (१) जिसका उद्देश्य या कार्य पूर्ण न हुआ हो, विफल। (२) जिसको लाभ न हुआ हो।

हीनी—वि. स्त्री. [सं. हीन] (१) किसी तत्व, गुण आदि से खाली, रहित। उ.-सूरदास प्रभु कहाँ कहाँ लगि, है अपान मति हीनी—पृ. ५६४ (४९)। (२) निम्न, तुच्छ, क्षुद्र। उ.—मम बुधि भई हीनी—४-५। (३) तुलना में घटकर या घटिया। उ.—कामधेनु तैं नैंकु न हीनी—१०-३२।

हीनो—वि. [सं. हीन] क्षुद्र, तुच्छ, निकृष्ट। उ.—बरु ए प्रान जाहिं ऐसे ही बयन होहिं क्यों हीनो पृ. ५१६ (३४)।

हीनोपमा—संज्ञा पुं. [सं.] वह उपमा जिसमें बड़े या महत् के लिए छोटा या क्षुद्र उपमान प्रस्तुत किया जाय।

हीनौ—वि. [सं. हीन] (१) किसी तत्व, गुण आदि से खाली या रहित। उ.—महा मत्त बुधि-बल को हीनौ देखि करै अंधेरा—१-१८६। (२) तुच्छ, क्षुद्र, निकृष्ट। उ.—अहिपति-सुता-सुवन सन्मुख ह्वै बचन कह्यौ इक हीनौ—१-२९।

हीय, हीयरा, हीया, हीयो, हीयौ—संज्ञा पुं. [सं. हृदय, प्रा. हिअ, हि. हिय या हिया] हृदय।

मुहा. कँप्यौ हीयौ—हृदय काँपने लगा, अत्यंत भयभीत हो गया। उ.—तुव सतम जज्ञ अरंभ लखि इंद्र को राज-हित कँप्यो हीयौ—४-११।

हीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक वर्णवृत्त। (२) एक मात्रिक छंद। (३) वज्र। (४) सर्प। (५) सिंह। (६) मोती की माला।

संज्ञा पुं. [हिं. हीरा] (१) 'हीरा' नामक रत्न। (२) किसी वस्तु का सार भाग। (३) लकड़ी के भीतर का बढ़िया भाग। (४) शरीर के भीतर का सार, धातु, वीर्य। (५) बल, शक्ति।

हीरक—संज्ञा पुं. [सं.] 'हीरा' नामक रत्न।

हीरक-जयंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी व्यक्ति, संस्था आदि की साठवें वर्ष मनायी जानेवाली जयंती।

हीरा—संज्ञा पुं. [सं. हीरक] एक बहुमूल्य रत्न जो बहुत कड़ा और चमकदार होता है। उ.—कंठ सुमाल हार मुकता के हीरा रतन अपार—ना. ४४३३।

मुहा. हीरा खाना या हीरे की कनी चाटना—हीरे का कण या चूर खाकर आत्महत्या करना।

(२) हीरे जैसा अत्यंत श्रेष्ठ व्यक्ति, नररत्न। उ.—कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि-हीरा—१-१३४। (३) हीरे जैसी बहुमूल्य वस्तु।

वि. हीरे के समान स्वच्छ, कांतियुक्त और मूल्यवान।

संज्ञा स्त्री. राधा की एक सखी का नाम। उ.—अमला अबला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारि-१५८०।

संज्ञा पुं [हिं. हियरा] हृदय।

हीरामन—संज्ञा पुं. [हिं. हीरा+मणि] प्राचीन कहानियों में वर्णित तोते की एक जाति जिसका रंग सुनहरा माना गया है।

हीलना, हीलनो—क्रि. अ. [हिं. हिलना] (१) अपने स्थान से इधर-उधर होना। (२) चलायमान या गतियुक्त होना। (३) लहराना। (४) काँपना। (५) जमा हुआ या दृढ़ न रह जाना। (६) (मन का) डिगना या चंचल होना।

हीला—संज्ञा पुं. [अ. हील:] (१) बहाना, मिस।

यौ० हीला-हवाला—बहाना।

(२) किसी कार्य की सिद्धि के लिए निकला हुआ मार्ग, उपाय या साधन।

मुहा. हीला निकलना—कार्य-साधन का ढंग निकलना।

हुँ—अव्य. [हिं. हूँ] भी।

अव्य. [हिं. हाँ] एक शब्द जिसे कहकर सुननेवाला यह सूचित करता है कि मैं सुन रहा हूँ। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द, हाँ।

हुँकना, हुँकनो—क्रि.अ ,क्रि. स. [हिं. हुंकरना] हुंकारना।

हुँकरना, हुँकरनो—क्रि. अ., क्रि. स. [हिं. हुंकारना] हुंकारना।

हुंकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दपटने का शब्द, ललकार। (२) गर्जन।

हुँकारत—क्रि. अ. [हिं. हुंकारना] गरजता है।

क्रि. वि. गरजता हुआ। उ.—आगे सिंह हुँकारत आवत निर्भय बाट जनावें—सारा. ३७५।

हुंकारना, हुंकारनो—क्रि. अ. [सं. हुंकार+ना] (१) दपटना, ललकारना। (२) गरजना।

क्रि. स. किसी को ललकारना।

हुँकारी—संज्ञा स्त्री. [अनु. हुँ हुँ+करना] (१) सुननेवाले की 'हूँ' करने की क्रिया जो सूचित करती है कि वह वक्ता की बात सुन रहा है। उ.—(क) कहत बात हरि कछू न समुझत, झूँठहिं भरत हुँकारी—१०-१६७। (ख) यह सुनि सूर स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी—१०-१९७। (२) स्वीकृति या सहमति-सूचक क्रिया।

संज्ञा स्त्री. [सं. हुंडि+कारी] रुपया या रकम सूचित करने की रेखा, बिकारी।

हुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मूर्ख व्यक्ति। (२) अनाज की बाल।

हुंडन—संज्ञा पुं. [सं.] अंग का सुन्न होना।

हुंडा—संज्ञा पुं. [हिं. हुंडी] वह धन जो कुछ जातियों में वरपक्ष की ओर से कन्या पक्ष वालों को विवाह-खर्च के लिए दिया जाता है।

हुँडावन—संज्ञा स्त्री. [हिं. हुंडी] हुंडी लिखने या भेजने की दस्तूरी।

हुंडी—संज्ञा स्त्री. [देश.] वह निधि-पत्र जिस पर रुपया लिखकर महाजनों में लेन-देन होता है।

मुहा. हुंडी पटना–हुंडी का रुपया चुकाया जाना। हुंडी सकारना—हुंडी का रुपया देना या देना स्वीकार करना।

यौ. दर्शनी हुंडी—वह हुंडी जिसको दिखाते ही उसका रुपया देने का नियम हो। मियादी हुंडी—वह हुंडी जिसका रुपया नियत तिथि तक या उसके बाद देने का नियम हो।

हुँत—प्रत्य. [प्रा. विभक्ति 'हिंतो'] (१) पुरानी हिंदी की पंचमी और तृतीया की विभक्ति, से। (२) (के) लिए, वास्ते, निमित्त। (३) द्वारा।

हुंभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाय के रँभाने का शब्द।

हु—अव्य. [सं. उप, प्रा. उअ, हिं. ऊ] एक अतिरेकसूचक शब्द, भी।

हुआँ—अव्य. [हिं. वहाँ] उस स्थान पर, वहाँ।

हुआ—क्रि. अ. [हिं. 'होना'] 'होना' क्रिया का भूतकालीन एकवचन रूप।

संज्ञा पुं. [अनु.] गीदड़ के बोलने का शब्द।

हुआना, हुआनो—क्रि. अ. [अनु. हुआ] (१) बार-बार 'हुआ-हुआ' कहना। (२) गीदड़ों का 'हुआ-हुआ' बोलना।

हुकना, हुकनो—संज्ञा पुं. [देश.] 'सोहन' चिड़िया।

क्रि. अ. [देश.] भूल जाना।

क्रि. स. [हिं. हुचना[निशाना या लक्ष्य चूकना।

हुकरना, हुकरनो—क्रि. अ. [हिं. हुंकारना] (१) दपटना, ललकारना। (२) गरजना।

क्रि. स. (किसी को) ललकारना।

हुकर-पुकर—संज्ञा स्त्री. [अनु.] दिल की धड़कन।

मुहा. कलेजा (या जी) हुकर-पुकर करना—(१) डर या घबराहट से जी का धकधक करना। (२) बहुत घबराहट या अधीरता होना।

हुकारना, हुकारनो—क्रि. अ. [हिं. हुंकारना] (१) दपटना, ललकारना। (२) गरजना।

क्रि. स. किसी को ललकारना।

हुकार्‍यो, हुकार्‍यौ—क्रि. [हिं. हुंकारना] ललकारा। उ.—फिरि कहि कहि हरि मल्ल हुकार्‍यौ—पृ. ४६९ (६)।

हुकुम—संज्ञा पुं. [हिं. हुक्म] (१) आज्ञा, आदेश। (२) ताश का एक रंग।

हुकूमत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) शासन, प्रभुत्व। (२) अधिकार, आधिपत्य।

मुहा. हुकूमत चलना—अधिकार या प्रभुत्व माना जाना। हुकूमत चलाना—(१) अधिकार या प्रभुत्व से काम लेना, दूसरों को केवल आज्ञा देते रहना। (२) रोब, अधिकार या बड़प्पन दिखाना।

(२) राजनीतिक शासन या अधिकार।

हुक्का—संज्ञा पुं. [अ. हुक्क:] तम्बाकू पीने का एक नल-यंत्र।

हुक्का-पानी—संज्ञा पुं. [हिं. हुक्का+पानी] एक जात-बिरादरी के लोगों का एक दूसरे के हाथ का हुक्का और पानी पीकर, सामाजिक दृष्टि से समान मानने या समाज में सम्मिलित करने का व्यवहार।

मुहा. हुक्का-पानी बंद करना—किसी सामाजिक अपराध का दंड देने के लिए किसी का छुआ हुक्का-पानी न पीकर जैसे उसे बिरादरी से निकाल देना। हुक्का-पानी बंद होना—किसी सामाजिक अपराध के दंडस्वरूप बिरादरी से निकाल दिया जाना।

हुक्काम—संज्ञा पुं. [अ. हाकिम का बहु.] अधिकारीवर्ग।

हुक्कारना—क्रि. अ. [हिं. हुंकारना] (१) डराने के लिए जोर का शब्द करना। (२) गरजना। (३) ललकारना।

हुक्म—संज्ञा पुं. [अ.] (१) आज्ञा, आदेश।

मुहा. हुक्म उठाना—(१) आज्ञा या आदेश लौटा लेना। (२) आज्ञा पालन के लिए सेवा में रहना। हुक्म उलटाना—एक आज्ञा का निराकरण करनेवाली दूसरी आज्ञा प्राप्त करना। हुक्म की तामील—आज्ञा का पालन। (किसी का) हुक्म चलना—किसी की आज्ञा का पालन करने के लिए सबका बाध्य होना, किसी की आज्ञा सर्वमान्य होना। हुक्म चलाना—(१) अपना बड़प्पन या अधिकार सूचित करते हुए

कोई आज्ञा देना । (२) आज्ञा या आदेश को प्रचलित करना । हुक्म जारी करना—(सर्व साधारण के लिए) आज्ञा या आदेश को प्रचलित कराना । हुक्म तोड़ना —आज्ञा या आदेश के विरुद्ध काम कराना । हुक्म देना—आदेश देना । हुक्म बजाना या बजा लाना—(१) आज्ञा का पालन करना, आदेश के अनुसार कार्य करना । (२) किसी की सेवा या अधीनता में रहकर उसकी इच्छानुसार कार्य करना । हुक्म मानना —किसी के आदेश के अनुसार काम करना । हुक्म मिलना—आज्ञा या आदेश दिया जाना । जो हुक्म—(आपके) आदेश से अनुसार ही सारा काम होगा । (२) इजाजत, अनुमति ।

मुहा. हुक्म लेना—इजाजत या अनुमति लेना ।

(३) सर्व-साधारण के लिए प्रचारित, राज्य या शासन की आज्ञा ।

मुहा. हुक्म उठाना—राज्य या शासन की पूर्व प्रचारित आज्ञा को रद्द कर देना । हुक्म उलटाना—राज्य या शासन की पूर्व प्रचारित आज्ञा का निराकरण करनेवाली दूसरी आज्ञा प्राप्त कर लेना । हुक्म चलाना या जारी करना—सर्वसाधारण के लिए किसी आज्ञा को प्रचलित करना ।

(४) शासन, प्रभुत्व ।

मुहा. हुक्म में होना—शासन या अधिकार में होना ।

(५) विधि या धर्मशास्त्र की आज्ञा । (६) ताश का एक रंग ।

हुक्मनामा—संज्ञा पुं. [अ. हुक्म + फ़ा. नामा] आज्ञा-पत्र ।

हुक्मबरदार—संज्ञा पुं. [अ. हुक्म + फ़ा. बरदार] (१) आज्ञाकारी । (२) सेवक ।

हुक्मबरदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हुक्मबरदार] आज्ञा-कारिता (२) सेवा ।

हुक्मी—वि. [अ. हुक्म] (१) आज्ञानुसार कार्य करनेवाला । (२) पराधीन । (३) अचूक, अवश्य गुणकारी (औषध)

हुचकना, हुचकनो—क्रि. अ. [हिं. हुचकी] हिचकियाँ ले लेकर रोना, सिसकना ।

क्रि. अ. [हिं. हिचकना] 'हच हच' करके झुकना ।

क्रि. अ. [देश.] लक्ष्य-भ्रष्ट होना ।

हुचकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हिचकी] (१) पेट की वायु का कुछ रुक-रुक कर झोंके के साथ गले से निकलना । (२) बहुत देर तक रोने पर इसी प्रकार सिसकी के साथ साँस का निकलना ।

हुचना, हुचनो—क्रि. अ. [देश.] लक्ष्य से चूकना ।

हुजूम—संज्ञा पुं. [अ.] भीड़, जमाव ।

हुजूर—संज्ञा पुं. [अ.] (१) किसी प्रतिष्ठित या अधिकारी व्यक्ति की समक्षता ।

मुहा. (किसी के) हुजूर में—(किसी प्रतिष्ठित या अधिकारी के) आगे या सामने ।

(२) बादशाह या अधिकारी का दरबार या उसकी कचहरी । (३) अधिकारी या शासक के लिए अधीन-स्थ कर्मचारियों या सामान्य व्यक्तियों का संबोधन ।

क्रि. वि. (किसी के) सामने या समक्ष । उ.—किनि देख्यो, किनि कही बात यह जो मो हुजूर कहै आनी—पृ. ३८० (१३) ।

हुजूरी—संज्ञा स्त्री. [अ. हुजूर + हिं. प्रत्य. ई] किसी प्रतिष्ठित या अधिकारी की समक्षता ।

संज्ञा पुं. (१) किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति, अधिकारी या शासक की सेवा में हर समय रहनेवाला सेवक । (२) किसी की चापलूसी में हर समय लगा रहने वाला मुसाहब ।

मुहा. जी हुजूरी करना – चापलूसी या खुशामद करना ।

वि. अधिकारी या शासक का, सरकारी ।

हुज्जत – संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) व्यर्थ का तर्क-कुतर्क । (२) कहासुनी, तकरार ।

हुज्जती—वि. [हिं. हुज्जत] (१) व्यर्थ का तर्क-वितर्क करनेवाला । (२) कहासुनी या तकरार करने का आदी ।

हुड़क, हुड़कन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] हुड़कने की क्रिया या भाव ।

हुड़कना—क्रि. अ. [अनु.] (१) बच्चे का, जिससे वह बहुत हिला हो, उसके वियोग में बहुत रोना और

दुखी होना । (२) बच्चे का किसी कारण से डर जाना । (३) (जी) तरसना ।

हुड़कनि—संज्ञा स्त्री. [अनु.] हुड़कने की क्रिया या भाव ।

हुड़कनो—क्रि. अ. [अनु.] हुड़कना ।

हुड़दंग, हुड़दंगा—संज्ञा पुं. [अनु. हुड़ + हि. दंगा] धमा-चौकड़ी, उछल-कूद और उपद्रव ।

हुड़ुक—संज्ञा पुं. [सं.हुडुक्क] एक प्रकार का छोटा ढोल या बाजा । उ.—बाजत हुड़ुक मँजीरा नूपुर नाना भाँति नचायो—सारा. ४०७ ।

हुडुक्क—संज्ञा पुं. [सं.](१)'हुड़ुक' नामक छोटा ढोल या बाजा । (२) मतवाला आदमी ।

हुड्ड—वि. [देश.] (१) उजड्ड । (२) उद्दंड ।

हुत—वि. [सं.] हवन करते समय अग्नि में डाला हुआ, आहुति रूप में दिया हुआ ।

संज्ञा पुं. (१) हवन की सामग्री । (२) शिव जी का एक नाम ।

क्रि. अ. ['होना' क्रिया का प्राचीन भूत.] था ।

अव्य. [प्रा. हिंतो] द्वारा, से ।

हुतभक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] अग्नि ।

हुतभुक, हुतभुक्—संज्ञा पुं. [सं. हुतभुक्] अग्नि ।

हुतभुज, हुजभुज्—संज्ञा पुं. [सं. हुतभुज्] अग्नि ।

हुतवह—संज्ञा पुं. [सं.] अग्नि ।

हुता—क्रि. अ. [हिं. हुत] 'होना' का प्राचीन भूतकालिक रूप, था ।

हुतागि, हुतागिनि, हुताग्नि—संज्ञा पुं. [सं. हुताग्नि] (१) वह जिसने हवन किया हो । (२) हवन की अग्नि ।

हुताश, हुतास—संज्ञा पुं. [सं हुताश] आहुति खानेवाला, अग्नि ।

हुताशन, हुतासन—संज्ञा पुं. [सं.हुताशन] आग, अग्नि । उ. (क) लछिमन रचौ हुतासन भाई—९-१६१ । (ख) मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपुवीर—पृ. ३६९ (३) ।

हुताशा, हुतासा—संज्ञा पुं. [सं. हुताश] आग, अग्नि । उ.—क्षमा भयो जल परे हुतासा—पृ २३१ (६९) ।

हुति—अव्य. [प्रा. हिंतो] (१) करण और अपादान कारकों का चिह्न, से, द्वारा । (२) तरफ से, ओर से ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] हवन, यज्ञ ।

हुतीं—क्रि. अ. [हिं. हुत] 'होना' का प्राचीन भूतकालिक, बहुवचन, स्त्रीलिंग रूप; थीं । उ.—(क) ऐसो हाल हमारो कीन्हो जात हुतीं दहि लै हो—ना. २०८४ । (ख) गोपी हुतीं प्रेमरस माती—पृ. ४२० (१६) ।

हुती—क्रि. अ. [हिं. हुत] 'होना' का प्राचीन भूतकालिक, एकवचन स्त्रीलिंग रूप; थी । उ.—(क) साविक जमा हुती जो जोरी—१-१४३ । (ख) ठानी हुती और कछु मन मैं—१-२९९ । (ग) तहँ उरबसी सखिनि समेत आई हुती स्नान कैं हेत—९-२ । (घ) बैठी हुती जसोदा मंदिर—१०-५० । (ङ) वह जो हुती प्रतिमा समीप की—पृ. ४९० (८९) । (च) हुती बड़ी नगरी—पृ. ५२४ (४) ।

हुते—अव्य. [प्रा. हिंतो] (१) से, द्वारा । (२) तरफ से, ओर से ।

क्रि. अ. [हिं. हुत] 'होना' क्रिया का प्राचीन, भूतकालिक, बहुवचन, या एकवचन आदरार्थक पुल्लिग रूप । उ.—(क) जब हुते नंद-दुलारे—१-२५ । (ख) अरजुन के हरि हुते सारथी—१-२६४ । (ग) असुर द्वै हुते बलवंत भारी—८-११ । (घ) इक हरि चतुर हुते पहिले हीं—पृ. ५४६ (४) ।

हुतो, हुतौ—क्रि. अ. [हिं. हुत] 'होना' क्रिया का प्राचीन भूतकालिक एकवचन, पुल्लिग रूप । उ.—(क) गर्भ परीच्छित रच्छा कीनी, हुतौ नहीं बस माँ कौ—१-११३ । (ख) एकै चीर हुतौ मेरे पर—१-२४७ । (ग) राजा रहत हुतौ तहँ एक—५-२ । (घ) दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी—१०-१९८ ।

अव्य. [प्रा. हिंतो] तरफ से, ओर से ।

हुदकना, हुदकनो—क्रि. अ. [देश.] उकसना, उभरना ।

हुदकाना, हुदकानो—क्रि. स. [देश.] उकसाना, उभारना ।

हुदना, हुदनो—क्रि. अ. [सं. हुंडन] (१) चकपकाना, स्तब्ध होना । (२) रुकना, ठहरना ।

हुदहुद—संज्ञा पुं. [अ.] एक पक्षी ।

हुन—संज्ञा पुं. [सं. हूण] (१) सोना, स्वर्ण। (२) स्वर्ण-मुद्रा।

मुहा. हुन बरसना बहुत आय या लाभ होना।

हुनना, हुननो—क्रि. स. [सं. हवन+हिं. प्रत्य. ना] (१) हवन करना। (२) आहुति देना। (३) भस्म करना।

हुनर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) कारीगरी, कला। (२) कार्य-संपादन का कौशल।

हुनरमंद—वि. [फ़ा.] (१) कारीगरी जाननेवाला, कला-विद्। (२) कला-कुशल, निपुण।

हुन्न—संज्ञा पुं. [हिं. हुन] (१) सोना, स्वर्ण। (२) स्वर्ण-मुद्रा।

हुब, हुब्ब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) प्रेम, अनुराग। (२) उमंग, उत्साह।

हुमकना, हुमकनो—क्रि. अ. [अनु. हुँ] (१) किसी चीज पर चढ़कर उसे बार-बार नीचे दबाना। (२) उछलना-कूदना। (३) पैर से जोर लगाना। (४) पैरों को तानकर जोर से आघात करना। (५) (बच्चों का) ठुमकना।

हुमकाना, हुमकानो—क्रि. स. [हिं. हुमकना, हुमगना] हुमकने को प्रवृत्त करना।

हुमगना, हुमगनो—क्रि. अ. [सं. उमंग] (१) जोर से या बलपूर्वक आगे बढ़ना या आघात करना। (२) प्रसन्न होना।

हुमगाना, हुमगानो—क्रि. स. [हिं. हुमगना] (१) जोर से या बलपूर्वक आगे बढ़ाना या आघात कराना। (२) प्रसन्न करना।

हुमचना, हुमचनो—क्रि. अ. [अनु.] (१) किसी चीज पर चढ़कर उसे बार-बार जोर से नीचे दबाना। (२) उछलना-कूदना। (३) (बच्चों का) ठुमकना।

हुमड़ना, हुमड़नो, हुमरना, हुमरनो—क्रि.अ.[हिं.उमड़ना] (१) (द्रव पदार्थ का) उतराकर बह चलना। (२) (किसी हलके पदार्थ का) ऊपर उठकर फैलना या छा जाना।

क्रि. अ. [हिं. उभड़ना] (१) तल या सतह से कुछ ऊँचा होना, उकसना। (२) ऊपर निकलना, उठना। (३) पैदा होना। (४) अधिक या प्रबल होना।

हुमसना, हुमसनो—क्रि. अ. [हिं. हुमचना] हुमचना।

क्रि. अ. [हिं. उमसना] (हवा न चलने पर) गर्मी होना।

हुमसाना, हुमसानो—क्रि. स. [हिं. हुमसना] (१) जोर से ऊपर उठाना, उछालना। (२) बढ़ाना। (३) उकसाना, उत्तेजित करना।

हुमा—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] एक कल्पित पक्षी जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि उसकी छाया जिस पर पड़ जाती है, वह राजा हो जाता है।

हुमेल—संज्ञा स्त्री. [अ. हमायल] वह माला या हार जिसमें रजत या स्वर्ण मुद्राएँ गुँथी हों।

हुरकें—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. हुड़ुक] 'हुड़ुक' नामक ढोल या बाजा। उ.—ढाढ़ी और ढाढ़िनि गावैं, ठाढ़े हुरकें बजावैं—१०-३१।

हुरदंग, हुरदंगा—संज्ञा पुं. [हिं. हुड़दंग] (१) धमा-चौकड़ी। (२) उपद्रव और उछलकूद।

हुरमत—संज्ञा स्त्री. [अ.] इज्जत-आबरू।

हुरुमयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह का नृत्य।

हुलरना, हुलरनो—क्रि. अ. [हिं. हिलना] हिलना-डोलना।

हुलराना, हुलरानो—क्रि. स. [हिं. हिलाना] हिलाना-डुलाना।

हुलसत—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] प्रसन्न होता है। उ.—हुलसत, हँसत, करत किलकारी, मन अभिलाष बढ़ावैं—१०-४५

हुलसना, हुलसनो—क्रि. अ. [हिं. हुलास] (१) बहुत प्रसन्न होना, अत्यंत उल्लास में होना। (२) उठना, उभरना। (३) बढ़ना, उमड़ना।

क्रि. स. प्रसन्न या प्रफुल्लित करना।

वि. जो सदा प्रसन्न रहे, हँसमुख।

हुलसाना—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] हुलसना।

क्रि. स. (१) प्रसन्न या प्रफुल्लित करना। (२) उठाना, उभारना। (३) बढ़ाना, उमड़ाना।

हुलसानी—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] प्रसन्न या आनंदित हुई। उ.—महरि निरखि मुख हिय हुलसानी—१०-४६।

हुलसाने—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] प्रसन्न या आनंदित हुए। उ.—ब्रजजन निरखत हिय हुलसाने—१०-११७।

हुलसानौ—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] हुलसना।
क्रि. स. [हिं. हुलसाना] हुलसाना।

हुलसावति—क्रि. अ. [हिं. हुलसावना] प्रसन्न या आनंदित होती है। उ.—आजु गयौ मेरी गाइ चरावन, कहि-कहि मन हुलसावति—४२२।

हुलसावन—वि. [हिं. हुलसावना] प्रसन्न या आनंदित करनेवाले। उ.—सूरदास प्रभु जनमे भक्त-हुलसावन रे—१०-२८।

हुलसावना—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] हुलसना।
क्रि. स. [हिं. हुलसाना] हुलसाना।

हुलसावनी—वि. स्त्री. [हिं. हुलसावना] प्रसन्न या प्रफुल्लित करनेवाली। उ.—जैसी ही हरी हरी भूमि हुलसावनी मोर मराल मुख होत न थोरनो—पृ. ४१४ (८०)।

हुलसावनो—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] हुलसना।
क्रि. स. [हिं. हुलसाना] हुलसाना।

हुलसि—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] प्रसन्न होकर, उमंग में भरकर। उ.—मुख प्रतिबिंब पकरिबे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत—१०-१०२।

हुलसित—वि. [हिं. हुलास] बहुत प्रसन्न, बहुत उमंग में भरा हुआ।

हुलसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हुलसना] (१) उल्लास, उमंग। (२) कुछ लोगों के अनुसार, गो. तुलसीदास की माता का नाम।

हुलसे—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] प्रसन्न या आनंदित हुए। उ.—त्यौं ब्रज-जन हुलसे सबै आवत हैं नँद-नंद—५८९।

हुलस्यो, हुलस्यौ—क्रि. अ. [हिं. हुलसना] उमंग या उल्लास से भर गया। उ.—रति-जल-जलज हियौ हुलस्यौ मन पलक पाँखुरी फूली—पृ. ३९९ (७९)।

हुलहुल—संज्ञा पुं. [देश.] एक पौधा जिसकी पत्तियों का साग खाया जाता है।

हुला—संज्ञा पुं. [हिं. हूलना] लाठी का छोर।

हुलाना—क्रि. स. [हिं. हूलना] लाठी, भाले आदि को जोर से पेलना।

हुलाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. हुलसना] लहर, तरंग।

हुलास—संज्ञा पुं. [सं. उल्लास] (१) हर्ष की उमंग, उल्लास, आह्लाद। उ.—(क) मारयौ ताहि प्रचारि हरि सुर-मन भयौ हुलास—३-१२। (ख) आए बाहरि निकसि कै, मन सब कियौ हुलास—४३१। (ग) सूर स्याम जसुमति घर लै गई, ब्रज जन मनहिं हुलास—६०४। (घ) सूर अरुन आगमन देखि कै प्रफुलित भए हुलास—पृ. २७५ (४४)। (२) हौसला, उत्साह। (३) बढ़ने या उमगने का भाव।
संज्ञा स्त्री. सुंघनी।

हुलासी—वि. [हिं. हुलास] (१) आनंदी, उल्लसित। (२) हौसलेवाला, उत्साही।

हुलिया—संज्ञा पुं. [अ. हुलियः] (१) शकल, आकृति। (२) किसी व्यक्ति के रूप-रंग या उसकी आकृति का ऐसा विवरण जिससे उसको सहज ही पहचाना जा सके।

हुल्लड़—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) हो-हल्ला, कोलाहल। (२) उत्पात, उपद्रव।

हुल्लास—संज्ञा [सं. उल्लास] एक छंद।

हुसियार—वि. [फ़ा. होशियार] (१) समझदार। (२) दक्ष, कुशल। (३) सचेत, सावधान। उ.—सब दल होहि हुसियार चलहु मठ घेरहिं जाई—पृ. ५७२ (८)। (४) जो समझने योग्य अवस्था का हो, सयाना। (५) चालाक, धूर्त।

हुसैन—संज्ञा पुं. [अ.] मुहम्मद साहब के नाती जो करबला के मैदान में मारे गये थे। मुहर्रम इन्हीं के शोक में मनाया जाता है।

हुस्न—संज्ञा पुं. [अ.] सौंदर्य।

हुस्यार—वि. [फ़ा. होशियार] होशियार।

हूँ—अव्य. [अनु.] (१) स्वीकृति-सूचक शब्द। (२) समर्थन-सूचक शब्द। (३) ध्यानपूर्वक सुनना सूचित करने का शब्द।
अव्य. [हिं. हू] भी। उ.—स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ—१-१७७।
क्रि. अ. 'होना' क्रिया का वर्तमानकालिक, उत्तम पुरुष, एकवचन रूप।

सर्व. हौं, मैं।

हूँकति—क्रि. अ. [हिं. हूँकना] विशेष दुःख सूचित करने के लिए गैयाँ धीरे-धीरे या हुँड़ककर बोलती हैं। उ.—(गाय) जल-समूह बरसति दोउ आँखें, हूँकति लीने नाउँ—पृ. ५५८ (२१)।

हूँकना, हूँकनो—क्रि. अ. [सं. हुंकार या अनु.] (१) गाय का, विशेष दुख सूचित करने के लिए हुड़क-हुड़ककर बोलना। (२) सिसक-सिसककर बोलना। (३) गरजकर बोलना, हुंकारना।

हूँठ—वि. [सं. अर्द्धचतुर्थ, प्रा. अद्धुट्ठ] साढ़े तीन।

हूँठा—संज्ञा पुं. [हिं. हूँठ] साढ़े तीन का पहाड़ा।

हूँस—संज्ञा स्त्री. [सं. हिंस] (१) जलन, ईर्ष्या, डाह। (२) बुरी नजर, टोंक। (३) कोसना।

हूँसना, हूँसनो—क्रि. स. [हिं. हूँस] बुरी नजर लगाना।

क्रि. अ. (१) ईर्ष्या से जलना। (२) जलन या बैर से कोसना।

हू—अव्य. [सं. उप = आगे, प्रा. उव, हिं. ऊ.] भी।

हूक—संज्ञा स्त्री. [सं. हिक्का] (१) कलेजे की पीड़ा या हृदय की वेदना जो रहरह कर उठे। (२) दर्द, पीड़ा, कसक। उ.—हृदय जरत है दावानल ज्यों, कठिन बिरह की हूक—पृ. ४८६ (४९)। (३) मानसिक संताप। (४) खटका, आशंका।

हूकना, हूकनो—क्रि. अ. [हिं. हूक] (१) कसक, पीड़ा या वेदना होना। (२) पीड़ा से चौंक-चौंक पड़ना।

हूजत—क्रि. अ. [हिं. हूजना] होता है। उ.—बासर स्याम बिरह अहि ग्रासित हूजत मृतक समान—पृ. ४२३ (३१)।

हूजना, हूजनो—क्रि. अ. [हिं. होना] होना।

हूजिए—क्रि. अ. [हिं. हूजना] हो जाइए, बन जाइए। उ.—वृंदाबन द्रुम लता हूजिए—पृ. ३४४ (३२)।

हूजियत—क्रि. अ. [हिं. हूजना] होना चाहिए, होना उचित है। उ.—पर-मद पिये मत्त न हूजियत काहे कौं इतरात—ना. ४३०५।

हूज्यो, हूज्यौ—क्रि. अ. [हिं. हूजना] हुआ। उ.–परसन हमहिं सदा प्रभु हूज्यो—१०३८।

हूटना, हूटनो—क्रि. अ. [सं. हूड् या हिं. हटना] (१) अपने स्थान से हटना या टलना। (२) (लड़ाई या संघर्ष से) पीछे हटना या पीठ फेरना।

हूठना, हूठनो—क्रि. अ. [हिं. होंठ ?] (चिढ़ाने के लिए) किसी की भावभंगी, मुद्रा आदि की नकल करना या होंठ बिचकाना।

हूठा—संज्ञा पुं. [हिं. अँगूठा ?] (किसी को चिढ़ाने या बनाने के लिए) अँगूठा दिखाने, होंठ बिचकाने और हाथ मटकाने की चेष्टा या क्रिया।

मुहा. हूठा देना—उक्त क्रिया या चेष्टा करना।

हूड़—वि. [देश.] (१) उजड्ड। (२) उद्दंड।

हूण—संज्ञा पुं. [देश.] एक प्राचीन मंगोल जाति जिसने चौथी पाँचवीं शताब्दी में अनेक बार भारत पर आक्रमण किये थे।

हूत—वि. [सं.] बुलाया हुआ।

हूनना, हूननो—क्रि. स. [सं. हवन] (१) आग में डालना। (२) विपत्ति में फँसाना।

हू-बहू—वि. [अ.] (१) ज्यों का त्यों। (२) (किसी के) ठीक समान।

हूय—संज्ञा पुं. [सं.] आवाहन।

हूर—संज्ञा स्त्री. [अ.] स्वर्ग की अप्सरा (मुसलमान)।

हूरना, हूरनो—क्रि. स. [हिं. हूलना] (१) ठेलना, घुसेड़ना, हूलना। (२) मारना।

हूल—संज्ञा स्त्री. [सं. शूल] (१) हूलने की क्रिया या भाव। (२) हूक, टीस।

संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हल्ला, कोलाहल। (२) हर्ष या आनंद की ध्वनि। (३) ललकार।

हूलना, हूलनो—क्रि. स. [हिं. हूल] लाठी, भाले आदि की नोक जोर से घुसाना या धँसाना।

हूश, हूस—वि. [हिं. हूड़] गँवार, उजड्ड।

हूह—संज्ञा स्त्री. [अनु.] हुंकार, ललकार।

हूहू—संज्ञा पुं. [अनु.] लपटों के साथ अग्नि के जलने पर होनेवाला शब्द।

हृत—वि. [सं.] छीनकर लिया या हरण किया हुआ।

हृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] छीनने या हरण करने की क्रिया या भाव, लूट, हरण।

हृत्कंप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हृदय की धड़कन। (२) जी का (भय से) दहलना।
हृत्तंत्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] हृदयरूपी वीणा।
हृत्तल—संज्ञा पुं. [सं.] दिल, कलेजा, हृदय।
हृत्पिंड—संज्ञा पुं. [सं.] वह मांस-पिंड जो 'हृदय' कहलाता है, हृदय-कोश।
हृद, हृद्—संज्ञा पुं. [सं. हृद्] हृदय। उ.—जे पद-कमल संभु-चतुरानन हृद अंतर लै राखे—५७१।

संज्ञा पुं. [सं. ह्रद] ताल, सरोवर। उ.—नाभि हृद, रोमावली-अलि चले सहज सुभाव—१-३०७।
हृदयंगम—वि. [सं.] जो अच्छी तरह समझ में आ गया हो, जिसका ठीक ठीक बोध हो गया हो।
हृदय - संज्ञा पुं. [सं.] (१) छाती की बायीं ओर का वह भीतरी मांसकोश-जैसा अवयव जिसमें धड़कन होती है और जिसमें से होकर शुद्ध लाल रक्त शरीर की नाड़ियों में पहुँचता है।

मुहा. हृदय धड़कना—(१) जीवित होने की स्थिति सूचित होना। (२) भय, आशंका आदि से हृदय की धड़कन बढ़ जाना।

(२) छाती, वक्षस्थल।

मुहा. हृदय से लगाना—छाती से लगाना, भेंटना, आलिंगन करना।

(३) छाती के मध्य भाग में स्थित माना हुआ वह रागात्मक अंग जो प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकारों का उत्पत्ति-स्थान माना जाता है। उ.—ता छिन हृदय-कमल प्रफुलित ह्वै जनम सफल करि लेखौं—९-३५।

मुहा. हृदय उमड़ना—मन में प्रेम, करुणा आदि का वेग उत्पन्न होना। हृदय जलना—(१) मन में दुख, शोक आदि का उत्पन्न होना। (२) किसी की उन्नति, समृद्धि आदि देखकर ईर्ष्या होना। हृदय जरत है—मन को बहुत विकल कर देनेवाले दुख, शोक आदि का अनुभव होता है। उ.—हृदय जरत है दावानल ज्यौं कठिन बिरह की हूक—पृ. ४८६ (४९)। (हरष, सुख आदि) हृदय में न अमाना या समाना—बहुत ही हर्ष या प्रसन्नता होना। हरष हृदय न माइ, सुख न हृदय समाई—बहुत ही आनंद या सुख का अनुभव होता है। उ.—(क) सूरदास प्रभु सिसुता कौ सुख सकै न हृदय समाइ—१०-१७८। (ख) हरष अक्रूर हृदय न माइ—पृ. ४६२ (५६)। हृदय भर आना—मन में प्रेम, शोक, करुणा आदि का उत्पन्न होना। हृदय विदीर्ण होना—दुख, शोक करुणा आदि के कारण मन को बहुत कष्ट होना।

(४) मन, अतःकरण।

मुहा. हृदय धरना या धारना—हृदयंगम करना। हृदय धरि—हृदयंगम करके या करो। उ.—सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि जिन भ्रम सकल निवारयौ—१-३३६। बचन हृदय नाहिं धारयौ—उपदेश को हृदयंगम नहीं किया या स्मरण नहीं रखा। उ.—उन यह बचन हृदय नहिं धारौ—३-६। हृदय की गाँठ—(१) मन का दुर्भाव। (२) छल कपट। हृदय लाना—ध्यान या स्मरण करना। हृदय ल्याऊ—ध्यान या स्मरण करूँ। उ.—स्याम बलराम बिनु दूसरे देव कौं स्वप्न हूँ माहिं नाहिं हृदय ल्याऊँ—१-१७७।

(५) अंतरात्मा, विवेक-बुद्धि। (६) किसी वस्तु का सार या तत्व भाग। (७) गूढ़ बात, रहस्य। (८) अत्यंत प्रिय व्यक्ति।
हृदयग्राही—वि. [सं. हृदयग्राहिन्] मन को मुग्ध करने या रुचिकर लगनेवाला।
हृदय-निकेत—संज्ञा पुं. [सं.] मनोज, कामदेव।
हृदय-प्रमाथी – वि. [सं. हृदयप्रमाथिन्] (१) मन को क्षुब्ध या चंचल करनेवाला। (२) मन को मोहनेवाला।
हृदय-वल्लभ—संज्ञा पुं. [सं.] प्रियतम, प्राणप्यारा।
हृदयवान, हृदयवान्—वि. [सं. हृदयवत्] (१) जिसके हृदय में कोमल भावों का सहज ही उदय हो जाय, सहृदय, भावुक। (२) रसिक।
हृदय-विदारक—वि. [सं.] (शोक, करुणा आदि की वह घटना) जिससे हृदय को बहुत शोक हो या जिससे हृदय में करुणा का उदय हो।
हृदय-वेधी—वि. [सं. हृदयवेधिन्] (१) मन को अत्यंत मुग्ध करनेवाला। (२) अत्यंत शोक या करुणा उत्पन्न करनेवाला। (३) अत्यंत अप्रिय लगनेवाला।

हृदयस्पर्शी—वि. [सं. हृदयस्पर्शिन्] (१) हृदय पर विशेष प्रभाव डालनेवाला। (२) हृदय में दया या करुणा उत्पन्न करनेवाला।

हृदयहारी—वि. [सं. हृदयहारिन्] (३) मन को लुभाने या मोहनेवाला।

हृदयाल, हृदयाला, हृदयालु—वि. [सं. हृदयालु] (१) भावुक, सहृदय। (२) सदय, उदार। (३) दृढ़ हृदय-वाला। (४) साहसी।

हृदयेश, हृदयेश्वर, हृदयेस, हृदयेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. हृदय=ईश, ईश्वर] (१) प्रियतम। (२) पति।

हृदयोन्मादिनी—वि. स्त्री. [सं.] (१) हृदय को उन्मत्त कर देनेवाली। (२) मन को अत्यंत मुग्ध करनेवाली।

संज्ञा स्त्री. संगीत में एक श्रुति।

हृदि—संज्ञा पुं. [सं. 'हृद' का अधिकरण रूप] हृदय में।

हृदै—संज्ञा पुं. [सं. हृदय] (१) हृदय। उ.—ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ—३-१३। (२) (सवि.) हृदय में। उ. —तेरे हृदै न संसय राखौं—२-३७।

हृद्गत—वि. [सं.] (१) हृदय का, मन का, आंतरिक। (२) समझ या ध्यान में आया हुआ। (३) मनचीता, रुचिकर।

हृद्देश—संज्ञा पुं. [सं. हृत+देश] हृदयस्थल, मन।

संज्ञा पुं. [सं. हृदयेश] (१) प्रियतम। (२) पति।

हृद्य—वि. [सं.] (१) हृदय का, हृदयसंबंधी। (२) हृदय को रुचनेवाला। (३) हृदय को सुखी करनेवाला।

हृषि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आनंद। (२) कांति।

हृषीक—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्रिय।

हृषीकेस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण।

हृषु—वि. [सं.] प्रसन्न, हर्षित।

संज्ञा पुं. (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) चंद्र।

हृष्ट—वि. [सं.] (१) प्रसन्न। उ.—दिति दुर्बल अति, अदिति हृष्ट चित देखि सूर संधान—९-२०। (२) खड़ा हुआ (रोआँ या रोम)। (३) जो कड़ा हो गया हो।

हृष्टपुष्ट—वि. [सं.] (१) मोटा-ताजा। (२) स्वस्थ।

हृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] हर्ष, प्रसन्नता।

हेंगा—संज्ञा पुं. [सं. अभ्यंग] मिट्टी चूर करने का पाटा (खेती)।

हें हें—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) धीरे-धीरे हँसने का शब्द। (२) दीनतापूर्वक या गिड़गिड़ाकर हँसने का शब्द।

मुहा. हें हें करना—(१) खीसें निपोरना। (२) दीनतापूर्वक या निर्लज्जता से हँसना।

हे—अव्य. [सं.] संबोधन-सूचक अव्यय।

क्रि. अ. [व्रज 'हो' का बहु.] थे। उ.—(क) मानी हार बिमुख दुरजोधन जाके जोधा हे सौ भाई—१-२४। (ख) मनसा करि सुमिरत हे जब-जब मिलते तब तबहीं—१-२८३। (ग) माता सौं कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई हो—७००।

हेकड़—वि. [हिं. हिया+कड़ा] (१) कड़े बदन का। (२) प्रबल, प्रचंड। (३) अक्खड़, ऐंठू, उद्धत।

हेकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेकड़] अधिकार, बल या ऐंठ दिखाने की क्रिया या भाव, अक्खड़पन, उद्धतता।

मुहा. हेकड़ी दिखाना—ऐंठ, अकड़ या अक्खड़पन दिखाना। (किसी की) हेकड़ी भुला देना या भुलाना —किसी को नीचा दिखाकर गर्व या अभिमान चूर करना। हेकड़ी भूल जाना या भूलना—(१) (दूसरे के सामने) नीचा देखकर मन ही मन हार मानना या लज्जित होना।

हेच—वि. [फ़ा.] (१) तुच्छ, हीन। (२) सारहीन।

हेठ—वि. [सं. अधस्थः, प्रा. अहट्ठ] (१) जो नीचे हो। (२) जो किसी बात में घटकर या कम हो।

क्रि. वि. नीचे।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाधा। (२) हानि।

हेठा—वि. [हिं. हेठ] (१) जो नीचे हो। (२) जो (किसी से) घटकर या कम हो। (३) तुच्छ, हीन।

हेठापन—संज्ञा पुं. [हिं. हेठा+पन] तुच्छता।

हेठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेठा] तौहीनी, अप्रतिष्ठा।

हेड़ी—संज्ञा पुं. [हिं. अहेरी] शिकारी, व्याध।

हेत—संज्ञा पुं. [सं. हित] (१) प्रेम, अनुराग। उ.—(क) देखौ करनी कमल की (रे) कीन्हौं रवि सौं हेत—१-३२५। (ख) सूरदास-प्रभु खात परस्पर माता अंतर-हेत बिचारयौ—४०७। (ग) इहिं बिधि रहसत-बिलसत दंपति, हेत हियैं नहिं थोरे—७३२। (घ) बाहर

हेत हितू कहावत, भीतर काज सयाने—ना. ४६२६। (२) श्रद्धा। उ.—जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं, रिषिपति पतित बिचारे—१-२५।

संज्ञा पुं. [सं. हेतु] (१) **अभिप्राय, उद्देश्य।** उ.—मुक्ति-हेत जोगी स्रम साधैं—१-१०४। (२) **कारण।** उ.—सखी री, हरि आवैं केहि हेत—२८००।

हेति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **आग की लौ या लपट।** (२) **वज्र।** (३) **भाला।** (४) **अस्त्र।** (५) **चोट, आघात।** (६) **सूर्य की किरण।** (७) **धनुष की टंकार।**

हेती—क्रि. वि. [सं. हेतु] **के लिए, के उद्देश्य से।** उ.—जानि पिय अतिहिं आतुर नारि आतुरी गई बन-तीर तनु सुद्ध हेती—ना. ३२२२।

हेतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अभिप्राय, उद्देश्य।** (२) **वजह, सबब, कारण।** (३) **कारण-रूप वस्तु या व्यक्ति।** (४) **दलील, तर्क।** (५) **वह तर्कसंगत बात या युक्ति जिससे कोई सिद्धांत या निष्कर्ष निकाला जाय या दूसरी बात सिद्ध हो।** (६) **एक अर्थालंकार जिसमें कारण के साथ ही कार्य का अथवा कारण का ही कार्य-रूप में उल्लेख होता है।**

संज्ञा पुं. [सं. हित] (१) **लगाव, राग, संबंध।** (२) **प्रेम, अनुराग।** उ.—कपट हेतु कियौ हरि हमसे खोटे होहिं खरी—पृ. ४८५ (४१)। (३) **कृपा, अनुग्रह।** उ.—हारि मानि हहरचौ हरि चरननि हरषि हियैं अब हेतु करैं—पृ. २२० (८९)।

हेतुमान्, हेतुमान्—वि. [सं. हेतुमत] **जिसका हेतु या कारण हो।**

संज्ञा पुं. **वह बात या कार्य जिसका कोई कारण हो।**

हेतुवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **तर्क-विद्या या शास्त्र।** (२) **कुतर्क।** (३) **नास्तिक।**

हेतुवादी—वि. [सं. हेतुवादिन्] (१) **तर्क करनेवाला, तार्किक।** (२) **कुतर्की।** (३) **नास्तिक।**

हेतुविद्या, हेतुशास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] **तर्कशास्त्र।**

हेतुहेतुमद्भाव—संज्ञा पुं. [सं.] **कार्य-कारण-संबंध।**

हेतुहेतुमद्भूत काल—संज्ञा पुं. [सं.] **क्रिया के भूतकाल का एक भेद।**

हेत्वाभास—संज्ञा पुं. [सं.] **किसी बात को सिद्ध करने के लिए बताया जानेवाला ऐसा कारण जो ठीक जान तो पड़े, पर वास्तव में ठीक न हो।**

हेमंत—संज्ञा पुं. [सं.] **शीत की वह ऋतु जो अगहन-पूस में होती है।**

हेम—संज्ञा पुं. [सं. हेमन्] (१) **हिम, पाला।** उ.—(क) कमलन यों हम हरी हेम अति कासौं कहै दुख टेरि—पृ. ४९९ (७५)। (ख) निरमोही नहिं नेह, कुमुदिनी अंतहु हेम हई—पृ. ५४६ (८)। (२) **सोना, स्वर्ण।** उ.—(क) गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यौं—१-१०२। (ख) सुंदर कुंडल हेम जराल—४७३।

हेमकूट—संज्ञा पुं. [सं.] **उत्तरी हिमालय का एक पर्वत।**

हेमकेश—संज्ञा पुं. [सं.] **शिवजी।**

हेमगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] **सुमेरु पर्वत (जो पुराणों में सोने का बताया गया है)।**

हेमदंता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **एक अप्सरा।**

हेमपुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चंपा।** (२) **अशोक।**

हेमपुष्पिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सोनजुही।**

हेममय—वि. [सं.] **सुनहरा।**

हेममाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **यमराज की पत्नी का नाम।**

हेममाली—संज्ञा पुं. [सं. हेममालिन्] **सूर्य।**

हेममुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सोने का सिक्का।**

हेमयूथिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **सोनजुही।**

हेमसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **दुर्गा देवी।**

हेमांग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **चंपा।** (२) **सुमेरु पर्वत।** (३) **विष्णु।** (४) **गरुड़।** (५) **ब्रह्मा।**

हेमांगद—संज्ञा पुं. [सं.] **वसुदेव का एक पुत्र।**

हेमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **माधवी लता।** (२) **पृथ्वी।** (३) **सुंदरी नारी।** (४) **एक अप्सरा जो मंदोदरी की माता थी।**

हेमाचल—संज्ञा पुं. [सं.] **सुमेरु पर्वत।**

हेमाद्रि—संज्ञा पुं. [सं.] **सुमेरु पर्वत।**

हेमाभ—वि. [सं.] **स्वर्ण-जैसी आभावाला।**

हेमाल—संज्ञा पुं. [सं.] **एक राग।**

हेय—वि. [सं.] (१) **छोड़ने या त्यागने योग्य, त्याज्य।** (२) **बुरा, खराब।** (३) **तुच्छ।**

हेरंब—संज्ञा पुं. [सं.] **गणेशजी।**

हेर—संज्ञा पुं. [सं.] मुकुट, किरीट।
संज्ञा स्त्री. [हिं. हेरना] ढूँढ़, तलाश, खोज।
संज्ञा पुं. [हिं. अहेर] शिकार, मृगया।

हेरत—क्रि. स. [हिं. हेरना] देखता है। उ.— यह सुनि कान्ह भए अति आतुर द्वारैं तन फिरि हेरत —१०-२४३।

हेरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेरना] देखने की क्रिया या भाव। उ.—चित चुभि रही मनोहर मूरति चपल दृगन की हेरन—पृ. ५४३ (७७)।

हेरना—क्रि. स. [सं. आखेट, पु. हिं. अहेर] (१) ढूँढ़ना, खोजना, पता लगाना। (२) देखना, ताकना, अवलोकना। (३) जाँचना, परखना।
क्रि. स. [हिं. हारना] (१) खो देना, गँवाना। (२) बिताना, व्यतीत करना।

हेरना-फेरना—क्रि. स. [हिं. हेरना+अनु. फेरना] (१) इधर की चीज उधर करना। (२) (चीजों की) अदला-बदली करना।

हेरनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेरना] देखने की क्रिया या भाव। उ.—तासों भिरहु तुमहिं मो लायक इह हेरनि मुसकानि—पृ. ४३८ (२०)।

हेरनो—क्रि. स. [हिं. हेरना] (१) देखना। (२) ढूँढ़ना, खोजना। (३) परखना।
संज्ञा पुं. देखने की क्रिया या भाव। उ.—जब आवत बलराम देख्यो, मधुमंगल तन हेरनो—पृ. ४१४ (८०)।

हेर-फेर—संज्ञा पुं. [हिं. हेरना + फेरना] (१) घुमाव-फिराव, चक्कर। (२) चालबाजी, दाँव-पेंच। (३) अदल-बदल, उलट-फेर। (४) घुमाव-फिराव या दाँव-पेंच की बात। (५) फर्क, अंतर। (६) लेन-देन या खरीदने-बेचने का काम।

हेरवा—संज्ञा पुं. [हिं. हेरना] तलाश, खोज।

हेरवाना, हेरवानो—क्रि. स. [हिं. हेराना] खोना, गँवा देना।
क्रि. स. [हिं. हेरना का प्रे.] तलाश या खोज करवाना, पता लगवाना, ढुँढ़वाना।

हेरा—संज्ञा पुं. [हिं. हेरना] (१) पुकारने या बुलाने का शब्द। (२) ढूँढ़ने-खोजने की क्रिया या भाव।

हेराइ—क्रि. अ. [हिं. हेराना] कहीं चली (गयी), खो (गयी)। उ.—सूरस्याम या दरस-परस बिनु निसि गई नींद हेराइ—पृ. ३९३ (२७)।

हेराई—क्रि. अ. [हिं. हेराना] खो गयी, (कहीं) चली गयी उ.—आसन देइ बहुत करि बिनती, सुत धोखें तव बुद्धि हेराई—पृ. ५९२ (१३)।

हेराना—क्रि. अ. [सं. हरण] (१) रह न जाना, कहीं चला जाना, खो जाना। (२) कहीं न मिलना, अभाव हो जाना। (३) लुप्त, नष्ट या तिरोहित हो जाना। (४) किसी के सामने फीका, मंद या कांतिहीन पड़ जाना। (५) सुध-बुध भूलना, आत्मविस्मृत होना।
क्रि. स. [हिं. हेरना का प्रे.] तलाश करवाना, ढूँढ़ने या खोजने को प्रवृत्त करना।

हेरानी—क्रि. अ. [हिं. हेराना] विलीन हो गयी। उ.—सूरदास प्रभु मोहन देखत जनु बारिधि जल बूँद हेरानी—पृ. २०३ (५०)।

हेराफेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेरना+फेरना] (१) अदल-बदल। (२) (किसी चीज का) इधर का उधर किया जाना या होना। (३) बार-बार (और जल्दी-जल्दी) कहीं आना-जाना।

हेरि—क्रि. स. [हिं. हेरना] (१) देखकर। उ.—चहुँ दिसि सूर सोर करि धावैं, ज्यौं करि हेरि सृगाल—९-१०४।
प्र. रही हेरि—(चकपका कर या अचरज से) देखती रह गयी। उ.—भीति बिनु कह चित्र रेखैं, रही दूती हेरि—२०४३।
(२) विचारकर, समझकर। उ.— इन हिय हेरि मृगी सब गोपी, सायक ज्ञान हए पृ. ५१८ (५०)।

हेरिऐ, हेरियै—क्रि. स. [हिं. हेरना] देखिए, अवलोकिए। उ.—कृपानिधान सुदृष्टि हेरियै, जिहिं पतितनि अपनायौ—१-२०५।

हेरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हे+री या हेरना] पुकार, टेर। उ.—हेरी-टेर सुनत लरिकनि की, दौरि गए नँदलाल —४१३।
मुहा० हेरी देत—पुकार मचाता (है), टेर लगाता

(है)। उ.—(क) कोऊ हेरी देत परस्पर—४३१। (ख) हेरी देत चले सब बन तैं, गोधन दियौ चलाइ—५०५। (ग) हेरी देत चले सब बालक—६११। हेरी देना—पुकारना, टेरना। हेरी देहिं—पुकारते या टेरते हैं। उ.—एक हेरी देहिं, गावहिं, एक भेंटहिं धाइ—१०-२६।

क्रि. स. [हिं. हेरना] (१) देखने-ताकने लगी। उ.—(क) अंबर हरत सबन तन हेरी—१-२५२। (ख) देखति भई चकित ग्वालि इत-उत कौं हेरी—१०-२७५।

हेरुक—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश जी का एक नाम।

हेरें, हेरैं—क्रि. स. [हिं. हेरना] देखकर। उ.—सबै हिरानी हरि-मुख हेरें—पृ. २५९ (९४) (पाठा. हेरैं—ना. २२७१)।

हेरै—क्रि. स. [हिं. हेरना] (१) देखती-अवलोकती है। उ.—दूतिका हँसति हरि-चरित हेरै—पृ. ३६७ (९४)। (२) ढूँढ़ती-खोजती है। उ.—गई लिवाइ ग्वालनि बुलाइ कै, जहँ-तहँ बन-बन हेरै हो—४५२। (३) विचारता, ध्यान देता, समझता या मानता है। उ.—पिता एक अवगुन नहिं हेरै—५-४।

हेरो, हेरौ—क्रि. स. [हिं. हेरना] (१) देखो, अवलोको। उ.—(क) नैंकु इतै हँसि हेरौ—१०-२१६। (ख) मोहन, नेक बदन तन हेरौ—पृ. ४६० (३२)। (२) देखा, अवलोका, निहारा। उ.—ऐसे भए मनो नहिं मेरे जबहीं स्याम मुख हेरो—पृ. ३३२ (१६)। (३) विचार करो। उ.—जौ मेरी करनी तुम हेरौ—१-१९४।

हेर्‌यो, हेर्‌यौ—क्रि. स. [हिं. हेरना] देखा, निहारा, अवलोका। उ.—(क) बार-बार झकझोरि, नैंकु हलधर तन हेर्‌यौ—५८९। (ख) गावहिं सब सहचरी, कुँवरि तामस करि हेर्‌यौ—पृ. ५७१ (८)।

प्र. हेर्‌यौ चाहत—देखना-परखना चाहते हैं। उ.—कर करि कै हरि हेर्‌यौ चाहत, भाजि पताल गयौ अपहारी—१०-१९६।

हेल—संज्ञा पुं. [हिं. हील या हिल्ला] खेप।

हेलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिरस्कार या अवज्ञा करना। (२) किलोल या केलि-क्रीड़ा करना।

हेलना, हेलनो—क्रि. अ. [सं. हेलन] (१) किलोल या केलि क्रीड़ा करना। (२) ठिठोली या विनोद करके मन बहलाना। (३) खेल या खिलवाड़ समझना।

क्रि. स. [हिं. हेला] (१) हेय या तुच्छ समझना। (२) परवाह न करना, ध्यान न देना।

क्रि. अ. [हिं. हिलना] (१) (पानी में) पैठना। (२) तैरना।

हेलमेल—संज्ञा पुं. [हिं. हिलना + मिलना] (१) साथ-साथ उठने-बैठने, मिलने-जुलने आदि का संबंध, घनिष्ठता। (२) संग-साथ। (३) परिचय।

हेलया—क्रि. वि. [सं.] (१) खेल ही खेल या खिलवाड़ में। (२) हँसी-मजाक में। (३) सहज में, सरलता से।

हेला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उपेक्षा और तिरस्कार योग्य या तुच्छ समझना। (२) परवाह न करना, ध्यान न देना। (३) खिलवाड़। (४) प्रेमपूर्ण केलि-क्रीड़ा। (५) सरल काम, सहज बात। (६) साहित्य में संभोग शृंगार के अंतर्गत एक 'हाव' जिसमें नायिका आँखें या भौंहें मटकाकर या नचाकर मिलन अथवा संभोगेच्छा सूचित करती है।

संज्ञा पुं. [हिं. हल्ला] (१) हाँक, पुकार। (२) चढ़ाई, आक्रमण।

संज्ञा पुं. [हिं. रेलना] ठेलने की क्रिया या भाव, रेला, धक्का।

संज्ञा पुं. [हिं. हेल, हील] भंगी, मेहतर।

संज्ञा पुं. [हिं. हेल = खेप] (१) खेप, खेवा। (२) बारी, पारी।

हेलिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेल, हेला] मेहतरानी।

हेली—अव्य. [संबो. हे + अली] हे सखी। उ.—बसे री हेली, नयननि में घट इंदु—पृ. ३१४ (४१)।

संज्ञा स्त्री. सहेली, सखी।

वि. [हिं. हेला = क्रीड़ा] विनोदी, क्रीड़ाशील।

हेली-मेली—वि. [हिं. हेल-मेल] जिसमें मेल-जोल या घनिष्ठता हो।

संज्ञा स्त्री., पुं. (१) संगी-साथी। (२) सखी-सहेली।

हेलुआ, हेलुवा—संज्ञा पुं. [हिं. हेलना] पानी में घुसकर

या खड़े होकर संगी साथियों या सखी-सहेलियों पर पानी का हिलोरा या छींटा मारने का खेल। उ.—जमुना, तोहिं बहचौ क्यौं भावै। तोमैं कृष्ण हेलुआ (हेलुवा) खेलैं, सो सुरत्यौ नहिं आवै—५६२।

संज्ञा पुं. [हिं. हलवा] एक प्रसिद्ध खाद्य, हलुआ।

हेवंत संज्ञा पुं. [हिं. हेमंत] अगहन-पूस की ऋतु, हेमंत ऋतु।

हेव–क्रि. अ. [ब्रज. हे] थे। उ.—जब बृंदावन रास रच्यौ हरि तबहिं कहाँ तुम हेव–पृ. ५१० (८३)।

हेवाँय—संज्ञा पुं. [सं. हिमालि] पाला, हिम।

हैं—क्रि. अ. [हिं. होना] 'है' का बहुवचन रूप। उ.–खग-मृग कहँ हैं हम लीन्हें—पृ.२४५ (३१)।

अव्य. [अनु.] एक अव्यय जो निषेध, असम्मति आदि का सूचक है।

हैंगुल—वि. [सं.] हिंगुल या ईंगुर-संबंधी।

है—क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' का वर्तमानकालिक एक वचन रूप। उ.—कतहिं वकत है काम-काज बिनु—ना. ४३२४।

संज्ञा पुं. [हिं. हय] घोड़ा। उ.—हैबर गैबर सिंह हंसबर खग-मृग कहँ हैं हम लीन्हे—पृ. २४५ (३१)।

हैकड़—वि. [हिं. हेकड़] (१) हृष्ट-पुष्ट। (२) प्रबल, प्रचंड। (३) अक्खड़, उद्दंड।

हैकड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हेकड़ी] अकड़, उद्दंडता।

हैकल—संज्ञा स्त्री. [सं. हय+हिं. गला] (१) एक गहना जो घोड़े के गले में पहनाया जाता है। (२) गले का एक गहना, हुमेल।

हैजा—संज्ञा पुं. [अ. हैजः] विशूचिका रोग।

हैतुक—वि. [सं.] (१) जिसका कोई हेतु या उद्देश्य हो। (२) निर्भर, अवलंबित।

संज्ञा पुं. (१) तार्किक। (२) कुतर्की। (३) संशय-वादी, नास्तिक।

हैना—क्रि. स. [हिं. हनना] मार डालना।

वाक्य [हिं. है+ना] ऐसा ही है न?

हैफ—अव्य. [अ. हैफ़] अत्यंत खेद या शोक-सूचक शब्द।

हैबर—संज्ञा पुं. [सं. हय+वर] अच्छा घोड़ा। उ.—हैबर गैबर सिंह हंसबर खग-मृग कहँ हैं हम लीन्हे—पृ. २४५ (३१)।

हैम—वि. [सं. (हेम)] (१) सोने का बना हुआ। (२) सोने के रंग का, सुनहरा।

वि. [सं. (हिम)] (१) हिम-संबंधी। (२) जाड़े में होनेवाला।

हैमवत—वि. [सं.] (१) हिमालय संबंधी। (२) हिमालय पर होनेवाला।

संज्ञा पुं. (१) हिमालय का वासी। (२) पृथ्वी के एक वर्ष या खंड का नाम (पुराण)।

हैमवती—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पार्वती। (२) गंगा।

हैमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोनजुही।

हैरंब वि. [सं.] गणेश-संबंधी।

संज्ञा पुं. गणेश का उपासक, गाणपत्य।

हैरण्य–वि. [सं.] (१) सोने का बना हुआ। (२) सोने के रंग का, सुनहरा।

हैरत—संज्ञा स्त्री. [अ.) आश्चर्य, अचरज।

हैरान—वि. [अ.] (१) दंग, भौचक्का, चकित, स्तब्ध। (२) तंग, परेशान।

हैवान–संज्ञा पुं. [अ.] 'इंसान' का उलटा, जानवर, पशु।

वि. गँवार, उजड्ड।

हैवानियत—संज्ञा स्त्री. [अ. हैवान] (१) 'इंसानियत' का उलटा, जानवरपन। (२) जंगलीपन, गँवारूपन।

हैवानी—वि. [अ. हैवान] (१) जानवर का। (२) (कार्य) जो जानवर या पशु के करने योग्य हो।

हैसियत - संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) सामर्थ्य, शक्ति। (२) समाई, बिसात, आर्थिक स्थिति। (३) वर्ग, श्रेणी। (४) मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा। (५) धन-संपत्ति।

हैहय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक प्राचीन क्षत्रिय वंश जिसके सबसे प्रसिद्ध राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन को परशुराम ने मारा था। (२) हैहय राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन।

हैहयराज—संज्ञा स्त्री. [सं.] कार्तवीर्य सहस्रार्जुन।

है है–अव्य. [हिं. हा हा] हाय-हाय।

हैहौं—क्रि. स. [हिं. हनना] मार डालूँगा। उ.—सुन सुग्रीव प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं—९-१५७।

हों—क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' का संभाव्यकालीन बहु-वचन रूप।

होंठ—संज्ञा पुं. [सं. ओष्ठ, पु. हिं. ओठ] ओंठ, ओष्ठ।

मुहा. होंठ काटना या चबाना—आंतरिक क्षोभ या क्रोध प्रकट करना। होंठ चाटना—कोई स्वादिष्ट वस्तु खाकर और खाने की इच्छा प्रकट करना। होंठ चिपकना—किसी स्वादिष्ट वस्तु का नाम सुनकर खाने को लालायित होना। होंठ हिलाना—बोलने का प्रयत्न करना, बोलना।

होंठल—वि. [हिं. होंठ+(प्रत्य.) ल] मोटे-मोटे होंठवाला।

हो—संज्ञा पुं. [सं.] पुकारने का शब्द, हे।

क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' के अन्य पुरुष संभाव्य काल और मध्यम पुरुष, बहुवचन का वर्तमान कालीन रूप।

क्रि. अ. [ब्रज. है] वर्तमानकालिक क्रिया 'है' का सामान्य भूतकालिक रूप, था। उ.—(क) नरहरि ह्वै हिरनाकुस मारयौ काम परयौ हौं बाँकौ—१-११३। (ख) लै लै फिरे नगर मैं घर-घर जहाँ मृतक हो हौं—१-१५१। (ग) पहिलैं हौं ही हो तब एक—२-३८। (घ) जहाँ न कोऊ हो रखवैया—१०-३३५।

होइ—क्रि. अ. [हिं. होना] होता है। उ.—नागिनि के काटैं बिष होइ—९-२।

मुहा. होइ सो होइ (होई)—जो होना होगा, वह होगा। उ.–(क) पाछैं होनी होइ सो होइ–६-५। (ख) की मारि डारियो दुहुँनि को, होइ सो होइ यह कहत रान्यो—पृ. ४६९ (२)। (ग) दूध पिवाइ हृदय सों लावौं पाछे होइ सो होई – पृ. ५९५ (२८)।

होइसि—क्रि. अ. [हिं. होना] होगा। उ.—गोड़ पसारि परयौ दोउ नीकैं अब कैसी कह होइसि—१-३३३।

होइहैं—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) होंगी। (२) उपजेंगी, उगेंगी। उ.–बेनु कें राज मैं औषधी गिलि गईं होइहैं सकल किरपा तुम्हारी—४-११।

होई—क्रि. अ. [हिं. होना] होता है। उ.—हाव अरु भाव करि चलत चितवत जबै कौन ऐसैं जो मोहित न होई—८-११।

संज्ञा स्त्री. [हिं. अहोई] एक देवी की पूजा जो दीपावली के आठ दिन पहले संतान की प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए की जाती है।

होउ, होऊ—क्रि. अ. [हिं. होना] हो, घटित हो। उ.—(क) होनो होउ होउ सो अबहीं, यहि ब्रज अन्न न खाउँ—पृ. ४८९ (८०)। (ख) अब मेरे मन ऐसी षट-पद होवे होहु सु होऊ—पृ. ५५० (४९)।

होछ—संज्ञा स्त्री. [हिं. हौछा] इच्छा।

होछना, होछनो—क्रि. अ. [हिं. हौछना] इच्छा करना।

होड़—संज्ञा स्त्री. [सं. हार=विवाद, लड़ाई] (१) बाजी, शर्त। उ. सूर स्याम कह्यौ काल्हि दुहैंगे, हमहूँ तुम मिलि होड़ लगाई—६६८। (२) एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न, चढ़ा-ऊपरी, प्रतियोगिता, स्पर्द्धा। उ.—(क) दंपति होड़ करत आपुस मैं, स्य म खिलौना कीन्हौ री—१०-९८। (ख) हाथ तारी देत भाजत सबै करि-करि होड़—१०-२१३। (३) समान करने, बनने या होने का प्रयास, बराबरी। उ.—(क) मोहिं प्रभु, तुमसौं होड़ परी—१-१३०। (ख) अरुन अधर नासिका निकाई, बदत परस्पर होड़—पृ. २७७ (५७)। (ग) विद्याधर कौ रूप धारि, कह्यौ नाथ करै को तुमरी होड़—पृ. ४१७ (९२)। (घ) नैननि होड़ बदी बरसा सों—पृ. ५६५ (५७)। (४) जिद, अड़, हठ।

होड़ाबाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. होड़+बाजी] (१) शर्त। (२) स्पर्द्धा।

होड़ाहोड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. होड़] (१) किसी के बराबर होने या उससे बढ़ जाने का प्रयत्न, लाग-डाँट, चढ़ा-ऊपरी, स्पर्द्धा, प्रतियोगिता। उ.—होड़ाहोड़ी मनहिं भावते किए पाप भरि पेट–१-१४६। (२) बाजी, शर्त।

होढ़—वि. [सं.] चोरी का, चुराया हुआ।

होत—संज्ञा स्त्री. [हिं. होना] (१) होने की क्रिया या भाव, अस्तित्व। (२) पास में कुछ होने का भाव या दशा, संपन्नता, आढ्यता। (३) बिसात, समाई, वित्त, सामर्थ्य।

क्रि. अ. (१) होता है। उ.—(क) ब्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस–१-५०। (ख) भोर भयौ दधि-मथन होत—४०४। (२) जन्मता, उपजता या

अस्तित्व में आता है। उ.—ज्यौं पानी में होत बुद-बुदा पुनि ता माहिं समाहीं—पृ. ५९५ (३१)।(३) कार्य आदि संपादित होता या किया जाता है। उ.—रंग कापै होत न्यारो हरद चूनो सानि—पृ. २०८ (९५)।

संज्ञा पुं. [हिं. हो] पुकारने का शब्द, हो।

होतब, होतव्य, होतव्य—संज्ञा पुं. [सं. भवितव्य] वह जिसका होना निश्चित हो, होनेवाला, होनहर।

होतव्यता, होतव्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. भवितव्यता] वह बात जिसका होना निश्चित हो, होनहार।

होता—संज्ञा पुं. [सं. होतृ] मंत्र पढ़कर हवन करने या यज्ञ में आहुति देनेवाला।

होत्यौ, होत्यौ—क्रि. अ. [हिं. होना] हो जाता। उ.—देती अबहिं जगाइ कै, जरि-बरि होत्यौ छार—५८९।

होन—संज्ञा पुं. [हिं. होना] (१) होने की क्रिया या भाव। (२) बढ़ने, विकसित होने या उन्नति करने आदि की क्रिया या भाव। उ.—अबहिं तैं तू करत ये ढँग, तोहिं अबही होन—७१९।

क्रि. अ. होना (सहायक क्रिया)। उ.—हाँसी होन लगी है ब्रज में, जोगहिं राखौ गोई—ना. ४१६०।

प्र. ठाढ़ौ होन—खड़े होना। उ.—तनक तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ौ होन सिखावै—१०-११२।

होना—क्रि. अ. [सं. भवन, प्रा. होन] (१) सत्ता, अस्तित्व, उपस्थितिसूचक क्रिया, उपस्थित या विद्यमान रहना, अस्तित्व में आना।

मुहा. किसी का होना—(१) किसी के अधीन या वश में होना, किसी का दास या सेवक होना। (२) किसी का प्रियजन या प्रेमपात्र होना। (३) किसी का कुटुंबी या संबंधी होना। कहीं का होना (हो जाना या रहना)—कहीं जाकर बहुत देर में लौटना या वहीं रुक या ठहर जाना। (कहीं से) होकर या होते हुए—(१) जाकर, मिलकर। (२) रुककर और आवश्यक कार्य करके। हो आना—मिलने के लिए जाना। होता सवाता या सोता—जो अपना निकट संबंधी(विशेषतः पुत्र)हो। कौन होता है—क्या संबंधहै?

(२) सूरत या हालत बदलना, पहला रूप छोड़कर नये रूप में आना।

मुहा. हो बैठना—(अपने को) कुछ समझ बैठना या समझने-जताने लगना।

(३) कार्य का संपन्न या संपादित किया जाना।

मुहा. (कार्य) होना—कार्य संपादित हो जाना। (कार्य) हो चुकना या जाना—(कार्य का) लगभग समाप्ति पर होना। बस हो चुका—कुछ भी न हो सकेगा।

(४)बनने या तैयार होने की स्थिति में रहना।(५) कोई बात या संयोग आ पड़ना, घटित किया जाना।

मुहा. भई, न होना—न आज तक घटित हुआ है और न आगे होने की संभावना ही है। उ.—(क) जोबन-दान कहा धौं माँगत भई कहूँ नहिं होना—पृ. २३६ (३७)। (ख) ऐसी छवि कहूँ भई न होना—पृ. ४३८ (२१)। होकर रहना—अवश्य घटित होना, कभी न टलना। हो न हो—निश्चय ही, निस्संदेह। हो पड़ना—जान या अनजान में (भूल-चूक) हो जाना।

(६) किसी रोग, व्याधि आदि का आना। (७) बीतना, गुजरना। (८) फल या परिणाम निकलना, (९) प्रभाव या गुण दिखायी देना। (१०)जन्म लेना। (११) काम निकलना, प्रयोजन सधना। (१२) हानि पहुँचना, क्षति आना। (१३) (स्त्री का) मासिक धर्म से बैठना।

होनि—संज्ञा स्त्री. [हिं.होना] 'होने' की क्रिया या भाव। उ.—मुरली अधर बिकट भौंहैं करि ठाढ़ौ होनि त्रिभंग—पृ. ५१६ (३१)।

होनिहार—संज्ञा पुं. [हिं. होनहार] भवितव्यता।

होनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. होना] (१) होने की क्रिया या भाव। उ. पाछैं होनी होइ सो होई—६-५। (२) वह बात जो हो गयी हो। (३) वह बात जिसका होना ध्रुव या निश्चित हो, भावी, भवितव्यता। (४) वह बात जिसका होना संभव हो।

होनो—संज्ञा पुं. [हिं. होना] जो होने का हो, होनहार। उ. होनो होउ होउ सो अबहीं, यहि ब्रज अन्न न खाउँ—पृ. ४८९ (८०)।

होब—क्रि. अ. [हिं. होना] होगा। उ.—या बिन होत कहा अब सूनो—पृ. ४९८ (५९)।

होम—संज्ञा पुं. [सं.] आहुति देने का कर्म, हवन, यज्ञ। उ.—होम हवन द्विज पूजा गनपति सूरज सक्र महेस —सारा. २३४।

मुहा. होम कर देना (करना)— (१) जलाकर भस्म कर डालना। (२) बरबाद या नष्ट करना। (३) त्याग, अर्पण या उत्सर्ग करना।

होमकुंड—संज्ञा पुं. [सं.] वह गढ़ा जिसमें होम की अग्नि रखी जाय।

होमत—क्रि. स. [हिं. होमना] जलाता है, आहुति देता है। उ.—(क) तर्फत नैन हृदय होमत हृवि मन-बच-क्रम औरै नहिं काम—पृ. ४०५ (३०)। (ख) सूर सकल उपमा जो रही यों ज्यों होइ आवै कहत होमत हृवि—पृ. ४२० (१४)।

होमना, होमनो—क्रि स [हिं. होम+ना (प्रत्य.)] (१) होम या हवन करना, आहुति देना। (२) जलाना। (३) त्याग, अर्पण या उत्सर्ग करना। (४) बरबाद या नष्ट करना।

होमि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आग, अग्नि। (२) घी, घृत। (३) जल।

क्रि. स. [हिं. होमना] जलाकर, भस्म करके। उ. —तो देखत तनु होमि मदन मुख मिलौं माधवहिं जाहिं—पृ. ४९३ (१२)।

होमीय—वि. [सं.] होम संबंधी।

होम्य—वि. [सं.] (१) होमने योग्य। (२) होम का।

संज्ञा पुं. घी, घृत।

होयगो, होयगौ—क्रि. अ. [हिं. होना] होगा। उ.—मेरो अंस अवतार होयगो—सारा. ५२।

होर—वि. [अनु.] रुका या ठहरा हुआ।

होरसा—संज्ञा पुं. [सं. घर्ष=घिसना] पत्थर का चकला या चौका जिस पर चंदन घिसा जाता है।

होरा—संज्ञा पुं. [सं. होलक, हिं. होला] (१) आग में भुने हुए हरे चने (बूट) की फलियाँ। (२) चने का हरा दाना।

संज्ञा स्त्री. [यूनानी] (१) एक अहोरात्र का चौबीसवाँ भाग, घंटा। (२) एक राशि का आधा भाग। (३) जन्मकुंडली।

होरिल, होरिला—संज्ञा पुं. [देश.] नवजात शिशु।

होरिहा, होरिहार, होरिहारा संज्ञा पुं. [हिं. होली+हा, हार] होली खेलनेवाला।

होरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. होली] (१) हिंदुओं का एक प्रसिद्ध त्योहार जो फागुन की पूर्णिमा को होता है। इसमें आग जलायी जाती है और लोग परस्पर रंग छिड़कते तथा अबीर-गुलाल लगाते हैं। उ.—(क) तनु जोबन ऐसे चलि जैहै जनु फागुन की होरी—पृ. ३८३ (४०)। (ख) मिटि गए कलह कलेस कुलाहल जनु करि बीती होरी—पृ. ५८४ (५२)।

मुहा खेलत होरी—परस्पर रंग छिड़कते, गुलाल लगाते और कोलाहल करते हैं। उ.—खेलत हो हो होरी अति सुख प्रीति प्रगट भई—पृ ४३५ (६९)। खेलि होरी—परस्पर रंग छिड़ककर, गुलाल लगाकर, गीत गाकर और कोलाहल करके। उ.—सूरदास भगवंत भजन बिनु चले खेलि फागुन की होरी —१-३०३। (२) लकड़ियों और खर-पतवार का वह ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है। (३) एक प्रकार के गीत जो फागुन में गाये जाते हैं। उ.—औरौ सखी जाल बिनु सोभित सकल ललित तनु गावति होरी—पृ. ४३१ (९३)।

होलक—संज्ञा पुं. [सं.] होरा।

होला—संज्ञा पुं. [सं.] (१) होली का त्योहार। (२) सिखों की होली जो होली जलने के दूसरे दिन होती है।

संज्ञा पुं. [सं. होलक] (१) हरे चने या मटर आदि की आग में भुनी फलियाँ। (२) चने का हरा दाना।

होलाका—संज्ञा स्त्री. [सं.] होली का त्योहार।

होलाष्टक—संज्ञा पुं. [सं.] होली के पहले आठ दिन जिनमें विवाह आदि शुभ कृत्य नहीं किये जाते।

होलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) होली का त्योहार। (२) लकड़ी, खर-पतवार आदि का वह ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है। (३) एक राक्षसी का नाम।

होलिहा, होलिहार, होलिहारा—संज्ञा पुं. [हिं. होली] धूम-धाम से होली खेलनेवाला।

होली—संज्ञा स्त्री. [सं. होलिका] (१) फागुन की पूर्णिमा को मनाया जानेवाला, हिंदुओं का एक प्रसिद्ध त्योहार

जिसमें आग जलाकर लोग परस्पर रंग छिड़कते, अबीर-गुलाल लगाते और गले मिलते हैं।

मुहा. होली खेलना—एक दूसरे पर रंग छिड़कना। अबीर-गुलाल लगाना और खूब कोलाहल कर के आनंद मनाना।

(२) लकड़ी, खर-पतवार, घास-फूस आदि का वह ढेर जो होली के होली दिन जलाया जाता है। (३) एक प्रकार के होली-संबंधी शृंगारिक गीत जो फागुन में गाये जाते हैं।

होलैया—संज्ञा पुं. [हिं. होली] होलिहार।

होवनहार, होवनहारा वि. [हिं. होना + हारा] जो अवश्य होने को हो, होनहार, भावी।

होवनहारि, होवनहारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. होना + हारी] वह बात जो अवश्य होनेवाली हो, होनी। उ.—दीखति है कछु होवनहारी—४-५।

वि. स्त्री. जो (बात) अवश्य होने वाली हो।

होवना, होवनो—क्रि. अ. [हिं. होना] होना।

होवै—क्रि. अ. [हिं. होना] हो, घटित हो। उ.—अब मेरे मन ऐसी षटपद होवै होहु सु होऊ—पृ. ५५० (४९)।

होश—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) चेत, चेतना, संज्ञा।

मुहा. होश उड़ना या जाते रहना—कष्ट, भय या आशंका से चित्त का इतना व्याकुल होना कि सुध-बुध भूल जाना। होश करना—बुद्धि ठीक-ठिकाने रखना। होश की दवा करना—बुद्धि ठीक-ठिकाने करना, समझ-बूझ कर काम करना। होश ठिकाने होना—(१) मोह, भ्रम या भ्रांति दूर होना। (२) थकावट, घबराहट या अधीरता का कारण न रहने पर चित्त स्वस्थ होना। (३) हानि सहकर या दंड पाकर गर्व मिटना और भूल पर पछतावा होना। होश दंग हो जाना या होना—बहुत चकित होना। होश पकड़ना—चेतना प्राप्त करना, सचेत होना। होश में आना—बेहोशी या मूर्च्छा दूर होने पर पुनः चेतना प्राप्त करना। होश सँभालना—अनजान न रहना; समझदार, सयाना या वयस्क होना।

(२) याद, सुध, स्मरण।

मुहा. होश दिलाना—याद दिलाना, स्मरण कराना।

(३) अक्ल, समझ, बुद्धि।

होश-हवास—संज्ञा पुं. [फ़ा. होश + अ. हवास] चेतना और बुद्धि।

मुहा. होश-हवास गुम होना—चेतना और बुद्धि का ठीक-ठीक काम न करना, कर्तव्य-अकर्तव्य न सूझना। होश-हवास ठीक या दुरुस्त करना—(१) ऐसा दंड देना कि बुद्धि ठीक-ठीक काम करने लगे। (२) ऐसा प्रतीकारात्मक कार्य करना जिससे व्यक्ति अकड़, घमंड आदि भूलकर सामान्य स्थिति में आ जाय। होश-हवास ठीक या दुरुस्त होना—ऐसा दंड मिलना कि बुद्धि ठीक-ठिकाने हो जाय। (२) प्रतीकारात्मक कार्य किये जाने पर अकड़, घमंड आदि भूलकर व्यक्ति का सामान्य व्यवहार करने लगना।

होशियार—वि. [फ़ा.] (१) समझदार, बुद्धिमान। (२) निपुण, कुशल। (३) सावधान, सचेत।

मुहा. होशियार करना—(कष्ट, अनिष्ट आदि से बचने या सतर्क रहने को) सावधान या सचेत करना।

(४) जिसने होश सँभाला हो, जो समझदार, सयाना और वयस्क हो गया हो। (५) चालाक, धूर्त।

होशियारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) समझदारी, बुद्धिमानी। (२) कुशलता, निपुणता। (३) सावधानी, सतर्कता। (४) कौशल, युक्ति। (५) सयानापन। (६) चालाकी, धूर्तता।

होस—संज्ञा पुं. [फ़ा. होश] होश।

संज्ञा. स्त्री. [अ. हवस] (१) चाह, लालसा, कामना। (२) हौसला, उमंग, उत्साह।

होसा-होसी—संज्ञा स्त्री. [अ. हवस = लालसा] लाग-डाँट, होड़, स्पर्द्धा।

होहि—क्रि. अ. [हिं. होना] होता है। उ.—कतहि बकत है काम-काज बिनु होहि न ह्याँ तैं हातौ—ना. ४३२४।

होहु—क्रि. अ. [हिं. होना] हो। उ.—(क) सूरदास प्रभु कंस मारि कै, होहु यहाँ के भूप—पृ. ४६३ (६१)। (ख) सब दल होहु हुसियार—पृ. ५७२ (८)।

हो हो—क्रि. वि. [अनु. हो] कोलाहल करके। उ.—हो-हो हो-हो होरी अति सुख प्रीति प्रगट भई—पृ. ४३५ (६९)।

हौं -सर्व. [सं. अहम्] ब्रजभाषा में उत्तमपुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप, मैं। उ.—हौं इक नई बात सुनि आई—१०-२०।

क्रि. अ. [हिं. होना] 'होना' का वर्तमानकालिक उत्तमपुरुष एकवचन रूप, हूँ।

हौंकना, हौंकनो—क्रि. अ. [हिं. हुंकार] (१) गरजना। (२) हाँफना।

हौंस—संज्ञा स्त्री. [अ. हवस] चाह, कामना, लालसा। उ.—(क) हौंस होइ तौ ल्याऊँ पूजा—३९६। (ख) हांति हौंस न ताहि बिष की, कियो जिन मधु पान—पृ. ५५९ (२९)।

मुहा. हौंस रखना—इच्छा बाकी न रखना, कामना पूरी करना। उ.—कछू हौंस राखै जनि मेरी, जोइ-जोइ मोहिं रुचै री—१०-१७६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हौसला] उमंग, उत्साह।

हौ—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) 'होना' के मध्यमपुरुष, एकवचन का वर्तमानकालिक रूप, हो। (२) 'है' का सामान्य भूतकालिक रूप, था।

संज्ञा पुं. [सं. हो] पुकारने का शब्द, हे।

अव्य. [हिं. हाँ] स्वीकृति-सूचक शब्द, हाँ।

हौआ—संज्ञा पुं. [अनु. हौ] बच्चों को डराने के लिए कल्पित, एक भयंकर जीव या वस्तु, हाऊ।

हौका—संज्ञा पुं. [हिं. हाय] (१) किसी चीज को पाने की बहुत प्रबल इच्छा, लोभ या तृष्णा। (२) अभाव, विवशता आदि से ली गयी लंबी साँस।

हौज, हौद, हौदा—संज्ञा पुं. [अ. हौज़] पानी का छोटा कुंड।

हौदा—संज्ञा पुं. [अ. हौदज] हाथी की पीठ पर सवारी के लिए कसा जानेवाला चौखटे जैसा आसन।

हौदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. हौदा=हौज] छोटा हौज।

हौन—संज्ञा पुं. [सं. अहम्] अपनापन, निजता।

संज्ञा पुं. [सं. हवन] होम, हवन।

क्रि. अ. [हिं. होना] होना है, बढ़ना है, उन्नति करना है। उ.—पाँच बरस कै सात को, आगैं तोकौं हौन—५८९।

हौरा—संज्ञा पुं. [अनु.] हल्ला, कोलाहल।

हौल—संज्ञा पुं. [अ.] डर, भय।

मुहा.—हौल पैठना या बैठना—जी में दहशत या डर समा जाना।

हौलदिल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) दिल की धड़कन। (२) एक रोग जिसमें दिल बहुत धड़कता है।

वि. (१) जिसका दिल डर से धड़कता हो। (२) जो बहुत डरा या घबराया हुआ हो।

हौलदिला—वि. [फ़ा. हौलदिल] डरपोक।

हौलदिली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) दिल की धड़कन। (२) दिल धड़कने का रोग। (३) घबराहट, व्याकुलता। (४) एक तरह के पत्थर का टुकड़ा जो दिल धड़कने-जैसे रोगी को दूर करने के लिए रोगी को पहनाया जाता है।

हौली—संज्ञा स्त्री. [सं. हाला] देशी शराब बनने-बिकने की जगह।

हौले—क्रि. वि. [हिं. हरुआ] (१) धीरे-धीरे। (२) चुपके-चुपके। (३) हलके हाथ से।

हौवा—संज्ञा स्त्री. [अं.] संसार की वह पहली स्त्री जो आदम की पत्नी थी और जिसने मनुष्य जाति को जन्म दिया था।

संज्ञा पुं. [हिं. हौआ] हौआ, हाऊ।

हौस—संज्ञा स्त्री. [अ. हवस] (१) प्रबल इच्छा या कामना। (२) हौसला, उत्साह। उ.—पुनि गए तहाँ जहाँ धनुष, बोले सुभट, हौस मन जिनि करौ बन-बिहारी—पृ. ४६६ (८४)। (३) हर्षोत्कंठा।

हौसनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. हौस] इच्छा या कामना से (में)। उ.—मरियत देखिबे की हौसनि—पृ. ४८६ (४७)।

हौसला—संज्ञा पुं. [अ. हौसिलः] (१) कोई काम करने की उमंग या उत्कंठा।

मुहा. (जी या मन का) हौसला निकलना—इच्छा पूरी होना, अरमान निकलना। (जी या मन का) हौसला निकालना—सारा प्रयत्न कर डालना।

(२) जोश और हिम्मत, उत्साह ।

मुहा. हौसला पस्त होना—जोश ठंढा पड़ जाना, हिम्मत न रह जाना, उत्साह न बढ़ना ।

(३) बढ़ी हुई तबियत, प्रफुल्लता ।

मुहा. (जी या मन का) हौसला निकालना—किसी उत्सव या हर्षावसर पर इच्छानुसार धूमधाम कर लेने का अरमान पूरा हो जाना । (जी या मन का हौसला निकालना—खूब धूम-धाम और आनंद से काम करके जी का अरमान पूरा करना ।

हौसलामंद—वि. [फ़ा.] (१) जिसमें लालसा या कामना हो । (२) जिसमें खूब उमंग हो । (३) साहसी, उत्साही ।

हौसाहौस—संज्ञा पुं. [हिं. हौस] लागडाँट, होड़ ।

ह्याँ—अव्य. [हि. यहाँ] इस स्थान पर, यहाँ । उ.—(क) काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं—१-२९ । (ख) याकौ ह्याँ तैं देहु निकारि—१-२८४ । (ग) ह्याँ के बासी —९-१६५ ।

ह्यो, ह्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. हिया] हृदय ।

क्रि. अ. [व्रज. हो] था ।

ह्रद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा ताल, झील । (२) सरोवर । उ.—चली जाति धारा ह्वै अध कौं, नाभी ह्रद अवगाह—६३७ । (३) ध्वनि । (४) किरण ।

ह्रदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी ।

ह्रसित—वि. [सं.] जिसका ह्रास हुआ हो ।

ह्रस्व—वि. [सं.] (१) छोटा, लघु । (२) छोटे आकार का, नाटा । (३) कम, थोड़ा । (४) नीचा । (५) तुच्छ ।

संज्ञा पुं. वर्णमाला में वे स्वर जो दीर्घ की अपेक्षा कम खींचकर बोले जाते हैं जैसे अ, इ, उ आदि; ऐसे स्वरों की मात्रा (छंद में) एक समझी जाती है ।

ह्रस्वता—संज्ञा स्त्री. [सं.] छोटापन, लघुता ।

ह्राद संज्ञा पुं. [सं.] (१) ध्वनि । (२) शब्दस्फोट ।

ह्रादिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी ।

ह्रादी—वि. [सं. ह्रादिन्] ध्वनि या गर्जन करनेवाला ।

ह्रास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वैभव, गुण, तत्व आदि में कम हो जाने की क्रिया या भाव । (२) घिसने, छीजने आदि की क्रिया या भाव । (३) कमी, क्षीणता । (४) उतार, घटाव ।

ह्रासन—संज्ञा पुं. [सं.] कम करना, घटाना ।

ह्री—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लज्जा, संकोच । (२) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही थी ।

ह्लाद—संज्ञा पुं. [सं.] आनंद, प्रफुल्लता ।

ह्लादन—संज्ञा पुं. [सं.] आनंदित करना ।

ह्लादिनी—वि. स्त्री. [सं.] प्रफुल्लित करनेवाली ।

ह्वाँ—अव्य. [हिं. वहाँ] उस स्थान पर, वहाँ । उ.—(क) यह सुनि ह्वाँ तैं भरत सिधायौ ५-३ । (ख) जाइ करौ ह्वाँ बोध सबनि कौं—पृ. ३६६ (८३) ।

ह्वैं—अव्य. [हिं. वहाँ+ही] वहीं ।

ह्वै—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) होकर । उ.—जाति चली धारा ह्वै अध कौं—६३७ ।

प्र० ठाढ़े ह्वै—खड़े होकर । उ.—बिछुरन भेंट देहु ठाढ़े ह्वै—पृ. ४६० (३२) ।

(२) भिन्न या परिवर्तित रूप धारण करके ।

प्र० ह्वै गए—हो गये, बन गये । उ.—छोरी बंदि बिदा किए राजा, राजा ह्वै गए राँको—१-११३ ।

(३) बनकर । उ.—अंग सुभग सजि ह्वै मधु मूरति, नैननि माँह समाऊँ—१०-४९ । (४) जन्म लेकर, शरीर धारण करके, अवतार लेकर । उ.—(क) सोई सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै—१-४ । (ख) नरहरि ह्वै हिरनाकुस मारयौ—१-११३ । (ग) दंतबक्र सिसुपाल जो भए, बासुदेव ह्वै सो पुनि हए —१०-२ ।

ह्वैहैं—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) (कार्य आदि) आरंभ या संपादित होंगे । उ.—ह्वैहैं जज्ञ अब देव मुरारी—७-२ । (२) होंगे, बनेंगे ।

मुहा. कौन के ह्वैहैं—किसके सगे या आत्मीय होंगे । उ.—काके भए कौन के ह्वैहैं, बँधे कौन की डोरी—पृ. ४९८ (६३) ।

ह्वैहै—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) जन्म लेगा, जन्मेगा । उ.—(क) ता रानी सेंती सुत ह्वैहै—६-५ । (ख) पाछैं भयौ, न आगैं ह्वैहै, सब पतितनि सिरताज—१-९६ । (२) घटित होगा । उ.—सूरदास प्रभु रची सु ह्वैहै—१-२६४ ।

ह्वैहौं—क्रि. अ. [हिं. होना] (१) होऊँगा। उ.—नंद —१०-३५। (२) बनूँगा, कहलाऊँगा। उ.—ह्वैहौं राइ, मुनि बिनती मेरी तबहिं बिदा भल ह्वैहौं पूत नंद बाबा कौं, तेरौ सुत न कहैहौं—१०-१९३।

सूचना—'कोश' का अगला खंड परिशिष्ट रूप में देने की योजना है। उसमें छूटे हुए शब्द, अर्थ और उदाहरण दिये जायँगे। पाठकों से निवेदन है कि सूरदास अथवा ब्रजभाषा के किसी भी कवि का कोई शब्द या अर्थ यदि उन्हें इस कोश में न मिले तो संपादक को—विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ के पते पर—सूचना देने की कृपा करें। उसके लिए संपादक उनका सदा आभारी रहेगा।

परिशिष्ट

ब्रजभाषा-व्याकरण की रूपरेखा

हिंदी के 'ब्रज' शब्द का तत्सम रूप 'व्रज' है जो 'व्रज्' (=जाना) धातु से बना है। 'व्रज' शब्द का पहली बार प्रयोग 'ऋग्वेद-संहिता' में मिलता है[1]; किंतु वहाँ यह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कुछ-कुछ इससे मिलता-जुलता अर्थ संस्कृत की एक प्राचीन उक्ति—व्रजंति गावो यस्मिन्निति व्रज:—का भी है जिसके अनुसार 'व्रज' उस स्थान को कहा गया है जहाँ नित्य गाएँ चलती या चरती हों। डॉ० धीरेंद्र वर्मा के अनुसार, 'हरिवंश आदि पौराणिक साहित्य में इस शब्द का प्रयोग मथुरा के निकटस्थ नंद के व्रज अर्थात् गोष्ठ-विशेष के अर्थ में हुआ है'[2]। कालांतर में, मथुरा का चतुर्दिक प्रदेश ब्रज या ब्रजमंडल के नाम से प्रसिद्ध हो गया जिसके अंतर्गत बारह वन और चौबीस उपवन कहे गये हैं तथा जिसकी परिधि चौरासी कोस की मानी गयी है। इनका विस्तृत विवरण डॉ० गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' नामक ग्रंथ में दिया है[3]।

हिंदी-साहित्य में व्रज या ब्रज शब्द सबसे पहले मथुरा के निकटवर्ती प्रदेश अर्थात् ब्रज-मंडल के लिए ही प्रयुक्त हुआ। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हिंदी भाषा और साहित्य के प्रथम तीन विकास-कालों में यहाँ की भाषा को 'ब्रजभाषा' संज्ञा नहीं दी गयी। परंतु इतना निश्चित है कि कम से कम संस्कृत से, जन-भाषा की भिन्नता सूचित करने के लिए, किसी न किसी शब्द का प्रयोग अवश्य किया जाता होगा और वह शब्द है 'भाषा'। हिंदी के प्राचीन कवियों ने जब-जब भाषा-विशेष के अर्थ में इसका प्रयोग किया तब-तब उनका आशय जन-साधारण में प्रचलित उस बोली या विभाषा से रहा जो साहित्यिक भाषा की विशेषताओं से युक्त हो चुकी थी, जिसमें साहित्य-रचना भी होती थी और जो संस्कृत से भिन्न थी। अतएव दसवीं शताब्दी से लेकर आज तक जिस स्थान और जिस समय में जो भाषा जन-साधारण में प्रचलित रही, उसी के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा। गोस्वामी तुलसीदास जब 'का भाषा का संस्कृत' कहते हैं, तब उनका आशय सामान्य जन-भाषा से है; परंतु 'रामचरितमानस' के संबंध में 'भाषा भनिति मोरि मति भोरी' कहते समय 'भाषा' से उनका तात्पर्य अवधी से है, यद्यपि उनके अनेक ग्रंथ ब्रजभाषा में भी हैं। इसी प्रकार नंददास 'ताही ते यह कथा जथामति भाषा कीनी' और केशवदास के—

रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास।

\+ \+ \+

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केसवदास॥

कथनों में 'भाषा' शब्द से आशय ब्रजभाषा से है। इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के संस्कृतज्ञ पंडित जब आधुनिक

---

१. 'ब्रजभाषा-व्याकरण', भूमिका, पृ. ९।

२. 'ब्रजभाषा-व्याकरण', भूमिका, पृ. ९ की पादटिप्पणी सं० २।

३. डॉ० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप औरवल्लभस-सम्प्रदाय,' प्रथम भाग, पृ० ७।

हिंदी को 'भाषा' कहते हैं, तब वे इसके द्वारा खड़ीबोली रूप की ओर ही संकेत करते हैं।

ब्रज-मंडल या प्रदेश की साहित्यिक भाषा के अर्थ में 'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग कदाचित् सबसे पहले भिखारी दास (कविता-काल सन् १७२५ से १७५०) -कृत 'काव्य-निर्णय' में हुआ—

भाषा ब्रजभाषा रुचिर कहैं सुमति सब कोई।
मिलै संस्कृत पारसिहु, पै अति प्रगट जु होई॥

इसी के साथ-साथ अपने उक्त ग्रंथ में भिखारीदास ने अवधी के लिए 'मागधी' शब्द का प्रयोग किया गया है—

ब्रज मगधी मिलै अमर नाग जवन भाषानि।
सहज पारसीहू मिलै, षट बिधि कवित बखानि।

इन दोनों अवतरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि ब्रजभाषा के संबंध में उन्होंने एक बात और लक्ष्य की थी। वह यह कि ब्रजभाषा, कम से कम उनके समय में, अपने शुद्ध रूप में प्रचलित नहीं थी और उसमें अनेक भाषाओं के शब्द मिल गये थे जिन्हें उसने अकस्मात् कर लिया था। भिखारीदास के पश्चात् ब्रज-प्रदेश की बोली का यह नामकरण साहित्य-जगत् में स्वीकृत हो गया और आज उसका यही नाम उत्तरी भारत में सर्वत्र व्यवहृत होता है।

ब्रजभाषा का क्षेत्र-विस्तार—

मथुरा नगर एक प्रकार के ब्रजमंडल का केन्द्र स्थान है। इसके आसपास का भू-भाग प्राचीन काल से श्रीकृष्ण के पितामह शूरसेन के नाम पर 'शौरसेन प्रदेश' कहलाता रहा है। इतिहासकारों के अनुसार, मथुरा नगरी इस प्रदेश की राजधानी थी। सातवीं शताब्दी तक इस प्रदेश का विस्तार बहुत बढ़ गया था और पश्चिम में सिंधु नदी तथा दक्षिण में नरवर और शिवपुरी तक इसकी सीमाएँ पहुँच गयी थीं। उस समय भरतपुर, करौली, धौलपुर, ग्वालियर आदि भी इसी के अन्तर्गत थे[1]। मिर्जाखाँ के 'तुहफ़तुल हिन्द' नामक ब्रजभाषा-व्याकरण में ग्वालियर के अतिरिक्त चंद्रवार[2] भी ब्रजभाषी प्रदेश में ही माना गया है[3]। वस्तुतः ब्रजभाषा का विशुद्ध रूप मथुरा, आगरा एटा, अलीगढ़, धौलपुर आदि स्थानों में पाया जाता है।

ब्रजमंडल के चारों ओर अर्थात् गंगा-यमुना के मध्यवर्ती[4] और यमुना के दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेश में बोली जानेवाली भाषा भी ब्रज की बोली ही है, यद्यपि स्थान के व्यवधान के फलस्वरूप उस पर थोड़ा-बहुत अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़ने लगता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, 'गुड़गाँव भरतपुर, करौली तथा ग्वालियर के पश्चिमोत्तर भाग में इसमें, राजस्थानी तथा बुंदेली की कुछ-कुछ झलक आने लगती है। बुलन्दशहर, बदायूँ और नैनीताल की तराई में खड़ीबोली का प्रभाव शुरू हो जाता है तथा एटा, मैनपुरी और बरेली जिलों में कुछ कन्नौजीपन आने लगता है। वास्तव में पीलीभीत तथा इटावा की बोली भी कन्नौजी की अपेक्षा ब्रजभाषा के अधिक निकट है[5]। वस्तुतः ब्रजभाषा ने अपने क्षेत्र को व्यापक बनाने के लिए निकटवर्ती सभी प्रमुख बोलियों और विभाषाओं की उन मुख्य-मुख्य विशेषताओं को अपना लिया था जो उसको अधिक सौष्ठव अथवा काव्यभाषोचित गुण प्रदान करने में सहायक हो सकती थीं। साहित्यिक भाषा के लिए इस प्रकार की ग्रहणशीलता अनिवार्य होती है; इसी से उसमें जीवन-शक्ति बढ़ती है और तभी वह जीवित भाषा कहलाने की अधिकारिणी बनती है। परन्तु इसका एक परिणाम यह भी होता है कि विशुद्ध बोली से उसका संबंध क्रमशः कम होता जाता है; अस्तु।

ब्रजभाषा में केवल ब्रजप्रदेशीय कवियों ने ही रचनाएँ की हों, सो बात भी नहीं है। सूरदास और उनके समकालीन कुछ कवि अवश्य ब्रजभाषी थे; धीरे-धीरे समीपवर्ती प्रदेशों के साथ-साथ ब्रजभाषा में रचना करने वाले दूरस्थ क्षेत्रीय कवियों की संख्या भी बढ़ने लगी। इनमें से अधिकांश कवियों ने ब्रजभूमि में रहकर नहीं,

१. 'हिन्दी की प्रादेशिक भाषाएँ,' सन् १९२९, पृ० २७।

२. चंदवार, छंदवार या जनवार जिला आगरे से २५ मील पूर्व मथुरा से इटावा के मार्ग पर जमुना नदी के किनारे है जिसमें अधिकांशतः चौहानों की बस्ती है—'आइने अकबरी,' जैरेट, पृ० १८३।

३. श्री जियाउद्दीन, 'ग्रैमर आव ब्रजभाषा' की भूमिका, पृ० ७।

४. मिर्जा खाँ के 'तुहफ़तुल हिंद' नामक व्याकरण में भी गंगा-यमुना के बीच के प्रदेश को 'ब्रजभाषा-प्रांत' कहा गया है। देखिए—भूमिका, विश्वभारती संस्करण, सन् १९३५, पृ० ७।

५. 'हिंदी भाषा का इतिहास', भूमिका, पृ० ६५

उसके साहित्यिक रूप का अध्ययन करके ही ब्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त किया था और तदनंतर वे काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। उनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करके ही सन् १७४६ में भिखारीदास ने 'काव्य-निर्णय' में लिखा था कि ब्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रज-वास की आवश्यकता नहीं है, केवल उसके कवियों की वाणी का विधिवत् अध्ययन कर लेने से ही काम चल सकता है—

ब्रजभाषा हेतु ब्रजबास ही न अनुमानो,
ऐसे-ऐसे कबिन्ह की बानीहूँ से जानिए।

बात यह थी कि ब्रजभाषा का प्रचार उस समय तक पूर्व बिहार से पश्चिम में उदयपुर तक और उत्तर में कुमायूँ-गढ़वाल से दक्षिण में महाराष्ट्र तक हो गया था। इस विस्तृत भू-भाग में अनेक बोलियाँ, विभाषाएँ और प्रान्तीय भाषाएँ थीं; परन्तु पाठकों के बहुत व्यापक समुदाय से आदर पाने का लोभ तत्कालीन कवियों को ब्रजभाषा में ही रचना करने को प्रवृत्त करता था। जो कवि ब्रजप्रदेश के आदि-वासी नहीं थे, उनकी मातृभाषा निश्चय ही भिन्न थी। कन्नौजी, बुन्देली आदि बोलनेवाले तो मातृभाषा को ब्रज-भाषा से किसी सीमा तक मिलता-जुलता मान भी सकते थे; परन्तु दिल्ली, गढ़वाल, बनारस, रीवाँ, उदयपुर, गुज-रात आदि स्थानों में और उनके समीपवर्ती प्रदेशों में बसनेवाले कवियों की मातृभाषा और ब्रजभाषा में पर्याप्त अंतर था। फिर भी ब्रजभाषा में सफलतापूर्वक रचना करके इन्होंने सिद्ध कर दिया कि उनके समय तक यह उत्तरी भारत की सबसे व्यापक काव्यभाषा थी और इसकी पुष्टि के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं है।

ब्रजभाषा का ध्वनि-समूह—

ब्रजभाषा की सामान्य ध्वनियाँ, जो हिन्दी की अन्य बोलियों की ध्वनियों से मिलती-जुलती हैं, इस प्रकार हैं—

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ए̮ ओ ओ̮ ऐ = अए औ = अओ।

व्यंजन—कंठ्य क् ख् ग् घ्
तालव्य च् छ् ज् झ्
मूर्द्धन्य ट् ठ् ड् ढ्
दंत्य त् थ् द् ध्
ओष्ठ्य प् फ् ब् भ्
अनुनासिक (ङ्) (ञ्) (ण्) न् (न्ह) म् (म्ह) और अनु-स्वार = ं।
अंतस्थ य् र् (र्ह) ल् (ल्ह) व्
ऊष्म (श्) (ष्) स् ह् और विसर्ग:।
नयी ध्वनियाँ ड़् ढ़्

उक्त ध्वनि-समूह में कोष्ठक में लिखे लिपि-चिह्न अप्रधान हैं और शेष प्रधान। अप्रधान चिह्नों की स्थिति तो स्पष्ट करने की आवश्यकता है ही, प्रधान वर्णों में से भी कुछ के विषय में विशेष व्याख्या अपेक्षित है।

स्वर—ब्रजभाषा के स्वरों में केवल 'ऋ' के संबंध में विचार करना है।

ऋ—'ऋ' ब्रजभाषा का अप्रधान स्वर है। इसके स्थान पर ब्रजभाषा के कवियों ने 'रि' अथवा 'इर्' का प्रयोग किया है। यदि सर्वत्र ऐसा किया गया होता और 'ऋ' की मात्रा (ृ) का भी प्रयोग न किया जाता तब तो ब्रजभाषा के ध्वनिसमूह से 'ऋ' को सर्वथा बहिष्कृत किया जा सकता था, परंतु ऐसा हुआ नहीं है और अनेक शब्दों में 'ऋ' की मात्रा तो सुरक्षित है ही, उसका भी प्रयोग हुआ है। प्राचीन ब्रजभाषा-काव्य में यद्यपि 'ऋचा' और 'ऋतु' के स्थान पर 'रिचा' और 'रितु' दिये गये हैं; तथापि 'ऋतु', 'ऋन', 'ऋषिनि आदि में 'ऋ' भी सुरक्षित है। इसी प्रकार कृत, कृपा, गृह, तृषा, दृढ़, भृगु, मृतक आदि अनेक शब्दों में उसकी मात्रा भी मिलती है। यह हो सकता है कि 'ऋ' का प्रयोग ब्रजभाषा की प्रकृति न समझनेवाले लिपिकारों ने किया हो, परंतु उसकी मात्रा के संबंध में यह बात निश्चित है कि स्वयं कवियों ने अनेक तत्सम शब्दों को उनके मूल रूप में ही अपना लिया जिनमें 'ऋ' की मात्रा सुरक्षित है, यद्यपि इसका उच्चारण 'रि' या 'इर्' से मिलता-जुलता ही किया जाता है। तात्पर्य यह है कि 'ऋ' के प्रयोग को यदि लिपिकारों आदि की सामान्य भूल ही मान लिया जाय, तो भी उसकी मात्रा के ही प्रयोग-बाहुल्य के आधार पर इसे ब्रजभाषा के स्वरों में गौण स्थान की अधिकारिणी अवश्य मानना चाहिए।

स्वरों के अनुच्चरित और लघूच्चरित प्रयोग—ब्रजभाषा-काव्य के अनेक पदों और छंदों में चरण की मात्रा-पूर्ति हो जाने पर गणना की दृष्टि से,'अ'के अनुच्चरित प्रयोग मिलते हैं; जैसे—कपिलऽवतार, कुटुँबऽवगाहै, क्योंऽव, देह-ऽभिमान, प्रतापऽधिकाई, बिमुखऽरु, भागवतऽनुसार। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे वाक्य भी मिलते हैं जिनमें लघुमात्रिक व्यंजन का भी, जिसमें 'अ' संयुक्त रहा है, मात्रा की दृष्टि से, उच्चारण नहीं किया जाता। ऐसे प्रयोगों में अनुच्चरित व्यंजन अर्द्धाक्षर माना जाता है; जैसे—नृप कह्यौ मंत्र जंत्र कछु आहि। अतिविपरीत तृनावर्त्त आयौ। सूरदास प्रभु तुम्हारे गहत ही एक-एक तैं होत बियौ। आपु बँधावत भक्तनि छोरत बेद बिदित भई बानी।

अ की तरह अनुच्चरित इ और उ के उदाहरण ब्रजभाषा काव्य में बहुत कम मिलेंगे; जैसे—इनहिं स्वाद जो लुब्ध सूर सोइ जानत चाखनहारौ; परंतु साथ-साथ प्रयुक्त दो अनुच्चरित 'इ' का एक उदाहरण 'सूरसागर' में मिलता है—वा भय तैं मोहिं इनहिं उबार्‌यौ।

ब्रजभाषा-काव्य में ऊ के लघूच्चरित प्रयोग बहुत कम मिलते हैं, शेष स्वरों के कुछ उदाहरण यहाँ संकलित हैं—

१. आ के लघूच्चरित प्रयोग—कहा कमी जाके राम धनी। बड़े पतित पासंगहु नाहीं अजामिल कौन बिचारो। सत्य भक्तहिं तारिबे कौं लीला बिस्तारी। कहा जानै कै वाँ मुवौ (रे) ऐसे कुमति कुमीच। राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।

२. ई के लघूच्चरित प्रयोग—तिनकी साखि देखि हिरनाकुस-रावन-कुटुँब भई ख्वारी। अब आज तैं आप आगैं दई लै आइए चराइ। माया-मोह-लोभ कैं लीन्हैं जानी न बृंदाबन रजधानी। मातु-पिता-भैया मिले (रे) नई रुचि नई पहिचानि।

३. ए के लघूच्चरित प्रयोग—प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ। दर-दर लोभ लागि लिए डोलति नाना स्वाँग बनावै। किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए। नहिं रुचि पंथ पदादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै।

४. ऐ के लघूच्चरित प्रयोग—इन्द्र समान हैं जाके सेवक नर बपुरे की कहा गनी। और को है तारिबै कौं कहौ कृपा ताता। और हैं आजकाल के राजा मैं तिनमैं सुल्तान।

५. ओ के लघूच्चरित प्रयोग—अर्थ काम दोउ रहैं दुवारैं धर्म-मोक्ष सिर नावैं। जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज उर मंडत निरमोलक हार। पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ धर्म-सुधन लुटयौ। कपट लोभ वाके दोउ भैया ते घर के अधिकारी।

६. औ के लघूच्चरित प्रयोग—अंबरीष कौं साप देन गयौ बहुरि पठायौ ताकौं। मरियत लाज पाँच पतितनि मैं हौं अब कहौ घटि कातैं। तो कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ। महा कुबुधि कुटिल अपराधी औगुन भरि लियौ भारी। हरि जू सौं अब मैं कहा कहौं।

स्वरों के सानुनासिक प्रयोग—

ब्रजभाषा के प्रायः सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी काव्य में बराबर प्रयुक्त हुए हैं। उसमें ए के लघूच्चरित सानुनासिक रूप (एँ) के उदाहरण अधिक नहीं मिलते; शेष में से प्रत्येक के कुछ प्रयोग यहाँ संकलित हैं। स्थानाभाव से दीर्घ स्वरों के लघूच्चरित प्रयोगों के लिए तो पद का पूरा चरण उद्धृत किया गया है, क्योंकि इसके न देने से उच्चारण का रूप स्पष्ट नहीं हो सकता; शेष के साथ केवल शब्द देना ही पर्याप्त समझा गया है—

अँ—आनँद, बिलँब, सँग, सँतापै, सँपूरन, हँकार्‌यौ।
आँ—आँखि, उहाँ, जाँघ, दधिकाँदौ, बतियाँ, माँगि।
इँ—उहिं, गोबिंदहिं, चोतति, देहिं माँहिं, सिंहासन।
ईं—उपजीं, गवनीं, तिहीं, नाईं, नितहीं, लगाईं।
उँ—कुटुँब, कुँवर गाउँ, जाउँ, तिनहुँ, पहुँच्यौ।
ऊँ—अजहूँ, जिवाऊँ, ढूँढ़न, मूँदि, सुनाऊँ, सूँघि।
एँ—जेंवत, बेंचि, भेंट, रेंगै, सेंती, सेंदुर।
ऐं—आगैं, तातैं, मुऐं, संहरैं, सबैं, हिरदैं।

ऐं—ब्रज बधु कहैं बार बार धन्य रे गढ़ैया । पुनि सुरुचि कैं चरननि पर्‌यौ । कृष्न-जन्म सु प्रेम-सागर क्रीड़ैं सब ब्रज लोग । निसि भएँ रानी पै फिरि आवै । तब उपदेस मैं हरि कौं ध्यायौ । साँचैंहि सुत भयौ नँदनायक कैं हौं नाहीं बौरावति ।

ओं—कीन्हों, गोंड़े, ज्यों ज्यों त्यों त्यों, दीन्हों, दोनों, पोंछति, मोकों ।

ओं—गूँगी बातन यों अनुरागति भँवर गुंजरत कमल मों बंदहिं ।

औं—तीनौ, धौं, पसारौं, भजौं, मोसौं, लैहौं ।

औं—कहौं हरि कथा सुनौं चित लाइ । लाख टका अरु झूमका देहु सारी दाइ कौं नेग । इहिं सराप सौं मुक्ति ज्यौं ह्वोइ ।

स्वरों के संयुक्त प्रयोग—

हिन्दी की अन्य बोलियों या विभाषाओं की तरह ब्रजभाषा में भी कई स्वरों के संयुक्त रूपों का व्यवहार किया जाता है । ब्रजभाषा-काव्य में भी साथ-साथ आनेवाले स्वरों के अनेक प्रयोग मिलते हैं । इनमें सबसे अधिक संख्या दो स्वरों के संयुक्त प्रयोगों की है; यथा—

अइ—इकइस, गइ, भइ, लइ ।

अई—अनुसरई, करई, टरई, दई, नई, पुरई, बई, बढ़ई, भई, यहई, सरई ।

अई—वृथा होहु बर बचन हमारो कैकई जीव कलेस सहौ हौ । यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि अब नई कहा करौं । ज्यौं बिट पर तिय संग बस्यौ रे भोर भए भई भीति ।

अउ—अनउतर, जउ ।

अऊ—कलऊ, तऊ ।

अए—जए, ठए, तए, दए, नए, पठाए, बए, भए, लए ।

अए—खोजत जुग गए बीति नाल कौ अंत न पायौ । इतनौं जन्म अकारथ खोयौ स्याम चिकुर भए सेत ।

अए—स्वायंभुव मनु सुत भए दोइ ।

आइ—उताइली, चढ़ाइ, जाइ, दाइज, धाइ, पाइ, बगदाइ, राइ, लगाइ, समाइ ।

आई—चराई, ठकुराई, दुहाई, बधाई, भरमाई, लजाई, लरिकाई, सरनाई, हरहाई, ।

आउ—आउज, कहाउ, चाउ, चबाउ, जाउ, पखाउज, भाउ, मढ़ाउ, राउर, ल्याउ ।

आऊ—बटाऊ, बलदाऊ ।

आए—अघाए, आए, उपजाए, छाए, जिताए, धाए, पुराए, मुकराए, ल्याए ।

आई—सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै चले जाव भाई पोइसि कमल नयन कौं कपट किए माई इहिं ब्रज आवै जोइ ।

इअ—बतिअनि, जिअनि, कबिअनि, बिटनिअनि ।

इआ—खिसिआनौ, पतिआरौ ।

इए—किए, जिए, दिए, पिए, लिए, हिए ।

इए—सूरदास स्वामी धनि तप किए बड़े भाग जसुदा अरु नंदहिं । आदर सहि स्याम मुख नंद अनंद रूप लिए कनियाँ ।

इऐ—अवरेखिऐ, आइऐ, कीजिऐ, देखिऐ, बोइऐ, बरनिऐ, भजिऐ, मथिऐ, मरिऐ, लुनिऐ, सहिऐ ।

इऐ—सूरदास प्रभु कौं यौं राखौं ज्यौं राखि ऐ गज मत्त जकरि कै ।

उअ—अँसुअनि, गरुअ, चुअत, चेटुअनि, बधुअनि, महुअरि ।

उआ—गरुआई, गभुआरे, दुआदस, दुआरौ, भुआल, मालपुआ ।

उइ—दुइगानों ।

उई—मुई ।

उए—मुए ।

एइ—जेइ-तेइ, देइ, भेइ, लेइ, सेइ ।

एई—एई, खेई, येई ।

एउ—ऐसेउ, छेउ-तेउ, देउ, पारेउ, लेउगे ।

एऊ—कलेऊ, येऊ ।

एए—सेए ।

एए—द्वादस वर्ष सेंए निसिबासर तब संकर भाषी है लैन ।

ऐए—जैए ।

ऐऐ—सकुचैंऐ ।

ओइ—कोइ, कोइला, जसोइ, जोइ, दोइ, धोइ, पोइ, बिगोइ, भरोइ, रोइ, लोइ, सँजोइ, सोइ, होइ ।

ओई—कोई, खोई, गोई, रसोई, सोई, होई।
ओउ—दोउ, सोउ।
ओऊ—कोऊ, गोऊ, तोऊ, दोऊ, रोऊ, वोऊ, सोऊ।
ओ͜ए—सूरदास प्रभु सो͜ए कन्हैया हलरावति मल्हरावति है।
ओ͜इ—कब मेरो अँचरा गहि मोहन जो͜इ सो͜इ कहि मोसौं झगरै। दधिहिं बिलो͜इ सद माखन राख्यौ मिश्री सानि चटावै नँदलाल।
ओ͜उ—को͜उ जुवती आई को͜उ आवति। को͜उ उठि चलति सुनति सुख पावति। बदरिकासरम दो͜उ मिलि आइ।
औआ—नौआ।
औई—सिरानौई।

दो स्वरों के उक्त संयोगात्मक प्रयोगों के अतिरिक्त बोलचाल की सामान्य भाषा में कुछ और भी वैसे रूप प्रचलित हैं; जैसे अओ, अ͜ओ, आ͜ए (=आय), आओ आ͜ओ (=आव), इअ, इआ, ईई, ईआ, उओ, उऔ, ऊई, ऊए, ऊओ, एआ, एओ, ओअ आदि। प्रयत्न करने पर इनमें से कुछ के दो-एक उदाहरण ब्रजभाषा-काव्य में मिल सकते हैं; परन्तु साधारणत: ये रूप काव्य-भाषा में कम ही आते हैं।

दो स्वरों के उक्त संयुक्त रूपों की तरह ही ब्रजभाषा में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनमें तीन स्वरों का संयोग देखने में आता है। ब्रजभाषा में स्वरों की अधिकता के कारण एक दरजन से अधिक त्रिस्वर संयोगात्मक रूप बन सकते हैं; यथा अइया, अइओ, अउआ, आइउ, आइए, आइओ, आएउ, इअउ, इआई, इआऊ, इएउ, उइआ, एइआ, ऐ͜एउ, ओआए, ओ͜एउ, ओ͜इआ आदि। इनमें से अधिकांश रूप सामान्य बोलचाल में ही अधिक प्रयुक्त होते हैं; यथा ओआए—जैसे सोआए; एइए—जैसे सेइए। इन उदाहरणों की संख्या बढ़ सकती है यदि 'ये' और 'यै' को क्रमश: 'ए' और 'ऐ' का रूप मान लिया जाय; जैसे जइयै, पइयै, करइयै बिछइयै, अइयै, मँगइयै, दुरइयै, छकइयै, अधिकइयै, बढ़इयै आदि सभी शब्द 'अइऐ' के और गाइयै, पाइयै आदि 'आइऐ' के उदाहरण बन सकते हैं।

सामान्य स्वरों की तरह इन संयुक्त स्वरों के भी सानुनासिक रूप होते हैं। तीन स्वरों से बननेवाले मूल रूपों की तरह उनके सानुनासिक प्रयोगों की संख्या भी ब्रजभाषा-काव्य में नहीं के बराबर है। हाँ, दो स्वरों के प्रयोग उसमें बहुत मिलते हैं। ऐसे रूपों में कहीं एक स्वर सानुनासिक है, कहीं दोनों; यथा—
अएँ—भएँ।
अ͜एँ—भ͜एँ अपमान उहाँ तू मरिहै।
आँउ—इहाँउ।
आईं—गुसाईं, छाईं, ताईं, नाईं, बनाईं।
आउँ—आउँ, छाउँ, ठाउँ, डराउँ, नाउँ, निभाउँ, पाउँ, बिकाउँ, लजाउँ, सुहाउँ।
आऊँ—कहाऊँ, गाऊँ, चलाऊँ, दुहाऊँ, धाऊँ, न्हाऊँ, पहिराऊँ, पाऊँ, बँधाऊँ, बुलाऊँ, लाऊँ।
आएँ—अन्हवाएँ, आएँ, कराएँ, खाएँ, गाएँ, चुगाएँ, न्हवाएँ, न्हाएँ, लाएँ।
इएँ—दिएँ।
ईएँ—कीएँ, जीएँ।
उँअ—कुँअर।
उअँ—भुअँग[1]।
उएँ—हुएँ[2]।
एउँ—देउँ[3]।
ओऊँ—सोऊँ[4]।

व्यंजन—जिन व्यंजनों को—यथा क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ त थ द ध न प फ ब भ म स ह और ढ़—ब्रजभाषा-वर्णमाला में देवनागरी के समान ही स्थान मिला हुआ है, उनकी चर्चा यहाँ न करके केवल उन्हीं के संबंध में विचार करना है जिनमें कुछ अंतर है या जिनका प्रयोग उसमें विशेष रूप से किया जाता है।

ङ—शब्दों के आदि या अंत में पूर्ण अक्षर की तरह 'ङ' का प्रयोग हिंदी और ब्रजभाषा में नहीं होता; हिंदी में शब्दों के बीच में अवश्य, संस्कृत के तत्सम शब्दों में विशेष रूप से अथवा नये शब्दों में इन्हीं के अनुकरण पर, यह वर्ण वर्ग के चार अक्षरों—क ख ग घ—के पूर्व प्रयुक्त होता है; परन्तु ऐसा प्रयोग प्राय: उन्हीं लेखकों और कवियों ने अधिक किया है जो संस्कृत के विद्वान थे अथवा

उसकी शुद्धता को हिंदी में लाने के पक्षपाती थे । ब्रज-भाषा-काव्य के प्राय: सभी नये संस्करणों में 'ङ' के स्थान पर अनुस्वार से काम चलाया गया है; यथा गंगा, पतंग, भुवंग, रंकन, लंकपति, संकल्प, संका, संग आदि ।

ज-य—ब्रजभाषा-वर्णमाला में ज को खड़ीबोली से अधिक आदर का स्थान प्राप्त है और य को उसी अनुपात में कम । संस्कृत और हिंदी शब्दों के ज का निश्चित स्थान तो ब्रजभाषा में अक्षुण्ण है ही, अधिकांश तत्सम प्रयोगों में, शब्दों के मध्य में तो कम, परंतु आदि में लगभग सर्वत्र य के स्थान पर ज का ही प्रयोग इसमें किया जाता है। ब्रजभाषा-कवियों ने शब्दों के आदि में आनेवाले य को प्राय: सर्वत्र ज से बदल दिया है; जैसे यंत्र—जंत्र, यज्ञ—जग या जग्य या जाग, याचक—जाचक, यातना—जातना, यादव—जादव, याम—जाम, यामिनी—जामिनी, यावक—जावक, युक्त—जुक्त, युक्ति—जुक्ति, युग—जुग, युगल—जुगल या जुगुल, यूथ—जूथ, युवती—जुवती, योग—जोग, योद्धा—जोधा, यौवन—जोवन या जोबन आदि । कुछ संस्करणों में दो-एक शब्दों के आदि में य अपरिवर्तित रूप में मिलता है; जैसे यसुमति, युवति; परंतु ऐसे शब्दों को संपादन की भूल ही मानना चाहिए ।

शब्द के बीच में आनेवाला य कभी ज में बदला जाता है—जैसे दुर्योधन – दुरजोधन, संयम – संजम, संयोग-संजोग, कभी नहीं भी बदला जाता; जैसे 'वियोग' के स्थान पर 'विजोग' प्राय: नहीं मिलता । इसी प्रकार शब्द के अंत में आनेवाला य बोलचाल की भाषा में ज से चाहे सर्वत्र बदल दिया जाता हो, परंतु काव्य में ऐसे शब्दों का य कहीं-कहीं ही बदला हुआ मिलता है; जैसे आर्य—आरज, कार्य—कारज ।

ञ—ब्रजभाषा में 'ङ' की तरह 'ञ' का प्रयोग भी नहीं होता; और ब्रजभाषा कवियों ने इसके लिए प्राय: सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग किया है; जैसे अंजलि, गुंजा, जंजार, पुरंजन, बिरंचि आदि । 'नाञ' (नाँय = नहीं), साञ (= सायँ = सन्नाटे की ध्वनि-विशेष) जैसे बोलचाल के शब्दों में 'ञ' की ध्वनि सुनायी पड़ने पर भी इसको वर्णमाला में स्थान नहीं मिल सका है ।

ण—यह अनुनासिक व्यंजन, यद्यपि 'ङ' और 'ञ' की तरह अपने वर्गीय अक्षरों के पूर्व उच्चरित होने पर ही, संस्कृत व्याकरण से परिचितों अथवा उसका अनुकरण करनेवालों के द्वारा प्रयुक्त होता है, तथापि उन अनुनासिकों से इसका प्रयोग इस कारण अपेक्षाकृत अधिक है कि अनेक तत्सम शब्दों के आदि में तो नहीं, बीच और अंत में पूर्ण व्यंजन के रूप में यह आता रहता है । ब्रजभाषा-कवियों ने इसके स्थान पर प्राय: 'न' का ही प्रयोग किया है; यद्यपि कहीं-कहीं 'ण' भी दिखायी देता है । ब्रजभाषा-काव्य के प्राचीन संस्करणों में कहीं कहीं शब्दों के बीच या अंत में 'ण' के दर्शन हो जाते हैं; जैसे कारण, किंकिणी, कृष्ण, गुण, चरण, तृण, पूरण, प्राणपति, मणि, रणभूमि, श्रवणनि आदि । अन्यत्र ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप ण के स्थान पर सर्वत्र 'न' का प्रयोग किया जाता है; जैसे गणिका—गनिका, दर्पण —दर्पन, पुराण—पुरान, प्राणायाम – प्रानायाम, शरणागत—सरनागत आदि । पूर्ण 'ण' के समान हलंत 'ण' का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है; परंतु सामान्यतया इसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करने की ही नीति अपनायी जाती है; जैसे कंठ, कुंडल, खंड, गंडकि, पंडित, पांडव आदि ।

ब और व—देवनागरी वर्णमाला में व यद्यपि प्राचीन ध्वनि के रूप में स्वीकृत है, तथापि ब की ध्वनि के अपेक्षाकृत सरल होने के कारण ब्रजभाषा-कवियों ने शब्द के आदि के व को प्राय: सर्वत्र और मध्य या अंत में आनेवाले को विशेष अवसरों पर ब लिखा है जैसे—वचन-बचन, विधाता-बिधाता, विनोद-बिनोद, विबुध-बिबुध, वृद्ध-बृद्ध वृष्टि-बृष्टि आदि । शब्दों के मध्य में प्रयुक्त व को गोवर्द्धन—गोबर्धन जैसे-दो-एक शब्दों को छोड़कर प्राय: तभी वे ब से बदलते हैं जब उपसर्ग जोड़कर अथवा समास-द्वारा नया रूप गढ़ा गया हो; जैसे व्रज-वासी—ब्रजबासी, अथवा उसके पूर्व का व भी ब में बदला गया हो; जैसे विविध-बिबिध । इसी प्रकार शब्दांत के व को ब में तब परिवर्तित किया जाता है जब उसके पूर्व की अन्य ध्वनि को भी सरल रूप में लिखा गया हो, जैसे पूर्व—पूरब । कुछ शब्दों में व के स्थान पर उ, जैसे ज्वर-जुर, कुछ में औ, जैसे गवन—गौन, यादव-जादौ, यादव-कुल—जादौ-कुल, पवन-पौन; और कुछ में म, जैसे यवन-जमन भी मिलता है । साथ ही अनेक

शब्द ऐसे भी पाये जाते हैं जिनका व कवियों ने सुरक्षित रखा है; जैसे कुतवाल, जीव, जुवा, ज्वाला, पावक, पावन, भगवत, भव, भागवत, भाव, सावक, सुवा, स्व, स्वान, स्वारथ आदि।

र और ल—यद्यपि इन दोनों व्यंजनों का उच्चारण-स्थान एक ही है और ल का उच्चारण र से सरल भी होता है, तथापि ब्रजभाषा में शब्दांत के ल को कभी-कभी र में बदल दिया जाता है; जैसे केला-केरा, चटसाल-चटसार, छल-छर, जंजाल-जंजार, जाल-जार, नालो-नारो, पुतली-पुतरी, बादल-बादर, बिकराल-बिकरार। कहीं-कहीं शब्द के मध्य का ल भी र में बदला जाता है; जैसे गालियाँ-गारियाँ, परन्तु ऐसा बहुत कम शब्दों में किया गया है। कुछ शब्दों में र का लोप भी मिलता है; जैसे—प्रिय-पिय, परन्तु ऐसा अधिक नहीं होता; यहाँ तक कि 'प्रिय' के स्त्रीलिंग रूप 'प्रिया' का 'पिया' नहीं लिखा जाता। इसी प्रकार प्रीति, प्रेम आदि शब्द भी मूल रूप में ही मिलते हैं।

श, ष और स—ब्रजभाषा को श और ष से स की मधुर ध्वनि अधिक प्रिय है। यद्यपि कुछ काव्यों के प्राचीन संस्करणों में अनेक शब्दों को 'श' से ही लिखा गया है यथा-कुशल, क्लेश, दशन, दशमी, दिशि, निशान, प्रश्नहिं, शीश, शूल, शोभित आदि; तथापि ब्रजभाषा में श के स्थान पर प्रायः सर्वत्र स ही लिखा जाता है; जैसे अंश-अंस, कुशल-कुसल, जगदीश-जगदीस, त्रिशूल-त्रिसूल, दर्शन-दरसन, द्वादश-द्वादस, निशाचर-निसाचर, शरणागत-सरनागत, शस्त्र-सस्त्र, संदेश-संदेस आदि। श को स में परिवर्तित करने के इस नियम का निर्वाह कवियों ने जितनी कट्टरता से किया है; ष को स से बदलने में वह दृढ़ता नहीं दिखायी देती जिसके फलस्वरूप अनेक शब्दों में ष ज्यों का त्यों वर्तमान है; जैसे आकरषन, त्रिदोष, निर्दोष, पुरुष, पुरषारथ, पुरुषोत्तम, पोषै, बरष, बर्षा, बिषम, बिषाद, बिष्नु, बृषभ, बेष, भेषज, मर्षत, रिषिनि, ईषद, संतोष, हरषवंत, हरषि आदि। सब शब्दों का 'ष' सुरक्षित रहा हो, सो बात भी नहीं है, कुछ में इसके स्थान पर स भी मिलता है; जैसे अवशेष-अवसेस, बिशेष बिसेस, शेषनाग-सेसनाग। इसी प्रकार शब्द के आदि का श यदि अर्द्धाक्षर के रूप में है और उसके आगे 'र' है तो कभी-कभी उसको भी नहीं बदला जाता; जैसे श्री, श्रुति, शृंगी; यद्यपि स्रम, स्रवननि, स्रुति आदि शब्द इसके अपवाद भी हैं।

ब्रजभाषा-काव्य के कुछ संस्करणों में ष के स्थान पर कहीं-कहीं ख और ख के स्थान पर ष लिखा मिलता है। सन् १९४९ में छपी हुई 'साहित्यलहरी' में खण्डित, खरक, दुख, दुखित, देखैहैं, भख, मुख, लख, सखिन आदि शब्द षडित, षरक, दुष, दुषित, देषैहै, बषाने, भष, मुष, लष, सषिन रूप में लिखे मिलते हैं। वेंकटेश्वर प्रेस के 'सूरसागर' में भी मख के स्थान में मष-जैसे एकाध प्रयोगों में ख के स्थान ष मिल जाता है। उन्हीं ग्रंथों के नये संस्करणों में यह परिवर्तन नहीं मिलता।

ड़—देवनागरी वर्णमाला की यह एक नयी ध्वनि है जिसको ब्रजभाषा-कवियों ने कुछ शब्दों में तो अपना लिया है, परंतु कुछ में इसके स्थान पर 'र' लिखना उन्हें प्रिय है; जैसे ककड़ी, क्रीड़ा, खड़ाऊँ, घोड़ा, छड़ीदार, जोड़ी, पकड़ी, पड़ना, बेड़ौ, लकड़ी, लड़ाई आदि शब्द उन्होंने 'र' से लिखे हैं—बकरी, क्रीरत, खराऊँ, घोरा, छरीदार, जोरी, पकरी, परतौ, बेरी, लराई, लकरी; परंतु, उड़न, उड़ाइ, उड़ि, उड़िबे, उड़िबौ, उड़ैहै, गड़े, गारुड़ी, छाँड़े, छाँड़ै, छाँड़ौगी, छाड़यौ, डाँड़ी, लाड़, लाड़िली आदि शब्दों में 'ड़' को ही स्थान दिया गया है। जड़, जड़ताई, जड़ाई, जड़ित आदि शब्द 'ड़' से लिखे भी मिलते हैं और ये तथा इनसे मिलते-जुलते शब्द 'र' से भी; जैसे जर-जड़, जराइ-जड़ाइ, जराउ-जड़ाऊ, जरि-जड़ि, जरिया-जड़िया आदि।

न्ह, म्ह, र्ह और ल्ह[1]—इन ध्वनियों को देवनागरी-वर्णमाला में स्थान नहीं मिला है, यद्यपि इन्हें, तुम्हें आदि शब्दों में इनमें से प्रथम दो का प्रयोग किया जाता है। ब्रजभाषा-कवियों ने इनमें से अंतिम दो का प्रयोग तो सामान्यतया कम किया है : परंतु प्रथम दो का अधिक; यथा—

न्ह—कन्हैया, कान्ह, कीन्हौ, दीन्हौ, न्हाउ, लीन्हे।

---

१. डा० बाबूराम सक्सेना ने इन रूपों को स्वतंत्र व्यंजनों के समान मान लिया है—'इवोल्युशन आव अवधी', अनु० ६१, ३२ और ७२।

म्ह—तुम्हारौ, सम्हारति।
ल्ह—काल्हि।

संयुक्ताक्षर—हिंदी में जिन संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है उनमें क्त, क्ष, ज्ञ, त्र, त्म, द्ध, द्म, द्व, प्त, ष्ट, ह्न, ह्म, ह्य, ह्ल और ह्व मुख्य हैं। ब्रजभाषा में इनका प्रयोग बहुत-कम किया जाता है और जिन तत्सम शब्दों में ये प्रयुक्त होते हैं, उनमें अर्द्धाक्षरों को पूर्ण करके अर्द्धतत्सम रूप प्रायः बना लिये जाते हैं; जैसे पद्म—पदुम, प्रह्लाद—प्रहलाद, प्राप्त—प्रापत, मुक्ति—मुकुति। जहाँ ऐसा करने का अवसर नहीं मिलता वहाँ पूरे संयुक्ताक्षर के लिए ही सरल ध्वनिवाले मिलते-जुलते एकाक्षर या अक्षरों का प्रयोग किया जाता है; जैसे :—

क्ष—छ—अक्षत—अछत, अक्षम—अछम, क्षणभंगुर—छनभंगुर, क्षमा—छमा, क्षमी—छमी।

क्ष—च्छ—अक्षर—अच्छर, अभक्ष्य—अभच्छ, वृक्ष-बृच्छ, परीक्षित—परीच्छित, रक्षा—रच्छा, लक्षण—लच्छन, लक्ष्मी—लच्छमी, साक्षात—साच्छात, शिक्षा—सिच्छा।

ज्ञ—ज—ज्ञानशिरोमणि—जानसिरोमनि।
ज्ञ—ग—यज्ञ—जाग।
ज्ञ—ग्य—अज्ञान—अग्यान।

उक्त संयुक्ताक्षरों में क्ष विशेष कर्णकटु है, इसलिए इसके प्रयोग पुराने संस्करणों में भी बहुत कम हुए हैं; परन्तु बिल्कुल न हुए हों सो बात भी नहीं है; जैसे—क्षत्रिआ क्षीरोदक, क्षुद्रमति, मोक्ष, रक्षा आदि। अन्य संयुक्ताक्षरों में से अधिकांश का प्रयोग कवियों ने किया है। इनमें से प्रमुख के कुछ उदारहण यहाँ संकलित हैं—

क्त—अनुरक्ति, असक्त, जुक्ति, मुक्त, मुक्ति, साक्त।
ज्ञ—अज्ञान, आज्ञा, आतमज्ञान, परतिज्ञा, सरवज्ञ, सर्वज्ञ।
त्र—गात्र, त्रिविधि, त्रैलोकनाथ, दत्तात्रेय, धात्र, पात्र, मात्र, मित्राई, शत्रु।
त्न—पत्नी।
द्ध—उद्धार, जुद्ध, बिरुद्ध, बुद्धि, सिद्धि, सुद्धासुद्ध।
द्म—पद्म।
द्य—अविद्या, उद्यम, उद्योग, जद्यपि, तद्यपि, ध्याऊँ, द्याल = दयालु, द्युति, द्योस, द्योसनि, बिद्यमान, बसुद्यौ।

द्व—द्वंद, द्वादस, द्विज, द्वै, द्विरेफ।
प्त—अलिप्त, गुप्तहि, तृप्ति।
ष्ट—अरिष्ट, अष्ट, अष्टम, त्वष्टा, दृष्टि, दुष्ट, मिष्टान्न, मुष्टिक, सृष्टि।
ष्ठ—बसिष्ठ, सिष्ठ।
ह्न—चिह्न या चिह्ननि।
ह्म—ब्रह्म, ब्रह्मादिक।
ह्य—कह्यौ, गह्यौ, निबाह्यौ, पूछ्यौ।
ह्व—बिह्वल, ह्वै।

अन्य परिवर्तन—स्वर और व्यंजन-सम्बन्धी उक्त प्रयोगों के अतिरिक्त कुछ शब्दों में अन्य अक्षरों का भी परिवर्तन कवियों ने किया है; जैसे—

ग—ई—लोग-लोइ।
म—उ—नाम-नाउ।
य—इ—आयु-आइ, उपाय-उपाइ, न्याय-न्याइ।
व—इ—चाव-चाइ, भाव-भाइ।
व—उ—घाव-घाउ, दावँ-दाउँ।
व—औ—अवसर-औसर, स्रवन-स्रौन।

परन्तु इस प्रकार के प्रयोगों की संख्या इतनी कम है कि इनके आधार पर तद्विषयक नियम नहीं निश्चित किये जा सकते। फिर भी उक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि ब्रजभाषा कवियों की प्रकृति आरंभ से ही व्यंजनों से अधिक स्वरों को अपनाने की ओर रही। यही कारण है कि कुछेक तत्सम शब्दों के छोड़कर वे प्रायः सर्वत्र क्ष, ङ, त्र, ण और श के प्रयोग से तो बचे ही; ज्ञ, य, व, ष, और ड़ पर भी जैसे प्रतिबंध लगाते रहे, कम से कम शब्दारंभ में तो उन्होंने इनको नहीं ही आने दिया। इस प्रकार मूल व्यंजनों की संख्या में जहाँ उन्होंने लगभग पंचमांश की कमी कर दी, वहाँ स्वरों में एक तिहाई बढ़ाकर और उनके अनेकानेक नये संयुक्त रूप गढ़कर वे ब्रजभाषा की जन्मजात कोमलता-मधुरता की सहज ही वृद्धि कर सके।

शब्द-समूह—

ब्रजभाषा कवियों ने अपने शब्द-भंडार की पूर्ति के लिए बड़ी उदारता से काम लिया। मूलतः उनकी भाषा ब्रजप्रदेशीय बोली है जिसको संपन्न बनाने के लिए उन्होंने

पूर्ववर्ती और समकालीन देशी-विदेशी भाषा, विभाषा और या बोली, सभी के शब्दों और प्रयोगों को लगन और सम्मान से अपनाया। उसके शब्द-समूह का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

अ. पूर्ववर्ती भाषाओं—संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश—के शब्द।

आ. समकालीन देशी भाषाओं—पंजाबी, गुजराती और राजस्थानी—के शब्द।

इ. समकालीन विभाषाओं और बोलियों—खड़ीबोली, अवधी, कन्नौजी और बुन्देलखंडी—के शब्द।

ई. विदेशी भाषाओं—अरबी, फारसी और तुर्की—के शब्द।

उ. अन्य प्रयोग—देशज और अनुकरणात्मक अथवा ध्वन्यात्मक शब्द।

अ. पूर्ववर्ती भाषाओं के शब्द—

वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति के प्रारंभिक विकास-काल से ही संस्कृत भाषा का उनसे घनिष्ठतम संबंध रहा। ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व जैन और बौद्ध धर्मों के जन्म के पश्चात् बारह-तेरह सौ वर्ष तक इन क्षेत्रों में यद्यपि पाली और प्राकृत ने भी अपना अधिकार जमाया, तथापि इसके अनंतर बौद्ध धर्म की भारत में समाप्ति और जैन धर्म का क्षेत्र सीमित हो जाने के कारण वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ जिसके फलस्वरूप संस्कृत-साहित्य का पठन-पाठन ही नहीं, निर्माण भी द्रुत गति से होने लगा। इस समय तक विकसित तत्कालीन जन-भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

आधुनिक आर्य-भाषाओं के प्रादुर्भाव के समय, लगभग सन् १००० के आसपास, तो हिंदी में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत और अपभ्रंश के भी शब्द और प्रयोग पर्याप्त संख्या में अपनाये गये थे; परंतु कालांतर में इस प्रणाली में परिवर्तन हो गया और कवियों की रुचि संस्कृत के आधार पर भाषा के समृद्धि-वर्द्धन के प्रति हो गयी। शुक्ल जी ने इसी को लक्ष्य करके हिंदी-काव्यभाषा-विकास के दो मुख्य काल-भेद—प्राकृत-काल और संस्कृत-काल—किये हैं।[1] इस रुचि-परिवर्तन का कारण संभवतः उस गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति की सजगता थी जो विदेशी इस्लामी विजेताओं की कट्टरता की प्रतिक्रिया कही जा सकती है। जो हो, ब्रजभाषा-कवियों की भाषा में पाली के शब्दों का अभाव है; एवं प्राकृत और अपभ्रंश के वे ही शब्द और प्रयोग मिलते हैं जो ब्रजभाषा की प्रकृति से मेल खाते थे और जिनका प्रचलन आगे भी काव्यभाषा में बना रहा।

संस्कृत : तत्सम शब्द—

ब्रजभाषा-कवियों ने जिन तत्सम शब्दों का प्रयोग किया, स्थूल रूप से, उनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—व्यावहारिक, पारिभाषिक और भाषा-समृद्धि द्योतक तत्सम शब्द।

व्यावहारिक तत्सम शब्द—प्रत्येक भाषा में भूख-प्यास, वेश-भूषा आदि की वस्तुओं, शरीर के अंगों, निकटतम पारिवारिक और सामाजिक संबंधों आदि के लिए बहुत से साधारण शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार मानव जीवन और प्रकृति के नैत्यिक-नैमित्यिक कार्य-व्यापार और स्थिति-सूचक अनेक शब्द भी उसमें प्रचलित रहते हैं। संस्कृत-जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा में इनके लिए सैकड़ों सरल और सीधे-सादे शब्द प्रयुक्त होते हैं। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी से, विदेशी संस्कृति की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप, भारतीय संस्कृति को सरुचि अपनाने की भावना-वृद्धि के साथ-साथ, संस्कृत भाषा के प्रति हिन्दी कवियों ओर लेखकों की श्रद्धा इतनी बढ़ी कि सामान्य व्यवहार में साधारण प्रचलित शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों को ही आश्रय दिया जाने लगा। यह प्रवृति केवल ब्रजभाषा के ही नहीं, हिन्दी की अन्य बोलियों के साथ साथ उत्तरी भारत की अन्य नवोदित आर्यभाषाओं के भी साहित्यकारों में स्पष्ट परिलक्षित होती है।

ब्रजभाषा कवियों ने ऐसे व्यावहारिक तत्सम शब्द अपनी कविता में इस प्रकार दिए हैं कि वे उसी में घुल-मिल गये हैं और सामान्य प्रचलित भाषा के शब्दों से भिन्न नहीं जान पड़ते। वस्तुतः ब्रजभाषा कवि उनको ब्रजभाषा की ही सम्पत्ति समझते रहे और ठेठ या तद्भव शब्दों से किसी प्रकार का अधिक सम्मान या महत्व उनको

१. पंडित रामचंद्र शुक्ल, 'बुद्धि-चरित्', भूमिका, पृ० १२।

नहीं देना चाहते थे। ये व्यावहारिक तत्सम शब्द स्थल-विशेष पर ही नहीं, समस्त ब्रजभाषा-काव्य में—यहाँ तक कि उन पदों में भी जो काव्य की दृष्टि से बहुत साधारण हैं—बिखरे मिलते हैं। ऐसे कुछ शब्द ये हैं—अज्ञान, अवस्था, अविद्या, आजीविका, उत्साह, उद्धार, उद्यम, उद्यान, उपचार, उल्लास, कल्पना, किंजल्क, जीविका, त्रास, त्रिदोष, पन्नग, पुष्प, पुष्कर, प्रकोप, प्रतिबिंब, प्रतिभा, प्रतिष्ठा, प्रवाह, प्रस्वेद, प्रतिहार, भेषज, महंत, महिमा, मुक्ताफल, ललाट, व्यवहार, समाधान, सुमन, सुषमा, सौरभ आदि।

पारिभाषिक तत्सम शब्द—सरस और भावपूर्ण कथा-प्रसंगों के वर्णन अथवा मार्मिक और सुंदर दृश्यों के चित्रण के अतिरिक्त कवि जब शास्त्रीय तत्वों के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं, तब उन्हें स्वभावतः पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। हिंदी के प्रायः सभी भक्त-कवियों ने पारिभाषिक विवेचन से बचने का प्रयत्न किया, परन्तु संस्कृत के भक्ति-सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रंथों में वर्णित पौराणिक प्रसंगों को अपनाने के कारण ब्रह्म, माया, ज्ञान, भक्ति आदि की कुछ शास्त्रीय परिभाषाओं का सारांश उनके काव्यों में मिल ही जाता है। ऐसे ही प्रसंगों में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। उनके काव्य में प्रयुक्त ऐसे कुछ तत्सम शब्द ये हैं—अखिल अधिकारी, अखिल लोकनायक, अजित, कृपानिधान, कृपा-निधि, कृपासागर, गोपाल, दयानिधि, दामोदर, परमानंद, मुकुन्द, लोकपति, श्रीनाथ, सुखसागर आदि। इसी प्रकार माया, ज्ञान, भक्ति, महत्व आदि की व्याख्या करते समय ब्रजभाषा-कवियों ने इनका तथा इनके पर्यायवाची तत्सम रूपों का भी प्रयोग किया है—उपाधि, पिंगला, प्रत्याहार, मन्वंतर, महत्व, मिथ्यावाद, विज्ञान, व्यष्टि, समष्टि, समाधि आदि।

भाषा-समृद्धि-द्योतक तत्सम शब्द—जिस सरस और भावपूर्ण पद-योजना का सम्पूर्ण अर्थ साधारण पाठक के लिए, शब्दार्थ जान लेने पर भी बोधगम्य नहीं होता, परंतु व्युत्पन्नमति कलामर्मज्ञ, सहृदय पाठक ही जिसके पूर्ण रसास्वादन में सफल होते हैं, स्थूल रूप में, उसी को वस्तुतः साहित्यिक और सार्थक तत्समता-प्रधान समझना चाहिए। ब्रजभाषा-काव्य का नख-शिख-वर्णन, दृश्य-चित्रण आदि विषयों से संबंधित अंश ऐसी ही विशिष्टता से युक्त है। ऐसे स्थलों में कुछ कवियों ने विषयानुकूल वातावरण उपस्थित करने के उद्देश्य से तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है और कुछ ने भाषा-श्रृंगार के लिए। इनके उदाहरण किसी भी कवि की तद्विषयक रचना में देखे जा सकते हैं।

तत्सम संधि-प्रयोग - संस्कृत की भाँति संधि-योजना ब्रजभाषा की प्रवृत्ति नहीं है। इसमें जो संधि-युक्त तत्सम शब्द मिलते हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो यौगिक रूप में ही संस्कृत से ग्रहण कर लिए गए हैं और संस्कृत व्याकरण के ही नियमों से बाधित हैं, जैसे—अधरामृत, इंद्रादिक, कमलासन, कुसुमांजलि, कुसुमाकर, कुसुमावलि, गजेंद्र, गोपांगना, जठरातुर, ज्ञानेंद्रिय, दैत्यारि, परमानंद, पादोदक, पीतांबर, पुरुषोत्तम, प्रेमांकुर, महोत्सव, मुखार-विन्द, लोभातुर आदि। ये सभी उदाहरण स्वर-संधि के हैं। व्यंजन संधियुक्त तत्सम प्रयोगों की संख्या उक्त प्रयोगों की तुलना में पाँच प्रतिशत से भी कम है और विसर्ग-संधि के अधिकांश उदाहरण भी ऐसे हैं जो यौगिक रूप में ही अपनाये गये हैं; जैसे—दुर्जन, निरुत्तर, निर्दोष, निर्मल, निस्संदेह आदि।

सामासिक शब्द—सामासिम शब्दों के प्रयोगों से, भाषा को संगठित करने में प्रायः सहायता मिलती है और ब्रजभाषा-कवियों ने इनके प्रयोग से भी लाभ उठाया है। उनके अधिकांश सामासिक पद दो-तीन शब्दों से ही बने हैं; यथा—अलिसुत, कमलनयन, कुमुदबंधु, दीनबंधु, भक्तवत्सल, मतिमंद, मुक्तिक्षेत्र, रस-लंपट, संत-समागम, हरि-कथा, हेम-सुतापति आदि।

तत्सम सहचर पद—द्वंद्व समास से बने सहचर या सहयोगी पदों का प्रयोग कवि की भाषा-समृद्धि का द्योतक है। साथ ही, इनका न्यूनाधिक प्रयोग प्रायः उसी अनुपात में जन-साधारण की भाषा से कवि या लेखक के सबंध की ओर भी संकेत करता है। अधिकांश ब्रजभाषा-कवियों का संपर्क जन-भाषा से बहुत घनिष्ठ था; अतएव उन्होंने तत्सम सहचर शब्दों का प्रयोग भी बराबर किया है; जैसे—अगम-अगोचर, अन्न-जल, अन्न-वस्त्र, गिरि-

कंदर, ज्ञान-ध्यान, तेज-तप, दान-मान, दारा-सुत, देवी-देव, धन-दारा, निगम-अगम, पुत्र-कलत्र, माला-तिलक, मित्र-बंधु, रंग-रूप, राग-द्वेष, रुदन-विलाप, लाभ-अलाभ, सभा-समिति, साधु-असाधु, सुत कलत्र, सुर-असुर आदि ।

उच्चारण की दृष्टि से तत्सम शब्दों का वर्गीकरण— उच्चारण की दृष्टि से ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त उक्त तथा अन्यान्य तत्सम शब्दों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम में वे तत्सम शब्द रखे जा सकते हैं जो दो, तीन या चार अक्षरों से मिलकर बने हैं, उच्चारण में किसी प्रकार की कठिनता न होने के कारण जो प्रायः प्रचलित रहे हैं और अपनी सरलता के कारण हिंदी की प्रायः सभी बोलियों और विभाषाओं में जो सहज ही अपना लिये गये हैं। इनमें से अधिकांश शब्द ब्रजभाषा के निजी प्रयोगों और तत्सम शब्दों से निर्मित तद्भवों की भाँति ही कोमल, मधुर और सरल हैं। ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त समस्त तत्सम शब्दों में एक दो प्रतिशत को छोड़ कर शेष प्रायः इसी प्रकार के हैं। इनको अपनाने से ब्रजभाषा को लोकप्रिय बनाने और उसका क्षेत्र बढ़ाने में पर्याप्त सहायता मिली है। कोमल और सरल ध्वनिवाले ये शब्द गीतिकाव्योपयोगी भाषा में सहज ही घुल-मिल गये। ऐसे कुछ शब्द ये हैं—अंग, अंतःपुर, अंतर्गत, अति, अधम, अनुभव, अनुभवी, अपमान, अभिमानी, अभिराम, अवस्था, अविद्या, असाधु, अस्थिर, अहंभाव, आज्ञाकारी, आडंबर, आहुति, इंद्रिय, उत्साह, उद्यम, उद्यान, उन्मत्त, उपकार, उपचार, उपराग, कच, कपट, कुंजर, कूल, क्रीड़ा, गति, गृह, चारु, जिह्वा, जीविका, दुर्जन, दृढ़, दोष, द्रुम, धूम, निगड़, निर्दोष, निस्तार, नृप, नीरस, पंथ, पति, परस्पर, परिपाटी, पारावार, प्रकोप, प्रतिबिंब, प्रतिहार, प्रथम, प्रपंच, प्रसन्न, प्रसाद, प्रसिद्ध, प्रारंभ, प्रेम, भेषज, मधुर, मनोरथ, महंत, महानुभाव, महिमा, मात्र, मुक्ता, मुक्ति, मुखर, मुख्य, मुद्रा, मृतक, रति, राजनीति, ललाट, ललित, लुब्धक, विद्यमान, विसर्जन, व्यापक, संकल्प, संसार, संताप, संसार, सकल, सत्कार, सप्तम, सबल, समाधान, सर्वज्ञ, सावधान, सुकुमार, सुखकर, सुधाकर, सुमन, सौरभ, स्वरूप, स्वल्प, स्वाद, हृदय आदि।

दूसरे प्रकार के तत्सम शब्दों की ध्वनि इतनी सरल न होकर कुछ क्लिष्ट है। फलस्वरूप, उनका प्रयोग सामान्य ब्रजभाषा-भाषियों में कम रहा और सामान्य बोलियों के काव्य में भी जो अपने तत्सम रूप में सरलता से प्रवेश नहीं पा सके। कोमल और सुकुमार भावों की व्यंजना में इनके प्रयोग से कभी-कभी बाधा ही पहुँचती है। ऐसे शब्दों का प्रयोग कवियों ने कम ही किया है और जो शब्द उनके काव्य में प्रयुक्त भी हुए हैं वे भाषा की सरलता और सुकुमारता का विशेष ध्यान रखनेवाले कवियों द्वारा सहर्ष नहीं अपनाये गये। ऐसे शब्दों में कुछ ये हैं – आजीविका, आविर्भाव, आस्वादन, किंजल्क, क्वासि, गह्वर, दूतत्व, निमित्त, न्यास, प्रस्वेद, ममत्व, विद्याचारि, विधुंतुद, व्युत्पन्न, सत्वर, सात्विकी आदि।

सारांश यह है कि ब्रजभाषा की समृद्धि-वृद्धि के लिए कवियों ने ऐसे तत्सम शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है जो काव्यभाषा को शाब्दिक और आर्थिक श्री-संपन्नता प्रदान करने में सहायक हो सके। ये प्रयोग भावों के धारा-प्रवाह में थपेड़े खाकर भी अटक कर रह जानेवाले पत्थर के भारी-भरकम ढोकों की तरह नहीं, वेग में और तीव्रता लाकर एक प्रकार का नाद सौंदर्य उत्पन्न करनेवाली चिकनी और सुडौल बटियों की तरह हैं जिनकी छटा, धारा के साथ तो दर्शक को मुग्ध करती ही है, उससे विलग हो जाने के पश्चात् भी कलामर्मज्ञों को भक्तों की भाँति विस्मय-विमुग्ध कर देती हैं। तत्सम शब्दों के ऐसे प्रयोगों की मुख्य विशेषता यह है कि भाव-व्यंजना में सहायता देने के लिए बेगार में पकड़े गये, किसी भाव से दबे हुओं कि तरह नहीं, स्वच्छंदतायुक्त हँसी बिखेरते, सहकारिता और दायित्व-निर्वाह की भावना लिए आकर, ये विषय और माध्यम, दोनों की शोभा-वृद्धि करते और आमंत्रक को गौरव प्रदान करते हैं। कवियों ने मस्तिष्क को कुरेद-कुरेद कर सप्रयास इनकी पकड़ का आयोजन नहीं किया; प्रत्युत विषय, भावना और रस के अनुकूल तत्सम शब्द, भावावेश के साथ ही, शालीन सेवकों के समान, स्वतः सामने आ जाते हैं। यही कारण है कि कृत्रिमता और आडंबर की छाया का लेश भी अधिकांश तत्सम प्रयोगों में नहीं मिलता और वर्ण-मैत्री तथा भाषा की संगीतात्मकता में सहायक शब्द-चयन से भाषा की शोभा भी बहुत बढ़ी हुई है।

अर्द्धतत्सम शब्द—अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग साधारणतः उच्चारण की सुविधा-सरलता के लिए किया जाता है। ब्रजभाषा कवियों की भाषा में प्रयुक्त अर्द्धतत्सम रूपों को देखने से स्पष्ट भी होता है कि जिन तत्सम शब्दों के उच्चारण में किसी प्रकार की कठिनता थी, अथवा जिनकी ध्वनि में कुछ कर्कशता या कठोरता जान पड़ती थी, उन्होंने उन्हें सरल रूप देने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार उन्हें ही काव्य-भाषा के लिए उपयुक्त बना लिया है। कभी-कभी चरण की मात्रा-पूर्ति के लिए भी तत्सम शब्दों के कुछ अर्द्धाक्षरों को उन्हें स-स्वर करना पड़ा है। वस्तुतः किसी शब्द का रूप विकृत करने का उद्देश्य यदि उसकी उपयोगिता बढ़ाना हो तो कवि की प्रशंसा ही करनी चाहिए। ब्रजभाषा-कवियों के सामने, अर्द्धतत्समों का निर्माण करते समय प्रायः यही उद्देश्य रहा है। अतएव उनके इस प्रयत्न ने ब्रजभाषा का निजी शब्द-कोश बढ़ाने में विशेष सहायता दी; क्योंकि ये नवनिर्मित शब्द उसकी ही सम्पत्ति हैं और उसी के व्याकरण से शासित होते हैं। दूसरी बात यह है कि अर्द्धतत्समों का प्रयोग साधारणतः ऐसे स्थलों पर होना चाहिए जहाँ भाव के प्रवाह में मग्न और विषय में लीन पाठक को उनकी उपस्थिति संगत जान पड़े। संतोष की बात है कि अधिकांश कवियों ने इसका भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है और प्रसंग एवं वातावरण के उपयुक्त अर्द्धतत्समों का ही प्रायः चुनाव किया है। उनकी रचनाओं में सबसे अधिक संख्या अर्द्धतत्सम शब्दों की है। निम्नलिखित उदाहरणों से उनकी अर्द्धतत्सम-रूप-निर्माण की प्रवृत्ति का पता लग सकता है —

अगिनि<अग्नि, अनुसासन<अनुशासन, अभरन <आभरण, अम्रित<अमृत, अरध<अर्द्ध, अस्तुति< स्तुति, अस्थान<स्थान, अस्मर<स्मर, अच्छादित< आच्छादित आसरम<आश्रम, ईस्वरता<ईश्वरता, उछेद <उच्छेद, उनमत्त<उन्मत्त, करतार<कर्तृ, किरपा< कृपा, कुदरसन<कुदर्शन, कृतघन<कृतघ्न, गाहक< ग्राहक, चतुरभुज<चतुर्भुज, जनम<जन्म, तृन<तृण, तृष्ना<तृष्णा, थान<स्थान, थिति<स्थिति, दरपन< दर्पण, दुआदश<द्वादश, दुरबुद्धि<दुर्बुद्धि, दुरमति< दुर्मति, धरम<धर्म, नगन<नग्न, निरधन<निर्धन, निस्चै<निश्चय, निहकाम<निष्काम, निहचै<निश्चय, पदारथ<पदार्थ, परकार<प्रकार, परजंत<पर्यंत, परजा <प्रजा, परताप<प्रताप, परतिज्ञा<प्रतिज्ञा, परतीति< प्रतीति, परबत<पर्वत, परबीन<प्रवीण, परमान< प्रमाण, परसंसा<प्रशंसा, परसन<प्रसन्न, पराकरम< पराक्रम, बितत<व्यतीत, बिदमान<विद्यमान, बिपाक< विपाक, बिरति<विरक्ति, बिलम<विलंब, बैद<वैद्य, भीषन<भीषण, मरजादा<मर्यादा, मरम<मर्म, मारग <मार्ग, रतन<रत्न, रिधि<ऋद्धि, लछमी<लक्ष्मी, सनान<स्नान, सरवज्ञ<सर्वज्ञ, सराध<श्राद्ध, सवाद< स्वाद, साच्छात<साक्षात्, सुभाइ<स्वभाव, सुम्रित< स्मृति आदि।

इन अर्द्धतत्सम रूपों से स्पष्ट होता है कि इनका निर्माण कहीं तो 'स्वरभक्ति' के आधार पर किया गया है, जैसे नग्न-नगन, पदार्थ-पदारथ आदि; कहीं 'अग्रागम' के; जैसे स्थान-अस्थान, स्मर-अस्मर आदि; कहीं ब्रजभाषा की प्रकृति का ध्यान करके; जैसे तृष्णा-तृष्ना, विपाक-बिपाक; और कहीं शब्द-विशेष के उच्चारण की सुगमता या स्पष्टता के लिए जैसे अमृत-अम्रित, ऋद्धि-रिधि, स्मृति-सुम्रित आदि। अर्द्धतत्सम रूप बनाने की यह पद्धति सदैव ही प्रचलित रहती है; एक भाषा में दूसरी के अनेक शब्द इसी प्रकार अपनाये जाते हैं। अतएव ब्रजभाषा-कवियों का तत्संबंधी प्रयत्न भी भाषा-विज्ञान के नियमों के अनुकूल और भाषा-प्रकृति की दृष्टि से नितांत स्वाभाविक समझा जाना चाहिए।

परंतु किसी शब्द के अर्द्धतत्सम रूप का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि नवनिर्मित रूप अर्थ की दृष्टि से कहीं भ्रामक न हो जाय। उदाहरणार्थ 'कर्म' से 'करम' और 'असत्' से 'असत' शब्द साधारणतः बनाये और प्रयोग में लाये जाते हैं। इसी प्रकार यदि 'क्रम' से 'करम' और 'अस्त' से 'असत' बना लिये जायँ तो इन नये शब्दों से पूर्वार्थ-सूचक रूपों का भ्रम हो सकता है। फिर भी कवि ऐसे भ्रामक प्रयोग किया ही करते हैं। जैसे 'स्मर' के लिए 'समर' लिखना; क्योंकि इससे भिन्नार्थ 'युद्ध' का भ्रम हो जाता है—अंग-अंग छबि मनहुँ उये रबि ससि अरु समर लजाई।

तद्भव शब्द—संस्कृत के तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों के अतिरिक्त व्रजभाषा-कवियों की भाषा में बहुत अधिक संख्या में तद्भव शब्द मिलते हैं। इनसे आशय उन शब्द-रूपों से है जो मूलतः तो संस्कृत के थे; परंतु मध्यकालीन भाषाओं—पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि—की प्रकृतियों के अनुसार परिवर्तित होते होते नये रूप में हिंदी तक पहुँचे थे। वस्तुतः किसी भाषा की अर्जित संपत्ति ये तद्भव रूप ही होते हैं; क्योंकि इनका निर्माण सर्वथा जनभाषा की प्रकृति के अनुकूल और बहुत स्वाभाविक रीति से होता है। व्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त तद्भव शब्दों की सूची बहुत लंबी है। अतएव यहाँ चुने हुए कुछ उदाहरण ही संकलित हैं—

अंगुष्ठ>अंगुट्ठ>अँगूठा, अँगुठा। अंधकार>अँधआर>अँधियार, अँध्यारी। आम्र>अंब>अँब, अंबु। अश्रु>अस्सु>आँसू। अकार्यार्थ>अकारियत्थ>अकारथ। अक्षवाट>अक्खआड>अखाड़ा, अखारा। आश्चर्य>अच्चरिय>अचरज। अद्य>अज्ज>आज, आजु। अष्टादस>अट्ठारस>अठारह। अर्द्ध>अद्ध या अद्धो>अध। आकर्ण>आकणन>अकनना, अनकना, अनकनि। अन्+अक्ष>अनख्ख>अनख, अनखैयत, अनखौहीं। अन्यत्र>अन्नत्त>अनत। अपुष्ट>अपुट्ठ>अपूठा, अपूठी। अवरुंधन>ओरुज्झन>अरुझना, अरुझत। अहिवाद्य>अहिवाद>अहिवात। अक्षि>अक्खि>आँख, आँखि। वाद्य>वज्ज>आउज=एक बाजा। अर्क>अक्क>आक। अक्षर>अक्खर>आखर। अक्षय>अक्खय>आखा, आखो=कुल, समस्त। अग्नि>अग्गि>आग।

उत्कथन>उक्कथन>उघटना, उघट, उघट्यौ। उत्संग>उच्छंग>उछंग। उत्साह>उच्छाह>उछाह, उछाहु। उद्गार>उग्गाल>उगाल, उगार, उगारु। उद्गिलन>उग्गिलन>उगलना, उगिलौ। उद्वर्त्तन>उब्बटन>उबटन, उबटनौ। उष्ट्र>उट्ट>ऊँट। उद्ग्रहण>उग्गहन>उगाहना, उगाहु। उद्घाटन>उग्घाटन>उघड़ना, उघरना, उघरी, उघरे। अवतरण>उत्तरण>उतरना, उतरात, उतरानी। अनुसार>अनुहार>उनहार, उनिहारी। ऋद्ध>उरद। आवर्तन>आवट्टन>औटना, औटाई, औटि।

कर्कोटक>कक्कोउक>ककोड़ा, ककोरा। कर्त्तन>कट्टन>काटना, कट्टे। कृष्ण>कण्ह>कन्हाई, कन्हैया, कान्ह, कान्हर, कान्हा। कक्ष>कच्छ>कच्छ, काछनी। कार्य>कज्ज>काज। काष्ठ>कट्ठ>काठ। कर्म>कम्म>काम। कैवर्त्त>केवट्ट>केवट। कुक्षि>कुक्खि>कोख, कोखि। कपर्दिका>कवड्डिआ>कौड़ी। गुह्य>गुज्झक>गूझा। ग्रंथ>गत्थ>गथ, गथु। गजेंद्र>गयिंद>गयंद।

ग्रंथि>गंठि>गाँठ, गाँठि, गाँठी। गर्जन>गज्जन>गाजना, गाजन गाजनु। गर्त्त>गड्ड<गाड़=गड्ढा, गाड़े। गुह्यक>गुज्झा>गूझा, गोझा। घात>घाअ<घाव। घृत>घीअ>घी, घिय, घीव।

चिपिट>चिविड>चिउड़ा, चिउरा। चीत्कार>चिक्कार>चिकार। चतुष्क>चउक्क>चौक। चतुर्थी>चउत्थि, चौथ। छत्र>छत्त>छाता। जिह्वा>जिब्भ>जीभ। जुष्ठ>जुट्ठ>जूठा, जूठो, जूठौ। अयुक्त>अजुत्त<झूठ। दृष्टि>दिट्ठि>डिट्ठि>डीठ, डीठि, दीठि। शिथिल>सिढिल<ढीला, ढीली। तप्त>तत्त>ताता, ताती। तुष्ठ>तुट्ठ<तूठना, तूठे। दर्प>दप्प>दाप। दुर्लालन>दुल्लाडन>दुलार, दुलारी, दुलारो-दुलारौ। दुर्लभ>दुल्लह>दूलह। ज्ञाति>णाति>नात, नातौ। निःनिकट>निनिअड>निनरा, निनरे, निनारे।

पक्षालु>पक्खाडु>पखेरू। पदक>पअक, पक>पग। पत्री>पत्ती>पाती=पत्र। पाद>पाय>पाव, पाँउ। प्रावृष>पाउस>पावस। पाषाण>पाहाण>पाहन। पुटकिनी>पुडइनी>पुरइन। प्रोता>पोता>पोत=काँच की गुरिया का दाना। प्रतोली>पओली>पौरी, पौरि। वत्स>वच्छ>बच्छ। अवसृष्ट>अवसिट्ठ>बसीठ। विद्युत>बिज्जु>बीजु। वचन>बयन>बैन। भक्ष>भक्ख>भख। मौक्तिक>मोत्तिय>मोती। मूल्य>मुल्ल>मोल। राजिका>राइआ>राई। यष्ठि>लट्ठि>लड़ी, लड़, लर। स्वस्तिक>सत्थिअ>सथिया। शुक>सुअ>सुआ या सुवा। हरित>हरिअ>हरा, हरी। हृदय>हिअ>हिय।

कुछ शब्दों के अर्द्धतत्सम और तद्भव, दोनों रूप प्रचलित रहते हैं; जैसे वत्स, अर्द्ध० बच्छ, तद्० बच्चा।

यदि ये दोनों रूप नवोदित काव्यभाषा के योग्य और उसकी प्रकृति के अनुरूप होते हैं, तो आवश्यकतानुसार दोनों को काव्य-रचनाओं में स्थान दिया जाता है। ब्रज-भाषा-काव्य में भी कुछ शब्दों के अर्द्धतत्सम और तद्भव, दोनों रूप मिलते हैं; यथा--सं० अग्नि, अर्द्ध० अगिन, अगिनि; तद्० आग। सं०कार्य, अर्द्ध० कारज, तद्, काज।

अर्द्ध तत्सम, तद्भव और मिश्रित संधि-प्रयोग – अर्द्धतद्भव और सरल तत्सम शब्दों को अनेक ब्रजभाषाकवियों ने प्राय: एक ही वर्ग में रखा है और अपने काव्य में इन्हें बिना किसी भेद-भाव के, निसंकोच समान अधिकार दिया है। यही कारण है कि दिनेस, बदरिकासरम जैसे इने-गिने संधि-प्रयोग केवल अर्द्धतत्समों या तद्भवों के आधार पर बने मिलते हैं; अन्यथा उन्होंने मिश्रित शब्द-रूपों की स्वतंत्रतापूर्वक संधियाँ की है: यथा कुसासन, चरनांबुज, चरनोदक, सुपनांतर आदि। अधिकांश कवि प्राय: तीन-चार अक्षरों से अधिक के शब्दों का प्रयोग करने के पक्ष में नहीं जान पड़ते। पाँच-छह अक्षरोंवाले बहुत ही थोड़े शब्द उनके काव्य में मिलते हैं और उनमें भी अधिकांश पारिभाषिक या व्यक्तिवाचक ही है; यद्यपि कवि की रुचि अवसर मिलते ही उनको भी संक्षिप्त करने की ओर रही है। इसी कारण एक तो संधि-प्रयोगों की संख्या ही उनके काव्य में कम है और दूसरे, इस प्रकार निर्मित जो शब्द मिलते भी हैं उनमें से अधिकांश सरल स्वर-संधि के ही उदाहरण हैं।

अर्द्ध तत्सम, तद्भव और मिश्रित समास—संधि-प्रयोगों की अपेक्षा अर्द्धतत्सम और तद्भव सामासिक पदों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में अधिक है। जिन छंदों में कवियों ने इन शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, वहाँ तो ऐसे समास मिलते ही हैं; साथ ही तत्सम शब्दावली-प्रधान भाषा के बीच में भी उन्होंने इन्हें निस्संकोच स्थान दिया है। इसका कारण यही है कि अनेक कवि तद्भव और अर्द्धतत्सम शब्दों से अधिक महत्व का पद तत्सम शब्दों को नहीं देना चाहते; जैसे—करम-फांस, नख-प्रकास, बान-बरषा, बिषय-बिकार, ब्रजचंद, ब्रजवासी, भुज-स्रम आदि।

अर्द्धतत्सम या तद्भव और संस्कृत के तत्सम शब्दों के आधार पर बने हुए सामासिक पदों की संख्या भी ब्रजभाषा-काव्य में बहुत अधिक है; यथा—कटि-बसन, करुना-सिंधु, कुस-आसन, गोपी-जन-बल्लभ, छपद, जगदीस-भजन, जदुकुल, जलबिहार, जादव-कुल-दीपक, जीवन-प्रान, तन-दसा, धन-जोबन-मद-माते, पसु-पालक, प्रेम-मगन, बाल-सँघाती, रन-भूमि, रूप-रतन, संभु-सुत, सिव-रिपु, सुख-सेज्या, हरि-भक्त आदि।

अर्द्ध तत्सम, तद्भव और मिश्रित सहचर पद— तत्सम सहचर-पदों से लगभग चौगुने अर्द्धतत्सम, तद्भव और मिश्रित पद ब्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त हुए हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं – अहनिसि, उच्च-अनुच्च, ऊँच-नीच, कूकर-सूकर, खर-कूकर, खाटो-खारो, गाइ-बच्छ, गुन-अवगुन, घाट-बाट, जनम-मरन, जोग-जुगति, ताल-पखावज, तीरथ-व्रत, दिन-राती, दुख-संताप, देस-बिदेस, धर-अंबर, नख-सिख, नभ-धरनि, नान्हे-नून्हे, निसि-बासर, नेम-ब्रत, पहर-घरी, पसु-पक्षी, पाखंड-चतुराई, पाप-पुन्य, फूल-फल, बन-उपबन, बाद-बिबाद, भंडार-भूमि, भले-बुरे, भाजी-साक, भाव-भगति, भूख-नींद, मंत्र-जंत्र, माया-मोह, मान-परेखौ, रंक-भिखारी, संपदा-आपदा, सर-अवसर, सीत-उष्न, सूर-सुभट, सेमर-ढाक, स्वर्ग-पताल, हय-गय, हर्ष-सोक आदि।

पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द—

तद्भव शब्दों के जो उदाहरण ऊपर दिए गए हैं वे पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से होते हुए ब्रज-भाषा तक पहुँचे है। उनके अतिरिक्त कुछ शब्द ब्रजभाषा में उसी रूप में मिलते हैं जिस रूप में वे पाली, प्राकृत अथवा अपभ्रंश में प्रयुक्त होते थे और इनके मूल रूप में अपना लिए जाने का कारण था इनकी ध्वनि का ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप होना। ऐसे कुछ शब्द ये हैं—असवार <अश्ववार या अश्वपाल। उज्जल <उज्ज्वल। ऊसर < ऊषर। केहरि <केसरी। खार <क्षार। गय <गज। गाहक <ग्राहक। घर <गृह। चिहुर <चिकुर। जस < यशस्। ताव <ताप। फटिक <स्फटिक। बिज्जु < विद्युत। सायर <सागर आदि।

हिन्दी बोलियों के शब्द—

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा के साथ-

साथ उसके निकटवर्ती प्रदेशों की जिन बोलियों का विकास हो रहा था उनमें चार प्रमुख थीं—अवधी, खड़ीबोली, कन्नौजी और बुन्देलखंडी। इनमें प्रथम दो तो विकसित होकर स्वतंत्र भाषा का पद प्राप्त कर सकीं, अंतिम दोनों, एक प्रकार से, ब्रजभाषा में ही समा गयीं। इन बोलियों से ब्रजभाषा का शब्द-संबंधी आदान-प्रदान बराबर चलता रहा और ब्रजभाषा-कवियों की रचनाओं में इनके शब्द यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

अवधी के शब्द—ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी का भी विकास हुआ। सूफी कवियों के अतिरिक्त राम-भक्ति-शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास ने उसके मस्तक पर अपना वरद हस्त रखकर उसे सदा के लिए अमर कर दिया। गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव के पूर्व तक अवधी और ब्रजभाषा की स्थिति बहुत-कुछ समान थी। पूर्ववर्ती भारतीय भाषाओं तथा समकालीन विदेशी भाषाओं के प्रति दोनों की नीति में भी बहुत-कुछ समानता थी। गोस्वामी जी ने जहाँ अवधी को अपनाकर उसे विकास की चरम सीमा तक पहुँचा दिया, वहीं ब्रजभाषा में काव्य-रचना करके इसकी लोकप्रियता-वृद्धि और महत्ता-स्थापन में महत्वपूर्ण योग देकर, परोक्ष रूप से, अवधी का क्षेत्र भी सीमित-संकुचित कर दिया। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश तथा अरबी, फारसी और तुर्की के जो तत्सम, अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्द उस समय तक प्रचलित हो गए थे, उन पर ब्रजभाषा और अवधी का समान अधिकार था और दोनों के कवियों ने उनका निःसंकोच प्रयोग किया। उस समय शब्दकोश समृद्ध करने और व्यंजना-शक्ति बढ़ाने की इन भाषाओं में जैसे होड़-सी लग रही थी। इसीलिए अवधी ने ब्रजभाषा के और ब्रजभाषा ने अवधी के काव्योपयोगी प्रसंगों को भी सहर्ष अपना लिया। दोनों भाषाओं में पर्याप्त साहित्य-रचना हो जाने के पश्चात् शब्दों का आदान-प्रदान बढ़ता ही गया। परंतु ब्रजभाषा के पक्ष में एक ऐसी बात थी जिससे अवधी से उसे आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो गया। ब्रजभाषी क्षेत्र में तो अवधी में रचना करनेवाले कवियों की संख्या नहीं के बराबर रही, लेकिन अवधी-क्षेत्र-वासी अनेक कवियों ने ब्रजभाषा को काव्य-रचना के लिए सादर ग्रहण किया जैसा गोस्वामी जी कर चुके थे। इनकी ब्रजभाषा में अवधी के प्रयोगों का आ जाना स्वाभाविक ही था। अतएव ब्रजभाषा-काव्य में अवधी के ऐसे प्रयोग ही मिलते हैं जो इतने सरल थे कि ब्रजभाषी क्षेत्र में सरलता से प्रचलित हो गये थे; साथ-साथ अवधी की प्रवृत्ति का प्रभाव भी अनेक शब्द-रूपों पर दिखाई देता है; जैसे—

अस—तो को अस त्राता जु अपुन करि कर कुठावँ पक-रैगो। धन्य जसोदा जिन जायो अस पूत।

आहि—उमा, आहि यह सो मुंडमाल। तृनावर्त प्रभु आहि हमारो।

इह—तासों भिरहु तुमहिं मो लायक इह हेरनि मुसकानि।

इहाँ—इहाँ आइ सब नासी। इहाँ अपसगुन होत नित नए। ते दिन बिसरि गए इहाँ आए।

उहाँ—उहाँ जाइ कुरुपति बल जोग। दियौ छाँड़ि तन कौं संजोग।

ऊँच—महाँ ऊँच पदवी तिन पाई।

कनियाँ—ता पाछै तू कनियाँ लै री। हरि किलकत जसुदा को कनियाँ। लाल कौं कबहुँक कनियाँ लैहौं।

कीन—नृप ब्रत पूरन कीन। मुकुट कुंडल किरन रवि छवि परम बिगसित कीन।

गोर—मनमोहन पिय दूल्हा राजत दुलहिन राधा गोर। द्वै ससि स्याम नवल घन द्वै कीन्हे बिधि गोर।

छोट—बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ो को छोट।

जुआर—मानौ हार्‌यौ हेम जुआर।

जुवारी—ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी।

तोर—पावक परौं सिंधु महँ बूड़ौं नहिं मुख देखौं तोर।

दुआर—देखन रूप मदन मोहन को नंद दुवार खरो।

पियासे—रचि रुचि प्रेम पियासे नैनन क्रम क्रम बलहिं बढ़ावत।

बड़—सज आयुध बड़-छोट।

बियारी—कमल नैन हरि करो बियारी।

उक्त प्रयोगों में कनियाँ-जैसे शब्द अवधी भाषी क्षेत्र में ही अधिक प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अस, ऊँच, गोर, छोट, तोर, बड़ आदि रूप अवधी की अकारांत प्रवृत्ति के आधार पर निर्मित हैं। इसी प्रकार पियारे, बियारी-जैसे शब्दों में 'इ' के पश्चात् 'आ' का; एवं जुआर,

जुवारी, दुवार आदि में 'उ' के पश्चात् 'अ' का उच्चारण भी अवधी की प्रवृत्ति का द्योतक है। ऐसे प्रयोगों की विशेषता यह है कि रूप की दृष्टि से सुगम हाने के कारण ये काव्यभाषा के उपयुक्त थे और इनसे मिलते-जुलते रूप ब्रजभाषा में प्रचलित भी थे। फलस्वरूप परवर्ती ब्रजभाषा-कवियों का ध्यान उनके भिन्न-भाषत्व की ओर जा ही नहीं सका और उन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक उन्हें अपनी भाषा में स्थान तो दिया ही, उन्हीं के अनुरूप अनेक शब्दों का निर्माण करके भाषा को अधिक व्यापक भी बनाया। अवधी जैसी विकासोन्मुख भाषा से होड़ में आगे बढ़ने के लिए इस प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता भी थी।

खड़ीबोली के शब्द—खड़ीबोली का जन्म यद्यपि ब्रजभाषा और अवधी के साथ ही हुआ; परन्तु सम्भवतः विदेशियों के घनिष्ठ संपर्क में आनेवाले क्षेत्र के निवासियों की भाषा होने के कारण चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी तक ब्रजभाषा और अवधी की तरह उसका स्वतंत्र विकास न हो सका। खड़ीबोली इन शताब्दियों में सामान्य व्यवहार की भाषा के रूप में ही रही और उसमें मौखिक रचना ही अधिक हुई; किसी प्रतिष्ठित कवि ने उसे स्वतंत्र काव्य-भाषा का रूप देने का यत्न नहीं किया। अतएव ब्रजभाषा-काव्य में खड़ीबोली की पद और वाक्यांश-रचना का भी कहीं-कहीं प्रभाव दिखाई देता है, यद्यपि अधिकांश ब्रजभाषी कवियों की भाषा में खड़ीबोली के बहुत कम प्रयोग होते हैं। बात यह है कि ब्रजभाषा की क्रियाओं और विभक्तियों से युक्त वाक्य खड़ीबोली से भिन्न हो भी जाते हैं। इसलिए ब्रजभाषी कवियों द्वारा प्रयुक्त कीजै-कीजिये, गाइये, पाइये, हुए आदि शब्द उनकी भाषा पर खड़ीबोली के प्रभाव-सूचक माने जा सकते हैं, जैसे—मैं-मेरी कबहुँ नहिं कीजै, कीजै पंच सुहातौ। हरि गुन गाइये। पार नहिं पाइये। पै तिन हरि दरसन नहिं हुए।

इनके अतिरिक्त ब्रजभाषा-काव्य में कुछ ऐसे वाक्य भी मिलते हैं जो ज्यों के त्यों अथवा बहुत ही कम हेर-फेर के साथ खड़ीबोली-काव्य में प्रयुक्त हो सकते हैं। ऐसे वाक्यों में कुछ तो क्रियारहित हैं और कुछ में क्रिया भी वर्तमान है। क्रियारहित वाक्यों के कुछ उदाहरण यहाँ संकलित हैं—बासुदेव की बड़ी बड़ाई। यह सीता, जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनंदन रानी। हमारी जन्म भूमि यह गाँउ। तुम दानव हम तपसी लोग। मेरे माई, स्याम मनोहर जीवनि। सूरदास प्रभु तिनकी यह गति, जिनके तुमसे सदा सहायक। सूरदास प्रभु अंतरजामी। ब्रह्मा कीट आदि के स्वामी। सुन्दरता-रस-गुन की सीवाँ, सूर राधिका स्याम।

इन वाक्यों में प्रयुक्त आपु, स्याम, अंतरजामी, सीवाँ आदि के स्थान पर क्रमशः आप, स्याम, अंतर्यामी और सीमा कर दिया जाय तो ये खड़ीबोली कविता से ही उद्धृत जान पड़ेंगे। इनमें क्रिया-शब्दों का न होना भी खटकता नहीं है; क्योंकि काव्य में ऐसे वाक्य बराबर प्रयुक्त होते रहते हैं।

दूसरे वर्ग में वे वाक्य आते हैं जो क्रिया-युक्त हैं; जैसे - बिभीषन बोले। हरि हँसि बोले बैन, संग जो तुम नहिं होते। अपने घर के तुम राजा हो। रास समय कालिंदी के तट तब तुव वचन न माने। खड़ीबोली के आदर्श वाक्य बनाने के लिए इन उदाहरणों के दो-एक शब्द तो बदलने पड़ेंगे; परन्तु इनमें प्रयुक्त क्रिया-रूप ज्यों के त्यों आज भी खड़ीबोली में प्रयुक्त होते हैं। इनमें से 'बोले'-जैसे रूप ब्रजभाषा में भी बराबर आते हैं।

कन्नौजी और बुन्देलखंडी के शब्द—ये बोलियाँ न तो स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित हुईं और न इनमें विशेष साहित्य ही रचा गया; प्रत्युत इनके बोलने वालों ने ब्रजभाषा में ही साहित्य-रचना की जिसमें स्थानीय प्रयोग आ जाना स्वाभाविक ही था। ब्रजभाषा कवियों की भाषा में भी इन बोलियों के कुछ प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ भूतकालिक क्रिया रूप 'हुतो' और उसके विकृत रूप ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—बूझति जननि, कहाँ हुती प्यारी। अरजुन के हरि हुते सारथी। असुर द्ववै हुते बलवंत भारी। यहाँ हुतौ इक सुक कौ अंग। इसी प्रकार 'इबी' या 'बी' से अंत होनेवाले क्रिया-प्रयोगों पर भी बुंदेलखंडी का प्रभाव मिलता है; जैसे—तब जानिबी किसोर जोर रुपि, रहौ जीति करि खेत सबै फर। प्रभु हित सूचित कै बेगि प्रगटबी तैसी। इतने में सब बात समझबी चतुर सिरोमनि नाह।

नीचे के उदाहरण में 'कोंपर' पात्र भी विशेष रूप से बुंदेलखंड में प्रचलित है—

दधि-फल-दूब कनक-कोंपर भरि, साजत सौंज बिचित्र बनाई।

देशी भाषाओं के शब्द—

ब्रजभाषी क्षेत्र के चारों ओर जो भाषाएँ बोली जाती थीं उनमें अवधी, कन्नौजी और बुंदेलखंडी से ब्रजभाषा का घनिष्ठ संबंध था और उनकी प्रवृत्ति में भी कुछ-कुछ समानता थी। अन्य निकटवर्ती भाषाओं में से पंजाबी और गुजराती के कुछ प्रयोग कवियों की भाषा में मिलते हैं; जैसे- लोग कुटुम्ब जगत के जे कहियत 'पेला' सबहि निदरिहौं। जौ जग और 'बियौ' कोउ पाऊँ। इतनिक दूर जाहु चलि कासी जहाँ बिकति है 'प्यारी'। इनमें 'पेला' और 'बियौ' गुजराती के प्रयोग हैं तथा 'प्यारी' पंजाबी का शब्द है जो 'महँगी' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

विदेशी भाषाओं के शब्द—

अरबी, फारसी और तुर्की—इन तीन विदेशी भाषाओं का ब्रजभाषा के विकास-काल में विशेष प्रचार था। इनको आश्रय देनेवाले विदेशी शासक थे। यों तो विदेशी साम्राज्य-विस्तार के साथ-साथ इन भाषाओं का प्रचार भी चौदहवीं शताब्दी के अंत तक उत्तरी भारत में विशेष, और दक्षिण में सामान्य, रूप से हो गया था; परंतु वस्तुतः दिल्ली-आगरा का निकटवर्ती वह प्रदेश इनका गढ़ था जो ब्रजभाषा का भी क्षेत्र कहा जा सकता है। अतएव अरबी, फारसी और तुर्की के अनेक शब्द उत्तरी भारत में सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रचलित हो गये थे। यही कारण है कि इन विदेशी भाषाओं का विधिवत् अध्ययन न करने वाले ब्रजभाषा और अवधी के तत्कालीन कवियों ने भी इनका स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग किया और इस प्रकार अपनी-अपनी भाषाओं को व्यावहारिक रूप देने में वे समर्थ हो सके।

भाषा का किसी देश की संस्कृति और जनता की विचार-धारा से घनिष्ठ संबंध होता है। तत्कालीन कवियों द्वारा इन विदेशी भाषाओं के शब्दों का अपनाया जाना भारतीय संस्कृति और जन-मनोवृत्ति की उदारता ही सूचित करता है। विदेशियों ने यहाँ की भाषा और उसके साहित्य के साथ कैसा भी व्यवहार किया हो, हमारे कवियों ने विदेशी शब्दों को कभी अछूत नहीं समझा और जिन अवधी और ब्रजभाषा के माध्यमों से भक्त-कवियों ने अपने-अपने आराध्यों की परम पावन लीलाओं का गान किया, उनमें अनेक विदेशी शब्दों को भी सादर स्थान दिया गया। यह आदर्श भारतीय सांस्कृतिक सहिष्णुता का एक ज्वलंत उदाहरण कहा जा सकता है।

इन विदेशी भाषाओं—अरबी, फारसी और तुर्की—के अनेक शब्द संस्कृत की तरह अपने मूल या तत्सम रूप में मध्यकालीन कवियों की भाषा में प्रयुक्त हुए हैं और अनेक अर्द्धतत्सम रूप में। यह रूप-परिवर्तन भी किसी विद्वेष के कारण नहीं किया गया था; क्योंकि यही नीति उन्होंने देववाणी संस्कृत के शब्दों के साथ बरती थी। वस्तुतः सभी भाषाओं की प्रकृतिगत कुछ विशेषताएँ होती हैं जिनकी रक्षा करना उनके कवियों का कर्तव्य हो जाता है। ब्रजभाषा-कवियों ने भी विदेशी भाषाओं के शब्दों को अर्द्धतत्सम रूप देकर उसकी प्रकृति की रक्षा का ही प्रयत्न किया। उनके काव्य में अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द तत्सम और अर्द्धतत्सम, दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुए हैं।

अरबी के शब्द—अरब और भारत का संबंध बहुत पुराना है। उस देश में भारतीय विद्वानों के पहुँचने और कुछ संस्कृत ग्रंथों के अरबी में अनुवाद करने के उल्लेख आठवीं शताब्दी के मिलते हैं।[१] सन् ९३ हिजरी में मुहम्मद दिन कासिम ने भारत पर आक्रमण करके मुलतान से कच्छ तक और उधर मालवे की सीमा तक अधिकार कर लिया था।[२] इस प्रकार लगभग सारा सिन्धुप्रदेश उसके अधिकार में आ गया था। इस साम्राज्य के मुलतान

१. बाबू रामचंद्र वर्मा द्वारा अनुवादित 'अरब और भारत के संबंध' नामक पुस्तक (पृ १०) में उद्धृत —क. किताबुल् हिंद, बैरूनी, पृ. २०८ (लंदन) और ख. अखबारुल् हुक्मा, किफ्ती, पृ १७७ (मिश्र)।

२. बाबू रामचन्द्र वर्मा, 'अरब और भारत का संबंध', पृ. १४।

और मनसुरा (सिंध) के प्रदेशों पर अरबों का अधिकार सुलतान महमूद की चढ़ाई तक बना रहा।[1] इन तीन-चार सौ वर्षों के संपर्क के फलस्वरूप अरबी के बहुत से शब्दों से भारतीयों का परिचित हो जाना स्वाभाविक ही था। पश्चात्, भारत में मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना होने पर दिल्ली के दरबार में अरबी साहित्य का आदर बढ़ा, क्योंकि यही उनकी प्रमुख धार्मिक भाषा थी जिसके प्रति उनकी कट्टर भक्ति असंगत नहीं कही जा सकती। धीरे-धीरे इस विदेशी भाषा के पर्याप्त शब्द व्यवहार में प्रयुक्त होने लगे। इस संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकांश अरबी शब्द फारसी से होते हुए हिंदी में आये;[2] क्योंकि इस भाषा पर अरबी का विशेष प्रभाव था। जो हो, दो-तीन सौ वर्षों में इसके अधिकांश शब्द उत्तरी भारतीय नवभाषाओं में इस प्रकार घुल-मिल गये कि कवियों ने निसंकोच उनका प्रयोग आरंभ कर दिया। ब्रजभाषा-काव्य में अरबी के जो शब्द मिलते हैं उनको तत्सम और अर्द्धतत्सम, दो वर्गों में रखा जा सकता है।

अरबी के तत्सम शब्द—दैनिक व्यवहार में जो छोटे-छोटे और सरल रीति से उच्चरित अरबी शब्द प्रचलित हो गये थे, उन्हें कवियों ने मूल या तत्सम रूप में ही अपना लिया, यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं थी। ब्रजभाषा-काव्य में इस प्रकार के जो शब्द मिलते हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

अबीर—उड़त गुलाल अबीर जोर तहँ विदित दीप उजियारी।

अमल—आनँदकंद चंदमुख निसि दिन अवलोकत यह अमल पर्‍यौ।

अमीन—नैन अमीन अधर्मिनि कैं बस जहँ को तहाँ छयौ।

असल—करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ असल तहाँ खतियावै।

कलई—देखौ माधौ की मित्राई। आई उघरि कनक कलई सी दै निज गए दगाई। आई उघर प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी।

कसब—आन देव की भक्ति भाइ करि कोटिक कसब करैगौ।

खसम—सूरदास प्रभु झगरो सीख्यौ ज्यौं घर खसम गुसैयाँ।

जमा—साबिक जमा हुती जो जोरी मिनजालिक तल ल्यायौ।

जवाब—सूर आप गुजरान मुसाहिब लै जवाब पहुँचावै। सूर स्याम मैं तुम्हें न डरैहौं जवाब की जवाब दैहौं।

माल—तुम जानति मैं हूँ कछु जानत जो जो माल (= सामान, असबाब) तुम्हारे। अल्प चोर बहु माल (=धन-संपत्ति) लुभाने संगी सबन धराए।

मुजरा—गाइ चरावत ग्वाल ह्वै आयौ मुजरा देन।

मुहकम—सूर पाप को गढ़ दृढ़ कीन्हो मुहकम लाइ किवार।

मुहर्रिर—मुहर्रिर पाँच साथ करि दीने तिनकी बड़ी विपरीति।

मुसाहिब—सूर आप गुजरान मुसाहिब लै जवाब पहुँचावै।

मौज—मनसानाथ मनोरथ पूरन सुखनिधान जाकी मौज (=उमंग) घनी।

सतर—हमसों सतर (=क्रुद्ध) होत सूरज प्रभु कमल देहु अब जाइ।

अरबी के अर्द्धतत्सम शब्द—विदेशी भाषा होने के कारण अरबी का उच्चारण स्वभावतः ब्रजभाषा से बहुत भिन्न था। अरबी की वर्णमाला में कुछ वर्ण ऐसे हैं जिनका उच्चारण ब्रजभाषा-भाषियों को सुगम नहीं प्रतीत होता। अतएव अरबी के तत्सम शब्दों का विदेशीपन दूर करने के लिए उनके अर्द्धतत्सम रूप बनाने की आवश्यकता थी जिनका उच्चारण अपेक्षाकृत सुगम और ब्रजभाषा-शब्दों के अधिक निकट हो जिससे नयी पीढ़ी उन्हें अपनी भाषा का ही अंग समझे। ब्रजभाषा-कवियों की भाषा में अरबी के तत्सम शब्दों की अपेक्षा ऐसे परिवर्तित रूपों की ही अधिकता है; यथा—

अकल < अक्ल—इंद्र ढीठ बलि खाइ हमारी देखौ अकल गमाई।

अबिर < अबीर—चोवा चंदन अबिर गलिनि छिरकावन रे।

1. बाबू रामचंद्र वर्मा, 'अरब और भारत का संबंध', पृ. २४७।
2. श्री ए. ए. मैकडॉनेल, 'इंडियाज पास्ट', पृ. २०२।

अरस<अर्श—बहुरि अरस (=महल) तैं आनि कै तब अंबर लीजै।....। अरस नाम है महल को जहाँ राजा बैठे।

उज़ीर<वज़ीर—पाप उजीर कह्यो सोइ मान्यो धर्म सुधन लुटयौ।

कसरि<क़सर—अब कछु हरि कसरि नाहीं, कस लगावत बार।

कसाई<क़स्साब—श्रीधर बाम्हन करम कसाई।

कागज़<क़ाग़ज़—भीजि बिनसि जाई छन भीतर ज्यौं कागज की चोली री।

कागद<क़ाग़ज़—तिनहूँ चाहि करी सुनि औगुन कागद दीन्हें डारि। सजल देह कागद तैं कोमल किहिं बिधि राखै प्रान।

कागर<क़ाग़ज़—रति के समाचार लिखि पठए सुभग कलेवर कागर। मारि न सकै बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर। दीरघु नदी नाउ कागर की को देखौ चढ़ि जात। ब्याध गीध गनिका जिहिं कागर (=दस्तावेज) हौं तिहिं चिठी न चढ़ायो।

कुलफ<क़ुफ़ल—काजर कुलफ मेलि मैं राखै पलक कपाट दये री।

कुल्ल<कुल—मुलजिम जोरै ध्यान कुल्ल कौ हरि सौं तहँ लै राखै।

खता<ख़ता—सूरदास चरननि की बलि बलि कौन खता तैं कृपा बिसारी।

खबरि<ख़बर—अपने कुल की खबरि (=पता, ध्यान) करौ धौं सकुच नहीं जिय आवति। क्यौं जू खबरि (=जानकारी) कहौ यह कीन्ही करत परस्पर ख्याल। ज्ञान बुझाइ खबरि (=संदेश) दै आवहु एक पंथ द्वै काज। किधौं सूर कोऊ ब्रज पठयौ आजु खबरि (=समाचार) कै पावत हैं। द्वारावति पैठत हरि सौं सब लोगनि खबरि (=समाचार) जनाई।

खरच<ख़र्च—सूरदास कछु खरच न लागत राम नाम मुख लेत।

खर्च<ख़र्च—हौं तो गयो हुतो गुपालहिं भेंटन और खर्च तंदुल गाँठी कौ।

खवास<ख़वास—मोदी लोभ खवास मोह के द्वारपाल अहँकार। कहि खवास कौं सैन दै सरपाव मँगायो।

खाली<ख़ाली—अरु जब उद्यम खाली (=व्यर्थ, निष्फल) परै।

खयाल<ख़्याल—औरे कहति और कहि आवति मन मोहन के परी ख्याल। ये सब मेरे ख्याल (=पीछे) परी हैं अब हीं बातनि लै निरुवारति।

गरज<ग़रज़—प्रीति के बचन बाँचे बिरह अनल आँचे, अपनी गरज कौ तुम एक पाइ नाचे।

गरीब<ग़रीब—स्याम गरीबनि हूँ के गाहक।

गुलाम<ग़ुलाम—सब कोउ कहत गुलाम स्याम को सुनत सिरात हिये। सूर है नँद-नंद जू को लयो मोल गुलाम।

जमानत<ज़मानत—धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै तातैं ठाकुर लूटयौ।

जमानति<ज़मानत—सो मैं बाँटि दई पाँचनि कौ देह जमानति लीन्हीं।

जहाज<जहाज़—नख-सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज। जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै।

ज्वाब<जवाब—ज्वाब देति न हमहिं नागरि रही बदन निहारि। दीन्हो ज्वाब दई को चैहो देखौ री यह कहा जँजाल।

डफ<दफ़—डफ झाँझ मृदंग बजाइ सब नंद-भवन गए। डिमडिमी पटह ढाल डफ बीणा मृदंग चँगतार।

तलफ<तलफ़—मनु पर्यंक तें परी धरनि धुकि तरँग तलफ तन भारी। दामिनि की दमकनि बूँदनि की झमकनि सेज की तलफ कैसे जीजियतु माई है।

दगा<दग़ा—सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यों खात दगा। सेरदास याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दई।

मसकत<मशक़्क़त—काहे कौं हरि बिरद बुलावत बिन मसकत ओ तारयौ।

मसखरा<मसख़रा—लंगर ढीठ गुमानी टूँडक महा मसखरा रूखा।

मिलिक<मिल्क—यह ब्रज-भूमि सकल सुरपति सौं

मदन मिलिक करि पाई ।

मुस्तौफी<मुस्तौफ़ी—चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी सरन गहूँ मैं काकी ।

लायक<लायक़—ऊधौ, हम लायक सिख दीजै ।

सफरी<सफ़री—सफरी (=अमरूद) चिउरा अरुन खुबानी ।

साबिक<साबिक़—साबिक जमा हुती जो जोरी मिन-जालिक तल ल्यायौ ।

हौंस<हवस—बोले सुभट, हौंस जनि मन करौ बन-बिहारी ।

फारसी के शब्द—अरब के समान फारस से भी भारत का संबंध बहुत पुराना है । दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में इसलामी शासन की नींव भारत में पड़ने पर फारसी भाषा का अध्ययन-अध्यापन भी यहाँ आरंभ हो गया । शाही दरबारों में नौकरी पाने और शाहों के निकट संपर्क में आने के लोभ से अनेक हिन्दू भी इस भाषा में योग्यता प्राप्त करने को प्रवृत्त हुए और अधिकांश मुसलमान विद्वानों की तो इसमें अच्छी गति होती ही थी । इन सब बातों के फलस्वरूप फारसी के बहुत से शब्द तत्कालीन भारतीय भाषा में घुल-मिल गये और कालांतर में खड़ी बोली, ब्रजभाषा ओर अवधी के कवि अपनी रचनाओं में उनका निस्संकोच प्रयोग करने लगे । फारसी की भी मधुरिमा बहुत बढ़ी-चढ़ी मानी जाती है । अतएव इसके शब्दों और प्रयोगों के प्रति मधुरिमा-प्रिय कवियों का आकर्षित होना यों तो स्वाभाविक ही कहा जायगा; परन्तु वस्तुतः फारसी का प्रचलन उक्त राजकीय संपर्क से ही हुआ । सन् १५८१ में अकबर के माल-मंत्री राजा टोडर-मल खत्री ने कर-विभाग का सारा कार-बार फारसी में करने की आज्ञा प्रचारित करवा दी जो किसी सीमा तक इस बात की ओर भी संकेत करती है कि फारसी की शिक्षा की व्यवस्था उस समय अच्छी थी ।

फारसी के तत्सम शब्द—अरबी की तरह ही ब्रजभाषा-कवियों ने फारसी के भी सरल शब्दों का तत्सम रूप में ही प्रयोग किया है जो इस बात का प्रमाण है कि उनमें न भाषा-संबंधी कट्टरता थी और न जन-भाषा की प्रवृत्ति का विरोध ही उन्हें अभीष्ट था । उनके काव्य में फारसी के जो तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

अचार पापर बरी अचार परम सुचि ।

अवारजा – करि अवारजा प्रेम-प्रीति कौ असल तहाँ खतियावै ।

कमान—कुबुधि कमान चढ़ाइ कोप करि बुधि-तरकस रितयौ । मदन कमान ल्यायौ करषि कोप चढ़ाय ।

गुमान—भरी गुमान बिलोकति ठाढ़ी अपनैं रंग रँगीली । बृंदाबन की बीथिनि तकि तकि रह्यौ गुमान समेत ।

चंग – महुवरि बाँसुरी चंग लाल रँग हो ही होरी । डिम-डिमी पटह ढोल डफ बीना मृदँग उपँग चंग तार ।

चुगली—ब्रजनारी बटपारिनि हैं सब चुगली आपुहिं जाइ लगायौ ।

दर—जोवत जाँचत कन कन निर्धन दर दर रटत बिहाल ।

दरबार—जाति पाँति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति कै दर-बार ।

दलाली—काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली देहि ।

दस्तक—सूरदास की यहै बीनती दस्तक कीजै माफ ।

दह—गोसुत गाइ फिरत हैं दह (दस) दिसि बने चरित्र न थोरे ।

दाम—लोचन चोर बाँधे स्याम । जात ही उन तुरत पकरे कुटिल अलकनि दाम ।

दामनगीर--इन पापिन तैं क्यों उबरौगे दामनगीर तुम्हारे ।

दीवान—दास ध्रुव कौं अटल पदवी राम के दीवान ।

दुर—दुर दमकत सुभग स्रवननि जलज जुग डहडहत ।

मेहमान+ई—अपनौं पति तजि और बतावत, मेहमानी कछु खाते ।

राह—हमहिं छाँड़ि कुबिजहिं मन दीन्हौं मेटि बेद की राह ।

सरदार—तुम तौ बड़े, बड़े कुल जन्मे, अरु सबके सरदार ।

फारसी के अर्द्ध तत्सम शब्द—फारसी की लिपि अरबी की देन है । अतएव नुक्तेवाले अक्षरों को परि-वर्तित करने की ब्रजभाषी कवियों की प्रवृत्ति फारसी शब्दों के साथ भी दिखायी देती है । इसके अतिरिक्त कुछ शब्दों

के उच्चारणों को भी कवियों द्वारा सुगम किया गया है। व्रजभाषा-काव्य में इन दोनों परिवर्तनों के साथ फारसी के जो शब्द मिलते हैं, उनमें से कुछ के उदाहरण यहाँ संकलित हैं—

अँदेस, अन्देस<अन्देशा—सिय अँदेस जानि सूरज प्रभु लियो करज की कोर। छिन छिन प्रान रहत नहिं हरि बिनु निसि दिन अधिक अँदेस। सूर निर्गुन ब्रह्म धरिकै तजहु सकल अँदेस

अजाद<आज़ाद—जम के फंद काटि मुकराये अभय अजाद किये।

अवाज<आवाज़—साँचे बिरद सूर के तारत लोकनि-लोक अवाज। कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी अवाज। त्राहि त्राहि द्रोपदी पुकारी गई बैकुंठ अवाज खरी।

असवार<सवार—नृपति रिषिनि पर ह्वै असवार। करि अँतरधान हरि मोहिनी रूप कौं गरुड़ असवार ह्वै तहाँ आए।

आखिर<आख़िर—सूर स्याम तोहिं बहुरि मिलैहौं आखिर तौ प्रगटावेगी।

कुलहि<कुलाह—कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु बिधि सुरँग बनाई।

खराद<खर्राद—सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया।

खाक<ख़ाक—तीननि में तन कृमि, कै बिष्ठा कै ह्वै खाक उड़ैहै। मृगमद मिलै कपूर कुमकुमा केसनि मलै या खाक।

खानाजाद<ख़ानाजाद—ए सब कहौ कौन है मेरे खानाजाद बिचारे।

खुबानी<ख़बानी—सफरी चिउरा अरुन खुबानी।

गरद<गर्द—सो भैया दुर्जोधन राजा, पल में गरद समोयौ।

गरीबनिवाज, गरीबनेवाज<गरीब+नवाज़—नई न करन कहत प्रभु तुम हौ सदा गरीबनिवाज। जैसे—

गिरहबाज<गिरह+बाज—देखि नृप तमकि हरि चमकि तहाँई गये दमकि लीन्हो गिरहबाज जैसे।

गुंजाइस<गुंजाइश—काया नगर बड़ी गुंजाइस नाहिंन कछु बढ़यो।

गुनहगार<गुनाहगार—सिंधु तैं काढ़ि संभु-कर सौंप्यौ गुनहगार की नाईं।

गुलाब<गुल+आब—चंपक जाइ गुलाब बकुल फूले तरु प्रति बूझत कहुँ देखे नँदनंदन।

गूँग<गुंग—बहिरो सुनै गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।

गोसमायल<गोशमायल—पाग ऊपर गोसमायल रँग सुरँग रची बनाई।

चुगुल<चुग़ल—चुगुल ज्वारि निर्दय अपराधी झूठौ खाटो-खूटा।

जहर<ज़ह्र—अधर सुधा मुरली के पोषे जोग जहर कत प्यावैं रे।

जानु<जानू—जानु सुजानु करभ-कर आकृति कटि-प्रदेस किंकिन राजै।

जेर<ज़ेर—मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राख्यो धनुष उतारि।

जोर<ज़ोर—रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ चल्यौ द्विज द्वारका द्वार ठाढ़ौ। केस गहत कलेस पाऊँ करि दुसासन जोर। कान्ह हलधर बीर दोऊ भुजा बल अति जोर। बिना जोर अपनी जाँघन के कैसे सुख कियो चाहत।

ज्वानी<जवानी—बालपनौ गए ज्वानी आवै।

भेर<देर—काहे कौ तुम झेर लगावति। दधि बेचहु घर सूधे आवहु काहे भेर लगावति। बिरह बिषय चहुँधा भरमति है स्याम कहा कियौ भेर (=झगड़ा—बखेड़ा)।

तरबूजा<तर्बुज—सफरी सेव छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम।

ताज<ताज—बिकल मान खोयौ कौरवपति, पारेउ सिर कौ ताज।

ताजी<ताज़ी—घूंघट पट कोट टूटे, छूटे दृग ताजी।

दगाबाज<दग़ाबाज—दगाबाज कुतवाल कामरिपु सरबस लूटि लयौ।

दरजी<दर्ज़ी—सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु तनु भयौ ब्योंत बिरह भयो दरजी।

दरद<दर्द—नैंकहुँ न दरद करति हिलकिनि हरि रोवै।

दरबाना<दरबान—पौरि-पाट टूटि परे भागे रवाना।

दाइ<दाय:—लाख टका अरु झूमका सारी दाइ कौ नेग।

दाग<दाग़—दसन-दाग नख-रेख बनी है।

परगन<परगना—ब्रज-परगन-सिकदार महर, तू ताकी करत नन्हाई।

बेसरम<बेशर्म—बाहँ पकरि तू ल्याई काकौं अति बेसरम गँवारि।

सरम<शर्म—बाहँ गहत कछु सरम न आवति, सुख पावत मन माहीं।

सोर<शोर—तिहूँ भुवन भयौ सोर पसार्‌यौ।

हुसियार<होशियार—सब दल ह्वै हुसियार चलौ मठ घेरहिं जाई।

तुर्की के शब्द—तुर्कों ने पहले-पहल ग्यारहवीं शताब्दी में पंजाब पर अधिकार किया था; इसके पश्चात् तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में वे उत्तरी भारत के कुछ प्रदेशों के शासक बने। परन्तु अरबी-फारसी की तुलना में उनकी भाषा का यहाँ बहुत कम प्रचार हुआ। इसके दो कारण थे—पहला तो यह कि अरबों और फारसियों के समान तुर्कों से भारतवासियों का घनिष्ठ संबंध कभी नहीं रहा और दूसरे, तुर्की भाषा अरबी और फारसी के समकक्ष नहीं थी एवं तुर्कों की बोलचाल की भाषा पर भी फारसी का प्रभाव पड़ा था। अतएव ब्रजभाषा-काव्य में भी अरबी-फारसी की अपेक्षा तुर्की के शब्दों की संख्या बहुत कम है; यत्र-तत्र दो-एक प्रयोग ही उनके दिखायी देते हैं; यथा—

कुमैत<कुमेत—लीले सुरँग कुमैत स्याम तेहि पर दै सब मन रंग।

सामूहिक रूप से इन तीनों विदेशी भाषाओं के ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त शब्दों को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें संज्ञा शब्दों की अधिकता है। इसका विशेष कारण था। जीवन के जितने कार्य-व्यापार हो सकते हैं, उन सबके द्योतक, एक नहीं, अनेक शब्द, अर्थ की सूक्ष्मता और अंतर की दृष्टि से, भारतीय भाषाओं में प्रचलित थे जिनके विकसित रूप ब्रजभाषा को सहज ही प्राप्त हो गये थे। परन्तु विदेशियों के आगमन के साथ अनेक ऐसे वस्त्रों, भोज्य पदार्थों, पहनावों, पदाधिकारियों, युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों, मनोरंजन के साधनों और खेलों से हिंदुओं का परिचय हुआ जो उनके लिए एक प्रकार से नये थे, कम से कम उनके नाम-रूप तो नये थे ही; यद्यपि उनसे मिलते-जुलते रूपों का चलन भारत के कुछ भागों में पहले से भी होना सम्भव हो सकता है। इन नयी-नयी वस्तुओं के लिए प्रयुक्त विदेशी शब्द ही इनके अर्थ का ठीक-ठीक द्योतन कर सकते थे। इसलिए इनका चलन सारे देश में सरलता से हो गया। ब्रजभाषा-काव्य में विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग दिखाने के लिए जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, उनमें भी ऐसे ही संज्ञा शब्दों की अधिकता है।

दूसरी बात यह कि ये विदेशी भाषाएँ शासकों द्वारा आदृत थीं। इनको वे अपने साथ ही लाये थे और इनके पारंगत विद्वानों को उनसे सम्मान भी मिलता था। अतएव सारे भारतीय समाज का जो अंग शाही दरबारों से सम्बन्धित रहा, केवल उसने ही नहीं, अन्य शिक्षित-अशिक्षित हिंदुओं ने भी इन विदेशी भाषाओं के तत्सम और अर्द्धतत्सम रूपों को योग्यता और सम्बन्ध के अनुसार अपनाने में गौरव समझा। आज से आठ-दस वर्ष पूर्व भारतीयों की अँग्रेजी के प्रति जैसी सम्मान भावना थी और कहीं-कहीं तो आज भी है—कुछ-कुछ वैसी ही बात इन विदेशी भाषाओं के प्रति उस समय भी चरितार्थ हो रही थी; यद्यपि इतने विकसित रूप में नहीं, क्योंकि अँग्रेजी को संसार की भाषाओं में जो महत्वपूर्ण स्थान आज प्राप्त है, वह उक्त विदेशी भाषाओं को कभी नहीं प्राप्त रहा।

इसके अतिरिक्त हिंदुओं के सामने जीविका का भी प्रश्न था। विदेशी विजेताओं ने शासन और विधान के अधिकांश प्रचलित संस्कृत शब्दों के स्थान पर अपनी भाषाओं के प्रयोग अपनाये और प्रचलित किये थे[1]।

1. In the case of all words having any special reference to government and law, the conquerer Muhammadans have succeeded in imposing their own words upon the colloquial Hindi to the exclusion of the Sanskrit.—Rev. S. H. Kellogg, 'A grammar of the Hindi Language', p. 40.

शाही कार्यालयों की भाषा, प्रधान रूप से, प्राय: विदेशी रही। इन कार्यालयों में प्रवेश या नियुक्ति उसका ज्ञान प्राप्त करने पर ही संभव थी। जिस परिवार का एक व्यक्ति भी विदेशी भाषा की शिक्षा पाकर इन कार्यालयों में पहुँच गया, उसने घरेलू और सामाजिक सम्पर्क में आनेवाले आत्मीयों और मित्रों में भी विदेशी भाषा का क्रमश: प्रचार कर दिया। ब्रजभाषा में इन शब्दों के घुल-मिल जाने का यह भी एक प्रमुख कारण है और उसके कवियों की भाषा में बहुत से विदेशी शब्द इसी माध्यम से होकर पहुँचे हैं।

ब्रजभाषा-कवियों ने यद्यपि विदेशी शब्दों का प्रयोग अवश्य किया, परन्तु अधिकांशत: उनको अर्द्धतत्सम रूप देकर, उनका विदेशीपन दूर करके, उनको अपनी भाषा के समाज में सम्मिलित करने की उदारता ही उन्होंने दिखायी। पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के कुछ कवियों की भाषा में अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का यही रूप देखकर कहा जा सकता है कि वे ऐसे प्रयोगों को असंगत नहीं समझते थे और आज तो अनेक विदेशी तत्सम शब्द परिवर्तित होते-होते इतने घनिष्ठ रूप में हमसे परिचित हो गये हैं कि सामान्य पाठक इनका विदेशीपन कम ही लक्ष्य कर पाता है। वस्तुत: उसके लिए, संस्कृत के अधिकांश तद्भव शब्दों की तरह ये विदेशी रूप भी हमारी भाषा का महत्वपूर्ण अंग बन गये हैं।

देशज और अनुकरणात्मक शब्द—

ब्रजभाषा में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनकी उत्पत्ति का पता निश्चित रूप से नहीं लगता। ये शब्द अथवा पद से अनार्य और विजातीय भाषाओं के ऐसे मिश्रित रूप हैं जिनके परिवर्तित और प्रचलित रूपों के आधार पर उनकी व्युत्पत्ति के विषय में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के प्रयोगों के संबंध में कम से कम इतना निश्चित है कि जिन देशी-विदेशी भाषाओं की विवेचना ऊपर की गयी है, उनसे इनकी सीधी उत्पत्ति नहीं हुई है। ऐसे शब्दों को भाषा-वैज्ञानिकों ने 'देशज' कहा है। इसी 'संज्ञा' के अंतर्गत वे शब्द भी आ जाते हैं, जो ध्वनि-विशेष के अनुकरण पर निर्मित माने जाते हैं और सुविधा के लिए जिनको 'अनुकरणात्मक' या 'ध्वन्यात्मक' कहा जाता है।

देशज शब्द—ब्रजभाषा के समस्त काव्य में देशज शब्द बिखरे मिलते हैं। अर्द्धतत्सम और तद्भव के ही समकक्ष मानकर उसके कवियों ने निस्संकोच इनका प्रयोग किया है, यद्यपि इनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है; यथा—

करवर, करवर—करबर बड़ी टरी मेरे की घर घर आनँद करत बधाई। ढोटा एक भयौ कैसेहुँ करि कौन कौन करवर बिधि भानी। कौन कौन करबर हैं टारे। मैं नहिं काहू को कछु घाल्यौ पुन्यनि करवर नाक्यो।

खुटिला—नकबेसरि खुटिला तरिवन को गरह मेल कुच जुग उतंग को। ससि मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिला खुभी जराय जरी।

घैया—आई छाक अबार भई है नैंसुक घैया पिएउ सवेरे। दुहि ल्याऊँ मैं तुरत हीं, तू करि दै री घैया।

घैर, घैरु—सूरदास प्रभु बड़े गारुड़ी ब्रज घर-घर यह घैरु चलाई।

झगुलि, झगुली—प्रफुलित ह्वैकै आनि, दीनी है जसोदा रानि झीनीयै झगुलि तामैं कंचन-तगा।

झाम—सुंदर भुजा पीठि करि सुंदर सुंदर कनक मेखला झाम।

ठादर—देव आपनो नहीं सँभारत करत इंदु सों ठादर।

ढवरी—हरि दरसन की ढवरी लागी।

ढाढ़—ढाढ़िनि मेरी नाचै गावै हौं हूँ ढाढ़ बजाऊँ।

ढाढ़िन, ढाढ़िनि—हँसि ढाढ़िनि ढाढ़ी सौं बोली, अब तू बरनि बधाई।

ढाढ़ी—हौं तो तेरे घर कौ ढाढ़ी सूरदास मोहिं नाऊँ। ढाढ़ी और ढाढ़िनि गावैं।

उक्त उदाहरणों में देशज शब्दों का प्रयोग तत्समता-प्रधान शब्दावली के साथ नहीं, सरल और प्रचलित सामान्य भाषा में किया है जिससे वे जरा भी खटकते नहीं। दूसरे, स्वयं ये शब्द इतने छोटे-छोटे और सरल ध्वनि वाले हैं कि इनमें से कुछ का प्रयोग अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है।

अनुकरणात्मक शब्द—ब्रजभाषा-काव्य में ध्वनि के आधार पर बने अनुकरणात्मक शब्दों की संख्या देशज शब्दों से अधिक है। इसका कारण संभवत: यह है कि इस प्रकार के शब्द सरलता से बनते और प्रचलित हो

जाते हैं। इस प्रकार के जिन शब्दों के प्रयोग ब्रजभाषा-कवियों ने अपनी रचनाओं में किये हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं--

अरबराना—अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया।

अरराना—अररात दोउ बृच्छ गिरे धर।

करारना—बानी मधुर जानि पिक बोलत कदम करारत काग।

काँ काँ—जैसे काग काग के मुएँ काँ काँ करि उड़ि जाहीं।

किलकना—निरखि जननी-बदन किलकत त्रिदसपति दै तारि।

किलकारना—गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखत नँदरानी।

किलकिलाना—गहगहात किलकिलात अंधकार आयौ।

कीक, कीकै—भरि गंडूक, छिरक दै नैननि, गिरधर भाजि चले दै कीकै।

कुहुकुहानि—कुहुकुहानि सुनि रितु बसंत की अंत मिले कुल अपने जाइ।

खरभर—कटक अगनित जुर्‍यौ, लंक खरभर पर्‍यौ।

गटकना—लटकि निरखन लग्यौ मटक सब भूलि गयौ हटक ह्वै कै गयौ गटकि सिल सों रह्यौ मीचु जागी।

गरराना—घहरात तरतरात गररात हहरात तररात झहरात माथ नाए।

गलबल—गलबल सब नगर पर्‍यौ प्रगट्यौ जदुबंसी।

गिरगिरी—फूले बजावत गिरगिरी गार मदनभेरि घहराई अपार संतन हित ही फूलडोल।

घमकना—आनँद सों दधि मथति जसोदा घमकि मथनियाँ घूमै।

घमर—त्यौं त्यौं मोहन नाचे ज्यौं ज्यौं रई घमर को होई (री)।

घहरना, घहराना—गगन घहराइ घिरी घटा कारी।

घुमरना—सूर धन्य जदुबस उजागर धन्य धन्य धुनि घुमरि रह्यौ।

चुचकारना—मोहू कों चुचकारि गयौ लै जहाँ सघन बन झाऊ।

जगमगाना—अरुन-चरन नख-ज्योति जगमगाति, रुन-झुन करति पाइँ पैंजनियाँ।

झकझोरना—सूरदास तिहिं कौ ब्रजबनिता झकझोरतिं उर अंक भरे।

झकोर, झकोरो (झोंका)—मोहनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर। जगमग रह्यो जराइ कौ टीकौ छबि को उठत झकोरो हो।

झझकना—सोवत झझकि उठे काहे तैं दीपक कियौ प्रकास।

झझकारना—नख मानौ चंदबान साजि कै झझकारत उर आयौ।

झमक—दामिनि की दमकनि बूँदनि की झमकनि सेज की तलफ कैसे जं जियतु माई है।

झमकना—रमकत झमकत जनक-सुता सँग हाव-भाव चित चोरे। सूर स्याम आए ढिग आतुन घट भरि चलि झमकाइ।

झरझराना—झरझराति झहराति लपट अति देखियत नहीं उबार।

झरहरना अजहूँ चेति मूढ़ चहूँ दिसि तैं उपजी काल अगिनि झरहरि।

झरहराना—झरहरात बन पात गिरत तरु धरनी तरकि तराकि सुनाइ।

झहराना—बेसरि नाउ लेत सरमानी तब राधा झहरानी।

झिझकारना—उठ्यौ झिझकारि कर ढाल कर खडगहिं लिए रंग रनभूमि के महल बैठ्यौ।

झुँझाना (झुँझलाना)—नित प्रति रीति देखि कमोरी मोहि अति लगत झुँझायौ।

झुनकना—रुनक झुनक कर कंकन बाजै, बाँह डुलावत ढीली।

झौर (झाँव)—बात एक मैं कही कि नाहीं आपु लगावति झौर।

ठुमकना—ठुमुकि ठुमुकि पग धरनी रेंगत जननी देखि दिखावै।

डबडबाना—जब-जब सुरति करत तब-तब डबडबाइ दोउ लोचन उमँगि भरत।

थरथर—मंडपपुर देखे उर थरथर करै।

थरथराना—सँटिया लिये हाथ नँदरानी थरथरात रिस गात ।

धकधकाना—धकधकात उर नयन स्रवत जल सुत अँग परसन लागे ।

धमकना—धमकि मारचौ घाउ गमकि हृदय रह्यौ झमकि गहि केस लै चले ऐसे ।

धरधर (धड़धड़)—बाजत शब्द नीर को धरधर ।

फटकना—फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करत लराई ।

फटकारना - मोकौं जुरि मारन जब आईं, तब दीन्हीं गेंडुरी फटकारी । जमुनादह गिंडुरी फटकारी, फोरी सब मटुकी अरु गगरी ।

रुनभुन—कबहूँ रुनझुन चलत घुटरुनि, धूरि धूसरित गात ।

रुनुकभुनुक—रुनुकझुनुक नूपुर पग बाजत, धुनि अतिहीं मनहरनी ।

मिश्रित प्रयोग—

देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपनाकर ब्रज-भाषा-कवियों ने उन्हें एक ही वर्ग या श्रेणी का बना दिया । इसके फलस्वरूप दो भिन्न भाषाओं के शब्दों के मिश्रण से नया शब्द बनाने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया । इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से होती है—

सं० अन्+अ. लायक=अनलायक–अनलायक हम हैं कि तुम हौ, कहौ न बात उघारि ।

फ़ा ना+अ० हक़=नाहक=अनाहक—चौरासी लख जीव जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक ।

अ. फौज+सं. पति=फौजपति—निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत, अग्र फौजपति मैन ।

फ़ा.बे+हिं पीर=पीड़ा · सूरदास प्रभु दुखित जानि कै, छाँड़ि गये बेपीर ।

फ़ा. बे+अ. हाल=बेहाल—कहाँ निकसि जैऐ को राखै नंद कहत बेहाल ।

हिं. लोन+अ. हरामी—मन भयो ढीठ, इनहूँ कौं कीन्हौ, ऐसे लोनहरामी ।

सारांश—

सारांश यह है कि संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भारतीय भाषाओं के अनेक शब्द तो ब्रज-भाषा में हैं ही, अरबी फारसी-जैसी विदेशी भाषाओं से उद्‌भूत अनेक शब्द भी उसकी संपत्ति हैं । इन सबसे उसका भंडार भरा-पुरा है और इन्हीं पर इस भाषा के कवियों को अभिमान रहा है । अपने क्षेत्र की निकटवर्ती बोलियों और विभाषाओं के साधारण प्रचलित शब्दों को स्वीकार करने में भी ब्रजभाषा-कवि पीछे नहीं रहे । वस्तुत: धर्म के विषय में वैष्णव भक्त-कवि जिस प्रकार उदार और सहिष्णु थे, भाषा के सम्बन्ध में भी वे सर्वदा उसी प्रकार असंकीर्ण बने रहे । ब्रजभाषा पहले तो अपनी प्रकृति से दूसरी भाषाओं के शब्दों को सहज-सुंदर रूप देने में समर्थ थी और दूसरे, जन-मनोवृत्ति तथा परिस्थिति के साथ चलने की दूरदर्शिता भी वह दिखाती रही जिसके फलस्वरूप उसकी प्रगति की गति सदैव संतोषजनक रही । इससे दो प्रमुख लाभ हुए—पहला तो यह कि कविगण ब्रजभाषा के उस प्रकृतिदत्त माधुर्य की रक्षा कर सके जो शताब्दियों तक काव्य-प्रेमियों और सहृदयों को आकर्षित करता रहा और दूसरे, सुदूरवर्ती प्रदेशों में काव्य-रचना के लिए निरंतर प्रयुक्त होने पर भी उसका ब्रजभाषापन सुर-क्षित रहा और वह अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाये रखने में समर्थ हो सकी ।

संज्ञा-शब्द और ब्रजभाषा-कवियों के प्रयोग

ब्रजभाषा में स्वरांत शब्दों की अधिकता है । उसके संज्ञा शब्द भी स्वरांत हैं । डा० धीरेंद्र वर्मा ने ब्रजभाषा में आठ स्वरों—अ आ इ ई उ ऊ ओ और औ —से अंत होनेवाले संज्ञा शब्द माने हैं[1]; 'ए' और 'ऐ' से अंत होने वाले शब्दों को उन्होने छोड़ दिया है । इसका कारण संभवत: यह है कि प्राय: बहुवचन बनाने अथवा शब्द को विभक्ति-संयोग के उपयुक्त रूप देने के लिए इनकी आव-

---

१. 'ब्रजभाषा-व्याकरण', पृ० ५५ ।

श्यकता ब्रजभाषा में पड़ती है। परंतु ब्रजभाषा-कवियों ने कुछ ऐसे एकारांत और ऐकारांत संज्ञा शब्दों का प्रयोग किया है जो एकवचन हैं और जिनके साथ विभक्ति भी संयुक्त नहीं है। इस प्रकार साधारणतः दस स्वरों से अंत होनेवाले संज्ञा शब्द ब्रजभाषा में होते हैं। निम्नलिखित उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि होती है—

अ—अकारांत संज्ञा शब्द[1]—ब्रजभाषा-कवियों ने दो प्रकार के अकारांत शब्दों का प्रयोग किया है। प्रथम वर्ग में वे शब्द आते हैं जो मूल रूप में वस्तुतः अकारांत हैं और प्रायः गद्य में भी वैसे ही लिखे जाते हैं; जैसे—गुर=रहस्य, छीलर, जतन, जोबन, दरसन, धीरज, पटंबर, सुमिरन, हुलास आदि। दूसरे प्रकार के शब्द दीर्घ स्वरांत—प्रायः आकारांत, ईकारांत या ओकारांत—होते हैं जिन्हें तुकांत अथवा चरण की मात्रापूर्ति के लिए कवियों ने अकारांत कर लिया है; जैसे—अभिलाष, उपासन, गंग घूर (=घूरा), जसोद, धोख (=धोखा), नात (=नाता), नार=(नाला या नारो), प्रदच्छिन आदि। भान (=भानु) जैसे—एक-दो उकारांत शब्दों का भी अकारांत प्रयोग कवियों ने किया है।

आ—आकारांत संज्ञा शब्द—अकारांत शब्दों की तरह ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त आकारांत संज्ञा शब्दों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे शब्द आते हैं जिनका ब्रजभाषा में प्रचलित शुद्ध रूप आकारांत है और जो गद्य में भी प्रायः उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—आसा, चवेना, छौना, टोना, ढुटोना, फरिया, बाना, बिंदा, बिथा, बेरा (=बेला), मरजादा, सिच्छा आदि। दूसरे प्रकार के शब्द मूलतः प्रायः अकारांत होते हैं; परन्तु तुकांत अथवा चरणपूर्ति के लिए कवियों ने उन्हें आकारांत रूप दिया है; जैसे अवतारा, गौना (=गौन=गमन), चरना (=चरन), नैना, पौना (=पौन=पवन), बाता (=बात), बासा (=वास=वास), रघुनाथा आदि।

इ.—इकारांत संज्ञा शब्द—उक्त दोनों रूपों की तरह ब्रजभाषा-काव्य में प्राप्त इकारांत शब्दों को भी दो वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम में शुद्ध इकारांत रूप आते हैं; जैसे—अगिनि, अनुहारि, खोरि, पाँवरि, प्रापति, बिपति, बुधि, मूरति, साखि आदि। दूसरे वर्ग के शब्दों का इकारांत रुप विकृत कहा जा सकता है; क्योंकि तुकांत अथवा मात्रा-पूर्ति के लिए अनेक अकारांत, ईकारांत, उकारांत, यकारांत और वकारांत शब्दों को कवियों ने इकारांत बना लिया है; जैसे—आइ (=आयु), आकारि (=आकार) उपाइ (=उपाय), करतूति, गुहारि, चाइ (=चाव), पहिचानि, पौरि, बधाइ (=बधाई), बानि (=बान), बिनति (=बिनती), मुसुकनि, मुहूरति, लराइ आदि।

ई.—ईकारांत संज्ञा शब्द—आकारांत शब्दों की तरह अधिकांश ईकारांत संज्ञा शब्द अपने शुद्ध रूप में ही ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—अधिकाई, करनी, गीधनी, घरी, चातुरी, ज्वानी, घरनी, निठुराई, बसीठी, बिनती, बेनी, सत्राई, सहिदानी आदि। परन्तु कुछ ईकारान्त संज्ञा शब्द विकृत रूप में भी मिलते हैं जिसकी आवश्यकता तुकान्त अथवा मात्रा-पूर्ति के लिए कवियों को पड़ी है; जैसे-उपाई (=उपाय), गुहारी, जरनी (=जरन=जलन), पतारी (पताल), पीठी (=पीठ), मूरी (=मूर=मूल), सरनी (=सरन) इत्यादि।

उ.—उकारांत संज्ञा शब्द—ब्रजभाषा-काव्य में प्राप्त अधिकांश उकारांत संज्ञा शब्द ऐसे ही हैं जो ब्रजभाषा में उसी रूप में प्रचलित हैं; जैसे—अंबु, आयसु, नाउ, नाजु, नाहु, फेनु, बेनु, रेनु, सचु, साजु, सिसु आदि। परन्तु कुछ विकृत उकारांत शब्दों का भी कवियों ने प्रयोग किया है। इनका मूल रूप प्रायः अकारांत होता है; जैसे—काजु, गेहु, तनु, सनेहु, साहुँ आदि।

ऊ.—ऊकारान्त संज्ञा शब्द—ऐसे शब्दों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में अधिक नहीं है। जो थोड़े-बहुत ऊकारांत शब्द उसमें मिलते हैं उनमें कुछ अपने शुद्ध ब्रजभाषा-

---

1. कुछ शब्दों के अकारांत के अतिरिक्त आकारांत और ओकारांत रूप भी ब्रजभाषा में प्रचलित हैं; जैसे आस-आसा, घूर-घूरा, घूरो, झगरा-झगरो, भरोस-भरोसा-भरोसो आदि। परंतु सभी अकारांत शब्द इस प्रकार दो या तीन रूपों में नहीं लिखे जाते—लेखक।

रूप में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—गऊ, चमू, दाऊ, बटाऊ, बारू आदि और कुछ विकृत रूप में; जैसे—बंधू, हितू आदि।

ए.—एकारांत संज्ञा शब्द—एकारांत संज्ञा शब्दों के सविभक्तिक या बहुवचन रूपों की तो ब्रजभाषा में अधिकता है; परंतु दो-चार विभक्तिरहित और एकवचन रूप भी उसमें मिलते हैं, यद्यपि इनमें विभक्ति के संयोग का आभास होता है; जैसे—

१. चितेरे—वैसे हाल मथत दधि कीन्हे हरि मनु लिखे चितेरे।
२. द्वारे—जा द्वारे पर इच्छा होइ, रानी सहित जाइ नृप सोइ।

ऐ.—ऐकारांत संज्ञा शब्द—जो बात एकारांत शब्दों के संबंध में कही गयी है, वही ऐकारांत संज्ञा रूपों के विषय में भी है; जैसे—

आलै = आलय—जौ पै प्रभु करुना के आलै।
छारै = छार—राम ते बिछुरि कमल कंटक भए सिंधु भय जल छारै।
अरै = अड़—जा कारन तैं सुनि सुत सुन्दर कीन्हीं इती अरै।
तनै = तनय—जिहिं लोचन अवलोके नखसिख सुन्दर नंद तनै।
जसोवै = यशोदा।
देवै = देवकी—बार-बार देवै कहै।
बिनै = विनय।
बिषै = विषय।
मलै = मलय—मिली कुब्जा मलै लैकै
हिरदै—नृप सुनिकै हिरदै मैं राखी।

ओ. ओकारांत संज्ञा शब्द—ब्रजभाषा-काव्यों के कुछ संपादकों की, प्रायः सभी ओकारांत शब्दों को औकारांत रूप में लिखने की, प्रवृत्ति के फलस्वरूप ओकारांत संज्ञा शब्दों के उदाहरण उनमें नहीं मिलते; अन्य काव्यों में इनकी प्रचुरता है; जैसे गारो, गो (= गाय) प्रहारो, बारो आदि।

औ. औकारांत संज्ञा शब्द—ब्रजभाषा की ओकारांत या औकारांत प्रवृत्ति के फलस्वरूप इस प्रकार के शब्दों का ब्रजभाषा-काव्य में आधिक्य है; जैसे—अचंभौ, अँदेसौ, उजियारौ, उरहनौ, खँभारौ, खैरौ, चूनौ, चेरौ, जादौ, ठिकानौ, दौ (= दव), नातौ, निहोरौ, पछितावौ, बदलौ, बालपनौ, बुढ़ापौ, ब्यौरौ, भैंसौ, मतौ, माथौ, रूसनौ, सँदेसौ, सुपनौ, हीयौ आदि।

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ—कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों को कवियों ने एक से अधिक छोटे-बड़े रूप दिये हैं जिनमें से छंद की आवश्यकतानुसार उपयुक्त रूप का प्रयोग किया जा सके; जैसे—

अश्वत्थामा—अस्वत्थामा, अस्थामा।
कृष्ण—कन्हाइ, कन्हाई, कन्हैया, कान्ह, कान्हर, कान्हा।
दक्ष—दच्छ, दछ।
दुःशासन—दुसासन।
दुर्योधन—दुरजोधन, दुर्जोधन, दुर्जोधना।
यशोदा—जसुदा, जसुमति, जसोइ, जसोद, जसोदा, जसोमति, जसोमती, जसोवै।
लक्ष्मण—लछन, लछिमन, लषन।
सीता—सिया, सीय।

कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों के लिए कवियों ने नये नये पर्यायवाचियों का प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोगों में अधिकांश प्रचलित भी रहे हैं; जैसे—

कृष्ण—कुंजबिहारी, गोपीनाथ, घनस्यामं, जदुनाथ, जादवपति, दामोदर, नंदनंदन, बनवारी, बसुदेवकुमार, ब्रजराज, मुरलीधर, श्रीपति आदि।
द्रौपदी—पारथतिय, पारथ-घन।
यशोदा—नंदघरनि, नंद-नारी, नंदरनियाँ।
राधा—उदधि-सुता, कीरति-सुता, बृषभानु-सुता।
राम—कमलापति, खरारि, दसरथ-सुत, रघुनाथा।
रावण—कनकपुरी के राइ, दसकंठ, दसकंधर, दसबदन, दसमुख, दससिर, दसानन, निसिचर-कुल-नाथा, लंकाधिपति, लंकापति, लंकेस, लंकेस्वर।
शिव—ईस्वर, उमापति, गौरिकंत, गौरीपति, त्रिपुरारि, भोलानाथ, महादेव, महेस, रुद्र, संकर, सुरराइ।
सीता—जनकनरेसकुमारि, जानकी, राघव-नारि, बैदेहि।
हनुमान—अंजनि-कुँवर, अंजनि-सुत, केसरिसुत, पवनपुत्र, पवनपूत, मारुतसुत, सीतापति-सेवक।

स्त्री-पुरुषों के लिए जिस प्रकार पर्यायवाचियों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, स्थान-विशेष के लिए वैसे प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में अधिक नहीं मिलते; कवियों की तद्विषयक प्रवृत्ति का परिचय एक उदाहरण से मिल सकता है। 'लंका' के लिए कंचनपुर, कनकपुर या कनकपुरि, लंकपुर, हाटकपुरी आदि का प्रयोग कवियों ने किया है।

जातिवाचक संज्ञाएँ—ब्रजभाषा-कवियों द्वारा जातिवाचक संज्ञाओं के प्रयोगों के सम्बन्ध में भी दो बातें महत्व की हैं। पहली बात तो यह है कि अनेक पदों में उन्होंने व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों के साथ निश्चित या अनिश्चित बहुसंख्यावाचक विशेषण जोड़कर उनका प्रयोग जातिवाचक संज्ञाओं के समान किया है : जैसे—कोटि अनंग, कोटि इंद्र, कोटि मदन, कोटि ससि, कोटिक सूर, द्वै संभु, सत-सत मदन आदि। दूसरी बात यह है कि चक्र, वज्र आदि संज्ञाएँ जब विष्णु, इंद्र आदि के वर्णन के साथ आती हैं तब इन जातिवाचक शब्दों को कवियों द्वारा प्रयुक्त व्यक्तिवाचक रूप समझना चाहिए। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य में 'चक्र' जातिवाचक न होकर व्यक्तिवाचक है; क्योंकि उससे तात्पर्य 'सुदर्शनचक्र' से है—

चक्र काहु चोरायौ कैधौं भुजनि बल भयौ थोर।

इसी प्रकार 'गीध' शब्द का प्रयोग सामान्य पक्षी के लिए किये जाने पर तो जाति-वाचक संज्ञा है; परन्तु 'जटायु' नामधारी पौराणिक पक्षी के लिए जब कवियों ने 'गीध' लिखा है, तब उसे व्यक्तिवाचक समझना चाहिए; जैसे—

तबहिं निसिचर गयौ छल करि लई सीय चुराइ।
गीध ताकौं देखि धायौ, लर्‌यौ सूर बनाइ।

भाववाचक शब्दों का प्रयोग :—भाववाचक संज्ञा शब्द प्रायः जातिवाचक संज्ञा, विशेषण और क्रिया शब्दों से बनते हैं। ब्रजभाषा-कवियों ने भी अधिकांश भाववाचक संज्ञाएँ इन्हीं शब्द-भेदों से बनायी हैं; परन्तु उनके काव्य में कुछ ऐसे भाववाचक शब्द भी मिलते हैं जो सर्वनामों और भाववाचक संज्ञाओं से बना लिये गये हैं। अतएव यह देखना आवश्यक है कि कवियों ने भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण किन-किन नियमों के आधार पर किया है। साधारणतः ऐसे शब्द ता, त्व, पन आदि प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं। ब्रजभाषा-कवियों ने भी इनके योग से अनेक भाववाचक संज्ञाएँ बनायी हैं और संस्कृत में प्रचलित ऐसे शब्दों को भी अपना लिया है—

क. संज्ञा और विशेषण से निर्माण—

अ. 'ता' प्रत्यय के योग से—ईस्वरता, चंचलता, दीनता, पूर्नता, बछलता, मीनता, सिवता, सैसवता।

आ. 'त्व' प्रत्यय के योग से—प्रभुत्व।

इ. 'पन', 'पनु' या 'पनौ' प्रत्यय के योग से—छत्रपन, बालपन, लौहपनौ।

उक्त तीनों प्रकारों से भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण करने के अतिरिक्त ब्रजभाषा-कवियों ने अन्य कई रीतियाँ इस कार्य के लिए अपनायी हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

अ. 'आई' प्रत्यय जोड़कर—यह प्रत्यय प्रायः मूल शब्द अथवा उसके किंचित परिवर्तित रूप में जोड़ा गया है; जैसे—अधमाई, कुसलाई, गरुआई, चतुराई, चेराई, तरुनाई, नगराई, निठुराई, मित्राई, लँगराई, सत्राई, सुघराई।

आ. शब्दांत में 'अई' या 'ई' जोड़कर; जैसे—अधमई, चतुराई, निठुरई, मित्रई, रसिकई, लँगरई, सुंदरई।

इ. 'आत' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—कुसलात। यह शब्द 'कुशलता' का विकृत रूप भी हो सकता है। ऐसे शब्द अधिक नहीं मिलते।

ई. 'औरी' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—ठग+औरी =ठगौरी। ऐसे शब्द भी कम ही मिलते हैं।

उ. शब्दों के प्रथम दीर्घ अक्षर को लघु करके और अंत में 'आई' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—ठाकुर, धूत और राजा से ठकुराई, धुताई, रजाई आदि।

ऊ. शब्दांत के दीर्घाक्षर को लघु करके अथवा यदि वह लघु ही हो तो उसी के साथ 'प' प्रत्यय, जो 'पन' का लघु रूप जान पड़ता है, जोड़कर; जैसे—सयानप।

ए. शब्द के प्रथम दीर्घ अक्षर को लघु करके और 'आइत या 'आयत' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—ठाकुर+ आइत या आयत=ठकुराइत या ठकुरायत। ऐसे शब्द भी अधिक नहीं हैं।

ऐ. शब्द के प्रथम दीर्घ अक्षर को लघु करके और शब्दांत में 'ई' जोड़कर; जैसे—दूबर से दुबराई।

ओ. शब्द के प्रथम दीर्घ अक्षर को लघु करके और अंत में 'आन' जोड़कर; जैसे—ढीठ से ढिठान।

औ. शब्द के प्रथम लघु अक्षर को दीर्घ करके और शब्दांत में 'ई' जोड़कर; जैसे मधुर से माधुरी।

सयानप, ठकुरायत आदि शब्दों की तरह दो-दो एक-एक उदाहरणों के आधार पर यों तो कुछ और नियम भी बनाये जा सकते हैं; परन्तु भाववाचक शब्दों के निर्माण के विषय में कवियों की मनोवृत्ति का परिचय पाने के लिए उक्त नियम ही पर्याप्त हैं। जिन शब्दों से भाववाचक संज्ञा-रूप बनाने के लिए उक्त रीतियों को कवियों ने अपनाया है वे प्रधानतः जातिवाचक संज्ञा और गुणवाचक विशेषण ही हैं।

ख. क्रिया शब्दों से निर्माण—क्रिया शब्दों से भाववाचक रूपों का निर्माण करने के लिए ब्रजभाषा-कवियों ने साधारणत: जिन नियमों का सहारा लिया है, उनमें मुख्य ये हैं—

अ. क्रिया के मूल धातु-रूप का ही भाववाचक संज्ञा की तरह कवियों ने कभी-कभी प्रयोग किया है; जैसे—कीर = क्रीड़ = क्रीड़ा, खोज, छाप।

आ. मूल धातु रूप में 'आउ' या 'आऊ' प्रत्यय या इसके परिवर्तित रूप 'आव' या 'आवा' के संयोग से; जैसे—दुराउ।

इ. मूल धातु रूप में 'आन' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—संधान।

ई. मूल धातु रूप में 'नि' या 'नी' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—करनी, जपनी, जियनि, तपनी, बिछुरनि, लरखरनि।

उ. मूल धातु रूप में 'आई' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—उतराई, दुराई, लराई।

ऊ. मूल धातु रूप में 'वानी' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—रखवानी।

ए. मूल धातु रूप में 'आर' प्रत्यय जोड़कर; जैसे—जगार।

ग. सर्वनामों से रूप निर्माण—संज्ञा (जातिवाचक), विशेषण और क्रिया शब्दों के अतिरिक्त कुछ सर्वनामों से भी ब्रजभाषा-कवियों ने आवश्यक संज्ञाएँ बनायी हैं; यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं है। इनके निर्माण में मुख्यतः निम्नलिखित नियमों का सहारा लिया गया है।

अ. 'ता' प्रत्यय के संयोग से; जैसे—ममता (मम = 'अस्मद' की षष्ठी विभक्ति का एकवचन रूप), हमता आदि।

आ. 'त्व' प्रत्यय के संयोग से; जैसे—ममत्व।

इ. कुछ सार्वनामिक विशेषण-रूपों के प्रथम दीर्घाक्षर को लघु करके और 'पउ' या 'पौ' प्रत्यय के संयोग से जैसे—अपुनपौ (आपन < अपन + पौ)।

घ. भाववाचक संज्ञाओं से पुन: निर्माण—ब्रजभाषा-कवियों ने कुछ ऐसे रूपों का भी प्रयोग किया है जो वस्तुत: भाववाचक संज्ञाओं से ही विभिन्न प्रत्ययों के संयोग से पुनः निर्मित हुए हैं। विशेषण और जातिवाचक संज्ञा शब्दों के भाववाचक-रूप उन्होंने जिन नियमों के आधार पर बनाये हैं, उन्हीं में से कुछ का प्रयोग इन विचित्र भाववाचक रूपों के लिए भी किया गया है—

अ. 'आई' प्रत्यय रूप; जैसे—सरनाई।

आ. 'ई' प्रत्यांत रूप; जैसे—आतुरताई, चंचलताई, जड़ताई, दृढ़ताई, नागरताई, निठुरताई, प्रभुताई, सिद्धताई, सीतलताई, सुंदरताई, स्यामताई आदि।

इ. शब्द के प्रथम दीर्घाक्षर को लघु करके और 'आई प्रत्ययांत जोड़कर; जैसे—'पूजा' से पुजाई।

ई. 'हाई' प्रत्यय के संयोग से; जैसे—रिसहाई।

इनके अतिरिक्त स्वनिर्मित भाववाचक संज्ञाओं से घटताई, चातुरताई, ससिताई आदि पुनः वैसे ही नये रूप उन्होंने गढ़ लिये हैं जिनकी संख्या अधिक नहीं है। इस प्रकार के शब्द व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध होते हैं और गद्य में उनका प्रयोग वर्जित है; परन्तु भ्रमोत्पादक न होने के कारण ऐसे प्रयोगों को कवि-स्वातंत्र्य के अंतर्गत ही मान लेना चाहिए।

संज्ञा-शब्दों के लिंग और ब्रजभाषा-कवियों के प्रयोग—

पुंल्लिग शब्दों से स्त्रीलिंग रूप बनाने के लिए

कवियों ने जिन-जिन नियमों का सहारा लिया है, उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—

अ. अकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम 'अ' का 'इनि' या 'इनी' में परिवर्तन करके; जैसे—अस्व-अस्विनी गीध-गीधिनी, भिल्ल-भिल्लिनि, भुजंग-भुजंगिनि, मृग-मृगिनी, रँगरेज-रँगरेजिनी, रसिक-रसिकिनी, सुहाग-सुहागिनि, सेवक-सेवकिनी आदि।

आ. अकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम 'अ' को दीर्घ करके; जैसे—तनय-तनया, नवल-नवला, प्रिय-प्रिया, स्याम-स्यामा आदि।

इ. अकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम 'अ' को 'इ' या 'ई' में परिवर्तित करके—जैसे—अहीर-अहीरी, किसोर-किसोरी, तरुन-तरुनी, पन्नग-पन्नगी, भ्रमर-भ्रमरी, मृग-मृगी, सहचर-सहचरी आदि।

ई. अकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम 'अ' को 'आनि' या 'आनी' में परिवर्तित करके; जैसे-इंद्र-इंद्रानी।

उ. अकारांत और इकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंत में अतिरिक्त 'नि' या 'नी' जोड़कर; जैसे—अहि-अहिनी, घर-घरनी।

ऊ. आकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम आ का 'इ' या 'ई' में परिवर्तन करके; जैसे—चेरा-चेरी, सयाना-सयानी आदि।

ए. अकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम 'आ' को 'इनि' या 'इनी' से परिवर्तित करके; जैसे—लरिका-लरिकिनी।

ऐ. ईकारांत पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम 'ई' को लघु करके और शब्दान्त में 'नि' या 'नी' जोड़कर, अथवा शब्दांत की 'ई' को 'इनि' या 'इनी' से परिवर्तित करके; जैसे—अधिकारी-अधिकारिनि, अपराधी-अपराधिनि, गेही-गेहिनी, पापी-पापिनि, बिलासी-बिलासिनि, साहसी-साहसिनी, सनेही-सनेहिनी, स्वामी-स्वामिनि या स्वामिनी, लोभी-लोभिनी आदि।

ओ. दो लघु अकारांत अक्षरों से बने पुल्लिग संज्ञा शब्द के प्रथम अक्षर को दीर्घ करके और द्वितीय के 'अ' को 'इ' या 'ई' से परिवर्तित करके; जैसे—नर-नारि या नारी।

औ. दो से अधिक अक्षर वाले शब्द के प्रथम आकारांत अक्षर को लघु करके और अंत में 'आइनि' या 'आनी' जोड़कर; जैसे—ठाकुर-ठकुराइनि या ठकुरानी।

नियमों के अपवाद—पुल्लिग से स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द बनाने के लिए कवियों ने जिन-जिन नियमों का सहारा लिया है, उनमें से मुख्य-मुख्य ऊपर दिये गये हैं। उनके काव्य का ध्यान से अध्ययन करने पर अनेक ऐसे प्रयोग भी मिल जाते हैं; जैसे—दूत-दूतिका, बग-बगुली आदि जिन पर उक्त नियम लागू नहीं होते। ऐसे प्रयोगों के लिए स्वतंत्र नियम बनाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती; क्योंकि ऐसे स्फुट उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

लिंग-संबंधी विशेष प्रयोग—प्राणिवाचक संज्ञा शब्दों के लिंग-भेद का पता लगाने में तो कदाचित् कभी कठिनाई नहीं होती; परंतु अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग का निर्णय, भाषा का ज्ञान न रखनेवाले के लिए, कभी-कभी समस्या बन जाता है। ऐसी स्थिति में संबंधित सामान्य और सार्वनामिक विशेषण, संबंधकारकीय विभक्ति और क्रिया-प्रयोग से सहायता मिल सकती है। ब्रजभाषा-काव्य में कुछ ऐसे अप्राणिवाचक संज्ञा-रूप भी मिलते हैं जो पुल्लिग शब्दों में लघुता-द्योतक प्रत्यय लगा कर स्त्रीलिंगवाची बना लिये गये हैं; जैसे—धनु-धनुही या धनुहियाँ, लकुटी-लकुटिया आदि। इसी प्रकार सुंदरता, सुकुमारता या लघुता की दृष्टि से कुछ अप्राणिवाचक स्त्रीलिंग शब्दों को पुनः अल्पार्थक बनाने का भी प्रयत्न कभी-कभी कवियों ने किया है; जैसे पनही-पनहियाँ।

लिंग-निर्णय में स्वतंत्रता—कुछ शब्दों के लिंग-निर्णय में कवियों ने स्वतंत्रता से भी काम लिया है; जैसे—पुल्लिग शब्द 'धीर' का उन्होंने स्त्रीलिंग रूप में भी प्रयोग कर दिया है; जैसे—भीर के परे तैं धीर सबहिंन तजी। परंतु ऐसे प्रयोग अधिक नहीं हैं और जहाँ हैं भी, वहाँ तुक-निर्वाह के लिए इनको स्वीकार किया गया है।

वचन और ब्रजभाषा-कवियों के प्रयोग—

कभी-कभी आदर सूचित करने के लिए ब्रजभाषा-कवियों ने एकवचन संज्ञा-रूप का प्रयोग बहुवचन के समान किया है; जैसे—

१. अक्रूर—जबहीं रथ अक्रूर चढ़ ।
२. ऊधौ—आए हैं ब्रज के हित ऊधौ । ऊधौ जोग सिखावन आए ।
३. जज्ञपुरुष—जज्ञपुरुष प्रसन्न तब भए ।
४. द्विज बामन—द्वारे ठाढ़े हैं द्विज बामन ।
५. ध्रुव—ध्रुव खेलत खेलत तहँ आए ।
६. पाँड़े—आए जोग सिखावन पाँड़े ।
७. प्रभु—सूरदास प्रभु वै अति खोटे ।
८. मनमोहन—री वै मनमोहन ठाढ़े ।
९. सुफलक-सुत—प्रथम आइ गोकुल सुफलक-सुत लै मधुपुरहिं सिधारे ।
१०. हरि—हरि बैंकुंठ सिधारे ।
११. हिरनकसिप—हिरनकसिप निज भवन सिधाए ।

अनेक स्थलों पर शब्द के एकवचन रूप के पूर्व निश्चित या अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग करके ब्रजभाषा-कवियों ने उनका बहुवचन की तरह प्रयोग किया है; जैसे—

१. असुर—असुर द्वै हुते बलवंत भारी ।
२. आभरन—पहिरि सब आभरन राज लागे करन ।
३. उद्यम—मरन भूलि, जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धारचो ।
४. कला—ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै लोभ न छूटत नट कौं ।
५. चरित—सूर प्रभु चरित अगनित, न गनि जाहिं ।
६. जज्ञ—निन्यानबे जज्ञ जब किये ।
७. जन्म—बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यौ ।
८. जिय—अपनौ पिंड पोषिबे कारन कोटि सहस जिय मारे ।
९. जीव—तहाँ जीव नाना संहरै ।
१०. जुग—जनमत-मरत बहुत जुग बीते ।
११. जोनि—चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि भ्रमि-भ्रमि जमहिं हँसावै ।
१२. तपसी—बहुतक तपसी पचि पचि मुए ।
१३. तीरथ—कौन कौन तीरथ फिरि आए ।
१४. दुख—इनि तव राज बहुत दुख पाए ।
१५. द्वार—सुरति के दस द्वार रूँधे ।
१६. द्वीप—सातौ द्वीप राज ध्रुव कियौ ।
१७. पदारथ—चारि पदारथ के प्रभु दाता ।
१८. पुत्र—इनके पुत्र एक सौ मुए ।
१९. वृत्तांत—नृप कौ सब वृत्तांत सुनाए ।
२०. सती—सती कह्यौ, मम भगिनी सात ।

बहुवचन बनाने के नियम—अवधी में तो प्रायः कारक-चिह्न लगने पर ही वचन-रूप-परिवर्तन की आवश्यकता होती है; परंतु ब्रजभाषा में प्रायः सभी स्थितियों में एकवचनात्मक शब्दों के बहुवचन रूप बनाये जाते हैं । ब्रजभाषा-कवियों ने इस कार्य के लिए जिन-जिन नियमों का सहारा लिया है, उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

अ. अकारांत स्त्रीलिंग शब्द का अंतिम स्वर एँ या ऐं से परिवर्तित करके; जैसे—कुंज या-कुंजैं, छाक-छाकैं (घर घर तैं छाकैं चलीं), बात-बातैं, सेज-सेजैं ।

आ. अकारांत या इकारांत एकवचन शब्दों के अंत में 'नि' जोड़कर । ब्रजभाषा में 'नि' कारक-चिह्न भी है; अतएव सभी 'नि'-अंत शब्द बहुवचन नहीं होते । प्रायः ऐसे शब्दों के साथ स्वतंत्र विभक्तिचिह्न भी प्रयुक्त हुआ है । जिन शब्दों में कवि ने 'नि' बहुवचन बनाने के लिए जोड़ा है, उनके कुछ उदाहरण, पूरी पंक्ति के रूप में, यहाँ उद्धृत हैं जिससे स्पष्ट हो जाय कि इनका 'नि' कारकीय चिह्न नहीं है—

१. ग्वालनि—टेरत कान्ह गए ग्वालनि कौं स्रवन परी धुनि आई ।
२. नरनि—बिन तुम्हारी कृपा गति नहीं नरनि की, जानि मोहिं आपनौ कृपा कीजै ।
३. नैननि—नैननि सौं झगरौ करिहौं री ।
४. बिमाननि—देखत मुदित चरित्र सबै सुर ब्योम बिमाननि भीर ।
५. भिल्लनि—तहँ भिल्लनि सौं भई लराई ।
६. रिषिनि—तहाँ रिषिनि कौ दरसन पायौ ।
७. सुरनि—सुरनि कौं अमृत दीन्ह्यौ पियाई ।

इ. कुछ अकारांत और इकारांत एकवचन शब्दों के अंत में 'न' जोड़कर; जैसे—गाँव-गाँवन, ग्वाल-ग्वालन, नारि-नारिन, बालक-बालकन, सेनापति-सेनापतिन ।

इ. कुछ आकारांत और ईकारांत शब्दों के अन्त में 'न' या' 'नि' जोड़ने के पहले अंतिम दीर्घ स्वर को लघु करके; जैसे—अबला-अबलनि, गैया-गैयनि, जुवती-जुवतिन, ब्रजबासी-ब्रजवासिनि, लरिका-लरिकनि।

उ. कुछ आकारांत शब्दों के अंतिम आ को ए से परिवर्तित करके; जैसे—चेरा-चेरे, तारा-तारे, नाता-नाते आदि।

ऊ. कारांत संज्ञाओं के अंत में 'याँ' जोड़कर; जैसे—अलि-अलियाँ।

ए. कुछ ईकारांत संज्ञाओं के अंतिम स्वर को ह्रस्व करके और 'या' जोड़कर; जैसे—अँगुरी-अँगुरियाँ, कली-कलियाँ, गली-गलियाँ, रँगरली-रँगरलियाँ।

ऐ. कुछ शब्दों में केवल अनुस्वार या चंद्रविंदु लगाकर ही कवियों ने बहुवचन रूप बना लिये हैं; जैसे—चिरिया-चिरियाँ, जुवती-जुवतीं, तरुनी-तरुनीं, बहुरिया-बहुरियाँ आदि। कभी-कभी एकवचन संज्ञा शब्द को तो मूल रूप में ही कवियों ने रहने दिया है; परंतु क्रिया शब्द का अनुस्वार या चंद्रविंदु जोड़कर बहुवचन बना लिया है; जैसे—जल भीतर सब गईं कुमारी। तीर आइ जुवती भईं ठाढ़ी। इतनौ कष्ट करैं सुकुमारी।

कहीं-कहीं एकवचन संज्ञा के साथ केवल आदर सूचित करने के लिए अनुस्वार या चंद्रविंदुयुक्त बहुवचन क्रिया का प्रयोग किया गया है; जैसे—यह देखति हँसि उठीं जसोदा।

ओ. कुछ एकवचन शब्दों के साथ अनी, अवलि या अवली, गन (=गण), जन, जाति, निकर, पुंज, वृंद, संकुल, समाज, समूह आदि जोड़कर कवियों बहुवचन रूप बनाये हैं; जैसे—

१. अनी—सुर नर असुर-अनी।
२. अवलि, अवली—मुक्तावलि, रोमावलि।
३. कदंब—दुख-कदंब।
४. गन—अमर-मुनिगन, किरनिगन, जाचकगन, द्विज-गन, मुकुतागन।
५. ग्राम—गुन-ग्राम।
६. जन—कविजन, गुनीजन, गोपीजन, बंदीजन, द्विज-गुरु-जन।
७. जाल, जाला—कमल-जाल, जंजाल-जाल, दधि-बिंदु-जाल। नग-जाला, बनिता-जाल, सखी-जाल, सर-जाल, सुक-जाल।
८. जूथ—मृग-जूथ।
९. निकर—खग-निकर, नारि-निकर।
१०. पुंज—कुंज-पुंज, सिसु-पुंज।
११. प्रपुंज—प्रपुंज-चंचरीक।
१२. बृंद—कुमुद-बृंद, जुवति-बृंद, सुत-बृंद।
१३. माल, माला—अंसु-माल, अलि-माल, भृंग-माल, मृग-माला।
१४. लोग—तपसी-लोग, बटाऊ-लोग।
१५. समूह—समूह-तारे।
१६. स्रेनी—सुक-स्रेनी।

ब्रजभाषा-कवियों के वचन-संबंधी प्रयोगों के विषय में एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि उन्होंने कपोल, कुच, केस, चरन, चिकुर, दाँत (दँतियाँ), दंपति, नैन, पाईं, पौरुष, प्रान, लोग, समाचार आदि शब्दों और उनके पर्याय-वाचियों का प्रयोग प्रायः बहुवचन में ही किया है; जैसे—

कपोल—सुन्दर चारु कपोल बिराजत।
कुच—कंचुकी भूषन कवच सजि कुच कसे रनबीर।
केस—कछुक कुटिल कमनीय सघन अति गोरज मंडित केस।
चरन—आजु देखौं वै चरन।
चिकुर—स्याम चिकुर भए सेत।
थनु—आनंद मगन धेनु स्रवैं थनु।
दँतियाँ—हरषित देखि दूध की दँतियाँ।
दंपति—दंपति बात कहत आपुस मैं।
नैन—अति रस लंपट नैन भए।
पाँइँ—प्रथम भरत बैठाइ बंधु कौ, यह कहि पाँइँ परे।
पौरुष—जिह्वा रोम रोम पति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हारे।
प्रान—हरि के देखत तजौं परान (प्रान)। स्याम गएँ सखि प्रान रहेंगे।
लोग—व्याकुल भए ब्रज के लोग। सब खोटे मधुबन के लोग।
समाचार—पूछे समाचार सति भाए।

यदि उक्त शब्दों अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्दों का प्रयोग कवियों को कभी एकवचन में करना होता है तो तद्विषयक कोई संकेत वे अवश्य कर देते हैं; जैसे—बाम अँखिया फरकि रही । अपनी गरज को तुम एक पाँइ नाचे ।

सहचर शब्दों के वचन—जो सहचर शब्द साधारणतः एकवचन रूप में होते हैं, उनका प्रयोग कवियों ने दोनों वचनों में किया है । कुछ सहचर शब्दों के एक-वचन-प्रयोग यहाँ दिये जाते हैं—

छेम-कुसल—छेम-कुसल अरु दीनता दंडवत सुनाई ।

धन-धाम—सोइ धन-धाम नाम सोइ कुल सोइ जिहि बिढ़यौ ।

मैं-मेरी—मैं-मेरी अब रही न मेरैं, छुट्यौ देह अभिमान ।

राज-पाट—राज-पाट सिंहासन बैठी नील पदुम हूँ सौं कहै थौरी ।

सर-अवसर - नृप सिसुपाल महा मद पायौ सर-अवसर नहिं जान्यौ ।

परन्तु कुछ स्थलों पर समूहवाचक एकवचन संज्ञा-शब्दों के संयुक्त सहचर रूपों का कवियों ने बहुवचन में भी प्रयोग किया है; जैसे—

असन-बसन—असन-बसन बहु बिधि चाहै ।

खान-पान—तब धौं कौन साथ रहि तेरैं खान-पान पहुँचाए ।

ग्रह-नछत्र - ग्रह-नछत्र सबहीं फिरैं ।

थावर-जंगम—थावर-जंगम सुर-असुर रचे सबै मैं आइ ।

द्रुम-तृन—ज्यौं सौरभ मृग नाभि बसत है, द्रुमतृन सूँघि फिरचौ ।

भाई-बंधु—भाई-बंधु कटुंब सहोदर, सब मिलि यहै बिचारचौ ।

सम-दम—सम-दम उनहीं संग सिधारे ।

वचन-संबंधी खटकनेवाले प्रयोग—व्याकरण की दृष्टि से वचन-संबंधी बहुत कम भूलें कवियों ने की हैं । हाँ, कहीं-कहीं बहुवचन में ही प्रयुक्त होनेवाले कुछ शब्दों के साथ दो या अधिक संख्यासूचक शब्दों का अनावश्यक प्रयोग अवश्य किया गया है; जैसे—जुगल जंघनि । उमँगे दोउ नैना । दोऊ नैन ।

इसी प्रकार किसी शब्द के बहुवचन रूप के साथ पुनः समूहवाचक शब्द का योग—जैसे मधुपनि की माल—भी दोष-युक्त है । कुछ प्रयोगों के साथ समूहवाचक दोहरे शब्दों का भी प्रयोग कवियों ने किया है जो खटकता है; जैसे—मुनि-जन-गन ।

संज्ञाओं के कारकीय प्रयोग—

रूप-रचना की दृष्टि से ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त संज्ञा शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—मूल रूप और विकृत रूप । दोनों लिंगों और दोनों वचनों के आधार पर इनकी संख्या आठ हो जाती है । इन आठों रूपों के प्रयोग सभी कारकों में समान रूप से कवियों ने नहीं किये हैं । अतएव प्रत्येक कारक के अंतर्गत केवल प्रमुख रूपों के ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा ।

हिन्दी में आठ कारक होते हैं[1] । ब्रजभाषा में भी कारकों की यही संख्या है । इनके नाम और हिंदी तथा ब्रजभाषिक मुख्य कारकचिन्ह, परसर्ग[2] या विभक्तियाँ और उनके अन्य विकृत रूप इस प्रकार हैं—

कारक	हिंदी-विभक्ति	ब्रजभाषा-विभक्ति
कर्त्ता	ने	नें, ने, नैं

---

१. संस्कृत में छः कारक—कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण – तथा सात विभक्तियाँ—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमी—होती हैं । संबंध कारक का संबंध क्रिया से न होने के कारण उसकी गणना संस्कृत कारकों में नहीं की जाती—लेखक ।

२. डाक्टर धीरेंद्र वर्मा ने 'व्याकरण' में 'कारकचिह्नों' के लिए 'परसर्ग' शब्द का प्रयोग किया है ('ब्रजभाषा-व्याकरण', पृ० ११६) और 'इतिहास' में 'कारक-चिह्न' ('हिन्दी भाषा का इतिहास,' पृ० २६४ । परन्तु पं० कामता प्रसाद गुरु ने विभक्तियों का, ('हिंदी व्याकरण', पृ० २७९) । प्रस्तुत पुस्तक में सर्वत्र पुराने शब्द 'विभक्ति' या 'कारकचिह्न' का ही प्रयोग किया गया है—लेखक ।

कर्म	को	कुँ, कूँ[1], कों, को, कौं, कौ
करण	से	तें, ते, तैं, पर, पैं, पै सुँ, सेंती, सों, सौं
संप्रदान	को	कुँ, कूँ, कों, को, कौं, कौ
अपादान	से	तें, ते, तैं, सों, सौं,
संबंध	का, के, की	कि, की, कें, के, कैं, कै, कों, को, कौ
अधिकरण	में, पर	पर, पै, मँझार, महियाँ, महँ, माँझ, माहिं, माहीं, में, मैं
संबोधन	ओ, अजी, अरे, अहो, हे	अहो, री, रे, हे

ब्रजभाषा-कवियों ने सर्वत्र कारकों के साथ उनके चिह्नों या विभक्तियों का प्रयोग नहीं किया है और कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि इनके प्रयोग से वे जान-बूझ कर बचते रहे हैं। इस दृष्टि से विभक्ति-रहित, और विभक्ति-सहित, दोनों प्रकार के प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं और कर्त्ता-जैसे दो-एक कारकों में तो प्रथम की प्रधानता भी दिखायी देती है।

कर्ताकारक—इसकी विभक्ति नें, ने या नैं है जो प्रायः सकर्मक क्रिया के भूतकाल, कर्मवाच्य और भाववाच्य रूप में प्रयुक्त होने पर कर्त्ताकारक में लगती है। गद्य में इसका प्रयोग जितना अधिक होता है, पद्य में उतना ही कम। पुल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द के, एक और बहु-वचन में प्रयुक्त होनेवाले मूल और विकृत रूपों का प्रयोग कवियों ने इन विभक्तियों से रहित रूप में ही किया है; जैसे—

क. पुल्लिग एकवचन मूल रूप—लंकपति कौ अनुज सीस नायौ। सेवक जूझि परै रन भीतर ठाकुर तउ घर आवै। तब रिषि तासौं कहि समुझायौ।

ख. पुल्लिग बहुवचन मूल रूप—उठे कपि भालु ततकाल जै जै करत, असुर भए मुक्त रघुबर निहारे। ग्वाल बजावत तारी। सुर नर मुनि सब सुजस बखानत।

ग. पुल्लिग एकवचन विकृत रूप—ताकी माता खाई कारैं (काला सर्प)। सकटैं (सकटासुर) गर्ब बढ़ायौ।

घ. पुल्लिग बहुवचन विकृत रूप—असुरनि मिलि यह कियौ बिचार। देवनि दिवि दुंदुभी बजाई। सगर सुतनि तब नृप सौं भाष्यौ।

ङ. स्त्रीलिंग एकवचन मूलरूप–संकर कौ मन हर्यौ कामिनी। बैठी जननि करति सगुनौती। अद्‌भुत रूप नारि इक आई। जैसे मीन जाल में क्रीड़ति।

च. स्त्रीलिंग बहुवचन मूल रूप—उमँगि मिलनि जननी दोउ आईं। ता सँग दासी गईं अपार। सुनि धाईं सब ब्रजनारि सहज सिंगार किये।

ज. स्त्रीलिंग बहुवचन विकृत रूप—जुवतिनि मंगल गाथा गाई।

ऊपर के उदाहरण केवल कर्ताकारक में विभिन्न संज्ञा-रूपों के प्रयोग की दृष्टि से दिये गये हैं, विभक्ति-रहित प्रयोग की दृष्टि से नहीं। विभक्तियों की दृष्टि से देखा जाय तो पुल्लिग एकवचन विकृत रूप के अंतर्गत दिये गये 'ताकी माता खाई कारैं' और 'संकटैं गर्व बढ़ायौ' वाक्यों में कर्ताकारक के रूप में प्रयुक्त कारैं और सकटैं में संयुक्त 'ऐं' को एक प्रकार से विभक्ति-रूप ही स्वीकारना होगा जिससे मूल संज्ञा रूप विकृत हो गया है। हाँ, उक्त उदाहरणों से एक बात यह अवश्य ज्ञात होती है कि नें, नैं या नै, तीनों में से किसी कर्ताकारकीय विभक्ति का प्रयोग सूरदास ने नहीं किया है। 'सूरसागर' के केवल दो वाक्यों में यह विभक्ति दिखायी देती है—

१. दियौ सिरपाव नृपराव नै महर कौं आपु पहिरावने सब दिखाए।

२. तहाँ ताहि बिषहर नै खाई, गिरी धरनि उहिं ठौर।

इसी प्रकार 'सारावली' में भी एक वाक्य में वह विभक्ति प्रयुक्त हुई है—भोजन समय जानि यशुमति ने लीने दुहुँन बुलाय।

---

१. बोलचाल की भाषा में कर्मकारकीय चिह्न के रूप में 'कुँ' और 'कूँ' का प्रयोग अधिक होता है। यही साहित्यिक भाषा में कों', 'को' या 'कौं' हो गया है, जो बोलचाल की भाषा में भी प्रयुक्त होता है—लेखक।

कर्मकारक—ब्रजभाषा में कर्मकारक की मुख्य विभक्तियाँ कुँ, कूँ, कों, को, कौं[1] हैं । सभा के 'सूर-सागर' तथा उसी के अनुकरण पर संपादित अन्य ब्रजभाषा-काव्यों में इन विभक्तियों में से केवल कौं का ही प्रयोग अधिक मिलता है । इसके अतिरिक्त 'हिं' के योग से भी अनेक कर्मकारकीय रूप बनाये गये हैं और इनसे रहित कर्मकारकीय प्रयोगों की संख्या भी पर्याप्त है ।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—संज्ञा शब्दों के आठों रूपों में से जिनके विभक्तिरहित प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र मिलते हैं, केवल उन्हीं के उदाहरण यहाँ संकलित हैं—

अ. पुल्लिंग एकवचन मूलरूप—हौं चाहति गर्भ दुरायौ । लछिमन सीता देखी जाइ । कच्छप की तिय सूरज जायौ ।

आ. पुल्लिंग बहुवचन मूलरूप—तिन अभिय भंडार खोले । बहु विधि ब्योम कुसुम सुर बरसत । साठ सहस्र सगर के पुत्र कीने सुरसरि तुरंत पवित्र ।

इ. स्त्रीलिंग एकवचन मूलरूप—आरति साजि सुमित्रा ल्यायी । रिषि सक्रोध इक जटा उपारी । तब रिषि यह बानी उच्चरी । तुव पितु भिच्छा खात ।

अन्य रूप—पुल्लिंग एक और बहुवचन विकृत, स्त्रीलिंग बहुवचन मूल, एक और बहुवचन विकृत रूपों के उदाहरण मिलते ही न हों, सो बात नहीं है; परन्तु उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है । इनके भी दो-एक उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—लै दासिनि फुलवारी गई । जौ यह संजीवनि पढ़ि जाइ । तौ हम सत्रुनि लेइ जिवाइ ।

ख. कौं विभक्तिसहित प्रयोग—कर्मकारक की इस विभक्ति का प्रयोग कवियों ने स्वतंत्रता से किया है; जैसे—असुर कच कौं मार्यौ । प्रथम भरत बैठाइ बंधु कौं यह कहि पाइ परे । रिषभदेव जब बन कौं गए । मम मैंढ़नि कौं लै गयौ कोई ।

ग. 'हिं'[1] सहित प्रयोग—ब्रजभाषा-कवियों के कर्मकारकीय रूपों में 'हिं' का प्रयोग बहुत मिलता है; जैसे—महादुष्ट लै उड़चौ गुपालहिं । त्यौं ये सुकृत धनहिं परिहरैं । सक्र कोध करि नगरहिं त्याग्यौ । देखौ ता पुरुषहिं तुम जोइ । बरुनपास तैं ब्रजपतिहिं छन माँहि छुड़ावै । तब हँसि कहति जसोदा ऐसैं महरहिं लेउ बुलाय । दियौ दानवनि रिषिहिं पियाइ ।

घ. विभक्ति-आभास युक्त प्रयोग—ब्रजभाषा-काव्य में ऐसे भी अनेक प्रयोग मिलते हैं जिनमें यद्यपि कर्मकारकीय कोई विभक्ति अलग से नहीं जोड़ी गयी है; परन्तु जिनके विकृत रूप विभक्तिसंयुक्त होने का आभास देते हैं; जैसे—आयु गई कछु काज घरैं । तौ हू घरै न मन मैं ज्ञानैं । मेट्यौ सबै दुराजैं । स्रवन सुनत न महर बातैं जहाँ तहँ गइ बहरि । ज्यौं जमुना जल छाँड़ि सूर प्रभु लीन्हें बसन तजी कुल लाजैं । तेरे सब संदेहैं दहौं । प्रगट पाप संताप सूर अब कापर हठैं गहौं ।

ङ. द्विकर्मक प्रयोगों में विभक्ति का संयोग—कुछ क्रियाओं को एक कर्म की आवश्यकता होती है और कुछ को दो की । 'लछिमन सीता देखी जाइ' में 'देखी' क्रिया के साथ एक ही कर्म 'सीता' है; और 'आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ' में 'हरिहिं' और 'सस्त्र' दो कर्म 'गहाऊँ' क्रिया के हैं जिनमें प्रथम अर्थात् 'हरिहिं' गौण कर्म है और द्वितीय अर्थात् 'सस्त्र' मुख्य कर्म । एक कर्म-वाली क्रियाओं के कर्मकारकीय शब्द में, जैसे ऊपर लिखा जा चुका है, कभी विभक्ति लगती है, कभी नहीं भी लगती; परन्तु द्विकर्मक क्रियाओं के दोनों कर्मों में से यदि किसी में कवियों ने विभक्ति लगायी है, तो वह साधारणतः गौण कर्म में ही; जैसे—संजीवनि तब कचहिं पढ़ाई ।

इस वाक्य में कर्त्ता 'सक्र' लुप्त है; 'संजीवनि'

---

१. ब्रजभाषा में 'कूँ' के साथ 'कों' और 'कौं' तीनों रूप प्रचलित हैं । सूरदास के समकालीन कवियों ने प्रायः 'कूँ' नहीं लिखा है; चौबों की भाषा में 'कों' बोला जाता है और अन्य लोग 'कौं' बोलते हैं । मथुरा में अंतिम दोनों प्रयोग चलते हैं—लेखक ।

१. 'हिं' की गणना स्वतंत्र विभक्तियों में नहीं की जानी चाहिए; क्योंकि विभक्तियों के विपरीत, 'हिं' सदैव शब्दों में संयुक्त रहती है । इसे सुविधा के लिए 'विभक्ति-प्रत्यय' कहना उपयुक्त होगा—लेखक ।

मुख्य कर्म है जिसमें कोई विभक्ति नहीं लगी है और 'कर्चहिं' गौण कर्म है जिसमें विभक्ति-प्रत्यय 'हिं' संयुक्त है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में भी गौण कर्म 'बृत्रासुर' में 'कौं' विभक्ति लगी है और मुख्य कर्म 'बज्र' विभक्ति-रहित है; कर्त्ता 'इन्द्र' लुप्त है—बृत्रासुर कौं बज्र प्रहारचौ।

कहीं-कहीं कवियों ने द्विकर्मक क्रियाओं के ऐसे प्रयोग भी किये हैं जिनमें मुख्य और गौण, दोनों कर्म विभक्ति-रहित हैं; जैसे—सूर सुमित्रा अंक दीजियौ, कौसिल्याहिं प्रनाम हमारौ।

यह वाक्य श्रीराम का लक्ष्मण के प्रति है जिसमें कर्त्ता लुप्त है। इस वाक्य में दो उपवाक्य हैं क. सुमित्रा अंक दीजियौ। ख. कौसिल्याहिं प्रनाम हमारौ (दीजियौ)। दोनों उपवाक्यों के मुख्य कर्म 'अंक' और 'प्रनाम' तो विभक्ति-रहित हैं ही; द्वितीय के गौण कर्म 'कौसिल्याहिं' में विभक्ति-प्रत्यत 'हिं' संयुक्त है; परन्तु प्रथम का गौण कर्म 'सुमित्रा' विभक्ति-रहित है। संभव है, 'दीजियौ' क्रिया के कारण इस वाक्य में 'सुमित्रा' और 'कौसिल्याहिं' को संप्रदानकारकीय रूप कुछ लोग मानें; परन्तु वस्तुत: यहाँ 'दीजियौ' क्रिया 'करियौ' या 'कहियौ' के अर्थ में है, साधारण 'देने' के अर्थ में नहीं।

च. कर्मकारक में प्रयुक्त अन्य विभक्तियाँ—यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है। पं० किशोरीदास वाजपेयी ने, 'सूरदास स्वामी सों कहियो अब बिरमियो नहीं' और 'सूरदास प्रभु दीन बचन यों हनूमान सों भाखै' वाक्यों में, क्रमशः 'स्वामी' और 'हनूमान' को गौणकर्म मानकर और इनके साथ 'सों' विभक्ति देखकर, इस विभक्ति 'सों' का भी कर्मकारक में प्रयुक्त होना माना है। वाजपेयी जी का यह कथन संभवतः संस्कृत व्याकरण के आधार पर है। हिन्दी में तो पं० कामता प्रसाद गुरु ने ऐसे प्रयोगों को करणकारक के अन्तर्गत माना है और हिन्दी की प्रकृति के अनुसार यह उचित भी जान पड़ता है। हाँ, एक पद में अधिकरणकारक की विभक्ति 'पर' का प्रयोग सूरदास ने अवश्य कर्मकारक में किया है; जैसे—

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै।

इस वाक्य में 'पर' विभक्ति की ध्वनि 'को' के अर्थ की ओर अधिक है। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्ति में अधिकरणकारकीय विभक्ति 'माहीं' से भी कर्मकारकीय 'कौं' की ध्वनि 'में' से अधिक है—

उलटि जाहु अपनैं पुर माहीं बादिहिं करत लराई।

उक्त दोनों वाक्यों के 'पर' और 'माहीं' के कर्मकारकीय प्रयोगों को अधिक से अधिक अपवादस्वरूप ही मान सकते हैं।

करणकारक—ब्रजभाषा में इस कारक की विभक्तियों के रूप में तैं, ते, तैं, पर, पै, सुँ, सेंती, सों, सौं का प्रयोग होता है। ब्रजभाषा कवियों ने करणकारकीय विभक्तियों के रूप में केवल 'तैं' और 'सौं' का ही प्रयोग मुख्य रूप से किया है। अन्य विभक्तियों में से 'सुँ' और 'सेंती' के उदाहरण भी कहीं-कहीं मिल जाते हैं। इनके अतिरिक्त विभक्तिरहित करणकारकीय प्रयोग भी ब्रजभाषा-काव्य में बहुत मिलते हैं।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—विभिन्न संज्ञा-रूपों के विभक्ति-रहित करणकारकीय प्रयोगों को अलग-अलग देने की आवश्यकता नहीं है; अतएव एक साथ ही इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—देखौ, कपिराज भरत वै आए। मम पाँवरी सीस पर जाकैं, कर अँगुरी रघुनाथ बताए। मैं इहिं ज्ञान ठगीं ब्रजबनिता, दियौ सो क्यों न लहौं। ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान। तिनकैं तेज-प्रताप, देवतनि बहु दुख पाये। तुम्हरैं तेज-प्रताप नाथ जू मैं कर धनुष धरचौ। सपथ राम, परताप तिहारैं खंड-खंड करि डारौं। तुम प्रसाद मम गृह सुत होई। ता प्रसाद या दुख कौं तरैं। सब राच्छस रघुबीर कृपा तैं एकहिं बान निवारौं। राम नाम मुख उचरै सोई। भीलराव निज लोगनि कह्यो। सखनि कह्यौ तुम जेंवहु बैठे, स्याम चतुरई ठानी। इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ। स्वाँस आकास बनचर उड़ाऊँ। दास की महिमा श्रीपति श्रीमुख गाई। जानकी नाथ कैं हाथ तेरौ मरन।

ख. 'तैं' विभक्तिसहित प्रयोग—इस करणकारकीय विभक्ति में वस्तुत: ब्रजभाषा के 'तैं' और 'ते' विभक्ति-रूपों को सम्मिलित समझना चाहिए, 'तैं' विभक्ति सहित कुछ प्रयोग यहाँ संकलित हैं—कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहैं

पाए। उनि कह्यौ रिषि किरपा तैं जाए। सब राच्छस रघुबीर कृपा तें एकहि बान निवारौं। पंचतत्व तैं जग उपजाया। त्रिगुन प्रकृति तैं महत्तत्व, महत्तत्व तैं अहंकार कियौ बिस्तार। सूरदास स्वामी प्रताप तैं सब संताप हर्यौ। मम प्रसाद तैं सो वह पावै। यह तौ सुनी ब्यास के मुख तैं पर-दारा दुखदात। सुनत 'साप रिस तैं तनु दह्यौ। बहुरि रुधिर तैं छीर बनावत। जाकैं नाम ध्यान सुमिरन तैं कोटि जज्ञ फल पावत।

ग. 'सौं' विभक्ति सहित प्रयोग—जिस प्रकार ऊपर की पंक्तियों में 'तैं' विभक्ति 'तें' और 'ते' का ही अन्य रूप है, उसी प्रकार आगे के उदाहरणों में 'सौं' विभक्ति को 'सों' का ही दूसरा रूप समझना चाहिए—आधौ उदर अन्न सौं भरै। सुनियै ज्ञान कपिल सौं जाइ। मैं काली सौं यह प्रन कियौ। कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा। निज गुरु सौं भाख्यौ तिन जाइ। हँसि ढाढ़िनि ढाढ़ी सौं बोली। ब्रह्मा सो नारद सौं कहे। दसरथ सौं रिषि आनि कह्यौ।

घ. अन्य विभक्तियों सहित प्रयोग—'सेंती', 'कौं', 'हिं' आदि कुछ अन्य विभक्तियों के भी यत्र-तत्र करणकारकीय प्रयोग ब्रजभाषा काव्य में मिल जाते हैं; यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं है, जैसे—ता रानी सेंती सुत ह्वैहै। (उन) बहुरि सुक्र सेंती कह्यौ जाइ।

इसी प्रकार निम्नलिखित वाक्य में 'कौं' विभक्ति की ध्वनि भी करणकारकीय 'सौं' विभक्ति के अर्थ से मिलती-जुलती जान पड़ती है—

गउ चटाइ मत त्वचा उपारौ। हाड़नि कौ तुम, वज्र सँवारौ।

'हिं' का प्रयोग कवियों ने करणकारक में बहुत कम किया है। निम्नलिखित उदाहरण का 'हीं' उसी का विकृत रूप है—

जिन रघुनाथ हाथ खर दूषन प्रान हरे सरहीं।

संप्रदान कारक—ब्रजभाषा में संप्रदानकारक की कुँ, कूँ, कों, को, कौं, कौ, के लिए—विभक्तियाँ कर्म-कारक में भी रहती हैं। अतएव केवल इन विभक्तियों से नहीं, अर्थ पर ध्यान देने से ही संज्ञा-रूप के कारक का ठीक-ठीक पता चल सकता है। ब्रजभाषा के अधिकांश कवियों ने संप्रदानकारक में 'कौं' का ही प्रयोग विशेष रूप से किया है और अन्य कारकों की तरह इसमें भी विभक्तियों से रहित और सहित, दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—संप्रदानकारकीय विभक्ति-रहित प्रयोगों में कवियों ने उतनी स्वतंत्रता से काम नहीं लिया है, जितनी से प्रथम तीन कारकों में लिया है। अतएव इस प्रकार के तीन-चार उदाहरण ही यहाँ दिये जाते हैं—बहुरी रिषभ बड़े जब भए। नाभि राज दे बन कौ गए। बिप्र जाचकनि दीन्हौ दान। दियौ बिभीषन राज सूर प्रभु। तुम्हैं मारि महिरावन मारैं, देहिं बिभीषन राई।

ख. 'कौं' विभक्तिसहित प्रयोग—कर्मकारक की तरह ही संप्रदान की इस 'कौं' विभक्ति में 'कों', 'को' और 'कौ' को सम्मिलित समझना चाहिए। 'कौं' विभक्ति सहित कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं—तनया जामातनि कौं समदत नैन नीर भरि आए। एक अंस बृच्छनि कौं दीन्हौं। कामधेनु पुनि सप्त रिषि कौं दई। बलि सुरपति कौं बहु दुख दयौ।

ग. विभक्ति-प्रत्यय 'हिं' सहित प्रयोग—अति दुख में सुख दै पितु मातहिं, सूरज प्रभु नंद-भवन सिधाए। बहुत सासना दई प्रह्लादहिं।

अपादानकारक—ब्रजभाषा में अपादानकारक की विभक्ति तें, ते या तैं है। ये तीनों रूपांतर एक ही विभक्ति के हैं जिनमें से अंतिम का ही प्रयोग अधिक किया गया है। साथ ही कुछ विभक्ति-रहित अपादानकारकीय रूप भी ब्रजभाषा-काव्य में मिल जाते हैं।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—अपादानकारकीय विभक्तिरहित रूपों की संख्या यद्यपि अपेक्षाकृत बहुत कम है, तथापि ऐसे प्रयोग बिलकुल न हों, सो बात भी नहीं है; जैसे—करुना करत सूर कौसलपति नैननि नीर झर्यौ।

ख. 'तैं' विभक्तिसहित प्रयोग—ब्रजभाषा-काव्य में यद्यपि 'तें' या 'ते' के उदाहरण बराबर मिलते हैं; परन्तु अधिकांशत: 'तैं' का ही अपादानकारक में प्रयोग किया गया है; जैसे—जब मैं अकास तैं परौं। अमृत हूँ तैं अमल अति गुन स्रवत निधि आनंद। जब तुम निकसि

उदर तैं आवहु । श्री रघुनाथ प्रताप चरन करि उर तैं भुजा उपारौं । हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ । असुरनि गिरि तैं दियौ गिराई । मैं गोबर्धन तैं आयौ । देस देस तैं टीकौ आयौ । ता बन तैं मृग जाहिं पराई ।

ग. 'सौं' विभक्ति-सहित प्रयोग—पर्वत सौं इहिं देहु गिराइ । ऐसे प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में कम हैं ।

६. संबंधकारक—इसकी मुख्य विभक्ति 'कौ' है जिसके लिंग, वचन और कारक के अनुसार 'की', 'के' और 'कौ' रूप हो जाते हैं । इनके अतिरिक्त अवधी की संबंधकारकीय विभक्ति 'केर', 'केरी', 'केरे', 'केरैं' और 'केरौ' रूपों का प्रयोग भी कुछ कवियों ने किया है । इन विभक्ति-रूपों से रहित प्रयोग भी ब्रजभाषा-काव्य में बराबर मिलते हैं ।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—संबंधकारक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध क्रिया से नहीं होता । अतएव विभक्ति-रहित प्रयोग वाले वाक्यों का केवल आवश्यक अंश ही यहाँ उद्धृत किया गया है; जैसे—ग्वारनि भीर, नाम प्रतीति, प्रहलाद प्रतिज्ञा, भरत सँदेस, रिषि मन, सत्रुहन ब्याह, सुता मन, सुर-सरी तीर, स्याम गुन, स्रोनित छिछ आदि ।

ख. 'कौ विभक्ति-सहित प्रयोग—ब्रजभाषा की ओकारांत प्रकृति के अनुसार खड़ीबोली के 'का' का रूप उसमें 'कौ'[1] हो जाता है; जैसे—अविनासी कौ आगम, केसरि कौ तिलक, गर्भ कौ आलस, गीध कौ चारौ, चरनि कौ चेरौ, जिय कौ सोच, द्वारे कौ कपाट आदि ।

ब्रजभाषा-काव्य में संबंधकारकीय प्रयोग, वाक्य-रचना की दृष्टि से दो प्रकार के मिलते हैं । एक में सीधे सादे ढंग से गद्य की परिपाटी का अनुकरण किया जाता है और संबंधसूचक और संबंधित, दोनों शब्दों की स्थिति सामान्य रहती है; जैसे—राम कौ भाई । ऊपर 'कौ' विभक्ति के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सब इसी प्रकार के हैं । दूसरे वर्ग में वे प्रयोग आते हैं जिनमें संबंधकारकीय रूप और संबंधी शब्द का क्रम उलट जाता है और तब संबंधी शब्द कारक-रूप के पहले ही आ जाता है; जैसे—भाई राम कौ । इस प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण ये हैं—तन स्याम कौ, मंडल भानु कौ, ममत्व देह कौ, संताप जनम कौ, सिर लछिमन कौ, हरन सीता कौ, हार ग्रीवा कौ आदि । कहीं-कहीं इस प्रकार की पद-रचना में कवियों ने दोनों शब्दों के बीच में अन्य शब्दों को भी डाल दिया है; जैसे—सार बेद चारौं कौ, देवल रिषि कौ पकरयौ पाइ आदि । ऐसे प्रयोगों पर पद्य-रचना का स्पष्ट प्रभाव माना जा सकता है ।

ग. 'की' विभक्ति सहित प्रयोग—संबंधकारक की मूल विभक्ति 'का' या 'कौ' का स्त्रीलिंग रूप की' है जिसका प्रयोग कवियों ने अनेक स्थलों पर किया है; जैसे—अंबरीष की दुर्गति, जन्मभूमि की कथा, जलद की छाँहीं, पुहुपनि की माला, बिछुरन की बेदन, भादौं की रात, मन की सूल, लालन की आरती, सुत-तिय-धन की सुधि आदि । 'की' विभक्तिसहित ऐसे अनेक प्रयोग भी ब्रजभाषा-काव्य में हैं जिनमें संबंधकारक और संबंधी शब्द का क्रम कवि ने उलट दिया है; जैसे—आन रघुनाथ की, आपदा चतुरमुख की, करतूति कंस की, कुसल नाथ की, भीर अमर-मुनि-गन की, भीर बानर की, सुधि मोहिनी की आदि । कारकीय रूप और संबंधी शब्द के बीच में अन्य शब्दों का प्रयोग भी कुछ उदाहरणों में देखा जाता है; जैसे—नैननि की मिटी प्यास, बर्षा करी पुहुप की, भक्ति-भाव की जो तोहिं चाह आदि ।

घ. 'के' विभक्ति-सहित प्रयोग-संबंधकारकीय रूप 'का' या 'कौ' का बहुबचन पुल्लिंग रूप 'के' है जिसका प्रयोग सर्वत्र मिलता है; जैसे—जम के दूत, दसरथ के सुत नरनि के लच्छन, पुहुपनि के भूषन, सिव के गन, स्वारथ

---

१. संबंधकारकीय चिह्न के रूप में 'कौ' के प्रयोग के पक्ष में कुछ लेखक नहीं हैं । पं० किशोरीदास वाजपेई का मत है—'दीर्घ स्वर से परे, विशेषतः 'आ' से परे, 'कौ' बहुत बुरा लगता है; जैसे वाकौ, काकौ इत्यादि; परन्तु ह्रस्व स्वर से परे वैसा कर्णकटु नहीं लगता; जैसे 'विधि कौ इतनोई विधान इतै' । हाँ, मधुर भाव आदि में ह्रस्व स्वर से पर भी 'कौ' खलता है जैसे 'राम कौ रूप निहारति जानकि' (ब्रजभाषा-व्याकरण', पृ. १२७) । परन्तु 'सभा' के 'सूरसागर' एवं उसके अनुकरण पर संपादित अन्य ब्रजभाषा-काव्यों में संबंधकारकीय चिह्न 'कौ' का प्रयोग सर्वत्र किया गया है—लेखक ।

के गाहक आदि। ब्रजभाषा-काव्य में यह 'के' विभक्ति कभी-कभी आदरार्थक एकवचन में भी प्रयुक्त हुई है। साथ ही एकवचन संबंधी शब्द के आगे कोई अन्य विभक्ति, संबंधसूचक अव्यय अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य शब्द जोड़ने के लिए भी संबंधकारकीय चिह्न के रूप में 'के' विभक्ति का प्रयोग किया गया है; जैसे—दीन के द्याल गोपाल, दुतिया के ससि, देवनि के देव, नंद के द्वारे, पिना-कहूँ के दंड लौं, पौन के पूत, ब्रज के भूप, भक्त के मग में, सूर के स्वामी।

'कौ' और 'की' विभक्ति-रूपों की तरह 'के' के भी कारक और संबंधी शब्द के उलटे क्रम वाले प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में हैं; जैसे—अमंगल जग के, दाँत दूध के, नर गोकुल सहर के, नाते जगत के, परबत रतन के, बचन जननी के, बसन सुक्र-तनया के, बान रघुपति के, मूल भागवत के, मनोरथ मन के, स्वामी पुर के आदि।

ङ. 'कैं' विभक्तिसहित प्रयोग—'के' के साथ साथ 'कैं' का भी कवियों ने अनेक स्थानों में प्रयोग किया है। इसकी भिन्नता या विशेषता यह है कि इस 'कैं' में संबंधी शब्द की विभक्ति भी संयुक्त है अर्थात् संबंधी शब्द के पश्चात् स्वतंत्र विभक्ति का प्रयोग कवियों ने नहीं किया है। जैसे—जलनिधि कैं तीर, रुद्र कैं कंठ, सुधा कैं सागर सोनैं कैं पानी आदि। इस विभक्ति के उलटे क्रम वाले रूप भी कहीं-कहीं मिलते हैं; जैसे—गृह नंद कैं; परंतु इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। इसी प्रकार कारकरूप और संबंधी शब्द के बीच में अन्य शब्दों के समावेश वाले उदाहरण भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं; जैसे—नरहरि जू कैं जाइ निकेत।

च. अन्य विभक्तियोंसहित प्रयोग—उक्त मुख्य विभक्तियों के अतिरिक्त अवधी की 'केर' विभक्ति के कुछ रूपों का प्रयोग भी ब्रजभाषा-काव्य में मिलता है; जैसे—

अ. केरी—त्रास निसाचर केरी, बिथा बिरहिनी केरी, प्यारी हरि केरी, माला मोतिन केरी।

आ. केरे—सुत अहिर केरे, घर-घर केरे फरके खोलैं, अपराध जन केरे,

इ. केरैं—अनुरागनि हरि केरैं, चितै बदन प्रभ केरैं आदि।

ई. केरौ—दुःख नंद जसोमति केरौ, मानौ जल जमुन बिंब उड़गन पथ केरौ, दूत भयौ हरि केरौ।

इनमें 'केरी', 'केरे', 'केरौ', तो 'की', 'के' और 'कौ' की भाँति संबंधकारक के सामान्य रूप हैं; परंतु 'केरैं' में 'कैं' की तरह विभक्ति भी संयुक्त है जिसके फलस्वरूप उसके संबंधी शब्द के पश्चात् स्वतंत्र विभक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है।

७. अधिकरण कारक—इसकी मुख्य विभक्तियाँ और उनके अन्य रूपांतर पर, पै, पाहिं, पाहीं, मँझार, मँझारि, मँझारे, माँझ, मँह, महँ, महियाँ, माहँ, माहिं, माहीं, माहैं, में, मैं, मो, मौं आदि हैं। साथ-साथ इनसे रहित अधिकरणकारकीय प्रयोग भी ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं।

क. विभक्ति-रहित प्रयोग—अधिकरणकारकीय उक्त विभक्तियों और उनके अन्य रूपों को, स्थूल रूप से, दो वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में पर, पै, पाहिं और पाहीं रूप आते हैं और द्वितीय के शेष रूप। दोनों वर्गों के रूपों के कुछ उदाहरण यहाँ संकलित हैं।

अ. प्रथमवर्गीय विभक्ति-रहित प्रयोग—पर, पै, पाहिं और पाहीं का लोप कवियों के ऐसे प्रयोगों में देखा जा सकता है—गरल चढ़ाइ उरोजजि, कटि तट तून, गंगा तट आये श्रीराम, सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ, सूर बिमान चढ़े सुरपुर सौं, पुहुप बिमान बैठी बैदेही, भूतल बंधु परचौ, या रथ बैठि, पौढ़े कहा समर-सेज्या सुत, परबत आनि धरचौ सागर तट, छत्र भरत सिर धारौ, चढ़ि सुख आसन नृपति सिधायौ।

आ. द्वितीय वर्गीय विभक्तिरहित प्रयोग—द्वितीय वर्ग की मुख्य विभक्ति 'मैं' है जिसके अनेक रूपांतर ऊपर दिये गये हैं। इनका लोप अनेक उदाहरणों में किया गया है; जैसे—अजोध्या बाजति आजु बधाई। ध्रुव आकास बिराजैं। हरि चरनारबिंद उर धरौ। कनकपुर फिरिहै रामचंद की आन। सो रस गोकुल गलिनि बहावैं। लीन्हे गोद बिभीषन रोवत। हरि स्वरूप सब घट यौं जान्यौ। नहीं त्रिलोकी ऐसौ कोइ। ज्यौं कुरंग नाभी कस्तुरी। बैठी हुती जसोदा मंदिर। लंका फिरि गई राम दुहाई। सतयुग सत, त्रेता तप कीजैं, द्वापर पूजा चारि।

ख. विभक्ति आभासयुक्त रूप—अधिकरण-कारकीय कुछ ऐसे रूप भी ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं जिनके साथ यद्यपि इस कारक की कोई विभक्ति नहीं जुड़ी है, परंतु जिनके विकृत रूप उनके विभक्ति-युक्त होने का आभास देते हैं। इस कारक की दो प्रधान विभक्तियों 'पर' और 'मैं' के अनुसार इस प्रकार के प्रयोगों के भी दो वर्ग हो जाते हैं।

अ. 'पर' का आभास देनेवाले प्रयोग—गोकुल के चौहटैं रँग भीजी ग्वारिनि। हरि बलि द्वारैं दरबान भयौ। द्वारे ठाढ़े हैं द्विज बावन। द्वारैं भीर गोप गोपिन की। माथैं मुकुट। गुरु माथ हाथ धरैं।

आ. 'मैं' का आभास देनेवाले प्रयोग—बतियाँ छिदि छिदि जात करेज। खोजौ दीपैं सात। क्यौं करि रहै कंठ मैं मनियाँ बिना पिरोये धागैं। मेरे बाँटैं परचौ जँजाल। तब सुरपति हरि सरनैं गयौ। राजा हियैं सुरुचि सौं नेह।

'पर' और 'मैं' का आभास देनेवाले उक्त 'ऐं' संयुक्त रूपों पर संस्कृत की अधिकरणकारकीय रूप-रचना—जैसे आकाशे, उद्याने, विद्यालये आदि—का प्रभाव जान पड़ता है। ऐसे प्रयोग ब्रजभाषा गद्य में भी मिलते हैं।

ग. 'पर' विभक्तियुक्त प्रयोग—यह विभक्ति वस्तुत: खड़ीबोली की है जिसका प्रयोग ब्रजभाषा-कवियों ने अनेक स्थलों पर किया है; जैसे—सुख आसन काँधे पर गह्यौ। दोनागिरि पर आहि सँजीवनि। बैठ्यौ जाइ एक तरुवर पर। मुरछाइ परी धरनी पर। धरचौ गिरि पीठि पर। आँसू परे पीठि पर। गंगा भूतल पर आई। नृपति रिषिन पर ह्वै असवार। सागर पर गिरि, गिरि पर अंबर। सिर पर छत्र तनायौ। सिर पर दूब धरि बैठे नंद।

घ. 'पै' विभक्तियुक्त प्रयोग—खड़ीबोली की 'पर' विभक्ति का ब्रजभाषिक रूप 'पै' कह सकते हैं जिसका प्रयोग अनेक उदाहरणों में मिलता है; जैसे—पांडव धर्मराज पै आयौ। नहुष नृपति पै रिषि सब आइ। विप्रनि पै चढ़ि कै जौ आवहु। सब सुर ब्रह्मा पै जाइ। मेरे संग राजा पै आउ। राम पै भरत चले अतुराइ। कृपासिंधु पै केवट आयौ। इन उदाहरणों में से प्रथम और चतुर्थ में तो 'पै' विभक्ति 'पर' के अर्थ में है, शेष में उसका अर्थ 'पास' या 'के पास' है। कविता में 'पै' का इस अर्थ में भी अधिकरणकारकीय प्रयोग होता है।[१]

ङ. 'पहँ', 'पाहियाँ', पाहिं' या 'पाहीं' विभक्ति युक्त प्रयोग—ये तीनों विभक्ति-रूप वस्तुत: 'पै' के ही रूपान्तर हैं। इनका प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में बहुत कम हुआ है; जैसे—मनहुँ कमल पहँ कोकिल कूजत। यह सुख तीन लोक में नाहीं जो पाए प्रभु पहियाँ। चलि हरि पिय पहियाँ।

च. मँझार, मँझारि, मँझारे और माँझ विभक्ति युक्त प्रयोग—इन विभक्तियों के अधिक प्रयोग ब्रजभाषा काव्य में नहीं मिलते; जैसे—पैठ्यौ उदर मँझारि। हरि परीच्छितहिं गर्भ मँझार राखि लियौ। गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़े। कमल धरे जल माँझ। मैं ढूँढ़्यौ डोंगरनि मँझारि। हनुमंत पहुँच्यौ नगर मँझारि। नैंना नैननि माँझ समाने। ग्वाल बाल गवने पुरी मँझार। बछरनि कौं बन माँझ छाँड़ि। इक दिन बैठे सभा मँझारे। हृदै माँझ जौ हरिहिं बतावत। इन विभक्तियों में कुछ, विशेष रूप से माँझ का प्रयोग कवियों ने कभी-कभी संबंधी शब्द के पहले भी किया है; जैसे—बन की ब्याधि माँझ घर आई। माँझ बाट मटुकी सिर फोरचौ।

छ. मधि और मध्य विभक्तियुक्त प्रयोग—इन विभक्ति-रूपों का प्रयोग कवियों ने किया अवश्य है, परन्तु कम; जैसे—बैठे नंद सभा मधि। बहु निसाचरी मध्य जानकी।

ज. महँ, महियाँ, महीं, माँहँ, माँहिं और माहैं विभक्तियुक्त प्रयोग—बिनु हरि भजन नरक महँ जाइ। बैठे जाइ जनक मंदिर महँ। बहुरौ धरै हृदय महँ ध्यान। सुनि जड़ भरत हृदय महँ राखी। दिन दस रहौ जु गोकुल महियाँ। गंगा ज्यौं आई जग माहँ। नैननि माहँ समाऊँ। वृन्दाबन महियाँ। गहि अंचल मेरी लाज छँड़ाइ यहै सूल मन माहैं। कहत सुनत समुझत मन महियाँ ऊधौ बचन तुम्हारे। हृदय माँहँ हरी।

माहिं—गर्भ माहिं सत वर्ष रहि। बहुरौ गोद माहिं बैठार। जगत माँहिं जस लैहौं। मलिन बसन

---

१. पं० कामता प्रसाद गुरु, 'हिंदी व्याकरण', पृ०५४६।

तन माहिं। तब तीरथ माहिं नहाए। तुव ननसाल माहिं हम आहिं। पंथ माहिं तिन नारद मिले। हरि जाइ बन माहिं दीन्हें दिखाई। तब मन माहिं आनि बैराग। लंकगढ़ माहिं आकास मारग गयौ। मंदराचल समुद्र माहिं बूड़न लग्यौ।

'माहीं'—उक्त उदाहरणों में 'माहिं' विभक्ति साधारण 'में' के अर्थ में है; केवल चौथे उदाहरण में 'तन माहिं' का अर्थ 'तन पर' हो सकता है। 'माहीं' का प्रयोग कवियों ने अधिकतर चरण के अंत में तुकांत के लिए किया है, यद्यपि कहीं-कहीं पंक्ति के बीच में भी मात्रा-पूर्ति के लिए इसका प्रयोग मिल जाता है; जैसे—राख्यौ नहिं कछू नात नैंकु चित्त माहीं। प्रगट होइ छिन माहीं। मुख देखत दर्पन माहीं। गर्व धारि मन माहीं। मदन मूरति हृदय माहीं रमि रही।

झ. में, मैं विभक्तियुक्त प्रयोग—इन दोनों विभक्तियों में से 'मैं' का प्रयोग ही अधिक किया गया है; जैसे—नृप अंतःपुर मैं जाइ सुनायौ। नंद जू की रानी आँगन मैं ठाढ़ी। ब्रज जुवतिनि उपवन मैं पाए हरि। कलिजुग मैं यह सुनिहै जोइ। स्वान काँच मंदिर मैं भूकि मरयौ। अति आनंद होत गोकुल मैं।

ञ. मो, मौं विभक्तियुक्त प्रयोग—इन दोनों विभक्ति-रूपों में से 'मौं' का प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे—मेरी देह छुटत जम पठए जितक दूत घर मौं।

ट. 'हिं' युक्त प्रयोग—कहीं कहीं 'हिं' का संयोग भी, अधिकरणत्व सूचित करने के लिए कवियों ने किया है; जैसे—ब्रजहिं बसै आपुहिं बिसरायौ। यहाँ 'ब्रजहिं' शब्द 'ब्रज में' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐसे प्रयोग कर्मकारकीय रूपों से मिलते-जुलते हैं। यही 'ब्रजहिं' शब्द कर्मकारक में भी आया है—ब्रजहिं चलौ आई अब साँझ। एक ही रूप वाले शब्द इसी प्रकार विभिन्न कारकों में प्रयुक्त होते हैं। इनका अंतर अर्थ पर ध्यान देने से ही स्पष्ट हो सकता है। नीचे के उदाहरण में 'हिं' युक्त' 'रनभूमहिं' शब्द अधिकरणकारक में है—

मेघनाद आयुध धरैं समस्त कवच सजि, गरजि बढ़यौ, रनभूमहिं आयौ।

ठ. अन्य विभक्तियुक्त प्रयोग—जो विभक्तियाँ ऊपर दी गयी हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कारकों की कुछ विभक्तियों का भी प्रयोग कभी-कभी अधिकरणकारक में कवियों ने किया है; जैसे इस उदाहरण में 'कौं' विभक्ति—जैसे सरिता मिलै सिंधु कौं बहुरि प्रवाह न आवै हो। इस उदाहरण में 'सिंधु कौं' का अर्थ 'सिंधु से' और 'सिंधु में', दोनों किया जा सकता है।

८ संबोधन कारक—इस कारक में साधारणतः संज्ञा के मूल रूप का ही प्रयोग किया जाता है; साथ ही संबोधनकारकीय रूप सूचित करने के लिए, शब्द के पूर्व, कभी-कभी अरी, अरे, अहो, री, रे, हे आदि विस्मयादिबोधक रूपों[1] का भी व्यवहार किया जाता है। ब्रजभाषा-काव्य में दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं।

क. संबोधन चिह्नरहित प्रयोग—इस प्रकार के प्रयोगों में संज्ञा के मूल रूपों का ही प्रयोग किया जाता है। ऐसे प्रयोग कई प्रकार के मिलते हैं। प्रथम वर्ग में वे प्रयोग आते हैं जिनमें कवियों ने संबोधन-रूप, वाक्य के आदि में ही रखे हैं; जैसे—बनचर, कौन देस तैं आयौ। महाराज, तुम तौ हौ साधु। राजा, बचन तुम्हारौ टरयौ। रिषि, तुम तौ सराप मोंहिं दयौ। स्याम, कहा चाहत से डोलत। दूसरे वर्ग में वे प्रयोग आते हैं जिनमें कवियों ने संबोधन रूप वाक्य के मध्य में रखे हैं; जैसे—बिनती कहियौ जाइ पवनसुत, तुम रघुपति के आगे। यह सुनि सकल देव मुनि भाष्यौ। राय, न ऐसी कीजै। हौं सति भाउ कहौं लंकापति, जो जिय आयसु पाऊँ। तीसरे वर्ग में ऐसे रूप आते हैं जिनमें संबोधन कारक रूप के पूर्व 'सुन' या 'सुनो' का अर्थवाची कोई शब्द रख दिया गया है जो अर्थ की दृष्टि से अनावश्यक ही होता है; जैसे—सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीं। सुनि देवकी, इक आन

---

१. अन्य कारकों के साथ प्रयुक्त होनेवाले चिह्नों को 'विभक्ति' कहा जाय चाहे 'परसर्ग', परन्तु संबोधनकारक के आगे-पीछे प्रयुक्त होनेवाले अरी, अरे, अहो, री, रे, हे आदि को 'विभक्ति' या 'परसर्ग' कहना ठीक नहीं है। वस्तुतः ये विस्मयादिबोधक अव्यय रूप हैं। अधिक से अधिक इसको 'संबोधन कारकीय चिह्न' कह सकते हैं—लेखक।

जन्म की तोकों कथा सुनाऊँ। चौथे वर्ग में ऐसे प्रयोग आते हैं जिनमें भावातिरेक-सूचक कोई शब्द कवि ने संबोधनकारक-रूप के साथ प्रयुक्त किया है; जैसे—लै भैया केवट, उतराई। इसमें 'भैया' का प्रयोग संबोधनकारकीय रूप 'केवट' के पूर्व किया गया है। परंतु कुछ वाक्य ऐसे भी मिलते हैं जिनमें भावातिरेक सूचक शब्द कारक-रूप के बाद आया है और दोनों के बीच में अन्य शब्द भी दिये गये हैं; जैसे—लछिमन, रची दुतासन भाई।

उक्त सभी उदाहरण संज्ञा शब्दों के एकवचन मूल रूप के हैं। बहुवचन संज्ञा शब्दों का प्रयोग भी संबोधनकारक में कवियों ने कहीं-कहीं किया है, यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं है; जैसे प्रबल सत्रु आहै यह मार। यातैं संतौ, चलौ सँभार। सूरजदास सुनौ सब संतौ, अवगति की गति न्यारी।

ख. विकृत संबोधन रूप—संबोधनकारक के, ऊपर दिये गये उदाहरणों में मूल-रूपों का ही प्रयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त ब्रजभाषा-काव्य में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें उनके विकृत रूप हैं जो तत्संबंधी संस्कृत रूपों से प्रभावित कहे जा सकते हैं; जैसे—मोसौं पतित न और हरे। भीषम करन दोन मंदिर तजि, मम गृह तजे मुरारे। केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज, मुरारे। राजन कहौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मारचौ।

ग. **'अरी' चिह्नयुक्त प्रयोग**—संबोधनकारक के स्त्रीलिंग चिह्न 'अरी' का प्रयोग भी कवियों ने कभी-कभी किया है; जैसे—सीता के प्रति पुरवधुओं के इस संबोधन में - अरी अरी सुंदरि नारि सुहागिनि, लागौं तेरे पाऊँ।

घ. **'अरे' चिह्नयुक्त प्रयोग**—संबोधन कारक के पुल्लिग चिह्न 'अरे' का प्रयोग भी कवियों ने किया है जैसे—अरे मधुप, बातैं ये ऐसी क्यों कहि आवत तोह। दो-एक स्थलों पर इस चिह्नयुक्त प्रयोग के साथ 'सुन' अर्थ-द्योतक शब्द भी रख दिया गया है जो अर्थ की दृष्टि से आवश्यक नहीं जान पड़ता; जैसे—सुनि अरे अंध दसकंध, लै सिय मिलि, सेतु करि बंध रघुबीर आयौ।

ङ. **'अहो' चिह्नयुक्त प्रयोग**—संबोधनकारक के इस चिह्न का प्रयोग कवियों ने दोनों लिंगों—पुल्लिग और स्त्रीलिंग—के साथ किया है; जैसे—अहो महरि, पालागन मेरौ। ताको विषम विषाद अहो मुनि, मोपै सह्यौ न जाई। अहो बसुदेव, जाहु लै गोकुल। इन प्रयोगों में 'अहो' चिह्न कारक-रूप के साथ ही प्रयुक्त हुआ है; परन्तु ब्रजभाषा-काव्य में ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें दोनों के बीच में दो-एक विशेषण भी आ गये हैं; जैसे—अहो पुनीत मीत केसरिसुत, तुम हित बंधु हमारे।

च. **'री' चिह्नयुक्त प्रयोग**—संबोधनकारक के इस स्त्रीलिंग चिह्न का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है; जैसे—सूर स्याम यह कहति जननि सौं, रहि री माँ धीरज उर धारे।

छ. **'रे' चिह्नयुक्त प्रयोग**—यह चिह्न पुल्लिग रूप के साथ ही प्रयुक्त होता है; जैसे—तातैं कहत सँभारहिं रे नर काहे को इतरात। कहै प्रहलाद सुनौ रे बालक, लीजै जनम सुधारि। कुछ वाक्यों में संबोधनकारकीय चिह्न 'रे' का दोहरा प्रयोग भी किया गया है; जैसे—रे रे अंध बीसहु लोचन, पर तिय हरन बिकारी। रे रे चपल बिरूप ढीठ तू बोलत बचन अनेरौ।

ज. **'हे' चिह्नयुक्त प्रयोग**—इस सामान्य संबोधन-द्योतक चिह्न का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिल जाता है; जैसे—मेरैं हृदय नाहिं आवत हौ, हे गुपाल, हौं इतनी जानत। नमो नमो हे कृपानिधान।

झ. **'हो' चिह्नयुक्त प्रयोग**—इसका प्रयोग बहुत कम किया गया है;—जब कान्ह काली लै चले, तब नारि बिनवै देव हो।

ञ. **केवल 'एजु', री, रे, आदि चिह्न-प्रयोग**—ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें विस्मयादिबोधक रूपों के साथ-साथ संबोधनकारक रूपों में प्रयुक्त कोई न कोई संज्ञा या विशेषण शब्द अवश्य है; परन्तु कहीं-कहीं संबोधित व्यक्ति-सूचक कोई संज्ञा न रहने पर 'एजू', 'री', 'रे' आदि का प्रयोग किया गया है; जैसे—एजू तुम तौ स्याम सनेही। कहु री सुमति कहा तोहि पलटी। देखि रे, वह सारँगधर आयो। पुत्रहु तैं प्यारो कोउ है री।

'विभक्ति'-समान प्रयुक्त अव्यय शब्द—विभिन्न कारकों के साथ प्रयुक्त होनेवाली जिन विभक्तियों की सूची 'कारक' शीर्षक प्रसंग के आरंभ में दी गयी है, उनके उदाहरण दिये जा चुके हैं। उनके अतिरिक्त

उनके स्थान पर, कुछ सम्बन्धसूचक अव्ययों के प्रयोग भी ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं। ऐसे अव्ययों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—मुख्य और सामान्य।

क. मुख्य अव्यय शब्द - इस वर्ग में वे शब्द आते हैं जिनका प्रयोग कवियों ने बहुत अधिक किया है। ऐसे मुख्य अव्यय ये हैं—

कारक	संबंधसूचक अव्यय[1]
करणकारक	कारन
अपादानकारक	आगैं
अधिकरणकारक	ऊपर, तर, तरें, तलै[2], तीर, पास, भीतर।

अनेक ब्रजभाषा-कवियों ने उक्त संबंधसूचक अव्ययों का प्रयोग विभक्तियों के बदले में किया है; जैसे—

कारन—या गोरस कारन कत सुत की पति खोवै। निज जन कारन कबहुँ न गहरु लगायो। नृप तप कारन बनहिं सिधाए।

आगैं - कुँवर कौ पुनि गज मैमत आगैं डारचो। ग्वालिनि आगैं अपनी नाम सुनाइ। जसुमति आगैं कहिहौं जाई।

ऊपर—चरन राखि उर ऊपर। पन्नगपति प्रभु ऊपर फन छावै। बात चक्र मिस ब्रज ऊपर परि।

तर—पग तर जरन न जानै मूरख। लंकेश्वर बाँधि राम चरननि तर डारौं। सप्त समुद्र देउँ छाती तर। नव ग्रह परे रहैं पाटी तर। कर सिर तर करि।

तरैं—कुँवर कौ डारि देहु गज मैमत तरैं। कठुला कंठ चिबुक तरैं मुख दसन बिराजैं। अबहीं मैं देखि आई बंसीवट तरैं ही।

तलै—बट्टा काटि कसूर भरम कौ फरद तलै लै डारै।

तीर—माखन माँगत बात न मानत झँखत जसोदा जननी तीर।

पास—लंकापति पास अंगद पठायौ।

भीतर—उर भीतर। गढ़ भीतर। दधि भाजन भीतर। पयोनिधि भीतर। भवन भीतर। रन भीतर।

ख—सामान्य अव्यय शब्द—उक्त संबंधसूचक अव्ययों के अतिरिक्त दो दर्जन से अधिक और भी ऐसे ही शब्द हैं जिनका विभक्तियों के बदले में प्रयोग किया जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने व्याकरण में इनकी चर्चा की है[1]।

अंतर—जिय घट अंतर मेरैं। घन घन अंतर दामिनि।

काज—असन काज प्रभु बन फल करे। कमल काज मैं आयौ। न्हान काज सो सरिता गयौ।

ढिग—नगन गात मुसुकात तात ढिग। बाँभन हरि ढिग आयौ।

तन—निरखि तरुवर तन। चितवति मधुबन तन।

तुल्य—गनत अपराध समुद्रहिं बूँद तुल्य भगवान। सारँग बिकल भयौ सारँग मैं सारँग तुल्य सरीर।

नाईं—खर कूकर की नाईं मानि सुख। बिभीषने कौं मिले भरत की नाईं। पालै प्रजा सुतनि की नाईं।

बाहर—बाँभन कौं घर बाहर कीन्हौं।

---

१. विभक्तियों के बदले में प्रयुक्त होनेवाले उक्त संबंधसूचक अव्ययों के अतिरिक्त पं० कामता प्रसाद गुरु ने कर्मकारक में प्रति; करण में करके, जरिये; संप्रदान में अर्थ, निमित्त, लिए, वास्ते; अपादान में अपेक्षा, बनिस्बत आदि अव्यय और दिये हैं ('हिन्दी व्याकरण,' पृ० ३००); परन्तु ब्रजभाषा में उनका अधिक प्रयोग न मिलने के कारण उनको उक्त सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है—लेखक।

२. पर, ऊपर-जैसे सम्बन्धसूचक अव्ययों के समान ही तर, तले, पास आदि को भी विभक्तियों के बदले में प्रयुक्त होनेवाले रूपों में माना जाना चाहिए। पं० कामता प्रसाद गुरु ने इनको स्वीकार नहीं किया है ('हिन्दी व्याकरण,' पृ० ३००); परन्तु डा० धीरेन्द्र वर्मा ने नीचे और पास को इसी वर्ग में रखा है ('हिन्दी भाषा का इतिहास', पृ० २६५)। तर और तले वास्तव में नीचे के ही पर्याय रूप हैं। —लेखक।

१. 'ब्रजभाषा-व्याकरण', पृ० १२३

बिना—भक्ति बिना जौ कृपा न करते। कमल कमला रवि बिना बिकसाहिं।

बिनु—सुमित्रा सुत बिनु कौन धरावै धीर। सूर स्याम बिनु और करै को। अब को बसै जाइ ब्रज हरि बिनु।

लिए—लोभ लिए दुर्बचन सहै। लोभ लिए पर-बस भए।

सँग, संग—अनुज घरनि सँग गए बनचारी। सखिनि संग बृषभानु किसोरी।

सम—जे जे तुव सूर सुभट, कीट सम न लेखौं।

सरिस—पापी, क्यौं न पीठि दै मोकौं, पाहन सरिस कठोर।

से—नैन कमल दल से अनियारे।

सौं—गोबिंद-सौं पति पाइ। तिनका-सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु समान।

हित—गज हित। जग हित। दासी दास सेव हित लाए। सुरन हित।

हेत—गंगा हेत कियौ तप जाइ। प्रभु कर गहत ग्वालिनी चारु चुंबन हेत। तृषा हेत जल झरना भरे। हाथ दए हरि पूजा हेत।

सर्वनामों के कारकीय प्रयोग

ब्रजभाषा में प्रयुक्त होनेवाले मूल सर्वनामों की संख्या बारह है—मैं, हौं, तू, आप, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन और क्या। प्रयोग के अनुसार इनके छः भेद हैं—

१. पुरुषवाचक—मैं, हौं, तू, वह, सो।
२. निजवाचक—आप।
३. निश्चयवाचक—यह, वह, सो।
४. संबंधवाचक—जो।
५. प्रश्नवाचक—कौन (कवन), क्या।
६. अनिश्चयवाचक—कोई, कुछ।

यह वर्गीकरण पंडित कामताप्रसाद गुरु का है[1]; परंतु डा० धीरेंद्र वर्मा ने इनके अतिरिक्त सर्वनामों के दो भेद और माने हैं—

७. नित्यसंबंधी—सो।
८. आदरवाचक—आप।[1]

प्रस्तुत: प्रबंध में इन दोनों को भी सर्वनामों के सातवें-आठवें रूपों में स्वीकार किया गया है।

पुरुषवाचक सर्वनामों के भेद—वक्ता, श्रोता और वर्ण्य विषय के आधार पर पुरुषवाचक सर्वनामों के तीन भेद होते हैं—१. उत्तमपुरुष (वक्ता)—मैं, हौं। २ मध्यम-पुरुष (श्रोता)—तू। ३. अन्य पुरुष (वर्ण्य विषय)—वह, सो[2]।

उत्तमपुरुष सर्वनामों की रूप-रचना—सर्वनाम भी विकारी शब्द होते हैं जिनके रूप लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं। उत्तमपुरुष सर्वनाम मैं, और हौं, दोनों लिंगों में समान रूप से व्यवहृत होते हैं। अतएव इनमें केवल वचनों की दृष्टि से निम्नलिखित विकार होता है—

रूप	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप	मैं, हौं[3], हम[4]	हम
विकृत रूप	मो, मौं	हम

---

१. 'हिंदी व्याकरण', पृ. ९०-९१।

१. 'ब्रजभाषा-व्याकरण', पृ० ७७ और ८६।

२. यह, जो, कौन, क्या, कोई और कुछ भी वर्ण्य विषय के आधार पर अन्यपुरुष सर्वनाम-रूप के ही अंतर्गत आते हैं—लेखक।

३. डा० धीरेंद्र वर्मा ने उत्तमपुरुष मूलरूप 'हौं' के साथ 'हों' और 'हुँ' रूप भी दिये हैं ('ब्रजभाषा-व्याकरण', पृ० ६०)। ये रूप वस्तुत: 'हौं' के ही रूपांतर हैं और इनके प्रयोग बहुत कम मिलते हैं। सूर-काव्य की प्राचीन प्रतियों और बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश या इसके पूर्व प्रकाशित ग्रंथों में ये कहीं-कहीं भले ही मिल जायँ, परंतु सभा द्वारा प्रकाशित 'सूर-सागर' तथा उसके अनुकरण पर संपादित अन्य ब्रज-भाषा-काव्यों में इनको स्थान नहीं मिला है—लेखक।

४. 'हम' यद्यपि बहुवचन सर्वनाम है, परंतु इसका एक व्यक्ति के लिए प्रयोग भी बराबर मिलता है, यद्यपि क्रिया इसके साथ बहुवचन-रूप में ही प्रयुक्त हुई है। अतएव एकवचन के अंतर्गत उसे भी अप्रधान रूप से, कम से कम प्रयोग की दृष्टि से, सम्मिलित करना आवश्यक है—लेखक।

उत्तमपुरुष एकवचन के कारकीय प्रयोग—उत्तमपुरुष एकवचन सर्वनामों के विभिन्न कारकों में ब्रज-भाषा-कवियों द्वारा जो प्रयोग किये गये हैं, उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

१. कर्त्ताकारक—इस कारक में 'मैं', 'हौं' और 'हम' के एकवचन प्रयोग मूलरूप में ही साधारणतया मिलते हैं; जैसे—

अ. मैं—मैं भक्तबछल हौं। मैं जब अकास तैं परौं। मैं लेई ही पार करौं। मैं कहि समुझायौ।

आ. हौं—भक्त-भवन मैं हौं जु बसत हौं। जन कौ हौं आधीन सदाई। हौं करिहौं तात बचन निरबाहु। यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं।

इ. हम—तुव सुत कौं पढ़ाइ हम हारे। तातैं कही तुम्हैं हम आइ। ये दुख हम न सुने न चहे री।

कर्मकारक—उत्तमपुरुष एकवचन सर्वनामों के मूल-रूपों—मैं और हौं—का प्रयोग कवियों ने कहीं-कहीं कर्मकारक में भी किया है; जैसे—

अ. मैं—मैं तुम पै ब्रजनाथ पठायौ। आतम ज्ञान सिखावन आयौ।

आ. हौं—झगरिनि, तैं हौं बहुत खिझाई। जमुना, तैं हौं बहुत रिझायौ। हौं पठयौ कतहीं बेकाजैं।

ब्रजभाषा-काव्य में कर्मकारकीय विभक्तियों, कौं और हिं का प्रयोग बहुत हुआ है। ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने उत्तमपुरुष एकवचन सर्वनामों के मूल रूपों, मैं और हौं, में से 'हौं' में दोनों विभक्तियों को जोड़कर 'हौंकौं' और 'हौंहिं'-जैसे रूप बनाये हैं; परन्तु 'हम' एकवचन के साथ ही इन विभक्तियों का संयोग अधिक मिलता है; जैसे—

अ. हमकौं—केहि कारन हम (ध्रुव) कौं भरमावत। कौनेहुँ भाव भजै कोउ हम (कृष्ण) कौं।

आ. हमहिं—हमहिं (कृष्ण को) छाँड़ि किनि देहु।

'हौं' और 'हम' एकवचन के मूलरूप में ही कर्म-कारकीय विभक्तियों, कौं और हिं के संयोग का कारण यह है कि इनके विकृत रूप ब्रजभाषा में नहीं होते। 'मैं' का विकृत रूप 'मो' अवश्य प्रयुक्त होता है जिसका प्रयोग कभी तो कर्मकारक में बिना विभक्ति के ही कवियों ने किया है; जैसे—सुनी तगीरी बिसरि गई सुधि मो तजि भये नियारे; और कभी 'कौं' और 'हिं' विभक्तियों के साथ; जैसे—

अ. मोकौं—मोकौं मारि सकै नहिं कोइ। तुम मोकौं काहैं बिसरायौ। इन मोकौं नीकैं पहिचान्यौ।

आ. मोहिं—तुम पावहु मोहिं कहाँ तरन कौं। नाथ, सकौ तौ मोहिं उधारौ। जारत है मोहिं चक्र सुदरसन।

कुछ उदाहरण ब्रजभाषा-काव्य में ऐसे मिलते हैं जहाँ 'मैं' के विकृत रूप 'मो' के साथ दोनों विभक्तियों का प्रयोग किया गया जान पड़ता है; जैसे—सुद्धा भक्त मोहिं कौं चाहै। परन्तु वास्तव में ऐसे उदाहरणों में 'हिं' विभक्ति रूप में नहीं, 'ही' के अर्थ में है।

'हम' एकवचन के साथ कहीं-कहीं 'ऐं' के संयोग से कर्मकारकीय रूप बनाये गये हैं, यद्यपि एकवचन में ऐसे प्रयोगों की संख्या अधिक नहीं है; जैसे—जद्यपि हमैं (सती को) बुलायौ नाहिं।

३. करणकारक—विभक्तिरहित मूल रूपों का प्रयोग करणकारक में कवियों ने बहुत कम किया है; जैसे—मोहन, क्यौं ठाढ़े, बैठत क्यौं नाहीं, कहा परी हम (प्यारी से) चूक।

करणकारकीय विभक्तियों में पाँच—कौं, तैं, पैं सौं और हिं—का प्रयोग कवियों ने अधिकता से किया है। पुरुषवाचक एकवचन सर्वनाम के तीन रूपों—मो (मैं का विकृत रूप), हौं और हम में से 'हौं' के विभक्तियुक्त रूप ब्रजभाषा-काव्य में कम मिलते हैं। 'मो' के साथ उक्त तीनों विभक्तियों का संयोग खूब मिलता है; जैसे—

अ. मोकौं—सुनहु सूर जो बूझति मोकौं, मैं काहूं न पहिचानौं।

आ. मोतैं—मोतैं कछू न उबरी हरि जू, आयौ चढ़त-उतरतौ। गुरु-हत्या मोतैं ह्वै आई। भयौ पाप मोतैं बिनु जान। कथा कहौ, मोतैं बिनु जानैं यह भयौ।

इ. मोपैं या मोपै—माँगि लेइ अब मोपैं सोइ। ताकौ बिषम बिषाद अहो मुनि मोपैं सह्यौ न जाइ। तात की आज्ञा मोपैं मेटि न जाइ। दधि मैं सैंत की मोपैं चीटीं सबै कढ़ाईं।

ई. मोसौं—अब मोसौं अलसात जात हौ अधम-उधारन-हारे। मोसौं बात सकुच तजि कहिये। यह तुम मोसौं करौ बखान।

उ. मोहिं—मोहिं प्रभु तुमसौं होड़ परी। जब मोहिं अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौंगौ वाहि। ऐसी कौन, मारिहै ताकौं, मोहिं कहै सो आई।

उक्त पाँचों विभक्तियों में से कुछ के संयोग से 'हम' एकवचन के भी करणकारकीय प्रयोग मिलते हैं; जैसे :—

अ. हमतैं—हमतैं चूक कहा परी तिय, गर्ब गहीली। कहैं नंद, हमतैं कछु सेवा न भई।

आ. हमसौं—सो हमसौं (व्यास सौं) कहि क्यौं न सुनावै। हमसौं (अश्वत्थामा) सौं कछु न भई मित्राई। बहुरि कहत हमसौं (सरमिष्ठा सौं) बात।

कौं, तैं, पै, (प) सौं और हिं—इन पाँच प्रमुख विभक्तियों के अतिरिक्त 'ते' और 'सन' का प्रयोग भी करणकारक में कवियों ने किया है। 'हौं' और 'हम' के साथ तो कम, 'मैं' के विकृत रूप 'मो' के साथ इनका प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे—

अ. मोते—तुम सब कियौ सहाइ भयौ तब कारज मोते।

आ. मोसन—अनबोली न रहै री आली आई मोसन बात बनावन।

ब्रजभाषा-काव्य में कहीं-कहीं 'मोहिं' के साथ अन्य विभक्तियों का पुनः संयोग करके करणकारकीय प्रयोग किये गये हैं; जैसे—भ्रमि मैं तो रिस करति न रस-बस; मोहिं सौं उलटि लरत। इसी प्रकार मोहिं के दीर्घ स्वरांत रूप 'मोहीं' के साथ भी 'तैं', 'सौं' आदि विभक्तियों का करणकारक में प्रयोग किया गया है; जैसे—

अ. मोहीं तैं—मोहीं तैं परी री चूक, अंतर भए हैं जातैं।

आ. मोहीं सौं—जौ झुकि कछूक कह्यौ चाहति हौं, उनहिं जानि सखि मोहीं सौं लरु। अब आवति ह्वैहैं बनि बनि सब मोहीं सौं चित लाई।

४. संप्रदानकारक—पुरुषवाचक एकवचन सर्वनामों के संप्रदानकारकीय रूपों की संख्या अधिक नहीं है और उनके जो रूप इस कारक में प्रयुक्त हुए हैं, वे करण-कारकीय रूपों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। विभक्ति-रहित रूपों के संप्रदानकारकीय प्रयोग बहुत कम मिलते हैं; जैसें—हरि चुंबक जहँ मिलहिं सूर-प्रभु मो लै जाहु तहीं। तबहीं तैं मन और भयो सखि मो तन सुधि बिसरी।

संप्रदानकारकीय प्रधान विभक्तियों 'कौं', 'सौं' और हिं का प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में विशेष रूप से मिलता है; जैसे—

अ. मोकौं—जातैं मोकौं सूली दयौ। तीन पैंग बसुधा दै मोकौं। पापी क्यौं न पीठि दै मोकौं। नैंकु गोपालहिं मोकौं दै री।

आ. मोसौं—तुम प्रभु मोसौं बहुत करी।

इ. मोहिं—पाँच बान मोहिं संकर दीन्हें। मोहिं होत है दुःख बिसेषि। कह्यौ, सैन मोहिं देहु हरी। सकुच नाहिन मोहिं।

ई. हमहिं—ऐसे मुख की बचन माधुरी, काहैं न हमहिं सुनावति हौ।

'हम' एकवचन के साथ 'ऐं' के संयोग से जो कर्मकारकीय रूप 'हमैं' बनाया गया है, उसका प्रयोग संप्रदानकारक में कहीं-कहीं मिलता है; जैसे—

हमैं—हमैं मंत्र दीजै। नृप कह्यौ, इंद्रपुर की न इच्छा हमैं। तैं पाती क्यौं हमैं पठाई। इनकी लज्जा नहिं हमैं।

'कौं' के स्थान पर कहीं-कहीं उसके रूपान्तर 'कहँ' का प्रयोग भी मिलता है; जैसे—अरु सो भक्ति कीजै किहिं भाइ। सोऊ मो कहँ देउ बताइ।

इसी प्रकार 'मोहिं' के दीर्घ स्वरांत रूप मोहीं का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया गया है; जैसे—मोहीं दोष लगायौ। मोहीं कछु न सुहात।

विभक्तियुक्त रूप 'मोहिं' के साथ-साथ एक-दो स्थलों पर 'करि' का प्रयोग भी देखने में आता है; जैसे—मैं जमुना जल भरि घर आवति, मोहिं करि लागौ ताँवरौ।

५. अपादान कारक—इस कारक में प्रयुक्त रूपों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में सबसे कम है। इसकी मुख्य विभक्तियाँ हैं 'तैं' और सौं जिनका प्रयोग 'मो' और हम के साथ ही मिलता है; जैसे—

अ. मोतैं—अजामील बातनि हीं तारयौ, हुतौ जु मोतैं

माधौ। मोतैं को हो अनाथ। मोतैं और देव नहिं दूजा। सूर स्याम अंतर भए मोतैं।

अ. मोसौं—इस रूप का प्रयोग बहुत कम मिलता है; जैसे—लोचन ललित त्रिभंगी छबि पर अटके मौसौं तोरि।

ई. हमतैं—हमतैं (दुर्योधन तैं) बिदुर कहा है नीको।

६. संबंधकारक—एकवचन मूलरूप सर्वनाम 'मैं' और 'हौं' तथा 'हम' (एकवचन) में से प्रथम और अंतिम के विकृत रूपों के अनेक संबंधकारकीय प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं। 'मैं' के विकृत प्रयोगों में निम्नलिखित प्रधान हैं—

अ. मम—मम लाज। सप्त दिवस मम आइ। मम सुत। मम बत्सल। इन उदाहरणों में तो संबंधी शब्द के पूर्व संबंधकारकीय शब्द का प्रयोग किया गया है, परंतु कहीं-कहीं उसके बाद भी सर्वनाम आया है; जैसे—धान मम खाइ।

आ. मेरी—मेरी सकल जीविका। मेरी नौका। मेरी अँखियनि। संबंधी शब्द के पश्चात् भी इस संबंध-कारकीय सर्वनाम रूप का प्रयोग कवियों ने निस्संकोच किया है; जैसे—प्रतिज्ञा मेरी। बिनती मेरी। सीख मेरी।

इ. मेरे—मेरे गुन-अवगुन। मेरे मन। मेरे प्रान-जिवन-धन। संबंधी शब्द के पश्चात् भी कहीं-कहीं यह संबंध-कारकीय सर्वनाम रूप दिखायी देता है; जैसे—द्वार मेरे।

ई. मेरौ—मेरौ जिय। मेरौ गर्ब। मेरौ साँइयाँ। संबंधी शब्द के पश्चात् भी 'मेरौ' का प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलता है; जैसे—स्वामि मेरौ जागिहै। मन मेरौ।

कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें संबंध-कारकीय सर्वनाम-रूप संबंधी शब्द के बाद आया है और दोनों के बीच में अन्य शब्द आ गये हैं; जैसे—कह्यौ, न आव नाम मोहिं मेरौ। हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ।

उ. मो—मो मस्तक। मो रिपु। मो कुटुंब। मो मन।

ऊ. मोर—इस संबंधकारकीय सर्वनाम रूप के प्रयोग की विशेषता यह है कि काव्य में प्राय: सर्वत्र इसे संबंधी शब्द के पश्चात् ही रखा गया है; जैसे—संसय मोर। जीवन-धन मोर। बालक मोर। मनोरथ मोर। कहीं-कहीं संबंधी शब्द और संबंधकारकीय 'मोर' के बीच में एक-दो शब्द भी रख दिये गये हैं; जैसे—धर्म बिनासन मोर।

ए. मोरि—इस संबंधकारकीय रूप का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मिलता है और मोर के समान अधिकतर संबंधी शब्द के पश्चात् ही इसका प्रयोग किया गया है; जैसे—बिनती कीजौ मोरि।

ऐ. मोरी—'मोरि' के समान ही इस संबंधकारकीय सर्व-नाम के प्रयोग भी बहुत कम मिलते हैं और सो भी प्राय: संबंधी शब्द के पश्चात्; जैसे मोतिसरि मोरी। कहीं-कहीं संबंधी शब्द और संबंधकारकीय सर्वनाम रूप 'मोरी' के बीच में अन्य शब्द भी आ गये हैं; जैसे—मूसे मन-संपति सब मोरी।

ओ. मोहिं—'मोहिं' संबंधकारकीय रूप नहीं है; अपवाद-स्वरूप ही इसका प्रयोग इस कारक में किया गया है; जैसे—छमौ मोहिं अपराधु।

'हम' का मूलरूप संबंधकारकीय प्रयोग बहुवचन में बहुत मिलता है; परन्तु एकवचन में, एक व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त होने पर भी, इसकी ध्वनि अनेक की ओर संकेत करती है; जैसे—उत्तर दिसि हम नगर अजोध्या है सरजू के तीर। सीता जी के इस 'हम' से संकेत निश्चय ही केवल अपने से नहीं, पति और देवर से भी है।

'हम' एकवचन के विकृत रूपों में निम्नलिखित के संबंधकारकीय प्रयोग मिलते हैं—

अ. हमरी—उन सम नहिं हमरी (हरि की) ठकुराई।

आ. हमरे—तुम पति पाँच, पाँच पति हमरे (द्रौपदी के)।

इ. हमार—इस संबंधकारकीय सर्वनाम रूप का प्रयोग एकवचन में 'हमरी' और 'हमरे' से अधिक मिलता है। कवियों ने प्रायः संबंधी शब्द के पश्चात् ही इस का प्रयोग किया है; जैसे—कह्यो सुक, सुनि सिख साखि हमार। संकट मित्र हमार। कहीं-कहीं संबंधी शब्द और कारकीय रूप के बीच में दो-एक अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—पौरुष देखि हमार।

ई. हमारी—यहै हमारी (कवि की) भेंट।

संबंधी शब्द के पूर्व 'हमारी' के प्रयोग के उदाहरण

कम हैं; परंतु उसके पश्चात् प्रयोग के उदाहरण अनेक मिलते हैं; जैसे–सूरदास प्रभु हँसत कहा हौ मेटो बिपति हमारी। मैं तोहि सत्य कहौं दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी। मापी देह हमारी (बलि की)।

उ. हमारे—हमारें प्रभु औगुन चित न धरो।

परंतु ऐसे उदाहरणों की संख्या बहुत कम है; अधिकतर उदाहरण ऐसे ही हैं जिनमें 'हमारे' का प्रयोग संबंधी शब्द के बाद किया गया है; जैसे—धाम हमारे कौं। नाथ हमारे। हरि जू कह्यौ, सुनौ दुरजोधन, सत्य सुबचन हमारे। तुम हित बंधु हमारे।

ऊ. हमारौ—इस संबंधकारकीय रूप का भी संबंधी शब्द के पूर्व प्रयोग तो कम किया गया है; परन्तु उसके पश्चात् के अनेक उदाहरण मिलते हैं; जैसे—अंतरजामी नाउँ हमारो। भक्तबछल है बिरद हमारौ। बृथा होहु बर बचन हमारौ।

७. अधिकरण कारक—इस कारक के विभक्ति-रहित विकृत प्रयोगों में दो रूप प्रधान हैं—'मेरैं' और हमारैं। एकवचन अप्रधान रूपों में 'मोहिं' का प्रयोग अपवाद-स्वरूप दिखायी देता है। 'हौं' के मूल या विकृत, किसी भी रूप का प्रयोग अन्य कारकों की भाँति इसमें भी नहीं मिलता।

क. सामान्य विभक्तिरहित प्रयोग—

अ. मेरैं—पाट बिरध ममता है मेरैं। मैं-मेरी अब रही न मेरैं। मेरैं नहि सत्राई।

आ. हमारैं—हरि, तुम क्यौं न हमारैं (दुर्योधन के) आए। खेलन कबहुँ हमारैं (कृष्ण के) आवहु। रैनि बसत कहुँ, भोर हमारैं आवत नहीं लजाने।

ई. मोहिं—विभक्तिरहित 'मोहिं' के अधिकरणकारकीय प्रयोग कहीं-कहीं मिल जाते हैं, जिन्हें अपवादस्वरूप ही समझना चाहिए, जैसे—अब मोहिं कृपा कीजिए सोई।

ख. विभक्तिरहित प्रयोग—एकवचन सर्वनाम रूपों के साथ जिनका प्रयोग विशेष रूप से मिलता है, वे हैं पर, पैं, पै, महिमाँ, माँझ और मैं। मो, मोहिं, मोहीं और हम (एकवचन) के साथ इनका प्रयोग कवियों ने अधिक किया है; जैसे—

अ. मो पर—कियौ बृहस्पति मो पर कोहु। चली जाउ सैना सब मो पर। मो पर ग्वालि कहा रिसाति। मो पर रिस पावति हौ।

आ. मो पै—थाती प्रान तुमारी मो पै। नहुष कह्यौ, इंद्रानी मो पै आवै। मो पै काहे न आवत। मो पै कहा रिसान्यौ।

इ. मो मैं—कै कछु मो मैं झोली। औगुन और बहुत हैं मो मैं। मो मैं एक भलाई। पिय जिय मो मैं नाहिं।

ई. मोहिं पर—'मौंहिं' के साथ 'पर' विभक्ति का प्रयोग बहुत कम है, जैसे—कृपा करि मोहिं पर।

उ. मोहिं महियाँ—यह प्रयोग भी कम ही दिखायी देता है; जैसे – हौं उन माँहि कि वै मोहिं महियाँ।

ऊ. मोहिं माँझ—'मोहिं' के साथ 'माँझ' विभक्ति भी कहीं-कहीं ही दिखायी देती है; जैसे—जानत हौं प्रभु अंतरजामी जो मोहिं माँझ परी।

ए. मोहीं पर—'मोहिं' की अपेक्षा 'मोहीं' का प्रयोग अधिक किया गया है, परन्तु इसके साथ 'पर' विभक्ति ही प्रायः प्रयुक्त हुई है; जैसे ग्वारिनि मोहीं पर सतरानी। यह चतुरई परी मोहीं पर। तू मोहीं पर खरी परी।

ऐ. हम पैं—'हम' (एकवचन) के साथ 'पैं' विभक्ति का प्रयोग कवियों ने कभी-कभी ही किया है; जैसे—कहा भयौ जो 'हम' (कृष्ण) पैं आई। इतने गुन हम पैं कहाँ।

ओ. हम पै—'हम पैं' के समान ही 'हम पै' का प्रयोग भी कम दिखायी देता है; जैसे—हम पै नाहिं कन्हाइ। समाचार सब उनके लै हम (हरि जू) पै चलि आवहु।

ग. अन्य प्रयोग—उक्त-रूपों के अतिरिक्त ब्रजभाषा-काव्य में अधिकरणकारकीय कुछ सामान्य प्रयोग और मिलते हैं; जैसे—

अ. मो मौं—उक्त विभक्तियों के अतिरिक्त दो-एक पदों में 'मौं' विभक्ति का भी प्रयोग किया गया है जिसे 'मैं' का रूपांतर समझना चाहिए; जैसे—कछु न भक्ति मो मौं।

आ. मेरे पर—इसी प्रकार संबंधकारकीय एकवचन सर्वनाम रूप 'मेरे' के साथ अधिकरणकारकीय 'पर' विभक्ति का प्रयोग भी कम किया गया है; जैसे— एकै चीर हुतौ 'मेरे पर'। कैसैं दौरि परी मेरे पर।

इ. मोकौं—कर्मकारकीय सविभक्ति सर्वनाम रूप 'मोकौं' का प्रयोग भी एक-दो पदों में अधिकरणकारक में मिलता है; जैसे—हरि, कृपा मोकौं करि।

ई. हमरैं—दो-एक पदों में संबंधकारकीय रूप 'हमरे' में 'ऐं' के योग से अधिकरणकारकीय रूप बना लिया गया है; जैसे—उरबसी कह्यौ, बिना काम हमरैं नहिं चाह।

सारांश—विभिन्न विभक्तियों के पूर्व पुरुषवाचक एकवचन सर्वनाम किन रूपों में आते हैं और विभक्ति का संयोग होने पर उनके कितने रूप हो जाते हैं, उक्त प्रयोगों के आधार पर उनकी सूची इस प्रकार है। इनमें कोष्ठकबद्ध रूप अप्रधान हैं।

कारक	विभक्तिरहित मूल और विकृत रूप	विभक्तिसहित मूल और विकृत रूप
कर्त्ता	मैं हौं (हम)	....
कर्म	मैं (हौं) (हम)	मोकौं, मोहिं, (हमकौं), (हमहिं) (हमैं)।
करण	(मैं) (मो) (हम)	मोकौं, मोतैं, मोपैं, मोसौं, मोहिं, (हमतैं) (हमसौं)।
संप्रदान	(मैं-मो) (हम)	(मो कहँ), मोकौं, मोसौं, मोहिं, (मोहिं करि), मोहीं (हमहिं), हमैं।
अपादान	....	मोतैं, (हमतैं)।
संबंध	मम	मेरी, मेरे, मेरौ, मो, मोर, (मोरि), (मोरी), (मोहिं) (हमरी), (हमरे), (हमार), (हमारी), हमारे, हमारौ।
अधिकरण	मेरैं (मोहिं) हमरैं	(मेरे पर), (मोकौं), मो पर, मो मैं, मो मैं, (मो माँ) (मोहि पर), (मोहि महियाँ), (मोहि माँझ) (मोहीं पर), (हम पैं), (हम पै)।

उत्तमपुरुष बहुवचन के कारकीय प्रयोग—

विभिन्न कारकों में, उत्तम पुरुष बहुवचन सर्वनाम 'हम' का प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में, मूल और विकृत, दोनों रूपों में किया गया है।

कर्त्ताकारक—इस कारक की विभक्ति 'ने' है; परंतु कवियों ने सर्वत्र विभक्तिरहित 'हम' का ही प्रयोग किया है; जैसे—सुखी हम रहत। रिषिनि तासौं कह्यौ, आउ हम नृपति तुमकौं बचावैं। हम तिहुँ लोक माहिं फिरि आए। बसन बिना असनान करति हम।

२. कर्मकारक—ब्रजभाषा-काव्य में बहुवचन सर्वनाम 'हम' के जो कर्मकारकीय रूप प्राप्त होते हैं, उनमें मुख्य नीचे दिये जाते हैं—

अ. हम—कौन काज हम महरि हँकारी। हरि हम तब काहे कौं राखी। इहिं कुबिजा हम जारी। उर तैं निकसि नंदनंदन हम सीतल क्यों न करी।

आ. हमैं—यह 'हम' का विभक्तिरहित विकृत रूप है जिसका प्रयोग कर्मकारक में बराबर किया गया है; जैसे—सूर बिसारहु हमैं न स्याम। काहे तैं तुम हमैं निवारयौ। हमैं कहौं केतौ किन कोई। मुरली निदरि हमैं अधरनि रस पीवति।

इ. हमकौं—'हम' के विभक्तियुक्त कर्मकारकीय रूपों में प्रमुख है 'हमकौं'; जैसे—उन हमकौं कैसैं बिसरायौ। तिन भय मान्यौ हमकौं देखि। बैद्य जानि हमकौं बहरावत। तुम हमकौं कहँ कहँ न उबारयौ।

ई. हमहिं—कर्मकारक में प्रयुक्त दूसरा विभक्तियुक्त रूप है 'हमहिं'; जैसे—हमहिं स्याम तुम जनि बिसरावहु। हमहिं पठाइ दिए नंदनन्दन। प्रभु, तुम जहाँ तहँ हमहिं लेत बचाइ।

३. करणकारक—ब्रजभाषा-कवियों के करण-

कारकीय बहुवचन प्रयोगों में विभक्तियुक्त रूपों की ही प्रधानता दिखायी देती है। कौं, तैं, पैं, पै, सन और सौं —इन छह विभक्तियों के अतिरिक्त विभक्ति-प्रत्यय 'हिं' के योग से भी करणकारकीय रूप बनाये गये हैं; जैसे—

अ. हमकौं—वस्तुत: यह कर्मकारकीय रूप है, जिसका कवियों ने कहीं-कहीं करणकारक में भी प्रयोग किया है; जैसे—पर्वत पर बरसहु तुम जाई। यहै कही हमकौं सुरराई। ऐसे हरि हमकौं कही, कहुँ देखे हो री।

आ. हमतैं—चूक परी हमतैं यह भोरैं। कहहु कहा हमतैं बिगरी। ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाही।

इ. हमपैं—हमपैं घोष गयौ नहिं जाई। ऐसौ दान माँगियै नहिं जौ हमपैं दियौ न जाई। सूधैं गोरस माँगि कछू लै हमपैं खाहु। सह्यौ परत हमपैं नहीं।

ई. हमपै—कैसैं सह्यौ जात हमपै यह जोग जु पठै दयौ। कैसैं सही परति अब हमपै मन मानिक की हानि। ऐसौ जोग न हमपै होइ। दान जु माँगैं हमपै।

उ. हम सन—करणकारकीय उक्त सभी विभक्तियों में सबसे कम प्रयोग 'सन' का ही किया गया है; जैसे—सूर सु हरि अब मिलहु कृपा करि, बरबस समर करत हठ हम सन।

ऊ. हमसौं—माँगि लेउ हमसौं बर सार। (ब्रह्मा) माँगि लेइ हमसौं बर सोइ। ठग के लच्छन हमसौं सुनियै।

४. संप्रदानकारक—इस कारक में मूल और विकृत रूप के विभक्तिरहित और विभक्तिसहित, दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं।

क. विभक्ति-रहित प्रयोग—इस प्रकार के प्रयोगों में मूल सर्वनाम रूप 'हम' और विकृत रूप 'हमैं' के निम्नलिखित उदाहरण आते हैं—

अ. हम—नैन करैं सुख हम दुख पावैं। प्रगट दरस हम दीजै।

आ. हमैं—सबनि कह्यौ, देहु हमैं सिखाई। हमैं खिलाई फाग। स्यामसुन्दर कौं हमैं सँदेसौ लायौ।

ख. विभक्ति-सहित प्रयोग—'कहँ', 'कौ' और 'कौं' —मुख्यत: इन्हीं विभक्तियों के संयोग से कवियों ने संप्रदानकारकीय रूप बनाये हैं और कहीं-कहीं विभक्ति-प्रत्यय 'हिं' युक्त रूपों का भी प्रयोग किया है।

अ. हम कहँ—'कौं' की अपेक्षा 'कहँ' विभक्तियुक्त संप्रदानकारकीय प्रयोग कम हैं; जैसे—मुरली हम कहँ सौंति भई। अपने बस्य किये नँदनंदन बैरिनि हम कहँ आई।

आ. हमकौ—सिव-संकर हमकौ फल दीन्हौ।

इ. हमकौं—अपने सुत कौं राज दिवायौ, हमकौं देस निकारी। हमकौं दान देहु, पति छाँड़हु। माँगहिं यहै, देहु पति हमकौं। हमकौं कछु दैहौ।

ई. हमहिं—तुम बिन राज हमहिं किहिं काम। चोली हार तुमहिं कौं दीन्हौं, चीर हमहिं द्यौ डारी। मुरली हमहिं उपाधि भई। राधा सौं करि बीनती, दीजै हमहिं मँगाइ।

उ. हमहीं—यह 'हमहिं' का दीर्घ स्वरांत रूप है। लोचन बहु न दिए हमहीं। सृंगी मुद्रा भस्म अधारी, हमहीं कहा सिखावत। तुम अज्ञान कतहिं उपदेसत ज्ञान रूप हमहीं।

५. अपादानकारक—इस कारक में प्रयुक्त एकवचन के समान बहुवचन में भी रूपों की संख्या बहुत कम है। हमतैं, हमहिं—इन दो अपादानकारकीय रूपों के ही प्रयोग मुख्यत: मिलते हैं।

अ. हमतैं—यह इस कारक का मुख्य प्रयोग है; जैसे—दीन आजु हमतैं कोउ नाहीं। हमतैं तप मुरली न करे री। हमतैं बहुत तपस्या नाहीं। सूर सुनिधि हमतैं है बिछुरत।

आ. हमहिं—की पुनि हमहिं दुराव करौगी।

६. संबंधकारक—बहुवचन के संबंधकारकीय रूपों में से हम, हमरी, हमरे, हमरौ, हमार, हमारी, हमारे और हमारौ—इन आठ रूपों का कवियों ने अधिक प्रयोग किया है।

अ. हम—जाइ हम दुःख सारी। उत्तर दिसि हम नगर अजोध्या। बड़े भाग हैं श्री गोकुल के, हम मुख कहे न जाहीं।

आ. हमरी—हमरी जय। हमरी पति। मर्यादा पतिया हमरी। हमरी बिथा। हमरी सुरति।

इ. हमरे—हमरे गुनहि। हमरे प्रीतम। हमरे प्रेम-नेम। हमरे मन। हमरे मिलन।

ई. हमरौ—इस सर्वनाम रूप और उसके संबंधी शब्द के बीच में कहीं-कहीं कुछ अन्य शब्द भी आ गये हैं; जैसे—हमरौ चीतौ। हमरौ कछू दोष। नाउँ सुनि हमरौ। प्रतिपाल कियौ तुम हमरौ। फगुआ हमरौ। मन करष्यौ हमरौ।

उ. हमार—उक्त रूपों की अपेक्षा 'हमार' का प्रयोग कम किया गया है; जैसे—मन हमार। बिख-साखि हमार। हृदय हमार।

ऊ. हमारी—'हमरी' के समान कहीं यह संबंधी शब्द के पहले आया है, कहीं बाद में और कहीं-कहीं दोनों के बीच में अन्य शब्द भी मिलते हैं; जसे—हमारी आस। इंद्री खड्ग हमारी। जननि हमारी। हमारी जन्मभूमि। व्यथा हमारी। हमारी साध।

ए. हमारे—हमारे अंबर। अपराध हमारे। कुल-इष्ट हमारे। हमारे देहु मनोहर चीर। दीनानाथ हमारे ठाकुर। प्रान हमारे। मनहरन हमारे।

ऐ. हमारौ—इस रूप का प्रयोग अधिकतर संबंधी शब्द के बाद किया गया है और कहीं-कहीं दोनों के बीच में भी एक-दो शब्द आ गये हैं; जैसे—अकाज हमारौ। अपराध हमारौ। जिय एक हमारौ। जीवन-प्रान हमारौ। नाउँ हमारौ। भूषन देखि न सकत हमारौ।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में विभक्ति-रहित विकृत रूप और विभक्ति-सहित मूल रूप के प्रयोग अधिकांश में किये गये हैं।

क. विभक्ति-रहित विकृत रूप—हमरे, हमरैं और हमारैं, इन तीनों रूपों के विभक्तिरहित प्रयोग ही अधिकतर मिलते हैं; जैसे—

अ. हमरे—हमरे प्रथमहिं नैन को। नंदनंदन बिनु हमरे को जगदीस।

आ. हमरैं—संबंधकारकीय रूप 'हमरे' के साथ अनुस्वार का संयोग करके यह रूप बनाया गया है। जैसे—तुम लायक हमरैं कछु नाहीं। हमरैं कौन जोग व्रत साधै।

इ. हमारैं—'हमरैं' के समान ही 'हमारैं' का भी रूप-निर्माण हुआ है; परंतु उसकी अपेक्षा इसका प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे—हरि सौं पुत्र हमारैं होइ। हमारैं सूर स्याम को ध्यान। गृह जन की नहिं पीर हमारैं। जो कछू रह्यौ हमारैं सो लै हरिहिं दियौ।

ई. हमैं—इस सर्वनाम रूप का अधिकरणकारकीय प्रयोग भी कहीं-कहीं दिखायी देता है; जैसे—हमैं-तुम्हैं संवाद जु भयौ।

ख. विभक्तिसहित प्रयोग—पर, पै और मैं—इन तीन विभक्तियों के साथ-साथ 'कौं' के योग से भी अधिकरणकारकीय रूप बनाये गये हैं—

अ. हम पर—गए हरि हम पर रिस करि। हम पर कोप करावति। सदय हृदय हम पर करौ।

आ. हम पै—सूरदास वैसी प्रभुता तजि, हम पै कब वै आवैं।

इ. हम मैं—की मारौ की सरन उबारौ। हममैं कहा रह्यौ अब गारौ।

ई. हमकौं—जब जब हमकौं बिपदा परी।

सारांश—उत्तमपुरुष बहुवचन सर्वनाम 'हम' के मूल और विकृत विभक्तिरहित और सहित जिन प्रधान और अप्रधान रूपों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित मूल और विकृत रूप	विभक्तिसहित मूल और विकृत रूप
कर्त्ता	हम	....
कर्म	हम, हमैं	हमकौं, हमहिं।
करण	....	(हमकौं), हमतैं, हमपैं, हमपै, (हम सन), हमसौं, हमहिं (हमहीं)।
संप्रदान	(हम), हमैं	(हम कहँ), (हमकौ) (हमकौं), हमहिं, हमहीं।
अपादान	....	हमतैं, (हमहिं)।

संबंध	हम	हमरी, हमरे, हमरौ, हमार, हमारी, हमारे, हमारौ।
अधिकरण	(हमरैं), (हमारैं), (हमैं)	हम पर, (हम पैं), (हममैं), (हमकौं)।

मध्यमपुरुष सर्वनामों की रूप-रचना—

ब्रजभाषा में पुरुषवाचक मध्यमपुरुष 'तू' के जो रूप दोनों वचनों में प्रयुक्त होते हैं, वे इस प्रकार हैं—

रूप	एकवचन	बहुवचन
मूल	तू, तूँ, तें, तैं, तुम	तुम
विकृत	तो	तुम

मध्यमपुरुष एकवचन सर्वनामों के कारकीय प्रयोग—

मध्यमपुरुष एकवचन सर्वनामों के विभक्ति से रहित और सहित जो विभिन्न कारकीय रूप ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं, उनमें से प्रमुख यहाँ संकलित हैं।

१. कर्त्ताकारक—इस कारक में अधिकांशतः मूल रूपों—तू, तूँ, तैं और तुम (एकवचन)—के प्रयोग किये गये हैं। 'तें' के उदाहरण प्राचीन प्रतियों में ही मिलते हैं; दूसरी बात यह है कि इस कारक में प्रयुक्त प्राय: सभी रूप विभक्ति-रहित हैं।

अ. तुम—तुम (कृष्ण) कब मोसों पतित उधारचौ। तुम (गोपाल) अंतर दै बिच रहै लुकाने। यह तुम (ब्रह्मा) मोसौं करौ बखान। तुम (राजा) कहौ।

आ. तूँ—कत तूँ सुआ होत सेमर कौं।

इ. तू—भएँ अपमान उहाँ तू मरिहै। मत्स्य कह्यौ, आँखि अब मीचि तू। जौ तू रामहिं दोष लगावै। तब तू गयौ सून भवन।

ई. तैं—तैं सिव की महिमा नहिं लही। तैं यह कर्म कौन हैं कियौ। तैं जोबन-मद तैं यह कीन्यौ।

२. कर्मकारक—इस कारक में प्रयुक्त मध्यमपुरुष एकवचन सर्वनाम-रूप मुख्यतः दो प्रकार के हैं—विभक्तिरहित और विभक्तिसहित। दूसरे प्रकार के प्रयोगों में 'हिं' और 'कौं', दो विक्भतियों का आश्रय कवियों ने अधिक लिया है।

क. विभक्तिरहित रूप—इस प्रकार के रूपों में तुम (एकवचन), तू और तुम्हें (एकवचन) प्रधान हैं।

अ. तुम—बूझौ जाइ जिनहि तुम (मधुकर) पठए। तुम देखे अरु ओऊ।

आ. तू—मोपै तू राख्यौ नहिं जाइ। तू जसुमति कब जायौ।

इ. तुम्हैं—तुम्हैं बिरद बिन करिहौं। तुम्हैं सकै जो मार। चलौ तुम्हैं बताऊँ। अहो कान्ह, तुम्हैं चहौ।

ख. विभक्तिसहित रूप—'कौं' और 'हिं' विभक्तियों के संयोग से बने पाँच रूपों—तुमकौं (एकवचन), तुमहिं (एकवचन), तुहिं, तोकौं और तोहिं—का प्रयोग इस वर्ग में विशेष रूप से किया गया है।

अ. तुमकौं—आउ हम नृपति, तुमकौं बचावैं। संकर तुमकौं (गंगा को) धरै।

आ. तुमहिं—सुंदरी आई बोलत तुमहिं (कृष्ण को) सबै ब्रजबाल। जैसे करि मैं तुमहिं रिझाई। ऊधौ, जाहु तुमहिं हम जाने।

इ. तुहिं—इसको 'तोहिं' का संक्षिप्त अथवा लघुमात्रिक रूप समझना चाहिए—जो तुहिं भजै, तहाँ मैं जाऊँ।

ई. तोकौं—मध्यमपुरुष एकवचन सर्वनाम का यह प्रमुख कर्मकारकीय रूप है—पिता जानि तोकौं नहिं मारौं। राजा तोकौं लैहै गोद। बिना प्रयास मारिहौं तोकौं।

उ. तोहिं—सप्तम दिन तोहिं तच्छक खाइ। जो तोहिं पियै सो नरकहिं जाइ।

३. करणकारक—इस कारक में प्रयुक्त विभक्ति-रहित रूप तो अपवादस्वरूप हैं, विभक्तियुक्त रूपों की ही अधिकता है।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—तुम्हैं और तोह—ये ही दो रूप करणकारक में विभक्तिरहित मिलते हैं।

आ. तुम्हैं—तातैं कही तुम्हैं हम आइ। प्रभु कहा मुख लै तुम्हैं बिनै करिऐ।

आ. तोह—अरे मधुप, बातैं ये ऐसी, क्यों कहि आवति तोह।

ख. विभक्तियुक्त प्रयोग—एकवचन विकृत रूप 'तो' और एकवचन रूप में प्रयुक्त बहुवचन रूप 'तुम' के साथ कौं, तैं, पै, संग और सौं आदि विभक्तियों और विभक्ति-प्रत्यय 'हिं' या इसके दीर्घांत रूप 'हीं' के संयोग से निर्मित अनेक करणकारकीय रूप मिलते हैं।

अ. तोकौं—बारंबार कहति मैं तोकौं, तेरैं हियैं न आई।

आ तोतैं—तोतैं कछु ह्वैहै मैं जानत । कहत न डरती तोतैं ।

इ. तोपै—तब तोपै कछुवै न सिरैहै ।

ई. तोसौं—सतगुरु कह्यौ, कहौ तोसौं हौं । तोसौं हौं समुझाइ कहौं नृप । कहत यहि बिधि भली तोसौं । बारंबार कहति मैं तोसौं ।

उ. तोहिं—मैं तोहिं सत्य कहौं । ज्ञान हम तोहिं कहि सुनावैं । कहा कहौं तोहिं मात । नैंकु नहिं घर रहति तोहिं कितनौ कहति ।

ऊ. तुमतैं—सकल सृष्टि यह तुमतैं (ब्रह्मा तैं) होइ । कंस कह्यौ, तुमतैं (श्रीधर बाँम्हन तैं) यह होइ । सूरस्याम पति तुमतैं (सविता तैं) पायौ । अजहुँ मन अपनौ हम पावैं, तुमतैं (ऊधौ तैं) होइ तौ होइ ।

ऋ. तुमपै—तिन तुमपै गोबिंद गुसाईं, सबनि अभै पद पायौ । तुमपै (कृष्ण पै) कौन दुहावै गैया । तुमपै होइ सु करौ कृपानिधि ।

ए. तुम सन—जो कुछ भयौ सौ कहिहौं तुम सन (प्यारी सन), होउ सखिन तैं न्यारी ।

ऐ. तुम सौं—एकवचन में इस बहुवचन रूप के करण-कारकीय प्रयोग कहीं-कहीं ही मिलते हैं; जैसे—हमसौं तुमसौं बाल मिताई । हम तुमसौं कहति रहीं ।

ओ. तुमहिं—साँच कहौं मैं तुमहिं श्रीदामा । सुफलक-सुत यह तुमहिं बूझियत ।

घ. संप्रदानकारक—इस कारक में भी विभक्ति रहित और विभक्ति-युक्त, दो प्रकार के रूप मिलते हैं जिनमें प्रथम की संख्या बहुत कम है ।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—इस वर्ग के अंतर्गत केवल एक रूप 'तुम्हैं' आ सकता है; जैसे—तातैं देउँ तुम्हैं (धर्मराज को) मैं साप । हँसि कह्यौ, तुम्हैं (सिव को) दिखराइहौं रूप वह । चौदह वर्ष तुम्हैं (राम को) वर दीन्हौं । देउँ तुम्हैं (प्रद्युम्न को) मैं बताई ।

ख. विभक्तिसहित प्रयोग—'तुम' एकवचन और 'तो' के साथ 'कौं' और 'हिं' या 'हीं' के संयोग से जो संप्रदानकारकीय रूप बनाये गये हैं, उनमें चार—तुमकौं, तुमहिं, तोकौं और तोहिं—प्रमुख हैं ।

अ. तुमकौं—लंक बिभीषन, तुमकौं देहौं । तुमकौं (कृष्ण को) माखन दूध दधि-मिश्री हौं ल्याई । जोग पाती दई तुमकौं (ऊधौ को) ।

आ. तुमहिं—जोतिष गनिकै चाहत तुमहिं (नंदहिं) सुनायौ । यह पूजा किन तुमहिं सिखायौ । देउँ सुख तुमहिं (स्यामहिं) संग रँगरलिहौं ।

इ. तोकौं—भग सहस्र मैं तोकौं दई । एक रात तोकौं सुख देहौं । चौदह सहस तियां मैं तोकौं पटा बँधाऊँ आज ।

ई. तोहिं—नर कौ नाम पारगामी हो, सौ तोहिं स्याम दयौ । मैं बर देऊँ तोहिं सो लेहि । कपिल कह्यौ, तोहिं भक्ति सुनाऊँ । सुक कह्यौ, देहौं विद्या तोहिं पढ़ाई ।

५. अपादानकारक—'तैं' और 'सौं' के साथ-साथ 'हिं' के योग से भी अपादानकारकीय रूप बनाये गये हैं जिनमें मुख्य नीचे दिये जाते हैं । इनमें से प्रथम और अन्तिम रूपों का प्रयोग बहुत हुआ है ।

अ. तुमतैं—तुमतैं को अति जान है । तुमतैं घटि हम नाहीं । तुमतैं (राधा तैं) न्यारे रहत न कहुँ वैं । तुम अति चतुर, चतुर वै तुमतैं (राधा तैं) ।

आ. तुमसौं जा दिन तैं हम तुमसौं (जसुदा सौं) बिछुरे ।

इ. तोतैं—तोतैं प्रियतम और कौन है । तोतैं चतुर और नहिं कोऊ । काहैं कौं इतरांति सखी री, तोतैं प्यारी कौन ।

६. संबंधकारक—उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम की तरह ही इस कारक प्रयुक्त मध्यमपुरुष सर्वनाम रूपों की संख्या भी बहुत अधिक है । विषय की स्पष्टता के लिए इनके मुख्य चार वर्ग बनाये जा सकते हैं—क. विभक्तिरहित सामान्य रूप । ख. एकवचन सम्बन्धकार-कीय रूप । ग. संबंधकारकीय सामान्य बहुवचन रूप । घ. सम्बन्धकारकीय विशिष्ट बहुवचन रूप । लिंग की दृष्टि से इस वर्गीकरण के और भी उप-भेद किये जा सकते हैं; परन्तु दोनों लिंगों के रूप इतने स्पष्ट होते हैं कि

तत्सम्बन्धी दृष्टि से विस्तार करना अनावश्यक प्रतीत होता है। उक्त चारों वर्गों में प्राप्त मुख्य रूप ये हैं—

क. विभक्तिरहित सामान्य रूप—इस वर्ग के प्रमुख रूप हैं—तव, तुम, तुव और तैं। इनमें 'तुम' बहुवचन रूप है और शेष एकवचन हैं। इनका प्रयोग दोनों लिंगों में किया गया है।

अ. तव—यह रूप प्रायः सर्वत्र सम्बन्धी शब्द के पूर्व ही प्रयुक्त हुआ है; जैसे—तव कीरति। तव दरसन। तव विरह। तव राज। तव सिर।

आ. तुम—इस बहुवचन रूप का प्रयोग एकवचन में ही किया गया है, इस बात की स्पष्टता के लिए पूरे वाक्यों को उद्धृत करना आवश्यक है; जैसे—प्रभु, सब तजि तुम सरनागत आयौ। तुम प्रताप बल बदत न काहूँ। यह मैं जानति तुम (कृष्ण) बानि।

इ. तुव—यह रूप भी प्रायः सर्वत्र संबंधी शब्द के पहले ही आया है; जैसे—तुव चरननि। तुव दास। तुव पितु। तुव माया। तुव सुत। तुव हाथै।

ई. तैं—इस रूप का संबंधकारकीय प्रयोग अपवादस्वरूप मिलता है; जैसे—धनि बछरा धनि बाल जिनहिं तैं दरसन पायो।

ख. एकवचन संबंधकारकीय रूप—इस वर्ग के अंतर्गत तेरी, तेरे, तेरौ, तोर और तोरौ आदि रूप मुख्य हैं। इनमें प्रथम स्त्रीलिंग रूप है। शेष का प्रयोग दोनों लिंगों में होता है।

अ. तेरी—इस स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग संबंधी शब्द के पहले किया गया है और बाद में भी; एवं कहीं-कहीं दोनों के बीच में एक-दो शब्द भी आ गये हैं; जैसे—जरा तेरी। दासी है तेरी। तेरी प्रीति। तेरी बेनि। सरन तेरी। तेरी सृष्टि।

आ. तेरे—साधारणतः इस रूप का प्रयोग बहुवचन संबंधी शब्द के साथ होता है; परन्तु यदि एकवचन संबंधी शब्द के आगे कोई विभक्ति लगानी होती है तब 'तेरे' का प्रयोग एकवचन रूप में भी होता है। यहाँ इसके एकवचन प्रयोग ही दिये जाते हैं। दूसरी बात यह है कि संबंधी शब्द के पहले और पीछे, दोनों प्रकार से इसका प्रयोग किया गया है; जैसे—तेरे तन तरुवर के। पति तेरे।

इ. तेरौ—इस रूप का प्रयोग संबंधी शब्द के पहले हुआ है और बाद में भी; जैसे—सकल मनोरथ तेरौ। तेरौ लाल। स्याम तन तेरौ। तेरौ सुत।

ई. तोर—इस रूप का प्रयोग प्रायः संबंधी शब्द के बाद ही किया गया है और कहीं-कहीं दोनों के बीच में भी दो-एक शब्द आ गये हैं; जैसे—आनन तोर। ज्ञान है तोर। दुहाई तोर। लै-लै नाम बुलावत तोर। बंक बिलोकनि, मधुरी मुसुकनि भावति प्रिय तोर। नहिं मुख देखौं तोर।

उ. तोरौ—इस रूप का प्रयोग बहुत कम किया गया है; जैसे—नाम भयौ प्रभु, तोरौ।

ग. संबंधकारकीय सामान्य बहुवचन रूप—इस वर्ग के अंतर्गत उन रूपों—तुमरे, तुमरौ, तुम्हरी, तुम्हरे, तुम्हरौ, तुम्हार, तुम्हारि, तुम्हारी, तुम्हारे, तुम्हारौ आदि—की चर्चा करनी है जो सामान्य बहुवचन 'तुम' के रूपांतर होने पर भी एकवचन में प्रयुक्त हुए हैं।

अ. तुमरे—इस रूप का प्रयोग अपवादस्वरूप ही मिलता है; जैसे—तुमरे कुल कौ।

आ. तुमरौ—यह रूप भी कम ही दिखायी देता है; जैसे—तुमरौ सुत।

इ. तुम्हरी—स्त्रीलिंग संबंधी शब्द के अधिकतर पहले, पर कहीं-कहीं बाद में भी प्रयुक्त हुआ है; जैसे—तुम्हरी आज्ञा। तुम्हरी कृपा। तुम्हरी गति। बिरुदावलि तुम्हरी। तुम्हरी माया।

ई. तुम्हरे—इस बहुवचन रूप का प्रयोग एकवचन संबंधी शब्द के साथ तब किया गया है जब उसके आगे कोई विभक्ति या तो लुप्त हो, अथवा विभक्ति के समान किसी अव्यय का ही प्रयोग किया गया हो; जैसे—तुम्हरे भजन बिनु। ज्योतिषी तुम्हरे घर कौ। प्रभु, तुम्हरे दरस कौं। स्याम, तुम्हरे मुख सौं।

उ. तुम्हरौ—इस रूप का प्रयोग संबंधी शब्द के पहले और बाद में तो किया ही गया है, कहीं-कहीं दोनों के बीच में दो-एक शब्द भी आ गये हैं; जैसे—

तुम्हरौ नाम । नाम तुम्हरौ । तुम्हरौ लघु भैया । तुम्हरौ संताप ।

ऊ. तुम्हार—यह रूप प्रायः संबंधी शब्द के अधिकतर बाद ही आया है; जैसे—कंत तुम्हार । दोष तुम्हार ।

ऋ. तुम्हारि—इसका प्रयोग अपवादस्वरूप ही दिखायी देता है; जैसे—ऐसी समुझ तुम्हारि ।

ए. तुम्हारी—संबंधी शब्द के आगे-पीछे तो इस शब्द का प्रयोग किया ही गया है, कहीं-कहीं दोनों के बीच में अन्य शब्द भी रख दिये गये हैं; जैसे—तुम्हारी आसा । दौरि तुम्हारी । बात तुम्हारी । भक्ति अनन्य तुम्हारी । सक्ति तुम्हारी ।

ऐ. तुम्हारे – एक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त इस सर्वनाम-रूप के साथ संबंधी शब्द प्रायः बहुवचन ही प्रयुक्त हुआ है; जैसे—सत पुत्र तुम्हारे (धृतराष्ट्र के)। पितर तुम्हारे (अंसुमान के) । ये गुन जसुमति, आहिं तुम्हारे । वे हैं काल तुम्हारे (नृप कंस के)। चरित तुम्हारे ।

ओ. तुम्हारौ—यह रूप कहीं तो संबंधी शब्द के पहले प्रयुक्त हुआ है और कहीं बाद में, परंतु यहाँ उद्धृत सभी उदाहरणों में है यह एक ही व्यक्ति के लिए; जैसे—हरि, बहुत भरोसौं जानि तुम्हारौ । राज तुम्हारौ (परीक्षित कौ) । तुम्हारौ (शिव कौ) मरम । राजा, बचन तुम्हारौ । (लघु बंधू) सूल तुम्हारौ ।

घ. संबंधकारकीय विशिष्ट रूप—इस वर्ग के अंतर्गत एक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त तिहारी, तिहारे और तिहारौ रूप आते हैं ।

अ. तिहारी—इसका प्रयोग संबंधी शब्द के पहले और बाद, दोनों प्रकार से किया गया है; जैसे—छाँड़ि तिहारी सेव । सरन तिहारी । बात तिहारी । सपथ तिहारी । तिहारी रुखाई ।

आ. तिहारे—इस रूप का प्रयोग किया तो एक ही व्यक्ति के लिए गया है, परंतु संबंधी शब्द कहीं बहुवचन में हैं, कहीं आदरसूचक एकवचन में; जैसे—कहागुन बरनौं स्याम, तिहारे । ये बीर (=भाई) तिहारे (दुर्योधन के)। नागरी, सूर स्याम हैं चोर तिहारे । मधुकर, परखे अंग तिहारे ।

इ. तिहारौ—इस सर्वनाम का प्रयोग भी कहीं तो संबंधी शब्द के पहले किया गया है, कहीं बाद में और कहीं दोनों के बीच में कुछ अन्य शब्द भी आये हैं; जैसे—हरि, अजामिल तौ बिप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास । प्रभु, बिरद आपुनौ और तिहारौ । नृप, जोहत हैं वे पंथ तिहारौ । धन्य जसोदा, भाग तिहारौ । स्याम, नाम गारुड़ी प्रगट तिहारौ ।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में प्राप्त रूप तीन वर्गों में रखे जा सकते हैं—क. विभक्तिरहित विकृत रूप । ख. विभक्तियुक्त एकवचन रूप । ग. विभक्तियुक्त बहुवचन रूप ।

क. विभक्तिरहित रूप—तिहारैं, तुम्हरैं, तुम्हारैं और तेरैं—ये चार प्रमुख रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें अधिकरणकारकीय कोई विभक्ति नहीं है, परन्तु सामान्य या संबंधकारकीय रूपों में 'ऐं' और 'एं' के संयोग से अधिकरणकारकीय रूप बना लिये गये हैं; जैसे—

अ. तिहारैं—इस रूप का प्रयोग बहुत कम किया गया है; जैसे—आजु बसैंगे रैनि तिहार । राधे, कह जिय निठुर तिहारैं ।

आ. तुम्हरैं—इस रूप का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मिलता है; जैसे—स्याम, तुम्हरैं आजु कमी काहे की । सखी, सुनहु 'सूर' तुम्हरैं छिन छिन मति । हम तुम्हरैं नितहीं प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी ।

इ. तुम्हारैं—इसका प्रयोग कवि ने बहुत कम किया है; जैसे—रैनि तुम्हारैं आऊँगौ ।

ई. तेरैं—इस रूप का प्रयोग उक्त तीनों से अधिक किया गया है; जैसे तेरैं प्रीति न मोहिं आपदा । क्यों करि तेरैं भोजन करौं । कौन जानै कौन पुन्य प्रगटे हैं तेरैं आनि । प्रेम सहित हरि तेरैं आए ।

ख. विभक्तियुक्त एकवचन रूप—पर, पै और मैं—इन तीन विभक्तियों के संयोग से प्रमुख चार रूप—तुव ऊपर, तो पर, तो पै और तो मैं बनाये गये हैं जिनके प्रयोग बहुत कम पदों में मिलते हैं ।

अ. तुव ऊपर—तुव ऊपर प्रसन्न मैं भयौ ।

आ. तो पर—तो पर वारी हौं नंदलाल । राधे, तो पर कृपा भई मोहन की ।

इ. तो पै—(मानिनि) हौं आई पठई है तो पै तेरे प्रीतम नंदकिसोर ।

ई. तो मैं—जमुना, तो मैं कृष्ण हेलुवा खेलै ।

ग. विभक्तियुक्त बहुवचन रूप 'तुम' के साथ 'पर', 'पै' और 'मैं' विभक्तियों के अतिरिक्त 'पै' के योग से इस वर्ग के चार रूप कवियों ने बनाये हैं। इनमें से 'तुम पर' और 'तुम पैं' का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है; शेष दोनों रूप कम प्रयुक्त हुए हैं।

अ. तुम पर—हम नाहिन रिस तुम (इंद्र) पर आनी । मोहन, जोहन, मंत्र-जंत्र, टोना सब तुम (स्याम) पर वारत ।

आ. तुम पै—हम तुम पै आए। तुम पै प्यारी बसत जियौ ।

इ. तुम पै—मैं आयौ तुम पै रिषिराइ। प्यारी, भेषज अधर सुधा है तुम पै । यह तुम पै सब पुंजी अकेली ।

ई. तुम मैं—साच्छात सो तुम (धृतराष्ट्र) मैं देखी । प्यारी मैं तुम, तुम मैं प्यारी ।

सारांश—मध्यपुरुष एकवचन मूल और विकृत सर्वनाम-रूपों के विभक्तिरहित जिन प्रधान-अप्रधान रूपों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित मूल और विकृत रूप	विभक्तिसहित मूल और विकृत रूप
कर्त्ता	तुम, (तूं), तू, तैं	....
कर्म	(तुम),(तू), तुम्हैं	तुमकौं, तुमहिं, (तुहिं) तोकौं, तोहिं ।
करण	(तुम्हैं), (तोह)	(तोकौं), तोतैं, (तोपै), तोसौं, तोहिं, तुमतैं,तुम पै, (तुम सन), तुमसौं, तुमहिं ।
संप्रदान	(तुम्हैं)	तुमकौं, तुमहिं, तोकौं, तोहिं ।
अपादान	....	तुमतैं,(तुमसौं),(तुमहिं) तोतैं, (तोहिं) ।
संबंध	तव, तुम, तुव, तैं	तेरी, तेरे, तेरौ, तोर, (तोरौ), (तुमरे), (तुमरौ), तुम्हरी, तुम्हरे,तुम्हरौ,(तुम्हार) (तुम्हारि), तुम्हारी, तुम्हारे,तुम्हारौ,तिहारी, तिहारे, तिहारौ ।
अधिकरण	(तिहारैं), तुम्हरैं, (तुम्हारैं), (तुम्हैं), तेरैं	(तो पर), तोपै, (तोमैं), तुम पर, (तुम पैं), तुम पै, (तुम मैं) ।

मध्यमपुरुष बहुवचन के कारकीय प्रयोग—

मध्यमपुरुष मूल सर्वनाम 'तुम' का विकृत रूप भी यही है। विभिन्न कारकों में इसके निम्नलिखित रूपों के प्रयोग किये गये हैं —

१. कर्त्ताकारक—इस वर्ग का एक ही रूप है 'तुम' जिसका विभक्तिरहित प्रयोग सर्वत्र किया गया है; जैसे— भली सिच्छा तुम दीनी । तुम घर जाहु ।

कर्मकारक—इस कारक में भी बहुवचन रूपों की संख्या अधिक नहीं है। केवल 'तुम्हैं' का प्रयोग कहीं-कहीं किया गया है; जैसे—इन बरज्यौ आवत तुम्हैं असुर बुधि इन यह कीन्हीं । तब हरि दूतनि तुम्हैं निवारयौ ।

३. करणकारक—तुमकौं, तुमसौं, तुम्हैं आदि प्रयोग इस कारक के मिलते हैं।

अ. तुमकौं—तातैं तुमकौं आनि सुनायौ । सुनहु सखी, मैं बूझति तुमकौं, काहूँ हरि कौं देखे हैं। यहाँ दूसरे वाक्य में 'सखी' शब्द तो एकवचन है, परन्तु आगे प्रयुक्त 'काहूँ' का संकेत है कि 'सखी' से आशय 'सखियों' से है ।

आ. तुमसौं—मैं तुमसौं यह कहौं पुकार। तुमसौं टहल करावति निसि दिन । तुमसौं नहिं कैहौं ।

इ. तुम्हैं—अपनौं भेद तुम्हैं नहिं कैहैं ।

४. संप्रदान कारक—तुमहिं और तुम्हैं, मुख्यतः ये दो रूप ही इस कारक में मिलते हैं ।

अ. तुमहिं—रिषि कह्यौ, मैं करिहौं जहँ जाग । देहौं तुमहिं अवसि करि भाग ।

आ. तुम्हैं—असुर कौं सुरा, तुम्हैं अमृत प्याऊँ ।

५. अपादान कारक—तुमतैं और तुमसौं, ये दो रूप इस कारक के मिलते हैं—

अ. तुमतैं—तुमतैं को अति जान है।

आ. तुमसौं—हँसत भए अंतर हम तुमसौं सहज खेल उपजाइ।

संबंधकारक—अन्य कारकों के समान ही संबंधकारकीय बहुवचन रूप भी बहुत थोड़े हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

अ. तिहारी—जो कुछ इच्छा होइ तिहारी (बनितनि की)।

आ. तुम—मैं लैहौं तुम गृह अवतार।

इ. तुम्हरे—सूर, प्रभु क्यौं निदरि आई, नहीं तुम्हरे नाहु।

ई. तुम्हरौ—तुम्हरौ तहाँ नहीं अधिकार। करौं पूरन काम तुम्हरौ सरद रास रमाइ।

उ. तुम्हारौ—करिहौं पूरन काम तुम्हारौ। तुम घरनी मैं कंत तुम्हारौ।

७. अधिकरणकारक—इस कारक के अंतर्गत मध्यमपुरुष सर्वनाम के प्रमुख दो रूप मिलते हैं—

अ. तुम पर—आवहु तुम पर (दोऊ भाई) तन मन वारौं।

आ. तुम पै—सबै यहै कैहैं, भली मति तुम पै है। तुम पै ब्रजनाथ पठायौ।

सारांश—विभिन्न कारकों में प्रयुक्त प्रमुख मध्यम पुरुष बहुवचन सर्वनाम रूपों के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित मूल और विकृत रूप	विभक्तियुक्त मूल और विकृत रूप
कर्त्ता	तुम	....
कर्म	(तुम्हैं)	(तुमकौं), (तुमहिं)।
करण	(तुम्हैं)	(तुमकौं), तुमसौं, (तुमहिं)।
संप्रदान	(तुम्हैं)	(तुमकौं), (तुमहिं)।
अपादान	....	(तुमतैं) (तुमसौं)।
संबंध	(तुम)	(तिहारी), (तुम्हरे), (तुम्हरौ), तुम्हारौ।
अधिकरण	....	(तुम पर), तुम पै।

पुरुषवाचक अन्यपुरुष और निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनामों की रूप-रचना

इन दोनों सर्वनाम रूपों की समानता के कारण इनकी चर्चा साथ-साथ करना आवश्यक है। ब्रजभाषा में इन सर्वनामों के निम्नलिखित रूप होते हैं—

रूप	एकवचन	बहुवचन
मूल	वह, सो, सु, वे	वे, वै, ते, से
विकृत	वा, ता, उन	उन, उनि, विन, तिन
अन्य	वाहि, तानि	तिन्हैं

एकवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

पुरुषवाचक अन्यपुरुष सर्वनाम के एकवचन मूलरूप में साधारणतः 'वह' और विकृत में 'वा' का प्रयोग होता है। ब्रजभाषा-कवियों ने इन रूपों को तो अपनाया ही, साथ-साथ नित्यसंबंधी मूलरूप 'सो' और 'सु' तथा विकृत रूप 'ता' का प्रयोग भी अन्यपुरुष एकवचन सर्वनाम के समान अनेक पदों में किया। इसी प्रकार अन्यपुरुष के बहुवचन मूल और विकृत रूपों 'वे', 'उन' आदि के भी एकवचन में प्रयोग उन्होंने निस्संकोच किये हैं।

१. कर्त्ताकारक—इस कारक में प्रयुक्त रूपों की संख्या तीस के लगभग है। स्थूल रूप से इन रूपों को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित एकवचन रूप। ख. विभक्तिरहित बहुवचन मूल रूप ग. विभक्तिरहित बहुवचन विकृत रूप। घ. विभक्तिरहित अन्य प्रयोग। ङ. विभक्तियुक्त रूप।

क. विभक्तिरहित एकवचन रूप—'वह','सो' और 'सु'—ये तीन रूप इस वर्ग में प्रमुख हैं, प्रथम तो इसी कारक का मूल रूप है और शेष दोनों नित्यसंबंधी सर्वनाम-भेद के रूप हैं। इनका प्रयोग दोनों लिंगों में हुआ है।

अ. वह—भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै। तब वह गर्भ छाँड़ि जग आया। तब वह हरि सौं रोइ पुकारी। करिहै वह तेरौ अपमान।

आ. सो—तहाँ सो (मच्छ) बढ़ि गयौ। सहित कुटुंब सो (मच्छ) क्रीड़ा करै। गाइ चरावन कौं सो गयौ।

इ. सु—यह सर्वनाम 'सो' का ही लघु रूप है जिसका प्रयोग अपवादस्वरूप ही किया गया है; जैसे—ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताके पास।

ख. विभक्तिरहित बहुवचन मूल रूप—'वे' और 'वै'—इन दो बहुवचन रूपों का प्रयोग एकवचन के समान दोनों लिंगों में कवियों ने किया है। इनमें से प्रथम का कम और द्वितीय का अधिक प्रयोग किया गया है।

अ. वे—वे करता, वेई हैं हरता। वे हैं परम कृपालु।

आ. वै—हम वै (कृष्ण) बास बसत इक बगरी। वै (कृष्ण) मुरली की टेर सुनावत। वै (स्याम) तुम कारन आए। वै (हरि) तौ निठुर सदा मैं जानति।

ग. विभक्तिरहित बहुवचन विकृत रूप—'उन', 'उनि', 'तिन' और 'तिनि'—ये चार रूप इस वर्ग में आ सकते हैं—

अ. उन—यह अपराध बड़ौ उन (नृप) कीनौ। उन (इक नृप) जो कियौ, करौ तुम तथा। ताकौं उन (अजामिल) जब नाम उचारयौ। ब्रह्मफाँस उन (मेघनाथ) लई हाथ करि।

आ. उनि—कह्यौ सरमिष्ठा, सुत कहँ पाए। उनि कह्यौ रिषि किरपा तैं जाए। पठए हमसौं उनि (मथुरा पति)। सेवा करत करी उनि (स्याम) ऐसी।

इ. तिन—तिन (सुक कौ अंग) उड़ि अपनौ आपु बचायौ। नगर द्वार तिन (काल-कन्या जरा) सबै गिराए। निज भुज-बल तिन (सहस्रबाहु) सरिता गही।

ई. तिनि—तिनि (परीक्षित) पुनि भली भाँति करि गुन्यौ। तिनि (उरबसी) यह बचन नृपति सौं कह्यौ। सुक्र पास तिनि (सुक्र-सुता) जाइ सुनायौ।

घ. विभक्तिरहित अन्य रूप—उहिं, तिहिं और तेहिं—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें प्रथम दो का प्रयोग अधिक किया गया है; परंतु तीसरा रूप कहीं कहीं ही दिखायी देता है; जैसे—

अ. उहिं—भोरहिं ग्वारि उरहनौ ल्याई, उहिं यह कियौ पसारौ। हरि के चरित सबै उहिं (राधा) सीखे। फेरि न मेरी उहिं सुधि लीन्हीं। मोकौं उहिं पहुँचायौ भौन।

आ. तिहिं—तहाँ हुतौ एक सुक औ अंग। तिहिं यह सुन्यौ सकल परसंग। पायौ पुनि तिहिं पद निर्वान। कपिल अस्तुति तेहिं बहुबिधि कीन्ही।

इ. तेहिं—यह मुनिकैं तेहिं साथी नायौ।

ङ. विभक्तियुक्त रूप—कर्त्ताकारक की विभक्ति 'ने' का एक रूप है 'नैं'। मूल विभक्ति या उसके रूपांतर का किसी सर्वनाम के साथ प्रयोग का कोई उदाहरण ऊपर नहीं दिया गया है। परंतु यत्र-तत्र अन्यपुरुष एकवचन सर्वनाम के अन्य रूप 'वाहि' के दीर्घस्वरांत रूपांतर 'वाही' के साथ 'नैं' का प्रयोग मिलता है; जैसे—जैहै कहाँ मोतिसर मेरी। अब सुधि भई लई वाही नैं, हँसति चली बृषभानु-किसोरी।

२. कर्मकारक—इस कारक के अंतर्गत भी बीस से अधिक रूप मिलते हैं जिनको स्थूल से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित प्रयोग और ख. विभक्तियुक्त प्रयोग।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—इस वर्ग के अंतर्गत जो प्रयोग आते हैं, उनमें मुख्य हैं—ओहि, उहिं, ताहि, तिहिं, वाहि और सो। इनमें से प्रथम दो रूपों का कम और अंतिम चार का अधिक प्रयोग किया गया है।

अ. ओहि—छोरत काहे न ओहि।

आ. उहिं—अब उहिं चहिये फेरि जिवायौ। असुरनि उहिं डारयौ मार।

इ. ताहि—मारयौ ताहि प्रचारि हरि। ताहि देखि रिषि कैं मन आई। सुक्र ताहि पढ़ि मंत्र जिवायौ। हाथ पकरि हरि ताहि गिरायौ।

ई. तिहिं—लोगनि तिहिं बहु बिधि समुझायौ। गाड़ि धूरि तिहिं देत। सुता कह्यौ, तिहिं फेरि जिवावौ।

उ. वाहि—सोवै तब जब वाहि सुवावै। वाहि मारि तुम हमहिं उबारयौ। बिनु जानैं हरि वाहि बढ़ाई।

ऊ. सो—बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई। सुन्यौ ज्ञान सो सुमिरन रह्यौ। रावन कह्यौ, सो कह्यौ, न जाई।

ख. विभक्तियुक्त रूप—उनकौं, उनहिं, ताकौं, तिनकौं, तिनहिं, तिहिकौं, तेहिं, वाकौं और विनकौं—मुख्यतः इन नौ विभक्तियुक्त रूपों का प्रयोग कर्मकारक

में किया गया है। उनमें से उनहिं और ताकौं का अधिक, 'तेहिं' का सामान्य और शेष का बहुत कम प्रयोग मिलता है।

अ. उनकौ—आए कहाँ छाँड़ि तुम उनकौ (नँद-नँद कौ)।

आ. उनहिं—वैसेहि उनहिं (कृष्ण) पठाए। कैसेहुँ उनहिं (कृष्ण) हाथ करि पाऊँ। उनहिं (कृष्ण) बरौं कै तजौं परान।

इ. ताकौं—जोगी कौन बड़ौ संकर तें, ताकौं काम छरै। वाकैं बदलैं ताकौं धरौं। ऐसो कौन मारिहै ताकौं। और नैंकु छ्वै देखै स्यामहिं, ताकौं करौं निपात।

ई. तिनकौं—सूरप्रभु आए अचानक, देखि तिनकौं हँसी।

उ. तिनहिं—पठवत हौं मन तिनहिं (हरि) मनावन निसिदिन रहत अरे री।

ऊ. तिहिंकौ—सूरदास तिहिंकौ ब्रजबनिता झकझोरति उर अंक भरे।

ऋ. तेहिं—तुरतहि तेहिं मारचौ। बहुरि तेहिं दरसन दै निस्तारा।

ए. वाकौं—वाकौं मारि अपनपौं राखै।

ऐ. विनकौं—तैं ऐसैं चितयौ कछु विनकौं (गिरिधारी कौं)।

३. करणकारक—इस कारक में प्रयुक्त रूपों की संख्या लगभग बीस है जिनको चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित प्रयोग। ख. 'तैं' विभक्तियुक्त प्रयोग। ग. सौं विभक्तियुक्त प्रयोग। और घ. अन्य विभक्तियुक्त प्रयोग।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—करणकारक में प्रयुक्त ताहि, तिनहिं, तिहिं और वाहि—ये चार रूप इस वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं जिनमें इस कारक की किसी विभक्ति का संयोग नहीं है। इनमें प्रथम और तृतीय रूपों का अधिक, द्वितीय का सामान्य और अंतिम का बहुत कम प्रयोग किया गया है; जैसे—

अ. ताहि—रिषि कह्यो ताहि, दान रति देहि। अहो बिहंग, कहौ अपनौ दुख, पूछत ताहि खरारि। कचहूँ ताहि कही या भाइ।

आ. तिनहिं—तिनहिं (सुफलक-सुतहिं) कह्यौ, तुम स्नान करौ ह्याँ।

इ. तिहिं—तब करि क्रोध सती तिहिं (दच्छहिं) कही। सोवति सो तिहिं बात सुनावै।

ई. वाहि—जब मोहि अंगद कुसल पूछिहै कहा कहौंगो वाहि।

ख. 'तैं' विभक्तियुक्त प्रयोग—उनतैं, तातैं, और ताही तैं—ये तीन रूप इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इनमें प्रथम दो का सामान्य और अंतिम का बहुत कम प्रयोग मिलता है।

अ. उनतैं—इंद्र बड़े कुलदेव हमारे, उनतैं सब यह होति बड़ाई।

आ. तातैं—प्रथमहिं महतत्व उपायौ। तातैं अहंकार प्रगटायौ। ब्रह्मा स्वायंभुव मनु जायौ। तातैं जन्म प्रियव्रत पायौ।

इ. ताही तैं—प्रियव्रत कैं अग्नीध्र सु भयौ। नाभि जन्म ताहीं तैं लयौ।

ग. सौं विभक्तियुक्त प्रयोग—इस वर्ग के अंतर्गत उनसौं, तासौं, ताहि सौं, तिन सौं, तिहिं सौं और वासौं—ये छह रूप आते हैं। उनसौं, तासौं, तिनसौं और वासौं—इन चार रूपों का प्रयोग अधिक किया गया है, शेष का बहुत कम।

अ. उनसौं—च्यवनऋषि आस्रम इहि आइ। बिनती उनसौं कीजै जाइ। कछु उनसौं (कान्ह सौं) बोली। उनसौं (हरि सौं) कहि फिर ह्याँ आवैगो। जो कोउ उनसौं (गोपाल सौं) सुधि कहै।

आ. तासौं—ताकौं तासौं लियौ बचाइ। बान एक हरि सिव कौं दियौ। तासौं सब असुरनि छय कियौ। सुक्र कह्यौ तासौं या भाइ। तासौं कहि सब भेद सुनायौ।

इ. ताहि सौं—सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरे निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग बाँधौ। ताहि सौं बचन या बिधि उचारे।

ई. तिन सौं—तिन सौं या बिधि पूछत भए। तिनसौं (स्याम सौं) कहत सकल ब्रजवासी। तिनसौं भेद जनावै। कृपा बचन तिनसौ हरि बर्षे।

उ. तिहिं सौं—तिहिं सौं भरत कछू नहिं कह्यौ।

ऊ. वासौं—पै वासौं उत्तर नहिं लह्यौ। नैंकु नहीं कछु वासौं ह्वैहै। वासौं प्रीति करै जनि।

घ. अन्य विभक्तियुक्त रूप–उनपै, ता सेंती, ताही पै और वाकौं—ये चार रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें से प्रथम का सबसे अधिक और अन्यों का कम प्रयोग किया गया है—

अ. उनपै—हम उनपै (हरि पै) गाइ चराई। खोयौ गयौ नेह-नग उनपै (हरि पै)। तौ कहि इती अवज्ञा उन पै (हरि पै) कैसैं सही परी।

आ. ता सेंती—कहन लगयौ, मम सुत ससि गोद। ता सेंती ससि करत बिनोद। तप कीन्हैं सो दैहैं आग। ता सेंती तुम कीनौ जाग।

इ. ताही पै—यह चतुराई पढ़ी ताही पै, सो गुन हमतैं न्यारौ।

ई. वाकौं—सूर जाइ बूझौं धौं वाकौं, ब्रज जुवती इक देखि रही ही।

३. संप्रदानकारक—इस कारक में बारह-तेरह सर्वनाम-रूपों का प्रयोग किया गया है जिनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित रूप। ख. 'कौं' विभक्तियुक्त रूप। ग. अन्य विभक्ति युक्त रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—उन, ताहि, तिन्हैं, तिहिं और तेहिं—ये पाँच रूप इस वर्ग में आ सकते हैं। इनमें से द्वितीय और तृतीय रूपों का प्रयोग सामान्य रूप से हुआ है और शेष तीनों का बहुत कम।

अ. उन—इक हरि चतुर हुते पहिलैं ही, अब उन (गुरु) सिखई।

आ. ताहि—ताहि दै राज बैकुंठ सिधाए। कपिल ताहि यह आज्ञा दीन्ही।

इ. तिन्हैं—सहस नाम तहँ तिन्हैं (उमा को) सुनायौ।

ई. तिहिं—भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिं तुरत बर। यह सुनिकै तिहिं उपज्यो ज्ञान। पुनि नृप तिहिं भोजन करवायौ। लिखि पाती दोउ हाथ दई तिहिं। हरि जू तिहिं यह उत्तर दयौ।

उ. तेहिं—सूर स्याम तेहिं गारी दीजै, जो कोउ आवै तुम्हरी बगरी।

ख. 'कौं' विभक्तियुक्त रूप—उनकौं, ताकौं, तिनकौं और वाकौं—ये पाँच रूप इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इनमें से उनकौं, ताकौं और वाकौं का प्रयोग अधिक मिलता है—

अ. उनकौं—अब मैं उनकौं (कुरुपति कौं) ज्ञान सुनाऊँ। अपनौ पेट दियौ तैं उनकौं (हरि कौं)। उनकौं (स्यामहिं) सुख देत। जोइ-जोइ साध करी पिय रस की, सो उनकौं दीन्हे।

आ. ताकौं—बिन देखैं ताकौं सुख भयौ। करि तिन क्रोध साप ताकौं दयौ। सकल देस नृप ताकौं दयौ। सूरज दै जननी गति ताकौं कृपा करी निज धाम पठाई।

इ. तिनकौं—नैंकहुँ चैन रह्यौ नहिं तिनकौं।

ई. वाकौं—यह कागद मैं वाकौं दीन्हौ। रैनि देत सुख वाकौं।

ग. अन्य विभक्तियुक्त रूप—उनहिं, और ताके—ये दो प्रयोग इस वर्ग में आते हैं।

अ. उनहिं—मन लै उनहिं (स्यामहिं) दियो। दीजौ उनहिं (गोपालहिं) उरहनौ मधुकर।

आ. ताके—ताके पूत्र सुता बहु भए। ताके सुन्दर छौना भयौ।

५. अपादानकारक—उस कारक की 'तैं' विभक्ति के साथ मुख्य तीन रूप मिलते हैं—उनतैं, तातैं और बातैं—

अ. उनतैं—कुलटी उनतैं (महरि जसोदा तैं) को है। उनतैं प्रभु नहिं और बियौ।

आ. तातैं—राधा आधा अंग है, तातैं यह मुरली प्यारी।

इ. वातैं—अब ऐसौ लगत हमहिं वातैं न अयानौ।

६. संबंधकारक—संबंधकारकीय सर्वनाम रूपों की संख्या तीस के आस-पास है। स्थूल रूप से उनको पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित रूप। ख. 'की' युक्त रूप। ग. 'के' युक्त रूप। घ. 'कौ' युक्त रूप और ङ अन्य रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—उन और ता—ये दो रूप इस प्रकार के हैं जिनमें कोई विभक्ति नहीं है—

अ. उन—मन उन हाथ बिकानौ। को जाने उन (कृष्न)

ही की। उन पहिरयो उन (स्यामा का) नौसरिहार।
कोटि जज्ञ फल होइ उन (हरि के) दरसन पाए।

आ. ता—ता अवतारहिं। ता घर। ता पख। ता मुख।

ख. 'की' युक्त रूप—उनकी, ताकी, तिनकी और वाकी—ये चार रूप इस वर्ग में आते हैं। उनकी, ताकी और वाकी का प्रयोग बहुत किया गया है—

अ. उनकी—उनकी (महादेव की) महिमा। उनकी (नृपति की) अस्तुति। उन उनकी (स्याम की) पहिरी मोतिमाला। पीत धुजा उनकी (स्याम की)।

आ. ताकी ताकी इच्छा। ताकी पितु-मातु घटाई कानि। ताकी गतिहिं। माता ताकी। ताकी सक्ति।

इ. तिनकी—नंदनंदन गिरिधर बहुनायक, तू तिनकी पटरानी।

ई. वाकी—चतुराई वाकी। वाकी जाति। वाकी पैंज। वाकी बुद्धि। लँगराई वाकी।

ग. 'के' युक्त रूप—इस वर्ग में आनेवाले प्रमुख रूप हैं—उनके, ताके, तासु के, तिनके, तेहिके और वाके। प्रयोग की दृष्टि से उनके, ताके और वाके रूप सर्वत्र मिलते हैं; शेष कहीं-कहीं ही दिखायी देते हैं।

अ. उनके—उनके (स्याम) मनहीं भाई। सेवक उनके (कन्हाई के)। उनके (स्याम के) गुन।

आ. ताके—गुन ताके। ताके तंदुल। ताके पूत। ताके माथे। ताके साथ। ताके हय।

इ. तासु के—तुरंग रथ तासु के सब सँघारे।

ई. तिनके—मेरे प्रान-जीवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिं बँधे दिखाए। सूर स्याम जुवती मन मोहन तिनके गुन नहिं परत कही।

उ. तेहिके—असी सहस किंकर दल तेहिके।

ऊ. वाके—वाके सुनहु उपाय। वाके गुन। चरित वाके। वाके वचन। वाके भाग।

घ. 'कौं' युक्त रूप—उनकौ, ताकौ, तिनकौ और वाकौ—मुख्यतः ये चार रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें प्रथम, द्वितीय और अंतिम का प्रयोग अधिक किया गया है—

अ. उनकौ—सुता है बृषभानु की री, बड़ौ उनकौ नाउँ। उनकौ (गिरिधर कौ) मन अपनौ करि लीन्हौ। उनकौ (स्याम कौ) बदन बिलोकति निसि दिन। सुधि करि देखि रूसनौ उनकौ (मोहन कौ)।

आ. ताकौ—ताकौ केस। जस ताकौ। निरभय देह राजगढ़ ताकौ। नाम ताकौ।

इ. तिनकौ—तिनकौ नाम अनंग नृपति बर।

ई. वाकौ—दोष कहा वाकौ। वाकौ भाग। वाकौ मान। मुख वाकौ। वाकौ सुर।

ङ. संबंधकारकीय अन्य रूप—इस कारक के अन्य रूप हैं—उन केरी, उन केरे, ताकर, तासु और तिहिं। इनमें से सबसे अधिक प्रयोग किया गया है 'तासु' का और उससे कम 'तिहिं' का। शेष रूपों के प्रयोग अपवादस्वरूप कहीं-कहीं मिल जाते हैं।

अ. उन केरी—तुम सारिखे बसीठ पठाए, कहिऐ कहा बुद्धि उन (कृष्ण) केरी।

आ. उन केरे—मोहूँ बरबस उतहिं चलावत दूत भए उन (स्याम) केरे।

ई. ताकर—उदधि-सुधा-पति, ताकर बाहन।

उ. तासु—तासु क्रिया। तासु चित। तासु महातम। तासु सुतनि।

ऊ. तिहिं—नख-प्रहार तिहिं उदर बिदार्‌यौ। सूर प्रभु मारि दसकंध, थपि बंधु तिहिं। कहाँ मिली कुबिजा चंदन लै, कहा स्याम तिहिं कृपा चहैं।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में प्रयुक्त अन्य-पुरुष एकवचन सर्वनाम-रूपों की संख्या पचीस के आस-पास है। साधारण रीति से इनको छह वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित रूप। ख. 'कै' विभक्ति-युक्त रूप। ग. 'पर' विभक्तियुक्त रूप। घ. 'पैं' या 'पै' विभक्तियुक्त रूप। ङ. 'मैं' विभक्तियुक्त रूप और च. अन्य विभक्तियुक्त रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—ताहूँ और वाहीं—ये दो प्रयोग इस प्रकार के कहे जा सकते हैं। इनके प्रयोग अपवादस्वरूप ही मिलते हैं और इनके साथ की विभक्ति 'मैं' प्रायः लुप्त रहती है।

अ. ताहूँ—खंभ प्रगटि प्रहलाद बचायो, ऐसी कृपा न ताहूँ।

आ. वाहीं—लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिरि वाहीं मन दीनौ।

ख. 'कैं' विभक्तियुक्त रूप—उनकैं, ताकैं और तिनकैं—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. उनकैं—मोसी उनकैं कोटि तियौ। उनकैं (स्याम कैं) बाढ़ी आतुरताई।

आ. ताकैं—साँझ बोल दै जात सूर प्रभु, ताकैं आवत होत उदोत। गई आतुर नारि ताकैं। जाइ रहै नहिं ताकैं।

इ. तिनकैं—तिनकैं (दासी-सुत कैं) जाइ कियौ तुम भोजन। भूषन मोरपखौवनि, मुरली, तिनकैं प्रेम कहाँ री।

ग. 'पर' विभक्तियुक्त रूप—तापर, ताहि पर और तिन पर—ये तीन रूप इस विभक्ति में आते हैं। इनमें सबसे कम प्रयुक्त हुआ है 'ताहि पर'।

अ. तापर—दृढ़ विश्वास कियौ सिंहासन तापर बैठे भूप। तापर कौस्तुभ मनिहिं बिचारै। कृपावंत रिषि तापर भए। चले बिमान संग गुरु पुरुजन तापर नृप पौढ़ायौ।

आ. ताहि पर—इंद्र बिनय रिषि सों बहु करी। तब रिषि कृपा ताहि पर धरी।

इ. तिन पर—स्याम लरत तबहीं तैं उनसौं, तिन पर अतिहिं रिसानी। तिन पर तूँ अतिहीं झहरी।

घ. 'पैं' या 'पै' विभक्तियुक्त रूप—इस वर्ग के मुख्य रूप हैं—उनपै, तापैं, तापै और तिनपै।

अ. उनपै—की बैठी, की जाहु भवन कौं। मैं उनपैं (हरि पै) नहिं जाऊँ।

आ. तापैं - परतिज्ञा राखौ मनमोहन, फिर तापैं पठयौ। अस्वत्थामा तापैं जाइ।

इ. तापै—रिषि को तापै फेरि पठायौ।

ई. तिनपैं—एक नाहिं भवननि तैं निकरी तिनपै आए परम कृपाला।

ङ. 'मैं' विभक्तियुक्त रूप—केवल एक रूप, तामैं इस वर्ग का है; जैसे—तामैं सक्ति आपनी धरी। बहुरौ देख्यौ ससि की ओर, तामैं देखि स्यामता कोर। तामैं (मायामय कोट मैं) बैठि सुरन जय करौं। दुख समुद्र जिहि वारपार नहिं तामैं नाव चलाई।

च. अन्य विभक्तियुक्त रूप—इस वर्ग में उन पाहीं, उन माहँ, उन माहीं, उनमौं, ता महँ, ता माहिं आदि रूप आते हैं।

अ. उन पाहीं—हम निरगुन सब गुन उन (सिसुपाल) पाहीं।

आ. उन माहँ—हौं उन (कृष्ण) माहँ कि वै मोहिं माहीं।

इ उन माहीं—सुनियत परम उदार स्यामघन, रूप-रासि उन माहीं।

ई. उन मौं—जो मन जोग जुगुति आराधै, सो मन तौ सबकौ उन (कृष्ण) मौं है।

उ. ता महँ—ता महँ मोर घटा घन गरजहिं, संग मिलै, तिहिं सावन।

ऊ. ता माहिं—चौदह लोक भए ता माहिं।

सारांश—ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है कि पुरुषवाचक अन्यपुरुष और निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम रूपों की संख्या उत्तम और मध्यमपुरुष रूपों से निश्चय ही अधिक है। विभिन्न कारकों में मुख्य, सामान्य और अपवादस्वरूप जिन रूपों का कवियों ने प्रयोग किया है, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित मूल और विकृत रूप	विभक्तियुक्त मूल और विकृत रूप
कर्त्ता	वह, सो, (सु), (वे), वै, उन, उनि, तिन, तिनि, (तिहिं), (तेहिं), उहि।	(वाही नै)
कर्म	(ओहि), ओही), (उन्हैं), (उहिं), ताहि, तिहिं, वाहि, सो।	(उनकौं), उनहिं, ताकौं, (तिनकौं), (तिनहिं), तिहिकौं, तेहिं, वाकौं, विनकौं।
करण	ताहि, (तिनहिं), तिहिं, वाहि।	उनतैं, तातैं, तासु तैं, (उनसौं), तासौं, ताहि सौं, तिनसौं, (तिहिं सौं), वासौं, (उनपै), (ता सेंती), (वाकौं)।
संप्रदान	ताहि, (तिन्हैं), तिहिं, (तेहि)।	उनकौं, ताकौं, (तिन-कौं), वाकौं, (उनहिं), ताके।
अपादान	....	उनतैं, तातैं, वातैं।

संबंध	उन, ता।	उनकी, ताकी, (तिनकी), वाकी, उनके, ताके,(तासु के), तिनके, (तेहिके), वाके, उनकौ, ताकौ, (तिनकौ),वाकौ, (उन केरी), (उन केरे), (ताकर), ताकि, तासु, (तिहिं), (वाकि)।
अधिकरण	ताहूँ वाहीं।	उनकैं, ताकैं, (तिनकैं), तापर, (ताहि पर), तिन पर, (उनपै), (तापैं), (तापै), (तिनपैं), तामैं, (उन पाहीं), उन माहँ, (उन माहीं), (उन मौ), (ता महँ), (ता माहिं)।

बहुवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

अन्यपुरुष और दूरवर्ती निश्चयवाचक में साधारणत: 'वे' और 'वै' का मूल रूप में तथा 'उन', (उनि) और 'विन' का विकृत रूप में प्रयोग होता है। कवियों ने इनके रूपों के साथ-साथ नित्यसंबंधी सर्वनामों—'ते', 'से' (मूल रूप), 'तिन'—(विकृत रूप) और 'तिन्हैं' (अन्य रूप) का भी स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है। अतएव उनके द्वारा प्रयुक्त एकवचन के समान बहुवचन रूपों की संख्या भी पर्याप्त हो गयी है।

१. कर्त्ताकारक—इस कारक में उन, उनि, तिन, तिनि, ते, वे और वै—ये सात बहुवचन रूप प्रयुक्त हुए हैं जो विभक्तिरहित ही हैं। इनमें 'ते' और 'वै' का प्रयोग कवियों ने खूब किया है।

अ. उन—जोग पंथ करि उन तनु तजे। अबिगत की गति उन नहिं जानी।

आ. उनि—नंद-सुवन मति ऐसी ठानी, उनि घर लोग जगाये।

इ. तिन—द्वारपाल जय-बिजय हुते बरज्यो तिनकौं तिन। तिन (ब्रह्मा) कैं हित तप कीन्हौं।

ई. तिनि—भोजन बहु प्रकार तिनि दीन्हौं।

उ. ते—ते हरि पद कौं या बिधि पावैं। कपिलाश्रम कौं ते पुनि गए। ते निकसीं देति असीस। ऐसे और पतित अवलंबित ते छिन माहिं तरे।

ऊ. वे—जोहत हैं वे पंथ तिहारो।

२. कर्मकारक—इस कारक में प्रयुक्त रूप भी संख्या में कर्त्ताकारक के समान ही हैं। इनको मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित और ख. विभक्तिसहित।

क. विभक्तिरहित रूप—उनि, तिन, तिनि, तिन्ह, तिन्हैं और ते—ये छह रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें अन्तिम दोनों रूपों का प्रयोग अधिक किया गया है।

अ. उनि—भली करी उनि (उनको) स्याम बँधाए।

आ. तिन—ब्रह्मा तिन लै सिव पहँ आए।

इ. तिनि—लखि सरूप रथ रहि नहिं सकिहौं, तिनि धरिहौं धर धाइ।

ई. तिन्ह—भरत सत्रुहन कियौ प्रनाम, रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ।

उ. तिन्हैं—इनके पुत्र एक सौ मुए। तिन्हैं बिसारि सुखी ये हुए। नैन कमल दल से अनियारे। दरसत तिन्हैं कटैं दुख भारे। कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ। कोप-दृष्टि करि तिन्हैं जरायौ।

ऊ. ते—अष्टसिद्धि बहुरौ तहँ आईं। रिषभदेव ते मुँह न लगाईं। श्री रघुनाथ लछन ते मारे। बिधि कुलाल कीन्हें काँचे घट ते तुम आनि पकाए।

ख. विभक्तियुक्त रूप—उनकौं, उनहिं और तिनकौं—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 'उनकौं' और 'तिनकौं' का प्रयोग अधिक किया गया है।

अ. उनकौं—उनकौं मारि तुरत मैं कीन्हौं मेघनाथ सौं रारि। वे हैं काल तुम्हारे प्रगटे, काहैं उनकौं राखत। सूर उनकौं देखिहौं मैं एक दिवस बुलाइ।

आ. उनहिं—आपुन खीझैं उनहिं खिझावैं। आजु-कालिह अब उनहिं बुलाऊँ।

इ. तिनकौं—अर्ध निसा तिनकौं लै गयौ। द्वारपाल

जय-विजय हुते, बरज्यौ तिनकौं तिन। तट ठाढ़े जे सखा संग के, तिनकौं लियौ बुलाई।

३. करणकारक—इस कारक में लगभग दस रूप मिलते हैं जिनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित रूप, ख. विभक्तियुक्त रूप और ग. अन्य रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—इस वर्ग का एक रूप है 'तिन्हैं'; जैसे—तिन्हैं कह्यौ, संसार में असुर होउ अब जाई। आज्ञा होइ, जाहिं पाताल। जाहु, तिन्हैं भाष्यौ भूपाल।

ख. 'सौं' विभक्तियुक्त रूप—उनसौं, तिनस , तिनि सौं—ये मुख्य रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें से प्रथम दो का प्रयोग सर्वत्र मिलता है; शेष दो कहीं-कहीं ही दिखायी देते हैं।

अ. उनसौं—माता पिता पुत्र तिहिं जानैं। वहऊ उनसौं नातौ मानैं। मैं उनसौं (भक्तों से) ऐसी नहिं कही। भोर दुहौं जनि नंद दुहाई, उनसौं कहत सुनाइ।

आ. तिनसौं—हरि तिनसौं कह्यौ आइ, भली सिच्छा तुम दीनी। सुत-कलत्र कौं अपनौं जानैं। अरु तिनसौं ममत्व बहु ठानैं। सिव-निंदा करि तिनसौं भाष्यौ। पग दिए तीरथ जैबे काज। तिनसौं चलि नित करै अकाज।

तिनि सौं—ठाढ़े सूर-बीर अवलोकत, तिनिसौं कहौं न तोरै।

ग. अन्य रूप—'तैं' विभक्ति से बने दो रूप—उनतैं और तिनतैं—इस वर्ग में आते हैं। इनमें से द्वितीय का प्रयोग अधिक किया गया है।

अ. उनतैं—उनतैं कछू भयौ नहिं काजा।

आ. तिनतैं—भैया, बंधु, कुटुंब घनेरे तिनतैं कछू न सरी। तिनतैं पंचतत्व उपजायौ। जद्दपि रानी बरीं अनेक। पै तिनतैं सुत भयौ न एक।

४. संप्रदानकारक—इस वर्ग में सात-आठ रूप हैं जिनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित रूप और ख. विभक्तिसहित रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—तिन, तिनि और तिन्ह—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं।

अ. तिन—सबै कूर मोसौं रिन चाहत, कहौ कहा तिन दीजै।

आ. तिनि—जज्ञ-काज मैं तिनि दुख दयौ।

इ. तिन्ह—ब्रह्म प्रगटि दरस तिन्ह दीन्हौ।

ख. विभक्तियुक्तरूप—इस वर्ग में मुख्य तीन रूप मिलते हैं—उनकौं, उनहिं और तिनकौं। इनमें प्रथम और तृतीय रूपों का प्रयोग अधिक किया गया है; द्वितीय का कम।

अ. उनकौं—सरबस दीजै उनकौं। सो फल उनकौं तुरत दिखाऊँ। ज्वाब कहा मैं देहौं उनकौं। सूर स्याम उनकौं भए भोरे, हमकौं निठुर मुरारी।

आ. उनहिं—वहै बकसीस अब उनहिं दैहैं। यह तौं जाइ उनहिं उपदेसहु।

इ. तिनकौं—राज रवनि गाईं ब्याकुल ह्वै, दै दै तिनकौं धीरज। नारायन तिनकौं दियौ। गोपीगन प्रेमातुर, तिनकौं सुख दीन्हौं।

५. अपादानकारक—इस कारक में केवल दो मुख्य रूप मिलते हैं—उनतैं और तिनतैं।

अ. उनतैं—हौं उनतैं न्यारौ करि डारचौ, इहिं दुख जात मरचौ।

आ. तिनतैं—ब्याध-गीध अरु पतित पूतना तिनतैं बड़ौ जु और।

६. संबंधकारक—इस कारक में केवल दस-ग्यारह रूप मिलते हैं। इनको चार वर्गों में रखा जा सकता है—क. विभक्ति रहित रूप। ख. 'की' युक्त रूप। ग. 'के' युक्त रूप और घ 'कौं' युक्त रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—इस वर्ग में केवल दो रूप—उन और तिन—आते हैं।

अ. उन—सूर कछू उन हाथ न आयौ, लोभ-जाग पकरे।

आ. तिन—कौनहुँ भाव भजै कोउ हमकौं, तिन तन ताप हरै री।

ख. 'की' युक्त रूप—उनकी और तिनकी—ये दो रूप इस वर्ग के हैं—

अ. उनकी—उनकी करनी। उनकी दीनता। उनकी करति बड़ाई। उनकी बिचवानी। उनकी सोच।

आ. तिनकी—तिनकी कथा। तिनकी गति। संगति करि तिनकी। तिनकी करी सहाइ।

ग. 'के' युक्त रूप—उनके, तिनिके और तिनके—केवल ये तीन प्रमुख रूप इस वर्ग में मिलते हैं। प्रयोग की दृष्टि से प्रथम दो रूप महत्व के हैं जो सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं।

अ. उनके—उनके काम। समाचार सब उनके। उनके अगम सरीर। उनके सुख।

आ. तिनके—तिनके कलिमल। तिनके बंधन। तिनके बचन। भाग हैं तिनके।

इ. तिनिके—गुन जानौं मैं तिनिके।

घ. 'कौ' युक्त रूप—उनकौ और तिनकौ, इस वर्ग में केवल दो रूप आते हैं। इनमें से प्रथम की अपेक्षा दूसरे का प्रयोग अधिक मिलता है।

अ. उनकौ—उनकौ आसरौ।

आ. तिनकौ—दोष तिनकौ। तिनकौ नाम। तिनकौ प्रेम।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में तेरह-चौदह रूप मिलते हैं जिनको चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित रूप। ख. 'पर' या 'पै' युक्त रूप। ग. 'मैं' युक्त रूप और घ. अन्य रूप।

क. विभक्तिरहित रूप—उनकैं और ताकैं—ये दो रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें प्रथम तो बहुवचन रूप है ही, परंतु द्वितीय, 'ताकैं', एकवचन है जिसका प्रयोग कवियों ने अपवादस्वरूप बहुवचन में किया है।

अ. उनकैं—रैनि-दिन मम भक्ति उनकैं कछू करत न आन।

आ. ताकैं—स्रवन सुनि-सुनि दहैं, रूप कैसैं लहैं, नैन कछु गहैं, रसना न ताकैं।

ख. 'पर' या 'पै' विभक्तियुक्त रूप—उन पर, तिन पर और तिन पै—तीन रूप इस वर्ग में आते हैं। इनके प्रयोग भी कहीं-कहीं ही मिलते हैं।

अ. उन पर—सघन गुंजत बैठि उन पर भौरहूँ बिरमाहिं। ऐसी रिसि आवति है उन पर।

आ. तिन पर—सासु ननद तिन पर झहरैं। तिन पर क्रोध कहा मैं पाऊँ।

इ. तिनपै—बहुरि तातौ कियौ, डारि तिनपै दियौ।

ग. 'मैं' विभक्ति युक्त रूप—उनमैं और तिनमैं, ये दो रूप ही इस वर्ग में मिलते हैं—

अ. उनमैं—तिनमैं अजामील गनिकादिक, उनमैं मैं सिरमौर। उनमैं नित उठि होइ लराई। एक सखी उनमैं जो राधा, लेति मनहिं जु चुराइ। उनमैं पाँचौं दिन जौ बसियै।

आ. तिनमैं—और हैं आजकल के राजा तिनमैं मैं सुलतान। तिनमैं सती नाम बिख्यात। तिनमैं नव-नव खँड अधिकारी। षट्रस के पकवान धरे सब तिनमैं रुचि नहिं लावत।

घ. अन्य विभक्तियुक्त रूप—उन माँझ, तिन माहिं और तिनहिं पाहीं—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. उन माँझ—मनहुँ उलटि उन माँझ समानी।

आ. तिन माहिं—पै तिहिं रिषि-दृग जाने नाहिं, खेलत सूल दिये तिन माँहिं।

इ. तिनहिं पाहीं—स्याम बलराम यह नाम सुनि ताम मोहिं, काहि पठवहुँ जाइ तिनहिं पाहीं।

सारांश—पुरुषवाचक अन्यपुरुष और निश्चयवाची दूरवर्ती बहुवचन सर्वनामों के जो जो रूप विभिन्न कारकों में प्रयुक्त हुए हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्ति रहित रूप	विभक्ति युक्त रूप
कर्त्ता	(उन), (उनि), (तिन), (तिनि), ते, (वे), वै	....
कर्म	(उनि), (तिन), (तिनि), (तिन्ह), तिन्हैं, ते	उनकौं, (उनहिं), तिनकौं, (तिनहिं), (तिहिं)।
करण	(तिनहिं), (तिन्हैं)	उनसौं, तिनसौं, (तिनिसौं), (उनतैं), तिनतैं।
संप्रदान	(उन), (ताहि),	उनकौं, उनहिं,

	(तिनि), (तिन्ह)	तिनकौं, तिनहिं ।
अपादान	....	(उनतैं), (तिनतैं)
संबंध	(उन), (तिन)	उनकी, तिनकी, उनके, तिनके, तिनिके, उनकौ, तिनकौ ।
अधिकरण	(उनतैं), (ताकैं), तिनकैं	उन पर, (तिन पै) तिन पर, उनमैं, तिनमैं, (उन माँझ), (तिन माँहि), (तिनहिं पाहीं) ।

निश्चयवाची : निकटवर्ती—

ब्रजभाषा में इस सर्वनाम के एकवचन और बहुवचन में मूल और विकृत रूप इस प्रकार होते हैं—

रूप	एकवचन	बहुवचन
मूल	यह	ये; ए
विकृत	या	इन
अन्य	याहि	इन्हैं

एकवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

कर्त्ताकारक—इस कारक में पाँच-छह—इन, इहिं, ए, एह, ये आदि -- रूपों का प्रयोग किया गया है । ये सभी विभक्तिरहित हैं । इनमें से तृतीय का प्रयोग तो कहीं-कहीं मिलता है; शेष चारों सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं ।

अ. इन—इन (प्रहलाद) तौ रामहिं राम उचारे । दूतन कह्यौ, बड़ौ यह पापी । इन तौ पाप किये हैं धापी । बिप्र जन्म इन (अजामिल) जूवैं हारचौ । घूँघट-पट बदन ढाँपि, काहैं इन (यह नारि) राख्यौ (री) ।

आ. इहिं—इहिं मोसौं करी ढिठाई । पूँछ चाँपी इहिं मेरी । सखी सखी सौं कहति बावरी इहिं हमकौं निदरी । बहुत अचगरी इहिं करि राखी ।

इ. ए—कोटि चंद वारौं मुख-छबि पर ए (कृष्ण) हैं साहु कै चोर ।

ई. यह—यह अति हरिहाई । जौ यह बधू होइ काहू की । जौ यह संजीवनि पढ़ि जाइ । डसै जिनि यह काहु ।

उ. ये—न ये (भगवान) देखिकै मोहिं लुभाए । कबहुँ कियैं भक्ति के न ये (भगवान) रीझहीं । नंदहुँ तैं ये (कृष्ण) बड़े कहैहैं । वृंदावन वै सिसु तमाल, ये (प्रिया) कनकलता-सी गोरी ।

२. कर्मकारक—इस कारक में भी छह-सात रूप मिलते हैं जिनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. विभक्तिरहित और ख. विभक्तियुक्त प्रयोग ।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—इस वर्ग में मुख्य रूप हैं—इन्हैं, इहिं, यह और याहि । इनमें से 'इहिं' और 'याहि' के कर्मकारकीय प्रयोग सर्वत्र मिलते हैं; शेष दोनों बहुत कम दिखायी देते हैं ।

अ. इन्हैं—अब तौ इन्हैं (कृष्ण को) जकरि धरि बाँधौं ।

आ. इहिं—पर्वत सौं इहिं देहु गिराई । देखौ महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिं कारैं खाई । इहिं तू जनि बरजै री ।

इ. यह—कलिजुग मैं यह सुनिहै जोइ ।

ई. याहि—हरि, याहि सँहारौ । याहि अन्हवावहु । याहि मत मारौ । याहि मारि, तोहिं और बिबाहौं ।

ख. विभक्तियुक्त प्रयोग—इनकौं, इनहिं और याकौं—केवल ये तीन रूप ही इस वर्ग में आते हैं—

अ. इनकौं—को बाँधै को छोरै इनकौं (स्याम कौं) । मैया री, तू इनकौं (राधा को) चीन्हति ।

आ. इनहिं—कछु संबंध हमारौ इनसौं, तातैं इनहिं (स्याम-सखिहिं) बुलाई हैं । एक सखी कहै, इनहिं (स्यामहिं) नचावहु । इनहिं (कन्हाई को) तृना लै गयौ उड़ाई ।

याकौं—याकौं पावक भीतर डारौ । तातैं अब याकौं मति जारौ । को है याकौं मेटनहारौ । देखैं कहूँ नैन भरि याकौं ।

३. करणकारक—इस कारक में पाँच-छह रूप ही मिलते हैं जिनमें कुछ विभक्तिरहित हैं और कुछ विभक्तियुक्त ।

क. विभक्तियुक्त प्रयोग—इनि और याहि—केवल ये दो रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. इनि—भवन लै इनि भेद बूझौं, सुनौं बचन रसाल ।

आ. याहि—कहौ याहि किन बाँस जाति की, कौनैं तोहि बुलाई । जबहीं यह कहौंगो याहि ।

ख. विभक्तियुक्त प्रयोग—इनतैं, इनसौं, इनहिं और यासौं—ये चार रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें से चतुर्थ का तो कम, परंतु शेष तीनों रूपों का अधिक प्रयोग किया गया है।

अ. इनतैं—इनतैं (कृष्ण से) हम भए सनाथा। और भयौ इनतैं (राधा तैं) तुमकौं सुख।

आ. इनसौं—कतहिं रिसाति जसोदा इनसौं (कृष्ण से)। कान्ह कह्यौ, कछु माँगहु इनसौं। (गिरि देवता सौं)। जब तैं इनसौं (राधा से) नेह लगायौ।

इ. इनहिं—इनहिं (जसोदहिं) कहन दुख आइयै ये सब-कौं उठति रिसाइ।

ई. यासौं—यासौं हमरौ कछु न बसाइ। यासौं मेरौ नहीं उबार। चतुर चतुरई फबै न यासौं। बात कहत न बनत यासौं।

४. संप्रदानकारक—इस कारक में प्रयुक्त मुख्य तीन रूप मिलते हैं—इन्हैं, इहिं और याकौं। इनमें से अंतिम का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है।

अ. इन्हैं—पै न इच्छा है इन्हैं (भगवान को) कछु वस्तु की।

आ. इहिं—एक बेर इहिं (नृपहिं) दरसन देई।

इ. याकौं—जज्ञ भाग याकौं नहिं दीजै। याकौं आपन रूप जनाऊँ। वृथा दई हम याकौं गारी।

५. अपादानकारक—इस कारक में मुख्य दो रूप मिलते हैं—इनतैं और यातैं। इनमें दूसरे का प्रयोग अधिक किया गया है।

अ. इनतै—इनतैं प्रभु नहिं और बियौ।

आ. यातैं—साधु न यातैं और। अब लौं जानी बाँस बसुरिया, यातैं और न बंस। भली न यातैं कोई। घर है यातैं दूनौ।

६. संबंधकारक—इस कारक के अंतर्गत सीधे-सादे बारह प्रयोग मिलते हैं जिनमें 'की', 'के' और 'कौ' के संबंधकारकीय रूप बनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त अप-वादस्वरूप 'केरी' का प्रयोग कहीं-कहीं दिखायी देता है। इस प्रकार इस कारक के सर्वनाम-रूपों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. 'की' युक्त प्रयोग। ख. 'के' युक्त प्रयोग। ग. 'केरी' युक्त प्रयोग और घ. 'कौ' युक्त प्रयोग।

क. 'की' युक्त प्रयोग—इनकी और याकी—ये दो रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. इनकी—इनकी (कृष्ण की) खोज। इनकी (बिरहिनी की) चालहि। इनकी (कंस की) मीच। होवै जीति बिधाता इनकी।

आ. याकी—याकी अस्तुति। अकथ कथा याकी। याकी करनी। याकी अकथ कहानी। याकी मति। याकी सींवा।

ख. 'के' युक्त रूप—इनके और याके—ये दो रूप इस वर्ग में मिलते हैं। इनमें द्वितीय का प्रयोग अधिक किया गया है।

अ. इनके—इनके (कृष्ण के) गुन अगमैया। गुन इनके (कृष्ण के)।

आ. याके—याके उत्पात। याके चरित। ढंग याके। नन याके।

ग. केरी युक्त प्रयोग—इस वर्ग में केवल एक रूप आता है—इहिं केरी। इसका प्रयोग अपवादस्वरूप ही मिलता है; जैसे—महिमा कौ जानै इहिं केरी।

घ. 'कौ' युक्त रूप—इस वर्ग के प्रमुख रूपों की संख्या दो है—इहिं कौ और याकौ। इनमें द्वितीय का प्रयोग अधिक मिलता है।

अ. इहिं कौ—पुरुषारथ इहिं कौ।

आ. याकौ—तनु याकौ। क्रूर याकौ नाम। बाँस कुल याकौ। मोल नहिं याकौ।

७. अधिकरणकारक—इस कारक के आठ-नौ रूप मिलते हैं—इन, इन पर, इन माहिं, इन माहीं, इहिं महियाँ, याकैं, या पर, यामैं, याहि पर। 'इन पर' और 'यामै' को छोड़कर सभी रूप बहुत कम मिलते हैं।

अ. इन—सुरभि-ठान लिये बन तैं आवत, सबहिं सुत इन री।

आ. इन पर—तन-मन इन पर (हरि पर) सब वारहु। लकुट लै लै त्रास कीन्हौ, करयौ इन पर ताम। सूर-दास इन पर हम मरियत, कुबिजा के बस केसौ।

इ. इन माहिं—बहुरि भगवान कौं निरखि कह्यौ, इन माहिं गुन हैं सुभाए ।

ई. इन माहीं—ये तौ भए भावते हरि के, सदा रहत इन माहीं ।

उ. इहिं महियाँ—ना जानौं का है इहिं महियाँ लै उर सौं लपटावैं ।

ऊ. याकैं—हम आईं याकैं जिहिं कारन, सो यह प्रगट सुनावति । प्रेम-भजन न नैंकु याकैं ।

ऋ. या पर—या पर मैं रीझी हौं भारी ।

ए. यामैं—अपनौ बिरद सम्हारहुगे तौ यामैं सब निबरी । हरि गुरु एक रूप नृप जान । यामैं कछु संदेह न आन । बन की रहनि नहीं अब यामैं, मधु हीं पागि गई ।

ऐ. याहि पर—कमल-भार याहि पर लादौं ।

सारांश—निश्चयवाची निकटवर्ती सर्वनाम के विभिन्न कारकों में जो रूप प्रयुक्त हुए हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तिसहित रूप
कर्त्ता	इन, इहिं, (ए), यह, ये	....
कर्म	(इन), (इन्हैं), इहिं, (यह), (इनि), याहि	इनकौं, इनहिं, याकौं
करण	(इनि), याहि	(इनतैं), (इनपै), इनसौं (इनहिं), यासौं
संप्रदान	(इन्हैं), (इहिं)	याकौं
अपादान	....	(इनतैं), यातैं
संबंध	....	इनकी, याकी, (इनके), याके, (इहिं केरी), (इनको), (इहिं कौ), याकौ
अधिकरण	इन	इन पर, (इन माहिं), इन माहीं), (इहिं महियाँ), याकैं, (या पर), यामैं ।

बहुवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

निश्चयवाची : दूरवर्ती सर्वनाम रूपों की तुलना में निकटवर्ती बहुवचन रूपों की संख्या कम है; फिर भी विभिन्न कारकों में बीस के लगभग रूपों का प्रयोग किया गया है। इनमें से प्रमुख रूपों के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

१. कर्त्ताकारक—इन, इनि और ये—ये तीन विभक्तिरहित रूप इस वर्ग में आते हैं जिनका प्रयोग सर्वत्र हुआ है—

अ. इन—एकै चीर हुतौ मेरे पर सो इन हरन चह्यौ । धन्य ब्रत इन कियौ पूरन । इन दीन्हौ मौकौं बिसराई । सूरदास ये लरिका दोऊ इन कब देखे मल्ल-अखारे ।

आ. इनि—इनि तव राज बहुत दुख पाए । इनि मोकौं नीकैं पहिचान्यौ । चूक लई इनि मानि । निकसे स्याम सदन मेरे तैं इनि अँटकरि पहिचानी ।

इ. ये—करत जज्ञ ये नास । ये सुकृत-धनहिं परिहरैं । ये बन फिरति अकेली ।

२. कर्मकारक इस कारक में मुख्य पाँच रूप मिलते हैं जिनमें तीन विभक्तिरहित हैं और दो विभक्तियुक्त ।

अ. इन—जसुदा कहै सुनौ सुफलकसुत, मैं इन बहुत दुखनि सौं पारे ।

आ. इन्हैं—बिष्णु, रुद्र, बिधि एकहिं रूप । इन्हैं जानि मति भिन्न स्वरूप । अबहीं आजु इन्हैं उद्धारौं ये हैं मेरे निज जन । राखौं नहीं इन्हैं भूतल पर ।

इ. ये—चारि स्लोक कहे भगवान, ये ब्रह्मा सौं कहे भगवान । मैं तौ जे हरे हैं, ते तौ सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनैं आन ।

ई. इनकौं—कै इनकौं निरधार कीजिए, कै प्रन जात टरौ । लक्ष्मी इनकौं सदा पलोवै । इनकौ ह्यां तैं देहु निकास । पै प्रभु जू इनकौं निस्तारौ ।

उ. इनहिं—काहूँ इनहिं दियौ बहकाइ । आँजति इनहिं बनाइ । मारि डारौ इनहिं ।

३ करणकारक—इन, इनतैं, इनसौं और इनहिं—ये मुख्य चार रूप इस कारक में मिलते हैं । प्रयोग की दृष्टि से केवल द्वितीय और तृतीय रूप महत्व के हैं—

अ. इन—बृथा भूले रहत लोचन इन कहै कोउ बात ।

आ. इनतैं—इनतैं कछु न सरी । इनतैं कछू न खूटै । इनतैं प्रगटी सृष्टि अपार ।

इ. इनसौं—काल्हि कही मैं इनसौं बैसे । ऐसैं बचन

कहौंगी इनसौं, अब इनसौं वह भेद कियौ कछु। इनसौं तुम परितीत बढ़ावत।

ई. इनहिं—अबहिं मोहिं बूझिहैं, इनहिं कहिहौं कहा।

४. संप्रदानकारक—इनकौं और इनहिं—ये मुख्य दो रूप संप्रदानकारक में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें प्रथम का प्रयोग अधिक है, द्वितीय का कम।

अ. इनकौं—इनकौं वै सुखदाई। जो कीजै सो इनकौं थोर। कछुक दियौ सुहाग इनकौं, तो सबै ये लेत।

आ. इनहिं—व्रत-फल प्रगट इनहिं दिखरावौं।

५. अपादानकारक—इनतैं, इनसौं और इनितैं—ये तीन रूप इस कारक में मिलते हैं। इनमें केवल प्रथम रूप ही अधिक प्रयुक्त हुआ है।

अ. इनतैं—दृढ़ न इनतैं आन। इनतैं बड़ौ और नहिं कोऊ। कृपिन न इनतैं और।

आ. इनसौं—यह मन करि जुवतिनि हेरत, इनसौं करिये गोप तबै।

इ. इनि तैं—इनि तैं लोभी और न कोई।

६. संबंधकारक—इनकी, इनके और इनकौ—ये सामान्य रूप इस कारक में सर्वत्र मिलते हैं—

अ. इनकी—इनकी गति। चतुराई इनकी। निठुराई इनकी। इनकी लँगराई। सेवा इनकी।

आ. इनके—इनके कर्म। चरित इनके। इनके चीर। इनके पितु-मातु। इनके बिमुख वचन।

इ. इनकौ—इनकौ कह्यौ। इनकौ गुन-अवगुन। दुख इनकौ। इनकौ बदन। बार न खसै इनकौ। व्रत देखि इनकौ।

७. अधिकरणकारक—इनकैं, इन पर, इन पै, इनमैं—ये चार मुख्य रूप इस कारक में मिलते हैं। इनमें सबसे अधिक प्रयोग 'इनमैं' का किया गया है।

अ. इनकैं—इनकैं नैंकु दया नहीं। सोच-विचार कछू इनकैं नहिं।

आ. इन पर—सूर स्याम इन पर कह रीझे। कंस.... करत इन पर ताम।

इ. इन पै—नितही नित बूझति ये मोसौं, मैं इन पै सतराति।

ई. इनमैं—इनमैं कछू नाहिं तेरौ। तपसियनि देखि कह्यौ, क्रोध इनमैं बहुत। इनमैं को पति आहि तिहारौ। धिक इन गुरुजन कौं, इनमैं नहीं बसीजै।

सारांश—निश्चयवाची : निकटवर्ती सर्वनाम-रूपों के विभिन्न कारकों में जो प्रयोग ऊपर दिये गये हैं; संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	(इन), इनि, ये	....
कर्म	(इन), इन्हैं, ये	इनकौं, इनहिं
करण	....	इनतैं, इनसौं, (इनहिं)
संप्रदान	....	इनकौं, (इनहिं), (इनहीं),
अपादान	....	इनतैं, (इनसौं), (इनि तैं)
संबंध	....	इनकी, इनके, इनकौ
अधिकरण	....	इनकैं, इन पर, (इनपै), इनमैं

संबंधवाचक—

व्रजभाषा में संबंधवाचक सर्वनाम के एकवचन और बहुवचन मूल, विकृत और अन्य रूप इस प्रकार होते हैं—

रूप	एकवचन	बहुवचन
मूल	जो	जे
विकृत	जा	जिन
अन्य	जाहि, जिह, जासु	जिन्हैं, जिन्हैं

एकवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

१. कर्ताकारक—जिन, जिनहिं, जिनि, जिहिं, जु, जो, जोइ, जोई और जौन—ये नौ रूप इस वर्ग में आते हैं। ये सभी विभक्तिरहित हैं और इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि 'जोई' के अतिरिक्त शेष आठों रूपों का प्रयोग सर्वत्र किया गया है।

अ. जिन—बिदुर कह्यौ, देखौ हरि माया। जिन यह सकल लोक भरमाया। धन्य धन्य कंसहि मोहिं जिन पठायौ। जिन पहिलैं पलना पौढ़े, पय पिवत पूतना घाली। यह लै देहु ताहि फिरि मधुकर, जिन पठए हित गाइ।

आ. जिनहिं—भले जु भले नंदलाल, वेऊ भली, चरन जावक पाग जिनहिं रँगी। जानति हैं तुम जिनहिं पठाए। बूझौ जाइ जिनहिं तुम पठए।

इ. जिनि—धन्य जसोदा भाग तिहारौ जिनि ऐसौ सुत जायौ। सखी री, मुरली लीजै चोरि, जिनि गोपाल कीन्है अपनै बस। धन्य-धन्य जिनि तुम सुत पायौ।

ई. जिहिं—गोपाल तुम्हारी माया महाप्रबल जिहिं सब जग बस कीन्हौ हो। प्रहलाद हित जिहिं असुर मारयौ। जठर अगिनि अंतर उर दाहत जिहिं दस मास उबारयौ।

उ. जु—ताहू सकुच सरन आए की होत जु निपट निकाज। वा भौंह की छबि निरखि सु को जु न ब्रत तैं टरै।

ऊ. जो—मन बानी कौं अगम-अगोचर सो जानै जो पावै। पोषन भरन बिसंभर साहब जो कलपै सो कांचौ। सूरदास जो चरन-सरन रह्यौ सो जन निपट नींद भरि सोयौ।

ए. जोइ—ताहि कैं हाथ निरमोल नग दीजियै जोइ नीकै परखि ताहि जानै। कलिजुग में यह सुनिहै जोइ। नहीं त्रिलोकी ऐसौ कोइ। भक्तनि कौं दुख दै सकै जोइ।

ऐ. जोई—सात बैल ये नाथै जोई।

ओ. जौन—स्याम कौं तुम ऐसैं ठग लियौ, कछु न जानै जौन। ठगत-फिरत जुवतिनि कौं जौन। जाकैं हृदय जौन, कहै मुख तैं तौन। बार-बार जननी कहि मोसौं माँखन मागत जौन।

२. कर्मकारक—इस कारक में सात रूप मिलते हैं जिनको दो वर्गों में रखा जा सकता है—क. विभक्ति-रहित और ख. विभक्ति युक्त।

क. विभक्तिरहित प्रयोग— जाहि, जिहिं, जो और जोई—ये चार रूप इस वर्ग में मिलते हैं—

अ. जाहि—वेद-पुरान-सुमृत सबै रे सुर-नर सेवत जाहि। नंद-घरनी जाहि बाँध्यौ। अति प्रचंड यह मदन महा-भट, जाहि सबै जग जानत।

आ. जिहिं—असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई। तुमतैं को है भावती, जिहिं हृदय बसाऊँ।

इ. जो—जो प्रभु अजामील कौं दीन्हौ सो पाटौ लिखि पाऊँ। ब्यास कह्यौ जो, सुक सो गाई।

ई. जोइ—इंद्री-रस-बस भयौ, भ्रमत रह्यौ, जोइ कह्यौ सो कीनौ। जोइ में कहौं, करौ तुम सोई।

ख. विभक्तियुक्त प्रयोग—जाकौं और जिनकौं—इन रूपों में से अंतिम का कम और प्रथम का अधिक प्रयोग किया गया है—

अ. जाकौं—जाकौं दीनानाथ निवाजैं। जाकौं हरि अंगी-कार कियौ। उलटी गाढ़ परी दुर्बासैं, दहत सुदरसन जाकौं। जाकौं देखि अनंग अनंगत।

आ. जिनकौं—ब्रह्मादिक खोजत नित जिनकौं (हरि कौं)। मैं जिनकौं (स्याम कौं) सपनेहुँ नहिं देख्यौ।

३. करणकारक—इस कारक में मुख्य तीन रूप मिलते हैं जिनमें 'जिहिं' विभक्तिरहित है एवं 'जातैं' और 'जासौं' विभक्तियुक्त हैं। इनमें से विभक्तियुक्त दोनों प्रयोग तो सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं, प्रथम का प्रयोग कम मिलता है।

अ. जिहिं—देहु मोहि ज्ञान जिहिं सदा जीजै।

आ. जातैं—देवदूत कह, भक्ति सो कहियै, जातैं हरिपुर-बासा लहियै। ज्यौं नृप प्रान गए सुत अपनैं, राँचि रह्यो जो जातैं।

इ. जासौं—ऐसौ को पर-बेदन जानै, जासौं कहि जु सुनावैं। धन्य-धन्य जासौं अनुरागे। मोसी और कौन प्रिय तेरैं, जासौं प्रेम जनावैगी। जासौं हित ताकी गति ऐसी।

संप्रदानकारक—जाकौं, जाहि और जिहिं—केवल तीन रूप इस कारक में मिलते हैं जिनका भी प्रयोग कम किया गया है—

अ. जाकौं—जाकौं राजरोग कफ ब्यापत।

आ. जाहि—अति सुकुमार डोलत रस भीनौं, सो रस जाहि पियावै हो।

इ. जिहिं—सूरदास बलि गयौ राम कैं निगम नेति जिहिं गायौ।

५. अपादानकारक—इस कारक में 'जातैं'

या 'जिहिं तैं'—जैसे रूप हो सकते हैं, परन्तु इनके प्रयोग नहीं मिलते।

६. संबंधकारक—इस कारक में ग्यारह-बारह मुख्य रूप मिलते हैं जिनमें कुछ विभक्तिरहित हैं और कुछ विभक्तियुक्त।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—जा, जासु और जाहि—ये तीन प्रयोग इस वर्ग में आते हैं। इनमें सबसे कम प्रयोग 'जासु' का किया गया है।

अ. जा—जा उर। जा मन। जा सदन।

आ. जासु—तन अभिमान जासु।

इ. जाहि—राधा है जाहि नाम। जाहि मन। मन जाहि।

ख. विभक्तियुक्त रूप—इस वर्ग में 'की' युक्त जाकी, जाहिकी, जिनकी; 'के' युक्त जाके, जिनके; 'केरौ' युक्त जा केरौ; और 'कौ' युक्त जाकौ, जिनकौ, जिनिकौ आदि आते हैं। इनमें से 'जाहि की', 'जा केरौ' और 'जिनकौ' का प्रयोग कम हुआ है, 'जिनके' और 'जिनकौ' का प्रयोग कुछ अधिक है, शेष रूप सर्वत्र मिलते हैं।

अ. जाकी—उत्पत्ति जाकी। जाकी घरनि। तिया जाकी सिया। जाकी रहनि-कहनि। जाकी सीतल छाहिं।

आ. जाहि की—खोटी करनी जाहि की।

इ. जिनकी – रमा जिनकी (कृष्ण की) दासि। जिनकी (कृष्ण की) होति बड़ाई। जिनकी (गिरिधरन की) टेक।

ई. जाके—जाके कुल। जाके गृह। चरन सप्त पताल जाके। जाके सेवक।

उ. जिनके—वे अक्रूर क्रूर कृत जिनके। जिनके (कृष्ण के) गुन। जिनके (कृष्ण के) तुम सखा।

ऊ. जा केरौ—सीतल सिंधु जनम जा केरौ।

ऋ. जाकौ—जाकौ अंत। जाकौ जस। कान्ह जाकौ नाउ।

ए. जिनकौ—जिनकौ (माधौ को) बदन।

ऐ. जिनिकौ—भक्तबछल बानौ जिनिकौ (हरि कौ)।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में दस-ग्यारह मुख्य रूप प्रयुक्त हुए हैं जिनको, विभक्तिरहित और विभक्तियुक्त, दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—जामैं, जाहि और जिहिं—ये तीन रूप इस वर्ग के हैं जिनमें प्रथम दो का प्रयोग कम और अंतिम का अधिक हुआ है।

अ. जामैं—तीनौं गुन जामैं नहिं रहत।

आ. जाहि—बीते जाहि सोइ पै जानै। हमरे मन की सोई जानै जाहि बीती होइ।

ई. जिहिं—इहिं माया सब लोगनि लूटचौ, जिहिं हरि कृपा करी सो छूटचौ। श्री भगवान कृपा जिहिं करै। जिहिं बीतै सो जानैं।

ख. विभक्तियुक्त रूप—इस वर्ग में 'कैं', 'पर', 'पै', 'मैं', 'माहिं' और 'महियाँ' से युक्त जाकैं, जिनकैं, जापर, जिहिं पर, जापै, जामहिं, जिहिं महियाँ और जामैं रूप आते हैं। इन आठ रूपों में से 'जा महिं' और 'जिहिं महियाँ' बहुत कम; 'जिनकैं', 'जिहिं पर' और 'जापै' का सामान्य और शेष रूपों का प्रयोग सर्वत्र किया गया है।

अ. जाकैं[1]—धनि गोकुल, धनि नंद जसोदा जाकैं हरि अवतार लियौ। सूर धन्य तिहिं के पितु-माता, भाव-भगति है जाकैं। तोसी जाकैं बाम। लहनौं ताकौ जाकैं आवै।

आ. जिनकैं—वै प्रभु बड़े सखा तुम उनके, जिनकैं सुगम अनीति।

इ. जापर—जापर दीनानाथ ढरै। जापर कृपा करै करुनामय। धन्य पिता जापर परफुल्लित राघव भुजा अनूप। जापर कह्यौ ताहि पर धावै।

ई. जिहिं पर—सोइ कुलीन बड़ौ सुन्दर सोइ, जिहिं पर कृपा करै।

उ. जापै—प्रेम-कथा सोई पै जानै, जापै बीती होइ।

ऊ. जामहिं—अंतहु सूर सोइ पै प्रगटै, होइ प्रकृति जो जा महिं।

---

१. 'जाकैं' रूप एकवचन है। इसलिए गोकुल, नंद और जसोदा से इसका सम्बन्ध अलग-अलग है। 'जसोदा' शब्द के पूर्व 'धनि' शब्द लुप्त समझना चाहिए—लेखक।

ऋ. जिहिं महियाँ—अब और कौन समान त्रिभुवन सकल गुन जिहिं महियाँ।

ए. जामैं—तीनों गुन जामैं नहिं रहत। ये लुब्धे हैं जामैं। जामैं प्रिय प्राननाथ, नंद-नँदन नाहीं।

ऐ. जिनहिं मैं—सूरदास सोई जन जानै, जिनहिं मैं बीति।

सारांश—संबंधवाचक सर्वमानों के विभिन्न कारकों में प्रयुक्त जिन रूपों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	जिन, जिनहिं, जिनि, जिहिं, जु, जो, (जोई), जौन	....
कर्म	जाहि, जिहिं, जो, जोइ	जाकौं, (जासु कौं), जिनकौं
करण	(जिन), (जिहिं)	जातैं, जासौं, (जाहि सौं,), जाही सौं
संप्रदान	(जाहि), (जिहिं)	(जाकौं)
अपादान	....	....
संबंध	जा, (जासु), जाहि	जाकी, (जाहि की जिनकी, जाके, जिनके, (जा केरी), जाकौ, जिनकौ, (जिनिकौ)।
अधिकरण	जाहि, (जिनहिं), जिहिं	जाकैं, जिनकैं, जापर, (जिहिं पर), जापैं, (जामहिं), (जिहिं महियाँ), जामैं, जिनहिं मैं।

बहुवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

१. कर्त्ताकारक—जिन, जिनि, जे, जेइ और जो—ये रूप इस कारक में मिलते हैं। इनमें सब विभक्ति-रहित हैं। अंतिम 'जो' रूप एकवचन है जिसका अपवाद-स्वरूप प्रयोग बहुवचन में किया गया है। शेष रूपों में 'जे' का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है।

अ. जिन—अंतकाल हरि हरि जिन कह्यौ।

आ. जिनि—जिनि वह सुधा पान सुख कीन्हौ। जिनि पायौ अमृत-घट पूरन।

इ. जे—जे हरि सुरति करावत। जे जाँचे रघुबीर। जे (गैयाँ) चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढ़ीं।

ई. जेइ - अहो नाथ जेइ-जेइ सरन आए, तेइ तेइ भए पावन।

उ. जो—इस एकवचन रूप के साथ प्रयुक्त बहुवचन क्रिया 'सुनै' और 'गावैं' तथा बहुवचन नित्यसंबंधी रूप 'तिनकैं' से स्पष्ट है कि 'जो' का प्रयोग बहु-वचन में ही किया गया है; जैसे—राधा-कृष्न केलि-कौतूहल, स्रवन सुनै, जो गावैं। तिनकैं सदा समीप स्याम नितही आनंद बढ़ावैं।

२. कर्मकारक—जिनकौं, जिहिं और जे—ये तीन रूप कर्मकारक में मिलते हैं जिनका प्रयोग सामान्य रूप से ही किया गया है—

अ. जिनकौं—जिनकौं देखि तरनि-तनु त्रासा।

आ. जिहिं—चारो ओर निसिचरी घेरे नर जिहिं देखि डराहिं।

इ. जे—मैं तो जे हरे हैं, ते तो सोवत परे हैं। गैयाँ धाई जाति सबन के आगे जे बृषभानु दईं। को बरनैं नाना बिधि ब्यंजन, जे बनए नँद-नारि।

३. करणकारक—इस कारक में केवल एक रूप, जिनसौं, मिलता है जिसका प्रयोग अपवादस्वरूप ही दिखायी देता है; जैसे—नाहीं भरत सत्रुहन सुन्दर, जिनसौं चित्त लगायौ।

४. संप्रदानकारक—इस कारक में भी केवल एक प्रमुख रूप मिलता है 'जिनहिं' जिसका प्रयोग सर्वत्र किया गया है; जैसे—ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हौ। सूरदास धिक् धिक् है तिनकौं, जिनहिं न पीर परारी।

५. अपादानकारक—इस कारक में भी केवल एक मुख्य रूप 'जिनहीं' कहीं-कहीं दिखायी देता है; जैसे—जेइ चरन सनकादिक दुरलभ जिनहीं निकसी गंग।

६. संबंधकारक—जाकौ, जिन, जिनकौ, जिनके, जिनकौ और जिनि—ये मुख्य रूप इस कारक में मिलते हैं। इनमें अपवादस्वरूप प्रयोग है 'जाकौ' जो एकवचन होते हुए भी बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। शेष

अ. जाकौ—यह एकवचन है, फिर भी 'हम' के संबंध से स्पष्ट है कि इसका प्रयोग बहुवचन में किया गया है; जैसे—हम (जुवति) कह जोग जानैं, जियत जाकौ रौन।

आ. जिन – बल-मोहन जिन नाऊँ। तेऊ मोहे जिन मति भोरी।

इ. जिनकी— जिनकी आस। बधू हैं जिनकी। सीस की मनि हरी जिनकी। जिनकी यह सब सौंज।

ई. जिनके—जिनके मन।

उ. जिनकौ—जिनकौ जस। जिनकौ प्रिय। जिनकौ मुख।

ऊ. जिनि—सुनि सखि वे बड़भागी मोर। जिनि पाँखनि कौ मुकुट बनायौ, सिर धरि नंदकिसोर।

७. अधिकरणकारक—जिनकैं, जिन माहिं, जिन माहीं—ये तीन रूप इस कारक में मिलते हैं। इनका प्रयोग कहीं-कहीं ही किया गया है; जैसे—

अ. जिनकैं—एक पतिव्रत हरि-रस जिनकैं।

आ. जिन माहिं—ऐसे लच्छन हैं जिन माहिं।

इ. जिन माहीं—हरि सूरत जिन माहीं।

सारांश – संबंधवाची बहुवचन सर्वनाम-रूपों के जो उदाहरण विभिन्न कारकों में ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	(जिन), (जिनि), जे, (जेइ), जो	....
कर्म	(जिहिं), जे	(जिनकौं)
करण	....	(जिनसौं)
संप्रदान	....	(जिनहिं)
अपादान	....	(जिनहीं)
संबंध	(जिन), (जिनि)	(जाकौ), जिनकी (जिनके), जिनकौ।
अधिकरण	....	(जिनकैं), (जिन माहिं), (जिन माहीं)।

नित्यसंबंधी—

ब्रजभाषा में नित्यसंबंधी सर्वनामों के एकवचन और बहुवचन में मूल और विकृत रूप इस प्रकार होते हैं—

रूप	एकवचन	बहुवचन
मूल	सो, सु	ते, से
विकृत	ता	तिन
अन्य	ताहि, तासु	तिनैं, तिन्हैं

एकवचन के कारकीय प्रयोग—

१. कर्त्ताकारक—तिहीं, तौन, सु, से और सो—ये रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें 'सु' का अधिक और शेष रूपों का सामान्य प्रयोग मिलता है।

अ. तिहीं—जिहि सुत कैं हित बिमुख गोबिंद हैं, प्रथम तिहीं मुख जारचौ।

आ. तौन रोकनहारौ नंद महर-सुत, कान्ह नाम जाकौ है तौन।

इ. सु—मैं यह ज्ञान ठगीं ब्रज-बनिता (जो) दियौ सु क्यौं न लहौं। जाकैं लगी होइ सु जानैं। वा भौंह की छबि निरखि नैननि, सु को जु न ब्रत तैं टरै।

ई. से—सूरदास ब्रजनाथ हमारे जे, से भए उदास।

उ. सो—जो कलपै सो काँचौ।

२. कर्मकारक—इस कारक में सात-आठ रूप मिलते हैं जिनमें कुछ विभक्ति से रहित और कुछ उससे युक्त हैं।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—ताहि, तिहिं और सो—ये रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. ताहि—ताहि निसि-दिन जपत रहि जो सकल जीव-निवास। जाकौ मन हरि लियौ स्याम-घन ताहि सम्हारै कौन।

आ. तिहिं - कहत मँदोदरी, मेटि को सकै तिंहिं, जो रची सूर प्रभु होनहारी। जा सँग रैनि बिहात न जानी, भोर भए तिहिं मोचत हौ।

इ. सो—दुख-सुख-कीरति भाग आपनैं आइ परै सौ गहियै। ब्यास कह्यौ जो सुक सौं गाइ। कहौं सो, सुनौ संत चित लाइ।

ख. विभक्तियुक्त प्रयोग—ताकौं, तिनकौं और तिनहिं—ये तीन रूप इस वर्ग में प्रमुख हैं—

अ. ताकौं—निगम नेति नित गावत जाकौं, राधा बस कीन्हौ है ताकौं।

आ. तिनकौं—ब्रह्मादिक खोजत नित जिनकौं। साच्छात देख्यौ तुम तिनकौं।

इ. तिनहिं—बार-बार जननी कहि मोसौं, माखन माँगत जौन, सूर तिनहिं लैबे को आए।

३. करणकारक—तापै, तिहि तैं और तासौं—ये रूप इस कारक के हैं। प्रयोग की दृष्टि से 'तासौं' अपेक्षाकृत अधिक महत्व का है।

अ. तापै—जाको ब्रह्मा अंत न पावै तापै, नंद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै।

आ. तिहि तैं—तिहि तैं कहौ कौन सुख पायौ, जिहि अब लौ अवगाहीं।

इ. तासौं—जा लायक जो बात होइ सो तैसिये तासौं कहिऐ। कहिए तासौं जो होय बिबेकी।

४ संप्रदानकारक—ताइ, ताकौं, ताहि और तिहिं—ये मुख्य रूप संप्रदानकारक में प्रयुक्त हुए हैं। प्रयोग की दृष्टि से इस कारक में 'ताहि' और 'तिहिं' रूप प्रधान हैं।

अ. ताइ—जौ पै कोउ मधुबन लौं जाइ, पतिया लिखी स्याम सुन्दर कौं, कंकन दैहौं ताइ।

आ. ताकौं—जाकौं नाउँ, सवित पुनि जाकी, ताकौं देत मंत्र पढ़ि पानी।

इ. ताहि—जाको मन लाग्यौ नँदलालहिं, ताहि और नहिं भावै हो। जाकौ राजरोग कफ ब्यापत दही खवावत ताहि। यह लै देहु ताहि फिरि मधुकर, जिनि (स्याम) पठए हित गाइ।

ई. तिहिं—हरि हरि हरि सुमिरयौ जो जहाँ, हरि तिहिं दरसन दीन्ह्यौ तहाँ। जाके दरसन कौं जग तरसत दै री नैंकु दरस तिहिं दै री। जोइ-जोइ बसन जाहि मन मान्यौ, सोइ-सोइ तिहिं पहिरायौ।

५ अपादानकारक—इस कारक में केवल एक रूप 'वातें' मिलता है; जैसे—अपनैं कर जो माँग सँवारै........। बार-बार उरजनि अवलोकति 'तातैं' कौन सयानी।

६. संबंधकारक—इस कारक में दस-बारह रूप मिलते हैं जिनमें विभक्तिरहित और विभक्तियुक्त, दोनों हैं।

क. विभक्तिरहित प्रयोग—इस वर्ग में केवल एक रूप 'तासु' आता है जो बहुत कम प्रयुक्त हुआ है; जैसे—सुफल जन्म है तासु, जे अनुदिन गावत-सुनत।

ख. विभक्तियुक्त प्रयोग—उनके, ताकी, ताके, ताकौ, तिनकी, तेहिंके, वाकी—ये सात मुख्य रूप इस वर्ग में आते हैं। इनके संबंध में एक विशेष बात यह है कि इस कारक में प्रयुक्त बहुवचन रूपों का प्रयोग कम और एकवचन का प्रयोग सर्वत्र किया गया है।

अ. उनके—वै प्रभु बड़े सखा तुम उनके, जिनकैं सुगम अनीति।

आ. ताकी—सूर स्याम तजि आन भजै जो ताकी जननी छार। जाकौं हित, ताकी गति ऐसी।

इ. ताके—प्रात जो न्हात अघ जात ताके सकल। राखै रहत हृदय पर जाकौं, धन्य भाग हैं ताके। धनि धनि सूर भाग ताके प्रभु जाकैं सँग बिहरैं।

ई. ताकौ—जो देखै ताकौ मन मोहै। कह्यौ, तुम एक पुरुष जो ध्यायौ, ताकौ दरसन काहु न पायौ। जिन तन-धन मोहिं प्रान समरपे....। ताकौ बिषम बिषाद अहो मुनि, मोपै सह्यौ न जाई।

उ. तिनकी—जिनके तुम सखा साधु, कहौ कथा तिनकी। मैं जिनकौं सपनेहुँ नहिं देख्यौ तिनकी (स्याम की) बात कहति फिरि फेरी।

ऊ. तिहिंके—सूर धन्य तिहिंके पितु-माता, भावभगति हैं जाके।

ए. वाकी—सूरदास जैहै बलि वाकी जो हरि जू सौं प्रीति बढ़ावै।

७. अधिकरणकारक—तामैं, ताहि पर और ताही कैं—ये रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें 'ताहि पर' का प्रयोग कर्मकारकीय से मिलता-जुलता है—

अ. तामैं—तामैं सुनि मधुकर, हम कहा लेन जाहीं, जामैं प्रिय प्राननाथ नँदनदन नाहीं।

आ. ताहि पर—जापर कहौ, ताहि पर धावैं।

इ. ताहीं कैं—ताहीं कैं जाहु स्याम, जाकैं निसि बसे धाम। ताहीं कैं सिधारौ प्रिय, जाकैं रंग राँचे।

सारांश—विभिन्न कारकों में नित्यसंबंधी सर्वनाम

रूपों के जो प्रयोग ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	तिहीं, तौन, (सु), (से), सो	....
कर्म	ताहि, तिहिं, (तौन), तिकौं, तिनकौं, तिनहिं, सो	
करण	....	(तापै), (तिहिं तैं), तासौं
संप्रदान	(ताइ), ताहि, तिनहीं तिहिं	ताकौं
अपादान	....	(वातैं)
संबंध	(तासु)	(उनके), ताकी, ताके ताकौ, (तिनकी) (तिनके), (तिहिं के), (वाकी)।
अधिकरण	....	तामैं

बहुवचन रूपों के कारकीय प्रयोग—

अन्य सर्वनाम-भेदों की तरह नित्यसंबंधी बहुवचन रूपों की संख्या भी एकवचन से कम है; फिर भी बीच-बाइस बहुवचन रूपों का प्रयोग तो कवियों ने किया ही है जिनमें से प्रमुख प्रयोगों के उदाहरण यहाँ संकलित हैं।

१. कर्ताकारक—ते, तिन और तिनि—ये तीन रूप इस कारक में मिलते हैं। इनमें से 'तिनि' का सामान्य और शेष का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है।

अ. ते मैं तो जे हरे हैं, ते तौ सोवत परे हैं।

आ. तिनि—अंतकाल हरि हरि जिन कह्यौ, ततकालहिं तिन हरि-पद लह्यौ। जिनकी आस सदा हम राखैं, तिन दुख दीन्हौ जेत।

इ. तिनि—सूरदास हरि बिमुख भए जे, तिनि केतिक सुख पायौ।

कर्मकारक—इस कारक में केवल एक रूप है 'तिनकौं' जिसका प्रयोग सर्वत्र मिलता है; जैसे—जिनकौं मुख देखत दुख उपजत, तिनकौं राजाराय कहै। (जो) हमसौं सहस बरस हित धरैं, हम तिनकौं छिन मैं परिहरैं। इततैं जुवति जाति जमुना जे, तिनकौं मग मैं परखि रही।

३. करणकारक—उनसौं और तिनसौं—ये दो ही मुख्य रूप इस कारक में मिलते हैं जिनमें द्वितीय का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है; जैसे—

अ. उनसौं—ऐसी बात कहौ तुम उनसौं जे नहिं जानैं-बूझैं।

आ. तिनसौं—सूर कहत जे भजत राम कौं तिनसौं हरि सौं सदा बनी। और गोप जे बहुरि चले घर, तिनसौं कहि ब्रज छाक मँगावत।

४. संप्रदानकारक — तिनकौं और तिनहिं—ये दो मुख्य रूप इस कारक में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें द्वितीय का पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया गया है।

अ. तिनकौं – सूरदास धिक-धिक है तिनकौं जिनहिं न पीर परारी।

आ. तिनहिं—यह निरगुन लै तिनहिं सुनावहु, जे मुड़िया बसैं कासी। यह मत जाइ तिनहिं तुम सिखवहु, जिनहिं आज सब सोहत। यह तौ सूर तिनहिं लै सौंपौ जिनके मन चकरी।

५. अपादानकारक—इस कारक में केवल एक मुख्य रूप मिलता है—'तिनतैं'। इसका प्रयोग भी कहीं कहीं ही हुआ है; जैसे—जरे ऊपर जे लौन लावहिं, कौन तिनतैं बावरो।

६. संबंधकारक—तिनकी, तिनके और तिनकौं—ये तीन मुख्य रूप इस कारक में मिलते हैं। इनमें द्वितीय रूप का कुछ कम, शेष दोनों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है; जैसे –

अ. तिनकी—सूरदास जे झुठी मिलवैं, तिनकी गति जानै करतार। जे अनभले बड़ाई तिनकी। धर्म हृदय जिनकैं नहीं, धिक तिनकी है जाति।

आ. तिनके—मिटि गए राग द्वेष सब तिनके जिन हरि प्रीत लगाई।

इ. तिनकौं—तिनकौं कठिन करेजौ सखि री, जिनकौ पिय परदेस। जनम सुफल सूरज तिनकौं जे काज पराए धाए।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में केवल

एक प्रमुख रूप 'तिनकैं' मिलता है जिसका प्रयोग सर्वत्र किया गया है; जैसे—तुमसौं प्रीति करहिं जे धीर........ पाप-पुन्य तिनकैं नहीं। ऐसी परनि परी है जिनकैं लाज का ह्वै है तिनकैं। राधा-कृष्न केलि-कौतूहल स्रवन सुनैं, जो गावैं, तिनकैं सदा समीप स्याम।

सारांश—विभिन्न कारकों में प्रयुक्त नित्यसंबंधी बहुवचन सर्वनाम-रूपों के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	ते, तिन, (तिनि)	....
कर्म	(ते)	तिनकौं
करण		(उनसौं), तिनसौं
संप्रदान		(तिनकौं), तिनहिं
अपादान		(तिनतैं)
संबंध		तिनकी, तिनके, तिनकौ
अधिकरण		तिनकैं

प्रश्नवाचक—

अन्य सर्वनाम भेदों में एकवचन और बहुवचन रूप जिस प्रकार भिन्न-भिन्न होते हैं, वैसे प्रश्नवाचक में नहीं होते; हाँ, इसके मूल, विकृत और अन्य रूप अवश्य होते हैं; जैसे—

मूल रूप	कौन, को
विकृत रूप	का, कौन
अन्य	काहि

प्रश्नवाचक रूपों के कारकीय प्रयोग—विभिन्न कारकों में उक्त सर्वनाम किन-किन प्रमुख रूपों में प्रयुक्त हुए हैं, संक्षेप में इसकी चर्चा यहाँ की जाती है—

१. कर्त्ताकारक—कहा, काहूँ, किन, किनि, किहिं, केहि को, कौन और कौनैं—ये नौ रूप इस वर्ग में आते हैं। प्रायः ये सभी एकवचन में प्रयुक्त हुए हैं। कर्त्ताकारक की विभक्ति इनमें किसी के साथ नहीं है। प्रयोग की दृष्टि से, किन, किहिं, को, कौन और कौनैं प्रधान और शेष रूप गौण हैं जिनका प्रयोग कहीं-कहीं ही मिलता है—

अ. कहा—यह देखत जननी मन ब्याकुल बालक मुख कहा आहि।

आ. काहूँ—सुनहु सखी मैं बूझति तुमकौं, काहूँ हरि कौं देखे हैं।

इ. किन—कियौ किन ऐसौ काज।........। किन यह ऐसौ भवन बनायौ। कठिन पिनाक कहौ किन तोरचौ। यह कही उरग मोसौं, किन पठायौ तोहिं।

ई. किनि—किनि देख्यौ, किनि कही बात यह। ऐसे गुन किनि तुमहिं सिखाए।

उ. किहिं—किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी। किहिं राख्यौ तिहिं औसर आनी। सो संपति किहिं मूसो। उग्रसेन, बसुदेव, देवकी किहिंऽब निगड़ तैं आने।

ऊ. केहि—चौबिस धातु चित्र केहि कीन।

ऋ. को—ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। या रथ बैठि बंधु की गर्जहि पुरवै को कुरुखेत। ताकी पटतर कौं जग को है। या छबि की उपमा को जाने।

ए. कौन—कौन बिरक्त अधिक नारद तैं। मोकौं कौन धारना करै। सूर सुमित्रा-सुत बिनु कौन धरावै धीर।

ऐ. कौनैं—कौनैं ठाटि रचचौ। ये करे है कौनैं। कौनैं याहि बुलाई। कौनैं पठए सिखाइ।

२ कर्मकारक—कह, कहा, का, काकौं, काहि, किहिं, को, कोऊ और कौना—ये नौ रूप कर्मकारक में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें 'काकौं' विभक्तियुक्त है, शेष विभक्तिरहित हैं। 'किहिं' को भी विकृत रूप समझना चाहिए। 'कौना' जो तुक के कारण बिगाड़ा गया है, अपवादस्वरूप है। शेष रूपों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है; केवल 'कोऊ' कहीं-कहीं ही प्रयुक्त हुआ है।

अ. कह—कहा जानिऐ कह तैं देख्यौ। कह तजैं। कहौ न, कह मोहिं दैहौ।

आ. कहा—कहा करौं। रिस कियैं पावति कहा हौ, कहा (पावति हो) दीन्हें गारि कहा लेहिं।

इ. का—ना जानौं बिधनहिं का भायौ।

ई. काकौं—काकौं ब्रज पठयौं। बाँह पकरि तू ल्याई काकौं।

उ. काहि—काहि भजौं हौं दीन। श्रीपति काहि सँभारै तुम तजि काहि पुकारिहै। काहि पठवहुँ जाइ।

ऊ. किहिं—बान, कमान, कहाँ किहिं मारचौ। किहिं पठाऊँ।

ऋ. को—इहि राजस को को न बिगोयौ। (तुम) को न कृपा करि तारचौ। (तुम) बिन मसकत को तारचौ।

ए. कोऊ—कोऊ कमलनैन पठयौ है, तन बनाइ अपनौ सौ साज।

ऐ. कौना—त्रिभुवन मैं बस कियौ न कौना।

३. करणकारक—इस कारक में ग्यारह रूप मिलते हैं जिनमें दो—काहि और किहिं—विभक्तिरहित हैं जिनका प्रयोग सर्वत्र हुआ है; शेष नौ—कापैं, कापै, कासौं, काहि सौं, किनितैं, किहिं पाहैं, कौन पै, कौन सौं कौने सौं—विभक्तियुक्त हैं। इनमें से 'काहि सौं,' 'किनतैं,' 'किहिं पाहैं' और 'कौने सौं' के प्रयोग कहीं-कहीं ही मिलते हैं; शेष रूप सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं। 'कौने सौं' को 'कौन सौं' का ही रूपांतर समझना चाहिए।

अ. काहि—सूरस्याम देखे नहीं कोउ काहि बतावै। उपमा काहि देउँ। कहौं काहि या ही की।

आ. किहिं—सूरदास किहिं, तिहिं तजि, जाँचे। कुल, कलंक तैं किहिं मिलि दयौ। कहौं किहिं।

इ. कापैं—पवनपुत्र · 'कापैं हटक्यौ जाइ। कापैं बरन्यौ जाइ। कापैं लेहि उधारे।

ई. कापै—कापै कहि आवै। छबि बरनि कापै जाइ। महिमा कापै जाति बिचारी। महत कापै बरन्यौ जाइ।

उ. कासौं—कासौं बिथा कहौं। तेरौ कासौं कीजै ब्याह। नेह हमैं कासौं आह। कन्या कासौं हुति उपजाइ।

ऊ. काहि सौं—कौन काहि सौं कहै।

ऋ. किनतैं—कौन ग्वालनि साथ भोजन करत किनतैं बात।

ए. किहिं पाहैं—सूरदास प्रभु दूरि सिधारे, मुख कहिए किहिं पाहैं।

ऐ. कौन पै—सीख कौन पै लही री। गुप्त कौन पै होइ। एक ह्वै गए....कौन पै जात निरुवारि माई। कौन पै कढ़त कनूका जिन हठि भुसी पछोरी।

ओ. कौन सौं—हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी। मेरी धौं हरि लरत कौन सौं। ह्याँ लरन कौन सौं आई। बिथा माई, कौन सौं कहियै।

औ. कौने सौं—अब हरि कौने सौं रति जोरी।

४. संप्रदानकारक—काकौं, काहि, काहू कौं, किहिं और कौनैं—ये पाँच रूप इस कारक में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें द्वितीय, चतुर्थ और अंतिम विभक्तिरहित एवं शेष दोनों विभक्तियुक्त हैं। तीसरा रूप बलात्मक होते हुए भी सामान्यवत् प्रयुक्त हुआ है। इनमें से प्रथम दो रूपों के कुछ अधिक और अंतिम तीन के प्रयोग कम मिलते हैं।

अ. काकौं—काकौं सुख दीन्हौ। जोग-जुगुति जद्यपि हम लीनी, लीला काकौं दैहौ।

आ. काहि—उरहन दिन देउँ काहि। मदनगुपाल बिना घर-आँगन गोकुल काहि सुहाइ। काहि नहिं दुख होइ। कंथा काहि उढ़ाऊँ।

इ. काहू कौं—काहू कौं षटरस नाहिं भावत।

ई. किहिं—कहिए कहा, दोष किहिं दीजै।

उ. कौनैं—कमलनयन स्यामसुन्दर कौनैं नहिं भावैं।

५. अपादानकारक—'कातैं' और 'कौन तैं'-जैसे प्रयोग इस कारक में होते हैं, परंतु इनके उदाहरण 'नहीं' के बराबर ही मिलते हैं।

६. संबंधकारक—इस कारक में भी मुख्य ग्यारह रूप प्रयुक्त हुए हैं जिनमें दो—किहिं और कौन—विभक्तिरहित हैं। इनमें से द्वितीय का प्रयोग पहले से अधिक हुआ है। शेष नौ रूपों—काकी, काके, काकौ, किनकी, किहिं के, किहिं कौ, कौन की, कौन के और कौन कौ—में से 'किनकी', 'किहिं के' और 'किहिं कौ' का कम तथा शेष रूपों का प्रयोग सर्वत्र किया गया है।

अ. किहिं—किहिं भय दुरजन डरिहैं।

आ. कौन—अब धौं कहौ कौन दर जाउँ। बानि परी तुमकौ यह कौन।

इ. काकी—काकी ध्वजा बैठि। सरन गहूँ मैं काकी। पूछ्यौ, तू काकी धी है। काकी तिनकौं उपमा दीजै। काकी है बेटी।

ई. काके—काके रहिहैं प्रान। ब्रज बसि काके बोल

सहौं। काके मन कौं चोरति हौ। काके होहिं जो नहिं गोकुल के।

उ. काकौ—काकौ बदन निहारि। डर काकौ। काकौ नाम। काकौ ब्रज-दधि, माखन काकौ। काकौ बालक आहि।

ऊ. किनकी—दान हठ कै लेत कापै रोकि किनकी बाट।

ऋ. किहिं के—साखामृग तुम किहिं के तात।

ए. किहिं कौं—बिरद घटत किहिं कौं तुम देख्यौ।

ऐ. कौन की—कौन की बेटी। बँधे कौन की डोरी। कौन की गैयाँ चरावत।

ओ. कौन के—भीने रंग कौन के हौ। काके भए, कौन के ह्वैहैं। कौन के घर खात।

औ. कौन कौ—कौन कौ नाम। कौन कौ ध्यान। अब हौं कौन कौ मुख हेरौं। कौन कौ बालक है तू। सुत कौन कौ। कौन कौ नीलांबरहिं।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में मुख्य सात रूप मिलते हैं—काकैं, कापर, कापै, किहिं केरे, कौन कैं, कौन पर और कौन पै। इनमें से प्रथम सामान्य है, शेष विभक्तियुक्त हैं। 'कापै,' 'किहिं केरे,' 'कौन कैं' और 'कौन पै' का प्रयोग कम किया गया है; अन्य तीनों रूप सर्वत्र मिलते हैं।

अ. काकैं—कहाँ पठवत, जाहिं काकैं। इतनौ हित है काकैं। कुलिन-अकुलिन अवतरचो काकैं। ह्याँ हैं तरल तरचौना काकैं।

आ. कापर—कापर चक्र चलाऊँ। कापर नैन चढ़ाए डोलत। कापर नैन चलावति। कापर क्रोध कियौ अमरापति।

इ. कापै—हमकौं सरन और नहिं सूझै, कापै हम अब जाहिं।

ई. किहिं केरे—सूरदास प्रभु अँग अनूप छबि कहँ पायौ किहिं केरे।

उ. कौन कैं—कौन कैं माखन चुरावन जात उठिकै प्रात।

ऊ. कौन पर—बहियाँ गहत सतराति कौन पर मग धरि डग। कौन पर होति पीरी-कारी। कियौ कौन पर छोहु।

ऋ. कौन पै—तुम तजि और कौन पै जाउँ।

सारांश—प्रश्नवाचक सर्वनाम रूपों के विभिन्न कारकों में प्रयुक्त जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	(कहा), (काहूँ), किन, किनि, किहि, (केहि को), कौन, कौनैं।	....
कर्म	कह, कहा, काहि, किहि, को, (कोऊ) (कौना)।	काकों
करण	काहि, किहिं	कापैं कापै, कासौं, (काहि सौं), (किनतैं), (किहि पाहैं), कौन पै, कौन सौं, (कौने सौं)।
संप्रदान	काहि, किहि, कौनैं	काकौं, काहू कौं
अपादान	....	....
संबंध	(किहि), कौन	काकी, काके, काकौं, (किनकी), (किहिं के), (किहि कौ), कौन कौ, कौन के, कौन की
अधिकरण	काकैं	कापर, कापै, (किहिं केरे), (कौन कैं), कौन पर, (कौन पै)

अनिश्चयवाचक—

प्रश्नवाचक सर्वनाम की तरह अनिश्चयवाचक सर्वनामों में भी भेद नहीं होता, यद्यपि कुछ सर्वनाम—जैसे 'एक'—एकवचन में और कुछ—जैसे 'सब'—बहुवचन में ही आते हैं। परन्तु चेतन-अचेतन वस्तुओं या पदार्थों की दृष्टि से अनिश्चयवाचक सर्वनाम के भेद अवश्य होते हैं; जैसे—

	चेतन पदार्थों के लिए
मूलरूप	एक, और, कोई, कोऊ, सब
विकृतरूप	एकनि, औरन, काहू, सबन
	अचेतन पदार्थों के लिए
	एक, और, कछु, कछुक, सब

प्रथम वर्ग के कारकीय प्रयोग—चेतन पदार्थों के लिए विभिन्न कारकों में मूल और विकृत जो सर्वनाम रूप प्रयुक्त हुए हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

१. कर्त्ताकारक—इस कारक में बीस के लगभग मुख्य रूप मिलते हैं जो 'एक', 'और', 'कोई' या कोऊ' और 'सब' के रूपांतर होने से इन्हीं चार वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं।

क. 'एक' के रूपांतर—इक, एक और एकनि—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें से प्रथम दो का बहुत अधिक और अंतिम का बहुत कम प्रयोग किया गया है।

अ. इक—इक मारत इक रोकत गेंदहिं इक भागत। इक आवत ब्रज तैं इतही कौं, इक इततैं ब्रज जात। इक घर तैं उठि चले। इक आवत····इक टेरत इक दौरे आवत।

आ. एक—एक चले आवत। एक कहत। एक उफनत ही चली उठि····। एक जेंवन करत त्याग्यौ। एक भोजन करि सँपूरन गई।

इ. एकनि—एकनि हरे प्रान गोकुल के।

ख. 'और' के रूपांतर—और तथा औरौ—केवल दो मुख्य रूप इस वर्ग में आते हैं। दूसरा रूप अपवाद-स्वरूप है, परंतु पहला खूब प्रयुक्त हुआ है—कहीं एकवचन में और कहीं बहुवचन में।

अ. और—मेरे संग की और गईं। कियौ यह भेद मन, और नहीं। तेई हैं कि और हैं। देखैं बने, कहत रसना सो, सूर बिलोकत और।

आ. औरौ—तोसी न औरौ है।

ग. 'कोई' या 'कोऊ' के रूपांतर—इस वर्ग के रूपों की संख्या अन्य तीनों से अधिक है जिनमें मुख्य हैं—काहुँ, काहु, काहूँ, काहू, किनहूँ, कोइ और कोऊ। इन आठ रूपों मे से 'किनहूँ' का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है।

अ. काहुँ—काहुँ न प्रान हरे। काहुँ खोज नहिं पायौ।

आ. काहु—ताकौं दरसन काहु न पायौ। काहु लै मोंहिं डारि दीन्हौं कालिया दह नीर। बड़ी कृपा इहिं उरग कौं, ऐसी काहु न पाई।

इ. काहूँ—काहूँ कह्यौ, मंत्र जप करना, काहूँ कछु काहूँ कछु बरना; काहूँ समाचार कछु पूछे। काहूँ करत न आयौ। काहूँ दियौ गिराइ।

ई. काहू—कै तुमसौं काहू कटु भाष्यौ। काहू पति-गेह तजे, काहू तन प्रान। काहू तुरत आइ मुख चूमे।

उ. किनहूँ—किनहूँ लियौ छोरि पट कटि तैं।

ऊ. कोइ—मोकौं नहिं कोइ। पै यह बात न जानै कोइ। केतौ भोग करौ किन कोइ। सकै नहिं तरि कोइ।

ऋ. कोउ—सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै। कोउ न उतारै पार। कोउ खवावै। कोउ गावत, कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत, कोउ करताल बजावत।

घ. 'सब के रूपांतर—सब और सबनि, ये दो मुख्य बहुवचन रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. सब—सब चितवत मुख तेरौ। फिरि सब चले अतिहिं बिकलाने। सब नाचहीं। सब मुरझानीं।

आ. सबनि—बसन भूषन सबनि पहिरे। यह सुनतहिं सिर सबनि नवाए। सैना सबनि बुलाए। दई सबनि लाज डारि। मनबांछित फल सबनि पायौ।

२. कर्मकारक—इस कारक में पंद्रह के लगभग मुख्य रूप मिलते हैं जिनको भी, कर्त्ताकारकीय प्रयोगों क समान, चारों वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

क. एक' के रूपांतर—इस वर्ग में केवल एक मुख्य रूप आता है—एकहिं। इसका प्रयोग भी बहुत कम किया गया है; जैसे—एक एकहिं धरति भुज भरि।

ख. 'एक' के रूपांतर—और, औरनि, औरनि कौं तथा औरहिं—ये चार रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें तृतीय विभक्तियुक्त है। प्रयोग की दृष्टि से प्रथम दो रूप प्रधान हैं और अंतिम दो अप्रधान।

अ. और—सूरस्याम बिनु और न भावै। हरि तजि जो और भजै। नंद-नंदन अछत कैसें आनियै उर और।

आ. औरनि औरनि छाँड़ि कान्ह परे हठ हमसौं। धूत धौत लंपट जैसे हरि, तैसे औरनि जानैं।

इ. औरनि कौं—औरनि कौं तिरछे ह्वै चितवत।

ई. औरहिं—औरहिं नहिं पत्यात।

ग. 'कोई' या 'कोऊ' के रूपांतर—इस वर्ग के रूपों में प्रमुख हैं—काहुँ, काहु, काहुहिं, काहूँ, काहू कौं

और कोऊ। इसमें से तीसरा और पाँचवाँ रूप विभक्ति-युक्त है।

अ. काहुँ—मैं काहुँ न पहिचानौ।

आ. काहु—डसै जिनि यह काहु। काहु नहिं मानत।

इ. काहुहिं—तब तैं गनत नहीं यह काहुहिं। गनत नहीं अपनैं बल काहुहिं।

ई. काहूँ—बदत काहूँ नहीं।

उ. काहू कौं—जो काहू कौं पकरि पाइहैं।

ऊ कोऊ—तो तुम कोऊ तारचौ नाहिं।

घ. 'सब' के रूपांतर—इस वर्ग का एक ही प्रमुख-रूप है—'सबनि'; जैसे—सूर स्याम सुरपति तैं राख्यौ देखौ सबनि बहाइ। देखि सबनि रीझे गोबिन्द।

३. करणकारक—इस कारक में सत्रह अठारह मुख्य रूप प्रयुक्त हुए हैं जिसको भी कर्त्ता और कर्म कारकीय रूपों के समान चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

क. 'एक' के रूपांतर—इकसौं, इकहिं, एकसौं और एकहिं—ये रूप इस वर्ग में आते हैं। इनका प्रयोग कहीं-कहीं ही किया गया है; जैसे—

अ. इकसौं—इक इकसौं यह बात कहति।

आ. इकहिं—धीरज धरि इकहिं सुनावति।

इ. एकसौं—एकसौं कहत धौं कहाँ आए।

ई. एकहिं—एक एकहिं बात बूझति।

ख. 'और' के रूपांतर—औरनि, औरनि सौं, और पै तथा और सौं—ये चार रूप इस वर्ग के हैं। इनमें से द्वितीय का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है।

अ. औरनि—(ऊधौ) जैसी वही हमहिं आवत ही, औरनि कहि पछिताते।

आ. औरनि सौं—औरनि सौं करि रहे अचगरी। औरनि सौं लै लै जै। औरनि सौं तुम कहा लियौ है।

इ. और पै—ऐसौ दान और पै माँगहु।

ई. और सौं—और सौं बूझि न देखौ।

ग. 'कोई' या 'कोऊ' के रूपांतर—काहूँ, काहू, काहू पै और काहू सौं—इस वर्ग के इन रूपों में अंतिम दो विभक्तियुक्त हैं। इनमें से 'काहू' का सामान्य और शेष रूपों का प्रयोग सर्वत्र किया गया है।

अ. काहूँ—को जानै प्रभु कहाँ चले हैं, काहूँ कछु न जनावत। काहूँ (किसी से) नहीं जनाई। फूली फिरति कहति नहिं काहूँ।

आ. काहू—पै यह भेद रुकमिनी निज मुख काहू कहि न सुनायौ।

ई. काहू पै—होवनहारी काहू पै जाइ न टारी। मुरली लै लै सबै बजावत काहू पैं नहिं आवै रूप। सो काहू पै जाहि न तोल्यौ।

इ. काहू सौं—भावी काहू सौं न टरै। काहू सौं यह कहि न सुनाई। काहू सौं उनहूँ तब पूछे। ज्वाब न देत बनै काहू सौं।

घ. 'सब' के रूपांतर—सबनि, सबनि सौं और सबसौं इन तीन प्रमुख रूपों में से सबसे अधिक प्रयोग 'सबनि सौं' का किया गया है; जैसे—

अ. सबनि—तब उपँगसुत सबनि बोले—सुनौ श्रीमुख जोग।

आ. सबनि सौं—सूर प्रभु प्रगट लीला कही सबनि सौं। लागी करन बिलाप सबनि सौं स्यान गए मोहिं त्यागि। तब तू कहति सबनि सौं हँसि हँसि।

इ. सब सौं—सब सौं मिलि पुनि निज गृह आए।

४. संप्रदानकारक—इस कारक में दस-बारह प्रमुख रूप मिलते हैं जो उक्त कारकों के समान चार वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं।

क. 'एक' के रूपांतर—इस वर्ग में केवल एक रूप है 'एकनि' जिसका प्रयोग कम ही मिलता है; जैसे—इक एकनि देत गारि।

ख. 'और' के रूपांतर—औरनि और औरनि कौं, इस वर्ग में इन प्रमुख रूपों का प्रयोग कहीं-कहीं ही किया गया है; जैसे—

अ. औरनि—तब औरनि सिख देहु।

आ. औरनि कौं—औरनि कौं छबि कहा दिखावत।

ग. 'कोई' या कोऊ के रूपांतर—काहूँ, काहूँ कौं, काहू, काहू कौं और कौन को—इन पाँचों रूपों में

से विभक्तिरहित का कम और विभक्तियुक्त का प्रयोग कुछ अधिक किया गया है; जैसे—

अ. काहूँ—काहूँ दुख नहिं देत विधाता। तुम काहूँ धन दै लै आवहु। डारत खात देत नहिं काहूँ। काहूँ सुधि न रही।

आ. काहूँ कौं—नमस्कार काहूँ कौं कियौ।

इ. काहू—दोष न काहू दैहैं।

ई. काहू कौं—काहू कौं षटरस नहिं भावत। देत नहीं काहू कौं नैंकहुँ।

उ. कौन कौं—कौन कौन कौं उत्तर दीजै।

ग. 'सब' के रूपांतर—सबकौं, सबनि और सबकौं कौं, इन चारों मुख्य रूपों का प्रयोग सर्वत्र किया गया है; जैसे—

अ. सबकौं—सबकौं सुख दै दुखनि हरी। सखा संग सबकौं सुख दीनौ।

आ. सबनि—गोपाल सबनि सुख देत। तुरत सबनि सुरलोक दियौ। सबनि आनंद भयौ।

इ. सबनि कौं—पट-भूषन दियौ सबनि कौं। सबनि कौं मुख दियौ।

५. अपादानकारक—इस कारक में मुख्य चार रूप मिलते हैं—एकतैं, सबतैं, सबनि सौं और सबसौं। इन सबका प्रयोग सामान्य रूप से किया गया है। इसमें 'और' तथा 'कोई' या 'कोऊ' के रूपांतर नहीं हैं।

अ. एकतैं—एक एकतैं गुननि उजागर। एक एकतैं सबै सयानी।

आ. सबतैं—सबतैं वहै देस अति नीकौ। जाकी सबतैं गति न्यारी।

इ. सबनि सौं—हरि सबनि सौं नैंकु होत नहिं दूरी।

ई. सबसौं—मैं उदास सबसौं रहौं।

६. संबंधकारक—इस कारक के अंतर्गत बीस से भी अधिक रूप मिलते हैं जिनको सुविधा की दृष्टि से कर्त्ता, कर्म आदि कारकीय प्रयोगों के समान चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

क. 'एक' के रूपांतर—इस वर्ग में केवल एक प्रमुख रूप मिलता है 'एकनि' जिसका प्रयोग कुछ ही पदों में हुआ है; जैसे—एकनि कर है अगर-कुमकुमा।

ख. 'और' के रूपांतर—और की, और के औरनि की, औरनि के तथा औरनि कौ—ये रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें से तीसरे-चौथे का विशेष और शेष का सामान्य प्रयोग किया गया है।

अ. और की—तजी और की आस।

आ. और के—स्याम हलधर सुत तुम्हारे, और के सुत न कहाहिं।

इ. औरनि की—औरनि की मटकी कौ खायौ।

ई. औरनि के—औरनि के घर। औरनि के बदन। औरनि के चित्त। औरनि के लरिका।

उ. औरनि कौ—औरनि कौ मन।

ग. 'कोई' या 'कोऊ' के रूपान्तर—इस वर्ग में प्रयुक्त रूपों में मुख्य हैं—काहूँ, काहू, काहू की, काहू के, काहू केरौ और काहू कौ। इनमें से 'काहू केरौ' का प्रयोग अपवादस्वरूप, प्रथम दो का सामान्य और शेष तीन का विशेष रूप से मिलता है; जैसे—

अ. काहूँ—वह सुख टरत न काहूँ मन तैं। काहूँ काम न आवै।

आ. काहू—काहू हाथ सँदेस।

इ. काहू की—बधू होइ काहू की। जाति न काहू की। टेर सुनत काहू की स्रवननि। है काहू की नारी। काहू की गगरी।

ई. काहू के—काहू के कुल-तन। लरिकनि मारि भजत काहू के। काहू के चित। काहू के जिय कौ।

उ. काहू केरौ—जोग जु काहू केरौ।

ऊ. काहू कौ—इहाँ कोउ काहू कौ नाहीं। काहू कौ दधि-दूध। कह्यौ नहीं मानत काहू कौ। रस-गोरस हरै न काहू कौ।

घ. 'सब' के रूपांतर—इस वर्ग के रूपों की संख्या उक्त तीनों वर्गों से अधिक है। उनमें मुख्य ये हैं—सबकी, सबके, सब केरी, सब केरे, सबकौ, सबनि, सबनि की, सबनि के और सबनि कौ। इनमें से 'की', 'के' और 'कौ'-युक्त रूपों का ही प्रयोग विशेष रूप से किया गया है; जैसे—

अ. सबकी—सबकी सौहैं खैहैं। संपत्ति सबकी लै री।

आ. सबके—सबके बसन। सबके भाव। नैन सुफल सब के भए। कैसे हाल भए तब सबके।

इ. सब केरी—प्रीति-रीति सब केरी।

ई. सब केरे—प्रान-जिवन सब केरे।

उ. सबकौ—जान्यौ सबकौ ज्ञान। सबकौ मन। सोच सबकौ।

ऊ. सबनि—बहु रूप धरि हरि गए सबनि घर। सबनि मुख यह बात।

ऋ. सबनि की—प्रीति सबनि की तोर। सबनि की आस। सबनि की कानि। यहै रीति संसार सबनि की।

ए. सबनि के—सबनि के चीर। सबनि के मुख। बड़ भाग सबनि के। करे सबनि के पूरन कामा।

ऐ. सबनि कौ—दुख हरत सबनि कौ।

ओ. सबहिनि—कियौ स्याम सबहिनि मन भायौ।

औ. सबहिनि के—सुखदायक सबहिनि के। सबहिनि के प्रतिबिंब।

अं. सबहिनि केरैं—पूरनकामी सबहिनि केरैं।

अः. सबहुनि कौ—सबहुनि कौ मन।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में मुख्य आठ रूप मिलते हैं—काहुँ कैं, काहूँ, काहू कैं, काहू पर, सबनि मैं, सबनि मँझार और सबमैं। इनमें से 'काहू कैं' का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है।

अ. काहुँ कैं—कत हो कान्ह काहुँ कैं जात।

आ. काहूँ—ऐसी कृपा करी नहिं काहूँ (पर)।

इ. काहू कैं—काहू कैं निसि बसत बनाइ। वै लुब्धे अनतहिं काहू कैं। कबहुँ रैनि बसत काहू कैं........। काहू कैं जागत सिगरी निसि।

ई. काहू पर—हम पर क्रोध किधौं काहू पर।

उ. सबनि मैं—रहत सबनि मैं वै परसी।

ऊ. सबनि मँझार—सबहिनि कैं मन साँवरौ दीसै सबनि मँझार।

ऋ. सबमैं—भाव-बस्य सबमैं रहौं।

सारांश—विभिन्न कारकों में प्रयुक्त अनिश्चयवाचक सर्वनाम के जिन रूपों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्त्ता	इक, एक, (एकनि), और, औरी, काहुँ, काहु, काहूँ, काहू, किनहूँ, कोइ, कोउ, कोऊ, सब, सबनि	....
कर्म	(एकहिं), और, औरनि, (काहुँ), काहु, (काहूँ), कोऊ, सबनि	औरनि कौं, औरहिं, काहू कौं, काहुहिं
करण	औरनि, काहुँ, काहूँ, काहू, सबनि	इकसौं, इकहिं, एक सौं, एकहिं, औरनि सौं, और पै, काहू पै, काहू सौं, सबनि सौं, सबसौं
संप्रदान	औरनि, काहुँ, काहू, सबनि	औरनि कौं, काहूँ कौं, काहू कौं, कौन कौं, सब कौं, सबनि कौं
अपादान	....	एक तैं, सबत, सबनि सौं, सबसौं
संबंध	एकनि, काहूँ, काहू सबनि	और की, और के, औरनि की, औरनि के, औरनि कौ, काहू की, काहू के, (काहू केरौ), काहू कौ, सबकी, सबके, (सब केरी), (सब केरे), सब कौ, सबनि की, सबनि के, सबनि कौ
अधिकरण	काहूँ	काहु कै, काहू कैं, काहू पर, सबनि मैं, सब मैं

द्वितीय वर्ग के प्रयोग—अनिश्चयवाचक सर्वनाम के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे चेतन पदार्थों के लिए प्रयुक्त हुए हैं; अचेतन पदार्थों के लिए जो रूप प्रयुक्त होते हैं, उनमें मुख्य हैं—एक, और, कछु, कछुक तथा सब। इनमें से 'एक', 'और' तथा 'सब' के प्रयोग तो ऊपर दिये हुए। उदाहरणों के समान ही किये गये हैं, 'कछु' के कुछ उदाहरण यहाँ और दिये जाते हैं—

कछु—यामैं कछु न छीजै। सुनहु सूर हमकौं कछु देहौ। ज्यौं बालक जननी सौं अटकत, भोजन कौं कछु माँगै।

निजवाचक—

इस सर्वनाम का मूल रूप 'आप' प्राय: विशेषण के समान प्रयुक्त होता है। 'आप' या 'आपु' इसका मूल और 'आपन' या 'आपुन' विकृत रूप है। विभिन्न कारकों में इसके प्रयोग इस प्रकार किये गये हैं—

१. कर्त्ताकारक—आप, आपु और आपुन—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. आप—इंद्र भय मानि हय गहन सुत सौं कह्यौ, सो न लै सक्यौ, तब आप लीन्हौ।

आ. आपु—आपु मैं आपु समाए। आपु खात। आपु भजे ब्रज खोरी।

इ. आपुन—दुखित गयंदहि जानि कै आपुन उठि धावै। आपुन भए उधारन जग के। आपुन भए भिखारी। आपुन रहे छपाइ।

२. कर्मकारक—आपु, आपु कौं और आपुन—ये तीन रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें से 'आपु' और 'आपुन' का विशेष और द्वितीय का सामान्य रूप से प्रयोग किया गया है; जैसे—

अ आपु—आपु बँधाइ पूँजि लै सौंपी। आपु देखि पर देखि रे। सूर सनेह करै जो तुमसौं, सो पुनि आपु बिगोऊ।

आ. आपु कौं—रे मन,आपुकौं पहिचानि। सो चली आपुकौं तब छुड़ाई।

ई. आपुन—अबकैं तौ आपुन लै आयौ। बाँधन गए, बँधाए आपुन।

३. करणकारक—इस कारक में केवल दो मुख्य रूप मिलते हैं—'अपननि कौं' और 'आपुसौं'।

अ. अपननि कौं—बूझति नहीं जाइ अपननि कौं, न्हाति रही तब जौन जौन री।

आ. आपुसौं—आपु आपुसौं तब यौं कही।

४. संप्रदानकारक—इस कारक में भी एकही मुख्य रूप हैं 'आपकौं'; जैसे—अपनी देह आपुकौं बैरिनि।

५. अपादानकारक—'आपु तैं'-जैसा कोई रूप इस कारक में होना चाहिए; परन्तु इसका प्रयोग अपवादस्वरूप ही ,मिलता है।

६. संबंधकारक—इस कारक में सोलह-सत्रह रूप प्रयुक्त हुए हैं जिनको सुविधा के लिए दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—विभक्तिरहित या 'ने' विभक्ति-युक्त और विशेष विभक्तियुक्त।

क. विभक्तिरहित या 'ने' विभक्तियुक्त रूप—अप, अपनी, अपने, अपनौ, आपन, आपनी, आपने, आपनौ, आपु, आपुन, आपुनी, आपुने और आपुनौं—ये मुख्य रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 'अप' और 'आपन' का कहीं-कहीं और अन्य रूपों का सर्वत्र प्रयोग किया गया है; जैसे—

अ. अप—कहियै अप जी कौ। मन ही मन अप करत प्रसंसा।

आ. अपनी—और कही कुछ अपनी। गृह आरति अपनी। अपनी घरनि। अपनी रुचि। रुचि अपनी अपनी।

इ. अपने—अपने अज्ञान। अपने कर। अपने बिरद। मुख अपने।

ई. अपनौ—अपनौ गात्र। अपनौ प्रन। अपनौ मुख। सरबस अपनौ। अपनौ साज।

उ. आपन—आपन जिय। आपन रूप।

ऊ. आपनी आपनी करनी। घात आपन। जथामति आपनी। आपनी जीविका। पति-कानि नाहिं आपनी। आपनी पीठ। आपनी पौरी।

ऋ. आपने—कर आपने। आपने कर्म। केस आपने। आपने घर। बसन आपने आपने भाग।

ए. आपनौ—अकाज आपनौ। आपनौ कर्म। काज आपनौ। आपनौ कुलदेव। आपनौ जन्म। सुख छाँड़ौ आपनौ।

ऐ. आपु—आपु काज। आपु छाँह। आपु दसा। आपु बाहु-बल किये आपु मन भाए।

ओ. आपुन—आपुन आयसु। आपुन कर। आपुन झारी। आपुन मन। सुरपति आयौ संग आपुन सची।

औ. आपुनी—आपुनी टेक। भक्ति अनन्य आपुनी। सौंह आपुनी।

अं. आपुने—आपुने धाम। आपुने सुत।

अ: आपुनौ—आपुनौ कल्यान । आपुनौ दास । बिरद आपुनौ ।

ख. विशेष विभक्तियुक्त रूप—इस वर्ग में केवल दो रूप आते हैं- अपने कौ और आपुन कौ—

अ. अपने कौ—तजि जिय सोच तात अपने कौ ।

आ. आपुन कौ—आपुन कौ उपचार करौ अति ।

७. अधिकरणकारक—इस कारक में मुख्य चार प मिलते हैं—अप माहीं, अपने मैं, अपुन मैं, और आपु मैं; जैसे—

अ. अप माहीं—जोगी भ्रमत जाहि लगे भूले, सो तो है अप माहीं ।

आ. अपने मैं—मन हमतो करि कैद अपने मैं । हम वैसी ही सचु अपने मैं ।

इ. अपुन मैं—कहन लगे सब अपुन मैं ।

ई. आपु मैं—पुनि सबकौ रचि अंड, आपु मैं आपु समायें ।

सारांश—निजवाचक सर्वनाम के विभिन्न कारकों में प्रयुक्त जो रूप ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तिरहित रूप	विभक्तियुक्त रूप
कर्ता	आप, आपु, आपुन	....
कर्म	आप, आपु, आपुन	आपुकौं, आपुहिं
करण	....	आपुसौं
संप्रदान	....	आपुकौं
अपादान	....	....
संबंध	अप, आपन, आपु, आपुन	अपनी, अपने, अपनौ, आपनी, आपने, आपनौ, आपुनी, आपुने, आपुनौ, आपने कौ, आपुन कौ,
अधिकरण	....	(अप माहीं), अपने मैं, (अपुन मैं), (आपु मैं)

आदरवाचक—

निजवाचक सर्वनाम की तरह 'आप' या 'आपु' इसका मूल और 'आपन' या 'आपुन' विकृत रूप होता है । इस सर्वनाम का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है । यदि कहीं इसका प्रयोग मिलता भी है तो उसके आगे-पीछे इसका निर्वाह नहीं किया गया है । अतएव विभिन्न कारकों में प्रयुक्त आदरवाचक सर्वनाम के गिने-चुने उदाहरण ही यहाँ दिये जाते हैं ।

१. कर्ताकारक—आपुन और रावरे—ये दो प्रमुख रूप इस कारक में मिलते हैं जिनका प्रयोग अपवाद-स्वरूप ही कहीं-कहीं दिखायी देता है; जैसे—

अ. आपुन—आपुन चलियै बदन देखियै, जो लौं रहै निठुराई ।

आ. रावरे—घर ही के बाढ़े रावरे ।

२. संबंधकारक—राउर, रावरी, रावरे और रावरौ—ये चार मुख्य रूप इस वर्ग में आते हैं । इनमें से 'रावरी' शब्द का प्रयोग अधिक मिलता है, शेष रूपों का उससे कम; जैसे—

अ. राउर—अलि, तुम जाहु.... । नाद मुद्रा भूति भारी, करैं राउर भेष ।

आ. रावरी—रावरी सैनहूँ साज कीजै । बड़ी बड़ाई रावरी । जग मैं कीरति होइ रावरी । जहाँ लगि कथा रावरी ।

इ. रावरे—सूर स्याम रावरे ढंग ये । गुन रावरे ।

ई. रावरौ – मानहिंगी उपकार रावरौ ।

अन्य कारकों में आदरवाचक सर्वनाम के रूप कदाचित् ब्रजभाषा-काव्य में नहीं के बराबर ही हैं । जो प्रयोग मिलते भी हैं वे अधिकांश में उसी प्रकार के हैं जैसा 'राउर' का उदाहरण ऊपर दिया गया है कि पद के आरम्भ में जिसके लिए 'तुम' का प्रयोग है, आगे उसी के लिए आदरवाचक 'राउर' प्रयुक्त हुआ है । 'रावरी' का प्रयोग जिन पदों में किया गया है, उनमें से अधिकांश में 'बावरी'-जैसे शब्दों के तुक का निर्वाह करने के लिए 'रावरी' आया है; ऐसे प्रयोगों को भी शुद्ध आदरवाचक नहीं कहा जा सकता । 'रावरी सैनहूँ साज कीजै'—श्रीराम के प्रति हनुमान के इस कथन-जैसे शुद्ध आदर-वाचक प्रयोग कम ही मिलते हैं ।

सारांश—आदरवाचक सर्वनाम के कर्ता और संबंधकारकों के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

१. कर्ताकारक आप, आपुन, रावरे ।

२. संबंधकारक   राउर, रावरी, रावरे, रावरौ।

विशेषण और ब्रजभाषा-कवियों के प्रयोग

१. रूपांतर—

ब्रजभाषा में संज्ञा शब्दों के समान विशेषण भी मुख्य रूप से अकारांत और औकारांत हैं, यद्यपि गौण रूप से 'आ', 'इ', 'उ', 'ए' और 'ऐ' से अंत होनेवाले रूप भी अनेक मिल जाते हैं। ऊकारांत विशेषण-रूपों का प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में अपवादस्वरूप ही मिलता है और वह भी विकृत रूपों में जैसे—छल करत कछू। ओकारांत रूप कुछ संस्करणों में औकारांत बना दिये गये हैं। अनुस्वारांत रूपों की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार रूपांतर की दृष्टि से ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त विशेषणों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. मुख्य रूप, ख. गौण रूप और ग. अनुस्वारांत रूप।

क. मुख्य रूप—अकारांत और औकारांत, दो प्रकार के रूप इस वर्ग में आते हैं। द्वितीय रूप ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप होने के कारण प्रथम से कुछ अधिक हैं; फिर भी अकारांत रूपों की संख्या कम नहीं कही जा सकती। कुछ अकारांत रूप अवधी की प्रकृति के अनुरूप भी हैं।

अ. अकारांत विशेषण—पट कुचैल। ऊँच पदवी। थूल(स्थूल) सरीर। तन दूबर। तन छनभंगुर। जीव थिर। गुरु समरथ। सुर-असुर मथत भए छीन। नगन नहिं होवहु। बड़ कुल। हौं कुचील। तोतर बोल। बलभद्र धूत। नंद के सुत नान्ह। अकथ कहानी। पीन कुचनि। बिधु की छबि गोर। रसाल बानी। बेसरि-मुक्ता रूर। बिरह-बिथा घोर आदि।

आ. औकारांत विशेषण—औगुन भरि लियौ भारौ नीर जु छिलछिलौ। चित तौ सोई साँचौ। जो हरि भजै पियारौ सोई। ह्वै रह्यौ खीनौ। नीकौ मंत्र। बड़ौ नगर। करुवौ बचन। बदन उजारौ। कान्ह बड़ेरौ। अंग कारौ। संबंध पाछिलौ। उपकार परायौ....सयानौ काज। तब ससि सीरौ, अब तातौ। जोग जल खारौ....हल भारौ....अहि कारौ। सरबस हरत परायौ। बोझ पृथी कौ हरुऔ आदि।

ख. गौण रूप—इस वर्ग में शेष स्वरों में से आ, इ, ई, उ, ए और ऐ से अंत होनेवाले रूप आते हैं। इकारांत और उकारांत रूप स्त्रीलिंग विशेष्यों के साथ अधिक प्रयुक्त हुए हैं, पुल्लिग के साथकम। एकारांत रूप बहुवचन अथवा विभक्तियुक्त विशेष्यों के साथ अधिक आये हैं, सामान्य विशेष्यों के साथ कम। ऐकारांत रूप अधिकांश में आकारांत विशेषणों के ही रूपांतर हैं। इन सबके कुछ उदाहरण यहाँ संकलित हैं—

अ. आकारांत विशेषण—कंस महा खल। मधुपुरि नगर रसाला। इनके गुन अगमैया। घूंट साता। नैन बिसाला। मेटै बिघन घना। उत स्यामा नवजौवना।

आ. इकारांत विशेषण—पुल्लिग विशेष्यों के साथ इनका प्रयोग कम, परंतु स्त्रीलिंग के साथ अधिक किया गया है; जैसे—

क्ष. पुल्लिग विशेष्यों के साथ—जानसिरोमनि राय। महर हैं बड़भागि।

त्र. स्त्रीलिंग विशेष्यों के साथ—नागरि नारि। पर-देसिनि नारि। हौं सीता कुलच्छनि। बड़भागिनि नंदरानी। हितकारिनि मैया। महरि बड़ीअभागि। लखति सोभा भारि। वह (मुरली) धूतिनि।

इ. ईकारांत विशेषण—इनका प्रयोग भी पुल्लिग और स्त्रीलिंग, दोनों विशेष्यों के साथ हुआ है। प्रथम अर्थात् पुल्लिग विशेष्यों के साथ ईकारांत विशेषणों का प्रयोग करते समय कवियों ने यद्यपि किसी प्रकार का संकोच नहीं किया, तथापि स्त्रीलिंग की अपेक्षा पुल्लिग विशेष्यों की संख्या कम ही है; जैसे—

क्ष. पुल्लिग विशेष्यों के साथ—जनहित हरि बहुरंगी। कियौ बिभीषन राजा भारी। दोउ बैल बली। भौंरा भोगी। सुर अति छमी, असुर अति कोही। बालि बली। यह रूप नवाई। कृष्न बिनानी। नीर सुची। नैना ऐसे हैं बिसवासी।

त्र. स्त्रीलिंग विशेष्यों के साथ—मति काँची। समर

आँच ताती। टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी। नई रुचि, नई पहिचानि। सृष्टि तामसी। दृष्टि तरौंधी। नीकी तान। जसुमति बड़भागिनी। मधुरी बानी। मति खोटी। आछी उजियरिया। ग्वालि सयानी। ग्वालि गरबीली। निरदई अहीरी। निरमोही बाम। नासा अति लोनी। सुमनसा भई पाँगुरी। पीर परारी आदि। परंतु स्त्रीलिंग विशेष्यों के साथ केवल इकारांत अथवा ईकारांत विशेषण ही प्रयुक्त हुए हों, सो बात भी नहीं हैं। अकारांत और औकारांत—इन दो मुख्य विशेषण-रूपों में से द्वितीय का प्रयोग तो स्त्रीलिंग विशेष्यों के साथ नहीं के बराबर ही हुआ है, परंतु सरल अकारांत रूप बहुत मिलते हैं; जैसे—सुन्दर नारी। कल बानी। कृपावंत कौसिल्या। ऊँचनीच जुवती। नवल सुन्दरी आई। रसिक ग्वालिनी आदि।

ई. उकारांत विशेषण—दुख-सिंधु अथाहु। कटु बानी। लघु प्रानी।

उ. उकारांत विशेषण—इस वर्ग के विशेषण प्रायः तीन रूपों में प्रयुक्त हुए हैं—क्ष. एकवचन आदरार्थ रूप। त्र. बहुवचन सामान्य रूप।

ज्ञ. विभक्तियुक्त विशेष्यों के साथ प्रयुक्त रूप; यद्यपि कहीं-कहीं एकवचन सामान्य विशेष्यों के साथ भी इनका प्रयोग मिलता हैं; जैसे—बौरे मन रहन अटल करि जान्यौ। झूठे भरम भुलानौ। कोरे कापरा।

क्ष एकवचन आदरार्थ रूप—बड़े भूप दरसन। गोरे नंद।

त्र. बहुवचन सामान्य रूप—भिल्लिनि के फल''''खाटे-मीठे-खारे। खाटे फल तजि मीठे ल्याई, जूँठे भए। कौतुक भारे। मधुरे बैन। बचन तोतरे। झँडूले बार। दाँत ये आछे। ब्यंजन खाटे-मीठे-खारे। उनींदे नैन। ये नैन भए गरबीले। (नैना) भए पराए। भए अंग सिथिले। अटपटे बैन पिय रसमसे नैन आदि।

ज्ञ. विभक्तियुक्त विशेष्यों के साथ प्रयुक्त रूप—मीठे फल को रस। गाढ़े दिन के मीत। नर बपुरे की। झूठे नाते जगत के। बड़े बाप के पूत।

ऊ. ऐकारांत विशेषण—ध्रुवहिं अभै पद दियौ। अनंद अतिसै।

ग. अनुस्वारांत रूप—इस प्रकार के रूपों की संख्या अधिक नहीं है। अपवादस्वरूप प्राप्त कुछ विशेषण शब्द यहाँ दिये जाते हैं—

अ. आँकारांत विशेषण—भौहैं काट-कटीलियाँ। या ब्रज के सब लोग चिकनियाँ।

आ. एँकारांत विशेषण—बाएँ कर बाजि-बाग।

इ. ऐंकारांत विशेषण—नैन लजौहैं।

२. रूप-निर्माण—

ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त विशेषण शब्दों को, स्थूल रूप से, पाँच वर्गों में रखा जा सकता है—क. संज्ञा-मूलक, ख. विशेषणमूलक, ग. कृदंतमूलक, घ. विशेषणवत् प्रयुक्त सामासिक पद, और ङ. अन्य विशेषण। इनके अतिरिक्त सर्वनाममूलक विशेषण भी होते हैं जिनकी चर्चा 'वर्गीकरण शीर्षक' के अंतर्गत की जायगी। यहाँ उनका विवरण इस-लिए अनावश्यक है कि वे तो मूलरूप में ही विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं जिससे उनके रूपनिर्माण का प्रश्न ही नहीं उठता।

क. संज्ञामूलक विशेषण—इस वर्ग के विशेषणों के निर्माण में कवियों ने अधिकतर संस्कृत नियमों का सहारा लिया है। प्रमुख नियम और उनके उदाहरण इस प्रकार हैं।

अ. संज्ञा शब्द के अंत में 'आल' या 'आलु' जोड़कर—कृपालु प्रभु। हँसे दयालु मुरारी।

आ. संज्ञा शब्द के अंत में 'आरी' (स्त्रीलिंग) जोड़कर—सुर भए सुखारी।

इ. संज्ञा शब्द के अंत में 'इत' जोड़कर—कुसुमित धर्म-कर्म की मारग। दुखित गयंद।

ई. संज्ञा शब्द के अंत में 'ई' जोड़कर—इस प्रकार के रूपों की संख्या बहुत अधिक है; जैसे हठी प्रहलाद। छरीदार बैराग बिनोदी। अजामिल बिषयी। बिषय जाप की जापी। कटुक बचन आलापी। सब पति-तनि मैं नामी। मानुषी तन। ये हैं अपने काजी।

उ. संज्ञा शब्दों के अंत में 'औहीं' स्त्रीलिंग जोड़कर—बतियाँ तुतरौहीं।

ऊ. संज्ञा शब्द के अंत में 'औहैं' (पुल्लिग बहु०) जोड़कर—नैन लजौहैं।

ए. संज्ञा शब्द के अंत में 'क' जोड़कर—उर मंडल निरमोलक हार। घातक रीति।

ऐ. संज्ञा शब्द के अंत में 'द' जोड़कर—बंसीबट अति सुखद। सुखद धाम

ओ. संज्ञा शब्द के अंत में 'र' जोड़कर—मधुर मूर्ति। रुचिर सेज।

इन मुख्य नियमों के अतिरिक्त भी कवियों द्वारा संज्ञामूलक विशेषणों के रूपनिर्माण के कुछ सामान्य नियम बनाये जा सकते हैं; जैसे—संज्ञा के पूर्व 'स' और अंत में 'ऐ' जोड़कर विशेषण-रूप बनाना; जैसे—तुम हौ परम सभागे।

ख. विशेषणमूलक विशेषण—इस वर्ग के अंतर्गत वे विशेषण आते हैं जिनका निर्माण विशेषण शब्दों के अंत में कोई अक्षर जोड़ कर किया गया है; इस प्रकार के शब्दों की संख्या अधिक नहीं है; जैसे—

अ. 'स्याम' विशेषण में 'ल' जोड़कर—स्यामल तन। स्यामल अंग।

अ. 'रौ' जोड़कर—स्यामरौ सुन्दर कान्ह।

इ. 'नन्हा'-जैसे विशेषणों के विकृत रूपों में 'ऐया' जोड़कर—दोऊ रहे नन्हैया।

ग. कृदंतमूलक विशेषण—इस वर्ग के विशेषण मुख्य रूप से दो प्रकार से बनाये गये हैं—क्ष. धातु से और त्र. क्रियार्थक संज्ञा से। दोनों प्रकार के विशेषण-रूपों का प्रयोग कम ही किया गया है।

क्ष. धातु से बने विशेषण—इस वर्ग में वे विशेषण आते हैं जो धातु के अन्त में मुख्यत: निम्नलिखित अक्षरों या पदों को जोड़कर बनाये गये हैं—

अ. धातु+क—हरि प्रेम-प्रीति के लाहक, सत्य प्रीति के चाहक। दाहक गुन।

आ. धातु+नि (स्त्रीलिंग)—मोहनि मूरत।

इ. धातु+नी—अति मोहिनी रूप। मूरति दुख-भय हरनी।

ई. धातु+वारे—बहु जोधा रखवारे।

त्र. क्रियार्थक संज्ञा से बने विशेषण—ऐसे रूप प्राय: 'नांत' रूपवाले क्रियार्थक संज्ञा शब्दों के अंत में निम्नलिखित पदांश जोड़ कर बनाये गये हैं—

अ. क्रियार्थक संज्ञा+हार—खेवनहार न खेवट मेरैं। करनहार करतार। राखनहार अहे कोउ और। को है मेटनहार।

आ. क्रियार्थक संज्ञा+हारि (स्त्रीलिंग)—मथनहारि सब ग्वारि बुलाई। बदरौला बिलोवनहारि।

इ. क्रियार्थक संज्ञा+हारु—गोपनि को सागरु...... कान्ह बिलोवनहारु।

ई. क्रियार्थक संज्ञा+हारे—अति कुबुद्धि मन हाकनहारे।

घ. विशेषणवत् प्रयुक्त सामासिक पद—इस वर्ग में आनेवाले विशेषण-रूपों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में इतनी अधिक है कि उन सबके नियम बनाना अनावश्यक ही होगा। अतएव दो-चार प्रमुख नियम देकर शेष में से कुछ चुने हुए उदाहरण देना ही पर्याप्त है। ऐसे शब्द मुख्य रूप से संज्ञा-शब्दों के अंत में दूसरे पद जोड़कर बनाये गये हैं।

अ. संज्ञा+'करि' या 'कारी'—अनुचर आज्ञाकारी। मेखला रुचिकारि।

आ. संज्ञा+दाई—सत्रु होइ दुखदाई। तुम सुखदाई। प्रीति बस जमलतरु मोच्छदाई।

इ. संज्ञा+दात—पर-द्वारा दुखदात।

ई. संज्ञा+दाता—हरीचंद सो को जगदाता। करम होइ दुखदाता। तुम्हीं कौं डँडदाता मानत।

उ. संज्ञा+दातार—कहियत इतने दुखदातार।

ऊ. संज्ञा+दायक—द्वितीया दुखदायक नहिं कोइ। जे पद ब्रज-जुबतिनि सुखदायक।

ऋ. संज्ञा+मय—स्वामी करुनामय। कनकमय आँगन। मनिमय कनक अवास। करौं रुधिरमय पंक।

ए. संज्ञा+मयी (स्त्रीलिंग)—करुनामयी मातु।

ऐ. संज्ञा+वंत—प्रभु कृपावंत। बेनु नृप भयौ बलवंत। क्रोधवंत ऋषि। तृषावंत सुरभी-बालकगन।

ओ. संज्ञा+वती—गर्भवती हिरनी।

औ. संज्ञा+हीन—पांडुबधू पटहीन। फिरत-फिरत बलहीन भयौ।

अ. संज्ञा+धातु+क—हरि साँचे प्रीति निबाहक। जीव साधु-निंदक। हरि सुर-पालक असुरन-उर-सालक।

अः. अन्य रूप—विशेषणवत् प्रयुक्त सामासिक पदों के जैसे उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वैसे ही कुछ अन्य प्रयोग यहाँ और संकलित किये जाते हैं। इनके नियम देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती; जैसे—ऐसे प्रभु पर पीरक। जीव लंपट। रावन कुलखोवन। रनजीत पवनसुत। बिपति-बटावन बीर। रतन-जटित पहुँची। कामातुर नारी।

ङ. अन्य विशेषण—इस वर्ग में वे शब्द आते हैं प्रयोग तो विशेषण के समान ही किया गया है, परंतु जिनके निर्माण में उक्त शीर्षकों के अंतर्गत दिये गये नियमों का स्पष्ट रूप से सहारा नहीं लिया गया है, यद्यपि प्रयत्न करने पर इनके स्वतन्त्र नियम बनाये अवश्य जा सकते हैं। इनमें से कुछ प्रयोग गढ़े गये हैं और कुछ विकृत किये गये हैं। जैसे—हम ग्वालनि जुठ-हारे। सुन्दर मुरली अधर उपाम। राधा हरि कैं गर्व गहीली। अंग अंग सुख-पुंज भरीली। सौतिनि भाग सुहाग डहीली। स्याम-रंग अजराइल रैहै। वा छबियै मैं भई लिना। झुरि झुरि कै ह्वै रही छिना। बढ़ी पेट की गँसी हौ। निसि भई अगौहूँ। सूर····निकामी। लूटत रूप अखूट को। गति लंगो। लोचन अतिहिं अहीठ। रूप झकाझक झूरि। तुम निठुराई पूसे हौ। करत उपरफट बातैं। भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी। ज्यौं ज्यौं दिनी भई त्यौं निपजी। द्वैज ससि। मुख बिषारौ। तातैं तू निरमोल री।

३. वर्गीकरण—

विशेषणों के मुख्य तीन भेद किये जा सकते हैं—१. सार्वनामिक, २. गुणवाचक, और ३. संख्यावाचक। कवियों ने इनमें से प्रथम का प्रयोग तो कम किया है, शेष दोनों रूपों के अन्तर्गत आनेवाले विशेषणों की संख्या बहुत अधिक है।

क. सार्वनामिक विशेषण—विभिन्न सर्वनाम-भेदों में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, कभी-कभी उनका प्रयोग विशेषणों के समान भी किया जाता है। 'सार्वनामिक विशेषण' शीर्षक के अंतर्गत ऐसे ही प्रयोग आते हैं; जैसे—

अ. पुरुषवाचक रूप—सो कथा। तिहिं ग्वालिनि के घर। वह सुख।

आ. संबंधवाचक रूप—जा चरनाबिंद। जिते जन। जिहिं सर। जेतक अस्त्र। जेतिक सैल-सुमेरु। बोल जितिक। जे पद। जिती कृपा।

इ. नित्यसंबंधी रूप—जिहिं सर····सो सर। ता बन····जा बन। सोई रसना जो हरि गुन गावै। कर तेई जे स्यामहिं सेवैं। जिहिं तन····सो तन। जे पद····ते पद।

ई. निश्चयवाचक: निकटवर्ती रूप—या ब्रज के। एहिं थर। ये बालक। यह संताप। इन लोगनि। इहिं लोक। गुन एह। इस ठौर।

उ. निश्चयवाचक: दूरवर्ती रूप—वा निधि।

ऊ. अनिश्चयवाचक रूप—यह गति काहू देव न पाई। आन पुरुष····आन देव। उपमा अपर। औरौ सखा। काहू सुत। और जुवति सब आईं। असुर किते संहरे। केती माँग करौ किन कोई।

ऐ. प्रश्नवाचक रूप—कौन कारज सरै। पढ़े कहा बिद्या। कौन पुरुष। कवन मति। केतिक अमृत।

उक्त प्रमुख रूपों के अतिरिक्त कहीं-कहीं दो-दो सार्वनामिक रूपों का प्रयोग भी कवियों ने किया है; जैसे—प्रश्नवाचक और निश्चयवाचक: निकटवर्ती का साथ-साथ प्रयोग—कौन यह काम।

२. गुणवाचक विशेषण—ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त गुणवाचक विशेषणों की संख्या सबसे अधिक है। इनके मुख्य भेद और उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

अ. कालवाचक—पछिले कर्म। तन छनभंगुर। पुरातन दास। पूरबली पहिचान। अटल पदवी। आगिलौ जन्म। नयौ नेह। आदि जोतिषी। पहिले दाग।

आ. स्थानवाचक—बंजर भूमि। भुज दच्छिन। बाम कर। परली दिसि।

इ. आकारवाचक—बड़ी है राम-नाम की ओट। टूटी छानि। बाहु बिसाल। छीन तन। थूल सरीर।

तन स्थूल अरु दूबर। मनोहर बाना। अगम सरीर। पूरन ससि।

ई. रंगसूचक—नील खुर अरु अरुन लोचन सेत सींग सुहाइ। राती चूनरी, सेत उपरना......कटि लहँगा नीलौ। सेत, हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग। पीत पटोलै। स्याम चिकुर। कारी कामरि। हंस उज्जल। नैन अरुन। लाल पनहियाँ। गौर बदन। स्वेत छत्र। हरी डार। साँवरी ललना। पियरी पिछौरी। नैन अति रतनारे। काजरी धौरी गैयनि। पीरे पान। कजरी, धौरी, सेंदुरी, धूमरि मेरी गैया।

उ. दशा या स्थितिसूचक—अंध कूप। पसू अचेत। पूरौ ब्यौपारी। रंक सुदामा कियौ अजाची। हृदय कुचील। बीर निर्बीर। मिरतक कच।

ऊ. गुणसूचक—सुभाव सीतल। समरथ जदुराई। बचन रसाल। संत सुजान। गद्गद स्वर। सुख सियरै। रतन अमोलक। खंजन मनरंजन। सुर अति छमी। सुगम उपाय।

ए. अवगुणसूचक—(गाय) ढीठ, निठुर। मन मूरख। उलटी चाल। सस्तौ नाम। दुख तातौ। सृष्टि तामसी। असुर अति कोही। असुर अजितेंद्रि। कटु बचन। सरितापति खारौ। करुवौ वचन।

ऐ. अवस्थासूचक—बृद्ध रिषीस्वर। बिरध पुरुष। नान्हरिया गोपाल।

३. संख्यावाचक विशेषण—इस वर्ग के विशेषणों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में सार्वनामिकों से कम, परन्तु गुणवाचकों के लगभग समान है। सुविधा के लिए संख्यावाचक विशेषणों के तीन भेद किये जा सकते हैं—क. निश्चित संख्यावाचक, ख. अनिश्चित संख्यावाचक और ग. परिमाणबोधक।

क. निश्चित संख्यावाचक विशेषण—संख्यावाचक विशेषणों के तीनों भेदों में निश्चित संख्यावाचकों की संख्या सबसे अधिक है। सुविधा के लिए इनके पाँच भेद किये जा सकते हैं—अ. गणनावाचक, आ. क्रमवाचक, इ. आवृत्तिवाचक, ई. समुदायवाचक और उ. प्रत्येकबोधक।

अ. गणनावाचक - इस वर्ग के विशेषणों के पुनः दो भेद हो सकते हैं—क्ष. पूर्णांकबोधक और त्र. अपूर्णांकबोधक।

क्ष. पूर्णांकबोधक—इक गाइ। एक मुहुरति। उभय दुज। दोउ सुत। दोऊ सुत। द्वै रंग। दोइ मुहूरत। नैना दोई। नान्ही-नान्ही दँतुली द्वै पर। संग सहचरि बिये। बिवि चंद्रमा। जुगल खंजन। तीनि पैंड़। लोक त्रय। दिवस चारी। सुत चारि। पांडव पाँच। षट मास। सात पीढ़िनि कौ। रिपय सप्त। अष्ट सिद्धि। नव निधि। दस दिसि। द्वादस कन्या। भुवन चौदह। कहा पुरान जु पढ़े अठारह। बीस भुजा। कुल इकीस। इकइस बार। सुर तैंतीस। पचास पुत्री। चउवन कोस। साठि पुत्र। चौरासी कोस। जज्ञ निन्यानवे। सौ भाई। पुत्र एक सौ। सत पुत्र। चौदह सहस जुवति। सहस पचास पुत्र। असी सहस किंकर दल। चौरासी लख जोनि। तैंतिस कोटि देव। कोटि छ्यान्वे नृप-सेना।

कहीं-कहीं एक निश्चित पूर्णांकबोधक रूप बनाने के लिए कवियों ने दो पूर्णांकों का भी प्रयोग किया है; जैसे—अष्ट दस (अठारह) घट नीर। दस अरु आठ पदुम बनचर। बरस चतुरदस। षट दस (सोलह) सहस गोपिका। भूषन अंग सजे सत नौ री। छोहनी दोइ दस। बीस चारि लौं। दिन सात बीस मैं।

त्र. अपूर्णांकबोधक—आधो उदर। आधे पलकहुँ। अद्ध निसा। आध पैंड़। अरध लंक कौ राज। अर्ध राज देउँ लंक। अहुँठ पैग। मान करौ तुम और सवाई।

आ. क्रमवाचक—इस प्रकार के विशेषण पूर्णांकबोधकों से बनाये गये हैं; जैसे—पहिलौ पुत्र। दूजे करज। दूजौ भूप। द्वितीय मास। तीजे जनम। तृतिय लोचन। चौथ मास....पंचम मास। छठैं मास। सप्तम दिन। सातवें दिवस। अष्टम मास.....नवम मास। नवएँ मास। दसम मास। दसएँ मास। सौवौं जज्ञ।

इ. आवृत्तिवाचक—दूनौ दुख। दूनैं दूध। यह मासो चौगुनो चलाऊँ। चतुरगुन गात।

ई. समुदायवाचक—इस प्रकार के विशेषण भी पूर्णांक बोधकों से ही बनाये गये हैं। रूप-निर्माण की दृष्टि से इनको तीन वर्गों में रखा जा सकता है—क्ष 'उ' या 'ऊ' युक्त रूप। त्र. 'औं', 'औ' या 'हौं' युक्त रूप तथा ज्ञ. हुँ या 'हूँ' युक्त रूप।

क्ष. 'उ' या 'ऊ' युक्त रूप—इस प्रकार के रूप प्रायः 'दो' और 'छः' से ही बनाये गये हैं; जैसे—कपट लोभ वाके दोउ भैया। दोऊ जन्म। छेऊ सास्त्र-सार।

त्र. 'औं', 'औ' या हौं युक्त रूप—तीनौ पन। तीन्यौ पन। चारौं बेद। इंद्रिय बस राखहि किन पाँचौं। छहौं रस। आठौं सिधि। दसौं दिसि। बीसौं भुज। सहसौं पन। देव कोटि तैंतीसौं।

ज्ञ. 'हुँ' या 'हूँ' युक्त रूप—दुहूँ लोक। तिहूँ पुर। चहुँ दिसि। चहूँ दिसि। छहूँ रस। आठहूँ सिधि। दसहुँ दिसा तैं। दसहूँ दिसि।

इनके अतिरिक्त कुछ पदों में 'जुग', 'बिबि' आदि का भी समुदायवाचक 'दोनों' के अर्थ में प्रयोग किया गया है; जैसे—थकि कोउ निरखि जुग जानु''''कोउ निरखि जुग जंघ सोभा। बिबि लोचन सु बिसाल दुहुँनि के।

उ. प्रत्येकबोधक—इस वर्ग के विशेषण दो वर्गों में आते हैं—क्ष. 'एक' से बननेवाले रूप और त्र. 'प्रति' से बननेवाले रूप। दूसरे प्रकार के रूपों का प्रयोग कवियों ने कुछ अधिक किया है; जैसे—

क्ष. 'एक' से बननेवाले रूप—एक एक अंग पर।

त्र. 'प्रति' से होनेवाले रूप—प्रति रोमनि। अंग अंग प्रति बालक। दिन प्रति। द्वारनि प्रति।

ख. अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण—इस वर्ग में कुछ विशेषण तो वस्तुतः अनिश्चित संख्या के द्योतक हैं, परन्तु कुछ निश्चित संख्यावाचक होते हुए भी अनिश्चित के समान प्रयुक्त हुए हैं।

अ. अनिश्चित संख्याद्योतक रूप—इस वर्ग में आनेवाले मुख्य रूप ये हैं—

अखिल—अखिल लोकनि।

अगनित—अगनित अधम उधारे। अगनित गुन। चरित अगनित।

अगनिया—व्यंजन बिबिध अगनिया।

अगिनित—कटक अगिनित। अगिनित कीन्हे खाद।

अनंत—और अनंत कथा स्तुति गाई।

अनगन—अपराधी अनगन।

अनेक—अनेक जन्म गये। अनेक गन अनुचर। भूप अनेक।

अपार—कीन्हे पाप अपार। आयुध धरे अपार।

अपारा—ब्रजवासी तहँ जुरे अपारा।

अमित—अमित अंडमय बेष। अमित अंडमय गात।

और—और पतित तुम जैसे तारे। और ठौर नहिं। और देव।

और सब—और अहिर सब।

कछु—कछु दिन।

कछु इक—कछु इक दिन औरौ रहौ।

कछुक—कछुक दिननि कौ।

केतिक—तुम मोसे अपराधी माधव केतिक स्वर्ग पठाए हौ। केतिक जनम।

कै—सुनि सुनि गे कै बार।

कोटि—कोटि मुख। मनमथ कोटि''''कोटि रबि-चंद्र। कोटि काम।

कोटिक—कोटिक नाच नचावै। कोटिक तीरथ। कोटिक कला।

कोटिनि—कोटिनि बसन। कोटिनि बरष।

बहुतक—असगुन बहुतक पाई।

घनेरे—भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे।

बहुतेरे—पुत्र अन्याइ करै बहुतेरे।

नाना—नाना त्रास निवारे। नाना स्वाँग बनावै। नाना भाव दिखायौ।

लच्छ—लच्छ लच्छ बान।

सकल—सकल मिथ्या सौंजाई। सकल बृतांत सुनाए। सकल जादव।

सारे—सुर सारे।

सब—सब लोइ (लोग)। सब कुसुमनि। सब सखा।

सहस—बोरत सहस प्रकारो।

बहु—बहु बपु धारे। बहु रतन। बहु उद्यम।

बहुत—बहुत जुग। बहुत प्रपंच। बहुत रतन।

कुछ अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण ऐसे संज्ञा शब्दों के साथ भी ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं जिनकी संख्या निश्चित है। ऐसे प्रयोगों को निश्चित संख्यावाचक ही समझना चाहिए; जैसे—सर्व पुरान माहिं जो सार। पुराणों की संख्या 'अठारह' निश्चित है। अतएव 'पुराणों के साथ विशेषण रूप में 'सर्व' का प्रयोग इस निश्चित संख्या 'अठारह' के लिए ही किया गया है। इसी प्रकार 'मानधाता' कहता है—हैं पचास पुत्री मम गेह। इसके आगे वाक्य है—सब कन्यनि सौभरि रिषि बरयौ। और पद के अंत में कहा गया है—सब नारिनि सहगामिनि कियौ। पिछले दोनों वाक्यों में 'सब' का संकेत भी निश्चित संख्या 'पचास' की ओर ही है।

आ. अनिश्चितवत् प्रयुक्त निश्चित संख्या-वाचक रूप—इस प्रकार के विशेषण-रूपों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क्ष. अनिश्चय-बोधक सामान्य पूर्णांक, त्र. अनिश्चयबोधक 'एक' युक्त पूर्णांक, क्ष. अनिश्चबोधक दोहरे पूर्णांक।

क्ष. अनिश्चयबोधक सामान्य पूर्णांक—और पतित सब दिवस चारि के। मरियत लाज पाँच पतितनि मैं। दिन दस लेहि गोबिंद गाइ। दिन द्वै लेहु गोबिंद गाइ। कहा भयौ अधिकी द्वै गैयाँ। सौ बातनि की एकै बात।

त्र. अनिश्चयबोधक 'एक' युक्त पूर्णांक—जोजन बीस एक अरु अगरौ डेरा। कहीं-कहीं कवियों ने 'एक' के स्थान पर केवल 'क' से काम लिया है। इस प्रकार के प्रयोग 'एक'-युक्त प्रयोगों से उन्होंने अधिक किये हैं: जैसे—बर्ष ब्यतीत दसक जब होहिं। गाउँ दसक सरदार। पग द्वैक धरै। अच्छर चारिक। दिन पाँचाक। बरन पचासक अबिर। बहुतक जीव। बहुतक तपसी।

ज्ञ. अनिश्चयबोधक दोहरे पूर्णांक—दिन चारि-पाँच मैं। मिलि दसपाँच अली।

अपवादस्वरूप दो-एक प्रयोगों में द्वितीय और तृतीय नियमों को मिलाकर भी प्रयोग किये गये हैं: जैसे—दस-बीसक दोना।

ग. परिमाणबोधक—इस वर्ग के रूप ब्रजभाषा-काव्य में अनिश्चित संख्यावाचकों के लगभग बराबर ही हैं; जैसे—

अगाध—दुख है बहुत अगाध।
अघटित—अघटित भोजन।
अति—अति दुख। अति अनुराग।
अतिसय—अतिसय दुख।
अतिसै—अनन्द अतिसै।
अतुल—अतुल बल।
अपरिमित—अपरिमित महिमा।
अपार—अजस अपार।
इती—रिस इती।
अमित—अमित आनन्द। अमित बल। अमित माधुरी।
इतौ—इतौ कोह।
एत—तामस एत।
इतनक—इतनक दधि-माखन।
कछु—कछु संक। ताहू मैं कछु कानौ। कछु डर।
कितौ—कितौ यह काम।
कछुक—कछुक प्रीति। कछुक करुना।
केतिक—केतिक दहचौ (दही)।
कछू—छल करत कछू।
घनौ—कपट घनौ।
थोरनौ—मोर सुख नहिं थोरनौ।
थोरी—रुचि नहिं थोरी। मति थोरी।
तनिकौ—सुख दुख तनिकौ।
थोरेक—थोरेक ही बल सौं।
नैंसुक—नैंसुक घैया।
परम—परम सुख। परम स्नेह।
पूरन—प्रभू पूरन ठाकुर।
बड़ौ—बड़ौ दुख। बड़ौ संताप।
बहु—बहु काल। बहु तप।
बहुत—बहुत हित जासौ। बहुत सुख। बहुत पंथहू नहिं आयौ।
भारी—सुख पाऊँ अति भारी। लोभ-मोह-मद भारी।
भारे—अपराध करे⋯⋯अति भारे। महा दुख भारे।
भारौ—बहत बिरद भारौ।
सकलौ—तेज-तप सकलौ।

सगरौ—दूध-दही-माखन······ सगरौ ।
सिगरी—आस सिगरी ।
सब—रैनि सब निघटी ।
रंच—रंच सुख ।
रंचक—रंचक सुख कारन ।
समस्त—जल समस्त ।

उक्त रूपों में से 'कछुक', 'थोरेक' आदि विशेषण 'क' के योग से अल्पार्थक बनाये गये हैं, शेष सब अपने सामान्य मूल या विकृत रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।

४. प्रयोग—

ब्रजभाषा-कवियों ने विशेषण शब्दों के जो प्रयोग किये हैं, स्थूल रूप से उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. सामान्य प्रयोग और ख. विशेष प्रयोग ।

क. सामान्य प्रयोग—इस शीर्षक के अंतर्गत दो विषयों का अध्ययन करना है—अ. वाक्य में विशेषण का क्रम और आ. विशेषण का तुलनात्मक रूप ।

अ. वाक्य में विशेषण का क्रम—वाक्य में विशेषण का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है—कभी तो वह विशेष्य के साथ आता है; जैसे—काली गाय; और कभी क्रिया के साथ, जैसे गाय काली है । प्रथम को 'उद्देश्यात्मक' और द्वितीय को 'विधेयात्मक' प्रयोग[1] कहते हैं । गद्य में तो साधारणत: विशेष्य के बाद या क्रिया के साथ, प्रयुक्त विशेषण 'विधेयात्मक' होता है, परंतु काव्य में कभी ऐसा होता है, कभी नहीं होता । 'जिन भ्रम सकल निवारचौ'—इस वाक्य में परिणामवाचक विशेषण 'सकल' अपने विशेष्य 'भ्रम' के बाद और क्रिया 'निवारचौ' के साथ आने पर भी 'उद्देश्यात्मक' ही है । परंतु 'जीवन थिर जान्यौ'—इस वाक्य में गुणवाचक विशेषण 'थिर' विशेष्य 'जीवन' के बाद होने पर भी 'विधेयात्मक' हो गया है । यही बात विशेष्य के पूर्व आनेवाले, गद्य की दृष्टि से उद्देश्यात्मक, विशेषणों के संबंध में भी है । 'कह्यौ नृपति, 'मोटौ' तू आहि—इस वाक्य में यद्यपि 'मोटौ' विशेषण, सर्वनाम विशेष्य 'तू' के पूर्व प्रयुक्त हुआ है, फिर भी उसका प्रयोग विधेयात्मक ही है ।

क्ष. उद्देश्यात्मक प्रयोग—आछौ गात अकारथ गारचौ । महर मनहिं अति हर्ष बढ़ाए । यह दरसन त्रिभुवन नाहिं । निठुर बचन सुनि स्याम के । बिनती सुनी स्याम सुजान । गगन उठी घटा काली । उकठे तरु भए पात । यह मुरली कुल दाहनहारी । सबनि इक इक कलस लीन्हौ ।

त्र· विधेयात्मक प्रयोग—बिप्र सुदामा कियौ अजाची । चारु मोहिनी आइ आँध कियौ । तेरौ बचन-भरोसौ साँचौ । कुबिजा भई स्याम-रँग-राती । अधम, तू अंत भयौ बलहीनौ । राजा ह्वै गए राँकौ । कंचन करत खरौ । सुखी हम रहत । अति ऊँचौ गिरिराज बिराजत । तरुनी स्याम रस मतवारि ।

कुछ वाक्यों में एक साथ अनेक विशेषण विधेयात्मक रूप से प्रयुक्त हुए हैं; और उनमें क्रिया लुप्त है; जैसे—हरि, हौं महा अधम संसारी ।

आ. विशेषण का तुलनात्मक प्रयोग—तुलना कभी दो वस्तुओं, व्यक्तियों या भावों की होती है और कभी दो से अधिक की । दोनों प्रकार की तुलनाओं को सूचित करने लिए अलग-अलग रीतियाँ कवियों ने अपनायी हैं ।

क्ष. 'दो' की तुलना—दो वस्तुओं या भावों की तुलना करते समय एक की अधिकता या न्यूनता सूचित करने के लिए साधारणत: संज्ञा या सर्वनाम के साथ 'तैं' का प्रयोग किया गया है, और कहीं-कहीं 'अधिक' और 'तैं', दोनों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है; जैसे—

१. तैं—राजा कौन बड़ौ रावण तैं । हरि तैं और न आगर । मोहूँ तैं को नीकौ । काजर हूँ तैं कारौ । सबल देह कागद त कोमल । हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ । तुमहिं तैं कौन सयानौ । बासुरी बिधि हूँ तैं परबीन ।
२. अधिक ...तैं—अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं···· अधिक सुरूप कौन सीता तैं ।

त्र. 'अनेक' की तुलना—अनेक वस्तुओं, व्यक्तियों या भावों की तुलना के लिए कवियों ने साधारणत:

---

१. विधेय के रूप में प्रयुक्त विशेषण को, अँगरेजी के ढंग पर कभी-कभी 'पूरक' भी कहा जाता है—लेखक ।

विशेष्य के साथ 'अति,' 'परम,' 'महा' आदि का प्रयोग किया है; जैसे—

अ. अति—ये अति चपल। रूप अति सुन्दर। अति सुकुमार।

आ. परम—परम सीतल। परम सुन्दर। हरि बस विमल छत्र सिर ऊपर राजत परम अनूप।

इ. महा—कंस महा खल।

ख. विशेष प्रयोग—इस शीर्षक के अंतर्गत विशेषण के प्रयोगों के संबंध में उन सब स्फुट विषयों की चर्चा करनी है जिनके संबंध में ऊपर विचार नहीं किया जा सका है; यथा—अ. संज्ञा शब्दों का विशेषणवत् प्रयोग, आ. सर्वनाम के विशेषण-रूप-प्रयोग, इ. विशेषण के विशेषण-रूप प्रयोग, ई. विशेषण का संज्ञा के समान प्रयोग, उ. विशेषण का सर्वनाम के समान प्रयोग, ऊ. संयुक्त सर्वनाम-विशेषण-प्रयोग, और ए. विशेषण के विकृत रूप-प्रयोग।

अ. संज्ञा शब्दों का विशेषणवत् प्रयोग—ब्रजभाषा-कवियों ने अनेक स्थलों पर उन शब्दों का विशेषणवत् प्रयोग किया है जो साधारणतः 'संज्ञा' शब्द-भेद के अंतर्गत आते हैं; जैसे अमी बचन। अमृत बचन। कनक बरन। किसोर बिरधौ तन। बोलहि बचन बिकार। मधु छीलर। अटके नैन, माधुरी मुस्कनि। हमरे रसाल गुपालहि। सिसु तन। सीतल सलिल। सुगंध पवन। झटकि हाटक मुकुट। हीरा जनम।

आ. सर्वनाम के विशेषण-रूप में प्रयोग—कभी कभी सर्वनाम के साथ भी कवियों ने विशेषण का प्रयोग किया है। इस प्रकार के कुछ प्रयोग ऊपर दिये जा चुके हैं; दो-चार अन्य उदाहरण यहाँ संकलित हैं—ये अति चपल। कुछ थिर न रहैगो। यह जानत बिरला कोई। मोटौ तू आहि। यह अति हरिहाई।

इ. विशेषण के विशेषण-रूप प्रयोग—संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के अतिरिक्त अनेक पदों में ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जिनमें विशेषण शब्द का विशेष्य भी विशेषण है; जैसे—अपराध करे मैं तिनहूँ सौं अति मारे। छुद्र पतित। निपट अनाथ। बड़ौ अधर्मी। महा ऊँच पदवी।

ई. विशेषण का संज्ञावत् प्रयोग—अनेक विशेषण शब्दों का कवियों ने संज्ञावत् भी प्रयोग किया है; जैसे—अंधे कौ सब कछु दरसाइ। आवै अंधौ जग जोइ। आधे मैं जल-वायु समावै। कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै। बहुरौ क्रोधवंत जुध चह्यौ। गरबत कहा गँवार। बोलै गुंग। गूँग पुनि बोलै। सचु पावै गोरी। बिपति परी दीन पर। नवमी नवसत साजि कै। तुम नहिं जानत नान्हा। नीच पावै ऊँच पदवी। पंगु गिरि लंघै। हा हा प्यारी, तेरौ प्यारौ चौंक परै। बहिरौ सुनै। बिगरी लेहु सँवारी। कहति न मीठी खाटी। संगीत-सुधानिधि मूढ़हिं कहा सुनैऐ। उलटि चुंबन देत रसकिनी। हार बिना ल्याए लड़िबौरी घर नहिं पैठन दैहौं। देखि सुन्दरि, रहे दोउ लुभाई। देखि दसा सुकुमारि की।

उक्त प्रयोगों में 'नवसत' जैसे प्रयोगों को छोड़कर शेष सब रूप एकवचन में हैं; परंतु कवियों ने विशेषणों के संज्ञावत् बहुवचन रूपों में भी प्रयोग किये हैं, जैसे—समुझाइ अनाथनि। कै करि कृपा दुखित दीननि पै। अब लौं नान्हे-नून्हे तारे। त्रिया-चरित मतिमंत न समुझत। जा जस कारन देत सयाने तन-मन-धन सब साज।

ऊपर संकलित उदाहरणों में प्रायः सभी जाति-वाचक संज्ञावत् प्रयोगों के हैं। इनके साथ-साथ कुछ विशेषण-रूपों का कवियों ने व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों की भाँति भी प्रयोग किया है; जैसे—चतुरमुख कह्यौ.... चतुरमुख अस्तुति सुनाई। तोहि देखि चतुरानन मोहै। दसमुख बध-बिस्तार। दससिर बोलि निकट बैठायौ। सहसानन नहिं जान। एक स्थान पर सामान्य विशेषण 'अंध', कौरवपति धृतराष्ट्र के लिए, जो जन्म से अंधे थे, प्रयुक्त हुआ है—अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अंध-सुत लाजैं।

जातिवाचक या व्यक्तिवाचक रूप में प्रयुक्त उक्त विशेषण अपने सामान्य रूप में हैं; परंतु कहीं-कहीं कवियों ने अभीष्ट कारकीय रूप देने के लिए उनको विकृत भी किया है; जैसे—ज्यौं गूँगैं मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै। नोखैं निधि पाई।

उ. सर्वनामवत् प्रयोग—अनेक विशेषण-रूपों का कवियों ने सर्वनामवत् प्रयोग भी किया है। ऐसे विशे-षणों में प्रायः सभी संख्यावाचक हैं; जैसे—एकनि हरे

प्रान गोकुल के । असी इक कर्म बिप्र को लियौ । निसा आन कैं बसे साँवरे । कहौं एक की कथा । तोसी मुग्ध न दूजी । दुहुँ तब तीरथ माहिं नहाए । दुहुँनि पुत्र-मुख देखौ । एकहिं दिन जनमें दोऊ हैं । आठ मास चंदन पियौ, नवएँ पियौ कपूर । कहौं बनाइ पचासक, उनकी बान गुन एक । आपु देखि, पर देखि रे । इनतैं प्रभु नहिं और बियौ । एक कहत धाए सौ चारी ।

ऊ. संयुक्त सर्वनाम-विशेषण प्रयोग—अनेक पदों में कवियों ने सर्वनाम और विशेषण-रूपों का साथ-साथ प्रयोग किया है । ऐसे प्रयोगों में कहीं तो सर्वनाम शब्द विशेषण का विशेष्य होकर आया है और कहीं दोनों संयुक्त रूप बन गये हैं; जैसे—ज्यौं त्यौं करि इन दुहुँनि सँघारौ । ऐसे और कितक हैं नामी । हम तीनौं हैं जग-करतार ।

ए. विशेषण के विकृत रूप प्रयोग—संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के समान कुछ विशेषण-रूप भी इस प्रकार विकृत कर लिये गये हैं कि उनके संबंधी शब्द की कारकीय विभक्ति जैसे उन्हीं में जोड़ ली गयी है अथवा अभीष्ट कारक के अनुसार विशेष्य संज्ञा शब्द में परिवर्तन न करके विशेषण का रूप विकृत कर लिया गया है; जैसे—छठैं मास इंद्री प्रगटावै । सुत बाँधति दधि-माखन थोरैं । परची पराएँ कर ज्यौं । गए स्याम ग्वालिनि घर सूनैं ।

क्रिया और ब्रजभाषा-कवियों के प्रयोग ।

१. धातु—

क्रिया का मूल रूप जो उसके सभी रूपांतरों में विद्यमान रहता है, 'धातु' कहलाता है । धातु में 'नो' या 'बो' जोड़ने से ब्रजभाषा-क्रिया का सामान्य रूप बनता है; जैसे—करनो, रहनो, पढ़िबो आदि । यह रूप वाक्य में क्रिया के समान प्रयुक्त नहीं होता, प्रत्युत लिंग, काल, वचन आदि के अनुसार उसमें परिवर्तन या रूपांतर करके क्रिया के अन्य विकृत रूप बनाये जाते हैं ।

क्रिया के मूल रूप अर्थात् धातु की दृष्टि से ब्रज-भाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त क्रिया-पदों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. संस्कृत से प्रभावित रूप, ख. अपभ्रंश से प्रभावित रूप और ग. जनभाषा से प्रभावित रूप ।

क. संस्कृत से प्रभावित रूप—संस्कृत भाषा की क्रियाओं के जो मूल रूप हैं, उनसे मिलती-जुलती धातुओं से निर्मित अनेक रूपांतर ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं; जैसे—एक सुमन लै ग्रंथति माला । राधे कत रिस सरसतई; तिष्ठति जाइ बार बारनि पै होति अनीति नई । द्रुपदसुता भाषति । सूच्छम बेष धूम की धारा नव घन ऊपर भ्राजति । मानौ मघवा नव घन ऊप राजत । बसुधा कमल बैठकी साजति । इन वाक्यों में प्रयुक्त क्रियाओं—ग्रंथति, तिष्ठति, भाषति, भ्राषति, राजत और साजति—के धातु-रूप ग्रंथ, तिष्ठ, भाष, भ्राज, राज और साज संस्कृत से प्रभावित ही हैं ।

ख. अपभ्रंश से प्रभावित रूप—अपभ्रंश में जिस प्रकार द्वित्व वर्णों से युक्त रूप प्रयुत होते थे, उसी प्रकार के कुछ प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में भी मिलते हैं । इनकी संख्या अधिक नहीं है । निम्नलिखित उदाहरणों के 'कट्टे', 'दहपट्टे' और 'लज्जियै' क्रिया-रूपों की कट्ट, दहपट्ट और लज्जि धातुएँ अपभ्रंश से ही प्रभावित हैं—

१. तब बिलंब नहिं कियौ सीस रावन दस कट्टे । तब बिलंब नहिं कियौ सबै दानव दहपट्टे ।

२. जिहिं लज्जा जग लज्जियै सो लज्जा गई लजाइ ।

ग. जनभाषा से प्रभावित रूप—इस प्रकार के रूपों की संख्या प्रथम अर्थात् संस्कृत से प्रभावित रूपों से कम, परन्तु अपभ्रंश से प्रभावित रूपों से अधिक है । निम्नलिखित वाक्यों की 'निचोवति' और 'सैंतति' क्रियाओं के धातु-रूप 'निचोव' और 'सैंत' जनभाषा से ही प्रभावित हैं—अँसुवनि चीर निचोवति । सैंतत अंड अनेक ।

व्युत्पत्ति के विचार से अथवा ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त धातुओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—मूल और यौगिक धातु । प्रथम से आशय उन धातुओं से है जो स्वतः निर्मित हैं; किसी दूसरे शब्द से नहीं बनायी गयी हैं; जैसे—

अ. कर—सूर कहूँ पर-घर माही जैसैं हाल करायौ ।

आ. चल—काहु सौं बात चलाई ।

द्वितीय वर्ग में वे धातुएँ आती हैं जो दूसरे शब्दों से बनायी गयी है; जैसे—

अ. छमा, छमनो या छमानो—जाँबवती समेत मनि दै पुनि अपनो दोष छमायौ।

आ. संताप, सतापनो—अरु पुनि लोभ सदा संतापै।

ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त यौगिक धातुओं के पुन: दो वर्ग किये जा सकते हैं—क. प्रेरणार्थक धातु और ख. नाम धातु।

क. प्रेरणार्थक धातु—दूसरे शब्दों से बनी हुई धातुओं के जो विकृत रूप वाक्य में 'कर्त्ता' का किसी कार्य या व्यापार की ओर प्रेरित किया जाना सूचित करते हैं, वे 'प्रेरणार्थक धातु' कहलाते हैं। इसी से प्रेरणार्थक क्रिया बनती है। साधारणत: 'आनो', 'जानो,' 'सकनो' आदि कुछ क्रिया-रूपों को छोड़कर अन्य क्रियाओं के दो प्रेरणार्थक रूप होते हैं—पहला सकर्मक रूप और दूसरा शुद्ध प्रेरणार्थक रूप। ब्रजभाषा-कवियों ने सकर्मक और प्रेरणार्थक रूप बचाने के लिए जिन नियमों का आश्रय लिया है, उनमें मुख्य ये हैं—

अ. क्रिया के मूल रूप अर्थात् धातु के अंतिम अक्षर को आकारांत करके और कभी-कभी अंत में अतिरिक्त 'आव' या 'वा' जोड़कर; जैसे—माया तुमसौं कपट करावति। स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ। बालमुकुंदहिं कत तरसावति। छेरी कौन दुहावै। गनिका सुक-हित नाम पढ़ावै। नाम-प्रताप बढ़ायौ। आदि पुरुष मोकौं प्रगटायौ। वे रुचि सौं अँचवावत। सुमिरत औ सुमिरावत।

आ. एकाक्षरी आकारांत धातु को ह्रस्व अर्थात् अकारांत करके और उसके बाद 'व' जोड़कर; जैसे—माखन खाइ खवायो ग्वालनि।

इ. एकाक्षरी एकारांत और ओकारांत धातु को क्रमश: इकारान्त और उकारांत करके और उसके अंत में 'रा', 'ला' या 'वा' जोड़कर; जैसे—गारी देत दिवावत। जसुदा मदन गुपाल सुवावै।

ई. दो अक्षरों की धातु के प्रथमाक्षर की 'आ', 'ई' या 'ऊ' मात्राओं को लघु करके और अंत में 'आ', 'आव' या 'वा' जोड़कर; जैसे - बहुरि बिधि जाइ छमवाइ कै रुद्र को। काहूँ कछु न जनावत। दोउ सुतनि जिवावतिं। मन मेरैं नट के नायक ज्यौं नितहीं नाच नचायौ। नयौ देवता कान्ह पुजावत। मदन चोर सौं जानि (आपुकौं) मुसायौ। अति रस-रासि लुटावत लूटत। राधिका मौन-ब्रत किन सधायौ।

ऊ. दो अक्षरों की धातु के प्रथमाक्षर के 'ए' या 'ओ' की मात्राओं के स्थान पर क्रमश: 'इ' या 'उ' करके और अंत में 'आ', 'रा' या 'राव' जोड़कर; जैसे—फंदन काटि छुड़ायौ। हौं तुम्हैं दिखराइहौं वह रूप। जसुमति....लाल लिए कनियाँ चंदा दिखरावति।

ए. तीन अक्षरों की कुछ धातुओं के द्वितीय अक्षर को दीर्घ करके; जैसे—पछिले कर्म सम्हारत नाहीं।

ख. नाम धातु—क्रिया के मूल रूप के स्थान पर संज्ञा या विशेषण शब्द का जब धातु के समान प्रयोग किया जाता है और उसमें 'नो' जोड़कर क्रिया का सामान्य रूप बनाया जाता है, तब उसे 'नाम धातु' कहते हैं। ब्रज-भाषा-काव्य में इस प्रकार के अनेक प्रयोग मिलते हैं। ऐसे क्रिया-प्रयोगों से वाक्य को संगठित बनाने में तो विशेष सहायता मिलती ही है, संक्षेप में बात कहने की सुविधा भी रहती है। ये प्रयोग भाषा की प्रकृति से मेल खानेवाले और जन-साधारण के लिए बोधगम्य अवश्य होने चाहिएँ। इस प्रकार के रूपों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —अ. संज्ञा से बने रूप और आ. विशेषण से बने रूप।

अ. संज्ञा से बने रूप—जिन संज्ञा शब्दों को धातु-वत् स्वीकार करके कवियों ने 'नो' के योग से सामान्य क्रिया-रूप बनाये हैं और जिनके विविध विकृत रूपों का अपने काव्य में सर्वत्र प्रयोग किया है, उनमें से कुछ यहाँ संकलित हैं;—पुन्यफल अनुवभति नंदघरनि। स्याम प्रीतिहिं तैं अनुरागत। वै कितनौं अपमानत। दसरथ चले अवध आनंदत। सोइ तुम उपदेसियौ। को सकै उपमाइ। आजु अति कोपे हैं रन राम। कृष्न-जन्म सु प्रेम-सागर क्रीड़ैं सब ब्रज लोग। इहिं तन छनभंगुर के कारन गरवत कहा गँवार। थोरी कृपा बहुत गरबानी। हरि उनके दोष छमाए। यह निंदिहै मोहिं। मनहुँ प्रसंसत पिक बर बानी। इनहिं बधायौ कंस। निपट निसंक बिबादति सम्मुख। सुन्दर नारि ताहि बिबाहै। ज्ञान विवेक बिरोधै दोऊ। ओछनि हूँ ब्यौहारत। उड़त

नहीं मन क्रीड़त । तब संडामर्का संकाइ । अरु पुनि लोभ सदा संतापै....हरि माया सब जग संतापै....सुख दुख तनिको तिहिं न संतापै । अक्रूर सब कहि संतापे । भाल-तिलक भ्रुव चाप लै सोइ संधान संधानत । हम प्रतिपालैं, बहुरौ संहरै । उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि-चढ़ि अंग अंग सगुनावै । अतिथि आए को नहिं सनमानै । मति माता करि कोप सरापै । मोहन मोहनि अंग सिंगारत । सेवत जाहि महेस । अलक अधिक सोभावै । कपट करि बिप्र को स्वाँग स्वाँग्यौ । नैना हठत खरे री । हृदय होमत हवि आदि।

आ. विशेषण से बने रूप—संज्ञा शब्दों की भाँति कुछ विशेषणों को भी धातु-रूप में स्वीकार करके कवियों ने क्रिया के सामान्य रूप के विकृत प्रयोग किये हैं; परन्तु ऐसे प्रयोगों की संख्या, संज्ञा रूपों की अपेक्षा बहुत कम है; जैसे—देखत सूर अग्नि अधिकानी । यह दीन्हैं ही अधिकैहै । तऊ नहिं तृपितात । जोग दृढ़ान्यौ । लोचन लोलति ।

उक्त तथा व्रजभाषा-काव्य में प्राप्त अन्यान्य नामधातुओं को प्रयोग-विस्तार की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग में वे नाम-धातुएँ आती हैं जिनको कवि-समाज ने उपयुक्त समझकर अपना लिया है, कोशों में जिनको स्थान मिल चुका है और गद्य में तो कम, पद्य में अवश्य अनेक कवियों ने जिनका यथावसर प्रयोग भी किया है; जैसे—अनुभवना, अनुमानना, अनुरागना, अपमानना, उपदेसना, कोपना, गरबना, छमाना, चोरना, प्रसंसना, बिबाहना, ब्यवहारना, संधारना, सनमानना, सिंगारना, सेवना, हठना, होमना आदि । दूसरे वर्ग में वे प्रयोग आते हैं जिनका प्रचार तो अपेक्षाकृत सीमित रहा, परंतु जिनसे कवियों की स्वतन्त्र मनोवृत्ति के साथ-साथ नवीन शब्द-निर्माण करनेवाली उसकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है; जैसे—अधिकना, आदरना, आनंदना, उपमाना, क्रीड़ना, तृपिताना, दृढ़ाना, निंदना, प्रसंसना, बधाना, बिबादना, बिरोधना, ब्रीड़ना, लोलना, संकाना, सगुनाना, सोभना, स्वाँगना आदि ।

अनुकरण धातु—उक्त रूपों के अतिरिक्त व्रज-भाषा-काव्य में एक प्रकार के और धातुरूप मिलते हैं जिन्हें 'अनुकरण धातु' कह सकते हैं । ये रूप किसी पदार्थ या व्यापार की ध्वनि के अनुरूप बने शब्दों से अथवा उनमें 'आ' जोड़कर बनाये जाते हैं । इनमें 'ना' या 'नो' के योग से क्रिया का सामान्य रूप बनता है जिसके विकृत प्रयोगों की संख्या व्रजभाषा-काव्य में पर्याप्त है; जैसे—कदम करारत काग । बरत बन पात भहरात, झहरात, अररात तरु महा धरनी गिरायौ । घहरात गररात दररात हररात तररात झहरात माथ नाए । दरदरात घहरात प्रबल अति ।

२. कृदंत—

संज्ञा और विशेषण शब्दों का प्रयोग जिस प्रकार धातु रूप में करके, 'नो' के योग से कवियों ने सामान्य क्रियाएँ बनायी हैं, उसी प्रकार अनेक धातुओं का मूल रूप में अथवा विविध प्रत्यय जोड़कर उनका प्रयोग संज्ञा, विशेषण आदि अन्य शब्द-भेदों के समान भी किया है । ये द्वितीय प्रकार के रूप ही 'कृदंत' कहलाते हैं । संयुक्त क्रियाओं के निर्माण में इनका विशेष रूप से उपयोग होता है । स्थूल रूप से इनके दो भेद किये जा सकते हैं—१. विकारी कृदंत और २. अविकारी कृदंत ।

१. विकारी कृदंत—इनका प्रयोग मुख्य रूप से संज्ञा और विशेषण के समान किया जाता है । इनके चार भेद होते हैं—क. क्रियार्थक सज्ञा, ख. कर्तृवाचक, ग. वर्तमानकालिक कृदंत और घ. भूतकालिक कृदंत ।

क. क्रियार्थक संज्ञा—धातु के अंत में 'नो' या 'बो' जोड़ने से व्रजभाषा-क्रिया का जो सामान्य रूप बनता है, उसका प्रयोग क्रियावत् न होकर प्रायः संज्ञा के समान किया जाता है । इसी को 'क्रियार्थक संज्ञा' कहते हैं । व्रज-भाषा काव्य में प्रयुक्त अधिकांश क्रियाएँ धातु में 'नो', 'बो' अथवा इनके विकृत रूपों के संयोग से बनायी गयी हैं, यद्यपि कुछ अतिरिक्त रूप भी यत्र-तत्र मिलते हैं । इस प्रकार इनके तीन वर्ग किये जा सकते हैं—क्ष. 'नो' से बने रूप, त्र. 'बो' से बने रूप और ज्ञ. अन्य रूप ।

क्ष. 'नो' से बने रूप—धातु में 'नो' अथवा इसके जिन विकृत रूपों के संयोग से क्रियार्थक संज्ञा के रूप कवियों ने बनाये हैं, उनमें मुख्य यहाँ दिये जाते हैं—

अ. न—अजहूँ भयौ न आवन। माखन खान सिखाए। कहत तिनसौं धूम घूँटन, नाहिं चालन प्रीति। मन रहन अटल करि जान्यौ।

नकारांत रूपों के साथ-साथ कहीं-कहीं कवियों ने विभक्तियों का भी प्रयोग किया है; जैसे—सत्य के गहन कौ सुधि भुलाई। धाई नन्द-सुवन मुख जोहन कौं। दोष देन कौं नीकौ।

आ. ना—ब्रजभाषा की ओकारांत प्रकृति से मेल न खाने के कारण नाकारांत रूपों की संख्या बहुत कम है। तुकांत-पूर्ति के लिए अपवाद-रूप में ही ऐसे प्रयोग दिखायी देते हैं; जैसे—तिनहिं कठिन भयौ देहरि उलंघना।

इ. नि—मुख की कहनि कन्हैया की। वह चलनि मनोहर। यह छौंड़नि वह पोषनि। कर धरि चक्र चरन की धावनि। वा प्रताप की मधुर बिलोकनि पर वारौं सब भूप।

ई. नी—निकारांत रूपों की तुलना में इस प्रकार के रूपों की संख्या बहुत कम है : जैसे—मुख मुख जोरि तिलक की करनी।

उ. नो या नौ—स्याम कौ (मिलनो) मिलनौ बड़ी दूरि। प्रानप्रियहिं रूसनो (रूसनौ) कहि कैसौ।

त्र. 'बो' से बने रूप—धातु में 'बो' या इसके निम्नलिखित रूपांतरों के संयोग से क्रियार्थक संज्ञाएं कवियों ने बनायी हैं—

अ. ब दुरलभ जनम लहब वृंदाबन।

आ. इबे, बे—इस प्रत्यय के योग से बने रूपों के साथ कभी विभक्ति का प्रयोग कवियों ने किया है और कभी नहीं किया है ; जैसे—तीनि और कहिबे कौं रहीं। जोग अगिनि दहिबे कौं ब्यायौ। मिलिबे माँझ उदास अनत चित। खैबे कौं कछु भाभी दीन्हौं। मंत्री काम कुमति दीबे कौं। लैबे कौं धाए। उड़ि न सकत उड़िबै अकुलावत। ऊधौ, और कछू कहिबै कौं।

इ. इबैं, बैं—कहिबैं जिय न कछू सक राखौ। पग दिये तीरथ जैइबैं काज। पकरिबैं धावत। अपनौ पिंड पोसिबैं कारन। फुरैं न बचन बरजिबैं कारन।

ई. इबौ—कहँ माखन कौ खइबौ। ब्रज कौ बसिबौ मन भावै। बहिबौ नहीं निवारै। जिहिं तन हरि भजिबौ न कियौ। सप्तम दिन मरिबौ निरधार।

ज्ञ. अन्य रूप—धातु में 'नो', 'बो' अथवा इनके विकृत रूपों के योग के अतिरिक्त अन्य कई प्रत्ययों के संयोग से भी कवियों ने क्रियार्थक संज्ञाएँ बनायी हैं और कहीं-कहीं तो मूल धातु का ही प्रयोग क्रियार्थक संज्ञा के समान किया है; जैसे—

अ. मूल धातु—त्रासनि मार मची।

आ. एकारांत रूप—गाए सूर कौन नहिं उवरयौ। और भजे तैं काम सर नहिं। हरि सुमिरे तैं सब सुख होइ।

इ. ऐंकारांत—जो सुख होत गुपालहिं गाऐं। उनहीं कौं मन राखैं काम।

ई. ऐकारांत—उठि चलि कहै हमारैं।

ख. कर्तृवाचक संज्ञा—मूल धातु अथवा क्रियार्थक संज्ञा में जो प्रत्यय जोड़कर कवियों ने कर्तृवाचक संज्ञा-रूप बनाये हैं उनको भी, स्थूल रूप से, चार वर्गों में रखा जा सकता है—क्ष. 'न' के योग से बने रूप, त्र. वार के योग से बने रूप, ज्ञ. 'हार' के योग से बने रूप और द्य. अन्य प्रत्ययों के योग से बने रूप।

क्ष. 'न' के योग से बने रूप—न, ना, नि, नी, और नो या नौ—इन पाँच प्रत्ययों के योग से बने जो कर्तृवाचक संज्ञारूप ब्रजभाषा-काव्य मे मिलते हैं, उनमें से 'न' और 'नौ' से बने रूपों का प्रयोग अधिक किया गया है। सभी रूपों के कुछ प्रयोग यहाँ संकलित हैं—

अ. न—आपुन भए उधारन जग के। (नंद-नंदन) चरन सकल सुख के करन……रमा को हित करन। रावन कुल-खोवन। गनिका तारन… ……मैं सठ बिसरायौ। (गंग तरंग) भागीरथहिं भव्य बर दैन। हरि ब्रज-जन के दुख बिसरावन। कृपा निधान…………सदा सँवारन काज।

आ. ना—अखिल असुर के दलना।

इ. नि—हरि जू की बाल छबि…… ……कोटि मनोज सोभा हरनि।

ई. नी—मूरति दुसह दुःख भय हरनी।

उ. नौ—मनिमय भूषन कंठ मुकुतावलि कोटि अनंग लजावनौ''''स्यामा स्याम बिहार सुर ललना ललचावनौ।

४. 'वार' के योग से बने रूप—वार, वारी, वारे और वारौ आदि रूपांतरों के योग से इस वर्ग के रूप बनाये जाते हैं। ब्रजभाषा-काव्य में इनमें से प्रथम दो के कुछ उदाहरण मिलते हैं। इनमें से प्रथम एकवचन रूप है और द्वितीय बहुवचन; जैसे—

अ. वार—यह ब्रज कौ रखवार।

आ. वारे—बहु जोधा रखवारे।

५. 'हार' के योग से बने रूप—हार, हारि, हारी, हारे और हारो या हारौ—इन पाँच रूपान्तरों के योग से कवियों ने कृर्तृवाचक संज्ञा-रूप बनाये हैं। इनमें से प्रथम और अंतिम एकवचन पुल्लिग रूप हैं और चतुर्थ बहुवचन पुल्लिग या आदरार्थक। एकवचन हारि और हारी से स्त्रीलिंग रूप बनाये गये हैं; जैसे—

अ. हार—ओढ़नहार कमरि कौ। खेवनहार न खेवट मेरैं। तच्छक डसनहार मन जान। काकौं दीखैं दिखहार। मथनहार हरि। को है मेटनहार। राखनहार अहै कोउ औरै। साँचौ सो लिखहार कहावै।

आ. हारि—हाट की बेचनहारि। मथनहारि सब ग्वारि बुलाईं।

इ. हारी—स्यामहिं तुम भई झिरकनहारी। यह मुरली कुल दाहनहारी। छाँड़हिं बेचनहारी। दीखति है कछु होवनिहारी।

ई. हारे—अधम उधारनहारे। कमरी के ओढ़नहारे। अति कुबुद्धि मन हाँकनहारे।

उ. हारौ—सोइ जानत चाखनहारे। सुगंध चुरावनहारौ। को जो याकौं मेटनहारौ। रोकनहारौ नंद महर-सुत।

६. अन्य प्रत्ययों से बने रूप—इया, ई, ऐया, क, त, ता, वा और वैया—इन आठ प्रत्ययों से बने कर्तृ-वाचक संज्ञा-रूप इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 'ऐया' के योग से बने रूपों की संख्या अधिक है। 'ई' को छोड़ कर शेष सभी प्रत्यय पुल्लिग-रूप बनाने को प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—

अ. इया—ये दोउ नीर गँभीर पैरिया।

आ. ई—जग हित प्रगट करी करुनामय अगतिनि कौ गति दैनी।

इ. ऐया—कोउ नहिं घात करैया। बिबिध चौकरी बनाउ धाय रे बनैया''''बहुबिधि जरि करि जराउ ल्याउ रे जरैया''''धन्य रे गढ़ैया''''झूलौ हो झुलैया। ये दोउ मेरे गाइ चरैया।

ई. क—कंस-उरहिं के सालक।

उ. त—ये सबही के त्रात।

ऊ. ता—तुमहिं भोगता, हरता, करता तुमहीं। परम पवित्र मुक्ति को दाता।

ए. वा—जानति हैं गोरस के लेवा याही बाखरि माँझ।

ऐ. वैया—जहाँ न कोऊ हो रखवैया। मन-तंत्री सो रथ-हँकवैया।

ग. वर्तमानकालिक कृदंत—धातु के अंत में 'त' जोड़कर वर्तमानकालिक कृदंत कवियों ने बनाये हैं। स्त्री-लिंग रूपों में 'त' के स्थान पर 'ति' मिलता है; जैसे—

अ. त—लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत बुधि-बल नाथ उबारे। प्रात समय उठि सोवत सिसु कौ बदन उघारयौ नंद।

आ. ति—ते निकसीं देति असीस।

घ. भूतकालिक कृदंत—धातु के अंत में ई, नौ, न्ही, न्हौ, यौ आदि जोड़कर कवियों ने भूतकालिक कृदंत बनाये हैं। इनमें 'ई' और 'न्ही' वाले रूप स्त्रीलिंग हैं, शेष सामान्य रूप अर्थात् पुल्लिग एकवचन हैं। भूतकालिक कृदंतों का प्रयोग प्रायः विशेषणों के समान किया जाता है; जैसे—

अ. ई—दीजै बिदा''''काल्हि साँझ की आई। आनँद-भरी जसोदा उमँगि अंग न माति।

आ. नौ—दूध-दही बहु बिधि कौ दीनौ सुत सौं धरति छिपाई।

इ. न्ही—इंद्रहिं की दीन्ही रजधानी।

ई. न्हौ—मेरैं बहुत दई कौ दीन्हौ।

उ. यौ—भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज।

२. अविकारी कृदंत—ये कृदंत प्रायः क्रिया-विशेषण और संबंधसूचक अव्ययों के समान प्रयुक्त होते

हैं। इनके भी चार भेद हैं—क. पूर्वकालिक, ख. तात्कालिक, ग. अपूर्ण क्रियाद्योतक और घ. पूर्ण क्रियाद्योतक।

क. पूर्वकालिक कृदंत—ये कृदंत अकारांत, आकारांत, एकारांत और ओकारांत धातुओं में इ, ई, ऐ, य आदि प्रत्यय लगाकर बनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त धातु के साथ करि, के, कैं, कै आदि के योग से भी कवियों ने पूर्वकालिक कृदंत बनाये हैं; जैसे—

अ. इ—सूर कहै कसि फेंट। कंचन खोइ काँच लै आए। तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु। तुम कतहिं मरत हौ रोइ। तू कहि कथा समुझाइ। तन होमि मदन-मख मिलौं माधवहिं जाइ।

आ. ई—(हौं) देखौं जाई। कहति हौं टेरी। न्हात भजे कुस डारी। सब भाई उत्तर दिसा गए हरि ध्याई। राखि लेहु वलि त्रास निवारी। दुरवासा दुर्जोधन पठयौ पांडव अहित विचारी।

इ. ऐ—नैंकु चितै मन हरि लीन्हौं। व्रजभामिनि सरबस दै सुत-सदन बिसारे। गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है पंछी एक पठै। सूर स्याम इहिं भाँति रिझै किनि तुमहूँ अधर-रस लेउ। गिरि लै भए सहाई।

ई. य—ख्वाय विष गृह लाए दीन्हौ।

उ. करि—दैकरि साप पिता पहँ आयौ।

ऊ. के—मिटी प्यास जमुना-जल पीके।

ए. कैं- लच्छागृह तैं काढ़ि क पांडव गृह लावै।

ऐ. कै देवराज मष भंग जानिकै बरष्यौ व्रज पर। मोहिं तजिकै। अति प्रपंच की मोट बाँधि कै अपनैं सीस धरी। कै प्रभु हार मानिकै बैठी। खाइ मारिकै औरै। (माया) मुसुक्याइ कै·······मन हरि लीन्हौ।

उकारांत धातुओं से पूर्वकालिक कृदंत बनाने के लिए धातु में 'इ' लगाने के साथ अंत्य 'ऊ' के स्थान पर 'व' कर दिया गया है; जैसे—मो तन छ्वै बैहर चले।

एकाक्षरी ओकारांत क्रिया 'हो' का पूर्वकालिक रूप कवियों ने 'ह्वै' बनाया है; जैसे—ह्वै गज चल्यौ स्वान की चालहिं। बान बरषा लागे करन अति कुद्ध ह्वै। नृपति रिषिनि पर ह्वै असवार चल्यौ। गोप-पुत्र ह्वै चल्यौ। उठि चल्यौ ह्वै दीन।

इनके अतिरिक्त कुछ धातुओं का मूल रूप में ही पूर्वकालिक कृदंतों के समान कवियों ने प्रयोग किया है; जैसे—मुक्त होइ नर ताको जान। स्वामिनि-सोभा पर वारति सखि तृन तूर। जगतपति आए खगपति त्याज।

ख. तात्कालिक कृदंत—ये कृदंत तकारांत वर्तमानकालिक कृदंतों के अंत में मुख्यत: 'हिं,' 'हीं' या 'ही' जोड़कर बनाये गये हैं; जैसे—

अ. हिं- वसुदेव उठे यह सुनतहिं।

आ. हीं—आवतहीं भई कौन बिथा री। यह बानी कहतहीं लजानी। चितवतहीं सब गए झुराई। मुख-निरखतहीं सुख गोपी प्रेम बढ़ावत। प्रभु बचन सुनी तहीं हनुमत चल्यौ अतुराई।

इ. ही—जैसी कही हमहिं आवतही। सुरन के कहतही धारि कूरम तनहिं। सुमिरतही ततकाल कृपानिधि बसन-प्रवाह बढ़ायौ।

इनके अतिरिक्त-व्रजभाषा-काव्य की अनेक पंक्तियों में तकारांत वर्तमानकालिक कृदंतों का मूल रूप में भी तात्कालिक कृदंतों के समान प्रयोग किया गया है; जैसे—मेरी देह छुटत जम पठए दूत। साँचे बिरद सूर के तारत लोकनि-लोक अवाज। नाम लेत बाको दुख टार्‌यौ। सुनत पुकार····दौरि छुड़ायौ हाथी।

ग. अपूर्णक्रियाद्योतक कृदंत—ये कृदंत धातु में 'तौ' जोड़कर बनाये गये हैं; जैसे नैन थके मग जोइतौ।

साधारणत: अपूर्णक्रियाद्योतक रूपों में 'हिं', 'हीं' या 'हि' नहीं जोड़ा जाता; परंतु अपवादस्वरूप व्रजभाषा-काव्य में कहीं-कहीं 'हिं' भी दिखायी देता है; जैसे—स्याम खेलतहिं····कूदि परे कालीदह जाइ।

घ. पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत—ये कृदंत-रूप धातु में प्राय: 'ए', 'एँ,' या 'न्हे' लगाकर बनाये गये हैं; जैसे—धाईं सब व्रजनारि सहज सिंगार किए। नाचत महर मुदित मन कीन्हे। बन तैं आवत धेनु चराए। खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लाल पनहियाँ। बन तैं आवत गो-पद-रज लपटाए। स्याम आपने कर लीन्हे बाँटत जूठन भोग।

३. वाच्य

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य—इन तीनों में

से प्रथम के प्रयोग तो ब्रजभाषा-काव्य में सामान्य हैं; अंतिम दो प्रकार के प्रयोगों में विशेषता मिलती है।

क. कर्तृवाच्य—इस प्रकार के प्रयोगों में वाक्य की क्रिया का पुरुष, वचन और लिंग, तीनों बातें कर्त्ता के अनुसार होती हैं। वर्तमान और भविष्यकाल में प्रयुक्त अकर्मक और सकर्मक, दोनों प्रकार की क्रियाएँ ब्रजभाषा-काव्य में मिलती हैं; परंतु भूतकाल में केवल अकर्मक क्रियाएँ ही कर्तृवाच्य में प्रयुक्त हुई हैं; जैसे—मन मेरौ हरि साथ गयौ। चितै रही राधा हरि कौ मुख। ब्रज जुवती स्याम-सिर तिलक बनावतिं। बैठी मानिनी गहि मौन। बहुरि फिरि राधा सजति सिंगार।

ख. कर्मवाच्य—वाक्य में क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष जब कर्म के अनुसार होता है, तब उसका प्रयोग कर्मवाच्य' कहलाता है। ऐसे प्रयोगवाले वाक्यों में कर्त्ता, यदि हो तो, करणकारक में रहता है। इस वाच्य के रूप कवियों ने तीन प्रकार से बनाये हैं—क्ष. 'जानो' क्रिया की सहायता से, त्र. प्रत्ययों के योग से और ज्ञ. अन्य प्रयोग।

क्ष. 'जानो' क्रिया से बने रूप—गयौ, जाइ, जाई, जात, जाति—'जानो' क्रिया के मुख्यत: इन रूपांतरों से कवियों ने कर्मवाच्य रूप बनाये हैं; जैसे—

अ. गयौ—हमपै घोष गयौ नहिं जाइ। बिनु प्रसंग तहँ गयौ न जाई।

आ. जाइ—कहि न जाइ या सुख की महिमा। तेरौ भजन कियौ न जाइ। (यह गाइ) अगह, गहि नहिं जाइ। सो काहू पै जाइ न टारी। बरनि न जाइ भक्त की महिमा।

इ. जाई—छबि कहि न जाई। रावन कहचौ, सो कह्यौ न जाई। तात की आज्ञा मोपै मेटि न जाई। मोपै लख्यौ न जाई। ताकौ बिषाद.........मोपै सह्यौ न जाई।

ई. जात—यह उपकार न जात मिटायौ।

उ. जाति—अंतर-प्रीति जाति नहिं तोरी। छबि नहिं जाति बखानी। बिपति जाति नहिं बरनी। स्वामी की महिमा कापै जाति बिचारी। अब कैसैं सहि जाति ढिठाई।

त्र प्रत्ययों के योग से बने रूप—इयै, तै आदि प्रत्ययों के योग से भी कुछ कर्मवाच्य रूप बनाये गये हैं; जैसे—

अ. इयै—तुम घर मथियै सहस मथानी।

आ. त—रंग कापै होत न्यारौ हरद-चूनौ सानि। ये उतपात मिटत इनहीं पै।

ज्ञ. अन्य प्रयोग—उक्त रूपों के अतिरिक्त अनेक ऐसे कर्मवाच्य प्रयोग मिलते हैं, जिन पर उक्त नियम नहीं लगते। ऐसे प्रयोग मुख्यत: 'आवनो' और 'परनो' क्रियाओं के रूपांतरों के सहयोग से बनाये गये हैं; जैसे—

अ. आवनो—करनी करुनासिंधु की मुख कहत न आवै। अंग-अंग प्रति छबि तरंग गति....क्यों कहि आवै।

आ. परनो—अबिगत की गति कहि न परति है। अबिगत गति जानी न परै। उर की प्रीति....नाहिंन परति दुराई। तेरी गति लखि न परै।

ग. भाववाच्य—इस वाच्य में प्रयुक्त क्रिया में पुल्लिंग, एकवचन और अन्यपुरुष होता है। साधारणत: भूतकाल में प्रयुक्त सकर्मक भाववाच्य क्रिया के साथ 'ने' का प्रयोग किया जाता है और अकर्मक में 'से' का; परंतु कवियों ने 'ने' का प्रयोग बहुत कम किया है; जैसे—जब तैं सुनी स्रवन रह्यौ न परै भवन।

४. काल-रचना—

विभिन्न कालों का संबंध क्रिया के 'अर्थ' से होता है। 'अर्थ' से तात्पर्य क्रिया के उस रूप से है जो विधान करने की रीति का बोध कराता है। इस दृष्टि से क्रिया के मुख्य पाँच अर्थ होते हैं—क. निश्चयार्थ, ख. संभावनार्थ, ग. संदेहार्थ, घ. आज्ञार्थ और ङ. संकेतार्थ। इनके आधार पर कालों के निम्नलिखित १६ भेद किये जाते हैं—

क. निश्चयार्थ—१ सामान्य वर्तमान, २. पूर्ण वर्तमान, ३. सामान्य भूत, ४. अपूर्ण भूत, ५. पूर्ण भूत और ६. सामान्य भविष्यत।

ख. संभावनार्थ—७. संभाव्य वर्तमान, ८. संभाव्य भूत और ९. संभाव्य भविष्यत।

ग. संदेहार्थ—१०. संदिग्ध वर्तमान और ११. संदिग्ध भूत।

घ. आज्ञार्थ—१२. प्रत्यक्ष विधि और १३. परोक्ष विधि।

ङ. संकेतार्थ—१४. सामान्य संकेतार्थ, १५. अपूर्ण संकेतार्थ और १६. पूर्ण संकेतार्थ।

मुख्यतया मुक्तक रचना-शैली अपनायी जाने के कारण ब्रजभाषा-काव्य में सभी कालों के सभी पुरुषों, वचनों और लिंगों के पर्याप्त उदाहरण नहीं मिलते; विशेष रूप से संभाव्य वर्तमान, संभाव्य भूत, संदिग्ध वर्तमान, संदिग्ध भूत, अपूर्ण संकेतार्थ और पूर्ण संकेतार्थ—इस छह काल-भेदों के उदाहरण कम हैं। विशेष ध्यान देने पर इन कालों में प्रयुक्त कुछ क्रिया-रूपों के उदाहरण अवश्य मिल जाते हैं; जैसे—धर्म बिचारत मन में होइ (संभाव्य वर्तमान-काल); प्रेमकथा सोई पै जानै जापै बीती होई (संभाव्य भूतकाल) आदि; परन्तु इनके आधार पर काल-विशेष के रूपनिर्माण-सम्बन्धी नियमों का निर्धारण करना उपयुक्त न होगा। अतएव उक्त छह काल-भेदों को छोड़कर शेष दस भेदों के विभिन्न कालों, पुरुषों और वचनों के प्रयोगों का संकलन और उनके नियमों की विवेचना यहाँ करना है।

विभिन्न कालों में प्रयुक्त रूपों में पुरुष (उत्तम मध्यम और अन्य), वचन (एक० और बहु०) तथा लिंग (स्त्रीलिंग और पुल्लिग) के अनुसार परिवर्तन होता है। इसे ध्यान में रखकर ही ब्रजभाषा-कवियों के क्रिया-प्रयोगों की काल-रचना पर विचार किया जायगा।

१. सामान्य वर्तमान—इस कारक के लिए दो प्रकार के प्रयोग कवियों ने किये हैं। प्रथम वर्ग में 'होना' क्रिया के विकृत रूपों या इनके योग से बने रूपों के प्रयोग आते हैं और द्वितीय वर्ग में अन्य क्रियाओं के।

क्ष. 'होना' क्रिया से बने प्रयोग—विभिन्न पुरुषों और वचनों में 'होना' क्रिया के मुख्य सामान्य वर्तमानकालिक जो प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं, उनका प्रयोग प्रायः दोनों लिंगों में किया गया है—

क. सामान्य वर्तमान : उत्तमपुरुष: एकवचन—इस वर्ग का प्रमुख रूप 'हौं' है जिसका प्रयोग सर्वत्र किया गया है; जैसे—(मैं) देखति हौं। दुख पावत हौं मैं अति। मैं तबही की बकति हौं। भक्त-भवन मैं हौं जु बसत हौं।

ख. सामान्य वर्तमान : उत्तमपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग में मुख्य रूप 'आहिं है; जैसे—तुव नन-साल माहिं हम आहिं।

ग. सामान्य वर्तमान : मध्यमपुरुष : एकवचन—'आहि' और 'हौ' इस वर्ग के दो मुख्य रूप हैं जिनमें से द्वितीय का प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे—

अ. आहि—मोटौ तू 'आहि'। तैं को आहि। छल करत कछू तू आहि।

आ. हौ—इसका प्रयोग स्वतंत्र क्रिया के रूप में हुआ है और सहायक क्रिया के रूप में भी; जैसे—तुमहीं हौ साखि। तुम हौ परम सभागे।

घ. सामान्य वर्तमान : मध्यमपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग का मुख्य रूप 'हौ' है; जैसे—भीत बिना तुम चित्र लिखति हौ····तुम चाहति हौ गगन-तरैयाँ।

ङ. सामान्य वर्तमान : अन्यपुरुष : एकवचन—अहै, आह, आहिं, आहि, आहै, हैं और है—इस वर्ग के मुख्य रूप हैं जिनमें 'आहिं' और 'हैं' आदरार्थक हैं। प्रयोग की दृष्टि से 'हैं' और 'है' का महत्व सबसे अधिक है, यों 'आहि' भी कहीं-कहीं मिलता है; जैसे—

अ. अहै—राखनहार अहै कोउ औरै।

आ. आह—मेरौ पति सिव आह। नृपति कह्यौ, मारग सम आह।

इ. आहिं—इनमैं को पति आहिं तिहारे।

ई. आहि—आहि यह सों मुँडमाल। नर-सरीर सुर ऊपर आहि। औरौ दँडदाता कोउ आहि। ब्याह-जोग अब सोई आहि। मन तौ एकहि आहि।

उ. आहै—प्रबल सत्रु आहै यह मार।

ऊ. हैं—इस आदरार्थक एकवचन रूप का प्रयोग स्वतन्त्र और सहायक, दोनों रूपों में किया गया है; जैसे—ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं। प्रभु भक्तबछल हैं। अंत के दिन को हैं घनस्याम। सब सन्तन के जीवन हैं हरि। (बासुदेव) बिनु बदलैं उपकार करत हैं। स्याम इन्हैं भरुहावत हैं। चित्रगुप्त लिखत हैं मेरे पातक।

ए. है—'हैं' की तरह 'है' का प्रयोग भी स्वतन्त्र और सहायक, क्रिया के दोनों रूपों में किया गया है; जैसे—अधम कौन है अजामील तैं। सूरदास की एक

आँखि है। सूर पतित कौ....है हरि-नाम सहारौ। पाप-पुन्य कौ फल सुख-दुख है। समदरसी है नाम तिहारौ। बड़ी है राम-नाम की ओट। अघ-सिंधु बढ़त है। जलधारा बरसतु है।

च. सामान्य वर्तमान : अन्यपुरुष : बहुवचन—अहैं, आहिं, आहीं और हैं—इस वर्ग के चार प्रमुख रूप हैं जिनमें से अंतिम का प्रयोग बहुत मिलता है; जैसे—

अ. अहैं—अहैं कुलट कुलटा ये दोऊ।

आ. आहिं—ये को आहिं बिचारे। ते आहिं वचन बिनु।

इ. आहीं—व्रज सुंदरि नहिं नारि, रिचा स्रुति की सब आहीं।

ई. हैं—इसका प्रयोग स्वतन्त्र और सहायक, क्रिया के दोनों रूपों के समान मिलता है; जैसे—और हैं आजकल के राजा। औगुन मोमैं बहुत हैं। भावी कैं बस तीनि लोक हैं। ये कैसी हैं लोभिनी। नैन स्याम-सुख लूटत हैं....आपुहिं सबै चुरावत हैं। जोहत हैं वे पंथ तिहारौ। लोग पियत हैं औरै।

त्र. अन्य क्रियाओं के सामान्य वर्तमानकालिक प्रयोग—विभिन्न कालों और वचनों के अनुसार अन्य क्रियाओं के सामान्य वर्तमानकालिक रूप भी बदलते रहते हैं। लिंग का अन्तर साधारणतः तकारांत रूपों में होता है, पुल्लिंग में 'त' और स्त्रीलिंग में 'ति' या 'ती'।

क. सामान्य वर्तमान : उत्तमपुरुष : एकवचन—इस वर्ग में कहीं तो वर्तमानकालिक मूल कृदंत रूपों का व्यवहार किया गया है और कहीं धातुओं और कृदंतों में निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर सामान्य वर्तमान के उत्तम पुरुष, एकवचन में प्रयुक्त रूप बनाये गये हैं जिनमें से 'औं' का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है; जैसे—

अ. उँ—तातैं देउँ तुम्हैं मैं साप। तेइ कमल-पद ध्याउँ। मैं सेंत-मेंत न बिकाउँ।

आ. ऊँ—हौं अनतहिं दुख पाऊँ....काजर मुख लाऊँ। गौरि-गनेश्वर बीनऊँ।

इ. औं—मैं काम-क्रोधऽरु लोभ चितवौं। हौं अंतर की जानौं। चरन-कमल बंदौं हरि राइ। हौं बोलौं साखी। हौं तैसैं रहौं....भूख सहौं....भार बहौं।

ई. त—सदा करत मैं तिनकौ ध्यान। कहत मैं तोसौं। हौं तौ....रहत विषय के साथ।

उ. ति—(मैं) कोटि जतन करि-करि परमोधति। चतुराई इनकी मैं झारति।

ऊ. तु—मैं नीकै परिचानतु नाहिन।

ख. सामान्य वर्तमान : उत्तमपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग के रूपों की संख्या पूर्वोक्त की अपेक्षा बहुत कम है। जो प्रत्यय इस प्रकार के रूप बनाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं, उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

अ. तिं—हम जु मरतिं लवलीन।

आ. ऐं—यहै हम तुम सौं चहैं। हम तिनकौं छिन मैं परिहरैं....बिनु अपराध पुरुष हम मारैं....माया-मोह न मन मैं धारैं।

ग. सामान्य वर्तमान : मध्यमपुरुष : एकवचन—ई, ऐ, त, तिं, ति और हि—विशेष रूप से इन प्रत्ययों के योग से इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं; जैसे—

अ. ई—हनू, सोच कत करई। (तू) अग्र सोच क्यौं मरई।

आ. ऐ—रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै....कत जनम वादि हीं हारै।

इ. त—लरिकनि कौं तुम (कृष्ण) सब दिन झुठवत। पूछे तैं तुम वदन दुरावत। तुमहूँ धरत कौन कौ ध्यान। (तुम) राम न भजिकै फिरत काल-सँग लागे। मोहन, काहे कौं लजियात।

ई. तिं (आदरार्थक)—कहा तुम (बृषभानु-घरनि) कहतिं। तुम (यशोदा) नाहिंन पहिचानतिं।

उ. ति—इसके साथ कहीं-कहीं 'है' का प्रयोग मिलता है; जैसे—तू काहे कौं भूलति है।

ऊ. हि—तनक दधि-कारन जसोदा इतौ कहा रिसाहि।

ङ. सामान्य वर्तमान : अन्यपुरुष : एकवचन—इस वर्ग के रूप इ, ई, ए, ऐ, त, तिं, ति, हिं, हीं, ही आदि के संयोग से बनाये गये हैं। इनमें से इ, ई, ऐं, ए, त, ति और हिं का प्रयोग अधिक किया गया है; जैसे—

अ. इ—(जबै आवौं साधु-संगति) कछुक मन ठहराइ। अपने कौं को न आदर देइ।

आ. ई—पुरुष न तिय बध करई। (वह) कछु कुलधर्म न

जानई। अटल न कबहूँ टरई। (परेवा) तीय जो देखई। आनँद उर न समाई।

इ. ऐं (आदरार्थक)—नंदनंदन कहैं। अर्जुन रन में गाजैं.... ध्रुव आकास बिराजैं। (स्याम) नैन भरि-भरि प्रिया-रूप चोरैं। (स्याम) नाना भेष बनावैं।

ई. ऐ—हरि की प्रीति उर माँहि करिकै। नृप-कुल जस गावै। कर जोरे प्रह्लाद बिनवै। मूढ़ मन खेलत हार न मानै।

उ. त—(बासुदेव) स्वारथ बिना करत मित्राई। अरबराइ कर पानि गहावत। (स्याम) बदन पुनि गोवत। इंद्र····राज हेत डरपत मन माहिं। निंदत मूढ़ मलय चन्दन कौं।

ऊ. तिं (आदरार्थक)—मैया तुमकौं जानतिं।

ए. ति—नैन-बदन-छबि यौं उपचति। तृष्ना नाद करति। चंद्रावली स्याम मग जोवति....कबहुँ मलय रज भोवति....पुनि पुनि धोवति....ऐसैं रैन बिगोवति।

ऐ. हिं (आदरार्थक)—इक....देहिं असीस खरी। एक भेटहिं धाइ।

ओ. हीं (आदरार्थक)—प्रभु जू साग बिदुर घर खाहीं। कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीं। बारंबार कमलदल लोचन यह कहि-कहि पछिताहीं।

औ. ही—अनुभवी जानही बिना अनुभव कहा।

'तकारांत' और 'तिकारांत' रूपों के साथ-साथ कहीं-कहीं 'है' या इसके रूपांतरों का प्रयोग भी किया गया हैं; जैसे—मुरली में जीवन-प्रान बसत अहै मेरौ। मोहिं होत है दुःख बिसेषि। मुँह पाए वह फूलति है।

च. सामान्य वर्तमान : अन्यपुरुष : बहुवचन —इस प्रकार के रूप मुख्यतः इ, ऐं, त, तिं, हिं और हीं लगाकर बनाये गये हैं। इनमें से 'इ' से बने रूपों का प्रयोग बहुत कम किया गया है; शेष रूप प्रचुरता से मिलते हैं; जैसे—

अ. इ—सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ।

आ. ऐं—सासु-ननद तिन पर झहरैं। सुनि मुरलि घोरैं सुर-बधु सीस ढोरैं। पुर-नारि कर जोरि अंचल छोरि बीनवैं। रोवैं वृषभ····निसि बोलैं काग। अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारैं।

इ. त—उधरत लोग तुम्हारे नाम। सब कोउ कहत। तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी। सुख सौं बसत राज उनकैं सब। महा मोह के नूपुर बाजत। जे भजत राम कौं। सब सेवत प्रभु-पद।

ई. तिं—(नागरी सब) कबहुँ गावतिं ···कबहुँ नृत्यतिं···· कबहुँ उघटतिं रंग। कहतिं पुर-नारि। तिहिंकौं ब्रजबनिता झकझोरतिं। सूरदास-प्रभु ब्रजबधु निरखतिं। सुत कौं चलन सिखावतिं·······दोउ जनियाँ।

उ. हिं—कौसिल्या आदिक महतारी आरति कराहिं। ज्ञानी ताहि बिराट कहाहिं। कमल-कमला रवि बिना बिकसाहिं·······पदुम नहिं कुम्हिलाहिं·······भौरहूँ बिरमाहिं। (ये) तस्कर ज्यौं सुकृति-धन लेहिं। तीजे मास हस्त-पग होहिं।

ऊ. हीं—(जुवती) नैन अंजन अधर आँजहीं। बिमुख अगति कौं जाहीं। जुवती····उलटे बसन धारहीं। जसुमति-रोहिनी····नचावहीं सुत कौ। (मुरली-धुनि सुनि) मृग-जूथ भुलाहीं। नायिका अष्ट अष्टहुँ दिसि सोहहीं।

उक्त प्रत्यांत रूपों के अतिरिक्त कहीं-कहीं मूल धातु का ही प्रयोग सामान्य वर्तमान के अन्यपुरुष बहुवचन रूप में किया गया है; जैसे—निगम अंत न पाव।

२. पूर्णवर्तमान काल[1]—इस काल में प्रयुक्त अधिकांश क्रिया रूप 'है' युक्त हैं। रूपों की संख्या बहुत अधिक न होने और अनेक रूपों की समानता के कारण पुरुष की दृष्टि से उनका विभाजन करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। वचन की दृष्टि से अधिकांश 'औ' या 'यौ' आदि युक्त रूप एकवचन में तथा 'ए' युक्त आदरार्थक एकवचन या बहुवचन में रहते हैं। अंतिम के साथ 'है' के स्थान पर 'हैं' का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार एकारांत रूप पुल्लिंग में और ईकारांत-इकारांत स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुए हैं।

अ. ई—देवकी-गर्भ भई है कन्या।

आ. ए—जनम-जनम बहु करम किए हैं। को जानै प्रभु

---

१ 'वर्तमान' का प्रचलित नाम 'आसन्न भूतकाल' है—लेखक।

कहाँ चले हैं। द्वारैं ठाढ़े हैं द्विज बामन। रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर। (हरि) दाहिन हैं बैठे। सब प्रति-कूल भए हैं।

इ. औ—कह्यौ, पुरुष वह ठाढ़ौ आह।

ई. न्हे—कहा चरित कीन्हे हैं स्याम।

उ. न्हौ—तुम बहु पतितनि कौं दीन्हौ है सुखधाम।

ऊ. यौ—मैं आयौ हौं सरन तिहारी। कंस-काल उपज्यौ है ब्रज में जादव राई। गोकुल⋯घेर्‌यौ है अरि मन्मथ। (सूर) द्वार पर्‌यौ है तेरैं। तू तौ बिषया-रंग रँग्यौ है।

३. सामान्य भूतकाल[1]—सामान्य भूतकाल (निश्चयार्थ) के प्रयोग दो प्रकार के मिलते हैं—क्ष. 'होना' क्रिया के विकृत रूपों या इनके योग से बने प्रयोग और त्र. अन्य क्रियाओं के स्वतंत्र प्रयोग।

क्ष. 'होना' क्रिया के प्रयोग—सामान्य भूतकाल के 'होना' क्रिया से बने निश्चयात्मक रूप तीनों पुरुषों में प्राय: एक ही रहते हैं; उनमें केवल लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तन होता है।

क. सामान्य भूत : एकवचन : पुल्लिंग—'होना' क्रिया के निम्नलिखित विकृत रूप इस वर्ग में आते हैं—

अ. भयउ—नृप कैं मन भयउ कुभाउ।

आ. भए (आदरार्थक)—बेर सूर की तुम निठुर भए।

इ. भयौ—तहँ न भयौ बिस्राम। सोवत मुदित भयौ सपने मैं। बिरद प्रसिद्ध भयौ जग। नरपति एक पुरुरवा भयौ।

ई. भौ—वह सुख बहुरि न भौ री।

उ. हुते (आदरार्थक)—कोमल कर गोबर्धन धार्‌यौ, जब हुते नंददुलारे। अरजुन के हरि हुते सारथी। हुते कान्ह अबहीं सँग बन मैं।

ऊ. हुतोऊ—तब कत रास रच्यौ वृन्दावन जौ पै ज्ञान हुतोऊ।

ए. हुतौ—अजामील तौ बिप्र तिहारौ हुतौ पुरातन दास। हुतौ जु मोतैं आधौ। हौं हुतौ आढ्य। तहाँ हुतौ इक सुक कौ अंग।

ऐ. हो—कहा सुदामा कैं धन हो। तिहिं दिन को हितू हो। जहाँ मृतक हो हौं। पहिले हौं ही हो तब एक। तब धौं जोग कहाँ हो ऊधौ।

ख. सामान्य भूत : एकवचन : स्त्रीलिंग—भइ, भई, ही, हुती आदि रूप इस वर्ग में आते हैं, जिनमें से प्रथम दो का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है; जैसे—

अ. भइ—तीनि पैंड़ भइ (भुवि) सारी। कृत्या भइ ज्वाला भारी। नदी भइ भूरपूरि। हौं बिमुख भइ हरि सौं।

आ. भई—मुरली भई रानी। हमहूँ तैं तू चतुर भई। प्रीति-काथरी भई पुरानी। राधा-माधव भेंट भई।

इ. ही—माता कहति, कहाँ ही प्यारी। हौं न जान्यौ री कहाँ ही।

ई. हुती—लाज के साज मैं हुती द्रौपदी। बूझति जननि, कहाँ हुती प्यारी। जो हुती निकट मिलन की आसा। यहै हुती मन उनकैं।

ग. सामान्य भूत : बहुवचन : पुल्लिंग—भए, हुए, हुते, हे आदि रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें प्रथम अर्थात् 'भए' का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है; जैसे—

अ. भए—सुत कुबेर के मत्त मगन भए। ताके पुत्र-सुता बहु भए। नैना ढीठि अतिहीं भए। नैना भए पराए चेरे। भए सखि नैन सनाथ हमारे।

आ. हुए—पै तिन हरि-दरसन नहिं हुए।

इ. हुते—द्वारपाल जय-विजय हुते। असुर द्वै हुते बलवंत भारी। चंद हुते तब सीतल।

ई. हे—जाके जोधा हे सौ भाई।

घ. सामान्य भूत : बहुवचन : स्त्रीलिंग—भईं, हुतीं आदि रूप इस वर्ग के हैं जिनमें से प्रथम का प्रयोग अधिक किया गया है; जैसे—

अ. भईं—दासी सहस प्रगट तहँ भईं। सिथिल भईं ब्रजनारि। गैयाँ मोटी भईं। हम न भईं वृंदावन-रेनु। सब चकित भईं।

आ. हुतीं—तहाँ हुतीं पनिहारी।

त्र. अन्य क्रियाओं के प्रयोग—विभिन्न पुरुषों

---

१ 'सामान्य भूतकाल' को 'भूत निश्चयार्थ' भी कहते हैं—लेखक।

में 'होना' क्रिया के सामान्य भूतकालिक रूप प्राय: समान रहते हैं; परन्तु अन्य क्रिया-रूपों में यह बात नहीं होती। अतएव इनका अध्ययन पुरुष और वचन की दृष्टि से करना आवश्यक है।

क. सामान्य भूत : उत्तमपुरुष : एकवचन—यों तो इस वर्ग के रूप धातु या उसके विकृत रूपों में ई, ए, नौ, न्ह, न्हि, न्हे, न्हौं, यौं, यौ आदि प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं; परंतु मुख्य रूप से 'ए और 'यौं' प्रत्यान्त रूपों का ही अधिक प्रयोग किया गया है; जैसे –

अ. ई—अपने जान मैं बहुत करी।

आ. ए—जे मैं कर्म करे। मैं····कहे बचन। मैं चरन गहे····पाए सुख। मैं सोधे सब ठौर।

इ. नौं—मैं अपराध भक्त कौ कीनौं।

ई. न्ह (हरि) निसि-सुख बासर दीन्ह····सुफल मनोरथ कीन्ह।

उ. न्हि—मैं न कीन्हि सत्राई।

ऊ. न्हे—(हौं) पाप बहु कीन्हे।

ए. न्हौं—सहस भुजा धरि (मैं) भोजन कीन्हौं।

ऐ. न्हौ—(हौं) जोग-यज्ञ-जप-तप नहिं कीन्हौ। तच्छक डसन साप मैं दीन्हौ।

ओ. यौं—मैं पर्‍यौं मोह की फाँसि। (मैं) जीत्यौं महभारथ।

औ. यौ—(मैं) बेद बिमल नहिं भाष्यौ····यहै कमायौ। (हौं) कियौ न संत समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ। मैं पायौ हरि हीरा। (मैं) बाँध्यौ बैर।

ख. सामान्य भूत : उत्तमपुरुष : बहुवचन—ए, न्हौ, यौ आदि प्रत्ययों से इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं; जैसे—

अ. ए—(हम) अस्व खोज कतहूँ नहिं पाए।

आ. न्हौ—राज कौ काज यह हमहिं कीन्हौ।

इ. यौ—हम तौ पाप कियौ।

ग. सामान्य भूत : मध्यमपुरुष—इस वर्ग के रूप धातु, उसके विकृत रूप या कृदंत में इसि, ई, ए, औ, नी, न्हीं, नौ, न्हौ, यौ आदि प्रत्ययों से बनाये गये हैं, जिनमें से 'ई', 'ए' और 'यौ' से बने रूप व्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र पाये जाते हैं। इनमें से अधिकांश रूप दोनों वचनों में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—

अ. इसि—रे मन, (तू) जनम अकारथ खोइसि....उदर भरे परि सोइसि....अहमिति जनम बिगोइसि।

आ. ई—(तुम) कंचन सी मम देह करी। कहाँ तू आज गई। तिन पर तू अतिहीं झहरी। (तुम) जन-प्रह-लाद-प्रतिज्ञा पुरई।

इ. ए—कहौ कपि, कैसे उतरे पार। द्रौपदि के तुम बसन छिनाए। बिघन तुम टारे। तुम सब जन तारे।

ई औ—(तुम) भीर परैं भीषम-प्रन राखौ, अर्जुन कौ रथ हाँकौ।

उ. नी—(तुम) गर्भ परीच्छित रच्छा कीनी। भली सिच्छा तुम दीनी।

ऊ. न्ही—(तुम) गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही। (तुम) असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही।

ऋ. नौ—नर, तैं जनम पाइ कह कीनौ····प्रभु कौ नाम न लीनौ····गुरु गोबिंद नहिं चीनौ····मन बिषया मैं दीनौ····फिरि वाही मन दीनौ।

ए. न्हौ—बहुत बुरौ तैं कीन्हौ····जौ यह साप नृपति कौं दीन्हौ। तुम लीन्हौ जग मैं अवतार।

ऐ. यौ – तुम कहा न कियौ। तुम भक्तनि अभै दियौ····गिरि कर-कमल लियौ····दावानलहिं पियौ। औसर हार्‍यौ रे तैं हार्‍यौ····हरि कौ भजन बिसार्‍यौ····सुन्दर रूप सँवार्‍यौ। हरि, तुम बलि कौ छलि लीन्यौ····कौन सयानप कीन्यौ।

घ. सामान्य भूत : अन्यपुरुष : एकवचन—इस वर्ग में बीस के लगभग रूप आते हैं जिनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है क्ष. सामान्य प्रत्ययों से बने रूप और त्र. 'नो' से बने रूप।

क्ष. सामान्य प्रत्ययों से बने रूप—इस वर्ग के रूप आ, इ, इयौ, ई ई, ए ऐ, ओ, यौ आदि प्रत्ययों के योग से बनाये गये हैं। इनमें से इ, ए और यौ से बने रूपों का अधिक प्रयोग किया गया है; जैसे—

अ. आ—हरि दीरघ बचन उचारा। गर्ब भयौ ब्रजनारि कौं जबहीं हरि जाना।

आ. इ—इत राजा मन मैं पछिताइ। काम-अंध कछु रहि

न सँभारि। अंसुमान''''साठि सहस की कथा सुनाइ। इनमैं नित''' होइ लराइ।

इ. इयौ—मेरी माधैया''''जिन चरननि छलियौ बलि राजा।

ई. ईं—नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं।

उ. ई—(ब्रह्मा) सृष्टि तब और उपाई।

ऊ. ए—नंद-सुवन उत ते न डगे। निकसे खंभ बीच तैं नरहरि। (ताके पुत्र-सुता) बिषय-बासना नाना रए। हलधर देखि उतहिं कौं सरके।

ऋ. ऐ—मन खन तन तबहिं कल हंस गति गै री।

ए. औ—(तुम) ग्वालनि हेत गोबर्धन धारौ। नृप प्रजा कौं तब हँकारौ।

ऐ. यौ—पिय पूरन काम कर्यौ। गज गह्यौ ग्राह। नारी संग हेत तिन (पुरुरवा) ठयौ। (हरि) वैसी आपदा तैं राख्यौ, तोष्यौ, पोष्यौ, जिय दयौ। जब लगि मन मिलियौ नहीं। (संकर) सेज छाँड़ि भू सोयौ।

त्र. 'नो' से बने रूप—'नो' या इसके रूपांतरों—न, नी, ने, नौ, न्यौ, न्ह, न्हीं, न्हें, न्हे, न्हौं, न्ह्यौ आदि—से भी इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं। इनमें से नी, ने, नौ आदि युक्त रूपों का प्रयोग अधिक किया गया है; जैसे—

अ. न—कत बिधना ये कीन। रघुबर''''जनकसुता सुख दीन।

आ. नी—(बलि) कीनी चरन जुहारी। कंस अस्तुति मुख गानी। तब राधा झहरानी। सिव प्रसन ह्वै आज्ञा दीनी। साँटी देखि ग्वालि पछितानी। तिय'''' बलैया''''लीनी। महरि निरखि मुख हिय हुलसानी।

इ. ने—(हरि) गृह आने बसुदेव-देवकी। साठ सहस सगर के पुत्र; कीने सुरसरि तुरत पवित्र। ब्रजलोगनि नंद जू दीने बसन। (प्रभु) इन्हें पत्याने। मन-मोहन मन मैं मुसुक्याने।

ई. नौ—कह्यौ, जोग-बल रिषि सब कीनौ''''मोहिं सुख सकल भाँति कौ दीनौ। परसुराम लीनौ अवतारा। जनम सिरानौ अटकैं अटकैं।

उ. न्यौ—मथुरापति जिय अतिहिं डरान्यौ''''सिर धुनि-धुनि पछितान्यौ।

ऊ. न्ह—(नंद) प्रभु-पूजा जिय दीन्ह, काज देव के कीन्ह।

ऋ. न्हीं—(हरि) बिप्र सुदामा कौं निधि दीन्हीं।

ए. न्ही—कपिल-स्तुति तिहि बहु बिधि कीन्ही। वाकी जाति नहीं उन (हरि) चीन्ही। चरन परसत (जमुन) थाह दीन्ही। इंद्रजित लीन्ही तब सकती।

ऐ. न्हें—(हरि) नृप मुक्त कीन्हें।

ओ. न्हे—(हरि) ऐसे रंग कीन्हे मोसौं। पाँच बान मोहिं संकर दीन्हे।

औ. न्हौं—कृष्न सदाही गोकुल कीन्हौं थानौ। (सुरपति) एक अंस बृच्छनि को दीन्हौं। धर्मपुत्र''''द्विजमुख ह्वै पन लीन्हौं।

अं. न्हौ—सोइ प्रहलादहिं कीन्हौ। बसुदेव-देवकिहिं कंस महादुख दीन्हौ। तेरौ सुत ऊखल चढ़ि सींके कौ लीन्हौ।

अः न्ह्यौ—पै इन (नृपति) मोकौं कबहुँ न चीन्ह्यौ''''''' तब दयालु ह्वै दरसन दीन्ह्यौ। हरि गिरि लीन्ह्यौ।

ङ. सामान्य भूत : अन्यपुरुष : बहुवचन—इ, इयौ, ईं, ई, ए, नीं, नी, ने, न्हीं, न्हौ, यौ आदि प्रत्ययों से इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं। इनमें से अधिकांश का प्रयोग पिछले वर्ग में एकवचन आदरार्थक रूप बनाने के लिए भी किया जा चुका है। प्रस्तुत वर्ग के ईं, ई, ए और यौ प्रत्ययांत रूपों का प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे—

अ. इ—रथ करत दोउ अलगाइ।

आ. इयौ—लाखा मंदिर कौरव रचियौ।

इ. ईं—अष्टसिद्धि बहुरौ तहँ आईं। दच्छ के उपजीं पुत्री सात। चौदह सहस सुन्दरी उमहीं। धाईं सब ब्रज नारि। बहुरीं सब अति आनंद निज गृह गोप-धनौ। हरषीं सखी-सहेलरी।

ई. ई—उन तौ करी पाछिले की गति। (नैननि) लोक-बेद की मर्यादा निदरी। जिन हरि प्रीति लगाई। तब सबनि बिन्ती सुनाई।

उ. ए—नाम सुनत असुर सकल पराए। इनि तब राज

बहुत दुख पाए। ब्रह्मादिक हूँ रोए। (भिल्लिनि) लूटे सब। मोहिं दंडत धरम-दूत हारे।

ऊ. नीं—स्याम-अंग जुवती निरखि भुलानीं।

ऋ. नी—असुर-बुधि इन यह कीनी। लटैं बगरानी। जुवती बिकलानी। जुवति लजानी।

ए. ने—भीर देखि (दोउ) अति डराने। रवि-छबि कैधौं निहारि पंकज बिकसाने। ब्रज-जन निरखत हिय हुलसाने।

ऐ. न्हीं—दूतनि दीन्हीं मार।

ओ. न्हौं—जय जय धुनि अमरनि नभ कीन्हौं। प्रेम सौं जिन नाम लीन्हौं।

औ. यौ – (सब) बीचहिं बाग उजार्‌यौ। सुरासुर अमृत बाहर कियौ। जिन-जिन ही केसव उर गायौ। रन तौ....गुन तोर्‌यौ बिच धार।

४. अपूर्ण भूतकाल—इस काल के रूप कृदंतों के साथ हीं, ही, हुती, हुते, हुतौ, हे, हो आदि के प्रयोग से बनाये गये हैं और इन्हीं के अनुसार उनका लिंग तथा वचन होता है। पुरुष की दृष्टि से इस काल के रूपों में विशेष अंतर नहीं होता; जैसे—

अ. हीं—हम जरत हीं।

आ. ही—जो मन में अभिलाषा करति ही सो देखति नँदरानी। हौं ही मथत दही।

इ. हुती—(सो) चितवति हुती। आजु सो बात बिधाता कीन्ही, मन जो हुती अति भावति।

ई. हुते—गुरु-गृह पढ़त हुते जहँ बिद्या।

उ. हुतौ—कपि सुग्रीव बालि के भय तैं बसत हुतौ तहँ आई।

ऊ. हे—स्याम धनुष तोरि आवत हे। जब हरि ऐसो साज करत हे। आजु मोहिं बलराम कहत हे। देते हे मोहिं भोग। पाछे नंद सुनत हे।

ए. हो—माखन हो उतरात। कमल-काज नृप मारत हो।

५. पूर्ण भूतकाल—इस काल के रूप भूतकालिक सामान्य क्रिया के साथ ही, हुती, हुते, हे, हो आदि के प्रयोग से बनाये गये हैं; जैसे—

अ. ही—मैं खेई ही पार कौं। तब न बिचारी ही यह बात।

आ. हुती—तहाँ उरबसी सखिनि समेत आई हुती।

इ. हुते—हरि गए हुते माखन की चोरी। हम पकरे हुते हृदय उर-अंतर।

ई. हे—प्रगट कपाट बिकट दीन्हे हे बहु जोधा रखवारे।

उ. हो—स्याम कह्यौ हो आवन। (जब) राख्यौ हो जठर माहिं।

६. सामान्य भविष्यत् काल—इस काल के रूप पुरुष और वचन के अनुसार बदलते रहते हैं। लिंग की दृष्टि से इकारांत और ईकारांत रूप प्रायः स्त्रीलिंग में आते हैं, शेष पुल्लिंग में।

क. सामान्य भविष्यत् : उत्तमपुरुष : एकवचन—इस वर्ग के रूप धातु या उसके विकृत रूप में इहौं, उँगी, उँगौ, ऐहैं, ऐहौं, औं, औंगीं, औंगौ, हुँगौ आदि प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं। इनमें से 'इहौं', 'ऐहौं', 'औंगी' से बने रूपों के प्रयोग अधिक मिलते हैं; जैसे—

अ. इहौं—कंस कौ मारिहौं, धरनि निरवारिहौं, अमर उद्धारिहौं। सेवा मैं करिहौं। छाँड़िहौं नहिं बिनु मारे। आजु हौं एक एक करि टरिहौं....अपने भरोसैं लरिहौं....पतितै ह्वै निस्तरिहौं। हौं रहिहौं अवशेष।

आ. उँगी—मैं ल्याउँगी तुमकौं धरि।

इ. उँगौ—जोबन-दान लेउँगौ तुमसौं।

ई. ऐहैं—हमहूँ कृष्न-घर जैहैं।

उ. ऐहौं—मैं भक्ति स्याम की कैहौं। तब लगि हौं बैकुंठ न जैहौं। सुनि राधा, अब तोहिं न पतैहौं.... तेरैं कंठ न नैहौं....सो जब तोसौं लैहौं....तबहीं तौ सचु पैहौं....नाउँ नहीं मुख लैहौं।

ऊ. औं—कालिह जाहि अस उद्यम करौं, तेरे सब भंडारनि भरौं। (मैं) बचन भंग भऐ तैं परिहरौं।

ऋ. औंगी—ललन सौं झगरी माँड़ौंगी....अधर दसन खाँड़ौंगी....कैसे छाँड़ौंगी। हौं तब संग जरौंगी। मैंहुँ डुलावौंगी....स्रम मेटौंगी। अब मैं याहि जकरि बाँधौंगी। हौं तौ तुरत मिलौंगी हरि कौं।

ए. औंगौ—मैं निज प्रान तजौंगौ। (हौं) चारि (गाय) दुहौंगौ। मै चंद लहौंगौ....कैसैं कै जु लहौंगौ....

बरज्यौ हौं न रहौंगौ····बौराऐं न बहौंगौ····ससि तन दाप दहौंगौ।

ऐ. ब—(मैं) भूँजब क्यौं यह खेत।

ओ. हुँगौ—मैं दान लेहुँगौ।

ख. सामान्य भविष्यत् : उत्तमपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग के रूप धातु या उसके विकृत रूप में इहैं, ऐंगी, ऐंगे, ऐहैं, ब, हिंगी, हिंगे आदि प्रत्ययों के योग से बनाये गये हैं। इनमें से 'इहैं' से बने रूपों का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है: जैसे—

अ. 'इहैं'—नंद-नृपति-कुमार कहिहैं, अब न कहिहैं ग्वाल। अब हम तुमहिं नँगाइहैं। बरस चतुरदस (हम) भवन न बसिहैं। हम न बहकिहैं।

आ. ऐंगी—हम उनकौ देखैंगी।

इ. ऐंगे—(हम) काल्हि दुहैंगे। (हम) बहुरि मिलैंगे।

ई. ऐहैं—हम कैहैं····जसोदा सौं। कौन ज्वाब हम दैहैं। कहा····लैहैं हम ब्रज।

उ. ब—हम तेई करब उपाइ।

ऊ. हिंगी—दाउँ हम लेहिंगी····वहै फल देहिंगी। हम मानहिंगी उपकार रावरौ।

ए. हिंगे—(हम) देखहिंगे तुम्हरी अधिकाई। हम (स्याम) कछु मोल लेहिंगे।

ग. सामान्य भविष्यत् : मध्यमपुरुष : एकवचन—धातु या उसके विकृत रूपों में इगौ, इहै, इहौ, ऐगी, ऐहै, ऐहौ, औगी, औगे, हुगे, हौ आदि प्रत्यय जोड़कर इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं। इनमें से इहै, इहौ, ऐहै, ऐहौ आदि का प्रयोग अधिक किया गया है; जैसे—

अ. इगौ—छनकहि मैं (तू)····भस्म होइगौ।

अ. इहै तैं हूँ जो हरि-हित तप करिहै। (तू) देव-तन धरिहै। (तू) मुक्ति-स्थान पाइहै। मेरौ कह्यौ (तू) मानिहै नाहीं।

इ. इहौ (आदरार्थक)—कौन गति करिहौ मेरी नाथ। जौ (तुम) मोहि तारिहौ। (जौ) सोइ चित धरिहौ। (तुम) जीवित रहिहौ कौ लौं भू पर। अब रुठाइहौ जौ गिरिधारी।

ई. ऐगी—तू कहा करैगी।

उ. ऐहै—जब गजेंद्र कौं पग तू गैहै····तू नारायन सुमिरन कैहै। जा रानी कौं तू यह दैहै। (तू) पाछैं पछितैहै। (तू) संतनि मैं कुछ पैहै। (तू) और बसैहै नैरी।

ऊ. ऐहौ (आदरार्थक)—भक्ति बिनु (तुम) बैल बिराने ह्वैहौ····तब कैसैं गुन गैहौ····तऊ न पेट अघैहौ····कौ लौं धौं भुस खैहौ····तब कहँ मूड़ दुरैहौ····जनम गवैहौ। जज्ञ किऐं (तुम) गंध्रबपुर जैहौ। तुम दैहौ बीरा। नाथ, फिरि पछितैहौ। (तुम) सकल मनोरथ मन के पैहौ····अजहूँ जौ हरिपद चित लैहौ।

ऋ. औगे (आदरार्थक)—स्याम, फिरि कहा करौगे।

ए. हुगे (आदरार्थक)—मोहिं छाँड़ि जौ (तुम) कहुँ जाहुगे। पावहुगे (तुम) अपनौ कियौ। (तुम) अपनौ बिरद सम्हारहुगे।

ऐ. हौ—(तब जसुदा) नंदहिं कह्यौ, और कितने दिन जीहौ।

घ. सामान्य भविष्यत् : मध्यमपुरुष : बहुवचन—इहौ, ऐहौ, औगी, औगे, हुगी, हुगे आदि प्रत्ययों के योग से इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं जिनमें से 'इहौ' से बने रूपों का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है : जैसे—

अ. इहौ—(तुम) स्रम करिहौ जब मेरी सी····बिना कष्ट यह फल पाइहौ। तुम सब मरिहौ····परसत ही जरिहौ। (तुम) जीतिहौ तब असुर कौ जब (तुम) सुनिहौ करतूति हमारी।

आ. ऐहौ—नैंकु दरस की आस है ताहू तैं (तुम) जैहौ। मन-मन तुमही पछितैहौ।

इ. औगी—कंत मानहु (तुम) भव तरौगी। तुम अपने जो नेम रहौगी।

ई. औगे—सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि, खेलौगे किहिं ठाहर।

उ. हुगी—(तुम) रिस पावहुगी। (तुम) अब रोवहुगी। (तुम) सुनहुगी।

ऊ. हुगे—(तुम) आवहुगे जीति भुवाल। पावहुगे (तुम) पुनि कियौ आपनौ।

ङ सामान्य भविष्यत् : अन्यपुरुष : एकवचन—धातु या उसके विकृत रूप के अंत में इ, इगी, इगौ, इहि, इहैं, इहै, ऐंगे, ऐगी, एगौ, ऐहैं, ऐहै, हिंगे, हिगी, हिगौ, आदि प्रत्ययों के जोड़ने से इस काल-वर्ग के रूप बनाये

गये हैं। इनमें से इहैं, ऐहैं, हिंगे और एंगे से बने रूप आदरार्थक हैं। प्रयोग की दृष्टि से इहैं, इहै, एंगे, ऐगी, ऐगौ, ऐहैं, ऐहै और हिंगे से बने रूप महत्व के हैं।

अ. इ— सप्तम दिन तोहिं तच्छक खाइ। बन मैं भजन कौन बिधि होइ।

आ. इगी—दूर कौन सौं (यह) होइगी।

इ. इगौ—कैसे तप निरफलहिं जाइगौ। मन बिछुरैं तन छार होइगौ।

ई. इहिं— काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहिं। मैं निज प्रान तजौंगी सुन कपि तजिहिं जानकी सुनिकै।

उ. इहैं (आदरार्थक)—हरि करिहैं कलंकि अवतार। कहिहैं तुम्हैं मयत्रेय आन। महर खीझिहैं हमकौ। रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ। भूमि-भार येई हरिहैं।

ऊ. इहै—वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन मैं अरु आइहै तुरंत। को कौरव-दल-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरिहै। अब धौं वैसी करिहै दई। काल ग्रसिहै। तुव सराप तैं मरिहै सोइ।

ए. एंगे (आदरार्थक)—हरि आवैंगे। नंद सुनि मोहिं कहा कहैंगे। नंद-नंदन हमकौ देखैंगे। बाबा नंद बुरौ मानैंगे।

ऐ. ऐगी—(मुरली) अब करैगी बाद। यह तो कथा चलैगी आगैं। मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी। डीठि लगैगी काहू की।

ओ. ऐगौ—तेरौ कोऊ कहा करैगौ। कब मेरौ लाल बात कहैगौ। कहा घटैगौ तेरौ। सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ। जम-जाल पसार परैगौ। वह देवता कंस मारैगौ। कछु थिर न रहैगौ। कौन सहैगौ भीर।

औ. ऐहैं (आदरार्थक)—काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं। नंदहुँ तैं ये बड़े कहैहैं....फेरि बसैहैं यह ब्रजनगरी। राम....ईसहिं....दससीस चढ़ैहैं। जौ जैहैं बलदेव पहिलैं।

अं. ऐहै—खाक उड़ैहै। त्रास-अक्रूर जिय (कंस) कहा कैहै। हरि जू ताको आनि छुटैहै। (नर) जैहै काहि समीप। कौसिल्या बधू-बधू कहि मोहिं बुलैहै।

अः. हिंगे (आदरार्थक)—छमा करहिंगे श्रीसुन्दरबर। (स्याम) कबहिं घुटरुवनि चलहिंगे। (कृष्न) तिनके बंधन मोचहिंगे।

अआ. हिंगी—टूटहिंगी मोतिनि लर मेरी।

अइ. हिंगौ—क्यौं बिस्वास करहिंगौ कोरौ।

च. सामान्य भविष्यत् : अन्यपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग के रूप धातु या उसके विकृत रूप में इहैं, ऐंगे, ऐहैं, हिंगी, हिंगे आदि प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं। इनमें से प्रथम तीन प्रत्ययों से बने रूपों का प्रयोग अधिक किया गया है ; जैसे—

अ. इहैं—निकसत हंस (सब) तजिहैं। कछु (गाइ) मिलिहैं मग माहिं। कुसल सदा ये रहिहैं। वै सुनिहैं यह बात। हँसिहैं सब ग्वाल। कलि मैं नृप होइहैं अन्याई।

आ. ऐंगे—जहाँ-तहाँ तैं सब आवैंगे। (वे) कहि, कहा करैंगे। ब्रज लोग डरैंगे। (ये) काकी सरन रहैंगे। बानर-बीर हँसैंगे।

इ. ऐहैं—स्यार-काग-गिध खैहैं। पुहुप लेन जैहैं नँद-ढोटा। तप कीन्हैं सो (गंधर्व) दैहैं आग। गोपी-गाइ बहुत दुख पैहैं। (ब्रजबासी) मेरैं मारत काहि मनैहैं। कलि मैं नृप....कृषी-अन्न लैहैं बरिआई।

ई. हिंगी—वे मारहिंगी।

उ. हिंगे—जात-पाँति के लोग हँसहिंगे। ऐसे निठुर होहिंगे तेऊ।

७. संभाव्य भविष्यत्काल—इस काल के रूपों की संख्या भी यद्यपि कम है, फिर भी उक्त संभाव्य वर्तमान और संभाव्य भूतकालों से वह बहुत अधिक है। अतएव अन्य कालों की भाँति विभिन्न पुरुषों और वचनों की दृष्टि से इस काल के प्रयोगों पर भी विचार किया जा सकता है।

क. संभाव्य भविष्यत् : उत्तमपुरुष : एकवचन—इस वर्ग के रूप धातु या उसके विकृत रूप में ऊँ, ऐ, औं, यौं, हूँ आदि प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं; जैसे—

अ. ऊँ—अब मैं उनकौं ज्ञान सुनाऊँ, जिहिं तिहिं बिधि बैराग्य उपाऊँ। चूक परी मोतैं मैं जानी मिलैं स्याम बकसाऊँ, लोचन-नीर बहाऊँ....पुनि-पुनि

सीस छुवाऊँ····रुचि उपजाऊँ·······तपति जनाऊँ ·······कहि कहि जु सुनाऊँ । आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ ।

अ. ऐ—सूरदास बिनती कह बिनवै । सोइ करहु जिहिं चरन सेवै सूर ।

इ. औं—मै तुव सुत की रक्षा करौं, अरु तेरौ यह दुख परिहरौं । छाँड़ौ नाहिं बृंदाबन रजधानी । जौन दियैं मैं छूटौं । (हौं) काकी सरन तकौं । कहा गुन बरनौं स्याम तिहारे । काहि भजौं हौं दीन ।

ई. यौं—नैंकु रहौ, माखन द्यौं तुमकौं ।

उ. हुँ—जौ माँगौ सो देहुँ ।

ख. संभाव्य भविष्यत् : उत्तमपुरुष : बहुवचन—हिं', 'हीं' आदि प्रत्ययों से बने इस वर्ग के रूपों का प्रयोग कहीं-कहीं ही मिलता है; जैसे—(हम) अधरनि कौ रस लेहिं····लोचन उनके आँजहीं ।

ग. संभाव्य भविष्यत : मध्यमपुरुष—इस वर्ग के रूप दोनों लिंगों और वचनों में प्रायः समान होते हैं; जैसे—(तुम) बचन एक जौ बोलौ ।

घ. संभाव्य भविष्यत् : अन्यपुरुष : एकवचन—इस वर्ग के रूप इस काल के सभी वर्गों से अधिक हैं और धातु या उसके विकृत रूप में निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनाये गये हैं—

अ. ई—दीन जन कहा अब करई । कौन ऐसौ जो मोहित न होई ।

आ. उ—बरु मेरी पति जाउ ।

इ. एँ (आदरार्थक)—स्याम जौ कबहूँ त्रासैं । जौ प्रभु मेरे दोष विचारैं ।

ई. ऐ—जातैं····जम न चढ़ावै कागर । जौ अपनौ मन हरि सौं राँचै । जौ गिरिपति····मम कृत दोष लिखै । स्यामसुन्दर जौ सेवै, क्यों होवै गति दीन ।

उ. औ—लाज रहौ कि जाउ ।

ऊ. बै—वह अपनौ फल भोगवै ।

ए. हिं (आदरार्थक)—बहुत भीर है, हरि न भुलाहिं ।

ङ. संभाव्य भविष्यत् : अन्यपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग के रूप धातु में उ, एँ, हिं आदि प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं और इनमें भी अधिक प्रयोग हुआ हैं एँ और हिं से बने रूपों का; जैसे—

अ. उ—साँवरे सौं प्रीति बाढ़ी लाख लोग रिसाउ ।

आ. एँ—याकी कोख अवतरैं जे सुत । नंद-गोप नैननि यह देखैं····बड़े देवता कौ सुख पेखैं ।

इ. हिं—अपनौ कृत येऊ जो जानहिं । (गैयाँ) काहे न दूध देहिं ।

८. प्रत्यक्ष विधिकाल[1]—इस काल में मुख्य रूप मध्यम और अन्यपुरुष के ही होते हैं; अतएव इन्हीं की सोदाहरण चर्चा यहाँ की जायगी ।

क. प्रत्यक्षविधि : मध्यमपुरुष : एकवचन—इस वर्ग के रूपों की संख्या पर्याप्त है । धातु या उसके विकृत रूप में जिन प्रत्ययों के योग से इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं, उनमें मुख्य ये हैं—

अ. इ—तिहिं चित्त आनि । करि हरि सौं सनेह मन साँचौ । कहि, कब हरि आवैंगे । नीकैं गाइ गुपालहिं मन रे । इहीं छन भजि....पाइ यह समय लाहु लहि ।

आ. इए—जागिए गोपाल लाल ।

इ. इऐ कृपा अब कीजिऐ । प्रभु लाज धरिऐ । लाल, मुख धोइऐ । कृपानिधि....मम लज्जा निरबहिऐ । भजिऐ नंदकुमार ।

ई. ईजौ नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि....मेरौ नाम नृपति सौं लीजौ ।

उ. इयै—ब्रज आइयै गोपाल । अपनौ धरियै नाउँ । रे मन, जम की त्रास न सहियै....आइ परै सो सहियै.... अंत बार कछु लहियै । सुजल सींचियै कृपानिधि । कृपानिधान, सुदृष्टि हेरियै ।

ऊ. ईजै—अब मोपै प्रभु, कृपा करीजै । (तुम) आपुहिं चलीजै ।

ए. उ—हरि की सरन महँ तू आउ । जाउ बदरीबन । मोहिं बताउ । ताकौं तू निज बज्र बनाउ । होउ मन राम-नाम कौ गाहक ।

ओ. ओ—सुनो बिनती सुरराइ ।

---

१. 'प्रत्यक्ष विधिकाल' के लिए प्रचलित नाम 'विधि' है—लेखक ।

ओ. औ—बैंद बेगि टोहौ। स्याम, अब तजौ निठुरई। (पिय, तुम) तहँई पग धारौ। कछू अचरज मति मानौ। मेरी सुधि लीजौ ब्रजराज।

अअ. व—तहूँ आव।

अआ. ह—एक वेर इहिं दरसन देह।

अइ. हिं—तू जननी....भूलिहुँ चित चिंता नहिं आनहिं।

अई. हि—रिषि कह्यौ, दान-रति देहि, मैं बर देउँ तोहिं सो लेहि। सँभारहि रे नर।

अउ. हुँ—तुम सुनहुँ जसोदा गोरी।

अऊ. हु—ताहि कहु कैसैं कृपानिधि सकत सूर चराइ। तुम जाहु। सखी री दिखरावहु वह देस। देहु कृपा करि बाँह।

ख. प्रत्यक्ष विधि : मध्यमपुरुष : बहुवचन—इस वर्ग के रूपों की संख्या भी बहुत कम है। मुख्य रूप धातु या उसके विकृत रूप में निम्नलिखित प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं—

अ. ऐहौ—तुम कुल बधू····ऐसैं जनि कहवैहौ....तुम जनि हमहिं हँसैहौ....कुल जनि नाउँ धरैहौ।

आ. औ—सुनौ सब संतौ।

इ. हू—काजर-रोरी आनहू (मिलि) करौ छठी कौ चार।

९. परोक्ष विधिकाल—इस काल-भेद के प्रयोगों में वचन और लिंग की दृष्टि से प्रायः समानता रहती है। पुरुषों की दृष्टि से उनका वर्गीकरण अवश्य किया जा सकता है, परन्तु वह भी इस कारण अनावश्यक है कि इस काल-भेद के प्रयोग भी अधिक नहीं हैं। जिन प्रत्ययों के योग से इस वर्ग के रूप बनाये गये हैं, उनमें मुख्य ये हैं—

अ. इबी—तब जानिबी किसोर जोर रुपि रहौ जीति करि खेत सबै फर।

आ. इयौ—बंधू, करियौ राज सँभारे। मिलन हमारौ कहियौ। तुम याहि मारियौ।

इ. इहौ—पुनि खेलिहौ सकारे। वासौं जनि लरिहौ।

ई. नी—मेरी कैती बिनती करनी।

उ. बी—प्रभु हित सूचित कै बेगि प्रगटबी तैसी।

ऊ. बौ—या ब्रज कौ ब्यौहार सखा तुम, हरि सौं सब कहिबौ।

ए. यौ—परसन हमहिं सदा प्रभु हूज्यौ।

१०. सामान्य संकेतार्थकाल[1]—इस काल-भेद के रूप जिन प्रत्ययों के योग से बनाये गये हैं, उनमें मुख्य ये हैं—

अ. ती—औरनि सौं दुराव जौ करती। तबहिं हमसौं जौ कहती। जौ मेरी अँखियन रसना होती।

आ. ते—जौ प्रभु नर-देही नहिं धरते, देवै-गर्भ नहीं अवतरते। भक्ति बिना जौ (तुम) कृपा न करते। एक बार····हरि दरसन देते। राजकुमार नारि जौ पवते तौ कब अंग समाते। जौ मेरे दीनदयाल न होते।

इ. तौ—मेरैं गर्भ आनि अवतरतौ··· राजा तोकौं लेतौ गोद। हौं आस न करतौ····हौं तिनकौ अनुसरतौ··· सुद्ध पंथ पग धरतौ····नहिं साप पाप आचरतौ···· मन पिटरी लै भरतौ····मित्र-बंधु सौं लरतौ····जो तू राम-नाम धन धरतौ···भक्त नाम तेरौ परतौ···· होतौ नफा····कोउ न फेंट पकरतौ····मूल गाँठि नहिं टरतौ।

संयुक्त क्रिया—वाक्य में कभी कभी दो क्रियाएँ साथ-साथ प्रयुक्त होती हैं—एक, मुख्य रूप में और दूसरी, सहायक रूप में। ऐसे संयुक्त प्रयोगों से प्रायः मुख्य क्रिया के अर्थ में कुछ विशिष्टता या नवीनता आ जाती है। ब्रज-भाषा-कवियों ने भी क्रिया के अनेकानेक अर्थों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए क्रियाओं के ऐसे संयुक्त प्रयोग किये हैं। जिन क्रियाओं के योग से उन्होंने इस प्रकार के संयुक्त रूप बनाये हैं उनमें मुख्य हैं—आनो, उठनो, करनो, चाहनो, जानो, देनो, पड़नो, पानो, बननो, बैठनो, रहनो, लगनो, लेनो, सकनो, होनो आदि। इनमें से कुछ क्रियाएँ मुख्य और सहायक, दोनों रूपों में प्रयुक्त हुई हैं। रूप के अनुसार ऐसी संयुक्त क्रियाओं को आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. क्रियार्थक संज्ञा से बने रूप, ख. वर्तमानकालिक कृदन्तों से बने रूप, ग. भूतकालिक

---

१. 'सामान्य संकेतार्थकाल' का दूसरा नाम 'हेतुहेतुमद्भूतकाल' है—लेखक।

कृदन्तों से बने रूप, घ. पूर्वकालिक कृदन्तों से बने रूप, ङ. अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्तों से बने रूप, च. पूर्णक्रिया-द्योतक कृदन्तों से बने रूप, छ. पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ और ज. तीन क्रियाओं से बने रूप ।

क. क्रियार्थक संज्ञाओं से बने रूप—क्रियार्थक संज्ञा शब्दों से जो संयुक्त क्रियाएँ बनायी गयी हैं, कहीं उनसे आवश्यकता और अनुमति सूचित होती है, एवं कहीं क्रिया का आरंभ और अवकाश; जैसे—नाहि चितवन देत सुत-तिय नाम-नौका ओर (अनुमति)। गोपी लागी पछतावन (आरंभ)। होइ कान्ह कौ अइबौ (आवश्यकता)। इस प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ ब्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र मिलती हैं; जैसे - साँझ-सवारै आवन लागी । जो कछु करन चहत । पारथ-तिय कुरुराज-सभा में बोलि करन चहै नंगी । पुरबासी नाहिन चहत जियौ । कछु चाहौं कहौं । (तुम प्रभु) पावक जठर जरन नहिं दीन्हो। मधुप कौं प्रेमहिं पढ़न पठायौ। अपनौ बदन बिलोकन लागी । लागन नहिं देत कहूँ समर आँच ताती । (स्याम) मथुरा लागे राजन। अब लाग्यौ पछितान । होन चाहत कहा ।

ख. वर्तमानकालिक कृदन्तों से बने रूप – वर्तमानकालिक कृदंतों की सहायता से जो संयुक्त क्रियाएँ बनायी गयी हैं, वे प्रायः नित्यता या निरंतरता-सूचक हैं; जैसे—चितै रहति ज्यौं चंद चकोरी । कुंजकुंज जपत फिरौं तेरी गुन-माला । रैनि रहौंगौ जागत । अब दुहत रहौंगौ ।

ग. भूतकालिक कृदन्तों से बन रूप—इस वर्ग के रूपों की संख्या भी पर्याप्त है। ऐसी संयुक्त क्रियाओं से तत्परता, निश्चय, अभ्यास आदि की सूचना मिलती है; जैसे—कह्यौ, उहाँ अब गयौ न जाइ । जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ । नरकपति दीन्हे रहत किवार । वा रूप-रासि बिनु मधुकर कैसे परत जियौ। अब तौ पर्‌यो रहैगौ दिन दिन तुमकौं ऐसो काम । सब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैं। (हौं) अनुचर भयौ रहौं। ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत ।

घ. पूर्वकालिक कृदन्तों से बने रूप— ब्रजभाषा कवियों द्वारा प्रयुक्त पूर्वकालिक कृदंतों से बनी हुई संयुक्त क्रियाएँ प्राय: कार्य की निश्चयता, आकस्मिकता, सशक्तता पूर्णता आदि सूचित करती हैं; जैसे—औरौ आइ निकसिहैं। कामिनि आजुहिं आनि रहैगी। हरि तहँ उठि धाये। च्वै चले दोऊ नैन। नृपति जान पावहीं। बीचहिं बोलि उठे हलधर। अंकिम भरि पिय प्यारी लीन्ही। कर रहि गयौ उचायौ। जल मैं रह्यौ लुकाऊ। यह हमकौं बिधिना लिखि राख्यौ । (हरि) हाथ चक्र लै धायौ । रे मन, गोबिंद के ह्वै रहियै ।

ङ. अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंतों से बने रूप—इस वर्ग की संयुक्त क्रियाएँ प्राय: योग्यता, विवशता, आश्चर्य आदि सूचित करती हैं। इनकी संख्या उक्त रूपों की अपेक्षा कम है। 'बननो' के विकृत रूपों से इस वर्ग के अधिकांश रूप बनाये गये हैं; जैसे– स्याम, कछु करत न बनिहै । आजु कलेऊ करत बन्यौ नाहिं । छाँड़त बनत नहीं कैसेहूँ । जात न बनै देखि मुख हरि कौ । घर तैं निकसत बनत नाहीं ।

च. पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंतों से बन रूप—ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंतों से निर्मित संयुक्त क्रियाएँ प्राय: कार्य की निरंतरता या निश्चयता सूचित करती हैं; जैसे—नंद कौ कर गहे ठाढ़े। (ते)भागे आवत ब्रज ही तन कौं। लीन्हें फिरत घरहिं के पासन ।

छ. पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ—क्रिया की निरंतरता, अधिकता आदि को प्रभावोत्पादक रीति से सूचित करने के लिए कभी-कभी क्रियाओं की आवृत्ति की जाती है । ऐसी क्रियाएँ प्राय: सहचर-रूप में प्रयुक्त होती हैं जिनमें कभी तो ध्वनि में समानता रहती है और कभी अर्थ में एकरूपता । गद्य में क्रियाओं की इस प्रकार की आवृत्ति विशेष रूप से होती है । काव्य में ऐसे प्रयोगों को प्रचुर संख्या में सम्मिलित करके कवियों ने अपनी भाषा को जन-रुचि के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है । संयुक्त क्रियाओं की पुनरुक्तिवाले उनके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—आवत जात चहूँ मैं लोइ । खात-खेलत रहे नीकैं। खेलत-दौरत हारि गये री । लै आईं गृह चूमति-चाटति । जान-बूझि इन मोहिं भुलायौ । तौ अब बहुत देखिबै-सुनिबै। और सकल देखे-ढूँढ़े । भोग-समग्री धरति-उठावति । फूले-फले तरुवर। बैठत-उठत सेज सोवत

मैं कंस डरनि अकुलात । ईहि बिधि रहसत-बिलसत दंपति । नैकु टरत नहिं सोवत-जागत ।

आवृत्ति की दृष्टि से कवियों के वे प्रयोग भी ध्यान देने योग्य हैं, जो यद्यपि 'संयुक्त क्रिया' के अन्तर्गत नहीं आ सकते तथापि जिनमें एक ही क्रिया की द्विरुक्ति, कार्य की निरंतरता, अधिकता या अन्य कोई विशेषता सूचित करने के उद्देश्य से की गई है; जैसे – स्याम कछु कहत-कहत ही बस करि लीन्हे आइ निंदरिया । खेलत-खेलत.... झपि जमुना-जल लीन्हो । फिरत-फिरत बलहीन भयौ । लै-लै ते हथियार आपने चले ।

ज. दो से अधिक क्रियाओं से बने रूप - ब्रज-भाषा-काव्य में कुछ ऐसे वाक्य भी मिलते हैं जिनमें तीन-तीन या चार-चार क्रियाओं का पूर्ण क्रिया-रूप में प्रयोग किया गया है; जैसे—अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं । गगन मँडल तैं गहि आन्यौ है । ये अति चपल चल्यौ चाहत हैं । सूरजदास जनाइ दियौ है । बहुत ढीठो दै रहे हो । गर्ग सुनाइ कही जो बानी, सोई प्रगट होति है जात । दिन ही दिन वह बढ़त जात है । स्रवन सुनत रहत हे ।

क्रिया के विशेष प्रयोग – ब्रजभाषा-काव्य में क्रिया शब्दों के चयन की एक यह विशेषता भी दिखायी देती है कि कवियों ने निकटवर्ती शब्द या शब्दों से अनुप्रास के निर्वाह का प्रयत्न किया है । ऐसे प्रयोग भाषा की सुन्दरता बढ़ाने में सहायक होते हैं । साथ ही कवियों ने अर्थ की उपयुक्तता का भी उचित ध्यान रखा है; जैसे—कछु करौ कलेऊ । कदम करारत काग । करुना करति । गुनत गुन । जागु जसोदा । झरना सी झरत । दमकत बसन । धरि ध्यान ध्यावहु । निसि निघटी । पहिरे पीरे पट । प्रन प्रतिपार्‌यौ । बरबीर बिराजत । बिरद बदत । बिरद बुलाव । बैठी बैदेही । भए भस्म । भाजत भाजन भानि । रंग रँगे । लटकन लटकि रह्यौ । लोचन लोलति । सखा संग सोहत । सुनि सुबात सजनी । सुमति सुरूप सँचै ।

अव्यय और ब्रजभाषा-कवियों के प्रयोग—

अव्यय के मुख्य चार भेद होते हैं—१. क्रिया-विशेषण[1] २. संबंधसूचक, ३. समुच्चयबोधक और ४. विस्मयादिबोधक । अतएव 'अव्यय' शीर्षक के अंतर्गत इन्हीं भेदों के प्रयोगों की विवेचना करना है ।

१. क्रियाविशेषण—अर्थ के अनुसार क्रियाविशेषण के भी चार भेद होते हैं—क. स्थानवाचक, ख. कालवाचक, ग. परिमाणवाचक और घ. रीतिवाचक । ब्रजभाषा काव्य में इन सबके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं ।

क. स्थानवाचक क्रियाविशेषण—इसके पुन: दो भेद किये जा सकते हैं—क्ष. स्थितिवाचक और त्र. दिशा-वाचक । प्रथम भेद के अंतर्गत आनेवाले रूपों की संख्या द्वितीय से अधिक है ।

अ. स्थितिवाचक—ब्रजभाषा-कवियों ने जिन स्थितिवाचक क्रियाविशेषणों का प्रयोग अपने काव्य में किया है, उनमें से मुख्य यहाँ संकलित हैं । इनमें से कुछ बलात्मक रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं; जैसे—

अनत—मन अनत लगावै । यह बालक काढ़ि अनतही दीजै ।

अन्यत्र—इक छिन रहत न सो अन्यत्र ।

आगैं—आगैं है सो लीजै ।

इहाँ—लैन सो इहाँ सिधारे....छल करि इहाँ हँकारे । इहाँ अटक अति प्रेम पुरातन ।

इहाँउ—और इहाँउ बिबेक-अगिनि के बिरह-बिपाक दहौं ।

उहाँ—उहाँ जाइ कुरुपति । हरि बिनु सुख नाहिं....उहाँ । वै राजा भए जाइ उहाँ ।

ऊपर—चरन राखि उर ऊपर ।

कहँ—तब कहँ मूड़ दुरैहो ।

---

१. 'क्रियाविशेषण' का शाब्दिक अभिप्राय उन शब्दों से है जो क्रिया की विशेषता बताते हों; परन्तु इस शब्द भेद के अन्तर्गत जितने शब्द रूप आते हैं, उनमें अनेक ऐसे हैं जिनसे क्रिया की प्रत्यक्ष विशेषता नहीं प्रकट होती । अतएव 'क्रियाविशेषण' के 'विशेषण' अंश का अभिप्राय व्यापक रूप से लेना चाहिए । इसके अनुसार क्रिया के काल, स्थान, परिमाण, ढंग आदि के संबंध में प्रत्यक्ष या परोक्ष संकेत करनेवाले सभी शब्द 'क्रियाविशेषण' माने जाते हैं—लेखक ।

कहाँ—पर-हथ कहाँ बिकाऊँ। कुरुपति हैं कहाँ।

कहुँ—सूझत कहुँ न उतारौ। कहुँ हरि-कथा....कहुँ संतनि कौ डेरौ। इक दिन मृग-छौना कहुँ गयौ।

कहुँवै—ज्ञान बिना कहुँवै सुख नाहीं।

कहूँ—पतित कौ ठौर कहूँ नहिं। कहूँ कर न पसारौं।

जहँ—जहँ आदर-भाव न पइयै। जहँ रघुनाथ नहीं। जहँ भ्रम-निसा होति नहिं।

जहाँ—जहाँ गयौ। पांडु-सुत-मंदिर जहाँ। जहाँ न प्रेम-बियोग।

ढिग—सिव प्रनाम करि ढिग बैठाए। पुनि अंगद कौं बोलि ढिग।

तरैं- लोह तरैं मधि रूपा लायौ।

तहँ—जम तहँ जात डरै। तहँ तैं फिरि निज आस्रम गयौ। दसरथ तहँ आए।

तहँउ—तेरौ प्रानपति तहँउ न छांड़्यौ संग।

तहँई—मन इंद्री तहँई गए।

तहाँ—तहाँ जाइकै सुख बहु पैए। राच्छसि एक तहाँ चलि आई। बालिसुतहुँ तहाँ तैं सिधायौ।

तहीं—काल तहीं तिहिं पकरि निकार्‌यौ। कौतुक तहीं-तहीं।

तीर—रुकमिनि चौंर डुलावति तीर।

निकट—सोइ-सोइ निकट बुलायौ। कोऊ निकट न आवै। आइ निकट श्रीनाथ निहारे।

नियरैं—तीर नाहिं नियरैं।

नीचैं—नाग रहे सिर नीचैं नाइ।

नेरे—कोउ न आवै नेरे।

नेरैं—तुम तौ दोष लगावन कौ सिर बैठे देखत नेरैं।

पाछैं—डोलत पाछैं लागे। सेनापति हरि के पाछैं लागे आवत।

बिच—कंचन कौ कठुला मनि-मोतिनि बिच बघनहँ रह्यौ पोइ।

भीतर—तृष्ना नाद करत घट भीतर।

मधि—लोह तरैं मधि रूपा लायौ। बिधु मधि गन तारे।

सामुहें—सुभट सामुहें आए।

ह्याँ—इनकौं ह्याँ तैं देहु निकास। यह सुनि ह्याँ तैं भरत सिधायौ। इंद्रानी तजिकै ह्याँ आयौ।

ह्वाँ—ह्वाँ (अटक) निज नेह नए।

उक्त उदाहरणों में एक ही स्थितिवाचक क्रिया-विशेषण का प्रयोग किया गया है; परंतु ब्रजभाषा-काव्य में कहीं-कहीं इनके दोहरे रूप भी मिलते हैं; जैसे—

अनत कहूँ—हरि-चरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची। अनत कहूँ नहिं दाउँ।

कहुँ अनत—गोबिंद सौं पति पाइ कहुँ मन अनत लगावै।

जहँ-तहँ—जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई। रामहिं जहँ-तहँ होत सहाई।

जहँ-तहाँ—हरि-हरि-हरि सुमिरौ जहँ-तहाँ।

जहाँ-तहँ—जहाँ-तहँ गए सबही पराई।

जहाँ-तहाँ—जहाँ-तहाँ उठि धाए। जहाँ-तहाँ तैं सब आवहिंगे। हरि के दूत जहाँ-तहाँ रहैं।

जहीं-तहीं— रन अरु बन, बिग्रह डर आगैं, आवत जहीं-तहीं।

आ. दिशावाचक—इस वर्ग के रूपों की संख्या स्थितिवाचक क्रियाविशेषणों से कुछ कम है। जिन दिशा-वाचक क्रियाविशेषणों का प्रयोग कवियों ने किया है, उनमें प्रमुख ये हैं—

इत—इत पारथ कोप्यो हम पर। इत तैं नंद बुलावत हैं।

उत—उत कोप्यौ भीषम भट राउ। उत तैं जननि बुलावै री। नंद उततैं आए।

कित—निरालंब कित धावै। कित जाउँ। कित चलन कहौ (हौ)।

जित—जित जित मन अरजुन कौ तितहिं रथ चलायौ। अपनी रुचि जित ही ऐंचति। जित देखौ।

तितहिं—तितहिं रथ चलायौ। हौं तितहीं उठि चलत। जित देखौं मन गयौ तितहिं कौ।

दाहिन—बाएँ कर बाजि बाग दाहिन हैं बैठे।

दूर—कूर तैं दूर बसिये सदा।

दूरि—दूरि जब लौं जरा। भव-दुख दूरि नसावन।

पाछे—परत सबनि के पाछे।

स्थितिवाचक रूपों के समान दिशावाचक क्रिया-

विशेषणों के भी कवियों ने दोहरे प्रयोग किये हैं, यद्यपि इनकी संख्या भी अपेक्षाकृत कम है; जैसे—

इत-उत—पग न इत-उत धरन पावत। ते इत-उत नहिं चाहत। इत-उत देखि द्रौपदी टेरी।

जित-तित—जित-तित गोता खात। जित-तित हरि पर-धन।

ख. कालवाचक क्रियाविशेषण—इसके तीन भेद होते हैं—क्ष. समयवाचक, त्र. अवधिवाचक और ज्ञ. पौनःपुनःवाचक। इनमें से प्रथम दो भेदों की संख्या अंतिम से बहुत अधिक है।

अ. समयवाचक—इस वर्ग के रूपों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में तीस से भी अधिक है। इनमें से मुख्य रूप यहाँ संकलित हैं जिनमें कुछ बलात्मक भी हैं; जैसे—

अगमनै—सो गई अगमनै।

अब—अब लाग्यौ पछितान। तकै अब सरन तेरी। अब बारि तुम्हारी।

अबहीं—कै (प्रभु) अबहीं निस्तारौ।

अबै—(जानकी) निसाचर के संग अबै जात हौं देखी।

आगैं—पाछैं भयौ न आगैं ह्वैहै।

आज—(यह गाइ) आज तैं आप आगैं दई।

आजु—आजु गह्यौ हम पापी एक।

आजुही—भावै परौ आजुही यह तन।

कब—कब मोसौं पतित उधार्‌यौ। ऐसी कब करिहौ गोपाल। भक्ति कब करिहौ।

कबहुँ—भवसागर में कबहुँ न झूकै। हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।

कबहुँक—कबहुँक तृन बूड़ै पानी में, कबहुँक सिला तरै। कबहुँक भोजन लहौं····कबहुँक भूख सहौं····कबहुँक चढ़ौं तुरंग····कबहुँक भार बहौं।

कबहूँ—समय न कबहूँ पावै। कबहूँ····तृप्ति न पावत प्रान। कबहूँ नहिं आयौ।

जब—जब गज-चरन ग्राह गहि राख्यौ। जब सुन्यौ बिरद यह।

जबहीं—द्रुपद-सुता कौ मिट्यौ महादुख जबहीं सो हरि टेरि पुकार्‌यौ।

जबै—जबै हिरनाकुस मार्‌यौ।

ततकाल—सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि बसन-प्रवाह बढ़ायौ। कह दाता जो द्रवै न दीनहिं देखि दुखित ततकाल।

ततकालहिं—ततकालहिं तब प्रगट भए हरि।

ततछन—सो ततछन सारिखे सँवारी। हति गज····ततछन सुख उपजाए।

ततछनही—तामैं तैं ततछनही काढ़्यौ।

तब—तब धीरज मन आयौ। तब कुंती बिनती उच्चारी।

तबै—उचित अपनी कृपा करिहौ, तबै तौ बन जाइ।

तुरत—संकट परैं तुरत उठि धावत। लागि पुकार तुरत छुटकायौ। सगर के पुत्र, कीन्हे सुरसरि तुरत पवित्र।

पहिलैं—मन ममता-रुचि सौं रखवारी पहिलैं लेहु निबेरि।

पहिलैं ही—मैं तौ पहिलैं ही कहि राख्यौ। सरबस मैं पहिलैं ही वार्‌यौ।

पहिलै—पहिलै हौं ही हो तब एक।

पाछैं—पाछैं भयौ न आगे ह्वैहै।

पुनि—पुनि अघ-सिंधु बढ़त है। नेंकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास। पुनि जीतौ, पुनि मरतौ।

पूर्वं—कृपा करौ ज्यौं पूर्व करी।

प्रथम—जिहिं सुत कैं हित बिमुख गोबिंद तैं प्रथम तिहीं मुख जार्‌यौ।

फिरि—छः दस अंक फिरि डारै। फिरि औटाए स्वाद जात है। (पत्ता) फिरि न लागै डार।

फेरि—तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं। फेरि परैगी भीर। सुमारग फेरि चलैगौ।

बहुरि—बहुरि वहै सुभाइ। बहुरि जगत नहिं नाचै। बहुरि पुरान अठारह किए।

बहुरौ—बहुरौ तिन निज मन में गुने। तू कुमारिका बहुरौ होइ। बहुरौ भयौ परीच्छित राजा।

आ. अवधिवाचक—इस वर्ग के रूपों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में समयवाचक क्रियाविशेषणों से कुछ अधिक ही है। दोनों में अन्तर यह भी है कि अधिकांश अवधिवाचक रूपों का निर्माण कवियों ने प्रायः दो शब्दों से किया

है। इनमें 'लगि' और 'लौं' के योग से बने रूपों की संख्या अधिक है। उनके काव्य में प्रयुक्त मुख्य अवधिवाचक क्रिया विशेषण नीचे दिये जाते हैं—

अजहुँ—अवगुन मोपै अजहुँ न छूटत।
अजहुँ लौं—अजहुँ लौं जीवत जाके ज्याए।
अजहूँ—रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै। अजहूँ करौ सत्संगति। अजहूँ चेति।
अजहूँ लगि—अजहूँ लगि....राज करै।
अजहूँ लौं—अजहूँ लौं मन मगन काम सौं।
अजौं—अजौं अपुनपौ धारौ।
आजु-कालिह—आजु-कालिह कोसलपति आवैं।
अब ताईं—बहुत पच्यौ अब ताईं।
अब लौं—अब लौं नान्हे-नून्हे तारे।
अहनिसि—अहनिसि रहत बेहाल। अहनिसि भक्ति तुम्हारी करै। रानी सौं अहनिसि मन लायौ।
कब लगि—कब लगि फिरिहौं दीन बह्यौ। प्रान कौ पहिरौ कब लगि देत रहौं।
कबहिं लौं—अपने पाइनि कबहिं लौं मोहिं देखन धावै।
कौ लौं—जीवित रहिहौ कौ लौं भू पर। कौ लौं दुख सहियै।
जब लगि—जब लगि सरबस दीजै उनकौ। जब लगि जिय घट अंतर मेरैं। जब लगि काल न पहुँचै आइ।
जब लौं—दूरि जब लौं जरा। जब लौं तन कुसलात। द्वितीय सिंधु जब लौं मिलै न आइ।
जौ लगि—जौ लगि आन न आनि पहूँचै।
जौ लौं—जौ लौं रहे घोष मैं।
तब तैं—तब तैं तिहिं प्रतिपारयौ।
तब लगि—तब लगि सेवा करि निश्चय सौ। तब लगि हौं बैकुंठ न जैहौं।
तबहीं लगि—तबहीं लगि यह प्रीति।
तबहुँ—तबहुँ न द्वार छांड़ौं।
तबहूँ—अमित अघ ब्याकुल तबहूँ कछु न सँभार्‌यौ।
तौ लगि—तौ लगि बेगि हरौ किन पीर।
तौ लौं—चिरंजीव तौ लौं दुरजोधन।
दिन-राती—दिन-राती पोषत रह्यौ।
नित—तेली के बृष सौं नित भरमत। नित नौबत द्वार बजावत।
नितहीं—नितहीं नौबत द्वार बजायौ।
नित्त—मुख कटु बचन नित्त पर-निंदा।
निरंतर—ज्यों मधु माखी सँचति निरंतर चरनन चित्त निरंतर अनुरत। यह प्रताप दीपक सु निरंतर लोक सकल भजनी।
निसिबासर—दुबिधा-दुंद रहै निसिबासर। बिषयासक्त रहत निसिबासर। स्रवन करौं निसिबासर।
निसिदिन—निसिदिन करत गुलामी। निसिदिन रोवै। निसिदिन होत खई।
निसादिन—पर-तिय-रति अभिलाष निसादिन।
रातदिन—यह ब्यौहार लिखाइ रातदिन पुनि जीतौ पुनि मरतौ।
लौं—ये देवता खान ही लौं के।
संतत—संतत दीन महा अपराधी। करुनामय संतत दीन-दयाल। लेते राखि....संतत तिन सबहीं।
सदा—इहिं लाजन मरिऐ सदा। मुद्रिका.... सदा सुभग। सुमिरन-कथा सदा सुखदायक।
सदाई—सहज मथानी मथति सदाई। भक्त-हेतु अवतार सदाई। रहत स्याम आधीन सदाई।

इ. पौनःपुनःवाचक—इस वर्ग के अंतर्गत वे शब्द आते हैं जिनमें समय-सूचक शब्दों की प्रत्यक्ष आवृत्ति अथवा 'प्रति' के योग से परोक्ष आवृत्ति हो। ब्रजभाषा-काव्य में ऐसे प्रयोगों की संख्या कालवाचक क्रियाविशेषण के उक्त दोनों भेदों से बहुत कम है। प्रमुख प्रयोग यहाँ संकलित हैं—

अनुदिन—ज्यों मृग-नाभि कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत। प्रेम-कथा अनुदिन सुनै। संगति रहै साधु की अनुदिन भव-दुख दूरि नसावत।
छिन-छिन—बढ़ै छिन-छिन। देह छिन-छिन होति छीनी। छिन-छिन करत प्रबेस।
दिन-दिन—दिन-दिन हीन-छीन भइ काया। मन की दिन-दिन उलटी चाल।
दिनप्रति—पतितनि सौं रति जोरत दिनप्रति।

नितप्रति—सूरदास प्रभु हरिगुन मीठे नितप्रति सुनियत कान। यौं ही नितप्रति आवै जाइ।

पलपल – घटै पलपल।

पुनि पुनि—तंदुल पुनि पुनि जाँचत। पुनि पुनि योंही आवै-जावै। पुनि पुनि राव सोचै सोई।

प्रतिदिन—प्रतिदिन जन जन कर्म सबासन नाम हरै जदुराई।

फिरि फिरि—फिरि फिरि ऐसोइ है करत। एक पौ नाम बिना जग फिरि फिरि बाजी हारी। फिरि फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौ।

बारंबार—भक्त की महिमा बारंबार बखानी। नहिं अस जनम बारंबार। बारंबार सराहि सूर-प्रभु साग बिदुर-घर खाहीं।

बारंबारी—कहति जो या बिधि बारंबारी।

बारबार बारबार····फिरत दसौं दिसि धाए। बारबार यह बिनती करै।

ग. परिमाणवाचक क्रियाविशेषण—ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त परिमाणवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या स्थान और कालवाचक-रूपों से बहुत कम है। परि-माण-वाचक वर्ग के जो प्रयोग उनके काव्य में मिलते हैं, स्थूल रूप से उनको निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

अ. अधिकताबोधक—निपट, बहुत, बहुतक आदि प्रयोग इस वर्ग के अंतर्गत हैं; जैसे—

निपट—अब तौ जरा निपट नियरानी।

बहुत—भ्रम्यौ बहुत लघु धाम बिलोकत।

बहुतक—ता रिस मैं मोहिं बहुतक मारयौ।

आ. न्यूनताबोधक—कछुक, नेकु, नैंकु आदि प्रयोग इस वर्ग में आते हैं; जैसे—

कछुक—जबै आवौं साधु-संगति कछुक मन ठहराई।

नेक—टरत टारैं न नेक।

नैंकु—पांडु की बधू जस नैंकु गायौ। प्रहलाद न नैंकु डरै।

इ. तुलनावाचक—अधिक, एतौ आदि प्रयोग तुलनावाचक हैं; जैसे—

अधिक—पवन के गवन तैं अधिक धायौ।

एतौ—तोहिं एतौ भरमायौ।

ई. श्रेणीवाचक—'क्रम क्रम' या 'क्रम क्रम करि', 'सनै सनै' आदि प्रयोग इस वर्ग के हैं—

अ. क्रमक्रम करि क्रम क्रम करि सबकी गति होइ··क्रम क्रम करि··पग धरै। आभूषन अंग जे बनाये, लालहिं क्रम क्रम पहिराए।

आ. सनै सनै—सनै सनै तैं सब निस्तरै। दीनौ उनहिं उरहनौ मधुकर सनै सनै समुझाइ।

घ. रीतिवाचक क्रियाविशेषण - ब्रजभाषा-काव्य में प्राप्त रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या पर्याप्त है। सुविधा के लिए उनको मुख्य तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. प्रकारवाचक, आ. कारणवाचक और इ. निषेधवाचक।

अ प्रकारवाचक—ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रकारवाचक क्रियाविशेषणों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

अचानक—परै अचानक त्यौं रस लंपट। आनि अचा-नक अँखियाँ मीचै।

अचानक ही—कबहुँ गहत दधि-मटुकी अचानक ही···· कबहुँ गहत हौ अचानक ही गगरी।

अनयास—बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास।

अनायास—सिसुपाल सुजोधा अनायास लै जाति समोयौ। अनायास····अजगर उदर भरै। अनायास चारिउँ फल पावै।

औचक—धरै भरि अँकवारि औचक।

छरछर—छरछर मारी साँटी।

परस्पर—मोहिं देखि सब हँसत परस्पर।

मलिमलि—बस्तर मलिमलि धोए। अंग मलिमलि न्हाहिं।

सूधैं—सूधैं कहत न बात।

सेंतमेंत—कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंतमेंत न बिकाउँ।

आ. कारणवाचक—इस वर्ग के रूपों की संख्या ब्रजभाषा-काव्य में सीमित ही है। उसमें प्रयुक्त प्रमुख कारण-वाचक क्रियाविशेषण यहाँ संकलित हैं—

कत—जननि बोझ कत मारी। कत जड़ जंतु जरत। कत तू सुआ होत सेमर को।

कतहिं—कतहिं मरत हो रोइ।

कहा—गरबत कहा गँवार। कहा भयौ जुग कोटि जिएँ। तुमतें कहा न होही।

काहे कौं—रे नर, काहे कौं इतरात।

काहैं—काहैं सुधि बिसारी। काहैं सूर बिसार्‌यौ।

किन—बेगि बड़ौ किन होइ। तब किन मुई। धावहु नंद गोहारि लगौ किन।

कैसैं—सो कैसैं बिसरै। कैसैं तुव गुन गावै। अब कैसैं पैयत सुख माँगे।

तातैं—अब सिर परी ठगौरी''''तातैं बिबस भयौ। कुबिजा भई स्याम-रँग राती, तातैं सोभा पाई। तातैं कहत दयाल।

यातैं—जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं।

ग. निषेधवाचक—इस वर्ग के रूपों की संख्या भी ब्रजभाषा-काव्य में प्रकार और कारणवाचकों के समान ही है। कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख निषेधवाचक क्रियाविशेषण इस प्रकार हैं—

जनि—जनक जुआ जनि हारि। मेरी नौका जनि चढ़ौ। बालक करि इनको जनि जानौ।

जिनि—लोग बुरौ जिनि मानौ। कपट जिनि समझौ।

न—मारि न सकै '''जम न चढ़ावै कागर। तेरी गति लखि न परै। रवि की किरन उलूक न मानत।

नहिं—हौं अजान नहिं जानौं। सुख-दुख नहिं मानै। नहिं अस जनम बारंबार।

नहीं—हरि बिनु मीत नहीं कोउ। जात नहीं बिनु खाए। मैं निरबल बितबल नहीं।

ना—ना जानौं करिहौ कहा। ना कुछ घटै तुम्हारौ। छिन कल ना।

नाहिं—नर-बपु धारि नाहिं जन हरि को। समुझत नाहिं हठी। नाहिं काँचौ कृपानिधि हौं।

नाहिंन—काया-नगर बड़ी गुंजाइस नाहिंन कछु बढ़यौ। मारिबै की सकुच नाहिंन मोहिं। कबहूँ तुम नाहिंन गहरु कियौ''''नाहिंन और बियौ।

नाहिंनैं—कोटि लालच जौ दिखावहु नाहिंनैं रुचि आन। मन बस होत नाहिंनैं मेरे।

नाहीं—तहाँ प्रभु नाहीं। नाहीं डरत करत अनीति। सो नाहीं पहिचानत।

मति (नौका) मति होहि सिलाई। मुख मृदु बचन जानि मति जानहु सुद्ध पंथ पग धरतौ।

घ. अन्य रीतिवाचक क्रियाविशेषण—ब्रजभाषा-काव्य में कुछ ऐसे रीतिवाचक क्रियाविशेषण मिलते हैं जो उक्त तीनों भेदों—प्रकार, कारण और निषेधवाचक—में नहीं आते। इनको निश्चयवाचक—जैसे 'निसंदेह'—और अवधारणसूचक—जैसे 'तौ'—आदि कहा जा सकता है: जैसे—

तौ (अवधारण०) तुम तौ तीनि लोक के ठाकुर।

निसंदेह (निश्चय०)—या बिधि जौ हरि-पद उर धरिहौ निसंदेह सूर तौ तरिहौ।

२. संबंधसूचक अव्यय—संज्ञा अथवा उसी के समान प्रयुक्त शब्द के पश्चात् आकर जो अव्यय वाक्य की क्रिया, क्रियार्थक संज्ञा अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्द के साथ उसका संबंध जोड़ते हैं, वे संबद्ध 'संबंधसूचक' कहलाते हैं। प्रयोग के अनुसार इसके दो भेद होते हैं क. सबद्ध संबधसूचक और ख. अनुबंध संबंधसूचक।

क. संबद्ध संबंधसूचक - ये संबंधसूचक अव्यय संज्ञा अथवा उसी के समान प्रयुक्त शब्द के मूल रूप की विभक्ति—प्रायः संबंधकारकीय विभक्ति—के अनंतर प्रयुक्त होते हैं; कभी-कभी इनका विभक्तिरहित प्रयोग भी किया जाता है। ब्रजभाषा-काव्य में दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं: जैसे—

अ. विभक्ति के पश्चात् प्रयोग—उलटि भईं सब हरि की घाईं। रहै हरि के ढिग। दूरि गयौ दरसन के ताईं। भ्रमि आयौ कपि गुंजा की नाईं।

आ. विभक्तिरहित प्रयोग—ब्रजभाषा-काव्य में इस वर्ग के प्रयोगों की संख्या उक्त वर्ग से बहुत अधिक है: जैसे—पथिक जात मधुबन तन। गई बन तीर। भगवंत भजन बिनु। कौड़ी लगि मग की रज छानत। याहि लागि को मरै हमारैं। क्यौं नाहीं जदुपति लौं

जात। सूखयौ सलिल समेत। गिरिवर सह ब्रज देहुँ बहाई। कपिध्वज सहित गिराऊँ।

ख. अनुबद्ध संबंधसूचक—ये शब्द संज्ञा अथवा समवर्गीय शब्दों के विकृत रूपों के पश्चात् प्रयुक्त होते हैं; जैसे—नंद-गोप-ग्वालनि के आगै देव कह्यौ यह प्रगट सुनाई। सबनि तन हेरी। सुरनि समेत। भक्तनि हित तुम धारी देह।

इ. समुच्चयबोधक अव्यय—इस अव्यय-रूप के दो भेद होते हैं—क. समानाधिकरण और ख. व्यधिकरण। दोनों प्रकार के पर्याप्त प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं।

क. समानाधिकरण—इस अव्यय-रूप के जो प्रयोग कवियों ने किये हैं, उनको पुन: चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. संयोजक, आ. विभाजक, इ. विरोधसूचक और ई. परिणामसूचक।

अ. संयोजक—इस वर्ग का मुख्य रूप 'अरु' है जिसका प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र मिलता है; जैसे—सुत-कलत्र कौं अपनौ जानै, अरु तिनसौं ममत्व बहु ठानै। मैं तौं एक पुरुष कौं ध्यायौ, अरु एकहिं सौं चित्त लगायौ। पठियौ कहि उपनंद बुलाई अरु आनौ वृषभानु लिवाई।

अ. विभाजक—अथवा, कि, किंधौं, की, कै, कैधौं, भावै आदि अव्यय इस वर्ग में आते हैं जिनमें से 'की' और कै' के प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में विशेष रूप से मिलते हैं; जैसे—

अथवा—जंघनि कौं कदली सम जानै अथवा कनकखंभ सम मानै।

कि—हौं उन माहँ कि वै मोंहिं महियाँ····तरु मैं बीजु कि बीज माँह तरु।

किधौं—किधौं बारि-बूंद सीप हृदय हरष पाए। किधौं चक्रवाकि निरखि पतिहीं रति मानै।

की—रसना-स्रवन नैन की होते की रसना ही इनहीं दीन्हीं। स्याम-सखा तुम साँचे, की करि लियौ स्वाँग बीचहिं तै।

कै—रंक होइ कै रानी। कै दुइवासा····कपिल कै दत्त। कै वह भाजि सिंधु में बूड़ी, कै उहिं तज्यौ परान।

कैधौं—धनुष-बान सिरान कैधौं गरुड़ बाहन खोर····चक्र काहु चोरायौ, कैधौं भुजनि बल भयौ थोर। कैधौं नव जल स्वातिचातक मन लाए····कैधौं मृगजूथ जुरे मुरली-धुनि रीझे।

भावै—भावै परौ आजुही यह तन भावै रहौ अमान। असुर होइ भावै सुर होइ।

इ. विरोधसूचक—नतरु, नतरुक, नातरु, पै आदि रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें से अंतिम दोनों का प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे—

नतरु—अजहूँ सिय सौंपि नतरु बीस भुज भानै।

नतरुक—तजि अभिमान राम कहि बौरे नतरुक ज्वाला तचिवौ।

नातरु—गाइ लेउ मेरे गोपालहिं नतरुक काल-ब्याल लेतै है। रामहिं-राम कहौ दिन रात, नातरु जन्म अकारथ जात। मोकौं राम रजायसु नाहीं, नातरु प्रलय करौं छिन माहीं।

पै—सिवहू ताके पाछैं धाए, पै ताकौ मारन नहिं पाए। याही बिधि दिलीप तप कीन्हौ, पै गंगा जू बर नहिं दीन्हौ। बरस सहस्र भोग नृप किये, पै संतोष न आयौ हिये।

ई. परिणामसूचक—जात, तातैं आदि रूप इस वर्ग में आते हैं जिनमें से द्वितीय का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक किया गया है; जैसे—

जातैं—कौन पाप मैं ऐसौ कियौ जातैं मोकौं सूली दियौ।

तातैं—कर्दम-मोह न मन तैं जाइ, तातैं कहियै सुगम उपाइ। सिव की लागी हरि पद तारी, तातैं नहिं उन आँखि उघारी।

ख. व्यधिकरण—इस वर्ग के अव्यय एक मुख्य वाक्य का सम्बन्ध एक या अधिक वाक्यों से जोड़ते हैं। ब्रजभाषा-काव्य में इनके जो प्रयोग मिलते हैं, उनके तीन भेद किये जा सकते हैं—अ. उद्देश्यसूचक, आ. संकेतसूचक और इ. स्वरूपवाचक।

अ. उद्देश्यसूचक—जातैं, जौ आदि अव्यय इस वर्ग में आते हैं जिनमें से प्रथम का प्रयोग कवियों ने अपेक्षाकृत अधिक किया है; जैसे—

जातैं—अब तुम नाम गहौ मन नागर, जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ। सोई कछु कीजै दीनदयाल, जातैं जन छन

चरन न छाँड़ै । जात रहै छत्रपन मेरौ सोइ मंत्र कछु कीजै ।

जौ—अब तुम मोकौं करौ अजांची, जौ कहुँ कर न पसारौं।

आ संकेतसूचक - जद्यपि, जद्यपि....तऊ, जद्यपि····पै, जौ, जौ····तउ, जौ····तऊ····जौ····तौ, जौपै, जौपै··तौ, तौ····जौ, तौपै··जौ, यदि····तो आदि रूप इस वर्ग में आते हैं; जैसे—

जद्यपि—प्रकट खंभ तैं दए दिखाई जद्यपि कुल कौ दानौ ।

जद्यपि····तऊ जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै कर कुठार पकरै, तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै ।

जद्यपि····पै—जद्यपि रानी वरीं अनेक, पै तिनतैं सुत भयौ न एक।

जौ—जौ तू रामहिं दोष लगावै, करौं प्रान कौ घात ।

जौ··तउ—छहौं रस जौ धरौं आगैं तउ न गंध सुहाइ ।

जौ····तऊ—जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं····तऊ नहीं मिति नाथ ।

जौ····तौ—जौ हरि-ब्रत निज-उर न धरैंगौ····तौ को अस त्राता जु अपुन करि कर कुठावँ पकरैगौ। प्रभु हित कै सुमिरौ जौ, तौ आनंद करिकै नाचौ ।

जौपै—जौपै रामभक्ति नहिं जानी, कह सुमेरु सम दान दिए ।

जौपै····तौ—जौपै तुमहीं बिरद बिसारौ, तौ कहौ, कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ । जौपै यही बिचार परी तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं मेरी देह धरौ ।

तौ····जौ—तौ तुम कोऊ तारयौ नाहिं, जौ मोसौं पतित न तार्यौ । तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ ।

जौपै····जौ—तौपै सूर पतिब्रत साँचौ, जौ देखौं रघुराइ ।

(यदि)····जौ—नाथ, (यदि) सकौ तौ मोहिं उधारौ ।

इ. स्वरूपवाचक - जो, मनहुँ, मनु, मनौ, मानौ आदि अव्यय इस वर्ग में आते हैं जिनमें से अंतिम तीन का प्रयोग कवियों ने बहुत किया है; जैसे—

जो—मैं निरबल बित-बल नहीं जो और गढ़ाऊँ ।

मनहुँ—सदन-रज तन स्याम सोभित····मनहुँ अंग बिभूति राजति । भुजा बाम पर कर-छबि लागति···· मनहुँ कमल-दल नाल मध्य तैं उयौ ।

मनु—ललित लट छिटकाति मुख पर····मनु मयंकहिं अंक लीन्हौ सिंहिका कै सून । मो तन कर तैं धार चलति, परि मोहनि मुख अतिहीं छबि बाढ़ी, मनु जलधर-जलधर बृष्टि लघु पुनि-पुनि प्रेम-चंद पर बाढ़ी ।

मनौ—स्वाति-सुत-माला बिराजत····मनौ गंगा गौरि डर हर लई कंठ लगाइ । तनक कटि पर कनक करधनि···· मनौ कनक कसौटिया पर लीक सी लपटाति ।

मानहुँ—कोउ मरम न पावत, मानहुँ मूक मिठाई के गुन कहि न सकत मुख ।

मानौ—मुख आँसू अरु माखन कनुका····मानौ स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन अवलि समेत । त्रास तैं अति चपल गोलक सजल सोभित छीर, मीन मानौ बेधि बंसी करत जल झकझोर ।

४. विस्मयादिबोधक अव्यय—ब्रजभाषा-कवियों द्वारा प्रयुक्त विस्मयादिबोधक अव्ययों से आश्चर्य, तिरस्कार, शोक, हर्ष आदि सूचित होते हैं; जैसे—

अ. आश्चर्य—इंद्र हाथ ऊपर रहि गयौ, तिन कह्यौ, दई ! कहा यह भयौ ।

आ. तिरस्कार—धिक् तुम, धिक् या कहिबे ऊपर ।

इ. शोक—त्राहि-त्राहि द्रौपदी पुकारी । त्राहि-त्राहि करि ब्रजजन धाए । हा करुनामय ! कुंजर टेरयौ । हा जगदीस ! राँखि इहिं अवसर । हा हा लकुट त्रास दिखरावति ।

ई. हर्ष—जय-जय कृपानिधान । जय-जय-जय चिंतामनि स्वामी । बलि बलि नंददुलारे । बसन-प्रबाह बढ़यौ जब जान्यौ, साधु-साधु सबहिनि मति फेरी । साधु-साधु सुरसरी-सुवन तुम ।

वाक्य-विन्यास—

वाक्य-विन्यास का अध्ययन मुख्यत: गद्य-रचनाओं को लेकर किया जाता है । कारण यह है कि वाक्य में विभिन्न-शब्द-भेदों, वाक्यांशों, उपवाक्यों आदि के क्रम और पारस्परिक संबंध के विषय में जो नियम निर्धारित किये जाते हैं, वे प्राय: गद्य-रचनाओं के आधार पर ही होते हैं

और गद्य-लेखक ही उनका उचित निर्वाह भी करते हैं। इसके विपरीत, पद्य-लेखक को इस क्रम में अपनी इच्छा या रुचि और छन्द की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। अतएव न तो तत्संबंधी नियम सरलता से बनाये जा सकते हैं और न उनसे विशेष लाभ ही हो सकता है। संभवतः इसी कारण डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'व्रजभाषा-व्याकरण' नामक अपने पुराने और 'व्रजभाषा' नामक नये ग्रंथ में 'वाक्य' का विवेचन गद्य-रचनाओं के आधार पर ही किया है।

फिर भी किसी काव्य के वाक्य-विन्यास का अध्ययन दो विषयों — १. वाक्य में शब्दों का क्रम और उनका पारस्परिक संबंध तथा २. सरल और जटिल वाक्य-रचना—की दृष्टि से किया जाय तो निस्संदेह कुछ ऐसी बातें प्रकाश में आयंगी जिनकी ओर गद्य-रचनाओं का अध्ययन करते समय कम ही ध्यान जाता है। अतएव व्रजभाषा-कवियों के वाक्य-विन्यास का अध्ययन उक्त शीर्षकों के अन्तर्गत इसी दृष्टिकोण से करना है।

१. वाक्य में शब्दों का क्रम और उनका पारस्परिक संबंध—वाक्य के दो भाग होते हैं—एक, उद्देश्य और दूसरा, विधेय। उद्देश्य के अन्तर्गत क्रिया का कर्त्ता और कर्त्ता के विशेषण आते हैं तथा विधेय में क्रिया, उसका कर्म और क्रियाविशेषण। वाक्य में इन्हीं पाँच के क्रम और पारस्परिक संबंध पर विचार किया जाता है।

क. क्रिया का कर्त्ता या मुख्य उद्देश्य—संज्ञा, सर्वनाम, क्रियार्थक संज्ञा और संज्ञावत् प्रयुक्त कुछ विशेषण शब्द वाक्य में मुख्य उद्देश्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनका स्थान क्रिया के पूर्व और पश्चात्, प्रभाव की दृष्टि से जहाँ भी उपयुक्त हो, हो सकता है; जैसे—

१. मन हरि लीन्हों कुँवर कन्हाई।

२. नैना घूंघट में न समात।

पहले वाक्य में 'कुँवर कन्हाई' उद्देश्य है जो क्रिया 'हरि लीन्हौ' के बाद प्रयुक्त हुआ है और दूसरे में 'नैना' उद्देश्य 'समात' क्रिया के पूर्व ही है।

अर्थ-बोध की दृष्टि से उक्त वाक्यों में एक और बात ध्यान देने की है। पहले में दो संज्ञा शब्द हैं—'मन' और 'कुँवर कन्हाई'। दोनों विभक्तिरहित हैं। इसलिए गद्य-रचना के वाक्यों का शब्द-क्रम ध्यान में रखनेवाला साधारण पाठक वाक्यारंभ में प्रयुक्त 'मन' को ही उद्देश्य या कर्त्ता मान सकता है। इस भ्रम का किसी सीमा तक निवारण यह कहकर किया जा सकता है कि चेतन व्यक्ति कुँवर कन्हाई में 'हरण करने' की जितनी क्षमता है, 'मन' में 'हरे जाने' की ही उतनी योग्यता है। अतः यहाँ 'कुँवर कन्हाई' को ही उद्देश्य मानना चाहिए। दूसरे वाक्य में दो संज्ञा शब्द हैं—'नैना' और 'घूँघट। इनमें से दूसरा अर्थात् 'घूँघट' अधिकरणकारक में है जिसकी ओर उसकी विभक्ति 'में' भी संकेत करती है। अतः यहाँ कर्त्ता के संबंध में कोई भ्रम नहीं उठता। एक तीसरा वाक्य देखिए—

बहुरि बन बोलन लागे मोर

यहाँ भी क्रिया का उद्देश्य या कर्त्ता 'मोर' वाक्यांत में है, यद्यपि क्रिया के पूर्व एक और संज्ञा शब्द 'बन' प्रयुक्त हो चुका है।

यह ठीक है कि व्रजभाषा में सभी कारकीय विभक्तियों का लोप किया जा सकता है; परंतु कभी-कभी, विशेषतः उद्देश्य के साथ, विभक्ति न रहने से वाक्य-रचना भ्रमोत्पादक हो सकती है। उक्त उदाहरणों में कर्त्ता के सम्बन्ध में जो भ्रम होता है, उसका यही मुख्य कारण है। इसी प्रकार नीचे के वाक्यों में भी कर्त्ता के संबंध में अनिश्चयता के लिए स्थान है—

१. भली भाँति सुनियत हैं आज।
कोऊ कमलनैन पठयौ है तन बनाई अपनौ सौ साज।

२ देखे व्रज लोग आवत श्याम।

३. साठसहस्र सागर के पुत्र, कीने सुरसरि तुरन्त पवित्र।

पहले वाक्य का अर्थ है 'कमलनैन ने कोऊ को भेजा है'; परन्तु भ्रम से जान पड़ता है, 'कोऊ कमलनैन ने भेजा है' अथवा 'कोऊ ने कमल-नैन को भेजा है'। दूसरे में कर्त्ता है 'व्रजलोग'; परन्तु 'स्याम' के भी कर्त्ता होने का भ्रम हो सकता है। तीसरे में कर्त्ता है 'सुरसरि'; परन्तु 'पुत्र' की ओर भी भ्रम से संकेत किया जा सकता है।

कुछ विभक्तियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग व्रजभाषा-कवियों ने कई कारकों में किया है। वाक्य में ऐसी विभवित किसी शब्द के साथ रहने पर भी भ्रम के लिए स्थान रह ही जाता है; जैसे—

जानत हैं तुम जिनहिं पठाए ।

यहाँ 'हिं' विभक्ति कर्त्ता के साथ प्रयुक्त है जिससे वाक्य का अर्थ है—तुमको जिसने भेजा है ? परन्तु कर्त्ता कारक में 'हिं' का प्रयोग बहुत कम होता है; इसलिए भ्रम से यह अर्थ भी निकलता है—तुमने जिसको भेजा है । यह भ्रम होता ही नहीं, यदि 'हिं' विभक्ति 'जिन' के साथ न होकर 'तुम' के साथ रहती अथवा 'जिन' या 'जिनहिं' का प्रयोग तुम के पहले किया जाता । इस वाक्य का यह शुद्ध रूप एक अन्य पद में मिलता भी है—

जानी सिद्धि तुम्हारे सिधि की जिन तुम इहाँ पठाए ।

विभक्ति या विभक्तियों का लोप रहने पर भी शब्दों के क्रम से ही इस वाक्य का अर्थ सरलता से निकल आता है—जिन्होंने तुम्हें भेजा है । वास्तव में गद्य हो चाहे पद्य, वाक्य-रचना ऐसी होनी चाहिए कि भ्रम के लिए अवकाश ही न हो । ऐसा तभी हो सकता है जब वाक्य का प्रथम संज्ञा, सर्वनाम या अन्य समकक्ष प्रयोग, उद्देश्य या कर्त्ता के रूप में प्रयुक्त हो । ब्रजभाषा-कवियों ने अनेक वाक्यों में ऐसा किया भी है : जैसे—

१. कंस नृप अक्रूर ब्रज पठाये ।
२. कहति दूतिका सखिनि बुझाइ ।
३. मैं तौ तुम्हें हँसतऽरु खेलतहिं छाँड़ि गई ।
४. लाल उनींदे लोइननि आलस भरि लाए
५. सिखिनि सिखर चढ़ि टेर सुनायौ ।

इन वाक्यों में 'कंस नृप', 'दूतिका,' 'मैं', 'लाल' और 'सिखिनि' शब्द क्रियाओं के कर्त्ता हैं और इनका प्रयोग अन्य संज्ञा-सर्वनाम शब्दों से पूर्व होने के कारण वाक्यार्थ-बोध में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती ।

वाक्य में प्रयुक्त अन्य शब्दों के बीच से 'कर्त्ता' को चुन लेने में कोई कठिनाई न हो, इसका दूसरा उपाय यह है कि या तो उसी के साथ अथवा अन्य समकक्ष शब्दों के साथ कारकसूचक विभक्तियों का प्रयोग किया जाय । जहाँ-जहाँ कवियों ने ऐसा किया है, वहाँ-वहाँ अर्थ की स्पष्टता में कोई बाधा नहीं होती और 'कर्त्ता' को भी सरलता से बताया जा सकता है; जैसे—

१. भीजत कुंजनि मैं दोउ आवत ।
२. नंदहि कहत हरि ।
३. कहति सखिनि सौं राधिका ।
४. सुफलक सुत के संग तैं हरि होत न न्यारे ।
५. स्यामहिं सुख दै राधिका निज धाम सिधारी ।

इन वाक्यों में उद्देश्य हैं क्रमशः 'दोउ', 'हरि', 'राधिका', 'हरि' और 'राधिका' । वाक्यारंभ में न प्रयुक्त होने पर भी इनके पहचाने जाने में कठिनाई नहीं होती क्योंकि इनके पूर्व प्रयुक्त अन्य समकक्ष शब्दों के साथ कारकीय विभक्ति प्रयुक्त हुई है । अंतिम वाक्य में अवश्य 'सुख' और 'धाम' के साथ कोई विभक्ति नहीं है; परंतु 'सिधारी' क्रिया इनके अनुकूल न होकर 'राधिका' के लिंग-वचन के अनुसार है जिससे भ्रम को स्थान नहीं मिलता । ऐसी स्पष्ट वाक्य-रचना ब्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र मिलती है ।

ख. विशेषण—इस शीर्षक के अन्तर्गत सामान्य विशेषण शब्दों के अतिरिक्त संबंध-कारकीय रूप भी आ जाते हैं । साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि वाक्यांतर्गत उद्देश्य भाग के 'कर्त्ता' और विधेय भाग के 'कर्म' दोनों के विशेषण-रूप में इनका—संबंधकारकीय रूपों और सामान्य विशेषण शब्दों का—प्रयोग किया जाता है । वाक्य-योजना में विशेष्य या संबंधी शब्द के पूर्व भी कवियों ने इनको स्थान दिया है और उसके पश्चात् भी; जैसे—

१. दीजै स्याम काँधे कौ कंबर ।
२. सब खोटे मधुबन के लोग ।
३. नंद के लाल हरचौ मन मोर ।
४. गोबिंद बिनु कौन हरै नैननि की जरनि ।
५. तुम आए लै जोग सिखावन, सुनत महा दुख दीनौ ।

इन वाक्यों में विशेष्य या संबंधी शब्द हैं—कंबर, लोग, लाल, जरनि और दुख । बड़े टाइप में छपे शब्द इनके विशेषण हैं जो इनके पूर्व प्रयुक्त हुए हैं । इसके विपरीत निम्नलिखित वाक्यों में विशेषणों का प्रयोग विशेष्यों के बाद किया गया है—

१. रे मधुकर, लंपट अन्याई, यह सँदेस कत कहैं कन्हाई ।
२. रहु रहु रे बिहंग बनवासी ।
३. ऊधौ, जननी मेरी कौ मिलि अरु कुसलात कहौगे ।
४. तजी सीख सब सास-ससुर की ।

इन वाक्यों में विशेष्य हैं—मधुकर, बिहंग, जननी और सीख, जिनके विशेषण या संबंधकारकीय रूप—लंपट-अन्याई, बनवासी, मेरी कौ और सब सास ससुर की—उनके पश्चात् प्रयुक्त हुए हैं ।

विशेषण शब्द का प्रयोग विशेष्य के पूर्व किया जाय चाहे उसके पश्चात्, परंतु होना चाहिए वह सर्वथा स्पष्ट ही—उसके विशेष्य के संबंध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। एक वाक्य ऊपर दिया गया है—

साठ सहस्र सगर के पुत्र, कीने सुरसरि तुरत पवित्र।

इसमें 'साठ सहस्र' विशेषण का विशेष्य है—'पुत्र'; परंतु बीच में 'सगर' शब्द आ जाने से इसी के विशेष्य होने का भ्रम हो सकता है। ऐसे भ्रमोत्पादक विशेषण-प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में बहुत कम हैं, यद्यपि विशेष्य और विशेषण के बीच में अन्य शब्द अनेक वाक्यों में आये हैं; जैसे—

१. रितु बसंत अरु गीषम बीते बादर आए स्याम।
तारे गनत गगन के सजनी, बीतैं चारौं जाम।
२. मित्र एक मन बसत हमारैं।

इन वाक्यों में विशेषण हैं—स्याम, गगन के और हमारैं; एवं विशेष्य हैं—बादर, तारे और मन। इनके बीच में 'आए,' 'गनत' और 'बसंत' के आने पर भी विशेषण-विशेष्य के संबंध में कोई भ्रम नहीं होता।

ग. क्रिया—वाक्य के विधेयांश का सबसे महत्वपूर्ण अंग है क्रिया। गद्य-रचना में तो वाक्य की पूर्णता इसी अंग पर निर्भर रहती है और 'हाँ', 'ना'-जैसे एक-दो शब्दों के वाक्यों को छोड़कर, जो प्रायः वार्तालाप में ही प्रयुक्त होते हैं, साधारणतः क्रिया ही वाक्यों को विन्यास की दृष्टि से पूर्ण करती है। काव्य में ऐसा नहीं होता; उसमें विन्यास से अधिक ध्यान अर्थ पर रहता है और अनेक वाक्यों के अर्थ की सिद्धि क्रिया शब्द न रहने पर भी सुगमता से हो जाती है। ब्रजभाषा-काव्य में भी अनेक वाक्य ऐसे मिलते हैं जिनमें क्रिया है ही नहीं। यह बात पद के प्रथम चरणों में विशेष रूप से देखने को मिलती है; जैसे—

१. वासुदेव की बड़ी बड़ाई।
२. हरि सौं ठाकुर और न जन कौ।
३. अदभुत राम-नाम के अंक।
धर्म-अँकुर के पावन द्वै कल मुक्ति-बधू ताटंक।
४. दानव बृषपर्वा बल भारी, नाम श्रमिष्ठा तासु कुमारी।
तासु देवयानी सौं प्यार..............................।
५. सखी री, काके मीत अहीर।

उक्त वाक्यों में कोई क्रिया शब्द प्रयुक्त नहीं है, फिर भी अर्थ की दृष्टि से उनमें कोई कमी नहीं जान पड़ती। इसी प्रकार पद के बीच-बीच में भी कभी-कभी ऐसे क्रिया-रहित वाक्य मिल जाते हैं, यद्यपि इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है; जैसे—

१. हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं।
२. माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौ काम।
आमिष-रुधिर-अस्थि अँग जौ लौं, तौ लौं कोमल चाम।
३. राम-राम तौ बहुरि हमारी।

इन वाक्यों में भी, क्रिया शब्द न रहने पर, अर्थ की दृष्टि से अपूर्णता नहीं है। इस प्रकार के वाक्यों का अर्थ प्रसंग के साथ बड़ी सरलता से समझ में आ जाता है। परंतु ब्रजभाषा-कवि केवल छुट-पुट वाक्यों के क्रिया-लोप से ही संतुष्ट नहीं रहे। उन्होंने पूरे-पूरे पद ऐसे लिख दिये हैं जिनमें कोई क्रिया नहीं है; जैसे—

हरि-हर संकर नमो नमो।
अहिसायी अहि-अंग-बिभूषन, अमित-दान, बल-विष हारी।
नीलकंठ, बर नील कलेवर, प्रेम परस्पर कृतहारी।
कंठ चूड़, सिखि-चंद्र-सरोरुह, जमुनाप्रिय गंगावारी।
सुरभि-रेनु तन, भस्म-बिभूषित, बृष-बाहन, बन बृषचारी।
अज-अनीह-अबिरुद्ध, एकरस, यहै अधिक ये अवतारी।
सूरदास सम, रूप-नाम-गुन अंतर अनुचर-अनुसारी।

उक्त पद की प्रारंभिक पंक्ति में केवल 'नमो नमो' पद क्रिया-वर्ग में आता है। इसके अतिरिक्त और कोई सामान्य क्रिया-रूप उक्त पद में नहीं है। ऐसी क्रियारहित वाक्य-योजना सामासिक पद-प्रधान स्तुतियों में विशेष रूप से देखने को मिलती है। इस प्रकार की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि क्रिया न रहने पर भी वाक्य का अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती। भाषा का सामान्य कार्य, कवि के विचारों का बोध पाठक को सुगमता से करा देना होता है। क्रिया शब्द न रहने पर भी उक्त वाक्य इस दायित्व का निर्वाह सरलता से कर देते हैं।

वाक्य में यदि कर्त्ता या उद्देश्य एक से अधिक हैं और उनमें पहला एकवचन में है और दूसरा बहुवचन में, तो कवियों ने सामान्यतया क्रिया द्वितीय या अंतिम के अनुसार रखी है; जैसे—

इक मन अरु ज्ञानेंद्री पाँच, मन कौ सदा नचावैं नाच।

इस वाक्य में 'इक मन' और 'ज्ञानेन्द्री पाँच,' दोनों सम्मिलित रूप से 'नचावैं' क्रिया के कर्त्ता हैं; परंतु क्रिया को बहुवचन रूप, द्वितीय को ध्यान में रखकर ही दिया गया है। इसी प्रकार यदि एकवचन में प्रयुक्त दो कर्त्ता शब्द किसी क्रिया के साथ हैं, तो भी कवियों ने इसको बहुवचन कर दिया है; जैसे—

मत्स्य अरु सर्प तिहिं ठौर परगट भये।

यहाँ 'मत्स्य' और 'सर्प,' दोनों एकवचन में हैं। इन दोनों के कर्त्ताओं के सम्मिलित रूप के अनुसार क्रिया 'परगट भए' बहुवचन में आयी है।

किसी वाक्य में यदि क्रिया द्विकर्मक रूप में प्रयुक्त हुई है तब मुख्य कर्म तो सदैव उसके पूर्व प्रयुक्त हुआ है और गौण कर्म कभी पहले और कभी बाद में; जैसे—

१. ध्रुवहिं अभै पद दियो मुरारी।
२. अति दुख मैं सुख दै पितु-मातहिं सूरज-प्रभु नँद-भवन सिधारे।
३. ललिता कौ सुख दै गए स्याम।

इन वाक्यों में मुख्य कर्म हैं—'अभै पद,' 'सुख' और 'सुख' जो तीनों क्रियाओं—'दियौ,' 'दै' और 'दै गए' के पूर्व प्रयुक्त हुए हैं तथा गौण कर्म हैं—'ध्रुवहिं,' 'पितु-मातुहिं' और 'ललिता कौ' जिनमें प्रथम और अन्तिम तो क्रियाओं के पूर्व आये हैं, परन्तु द्वितीय 'पितु-मातुहिं' को उसके पश्चात् स्थान मिला है।

घ. अव्यय—वाक्य में अव्यय-प्रयोगों के सम्बन्ध में एक मुख्य बात यह है कि जब तब, जौ तौ, जद्यपि तद्यपि या तथापि आदि कभी तो साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं और कभी चरण में स्थान न रह जाने पर द्वितीय रूप का लोप भी कर दिया जाता है; जैसे—

१. जब गज गह्यो ग्राह जल भीतर तब हरि कौ उर ध्याए (हो)।
२. जब जब दीननि कठिन परी····तब तब सुगम करी।
३. जहँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं तहँ तहँ आपु जनायौ।
४. जहँ जहँ जात तहीं तहिं त्रासत।
५. हमता जहाँ, तहाँ प्रभु नाहीं।
६. जौ मेरे दीनदयाल न होते।
तौ मेरी अपत करत कौरव-सुत होत पांडवनि ओते।
७. ज्यौं कपि सीत हतन हित····त्यौं सठ बृथा तजत नहिं कबहूँ।

जब तब, जब-जब तब तब, जहँ जहँ तहँ तहँ, जहँ जहँ तहीं तहिं, जौ तौ, ज्यौं त्यौं आदि सम्बन्धवाचक अव्ययों का सामान्य प्रयोग तो ब्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र मिलता ही है, इनका विलोम रूप भी कहीं-कहीं दिखायी देता है; जैसे—

तब तब रक्षा करी, भगत पर जब जब बिपति परी।

तीसरे प्रकार के प्रयोग वे हैं जिनमें एक अव्यय के साथ उसके सामान्य सम्बन्धी शब्द का प्रयोग न करके अन्य रूप का प्रयोग किया गया है; जैसे—

१. जब जब भीर परीसंतन कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ।
२. जब लगि जिय घट अंतर मेरैं····चिरंजीव तौलौं दुरजोधन।

इन वाक्यों में 'जब जब' के साथ 'तब' या 'तब तब' का प्रयोग न करके 'तहाँ' का और 'जब लगि' के साथ 'तब लगि' के स्थान पर वही अर्थ रखनेवाला 'तौलौं' का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के और भी अनेक प्रयोग ब्रजभाषा-काव्य में मिलते हैं; जैसे—'जद्यपि' के साथ 'तथापि' या 'तद्यपि' का प्रयोग न करके 'तउ' या 'तऊ' का प्रयोग किया गया है। इसके उदाहरण पीछे दिये जा चुके हैं।

चौथे प्रकार के प्रयोग वे हैं जिनमें केवल प्रथम रूप का प्रयोग मिलता है, द्वितीय रूप लुप्त रहता है और अल्पविराम से उसका काम निकाला गया है; जैसे—

१. द्रुपदसुता जब प्रगट पुकारी, गहत चीर हरि नाम उबारी।
२. जब लगि डोलत बोलत चितवत, धन-दारा हैं तेरे।
३. जौ तू राम-नाम-धन-धरतौ।
अबकौ जनम, आगिलौ तेरौ, दौऊ जनम सुधरतौ।

पहले वाक्य में 'तब', दूसरे में 'तब लगि' या 'तौलौं' और तीसरे में 'तौ' आदि लुप्त हैं। भाषा-संगठन की दृष्टि से यह अन्तिम रूप अपेक्षाकृत सफल समझना चाहिए।

२. **सरल और जटिल वाक्य-रचना**—रचना की दृष्टि से वाक्य दो प्रकार के होते हैं—सरल वाक्य और जटिल वाक्य। सरल वाक्यों में एक मुख्य क्रिया अपने उद्देश्य या कर्त्ता के साथ अपना स्वतन्त्र परिवार बनाकर

बिराजती है जिससे वाक्य छोटा परन्तु संगठित रहता है। जटिल वाक्यों में एक से अधिक मुख्य क्रियाएँ अपने-अपने कर्त्ताओं के साथ सम्मिलित परिवार बनाकर रहती हैं। ऐसे वाक्यों में कभी-कभी एक-दो क्रियाओं के कर्त्ता लुप्त भी रहते हैं और उनके छोटे-छोटे उपवाक्यों को परस्पर सम्बन्धित करने के लिए अतिरिक्त अव्ययों की आवश्यकता पड़ती है। काव्य में साधारणतः प्रथम अर्थात् सरल वाक्यों की और गद्य में जटिल वाक्यों की अधिकता रहती है।

सरल वाक्य—ब्रजभाषा-काव्य में भी सर्वत्र सरल वाक्यों की ही अधिकता है। ये वाक्य चार-पाँच शब्दों से लेकर दस-बारह शब्दों तक के हैं; जैसे —

१. नमो नमो हे कृपानिधान।

२. जज्ञ-प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।

३. मन-बच-क्रम मन, गोबिंद सुधि करि।

४. सूरजदास दास की महिमा श्रीपति श्रीमुख गाई।

५. आदर सहित बिलोकि स्याम-मुख नंद अनंदरूप लिए कनियाँ।

६. राहु ससि-सूर के बीच मैं बैठिकै मोहिनी सौं अमृत माँगि लीन्ह्यौ।

ऊपर के सभी वाक्य एक ही चरण में पूर्ण हो जाते हैं। परन्तु ब्रजभाषा-काव्य में कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें एक ही चरण में कवियों ने कई सरल वाक्य रख दिये हैं। ऐसा वाक्य-विन्यास नेत्रों के सामने विषय का पूरा दृश्य अंकित कर देता है; जैसे—

प्रभु जागे। अर्जुन तन चितयौ। कब आये तुम? कुशल खरी?

इस चरण में चार सरल वाक्य माने जा सकते हैं। ये सभी वाक्य पूर्ण हैं; यद्यपि द्वितीय में कर्त्ता 'प्रभु' लुप्त है और अंतिम में क्रिया 'है'; परन्तु काव्य में ऐसा लोप अनुचित नहीं होता; क्योंकि कर्त्ता तो पूर्व वाक्य में आ ही चुका है और क्रिया-लुप्त अनेक वाक्य पूर्ण वाक्यवत् ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार नीचे के चार चरणों में से पहले, दूसरे और चौथे से तीन-तीन और तीसरे से चार सरल वाक्य बनाये जा सकते हैं; केवल कर्त्ता जोड़ने की कहीं-कहीं आवश्यकता होगी—

जागी महरि। पुत्र-मुख देख्यौ। पुलकि अंग उर मैं न समाई।
गदगद कंठ। बोल नहिं आवै। हरषवंत ह्वै नंद बुलाई।
आवहु कंत। देव परसन भये। पुत्र भयौ। मुख देखौ धाई।
दौरि नंद गये। सुत मुख देख्यौ। सो सुख मोपै बरनि न जाई।

कुछ सरल वाक्यों की रचना इतने व्यवस्थित ढंग से की गयी है कि गद्य में उनका अन्वय करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती; जैसे—

(माइ) मोहन की मुरली मैं मोहिनी बसत है।

इस वाक्य में सभी आवश्यक विभक्तियाँ प्रयुक्त हैं, किसी का भी लोप कवि ने नहीं किया है। यही इस वाक्य के गद्यात्मक विन्यास का प्रमुख कारण है।

ख. जटिल वाक्य — अधिकांश ब्रजभाषा-कवियों के जटिल वाक्यों की रचना भी सरल वाक्यों के समान ही सीधी-सादी है। साधारणतः एक या दो चरणों में उनके जटिल वाक्य पूर्ण हो जाते हैं। समस्त ब्रजभाषा-काव्य में बहुत थोड़े वाक्य ऐसे हैं जो एक चरण में समाप्त नहीं होते। निम्नखित वाक्य तीन चरणों में समाप्त हुआ है—

लै लै ते हथियार आपने, सान धराए त्यौं।
जिनके दारुन दरस देखि के पतित करत म्यौं-म्यौ।
दाँत चबात चले जमपुर तैं धाम हमारे कौं।

इस वाक्य में दूसरे चरण का अंश 'जिनके दारुन दरस देखि कै पतित करत म्यौं-म्यौं' विशेषण उपवाक्य है जिसका विशेष्य है 'ते'। इतना जान लेने पर पूरे वाक्य का अर्थ समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। जटिल परन्तु सरल वाक्यों का यह प्रतिनिधि उदाहरण है। इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण है—

जहाँ सनक सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि डर, गुंजत निगम सुवास।
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै।

यह वाक्य चार चरणों में पूरा होता है और इसमें नौ उपवाक्य तक बनाये जा सकते हैं; फिर भी अर्थ स्पष्ट है और विन्यास भी सुन्दर है।

प्रमुख कवियों की रचना में अपवादस्वरूप ही ऐसे

जटिल वाक्य मिलते हैं जो एक पूरे चरण से आगे बढ़कर दूसरे चरण के मध्य में समाप्त हुए हों। इस प्रकार का एक उदाहरण यह है—

मेरैं जिय अब यहै लालसा, लीला श्रीभगवान।
स्रवन करौं निसि बासर हित सौं, सूर तुम्हारी आन।

यहाँ दूसरे चरण के अन्त में दिया गया 'सूर तुम्हारी आन' वास्तव में एक स्वतंत्र और सरल वाक्य है। इसको हटा देने पर मुख्य जटिल वाक्य दूसरे चरण के मध्य में 'हित सौं' के बाद ही समाप्त हो जाता है।

व्याकरण में गद्य-रचना के वाक्य-विश्लेषण के उद्देश्य से जटिल वाक्यों को संयुक्त और मिश्रित, दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। परन्तु काव्य के जटिल वाक्यों की चर्चा करते समय इन भेदों को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं है। सामान्य जटिल वाक्य के अन्तर्गत जो उपवाक्य रहते हैं, वे मुख्यत: छ: प्रकार के होते हैं—अ. प्रधान उपवाक्य, आ. प्रधान के समानाधिकरण उपवाक्य, इ. संज्ञा उपवाक्य, ई. विशेषण उपवाक्य, उ. क्रियाविशेषण उपवाक्य, और ऊ. संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया-विशेषण उपवाक्यों के सामानाधिकरण उपवाक्य। यह आवश्यक नहीं है कि काव्य के प्रत्येक जटिल वाक्य में उक्त छहों प्रकार के उपवाक्य मिल सकें; क्योंकि काव्य में साधारणत: एक ऐसे वाक्य में दो से लेकर तीन चार तक ही उपवाक्यों का प्रयोग कवियों ने किया है।

अ. प्रधान उपवाक्य—वाक्य में प्रधान उपवाक्य का स्थान निश्चित नहीं रहता; अन्य उपवाक्यों के पहले अर्थात् वाक्यारंभ में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है और अंत में भी; जैसे—

१. जब-जब दुखी भयो, तब-तब कृपा करी बलबीर।
२. तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी।
जिनकें बस अनिमिष अनेक गन अनुचर आज्ञाकारी।

पहले वाक्य का प्रधान उपवाक्य, 'तब तब कृपा करी बलबीर' अंत में और दूसरे का 'तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी' आरंभ में रखा गया है।

आ. प्रधान का समानाधिकरण—ब्रजभाषा-कवियों के जिन जटिल वाक्यों में प्रधान उपवाक्य के समानाधिकरण मिलते हैं, वे बहुत सरल हैं, जैसे—

१. कर कंपै, कंकन नहिं छूटै।
२. सुरनि हित हरि कच्छप रूप धर्‌यो, मथन करि जलधि अमृत निकार्‌यौ।

इ. संज्ञा उपवाक्य—कुछ जटिल वाक्यों में जब संज्ञा उपवाक्य मिलता है, तब भी वाक्य छोटे-छोटे हैं और दो-तीन से अधिक उपवाक्यों को उसमें स्थान देने के पक्ष में अधिकांश कवि नहीं रहे हैं; जैसे—

१. इंद्र कह्यौ, **मम करौ सहाइ।**
१. श्री सुक के सुनि बचन नृप लाग्यौ करन बिचार,
झूठे नाते जगत के, सुत-कलत्र-परिवार।
३. देखौ कपिराज, **भरत वै आए।**

इन वाक्यों में बड़े टाइप में छपे उपवाक्य संज्ञा उपवाक्य हैं। दोहरे संज्ञा उपवाक्यों का एक रोचक उदाहरण निम्नलिखित वाक्य में मिलता है—

१. कठिन पिनाक, कहौ, किन तोर्‌यौ (परसुराम) क्रोधित बचन सुनाए।

'परसुराम क्रोधित बचन सुनाए' है प्रधान उपवाक्य, 'कहौ' है पहला संज्ञा उपवाक्य जिसमें कर्त्ता लुप्त है और 'कठिन पिनाक किन तोर्‌यौ' दूसरा संज्ञा उपवाक्य है प्रधान के आश्रित और दूसरे रूप में 'कहौ' वाले उपवाक्य का भी संज्ञा उपवाक्य है। ऐसे उदाहरण भी ब्रजभाषा-काव्य में कम ही हैं।

ई. विशेषण उपवाक्य—ब्रजभाषा-काव्य में सामान्य विशेषण उपवाक्यों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। उनके विशिष्ट प्रयोगों के संबंध में दो बातें महत्व की हैं। पहली तो यह कि दो-चार पदों में ऐसे वाक्य मिलते हैं जिसमें प्रधान उपवाक्य के साथ विशेषण उपवाक्यों की झड़ी-सी लगा दी गयी है; जैसे—

बंदौं चरन-सरोज तिहारे।
सुन्दर स्याम कमल दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे।
जे पद-पद्म सदा सिव के धन, सिन्धु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद पदुम तात रिसत्रासत, मन बच क्रम प्रहलाद सँभारे।
जे पद-पदुम परस जल पावन, सुरसरि दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम परस रिषि पतिनी, बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे।

जे पद-पदुम रमत बृन्दाबन अहिसिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रजभामिनि सरबस दै, सुत सदन बिसारे।
जे पद-पदुम पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिविध ताप दुख-हरन हमारे।

इस पद में 'जे पद-पदुम' से आरंभ होनेवाला प्रत्येक चरण एक विशेषण उपवाक्य है जो अंतिम चरण के प्रधान उपवाक्य के आश्रित है। ऐसी वाक्य-योजना बहुत कम पदों या छंदों में मिलती है। एक दूसरा उदाहरण है—

स्याम कमल-पद नख की सोभा।
जे नख-चंद्र इन्द्र सिर परसे, सिव बिरंचि मन लोभा।
जे नख-चंद्र सनक मुनि ध्यावत, नहिं पावत भरमाहीं।
जे नख-चंद्र प्रगट ब्रज-जुबती, निरखि-निरखि हरषाहीं।
जे नख-चंद्र फनिंद्र हृदय तैं, एकौ निमिष न टारत।
जे नख-चंद्र महा मुनि नारद, पलक न कहूँ बिसारत।
जे नख-चंद्र भजन खल नासत, रमा हृदय जे परसति।
सूर स्याम नख-चंद्र बिमल छबि, गोपीजन मिलि दरसति।

प्रथम पद में केवल दो वाक्य हैं—एक, सरल और दूसरा, जटिल; परंतु इस दूसरे पद में तीन वाक्य हैं—प्रथम चरण एक सरल वाक्य है, फिर तीन चरणों का एक जटिल वाक्य है और शेष चार चरणों में दूसरा। 'जे नख-चंद्र' से आरंभ होनेवाला प्रत्येक चरण इसमें भी विशेषण उपवाक्य रूप में है। ऐसे पद भक्ति के भावावेश में लिखे जाते हैं; और वैसी स्थिति में कवि अपने आराध्य की महिमा गाता नहीं अघाता।

ब्रजभाषा के विशेषण उपवाक्यों के संबंध में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि कहीं-कहीं उन्होंने इनके संबंध-सूचक शब्द 'जो' आदि लुप्त भी रखे हैं जिससे उपवाक्य एक साधारण वाक्यांश-सा जान पड़ता है; जैसे—

नर-बपु धारि नाहिं जन हरि कौं, जम की मार सो खैहै।

इस वाक्य में 'जन' के पूर्व 'जो' न रहने से यह विशेषण उपवाक्य, वाक्यांश मात्र जान पड़ता है विशेषकर इसलिए कि इसमें क्रिया भी लुप्त है। परंतु 'जो' का संबंधी शब्द 'सो' आगे के उपवाक्य 'जम जी मार सो खैहै' में रखा हुआ है; अतएव पूर्ण विशेषण उपवाक्य इस प्रकार होना चाहिए—नर बपु धारि जो जन नाहिं हरि को; क्योंकि पूरे वाक्य का अर्थ इसे इसी रूप में स्वीकार करके करना पड़ता है।

उ. क्रियाविशेषण उपवाक्य—विशेषण उपवाक्यों के समान ही क्रियाविशेषण उपवाक्य भी ब्रजभाषा-काव्य में सर्वत्र सामान्य रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। अधिकांश पदों में क्रियाविशेषण उपवाक्य संबंधी शब्द की दृष्टि से पूर्ण हैं; जैसे—

जौलौं सत सरूप नहिं सूझत।
तौलौं मृग-मद नाभि बिसारे फिरत सकल बन बूझत।

कुछ पदों में तो ऐसे वाक्य भी मिलते हैं जिनमें एक क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ काल या स्थान-सूचक कई-कई अव्ययों का प्रयोग किया गया है; जैसे—

जनम जनम, जब-जब, जिहिं जिहिं जुग, जहाँ जहाँ जन जाई।
तहाँ तहाँ हरि चरन-कमल-हित सो दृढ़ होइ रहाइ।

इस वाक्य में प्रथम चरण क्रियाविशेषण उपवाक्य रूप में है जिसमें बड़े टाइप में छपे अनेक अव्यय शब्द एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार के उपवाक्य ब्रजभाषा-काव्य में कम ही हैं; यद्यपि प्रभाव की दृष्टि से यह रचना अधिक सफल है।

कहीं-कहीं ऐसे वाक्य भी बनाये गये हैं जिनमें एक मुख्य उपवाक्य के साथ पाँच-छह क्रियाविशेषण उपवाक्यों की योजना है और क्रिया, कर्त्ता आदि की दृष्टि से सभी पूर्ण भी हैं; जैसे—

डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई।
नसै धर्म मन बचन काय करि, सिंधु अचंभौ करई।
अचला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरंजीवि सो मरई।
श्रीरघुनाथ प्रताप पतिब्रत, सीता सत नहिं टरई।

इस वाक्य में प्रधान उपवाक्य अंतिम चरण में है और प्रथम तीन चरणों में सात क्रियाविशेषण उपवाक्य हैं। 'चाहे', 'बरु' या इनका पर्यायवाची संबंधी शब्द इन सबमें लुप्त है। प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से यह शैली निश्चय ही महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार का एक अन्य वाक्य है—

डोलै सुमेरु, शेष-सिर कंपै, पश्चिम उदै करै बासरपति।
सुनि त्रिजटी, तौहूँ नहिं छाँड़ौं मधुर मूर्ति रघुनाथ-गात-रति।

इस वाक्य में भी प्रथम चरण में तीन क्रियाविशेषण उपवाक्य हैं। संबंधी शब्द तीनों में लुप्त हैं; फिर भी अर्थ स्पष्ट है और ऐसे उपवाक्यों की सम्मिलित योजना ने कथन को बहुत ओजपूर्ण बना दिया है।

ऊ. **समानाधिकरण उपवाक्य**—संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण, तीनों प्रकार के उपवाक्यों के समान[illegible]धिकर[illegible] उपवाक्य भी अनेक वाक्यों में मिलते हैं। संज्ञा उपवाक्[illegible] के समानाधिकरण का उदाहरण —

कह्यो सुक श्री भागवत बिचारि।
हरि की भक्ति जुगै जुग बिरधै, आन धर्म दिन चारि।

यहाँ प्रथम चरण प्रधान उपवाक्य में रूप के है, द्वितीय चरण का पूर्वार्द्ध संज्ञा उपवाक्य है और उत्तरार्द्ध का उपवाक्य इसके समानाधिकरण-[illegible] है।

विशेषण और क्रियाविशेषण [illegible] अन्तर्गत करते समय पूरे पदों या तीन-चार चर[illegible] रण ऊपर दिये गये हैं। इनमें कई-कई विशेष[illegible] और [illegible] विशेषण उपवाक्य साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं। ये सभा प[illegible] स्पर समानाधिकरण हैं। अतएव इनके अतिरिक्त उदाहरण देना अनावश्यक है।

सारांश यह कि ब्रजभाषा-कवियों के सरल और जटिल, दोनों तरह के वाक्यों का विन्यास अर्थबोध की दृष्टि से साफ और सुन्दर है। उनके काव्य में ऐसे वाक्य बहुत कम हैं जिनके उपवाक्यों के क्रम में अर्थ के लिए उलट-फेर करना पड़े। निम्नलिखित-जैसे वाक्य खोजने पर ही उनके काव्य में मिलते हैं—

तेरौ तब तिहिं दिन, को हितू हो हरि बिन,
सुधि करिकै कृपिन, तिहिं चित आनि।
जब अति दुख सहि, कठिन करम गहि,
राख्यो हो जठर माहिं स्रोनित सौं सानि।

इस वाक्य में तीन उपवाक्य हैं—

क. तेरौ तब तिहिं दिन को हितू हो हरि बिन—संज्ञा उपवाक्य।

ख. सुधि करिकै कृपिन तिहिं चित आनि—प्रध[illegible] उपवाक्य।

ग. जब अति दुख सहि [illegible] स्रोनित सौं सानि—[illegible]विशेषण उपवाक्य।

अर्थ की स्पष्टता के लिए इन उपवाक्यों का क्रम उलटकर क, ग और ख; या ख, ग और क करना पड़ता [illegible] वाक्यों में भी, जैसा ऊपर दिखाया जा [illegible] उपवाक्य हैं। [illegible] उपवाक्य-योजना सीधी-सादी है। [illegible] हरण निम्नलिखित[illegible] से भी ब्रजभाषा-काव्य में अपवाद-[illegible] कठिन [illegible] उदाहरण मिल सकते हैं जिनके वाक्य-विन्यास को शिथिल [illegible]

संभु-सुत को [illegible] असल सलावत

यहाँ 'जो ब[illegible] उपवाक्य है जिसके बीच में आ जा[illegible] हो गया है; परन्तु इसका कारण [illegible] नाया जाना कहा जा सकता है। अतए[illegible] [illegible] और गठन, दोनों की कसौटी पर ब्रजभाषा कवियों की वाक्य-योजना खरी उतरती है और यह भी ब्रजभाषा-काव्य की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण है।

: समाप्त :

ंखि हरषाहि
तमिष न टारत।
न कहूँ बिसारत।